दी इंडियन लॉ रिपोर्ट्स

इलाहाबाद संस्करण

*****

सत्यमेव जयते

इलाहाबाद हाई कोर्ट के सभी प्रकाशन योग्य निर्णय

२०२३ – भाग ३

(मार्च)

पृष्ठ १ से १६८७

उत्तर प्रदेश सरकार के अधीन प्रकाशित

इंडियन लॉ रिपोर्टर अनुभाग, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित।

इंडियन लॉ रिपोर्टिंग काउंसिल

इलाहाबाद संस्करण

****

अध्यक्ष

माननीय मुख्य न्यायमूर्ति श्री अरुण भंसाली

******

परिषद

माननीय न्यायमूर्ति श्री सौमित्र दयाल सिंह

माननीय न्यायमूर्ति श्री जयंत बनर्जी

माननीय न्यायमूर्ति श्री नलिन कुमार श्रीवास्तव

****

संपादक मंडल

वरिष्ठ विधि संपादक

१. श्री विनय सरन, वरिष्ठ अधिवक्ता

२. श्री समीर शर्मा, वरिष्ठ अधिवक्ता

कनिष्ठ विधि संपादक

१. श्री अनूप बर्णवाल, अधिवक्ता

२. सुश्री प्रिया अग्रवाल, अधिवक्ता

३. श्री आशुतोष मणि त्रिपाठी, अधिवक्ता

४. सुश्री नूर सबा बेगम, अधिवक्ता

५. श्री सरोज गिरी, अधिवक्ता

६. सुश्री मनीषा चतुर्वेदी, अधिवक्ता

७. श्री अरविन्द कुमार गोस्वामी, अधिवक्ता

८. श्री विनीत दूबे, अधिवक्ता

९. श्री प्रशान्त मिश्रा, अधिवक्ता

१०. श्री अबू बख्त, अधिवक्ता

****

मानननीय न्यायमूर्तिगण

मुख्य न्यायमूर्ति माननीय मुख्य न्यायमूर्ति श्री प्रीतिंकर दिवाकर	
न्यायमूर्ति	
१. माननीय न्यायमूर्ति श्री रमेश सिन्हा (वरिष्ठ न्यायमूर्ति लखनऊ	३४. माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक कुमार सिंह
२. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती सुनीता अग्रवाल	३५. माननीय न्यायमूर्ति श्री अजय भनोट
३. माननीय न्यायमूर्ति श्री देवेन्द्र कुमार उपाध्याय	३६. माननीय न्यायमूर्ति श्री नीरज तिवारी
४. माननीय न्यायमूर्ति श्री सूर्य प्रकाश केसरवानी	३७. माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश पाडिया
५. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनोज कुमार गुप्ता	३८. माननीय न्यायमूर्ति श्री आलोक माथुर
६. माननीय न्यायमूर्ति श्री अंजनी कुमार मिश्रा	३९. माननीय न्यायमूर्ति श्री पंकज भाटिया
७. माननीय न्यायमूर्ति डा० कौशल जयेन्द्र ठाकर	४०. माननीय न्यायमूर्ति श्री सौरभ लवानिया
८. माननीय न्यायमूर्ति श्री महेश चंद्र त्रिपाठी	४१. माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक वर्मा
९. माननीय न्यायमूर्ति श्री सुनीत कुमार	४२. माननीय न्यायमूर्ति श्री संजय कुमार सिंह
१०. माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक कुमार बिरला	४३. माननीय न्यायमूर्ति श्री पीयूष अग्रवाल
११. माननीय न्यायमूर्ति श्री अत्तउ रहमान मसूदी	४४. माननीय न्यायमूर्ति श्री सौरभ श्याम समशेरी
१२. माननीय न्यायमूर्ति श्री अश्वनी कुमार मिश्रा	४५. माननीय न्यायमूर्ति श्री जसप्रीत सिंह
१३. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजन रॉय	४६. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजीव सिंह
१४. माननीय न्यायमूर्ति श्री अरविन्द कुमार मिश्रा	४७. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान
१५. माननीय न्यायमूर्ति श्री सिद्धार्थ वर्मा	४८. माननीय न्यायमूर्ति श्री करूणेश सिंह पवार
१६. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती संगीता चन्द्रा	४९. माननीय न्यायमूर्ति डॉ० योगेन्द्र कुमार श्रीवास्तव
१७. माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक चौधरी	५०. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनीष माथुर
१८. माननीय न्यायमूर्ति श्री सौमित्र दयाल सिंह	५१. माननीय न्यायमूर्ति श्री रोहित रंजन अग्रवाल
१९. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजीव जोशी	५२. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजेन्द्र कुमार-चतुर्थ
२० माननीय न्यायमूर्ति श्री राहुल चतुर्वेदी	५३. माननीय न्यायमूर्ति श्री मौ० फैज आलम खान
२१. माननीय न्यायमूर्ति श्री सलिल कुमार राय	५४. माननीय न्यायमूर्ति श्री सुरेश कुमार गुप्ता
२२. माननीय न्यायमूर्ति श्री जयंत बनर्जी	५५. माननीय न्यायमूर्ति श्री नरेन्द्र कुमार जोहरी
२३ माननीय न्यायमूर्ति श्री राजेश सिंह चौहान	५६. माननीय न्यायमूर्ति श्री राज बीर सिंह
२४. माननीय न्यायमूर्ति श्री इरशाद अली	५७. माननीय न्यायमूर्ति श्री अजीत सिंह
२५. माननीय न्यायमूर्ति श्री सरल श्रीवास्तव	५८. माननीय न्यायमूर्ति श्री विपिन चन्द्र दीक्षित
२६. माननीय न्यायमूर्ति श्री जे० जे० मुनीर	५९. माननीय न्यायमूर्ति श्री शेखर कुमार यादव
२७. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजीव गुप्ता	६०. माननीय न्यायमूर्ति श्री दीपक वर्मा
२८. माननीय न्यायमूर्ति श्री सिद्धार्थ	६१. माननीय न्यायमूर्ति श्री डॉ. गौतम चौधरी
२९. माननीय न्यायमूर्ति श्री अजीत कुमार	६२. माननीय न्यायमूर्ति श्री शमीम अहमद
३०. माननीय न्यायमूर्ति श्री रजनीश कुमार	६३. माननीय न्यायमूर्ति श्री दिनेश पाठक
३१. माननीय न्यायमूर्ति श्री अब्दुल मोईन.	६४. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनीष कुमार
३२. माननीय न्यायमूर्ति श्री दिनेश कुमार सिंह	६५. माननीय न्यायमूर्ति श्री समित गोपाल
३३. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजीव मिश्रा	६६. माननीय न्यायमूर्ति श्री संजय कुमार पचौरी

६७. माननीय न्यायमूर्ति श्री सुभाष चन्द्र शर्मा
६८. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती सरोज यादव
६९. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती साधना रानी (ठाकुर)
७०. माननीय न्यायमूर्ति श्री सैयद आफताब हुसैन रिजवी
७१. माननीय न्यायमूर्ति श्री अजय कुमार श्रीवास्तव-प्रथम
७२. माननीय न्यायमूर्ति श्री चन्द्र कुमार राय
७३. माननीय न्यायमूर्ति श्री कृष्ण पहल
७४. माननीय न्यायमूर्ति श्री समीर जैन
७५. माननीय न्यायमूर्ति श्री आशुतोष श्रीवास्तव
७६. माननीय न्यायमूर्ति श्री सुभाष विद्यार्थी
७७. माननीय न्यायमूर्ति श्री बृज राज सिंह
७८. माननीय न्यायमूर्ति श्री श्री प्रकाश सिंह
७९. माननीय न्यायमूर्ति श्री विकास बुद्धवार
८०. माननीय न्यायमूर्ति श्री ओम प्रकाश त्रिपाठी
८१. माननीय न्यायमूर्ति श्री विक्रम डी चौहान
८२. माननीय न्यायमूर्ति श्री उमेश चन्द्र शर्मा
८३. माननीय न्यायमूर्ति श्री सौरभ श्रीवास्तव
८४. माननीय न्यायमूर्ति श्री ओम प्रकाश शुक्ला
८५. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती रेनू अग्रवाल
८६. माननीय न्यायमूर्ति श्री मौ० अजहर हुसैन रिजवी
८७. माननीय न्यायमूर्ति श्री राम मनोहर नारायन मिश्रा
८८. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती ज्योत्सना शर्मा
८९. माननीय न्यायमूर्ति श्री मयंक कुमार जैन
९०. माननीय न्यायमूर्ति श्री शिव शंकर प्रसाद
९१. माननीय न्यायमूर्ति श्री गजेन्द्र कुमार
९२. माननीय न्यायमूर्ति श्री सुरेन्द्र सिंह-प्रथम
९३. माननीय न्यायमूर्ति श्री नलिन कुमार श्रीवास्तव
९४. माननीय न्यायमूर्ति श्री सैयद क़मर हसन रिज़वी
९५. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनीष कुमार निगम
९६. माननीय न्यायमूर्ति श्री अनीश कुमार गुप्ता
९७. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती नंद प्रभा शुक्ला
९८. माननीय न्यायमूर्ति श्री क्षितिज शैलेन्द्र
९९. माननीय न्यायमूर्ति श्री विनोद दिवाकर
१००. माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रशांत कुमार
१०१. माननीय न्यायमूर्ति श्री मंजीव शुक्ला
१०२. माननीय न्यायमूर्ति श्री अरूण कुमार सिंह देशवाल

अंगद प्रताप सिंह एवं अन्य बनाम उप निदेशक चकबंदी/अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (एफ/आर), लखीमपुर खीरी एवं अन्य **पृष्ठ-** 237

अखलाख अहमद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ-** 1028

अच्छे लाल & एन.आर. बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और उत्तर प्रदेश **पृष्ठ-** 1171

अनीस @ गामा और अन्य बनाम यूपी राज्य **पृष्ठ-** 1208

अनीस बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ-**1385

अनुज कुमार एवं अन्य बनाम यूपी राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-**478

अनूप कुमार सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-**1350

अनूप महर्षि और एन.आर बनाम अशोक कुमार मिश्र **पृष्ठ-** 1477

अशोक बनाम यूपी राज्य **पृष्ठ-**960

असगर अली बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और उत्तर प्रदेश **पृष्ठ-** 1241

आजम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ-**1530

आदित्य कुमार सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ-** 165

आनंद कुमार बनाम यूपी राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-**518

इंडियन एक्सप्रेस प्राइवेट लिमिटेड ए-8, सेक्टर-7, नोएडा गौतमबुद्ध नगर बनाम यू.ओ.आई. और अन्य **पृष्ठ-**311

इन्द्र प्रताप तिवारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ-** 898

ईशा अग्रवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-** 655

उत्तर प्रदेश राज्य बनाम बद्री लोधी **पृष्ठ-**1413

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम प्रमोद कुमार तिवारी एवं अन्य **पृष्ठ-** 146

उत्तर प्रदेश राज्य बनाम आरिफ अनवर हाशमी और अन्य **पृष्ठ-** 595

उदय सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-** 168

उमाकांत यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ-** 763

ऋषि तलवार बनाम यूपी राज्य **पृष्ठ-** 781

ओम प्रकाश विमल बनाम राज्य **पृष्ठ-** 1542

कमलेश पाठक बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ-** 1379

किशोर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ-** 741

कुलदीप यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ-** 1255

के.एम. चंदना मुखर्जी बनाम ए.डी.जे., विशेष न्यायाधीश पी.सी. & एएनआर. **पृष्ठ-** 1565

कैलाश प्रसाद तिवारी बनाम यूपी राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-** 548

खंडार सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ-** 1486

गिरधर गोपाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ-** 176

गोविंद प्रकाश पांडे बनाम प्रवर्तन निदेशालय, भारत सरकार **पृष्ठ-** 715

गौरव त्रिपाठी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ-**1260

घुरू एवं अन्य बनाम अपर जिला मजिस्ट्रेट वित्त/राजस्व खीरी एवं अन्य **पृष्ठ-**270

चंद्रशेखर तिवारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ-**1315

चौधरी प्रताप सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ-**1019

छोटक्की @ किरण बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ-**983

जगदीश प्रसाद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-** 257

जावेद अहमद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ-** 1368

जोर सिंह उर्फ छोटे लाल बनाम यूपी राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-** 527

डॉ. अर्चना गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ-** 1024

ताडकनाथ एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-** 998

तेजवीर बुला बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ-** 1499

दारा सिंह @ दारा निषाद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ-** 651

दिलशाद अहमद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-** 1252

दुर्गा प्रसाद पाठक बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ-** 135

देवी दयाल एवं अन्य बनाम यूपी राज्य **पृष्ठ-** 837

देवी सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ-**214

देशराज @ बाबा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ-** 1131

धनंजय @पप्पू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ-** 1099

धर्ममुनि जोशी एवं अन्य बनाम यूपी राज्य **पृष्ठ-** 935

धर्मवीर और ए.एन. बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ-**1215

धर्मेंद्र कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ-** 1557

नंद किशोर गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ-** 643

नजमी बेगम बनाम यूपी राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-** 915

नासिर अली एवं अन्य बनाम यूपी राज्य एवं अन्य. **पृष्ठ-** 422

न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती गुड्डी @ सरोजनी एवं अन्य **पृष्ठ**-1409

परमिंदर सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ**-691

परवेज परवाज और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ**- 606

पीयूष कुमार शर्मा बनाम यूपी राज्य एवं अन्य **पृष्ठ**- 468

पुरुषोतम चौधरी बनाम सी.बी.आई., लखनऊ **पृष्ठ**- 600

पैरामेडिकल काउंसिल ऑफ इंडिया बनाम यू.ओ.आई. एवं अन्य **पृष्ठ**- 437

प्रबंधन समिति एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ**- 81

प्रशांत जायसवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ**- 1003

प्रेम पाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ**- 1450

बंशराज बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ**- 880

बबलू बुला बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ**-1520

बाबा गुरु सरन दास चेला बाबा गुरु चरण दास बनाम यूपी राज्य एवं अन्य **पृष्ठ**-582

बाबू खान एवं अन्य बनाम राजेंद्र प्रताप **पृष्ठ**- 1298

भोला यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ**-7

मनीष पाठक बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ**- 1372

मनीष शुक्ला बनाम राजस्व बोर्ड और अन्य **पृष्ठ**- 1309

महेंद्र सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ**- 1147

महेन्द्र पाल एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ**- 1613

मिठाई लाल एवं अन्य बनाम यूपी राज्य एवं अन्य **पृष्ठ**- 536

मिशन निदेशक/संयोजक कार्यकारी समिति, राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन मंडी भवन लखनऊ एवं अन्य, बनाम डॉ. राम सुरेश राय एवं अन्य **पृष्ठ**-100

मुकेश @ जीत लाल @ जटेये बनाम यूपी राज्य **पृष्ठ**- 943

मुजतबा अली खान बनाम न्यायिक मजिस्ट्रेट-III, लखनऊ और अन्य **पृष्ठ**- 1247

मेसर्स जी.बी. लॉन्स पी लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ**-398

मेसर्स जेएचवी स्टील लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ**- 356

मेसर्स तनिष्का इंटरनेशनल, रामपुर यू.पी. बनाम यू.पी. राज्य और अन्य **पृष्ठ- 26**

मेसर्स राधिका कंस्ट्रक्शन्स बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ**-322

मेसर्स वैद ऑर्गेनिक्स एंड केमिकल इंडस्ट्रीज लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ**- 339

मेसर्स शिवा एंटरप्राइजेज एवं अन्य बनाम यू.ओ.आई. एवं अन्य पृष्ठ- 1456

मैसर्स साई इंटरप्राइजेज एवं अन्य बनाम ऋण वसूली अपीलीय न्यायाधिकरण, जेएल नेहरू रोड, टैगोर टाउनइलाहाबाद और अन्य पृष्ठ-406

मोनीश बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य पृष्ठ- 1046

मोहम्मद अब्दुल खालिक बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य पृष्ठ-976

यू.पी.एस.आर.टी.सी. एवं अन्य बनाम श्रीमती भगवती एवं अन्य पृष्ठ-20

यू.पी.पी.सी.एल. एवं अन्य बनाम उ.प्र. राज्य लोक सेवा अधिकरण एवं अन्य पृष्ठ- 205

यूपी राज्य और अन्य बनाम कोमल यादव @ राम कोमल और अन्य पृष्ठ- 557

योहेश्वर सूद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ- 1333

रज्जन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ- 1227

रमाकांत यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ- 731

रवि कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य पृष्ठ- 1275

रहीस बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ- 751

राघव दास चेला महंत मथुरा दास महंत एवं अन्य बनाम काली राम दास चेला महंत गंगा राम दास एवं अन्य पृष्ठ- 1403

राज पाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य पृष्ठ- 1326

राजीव कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य पृष्ठ-618

राजीव बंसल बनाम यू.ओ.आई. एवं अन्य पृष्ठ-28

राजू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ- 1143

राजेंद्र प्रसाद @ गप्पू बनाम यूपी राज्य पृष्ठ- 867

राजेंद्र प्रसाद बनाम यूपी राज्य एवं अन्य पृष्ठ- 433

राजेश कुमार गुप्ता एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य पृष्ठ- 348

राम अवतार @ गणेश बनाम यूपी राज्य पृष्ठ- 832

राम नरेश एवं अन्य बनाम राजस्व बोर्ड, उत्तर प्रदेश एवं अन्य पृष्ठ- 1422

रुचि मित्तल @ श्रीमती रुचि गर्ग बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य पृष्ठ- 990

लखनऊ आई हॉस्पिटल बनाम यू.ओ.आई. एवं अन्य पृष्ठ- 444

लालजी और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य पृष्ठ- 1597

वक्फ कब्रिस्तान शेखखान बिरादरी संख्या 616, मेरठ बनाम उ.प्र. सुन्नी केंद्रीय बोर्ड और अन्य पृष्ठ- 1093

विजय कुमार चौबे बनाम राजेंद्र अग्रवाल पृष्ठ- 1586

विजय शंकर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ-** 1179

विनोद बिहारी लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ-** 663

विपिन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ-** 1396

विराज भाटी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-** 1286

विश्वनाथ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ-** 1016

वीरेंद्र के. सिंह चौहान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ-** 221

शत्रुघ्न बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-** 201

शशिधर गौरव मिश्रा @ शशिधर मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ-** 774

शादी लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ-** 144

शाहिद बनाम यूपी राज्य **पृष्ठ-**950

शिव गोपाल गुप्ता बनाम अतिरिक्त कलेक्टर फंद्र और अन्य **पृष्ठ-** 1464

शिव प्रिया बनाम प्रवर्तन निदेशालय, लखनऊ जोन **पृष्ठ-** 753

शिवेंद्र पति त्रिपाठी बनाम उ.प्र. राज्य सूचना आयोग, इंदिरा भवन, लखनऊ और अन्य **पृष्ठ-** 193

शुभांश चंद श्रीवास्तव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ-** 848

श्याम देव एवं अन्य बनाम यूपी राज्य **पृष्ठ-** 859

श्रीमती जयन्त्रा देवी बनाम यूपी राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-** 496

श्रीमती तस्लीमा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ-** 1203

श्रीमती नाहिदा फातिमा @ नाहिद फातिमा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ-**1439

श्रीमती माधवी मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ-** 153

श्रीमती माया सिंह बनाम राजस्व परिषद उ.प्र. और अन्य **पृष्ठ-** 227

श्रीमती मालती शर्मा बनाम राजकुमार यादव **पृष्ठ-**1572

श्रीमती राजेंद्री देवी बनाम यूपी राज्य **पृष्ठ-** 1220

श्रीमती शहनाज बेगम बनाम जिला न्यायाधीश, सुल्तानपुर और अन्य **पृष्ठ-** 1589

श्रीमती शिवानी सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ-** 373

श्रीमती शीला सचदेवा एवं अन्य बनाम यूपी राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-**413

श्रीमती संतोषी देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ-** 140

श्रीमती सुबोध कांति बनाम जिला न्यायाधीश उन्नाव एवं अन्य **पृष्ठ-** 315

संतोष कुमार एवं अन्य बनाम जगत नारायण एवं अन्य **पृष्ठ-**13

संतोष कुमार शुक्ला 3531 एस/एस2000 बनाम सिंडिकेट बैंक और अन्य **पृष्ठ-**127

संदीप जोशी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ-** 1012

संहरु गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ-** 1124

सतीश नागर बनाम यूपी राज्य **पृष्ठ-**1186

सी/एम प्रतिभा शिक्षण समिति एवं अन्य बनाम यूपी राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-**590

सी/एम, अल्पसंख्याक शिक्षा विकास समिति, कानपुर एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-**115

सुधा मुतनहेलिया बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और उत्तर प्रदेश **पृष्ठ-**974

सुनीता पांडे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-**993

सुबेश कुमार सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ-**624

सुशील कुमार कथूरिया बनाम स्पैन इंफ्राडेवलपर्स प्राइवेट लिमिटेड **पृष्ठ-** 1085

सूर्येंद्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ-** 1320

सृजन सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **पृष्ठ-** 660

सोहित कुमार एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-**1037

हरि नारायण शुक्ला बनाम यूपी राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-**569

हसमुद्दीन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **पृष्ठ-**1471

महेंद्र पाल एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **पृष्ठ-**1613

(2023) 3 ILRA 7

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 24.01.2023

माननीय न्यायमूर्ति सैयद आफताब हुसैन रिजवी

क्रिमिनल रिवीजन सं. 3576 वर्ष 2019

भोला यादव ... पुनरीक्षण याची

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिपक्षी

पुनरीक्षण याची की ओर से अधिवक्ता: श्री शरद चंद राय, श्री श्री कृष्ण मिश्रा

प्रतिपक्षी की ओर से अधिवक्ता: जी.ए., श्री जनार्दन मिश्रा, श्री रजनी कांत चौबे

अपराधिक पुनरीक्षण संख्या 3576 / 2019

(ए) - आपराधिक कानून - पुनरीक्षण - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302 - हत्या, आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 161 - पुलिस द्वारा गवाहों की परीक्षा, धारा 319 - अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही करने की शक्ति जो अपराध के दोषी प्रतीत होते हैं - धारा 319, Cr.P.C. के तहत शक्ति विवेकाधीन और असाधारण होती है - इसे सावधानी से और केवल उन वाद में प्रयोग करना चाहिए जहाँ वाद की परिस्थितियाँ ऐसा करने की आवश्यकता व्यक्त करती हैं - इसे इस आधार पर नहीं प्रयोग करना चाहिए कि मजिस्ट्रेट या सत्र न्यायाधीश को लगता है कि कोई और व्यक्ति भी उस अपराध का दोषी हो सकता है - केवल तब जब न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत गवाही से किसी व्यक्ति के विरुद्ध मजबूत और ठोस साक्ष्य मिलते हैं, तब इस शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए और इसे लापरवाही से नहीं किया जाना चाहिए। (पैराग्राफ - 9)

वादी के पिता की पुरानी दुश्मनी के कारण हत्या कर दी गई - तीन गवाहों ने एफ.आई.आर. के आरोपों की पुष्टि की - अभियोजन पक्ष द्वारा धारा 319 Cr.P.C. के तहत दायर की गई याचिका - विचारणीय न्यायालय ने पुनरीक्षक को सह-अभियुक्त के साथ विचरण का सामना करने के लिए बुलाया - विवेचक ने इस तथ्य के संबंध में कई साक्ष्य एकत्र किए - पुनरीक्षक घटना के समय उपस्थित नहीं था - सह-अभियुक्त को पहले ही अभियोजन के साक्ष्य को नकारते हुए दोषमुक्त किया जा चुका है। (पैराग्राफ - 2, 3, 11)

निर्णय:- आपेक्षित आदेश ने धारा 319 Cr.P.C. के तहत शक्तियों के प्रयोग के लिए निर्धारित मानदंड को पूरा नहीं किया। यह लापरवाही से पारित किया गया है, बिना वाद के सभी तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखे, जिससे यह अयोग्य हो गया है। (पैराग्राफ - 12)

अपराधिक पुनरीक्षण स्वीकृत। (ई-7)

<u>**उद्धृत वाद सूची:**</u>

1. हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य, 2014(3) SCC 92
2. सोमा भाई बनाम गुजरात राज्य, ए.आई.आर. 1925 SC 1453
3. ब्रिजेंद्र सिंह एवं अन्य बनाम राजस्थान राज्य, (2017) 7 SCC 706।

<u>माननीय न्यायमूर्ति सैयद आफताब हुसैन रिजवी,</u>

पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता, विपक्षी पक्ष संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता तथा विद्वान सहायक महाधिवक्ता को सुना गया तथा रिकार्ड पर रखी गई सामग्री का अवलोकन किया गया।

पुनरीक्षणकर्ता ने वर्तमान पुनरीक्षण दाखिल करके, अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश / विशेष न्यायाधीश (पोक्सो अधिनियम), कोर्ट नंबर 8, इलाहाबाद द्वारा सत्र परीक्षण संख्या 793 / 2015 (राज्य बनाम लल्लू राम और अन्य) में दिनांक 15.05.2019 को पारित किए गए आक्षेपित निर्णय और आदेश को रद्द करने की मांग की है, जो कि केस अपराध संख्या 273 / 2015 धारा 302 आईपीसी, पुलिस स्टेशन हंडिया, जिला प्रयागराज / इलाहाबाद से उत्पन्न हुआ है।आक्षेपित आदेश द्वारा, विद्वत निचली विचारण न्यायालय ने धारा 319 Cr.P.C के तहत अभियोजन धारा द्वारा दायर एक आवेदन पर, संशोधनवादी को सह-आरोपी लल्लू राम के साथ मुकदमे का सामना करने के लिए तलब किया है।

दिनांक 22.06.2016 को एक एफ.आई.आर. दर्ज कराई गई थी जिसमें आरोप लगाया गया था कि आज वादी के पिता जगमाल प्रसाद इलाहाबाद से वापस आ रहे थे, रास्ते में शाम 5.30 बजे अपनी विक्की मोटरसाइकिल से जब वह ग्राम चकनान्दू नहर पुलिया के पास पहुंचे तो लल्लू राम यादव व भोला यादव ने पुरानी रंजिश के चलते जगमाल प्रसाद के सिर पर देशी तमंचे से गोली चला दी।उसकी मौके पर ही मौत हो गई।उसी समय घर लौट रहे वादी के भाई समर बहादुर व चाचा राम प्रसाद फायर की आवाज सुनकर मौके पर पहुंचे तो आरोपी देशी तमंचा लहराते हुए मौके से भाग गए। जाँच के बाद केवल एक आरोपी लल्लू राम यादव के खिलाफ आरोप-पत्र प्रस्तुत किया गया था।दूसरे नामित आरोपी भोला यादव को बरी कर दिया गया।मुकदमे के दौरान तीन गवाहों, अमर बहादुर पीडब्लू 1, समर बहादुर पीडब्लू 2 और राम प्रसाद पीडब्लू 3 से पूछताछ की गई।इसके बाद, अभियोजन द्वारा धारा 319 Cr.P.C के तहत एक आवेदन इस आधार पर दायर किया गया कि एफ. आई. आर. में शिकायतकर्ता ने धारा 161 Cr.P.C के तहत अपने बयान में और न्यायालय के समक्ष गवाही में एफ. आई. आर. के आरोपों की पुष्टि की है कि लल्लू राम यादव ने बोला यादव को मारने के इरादे से उकसाने पर जगमल प्रसाद पर गोली चला दी है जिससे उसकी मौत हो गई।अन्य चश्मदीद गवाह, समर बहादुर पीडब्लू 2 और राम प्रसाद पीडब्लू 3 हैं, जिन्होंने भी धारा 161 Cr.P.C के तहत और निचली विचारण न्यायालय के समक्ष अपने बयान में उपरोक्त बयान की पूरी तरह से पुष्टि की है।जाँच अधिकारी ने केवल लल्लू राम के खिलाफ आरोप-पत्र प्रस्तुत किया है जबकि यह स्पष्ट है कि भोला यादव भी सह-अभियुक्त लल्लू राम यादव के साथ घटना में शामिल है।आरोपी भोला यादव को बुलाने की प्रार्थना की गई।ज्ञात निचली विचारण न्यायालय ने आवेदन को स्वीकार कर लिया है और पुनरीक्षणकर्ता-आरोपी को तलब किया है।

पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा तर्क दिया गया कि पुनरीक्षणकर्ता के विरुद्ध धारा 319 सीआरपीसी के अंतर्गत समन जारी करने के लिए अपेक्षित शर्तों को पूरा करने का कोई साक्ष्य नहीं है, इसलिए विवादित आदेश कानून की नजर

में पोषणीय नहीं है।यह आगे तर्क दिया जाता है कि अमर बहादुर पीडब्लू 1, समर बहादुर पीडब्लू 2 और राम प्रसाद पीडब्लू 3 के बयानों से, जो कथित रूप से घटना के चश्मदीद गवाह हैं, यह स्पष्ट है कि वे घटना के समय मौजूद नहीं थे, लेकिन वे बाद में आए।आगे यह तर्क दिया गया है कि जांच अधिकारी ने जांच के दौरान इस तथ्य के साक्ष्य एकत्र किए हैं कि पुनरीक्षणकर्ता-अभियुक्त मुम्बई में कार्यरत था और प्रासंगिक समय पर वह अपने रोजगार के संबंध में मुम्बई में था। जाँच अधिकारी ने इस संबंध में विश्वसनीय और ठोस साक्ष्य एकत्र किए हैं और इन आधारों पर पुनरीक्षणकर्ता-अभियुक्त को दोषमुक्त कर दिया है।विद्वत निचली विचारण न्यायालय ने आक्षेपित आदेश पारित करते समय जांच अधिकारी द्वारा एकत्र किए गए साक्ष्य की दृष्टि खो दी है कि घटना के समय पुनरीक्षणकर्ता-आरोपी गांव में मौजूद नहीं थे।विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि सर्वोच्च न्यायालय ने **हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य, 2014(3) एससीसी 92** में निम्नलिखित निर्णय दिया है:

" यद्यपि न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत साक्ष्य से केवल एक प्रथम-मुख मामला स्थापित किया जाना है, जो आवश्यक रूप से प्रतिपरीक्षा के आधार पर परीक्षण नहीं किया गया है, लेकिन इसके लिए उसकी संलिप्तता की केवल संभावना की तुलना में बहुत अधिक मजबूत साक्ष्य की आवश्यकता होती है।परीक्षण जिसे लागू किया जाना है वह आरोप तय करते समय प्रयोग किये जाने प्रथमदृष्टया मामला से कही अधिक है लेकिन संतुष्टी की सीमा से कम है यदि साक्ष्य अपर्याप्त है तो यह दोषसिद्धी की तरफ ले जायेगा।ऐसी संतुष्टि के अभाव में, न्यायालय को धारा 319, सीआरपीसी के तहत शक्ति का प्रयोग करने से बचना चाहिए। धारा 319, सीआरपीसी में यह प्रावधान करने का उद्देश्य कि यदि 'साक्ष्य से यह प्रतीत होता है कि अभियुक्त न होते हुए भी किसी व्यक्ति ने कोई अपराध किया है" तो इन शब्दों से स्पष्ट है कि "जिसके लिए ऐसे व्यक्ति पर अभियुक्त के साथ मिलकर मुकदमा चलाया जा सकता है।"उपयोग किए गए शब्द ऐसे नहीं हैं जिनके लिए ऐसे व्यक्ति को दोषी ठहराया जा सकता है।इसलिए, धारा 319 Cr.P.C के तहत कार्य करने वाले न्यायालय के लिए अभियुक्त के अपराध के बारे में कोई राय बनाने की कोई गुंजाइश नहीं है।

उन्होंने आगे तर्क दिया है कि लल्लू राम यादव का मुकदमा पूरा हो गया था जिसके परिणामस्वरूप उन्हें दोषमुक्ति दिया गया था।अभियोजन पक्ष द्वारा पेश किए गए चश्मदीद गवाहों के खाते पर निचली विचारण न्यायालय द्वारा अविश्वास किया गया था, इसलिए पुनरीक्षणकर्ता-अभियुक्त के खिलाफ कोई सबूत नहीं है जिसके आधार पर उस पर मुकदमा चलाया जा सके। मुकदमे का भाग्य सर्वविदित है और यह एक व्यर्थ अभ्यास हो सकता है। आक्षेपित आदेश भौतिक अवैधता से ग्रस्त है और इसे अलग रखा जा सकता है।

विपक्षी पक्ष संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता तथा राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान ए.जी.ए. ने तर्क दिया कि पुनरीक्षणवादी अभियुक्त का नाम एफ.आई.आर. में दर्ज है तथा उस पर हत्या के जघन्य अपराध में संलिप्तता के विशिष्ट आरोप हैं, जिसमें शिकायतकर्ता के पिता की मृत्यु हो गई थी।शिकायतकर्ता अमर बहादुर स्वयं चश्मदीद गवाह है। दो अन्य चश्मदीद गवाह हैं, समर बहादुर और राम प्रसाद।उन सभी ने धारा 161

Cr.P.C के तहत अपने बयानों में घटना में पुनरीक्षणकर्ता-अभियुक्त की संलिप्तता स्थापित करने वाले एफ. आई. आर. के आरोपों की पूरी तरह से पुष्टि की है।उन्होंने निचली विचारण न्यायालय के समक्ष अपनी गवाही में इसे दोहराया है।यह आगे तर्क दिया जाता है कि एलिबी की याचिका को न्यायालय की संतुष्टि के लिए साबित किया जाना है।विद्वत अधिवक्ता ने सोमा भाई बनाम गुजरात राज्य ए. आई. आर. 1925 एस. सी. 1453 के मामले के कानून पर भरोसा रखा है।प्रासंगिक अनुच्छेद-17 नीचे उद्धृत किया गया हैः

"17. अपीलार्थी के विद्वत अधिवक्ता ने अंत में यह तर्क दिया कि चूंकि अभियुक्त रात 9 बजे सूरत में पाया गया था, जब उसने रतिलाल देवा और अन्य लोगों के खिलाफ तस्करी की गई चांदी को छिपाने के संबंध में रिपोर्ट दर्ज कराई थी, इसलिए आरोपी घटना के समय मौजूद नहीं हो सकता था।दूसरे शब्दों में, यह एक प्रकार का एलिबी था जिसे अपीलार्थी द्वारा लेने की मांग की गई थी।हालाँकि, रिकॉर्ड में यह साबित करने के लिए कोई सबूत नहीं है कि आरोपी को पुलिस अधिकारी ने रात 9 बजे सूरत में देखा था। सर्कल इंस्पेक्टर रिजसिंघानी के साक्ष्य से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि उसने आरोपी को रात लगभग 10 बजे देखा था। घटना दांडी में रात 9 बजे से थोड़ी पहले हुई थी। आरोपी के लिए जीप से सूरत जाने के लिए पर्याप्त समय था।यह उल्लेख किया जा सकता है कि यह अपीलार्थी का मामला स्वीकार किया गया है कि वह एक जीप में सूरत गया था और वास्तव में उसने समझाया कि उसके सिर पर चोटें आईं क्योंकि सूरत की भीड़भाड़ वाली सड़कों को देखते हुए उसकी जीप अचानक रुक गई और उसका सिर जीप की खिड़की के पर्दे से टकरा गया।यह अच्छी तरह से तय किया गया है कि बहाना की याचिका को न्यायालय की संतुष्टि के लिए साबित करना होगा।

विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि निचली विचारण न्यायालय ने रिकॉर्ड पर सभी तथ्यों, सबूतों और सामग्री का विश्लेषण किया है और अपने आधार पर यह निष्कर्ष दर्ज किया है कि पुनरीक्षणकर्ता-आरोपी के खिलाफ पर्याप्त और ठोस सबूत हैं और समन आदेश पारित किया है।विवादित समन आदेश एक तर्कपूर्ण है और इसमें कोई अवैधता या अनियमितता नहीं है।

यह विवादित नहीं है कि पुनरीक्षणकर्ता-अभियुक्त का नाम एफ. आई. आर. में था, लेकिन जाँच के दौरान जाँच अधिकारी ने पाया कि वह घटना के कथित समय गाँव में मौजूद नहीं था। जाँच अधिकारी ने इसके संबंध में सबूत एकत्र किए हैं जो केस डायरी का हिस्सा है।उन्होंने मुंबई का भी दौरा किया है और अपने नियोक्ता का बयान दर्ज किया है और अन्य दस्तावेज भी एकत्र किए हैं।न्यायालय के समक्ष समर बहादुर पीडब्लू 2 और राम प्रसाद पीडब्लू 3 का बयान धारा 161 Cr.P.C के तहत दर्ज उनके बयान की पुनरावृत्ति है।

सीआरपीसी की धारा 319 के तहत शक्तियों का प्रयोग करने के लिए आवश्यक साक्ष्य का मानक **हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य (उपरोक्त)** के मामले में निर्धारित किया गया है। प्रासंगिक पैरा 98 और 99 इस प्रकार हैंः

"98. धारा 319, Cr.P.C के तहत शक्ति एक विवेकाधीन और एक असाधारण शक्ति है।इसका प्रयोग बहुत कम और केवल उन्हीं मामलों में किया जाना चाहिए जहां परिस्थितियों के अनुसार वारंट

आवश्यक हो।इसका प्रयोग इसलिए नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि मजिस्ट्रेट या सत्र न्यायाधीश की राय है कि कोई अन्य व्यक्ति भी उस अपराध को करने का दोषी हो सकता है।केवल वहाँ जहाँ न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत साक्ष्य से किसी व्यक्ति के खिलाफ मजबूत और ठोस साक्ष्य होता है कि ऐसी शक्ति का प्रयोग आकस्मिक और लापरवाह तरीके से नहीं किया जाना चाहिए।

99. इस प्रकार, हम मानते हैं कि यद्यपि न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत साक्ष्य से ही प्रथम दृष्टया मामला स्थापित किया जाना है, जिसे आवश्यक रूप से जिरह के आधार पर परखा नहीं गया है, इसके लिए उसकी सहभागिता की मात्र संभावना से कहीं अधिक मजबूत साक्ष्य की आवश्यकता है। जो परीक्षण लागू किया जाना है, वह आरोप-विरचन के समय प्रयोग किए गए प्रथम दृष्टया मामले से कहीं अधिक है, लेकिन इस सीमा तक संतुष्टि से कम है कि साक्ष्य, यदि अखंडित हो जाए, तो दोषसिद्धि की ओर ले जाएगा।ऐसी संतुष्टि के अभाव में, न्यायालय को धारा 319, सीआरपीसी के तहत शक्ति का प्रयोग करने से बचना चाहिए। धारा 319, सीआरपीसी में प्रावधान करने का उद्देश्य यदि 'साक्ष्य से यह प्रतीत होता है कि किसी व्यक्ति ने, जो अभियुक्त नहीं है, कोई अपराध किया है, इन शब्दों से स्पष्ट है "जिसके लिए ऐसे व्यक्ति पर अभियुक्त के साथ मुकदमा चलाया जा सकता है।" उपयोग किए गए शब्द ऐसे नहीं हैं जिनके लिए ऐसे व्यक्ति को दोषी ठहराया जा सकता है।इसलिए, धारा 319, Cr.P.C के तहत कार्य करने वाले न्यायालय के लिए अभियुक्त के अपराध के बारे में कोई राय बनाने की कोई गुंजाइश नहीं है।

बृजेंद्र सिंह और एक अन्य बनाम राजस्थान राज्य (2017) 7 एस. सी. सी. 706 में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणियां की हैंः

"13. इस प्रश्न का उत्तर देने के आदेश, प्रदीप सिंह के मामले में प्रतिपादित कुछ सिद्धांतों को दोहराया जा सकता हैःधारा 319 Cr.P.C के तहत शक्ति का प्रयोग निचली विचारण न्यायालय द्वारा मुकदमे के दौरान किसी भी स्तर पर, यानी मुकदमे के समापन से पहले, किसी भी व्यक्ति को आरोपी के रूप में बुलाने और चल रहे मामले में मुकदमे का सामना करने के लिए किया जा सकता है, एक बार जब निचली विचारण न्यायालय को पता चलता है कि ऐसे व्यक्ति के खिलाफ कुछ 'सबूत' हैं, जिसके आधार पर यह साक्ष्य एकत्र किया जा सकता है कि वह अपराध का दोषी प्रतीत होता है।यहाँ 'साक्ष्य' का अर्थ है वह सामग्री जो मुकदमे के दौरान न्यायालय के समक्ष लाई जाती है।जहां तक जांच के स्तर पर आई. ओ. द्वारा एकत्र की गई सामग्री/साक्ष्य का संबंध है, इसका उपयोग पुष्टि के लिए और धारा 319 Cr.P.C के तहत शक्ति का उपयोग करने के लिए न्यायालय द्वारा दर्ज साक्ष्य का समर्थन करने के लिए किया जा सकता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि ऐसे साक्ष्य जो गवाहों की प्रतिपरीक्षा के बिना मुख्य परीक्षा में सामने आए हैं, उन्हें भी ध्यान में रखा जा सकता है।हालाँकि, चूंकि यह धारा 319 Cr.P.C के तहत न्यायालय को दी गई एक विवेकाधीन शक्ति है और यह एक असाधारण भी है, इसलिए इसका उपयोग संयम से और केवल उन मामलों में किया जाना चाहिए जहां मामले की परिस्थितियाँ आवश्यक हों।संतुष्टि की डिग्री उस डिग्री से अधिक है जो उन अन्य लोगों के खिलाफ आरोप तय करने के समय आवश्यक है जिनके संबंध में आरोप पत्र दायर किया गया था।केवल वहाँ जहाँ न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत साक्ष्य से किसी व्यक्ति के खिलाफ मजबूत और ठोस साक्ष्य मिलता है कि ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए।इसका

प्रयोग आकस्मिक या घुड़सवार तरीके से नहीं किया जाना चाहिए। प्रथमदृष्टया जिस राय का गठन किया जाना है, उसके लिए उसकी संलिप्तता की केवल संभावना से अधिक मजबूत सबूत की आवश्यकता होती है।

14.जब हम उपरोक्त सिद्धांतों का इस मामले के तथ्यों पर उनके अनुप्रयोग के साथ अनुवाद करते हैं, तो हमें यह आभास होता है कि निचली विचारण न्यायालय ने अपीलार्थियों के खिलाफ समन आदेश पारित करने में लापरवाही और बेपरवाह तरीके से काम किया। प्राथमिकी में अपीलार्थियों का नाम था। पुलिस ने जांच पड़ताल की। जांच के दौरान एकत्रित सामग्री के आधार पर, जिसका उल्लेख हमने ऊपर किया है, जांच अधिकारी ने पाया कि जब घटना कनौर में घटित हुई, तब ये अपीलकर्ता जयपुर शहर में थे, जो 175 किलोमीटर दूर है।शिकायतकर्ता और अन्य जिन्होंने घटनास्थल पर अपीलकर्ताओं की कथित उपस्थिति के संबंध में एफआईआर में दिए गए बयान का समर्थन किया था, उन्होंने भी धारा 161 सीआरपीसी के तहत इसी आशय के बयान दिए थे।इसके बावजूद, पुलिस जांच से पता चला कि घटना स्थल पर अपीलकर्ताओं की उपस्थिति के बारे में इन व्यक्तियों के बयान संदिग्ध थे और जांच के दौरान एकत्र किए गए वृत्तचित्र और अन्य सबूतों को देखते हुए विश्वास को प्रेरित नहीं करते थे, जिसमें एक और कहानी को दर्शाया गया था और स्पष्ट रूप से दिखाया गया था कि अपीलकर्ता की बहाना याचिका सही थी।

15. यह अभिलेख निचली विचारण न्यायालय के समक्ष था।इसके बावजूद, निचली विचारण न्यायालय ने शिकायतकर्ता और कुछ अन्य व्यक्तियों के बयान को उनके तथाकथित मौखिक/मौखिक संस्करण का समर्थन करने के लिए कोई अन्य सामग्री के साथ नहीं लिया।इस प्रकार, मुकदमे के दौरान दर्ज किया गया 'साक्ष्य' उन बयानों से ज्यादा कुछ नहीं था जो मामले की जांच के समय धारा 161 Cr.P.C के तहत पहले से ही दर्ज थे।इसमें कोई संदेह नहीं है कि निचली विचारण न्यायालय अपने समक्ष मुख्य परीक्षा में दर्ज किए गए ऐसे बयानों के आधार पर भी अपनी शक्ति का प्रयोग करने में सक्षम होगी।हालांकि, वर्तमान जैसे मामले में, जहां जांच के दौरान जांच अधिकारी द्वारा ढेर सारे साक्ष्य एकत्र किए गए थे, जो अन्यथा संकेत देते थे, कम से कम विचारण न्यायालय का यह कर्तव्य था कि वह प्रथम दृष्टया राय बनाते समय उन पर गौर करे और देखे कि क्या 'उनकी (यानी अपीलकर्ताओं की) मिलीभगत की संभावना के अलावा और कोई मजबूत साक्ष्य रिकॉर्ड पर आया है।इस प्रकृति की कोई संतुष्टि नहीं है।यदि हम यह मान भी लें कि आदेश पारित करते समय निचली अदालत को इसकी जानकारी नहीं थी (क्योंकि उस समय अपीलकर्ता घटनास्थल पर नहीं थे), तो इससे भी अधिक परेशान करने वाली बात यह है कि जब अपीलकर्ताओं द्वारा दायर पुनरीक्षण याचिका में रिकॉर्ड पर यह सामग्री विशेष रूप से उच्च न्यायालय के संज्ञान में लाई गई थी, तब भी उच्च न्यायालय ने उक्त सामग्री को अनदेखा कर दिया।निचली विचारण न्यायालय के आदेश में निहित चर्चा को पुनः प्रस्तुत करने और उसके साथ सहमति व्यक्त करने के अलावा और कुछ नहीं किया गया है।इस तरह के आदेश न्यायिक जांच में टिक नहीं सकते।

वर्तमान मामले के तथ्य बृजेंद्र सिंह और एक अन्य बनाम राजस्थान राज्य उपरोक्त के तथ्यों

के लगभग समान हैं। इस मामले में भी जांच अधिकारी ने इस तथ्य के बारे में बहुत सारे सबूत एकत्र किए हैं कि घटना के समय संशोधनवादी मौजूद नहीं थे।उनकी उपस्थिति मुंबई में थी जो घटना स्थल से बहुत दूर है।इसके अलावा इस मामले में एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि सह-आरोपी लल्लू राम यादव को अभियोजन पक्ष के सबूतों पर विश्वास न करते हुए पहले ही बरी कर दिया गया है। पुनरीक्षणकर्ता-अभियुक्त के खिलाफ सबूत एक ही है।

आक्षेपित आदेश से पता चलता है कि विद्वत निचली विचारण न्यायालय ने केवल उसके समक्ष दर्ज साक्ष्य का मूल्यांकन किया है।इसने अभिलेख पर उपलब्ध हर तथ्य और सामग्री को ध्यान में नहीं रखा है।आक्षेपित आदेश को मामले के पूरे तथ्यों और परिस्थितियों की सराहना किए बिना बेपरवाह तरीके से पारित किया गया है।यह धारा 319 Cr.P.C के तहत शक्तियों का प्रयोग करने के लिए निर्धारित परीक्षण को संतुष्ट नहीं करता है। इसलिए, आक्षेपित आदेश कानून की नजर में टिकाऊ नहीं है।

तदनुसार, इस आपराधिक पुनरीक्षण की अनुमति है।सत्र परीक्षण संख्या 793/2015 (राज्य बनाम लल्लू राम एवं अन्य) में अपर सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (पोक्सो अधिनियम), न्यायालय संख्या 8, इलाहाबाद द्वारा दिनांक 15.05.2019 को पारित किया गया विवादित आदेश, जो मुकदमा अपराध संख्या 273/2015 धारा 302 आईपीसी, थाना हंडिया, जिला प्रयागराज/इलाहाबाद से उत्पन्न हुआ था, को एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है।

(2023) 3 ILRA 12

अपीलीय क्षेत्राधिकार
सिविल पक्ष
दिनांक: इलाहाबाद 14.12.2022
के समक्ष
माननीय न्यायमूर्ति सरल श्रीवास्तव

आदेश से प्रथम अपील संख्या 23 / 2021

संतोष कुमार एवं अन्य ...अपीलकर्ता
बनाम
जगत नारायण एवं अन्य ...प्रतिवादी

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता: श्री अनिल कुमार शर्मा, श्री अजय मिश्रा, श्री कपिल कुमार, श्री कृष्ण मिश्रा, श्री एस.के. मिश्रा

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: श्री संगम सिंह, श्री कृष्ण मोहन मिश्रा

सिविल कानून - सिविल प्रक्रिया संहिता - आदेश - 41 - नियम - 17, 19: - अपील - अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित आदेश को चुनौती - जिसके तहत निचली न्यायालय ने वादी अपीलकर्ताओं द्वारा आदेश 41 नियम 17 के तहत प्रस्तुत आवेदन को निरस्त कर दिया - स्थायी निषेधाज्ञा के लिए वाद - विचारणीय न्यायालय द्वारा निरस्त कर दिया गया - सिविल अपील - अभियोजन में निरस्त - पुनर्स्थापन आवेदन - अपीलीय न्यायालय द्वारा इस आधार पर निरस्त किया गया कि न्यायालय द्वारा कई तिथियाँ निर्धारित की गई थीं जो अधिवक्ता और वादियों/अपीलकर्ताओं के ज्ञान में थीं, लेकिन वे अनुपस्थित रहे और गैर-उपस्थिति वास्तविक और सच्ची नहीं थी - यह स्थापित कानून है कि न्यायालय को आवेदन का निर्णय करते समय

संवेदनशील और उदार दृष्टिकोण अपनाना चाहिए, न कि तकनीकी दृष्टिकोण - न्यायालय ने "किसी पर्याप्त कारण से उपस्थित होने से रोका गया" शब्द के अर्थ के संदर्भ में यह तय किया कि, जब कोई पक्ष न्यायालय में स्वच्छ हाथों और सच्चे तथ्यों के साथ नहीं प्रस्तुत होता और अभियोजन में निरस्त किए गए आदेश को निरस्त करने के लिए ऐसी आधारों पर आवेदन करता है जो अभिलेख से नहीं बनाए गए हैं, और यह आधार धोखा देने या न्यायालय को भ्रमित के आशय से बनाया गया है, तो न्यायालय को ऐसे पक्ष की मदद नहीं करनी चाहिए कि वह झूठे और तुच्छ स्पष्टीकरण के फायदों को प्राप्त कर सके, जैसा कि वर्तमान वाद में हुआ है - इन तथ्यों के आलोक में, वर्तमान अपील निरस्त की जाती है। (पैराग्राफ - 29, 31, 32)

अपील निरस्त। (ई-11)

<u>माननीय न्यायमूर्ति सरल श्रीवास्तव</u>

1. अपीलकर्ताओं के लिए विद्वान अधिवक्ता और प्रत्यर्थियों के लिए विद्वान अधिवक्ता को सुना।

2. अपीलकर्ताओं ने अपर जिला न्यायाधीश/एफटीसी, कोर्ट संख्या 2, औरैया द्वारा पारित आदेश दिनांक 15.12.2018 को चुनौती देते हुए वर्तमान अपील को प्रस्तुत की है, जिसे उन्होंने सीपीसी के आदेश 41 नियम 17 के तहत वादी/अपीलकर्ताओं के आवेदन को खारिज कर दिया है।

3. संक्षेप में, तथ्य यह है कि राम स्वरूप शुक्ला ने एक मूल मुकदमा संख्या 17/2004 स्थापित किया था, जिसमें प्रतिवादियों/प्रत्यर्थियों को वादी/अपीलकर्ताओं के शांतिपूर्ण कब्जे में हस्तक्षेप करने से रोकने के लिए स्थायी निषेधाज्ञा की डिक्री की प्रार्थना की गई थी। ऐसा प्रतीत होता है कि मुकदमे के लंबित रहने के दौरान, राम स्वरूप शुक्ला की मृत्यु हो गई थी और वादी/अपीलकर्ताओं को उनके उत्तराधिकारी के रूप में प्रतिस्थापित किया गया है।

4. वादपत्र के अनुसार, राम स्वरूप शुक्ला ने मोहल्ला हरीगंज, नगर एवं क्षेत्र अछल्दा, परगना विधूना, जिला औरैया में एक भूखंड खरीदा था, जिसका वर्णन वादपत्र में किया गया है (इसके बाद इसे 'वाद सम्पत्ति' कहा जाएगा) 25.12.1948 को हीरा लाल पुत्र भिखारी लाल से 300/- रुपये की बिक्री पर उसे विवादित संपत्ति पर कब्ज़ा मिल गया। इसके बाद उन्होंने नगर पंचायत अछल्दा में मानचित्र स्वीकृत कराने के लिए आवेदन किया, जिसे नगर पंचायत ने नियमानुसार स्वीकृत कर दिया।

5. इसके बाद, वादी/अपीलकर्ताओं ने अपने निवास के लिए एक घर का निर्माण किया और उनका नाम नगर पंचायत में दर्ज किया गया। वादी/अपीलकर्ताओं ने गृह कर एवं अन्य कर जमा करना प्रारम्भ कर दिया। वादी/अपीलकर्ताओं का आगे का मामला यह था कि प्रतिवादी/प्रत्यर्थी नंबर 1 उसका भाई था और उसे निवास के लिए अछल्दा में एक घर की आवश्यकता थी। वादी/अपीलकर्ताओं ने प्रतिवादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 को इसमें रहने की अनुमति दी, वादी/अपीलकर्ताओं का यह भी मामला था कि वादी/अपीलकर्ता अपने भाई प्रतिवादी/प्रत्यर्थी नंबर 1 को नगर पंचायत में कर जमा करने के लिए पैसे देते थे, लेकिन उसके भाई ने नगर पंचायत के क्लर्क के साथ मिलीभगत करके उसका नाम अपने नाम कर लिया। नगर पंचायत में दर्ज है। जब वादी/अपीलकर्ताओं को प्रतिवादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 के अवैध कृत्य के बारे में पता चला, तो उन्होंने

प्रतिवादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 का नाम रिकॉर्ड से हटाने और उसे बहाल करने के लिए 22.02.2000 को नगर पंचायत में एक आवेदन प्रस्तुत किया। वादी मामले के अनुसार, वादी/अपीलकर्ताओं का मुकदमे की संपत्ति पर कब्जा है और प्रतिवादी/प्रत्यर्थी जाली बिक्री विलेख के आधार पर वादी/अपीलकर्ताओं के शांतिपूर्ण कब्जे में हस्तक्षेप कर रहे थे, जिससे वादी/अपीलकर्ताओं द्वारा मुकदमा दायर करना पड़ा।

6. उक्त मुकदमे को प्रतिवादियों/प्रत्यर्थियों ने वादी के आरोपों से इनकार करते हुए चुनौती दी थी। वादी/अपीलकर्ताओं के उक्त मुकदमे को विचारण न्यायालय द्वारा दिनांक 01.10.2013 के फैसले और आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था।

7. विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 01.10.2013 से व्यथित महसूस करते हुए, वादी/अपीलकर्ताओं ने जिला न्यायाधीश, औरैया के समक्ष सिविल अपील दायर की, जिसे सिविल अपील संख्या 19/2013 के रूप में पंजीकृत किया गया था।

8. उपरोक्त अपील को अपीलीय अदालत द्वारा आदेश दिनांक 24.11.2017 द्वारा डिफ़ॉल्ट रूप से खारिज कर दिया गया था। वादी/अपीलकर्ताओं ने सी.पी.सी. के आदेश 41 नियम 17 के तहत 12.12.2017 को (संतोष कुमार और अन्य बनाम जगत नारायण) सिविल अपील संख्या 19/2013 में दिनांक 24.11.2017 के आदेश को रद्द करने और अपील को फिर से स्वीकार करने और मेरिट के आधार पर अपील सुनने के लिए आवेदन दायर किया।

9. वादी/अपीलकर्ताओं ने उक्त आवेदन में कहा कि संतोष कुमार मामले के पैरोकार थे। जुलाई में उनका एक्सीडेंट हो गया था और उस एक्सीडेंट में उन्हें गंभीर चोट लगी थी जिसके चलते उन्हें सर्जरी करानी पड़ी थी। आगे कहा गया कि चूंकि उनका ऑपरेशन सफल नहीं हुआ था, इसलिए उनका दोबारा ऑपरेशन किया गया, जिसके कारण वह चलने-फिरने में असमर्थ थे और इसी कारण से वह केस में शामिल नहीं हो सके. आगे कहा गया कि जब वह 08.12.2017 को सिविल कोर्ट आए, तो उन्होंने अपील की स्थिति के बारे में पूछताछ की और पता चला कि अपील 24.11.2017 को डिफ़ॉल्ट रूप से खारिज कर दी गई है, और तुरंत, उन्होंने मामले को बहाल करने के लिए वर्तमान आवेदन दायर किया।

10. प्रतिवादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 ने सी.पी.सी. के आदेश 41 नियम 17 के तहत वादी/अपीलकर्ताओं के उक्त आवेदन में दिए गए कथनों को नकारते हुए आपत्ति दर्ज क।। आगे कहा गया हैं अपील में छः वादी/अपीलकर्ता है और उनमें से कोई भी निर्धारित तिथि अर्थात 24.11.2017 को मामले में उपस्थित हो सकता है। आगे कहा गया कि संतोष कुमार तय तिथि तक फिट और ठीक थे। प्रतिवादियों/प्रतिवादियों ने आगे कहा कि संतोष कुमार द्वारा दायर किया गया मेडिकल प्रमाणपत्र वास्तविक नहीं था। आवेदन में दिए गए कथन अस्पष्ट हैं क्योंकि संतोष कुमार ने आवेदन में वह तारीख नहीं बताई है जिस दिन उनका दूसरी बार ऑपरेशन किया गया था। नतीजतन, यह प्रार्थना की गई कि सी.पी.सी. के आदेश 41 नियम 17 के तहत आवेदन बर्खास्त किया जाए।

11. अपीलीय अदालत ने आदेश दिनांक 15.12.2018 द्वारा सी.पी.सी. के आदेश 41 नियम 17 के तहत आवेदन खारिज कर दिया। इस आधार पर कि अपील में कई तारीखें तय की गईं जो वादी/अपीलकर्ताओं के साथ-साथ वादी/अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता की जानकारी में थीं। अपीलीय अदालत ने दर्ज किया कि

वादी/अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता को अपील में तय की गई तारीख यानी 24.11.2017 के बारे में भी जानकारी थी, और यदि किसी कारण से, वादी/अपीलकर्ता अनुपस्थित थे, तो अधिवक्ता का कर्तव्य था कि वह उपस्थित हो। अदालत और अपील पर बहस करें। अपीलीय अदालत ने दर्ज किया कि आदेश पत्र से पता चलता है कि पिछली तारीखों पर भी, न तो वादी/अपीलकर्ता और न ही उनके अधिवक्ता उपस्थित हुए और उनकी अनुपस्थिति में मामला स्थगित कर दिया गया।

12. अपीलीय अदालत ने आगे पाया कि सी.पी.सी. के आदेश 41 नियम 17 के तहत आवेदन में दिए गए कथनों के अनुसार, संतोष कुमार की जुलाई 2017 में एक दुर्घटना हुई, जबकि रिकॉर्ड पर दर्ज उपचार से संबंधित नुस्खे दिनांक 14.06.2017 के थे, और आवेदन दिनांक 14.06.2017 का था। संतोष कुमार उस तारीख के बारे में चुप थे जिस दिन उनका दूसरी बार ऑपरेशन किया गया था। अपीलीय अदालत ने आगे पाया कि अपीलकर्ता की गैर-उपस्थिति नहीं थी हड्डी का टुकड़ा और वास्तविक, परिणामस्वरूप, इसने सी.पी.सी. के आदेश 41 नियम 17 के तहत आवेदन को खारिज कर दिया।

13. आदेश को चुनौती देते हुए, वादी/अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि सिविल अपील में निर्धारित तिथि पर वादी/अपीलकर्ता की गैर-उपस्थिति नेक नीयत और वास्तविक थी और वादी/अपीलकर्ताओं ने प्रदर्शित किया है कि उन्हें अपील में निर्धारित तिथि पर उपस्थित न होने के पर्याप्त कारण थे, इसलिए, अपीलीय अदालत को सी.पी.सी. के आदेश 41 नियम 17 के तहत वादी/अपीलकर्ताओं के आवेदन की अनुमति देनी चाहिए थी और अपील बहाल कर देना चाहिए।

14. यह प्रस्तुत किया गया है कि संतोष कुमार, जो मामले में पैरवी कर रहा था, एक दुर्घटना का शिकार हो गया और उसका ऑपरेशन किया गया जिसके कारण वह चलने-फिरने में असमर्थ था, इसलिए, ऐसी परिस्थितियों में, यह स्थापित किया गया था कि अपील में नियत तिथि पर वादी/अपीलकर्ताओं का उपस्थित न होना सदभावनापूर्वक था, इसलिए, अपीलीय अदालत को मामले में रूढ़िवादी और अत्यधिक तकनीकी दृष्टिकोण अपनाने के बजाय आवेदन पर निर्णय लेने में पर्याप्त न्याय करने के लिए सहानुभूतिपूर्ण और उदार दृष्टिकोण अपनाना चाहिए था। इस प्रकार, यह तर्क दिया गया है कि अपीलीय अदालत ने आवेदन को अस्वीकार करने में स्पष्ट अवैधता की है जिसे अपील में इस न्यायालय द्वारा ठीक करने की आवश्यकता है। उक्त प्रस्तुतीकरण के समर्थन में, वादी/अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने ***अतर सिंह एवं अन्य बनाम. लोटन सिंह एवं अन्य एआईआर 1992 एएलएल 59*** के मामले में इस न्यायालय के फैसले पर अवलंब लिया है।

15. इसके विपरीत, प्रत्यर्थियों के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि वादी/अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए कानूनी प्रस्ताव के साथ कोई झगड़ा नहीं है कि अदालत सी.पी.सी. के आदेश 41 नियम 17 के तहत

आवेदन पर निर्णय ले रही है। सी.पी.सी. के नियम 19 के साथ पढ़ें। उदार दृष्टिकोण अपनाना चाहिए और पर्याप्त न्याय करने में तकनीकीताओं को अदालत के रास्ते में नहीं आना चाहिए। उनका कहना है कि मौजूदा मामले में, उक्त सिद्धांत लागू नहीं होता है क्योंकि रिकॉर्ड से यह स्पष्ट है कि वादी/अपीलकर्ताओं द्वारा आदेश दिनांक 24.11. 2017को प्राप्त करने के लिए आदेश 41 नियम 17 के तहत आवेदन में एक झूठा मामला स्थापित किया गया था जिसे अपास्त किया जाना चाहिए।

16. उन्होंने आगे कहा कि सी.पी.सी. के 41 नियम 17 के तहत आवेदन दाखिल करते समय, वादी/अपीलकर्ताओं को साफ हाथ और सच्चे तथ्यों के साथ आना चाहिए, जबकि वर्तमान मामले में, आवेदन में कहा गया है कि संतोष कुमार को एक दुर्घटना में चोटें आई थीं। जुलाई 2017 में और उनका ऑपरेशन किया गया था, और चूंकि उनका ऑपरेशन सफल नहीं हुआ था, इसलिए, उन्होंने दूसरी बार सर्जरी की, यह दो कारणों से एक झूठी कहानी है; आवेदन में उस तारीख के बारे में जानकारी नहीं है जिस दिन संतोष कुमार का दूसरी बार ऑपरेशन किया गया था; दूसरे, संतोष कुमार के इलाज के संबंध में रिकॉर्ड पर दर्ज सभी नुस्खे दिनांक 14.06.2017 के थे और जुलाई महीने के संतोष कुमार के इलाज के संबंध में कोई भी नुस्खा दाखिल नहीं किया गया था और न ही कोई दस्तावेज रिकॉर्ड में लाया गया था जो दर्शाता हो कि संतोष कुमार की सर्जरी जुलाई माह में दूसरी बार हुई थी।

17. उन्होंने आगे कहा कि प्रत्युत्तर शपथपत्र के पैराग्राफ 7 में, यह विशेष रूप से कहा गया है कि सी.पी.सी. के आदेश 41 नियम 17 के तहत आवेदन में बताई गई कहानी गलत है। यह झूठा है क्योंकि संतोष कुमार ने मूल वाद संख्या 189/2012 में 27.10.2017 को शपथ पत्र दायर किया था, और यदि वादी/अपीलकर्ताओं के आवेदन में किए गए कथनों को सत्य माना जाता है, तो वह कैसे दायर कर सकते हैं मूल वाद में शपथ पत्र दिनांक 27.10.2017 उन्होंने आगे कहा कि मूल वाद संख्या 189/2012 में संतोष कुमार के दिनांक 27.10.2017 के शपथ पत्र की प्रति प्रति शपथ पत्र के अनुलग्नक 4 के रूप में संलग्न है। इस प्रकार, यह प्रस्तुत किया गया है कि चूंकि अपीलकर्ताओं ने साफ हाथ से अदालत का रुख नहीं किया था और सी.पी.सी. के आदेश 41 नियम 17 के तहत आवेदन में दिए गए दावे सही नहीं थे गलत हैं और केवल 24.11.2017 के आदेश को रद्द करने के लिए बनाए गए थे, वादी/अपीलकर्ता यह प्रदर्शित करने में विफल रहे हैं कि वादी/अपीलकर्ता को अपील में निर्धारित तिथि पर उपस्थित न होने में पर्याप्त कारण था। इस प्रकार, अपीलीय अदालत ने अपील को सही ढंग से खारिज कर दिया है।

18. मैंने पार्टियों की प्रतिद्वंद्वी दलीलों पर विचार किया है और अभिलेख का अवलोकन किया है।

19. रिकॉर्ड से निकले तथ्यों से पता चलता है कि स्थायी निषेधाज्ञा की डिक्री की प्रार्थना करने वाले प्रतिवादियों/प्रतिवादियों के खिलाफ राम स्वरूप शुक्ला द्वारा मुकदमा दायर किया गया था। मुकदमा 01.10.2013 को खारिज कर दिया

गया। मुकदमे के लंबित रहने के दौरान, राम स्वरूप शुक्ला की मृत्यु हो गई और वादी/अपीलकर्ताओं को उनके उत्तराधिकारी के रूप में प्रतिस्थापित किया गया है।

20. वादी/अपीलकर्ताओं ने मुकदमे को खारिज करने के दिनांक 01.10.2013 के आदेश के खिलाफ सिविल अपील संख्या 19/2013 को प्राथमिकता दी। वादी/अपीलकर्ताओं की उपस्थिति के अभाव में अपील दिनांक 24.11.2017 को डिफ़ॉल्ट रूप से खारिज कर दी गई। वादी/अपीलकर्ताओं ने सी.पी.सी. के आदेश 41 नियम 17 के तहत एक आवेदन दायर किया। इसमें कहा गया है कि संतोष कुमार वादी/अपीलकर्ता नंबर 1 मामले में पैरवी कर रहे थे और वह निर्धारित तिथि यानी 24.11.2017 को उपस्थित नहीं हो सके क्योंकि जुलाई 2017 में उनका एक्सीडेंट हो गया था और उक्त दुर्घटना में उन्हें चोट लगी थी। गंभीर चोटें आईं और उनका ऑपरेशन किया गया, लेकिन चूंकि उनका ऑपरेशन सफल नहीं हुआ, इसलिए उनका दोबारा ऑपरेशन किया गया और चूंकि वह चलने-फिरने में असमर्थ थे, इसलिये वह तय तिथि पर अदालत में उपस्थित नहीं हो सका, जिसके कारण अदालत ने अपील को डिफ़ॉल्ट रूप से खारिज करने का आदेश पारित किया।

21. प्रश्न यह है कि क्या सी.पी.सी. के आदेश 41 नियम 17 के तहत आवेदन में दिए गए कारण सही नहीं हैं? वादी/अपीलकर्ताओं की गैर-उपस्थिति को पर्याप्त कारण कहा जा सकता है जिसने वादी/अपीलकर्ताओं को अपील में निर्धारित तिथि पर उपस्थित होने से रोका, जो तत्काल अपील में इस न्यायालय का ध्यान आकर्षित करता है। 22. प्रथम दृष्टया आवेदन को पढ़ने से एक तस्वीर सामने आती है कि सी.पी.सी. के आदेश 41 नियम 17 के तहत आवेदन में बताए गए कारण सही नहीं हैं। 'पर्याप्त कारण' के दायरे में आएगा जो वादी/अपीलकर्ताओं को मामले में तय तारीख पर उपस्थित होने से रोकता है, लेकिन रिकॉर्ड कुछ और ही कहता है।

23. वादी/अपीलकर्ता संख्या 1 ने प्रार्थना पत्र में कहा है कि माह जुलाई 2017 में दुर्घटना में उसे गम्भीर चोटें आयी थीं तथा उसका ऑपरेशन किया गया था, परन्तु उसका ऑपरेशन सफल नहीं हुआ, इसलिये उसे पुनः सर्जरी करानी पड़ी। आवेदन में इस बात का कोई उल्लेख नहीं है कि किस तारीख को उनका दूसरी बार ऑपरेशन किया गया था। इसके अलावा, संतोष कुमार के इलाज के संबंध में दायर किए गए नुस्खे दिनांक 14.06.2017 के थे जो जुलाई 2017 के महीने से पहले के थे, और जुलाई 2017 के महीने का कोई भी नुस्खा रिकॉर्ड पर दर्ज नहीं किया गया था जो दर्शाता हो कि वह चोट से पीड़ित थे और उनका दूसरा ऑपरेशन जुलाई के महीने में समय किया गया था।

24. अपीलीय अदालत ने आवेदन को खारिज करते हुए उक्त तथ्य को नोट किया है।

25. वर्तमान अपील में, वादी/अपीलकर्ताओं द्वारा संतोष कुमार के उपचार से संबंधित नुस्खे पृष्ठ 120 से 123 तक संलग्न किए गए थे, जिससे पता चलता है कि सभी नुस्खे जुलाई 2017 से पहले के हैं।

26. पृष्ठ क्रमांक 120 से 123 दिनांक 14.06.2017 पर डॉ. डी.के. दुबे द्वारा जारी मेडिकल सर्टिफिकेट संलग्न है। जिसमे बताया गया कि संतोष कुमार को साढ़े तीन महीने के

आराम की सलाह दी गई थी। रिकार्ड से पता चलता है कि उक्त प्रमाणपत्र प्रमाणित नहीं था। अन्यथा भी, यदि उक्त प्रमाण पत्र को सत्य और सही माना जाता है, तो संतोष कुमार साढ़े तीन महीने बाद यानी सितंबर 2017 के अंतिम सप्ताह में फिट हो गए। यह ध्यान रखना प्रासंगिक है कि प्रतिवादियों/प्रतिवादियों ने संतोष का एक शपथपत्र दायर किया था, मूल सूट नंबर 189/2012 में कुमार दिनांक 27.10.2017 है, जो इंगित करता है कि संतोष कुमार अक्टूबर 2017 में स्वस्थ और स्वस्थ थे। इस प्रकार, आवेदन में कहा गया है कि संतोष कुमार तिथि पर दुर्घटना में लगी चोटों के कारण फिट नहीं थे। अपील में तय किये गये तथ्य झूठे एवं गलत हैं।

27. वादी/अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने अदालत का ध्यान प्रतिवादी/प्रत्यर्थी संख्या 2 से 5 के प्रत्युत्तर शपथप़त्र के जवाब के पैराग्राफ 7 की ओर आकर्षित किया है जिसमें कहा गया है कि संतोष कुमार यानी मूल सूट नंबर 189/2012 में निर्धारित तिथि 27.10.2017 पर उपस्थित नहीं हुए थे। उन्होंने आगे शपथप़त्र के पैराग्राफ 8 पर भरोसा जताया, जिसमें कहा गया है कि उन्हें (संतोष कुमार) 27.10.2017 के शपथप़त्र के बारे में पता नहीं था, जबकि, शपथप़त्र पर दूसरी ओर, उन्होंने कहा कि ऐसा प्रतीत होता है कि इसकी शपथ कहीं और द्वारा ली गई है। यह ध्यान देने योग्य है कि वादी/अपीलकर्ताओं ने इस बात से स्पष्ट रूप से इनकार नहीं किया है कि दिनांक 27.10.2017 के शपथ पत्र पर संतोष कुमार ने अपने उत्तर में शपथ नहीं ली थी। शपथप़त्र के उत्तर का पैराग्राफ 8 इस प्रकार है:-

> *"8. अपीलकर्ता नंबर 1 को दिनांक 27.10.2017 के हलफनामे के बारे में जानकारी नहीं है, लेकिन यह कहीं और शपथ लिया हुआ प्रतीत होता है और उत्तरदाता सही तथ्य नहीं दे रहे हैं।"*

28. प्रतिवादियों/प्रतिवादियों ने वादी/अपीलकर्ता संख्या-1 संतोष कुमार द्वारा स्थापित मूल वाद संख्या 189/2012 की ऑर्डर शीट संलग्न की है, और आदेश दिनांक 25.10.2017, 15.11.2017 और 28.11.2017 से पता चलता है कि संतोष कुमार अदालत में मौजूद थे. इस प्रकार, रिकॉर्ड से यह स्पष्ट है कि सी.पी.सी. के आदेश 41 नियम 17 के तहत आवेदन में वादी/अपीलकर्ताओं द्वारा दिनांक 24.11.2017 के आदेश को निरस्त करने हेतु एक झूठी कहानी स्थापित की गई है।

29. यह न्यायालय इस तथ्य से अवगत है कि यह कानून में तय है कि सी.पी.सी. के आदेश 41 नियम 17 में "किसी पर्याप्त कारण से प्रकट होने से रोका गया था" शब्द। इसे उदारतापूर्वक समझा जाना चाहिए ताकि अदालत पक्षों के बीच पूर्ण न्याय कर सके। यह न्यायालय पर्याप्त न्याय करने के अपने मुख्य कर्तव्य के प्रति भी जागरूक है और पर्याप्त न्याय के प्रसार में तकनीकीताओं को अदालत के रास्ते में नहीं आना चाहिए। यदि किसी दिए गए मामले में, वादी/अपीलकर्ताओं की गैर-उपस्थिति के लिए 'पर्याप्त कारण' बनाया गया है, तो अदालत को उदार दृष्टिकोण अपनाना चाहिए और डिफ़ॉल्ट रूप से अपील को खारिज करने के आदेश को वापस लेना चाहिए। ऐसा करने में, अदालतों को विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए 'पर्याप्त कारण' निर्धारित करने में व्यापक विवेकाधिकार प्राप्त है।

30. यह भी कानून का सुस्थापित सिद्धांत है कि ऐसे मामले में जहां कोई पक्ष तुरंत और आवेदन

दाखिल करने के लिए निर्दिष्ट वैधानिक समय के भीतर अदालत का दरवाजा खटखटाता है, विवेक का प्रयोग आम तौर पर उसके पक्ष में किया जाता है, बशर्ते कि अनुपस्थिति न हो। असद्भाव या जानबूझकर किसी पक्ष की अनुपस्थिति के मामले में भारी लागत से मुआवजा दिया जाएगा और योग्यता के आधार पर निर्णय लिया जाएगा।

31. यह न्यायालय "किसी पर्याप्त कारण से पेश होने से रोका गया था" शब्द की व्याख्या पर कानून के प्रति सचेत है, लेकिन कानून में यह भी तय है कि जहां कोई पक्ष साफ हाथ और सच्चे तथ्यों के साथ अदालत में नहीं आता है और डिफॉल्ट में बर्खास्तगी के आदेश को उस आधार पर खारिज करने के लिए अदालत के समक्ष एक आवेदन दायर करता है जो रिकॉर्ड से बाहर नहीं किया गया था, और यह आधार आदेश प्राप्त करने के लिए अदालत को बेवकूफ बनाने या धोखा देने के इरादे से स्थापित किया गया है। डिफॉल्ट में अपील को खारिज करने के मामले में, अदालत को ऐसे पक्ष की सहायता के लिए आगे नहीं आना चाहिए, ताकि उसे डिफॉल्ट में अपील को खारिज करने के आदेश को रद्द करने के लिए झूठे और तुच्छ स्पष्टीकरण का लाभ उठाने की अनुमति मिल सके। वर्तमान मामला ऐसा ही एक मामला है क्योंकि उक्त मामले में, वादी/अपीलकर्ताओं ने आदेश के तहत अदालत का दरवाजा खटखटाया था 41 सी.पी.सी. का नियम 17 जो कि रिकार्ड के आधार पर गलत है।

32. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय को सी.पी.सी. के आदेश 41 नियम 17 के तहत वादी/अपीलकर्ताओं के आवेदन को खारिज करने में नीचे के न्यायालय द्वारा पारित आदेश में कोई अवैधता नहीं मिलती है।

33. जहां तक इस न्यायालय के निर्णय की बात है ***अतर सिंह (उपरोक्त)*** वादी/अपीलकर्ताओं के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा अवलंब लिये जाने के संबंध में, उक्त निर्णय वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होता है क्योंकि वादी/अपीलकर्ताओं ने सी.पी.सी. के आदेश 41 नियम 17 के तहत आवेदन दाखिल करने में साफ हाथ से अदालत का रुख नहीं किया था।

34. ऊपर दिए गए कारणों से, अपील में मेरिट से रहित है और इसलिए वादव्यय के लिये कोई आदेश किये बिना ख़ारिज किया जाता है।

(2023) 3 ILRA 18

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 24.01.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर

आदेश से प्रथम अपील संख्या 1001/1993

यू.पी.एस.आर.टी.सी. एवं अन्य ...आवेदक

बनाम

श्रीमती भगवती एवं अन्य **...प्रतिवादी**

आवेदकों के अधिवक्ता: श्री सुनील कुमार

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:---

(A) सिविल कानून - मोटर वाहन अधिनियम, 1988 - धारा - 173, - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - आदेश 41 नियम 17: - अपीलें - अनुतोष को चुनौती देना - दुर्घटना - निगम ने

पुरस्कार को योगदानात्मक लापरवाही के आधार पर चुनौती दी - क्षतिपूर्ति राशि - साक्ष्यों का मूल्यांकन - मृतक की मृत्यु दुर्घटना में गंभीर चोटों के कारण हुई - यह दुर्घटना यू.पी.एस.आर.टी.सी. की बस के चालक की लापरवाह और तेज गति से चलाने के कारण हुई, जब बस ने मृतक की स्कूटर को टक्कर मारी - रिस इप्सा लोकीटूर - न्यायालय ने पाया कि बस चालक एक बड़े वाहन चला रहा था, उसे अधिक सतर्क रहना चाहिए था - स्कूटर चालक अपनी सही साइड पर स्कूटर चला रहा था - अपीलकर्ता द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य ने यह नहीं प्रदर्शित किया कि बस का चालक वाहन को लापरवाही से चला रहा था - इसलिए न्यायाधिकरण के योगदानात्मक लापरवाही के वाद पर निर्णय को अस्तित्व में रखा गया। (पैरा - 9, 13)

(B) सिविल कानून - मोटर वाहन अधिनियम, 1988 - धारा - 173 - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - आदेश 41 नियम 17 - अपीलें - अनुतोष को चुनौती देना - दुर्घटना - निगम ने पुरस्कार को इस आधार पर चुनौती दी कि मृतक के माता-पिता (कानूनी प्रतिनिधि) परिवार की परिभाषा में नहीं आते - दावा याचिका की पोषणीयता - चूंकि, दावा याचिका वर्ष 1990 में दायर की गई थी और दुर्घटना 1989 के नए अधिनियम के लागू होने के बाद अर्थात दिनांक 30.10.1989 को हुई थी - माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय, श्रीमती मंजुरी बेरा बनाम ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड के अनुसार कानूनी उत्तराधिकारियों का वाद अब साक्ष्य में नहीं है- यह तर्क कि, दावेदार क्षतिपूर्ति के लिए योग्य नहीं हैं, स्वीकार नहीं की जा सकती क्योंकि वे मृतक के कानूनी प्रतिनिधि हैं - दावा याचिका पोषणीय है। (पैरा - 14, 15)

(C) सिविल कानून - मोटर वाहन अधिनियम, 1988 - धारा - 173, - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - आदेश 41 नियम 17: - अपीलें - अनुतोष को चुनौती देना - दुर्घटना - निगम ने पुरस्कार को इस आधार पर भी चुनौती दी कि विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा गलत गुणांक लागू किया गया था - क्षतिपूर्ति राशि - साक्ष्यों का मूल्यांकन - मृतक की उम्र 30 वर्ष थी और उसने अपनी युवा पत्नी, माता-पिता और अविवाहित बहन को पीछे छोड़ दिया जो उस पर निर्भर थे - इसलिए 15 के गुणांक के स्थान पर 17 होना चाहिए था - न्यायालय ने पाया कि न्यायाधिकरण द्वारा प्रदान क्षतिपूर्ति पर्याप्त नहीं है - हालाँकि, चूंकि अपील में 30 साल से अधिक समय तक कदम नहीं उठाए गए - इसलिए, अपील सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41 नियम 11 के तहत निरस्त की जाती है। (पैरा - 16, 17)

अपील निरस्त। (ई-11)

<u>उद्धृत वाद सूची: -</u>

1. यूपीएसआरटीसी बनाम कुमारी ममता और अन्य (एआईआर 2016 एससी 948),

2. बजाज आलियान्ज जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती रेनू सिंह और अन्य (एफएएफओ संख्या 1818/2012 निर्णय दिनांक 19.07.2016),

3. श्रीमती मंजुरी बेरा बनाम ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड (एआईआर 2007 एससी 1474),

4. नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, लखनऊ बनाम लवकुश और अन्य (एफएएफओ संख्या 199/2017 दिनांक 21.03.2017)

माननीय न्यायाधीश डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकेर

1. यह अपील, यू.पी.एस.आर.टी.सी. के आदेश पर, 10वें अतिरिक्त जिला न्यायाधीश/मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण, कानपुर नगर द्वारा दावा याचिका संख्या 55/1990 में पारित दिनांक 28.5.1993 के निर्णय और निर्णय को चुनौती देती है, जिसके तहत विद्वान न्यायाधिकरण ने 1,65,000/- रुपये प्रति वर्ष 12% प्रति वर्ष की दर से ब्याज के साथ मुआवजे के रूप में दिए हैं।

2. अपीलकर्ता के अधिवक्ता श्री सुनील कुमार को सुना। वर्ष 1993 से आज तक की अवधि के लिए, यह सुनिश्चित करने के लिए कदम नहीं उठाए गए हैं कि प्रतिवादियों को नोटिस दिए जाएं।

3. जैसा भी हो, जैसा कि 20 वर्ष बीत चुके हैं, यह न्यायालय इस अपील पर निर्णय करना उचित समझता है जहां न्यायालय ने दिनांक 30.9.1993 के आदेश के तहत स्थगनादेश दिया था जो निम्नानुसार है:

उन्होंने कहा, 'नोटिस जारी करें.

अगले आदेश तक, मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण, कानपुर नगर द्वारा पारित दिनांक 28.5.1993 के आक्षेपित निर्णय के संचालन पर रोक रहेगी, बशर्ते अपीलकर्ता इस न्यायालय में अपीलकर्ताओं द्वारा पहले ही जमा की जा चुकी राशि को घटाकर 1,65,000/- रुपये जमा कर दें। दावेदारों द्वारा सुरक्षा प्रदान किए बिना आधी राशि वापस ली जा सकती है और शेष राशि को न्यायाधिकरण की संतुष्टि के लिए पर्याप्त सुरक्षा प्रदान करने के अधीन वापस लिया जा सकता है।

4. अभिलेख से प्राप्त संक्षिप्त तथ्य यह है कि मृतक नितिन कुमार, जिसकी आयु लगभग 30 वर्ष थी और वह उत्तर प्रदेश बीड़ी एजेंसी में क्लर्क के रूप में कार्यरत था, 30.10.1989 को सुबह लगभग 10.30 बजे दुर्घटना का शिकार हो गया। जब वह अपने स्कूटर संख्या यूएमएफ-3643 पर जा रहे थे तो यू.पी.एस.आर.टी.सी. की बस संख्या यू.एच.जे. 8106 ने उन्हें टक्कर मार दी। वह एक अन्य कर्मचारी मगल भाई पटेल के साथ था, जो उक्त स्कूटर पर पीछे बैठा था। बस को लापरवाही से चलाया जा रहा था। उक्त वाहन दुर्घटना के कारण मृतक की मृत्यु हो गई। दावेदार मृतक के कानूनी उत्तराधिकारी हैं। दावेदारों द्वारा दायर दावा याचिका को प्रतिवादी द्वारा चुनौती दी गई थी। यू.पी.एस.आर.टी.सी. ने अपना जवाब दाखिल करते हुए कहा था कि उसकी बस दुर्घटना में शामिल नहीं थी। न्यायाधिकरण ने पांच मुद्दे तैयार किए थे और दावेदारों के पक्ष में और अपीलकर्ता के खिलाफ फैसला सुनाया था।

5. आग्रह किए गए आधार यह हैं कि यू.पी.एस.आर.टी.सी. के स्वामित्व वाला वाहन दुर्घटना में शामिल नहीं था और विकल्प में, भले ही यह शामिल था, यह स्कूटर चालक था जो लापरवाही कर रहा था और इसलिए, यू.पी.एस.आर.टी.सी. पर कोई दायित्व नहीं डाला जा सकता है। दूसरे वैकल्पिक तर्क में, यह प्रस्तुत किया जाता है कि यह अंशदायी लापरवाही का मामला है और इसलिए, यह मानना कि बस का चालक लापरवाही कर रहा था, रिकॉर्ड के खिलाफ है।

6. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि मृतक के माता-पिता परिवार की परिभाषा के भीतर नहीं आते हैं

और इसलिए, दावा सुनवाई योग्य नहीं था। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि मृतक की उम्र 30 वर्ष थी और उसकी नव विवाहित थी और इसलिए, 15 का गुणक अवैध रूप से दिया गया है और यह 7 या 8 होना चाहिए था। एक तिहाई की एकमुश्त कटौती होनी चाहिए थी, न कि 1/6 की, इसलिए, उस हिसाब से भी विवादित पुरस्कार ख़राब है। गैर-आर्थिक क्षति का पुरस्कार भी ख़राब है।

7. **यूपीएसआरटीसी बनाम कुमारी ममता और अन्य मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने एआईआर 2016 एससी 948 में रिपोर्ट किया** है कि अपील के ज्ञापन में उठाए गए सभी मुद्दों को पहली अपीलीय अदालत द्वारा संबोधित और तय करने की आवश्यकता है।

8. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाए गए लापरवाही के मुद्दे पर प्रस्तुतीकरण से निपटने के दौरान, अंशदायी लापरवाही तय करने के सिद्धांतों पर चर्चा करना प्रासंगिक होगा और इसके लिए लापरवाही पर विचार करने के सिद्धांतों पर भी ध्यान देना होगा।

9. लापरवाही शब्द का अर्थ है दूसरों के प्रति देखभाल करने में विफलता जो एक उचित और विवेकपूर्ण व्यक्ति किसी परिस्थिति में करेगा या कार्रवाई करेगा जो ऐसा उचित व्यक्ति नहीं करेगा। लापरवाही जानबूझकर या आकस्मिक दोनों हो सकती है, हालांकि यह सामान्य रूप से आकस्मिक है। विशेष रूप से, यह लापरवाह ड्राइविंग को दर्शाता है और घायल को हमेशा साबित करना चाहिए कि दोनों पक्ष लापरवाह हैं। यदि चोट बल्कि मौत लापरवाह पार्टी के स्वामित्व या नियंत्रण वाली किसी चीज के कारण होती है, तो वह सीधे उत्तरदायी है, अन्यथा "रेस इप्सा लोक्विटर" का सिद्धांत लागू होता है, जिसका अर्थ है "चीजें खुद के लिए बोलती हैं"।

10. अंशदायी लापरवाही के सिद्धांत पर बार-बार चर्चा की गई है। एक व्यक्ति जो दुर्घटना का योगदान देता है या सह-लेखक है, दुर्घटना होने के बाद उसके योगदान के लिए उत्तरदायी होगा और वह राशि घायल होने पर उसे देय मुआवजे से और दुर्घटना में मृत्यु होने पर कानूनी प्रतिनिधियों को दी जाएगी।

11. इस न्यायालय की खंडपीठ ने **आदेश संख्या 1818/2012 (बजाज आलियांज जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती रेणु सिंह और अन्य) से 19.7.2016 को** दिए गए निर्णय में निम्नलिखित कहा है:

16. लापरवाही का मतलब है कि एक विवेकपूर्ण ड्राइवर से अपेक्षित देखभाल और सावधानी की आवश्यक डिग्री का उपयोग करने में विफलता। लापरवाही कुछ ऐसा करने की चूक है जो एक तर्कसंगत व्यक्ति, विचारों पर निर्देशित होता है, जो आमतौर पर मानव मामलों के आचरण को नियंत्रित करता है, या कुछ ऐसा करता है जो एक विवेकपूर्ण और तर्कसंगत व्यक्ति नहीं करेगा। लापरवाही हमेशा प्रत्यक्ष प्रमाण का सवाल नहीं है। यह सिद्ध तथ्यों से निकाला जाने वाला अनुमान है। लापरवाही एक पूर्ण शब्द नहीं है, लेकिन एक सापेक्ष है। यह एक तुलनात्मक शब्द है। एक मामले में जो लापरवाही हो सकती है, वह दूसरे में नहीं हो सकती है। जहां देखभाल करने का कोई कर्तव्य नहीं है, लोकप्रिय अर्थों में लापरवाही का कोई कानूनी परिणाम नहीं है। जहां देखभाल करने का कर्तव्य है, उन कृत्यों या चूक

से बचने के लिए उचित देखभाल की जानी चाहिए जो व्यक्ति को शारीरिक चोट पहुंचाने की संभावना होगी। आवश्यक देखभाल की डिग्री, निश्चित रूप से, प्रत्येक मामले में तथ्यों पर निर्भर करती है। इन व्यापक सिद्धांतों पर वाहन चालकों की लापरवाही का आकलन किया जाना आवश्यक है।

17. यह देखा जाएगा कि मृतक की ओर से अंशदायी लापरवाही के लिए सबूत का बोझ विरोधियों द्वारा निर्वहन किया जाना है। दुर्घटना के बारे में बताने के लिए वाहन के चालक का कर्तव्य है। यह अच्छी तरह से स्थापित कानून है कि चौराहे पर जहां दो सड़कें एक-दूसरे को पार करती हैं, यह एक तेज गति से चलने वाले वाहन का कर्तव्य है कि वह धीमी गति से चले, और यदि चालक चौराहे पर धीमा नहीं करता है, लेकिन यह ध्यान दिए बिना तेज गति से आगे बढ़ता है कि कोई अन्य वाहन पार कर रहा है, तो चालक का आचरण आवश्यक रूप से इस निष्कर्ष की ओर जाता है कि वाहन उसके द्वारा लापरवाही से और लापरवाही से चलाया जा रहा था।

18. मोटर वाहन अधिनियम में संलग्न 10 वीं अनुसूची में मोटर वाहनों के ड्राइविंग के लिए वैधानिक नियम शामिल हैं जो प्रत्येक ड्राइविंग लाइसेंस का हिस्सा भी हैं। ऐसे विनियम के खंड-6 में स्पष्ट रूप से यह निर्देश दिया गया है कि प्रत्येक मोटर वाहन के चालक को सड़कों के प्रत्येक चौराहे या जंक्शन पर या सड़क के मोड़ पर वाहन को धीमा करना होगा। यह भी प्रावधान है कि वाहन के चालक को सड़कों के चौराहे या जंक्शन में प्रवेश नहीं करना चाहिए जब तक कि वह यह सुनिश्चित न करे कि वह किसी अन्य व्यक्ति को खतरे में नहीं डालेगा। केवल इसलिए कि ट्रक का चालक सड़क के बाईं ओर वाहन चला रहा था, उसे सड़क के चौराहे पर पहुंचने पर वाहन को धीमा करने की अपनी जिम्मेदारी से मुक्त नहीं किया जाएगा, खासकर जब वह आसानी से देख सकता था, कि जिस कार पर मृतक सवार था, वह चौराहे पर आ रही थी।

19. यातायात की तेजी से और लगातार बढ़ती मात्रा को देखते हुए, सड़कों पर मोटर वाहनों को कुछ हद तक **रायलैंड्स बनाम फ्लेचर, (1868) 3 एचएल (एलआर) 330** में परिभाषित दायित्व के सिद्धांत के भीतर आने के रूप में माना जा सकता है। पैदल चलने वालों की दृष्टि से, इस देश की सड़कें मोटर वाहनों के उपयोग से अत्यधिक खतरनाक हो गई हैं। 'हिट एंड रन' मामले जहां मोटर वाहनों के चालक जो दुर्घटनाओं का कारण बने हैं, अज्ञात हैं। वास्तव में ऐसे मामलों की संख्या बढ़ रही है। जहां एक पैदल यात्री अपनी ओर से लापरवाही के बिना एक मोटर चालक द्वारा घायल या मारा जाता है, चाहे वह लापरवाही से हो या नहीं, वह या उसके कानूनी प्रतिनिधि, जैसा भी मामला हो, नुकसान की वसूली करने का हकदार होना चाहिए यदि सामाजिक न्याय के सिद्धांत का कोई अर्थ होना चाहिए।

20. ये प्रावधान (मोटर अधिनियम, 1988 की धारा 110 ए और धारा 110 बी) केवल प्रक्रियात्मक प्रावधान नहीं हैं। वे पार्टियों के अधिकारों को काफी हद तक प्रभावित करते हैं। घातक दुर्घटना अधिनियम, 1855 द्वारा बनाया गया कार्रवाई का अधिकार 'अपनी प्रजातियों में नया था, इसकी गुणवत्ता में नया था, इसके सिद्धांतों में नया था। यह हर तरह से नया था।

अधिनियम, 1988 के तहत कानूनी प्रतिनिधियों को मोटर वाहन दुर्घटना के कारण होने वाली मृत्यु के लिए मुआवजे के लिए आवेदन दायर करने का अधिकार बढ़ा हुआ है। इस अधिकार को घातक दुर्घटना अधिनियम, 1855 के तहत कार्रवाई की सीमाओं द्वारा संरक्षित नहीं किया जा सकता है। नई परिस्थितियों और नए खतरों के लिए नई रणनीतियों और नए उपायों की आवश्यकता होती है।

21. उपर्युक्त चर्चा के आलोक में, हमारा विचार है कि भले ही अदालतें व्याख्या द्वारा कानून के सिद्धांतों को विस्थापित न करें, जिन्हें अच्छी तरह से स्थापित माना जाता है और इसलिए, अदालत मोटर वाहन दुर्घटनाओं के सभी मामलों में पूरी तरह से लापरवाही के सबूत नहीं दे सकती है, फिर भी कानून को निम्नलिखित तर्ज पर विकसित करना संभव है; जब एक मोटर वाहन उचित देखभाल के साथ चलाया जा रहा है, यह आमतौर पर दुर्घटना का शिकार नहीं होगा और इसलिए, सामान्य सिविल मुकदमों की तुलना में मोटर दुर्घटना के मामलों में साक्ष्य के नियम के रूप में रेसिप्सा लोक्विटर का नियम लागू किया जा सकता है (**जैकब मैथ्यू बनाम पंजाब राज्य, 2005 0 एसीजे (एससी) 1840 में तीन न्यायाधीशों की पीठ के अनुसार)।**

22. उपरोक्त प्रक्रिया द्वारा, मोटर दुर्घटना दावा याचिका में प्रतिवादियों पर सबूत का बोझ आमतौर पर यह साबित करने के लिए डाला जा सकता है कि मोटर वाहन उचित देखभाल के साथ चलाया जा रहा था या दूसरे पक्ष की ओर से समान लापरवाही है।

जोर दिया गया

12. अधिकरण ने लापरवाही के मुद्दे पर निर्णय लेते समय निम्नानुसार निर्णय लिया है:

उन्होंने कहा, "मैंने पंचायत नामा और विवेचना अधिकारी द्वारा तैयार किए गए नक्शे का भी अध्ययन किया है और तलब की गई फाइलों का अध्ययन किया है. सबूतों में सामने आया है कि हालांकि ड्राइवर ने ब्रेक लगाए लेकिन हादसा टालने में कामयाब नहीं हो सका क्योंकि बस काफी तेज रफ्तार से चल रही थी। चूंकि, घटना के स्थान पर एक मोड़ था, इसलिए यह चालक का कर्तव्य था कि वह अधिक देखभाल करे और धीमी गति से रहता है। जैसा कि ऊपर बताया गया है, कोई हॉर्न नहीं था और इस प्रकार, सभी तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, मेरी राय है कि याचिकाकर्ताओं ने सफलतापूर्वक साबित कर दिया है कि विचाराधीन दुर्घटना बस संख्या यूएचजे 8106 की तेज गति और लापरवाही से गाड़ी चलाने के कारण हुई और यूएमएफ 3634 के स्कूटर का चालक (मृतक) किसी भी अंशदायी लापरवाही का दोषी नहीं था।"

13. तथ्यात्मक तथ्यों को देखते हुए, लापरवाही का निर्णय लेने के सिद्धांत का उचित मूल्यांकन किया गया है। अपीलकर्ता द्वारा दिए गए सबूतों से यह पता नहीं चलता है कि बस का चालक सावधानी से वाहन चला रहा था। लापरवाही के मुद्दे पर फैसला करते हुए न्यायाधिकरण ने कहा कि चूंकि मृतक अपने स्कूटर पर था और बस चालक बड़ा वाहन चला रहा था, इसलिए बस चालक को अधिक सतर्क रहना चाहिए था। गवाहों के साक्ष्य ने भी दावेदारों के मामले का समर्थन किया है। फैसले को पढ़ते हुए, यह स्पष्ट है कि स्कूटर चालक स्कूटर को अपनी दाईं ओर चला

रहा था और बस के चालक को बड़े वाहन का चालक होने के नाते उचित देखभाल करनी चाहिए थी जो उसने नहीं किया था। इसलिए, जहां तक लापरवाही का संबंध है, अधिकरण के निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है।

14. यह इस न्यायालय को अन्य मुद्दों पर ले जाता है। जहां तक कानूनी उत्तराधिकारियों का संबंध है, **श्रीमती मंजुरी बेरा बनाम ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी, लिमिटेड, एआईआर 2007 एससी 1474** के मामले में निर्णय को देखते हुए यह मुद्दा अब प्रासंगिक नहीं है। उक्त निर्णय को इस न्यायालय द्वारा 2017 के आदेश संख्या - 199 की प्रथम अपील, **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, लखनऊ बनाम लवकुश और एक अन्य निर्णय 21.3.2017** में भरोसा किया गया है।

15. दावा याचिका वर्ष 1990 में दायर की गई थी। यह दुर्घटना 30-10-1989 को हुई थी अर्थात् 1989 का नया अधिनियम लागू होने के बाद, इसलिए, उक्त निवेदन कि दावेदार मुआवजे के हकदार नहीं हैं, को स्वीकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि वे मृतक के कानूनी प्रतिनिधि हैं।

16. जहां तक मुआवजे के हिस्से का संबंध है, न्यायाधिकरण ने मृतक के मामले पर विचार किया है और 12% की दर से ब्याज के साथ 1,65,000 रुपये का मुआवजा दिया है। अधिकरण ने उपरोक्त मुआवजा देते समय मृतक की आय को 10,800 रुपये प्रति माह माना, 15 का गुणक लागू किया, जीवन की अनिश्चितताओं के लिए 1/6 की कटौती की और गैर आर्थिक मदों के तहत 30,000 रुपये प्रदान किए। न्यायाधिकरण ने स्वीकार किया कि मृतक की उम्र 30 वर्ष थी और वह अपने पीछे अपनी युवा विधवा, माता-पिता और अविवाहित बहन छोड़ गया जो उस पर निर्भर थे। दुर्घटना के वर्ष अर्थात 1989 में, गुणक 17 होगा। बल्कि न्यायाधिकरण ने भविष्य में आय के नुकसान के लिए कोई राशि नहीं जोड़ी है। कुल मिलाकर, यह कहा जा सकता है कि न्यायाधिकरण द्वारा दिया गया मुआवजा निचले पक्ष पर है। हालांकि, 12% ब्याज का अनुदान पर्याप्त होगा क्योंकि यह प्रस्तुत किया गया है कि ब्याज के बिना केवल 1,65,000 रुपये की राशि जमा की गई है। यू.पी.एस.आर.टी.सी. को आज से 12 सप्ताह के भीतर राशि जमा करनी होगी। अंतरिम राहत तत्काल प्रभाव से समाप्त की जाती है।

17. उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए, यह अपील सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 41 नियम 11 के तहत खारिज कर दी गई है क्योंकि नोटिस का आदेश दिया गया था, 30 से अधिक वर्षों तक कदम नहीं उठाए गए थे।

18. यह न्यायालय इस पुराने मामले का निपटारा कराने के लिए अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सुनील कुमार का आभारी है।

(2023) 3 ILRA 23

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 30.01.2023

माननीय न्यायमूर्ति राजेश बिंदल, मु. न्या.

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर

रिट टैक्स सं. 847 वर्ष 2022

मेसर्स तनिष्का इंटरनेशनल, रामपुर यू.पी.

...याचिकाकर्ता

बनाम

यू.पी. राज्य और अन्य ...प्रत्यर्थी

याचिकाकर्ता की ओर से अधिवक्ता: श्री राम एम. कौशिक, श्री प्रांजल शुक्ला, सुश्री प्रियंका मिधा

प्रत्यर्थीगण की ओर से अधिवक्ता: श्री अंकुर अग्रवाल, स्थायी अधिवक्ता

15. रिट टैक्स सं. 847 वर्ष 2022- मेसर्स तनिष्क इंटरनेशनल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

सिविल कानून - केंद्रीय वस्तु और सेवा कर नियम, 2017-कार्यवाही प्रारंभ करने के लिए-नोटिस अंतर्गत धारा 142(1A) के तहत जारी नहीं किया गया-जिसने किसी भी कर, ब्याज और दंड का विवरण संप्रेषित करने का प्रावधान किया-इसके पश्चात का अनुस्मारक कार्यवाही में अंतर्निहित दोष को दूर नहीं करेगा-आदेश को रद्द किया गया-नई जांच शुरू करने की स्वतंत्रता। रिट **याचिका स्वीकृत। (E-9)**

उद्धृत वाद सूची:

1. गुलाटी एंटरप्राइजेज बनाम केंद्रीय अप्रत्यक्ष कर और सीमा शुल्क बोर्ड और अन्य, 2022 U.P.T.C. (Vol. 111) - 1271
2. मेसर्स स्काईलाइन ऑटोमेशन इंडस्ट्रीज बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, रिट टैक्स संख्या 1512 / 2022

कोरम: माननीय मुख्य न्यायाधीश राजेश बिंदल, माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर,

आदेश

1. वर्तमान रिट याचिका में केंद्रीय वस्तु एवं सेवा कर अधिनियम, 2017 (इसके बाद "अधिनियम" के रूप में संदर्भित) की धारा 74(9) के तहत प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा पारित 23 फरवरी, 2021 के आदेश (डीआरसी-07), रिट याचिका का संलग्नक 2, को चुनौती दी गई है।

2. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिया गया तर्क यह है कि केंद्रीय वस्तु एवं सेवा कर नियमावली, 2017 (जिसे आगे "नियमावली" कहा जाएगा) के नियम 142(1ए) के प्रावधानों के अनुसार, जो 15 अक्टूबर, 2020 को संशोधित होने से पहले याचिकाकर्ता के खिलाफ कार्यवाही शुरू करने के समय मौजूद थे, अधिनियम की धारा 74 के तहत कोई भी आदेश पारित करने से पहले, फॉर्म जीएसटी डीआरसी-01ए के भाग ए में कारण बताओ नोटिस जारी किया जाना आवश्यक है। इसके बाद ही आदेश पारित करने का अधिकार क्षेत्र सक्षम प्राधिकारी के पास निहित होता है। मौजूदा मामले में, फॉर्म जीएसटी डीआरसी-01ए के भाग ए में नोटिस जारी नहीं किया गया है, कोई भी बाद की कार्यवाही अधिकार क्षेत्र के बिना होगी क्योंकि याचिकाकर्ता के पास जवाब देने का उचित अवसर नहीं था।

3. तर्क के समर्थन में, गुलाटी एंटरप्राइजेज बनाम केंद्रीय अप्रत्यक्ष कर और सीमा शुल्क बोर्ड और अन्य, 2022 यू.पी.टी.सी. (खण्ड 111) - 1271 में दिल्ली उच्च न्यायालय के डिवीजन बेंच के फैसले और रिट टैक्स संख्या 1512/2022 मेसर्स स्काईलाइन ऑटोमेशन इंडस्ट्रीज बनाम उ.प्र. राज्य और अन्य में इस न्यायालय द्वारा पारित 2 जनवरी, 2023 के आदेश पर अवलम्ब लिया गया।

4. दूसरी ओर, प्रत्यर्थियों के विद्वान अधिवक्ता ने इस तथ्य पर विवाद नहीं किया कि फॉर्म जीएसटी डीआरसी-01ए के भाग ए में नोटिस जारी नहीं किया गया था, उन्होंने कहा कि बाद के रिमांइडरों ने याचिकाकर्ता को संबंधित प्राधिकारी के समक्ष अपना मामला रखने के लिए सुनवाई का उचित अवसर दिया था, जिसका वह लाभ उठाने में विफल रहा। अब पारित किया गया आक्षेपित आदेश अधिनियम की धारा 107 के तहत अपील योग्य है।

5. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद, हमारी राय में, वर्तमान रिट याचिका स्वीकार की जानी चाहिए, क्योंकि याचिकाकर्ता के खिलाफ कार्यवाही शुरू करने के लिए फॉर्म जीएसटी डीआरसी-01ए के भाग ए में नियमावली के नियम 142 (1 ए) के तहत दिए गए प्रावधान के अनुसार एक नोटिस जारी नहीं किया गया था, जो अधिकारी द्वारा सुनिश्चित किए गए किसी भी कर, ब्याज और दंड के विवरण की संसूचना प्रदान करता। किसी भी बाद के रिमाइंडर से याचिकाकर्ता के खिलाफ शुरू की गई कार्यवाही में अंतर्निहित दोष ठीक नहीं होगा। इसी तरह का विचार दिल्ली उच्च न्यायालय ने गुलाटी एंटरप्राइजेज मामला (सुप्रा) और इस न्यायालय में मैसर्स स्काईलाइन ऑटोमेशन इंडस्ट्रीज के मामले (सुप्रा) में भी व्यक्त किया है जिसमें 15 अक्टूबर, 2020 से नियमावली के नियम 142(1ए) में संशोधन से पहले, एक मामले से संबंधित समान तथ्यों में, आक्षेपित कारण बताओ नोटिस को रद्द कर दिया गया था और मामले को कानून के अनुसार नए सिरे से शुरू करने के लिए संबंधित प्राधिकारी को वापस भेज दिया गया था।

6. ऊपर उल्लिखित कारणों से, रिट याचिका स्वीकार की जाती है। 10 नवंबर 2022 का आक्षेपित आदेश रद्द किया जाता है। हालाँकि, प्रत्यर्थियों को कानून के अनुसार याचिकाकर्ता के खिलाफ नई कार्यवाही शुरू करने की स्वतंत्रता दी जाती है।

(2023) 3 ILRA 24

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 22.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती सुनीता अग्रवाल

माननीय न्यायमूर्ति विपिन चंद्र दीक्षित

रिट टैक्स सं. 1086 वर्ष 2022

राजीव बंसल ...याचिकाकर्ता

बनाम

यू.ओ.आई. एवं अन्य. ...प्रत्यर्थी

याचिकाकर्ता की ओर से अधिवक्ता: श्री अभिनव मेहरोत्रा, श्री सत्यव्रत मेहरोत्रा, श्री राहुल अग्रवाल, श्री आशीष बंसल, श्री शुभम अग्रवाल, श्री अंकुर अग्रवाल, श्री सुयश अग्रवाल, श्री वी.के.सबरवाल, श्री आर.बी. गुप्ता, और श्री कृष्ण व्यास

प्रत्यर्थी की ओर से अधिवक्ता: ए.एस.जी.आई., श्री गौरव महाजन, सुश्री मंजू घिल्डियाल, श्री सुदर्शन सिंह, श्री कृष्ण, श्री आशीष अग्रवाल, श्री अनंत कुमार तिवारी, श्री गोपाल वर्मा, श्री एन.सी. गुप्ता, श्री प्रवीण कुमार, श्री शशि अग्रवाल

16. रिट टैक्स सं. 1086 वर्ष 2022- राजीव बंसल बनाम भारत संघ और अन्य।

सिविल कानून - आयकर अधिनियम, 1961-धारा 148-A(d)-आदेश-आकलन अधिकारी द्वारा धारा 148-A(d) के तहत पारित-पुनः आकलन की

कार्यवाही दिनांक 01.04.2021 और 30.06.2021 के बीच जारी की गई- दिनांक 30.03.2021 तक TOLA, 2020 के तहत राहत/विस्तार का लाभ देकर नहीं की जा सकती -धारा 149 (1)(b) के तहत समय सीमा को 30.03.2020 से राजस्व के लिए ऐसी राहत देकर नहीं गिना जा सकता-जहां धारा 149(1)(b) की पहली उपधारा लागू होती है- TOLA, 2020 का लाभ राजस्व को नहीं मिलेगा- दिनांक 1.04.2021 के बाद जारी किए गए पुनः आकलन नोटिस को विभिन्न आकलन वर्षों को राजस्व द्वारा किया जाएगा।

रिट याचिका निस्तारित। (E-9)

उद्धृत वाद सूची:

1. अशोक कुमार अग्रवाल बनाम भारत संघ, 2021 ILR ALL 816
2. भारत संघ बनाम आशीष अग्रवाल, AIR 2022 SC 2781
3. टाटा कम्युनिकेशंस ट्रांसफॉर्मेशन सर्विसेज लिमिटेड बनाम सहायक आयकर आयुक्त, 2022 ऑनलाइन बंबई 664
4. टचस्टोन होल्डिंग्स प्रा. लिमिटेड बनाम आयकर अधिकारी, दिल्ली और अन्य, रिट याचिका संख्या 13102 of 2022
5. मोन मोहन बनाम सहायक आयकर आयुक्त, 2021 133 taxmann.com 166
6. रेयान्ड ऊलेन मिल्स लिमिटेड बनाम आयकर अधिकारी, 1999 (236 ITR 34 (SC)
7. आयकर आयुक्त और अन्य बनाम छबिल दास अग्रवाल, 2013 (217) Taxmann 143 (SC)
8. कोका कोला इंडिया इंक. बनाम अतिरिक्त आयकर आयुक्त और अन्य, 2011 (336) ITR 1 (SC)
9. गियान कास्टिंग प्रा. लिमिटेड बनाम CBDT, विशेष अपील के लिए अनुमति (C) संख्या 10762/2022
10. अंशुल जैन बनाम प्रधान आयकर आयुक्त, विशेष अपील के लिए अनुमति (C) संख्या 14823/2022
11. गुलमोहर सिल्क प्राइवेट लिमिटेड बनाम इनकम टैक्स ऑफिसर, W.P. (C) 5787/2022 और CM अप्लिकेशन 17297/2022
12. गिआन कास्टिंग प्राइवेट लिमिटेड बनाम केंद्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड, CWP संख्या 9142 / 2022
13. अंशुल जैन बनाम प्रिंसिपल कमिश्नर ऑफ इनकम टैक्स, CWP संख्या 10219 / 2022
14. मिडलैंड माइक्रोफिन लिमिटेड बनाम भारत सरकार और अन्य, CWP संख्या 10583 / 2022 (O&M)
15. हरिंदर सिंह बेदी बनाम भारत संघ और अन्य, रिट याचिका संख्या 22734 साल 2022
16. सहायक आयुक्त (सीटी) एलटीयू, काकिनाडा और अन्य बनाम ग्लैक्सो स्मिथ क्लाइन कंज्यूमर हेल्थ केयर लिमिटेड, AIR 2020 सुप्रीम कोर्ट 2819
17. यूनियन कार्बाइड कॉर्पोरेशन और अन्य बनाम भारत सरकार और अन्य, (1991) 4 SCC 584
18. भारत संघ और अन्य बनाम इंड-स्विफ्ट लेबोरेटरीज लिमिटेड, 2011 (4) SCC 635
19. सीआईटी बनाम मोदी शुगर मिल्स लिमिटेड, AIR 1961 SC 1047
20. पश्चिम बंगाल राज्य बनाम केसराम इंडस्ट्रीज लिमिटेड, 2004 (10) SCC 201

माननीय श्रीमती सुनीता अग्रवाल, न्यायमूर्ति
माननीय विपिनचन्द्रदीक्षित, न्यायमूर्ति

1. इन समूहग्रस्त मामलों में याचीगण के विद्वान अधिवक्ता श्री अभिनव मेहरोत्रा, श्री राहुल अग्रवाल, श्री आशीष बंसल, श्री शुभम अग्रवाल, श्री अंकुर अग्रवाल, श्री सुयश अग्रवाल, श्री वी.के. शबरवाल, श्री आर. बी. गुप्ता एवं श्रीकृष्णाव्यास; प्रत्यर्थी-राजस्वके लिए उपस्थित विद्वान अधिवक्तागण श्री गौरव महाजन, श्री कृष्णा अग्रवाल, श्री आशीष अग्रवाल, श्री मनु घिल्डियाल, यूनियन ऑफ इंडिया के लिए विद्वान अधिवक्तागण श्री अनंत कुमार तिवारी, श्री गोपाल वर्मा तथा श्री एन.सी. गुप्ता को सुना।

परिचय:-

2. इस समूह में रिट याचिकायें,निर्धारण प्राधिकारी द्वारा आयकर अधिनियम' 1961,(एतद्पश्चात 1961 के अधिनियम के रूप में निर्दिष्ट) के अंतर्गत पारित आदेशों तथा 1961 के अधिनियम की धारा 148 के अंतर्गत जारी परिणामिक नोटिसों के विरुद्ध निर्दिष्ट हैं। विवाद निर्धारण वर्षों 2013-14, 2014-15, 2015-16, 2016-17 तथा 2017-18 से संबंधित है। विवादित नोटिसें 01-04-2021 को या उसके बाद जारी होने के कारण संबंधित अवधि 01-04-2021 से 30-06-2021 के बीच है।

3. प्रारंभ में ही, पक्षों के विद्वान अधिवक्तागण संयुक्त रूप से निर्मित तथा विचारित दो प्रश्नों पर, जिनका उत्तर तथ्यात्मक पक्षों पर चुनौती के अंतर्गत विशिष्ट नोटिसों के भाग्य का फैसला करेगा, न्यायालय के समक्ष तर्क रखने के लिए सहमत हुए।

4. अतः, हम चुनौती के अंतर्गत प्रत्येक नोटिस के गुण-दोष पर प्रविष्ट नहीं हुए हैं तथा पक्षों के विद्वान अधिवक्तागण को निम्नलिखित दो विधिक बिंदुओं पर सुना-

(i) क्या धारा 148 के अंतर्गत नोटिस के साथ (जिसे धारा 148-क के अंतर्गत नोटिस माना गया है) प्रारंभ की गई पुनःनिर्धारण की कार्यवाहियां, कराधान तथा अन्य विधियाँ (कतिपय प्रावधानों का शिथलीकरण तथा संशोधन) अधिनियम, (टीओएलए) 2020 के अंतर्गत छूट/विस्तारका लाभ देते हुए 30-03-2021 तक की जा सकती हैं, और उसके बाद राजस्व को 30-03-2020से अग्रेतर टीओएलएकी ऐसी छूट का लाभ देते हुएधारा 149(1)(ख)(जैसी की 01-04-2021 से प्रभावी प्रतिस्थापित की गई है) में विहित समय अवधि की गणना की जा सकती है।

(ii) क्या उन कार्यवाहियों के संबंध में, जहाँधारा 149(1)(ख) का प्रथम परंतुक आकर्षित होता है, राजस्व को टीओएलए, 2020 का लाभ उपलब्ध होगा या दूसरे शब्दों में ऐसे मामलों में टीओएलए, 2020 के अंतर्गत छूट विधि, धारा 149, जैसी की वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा प्रतिस्थापित की गई है, में विहित समय सीमा को शासित करेगी?

5. जैसा कि ऊपर लिखित किया गया है, आक्षिप्त नोटिसें 01-04-2021 तथा 30-06-2021 के मध्य जारी की गई हैं।निर्धारण वर्ष 2013-14 तथा 2014-15 के लिए निर्धारितियों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रार्थना की गई की इन वर्षों के लिए निर्धारण को पुनः नहीं खोला जा सकता क्योंकि धारा 149(1)(ख) के संशोधन पूर्व प्रावधान में विहित छः वर्षों की अधिकतम अवधि 31-03-2021 को समाप्त हो गई थी।निर्धारण वर्ष 2013-14 तथा 2014-15 के किसी मामले के लिए धारा 148 के अंतर्गत नोटिस धारा 149(1)(ख), जैसी की वह वित्त अधिनियम, 2021 के प्रारंभ से तुरंत पूर्व थी,में

विहित समय अवधि के बाहर होने के कारण काल बाधित होने के कारण जारी नहीं की जा सकती थी।निर्धारण वर्ष 2015-16, 2016-17 तथा 2017-18 के लिए तर्क यह है कि संशोधन के पश्चात की अवधि में, अर्थात वित्त अधिनियम, 2021 के प्रारंभ होने के बाद की अवधि के लिए, आयकर अधिनियम की मौद्रिक सीमाओं तथा अन्य अपेक्षाओं का पालन किया जाना चाहिए। इस प्रकार, धारा 148 के अंतर्गत क्षेत्राधिकार की नोटिस की वैधता धारा 149(1)(ख) तथा 01-04-2021 से प्रभावीवित्त अधिनियम, 2021 के अंतर्गत प्रविष्ट किये गए संशोधन के अनुसार राजस्व द्वारा अपेक्षाओं के अनुपालन या पूर्ति के मानदंडों पर परीक्षित किया जाना चाहिए।

6. आगे बढ़ने से पूर्व, इसी स्तर पर स्पष्टीकरण के रूप में यह ध्यान में लिया जा सकता है कि इस तथ्य के बारे में कोई विवाद नहीं है कि वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा लाए गए संशोधन के बाद अर्थात 01-04-2021 को या उसके बाद धारा 148 के अंतर्गत जारी की गई नोटिसों को संशोधित प्रावधनों के अनुसार धारा 148-क के अंतर्गत नोटिस माना जाना चाहिए। पक्षों के अधिवक्ता द्वारा इस पर भी सहमति व्यक्त की गई कि आयकर अधिनियम की धारा 148(संशोधन पूर्व प्रावधनों के अनुसार) के अंतर्गत नोटिस जारी करने की तिथि कोधारा 148-क(संशोधन पश्चात) के अंतर्गत नोटिस जारी किए जाने की तिथि के रूप में माना जाएगा तथा 01-04-2021 के बाद आयकर अधिनियम की धारा 148 के अंतर्गत जारी की गई सभी नोटिसों को 01-04-2021 से प्रभावी वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा प्रतिस्थापित आयकर अधिनियम की धारा 148-क के अंतर्गत नोटिस माना जाएगा।

<u>विधायी योजना</u>

7. उपरोक्त लिखित वाद बिंदुओं से व्यवहृत करने के लिए प्रारंभ में ही हमें वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा संशोधन से पूर्व तथा पश्चात निर्धारण पुनः खोले जाने की धारा 148 की विधाई योजना को ध्यान में लेना अपेक्षित है। टीओएलए. 2020 के सुसंगत प्रावधनों को भी यहाँ लेखबद्ध करना चाहिए-

8. संशोधन पूर्व धारा 148 को निम्नवत उद्धरित किया जाता है-

> *148. धारा 147 के अंतर्गत निर्धारण,पुनः निर्धारण या पुनःगणना करने से पूर्व, तथा धारा 148क के प्रावधानों के अध्यधीन, निर्धारण अधिकारी निर्धारिती को, यदि धारा 148क के खंड (घ) के अंतर्गत अपेक्षित हो, पारित आदेश की प्रतिलिपि के साथ, जैसी की नियत की जा सकती है वैसी अवधि के अंतर्गत पूर्व वर्ष से संबंधित सुसंगत निर्धारण वर्ष के दौरान अपनी या किसी अन्य व्यक्ति, जिसके संबंध में वह इस अधिनियम के अंतर्गत निर्धारण योग्य है, की आय के संबंध में, विहित प्रारूप में तथा विहित रीति से सत्यापित तथा अन्य विशिष्टियों, जैसी की अपेक्षित हों, सहित जैसे की यह धारा 139 के अंतर्गत दाखिल किया जाना अपेक्षित विवरणी हो, विवरणी दाखिल करने की उससे अपेक्षा करते हुए, नोटिस की तामील करेगा। परंतु यह कि इस धारा के अंतर्गत कोई नोटिस जारी नहीं की जाएगी जब तक कि निर्धारण अधिकारी के पास ऐसी सूचना न हो जो सुझाव देती हो कि सुसंगत निर्धारण वर्ष के लिए निर्धारिती के मामले में करारोपण योग्य आय निर्धारण से छूट गई है तथा निर्धारण अधिकारी ने ऐसी नोटिस जारी*

करने के लिए नियत प्राधिकारी का पूर्व स्वीकृति प्राप्त कर लिया है।

स्पष्टीकरण 1- इस धारा तथा धारा 148क के उद्देश्यों के लिए निर्धारण अधिकारी के पास सूचना जो सुझाव देती है की करारोपण योग्य आय निर्धारण से छूट गई है, का अर्थ है-

(i) समय-समय पर परिषद द्वारा बनाई गई जोखिम प्रबंधन रणनीति के अनुसार सुसंगत निर्धारण वर्ष के लिए निर्धारिती के मामले में 'फ्लैग' की गई कोई सूचना;

(ii) भारत के नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक द्वाराउठाई गई इस प्रभाव की कोई अंतिम आपत्ति की सुसंगत निर्धारण वर्ष के लिए निर्धारिती के मामले मेंनिर्धारण, अधिनियम के प्रावधानों के अनुरूप नहीं किया गया है।

स्पष्टीकरण 2- इस धारा के उद्देश्यों के लिए, जहाँ

(i) निर्धारिती के मामले में 1 अप्रैल, 2021 को या उसके बाद धारा 132 के अंतर्गत कोई जांच प्रारंभ की गई हो या धारा 132(4) के अंतर्गत लेखा बहियों, अन्य दस्तावेज या किसी परिसंपत्ति की माँग की गई हो; या

(ii) निर्धारिती के मामले में 1 अप्रैल, 2021 को या उसके बाद धारा 133क के अंतर्गत, उस धारा की उपधारा (2क) या उपधारा (5) के अंतर्गत से अन्यथा, कोई जाँच कारित की गई हो; या

(iii) किसी अन्य व्यक्ति की दशा में 1 अप्रैल, 2021 को या उसके बादप्रधान आयुक्त या आयुक्त के पूर्व स्वीकृति के साथनिर्धारण अधिकारी संतुष्ट है कि धारा 132 के अन्तर्गत याधारा 132क के अंतर्गत जब्त या अध्यापेक्षित किया गयाकोई रुपया,धातुखंड, आभूषण या अन्य मूल्यवान वस्तु निर्धारिती की है; या

(iv) प्रधान आयुक्त या आयुक्त के पूर्व स्वीकृति के साथ निर्धारण अधिकारी संतुष्ट है कि 1 अप्रैल, 2021 को या उसके बाद जब्त या अध्यापेक्षित की गई कोई लेखा पुस्तक या दस्तावेज निर्धारिती की है या उसमें समाहित कोई सूचना निर्धारती से संबंधित है।

निर्धारण अधिकारी को सूचना मानी जाएगी जो सुझाव देती हो कि निर्धारिती के मामले में जिस वर्ष में जांच प्रारंभ की गई हो या लेखा पुस्तकों, अन्य दस्तावेज या किसी परिसंपत्ति की माँग की गई हो; या निर्धारती के मामले में कोई जाँच की जाती है या रुपया,धातुखंड, आभूषण या अन्य मूल्यवान वस्तु या किसी अन्य व्यक्ति के मामले में पदार्थ या लेखा पुस्तकें या दस्तावेज जब्त किए जाते हैं या अध्यापेक्षित किए जाते हैं, के सुसंगत पूर्व वर्ष के निर्धारण वर्ष से ठीक पूर्व तीन निर्धारण वर्षोंमें निर्धारिती के मामले में करयोग्य कोई आय करारोपण से छूट गई है।

स्पष्टीकरण 3- इस धारा के उद्देश्यों के लिए नियत प्राधिकारी का अर्थ है धारा 151 में निर्दिष्ट नियत प्राधिकारी।

9. संशोधन पश्चात धारा 148 निम्नवत उद्धृत की जाती है-

*"**148. नोटिस का जारी किया जाना जहां आयनिर्धारण से छूट गई हो-**धारा 147 के अंतर्गत निर्धारण,पुनः निर्धारण या पुनःगणना करने से पूर्व, तथा धारा 148क के प्रावधानों के अध्यधीन, निर्धारण अधिकारी निर्धारिती को, यदि धारा 148क के खंड (घ) के अंतर्गत अपेक्षित हो, पारित आदेश की प्रतिलिपि के साथ, जैसी की नियत की जा सकती है वैसी अवधि के अंतर्गत पूर्व वर्ष से संबंधित सुसंगत निर्धारण वर्ष के दौरान अपनी या किसी अन्य व्यक्ति, जिसके संबंध में वह इस अधिनियम के अंतर्गत निर्धारण योग्य है, की आय के संबंध में, विहित प्रारूप में तथा विहित रीति से सत्यापित तथा अन्य विशिष्टियों, जैसी की अपेक्षित हों जैसे की यह धारा 139 के अंतर्गत दाखिल किया जाना अपेक्षित विवरणी हो, विवरणी दाखिल करने की उससे अपेक्षा करते हुए नोटिस की तामील करेगा तथा तदनुसार इस अधिनियम के प्रावधान जहां तक हो सकें इस प्रकार लागू होंगे जैसे की ऐसे विवरण धारा 139 के अंतर्गत प्रदान किया जाना अपेक्षित विवरण हों:*

***परंतु** यह की इस धारा के अंतर्गत कोई नोटिस जारी नहीं की जाएगी जब तक की निर्धारण अधिकारी के पास ऐसी सूचना न हो जो सुझाव देती है कि सुसंगतनिर्धारण वर्ष के लिए निर्धारित के मामले में कर योग्य आय करारोपण से छूट गई है तथा निर्धारण अधिकारी ने नियत प्राधिकारी से ऐसी नोटिस जारी करने के लिए पूर्व स्वीकृति प्राप्त कर लिया है।*

स्पष्टीकरण 1- इस धारा तथा धारा 148क के उद्देश्यों के लिए सूचना जोनिर्धारण अधिकारी को सुझाव देती है कि निर्धारण से छूट गई करयोग्यआय है का अर्थ है-

(i) समय-समय पर परिषद द्वारा बनाई गई 'जोखिम प्रबंधन रणनीति' के अनुसार सुसंगत निर्धारण वर्ष के लिए निर्धारिती के मामले में 'फ्लैग' की गई कोई सूचना;

(ii) भारत के नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक द्वाराउठाई गई इस प्रभाव की कोई अंतिम आपत्ति की सुसंगत निर्धारण वर्ष के लिए निर्धारिती के मामले मेंनिर्धारण, अधिनियम के प्रावधानों के अनुरूप नहीं किया गया है।

स्पष्टीकरण 2- इस धारा के उद्देश्यों के लिए, जहाँ

(i) निर्धारिती के मामले में 1 अप्रैल, 2021 को या उसके बाद धारा 132 के अंतर्गत कोई जांच प्रारंभ की गई हो या धारा 132(4) के अंतर्गत लेखा बहियों, अन्य दस्तावेज या किसी परिसंपत्ति की माँग की गई हो; या

(ii) निर्धारिती के मामले में 1 अप्रैल, 2021 को या उसके बाद धारा 133क के अंतर्गत, उस धारा की उपधारा (2क) या उपधारा (5) के अंतर्गत से अन्यथा, कोई जाँच कारित की गई हो; या

(iii) प्रिंसिपल कमिश्नर या कमिश्नर के पूर्व स्वीकृति के साथनिर्धारण अधिकारी संतुष्ट है कि धारा 132 के अन्तर्गत या 1 अप्रैल, 2021 को या उसके बाद किसी अन्य व्यक्ति की दशा में धारा 132क के अंतर्गत जब्त या अध्यापेक्षित किया गया कोई

रुपया,धातुखंड, आभूषण या अन्य मूल्यवान वस्तु या चीज निर्धारिती की है; या

(iv) प्रिंसिपल कमिश्नर या कमिश्नर के पूर्व स्वीकृति के साथनिर्धारण अधिकारी संतुष्ट है कि धारा 132 के अन्तर्गत या 1 अप्रैल, 2021 को या उसके बाद किसी अन्य व्यक्ति की दशा में धारा 132क के अंतर्गत जब्त या अध्यापेक्षित की गई कोई लेखा पुस्तक या दस्तावेज निर्धारिती की है या उसमें समाहित कोई सूचना निर्धारती से संबंधित है।

निर्धारण अधिकारी को सूचना मानी जाएगी जो सुझाव देती हो कि निर्धारिती के मामले में जिस वर्ष में जांच प्रारंभ की गई हो या लेखा पुस्तकों, अन्य दस्तावेज या किसी परिसंपत्ति की माँग की गई हो; या निर्धारती के मामले में कोई जाँच की जाती है या रुपया,धातुखंड, आभूषण या अन्य मूल्यवान वस्तु या किसी अन्य व्यक्ति के मामले में पदार्थ या लेखा पुस्तकें या दस्तावेज जब्त किए जाते हैं या अध्यापेक्षित किए जाते हैं, के सुसंगत पूर्व वर्ष के निर्धारण वर्ष से ठीक पूर्व तीन निर्धारण वर्षोंमें निर्धारिती के मामले में करयोग्य कोई आय करारोपण से छूट गई है।

स्पष्टीकरण 3- इस धारा के उद्देश्यों के लिए नियत प्राधिकारी का अर्थ है धारा 151 में निर्दिष्ट नियत प्राधिकारी।"

10. टीओएलए, 2020 की धारा 3(1) के सुसंगत उद्धरण को निम्नवत लिखित किया जाता है-

3. (1) जहां किसी नियत अधिनियम के अंतर्गत कोई समय अवधि नियत की गई है या उसके अंतर्गत विहित या अधिसूचित की गई है, जो मार्च 2020, के 20 वें दिन से दिसंबर 2020 के 31वें दिन के बीच है या 31 दिसंबर, 2020 के बाद ऐसी अन्य तिथि जैसी की केंद्रीय सरकार अधिसूचना द्वारा इस संबंध में ऐसी कार्यवाही को पूर्ण करने या अनुपालन करने के लिए नियत कर सकती है-

(क) नियत अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत किसी प्राधिकारी, आयोग या अधिकरण, चाहे जिस भी नाम से पुकारा जाए, द्वारा किसी कार्यवाही को पूरा करने या कोई आदेश पारित करने या कोई नोटिस, इत्तिला, अधिसूचना, अनुज्ञा या स्वीकृति या ऐसी अन्य कार्यवाही, चाहे जिस नाम से पुकारा जाए को पूरा करने के लिए; या

(ख) नियत अधिनियम के प्रावधनों के अंतर्गत कोई अपील, उत्तर या आवेदन पत्र दाखिल करने या कोई आख्या, दस्तावेज, विवरणी या कथन या ऐसा कोई अभिलेख चाहे जिस भी नाम से पुकारा जाए प्रस्तुत करने के लिए; या

(ग) उस दशा में जहाँ नियत अधिनियम, आयकर अधिनियम, 1961 है-

(i)निम्नलिखित में समाहित प्रावधानों के अंतर्गतकिसी कटौती, छूट या भत्ते का दावा करने के उद्देश्य से, कोई निवेश, जमा, भुगतान, अधिग्रहण, क्रय, निर्माण या ऐसी अन्य कार्यवाही चाहे जिस भी नाम से पुकारा जाए, करने के लिए-

(I) धाराओं 54 से 54 छ ख,या अध्याय VI-क केशीर्षक"ख: कतिपय भुगतानों के संबंध में कटौतियां"के किन्हीं प्रावधानों के अंतर्गत, या

(II) ऐसी शर्तों की पूर्ति के अध्यधीन जिन्हें केंद्रीय सरकार अधिसूचना द्वारा नियत कर सकती है, उस अधिनियम के ऐसे अन्य प्रावधान, जिन्हें केंद्रीय सरकार अधिसूचना द्वारा नियत कर सकती है; या

(ii)उस अधिनियम की धारा 10 कक में निर्दिष्ट वस्तुओं या चीजों के निर्माण या उत्पादन या किन्ही सेवाओं को प्रदान करने का प्रारंभ करना जैसा कि, उस मामले में जहां विशेष आर्थिक क्षेत्र अधिनियम, 2005 के प्रावधानों के अनुसार अपेक्षित स्वीकृति का प्रपत्र 31 मार्च 2020 को या उसके बाद जारी किया गया था तथा जहां ऐसी कार्यवाही की पूर्णता या अनुपालन ऐसे समय के अंतर्गत नहीं की गई है, तब ऐसी कार्यवाही को पूर्ण करने या अनुपालन करने के लिए समय अवधि,ऐसे नियत अधिनियम में समाहित किसी बात के बावजूद भी, 31 मार्च, 2021 तक या 31 मार्च, 2021 के बाद ऐसी तिथि तक विस्तारित हो जाएगी जैसी की केंद्रीय सरकार इस संबंध में अधिसूचना द्वारा नियत कर सकती है:

परंतु यह की केन्द्रीय सरकार विभिन्न कार्यवाहियों को पूर्ण करने या अनुपालन करने के लिए विभिन्न तिथियां नियत कर सकती है।

11. केन्द्रीय सरकार द्वारा जारी की गई सुसंगत अधिसूचना दिनांकित 31-03-2021 तथा 27-04-2021 निम्नवत उद्धृत की जा रही है-

वित्त मंत्रालय

(राजस्व राजस्व)

(केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर परिषद)

अधिसूचना

नई दिल्ली, 31 मार्च, 2021

"का.आ.1432(अ)_केंद्रीय सरकार, कराधान तथा अन्य विधि (कतिपय प्रावधानों का शिथलीकरण तथा संशोधन) अधिनियम, 2020 (2020 का 38) (जिसे इसमें इसके पश्चात उक्त अधिनियम कहा गया है) की धारा 3 की उपधारा (1) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, वित्त मंत्रालय (राजस्व राजस्व) में भारत सरकार की अधिसूचना संख्या 93/2020 दिनांकित 31 दिसंबर, 2020 को, जिसे भारत के राजपत्र, असाधारण, भाग ।।, खंड3, उपखंड (ii) संख्या का.आ. 4805(अ) दिनांक 31 दिसंबर, 2020 द्वारा प्रकाशित किया गया था, निर्दिष्ट करती है कि-

(अ) जहां विनिर्दिष्ट अधिनियम, आयकर अधिनियम, 1961 (1961 का 43)(जिसे इसमें इसके पश्चात आयकर अधिनियम कहा गया है) है तथा -

(क) अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (1) के खंड (क) में निर्दिष्ट किसी भी कार्यवाही को पूरा किया जाना, आयकर अधिनियम, की धारा 149 में विनिर्दिष्ट समय सीमा या धारा 151 के अंतर्गत स्वीकृति के अनुसार धारा 144ग की उपधारा (13) के अधीन किसी आदेश के पारित किए जाने या धारा 148 के अधीन सूचना को जारी किए जाने से संबंधित है-

(i) 31 मार्च, 2021 उस अवधि की अंतिम तिथि होगी जिसके दौरान आयकर अधिनियम में विनिर्दिष्ट या विहित या अधिसूचित समयसीमा उक्त कार्यवाही को पूरा करने के लिए आती है; तथा

(ii) 30 अप्रैल, 2021 अंतिम तिथि होगी जिसके लिए ऐसी कार्रवाई को पूरा करने की समय सीमा बढ़ा दी जाएगी।

स्पष्टीकरण-संदेहों को दूर करने के लिए यह स्पष्ट किया जाता है कि इस उपखंड के अंतर्गत, आयकर अधिनियम की धारा 149 में विनिर्दिष्ट समयसीमा या धारा 151 के अंतर्गत स्वीकृति के अनुसार धारा 148 के अंतर्गत सूचना को जारी किए जाने के प्रयोजन के लिए, यथास्थिति आयकर अधिनियम की धारा 148, धारा 149 तथा धारा 151 के प्रावधान, जैसे वे 31 मार्च, 2021 को, वित्त अधिनियम, 2021 के प्रारंभ से पूर्व विद्यमान थे, लागू होंगे।

(ख) उक्त अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (1) के खंड (ख) में निर्दिष्ट किसी कार्यवाही का अनुपालन आयकर अधिनियम की धारा 139 की उपधारा (2) के अंतर्गत विहित प्राधिकारी के लिए आधार संख्या की सूचना से संबंधित है, ऐसी कार्यवाही के अनुपालन के लिए समयसीमा 31 जून, 2021 तक बढ़ा दी जाएगी।

(आ) जहां विनिर्दिष्ट अधिनियम वित्त अधिनियम, 2016 (2016 का 28) (जिसे इसमें इसके पश्चात उक्त अधिनियम कहा गया है) का अध्याय VIII है तथा उक्त अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (1) के खंड (क) में निर्दिष्ट किसी कार्रवाई को पूरा करने के लिए वित्त अधिनियम की धारा 168 की उपधारा (1) के अंतर्गत सूचना भेजने से संबंधित है-

(i) 31 मार्च, 2021 उस अवधि की अंतिम तारीख होगी जिसके दौरान वित्त अधिनियम, 2021 में निर्दिष्ट या विहित या अधिसूचित समय सीमा उक्त कार्यवाही को पूरा करने के लिए आती है; तथा

(ii) 30 अप्रैल, 2021 अंतिम तारीख होगी जिसके लिए ऐसी कार्रवाई को पूरा करने की समय सीमा बढ़ा दी जाएगी।

[अधिसूचना सं. 20/2021/एफ. सं. 370142/35/2020-टीपीएल]

शेफाली सिंह, अवर सचिव, कर नीति तथा विधान प्रभाग

टिप्पणी:मूल अधिसूचना भारत के राजपत्र, असाधारण, भाग II, खंड 3, उपखंड (ii) का.आ. सं. 4805 दिनांकित 31 दिसंबर, 2020 द्वारा प्रकाशित की गई थी।"

"वित्त मंत्रालय

(राजस्व राजस्व)

(केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर परिषद)

अधिसूचना

नई दिल्ली, 27 अप्रैल, 2021

का.आ. 1703(अ)._केंद्र सरकार, कराधान तथा अन्य विधि (कतिपय प्रावधानों का शिथलीकरण तथा संशोधन) (जिसे इसमें इसके पश्चात उक्त अधिनियम कहा गया है) अधिनियम, 2020(2020 का 38) धारा 3 की उपधारा (1) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए वित्त मंत्रालय (राजस्व

राजस्व) में अधिसूचना संख्या 93/2020 दिनांकित 31 दिसंबर, 2020, अधिसूचना संख्या 10/2021 दिनांकित 27 फरवरी, 2021 तथा अधिसूचना संख्या 20/2021 दिनांक 31 मार्च, 2021 को प्रकाशित भारत के राजपत्र, असाधारण भाग ।।, धारा 3, उपधारा (ii) का.आ. सं. 4805(अ) दिनांक 31 दिसंबर, 2020 तथा का.आ. सं. 966(अ) दिनांकित 27 फरवरी, 2021 तथा का.आ. संख्यांक 1432(अ) दिनांक 31 मार्च, 2021 क्रमशः (इसके पश्चात उक्त अधिसूचना कहा गया है) केंद्र सरकार उक्त अधिनियम की धारा 3 की उपधारा(1) का प्रयोजन निर्दिष्ट करती है।

(अ) जहां विनिर्दिष्ट अधिनियम आयकर अधिनियम' 1961(1961 का 43)(जिसे इसमें इसके पश्चात आयकर अधिनियम के रूप में निर्दिष्ट) है, तथा

(क) उक्त अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (1) के खंड (क) में संदर्भित किसी कार्यवाही को पूरा करना आयकर अधिनियम के अंतर्गत निर्धारण अथवा पुनःनिर्धारण के आदेश पारित करने से संबंधित है तथा धारा 153 या 153ख के अंतर्गत ऐसी कार्यवाही समाप्त करने की समयसीमा 30 अप्रैल 2021 थी, उक्त अधिसूचनाओं द्वारा इसकी समयसीमा आगे बढ़ाकर 30 जून, 2021 कर दी गई है।

(ख) उक्त अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (1) के खंड(क) में निर्दिष्ट किसी कार्रवाई को पूरा करना आयकर अधिनियम की धारा 144ग की उपधारा (13) के अंतर्गत आदेश पारित करने या धारा 149 में निर्दिष्ट समय सीमा के अनुसार धारा 148 के अंतर्गत सूचना जारी करने या आयकर अधिनियम की धारा 151 के अंतर्गत स्वीकृति देने तथा ऐसी कार्यवाही को पूरा करने की समय सीमा 30 अप्रैल, 2021 थी, उक्त अधिसूचनाओं द्वारा समय सीमा अग्रेतर विस्तारित करके 30 जून 2021, कर दी गई है।

स्पष्टीकरण- *संदेहों के निवारण के लिए एतद्द्वारा स्पष्ट किया जाता है कि धारा 149 में नियत समय-सीमा के अनुसार या आयकर अधिनियम की धारा 151 के अंतर्गत स्वीकृति के अंतर्गत नोटिस जारी करने के उद्देश्य के लिए इस उपखंड के अंतर्गत आयकर अधिनियम कि धारा 148, धारा 149 तथा धारा 151, जैसी भी स्थिति हो, वित्त अधिनियम, 2021 के प्रारंभ से पूर्व 31 मार्च, 2021 को वे जिस रूप में थे, लागू होंगे।*

(आ) जहां विनिर्दिष्ट अधिनियम वित्त अधिनियम, 2016 (2016 का 28) (जिसे इसमें इसके पश्चात उक्त अधिनियम कहा गया है) का अध्याय 8 है तथा उक्त अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (1) के खंड (क) में निर्दिष्ट किसी कार्रवाई को पूरा करना वित्त अधिनियम की धारा 168 की उपधारा (1) के अंतर्गत सूचना भेजने से संबंधित है तथा उक्त कार्यवाही को पूरा करने की समय सीमा30 अप्रैल, 2021 समाप्त होती है, उक्त अधिसूचनाओं द्वारा इसको बढ़ाये जाने के कारण उक्त समय सीमा 30 जून, 2021 तक आगे बढ़ जाएगी।

[अधिसूचना सं.38/2021/एफ. सं. 370142/35/2020-टीपीएल]

राजेश कुमार भूत, संयुक्त सचिव, कर, नीति तथा विधान प्रभाग

टिप्पणी: *मूल अधिसूचना भारत के राजपत्र, असाधारण, भाग ।।, खंड 3, उपखंड (ii) का.आ. सं. 4805 दिनांकित 31 दिसंबर, 2020 द्वारा प्रकाशित की गई थी।"*

12.ये याचिकाएं, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सिविल अपील संख्या 3005 से 3017, 3019-3020 वर्ष 2022 **यूनियन ऑफ इंडिया बनाम आशीष अग्रवाल**, में पारित निर्णय तथा आदेश दिनांकित 04-05-2022 मेंपुष्टीकृत रिट टैक्स संख्या 524 वर्ष 2021 **अशोक कुमार अग्रवाल बनाम यूनियन ऑफ इंडिया** में इस न्यायालय की समवर्ती पीठ द्वारा पारित निर्णय तथा आदेश का अंकुर हैं।

13.इस प्रकार, आगे बढ़ने से पूर्व, पक्षों के मध्य मुकदमेबाजी के इतिहास को लेखबद्ध करना हमारे लिए अपेक्षित है।

मुकदमेबाजी का इतिहास-

(i) आशीष अग्रवाल (पूर्वोक्त) के निर्णय में समवर्ती पीठ का निर्णय

14.वित्त अधिनियम, 2021 के लागू होने पर पूर्व स्थित धाराएं 147 से 151 निरसित हो गईं, तथा पुनःनिर्धारण कार्यवाहियों के प्रारंभ, जांच, उनको चलाने तथा पूरा करने की संपूर्ण सांविधिक योजना में परिवर्तन लाते हुए नए प्रावधानों द्वारा प्रतिस्थापित कर दी गईं। 01-04-2021 के बाद व्यक्तिगत निर्धारितियों के विरुद्ध पुनःनिर्धारण की कार्यवाहियों के प्रारंभ की वैधता **अशोक कुमार अग्रवाल (पूर्वोक्त)** के मामले में उच्च न्यायालय के समक्ष विचारार्थ प्रस्तुत हुई। आयकर अधिनियम, 1961 के प्रावधान, जैसे कि वे टीओएलए/रिलैक्सेशन अधिनियम सं. 38 वर्ष 2020 के साथ पठित वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा संशोधन से पूर्व थे, 01-04-2021 को या उसके बाद आयकर अधिनियम की धारा 148 के अंतर्गत निर्धारिती के विरुद्ध नोटिस जारी करते समय लागू किए गए। उस मामले में नोटिसों को इस आधार पर चुनौती दी गई कि अधिनियम' 1961 की पूर्व स्थित धाराओं 147 से 151 के प्रावधान निरसित हो गए तथा वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा प्रतिस्थापित कर दिए गए तथा संशोधन के लागू होने के बाद पुनःनिर्धारण की कार्यवाहियों को संचालित करने की संपूर्ण सांविधिक योजना में आमूलचूल परिवर्तन हो गया। पुराने प्रावधनों के प्रतिष्थापन के साथ अधिनियम के अंतर्गत पुनःनिर्धारण से संबंधित पूर्वस्थित प्रावधानो को वित्त अधिनियम, 2021 के लागू होने के बाद कार्यवाहियों के संचालन के लिए लागू नहीं किया जा सकता।

15.छूट अधिनियम/समर्थकारी अधिनियम/टीओएलए,2020, कोविड-19 महामारी, जो अन्तराल के साथ लाकडाउन लगाने में परिणामित हुआ, के कारण देश के सामने आई अप्रत्याशित परिस्थितियों के कारण मार्च, 2020 में अधिनियमित किया गया था। शासन तथा इसके संस्थानों की सामान्य कार्य अवस्था को रोक दिया गया था। कोविड-19 महामारी के प्रसार के कारण आई अड़चनों के कारण समर्थकारी अधिनियम, 2020 केवल आयकर अधिनियम, 1961 के प्रावधनों के अंतर्गत परिसीमा अवधि को बढ़ाने के लिए अधिनियमित किया गया था।

16. उस मामले में यह प्रार्थना की गई थी कि वित्त अधिनियम, 2021, जो की पश्चातवर्ती अधिनियम है, में कोई रक्षण खंड नहीं है जो पूर्व स्थित प्रावधानों को विस्तारित आयु प्रदान करता

हो। इस प्रकार, संशोधन के लागू होने के बाद राजस्व द्वारा पूर्ववर्ती प्रावधानों को लागू नहीं किया जा सकता। समर्थकारी अधिनियम पुनःनिर्धारण से संबंधित आयकर अधिनियम कि पूर्ववर्ती धाराओं 147,148 से 151 को संरक्षित नहीं करता तथा नहीकर सकता है, नही समर्थकारी अधिनियम द्वारा पूर्ववर्ती पुनःनिर्धारण विधिक अवधि काअधिभावी प्रभाव उत्पन्न हो सकता है या दिया जा सकता है, क्योंकि समर्थकारी अधिनियम के अधिनियमन की तिथि पर वित्त अधिनियम, 2021 का जन्म नहीं हुआ था। वित्त अधिनियम, 2021 में किसी रक्षण खंड के अभाव में न तो समर्थकारी अधिनियम की धारा 3(1) में या किसी अन्य विधि के अंतर्गत कोई शक्ति नहीं है जो केंद्रीय सरकार को 01-04-2021 को या उसके बाद प्रारंभ की गई पुनःनिर्धारण कार्यवाहियों में पूर्ववर्ती प्रावधानों को लागू करने के लिए आक्षिप्त अधिसूचना को जारी किए जाने को वैधता प्रदान कर सकती हो। अतः, उन कार्यवाहियों पर जो पश्चातवर्ती अधिनियम अर्थात आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 147 से 151 के प्रतिस्थापित प्रावधानों के अंतर्गत वित्त अधिनियम, 2021 के अधिनियमन पर 01-04-2021 को या उसके बाद उत्पन्न हुईं, समर्थकारी अधिनियम पूरी तरह से अप्रभावयोग्य या अस्वीकार्य होगा।

17. 01-04-2021 के बाद 1961 के अधिनियम की धारा 148 के अंतर्गत नोटिस की वैधता को चुनौती देने के लिए उस मामले में याचीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा किए गए अभिकथन पैराग्राफ़ संख्या 63 में विंदुवार निम्नवत रूप से उद्धृत किए गए हैं-

"(i) 01-04-2021 से प्रभावी वित्त अधिनियम,(i)वित्त अधिनियम,2021 के माध्यम से अधिनियम के प्रावधानों को प्रतिस्थापित करने के द्वारा पुराने प्रावधान संविधि की पुस्तक से विलोपित कर दिए गए तथा 01-04-2021 से प्रभावी नवीन प्रावधानों द्वारा प्रतिस्थापित कर दिए गए। इस सिद्धांत पर निर्भर करते हुए-कि प्रतिस्थापन लोप कर देता है,तथा इस प्रकार पूर्ववर्ती प्रावधानों को निष्प्रभावी कर देता है, अग्रेतर यह अभिकथन किया गया कि अध्यादेश या समर्थकारी अधिनियम या वित्त अधिनियम,2021 के अंतर्गत किसी रक्षण खंड का मौजूद होना दर्शित किए जाने के अभाव में 31-03-2021 के बाद किसी भी उद्देश्य के लिए पूर्ववर्ती प्रावधानों का लागू होना जारी रहने के पक्ष में कोई उपधारणा मौजूद नहीं हो सकती।

(ii) यह अधिनियम प्रगतिशील विधायन है जो प्रतिवर्ष वित अधिनियम के माध्यम से जारी रहता है। अतः, यह प्रत्येक वर्ष 1 अप्रैल को वित्त अधिनियम द्वारा यथा संशोधित, अधिनियम है जो उस वर्ष के लिए लागू किया जाता है। वर्तमान मामले में यह वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा यथासंशोधित अधिनियम है, जिसका सामना समर्थकारी अधिनियम, जैसा की पूर्व से अवस्थित था, से है। चाहे वित्त अधिनियम, 2021 के अंतर्गत या समर्थकारी अधिनियम के अंतर्गत पूर्ववर्ती अधिनियम के किसी भाग को संरक्षित करने के लिए व्यक्त किसी विधाई आशय के अभाव में, स्पष्ट रूप से, समर्थकारी अधिनियम के अंतर्गत जारी अधिसूचनाओं में अधिनियम की धाराओं 147 तथा 148 के प्रावधानों तथा शब्दों 'निर्धारण' तथा 'पुननिर्धारण' के निर्देश को, मात्र

अधिनियम(वित्त अधिनियम,2021 द्वारा संशोधित किए जाने से पूर्व) के अंतर्गत 01-04-2021 के पूर्व, पूर्व से ही प्रारंभ की गई कार्यवाहियों को इंगित करने वाले के रूप में पढ़ा जा सकता है। समर्थकारी अधिनियम के अंतर्गत की गई प्रत्यायोजित कार्यवाही स्वयमेव समर्थकारी अधिनियम के पक्ष में कोई अधिभावी प्रभाव नहीं उत्पन्न कर सकती।

(iii) इसकी अधिसूचनाओं के साथ पठित समर्थकारी अधिनियम किसी कार्यवाही के प्रारंभ को वैधता नहीं प्रदान करता जो अधिनियम के अंतर्गत अन्यथा अक्षम हो। वह विधि केवल, चाहे वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा इसके संशोधन से पूर्व या पश्चात अधिनियम के अंतर्गत, वैध रूप से संस्थित की गई या की जा सकने वाली, किसी कार्यवाही को संचालित करने या पूर्ण करने के लिए समय अवधि को प्रभावित करती है। जहां तक धारा 1(2)(क) का संबंध है, यह स्पष्ट रूप से वित्त अधिनियम, 2021 की धाराओं 2 से 88 को 01-04-2021 से प्रभावी करती है, इस संबंध में कोई विवाद नहीं हो सकता की 01-04-2021 के बाद पूर्ववर्ती धारा 148 सपठित धारा 147 के अंतर्गत क्या कोई विधिपूर्ण कार्यवाही प्रारंभ की जा सकती है। उसके समर्थन में, धारा 148-क (01-04-2021 से प्रभावी) के अधिनियमन पर आधारित अन्य अभिकथन भी मौजूद होना प्रकट होते हैं।

(iv) मूल अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत ही, किया गया प्रत्यायोजनप्रयुक्त किया जा सकता है, न की इसके उल्लंघन में। क्योंकि समर्थकारी अधिनियम,वित्त अधिनियम, 2021 के किसी प्रावधान की प्रयोज्यता के संबंध में अधिनियमन की कोई शक्ति प्रत्यायोजित नहीं करता तथा वे प्रावधान (धारा 2 से 88) 01-04-2021 को स्वयं प्रभाव में आए, समर्थकारी अधिनियम के अंतर्गत उस विधि की स्पष्ट प्रयोज्यता को विफल करने के लिए प्रत्यायोजन का कोई भी प्रयोग पूरी तरह से असंवैधानिक होगा।

(v) याचीगण के विद्वान अधिवक्ता का यह अभिकथन भी होना प्रकट होता है कि संसद के, सभी वास्तविकताओं, तथ्यात्मक स्थिति तथा जो विधियाँ मौजूद थीं, दोनों के बारे में विज्ञ होने के कारण जानबूझकर समर्थकारी अधिनियम का अधिनियमन कुछ समयावधियों की वृद्धि करने के लिये तथा अधिनियम में धारा 151-क अधिनियमित करके पुनः निर्धारण की प्रक्रिया में केवल आंशिक परिवर्तन लाने के लिए किया। इसके बाद इसने पुनः निर्धारण की प्रक्रिया को प्रशासित करने वाली सारभूत तथा प्रक्रियात्मक विधि को परिवर्तित करने के लिए वित्त अधिनियम, 2021 का अधिनियमन किया। ऐसा किए जाने के बाद, अधिनियम में धारा 148-क के प्रारंभ के साथ अधिनियम के अंतर्गत जो कार्यवाहियां प्रारंभ की जा चुकी हैं (वित्त अधिनियम, 2021के लागू होने के पूर्व तथा पश्चात दोनों), उन कार्यवाहियों के संबंध में समय सीमा को छोड़कर विधि से छेड़छाड़ करने के लिए प्रत्यायोजिती के लिए कोई स्थान न छोड़ते हुए विधायी क्षेत्र पूर्ण हो गया। अपने अभिकथन को विस्तृत करने के लिए याचीगण के विद्वान अधिवक्ता ने इस

सिद्धांत पर भी निर्भरता व्यक्त की कि-प्रत्यायोजित विधायन मूल विधायन को कभी पराजित नहीं कर सकता।

(vi) (vi)अंत में, यह भी अभिकथन किया गया कि समर्थकारी अधिनियम की धारा 3(1) के अंतर्गत निर्मित 'नान आब्स्टैंट खंड' को उस उद्देश्य या आशय के संदर्भ में पढ़ा जाना चाहिए जिसके लिए इसे निर्मित किया गया था। इसे इतना विस्तृत अर्थ या प्रभाव नहीं दिया जा सकता जिससे यह अन्य विधियों को पराजित कर सके।"

18. वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा लाए गए संशोधन के प्रभाव पर उसमें यह अवलोकन किया गया कि इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि 01-04-2021 को वित्त अधिनियम, 2021 की धारा 1(2)(क) के स्पष्ट/अपरिहार्य प्रभाव के माध्यम से धारा 147,148,149,151 के प्रावधान (जैसे कि वे 31-03-2021 तक थे) प्रतिस्थापित कर दिए गए तथा धारा 148-क के माध्यम से एक नया प्रावधान प्रविष्ट किया गया था। पूर्व-स्थित (तथा अब प्रतिस्थापित) प्रावधानों को संरक्षित करने के लिए किसी रक्षण खंड के अभाव में राजस्व प्राधिकारी 01-04-2021 को या उसके बाद पुनः निर्धारण की कार्यवाही मात्र प्रतिष्थापित विधि, तथा न कि पूर्व-स्थित विधियों, के अनुरूप प्रारंभ कर सकते हैं। यह लेखबद्ध गया है कि समर्थकारीप्रावधान, जो कि पूर्व में स्थित था, केवल समय सीमा की वृद्धि करने के लिए अधिनियमित है। पश्चातवर्ती अधिनियम, वित्त अधिनियम, 2021, में धारा 147 से 151 के प्रावधानों, जैसे कि वे 31-03-2021 तक स्थित थे, की प्रयोज्यता को बचाने के लिए किसी अभिव्यक्त प्रावधान के अभाव मेंसमर्थकारी अधिनियम में समाहित नोटिस जारी करने के लिए सभी निर्देशों को, 01-04-2021 के पश्चात् से मात्र प्रतिस्थापित प्रावधानो के निर्देश के रूप में पढ़ा जाना चाहिए। तथापि, विचाराधीन कार्यवाहियों में पूर्व-स्थित प्रावधनों को लागू करने में कोई कठिनाई नहीं है।

19. राजस्व का यह अभिकथन किसमर्थकारीअधिनियम की धारा 3(1)के प्रावधान ने उस अधिनियम को अधिभावी प्रभाव प्रदान किया, इसलिए असंशोधित विधि के अंतर्गत यथास्थित प्रावधानों को रक्षित किया दया, इस निष्कर्ष के साथ अस्वीकार कर दिया गया कि रक्षण का प्रश्न केवल तब उत्पन्न होता है यदि 01-04- 2021 से पूर्व क्षेत्राधिकार वैध रूप से प्राप्त किया गया होता। यह अवलोकन किया गया था किनिर्धारण अधिकारी द्वारा मात्र वैध रूप से क्षेत्राधिकार प्राप्त करने पर ही निर्धारण अधिकारी के समक्ष पुनःनिर्धारण कार्यवाहियों को विचाराधीन कहा जा सकता है। 01-04-2021 को या उसके बाद जारी की गई सभी पुनः निर्धारण की नोटिसों को पूर्व स्थित प्रावधानों, जो विचाराधीन कार्यवाहियों को लागू होते है, से व्यवहृत नहीं किया जा सकता है। उसके अंतर्गत जारी की गई अधिसूचनाओं के साथ पठित समर्थकारी अधिनियम की धारा 3(1) के अंतर्गत समय अवधि में कोई वृद्धि नहीं प्रदान की जा सकती।

20. अवधारित किया गया था कि समर्थकारी अधिनियम की धारा 3(1) केवल कुछ कार्रवाइयों को परिसीमा के नियम से बाधित होने से बचाने की बात करती है। <u>समर्थकारी अधिनियम तथा</u>

उसके अंतर्गत जारी अधिसूचनाएं केवल कुछ कार्रवाइयों को समर्थकारीअधिनियम की धारा 3(1) के अंतर्गत जारी अधिसूचना संख्या 3814 दिनांकित 17-09-2021 के अनुसार 30-06-21 या 31-03-2022 तक संरक्षित करती है जो 20-03-2020 को समय बाधित हो जातीं। परन्तु उक्त अधिसूचनाओं के माध्यम से केन्द्रीय सरकार को ऐसी परिसीमा को 31-03-2021 के बाद अनिश्चित समय तक बढाने की अनुमति देना पूरी तरह से संसदके प्रत्ययोजी (केंद्रीय सरकार) को शक्ति के आभासी अनुप्रयोग द्वारा, अधिनियमित विधि अर्थात वित्त अधिनियम, 2021 की वैधता को पराजित करने की अनुमति देने के समान होगा। इसलिए,उसके अंतर्गत जारी अधिसूचनाओं के सपठित समर्थकारी अधिनियम की धारा 3(1) अंतर्गत कोई वृद्धि नहीं की जा सकती।

21. इस प्रकार इस न्यायालय द्वारा पैराग्राफ संख्या 72,73,75,76,79 तथा 80 में निम्नवत निष्कर्ष दिया गया:-

72. पूर्व स्थित तथा अब प्रतिस्थापित अधिनियम की धाराओं 147 तथा 148 के प्रावधानों के संबंध में पुनः निर्धारण कार्यवाहियों का निर्देश केवल अधिनियम के अंतर्गत जारी पश्चातवर्ती अधिसूचनाओं के द्वारा प्रारंभ किया गया है। अतः उन प्रावधानों की वैधता भी परीक्षित किया जाना अपेक्षित है। हमने उपरोक्त रूप से निष्कर्ष दिया है कि धाराओं 147, 148, 148-क,149,150 तथा 151 के प्रावधानों ने अधिनियम के पुराने/पूर्व-स्थित प्रावधानों को 01-04-2021 से प्रभावी करते हुए प्रतिस्थापित किया है। हमने अग्रेतर निष्कर्ष दिया है कि 01-04-2021 की तिथि से पूर्व पुनः निर्धारण की किन्हीं कार्यवाहियों के प्रारंभ किए जाने के अभाव में, यह मात्र संशोधित विधि है जो लागू होगी। हम यह नहीं समझते कि किस प्रकार प्रत्यायोजी अर्थात केंद्रीय सरकार या सीबीडीटी मूल विधायन का स्पष्ट उल्लंघन करने के लिए अधिसूचनाएं जारी कर सकता था। जब तक कि उपरोक्त रूप सेसामंजस्य न किया जाए, वे अधिसूचनाएं अवैध रहेंगी।

73.जब तक की विनिर्दिष्ट रूप से किसी विधि के अंतर्गत समर्थन बनाया जाए तथा जब तक की प्रत्यर्थीगण द्वारा उस सिद्धि-भार का वहन न कर दिया जाए, हम भारत के विद्वान अपर सॉलिसिटर जनरल द्वारा किए गए अग्रेतर अभिकथन को स्वीकार करने में असमर्थ हैं जो अभ्यासिक रूप से कहता है कि पुनः निर्धारण कार्यवाहियों को संरक्षित किया जाए। अभ्यासिकता, यदि कोई हो,विधायन को अग्रसर कर सकती है। जब एक बार मामला न्यायालय पहुंच जाता है, यह विधायन तथा इसकी भाषा तथा उस भाषा के लिए प्रस्तावित निर्वचन है जोप्रथमतः कार्यवाहियों के परिणाम को शासित करने के लिए निर्णायक होगा। अधिनियमित विधि में अभ्यासिकता को पढ़ना खतरनाक है। यह,एक विचार तथा कार्य जिससे हम सावधानीपूर्वक दूर रहते हैं, न्यायालय द्वारा विधायनको अंतर्ग्रस्त कर सकता है।

75. जैसा कि हम देखते हैं, समर्थकारी अधिनियम तथा वित्त अधिनियम, 2021 को लागू करने तथा प्रभावी करने में कोई विरोध नहीं है। इसके विपरीत, यदि वित्त अधिनियम, 2021 पुनः निर्धारण प्रक्रिया का

प्रतिस्थापन नहीं करता, राजस्व प्राधिकारी समर्थकारी अधिनियम के अंतर्गत समय की वृद्धि का दावा करने के अपने अधिकार के अंतर्गत होते। तथापि, संसद द्वारा किए गए व्यापक संशोधन के बाद अनिवार्य उपाधारणा या अवेक्षा के बल से इसने समर्थकारीअधिनियम की प्रयोज्यता को तथा उसके अंतर्गत समय की वृद्धि प्रदान करने की शक्ति को केवल ऐसी पुनः निर्धारण कार्यवाहियों तक जो31-03-2021 तक प्रारंभ की गई थीं, सीमित कर दिया। परिणामस्वरूप, आक्षिप्त अधिसूचनाएं 01-04-2021 से उसके बाद प्रारंभ की गईं पुनः निर्धारण कार्यवाहियों पर कोई प्रयोज्यता नहीं रखतीं।

76. प्रतिस्थापित प्रावधानों के किसी रक्षण के बिना 1-4-2021 से प्रभावी वित्त अधिनियम, 2021 के लागू होने के बाद विधियों के विरोध के किसी निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कोई जगह नहीं है। निर्धारण प्राधिकारी के लिए यह आवश्यक था कि 1-4-2021 के बाद मौजूद विधि के अनुसार कार्य करें। यदि परिसीमा का नियम अनुमति देता हो, यह उसका समुचित अनुपालन करने के बाद नई विधि के अनुसार पुनः निर्धारण कार्यवाहियों को प्रारंभ कर सकता है। ऐसा न किए जाने पर, याचीगण के विरुद्ध प्रारंभ की गई पुनः निर्धारण की कार्यवाहियां क्षेत्राधिकार विहीन हैं।

77. छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय के निर्णय के संबंध में, पूरे सम्मान के साथ, उस मत से सहमत होने के लिए हम स्वयं को असमर्थ पा रहे हैं। हमारे अनुसार, संसद द्वारा निर्मितमूल विधायन अर्थात वित्त अधिनियम, 2021 का निर्वचन करने के लिएप्रत्यायोजित विधायन अर्थात समर्थकारी अधिनियम के अंतर्गत जारी अधिसूचना दिनांकित 31-03-2021 को देखना अनुचित होगा। एक प्रत्यायोजित विधायन कभी भी मूल विधायन के किसी अधिनियम का उल्लंघन नहीं कर सकता। दूसरा यह की या तो समर्थकारी अधिनियम या वित्त अधिनियम, 2021 के प्रावधानों की उपेक्षा करना तथा कोविड-19 महामारी के विस्तार से उत्पन्न तथ्य परिस्थितियों के आलोक में वित्त अधिनियम, 2021 के प्रावधानों को लागू न होने योग्य पढ़ना तथा निर्वचित करना अतिसरलीकरण होगा। सांविधिक प्रावधानों के बिना जीवन की अभ्यासिकता, किसी करारोपक विधि को निर्वचित करने के लिए अच्छा निर्देशक सिद्धांत नहीं हो सकती। वित्त अधिनियम, 2021 में समर्थकारी अधिनियम के प्रावधानों या उसके अंतर्गत जारी अधिसूचनाओं को रक्षित करने के लिए किसी विनिर्दिष्ट खंड के अभाव में निर्वचन की किसी भी प्रक्रिया से उन अधिसूचनाओं को 31 मार्च, 2020 के बादविस्तारित जीवन नहीं प्रदान किया जा सकता। वे उस प्रावधान में भी कोई जीवन नहीं डाल सकते जो 31-03-2021 से प्रभावी तिथि से संविधि की पुस्तक से समाप्त कर दिया गया।क्योंकि वित्त अधिनियम 2021, केंद्रीय सरकारको पूर्व-स्थित विधि(जिसे उस मूल विधायन ने प्रतिस्थापित किया था) को पुनः सक्रिय करने के लिए कोई अधिसूचना जारी करने के लिए समर्थ नहीं बनाता, प्रतिनिधि/केंद्रीय सरकार द्वारा किया गया कोई कार्य किसी सांविधिक आधार के बिना होगा। पूर्व-स्थित विधियों

के रक्षण के लिए किसी अभिव्यक्त प्रावधान के अभाव में ऐसे रक्षण के पक्ष में की गई कोई उपाधारणा स्पष्ट रूप से अननुमन्य है। कोई उपाधारणा भी नहीं है कि समर्थकारीअधिनियम के अंतर्गत जारी अधिसूचना द्वारा अधिनियम के पूर्व स्थित प्रावधान का लागू होना बढ़ा दिया गया है तथा इस प्रकार अधिनियम की धारा 148-क के प्रावधान (वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा प्रविष्ट किए गए) तथा अन्य प्रावधान स्थगित कर दिए गए थे। ऐसी अधिसूचनाएं, अधिनियम के अंतर्गत पुनः निर्धारण से संबंधित पूर्व-स्थित प्रावधानों को बचाती या रक्षित नहीं करतीं।

80. उपरोक्त के आलोक में सभी रिट याचिकाओं को सफल होना चाहिए तथा अनुज्ञात की जाती हैं। यह घोषित किया जाता है कि अध्यादेश, समर्थकारीअधिनियम तथा वित्त अधिनियम, 2021 की धाराएं 2 से 88, जैसी की 01-04-2021 से प्रभावी की गई हैं, परस्पर विरोधी नहीं हैं। जहां तक आक्षिप्त अधिसूचनाओं दिनांकित 31-03-2021 तथा 27-04-2021 क्रमशः तथा खंड अ(क),अ(ख) में जोड़े गए स्पष्टीकरण का संबंध है, हम घोषित करते हैं कि उक्त स्पष्टीकरणों को, जैसे कीवे पुनः निर्धारण कार्यवाहियों को लागू होते हैं,उसी तरह पढ़ा जाना चाहिए जैसे कि वे 31-03-2021 अर्थात अधिनियम की धाराओं 147,148,148-क,149,151 एवं 151 का के प्रतिस्थापन से पूर्व थे। परिणामस्वरूप, सभी रिट याचिकाओं में पुनः निर्धारण की नोटिसों को खंडित किया जाता है। अधिनियम के प्रावधानों, जैसे कि वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा संशोधित किए गए हैं, के अनुरूप, जैसा की विधि द्वारा अपेक्षित है सभी अनुपालनों को करने के बाद, पुनःनिर्धारण कार्यवाहियों को प्रारंभ करना संबंधित निर्धारण प्राधिकारियों के लिए अनुमन्य होगा।

22. संविधियों के सामंजस्यपूर्ण निर्वचन के नियम को लागू करने के द्वारा उसमें यह अवधारित किया गया था कि समर्थकारीअधिनियम की धारा 3(1) के अंतर्गत जारी की गईं आक्षिप्त अधिसूचनाओं दिनांकित 31-03-2021 तथा 27-04-2021 के खंडोंअ(क) तथा अ(ख), क्रमशः, में जोड़े गए स्पष्टीकरणों को उन पुनः निर्धारण कार्यवाहियों पर लागू होना पढ़ा जाना चाहिए जो 31-03-2021 अर्थात आयकर अधिनियम, 1961 की धाराओं 147 से 151क के प्रतिस्थापन से पूर्व अस्तित्व में रही हों। विधि द्वारा यथाअपेक्षित सभी अनुपालनों को करने के बाद वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा यथा संशोधित अधिनियम' 1961 के प्रावधानों के अनुसार निर्धारण कार्यवाहियों को प्रारंभ करने के लिए संबंधित निर्धारण प्राधिकारियों को अनुमन्य करते हुए, समर्थकारी अधिनियम (टीओएलए 2020) की सहायता से समय विस्तार लागू करते हुए पूर्व-स्थित प्रावधानों के अंतर्गत 01-04-2021 को या उसके बाद जारी की गईं पुनः निर्धारणनोटिसों कोखंडित किया गया।

(ii)सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय:-

23. अन्य रिट याचिकाओं से संलग्न रिट टैक्स नं. 524 वर्ष 2021 में इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश को राजस्व द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई। सर्वोच्च न्यायालय ने इस तथ्य को ध्यान में लिया कि वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा संशोधन के आलोक में 1961 के अधिनियम की धारा 148

के अंतर्गत राजस्व द्वारा जारी की गई पुनः निर्धारण नोटिसों को खंडित करते हुए विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा इसी तरह के निर्णय तथा आदेश पारित किए गए थे तथा यह की ऐसी लगभग 90,000 पुनः निर्धारण नोटिसें 01-04-2021 के बाद असंशोधित आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 148 के अंतर्गत राजस्व द्वारा जारी की गई थी। उसमें यह अवधारित किया गया था कि इस उच्च न्यायालय द्वारा पारित साझे निर्णय तथा आदेश से उद्भूत उक्त अपील में पारित आदेश समान बिंदु पर विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा पारित सभी अन्य निर्णय तथा आदेशों को शासित करेगा। राजस्व को पृथक व्यक्तिविशिष्ट अपील दाखिल करने की आवश्यकता नहीं होगी जो संख्या में 90,000 से अधिक हो सकती हैं।

24. चुनौती के गुण दोष पर सर्वोच्च न्यायालय ने आयकर अधिनियम की धाराओं 147 से 151 की संशोधन पूर्व तथा पश्चात अवधि तथा समर्थकारी अधिनियम/टीओएलए, 2020 को भी ध्यान में लिया। निर्णय के पैरा सं. '6, 6.1 से 6.6'में निम्नवत अवधारित किया गया था-

> "*6 इसे विवादित नहीं किया जा सकता की वित्त अधिनियम,"6. वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा आयकर अधिनियम (आई.टी. एक्ट) की धाराओं 147 से 151 के प्रतिस्थापन द्वारा पुनः निर्धारण कार्यवाहियों की प्रक्रिया को शासित करने वाले महत्वपूर्ण तथा सुधारात्मक परिवर्तन किए गए हैं। आई.टी. एक्ट की संशोधित धाराएं 147 से 149 तथा 151 पुनः निर्धारण कार्यवाहियों के प्रारंभ को शासित करने वाली प्रक्रिया विहित करती हैं। तथापि अनेक कारणों से वे अनेक मुकदमो को जन्म देती हैं तथा कार्यवाहियों के पुनः प्रारंभ को विभिन्न आधारों जैसे (1) "विश्वास का वैध कारण" न होने, (2) इस विश्वास के निर्माण को अग्रसर करने के लिए कीनिर्धारण से आय छूट गई है,निर्धारण अधिकारी के कब्जे में किसी भौतिक/विश्वसनीय सामग्री/सूचना का न होना, (3) नोटिस जारी करने से पूर्वनिर्धारण अधिकारी द्वारा किसी जांच का न किया जाना; तथा पुनः निर्धारण खोलना निर्धारण प्राधिकारी के मत परिवर्तन पर आधारित है, तथा अंत में इस न्यायालय द्वारा* ***जीकेएन ड्राइवशाफ्ट्स (इंडिया) लिमिटेड बनाम इनकम टैक्स ऑफिसर एंड अदर्स,*** *20031 एससीसी 72, के मामले में अवधारित आज्ञापक प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है।*
>
> *6.1 अग्रेतर, वित्त अधिनियम, 2021 से पूर्व पुनः निर्धारण खोलना, लंबे समय तक अनिश्चितता को अग्रसर करते हुए अधिकतम 6 वर्षों की अवधि के लिए तथा, कुछ मामलों में यहां तक की 6 वर्षों के बाद भी, अनुमन्य था। अतः, कर प्रशासन को सरल करने, अनुपालन आसान बनाने तथा मुकदमेबाजी को कम करने के लिये संसद ने आयकर अधिनियम को संशोधित करना उचित समझा। अतः,उक्त उद्देश्य को प्राप्त करने के उद्देश्य से वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा धाराओं 147 से 149 तथा धारा 151 को प्रतिस्थापित किया गया है।*
>
> *6.2 वित्त अधिनियम, 2021 के माध्यम से आयकर अधिनियम के प्रतिस्थापित प्रावधानों के अंतर्गत आयकर अधिनियम की धारा 148-क के अंतर्गत विहित की गई प्रक्रिया का पालन किए बिना आयकर अधिनियम की धारा 148 के अंतर्गत कोई नोटिस जारी नहीं*

की जा सकती। आयकर अधिनियम की धारा 148 के अंतर्गत नोटिस के साथ निर्धारण अधिकारी (एओ) से आयकर अधिनियम की धारा 148क के अंतर्गत पारित आदेश की तामील करना अपेक्षित है। आयकर अधिनियम की धारा 148क एक नया प्रावधान है जो पूर्ववर्ती शर्त की प्रकृति का है। इस प्रकार, कर प्रशासन को सरल करने, अनुपालन को आसान बनाने तथा मुकदमेबाजी को कम करने के अंतिम उद्देश्य को प्राप्त करने के लक्ष्य के साथ आयकर अधिनियम की धारा 148क के प्रारंभ को एक 'गेमचेंजर' ***होना*** *कहा जा सकता है।*

6.3 परंतु वित्त अधिनियम, 2021 से पूर्व ***जीकेएन ड्राइवसाफ्ट्स इंडिया लिमिटेड (पूर्वोक्त)*** *के मामले में इस न्यायालय के निर्णय के अनुसारनिर्धारण को पुनः खोलते समय पुनः खोलने का कारण देने तथा निर्धारिती को एक अवसर देने तथा उद्देश्यों का निर्णय देने की प्रक्रिया का पालन किया जाना अपेक्षित था।*

6.4 तथापि, धारा 148क के माध्यम से, अब प्रक्रिया को सुव्यवस्थित तथा सरलीकृत कर दिया गया है। यह प्रावधानित करती है कि धारा 148 के अंतर्गत कोई नोटिस जारी करने से पूर्व निर्धारण अधिकारी, (i) यदि अपेक्षित हो नियत प्राधिकारी के स्वीकृति से उस सूचना, जो सुझाव देती है कि करारोपण योग्य कोई आयनिर्धारण से छूट गई है, के संबंध में जांच करेगा; (ii) नियत प्राधिकारी के पूर्व स्वीकृति के साथ निर्धारिती को सुने जाने का अवसर प्रदान करे; (iii) खंड (ख) में निर्दिष्ट कारण बताओ नोटिस के उत्तर में निर्धारिती द्वारा दिए गए उत्तर, यदि कोई हो, पर विचार करे; तथा (iv) निर्धारिती के उत्तर सहित अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर निर्णित करे कीयह आयकर अधिनियम की धारा 148 के अंतर्गत नोटिस जारी करने के लिए उचित मामला है या नहीं; तथा (v) विहित समय के अंतर्गतनिर्धारण अधिकारी से विनिर्दिष्ट आदेश पारित करना अपेक्षित है।

6.5 अतः, आयकर अधिनियम की धारा 148 के अंतर्गत नोटिस जारी करने से पूर्व सभी रक्षोपाय प्रावधानित किए गए हैं। प्रत्येक स्तर पर, यहाँ तक कि धारा 148क(क) के अंतर्गत जांच करने के लिए भी, नियत प्राधिकारी का पूर्व स्वीकृति अपेक्षित है। केवल उस दशा में जहां निर्धारण अधिकारी इस मत का है की धारा 148क(ख) के अंतर्गत कोई नोटिस जारी करने तथा निर्धारिती को अवसर दिये जाने से पूर्व, कोई जांच किए जाने की अपेक्षा है, निर्धारण अधिकारी ऐसा कर सकता है तथा कोई जांच कर सकता है। इस प्रकार यदि निर्धारण अधिकारी इस मत का है कि, किसी सूचना के संबंध में, जो यह सुझाव देती है कि करारोपण योग्य आय निर्धारण से छूट गई है, कोई जांच अपेक्षित है, नियत प्राधिकारी के पूर्व स्वीकृति सेही निर्धारण अधिकारी ऐसा कर सकता है।

6.6. प्रतिस्थापित धारा 149, आयकर अधिनियम की धारा 148 के अंतर्गत नोटिस जारी करने के लिए समय सीमा को शासित करने का प्रावधान है। आयकर अधिनियम की प्रतिस्थापित धारा 149 ने ऐसी नोटिस जारी करने के लिए अनुमन्य समय सीमा को 3 वर्ष तक, तथा केवल आपवादिक मामलों में 10 वर्षों तक, सीमित कर दिया

है। अग्रेतर,यह अतिरिक्त रक्षोपाय भी प्रावधानित करती है जोवित्त अधिनियम, 2021 से पहले की पूर्ववर्ती अवधि में अनुपस्थित थे।"

25. यह अवधारित किया गया था कि 01-04-2021 से प्रभावी संशोधन के लागू हो जाने के बाद राजस्व कोअसंशोधित अधिनियम के अंतर्गत नोटिसें नहीं जारी करना चाहिए था तथा वित्त अधिनियम, 2021 के अनुसार आयकर अधिनियम की संशोधित धाराओं 147 से 151 के अंतर्गत नोटिस जारी किया जाना चाहिए था। तथापि, संतुलन बनाने के क्रम में, इस तथ्य को ध्यान में लेते हुए की, उच्च न्यायालयों के निर्णय कोई भी पुनः निर्धारण कार्यवाही न हो सकने में परिणामित होंगे भले ही यह वित्त अधिनियम, 2021 के अनुसार आयकर अधिनियम की प्रतिस्थापित धाराओं 147 से 151 के अंतर्गत अनुमन्य हो, यह निर्देशित किया गया था कि असंशोधित अधिनियम/आयकर अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत जारी की गई नोटिसों को प्रतिस्थापित प्रावधानों के अनुसार आयकर अधिनियम की धारा 148क के अंतर्गत जारी किया हुआ माना जाएगा। 01-04-2021 के बाद आयकर अधिनियम की असंशोधित धारा 148 के अंतर्गत नोटिस जारी करने का राजस्व का कृत्य केंद्रीय सरकार द्वारा बाद में जारी की गई समय विस्तार की अधिसूचना के द्वारा पश्चातवर्ती समय विस्तार के आलोक में सद्भावी त्रुटि माना गया। इस प्रकार इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय तथा आदेश दिनांकित 30-9-2021 निम्नवत उपांतरित तथा प्रतिस्थापित किया गया:-

26. इस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पैराग्राफ '9' तथा '10' में निम्नवत अवलोकित किया गया:-

9-राजस्व की ओर से उपस्थित विद्वान एएसजी तथा विभिन्न निर्धारितियों की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ताओं/विद्वान अधिवक्ता के मध्य उपरोक्त पक्ष पर बृहद् सहमति है।

हम भी इस मत के हैं कि यदि उपरोक्त आदेश पारित किया जाता है, यह राजस्व तथा विभिन्न निर्धारितियों के अधिकारों में संतुलन स्थापित करेगा क्योंकि लगभग 90000 ऐसी नोटिसें जारी करने में राजस्व के अधिकारियों के सद्भावी विश्वास के कारण राजस्व को छति नहीं होनी चाहिए क्योंकि अंततः यह लोक निधि होगी जिसकी क्षति होगी..................

....

10- उपरोक्त के आलोक में तथा उपरोक्त कथित कारणों से प्रस्तुत अपीलें अंशतः अनुज्ञात की जाती हैं। डब्ल्यू.टी. संख्या 524/2021 तथा संलग्न अपीलों/याचिकाओं में इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा पारित साझा निर्णय एवं आदेश एतद्द्वारा निम्नवत उपांतरित तथा प्रतिस्थापित किया जाता है/हैं-

(i) विभिन्न निर्धारितियों को जारी की गई धारा 148 की आक्षिप्त नोटिसें जो आयकर अधिनियम की असंशोधित धारा 148 के अंतर्गत जारी की गई थी, जो विभिन्न उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिकाओं की विषय वस्तु थीं, उन्हें वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा यथा संशोधित आयकर अधिनियम की धारा 148क के अंतर्गत जारी किया हुआ माना जाएगा तथा धारा 148क(ख) के निबंधनों में कारण बताओ नोटिस निर्वचित या व्यवहृत किया जाएगा। आज से तीस दिनों के अंदर निर्धारण अधिकारी विभिन्न निर्धारितियों को राजस्व द्वारा निर्भर की गई सूचना एवं सामग्री प्रदान करेगा जिससे निर्धारिती उसके बाद दो सप्ताह के अंदर कारण बताओं नोटिसों का जवाब दे सकें;

(ii) 01-04-2021 से आज तक असंशोधित अधिनियम कीधारा 148 के अंतर्गत जारी नोटिसों, उनके सहित जिन्हें उच्च न्यायालयों ने खंडित कर दिया था,के संबंध में एक बार केउपाय के रूप में,जांच के लिए, यदि अपेक्षित हो,धारा 148-क(क) के अंतर्गत नियत प्राधिकारी के पूर्व स्वीकृति की आवश्यकता से छूट प्रदान की जाती है। अन्यथा भी, जैसा की यहाँ ऊपर अवलोकित किया गया है, नियत प्राधिकारी के पूर्व स्वीकृति से जांच करना आज्ञापक नहीं है, बल्कि यह संबंधित निर्धारण अधिकारी के लिए है की यदि आवश्यक हो, जांच करें;

(iii) उसके बाद निर्धारण अधिकारी प्रत्येक संबंधित निर्धारिती के संबंध में धारा 148क(घ) के निबंधनों में आदेश पारित करेंगे;उसके बाद, धारा 148क के अंतर्गत यथा अपेक्षित प्रक्रिया का पालन करने के बाद धारा 148 (यथा प्रतिस्थापित) के अंतर्गत नोटिस जारी कर सकता है;

(iv) आयकर अधिनियम की धारा 149 के अंतर्गत सहित सभी प्रतिरक्षायें जो निर्धारिती को उपलब्ध हैं तथा सभी अधिकार एवं तर्क जो संबंधित निर्धारिती तथा राजस्व को वित्त अधिनियम 2021 तथा विधि में उपलब्ध हो सकती हैं, उपलब्ध रहेगीं।

27. भारत के संविधान के अनुच्छेद 142 के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग करते हुए सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्देशित किया गया था कि उपरोक्त निर्देश संपूर्ण भारत में लागू होंगे तथा विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा पारित आदेशों, उस बिंदु पर जहां 01-04-2021 के बाद अधिनियम की धारा 148 के अंतर्गत जारी इसी तरह की नोटिसें खंडित की गई थी, शासित करेगा। यह अवलोकित किया गया था कि उसमें जारी दिशा निर्देश विभिन्न उच्च न्यायालयों के समक्ष विचाराधीन मामलों को शासित करेंगे जिनमें इस तरह की नोटिसें चुनौती के अंतर्गत थीं। इस प्रकार पैराग्राफ संख्या '12' में निम्नवत निष्कर्ष दिया गया---------

"12. इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा पारितसाझे निर्णय तथा आदेशतथा विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा पारित इसी तरह के निर्णय तथा आदेश, विशेष रूप से, विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा पारित संबंधित निर्णय तथा आदेश जिनका विवरण यहां ऊपर उल्लिखित है, मात्र उपरोक्त सीमा तक उपांतरित/प्रतिस्थापित हो जाएंगे।"

सीबीडीटी के निर्देश:-

28. हमारे समक्ष प्रस्तुत किया गया कि, सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय दिनांकित 04.05.2022 **(यूनियन ऑफ इंडिया बनाम आशीष अग्रवाल)**(पूर्वोक्त) को लागू करने के संबंध में केंद्रीय प्रत्यक्ष कर, परिषद द्वारा आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 119 के अंतर्गत शक्तियों के अनुप्रयोग में निर्देश, नामतः, डीसीआईटी (ओएसडी), आईटीजे-1 द्वारा जारी निर्देश सं. 1/2022 दिनांकित 11.05.2022, जारी किए गए थे। सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को लागू करने के लिएपरिकल्पित रूप से जारी निर्देशों में विहित किया गया था कि सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय,इस तथ्य पर ध्यान दिए बिना की ऐसी नोटिसों को चुनौती दी गई थी या नहीं, ऐसे

सभी मामलों में लागू होगा जहां "विस्तारित पुनः निर्धारणनोटिसें" जारी की गई थीं।

29.उपरोक्त निर्देश के प्रारंभिक पैराग्राफ में यह लिखा गया है कि 01-04-2021 से प्रारंभ तथा 30-06-2021 को समाप्त हुई अवधि के दौरान, टीओएलए, 2020 तथा उसके अंतर्गत जारी विभिन्न अधिसूचनाओं, द्वारा विस्तारित समय के अंतर्गत निर्धारण अधिकारियों द्वारा जारी की गई पुनः निर्धारण की नोटिसों को"विस्तारित पुनः निर्धारण नोटिसों" के रूप में निर्दिष्ट किया जाएगा। उसके बाद निर्देश के पैराग्राफ '6' में निर्देशित किया गया था कि जहां अधिनियम की धारा 148 के अंतर्गत नवीन नोटिस जारी की जा सकती है, अधिनियम की नई धारा 149 की प्रयोज्यता निम्नवत मानी जा सकती है:-

> *"6. उन मामलों को चिन्हित करने के लिये, जहाँ अधिनियम की धारा 148 के अन्तर्गत नोटिस जारी की जा सकती है, नई धारा 149 की प्रयोज्यता।*
>
> *6.1. अधिनियम की नई धारा 149 की प्रयोज्यता के संबंध में निम्नलिखित को देखा जा सकता है:-*
>
> - *माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अवधारित किया है कि नई विधि लागू होगी तथा **नई विधिकी धारा 149 के अन्तर्गत निर्धारितियों को उपलब्ध सभी प्रतिरक्षायें नई विधि के अंतर्गत निर्धारण अधिकारी को जो भी अधिकार उपलब्ध हैं उपलब्ध होना जारी रहेंगे।***
> - *वित्त अधिनियम,2021 द्वारायथा संशोधित नई धारा 149 की उपधारा (l) का पाठ (वित्त अधिनियम,2022 द्वाराइसके संशोधन से पूर्व) निम्नवत है:-*
>
> > *149. (1)-**सुसंगतनिर्धारण वर्ष के लिए धारा 148 के अंतर्गत कोई नोटिस नहीं जारी की जाएगी,-***
> >
> > ***(क)**यदि सुसंगत निर्धारण वर्ष की समाप्ति से तीन वर्षों की समाप्ति हो चुकी है, जब तक कि मामला खंड (ख) के अंतर्गत न आता हो:*
> >
> > *(ख) यदि सुसंगत निर्धारण वर्ष से तीन वर्षों की अवधि समाप्त हो चुकी हो परंतु दस वर्षों से अधिक नहीं, जब तक की निर्धारण अधिकारी के कब्जे में उस वर्ष के लिए लेखा पुस्तकें या अन्य दस्तावेज या साक्ष्य न हो जो आस्तियों के रूप में दर्शित कर योग्य आय प्रकट करते हों जो पचास लाख रुपए या उससे अधिक हो या होना संभाव्य हो:*
>
> *परंतु यह की 1 अप्रैल, 2021 को या उससे पूर्व प्रारंभ होने वाले सुसंगत निर्धारण वर्ष के किसी मामले में किसी समय धारा 148 के अंतर्गत नोटिस जारी नहीं की जाएगी, यदि ऐसी नोटिस, इस धारा की उपधारा(1) के खंड (12)के प्रावधानो, जैसे कि वे वित्त अधिनियम, 2021 के प्रारंभ से ठीक पूर्व विद्यमान थे, के अंतर्गत नियत समय सीमा के*

परे होने के कारण, उस समय जारी नहीं की जा सकती थी।

- *माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उच्च न्यायालयों के इस मत को पुष्ट किया है कि नई विधि का लाभ पूर्व निर्धारण वर्षों के संबंध में कार्यवाहियों के संबंध में भी उपलब्ध होगा। माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयके साथ पठित टीओएलए द्वारा प्रावधानित समय विस्तार, विस्तारित पुनः निर्धारण नोटिसों को उस मूल तिथि तक, जब उन्हें जारी किया जाना था, पूर्व समय बिंदु तक ले जाएगी तथा अधिनियम की नई धारा 149 उस समय बिन्दु पर लागू की जायेगी।*

6.2- उपरोक्त के आधार पर, विस्तारित पुनः निर्धारण नोटिसों को निम्नवत व्यवहृत किया जाना है:

(i)निर्धारण वर्ष 2013-14, निर्धारण वर्ष 2014-15, निर्धारण वर्ष 2015-16: इन मामलों में विनिर्दिष्ट प्राधिकारी के पूर्व स्वीकृति से धारी 148 के अन्तर्गत नई नोटिस केवल तब जारी की जा सकती है जब मामला वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा यथा संशोधित धारा 149 की उपधारा (1) के खंड (ख) के अंतर्गत आता है, तथा उपरोक्त पैराग्राफ 6.1 में पुनर्प्रस्तुत किया गया है। इस मामले में नई विधि की धारा 151 के अंतर्गत विनिर्दिष्ट प्राधिकारी उस धारा के खंड (i) में विहित प्राधिकारी होगा।

(ii) निर्धारण वर्ष 16-17, निर्धारण वर्ष 17 18: इन मामलों में अधिनियम की नई धारा 149 की उपधारा (1) के खंड (क) में नियत प्राधिकारी के स्वीकृति से धारा 148 के अंतर्गत नई नोटिस जारी की जा सकती हैं, क्योंकि वे सुसंगत निर्धारण वर्ष की समाप्ति से 3 वर्षों की अवधि के अंतर्गत हैं। इस मामले में नई विधि की धारा 151 के अंतर्गत नियत प्राधिकारी उस धारा के खंड (i) के अंतर्गत विहित प्राधिकारी होगा।"

30. उन मामलों में जहांनिर्धारण अधिकारी से सूचना तथा निर्भर की गई सामग्री प्रदान करना अपेक्षित है, खंड 7.1 में निम्नवत निर्देशित किया गया था:-

"7.1- माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्देशित किया है कि सभी मामलों में 30 दिनों के अंतर्गत सूचना तथा सामग्री प्रदान किया जाना अपेक्षित है।तथापि, यह भी ध्यान में लिया गया है किनिर्धारण वर्ष 2013-14, निर्धारण वर्ष 2014-15 तथानिर्धारण वर्ष 2015-16के मामलों में नोटिस जारी नहीं की जा सकतीयदिनिर्धारण से छूट गई आय उस मामले में उस वर्ष के लिए रुपए पचास लाख से कम है या कम होना संभाव्य है। इसलिए निर्धारितियों के अनुपालन भार को कम करने के क्रम में यह स्पष्ट किया जाता है कि निर्धारण वर्ष 2013-14, निर्धारण वर्ष 2014-15 तथा निर्धारण वर्ष 2015-16 के मामलों में सूचना तथा सामग्री प्रदान नहीं की जा सकती यदि उस वर्ष के लिए उस मामले में निर्धारण से छूटी हुई आयपचास लाख रुपए से का है या काम होना संभावित है। इन मामलों को निस्तारित करने के लिए प्रक्रिया के संबंध में पृथक निर्देश जारी किए जाएंगे।"

31- सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के अनुपालन में निर्धारण अधिकारी द्वारा अनुपालन किये जाने

के लिए अपेक्षितउसमें दी गई प्रक्रिया निम्नवत है:-

"माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के अनुसार विस्तारित पुनः निर्धारण नोटिसों को अधिनियम की धारा 148क के खंड (ख) के अंतर्गत नोटिस माना जाएगा। इसलिए उस कारण बताओ नोटिस से पूर्व नई विधि की सभी अपेक्षाओं का पालन किया हुआ माना जाएगा।

निर्धारण अधिकारी उपरोक्त पैराग्राफ 7.1 में दिए गए स्पष्टीकरण के अनुसार मामलों को विवर्जित करेगा। 30 दिनों के अंदर अर्थात 2 जून, 2022 तक बचे हुए मामलों में निर्धारितियों को निर्धारण अधिकारी विस्तारित पुनः निर्धारण नोटिसें जारी करने के लिए सूचना तथा निर्भर की गई सामग्री प्रदान करेगा।

निर्धारिती के पास उत्तर देने के लिए दो सप्ताह हैं कि उस सूचना के आधार पर, जो सुझाव देती है कि संगत निर्धारण वर्ष के लिए उसके मामले में करारोपण योग्य आय निर्धारण से छूट गई है, अधिनियम की धारा 148 के अंतर्गत नोटिस क्यों जारी नहीं की जानी चाहिए। दो सप्ताह की समय अवधि की गणनानिर्धारण अधिकारी द्वारा निर्धारिती को सूचना तथा सामग्री की अंतिम संसूचना की तिथि से की जाएगी।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय के इस अवलोकन के आलोक में की निर्धारिती को नई विधि के अंतर्गत सभी प्रतिरक्षायें उपलब्ध होंगी, यदि निर्धारिती एक आवेदन देकर अनुरोध करता है कि उसे कारण बताओ नोटिस का उत्तर दाखिल करने के लिए और अधिक समय दिया जाना चाहिए, तब इस ऐसे अनुरोध पर निर्धारण अधिकारी द्वारा उसके गुण दोष पर विचार किया जाएगा तथा, जैसा कि अधिनियम की धारा 148क के खंड (ख) में प्रावधानित है, निर्धारण अधिकारी द्वारा समय बढ़ाया जा सकता है। उत्तर प्राप्त होने के बाद, निर्धारण अधिकारी निर्धारिती के उत्तर सहित अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर निर्णय करेगा कि क्या यह अधिनियम की धारा 148 के अंतर्गत नोटिस जारी करने के लिये उचित मामला है या नहीं। निर्धारण अधिकारी से, नई विधि के अंतर्गत नियत प्राधिकारी के पूर्व स्वीकृति के साथ, अधिनियम की धारा 148क के खंड (घ) के अंतर्गत इस प्रभाव का एक आदेश पारित करना अपेक्षित है। यह आदेश, निर्धारिती से उसे जिस माह में उत्तर प्राप्त होता है उसकी समाप्ति से, एक माह के अंदर पारित किया जाना अपेक्षित है। यदि निर्धारिती द्वारा ऐसा कोई उत्तर नहीं प्रदान किया जाता तब उत्तर दाखिल करने के लिए दिया गया समय यह विस्तारित समय जिस माह में समाप्त होता है उसकी समाप्ति से एक माह के अंदर आदेश पारित किया जाना चाहिए।

यदि यह अधिनियम की धारा 148 के अंतर्गत नोटिस जारी करने के लिये उपयुक्त मामला है, नई विधि की धारा 151 के अंतर्गत नियत प्राधिकारी से स्वीकृति प्राप्त करने के बाद निर्धारण अधिकारी धारा 148 के अंतर्गत एक नोटिस निर्धारिती पर तामील करेगा। धारा 148 के अंतर्गत नोटिस के साथ अधिनियम की धारा 148क के खंड (घ) के अंतर्गत पारित आदेश की प्रति भी प्रदान की जाएगी।

यदि यह अधिनियम की धारा 148 के अंतर्गत नोटिस जारी करने के लिये उपयुक्त मामला नहीं है, धारा 148क के खंड (घ) के अंतर्गत पारित इस प्रभाव के आदेश की प्रतिलिपि निर्धारिती को प्रदान की जाएगी।"

32. आगे बढ़ने से पूर्व हम लेखबद्ध करना चाहते हैं कि कुछ रिट याचिकाओं में अधिनियम की धारा 119 के अंतर्गत अपनी शक्तियों के अनुप्रयोग में सीबीडीटी द्वारा जारी निर्देश दिनांकित 11-05-2022 के आपत्तिजनक खंडों को इस आधार पर चुनौती दी गई है कि वह **आशीष अग्रवाल (पूर्वोक्त)** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा जारी अवलोकनों तथा निर्देशों के सीधे विरोध/उल्लंघन में है।

<u>याचीगण के अधिवक्ताओं की ओर सेतर्क</u>:-

33. सभी याचीगण के विद्वान अधिवक्ताओं की बहस सामूहिक रूप से निम्नवत लेखबद्ध की जा रही है:-

(i) वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा लाए गए संशोधन के बाद पुनः निर्धारण कार्यवाहियों पर नवीन/संशोधित प्रावधान लागू होंगे।

(ii) समर्थकारी अधिनियम(टीओएलए 2020) 01-04-2021 से तथा उसके बाद आयकर अधिनियम की असंशोधित धाराओं 147 से 151 के अंतर्गत पुन:निर्धारण कार्यवाहियों के प्रारंभ के लिए विहित समय सीमा की वृद्धि नहीं करेगा।

(iii) परिणाम यह है कि राजस्व को 01-04-2021 को या उसके बाद प्रारंभ की गई पुनः निर्धारण कार्यवाहियों में धाराओं 147से 151क के प्रतिष्थापित/संशोधित प्रावधानों की सभी अपेक्षाओं को पूरा करना होगा। संशोधित प्रावधानों के अंतर्गत सभी अनुपालन राजस्व को करने होगें।

(iv) साथ ही साथ, प्रतिस्थापित/संशोधित प्रावधानों के अंतर्गत सभी प्रतिरक्षाएं निर्धारिती को उपलब्ध होगीं।

(v) वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा किए गए संशोधन पर समर्थकारी अधिनियम (टीओएलए 2020) के प्रभाव के बारे में यह तर्क दिया गया है कि प्रतिष्थापित/असंशोधित प्रावधानों के अंतर्गत प्रावधानित समय सीमा में समर्थकारी अधिनियम, (टीओएलए 2020) की धारा 3(1) के अंतर्गत कोई समय विस्तार प्रदान नहीं किया जा सकता। तर्क यह है कि टीओएलए 2020 की धारा 3(1) ने केवल उन पुनःनिर्धारण कार्यवाहियों संरक्षित किया है जो कि असंशोधित विधि के अंतर्गत मौजूद थीं।

(vi) वित्त अधिनियम, 2021 के लागू होने के साथ निर्धारण की योजना में सारभूत परिवर्तन हो गया। समर्थकारी अधिनियम (टीओएलए 2020) के सामान्य प्रावधान, वित्त अधिनियम 2021जो की एक विशिष्ट प्रावधान है, की अपेक्षाओं को परिवर्तित नहीं कर सकते क्योंकि विशेष सामान्य पर अधिभावी होता है।

(vii) यह प्रार्थना की गई कि धारा 148 के अंतर्गत पुनः निर्धारण की नोटिस केवल तब जारी की जा सकती है जबनिर्धारण अधिकारी द्वारा क्षेत्राधिकार वैध रूप से प्राप्त किया गया हो जिसके लिए राजस्व द्वारा धाराओं 149 से 151क के

प्रतिस्थापित प्रावधानों का अनुपालन किया जाना चाहिए।

(viii) नवीन/संशोधित प्रावधान निर्धारिती के लिए लाभदायक प्रकृति के हैं तथा धारा 148 के अंतर्गत क्षेत्राधिकारपूर्ण नोटिस जारी करने के लिए राजस्व द्वारा पालन किए जाने वाली कुछ पूर्ववर्ती शर्तों/मौद्रिक सीमाओं आदि का पालन करने का प्रावधान करते हैं। नई प्रणाली में किए गए सारभूत परिवर्तनों के कारण राजस्व को सकारात्मक भार का वहन करने के लिए उच्चतर सीमाओं का पालन करना होता है।

(ix) संशोधनपूर्व तथा पश्चात प्रणाली में धारा 148 के अंतर्गत नोटिस जारी करने के लिए पूर्ववर्ती शर्तों को हमारे समक्ष यह स्पष्ट करने के लिए रखा गया कि क्योंकि पुनःनिर्धारण के नोटिस के लिए सुसंगत निर्धारण वर्ष से तीन वर्षों कीसमाप्ति के बाद परंतु दस वर्षों से पूर्व धारा 148 के अंतर्गत नोटिस जारी नहीं की जा सकती जब तक किनिर्धारण अधिकारी के कब्जे में लेखा पुस्तकें या अन्य दस्तावेज या साक्ष्य न हो जो प्रकट करती हो कि आस्तियों के रूप में दर्शित करारोपण योग्य आय, जो निर्धारण से छूट गई है, उस वर्ष के लिए 50 लाख रुपए या उससे अधिक की है या हो सकती है।

(x) यह अभिकथित किया गया है कि तीन वर्षों के बाद दस वर्षों की अवधि तक निर्धारण खोलने के लिए मौद्रिक सीमा रखी गई है।

(xi) अग्रेतर, धारा 149 की उपधारा (1) के प्रथम परंतुक को यह अभिकथन करने के लिए प्रस्तुत किया गया कि वे मामले जिनमें असंशोधित प्रावधान के अंतर्गत धारा 149 की उपधारा (1) के खंड (क) के अनुसार छः वर्षों की अवधि के अंतर्गत नोटिसें जारी नहीं की गई थीं, वित्त वर्ष 2021 के प्रारंभ होने के बाद 01-04-2021 को या उसके बाद पुनःनिर्धारण की नोटिस जारी नहीं की जा सकती, इस प्रकार मामले कालबाधित हो गए।

(xii) यह तर्क दिया गया कि समर्थकारी अधिनियम (टीओएलए 2020) के प्रावधानों को लागू करके समय अवधि में विस्तार देकर ऐसे मामलों को फिर से नहीं खोला जा सकता।

(xiii) यह तर्क दिया गया कि वित्त अधिनियम, 2021 ने समर्थकारी अधिनियम,(टीओएलए 2020) की प्रयोज्यता को सीमित कर दिया तथा संशोधन के बाद संशोधित प्रावधानों के अनुपालनों/शर्तों को पूरा किया जाना चाहिए।

34. संक्षेप में निर्धारितियों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा यह तर्क दिया गया कि सर्वोच्च न्यायालय ने **आशीष अग्रवाल (पूर्वोक्त)** के मामले में विनिर्दिष्ट रूप से प्रावधानित किया था कि आयकर अधिनियम की धारा 149 के अंतर्गत जो उपलब्ध हैं उसके सहित निर्धारिती को उपलब्ध सभी प्रतिरक्षाएं तथा वित्त अधिनियम, 2021 के अंतर्गत तथा विधि में संबंधित निर्धारिती तथा राजस्व को सभी अधिकार

तथा अभिकथन जो उपलब्ध हो सकते हैं, उपलब्ध होना जारी रहेंगे। उपरोक्त अवलोकन का प्रभाव यह है कि यद्यपि राजस्ववित्त अधिनियम, 2020 द्वारा प्रविष्ट की गई आयकर अधिनियम की धारा 148-क के अंतर्गत प्रारंभिक नोटिसों के रूप में आयकर अधिनियम की असंशोधित धारा 148 के अंतर्गत जारी नोटिसों को बनाए रखने में सक्षम होगा, लेकिन आयकर अधिनियम की धारा 148 के अंतर्गत क्षेत्राधिकारपूर्ण नोटिस जारी करने के लिए वित्त अधिनियम, 2021 के अंतर्गत आयकर अधिनियम की संशोधित धारा 149 की अपेक्षाओं की पूर्ति आवश्यक होगी। यह तर्क दिया गया कि समर्थकारी अधिनियम (टीओएलए 2020) को आकस्मिक स्थिति तथा(टीओएलए 2020) की धारा 3(1) के अंतर्गत समय अवधि के विस्तार से व्यवहृत करने के लिए संसद द्वारा अधिनियमित किया गया था तथा यह हमेशा न बने रहने के लिए परिकल्पित था, टीओएलए ने केवल उस समयसीमा को प्रतिस्थापित किया था जो समाप्त हो रही थी।निर्धारण वर्ष 2015-16, 2016-17, 2017-18 के लिए टीओएलए के अंतर्गत वृद्धि अनुमन्य नहीं थी क्योंकि उक्त निर्धारण वर्षों के लिए, यहां तक की समर्थकारी अधिनियम (टीओएलए 2020) के लागू होने के समय असंशोधित धारा 149 के अंतर्गत निर्धारण कार्यवाहियों को पुनः खोलने के लिए समय अवधिसमाप्त नहीं हो रही थी। खंडपीठ तथा माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निष्कर्ष, जैसे की ऊपर लेखबद्ध किए गये हैं,दोहराए गए हैं कि असंशोधित अधिनियम के अंतर्गत धारा 148 की नोटिसोंकोवित्त अधिनियम, 2021 के अंतर्गत प्रविष्ट की गई धारा 148क के अंतर्गत प्रारंभिक नोटिसों के रूप में संरक्षित करने के लिए सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रदान की गई छूट उन्हें राजस्व की सद्भावी त्रुटि के रूप में मानते हुए एक बार के साधन थे। तथा उक्त निष्कर्ष से यह साक्ष्य है कि वित्त अधिनियम, 2021 के प्रावधानों को पूर्ण प्रभाव दिया जाना चाहिए।

35. बलपूर्वक तर्क दिया गया कि किसी भी दशा में उन निर्धारण वर्षों के लिए मामलों को खोलने के लिए जो धारा 149 के प्रथम परन्तुक के अंतर्गत काल बाधित हो चुके हैं, पूर्वस्थित विधि में दी गई समयसीमा में राजस्व को समय विस्तार देने के लिएसमर्थकारी अधिनियम, 2020 उसमें जीवन का संचार नहीं कर सकता।

36. आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 119 के अंतर्गत जारी किए गए दिशा निर्देशों के संबंध में यह तर्क दिया गया कि प्रशासनिक दिशा निर्देश अधिनियम की परिधि को सीमित या विस्तारित नहीं कर सकते या अधिनियम के प्रावधानों को परिवर्तित नहीं कर सकते।**1992 (2) एससीसी 231** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को यह अभिकथन करने के लिए प्रस्तुत किया गया कि कोई दिशानिर्देश या सर्कुलर,जैसा की स्वयं अधिनियम सत्य निर्वचन के रूप में परिकल्पित करता है,उससे उच्चतर भार कर देने वाले पर आरोपित नहीं कर सकता। तथापि, निर्धारिती के लिए लाभदायक विभागीय सर्कुलर/दिशानिर्देश निर्धारिती के लिए लाभदायक होते हैं तथा यदि ये अधिनियम की धारा 119 या अधिनियम के समानुरूप प्रावधानों के अंतर्गत सांविधिक शक्तियों के अनुप्रयोग में जारी किए गए विभागीय सर्कुलर/दिशानिर्देश विधि की कठोरताओं को कम करते हैं, अधिनियम के प्रशासन में राजस्व पर बाध्यकारी हैं।

37. निर्देश दिनांकित 11-05-2020 के विवादित खंडों को हमारे समक्ष यह कथन करने के लिए

प्रस्तुत किया गया कि उसमें जारी दिशानिर्देश(तृतीय बुलेट पॉइंट में खंड 6.1) की सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय सपठित टीओएलए द्वारा विहित समयवृद्धि, “विस्तारित पुनःनिर्धारण नोटिसों” को समय काल में पूर्व में उनकी मूल तिथि, जब ऐसी नोटिसें जारी की जानी थीं, तक ले जाएगा तथा उसके बाद अधिनियम की नई धारा 149 को उस बिंदु पर लागू किया जाएगा, सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालय के निर्णय के गलत निर्वचन पर आधारित है। सर्कुलर के खंड 6.2(i) में यह प्रावधानित किया गया है किनिर्धारण वर्ष 2013-14 तथा 2014-15 के लिए पुनःनिर्धारण नोटिस नियत प्राधिकारी के स्वीकृति से जारी की जा सकती हैं यदि मामला वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा संशोधित धारा 149 की उपधारा (1) के खंड (ख) के अंतर्गत आता है। अभिकथन यह है कि सर्कुलर दिनांकित 11-05-2022 के खंडों 6.1 तथा 6.2 में समाहित निर्देशों को जारी करने के द्वारा सीबीडीटी ने उन पुनःनिर्धारण कार्यवाहियों को, जो संशोधित धारा 149 के अंतर्गत, विशेष रूप से निर्धारण वर्ष 2013-14 तथा 2014-15 के लिए, जो संशोधित धारा 149 की उपधारा (1) के खंड (ख) के प्रावधानों के अंतर्गत नियत समय सीमा के बाहर होने के कारण, काल बाधित हो जातीं,पुनःर्जीवित करने का एक अनूठा तरीका अपनाया है।

38. **टाटा कम्युनिकेशंस ट्रांसफॉरमेशन सर्विसेज लिमिटेड बनाम असिस्टेंट कमिश्नर ऑफ इनकम टैक्स** के मामले में बाम्बे उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय को निर्धारिती के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा यह तर्क देने के लिए निर्दिष्ट किया गया की समर्थकारी अधिनियम की धारा 3(1) यह प्रावधानित नहीं करती कि 31-03-2021 के बाद अधिनियम की धारा 148 के अंतर्गत जारी की गई कोई नोटिस अपनी मूल तिथि, जब इसे जारी किया जाना चाहिए था, से संबंधित हो जाएगी या यह कि समर्थकारी अधिनियम के प्रावधानों पर निर्भर करते हुए 31-03-2021 को घड़ी को इस तरह रोक दिया जाएगा जैसे कि उक्त तिथि पर मौजूद प्रावधान उसके बाद जारी की गई नोटिसों पर लागू होंगे। उसमें यह अवलोकित किया गया था कि समर्थकारी अधिनियम की धारा 3(1) का उद्देश्य नियत अधिनियम(आयकर अधिनियम) के असंशोधित प्रावधानों की प्रयोज्यता को स्थगित करना या विस्तारितकरना नहीं है। उस मामले में बाम्बे उच्च न्यायालय द्वारा किया गया अवलोकन यह था कि समर्थकारी अधिनियम निर्धारण वर्ष 2015-16 या किसी पश्चातवर्ती वर्ष के निर्धारण पर लागू नहीं है क्योंकि इन निर्धारण वर्षों के लिए आयकर अधिनियम की धारा 148 के अंतर्गत नोटिस जारी करने की समय अवधि उस अवधि के दौरान समाप्त नहीं हो रही थी जिसके लिए समर्थकारी अधिनियम की धारा 3(1) प्रयोज्य थी तथा इसलिए इन निर्धारण वर्षों के लिए समर्थकारी अधिनियम लागू नहीं हो सकता। इस प्रकार, परिणाम स्वरूप यह तर्क दिया गया कि ऐसे निर्धारण वर्षों के लिए परिसीमा अवधि के विस्तार का प्रश्न नहीं उठता जहां राजस्व असंशोधित प्रावधानों की अपेक्षाओं का पालन करते हुए पुनः निर्धारण की नोटिस जारी कर सकता था। यह तर्क दिया गया कि उस मामले में जहां राजस्व ने समर्थकारी अधिनियम द्वारा विस्तारित असंशोधित आयकर अधिनियम के अंतर्गत विहित समय अवधि के अंतर्गत कार्यवाही प्रारंभ नहीं की, राजस्व की अकर्मण्यता के लिए समर्थकारी अधिनियम के अंतर्गत जारी

अधिसूचनाओं द्वारा31-03-2021 या उसके बादअग्रेतर समय विस्तार नहीं किया जा सकता जब एक बार असंशोधित प्रावधानों के अंतर्गत समय अवधि का विस्तार करने के लिए 01-04-2021 को संशोधन कर दिया गया था।

39. बलपूर्वक यह तर्क दिया गया है कि किसी भी कोण से राजस्व को यह तर्क देने की अनुमति नहीं दी जा सकती कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पुष्ट इस न्यायालय के निर्णय के बाद यह आयकर अधिनियम की धारा 149 के संशोधित प्रावधानों का अनुपालन किए बिना संशोधित धारा 148 के अंतर्गत नोटिस जारी कर सकता है। टीओएलए 2020 के अंतर्गत छूट की मांग करते हुए असंशोधित प्रावधानों के अंतर्गत कार्यवाही करने के लिए, वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा लाई गई संशोधित धारा 149 के अंतर्गत समय सीमा के अग्रेतर विस्तार के लिए यह समय सीमा के विस्तार की मांग नहीं कर सकता।

<u>राजस्व की ओर से अधिवक्ताओं का तर्क:-</u>

40. खंडन में, राजस्व के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री गौरव महाजन अभिकथन करते हैं कि समर्थकारी अधिनियम, 2020 उसमें परिभाषित 'नियत अधिनियम', जिसमें से एक आयकर अधिनियम है, में विहित समय अवधि में छूट प्रदान करने के लिए संसद द्वारा अधिनियमित किया गया था। इस अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (1) प्रावधानित करती है कि नियत अधिनियम के अंतर्गत नियत या विहित या अधिसूचित समय सीमा, ऐसी कार्यवाही को पूर्ण करने या अनुपालन करने, ऐसी नोटिस जारी करने जो उसमें विहित अवधि के अंतर्गत आती हो, के लिए समय अवधि विस्तारित/छूट प्राप्त हो जाएगी। धारा 3 की उपधारा (1) का खंड (ग) आयकर अधिनियम, 1961 के लिए विनिर्दिष्ट है। धारा 3(1)(ग)(ii) में एक 'नान-ऑब्स्टेंट' खंड निहित है तथा प्रावधानित करता है कि ऐसी कार्यवाही को पूर्ण करने तथा अनुपालन करने के लिए समय सीमा, नियत अधिनियम मेंसमाहित किसी चीज के बावजूद,31 मार्च, 2021 तक, या 31-03-2021 के बाद ऐसी अन्यतिथि, जैसी इस संबंध में अधिसूचना द्वारा केन्द्रीय सरकार नियत कर सकती है, विस्तृत हो जाएगी। अधिसूचनायें दिनांकित 27-02-2020, 31-12-2020, 31-03-2021 तथा 27-04-2021 केंद्रीय सरकार द्वारा उक्त प्रावधान के अंतर्गत शक्ति के अनुप्रयोग में जारी की गई हैं। अधिसूचना दिनांकित 31-12-2020 के अंतर्गत समर्थकारी अधिनियम, 2020 की धारा 3 की उपधारा (1) के अनुसार ऐसी कार्यवाही को पूर्ण करने तथा अनुपालन करने के लिए समय सीमा की अंतिम तिथि 31-03-2021 तक विस्तृत की गई थी। अधिसूचना दिनांकित 31-12-2020 के आंशिकउपांतरण में, 1961 के अधिनियम की धारा 148 के अंतर्गत नोटिस जारी करने के लिए या धारा 151 के अंतर्गत स्वीकृति के लिए धारा 149 के अंतर्गत नियत समय सीमा 30-04-2021 तक विस्तारित की गई। अग्रेतर, पूर्ववर्ती अधिसूचनाओं दिनांकित 31-12-2020, 22-02-2021 तथा 31-03-2021 के आंशिक उपांतरण में जारी अधिसूचना दिनांकित 27-04-2021 द्वारा यह समय सीमा 30-06-2021 तक अग्रेतर विस्तारित की गई थी।

41. इस प्रकार, अभिकथन यह है कि धारा 149 में विहित समय सीमा के अनुसार धारा 148 के अंतर्गत नोटिस जारी करना 30-06-2021 तक अनुमन्य था। पश्चातवर्ती अधिसूचनाओं दिनांकित 31-03-2021 तथा 27-04-2021 द्वारा प्रदत्त समय विस्तार संशोधित प्रावधानो के अंतर्गत प्रक्रिया को लागू करने के द्वारा 01-04-2021

को या उसके बाद राजस्व द्वारा जारी सभी नोटिसों को संरक्षित करेगा। वर्तमान मामले में धारा 148-क के अंतर्गत याचीगण द्वारा दाखिल की गई आपत्तियों को अस्वीकार करने के बाद धारा 148 के अंतर्गत जारी की गई नोटिसों को दी गई चुनौती पोषित नहीं जा सकती।

42. यह तर्क दिया गया कि अधिसूचना दिनांकित 31-03-2021 के खंड अ(क) से संलग्न किया गया स्पष्टीकरण तथा अधिसूचना दिनांकित 27-04-2021 स्पष्टीकरण खंडअ(ख) को यद्यपि इस न्यायालय द्वारा **अशोक कुमार अग्रवाल (पूर्वोक्त)** में यह अवधारित करते हुए अपठित(read down)किया गया था कि उक्त स्पष्टीकरण को उन पुनः निर्धारण कार्यवाहियों पर लागू होना पढ़ा जाना चाहिए जो 31-03-2021 अर्थात वित्त अधिनियम, 2021 के लागू होने से पूर्व अस्तित्व में थी, लेकिन यह अवधारित किया गया था कि 01-04-2021 के बाद पुनः निर्धारण कार्यवाहियों को प्रारंभ करने के लिए नोटिस वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा यथा संशोधित आयकर अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार जारी की जा सकती थी। यह तर्क दिया गया कि आयकर अधिनियम की धारा 148 के अंतर्गत 01-04-2021 को या उसके बाद जारी की गई पुनः निर्धारणके लिए नोटिस प्रतिस्थापित विधियों के अनुसार, न की पूर्वस्थित विधियों के अनुसार, जारी की गई थीं तथा समर्थकारी अधिनियम (टीओएलओ 2020) केवल समय सीमा के विस्तार के लिए लागू किया गया था। समर्थकारी अधिनियम, नियत अधिनियम अर्थात आयकर अधिनियम पर अधिभावी प्रभाव रखता है तथा कोविड 19 के विस्तार की परिस्थितियों के कारण अधिनियमित किया गया था, यह आयकर अधिनियम के अंतर्गत नोटिसजारी करने/कार्यवाही करने के लिए समय सीमा का विस्तार करेगा। सीबीडीटी के निर्देश दिनांकित 11-05-2022 ने केवल उस तरीके को स्पष्ट किया है जिसमें सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को लागू किया जाना है।टीओएलए 2020 द्वारा 31-03-2021 तक प्रदान किया गया समय विस्तार तथा 31-06-2021 तक समय सीमा के अग्रेतरविस्तार के लिएसमर्थकारी अधिनियम (टीओएलए 2020) की धारा 3 की उपधारा (1) के अंतर्गत जारी पश्चातवर्ती अधिसूचनायें 01-04-2021 को या उसके बाद जारी की गई सभी नोटिसों को संरक्षित करेगीं।

43. श्री गौरव महाजन के अभिकथनों में जोड़ते हुए राजस्व के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री कृष्ण अग्रवाल तर्क देते हैं कि समर्थकारी अधिनियम (टीओएलए 2020) की धारा 3(1) ने आयकर अधिनियम, 1961 के अंतर्गत कोई कार्यवाही/अनुपालन/नोटिस जारी करने के लिए विहित समय सीमा में विस्तार प्रदान किया है। टीओएलए 2020, जैसा कि आज है, को अपठित(read down)नहीं किया गया है। समर्थकारी अधिनियम, 2020 के सारभूत प्रावधान, जो आयकर अधिनियम के अंतर्गत परिसीमा की वृद्धि करने के लिए विनिर्दिष्ट रूप से अधिनियमित संसदीय विधायन है, वर्ष 2021 की अधिसूचना सं. 20 दिनांकित 31-03-2021 तथा अधिसूचना सं. 38 दिनांकित 27-04-2021 के माध्यम से उसमें स्थित स्पष्टीकरणों को अपठित(read down) करने के बाद भी 31-06-2021 तक समय सीमा को बढ़ाएंगे। वे अभिकथन करते हैं कि 31-03- 2021 को आयकर अधिनियम, 1961 संविधि की पुस्तक में विद्यमान था। अधिनियम के अंतर्गत प्रावधानित पुनः निर्धारण की प्रक्रिया का समूह 01-04-2021 से प्रभावी वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा लाए

गए संशोधन से परिवर्तित किया गया था। वित्त अधिनियम, 2021 में विभिन्न कार्यवाहियों/अनुपालनों/नोटिस जारी करने के लिए समयसीमा को परिवर्तित किया गया था। उदाहरण के लिए, पूर्वस्थित धारा 148 के अंतर्गत नोटिस जारी करने के लिए 4 वर्षों तथा 6 वर्षो की समय सीमा थी जो अब 3 वर्षों तथा 10 वर्षों में परिवर्तित कर दी गई है। किसी भी दशा में, संशोधन पूर्व तथा पश्चात दोनों अधिनियमितियों में समय सीमा बरकरार रही है। पुनः निर्धारण नोटिसें काल बाधित हो जातीं यदि समर्थकारी अधिनियम, (टीओएलए 2020) द्वारा आयकर अधिनियम, 1961 के अंतर्गत समयसीमा का विस्तार नहीं किया गया होता। अधिसूचना दिनांकित 31-03-2021 के खंड अ(क) तथा अधिसूचना दिनांकित 27-04-2021 के खंड अ(ख), जैसे की 31-03-2021 को विद्यमान थे, के स्पष्टीकरण की प्रयोज्यता 31-03-2021 को अस्तित्व में होने वाली पुनः निर्धारण कार्यवाहियों तक सीमित हो जाती तथा 1961 के अधिनियम की पूर्व स्थित धारा 147 से 151क के संबंध में यथाप्रयोज्य अपठित (read down) किए गए हैं, परंतु अधिसूचनाओं दिनांकित31-03-2021 तथा 27-04-2021 के कार्यवाही/अनुपालन/नोटिस जारी करने के लिए समय विस्तार के सारभूत प्रावधान अभी भी प्रचलित हैं।

44. **अशोक कुमार अग्रवाल(पूर्वोक्त)** में उच्च न्यायालय के समक्ष 01-04-2021 के बाद धारा 148 के अंतर्गत जारी की गई नोटिसों पर संशोधनपूर्व प्रावधानों की प्रयोज्यता को चुनौती दी गई थी। स्पष्टीकरण जो प्रावधानित करता था कि 01-04-2021 के बाद जारी नोटिसों पर पूर्वस्थित प्रावधान के अंतर्गत समय सीमा लागू होगी, को त्रुटिपूर्ण प्रावधान अवधारित किया गया था, लेकिन इस न्यायालय ने विभिन्न निर्धारण अधिकारियों के लिए वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा संशोधित प्रावधानों के अनुसार पुनः निर्धारण कार्यवाहियाँ प्रारंभ करने के लिए अनुमन्य किया है। इस प्रकार, 31-06-2021 तक समय की वृद्धि, जैसी की अधिसूचना दिनांक 31-03-2021 तथा 27-04-2021 द्वारा प्रदान की गई है, वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा लाए गए संशोधित प्रावधानों के अंतर्गत विहित समय सीमा पर लागू होगी।

45. यह अभिकथन किया गया कि जब संविधि की पुस्तक पर दो संसदीय अधिनियम हैं, एक सारभूत प्रावधान तथा पुनः निर्धारण कार्यवाहियां प्रारंभ करने के लिए प्रक्रिया प्रावधानित करने वाला तथा अन्य 1961 के अधिनियम के सारभूत तथा प्रक्रियात्मक प्रावधानों के अंतर्गत कार्यवाही/अनुपालनों/नोटिस जारी करने के लिए समय विस्तार प्रदान करने वाला, तब जैसा की इस न्यायालय द्वारा **अशोक कुमार अग्रवाल (पूर्वोक्त)** में किया गया है, दोनों प्रावधानों का एक सामंजस्यपूर्ण निर्वचन किया जाना चाहिए। परिणाम यह होगा कि मूल अधिनियम अर्थात आयकर अधिनियम, 1961, जैसा कि 01-04-2021 को विद्यमान था, के अंतर्गत चाहे कोई भी समय सीमा विहित की गयी हो, वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा संशोधित अधिनियम, 1961 की धारा 148 के अंतर्गत पुनः निर्धारण कार्यवाहियाँ प्रारंभ करने तथा परिचालित करने के लिए राजस्व को सक्षम बनाने के लिए उसे 31-06-2021 तक विस्तारित किया जाना चाहिए।

46. यह तर्क दिया गया कि आयकर अधिनियम के संशोधित प्रावधानों के अंतर्गत धारा 148-क के अंतर्गत नोटिस के रूप में मानते हुए संपूर्ण भारत में राजस्व द्वारा जारी की गई नोटिसों को

रक्षित करते हुए सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के आलोक में, सर्वोच्च न्यायालय के निर्देश के अनुपालन में धारा 148-कके अंतर्गत नोटिस जारी करने के पश्चात राजस्व के सभी कार्यों को रक्षित किया जाना चाहिए। इस प्रकार धारा 148 की नोटिसों, जिन्हें विभिन्न उच्च न्यायालयों के द्वारा खंडित किया गया था, की तिथि का निर्देश संशोधित प्रावधानों की धारा 148-क के अंतर्गत नोटिस की तिथि को किया जाना चाहिए तथा तद्नुसार संशोधित प्रावधानों के अंतर्गत विहित अनुपालनों के लिए राजस्व को समय का विस्तार दिया जाना चाहिए। जैसा की सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अवलोकन किया गया है, जब निर्धारिती को सभी प्रतिरक्षाएं उपलब्ध हैं, राजस्व को सभी अधिकार संरक्षित/उपलब्ध किए जाने चाहिए।

47. **अशोक कुमार अग्रवाल (पूर्वोक्त)** में पैराग्राफ संख्या '65' तथा'66' में खंडपीठ द्वारा किए गए अवलोकन यह अभिकथन करने के लिए प्रस्तुत किए गए कि**अशोक कुमार अग्रवाल (पूर्वोक्त)**में भी खंडपीठ ने मान्यता दी है कि समर्थकारी अधिनियम स्पष्ट रूप से केवल समय सीमा को बढ़ाने वाला अधिनियमन है। परिणामस्वरूप, 01-04-2021 से अग्रेतर समर्थकारी अधिनियम में निहित नोटिसें जारी करने के सभी निर्देशों को केवल प्रतिस्थापित प्रावधानों के निर्देश के रूप में पढ़ा जाना चाहिए। इस न्यायालय ने अवलोकन किया कि पूर्वस्थित प्रावधानों को विचाराधीन कार्यवाहियों पर लागू करने में कोई कठिनाई नहीं है, तथा उसके बाद दोनों विधियों अर्थात समर्थकारी अधिनियम तथा वित्त अधिनियम, 2021 के मध्य सामंजस्य स्थापित करने के लिये कार्यवृत्त हुआ।

48. इस प्रकार, यह तर्क दिया गया कि समर्थकारी अधिनियम (टीओएलए 2020) को यह स्पष्ट तथा सरल अर्थ देते हुए न्यायालय द्वारा यह देखा जाना है कि समर्थकारी अधिनियम के अंतर्गत 31-03-2021 तक जो समय सीमा राजस्व को उपलब्ध थी, वर्ष 2021 की अधिसूचना सं. 20 दिनांकित 31-03-2021 तथा अधिसूचना सं. 38 दिनांकित 27-04-2021, जिन्हें इस न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय द्वारा खंडित या अवैध अवधारित नहीं किया गया है,द्वारा 01-04-2021 के बाद राजस्व को उपलब्ध हो गई। इस प्रकार अभिकथन यह है कि चाहे संशोधन पूर्व हो या पश्चात, आयकर अधिनियम, 1961 के अंतर्गत विहित समय सीमा में 30-06-2021 तक तीन महीने का विस्तार दिया जाना चाहिए। संशोधित धारा 149 में विहित तीन वर्षों तथा 10 वर्षों की समय सीमा केन्द्रीय सरकार द्वारा समर्थकारी अधिनियम की धारा 3(1) के अंतर्गत शक्तियों के अनुप्रयोग में जारी अधिसूचनाओं के द्वारा 31-06-2021 तक विस्तारित की जानी चाहिए। आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 119 के अंतर्गत सीबीडीटी के निर्देश दिनांकित 11-05-2022 केवल दोनों प्रावधानों, नामतः समर्थकारी अधिनियम तथा वित्त अधिनियम, 2021 की उपरोक्त कथित स्थिति को स्पष्ट करते हैं जिनमें निर्देशों के पैरा 6.1 में प्रावधानित किया गया है कि टीओएलए 2020 द्वारा प्रावधानित समय विस्तार, "विस्तारित पुनः निर्धारण नोटिसों" को समय के अर्थों में पूर्व में उनकी मूल तिथि, जब ऐसी नोटिसों को जारी किया जाना था, तक जाने की अनुमति देगा तथा उसके बाद अधिनियम की नई धारा 149 उस समय बिंदु पर लागू की जाएगी।

49. यह अभिकथन किया गया कि, उपरोक्त तर्क के आधार पर निर्धारण वर्ष 2013-14,निर्धारण वर्ष 2014-15 तथा निर्धारण वर्ष 2015-16 के लिए "विस्तारित पुनः निर्धारण नोटिसों" को वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा यथासंशोधित धारा 149 की उपधारा (1) के खंड (ख) के अंतर्गत आने वाले मामलों में नियत प्राधिकारी के स्वीकृति के साथ संशोधित धारा 148 के अंतर्गत नवीन नोटिस जारी करने के द्वारा व्यवहृत किया जाना चाहिए। सीबीडीटी के निर्देशों में अग्रेतर यह स्पष्ट किया गया है कि संशोधित प्रावधानों की धारा 151 के अंतर्गत नियत प्राधिकारी उस धारा के खंड (ii) के अंतर्गत वाहित प्राधिकारी होगा। इसी तरह,निर्धारण वर्ष 2016-17 तथा निर्धारण वर्ष 2017-18 के लिए धारा 148 के अंतर्गत नवीन नोटिस, अधिनियम की संशोधित धारा 149 की उपधारा (1) के खंड (क) के अंतर्गत नियत प्राधिकारी के स्वीकृति के साथ जारी की जा सकती है, क्योंकि वे टीओएलए 2020 द्वारा किये गये समय विस्तार के कारण सुसंगत निर्धारण वर्ष की समाप्ति से तीन वर्षों की अवधि के अंतर्गत हैं। ऐसे मामलों में संशोधित प्रावधानों की धारा 151 के अंतर्गत नियत प्राधिकारी उस धारा के खंड (1) के अंतर्गत विहित प्राधिकारी होगा।

50. इस प्रकार,राजस्व के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा यह अभिकथन किया गया कि संदेह, यदि कोई हों, जो **आशीष अग्रवाल (पूर्वोक्त)** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को लागू करने के बारे में उत्पन्न हो सकते हैं,सीबीडीटी द्वारा निर्गत वर्ष 2022 के निर्देश सं.1 दिनांकित 11-05-2021 द्वारा स्पष्ट किये गये हैं।

51. अपने अभिकथनों के समर्थन मेंराजस्व के विद्वान अधिवक्ताओं ने **टचस्टोन होल्डिंग्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम इनकम टैक्स ऑफिसर, दिल्ली एंड अदर्स** में दिल्ली उच्च न्यायालय के निर्णय पर निर्भरता व्यक्त की है जिसमें **मनमोहन कोहली बनाम असिस्टेंट कमिश्नर,** में दिल्ली उच्च न्यायालय के पूर्ववर्ती निर्णय पर निर्भरता व्यक्त की गई है। यह इंगित किया गया कि दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा **मनमोहन कोहली** के निर्णय में पैराग्राफ सं.'98' में किए गए अवलोकनों को **आशीष अग्रवाल (पूर्वोक्त)** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के साथ पुष्ट किया गया है जिसमें 01-04-2021 के बाद जारी की गई पुनः निर्धारण की नोटिसों को, उन्हें आयकर अधिनियम की धारा 148-क के अंतर्गत नोटिस मानते हुए, रक्षित किया गया है। राजस्व के अधिवक्ता द्वारा निर्भरता व्यक्त किए गए **मनमोहन कोहली (पूर्वोक्त)**में पैरा '98' में किए गए सुसंगत अवलोकन, जैसे की**टचस्टोन होल्डिंग्स (पूर्वोक्त)** में दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा लिखित किए गए हैं, निम्नवत लिखित किए जाते हैं:-

> *"98. यह स्पष्ट किया जाता है कि पुनः निर्धारण की शक्ति जो 31 मार्च, 2021 से पूर्व थी, विस्तारित अवधि अर्थात30जून, 2021 तक जारी रही तथा 1 अप्रैल, 2021 से प्रभावी वित अधिनियम, 2021 में नोटिस जारी करने से पूर्व पालन की जाने वाली प्रक्रिया मात्र में परिवर्तन किया है।"*

52. इस प्रकार **टचस्टोन होल्डिंग्स (पूर्वोक्त)** में यह लिखित किया गया था कि **आशीष अग्रवाल (पूर्वोक्त)** ने केवल इतना अवधारित किया है की 01-04-2021 से 30-06-2021 के मध्य जारी धारा 148 की नोटिस को अधिनियम की धारा 148-क के अंतर्गत जारी जारी किया हुआ माना जाएगा तथा इसलिए उनमें 29-06-2021 को जारी धारा 148 की नोटिस पुनर्जीवित हो गई।

परिणाम यह है कि निर्धारण वर्ष 2013-14 के लिए पुनः निर्धारण नोटिस जारी करने के लिये समय अवधि 30-06-2021 तक विस्तारित हो गई तथा वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा लाया गया धारा 149 का प्रथम परन्तुक मामले के तथ्यों में आकर्षित नहीं होता।

53. हमारे समक्ष यह तर्क दिया गया कि धारा 149 के प्रथम परंतुक (संशोधित) को ध्यान में लेते हुए दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा आधारित किया गया था कि निर्धारण वर्ष 2013-14 के लिए निर्धारण कार्यवाही प्रारंभ करने के लिए समय अवधि 30-06-2021 तक विस्तारित हो गई है। परिणामस्वरूप, उसके अंतर्गत जारी की गई पुनः निर्धारण की नोटिस दिनांकित 29-06-2021 परिसीमा की विस्तारित परिसीमा अवधि के अंतर्गत होने के कारण कालबाधित नहीं थी। उस मामले में सीबीडीटी के निर्देश सं. 1/22 दिनांकित 11-05-2022 के पैराग्राफ 6.2(i) को दी गई चुनौती यह अवधारित करते हुए अस्वीकार कर दी गई की सर्वोच्च न्यायालय की उद्घोषणा के साथ कि 01-04-2021 को या उसके बाद जारी की गई पुनः निर्धारण की नोटिस को अधिनियम की धारा 148-क के अंतर्गत नोटिस माना जाएगा, राजस्व को धारा 149 के संशोधित प्रावधानों के अनुसार पुनःनिर्धारण कार्यवाहियों को पूरा करने की अनुमति दी गई थी। याची का यह तर्क की निर्धारण वर्ष 2013-14 के लिए निर्धारण 31-03-2020 को काल बाधित हो गया, तदनुसार अस्वीकार किया गया था।

54. अग्रेतर, **रेमंड वूलेन मिल्स लिमिटेड बनाम इनकम टैक्स ऑफिसर, कमिश्नर ऑफ इनकम टैक्स एंड अदर्स बनाम छबील दास अग्रवाल, कोका कोला इंडिया इंक बनाम एडिशनल कमिश्नर ऑफ इनकम टैक्स एंड अदर्स, ज्ञान कास्टिंग प्राइवेट लिमिटेड बनाम सीबीडीटी, अंशुल जैन बनामप्रि. कमिश्नर ऑफ इनकम टैक्स** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों,**गुलमुहर सिल्क प्राइवेट लिमिटेड बनाम इनकम टैक्स ऑफिसर,** में दिल्ली उच्च न्यायालय के निर्णय, **ज्ञान कास्टिंग प्राइवेट लिमिटेड बनाम सेंट्रल बोर्ड ऑफ डायरेक्ट टैक्सेस, अंशुल जैन बनामप्रि. कमिश्नर ऑफ इनकम टैक्स, मिडलैंड माइक्रोफिन लिमिटेड बनाम यूनियन ऑफ इंडिया एंड अदर्स,** में पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय के निर्णय**तथा हरिंदर सिंह बेदी बनाम यूनियन ऑफ इंडिया एंड अदर्स** में मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय पर यह अभिकथन करने के लिये निर्भरता व्यक्त की गयी है किरिट याचिकाएं निर्धारिती द्वारा अधिनियम' 1961 की धारा 148 को अंतर्गत निर्धारिती द्वारा उठाई गई आपत्तियों के अस्वीकरण आदेश तथा निर्धारिती को जारी की गई धारा 148 के अंतर्गत पारिणामिक नोटिस के विरुद्ध निर्दिष्ट हैं। निर्धारिती को यहाँ तक कि प्राधिकारियों के क्षेत्राधिकार के संबंध में भी यहाँ उठाए गए आधारों पर आदेशों/नोटिसों को चुनौती देने के लिए 1961 के अधिनियम की धारा 246 के अंतर्गत अपील करने का अधिकार है। सांविधिक प्राधिकारियों द्वारा पुनः निर्धारण कार्यवाहियों को पूरा भी नहीं किया गया है, रिट न्यायालय इस अपरिपक्व स्तर पर हस्तक्षेप नहीं कर सकता। धारा 148-क(घ) के अंतर्गत आदेशों की शुद्धता को यह कथन करते हुए कि, यद्यपि क्षेत्राधिकार प्राप्त है परन्तु गलत रूप से प्रयुक्त किया गया है, तथ्यात्मक आधारों पर चुनौती दी जा रही है, इस स्तर पर परीक्षित नहीं किया जा सकता। क्षेत्राधिकार प्राप्त प्राधिकारी द्वारा ऐसे आदेशों को पारित करनेमें कारित क्षेत्राधिकार की त्रुटियों तथा विधि/तथ्य की त्रुटियों के निवारण के

लिए सांविधिक उपचार प्रदान किया गया है। इस समूह में रिट याचिकाएं इस मध्यवर्ती स्तर पर भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत क्षेत्राधिकार के अनुप्रयोग में इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की अपेक्षा नहीं करतीं तथा इस प्रकार खंडित किए जाने योग्य हैं।

55. बहस के इस स्तर पर, राजस्व के विद्वान अधिवक्ताओं से वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा अंतःस्थापित कीगई धारा 149 की उपधारा (1) के प्रथम परन्तुक के संशोधित प्रावधानों, जो उस मामले में धारा 148 के अंतर्गत नोटिस जारी करने का निषेध करती है जहां असंशोधित (पूर्वस्थित) धारा 149 की उपधारा (1) के खंड (ख)(जैसे कि वे वित्त अधिनियम, 2021 के प्रारंभ से पूर्व थे) के अंतर्गत यह कालबाधित हो गयी है, के प्रभाव के बारे में उत्तर देने के लिए विनिर्दिष्ट प्रश्न किया गया। असंशोधित धारा 149(1)(ख) प्रावधान करती थी कि धारा 148 के अंतर्गत कोई नोटिस जारी नहीं की जाएगी यदि सुसंगत निर्धारण वर्ष की समाप्ति से 6 वर्ष समाप्त हो गए हैं, जहां उस वर्ष के लिए निर्धारण से छूट गई राशिरुपया एक लाख या अधिक की है।

56. राजस्व के विद्वान अधिवक्ताओं का उत्तर था कि धारा 149 की उपधारा (1) के खंड (ख) में प्रावधानित 6 वर्षों की समय सीमा समर्थकारी अधिनियम के माध्यम से 31-03-2021 तक विस्तारित हो गई थी तथा समय सीमा (छः वर्षों की) का अग्रेतर विस्तार समर्थकारी अधिनियम की धारा 3(1) के अनुसार केंद्रीय सरकार द्वारा जारी अधिसूचनाओं के अंतर्गत 31-06-2021 तक प्रदान किया जाना है। परिणाम यह होगा कि निर्धारण वर्ष 2013-14,निर्धारण वर्ष 2014-15 के मामले, जहां छः वर्षों की अवधि क्रमशः 31-03-2020 तथा 31-02-2021 को समाप्त हो गई थी, वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा लाए गए धारा 149 की उपधारा (1) के प्रथम परन्तुक से पीड़ित नहीं होंगे। तीन वर्षों की अवधि से बाहर परन्तु दस वर्षों की सीमा से अंतर्गत होने के कारण, इन निर्धारण वर्षों के मामलों का मूल्यांकन तथा उनके लिए निर्धारण कार्यवाहियों का संचालन वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा यथासंशोधित धारा 149 की उपधारा (1) के खंड (ख) के अनुसारकिया जाना चाहिए। इसी प्रकार, निर्धारण वर्ष 2015-16 के लिए 31-03-2019 को तीन वर्षों की अवधि समाप्त होने पर निर्धारण कार्यवाहियों को धारा 149 की उपधारा (1) के संशोधित खंड (ख) के अंतर्गत लाने के लिए 31-06-2021 तक विस्तार दिया जाना चाहिए। निर्धारण वर्ष 2016-17 तथा 2017-18 के लिए, जहाँ तीन वर्षों की अवधि क्रमश: 31-03-2020 तथा 31-03-2021 को समाप्त हुई, समय सीमा का विस्तार समर्थकारी अधिनियम के अंतर्गत दिया जाना चाहिए तथा ये मामले 31-06-2021 तक तीन वर्षों की विहित सीमा के अंतर्गत होने के कारण धारा 149 की उपधारा (1) के खंड (ख) के अंतर्गत आएँगे।

<u>विश्लेषण:-</u>

57.पक्षों के मध्य मुकदमेबाजी के पूर्ववर्ती दौर में उच्च न्यायालय की खंडपीठ तथा सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों के आलोक में पक्षों के अधिवक्ता के तर्कों का विश्लेषण करने से पूर्व इस मोड़ पर हम यह लेखबद्ध कर सकते हैं कि जहाँ तक वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा अंतर्विष्ट धारा 149 की उपधारा (1) का प्रथम परन्तुक, जो धारा 149 की उपधारा (1) के असंशोधित खंड (ख) के अंतर्गत कालबाधित हो चुके मामलों में, जहां 01-04-2021 को सुसंगत निर्धारण वर्ष की

समाप्ति से छः वर्षों की समाप्ति हो चुकी है, पुनः निर्धारण कार्यवाहियों के प्रारंभ का निषेध करता है, के निर्वचन/लागू किए जाने का संबंध है, हमराजस्व के विद्वान अधिवक्ताओं के तर्कों में अंतर्निहित भ्रांति प्राप्त करते हैं।

58. तथापि, पक्षों के विद्वान अधिवक्ता के तर्कों से विस्तार से व्यवहार करने के लिए, उक्त प्रावधानों पर एक दृष्टि डालने के लिए, वित्त अधिनियम, 2020 द्वारा संशोधन से पूर्व तथा पश्चात् धारा 149 की तुलनात्मक सारणी बनाना हम उचित समझते हैं:-

	आयकर अधिनियम, 1 की धारा 149		आयकर अधिनियम, 1961 (वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा प्रतिस्थापित) की धारा 149	
	नोटिस के लिए समय सीमा-		नोटिस के लिए समय सीमा-	
1	संगत निर्धारण वर्ष के लिए धारा 148 के अंतर्गत कोई नोटिस नहीं जारी की जाएगी-		संगत निर्धारण वर्ष के लिए धारा 148 के अंतर्गत कोई नोटिस नहीं जारी की जाएगी-	
	(क)	यदि संगत निर्धारण वर्ष के अंत से चार वर्ष समाप्त हो चुकें हैं, जब तक कि मामला उपखंड (ख) या (ग) के अंतर्गत नहीं आता है;	(क)	यदि संगत निर्धारण वर्ष सेतीन वर्षों की समाप्ति हो गई है, जब तक की मामला खंड के अंतर्गत नहीं आता
	(ख)	यदि संगत निर्धारण वर्ष से चार वर्ष समाप्त हो चुके हैं परंतु छः वर्षों से अधिक नहीं, जब तक की उस वर्ष के लिए निर्धारण योग्य आय जो निर्धारण से छूट गई है रुपए एक लाख या उससे अधिक न हो या होना संभाव्य न हो;	(ख)	**यदि संगत निर्धारण वर्ष की समाप्ति से तीन वर्ष समाप्त हो चुके हैं लेकिन दस वर्षों से अधिक नहीं, जब तक की निर्धारण अधिकारी के कब्जे में लेखा पुस्तकेंया अन्य दस्तावेज या साक्ष्य हैं जो प्रकट करती हैं कि उस वर्ष के लिए आस्तियों के रूप में दर्शित निर्धारण योग्य आय जो निर्धारण से छूट गई है रुपए पचास लाख या उससे अधिक न हो या होना संभाव्यन हो:**
	(ग)	यदि सुसंगत निर्धारण वर्ष की समाप्ति से चार वर्ष व्यतीत हो गए हों लेकिन सोलह वर्षों से अधिक नहीं जब तक की भारत से बाहर स्थित किसी आस्ति(किसी निकाय में वित्तीय हित के सहित) के संबंध में करारोपण योग्य कोई आयनिर्धारण से न छूट गई हो।		
				परंतु यह की 01-04-2021 को या उसके पूर्व प्रारंभ होने वाले संगत निर्धारण वर्ष के लिए किसी मामले में धारा 148 के अंतर्गत कोई नोटिस कभी भी जारी नहीं की जाएगी, यदि ऐसी नोटिस

		उस समय इस धारा की उपधारा (1) के खंड (ख), जैसे कि वे वित्त अधिनियम, 2021 के प्रारंभ से तुरंत पूर्व स्थित थे, के अंतर्गत नियत समय सीमा से बाहर होने के कारण जारी नहीं की जा सकती थी:
		अग्रेतर परंतु यह की इस उपधारा के प्रावधान किसी ऐसे मामले पर लागू नहीं होंगे जहां, धारा 132 के अंतर्गत प्रारंभ की गई किसी जांच या धारा 132क के अंतर्गत अध्याचित की गई किन्हीं लेखा पुस्तकों, अन्य दस्तावेजों या किसी आस्ति के संबंध में धारा 153क, या धारा 153गसपठित धारा 153क के अंतर्गत नोटिस 31-03-2021 को या उसके पूर्व जारी करना अपेक्षित हो:
		परंतु यह भी कि इस धारा के अनुसार परिसीमा की अवधि की गणना करने के लिए, धारा 148क के खंड (ख) के अंतर्गत जारी कारण बताओ नोटिस के अनुसार निर्धारती को दिए गए या विस्तारित समय या उस अवधि को, जिसके दौरान धारा 148क के अंतर्गत कार्यवाही किसी न्यायालय के आदेश या निषेधाज्ञा द्वारा स्थागित की गई हो, विवर्जित कर दिया जाएगा।
		परंतु यह भी कि जहां ठीक पूर्व स्थित परंतुक में निर्दिष्ट अवधि के विवर्जन के तुरंत बाद धारा 148 क

		के खंड (घ) के अंतर्गत आदेश पारित करने के लिए निर्धारण अधिकारी को उपलब्ध परिसीमा अवधिसात दिनों से कम है, ऐसी बची हुई अवधिसात दिनों तक बढ़ जाएगी तथा इस उपधारा के अंतर्गत परिसीमा अवधि तद्नुसार विस्तारित हुई मानी जाएगी।
	स्पष्टीकरण- इस उपधारा के उद्देश्यों के लिए करारोपण योग्य आय जो निर्धारण से छूट गई है के निर्धारण के लिए धारा 147 के स्पष्टीकरण 2 के प्रावधान उसी तरह लागू होंगे जैसे वे उस धारा के लिए लागू होते हैं।	स्पष्टीकरण- इस उपधारा के खंड (ख) के उद्देश्यों के लिए आस्ति में अचल संपत्ति जो की भूमि या भवन या दोनों, शेयर तथा सिक्योरिटीज, ऋण तथा अग्रिम, बैंक खातों में जमा, शामिल होंगे।
	नोटिस जारी करने के बारे में उपधारा (1) के प्रावधान धारा 151 के प्रावधानों के अधीन होंगे।	नोटिस जारी करने के उपधारा (1) के प्रावधान धारा 151 के प्रावधानों के अधीन होंगे।
	यदि वह व्यक्ति जिस पर धारा 148 के अंतर्गत नोटिस तामील की जानी है, धारा 163 के अंतर्गत अप्रवासी के अभिकर्ता के रूप में माने जाने वाला व्यक्ति है तथा नोटिस के अनुक्रम में किया जाने वाला निर्धारण, पुनः निर्धारण या पुनर्गणना ऐसे अप्रवासी के अभिकर्ता के रूप में उस पर किया जाना है, संगत निर्धारण वर्ष की समाप्ति सेछः वर्षों की अवधि पूरा होने के बाद	....

	ऐसी नोटिस जारी नहीं की जाएगी।	
	स्पष्टीकरण- संदेहों के निवारण के लिए एत्द्वारा स्पष्ट किया जाता है कि उपधारा (1) तथा (3) के प्रावधान, जैसे की वित्त अधिनियम, 2012 द्वारा संशोधित किए गए हैं, 1-4-2012 को या उसके पूर्व प्रारंभ होने वाले किसी निर्धारण वर्ष के लिए भी लागू होंगे।	....
	स्पष्टीकरण- 1. इस उपधारा के खंड (ख) के उद्देश्यों के लिएआस्ति में अचल संपत्ति जो की भूमि या भवन या दोनों है, शेयर्स तथा सिक्योरिटीज, ऋण तथा अग्रिम,बैंक खातों में जमा शामिल है।	....
	2. नोटिस जारी करने के संबंध में उपधारा (1) के प्रावधान धारा 151 के प्रावधानों के अधीन होंगे।	....

59. आयकर अधिनियम, 1961 के संशोधन पूर्व तथा पश्चात प्रावधानों पर समर्थकारी अधिनियम, 2020 के प्रभाव के संबंध में विधिक स्थिति को समझने के लिए संविधि की पुस्तक पर लाए गए आयकर अधिनियम, 1961 के संशोधित प्रावधानों पर समर्थकारी अधिनियम (टीओएलए 2020) के प्रभाव तथा प्रयोज्यता के बारे में **अशोक कुमार अग्रवाल (पूर्वोक्त)** में इस न्यायालय के खंडपीठ के निर्णय का अध्ययन करना हमसे अग्रेतर अपेक्षित है।

60.**अशोक कुमार अग्रवाल (पूर्वोक्त)** में खंडपीठ के विस्तृत अवलोकनों को इस निर्णय के पूर्ववर्ती भाग में ध्यान मेंलिया गया/उद्धरित किया गया है। सारतः, निम्नवत अवधारित किया गया था:-

(i) अपनी मूल प्रकृति के कारण जब एक बार पूर्वस्थित प्रावधान के स्थान पर नया प्रावधान स्थापित किया जाता है,की गई या किए जाने के लिए पूर्व में ही प्रारंभ की गई चीजों को या प्रकट रूप से किए जाने के लिए रक्षित चीजों को छोड़कर,पूर्ववर्ती प्रावधान बना नहीं रह सकता।

(ii) पूर्वस्थित प्रावधानों को रक्षित करने के लिए किसी रक्षण खंड के अभाव में, 01-04-2021 को या उसके बाद राजस्व प्राधिकारी केवल प्रतिस्थापित विधियों के अनुसार तथा न कि पूर्वस्थित विधियों के अनुसार,कार्यवाही प्रारंभ कर सकते हैं। समर्थकारी अधिनियम, जो पूर्व में स्थित था, ने वित्त अधिनियम, 2021, जो 01-04-2021 को अस्तित्व में आया, द्वारा यथासंशोधित आयकर अधिनियम का सामना किया। इन दोनों प्रावधानों अर्थात समर्थकारी अधिनियम तथा वित्त अधिनियम, 2021 में,धाराओं 147 से 151, जैसी की वे 31-03-2021 तक थीं,इस कार्य को प्रत्यायोजित करने के इसके प्रयास,पूर्वस्थित प्रावधानों की प्रयोज्यता को रक्षित करने के लिए किसी अभिव्यक्त प्रावधान, दोनों का अभाव है।

(iii) स्पष्ट रूप से, समर्थकारी अधिनियम 01-04-2021 से आगे केवल समय सीमा का विस्तार करने के लिए एक अधिनियमन है। परिणामस्वरूप, 01-04-2021 के बाद समर्थकारी अधिनियम में निहित नोटिस जारी करने के निर्देश को मात्र प्रतिस्थापित प्रावधानों को निर्देश के रूप में पढ़ा जाना चाहिए।

(iv) पूर्वस्थित प्रावधानों को विचाराधीन कार्यवाहियों में लागू करने में कोई कठिनाई नहीं है तथा इस तरह विधियो में सामंजस्य बैठाया गया।

(v) सभी पुन:निर्धारण नोटिसों के लिए जो, वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा संशोधन के लागू होने के बाद, 01-04-2021 के बाद जारी की गईं थीं, असंशोधित विधि के अंतर्गत निर्धारिती के विरुद्ध निर्धारण प्राधिकारी द्वारा कोई क्षेत्राधिकार प्राप्त नहीं किया गया है। इस प्रकार, उसके अंतर्गत जारी अधिसूचनाओं के साथ पठित समर्थकारी अधिनियम की धारा 3(1) के अंतर्गत कोई समय विस्तार नहीं किया जा सकता था।

(vi) समर्थकारी अधिनियम की धारा 3 केवल कुछ कार्यवाहियों को परिसीमा के नियम से बाधित होने से बचाने या रक्षित करने की बात कहती है। वह प्रावधान भी किसी विधि से, जो भविष्य में संसद द्वारा अधिनियमित की जा सकती है, किसी कार्यवाही को रक्षित करने की बात नहीं करता। समर्थकारी अधिनियम की धारा 3(1) का'नानऑब्स्टेंट' खंड उक्त प्रावधान की संपूर्ण परिधि को शासित नहीं करता। यह समर्थकारी अधिनियम की धारा 3(1) के द्वितीय भाग अर्थात पूर्व से ही विचाराधीन कार्यवाहियों को रक्षित करने तक सीमित है या उनके संबंध में उसे लागू किया जा सकता है। इस प्रकार, अधिनियम ने 30-06-2021 तक केवल कुछ कार्यवाहियों को संरक्षित किया जो 20-03-2021 को कालबाधित हो जातीं। तदनुरूप, केंद्रीय सरकार द्वारा शामिल की गई प्रत्यायोजित परिसीमा (अधिसूचनाओं) द्वारा यह उस समय सीमा को विस्तारित कर सकता है। केवल वह समयसीमा 30-06- 2021 तक विस्तृत हुई।

(vii) समर्थकारी अधिनियम की धारा 3(1) स्वयमेव पुन: निर्धारण कार्यवाही या अधिनियम की धारा 147 या धारा 148, जैसी कि यह 01-04-2021 से पूर्व थी, की बात नहीं करती है। यह केवल कोविड-19 महामारी के प्रसार पर मौजूद सामान्य कठिनाई के कारण प्रदान की गई परिसीमा से सामान्य छूट का प्रावधान करती है।<u>वित्त अधिनियम, 2021 के लागू होने के बाद यह प्रतिस्थापित प्रावधानों पर तथा न की पूर्वस्थित प्रावधानों पर लागू होती है।</u>

अधिनियम की धाराओं 147 तथा 148 के पूर्वस्थित तथा नवीन प्रतिष्थापित प्रावधानों के संबंध में पुनः निर्धारण कार्यवाहियों को निर्देश मात्र समर्थकारी अधिनियम के अंतर्गत जारी की गई पश्चातवर्ती अधिसूचनाओं द्वारा प्रारंभ किया गया। यह निष्कर्ष दिया गया कि 01-04-2021 की तिथि से पूर्व पुनः निर्धारण की किसी कार्यवाही को प्रारंभ किए जाने के अभाव में मात्र संशोधित विधि ही लागू होगी। केंद्रीय सरकार द्वारा जारी की गई अधिसूचनाएं या सीबीडीटी के निर्देश स्पष्ट रूप से मूल विधायन को पराजित करने के लिए जारी नहीं किये जा सकते थे। जब तक इस प्रकार सामंजस्य न बैठाया जाए, वे अधिसूचनाएं अवैध रहेगीं।

(viii) राजस्व के इस अभिकथन पर कि कोविड-19 महामारी के विस्तार के कारण पुनः निर्धारण कार्यवाहियों को प्रारंभ करने में राजस्व द्वारा उठाई गई अभ्यासिक कठिनाइयां यह आवश्यक बनाती हैं कि पुनः निर्धारण कार्यवाहियों को रक्षित किया जाए, यह लेखबद्ध किया गया था कि अभ्यासिकता, यदि कोई हो, विधायन को अग्रसर कर सकती है। जब एक बार मामला न्यायालय पहुंच जाता है, यह विधायन तथा इसकी भाषा तथा उस भाषा को प्रदान किया गया निर्वचन है जो प्रारंभिक रूप से कार्यवाहियों के परिणाम को शासित करने के लिए निर्णायक हो सकता है।

अधिनियमित विधि में अभ्यासिकता को पढ़ना खतरनाक हो सकता है।

(ix) समर्थकारी अधिनियम या वित्त अधिनियम, 2021 के प्रावधानों की उपेक्षा करना तथा कोविड-19 महामारी के प्रसार से उत्पन्न तथ्यों तथा परिस्थितियों के आलोक में वित्त अधिनियम, 2021 के प्रावधानों को अप्रयोज्य निर्वचित करना अतिसलीकरण होगा।

(x) समर्थकारी अधिनियम के प्रावधानों या उसके अंतर्गत जारी की गई अधिसूचनाओं के प्रावधानों को रक्षित करने के लिए वित्त अधिनियम, 2021 में किसी विनिर्दिष्ट खंड के अभाव में निर्वचन की किसी भी प्रक्रिया से उन अधिसूचनाओं को 31-03-2021 के बाद विस्तारित जीवन नहीं प्रदान किया जा सकता।

(xi) समर्थकारी अधिनियम (टीओएलए 2020) के अंतर्गत जारी की गई अधिसूचनायें भी एक ऐसे प्रावधान में जीवन का संचार नहीं कर सकतीं जो 31-03-2021 से प्रभावी तिथि से संविधि की पुस्तक से समाप्त हो गया था क्योंकि वित्त अधिनियम, 2021 केंद्रीय सरकार को पूर्वस्थित विधि, जो प्रधान विधायन द्वारा प्रतिस्थापित कर दी गई है, को पुनः सक्रिय करने के लिए अधिसूचना जारी करने के लिए समर्थ नहीं बनाता है। प्रत्यायोजिती/केंद्रीय सरकार द्वारा किया गया कोई भी ऐसा कार्य किसी सांविधिक आधार से विहीन होगा।

(xii) पूर्वस्थित विधियों के किसी अभिव्यक्त रक्षण के अभाव में ऐसे रक्षण के पक्ष में की गई उपधारणा स्पष्ट रूप से अननुमन्य है।

(xiii) समर्थकारी अधिनियम के अंतर्गत जारी अधिसूचनाओं में कोई उपाधारणा मौजूद नहीं है कि अधिनियम के पूर्वस्थित प्रावधानों की प्रयोज्यता विस्तारित कर दी गई है तथा उसके द्वारा आयकर अधिनियम की धारा 148क के प्रावधान (वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा प्रविष्ट) तथा अन्य प्रावधान स्थगित कर दिए गए हैं।

61. इस प्रकार, यह घोषित किया गया था कि आक्षेपित अधिसूचनायें दिनांकित 31-03-2021 तथा 27-4-2021 के खंडों, क्रमशः, अ(क), अ(ख) से संलग्न स्पष्टीकरणों को उन पुनः निर्धारण कार्यवाहियों के लिए प्रयोज्य पढ़ा जाना चाहिए जो 31-03-2021 को अस्तित्व में रही हों या उस तिथि तक अर्थात अधिनियम की धाराओं 147 से 151क के प्रतिस्थापन से पूर्व प्रारंभ की गई रही हों। 01-04-2021 से प्रारंभ होकर उसके बाद प्रारंभ की गई पुनः निर्धारण कार्यवाहियों पर उन अधिसूचनाओं की कोई प्रयोज्यता नहीं है।

62. उपरोक्त अवलोकनों के साथ, उसके अंतर्गत चुनौती की विषयवस्तु सभी पुनः निर्धारण नोटिसों को खंडित किया गया था। तथा विधि द्वारा यथाअपेक्षित सभी अनुपालनों को करने के बाद वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा यथासंशोधित अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार पुनः निर्धारण कार्यवाहियां प्रारंभ करना संबंधित निर्धारण प्राधिकारियों के लिए अनुमन्य किया गया था।

63. **अशोक कुमार अग्रवाल** में खंडपीठ के उपरोक्त निर्णय को चुनौती देने पर सर्वोच्च न्यायालय ने **आशीष अग्रवाल (पूर्वोक्त)** में अवलोकन किया था कि:-

(I) वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा आयकर अधिनियम की धाराओं 147 से151 के प्रतिस्थापन द्वारा पुनःनिर्धारण कार्यवाहियों के लिए प्रक्रिया को शासित करने वाले आमूलचूल तथा सुधारात्मक परिवर्तन किए गए हैं।पूर्व-वित्त

अधिनियम, 2021 के अंतर्गत अधिकतम 6 वर्षों की अवधि तक तथा कुछ मामलों में यहां तक की 6 वर्षों के बाद भी पुनः खोला जाना अनुमन्य था जो लंबे समय तक अनिश्चितता को अग्रसर करता था। अतः, संसद ने कर प्रशासन को सरलीकृत करने, अनुपालनों को आसान बनाने तथा मुकदमेबाजी को कम करने के लिए आयकर अधिनियम को संशोधित करना उचित समझा। उक्त लक्ष्य को प्राप्त करने की दृष्टि से वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा धाराएं 147 से 149 तथा धारा 151 प्रतिस्थापित की गई हैं।

(II) आयकर अधिनियम की धारा 148क एक नया प्रावधान है जो पूर्ववर्ती शर्त की प्रकृति का है। इस प्रकार, आयकर अधिनियम में धारा 148क के प्रवेशको कर प्रशासन का सरलीकरण करने के अंतिम लक्ष्य को प्राप्त करने के उद्देश्य के साथएक 'गेमचेंजर' होना कहा जा सकता है।धारा 148क के माध्यम से अब प्रक्रिया सुव्यवस्थित तथा सरलीकृत हो गई है। इस प्रकार, आयकर अधिनियम की धारा 148 के अंतर्गत नोटिस जारी करने से पूर्व सभी रक्षोपाय प्रावधानित किए गए हैं। प्रत्येक स्तर पर, यहां तक की धारा 148क(क) के अनुसार जांच करने के लिए भी, नियत प्राधिकारी की पूर्व अनुमति आवश्यक है।

(III) प्रतिस्थापित धारा 149 आयकर अधिनियम की धारा 148 के अंतर्गत नोटिस जारी करने के लिए समय सीमा को शासित करने वाला प्रावधान है। प्रतिस्थापित धारा 149 ने ऐसी कोई नोटिस जारी करने के लिए अनुमन्य समय सीमाको तीन वर्ष तक तथा केवल आपवादिक मामलों में दस वर्षों तक घटा दिया है। यह अग्रेतर अतिरिक्त रक्षोपायों का भी प्रावधान करती जो पूर्व-वित्त अधिनियम, 2021 की अवधि के अंतर्गत अनुपस्थित थे।

(IV) वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा प्रतिस्थापित नए प्रावधान प्रकृति मेंउपचारात्मक तथा उदार होनेके कारण तथा निर्धारिती के अधिकारों तथा हित को संरक्षित करने के विनिर्दिष्ट लक्ष्य तथा उद्देश्य के साथ प्रतिस्थापित किये जाने तथा साथ ही साथ तथा उसके लोकहित में होने के कारण, विभिन्न उच्च न्यायालयों ने उचित रूप से अवधारित किया कि नए प्रावधानों का लाभ पूर्व निर्धारण वर्षों से संबंधित कार्यवाहियों के संबंध में भी लागू किया जाएगा परंतु यह की धारा 148 की नोटिस 01-04-2021 के बाद जारी की गई हो।

64. इस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय ने ऐसा अवधारित करने में विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा लिए गए मत से पूर्ण सहमति व्यक्त की है।

65. इस प्रकार, इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा **अशोक अग्रवाल (पूर्वोक्त)** में दिए गए कारणों को, जो चुनौती का विषय वस्तु थे, पुष्ट किया गया है।

66. तथापि,अग्रेतर लेखबद्ध किया गया था कि:-

(I) विभिन्न उच्च न्यायालयों के निर्णयकोई भी पुनः निर्धारण कार्यवाही न होने में परिणामित होंगे भले ही वे वित्त अधिनियम, 2021 के अंतर्गत आयकर अधिनियम की प्रतिस्थापितधाराओं 147 से 151 के अनुसार अनुमन्य हों।

उस स्थिति का उपचार करने के लिए जहाँ राजस्व उपचारविहीन हो जाता है, पुनः निर्धारण कार्यवाहियों के लक्ष्य तथा उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए यह अवलोकितकिया गया था कि01-04-2021 से प्रभावी संशोधन के लागू होने के बाद

धारा 148 के अंतर्गत नोटिसें समर्थकारी अधिनियम (टीओएलए 2020) के अंतर्गत विभिन्न अधिसूचनाओं द्वारा पश्चातवर्ती समय विस्तार के आलोक में सद्भावी त्रुटि के कारण असंशोधित धारा 148 के अंतर्गत जारी की गई थीं।

(II) नोटिसें असंशोधित अधिनियम के अंतर्गत जारी नहीं की जानी चाहिए थीं तथा वित्त अधिनियम, 2021 के अनुसार आयकर अधिनियम की धाराओं 147 से 151 के प्रतिस्थापित प्रावधानों के अंतर्गत जारी की जानी चाहिए थीं।

(III) संशोधनों को उचित रूप से न लागू किया जाना प्रकट होता है, क्योंकि राजस्व के अधिकारीगण इस सद्भावी विश्वास के अंतर्गत हो सकते हैं कि संशोधनों को अभी प्रभावी नहीं किया गया है।

67. इस प्रकार, यह निष्कर्ष दिया गया था कि:-

68. आयकर अधिनियम के असंशोधित प्रावधानों के अंतर्गत जारी की गई पुनः निर्धारण नोटिसों को खंडित तथा अपास्त करने के स्थान पर उच्च न्यायालयों को असंशोधित अधिनियम/आयकर अधिनियम के असंशोधित प्रावधानों के अंतर्गत जारी नोटिसों को धारा 148(क) के नए प्रावधान के अनुसार आयकर अधिनियम की धारा 148(क) के अंतर्गत जारी की गई मानते हुए निर्वचित करते हुए आदेश पारित करना चाहिए था। उस स्थिति में <u>वित्त अधिनियम, 2021 के अनुसार सभी प्रक्रियात्मक अपेक्षाओं के अनुपालन</u>तथा उन प्रतिरक्षाओं जो, निर्धारिती को आयकर अधिनियम की धाराओं 147 से 151 के प्रतिस्थापित प्रावधानों के अंतर्गत तथा जो वित्त अधिनियम, 2021 के अंतर्गत तथा विधि में उपलब्ध होंके अध्यधीनआयकर अधिनियम की धाराओं 147 से 151 के प्रतिस्थापित प्रावधानों के अनुसार पुनः निर्धारण कार्यवाहियों को करने के लिए राजस्व को अनुमति दी जानी चाहिए थी।

69. उपरोक्त लेखबद्ध अवलोकनों के दृष्टिगत उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय तथा आदेशों को उपांतरित करते हुए <u>सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह लेखबद्ध किया गया था कि राजस्व तथा संबंधित निर्धारितियों की ओर से उपस्थित अधिवक्ताओं के बीच प्रस्तावित उपांतरण पर एक आम सहमति थी।</u>

70. सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के सावधानी पूर्वक पाठ से इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता की **अशोक कुमार अग्रवाल (पूर्वोक्त)**मेंइस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा विधिक सिद्धांतों तथा 01-04-2021 के बाद असंशोधित आयकर अधिनियम की धारा 148 के अंतर्गत जारी की गई नोटिसों को खंडित करने के लिए दिए गए कारणों परखंडपीठ द्वारा द्वारा लिए गए मत को स्वीकार किया गया तथा पूरी तरह से पुष्ट किया गया था।

71. परिणाम यह है कि असंशोधित आयकर अधिनियम के अंतर्गत जारी की गई सभी नोटिसों को वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा यथाप्रतिस्थापित आयकर अधिनियम की धारा 148क के अंतर्गत जारी किया हुआ माना गया तथा उन्हें आयकर अधिनियम की धारा 148क(ख) केअर्थों में कारण बताओ नोटिस निर्वचित किया गया।

धारा 148(ख) के अंतर्गत यथाअपेक्षित जांच, अधिकारियों द्वारा पूरी की जानी थी तथा निर्धारिती के संबंध में धारा 148क(घ) के अनुसार आदेश पारित करने के बाद धारा 148क के अंतर्गत यथाअपेक्षित प्रक्रिया का पालन करने के बाद धारा 148 के अंतर्गत नोटिस जारी की जा सकती थी। एक बार के साधन के रूप में धारा

148क(क) के स्तर पर नियत प्राधिकारी की अनुमति से जांच करने की अपेक्षा को स्थगित किया गया है।

72. उपरोक्त विचार विमर्श के आलोक में हमारे समक्ष उठाया गया प्रश्न यह है कि धारा 148क(घ) के अर्थों में जांच पूरी करने तथा आदेश पारित करने के बाद धारा 148 के अंतर्गत जारी की गई नोटिसों पर समर्थकारी अधिनियम (टीओएलए 2020) का क्या प्रभाव तथा परिधि होगी। प्रश्न यह है कि क्या असंशोधित धारा 149 में विहित की गई समय सीमा, वित्त अधिनियम, 2021 की संशोधित धारा 149के अंतर्गत प्रावधानित समय सीमा मेंटीओएलए के अंतर्गत जारी अधिसूचनाओं दिनांकित 31-03-2021 तथा 27-04-2021 द्वारा अग्रेतर विस्तारों के साथ समर्थकारी अधिनियम, 2021 के अंतर्गत 31-03-2021 तक विस्तृत हो जाएगी। राजस्व के विद्वान अधिवक्ताओं की ओर से तर्क यह है कि समर्थकारी अधिनियम (टीओएलए 2020) ने आयकर अधिनियम के पूर्वस्थित प्रावधानों में विहित समय सीमा में विस्तार प्रदान किया है। आयकर अधिनियम की असंशोधित धारा 149 के खंड(क) तथा (ख) में विहित चार वर्षों तथा छः वर्षों की अवधि टीओएलए 2020 के अंतर्गत प्रदान किए गएविस्तार द्वारा 31-03-2021 तक विस्तारित हो गई क्योंकि पुनः निर्धारण नोटिसें 31-03- 2021 तक की विस्तारित समय अवधि के अंतर्गत जारी की जा सकती थीं। वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा संशोधन ने यद्यपि आयकर अधिनियम, 1961 मेंसारभूत तथा प्रक्रियात्मक संशोधन किया है तथा पुराने प्रावधानों को पुनर्परिभाषित किया गया है तथा 01-04-2021 से प्रारंभ करके प्रभावी किया गया है लेकिन आयकर अधिनियम के असंशोधित प्रावधानों के अंतर्गत विहित परिसीमा में समर्थकारी अधिनियम द्वारा पूर्व में ही प्रदान किए गए विस्तार को कम नहीं किया गया है। समर्थकारी अधिनियम की धारा 3(1) द्वारा प्रदत्त शक्तियों के अनुप्रयोग में केन्द्रीय सरकार द्वारा जारी की गई अधिसूचनाओं दिनांकित 31-03-2021 तथा 27-04-2021 द्वारा पुनः निर्धारण नोटिस जारी करने के लिये परिसीमा में अग्रेतर विस्तार किए गए हैं। परिणाम यह है कि आयकर अधिनियम की धारा 148 के अंतर्गत नोटिस जारी करने के द्वारा पुनः निर्धारण कार्यवाहियों के प्रारंभ के लिए समय सीमा 31-06-2021 तक विस्तृत हो गई। धारा 149 की उपधारा (1) के खंड (क) तथा (ख) में तीन वर्षों की परिसीमा को समर्थकारी अधिनियम द्वारा प्रदान किए गए विस्तार अर्थात 30-06-2021 तक विस्तृत किया जाना चाहिए।

73. **मनमोहन कोहली (पूर्वोक्त)** में दिल्ली उच्च न्यायालय के अवलोकनों के समर्थन से यह तर्क दिया गया कि पुनः निर्धारण की शक्ति जो 31-03-2021 से पूर्व मौजूद थी, विस्तारित समय अवधि की समाप्ति अर्थात 30-06-2021 तक जारी रही तथा01-04-2021 से प्रभावी वित्त अधिनियम, 2021 ने नोटिस जारी करने से पहले पालन की जाने वाली प्रक्रिया मात्रा में परिवर्तन किया है। यह तर्क दिया गया कि धारा 149 का प्रथम प्रथम परंतुक (वित्त अधिनियम 2021 द्वारा लाया गया) ऐसी स्थिति में लागू नहीं होगा।

74. राजस्व के विद्वान अधिकताओं द्वारा किए गए इस अभिकथन का परीक्षण करने के लिए हमारे द्वारा **अशोक कुमार अग्रवाल** में पैरा ‘75’ तथा ‘76’(जैसा कि ऊपर उद्धरित है) में इस न्यायालय की खंडपीठ के कुछ कारण-कथनों को यहां दोहराना अपेक्षित है। हम दोहरा सकते हैं कि

इस न्यायालय की खंडपीठ ने समर्थकारी अधिनियम तथा वित्त अधिनियम, 2021 की प्रयोज्यता तथा प्रभावी होने की परिधि पर विचार करते हुए इसके विपरीत अवधारित किया था कि यदि वित्त अधिनियम, 2021 में पुनः निर्धारण प्रक्रिया का प्रतिस्थापन नहीं किया गया होता, राजस्व प्राधिकारीगण समर्थकारी अधिनियम के अंतर्गत समय का विस्तार का दावा करने के अपने अधिकार के अंतर्गत होते। संसद द्वारा किए गए आमूलचूल संशोधन ने आवश्यक अवेक्षा या विवक्षित बल से समर्थकारी अधिनियम की प्रयोज्यता को सीमित कर दिया। उसके अंतर्गत समय का विस्तार प्रदान करने की शक्ति उन पुनः निर्धारण कार्यवाहियों तक सीमित थी जो 31-03-2021 तक प्रारंभ कर दी गई थीं। इस प्रकार यह अवधारित किया गया था कि प्रतिस्थापित प्रावधानों के किसी रक्षण के बिना संशोधित अधिसूचनाओं की कोई प्रयोज्यता समर्थकारी अधिनियम,(टीओएलए 2020) के अंतर्गत प्रदान किए गए समय विस्तार का 01-04-2021 से प्रारंभ की गई पुनः निर्धारण कार्यवाहियों पर नहीं है।

75. दोहराव की कीमत पर यह लेखबद्ध किया जाता है कि खंड पीठ ने अवलोकन किया था कि या तो समर्थकारी अधिनियम या वित्त अधिनियम, 2021 के प्रावधानों की उपेक्षा करना तथा कोविड-19 महामारी के प्रसार से उत्पन्न तथ्य तथा परिस्थितियों के आलोक में वित्त अधिनियम, 2021 के प्रावधानों को लागू न किए जाने योग्य पढ़ना तथा निर्वचित करना अति सरलीकरण होगा। सांविधिक प्रावधानों के बिना जीवन की अभ्यासिकता किसी करारोपण विधि को निर्वचित करने के लिए अच्छा निर्देशक सिद्धांत कभी नहीं हो सकता। इस प्रकार, यह अवधारित किया गया था कि वित्त अधिनियम, 2021 में समर्थकारी अधिनियम के प्रावधानों या उसके अंतर्गत जारी अधिसूचनाओं को रक्षित करने के लिए किसी विनिर्दिष्ट खंड के अभाव में, निर्वचन की किसी भी प्रक्रिया से अधिसूचनाएं उस प्रावधान में जीवन का संचार नहीं करने वाली नहीं कही जा सकतींजो 31-03-2021 से संविधि की पुस्तक से समाप्त हो गया। यह अवधारित किया गया था कि वित्त अधिनियम, 2021 केंद्रीय सरकार को पूर्वस्थित विधि को पुनः सक्रिय करने के लिए कोई अधिसूचना जारी करने के लिए समर्थ नहीं बनाता, प्रत्यायोजिती/केंद्रीय सरकार द्वारा किया गया ऐसा कार्य बिना किसी सांविधिक आधार के होगा। इस प्रकार, खंडपीठ द्वारा विनिर्दिष्ट रूप से अवधारित किया गया था कि अधिसूचना अधिनियम के अंतर्गत पुनः निर्धारण के संबंध में पूर्वस्थित प्रावधानों को बचा या रक्षित नहीं कर सकती या अधिनियम के पूर्वस्थित प्रावधानों का लागू होना बढ़ाया नहीं जा सकता।

76. इस न्यायालय की समवर्ती पीठ द्वारा दिए गए उपरोक्त कारण-कथन, जो कि हमारे ऊपर बाध्यकारी है, को स्वीकार करते हुएहम अग्रेतर लेखवद्ध कर सकते हैं कि यदि राजस्व का तर्क स्वीकार किया जाता है, यह विधियों में संघर्ष उत्पन्न करेगा। पूर्वस्थित प्रावधानों के अंतर्गत केन्द्रीय सरकार द्वारा जारी अधिसूचनाओं द्वारा प्रदान किए गए विस्तार की सहायता से परिसीमा अवधि 30-06-2021 तक जीवित रखी गई थी जिसे समवर्ती पीठ द्वारा अपठित (read down) किया गया है। खंडपीठ के निर्णय के अनुसार आयकर अधिनियम की असंशोधित धारा 149 में विहित समय सीमा, धारा 149 के संशोधित प्रावधानों को निष्प्रभावी करने के लिए, 31-03-2021 के परे विस्तृत नहीं की जा सकती। राजस्व

का यह कथन की कोविड-19 महामारी के प्रसार से आई अड़चनों के कारण समर्थकारी अधिनियम ने केवल परिसीमा की अवधि को 31-06-2021 तक बढ़ाया था, उपरोक्त लिखित अवलोकनों के साथ खंडपीठ द्वारा विनिर्दिष्ट रूप से अस्वीकार कियागया था।

77. उसमें यह अवधारित किया गया था कि समर्थकारी अधिनियम, 2020 के अंतर्गत जारी अधिसूचनाएं वित्त अधिनियम, 2021 के लागू होने के बाद प्रतिस्थापित प्रावधानों में विहित समय सीमा को बढ़ा सकती हैं लेकिन यह कोविड-19 महामारी के प्रसार पर मौजूद सामान्य कठिनाइयों के कारण समर्थकारी अधिनियम की धारा 3(1) के अंतर्गत प्रदान की गई परिसीमा की सामान्य छूट के आलोक में पूर्वस्थित प्रावधानों की प्रयोज्यता को नहीं बढ़ाएगी या स्थगित नहीं करेगी।

78. जैसा कि ऊपर लेखबद्ध किया गया है, वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा आयकर अधिनियम की धाराओं 147 से 151 में व्यापक संशोधन किए गए हैं। जैसा की सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया है, प्रतिस्थापित प्रावधानों में पुनः निर्धारण कार्यवाहियों की प्रक्रिया को शासित करने वाले आमूलचूल तथा सुधारात्मक परिवर्तन प्रकृति में उपचारात्मक तथा उदार हैं।

79. संशोधनों की प्रकृति को समझने के लिए संशोधन पूर्व तथा पश्चात धारा 149 की तुलना ऊपर दी गई सारणी में लेखबद्ध की गई है। उपरोक्त का परिसीलन इंगित करता है किसंशोधन पूर्व धारा 149 में पुनः निर्धारण कार्यवाहियों के लिए नोटिसकी अवधि चार वर्ष तथा छः वर्ष थी। जबकि संशोधन पश्चात धारा 149 की उपधारा (1) में समयसीमा, जब धारा 148 के अंतर्गत पुन: निर्धारण के लिए नोटिस जारी की जा सकती है, खंड (क) में तीन वर्ष, तथा खंड (ख) के अनुसार तीन वर्षों की समाप्ति के बाद दस वर्षों तक विस्तारित की जा सकती है, लेकिन उस परिसीमा/अपेक्षा में सारभूत परिवर्तन किया गया है जिसे उपधारा (1) के खंड (ख) के अंतर्गत तीन वर्षों की समाप्ति के बाद पुनः निर्धारण के लिए नोटिस जारी करने से पूर्व राजस्व द्वारा पूरा किया जाना होता है। न केवल मौद्रिक सीमा प्रतिष्थापित की गई है बल्कि इस मत पर पहुंचने के लिए किनिर्धारण से आय छूट गई है, साक्ष्य की आवश्यकता भी सारभूत रूप से परिवर्तित की गई है। तीन वर्षों की समाप्ति के बाद पुनः निर्धारण कार्यवाहियों के प्रारंभ के लिए धारा 149 की उपधारा (1) के खंड (ख) की अपेक्षाओं को पूरा करने का गुरुतर भार राजस्व पर डाला गया है। अग्रेतर, धारा 149 की उपधारा (1) में चार परंतुक प्रविष्ट किए गए हैं।

80. धारा 149 की उपधारा (1) का प्रथम परंतुक हमारे उद्देश्यों के लिए सुसंगत है जो प्रावधानित करता है कि <u>01-04-2021 को या उसके पूर्व प्रारंभ होने वाले</u> संगत निर्धारण वर्ष के लिए किसी मामले में धारा 148 के अंतर्गत नोटिस जारी नहीं की जा सकती, यदि धारा 149 की उपधारा (1) के खंड (ख) अर्थात वित्त अधिनियम, 2021 के प्रारंभ से पूर्व, संशोधन पूर्व धारा 149 के असंशोधित प्रावधानों के अंतर्गत विहित समय सीमा के परे होने के कारण सुसंगत समय बिंदु पर ऐसी नोटिस जारी नहीं की जा सकती थी। इस प्रकार, धारा 149 की उपधारा (1) केप्रथम परंतुक के आलोक में पुनः निर्धारण कार्यवाहियां प्रारंभ करने के लिए असंशोधित धारा 149 की उपधारा (1) के खंड (ख) में छः वर्षों की समय सीमा संशोधित धारा 149 की उपधारा (1) के खंड (ख) के अंतर्गत दस वर्षों तक विस्तारित नहीं

की जा सकती। दूसरे शब्दों में, जहां छः वर्षों की अवधि समाप्त हो चुकी है, 01-04-2021 से प्रभावी वित्त अधिनियम, 2021 के प्रारंभ होने के बाद संगतनिर्धारण वर्ष के लिए मामला असंशोधित धारा 149 के खंड (ख) के अनुसार फिर से नहीं खोला जा सकता। इस न्यायालय की समवर्ती पीठ द्वारा **अशोक कुमार अग्रवाल (पूर्वोक्त)** में लिया गया यह मत सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **आशीष अग्रवाल (पूर्वोक्त)** के मामले में पुष्ट किया गया है कि वित्त अधिनियम, 2021 ने समर्थकारी अधिनियम की प्रयोज्यता को सीमित किया है तथा उसके अंतर्गत विस्तार प्रदान करने की शक्ति केवल ऐसी पुनः निर्धारण कार्यवाहियों को लागू थी जो 31-3-2021 तक प्रारंभ कर दी गई थीं। समवर्ती पीठ द्वारा यह अवधारित किया गया था कि आयकर अधिनियम के असंशोधित प्रावधानों में विहित समय सीमा में विस्तार प्रदान करने वाली आक्षिप्त अधिसूचनाएं 1-4-2021 से उसके बाद प्रारंभ की गई पुनः निर्धारण कार्यवाहियों पर लागू नहीं होतीं।यह अवधारित किया गया था कि 1-4-2021 के बाद, यदि परिसीमा का नियम अनुमति देता है, राजस्व समुचित अनुपालन करने के बाद नई विधि के अनुसार पुनः निर्धारण कार्यवाहियां प्रारंभ कर सकता है.यह भी सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पुष्ट किया गया है।

81. जैसा की ऊपर लेखबद्ध किया गया है, असंशोधित अधिनियम के अंतर्गत समय सीमा में विस्तार प्रदान करनेवाले समर्थकारी अधिनियम के प्रावधानों या 31-3-2021 को या उसके बाद जारी अधिसूचनाओं को रक्षित करते हुए वित्त अधिनियम, 2021 में कोई भी विनिर्दिष्ट खंड नहीं है। समर्थकारी अधिनियम, 2020 तथा वित्त अधिनियम, 2021 दोनों संसदीय अधिनियमन हैं। एक ओर समर्थकारी अधिनियम, 2020 निर्धारितियों तथा सांविधिक प्राधिकारियों या उनके कार्यकर्ताओं दोनों द्वारा कोविड-19 महामारी के प्रसार के कारण सामना की जा रही कठिनाइयों को समाप्त करने के लिए अधिनियमित किया गया था जबकि दूसरी ओर वित्त अधिनियम, 2021 का अधिनियमन कर प्रशासन को सरलीकृत करने के लक्ष्य के साथ पुनः निर्धारण कार्यवाहियों को शासित करने वाली आयकर अधिनियम की धाराओं 147 से 151 में सुधारात्मक परिवर्तन करने के लिए किया गया था। धारा 149 की उपधारा (1) के प्रथम परंतुक तथा उक्त धारा में खंड (ख) के प्रवेश द्वारा आयकर अधिनियम की धारा 149 में किये गये संशोधन सारभूत संशोधन हैं जो असंशोधित धारा 149 में विहित संगत निर्धारण वर्ष की समाप्ति से छः वर्ष की अधिकतम अवधि 01-04-2021 को या उसके पूर्व समाप्त हो जाने के कारणउसके बाद निर्धारण कार्यवाहियों को पुनः खोलने से निर्धारिती को छूट प्राप्त करने का अधिकार निर्धारिती को प्रदान करने के लिए अधिनियमित किये गये थे।जैसा कि ऊपर लेखबद्ध किया गया है एक ऐसे मामले में जहां संगत निर्धारण वर्ष के अंत से तीन वर्षों की अवधि समाप्त हो चुकी है, धारा 149 की उपधारा (1) के खंड (ख)(वित्त अधिनियम 2021 द्वारा संशोधित) द्वारा राजस्व द्वारा निर्धारण कार्यवाहियों को पुनः खोलने के लिए अपेक्षाओं की पूर्ति की उच्चतर सीमाएं प्रावधानित की गई हैं।

82. यदिराजस्व के विद्वान अधिकताओं के तर्कों को स्वीकार कर लिया जाता है, धारा 149 की उपधारा (1) के खंड (ख) तथा धारा 149 के प्रथम परंतुक के सारभूत प्रावधानों के अंतर्गत निर्धारिती को प्रदान किए गए लाभों कोउपेक्षित या स्थगित

किया जाना होगा। प्रतिरक्षाएं जो निर्धारिती को धारा 149 के अंतर्गत उपलब्ध हो सकती हैं, तथा/या वित्त अधिनियम, 2021 के अंतर्गत उपलब्ध हो सकती हैं, अस्वीकार करना होगा।राजस्व के विद्वान अधिवक्ताओं के अभिकथनों का सार यह है कि वित्त अधिनियम, 2021 के संशोधित प्रावधानों की प्रयोज्यता, समर्थकारी अधिनियम, 2020 द्वारा प्रदान किए गएसीमाविस्तार के कारण 31-3-2021 तक तथा अधिसूचनाओं दिनांकित 31-3-2021 तथा 27-4-2021 के अंतर्गत समय सीमा में अग्रेतर विस्तार के कारण, 31-6-2021 तक स्थगित करनी होगी।

83. अभिकथन यह है कि असंशोधित धारा 149(1)(ख) के अंतर्गत प्रावधानित 31-3-2021 तक समय सीमा में विस्तार, समर्थकारी अधिनियम (टीओएलए 2020) की स्पष्ट तथा साधारण प्रयोज्यता के द्वारा असंशोधित धारा 149 में विहित समय सीमा के विस्तार द्वारा, उन मामलों में भी लागू होगा जहां पुनः निर्धारणनोटिसें 1-4-2021 को या उसके बाद संशोधित धारा 148 के अंतर्गत जारी की गई थीं।

84. प्रथमदृश्टया,राजस्व के विद्वान अधिवक्ताओं का यह तर्क समर्थकारी अधिनियम की सरलीकृत प्रयोज्यता द्वारा आयकर अधिनियम, 1961 के अंतर्गत विहित समय सीमा के विस्तार के लिए संविधि के रूप में मानते हुए उचित प्रतीत होता है, लेकिन गहन परीक्षण पर उपरोक्त लिखित विचारण के आलोक में, यदि राजस्व के विद्वान अधिवक्ताओं के तर्क को स्वीकार किया जाता है, यह धारा 149 की उपधारा (1) के प्रथम परंतुक को 31-6-2021 तक निष्प्रभावी कर देगा। वस्तुत: यह धारा 149 की उपधारा (1) के प्रथम परंतुक को निरर्थक बना देगा। यदि यह मत स्वीकार किया जाता है, यह उन मामलों में असंशोधित धारा 149 के खंड (ख) के अंतर्गत समय सीमा में विस्तार प्रदान करने में परिणामित होगा जहां पुनः निर्धारण कार्यवाहियाँ असंशोधित प्रावधानों के जीवन काल के दौरान अर्थात 31-3-2021 को या उसके पूर्व प्रारंभ नहीं की गई थीं। यह धारा 149 की उपधारा (1) के खंड (ख) के समाप्त हो चुके असंशोधित प्रावधानों,जो मृत हो चुके तथा 1-4-2021 से संविधि की पुस्तक से समाप्त कर दिए गए हैं, के अंतर्गत कार्यवाही के लिए समय सीमा को बढ़ाकर उनमें जीवन का संचार कर देगा।

85. किसी अभिव्यक्त रक्षण खंड के अभाव में, एक ऐसे मामले में जहां वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा सांविधिक प्रतिस्थापन से पूर्व पुनः निर्धारण की कार्यवाहियां प्रारंभ नहीं की गई थीं, समर्थकारी अधिनियम के माध्यम से असंशोधित प्रावधानों की विस्तारित समय सीमा लागू नहीं हो सकती। दूसरे शब्दों में संशोधित धारा 149 की उपधारा (1) के खंड (ख) के अंतर्गत राजस्व पर लगाई गई बाध्यतासे छूट नहीं दी जा सकती। धारा 149 की उपधारा (1) के प्रथम परंतुक के आलोक में निर्धारिती को उपलब्ध प्रतिरक्षाएं छीनी नहीं जा सकतीं। समर्थकारी अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (1) के अंतर्गत शक्तियों के अनुप्रयोग में प्रत्यायोजिती/केंद्रीय सरकार द्वारा जारी अधिसूचनाएं इस माध्यम से धारा 149 के असंशोधित प्रावधानों में जीवन का संचार नहीं कर सकतीं।

86. जैसा की सर्वोच्च न्यायालय द्वाराअवधारित किया गया, जो आयकर अधिनियम की धारा 149 के अंतर्गत उपलब्ध हैं उनके सहित सभी प्रतिरक्षाएं जो निर्धारिती को उपलब्ध हो सकती हैं तथा वे अधिकार तथा अभिकथन जो निर्धारती तथा राजस्व को वित्त अधिनियम, 2021 के

अंतर्गत उपलब्ध हो सकते हैं, 1-4-2021 से उसके बाद प्रारंभ की गई पुनः निर्धारण कार्यवाहियों में उपलब्ध होना जारी रहेगें।

87. राजस्व के विद्वान अधिवक्ताओं का यह तर्क कि यदि समर्थकारी अधिनियम, 2020, जिसे विधि के न्यायालय द्वारा अवैध घोषित नहीं किया गया है, की प्रयोज्यता को ऐसा निर्वचन दिया जाता है, यह निरर्थक हो जाएगा, दिग्भ्रमित पाया जाता है, क्योंकि वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा संशोधन से पूर्व आयकर अधिनियम की असंशोधित धाराओं में समय सीमा में विस्तार अभी भी उन पुनः निर्धारण कार्यवाहियों पर लागू होगा जो 31-3-2021 को अस्तित्व में रही होगीं। दो संसदीय अधिनियमितियों, समर्थकारी अधिनियम, 2020 तथा वित्त अधिनियम, 2021के सामंजस्यपूर्ण निर्वचन से समवर्ती पीठ ने समर्थकारी अधिनियम, वित्त अधिनियम, 2021 तथा समर्थकारी अधिनियम के अंतर्गत जारी की गई अधिसूचनाओं की परिधि तथा सीमा को स्पष्ट किया है। हम **आशीष अग्रवाल** (पूर्वोक्त)में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यथापुष्ट समवर्ती पीठ के निर्णय से बाध्य हैं।

88. जैसा कि ऊपर लेखबद्ध किया गया है, **अशोक कुमार अग्रवाल**(पूर्वोक्त) में समवर्ती पीठ द्वारा लिया गया मत एकमात्र इस उपांतरण के साथ सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पुष्ट किया गया है कि धारा 148 के अंतर्गत 1-4-2021 को या उसके बाद जारी की गई नोटिसों को, उन्हें आयकर अधिनियम की धारा 148क(ख) के अर्थो में कारण बताओ नोटिस मानते हुए, वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा यथाप्रतिस्थापित आयकर अधिनियम की धारा 148-क के अंतर्गत नोटिस के रूप में माना जाएगा।

89. दोहराव की कीमत पर यहाँ यह लेखवद्ध किया जा सकता है कि सभी प्रक्रियात्मक अपेक्षाओं के अनुपालन तथा प्रतिरक्षाएं जो निर्धारिती को आयकर अधिनियम की प्रतिस्थापित प्रावधानों के अंतर्गत तथा जो वित्त अधिनियम, 2021 के अंतर्गत तथा विधि में उपलब्ध हो सकती हैं, के अध्यधीन सर्वोच्च न्यायालय ने राजस्व को वित्त अधिनियम, 2021 के अनुसार आयकर अधिनियम की धाराओं 147 से 151 के प्रतिष्थापित प्रावधानों के अंतर्गत पुनः निर्धारण कार्यवाहियों में अग्रेतर कार्रवाई करने के लिए अनुमति दी थी।

90. अब जहां तक सीबीडीटी के निर्देश दिनांकित 11-05-2022 का संबंध है, हम यह प्राप्त करते हैं कि खंड (6.1) का तृतीय बिंदु जो कहता है कि सर्वोच्च न्यायालय ने टीओएलए द्वारा विहित समय विस्तार की अनुमति दी थी तथा "विस्तारित पुनःनिर्धारण नोटिसें" समय के अर्थो में अपनी उस मूल तिथि, जब ऐसी नोटिसों को जारी किया जाना चाहिए था, तक जाएंगीतथा उसके बाद अधिनियम की धारा 149 को उस बिंदु परलागू किया जाएगा, सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को नाकाम करने का एक कपटपूर्ण प्रयास है। **आशीष अग्रवाल**(पूर्वोक्त) के निर्णय में पैराग्राफ '7' में सर्वोच्च न्यायालय के अवलोकनों कोबिगड़ा हुआ रूप देने के लिए सीबीडीटी के निर्देश दिनांकित 11-05-2022 के खंड '6.1' के उक्त बिंदु में टुकड़ों में लेखबद्ध किया गया है।

91. निर्धारण वर्ष 2013-14 से 2017-18 के मामलों से व्यवहृत करने के लिए खंड 6.2 में जारी किए गएनिर्देश,निर्देशों के पैरा 6.1में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के गलत पाठ पर आधारित हैं। 1-4-2021 को या उसके बाद तथा 30-6-2021 को समाप्त तिथि की अवधितक जारी की

गई पुनः निर्धारण की नोटिसों को पैरा 6.1 में समर्थकारी अधिनियम (टीओएलए 2020) तथा उसके अंतर्गत जारी की गई विभिन्न अधिसूचनाओं द्वारा विस्तारित समय के अंतर्गत "विस्तारित निर्धारणनोटिसें" कहना सर्वोच्च न्यायालय द्वारा**आशीष अग्रवाल**(पूर्वोक्त) में पुष्ट किए गए **अशोक कुमार अग्रवाल**(पूर्वोक्त) में इस न्यायालय के निर्णय को विफल करने का एक प्रयास है।

92. किसी भी स्थिति में, राजस्व के अपने स्वयं के 'स्टैंड' के अनुसार आयकर अधिनियम की धारा 119 के अंतर्गत इसकी शक्तियों के प्रयोग में जारी किया गया सीबीडीटी का निर्देश सं. 1/2022 दिनांकित 11-5-2022 **आशीष अग्रवाल**(पूर्वोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को प्रभावी ढंग से लागू करने के लिए जारी किया गया केवल एक दिशानिर्देश है। विवादित खंड (खंड 6.1 का तीसरा बिंदु) तथा खंड 6.2(i) और (ii)में जारी किए गए निर्देश सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के विपरीत होने के कारण कोई बाध्यकारी बल नहीं रखते।

93. जहां तक**टचस्टोन होल्डिंग प्राइवेट लिमिटेड**(पूर्वोक्त) में दिल्ली उच्च न्यायालय के निर्णय का संबंध है जिसमें यह अवधारित किया गया है कि समर्थकारी अधिनियम के अंतर्गत प्रदान किया गया समय विस्तार तथा उसके अंतर्गत जारी की गई अधिसूचनाओं द्वारा दिये गये अग्रेतर विस्तार केकारण निर्धारण वर्ष 2013-14 के लिए धारा 149 का प्रथम परंतुक (जैसा की वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा संशोधित किया गया है) आकर्षित नहीं होता, पीठ का गठन करने वाले न्यायाधीशों के प्रति समुचित सम्मान रखते हुए, यह कहना पर्याप्त होगा कि उक्त मत **आशीष अग्रवाल** (पूर्वोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पुष्ट किए गए इस न्यायालय द्वारा **अशोक कुमार अग्रवाल**(पूर्वोक्त) में लिए गए मत के सीधे विरोध में है। वास्तव में दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा **मनमोहन कोहली** (पूर्वोक्त) में पैराग्राफ '98' में किया गया यह अवलोकन कि पुनः निर्धारण की शक्ति जो 31-3-2021 से पूर्व मौजूद थी, विस्तारित अवधि अर्थात 30-6-2021 तक मौजूद होना जारी रही तथा वित्त अधिनियम, 2021 ने 1-4-2021 से प्रभावी मात्र नोटिस जारी करने से पहले पालन की जाने वाली प्रक्रिया को परिवर्तित किया है, को दिल्ली उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा **टचस्टोन**(पूर्वोक्त)में गलत रूप से पढ़ा गया तथा गलत रूप से लागू किया गया है।

94. यह लेखबद्ध करना सुसंगत है कि दिल्ली उच्च न्यायालय ने **मनमोहन कोहली**(पूर्वोक्त) में 1-4-2021 को या उसके बाद जारी की गई पुनः निर्धारण नोटिसोंको इस आधार पर खंडित किया था कि छूट अधिनियम (समर्थकारी अधिनियम) पूर्ववर्ती धाराओं 147 से 151 को 31-3-2021 के बाद बढ़ाने तथा/या वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा अधिनियमित प्रतिस्थापित प्रावधानों की प्रयोज्यता को स्थगित करने की शक्ति केंद्रीय सरकार को नहीं देता। उस मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय ने**अशोक कुमार अग्रवाल** (पूर्वोक्त) में इस न्यायालय के मत से सहमत होते हुए अधिसूचनाओं दिनांकित 31-3-2021 तथा 27-4-2021 के स्पष्टीकरण क(क) तथा क(ख) को समर्थकारी अधिनियम, 2020 के शक्तिवाह्य अवधारित किया था तथा उन्हें अविधिपूर्ण तथा शून्य तथा अकृत घोषित किया था। **मनमोहन कोहली**(पूर्वोक्त) में पैराग्राफ '99' में किए गए अवलोकन सुसंगत हैं तथा यहाँ निम्नवतउद्धरित किए जाने योग्य हैं:-

"99. यह न्यायालय इस मत का है किछूट अधिनियम की धारा 3(1) सरकार/कार्यपालिका को केवल समय सीमा को बढ़ाने के लिए शक्ति संपन्न करती है तथा यह पुनः निर्धारण कार्यवाहियों को प्रारंभ करने के लिए पालन किए जाने वाले प्रावधानों पर विधायन करने की शक्ति प्रत्यायोजित नहीं करता। वस्तुतःछूट अधिनियम सरकार को पूर्ववर्ती धाराओं 147 से 151 को 31 मार्च, 2021 के बाद विस्तारित करने तथा/या वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा अधिनियमित प्रतिस्थापित प्रावधानों की प्रयोज्यता को स्थगित करने की शक्ति प्रदान नहीं करता। परिणामस्वरूप, अधिसूचनाओं दिनांकित 31 मार्च, 2021 तथा 27 अप्रैल, 2021 में दिए गए आक्षिप्त स्पष्टीकरण प्रतिबंधित विधायन नहीं हैं तथा सरकार की प्रत्यायोजित शक्ति से परे हैं साथ ही साथ इस पितृ विधायनअर्थात छूट अधिनियम के शक्तिवाह्य हैं। तदनुसार, यह न्यायालय पलक खट्ठजा (पूर्वोक्त)में छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय के मत से सम्मान पूर्वक सहमत नहीं है बल्कि अशोक कुमार अग्रवाल (पूर्वोक्त) तथा बीपिप इंफ्रा प्राइवेट लिमिटेड (पूर्वोक्त)में क्रमशः इलाहाबाद उच्च न्यायालय तथा राजस्थान उच्च न्यायालय के मतों से सहमत है।"

95. राजस्व के विद्वान अधिवक्ताओं ने अग्रेतर अभिकथन किया कि सर्वोच्च न्यायालय ने इस तथ्य को ध्यान में लेते हुए कि राजस्व को उपचार विहीन नहीं बनाया जा सकता तथा उस स्थिति में नहीं रखा जा सकता जहां इसे पुनः निर्धारण कार्यवाहियां प्रारंभ करने से निषिद्ध कर दिया जाए भले ही वे आयकर अधिनियम की प्रतिस्थापित धाराओं 147 से 151 के अनुसार वित्त अधिनियम, 2021 के अंतर्गत अनुमन्य हैं तथा पुनः निर्धारण कार्यवाहियों के लक्ष्य तथा उद्देश्य को विफल नहीं किया जा सकता। संपूर्ण भारत में 1-4-2021 को या उसके बाद जारी की गई पुनःनिर्धारण नोटिसों को रक्षित करने के लिए भारत के संविधान के अनुच्छेद 142 के अंतर्गत अपनी शक्ति को उद्धृत किया है। इस प्रकार, संशोधित प्रावधान की धारा 148 के अंतर्गत जारी की गई सभी पुनःनिर्धारण नोटिसों को एक बार के साधन के रूप में आयकर अधिनियम की धारा 148क (संशोधन द्वारा लाए गए नए प्रावधान) के अंतर्गत जारी किया हुआ मानने के लिए निर्देश जारी किया गया था। परिणाम यह है कि सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय दिनांकित 4-5-2022 तक [आशीष अग्रवाल (पूर्वोक्त) में] 1-4-2021 को या उसके बाद जारी की गई सभी निर्धारण नोटिसों को रक्षित किया जाना चाहिए।

96. संतुलन स्थापित करने के लिए सर्वोच्च न्यायालय ने संशोधित प्रावधानों के अंतर्गत निर्धारिती को उपलब्ध सभी प्रतिरक्षाओं को जारी रखा जबकि वित्त अधिनियम, 2021 के अंतर्गत निर्धारण अधिकारी/राजस्व को उपलब्ध सभी अधिकारों को जीवित रखा गया है। इस प्रकार, 1-4-2021 को या उसके बाद जारी की गई पुनः निर्धारण नोटिसों में त्रुटियों को समाप्त कर दिया गया है। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 142 के अंतर्गत जारी किए गए निर्देशों के संपूर्ण भारत में बाध्यकारी बल रखने के कारण उनका उल्लंघन होगा यदि संशोधन पूर्व तथा पश्चात आयकर अधिनियम की धारा 149 के अंतर्गत पुनः निर्धारण के लिए जारी की गई नोटिसों के लिए समर्थकारी अधिनियम

(टीओएलए 2020) की सहायता से समय विस्तार नहीं प्रदान किया जाता।

97. उपरोक्त अभिकथन से व्यवहृत करने के लिए हम सर्वोच्च न्यायालय द्वारा असिस्टेंट कमिश्नर (सीटी) एलटीयू, काकीनाडा एंड अदर्स बनाम ग्लाक्सो स्मिथ क्लीन कंज्यूमर हेल्थ केयर लिमिटेड, में दिए गए निर्णय को ध्यान में ले सकते हैं जिसमें एक ऐसे मामले में जहां परिसीमा की विधि द्वारा अपील का सांविधिक उपचार समाप्त हो गया था वहाँभारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत रिट क्षेत्राधिकार के अनुप्रयोग से सर्वोच्च न्यायालय का सामना हुआ था। भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत उच्च न्यायालय की शक्तियों की तुलना अनुच्छेद 142 के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय की शक्तियों से करते हुए यह अवलोकन किया गया था कि यद्यपि संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत उच्च न्यायालय की शक्तियां वृहद हैं परंतु निश्चित रूप से भारत के संविधान के अनुच्छेद 142 के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय को प्रदत्त विस्तृत शक्तियों से ज्यादा विस्तृत नहीं हो सकतीं जो पक्षों के मध्य पूर्ण न्याय करने के लिए संविधान के अंतर्गत संपूर्ण न्यायिक शक्तियों की समूह तथा कोष है। लेकिन यहां तक की उस शक्ति का अनुप्रयोग करते हुए भी सर्वोच्च न्यायालय से विधाई आशय तथा विधाई प्रावधानों को व्यर्थ न बना देने को ध्यान में रखना अपेक्षित है। यूनियन कार्बाइड कॉरपोरेशनएंड अदर्स बनाम यूनियन ऑफ इंडिया एंड अदर्स, में संवैधानिक पीठ के निर्णय पर यह लेखबद्ध करने के लिए निर्भरता व्यक्त की गई थी कि अनुच्छेद 142 के अंतर्गत शक्तियों का अनुप्रयोग करने में सर्वोच्च न्यायालय वाद या मामले के पूर्ण न्याय की आवश्यकताओं का आकलन करने में लोक नीति के किन्ही आधारभूत सिद्धांतों पर अवधारितसारभूत विधिक प्रावधानों में अभिव्यक्त निषेधों को ध्यान में लेगा तथा तदनुसार अपनी शक्ति तथा विवेकाधिकार को विनियमित करेगा।

98. इसके अलावा, आशीष अग्रवाल (पूर्वोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 142 के अंतर्गत अपनी शक्ति का अनुप्रयोग सीमित सीमा तक यह निर्देशित करने के लिए किया कि आशीष अग्रवाल (पूर्वोक्त) में पारित आदेशपूरे देश में विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा पारित इस तरह के निर्णयों तथा आदेशों, जैसे की इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षिप्त निर्णय तथा आदेश थे, में लागू होगा तथा उन्हें शासित करेगा। भारत के संविधान के अनुच्छेद 142 के अंतर्गत शक्तियों के अनुप्रयोग में आशीष अग्रवाल (पूर्वोक्त)में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश सभी समान मामलों में लागू किया गया था। 1-4-2021 को या उसके बाद असंशोधित धारा 148 के अंतर्गत जारी की गई पुनः निर्धारण नोटिसों को धारा 148क(ख) के अर्थों में कारण बताओ नोटिसो के रूप में माना गया था तथा राजस्व से अपेक्षा की गई थी कि 1-4-2021 से प्रभावी वित्त अधिनियम, 2021 के अंतर्गत संशोधित प्रावधानों के अनुरूप जांच करे। धारा 148 (यथा संशोधित) के अंतर्गत नोटिस जारी करने के लिए, जैसा की धारा 148-क(ख) के अंतर्गत अपेक्षित है, प्रक्रिया का अनुपालन करने के बाद, संशोधित प्रावधानों के अनुसार आदेश पारित करने के लिए निर्धारण अधिकारियों से अपेक्षा की गई है। जो आयकर अधिनियम की धारा 149 के अंदर उपलब्ध हैं उनके सहित निर्धारिती को उपलब्ध सभी प्रतिरक्षाएं तथा निर्धारती को उपलब्ध सभी अधिकार तथा तर्क उपलब्ध कराए गए थे। वित्त अधिनियम, 2021

के अंतर्गत तथा विधि में राजस्व को उपलब्ध सभी अधिकार तथा तर्क भी उपलब्ध होना जारी रखे गए हैं।

99. सर्वोच्च न्यायालय के उक्त अवलोकनों को मुझसे इस तरह नहीं पढ़ा जा सकता की टीओएलए, 2020 को पूर्वनिर्धारण वर्षों के संबंध में कार्यवाहियों के लिए पुनःनिर्धारण नोटिसों को, जहां 31-3-2021 तक ऐसी नोटिसें जारी नहीं की गई थीं,असंशोधित धारा 149 के अंतर्गत समय विस्तार प्रदान किया गया था तथा उन्हें "विस्तारित पुनःनिर्धारण नोटिसों"के रूप में माना जा सकता है तथा उन्हें उनकी मूल तिथि, जब ऐसी नोटिसें जारी की जानी थीं, तक पूर्व समय में ले जाने की अनुमति थी तथा उसके बाद संशोधित धारा 149 को लागू किया जाए, जैसा की सीबीडीटी के निर्देश दिनांकित 11-5-2022 के पैरा 6.1 में राजस्व द्वारा निर्वचित किया गया है।

100. यदि राजस्व के विद्वान अधिवक्ताओं के इस तर्क को स्वीकार किया जाता है, यह राजस्व को उस तरीके से पुनः निर्धारण कार्यवाहियों को प्रारंभ करने की अनुमति देगा जो अन्यथा संविधि के अंतर्गत नहीं किया जा सकता है।

101. राजस्व के विद्वान अधिवक्ताओं का अंतिम अभिकथन अशोक कुमार अग्रवाल (पूर्वोक्त)में पैराग्राफ़ '71' में खंडपीठ द्वारा निम्नवत किए गए अवलोकनों पर अवधारित है:-

> *"71. यहां यह भी स्पष्ट किया जा सकता है कि समर्थकारी अधिनियम की धारा 3(1) स्वयमेव पुनः निर्धारण कार्यवाहियों की या अधिनियम की धारा 147 की या धारा 148, जैसी की ये 01-04-2021 से पूर्व स्थित थीं, की बात नहीं करती। यह मात्र कोविड-19 महामारी के प्रसार पर मौजूद सामान्य कठिनाइयों के कारण परिसीमा की सामान्य छूट प्रावधानित करता है। वित्त अधिनियम, 2021 के लागू होने के बाद यह केवल प्रतिस्थापित प्रावधानों पर, न की पूर्व स्थित प्रावधानों पर, लागू होती है।"*

102. उपरोक्त अवलोकनों को प्रस्तुत करते हुए यह तर्क दिया गया कि यहाँ तक कि उस मामले में खंडपीठ ने भी अवधारित किया था कि वित्त अधिनियम, 2021 के लागू होने के बादकोविड-19 महामारी के प्रसार पर मौजूद सामान्य कठिनाइयों के कारण प्रदान की गई परिसीमा की सामान्य छूटप्रतिस्थापित प्रावधानों पर लागू होती है। इस प्रकार, समर्थकारी अधिनियम (टीओएलए 2020) की धारा 3(1) के अंतर्गत समय का विस्तार वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा संशोधन के बाद भी दिया जा सकता है।"

103. इस अभिकथन से व्यवहृत करने के लिए यह करना पर्याप्त होगा कि वर्ष2021 की अधिसूचना सं. 20 दिनांकित 31-3-2021 के स्पष्टीकरण (इस न्यायालय द्वारा खंडित किए गए) की उपेक्षा करते हुए उसके खंड क(क) के स्पष्ट प्रावधानों द्वारा वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा आयकर अधिनियम की संशोधित धारा 149 में विहित समय सीमा में 30-6-2021 तक समय विस्तार दिया जा सकता है। इसी तरह, अधिसूचना सं. 38 दिनांकित 27-4-2021 के स्पष्टीकरण की उपेक्षा करते हुए खंड क(क)(ख)के स्पष्ट प्रावधानों के अनुसार, जब कभी भी धारा 149 या आयकर अधिनियम की धारा 151 के अंतर्गत स्वीकृतिके अंतर्गत, जैसी की वित्त अधिनियम 2021 द्वारा संशोधित की गई हैं,विहित समय सीमा के अनुसार धारा 148 के अंतर्गत नोटिस जारी करने के लिए जहां कहीं उक्त विस्तार लागू होते हैं, सभी अनुपालन जो

आयकर अधिनियम, 1961 के(संशोधित प्रावधान) द्वारा अपेक्षित हैं करने के बाद, समय सीमा में विस्तार दिया जा सकता है।

104. इस स्तर पर, लाभदायक रूप से यह लेखबद्ध किया जा सकता है के यह सुस्थापित विधि है कि किसी करारोपण संविधि को जो स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त किया गया है के आलोक में निर्वचित किया जाना चाहिए। किसी उपाधारित कमी को पूरा करने के लिए करारोपण संविधि में प्रावधानों को आयातित करना अनुमन्य नहीं है। किसी करारोपण संविधि को निर्वचित करने में साम्यापूर्ण विचारों के लिए स्थान नहीं है। न ही करारोपण संविधियों को किन्ही उपाधारणाओं या मान्यताओं के आधार पर निर्वचित किया जा सकता है। न्यायालय को संविधि के शब्दों को पूर्णता से देखना चाहिए तथा उनका निर्वचन करना चाहिए; करारोपण संविधि को जो स्पष्ट रूप से व्यक्त किया गया हैकेप्रकाश में निर्वचित करना चाहिए: यह कुछ ऐसा अर्थनही दे सकता जो अभिव्यक्त नहीं है। किसी व्यक्ति पर कर लगाने से पहले यह दर्शित किया जाना चाहिए कि वहदायित्व आरोपित करने वाली धारा में प्रयुक्त स्पष्ट शब्दों द्वारा उस धारा की परिधि के अंतर्गत आता है, तथा यदि शब्द द्विअर्थी हैं तथा दो निर्वचन संभव है, निर्वचन का लाभ दायित्वाधीन को दिया जाना चाहिए।करदाता के बचकर निकलने में कुछ भी अन्याय पूर्ण नहीं है, यदि विधि के शब्द स्वयं को स्पष्ट रूप से व्यक्त करने में विधायिका की असफलता के कारण उसे पकड़ने में असफल रहते हैं। (निर्देश**यूनियन ऑफ़ इंडिया एंड अदर्स इंड स्विफ्ट लैबोरेट्रीज लिमिटेड;सीआईटी बनाम मोदी सुगर मिल्स लिमिटेड; स्टेट ऑफ़ वेस्ट बंगाल बनाम केसोराम इंडस्टरीज लिमिटेड**)

निष्कर्ष

105. इस प्रकार, हमारे समक्ष प्रस्तुत किए गए दोनों प्रश्नों का हमारा उत्तर निम्नवत है:-

(i) 01-04-2021 तथा 30-06-2021 के बीच जारी की गई धारा 148 (धारा148-क के अंतर्गत मानी गई नोटिस) के अंतर्गत नोटिस के साथ प्रारंभ की गई पुनः निर्धारण की कार्यवाहियां, कराधान तथा अन्य विधियाँ (कतिपय प्रावधानों का शिथलीकरण तथा संशोधन) अधिनियम, (टीओएलए) 2020के अंतर्गत 30-03-2021 तक छूट/विस्तार का लाभ देते हुए संचालित नहीं की जा सकतीं तथा धारा 149(1)(ख)(यथाप्रतिस्थापित 01-04-2021से प्रभावी) में विहित समय सीमा की गणना राजस्व को 30-03-2020 से अग्रेतर ऐसी छूट देते हुए नहीं की जा सकती।

(ii) उन कार्यवाहियों के संबंध में जहां धारा 149(1)(ख) का प्रथम परंतुक आकर्षित होता है, टीओएलए, 2020 का लाभ राजस्व को उपलब्ध नहीं होगा, या दूसरे शब्दों में टीओएलए, 2020 के अंतर्गत छूट विधि ऐसे मामलों में वित्त अधिनियम, 2021 द्वारा प्रविष्ट की गई धारा 149 के प्रथम परंतुक के अंतर्गत विहित समय सीमा को शासित नहीं करेगी।

(iii) रिट याचिकाओं के इस समूह में विभिन्न निर्धारण वर्षो(ए.वाई. 2013-14 से ए.वाई.2017-18) के लिए 1-4-2021 को या उसके बाद याचीगणों को जारी की गई पुनः निर्धारण की नोटिसें राजस्व द्वारा तदनुसार व्यवहृत की जानी चाहिए।

106. जैसा कि ऊपर लेखबद्ध किया गया है, हमने वादबिंदु को केवल विधिक सिद्धांतों पर निर्णित किया है तथा मामलों का तथ्यात्मक पक्ष

याचीगणों द्वारा उपरोक्त अवलोकनों के आधार पर समुचित न्यायालयों/फोरम के समक्ष उठाया जाएगा।

107. परिणाम स्वरूप इस समूह में सभी रिट याचिकाएं **निस्तारित**की जाती हैं।

108. खर्चों के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(2023) 3 ILRA 67

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल वाद

दिनांक: इलाहाबाद 24.01.2023

माननीय न्यायमूर्ति मनोज मिश्रा

माननीय न्यायमूर्ति विकास बुधवार

के समक्ष

विशेष अपील संख्या - 1 / 2023

प्रबंधन समिति एवं अन्य ....अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिपक्षी

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता: श्री अभिउदय मेहरोत्रा, श्री सुभांशु, श्री शैलेंद्र सीनियर एडवोकेट

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: सी.एस.सी., श्री अवनीश त्रिपाठी, श्री हेमेंद्र कुमार, श्री कार्तिकेय शुक्ला, श्री आर.के. ओझा (एस.एन. एडवोकेट)

A. विशेष कानून - इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियम, 1952 - अध्याय VIII नियम 5 - उत्तर प्रदेश राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 1973 - धारा 31 - धारा 31 की उपधारा (2) के दूसरे और तीसरे उपबंध के अंतर्गत शिक्षकों को विश्वविद्यालय के संबद्ध या संबंधित कॉलेज के प्रबंधन द्वारा उनकी सेवाओं की मनमानी समाप्ति के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान की गई है, निर्णय तब तक प्रभावी नहीं होगा जब तक कि इसे उपकुलपति द्वारा अनुमोदित नहीं किया गया हो - इस वाद में, प्रतिवादी संख्या 5 की सेवाओं की समाप्ति उपकुलपति की स्वीकृति के बिना संप्रेषित की गई थी - इसलिए, यह प्रभावी नहीं हो सकती थी। (पैराग्राफ 1 से 39)

बी. 'एजस्डेम जनरिस' नियम कानून का नियम नहीं है, बल्कि यह न्यायालय को विधायी आशय का सही अर्थ निकालने में मदद करने के लिए एक निर्माण का नियम है। यदि कोई प्रावधान स्पष्ट और अस्पष्ट नहीं है और विधायी आशय स्पष्ट है, तो उस नियम की सहायता लेने की कोई आवश्यकता नहीं है। इसलिए शब्दों का सामान्य अर्थ "या अन्यथा" स्पष्ट होगा, जो अधिनियम की धारा 35 की उपधारा (3) के कारण किसी शिक्षक की सेवा की समाप्ति के निर्णय पर लागू होगा, चाहे वह दंड के रूप में हो या साधारण समाप्ति के रूप में हो। (पैराग्राफ 36 से 38)

अपील निरस्त की गई। (ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. पी.सी. बागला (पोस्ट ग्रेजुएट) कॉलेज, हाथरस बनाम उपकुलपति, आगरा विश्वविद्यालय और अन्य। (1990) 6 एएलआर 413
2. एदुकांति कृस्तम्म (मृत) द्वारा वारिसान और अन्य बनाम एस. वेंकटरेड्डी (मृत) द्वारा वारिसान और अन्य। (2010) 1 एससीसी 756
3. कमलेश कुमार शर्मा बनाम योगेश कुमार गुप्ता और अन्य। (1998) 3 एससीसी 45
4. अमर चंद्र चक्रवर्ती बनाम कलेक्टर ऑफ एक्साइज (1972) 2 एससीसी 442
5. महा. विश्वविद्यालय ऑफ हेल्थ साइंस और अन्य बनाम सच्चिकित्सा प्रसारक मंडल और अन्य। (2010) 3 एससीसी 786

6. श्रीमती लिला वती बाई बनाम स्टेट ऑफ बॉम्बे। (1957) एआईआर एससी 521

7. जगा राम और अन्य बनाम स्टेट ऑफ हरियाणा और अन्य। (1971) 1 एससीसी 671

<u>माननीय न्यायमूर्ति मनोज मिश्रा</u>
<u>माननीय न्यायमूर्ति विकास बुधवार</u>

1. इस अपील में हमारे विचार के लिए जो संक्षिप्त प्रश्न उठता है वह यह है कि क्या उत्तर प्रदेश राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 1973 (1973 अधिनियम), के प्रावधानों द्वारा शासित विश्वविद्यालय से संबद्ध या सहायता प्राप्त विद्यालय के प्रधानाचार्य की निष्कासन का आदेश दिया गया है और परिवीक्षा अवधि के दौरान या समाप्ति पर, संबंधित विश्वविद्यालय के कुलपति की मंजूरी के बिना प्रभावी हो सकता है।

2. तथ्यात्मक आधार जिसके संदर्भ में उपरोक्त मुद्दा उत्पन्न होता है वह इस प्रकार है: कनोहर लाल पोस्ट ग्रेजुएट गर्ल्स कॉलेज, शारदा रोड, ब्रह्मपुरी, मेरठ (एतस्मिनपश्चात 'कॉलेज' के रूप में सन्दर्भित) चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ (एतस्मिनपश्चात 'विश्वविद्यालय' के रूप में सन्दर्भित) से संबद्ध है। चूंकि कॉलेज में प्रधानाचार्य का पद खाली पड़ा था, इसलिए पद को भरने के लिए एक उम्मीदवार की सिफारिश करने के लिए उच्च शिक्षा सेवा आयोग (संक्षेप में 'आयोग') को एक मांग भेजी गई थी। इसके अनुसरण में, उच्च शिक्षा निदेशक ने इस पद पर नियुक्ति के लिए प्रत्यर्थी संख्या 5 की सिफारिश की। इसके अनुसरण में, प्रत्यर्थी संख्या 5 को एक वर्ष की परिवीक्षा अवधि पर कॉलेज के प्रधानाचार्य के रूप में नियुक्त करते हुए दिनांक 22.10.2021 को नियुक्ति पत्र जारी किया गया था, जिसमें कहा गया था कि उसकी सेवा विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित सेवा शर्तों के अधीन होगी। नियुक्ति पत्र के आधार पर, प्रत्यर्थी संख्या 5 ने दिनांक 23.10.2021 को कॉलेज के प्रधानाचार्य के रूप में अपना कार्यभार ग्रहण किया। दिनांक 16.10.2022 को, कॉलेज के प्रबंधन (अपीलकर्ताओं) ने प्रस्तावित किया कि प्रत्यर्थी संख्या 5 की सेवाओं की न तो पुष्टि की जाएगी और न ही एक वर्ष की परिवीक्षा अवधि समाप्त होने पर परिवीक्षा की अवधि बढ़ाई जाएगी। इस प्रस्ताव के परिणामस्वरूप दिनांक 21.10.2022 को पत्र द्वारा अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी संख्या 5 को सूचित किया कि उसकी सेवाओं की पुष्टि नहीं की गई है और वे परिवीक्षा अवधि की समाप्ति पर समाप्त हो जाएंगी। उसके निष्कासन के विरुद्ध प्रत्यर्थी संख्या 5 ने विश्वविद्यालय में प्रत्यावेदन दिया। विश्वविद्यालय के प्रभारी कुलपति ने अपने पत्र/आदेश दिनांक 28.10.2022 के माध्यम से निर्देश दिया कि दिनांक 21.10.2022 के निष्कासन पत्र का प्रभाव और संचालन निष्कासन पत्र जारी होने से पूर्व की तरह स्थगित रहेगा क्योंकि निष्कासन पत्र जारी करने से पूर्व मामले की सूचना विश्वविद्यालय को नहीं दी गई थी और कोई मंजूरी नहीं मांगी गई थी, जैसा कि 1973 अधिनियम की धारा 35(2) द्वारा आवश्यक है। तदनुसार, उक्त पत्र द्वारा, कॉलेज के प्रबंधन को उन परिस्थितियों को स्पष्ट करने के लिए बुलाया गया था जिनमें समाप्ति पत्र जारी किया गया था। यह पत्र/आदेश दिनांक 28.10.2022 का है जिसे अपीलकर्ताओं द्वारा विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष दायर रिट ए संख्या 19736 वर्ष 2022 में आक्षेपित किया गया था।

3. विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष, अपीलकर्ताओं की ओर से यह तर्क दिया गया कि कुलपति के पास प्रबंधन समिति द्वारा पारित संकल्प के प्रभाव और संचालन, या समाप्ति के परिणामी आदेश को रोकने की शक्ति नहीं है। और इसलिए यह आदेश शून्य है। जबकि, प्रत्यर्थी संख्या 5 की ओर से यह तर्क दिया गया कि 1973 अधिनियम की धारा 35 (2) के आधार पर, कुलपति की पूर्वानुमति के बिना सेवा की कोई व्यवस्था नहीं की जा सकती है, इसलिए, पूर्वानुमति के बिना सेवाएं समाप्त करने का आदेश शून्य था। इस प्रकार, रिट याचिका में कुलपति के आक्षेपित आदेश में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

4. आक्षेपित निर्णय और आदेश दिनांक 29.11.2022 द्वारा, विद्वान एकल न्यायाधीश ने रिट ए संख्या 19736 वर्ष 2022 को यह देखते हुए निस्तारण कर दिया कि प्रभारी कुलपति के आदेश में कोई मौलिक त्रुटि नहीं है।हालाँकि, एक निर्देश जारी किया गया था कि यदि रिट याचिकाकर्ता कुलपति के समक्ष लंबित कार्यवाही पर आपत्ति दर्ज करता है, तो कुलपति दोनों पक्षों को सुनने के बाद, एक निर्दिष्ट अवधि के भीतर कानून के अनुसार उचित तर्कसंगत आदेश पारित करने के लिए आगे बढ़ेंगे।

5. विद्वान एकल न्यायाधीश के दिनांक 29.11.2022 के आदेश से व्यथित होकर, कॉलेज के प्रबंधन (यानी रिट याचिकाकर्ता) ने यह इंट्रा कोर्ट अपील दायर की है।

6. हमने अपीलकर्ताओं के लिए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री शैलेन्द्र के सहायक श्री सुभांशु और श्री अभ्युदय मेहरोत्रा;विश्वविद्यालय के लिए श्री अवनीश त्रिपाठी; उत्तर प्रदेश राज्य के लिए विद्वान स्थायी अधिवक्ता; और प्रत्यर्थी संख्या 1 के लिए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री आर. के. ओझा के सहायक श्री हेमेंद्र कुमार को सुना।

7. इससे पहले कि हम अपने मामलों के समर्थन में पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई दलीलों पर ध्यान दें और उनकी सराहना करें, हमारे लिए उन प्रासंगिक वैधानिक प्रावधानों पर ध्यान देना उचित होगा जिनके संदर्भ में वे दलीलें हमारे सामने प्रस्तुत की गई हैं।

प्रासंगिक वैधानिक प्रावधान

8. उत्तर प्रदेश उच्च शिक्षा सेवा आयोग अधिनियम, 1980 (संक्षेप में 1980 अधिनियम) को किसी विश्वविद्यालय से संबद्ध या मान्यता प्राप्त कॉलेजों में नियुक्ति के लिए शिक्षक के चयन और उससे जुड़े या प्रासंगिक मामलों के लिए एक सेवा आयोग की स्थापना के लिए अधिनियमित किया गया था। 1980 अधिनियम की धारा 30 में प्रावधान है कि इस अधिनियम के प्रावधान, उत्तर प्रदेश राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 1973 या उसके तहत बनाए गए क़ानून या अध्यादेशों में किसी भी प्रतिकूल बात के बावजूद प्रभावी होंगे। 1980 अधिनियम की धारा 12 में प्रावधान है कि किसी भी कॉलेज के शिक्षक के रूप में प्रत्येक नियुक्ति इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार प्रबंधन द्वारा की जाएगी और इसके उल्लंघन में की गई प्रत्येक नियुक्ति शून्य होगी। धारा 12 की उपधारा (2) में प्रावधान है कि प्रबंधन मौजूदा रिक्तियों और आगामी शैक्षणिक वर्ष के दौरान होने वाली संभावित

रिक्तियों की सूचना निदेशक को ऐसे समय और ऐसे तरीके से देगा, जो विहित की जा सकती है। धारा 12 की उप-धारा (3) में प्रावधान है कि निदेशक ऐसे समय पर और ऐसे तरीके से आयोग को सूचित करेगा जैसा कि सभी कॉलेजों से उसे सूचित रिक्तियों की विषयवार समेकित सूची निर्धारित की जा सकती है। धारा 12 की उपधारा (4) में प्रावधान है कि किसी महाविद्यालय में शिक्षक के पद पर नियुक्ति के लिए व्यक्तियों के चयन की रीति ऐसी होगी, जो विनियमों द्वारा निर्धारित की जा सके। धारा 13 (1) में प्रावधान है कि आयोग, धारा 12 की उप-धारा (3) के तहत रिक्तियों की अधिसूचना के बाद, जितनी जल्दी हो सके उम्मीदवारों का साक्षात्कार आयोजित करेगा और इतनी संख्या की सिफारिश करते हुए निदेशक को प्रत्येक विषय में सबसे उपयुक्त पाए गए अभ्यर्थियों के नाम की एक सूची भेजेगा, जहां तक संभव हो उस विषय में रिक्तियों की संख्या से पच्चीस प्रतिशत अधिक होगी। धारा 13 की उपधारा (2) में प्रावधान है कि आयोग द्वारा भेजी गई सूची आयोग से नई सूची प्राप्त होने तक वैध रहेगी। धारा 13 की उपधारा (3) में प्रावधान है कि निदेशक धारा 12 की उपधारा (4) के दूसरे परंतुक के तहत उम्मीदवारों द्वारा बताए गए वरीयता क्रम, यदि कोई हो, को निर्धारित तरीके से उचित सम्मान देगा और धारा 12 की उपधारा (2) के अंतर्गत सूचित रिक्ति में नियुक्त किये जाने हेतु उप-धारा (1) में निर्दिष्ट सूची से एक उम्मीदवार का नाम प्रबंधन को सूचित करेगा। धारा 13 की उप-धारा (3) या उप-धारा (4) या उप-धारा (5) के तहत धारा 14 प्रबंधन पर उस व्यक्ति को नियुक्ति पत्र जारी करने का कर्तव्य रखती है जिसका नाम सूचना प्राप्त होने की तारीख से एक महीने की अवधि के भीतर सूचित किया गया है। धारा 14 की उपधारा (2) में प्रावधान है कि जहां उपधारा (1) में निर्दिष्ट व्यक्ति नियुक्ति पत्र में दिए गए समय के भीतर या प्रबंधन द्वारा इस संबंध में अनुमति दिए गए विस्तारित समय के भीतर पदभार ग्रहण करने में विफल रहता है, या जहां ऐसा व्यक्ति अन्यथा नियुक्ति के लिए उपलब्ध नहीं है, तो निदेशक, प्रबंधन के अनुरोध पर विहित तरीके से धारा 13 की उप-धारा (1) के तहत आयोग द्वारा भेजी गई सूची से नया नाम सूचित करेगा।

9. इसलिए 1980 के अधिनियम के प्रावधान विश्वविद्यालय से संबद्ध या मान्यता प्राप्त कॉलेजों में नियुक्ति के लिए शिक्षकों के चयन और उससे जुड़े या उसके प्रासंगिक मामलों से संबंधित हैं। वे विशेष रूप से ऐसे शिक्षक की नियुक्ति के नियम और शर्तों या शिक्षकों की सेवा शर्तों का प्रावधान नहीं करते हैं। इसके परिणामस्वरूप, सेवाओं की समाप्ति सहित नियुक्ति के नियम और शर्तें 1973 अधिनियम के प्रावधानों द्वारा शासित होती रहेंगी। 1973 अधिनियम का अध्याय VI शिक्षकों और अधिकारियों की नियुक्ति और सेवा शर्तों का प्रावधान करता है। 1973 अधिनियम की धारा 31 के प्रासंगिक प्रावधान जिनसे हम इस अपील में चिंतित हैं, इस प्रकार हैं: -

> **"31. अध्यापकों की नियुक्ति-** (1) इस अधिनियम के प्रावधानों के अध्यधीन, विश्वविद्यालय के अध्यापकों और सम्बद्ध अथवा सहयुक्त महाविद्यालय (राज्य सरकार द्वारा अपवर्जित रूप से पोषित

महाविद्यालय को छोड़कर) के अध्यापकों सम्बद्ध या जैसा विषय हो, सहयुक्त महाविद्यालय को कार्यपरिषद् या प्रबन्धन-तंत्र द्वारा चयन समिति की सिफारिश पर ऐसी रीति से की जा सकेगी जिसका प्रावधान किया गया हो।

(2) ऐसे प्रत्येक अध्यापक, निदेशक एवं प्राचार्य की नियुक्ति उपधारा (3) के अधीन न हुई हो, प्रथम बार में एक वर्ष की परिवीक्षा पर होगी जिसे एक वर्ष से अनधिक विस्तारित किया जायेगा।

परन्तु यह कि यदि सेवा की समाप्ति परिवीक्षा की अवधि के दौरान या उसके समाप्त होने के पश्चात् हुई हो, कोई भी आदेश पारित नहीं किया जायेगा-

(क) विश्वविद्यालय के अध्यापक की दशा में, उपकुलपति एवं (जब तक स्वयं अध्यापक विभागाध्यक्ष न हो), सम्बन्धित विभागाध्यक्ष की रिपोर्ट पर विचार करने के पश्चात कार्य परिषद के आदेश के सिवाय,;

(ख) सम्बद्ध या सहयुक्त महाविद्यालय के प्रधानाचार्य की दशा में, प्रबन्ध तंत्र के आदेश के सिवाय;

(ग) सम्बद्ध या सहयुक्त महाविद्यालय के अन्य किसी अध्यापक की दशा में, प्राचार्य की रिपोर्ट और जब तक वह अध्यापक उस विषय का वरिष्ठतम अध्यापक न हो और साथ ही उस विषय के वरिष्ठतम अध्यापक की रिपोर्ट पर विचार करने के पश्चात प्रबन्ध तंत्र के द्वारा किए गये आदेश के सिवाय;

परन्तु अग्रेतर यह कि निष्कासन का ऐसा कोई भी आदेश, उन आधारों के समन्ध में जिन पर उनकी सेवाओं का समाप्त किया जाना प्रस्तवित है उसे जाँच का अवसर प्रदान करते हुए सम्बन्धित अध्यापक को नोटिस के सिवाय अन्य किसी प्रकार से पारित नहीं किया जायेगा;

परन्तु यह भी कि परिवीक्षा की अवधि अथवा, जैसा विषय हो परिवीक्षा की विस्तारित अवधि के समाप्त होने के पूर्व नोटिस दी जाती है तो परिवेक्षा की अवधि उस समय तक विस्तारित हो जायेगी जब तक कि प्रथम परन्तुक के खण्ड (क) के अधीन कार्य परिषद का अन्तिम आदेश, अथवा जैसा विषय हो, जबतक धारा 35 के अधीन कुलपति का अनुमोदन

सम्बन्धित अध्यापक को संसूचित न कर दिया जाये।"

10. अधिनियम, 1973 की धारा 35 जिसका संदर्भ धारा 31 की उपधारा (2) के तीसरे परंतुक में है, नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

"35. सरकार अथवा स्थानीय प्राधिकारी द्वारा पोषित को छोड़कर अन्य सम्बन्ध अथवा सहयुक्त महाविद्यालयों के अध्यापकों की शर्तें- (1) सम्बद्ध अथवा सहयुक्त महाविद्यालय (राज्य सरकार द्वारा अपवर्जी रूप से पोषित महाविद्यालय को छोडकर) में प्रत्येक अध्यापक को लिखित संविदा के अधीन नियुक्त किया जायेगा जिसमें ऐसे निबन्धन और शर्तें अन्तर्विष्ट होंगी जिन्हें विहित किया जा सकेगा। संविदा को विश्वविद्यालय के पास जमा किया जायेगा और उसकी प्रति सम्बन्धित अध्यापक को दी जायेगी एवं उसकी एक प्रति सम्बन्धित महाविद्यालय को प्रतिधारित की जोयगी।

(2) किसी अध्यापक को बर्खास्त अथवा अपसारित करने अथवा उसे पक्ति में कम करने अथवा उसे अन्य किसी भी रीति से दण्डित करने के लिए उस महाविद्यालय से प्रबन्ध समिति का प्रत्येक विनिश्चय इससे पूर्व कि उसे उसकी सूचना दी जाये, उपकुलपति को सूचित किया जायेगा और वह तब तक प्रभावी नहीं होगा जब तक कि उपकुलपति द्वारा उसका अनुमोदन न किया गया हो।

परन्तु यह कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 30 के खण्ड (1) में निर्दिष्ट अल्पसंख्यक वर्ग द्वारा स्थापित और प्रशासित महाविद्यालयों की दशा में, किसी भी अध्यापक को बर्खास्त, अपसारित करते हुए या पंक्ति में कम करते हुये या अन्य किसी भी प्रकार से दण्डित करते हुये प्रबन्ध समिति के निर्णय में उपकुलपति के अनुमोदन की आवश्यकता नहीं होगी, लेकिन उसकी उसे सूचना दी जायेगी और जब तक उसका यह समाधान न हो जाये कि इस निमित्त निर्धारित प्रक्रिया का पालन किया गया है तब तक उस निर्णय को प्रभावी नहीं किया जायेगा।

(3) उपधारा (2) के प्रावधान अध्यापक की सेवाओं को, चाहे

वह दण्ड के रूप में हो या अन्यथा, समाप्त करने के किसी भी निर्णय के लिए लागू होंगे, लेकिन वे उस अवधि के समाप्त होने पर, जिसके लिए उस अध्यापक को नियुक्त किया गया था सेवा की किसी भी समाप्ति के लिए लागू नहीं होगी:

परन्तु यह कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 30 के खण्ड (1) में निर्दिष्ट अल्पसंख्यक वर्ग द्वारा स्थापित एवं प्रशासित महाविद्यालयों की दशा में, किसी भी अध्यापक की सेवा को समाप्त करते हुए प्रबन्ध समिति के निर्णय में उपकुलपति के अनुमोदन की आवश्यकता नहीं होगी, लेकिन उसे उसकी सूचना दी जायेगी और जब तक उसका यह समाधान न हो जाये कि इस निमित्त निर्धारित प्रक्रिया का पालन किया गया है, उसे प्रभावी नहीं बनाया जायेगा ।

(4) उपधारा (2) में कही गयी किसी भी बात का जाँच के लम्बित रहने तक निलम्बन के आदेश के लिए लागू होना नहीं समझा जायेगा, लेकिन ऐसे किसी भी आदेश पर उपकुलपति द्वारा रोक लगायी जा सकेगी, जिसे खण्डित या उपान्तरित किया जा सकेगा:

परन्तु यह कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 30 के खण्ड (1) में निर्दिष्ट अल्पसंख्यक वर्ग द्वारा स्थापित एवं प्रशासित महाविद्यालयों की दशा में, उस आदेश पर उपकुलपति द्वारा केवल तभी रोक लगायी जा सकेगी, उसे खण्डित या उपान्तरित किया जा सकेगा जब उस निलम्बन के लिए निर्धारित शर्तों का पालन न हुआ हो ।

(5) उन महाविद्यालयों के अध्यापकों की सेवा की अन्य शर्तों ऐसी होंगी जिन्हें विहित किया जाये।

<u>अपीलकर्ताओं की ओर से प्रस्तुतियाँ</u>

11. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि धारा 31 की उपधारा (2) में विशेष रूप से प्रावधान है कि शिक्षक, निदेशक और प्राचार्य की नियुक्ति पहली बार में एक वर्ष के लिए परिवीक्षा पर होगी जिसे एक वर्ष से अधिक की अवधि के लिए बढ़ाया जा सकता है। उपधारा (2) के पहले परंतुक में तीन खंड हैं। प्रत्येक खंड शिक्षक के एक अलग वर्ग से संबंधित है। खंड (ए) विश्वविद्यालय के शिक्षक से संबंधित है; खंड

(बी) किसी संबद्ध अथवा सहयुक्त कॉलेज के प्रधानाचार्य के मामले से संबंधित है; और खंड (सी) किसी संबद्ध या सहयुक्त कॉलेज के किसी अन्य शिक्षक के मामले से संबंधित है। जैसा कि पहले परंतुक के तीन खंड व्यक्तियों के तीन अलग-अलग वर्गों अर्थात्, (i) विश्वविद्यालय का एक शिक्षक; (ii) किसी संबद्ध या सहयुक्त कॉलेज का प्रधानाचार्य; और (iii) किसी संबद्ध या सहयुक्त कॉलेज के किसी भी अन्य शिक्षक से संबंधित हैं, दूसरे परंतुक के प्रावधानों के अनुसार निष्कासन का ऐसा कोई आदेश तब तक पारित नहीं किया जाएगा जब तक कि संबंधित शिक्षक को उन आधारों के संबंध में स्पष्टीकरण का अवसर न दिया जाए, जिन आधारों पर उसकी जिन सेवाओं को समाप्त करने का प्रस्ताव है, वे प्रधानाचार्य के अलावा किसी अन्य शिक्षक से संबंधित होंगी। इसी प्रकार, तीसरे परंतुक के प्रावधान किसी संबद्ध या सहयुक्त कॉलेज के प्रधानाचार्य के अलावा किसी अन्य शिक्षक पर लागू होंगे। अधिनियम, 1973 की धारा 35 की उपधारा (3) सपठित उपधारा (2) के प्रावधानों की प्रयोज्यता के संबंध में यह तर्क दिया गया कि यह केवल तभी लागू होगा जहां निष्कासन दंड के माध्यम से होता है न कि सामान्य रूप से निष्कासन के माध्यम से, क्योंकि सज़ा शब्द के बाद 'या अन्यथा' शब्द का प्रयोग *पूर्ववर्ती* शब्द दण्ड को उपधारित करता है। उपरोक्त के अतिरिक्त, यह तर्क दिया गया कि अधिनियम, 1973 की धारा 35 की उपधारा (3) सपठित धारा 35 की उपधारा (2) के प्रावधान किसी भी स्थिति में प्रधानाध्यापक के मामले में लागू नहीं होंगे क्योंकि क्योंकि उपधारा (3) एक शिक्षक की बात करती है न कि एक प्रधानाचार्य की।

12. उपरोक्त तर्कों के आलोक में, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि परिवीक्षा अवधि पर एक प्रधानाचार्य की सेवाओं को समाप्त करने से पहले पूर्व अनुमोदन की कोई आवश्यकता नहीं थी, विशेष रूप से जब समाप्ति सामान्य रूप से हो और दंडात्मक न हो। यह भी तर्क दिया गया कि 1973 के अधिनियम में कोई विशिष्ट प्रावधान नहीं है जो कुलपति को निष्कासन के आदेश के प्रभाव और संचालन पर रोक लगाने का अधिकार देता है, इसलिए कुलपति का आदेश शून्य है और इसलिए यह अपास्त किये जाने योग्य था। यह तर्क दिया गया कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह मानते हुए त्रुटि की कि प्रभारी कुलपति के आदेश में कोई स्पष्ट त्रुटि नहीं थी।

13. उपरोक्त के अलावा, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि कुलपति (प्रभारी) ने संचार पत्र के प्रभाव और संचालन पर रोक लगा दी है, जो एक संकल्प का परिणाम था, चूंकि समाधान पर कोई रोक नहीं है, इसलिए परिणामी आदेश प्रभावी रहेगा। अपने तर्कों के समर्थन में, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय के पूर्ण पीठ के निर्णय पी. सी. बागला (स्नातकोत्तर) कॉलेज, हाथरस बनाम कुलपति, आगरा विश्वविद्यालय और अन्य, (1980) 6 एएलआर 413 मामले का अवलम्ब लिया जिसमें यह अवधारित किया गया कि परिवीक्षाधीन व्यक्ति को पद धारण करने का कोई अधिकार नहीं है और इसलिए अनुबंध की शर्तों या उसकी सेवा के नियमों के अनुसार की गई उसके रोजगार की स्वतः समाप्ति स्थायी और पुष्टि किए गए कर्मचारी के मामले के विपरीत सजा के बराबर नहीं होती है। ***एड्कांति किस्तम्मा (मृत) द्वारा उनके विधिक प्रतिनिधि और अन्य बनाम एस वेंकटरेड्डी (मृत) द्वारा उनके विधिक प्रतिनिधि और अन्य (2010) 1 एससीसी 756*** मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भी अवलम्ब

लिया गया और यह तर्क दिया गया कि जहां मूल आदेश पर सवाल नहीं उठाया गया है, वहाँ परिणामी आदेश की वैधता की जांच नहीं की जानी चाहिए। इस निर्णय को उद्धृत करते हुए तर्क दिया गया कि प्रस्ताव पर रोक लगाए बिना, कुलपति को निष्कासन पत्र को स्थगित करने का कोई अधिकार नहीं था। इस प्रस्तुतिकरण को पुष्ट करने के लिए कि अधिनियम, 1973 की धारा 35 की उप-धारा (3) में प्रयुक्त शब्द 'या अन्यथा' को *पूर्ववर्ती* शब्द दण्ड के साथ पढ़ा जाना चाहिए, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय **कमलेश कुमार शर्मा बनाम योगेश कुमार गुप्ता और अन्य 1998 (3) एससीसी 45** मामले को उद्धृत किया।

<u>प्रत्यर्थीगणों की ओर से प्रस्तुतियाँ</u>

14. इसके विपरीत, प्रत्यर्थीगणों के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि अधिनियम, 1973 की धारा 2 (19) 'अध्यापक' को इस प्रकार परिभाषित करती है:-

> "इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ की अन्यथा अपेक्षा न की जाये- **"अध्यापक"** अध्याय XI-क को छोड़कर इस अधिनियम के प्रावधानों के सम्बनन्ध में किसी विश्वविद्यालय में या संस्थान में या विश्ववद्यालय के घटक या सम्बद्ध या सहयुक्त महाविद्यालय में उस विश्वविद्यालय द्वारा अनुमोदित किसी भी विषय या पाठ्यक्रम में शिक्षण प्रदान करने या मार्गदर्शन देने या अनुसन्धान करने के लिए नियोजित व्यक्ति से अभिप्रेत है और उसमें **प्राचार्य** अथवा निदेशक सम्मिलित है।"

15. 'अध्यापक' शब्द की उपरोक्त परिभाषा पर अवलम्ब लेते हुए, प्रत्यर्थीगणों के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि धारा 35 अधिनियम, 1973 के अध्याय VI में आती है और 1973 अधिनियम की धारा 35 की उप-धारा (2) सहित धारा 35 की उप-धारा (3) में प्रयुक्त 'अध्यापक' शब्द में परिवीक्षा पर एक प्रधानाचार्य शामिल होगा, इसलिए एक प्रधानाचार्य को भी इसके तहत संरक्षण उपलब्ध होगा। प्रत्यर्थीगणों की ओर से यह तर्क दिया गया कि ऐसा कोई सामान्य सिद्धांत नहीं है कि वाक्यांश ***'या अन्यथा'*** को ***पूर्ववर्ती*** शब्दों के साथ पढ़ा जाए। यह तर्क दिया गया है कि ***'या अन्यथा'*** शब्दों की व्याख्या को व्यापक अर्थ दिया जाना चाहिए ताकि निष्कासन के सभी मामलों पर विचार किया जा सके, चाहे कारण कुछ भी हो।

16. उपरोक्त के अलावा, प्रत्यर्थीगणों के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अधिनियम, 1973 की धारा 13(1)(ए) के तहत, विश्वविद्यालय के प्रधान कार्यकारी और शैक्षणिक अधिकारी होने के नाते कुलपति को सामान्य पर्यवेक्षण करने और घटक महाविद्यालयों, विश्वविद्यालय द्वारा चलाए जाने वाले संस्थानों और इससे संबद्ध और सहयुक्त महाविद्यालयों सहित विश्वविद्यालय के मामलों पर नियंत्रण करने का अधिकार है। धारा 13 की उपधारा (4) कुलपति पर अधिनियम, क़ानून और अध्यादेश

के प्रावधानों का निष्ठापूर्वक पालन सुनिश्चित करने का कर्तव्य रखती है और यह प्रावधान करती है कि धारा 10 और 68 के तहत कुलाधिपति की शक्तियों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, वह उस संबंध में आवश्यक सभी शक्तियों का प्रयोग कर सकता है। धारा 13 की उपधारा (4) कुलपति पर अधिनियम, क़ानून और अध्यादेश के प्रावधानों का निष्ठापूर्वक पालन सुनिश्चित करने का कर्तव्य रखती है और यह प्रावधान करती है कि धारा 10 और 68 के तहत कुलाधिपति की शक्तियों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, वह ऐसी सभी शक्तियों का प्रयोग कर सकता है जो उस संबंध में आवश्यक हो सकती हैं। यह तर्क दिया गया कि घटक कॉलेजों, विश्वविद्यालय द्वारा संचालित संस्थानों और संबद्ध या सहयुक्त कॉलेजों सहित विश्वविद्यालय के मामलों पर कुलपति को पर्यवेक्षण और नियंत्रण की सामान्य शक्ति प्रदान करने से, विधायी उद्देश्य स्पष्ट है कि कुलपति अधिनियम, क़ानून या अध्यादेशों का निष्ठापूर्वक पालन सुनिश्चित करेंगे। इसके आलोक में, अधिनियम, 1973 की धारा 35 के प्रावधानों की व्यापक व्याख्या की जानी चाहिए ताकि उस उद्देश्य की पूर्ति हो सके जिसके लिए इसे अधिनियम में रखा गया है। इसलिए, जिस संदर्भ में धारा 35 की उप-धारा (3) में ***'या अन्यथा'*** वाक्यांश का उपयोग किया जाता है, इसे सज़ा शब्द के लिए *पूर्ववर्ती* नहीं पढ़ा जा सकता है। प्रत्यर्थीगणों के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय के दो डिवीजन बेंच के निर्णयों अर्थात्:- (क) डॉ. ए.पी. श्रीवास्तव बनाम द कमेटी ऑफ मैनेजमेन्ट, लक्ष्मी नारायण डिग्री कॉलेज, सिरसा, इलाहाबाद और अन्य, 1982 यूपीएलबीईसी 25; और (ख) कमेटी ऑफ मैनेजमेन्ट महात्मा गांधी शांति स्मारक महाविद्यालय, ग्राम मकसूदपुर, जिला गाजीपुर बनाम कुलपति, गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर एवं अन्य, 1988 यूपीएलबीईसी 526 पर अवलम्ब लिया।

17. उपरोक्त दो निर्णयों में, अधिनियम 1973 की धारा 35 की उपधारा (3) में प्रयुक्त वाक्यांश *'चाहे सजा के माध्यम से या अन्यथा'* को व्यापक व्याख्या दी गई है, जिसमें अध्यापक के परिवीक्षा अवधि के भीतर कि सेवा कार्य एवं आचरण संतोषजनक न होने के आधार पर निष्कासन के मामले भी शामिल हैं। न्यायालय ने अवधारित किया कि कुलपति की मंजूरी के बिना परिवीक्षा अवधि पर नियुक्त शिक्षकों की सेवा समाप्त करना अवैध होगा।

प्रत्युत्तर शपथपत्र में प्रस्तुतियाँ

18. अपने प्रत्युत्तर शपथपत्र के तर्कों में, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि प्रत्यर्थीगणों के विद्वान अधिवक्ता ने उपरोक्त दो डिवीजन बेंच के फैसले का अवलम्ब लिया है जो तथ्यों के अभाव के कारण गलत हैं क्योंकि वे अधिनियम, 1973 की धारा 31 के प्रावधानों के वास्तविक अर्थ पर ध्यान देने में विफल रहे हैं।

चर्चा और विश्लेषण

19. इससे पहले कि हम विरोधी प्रस्तुतियों पर विचार करें, अपीलार्थियों के विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क कि निष्कासन आदेश के प्रभाव और संचालन पर रोक लगाने के लिए कुलपति को कोई विशेष शक्ति नहीं दी गई है इसलिए हमें निरूद्ध करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि यदि हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि कुलपति

की मंजूरी के बिना किसी प्रधानाचार्य की सेवाओं को समाप्त नहीं किया जा सकता है, सेवाओं को समाप्त करने का आदेश तब तक प्रभावी नहीं होगा जब तक कि इसे मंजूरी नहीं मिल जाती। इसलिए, यह बात मायने नहीं रखेगी कि कुलपति के पास इसका प्रभाव बरकरार रखने की शक्ति है या नहीं। इसलिए, हमें ऊपर नोटिस किये गए प्रासंगिक प्रावधानों के आलोक में जांच करनी होगी कि क्या उत्तर प्रदेश राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 1973 (1973 अधिनियम) के प्रावधानों द्वारा शासित विश्वविद्यालय से सम्बद्ध अथवा सहयुक्त महाविद्यालय के प्रधानाचार्य का निष्कासन उस विश्वविद्यालय के कुलपति की मंजूरी के बिना प्रभावी हो सकती है जिससे कॉलेज संबद्ध या सहयुक्त है।

20. अधिनियम 1973 की धारा 2 (19) 'अध्यापक' को इस प्रकार परिभाषित करती है:-

> "2. परिभाषाएँ. - इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ की अन्यथा अपेक्षा न की जाये-
>
> (19) "इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ की अन्यथा अपेक्षा न की जाये- "अध्यापक" अध्याय XI-क को छोड़कर इस अधिनियम के प्रावधानों के सम्बनन्ध में किसी विश्वविद्यालय में या संस्थान में या विश्ववद्यालय के घटक या सम्बद्ध या सहयुक्त महाविद्यालय में उस विश्वविद्यालय द्वारा अनुमोदित किसी भी विषय या पाठ्यक्रम में शिक्षण प्रदान करने या मार्गदर्शन देने या अनुसन्धान करने के लिए नियोजित व्यक्ति से अभिप्रेत है और उसमें प्राचार्य अथवा निदेशक सम्मिलित है।"

21. 1973 अधिनियम में अध्यापक की परिभाषा को स्पष्ट रूप से पढ़ने से यह स्पष्ट है कि जब तक संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, 1973 अधिनियम के प्रावधानों के संबंध में जहां भी 'अध्यापक' शब्द का उपयोग किया जाता है, वह अन्य बातों के साथ-साथ, इसमें किसी विश्वविद्यालय के घटक या संबद्ध या सहयुक्त कॉलेज का प्रधानाचार्य शामिल है।

22. जब हम 1973 अधिनियम की धारा 31 के प्रावधानों को ध्यान से पढ़ते हैं, तो हम देखते हैं कि धारा 31 की उपधारा (1) 'अध्यापक' शब्द का उपयोग करती है और 'प्रधानाचार्य' शब्द का उपयोग करने से बचती है। यह एक सामान्य प्रावधान है जो विश्वविद्यालय के शिक्षकों और विशेष रूप से राज्य सरकार द्वारा संचालित कॉलेज के अलावा किसी संबद्ध या सहयुक्त कॉलेज के शिक्षकों की नियुक्ति की बात करता है। धारा 31 की उप-धारा (2) स्पष्ट करती है कि ऐसे प्रत्येक अध्यापक, निदेशक और प्रधानाचार्य की नियुक्ति, जो उप-धारा (3) (नोट : हमें धारा 31 की उपधारा (3) के तहत नियुक्तियों से कोई सरोकार नहीं है क्योंकि वे छुट्टी या अल्पकालिक रिक्ति पर नियुक्तियों से संबंधित हैं) के तहत नियुक्ति नहीं है जो पहली बार में एक वर्ष के लिए परिवीक्षा पर होगी जिसे एक वर्ष से अधिक की अवधि के लिए बढ़ाई जा सकती है।

अधिनियम, 1973 की धारा 31 की उप-धारा (2) का पहला परंतुक प्राधिकरण और उस तरीके को निर्दिष्ट करता है जिसमें परिवीक्षा अवधि की समाप्ति के दौरान या उसकी समाप्ति पर निष्कासन का आदेश पारित किया जाना है। परंतुक में तीन खंड हैं (ए), (बी) और (सी)। खंड (ए) उस अधिकार और तरीके को निर्दिष्ट करता है जिसके तहत परिवीक्षा अवधि के दौरान या समाप्ति पर विश्वविद्यालय के एक शिक्षक की सेवाएं समाप्त की जा सकती हैं। खंड (बी) उस प्राधिकारी को निर्दिष्ट करता है जो किसी संबद्ध या सहयुक्त कॉलेज के प्रधानाचार्य की सेवाओं को समाप्त कर सकता है, जबकि खंड (सी) न केवल उस प्राधिकार को निर्दिष्ट करता है जो किसी संबद्ध या सहयुक्त कॉलेज के प्रधानाचार्य के अलावा किसी अन्य शिक्षक की सेवाओं को समाप्त कर सकता है, बल्कि यह सुझाव भी देता है कि प्रधानाचार्य की रिपोर्ट पर विचार करने के अलावा प्रबंधन द्वारा निष्कासन का ऐसा कोई आदेश नहीं दिया जाएगा और जब तक कि ऐसा शिक्षक विषय का सबसे वरिष्ठ शिक्षक न हो और विषय का सबसे वरिष्ठ शिक्षक भी न हो।

23. धारा 31 की उप-धारा (2) का दूसरा परंतुक यह कहते हुए निष्कासन की शक्ति के प्रयोग के लिए एक शर्त प्रदान करता है कि निष्कासन का ऐसा कोई आदेश तब तक पारित नहीं किया जाएगा जब तक कि संबंधित शिक्षक को नोटिस देकर उन आधारों के संबंध में स्पष्टीकरण का अवसर न दिया जाए जिन पर उसकी सेवाएं समाप्त करने का प्रस्ताव है।

24. तीसरा परंतुक स्पष्ट करता है कि जब भी दूसरे परंतुक के अनुसार कोई नोटिस परिवीक्षा की अवधि की समाप्ति या परिवीक्षा की विस्तारित अवधि से पहले दिया जाता है, तो परिवीक्षा की अवधि पहले परंतुक के खंड (ए) के अनुसार कार्यकारी परिषद के अंतिम आदेश तक बढ़ाई जाएगी या जैसा भी मामला हो, जब तक कि धारा 35 के तहत कुलपति की मंजूरी संबंधित शिक्षक को सूचित नहीं कर दी जाती।

25. उपरोक्त प्रावधानों का एक सामान्य निर्माण यह प्रकट करेगा कि उपधारा (2) के पहले परंतुक का खंड (ए) विश्वविद्यालय के एक शिक्षक से संबंधित है जिसके अनुसार ऐसे शिक्षक की सेवा समाप्ति का कोई भी आदेश, कुलपति की रिपोर्ट पर विचार करने के बाद बनाए गए कार्यकारी परिषद के आदेश के अलावा अवधि के दौरान या अवधि के समापन पर, पारित नहीं किया जा सकता है, जब तक कि शिक्षक स्वयं विभाग का प्रमुख, संबंधित विभाग का प्रमुख न हो। इसका तात्पर्य यह है कि विभागाध्यक्ष के अलावा विश्वविद्यालय के किसी भी शिक्षक की परिवीक्षा अवधि के दौरान या अवधि के समापन पर कुलपति और संबंधित विभाग के प्रमुख के रिपोर्ट पर विचार करने के बाद कार्यकारी परिषद के आदेश द्वारा सेवा समाप्त की जा सकती है। जबकि ऐसे शिक्षक जो स्वयं विभागाध्यक्ष हैं, की सेवा कुलपति की रिपोर्ट पर विचार के बाद बने कार्यकारी परिषद के आदेश से समाप्त की जा सकती है। पहले परंतुक के खंड (बी) और (सी) को स्पष्ट रूप से पढ़ने पर हम देखेंगे कि चाहे वह प्रधानाचार्य का मामला हो या किसी संबद्ध या सहयुक्त कॉलेज के किसी अन्य शिक्षक का, प्रबंधन के आदेश से परिवीक्षा अवधि के दौरान या अवधि के समापन पर सेवाएं समाप्त की जा सकती हैं। दो खंडों (यानी (बी) और (सी)) के बीच

एकमात्र अंतर यह है कि जब यह किसी संबद्ध या सहयुक्त कॉलेज के प्रधानाचार्य के अलावा किसी अन्य शिक्षक की बर्खास्तगी से संबंधित है, तो प्रबंधन का आदेश प्रधानाचार्य की रिपोर्ट पर विचार करने के बाद और यदि संबंधित शिक्षक विषय का वरिष्ठतम शिक्षक नहीं है, तो भी विषय के वरिष्ठतम शिक्षक की रिपोर्ट होनी चाहिए। दूसरे परंतुक में प्रावधान है कि निष्कासन का ऐसा कोई आदेश तब तक पारित नहीं किया जाएगा जब तक कि संबंधित शिक्षक को उन आधारों के संबंध में स्पष्टीकरण का अवसर न दिया जाए, जिन आधारों पर उसकी सेवाएं समाप्त करने का प्रस्ताव है। तीसरा परंतुक स्पष्ट करता है कि यदि दूसरे परंतुक के अनुसार कोई नोटिस परिवीक्षा अवधि की समाप्ति या परिवीक्षा की विस्तारित अवधि, जैसा भी मामला हो, से पहले दिया जाता है, तो परिवीक्षा की अवधि खंड (ए) के तहत कार्यकारी परिषद द्वारा अंतिम आदेश पारित होने तक या, जैसा भी मामला हो, तब तक बढ़ाई जाएगी, जब तक कि धारा 35 के तहत कुलपति की मंजूरी संबंधित शिक्षक को सूचित नहीं कर दी जाती। तीसरे परंतुक में "*जैसा भी मामला हो*" वाक्यांश का उपयोग यह दर्शित करने के लिए है कि जहां दूसरे प्रावधान के खंड (बी) में विचार के अनुसार नोटिस किसी संबद्ध या सहयुक्त कॉलेज के शिक्षक को दिया जाता है, परिवीक्षा की अवधि धारा 35 के तहत कुलपति की मंजूरी संबंधित शिक्षक को सूचित होने तक विस्तारित रहेगी। कोई भी अन्य व्याख्या "*धारा 35 के अंतर्गत कुलपति के अनुमोदन तक*" वाक्यांश को प्रस्तुत करेगी क्योंकि अधिनियम, 1973 की धारा 35 केवल सरकार या स्थानीय प्राधिकरण द्वारा संचालित कॉलेजों के अलावा अन्य संबद्ध या सहयुक्त कॉलेजों के शिक्षकों की सेवा की शर्तों से संबंधित है।

26. इस स्तर पर हम ध्यान दे सकते हैं कि अधिनियम, 1973 की धारा 31 की उप-धारा (2) के दूसरे और तीसरे परंतुक को उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 5 वर्ष 1977 द्वारा जोड़ा गया है। प्रारंभिक नोट में - वस्तुओं और कारणों का विवरण इस प्रकार दिया गया है:-

> "उत्तर प्रदेश राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 1973 के प्रावधानों के क्रियान्वयन में आने वाली कतिपय कठिनाइयों को दूर करने की दृष्टि से उपरोक्त अधिनियम में अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित संशोधन करना समीचीन समझा गया है-
>
> (1) ....
>
> (2) यह प्रावधान किया गया है कि जहां परिवीक्षा पर किसी शिक्षक की सेवाएं समाप्त की जानी हैं, उसे उन आधारों के संबंध में स्पष्टीकरण का अवसर दिया जाना चाहिए जिन पर ऐसी कार्रवाई प्रस्तावित है
>
> (3) ....
>
> (4) ....
>
> (5) कुलपति को विश्वविद्यालय के शिक्षक को बहाल करने और वेतन की राशि का भुगतान करने के लिए प्रबंधन को निर्देश देने का

अधिकार दिया गया है, यदि उसे निष्कासित करने या हटाने या उसकी सेवाएं समाप्त करने का प्रबंधन का निर्णय कुलपति द्वारा अनुमोदित नहीं है। ऐसा आदेश सिविल न्यायालय के डिक्री की तरह निष्पादन योग्य होगा और वेतन की राशि भू-राजस्व के बकाया के रूप में वसूली योग्य होगी।"

इस प्रकार, उ.प्र. राज्य विश्वविद्यालय अधिनियम, 1973 की उपधारा (2) में दूसरा और तीसरा परन्तुक जोड़ने से विधायिका ने परिवीक्षा पर एक शिक्षक की मनमाने ढंग से सेवा समाप्ति को नियंत्रित करने के अपने इरादे को स्पष्ट रूप से प्रदर्शित किया है।

27. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क कि दूसरा और तीसरा परंतुक केवल संबद्ध या सहयुक्त कॉलेज के शिक्षक से संबंधित होगा, न कि उसके प्रधानाचार्य से, इस कारण से स्वीकार्य नहीं है कि अधिनियम, 1973 की धारा 2(19) के अनुसार एक शिक्षक में एक संबद्ध या सहयुक्त कॉलेज का प्रधानाचार्य शामिल होता है। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार चूंकि दूसरा और तीसरा परंतुक खंड (सी) के नीचे रखा गया है, इसलिए वे केवल प्रधानाचार्य के अलावा किसी अन्य शिक्षक के संदर्भ में ही लागू होंगे, यह स्वीकार्य नहीं है क्योंकि पहला परंतुक तीन अलग-अलग स्थितियों से संबंधित है जैसा कि खंड (ए), (बी) और (सी) में निर्दिष्ट है। खंड (ए) विश्वविद्यालय के एक शिक्षक के मामले से संबंधित है; खंड (बी) विश्वविद्यालय के किसी संबद्ध या सहयुक्त कॉलेज के प्रधानाचार्य के मामले से संबंधित है; और खंड (सी) विश्वविद्यालय के किसी संबद्ध या सहयुक्त कॉलेज के किसी अन्य शिक्षक के मामले से संबंधित है। खण्ड (बी) में प्रधानाचार्य और खण्ड (ग) में किसी अन्य शिक्षक को रखने की आवश्यकता इस तथ्य से स्पष्ट है कि जहां तक अध्यापक का संदर्भ है तो उसके निष्कासन से पूर्व प्रधानाचार्य की रिपोर्ट पर विचार किया जा सकता है और यदि शिक्षक विषय का वरिष्ठतम शिक्षक न हो, तो भी विषय का वरिष्ठतम शिक्षक है। प्रधानाचार्य के मामले में ऐसा विचार नहीं किया जा सकता क्योंकि अध्यापकों के पदानुक्रम में प्रधानाचार्य सर्वोच्च होता है। अतः पहले परंतुक के खंड (बी) में प्रधानाचार्य और खंड (सी) में शिक्षक को रखकर, दूसरे और तीसरे प्रावधान में 'अध्यापक' शब्द का प्रयोग प्रधानाचार्य को उपरोक्त दो प्रावधानों के संरक्षण से वंचित करने का विधायी आशय व्यक्त नहीं करता है। इसलिए, हम अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता के इस तर्क में कोई मेरिट नहीं पाते हैं कि उप-धारा (2) का दूसरा और तीसरा परंतुक किसी संबद्ध या सहयुक्त कॉलेज के प्रधानाचार्य के मामले में लागू नहीं होगा, विशेषकर जब 1973 अधिनियम की धारा 2 (19) के प्रावधानों के अनुसार, 'अध्यापक' में एक प्रधानाचार्य शामिल होता है।

28. अब हम इस मुद्दे पर विचार करेंगे कि क्या निष्कासन के आदेश को प्रभावी करने के लिए कुलपति की पूर्व मंजूरी आवश्यक है, भले ही निष्कासन सामान्य रूप से हो। धारा 35 की उप-धारा (2) में प्रावधान है कि किसी शिक्षक को बर्खास्त करने या हटाने या उसे रैंक में कम करने या किसी भी मामले में उसे दंडित करने के लिए

विशेष रूप से राज्य सरकार द्वारा संचालित कॉलेज के अलावा किसी संबद्ध या सहयुक्त कॉलेज के प्रबंधन का हर निर्णय अन्य तरीके से उसे सूचित करने से पहले, कुलपति को सूचित किया जाएगा और तब तक प्रभावी नहीं होगा जब तक कि इसे कुलपति द्वारा अनुमोदित नहीं किया जाता है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 30 के खंड (1) में उल्लिखित अल्पसंख्यक द्वारा स्थापित और प्रशासित कॉलेजों के मामले में पूर्व अनुमोदन की आवश्यकता नहीं है। धारा 35 की उप-धारा (3) में प्रावधान है कि उप-धारा (2) के प्रावधान शिक्षक की सेवाओं को समाप्त करने के किसी भी निर्णय पर भी लागू होंगे, चाहे सजा के माध्यम से या अन्यथा के, लेकिन यह उस अवधि की समाप्ति पर किसी भी निष्कासन पर लागू नहीं होगा जिसके लिए शिक्षक नियुक्त किया गया था। इससे जुड़े परंतुक में कहा गया है कि उप-धारा (3) के प्रावधान भारत के संविधान के अनुच्छेद 30 के खंड (1) में निर्दिष्ट अल्पसंख्यक द्वारा स्थापित और प्रशासित कॉलेजों के मामले में लागू नहीं होंगे।

29. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता का तर्क यह है कि मौजूदा मामले में सेवाओं से निष्कासन का आदेश गैर दंडात्मक है और पारित किया गया है जबकि पदधारी परिवीक्षा पर था, इसलिए धारा 35 की उपधारा (2) के प्रावधान आकर्षित नहीं होंगे और जहां तक उप-धारा (3) के प्रावधानों का संबंध है, वे केवल उस मामले पर लागू होंगे जहां सेवाओं का निष्कासन सजा के माध्यम से होती है क्योंकि *'या अन्यथा'* वाक्यांश को सजा शब्द के लिए पूर्ववर्ती' पढ़ा जाना चाहिए। उनके अनुसार, अधिनियम, 1973 की धारा 31 में परिवीक्षा अवधि के दौरान या अवधि की समाप्ति पर दो प्रकार की निष्कासन की परिकल्पना की गई है। जैसा कि धारा 31 की उप-धारा (2) के दूसरे परंतुक द्वारा विचार किया गया है, पहला सामान्य निष्कासन है जहां कोई आधार निर्दिष्ट करने की आवश्यकता नहीं है और दूसरा कुछ निश्चित आधारों पर निष्कासन है जिसमें शिक्षक को स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने का अवसर देने के लिए एक नोटिस की आवश्यकता होती है। उपरोक्त प्रस्तुतीकरण का समर्थन करने के लिए, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने कई निर्णय प्रस्तुत किया है, जिसमें कानून तय किया गया है कि किसी परिवीक्षाधीन व्यक्ति की सेवाओं की समाप्ति का आधार निर्दिष्ट किए बिना और उसे सुनवाई का अवसर प्रदान किए बिना समाप्त की जा सकती हैं यदि वह नौकरी के लिए उपयुक्त नहीं पाया जाता है और सुनवाई का अवसर केवल तभी दिया जाना चाहिए जब निष्कासन दंडात्मक हो।

30. ऊपर दिए गए कानूनी प्रस्ताव पर कोई विवाद नहीं हो सकता है लेकिन सामान्य कानूनी सिद्धांत हमेशा वैधानिक प्रावधानों और सेवा शर्तों को नियंत्रित करने वाले लागू नियमों के अधीन होते हैं। वर्तमान मामले में, हमने अधिनियम, 1973 की धारा 31 की उपधारा (2) में दूसरे और तीसरे परंतुकों को शामिल करने में विधायी आशय देखा है, जो विश्वविद्यालय के संबद्ध या सहयुक्त कॉलेजों के प्रबंधन द्वारा उनकी सेवाओं की मनमाने ढंग से निष्कासन के विरूद्ध अध्यापकों का संरक्षण करना है। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए अधिनियम, 1973 की धारा 31 में दूसरा और तीसरा परंतुक शामिल किया गया था, ताकि दूसरे परंतुक के तहत यह प्रावधान किया जा सके कि बर्खास्तगी का कोई आदेश तब

तक पारित नहीं किया जा सकता जब तक कि संबंधित शिक्षक को नोटिस न दिया जाए और उसे उन आधारों के संबंध में स्पष्टीकरण का अवसर दिया जाए जिन पर उसकी सेवाएं समाप्त करने का प्रस्ताव है, और तीसरे परंतुक के तहत, यह जोड़ा गया है कि यदि परिवीक्षा अवधि की समाप्ति या परिवीक्षा की विस्तारित अवधि, जैसा भी मामला हो, की समाप्ति से पहले कोई नोटिस दिया जाता है, तो परिवीक्षा की अवधि तब तक बढ़ाई जाएगी जब तक कि धारा 35 के तहत कुलपति की मंजूरी संबंधित शिक्षक को सूचित नहीं कर दी जाती है। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि "*दंड के माध्यम से या अन्यथा*" वाक्यांश का उपयोग करके धारा 35 (3) सामान्य और साथ ही दंडात्मक निष्कासन से संबंधित है।

31. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क कि उपधारा (3) में प्रयुक्त वाक्यांश 'या अन्यथा' को 'सजा' शब्द के साथ *पूर्ववर्ती* पढ़ना होगा, स्वीकार्य नहीं है। कारण इस प्रकार हैं:

32. लैटिन अभिव्यक्ति एजुस्डेम जेनेरिस निर्माण का एक सिद्धांत है जिसके तहत जब वैधानिक संदर्भ में सामान्य शब्दों को प्रतिबंधित शब्दों से जोड़ा जाता है, तो सामान्य शब्दों के अर्थ को प्रतिबंधित शब्दों के अर्थ के साथ निहितार्थ द्वारा प्रतिबंधित माना जाता है। यह एजुस्डेम जेनेरिस सिद्धांत नोस्किटुर ए सोसाईस के सिद्धांत का एक पहलू है। लैटिन शब्द 'सोशियस' का अर्थ है 'समाज'। इसलिए, जब सामान्य शब्दों को विशिष्ट शब्दों के साथ जोड़ा जाता है, तो सामान्य शब्दों को अलग करके नहीं पढ़ा जा सकता है। उनका रंग और उनकी सामग्री उनके संदर्भ से ली जानी चाहिए। ***अमर चंद्र चक्रवर्ती बनाम कलेक्टर ऑफ एक्साइज, 1972 (2) एससीसी 442,*** मामले में प्रस्तर 9 में, इसे इस प्रकार अवधारित किया गया था:-

> "एजुस्डेम जेनेरिस नियम विशिष्ट और सामान्य शब्दों के बीच असंगति को सुलझाने का प्रयास करता है। यह सिद्धांत तब लागू होता है जब (i) क़ानून में विशिष्ट शब्दों की गणना होती है; (ii) गणना के विषय, एक वर्ग या श्रेणी का गठन करते हैं; (iii) वह वर्ग या श्रेणी गणना से समाप्त नहीं होती है; (iv) सामान्य शब्द गणना का अनुसरण करता है और (v) किसी भिन्न विधायी आशय का कोई संकेत नहीं है।"

33. महाराष्ट्र यूनिवर्सिटी ऑफ हेल्थ साइंसेज और अन्य बनाम सत्चिकित्सा प्रसारक मंडल और अन्य, 2010 (3) एससीसी 786 माम में, सर्वोच्च न्यायालय को यह तय करना था कि क्या गैर-अनुमोदित शिक्षकों के संबंध में भी महाराष्ट्र स्वास्थ्य विज्ञान विश्वविद्यालय अधिनियम, 1998 की धारा 53 के तहत गठित शिकायत समिति के पास शिकायत पर विचार करने और उक्त अधिनियम की धारा 53 के तहत प्रदत्त वैधानिक विचार करने का अधिकार क्षेत्र होगा। उक्त अधिनियम की धारा 53 निम्नानुसार प्रावधानित किया गया है:

> "53. (1) विश्वविद्यालय, महाविद्यालयों, संस्थानों और मान्यता प्राप्त संस्थानों के

शिक्षकों और अन्य कर्मचारियों की शिकायतों पर विचार करने के लिए और जहां तक संभव हो छह महीने के भीतर शिकायतों को सुनने और निस्तारण के लिए विश्वविद्यालय में एक शिकायत समिति होगी, और समिति प्रबंधन परिषद को एक रिपोर्ट देगी।

(2) शिकायत समिति के लिए शिकायतों या शिकायतों पर विचार करना और प्रबंधन परिषद को ऐसी कार्रवाई करने के लिए रिपोर्ट करना वैध होगा जो वह उचित समझे और ऐसी रिपोर्ट पर प्रबंधन परिषद के निर्णय अंतिम होंगे।

(3) शिकायत समिति में निम्नलिखित सदस्य शामिल होंगे, अर्थात्:

(क) प्रति-कुलपति, - अध्यक्ष

(ख) प्रबंधन परिषद द्वारा अपने प्रबंधन परिषद से नामित चार सदस्य - सदस्य

(ग) निबन्धक - सदस्य सचिव

(4) निबन्धक को वोट देने का अधिकार नहीं होगा।"

धारा 53 के प्रावधान इस प्रकार एक सक्षम प्रावधान थे जिसमें विश्वविद्यालय में शिकायत समिति को विश्वविद्यालय, कॉलेजों और मान्यता प्राप्त संस्थानों के शिक्षकों और अन्य कर्मचारियों की शिकायतों से निपटने के लिए सशक्त बनाया गया था। उपर्युक्त अधिनियम की धारा 2 (35) में परिभाषित शिक्षक की परिभाषा खंड की व्याख्या उपरोक्त मामले में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विचार का विषय थी, जहां शिक्षकों को निम्नानुसार परिभाषित किया गया था: -

"17. उक्त अधिनियम की धारा 2(35) निम्नानुसार है:-

"2(35) "शिक्षक" का अर्थ होता है पूर्णकालिक अनुमोदित प्रदर्शक, ट्यूटर, सहायक व्याख्याता, व्याख्याता, पाठक, सहायक प्रोफेसर, प्रोफेसर और अन्य व्यक्ति जो विश्वविद्यालय में संबद्ध कॉलेजों या अनुमोदित संस्थानों में पूर्णकालिक आधार पर पढ़ाते या निर्देश देते हैं;"

उच्च न्यायालय ने एजुस्डेम जेनेरिस के सिद्धांत का पालन करते हुए उपरोक्त दो धारा की व्याख्या करते हुए यह अवधारित किया कि गैर-अनुमोदित शिक्षक शिकायत समिति के अधिकार क्षेत्र का उपयोग करने के हकदार नहीं होंगे।

उपरोक्त दृष्टिकोण को खारिज करते हुए, प्रस्तर 21 में, सर्वोच्च न्यायालय ने अवधारित किया कि: -

"19. जैसा कि ऊपर उद्धृत किया गया है, यदि शिक्षकों की परिभाषा का ठीक से अध्ययन

किया जाए, तो ऐसा प्रतीत होगा कि शिक्षकों की परिभाषा में न केवल पूर्णकालिक अनुमोदित प्रदर्शक, शिक्षक, सहायक व्याख्याता आदि शामिल हैं, बल्कि परिभाषा इतनी व्यापक है कि "विश्वविद्यालय में संबद्ध कॉलेजों या अनुमोदित संस्थानों में पूर्णकालिक आधार पर पढ़ाने या निर्देश देने वाले अन्य व्यक्ति भी शामिल हैं।" इसी प्रकार, उक्त अधिनियम की धारा 53 के तहत गठित शिकायत समिति को न केवल शिक्षकों बल्कि विश्वविद्यालय, कॉलेज, संस्थान के अन्य कर्मचारियों की शिकायतों पर विचार करने और उनकी शिकायतों को यथासंभव एक निश्चित समय-सीमा के भीतर निस्तारण करने की व्यापक शक्तियाँ दी गई हैं। उक्त अधिनियम की धारा 53 की उपधारा (2) परिणामी कदमों का प्रावधान करती है जो शिकायत समिति धारा 53(1) में नामित व्यक्तियों की श्रेणी की शिकायतों पर विचार करने के बाद उठा सकती है। धारा 53(3) शिकायत समिति के गठन का प्रावधान करती है और धारा 53(4) प्रकृति में प्रक्रियात्मक है।"

34. उपरोक्त के अनुसार, सर्वोच्च न्यायालय के पास एजुस्डेम जेनेरिस के सिद्धांत की प्रयोज्यता पर विचार करने का अवसर था। ***अमर चंद्र चक्रवर्ती (उपरोक्त)*** मामले में सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ के निर्णय के बाद, निर्णय के प्रस्तर 33 में इसे इस प्रकार अवधारित किया गया:-

> ".........जहां इसका विपरीत वैधानिक संकेत है, धारा 2(35) के तहत शिक्षक की परिभाषा को एजुस्डेम जेनेरिस के आधार पर नहीं पढ़ा जा सकता है और न ही परिभाषा को केवल अनुमोदित शिक्षकों तक ही सीमित किया जा सकता है। यदि ऐसा किया जाता है, तो धारा 2(35) के तहत परिभाषा का एक बड़ा हिस्सा निरर्थक हो जाएगा। यह एजुस्डेम जेनेरिस के सिद्धांत के मूल सार के विरुद्ध है। इस सिद्धांत का उद्देश्य विशिष्ट और सामान्य शब्दों के बीच किसी भी असंगतता को सुलझाना है ताकि किसी क़ानून के सभी शब्दों को प्रभावी बनाया जा सके और कोई भी शब्द अनावश्यक न हो"

35. श्रीमती लीलावती बाई बनाम बॉम्बे राज्य, एआईआर 1957 एससी 521 में सर्वोच्च न्यायालय की एक संवैधानिक पीठ ने *'या अन्यथा'* शब्दों की व्याख्या करने के लिए एजुस्डेम जेनेरिस के नियम को खारिज करते हुए निम्नानुसार अवधारित किया और कहा:-

> "एजुस्डेम जेनेरिस के नियम को लागू करने का आशय जहां

> निर्माण के सुस्थापित नियम पर समान प्रकृति के विशेष और विशिष्ट शब्दों के बाद सामान्य शब्दों का उपयोग किया गया है, जिसे विधायिका ने सामान्य शब्दों को प्रतिबंधित अर्थ में प्रयोग करने के लिए माना है; कहने का तात्पर्य यह है कि विशेष और विशिष्ट शब्द एक ही श्रेणी से संबंधित हैं। इस तरह का प्रतिबंधित अर्थ केवल सामान्य अर्थ के शब्दों को दिया जाना चाहिए जहां कानून की पूरी योजना के संदर्भ में इसकी आवश्यकता होती है। लेकिन जहां संदर्भ और अधिनियम के उद्देश्य और रिष्टि के लिए सामान्य आने वाले शब्दों से जुड़े ऐसे प्रतिबंधित अर्थ की आवश्यकता नहीं होती है, वहीं न्यायालयों का यह कर्तव्य बन जाता है कि वे उन शब्दों को उनका स्पष्ट और सामान्य अर्थ दें।"

36. इसी प्रकार, जागे राम और अन्य बनाम हरियाणा राज्य और अन्य, 1971 (1) एससीसी 671 में, भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 की धारा 17 की उप-धारा (2) के प्रावधानों की व्याख्या करते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने इस निर्णय के प्रस्तर 13में अवधारित किया कि:-

> "एजुस्डेम जेनेरिस नियम कानून का नियम नहीं है, बल्कि न्यायालयों को विधायिका के वास्तविक आशय का पता लगाने में सहायता करने के लिए निर्माण का एक नियम मात्र है। यदि कोई दिया गया प्रावधान साफ और स्पष्ट है और विधायी आशय स्पष्ट है, तो उस नियम की सहायता करने का कोई अवसर नहीं है।

37. उपरोक्त कानूनी सिद्धांतों को लागू करते हुए हमारा विचार है कि 1973 अधिनियम की धारा 31 की उप-धारा (2) में दूसरे और तीसरे प्रावधान को शामिल करने का विधायी आशय शिक्षकों को परिवीक्षा अवधि के दौरान या उसकी समाप्ति पर उनकी सेवाओं को मनमाने ढंग से समाप्ति के विरूद्ध सुरक्षा प्रदान करने के लिए स्पष्ट था। इसे ध्यान में रखते हुए "दंड के माध्यम से या अन्यथा" वाक्यांश का उपयोग करके विधायी आशय को और भी मजबूत किया गया है क्योंकि यह संकेत करता है कि अधिनियम, 1973 की धारा 35 की उप-धारा (3) निष्कासन पर लागू होगी चाहे वह दंडात्मक हो या सामान्य। ऐसी परिस्थितियों में "अन्यथा" शब्द को उसका सामान्य अर्थ देना होगा जो कि, अन्य तरीके से; अन्य परिस्थितियों में या भिन्न तरीके से; एक और तरीके से; अन्य मामलों में अलग-अलग हैं (पी. रमानाथ अय्यर एडवांस्ड लॉ लेक्सिकन संस्करण 4, खंड III, पृष्ठ 3443)।

38. एक बार, हम "या अन्यथा" शब्दों का सामान्य अर्थ बता देते हैं, तो स्थिति स्पष्ट हो जाएगी कि, धारा 35 की उपधारा (3) के आधार पर, अधिनियम, 1973 की धारा 35 की उपधारा (2) के प्रावधान यह किसी शिक्षक की सेवा

समाप्त करने के किसी भी निर्णय पर लागू होगा, चाहे वह दंड के माध्यम से हो या सामान्य तौर पर बर्खास्तगी के माध्यम से। इसलिए, हमें इस न्यायालय द्वारा लिए गए दृष्टिकोण से भिन्न दृष्टिकोण ***डॉ. ए.पी. श्रीवास्तव (उपरोक्त) और कमिटी ऑफ मैनेजमेन्ट महात्मा गांधी शांति स्मारक महाविद्यालय (उपरोक्त)*** मामले में अपनाने का कोई सही कारण नहीं मिलता है।

39. उपरोक्त चर्चा के आलोक में, हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि विश्वविद्यालय से सम्बद्ध या सहयुक्त कॉलेज के प्रबंधन का कॉलेज के प्राचार्य या शिक्षक की सेवा समाप्त करने का निर्णय, परिवीक्षा अवधि के दौरान या अवधि की समाप्ति पर तब तक प्रभावी नहीं होगा जब तक कि इसे कुलपति द्वारा अनुमोदित न किया गया हो। ऐसा अवधारित करने के बाद, जैसा कि हम वर्तमान मामले में पाते हैं कि प्रत्यर्थी संख्या 5 के निष्कासन की सूचना कुलपति की मंजूरी के बिना दी गई थी और यह प्रभावी नहीं हो सकती थी, इसलिए हमें कुलपति के आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई सही कारण नहीं मिलता है। अपील **खारिज** की जाती है।

(2023) 3 ILRA 82

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल वाद

दिनांक: लखनऊ 03.03.2023

माननीय न्यायमूर्ति रमेश सिन्हा

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी

के समक्ष

विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या- 49/2023

मिशन निदेशक/संयोजक कार्यकारी समिति, राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन मंडी भवन लखनऊ एवं अन्य, ...अपीलकर्ता

बनाम

डॉ. राम सुरेश राय एवं अन्य ...प्रतिपक्षी

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता: नीरव चित्रवंशी

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: अमरेंद्र नाथ त्रिपाठी, ए.एस.जी.आई., सी.एस.सी.

ए. विशेष कानून - इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियम, 1952-धारा VIII नियम 5- दावा- समान काम के लिए समान वेतन- B.A.M.S./B.U.M.S./B.H.M.S. (आयुष) डॉक्टर जो संविदा के आधार पर आयुष डॉक्टर के रूप में नियुक्त हैं- आयोजित, वे M.B.B.S. डॉक्टरों के समान मानदेय का दावा नहीं कर सकते- संविदा के आधार पर नियुक्त डॉक्टरों की कार्य स्थिति M.B.B.S. डॉक्टरों की स्थिति के समान नहीं है क्योंकि उनकी ड्यूटी छह घंटे प्रति दिन होती है, उन्हें कोई भौतिक चार्ज नहीं दिया जाता, उन्हें चिकित्सा कानूनी मामलों से निपटने और शव परीक्षण करने की आवश्यकता नहीं होती, उन्हें I.V. इंजेक्शन लगाने की आवश्यकता नहीं होती और वे केवल आयुर्वेदिक/यूनानी सर्जरी के अतिरिक्त कोई सर्जरी नहीं करते।

अपील स्वीकृत की गई। (E-6)

उद्धृत वाद सूची:

1. कुन्हयाम्मद ब
नाम केरल राज्य (2000) 6 SCC 359

2. एस्कॉर्ट्स लिमिटेड बनाम CCE (2004) 8 SCC 335
3. भावनगर विश्वविद्यालय बनाम पालिताना चीनी मिल (P) लिमिटेड (2003) 2 SCC 111
4. उत्तरी दिल्ली नगर निगम बनाम राम नरेश शर्मा (2021) SCC ऑनलाईन SC 540

5. संजय सिंह चौहान और अन्य बनाम उत्तराखंड राज्य और अन्य, रिट याचिका संख्या 484 / 2014
6. उत्तराखंड राज्य बनाम संजय सिंह चौहान SLP(C) संख्या 33645/2018
7. डॉ. ओम प्रकाश गुप्ता और अन्य बनाम यूपी राज्य, रिट ए संख्या-83666/2017 8. भारतीय दवाएं और फार्मा लिमिटेड बनाम श्रमिक (2007) 1 SCC 408

(माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी द्वारा दिया गया)

<u>सिविल प्रकीर्ण आवेदन संख्या- 2/ 2023 पर आदेश</u>

1. वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अनिल तिवारी के सहायक श्री नीरव चित्रवंशी, अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता, डॉ एलपी मिश्रा के साथ श्री अमरेंद्र नाथ त्रिपाठी, प्रतिवादी संख्या 1 से 28 के विद्वान अधिवक्ता, भारत के सहायक सॉलिसिटर जनरल श्री एसबी पांडे, भारत संघ की ओर से उपस्थित प्रतिवादी संख्या 29 तथा राज्य/प्रतिवादी संख्या- 30 के विद्वान स्थायी अधिवक्ता, श्री इंद्रजीत शुक्ला को सुना।

2. यह विशेष अपील प्रस्तुत करने में विलंब हेतु माफी के लिए एक आवेदन है।

3. आवेदन एक शपथपत्र के साथ संलग्न है, जिसमें विलंब के कारणों को स्पष्ट रूप से बताया गया है।

4. तदनुसार, आवेदन की अनुमति है। इस विशेष अपील को प्रस्तुत करने में यदि कोई विलंब हुआ तो उसे क्षमा किया जाता है।

<u>विशेष अपील के ज्ञापन पर आदेशः</u>

5. इलाहाबाद उच्च न्यायालय के नियमों के अध्याय viii नियम 5 के अंतर्गत वर्तमान विशेष अपील माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 12.12.2022 के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है, जिसमें सिविल विविध समीक्षा आवेदन संख्या- 187/2022 को अनुमति दी गई है एवं रिट ए संख्या- 23479/ 2019 में पारित निर्णय एवं आदेश दिनांक 20-10-2022 की समीक्षा करते हुए तथा रिट याचिका को खारिज करने हेतु एक और प्रार्थना की गई है-

6. उपरोक्त रिट याचिका प्रतिवादी संख्या 1 से 29 द्वारा इस विशेष अपील में प्रस्तुत की गई थी, जिसे याचिकाकर्ताओं के रूप में संदर्भित किया जाएगा। संक्षेप में कहा गया है, रिट याचिका में दिए गए तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता B-A-M-S-/B-U-M-S-/B-H-M-S- (आयुष) डॉक्टर हैं और वे अनुबंध के आधार पर राज्य भर में आयुष डॉक्टरों के रूप में लगे हुए हैं। याचिकाकर्ता उन्हें दिए जाने वाले मानदेय और एलोपैथिक डॉक्टरों को दिए जाने वाले मानदेय में अंतर से व्यथित हैं और उनका दावा है कि एमबीबीएस डॉक्टर और बीडीएस डॉक्टर आयुष डॉक्टरों से बेहतर नहीं हैं।

7. इससे पूर्व कुछ याचिकाकर्ताओं ने रिट याचिका संख्या 738 (एसध्बी)/ 2014 प्रस्तुत की थी, जिसे दिनांक 12.04.2017 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था। कुछ याचिकाकर्ताओं ने माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष विशेष अनुमति याचिकाएं प्रस्तुत कीं और माननीय उच्चतम न्यायालय ने याचिकाकर्ताओं को राज्य सरकार हेतु अभ्यावेदन देने की स्वतंत्रता के साथ याचिकाओं का निपटान किया। जब अभ्यावेदन पर कोई निर्णय नहीं लिया गया था, तब याचिकाकर्ता संख्या- 1 से 3 ने रिट याचिका

संख्या 22529/ 2018 (एसध्बी) प्रस्तुत की थी, जिसे दिनांक 08.08.2018 के आदेश द्वारा राज्य के श्रमिकों को प्रतिनिधित्व पर निर्णय लेने का निर्देश दिया गया था। इस प्रतिनिधित्व को राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन के मिशन निदेशक द्वारा पारित दिनांक 16.11.2018 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था।

8. कुछ याचिकाकर्ताओं ने रिट याचिका संख्या 5633 (एसध्एस)/ 2019 प्रस्तुत करके दिनांक 16.11.2018 के आदेश को चुनौती दी थी, जिसे 7 मार्च 2019 के आदेश द्वारा अनुमति दी गई थी और राज्य सरकार को मानदेय की समानता के बारे में याचिकाकर्ताओं के दावे पर निर्णय लेने का निर्देश जारी किया गया था। प्रमुख सचिव, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण द्वारा पारित 29 मार्च 2019 के एक आदेश द्वारा दावे को खारिज कर दिया गया था।

9. प्रमुख सचिव द्वारा पारित आदेश दिनांक 29 मार्च 2019 में कहा गया है कि उत्तर प्रदेश में राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन के अंतर्गत आयुष कार्यक्रम को मुख्यधारा में लाने के तहत आयुष चिकित्सकों की सेवाएं आपातकालीन सेवाओं के दायरे में नहीं आती हैं। उन्हें प्रतिदिन छह घंटे की ड्यूटी के आधार पर मानदेय है और यह प्रावधान है कि आयुष चिकित्सकों को कोई भौतिक प्रभार नहीं दिया जाएगा और उनके द्वारा कोई चिकित्साविधिक वाद नहीं चलाया जाएगा। एमबीबीएस महिला चिकित्सकों को पहली रेफरल इकाइयों के संचालन हेतु 24 घंटे आपातकालीन ड्यूटी सौंपी जाती है और जब और आपातकालीन चिकित्सा अधिकारी उपलब्ध नहीं होता है तो संविदा एमबीबीएस महिला चिकित्सकों को आपातकालीन चिकित्सा अधिकारी के रूप में तैनात किया जाता है। दिनांक 9 अक्टूबर 2015 के एक शासनादेश द्वारा यह प्रदान किया गया है कि आयुर्वेद और यूनानी चिकित्सक चिकित्साविधिक वाद, शव परीक्षा, आईवी इंजेक्शन और शुद्ध आयुर्वेदिक/ यूनानी सर्जरी जैसे क्षारसूत्र सर्जरी के अतिरिक्त अन्य सर्जरी नहीं करेंगे। आदेश में आगे कहा गया है कि राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन के अंतर्गत आयुष डॉक्टरों की नियुक्ति किसी भी कार्यक्रम/ योजना के अंतर्गत कार्यवाही के अभिलेख में भारत सरकार द्वारा स्वीकृत पदों के विरुद्ध की जाती है और ये नियुक्तियां राज्य के किसी भी नियमित स्वीकृत पदों के विरुद्ध नहीं की जाती हैं। इसके अतिरिक्त, उत्तर प्रदेश राज्य में अनुबंधित आयुष चिकित्सकों को दिया जाने वाला मानदेय संघ राज्य क्षेत्रों के 26 राज्यों के आयुष चिकित्सकों को दिए जा रहे मानदेय के समान अथवा उससे अधिक है। राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन द्वारा जारी निर्देशों एवं दिशा-निर्देशों के अनुसार संविदा आयुष चिकित्सकों की निर्धारित योग्यता, कार्य क्षेत्र एवं कर्तव्य संविदा एम.बी.बी.एस. चिकित्सकों के समान नहीं हैं अत: किसी भी आयुष चिकित्सक को एमबीबीएस चिकित्सकों के समान वेतन देना उचित नहीं होगा।

10. याचिकाकर्ताओं ने रिट याचिका संख्या 23479 (एसध्एस)/ 2019 प्रस्तुत करके उपरोक्त आदेश दिनांक 29 मार्च 2019 को चुनौती दी। रिट याचिका को माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा दिनांक 19 अक्टूबर 2022 के निर्णय एवं आदेश द्वारा अनुमति दी गई थी। माननीय एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका पर इस आधार पर निर्णय लिया किः

> *"वर्तमान याचिका प्रथम प्रतिवादी, प्रमुख सचिव, वित्त विभाग, सिविल सचिवालय, लखनऊ द्वारा पारित आदेश दिनांक*

28.02.2017 के विरुद्ध निर्देशित है, जिसके अंतर्गत, गतिशील/विशेष सुनिश्चित कैरियर प्रगति (संक्षेप में "एसएसीपी") के लाभ का दावा करने वाले प्रथम याचिकाकर्ता का प्रतिनिधित्व प्रांतीय चिकित्सा स्वास्थ्य सेवाओं (संक्षिप्त में "पीएमएचएस") के चिकित्सा अधिकारियों हेतु स्वीकार्य योजना को अस्वीकार कर दिया गया है। इसके अतिरिक्त, चिकित्सा अधिकारियों (आयुर्वेदिक) को एसएसीपी का लाभ उसी तिथि से देने का निर्देश देने की मांग की गई है, जिस तिथि से पीएमएचएस के चिकित्सा अधिकारियों को इसकी अनुमति दी गई है।

18. दोनों पक्षों के बीच के तथ्य विवादित नहीं हैं।

19. चिकित्सा अधिकारी पीएमएचएस चिकित्सा की एलोपैथी धारा का अभ्यास करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि चिकित्सा अधिकारियों ने केंद्र सरकार के अंतर्गत चिकित्सा अधिकारियों हेतु स्वीकार्य गतिशील एसीपी योजना के कार्यान्वयन के लिए राज्य सरकार को एक अभ्यावेदन दिया था। उनके अभ्यावेदन पर विचार करने के पश्चात राज्य सरकार ने दिनांक 14112014 के आदेश द्वारा समिति की सिफारिश पर एक योजना तैयार की। एसएसीपी में मुख्य रूप से यह प्रावधान है कि पीएमएचएस के चिकित्सा अधिकारी 4, 11, 17 और 24 वर्ष की संतोषजनक सेवा पूरी करने पर वेतन उन्नयन के हकदार होंगे। यह योजना दिनांक 01.12.2008 से लागू की गई थी।

31. दिए गए तथ्यों में मुद्दा समान कार्य हेतु समान वेतन से संबंधित नहीं है, किंतु किसी पद पर स्थिरता से निपटने हेतु कैरियर प्रोन्नति के लिए बनाई गई योजना से संबंधित है।

11- माननीय एकल न्यायाधीश ने यह कहते हुए निष्कर्ष निकाला कि-

“42. राज्य सरकार द्वारा अपने चिकित्सा अधिकारियों के लिए तैयार की गई गतिशील एसीपी को स्वीकार नहीं करने के लिए उचित है, इसके बजाय प्रशासनिक नीति के दायरे में आने वाली एसएसीपी योजना तैयार की गई है। किंतु प्रश्न यह है कि क्या ऐसी नीति प्रदान किए जाने पर चिकित्सा अधिकारियों द्वारा प्रचलित चिकित्सा की विभिन्न धाराओं के मध्य अंतर किया जा सकता है। बेशक, चिकित्सा अधिकारी, चिकित्सा की पद्धति (एलोपैथी अथवा पारंपरिक) के बावजूद रोगियों का इलाज करते हैं जो मुख्य अंतर्निहित समानता है। योग्यता, अध्ययन/ पाठ्यक्रम, कर्तव्य की प्रकृति, जिम्मेदारी आदि के संबंध में तुलना, जैसा कि 28 राज्य सरकार द्वारा चिकित्सा अधिकारियों के एक वर्ग को बनाने हेतु दबाव डाला जा रहा है अर्थात पीएचएमएस अन्य चिकित्सा अधिकारियों से बेहतर है, गलत और निराधार है क्योंकि यह एसएसीपी प्रदान करने से संबंधित है। जैसा कि पहले चर्चा

की गई एसीपी की अवधारणा के संबंध में चिकित्सा अधिकारियों (आयुर्वेदिक) और अन्य संकायों को योजना से बाहर रखने में प्रशासनिक नीति निरपवाद रूप से भेदभावपूर्ण है।

43. तदनुसार, रिट याचिका की अनुमति दी जाती है।

44. प्रमुख सचिव, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ द्वारा पारित प्रश्नगत आदेश दिनांक 29.03.2019 को रद्द किया जाता है। यह प्रावधान किया गया है कि दिनांक 14 नवंबर 2014 के शासनादेश द्वारा लागू विशेष एसीपी योजना (एसएसीपी), अन्य धाराओं के चिकित्सा अधिकारियों पर भी लागू होगी।"

12- चूंकि रिट याचिका आयुष चिकित्सकों को दिए गए मानदेय के साथ समानता का दावा करते हुए प्रस्तुत की गई थी और एसीपी लाभों का दावा नहीं किया गया था इसलिए याचिकाकर्ताओं ने स्वयं अपने पक्ष में पारित निर्णय की पुनरीक्षण हेतु एक प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया। पुनरीक्षण प्रार्थना पत्र को दिनांक 12.12.2022 के निर्णय एवं आदेश द्वारा अनुमति दी गई थी। यहां तक कि पुनरीक्षण प्रार्थना पत्र की अनुमति देते समय माननीय एकल न्यायाधीश ने धारित किया है किः

"18. उत्तराखंड उच्च न्यायालय ने रिट याचिका की अनुमति दी और कहा कि आयुष चिकित्सकों को एलोपैथिक चिकित्सकों के समान माना जाए और वे उसी मानदेय के हकदार हैं। उक्त निर्णय को माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष अपील (सिविल) संख्या 33645/ 2018 की विशेष अनुमति में चुनौती दी गई थी जिसे दिनांक 24.03.2022 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था। ***इसी मुद्दे को इस न्यायालय के समक्ष उठाया गया है जहां आयुष चिकित्सकों को एसीपी के लाभ से वंचित कर दिया गया है, जिसे प्रांतीय चिकित्सा सेवाओं के चिकित्सा अधिकारियों हेतु स्वीकार्य बनाया गया था, वहां भी राज्य सरकार ने आयुष और एलोपैथिक चिकित्सकों से चिकित्सा अधिकारियों (आयुर्वेदिक) के मध्य भेदभाव करने की कोशिश की थी।***

19- उपरोक्त चर्चाओं के दृष्टिगत, रिट याचिकाओं की अनुमति दी जाती है। प्रमुख सचिव, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ द्वारा पारित प्रश्नगत आदेश दिनांक 29.03.2019 को रद्द किया जाता है।

20- प्रतिवादीगण को निर्देश दिया जाता है कि वे आयुष चिकित्सा अधिकारियों के पद पर कार्यरत याचिकाकर्ताओं को एलोपैथिक चिकित्सा अधिकारियों और दंत चिकित्सा अधिकारियों को किए गए भुगतान के समान ही मानदेय का भुगतान करें और याचिकाकर्ताओं को बकाया मानदेय का भुगतान उस तिथि से किया जाए, जब वे एलोपैथिक चिकित्सा अधिकारियों एवं दंत चिकित्सा अधिकारियों को मानदेय के भुगतान में भेदभाव किया गया था।"

(बल दिया गया)

13. माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा पारित पूर्वोक्त निर्णय का विरोध करते हुए, वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अनिल तिवारी ने प्रस्तुत किया है

कि रिट याचिका में याचिकाकर्ताओं द्वारा उठाया गया मुद्दा आयुष डॉक्टरों को उस मानदेय के बराबर भुगतान था जो एमबीबीएस डॉक्टरों को दिया जाता है और सुनिश्चित कैरियर प्रगति का मुद्दा रिट याचिका में शामिल नहीं था क्योंकि याचिकाकर्ता अनुबंध के आधार पर काम कर रहे हैं और सुनिश्चित कैरियर प्रगति के अनुदान की योजना अनुबंध पर काम करने वाले व्यक्तियों पर लागू नहीं होती है। यद्यपि, विद्वान एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका के साथ-साथ पुनरीक्षण प्रार्थना पत्र का फैसला इस आधार पर किया है कि उनके सामने उठाया गया मुद्दा आयुष डॉक्टरों को एसीपी के लाभ से वंचित करना था।

14. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि इस न्यायालय की एक खंडपीठ द्वारा रिट याचिका संख्या 738 (S/B)/ 2018 और अन्य संबंधित रिट याचिकाओं को दिनांक 12 अप्रैल 2017, निर्णय एवं आदेश द्वारा खारिज करते हुये राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन के अंतर्गत आयुष डॉक्टरों को मानदेय के भुगतान के मुद्दे पर विधिवत रुप से विचार किया गया था। उपर्युक्त निर्णय को माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष एक विशेष अनुमति याचिका प्रस्तुत करके चुनौती दी गई थी और माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निष्कर्षों को रद्द किए बिना याचिकाकर्ता को मात्र अभ्यावेदन प्रस्तुत करने की अनुमति दी थी।

15. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ताओं को राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन नामक एक कार्यक्रम के अंतर्गत एक सोसायटी द्वारा अनुबंध के आधार पर नियुक्त किया गया है और उन्हें राज्य सरकार अथवा केंद्र सरकार के अंतर्गत किसी भी नियमित पद के विरुद्ध नियुक्त नहीं किया गया है। कार्यक्रम के अंतर्गत अनुबंध पर लगे व्यक्तियों को मानदेय भारत सरकार द्वारा अनुमोदित किया जाता है न कि राज्य सरकार द्वारा। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता एक अनुबंध के अंतर्गत कार्य कर रहे हैं और उन्हें अनुबंध के नियमों एवं शर्तों के अनुसार मानदेय का भुगतान किया जा रहा है जो उन पर बाध्यकारी हैं और जिन्हें उनके द्वारा उचित चुनौती नहीं दी गई है क्योंकि अनुबंध की शर्तों को भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत प्रस्तुत रिट याचिका में चुनौती नहीं दी जा सकती है।

16. इसके विपरीत, प्रतिवादी संख्या 1 से 28 (रिट याचिका में याचिकाकर्ता) की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता डॉ. एल.पी. मिश्रा ने प्रस्तुत किया है कि मात्र इस तथ्य से कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने याचिकाकर्ताओं को नया अभ्यावेदन प्रस्तुत करने की स्वतंत्रता दी थी, इसका तात्पर्य यह है कि रिट याचिका संख्या 738/ 2018 में इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश को रद्द कर दिया गया था तथा उपरोक्त रिट याचिका में पारित निर्णय में प्रस्तुत अभिलेखों से प्रभावित हुए बिना प्रतिनिधित्व पर नए सिरे से विचार किया जाना चाहिए था।

17. रिट याचिका संख्या 738 (S/B)/ 2018 और कई अन्य संबंधित रिट याचिकाओं में इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 12.04.2017 के निर्णय में इस न्यायालय ने निम्नानुसार धारित किया थाः

"19. चार्ट एवं विज्ञापन में दिखाए गए योग्यता और कर्तव्यों को ध्यान में रखते हुए हमारा विचार है कि आयुष डॉक्टरों का कार्य और योग्यता अन्य एमबीबीएस अथवा बीडीएस डॉक्टरों से भिन्न है। मात्र यह तथ्य कि वे अन्य डॉक्टरों के समान काम कर रहे थे समान कार्य हेतु समान वेतन के सिद्धांत को लागू करने के लिए पर्याप्त नहीं माना जा सकता है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 की सहायता से न्यायालय द्वारा कोई भी निर्देश वित्तीय एवं नीतिगत मामले से संबंधित राजकोष पर बोझ डालेगा और नीतिगत निर्णयों में हस्तक्षेप करेगा यद्यपि प्रश्नगत आदेश किसी भी विधि अथवा संवैधानिक दुर्बलता से ग्रस्त नहीं है और समान कार्य हेतु समान वेतन के सिद्धांत का पालन करते हुए नियुक्ति के लिए भिन्न पात्रता मानदंड वाले अन्य संवर्ग के अन्य कर्मचारियों के समान वेतन अथवा मानदेय अथवा अन्य आर्थिक लाभ के भुगतान हेतु याचिकाकर्ताओं की याचिका पर विचार करना संभव नहीं है।

33. इस विषय पर न्यायिक उदाहरणों के दृष्टिगत, हमारा विचार है कि याचिकाकर्ता प्रतिवादीगण को मानदेय का भुगतान करने हेतु मजबूर करने के लिए वैध अपेक्षा के सिद्धांत को लागू नहीं कर सकते हैं जो विभिन्न योग्यता एवं विभिन्न कर्तव्यों वाले अन्य डॉक्टरों को भुगतान किया जाता है।

34. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने (1989) 2 SCC 235 मेवा राम कनौजिया बनाम अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान और अन्य किंतु उद्धरण याचिकाकर्ताओं के पक्ष में नहीं है। उपर्युक्त वाद में यह कहा गया है कि समान वेतन के प्रयोजनों हेतु कार्य की समानता का निर्णय करते समय, न केवल कर्तव्यों और कार्यों को ध्यान में रखा जाना चाहिए, अपितु शैक्षिक योग्यता, गुणात्मक अंतर तथा संबंधित पदों हेतु निर्धारित जिम्मेदारी की प्रकृति का भी ध्यान रखा जाना चाहिए। यदि कर्तव्य और कार्य समान प्रकृति के हैं किंतु यदि दो पदों हेतु निर्धारित शैक्षणिक अर्हता भिन्न है और जिम्मेदारियों की प्रकृति में अंतर है तब समान कार्य हेतु समान वेतन का सिद्धांत लागू नहीं होगा। अर्हता और कर्तव्यों के आधार पर यह एक उचित वर्गीकरण है और यदि योग्यता का प्रशासन में दक्षता हासिल करने के उद्देश्य से उचित संबंध है तब राज्य द्वारा अलग अलग वेतनमान निर्धारित करना न्यायोचित होगा किंतु यदि वर्गीकरण उचित सम्बन्ध की कसौटी पर खरा नहीं उतरता है और वर्गीकरण अवास्तविक और अनुचित आधार पर स्थापित पाया जाता है तब यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का उल्लंघन होगा। इसी प्रकार (1989) 3 SCC 191 वी मार्कंडेय एवं अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य में, जिस पर याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने विश्वास व्यक्त किया है, इस आधार पर याचिकाकर्ताओं का पक्ष नहीं लेते है कि उद्धरण प्रदान करता है कि प्रश्न यह है

कि सेवा के किसी विशेष वर्ग को कौन सा मानक प्रदान किया जाना चाहिए यह कार्यपालिका पर छोड़ दिया जाना चाहिए और केवल जब समान लोगों के बीच भेदभाव किया जाता है तो न्यायालय को गलत को सुधारने और समान रूप से रखे गए कर्मचारियों के मध्य समानता सुनिश्चित करने हेतु हस्तक्षेप करना चाहिए। यद्यपि न्यायालय विभिन्न वर्ग के कर्मचारियों हेतु समान वेतनमान निर्धारित नहीं कर सकता है।"

18. याचिकाकर्ताओं ने विशेष अनुमति याचिका सिविल (संख्या) 26625/ 2017 प्रस्तुत करके दिनांक 12.04.2017 के उपरोक्त निर्णय को चुनौती दी थी तथा माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दिनांक 03.10.2017 को निम्नवत् आदेश द्वारा याचिका का निस्तारण किया गया : -

"विलंब क्षमा किया गया

याचिकाकर्ताओं की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि उच्च न्यायालय का मत है कि मानदेय बढ़ाने हेतु केंद्र सरकार से अनुमति की आवश्यकता है जो सही नहीं है। याचिकाकर्ताओं की नियुक्ति राज्य सरकार द्वारा की जाती है। यदि ऐसा है तो हम स्पष्ट करते हैं कि याचिकाकर्ता स्वतंत्र होगें कि वे अपने मानदेय में वृद्धि हेतु राज्य सरकार से संपर्क करें ऐसी स्थिति में राज्य सरकार अभ्यावेदन पर विचार करने हेतु स्वतंत्र होगी और प्रश्नगत निर्णय सरकार के उचित निर्णय लेने के रास्ते में नहीं आएगा।

उपर्युक्त टिप्पणी और निर्देशों सहित, विशेष अनुमति याचिकाओं का निस्तारण किया जाता है।"

19. पूर्वोक्त आदेश के अवलोकन से ज्ञात होता है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अपील की अनुमति दिए बिना और इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 12.04.2017 के निर्णय अथवा उसमें दर्ज निष्कर्षों को अपास्त किए बिना विशेष अनुमति याचिका का निस्तारण किया। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने मात्र याचिकाकर्ताओं को मानदेय बढ़ाने हेतु राज्य सरकार से संपर्क करने की स्वतंत्रता दी थी और इसे राज्य के लिए स्वतंत्र छोड़ दिया गया था ताकि वे दिनांक 12.04.2017 के निर्णय से प्रभावित हुए बिना प्रतिनिधित्व पर विचार कर सकें। मानदेय भुगतान में एम.बी.बी.एस. डॉक्टरों के साथ समानता के दावे का कोई पारित संदर्भ भी नहीं था, इस संबंध में किसी भी निष्कर्ष के बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता। अतः हमारा विचार है कि इस न्यायालय द्वारा दिनांक 12.04.2017 के निर्णय में दर्ज निष्कर्षों को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा छेड़ा नहीं गया है और इसे अंतिम रूप दिया गया है।

20. प्रतिवादीगण के विद्वान अधिवक्ता डॉ. एल. पी. मिश्रा ने प्रस्तुत किया है कि रिट याचिका संख्या 738/ 2015 एवं अन्य संबंधित रिट याचिकाओं में इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 12.04.2017 को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 3 अक्टूबर 2017 के आदेश में विलय कर दिया गया था। माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **कुन्हायमद बनाम केरल राज्य** (2000) 6 SCC 359 मामले में एसएलपी

की अस्वीकृति के साथ-साथ विलय के सिद्धांत को निम्नवत् शब्दों में संक्षेपित किया गया था: -

"44. संक्षेप में, निष्कर्ष हैं:

(I) जहां किसी न्यायालय, न्यायाधिकरण या किसी अन्य प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध उच्चतर मंच के समक्ष अपील अथवा पुनरीक्षण प्रदान किया जाता है और ऐसा उच्चतर मंच उसके समक्ष रखे गए निर्णय को संशोधित, उलट या पुष्टि करता है, तो अधीनस्थ मंच का निर्णय वरिष्ठ मंच के निर्णय में विलीन हो जाता है और यह बाद वाला है जो अस्तित्व में रहता है, क्रियाशील रहता है एवं विधि की दृष्टि में प्रवर्तन में सक्षम होता है।

(ii) संविधान के अनुच्छेद 136 द्वारा प्रदत्त अधिकारिता दो चरणों में विभाजित है। पहला चरण अपील दायर करने के लिए विशेष अनुमति के लिए प्रार्थना के निस्तारण तक है। दूसरा चरण तब शुरू होता है जब अपील की अनुमति दी जाती है और विशेष अनुमति याचिका को अपील में बदल दिया जाता है।

(iii) विलय का सिद्धांत सार्वभौमिक या असीमित अनुप्रयोग का सिद्धांत नहीं है। यह उच्चतर मंच द्वारा प्रयोग किए जाने वाले क्षेत्राधिकार की प्रकृति पर निर्भर करेगा और रखी गई या रखी जा सकने वाली चुनौती की विषय-वस्तु विलय की प्रयोज्यता का निर्धारक होगी। उच्चतर क्षेत्राधिकार को अपने समक्ष जारी किए गए आदेश को उलटने, संशोधित करने या पुष्टि करने में सक्षम होना चाहिए। ***संविधान के अनुच्छेद 136 के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय अपने अपीलीय क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुये अपील किए गए निर्णय, डिक्री अथवा आदेश को पलट सकता है, संशोधित कर सकता है अथवा पुष्टि कर सकता है, जबकि विवेकाधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुये अपील की विशेष अनुमति याचिका का निस्तारण नहीं कर सकता है। अतः विलय का सिद्धांत पूर्व पर लागू किया जा सकता है न कि बाद वाले पर।***

(iv) ***अपील करने हेतु विशेष अनुमति से इनकार करने वाला आदेश एक आख्यापक विहीन आदेश अथवा आख्यापक आदेश हो सकता है। किसी भी वाद में यह विलय के सिद्धांत को आकर्षित नहीं करता है।*** *अपील के लिए विशेष अनुमति से अस्वीकार करने वाला आदेश चुनौती के अंतर्गत आदेश के स्थान पर प्रतिस्थापित नहीं होता है। इसका तात्पर्य यह है कि न्यायालय अपने विवेक का प्रयोग करने हेतु इच्छुक नहीं था ताकि अपील प्रस्तुत करने की अनुमति दी जा सके।*

(v) यदि अपील करने की अनुमति से इनकार करने का आदेश एक आख्यापक आदेश है अर्थात छुट्टी देने से इनकार करने का कारण बताता है, तब आदेश के दो निहितार्थ हैं। सर्वप्रथम, आदेश में निहित विधि का बयान संविधान के अनुच्छेद 141 के अर्थ के भीतर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विधि की घोषणा है। दूसरा, विधि की घोषणा के अतिरिक्त, आदेश में जो कुछ भी कहा गया है, वह उच्चतम न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष हैं जो पक्षकारों और न्यायालय,

अधिकरण या प्राधिकारी को न्यायिक अनुशासन द्वारा उसके बाद की किसी कार्यवाही में बाध्य करेंगे, उच्चतम न्यायालय देश का सर्वोच्च न्यायालय है किंतु, इसका अर्थ यह नहीं है कि न्यायालय, न्यायाधिकरण या नीचे के प्राधिकारी का आदेश विशेष अनुमति याचिका को खारिज करने वाले उच्चतम न्यायालय के आदेश में विलय हो गया है अथवा यह कि उच्चतम न्यायालय का आदेश पक्षों के मध्य बाद की कार्यवाही में न्यायिक निर्णय के रूप में बाध्यकारी एकमात्र आदेश है।

(vi) एक बार जब अपील की अनुमति मंजूर कर ली जाती है और उच्चतम न्यायालय की अपीलीय अधिकारिता का उपयोग कर लिया जाता है तो अपील में पारित आदेश विलय के सिद्धांत को लागू करेगा, आदेश पलटने, संशोधन या मात्र प्रतिज्ञान का हो सकता है।

vii) अपील को प्राथमिकता दिए जाने अथवा अपील की अनुमति मांगने वाली याचिका को सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष अपील में परिवर्तित किए जाने पर, उसके पश्चात समीक्षा याचिका पर विचार करने का उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार समाप्त हो जाता है, जैसा कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 47 नियम 1 के उप-नियम (1) द्वारा प्रदान किया गया है।"

21. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा याचिकाकर्ताओं को अपील करने की अनुमति दिए बिना और उच्च न्यायालय के निष्कर्षों को अपास्त किए बिना और अपने स्वयं के किसी भी निष्कर्ष को दर्ज किए बिना विशेष अनुमति याचिका का निस्तारण करते हुए दिनांक 03.10.2017 को आदेश पारित किया गया था। हमारा विचार है कि **कुन्हायमद** (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा संक्षेपित विधि के आलोक में, इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 12.04.2017 को मालिक द्वारा पारित दिनांक 03.10.2017 के आदेश में विलय नहीं किया गया। अतः, इस न्यायालय द्वारा अपने पिछले निर्णय दिनांक 12.04.2017 में दर्ज निष्कर्ष पक्षकारों को बाध्य करते हैं और माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश का प्रभाव यह है कि राज्य सरकार याचिकाकर्ताओं को दिए जाने वाले मानदेय को बढ़ाने हेतु निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र है, यद्यपि यह याचिकाकर्ताओं को एमबीबीएस डॉक्टरों के साथ समानता देने के लिए बाध्य नहीं है।

22. माननीय एकल न्यायाधीश ने डॉ ओम प्रकाश गुप्ता एवं एक अन्य बनाम उ०प्र० राज्य और एक अन्य, रिट ए संख्या- 8366 / 2017 दिनांक 06/05/2022 के मामले में दिए गए निर्णय को बड़े पैमाने पर उद्धृत करके और विश्वास व्यक्त करते हुए रिट याचिका और पुनरीक्षण याचिका की अनुमति दी है, जो कि चिकित्सा अधिकारियों(आयुर्वेदिक) के पद पर कार्यरत अधिकारियों के लिए पुष्टि वर्ग द्वारा प्रस्तुत एक वाद था, जिसमें सरकार द्वारा पारित एक आदेश को चुनौती दी गई थी, जिसमें गतिशील / विशेष सुनिश्चित कैरियर प्रगति योजना का लाभ देने से इनकार कर दिया गया था, जिसे प्रांतीय चिकित्सा स्वास्थ्य सेवाओं के चिकित्सा अधिकारियों के लिए स्वीकार्य बनाया

गया था। संविदा आधार पर नियुक्त डॉक्टरों को मानदेय के भुगतान का मुद्दा उपरोक्त वाद में शामिल नहीं था।

23. यह स्थापित विधि है कि निर्णयों को संविधियों के रूप में नहीं पढ़ा जाना चाहिए और निर्णय के विनश्चयाधार को उस संदर्भ के साथ पढ़ा जाना चाहिए जिसमें वाद का निर्णय किया गया था।

24. **एस्कॉर्ट्स लिमिटेड बनाम सीसीई, (2004) 8 SCC 335 में,** माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारित किया है कि -

> *"**8.** न्यायालयों को इस बात पर चर्चा किए बिना निर्णयों पर निर्भरता नहीं रखनी चाहिए कि तथ्यात्मक स्थिति उस निर्णय की तथ्य स्थिति के साथ कैसे उपयुक्त है जिस पर निर्भरता की गई है। न्यायालयों की टिप्पणियों को न तो यूक्लिड के प्रमेयों के रूप में पढ़ा जाये और न ही किसी विधि के प्रावधानों के रूप में और वह भी उनके संदर्भ से बाहर ले जाया जाना चाहिए। इन टिप्पणियों को उस संदर्भ में पढ़ा जाना चाहिए जिसमें वे बताए गए प्रतीत होते हैं। न्यायालयों के निर्णयों को विधियों के रूप में नहीं माना जाना चाहिए।*
>
> *वाक्यांशों और उपबंधों की व्याख्या करने हेतु न्यायाधीशों के लिए यह आवश्यक हो सकता है कि वे लंबी चर्चा शुरू करें किंतु चर्चा व्याख्या करने के लिए होती है न कि परिभाषित करने हेतु। न्यायाधीश विधियों की व्याख्या करते हैं, वे निर्णयों की व्याख्या नहीं करते हैं। वे विधियों के शब्दों की व्याख्या करते हैं तथा उनके शब्दों की व्याख्या विधियों के रूप में नहीं की जानी चाहिए।*
>
> *लंदन ग्रेविंग डॉक कंपनी लिमिटेड बनाम हॉर्टन2 (एसी पृष्ठ 761 पर), लॉर्ड मैकडरमोट ने पाया: (सभी ईआर पृष्ठ 14 C-D)*
>
> *"नि:संदेह, इस मामले का निर्धारण मात्र विल्स, जे का शब्दश: अनुसरण करते हुये, मानो कि वे संसद के अधिनियम का भाग थे, एवं उन पर निर्वचन के समुचित नियमों का अनुप्रयोग कर नहीं किया जा सकता। यह सर्वाधिक प्रतिष्ठित न्यायाधीश द्वारा वास्तव में उपयोग की गई भाषा को दिए जाने वाले महत्व को कम करना नहीं है।*
>
> ***9.** होम ऑफिस बनाम डोरसेट यॉट कम्पनी.3 (सभी ईआर पृष्ठ 297g-h) में "लॉर्ड रीड ने कहा, लार्ड एटकिन का भाषण ... वैधानिक परिभाषा के रूप में नहीं माना जाना चाहिए। नई परिस्थितियों में इसके लिए योग्यता की आवश्यकता होगी।" शेफर्ड होम्स लिमिटेड बनाम सैंडहम (संख्या 2)4 में मेगरी, जे. ने देखा (सभी ईआर पी. 1274डी-ई) किसी को, निश्चित रूप से, यहां तक कि रसेल, एलजे के एक आरक्षित निर्णय को भी नहीं मानना चाहिए जैसे कि यह संसद का अधिनियम था;" और, हेरिंगटन बनाम ब्रिटिश रेलवे बोर्ड 5 (All ER p. 761c) में लॉर्ड मॉरिस ने कहा "भाषण या निर्णय के शब्दों को व्यवहार करने में हमेशा संकट होता है जैसे कि वे एक विधायी अधिनियमन में शब्द थे, और यह याद रखना चाहिए कि न्यायिक कथन किसी*

विशेष वाद के तथ्यों की परिस्थिति में किए जाते हैं।"

10. *परिस्थितिजन्य लचीलापन, एक अतिरिक्त या भिन्न तथ्य दो मामलों में निष्कर्षों के बीच ज़मीन-आसमान का अंतर ला सकता है। किसी निर्णय पर बिना देखे मामलों का निपटारा उचित नहीं है।"*

25. **भावनगर विश्वविद्यालय बनाम पालिताना शुगर मिल (प्रा०) लिमिटेड,** (2003) 2 SCC 111 मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारित किया है कि -

> *"59. एक निर्णय, जैसा कि सर्वविदित है, एक अधिकार है जिसके लिए इसका निर्णय लिया जाता है, न कि इससे तार्किक रूप से क्या निष्कर्ष निकाला जा सकता है। यह भी पूर्ण रुप से निर्धारित है कि तथ्यों या अतिरिक्त तथ्यों में थोड़ा अंतर किसी निर्णय के पूर्ववर्ती मूल्य में बहुत अंतर ला सकता है।"*

26. अतः हमारा विचार है कि आयुष डॉक्टरों और एमबीबीएस डॉक्टरों के मध्य मानदेय के भुगतान में समानता के दावे का फैसला करते समय डॉ. ओम प्रकाश गुप्ता के वाद, जो अनुबंध पर लगे डॉक्टरों को मानदेय के भुगतान के विषय से संबंधित नहीं है, का कोई प्रार्थना पत्र नहीं है।

27. प्रतिवादीगण के विद्वान अधिवक्ता ने ***उत्तरी दिल्ली नगर निगम बनाम राम नरेश शर्मा, 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 540*** के मामले में दिए गए निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया है, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारित किया था कि -

*"**23.** हमारे समक्ष अपीलकर्ताओं का सामान्य तर्क यह है कि विभिन्न श्रेणियों में सीएचएस के अंतर्गत आयुष डॉक्टरों और डॉक्टरों का वर्गीकरण विधि में उचित तथा स्वीकार्य है। यद्यपि यह हमारे लिए अपील नहीं करता है और हम अधिकरण और दिल्ली उच्च न्यायालय के निष्कर्षों से सहमत हैं कि वर्गीकरण भेदभावपूर्ण तथा अनुचित है क्योंकि **दोनों वर्गों के डॉक्टर अपने रोगियों के इलाज और उपचार का एक ही कार्य कर रहे हैं।** अंतर मात्र इतना है कि आयुष चिकित्सक आयुर्वेद, यूनानी आदि जैसी स्वदेशी चिकित्सा पद्धतियों का उपयोग कर रहे हैं और सीएचएस चिकित्सक अपने रोगियों की देखभाल हेतु एलोपैथी का उपयोग कर रहे हैं। हमारी समझ में, चीजों की प्रचलित योजना के अंतर्गत उपचार की विधि, एक सुगम अंतर के रूप में योग्य नहीं है। अतः, इस प्रकार का अनुचित वर्गीकरण और इसके आधार पर भेदभाव निश्चित रूप से संविधान के अनुच्छेद 14 के साथ असंगत होगा। आयुष मंत्रालय का दिनांक 24.11.2017 आदेश जिसमें सेवानिवृत्ति की आयु बढ़ाकर 65 वर्ष कर दी गई है, भी इसी दृष्टिकोण का समर्थन करता है। यह विस्तार स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय की दिनांक 31.05.2016 की अधिसूचना के अनुरूप है।*

आयुष एवं सीएचएस दोनों के अंतर्गत डॉक्टर रोगियों को सेवा प्रदान करते हैं और इस मुख्य पहलू पर, उन्हें अलग

करने हेतु कुछ भी नहीं है। *अतः डाक्टरों की इन दो श्रेणियों को अधिवर्षिता की बढ़ी हुई आयु का लाभ प्रदान करने हेतु अलग-अलग तिथियां निर्धारित करने का कोई औचित्य नहीं है। इसलिए, आयुष मंत्रालय का आदेश (F. No. D. 14019/4/2016-E-I (आयुष)) दिनांक 24.11.2017 को पूर्वव्यापी रूप से दिनांक 31.05.2016 से सभी संबंधित प्रतिवादी-डॉक्टरों पर वर्तमान अपीलों में लागू किया जाये। इस निष्कर्ष से सभी परिणामों का पालन किया जाये। उपरोक्त चर्चा के प्रकाश में, प्रतिवादी डॉक्टरों को उनके उचित वेतन और लाभों का भुगतान न करने में अपीलकर्ता के कार्यों जबकि सीएचएस प्रणाली में उनके समकक्षों को वेतन और लाभ पूर्ण रूप से प्राप्त हुए, को भेदभावपूर्ण माना जाना चाहिए। इसलिए, हमें यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि प्रतिवादी डॉक्टर अपने पूरे वेतन के हकदार हैं और आज से 8 सप्ताह के भीतर इसे वितरित करने का आदेश दिया जाता है। निर्धारित अवधि से अधिक विलंबित भुगतान पर इस आदेश की तिथि से भुगतान की तिथि तक 6% की दर से ब्याज लगेगा। तदनुसार, यह आदेश दिया जाता है। व्यय पर किसी भी आदेश के बिना उपरोक्त निबंधनों के अनुसार अपीलों का निस्तारण किया जाता है।"*

28. डॉ. मिश्रा ने **संजय सिंह चौहान और अन्य बनाम उत्तराखंड राज्य और अन्य,** रिट याचिका संख्या 484 (एस/बी) /2014 , दिनांक 03.04.2018 को दिए निर्णय पर भी विश्वास व्यक्त किया है, जिसमें उत्तराखंड के उच्च न्यायालय ने धारित किया था कि :-

"6. आयुर्वेदिक तथा होम्योपैथिक चिकित्सा अधिकारियों अर्थात एलोपैथिक एवं दंत चिकित्सा अधिकारियों को अलग करने के लिए कोई सुग्राह्य अंतर नहीं है। ***इस बात का कोई औचित्य नहीं है कि समान स्थिति वाले व्यक्तियों के साथ भेदभाव क्यों किया गया है। याचिकाकर्ताओं के साथ-साथ एलोपैथिक और दंत चिकित्सा अधिकारी समरूप वर्ग का गठन करते हैं।***

10. ***वर्तमान वाद में, याचिकाकर्ताओं अर्थात एलोपैथिक चिकित्सा अधिकारियों और दंत चिकित्सा अधिकारियों द्वारा उनमोचित किये गए कर्तव्य समान संवेदनशीलता और गुणवत्ता के हैं, यहां तक कि जिम्मेदारी और विश्वसनीयता भी समान है।*** राज्य सरकार द्वारा किया गया वर्गीकरण तर्कहीन है।"

29. **उत्तराखंड राज्य बनाम संजय सिंह चाैहान** एसएलपी (सी) संख्या 33645/2018 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह प्रदान करने की कृपा की थी कि: -

".. प्रतिवादीगण जो ***आयुर्वेदिक डॉक्टर हैं, वे राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (NRHM/NHM) योजना के अंतर्गत एलोपैथिक चिकित्सा अधिकारियों और दंत चिकित्सा अधिकारियों के समान हकदार होंगे।*** *आदेश पारित होने के पश्चात, याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने बयान दिया कि याचिकाकर्ता उच्च न्यायालय के समक्ष एक पुनरीक्षण याचिका प्रस्तुत करना*

चाहेंगे। इस प्रकार का कोई निर्देश जारी करना इस न्यायालय का कार्य नहीं है। याचिकाकर्ताओं के लिए यह हमेशा स्वतंत्र है कि वे ऐसे उपचार का अनुसरण करें जो विधि में उनके लिए उपलब्ध हो सकते हैं।

30- रिट-ए संख्या -8366/ 2017 **डॉ ओम प्रकाश गुप्ता एवं एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य** में, निम्नवत् यह माना है कि -

"यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि पश्चिमी चिकित्सा (एलोपैथी) हमारी वर्तमान स्वास्थ्य देखभाल पद्धति का अभिन्न अंग है, किंतु अन्य वैकल्पिक तथा पूरक स्वास्थ्य देखभाल पद्धतियां भी हैं जो लोगों के चयन हेतु उपलब्ध हैं। पश्चिमी चिकित्सा कभी-कभी नुकसान में होती है जब रोगियों को समग्र रूप से इलाज करने की बात आती है। विद्वान राज्य के अधिवक्ता का यह कहना कि चिकित्सा अधिकारी (आयुर्वेदिक) और चिकित्सा अधिकारी पीएमएचएस का वर्गीकरण एसएसीपी के प्रयोजनों हेतु उनकी योग्यता और कर्तव्यों की प्रकृति के दृष्टिगत उचित है किंतु विश्वसनीय नहीं है। वर्गीकरण भेदभावपूर्ण और अनुचित है क्योंकि दोनों वर्गों के चिकित्सा अधिकारी मुख्य रूप से एक ही कार्य कर रहे हैं अर्थात रोगियों का इलाज कर रहे हैं। अंतर यह है कि डॉक्टरों की एक शाखा अपने रोगियों के इलाज हेतु स्वदेशी चिकित्सा पद्धति तथा दूसरी एलोपैथी पद्धति का उपयोग कर रही है। उपचार का पद्धति, अपने आप में एक सुग्राहय अंतर के रूप में योग्य नहीं है। इसके मूल में मरीजों का इलाज है। आयुर्वेदिक तथा एलोपैथी दोनों चिकित्सा अधिकारी रोगियों को चिकित्सा सेवा प्रदान करते हैं तथा इस पहलू पर, उन्हें अलग करने हेतु कुछ भी नहीं है। रोगियों का उपचार विभिन्न पद्धतियों के चिकित्सा अधिकारियों हेतु सामान्य मुख्य कार्य है, अतः चिकित्सा अधिकारियों को कैरियर में प्रगति का लाभ देने हेतु अलग-अलग एसीपी योजना रखने का कोई तर्कसंगत औचित्य नहीं दिखता है। जैसा कि पहले चर्चा की गई है, एसीपी योजना गतिरोध से पीड़ित सरकारी कर्मचारी के लिए व्यक्तिगत है और वेतन उन्नयन किसी अन्य विचार अर्थात पद की स्थिति, योग्यता, कर्तव्य की प्रकृति अथवा वरिष्ठता पर निर्भर नहीं है। यह योजना विशुद्ध रूप से प्रतिपूरक है। इन परिस्थितियों में राज्य के चिकित्सा अधिकारियों के साथ कैरियर की प्रगति का लाभ अर्जित करने हेतु अलग-अलग अवधि की सेवा प्रदान करके भेदभाव नहीं किया जा सकता है। अतः अंकित मूल्य पर वर्गीकरण भेदभावपूर्ण एवं भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन है।

राज्य सरकार द्वारा अपने चिकित्सा अधिकारियों हेतु केन्द्र सरकार द्वारा बनाई गई सक्रिय एसीपी को स्वीकार न करके प्रशासनिक नीति के दायरे में आने वाली एसएसीपी योजना तैयार की गई। किंतु प्रश्न यह है कि क्या ऐसी नीति

उपलब्ध कराए जाने पर चिकित्सा अधिकारियों द्वारा प्रचलित चिकित्सा की विभिन्न पद्धतियों के मध्य भेदभाव कर सकती है। बेशक, चिकित्सा अधिकारी, चिकित्सा की पद्धति (एलोपैथी अथवा पारंपरिक) के बावजूद रोगियों का इलाज करते हैं जो मुख्य अंतर्निहित समानता है। योग्यता, अध्ययन/ पाठ्यक्रम, कर्तव्य की प्रकृति, जिम्मेदारी आदि के संबंध में तुलना, जैसा कि राज्य सरकार द्वारा चिकित्सा अधिकारियों के एक वर्ग अर्थात पीएचएमएस को अन्य चिकित्सा अधिकारियों से बेहतर बनाने हेतु दबाव डाला जा रहा है जोकि अनुचित एवं निराधार है क्योंकि यह एसएसीपी प्रदान करने से संबंधित है। जैसा कि पूर्व में चर्चा की गई थी, एसीपी की अवधारणा के संबंध में चिकित्सा अधिकारियों (आयुर्वेदिक) एवं अन्य पद्धितियों को योजना से बाहर रखने में प्रशासनिक नीति हमेशा भेदभावपूर्ण है।"

31. **इंडियन ड्रग्स एंड फार्मास्यूटिकल्स लिमिटेड बनाम कर्मकार**, (2007) 1 एससीसी 408 के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट किया कि *"विधि के किसी सिद्धांत को निर्धारित किए बिना उच्चतम न्यायालय का मात्र निदेश नजीर नहीं है। यह मात्र तभी होता है जब उच्चतम न्यायालय विधि का एक सिद्धांत निर्धारित करता है कि यह एक नजीर बन जाएगा।"*

32. याचिकाकर्ताओं के प्रतिवेदन पर पारित आदेश दिनांक 29ध्03ध्2019 में दर्ज कारण है कि अनुबंध के आधार पर लगे आयुष डॉक्टरों की कार्य स्थितियां एमबीबीएस डॉक्टरों की ड्यूटी के समान नहीं हैं, क्योंकि उनकी ड्यूटी आज छह घंटे के लिए है, उन्हें कोई भौतिक प्रभार नहीं दिया जाता है, उन्हें चिकित्साविधिक मामलों से निपटने और शव परीक्षा आयोजित करने की आवश्यकता नहीं होती है तथा आईवी इंजेक्शन लगाने की आवश्यकता नहीं होती है और वे मात्र क्षारसूत्र जैसी आयुर्वेदिक/यूनानी सर्जरी के अतिरिक्त अन्य सर्जरी नहीं करते हैं, उन्हें विकृत या अस्थिर नहीं पाया गया है। अतः प्रतिवादीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा संदर्भित पूर्वोक्त वाद में निर्धारित विधि वर्तमान वाद पर लागू नहीं होगा।

33. उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, हमारी सुविचारित राय है कि याचिकाकर्ताओं के प्रतिनिधित्व को खारिज करने हेतु सरकार द्वारा पारित दिनांक 29/03/2019 का आदेश ऐसी किसी भी त्रुटि अथवा अवैधता से ग्रस्त नहीं है, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत अपने असाधारण क्षेत्राधिकार के प्रयोग में इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की आवश्यकता है।

34. माननीय एकल न्यायाधीश ने गलत धारणा के अंतर्गत रिट याचिका एंव पुनरीक्षण याचिका की अनुमति दी है कि याचिकाकर्ताओं को सुनिश्चित कै

रियर प्रगति के लाभ से वंचित किया जा रहा था तथा वे इसके हकदार थे जबकि याचिकाकर्ता अनुबंध के आधार पर नियुक्त किए गए थे, वे सुनिश्चित कैरियर प्रगति के हकदार नहीं हैं और उन्होंने ऐसा कोई दावा नहीं किया था। उपरोक्त की गई चर्चा के दृष्टिगत, हम रिट याचिका और पुनरीक्षण याचिका की अनुमति देते हुये माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण से सहमत नहीं हैं।

35. तदनुसार, तत्काल विशेष अपील की ***अनुमति*** दी जाती है। सिविल विविध पुनरीक्षण

आवेदन संख्या 187/ 2022 में माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय एवं आदेश दिनांक 12.12.2022 के साथ रिट ए संख्या 23479/ 2019 में पारित निर्णय एवं आदेश दिनांक 20/10/2022 को रद्द किया जाता है एवं रिट ए संख्या 23479/ 2019 को अपास्त किया जाता है।

(2023) 3 ILRA 93

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 06.03.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति देवेन्द्र कुमार उपाध्याय

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी

विशेष अपील संख्या 91 वर्ष 2023

सी/एम, अल्पसंख्याक शिक्षा विकास समिति, कानपुर एवं अन्य ...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता: रजत राजन सिंह, विधु भूषण कालिया

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: सी.एस.सी., ए.एस.जी.आई., देवक वर्धन

A. शिक्षा कानून - प्रवेश के लिए प्रतिशत मानदंड में कमी - भारतीय चिकित्सा प्रणाली के लिए राष्ट्रीय आयोग अधिनियम, 2020: धारा 10, 55(1); भारतीय चिकित्सा प्रणाली के लिए राष्ट्रीय आयोग अधिनियम, 2020 (अधिनियम संख्या 14 वर्ष 2020); भारतीय चिकित्सा प्रणाली के न्यूनतम मानक (अंडरग्रेजुएट आयुर्वेद शिक्षा) नियमन, 2022; भारतीय चिकित्सा प्रणाली के न्यूनतम मानक (अंडरग्रेजुएट यूनानी शिक्षा) नियमन, 2022 - कट-ऑफ मार्क्स को कम करने का मुद्दा एक शैक्षणिक नीति का मामला है और न्यायालय के लिए इस तरह के अनुरोधों को स्वीकार करना संभव नहीं है। **अंडरग्रेजुएट पाठ्यक्रम में प्रवेश के लिए कट-ऑफ मार्क्स आदि तय करना, न्यूनतम प्रतिशत को तय करने या घटाने या बढ़ाने का निर्णय एक नीति का वाद है, जो कि आयोग के प्राथमिक कार्यों और कर्तव्यों में से एक है, जो कि एक स्वायत्त वैधानिक निकाय है जिसे संसद के अधिनियम द्वारा बनाया गया है।** (पैराग्राफ 27)

B. नियमन 5(2) के उपबंध का अर्थ अधिनियम 2020 के पूरे ढांचे और उसके तहत बनाए गए नियमों के प्रकाश में लिया जाएगा - इसमें कोई संदेह नहीं है कि उपबंध ऐसी स्थिति की परिकल्पना करता है जहां आयोग को NEET में न्यूनतम अंक प्राप्त करने में असफल छात्रों के लिए न्यूनतम अंक को कम करने के लिए अपनी विवेकाधिकार का प्रयोग करना होगा, हालाँकि, इस तरह के प्रावधानों पर विचार अधिनियम 2020 के प्रावधानों के प्रकाश में किया जाना चाहिए।

अधिनियम संख्या 14 वर्ष 2020 को लागू करने का मुख्य उद्देश्य गुणवत्ता वाली चिकित्सा शिक्षा तक पहुंच में सुधार करना और देश के सभी हिस्सों में भारतीय चिकित्सा प्रणाली के उच्च गुणवत्ता वाले चिकित्सा पेशेवरों की उपलब्धता सुनिश्चित करना था। इस प्रकार, यदि आयोग किसी ऐसे कारक को ध्यान में रखता है जो गुणवत्ता वाली चिकित्सा शिक्षा तक पहुंच में सुधार के लिए प्रासंगिक है और जो भारतीय चिकित्सा प्रणाली के उच्च गुणवत्ता वाले चिकित्सा पेशेवरों की उपलब्धता सुनिश्चित करेगा, तो ये कारक

आयोग को दिए गए विवेकाधिकार का प्रयोग करते समय अप्रासंगिक नहीं होंगे। लेकिन इन कारकों पर विचार करना उस उद्देश्य के लिए प्रासंगिक होगा जिसके लिए आयोग को 2020 के अधिनियम के तहत स्थापित किया गया है। वर्तमान वाद में, आयोग ने याचिकाकर्ताओं की प्रार्थना को अस्वीकार करते हुए यह कारण बताया कि पात्रता मानदंड को शिक्षा की गुणवत्ता बनाए रखने और योग्य और कुशल छात्रों को भारतीय चिकित्सा प्रणाली के क्षेत्र में पेशेवर बनने का अवसर देने के लिए निर्धारित किया गया था। **इसके अतिरिक्त, यह भी कारण बताया गया कि ऐसे डॉक्टरों को मरीजों की जिंदगी से निपटना होता है और इसलिए मेरिट को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। (**पैराग्राफ 28 से 30)

आयोग द्वारा 02.03.2023 को दिए गए आदेश में कारण बताया गया कि **NEET UG में अधिकतम 715 अंक हैं और सामान्य श्रेणी के उम्मीदवारों के लिए कट-ऑफ मार्क्स 117 तय किए गए हैं जबकि आरक्षित श्रेणी के लिए यह 93 तय किया गया है, इस दृष्टिकोण से आयोग के विचार से असहमत होने का कोई कारण नहीं है कि कट-ऑफ मार्क्स को और कम करना NEET के आयोजन के उद्देश्य,** अर्थात् भारतीय चिकित्सा प्रणाली में चिकित्सा पाठ्यक्रमों का अध्ययन करने के लिए सबसे अच्छे उम्मीदवारों का चयन करना, के लिए अनुकूल नहीं होगा । (पैराग्राफ 31)

C. यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि ऐसे उम्मीदवार जो कट-ऑफ प्रतिशत से अधिक प्रतिशत के साथ आंकी गई हैं, उन्होंने याचिकाकर्ताओं द्वारा चलाए जा रहे संस्थानों का विकल्प नहीं चुना। यह तर्क कि उम्मीदवारों की अनुपलब्धता है और उनकी अनुपलब्धता के कारण संस्थानों में सीटें भरी नहीं गईं, यह सही नहीं है क्योंकि **मौजूदा कट-ऑफ प्रतिशत के आधार पर कुल उपलब्ध उम्मीदवार 9,93,069 हैं जबकि सभी अंडरग्रेजुएट पाठ्यक्रमों में भरने के लिए कुल सीटें केवल 2 लाख हैं।** (पैराग्राफ 32)

D. आयोग द्वारा 02.03.2023 को दिए गए पत्र/आदेश/परिपत्र में निर्णय लेने के तरीके के बारे में टिप्पणियाँ - (i) आयोग ने नियमन 5(2) के उपबंध की **अनिवार्यता का पालन नहीं किया है** क्योंकि उसने केंद्रीय सरकार से परामर्श नहीं किया। (पैराग्राफ 34 से 38)

(ii) नियमन 5(2) के उपबंध में अस्पष्टता। उपबंध का प्रारंभिक भाग कहता है कि आयोग केंद्रीय सरकार से परामर्श करके न्यूनतम अंक घटाने का निर्णय लेगा, हालाँकि, उपबंध का अंतिम भाग स्वयं कथित करता है कि केंद्रीय सरकार द्वारा घटाए गए अंक लागू होंगे। इस प्रकार, उपबंध में जिस अस्पष्ट भाषा का प्रयोग किया गया है, वह यह भ्रम उत्पन्न कर सकती है कि कट-ऑफ मार्क्स को कम करने के वाद में अंतिम प्राधिकार कौन है, आयोग या भारत सरकार। (पैराग्राफ 39)

विशेष अपील निरस्त। (ई-4)

<u>विधि व्यवस्था अनुसरित</u>:

1. भारत संघ बनाम स्व- वित्तपोषित आयुर्वेदिक कॉलेज संघ, पंजाब एवं अन्य, सिविल अपील संख्या 603 / 2020 (पैराग्राफ 12)
2. एनआईएमएस विश्वविद्यालय बनाम भारत संघ एवं अन्य, 2022 एससीसी ऑनलाईन 644 (पैराग्राफ 14)

<u>विधि व्यवस्था प्रतिष्ठित:</u>

1. हरशित अग्रवाल एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य, रिट याचिका (सी) संख्या 54 / 2021 (पैराग्राफ 12)

2. कुणाल एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य, रिट याचिका (सिविल) संख्या 290 / 2022, निर्णय दिनांक 29.04.2022 (पैराग्राफ 12)

वर्तमान विशेष अपील, रिट सी संख्या 1747/2023 में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 03.03.2023 के आदेश की वैधता और वैधता पर सवाल उठाती है, जिसे राष्ट्रीय भारतीय चिकित्सा प्रणाली आयोग द्वारा दिनांक 02.03.2023 को पारित आदेश को रद्द करने के लिए प्रार्थना के साथ दायर किया गया था, जिसके तहत एनईईटी 2022 के आधार पर स्नातक बीयूएमएस और बीएएमएस पाठ्यक्रमों में प्रवेश के लिए प्रतिशत मानदंड को कम करने के लिए अपीलकर्ताओं-याचिकाकर्ताओं की प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया गया था और इसके अलावा, उक्त प्रवेश के प्रयोजनों के लिए काउंसलिंग की तिथि बढ़ाने के अनुरोध को भी स्वीकार नहीं किया गया था।

(माननीय न्यायमूर्ति देवेंद्र कुमार उपाध्याय, और माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी, द्वारा प्रदत्त)

1. रिट सी संख्या - 1747/2023 में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश दिनांकित 03.03.2023 की वैधानिकता और वैधता को चुनौती देने हेतु इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियमावली के अध्याय VIII नियम 5 के अंतर्गत हमारे क्षेत्राधिकार का आह्वान किया गया है। उक्त आदेश द्वारा एकल न्यायाधीश ने उस रिट याचिका को ख़ारिज कर दिया है जो राष्ट्रीय भारतीय चिकित्सा पद्धति आयोग (एतस्मिनपश्चात 'आयोग' के रूप में संदर्भित) द्वारा दिनांक 02.03.2023 को पारित आदेश को रद्द करने की प्रार्थना के साथ दाखिल की गई थी, जिसमें अपीलकर्ताओं-याचिकाकर्ताओं की राष्ट्रीय पात्रता-सह-प्रवेश परीक्षा 2022 पर आधारित बी.यू.एम.एस और बी.ए.एम.एस. के स्नातक पाठ्यक्रमों में प्रवेश हेतु प्रतिशतता मानदंड को कम करने की प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया गया है और उक्त प्रवेश के प्रयोजनों हेतु काउंसलिंग की तिथि बढ़ाने के अनुरोध को भी स्वीकार नहीं किया गया है।

2. अपीलकर्ताओं-याचिकाकर्ताओं का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्तागण श्री रजत राजन सिंह, श्री विधु भूषण कालिया और श्री आदर्श सक्सेना और आयोग हेतु श्री देवक वर्धन, अधिवक्ता की सहायता से वरिष्ठ अधिवक्ता श्री असित चतुर्वेदी, श्री निशांत शुक्ला, उत्तर प्रदेश राज्य का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान स्थायी अधिवक्ता की सहायता से श्री शैलेन्द्र कुमार सिंह, मुख्य स्थायी अधिवक्ता, भारत संघ का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता श्री आनंद द्विवेदी को सुना।

3. दिनाँक 04.03.2023 को पारित हमारे आदेश के अनुरूप आयुर्वेद बोर्ड, राष्ट्रीय भारतीय चिकित्सा पद्धति आयोग के अध्यक्ष डॉ. एस. श्रीनिवास प्रसाद बेदुरु, न्यायालय में व्यक्तिगत रूप से उपस्थित हैं। आयोग द्वारा हमारे समक्ष रखे गए मामले के समर्थन में उनको भी सुना गया है।

4. हमारे समक्ष उपलब्ध इस विशेष अपील के अभिलेखों का भी हमने अवलोकन किया है।

5. अपीलकर्ता सं. 1 एक संस्था है जो यूनानी चिकित्सा पद्धति में स्नातक/बैचलर डिग्री पाठ्यक्रम प्रदान करने वाला चिकित्सा

महाविद्यालय चलाती है जबकि अपीलकर्ता सं. 2 भी एक संस्था है जो आयुर्वेदिक पद्धति में स्नातक पाठ्यक्रम प्रदान करने वाला चिकित्सा महाविद्यालय चलाती है।

6. केंद्रीय विधायिका ने एक उपयुक्त चिकित्सा शिक्षा पद्धति प्रदान करने हेतु भारतीय चिकित्सा पद्धति अधिनियम, 2020 (2020 का अधिनियम संख्या 14) हेतु राष्ट्रीय आयोग अधिनियमित किया, जो गुणवत्तापूर्ण और वहन करने योग्य चिकित्सा शिक्षा तक पहुंच में सुधार करता है और देश के सभी भागों में भारतीय चिकित्सा पद्धति के पर्याप्त और उच्च गुणवत्ता वाले चिकित्सा पेशेवरों की उपलब्धता सुनिश्चित करता है। उक्त आयोग का कार्य, जैसा कि अधिनियम, 2020 की धारा 10 में वर्णित है, अन्य बातों के साथ-साथ भारतीय चिकित्सा पद्धति में शिक्षा की उच्च गुणवत्ता और उच्च मानक बनाए रखने हेतु नीतियां निर्धारित करना है और उसके लिए आवश्यक नियम बनाना है। 2020 अधिनियम की धारा 55(1) आयोग को उक्त अधिनियम के प्रावधानों को लागू करने हेतु नियम बनाने का अधिकार देती है। 2020, अधिनियम की धारा 55 की उपधारा (2) के अंतर्गत निहित अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए, आयोग द्वारा विनियमों के दो अलग-अलग समूह तैयार किए गए हैं जिन्हें (i) राष्ट्रीय भारतीय चिकित्सा पद्धति आयोग (स्नातक आयुर्वेदिक शिक्षा के न्यूनतम मानक) विनियमावली, 2022 और राष्ट्रीय भारतीय चिकित्सा पद्धति आयोग (स्नातक यूनानी शिक्षा के न्यूनतम मानक) विनियमावली, 2022 के रूप में जाना जाता है जो क्रमशः 16.02.2022 और 28.02.2022 को अधिसूचित किए गए। आयुर्वेदिक और यूनानी चिकित्सा प्रणालियों में स्नातक पाठ्यक्रमों में प्रवेश इन दो विनियमावलियों में उपलब्ध योजना के अनुसार राष्ट्रीय पात्रता-सह-प्रवेश परीक्षा (नीट) के माध्यम से किया जाता है जो आयोग द्वारा उक्त उद्देश्य हेतु नामित प्राधिकारी द्वारा आयोजित की जाती है। आयोग द्वारा राष्ट्रीय पात्रता-सह-प्रवेश परीक्षा आयोजित करने हेतु नामित प्राधिकारी नेशनल बोर्ड ऑफ एग्जामिनेशन इन मेडिकल साइंस, नई दिल्ली है।

7. शैक्षणिक सत्र 2022-23 में प्रवेश हेतु राष्ट्रीय पात्रता-सह-प्रवेश परीक्षा, स्नातक (नीट यूजी) अप्रैल, 2022 में आयोजित की गई थी। नीट यूजी 2022 के परिणाम के आधार पर, ऑनलाइन काउंसलिंग पांच दौर में आयोजित की जानी थी, पहला दौर, दूसरा दौर, समापन/तीसरा दौर , विशेष समापन दौर और स्ट्रे रिक्ति दौर। आयोग द्वारा निर्धारित काउंसलिंग की अंतिम तिथि 18.02.2023 थी जिसे 04.03.2023 तक बढ़ा दिया गया था।

8. अपीलकर्ताओं-याचिकाकर्ताओं ने इस प्रार्थना के साथ इस न्यायालय के समक्ष रिट सी संख्या 1313/ 2023 की कार्यवाही संस्थित की कि स्नातक पाठ्यक्रमों में प्रवेश हेतु सम्बंधित आवश्यक न्यूनतम अंकों को कम करने का आदेश दिया जाए क्योंकि आयोग द्वारा निर्धारित न्यूनतम अंको के साथ पर्याप्त संख्या में अभ्यर्थी उपलब्ध नहीं थे। विनियमावली के विनियम 5(2) में निहित प्रावधानों के अनुसार, केंद्र सरकार के परामर्श से आयोग को अपने विवेक से स्नातक पाठ्यक्रमों में प्रवेश हेतु आवश्यक न्यूनतम अंक कम करने का अधिकार है, जहां राष्ट्रीय पात्रता-सह-प्रवेश परीक्षा में पर्याप्त संख्या में अभ्यर्थी संबंधित श्रेणी में न्यूनतम अंक प्राप्त करने में विफल रहे ।

9. इस न्यायालय ने दिनांक 17.02.2023 के आदेश के माध्यम से रिट सी संख्या 1313/2023 का निस्तारण कर दिया, जिसमें आयोग को अपीलकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत किए गए अभ्यावेदन पर निर्णय लेने का निर्देश दिया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त निदेश विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा विनियमावली के विनियम 5(2) में निहित प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए दिया गया है।

10. आदेश दिनांक 17.02.2023 के अनुपालन में आयोग ने निर्णय लिया जो दिनांक 02.03.2023 के पत्र/आदेश/परिपत्र में सन्निहित है जिसके अंतर्गत अपीलकर्ताओं-याचिकाकर्ताओं की प्रार्थना अस्वीकार कर दी गई।

11. अपीलकर्ताओं-याचिकाकर्ताओं द्वारा 28.04.2023 को रिट सी संख्या 1747/2023 दाखिल की गई थी, जिसमें राष्ट्रीय पात्रता-सह-प्रवेश परीक्षा स्नातक 2023 में संबंधित पाठ्यक्रमों में प्रवेश हेतु भारत संघ को प्रवेश की अंतिम तिथि 31.03.2023 तक आगे बढ़ाने और साथ ही न्यूनतम प्रतिशत को कम करने का निर्देश देने की प्रार्थना की गई थी। रिट याचिका में एक और प्रार्थना की गई थी कि प्रतिवादियों को अपीलकर्ताओं-याचिकाकर्ताओं द्वारा संचालित संस्थानों में रिक्त सीटों को भरने हेतु काउंसलिंग का स्ट्रे दौर आयोजित करने और उक्त उद्देश्य हेतु अखिल भारतीय कोटा सीटों की काउंसलिंग आयोजित करने का निर्देश दिया जाए। हालाँकि, रिट याचिका को विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश दिनांक 03.03.2023 द्वारा निरस्त कर दिया गया है, जो इस विशेष अपील में हमारे सामने चुनौती के अधीन है। रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान, आयोग द्वारा पारित दिनांक 02.03.2023 के आदेश को अपीलकर्ताओं-याचिकाकर्ताओं को सूचित किया गया था। तदनुसार, रिट याचिका में संशोधन किया गया और दिनांक 02.03.2023 के उक्त आदेश को चुनौती देते हुए उसे रद्द करने की प्रार्थना भी रिट याचिका में संशोधन के माध्यम से की गई।

12. श्री रजत राजन सिंह ने अपीलकर्ताओं-याचिकाकर्ताओं की ओर से प्रस्तुतीकरण देते हुए कहा है कि आयोग ने दिनांक 02.03.2023 के अपने आदेश में अपीलकर्ताओं-याचिकाकर्ताओं की प्रार्थना को अस्वीकार करने हेतु जो कारण बताए हैं, वे उतने प्रासंगिक नहीं हैं चूँकि उसमें बताए गए कारण आयोग के पास उनकी प्रार्थना को अस्वीकार करने हेतु उपलब्ध नहीं हैं। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया है कि आयोग द्वारा ***यूनियन ऑफ इंडिया बनाम फेडरेशन ऑफ सेल्फ-फाइनेंस्ड आयुर्वेदिक कॉलेज पंजाब और अन्य*** (2020 की सिविल अपील संख्या 603) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 20.02.2020 को दिए गए निर्णय का जो आश्रय लिया है वह अनुपयुक्त है चूंकि उक्त निर्णय की उक्ति पर विचार करते हुए माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***हर्षित अग्रवाल और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य*** (रिट याचिका (सी) संख्या 54/2021) के मामले में 08.02.2021 को दिए गए बाद के निर्णय में माना है कि विनियमावली के विनियम 5(2) से जुड़े प्रावधान के अंतर्गत अपने विवेक का प्रयोग करते समय आयोग द्वारा विचार किया जाने वाला एकमात्र प्रासंगिक कारक योग्य छात्रों की अनुपलब्धता है और इसके अतिरिक्त उक्त कारक के अलावा अन्य कारकों पर विचार अप्रासंगिक या बाह्य मामलों के प्रभाव का परिणाम होगा। श्री रजत राजन सिंह ने ***कुणाल और अन्य बनाम***

भारत संघ एवं अन्य (29.04.2022 को निस्तारित रिट याचिका (सिविल) संख्या 290/2022) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के दिनांक 29.04.2022 के एक अन्य निर्णय पर हमारा ध्यान आकर्षित किया है और अभिकथन प्रस्तुत किया है कि ***हर्षित अग्रवाल (उपरोक्त*** के मामले में हुए निर्णय को ध्यान में रखते हुए सर्वोच्च न्यायालय ***कुणाल और अन्य (उपरोक्त)*** में ***हर्षित अग्रवाल (उपरोक्त)*** के कथन से सहमत है।

13. अपीलकर्ताओं-याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता द्वारा कई अन्य तर्क भी दिए गए हैं, जिसमें कहा गया है कि जहाँ तक उ०प्र० राज्य में निजी तौर पर संचालित गैर-सहायता प्राप्त संस्थानों हेतु अखिल भारतीय कोटा सीटों में प्रासंगिक विनियमों के तहत अनुमेय 15% की सीमा का प्रश्न है, राज्य सरकार ने अब तक काउंसलिंग आयोजित नहीं की है। उपरोक्त मामले में, अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने मामले के उपरोक्त प्रासंगिक पहलुओं को पूरी तरह से अनदेखा कर दिया है और इस प्रकार अपीलकर्ताओं-याचिकाकर्ता द्वारा दाखिल रिट याचिका को निरस्त करने में गलती की है। इस प्रकार उनकी प्रार्थना है कि अपीलकर्ताओं-याचिकाकर्ताओं द्वारा संचालित संस्थानों में प्रवेश हेतु न्यूनतम प्रतिशत को कम करने हेतु आयोग को निदेश के साथ विशेष अपील को अनुमति दी जाए।

14. दूसरी ओर, आयोग का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता और भारत संघ की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने अभिकथन प्रस्तुत किया है कि अपीलकर्ताओं-याचिकाकर्ताओं की प्रार्थना को निरस्त करते समय आयोग द्वारा प्रासंगिक कारकों पर विचार किया गया था। यदि न्यूनतम प्रतिशत कम किया जाता है, तो इसके परिणामस्वरूप आधे-अधूरे चिकित्सक तैयार हो सकते हैं और वर्तमान मामले के तथ्यों में, पाठ्यक्रमों में प्रवेश हेतु कथित योग्य अभ्यर्थियों की अनुपलब्धता, निर्धारित मानकों को कम करने का कारण नहीं हो सकती है। प्रतिवादी-आयोग की ओर से यह तर्क दिया गया है कि ***हर्षित अग्रवाल*** और ***कुणाल*** के मामले में निर्णय, मामले के तथ्यों के आधार पर दिए गए थे और वास्तव में, ये निर्णय बाध्यकारी पूर्वनिर्णय के रूप में कोई निर्णयाधार प्रतिपादित नहीं करते हैं। आयोग का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा ***एनआईएमएस विश्वविद्यालय बनाम भारत संघ और अन्य, 2022 एससीसी ऑनलाइन 644*** के मामले में 09.05.2022 को दिए गए माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का आश्रय लिया है कि प्रतिशत कम किया जाना शैक्षिक नीति का मामला है और प्रतिशत में कमी को अस्वीकृत करने हेतु आयोग ने जिन कारणों का आधार लिया, उन्हें मनमाना या असंगत नहीं कहा जा सकता है।

15. आयोग और भारत संघ की ओर से हमारा ध्यान दो पत्रों की ओर भी आकर्षित किया गया है- (i) भारत सरकार के आयुष मंत्रालय के विशेष सचिव द्वारा अतिरिक्त मुख्य सचिव को लिखा गया दिनांक 17.02.2023 का पत्र (स्वास्थ्य और परिवार कल्याण विभाग, गुजरात सरकार) और (ii) संबंधित मामले में निदेशक, आयुष मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा माननीय उच्च न्यायालय मद्रास के समक्ष भारत सरकार का प्रतिनिधित्व करने वाले केंद्र सरकार के स्थायी अधिवक्ता को लिखा गया दिनांक 24.02.2023

का पत्र। श्री चतुर्वेदी, जो दिनांक 02.03.2023 को आदेश पारित करते समय आयोग के साथ थे, ने प्रस्तुत किया है कि वास्तव में भारत सरकार ने उपरोक्त दो पत्रों में पर्याप्त कारण दिए थे, जिसमें अपीलकर्ताओं-याचिकाकर्ताओं की विचाराधीन पाठ्यक्रमों में प्रवेश के प्रयोजनों हेतु प्रतिशतता कम करने की प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया गया था। उनके अनुसार, उक्त पत्रों में बताया गया एक कारण यह है कि चूंकि केंद्रीय परामर्श समिति ने 15.02.2023 तक पहले ही 5 राउंड की काउंसलिंग आयोजित कर ली थी, ऐसे में भले ही कट-ऑफ प्रतिशत कम कर दिया जाए, कम कट-ऑफ प्रतिशत के फलस्वरूप अतिरिक्त पात्र अभ्यर्थियों को काउंसलिंग में भाग लेने का मौका नहीं मिलेगा। यह भी तर्क दिया गया है कि भारत सरकार की राय है कि रूपांतरण एल्गोरिथ्म पहले ही अखिल भारतीय कोटा सीटों पर लागू किया जा चुका है, जिसे किसी भी अभ्यर्थी ने नहीं चुना था और इसलिए कम प्रतिशत कट-ऑफ के कारण भी, अतिरिक्त पात्र अभ्यर्थियों को आरक्षित सीटें नहीं मिलेंगी क्योंकि उक्त सीटें ऐसे रूपांतरण एल्गोरिथ्म के आधार पर पहले ही भरी जा चुकी हैं। तीसरा कारण, जैसा कि उपरोक्त दो पत्रों के आधार पर श्री चतुर्वेदी ने तर्क दिया है, यह है कि चालू शैक्षणिक वर्ष हेतु लगभग 52,274 आयुष सीटें उपलब्ध थीं, जिसके मुकाबले 9,93,069 अभ्यर्थियों ने अर्हता प्राप्त की है और इसलिए ऐसा नहीं लगता है योग्य अभ्यर्थियों की कमी है। श्री चतुर्वेदी ने आगे तर्क दिया है कि राष्ट्रीय पात्रता-सह-प्रवेश परीक्षा - स्नातक न केवल भारतीय चिकित्सा प्रणालियों में स्नातक पाठ्यक्रमों में प्रवेश हेतु आयोजित की जाती है, बल्कि एलोपैथिक चिकित्सा पद्धति (एम.बी.बी.एस.) में स्नातक पाठ्यक्रमों और दन्त विज्ञानं (बी. डी.एस.) में स्नातक पाठ्यक्रमों में भी प्रवेश हेतु आयोजित की जाती है। उन्होंने आगे कहा है कि इन पाठ्यक्रमों में लगभग कुल 2 लाख सीटों के मुकाबले, राष्ट्रीय पात्रता-सह-प्रवेश परीक्षा -2023 में न्यूनतम कट-ऑफ प्रतिशतता प्राप्त करने वाले घोषित उम्मीदवार 9,93,069 हैं। उनका आगे कहना है कि इन 9,93,069 अभ्यर्थियों में से, केवल दो लाख सीटें भरी जानी हैं। इस प्रकार कट-ऑफ प्रतिशत के आधार पर सफल घोषित किए गए लगभग 8 लाख अभ्यर्थियों ने कहीं भी प्रवेश नहीं लिया है और तदनुसार यह ऐसा मामला नहीं है जहां अभ्यर्थी उपलब्ध नहीं हैं बल्कि, यह एक ऐसा मामला है जहां उपलब्ध अभ्यर्थियों ने अपीलकर्ताओं-याचिकाकर्ताओं द्वारा चलाए जा रहे संस्थानों में प्रवेश न लेने के अपने विकल्प का प्रयोग किया है।

16. आयोग की ओर से आगे प्रस्तुत किया गया है कि राष्ट्रीय पात्रता-सह-प्रवेश परीक्षा - 2022 में कुल 715 अंक थे और अर्हता प्राप्त करने हेतु सामान्य श्रेणी के अभ्यर्थियों हेतु कट-ऑफ अंक 117 है जबकि अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग की आरक्षित श्रेणी हेतु यह 93 है। तर्क यह है कि स्नातक पाठ्यक्रमों में प्रवेश हेतु आयोग द्वारा निर्धारित न्यूनतम कट-ऑफ अंक विभिन्न श्रेणियों के अभ्यर्थियों हेतु बहुत कम हैं और ऐसे अंकों को और कम करने से अंततः योग्यता के साथ समझौता होगा, जो सार्वजनिक हित में भी नहीं होगा।

17. उपरोक्त बिंदुओं पर, भारत संघ और आयोग की ओर से यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि इस मामले में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश में हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है।

18. जहां तक उत्तर प्रदेश राज्य का प्रश्न है, हमारा ध्यान 19.12.2022 के शासनादेश की ओर आकर्षित किया गया है जिसके अनुसार राज्य सरकार ने सरकारी आयुर्वेदिक/यूनानी और होम्योपैथिक कॉलेजों में 85% राज्य कोटे की सीटों हेतु काउंसलिंग आयोजित की थी और निजी कॉलेजों में 100% सीटों हेतु भी काउंसलिंग आयोजित की गई, जिसमें 85% राज्य कोटा सीटें और 15% अखिल भारतीय कोटा सीटें शामिल थीं। इस प्रकार विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री शैलेन्द्र सिंह द्वारा यह तर्क दिया गया है कि अपीलकर्ताओं-याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क कि 15% अखिल भारतीय कोटा सीटों के विरुद्ध राज्य द्वारा कोई काउंसलिंग आयोजित नहीं की गई थी, तथ्यात्मक रूप से गलत है। उपरोक्त के अलावा, राज्य का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि शेष बिंदु राज्य सरकार से संबंधित नहीं हैं।

19. हमने संबंधित पक्षों का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई प्रतिद्वंदी प्रस्तुतीकरण पर विचारपूर्वक विचार किया है। अपीलकर्ताओं-याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों का मुख्य आधार ***हर्षित अग्रवाल (उपरोक्त)*** के मामले में निर्णय है। जहां तक इस दावे का प्रश्न है कि राज्य सरकार ने 15% अखिल भारतीय कोटा सीटों हेतु काउंसलिंग आयोजित नहीं की थी, राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता द्वारा दिए गए बयान के साथ-साथ 19.12.2022 के सम्बंधित सरकारी आदेश के मद्देनज़र, यह प्रस्तुतीकरण गलत प्रतीत होता है अतः स्वीकार्य नहीं है।

20. जैसा कि ऊपर देखा गया है, ***हर्षित अग्रवाल (उपरोक्त)*** के मामले के निर्णय पर अपीलकर्ताओं-याचिकाकर्ताओं का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता द्वारा अत्यधिक निर्भरता रखी गई है, जहां ***फेडरेशन ऑफ सेल्फ फाइनेंस्ड आयुर्वेदिक कॉलेज (उपरोक्त)*** के मामले में पहले के निर्णय पर गौर किया गया है और यह कहा गया है कि योग्य छात्रों की उपलब्धता के अलावा अन्य कारकों पर विचार करने से आयोग अप्रासंगिक या असंगत मामलों से प्रभावित होगा।

21. अपीलकर्ताओं का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता द्वारा ***कुणाल और अन्य (उपरोक्त)*** पर भी निर्भरता रखी गई है जिसमें ***हर्षित अग्रवाल (उपरोक्त)*** का संदर्भ दिया गया है। ***हर्षित अग्रवाल (उपरोक्त)*** के आधार पर अपीलकर्ताओं-याचिकाकर्ताओं की ओर से प्रस्तुत तर्क का खंडन करने हेतु आयोग का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता ने ***एनआईएमएस (उपरोक्त)*** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के एक और निर्णय का संदर्भ लिया है ।

22. अब हम उन तथ्यों पर ध्यान देने हेतु आगे बढ़ते हैं जिनके अंतर्गत ***फेडरेशन ऑफ सेल्फ-फाइनेंस्ड आयुर्वेदिक कॉलेज (उपरोक्त)***, ***हर्षित अग्रवाल (उपरोक्त)*** और ***कुणाल और अन्य(उपरोक्त)*** के मामले में उपरोक्त निर्णय दिए गए हैं।

23. ***फेडरेशन ऑफ सेल्फ-फाइनेंस्ड आयुर्वेदिक कॉलेज (उपरोक्त)*** के मामले में विषय वस्तु तत्कालीन विद्यमान सेंट्रल काउंसिल ऑफ इंडियन मेडिसिन (आयोग का पूर्ववर्ती) द्वारा

जारी अधिसूचना और उसमें निर्धारित न्यूनतम योग्यता अंक थे। परिषद और भारत सरकार की ओर से उक्त मामले में प्रस्तुत तर्कों पर ध्यान देने के दौरान कि आयुष पाठ्यक्रमों हेतु भी न्यूनतम मानकों को कम नहीं किया जा सकता है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के द्वारा यह देखा गया कि जो चिकित्सक आयुर्वेदिक, यूनानी और होम्योपैथिक प्रणालियों में योग्य हैं वे भी मरीजों का इलाज करते हैं और शिक्षा में न्यूनतम मानकों की कमी के परिणामस्वरूप आधे-अधूरे डॉक्टर व्यावसायिक कॉलेजों से बाहर निकलेंगे। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आगे कहा कि आयुष स्नातक पाठ्यक्रमों में प्रवेश हेतु योग्य अभ्यर्थियों की अनुपलब्धता निर्धारित मानकों को कम करने का कारण नहीं हो सकती है।

24. इस प्रकार माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने प्रवेश हेतु योग्य अभ्यर्थियों की अनुपलब्धता के आधार पर निर्धारित मानकों में हस्तक्षेप नहीं किया।

25. जहां तक ***हर्षित अग्रवाल (उपरोक्त)*** का प्रश्न है, उक्त मामला उन लोगों द्वारा दाखिल किया गया था जो बीडीएस पाठ्यक्रम में प्रवेश हेतु राष्ट्रीय पात्रता-सह-प्रवेश परीक्षा - 2020 में उपस्थित हुए थे और डेंटल काउंसिल ऑफ इंडिया द्वारा नियमों में निर्धारित न्यूनतम अंक प्राप्त नहीं किए थे। उक्त मामले में, प्रासंगिक समय पर प्रचलित मौजूदा नियमों के संदर्भ में, डेंटल काउंसिल ऑफ इंडिया ने कट-ऑफ प्रतिशत को कम करने की सिफारिश की थी और नियमों के अनुसार न्यूनतम कट-ऑफ अंक कम करने पर किया जाने वाला विचार भारत सरकार द्वारा डेंटल काउंसिल ऑफ इंडिया के परामर्श से तय किया जाना था। वस्तुतः इस स्थिति में जहां विशेषज्ञ निकाय अर्थात् डेंटल काउंसिल ऑफ इंडिया ने कट-ऑफ अंक कम करने हेतु केंद्र सरकार को सिफारिश की थी तब जब कि ***हर्षित अग्रवाल*** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गये निर्णय में केंद्र सरकार द्वारा डेंटल काउंसिल ऑफ इंडिया की सिफ़ारिशों को न मानने हेतु बताए गए कारण सही नहीं पाये गये थे।

26. जहां तक ***कुणाल (उपरोक्त)*** के मामले में निर्णय का प्रश्न है, उक्त मामले में भी डेंटल काउंसिल ऑफ इंडिया की कार्यकारी समिति ने केंद्र सरकार से राष्ट्रीय पात्रता-सह-प्रवेश परीक्षा स्नातक हेतु अर्हकारी कट-ऑफ प्रतिशत को कम करने की सिफारिश की थी। हालाँकि, क्योंकि डेंटल काउंसिल ऑफ इंडिया द्वारा की गई सिफारिश पर भारत सरकार ने कोई निर्णय नहीं लिया था, भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अंतर्गत एक रिट याचिका सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष दाखिल की गई थी। उक्त मामले के लंबित रहने के दौरान, माननीय सर्वोच्च न्यायालय को सूचित किया गया कि भारत सरकार द्वारा पात्रता हेतु निर्धारित न्यूनतम प्रतिशत को कम नहीं करने का निर्णय लिया गया है। इन्हीं परिस्थितियों में माननीय न्यायालय ने ***हर्षित अग्रवाल*** के मामले में हुए निर्णय का हवाला देते हुए दिनांक 29.04.2022 के आदेश के माध्यम से उक्त मामले का निस्तारण करते हुए केंद्र सरकार को कट-ऑफ प्रतिशतता के पुनर्निर्धारण से संबंधित मुद्दे पर पुनर्विचार करने का निर्देश दिया। इस प्रकार जहां तक ***हर्षित अग्रवाल*** और ***कुणाल (उपरोक्त)*** के मामले में निर्णय का प्रश्न है, यह ध्यान देने योग्य है कि दोनों मामलों में, विशेषज्ञों के निकाय, अर्थात् डेंटल काउंसिल ऑफ इंडिया ने

पहले ही बीडीएस पाठ्यक्रम में प्रवेश की सुविधा के उद्देश्य से कट आफ प्रतिशतता को कम करना उचित पाया था, जबकि वर्तमान मामले में, ऐसी प्रार्थना को विशेषज्ञों के निकाय यानी आयोग द्वारा निरस्त कर दिया गया है।

27. अब हम आयोग के विद्वान अधिवक्ता द्वारा विश्वास किये गए ***एनआईएमएस विश्वविद्यालय (उपरोक्त)*** के मामले में हुए निर्णय का उल्लेख कर सकते हैं। उक्त निर्णय में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से माना है कि कट-ऑफ अंक कम किए जाने चाहिए या नहीं, यह शैक्षिक नीति का मामला है और न्यायालय हेतु कट-ऑफ अंक कम करने का निदेश देकर ऐसे अनुरोधों पर विचार करना संभव नहीं है। यद्यपि ***एनआईएमएस विश्वविद्यालय (उपरोक्त)*** के प्रकरण में मामला अतिविशिष्ट पाठ्यक्रमों में प्रवेश से संबंधित है, तथापि, जहाँ तक स्नातक पाठ्यक्रमों में भी प्रवेश के प्रयोजनों हेतु कट-ऑफ अंक आदि तय करने का संबंध है, हमारी राय में, न्यूनतम प्रतिशत निर्धारित करना या कम करना या बढ़ाना, इस संबंध में निर्णय नीति का मामला है जो आयोग के प्राथमिक कार्यों और कर्तव्यों में से एक है, जो संसद के एक अधिनियम द्वारा निर्मित एक स्वायत्त वैधानिक निकाय है।

28. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के इस प्रस्तुतीकरण के संबंध में कि प्रवेश हेतु न्यूनतम अंक कम किए जाने हैं या नहीं, यह निर्धारित करने हेतु अभ्यर्थियों की संख्या की अपर्याप्तता ही एकमात्र प्रासंगिक विचार है, हम न केवल विनियमों के विनियम 5 (2) से जुड़े परंतुक में निहित प्रावधानों के आलोक में, बल्कि अधिनियम, 2020 की समग्र योजना और उसके अंतर्गत बनाए गए विनियमों को ध्यान में रखते हुए उक्त मुद्दे से पर विचार कर सकते हैं।

29. विनियमावली के विनियम 5(2) से युक्त परंतुक इस प्रकार है:-

> *"बशर्ते कि जहां संबंधित श्रेणियों में उम्मीदवारों की पर्याप्त संख्या स्नातकीय पाट्यकम में प्रवेश हेतु किसी भी शैक्षणिक वर्ष हेतु आयोजित राष्ट्रीय योग्यता-सह-प्रवेश परीक्षा में निर्धारित न्यूनतम अंक प्राप्त करने में विफल रहती है, तो राष्ट्रीय आयोग भारतीय चिकित्सा पद्धति केंद्र सरकार के परामर्श तथा अपने विवेक से संबंधित श्रेणियों के अभ्यर्थियों हेतु स्नातकीय पाठ्यक्रम में प्रवेश हेतु आवश्यक न्यूनतम अंकों को कम करने का निर्णय ले सकता हैं एवं केंद्र*

सरकार द्वारा इस प्रकार कम किए गए अंक केवल उस शैक्षणिक वर्ष हेतु लागू होंगे।"

30. इसमें कोई संदेह नहीं है, उक्त परंतुक एक ऐसी स्थिति की परिकल्पना करता है जहाँ आयोग को प्रवेश हेतु आवश्यक न्यूनतम अंक कम करने हेतु अपने विवेक का प्रयोग करना पड़ता है, जहाँ संबंधित श्रेणी में पर्याप्त संख्या में छात्र राष्ट्रीय पात्रता-सह-प्रवेश परीक्षा में न्यूनतम अंक प्राप्त करने में विफल रहते हैं, यद्यपि, ऐसे प्रावधान का अधिनियम, 2020 के प्रावधानों के आलोक में विचार और निर्वचन किया जाना है। जैसा कि ऊपर देखा गया है, 2020 के अधिनियम संख्या 14 को लागू करने का उद्देश्य गुणवत्तापूर्ण चिकित्सा शिक्षा तक पहुंच में सुधार करना और भारतीय चिकित्सा पद्धति की उच्च गुणवत्ता वाले पर्याप्त पेशेवरों की उपलब्धता देश के सभी भागों में सुनिश्चित करना था। इस प्रकार, यदि आयोग किसी ऐसे कारक को ध्यान में रखता है जो गुणवत्तापूर्ण चिकित्सा शिक्षा तक पहुंच में सुधार के उद्देश्यों हेतु प्रासंगिक है और जो भारतीय चिकित्सा पद्धति के उच्च गुणवत्ता वाले चिकित्सा पेशेवरों की उपलब्धता सुनिश्चित करेगा, तो हमारी राय में विनियमावली के विनियम 5(2) से जुड़े परंतुक के तहत आयोग में निहित विवेक का प्रयोग करते हुए भी उक्त कारक अप्रासंगिक नहीं होंगे। लेकिन ऐसे कारकों पर विचार करना उस उद्देश्य हेतु तात्विक होगा जिसके लिए 2020 अधिनियम के तहत आयोग बनाया गया है। इस प्रकार, यदि हमने जो ऊपर देखा है उसके आलोक में याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता के तर्कों का परीक्षण करते हैं, तो हम पाते हैं कि आयोग ने अपीलकर्ताओं-याचिकाकर्ताओं की प्रार्थना को निरस्त करते हुए यह कारण बताया है कि पात्रता मानदंड शिक्षा की गुणवत्ता बनाए रखने और भारतीय चिकित्सा पद्धति के क्षेत्र में पेशेवर बनने हेतु अति योग्य और कुशल छात्रों को बेहतर अवसर देने हेतु तय किया गया था। इसमें अतिरिक्त कारण यह बताया गया है कि ऐसे चिकित्सकों को मरीजों के जीवन से संव्यवहार करना पड़ता है और इस प्रकार योग्यता की उपेक्षा नहीं की जा सकती है।

31. यदि हम आयोग द्वारा दिनांक 02.03.2023 के आदेश में दिए गए कारण का परीक्षण इस निर्विवाद तथ्य के आलोक में करे कि यद्यपि राष्ट्रीय पात्रता-सह-प्रवेश परीक्षा स्नातक में अधिकतम अंक715 हैं और सामान्य श्रेणी के अभ्यर्थियों हेतु कट-ऑफ अंक 117 निर्धारित किए गए हैं और आरक्षित वर्ग हेतु 93 अंक निर्धारित किए गए हैं, यद्यपि यह न्यायालय ऐसे मामलों में विशेषज्ञ नहीं है फिर भी हमारे पास आयोग के विचार से असहमत होने का कोई कारण नहीं है कि कट-ऑफ अंक को और कम करना उस उद्देश्य हेतु अनुकूल नहीं होगा जिसके लिए राष्ट्रीय पात्रता-सह-प्रवेश परीक्षा का गठन किया गया है, जैसे कि भारतीय चिकित्सा पद्धति में चिकित्सा पाठ्यक्रमों को लक्ष्य बनाने हेतु सर्वश्रेष्ठ अभ्यर्थियों का चयन करना।

32. अपीलकर्ताओं-याचिकाकर्ताओं की ओर से प्रस्तुत यह तर्क कि अभ्यर्थियों की अनुपलब्धता की स्थिति है और उनकी अनुपलब्धता के कारण उनके संस्थानों में सीटें रिक्त रह गईं, यह भी हमें इस सामान्य कारण से प्रभावित नहीं करता

है कि मौजूदा कट ऑफ प्रतिशत के आधार पर कुल उपलब्ध उम्मीदवार 9,93,069 हैं, जबकि स्नातक पाठ्यक्रमों के सभी वर्गों में भरी जाने वाली सीटों की कुल संख्या केवल 2 लाख है। तदनुसार, कट-ऑफ प्रतिशत से अधिक प्रतिशत प्राप्त करने वाले उपलब्ध अभ्यर्थियों द्वारा अपीलकर्ता-याचिकाकर्ताओं द्वारा संचालित संस्थानों का विकल्प नहीं चुनने की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता है।

33. ऊपर की गई चर्चा और दिए गए कारणों से हमें विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई अच्छा आधार नहीं मिलता है। फलस्वरूप विशेष अपील ***निरस्त*** की जाती है।

34. फिर भी, वाद के समापन से पूर्व हम उस रीति के बारे में कुछ टिप्पणियाँ कर सकते हैं जिस रीति में आयोग द्वारा पत्र/आदेश/परिपत्र दिनांक 02.03.2023 में सन्निहित निर्णय लिया गया है।

35. हमने विनियमावली के विनियम 5(2) से जुड़े परंतुक को उद्धृत किया है जो विभिन्न श्रेणियों से संबंधित अभ्यर्थियों हेतु अपनी श्रेणी में स्नातक कार्यक्रमों में प्रवेश हेतु आवश्यक न्यूनतम अंकों को कम करने हेतु अपने विवेक से निर्णय लेने का अधिकार आयोग को देता है। उक्त प्रावधान के अनुसार, आयोग को ऐसी स्थिति में केंद्र सरकार के परामर्श से निर्णय लेना है जहाँ संबंधित श्रेणियों में पर्याप्त संख्या में अभ्यर्थी उपलब्ध नहीं हैं क्योंकि वे राष्ट्रीय पात्रता-सह-प्रवेश परीक्षा में न्यूनतम अंक प्राप्त नहीं कर सके हैं। हालाँकि, दिनांक 02.03.2023 के आदेश में आयोग द्वारा केंद्र सरकार से परामर्श करने का कोई उल्लेख नहीं है। यहाँ तक कि आयोग का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने भी स्पष्टतः स्वीकार किया है कि केंद्र सरकार के साथ लिखित रूप में कोई परामर्श नहीं किया गया था, बल्कि दिनांक 02.03.2022 को निर्णय लेने से पहले आयोग के अधिकारियों और केंद्र सरकार के अधिकारियों के बीच दूरभाष पर मौखिक बातचीत हुई थी जिसमें आयोग को केंद्र सरकार के रुख से अवगत कराया गया जैसा कि ऊपर उल्लिखित दो पत्रों यथा आयुष मंत्रालय, भारत सरकार का गुजरात राज्य को संबोधित दिनांक 17.02.2023 का पत्र और निदेशक, आयुष मंत्रालय द्वारा माननीय मद्रास उच्च न्यायालय के समक्ष केंद्र सरकार का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान स्थायी अधिवक्ता को लिखा गया दिनांक 24.02.2023 के पत्र में निहित है।

36. यह ध्यातव्य है कि विनियम 5(2) से जुड़े परंतुक के अतिरिक्त, कोई अन्य प्रावधान नहीं है जो आयोग को कट-ऑफ अंक कम करने के संबंध में निर्णय लेने का अधिकार देता है। यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि इस न्यायालय द्वारा रिट याचिका (सी) संख्या 1313/2023 में दिनांक 17.02.2023 के अपने आदेश के अंतर्गत जारी निर्देशों के अनुसार आयोग को कट-ऑफ कम करने से संबंधित बिंदु पर विचार करना था।

37. एक बार जब प्रावधान आयोग द्वारा केंद्र सरकार के परामर्श के बाद ही निर्णय लेने का आदेश देता है, तो दिनांक 02.03.2023 के आदेश को पारित करने से पहले केंद्र सरकार से ठीक और उचित रूप से परामर्श करना आयोग हेतु अनिवार्य और बाध्यकारी था। भले ही केंद्र सरकार ने दिनांक 17.02.2023 और 24.02.2023 के उपरोक्त पत्रों में अपने विचार व्यक्त किए हों, यह अपने आप में परामर्श के बराबर नहीं होगा क्योंकि कोई भी पत्र आयोग को संबोधित नहीं था और यहाँ तक कि उनकी प्रतियां भी पृष्ठांकित

नहीं थीं। जबकि निर्णय लेते समय, इन दो पत्रों के संबंध में केंद्र सरकार द्वारा आयोग को प्रदान की गई मौखिक जानकारी पर ध्यान दिया जा सकता था और नोट किया जा सकता था।

38. मामले के उपरोक्त दृष्टिकोण में ऐसा प्रतीत होता है कि आयोग ने केंद्र सरकार से परामर्श न करके विनियम 5(2) में संलग्न परंतुक के आदेश का पालन नहीं किया है।

39. एक और बिंदु है जिस पर हमारा ध्यान जाता है और वह उस अस्पष्टता के संबंध में है जो विनियमावली के विनियम 5(2) से जुड़े परंतुक में मौजूद है। यदि हम उक्त परंतुक का सावधानीपूर्वक और सटीकता से अध्ययन करते हैं, तो हम पाते हैं कि परंतुक के पहले भाग में कहा गया है कि आयोग केंद्र सरकार के परामर्श से न्यूनतम अंक कम करने हेतु अपने विवेक से निर्णय लेगा, यद्यपि, बाद के भाग में उक्त परंतुक में ही कहा गया है कि केंद्र सरकार द्वारा कम किए गए अंक लागू होंगे। इस प्रकार, परंतुक की अस्पष्ट भाषा द्वारा भ्रम उत्पन्न होने की संभावना है क्योंकि प्रवेश हेतु कट-ऑफ अंक कम करने के मामले में यह स्पष्ट नहीं है कि अंतिम प्राधिकारी कौन है, आयोग या भारत सरकार।

40. इस प्रकार हम संबंधित विभाग और मंत्रालय में आयोग और भारत सरकार से मामले के उपरोक्त पहलू पर करने और सुधारात्मक उपाय करने का आह्वान करते हैं ताकि जो अस्पष्टता हमने विनियमावली के विनियम 5(2) से युक्त परंतुक में देखी है, उसके पहले और बाद के हिस्सों में सामंजस्य स्थापित किया जा सके ।

41. वाद-व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं किया जाता है।

(2023) 3 ILRA 104

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 07.02.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति रमेश सिन्हा

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी

विशेष अपील संख्या 328 वर्ष 2014

संतोष कुमार शुक्ला 3531 एस/एस2000 ...अपीलकर्ता

बनाम

सिंडिकेट बैंक और अन्य ...प्रतिवादी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता: महेंद्र प्रताप सिंह, अनुज दयाल, महेंद्र बहादुर सिंह

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: गोपाल कुमार श्रीवास्तव

A. सेवा कानून - बर्खास्तगी - यदि अग्रिम राशि देने के नियमों में शर्तों के उल्लंघन के परिणाम का प्रावधान है, तो उस संबंध में कोई अनुशासनात्मक कार्रवाई प्रारंभ करके किसी अन्य परिणाम की तलाश करना बेकार होगा, जब तक कि 1975 के नियमों में विशेष रूप से यह नियम शामिल न हो कि गृह निर्माण अग्रिम नियमों का उल्लंघन अपने आप में एक कदाचार माना जाएगा। संबंधित नियमों के तहत अग्रिम राशि मांगना और उसे देना, सबसे अच्छा ऋण लेनदेन है। लेनदेन में स्वयं पुनर्भुगतान और पुनर्भुगतान न करने या नियमों का पालन न करने के परिणाम का प्रावधान हो सकता है। अनुबंध के उल्लंघन के संभावित अन्य परिणाम की तलाश

करने का कोई भी प्रयास मनमाना और यहां तक कि प्रेरित प्रतीत होता है। (पैरा 20)

वर्तमान वाद में, अपीलकर्ता ने बैंक से आवास ऋण लिया था जिसके तहत वह अटेंडेंट के पद पर कार्यरत था जो कि चतुर्थ श्रेणी का पद है। ऋण वर्ष 1988 में दिया गया था। अपीलकर्ता द्वारा देय ब्याज दर 5% प्रति वर्ष थी। 75,000/- रुपये का ऋण 24 वर्षों में 357.15/- रुपये की मासिक किस्त में देय था, जिसकी किस्तें अपीलकर्ता के वेतन से या उसके निलंबन की अवधि के दौरान उसके निर्वाह भत्ते से काटी जाती रहीं और ऋण की पूरी राशि चुका दी गई। (पैरा 21)

अपीलकर्ता द्वारा सम्पूर्ण आवास ऋण चुका दिया गया है, अपीलकर्ता द्वारा मकान बेच देने से बैंक को कोई हानि नहीं हुई है, इसलिए यह निष्कर्ष कि अपीलकर्ता द्वारा सम्पत्ति बेच देने के कारण बैंक को गंभीर हानि हुई है, अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री द्वारा समर्थित नहीं है, तथा स्थिर योग्य नहीं है।

यह टिप्पणी सही है कि संपत्ति बैंक की अनुमति के बिना बेची गई थी, लेकिन यह टिप्पणी गलत है कि ऐसा बैंक की जानकारी के बिना किया गया था, क्योंकि दिनांक 27.10.1989 के पत्र से अपीलकर्ता ने बैंक के सहायक महाप्रबंधक को सूचित किया था कि उसने 3,40,700/- रुपए का गबन करने का अपराध स्वीकार किया है और कहा था कि वह अपने द्वारा निर्मित मकान को बेचकर तथा अन्य स्रोतों से धन एकत्र करके बैंक की उक्त राशि चुका देगा। (पैरा 22, 25)

अपीलकर्ता के आचरण पर द्विपक्षीय समझौते के खंड 19.5(जे) का उल्लंघन करने का आरोप लगाया गया है, जो कदाचार के समतुल्य है। कथित द्विपक्षीय समझौते को अभिलेख पर नहीं रखा गया है और अभिलेख पर ऐसा कुछ भी नहीं है जो यह प्रदर्शित करता हो कि अपीलकर्ता समझौते का एक पक्ष था या समझौते की शर्तें आवेदक पर बाध्यकारी थीं। इसके अतिरिक्त, यह मानते हुए कि द्विपक्षीय समझौते की शर्तें अपीलकर्ता पर बाध्यकारी थीं,

समझौते की शर्तों का उल्लंघन एक समझौते के रूप में अनुशासनात्मक कार्रवाई की मांग करने वाला कदाचार अनुशासनात्मक नियमों या विनियमों के बराबर नहीं माना जा सकता, जिनके माध्यम से किसी कर्मचारी पर दंडात्मक परिणाम लगाए जा सकते हैं। (पैरा 24)

आरोप-पत्र में यह आरोप नहीं लगाया गया कि अपीलकर्ता के आचरण से बैंक को कोई नुकसान हुआ। (पैरा 25)

विशेष अपील स्वीकृत। (ई-4)

<u>विधि व्यवस्था अनुसरित:</u>

1. डिविजनल कंट्रोलर, KSRTC (NWKRTC) बनाम A.T. माने, (2005) 3 SCC 254 (अनुच्छेद 17)
2. ए. एल. कलारा बनाम द प्रोजेक्ट एंड उपकरण कॉर्प. ऑफ इंडिया लिमिटेड, (1994) 3 SCC 316 (अनुच्छेद 20)

<u>विधि व्यवस्था प्रतिष्ठित:</u>

एस. बी. आई. और अन्य बनाम बेला बागची और अन्य, (2005) 7 SCC 435 (पैरा 15)

वर्तमान विशेष अपील माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक

04.06.2014 विरुद्ध योजित है जिसमे प्रस्तुत याचिका संख्या 3531 / 2000 को निरस्त करते हुए दिया गया था, जिसमें अपीलकर्ता ने 30.09.1999 को सेवा से बर्खास्तगी के आदेश और साथ ही 20.03.2000 को अपीलीय आदेश को चुनौती दी थी।

(माननीय न्यायमूर्ति माननीय रमेश सिन्हा, और माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यर्थी, द्वारा प्रदत्त।)

(1) अपीलकर्ता के विद्वान वकील श्री अनुज दयाल और प्रतिवादी के विद्वान वकील श्री गोपाल कुमार श्रीवास्तव को सुना।

(2) यह विशेष अपील अपीलकर्ता द्वारा माननीय एकल न्यायाधीश के दिनांक 04.06.2014 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध दायर की गई है, जिसमें रिट याचिका संख्या 3531 of 2000 को खारिज कर दिया गया था। उक्त रिट याचिका अपीलकर्ता द्वारा दिनांक 30.09.1999 के आदेश द्वारा उसकी सेवा से बर्खास्तगी को चुनौती देने के लिए दायर की गई थी, साथ ही दिनांक 20.03.2000 के अपीलीय आदेश को भी चुनौती दी गई थी।

(3) मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि अपीलकर्ता को दिनांक 01.05.1982 को सिंडिकेट बैंक में एक चतुर्थ श्रेणी पद पर परिचर के रूप में नियुक्त किया गया था और परिवीक्षा अवधि सफलतापूर्वक पूरी करने के बाद, उसकी सेवाएं स्थायी कर दी गई थीं। अपीलकर्ता ने 75,000/- रुपये का एक स्टाफ आवास ऋण के लिए आवेदन किया था, जो उसे मंजूर किया गया था और ऋण राशि 5% प्रति वर्ष ब्याज के साथ 24 वर्षों में 357.15/- रुपये की मासिक किस्त का भुगतान करके चुकाने योग्य थी। अपीलकर्ता ने लखनऊ विकास प्राधिकरण से 35,000/- रुपये के मूल्य पर एक भूखंड खरीदा था और अपीलकर्ता को 18.01.1989 को भूखंड का वास्तविक कब्जा सौंप दिया गया था। तत्पश्चात, अपीलकर्ता ने उक्त भूखंड पर एक मकान बनाने के लिए एक निर्माण योजना प्रस्तुत की और उसे दिनांक 10.03.1989 के आदेश द्वारा अनुमति प्रदान की गई थी। अपीलकर्ता को फिर दिनांक 31.10.1989 के एक आदेश द्वारा निलंबित कर दिया गया था।

(4) दिनांक 06.08.1998 को अपीलकर्ता को एक आरोप पत्र जारी किया गया था जिसमें कहा गया था कि उसने बैंक से आवास ऋण लेने के बाद खरीदी गई संपत्ति को ऋण राशि चुकाए बिना और बैंक से अनुमति लिए बिना बेच दिया था, जो कि कर्मचारी आवास ऋण योजना का उल्लंघन था। आरोप पत्र में आरोप लगाया गया था कि अपीलकर्ता का उपरोक्त कृत्य द्विपक्षीय समझौते के खंड 19.5 का उल्लंघन करता था। अपीलकर्ता ने आरोपों से इनकार करते हुए एक जवाब प्रस्तुत किया। जांच अधिकारी ने अपीलकर्ता के विरुद्ध लगाए गए आरोपों को निर्णायक रूप से सिद्ध पाया और उसके बाद 30.09.1999 को एक आदेश पारित किया गया जिसमें अपीलकर्ता को बैंक की सेवाओं से बर्खास्त कर दिया गया।

(5) अपीलकर्ता ने दिनांक 30.09.1999 के बर्खास्तगी आदेश के विरुद्ध एक अपील दायर की जो दिनांक 20.03.2000 के एक आदेश द्वारा खारिज कर दी गई।

(6) उपरोक्त आदेश को रिट याचिका संख्या 3531 (एस/एस) of 2000 दायर करके चुनौती दी गई है और 13.07.2000 को एक अंतरिम आदेश पारित किया गया था जिसके द्वारा दिनांक 30.09.1999 के बर्खास्तगी आदेश और दिनांक

20.03.2000 के अपीलीय आदेश पर रोक लगा दी गई थी।

(7) प्रत्यर्थी-बैंक ने दिनांक 13.07.2000 के अंतरिम आदेश के विरुद्ध विशेष अपील संख्या 227 of 2000 दायर की और अपील में, अंतरिम आदेश को इस प्रभाव से संशोधित किया गया कि चूंकि अपीलकर्ता को एक आपराधिक मामले में दोषी ठहराया गया था, उसे बहाल नहीं किया जाएगा, लेकिन उसे नियमित रूप से वेतन का भुगतान किया जाएगा।

(8) श्री अनुज दयाल, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि अपीलकर्ता ने एक आवास ऋण लिया था और उसने लखनऊ विकास प्राधिकरण से एक आवासीय भूखंड खरीदा था और भूखंड का कब्जा उसे सौंप दिया गया था। अपीलकर्ता ने उसके बाद लखनऊ विकास प्राधिकरण को एक निर्माण योजना प्रस्तुत की और प्राधिकरण ने दिनांक 10.03.1989 के एक आदेश द्वारा योजना को मंजूरी दे दी। उसने उक्त ऋण से भूखंड पर एक मकान का निर्माण किया। 31.10.1989 को, याचिकाकर्ता को निलंबित कर दिया गया था और 09.03.1990 को, उसका एक दुर्घटना में सिर में गंभीर चोटें लगीं। अपीलकर्ता को तब सिविल अस्पताल, लखनऊ में भर्ती कराया गया और उसके बाद उसे संजय गांधी स्नातकोत्तर आयुर्विज्ञान संस्थान, लखनऊ में स्थानांतरित कर दिया गया, जहां उसे एक बड़ी सर्जिकल ऑपरेशन करवानी पड़ी और उसे अपने इलाज के लिए खर्च करना पड़ा। अपने चिकित्सा खर्चों को पूरा करने के लिए, अपीलकर्ता को एक श्री अब्दुल सगीर सिद्दीकी से 20,000/- रुपये उधार लेने पड़े और जब अपीलकर्ता श्री सिद्दीकी से लिया गया ऋण चुका नहीं सका, तो उसने अपीलकर्ता पर भूखंड और मकान को श्रीमती सिरीन रहमान के पक्ष में 1,25,000/- रुपये के बिक्री मूल्य पर बेचने के लिए दबाव डाला। श्री सिद्दीकी ने संपत्ति के बिक्री मूल्य के लिए पोस्ट-डेटेड चेक सौंपे थे। हालांकि, चेक अस्वीकृत हो गए। अपीलकर्ता को सिविल जज, लखनऊ के न्यायालय में नियमित वाद संख्या 27 of 1991 दायर करना पड़ा और अंततः उनके बीच एक समझौता हो गया। रिट याचिका में यह अभिवचन किया गया है कि अपीलकर्ता ने परास्थितिवश, मजबूर होकर संपत्ति बेची थी।

(9) श्री दयाल ने इस न्यायालय का ध्यान इस बात की ओर आकर्षित किया है कि अपील में किए गए अभिवचनों के अनुसार अपीलकर्ता को दिनांक 31.10.1981 के एक आदेश द्वारा एक अलग मामले में निलंबित कर दिया गया था और उसका निलंबन दिनांक 03.06.1998 के एक आदेश द्वारा निरस्त कर दिया गया था और अपीलकर्ता को सेवा में बहाल कर दिया गया था और पूरी अवधि के दौरान ऋण के पुनर्भुगतान के लिए मासिक किस्त अपीलकर्ता के वेतन या उसे भुगतान किए गए निर्वाह भत्ते से कटौती की जाती रही। अपनी बहाली के बाद अपीलकर्ता ने वेतन के बकाया के भुगतान के साथ-साथ अपने वेतन के संशोधन और निर्धारण का दावा करते हुए एक अभ्यावेदन दायर किया और, उसके बाद ही अपीलकर्ता को दिनांक 06.08.1998 का एक आरोप पत्र जारी किया गया था जिसमें कहा गया था कि उसने बैंक से आवास ऋण लेने के बाद खरीदी गई संपत्ति को बेच दिया था और उसने बैंक की कीमत पर लाभ कमाया था।

(10) इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि अपीलकर्ता के किसी भी कृत्य से बैंक को कोई नुकसान नहीं हुआ था क्योंकि उसने ऋण राशि का दुरुपयोग नहीं किया था। ऋण 24 वर्षों में 357.15 रुपये की मासिक किस्त में चुकाया जाना था, जो राशि

नियमित रूप से अपीलकर्ता के वेतन से कटौती की जाती रही और पूरे वर्ष के भीतर ऋण राशि अपीलकर्ता द्वारा चुका दी गई है।

(11) माननीय एकल न्यायाधीश ने अपीलकर्ता द्वारा दायर रिट याचिका को यह मानते हुए खारिज कर दिया कि अपीलकर्ता ने बैंक के धन का व्यक्तिगत लाभ के लिए दुरुपयोग किया था क्योंकि उसने उसे दिए गए धन से खरीदी गई संपत्ति पर साम्यापूर्ण बंधक नहीं बनाया था और संपत्ति को बैंक की अनुमति और जानकारी के बिना बेच दिया था। माननीय एकल न्यायाधीश ने माना कि संपत्ति बेचने और लाभ कमाने में अपीलकर्ता का आचरण बैंक के धन के दुरुपयोग के समान था जिससे बैंक को गंभीर नुकसान हुआ था।

(12) माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा पारित उपरोक्त आदेश को चुनौती देते हुए, श्री अनुज दयाल, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि यह आरोप नहीं था कि अपीलकर्ता के किसी कृत्य से बैंक को कोई नुकसान हुआ था और रिकॉर्ड पर कोई साक्ष्य नहीं रखा गया था जो बैंक को हुए किसी नुकसान को सिद्ध करती हो। उन्होंने निवेदन किया है कि माननीय एकल न्यायाधीश के निष्कर्ष, कि अपीलकर्ता के कथित आचरण से बैंक को गंभीर नुकसान हुआ था, किसी साक्ष्य द्वारा समर्थित नहीं था।

(13) उन्होंने आगे निवेदन किया है कि वह इस तथ्य को विवादित नहीं करते कि बैंक द्वारा दिए गए आवास ऋण से खरीदी गई संपत्ति को बेचना एक उचित आचरण नहीं था, लेकिन फिर भी, इस अनुचितता का परिणाम केवल ऋण समझौते की शर्तों के अनुसार हो सकता था और ऐसा कृत्य अनुशासनात्मक कार्यवाही का आधार नहीं हो सकता था जो अपीलकर्ता को सेवा से बर्खास्त करने की ओर ले जाए।

(14) इसके विपरीत, प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता श्री गोपाल कुमार श्रीवास्तव ने विशेष अपील का जोरदार विरोध किया है और उन्होंने निवेदन किया है कि अपीलकर्ता बैंक का एक कर्मचारी था और बैंक के किसी कर्मचारी द्वारा किए गए किसी भी कदाचार से, जिसका बैंक पर प्रतिकूल वित्तीय प्रभाव पड़ता हो, गंभीरता से निपटा जाना चाहिए। उन्होंने निवेदन किया है कि बैंक कर्मचारी होने के नाते अपीलकर्ता को 2-2.5% की कम ब्याज दर पर आवास ऋण दिया गया था और अपीलकर्ता ने लाभ कमाने के लिए मकान बेचने के इरादे से आवास ऋण का लाभ उठाया था और अपीलकर्ता के इस आचरण से बैंक को नुकसान हुआ है।

(15) उन्होंने **स्टेट बैंक ऑफ इंडिया और अन्य बनाम बेला बागची और अन्य**; *(2005) 7 एससीसी 435* के मामले में उच्चतम न्यायालय के एक निर्णय पर भरोसा किया है, जो एक बैंक के कर्मचारी की बर्खास्तगी के आदेश से उत्पन्न हुआ था, जिसमें आरोप लगाया गया था कि कर्मचारी ने एक खाताधारक से उसके बचत बैंक खाते में जमा करने के लिए पैसे प्राप्त किए थे, लेकिन उसने ऐसा नहीं किया और खाताधारक की पासबुक में एक काल्पनिक जमा प्रविष्टि कर दी। इसी तरह का कदाचार एक बैंक कर्मचारी द्वारा कई अन्य अवसरों पर दोहराया गया था। उपरोक्त तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में, उच्चतम न्यायालय ने कहा है कि *"एक बैंक अधिकारी को ईमानदारी और सत्यनिष्ठा के उच्च मानकों का पालन करना आवश्यक है। वह जमाकर्ताओं और ग्राहकों के धन से निपटता है। बैंक के प्रत्येक अधिकारी/कर्मचारी को बैंक के हितों की रक्षा के लिए सभी संभव*

कदम उठाने और अपने कर्तव्यों का निर्वहन पूर्ण सत्यनिष्ठा, ईमानदारी, समर्पण और परिश्रम के साथ करने और ऐसा कुछ भी न करने की आवश्यकता है जो एक बैंक अधिकारी के लिए अशोभनीय हो। अच्छा आचरण और अनुशासन बैंक के प्रत्येक अधिकारी/कर्मचारी के कार्य से अविभाज्य हैं। जैसा कि इस न्यायालय ने अनुशासनिक प्राधिकारी-सह-क्षेत्रीय प्रबंधक बनाम निकुंज बिहारी पटनायक, [1996] 9 SCC 68 में अवलोकन किया था, यह कोई बचाव उपलब्ध नहीं है कि कहा जाए कि कोई नुकसान या लाभ नहीं हुआ, जब अधिकारी/कर्मचारी ने बिना अधिकार के कार्य किया। किसी संगठन विशेषकर एक बैंक का अनुशासन इसके अधिकारियों और अधिकारियों के अपने आवंटित क्षेत्र के भीतर कार्य करने और संचालन करने पर निर्भर करता है। अपने अधिकार से परे कार्य करना स्वयं में अनुशासन का उल्लंघन है और एक कदाचार है। कर्मचारी के विरुद्ध आरोप सामान्य प्रकृति के नहीं थे और गंभीर थे।"

(16) हालांकि, उच्चतम न्यायालय का उपरोक्त कथन वर्तमान मामले पर लागू नहीं होता है, क्योंकि यहां अपीलकर्ता द्वारा बैंक के कर्मचारी के रूप में अपने कर्तव्यों का निर्वहन करते समय कोई कदाचार किए जाने का आरोप नहीं है। अपीलकर्ता द्वारा किसी गबन का कोई आरोप नहीं है। अपीलकर्ता के विरुद्ध एकमात्र आरोप यह है कि उसने बैंक से, जिसमें वह नियोजित था, एक आवास ऋण लिया था, और उसने बैंक की पूर्व अनुमति के बिना मकान बेच दिया। यहां तक कि अपीलकर्ता द्वारा बैंक से उधार ली गई राशि के गैर-भुगतान का भी कोई आरोप नहीं है। ऋण का पुनर्भुगतान अनुसूची के अनुसार किया गया है और बैंक को ऋण के पुनर्भुगतान के लिए मांग नोटिस जारी करने का भी कोई अवसर नहीं मिला, ऋण राशि की वसूली के लिए अपीलकर्ता के विरुद्ध कोई कार्यवाही शुरू करने की तो बात ही छोड़ दें। इसलिए**, बेला बागची (उपरोक्त)** का उपरोक्त निर्णय वर्तमान मामले में प्रत्यर्थी/बैंक के लिए कोई लाभ नहीं देता है।

(17) श्री श्रीवास्तव ने आगे **डिवीजनल कंट्रोलर, केएसआरटीसी (एनडब्ल्यूकेआरटीसी) बनाम ए.टी. माने;** (2005) 3 SCC 254 के मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है, *जिसमें उच्चतम न्यायालय ने एक बस कंडक्टर की बर्खास्तगी को इस आधार पर बरकरार रखा था कि एक आकस्मिक जांच में उसके पास उसके द्वारा जारी किए गए टिकटों के बराबर राशि से 93/- रुपये अधिक की अहिसाबी राशि पाई गई थी।* यह निर्णय भी वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होता है।

(18) अपीलकर्ता और प्रत्यर्थी/बैंक के बीच निष्पादित ऋण समझौते की एक प्रति से पता चलता है कि इसमें एक शर्त थी कि *"कर्मचारी बैंक की पूर्व अनुमति के बिना मकान नहीं बेचेगा। यदि वह बैंक की अनुमति से या बिना अनुमति के मकान बेचता है या अपने विरुद्ध किसी डिक्री के निष्पादन में मकान को बेचने की अनुमति देता है या सहन करता है तो संपूर्ण ऋण या उसका जो भी हिस्सा तब तक अदत्त रह गया हो, बिक्री पूरी होने की तारीख को तत्काल देय हो जाएगा।"*

(19) उपरोक्त शर्त से ऐसा प्रतीत होता है कि यद्यपि एक शर्त थी कि उधारकर्ता प्रत्यर्थी की पूर्व अनुमति के बिना संपत्ति नहीं बेचेगा, अनुमति के बिना बिक्री के परिणाम भी ऋण समझौते में प्रदान किए गए थे और, इसलिए, प्रत्यर्थी के लिए यह खुला था कि वह समझौते के प्रावधानों के

अनुसार ही ऋण समझौते की शर्तों के उल्लंघन के लिए अपीलकर्ता के विरुद्ध कार्यवाही करे।

(20) श्री अनुज दयाल, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने हमारे समक्ष **ए.एल. कलारा बनाम द प्रोजेक्ट एंड इक्विपमेंट कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड**; (1984) 3 SCC 316 के मामले में उच्चतम न्यायालय का एक निर्णय प्रस्तुत किया है, जिसमें उच्चतम न्यायालय ने कहा था कि *"यदि अग्रिम देने के नियम स्वयं शर्तों के उल्लंघन का परिणाम प्रदान करते हैं, तो उस संबंध में कोई अनुशासनात्मक कार्रवाई शुरू करके किसी अन्य परिणाम की खोज में जाना व्यर्थ होगा जब तक कि 1975 के नियम विशेष रूप से एक नियम शामिल नहीं करते कि हाउस बिल्डिंग अग्रिम नियमों का उल्लंघन स्वयं में एक कदाचार होगा। यहां ऐसा मामला नहीं है जैसा कि अभी बताया जाएगा। प्रासंगिक नियमों के तहत अग्रिम मांगना और उसे देना, अधिकतम एक ऋण लेनदेन है। लेनदेन स्वयं पुनर्भुगतान और पुनर्भुगतान करने में विफलता या नियमों का पालन करने में विफलता के परिणाम प्रदान कर सकता है। इस मामले में ऐसा किया गया है। अनुबंध के उल्लंघन के एक संभावित अन्य परिणाम की खोज में जाने का कोई भी प्रयास मनमाना और यहां तक कि प्रेरित प्रतीत होता है।"*

(21) जब हम वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की जांच उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित उपरोक्त विधि के प्रकाश में करते हैं, तो हम पाते हैं कि अपीलकर्ता ने उस बैंक से एक आवास ऋण लिया था जिसमें वह एक परिचर के रूप में नियोजित था जो एक चतुर्थ श्रेणी का पद है। ऋण वर्ष 1988 में दिया गया था। अपीलकर्ता द्वारा देय ब्याज दर 5% प्रति वर्ष थी, न कि 2-2.5% प्रति वर्ष जैसा कि श्री गोपाल कुमार श्रीवास्तव, प्रत्यर्थी-बैंक के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया था। 75,000/- रुपये का ऋण 24 वर्षों में 357.15/- रुपये की मासिक किस्त में देय था, जो किस्तें अपीलकर्ता के वेतन या उसके निलंबन की अवधि के दौरान उसके निर्वाह भत्ते से कटौती की जाती रहीं और संपूर्ण ऋण राशि चुका दी गई है।

(22) श्री गोपाल कुमार श्रीवास्तव, प्रत्यर्थी/बैंक के विद्वान अधिवक्ता ने दिनांक 27.10.1989 के एक पत्र की ओर ध्यान आकर्षित किया है, जो अपीलकर्ता द्वारा बैंक के सहायक महाप्रबंधक को 3,40,700/- रुपये के गबन का अपराध स्वीकार करते हुए भेजा गया था और अपीलकर्ता ने लिखा था कि वह बैंक की उपरोक्त राशि का पुनर्भुगतान अपने द्वारा निर्मित मकान को बेचकर और अन्य स्रोतों से भी धन एकत्र करके करेगा, जिसके माध्यम से उन्होंने इस न्यायालय को प्रभावित करने का प्रयास किया है कि अपीलकर्ता का इरादा वर्ष 1989 में ही मकान बेचने का था। हालांकि, उपरोक्त पत्र के अवलोकन से पता चलता है कि अपीलकर्ता ने अपने दिनांक 27.10.1989 के पत्र के माध्यम से बैंक के ज्ञान में यह बात ला दी थी कि वह अपना मकान बेचने का इरादा रखता है और, इसलिए, माननीय एकल न्यायाधीश का अवलोकन कि *"संपत्ति बैंक की अनुमति और **जानकारी** के बिना तीसरे पक्ष को बेची गई थी"* गलत है।

(23) यद्यपि श्री श्रीवास्तव ने जोरदार तर्क दिया है कि अपीलकर्ता के आचरण के परिणामस्वरूप प्रत्यर्थी/बैंक को वित्तीय नुकसान हुआ है, लेकिन न तो अपीलकर्ता को जारी किए गए आरोप पत्र में कोई ऐसा आरोप है, और न ही इस न्यायालय के समक्ष रिकॉर्ड पर कोई अन्य सामग्री लाई गई

है जो श्री श्रीवास्तव के निवेदन को पुष्ट करे कि अपीलकर्ता के आचरण के कारण बैंक को कोई वित्तीय नुकसान हुआ है। बैंक ने एक आवास ऋण बनाया था, जो कि ऋण समझौते से स्पष्ट कुछ निश्चित नियमों और शर्तों पर भी था। अधिकतम, बैंक से उधार ली गई राशि से खरीदे/निर्मित मकान को बेचकर, अपीलकर्ता ने ऋण समझौते की शर्तों का उल्लंघन किया है लेकिन बैंक ने समझौते की शर्तों के प्रवर्तन के लिए कोई कार्रवाई न करने का विकल्प चुना। बैंक ऋण के पुनर्भुगतान की ओर मासिक किस्त की राशि की कटौती अपीलकर्ता को भुगतान किए गए वेतन या निर्वाह भत्ते से करके ऋण का पुनर्भुगतान प्राप्त करता रहा, पूरे 24 वर्षों की अवधि के लिए जब तक कि संपूर्ण ऋण राशि बैंक को चुका नहीं दी गई।

(24) श्री श्रीवास्तव ने निवेदन किया है कि अपीलकर्ता का आचरण द्विपक्षीय समझौते के खंड 19.5 का उल्लंघन है और यह द्विपक्षीय समझौते के खंड 19.5(J) के अनुसार एक कदाचार के समान है। कथित द्विपक्षीय समझौता रिकॉर्ड पर नहीं रखा गया है और रिकॉर्ड पर ऐसा कुछ नहीं है जो यह दर्शाता हो कि अपीलकर्ता समझौते का एक पक्षकार था या समझौते की शर्तें अन्यथा आवेदक पर बाध्यकारी थीं। इसके अलावा, यह मानते हुए कि द्विपक्षीय समझौते की शर्तें अपीलकर्ता पर बाध्यकारी थीं, समझौते की शर्तों का उल्लंघन एक ऐसे कदाचार के समान नहीं हो सकता जो अनुशासनात्मक कार्रवाई का औचित्य सिद्ध करता हो क्योंकि एक समझौते को अनुशासनात्मक नियमों या विनियमों के समान नहीं माना जा सकता जिनके माध्यम से एक कर्मचारी पर दंडात्मक परिणाम लागू किए जा सकते हैं।

(25) उपरोक्त चर्चाओं के दृष्टिगत, हमारी राय है कि संपूर्ण आवास ऋण अपीलकर्ता द्वारा चुका दिया गया है, अपीलकर्ता द्वारा मकान बेच देने से बैंक को कोई नुकसान नहीं हुआ है और, इसलिए, माननीय एकल न्यायाधीश का यह निष्कर्ष कि अपीलकर्ता द्वारा संपत्ति बेचने के आचरण से बैंक को गंभीर नुकसान हुआ था, रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री द्वारा समर्थित नहीं है और टिकाऊ नहीं है। माननीय एकल न्यायाधीश का अवलोकन कि संपत्ति बैंक की अनुमति के बिना बेची गई थी सही है, लेकिन यह अवलोकन कि यह बैंक की **जानकारी** के बिना किया गया था, गलत है क्योंकि दिनांक 27.10.1989 के पत्र से, अपीलकर्ता ने बैंक को सूचित कर दिया था कि वह मकान बेचने के बाद बैंक का पैसा लौटा देगा। इसके अलावा, आरोप पत्र में यह आरोप नहीं था कि अपीलकर्ता के आचरण से बैंक को कोई नुकसान हुआ था और रिकॉर्ड पर ऐसा कुछ नहीं है जो माननीय एकल न्यायाधीश के इस निष्कर्ष का समर्थन करता हो कि याचिकाकर्ता के आचरण से बैंक को गंभीर नुकसान हुआ था।

(26) उपरोक्त चर्चाओं के दृष्टिगत वर्तमान विशेष अपील **स्वीकार** की जाती है। दिनांक 04.06.2014 का निर्णय और आदेश एतद्द्वारा निरस्त किया जाता है और रिट याचिका संख्या 3531 of 2000 स्वीकार की जाती है। दिनांक 30.09.1999 का बर्खास्तगी आदेश और दिनांक 20.03.2000 का अपीलीय आदेश एतद्द्वारा निरस्त किया जाता है।

(27) सभी आवश्यक परिणाम अनुसरण करेंगे। हालांकि, लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

(2023) 3 ILRA 110

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 15.03.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पवार

रिट ए संख्या 577/2011

दुर्गा प्रसाद पाठक ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: विवेक त्रिपाठी

प्रतिवादी के अधिवक्ता: सी.एस.सी.

A. सेवा कानून - सेवानिवृत्ति के पश्चात देय राशि का भुगतान न करना - आपराधिक/न्यायिक प्रक्रिया - जब तक विभागीय प्रक्रियाएं प्रारंभ नहीं की गईं या किसी न्यायिक या प्रशासनिक प्रक्रिया को सरकारी कर्मचारी की सेवा के दौरान उसकी दोषिता निर्धारित करने के लिए नहीं प्रारंभ किया गया, तब तक केवल आपराधिक प्रक्रिया का लंबित रहना याचिकाकर्ता के सेवानिवृत्ति के पश्चात देय राशि के भुगतान के विरुद्ध कोई कार्रवाई करने का आधार नहीं बन सकता। (पैराग्राफ 9)

दिनांक 28.10.1980 की शासनादेश की अवलोकन से प्रतीत होता है कि प्रतिवादियों ने इस आदेश को गलत तरीके से पढ़ा है, जो केवल विभागीय न्यायिक प्रक्रियाओं या सतर्कता प्रक्रियाओं से संबंधित है, हालांकि, इस वाद में, अभिलेख से यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध कोई चार्जशीट नहीं योजित की गई है, हालाँकि यह वाद वर्ष 1997 का है। **त्वरित विचरण आरोपी का मौलिक अधिकार है और सरकार को उस पर आगे बढ़ने में मदद करनी चाहिए, यदि वास्तव में, उसके विरुद्ध कोई आपराधिक प्रक्रिया शुरू की गई है। केवल एक एफ.आई.आर. दर्ज करने से, जबकि कोई चार्जशीट नहीं है, यह नहीं कहा जा सकता कि याचिकाकर्ता के खिलाफ न्यायिक आपराधिक प्रक्रिया लंबित है।** ऐसे प्रकार के आपराधिक मामलों को दशकों तक लंबित करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। (पैराग्राफ 10)

B. इस न्यायालय के सामने कोई प्रावधान प्रस्तुत नहीं किया गया है, जो यह प्रदर्शित करता हो कि वर्ष 1997 में याचिकाकर्ता के विरुद्ध केवल एफ.आई.आर. दर्ज करने से, बिना किसी जांच में प्रगति के, याचिकाकर्ता को उसकी पेंशन संबंधी लाभों से वंचित किया जा सकता है। याचिकाकर्ता को शेष सेवानिवृत्ति के बाद की बकाया राशि जारी करने से रोकने के लिए किसी सेवा नियम में कोई कानूनी बाधा नहीं है। इसलिए, एक परमादेश का आदेश जारी किया जाता है, जिसमें प्रतिवादी पक्ष को याचिकाकर्ता की शेष सेवानिवृत्ति के बाद की बकाया राशि जैसे कि ग्रेच्युइटी, नियमित पेंशन आदि, इस आदेश की प्रमाणित प्रति की तारीख से तीन महीने के भीतर जारी करने का निर्देश दिया जाता है। (पैराग्राफ 11)

जब तक उसे सेवानिवृत्ति के बाद की बकाया राशि का भुगतान नहीं किया जाता, याचिकाकर्ता को उपरोक्त अवधि के भीतर अस्थायी पेंशन का लाभ प्राप्त करने की अनुमति है। (पैराग्राफ 12)

<u>याचिका स्वीकृत। (E-4)</u>

<u>उद्धृत वाद:</u>

हरनाम सिंह यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2012 SCC ऑनलाईन ऑल 3646 (पैराग्राफ 7)

(माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पवार, द्वारा प्रदत्त।)"

श्री विवेक त्रिपाठी, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना।

इस याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने विपक्षी पक्षों को याचिकाकर्ता के पक्ष में नियमित पेंशन, ग्रेच्युटी और बीमा को ब्याज सहित जारी करने का आदेश देने वाला एक परमादेश रिट मांगा है।

मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता की प्रारंभिक नियुक्ति 19.08.1970 को पीएसी में हुई थी और प्रशिक्षण के बाद उन्हें 30वीं बटालियन पी.ए.सी., गोंडा में तैनात किया गया था। याचिकाकर्ता ने अधिवर्षता की आयु पूरी करने के बाद 31.05.2010 को सेवानिवृत्ति ली, हालांकि, सेवानिवृत्ति के बाद केवल जीपीएफ, अवकाश नकदीकरण और अंतरिम पेंशन का भुगतान याचिकाकर्ता को किया गया है और नियमित पेंशन, ग्रेच्युटी और बीमा का भुगतान याचिकाकर्ता को नहीं किया गया है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया है कि राज्य सरकार द्वारा सेवानिवृत्ति के बाद के बकाया का भुगतान न करना मनमाना है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 का उल्लंघन है।

इसके विपरीत, श्री विनोद सिंह, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने निवेदन किया है कि पेंशन और ग्रेच्युटी को अंतिम रूप देने में कानूनी बाधा थी क्योंकि याचिकाकर्ता के खिलाफ एक प्राथमिकी दर्ज की गई थी जो मामला संख्या 774/1997 के रूप में धारा 223/224/290/294/406 भा.द.सं. के तहत पंजीकृत की गई थी, जिसमें आरोप लगाया गया था कि अभियुक्त व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के साथ पुलिस हिरासत से भाग गए। विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने आगे निवेदन किया है कि चूंकि उस मामले में याचिकाकर्ता के संबंध में जांच लंबित है, इसलिए इस कानूनी बाधा के कारण, शेष सेवानिवृत्ति के बाद के बकाया का भुगतान याचिकाकर्ता को नहीं किया जा सका। अपने निवेदन के समर्थन में, उन्होंने सरकारी आदेश 3-1679/10-80-909-79 दिनांक 28.10.1980 का हवाला दिया है जो प्रावधान करता है कि अपराधी कर्मचारी के खिलाफ आपराधिक/न्यायिक कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान, ग्रेच्युटी का भुगतान नहीं किया जाएगा जब तक कि अपराधी कर्मचारी के खिलाफ जांच पर अंतिम निर्णय नहीं लिया जाता।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क का खंडन करते हुए इस न्यायालय की समान पीठ द्वारा "**हरनाम सिंह यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य**, **2012 एससीसी ऑनलाइन एएलएल 3646"** के मामले में पारित निर्णय और "भगवत प्रसाद यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य" रिट याचिका संख्या 3150 (एस/एस) 2011 के मामले का हवाला दिया है, और निवेदन किया है कि केवल आपराधिक कार्यवाही का लंबित होना याचिकाकर्ता के सेवानिवृत्ति के बाद के बकाया को जारी करने में रोक नहीं लगाएगा।

जिला न्यायाधीश, गोंडा द्वारा प्रस्तुत दिनांक 17.12.2022 की रिपोर्ट के अवलोकन से पता चलता है कि शिकायतकर्ता सगीर अहमद की शिकायत पर आरोपी व्यक्तियों नामतः शिव पूजन तिवारी, दुर्गा प्रसाद पाठक, अभय नाथ सिंह और श्रीमती माया देवी के खिलाफ मामला संख्या 774/1997, धारा 222/223/224 भा.द.सं., पुलिस स्टेशन कोतवाली नगर, जिला गोंडा में दर्ज किया गया था और जांच पूरी होने के बाद, दिनांक 07.11.1997 को केवल शिव पूजन तिवारी के खिलाफ आरोप पत्र दाखिल किया गया था जबकि अन्य आरोपी व्यक्तियों सहित याचिकाकर्ता के खिलाफ जांच जारी रही। यह पक्षों के बीच विवादित नहीं है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई आरोप पत्र दाखिल नहीं किया गया है।

"हरनाम सिंह यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2012 एससीसी अनलाइन एएलएल 3646" के मामले मे, इस न्यायालय ने पैरा 4 से 9 में निम्नरूप मे निर्णय दिया है:-

"3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का निवेदन है कि उपरोक्त शासनादेश को संबंधित अधिकारियों द्वारा गलत तरीके से पढ़ा गया है। उक्त शासनादेश केवल विभागीय न्यायिक कार्यवाही, या सतर्कता कार्यवाही या सेवा न्यायाधिकरण कार्यवाही से संबंधित है और यह आपराधिक कार्यवाही को शामिल नहीं करता है, जो विभाग से संबंधित नहीं हैं

4. याचिकाकर्ता की ओर से यह भी तर्क दिया गया है कि केवल आपराधिक कार्यवाही का लंबित होना, सेवानिवृत्ति लाभों को रोकने का आधार नहीं हो सकता क्योंकि यदि परीक्षण में, मामला याचिकाकर्ता के विरुद्ध सिद्ध होता है तो उसे कानून के अनुसार दंडित किया जाएगा। उसे उसके सेवानिवृत्ति लाभों को रोककर दंडित नहीं किया जा सकता।

5. विपक्षी के विद्वान अधिवक्ता ने दिनांक 28.10.1980 के शासनादेश पर जोर दिया जिसमें पैरा 2 में अंतरिम पेंशन के भुगतान के संबंध में प्रावधान किए गए हैं। उक्त शासनादेश के उपरोक्त पैरा का एक सरसरी अवलोकन यह प्रकट करता है कि यह ऐसे सरकारी कर्मचारी से संबंधित है जिसके विरुद्ध सेवानिवृत्ति की तिथि पर कोई विभागीय न्यायिक या प्रशासनिक जांच लंबित है। लेकिन यह कहीं भी प्रावधान नहीं करता कि यदि आपराधिक कार्यवाही लंबित है तो भी उक्त शासनादेश लागू होगा। यह उल्लेख करना पर्याप्त होगा कि ऐसा प्रावधान नहीं किया जा सकता था क्योंकि जब तक कि सेवा के दौरान सरकारी कर्मचारी के दोष को निर्धारित करने के उद्देश्य से विभागीय कार्यवाही शुरू नहीं की गई हो या कोई न्यायिक या प्रशासनिक कार्यवाही शुरू नहीं की गई हो, केवल आपराधिक कार्यवाही का लंबित होना याचिकाकर्ता के सेवानिवृत्ति के बाद के लाभों के भुगतान के संबंध में कोई कार्रवाई करने का आधार नहीं हो सकता।

6. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय के एक खंडपीठ के निर्णय पर निर्भर किया है जो बंगाली बाबू मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य के मामले में दिया गया था। [2003 (50) एएलआर 538] उक्त मामले में याचिकाकर्ता को एक जाल मामले में पकड़ा गया था और बाद में उसे निलंबित कर दिया गया था और उस मामले में न्यायालय ने निर्देश दिया कि याचिकाकर्ता के पेंशन, उपदान, अवकाश नकदीकरण, समूह बीमा सहित संपूर्ण सेवानिवृत्ति के बाद के लाभ का भुगतान याचिकाकर्ता को किया जाए।

7. उपदान भुगतान अधिनियम, 1972 की धारा 4(6) निम्नरूप मे इस प्रकार पढ़ी जाती है

"6. उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, -

(क) किसी कर्मचारी का उपदान, - जिसकी सेवाएं नियोक्ता की संपत्ति को कोई क्षति या हानि पहुंचाने या उसके विनाश का कारण बनने वाले किसी कृत्य, जानबूझकर किए गए लोप या लापरवाही के लिए समाप्त कर दी गई हैं, इस प्रकार की गई क्षति या हानि की सीमा तक जब्त कर लिया जाएगा;

(ख) किसी कर्मचारी को देय उपदान [पूर्णतः या आंशिक रूप से जब्त किया जा सकता है] -

(i) यदि ऐसे कर्मचारी की सेवाएं उसके दंगा करने या अव्यवस्थित आचरण या उसकी ओर से किसी अन्य हिंसक कृत्य के लिए समाप्त कर दी गई हैं, या

(ii) यदि ऐसे कर्मचारी की सेवाएं किसी ऐसे कृत्य के लिए समाप्त कर दी गई हैं जो नैतिक अधमता से जुड़ा अपराध गठित करता है बशर्ते कि ऐसा अपराध उसके द्वारा उसके रोजगार के दौरान किया गया हो।"

8. उपरोक्त धारा का एक सरसरी अवलोकन यह स्पष्ट रूप से प्रकट करता है कि उपरोक्त धारा में वर्णित परिस्थितियां याचिकाकर्ता के मामले में बिल्कुल भी लागू नहीं होती हैं, इसलिए, याचिकाकर्ता का उपदान रोकने का आदेश कानून के अनुसार नहीं था। इस न्यायालय ने अमोद प्रसाद राय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य के मामले में, [2009 (122) एफएलआर 350 (इलाहाबाद - एल.बी.)] यह माना है कि उपदान भुगतान अधिनियम की धारा 4(6) में वर्णित परिस्थितियों के अलावा किसी भी परिस्थिति में उपदान रोकना अनुमत नहीं है और यह माना है कि उपदान का अधिकार एक वैधानिक अधिकार है। यह कहीं भी विपक्षी का मामला नहीं है कि उपरोक्त आपराधिक कार्यवाही के कारण विभाग को कोई हानि हुई थी या ऐसा अपराध उसके रोजगार के दौरान किया गया था। यह भी कहीं विपक्षी का मामला नहीं है कि याचिकाकर्ता से विभाग की ओर बकाया राशि के रूप में कोई राशि वसूल की जानी है। इस न्यायालय ने राधे श्याम शुक्ला बनाम उत्तर प्रदेश [2009 (123) एफएलआर 30 (इलाहाबाद)] राज्य के मामले में, निम्नानुसार माना है:

"सामान्यतः, जैसा कि विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा आग्रह किया गया है, "न्यायिक कार्यवाही" में आपराधिक परीक्षण भी शामिल होगा। हालांकि, एक शब्द को दिए गए अर्थ को विधायिका के इरादे और उसके उपयोग के दौरान प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए देना होगा। उपरोक्त प्रावधान का एक अध्ययन दर्शाता है कि "न्यायिक कार्यवाही" का उपयोग किसी प्रशासनिक कार्रवाई के उद्देश्य से या जो सरकारी कर्मचारी के आचरण से संबंधित "न्यायिक कार्यवाही" को जन्म दे सकता है, के लिए किया गया है। उपदान रोकने के मुख्य उद्देश्यों में से एक सरकारी कर्मचारी द्वारा अपने कार्य में सरकार को हुई हानि की क्षतिपूर्ति करना है। वर्तमान मामले में आपराधिक मामला दो व्यक्तियों से संबंधित है और परीक्षण किसी भी तरह से सरकार को हुई किसी हानि की जिम्मेदारी तय नहीं कर सकता। वास्तव में, प्रतिशपथ पत्र में ऐसा कोई मामला स्थापित नहीं किया गया है कि दो व्यक्तियों के बीच लंबित आपराधिक परीक्षण में निर्णय किसी भी तरह से सरकार को किसी कथित हानि की वसूली करने में सक्षम बनाएगा। वास्तव में याचिकाकर्ता पर कोई हानि

भी आरोपित नहीं की गई है। इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने बंगाली बाबू मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य के मामले में, [2009 (122) एफएलआर 350 (इलाहाबाद -एल.बी.)] उस सरकारी आदेश के प्रभाव पर विचार किया है जो नियमों में शामिल किया गया है और यह माना है कि केवल आपराधिक कार्यवाही का लंबित होना उपदान सहित सेवानिवृत्ति के बाद के लाभों को रोकने का अधिकार नहीं देता। उपरोक्त निर्णय का बाद में महेश बाल भारद्वाज बनाम उत्तर प्रदेश सहकारी संघ लिमिटेड के मामले में अनुसरण किया गया है। [2007 (10) एडीजे 561]"

दिनांक 28.10.1980 के उपरोक्त शासनादेश का अवलोकन दर्शाता है कि प्रतिवादियों ने शासनादेश को गलत तरीके से पढ़ा है जो केवल विभागीय न्यायिक कार्यवाही या सतर्कता कार्यवाही या अन्य कार्यवाही से संबंधित है, हालांकि, हाथ के मामले में, यह रिकॉर्ड से स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध कोई आरोप पत्र दाखिल नहीं किया गया है, यद्यपि मामला 1997 का है। त्वरित परीक्षण अभियुक्त का मौलिक अधिकार है और राज्य को आपराधिक कार्यवाही को समाप्त करने में उसे बढ़ावा देना चाहिए, यदि सरकारी कर्मचारी के विरुद्ध शुरू की गई हो। केवल एफ.आई.आर. दर्ज करने से, बिना किसी आरोप पत्र के, यह नहीं कहा जा सकता कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध न्यायिक आपराधिक कार्यवाही लंबित है। इस प्रकार के आपराधिक मामले को दशकों तक लटकने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।

इस न्यायालय के समक्ष विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा कोई प्रावधान उद्धृत नहीं किया गया है जो यह दर्शाता हो कि केवल 1997 में याचिकाकर्ता के विरुद्ध एफ.आई.आर. दर्ज करने से, जांच में किसी प्रगति के बिना, याचिकाकर्ता को उसके पेंशन लाभों से वंचित किया जा सकता है, इसलिए, मेरा मत है कि विपक्षी द्वारा लिया गया दृष्टिकोण कि आपराधिक मामले की लंबितता के इस कानूनी बाधा के कारण, याचिकाकर्ता के सेवानिवृत्ति के बाद के बकाया का भुगतान न करना एक उचित आदेश नहीं है। किसी भी सेवा नियम में कोई कानूनी बाधा नहीं है जो याचिकाकर्ता को शेष सेवानिवृत्ति के बाद के बकाया के भुगतान से वंचित करे। तदनुसार, एक परमादेश रिट जारी की जाती है जो विपक्षी पक्षों को निर्देश देती है कि वे याचिकाकर्ता के शेष सेवानिवृत्ति के बाद के बकाया जैसे उपदान, नियमित पेंशन आदि का भुगतान इस आदेश की प्रमाणित प्रति की तिथि से तीन महीने की अवधि के भीतर करें।

उसे सेवानिवृत्ति के बाद के बकाया के भुगतान तक, याचिकाकर्ता को उपरोक्त अवधि के भीतर अनंतिम पेंशन का लाभ प्राप्त करने की अनुमति दी जाती है। याचिकाकर्ता की अंतिम पेंशन निर्धारित की जाएगी और उसके बाद नियमित रूप से विपक्षी पक्षों द्वारा याचिकाकर्ता को भुगतान की जाएगी। सेवानिवृत्ति के बाद के बकाया के बकाया जो याचिकाकर्ता को भुगतान नहीं किए गए हैं, उन्हें भी उपरोक्त तीन महीने की अवधि के भीतर भुगतान किया जाएगा।

इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि याचिकाकर्ता दिसंबर, 2010 में सेवानिवृत्त हो गया था और उसके कुछ सेवानिवृत्ति के बाद के बकाया तब से बिना किसी उचित कारण के रोके गए हैं, विपक्षी पक्षों को निर्देश दिया जाता है कि वे याचिकाकर्ता को शेष सेवानिवृत्ति के बाद के बकाया पर 6% साधारण ब्याज का भुगतान करें।

उपरोक्त टिप्पणियों के मद्देनजर, याचिका स्वीकार की जाती है।

(2023) 3 ILRA 115

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

के समक्ष

दिनांक: लखनऊ 17.03.2023

माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पवार

रिट ए संख्या 1505/2015

श्रीमती संतोषी देवी ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: मोहम्मद नासिर, देव राज सिंह, मोहम्मद यासीन

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: सी.एस.सी.

A. सेवा कानून - सहानुभूतिपूर्ण नियुक्ति - महत्वपूर्ण तथ्यों का छिपाना - डाइंग इन हार्नेस नियम, 1974; उत्तर प्रदेश सरकारी कर्मचारियों के डाइंग इन हार्नेस नियम, 1974: नियम 2 का उप-नियम C - संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत सर्वोच्च न्यायालय और अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय की अधिकारिता असाधारण, न्यायसंगत और विवेकाधीन है। यह अच्छी तरह से स्थापित है कि एक प्रीरोगेटिव उपाय स्वाभाविक रूप से नहीं होता। इसलिए, असाधारण शक्ति का प्रयोग करते समय, एक विधि न्यायालय उस पक्ष के आचरण को ध्यान में रखेगी जो ऐसी अधिकारिता का उपयोग कर रही है। यदि आवेदक सभी तथ्यों का खुलासा नहीं करता या प्रासंगिक सामग्री को छिपाता है या अदालत को गुमराह करने में दोषी है, तो अदालत वाद की सुनवाई किए बिना कार्रवाई को निरस्त कर सकती है। यह नियम बड़े जनहित में विकसित किया गया है ताकि बेईमान याचिकाकर्ता अदालत की प्रक्रिया का दुरुपयोग न कर सकें। रिट अधिकारिता का मूल आधार सच्चे, पूर्ण और सही तथ्यों का खुलासा है। यदि महत्वपूर्ण तथ्य स्पष्ट रूप से नहीं बताए गए हैं या छिपाए गए हैं या विकृत किए गए हैं, तो रिट न्यायालय का कार्य करना असंभव हो जाएगा। (पैराग्राफ 6)

वर्तमान वाद में, आवेदक ने रिट याचिका दाखिल करते समय यह महत्वपूर्ण तथ्य छिपाया है कि वह मृतक कर्मचारी की दूसरी पत्नी की बहू है, जो कार्यरत रहते हुए निधन हो गया, और यह भी कि मृतक ने पहली पत्नी के जीवित रहते हुए दूसरी शादी की थी और इसलिए आवेदक 'परिवार' की परिभाषा में नहीं आती। इसलिए, याचिका को निरस्त किया जाना चाहिए। (पैराग्राफ 7)

याचिका निरस्त। (E-4)

<u>विधि व्यवस्था अनुसरित:</u>

1. के.डी. शर्मा बनाम स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड एवं अन्य, (2008) 12 SCC 481 (पैराग्राफ 6)

2. जी. जयश्री एवं अन्य बनाम भागवंदास एस.बी.आई. बैंक ऑफ इंडिया, (2007) 8 SCC 449 (पैराग्राफ 6)

वर्तमान याचिका प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा पारित आदेश दिनांक 27.11.2014 के विरुद्ध योजित है। आगे की प्रार्थना है कि प्रतिवादियों को सहानुभूतिपूर्ण आधार पर याचिकाकर्ता की नियुक्ति पर विचार करने और निर्णय लेने के लिए आदेश देने के साथ-साथ कानून के अनुसार

वेतन और अन्य लाभों का भुगतान करने का निर्देश दिया जाए।

(माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पवार, द्वारा प्रदत्त।)

1. वर्तमान याचिका याचिकाकर्ता द्वारा विपक्षी संख्या 3 द्वारा पारित दिनांक 27.11.2014 के आक्षेपित आदेश (रिट याचिका का अनुलग्नक-7) को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति की रिट जारी करने की प्रार्थना करते हुए दायर की गई है। उन्होंने आगे परमादेश की प्रकृति की रिट जारी करने की प्रार्थना की है जो विपक्षी पक्षों को मृत्यु-सह-सेवा नियम 1974 के तहत याचिकाकर्ता की अनुकंपा आधार पर नियुक्ति के लिए विचार करने और निर्णय लेने का आदेश दे, और साथ ही विपक्षी पक्षों को कानून के अनुसार स्वीकार्य और अनुमत परिणामी लाभों सहित वेतन का भुगतान करने का निर्देश दे।

2. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और प्रतिवादी के विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना गया और अभिलेखों का अवलोकन किया गया।

3. इस न्यायालय ने दिनांक 16.3.2023 के आदेश द्वारा निम्नलिखित आदेश पारित किया है:-

"याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना गया और रिकॉर्ड का अवलोकन किया गया।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि याचिकाकर्ता के ससुर की मृत्यु सेवा में 5.8.2007 को हुई थी। मृतक के पुत्र द्वारा एक आवेदन दिया गया था; हालांकि, आवेदन पर कोई निर्णय नहीं लिया गया और इस बीच, 29.12.2012 को मृतक का पुत्र/याचिकाकर्ता का पति भी मर गया। इस स्थिति का सामना करते हुए, याचिकाकर्ता, जो मृतक मेवालाल की विधवा बहू है, ने अपने पति की मृत्यु के दूसरे दिन यानी 30.12.2012 को तुरंत एक आवेदन दिया। इस आवेदन में त्रुटि को दूर किया गया जब विभाग द्वारा 7.5.2014 को इसके लिए पूछा गया था। यह कहा गया है कि याचिकाकर्ता के आवेदन को प्रतिवादी प्राधिकारियों द्वारा सरसरी तौर पर इस आधार पर खारिज कर दिया गया है कि आवेदन देरी से दिया गया है। याचिकाकर्ता की ओर से यह कहा गया है कि आवेदन को खारिज करते समय प्रतिवादियों ने अपने स्वयं के आचरण को अनदेखा कर दिया जिसके द्वारा उन्होंने आवेदक के पति द्वारा दिए गए आवेदन को पांच साल तक लंबित रखा और उस आवेदन पर उनके द्वारा कोई निर्णय नहीं लिया गया। यह भी अनदेखा किया गया है कि वर्तमान आवेदक के पति की मृत्यु के तुरंत बाद उसने अपने पति की मृत्यु के अगले ही दिन आवेदन दिया था। वह कहते हैं कि प्रतिवादी प्राधिकारियों के पास पांच साल में आवेदन देने की आवश्यकता को शिथिल करने की शक्ति है, उसका प्रयोग नहीं किया गया है। इस स्तर पर, विद्वान स्थायी अधिवक्ता का कहना है कि मामले को कल यानी 17.3.2023 को लिया जा सकता है।

प्रार्थना के अनुसार, इस मामले को कल यानी 17.3.2023 को प्रस्तुत करें।"

4. विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने इस न्यायालय का ध्यान प्रति शपथ पत्र के पैराग्राफ 11 में किए गए अभिवचनों की ओर आकर्षित किया है और कहा है कि याचिकाकर्ता का यह कथन कि वर्तमान आवेदक के पति द्वारा अनुकंपा नियुक्ति के लिए दिए गए आवेदन पर कोई कार्रवाई नहीं की गई, तथ्यात्मक रूप से गलत है। वास्तव में,

अधिकारियों द्वारा वर्तमान आवेदक के पति के अनुकंपा नियुक्ति के मामले पर विचार करने के लिए 15.6.2009 को व्यक्तिगत सुनवाई आयोजित करके प्रयास किए गए थे। हालांकि, इस तथ्य के कारण कि याचिकाकर्ता के ससुर जिनकी मृत्यु सेवा में हुई थी, की दो पत्नियां थीं, नामतः रामजती (पहली पत्नी) और मायादेवी (दूसरी पत्नी), जो वास्तव में वर्तमान आवेदक की सास हैं, वर्तमान याचिकाकर्ता के पति द्वारा दिए गए आवेदन को अंतिम रूप नहीं दिया जा सका।

वह कहते हैं कि यह तथ्य कि आवेदक मृतक कर्मचारी की दूसरी पत्नी मायादेवी की बहू है, उत्तराधिकार प्रमाण पत्र से स्पष्ट होता है, जो रिकॉर्ड पर है। इस तथ्य को याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा विवादित नहीं किया गया है।

विद्वान स्थायी अधिवक्ता आगे कहते हैं कि याचिकाकर्ता या उसका मृतक पति 'परिवार' की परिभाषा में नहीं आते हैं जैसा कि उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक की सेवाकालीन मृत्यु पर आश्रितों की भर्ती नियमावली, 1974 (संक्षेप में इसके बाद 'नियम 1974' के रूप में संदर्भित) के नियम 2 के उप-नियम सी में प्रदान किया गया है।

विद्वान स्थायी अधिवक्ता कहते हैं कि पहले याचिकाकर्ता के पति, सुशील कुमार द्वारा एक रिट याचिका संख्या 2611 (एसएस) 2009 दायर की गई थी, जिसका निपटारा दिनांक 5.5.2009 के आदेश द्वारा किया गया था (रिट याचिका का अनुलग्नक-1)। याचिकाकर्ता ने भी एक रिट याचिका संख्या 5147 (एसएस) 2014, श्रीमती संतोष देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, दायर की थी, जिसका निपटारा दिनांक 15.9.2014 के आदेश द्वारा किया गया था। वह कहते हैं कि ये दोनों आदेश इस न्यायालय द्वारा पारित किए गए थे।

विद्वान स्थायी अधिवक्ता आगे कहते हैं कि याचिकाकर्ता ने उपरोक्त तथ्यों को छिपाया है कि याचिकाकर्ता और उसका मृतक पति मृतक कर्मचारी, जिनकी मृत्यु सेवा में हुई थी, की दूसरी पत्नी की बहू और पुत्र थे। वे स्पष्ट रूप से नियम 1974 में प्रदान की गई 'परिवार' की परिभाषा में नहीं आते हैं। वह आगे कहते हैं कि याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय के समक्ष साफ हाथों से नहीं आया है और इसलिए उसके द्वारा दायर की गई याचिका खारिज किए जाने योग्य है।

वह आगे कहते हैं कि निर्धारित प्रपत्र पर आवेदन वर्तमान आवेदक द्वारा 7.5.2014 को दिया गया है यानी छह साल, नौ महीने और दो दिन की देरी के बाद। वह आगे कहते हैं कि अनुकंपा नियुक्ति का उद्देश्य मृतक कर्मचारी के परिवार को तत्काल सहायता प्रदान करना है जो एकमात्र रोटी कमाने वाला था और उसकी अचानक सेवा में मृत्यु ने परिवार को गंभीर वित्तीय कमी और दरिद्रता का कारण बना दिया है और ऐसी पीड़ा को कम करना है। आवेदक द्वारा दिया गया अनुकंपा नियुक्ति का आवेदन विलंबित था और, इसलिए, आक्षेपित आदेश सही ढंग से पारित किया गया है।

5. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत तर्कों पर विचार किया है। रिट याचिका दायर करते समय याचिकाकर्ता ने महत्वपूर्ण तथ्यों को छिपाया है कि याचिकाकर्ता मृतक कर्मचारी, जिनकी मृत्यु सेवा में हुई थी, की दूसरी पत्नी की बहू है।.

6. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **के.डी. शर्मा बनाम स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड और अन्य के मामले में (2008) 12 एससीसी 481**

में माना कि संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत उच्चतम न्यायालय और अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय का अधिकार क्षेत्र असाधारण, न्यायसंगत और विवेकाधीन है और यह अनिवार्य है कि रिट न्यायालय का दरवाजा खटखटाने वाला याचिकाकर्ता साफ हाथों से आए और बिना किसी बात को छिपाए या दबाए न्यायालय के समक्ष सभी तथ्य प्रस्तुत करे और उचित राहत मांगे। यदि प्रासंगिक और महत्वपूर्ण तथ्यों का कोई स्पष्ट खुलासा नहीं है या याचिकाकर्ता न्यायालय को गुमराह करने का दोषी है, तो उसकी याचिका दावे के गुण-दोष पर विचार किए बिना प्रारंभ में ही खारिज की जा सकती है। यही नियम **जी. जयश्री और अन्य बनाम भगवानदास एस. पटेल और अन्य (2009) 3 एससीसी 141** में दोहराया गया था।

माननीय उच्चतम न्यायालय ने *प्रेस्टीज लाइट्स बनाम स्टेट बैंक ऑफ इंडिया* [(2007) 8 एससीसी 449], मे पैरा 35 मे निम्न रूप से कहा है:-

"35. *यह सुस्थापित है कि विशेषाधिकार उपचार एक सामान्य मामला नहीं है। इसलिए, असाधारण शक्ति का प्रयोग करते समय, रिट न्यायालय वास्तव में उस पक्ष के आचरण को ध्यान में रखेगा जो ऐसे क्षेत्राधिकार का आह्वान कर रहा है। यदि आवेदक पूर्ण तथ्यों का खुलासा नहीं करता है या प्रासंगिक सामग्री को दबाता है या अन्यथा न्यायालय को गुमराह करने का दोषी है, तो न्यायालय मामले पर निर्णय किए बिना कार्रवाई को खारिज कर सकता है। यह नियम बड़े जनहित में विकसित किया गया है ताकि बेईमान मुकदमेबाजों को न्यायालय को धोखा देकर न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग करने से रोका जा सके। रिट क्षेत्राधिकार का मूल आधार सत्य, पूर्ण और सही तथ्यों के प्रकटीकरण में निहित है। यदि महत्वपूर्ण तथ्यों को ईमानदारी से नहीं बताया जाता है या उन्हें दबाया जाता है या विकृत किया जाता है, तो रिट न्यायालयों का कार्य करना असंभव हो जाएगा।"*

उपरोक्त कानून कि न्यायालय में साफ हाथों से आना चाहिए, इस माननीय भारत के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बड़ी संख्या में मामलों में बार-बार दोहराया गया है। इनमें से कुछ का उल्लेख किया जा सकता है, वे हैं: हरि नारायण बनाम बद्री दास - एआईआर 1963 एससी 1558, वेलकम होटल बनाम आंध्र प्रदेश राज्य - (1983) 4 एससीसी 575, जी. नारायणस्वामी रेड्डी (मृत) एलआर द्वारा बनाम कर्नाटक सरकार - जेटी 1991 (3) एससी 12: (1991) 3 एससीसी 261, एस.पी. चेंगलवरैया नायडू (मृत) एलआर द्वारा बनाम जगन्नाथ (मृत) एलआर द्वारा - जेटी 1993 (6) एससी 331: (1994) 1 एससीसी 1, ए.वी. पपाय्या शास्त्री बनाम आंध्र प्रदेश सरकार - जेटी 2007 (4) एससी 186: (2007) 4 एससीसी 221, प्रेस्टीज लाइट्स लिमिटेड बनाम एसबीआई - जेटी 2007 (10) एससी 218: (2007) 8 एससीसी 449, सुनील पोद्दार बनाम यूनियन बैंक ऑफ इंडिया- जेटी 2008 (1) एससी 308: (2008) 2 एससीसी 326, के.डी. शर्मा बनाम सेल - जेटी 2008 (8) एससी 57: (2008) 12 एससीसी 481, जी. जयश्री बनाम भगवानदास एस. पटेल - जेटी 2009 (2) एससी 71: (2009) 3 एससीसी 141, दलीप सिंह वी। उत्तर प्रदेश राज्य - जेटी 2009 (15) एससी 201: (2010) 2 एससीसी 114।"

7. प्रस्तुत किए गए निवेदनों पर उचित विचार, रिकॉर्ड के अवलोकन, साथ ही इस तथ्य पर कि आवेदक ने रिट याचिका दायर करते समय महत्वपूर्ण तथ्यों को छिपाया है कि वह मृतक

कर्मचारी की दूसरी पत्नी की बहू है, जिनकी मृत्यु सेवा में हुई थी, साथ ही यह तथ्य कि मृतक ने अपनी पहली पत्नी के जीवित रहते दूसरी शादी की थी और वह 'परिवार' की परिभाषा में नहीं आता है, और उपरोक्त निर्णयों पर भी विचार करते हुए, याचिका खारिज किए जाने योग्य है।

(2023) 3 ILRA 118

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 14.03.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पवार

रिट ए संख्या 1685/2011

शादी लाल ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: प्रेम शंकर त्रिवेदी, अल्पना यादव, शिखा सिंह

प्रतिवादी के अधिवक्ता: सी.एस.सी.

A. सेवा कानून - सेवानिवृत्ति के समय जन्म तिथि को चुनौती देना - यह स्थापित कानून है कि सेवानिवृत्ति की उम्र प्राप्त होने के पश्चात या सेवा के अंतिम समय में, एक कर्मचारी अपनी सेवा पुस्तक में दर्ज जन्म तिथि को चुनौती नहीं दे सकता। (पैराग्राफ 7)

याचिकाकर्ता को अपनी सेवानिवृत्ति के बाद सेवा पुस्तक में दर्ज जन्म तिथि को चुनौती देने की अनुमति नहीं दी जा सकती। (पैराग्राफ 6, 8)

याचिका निरस्त। (E-4)

<u>विधि व्यवस्था अनुसरित:</u>

1. हिंदुस्तान लीवर लिमिटेड बनाम एस.एम. जाधव और अन्य, (2001) 4 SCC 52 (पैराग्राफ 6)

2. जगीर सिंह बनाम पंजाब राज्य और अन्य, CWP संख्या 21166 वर्ष 2014 (पैराग्राफ 6)

3. प्रभु लाल पुत्र श्री सहायक...... बनाम जिला बेसिक शिक्षा......, आदेश दिनांक 05.12.2003 (पैराग्राफ 6)

(माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पवार, द्वारा प्रदत्त।)"

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और विपक्षी पक्षकार संख्या 1 से 4 के विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना।

याचिकाकर्ता ने वर्तमान रिट याचिका दायर करके निम्नलिखित राहत की प्रार्थना की है:-

"(i) न्याय के हित में विपक्षी पक्षकारों को निर्देश देते हुए एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें जिससे याचिकाकर्ता को सेवा में जारी रहने की अनुमति दी जाए और उसे नियमित रूप से वेतन का भुगतान किया जाए जब तक कि उसकी वास्तविक सेवानिवृत्ति की तिथि अर्थात 30.6.2018 तक।

(ii) उत्प्रेषण की प्रकृति का एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें जिससे विपक्षी पक्षकार संख्या 4 द्वारा याचिकाकर्ता के खिलाफ पारित किए गए आक्षेपित आदेश दिनांक 15.2.2011 को रद्द किया जाए, जो रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 6 के रूप में संलग्न है।

(iii) विपक्षी पक्षकार संख्या 2 को निर्देश देते हुए परमादेश की प्रकृति का एक रिट, आदेश

या निर्देश जारी करें जिससे वह याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन दिनांक 15.3.2011 पर निर्णय ले, जो इस रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 9 के रूप में संलग्न है।

(iv) कोई अन्य रिट, आदेश या निर्देश जारी करें जो इस माननीय न्यायालय को मामले की परिस्थितियों में उचित और उपयुक्त लगे, न्याय के हित में याचिकाकर्ताओं के पक्ष में पारित किया जा सकता है।

(v) लागत के साथ रिट याचिका को स्वीकार करें।"

रिट याचिका की लंबितता के दौरान, याचिकाकर्ता का निधन हो गया है और याचिकाकर्ता संख्या 1/1 से 1/5 को प्रतिस्थापित किया गया है।

मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता को प्रारंभ में 26.06.1986 को दैनिक वेतन आधार पर बेलदार वर्ग IV श्रेणी के पद पर नियुक्त किया गया था। याचिकाकर्ता की सेवाओं को सक्षम प्राधिकारी द्वारा आदेश दिनांक 10.07.2001 के माध्यम से 15.08.1999 से कार्य प्रभार स्थापना में स्थानांतरित किया गया था। कार्यालय ज्ञापन दिनांक 01.05.2010 के माध्यम से, याचिकाकर्ता को एक नोटिस प्राप्त हुआ जिसमें कहा गया था कि वह 30.06.2010 को 60 वर्ष की अधिवर्षिता आयु पूरी करने के बाद सेवानिवृत्त होने जा रहा है। याचिकाकर्ता का कहना है कि वह एक अशिक्षित कर्मचारी है, उसका जन्म 29.02.1958 को हुआ था जो परिवार रजिस्टर में उल्लिखित है। नोटिस दिनांक 01.05.2010 प्राप्त करने के बाद, याचिकाकर्ता ने विपक्षी संख्या 4 को अभ्यावेदन दिया। अभ्यावेदन अनुलग्नक संख्या 4 और 5 में संलग्न हैं। इसके बाद, दो आरटीआई दायर करके, याचिकाकर्ता ने सी.एम.ओ., फिरोजाबाद के कार्यालय से जानकारी प्राप्त की। जिसके अनुसार, चिकित्सा प्रमाण पत्र केवल फिटनेस प्रमाण पत्र है और आयु संबंधी प्रमाण पत्र नहीं है। सी.एम.ओ., फिरोजाबाद द्वारा जारी पत्र दिनांक 11.03.2011 की छायाप्रति भी अभिलेखों मे है। याचिकाकर्ता ने फिर से प्राधिकारी को अनुलग्नक संख्या 8 और 9 के माध्यम से अभ्यावेदन दिया। इस प्रकार, याचिकाकर्ता की ओर से यह प्रस्तुत किया गया है कि उसे गलत तरीके से 30.06.2010 को सेवा से सेवानिवृत्त कर दिया गया है, जो सी.एम.ओ., फिरोजाबाद द्वारा जारी आयु प्रमाण पत्र के आधार पर किया गया है, जबकि परिवार रजिस्टर के अनुसार उसका जन्म वर्ष 1958 में हुआ था, इसलिए उसे वर्ष 2018 में सेवा से सेवानिवृत्त होना चाहिए था।

इसके विपरीत, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता का चिकित्सा परीक्षण मुख्य चिकित्सा अधीक्षक द्वारा किया गया था जिसमें उसकी आयु 48 वर्ष निर्धारित की गई थी और तदनुसार, उसकी जन्मतिथि 27.06.1950 निर्धारित की गई थी और उसे उसके सेवा अभिलेख में दर्ज किया गया था। याचिकाकर्ता ने सेवा पुस्तिका पर अपने हस्ताक्षर करके इसे स्वीकार और मान्यता दी थी। इस प्रकार, याचिकाकर्ता की सेवा पुस्तिका में दर्ज जन्मतिथि के आधार पर, विपक्षी संख्या 4 द्वारा आदेश/नोटिस दिनांक 01.05.2010 पारित किया गया था और परिणामस्वरूप, याचिकाकर्ता को 30.06.2010 को अधिवर्षिता की आयु प्राप्त करने के बाद सेवानिवृत्त कर दिया गया था जो पूरी तरह से कानून के अनुसार है।

प्रस्तुत तर्कों और अभिलेखों के अवलोकन पर उचित विचार करने के बाद, यह विवादास्पद नहीं है कि सेवा पुस्तिका में दर्ज जन्मतिथि

27.06.1950 है, सेवानिवृत्ति का नोटिस उसकी सेवानिवृत्ति से पहले 01.05.2010 को जारी किया गया था और याचिकाकर्ता अधिवर्षिता की आयु प्राप्त करने के बाद 30.06.2010 को सेवा से सेवानिवृत्त हुआ था। याचिकाकर्ता सेवा पुस्तिका में उल्लिखित गलत जन्मतिथि के संबंध में विवाद उठा रहा है, हालांकि, इस संबंध में कानून माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निम्नलिखित निर्णयों में तय किया गया है:-

(i) हिंदुस्तान लीवर लिमिटेड बनाम एस.एम. जाधव और अन्य [(2001) 4एससीसी 52]

(ii) जगीर सिंह बनाम पंजाब राज्य और अन्य [सीडब्ल्यूपी संख्या 21166 वर्ष 2014]

(iii) प्रभु लाल पुत्र श्री अससिस्टेंट बनाम जिला बेसिक शिक्षा [आदेश दिनांक 05.12.2003]

उपरोक्त निर्णयों के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि यह स्थापित कानून है कि सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने के बाद या सेवा के अंतिम चरण में, एक कर्मचारी अपनी जन्मतिथि के संबंध में सेवा पुस्तिका में की गई प्रविष्टि को विवादित नहीं कर सकता।

स्थापित कानून और इस मामले के विशिष्ट तथ्यों को देखते हुए, याचिकाकर्ता को अपनी सेवानिवृत्ति के बाद अपनी सेवा पुस्तिका में दर्ज जन्मतिथि को चुनौती देने की अनुमति नहीं दी जा सकती।

उपरोक्त को देखते हुए, याचिका खारिज की जाती है।

(2023) 3 ILRA 120

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 27.02.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति देवेन्द्र कुमार उपाध्याय

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी

रिट ए संख्या 1766/2023

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

प्रमोद कुमार तिवारी एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता: सी.एस.सी.

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: प्रवीण कुमार तिवारी, प्रतीक तिवारी, शिखर आनंद

A. सेवा कानून - पदोन्नति - परिनिंदा प्रविष्टि - ऐसी स्थिति में जहां दिनांक 10.04.2017 को एक कर्मचारी को वर्ष 2008-09 के अवधि के संबंध में परिनिंदा दी जा रही है और 2017-18 के वार्षिक प्रविष्टि में उसे बहुत अच्छे अधिकारी के रूप में रेट किया जा रहा है, दिनांक 10.04.2017 की परिनिंदा की प्रविष्टि के आधार पर पदोन्नति के दावे को अस्वीकार करना, GO दिनांक 30.06.1993 के पैराग्राफ 2(स) के अनुसार न केवल अवैध है बल्कि यह मनमाना भी है। (पैराग्राफ 20)

GO दिनांक 30.06.1993 के पैराग्राफ 2(स) के अनुसार, राज्य सरकार ने यह प्रावधान किया है कि यदि किसी कर्मचारी के सेवा प्रविष्टि की समीक्षा के दौरान कोई परिनिंदा की प्रविष्टि उपलब्ध है और उस कर्मचारी को पिछले पांच वर्षों में कोई अन्य प्रतिकूल प्रविष्टि या सजा नहीं दी गई है, तो उस परिनिंदा की प्रविष्टि को कर्मचारी की संतोषजनक सेवा का मूल्यांकन करने के लिए नहीं माना जाएगा, यानी उस परिनिंदा

की प्रविष्टि को नजरअंदाज किया जाएगा। (पैराग्राफ 11, 12)

GO दिनांक 25.03.1994 के पैराग्राफ 5(4) में कहा गया है कि कोई भी सजा आदेश तुरंत प्रभावी होगी, भले ही यह पहले किसी अनियमितता के संबंध में जारी किया गया हो। इसके अलावा, ऐसा सजा आदेश संबंधित कर्मचारी के चरित्र रोल में उस वर्ष में रखा जाएगा जिसमें इसे प्रदान किया गया है। GO दिनांक 25.03.1994 का पैराग्राफ 6 कहता है कि **GO दिनांक 25.03.1994 का पैराग्राफ 5, GO दिनांक 30.06.1993 में दिए गए दिशा-निर्देशों के साथ पढ़ा जाएगा।** (पैराग्राफ 14)

GO दिनांक 06.04.1999 के प्रावधानों के अध्ययन से स्पष्ट है कि यदि किसी कर्मचारी के विरुद्ध जांच के पश्चात कोई परिनिंदा प्रविष्टि दी जाती है, तो उस फटकार की प्रविष्टि को संबंधित कर्मचारी के चरित्र रोल में उस वर्ष में रखा जाएगा जिसमें फटकार दी गई है, हालांकि ऐसा करते समय यह भी उल्लेख किया जाएगा कि यह परिनिंदा प्रविष्टि किस वर्ष या किस पद से संबंधित है और किस तरह की गलती के कारण यह परिनिंदा की गई है ताकि कर्मचारी का मूल्यांकन करते समय परिनिंदा प्रविष्टि का वास्तविक और स्वाभाविक प्रभाव लिया जा सके। इस प्रकार**, GO दिनांक 06.04.1999, GO दिनांक 30.06.1993 के पैराग्राफ 2(स) में शामिल प्रावधानों के साथ पूरी तरह से मेल खाता है, जो GO दिनांक 25.03.1993 के पैराग्राफ 5(4) के प्रावधानों द्वारा कमजोर नहीं होता है (जिसे GO दिनांक 06.04.1999 द्वारा मजबूत किया गया है)।** (पैराग्राफ 18)

वर्तमान वाद में, दिनांक 10.04.2017 को याचिकाकर्ता को दी गई परिनिंदा की प्रविष्टि 2008-09 के अवधि से संबंधित थी और DPC पहले 13.10.2017 को और फिर 28.03.2018 और फिर 30.06.2020 को बुलाई गई थी। GOs के अनुसार, दिनांक 10.04.2017 को दी गई परिनिंदा की प्रविष्टि को याचिकाकर्ता के सेवा अभिलेख में 2017-18 में रखा जाना है, लेकिन साथ ही यह उल्लेख करना है कि यह परिनिंदा की प्रविष्टि 2008-09 के वर्ष से संबंधित **है। चूंकि अभिलेख में ऐसा कुछ नहीं है जो यह प्रदर्शित करता हो कि याचिकाकर्ता को 2008-09 के बाद पांच वर्षों के भीतर कोई अन्य परिनिंदा या सजा दी गई हो और 10.04.2017 की परिनिंदा की प्रविष्टि एकमात्र प्रतिकूल सामग्री थी, इस प्रकार उसे मुख्य सहायक के पद पर पदोन्नति के लिए विचार करते समय DPC ने 10.04.2017 की फटकार की प्रविष्टि को अवैध रूप से विचार किया, जबकि इस प्रविष्टि को नजरअंदाज किया जाना चाहिए था।** (पैराग्राफ 19)

DPCs ने 13.10.2017 और फिर 28.03.2018 और फिर 30.06.2020 को जो गलती की है, उसके कारण याचिकाकर्ता को मुख्य सहायक के पद के लिए पदोन्नति पर विचार करने का अधिकार से इंकार कर दिया गया। (पैराग्राफ 20)

रिट याचिका निरस्त की गई। (E-4)

वर्तमान याचिका उत्तर प्रदेश लोक सेवा न्यायाधिकरण द्वारा दिनांक 08.06.2022 को पारित निर्णय और आदेश को चुनौती देती है, जिसके द्वारा राज्य प्राधिकारियों को याचिकाकर्ता के वाद पर मुख्य सहायक के पद के लिए पदोन्नति पर विचार करने और तीसरे आश्वस्त करियर प्रगति का लाभ सहित अन्य संबंधित लाभ प्रदान करने के लिए निर्देशित किया गया है।

(माननीय न्यायमूर्ति देवेंद्र कुमार उपाध्याय, और माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी, द्वारा प्रदत्त।)"

1. राज्य-याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता और प्रतिवादी संख्या 1 का प्रतिनिधित्व कर रहे विद्वान अधिवक्ता श्री प्रतीक तिवारी को सुना गया।

2. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत प्रस्तुत इस याचिका में उत्तर प्रदेश लोक सेवा न्यायाधिकरण (एतस्मिनपश्चात 'न्यायाधिकरण' के रूप में संदर्भित) द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 08.06.2022 को चुनौती दी गई है, जिसके अन्तर्गत प्रतिवादी संख्या 1- दावेदार द्वारा प्रस्तुत दावा याचिका संख्या 249/2021 को स्वीकृत किया गया है और दिनांक 22.12.2020 के आदेश को अपास्त करते हुए, जिससे प्रतिवादी- दावेदार को वरिष्ठ सहायक के पद से प्रधान सहायक के पद पर पदोन्नति से वंचित कर दिया गया था, उक्त पद पर पदोन्नति हेतु दावेदार के मामले पर विचार करने और तीसरे सुनिश्चित कैरियर प्रोन्नयन के लाभ सहित परिणामी लाभ प्रदान करने हेतु राज्य प्राधिकारियों को निर्देश दिया गया है।

3. राज्य-याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का तर्क यह है कि विद्वान न्यायाधिकरण ने दावा याचिका की अनुमति देते समय शासनादेश दिनांकित 25.03.1994 को पूर्ण रुप से उपेक्षित कर दिया है और वास्तव में दावेदार को 10.04.2017 को दी गई निंदा प्रविष्टि के कारण उन्हें विधिक तौर पर प्रश्नगत पद पर पदोन्नत नहीं किया जा सकता था। यह तर्क दिया गया है कि दावेदार के मामले पर विभागीय पदोन्नति समिति द्वारा तीन बार अर्थात् 13.10.2017, 28.03.2018 और 30.06.2020 को विचार किया गया था, यद्यपि, 10.04.2017 को दावेदार को दी गई निंदा प्रविष्टि के कारण तीनों विभागीय पदोन्नति समितियों ने उनके पदोन्नति के दावे को न्यायानुसार खारिज कर दिया है।

4. याचिकाकर्ताओं-राज्य प्राधिकारियों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि विद्वान न्यायाधिकरण ने 25.03.1994 के शासनादेश पर विचार नहीं किया है, जो स्पष्ट रूप से उपबंध करता है कि भले ही एक निंदा प्रविष्टि पूर्व में घटित किसी घटना से संबंधित हो, जिसे बाद में प्रदान किया गया है, ऐसी निंदा प्रविष्टि उसके प्रदान की गयी तिथि से प्रभावी होगी, न कि उस घटना की तिथि से प्रभावी होगी जिसके संबंध में उसे प्रदान किया गया है। इस प्रकार यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि दिनांक 25.03.1994 के शासनादेश में की गई ऐसी व्यवस्था दावेदार को प्रश्नगत पद पर अपनी पदोन्नति का दावा करने का अधिकार नहीं देती है।

5. दूसरी ओर, प्रतिवादी संख्या 1, दावेदार, का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता श्री प्रतीक तिवारी ने तर्क प्रस्तुत किया है कि वास्तव में शासनादेश दिनांक 25.03.1994 और शासनादेश दिनांक 30.06.1993 में निहित प्रावधान एक-दूसरे के विरोधाभास में नहीं हैं, और दोनों के क्षेत्र अलग-अलग हैं। उन्होंने हमारा ध्यान एक अन्य शासनादेश दिनांक 06.04.1999 की ओर भी आकर्षित किया है और कथन किया है कि उक्त शासनादेश निर्गत करने का उद्देश्य न केवल उस वर्ष संबंधित कर्मचारी के सेवा अभिलेख

में निंदा प्रविष्टि रखना है जिसमें यह प्रदान किया जाता है, परन्तु यह भी उल्लेख करना है कि किस अवधि हेतु निंदा प्रविष्टि प्रदान की गई है ताकि किसी भी उद्देश्य हेतु संबंधित कर्मचारी की चरित्र पंजिका के मूल्यांकन के समय किसी पूर्व घटना के सम्बन्ध में, बाद में प्रदान की गई ऐसी निंदा प्रविष्टि का स्वाभाविक परिणाम/प्रभाव मूल्यांकित किया जा सकता है।

6. श्री तिवारी ने आगे प्रस्तुत किया कि यद्यपि दावेदार को 10.04.2017 को निंदा प्रविष्टि प्रदान की गई थी, तथापि, वर्ष 2017-18 हेतु वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट का मूल्यांकन करते समय दावेदार को एक बहुत अच्छे कर्मचारी/अधिकारी के रूप में दर्जा दिया गया था। ऐसे में 2017 के मध्य यानी 10.04.2017 को दी गई निंदा प्रविष्टि अपनी प्रभावकारिता खो देगी, क्योंकि प्रश्नगत पद पर दावेदार की पदोन्नति का संबंध इस कारण से है कि उक्त निंदा प्रविष्टि 2008-09 की अवधि से संबंधित है। इस प्रकार,तर्क यह है कि रिट याचिका अत्यधिक गलत रूप में समझी गई है और दिनांक 25.03.1994 के शासनादेश में निहित प्रावधानों की पूर्ण रुप से त्रुटिपूर्ण व्याख्या पर आधारित है, एवं सरकार द्वारा अपने शासनादेश दिनांक 06.04.1999 में निर्धारित सामग्री को अनदेखा किये जाने पर आधारित है, जो प्रारम्भ में ही खारिज किये जाने योग्य है।

7. इस रिट याचिका का अन्तिम परिणाम दिनांक 25.03.1994 के शासनादेश में निहित प्रावधानों एवं दिनांक 30.06.1993 और 06.04.1999 के शासनादेशों में निहित प्रावधानों के वास्तविक अर्थ और त्रुटिरहित निर्वचन पर निर्भर करता है।

8. याचिकाकर्ता वाणिज्यिक कर विभाग में वरिष्ठ सहायक के पद पर कार्यरत है और प्रधान सहायक के पद पर अपनी पदोन्नति का दावा कर रहा है। यद्यपि उसके मामले पर विभागीय पदोन्नति समिति द्वारा तीन बार विचार किया गया है, जैसा कि ऊपर वर्णित है। यद्यपि, इन तीनों अवसरों पर उसे इस कारण से प्रश्नगत पद पर पदोन्नति से वंचित कर दिया गया है कि उसे 10.04.2017 को निंदा प्रविष्टि प्रदान की गई थी।

9. सर्वप्रथम हम यह जाँच करेंगे कि दिनांक 30.06.1993 के शासनादेश में कौन सा नियम उपलब्ध है।

10. राज्य प्राधिकारियों-याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने उक्त शासनादेश दिनांक 30.06.1993 के प्रस्तर 2 (एस) में निहित प्रावधानों का उल्लेख किया है, जिसे अधोउद्धृत किया गया है: -

> *"(2) (स) यदि उस अवधि में, जिसके सेवाभिलेख उपरोक्तानुसार विचार क्षेत्र में आते हों, कोई निन्दा प्रविष्टि विद्यमान हो और उस निन्दा प्रविष्टि से संबंधित घटना की तिथि के बाद की अगले पाँच वर्ष की अवधि में कोई अन्य प्रतिकूलता (यथा प्रतिकूल प्रविष्टि, दण्ड आदि) न हो तो उस निन्दा प्रविष्टि को संतोषजनक सेवा के मूल्यांकन हेतु विचार में न लिया जाये अर्थात् उसे नजरअन्दाज कर दिया जाये।"*

11. जब हम उपर्युक्त प्रावधान का अवलोकन करने पर हम पाते हैं कि राज्य सरकार ने यह प्रावधान किया है कि जिस अवधि हेतु किसी कर्मचारी का प्रासंगिक सेवा अभिलेख विचाराधीन है, यदि उस अवधि के दौरान कोई निंदा प्रविष्टि विद्यमान है और ऐसे कर्मचारी को उस तिथि से पाँच वर्ष के भीतर कोई अन्य प्रतिकूल प्रविष्टि

या सज़ा दी जाती है, जिसके संबंध में निंदा प्रविष्टि विद्यमान है, तो ऐसी निंदा प्रविष्टि को संबंधित कर्मचारी की संतोषजनक सेवा के मूल्यांकन के प्रयोजनों हेतु नहीं माना जाएगा, यानी ऐसी निंदा प्रविष्टि को उपेक्षित किया जाएगा।

12. तदनुसार, हमारा यह विचार अत्यन्त स्पष्ट हैं कि जिस अवधि के दौरान किसी कर्मचारी का सेवा अभिलेख विचाराधीन है, उसमें यदि एकमात्र निंदा प्रविष्टि विद्यमान है जो किसी पिछली अवधि से संबंधित है और जो निंदा प्रविष्ट हेतु उत्तरदायी घटना के पाँच वर्ष के भीतर प्रदान की गई किसी अन्य प्रतिकूल सामग्री सहित किसी प्रतिकूल प्रविष्टि या दंड आदि से युक्त नहीं है , तब ऐसी प्रतिकूल प्रविष्टि को उपेक्षित किया जाना चाहिए और जहाँ तक संतोषजनक सेवा के निर्धारण का संबंध है, इसका संबंधित कर्मचारी के मूल्यांकन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

13. अब, हम शासनादेश दिनांक 25.03.1994 में निहित राज्य प्राधिकारियों-याचिकाकर्ताओं का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता द्वारा विश्वास व्यक्त किए गए प्रावधानों का परीक्षण करते हैं। विद्वान राज्य अधिवक्ता ने उक्त शासनादेश के प्रस्तर 5 (4) और प्रस्तर 6 पर विश्वास व्यक्त किया है,जो अधोउद्धृत है:

> *"वर्णित परिस्थितियों में प्रश्नगत मामले में मुझे निम्नलिखित स्थिति को स्पष्ट करने व शासकीय निर्णय से आपको अवगत कराने का निर्देश हुआ है-*
>
> *(4) प्रत्येक अनियमितता के सम्बन्ध में चाहे वे किसी पूर्व वर्ष की हो जो भी दण्डादेश निर्गत किया जायेगा उसका तात्कालिक प्रभाव होगा तथा दण्डादेश निर्गत होने के दिनांक से सम्बन्धित वर्ष की वार्षिक प्रविष्टि के साथ उसे रखा जायेगा।*
>
> *6. अनुरोध है कि सन्दर्भगत शासनादेश दिनांक 30 जून 1993 में निर्धारित सामान्य मार्गदर्शक सिद्धान्तों को उपरोक्त प्रस्तर 5 के साथ पढ़ा जाय व उनका कृपया सभी स्तरों पर कड़ाई से अनुपालन सुनिश्चित किया जाय।*

14. उपरोक्त उद्धृत शासनादेश दिनांक 25.03.1994 के प्रस्तर 5 (4) में प्रावधान है कि निर्गत किया गया कोई भी दण्डादेश तत्काल प्रभाव से प्रभावी होगा, भले ही वह पूर्व समय में की गई किसी अनियमितता के संबंध में निर्गत किया गया हो। इसमें आगे प्रावधान है कि ऐसा दण्डादेश संबंधित कर्मचारी की चरित्र पंजिका में उस वर्ष रखा जाएगा, जिसमें उसे प्रदान किया गया है। प्रस्तर 6 में कहा गया है कि शासनादेश दिनांक 30.06.1993 को शासनादेश दिनांक 30.06.1993 के प्रस्तर 5 के साथ पढ़ा जाएगा।

15. यदि हम शासनादेश दिनांक 25.03.1994 में उपलब्ध प्रस्तर 5 (4) और शासनादेश दिनांक 30.06.1993 के प्रस्तर 2 (स) की तुलना करते हैं, तो हम यह नहीं पाते हैं कि उक्त प्रावधानों के बीच कोई विरोधाभास है। वस्तुतः दोनों के क्षेत्र अलग-अलग हैं। जहाँ तक शासनादेश दिनांक 25.03.1994 के प्रस्तर 5 (4) का प्रश्न है, हमारी सुविचारित राय के अनुसार, इसमें यह प्रावधान है कि किस वर्ष की चरित्र पंजिका में किसी सरकारी कर्मचारी को दिये गये दण्ड को किस वर्ष से रखा जाना है और किस दिनांक से यह प्रभावी होगा। जहाँ तक शासनादेश दिनांक 30.06.1993

के प्रस्तर 2 (एस) में निहित प्रावधानों का प्रश्न है, हमारी सुविचारित राय में यह प्रावधान है कि भले ही किसी कर्मचारी के सेवा अभिलेख में निंदा प्रविष्टि विद्यमान हो, उस वर्ष के बाद का एक वर्ष जिसमें किसी अनियमितता के बारे में कहा जाता है जिसके परिणामस्वरूप निंदा प्रविष्टि दी गई है, उसे किसी कर्मचारी की संतोषजनक सेवा के मूल्यांकन के प्रयोजनों हेतु उपेक्षित किया जाना चाहिए, परंतु अगले पाँच वर्षों के दौरान घटना की तिथि जिसके संबंध में निंदा प्रविष्टि दी गई थी, संबंधित कर्मचारी को कोई अन्य निंदा प्रविष्टि या दंड नहीं दिया गया हो।

16. तदनुसार, शासनादेश दिनांक 25.06.1994 का प्रस्तर 5 (4) किसी भी प्रकार शासनादेश दिनांक 30.06.1993 के प्रस्तर 2 (एस) में निहित प्रावधानों को कमजोर नहीं करता है। शासनादेश दिनांक 30.06.1993 के प्रस्तर 2 (एस) में निहित प्रावधानों की उक्त व्याख्या और निर्वचन में एक आधार भी है वह यह कि ऐसी स्थिति में जहाँ किसी घटना अथवा कथित अनियमितता के संबंध में पूर्व में घटित होना अथवा कारित किया जाना कहा जाता है जिसके सम्बन्ध में किसी कर्मचारी को निंदा प्रविष्टि दी गई है और तब से अत्यधिक समय बीत चुका है, तब हमारी राय में, संतोषजनक सेवा की गणना के प्रयोजनों हेतु निंदा प्रविष्टि दिये जाने पर विचार करना अत्यधिक स्वेच्छाचारी होगा।

17. हमारा विचार है कि शासनादेश दिनांक 25.03.1994 का प्रस्तर 5 (4) किसी भी तरह से दिनांक 30.06.1993 के शासनादेश के प्रस्तर 2 (एस) में निहित प्रावधानों को कमजोर या रद्द नहीं करता है, यह बाद के शासनादेश दिनांक 06.04.1999 द्वारा दृढ़ किया गया है। उक्त शासनादेश दिनांक 06.04.1999 का प्रस्तर 2 अधोउद्धृत है:

> *"2. मुझे यह कहने का निदेश हुआ है कि ऐसे प्रकरणों पर जिसमें जांचोपरान्त सेंसर या निन्दात्मक प्रविष्टि दिये जाने का निर्णय लिया जाता है, वह प्रविष्टि संबंधित कर्मचारी/अधिकारी की चरित्र-पंजिका में उसी वर्ष की प्रविष्टि में रखी जायेगी जिस वर्ष सेन्सर अथवा निन्दात्मक प्रविष्टि दिये जाने का निर्णय लिया गया है। वह उल्लेख अवश्य कर दिया जाय कि प्रकरण संबंधित के सेवाकाल के किस पद व वर्ष से संबंधित रहा है और प्राप्त की गयी त्रुटि किस प्रकृति की रही है जिससे चरित्र पंजिका का मूल्यांकन करते समय दी गयी प्रविष्टि के स्वाभाविक असर को दृष्टिगत रखा जा सके।"*

18. शासनादेश दिनांक 06.04.1999 के प्रस्तर 2 के उपरोक्त उद्धृत प्रावधान के परिशीलन से, यह स्पष्ट है कि इसमें यह प्रावधान किया गया है कि यदि जाँच के उपरान्त किसी कर्मचारी के विरुद्ध कोई निंदा प्रविष्टि दी जाती है, तो ऐसी निंदा प्रविष्टि को उसी वर्ष संबंधित कर्मचारी की चरित्र पंजिका में रखा जाना चाहिए, जिस वर्ष में निंदा प्रविष्टि प्रदान की गई है, तथापि, ऐसा करते समय, जिस वर्ष में निंदा प्रविष्टि प्रदान की गई है, उस वर्ष में निंदा प्रविष्टि दर्ज करते समय यह भी उल्लेख किया जाएगा कि किस निंदा प्रविष्टि से संबंधित है, कौन सा वर्ष या कौन सा पद है और त्रुटि की प्रकृति क्या रही है जिसके परिणामस्वरूप निंदा प्रविष्टि प्रदान की गई ताकि किसी कर्मचारी का मूल्यांकन करते समय ऐसी

निंदा प्रविष्टि के वास्तविक और स्वाभाविक परिणाम और प्रभाव को ध्यान में रखा जा सके। इस प्रकार, हमें दिनांक 06.04.1999 का शासनादेश, दिनांक 30.06.1993 के शासनादेश के प्रस्तर 2 (एस) में निहित प्रावधानों के साथ पूर्ण रुप से मेल खाता हुआ प्रतीत होता है, एवं यह शासनादेश दिनांक 25.03.1993 के प्रस्तर 5 (4) में निहित प्रावधानों से कमजोर नहीं होता है।

19. जहाँ तक वर्तमान मामले के तथ्यों का प्रश्न है, माना जाता है कि दावेदार को 10.04.2017 को दी गई निंदा प्रविष्टि 2008-09 की अवधि से संबंधित थी और विभागीय पदोन्नति समिति सर्वप्रथम 13.10.2017 को और तत्पश्चात 28.03.2018 को और पुनः 30.06.2020 को आहूत की गई थी। जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, शासनादेशों के अनुसार, 10.04.2017 को दी गई निंदा प्रविष्टि को वर्ष 2017-18 में दावेदार के सेवा अभिलेख में रखा जाना है, यद्यपि साथ ही यह उल्लेख किया जाना है कि उक्त निंदा प्रविष्टि वर्ष 2008-09 से संबंधित है। चूँकि अभिलेख पर ऐसा कुछ भी नहीं है जो यह प्रकट कर सके कि दावेदार को 2008-09 के उपरान्त पाँच साल के भीतर कोई अन्य निंदा प्रविष्टि या सजा दी गई थी और हमारी राय में उसकी पदोन्नति पर विचार करते समय दिनांक 10.04.2017 की निंदा प्रविष्टि एकमात्र प्रतिकूल सामग्री थी। प्रधान सहायक के पद पर विभागीय प्रोन्नति समिति ने विधि विरूद्ध रीति से निन्दा प्रविष्टि दिनांक 10.04.2017 को विचार किया है, जबकि उक्त प्रविष्टि को उपेक्षित किया जाना चाहिए था।

20. दिनांक 13.10.2017 और तत्पश्चात 28.03.2018 और पुनः 30.06.2020 को क्रमशः आहूत की गयी विभागीय पदोन्नति समितियों ने त्रुटि की पुनरावृत्ति की जिसके परिणामस्वरूप याचिकाकर्ता को प्रधान सहायक के पद पर पदोन्नति हेतु विचार करने के अधिकार से वंचित कर दिया गया। अन्यथा भी, विद्वान न्यायाधिकरण ने इस पर ध्यान दिया वह यह है कि वर्ष 2017-18 हेतु दावेदार की वार्षिक चरित्र रोल प्रविष्टि "बहुत अच्छी" थी। ऐसी स्थिति में जहाँ किसी कर्मचारी को 2008-09 की अवधि के संबंध में 10.04.2017 को निंदा की सजा दी जा रही है और वर्ष 2017-18 की वार्षिक प्रविष्टि में उसे एक बहुत अच्छा अधिकारी/अधिकारी का दर्जा दिया जा रहा है, इस प्रकार, 2008-09 की अवधि से संबंधित निंदा प्रविष्टि दिनांक 10.04.2017 के आधार पर पदोन्नति के दावे से वंचित करना, न केवल अवैध है, अपितु शासनादेश दिनांक 30.06.1993 के प्रस्तर 2 (स) में निर्धारित प्रावधानों के विरुद्ध होते हुए स्वेच्छाचारी भी है।

21. उपरोक्त कारणों से, हम उत्तर प्रदेश राज्य लोक सेवा न्यायाधिकरण द्वारा पारित निर्णय से पूर्ण रुप से सहमत हैं जो यहाँ चुनौती के अधीन है।

22. इस प्रकार रिट याचिका गुणविहीन है, अतः इसे खारिज किया जाता है।

23. विद्वान न्यायाधिकरण के निर्णय का अनुपालन आज से दो महीने की अवधि के भीतर किया जाएगा। यह आदेश विद्वान राज्य अधिवक्ता द्वारा संबंधित प्राधिकारी को अविलम्ब संसूचित किया जाएगा।

(2023) 3 ILRA 126

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 16.03.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर

रिट ए संख्या 1811/2023

श्रीमती माधवी मिश्रा ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: ओ.पी. तिवारी

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: सी.एस.सी., राकेश कुमार चौधरी

A. सेवा कानून - सहानुभूतिपूर्ण नियुक्ति - उत्तर प्रदेश सहकारी समाज कर्मचारियों की सेवा नियमावली, 1975 - नियम 104(V); उत्तर प्रदेश 'डाइंग इन हार्नेस' नियम, 1974 - नियम 104 के उपधारा (V) में जो उल्लेख लिया गया है, उसमें विवाहित बेटी को परिवार की परिभाषा से बाहर रखना गैरकानूनी, असंवैधानिक और भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का उल्लंघन है। इसलिए, उस नोट में 'अविवाहित' शब्द को हटाया जाता है। (पैराग्राफ 14)

'डाइंग इन हार्नेस' नियम, 1974 में परिवार की परिभाषा, 1975 के नियम 104 के नोट के समान है और परिवार की परिभाषा में बेटी को सम्मिलित किया गया है लेकिन विवाहित बेटी को बाहर रखा गया है। यह मान लेना कि शादी के बाद, बेटी अपने पिता के परिवार की सदस्य नहीं रह सकती या कि वह अपने पिता पर निर्भर नहीं रह जाती, चाहे सामाजिक परिस्थितियाँ कुछ भी हों, सही नहीं है।

B. सहानुभूतिपूर्ण नियुक्ति के वाद में परीक्षण परिभाषित रिश्तों के भीतर निर्भरता का परीक्षण है। कुछ स्थितियाँ ऐसी हो सकती हैं जहां दिवंगत सरकारी कर्मचारी का बेटा सहानुभूतिपूर्ण नियुक्ति का इच्छुक नहीं हो सकता क्योंकि दिवंगत के परिवार की आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं है कि प्राथमिकता के आधार पर सहानुभूतिपूर्ण नियुक्ति की आवश्यकता हो। लेकिन **निर्भरता या निर्भरता की कमी का मामला यह नहीं है कि यह पहले से तय किया जाए कि बेटा शादीशुदा है या नहीं। इसी तरह, दिवंगत की बेटी को सहानुभूतिपूर्ण नियुक्ति दी जानी चाहिए या नहीं, इसका निर्णय सभी प्रासंगिक तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर करना होगा कि क्या वह दिवंगत सरकारी कर्मचारी पर निर्भर थी या नहीं।** केवल शादी के आधार पर बेटियों को बाहर करना अनुचित भेदभाव होगा और यह संविधान के अनुच्छेद 14 और 15 का उल्लंघन करेगा। (पैराग्राफ 12, 13)

प्रतिवादियों को निर्देश दिया जाता है कि वे याचिकाकर्ता के सहानुभूतिपूर्ण नियुक्ति के दावे पर पुनर्विचार करें, जैसा कि विमला श्रीवास्तव में पूर्ण पीठ के निर्णय के आलोक में और ऊपर दिए गए निर्देशों के अनुसार, और याचिकाकर्ता का मामला केवल इस आधार पर अस्वीकृत नहीं किया जाएगा कि वह एक विवाहित बेटी है। (पैराग्राफ 16)

याचिका स्वीकृत। (E-4)

<u>विधि व्यवस्था अनुसरित:</u>

श्रीमती विमला श्रीवास्तव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2016 (2) ESC 660 (AIL (DB) (पैराग्राफ 11)

वर्तमान याचिका प्रतिवादी संख्या 2, अर्थात सचिव, उत्तर प्रदेश सहकारी संस्थागत सेवाएँ बोर्ड, लखनऊ द्वारा पारित आदेशों दिनांक 29.06.2021 और 01.07.2022 के विरुद्ध योजित है, जिसने 'डाइंग इन हार्नेस' नियमों के तहत याचिकाकर्ता के नियुक्ति के दावे को खारिज कर दिया।

(माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर, द्वारा प्रदत्त।)"

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री ओ. पी. तिवारी, प्रतिवादी संख्या 1 हेतु विद्वान स्थायी अधिवक्ता तथा प्रतिवादी संख्या 2 से 5 हेतु श्री राकेश कुमार चौधरी को सुना गया।

2. प्रतिवादी संख्या 2 की ओर से दायर संक्षिप्त प्रतिशपथपत्र तथा आज न्यायालय में दाखिल उसका प्रत्युत्तर शपथपत्र अभिलेख पर लिया गया।

3. पक्षों की सहमति से याचिका का निर्णय प्रवेश चरण पर ही किया जा रहा है।

4. वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ता ने विपक्षी संख्या 2 अर्थात् सचिव, उत्तर प्रदेश सहकारी संस्थागत सेवा समिति, लखनऊ द्वारा पारित आदेश दिनांकित 29.6.2021 के साथ-साथ आदेश दिनांकित 1.7.2022 को चुनौती दी है, जिसके माध्यम से याचिकाकर्ता का मृतक आश्रित नियमावली के अन्तर्गत नियुक्ति हेतु दावा निरस्त कर दिया गया है।

5. याचिकाकर्ता की ओर से यह अभिकथन किया गया है कि उनके पिता श्री सुनील कुमार मिश्रा, जोकि जिला सहकारी बैंक में चतुर्थ श्रेणी पद पर कार्यरत थे, की सेवा के दौरान 7.1.2021 को मृत्यु हो गई। वे अपने पीछे याचिकाकर्ता तथा अपनी विधवा को छोड़ गये। यह कथन किया गया है कि याचिकाकर्ता की माता भी कैंसर की मरीज है तथा याचिकाकर्ता, जो एक विवाहित महिला है, अपनी माता के साथ रह रही है तथा उनकी देखभाल कर रही है। यह कथन किया गया है कि याचिकाकर्ता के पिता के आकस्मिक निधन के कारण परिवार वित्तीय रूप से विपन्न हो गया है तथा इसलिए, उत्तर प्रदेश सहकारी समिति कर्मचारी सेवा नियमावली 1975 (इसके पश्चात् 1975 की नियमावली के रूप में संदर्भित) के नियम 104 (V) के अनुसार, जो अनुकंपा नियुक्ति का प्रावधान करता है, याचिकाकर्ता ने 1 मार्च 2021 को अनुकंपा नियुक्ति हेतु आवेदन किया। अग्रेतर यह भी प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता ने ऐसी नियुक्ति के लिए उचित विचार हेतु सभी प्रासंगिक दस्तावेज संलग्न किए थे। याचिकाकर्ता के प्रकरण पर विचार किया गया तथा बैंक प्रबंध समिति को भेज दिया गया तथा इसके पश्चात् आक्षेपित आदेश के माध्यम से इसे मात्र इस आधार पर निरस्त कर दिया गया कि याचिकाकर्ता मृत कर्मचारी की विवाहित पुत्री है तथा 1975 के नियमावली के नियम 104 से संलग्न टिप्पणी के अनुसार परिवार की परिभाषा में सम्मिलित नहीं है।

6. यह कथन किया गया है कि याचिकाकर्ता ने उपरोक्त आदेश से व्यथित होकर इस न्यायालय के समक्ष उपस्थित होकर आक्षेपित आदेश को चुनौती दी है जिसके माध्यम से उसकी उम्मीदवारी निरस्त कर दी गयी तथा अग्रेतर 1975 के नियमावली के नियम 104 (v) की

वैधता पर यह प्रार्थना करते हुए अभ्याक्रमण किया कि विवाहित पुत्री को पुत्री की परिभाषा में सम्मिलित किया जाये, तथा इस तरह का भेदभाव अवैध तथा मनमाना है, ।

7. यह प्रस्तुत किया गया कि नियमावली, 1975 के नियम 104 की संलग्न टिप्पणी के अनुसार 'इस नियमावली के प्रयोजनार्थ परिवार में मृत कर्मचारी की पत्नी/ पति, पुत्र तथा अविवाहित या विधवा पुत्रियाँ सम्मिलित होंगी।' यह कथन किया गया है कि मात्र इस तथ्य के कारण कि अविवाहित तथा विधवा पुत्रियों को ही उक्त परिभाषा में सम्मिलित किया गया है, याचिकाकर्ता को विवाहित पुत्री होने के कारण परिवार की परिभाषा से बाहर रखा गया है।

8. प्रतिवादियों अर्थात सहकारी संस्थागत सेवा समिति की ओर से उपस्थित श्री राकेश कुमार चौधरी ने आक्षेपित आदेश का समर्थन किया तथा प्रस्तुत किया कि इस कारण से इसमें कोई अवसन्नता नहीं है कि सेवा नियमावली, 1975 में परिवार की परिभाषा में विवाहित पुत्री को सम्मिलित नहीं किया गया है तथा, इसलिए, आक्षेपित आदेश, जिसके द्वारा अनुकंपा नियुक्ति हेतु याचिकाकर्ता के दावे को निरस्त कर दिया गया है, में कोई अवसन्नता नहीं है। उन्होंने अग्रेतर कथन किया कि प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा दायर प्रतिशपथपत्र में कथन किया गया है कि उ.प्र. सहकारी संस्थागत सेवा समिति पहले ही 1975 के नियमावली में परिवार की परिभाषा में इस आशय का संशोधन प्रस्तावित कर चुका था कि विवाहित पुत्री को भी परिवार की परिभाषा में सम्मिलित किया जाए। उन्होंने प्रस्तावित संशोधन के साथ पत्र दिनांकित 22.9.2022 की एक प्रति भी संलग्न की है। उन्होंने अग्रेतर कथन किया कि यदि संशोधन अनुमत हो गया होता तथा सेवा नियमावली में सम्मिलित किया गया होता तो याचिकाकर्ता के दावे को स्वीकार किया जा सकता था, परन्तु इसके अनुमोदन तथा उक्त नियमावली में सम्मिलित किए जाने से पूर्व याचिकाकर्ता के दावे को निरस्त करने में कोई अवसन्नता नहीं है।

9. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना तथा अभिलेख का अवलोकन किया।

10. इस न्यायालय के समक्ष निर्धारण हेतु एकमात्र प्रश्न यह है कि क्या विवाहित पुत्री परिवार की परिभाषा में आएगी। नियमावली, 1975 के नियम 104 से संलग्न टिप्पणी निम्नवत् उद्धृत है: -

> *"टिप्पणी। इस नियमावली के प्रयोजनार्थ परिवार में मृत कर्मचारी की पत्नी / पति, पुत्र तथा अविवाहित अथवा विधवा पुत्रियाँ सम्मिलित होंगे।"*

11. ***श्रीमती विमला श्रीवास्तव बनाम उ.प्र. राज्य व अन्य, 2016 (2) ईएससी 660 (इला. (डीबी)*** के प्रकरण में इस प्रश्न पर इस न्यायालय की एक खंडपीठ द्वारा विस्तृत रूप से विचार किया गया जिसमें उत्तर प्रदेश मृतक आश्रित नियमावली, 1974 का एक सदृश प्रावधान, इस न्यायालय की खण्डपीठ की समीक्षा के अन्तर्गत आया, जहाँ भी विवाहित पुत्री परिवार की परिभाषा में सम्मिलित नहीं थी। इस न्यायालय ने उक्त प्रावधान को संविधान के प्रावधानों का उल्लंघन

करने के साथ-साथ मनमाना भी माना तथा व्यवस्था दी कि विवाहित पुत्री 'परिवार' के स्पष्टीकरण के दायरे में आएगी। सुविधा की दृष्टि से उक्त निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ निम्नानुसार उद्धृत किए गए हैं: -

> *"9. प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों का आकलन करते समय, प्रारम्भ में यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि नियम 2 (ग) में अभिव्यक्ति "परिवार" की परिभाषा में मृत सरकारी कर्मचारी के उत्तराधिकारियों की श्रेणियां सम्मिलित हैं। उनमें पत्नी या पति, पुत्र तथा दत्तक पुत्र, अविवाहित पुत्रियाँ, अविवाहित दत्तक पुत्रियाँ, विधवा पुत्रियाँ तथा विधवा बहुएँ सम्मिलित हैं। नियम 2 (ग) के खंड (ii) में पुत्र के साथ-साथ दत्तक पुत्र को भी, वैवाहिक स्थिति के निरपेक्ष, "परिवार" अभिव्यक्ति के अन्तर्गत लाया गया है। एक पुत्र जो विवाहित है वह नियम 2 (ग) के प्रयोजनार्थ "परिवार" अभिव्यक्ति के अन्तर्गत आता है। परन्तु एक विधायी परिभाषा के अनुसार, एक पुत्री जो विवाहित है उसे एक मृत सरकारी कर्मचारी के परिवार के दायरे तथा परिधि क्षेत्र से बाहर रखा गया है, जब तक कि वह विधवा पुत्री की श्रेणी में न आती हो। नियम 2 (ग) में निहित घृणित भेदभाव इस तथ्य में निहित है कि एक पुत्री को उसकी विवाह के कारण "परिवार" अभिव्यक्ति के दायरे से बाहर रखा गया है। उसका बहिष्कार विवाह के कारण संचालित होता है तथा चाहे वह मृत सरकारी कर्मचारी की मृत्यु के समय उस पर निर्भर हो अथवा नहीं। विवाह एक पुत्र को "परिवार" अभिव्यक्ति के दायरे से बाहर नहीं करता है। परन्तु विवाह पुत्री को वर्जित करता है। यह निंदनीय है। एक विवाहित पुत्री जो विवाह के पश्चात् पृथक हो गई हो तथा मृतक पर निर्भर हो, इस भेदभाव के परिणामस्वरूप उसे बाहर रखा जाएगा। एक तलाकशुदा पुत्री को भी इसी तरह बाहर रखा जाएगा। भले ही वह अपने पिता पर आश्रित हो, वह मात्र इस तथ्य के कारण अनुकंपा नियुक्ति हेतु पात्र नहीं होगी कि वह "अविवाहित" नहीं है। बहिष्कार का एकमात्र आधार विवाह है तथा उसके विवाह होने से, एक पुत्री को "परिवार" अभिव्यक्ति की परिभाषा से बाहर नहीं किया जाएगा।*
>
> *10. न्यायालय के समक्ष वाद-विषय यह है कि क्या विवाह*

सामाजिक परिस्थिति है जो "परिवार" अभिव्यक्ति की परिधि को परिभाषित करने में प्रासंगिक है तथा क्या यह तथ्य कि पुत्री का विवाह हो चुका है संवैधानिक रूप से उसे अनुकंपा नियुक्ति के लाभ से वंचित करने का एक स्वीकार्य आधार हो सकता है। इस प्रकरण को विभिन्न प्रकार के दृष्टिकोणों से देखा जा सकता है। नियम 2(ग) की परिभाषा में राज्य द्वारा अपनायी गयी एक धारणा अंर्तनिहित है कि एक पुत्र परिवार का सदस्य रहता है तथा विवाह होने के पश्चात् वह अपने पिता के परिवार का हिस्सा बना रहता है, विवाह के पश्चात् एक पुत्री अपने पिता के परिवार का हिस्सा नहीं रह जाती है। राज्य हेतु ऐसी धारणा बनाना तथा अनुकंपा नियुक्ति के संदर्भ में विवाह को शत्रुतापूर्ण भेदभाव के कृत्य को अपनाने हेतु एक तर्क के रूप में उपयोग करके पुत्र को समान लाभ अनुदत्त किये जाना तथा पुत्री को लाभ अनुदत्त करने से इन्कार, भेदभावपूर्ण तथा संवैधानिक रूप से अस्वीकार्य है। विवाह किसी सन्तान, चाहे वह पुत्र हो या पुत्री, के जनक के साथ संबंध की निरंतरता को निर्धारित नहीं करता है। पुत्र विवाह से पूर्व तथा उसके पश्चात् भी पुत्र ही रहता है। पुत्री तो पुत्री ही रहती है। विवाह के पश्चात् यह रिश्ता न तो वास्तव में अथवा न ही विधिक तौर पर समाप्त होता है। विवाह से जनक तथा उनके पुत्र अथवा जनक तथा उनकी पुत्री के मध्य संबंध विच्छेद नहीं होता है। ये संबंध वैवाहिक स्थिति से संचालित या परिभाषित नहीं होते हैं। राज्य ने अपने उत्तर में तथा बहिष्कार की नींव पितृसत्तात्मक धारणा में एक महिला की भूमिका तथा स्थिति पर अवलम्बित की है। इन पितृसत्तात्मक धारणाओं को अनुच्छेद 14 के अन्तर्गत समानता की प्रत्याभूति की कसौटी पर खरा उतरना चाहिए तथा अनुच्छेद 15 के अन्तर्गत लैंगिक पहचान की मान्यता हेतु उत्तरदायी ठहराया जाना चाहिए।

11. राज्य की ओर से प्रतिशपथपत्र में जो अवलम्ब लिया गया है वह हमारे समाज में पितृसत्तात्मक धारणा में एक महिला की स्थिति तथा विशेष रूप से विवाह के पश्चात् पुत्री की स्थिति पर आधारित है। शपथपत्र में यह अभिधारणा व्यक्त की गयी है कि विवाह

के पश्चात्, पुत्री अपने पति के परिवार की सदस्य बन जाती है तथा उसके भरण-पोषण की जिम्मेदारी पूरी तरह से उसके पति पर होती है। शपथपत्र में जो दूसरा आधार इंगित किया गया है वह यह है कि हिंदू विधि में विवाहित पुत्री को उसके पिता या संयुक्त हिंदू परिवार पर आश्रित नहीं माना जा सकता है। यह धारणा कि विवाह के पश्चात्, एक पुत्री को उसके पिता के परिवार का सदस्य नहीं कहा जा सकता है या वह सामाजिक परिस्थितियों के बावजूद अपने पिता पर निर्भर नहीं रहती है, का समर्थन नहीं किया जा सकता है। हमारा समाज संवैधानिक सिद्धांतों से संचालित होता है। जब राज्य ने एक सामाजिक कल्याण नीति की अपनाई है जो निर्भरता पर आधारित है, तो विवाह को परिवार के सदस्य को परिभाषित करने तथा बाहर करने हेतु एक उचित आधार नहीं माना जा सकता है। अनुकंपा नियुक्ति के मामलों में परीक्षण परिभाषित संबंधों के भीतर निर्भरता का परीक्षण है। ऐसी स्थितियां हैं जहां मृत सरकारी कर्मचारी के पुत्र को अनुकंपा नियुक्ति की आवश्यकता नहीं हो सकती है क्योंकि मृतक के परिवार की आर्थिक तथा वित्तीय स्थिति ऐसी नहीं है कि अधिमान्य आधार पर अनुकंपा नियुक्ति देने की आवश्यकता हो। परन्तु निर्भरता या निर्भरता की न्यूनता एक ऐसा मामला है जिसका निर्धारण इस आधार पर नहीं किया जाता है कि पुत्र विवाहित है अथवा नहीं। इसी प्रकार, किसी मृतक की पुत्री को अनुकंपा नियुक्ति दी जानी चाहिए या नहीं, इसे इस संदर्भ में परिभाषित किया जाना चाहिए कि क्या, सभी प्रासंगिक तथ्यों तथा परिस्थितियों पर विचार करने पर, वह मृतक सरकारी कर्मचारी पर निर्भर थी। मात्र विवाह के आधार पर पुत्रियों का बहिष्करण करना एक अनुचित भेदभाव होगा तथा संविधान के अनुच्छेद 14 तथा 15 का उल्लंघन होगा।

12. विभिन्न प्रकार की स्थितियों की परिकल्पना की जा सकती है जहां नियम का अनुप्रयोग विद्वेषपूर्ण तथा भेदभावपूर्ण होगा। मृतक सरकारी कर्मचारी के विधवा जनक- पिता या माता की देखभाल हेतु मात्र जीवित विवाहित पुत्रियाँ हो सकती हैं। कमाने वाले की मृत्यु के

पश्चात् संकट में पड़े परिवार की देखभाल करने वाली पुत्रियाँ ही एकमात्र व्यक्ति हो सकती हैं। फिर भी, नियम के अन्तर्गत, कोई भी पुत्री मात्र इसलिए अनुकंपा नियुक्ति नहीं पा सकती क्योंकि वह विवाहित है। मृतक कर्मचारी का परिवार अपने वेतन भोगी की असामयिक मृत्यु से उत्पन्न वित्तीय संकट से उबर नहीं पाएगा, जिसकी सेवा के दौरान मृत्यु हो गई है। अनुकंपा नियुक्ति देने का अंतर्निहित उद्देश्य तथा भावना विफल हो गई। किसी स्थिति में, भले ही मृतक सरकारी कर्मचारी अपने पीछे एक जीवित पुत्र छोड़ गया हो, परन्तु वास्तव में वह जीवित जनकों के कल्याण की देखभाल नहीं कर रहा है। कुछ मामलों में, मात्र एक पुत्री ही भावनात्मक तथा आर्थिक सांत्वना का स्रोत हो सकती है। ये कोई पृथक स्थितियाँ नहीं बल्कि भारत की सामाजिक वास्तविकताएँ हैं। हो सकता है कि जीवित पुत्र रोजगार की खोज में गाँव, शहर या राज्य छोड़कर किसी महानगर में चला गया हो। जीवित जनक की देखभाल करने वाली एक पुत्री हो सकती है। फिर भी नियम पुत्री को मात्र इसलिए अनुकंपा नियुक्ति से वंचित कर देता है क्योंकि वह विवाहित है। हमारी विधि को सामाजिक संदर्भों को समायोजित करने हेतु प्रबल रूप से विकसित होना चाहिए। अनुकंपा नियुक्ति का अनुदान, जो उस व्यक्ति को दिया जाता है जिसे रोजगार दिया गया है, मात्र एक सामाजिक कल्याण लाभ नहीं है। लाभ का उद्देश्य यह है कि एक मृत सरकारी कर्मचारी, जो नौकरी के दौरान मर जाता है, के परिवार के एक सदस्य को अनुकंपा नियुक्ति के अनुदान द्वारा समर्थित किया जा सके। विवाहित पुत्री को परिवार के परिधि से बाहर करने से सामाजिक कल्याण लाभ का उद्देश्य विफल हो जायेगा।

13. संविधान का जीवित वृक्ष, जिस पर विधि को वैधता प्राप्त होती है, मौलिक मानवीय स्वतंत्रता को साकार करने का एक उदार साधन है। विधि तथा संविधान को अनेक समरसताओं का ध्यान रखना चाहिए। व्यक्तियों - पुरुषों तथा महिलाओं की कई पहचान होती हैं: कार्यस्थल पर एक कार्यकर्ता के रूप में; एक सन्तान, जनक तथा जीवनसाथी के रूप में; प्राथमिकताओं तथा

अभिविन्यास के आधार पर पहचान; जो भाषा, धर्म तथा संस्कृति पर आधारित हैं। परन्तु संवैधानिक दृष्टिकोण से, उन्हें नागरिकता के व्यापक विशेषाधिकारों तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता की प्रतिभूति में संरक्षित तथा समाहित किया गया है।

14. ईशा त्यागी बनाम उ.प्र. राज्य में इस न्यायालय के निर्णय में, एक खण्डपीठ ने एक शर्त की वैधता पर विचार किया जो स्वतंत्रता सेनानियों के वंशजों को क्षैतिज आरक्षण प्रदान करते हुए राज्य सरकार द्वारा लगायी गयी थी। राज्य द्वारा जो शर्त लगायी गयी था उससे एक स्वतंत्रता सेनानी की पुत्री के सन्तानों को सकारात्मक कार्रवाई कार्यक्रम के अन्तर्गत राजकीय मेडिकल कॉलेजों में प्रवेश लेने से वर्जित किया गया। इसे असंवैधानिक ठहराते हुए, खण्डपीठ ने निम्नवत् व्यवस्था दी:

"इस प्रकरण में क्षैतिज आरक्षण का लाभ मात्र पुत्रों (तथा उनके पुत्रों) तथा अविवाहित पुत्रियों तक सीमित करके विवाहित पुत्रियों के साथ भेदभाव करना कालदोष-युक्त होगा। यदि पुत्र की वैवाहिक स्थिति से एक वंशज के रूप में उसके अधिकार अथवा पात्रता हेतु विधि में कोई प्रभाव नहीं पड़ता है, समानरुप से हमारे मत में, संवैधानिक मूल्यों के संदर्भ में एक पुत्री की वैवाहिक स्थिति से कोई अंतर नहीं पड़ना चाहिए। इस धारणा पर कि एक विवाहित पुत्री अपने विवाह के पश्चात् अपने जनक के परिवार का हिस्सा नहीं रह जाती है, समकालीन समय में इस पर पुनर्विचार किया जाना चाहिए। विधि यह धारणा नहीं बना सकती कि केवल विवाहित पुत्र ही अपने जनक के परिवार के सदस्य बने रहेंगे, तथा एक विवाहित पुत्री अपने जनक के परिवार की सदस्य नहीं रह जाती है। ऐसी धारणा संवैधानिक रूप से अस्वीकार्य है क्योंकि यह विवाहित पुत्रियों तथा उनके सन्तानों के विरुद्ध भेदभाव करने का एक घृणित आधार है। यह सामाजिक कल्याण उपाय जो एक स्वतंत्रता सेनानी के पुत्र को उसकी वैवाहिक स्थिति के निरपेक्ष अनुदत्त किया जाता है उससे एक स्वतंत्रता सेनानी की विवाहित पुत्री को वंचित नहीं किया जा सकता।"

15. विवाह के पक्ष पर विचार करते हुए, खण्डपीठ ने निम्नवत् व्यवस्था दी : -

"विवाह का पहचान के साथ कोई निकटतम संबंध न ही है तथा न ही होना चाहिए। एक महिला के रूप में एक महिला की पहचान उसके वैवाहिक संबंध के पश्चात् भी बनी रहती है। इसलिए, अब समय आ गया है कि न्यायालय को सकारात्मक रूप से इस बात पर बल देना होगा, यदि राज्य को संविधान के अनुच्छेद 14 तथा 15 में सन्निहित समानता के मूल सिद्धांत के अनुरूप कार्य करना है, तो उसे यह स्वतंत्रता नहीं है कि वह विवाहित पुत्रियों को क्षैतिज आरक्षण के लाभ, जो वैवाहिक स्थिति के निरपेक्ष एक पुत्र हेतु उपलब्ध है, से वंचित करके उनके साथ भेदभाव करे।"

16. संविधान के अनुच्छेद 14 तथा 15 में अंतर्निहित सिद्धांतों का लैंगिक पहचान पर महत्वपूर्ण प्रभाव है। सी.बी. मुथम्मा बनाम भारत संघ में, सर्वोच्च न्यायालय ने भारतीय विदेश सेवा (आचरण तथा अनुशासन) नियमावली में एक नियम की वैधता पर विचार किया, जिसके अन्तर्गत सेवा की एक महिला सदस्य को अपने विवाह सम्पन्न होने से पूर्व सरकार की अनुमति प्राप्त करना वांछित था, यदि सरकार संतुष्ट हो कि उसकी पारिवारिक तथा घरेलू प्रतिबद्धताएं सेवा के सदस्य के रूप में उसके कर्तव्यों के उचित तथा कुशल निर्वहन में बाधा बन सकती हैं, तो उसे विवाह के पश्चात् सेवा से त्यागपत्र देना वांछित था। सर्वोच्च न्यायालय ने व्यवस्था दी कि "यदि एक विवाहित पुरुष को अधिकार है, तो एक विवाहित महिला, अन्य समानताओं पर, इससे बुरी स्थिति में नहीं है"। इस मध्य केंद्र सरकार ने संकेत दिया कि इस नियम पर पुनर्विचार किया जा रहा था तथा इसका विलोपन राजपत्रित किया जा रहा था।

17. विजया मनोहर अर्बत बनाम काशीराव राजाराम सवाई में, सर्वोच्च न्यायालय ने दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 125 के प्रावधानों के संदर्भ में व्यवस्था दी कि "एक पुत्री अपनी विवाह के पश्चात् पिता अथवा माता की पुत्री ही रहती है"।

18. हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 6 (क) में "पिता, तथा उसके

पश्चात्, माता" अभिव्यक्ति के दायरे को परिभाषित करते समय गीता हरिहरन बनाम भारतीय रिज़र्व बैंक में भी यही सिद्धांत लागू किया गया था। सर्वोच्च न्यायालय ने अवलोकन किया कि कि यदि 'पश्चात्' शब्द का अर्थ यह निकाला जाए कि पिता के जीवनकाल के दौरान माता को नाबालिग के संरक्षक के रूप में कार्य करने हेतु अयोग्य होगी, तो यह लैंगिक समानता के संवैधानिक अधिदेश के विपरीत होगा तथा इससे पुरुषों तथा महिलाओं के बीच अस्वीकार्य भेदभाव की एक गंभीर स्थिति उत्पन्न होगी। 'पश्चात्' शब्द की व्याख्या करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने व्यवस्था दी कि इसका आवश्यक रुप से तात्पर्य यह नहीं है कि पिता की मृत्यु के पश्चात् परन्तु इसका तात्पर्य पिता की अनुपस्थिति से है, चाहे वह अस्थायी हो या अन्यथा, या पिता की उदासीनता या सन्तान के भरण-पोषण करने में असमर्थता की स्थिति से होगा।

19. सविता सामवेदी बनाम भारत संघ में, सर्वोच्च न्यायालय ने रेलवे समिति के एक परिपत्र की वैधता पर विचार किया जिसके द्वारा एक रेलवे कर्मचारी जिसको सरकारी आवास का आवंटित है, सेवा से सेवानिवृत होने पर, एक पुत्र या अन्य व्यक्तियों के मध्य अविवाहित पुत्री को क्रमबाह्य आधार पर आवास के आवंटन हेतु मनोनीत करने हेतु स्वत्वाधिकारी था। यह व्यवस्था देते हुए कि परिपत्र (जहाँ तक यह आवास के आवंटन हेतु विवाहित पुत्री के नामांकन को प्रतिबंधित करता है) ने अनुच्छेद 14 का उल्लंघन किया है, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नवत् अवलोकन किया:

"...यदि उसकी मात्र एक विवाहित पुत्री है, जोकि एक रेलवे कर्मचारी है, तथा उसकी कोई अन्य संतान नहीं है, तो उसका विकल्प वह रेलवे कर्मचारी विवाहित पुत्री है तथा उस तक ही सीमित होगा। उसे एक स्वतंत्र स्थिति में होना चाहिए कि वह रेलवे आवास के नियमितीकरण हेतु उस पुत्री को नामांकित करे। रेलवे सेवा में एक से अधिक सन्तानों के प्रकरण में ही उसे विकल्प चुनना पड़ सकता है तथा हमें कोई कारण नहीं दिखता कि क्यों न इस बिन्दु पर निर्णय

सेवानिवृत्त अधिकारी पर छोड़ा जाए तथा सन्तान के लिंग के निरपेक्ष रेलवे अधिकारियों द्वारा इसका सम्मान किया जाये। जब पुत्र हो तथा जनकों का भरण-पोषण करने में सक्षम हो तो रेलवे के पास बेटे के पक्ष में निर्णय को विनियमित करने या दबाव डालने का कोई अवसर नहीं है। इस संबंध में रेलवे मंत्रालय का परिपत्र हमें पूर्णतया अनुचित, लिंग आधारित तथा अनुचित प्रतीत होता है, जिसे संविधान के अनुच्छेद 14 के अन्तर्गत रद्द किया जाना चाहिये। एक विवाहित पुत्री की पात्रता को अविवाहित पुत्री (क्योंकि वह एक बार उस स्थिति में रही होगी) के समान रखा जाना चाहिए, ताकि संदर्भित परिपत्र के पूर्ववर्ती भाग के लाभ का दावा किया जा सके, जिसे इसके पहले पैराग्राफ में, ऊपर उद्धृत किया गया है।"

20. एयर इंडिया केबिन क्रू एसोसिएशन बनाम येशस्विनी मर्चेंट में, सर्वोच्च न्यायालय ने मात्र लैंगिक आधार पर भेदभाव के निषेध का अनुच्छेद 15(2) के आधार पर विचार किया । अनुच्छेद 15 तथा 16 के प्रावधानों की व्याख्या करते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने व्यवस्था दी कि यह संवैधानिक जनादेश का उल्लंघन होगा जहाँ एक महिला से लैंगिक भेदभाव के कारण पुरुष के समान व्यवहार नहीं किया जाएगा।

.....

26. निष्कर्षस्वरुप, हम व्यवस्था देते हैं कि मृतक आश्रित नियमावली के नियम 2 (ग) में "परिवार" अभिव्यक्ति के परिधि से विवाहित पुत्रियों का बहिष्करण अवैध तथा असंवैधानिक है, जो कि संविधान के अनुच्छेद 14 तथा 15 का उल्लंघन है।

27. तदनुसार, हम मृतक आश्रित नियमावली के नियम 2 (ग) (iii) में 'अविवाहित' शब्द को हटाते हैं।

28. परिणामस्वरूप, हम निर्देश देते हैं कि अनुकंपा नियुक्ति हेतु याचिकाकर्ताओं के दावे पर पुनर्विचार किया जाएगा। हम स्पष्ट करते हैं कि सक्षम प्राधिकारी सभी प्रासंगिक तथ्यों तथा परिस्थितियों के आधार पर अनुकंपा नियुक्ति के दावे पर विचार करने हेतु स्वतंत्र होगा तथा याचिकाकर्ताओं को मात्र उनकी वैवाहिक स्थिति के

आधार पर विचारण से बाहर नहीं किया जाएगा।"

12. उपरोक्त निर्णय पर विचार करते हुए इस न्यायालय का सुविचारित मत है कि विमला श्रीवास्तव (उपरोक्त) के प्रकरण में पारित उक्त निर्णय वर्तमान प्रकरण के तथ्यों पर पूर्णतया लागू होता है। मृतक आश्रित नियमावली, 1974 में परिवार की परिभाषा नियमावली, 1975 के नियम 104 में संलग्न टिप्पणी के समविषयक है तथा परिवार की परिभाषा में पुत्री को सम्मिलित किया गया है, परन्तु विवाहित पुत्री को अपवर्जित रखा गया है।

13. इस न्यायालय ने उपरोक्त पूर्ण पीठ में राज्य के दृष्टिकोण को स्वीकार नहीं किया है जो हमारे समाज में एक महिला की स्थिति तथा विशेष रूप से विवाह के पश्चात् पुत्री की स्थिति की पितृसत्तात्मक धारणा पर अग्रसर होता है। यह धारणा कि विवाह के पश्चात्, एक पुत्री को उसके पिता के परिवार का सदस्य नहीं कहा जा सकता है या वह सामाजिक परिस्थितियों के बावजूद अपने पिता पर निर्भर नहीं रहती है, स्वीकार नहीं की जा सकती। अनुकंपा नियुक्ति के मामलों में परीक्षण परिभाषित संबंधों के भीतर निर्भरता का परीक्षण है। ऐसी स्थितियां हैं जहां मृत सरकारी कर्मचारी के पुत्र को अनुकंपा नियुक्ति की आवश्यकता नहीं हो क्योंकि मृतक के परिवार की आर्थिक तथा वित्तीय स्थिति ऐसी नहीं है जिसके अधिमान्य आधार पर अनुकंपा नियुक्ति प्रदान करने की आवश्यकता हो। परन्तु निर्भरता या अनिर्भरता एक ऐसा मामला है जिसका निर्धारण इस आधार पर नहीं किया जाता है कि पुत्र विवाहित है अथवा नहीं। इसी प्रकार, किसी मृतक की पुत्री को अनुकंपा नियुक्ति दी जानी चाहिए अथवा नहीं, इसे इस संदर्भ में परिभाषित किया जाना चाहिए कि क्या, सभी प्रासंगिक तथ्यों तथा परिस्थितियों पर विचार करने पर, वह मृतक सरकारी कर्मचारी पर निर्भर थी। मात्र वैवाहिक आधार पर पुत्रियों का अपवर्जन करना एक अनुचित भेदभाव होगा तथा संविधान के अनुच्छेद 14 तथा 15 का उल्लंघन होगा।

14. तदनुसार, यह व्यवस्था दी जाती है कि नियमावली, 1975 के नियम 104 में उप खंड (V) में संलग्न टिप्पणी में विवाहित पुत्री का परिवार की परिधि से अपवर्जन अवैध, असंवैधानिक तथा भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 तथा 16 का उल्लंघन है। तदनुसार, उक्त टिप्पणी में 'अविवाहित' शब्द को हटाया जाता है।

15. विपक्षी संख्या 2 द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांकित 29.6.2021 तथा 1.7.2022 को निरस्त किया जाता है।

16. प्रतिवादियों को ***विमला श्रीवास्तव (उपरोक्त)*** के प्रकरण में पूर्ण पीठ के निर्णय के साथ-साथ ऊपर जारी निदेशों के आलोक में अनुकंपा नियुक्ति हेतु याचिकाकर्ता के दावे पर पुनः विचार करने का निदेश दिया जाता है तथा याचिकाकर्ता का प्रकरण मात्र इस आधार पर निरस्त नहीं किया जाएगा कि वह एक विवाहित पुत्री है।

17. उपरोक्त के आलोक में, रिट याचिका **अनुमत** की जाती है।

(2023) 3 ILRA 133

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 22.02.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली

रिट ए संख्या 1834/2001

आदित्य कुमार सिंह ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: एच.जी.एस. परिहार, मीनाक्षी सिंह परिहार

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: सी.एस.सी., गौस बेग, आर.के. कटियार, राजीव सिंह चौहान

A. सेवा कानून - नियुक्ति की अवधि बढ़ाना/नियमितीकरण - वेतन का भुगतान - वादी की लम्बी सेवा को दिए गए तथ्यों और कारणों के आधार पर नियमित किया जाना चाहिए।

यह स्पष्ट है कि श्री राजेंद्र बहादुर सिंह दिनांक 17.09.1997 को अवकाश पर गए थे। लगभग 26 साल हो गए हैं और वे पद पर वापस नहीं आए हैं। इसका अर्थ है कि वे वापस आकर पद ग्रहण करने में रुचि नहीं रखते हैं। वादी लगातार श्री राजेंद्र बहादुर सिंह के अवकाश के कारण खाली पद पर सहायक शिक्षक के रूप में अपनी ड्यूटी निभा रहे हैं। समय-समय पर जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी द्वारा वादी की सेवा की अवधि बढ़ाने के लिए भी अनुमति दी गई है। अंत में, दिनांक 23.06.2002 के आदेश के तहत जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी द्वारा निर्देश दिया गया कि वादी को आगे के आदेश तक बने रहने की अनुमति दी जाए। (पैराग्राफ 10)

इसके अनुसार, इस रिट याचिका का निस्तारण करते हुए जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, उन्नाव को निर्देश दिया जाता है कि वह इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तारीख से छह सप्ताह के भीतर वादी की सेवा को नियमित करने का आदेश जारी करें। यद्धपि, वादी को कार्यकारी प्रधानाध्यापक के पद पर बने रहने और महीने-दर-महीने नियमित वेतन प्राप्त करने की अनुमति दी जाएगी। (पैराग्राफ 12)

रिट याचिका निस्तारित। (ई-4)

(माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली, द्वारा प्रदत्त)"

1. याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता सुश्री मीनाक्षी परिहार सिंह, प्रत्यर्थी संख्या 1 के लिए विद्वान स्थायी अधिवक्ता, प्रत्यर्थी संख्या 2 के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री मधुकर दीक्षित और प्रत्यर्थी संख्या 3 के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री राजीव सिंह चौहान को सुना गया।

2. वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने परमादेश की प्रकृति का एक आदेश जारी करने की प्रार्थना की है जो प्रत्यर्थीगण को निर्देश दे कि याचिकाकर्ता को सहायक शिक्षक के पद पर कार्य करने की अनुमति दी जाए और उसे नियमित रूप से प्रत्येक माह बिना किसी व्यवधान के वेतन का भुगतान किया जाए जब तक श्री राजेंद्र बहादुर सिंह अवकाश पर हैं।

3. मामले का तथ्यात्मक विवरण यह है कि श्री राजेंद्र बहादुर सिंह, सहायक शिक्षक 17.9.1997 को बिना वेतन के अवकाश पर चले गए। याचिकाकर्ता को नियम 20 के तहत 13.11.1997 को श्री राजेंद्र बहादुर सिंह को दिए गए अवकाश के कारण हुई रिक्ति के विरुद्ध नियुक्ति प्रदान की गई थी। याचिकाकर्ता की नियुक्ति को जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी द्वारा 13.11.1997 से छह महीने की अवधि के लिए दिनांक 20.12.1997 के आदेश द्वारा अनुमोदित किया गया था। जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी ने 1.7.1998 से छह महीने की अवधि के लिए याचिकाकर्ता की नियुक्ति के विस्तार को दिनांक 25.5.1998 के आदेश द्वारा अनुमोदित किया। जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी ने पुनः 20.5.1999 तक छह महीने की अवधि के लिए याचिकाकर्ता की नियुक्ति के विस्तार को दिनांक 21.12.1998 के आदेश द्वारा अनुमोदित किया। प्रबंध समिति ने याचिकाकर्ता की नियुक्ति के विस्तार के लिए 30.6.2007 तक का निर्णय लिया क्योंकि राजेंद्र बहादुर सिंह का बिना वेतन का अवकाश प्रबंध समिति द्वारा दिनांक 15.5.1999 के संकल्प द्वारा 30.6.2007 तक स्वीकृत किया गया था। प्रबंधन द्वारा जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी को 30.6.2007 तक याचिकाकर्ता की नियुक्ति के विस्तार के अनुमोदन की मांग करते हुए दिनांक 17.5.1999 के आवरण पत्र के साथ पत्र भेजा गया था। दिनांक 17.5.1999 के पत्र के जवाब में, जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी ने याचिकाकर्ता की नियुक्ति को केवल 1.7.1999 से 31.12.1999 तक की अवधि के लिए अनुमोदन दिया। प्रबंध समिति के प्रबंधक ने पुनः जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी को 30.6.2007 तक याचिकाकर्ता की नियुक्ति के विस्तार के अनुमोदन के लिए पत्र लिखा। दिनांक 12.11.1999 के पत्र के जवाब में जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी ने याचिकाकर्ता के विस्तार को केवल छह महीने की अवधि यानी 30.6.2000 तक के लिए दिनांक 31.12.1999 के आदेश द्वारा अनुमोदन दिया। प्रबंध समिति के प्रबंधक ने पुनः दिनांक 27.5.2000 को जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी को 30.6.2007 तक याचिकाकर्ता की नियुक्ति के विस्तार के लिए पत्र लिखा। जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी ने दिनांक 27.5.2000 के पत्र द्वारा याचिकाकर्ता के विस्तार को केवल छह महीने की अवधि के लिए अनुमोदित किया। जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी द्वारा याचिकाकर्ता की नियुक्ति के विस्तार को 1.1.2001 से 20.5.2001 तक की अवधि के लिए अनुमोदन प्रदान किया गया है और याचिकाकर्ता की सेवा में कृत्रिम व्यवधान किया जा रहा है और उसकी नियुक्ति का विस्तार केवल टुकड़ों में छह महीने की अवधि के लिए किया जा रहा है और 18.5.1998 से 30.6.1998 और 21.5.1999 से 30.6.1999 तक कृत्रिम अवकाश दिया गया है। इससे व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने वर्तमान रिट याचिका दायर की है।

4. इस न्यायालय ने दिनांक 20.4.2001 के आदेश द्वारा निम्नलिखित आदेश पारित किया:

"*नोटिस जारी करें।*

प्रत्यर्थी संख्या 1 और 2 की ओर से नोटिस विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता द्वारा स्वीकार किया गया है और प्रत्यर्थी संख्या 3 की ओर से नोटिस श्री आर.के. कटियार, अधिवक्ता द्वारा स्वीकार किया गया है। श्री राजीव शर्मा, विद्वान स्थायी अधिवक्ता प्रार्थना करते हैं और उन्हें याचिकाकर्ता के अधिवक्ता को उसकी प्रतिलिपि देने के बाद जवाबी हलफनामा दाखिल करने के लिए चार सप्ताह का समय दिया जाता है, जो यदि वे चाहें तो अगले दो सप्ताह के भीतर प्रत्युत्तर हलफनामा दाखिल कर सकते हैं।

प्रत्यर्थी संख्या 4 को कारण बताओ नोटिस जारी करें कि क्यों न रिट याचिका को स्वीकार किया जाए और यदि संभव हो तो स्वीकृति की तिथि पर अंतिम रूप से निपटाया जाए। याचिकाकर्ता प्रत्यर्थी संख्या 4 को पंजीकृत डाक और स्पीड पोस्ट द्वारा भी नोटिस के लिए कदम उठाएगा और दस्ती समन के उद्देश्य से याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता को तीन दिन के भीतर जारी किया जाए। जुलाई, 2001 के प्रथम सप्ताह में सूचीबद्ध करें। अगली सुनवाई की तारीख तक आज की स्थिति यथावत रहेगी, रिट याचिका के पक्षकारों द्वारा बनाए रखा जाएगा।"

5. इस न्यायालय के आदेश के अनुपालन में, जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी ने 23.6.2002 को एक आदेश पारित किया जिसके द्वारा यह निर्देशित किया गया है कि इस न्यायालय के अगले आदेश तक यथास्थिति बनाए रखी जाएगी। इस न्यायालय के आदेश के साथ-साथ जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी के दिनांक 23.6.2002 के आदेश के अनुपालन में, याचिकाकर्ता लगातार अपना कर्तव्य निभा रहा है और उसे तदनुसार वेतन का भुगतान किया गया है।

6. याचिकाकर्ता द्वारा अनुपूरक शपथ पत्र दाखिल किया गया है जिसमें वित्त एवं लेखा अधिकारी, बेसिक शिक्षा, उन्नाव के दिनांक 1.7.2017 के आदेश की प्रति संलग्नक संख्या ए-1 के रूप में संलग्न है जिसमें कहा गया है कि 8.12.1997 से, याचिकाकर्ता की पिछले 19 वर्षों की संतोषजनक सेवाओं को ध्यान में रखते हुए नियमित वेतन, वार्षिक वेतन वृद्धि, जी.पी.एफ. कटौती और समूह बीमा आदि के लाभ प्रदान किए गए हैं। दिनांक 8.12.1997 के आदेश (अनुपूरक शपथ पत्र का संलग्नक ए-2) द्वारा, 18.11.2007 से चयन वेतनमान प्रदान किया गया था और अब, वह जूनियर हाईस्कूल का कार्यवाहक प्रधानाध्यापक है।

7. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि संस्था में सहायक शिक्षक के रूप में याचिकाकर्ता की लंबी सेवा को ध्यान में रखते हुए, उसकी सेवा को नियमित किया जाना चाहिए। वह आगे तर्क देती हैं कि जो व्यक्ति अवकाश पर गया था, वह 1997 से वापस नहीं आया है, इसलिए याचिकाकर्ता की सेवा को नियमित किया जाना चाहिए। उनका अंतिम तर्क है कि उक्त तथ्यों और आधारों के दृष्टिगत याचिकाकर्ता की लंबी सेवा को नियमित किया जाना चाहिए।

8. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी संख्या 1 और 2 के विद्वान स्थायी अधिवक्ता और प्रत्यर्थी संख्या 3 के विद्वान अधिवक्ता श्री राजीव सिंह चौहान का तर्क है कि याचिकाकर्ता की नियुक्ति नियम 20 के तहत छह महीने की

अवधि के लिए की गई थी, लेकिन अवकाश पर गए शिक्षक की अनुपलब्धता के कारण, याचिकाकर्ता की सेवा का विस्तार किया गया और वह लगातार अपना कर्तव्य निभा रहा है। रिक्ति मूल रूप से नहीं हुई है, इसलिए नियमितीकरण का दावा याचिकाकर्ता को उपलब्ध नहीं है।

9. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत तर्कों पर विचार किया है और रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया है।

10. इसके अवलोकन से यह स्पष्ट है कि श्री राजेंद्र बहादुर सिंह 17.9.1997 को अवकाश पर गए थे। लगभग 26 वर्ष बीत चुके हैं और वे पद पर वापस नहीं आए हैं। इसका अर्थ है कि वे वापस आने और पद पर कार्यभार संभालने में रुचि नहीं रखते हैं। याचिकाकर्ता लगातार श्री राजेंद्र बहादुर सिंह को दिए गए अवकाश के कारण हुई रिक्ति पर सहायक शिक्षक के पद पर अपना कर्तव्य निभा रहा है। समय-समय पर जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी द्वारा याचिकाकर्ता की सेवा के विस्तार के लिए अनुमोदन भी दिया गया है। अंत में, दिनांक 23.6.2002 के आदेश द्वारा जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी द्वारा उनके द्वारा पारित अगले आदेश तक याचिकाकर्ता की निरंतरता की अनुमति देने का निर्देश जारी किया गया था।

11. उपरोक्त को देखते हुए, इस रिट याचिका को और अधिक लंबित रखने का कोई औचित्य नहीं है।

12. तदनुसार, यह रिट याचिका अंतिम रूप से इस निर्देश के साथ **निस्तारित** की जाती है कि जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, उन्नाव इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से छह सप्ताह की अवधि के भीतर याचिकाकर्ता की सेवा के नियमितीकरण के लिए एक आदेश पारित करें। हालांकि, याचिकाकर्ता को कार्यवाहक प्रधानाध्यापक के पद पर जारी रहने की अनुमति दी जाएगी और प्रति माह नियमित मासिक वेतन का भुगतान किया जाएगा।

(2023) 3 ILRA 136

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 03.03.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति रजनीश कुमार

रिट ए संख्या 3979 वर्ष 2022

उदय सिंह एवं अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता: अविनाश तिवारी

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: सी.एस.सी., शुभम त्रिपाठी

A. शिक्षा/सेवा कानून - भर्ती/चयन/नियुक्ति - संजय गांधी पोस्ट ग्रेजुएट इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइंसेज एक्ट, 1983 - जब किसी विशेष भाषा में प्रवेश परीक्षा के लिए नीति को स्वीकार करने पर अधिकार का कार्यान्वयन निर्भर करता है, तो उचित और सही उपाय नीति का वाद है और इसे संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत सही तरीके से नहीं निस्तारित किया जा सकता। यह स्वीकार करना मुश्किल है कि किसी विशेष भाषा में प्रवेश परीक्षा आयोजित नहीं कराने से, चाहे वह हिंदी हो या क्षेत्रीय भाषा, भाषा के आधार पर

प्रवेश से मना करना हो। प्रत्येक शैक्षणिक संस्थान को अपनी शिक्षा की विधि और परीक्षा की शर्तें निर्धारित करने का अधिकार है। (पैराग्राफ 14) सीआरटी केवल अंग्रेजी भाषा में आयोजित किया गया था। इसलिए, याचिकाकर्ताओं ने इस न्यायालय में वर्तमान रिट याचिका दायर की है कि सीआरटी हिंदी में भी आयोजित किया जाना चाहिए और हिंदी में सीआरटी आयोजित करने के पश्चात, परिणाम को फिर से घोषित किया जाना चाहिए। (पैराग्राफ 9)

B. उत्तर प्रदेश प्रतियोगी परीक्षा (लिखित परीक्षा का माध्यम) नियम, 1994: नियम 4 - नियम 4 में कहा गया है कि एक उम्मीदवार रोमन स्क्रिप्ट में अंग्रेजी या देवनागरी स्क्रिप्ट में हिंदी या फारसी स्क्रिप्ट में उर्दू में उत्तर दे सकता है, सिवाय इसके कि भाषा का पेपर उसी भाषा में उत्तर दिया जाना चाहिए; बशर्ते कि प्रश्न पत्र के संपूर्ण रूप में, और न कि प्रत्येक प्रश्न के लिए अलग-अलग, उपरोक्त स्क्रिप्ट में उत्तर दिया जाना चाहिए; आगे कहा गया है कि प्रश्न पत्र रोमन स्क्रिप्ट में अंग्रेजी और देवनागरी स्क्रिप्ट में हिंदी में होना चाहिए। **इसलिए, नियम यह इंगित करता है कि यह बहुविकल्पीय प्रश्नों के लिए नहीं है क्योंकि बहुविकल्पीय प्रश्नों में किसी भाषा में प्रश्न पत्र का उत्तर देने की आवश्यकता नहीं होती और यह वाद भी यहां नहीं है।** (पैराग्राफ 12)

C. एक बार जब एसजीपीजीआई द्वारा राज्य सरकार की अनुमति से नियम/नियमावली बनाई जाती है, तो चयन उसी के आधार पर किया जाना चाहिए और शासनादेश दिनांक 07.08.1992 लागू नहीं होता। यह शासनादेश केवल नियम/नियमावली की लागू करने के लिए सरकार की सहमति को दर्शाता है लेकिन यह नहीं प्रदर्शित करता कि एसजीपीजीआई, जो एक स्वायत्त निकाय है जो अधिनियम 1983 के अंतर्गत निर्मित है, उसने इसे अपनाया और लागू किया है। (पैराग्राफ 13)

D. किसी भी स्थिति में, जो विज्ञापन के तहत प्रदान नहीं की गई है, उसे उल्लंघन नहीं कहा जा सकता। जब पेपर की भाषा विज्ञापन में नहीं दी गई थी, तो यह नहीं कहा जा सकता कि सीआरटी विज्ञापन की शर्तों का उल्लंघन करके आयोजित किया गया है। फिर भी, जब अंग्रेजी भाषा के लिए 10 अंक हैं, तो उस पद के लिए अंग्रेजी की आवश्यकता होगी और यह नहीं माना जा सकता कि एक उम्मीदवार जिसने उस पद के लिए आवेदन किया है, वह बहुविकल्पीय प्रश्न पत्र के लिए आवश्यक अंग्रेजी नहीं जानता। (पैराग्राफ 11, 16)

E. अपीलकर्ताओं के लिए चयन प्रक्रिया में भाग लेने के बाद परिणाम को संदिग्ध बनाने का कोई अधिकार नहीं था क्योंकि उन्हें असफल घोषित किया गया। चयन का पाठ्यक्रम अंग्रेजी में था और याचिकाकर्ताओं द्वारा कोई आपत्ति नहीं उठाई गई और अभिलेख पर कुछ भी नहीं लाया गया है जो यह प्रदर्शित करे कि याचिकाकर्ताओं ने हिंदी में पाठ्यक्रम प्रदान करने के लिए कभी कोई अनुरोध किया है, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि याचिकाकर्ताओं को अंग्रेजी भाषा नहीं आती, जो बहुविकल्पीय प्रश्नों के लिए आवश्यक हो सकती है, विशेषकर जब सामान्य अंग्रेजी के लिए 10 अंक हैं। यदि पाठ्यक्रम अंग्रेजी में था, तो यह सुरक्षित रूप से अनुमान लगाया जा सकता है कि प्रश्न पत्र अंग्रेजी में होंगे और यदि

याचिकाकर्ताओं ने उस समय कोई आपत्ति नहीं उठाई, तो वे अब नहीं कह सकते कि प्रश्न पत्र हिंदी में भी होना चाहिए था। (पैराग्राफ 16, 17)

F. शब्द और वाक्यांश - (i) 'परीक्षा' - नियम 3(b) में परिभाषा खंड यह बताता है कि 'परीक्षा' का अर्थ लिखित परीक्षा या किसी पद या सेवा के लिए सीधी भर्ती के लिए प्रतिस्पर्धी परीक्षा है, जो संविधान के अनुच्छेद 309 के प्रावधान के तहत गवर्नर की नियम बनाने की शक्ति के तहत है। इसलिए, यह नियम केवल उन पदों या सेवाओं पर लागू होता है, जो संविधान की धारा 309 के अंतर्गत गवर्नर की नियम बनाने की शक्ति के तहत हैं, जबकि एसजीपीजीआई में नियुक्तियां पहले के अधिनियम के तहत निदेशक द्वारा की जाती हैं।

(ii) 'आयोग' - नियम 3(e) में कहा गया है कि 'आयोग' का अर्थ उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग या उत्तर प्रदेश अधीनस्थ सेवा चयन आयोग है, जैसा वाद हो। यह इंगित करता है कि यह नियम उन परीक्षाओं पर लागू होता है जो उक्त आयोगों द्वारा आयोजित की जाती हैं। इसलिए, यह चयन पर लागू नहीं होता। (पैराग्राफ 12)

रिट याचिका खारिज। (E-4)

<u>विधि व्यवस्था अनुसरित:</u>

1. हिंदी हितरक्षक समिति और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य, (1990) 2 एससीसी 352 (पैराग्राफ 7)
2. आशीमा द्विवेदी बनाम रजिस्ट्रार जनरल उच्च न्यायालय न्यायिकता, इलाहाबाद और अन्य, विशेष अपील संख्या 1572 / 2011 (पैराग्राफ 7)
3. अशोक कुमार और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य, (2017) 4 एससीसी 357 (पैराग्राफ 7) पूर्ववर्ती

<u>विधि व्यवस्था प्रतिष्ठित:</u>

1. बेदंगा तालुकदार बनाम सैफुद्दीन खान और अन्य, (2011) 12 एससीसी 85 (पैराग्राफ 5, 11)
2. अनिल चंद्र बनाम बिर्बल साहनी इंस्टीट्यूट ऑफ पेलियबोटनी, 2003 लॉसूट (अल) 76/2003 21 एलसीडी 396 (पैराग्राफ 5, 11)"

"(माननीय न्यायमूर्ति राजनिश कुमार, द्वारा प्रदत्त)"

1. याचिकाकर्ताओं हेतु विद्वान अधिवक्ता श्री अविनाश तिवारी और प्रतिवादी संख्या 2 से 5 हेतु विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री संजय भसीन व उनके सहायक विद्वान अधिवक्ता श्री शुभम त्रिपाठी को सुना गया। प्रतिवादी संख्या 1 हेतु विद्वान स्थायी अधिवक्ता उपस्थित हैं।

2. वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ताओं ने विज्ञापन दिनांक 06.01.2022 के अनुसरण में चयन हेतु हिंदी भाषा में ऑनलाइन सामान्य भर्ती परीक्षा आयोजित करने और सामान्य भर्ती आयोजित करने के बाद ही चयन का अंतिम परिणाम घोषित करने का निर्देश देने की प्रार्थना की है। सभी परिणामी अनुतोषों के साथ ठीक से हिंदी भाषा में परीक्षण करें। याचिकाकर्ताओं ने 20.06.2022 को आयोजित ऑनलाइन सामान्य भर्ती परीक्षा की प्रक्रिया को रद्द करने या वैकल्पिक रूप से विपक्षी पक्षकारों को मात्र 20.06.2022 को आयोजित सामान्य भर्ती परीक्षा के अनुसरण में कोई चयन या नियुक्ति न करने का उचित निर्देश जारी करने की भी प्रार्थना की है। याचिकाकर्ताओं ने 20.06.2022 को आयोजित ऑनलाइन सामान्य भर्ती परीक्षा में प्राप्त अंकों को प्रभावित नहीं करने

का निर्देश देने का भी अनुरोध किया है। याचिकाकर्ताओं ने भी समान और परिणामी अनुतोष हेतु प्रार्थना की है।

3. इस याचिका में उठाए गए विवाद के निर्णय हेतु मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि विरोधी पक्ष संख्या 3/निदेशक संजय गांधी पोस्ट ग्रेजुएट इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइंसेज, लखनऊ द्वारा दिनांक 06.01.2022 को कई पदों हेतु विज्ञापन जारी किए गए थे। उक्त विज्ञापन के विरुद्ध याचिकाकर्ता संख्या 1, 2 और 3 ने सिस्टर ग्रेड II के पद हेतु, याचिकाकर्ता संख्या 4, 5 और 6 ने मेडिकल लैब टेक्नोलॉजिस्ट के पद हेतु और याचिकाकर्ता संख्या 7 ने जूनियर मेडिकल लैब टेक्नोलॉजिस्ट के पद हेतु आवेदन किया था। पात्र पाए जाने पर याचिकाकर्ताओं को 100 अंकों के बहुविकल्पीय प्रश्नों वाले ऑनलाइन सामान्य भर्ती परीक्षा (एतस्मिनपश्चात 'सीआरटी' के रूप में संदर्भित) हेतु बुलाया गया था। सीआरटी 20.06.2022 को आयोजित किया गया था और उम्मीदवारों द्वारा प्राप्त अंकों की सूची 21.06.2022 को घोषित की गई थी। सीआरटी में असफल होने के बाद, याचिकाकर्ताओं ने मुख्य रूप से इस प्रार्थना के साथ इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया कि सीआरटी को हिंदी भाषा में आयोजित किया जाए और उसी के आधार पर परिणाम घोषित किया जाए।

4. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि चयन हेतु विज्ञापन के नियम व शर्तों का उल्लंघन करते हुए सीआरटी गलत और अवैध रुप से मात्र अंग्रेजी भाषा में आयोजित किया गया है। नियमावली और विज्ञापन परीक्षा का माध्यम अंग्रेजी भाषा को प्रावधानित नहीं करते हैं, अतएव, सीआरटी दो भाषाओं में यानी हिन्दी भाषा में भी आयोजित की जानी चाहिए। उक्त पदों हेतु विज्ञापन एवं प्रवेश पत्र द्विभाषी भाषाओं में जारी किये गये थे। उन्होंने यह भी कहा कि संबंधित पदों हेतु आवश्यक डिप्लोमा भी द्विभाषी भाषाओं में आयोजित किया जा रहा है। उन्होंने आगे कहा कि 7 अगस्त, 1992 के सरकारी आदेश के अनुसार, कर्मचारियों के सेवा मामलों में राज्य सरकार के नियमावली/विनियमावली संजय गांधी पोस्ट ग्रेजुएट इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइंसेज (एतस्मिनपश्चात 'एसजीपीजीआई' के रूप में संदर्भित) के कर्मचारियों पर लागू होंगे। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि राज्य सरकार ने उत्तर प्रदेश प्रतियोगी परीक्षा (लिखित परीक्षा का माध्यम) नियमावली, 1994 (एतस्मिनपश्चात नियमावली, 1994 के रूप में संदर्भित) जारी किया है, जिसमें प्रावधान है कि प्रश्न पत्र अंग्रेजी में रोमन लिपि में और देवनागरी लिपि में हिंदी में होगा। अतएव प्रश्न पत्र अंग्रेजी के साथ-साथ हिंदी में भी होना चाहिए था।

5. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने बेदंगा तालुकदार बनाम सैफुदाउल्लाह खान और अन्य; (2011) 12 एससीसी 85 और अनिल चंद्रा बनाम बीरबल साहनी पुरावनस्पति विज्ञान संस्थान; 2003 मुकदमा (सभी) 76/2003 21 एलसीडी 396 पर विश्वास व्यक्त किया।

6. इसके विरुद्ध, प्रतिवादीगण के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ताओं ने बिना किसी आपत्ति के भागीदारी के बाद और असफल होने के बाद चयन को चुनौती दी है, अतएव, रिट याचिका पोषणीय नहीं है। उन्होंने आगे कहा कि एसजीपीजीआई एक स्वायत्त संस्थान है जो संजय गांधी पोस्ट ग्रेजुएट इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइंसेज एक्ट, 1983

(एतस्मिनपश्चात 'अधिनियम 1983' के रूप में संदर्भित) नामक कानून के अन्तर्गत बनाया गया है। एसजीपीजीआई के निदेशक नियुक्ति प्राधिकारी हैं। उन्होंने आगे कहा कि 2011 में एसजीपीजीआई के पहले क़ानून के निर्माण के बाद, सरकार के नियम और विनियम तब तक लागू नहीं होते जब तक कि संस्थान द्वारा नहीं अपनाया जाता और याचिकाकर्ताओं द्वारा विश्वास व्यक्त किए गए नियमों को संस्थान द्वारा नहीं अपनाया गया है। उन्होंने आगे कथन किया कि 06.01.2022 को जारी विज्ञापन के अनुसरण में आयोजित सीआरटी एक अखिल भारतीय परीक्षा थी और संस्थान की नीति के अनुसार मात्र अंग्रेजी माध्यम में आयोजित की जा रही है। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि पुर्व की सभी परीक्षाएँ (सीआरटी) मात्र अंग्रेजी भाषा में आयोजित की गई हैं। उन्होंने आगे कहा कि यद्यपि विज्ञापन और प्रवेश पत्र द्विभाषी भाषाओं में जारी किए गए थे परन्तु संबंधित पदों हेतु पाठ्यक्रम मात्र अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित किया गया था और याचिकाकर्ताओं या किसी भी उम्मीदवार द्वारा कभी कोई आपत्ति नहीं उठाई गई थी। उन्होंने यह भी कहा कि सीआरटी में 10 अंक सामान्य अंग्रेजी हेतु थे। याचिकाकर्ताओं का यह भी मामला नहीं है कि उन्हें अंग्रेजी भाषा का ज्ञान नहीं है या प्रश्नगत पदों हेतु अंग्रेजी की आवश्यकता नहीं है। यह याचिकाकर्ताओं को पूर्ण रुप से ज्ञात है कि वे आउटसोर्सिंग एजेंसी के माध्यम से एसजीपीजीआई के साथ काम कर रहे हैं।

7. प्रतिवादीगण के विद्वान अधिवक्ता ने ***हिंदी हितरक्षक समिति और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य पर विश्वास व्यक्त किया; (1990) 2 एससीसी 352,*** विशेष अपील संख्या 1572/2011 **आशिमा द्विवेदी बनाम रजिस्ट्रार जनरल हाई न्यायालय ज्यूडिशियरी एट इलाहाबाद और अन्य**; में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 03.09.2011 और **अशोक कुमार और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य; (2017) 4 एससीसी 357** पर विश्वास व्यक्त किया।

8. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता की दलीलों पर विचार किया है और अभिलेखों का अवलोकन किया है।

9. दिनांक 06.01.2022 को सिस्टर ग्रेड- II, मेडिकल लैब टेक्नोलॉजिस्ट और जूनियर मेडिकल लैब टेक्नोलॉजिस्ट के पदों सहित कई पदों हेतु विज्ञापन जारी किया गया था, जिस हेतु याचिकाकर्ताओं ने आवेदन किया था। सीआरटी 20.06.2022 को आयोजित किया गया था, जिसका परिणाम 21.06.2022 को घोषित किया गया था। सीआरटी मात्र अंग्रेजी भाषा में आयोजित की गई थी। अतएव, याचिकाकर्ताओं ने वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से इस प्रार्थना के साथ इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है कि सीआरटी को हिंदी भाषा में भी आयोजित किया जाना चाहिए और सीआरटी को हिंदी में आयोजित करने के बाद, परिणाम नए सिरे से घोषित किया जाना चाहिए। अतएव इस मामले में निर्णय लेने वाली बात यह है कि क्या सीआरटी हिंदी में भी होनी चाहिए या नहीं।

10. विज्ञापन में प्रावधान है कि सभी पदों हेतु सीआरटी आयोजित की जाएगी। सीआरटी 2 घंटे की अवधि और 100 अंकों का होगा। इसमें बहुविकल्पीय प्रश्न होंगे। आगे यह भी प्रावधान है कि पदों और आवश्यक योग्यता के स्तर से संबंधित विषय(विषयों) पर 60 अंक; सामान्य अंग्रेजी पर 10 अंक, सामान्य ज्ञान पर 10 अंक, रीजनिंग पर 10 अंक और गणितीय योग्यता पर

10 अंक होंगे। आगे यह प्रावधान किया गया है कि सही उत्तर हेतु 1 अंक दिया जाएगा और गलत उत्तर हेतु 1/3 अंक काट लिया जाएगा, (यानी, नकारात्मक अंकन होगा)। सभी पदों हेतु सीआरटी के न्यूनतम योग्यता अंक सामान्य, ईडब्ल्यूएस और अन्य पिछड़ा वर्ग हेतु 50% और एससी/एसटी हेतु 45% होंगे।

11. विज्ञापन प्रश्न पत्र का कोई माध्यम उपलब्ध नहीं कराता है। यद्यपि, सामान्य अंग्रेजी पर 10 अंक हैं, अतएव सीआरटी में उपस्थित होने वाले व्यक्ति को सामान्य अंग्रेजी जानना आवश्यक है। प्रश्न पत्र बहुविकल्पीय प्रश्न पत्र था। चूँकि विज्ञापन सीआरटी हेतु किसी भी भाषा का प्रावधान नहीं करता है, अतएव, याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता की यह तर्क है कि विज्ञापन के नियमों और शर्तों का उल्लंघन है, दोषपूर्ण है और मान्य नहीं है। कोई भी शर्त, जो विज्ञापन के अन्तर्गत प्रदान नहीं की गई है, यह नहीं कहा जा सकता कि उसका उल्लंघन किया गया है। अतएव, **बेदंगा तालुकदार बनाम सैफुदाउल्लाह खान और अन्य (उपरोक्त)** और **अनिल चन्द्रा बनाम बीरबल साहनी इंस्टीट्यूट ऑफ पैलियोबोटनी (उपरोक्त)** के मामले में याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा विश्वास व्यक्त किए गए निर्णयों पर दिए गए निर्णय तथ्यों और परिस्थितियों पर लागू नहीं होते हैं। उक्त निर्णयों के अनुसार, चयन प्रक्रिया निर्धारित चयन प्रक्रिया के अनुसार सख्ती से आयोजित की जानी है और विज्ञापन की शर्तों का पालन करना होगा।

12. जहाँ तक याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा विश्वास व्यक्त किए गए उत्तर प्रदेश प्रतियोगी परीक्षा (लिखित परीक्षा का माध्यम) नियम, 1994 का प्रश्न है, उक्त नियमों के नियम 4 में प्रावधान है कि एक उम्मीदवार अंग्रेजी में रोमन लिपि या हिंदी में प्रश्नपत्र का उत्तर दे सकता है। देवनागरी लिपि या उर्दू में फ़ारसी लिपि, सिवाय इसके कि भाषा के पेपर का उत्तर उसी भाषा में दिया जाना चाहिए; परन्तुक कि प्रश्नपत्र का उत्तर समग्र रूप से दिया जाए, न कि प्रत्येक प्रश्न हेतु अलग-अलग, उपरोक्त किसी भी लिपि में उत्तर दिया जाना चाहिए; बशर्ते कि प्रश्न पत्र अंग्रेजी में रोमन लिपि में और हिंदी में देवनागरी लिपि में होगा। अतएव, नियम इंगित करता है कि यह बहुविकल्पीय प्रश्नों हेतु नहीं है क्योंकि बहुविकल्पीय प्रश्नों में प्रश्न पत्र का उत्तर किसी भी भाषा में देने की आवश्यकता नहीं होती है और यहाँ भी ऐसा नहीं है। नियम 3 (बी) में परिभाषा खंड प्रदान करता है कि 'परीक्षा' का अर्थ संविधान के अनुच्छेद 309 के प्रावधान के अन्तर्गत राज्यपाल की नियम बनाने की शक्ति के अन्तर्गत किसी भी पद या सेवा पर सीधी भर्ती हेतु एक लिखित परीक्षा या प्रतिस्पर्धी परीक्षा है। अतएव, यह नियम मात्र उन पदों या सेवाओं पर लागू होता है, जो संविधान के अनुच्छेद 309 के अन्तर्गत राज्यपाल की नियम बनाने की शक्ति के अन्तर्गत हैं, जबकि एसजीपीजीआई में नियुक्ति एसजीपीजीआई के पहले क़ानून के अन्तर्गत निदेशक द्वारा की जाती है। नियम 3(ई) में प्रावधान है कि 'आयोग' का अर्थ उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग या उत्तर प्रदेश अधीनस्थ सेवा चयन आयोग, जैसा भी मामला हो, है। इससे ज्ञात होता है कि यह नियम परीक्षा पर लागू होता है उक्त आयोगों द्वारा संचालित किया जा रहा है। अतः यह प्रश्नगत चयन पर लागू नहीं होता है।

13. दिनांक 7 अगस्त, 1992 के शासनादेश में प्रावधान है कि संस्थान के कर्मचारियों के सेवा मामलों में सरकार ने राज्य सरकार के

नियमों/विनियमों की प्रयोज्यता हेतु अपनी सहमति दी है। अतएव, यह सरकारी आदेश मात्र राज्य सरकार के नियमों/विनियमों की प्रयोज्यता हेतु सरकार की सहमति को इंगित करता है, परन्तु यह इंगित नहीं करता है कि एसजीपीजीआई, जो कि विधि, यानी अधिनियम 1983 के अन्तर्गत बनाई गई एक स्वायत्त संस्था है, ने यह अपनाया और लागू किया है। अन्यथा भी, एक बार राज्य सरकार की स्वीकृति के साथ एसजीपीजीआई द्वारा नियमावली/विनियमावली तैयार किए जाने के बाद, चयन उसी के आधार पर किया जाना है और उपरोक्त सरकारी आदेश लागू नहीं है।

14. **हितरक्षक समिति और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य (उपरोक्त)** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि ऐसी स्थिति में उचित और उपयुक्त उपाय जहाँ अधिकार का प्रवर्तन किसी की स्वीकृति पर निर्भर करता है। उस आधार पर संस्थान में किसी विशेष भाषा में प्रवेश हेतु परीक्षा की नीति, नीति का मामला है और माना जाता है कि इसे संविधान के अनुच्छेद 32 के अन्तर्गत उचित रूप से संबोधित नहीं किया जा सकता है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी माना है कि यह स्वीकार करना कठिन है कि किसी विशेष भाषा में प्रवेश परीक्षा आयोजित न करना, चाहे वह हिंदी हो या क्षेत्रीय भाषा, भाषा के आधार पर प्रवेश से इन्कार करना है। यह भी माना गया है कि प्रत्येक शैक्षणिक संस्थान को अपनी शिक्षा पद्धति और परीक्षा की शर्तों को निर्धारित करने या निर्धारित करने का अधिकार है। प्रासंगिक अनुच्छेद 6 यहाँ अधोउद्धृत है:-

"6. भारत के संविधान का अनुच्छेद 32 मौलिक अधिकारों के प्रवर्तन की आश्वासन देता है। यह सर्वविदित है कि अनुच्छेद 32 के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय को प्रदत्त क्षेत्राधिकार भारतीय संविधान का एक महत्वपूर्ण और अभिन्न अंग है परन्तु मौलिक अधिकार का उल्लंघन है। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उन अधिकारों को लागू करने की माँग करने हेतु अनिवार्य शर्त यह है कि मौलिक अधिकार के उल्लंघन को स्थापित करने हेतु, न्यायालय को उस कार्रवाई के प्रत्यक्ष और अपरिहार्य परिणामों पर विचार करना होगा जिसे ठीक करने की माँग की गई है या जिसकी आश्वासन दी गई है। याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता श्री सिंघवी का तर्क है कि संविधान के अनुच्छेद 29(2) के अन्तर्गत किसी भी नागरिक को मात्र धर्म, जाति, जाति, भाषा या उनमें से कोई भी, के आधार पर राज्य द्वारा संचालित किसी भी शैक्षणिक संस्थान में प्रवेश या राज्य निधि से सहायता प्राप्त करने से इन्कार नहीं किया जाएगा। उनका तर्क है कि हिंदी या अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में परीक्षा न लेने से अनुच्छेद 29(2) का उल्लंघन होता है जो भारत के क्षेत्र में रहने वाले नागरिकों के किसी भी वर्ग को अनुमति देता है या उसके किसी भाग की अपनी विशिष्ट भाषा, लिपि या संस्कृति हो, उसे उसे संरक्षित करने का अधिकार होगा। किसी विशेष भाषा में प्रवेश परीक्षा न आयोजित करना इस बात को स्वीकार करना कठिन है। चाहे वह हिंदी हो या क्षेत्रीय भाषा, भाषा के आधार पर प्रवेश से इन्कार करना है। प्रत्येक शैक्षणिक संस्थान को अपनी शिक्षा पद्धति और परीक्षा और अध्ययन की शर्तों को निर्धारित करने या निर्धारित करने का अधिकार है, बशर्ते इनका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से संविधान द्वारा गारंटीकृत मौलिक अधिकारों के उल्लंघन से कोई आकस्मिक संबंध न हो। ऐसा हो सकता है कि हिंदी या अन्य क्षेत्रीय भाषाएँ

बहुत से लोगों को शिक्षा प्रदान करने का अधिक उपयुक्त माध्यम हैं और प्रवेश परीक्षा या अन्यथा किसी विशेष क्षेत्रीय या हिंदी भाषा में आयोजित करना उपयुक्त और उचित हो सकता है, या यह भी हो सकता है कि हिंदी या अन्य क्षेत्रीय भाषा उस भाषा के विकास के कारण, चिकित्सा और दंत चिकित्सा विषयों में होने वाले ज्ञान या क्षमता को प्रसारित करने या परीक्षण करने हेतु अभी तक उपयुक्त माध्यम नहीं है। यह किसी विशेष स्थिति के प्रभारी राज्य या शैक्षिक अधिकारियों द्वारा नीति तैयार करने का मामला है। जहाँ मौलिक अधिकार का अस्तित्व किसी विशेष नीति या कार्रवाई के तरीके को स्वीकार करके स्थापित किया जाना है जिस हेतु कोई वैधानिक बाध्यता या वैधानिक अनिवार्यता नहीं है, और जिस पर अलग-अलग विचार हैं, उसे संविधान का अनुच्छेद 32 लागू करने की माँग नहीं की जा सकती है। संविधान का अनुच्छेद 32 राजनीतिक प्राथमिकता को इंगित करने का साधन नहीं हो सकता है।"

15. उपरोक्त निर्णय पर विश्वास व्यक्त करते हुए, इस न्यायालय ने 2011 की **विशेष अपील संख्या- 1572/2011 आशिमा द्विवेदी बनाम रजिस्ट्रार जनरल उच्च न्यायालय, इलाहाबाद और अन्य (उपरोक्त)** को खारिज कर दिया है; ।

16. प्रश्नगत चयन का पाठ्यक्रम अंग्रेजी में था और याचिकाकर्ताओं द्वारा कोई आपत्ति नहीं उठाई गई और यह दिखाने हेतु अभिलेख पर कुछ भी नहीं लाया गया है कि याचिकाकर्ताओं ने कभी भी हिंदी में पाठ्यक्रम प्रदान करने हेतु कोई अनुरोध किया है, अतएव, यह नहीं कहा जा सकता है कि याचिकाकर्ता अंग्रेजी भाषा नहीं जानते हैं, जो हो सकता है बहुविकल्पीय प्रश्नों की आवश्यकता होती है, विशेषकर जब सामान्य अंग्रेजी हेतु 10 अंक हों। यदि पाठ्यक्रम अंग्रेजी भाषा में था तो यह सुरक्षित रूप से अनुमान लगाया जा सकता है कि प्रश्न पत्र अंग्रेजी में होंगे और यदि याचिकाकर्ताओं ने उस स्तर पर कोई आपत्ति नहीं उठाई है, तो वे अब यह नहीं कह सकते कि प्रश्न पत्र हिंदी में भी होना चाहिए था। जो चीज़ विज्ञापन के अन्तर्गत उपलब्ध नहीं कराई गई है, ऐसी स्थिति में यह नहीं कहा जा सकता कि उसका उल्लंघन हुआ है। जब विज्ञापन में प्रश्नपत्र की भाषा उपलब्ध नहीं कराई गई तो यह नहीं कहा जा सकता कि सीआरटी को विज्ञापन के नियमों और शर्तों का उल्लंघन माना गया है। अन्यथा भी, जब अंग्रेजी भाषा हेतु 10 अंक हैं, तो प्रश्नगत पद हेतु अंग्रेजी की आवश्यकता होगी और यह स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि जिस उम्मीदवार ने पद हेतु यह अच्छी तरह से जानते हुए आवेदन किया है, वह बहुविकल्पीय प्रश्नों हेतु आवश्यक अंग्रेजी नहीं जानता है।

17. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **अशोक कुमार व अन्य बनाम बिहार व अन्य** (उपरोक्त) के मामले में कहा था कि चयन प्रक्रिया में भाग लेने के बाद असफल घोषित होने पर अपीलकर्ताओं हेतु यह खुला नहीं है कि वे परिणाम पर प्रश्न उठा सकें।

18. उपरोक्त के दृष्टिगत और मामले के समग्र तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, इस न्यायालय का मानना है कि रिट याचिका दोषपूर्ण और निराधार दायर की गई है, जो खारिज किए जाने योग्य है।

19. तदनुसार, रिट याचिका खारिज की जाती है। व्यय के सम्बन्ध में कोई आदेश नहीं किया जाएगा।

(2023) 3 ILRA 143

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 16.02.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति बृज राज सिंह

रिट ए संख्या 5977/2013

गिरधर गोपाल ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: अविनाश श्रीवास्तव, योगेश्वर शरण श्रीवास्तव

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: सी.एस.सी.

रिट ए - संख्या 5977 / 2013

गिरीधर गोपाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य।

A. सेवा कानून - अनुशासनात्मक कार्यवाही - वेतन - उत्तर प्रदेश सरकार के कर्मचारी (अनुशासन और अपील) नियम, 1999 - जब बड़े दंड देने के लिए जांच होती है, तो कोई शॉर्ट-कट नहीं अपनाया जा सकता। आरोप पत्र को दोषी को सौंपना जरूरी है ताकि उसे आरोपों की जानकारी हो सके, जो कि विशेष और साक्ष्यों के साथ होना चाहिए, जो विभाग आरोपों को साबित करने के लिए उपयोग करेगा। यदि आरोप पत्र देने के बाद दोषी को किसी दस्तावेज़ की जरूरत हो, तो जांच अधिकारी को उस पर विचार करना होगा और जिन दस्तावेज़ों को जांच के लिए प्रासंगिक पाया गया है, उन्हें दोषी को प्रदान किया जाना चाहिए। यदि किसी भी दस्तावेज़ की प्रतियां किसी उचित कारण से नहीं दी जा सकतीं, तो दोषी को उन अभिलेख की जांच करने का मुफ्त अधिकार दिया जाना चाहिए। इसके बाद, दोषी को दिए गए समय में जवाब देना होगा और **<u>जांच को आगे बढ़ाना होगा, जिसमें तारीख, समय और स्थान तय करना होगा।</u>**

आमतौर पर, विभाग द्वारा साक्ष्य पहले दिए जाने की आवश्यकता होती है ताकि आरोपों को सिद्ध किया जा सके और दोषी को भी इसमें भाग लेने की अनुमति होती है, जो गवाहों का प्रति परीक्षा कर सकता है, साथ ही जवाबी साक्ष्य या आरोपों को निरस्त करने के लिए साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर भी होता है। इसके बाद, जांच अधिकारी को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करनी होती है जिसमें यह बताया जाता है कि क्या कोई भी आरोप सिद्ध हुआ या नहीं। आरोप को सिद्ध करने के लिए सहायक साक्ष्य होना चाहिए और विभाग द्वारा दस्तावेज़ी साक्ष्य को समर्थन देने के लिए कोई सामग्री पेश नहीं की गई, तो आरोप को सिद्ध नहीं किया जा सकता। अभिलेख पर दस्तावेज़ों से तथ्यों का समर्थन होना चाहिए और यदि कोई रिपोर्ट भी निर्भर की जा रही है, तो उक्त रिपोर्ट को भी उस व्यक्ति द्वारा प्रमाणित किया जाना चाहिए जिसने रिपोर्ट प्रस्तुत की है, इसलिए, **<u>इस उद्देश्य के लिए मौखिक जांच आयोजित की जानी चाहिए।</u>** (अनुच्छेद 4)

B. न्यायिक समीक्षा की परिसीमा - न्यायिक समीक्षा किसी निर्णय से अपील नहीं है बल्कि उस तरीके की समीक्षा है जिससे निर्णय लिया गया है। इसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि व्यक्ति को उचित व्यवहार मिले, न कि यह सुनिश्चित करना कि जिस निष्कर्ष पर प्राधिकरण पहुंचता है वह न्यायालय की नजर में सही है। अदालत/त्रिभाषा अपनी न्यायिक समीक्षा की शक्ति में अपील प्राधिकरण के रूप में कार्य नहीं

करती; यह साक्ष्यों का पुनः विचरण नहीं करती। (अनुच्छेद 7)

याचिका संख्या 4274 (S/S) वर्ष 2002 को नए सिरे से जांच कराने के निर्देश के साथ निस्तारित किया गया। न्यायालय ने पहले ही देखा था कि जांच अधिकारी द्वारा जांच करते समय प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन नहीं किया गया। एक बार जब वाद किसी विशेष बिंदु पर वापस भेजा गया, तो जांच अधिकारी द्वारा वही गलती करने का कोई अवसर नहीं था और वर्तमान वाद में, दूसरी बार, यह अभिलेख पर स्वीकार किया गया कि जांच अधिकारी ने जांच करते समय कोई तारीख, समय और स्थान तय नहीं किया और कोई मौखिक परीक्षा नहीं की गई। जांच अधिकारी ने केवल याचिकाकर्ता के उत्तर के आधार पर, बिना किसी पक्ष के, जांच पूरी की। कहीं भी, राज्य ने यह नहीं बताया कि प्रति परीक्षा के लिए कोई तारीख, समय या स्थान तय किया गया था। इस प्रकार, यह प्रदर्शित है कि जांच में कमी थी। चार महीने की जगह, उन्होंने चार साल में जांच पूरी की और वह भी बिना प्रक्रिया का पालन किए। इस चरण पर वाद को वापस भेजना उचित नहीं होगा। यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि याचिकाकर्ता 2014 में सेवानिवृत्त हो चुके हैं। (पैरा 8, 11)

याचिका स्वीकार की गई। (E-4)

<u>विधि व्यवस्था अनुसरित:</u>

1. अब्दुल सलाम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2011 (29) LCD 832 (पैरा 4)
2. अवधेश कुमार रस्तोगी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 0024 (22) LCD 1 (पैरा 4)
3. चमोली जिला सहकारी बैंक लिमिटेड इसके सचिव एवं अन्य बनाम रघुनाथ सिंह राणा एवं अन्य, सिविल अपील संख्या 2265 वर्ष 2011 (पैरा 4)
4. यूनाइटेड बैंक ऑफ इंडिया बनाम बिष्णाथ भट्टाचार्य, दीवानी अपील संख्या 8258 वर्ष 2009, 2021 लाइव लॉ (SC) 109 (पैरा 4)

वर्तमान याचिका में दिनांक 06.03.2013 को अनुशासनात्मक प्राधिकरण द्वारा पारित आदेश को चुनौती दी, जिसमें याचिकाकर्ता को सबसे कम ग्रेड में वेतन निर्धारित करते हुए बड़े दंड का आदेश दिया गया।

(माननीय न्यायमूर्ति बृज राज सिंह, द्वारा प्रदत्त)"

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री योगेश्वर शरण श्रीवास्तव और प्रतिवादियों के विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री राजेश शुक्ला को सुना गया।

2. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि 05.07.2001 को याचिकाकर्ता को उसके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही लंबित रहने तक निलंबित कर दिया गया था। एक विभागीय जाँच की गई और याचिकाकर्ता को आदेश दिनांक 11.07.2002 द्वारा सेवा से बर्खास्त कर दिया गया। उक्त बर्खास्तगी आदेश को चुनौती देते हुए, याचिकाकर्ता ने रिट याचिका (एस/एस) संख्या 4274/2002 दायर की, जिसमें याचिकाकर्ता द्वारा एक विशिष्ट दृष्टिकोण अपनाया गया कि जाँच विधि के अनुसार नहीं की गई थी तथा नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का पालन नहीं किया गया था। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि जाँच अधिकारी द्वारा कोई तिथि, समय एवं स्थान

निर्धारित नहीं किया गया था, इसलिए, प्रश्नगत आदेश कायम नही रह सका। रिट याचिका पर सुनवाई हुई एवं निर्णय लिया गया तथा न्यायालय ने 12.08.2008 को आदेश पारित किया। बर्खास्तगी का प्रश्नगत आदेश निरस्त कर दिया गया। हालाँकि, प्रतिवादियों को नए सिरे से विभागीय कार्यवाही करने की स्वतंत्रता दी गयी थी।

3. राज्य ने दिनांक 12.08.2008 के आदेश को चुनौती देते हुए विशेष अपील संख्या 63/2009 दायर की, जिसे इस लघु संशोधन के साथ निस्तारित किया गया कि राज्य चार महीने के भीतर विभागीय जाँच पूर्ण करेगा। 19.01.2011 को एक जाँच पूर्ण की गई एवं 06.03.2013 को अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा प्रश्नगत आदेश पारित किया गया तथा याचिकाकर्ता को उसका वेतन सबसे निचले ग्रेड पर निर्धारित करते हुए दीर्घ शास्ति दी गई, जिसे चुनौती दी गयी है।

4. रिट याचिका के प्रस्तर 7 में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि जाँच अधिकारी ने जाँच में आगे कार्यवाही करते समय कोई तिथि, समय एवं स्थान तय नहीं किया और कोई मौखिक परीक्षा नहीं की। जाँच अधिकारी ने याचिकाकर्ता के उत्तर के आधार पर ही एकपक्षीय जाँच पूर्ण कर ली। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि प्रश्नगत आदेश विधि की दृष्टि में कायम नहीं सकता है, जो कि एक सुस्थापित विधि है और उ.प्र. सरकारी सेवक (अनुशासन और अपील) नियमावली, 1999 (इसके बाद "नियमावली" के रूप में संदर्भित) के तहत इसका उल्लंघन किया गया है। अपने तर्क के समर्थन में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित निर्णयों पर विश्वास व्यक्त किया है:

(i) *अब्दुल सलाम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2011 (29) LCD 832;*

(ii) *अवधेश कुमार रस्तोगी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2004 (22) LCD 1;*

(iii) *सिविल अपील संख्या 2265/2011 में चमोली जिला सहकारी बैंक लिमिटेड द्वारा सचिव एवं अन्य बनाम रघुनाथ सिंह राणा एवं अन्य;*

(iv) *सिविल अपील संख्या 8258/2009 2021 LiveLaw (SC) 109 में यूनाइटेड बैंक ऑफ इंडिया बनाम बिश्वनाथ भट्टाचर्जी।*

(v) *अब्दुल सलाम (उपरोक्त)* में, प्रस्तर संख्या 16 से 19 और 24 से 27 में न्यायालय ने निम्नानुसार धारित किया है:

> *"16. किसी भी निष्कर्ष पर पहुंचने से पूर्व, विभागीय जाँच के संचालन तथा अपचारी कर्मचारी को दण्ड के अधिनिर्णय के संबंध में विधिक स्थिति का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा। समय-समय पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय के साथ-साथ इस न्यायालय ने प्रतिपादित किया है कि दीर्घ शास्ति हेतु जाँच के मामले में, कोई अनियमित उपाय स्वीकार्य नहीं है। अपचारी को आरोपों से अवगत कराने हेतु आरोप-पत्र प्रस्तुत किया जाना चाहिए, जो मौखिक तथा दस्तावेजी साक्ष्य के साथ-साथ विशिष्ट होना चाहिए, जिस पर विभाग आरोपों को कायम रखने हेतु विश्वास करना चाहता है। यदि आरोप-पत्र तामील करने के पश्चात, अपचारी को किसी*

दस्तावेज़ या उसकी प्रति की आवश्यकता होती है, तो ऐसी प्रार्थना पर जाँच अधिकारी द्वारा विचार किया जाना चाहिए और जो दस्तावेज़ जाँच हेतु प्रासंगिक पाए जाते हैं, अपराधी को प्रदान की जानी है। यदि ऐसे किसी दस्तावेज़ की प्रतियां किसी वैध कारण से प्रदान नहीं की जा सकती हैं, तो ऐसे रिकॉर्ड का निरीक्षण करने हेतु अपचारी को स्वतंत्र अभिगम प्रदान किया जाना चाहिए। इस चरण के पश्चात, अपचारी द्वारा दी गई समय-सीमा के भीतर उत्तर दिया जाना होता है और अपचारी को बुलाने की तिथि, समय और स्थान निर्धारित करते हुए जाँच की आगे कार्यवाही करनी होती है।

17. सामान्य तौर पर, आरोपों को सिद्ध करने के लिए विभाग द्वारा साक्ष्य पहले प्रस्तुत किए जाना अपेक्षित होता है, जिसमें अपचारी को भी सम्मिलित होने की अनुमति दी जाती है,जिसे आरोपों को खंडन या खारिज करने हेतु साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर देने के साथ प्रति- परीक्षा हेतु अवसर भी दिया जाता है। इसके पश्चात जाँच अधिकारी को यह कहते हुए अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करनी होती है कि कोई भी आरोप सिद्ध हुआ है या नहीं। आरोप को सिद्ध करने हेतु पुष्टिकारक साक्ष्य होने चाहिए और दस्तावेजी साक्ष्य को प्रमाणित करने हेतु विभाग द्वारा कोई सामग्री प्रस्तुत किए बिना आरोप सिद्ध नहीं हो सकता। अभिलेख पर उपलब्ध दस्तावेजों से तथ्यों की पुष्टि होनी चाहिए तथा यदि किसी रिपोर्ट पर भी विश्वास किया जा रहा है, तो उक्त रिपोर्ट को उस व्यक्ति द्वारा प्रमाणित किया जाना भी आवश्यक है जिसने रिपोर्ट प्रस्तुत की है, इसलिए, इस प्रयोजन हेतु आरोपों को सिद्ध करने के लिए मौखिक जाँच किया जाना आवश्यक है।

18. उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम सरोज कुमार सिन्हा के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की है:

"26. प्रथम जाँच रिपोर्ट इस आधार पर भी दोषपूर्ण है कि जाँच अधिकारी आरोपों का उत्तर देने हेतु प्रतिवादी की उपस्थिति के लिए कोई तिथि तय करने में विफल रहे।

> *नियम 7(x) स्पष्ट रूप से निम्नानुसार उपबंधित करता है:*
>
> *"(x) जहां आरोपित सरकारी सेवक नोटिस तामील होने या तिथि की जानकारी होने के बावजूद जाँच में निर्धारित तिथि पर या कार्यवाही के किसी भी चरण में उपस्थित नहीं होता है, तो जाँच अधिकारी आगे की एक पक्षीय जाँच कार्यवाही करेगा। ऐसे मामले में जाँच अधिकारी आरोपित*

सरकारी कर्मचारी की अनुपस्थिति में आरोप-पत्र में उल्लिखित साक्षियों के बयान दर्ज करेगा।"

27. उपरोक्त उप-नियम के अवलोकन मात्र दर्शाता है कि जब प्रतिवादी आरोप पत्र पर स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने में विफल रहा था तो यह जाँच अधिकारी का कर्तव्य था कि वह जाँच में उसकी उपस्थिति के लिए एक तिथि निर्धारित करे। यह मात्र ऐसे मामले में होता है जब सरकारी कर्मचारी निर्धारित तिथि की सूचना के बावजूद नहीं उपस्थित हुआ, तो जाँच अधिकारी एक पक्षीय जाँच कार्यवाही कर सकता है। ऐसी परिस्थितियों में भी आरोप पत्र में उल्लिखित साक्षियों के बयान दर्ज करना जाँच अधिकारी का दायित्व है। चूंकि सरकारी कर्मचारी अनुपस्थित है, इसलिए वह साक्षियों से प्रति-परीक्षा का लाभ स्पष्ट रूप से खो देगा। लेकिन फिर भी आरोप सिद्ध करने के लिए विभाग को जाँच अधिकारी के समक्ष आवश्यक साक्ष्य प्रस्तुत करनाअपेक्षित है। ऐसा इसलिए है ताकि इस आरोप से बचा जा सके कि जाँच अधिकारी ने अभियोजक के साथ-साथ न्यायाधीश के रूप में भी कार्य किया है।

28. अर्ध न्यायिक प्राधिकारी के रूप में कार्य करने वाला एक जाँच अधिकारी एक स्वतंत्र निर्णायक की स्थिति में होता है। उसे विभाग / अनुशासनात्मक प्राधिकारी / सरकार का प्रतिनिधि नहीं माना जाता है। उसका कार्य विभाग द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों की जाँच करना है, यहां तक कि अपचारी कर्मचारी की अनुपस्थिति में भी, यह देखने के लिए कि क्या अखंडित साक्ष्य यह धारित करने के लिए पर्याप्त हैं कि आरोप सिद्ध हो गए हैं। वर्तमान मामले में उपरोक्त प्रक्रिया का अनुसरण नहीं किया गया है। चूंकि किसी भी मौखिक साक्ष्य की जाँच नहीं की गई है, इसलिए दस्तावेज़ सिद्ध नहीं किए गए हैं, और यह निष्कर्ष निकालने के लिए विचार नहीं किया जा सकता है कि प्रतिवादियों के विरूद्ध आरोप सिद्ध हो गए हैं।"

19. भारत संघ एवं अन्य बनाम प्रकाश कुमार टंडन एवं अन्य के मामले में, साक्षियों का परीक्षण न करने के प्रभाव की जाँच करते हुए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की:

"14. उपरोक्त स्थिति में, हमारा मत है कि यह नहीं कहा जा सकता है कि न्यायाधिकरण और उच्च न्यायालय ने भी यह धारित करने में गलती नहीं की है कि उक्त श्री वालिया से साक्षी के रूप में परिक्षण किया जाना चाहिए था।

15. प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों की मांग है कि अपचारी अधिकारी द्वारा साक्षी को बुलाने के आवेदन पर जाँच अधिकारी द्वारा विचार किया जाना चाहिए। उक्त आवेदन में जाँच अधिकारी को आदेश पारित करना अनिवार्य था। वह इस पर विचार करने से अस्वीकार नहीं कर सके। यह तर्क देना रेलवे प्रशासन का काम नहीं है कि उसे इस पर विचार करना है कि उसे किसी साक्षी से पूछताछ करनी चाहिए या नहीं। इस पर निर्णय लेना जाँच अधिकारी का कार्य था। अनुशासनात्मक कार्यवाही निष्पक्ष रूप से संचालित की जानी चाहिए। एक जाँच अधिकारी एक अर्ध-न्यायिक प्राधिकारी है। इसलिए, उसे अपने कार्य निष्पक्ष और उचित ढंग से करने चाहिए जो अन्यथा प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों की आवश्यकता भी है।"

24. वर्तमान मामले में अभिलेखों से यह स्पष्ट है कि जाँच अधिकारी दिनांक 03.07.2002 के आदेश द्वारा जाँच के क्रम में इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि अपचारी कर्मचारी को सुनवाई का अवसर प्रदान करना अनिवार्य है और इस उद्देश्य के लिए उन्होने 15.07.2002 की तिथि निर्धारित की। हालाँकि, 15.07.2002 को पूछताछ नहीं हो सकी, इसलिए दूसरी तिथि निर्धारित की गई। इसके बाद जाँच अधिकारी द्वारा कुछ तिथियां निर्धारित की गईं और यह एक आदेश दिनांक 29.8.2002 द्वारा किया गया था, जाँच अधिकारी ने पाया था कि अपचारी कर्मचारी को कोई अन्य दस्तावेज देने की आवश्यकता नहीं है, इसलिए, अपचारी कर्मचारी को उत्तर प्रस्तुत करने के लिए 07.09.2002 की तिथि निर्धारित की गई थी। दिनांक 17.10.2002 की जाँच रिपोर्ट से यह स्वीकृत तथ्य सामने आया है कि अपचारी कर्मचारी ने अपना लिखित उत्तर दिनांक 05.10.2002 को प्रस्तुत किया था। हालाँकि, अभिलेख के परिशीलन से ऐसा प्रतीत होता है कि अपचारी कर्मचारी द्वारा आरोप-पत्र का उत्तर प्रस्तुत करने के बाद मौखिक जाँच करने हेतु जाँच अधिकारी द्वारा कोई तिथि, समय और स्थान निर्धारित नहीं किया गया था और संपूर्ण जाँच कार्यवाही कथित आरोपों के समर्थन में प्रस्तुत दस्तावेजी साक्ष्य पर भरोसा करते हुए, आरोप-पत्र और अपचारी कर्मचारी द्वारा प्रस्तुत उत्तर के आधार पर पूरी की गई थी।

25. प्रश्नगत निर्णय में विद्वान एकल न्यायाधीश इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि

जाँच अधिकारी ने किसी भी साक्षी का परिक्षण नहीं किया क्योंकि किसी भी साक्षी को बुलाने की कोई आवश्यकता इसलिए नहीं थी क्योंकि आरोपों के समर्थन में मात्र दस्तावेजों पर विश्वास किया गया था एवं दस्तावेज़ इतने स्पष्ट थे कि उन्हें किसी साक्षी द्वारा प्रमाणित करने की आवश्यकता नहीं थी। विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा आगे यह भी टिप्पणी की गई है कि यदि हम जाँच अधिकारी की रिपोर्ट का परीक्षण करते हैं, तो वास्तव में, दस्तावेजी साक्ष्य इतने प्रबल प्रतीत होते हैं कि जाँच अधिकारी के लिए आरोपों के समर्थन में किसी भी साक्षी को बुलाना अनिवार्य नहीं था।

26. हालांकि विद्वान एकल न्यायाधीश ने इस तथ्य पर विचार नहीं किया कि यदि आरोपों के समर्थन में साक्षियों का परीक्षण अनिवार्य नहीं था, तब भी यह जाँच अधिकारी का यह कर्तव्य था कि वह अपचारी कर्मचारी द्वारा आरोप-पत्र का उत्तर प्रस्तुत करने के बाद अपचारी कर्मचारी की उपस्थिति में आरोपों के समर्थन में दायर किए गए साक्ष्यों के मूल्यांकन के मौखिक जाँच करने हेतु तिथि, समय और स्थान निर्धारित करे तथा कथित आरोपों को साबित करने के लिए विभाग को बुलाएँ। इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि वर्तमान मामले में जाँच अधिकारी द्वारा ऐसा कोई प्रयास नही किया गया।

27. मामले के इस दृष्टिकोण में, हमारा सुविचारित मत है कि अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता के विरूद्ध की गई विभागीय जाँच, जिसके आधार पर सेवा से बर्खास्तगी की अधिनिर्णय दिया गया था, शीर्ष न्यायालय के साथ-साथ इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि के अनुसार धारित नही की गई है, जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है। "

5. अवधेश कुमार रस्तोगी (उपरोक्त) में, प्रस्तर 5 में, न्यायालय ने धारित किया है कि:

5. हमारा मत है कि जाँच अधिकारी द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया और याचिकाकर्ता के विरूद्ध उसके द्वारा निकाले गए निष्कर्ष विधि की दृष्टि से दोषपूर्ण हैं। इस बिंदु पर कोई बहस नहीं हो सकती कि अपचारी कर्मचारी लिखित बयान दायर करके आरोपों का उत्तर नहीं दे रहा था और जाँच में सम्मिलित होने से बच रहा था, यह जाँच अधिकारी का कर्तव्य था कि वह जाँच की तिथि, समय और स्थान निर्धारित करे एवं अपचारी अधिकारी को इस विषय में सूचित करे तथा आरोपों के समर्थन में मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य प्राप्त करे। इस संबंध में, राधेकांत खरे बनाम यू.पी. कूप. शुगर फैक्ट्रीज़ फेडरेशन लिमिटेड, (2003 (21) LCD 610) मामले में इस न्यायालय के हाल ही के निर्णय का संदर्भ लिया जा सकता है, जिसमें यह धारित किया गया है कि अपचारी कर्मचारी को पूछताछ की तिथि, समय

और स्थान इंगित करते हुए नोटिस निर्गत किया जाना चाहिए। वर्तमान मामले में, जाँच अधिकारी ने न तो कोई मौखिक जाँच की, न ही याचिकाकर्ता को ऐसी जाँच की तिथि, समय और स्थान के बारे में सूचित किया और न ही आरोपों के समर्थन में कोई मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य प्राप्त किया। वास्तव में, उनके समक्ष ऐसी कोई सामग्री नहीं थी, जिसके आधार पर कहा जा सके कि आरोप सिद्ध हो गये। यह एक ऐसा मामला था जहां यह सिद्ध करने के लिए मौखिक साक्ष्य जरूरी था कि गैर अनुसूचित जाति के रूप में पहचाने गए विभिन्न विक्रेता वास्तव में अनुसूचित जाति के थे। ऐसा प्रतीत होता है कि जाँच अधिकारी ने यह मान लिया है कि यदि कर्मचारी लिखित बयान दर्ज करके आरोपों का अस्वीकरण नहीं कर रहा है, तो आरोपों के समर्थन में कोई साक्ष्य प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं है। विधिक रूप से यह धारणा सही नहीं थी। अत: सेवा से बर्खास्तगी का आदेश विधिक रूप से दोषपूर्ण है और निरस्त किये जाने योग्य है। न्यायाधिकरण इस जाँच तथा बर्खास्तगी आदेश में इस दुर्बलता का मूल्यांकन नहीं कर सका। इसलिए, इसका आदेश भी रद्द किये जाने योग्य है।"

6. चमोली जिला सहकारी बैंक लिमिटेड (उपरोक्त) में प्रस्तर संख्या 19 से 21 में न्यायालय ने निम्नानुसार धारित किया है:

"19. आंतरिक/अनुशासनात्मक जाँच में प्राकृतिक न्याय का अनुपालन आवश्यक है- यह लंबे समय से स्थापित किया गया है। इस न्यायालय ने धारित किया है कि प्राकृतिक न्याय के अनुपालन की आवश्यकता वाले कोई विशिष्ट वैधानिक नियम भी नहीं हैं, फिर भी प्राकृतिक न्याय का अनुपालन आवश्यक है। कुछ घटक रहे हैं जिन्हें जाँच धारित करने की प्रक्रिया का अभिन्न भाग माना जाता है। सुर इनेमल एंड स्टैम्पिंग वर्क्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम उनके कर्मकार (1964) 3 SCR 616 मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित निर्धारित किया है: -

"...किसी जाँच को उचित प्रकार से तब तक नहीं माना जा सकता जब तक, (i) जिस कर्मचारी के विरूद्ध कार्रवाई की गई है, उसे उसके विरूद्ध लगाए गए आरोपों के बारे में स्पष्ट रूप से सूचित नहीं किया गया है, (ii) आमतौर पर कर्मचारी की उपस्थिति में आरोपों के संबंध में,साक्षियों की परीक्षा नहीं की जाती है - (iii) कर्मचारी को साक्षियों से प्रति-परीक्षा करने का उचित अवसर नही दिया जाता है, (iv) यदि वह किसी प्रासंगिक मामले पर चाहे तो उसे अपने बचाव में स्वयं साक्षियों से पूछताछ करने का उचित अवसर प्रदान नही किया जाता है, तथा (v) जाँच अधिकारी अपनी रिपोर्ट में कारण सहित अपने निष्कर्ष अभिलिखित नही करता है।"

20. भारतीय स्टेट बैंक बनाम आर.के. जैन एवं अन्य (1972) 4 SCC 304 में सर्वोच्च न्यायालय ने पुनः धारित किया है कि यदि कोई जाँच प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन से दूषित हो जाती है या यदि अपचारी को अपना बचाव करने के लिए कोई उचित अवसर प्रदान नहीं किया गया है, तो इसे प्राकृतिक न्याय के नियमों के अनुसार की गई उचित आंतरिक जाँच नहीं माना जा सकता है। प्रस्तर 23 में, निम्नवत प्रतिपादित किया गया था: - "......जैसा कि आनंद बाजार पत्रिका (पी) लिमिटेड बनाम इट्स वर्कर्स, (1964) 3 SCR 601 में इस न्यायालय द्वारा बल दिया गया था, एक कर्मचारी की सेवा की समाप्ति प्राकृतिक न्याय के नियमों के अनुसार उचित आंतरिक जाँच के पश्चात की जानी चाहिए। इसलिए, यह स्पष्ट है कि यदि जाँच प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन द्वारा दूषित है या यदि अपराधी को अपना बचाव करने के लिए कोई उचित अवसर प्रदान नहीं किया गया, तो इसे प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुसार उचित आंतरिक जाँच के रूप में धारित नहीं किया जा सकता है..."

21. उत्तरांचल राज्य एवं अन्य बनाम खड़क सिंह, (2008) 8 SCC 236 में सर्वोच्च न्यायालय को प्राकृतिक न्याय के विभिन्न रूप-रेखाओं के परीक्षण का अवसर मिला, जिन्हें विभागीय जाँच में निर्दिष्ट करने की आवश्यकता है। शीर्ष न्यायालय ने पूर्व के निर्णयों पर विचार किया जहां जाँच की प्रक्रिया के सिद्धांत प्रतिपादित किए गए थे । प्रस्तर 9, 10, 11, 12, 13 और 15 का उल्लेख सार्थक है, जिनका आशय निम्नलिखित हैं: -

"...9. उपरोक्त तर्कों की सत्यता का विश्लेषण करने से पूर्व, इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विभिन्न सिद्धांतों का उल्लेख करना उपयोगी है कि जाँच कैसे की जानी है और किन प्रक्रियाओं का पालन किया जाना है।

10. एसोसिएटेड सीमेंट कंपनी लिमिटेड बनाम द वर्कमेन एंड अन्य [1964] 3 SCR 652 मामले में इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित निम्नलिखित टिप्पणियाँ और सिद्धांत प्रासंगिक हैं:

> *"... ... वर्तमान मामले में, पहली गंभीर दुर्बलता जिससे जाँच प्रभावित हुई है वह इस तथ्य से उत्पन्न होती है कि तीन जाँच अधिकारियों ने दावा किया कि उन्होंने स्वयं मलक राम के कथित कदाचार को देखा है। श्री कोलाह का तर्क है कि यदि प्रबंधक और अन्य अधिकारियों ने मलक राम को कदाचार का कार्य करते हुए देखा, इससे वे आंतरिक जाँच करने से अयोग्य नहीं हो जाएंगे। हम इस तर्क को स्वीकार करने के लिए तैयार*

नहीं हैं। यदि कोई अधिकारी स्वयं किसी कर्मचारी के कदाचार को देखता है, तो यह वांछनीय है कि जाँच किसी अन्य व्यक्ति पर छोड़ दी जानी चाहिए जो प्रश्नगत घटना का प्रत्यक्षदर्शी साक्षी होने का दावा नहीं करता है। जैसा कि हमने बार-बार जोर दिया है, आंतरिक जाँच ईमानदारी से और यह निर्धारित करने की दृष्टि से की जानी चाहिए क्या किसी कर्मचारी विशेष के विरूद्ध आरोप सिद्ध हुआ है या नहीं, इसलिए इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि ये जाँचे मात्र औपचारिकताएं बनकर न रह जाएं। यदि कोई अधिकारी दावा करता है कि उसने स्वयं किसी कर्मचारी के विरूद्ध कथित कदाचार को देखा है, तो यह देखने के लिए निष्पक्षता से कदम उठाए जाने चाहिए कि जाँच का कार्य किसी अन्य अधिकारी को सौंपा गया है। जाँच अधिकारी द्वारा किए गए दावे का बोध कैसे जाँच की पूरी कार्यवाही को दूषित कर सकता है, इसका उदाहरण वर्तमान जाँच स्वयं है। ... ...

...... इस तथ्य को महत्व देना अनिवार्य है कि आंतरिक जाँचों में, नियोक्ता को पहले आरोपित श्रमिक के विरूद्ध साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए कदम उठाना चाहिए, कर्मचारी को उक्त साक्ष्य की प्रति-परीक्षा करने का अवसर देना चाहिए और पुनः श्रमिक से पूछा जाना चाहिए कि क्या वह अपने विरुद्ध साक्ष्यों के विषय में कोई स्पष्टीकरण देना चाहता है। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि औद्योगिक कर्मचारियों के विरूद्ध आंतरिक जाँच में यह उचित नहीं है कि जाँच की प्रारम्भ में ही कर्मचारी से उसके विरूद्ध कोई अन्य साक्ष्य प्रस्तुत किये जाने से पहले ही बारीकी से प्रति-परीक्षा की जाए। ऐसे औद्योगिक मामलों में की गई आंतरिक पूछताछ से निपटने में, हम इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं कर सकते हैं कि अधिकांश मामलों में, कर्मचारियों के गैरजानकार होने की संभावना है, और इसलिए, यह आवश्यक है कि उन्हें वर्तमान जाँच कार्यवाही में अपनाये गये प्रति-परीक्षा की तरह जोखिम में न डाला जाए। इसलिए, हम इस बात से संतुष्ट हैं कि श्री सुले यह तर्क देने में सही हैं कि वर्तमान जाँच कार्यवाही में अपनाया गया तरीका जिसके द्वारा शुरुआत

में मलक राम से विस्तृत प्रति-परीक्षा की गई, वह इस जाँच में एक और दुर्बलता है।"

11) ईसीआईएल बनाम बी करुणाकर (1993) 4 SCC 727 में, यह धारित किया गया था:

"(1) जहां जाँच अधिकारी अनुशासनात्मक प्राधिकारी के से भिन्न है, अनुशासनात्मक कार्यवाही दो चरणों में विभाजित होती है। पहला चरण तब समाप्त होता है जब अनुशासनात्मक प्राधिकारी साक्ष्य, जाँच अधिकारी की रिपोर्ट और अपचारी कर्मचारी के उत्तर के आधार पर अपने निष्कर्ष पर पहुंचता है। दूसरा चरण तब शुरू होता है जब अनुशासनात्मक प्राधिकारी अपने निष्कर्षों के आधार पर जुर्माना लगाने का निर्णय लेता है। यदि अनुशासनात्मक प्राधिकारी अनुशासनात्मक कार्यवाही को छोड़ने का निर्णय लेता है, तो द्वितीय चरण तक भी नहीं पहुंचा जाता है।

जबकि रिपोर्ट में निष्कर्षों के विरूद्ध प्रतिनिधित्व करने का अधिकार जाँच के प्रथम चरण के दौरान उपलब्ध युक्तियुक्त अवसर का भाग है अर्थात अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा रिपोर्ट में निष्कर्षों पर विचार करने से पूर्व, प्रस्तावित दंड के विरूद्ध कारण बताने का अधिकार द्वितीय चरण से संबंधित है जब अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने रिपोर्ट में निष्कर्षों पर विचार किया है और कर्मचारी के अपराध के संबंध में निष्कर्ष पर आया है और अपने निष्कर्षों के आधार पर जुर्माना देने का प्रस्ताव करता है। प्रथम अधिकार निर्दोषिता सिद्ध करने का अधिकार है। दूसरा अधिकार यह है कि या तो कोई जुर्माना न लगाया जाए या कम जुर्माना लगाया जाए, यद्यपि अपराध के संबंध में निष्कर्ष स्वीकार कर लिया जाता है। यह द्वितीय चरण में प्रयोग किया जाने वाला द्वितीय अधिकार है जिसे बयालीसवें संशोधन द्वारा हटा दिया गया। द्वितीय चरण में प्रस्तावित जुर्माने के विरूद्ध कारण बताओ नोटिस निर्गत करना एवं नोटिस के उत्तर पर विचार करना तथा जुर्माने पर निर्णय लेना सम्मिलित है। प्रस्तावित जुर्माने पर अभ्यावेदन देने के अवसर को समाप्त कर दिया गया है, न कि जाँच अधिकारी की रिपोर्ट पर अभ्यावेदन देने के अवसर को। बाद वाला अधिकार हमेशा

था। परन्तु संविधान के बयालीसवें संशोधन से पूर्व, जिस समय इसका प्रयोग किया जाना था, उसे द्वितीय चरण यानी जुर्माने पर विचार करने के चरण तक के लिए स्थगित कर दिया गया था। उस समय तक, कर्मचारी के अपराध और लगाए जाने वाले जुर्माने दोनों के संबंध में अनुशासनात्मक प्राधिकारी जिस निष्कर्ष पर पहुंचे थे, वह मात्र अस्थायी था। संविधान के बयालीसवें संशोधन के बाद जो कुछ हुआ है वह उस समय को आगे बढ़ाने के लिए है जब जाँच अधिकारी की रिपोर्ट के विरूद्ध कर्मचारी के प्रत्यावेदन पर विचार किया जाएगा। अब, आरोपों के संबंध में उसके अपराध या निर्दोषता के संबंध में निष्कर्ष पर पहुंचने से पूर्व अनुशासनात्मक प्राधिकारी को रिपोर्ट के विरूद्ध कर्मचारी के अभ्यावेदन पर विचार करना होगा।

* * * अनुच्छेद 311(2) वर्णित करता है कि कर्मचारी को "उसके विरूद्ध आरोपों के संबंध में सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर" दिया जाएगा। जाँच अधिकारी जैसे किसी तीसरे व्यक्ति द्वारा दिए गए आरोपों पर निष्कर्ष, विशेषतः जब वे साक्ष्यों से तैयार नहीं किये जाते हैं या साक्ष्यों की उपेक्षा करके या गलत अर्थान्वयन से तैयार किये जाते हैं, तो वे स्वयं नए अवांछित आरोप बन सकते हैं। अनुच्छेद 311(2) का प्रावधान वास्तव में अलग-अलग दायरे के दो क्रमिक चरणों को स्वीकार करता है। चूंकि जुर्माने का प्रस्ताव जाँच के बाद किया जाना है, जो जाँच वास्तव में अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा की जानी है (जाँच अधिकारी मात्र उसका प्रतिनिधि है जिसे जाँच करने और उसकी सहायता करने के लिए नियुक्त किया गया है), कर्मचारी का जाँच अधिकारी के रिपोर्ट पर उत्तर तथा अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा ऐसे उत्तर पर विचार करना भी ऐसी जाँच का एक अभिन्न अंग है।

इसलिए, जब जाँच अधिकारी अनुशासनात्मक प्राधिकारी नहीं है, तो अपचारी कर्मचारी को उसके विरूद्ध लगाये गये आरोप के संबंध में अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा कर्मचारी के अपराध या निर्दोषता के संबंध में निष्कर्ष पर पहुंचने से पूर्व जाँच अधिकारी की रिपोर्ट की प्रति

प्राप्त करने का अधिकार है। यह अधिकार कर्मचारी के अपने ऊपर लगे आरोपों से बचाव करने के अधिकार का एक भाग है। अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा आरोपों पर अपना निर्णय लेने से पूर्व जाँच अधिकारी की रिपोर्ट को अस्वीकार करना, कर्मचारी को अपनी निर्दोषिता सिद्ध करने के लिए युक्तियुक्त अवसर से वंचित करना है और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन है।"

12) राधेश्याम गुप्ता बनाम यू.पी. स्टेट एग्रो इंडस्ट्रीज कॉर्पोरेशन लिमिटेड एवं अन्य, (1999) 2 SCC 2 में निम्नवत धारित किया गया था:

> *"34. लेकिन ऐसे मामलों में जहां बर्खास्तगी एक जाँच से पूर्व होती है एवं साक्ष्य प्राप्त होते हैं तथा निश्चित प्रकृति के कदाचार के निष्कर्ष अधिकारी की पीठ पीछे निकाले जाते हैं एवं जहां ऐसी रिपोर्ट के आधार पर, बर्खास्तगी आदेश निर्गत किया जाता है, ऐसा निर्गत आदेश प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन होगा क्योंकि जाँच का उद्देश्य उसे दंडित करने के उद्देश्य से आरोपों की सच्चाई का पता लगाना है, न कि मात्र भविष्य में नियमित विभागीय जाँच के लिए साक्ष्य एकत्र करना है। ऐसे मामलों में, बर्खास्तगी को कदाचार पर आधारित माना जाएगा और दंडात्मक होगा। ये स्पष्ट रूप से ऐसे मामले नहीं हैं जहां नियोक्ता को लगता है कि कर्मचारी के आचरण के विरूद्ध कोई संदेह है, परन्तु ऐसे मामले हैं जहां नियोक्ता ने जाँच अधिकारी के स्पष्ट निष्कर्ष को निश्चित रूप से स्वीकार कर लिया है और जिन्हें कर्मचारी के पीठ पीछे प्राप्त किया गया हैं - भले ही निष्कर्षों की ऐसी स्वीकृति बर्खास्तगी आदेश में अभिलिखित नहीं की गई है। इसीलिए ऐसे मामलों में कदाचार आधार है न कि हेतुक।"*

13) सिंडिकेट बैंक एवं अन्य बनाम वेंकटेश गुरुराव कुराती, (2006) 3 SCC 150 में, निम्नलिखित निष्कर्ष प्रासंगिक है:

> *"18. हमारे मत में, उन दस्तावेजों को प्रदान न करना जिन पर जाँच के दौरान जाँच अधिकारी विश्वास नहीं करता है, अपराधी के लिए कोई पूर्वाग्रह पैदा नहीं करता है। मात्र वे दस्तावेज जिन पर जाँच*

अधिकारी ने अपने निष्कर्ष प्राप्त करने हेतु विश्वास किया है, उन्हें प्रदान न करना प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन होने से पूर्वाग्रह का कारण होगा। फिर भी, अपचारी अधिकारी द्वारा यह स्थापित किया जाना चाहिए कि उन दस्तावेजों को प्रदान न करना अपचारी अधिकारी के मामले पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। यह सुस्थापित विधि है कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत सन्निहित नियम नहीं है। इसे एक निर्धारित सूत्र में नहीं रखा जा सकता है। यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है। प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन के आरोप को कायम रखने के लिए, यह स्थापित करना होगा कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन न करने के कारण उनके प्रति पूर्वाग्रह उत्पन्न हुआ है।"

15. उपरोक्त निर्णयों से निम्नलिखित सिद्धांत प्रकट होते हैं:

(i) जाँच प्रामाणिक रूप से की जानी चाहिए और इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि जाँच कोरी औपचारिकता न बन जाए।

(ii) यदि कोई अधिकारी किसी घटना का साक्षी है जो जाँच की विषयवस्तु है या यदि जाँच किसी अधिकारी की रिपोर्ट पर प्रारंभ की गई थी, तो समग्र निष्पक्षता के दृष्टिगत उसे जाँच अधिकारी नहीं होना चाहिए। यदि जाँच अधिकारी की नियुक्ति के बाद जाँच के समय उक्त स्थिति ज्ञात हो जाती है तो यह सुनिश्चित करने के लिए कदम उठाए जाने चाहिए कि जाँच का कार्य किसी अन्य अधिकारी को सौंपा जाए।

(iii) किसी जाँच में, नियोक्ता/विभाग को सबसे पहले आरोपित कर्मकार/अपचारी के विरूद्ध साक्ष्य प्रस्तुत करने हेतु कदम उठाना चाहिए और उसे नियोक्ता के साक्षियों से प्रति-परीक्षा करने का अवसर देना चाहिए। इसके बाद ही, कर्मकार/अपराधी से पूछा जाएगा कि क्या वह कोई साक्ष्य प्रस्तुत करना चाहता है और उससे उसके विरूद्ध प्रस्तुत किए गए साक्ष्यों के विषय में कोई स्पष्टीकरण देने को कहा जाएगा।

(iv) जाँच रिपोर्ट प्राप्त होने पर, आगे की कार्यवाही से पूर्व, अनुशासनात्मक/दंड प्राधिकारी का यह कर्तव्य है कि वह जाँच रिपोर्ट की एक प्रति और जाँच अधिकारी द्वारा विश्वास किए गए समस्त संबंधित सामग्री प्रदान करे ताकि वह अपना विचार, यदि कोई हो, प्रस्तुत करने में सक्षम हो सके,।"

7. यूनाइटेड बैंक ऑफ इंडिया बनाम बिश्वनाथ भट्टाचार्जी में वर्ष 2009 की सिविल अपील

संख्या 8258 में, प्रस्तर 17 और 19 में न्यायालय ने निम्नानुसार धारित किया है:

17. "कोई साक्ष्य नहीं" के मामलों के अतिरिक्त इस न्यायालय ने यह भी संकेत दिया है कि न्यायिक समीक्षा का सहारा लिया जा सकता है। हालाँकि, ऐसे मामलों में न्यायिक समीक्षा का दायरा सीमित है। बी.सी. चतुर्वेदी बनाम भारत संघ 11 में इस न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ ने निर्णय पारित किया कि न्यायिक समीक्षा किसी निर्णय के विरूद्ध अपील नहीं है, बल्कि निर्णय लेने के तरीके की समीक्षा है। इसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि व्यक्ति को उचित समाधान मिले, न कि यह सुनिश्चित करना कि प्राधिकारी जिस निष्कर्ष पर पहुंचता है वह न्यायालय की दृष्टि में अनिवार्यतः सही हो। न्यायिक समीक्षा की अपनी शक्ति में न्यायालय/न्यायाधिकरण अपीलीय प्राधिकारी के रूप में कार्य नहीं करता है; यह साक्ष्यों का पुनः मूल्यांकन नहीं करता है। न्यायालय ने धारित किया कि:

"12. न्यायिक समीक्षा किसी निर्णय के विरूद्ध अपील नहीं है, बल्कि निर्णय लेने के तरीके की समीक्षा है। इसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि व्यक्ति को उचित समाधान मिले, न कि यह सुनिश्चित करना कि प्राधिकारी जिस निष्कर्ष पर पहुंचता है वह न्यायालय की दृष्टि में अनिवार्यतः सही हो। जब किसी लोक सेवक द्वारा कदाचार के आरोप पर जाँच की जाती है, तो न्यायालय/न्यायाधिकरण यह निर्णय करने हेतु चिंतन करता है कि क्या जाँच एक सक्षम अधिकारी द्वारा की गई थी या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतो का अनुपालन किया गया है। चाहे निष्कर्ष कुछ साक्ष्यों पर आधारित हों या नहीं , जिस प्राधिकारी को जाँच करने की शक्ति सौंपी गई है, उसके पास किसी तथ्य या निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए अधिकार क्षेत्र, शक्ति और प्राधिकार है। परन्तु वह निष्कर्ष कुछ साक्ष्यों पर आधारित होना चाहिए। न ही साक्ष्य अधिनियम के तकनीकी नियम और न ही उसमें परिभाषित तथ्य या साक्ष्य के प्रमाण, अनुशासनात्मक कार्यवाही पर लागू होते हैं। जब प्राधिकारी साक्ष्य और उससे समर्थित निष्कर्ष को स्वीकार करता है, तो अनुशासनात्मक प्राधिकारी यह धारित करने हेतु अधिकृत है कि अपचारी अधिकारी आरोप का दोषी है। न्यायालय/न्यायाधिकरण अपनी न्यायिक समीक्षा की शक्ति के अन्तर्गत साक्ष्यों की पुनःमूल्यांकन करने और साक्ष्यों पर अपने स्वयं के स्वतंत्र निष्कर्षों पर पहुंचने हेतु अपीलीय प्राधिकारी के रूप में कार्य नहीं करता है। न्यायालय/न्यायाधिकरण वहां हस्तक्षेप कर सकता है जहां प्राधिकारी ने अपचारी अधिकारी के विरूद्ध प्राकृतिक न्याय के नियमों से असंगत या जाँच की प्रक्रिया विहित करने वाले वैधानिक नियमों के उल्लंघन में या जहां अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा निकाला गया निष्कर्ष

बिना किसी साक्ष्य पर आधारित हो, कार्यवाही की हो। यदि निष्कर्ष ऐसा है जिस पर कोई भी युक्तियुक्त व्यक्ति कभी नहीं पहुंच सका है, तो न्यायालय/न्यायाधिकरण निष्कर्ष में हस्तक्षेप कर सकता है, और अनुतोष को इस प्रकार परिवर्तित कर सकता है कि इसे प्रत्येक मामले के तथ्यों हेतु उपयुक्त बनाया जा सके।

13. अनुशासनात्मक प्राधिकारी तथ्यों का एकमात्र न्यायाधीश है। जहां अपील प्रस्तुत की जाती है वहाँ अपीलीय प्राधिकारी के पास साक्ष्य या दण्ड की प्रकृति के पुनः मूल्यांकन करने की सहव्यापी शक्ति होती है। अनुशासनात्मक जाँच में, विधिक साक्ष्य के प्रबल प्रमाण और उस साक्ष्य पर निष्कर्ष प्रासंगिक नहीं होते हैं। साक्ष्य की पर्याप्तता या साक्ष्य की विश्वसनीयता को न्यायालय/ न्यायाधिकरण के समक्ष प्रचारित करने की अनुमति नहीं दी जा सकती। भारत संघ बनाम एच.सी. गोयल [भारत संघ बनाम एच.सी. गोयल, (1964) 4 SCR 718] में इस न्यायालय ने पृष्ठ सं-728 पर धारित किया कि यदि अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों पर विचार करने पर निष्कर्ष विकृत है या अभिलेख में प्रत्यक्ष त्रुटि है या किसी भी साक्ष्य पर आधारित नहीं है, तो उत्प्रेषण की रिट निर्गत की जा सकती है।

19. बैंक सही है, जब उसका तर्क है कि संविधान के अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत कार्यवाही में सामग्री और निष्कर्षों की अपीलीय समीक्षा आमतौर पर नहीं की जा सकती है। फिर भी, एच.सी. गोयल के बाद, इस न्यायालय ने निरन्तर यह निर्णय पारित किया है कि जहां अनुशासनात्मक प्राधिकारी के निष्कर्ष साक्ष्यों पर आधारित नहीं हैं, या अप्रासंगिक सामग्री के विचार पर आधारित हैं, या प्रासंगिक सामग्री की उपेक्षा कर रहे हैं, दुर्भावनापूर्ण हैं, या जहां निष्कर्ष विकृत हैं या ऐसे हैं कि वे ऐसी परिस्थितियों में किसी भी युक्तियुक्त व्यक्ति द्वारा प्रदत्त नही किये जा सकते थे, संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उपचार उपलब्ध हैं, और हस्तक्षेप वांछित है। किसी भी न्यायालय के लिए यह सुनिश्चित करने के लिए कि क्या कोई निष्कर्ष रिकॉर्ड से परे है (अर्थात, कोई साक्ष्य नहीं है) या किसी अप्रासंगिक या बाह्य कारकों पर आधारित है, या सारवान साक्ष्यों की उपेक्षा कर रहा है, तो आवश्यक रूप से कुछ जाँच आवश्यक है। सामग्री की ऐसी मूलभूत जाँच और अनुशासनात्मक प्राधिकारी के निष्कर्षों के बिना "कोई साक्ष्य नहीं" या विकृति का निष्कर्ष नहीं प्रदान किया जा सकता है। हालाँकि, संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत न्यायालय के मूल्यांकन की सीमा अलग होगी; इसकी प्रकृति अपीलीय नहीं है।"

8. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि जाँच दूषित है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया

कि यद्यपि डिवीजन बेंच ने चार माह के भीतर जाँच पूर्ण करने का निर्देश दिया है, लेकिन इसे न्यायालय द्वारा निर्धारित समय से परे चार वर्ष के भीतर पूर्ण किया गया। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि अनुशासनात्मक कार्यवाही के साथ-साथ जाँच अधिकारी ने इस तथ्य पर विचार न करके गंभीर त्रुटि की है कि कोई तिथि, समय और स्थान निर्धारित नहीं किया गया था और याचिकाकर्ता के पूर्व स्थिति पर एकल न्यायाधीश ने पहले ही निर्णय सुनाया था, जिसे उन्होंने फिर से दोहराया। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि प्रतिवादियों ने अपनी पूछताछ जारी रखने का अधिकार खो दिया है, वह भी प्रतिप्रेषण के बाद। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता वर्ष 2014 में सेवानिवृत्त हो गया है। इस समय मामले का प्रतिप्रेषण संगत नहीं होगा।

9. प्रतिवादियों के विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री राजेश शुक्ला ने प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता ने कदाचार किया है और उनके उत्तर पर जाँच अधिकारी ने विचार किया और उसके बाद जाँच रिपोर्ट प्रस्तुत की गई जिसके आधार पर अंतिम आदेश पारित किया गया है। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि कार्यवाही में कोई अवैधता और दुर्बलता नहीं है और प्रश्नगत आदेश उचित है।

10. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता को सुना और अभिलेख का अवलोकन किया।

11. यह अभिलेख पर स्वीकार किया गया है कि पहले, याचिका स्वीकार की गई थी। रिट याचिका संख्या 4274 (एस/एस) 2002 को नये सिरे से जाँच करने के निर्देश के साथ निस्तारित किया गया। न्यायालय ने पहले ही टिप्पणी की थी कि जाँच करते समय जाँच अधिकारी द्वारा प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन नहीं किया गया था। एक बार जब मामले को एक विशिष्ट बिंदु पर प्रतिप्रेषित किया गया, तो जाँच अधिकारी द्वारा वही त्रुटि करने का कोई अवसर नहीं था तथा वर्तमान मामले में, दूसरी बार, यह फिर से अभिलेख पर स्वीकार किया गया है कि जाँच अधिकारी ने कोई तिथि, समय और स्थान निर्धारित नहीं की थी तथा याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत उत्तर के आधार पर ही जाँच पूर्ण की गई तथा याचिकाकर्ता द्वारा रिट याचिका के प्रस्तर 7 में दृष्टिकोण अपनाया गया है एवं उसे प्रति-शपथपत्र के प्रस्तर 8 में भी वही उत्तर दिया गया है। राज्य ने कहीं भी यह उल्लेख नहीं किया है कि प्रति-परीक्षा के लिए कोई तिथि, समय या स्थान निर्धारित किया गया था। इस प्रकार, यह दर्शाता है कि जाँच दूषित की गई थी। चार मास के स्थान पर चार वर्ष में जाँच पूरी की गयी, वह भी प्रक्रिया अपनाये बिना। इस स्तर पर मामले का प्रतिप्रेषण उचित नहीं होगा। यह भी ध्यान में रखा जाए कि याचिकाकर्ता वर्ष 2014 में सेवानिवृत्त हो चुका है।

12. ऊपर किए गए विचार-विमर्श के दृष्टिगत, रिट याचिका स्वीकार किए जाने योग्य है।

13. रिट याचिका स्वीकार की जाती है। प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा पारित प्रश्नगत आदेश दिनांक 06.03.2013 को अभिखण्डित कर दिया गया है। आनुषंगिक परिणाम लागू होंगे।

(2023) 3 ILRA 153

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 23.03.2023

के समक्ष

माननीय करूणेश सिंह पवार

रिट ए संख्या 7338/2012

शिवेंद्र पति त्रिपाठी ...याचिकाकर्ता

बनाम

उ.प्र. राज्य सूचना आयोग, इंदिरा भवन, लखनऊ और अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: नंदिता भारती, अभिषेक मिश्रा, अभिषेक मिश्रा

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: शिखर आनंद

A. सेवा कानून - समाप्ति - भारतीय संविधान के अनुच्छेद 311 में स्थायी और अस्थायी पदों के मध्य कोई भेद नहीं किया गया है। यदि कदाचार या भ्रष्टाचार या रिश्वत लेने जैसे आरोपों पर एक कारण बताओ नोटिस जारी किया गया है, तो उसके परिणामस्वरूप जो भी समाप्ति का आदेश दिया गया है, चाहे वह कितनी भी साधारण भाषा में क्यों न हो, वह केवल एक साधारण समाप्ति नहीं है, बल्कि यह एक सजा के रूप में समाप्ति है। और स्थापित कानून के अनुसार, अदालत के लिए यह हमेशा संभव है कि वे ऐसे मामलों में आदेश के असली आधार को जानने के लिए परदे को उठाएं।

दिनांक 21.09.2012 की आपेक्षित आदेश और 27.06.2012 की पत्र/नोटिस (जो प्रतिवादी संख्या 3 ने याचिकाकर्ता को भेजा) का अवलोकन करने पर प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता पर रिश्वत लेने का आरोप लगाया गया है, जो कि एक कदाचार है। हालांकि याचिकाकर्ता की नियुक्ति अस्थायी थी, नोटिस की भाषा ऐसी है कि यह याचिकाकर्ता को भारत के संविधान के अनुच्छेद 311(2) के तहत स्थायी कर्मचारी के रूप में सुरक्षा का अधिकार प्रदान करती है, भले ही अस्थायी सरकारी कर्मचारियों को पद पर बने रहने का कोई अधिकार नहीं होता और उनकी सेवाएं बिना किसी कारण बताए किसी भी समय एक महीने का नोटिस देकर समाप्त की जा सकती हैं। समाप्ति का आदेश, हालांकि साधारण तौर पर दिया गया है, लेकिन यदि इसे कर्ण बताओ नोटिस के साथ पढ़ा जाए, जिसमें प्रतिवादी द्वारा दिए गए प्रतिवेदन सम्मिलित हैं, तो यह स्पष्ट है कि इसे सजा के रूप में दिया गया है और यह कलंकित है। (पैराग्राफ 8)

याचिकाकर्ता को भारत के संविधान के अनुच्छेद 311(2) के तहत सुरक्षा का अधिकार था और चूंकि समाप्ति का आदेश दंडात्मक है, इसलिए प्रतिवादियों को संबंधित नियमों के अनुसार नियमित जांच करनी चाहिए थी और याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर देना चाहिए था, जैसा कि अनुच्छेद 311(2) के तहत सेवा के अनुबंध या संबंधित वैधानिक नियमों के अनुसार है। (पैराग्राफ 8)

B. किसी कर्मचारी को पूर्व वेतन से वंचित करना, जो नियोक्ता के अवैध कार्य के कारण प्रभावित हुआ है, संबंधित कर्मचारी को अप्रत्यक्ष रूप से सजा देने और नियोक्ता को पिछली वेतन, जिसमें वेतन भी सम्मिलित है, देने की जिम्मेदारी

से मुक्त करने के बराबर है। कर्मचारी को उस स्थिति में बहाल करना, जिसमें वह निष्कासन या सेवा समाप्ति से पूर्व था, का अर्थ है कि कर्मचारी को उसी स्थिति में रखा जाएगा जिसमें वह होता, यदि नियोक्ता द्वारा अवैध कार्रवाई नहीं की जाती। ऐसे कर्मचारी की पुनर्स्थापना, जिसे सक्षम न्यायिक/अर्ध न्यायिक निकाय या न्यायालय द्वारा यह पाया गया हो कि नियोक्ता द्वारा की गई कार्रवाई वैधानिक प्रावधानों या न्याय के प्राकृतिक सिद्धांतों के खिलाफ है, कर्मचारी को पूर्ण पिछली वेतन की मांग करने का अधिकार देती है। यदि नियोक्ता कर्मचारी को पिछली वेतन से वंचित करना चाहता है या उसके लाभ के लिए संघर्ष करता है, तो यह उसके लिए आवश्यक है कि वह विशेष रूप से यह सिद्ध करे कि इस बीच कर्मचारी लाभकारी रोजगार में था और वही वेतन प्राप्त कर रहा था। (पैराग्राफ 11)

समाप्ति का आपेक्षित आदेश निरस्त किया जाता है। याचिकाकर्ता सभी परिणामस्वरूप लाभों के लिए पात्र होगा, जिसमें 50% पिछला वेतन सम्मिलित है, बशर्ते वह यह सुनिश्चित करे कि वह किसी अन्य विभाग में कार्यरत नहीं था और न ही उसे अपनी सेवाएं समाप्त होने से पहले जितना वेतन मिल रहा था या उससे अधिक मिल रहा था। (पैराग्राफ 12, 13)

याचिका स्वीकार की गई। (E-4)

<u>विधि व्यवस्था अनुसरित:</u>

1. पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय बनाम आर.जी. बनाम ईश्वर चंद जैन एवं अन्य। (पैराग्राफ 4)
2. चंद्र प्रकाश शाहि बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, (2000) 5 SCC 152 (पैराग्राफ 4)
3. दीपाली गंडू सुरवसे बनाम क्रांति जूनियर अध्यापक महाविद्यालय (D.ED.) एवं अन्य, (2013) 10 SCC 324 (पैराग्राफ 4, 11)
4. गौराम्मा सी (मृत) द्वारा वारिसन बनाम प्रबंधक (कार्मिक) हिंदुस्तान एरोनॉटिकल लिमिटेड एवं अन्य, सिविल अपील संख्या 1575-1576/2022 (पैराग्राफ 4)
5. परशोतम लाल ढींगरा बनाम भारत संघ, AIR 1958 SC 36 (पैराग्राफ 9)

<u>विधि व्यवस्था प्रतिष्ठित:</u>

1. उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम कौशल किशोर शुक्ला, (1991) 1 SCC 691 (पैराग्राफ 5, 9)
2. उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम रेखा रानी, (2011) 11 SCC 441 (पैराग्राफ 5, 10)

वर्तमान याचिका सेवा समाप्ति आदेश दिनांक 21.09.2012 को चुनौती देती है, जो उत्तर प्रदेश सूचना आयोग के मुख्य सूचना आयुक्त, इंदिरा भवन, लखनऊ (प्रतिवादी संख्या 2) द्वारा पारित किया गया था।

(माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पवार, द्वारा प्रदत्त)"

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता डॉ. एल. पी. मिश्रा को श्री एके मिश्रा और श्री शिखर आनंद की सहायता से तथा प्रतिवादी संख्या 2 और 3 के विद्वान अधिवक्ता को सुना।

2. इस रिट याचिका में मुख्य सूचना आयुक्त, उत्तर प्रदेश राज्य सूचना आयोग, इंदिरा भवन, लखनऊ (प्रतिवादी संख्या 2) द्वारा पारित दिनांक 21.9.2012 के सेवा-समाप्ति आदेश को चुनौती

दी गई है। इसके अतिरिक्त प्रतिवादीगण को आक्षेपित समाप्ति आदेश, संलग्नक संख्या 1.3 को प्रभावी न करने का आदेश देने की याचना करते हुए परमादेश की रिट की याचना की गई है।

3. वाद के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता को प्रतिवादी के विभाग में विभिन्न पदों पर अठारह अन्य कर्मचारियों के साथ प्रतिवादी संख्या-2 द्वारा दिनांक 1.2.2007 के कार्यालय आदेश द्वारा पेशकार पद पर नियुक्त किया गया था। याचिकाकर्ता की नियुक्ति प्रकृति में अस्थायी थी। दिनांक 27.6.2012 को, उप सचिव, प्रतिवादी संख्या 3 ने एक आधिकारिक पत्र संख्या / 303 नजारत कैंप उपसचिव भेजा जिसमें उन्होंने याचिकाकर्ता को अवगत कराया कि किसी अज्ञात व्यक्ति द्वारा की गई शिकायत के आधार पर, प्रतिवादी संख्या 2 ने प्रतिवादी संख्या 3 को याचिकाकर्ता के खिलाफ जांच करने का निर्देश दिया था।

याचिकाकर्ता के विरुद्ध मुख्य रूप से दो आरोप दिनांक 27.06.2012 (संलग्नक संख्या 2) के पत्र में लगाए गए थे। पहला आरोप यह है कि नियमों का उल्लंघन करते हुए वादियों से धन स्वीकार करने के बाद वाद सूची में संशोधन किया गया है और दूसरा यह कि उसने 15 लाख रुपये का घर खरीदा है। याचिकाकर्ता को दो दिनों में अपना उत्तर प्रस्तुत करना अपेक्षित था। याचिकाकर्ता ने दिनांक 12.06.2012 को विस्तृत उत्तर प्रस्तुत किया। प्रतिवादी संख्या 3 के दिनांक 4.7.2012 के पत्र द्वारा जांच के उद्देश्य से, पुनः याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 1.3.2012 से 31.3.2012 तक की वाद सूची की प्रति प्रदान करना अपेक्षित था। उक्त पत्र के अनुपालन में, याचिकाकर्ता ने दिनांक 5.7.2012 के पत्र द्वारा संपूर्ण वाद सूची की प्रति प्रस्तुत की,और अनवधानतावश वाद सूची में कुछ मामलों को सूचीबद्ध करने में अपनी चूक के लिए क्षमा भी मांगी। नतीजतन, प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा कथित तौर पर याचिकाकर्ता की अनुपस्थिति में उसे सुनवाई का उचित अवसर दिए बिना जांच की गई। जांच रिपोर्ट प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा प्रस्तुत की गई थी, हालांकि, इसकी एक प्रति याचिकाकर्ता को नहीं दी गई थी।

4. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने अभिकथन प्रस्तुत किया कि दिनांक 21.9.2012 का आक्षेपित आदेश, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता की सेवाओं को समाप्त कर दिया गया है, स्पष्ट रूप से अहानिकर भाषा में है। प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा याचिकाकर्ता को भेजे गए दिनांक 27.6.2012 के पत्र और उसकी भाषा का परिशीलन स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि पत्र/आदेश, वास्तव में, सजा के रूप में है जो प्रकृति में दंडात्मक और लांछनकारी है। यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि भारत के संविधान का अनुच्छेद 311 स्थायी और अस्थायी पदों के बीच कोई अंतर नहीं करता है। यदि कदाचार के संबंध में आरोप या भ्रष्टाचार के आरोपों या सूचीबद्ध मामलों में रिश्वत लेने जैसे आरोपों पर कारण बताओ नोटिस जारी किया गया है, तो समाप्ति का परिणामी आदेश, चाहे वह कितनी भी अहानिकर भाषा में हो, सामान्य सेवा समाप्ति का आदेश नहीं है, बल्कि यह दंड के माध्यम से और विधि की स्थापित प्रस्थापना के दृष्टिगत सेवा समाप्ति का आदेश है। न्यायालय स्वतंत्र है कि वह ऐसे मामलों से पर्दा उठाए ताकि पारित आदेश के वास्तविक आधार का पता लगाया जा सके। इस तर्क के समर्थन में, विद्वान अधिवक्ता ने **पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय द्वारा**

आर.जी. बनाम ईश्वर चंद जैन और एक अन्य (प्रासंगिक पैरा 24) पर विश्वास व्यक्त किया है। उन्होंने **चंद्र प्रकाश शाही बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** (2000) 5 एससीसी 152 (प्रासंगिक पैरा 12) में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भी विश्वास व्यक्त किया है।

पुनः यह प्रस्तुत किया गया है कि न केवल संलग्नक संख्या 2 बल्कि प्रतिवादीगण द्वारा दायर प्रतिशपथपत्र, विशेष रूप से पैरा 9, किसी भी संदेह की गुंजाइश नहीं छोड़ता कि आक्षेपित आदेश सजा के माध्यम से पारित किया गया है, इसलिए, प्रतिपादित विधि, जैसी कि पूर्वोक्त मामलों में धारित की गई है, के दृष्टिगत आदेश बरकरार रहने योग्य नहीं है एवं रद्द किये जाने योग्य है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने यह अभिकथन भी प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता, जिसे उसकी ओर से बिना किसी गलती के सेवा से बर्खास्त कर दिया गया है और आदेश अवैध है, अपनी सेवा समाप्ति के दिनांक से विगत मजदूरी प्राप्त करने का हकदार है। इस संदर्भ में, विद्वान अधिवक्ता ने **दीपाली गुंडू सुरवासे बनाम क्रांति जूनियर अध्यापक महाविद्यालय (डी.एड.) और अन्य** (2013)10 एससीसी 324 (प्रासंगिक पैरा 20) और सिविल अपील संख्या 1575-1576/ 2022 **गौरम्मा सी (मृत) एलआरएस बनाम प्रबंधक (कार्मिक) हिंदुस्तान एयरोनॉटिकल लिमिटेड और अन्य** (पैरा 11 और 12) में पारित सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय दिनांक 23.2.2022 पर विश्वास किया है।

5. इसके विपरीत प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने याचिका का पुरजोर विरोध किया है, और यह तर्क प्रस्तुत किया है कि नियोक्ता अस्थायी रूप से नियुक्त कर्मचारी की उपयुक्तता का आकलन करने / पता लगाने के लिये सदैव स्वतंत्र है कि उसे सेवा में जारी रखना है या नहीं, और इस उद्देश्य के लिए, एक जांच की गई थी। यह अभिकथन प्रस्तुत किया गया है कि आक्षेपित आदेश सामान्य है और दंडात्मक नहीं है। अपने तर्क के समर्थन में, विद्वान अधिवक्ता ने **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम कौशल किशोर शुक्ला** (1991) 1 एससीसी 691 (प्रासंगिक पैरा 7) और **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम रेखा रानी** (2011) 11 एससीसी 441 पर विश्वास किया है।

6. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्कों पर विचार किया है और अभिलेख का परिशीलन किया है।

7. याचिका में निहित मुद्दे की संवीक्षा से पूर्व उप सचिव, उ0प्र0 राज्य सूचना आयोग द्वारा दिनांक 27.06.2012 को पत्र में लगाए गए आरोपों को पुनः प्रस्तुत करना उचित होगा। पत्र नीचे उद्धृत किया गया है:-

"श्री शिवेन्द्र त्रिपाठी
पेशकार (कोर्ट संख्या एस-11)

मा. मुख्य सूचना आयुक्त पत्र सं. 043 / सी. आईसी/पी. ए./ 2012 दिनांक 26 जून 2012 द्वारा आपके में एक शिकायती पत्र मा. मुख्य सूचना आयुक्त को उपलब्ध कराया गया है, कि जाँच करने हेतु मुझे आदेशित किया गया है।

शिकायती पत्र में यह शिकायत की गई है कि आप के द्वारा काजलिस्ट में पैसे ले कर संशोधन किया गया है। दिनांक 16.04.12 से 30.04.12 तक की काजलिस्ट जो कि कम्प्यूटर के अनुसार होनी चाहिये उसके हिसाब से न हो कर आपके द्वारा अपने मन माफिक तैयार कर फैंस लगाए गए। कोर्ट संख्या एस 11 में दिनांक

16,17, 18, 19, 20, 23, 25, 26, 27, 30 अप्रैल 2012 को कम्प्यूटर के अनुसार क्रमशः 101.8397. 165, 167119,46,101,161,351, वाद लगाए गए थें जब कि आप के द्वारा उक्त तिथियों में क्रमशः 88, 57, 63, 135, 95, 87, 38, 169, 144, 149 केस लगाए गए ऐसा क्यों या किसके आदेश पर किया गया या आपने अपने फायदे के लिये नियमों का उल्लंघन किया इस कारण दो दिनों के अंदर अधोहस्ताक्षरी को सबूतों के साथ उपलब्ध कराये।

मा. मुख्य सूचना आयुक्त को शिकायतकर्ता ने यह भी अवगत कराया है कि आपने एक मकान 15 लाख रुपये का क्रय किया है उपरोक्त के सम्बन्ध में भी अधोहस्ताक्षरी को वस्तु स्थिति से लिखित रूप में अपने स्पष्टीकरण के साथ अवगत कराये।

उपरोक्त बिन्दुओं पर स्पष्टीकरण आख्या दो दिनों के अंदर अधोहस्ताक्षरी को उपलब्ध कराये।"

8. ऊपर प्रस्तुत किये गए पत्र के परिशीलन से ज्ञात होता है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप लगाया गया था कि उसने रिश्वत ली है और वाद सूची में हेरफेर किया है और मामलों को अपनी मर्जी से सूचीबद्ध किया है। एक और आरोप लगाया गया कि उन्होंने 15 लाख रुपये का घर खरीदा है। दिनांक 27.06.2012 के पत्र/नोटिस से पता चलता है कि यह निस्संदेह याचिकाकर्ता के कदाचार से संबंधित एक लांछनयुक्त आरोप है और इसलिए, दंड के के रूप में सेवा-समाप्ति आदेश पारित किया गया है। इस संबंध में विधि सुस्थापित है जैसा कि उच्चतम न्यायालय के पूर्वोक्त निर्णयों में धारित किया गया है। यह स्पष्ट रूप से माना गया है कि न्यायालय द्वारा यह पता लगाने के लिए पर्दा उठाया जा सकता है कि क्या आदेश संबंधित कर्मचारी के किसी कदाचार पर आधारित है या आदेश को सदाशयी बनाया गया है और इसकी पृष्ठभूमि में कोई भी परोक्ष या बाहरी उद्देश्य सम्मिलित नहीं है। पत्र एवं आक्षेपित आदेश के तुलनात्मक परिशीलन से पता चलता है कि प्रार्थी द्वारा रिश्वत लेने का आरोप लगाया गया है, जो एक कदाचार है। आक्षेपित आदेश, हालांकि बहुत चतुराई से लिखा गया है, लेकिन फिर भी, यह प्रकृति में लांछनकारी और दंडात्मक है। नोटिस के संलग्नक संख्या 2 की भाषा ऐसी है जो याचिकाकर्ता को एक स्थायी कर्मचारी के रूप में भारत के संविधान के अनुच्छेद 311 (2) के संरक्षण का अधिकार देती है, इस तथ्य के बावजूद कि अस्थायी सरकारी कर्मचारियों को पद धारण करने का कोई अधिकार नहीं है और उनकी सेवाएं बिना कोई कारण बताए उन्हें एक महीने का नोटिस देकर किसी भी समय समाप्त की जा सकती हैं। बर्खास्तगी आदेश, यद्यपि बिना कोई दोष देते हुए पारित किया गया है, तथापि, अगर इसे याचिका के अनुलग्नक -2 में निहित कारण बताओ नोटिस के साथ प्रतिशपथपत्र में प्रस्तुत दलीलों के साथ पढ़ा जाता है, तो इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता है कि इसे सजा के रूप में पारित किया गया है और यह लांछनकारी है। इस प्रकार, स्थापित विधि के दृष्टिगत, याचिकाकर्ता भारत के संविधान के अनुच्छेद 311 (2) के संरक्षण का हकदार था और चूंकि सेवा-समाप्ति का आदेश प्रकृति में दंडात्मक है, इसलिए सेवा के अनुबंध के संदर्भ में या प्रासंगिक वैधानिक नियमों के अंतर्गत याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर देने के बाद प्रासंगिक नियमों के अनुसार प्रतिवादीगण द्वारा नियमित जांच की जानी चाहिए थी, जैसा

कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 311 (2) के तहत प्रावधान है।

9. जहां तक कौशल किशोर शुक्ला के मामले (उपरोक्त) में निर्णय का संबंध है, जिस पर प्रतिवादीगण के विद्वान अधिवक्ता ने विश्वास व्यक्त किया है, निर्णय के पैरा 7 से पता चलता है कि यदि प्राधिकरण दंडात्मक कार्रवाई करने का निर्णय लेता है, तो वह संविधान के अनुच्छेद 311 के प्रावधानों के अनुसार सरकारी कर्मचारी को आरोप तय करके और सुनवाई का अवसर देकर औपचारिक जांच कर सकता है। इसमें आगे कहा गया है कि एक अस्थायी सरकारी कर्मचारी भी संविधान के अनुच्छेद 311 (2) के संरक्षण के लिए उसी तरह हकदार है जैसे एक स्थायी सरकारी कर्मचारी। यह आगे उपबंधित करता है कि सेवा-समाप्ति के आदेश का रूप निर्णायक नहीं है और न्यायालय स्वतंत्र है कि वह पुरुषोत्तम लाल ढींगरा बनाम भारत संघ एआईआर 1958 एससी 36 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए आदेश की वास्तविक प्रकृति का निर्धारण करे। इस प्रकार, पूर्वोक्त मामले के निर्णय से प्रतिवादीगण को कोई सहायता नहीं मिलती है।

प्रतिवादीगण के अधिवक्ता द्वारा विश्वास व्यक्त किए गए सर्वोच्च न्यायालय के अन्य निर्णय उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम रेखा रानी (2011)11 एससीसी 441 में से भी कोई सहायता नहीं मिली क्योंकि उस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने धारित किया है कि प्रतिवादी की सेवा को दंड के रूप में समाप्त नहीं किया गया था। उक्त मामले के तथ्य वर्तमान मामले से काफी भिन्न थे। इसलिए, रेखा रानी के मामले (उपरोक्त) में निर्णय वर्तमान मामले के विशिष्ट तथ्यों के आधार पर अलग है।

11. जहां तक विगत मजदूरी का संबंध है, दीपाली गुंडू सुरवासे (उपरोक्त) के वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा 22 में इस प्रकार टिप्पणी की : -

> *"किसी कर्मचारी को उस पद पर पुनर्स्थापित, जो उसने बर्खास्तगी या सेवा से हटाने या समाप्त करने से पहले धारण किया था, करने के विचार का अर्थ है कि कर्मचारी को उसी स्थिति में रखा जाएगा जिसमें वह रहा होता, यदि नियोक्ता द्वारा अवैध कार्रवाई न की गई होती। किसी व्यक्ति, जिसे बर्खास्त कर दिया गया है या हटा दिया गया है या अन्यथा सेवा से समाप्त कर दिया गया है, को पहुँची क्षति को आसानी से धन के संदर्भ में नहीं मापा जा सकता है। एक आदेश, जो नियोक्ता कर्मचारी संबंध को तोड़ देता है, पारित होने के साथ कर्मचारी की आय का स्रोत समाप्त हो जाता है। न केवल संबंधित कर्मचारी, बल्कि उसके पूरे परिवार को गंभीर प्रतिकूलताओं का सामना करना पड़ता है। वे जीविका के स्रोत से वंचित हो जाते हैं। बच्चे पौष्टिक भोजन, शिक्षा और जीवन में उन्नति के सभी अवसरों से वंचित हो जाते हैं। कई बार, परिवार को भुखमरी से बचाने के लिए रिश्तेदारों और अन्य परिचितों से उधार लेना पड़ता है। ये परेशानियां तब तक जारी रहती हैं जब तक सक्षम न्यायनिर्णयन मंच नियोक्ता द्वारा की गई कार्रवाई की वैधता पर निर्णय नहीं ले लेता है। ऐसे कर्मचारी की बहाली, जो सक्षम न्यायिक/अर्ध न्यायिक निकाय या*

न्यायालय के इस निष्कर्ष के कारण होती है कि नियोक्ता द्वारा की गई कार्रवाई प्रासंगिक वैधानिक प्रावधानों या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अधिकारातीत है, कर्मचारी को पूर्ण विगत वेतन का दावा करने का अधिकार देती है। यदि नियोक्ता कर्मचारी को पिछला वेतन देने से इनकार करना चाहता है या परिणामी लाभ प्राप्त करने के लिए उसके अधिकार का विरोध करना चाहता है, तो उसे इसके लिए विशेष रूप से निवेदन करना और सिद्ध करना होगा कि बीच की अवधि के दौरान कर्मचारी लाभप्रद रूप से नियोजित था और समान परिलब्धियां प्राप्त कर रहा था। नियोक्ता के अवैध कृत्य के कारण पीड़ित किसी कर्मचारी को पिछला वेतन देने से इनकार करना अप्रत्यक्ष रूप से संबंधित कर्मचारी को दंडित करना और नियोक्ता को परिलब्धियों सहित मजदूरी वापस करने के दायित्व से मुक्त करके पुरस्कृत करना होगा।

इसी तरह, गौरम्मा सी (उपरोक्त) के वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने उच्च न्यायालय के निर्णय को संशोधित करते हुए विगत वेतन की वृद्धि की है और कर्मचारी को बढ़ा हुआ वेतन प्रदान किया है। प्रासंगिक पैराग्राफ 11 और 12 अधोवर्णित हैं:

11. "ऐसे मामलों में हस्तक्षेप के संबंध में, अर्थात, पिछली मजदूरी से संबंधित मामलों में, हम अन्य निर्णयों में अपनाए गए समान दृष्टिकोण को पाते हैं, जो निःसंदेह प्रतिवादी के पक्ष को समर्थित करते हैं, [इस संबंध में देखें 2007 (5) एससीसी 742]। हालांकि केनरा बैंक बनाम दामोदर गोविंद इदुरकर 2009 (4) एससीसी 323 निर्णयविधि पर प्रतिवादी द्वारा पुनः विश्वास व्यक्त किया गया है, जिसमें कर्मचारी की सेवा समाप्त कर दी गई थी क्योंकि उसने झूठे जाति प्रमाण पत्र का उपयोग करके आरक्षित श्रेणी में नियोजन प्राप्त किया था और न्यायालय ने उच्च न्यायालय के घटाकर 50% विगत वेतन दिए जाने के निदेश को संशोधित कर पूर्ण वेतन दिये जाने के आदेश से प्रतिस्थापित कर दिया, हमें नहीं लगता कि ऐसा कोई सिद्धांत निर्धारित किया गया है जिसे पूर्वन्याय के रूप में धारित किया जा सके। दीपाली गुंडू सुरवासे बनाम क्रांति जूनियर अध्यापक महाविद्यालय (डी.एड.) 2013 (10) एससीसी 324 निर्णयविधि में उच्च न्यायालय ने इस आधार पर विगत मजदूरी के अधिनिर्णयन को रद्द कर दिया कि अपीलकर्ता ने अनियोजन के तथ्य को साबित नहीं किया था। न्यायालय ने अन्य बातों के साथ-साथ इस प्रकार निर्धारित किया: -

"(vi) अनेक वादों में, उच्चतर न्यायालयों ने प्राथमिक न्यायनिर्णयन प्राधिकारी के अधिनिर्णयन में इस आधार पर हस्तक्षेप किया है कि वाद को अंतिम रूप से निस्तारित करने में इस तथ्य की अनदेखी करते हुए लंबा समय लगा है कि अधिकांश मामलों में पक्षकार ऐसे विलंब के लिए उत्तरदायी नहीं हैं। वादों के निस्तारण में विलंब का मुख्य कारण अवसंरचना और जनशक्ति की कमी है। इसके लिए वादियों को दोषी नहीं ठहराया जा सकता या दंडित नहीं किया जा सकता है। यदि किसी कर्मचारी या

कामगार को केवल इसलिए पिछला वेतन देने से इनकार कर दिया जाता है तो यह उसके साथ घोर अन्याय होगा क्योंकि उसकी सेवा समाप्त होने और पुनर्स्थापित करने के आदेश को अंतिम रूप दिए जाने के बीच लंबा समय बीत जाता है। न्यायालयों को यह ध्यान में रखना चाहिए कि इनमें से अधिकांश मामलों में नियोक्ता कर्मचारी या कामगार की तुलना में लाभप्रद स्थिति में होता है। वह पीड़ित यानी कर्मचारी या कामगार की पीड़ा को लंबे समय तक बढ़ाने के लिए सर्वश्रेष्ठ विधिक मस्तिष्क की सेवाओं का लाभ उठा सकता है, जब कि पीड़ित यानी कर्मचारी या कामगार किसी सुप्रसिद्ध अधिवक्ता की सेवाओं हेतु शुल्क प्रदान करने में अक्षम होता है। इसलिए, ऐसे मामलों में हिन्दुस्तान टिन वर्क्स (प्रा) लिमिटेड, (1979) 2 एससीसी 80 में सुझाए गए दिशानिर्देश को अपनाना समझदारी होगी।

12. सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या कर्मचारी की कोई भी गलती है। यदि कर्मचारी की गलती बिल्कुल नहीं है और नियोक्ता द्वारा लिए गए निर्णय के कारण उसे काम से बाहर रखा गया था, तो अंत में उसे काम से बाहर रखे जाने के परिणाम को सही ठहराने से इनकार करना कर्मचारी के लिए अनुचित होगा। ऐसी परिस्थितियों में, निस्संदेह, वैकल्पिक रोजगार से संबंधित प्रश्न, जिसका कर्मचारी ने आश्रय लिया हो, प्रासंगिक हो जाता है। विवेक का पक्ष भी है जिसका प्रयोग न्यायालय द्वारा प्रत्येक मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए किया जाता है। जैसा कि हमने पहले ही देखा है, यह एक ऐसा मामला है जहाँ कर्मचारी पर झूठे जाति प्रमाण पत्र को प्रस्तुत करने के आरोप के अतिरिक्त, कोई अन्य आरोप नहीं है। इसलिए, तथ्यों के अधीन हमारा विचार है कि यह न्याय हित में होगा, यदि हम विगत मजदूरी को पूर्ण विगत मजदूरी के 50% से बढ़ाकर 75% कर देते हैं, जिसकी वह अन्यथा हकदार थी। अपील को आंशिक रूप से अनुमति दी जाती है। आक्षेपित निर्णय संशोधित होंगे और प्रतिवादीगण उस राशि की गणना करेंगे जो विगत मजदूरी के 75% के बराबर होगी और आज से छह सप्ताह की अवधि के भीतर इस निर्णय के अंतर्गत भुगतान की जाने वाली शेष राशि को अतिरिक्त अपीलकर्ताओं को वितरित करेगी।

12. जैसा कि ऊपर देखा गया है, याचिकाकर्ता की सेवाओं को समाप्त करने का आक्षेपित आदेश प्रकृति में दंडात्मक है, एवं यह हस्तक्षेप किये जाने योग्य है, एवं याचिकाकर्ता उपरोक्त वादों में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि के दृष्टिगत विगत मजदूरी का हकदार होगा।

13. ऊपर की गई चर्चा के दृष्टिगत, मेरा विचार है कि सेवा- समाप्ति का आक्षेपित आदेश, संलग्नक संख्या 1, प्रकृति में दंडात्मक है और यह आदेश सामान्य नहीं है, और इस प्रकार, याचिकाकर्ता भारत के संविधान के अनुच्छेद 311 (2) के संरक्षण का हकदार है। आदेश अपास्त होने योग्य है एवं इसे एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है। याचिकाकर्ता समस्त परिणामी लाभों का अधिकारी होगा, जिसमें 50% विगत मजदूरी सम्मिलित है, बशर्ते कि वह यह वचनपत्र प्रस्तुत करे कि वह किसी अन्य विभाग में कार्यरत नहीं था और उसे उस वेतन के समान या उससे अधिक वेतन नहीं प्राप्त हो रहा था जो वह अपनी सेवाओं की समाप्ति से पूर्व प्राप्त कर रहा था। तदनुसार रिट याचिका स्वीकृत की जाती है।

(2023) 3 ILRA 160
मूल अधिकार क्षेत्र
सिविल पक्ष
दिनांक: लखनऊ 24.02.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया

रिट ए संख्या 8417/2022

शत्रुघ्न ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: अमरेंद्र नाथ त्रिपाठी, माया राम यादव

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: सी.एस.सी., नीरज चौरसिया

ए. सेवा कानून - निलंबन/सजा - उत्तर प्रदेश सरकारी कर्मचारी (अनुशासन और अपील) नियम, 1999: नियम 4 - नियम 4(1) के साधारण पाठ से स्पष्ट है कि निलंबन आदेश की अवधि केवल जांच के समाप्त होने तक होती है और उसके पश्चात नहीं। वर्तमान वाद में, निलंबन आदेश 19.10.2022 को समाप्त हो गया, जिस दिन याचिकाकर्ता के विरुद्ध जांच समाप्त हुई। **केवल इस कारण कि दिनांक 19.10.2022 का आदेश निरस्त कर दिया गया और प्रतिवादी को पुनः प्रक्रिया प्रारंभ करने की अनुमति दी गई, यह मानने का कोई आधार नहीं है कि निलंबन आदेश फिर से लागू होगा, जब तक कि यह नियम 4(6) के तहत उन शर्तों से संबंधित न हो, जहाँ सरकारी कर्मचारियों को बर्खास्त या सेवा से हटाने का आदेश दिया गया हो।** (पैराग्राफ 9)

बी. निलंबन आदेश के जारी रहने की वैधता केवल तब हो सकती है जब लगाए गए आरोपों से बड़ी सजा दी जा सके, जबकि वर्तमान वाद में प्रतिवादियों ने स्वयं जांच के निष्कर्ष पर 'छोटी सजा' लगा दी। स्पष्ट रूप से, 19.10.2022 का आदेश बर्खास्तगी या सेवा से हटाने की सजा नहीं दी गई है। (पैराग्राफ 10)

दिनांक 06.08.2022 का निलंबन आदेश दिनांक 19.10.2022 को समाप्त हो गया, जब याचिकाकर्ता के विरुद्ध जांच के निष्कर्ष के रूप में आदेश पारित किया गया। दिनांक 19.11.2022 का आदेश दिनांक 21.11.2022 को न्यायालय द्वारा अपास्त कर दिया गया और प्रतिवादियों को पुनः प्रक्रिया प्रारंभ करने की अनुमति दी गई। इसलिए, प्रतिवादी कानून के अनुसार ऐसा आदेश पारित करने के लिए स्वतंत्र होंगे। प्रतिवादी संख्या 2 को याचिकाकर्ता के वेतन की मांग और सभी संबंधित सेवा लाभों के संबंध में छह सप्ताह के भीतर नए आदेश पारित करने का निर्देश दिया गया है। (पैराग्राफ 11)

याचिका स्वीकार की गई। (ई-4)

वर्तमान याचिका दिनांक 06.08.2022 के निलंबन आदेश को चुनौती देती है, जिसके तहत याचिकाकर्ता को जांच के दौरान निलंबित किया गया था।

<u>माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया</u>

वर्तमान याचिका दिनांक 06.08.2022 के निलंबन आदेश को चुनौती देते हुए दायर की गई है, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता को एक जांच लंबित रहने तक निलंबित कर दिया गया था।

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का तर्क है कि दिनांक 06.08.2022 के आदेश द्वारा, याचिकाकर्ता को उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन और अपील)

नियमावली, 1999 (इसके बाद "नियमावली 1999" के रूप में संदर्भित) के नियम 4 द्वारा प्रदत्त शक्तियों के प्रयोग में एक जांच के विचार से निलंबित कर दिया गया था। यह तर्क दिया गया है कि निलंबन आदेश के अनुसरण में, याचिकाकर्ता के विरुद्ध एक आदेश पारित किया गया जिसके द्वारा याचिकाकर्ता को दो वेतन वृद्धियाँ रोकने और भर्त्सना की सजा दी गई।

यह तर्क दिया गया है कि 19.10.2022 को याचिकाकर्ता के विरुद्ध पारित दंड आदेश को याचिकाकर्ता ने रिट ए संख्या 7318 of 2022 दायर करके चुनौती दी थी। उक्त रिट याचिका स्वीकार कर ली गई थी। दिनांक 19.10.2022 का आदेश रद्द कर दिया गया था और प्रत्यर्थियों को कानून के अनुसार नए सिरे से कार्यवाही करने और तीन महीने की अवधि के भीतर जांच पूरी करने की स्वतंत्रता प्रदान की गई थी।

यह तर्क दिया गया है कि इस न्यायालय द्वारा 21.11.2022 को दिए गए निर्देशों के आलोक में, नई जांच शुरू की गई है, हालांकि, वह अभी तक पूरी नहीं हुई है और उस पर कानून के अनुसार कोई आदेश पारित नहीं किया गया है।

उक्त तथ्यों के आलोक में, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का तर्क है कि 06.08.2022 को याचिकाकर्ता के विरुद्ध पारित निलंबन आदेश पर अभी भी कार्रवाई की जा रही है और याचिकाकर्ता को काम करने की अनुमति नहीं दी जा रही है। वह तर्क देता है कि नियम 4 के अनुसार, निलंबन आदेश जांच के समापन तक जीवित रहना है और, इस प्रकार, जांच के समापन पर जो 19.10.2022 के आदेश के पारित होने का कारण बना, निलंबन आदेश तुरंत समाप्त हो गया। अतः, प्रत्यर्थियों के लिए यह आवश्यक था कि वे याचिकाकर्ता को काम जारी रखने की अनुमति देते।

वह आगे तर्क देतें है कि निलंबन आदेश का जारी रहना धारा 4(1) के पहले परंतुक के दृष्टिगत और भी अनुचित है, जो स्वयं निर्धारित करता है कि निलंबन का सहारा तब तक नहीं लिया जाना चाहिए जब तक कि आरोप इतने गंभीर न हों कि उनके स्थापित होने की स्थिति में सामान्यतः बड़ी शास्ति देने का औचित्य हो। वह तर्क देता है कि प्रत्यर्थियों के अपने दिखावे के अनुसार भी, याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाए गए आरोप अंततः नियम 3 में निर्धारित 'छोटी शास्ति' लगाने के आदेश के पारित होने का कारण बने और, इस प्रकार, निलंबन का जारी रहना भी धारा 4(1) के परंतुक का उल्लंघन है।

श्री रण विजय सिंह, अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता, राज्य की ओर से उपस्थित हुए और श्री नीरज चौरसिया, प्रत्यर्थी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता तर्क देते हैं कि दिनांक 19.10.2022 का आदेश इस न्यायालय द्वारा 21.11.2022 को रद्द कर दिया गया था और उक्त आदेश में नए सिरे से कार्यवाही करने की स्वतंत्रता प्रदान की गई थी। उसके आलोक में, वह तर्क देता है कि चूंकि दिनांक 19.10.2022 का आदेश रद्द हो गया था, निलंबन आदेश स्वतः पुनर्जीवित हो जाएगा। वह आगे तर्क देता है कि धारा 4(vi) निलंबन आदेश के स्वतः पुनर्जीवन के लिए भी प्रावधान करती है। वह, इस प्रकार, तर्क देता है कि याचिका खारिज किए जाने योग्य है।

उक्त तर्क के आलोक में, इस न्यायालय को 1999 के नियम के नियम 4 के दायरे का विश्लेषण करना है जो नीचे उद्धृत किए गए हैं:

*"4. **निलंबन-** (1) एक सरकारी सेवक जिसके आचरण के विरुद्ध एक जांच की कल्पना की जा रही है, या जो प्रगति पर है, को नियुक्ति प्राधिकारी के विवेक पर **जांच के समापन तक निलंबन के अधीन रखा जा सकता है:***

बशर्ते कि निलंबन का सहारा तब तक नहीं लिया जाना चाहिए जब तक कि सरकारी सेवक के विरुद्ध आरोप इतने गंभीर न हों कि उनके स्थापित होने की स्थिति में सामान्यतः बड़ी शास्ति देने का औचित्य हो:

बशर्ते यह भी कि संबंधित विभाग का प्रमुख जिसे राज्यपाल द्वारा इस संबंध में एक आदेश द्वारा अधिकृत किया गया है, समूह 'क' और 'ख' पदों से संबंधित एक सरकारी सेवक या सरकारी सेवकों के वर्ग को इस नियम के तहत निलंबन में रख सकता है:

बशर्ते यह भी कि समूह 'ग' और 'घ' पदों से संबंधित सरकारी सेवक या सरकारी सेवकों के वर्ग के मामले में, नियुक्ति प्राधिकारी इस नियम के तहत अपनी शक्ति को अगले निचले प्राधिकारी को प्रत्यायोजित कर सकता है।

(2) एक सरकारी सेवक जिसके संबंध में, या जिसके विरुद्ध एक आपराधिक आरोप से संबंधित एक जांच, अन्वेषण या परीक्षण, जो उसकी सरकारी सेवक के रूप में स्थिति से जुड़ा हुआ है या जो उसे अपने कर्तव्यों के निर्वहन में शर्मिंदा करने की संभावना रखता है या जिसमें नैतिक अधमता शामिल है, लंबित है, को नियुक्ति प्राधिकारी या वह प्राधिकारी जिसे इन नियमों के तहत निलंबन की शक्ति प्रत्यायोजित की गई है, के विवेक पर उस आरोप से संबंधित सभी कार्यवाहियों के समापन तक निलंबन में रखा जा सकता है।

(3) (क) एक सरकारी सेवक को निलंबन करने के लिए सक्षम प्राधिकारी के आदेश द्वारा निलंबन में रखा गया माना जाएगा या जैसा भी मामला हो, निलंबन में रखा जाना जारी माना जाएगा, उसकी हिरासत में लेने की तिथि से प्रभावी, यदि वह अड़तालीस घंटे से अधिक की अवधि के लिए हिरासत में रखा जाता है, चाहे हिरासत आपराधिक आरोप पर हो या अन्यथा।

(ख) उपरोक्त सरकारी सेवक हिरासत से रिहाई के बाद, सक्षम प्राधिकारी को अपनी हिरासत के बारे में लिखित में सूचित करेगा और माने गए निलंबन के विरुद्ध भी अभ्यावेदन कर सकता है। सक्षम प्राधिकारी मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के साथ-साथ इस नियम में निहित प्रावधान के आलोक में अभ्यावेदन पर विचार करने के बाद, हिरासत से रिहाई की तिथि से माने गए निलंबन को जारी रखने या उसे रद्द करने या संशोधित करने का उपयुक्त आदेश पारित करेगा।

(4) सरकारी सेवक को इन नियमों के तहत निलंबन करने के लिए सक्षम प्राधिकारी के आदेश द्वारा निलंबन में रखा गया माना जाएगा या जैसा भी मामला हो, निलंबन में रखा जाना जारी माना जाएगा, उसकी दोषसिद्धि की तिथि से प्रभावी, यदि किसी अपराध के लिए दोषसिद्धि की स्थिति में उसे अड़तालीस घंटे से अधिक के कारावास की सजा दी जाती है और वह ऐसी दोषसिद्धि के परिणामस्वरूप तुरंत बर्खास्त या हटाया नहीं जाता है।

स्पष्टीकरण- उप-नियम (1) में संदर्भित अड़तालीस घंटे की अवधि की गणना दोषसिद्धि के बाद कारावास के प्रारंभ से की जाएगी और इस उद्देश्य के लिए, कारावास की अंतराल अवधि, यदि कोई हो, को ध्यान में रखा जाएगा।

(5) जहां एक सरकारी सेवक पर लगाई गई सेवा से बर्खास्तगी या हटाने की शास्ति को अपील में या इन नियमों के तहत या इन नियमों द्वारा निरस्त किए गए नियमों के तहत समीक्षा में रद्द कर दिया जाता है और मामले को आगे की जांच या कार्रवाई के लिए या किसी अन्य निर्देश के साथ वापस भेज दिया जाता है-

(क) यदि वह शास्ति दिए जाने से ठीक पहले निलंबन के अधीन था, तो उसके निलंबन का आदेश, उपरोक्त किसी भी निर्देश के अधीन, बर्खास्तगी या हटाने के मूल आदेश की तिथि से और उस तिथि से लागू रहा माना जाएगा;

(ख) यदि वह निलंबन के अधीन नहीं था, तो वह, यदि अपीलीय या समीक्षा प्राधिकारी द्वारा निर्देशित किया जाता है, नियुक्ति प्राधिकारी के आदेश द्वारा बर्खास्तगी या हटाने के मूल आदेश की तिथि से और उस तिथि से निलंबन में रखा गया माना जाएगा:

परंतु यह कि इस उप-नियम में कुछ भी अनुशासनात्मक प्राधिकारी की शक्ति को प्रभावित करने वाला नहीं माना जाएगा, जहां एक सरकारी सेवक पर लगाई गई सेवा से बर्खास्तगी या हटाने की शास्ति को अपील में या इन नियमों के तहत समीक्षा में उन आरोपों के गुण-दोष के अलावा अन्य आधारों पर रद्द कर दिया जाता है, जिन पर उक्त शास्ति लगाई गई थी, लेकिन मामले को आगे की जांच या कार्रवाई के लिए या किसी अन्य निर्देश के साथ वापस भेज दिया जाता है, उन आरोपों पर आगे की जांच के लंबित रहने तक निलंबन का आदेश पारित करने के लिए, हालांकि, ऐसा कोई भी निलंबन पूर्वव्यापी प्रभाव नहीं रखेगा।

(6) जहां एक सरकारी सेवक पर लगाई गई सेवा से बर्खास्तगी या हटाने की शास्ति को किसी न्यायालय के निर्णय के परिणामस्वरूप या द्वारा रद्द या घोषित या शून्य कर दिया जाता है और नियुक्ति प्राधिकारी, मामले की परिस्थितियों पर विचार करने के बाद, उन आरोपों पर उसके खिलाफ आगे की जांच करने का निर्णय लेता है जिन पर बर्खास्तगी या हटाने की शास्ति मूल रूप से लगाई गई थी, चाहे आरोप अपने मूल रूप में रहें या स्पष्ट किए जाएं या उनके विवरण बेहतर ढंग से निर्दिष्ट किए जाएं या उनका कोई छोटा भाग छोड़ दिया जाए:

(क) यदि वह शास्ति दिए जाने से ठीक पहले निलंबन के अधीन था, तो उसके निलंबन का आदेश, नियुक्ति प्राधिकारी के किसी भी निर्देश के अधीन, बर्खास्तगी या हटाने के मूल आदेश की तिथि से और उस तिथि से लागू रहा माना जाएगा।

(ख) यदि वह ऐसे निलंबन के अधीन नहीं था, तो वह, यदि नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा निर्देशित किया जाता है, सक्षम प्राधिकारी के आदेश द्वारा और बर्खास्तगी या हटाने के मूल आदेश की तिथि से निलंबन में रखा गया माना जाएगा।

(7) जहां एक सरकारी सेवक निलंबित है या निलंबित माना गया है (चाहे किसी अनुशासनात्मक कार्यवाही के संबंध में या अन्यथा) और उस निलंबन की निरंतरता के दौरान उसके खिलाफ कोई अन्य अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की जाती है, तो उसे निलंबन में रखने के लिए सक्षम प्राधिकारी, अपने द्वारा लिखित में दर्ज किए जाने वाले कारणों के लिए, निर्देश दे सकता है कि सरकारी सेवक ऐसी सभी या किसी भी कार्यवाही के समाप्त होने तक निलंबन में रहेगा।

(8) इस नियम के तहत आदेशित या माना गया कोई भी निलंबन या लागू रहने वाला माना गया

निलंबन तब तक लागू रहेगा जब तक कि सक्षम प्राधिकारी द्वारा इसे संशोधित या निरस्त नहीं किया जाता।

(9) इस नियम के तहत निलंबन में रखा गया अथवा निलंबन में रखा माना गया सरकारी सेवक वित्तीय हस्तपुस्तिका, खंड II, भाग II से IV के मूल नियम 53 के प्रावधानों के अनुसार निर्वाह भत्ते का हकदार होगा।

नियम 4(i) के सरल पाठन से यह स्पष्ट है कि निलंबन आदेश का जीवन केवल जांच के समापन तक ही रहता है, उसके बाद नहीं। वर्तमान मामले में, निलंबन आदेश 19.10.2022 को समाप्त हो गया था, जो वह तिथि थी जिस दिन याचिकाकर्ता के खिलाफ जांच समाप्त हुई थी। केवल इसलिए कि उक्त आदेश को रद्द कर दिया गया था और प्रत्यर्थी को नए सिरे से कार्यवाही करने की स्वतंत्रता प्रदान की गई थी, यह मान्यता नहीं हो सकती कि निलंबन आदेश पुनः लागू हो जाएगा, सिवाय उन स्थितियों के जो नियम 4(vi) के अंतर्गत आती हैं, जहां सरकारी कर्मचारियों पर बर्खास्तगी या सेवा से हटाने का आदेश लागू किया गया हो।

वर्तमान मामले में, स्वीकार्य रूप से, 19.10.2022 के आदेश ने सेवा से बर्खास्तगी या हटाने का दंड नहीं लगाया है। इस प्रकार, उक्त नियम के नियम 4(vi) की व्याख्या के आधार पर प्रत्यर्थियों के वकील का तर्क स्वीकार नहीं किया जा सकता। अन्यथा भी, याचिकाकर्ता के वकील का दूसरा तर्क स्वीकार करने योग्य है कि निलंबन आदेश जारी रखने का औचित्य केवल तभी सिद्ध किया जा सकता है जब लगाए गए आरोप एक बड़े दंड के पुरस्कार की ओर ले जा सकते हों, जबकि वर्तमान मामले में प्रत्यर्थियों ने स्वयं जांच के निष्कर्ष पर एक 'छोटा दंड' लगाया था, इस प्रकार, यदि तर्क के लिए, प्रत्यर्थियों के वकील का तर्क स्वीकार भी कर लिया जाए, तो भी निलंबन आदेश नियम 4(i) के परंतुक से प्रभावित होगा। इस प्रकार, दोनों आधारों पर, रिट याचिका **स्वीकार** किए जाने योग्य है। 06.08.2022 का निलंबन आदेश 19.10.2022 को समाप्त हो गया घोषित किया जाता है जब याचिकाकर्ता के खिलाफ जांच के निष्कर्ष पर एक आदेश पारित किया गया था। इस न्यायालय द्वारा प्रत्यर्थियों को 21.11.2022 के निर्णय के अनुसार जांच समाप्त करने की दी गई स्वतंत्रता जारी रहेगी और प्रत्यर्थी कानून के अनुसार जो भी आदेश उचित हो, पारित करने के लिए स्वतंत्र होंगे। प्रत्यर्थी संख्या 2 को निर्देश दिया जाता है कि वह याचिकाकर्ता के वेतन भुगतान और सभी परिणामी सेवा लाभों के दावे के संबंध में छह सप्ताह की अवधि के भीतर नए आदेश पारित करे।

(2023) 3 ILRA 164

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 13.02.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति रमेश सिन्हा

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी

रिट ए संख्या 19501 वर्ष 2018

यू.पी.पी.सी.एल. एवं अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

उ.प्र. राज्य लोक सेवा अधिकरण एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता: विक्रांत रघुवंशी, नीरव चित्रवंशी

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: सी.एस.सी., देव राज सिंह, पी.के. श्रीवास्तव, रेणु मिश्रा

A. सेवा कानून - दंड - समय सीमा - उत्तर प्रदेश स्टेट पब्लिक (ट्रिब्यूनल) एक्ट, 1976 - धारा 5(1)(b) - समय सीमा का विवाद वाद की जड़ तक जाता है। यह एक अधिकार क्षेत्र का वाद है। समय सीमा अधिनियम को न्यायाधिकरण पर लागू किया गया है, जैसा कि यह एक वाद पर लागू होता था, इसलिए, इसकी धारा 5 का उपयोग धारा 4 के तहत दायर संदर्भ पर नहीं किया जा सकता। अगर कोई दावा याचिका समय सीमा के तहत प्रतिबंधित है, तो उसके गुणों की परवाह किए बिना, न्यायाधिकरण के समक्ष उसे सुनवाई करने के लिए कोई और विकल्प नहीं है। इसके पास विलंब क्षमा करने की शक्ति नहीं है। (पैराग्राफ 13)

जैसा कि धारा 5(1)(b) अभिकथन करती है कि उत्तर प्रदेश अधिनियम 1963 के प्रावधानों को संदर्भ अंतर्गत धारा 4 लागू किया जाएगा, जैसे कि संदर्भ एक दीवानी न्यायालय में दायर वाद था, समय सीमा अधिनियम की धारा 3 उस पर लागू होगी, जो कथन करती है कि समय सीमा के निर्धारित समय के पश्चात दायर किया गया वाद निरस्त कर दिया जाएगा, हालांकि समय सीमा को बचाव के रूप में नहीं प्रस्तुत किया गया है। न्यायाधिकरण के पास दावा याचिका दायर करने में विलंब क्षमा करने की शक्ति नहीं है। इसलिए, समय सीमा अवधि समाप्त होने के बाद दायर की गई दावा याचिका को निरस्त करना होगा और इसे इसके गुणों के आधार पर केवल इसलिए नहीं सुना जा सकता, क्योंकि इसे स्वीकार कर लिया गया था। (पैराग्राफ 24, 25)

B. एक निर्णय, जैसा कि सभी जानते हैं, उसी के लिए प्राधिकरण है जिसके बारे में यह निर्णय लेता है, और नहीं कि इससे क्या तार्किक रूप से निकाला जा सकता है। तथ्यों में थोड़ा सा अंतर या अतिरिक्त तथ्य एक निर्णय के पूर्ववर्ती मूल्य में बहुत बड़ा अंतर बना सकते हैं। (पैराग्राफ 19)

C. जब एक पुरानी या मृत मुद्दे/विवाद के संबंध में एक विलंब से प्रतिनिधित्व पर विचार किया जाता है और न्यायालय या न्यायाधिकरण के निर्देश के अनुपालन में इसे निर्णय लिया जाता है। उस निर्णय की तारीख को मृत मुद्दे या समय-सीमा से प्रतिबंधित विवाद को पुनर्जीवित करने के लिए कारण-कार्य के रूप में नहीं माना जा सकता। समय सीमा या देरी और कमी के मुद्दे को मूल कारण-कार्य के संदर्भ में विचार किया जाना चाहिए, न कि उस तारीख के संदर्भ में जिस पर अदालत के निर्देश के अनुपालन में आदेश पारित किया गया था। (पैराग्राफ 21, 22)

इस वाद में, दंड आदेश दिनांक 5.5.2006 को पारित किया गया था। प्रतिवादी संख्या 2 ने दिनांक 12.6.2006 को उत्तर प्रदेश पावर कॉर्पोरिशन लिमिटेड के समक्ष उक्त आदेश के विरुद्ध एक अनुमोदन प्रस्तुत किया। अनुमोदन को एक अपील के रूप में माना गया और दिनांक 22.5.2008 की तिथि के आदेश द्वारा निरस्त कर दिया गया। इसके पश्चात, प्रतिवादी संख्या 2 ने दिनांक 17.11.2008 और 30.3.2016 को उसी प्राधिकरण के पास पुनः अनुमोदन प्रस्तुत किए, बिना इस बात का उल्लेख किए कि ये किस प्रावधान के तहत दायर किए गए थे। अनुमोदन को इस कथन के साथ निस्तारित किया गया कि चूंकि प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा दायर अपील पहले ही निरस्त की जा चुकी थी, इसलिए उसके अनुमोदन पर कोई कार्रवाई करने की आवश्यकता नहीं थी। ये अनुमोदन किसी भी नियम के तहत दायर नहीं किए गए थे जो प्रतिवादी संख्या 2

की सेवा की शर्तों को नियंत्रित करते हैं। ऐसी परिस्थितियों में, लगातार अनुमोदन दायर करने से समय सीमा का विस्तार नहीं होगा। न्यायाधिकरण ने कानून में गलती की है कि उसने केवल इस आधार पर समय सीमा के मुद्दे का निर्णय नहीं लिया कि दावा याचिका को स्वीकार किया गया था। (पैराग्राफ 23)

रिट याचिका स्वीकृत। (E-4)

विधि व्यवस्था अनुसरित:

1. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम विवेकानंद सिंह और अन्य, MANU/UP/1557/2015 (पैराग्राफ 13)
2. क्षेत्रीय प्रबंधक बनाम पवन कुमार दूबे, (1976) 3 SCC 334 (पैराग्राफ 16)
3. आयकर आयुक्त बनाम सोन इंजीनियरिंग वर्क्स प्राइवेट लिमिटेड, (1992) 4 SCC 363 (पैराग्राफ 17)
4. अंबिका क्वारी वर्क्स बनाम राज्य गुजरात, (1987) 1 SCC 203 (पैराग्राफ 18)
5. भावनगर विश्वविद्यालय बनाम पलिताना शुगर मिल्स प्राइवेट लिमिटेड, (2003) 2 SCC 211 (पैराग्राफ 19)
6. सी. जकब बनाम भूविज्ञान और खनन उद्योग निदेशक और अन्य, (2008) 10 SCC 115 (पैराग्राफ 21)
7. भारत सरकार और अन्य बनाम एम.एस. सरकार, (2010) 2 SCC 59 (पैराग्राफ 22)

विधि व्यवस्था भिन्न:

भारत सरकार बनाम तरसेम सिंह, (2008) 8 SCC 648 (पैराग्राफ 14)

वर्तमान याचिका स्टेट पब्लिक सर्विस ट्रिब्यूनल द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 06.02.2018 के विरुद्ध योजित है, जिसके तहत प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा दायर दावा याचिका संख्या 1624/2016 को अनुमति किया गया था और दंड आदेश को निरस्त कर दिया गया था।

(माननीय न्यायमूर्ति रमेश सिन्हा, और माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी, द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता - पावर कॉर्पोरेशन के अधिवक्ता श्री नीरव चित्रवंशी, विरोधी पक्ष के विद्वान अधिवक्ता सुश्री रेनू मिश्रा एडवोकेट एवं राज्य के विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री आनंद कुमार सिंह को सुना एवं अभिलेखों का अवलोकन किया।

2. वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ता- उ.प्र. पावर कॉर्पोरेशन लिमिटेड ने राज्य लोक सेवा अधिकरण (इसके बाद 'अधिकरण' के रूप में संदर्भित) द्वारा पारित निर्णय एवं आदेश दिनांक 6.2.2018 को चुनौती देते हुए इस न्यायालय की ओर उन्मुख हुआ, जिसके अंतर्गत 2016 की दावा याचिका संख्या 1624, जो विपक्षी संख्या 2 द्वारा दायर की गई थी, को अनुमति दी गई।

3. उपरोक्त दावा याचिका विपक्षी संख्या 2 द्वारा, अध्यक्ष, उ.प्र.पावर कॉर्पोरेशन लिमिटेड/विपक्षी संख्या 2, द्वारा पारित दिनांक 5.5.2006 के आदेश को चुनौती देते हुए दायर की गई थी, जिसके अंतर्गत प्रतिवादी संख्या 2 पर निंदा प्रविष्टि एवं संचयी प्रभाव से दो वार्षिक वेतन वृद्धि रोकने की सजा दी गई थी।

4. दिनांक 12.6.2006 को प्रतिवादी संख्या 2 ने उ.प्र. पावर कॉर्पोरेशन लिमिटेड के सम्मुख दंड

आदेश दिनांक 5.5.2006 के विरुद्ध एक अभ्यावेदन प्रस्तुत किया था एवं उक्त अभ्यावेदन को एक अपील के रूप में माना गया तथा उसे दिनांक 22.5.2008 के एक आदेश के माध्यम से खारिज भी कर दिया गया। इसके बाद, प्रतिवादी संख्या 2 ने उपरोक्त आदेशों के विरुद्ध दिनांक 17.11.2008 एवं 30.3.2016 को दो अभ्यावेदन प्रस्तुत किए, जिनका निस्तारण दिनांक 6.6.2016 के आदेश के माध्यम से किया गया, जिसमें कहा गया कि प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा दायर अपील को दिनांक 22.5.2008 के एक आदेश के माध्यम से पहले ही खारिज कर दिया गया था एवं इसलिए, उसके अभ्यावेदन दिनांक 17.11.2008 या 30.3.2016 पर कोई कार्रवाई आवश्यक नहीं थी।

5. प्रतिवादी संख्या 2 ने उपरोक्त सभी आदेशों दिनांक 5.5.2006 को चुनौती देते हुए दावा याचिका दायर की थी, जिसमें निंदा प्रविष्टि एवं वार्षिक वेतन वृद्धि रोकने की सजा दी गई थी, दिनांक 22.5.2008 का आदेश द्जिसके द्वारा उसकी अपील को खारिज कर दियागया था एवं उसके अभ्यावेदन को खारिज करने वाले 6.6.2016 के आदेश को , न्यायाधिकरण के समक्ष दावा याचिका संख्या 1624/2016 दायर करके चुनौती दी थी।

6. याचिकाकर्ता- उ.प्र. पावर कॉर्पोरेशन लिमिटेड, जो दावा-याचिका में एक विरोधी पक्ष था, ने इस प्राथमिक आधार पर दावा-याचिका का विरोध किया कि दण्डादेश दिनांक 5.5.2006 को पारित किया गया था एवं दावा-याचिका को उ.प्र.राज्य सार्वजनिक (न्यायाधिकरण) अधिनियम के अनुभाग 5 में प्रदान की गई परिसीमा से वर्जित कर दिया गया था।

7. अधिकरण ने माना कि प्रतिवादी संख्या 2 ने नवीनतम आदेश दिनांक 6.6.2016 को चुनौती दी थी एवं दावा-याचिका दिनांक 16.8.2016 को दायर की गई थी, जिसे दिनांक 27.10.2016 को स्वीकार किया गया था एवं ऐसी परिस्थितियों में प्रश्न पर पुनर्विचार करने की शायद ही कोई आवश्यकता थी। इस प्रकार, स्पष्टतः परिसीमा के तर्क पर अधिकरण द्वारा मात्र इस कारण से विचार नहीं किया गया कि दावा याचिका स्वीकार कर ली गई थी।

8. राज्य लोक सेवा अधिकरण अधिनियम की धारा 5(1)(बी) में निम्नानुसार प्रावधान है:-

> *"(ख) धारा 4 के अधीन किसी निर्देश पर परिसीमा अधिनियम, 1963 के उपबन्ध यथावश्यक परिवर्तन सहित, लागू होंगे मानो निर्देश सिविल न्यायालय में दाखिल किया गया कोई वाद हो किन्तु-*
>
> *(1) उक्त अधिनियम की अनुसूची में विहित परिसीमा काल के होते हुए भी, ऐसे निर्देश के लिए परिसीमा-काल एक वर्ष होगी;*
>
> *(2) परिसीमा-काल की संगणना करने में, उस दिनांक से जब लोक-सेवक अपनी सेवा की शर्तों को विनियमित करने वाले नियमों या आदेशों के अनुसार कोई अभ्यावेदन करता है या कोई अपील, पुनरीक्षण या कोई अन्य याचिका (जो राज्यपाल को*

दिया गया विनिवेदन न हो) प्रस्तुत करता है, प्रारम्भ होने वाली, और उस दिनांक को जब ऐसे लोक-सेवक को, यथास्थिति, ऐसे अभ्यावेदन, अपील, पुनरीक्षण या याचिका पर दिये गये अंतिम आदेश की जानकारी हो, समाप्त होने वाली अवधि को सम्मिलित नहीं किया जायेगा।

9. उपरोक्त वैधानिक आदेश के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि दावा-याचिका दायर करने हेतु परिसीमा की अवधि एक वर्ष है एवं परिसीमा की अवधि की गणना करने में, वह अवधि जिस पर कर्मचारी प्रतिनिधित्व करता है या अपील प्रस्तुत करता है, उसकी सेवा की शर्तों को विनियमित करने वाले नियमों या आदेशों के अनुसार पुनरीक्षण या कोई अन्य याचिका एवं उस तिथि को समाप्त होने वाली जिस तिथि को ऐसे लोक सेवक को ऐसे अभ्यावेदन, अपील, या पुनरीक्षण या याचिका पर पारित अंतिम आदेश की जानकारी होती है, को बाहर रखा जाएगा।

10. वर्तमान वाद में, दण्डादेश दिनांक 5.5.2006 को पारित किया गया था एवं परिसीमा की अवधि अगले दिन से शुरू होती है।

11. याचिकाकर्ता ने उपरोक्त आदेश के विरुद्ध दिनांक 12.6.2006 को एक अभ्यावेदन प्रस्तुत किया था एवं उसे दिनांक 22.5.2008 के एक आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया गया था। इसके बाद, याचिकाकर्ता का दावा है कि उसने दिनांक 17.11.2008 एवं 30.3.2016 को पुनः अभ्यावेदन प्रस्तुत किए हैं। दिनांक 17.11.2008 के अभ्यावेदन, जिसके अंतर्गत इसे दायर किया गया था, में किसी नियम या विधि के किसी अन्य प्रावधान का उल्लेख नहीं किया गया है। लगभग आठ वर्षों तक इस वाद पर कुछ भी कार्रवाई न करने के बाद प्रतिवादी संख्या 2 ने आदेश दिनांक 22.5.2008 पर पुनः विचार हेतु दिनांक 30.3.2016 को पुनः अभ्यावेदन प्रस्तुत किया। उक्त अभ्यावेदन दिनांक 6.6.2016 के आदेश के माध्यम से यह कहते हुए खारिज कर दिया गया कि अभ्यावेदन दिनांक 17.11.2008 को भेज दिया गया था, क्योंकि उनकी अपील पहले ही दिनांक 22.5.2008 के आदेश के माध्यम से खारिज कर दी गई थी एवं अभ्यावेदन पर कोई कार्रवाई आवश्यक नहीं थी। दिनांक 6.6.2016 के आदेश में आगे कहा गया है कि दंड आदेश को रद्द करने हेतु उनके पत्र दिनांक 30.3.2016 के माध्यम से किए गए अनुरोध पर कोई कार्रवाई आवश्यक नहीं थी।

12. उ.प्र. लोक सेवा (न्यायाधिकरण) अधिनियम की धारा 5 **"सेवा की शर्तों को विनियमित करने वाले नियमों या आदेशों के अनुसार"** प्रस्तुत अभ्यावेदन, अपील, पुनरीक्षण या किसी अन्य याचिका के निस्तारण के निर्णय में व्यय समय को वर्जित करने का उपबंध करती है। चूँकि प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा बार- बार प्रस्तुत किये गए अभ्यावेदनों में उनकी सेवा शर्तों को विनियमित करने वाले किसी भी नियम या आदेश का उल्लेख नहीं किया गया है, अतः दिनांक 5.5.2006 के दंडादेश के विरूद्ध बार- बार प्रस्तुत किये गए अभ्यावेदन दाखिल करने से उ.प्र. राज्य लोक सेवा (न्यायाधिकरण) अधिनियम की धारा

5 (1) के अंतर्गत निर्धारित परिसीमा अवधि नहीं बढ़ेगी।

13. इस संबंध में, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री नीरव चित्रवंशी ने इस न्यायालय के समक्ष, इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ द्वारा दिनांक 29.5.2015 को घोषित निर्णय **उ.प्र. राज्य बनाम विवेकानन्द सिंह एवं एक अन्य**, एमएएनयू/यूपी/1557/2015 प्रस्तुत किया है जिसमें इस न्यायालय ने माना कि मूल आदेश 28.12.2012 को पारित किया गया था एवं इसके विरूद्ध कोई वैधानिक उपाय नहीं किया गया था, अतः दावा-याचिका दायर करने हेतु परिसीमा अवधि मूल आदेश पारित होने की तारीख से एक वर्ष तक थी को रखा है। इस न्यायालय ने आगे कहा कि "*परिसीमा का बिंदु वाद की जड़ तक जाता है। इसमें क्षेत्राधिकार का बिंदु शामिल है। परिसीमा अधिनियम को न्यायाधिकरण पर लागू किया गया है, क्योंकि यह एक वाद पर लागू था, इस प्रकार, अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत निर्देश हेतु प्रार्थनापत्र का धारा 5 में कोई प्रावधान नहीं है। यदि कोई दावा याचिका परिसीमा द्वारा वर्जित है, तो उसके गुण-दोष के इतर, न्यायाधिकरण के पास उस पर विचार करने से इनकार करने के अतिरिक्त कोई अन्य विकल्प नहीं है। उसके पास विलंब को क्षमा करने की शक्ति नहीं है।*"

14. इसके विपरीत, प्रतिवादी संख्या 2 हेतु विद्वान अधिवक्ता सुश्री रेनू मिश्रा ने रिट याचिका का विरोध किया है एवं उसने ***भारत संघ बनाम तरसेम सिंह, (2008) 8 एससीसी 648*** के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया है, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था कि :-

"4. ऐसे सिद्धांतों को जिनमें लगातार गलतियाँ एवं बार-बार होने वाली/क्रमिक वाली गलतियाँ अंतर्निहित हैं, सेवा विधि विवादों पर लागू किया गया है। "निरंतर गलत" का तात्पर्य एक एकल गलत कार्य से है जो निरंतर चोट का कारण बनता है। "आवर्ती/क्रमिक गलतियाँ" वे हैं जो समय-समय पर होती हैं एवं प्रत्येक गलती एक विशिष्ट एवं भिन्न विवाद्यक को जन्म देती है। इस न्यायालय ने बालकृष्ण सावलराम पुजारी वाघमारे बनाम श्री ध्यानेश्वर महाराज संस्थान ने जारी रहने वाली गलती की अवधारणा को समझाया (परिसीमा अधिनियम, 1908 की धारा 23 के संदर्भ में परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 22 के अनुरूप): (एआईआर पृष्ठ 807, पैरा 31)

"31.... निरंतर होने वाली गलती का सार यही है कि यह एक ऐसा कार्य है जो क्षति का एक निरंतर स्रोत बनाता है एवं उस कार्य के कर्ता को उक्त क्षति की निरंतरता हेतुउत्तरदायी बनाता है। यदि गलत कृत्य के कारण पूर्ण क्षति होती है,

तो कोई भी जारी रहने वाली गलती नहीं होगी, भले ही कार्य से होने वाली क्षति जारी रह सकती है। हालाँकि, यदि कोई गलत कार्य इस प्रकार का है कि उसके कारण होने वाली क्षति स्वयं जारी रहती है, तो वह कार्य निरंतर गलत होता है। इस संबंध में, गलत कार्य के कारण हुई क्षति और उक्त क्षति के प्रभाव के बीच अंतर करना आवश्यक है।'

* * *

8. इस वाद में, सोलह वर्षों की देरी एरियर हेतु परिणामी दावे को प्रभावित करेगी। उच्च न्यायालय द्वारा सोलह वर्षों से संबंधित एरियर भुगतान का निर्देश देना उचित नहीं था, वह भी ब्याज सहित। इसे अवशेष से संबंधित राहत को रिट याचिका की तिथि से केवल तीन साल पहले या मांग की तिथि से रिट याचिका की तिथि तक, जो भी कम हो, तक सीमित रखना चाहिए था। ऐसी परिस्थितियों में एरियर पर ब्याज नहीं देना चाहिए था।"

15. उपरोक्त वाद एक ऐसे व्यक्ति को विकलांगता पेंशन से इनकार करने से शुरू हुआ, जिसे मेडिकल श्रेणी में सेना सेवा से बाहर कर दिया गया था एवं माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा एक पूर्व सैनिक को विकलांगता पेंशन से इनकार करने के संदर्भ में उपरोक्त टिप्पणियां की गई थी, जिसे "निरंतर गलत" माना गया था, हालांकि, वर्तमान वाद में चुनौती एक निंदा प्रविष्टि देने एवं संचयी प्रभाव के साथ दो वार्षिक वेतन वृद्धि रोकने के दंडादेश के विरूद्ध थी, जो विकलांगता पेंशन से इनकार करने के समान नहीं है।

16. **क्षेत्रीय प्रबंधक बनाम पवन कुमार दुबे, (1976) 3 एससीसी 334 में**, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारित किया कि: -

"7.... यह किसी वाद के तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विधि के अनुप्रयोग से निकाला जाने वाला नियम है, जो इसके निर्णय आधार का गठन करता है, न कि तथ्यों पर आधारित कुछ निष्कर्ष, जो समान प्रतीत हो सकते हैं। एक अतिरिक्त या भिन्न तथ्य दो मामलों में निष्कर्षों के बीच जमीन-आसमान का अंतर कर सकता हैएं, भले ही प्रत्येक मामले में सिद्धांत समान तथ्यों पर लागू किए जाएं।"

(न्यायालय द्वारा बल दिया गया)

17. **आयकर आयुक्त बनाम सन इंजीनियरिंग वर्क्स प्रा. लिमिटेड, (1992) 4 एससीसी 363**, में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि: -

"39... विचाराधीन प्रश्न के संदर्भ से प्रकट इस न्यायालय के निर्णय से एक शब्द या एक वाक्य को चुनना एवं इसे "इस न्यायालय द्वारा घोषित पूर्ण विधि" मानना न तो वांछनीय है एवं न ही

स्वीकार्य है। निर्णय को समग्र रूप से पढ़ा जाना चाहिए एवं निर्णय की टिप्पणियों पर उन प्रश्नों के प्रकाश में विचार किया जाना चाहिए जो इस न्यायालय के समक्ष थे। इस न्यायालय का एक निर्णय उस वाद में शामिल प्रश्नों से अपनी प्रकृति की रचना करता है जिसके सन्दर्भ में इसे प्रस्तुत किया गया है एवं किसी बाद के वाद में निर्णय को लागू करते समय, न्यायालय को सावधानीपूर्वक इस न्यायालय के निर्णय द्वारा निर्धारित सही सिद्धांत का पता लगाने का प्रयास करना चाहिए, एवं अपनी तार्किकता को पुष्ट करने के लिए निर्णय से शब्दों या वाक्यों का चयन उन विचाराधीन प्रश्नों के संदर्भ से इतर नहीं करना चाहिये जो इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत थें..."

(न्यायालय द्वारा बल दिया गया)

18. फिर **अंबिका क्वारी वर्क्स बनाम गुजरात राज्य,** (1987) 1 एससीसी 203 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि "किसी भी निर्णय के आधार को उस वाद के तथ्यों की पृष्ठभूमि में समझा जाना चाहिए। बहुत समय पहले कहा गया था कि एक वाद मात्र इस बात का प्राधिकार है कि उसके द्वारा क्या निर्णय लिया गया है, न कि उससे तार्किक रूप से प्रकट होता है।"

19. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **भाव नगर विश्वविद्यालय बनाम पलिताना शुगर मिल्स प्राइवेट लिमिटेड, (2003) 2 एससीसी 211,** वाद में उपरोक्त सिद्धांतों को यह कहते हुए दोहराया कि - "59... जैसा कि सर्वविदित है, कोई निर्णय निर्णीत प्रश्नों हेतु प्राधिकार है , न कि इससे तार्किक रूप से प्राप्त होने वाले निष्कर्षों के लिये।" यह भी सुस्थापित है कि "तथ्यों में थोड़ा भी अंतर या अतिरिक्त तथ्य किसी निर्णय पूर्वनिर्णय मूल्य में बहुत अंतर ला सकता है।"

20. इसलिए, एक पूर्व सैनिक को विकलांगता पेंशन से इनकार करने से उत्पन्न वाद में दिया गया उपरोक्त निर्णय वर्तमान वाद पर लागू नहीं होगा, जो निंदा प्रविष्टि एवं दो वार्षिक वेतन वृद्धि रोकने के दंड से उत्पन्न हुआ है।

21. **C.Jaqab v. Director of Geology and Mining Indus. Est.& anr., (2008) 10 SCC 115**, वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि "जब न्यायालय या न्यायाधिकरण के निर्देश के अनुपालन में दावे या अभ्यावेदन पर विचार करने एवं खारिज करने का आदेश पारित किया जाता है, तो ऐसा आदेश पुराने दावे को पुनर्जीवित नहीं करता है, न ही किसी नए वादबिंदु को जन्म देने हेतु कुछ सीमा तक "न्यायिक संबंध की अभिस्वीकृति" के बराबर है।"

22. **भारत संघ एवं अन्य बनाम एम.एस.सरकार, (2010) 2 एससीसी 59**, में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि *"जब किसी पुराने या निष्क्रिय मुद्दे/विवाद के संबंध में विलंबित अभ्यावेदन पर विचार किया जाता है एवं निर्णय लिया जाता है, तो ऐसा करने हेतु न्यायालय या न्यायाधिकरण के निर्देश के अनुपालन में उक्त निर्णय की तिथि को निष्क्रिय मुद्दे या समय-बाधित विवाद को पुनर्जीवित करने हेतु वादबिंदु प्रस्तुत करने के रूप में नहीं माना जा सकता है। परिसीमा एवं विलंब के मुद्दे को मूल कारण के संदर्भ में माना जाना चाहिए, एवं उस तिथि के*

संदर्भ में नहीं जिस दिन न्यायालय के निर्देश के अनुपालन में आदेश पारित किया जाता है।"

23. वर्तमान वाद के तथ्यों का माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित एवं ऊपर उल्लिखित विधि के आलोक में परीक्षण करने पर यह स्पष्ट है कि दण्डादेश दिनांक 5.5.2006 को पारित किया गया था। प्रतिवादी संख्या 2 ने उक्त आदेश के विरूद्ध दिनांक 12.6.2006 को उ.प्र. पावर कॉर्पोरेशन लिमिटेड को अभ्यावेदन प्रस्तुत किया। अभ्यावेदन को एक अपील के रूप में माना गया एवं दिनांक 22.5.2008 के एक आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया गया। इसके पश्चात, प्रतिवादी संख्या 2 ने पुनः उसी प्राधिकारी को दिनांक 17.11.2008 और 30.3.2016 को अभ्यावेदन प्रस्तुत किया, बिना उस प्रावधान का उल्लेख किए जिसके अंतर्गत वे दायर किए गए थे। यह कहते हुए अभ्यावेदन का निस्तारण कर दिया गया कि प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा दायर अपील को पहले ही खारिज कर दिया गया था, उनके अभ्यावेदन पर कोई कार्रवाई आवश्यक नहीं थी। प्रतिवादी संख्या 2 की सेवा शर्तों को नियंत्रित करने वाले किसी भी नियम के अंतर्गत अभ्यावेदन दायर नहीं किया गया था। ऐसी परिस्थितियों में, लगातार अभ्यावेदन दायर करने से परिसीमा की अवधि नहीं बढ़ेगी। न्यायाधिकरण ने मात्र इस आधार पर कि दावा याचिका स्वीकार कर ली गई थी, परिसीमा की याचिका पर निर्णय न करके विधिक त्रुटि की है।

24. उ0प्र0 लोक सेवा (अधिकरण) अधिनियम 1976 की धारा 5(1)(बी) के अनुसार प्रावधान है कि उत्तर प्रदेश अधिनियम 1963 के प्रावधान *यथावश्यक परिवर्तन* सहित धारा 4 के अंतर्गत निर्देश पर लागू होंगे, क्योंकि निर्देश दीवानी न्यायालय में दायर एक मुकदमा था, अतः परिसीमा अधिनियम की धारा 3 इस पर लागू होगी, जो प्रावधान करती है कि परिसीमा की निर्धारित अवधि के बाद दायर किया गया मुकदमा खारिज कर दिया जाएगा, हालांकि परिसीमा को बचाव के रूप में स्थापित नहीं किया गया है। न्यायाधिकरण के पास दावा याचिका दायर करने में विलंब को क्षमा करने की कोई शक्ति नहीं है। इसलिए, परिसीमा अवधि की समाप्ति के बाद दायर दावा याचिका को खारिज कर दिया जाना चाहिए एवं इस पर मात्र इसलिए विचार नहीं किया जा सकता है एवं इसकी योग्यता के आधार पर निर्णय नहीं लिया जा सकता है क्योंकि इसे स्वीकार कर लिया गया है।

25. उपरोक्त चर्चाओं के दृष्टिगत, हमारा विचार है कि दावा याचिका जो प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा न्यायाधिकरण के समक्ष दिनांक 13.08.2016 को दंडादेश दिनांक 05.05.2006 को चुनौती देते हुए दायर की गई थी, एवं अपीलीय आदेश दिनांक 22.05.2008 उ.प्र. लोक सेवा (न्यायाधिकरण) अधिनियम 1976 की धारा 5 के अंतर्गत निर्धारित परिसीमा अवधि द्वारा वर्जित था, एवं न्यायाधिकरण ने दावा-याचिका पर विचार करने, एवं परिसीमा के अभिवाक पर इस आधार पर निर्णय किए बिना कि दावा याचिका स्वीकार कर ली गई थी, उसे अनुमति देने में त्रुटि की है। दावा याचिका परिसीमा द्वारा वर्जित होने के कारण खारिज किये जाने योग्य थी।

26. उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, रिट याचिका स्वीकार की जाती है। न्यायाधिकरण द्वारा वर्ष 2016 की दावा याचिका संख्या 1624 को

अनुमति देते हुए दिनांक 06.02.2018 को पारित निर्णय एवं आदेश को रद्द कर दिया जाता है एवं दावा याचिका खारिज की जाती है।

(2023) 3 ILRA 170

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 17.03.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति करूणेश सिंह पवार

रिट ए संख्या 21190/2016

देवी सिंह ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: प्रभात कुमार

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: सी.एस.सी.

A. सेवा कानून - निर्देशों का पालन/आदेश का कार्यान्वयन - पदोन्नति - देय वेतन - जब भी अधिकारियों को यह निर्देश दिया जाता है कि वे सभी लाभ प्रदान करें जो याचिकाकर्ता को मिलते, अगर उसे अवैध रूप से उनसे वंचित नहीं किया गया होता, तो अधिकारियों के लिए यह कहना सही नहीं है कि उसने काम नहीं किया और इसलिए उसे वेतन नहीं दिया जाना चाहिए या लाभ नहीं मिलना चाहिए। अधिकारियों के लिए उचित तरीका यह है कि वे उस आदेश को अपील में चुनौती दें। वे उस आदेश के कार्यान्वयन में यह तर्क नहीं ले सकते। (पैराग्राफ 8)

यदि अधिकारियों को किसी न्यायालय द्वारा पारित आदेश से आक्षेप है, तो हमेशा उनके लिए उचित न्यायालय में चुनौती देने का अधिकार है। हालांकि, वर्तमान वाद के तथ्यों में, आदेश दिनांक 23.02.2012, स्पष्ट रूप से, विपक्षी पक्षों द्वारा चुनौती नहीं दी गई है, इसलिए यह अंतिम हो गया है। बिना दिनांक 23.02.2012 के आदेश को चुनौती दिए, अधिकारियों के लिए यह कहना सही नहीं है कि चूंकि याचिकाकर्ता ने काम नहीं किया, इसलिए उसे लाभ नहीं मिलेगा। (पैराग्राफ 12)

एक बार जब सक्षम न्यायालय द्वारा निर्देश जारी किया जाता है, तो उसे बिना किसी शर्त के पालन और कार्यान्वयन करना चाहिए। अधिकारियों को यह अनुमति नहीं दी जा सकती कि वे रिट न्यायालय द्वारा जारी निर्देश का पालन न करें या उसे नजरअंदाज करें। यदि किसी पक्ष को रिट न्यायालय द्वारा पारित आदेश से आक्षेप है, तो उसके पास यही उपाय है कि वह उचित विधिक प्रक्रिया के तहत उसे चुनौती दे। (पैराग्राफ 12)

आपेक्षित आदेश दिनांक 03.04.2012 अपास्त किया जाता है। प्रतिवादियों को निर्देश दिया जाता है कि वे याचिकाकर्ता को सभी परिणामी लाभ, जिसमें पेंशन संबंधी लाभ और वेतन दे सम्मिलित हैं, प्रदान करें, जैसा कि रिट न्यायालय के आदेश दिनांक 23.02.2012 में निर्देशित किया गया है। (पैराग्राफ 13)

याचिका स्वीकृत। (E-4)

<u>विधिव्यवस्था अनुसरित:</u>

1. कमिश्नर, कर्नाटक हाउसिंग बोर्ड बनाम सी. मूड़ैया, 2007 (7) SCC 689 (पैराग्राफ 8)

2. खाद्य निगम ऑफ इंडिया बनाम एस.एन. नागरकर, AIR 2002 सुप्रीम कोर्ट 808 (पैराग्राफ 9)

3. केरल राज्य एवं अन्य बनाम ई.के. भास्करन पिल्लै, (2007) 6 SCC 524 (पैराग्राफ 10)

वर्तमान याचिका आदेश दिनांक 03.04.2012 के विरुद्ध योजित है, जो प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा पारित किया गया, जो केवल याचिकाकर्ता को 24.01.1980 से अधीनस्थ कृषि सेवा समूह-II (क्लास III) पद पर बकाए बिना काल्पनिक पदोन्नति प्रदान करता है।

<u>माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पँवार</u>

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री प्रभात कुमार, राज्य-विपक्षीगण के विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना गया तथा अभिलेख का अवलोकन किया गया।

2. इस याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ता ने निम्नलिखित अंतिम राहत के लिए प्रार्थना की है:

> "ए. उत्प्रेषण-पत्र की प्रकृति में रिट, आदेश या निर्देश जारी करें, जिससे दिनांक 3.4.2012 के विवादित आदेश के भाग को रद्द किया जा सके। विपक्षी पक्षकार संख्या 2 द्वारा पारित जैसा कि अनुलग्नक संख्या 1 में निहित है इस रिट याचिका में याचिकाकर्ता को 24.01.1980 से अधीनस्थ कृषि सेवा समूह-II (श्रेणी III) पद पर बिना वेतन बकाया के केवल काल्पनिक पदोन्नति प्रदान की गई है।
>
> बी. परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें और विरोधी पक्षकार नंबर 2 को निर्देश दें कि याचिकाकर्ता को 24.01.1980 से अधीनस्थ कृषि सेवा समूह II (वर्ग- III) पद पर 12% ब्याज के साथ नियमित पदोन्नति प्रदान की जाए।"

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता की नियुक्ति 24.06.1966 को हुई थी अधीनस्थ कृषि सेवा (एसएएस) ग्रुप-III में भूमि संरक्षण अधिकारी, इटावा के कार्यालय में सहायक मृदा संरक्षण निरीक्षक के पद पर कार्यरत। 01.01.1974 को उनकी स्थायी नियुक्ति हुई। 20.11.1999 को उन्हें पदोन्नति दी गई। ग्रुप-II के उच्च पद पर कार्यरत थे और वे 30.06.2005 को सेवानिवृत्त हुए। वेतनमान 5000-8000/- में। तथापि, याची को समय पर पदोन्नति के लिए विचार नहीं किया गया। विपक्षीगण ने याची की पदोन्नति पर विचार करते समय पिक एंड चूज की नीति अपनाई तथा 1980 से याची से कनिष्ठ अनेक कर्मचारियों को पदोन्नति दी । इसी प्रकार कुछ व्यक्तियों ने दावा याचिका संख्या 613/(I)/(II)/ 80 ; शिव शंकर त्रिपाठी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य उत्तर प्रदेश लोक सेवा अधिकरण के समक्ष दायर की, जिसे 07.12.1985 को स्वीकार कर लिया गया तथा वेतन भत्ते आदि सहित पदोन्नति के लिए पूर्वव्यापी प्रभाव से निर्देश भी दिया गया।

4. न्यायाधिकरण द्वारा दिनांक 07.12.1985 को पारित आदेश इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका संख्या 1782 दायर करके चुनौती दी गई थी 1988 का ; उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम श्री शिव शंकर त्रिपाठी और अन्य जिसे 01.08.1991 के आदेश द्वारा बरकरार रखा गया था इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 01.08.1991 के आदेश को विशेष अनुमति याचिका संख्या 10199/92 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी, जिसे 30.08.1996 को खारिज कर दिया गया था, जिसमें उच्च न्यायालय और विद्वान

न्यायाधिकरण द्वारा पारित आदेश की पुष्टि की गई थी।

5. इसी बीच, कुछ अन्य सेवानिवृत्त कर्मचारियों ने दावा याचिका संख्या 1079 दायर की 2012 का विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष और दावा याचिका को भी दिनांक 19.10.2012 के निर्णय और आदेश द्वारा अनुमति दी गई थी न्यायाधिकरण द्वारा पारित किया गया। न्यायाधिकरण का दिनांक 19.10.2012 का आदेश रिट याचिका संख्या 384(एसबी) 2013; उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम सत्य पाल सिंह और अन्य दायर करके फिर से चुनौती दी गई। इस न्यायालय की खंडपीठ ने 18.03.2013 के आदेश के तहत न्यायाधिकरण द्वारा पारित आदेश को पुनः बरकरार रखा था ।

6. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि याचिकाकर्ता की तरह ही कुछ अन्य कर्मचारियों ने भी रिट याचिका संख्या 6368 (एसएस) 1997 ; गोकरन प्रसाद कनौजिया और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य दायर करके सीधे इस न्यायालय से संपर्क किया था, जिसे 19 मई, 2006 के निर्णय और आदेश द्वारा स्वीकार किया गया था । आदेश रिकॉर्ड पर है (अनुलग्नक संख्या 3)। इसके बाद, याचिकाकर्ता ने विभाग का प्रतिनिधित्व करने के बाद रिट याचिका संख्या 986 (एसएस) 2012 दायर की थी। जिसका निपटारा रिट याचिका संख्या 6368 (एसएस) 1997 में पारित दिनांक 19 मई, 2006 के निर्णय और आदेश के अनुसार दिनांक 23.02.2012 के आदेश के अनुसार किया गया। रिट याचिका संख्या 986 (एसएस) 2012 में इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 23.02.2012 के आदेश का सार नीचे दिया गया है:

"विपक्षी पक्षों की ओर से प्रस्तुत नोटिस को विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता द्वारा स्वीकार कर लिया गया है।

याचिकाकर्ताओं ने अनुच्छेद 226 के तहत इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है भारतीय संविधान के अनुच्छेद 15 के अंतर्गत इस शिकायत के साथ कि वे उस तिथि से प्रोन्नति वेतनमान के हकदार हैं, जिस तिथि से उनके कनिष्ठों को अधीनस्थ कृषि सेवा ग्रुप-II (श्रेणी-III) में पदोन्नति वेतनमान दिया गया था।

बार में इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि समान विवाद को रिट याचिका संख्या 6368 (एस/एस) 1997 में पारित दिनांक 19.05.2006 के निर्णय और आदेश द्वारा सुलझा लिया गया है।

19.05.2006 के निर्णय और आदेश का प्रभावी भाग निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत है:-

"परिणामस्वरूप, रिट याचिका सफल होती है और उसे अनुमति दी जाती है। दिनांक 03.03.1998 का आदेश इस प्रकार से निरस्त किया जाता है तथा प्रत्यर्थीगण को निर्देश दिया जाता है कि वे याचिकाकर्ताओं के एसएएस ग्रुप-II के पद के दावे पर उस तिथि से विचार करें, जिस तिथि से याचिकाकर्ताओं से कनिष्ठों को पदोन्नत किया गया है। चूंकि याचिकाकर्ता सेवा से सेवानिवृत्त हो चुके हैं तथा उनकी पदोन्नति पर विचार न किए जाने के कारण वे पेंशन लाभों से वंचित हैं, इसलिए पदोन्नति के लिए उनके मामलों पर सभी परिणामी लाभों

के साथ दो महीने की अवधि के भीतर विचार किया जाना चाहिए, जिस तिथि से संबंधित प्राधिकारी के समक्ष इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत की जाती है। लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।"

उपरोक्त को देखते हुए, पूरे विवाद पर पुनः विस्तार से चर्चा करना आवश्यक नहीं है।

रिट याचिका संख्या 6368 (एसएस) 1997 में पारित दिनांक 19.05.2006 के निर्णय और आदेश के अनुसार अंतिम रूप से निपटाया जाता है। याचिकाकर्ता दिनांक 19.05.2006 (पूर्वोक्त) के निर्णय और आदेश के अनुसार विवाद का निर्णय करते समय इस न्यायालय द्वारा प्रदान किए गए सेवा लाभों के भी हकदार होंगे।

लागत के सम्बन्ध में कोई आदेश नहीं।"

7. दिनांक 23.02.2012 के आदेश के अनुपालन में , दिनांक 03.04.2012 का आपत्तिजनक आदेश आंशिक अनुपालन करते हुए पारित किया गया है और याचिकाकर्ताओं को कनिष्ठों की पदोन्नति की तिथि से वेतन के बकाया के संबंध में परिणामी लाभ, 28.05.1997 के सरकारी आदेश पर भरोसा करते हुए काम नहीं तो वेतन नहीं' के सिद्धांत पर देने से इनकार कर दिया गया है।

8. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने दलील दी कि इस संबंध में कानून कई निर्णयों द्वारा तय किया गया है और सर्वोच्च न्यायालय ने बार-बार यह माना है कि जब भी अधिकारियों को याचिकाकर्ता को वे सभी लाभ देने का निर्देश दिया जाता है जो उसे अवैध रूप से वंचित न किए जाने पर मिलते, तो अधिकारियों को यह कहने का अधिकार नहीं है कि उसने काम नहीं किया है और इसलिए उसे वेतन नहीं दिया जाना चाहिए या लाभ नहीं दिए जाने चाहिए। अधिकारियों के लिए उचित तरीका यह है कि वे अपील में उस आदेश को चुनौती दें। वे उस आदेश के निष्पादन में यह दलील नहीं ले सकते। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **2007(7) एससीसी 689;** में रिपोर्ट किए गए **आयुक्त, कर्नाटक हाउसिंग बोर्ड बनाम सी. मुदैया** सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है। पैरा 32 निर्णय की धारा 33 एवं 33 नीचे उद्धृत हैं:

"32. हमारा यह मानना है कि एक बार सक्षम न्यायालय द्वारा निर्देश जारी किए जाने के बाद, बिना किसी आरक्षण के उसका पालन और क्रियान्वयन किया जाना चाहिए। यदि न्यायालय द्वारा पारित आदेश का अनुपालन नहीं किया जाता है या उसे नजरअंदाज किया जाता है, तो कानून के शासन का अंत हो जाएगा। यदि ऐसा आदेश पारित करने वाले पक्ष को कोई शिकायत है, तो उसके पास उपलब्ध एकमात्र उपाय कानून के अनुसार उचित कार्यवाही करके आदेश को चुनौती देना है। लेकिन निर्देशों का अनुपालन न करके इसे अप्रभावी नहीं बनाया जा सकता है, क्योंकि न्यायालय द्वारा ऐसा कोई निर्देश जारी नहीं किया जा सकता है। हमारे निर्णय में, इस तरह के तर्क को बरकरार रखने से अराजकता और भ्रम की स्थिति पैदा होगी और न्याय प्रशासन गंभीर रूप से प्रभावित होगा और बिगड़ेगा। इसलिए, बोर्ड के तर्क में कोई दम नहीं है और इसे खारिज किया जाना चाहिए।

33. इस प्रकरण को दूसरे दृष्टिकोण से भी देखा जा सकता है। यह सच है कि किसी पक्ष के पक्ष में राहत देते समय न्यायालय को कानून के प्रासंगिक प्रावधानों पर विचार करना चाहिए तथा ऐसे प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए उचित निर्देश जारी करने चाहिए। हालांकि, ऐसे प्रकरण भी हो सकते हैं जहां तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर न्यायालय न्याय, समानता और अच्छे विवेक के सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए न्याय के व्यापक हित में आवश्यक निर्देश जारी कर सकता है। एक ऐसा प्रकरण लें, जहां किसी कर्मचारी के साथ स्पष्ट रूप से अन्याय हुआ है। इस तथ्य के बावजूद कि वह कुछ लाभों का हकदार है, उसे वे लाभ नहीं दिए गए। उसके अभ्यावेदन को अवैधानिक और अनुचित तरीके से खारिज कर दिया गया। वह अंततः न्यायालय जाता है। न्यायालय को विश्वास हो जाता है कि उसके साथ घोर अन्याय हुआ है तथा उसे गलत तरीके से, अनुचित तरीके से और परोक्ष उद्देश्य से उन लाभों से वंचित किया गया है। न्यायालय, परिस्थितियों के आधार पर, प्राधिकरण को निर्देश देता है कि वह उसे वे सभी लाभ प्रदान करे जो उसे तब मिलते यदि उसे अवैध रूप से उनसे वंचित न किया जाता। क्या ऐसे प्रकरण में अधिकारियों को यह तर्क देने का अधिकार है कि चूंकि उसने काम नहीं किया है (लेकिन उसे अवैध रूप से वंचित माना जाता है), इसलिए उसे लाभ नहीं दिया जाएगा? ऐसी दलील को बरकरार रखना किसी पक्ष को उसके द्वारा किए गए गलत काम का अनुचित लाभ उठाने की अनुमति देने के बराबर होगा। यह अन्याय करने वाले व्यक्ति के साथ न्याय करने के बजाय अन्याय को बढ़ावा देगा।"

9. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **एआईआर 2002 सर्वोच्च न्यायालय 808**; में प्रतिवेदित **फूड कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया बनाम एस.एन. नागरकर** में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के एक अन्य फैसले पर भरोसा किया है। फैसले का पैरा 15 इस प्रकार है:

"अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यह एक ऐसा प्रकरण था जिसमें प्रत्यर्थी को काल्पनिक पदोन्नति और वरिष्ठता दी गई थी। ऐसे प्रकरण में संबंधित कर्मचारी पदोन्नति वाले पद के वेतनमान का हकदार केवल उस तारीख से है जिस दिन वह पद पर कार्यभार ग्रहण करता है, न कि उसकी पदोन्नति की तारीख से। उन्होंने इस न्यायालय के दो निर्णयों पर भरोसा करने की मांग की: (1996) 7 एससीसी 533, हरियाणा राज्य और अन्य बनाम ओपी गुप्ता और अन्य और (1989) 2 एससीसी 541, पलुरू रामकृष्णजाह और अन्य आदि बनाम भारत संघ और अन्य। दूसरी ओर प्रत्यर्थी के अधिवक्ता ने दलील दी कि यह ऐसा प्रकरण नहीं है जिसमें इस न्यायालय को अपीलकर्ता की ओर से दिए गए तर्क पर विचार करने के लिए

कहा जाए। इस प्रकरण में, प्रत्यर्थी द्वारा दायर रिट याचिका को 6 मई, 1994 के निर्णय और आदेश द्वारा अनुमति दी गई थी। सिविल रिट याचिका संख्या 4983 में पारित 1993 का । वह आदेश अंतिम हो गया क्योंकि उसके विरुद्ध अपील नहीं की गई। निष्पादन कार्यवाही में, अपीलकर्ता रिट याचिका में न्यायालय द्वारा पारित आदेश से आगे नहीं जा सकता है और इसलिए, इस बात पर विचार किया जाना चाहिए कि क्या उच्च न्यायालय ने 6 मई , 1994 के न्यायालय के आदेश के अनुसार यह सही माना था सिविल रिट याचिका संख्या 4983 में पारित 1993 के अनुसार , प्रत्यर्थी पदोन्नति की तिथि से वेतन और भत्ते के बकाया का हकदार है। यदि उत्तर सकारात्मक है, तो यह प्रश्न कि क्या ऐसी राहत दी जानी चाहिए थी, निष्पादन कार्यवाही में नहीं उठाया जा सकता। हमें प्रत्यर्थी की ओर से दिए गए तर्क में काफी दम लगता है। इन कार्यवाहियों में 6 मई, 1994 के विद्वान न्यायाधीश के आदेश से आगे जाने की अनुमति नहीं है। सिविल रिट याचिका संख्या 4983 में पारित 1993 का । वर्तमान अपील को जन्म देने वाला निष्पादन आवेदन 6 मई, 1994 के आदेश को लागू करने के लिए दायर किया गया था और ऐसी कार्यवाही में अपीलकर्ता के लिए यह तर्क देना संभव नहीं था कि 6 मई, 1994 का निर्णय और आदेश त्रुटिपूर्ण था या इसमें संशोधन की आवश्यकता थी। उपरोक्त निर्णय और आदेश अंतिम रूप ले चुका है, इसलिए इसकी शुद्धता पर प्रश्न उठाए बिना इसे लागू किया जाना चाहिए। इसलिए अपीलकर्ता को इन कार्यवाहियों में यह तर्क देने की अनुमति नहीं दी जा सकती कि 6 मई, 1994 का निर्णय और आदेश यह गलत था क्योंकि इसमें अपीलकर्ता को प्रत्यर्थी को पदोन्नति की तारीख से वेतन का बकाया भुगतान करने का निर्देश दिया गया था, न कि उस तारीख से जब प्रत्यर्थी ने वास्तव में पदोन्नत पदों पर कार्यभार ग्रहण किया था।"

10. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने सर्वोच्च न्यायालय के **(2007) 6 एससीसी 524;** में प्रतिवेदित **केरल राज्य और अन्य बनाम ई.के. भास्करन पिल्लई** के प्रकरण में दिए गए फैसले पर भरोसा किया। फैसले का पैरा 4 नीचे उद्धृत है:

"राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि पदोन्नति के पद पर पूर्वव्यापी लाभ का अनुदान उस पदधारी को नहीं दिया जा सकता है जब उसने उक्त पद पर काम नहीं किया हो। इसलिए, वह 15.6.1972 से पदोन्नति के पद पर किसी भी लाभ का हकदार नहीं है। इसके समर्थन में, विद्वान अधिवक्ता ने पलुरू रामकृष्णैया और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य [(1989) 2 में इस न्यायालय के निर्णयों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया। एस.सी.सी. 541] , वीरेंद्र कुमार, जी.एम., उत्तर रेलवे बनाम अविनाश चंद्र

चड्ढा एवं अन्य[(1990) 3 एस.सी.सी. 472] , हरियाणा राज्य एवं अन्य बनाम ओ.पी. गुप्ता एवं अन्य [(1996) 7 एस.सी.सी. 533] , ए.के. सौमिनी बनाम स्टेट बैंक ऑफ त्रावणकोर एवं अन्य[(2003) 7 एससीसी 238] और भारत संघ एवं अन्य बनाम तरसेम लाल एवं अन्य [(2006) 10 एससीसी 145]। इसके विपरीत, प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने हमारा ध्यान इस न्यायालय द्वारा यूनियन ऑफ इंडिया एवं अन्य बनाम केवी जानकीरमन एवं अन्य [(1991) 4 में दिए गए निर्णयों की ओर आकर्षित किया है। एस.सी.सी. 109], आंध्र प्रदेश राज्य बनाम के.वी.एल. नरसिम्हा राव एवं अन्य[(1999) 4 एस.सी.सी. 181], वसंत राव रोमन बनाम भारत संघ एवं अन्य [1993 पूरक (2) एससीसी 324] और यूपी राज्य एवं अन्य बनाम विनोद कुमार श्रीवास्तव [(2006) 9 एससीसी 621]। हमने दोनों पक्षों की ओर से उद्धृत निर्णयों पर विचार किया है। जहां तक पूर्वव्यापी पदोन्नति के साथ मौद्रिक लाभों के संबंध में स्थिति का सवाल है, यह प्रकरण दर प्रकरण पर निर्भर करता है। ऐसे कई पहलू हैं जिन पर विचार किया जाना चाहिए। कभी-कभी विभागीय जांच या आपराधिक प्रकरण में पूरा पिछला वेतन या 50 प्रतिशत देना अधिकारियों पर निर्भर करता है। प्रकरण में शामिल अपराध की प्रकृति या आपराधिक मामलों में जहां पदधारी को संदेह का लाभ देकर या पूर्ण बरी करके बरी किया गया है, पिछले वेतन का प्रतिशत। कभी-कभी जब किसी प्रकरण में व्यक्ति को हटा दिया जाता है और उसने इसे अदालत या न्यायाधिकरण के समक्ष चुनौती दी है और वह उसमें सफल होता है और उसके प्रकरण पर पुनर्विचार करने का निर्देश दिया जाता है, जिस दिन से उससे कनिष्ठ व्यक्तियों की नियुक्ति की गई थी, उस स्थिति में अदालत कभी-कभी पूर्वव्यापी प्रभाव से पूर्ण लाभ प्रदान कर सकती है और कभी-कभी ऐसा नहीं भी हो सकता है। खासकर जब प्रशासन ने गलत तरीके से उसके हक को अस्वीकार कर दिया हो, तो उस प्रकरण में उसे कानून में किसी भी बदलाव या कुछ अन्य कारकों के अधीन मौद्रिक लाभ सहित पूर्ण लाभ दिया जाना चाहिए। हालांकि, कोई सख्त नियम निर्धारित करना बहुत मुश्किल है। 'कोई काम नहीं तो कोई वेतन नहीं' के सिद्धांत को सामान्य नियम के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है। ऐसे अपवाद हैं जहां अदालतों ने मौद्रिक लाभ भी दिए हैं।"

11. विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने रिट याचिका का विरोध किया है और प्रस्तुत किया है कि चूंकि याचिकाकर्ता ने उक्त अवधि में काम नहीं किया है, इसलिए उसे काल्पनिक पदोन्नति प्रदान करना उचित है, हालांकि वह स्थापित कानूनी स्थिति पर विवाद नहीं कर सकते, जैसा कि याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है।

12. प्रस्तुत किए गए तर्कों पर उचित विचार करने, अभिलेखों का अवलोकन करने तथा

सर्वोच्च न्यायालय के उपरोक्त निर्णयों के आधार पर, मेरा मानना है कि इस संबंध में कानून स्थापित है। यदि अधिकारी न्यायालय द्वारा पारित किसी आदेश से असंतुष्ट हैं, तो अधिकारियों के लिए हमेशा उचित न्यायालय में उसे चुनौती देने का विकल्प खुला रहता है। हालाँकि, वर्तमान प्रकरण के तथ्यों में, दिनांक 23.02.2012 का आदेश रिट याचिका संख्या 986 (एसएस) 2012 में पारित बेशक, विपरीत पक्षों द्वारा इस पर हमला नहीं किया गया है, इसलिए यह अंतिम हो गया है। 23.02.2012 के उक्त आदेश को चुनौती दिए बिना , अधिकारियों के लिए, निष्पादन के समय, यह दावा करना खुला नहीं है कि चूंकि याचिकाकर्ता ने काम नहीं किया है, इसलिए उसे **सी. मुद्दैया (पूर्वोक्त)** के प्रकरण में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा आयोजित लाभ नहीं दिए जाएंगे। इस संबंध में कानून बार-बार निर्णीत किया गया है कि एक बार सक्षम अदालत द्वारा निर्देश जारी किए जाने के बाद, इसे बिना किसी आरक्षण के पालन किया जाना चाहिए और लागू किया जाना चाहिए। अधिकारियों को रिट न्यायालय द्वारा जारी निर्देश का पालन नहीं करने या इसे अनदेखा करने की अनुमति नहीं दी जा सकती। पक्षकार के लिए उपलब्ध एकमात्र उपाय यह है कि यदि वह रिट न्यायालय द्वारा पारित आदेश से व्यथित है, तो वह कानून के तहत उचित कदम उठाकर उसे चुनौती दे सकता है।

13. उपर्युक्त स्थापित कानून के मद्देनजर, रिट याचिका सफल होती है और उसे **स्वीकृत** किया जाता है। दिनांक 03.04.2012 का आक्षेपित आदेश प्रत्यर्थीगण को निर्देश दिया जाता है कि वे याचिकाकर्ता को पेंशन लाभ के साथ-साथ वेतन के बकाया सहित सभी परिणामी लाभ प्रदान करें, जैसा कि रिट न्यायालय ने अपने दिनांक 23.02.2012 के आदेश में निर्देश दिया था।

(2023) 3 ILRA 176

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 22.02.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली

रिट ए संख्या 2000639/2008

वीरेंद्र के. सिंह चौहान ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: पीयूष अस्थाना, देश दीपक सिंह, राजीव सिंह, स्मृति पांडे

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: सी.एस.सी., बलराम यादव

A. सेवा कानून - अनुशासनात्मक प्रक्रिया - सेवानिवृत्ति लाभ से वसूली - उत्तर प्रदेश सहकारी समाज कर्मचारियों की सेवा नियमावली, 1975 - उत्तर प्रदेश सहकारी समाज कर्मचारियों की सेवा नियमावली, 1975 में सेवानिवृत्ति के पश्चात अनुशासनात्मक कार्यवाही प्रारंभ करने या जारी रखने का कोई प्रावधान नहीं है, न ही यह कहा गया है कि यदि दुराचार सिद्ध होता है, तो सेवानिवृत्ति लाभों में कटौती की जा सकती है। (पैराग्राफ 19)

जब याचिकाकर्ता ने दिनांक 31.12.2001 को सेवा से सेवानिवृत्ति हुआ, तो निगम में विभागीय कार्यवाही जारी रखने का कोई अधिकार नहीं था, यहां तक कि याचिकाकर्ता के सेवानिवृत्ति लाभों में कोई कमी लगाने के लिए भी। **ऐसे अधिकार**

की अनुपस्थिति में, यह कहा गया कि जांच/अनुशासनात्मक प्रक्रिया समाप्त हो गई है और याचिकाकर्ता को सेवानिवृत्ति पर पूर्ण सेवानिवृत्ति लाभ प्राप्त करने का अधिकार है। चूंकि जांच समाप्त हो गई है, यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता को उनके लिए देय वेतन का बाकी हिस्सा भी मिलना चाहिए। (पैराग्राफ 20)

याचिका स्वीकार की गई। (E-4)

विधिव्यवस्था अनुसरित:

1. देव प्रकाश तिवारी बनाम उत्तर प्रदेश सहकारी संस्थागत सेवा बोर्ड, एलके और अन्य, (2014) 7 SCC 260 (पैराग्राफ 13)
2. भागीरथी जेना बनाम निदेशक मंडल, OSFC और अन्य, (1999) 3 SCC 666 (पैराग्राफ 13)
3. ब्रिज मोहन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, Writ-A संख्या 42071 / 2016, आदेश दिनांक 16.01.2017 (पैराग्राफ 13)
4. यूपी स्टेट शुगर कॉर्प. लिमिटेड बनाम कमल स्वरूप टंडन, (2008) 2 SCC 41 (पैराग्राफ 15)

वर्तमान याचिका प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा पारित आदेश 20.02.2007 और 30.09.2003 के आदेश के विरुद्ध और प्रतिवादी संख्या 3 को 42,403/- रुपये की राशि को 14% ब्याज के साथ जारी करने के लिए निर्देशित करने के लिए योजित है, जो कि अवैध रूप से काटी गई है।

माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री देश दीपक सिंह, प्रतिवादी संख्या 1-राज्य के विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता एवं प्रतिवादी संख्या 2 एवं 3 के विद्वान अधिवक्ता श्री बलराम यादव को सुना गया।

2. वर्तमान रिट याचिका इस न्यायालय के समक्ष दायर की गई है, जिसमें प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा पारित आदेश दिनांक 20.02.2007 (अनुलग्नक संख्या 1) एवं दिनांक 30.09.2003 के आदेश को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निदेश की मांग की गई है, एवं (अनुलग्नक-5) एक अन्य प्रार्थना परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निदेश जारी करने हेतु की गई है जिसके द्वारा प्रतिवादी संख्या 3 को श्री इशाक अली के ऋण मामले के संबंध में अवैध रूप से कटौती किये गए 14% ब्याज के साथ 42,403/- रुपये की राशि को वापस करने का आदेश देने की प्रार्थना की गई है।

3. वाद के संक्षिप्त तथ्य यह है कि याचिकाकर्ता उ.प्र.सहकारी ग्राम विकास बैंक लिमिटेड में शाखा प्रबंधक के पद पर कार्यरत था जो अधिवर्षिता की आयु प्राप्त करने पर सेवा पूरी करने के बाद 31.12.2001 को सेवानिवृत्त हो गया।

4. याचिकाकर्ता ने बैंक द्वारा 58 वर्ष की आयु प्राप्त करने पर निर्धारित की गई अपनी सेवानिवृत्ति की तिथि के विरूद्ध इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका संख्या 1840 (एस/बी)/ 2001 दायर की एवं सरकारी कर्मचारियों के साथ अधिवर्षिता हेतु 60 वर्ष की समानता का दावा किया। रिट याचिका स्वीकार कर ली गई एवं 21.12.2001 को एक अंतरिम आदेश पारित किया गया, जिसके तहत निम्नलिखित निर्देश जारी किए गए:

> *"स्वीकृत।*
> *नोटिस जारी करें।*

दिनांक 14.1.2002 से प्रारम्भ होने वाले सप्ताह में सूचीबद्ध करें। इस मध्य उ.प्र.सहकारी विकास बैंक याचिकाकर्ताओं की सेवानिवृत्ति की आयु 60 वर्ष तक बढ़ाने के संबंध में सरकार के शासनादेश पर विचार करने हेतु स्वतंत्र रहेगा। याचिकाकर्ताओं की सेवानिवृत्ति रिट याचिका के निर्णय के अधीन होगी।"

5. बैंक के प्रबंध निदेशक ने दिनांक 30.09.2003 को एक आदेश पारित किया जिसके आधार पर 20.02.2007 को एक आदेश पारित किया गया, जिसके अंतर्गत याचिकाकर्ता के विरूद्ध वर्ष 1997 में अनुशासनात्मक कार्यवाही उनकी सेवानिवृत्ति के लगभग दो साल बाद संपन्न हुई एवं याचिकाकर्ता को देय राशि से अद्यतन ब्याज सहित 1,15,000/- रुपये की वसूली का निर्देश याचिकाकर्ता को दिया गया।

6. दिनांक 30.09.2003 के आदेश के विरुद्ध, याचिकाकर्ता ने 27.10.2003 को निदेशक मंडल के समक्ष अपील की, जिसे अपीलीय प्राधिकारी ने खारिज कर दिया एवं इस संबंध में महाप्रबंधक (प्रशासन) द्वारा याचिकाकर्ता को पत्र क्रमांक 151609/कार्मिक/2004-05 दिनांक 13.12.2004 के माध्यम से सूचना प्रदान की गई।

7. सेवानिवृत्ति लाभों के भुगतान हेतु, याचिकाकर्ता ने प्रबंध निदेशक के समक्ष दिनांक 18.07.2005 को अभ्यावेदन दिया, हालाँकि, उस पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। जब याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 18.07.2005 को अभ्यावेदन के माध्यम से किए गए अनुरोध का उत्तर नहीं दिया गया, तो उसने 29.08.2006 को फिर से एक अभ्यावेदन दायर किया। इसके बाद, उन्होंने 19.07.2007 को प्रतिवादी संख्या 3 के समक्ष एक और अभ्यावेदन दायर किया एवं जब विभाग से कोई प्रतिक्रिया नहीं मिली, तो उन्होंने बैंक के संबंधित अधिकारियों से संपर्क किया, जहाँ उन्हें पता चला कि उनके सभी सेवानिवृत्ति लाभ अर्थात ग्रेच्युटी, बीमा, सुरक्षा एवं अवकाश नकदीकरण आदि को याचिकाकर्ता पर तय देनदारियों के विरूद्ध समायोजित किया गया था एवं याचिकाकर्ता को किसी राशि का भुगतान नहीं किया गया था।

8. याचिकाकर्ता ने सूचना का अधिकार अधिनियम के अंतर्गत एक आवेदन दायर कर अपनी सेवानिवृत्ति उपरान्त देय राशि के विरुद्ध की गई कटौती के संबंध में की गई कार्रवाई के बारे में पूछा एवं उसके संबंध में लिए गए निर्णयों की प्रति उपलब्ध कराने को कहा। इसके बाद बैंक के जन सूचना अधिकारी ने दिनांक 03.12.2007 के पत्र के माध्यम से याचिकाकर्ता द्वारा मांगी गई जानकारी प्रदान की। इस प्रकार प्रदान की गई जानकारी से याचिकाकर्ता को पता चला कि कटौती कुछ व्यक्तियों के पक्ष में उसके द्वारा वितरित कतिपय ऋण राशियों के विरूद्ध की गई थी।

9. उपरोक्त कटौतियों के संबंध में याचिकाकर्ता ने बैंक अधिकारियों के समक्ष कई अभ्यावेदन प्रस्तुत किये एवं जब कोई प्रतिक्रिया नहीं मिली, तो वर्तमान रिट याचिका इस न्यायालय के समक्ष दायर की गई है।

10. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का कथन है कि याचिकाकर्ता की ग्रेच्युटी, अवकाश नकदीकरण,

सुरक्षा एवं बीमा दावे से की गई कटौती बैंक सेवा नियम, 1976 के नियम 79(1)(डी) का उल्लंघन है। उन्होंने आगे कहा कि ग्रेच्युटी को सिविल, आपराधिक या राजस्व न्यायालय से प्राप्त डिक्री के विरुद्ध भी समायोजित/संलग्न नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह उपादान भुगतान अधिनियम के अंतर्गत संरक्षित है।

11. उन्होंने आगे कहा कि भले ही प्रतिवादियों के कथन को उनके प्रत्यक्ष मूल्य पर स्वीकार कर लिया जाए, फिर भी याचिकाकर्ता के विरूद्ध की गई कटौती समयपूर्व है, क्योंकि वसूली की कार्यवाही अभी भी राजस्व विभाग में लंबित है।

12. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि प्रतिवादी - बैंक ने इशाक अली नामक व्यक्ति के ऋण के विरुद्ध याचिकाकर्ता के बकाए से ब्याज सहित 42,403/- रुपये की राशि की अवैध रूप से कटौती की है, क्योंकि याचिकाकर्ता का उपरोक्त ऋण से कोई सरोकार नहीं है।

13. उन्होंने अंततः प्रस्तुत किया कि बैंक में कोई पेंशन योजना नहीं है एवं सेवानिवृत्ति के बाद सेवानिवृत्ति की बकाया राशि ही आजीविका का एकमात्र स्रोत है एवं प्रतिवादी - बैंक ने इसमें देरी / कटौती करने में घोर अवैधता की है। अपने तर्कों के समर्थन में, उन्होंने निम्नलिखित निर्णयों पर विश्वास व्यक्त किया है:

a) देव प्रकाश तिवारी बनाम उ.प्र.सहकारी संस्था सेवा बोर्ड, लखनऊ एवं अन्य; (2014) 7 एससीसी 260

b) भागीरथी जेना बनाम निदेशक मंडल, ओएसएफजी एवं अन्य; (1999) 3 एससीसी 666

c) बृजमोहन बनाम उ.प्र. राज्य एवं 5 अन्य; रिट-ए संख्या 42071/ 2016, आदेश दिनांक 16.01.2017

14. दूसरी ओर, प्रतिवादी संख्या 2 एवं 3 के विद्वान अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिये गए तर्कों का विरोध किया एवं यह तर्क प्रस्तुत किया कि प्रतिवादी - बैंक के प्रबंध निदेशक द्वारा पारित आदेश दिनांक 30.09.2003, अनुशासनात्मक कार्यवाही के आधार पर पारित किया गया था जिसमें याचिकाकर्ता को ब्याज सहित 1,15,000/- रुपये की क्षति हेतु दोषी पाया गया एवं तदनुसार, याचिकाकर्ता के सेवानिवृत्ति के बाद के लाभों से वसूली करने का निदेश दिया गया।

15. उन्होंने पुनः कहा कि यह विधि की स्थापित प्रस्थापना है कि कर्मचारी द्वारा विभाग को पहुँचाई गई क्षति की राशि की वसूली ग्रेच्युटी एवं सेवानिवृत्ति उपरान्त अन्य देय राशि से वसूली योग्य है। अतः प्रतिवादी - याचिकाकर्ता के सेवानिवृत्ति लाभों से बैंक द्वारा की गई वसूली में कोई अवैधता नहीं है। अपने तर्कों के समर्थन में, उन्होंने निम्नलिखित निर्णयों पर विश्वास व्यक्त किया: -

ए) उ. प्र. राज्य चीनी निगम लिमिटेड बनाम कमल स्वरूप टंडन; (2008) 2 एससीसी 41

16. विद्वान अपर मुख्य स्थाई अधिवक्ता ने भी प्रतिवादी संख्या 2 एवं 3 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्कों को ग्रहण किया।

17. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिये गये तर्कों पर विचार किया है एवं अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का परिशीलन किया है।

18. मामले में सम्मिलित विवाद को सुलझाने हेतु पक्षकारों के विद्वान अधिवक्तागण द्वारा जिन निर्णयों पर विश्वास व्यक्त किया गया, उन्हें नीचे उद्धृत किया जा रहा है: -

क) याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा संदर्भित निर्णय : -

i) देव प्रकाश तिवारी (उपरोक्त):

"5. हमने प्रतिद्वंद्वी तर्कों पर सतर्कतापूर्वक विचार किया है। तथ्यों के संबंध में विवाद नहीं हैं। माननीय उच्च न्यायालय ने अपने आदेश दिनांक 10-1-2006 में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन के आधार पर पहले की अनुशासनात्मक कार्यवाही को रद्द करते हुए नए सिरे से विनियमों के अनुसार जाँच प्रारम्भ करने की स्वतंत्रता दी थी। अपीलकर्ता को 26-4-2006 को सेवा में बहाल किया गया था एवं नवीन अनुशासनात्मक कार्यवाही 7-7-2006 को प्रारम्भ की गई थी, एवं इसके लंबित रहने के दौरान अपीलकर्ता ने अधिवर्षिता की आयु प्राप्त कर ली एवं वह 31-3-2009 को सेवानिवृत हो गया। उत्तर प्रदेश सहकारी समिति कर्मचारी सेवा नियमावली, 1975 में अपीलकर्ता की सेवानिवृत्ति के बाद अनुशासनात्मक कार्यवाही प्रारम्भ करने या जारी रखने का कोई प्रावधान नहीं है एवं न ही ऐसा कोई प्रावधान है कि कदाचार साबित होने पर उसके सेवानिवृत्ति लाभों से कटौती की जा सके।"

ii) भागीरथी जेना (उपरोक्त):

"उपर्युक्त नियमों में इस तरह के प्रावधान की अनुपस्थिति को देखते हुए, यह माना जाना चाहिए कि निगम के पास अपीलकर्ता के सेवानिवृत्ति लाभों में कोई कमी करने का कोई विधिक अधिकार नहीं था। अपीलकर्ता के सेवानिवृत्ति के बाद अनुशासनात्मक जाँच करने का भी कोई प्रावधान नहीं है एवं न ही ऐसा कोई प्रावधान है जिसके अनुसार कदाचार स्थापित होने की स्थिति में, सेवानिवृत्ति लाभों से कटौती की जा सकती है। एक बार जब अपीलकर्ता दिनांक 30-6-1995 को सेवा से सेवानिवृत्त हो गया, तो विभागीय जांच जारी रखने हेतु निगम में कोई अधिकार निहित नहीं था, यहाँ तक कि अपीलकर्ता को देय सेवानिवृत्ति लाभों में कोई कटौती करने का भी नहीं। ऐसे प्राधिकार की अनुपस्थिति में, यह माना जाना चाहिये कि जाँच समाप्त हो गई थी एवं अपीलकर्ता सेवानिवृत्ति पर पूर्ण सेवानिवृत्ति लाभों का अधिकारी था।"

iii) बृज मोहन (उपरोक्त):

"उपरोक्त निर्णय के परिशीलन से यह स्पष्ट है कि इस मामले के तथ्य देव प्रकाश तिवारी (उपरोक्त) के निर्णय में पूर्णतः सम्मिलित हैं। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता विनियमावली ,1975 या अधिनियम, 202 के अंतर्गत, कर्मचारी के सेवानिवृत्त होने के बाद अनुशासनात्मक कार्यवाही जारी रखने हेतु किसी दिशानिर्देश अथवा किसी भी प्रावधान को इंगित करने में

विफल रहे हैं । तदनुसार, दिनांक 22.06.2016 के आदेश को रद्द किया जाता है एवं यह धारित किया जाता है कि दिनांक 22.06.2016 के आदेश के अंतर्गत प्रारंभ की गई अनुशासनात्मक कार्यवाही समाप्त हो गई है। तदनुसार, रिट याचिका स्वीकृत की जाती है।"

बी) प्रतिवादी संख्या 2 एवं 3 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा संदर्भित निर्णय:

i) उ.प्र. राज्य चीनी निगम लिमिटेड (उपरोक्त):

"हमारी राय में, महादेवन द्वारा प्रतिवादी को नहीं माना गया था। इस उददेश्य हेतु कोई कठोर, अनम्य या अपरिवर्तनीय परीक्षण लागू नहीं किया जा सकता है कि कब कार्यवाही जारी रखने की अनुमति दी जानी चाहिए एवं कब उसे रोक दिये जाने का आदेश दिया जाना चाहिए। ऐसे मामलों में न तो निचली सीमा है एवं न ही ऊपरी सीमा। यदि तथ्यों एवं मामले की परिस्थितियों के आधार पर न्यायालय संतुष्ट है कि विभागीय कार्यवाही प्रारम्भ करने में घोर, अत्यधिक एवं अकारण विलंब है एवं ऐसी कार्यवाही जारी रखने से कर्मचारी पर गंभीर तथा प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा, एवं इसके परिणामस्वरूप न्याय विफल हो जाएगा, तब न्यायालय उसे रद्द कर सकता है। हालाँकि, हम यह टिप्पणी भी कर सकते हैं कि यह सामान्य नियम का अपवाद है कि एक बार कार्यवाही प्रारम्भ होने के बाद उसे तार्किक निष्कर्ष तक पहुँचाया जाना चाहिए। इसलिए, इसे विधि की प्रस्थापना अथवा सार्वत्रिक अनुप्रयोग के नियम के रूप में प्रतिपादित नहीं किया जा सकता कि यदि किसी विशेष अवधि हेतु कार्यवाही प्रारम्भ करने में विलम्ब होता है, तो उसे अनिवार्यतः रद्द कर दिया जाना चाहिए।"

19. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णय विधियों के परिशीलन से यह स्पष्ट है कि उत्तर प्रदेश सहकारी समिति कर्मचारी सेवा विनियम, 1975 के अंतर्गत सेवानिवृत्ति के बाद अनुशासनात्मक कार्यवाही प्रारंभ करने या जारी रखने का कोई प्रावधान नहीं है एवं न ही ऐसा कोई प्रावधान है जिसके अनुसार कदाचार स्थापित हो जाने की दशा में सेवानिवृत्ति लाभों से कटौती की जा सकती है।

20. एक बार जब याचिकाकर्ता दिनांक 31.12.2001 को सेवा से सेवानिवृत्त हो गया, तब याचिकाकर्ता को देय सेवानिवृत्ति लाभों में कोई कटौती करने के उद्देश्य से भी विभागीय कार्यवाही जारी रखने हेतु निगम में कोई अधिकार निहित नहीं था। ऐसे प्राधिकार की अनुपस्थिति में, यह धारित किया जाता है कि जाँच /अनुशासनात्मक कार्यवाही समाप्त हो गई थी एवं याचिकाकर्ता सेवानिवृत्ति पर पूर्ण सेवानिवृत्ति लाभ का अधिकारी था। चूँकि जाँच समाप्त हो गई है, यह स्वाभाविक है कि याचिकाकर्ता को उसे देय परिलब्धियों की अवशेष राशि प्राप्त करनी होगी।

21. ऊपर अभिलिखित कारणों के दृष्टिगत, दिनांक 20.02.2007 (अनुलग्नक संख्या 1) एवं

30.09.2003 (अनुलग्नक -5) के आक्षेपित आदेश को रद्द किया जाता है।

22. रिट याचिका सफल होती है एवं स्वीकार की जाती है।

23. प्रतिवादियों को निदेश दिया जाता है कि वे इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से आठ सप्ताह की अवधि में नियमावली एवं विनियमावली के अनुसार, याचिकाकर्ता को रिट याचिका में दावा किए गए भत्ते/ सेवानिवृत्ति उपरांत लाभों का भुगतान करें।

(2023) 3 ILRA 180

मूल न्यायाधिकार

नागरिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 16.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ लवानिया,

रिट बी संख्या 54/2023

श्रीमती माया सिंह ...याचिकाकर्ता

बनाम

राजस्व परिषद उ.प्र. और अन्य. ...प्रतिवादीगण

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: प्रभाकर वर्धन चौधरी, मोहम्मद असलम खान

अधिवक्ता प्रतिवादीगण: सी.एस.सी., ज्ञानेन्द्र सिंह, हरीश चन्द्र, मोहन सिंह, राकेश कुमार सिंह, रिपु दमन शाही

सिविल कानून - उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 - धाराएँ 80, 80(1), 80(4), 116 और 210 - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - राजस्व बोर्ड - यह कानून का स्थापित सिद्धांत है कि जब कोई रिट जारी की जाती है या किसी आदेश को अपास्त किया जाता है, तो यदि इससे कोई और गलत या अवैध आदेश पुनर्स्थापित होता है, तो उस स्थिति में रिट न्यायालय को वाद में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए और अनुच्छेद 226 के तहत उसे दी गई विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग करने से मना करना चाहिए - दिनांक 24.02.2020 को अटल कुमार सिंह बनाम राज्य उत्तर प्रदेश में दिए गए निर्णय का संदर्भ लिया गया है - जहाँ आपेक्षित आदेश निष्पक्ष और ठोस न्याय प्रतीत होते हैं, वहाँ रिट न्यायालय केवल इस आधार पर हस्तक्षेप नहीं करेगी कि ऐसे आदेश कानून में गलत हैं - इसलिए, न्यायालय ने आपेक्षित आदेश में हस्तक्षेप करने से मना कर दिया। (पैराग्राफ 12, 27, 29)

रिट याचिका निरस्त की जाती है। (E-13)

<u>**उद्धृत वाद सूची:**</u>

1. अटल कुमार सिंह बनाम राज्य उत्तर प्रदेश (रिट याचिका संख्या 343 वर्ष 1999)

2. ए.एम.एलिसन बनाम बी.एल.से, AIR 1957 SC 227

3. बक्स सिंह बनाम संयुक्त निदेशक, समेकन, उत्तर प्रदेश, लखनऊ और अन्य, AIR 1966 All 156

4. ओम प्रकाश बनाम उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा आयोग, अलीगंज, इलाहाबाद और अन्य, (1990) UPLBEC 983

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ लवानिया

याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता मोहम्मद आरिफ खान, विद्वान अधिवक्ता श्री पीवीसी चौधरी द्वारा सहाय्यित एवं विरोधी पक्ष

संख्या 3 के विद्वान अधिवक्ता श्री आर.डी.शाही एवं श्री राकेश कुमार सिंह, विरोधी पक्ष संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री हरिश्चंद्र, ग्राम सभा के विद्वान अधिवक्ता श्री मोहन सिंह एवं राज्य की ओर से विद्वान अधिवक्ता अवनीश कुमार को सुना।

वर्तमान याचिका द्वारा, याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी संख्या 1-राजस्व परिषद, उ.प्र., लखनऊ द्वारा दिनांक 11.01.2023 को पुनरीक्षण पारित आदेश को चुनौती दी है एवं पुनरीक्षण संख्या REV/2686/2022/अयोध्या, कम्प्यूटरीकृत वाद संख्या R20220423002686 (देवेश सिंह बनाम माया सिंह) उ.प्र. राजस्व संहिता, 2006 (संक्षेप में "कोड 2006") की धारा 210 के अंतर्गत प्रस्तुत किया गया।

पक्षकारों के मध्य स्वीकार किया गया कि विवाद ग्राम-मदना उपरहार अमसिन, तहसील-सदर, जिला-अयोध्या में स्थित गाटा संख्या 853 से संबंधित है। गाटा संख्या 853 के विवाद में प्रतिवादी संख्या 4-श्रीमती सुखमीना सिंह के पास 3/4 हिस्सा था तथा रुक्मणि सिंह के पास 1/4 हिस्सा था। प्रश्नगत गाटा का अविवादित क्षेत्रफल 0.449 हेक्टेयर है जिसमें से याचिकाकर्ता ने पंजीकृत विक्रय पत्र दिनांक 18.03.2021 के द्वारा 0.11225 हेक्टेयर भूमि क्रय की तथा उक्त विक्रय पत्र में याचिकाकर्ता द्वारा क्रय की गई संपत्ति की सीमाओं को निम्नलिखित रूप में वर्णित किया गया है "**पूरब**- चकरोड़ कच्चा 1 लट्ठा बादहू खेत नं०- 849,850 आदि, **पश्चिम**-सीमा ग्राम जलालुदीन नगर, **उत्तर**- सीमा ग्राम जलालुदीननगर, **दक्षिण**-गाटा सं०857अन्य व्यक्तित।"

इसके अतिरिक्त, प्रतिवादी संख्या 4-श्रीमती सुखमीना सिंह ने प्रतिवादी संख्या 2-गिरीश कुमार सिंह एवं प्रतिवादी संख्या 3-देवेश सिंह के पक्ष में बिक्री विलेख भी निष्पादित किया, जो क्रमशः दिनांक 23.05.2022 एवं 24.05.2022 को पंजीकृत किए गए थे। उपरोक्त इंगित किये गए इन विक्रय विलेखों के पश्चात, याचिकाकर्ता विवादित संपत्ति के 1/4 हिस्से का मालिक बन गया एवं प्रतिवादी संख्या 2 तथा 3, 3/4 हिस्से का मालिक बन गया।

यह उल्लेख करना उचित होगा कि दिनांक23.05.2022 तथा 24.05.2022 को निष्पादित आगामी विक्रय विलेखों में दर्शाई गई सीमाएं याचिकाकर्ता के विक्रय विलेख में दर्शाई गई सीमाओं के समान हैं। याचिकाकर्ता के विक्रय विलेख के आगामी विक्रय विलेख में दर्शाई गई सीमाओं को इस प्रकार वर्णित किया है "**पूरब**-चकरोड़ कच्चा 1 लट्ठा बादहू खेत नं०- 849,850 आदि, **पश्चिम**-सीमा ग्राम जलालुदीन नगर, **उत्तर**-सीमा ग्राम जलालुदीननगर, **दक्षिण**-गाटा सं०857अन्य व्यक्ति।"

याचिकाकर्ता ने दिनांक04.01.2022 को गैर-कृषि उद्देश्यों हेतु स्वामित्व की घोषणा हेतु संहिता 2006 की धारा 80 के अंतर्गत एक आवेदन प्रस्तुत किया, जिसे वाद संख्या 16/2022, कम्प्यूटरीकृत वाद संख्या T2022423450116 (माया सिंह बनाम उ०प्र० राज्य) के रूप में दर्ज किया गया था तथा उक्त वाद के निस्तारण के प्रयोजन हेतु, एक रिपोर्ट मांगी गई थी, जिसे बाद में राजस्व अधिकारी द्वारा दिनांक20.04.2022 को प्रस्तुत किया गया था एवं उसके पश्चात, राजस्व अधिकारी, उप

जिला मजिस्ट्रेट की रिपोर्ट के आधार पर, सदर, अयोध्या ने दिनांक 21.04.2022को अपने आदेश द्वारा प्रार्थना पत्र की अनुमति दी।

यहां यह संदर्भ करना उचित होगा कि याचिकाकर्ता द्वारा ग्राम-मदना उपरहार अमसिन, तहसील-सदर, जिला-अयोध्या में स्थित गाटा संख्या 853 तथा 854 के संबंध में संहिता 2006 की धारा 80 के अंतर्गत एक प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया गया था, जिसमें प्रार्थना की गई थी कि इन दोनों गाटा में याचिकाकर्ता द्वारा क्रय किये गये हिस्से को गैर-कृषि प्रयोजनों हेतु उपयोग करने हेतु घोषित किया जाए। दूसरे शब्दों में, दोनों गाटाओं हेतु समग्र प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया गया था।

आदेश दिनांक 21.04.2022 के बारे में ज्ञात होने पर प्रतिवादी संख्या 2 एवं 3 द्वारा दिनांक 21.04.2022 के आदेश को अपास्त करने एवं वाद संख्या 16/2022 को बहाल करने हेतु प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया गया, जिसे वाद संख्या-RST/4456/2022, कम्प्यूटरीकृत वाद संख्या T202204230104456 (देवेश सिंह एवं अन्य बनाम माया सिंह) में दर्ज किया गया। उप जिला मजिस्ट्रेट, सदर, अयोध्या ने उचित नोटिस एवं पक्षकारों को सुनने के पश्चात अपने आदेश दिनांक 10.10.2022 के अंतर्गत निम्नवत प्रार्थना पत्र का निस्तारण किया:-

> *"पत्रावली प्रस्तुत। पत्रावली का अवलोकन किया गया। पत्रावली के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि वादीगण देवेश सिंह पुत्र श्यामलाल सिंह व सुखमीना पत्नी स्व0 करुण कुमार सिंह द्वारा आदेश दिनाँक 21.04. 2022 के विरुद्ध प्रस्तुत आपति में कहा गया कि प्रश्नगत भूमि गाटा संख्या 853 का बंटवारा नहीं हुआ है तथा बिना बंटवारा हुए प्रश्नगत भूमि को अकृषिक घोषित नहीं किया जा सकता है, तत्पश्चात दिनाँक16.06.2022 को प्रश्नगत आदेश दिनाँक 21.04.2022 का क्रियान्वयन स्थगित कर दिया गया।*
>
> *ग्राम मड़ना उपरहार, परगना अमसिन, तहसील सदर, जनपद अयोध्या में स्थित गाटा संख्या 853 के बंटवारे का बाद, कम्प्यूटरीकृत वाद संख्या टी202204230104762, वाद संख्या 632अन्तर्गत धारा 166 उ०प्र०रा०सं० के अंतर्गत सुखमीना सिंह बनाम माया सिंह आदि योजित किया गया,जिसमें प्रारम्भिक आदेश दिनाँक 16.06.2022 को पारित किया जा चुका है। प्रारम्भिक आदेश दिनाँक 16.06.2022 के क्रम में तहसीलदार सदर द्वारा प्रस्तुत कुर्रा बंटवारा व रंगभेदी नक्शा भी न्यायालय द्वारा स्वीकार किया जा चुका है। कुर्रा बंटवारा व रंगभेदी नक्शा में, जहां पर श्रीमती माया सिंह का अंश दर्शाया गया है, उसी स्थल पर वाद संख्या 81, कम्प्यूटरीकृत वाद संख्या टी202242350116 श्रीमती माया सिंह बनाम उ०प्र० सरकार, अन्तर्गत धारा 80 में पारित आदेश दिनाँक 21.04.2022 प्रभावी होगा। ऐसी स्थिति में स्थगन आदेश दिनाँक 16.06.2022 को वापस लेते हुए बाद की कार्यवाही को समाप्त किया जाना उचित प्रतीत होता है।*
>
> *अतः उपरोक्त विवेचना के आधार पर देवेश सिंह पुत्र श्यामलाल सिंह आदि*

द्वारा प्रस्तुत आपत्तिनिरस्त करते हुए स्थगन आदेश दिनाँक 16. 06.2022 वापस लिया जाता है। आदेश की प्रति राजस्व अभिलेखों में अंकन हेतु तहसीलदार सदर को भेजी जाय। वाद अनुपालन पत्रावली राजस्व अभिलेखागार संचित हो। "

दिनांक 10.10.2022 तथा 21.04.2022 के आदेश(आदेशों) से व्यथित होकर, प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा संहिता 2006 की धारा 210 के अंतर्गत एक पुनरीक्षण प्रस्तुत किया गया था, जिसमें प्रतिवादी संख्या 1-राजस्व बोर्ड उ०प्र०, लखनऊ द्वारा प्रश्नगत आदेश दिनांक 11.01.2023 को पारित किया गया है। आदेश दिनांक 11.01.2023 का प्रासंगिक भाग निम्नवत है:-

6- तत्कम में उभय पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना एवं पत्रावली पर उपलब्ध सुसंगत अभिलेखों का परिशीलन/परीक्षण किया। पत्रावली पर उपलब्ध सुसंगत अभिलेखों के परिशीलन/परीक्षण से विदित है कि सुखमीना सिंह ने प्रश्नगत भूमि के सम्बन्ध में धारा-116 के अंतर्गत वाद संख्या 4762/2022 कम्प्यूटरीकृत वाद संख्या- टी202204230104762 सुखमीना सिंह बनाम श्रीमती माया सिंह आदि योजित किया जिसमें दिनांक 16.06.2022 को प्रारम्भिक डिक्की का आदेश पारित किया गया तथा उप जिलाधिकारी द्वारा अन्तिम आदेश दिनांक 10.10.2022 पारित किया गया। इसके पूर्व प्रश्नगत भूमि के सम्बन्ध में श्रीमती माया सिंह ने उप जिलाधिकारी के न्यायालय में धारा-80 के अंतर्गत अकृषिक प्रख्यापित किये जाने हेतु वाद योजित किया, जिस पर तहसीलदार ने दिनांक 20.04.2022 को आख्या प्रस्तुत की। इस आख्या के आधार पर उप जिलाधिकारी ने अगले ही दिन दिनांक 21.04.2022 को प्रश्नगत भूमि को अकृषिक प्रख्यापित करने का आदेश पारित कर दिया। स्पष्टतः बिना विधिक रुप से बटवारा हुए प्रश्नगत भूमि को अकृषिक प्रख्यापित किया गया है, जो उ०प्र० राजस्व संहिता-2006 की धारा-80(4) का उल्लंघन है। अतः निगरानी स्वीकार की जाती है तथा उप जिलाधिकारी दवारा पारित आदेश दिनांक 10.10. 2022 व 21.04.2022 निरस्त किये जाते हैं।

7- पश्चात आवश्यक कार्यवाही पत्रावली दाखिल-दफ्तर हो।"

दिनांक 11.01.2023 के आदेश को चुनौती देते हुए, वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एम.ए.खान, श्री पी.वी.चौधरी द्वारा सहाय्यित, याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित हुए, जैसा कि निम्नानुसार है:-

(I) देवेश सिंह द्वारा दिनांक 21.04.2022 के आदेश को वापस लेने का प्रार्थना पत्र पोषणीय नहीं था।

(ii) विवादित संपत्ति अर्थात गाटा संख्या 853 याचिकाकर्ता द्वारा आपसी बंटवारे/पारिवारिक समझौते के आधार पर क्रय किया गया था। अतः संहिता 2006 की धारा 80 के अंतर्गत प्रार्थना पत्र पर पारित आदेश में संबंधित प्राधिकारी द्वारा किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं थी।

(iii) मात्र देवेश सिंह द्वारा प्रस्तुत पुनरीक्षण ही पोषणीय नहीं था क्योंकि वह अभिलेख धारक नहीं थे। ऐसे में पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश क्षेत्राधिकार से बाहर है। पुनरीक्षण प्राधिकारी ने 21.04.2022 को पारित उप जिला मजिस्ट्रेट, सदर, अयोध्या के आदेश में हस्तक्षेप करके विधि एवं तथ्य दोनों में त्रुटि की, बाद में, वाद की बहाली हेतु प्रतिवादी संख्या 3 एवं प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा प्रस्तुत प्रार्थना पत्र पर दिनांक 10.10.2022 को स्पष्टीकरण दिया।

(iv) 2006 की संहिता की धारा 116 के अंतर्गत बंटवारे के वाद में प्रतिवादी नंबर 4-श्रीमती सुखमीना सिंह द्वारा प्रस्तुत प्रारंभिक डिक्री दिनांक16.06.2022 को पारित की गई थी एवं प्रारंभिक डिक्री के संदर्भ में नक्शा तैयार किया गया एवं उसके बाद दिनांक10.10.2022 को अंतिम डिक्री पारित की गई जिसके विरुद्ध प्रथम अपील अर्थात अपील संख्या 2010/2022, कम्प्यूटरीकृत वाद संख्या-C202204000002010 (सुखमीना सिंह एवं अन्य बनाम श्रीमती माया सिंह एवं अन्य) प्रस्तुत की गई थी तथा प्रथम अपीलीय न्यायालय ने अपने आदेश दिनांक 24.01.2023 के अंतर्गत अपील को खारिज कर दिया था तथा अब दूसरी अपील लंबित है, जिसमें प्रतिवादी संख्या 2 और 3 के पक्ष में कोई अंतरिम आदेश पारित नहीं किया गया है और ऐसा होने पर, विभाजन के वाद में आदेश के आधार पर दिनांक 10.10.2022 का आदेश उचित एवं न्यायसंगत था तथा पुनरीक्षण में हस्तक्षेप अनुचित है।

(v) एडवोकेट कमिश्नर द्वारा तैयार किया गया नक्शा भी यह साबित करता है कि भूमि का बंटवारा हो चुका है।

(vi) यदि यह मान लिया जाए कि उस स्थिति में भी गाटा संख्या 853 के संबंध में कोई विभाजन नहीं हुआ था, तब गाटा संख्या 854 के संबंध में आदेश में हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए था।

इसके विपरीत, विरोधी पक्ष संख्या 3 के विद्वान अधिवक्ता श्री आर.डी.शाही एवं श्री राकेश कुमार सिंह, विरोधी पक्ष संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री हरिश्चंद्र ने कहा कि:-

(i) गैर-विभाजित भूमि के संबंध में एकमात्र याचिकाकर्ता द्वारा 2006 की संहिता की धारा 80 के अंतर्गत प्रार्थना पत्र पोषणीय नहीं था, इसलिए उप जिला मजिस्ट्रेट, सदर, अयोध्या सहित किसी भी प्राधिकारी द्वारा कोई आदेश पारित नहीं किया जा सकता है। इस संबंध में धारा 80(1) के प्रावधान एवं 2006 की धारा 80 की उपधारा 4 का संदर्भ दिया गया है।

(ii) प्रतिवादी संख्या 3-देवेश सिंह, प्रतिवादी संख्या 4-श्रीमती सुखमीना सिंह द्वारा विक्रय विलेख निष्पादित करने के पश्चात उसके पक्ष में श्रीमती सुखमीना सिंह के स्थान पर प्रवेश किया जो स्वीकार करती हैं कि वह याचिकाकर्ता की सह-हिस्सेदार थीं, अतः प्रतिवादी संख्या 3-देवेश सिंह को बहाली हेतु प्रार्थना पक्ष करने के साथ एक पुनरीक्षण प्रस्तुत करने का भी अधिकार था।

(iii) इस न्यायालय द्वारा दिनांक 11.01.2023 के प्रश्नगत आदेश में कोई भी हस्तक्षेप, 2006 की संहिता की धारा 80 के अंतर्गत याचिकाकर्ता द्वारा दिए गए प्रार्थना पत्र पर उप जिला मजिस्ट्रेट, सदर, अयोध्या द्वारा पारित दिनांक 21.04.2022 के अवैध आदेश साथ ही आगामी आदेश दिनांक 10.10.2022 को भी पुनः प्रदर्शित करेगा।

यह विधि का स्थापित सिद्धांत है कि रिट जारी करना अथवा किसी आदेश को रद्द /

अपास्त करना यदि किसी अन्य हानिकारक, असत्य अथवा अवैध आदेश को पुनः प्रदर्शित करता है तब उस स्थिति में रिट न्यायालय को मामले में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए एवं भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत इस पर प्रदत्त अपनी विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग करने से इंकार कर देना चाहिए। इस संबंध में इस न्यायालय द्वारा **रिट याचिका संख्या 343/1999 (अतुल कुमार सिंह बनाम उ०प्र० राज्य)** में दिनांक24.02.2020 को पारित निर्णय का संदर्भ दिया गया है।

(iv) 2006 की धारा 116 से संबंधित कार्यवाही में पारित आदेशों को चुनौती देने वाली दूसरी अपील प्रस्तुत की गई है जिसमें अभिलेख तलब किए गए हैं तथा वाद अभी भी विधिक अधिकरण के समक्ष विचाराधीन है। प्रार्थना है कि याचिका खारिज कर दी जाये।

पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिये गये उपरोक्त तर्क पर विचार किया गया तथा प्रश्नगत आदेश सहित अभिलेखों का परिशीलन किया गया।

वर्तमान याचिका में शामिल विवाद का मूल्यांकन एवं निर्णय लेने हेतु, इस न्यायालय का विचार है कि वर्तमान वाद में 2006 की संहिता की धारा 80, जैसा कि प्रार्थना पत्र प्रस्तुत करने की तिथि पर लागू एवं प्रासंगिक है तथा इसे यहां निम्नवत प्रस्तुत किया गया है: -

> ***"[80] औद्योगिक, वाणिज्यिक या आवासीय प्रयोजनों हेतु जोत का उपयोग।-***
>
> *(1) जहां संक्रमणीय अधिकार वाला भूमिधर, अपनी जोत या उसके भाग का, औद्यौगिक, वाणिज्यिक या आवासीय प्रयोजन के लिए उपयोग करता है, वहां उपजिलाधिकारी स्वप्रेरणा से या ऐसे भूमिधर द्वारा आवेदन किये जाने पर यथाविहित जांच करने के पश्चात या तो यह घोषणा कर सकता है कि वह भूमि कृषि से भिन्न प्रयोजन के लिए उपयोग में लाई जा रही है या प्रार्थना पत्र को नमंजूर कर सकता है। उपजिलाधिकारी ऐसी घोषणा या नामंजूरी के कारणों का उल्लेख लिखित रूप में करेगा और प्रार्थना पत्र की प्राप्ति के दिनांक से पैंतालीस कार्य दिवसों के अन्दर अपने विनिश्चय की सूचना आवेदक को देगा;*
>
> **[परंतु यदि घोषणा के लिए प्रार्थना पत्र निर्धारित शुल्क के साथ किया जाता है तथा संयुक्त खाते के वाद में, सह-काश्त धारक के वाद में सह-काश्त धारकों की कोई आपत्ति संलग्न नहीं की जाती है तथा यदि उप-जिला अधिकारी द्वारा उपर्युक्त पैंतालीस दिनों के भीतर घोषणा नहीं की जाती है तब घोषणा की गई मानी जाएगी। तहसीलदार इसका रिकार्ड राजस्व अभिलेख में "उप-जिला अधिकारी के आदेश के अधीन" टिप्पणी के साथ दर्ज करेगा।*
>
> *यदि कोई प्रभावित पक्ष उक्त घोषणा के संबंध में आपत्ति दाखिल करना चाहता है तो वह सक्षम न्यायालय में आपत्ति दाखिल कर सकता है]।*
>
> *(2) जहाँ संक्रमणीय अधिकारों वाला कोई भूमिधर अपनी जोत या उसके आंशिक भाग का भविष्य में औद्यौगिक,*

वाणिज्यिक या आवासीय प्रयोजनों के लिए उपयोग करने का प्रस्ताव करता है वहाँ ऐसे भूमिधर द्वारा आवेदन किये जाने पर उपजिलाधिकारी, यथाविहित रूप में जाँच करने के पश्चात आवेदन प्राप्त किये जाने के दिनांक से पैंतालीस कार्य दिवस के भीतर या तो यह घोषणा कर सकता है कि उक्त भूमि का प्रयोग कृषि से भिन्न प्रयोजन के लिए किया जा सकता है या वह आवेदन अस्वीकृत कर सकता है। यदि आवेदन अस्वीकृत किया जाता है तो उपजिलाधिकारी को ऐसी अस्वीकृति के लिखित कारणों का उल्लेख करना होगा आवेदक को अपने विनिश्चय की सूचना देगी होगी; परन्तु यह और कि यदि भूमिधर, इस उपधारा के अधीन घोषणा के दिनांक से पांच वर्ष की अवधि के भीतर प्रस्तावित गैर कृषि संबंधी गतिविधि प्रारम्भ करने में विफल रहता है तो उपधारा (2) के अधीन जोत या उसके आंशिक भाग की घोषणा व्यपगत हो जायेगी;

परन्तु यह और कि इस उपधारा के अधीन घोषणा, भू-उपयोग परिवर्तन की कोटि में नहीं होगी और उक्त भूमि निरन्तर कृषि भूमि के रूप में ही समझी जायेगी। तथापि, भूमिधर ऐसी जोत या उसके आंशिक भाग, जिसके लिए इस उपधारा के अधीन घोषणा प्राप्त की गयी हो, पर प्रस्तावित गतिविधि अथवा परियोजना के लिए ऋण और अन्य आवश्यक अनुज्ञाएं, समाशोधन आदि प्राप्त करने का हकदार होगा;

(3) अपनी जोत या उसके आंशिक भाग के लिए उपधारा (2) के अधीन घोषणा धारण करने वाला कोई भूमिधर, उपधारा (2) के अधीन घोषणा से पांच वर्ष की अवधि के भीतर निर्माण क्रिया-कलाप पूर्ण कर लेने या प्रस्तावित गैर कृषि क्रिया-कलाप प्रारम्भ करने के पश्चात् उपधारा (2) की घोषणा को उपधारा (1) की घोषणा से आच्छादित करने के लिए उपजिलाधिकारी के समक्ष आवेदन कर सकता है। ऐसा कोई आवेदन प्राप्त किये जाने पर, उपजिलाधिकारी यथा आवश्यक जाँच करने के पश्चात् आवेदन प्राप्त किये जाने के दिनांक से 15 दिन की अवधि के भीतर आवेदन स्वीकृत करेगा या अस्वीकृत करेगा। अस्वीकृति की स्थिति में उसे ऐसी अस्वीकृति के कारणों को लिखित रूप में अभिलिखित करना होगा;

परन्तु यह कि उपधारा (2) के अधीन घोषणा का, उपधारा (1) के अधीन घोषणा में संपरिवर्तन के लिए भूमिधर पूर्व में उपधारा (2) के अधीन घोषणा के लिए अपने द्वारा पहले ही भुगतान की गई धनराशि का समायोजन करने के पश्चात् प्रचलित सर्किल दर पर आगणित संदेय शुल्क की मात्र अवशेष धनराशि का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी होगा;

(4) उपधारा (1) या (2) के अधीन घोषणा के लिए भूमिधरी भूमि में अविभाजित हित रखने वाले किसी सह-भूमिधर द्वारा किया गया कोई आवेदन तब तक पोषणीय नहीं होगा जब

तक कि ऐसी भूमिधरी भूमि के समस्त सह-भूमिधरों द्वारा आवेदन नहीं किया जाता है। यदि कोई एक सह-भूमिधर, संयुक्त हित की भूमि में से अपने अंश की घोषणा कराना चाहता है तो ऐसा आवेदन, भूमि में सह-भूमिधरों के अपने-अपने अंशों का विभाजन विधि के उपबन्धों के अनुसार किये जाने के पश्चात ही ग्रहण किया जायेगा;

(5) उपधारा (1) या उपधारा (2) के अधीन घोषणा के लिए आवेदन में ऐसे विवरण अंतर्विष्ट होंगे और उक्त आवेदन ऐसी रीति से किया जायेगा जैसा कि विहित किया जाए ;

(6) जहां उपधारा (1) या (2) के अधीन आवेदन जोत के किसी आंशिक भाग के संबंध में किया जाता है, वहां उपजिलाधिकारी विहित रीति से ऐसे आंशिक भाग का सीमांकन ऐसी घोषणा के प्रयोजन के लिए कर सकता है ;

(7) इस धारा के अधीन कोई घोषणा, उपजिलाधिकारी द्वारा नहीं की जा सकती है, यदि उसका यह समाधान हो जाये कि भूमि या उसके आंशिक भाग का उपयोग, ऐसे प्रयोजन के लिए किया जा रहा है या किया जाना प्रस्तावित है, जिसके कारण लोक उपताप होना या लोक व्यवस्था, लोक स्वास्थ, सुरक्षा या सुविधा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ना सम्भावित हो या जो महायोजना में प्रस्तावित उपयोगों के विरुद्ध हो ;

(8) यदि भूमि या उसका आंशिक भाग, जिसके लिए इस धारा के अधीन घोषणा की अपेक्षा की जा रही हो, किसी नगरीय या औद्यौगिक विकास प्राधिकरण के अधीन अधिसूचित क्षेत्र के अन्तर्गत आता है तो सम्बन्धित विकास प्राधिकरण की पूर्व अनुज्ञा आज्ञापक होगी।

(9) राज्य सरकार इस धारा के अधीन घोषणा के लिए शुल्क-मान नियत कर सकती है और भिन्न-भिन्न शुल्क भिन्न-भिन्न प्रयोजनों के लिए नियत किये जा सकते हैं:
परन्तु यह कि यदि आवेदक जोत या उसके आशिक भाग का उपयोग अपने निजी आवासीय प्रयोजन के लिए करता है तो इस धारा के अधीन घोषणा के लिए कोई शुल्क प्रभारित नहीं किया जायेगा।

धारा 80(1) के परंतुक के साथ 2006 की धारा 80 की उपधारा 4 के दृष्टिगत, इस न्यायालय को यह देखना होगा कि 2006 की संहिता की धारा 80(1) के अंतर्गत याचिकाकर्ता द्वारा दिया गया प्रार्थना पत्र पोषणीय था अथवा नहीं।

यहां यह कहना उचित होगा कि परंतुक से उपधारा-1 तक, ऐसा प्रतीत होता है कि किसी प्रार्थनापत्र की पोषणीयता हेतु "सह-खातेदारों की अनापत्ति आवश्यक है" तथा उपधारा 4 से, ऐसा प्रतीत होता है कि "भूमिधारी भूमि में अविभाजित हित रखने वाले किसी भी सह-भूमिधर द्वारा

घोषणा हेतु कोई भी प्रार्थना पत्र पोषणीय नहीं होगा, जब तक कि ऐसी भूमिधारी भूमि के सभी सह-भूमिधरों द्वारा प्रार्थना पत्र नहीं दिया जाता है एवं यदि सह भूमिधर में से केवल एक ही संयुक्त हित के साथ भूमि में अपने हिस्से हेतु घोषणा प्राप्त करना चाहता है, तब ऐसे प्रार्थना पत्र पर तभी विचार किया जाएगा जब भूमि में सह भूमिधर के संबंधित हिस्से को विधि के प्रावधानों के अनुसार विभाजित किया गया हो।"

वाद के उपरोक्त सूचित तथ्यों एवं ऊपर उल्लिखित विक्रय विलेखों से, इस न्यायालय ने पाया कि प्रतिवादी संख्या 4-श्रीमती सुखमीना सिंह द्वारा प्रतिवादी क्रमांक 2 एवं 3 के पक्ष में निष्पादित विक्रय विलेख सहित सभी विक्रय विलेखों में दर्शाई गई सूचनायें समान हैं तथा इन्हें निम्न रूप में वर्णित किया गया है "**पूरब**- चकरोड़ कच्चा 1 लट्ठा बादहू खेत नं०- 849, 850 आदि, **पश्चिम**-सीमा ग्राम जलालुदीन नगर, **उत्तर**- सीमा ग्राम जलालुदीननगर, **दक्षिण**-गाटा सं०857 अन्य व्यक्ति ।"

इस तथ्य को प्रमाणित करने हेतु उपरोक्त संदर्भों के अतिरिक्त कोई अन्य दस्तावेज इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया है कि याचिकाकर्ता ने गाटा संख्या 853 का हिस्सा माप एवं सीमांकन द्वारा उचित विभाजन के पश्चात क्रय किया था।

इसके अतिरिक्त, यदि श्रीमती सुखमीना सिंह एवं रुक्मणी के मध्य बंटवारा हुआ था तब उक्त तथ्य का उल्लेख विक्रय पत्र में किया जाना चाहिए था तथा उसे विक्रय पत्र में दर्शाई गई सीमाओं के अनुसार स्पष्ट किया जाना चाहिए था। यद्यपि विक्रय विलेख इस पहलू पर मौन हैं। इसका मतलब यह है कि उपरोक्त बताए गए विक्रय विलेखों के निष्पादन से पूर्व कोई समझौता नहीं हुआ।

अतः विक्रय पत्र में दर्शाई गई सीमाओं सहित, उपरोक्त के दृष्टिगत इस न्यायालय का मानना है कि माप एवं सीमांकन द्वारा वास्तविक विभाजन के बिना, संबंधित व्यक्तियों ने गाटा संख्या 853 में अपना हिस्सा विक्रय किया।

जैसा कि प्रतिवादी संख्या 3-देवेश सिंह द्वारा दायर व्यादेश हेतु वाद में अधिवक्ता आयुक्त द्वारा तैयार किया गया नक्शा, पेपर बुक पृष्ठ संख्या 143 पर संलग्न है, इस न्यायालय का विचार है कि इस निष्कर्ष को दर्ज करने हेतु इस पर विश्वास व्यक्त नहीं किया जा सकता है कि संपत्ति का विभाजन 2006 की संहिता की धारा 80 के अंतर्गत प्रार्थना पत्र प्रस्तुत करने से पूर्व किया गया था।

श्री खान द्वारा किए गए गाटा संख्या 854 से संबंधित प्रस्तुतियों के संबंध में, इस न्यायालय ने अभिलेख विशेष रूप से याचिका के संलग्नक संख्या 3 से पाया कि गाटा संख्या 854 का कुल क्षेत्रफल 0.2870 हेक्टेयर प्रतीत होता है और उसी में से, याचिकाकर्ता ने 0.10790 हेक्टेयर जमीन खरीदी तथा उससे ऐसा प्रतीत होता है कि संयुक्त स्वामित्व के बावजूद सह-खातेदार की ओर से कोई आपत्ति प्रस्तुत नहीं की गई और न ही याचिका में यह विशेष रूप से कहा गया है कि भूमि में सह-भूमिधरों के हिस्सों को 2006 की संहिता की धारा 80 के अंतर्गत आवेदन दाखिल करने से पूर्व विधि के प्रावधानों के अनुसार विभाजित किया गया है।

उपरोक्त के दृष्टिगत इस न्यायालय का दृढ़ विचार है कि 2006 की संहिता की धारा 80 के अंतर्गत प्रार्थना को प्राथमिकता देने से पूर्व, विवाद में भूमि/भूखंड अर्थात गाटा संख्या 853 एवं 854 का बँटवारा माप एवं सीमांकन द्वारा नहीं किया गया था, अतः संहिता 2006 की धारा 80(1) के प्रावधानों के साथ 80(4) के दृष्टिगत यह पोषणीय नहीं था तथा ऐसा होने पर, उक्त प्रार्थना पत्र पर उप जिलाधिकारी, सदर, अयोध्या द्वारा कोई आदेश पारित नहीं किया जा सका। उप जिलाधिकारी मजिस्ट्रेट, सदर, अयोध्या का आदेश 2006 की संहिता की धारा 80 के अंतर्गत क्षेत्राधिकार के भीतर होगा यदि आदेश एक ऐसे प्रार्थना पत्र पर पारित किया जाता है जो धारा 80 के अनुसार पोषणीय है अन्यथा यह क्षेत्राधिकारविहीन होगा। एक ऐसे प्रार्थना पत्र पर आदेश पारित करने में जो स्वयं पोषणीय नहीं था, उप जिलाधिकारी मजिस्ट्रेट, सदर, अयोध्या ने अपने क्षेत्राधिकार का उल्लंघन किया। अतः दिनांक 21.04.2022 का आदेश एक अवैध एवं अस्तित्वहीन आदेश था क्योंकि यह एक ऐसे प्रार्थना पत्र पर पारित किया गया था जो पोषणीय नहीं था, जैसे दिनांक 21.04.2022 के आदेश को निरस्त करने हेतु एक प्रार्थना पत्र, वाद संख्या RST/4456/2022 के रूप में पंजीकृत, पर आगामी आदेश दिनांक 10.10.2022 पारित किया गया यद्यपि विभाजन के मुकदमे में डिक्री के आधार पर पारित किया गया है, जो द्वितीय अपील में विचाराधीन है, इसे वैध/विधिक आदेश नहीं कहा जा सकता है।

एकमात्र देवेश सिंह (प्रतिवादी संख्या 3) द्वारा पुनरीक्षण की पोषणीयता के संबंध में, इस न्यायालय का मानना है कि पुनरीक्षण पोषणीय था। यह इस तथ्य के दृष्टिगत है कि गाटा संख्या 853 का कुछ हिस्सा क्रय करने के पश्चात, देवेश सिंह सह-भूमिधर/सह-खातेदार बन गए तथा ऐसा होने के साथ विवादित भूमि में सह-भूमिधर/सह-खातेदार के अधिकारों के दृष्टिगत, संहिता 2006 की धारा 80 के अंतर्गत प्रारंभ की गई कार्यवाही में देवेश सिंह को सुनवाई का अवसर दिया जाना आवश्यक था।

यदि पोषणीयता के मुद्दे पर श्री खान के तर्कों को प्रत्यक्ष मूल्य पर लिया जाए, तब भी प्रश्नगत आदेश में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। इसका कारण यह है कि यह विधि का स्थापित सिद्धांत है कि रिट जारी करने अथवा किसी आदेश को रद्द/अपास्त करने से यदि कोई अन्य हानिकारक, असत्य अथवा अवैध आदेश पुनः प्रचलित होता है तो उस स्थिति में रिट न्यायालय को वाद में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए एवं भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत प्रदत्त अपनी शक्ति का प्रयोग करने हेतु इनकार कर देना चाहिए।

उपरोक्त के अतिरिक्त **ए.एम. एललिसन बनाम बी.एल.सेन ; AIR 1957 SC 227,** में एक आपत्ति उठाई गई थी कि डिप्टी कलेक्टर के पास प्रश्न निर्धारित करने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं था। सर्वोच्च न्यायालय ने इस आपत्ति पर इस आधार पर विचार करने से इनकार कर दिया कि आदेश को संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत रिट याचिका में चुनौती दी गई थी। यह टिप्पणी की गई कि :-

> *"उत्प्रेषण द्वारा कार्यवाही "निश्चित रूप से नहीं" होती है। (हेल्सबरी के 'लॉज़ ऑफ इंग्लैंड', हेलशार्न संस्करण, खंड 9,*

प्रस्तर 1480 तथा 1481, पृष्ठ 877-878 देखें)। उच्च न्यायालय असम के पास रिट को अस्वीकार करने की शक्ति थी यदि वह संतुष्ट था कि न्याय में कोई त्रुटि नहीं हुई थी, तथा इन अपीलों में जो अनुच्छेद 226 के अंतर्गत आवेदनों में उच्च न्यायालय के आदेशों के विरुद्ध निर्देशित हैं, हम तब तक हस्तक्षेप करने से इंकार कर सकते हैं जब तक हम संतुष्ट नहीं हो जाते क्योंकि वाद के न्याय हेतु ऐसा करना आवश्यक है। किंतु हम इतने संतुष्ट नहीं हैं। हमारा मत है कि, डिप्टी कमिश्नर, सिबसागर एवं उच्च न्यायालय दोनों के द्वारा प्रतिवादीगण के पक्ष में समवर्ती रूप से पाए गए गुण-दोषों के दृष्टिगत, हमें हस्तक्षेप करने से इंकार कर देना चाहिए।"

बक्स सिंह बनाम संयुक्त निदेशक चकबंदी, उ०प्र० लखनऊ एवं अन्य; AIR 1966 सभी 156, में इस न्यायालय ने कहा, "जहाँ प्रश्नगत आदेश न्यायसंगत हैं जहाँ ऐसा प्रतीत होता है कि पक्षकारों के साथ सारभूत न्याय किया गया है, उच्च न्यायालय मात्र इस आधार पर अपने रिट क्षेत्राधिकार में हस्तक्षेप करने हेतु इच्छुक नहीं होगा कि ऐसे आदेश विधि में गलत हैं।"

ओम प्रकाश बनाम उ०प्र० माध्यमिक शिक्षा सेवा आयोग, एलनगंज, इलाहाबाद एवं अन्य, (1990) UPLBEC 983 में, न्यायालय ने निम्नानुसार कहा: -

"यह पूर्णतया स्थापित है कि यदि किसी प्राधिकारी के निर्णय द्वारा, भले ही क्षेत्राधिकार के बिना हो, पक्षकारों के मध्य सारभूत न्याय किया जाता है तब उसे संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत कार्यवाही में रद्द नहीं किया जा सकता है।"

उपरोक्त कारणों से, यह न्यायालय प्रतिवादी संख्या 1-राजस्व बोर्ड, उ०प्र०, लखनऊ द्वारा पारित आदेश दिनांक 11.01.2023 में हस्तक्षेप नहीं करेगा, तदनुसार, याचिका **खारिज** की जाती है। वाद व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं किया जाता है।

(2023) 3 ILRA 188

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल वाद

दिनांक: लखनऊ 10.02.2023

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ लवानिया

न्यायमूर्ति

रिट बी संख्या - 108 / 2023

अंगद प्रताप सिंह एवं अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

उप निदेशक चकबंदी/अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट (एफ/आर), लखीमपुर खीरी एवं अन्य...प्रतिपक्षी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता: निजाम अली सिद्दीकी

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: सी.एस.सी.

सिविल कानून - उत्तर प्रदेश समेकन अधिनियम, 1953 - धारा 48 - पुनरीक्षण और संदर्भ - उप निदेशक समेकन की शक्तियाँ - वाद की रिमांड - अधिनियम की धारा 48 उप निदेशक को किसी भी आदेश की सहीता/वैधता/उचितता की जांच

करने की पर्याप्त शक्ति प्रदान करती है, जिसमें किसी भी अधीनस्थ प्राधिकरण द्वारा दर्ज की गई किसी भी तथ्य या कानून की खोज की जांच करने की शक्ति सम्मिलित है, साथ ही मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य को फिर से समझने की शक्ति भी है - जब सभी साक्ष्य उसके समक्ष थे, तो समेकन अधिकारी को वाद को रिमांड करने का आदेश उचित नहीं था और उप निदेशक को स्वयं वाद का निर्णय लेना चाहिए था क्योंकि वह धारा 48 के तहत व्यापक शक्ति का प्रयोग कर रहे थे - वाद की रिमांड से विलंब होती है और वाद को लंबा खींचती है, साथ ही पक्षों को परेशान करती है - इस वाद में, उप निदेशक द्वारा पारित रिमांड आदेश को निरस्त किया गया और चूंकि पूरा सामग्री डी.डी.सी. के सामने उपलब्ध था, वाद पुनः उचित सुनवाई का अवसर प्रदान करके डी.डी.सी. को नवीन निर्णय के लिए प्रेषित किया गया (पैराग्राफ 26, 27)

स्वीकृत। (E-5)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. राम उदित बनाम डी.डी.सी. MANU/UP/1768/2014

2. प्रेम नाथ एवं अन्य बनाम डी.डी.सी., बाराबंकी एवं अन्य W.P. संख्या 436 (समेकन) का 2015

3. गुलाब चंद बनाम डी.डी.सी. 2019 SCC OnLine All 4756

4. शेव नंद बनाम डी.डी.सी., इलाहाबाद, (2000) 3 SCC 103

5. राम जीत बनाम डी.डी.सी., जौनपुर एवं अन्य, WRIT - B संख्या 42465 का 1999, निर्णय दिनांक 31.05.2013

6. बशीर अहमद बनाम डी.डी.सी. 1986 RD 164

7. राम औतार एवं अन्य बनाम डी.डी.सी. एवं अन्य, 1991 Supp (1) SCC 552

8. अश्विन कुमार पटेल बनाम उपेंद्र जे. पटेल, AIR 1999 SC 1125

9. भागवत प्रसाद बनाम डी.डी.सी. 2006 RD (101) 383

10. फेकू बनाम डी.डी.सी. 2007 RD (103) 402

11. सीताराम बनाम डी.डी.सी. 2007 RD (102) 113

12. बाबू लाल बनाम डी.डी.सी. 2008 RD (104) 521

13. शेख नाथू बनाम डी.डी.सी. (2009) 106 RD 96

14. दीना नाथ एवं अन्य बनाम उप निदेशक समेकन एवं अन्य, 2010 (110) RD 584

15. संतोष कुमार बनाम डी.डी.सी. एवं अन्य WRIT-B संख्या 4377 का 2014 निर्णय दिनांक 29.1.2014

16. विजय नाथ एवं अन्य बनाम उप निदेशक समेकन एवं अन्य, 2019 (9) ADJ 85

17. राम सेवक एवं अन्य बनाम डी.डी.सी. एवं अन्य WRIT-B संख्या 23608 का 2014 निर्णय दिनांक 06.05.2014

<u>माननीय न्यायमूर्ति सौरभ लवानिया.</u>

याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री नाज़िम अली सिद्दीकी और प्रतिवादी संख्या 1 और 2 की ओर से उपस्थित विद्वान राज्य अधिवक्ता श्री हेमंत कुमार पांडे को सुना गया। पारित किए जाने वाले प्रस्तावित आदेश के मद्देनजर, प्रतिवादी संख्या 3 से 26 तक को नोटिस निर्गत करने से एतद् द्वारा अभिमुक्ति

प्रदान किया जाता है। इन प्रतिवादियों को इस आदेश को वापस लेने हेतु उचित आवेदन दायर करने की स्वतंत्रता भी प्रदान की गई है, यदि वे इससे व्यथित हैं।

इस याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ताओं ने दिनांक 22.12.2022 के आदेश का विरोध किया है, जिसके अन्तर्गत प्रतिवादी संख्या 1/ उप-संचालक चकबन्दी/अपर जिला मजिस्ट्रेट (एफ/आर), लखीमपुर खीरी ने मामले को संबंधित चकबंदी अधिकारी को मुकदमे के पक्षकारों को सुनवाई का अवसर प्रदान करने के बाद वाद को नए सिरे से तय करने हेतु प्रतिप्रेषित कर दिया था। दिनांक 22.12.2022 के आदेश का प्रभावी भाग यहाँ सुलभ संदर्भ हेतु उद्धृत किया गया है:-

"मैंने निगरानीकर्तागणों व विपक्षीगणों के विद्वान अधिवक्तागणों को सुना तथा ग्राम के अभिलेखों व भूचित्र आदि का भली-भांति अवलोकन किया। अवलोकन से स्पष्ट है कि प्रश्नगत वाद गाटा संख्या-96 मि0 से संबंधित है, जिसमें मा0 उच्च न्यायालय के रिट याचिका संख्या-20 (सीलिंग)/1993 में पारित आदेश दिनांक 02.08.2004 द्वारा विपक्षीगणों के पिता तरसेम सिंह मृतक को गाटा संख्या-96/1/20.00, 94/1/1.90, 94/4/3.10 पर संक्रमणीय भूमिधर अंकित किया गया है। इस आदेश के अनुपालन में चकबन्दी अधिकारी के बाद संख्या-82/2020-21 अन्तर्गत धारा-21 (1) जोत चकबन्दी अधिनियम में पारित आदेश दिनांक 03.02.2021 द्वारा विपक्षीगण अंगद प्रताप सिंह आदि को गाटा संख्या-96/1/20.00 के सापेक्ष मूल्यांकन का चक प्रदिष्ट किया गया, परन्तु इस आदेश के अनुपालन में तैयार की गयी संशोधन तालिका में निगरानीकर्तागण जो वर्ष 1976 से प्रश्नगत भूमि के पट्टाधारक हैं, उनका चक समाप्त करके सीलिंग में दर्ज किया गया है, जिसका क्षेत्राधिकार चकबन्दी प्राधिकारियों को नहीं है। प्रश्नगत गाटा संख्या-96, जिसका बन्दोबस्ती क्षेत्रफल 44.22 एकड़ अभिलेखों में अंकित है तथा बाद में इसका क्षेत्रफल चकबन्दी में बढ़कर 48.28 एकड़ अंकित किया गया। गाटा संख्या-96 में ही वन भूमि 24.50 एकड़ सम्मिलित है। चकबन्दी अधिकारी द्वारा पारित आदेश में कितना क्षेत्रफल सीलिंग के समय वन भूमि में आरक्षित थी तथा कितनी भूमि सीलिंग से अवमुक्त हुई तथा उनमें से कितनी भूमि पर किन-किन पट्टेदारों को कितने क्षेत्रफल का पट्टा किया गया ? इस तथ्य का कोई उल्लेख नहीं है। यद्यपि मा0 उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश के अनुपालन में विपक्षीगणों को गाटा संख्या-96/1/20.00 एकड़ के सापेक्ष चक प्रदिष्ट किया जाना उचित है, परन्तु उससे प्रभावित होने वाले पट्टाधारकों के हितों को भी ध्यान रखना आवश्यक है। गाटा संख्या-96/1/20.00 एकड़ को छोड़कर शेष वन भूमि व पट्टेधारकों के सम्बन्ध में तथ्यपरक विस्तृत आदेश किया जाना आवश्यक है, जिससे कि सम्बन्धित पक्षकारों को अपना पक्ष व साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर मिल सके। चकबन्दी अधिकारी द्वारा पारित आदेश में प्रभावित पट्टेदारों से आनुपातिक मूल्यांकन खारिज करने का आदेश पारित किया गया है, परन्तु अनुपालन करते समय किसी-किसी पट्टेदार का पूरा चक ही समाप्त कर दिया गया है, जो उचित नहीं है। चकबन्दी अधिकारी द्वारा पारित आदेश की पुष्टि करके बन्दोबस्त अधिकारी चकबन्दी द्वारा भी त्रुटि की गयी है।

इसलिए न्यायिक दृष्टिकोण से उचित होगा कि प्रश्नगत वाद परीक्षण न्यायालय को इस निर्देश के साथ प्रत्यावर्तित किया जाये कि वह समस्त सम्बन्धित पक्षकारों को सुनकर प्रत्येक बिन्दु पर तथ्यपरक विस्तृत आदेश पारित करते हुए मा0 उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश का अनुपालन करना सुनिश्चित करें। तद्नुसार समस्त निगरानियां स्वीकार किये जाने योग्य हैं। उपरोक्त विवेचनानुसार आदेश हुआ कि:-

आदेश

उपरोक्त सम्सत निगरानियां स्वीकार की जाती है। चकबन्दी अधिकारी के वाद संख्या-82/20-21 में पारित आदेश दिनांक 03.02.2021 एवं बन्दोबस्त अधिकारी चकबन्दी की अपील संख्या-376 लगायत 384 में पारित आदेश दिनांक 26.05.2022 निरस्त किये जाते हैं। वाद चकबन्दी अधिकारी अन्तिम अभिलेख, प्रथम, लखीमपुर-खीरी को इस निर्देश के प्रत्यावर्तित किया जाता है कि वह सम्बन्धित पक्षकारों को सुनकर प्रत्येक बिन्दु पर तथ्यपरक विस्तृत आदेश पारित करना सुनिश्चित करें। पक्षगण चकबन्दी अधिकारी (उपरोक्त) के न्यायालय में दिनांक 25.01.2023 को पेश हों। यही आदेश निगरानी संख्या-524/20225410430000220З,525/2022541 04300002204,526/202253104300002205 ,52720225410430000220б,528/2022541 04300002207,529/20225410430000220В एवं 530 /20225410430000220९ पर भी लागू होगा। उपरोक्त समस्त निगरानी पत्रावलियां बाद आवश्यक कार्यवाही संचित अभिलेखागार हो।"

उपरोक्त उद्धृत प्रभावी भाग सहित आक्षेपित आदेश दिनांक 22.12.2022 से, यह स्पष्ट है कि चकबंदी अधिकारी को मुकदमे के पक्षों को सुनवाई का मात्र उचित अवसर प्रदान करना है और उसके बाद उसे प्रत्येक मुद्दे पर एक तर्कसंगत आदेश पारित करना है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आक्षेपित आदेश दिनांक 22.12.2022 की आलोचना करते हुए कहा कि चुनौती अधीन प्रतिप्रेषण आदेश, दिनांक 22.12.2022, कानून की दृष्टि से विशेष रूप से *उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम, 1953* की धारा 48(3) में दिए गए स्पष्टीकरण के मद्देनजर असंधार्य है (इसके बाद "1953 का अधिनियम" के रुप में सन्दर्भित)। ऐसे में, इस प्रकरण में इस न्यायालय की अनुग्रह आवश्यक है।

इसी क्रम में, आगे यह कथन प्रस्तुत किया गया है कि समस्त तथ्य चकबंदी अधिकारी के समक्ष उपलब्ध थी और 1953 का अधिनियम स्वयं चकबंदी अधिकारी को व्यापक शक्ति प्रदान करता है, जैसा कि 1953 के अधिनियम की धारा 48(3) के अन्तर्गत दिए गए स्पष्टीकरण से प्रतीत होता है और उसे पक्षों को सुनवाई का उचित अवसर प्रदान करने के बाद उनके मामले का गुण-दोष के आधार पर निर्णय करना चाहिए था। इस प्रकार, प्रतिवादी संख्या 1 ने *आक्षेपित आदेश दिनांक 22.12.2022 को पारित करते समय* विधि और तथ्य में त्रुटि की।

विद्वान राज्य अधिवक्ता श्री पांडे ने वर्तमान याचिका में शामिल मुद्दे पर इस न्यायालय की सहायता की। वे 1953 के अधिनियम की धारा 48(3) के अन्तर्गत प्रतिवादी संख्या 1 की शक्ति पर भी विरोध दर्ज नहीं करा सके।

उभयपक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत की गई दलीलों पर विचार किया गया और अभिलेख का अवलोकन किया गया।

वर्तमान याचिका पर निर्णय लेने हेतु, न्यायालय को 1953 के अधिनियम की धारा 48 को पुन: प्रस्तुत करना उचित लगता है, जो इस प्रकार है: -

"[48. पुनरीक्षण और विनिर्देशन. - (1) चकबंदी संचालक किसी अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा निर्णीत किसी मामले या की गयी किसी कार्यवाही का अभिलेख उस कार्यवाही की नियमितता के विषय में या उस मामले या कार्यवाही में उस प्राधिकारी द्वारा दिए गए [भू-अंतर्वर्ती आदेश से भिन्न आदेश की शुद्धता वैधता अथवा औचित्य के विषय में अपना समाधान करने के प्रयोजन से मँगा सकते हैं और उसकी जाँच करा सकता है तथा सम्बद्ध पक्षकारों की सुनवाई का अवसर देने के पश्चात् उस मामले अथवा कार्यवाही में ऐसा आदेश दे सकता है, जो वह उचित समझे।

(2) चकबंदी संचालक द्वारा उप-धारा (1) के अधीन अधिकारों का प्रयोग उपधारा (3) के अधीन विनिर्देशन किये जाने पर भी किया जा सकता है।

(3) चकबंदी संचालक के अधीनस्थ कोई प्राधिकारी, सम्बद्ध पक्षकारों को सुनवाई का अवसर देने के पश्चात् किसी मामले या कार्यवाही का अभिलेख उपधारा (1) के अधीन कार्यवाही हेतु चकबंदी संचालक को विनिर्दिष्ट कर सकता है।

स्पष्टीकरण (1) - इस धारा के प्रयोजनों हेतु, बंदोबस्त अधिकारी, (चकबंदी) चकबंदी अधिकारी (सी०ओ०), सहायक चकबंदी अधिकारी(ए०सी०ओ०), चकबंदीकर्ता और चकबंदी लेखपाल, चकबंदी संचालक के अधीन होंगे।

स्पष्टीकरण (2) - इस धारा के प्रयोजनों हेतु शब्द 'अंतर्वर्ती आदेश' का अर्थ किसी मामले अथवा कार्यवाही के सम्बन्ध में ऐसा आदेश होगा जो की ऐसे मामले या कार्यवाही अथवा उससे संपार्श्विक किसी ऐसे विषय का विनिश्चय करे, जिसका प्रभाव ऐसा मामले या कार्यवाही के अंतिम निस्तारण का न हो।

[स्पष्टीकरण (3) - इस धारा के अधीन किसी आदेश की शुद्धता, वैधता या औचित्य के परीक्षण करने के अधिकार में कोई निष्कर्ष, चाहे वह किसी अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा अभिलिखित तथ्य का हो या विधि का हो, सम्मिलित है और इसमें किसी मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य का पुनर्विवेचन करने का अधिकार भी सम्मिलित है।"]

इस स्तर पर, 1953 के अधिनियम की धारा 48 के अन्तर्गत उप निदेशक चकबंदी के दायरे/शक्ति पर विभिन्न अधिघोषणाओं का उल्लेख करना भी उचित है।

मनु/उ०प्र०/1768/2014 में प्रति **राम उदित बनाम डी.डी.सी.** के प्रकरण में इस न्यायालय द्वारा दिनांक 24.09.2014 को पारित निर्णय में, इस न्यायालय ने 1953 के अधिनियम और धारा 48 की योजना पर विचार करते हुए निम्नानुसार पाया:-

"10. क़ानून की योजना एक अस्थायी योजना पर विचार करती है, जिसमें हितधारक, अर्थात कार्यकाल धारक से आपत्ति आमंत्रित की जाती है, और उस पर विचार करने के बाद, योजना को अंतिम रूप दिया जाता है, अर्थात, चकों का आवंटन। इसके विरुद्ध अपीलीय शक्ति

अधिनियम, 1953 की धारा 21(2) के अन्तर्गत एसओसी को प्रदान की गई है। उपसंचालक द्वारा प्रयोग की जाने वाली शक्ति को अधिनियम, 1953 की धारा 48 के अन्तर्गत "**पुनरीक्षण और विनिर्देशन**" कहा जाता है।

11. प्रारंभ में अधिनियमित मूल धारा 48, कुछ इस प्रकार था :-

"48. **पुनरीक्षण** - चकबंदी संचालक किसी भी मामले का अभिलेख माँग सकता है यदि अधिकारी (मध्यस्थ के अतिरिक्त) जिसके द्वारा मामले का निर्णय किया गया था, ऐसा प्रतीत होता है कि उसने किसी अधिकार क्षेत्र का प्रयोग किया है जो कानून द्वारा उसमें निहित नहीं है या प्रयोग करने में विफल रहा है अधिकार क्षेत्र निहित है, या अपने अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में अवैध रूप से या पर्याप्त अनियमितता के साथ कार्य किया है और मामले में ऐसे आदेश पारित कर सकता है जैसा वह उचित समझे।"

12. इसे 1956 के उ०प्र० अधिनियम संख्या 24 के प्रतिस्थापन द्वारा संशोधित किया गया था जो निम्नानुसार है:

"48. चकबंदी संचालक की अभिलेख माँगने और आदेशों को संशोधित करने की शक्तियाँ - चकबंदी संचालक किसी भी मामले या कार्यवाही का अभिलेख माँग सकता है यदि वह अधिकारी (मध्यस्थ के अतिरिक्त) जिसके द्वारा मामले का निर्णय लिया गया था या कार्यवाही की गई थी ऐसा प्रतीत होता है कि उसने उस क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया है जो कानून द्वारा उसे निहित नहीं है या वह इस प्रकार निहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने में विफल रहा है, या अपने अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में अवैध रूप से या पर्याप्त अनियमितता के साथ कार्य किया है और मामले में ऐसे आदेश पारित कर सकता है जो वह उचित समझे।" (संशोधन मोटे अक्षरों में)

13. कुछ ही समय में, 1958 के उ०प्र० संशोधन अधिनियम संख्या 38 द्वारा इसमें पुनः संशोधन किया गया जो निम्नानुसार है:

"48. **पुनरीक्षण** - चकबंदी संचालक किसी भी मामले में निर्णय या की गई कार्यवाही का अभिलेख माँग सकता है, जहाँ उसकी राय है कि उप संचालक, चकबंदी ने-

(i) उस क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया जो कानून में उसे निहित नहीं है, या

(ii) अपने निहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने में विफल रहा, या

(iii) अपने अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में अवैध रूप से या पर्याप्त अनियमितता के साथ कार्य किया है, और जिसके परिणामस्वरूप, एक भूधृतिधारक के साथ पर्याप्त अन्याय हुआ प्रतीत होता है और वह 4, संबंधित पक्षों को सुनवाई का उचित अवसर प्रदान करने के बाद कर सकता है, और मामले में ऐसे आदेश पारित करें या कार्यवाही करें जो वह उचित समझे।"

(संशोधन मोटे अक्षरों में)

14. धारा 48 में उत्तर प्रदेश (संशोधन) 1963 के अधिनियम संख्या VIII धारा 39 के माध्यम से मामूली संशोधन किया गया। 1969 के अधिनियम संख्या 4 द्वारा भूतलक्षी प्रभाव से एक स्पष्टीकरण जोड़ा गया था। 1982 के उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 20 के द्वारा बड़ा संशोधन किया गया, यद्यपि उपधारा (1) में "अंतर्वर्ती आदेश के अतिरिक्त" शब्द 10.11.1980 से डाले गए थे। 1969 में डाले गए स्पष्टीकरण को 1982 के अधिनियम संख्या 20 द्वारा स्पष्टीकरण- (1) के रूप में 10.11.1980

से पुनः क्रमांकित किया गया। और फिर स्पष्टीकरण(2) को 10.11.1980 से जोड़ा गया।

15. वर्तमान में, धारा 48 इस प्रकार अभिनिर्धारित है:

"48. **पुनरीक्षण और विनिर्देशन** - (1) चकबंदी संचालक किसी अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा निर्णीत किसी मामले या की गयी किसी कार्यवाही का अभिलेख उस कार्यवाही की नियमितता के विषय में या उस मामले या कार्यवाही में उस प्राधिकारी द्वारा दिए गए [भू-अंतर्वर्ती आदेश से भिन्न आदेश की शुद्धता वैधता अथवा औचित्य के विषय में अपना समाधान करने के प्रयोजन से मँगा सकते हैं और उसकी जाँच करा सकता है तथा सम्बद्ध पक्षकारों की सुनवाई का अवसर देने के पश्चात् उस मामले अथवा कार्यवाही में ऐसा आदेश दे सकता है, जो वह उचित समझे।

(2) चकबंदी संचालक द्वारा उप-धारा (1) के अधीन अधिकारों का प्रयोग उपधारा (3) के अधीन विनिर्देशन किये जाने पर भी किया जा सकता है।

(3) चकबंदी संचालक के अधीनस्थ कोई प्राधिकारी, सम्बद्ध पक्षकारों को सुनवाई का अवसर देने के पश्चात् किसी मामले या कार्यवाही का अभिलेख उपधारा (1) के अधीन कार्यवाही हेतु चकबंदी संचालक को विनिर्दिष्ट कर सकता है।

स्पष्टीकरण (1) - इस धारा के प्रयोजनों हेतु, बंदोबस्त अधिकारी, (चकबंदी) चकबंदी अधिकारी (सी०ओ०), सहायक चकबंदी अधिकारी(ए०सी०ओ०), चकबंदीकर्ता और चकबंदी लेखपाल चकबंदी संचालक के अधीन होंगे।

स्पष्टीकरण (2) - इस धारा के प्रयोजनों हेतु शब्द 'अंतर्वर्ती आदेश' का अर्थ *किसी मामले अथवा कार्यवाही के सम्बन्ध में ऐसा आदेश होगा* जो की ऐसा मामले या कार्यवाही अथवा उससे संपार्श्विक किसी ऐसे विषय का विनिश्चय करे, जिसका प्रभाव ऐसा मामले या कार्यवाही के अंतिम निस्तारण का न हो।

[स्पष्टीकरण (3) - इस धारा के अधीन किसी आदेश की शुद्धता, वैधता या औचित्य के परीक्षण करने के अधिकार में कोई निष्कर्ष, चाहे वह किसी अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा अभिलिखित तथ्य का हो या विधि का हो, सम्मिलित है और इसमें किसी मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य का पुनर्विवेचन करने का अधिकार भी सम्मिलित है।"] (बल दिया गया)

16. शेर सिंह (मृत) बनाम चकबंदी के संयुक्त निदेशक एवं अन्य मनु/एससी/0514/1978: (1978) 3 एससीसी 172 मामले में धारा 48, जैसा कि शुरू में अधिनियमित किया गया था, पर विचार किया गया। न्यायालय ने पाया कि मात्र पढ़ने से पता चलता है कि यह सि०प्र०सं० की धारा 115 के समविषयक है, जो उच्च न्यायालय के पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार को अवैध या अनियमित अभ्यास या गैर-उपयोग या अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा क्षेत्राधिकार की अवैध धारणा के मामलों तक सीमित करती है। यदि किसी अधीनस्थ न्यायालय के पास किसी मामले का निर्णय करने का अधिकार क्षेत्र पाया जाता है, तो यह नहीं कहा जा सकता है कि उसने इसे अवैध रूप से या तात्विक अनियमितता के साथ प्रयोग किया

है, यहाँ तक कि वह मामले का निर्णय गलत तरीके से करता है। सि०प्र०सं० की धारा 115 की व्याख्या करने वाले मामलों पर विश्वास व्यक्त करते हुए, न्यायालय ने माना कि धारा 115 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय हेतु जो भी पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार उपलब्ध था, वही धारा 48 के अन्तर्गत डी0डी0सी0 के पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का दायरा था और तथ्यों की त्रुटियों में जाने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है। न्यायालय ने पाया कि अधीनस्थ न्यायालय द्वारा तथ्य या कानून के प्रश्न पर गलत निर्णय, जिसका उस न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के प्रश्न से कोई संबंध नहीं है, को सि०प्र०सं० की धारा 115 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय द्वारा ठीक नहीं किया जा सकता है और यही बात धारा 48 के अन्तर्गत डी0डी0सी0 पर भी लागू होगी। न्यायालय ने आगे कहा कि संयुक्त निदेशक के अधीनस्थ चकबंदी प्राधिकारियों के पास राजस्व अभिलेख में प्रविष्टियों की शुद्धता या अन्यथा के सवाल पर जाने हेतु पूर्ण क्षेत्राधिकार और क्षमता है। यदि दो न्यायालयों के तथ्य के समवर्ती निष्कर्ष हैं, जो पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार में कोई आधार नहीं छोड़ते हैं, जैसा कि ऊपर देखा गया है, तो चकबंदी के संयुक्त निदेशक द्वारा हस्तक्षेप सक्षम नहीं होगा। निर्णय के प्रस्तर 16 में न्यायालय ने कहा:

"इस प्रकार अधीनस्थ चकबंदी प्राधिकारियों ने अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए अवैध रूप से कार्य नहीं किया है, *चकबंदी के संयुक्त निदेशक उनके निर्णयों में हस्तक्षेप करने में सक्षम नहीं थे*।"

17. 1963 में संशोधित धारा 48 पर रमाकांत सिंह बनाम उप निदेशक चकबंदी, उ.प्र. एवं अन्य मनु/यूपी/0026/1975: एआईआर 1975 एएलएल 126 में विचार किया गया। परन्तु धारा 48(1) पर विचार करते समय न्यायालय ने इस प्रश्न पर कि उप निदेशक, चकबंदी ने एक बार अभिलेख हेतु बुलाया है, क्या मामला गुण-दोष के आधार पर निर्णीत होगा यह तय करना उनके लिए अवश्यकरणीय है? या यह किसी भी तकनीकी आधार जैसे उचित पक्ष को शामिल न करने आदि के आधार पर संशोधन को अस्वीकार और खारिज कर सकता है।

18. 1963 में संशोधित धारा 48, फिर शांति प्रकाश गुप्ता बनाम उपसंचालक 1981 एससीसी (सप्ल) 73 में संज्ञान में आया। इसमें न्यायालय ने पाया कि 1963 में संशोधित धारा 48, सि०प्र०सं० की धारा 115 से व्यापक थी। हालाँकि, यह माना गया कि संचालक को चकबंदी अधिकारी के विवेकाधिकार में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए जब तक कि जिस आदेश को उलटने की माँग की गई है वह स्पष्ट रूप से त्रुटिपूर्ण न हो या इससे न्याय की विफलता की संभावना न हो। इसी आशय से और समान प्रतिबंध लगाते हुए, राम दुलार बनाम उप संचालक, चकबंदी मनु/एससी/1004/1994: (1994) पूरक(2) एससीसी 198 में टिप्पणियाँ की गईं जो निम्नानुसार है:

"यह स्पष्ट है कि संचालक के पास कार्यवाही की वैधता या कार्यवाही की शुद्धता या अधिनियम के अन्तर्गत अधिकारियों द्वारा पारित अंतरिम आदेश के अतिरिक्त किसी भी आदेश की शुद्धता, वैधता या औचित्य के बारे में स्वयं को संतुष्ट करने की शक्ति थी। परन्तु आदेश की शुद्धता, वैधानिकता या औचित्य या कार्यवाही की शुद्धता या उसकी नियमितता पर विचार करते हुए यह स्वयं उन तथ्यों की सराहना करके तथ्य-खोज प्राधिकारी के रूप में मूल प्राधिकारी के अधिकार क्षेत्र को नहीं मान सकता

है। उसे इस बात पर विचार करना होगा कि क्या तथ्य या कानून की खोज को दर्ज करते समय अधिकारियों द्वारा कानूनी रूप से स्वीकार्य साक्ष्य पर विचार नहीं किया गया था या उसके द्वारा निकाला गया निष्कर्ष किसी साक्ष्य पर आधारित नहीं है, कोई पेटेंट अवैधता या अनौचित्य किया गया था या कोई प्रक्रियात्मक अनियमितता बरती गयी थी, जो मामले की जड़ तक पहुँचने, आदेश या निष्कर्ष को दर्ज करने में प्रतिबद्ध था।"

19. प्रीतम सिंह बनाम सहायक संचालक चकबंदी एवं अन्य मनु/एससी/0742/1996: (1996) 2 एससीसी 270 में थोड़ी अलग टिप्पणी की गई जहाँ न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया:

"जब मामला सहायक संचालक (चकबंदी) के समक्ष पुनरीक्षण में था, तो पूरा मामला उनके समक्ष और उनके निरंकुश क्षेत्राधिकार में था। अपने पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार में मामले की सुनवाई के दौरान, वह पूर्ण नियंत्रण में थे तथा बंदोबस्त अधिकारी (चकबंदी) द्वारा प्रतिप्रेषण को प्रभावित करने वाले आदेश की शुद्धता का परीक्षण करने की स्थिति में थे। दूसरे शब्दों में, पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के प्रयोग में सहायक संचालक (चकबंदी) उन किरायेदारों द्वारा विवादित भूमि के परित्याग के बारे में बंदोबस्त अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष की जाँच कर सकता है, जिन्हें 1359 फसली के खसरे में महत्वपूर्ण समय पर दर्ज किया गया था। एक वरिष्ठ न्यायालय के रूप में वह शक्ति सहायक संचालक (चकबंदी) के पास थी, भले ही बंदोबस्त अधिकारी के प्रतिप्रेषण आदेश को विशेष रूप से अलग और स्वतंत्र रूप से चुनौती नहीं दी गई थी। उल्लेखनीय है कि सहायक संचालक (चकबंदी) का न्यायालय, पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का न्यायालय है अन्यथा अधीनस्थ अधिकारी के किसी भी आदेश को सही करने हेतु स्वतः संज्ञान लेने की शक्ति रखता है। ऐसी स्थिति में सहायक संचालक (चकबन्दी) को पक्षकारों के बीच पूर्ण न्याय करने में परेशानी महसूस नहीं करनी चाहिए थी जबकि पूरा मामला उनके सामने था। उच्च न्यायालय में लड़ी गई कानूनी लड़ाई से अपीलकर्ताओं को कोई लाभ नहीं हुआ। पूरे विवाद को शामिल करते हुए योग्यता के आधार पर निर्णय सहायक संचालक (चकबन्दी) को देना था। (प्रस्तर-6) (बल दिया गया)

20. फिर भी राम अवतार बनाम राम धनी, मनु/एससी/0034/1997: एआईआर 1997 एससी 107 में, न्यायालय ने प्रस्तर 8 में अभिनिर्धारित किया:

"इस न्यायालय ने बार-बार बताया है कि वैधानिक संशोधन के अन्तर्गत शक्ति कितनी भी व्यापक क्यों न हो, सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 के विपरीत हो सकती है, फिर भी उस शक्ति का प्रयोग करते समय संबंधित प्राधिकारी अपीलीय न्यायालय के रूप में कार्य नहीं कर सकता है ताकि तथ्य के प्रश्न पर निष्कर्षों को दर्ज करने हेतु अभिलेख पर साक्ष्य की सराहना की जा सके।"

21. इन टिप्पणियों ने चीजों को फिर से धारा 48 के अन्तर्गत क्षेत्राधिकार के दायरे को सि०प्र०सं० की धारा 115 में निहित क्षेत्राधिकार के करीब लाते हुए आकार दिया।

22. धारा 48(1), 1963 में अपने संशोधन से पहले और उसके बाद जैसी थी, दोनों शेषमणि एवं अन्य बनाम उप संचालक, चकबंदी, जिला बस्ती, उ.प्र. एवं अन्य मनु/एससी/0079/2000: 2000(2) एससीसी 523 मामले में देखी गईं।

शेर सिंह बनाम संयुक्त संचालक चकबन्दी (उपर्युक्त) एवं राम दुलार बनाम उपसंचालक (उपर्युक्त) में पहले के निर्णय का जिक्र करते हुए और मध्यवर्ती संशोधन में, न्यायालय ने राम दुलार में की गई टिप्पणियों का पालन किया, जैसा कि ऊपर देखा गया और फिर उपसंचालक द्वारा पारित आदेश को बरकरार रखा, जिसमें पाया कि चकबन्दी अधिकारी और अतिरिक्त बंदोबस्त चकबंदी अधिकारी के आदेश कानून के स्थापित सिद्धांतों के विरुद्ध थे, इसलिए, एक अलग निष्कर्ष पर पहुँचने हेतु, उपसंचालक को पुनरीक्षण शक्ति का प्रयोग करके उचित ठहराया गया था।

23. इन परिस्थितियों में, विधानमंडल ने 2002 के उ० प्र० अधिनियम संख्या 3 द्वारा स्पष्टीकरण-3 डालकर हस्तक्षेप किया जो 10.11.1980 से प्रभावी हुआ परन्तु करण सिंह बनाम उपसंचालक2003(94) आरडी 382 में इस न्यायालय ने पाया कि स्पष्टीकरण-3 को जोड़ने के बाद भी, उपसंचालक अधीनस्थ अधिकारियों के स्थान पर अपने स्वयं के निष्कर्ष को प्रतिस्थापित नहीं कर सकता है।

24. जगदम्बा प्रसाद बनाम कृपा शंकर मनु/एससी/0274/2014: (2014) 5 एससीसी 707 के हालिया निर्णय में जिसमें शेर सिंह बनाम संयुक्त चकबंदी संचालक (उपर्युक्त) में पूर्व निर्णय के बाद प्रस्तर 15 में 1963 में संशोधित धारा 48 पर भी विचार किया गया है। यह अभिनिर्धारित किया गया कि:

"15. ऊपर उल्लिखित मामले में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित विधिक सिद्धांत के अनुसार, अधिनियम की धारा 48 के अन्तर्गत पुनरीक्षण प्राधिकरण की शक्ति मात्र यह सुनिश्चित करने तक विस्तारित है कि क्या अधीनस्थ न्यायालय ने निष्कर्ष पर पहुँचने में अपने अधिकार क्षेत्र का उल्लंघन किया है। इसलिए, यदि मूल और अपीलीय प्राधिकारी अपने अधिकार क्षेत्र में हैं, तो पुनरीक्षण प्राधिकारी निष्कर्ष पर पहुँचने हेतु दस्तावेजों के रूप में या अन्यथा नए तथ्यों को स्वीकार करके विपरीत निष्कर्ष पर पहुँचने हेतु अपने अधिकार क्षेत्र से आगे नहीं बढ़ सकता है। इसलिए, हम अपीलकर्ताओं के पक्ष में बिंदु संख्या 1 का उत्तर देते हुए कहते हैं कि पुनरीक्षण प्राधिकरण ने पुनरीक्षण चरण में दस्तावेजों को स्वीकार करके और अधीनस्थ न्यायालयों के निर्णय को बदलकर अधिनियम की धारा 48 के अन्तर्गत अपने अधिकार क्षेत्र को पार कर लिया है।"

25. इस प्रकार यह देखना जटिल है कि धारा 48 के स्पष्टीकरण ।।। ने संशोधन के दायरे को अपीलीय क्षेत्राधिकार के बराबर ला दिया है ताकि तथ्य के शुद्ध मुद्दे पर साक्ष्य का आकलन किया जा सके और निष्कर्षों को नए सिरे से प्रतिपादित किया जा सके। पुनरीक्षण शक्ति प्रथम या द्वितीय अपीलीय न्यायालय की शक्ति नहीं है, जो तथ्य और उसमें दर्ज निष्कर्षों के अंतिम न्यायालय हैं, इसमें राम दुलार (उपर्युक्त), शेषमणि (उपर्युक्त) और जगदंबा प्रसाद (उपर्युक्त) में चर्चा की गई जमीन पर धारा 48 के अन्तर्गत हस्तक्षेप संभव होगा।

26. इन मामलों में आक्षेपित आदेश 1980 के बाद के हैं और इसलिए, उपरोक्त प्रावधान द्वारा शासित हो सकते हैं। धारा 48 की उपधारा (1) वास्तव में पुनरीक्षण शक्ति से संबंधित है जबकि उपधारा (2) और (3) चकबंदी संचालक के अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा किए गए संदर्भ से संबंधित है। धारा 48(1) को स्पष्ट रूप से पढ़ने से यह स्पष्ट है कि चकबंदी निदेशक को स्वयं

को संतुष्ट करने के उद्देश्य से (i) *कार्यवाही की नियमितता हेतु और* (ii) किसी भी आदेश की शुद्धता, वैधता या औचित्य हेतु" किसी भी अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा तय किए गए किसी भी मामले या कार्यवाही को बुलाने और जाँच करने की शक्ति प्रदान की गई है।

रिट याचिका संख्या 436 (चकबंदी) 2015 (प्रेम नाथ एवं अन्य बनाम डी.डी.सी., बाराबंकी एवं अन्य) में पारित आदेश दिनांक 18.06.2015 के निर्णय में, इस न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:-

"अधिनियम 1953 की धारा 11 के अन्तर्गत अपील और धारा 48 के अन्तर्गत संशोधन दो अलग-अलग वैधानिक उपाय हैं। दोनों उपायों का दायरा भी अलग-अलग है। धारा 48 के अन्तर्गत पुनरीक्षण की शक्तियाँ और धारा 11 के अन्तर्गत अपील अलग-अलग हैं। अपीलीय शक्तियाँ व्यापक आयाम की हैं। धारा 48 के अन्तर्गत शक्ति कितनी भी व्यापक क्यों न हो, वर्ष 2002 में किए गए संशोधन के बाद भी, यह पुनरीक्षण प्राधिकारी को अभिलेखों को बुलाने और अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित किए बिना धारा 11 के अन्तर्गत बंदोबस्त अधिकारी चकबन्दी के समक्ष लंबित अपील के गुण-दोष तय करने की अनुमति नहीं देता है या अपील का निर्णय करने वाला कोई आदेश या किसी मामले का निर्णय करने वाला आदेश जिसका प्रभाव अपील के निस्तारण पर पड़ता हो। इस तरह की कार्रवाई अधिनियम 1953 के अन्तर्गत अपील के वैधानिक उपाय हेतु विध्वंशकारक है। इसमें कोई संदेह नहीं है।

उपसंचालक के पास धारा 48 के अन्तर्गत स्वत: संज्ञान लेने की शक्तियाँ हैं परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वह बंदोबस्त अधिकारी चकबन्दी के समक्ष लंबित अपील के अभिलेख को माँग सकता है और अपीलीय प्राधिकारी द्वारा निर्णय लिए बिना ही योग्यता के आधार पर निर्णय ले सकता है। इस संबंध में 1999(90) आरडी 363 में प्रतिपादित रंजीत एवं अन्य बनाम उप संचालक, चकबंदी बलिया एवं अन्य के मामले में इस न्यायालय के निर्णय का संदर्भ लिया जा सकता है, जिसमें अधीनस्थ प्राधिकारी के आदेश के विरुद्ध अपील की लंबितता के दौरान एक पुनरीक्षण किया गया था। उसी आदेश के विरुद्ध धारा 48 के अन्तर्गत उपसंचालक के समक्ष दायर किया गया। 1974 (सप्ल.) आरडी 262 में प्रतिपादित रमाकांत सिंह बनाम उप संचालक, चकबंदी, के मामले में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के निर्णय सहित विभिन्न निर्णयों पर प्रतिवादियों द्वारा विश्वास जताया गया। इस न्यायालय ने उक्त पूर्ण पीठ एवं अन्य निर्णयों पर विचार करने के बाद, निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:--

“6. प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा विश्वास किए गए इन तीन मामलों के तथ्य अलग-अलग हैं, इन तीनों मामलों में बंदोबस्त अधिकारी चकबन्दी के समक्ष अपील लंबित नहीं थी, मौजूदा मामले में, जैसा कि ऊपर देखा गया है, अपील और प्रत्युत्तर अपील बंदोबस्त अधिकारी चकबन्दी के समक्ष लंबित थीं, याचिकाकर्ताओं ने उप संचालक, चकबंदी के समक्ष विशेष रूप से आग्रह किया था कि अपील की लंबितता को देखते हुए, पुनरीक्षण संधार्य नहीं था। वर्तमान मामला एक ऐसा मामला है जहाँ उप संचालक, चकबंदी द्वारा प्रयोग किया जाने वाला क्षेत्राधिकार अपील के वैधानिक उपचार हेतु

घातक है और यह एक उपयुक्त मामला है जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के अन्तर्गत याचिकाओं में हस्तक्षेप की माँग करता है।"

एक अन्य मामले में [2007 (102) आरडी 250] में प्रतिपादित छक्कू राम एवं अन्य बनाम उप संचालक, चकबंदी, वाराणसी एवं अन्य में धारा 48 के अन्तर्गत एक पुनरीक्षण दायर किया गया था, जिसमें निर्बन्धन के आधार पर अपील को खारिज करने वाले बंदोबस्त अधिकारी चकबन्दी के आदेश को चुनौती दी गई थी। मुद्दा यह था कि क्या बंदोबस्त अधिकारी चकबन्दी द्वारा पारित आदेश की वैधता पर विचार करते समय पुनरीक्षण प्राधिकारी विवाद के गुणों पर भी विचार और निर्णय ले सकता था। रमाकांत सिंह के मामले (उपर्युक्त) में पूर्ण पीठ के निर्णय पर विचार करने के बाद इस न्यायालय ने फिर से निम्नानुसार निर्णय लिया:--

"3. श्री प्रदीप राय द्वारा सहाय्यित प्रतिवादियों के अधिवक्ता श्री संकठा राय ने संधार्यता के बिंदु पर दो प्रस्तुतियाँ दीं। पहला यह कि भले ही उप संचालक, चकबंदी ने विलम्ब हेतु क्षमा के संबंध में कोई विशेष निष्कर्ष नहीं दिया है, परन्तु मामले की गुणवत्ता के आधार पर विलम्ब को उनके द्वारा क्षमा कर दिया गया माना जाएगा। इस बिंदु पर उन्होंने एम. बी. शाह बनाम बी. एन. अग्रवाल (एआईआर 2002 एससी 451) के निर्णय पर विश्वास किया। इस निर्णय का वर्तमान मामले पर कोई अनुप्रयोग नहीं है। यह विवादस्पद नहीं है कि पुनरीक्षण, जो प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा दायर किया गया था, बंदोबस्त अधिकारी चकबन्दी के आदेश के विरुद्ध समय के भीतर था। यह बंदोबस्त अधिकारी, चकबंदी के समक्ष अपील थी, जिसे परिसीमा के आधार पर खारिज कर दिया गया था। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि मामले का अभिलेख उप संचालक, चकबंदी के समक्ष था और इसलिए, वह मामले को गुण-दोष के आधार पर तय कर सकता था। समर्थन में रमाकांत सिंह बनाम उप संचालक, चकबंदी (एआईआर 1975 एल्ड. 126) में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के निर्णय पर विश्वास किया गया है। उस मामले में संदर्भित प्रश्न यह था कि क्या धारा 48 के अन्तर्गत अभिलेख मांगे जाने के बाद चकबंदी उप संचालक पुनरीक्षण ज्ञापन में आवश्यक पक्ष को शामिल न करने हेतु पुनरीक्षण को खारिज कर सकता है या वह बिना पक्षकार बनाए गए पक्ष को सुनने के बाद मामले पर निर्णय कर सकता है। यह माना गया कि अभिलेख की जाँच करने के बाद उप संचालक, चकबंदी, पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का प्रयोग कर सकते हैं और प्रभावित पक्षों को सुनने के बाद उचित निर्णय ले सकते हैं। पूर्ण पीठ ने आगे कहा कि यदि पुनरीक्षण आवेदन दोषपूर्ण नहीं है, तो पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का प्रयोग स्वत: संज्ञान से नहीं अपितु पक्षकारों के अनुरोध पर होगा। वर्तमान मामले में संशोधन दोषपूर्ण नहीं था। इसलिए अधिकार क्षेत्र का प्रयोग स्वत: संज्ञान से नहीं अपितु याचिकाकर्ता के कहने पर किया गया था। इसलिए उप संचालक, चकबंदी, को परिसीमा के आधार पर अपील को खारिज करने वाले बंदोबस्त अधिकारी, चकबंदी के चक आवंटन की योग्यता के आधार को नहीं अपितु आदेश की सत्यता की जाँच करने की आवश्यकता थी, जो आदेश को चुनौती दी गई थी। याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने बशीर अहमद खान बनाम उप संचालक, चकबंदी, गाज़ीपुर एवं अन्य (2005(98) आरडी 378) में इस न्यायालय के निर्णय पर विश्वास व्यक्त

किया, जिसमें इस न्यायालय ने समान परिस्थितियों में यह विचार किया था कि परिसीमा के प्रश्न पर अपील को खारिज करने वाले बंदोबस्त अधिकारी, चकबंदी के आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण में चकबंदी के उप संचालक हेतु उचित कदम उस आदेश की शुद्धता की जाँच करना है। इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से यह प्रतीत होता है कि उप संचालक, चकबंदी द्वारा अपनाया जाने वाला उचित कदम बंदोबस्त अधिकारी, चकबंदी के आदेश की सत्यता की जाँच करना था, जो वह करने में विफल रहे। जहाँ तक योग्यता का सवाल है तो मुझे यह भी लगता है कि चकबंदी उप संचालक का आदेश बरकरार नहीं रखा जा सकता। याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का तर्क यह है कि उप संचालक, चकबंदी द्वारा चकों में किए गए संशोधन से याचिकाकर्ताओं को होने वाली हानि पर विचार नहीं किया गया है। रिट याचिका के प्रस्तर 6 में दिए गए कथनों पर विश्वास व्यक्त किया गया है जिसमें कहा गया है कि प्लॉट संख्या 368 के निकट याचिकाकर्ता संख्या 2 का घर है। अगर यह सत्य है कि याचिकाकर्ता संख्या 2 का घर प्लॉट संख्या 368 से सटा हुआ है तो यह याचिकाकर्ता संख्या 2 के पक्ष में उसकी आबादी के पास चक आवंटित करने की स्थिति होगी। हालाँकि, इस बिंदु पर इस न्यायालय द्वारा कोई राय व्यक्त नहीं की जा रही है क्योंकि नए निर्णय हेतु मामले को उप संचालक, चकबंदी को भेजने का प्रस्ताव है।"

मौजूदा प्रकरण में बंदोबस्त अधिकारी, चकबंदी द्वारा संपूर्ण अपील या किसी भी मामले/मुद्दे पर कोई न्यायनिर्णयन नहीं लिया गया है। वर्ष 2002 में संशोधन और धारा 48 में स्पष्टीकरण 3 जोड़ने के बाद भी पुनरीक्षण प्राधिकारी को इस मामले में उसके द्वारा की गई कार्रवाई को अपनाने का अधिकार नहीं है। स्पष्टीकरण 3 उसे मात्र तथ्य के प्रश्न में प्रवेश करने हेतु अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा दर्ज किए गए किसी भी निष्कर्ष की जाँच करने का अधिकार देता है, चाहे वह तथ्य पर हो या कानून पर और इस संदर्भ में इसमें शुद्धता, वैधता या ऐसी किसी भी खोज का औचित्य की जाँच के उद्देश्य से साक्ष्य को फिर से सराहने की शक्ति शामिल है। इसका मतलब यह नहीं है कि पुनरीक्षण प्राधिकारी अपीलीय प्राधिकारी के अभिलेख माँग सकता है और अपनी पुनरीक्षण शक्तियों का प्रयोग करते हुए बिना किसी निष्कर्ष को अपीलीय प्राधिकारी द्वारा दर्ज किए या अपील पर निर्णय किए बिना ही अपील पर स्वयं निर्णय ले सकता है। इस संबंध में [2003(94) आरडी 382 में प्रतिपादित विधिक प्रतिनिधि के माध्यम से करण सिंह (मृत) बनाम उप संचालक, चकबंदी, अलीगढ़ एवं अन्य, के मामले में इस न्यायालय द्वारा की गई घोषणा का संदर्भ लिया जा सकता है, जिसमें [2001 (92) आरडी 79 (एससी) में प्रतिपादित विधिक प्रतिनिधि के माध्यम से गया दीन (मृत) एवं अन्य बनाम विधिक प्रतिनिधि के माध्यम से हनुमान प्रसाद (मृत) एवं अन्य में शीर्ष अदालत के निर्णय पर ध्यान देने के बाद साथ ही 2002 के संशोधन को भी न्यायालय ने प्रस्तर 6 में निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया :--

“..........अधिनियम की धारा 48 में संशोधन से उप संचालक, चकबंदी की शक्तियों का दायरा बढ़ गया है। इससे उन्हें साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन करने की शक्ति प्रदत्त है, परन्तु इसमें कहीं भी

यह प्रावधान नहीं किया गया है कि उप संचालक, चकबंदी के पास अधीनस्थ अधिकारियों द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों को उलटने का अधिकार क्षेत्र होगा और वह अपने स्वयं के निष्कर्षों को प्रतिस्थापित कर सकते हैं। [2001 (92) आरडी 79 (एससी) में प्रतिपादित विधिक प्रतिनिधि के माध्यम से गया दीन (मृत) एवं अन्य बनाम विधिक प्रतिनिधि के माध्यम से हनुमान प्रसाद (मृत) एवं अन्य में सर्वोच्च न्यायालय ने विशेष रूप से प्रतिपादित किया है कि उप संचालक, चकबंदी को चकबंदी अधिकारी या बंदोबस्त अधिकारी, चकबंदी के रूप में कार्य करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है, अन्यथा अपील और पुनरीक्षण में मूल रूप से मामलों से निपटने के दौरान चकबंदी अधिकारी, बंदोबस्त अधिकारी, चकबंदी और उप संचालक, चकबंदी की शक्तियों में कोई अंतर नहीं रहेगा। यदि उप संचालक, चकबंदी की राय थी कि दर्ज किए गए निष्कर्ष कानून की दृष्टि से अनुचित थे, तो वह साक्ष्य के पुनर्मूल्यांकन के बाद उसे अपास्त कर सकते थे और मामले को नए सिरे से निर्णय हेतु प्रतिप्रेषित कर सकते थे।"

2005(1) एडब्ल्यूसी 924 (एल्ड) में प्रतिपादित विधिक प्रतिनिधि के माध्यम से बशीर अहमद खान (मृत) बनाम उप संचालक, चकबंदी एवं अन्य के मामले में इस न्यायालय के एक अन्य निर्णय का भी संदर्भ दिया जा सकता है। जिसमें विचार हेतु जो प्रश्न उठा वह पुनरीक्षण प्राधिकारी के अधिकार क्षेत्र के संबंध में था कि वह गुण-दोष के आधार पर अपील को खारिज करने वाले अपीलीय प्राधिकारी के आदेश को चुनौती देने वाले पुनरीक्षण पर निर्णय ले। इस न्यायालय के एक विद्वान एकल न्यायाधीश ने 1985 आरडी 276 में प्रतिपादित तीरथ बनाम संयुक्त संचालक चकबंदी के मामले में इस न्यायालय की खण्ड पीठ के निर्णय का जिक्र करते हुए अभिनिर्धारित किया: -

"10. इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने तीरथ बनाम उप संचालक, चकबंदी (उपरोक्त) के मामले में अपने निर्णय में प्रश्न का नकारात्मक उत्तर दिया। इस तर्क को निरस्त करते हुए कि अधिनियम की धारा 48 के अन्तर्गत शक्ति का प्रयोग करने वाले प्राधिकारी के पास स्वत: संज्ञान सहित बहुत व्यापक शक्ति है और वह अभिलेखों का अवलोकन भी कर सकता है और यदि कोई दोष है तो उसे उसके द्वारा ठीक किया जा सकता है, खण्ड पीठ द्वारा निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया:

"प्रकरण के इस दृष्टिकोण में, पुनरीक्षण प्राधिकारी को प्रकरण के अभिलेख की जाँच करने हेतु बुलाया गया था क्योंकि यह अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष अपील से संबंधित था। अपील को खारिज करने हेतु अपीलीय प्राधिकारी द्वारा दिया गया मुख्य कारण यह था कि यह परिसीमा वर्जित था। पुनरीक्षण प्राधिकारी को यह देखना था कि आदेश न्यायानुमत है या नहीं। उसे इस बात की जाँच करनी थी कि क्या विलम्ब क्षमा हेतु कोई आवेदन किया गया है और क्या इस हेतु कोई पर्याप्त कारण दिया गया है या नहीं, और क्या परिसीमा वर्जित के रूप में अपील को खारिज करने का आदेश मामले की परिस्थितियों में उचित था और हम देखेंगे यहाँ अधिनियम की धारा 48 (1) के अन्तर्गत एक पुनरीक्षण में, जहाँ पुनरीक्षण में कोई दोष नहीं है कि इसे अस्वीकार कर दिया जाए, पुनरीक्षण प्राधिकारी को अपील में निर्णय और उस क्रम में निर्णय हेतु दिए गए आधार तक ही सीमित रहना होगा। हमारी यह भी राय है कि उपरोक्त

परिस्थितियों में धारा 48 (1) के अन्तर्गत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते समय पुनरीक्षण प्राधिकारी हेतु योग्यता के प्रश्न पर विचार करने का रास्ता खुला नहीं था।"

तीरथ बनाम उप संचालक, चकबंदी (उपरोक्त) के मामले में खण्ड पीठ द्वारा निर्धारित कानून इस मामले के तथ्यों पर पूरी तरह से लागू होता है।

11. वर्तमान मामले में भी बंदोबस्त अधिकारी, चकबंदी द्वारा पारित आदेश गुण-दोष के आधार पर पार्टियों के दावे का निर्णय नहीं था, अपितु अपील को परिसीमा से वर्जित मानकर खारिज करने का आदेश था। उप संचालक, चकबंदी ने बंदोबस्त अधिकारी, चकबंदी द्वारा पारित आदेश की वैधानिकता या अन्यथा पर विचार किए बिना और अपने निष्कर्षों को रद्द किए बिना सीधे गुण-दोष के आधार पर संशोधन का निर्णय लेने हेतु आगे बढ़े। उप संचालक, चकबंदी का दायित्व था कि वह बंदोबस्त अधिकारी, चकबंदी के उस आदेश पर विचार करता, जिसमें उसने अपनी योग्यता के आधार पर अपील दायर करने में हुई विलम्ब को क्षमा करने से इन्कार कर दिया था और यदि विलम्ब हेतु आधार की पर्याप्तता के बारे में संतुष्ट था, तो उसे बंदोबस्त अधिकारी, चकबंदी के आदेश को अपास्त कर अपील को परिसीमा वर्जित मानते हुए मामले को गुण-दोष के आधार पर निर्णय लेने हेतु प्रतिप्रेषित कर देना चाहिए था। उनके लिए गुणानुक्रम निर्णय लेने तथा कार्यवाही को आगे बढ़ने का रास्ता खुला नहीं था।"

इस प्रकार स्पष्ट रूप से धारा 48 के अन्तर्गत पुनरीक्षण का दायरा और धारा 11 के अन्तर्गत अपील का दायरा अलग-अलग है और दो अलग-अलग वैधानिक उपचार प्रदान किए गए हैं, अपील पर कोई निर्णय नहीं हुआ है और न ही अपीलीय प्राधिकारी द्वारा इसमें कोई महत्वपूर्ण मुद्दा शामिल है, उप संचालक, चकबंदी को धारा 48 के अन्तर्गत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए लंबित अपील को गुणानुक्रम निर्णीत करने का कोई रास्ता नहीं खुला था। यहाँ ऊपर बताई गई सीमित सीमा को छोड़कर स्पष्ट रूप से पुनरीक्षण का दायरा नहीं था। संपूर्ण विवाद पुनरीक्षण प्राधिकारी के समक्ष निर्णय हेतु उपलब्ध नहीं था। पुनरीक्षण स्वयं पोषणीय नहीं था क्योंकि लागू आदेश पूरी तरह से अंतर्वर्ती थे।"

इस न्यायालय ने **2019 एससीसी ऑनलाइन एएलएल 4756** में प्रतिपादित **गुलाब चंद बनाम डी.डी.सी**. के मामले में दिनांक 30.04.2019 को पारित निर्णय में निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:-

"**14.** इस न्यायालय ने दोनों पक्षों की ओर से प्रस्तुत की गई प्रतिद्वंद्वी दलीलों पर ध्यानपूर्वक विचार किया है। यह सत्य है, इसमें कोई संदेह नहीं है कि अधिनियम की धारा 48 के अन्तर्गत उप संचालक, चकबंदी की शक्तियों को हमेशा व्यापक माना गया है, हालाँकि पुनरीक्षण न्यायालय होने के कारण कुछ मामलों में इसे बाधित किया गया है। अधिनियम की धारा 48 के अन्तर्गत उप संचालक, चकबंदी की शक्तियों का आयात, जैसा कि उन्हें हमेशा समझा जाता रहा है, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा *शिव नंद बनाम उप संचालक, चकबंदी, इलाहाबाद (2000) 3 एससीसी 103* मामले में संक्षेप में निर्धारित किया गया है। जहाँ अभिलेख के प्रस्तर

20 और 21 में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि:

"20. यह धारा उप संचालक, चकबंदी को बहुत व्यापक शक्तियाँ प्रदान करती है। यह उसे या तो अपने स्वयं के प्रस्ताव पर या किसी व्यक्ति के आवेदन पर अधिनियम के अन्तर्गत आयोजित समस्त कार्यवाहियों की औचित्य, वैधता, नियमितता और शुद्धता पर विचार करने तथा उचित आदेश पारित करने में सक्षम बनाती है। ये शक्तियाँ उप संचालक को व्यापक रूप में प्रदान की गई हैं ताकि अधिनियम के अन्तर्गत पक्षकरों के दावों पर प्रभावी ढंग से निर्णय लिया जा सके और निर्धारित किया जा सके ताकि पार्टियों के अधिकारों को अंतिम रूप दिया जा सके और राजस्व अभिलेख तदनुसार तैयार किया जा सके।

21. आम तौर पर, उप संचालक से, अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए, चकबंदी अधिकारी और बंदोबस्त अधिकारी (चकबंदी) द्वारा समवर्ती रूप से दर्ज किए गए तथ्य के निष्कर्षों को विचलित करने की उम्मीद नहीं की जाती है, परन्तु जहाँ निष्कर्ष विकृत हैं, इस अर्थ में कि वे पक्षकारों द्वारा अभिलेख पर लाए गए साक्ष्यों से समर्थित नहीं हैं, या कि वे साक्ष्य के महत्व के विरुद्ध हैं, यह उप संचालक का कर्तव्य होगा कि वह पूरे मामले की दोबारा जाँच करे ताकि उसके अधीनस्थ अधिकारियों द्वारा पारित आदेशों की सत्यता, वैधता या औचित्य का निर्धारण किया जा सके। ऐसे मामले में, जैसे वर्तमान में, जहाँ राजस्व अभिलेख में प्रविष्टियां काल्पनिक या जाली हैं या उन्हें उत्तर प्रदेश भूमि लेख नियमावली या अन्य संबद्ध वैधानिक प्रावधान में निहित वैधानिक प्रावधानों के उल्लंघन के रूप में दर्ज किया गया था। उप संचालक के पास धारा 48 के अन्तर्गत अभिलेख पर साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन या पुनर्मूल्यांकन करने की पूरी शक्ति होगी ताकि जाली और फर्जी राजस्व प्रविष्टियों या कानून के अनुसार नहीं बनाई गयी प्रविष्टियों को छोड़कर पक्षकारों के अधिकारों को अंतिम रूप से निर्धारित किया जा सके।"

सर्वोच्च न्यायालय ने *शिव नंद बनाम डी.डी.सी., इलाहाबाद, (2000) 3 एससीसी 103* के मामले में भी कहा था कि, "यह उप संचालक का कर्तव्य होगा कि वह पूरे मामले की जाँच करे ताकि उसके अधीनस्थ अधिकारियों द्वारा पारित आदेशों की शुद्धता, वैधता या औचित्य का निर्धारण किया जा सके।"

अधिनियम की धारा 48 के अन्तर्गत उप संचालक, चकबंदी की पुनरीक्षण शक्तियों के दायरे के संबंध में, इस न्यायालय ने रिट-बी संख्या 42465 / 1999, राम जीत बनाम उप संचालक, चकबंदी, जौनपुर एवं अन्य, में आदेश दिनांक 31.05.2013 के माध्यम से निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:

“17. .... माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने राम दुलार बनाम डीडीसी, 1994 सप्प (2) एससीसी 198, प्रीतम सिंह बनाम डीडीसी, (1996) 2 एससीसी 270, शिव नंद बनाम डीडीसी, (2000) 3 एससीसी 103, गुलज़ार सिंह बनाम डीडीसी, (2009) 12 एससीसी 590 में लगातार माना है कि अभिलेख पर साक्ष्य की पुनः सराहना करने के बाद अधिनियम की धारा 48 के अन्तर्गत उप संचालक, चकबंदी के पास तथ्य और कानून दोनों से संबंधित मुद्दे पर निर्णय लेने की बहुत व्यापक शक्ति है। इसके अतिरिक्त स्पष्टीकरण III को 10.11.1980 से पूर्वव्यापी प्रभाव से अधिनियम की धारा 48 में

जोड़ा गया है जो यह प्रदान करता है कि इस धारा के अन्तर्गत किसी भी आदेश की शुद्धता, वैधता या औचित्य की जाँच करने की शक्ति में किसी भी निष्कर्ष की जाँच करने की शक्ति शामिल है, चाहे तथ्य या कानून, किसी भी अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा दर्ज किया गया और इसमें किसी भी मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य की दोबारा सराहना करने की शक्ति भी शामिल है। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने जिस निर्णय विधि पर विश्वास व्यक्त किया, वह मान्य विधि नहीं रखता और सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के विपरीत है।"

जैसा कि इस मामले में, उप संचालक, चकबंदी द्वारा पारित प्रतिप्रेषित आदेश निर्गत है, यह न्यायालय भी इस पहलू पर कुछ निर्णयों का उल्लेख करना उचित समझता है।

1986 आरडी 164 में प्रतिपादित बशीर अहमद बनाम उपसंचालक के मामले में, यह अभिनिर्धारित किया गया है कि जब समस्त साक्ष्य उनके समक्ष थे, तब मामले को चकबंदी अधिकारी को आदेश प्रतिप्रेषित करना उचित नहीं था उपसंचालक को इस मामले पर स्वयं निर्णय लेना चाहिए था, क्योंकि वे अधिनियम की धारा 48 के अन्तर्गत बहुत व्यापक शक्ति का प्रयोग कर रहे थे।

राम औतार एवं अन्य बनाम उप निदेशक चकबंदी एवं अन्य, 1991 परिशिष्ट(1) एससीसी 552 के मामले में दिए गए निर्णय में, सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि उच्च न्यायालय को मामले को उप संचालक, चकबंदी को भेज देना चाहिए था और चकबंदी अधिकारी को नहीं, क्योंकि इससे दोनों पक्षों को तीन चरणों में झगडे से बचाया जा सकता था और मामले के अंतिम निस्तारण में तेजी आ सकती थी। सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष प्रश्न उत्तर प्रदेश जोत चकबंदी अधिनियम की धारा 9-ए के अन्तर्गत आपत्तियों के संबंध में था। चकबंदी अधिकारी द्वारा चकबंदी अधिनियम का निर्णय एक पक्ष के हित में किया गया, जिसके विरुद्ध दूसरा पक्ष अपील में चला गया। अपील में चकबंदी अधिकारी द्वारा खारिज की गई आपत्तियों को वैध आपत्तियाँ बताते हुए अनुमति दी गई। अपीलकर्ताओं ने पुनरीक्षण में उप संचालक, चकबंदी को स्थानांतरित करने में असफल होने के बाद उच्च न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका दायर की, जिसे वाद न्यायालय ने खारिज कर दिया और उसके बाद अपीलकर्ताओं ने एक अपील दायर की, जिसे खंड पीठ ने भी खारिज कर दिया। सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि प्रतिवादियों का मामला यह था कि अंतिम चरण में जब अपीलकर्ताओं के पक्ष में आदेश पारित किया गया था तब उन्हें कभी कोई नोटिस नहीं भेजा गया था और एकपक्षीय होने के कारण आदेश को सुने बिना ही निरस्त कर दिया जाना चाहिए था और मामले को सही तरीके प्रतिप्रेषित किया जाना चाहिए था। हालाँकि, सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि उच्च न्यायालय को इस मामले को चकबंदी अधिकारी के पास नहीं, अपितु उप संचालक, चकबंदी को भेजना चाहिए था, क्योंकि इससे पक्षकारो को राजस्व अधिकारियों के सामने तीन चरणों में झगडे से बचाया जा सकता था और वाद के अंतिम निस्तारण में तेजी लायी जा सके।

इसके अतिरिक्त, सर्वोच्च न्यायालय ने अश्विन कुमार पटेल बनाम उपेन्द्र जे. पटेल, एआईआर 1999 एससी 1125 के मामले में पारित निर्णय में कहा कि प्रतिप्रेषण की शक्ति

का प्रयोग अधिकारिता का एक विलासितापूर्ण अभ्यास है। न्यायालय को मामले को प्रतिप्रेषित करने से बचना चाहिए और मामले को प्रतिप्रेषित करने के बजाय मामले को अंतिम रूप से तय करने का प्रयास करना चाहिए।

2006 आरडी (101) 383 में प्रतिपादित भागवत प्रसाद बनाम उपसंचालक के मामले में भी इस न्यायालय ने माना है कि पुनरीक्षण न्यायालय तथ्य या कानून के आधार पर निष्कर्षों की जाँच करने हेतु पूर्ण रुप से सशक्त है और मामले को प्रतिप्रेषण पर लेने की कोई आवश्यकता नहीं है। इन परिस्थितियों में पुनरीक्षण न्यायालय को पुनरीक्षण पर ही निर्णय लेने का निर्देश जारी किया गया। 2007 आरडी (103) 402 में दर्ज फेकू बनाम उपसंचालक के मामले में भी यही दृष्टिकोण अपनाया गया है।

2007 आरडी (102) 113 में प्रतिपादित सीताराम बनाम उपसंचालक के मामले में, इस न्यायालय ने प्रतिप्रेषण के आदेश को निरस्त कर दिया और उपसंचालक को निर्देश दिया कि यदि आवश्यक हो तो अतिरिक्त साक्ष्य लेने के बाद मामले को स्वयं तय करें।

2008 आरडी (104) 521 में प्रतिपादित बाबू लाल बनाम उपसंचालक के मामले में, इस न्यायालय ने माना है कि प्रतिप्रेषण के आदेश का सहारा बहुत ही असाधारण मामलों/परिस्थितियों में लिया जाना चाहिए क्योंकि इससे अनुचित उत्पीड़न के अतिरिक्त, न्यायालय का कीमती समय बर्बाद होता है और दोनों पक्षकारों को आर्थिक नुकसान होता है।

(2009) 106 आरडी 96 में प्रतिपादित शेख नाथू बनाम उपसंचालक के मामले में, इस न्यायालय ने पाया है कि चकबंदी अधिकारी और बंदोबस्त अधिकारी, चकबंदी ने अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर प्रतिवादियों की आपत्ति को निराधार माना। उपसंचालक ने अधीनस्थ अधिकारियों के निष्कर्षों को दरकिनार किए बिना मामले को वापस भेज दिया। इसलिए, इस न्यायालय ने माना कि प्रतिप्रेषण का यह आदेश मुकदमेबाजी को एक नया जीवन देने जैसा है और प्रतिप्रेषण आदेश को नियमित तरीके से पारित नहीं किया जाना चाहिए।

दीना नाथ एवं अन्य बनाम उप निदेशक चकबंदी एवं अन्य, 2010 (110) आरडी 584 में, जिसमें यह माना गया है कि प्रतिप्रेषण के आदेश को धारा 48 के स्पष्टीकरण -2 के अर्थ के भीतर एक अंतरिम आदेश के रूप में नहीं माना जा सकता है। अधिनियम और एक पुनरीक्षण विचारणीय था और यह भी देखा गया कि चूँकि सम्पूर्ण अभिलेख उपलब्ध थे, इसलिए मामले को वापस भेजने के बजाय, इसे पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा गुण-दोष के आधार पर तय किया जाना चाहिए था।

रिट-बी संख्या 4377 / 2014 (संतोष कुमार बनाम डी.डी.सी. एवं अन्य) में इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने 29.1.2014 को निर्णय लिया है कि यदि चकबंदी के निस्तारण अधिकारी के आदेश में त्रुटियां हैं, तो उप संचालक, चकबंदी मामले को प्रतिप्रेषण पर लेने के बजाय स्वयं इस पर विचार कर सकते थे और उचित आदेश पारित कर सकते थे। मामले का प्रतिप्रेषण विलम्ब का कारण बनती है और मुकदमेबाजी को लंबा करने के साथ-साथ पक्षकारों को परेशान भी होती है।

विजय नाथ एवं अन्य बनाम उप निदेशक चकबंदी एवं अन्य, 2019 (9) एडीजे 85 में इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने देखा है कि अधिनियम की धारा 48 में स्पष्टीकरण 3 को शामिल करने के बाद, उप संचालक, चकबंदी को,

अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा दर्ज किए गए तथ्य या कानून के किसी भी निष्कर्ष की जाँच करने और किसी भी मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य की पुनः सराहना करने का अधिकार है। इस न्यायालय ने कहा है कि मामले को चकबंदी अधिकारी को सौंपने के बजाय, उप संचालक, चकबंदी को धारा 48(3) के अन्तर्गत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करना चाहिए था और मामले को गुण के आधार पर तय करना चाहिए था।

रिट-बी संख्या 23608 / 2014 (राम सेवक एवं अन्य बनाम डी.डी.सी. एवं अन्य) में पारित निर्णय दिनांक 06.05.2014 में, इस न्यायालय ने निम्नानुसार अवलोकन के बाद प्रतिप्रेषण के आदेश में हस्तक्षेप करने से इन्कार कर दिया: -

"यह स्वीकृत मामला है कि पक्षकारों द्वारा दो अलग-अलग वसीयतें स्थापित की गई थीं। आपत्ति का निर्णय समझौते के आधार पर सहायक चकबंदी अधिकारी(एसीओ) द्वारा किया गया। यह स्थापित कानूनी स्थिति है कि सहायक चकबंदी अधिकारी को मात्र सुलह के आधार पर आदेश पारित करने का अधिकार है, गुण-दोष के आधार पर नहीं। इन परिस्थितियों में, यह सुरक्षित रूप से कहा जा सकता है कि जब सहायक चकबंदी अधिकारी(एसीओ) ने समझौते के आधार पर आदेश पारित किया तो स्थापित वसीयत की वैधता की जाँच नहीं की गई थी। इस संबंध में, यह भी ध्यान रखना प्रासंगिक है कि समझौता समग्र रूप से स्वीकार नहीं किया गया था।

समझौते के आधार पर पारित आदेश को बिना किसी मध्यवर्ती अपील के पुनरीक्षण के माध्यम से चुनौती दी गई थी। उपसंचालक ने पक्षों को साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर देने के बाद मामले को नए सिरे से निर्णय हेतु भेज दिया।

उपरोक्त तथ्यों के वर्णन से यह स्पष्ट है कि पक्षकारों द्वारा कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया। भले ही, साक्ष्य, यदि कोई हो, दायर किया गया था, तो उसकी सराहना हेतु कोई अवसर उत्पन्न नहीं होता है। इसके अतिरिक्त, इस तथ्य के दृष्टिगत कि पक्ष कथित समझौते के माध्यम से अपने विवाद का निपटारा कर रहे थे, उनके पास गुण के आधार पर अपने संबंधित दावों के संबंध में साक्ष्य पेश करने का कोई अवसर नहीं था।

अधिनियम की धारा 48 का स्पष्टीकरण-3 उपसंचालक चकबंदी को अभिलेख पर मौजूद साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन करने का अधिकार देता है और उसे नीचे के न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष के विपरीत निष्कर्ष को दर्ज करने का अधिकार देता है। हालाँकि, मौजूदा मामले में साक्ष्यों की पहले कोई सराहना नहीं की गई है। इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता है कि उपसंचालकअधीनस्थ न्यायालयों द्वारा साक्ष्य की सराहना के अभाव में अपने अधिकार क्षेत्र का उपयोग करने में विफल रहा है।

इन परिस्थितियों में, मेरी राय है कि प्रतिप्रेषण के आदेश में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता।

मेरी सुविचारित राय में, एक और कारण है जिसके कारण उपसंचालक द्वारा पारित आदेश में हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

वाद संख्या 42(चकबंदी) / 2007 का निर्णय लेते समय, हरि लाल एवं अन्य बनाम डीडीसी,

बाराबंकी जिसमें एक समान विवाद शामिल था, मैंने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है:

"अन्यथा भी, यह अधिनियम की योजना से ही स्पष्ट है कि प्रथम न्यायालय, अर्थात् सहायक चकबंदी अधिकारी या चकबंदी अधिकारी द्वारा पारित आदेश, चाहे शीर्षक कार्यवाही में या आवंटन कार्यवाही में, एसओसी के समक्ष अपील के अधीन हैं और, इसके बाद, अधिनियम की धारा 48 के अन्तर्गत उपसंचालक के पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के अधीन हैं। यह भी अच्छी तरह से स्थापित है कि अपील का अधिकार एक वैधानिक अधिकार है और कोई भी अपील तब तक दायर नहीं की जा सकती जब तक कि क़ानून इस हेतु प्रावधान न करे। हालाँकि, एक बार क़ानून अधिनियम के अन्तर्गत कार्यवाही में पारित किसी भी आदेश के विरुद्ध अपील करने का प्रावधान करता है, जो आगे धारा 48 के अन्तर्गत पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के अधीन है, यदि प्रतिवादी हेतु विद्वान अधिवक्ता की दलील स्वीकार कर ली जाती है, याचिकाकर्ता अपील या पुनरीक्षण के अपने अधिकार से वंचित रह जाएंगे, जैसा कि अधिनियम के अन्तर्गत प्रदान किया गया है। चूंकि अपील का यह वैधानिक उपाय अधिनियम के अन्तर्गत प्रदान किया गया है, मेरी राय में, उपसंचालक के आदेश को कायम रखने की अनुमति देने से, यह याचिकाकर्ताओं को न मात्र अपील के वैधानिक उपाय से वंचित करेगा अपितु बाद में संशोधन से भी वंचित करेगा, एक बाद का संशोधन, जो समस्त व्यावहारिक उद्देश्यों हेतु अधिनियम की योजना के अन्तर्गत एक पक्ष हेतु उपलब्ध दूसरी अपील है। किसी भी मामले में, प्रत्येक पक्ष को अधिनियम की योजना के मद्देनजर कार्यवाही में कम से कम एक अपील प्रदान की जानी चाहिए, और यदि मामले को नए निर्णय हेतु एसओसी को भेजा जाता है तो यह आवश्यकता पूरी हो जाएगी। एसओसी द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध, पीड़ित पक्ष के पास पुनरीक्षण, दूसरी पारी दाखिल करने का उपाय होगा, जो अधिनियम की सामान्य योजना के अनुसार होगा। इसे आलोक में रखते हुए और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि उपसंचालक ने याचिकाकर्ताओं के मामले पर विचार किए बिना और उनके द्वारा दायर साक्ष्यों पर ध्यान दिए बिना आदेश पारित किया है, आक्षेपित आदेश निरस्त किए जाने योग्य है।"

इस प्रकार, इस मामले के तथ्य और परिस्थितियाँ, प्रतिप्रेषण के आदेश को निरस्त करना और उपसंचालक को स्वयं मामले का निर्णय करने का निर्देश देना, मेरी सुविचारित राय में, अधिनियम की मूल योजना के अतिक्रमण करने के समान होगा।"

1953 के अधिनियम की धारा 48 के अन्तर्गत के उप संचालक, चकबंदी की शक्ति के मुद्दे पर और उप संचालक, चकबंदी द्वारा एक मामले की प्रतिप्रेषण के औचित्य के संबंध में, ऊपर उल्लिखित कानून के मद्देनजर, इस न्यायालय ने दिनांक 22.12.2022 के आक्षेपित आदेश पर विचार किया और उसके अवलोकन से पता चलता है कि मामले को चकबंदी अधिकारी को सौंपने के प्रयोजनों हेतु, प्रतिवादी संख्या 1 ने उसके समक्ष आक्षेपित आदेशों में कुछ त्रुटियों की ओर इशारा किया है, इस न्यायालय के विचार में, 1953 के अधिनियम की धारा 48 के अन्तर्गत शक्ति का प्रयोग करते हुए प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा स्वयं इस पर गौर किया जाना चाहिए था, क्योंकि उसके सामने पूरी सामग्री उपलब्ध थी, जिस हेतु कानून में प्रतिपादित किया गया था। उन्हें उप संचालक चकबन्दी की शक्तियों पर

विचार करने का अधिकार दिया गया। संक्षेप में, 1953 के अधिनियम की धारा 48 किसी भी आदेश की शुद्धता/वैधता/औचित्य की जाँच करने हेतु पर्याप्त शक्ति प्रदान करती है जिसमें किसी भी अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा दर्ज किए गए किसी भी निष्कर्ष, चाहे वह तथ्य या कानून का हो, की जाँच करने की शक्ति शामिल है ताकि किसी भी मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य की फिर से सराहना करने की शक्ति शामिल हो।

उपरोक्त कारणों से, इस न्यायालय का मानना है, कि आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप आवश्यक है। तदनुसार, रिट याचिका को **अनुमति** दी जाती है। दिनांक 22.12.2022 का आक्षेपित आदेश **अपास्त** किया जाता है। मुकदमे के पक्षकारों को सुनवाई का उचित अवसर प्रदान करने के बाद मामले को नए सिरे से तय करने हेतु मामले को प्रतिवादी संख्या 1/उप संचालक, चकबंदी/अपर जिला मजिस्ट्रेट, (एफ/आर) लखीमपुर खीरी को वापस भेज दिया जाता है। यदि इस संबंध में कोई अन्य कानूनी बाधा न हो तो मुकदमे के पक्षकारों को इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तारीख से अधिमानतः छह महीने की अवधि के भीतर सुनवाई का उचित अवसर प्रदान करने के बाद मामले को नए सिरे से तय करें। कार्यवाही का संचालन करते समय, संबंधित प्राधिकारी को किसी भी पक्ष को अनावश्यक स्थगन से बचने का निर्देश दिया जाता है।

(2023) 3 ILRA 204

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल वाद

दिनांक: लखनऊ 15.02.2023

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ लवानिया.

के समक्ष

रिट बी संख्या 778 वर्ष 2022

जगदीश प्रसाद ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिपक्षी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: राकेश कुमार मौर्य

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: सी.एस.सी.

उत्तर प्रदेश भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 - धारा 219 - पुनरीक्षण - बोर्ड या आयुक्त किसी भी राजस्व न्यायालय द्वारा निर्णयित मामले या आयोजित प्रक्रिया के अभिलेख को देखने के लिए बुला सकते हैं, ताकि यह सुनिश्चित कर सकें कि आदेश सही है या नहीं। अधिनियम की धारा 219 में "आदेश की वैधता या उचितता" का अर्थ है कि पुनरीक्षण प्राधिकरण उस आदेश की वैधता या उचितता पर विचार कर सकता है जो उसकी अधीनस्थ राजस्व न्यायालय द्वारा पारित किया गया है। यदि इसे स्वीकार कर लिया गया, तो इससे न्याय का पतन या उस पक्ष को अमिट नुकसान होगा, जिसके विरुद्ध आदेश दिया गया है। यदि अधीनस्थ राजस्व न्यायालय द्वारा किसी आवेदन पर पारित आदेश को स्वीकार किया जाता है जो पक्षों के अधिकारों को प्रभावित करता है, तो इससे न्याय की विफलता या उस पक्ष को अमिट क्षति होगा। यदि यह स्थिति उपलब्ध है, तो अधीनस्थ राजस्व न्यायालय द्वारा पारित किसी भी आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण

धारा 219 के तहत किया जा सकता है। पुनरीक्षण तब स्वीकार्य है जब आवेदन में संशोधन के लिए आदेश को निरस्त कर दिया जाए। इस वाद में, अधिनियम 1901 की धारा 34 के तहत एक नामांतरण वाद में एक गाटा जोड़ने के लिए संशोधन का आवेदन निरस्त कर दिया गया, जिसके विरुद्ध अधिनियम 1901 की धारा 219 के तहत एक पुनरीक्षण दायर किया गया, जिसे इसलिए निरस्त कर दिया गया कि यह स्वीकार्य नहीं था। यह तय किया गया कि पुनरीक्षण स्वीकार्य था - वाद पुनरीक्षण प्राधिकरण को फिर से, गुण दोष पर निर्णय लेने के लिए भेजा गया। (पैराग्राफ 13, 14)

स्वीकृत। (E-5)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. राजा राम और अन्य बनाम अतिरिक्त आयुक्त फैज़ाबाद डिवीजन फैज़ाबाद और अन्य, रिट याचिका संख्या संख्या .3301 (M/S) /2006
2. राज श्री अग्रवाल और अन्य बनाम सुधीर मोहन और अन्य, MANU/UP/2351/2022

<u>माननीय न्यायामूर्ति सौरभ लवानिया</u>

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता एवं राज्य-प्रतिवादियों के विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री हेमन्त कुमार पांडे को सुना गया।

2. पारित किए जाने वाले प्रस्तावित आदेश के दृष्टिगत, प्रतिवादी संख्या 4 को नोटिस देने से अवमुक्ति प्रदान की जाती है।

3. वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने उ.प्र.भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 (इसके बाद इसे '1901 का अधिनियम' कहा जाएगा) धारा 219 के अंतर्गत दायर पुनरीक्षण वाद संख्या 1542/2020/रायबरेली, कम्प्यूटरीकृत वाद संख्या R20201058001542 (जगदीश प्रसाद बनाम शिव प्यारी) में पारित आदेश दिनांक 24.11.2020 को चुनौती दी है।

4. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता ने एक नामांतरण मामले में विपक्षी संख्या 3, नायब तहसीलदार, डलमऊ, जिला-रायबरेली के समक्ष संशोधन हेतु एक आवेदन प्रस्तुत किया था, जो वसीयत दिनांक 02.04.1991 के आधार पर अधिनियम 1901 की धारा 34 के अंतर्गत मुकदमा संख्या 49/एसएस/57158/72/102/2010 (जगदीश प्रसाद बनाम झूरी[मृत]) के रूप में दर्ज किया गया। संशोधन हेतु उक्त आवेदन, जिसमें गाटा संख्या 265 क्षेत्रफल 0.232 हेक्टेयर को शामिल करने की मांग की गई थी, को आदेश दिनांक 20.02.2020 द्वारा खारिज कर दिया गया था।

5. दिनांक 20.02.2020 के आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 की धारा 219 के अंतर्गत पुनरीक्षण प्रस्तुत किया, जिसे अपोषणीय होने के कारण दिनांक 24.11.2020 के प्रश्नगत आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया। पुनरीक्षण न्यायालय ने पाया कि पुनरीक्षण के अंतर्गत आदेश प्रकृति में अंतर्वर्ती है एवं इस प्रकार, यह अपोषणीय है।

6. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि पुनरीक्षण प्राधिकरण/विपक्षी संख्या 2-राजस्व परिषद उ.प्र., लखनऊ ने अपने निहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने में गलती की है। इसके अतिरिक्त, याचिका में संशोधन की मांग करने वाले आवेदन को खारिज करने का आदेश/नामांतरण हेतु आवेदन 'निर्णीत वाद'

अभिव्यक्ति के अंतर्गत आएगा और ऐसा होने पर, उसी को ध्यान में रखते हुए एवं 1901 के अधिनियम की धारा 219 के अंतर्गत दी गई भाषा को ध्यान में रखते हुए, पुनरीक्षण पोषणीय था एवं इसका निर्णय गुण-दोष के आधार पर किया जाना चाहिए था, न कि पोषणीयता के मुद्दे पर। उन्होंने आगे कहा कि वादपत्र में संशोधन हेतु आवेदन में दर्शाए गए गाटा संख्या 265 क्षेत्रफल 0.232 हेक्टेयर को अनुमति दी जानी चाहिए थी क्योंकि इससे कार्यवाही की बहुलता से बचा जा सकेगा और मामले की प्रकृति में कोई बदलाव नहीं होगा, ऐसे में पुनरीक्षण प्राधिकरण को अधिनियम, 1901 की धारा 219 के आधार पर स्वयं में निहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग करना चाहिए।

7. विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने वर्तमान याचिका में शामिल मुद्दे पर इस न्यायालय की सहायता की है।

8. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा द्वारा दिये गए तर्कों पर विचार किया गया एवं रिकॉर्ड का अवलोकन किया गया।

9. वर्तमान याचिका में शामिल मुद्दे को तय करने हेतु यह न्यायालय 1901 के अधिनियम की धारा 219 को पुन: प्रस्तुत करना उचित समझता है, जो इस प्रकार है: -

> *"219. पुनरीक्षण - (1) परिषद या आयुक्त या अपर आयुक्त या कलेक्टर या अभिलेख अधिकारी, या बन्दोबस्त अधिकारी, अपने अधीनस्थ किसी राजस्व न्यायालय द्वारा पारित आदेश या की गयी कार्यवाही की वैधता या औचित्य के बारे में अपना समाधान करने के प्रयोजन से उसके द्वारा निर्णीत किसी ऐसे मामले या एसी कार्यवाही का अभिलेख मँगा सकता है जिसमें कोई अपील की गई हो या अपील होती हो, किन्तु न की गयी हो और यदि ऐसा प्रतीत हो कि ऐसे अधीनस्थ राजस्व न्यायालय ने,-*
>
> *(ए) ऐसी अधिकारिता का प्रयोग किया है जो उसमें विधि द्वारा निहित नहीं है, या*
>
> *(बी) ऐसी अधिकारिता का प्रयोग करने में असफल रहा है, जो इस प्रकार निहित है; या*
>
> *(सी) अपनी अधिकारिता का प्रयोग करने में अवैध रूप से या तात्विक अनियमितता से कार्य किया है,*
>
> *यथास्थिति परिषद या आयुक्त या अपर आयुक्त या कलेक्टर या अभिलेख अधिकारी या बन्दोबस्त अधिकारी, ऐसा आदेश पारित कर सकता है, जो वह ठीक समझे।*
>
> *(2) यदि किसी व्यक्ति द्वारा इस धारा के अधीन कोई आवेदन या तो परिषद या आयुक्त या अपर आयुक्त या कलेक्टर या अभिलेख अधिकारी या बन्दोबस्त अधिकारी के यहाँ प्रस्तुत किया गया है, तो उसी व्यक्ति का कोई और आवेदन उसमें से किसी अन्य के द्वारा ग्रहण नहीं किया जायेगा।"*

10. **रिट याचिका संख्या 3301(एम/एस)/2006, राजा राम एवं अन्य बनाम अपर आयुक्त फैजाबाद डिवीजन फैजाबाद एवं अन्य**, के वाद में

इस न्यायालय ने 1901 के अधिनियम की धारा 219 पर विचार करने के बाद निम्नानुसार टिप्पणी की: -

*"यू.पी.एल.आर. अधिनियम की धारा 219 के अवलोकन से, जो स्थिति सामने आती है वह यह है कि" परिषद या आयुक्त या **अपर** आयुक्त या कलेक्टर या अभिलेख अधिकारी, या बन्दोबस्त अधिकारी, **<u>अपने अधीनस्थ किसी राजस्व न्यायालय द्वारा निर्णीत किसी ऐसे मामले या ऐसी कार्यवाही का अभिलेख मँगा सकता है जिमसें कोई अपील न हो।</u>***

अतः शासनादेश के अनुसार उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, विधानमंडल के आदेशानुसार, जैसा कि यू.पी.जेड.ए और एल.आर अधिनियम की धारा 219 के अंतर्गत उपबंधित है, विपक्षी संख्या 1/अपर आयुक्त (प्रशासन), लखनऊ मंडल, लखनऊ के अधीनस्थ राजस्व न्यायालय द्वारा के समक्ष कार्यवाही में पारित किसी भी आदेश के प्रति पुनरीक्षण पोषणीय है, और यदि विधानमंडल ने उक्त अधिनियम की धारा 219 बनाते समय इस अधिदेश को विधि का रूप प्रदान किया है तो इसे अक्षरशः लागू किया जाना चाहिए क्योंकि यह न्यायालय का कर्तव्य नहीं है कि प्रावधान की भाषा स्पष्ट एवं असंदिग्ध होने पर वह विधि की सीमा में अथवा विधायिका की मंशा में वृद्धि करे। न्यायालय किसी विधि की इस कारन से पुनः रचना नहीं कर सकता क्योंकि उसके पास विधायन की शक्ति नहीं है। कानून बनाने का अधिकार न्यायालयों को नहीं दिया गया है। न्यायालय किसी क़ानून में ऐसे शब्द नहीं जोड़ सकता या उन शब्दों का निर्वचन नहीं कर सकता जो वहां मौजूद नहीं हैं।

*न्यायालय तय करती हैं कि विधि क्या है, न कि यह कि विधि क्या होना चाहिए। न्यायालय निश्चित रूप से एक ऐसा निर्वचन अपनाते हैं जो विधायिका की स्पष्ट मंशा के अनुरूप हो लेकिन कानून नहीं बना सकता। लेकिन विधायी निर्णय को शून्य करने हेतु न्यायिक सक्रियता का आह्वान करना संवैधानिक सद्भाव और उपकरणों हेतु साधन है। (देखें **यूनियन ऑफ इंडिया एवं अन्य बनाम देवकी नंदन अग्रवाल, एआईआर एससी 96, ऑल इंडिया रेडियो बनाम संतोष कुमार एवं अन्य 71 (1998) 3 एससीसी 237, साक्षी बनाम यूनियन ऑफ इंडिया एवं अन्य, (2004) 5 एससीसी 518, पांडियन केमिकल्स लिमिटेड बनाम सीआईटी (2003) 5 एससीसी 590, भावनगर विश्वविद्यालय बनाम पालिताना शुगर मिल्स (पी) एवं अन्य, एआईआर 2003 एससी 511 एवं जे.पी. बंसल बनाम राजस्थान राज्य, 2003) 5 एससीसी 134)***

***नसीरुद्दीन बनाम सीता राम अग्रवाल, (2003) 4 एससीसी 753** में, सर्वोच्च*

न्यायालय ने माना है कि न्यायालय कमियों को दूर कर सकता है किन्तु ताने-बाने को नहीं बदल सकता है। जब प्रावधान की भाषा स्पष्ट हो तो यह कानून या इरादे का दायरा नहीं बढ़ा सकता। यह क़ानून में शब्दों को जोड़ या घटा नहीं सकता या कुछ ऐसा नहीं पढ़ सकता जो उसमें नहीं है। यह कानून को दोबारा नहीं लिख सकता या नया स्वरूप नहीं दे सकता।"

11. यह उल्लेख करना उचित होगा कि पुनरीक्षण का उपचार सिविल प्रक्रिया संहिता (संक्षेप में 'सी.पी.सी.') में भी उपलब्ध है। सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 पुनरीक्षण का प्रावधान करती है। राज श्री अग्रवाल एवं अन्य बनाम सुधीर मोहन और अन्य, MANU/UP/2351/2022, के मामले में सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 और इसके दायरे में आने वाले विभिन्न निर्णयों पर विचार करने के बाद इस न्यायालय ने दिनांक 22.04.2022 को पारित निर्णय में यह धारित किया कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत याचिका पोषणीय नहीं है क्योंकि याचिकाकर्ता के लिए पुनरीक्षण का उपचार उपलब्ध है। दिनांक 25.04.2022 के निर्णय का प्रासंगिक भाग यहां पुन: प्रस्तुत किया गया है:-

"8.तथ्यों के बेहतर मूल्यांकन हेतु, सिविल प्रक्रिया संहिता में पुनरीक्षण को परिभाषित करने वाली धारा 115 को नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:-

"(1) उच्च न्यायालय किसी भी ऐसे मामले के अभिलेख मंगवा सकेगा जिसका ऐसे उच्च न्यायालय के अधीनस्थ किसी न्यायालय से विनिश्चय किया है और जिसकी कोई भी अपील नहीं होती है और यदि यह प्रतीत होता है कि-

(ए) ऐसे अधीनस्थ न्यायालय ने ऐसी अधिकारिता का प्रयोग किया है जो उसमें विधि द्वारा निहित नहीं है, अथवा

(बी) ऐसा अधीनस्थ न्यायालय ऐसी अधिकारिता का प्रयोग करने में असफल रहा है जो इस प्रकार निहित है, अथवा

(सी) ऐसे अधीनस्थ न्यायालय ने अपनी अधिकारिता का प्रयोग करने में अवैध रूप से या तात्विक अनियमितता से कार्य किया है,

तो उच्च न्यायालय उस मामले में ऐसा आदेश दे सकता है जैसा वह उचित समझे:

[परन्तु उच्च न्यायालय, किसी वाद या अन्य कार्यवाही के अनुक्रम में इस धारा के अधीन किए गए किसी आदेश में या कोई विवाद्यक विनिश्चय करने वाले किसी आदेश में तभी फेरफार करेगा या उसे उलटेगा जब ऐसा आदेश यदि वह पुनरीक्षण के लिए आवेदन करने वाले पक्षकार के पक्ष में किया गया होता तो वाद या अन्य कार्यवाही का अंतिम रूप से निपटारा कर देता।]

(2) उच्च न्यायालय, इस धारा के अधीन किसी ऐसी डिक्री या आदेश में, जिसके विरूद्ध या तो उच्च न्यायालय में या उसके अधीनस्थ किसी न्यायालय में अपील होती है, फेरफार नहीं करेगा अथवा उसे नहीं उलटेगा।

(3) न्यायालय के समक्ष वाद या अन्य कार्यवाही में कोई पुनरीक्षण रोक के रूप

में प्रभावी नहीं होगी सिवाय वहां के जहां ऐसे वाद या अन्य कार्यवाही को उच्च न्यायालय द्वारा रोका गया है।"

9. सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 को पुन: प्रस्तुत करना भी उपयुक्त है जैसा कि उ.प्र.राज्य में जुलाई, 1, 2002 से प्रतिस्थापित किया गया है।

"115. संशोधन (1) एक वरिष्ठ न्यायालय मूल वाद या अधीनस्थ न्यायालय द्वारा अन्य कार्यवाही में तय किए गए वाद में पारित आदेश का पुनरीक्षण कर सकता है जहाँ आदेश के विरूद्ध कोई अपील नहीं है और जहाँ अधीनस्थ न्यायालय ने -

(ए) उस क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया जो विधि द्वारा उसमें निहित नहीं है; या

(बी) इस प्रकार निहित अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने में विफलता कारित की; या

(सी) अवैध रूप से या भौतिक अनियमितता के साथ अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए कार्य किया।

(2) उप-धारा (1) के तहत एक पुनरीक्षण आवेदन, जब उच्च न्यायालय में दायर किया जाता है, तो ऐसे आवेदन के पहले पृष्ठ पर, मामले के शीर्षक के नीचे, इस आशय का एक प्रमाण पत्र होगा कि मामले में जिला न्यायालय के समक्ष कोई पुनरीक्षण नहीं होना है, अपितु मूल्यांकन के कारण या इस कारण कि पुनरीक्षण की मांग से संबंधित आदेश जिला न्यायालय द्वारा पारित किया गया था, मात्र उच्च न्यायालय के समक्ष ही पुनरीक्षण होना है।

(3) वरिष्ठ न्यायालय, इस धारा के अंतर्गत दिए गए किसी भी आदेश में परिवर्तन नहीं करेगा अथवा उसे उलट नहीं देगा, सिवाय इसके कि -

(i) आदेश, यदि यह पुनरीक्षण के लिए आवेदन करने वाले पक्ष के पक्ष में किया गया होता, द्वारा अंततः मुकदमे या अन्य कार्यवाही का निस्तारण हो जाता; या (ii) यदि आदेश को कायम रहने दिया गया, तो इससे न्याय की विफलता होगी या उस पक्ष को अपूरणीय क्षति होगी, जिसके विरुद्ध यह आदेश दिया गया है।"

10. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा इस बात पर जोर दिया गया है केंद्रीय अधिनियम के सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 के परंतुक को स्पष्ट रूप से पढ़ना यह सुझाव देता है कि किसी वाद में विचारण न्यायालय के किसी भी आदेश के विरूद्ध पुनरीक्षण तब तक वर्जित है जब तक कि प्रावधान में उल्लिखित शर्तें न हों, अर्थात्, जहां आदेश द्वारा, यदि यह पुनरीक्षण के लिए आवेदन करने वाले पक्ष के पक्ष में किया गया होता, तो अंततः इसका या अन्य कार्यवाही का निस्तारण हो जाता । तदनुसार, उनका कहना है कि चूंकि वादपत्र में संशोधन के आवेदन की अस्वीकृति से मुकदमा समाप्त नहीं होता है, इस प्रकार, मुकदमे का निर्णय नहीं किया जा रहा है, संशोधन आवेदन को खारिज करने का आदेश तय किए गए वाद के दायरे में नहीं आएगा। इसलिए,

पुनरीक्षण वर्जित है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अंतर्गत याचिका सुनवाई योग्य है।

11. अब, याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता के उपरोक्त तर्क के मूल्यांकन हेतु , सिविल प्रक्रिया संहिता के केंद्रीय अधिनियम में शामिल दो धाराओं की और उ.प्र.राज्य में उनकी प्रयोज्यता की तुलना करना उपयुक्त होगा ।

12. केन्द्रीय अधिनियम सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 एवं सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115(3)(i) के परन्तुक की तुलना करने पर, जैसा कि उ.प्र.राज्य में लागू है, यह स्पष्ट है कि किसी भी आदेश के विरूद्ध पुनरीक्षण पोषणीय है यदि यह पुनरीक्षण हेतु आवेदन करने वाले पक्ष के पक्ष में होता तो अंततः वाद या अन्य कार्यवाही का निस्तारण हो जाता। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि केंद्रीय अधिनियम की धारा 115 के प्रावधानों को उ.प्र.राज्य द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 की उप-धारा (3) (i) के तहत अपनाया गया है और सामान्य हैं, लेकिन उ.प्र. संशोधन में धारा 115 (3)(ii) को सम्मिलित किया गया है जो यह प्रावधान करती है कि यदि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 (3) (ii) में उल्लिखित शर्तें उपस्थित हैं, अर्थात, यदि आदेश को कायम रहने दिया जाता है तो इससे न्याय की विफलता कारित होगी या उस पक्ष को अपूरणीय क्षति होगी जिसके विरूद्ध यह किया गया है। इसलिए दोनों आकस्मिकताओं में से किसी एक में, जैसा कि उ.प्र में लागू धारा 115 (3) (i) और (ii) में बताया गया है, पुनरीक्षण पोषणीय है।

13. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने अपने तर्क के समर्थन में शिव शक्ति कोऑपरेटिव हाउस सोसाइटी, नागपुर (उपरोक्त) के निर्णय के प्रस्तर संख्या 32 पर बल दिया है। प्रस्तर संख्या 32 को नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है: -

> *"32. धारा 115 को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि जोर इस प्रश्न पर है कि क्या पुनरीक्षण हेतु आवेदन करने वाले पक्ष के पक्ष में आदेश ने वाद या अन्य कार्यवाही को अंतिम रूप दे दिया होगा। यदि उत्तर 'हाँ' है तो पुनरीक्षण पोषणीय है। लेकिन इसके विपरीत, यदि उत्तर 'नहीं' है तो पुनरीक्षण पोषणीय नहीं है। इसलिए, यदि विवादित आदेश प्रकृति में अंतरिम है या अंतिम रूप से वाद का निर्णय नहीं करता है, तो पुनरीक्षण पोषणीय नहीं होगा। विधायी मंशा बिल्कुल स्पष्ट है। वे आदेश, जो प्रकृति में अंतरिम हैं, धारा 115 के अंतर्गत संशोधन का विषय नहीं हो सकते हैं। पुराने संशोधन*

अधिनियम की धारा 97(3) एवं संशोधन अधिनियम की धारा 32(2)(i) की भाषा में स्पष्ट अंतर है। जबकि पूर्व में, संशोधन लागू होने से पहले स्वीकृत या लंबित आवेदनों को बचाने की स्पष्ट विधायी मंशा थी। ऐसी मंशा धारा 32(2)(i) में महत्वपूर्ण रूप से अनुपस्थित है। संशोधन प्रक्रियाओं से संबंधित है। किसी भी व्यक्ति के पास प्रक्रिया के दौरान निहित अधिकार नहीं है। उसे मात्र निर्धारित तरीके से आगे बढ़ने का अधिकार है। यदि वैधानिक परिवर्तन द्वारा प्रक्रिया का तरीका बदल दिया जाता है, तो पक्षकारों को बिना किसी अपवाद के, बदले हुए तरीके के अनुसार आगे बढ़ना होगा, जब तक कि कोई अलग शर्त न हो।"

14. न्यायालय की राय में, उक्त निर्णय वर्तमान वाद के तथ्यों पर लागू नहीं होता है, क्योंकि यह एक ऐसे मुद्दे से संबंधित वाद था जहाँ आदेश 39 नियम 1 सिविल प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत आवेदन किया गया था जिसे खारिज कर दिया गया है, जिसके विरूद्ध पुनरीक्षण को प्राथमिकता दी गई थी एवं शीर्ष न्यायालय ने उन तथ्यों एवं परिस्थितियों में यह माना कि यदि आदेश अंतर्वर्ती प्रकृति का है तो विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश के विरूद्ध कोई भी पुनरीक्षण पोषणीय नहीं है।

15. जहाँ तक उत्तम चंद कोठारी (उपरोक्त) के वाद में निर्णय का प्रश्न है, उक्त निर्णय वर्तमान वाद के तथ्यों पर भी लागू नहीं है क्योंकि यह सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 के अंतर्गत वाद पर विचार नहीं कर रहा था जैसा कि उ.प्र.राज्य पर लागू है एवं इसके अतिरिक्त उत्तरदाताओं द्वारा उठाए गए निर्णय एवं तर्क, जिन पर इस निर्णय के बाद के भाग में चर्चा की जाएगी, पर गौहाटी उच्च न्यायालय द्वारा भी विचार नहीं किया गया।

16. पंजाब लघु उद्योग एवं निर्यात निगम (उपरोक्त) के वाद में भी यही स्थिति है।

17. अब रमा शंकर तिवारी बनाम महादेव एवं अन्य 1968 ए.डब्ल्यू.आर.103 (एफबी) के वाद में इस न्यायालय की पांच न्यायाधीशों की पीठ के निर्णय पर आते हैं जिस पर उत्तरदाताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा विश्वास व्यक्त करते हुए, पूर्ण पीठ ने 'निर्णीत वाद' के अर्थ पर विचार किया और धारित किया कि अभिवाकों में संशोधन हेतु किसी प्रार्थनापत्र की अनुमति देने या अस्वीकार करने का आदेश 'निर्णीत वाद' है एवं इस धारा में पुनरीक्षण योग्य है, यदि संशोधन का

पक्षकारों के अधिकारों एवं दायित्व पर सीधा असर पड़ने की संभावना है। उक्त 7 निर्णय के प्रस्तर 23 एवं 24 को यहाँ नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:-

> *"23. इसलिए, मेरी राय है कि अभिवचन में संशोधन हेतु किसी आवेदन को स्वीकार करने या खारिज करने वाला प्रत्येक आदेश संहिता की धारा 115 के अंतर्गत पुनरीक्षण योग्य वाद को जन्म नहीं देगा। संशोधन हेतु किसी आवेदन को अनुमति देने या अस्वीकार करने वाला आदेश हालाँकि, दलील देने से उस धारा के अंतर्गत पुनरीक्षण योग्य वाद का निर्णय हो सकता है, यदि मांगे गए संशोधन का पक्षकारों के अधिकारों एवं दायित्वों पर सीधा प्रभाव पड़ता है या होने की संभावना है एवं न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को प्रभावित करता है या प्रभावित होने की संभावना है। सुश्री सूरज पाली के वाद में निर्णय को मेरी राय में अब मान्य विधि नहीं कहा जा सकता है।*
>
> *24. पूर्ण पीठ का गठन करने वाले अधिकांश न्यायाधीशों की राय यह है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश VI नियम 17 के अंतर्गत पारित कोई आदेश जो या तो किसी संशोधन की अनुमति देता है या किसी संशोधन की अनुमति देने से इनकार करता है, सिविल प्रक्रिया संहिता, धारा 115 में उस अभिव्यक्ति के अर्थ के भीतर एक "निर्णीत वाद" है।*

18. पाँच न्यायाधीशों की पीठ के निर्णय ने वर्तमान वाद में विवाद का समापन कर दिया, क्योंकि संशोधन प्रार्थना पत्र पर निर्णय लेने वाले आदेश का किसी भी पक्ष के अधिकार पर सीधा असर होगा, अगर इसे अनुमति दी जाती है या खारिज कर दिया जाता है। इस प्रकार, सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 6 नियम 17 के अंतर्गत एक प्रार्थना पत्र पर निर्णय निर्णीत वाद के बराबर होगा एवं पुनरीक्षण हो सकेगा। उक्त निष्कर्ष धारा 115 (1) की पहली पंक्ति द्वारा भी समर्थित है जिसमें कहा गया है कि "उच्च न्यायालय मूल वाद में तय किए गए वाद में पारित आदेश को संशोधित कर सकता है", उक्त पंक्ति को पढ़ने से पता चलता है कि विधि ने ऐसे मामलों की संकल्पना की है जहाँ हो सकता है ऐसी परिस्थितियां हो सकती हैं जहाँ मूल वाद में पारित एक आदेश निर्णीत वाद के बराबर हो सकता है, हालांकि वाद का निर्णय नहीं किया गया है, और उक्त आदेश के विरूद्ध पुनरीक्षण पोषणीय है।

19. इसी प्रकार, सुल्तान लेदर फ़िनिशर्स प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य बनाम अपर जिला न्यायाधीश न्यायालय संख्या 4, उन्नाव एवं अन्य 2006 (1) एडब्ल्यूसी

825 (एलबी) में किए गए निर्णय का प्रस्तर-17 वर्तमान वाद के संदर्भ में प्रासंगिक होने के कारण नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

> *"संभौनाथ दिगंबर जैन बनाम मोहनलाल एवं अन्य 2003 (9) एससीसी 219 के एक अन्य वाद में, जहाँ सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश VI, नियम 17 और आदेश VIII, नियम 6A के अंतर्गत प्रतिवादी को लिखित बयान में संशोधन करने और प्रतिदावा करने की अनुमति हेतु प्रार्थनापत्र को विचारण न्यायालय ने खारिज कर दिया था, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह माना गया कि इस तरह के प्रार्थनापत्र को पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का उपयोग करके चुनौती दी जा सकती है।*
>
> *सुविधा के लिए संभवनाथ के मामले (उपरोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के प्रस्तर 3 एवं 4 को निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया गया है:*
>
> *"प्रतिवादियों ने रजिस्ट्रार के उक्त आदेश को रद्द करने हेतु अपीलकर्ता के विरूद्ध वाद दायर किया: 13.9.1982 को, अपीलकर्ता ने लिखित बयान प्रस्तुत किया जिसमें कहा गया कि संपत्ति का वह हिस्सा जहाँ लड़कियों का विद्यालय चल रहा था, वह ट्रस्ट की संपत्ति थी। यह उल्लेख किया जा सकता है कि रजिस्ट्रार ने विद्यालय के उक्त हिस्से को ट्रस्ट संपत्ति के रूप में शामिल नहीं किया। 15.9.1982 को, अपीलकर्ता ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश VI, नियम 17 और आदेश VIII, नियम 6A सहपठित धारा 151सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत एक प्रार्थनापत्र प्रस्तुत किया,और उक्त स्कूल को एक ट्रस्ट संपत्ति के रूप में अपने प्रति-दावे में सम्मिलित करने की मांग की। 15.9.1982 को, अपीलकर्ता ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश VI, नियम 17 और आदेश VIII, नियम 6A सहपठित धारा 151 सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत एक प्रार्थनापत्र प्रस्तुत किया, और अपने लिखित बयान में संशोधन के माध्यम से उक्त स्कूल को एक ट्रस्ट संपत्ति के रूप में अपने प्रति-दावे में सम्मिलित करने की मांग की। उक्त प्रार्थनापत्र को विचारण न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया था और उक्त आदेश से व्यथित होकर,*

अपीलकर्ता ने एक पुनरीक्षण दायर किया जिसे पोषणीय न होने के कारण खारिज कर दिया गया। यही कारण है कि पक्षकार हमारे सामने प्रस्तुत हुए हैं।

अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आग्रह किया है कि विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश पुनरीक्षण योग्य था और उच्च न्यायालय का दृष्टिकोण त्रुटिपूर्ण है। हमारा विचार है कि न्यायहित में उच्च न्यायालय को सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश VIII के नियम 6A को ध्यान में रखते हुए और विधि के अनुसार गुणदोष के आधार पर प्रार्थनापत्र पर विचार करना चाहिए था। इसलिए, हम मानते हैं कि विचारण न्यायालय द्वारा अपीलकर्ता के प्रार्थनापत्र को खारिज करने वाला उपरोक्त आदेश पुनरीक्षण योग्य था।"

20. इस संबंध में, 2006 (3) एडब्ल्यूसी 2182, मुख्तार अहमद बनाम सिराजुल हव एवं अन्य में इस न्यायालय के निर्णय के प्रस्तर-8 का उल्लेख करना भी उपयुक्त हो सकता है, जिसमें इस न्यायालय ने पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा संशोधन प्रार्थनापत्र में पारित आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण को खारिज कर दिया। उक्त निर्णय का प्रस्तर-8 नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:-

"8. उपरोक्त के दृष्टिगत, जिला न्यायाधीश का यह मानना सही नहीं था कि संशोधन आवेदन को खारिज करने वाले आदेश के विरूद्ध पुनरीक्षण पोषणीय नहीं है। विधि के अंतर्गत जिला न्यायाधीश यह देखने के लिए बाध्य था कि क्या विचारण न्यायालय द्वारा पारित संशोधन आवेदन को खारिज करने वाला आदेश निर्णीत वाद की श्रेणी में होगा या क्या वाद के तथ्यों के अनुसार पुनरीक्षण प्राधिकारी को सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 की उप-धारा (3) के दृष्टिगत विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश को परिवर्तित करना चाहिए या उलट देना चाहिए। यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि इस न्यायालय ने श्रीमती पुष्पा उर्फ पूजा बनाम उ.प्र.राज्य एवं अन्य 2005 (3) एडब्ल्यूसी 2587: एआईआर 2005 इलाहाबाद 187 के निर्णय में शिव शक्ति ऑपरेटिव हाउसिंग सोसाइटी, नागपुर बनाम स्वराज डेवलपर्स के निर्णय का उल्लेख किया है और उक्त निर्णय के पैराग्राफ 15 और 16

में एवं शिव शक्ति (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अवधारित विधिक प्रस्थापना की व्याख्या की है, जिसे यहाँ पुनः प्रस्तुत किया जा सकता है:-

"15. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा विश्वास व्यक्त किए गए वाद शिव शक्ति सहकारी हाउसिंग सोसाइटी, नागपुर बनाम स्वराज डेवलपर्स एवं अन्य (उपरोक्त)के निर्णय में शीर्ष न्यायालय द्वारा धारित किया गया है कि किसी अंतर्वर्ती या अंतरिम आदेश के विरूद्ध पुनरीक्षण पोषणीय नहीं है। सर्वोच्च न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 के प्रावधानों पर विचार करते हुए प्रस्तर 32 में निम्नलिखित टिप्पणी की: .... (एआईआर के पृष्ठ 2442 पर)।

"32. धारा 115 को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि जोर इस प्रश्न पर है कि क्या पुनरीक्षण हेतु आवेदन करने वाले पक्षकार के पक्ष में आदेश ने वाद या अन्य कार्यवाही को अंतिम रूप दे दिया होगा। यदि उत्तर "हाँ" है तो पुनरीक्षण पोषणीय है। लेकिन इसके विपरीत, यदि उत्तर "नहीं" है तो पुनरीक्षण पोषणीय नहीं है। इसलिए, यदि आक्षेपित आदेश अंतरिम प्रकृति का है या अंतिम रूप से मामले का निर्णय नहीं करता है, तो पुनरीक्षण पोषणीय नहीं होगा। विधायी मंशा बिल्कुल स्पष्ट है। वे आदेश, जो प्रकृति में अंतरिम हैं, धारा 115 के अंतर्गत पुनरीक्षण की विषयवस्तु नहीं हो सकते।"

16. जैसा कि ऊपर बताया गया है, धारा 24 के अंतर्गत पारित आदेश ने कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान पति या पत्नी को अंतरिम भरण-पोषण के मुद्दे का अंततः निस्तारण कर दिया। अधिनियम की धारा 24 के अंतर्गत आदेश पारित करने के बाद कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान अंतरिम भरण-पोषण के प्रश्न के संबंध में कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं है एवं तथ्य यह है कि धारा 24 के अंतर्गत पारित आदेश अंततः अंतरिम भरण-पोषण के लिए आवेदन का निस्तारण करता है; इसलिए जैसा कि शीर्ष न्यायालय ने ऊपर उद्धृत प्रस्तर में कहा है, हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 24 के अंतर्गत एक आदेश के विरूद्ध पुनरीक्षण पोषणीय होगा।"

21. सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 (iii), जैसा कि उत्तर प्रदेश में लागू है, में स्पष्ट रूप से उपबंधित है कि यदि आदेश को बरकरार रखे जाने से न्याय की विफलता होती है या जिन 10 लोगों के विरूद्ध यह आदेश दिया गया है, उन्हें अपूरणीय क्षति होती है, तब उ.प्र.राज्य में लागू सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 के अंतर्गत संशोधन पोषणीय है।

22. इस दृष्टिकोण से देखने पर, यदि किसी प्रार्थनापत्र पर विचारण न्यायालय द्वारा अवैध रूप से पारित किसी भी आदेश को पक्षकारों के अधिकारों को प्रभावित करने की अनुमति दी जाती है, तो यह स्पष्ट है कि इससे न्याय की विफलता होगी या उस पक्षकार को अपूरणीय क्षति होगी जिसके विरूद्ध यह पारित किया गया है, इसलिए, यदि उक्त स्थिति वर्तमान है, तो सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115(3)(ii), जैसा कि उ.प्र. में लागू है, के अंतर्गत विचारण न्यायालय द्वारा पारित किसी भी आदेश के विरूद्ध पुनरीक्षण हो सकेगा।"

12. इस न्यायालय की समन्वय पीठ की उपरोक्त टिप्पणियों से, यह स्पष्ट है कि संशोधन की मांग करने वाले आवेदन को अनुमति देने या अस्वीकार करने का आदेश "निर्णीत वाद" अभिव्यक्ति के दायरे में आएगा, यदि मांग किये गए संशोधन से पक्षकारों के अधिकारों एवं दायित्वों पर सीधा असर पड़ता है अथवा पड़ने की संभावना है एवं न्यायालय का अधिकार क्षेत्र प्रभावित होता है या प्रभावित होने की संभावना है, भले ही अधिनियम, 1901 के अंतर्गत शुरू की गई कार्यवाही के अंतर्गत एक आदेश पारित किया गया हो। अधिनियम, 1901 की धारा 219 में अभिव्यक्ति "निर्णीत वाद" पाया जाता है। इस प्रकार, संशोधन की मांग करने वाले प्रार्थनापत्र पर पारित आदेश के विरूद्ध संशोधन पोषणीय होगा।

13. इसके अतिरिक्त, 1901 के अधिनियम की धारा 219 में अभिव्यक्ति "पारित आदेश या कार्यवाही की वैधता या औचित्य" पुनरीक्षण प्राधिकारी को उसके अधीनस्थ राजस्व न्यायालय द्वारा पारित आदेश की वैधता या औचित्य पर विचार करने का अधिकार देती है यदि उसे बरकरार रखा जाता है, जिसके परिणामस्वरूप न्याय विफल हो जाता है या उस पक्ष को अपूरणीय क्षति होती है जिसके विरुद्ध यह किया गया है। इसके अलावा, यदि किसी प्रार्थनापत्र पर अधीनस्थ राजस्व न्यायालय द्वारा पारित आदेश को पक्षकारों के अधिकारों को प्रभावित करने की अनुमति दी जाती है, तो इससे न्याय की विफलता होगी या उस पक्षकार को अपूरणीय क्षति होगी जिसके विरुद्ध यह किया गया है, इसलिए, यदि उक्त स्थिति वर्तमान है, अधीनस्थ राजस्व न्यायालय द्वारा पारित किसी भी आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण, 1901 के अधिनियम की धारा 219 के अंतर्गत पोषणीय होगा। 1901 के अधिनियम की धारा 219 के अनुसार, यदि अधीनस्थ राजस्व न्यायालय अपने क्षेत्राधिकार को लांघता है, या अवैध रूप से या तात्विक अनियमितता के साथ अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करता है तो पुनरीक्षण पोषणीय होगा।

14. उपरोक्त कारणों से, इस न्यायालय का मानना है कि नायब तहसीलदार द्वारा संशोधन

प्रार्थनापत्र को खारिज करते हुए दिनांक 20.02.2020 को पारित आदेश के विरूद्ध पुनरीक्षण स्वीकार्य था। इस प्रकार, दिनांक 24.11.2020 के आदेश में हस्तक्षेप किया जा सकता है। तदनुसार, दिनांक 24.11.2020 का आदेश निरस्त किया जाता है। विपक्षी संख्या 4- श्रीमती शिव प्यारी पत्नी स्वर्गीय गोकरन निवासी ग्राम-पूरे वल्ली थाना मुर्शिदाबाद वर्तमान में कृष्णा नगर, मुरारी का बाग, परगना और तहसील डलमऊ, जिला-रायबरेली को सुनवाई का उचित अवसर देने के बाद, मामले को गुण-दोष के आधार पर, यथाशीघ्र, इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से छह महीने की अवधि के भीतर, यदि इस संबंध में कोई अन्य कानूनी बाधा नहीं है तो निर्धारित अवधि में कार्यवाही समाप्त करने के उद्देश्य से अनावश्यक स्थगन दिए बिना, नए सिरे से पुनरीक्षण पर निर्णय लेने हेतु पुनरीक्षण प्राधिकारी को वापस भेज दिया जाता है ।

15. उपरोक्त के दृष्टिगत वर्तमान रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

(2023) 3 ILRA 212

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल वाद

दिनांक: लखनऊ 01.02.2023

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ लवानिया

के समक्ष

रिट बी संख्या 23043/2020

घुरू एवं अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

अपर जिला मजिस्ट्रेट वित्त/राजस्व खीरी एवं अन्य ...प्रतिपक्षी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता: अजेय सिंह

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: सी.एस.सी.

A. सिविल कानून - वसीयत - भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 - धारा 63 - भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धाराएँ 68, 69, 90 एवं 90-ए - वसीयत - अधिनियम, 1925 की धारा 63 के तहत बनाई गई वसीयत का प्रमाणित होना आवश्यक है, कि इसे धारा 68 के तहत कम से कम एक साक्षी द्वारा प्रमाणित किया गया है - जहां वसीयत के साक्षी मर चुके हैं या वसीयत के निष्पादन को सिद्ध करने के लिए उपलब्ध नहीं हैं, वहां कथित वसीयत को प्रमाणित करने के लिए साक्षियों में से किसी एक के हस्ताक्षर और धारा 69 के तहत निष्पादक के हस्ताक्षर के द्वारा सिद्ध करना होगा - वसीयत का प्रमाण प्रस्तुत करने का भार वसीयत प्रस्तुत करने वाले पर है - यदि वसीयत के निष्पादन के चारों ओर कोई संदेहास्पद परिस्थितियाँ नहीं हैं, तो वसीयत के निष्पादक की क्षमता और हस्ताक्षर का प्रमाण जिम्मेदारी को समाप्त करने के लिए पर्याप्त है - जहां संदेहास्पद परिस्थितियाँ हैं, वहां वसीयत प्रस्तुत करने वाले पर जिम्मेदारी होगी कि वे उन्हें न्यायालय के सामने संतोषजनक तरीके से स्पष्ट करें इससे पूर्व कि वसीयत को असली माना जा सके - जहां वसीयत का निष्पादन संदेह में है, यह न्यायालय की न्यायिक विवेक का वाद है और जो पक्ष वसीयत को प्रस्तुत करती है उसे वसीयत के चारों ओर संदेहास्पद परिस्थितियों का ठोस और विश्वसनीय स्पष्टीकरण देना होगा (पैरा 19, 24, 25, 28)

B. सिविल कानून - वसीयत - इस वाद में, याचिकाकर्ता ने बताया कि दिनांक 26.06.1986

की वसीयत को गवाहों बच्छू लाल और बेचन लाल द्वारा संकुलन प्राधिकरण के समक्ष सही सिद्ध किया गया - बच्छू लाल ने कहा कि नरमता ने वसीयत उनके सामने लायी, और वसीयत के निष्पादक किशुन के अंगूठे के निशान और जगन्नाथ (उप-प्रधान) के हस्ताक्षर और तुलसीराम (पंच) के अंगूठे के निशान को देखकर उन्होंने वसीयत पर हस्ताक्षर किए - निर्णय - बच्छू लाल को वसीयत का साक्षी नहीं माना जा सकता - बेचन लाल की गवाही असंगतियों के कारण अविश्वसनीय पाई गई, जैसे कि वसीयत कब लिखी गई, इसके बारे में विरोधाभासी समय और स्टाम्प पेपर खरीदने वाले के बारे में भिन्नताएँ - उच्च न्यायालय ने कहा कि याचिकाकर्ताओं ने चकबन्दी अधिकारी के समक्ष वसीयत को सिद्ध करने में विफल रहे, इसलिए, उनकी वसीयत पर आधारित दावा उचित नहीं था - रिट याचिका निरस्त की गई। (पैरा 34, 35, 36)

निरस्त। (E-5)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. शशि कुमार बनर्जी बनाम सुबोध कुमार बनर्जी, AIR 1964 SC 529

2. एच. वेंकटचल आईयंगर बनाम बी.एन. थिम्मजम्मा, AIR 1959 SC 443

3. बाबू सिंह बनाम राम सहाई @ राम सिंह, (2008) 14 SCC 754

4. भरपुर सिंह बनाम शमशेर सिंह, (2009) 3 SCC 687

5. जगदीश प्रसाद बनाम राज्य, 2015 SCC ऑनलइन डेल 14461

6. बी. वेंकटामुनी बनाम सी.जे. अयोध्या राम सिंह, (2006) 13 SCC 449

7. संतोष कुमार गुप्ता बनाम हरविंदर नाथ गुप्ता, 1996 SCC ऑनलइन आल 1325

8. रवींद्रनाथ मुखर्जी बनाम पंचानन बनर्जी (मृत) द्वारा एलआर., (1995) 4 SCC 459 : AIR 1995 SC 1684

9. शिवकुमार बनाम शरणबसप्पा, सिविल अपील संख्या 6076 / 2009, निर्णय दिनांक 24.04.2020

10. राज कुमारी और अन्य बनाम सुरेंद्र पाल शर्मा 2019 SCC ऑनलइन SC 1747

11. कविता कंवर बनाम पामेला मेहता (2021) 11 SCC 209

<u>माननीय न्यायमूर्ति सौरभ लवानिया</u>

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता श्री अजय सिंह और राज्य/प्रतिवादी संख्या-1 से 3 के अधिवक्ता डॉ. कृष्णा सिंह को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

इस याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ताओं ने प्रतिवादी संख्या-2/बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी, खीरी, जिला खीरी और प्रतिवादी संख्या-1/अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट, वित्त और राजस्व, खीरी, जिला-खीरी द्वारा पारित दिनांक 05.09.2012, 12.10.2012 और 16.01.2020 के आदेश (ओं) को चुनौती दी है।

मामले के संक्षिप्त तथ्य इस आशय के हैं कि ग्राम जंगल मटेरा, परगना और तहसील- धौरहरा, जिला- खीरी के निवासी किशुन गोरिया पुत्र सफारू निवासी द्वारा लिखित दिनांक 26.06.1986 की वसीयत के आधार पर, उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम, 1901 (संक्षेप में "अधिनियम वर्ष 1901") की धारा 34 के तहत दायर आवेदन पर तहसीलदार, तहसील-धौरहरा, जिला-खीरी द्वारा

पारित आदेश दिनांक 05.06.1992 के अनुपालन में याचिकाकर्ताओं का नाम राजस्व रिकॉर्ड में दर्ज किया गया था।

यहां यह ध्यान देना उपयुक्त होगा कि संपत्ति पर दावे के संबंध में, जो कि दिनांक 26.06.1986 की वसीयत की विषय वस्तु है, उत्तर प्रदेश जमीदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 229-बी के तहत घोषणा के लिए एक वाद (संक्षेप में "अधिनियम 1950) में मामला दायर किया गया था और संबंधित गांव में चकबंदी की कार्यवाही शुरू होने के कारण उक्त वाद को समाप्त कर दिया गया था। इसके बाद, उत्तर प्रदेश जोत समेकन अधिनियम, 1953 (संक्षेप में "अधिनियम वर्ष 1953") की धारा 9-ए (2) के तहत प्रतिवादी संख्या-3/चकबंदी अधिकारी, खीरी, जिला-खीरी के समक्ष एक आपत्ति दायर की गई थी। याचिकाकर्ता प्रतिवादी संख्या-3 के समक्ष भी पेश हुए और दिनांक 26.06.1986 की वसीयत के आधार पर संपत्ति पर अपना दावा किया। प्रतिवादी संख्या-3 के समक्ष, संबंधित पक्षों की आपत्तियां केस संख्या-504 (सुररा बनाम विद्यावती) और 489 (सुम्मत बनाम घुरु) के रूप में दर्ज की गई थीं। इन दोनों मामलों को एक साथ मिला दिया गया था और दिनांक 21-10-2009 के संयुक्त आदेश द्वारा निर्णय दिया गया था। यह आदेश याचिकाकर्ताओं के पक्ष में है।

दिनांक 21.10.2009 के आदेश से व्यथित होकर अधिनियम वर्ष 1953 की धारा 11(1) के तहत अपील संख्या-736 वर्ष 2009 (चंद्रकाली बनाम घुरू एवं अन्य) दायर की गई। अपीलीय प्राधिकारी/प्रतिवादी संख्या-2 ने दिनांक 05.09.2012 के आदेश के तहत अपील की अनुमति दी। पुनरुत्पादन पर दिनांक 05.09.2012 के आदेश में अपीलीय प्राधिकारी की प्रासंगिक टिप्पणियां निम्नानुसार हैं:-

प्रस्तुत अपील में उभय पक्षों की ओर से दिये गये तर्क एवं अपील सहित अवर न्यायालयको पत्रावली के अवलोकन से स्पष्ट है कि प्रस्तुत अपील चकबन्दी अधिकारी के आदेश दिनांक 21-10-09 के विरूद्ध योजित की गयी है। प्रश्नगत अपील जिस आराजी के सम्बन्ध में प्रस्तुत की गयी है उसके सम्बन्ध में उल्लेख करना है ग्राम जंगलमटेरा परगना व तहसील धौरहरा के खाता सं0 70 किशुन पुत्र सकरू के नाम दर्ज था तथा खाता सं0 71 किशुन व महिपाल पुत्रगण सकरू के नाम दर्ज था। किशुन के कोई पुत्र नही था। उनके चार पुत्रियां थी विद्यावती, सुर्रा, दुर्रा व नरमत्ता थी। चारों पुत्रियों की शादी किशन के जीवन काल में हो गयी थी जो कि उभय पक्षों को स्वीकार है। किशनु के मृत्यु के उपरान्त किशन के नाम दर्ज आराजी पर तहसील से प0क0-11 द्वारा बतौर वारिस महिपाल का नाम दर्ज हुआ। महिपाल के दो पत्नियां थी। एक का नाम सुम्मति व दूसरी का नाम चन्द्रकली था। प0क0-11 में आदेश पारित होने के उपरान्त किशुन की पुत्रियों नरमत्ता व विद्य वती द्वारा एक अपंजीकृत वसीयत तैयार कर तथा अपंजीकृत वसीयत के आधार पर धारा 34 एल0आर0एक्ट के अन्तर्गत तहसील में वाद योजित किया गया जिसकी जानकारी महिपाल को नही हो सकी तथा धारा-34 में पारित आदेश के द्वारा विवादित आराजी परवसीयत के आधार पर महिपाल का नाम निरस्त कर किशुन के स्थान पर घुरू व लल्लू पुत्रगण कामता व विद्यावती पत्नी सुन्दरलाल का नाम दर्ज किया गया। जिसके विरूद्ध महिपाल ने धारा-229बी जमींदारी विनाश एवं भूमिव्यवस्था अधिनियम के

अन्तर्गत वाद योजित किया गया तथा दौरान वाद विचाराधीन रहते ही महिपाल की मृत्यु हो गयी महिपाल की मृत्यु के उपरान्त महिपाल के स्थान पर प्रतिस्थानी नियुक्त किये जाने हेतु दिये गये प्रार्थना पत्र पर महिपाल की दोनों पत्नियों को प्रतिस्थानी नियुक्त किया गया। लेकिन उपरोक्त वाद के विचाराधीन रहते तथा ग्राम चकबन्दी कियाओं के प्रकाशन हेतु ग्राम अजट डोकर ग्राम में चकबन्दी कियायें प्रारम्भ हो गयी। ग्राम में चकबंदी क्रियायें प्रारम्भ हो जाने के कारण उपरोक्त वाद को अवेट कर दिया गया तथा दौरान चकबन्दी धारा -9 के प्रकाशन के समय अपीलकर्ता व सुम्मत द्वारा एक वाद योजित किया गया तथा दूसरा वाद सुर्रा द्वारा योजित किया गया दोनो वाद चकबन्दी अधिकारी न्यायालय में योजित किये गये। चकबन्दी अधिकारी न्यायालय में उक्त दोनो वादों के विचाराधीन रहते ही वादिनी सुम्मत की मृत्यु हो गयी तथा चकबन्दी अधिकारी द्वारा सुम्मत के बाद चन्द्रकली को प्रतिस्थानी नियुक्त किया गया। तथा तदोपरान्त वाद को पैरवी चन्द्रकली द्वारा प्रारम्भ की गयी । चकबन्दी अधिकारी ने चन्द्रकला व सुर्रा की आपत्ति को सुनवाई के उपरान्त अपने पारित आदेश में प्रस्तुत दोनों आपत्तियों को निरत्त किया है तथा अपंजीकृतक वसीयत के आधार पर खाता सं0 70 रकबा 1-329 हे0 में 4 बीघा अर्थात 0-320 हे0 पर विद्यावती पुत्री किशुन का नाम तथा शेष आराजी के 1 / 2 भाग पर घुरू व 1 / 2 भाग पर लल्लू का नाम दर्ज किये जाने का आदेश किया गया है तथा इसी प्रकार खाता सं0 71 में महिपाल मृतक के स्थान पर चन्द्रकली बेवा महिपाल का नाम बतौर वारिस दर्ज होने तथा खाते से घुरु, लल्लू पुत्रगण कामता व विद्यावती पुत्री किशुन का नाम खारिज करके मृतक किशुन के वारिस के आधार पर नाम दर्ज किये जाने सम्बन्धी चन्द्रकली बेवा महिपाल को आपत्ति किया है। तथा खाता सं0 71 का विभाजन चकबन्दी बाहर भूमि को छोड़कर घुरू, लल्लू व विद्यावती प्रत्येक 1/8 तथा चन्द्रकली 1/2 अंश दर्ज किया है। इसी आदेश के विरूद्ध अपीलकर्ता चन्द्रकली द्वारा यह अपील योजित की गयी है जिसमें अपीलकर्ता द्वारा अपंजीकृत वसीतय को जाली एवं फर्जी कहा जा रहा है तथा अपंजीकृत वसीयत के आधार पर अवर न्यायालय द्वारा विपक्षीगण का नाम विवादित आराजी पर जो दर्ज किया गया है उसे निरस्त कर खाता सं0 70 व खाता सं0 71 पर बतौर वारिस एवं उत्ताराधिकारी अपना नाम दर्ज करने की मांग की गयी है। प्रस्तुत अपील में की गयी मांग के सम्बन्ध में अवर न्यायलय को पत्रावली व उसमें संलग्न आदेश व संलग्न वसीयत जिसके आधार पर चकबन्दी अधिकारी द्वारा प्रश्नगत आदेश पारित किया गया है के अवलोकन से स्पष्ट है कि जिस वसीयत को अवर न्यायालय ने आधार पर मानकर आदेश पारित किया है वह स्टाम्प पाँच रूपये का है तथा वह स्टाम्प दिनांक 26-6-86 को घूरू पुत्र कामता के नाम खरीदा गया है तथा यह स्टाम्प तहसील नानपारा जिला बहराइच से खरीदा गया है। तथा दिनांक 26-6-86 को ही वसीयत लिखे जाने का उल्लेख है यहां यह उल्लेखनीय है कि जिस स्टाम्प पेपर पर विपक्षीगण द्वारा वसीयत को लिखा जाना कहा गया है उस पर वसीयत शब्द का कोई उल्लेख नही किया गया है। जिस से यह स्पष्ट नहीं होता कि इस स्टाम्प पेपर पर उल्लिखित लेखनी वसीयत के सम्बन्ध में लिखी गयी है अथवा किसी अन्य उद्देश्य से क्योकि चाहे वह स्टाम्प पेपर हो या कोई अन्य कागज पर जब

कोई व्यक्ति वसीयत,बयनामा अथवा अन्य किसी बाबत कोई बात लिखता है तो उसका स्पष्ट उल्लेख ऊपर किया जाता है लेकिन इस बावत कोई उल्लेख स्टॉम्प पेपर नहीं किया गया है। जिससे उक्त स्टाम्प पर वसीयत का लिखा जाना स्पष्ट नहीं है। साथ ही यहाँ यह भी उल्लिखित करना है कि जब कोई व्यक्ति मुत्युशया पर पड़ा है तो उस सयम वह अपनी आराजी के सम्बन्ध में किसी को कैसे वसीयत / बयनामा कर सकता है क्योंकि उस समय उसकी इन्द्रियाँ स्वस्थ्य अवस्था में नही हो सकती साथ ही यहाँ यह भी उल्लेख करना है कि जब कोई व्यक्ति अपनी आराजी की वसीयत किसी एक व्यक्ति के नाम लिखता है तो वह अपनी वसीयत में जिसके पक्ष में वसीयत निष्पादित की जा रही है उसके आचरण व सेवा भाव आदि का उल्लेख करता है तथा जिसके पक्ष में वसीयत नही निष्पादित की जाती है या जिसको अपनी आराजी से वंचित किया जाता है उसमें उसके कार्य एवं आचरण का भी उल्लेख किया जाता है लेकिन किशन द्वारा जो वसीयत लिखी गयी है उसमें उपरोक्त किसी बात का कोई उल्लेख नहीं किया गया है जबकि किशुन को चार पुत्रियों थी तथा इनके द्वारा केवल दो ही पुत्रियों के हक में वसीतय की गयी तथा दो पुत्रियों के हक में वसीयत क्यों नही की गयी इसका कोई उल्लेख नहीं किया गया है। जबकि वसीयत में उक्त तथ्य का उल्लेख पहले ही किया जाता है। तभी वसीयत स्पष्ट होती है। यहा यह भी उल्लेखनीय है कि अवर न्यायालय के समक्ष स्वयं घुरू जिसके पक्ष में वसीयत निष्पादित की गयी है उसके द्वारा ही अपने बयान में स्पष्ट उल्लिखित किया गया है कि स्टाम्प पेपर दो तीन दिन पहले मंगाये गये थे। तथा वसीयत लिखे जाने के समय वह उपस्थित नहीं था वह मेहमानी में गया हुआ था। वसीयत कब कहाँ लिखी गयी मालूम नहीं मेरे द्वारा घर आने पर उस पर हस्ताक्षर किये गये। इस सम्बन्ध में उल्लेख करना है कि स्वयं घुरू द्वारा उल्लिखित किया गया कि जिस स्टाम्प पर वसीयत लिखी गयी वह स्टाम्प दो तीन दिन पहले खरीदा गया जबकि जिस पर वसीयत लिखी गयी वह स्टाम्प दिनांक 26-6-86 को तहसील नानपारा जिला बहराइच से खरीदा गया है तथा घुरू के नाम से खरीदा गया है तथा उसी दिन उस पर वसीयत लिखी गयी है। इस प्रकार कि घुरू द्वारा यह कहा गया तथा उसी दिन उस पर वसीयत लिखी गयी है। इस प्रकार कि घुरू द्वारा यह कहा गया स्टाम्प दो तीन दिन पहले मंगाये गये थे यह कथन गलत है। लेकिन जब कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति के पक्ष में वसीयत निष्पादित करता है तो उस व्यक्ति को उस समय उपस्थित रहना आवश्यक है। लेकिन उक्त वसीयत में स्वयं वसीयत धारक ही अनुपस्थित है। इससेकिशुन द्वारा की गयी वसीयत औचित्यहीन प्रतीत होती है। साथ ही अवर न्यायालय के समक्ष बच्चू लाल पुत्र बृजलाल निवासी ग्राम प्रतापपुर द्वारा अपने दिये बयान में लिखा गया, है कि वह वर्ष 1986 में ग्राम प्रधान था। नरमत्ता एक वसीयत मेरे पास लेकर आई थी तथा कहा था कि वसीयत मेरे पिता ने मेरे बेटों व बहन विद्यावती के पक्ष में लिखी गयी है इसेतस्दीक कर दो। नरमत्ता द्वारा लाई गई वसीयत पर उपप्रधान जगन्नाथ का हस्ताक्षर एवं किशन का निशानी अंगूठा व पंच तुलसीराम का नि० अंगूठा पहचानता था जिस कारण मेरे द्वारा हस्ताक्षर कर दिये गये। साथ स्टाम्प खरीदे जाने का दिनांक 26-6-86 एवं लिखे जाने का समय रात्रि 10 बजे उल्लिखित किया गया है। लेकिन उक्त वसीयत को अपने सामने लिखने की

बात नही कही गयी है। इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है कि घुरू द्वारा यह कहा जा रहा है कि स्टाम्प दो तीन पहले खरीदा गया तथा बच्चूलाल द्वारा उसी दिन दिनांक 26-6-86 को ही स्टाम्प खरीदे जाने व लिखे जाने की बात कही गयी। जब उक्त वसीयत बच्चू लाल के सामने नहीं लिखी गयी तो बच्चू लाल द्वारा यह कैसे कहा जा सकता कि वसीयत उसी दिन लिखी गयी तथा जहाँ तक हस्ताक्षर व नि० अंगूठा पहचानने का प्रश्न है तो कोई भी व्यक्ति एक बार हस्ताक्षर की तो पहचान कर सकता है लेकिन नि० अंगूठा जैसा कि स्टाम्प पेपर पर लगा है उस दशा में नहीं कर सकता। अतः बच्चूलाल का यह कथन कि उनके द्वारा हस्ताक्षर व निशानी अंगूठा पहचान कर हस्ताक्षर किये गये यह कथन सन्देह से परे नहीं कहा जा सकता। प्रश्नगत आराजी के सम्बन्ध में बेच नलाल पुत्र जोधा ने जो बयान अवर न्यायालय के समक्ष दिया है उसमें उसके द्वारा उल्लिखित किया गया है कि ग्राम प्रधान व उप प्रधान मौजूद थे तथा उन्होने अपने हस्ताक्षर व मोहर लगायी थी जबकि बच्चू लाल द्वारा वसीयत का निष्पदिन अपने सामने होना नहीं कहा गया है इस प्रकार उपरोक्त सभी बयानों में आपस में विरोधाभास है जहाँ तक बेचन लाल द्वारा यह कहा गया कि वसीयत लिखने के बाद किशुन को पढ़कर सुनाई गई तथा उसके बाद उनके द्वारा वसीयत पर नि0अंगूठा लगाया गया तथा वसीयत रात्रि 10 बजे लिखी गयी। यह कथन बिल्कुल निराधार प्रतीत होता है क्योंकि स्वयं वसीयत में उल्लिखित किया गया है वसीयत निष्पादन मे समय किशुन पुत्र सकरू मृत्यु सैया पर पड़ा था तो जो व्यक्ति मृत्यु सैया पर पड़ा हो तो वह कैसे लिखी हुई व सुनी हुई बात को समक्ष सकता है। जहाँ तक वसीयत को रात्रि 10 बजे लिखा जाने का उल्लेख है तो जो वसीतय निष्पादित की गयी है उस पर समय सांय 7 बजे लिखा हुआ है। अतः रात्रि 10 बजे की भी बात पूर्णत गलत साबित होती है। अतः किसी वसीयत को निष्पादित कराते समय वसीयतकर्ता व वसीयतधारक एवं लेखक के साथ-साथ दो गवाहों की आवश्यकता होती है जो उस वसीयत की प्रमाणिकता को सिद्ध कर सके। लेकिन प्रश्नगत आराजी के सम्बन्ध में जो वसीयत निष्पादित की गयी है उसमें लेखक जिला बहराइच का है जबकि ग्राम जंगलमटेरा में भी पढ़े लिखे लोग होगे तब जनपद बहराइच से लेखक को बुलाने की आवश्यकता पड़ी। अतः प्रश्नगत आराजी के सम्बन्ध में जो वसीयत विपक्षीगण द्वारा अपने पक्ष में कराई गई है। वह एक सोची समझी राजनीति एवं कूट रचान कर फर्जी तौर पर तैयार की गयी प्रतीत होती है। क्योंकि वसीयत के हासिया गवाह व वसीयत धारक के द्वारा जो बयान अवर न्यायालय के समक्ष दिये गये उनमें आपस में विरोधाभाष है तथा दिये गये बयानों एवं स्टाम्प पेपर पर लिखी वसीयत की लेखनी से यही स्पष्ट होता है कि जो वसीयत विपक्षी द्वारा तैयार की गयी है वह जाली एवं फर्जी है। जिसके आधार पर विपक्षीगण को आराजी निजाई पर स्वत्य प्रदान करना उचित नहीं है। अवर न्यायालय द्वारा जो आदेश दिनांक 21-10-2009 को पारित किया गया है वह भी विपक्षीगण द्वारा प्रस्तुत उक्त अपंजीकृत एवं फर्जी वसीयत के आधार पर पारित किया गया है जो स्थिर रखे जाने योग्य नही है। अपीलकर्ता द्वारा किये गये कथन एवं विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिये गये तर्क से स्पष्ट है कि अपीलकर्ता ही विवादित आराजी की जायज उत्तराधिकारी है। अतः अपीलकर्ता को विवादित आराजी पर स्वत्व प्रदान

किया जाना उचित प्रतीत होता है। अतः उपरोक्तानुसार प्रस्तुत अपील स्वीकार किये जाने योग्य है।

इसके बाद, याचिकाकर्ताओं ने पुनरीक्षण संख्या-677 वर्ष 2014 (घुरू और अन्य बनाम चंद्रकाली), कम्प्यूटरीकृत केस संख्या-D2014104300677 के माध्यम से अधिनियम वर्ष 1953 की धारा 48 (1) के तहत पुनरीक्षण प्राधिकरण/प्रतिवादी संख्या-1 से संपर्क किया। पुनरीक्षण प्राधिकरण ने दिनांक 16.01.2020 के आदेश के तहत पुनरीक्षण को खारिज कर दिया। पुनरुत्पादन पर दिनांक 16.01.2020 के आदेश का प्रासंगिक भाग निम्नानुसार है:-

"प्रश्नगत वाद प्रकरण में मुख्य बिन्दु यह है कि खातेदार किशनु मृतक द्वारा निगरानीकर्तागण के हक में की गयी अपंजीकृत वसीयत दिनांक 26-06-1986 विधिवत सिद्ध मानी जा सकती है अथवा नहीं? इस सम्बन्ध में अपंजीकृत वसीयत के पाठन में प्रथम दृष्टया परिस्थितजन्य साक्ष्य के रूप में यह बिन्दु उभरता है कि किशुन के चार पत्रियां थी, लेकिन वसीयत में इस महत्वपूर्ण बिन्दु का कोई उल्लेख नहीं किया गया है कि किन कारणों से किशन ने अपनी अन्य पुत्रियों को अपने उत्तराधिकार से वंचित रखा। मात्र एक नरमत्ता के दो पुत्रों एवं एक पुत्री विदयावती को अपनी सम्पत्ति दिये जाने का उल्लेख वसीयत में है और अन्य पुत्रियों का कोई उल्लेख तक वसीयत में नही है। यह विचार बिन्दु प्रथम दृष्टया वसीयत की विश्वसनीयता पर परिस्थितिजन्य संशय उत्पन्न करता है। इसके अतिरिक्त अपंजीकृत वसीयत को सही साबित करने के लिए गवाहान घूरू, बच्चू लाल, बेचन व अशर्फी के जो बयान कराये गये है, उनमें परस्पर विरोधाभास है जो कि वसीयत को संदिग्ध बनाते है। वसीयत जिस स्टाम्प पेपर पर लिखी गयी होना बताया गया है, वह स्टाम्प जिला बहराइच से दिनांक 26.6.1986 को घूरू के द्वारा खरीदा गया, जबकि स्वयं गुरू उस स्टाम्प को वसीयत लिखे जाने के दिनांक 26-6-1986 से 2-3 दिन पहले का खरीदा जाना बताते हैं । घुरू ने वसीयत अपने सामने लिखे जाने से भी इनकार किया है और उसी के बयान अनुसार घुरू को वसीयत निष्पादन के दिन, महीना या वर्ष का भी संज्ञान नहीं है। इसलिये वसीयत के बावत् उसकी सत्यता के सम्बन्ध में उनके द्वारा दिये गये बयान वसीयत सिद्ध गानने के लिए विश्वसनीय नहीं गाने जा सकते। अन्य गवाह बच्चू लाल पुत्र बृजलाल ने भी अपने बयान में स्पष्ट माना है कि वसीयत उनके सामने नहीं लिखी गयी, बल्कि घुरू व लल्लू की माता नरमत्ता वसीयत को लिखवा कर बाद में उसके पास मात्र तस्दीक कराने के लिए लेकर आयी थी । यही बच्चू लाल ने वसीयत अपने सामने लिखा जाना कहा था। स्पष्ट है कि बच्चू लाल के ही तहसील स्तर पर एवं चकबन्दी अधिकारी न्यायालय में दिये गये बयानो में परस्पर विरोधाभास है, इसलिये बच्चू लाल के बयान को वसीयत की प्रमाणिकता के लिए स्वीकार नही किया जा सकता। जहां घुरू वसीयत के लिये स्टाम्प पेपर खरीदा जाना वसीयत लिखे जाने से 2-3 दिन पहले बताते है, वही बच्चू लाल का कथन दिनांक 26-6-1986 को ही स्टाम्प खरीदे जाने व लिखे जाने का है, जबकि दोनो ही गवाहान अपने सामने वसीयत न लिखा जाना स्वीकार करते है। एक अन्य गवाह बेचन लाल का कथन है कि बच्चू लाल के सामने वसीयत लिखी गयी थी, जबकि स्वयं बच्चू लाल द्वारा अपने सामने वसीयत लिखे जाने से इनकार किया गया है। बेचन लाल के द्वारा बयान में

कहा गया है कि वसीयतकर्ता किशुन ने उनके सामने वसीयत पर निशानी अंगूठा लगाया और वसीयत उन्हे पढ़कर सुनाई गयी थी, लेकिन बेचन लाल द्वारा वसीयत किये जाने का समय रात 10 बजे बताया गया है, जबकि वसीयत पर समय 7 बजे का है। इसके अतिरिक्त बेचन लाल ने वसीयत हेतु स्टाम्प पेपर की खरीदारी स्वयं किशुन द्वारा किया जाना बताया है, जबकि स्टाम्प पेपर की खरीदारी पर खरीदने वाले का नाम घुरू है, न कि किशुन । इसके अतिरिक्त बेचन लाल ने घुरू व लल्लू के पिता कामता से अपनी रिश्तेदारी होना भी स्वीकार किया है, जिससे भी वसीयत को सही मानने के लिए उनके बयान मात्र पर निर्भर रहना उचित नहीं है। अपंजीकृत वसीयत के लिए उसकी सत्यता को जानने का एक मुख्य सूत्र वसीयत लेखक होता है । प्रश्नगत प्रकरण में वसीयत लेखक को कभी भी किसी न्यायालय के समक्ष परीक्षण के लिए निगरानीकर्तागण द्वारा प्रस्तुत नहीं किया गया है। उपरोक्त विवेचना के आधार पर मैं इस मत का हूँ कि निगरानीकर्तागण जिस अपंजीकृत वसीयत दिनांक 26-06-1986 के आधार पर प्रश्नगत भूमि पर अपना स्वत्व सम्बन्धी अधिकार मांग रहे है, उस वसीयत को सिद्ध कर सकने में असफल रहे है। इसलिये अपीलीय न्यायालय ने अपने आदेश दिनांक 05-09-2012 के द्वारा विपक्षी चन्द्रकली पत्नी स्व0 महिपाल के हक में बतौर वारिस जो आदेश पारित कियाहै, उसमें किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। अपीलीय न्यायालय का आदेश दिनांक 12-10-2012 मात्र टंकण त्रुटि को शुद्ध करने का है, जो कि सही है । तदानुसार प्रश्नगत निगरानी बलहीन होने से निरस्त किये जाने योग्य है ।

आदेश

उपरोक्तानुसार घुरू, लल्लू पुत्रगण कामता निवासीगण ग्राम प्रतापपुर मजरा जगल मटेरा व श्रीमती विद्यावती पुत्री किशुन पत्नी सुन्दर लाल निवासिनी ग्राम बबुरी द्वारा योजित निगरानी निरस्त की जाती है । बन्दोबस्त अधिकारी चकबन्दी के आदेश दिनांक 05-09-2012 व 12-10-2012 की पुष्टि की जाती है। पत्रावली बाद आवश्यक कार्यवाही दाखिल दफ्तर हो।"

दिनांक 05.09.2012 और 16.01.2020 के आदेशों का विरोध करते हुए, याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने कहा कि दिनांक 26.06.1986 की वसीयत के आधार पर उठाए गए याचिकाकर्ताओं के दावे पर विचार किया गया था और अधिनियम वर्ष 1901 के तहत संबंधित राजस्व प्राधिकरण/तहसीलदार द्वारा दिनांक 05.06.1992 के आदेश (इस याचिका के अनुलग्नक संख्या-6) के माध्यम से अनुमति दी गई थी और इसके अनुपालन में, याचिकाकर्ताओं के नाम राजस्व रिकॉर्ड में दर्ज किए गए थे। उन्होंने प्रस्तुत किया कि संबंधित राजस्व प्राधिकरण/तहसीलदार के समक्ष, दिनांक 26.06.1986 की वसीयत, हालांकि अपंजीकृत थी, गवाहों अर्थात् बच्चू लाल पुत्र बृजलाल और बेचन लाल द्वारा विधिवत साबित की गई थी और अपील के साथ-साथ पुनरीक्षण से निपटने के दौरान, संबंधित अधिकारियों ने मामले के इस पहलू को नजरअंदाज कर दिया।

उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि वसीयत को साबित करने के लिए संबंधित चकबंदी अधिकारी के समक्ष, बच्चू लाल पुत्र बृजलाल और बेचन लाल के बयान दर्ज किए गए थे और उन्होंने कानून के तहत आवश्यक वसीयत को साबित किया था, हालांकि, उनके बयानों पर प्रतिवादी संख्या-1 और 2 द्वारा दिनांक 05.09.2012 और 16.01.2020

के आदेश पारित करते समय विचार नहीं किया गया था। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ताओं का पूरा मामला दिनांक 26.06.1986 की वसीयत पर आधारित है, जो अधिनियम वर्ष 1953 के तहत कार्यवाही में संबंधित प्राधिकरण के समक्ष साबित हुई थी, इस तरह, याचिकाकर्ताओं का दावा टिकाऊ/पुख्ता है और इस याचिका में लगाए गए आदेश इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किए जाने योग्य हैं।

प्रस्तुत याचिका का विरोध करते हुए और इस याचिका में शामिल मुद्दों पर इस न्यायालय की सहायता करते हुए, राज्य/प्रतिवादी संख्या-1 से 3 के अधिवक्ता डॉ. कृष्ण सिंह ने कहा कि 26.06.1986 की वसीयत को भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (संक्षेप में "अधिनियम वर्ष 1872") के मद्देनजर साबित किया जाना है और प्रस्तुत मामले में, कानून के तहत आवश्यक रूप से वसीयत साबित नहीं हुई थी।

डॉ. सिंह ने आगे कहा कि संबंधित चकबंदी प्राधिकरण के समक्ष बच्चू लाल ने विशेष रूप से कहा कि एक नरमत्ता ने उनके समक्ष वसीयत को जारी किया और वसीयत के वसीयतकर्ता अर्थात् किशुन की निशानी अंगूठा और जगन्नाथ (उप-प्रधान) के हस्ताक्षर और तुलसीराम (पंच) की निशानी अंगूठा पर विचार करने के बाद, उन्होंने वसीयत पर अपना हस्ताक्षर किया। इस प्रकार, मामले के इस दृष्टिकोण में, वसीयत के कथित गवाह इसे साबित करने में विफल रहे, इस प्रकार, चकबंदी अधिकारियों द्वारा दिनांक 05.09.2012 और 16.01.2020 के आक्षेपित आदेशों में की गई टिप्पणियां उचित हैं।

उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि चकबंदी अधिकारी के समक्ष बेचन लाल के बयान पर भी संबंधित अधिकारियों द्वारा अविश्वास किया गया था क्योंकि यह गवाह बरकरार नहीं रह सका था। संबंधित चकबंदी प्राधिकरण के समक्ष इस गवाह ने कहा कि वसीयत रात 10 बजे लिखी गई थी, हालांकि, वसीयत शाम 7 बजे लिखी गई थी। संबंधित प्राधिकरण के समक्ष बेचन लाल ने यह भी कहा कि वसीयतकर्ता अर्थात् किशुन ने स्वयं वसीयत के लिए स्टाम्प खरीदा था, हालांकि, स्टाम्प पेपर स्वयं बोलता है कि यह एक घुरू द्वारा खरीदा गया था, जिसके पक्ष में, किशुन द्वारा वसीयत निष्पादित की गई थी। इस प्रकार, इस गवाह की गवाही भी विश्वसनीय नहीं है और ऐसा होने के कारण, आक्षेपित आदेशों में चकबंदी अधिकारियों की टिप्पणियां उचित हैं और इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किए जाने योग्य नहीं हैं।

उन्होंने आगे कहा कि बेचन लाल ने अपने बयान में कहा कि वसीयत बच्चू लाल की उपस्थिति में लिखी गई थी और बच्चू लाल के बयान के अनुसार, वसीयत बच्चन लाल की उपस्थिति में लिखी गई थी। इस प्रकार, ये दोनों गवाह सच्चे गवाह नहीं हैं। इन कारणों से, वसीयत साबित नहीं हुई और संबंधित प्राधिकरण ने चकबंदी अधिकारी के आदेश दिनांक 05.09.2012 के माध्यम से सही हस्तक्षेप किया और इस आदेश को खारिज करने वाले पुनरीक्षण को पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा दिनांक 16.01.2020 के आदेश के तहत सही तरीके से खारिज किया गया।

पक्षकारों के अधिवक्ताओं द्वारा दी गई प्रस्तुतियों पर विचार किया और रिकॉर्ड का अवलोकन किया। आगे बढ़ने से पहले, जैसा कि प्रस्तुत मामला 'वसीयत' पर आधारित है, यह न्यायालय भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 (संक्षेप में "अधिनियम वर्ष 1925") की धारा 63 और अधिनियम वर्ष 1872 की धारा 68, 69, 90 और

90-ए जैसे प्रासंगिक प्रावधानों को संदर्भित करना उचित समझता है, जो यहां निम्नानुसार हैं: -

भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925

"धारा 63. विशेषाधिकार रहित वसीयत का निष्पादन- प्रत्येक वसीयतकर्ता, जो किसी अभियान में नियोजित या वास्तविक युद्ध में संलग्न सैनिक नहीं है, 1 [या इस प्रकार नियोजित या संबंद्ध वायुसैनिक] या समुद्र में नाविक नहीं है, निम्नलिखित नियमों के अनुसार अपनी वसीयत का निष्पादन करेगा: -

(ए) वसीयतकर्ता वसीयत पर हस्ताक्षर करेगा या अपना निशान लगाएगा, या यह किसी अन्य व्यक्ति द्वारा उसकी उपस्थिति में और उसके निर्देश द्वारा हस्ताक्षरित किया जाएगा।

(ख) वसीयतकर्ता के हस्ताक्षर या निशान, या उसके लिए हस्ताक्षर करने वाले व्यक्ति के हस्ताक्षर को इस प्रकार रखा जाएगा कि यह प्रतीत होगा कि यह वसीयत के रूप में लेखन को प्रभावी करने के लिए आशयित था।

(ग) वसीयत को दो या दो से अधिक गवाहों द्वारा सत्यापित किया जाएगा, जिनमें से प्रत्येक ने वसीयतकर्ता को वसीयत पर हस्ताक्षर करते हुए देखा है या वसीयत पर अपना निशान लगाया है या किसी अन्य व्यक्ति को वसीयतकर्ता के पक्ष से वसीयत पर हस्ताक्षर करते देखा है, या वसीयतकर्ता से उसके हस्ताक्षर या निशान की व्यक्तिगत पावती प्राप्त की है, या ऐसे अन्य व्यक्ति के हस्ताक्षर का; और प्रत्येक गवाह वसीयतकर्ता की उपस्थिति में वसीयत पर हस्ताक्षर करेगा, लेकिन यह आवश्यक नहीं होगा कि एक ही समय में एक से अधिक गवाह उपस्थित हों, और सत्यापन का कोई विशेष रूप आवश्यक नहीं होगा।

भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872

"एस 68: कानून द्वारा सत्यापित किए जाने वाले दस्तावेज के निष्पादन का प्रमाण - यदि किसी दस्तावेज को कानून द्वारा सत्यापित किया जाना आवश्यक है, तो इसे साक्ष्य के रूप में तब तक उपयोग नहीं किया जाएगा जब तक कि कम से कम गवाह को प्रमाणित करने वाले गवाह को उसके निष्पादन को साबित करने के उद्देश्य से नहीं बुलाया गया हो, यदि कोई साक्षी जीवित है, और न्यायालय की प्रक्रिया के अधीन है और साक्ष्य देने में सक्षम है:

[बशर्ते कि किसी भी दस्तावेज के निष्पादन के प्रमाण में एक प्रमाणित गवाह को बुलाना आवश्यक नहीं होगा, जो वसीयत नहीं है, जिसे भारतीय पंजीकरण अधिनियम, 1908 (16 वर्ष 1908) के प्रावधानों के अनुसार पंजीकृत किया गया है, जब तक कि उस व्यक्ति द्वारा इसका निष्पादन नहीं किया जाता है जिसके द्वारा इसे निष्पादित किया गया है।

एस 69. सबूत जहां कोई गवाह नहीं मिला - यदि ऐसा कोई प्रमाणित गवाह नहीं मिल सकता है, या यदि दस्तावेज़ यूनाइटेड किंगडम में निष्पादित किया गया है, तो यह साबित किया जाना चाहिए कि कम से कम एक गवाह को प्रमाणित करने का सत्यापन उसकी लिखावट में है, और यह कि दस्तावेज़ निष्पादित करने वाले व्यक्ति के हस्ताक्षर उस व्यक्ति की लिखावट में हैं.

एस 90. तीस साल पुराने दस्तावेजों के रूप में अनुमान - जहां कोई दस्तावेज, तात्पर्यित या तीस वर्ष पुराना साबित हुआ, किसी ऐसी अभिरक्षा से प्रस्तुत किया जाता है, जिसे विशेष मामले में न्यायालय उचित समझता है, न्यायालय यह मान सकेगा कि हस्ताक्षर और ऐसे दस्तावेज का प्रत्येक दूसरा भाग, जो किसी विशेष व्यक्ति की लिखावट में होने का अभिप्राय है, उस व्यक्ति की लिखावट

में है, और निष्पादित या सत्यापित दस्तावेज के मामले में, कि यह विधिवत निष्पादित किया गया था और उन व्यक्तियों द्वारा सत्यापित किया गया था जिनके द्वारा इसे निष्पादित और सत्यापित किया जाना है।

स्पष्टीकरण- दस्तावेजों को उचित कस्टडी में कहा जाता है यदि वे उस स्थान पर हैं, और उस व्यक्ति की देखभाल के अधीन हैं जिसके साथ वे स्वाभाविक रूप से होंगे; लेकिन कोई भी कस्टडी अनुचित नहीं है यदि यह साबित हो जाता है कि उसका वैध उद्भव था, या यदि विशेष मामले की परिस्थितियां ऐसी हैं कि इस तरह के उद्भव को संभावित रूप से प्रस्तुत किया जा सके।

एस 90 ए: पांच साल पुराने इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड के रूप में अनुमान - जहां कोई इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड, जो पांच साल पुराना साबित हुआ है, किसी भी कस्टडी से पेश किया जाता है, जिसे विशेष मामले में न्यायालय उचित समझता है, न्यायालय यह मान सकता है कि 2 [इलेक्ट्रॉनिक हस्ताक्षर] जो किसी विशेष व्यक्ति के 2 [इलेक्ट्रॉनिक हस्ताक्षर] होने का दावा करता है, उसके द्वारा या इस संबंध में उसके द्वारा अधिकृत किसी व्यक्ति द्वारा चिपका दिया गया था।

स्पष्टीकरण - इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड को उचित कस्टडी में कहा जाता है यदि वे उस स्थान पर हैं, और उस व्यक्ति की देखभाल के तहत जिसके साथ वे स्वाभाविक रूप से हैं; लेकिन कोई भी कस्टडी अनुचित नहीं है यदि यह साबित हो जाता है कि उसका वैध उद्भव था, या विशेष मामले की परिस्थितियां ऐसी हैं कि इस तरह के उद्भव को संभावित रूप से प्रस्तुत किया जा सके।

अधिनियम 1925 का अध्याय III विशेषाधिकार रहित वसीयत के निष्पादन के संबंध में है। धारा 63 में वह रीति उपबंधित है जिसमें वसीयतकर्ता अपनी वसीयत निष्पादित करेगा:-

(ए) वसीयतकर्ता वसीयत पर हस्ताक्षर करेगा या अपना निशान लगाएगा, या यह किसी अन्य व्यक्ति द्वारा उसकी उपस्थिति में और उसके निर्देश से हस्ताक्षरित किया जाएगा,

(ख) वसीयतकर्ता के हस्ताक्षर या निशान, या उसके लिए हस्ताक्षर करने वाले व्यक्ति के हस्ताक्षर, रखे जाएंगे और प्रकट होंगे कि यह वसीयत के रूप में लेखन को प्रभावी करने का इरादा था,

(ग) वसीयत को दो या दो से अधिक गवाहों द्वारा सत्यापित किया जाना चाहिए, जिनमें से प्रत्येक ने वसीयतकर्ता के हस्ताक्षर को देखा है या वसीयत पर अपना निशान लगाया है। इसके अलावा, प्रत्येक गवाह वसीयतकर्ता की उपस्थिति में वसीयत पर हस्ताक्षर करेगा, लेकिन यह आवश्यक नहीं होगा कि एक ही समय में एक से अधिक गवाह उपस्थित हों।

इस प्रकार, अधिनियम वर्ष 1925 एक वसीयत के निष्पादन के लिए पद्धति निर्धारित करता है। अधिनियम वर्ष 1872 एक प्रक्रियात्मक कानून है और अधिनियम वर्ष 1872 की धारा 68 और 69 एक दस्तावेज के निष्पादन के प्रमाण के लिए प्रदान करता है जिसे कानून द्वारा सत्यापित किया जाना आवश्यक है।

विधायिका ने एक प्रमाणित गवाह के माध्यम से वसीयत के निष्पादन को साबित करने की प्रक्रिया निर्धारित की थी। ऐसे मामलों में जहां सत्यापन करने वाले गवाह उपलब्ध नहीं हैं, जैसे कि मृत्यु के मामले में या न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से बाहर या प्रतिकूल पक्ष द्वारा रास्ते से बाहर रखा गया है या परिश्रम/ खोज के बावजूद पता नहीं लगाया जा सकता है, वसीयत को

अधिनियम वर्ष 1872 की धारा 69 में प्रदान किए गए तरीके से साबित करना आवश्यक है।

वसीयत के आधार पर किसी मामले से निपटने के दौरान सबूत के तरीके और दायित्व से संबंधित कानून और अदालत पर डाले गए कर्तव्य की भी निर्णयों की एक श्रेणी में काफी विस्तार से जांच की गई है। शशि कुमार बनर्जी बनाम सुबोध कुमार बनर्जी, ए.आई.आर. 1964 एस.सी. 529 में संविधान पीठ ने निम्नानुसार देखा:

"वसीयत को साबित करने का तरीका आमतौर पर भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 63 द्वारा वसीयत के मामले में निर्धारित सत्यापन की विशेष आवश्यकता को छोड़कर किसी अन्य दस्तावेज को साबित करने से अलग नहीं होता है। वसीयत को साबित करने का दायित्व प्रस्तावक पर है और वसीयत के निष्पादन के आसपास की संदिग्ध परिस्थितियों की अनुपस्थिति में, वसीयतनामा क्षमता का प्रमाण और कानून द्वारा आवश्यक वसीयतकर्ता के हस्ताक्षर जिम्मेदारी का निर्वहन करने के लिए पर्याप्त हैं। जहां हालांकि संदिग्ध परिस्थितियां हैं, अदालत द्वारा वसीयत को वास्तविक मानने से पहले अदालत की संतुष्टि के लिए उन्हें समझाने की जिम्मेदारी प्रस्तावक पर है। जहां कैविएटर अनुचित प्रभाव, धोखाधड़ी और जबरदस्ती का आरोप लगाता है, उसे साबित करने का दायित्व उस पर है। यहां तक कि जहां ऐसी कोई दलील नहीं है, लेकिन परिस्थितियां संदेह को जन्म देती हैं, यह प्रस्तावक के लिए है कि वह अदालत की अंतरात्मा को संतुष्ट करे। संदिग्ध परिस्थितियां वसीयतकर्ता के हस्ताक्षर की वास्तविकता, वसीयतकर्ता के दिमाग की स्थिति, वसीयत में किए गए स्वभाव प्रासंगिक परिस्थितियों के प्रकाश में अप्राकृतिक, असंभव या अनुचित हो सकती हैं या वसीयत में अन्य संकेत हो सकते हैं यह दिखाने के लिए कि वसीयतकर्ता का दिमाग मुक्त नहीं था। ऐसे मामले में अदालत स्वाभाविक रूप से उम्मीद करेगी कि दस्तावेज को वसीयतकर्ता की अंतिम इच्छा के रूप में स्वीकार करने से पहले सभी वैध संदेह को पूरी तरह से हटा दिया जाना चाहिए। यदि प्रस्तावक स्वयं वसीयत के निष्पादन में भाग लेता है जो उसे पर्याप्त लाभ प्रदान करता है, तो यह भी एक परिस्थिति है जिसे ध्यान में रखा जाना चाहिए, और प्रस्तावक को स्पष्ट और संतोषजनक साक्ष्य द्वारा संदेह को दूर करना आवश्यक है। यदि प्रस्तावक संदिग्ध परिस्थितियों को दूर करने में सफल होता है तो अदालत प्रोबेट प्रदान करेगी, भले ही वसीयत अप्राकृतिक हो और पूरी तरह से या आंशिक रूप से निकट संबंधों में कटौती करती है। वसीयत से संबंधित मामलों में, वसीयत को इस संबंध में तय सिद्धांतों के अनुसार प्रस्तावक द्वारा साबित किया जाना है, जो अब पुन: एकीकृत नहीं हैं और यहां संदर्भित निर्णयों से घटाया जा सकता है।

एच. वेंकटचला आयंगर बनाम बी. एन. थिम्माजम्मा, ए.आई.आर. 1959 एस.सी. 443 के मामले में, माननीय न्यायमूर्ति सर्वोच्च न्यायालय ने कुछ मौलिक मार्गदर्शक सिद्धांतों को प्रतिपादित किया जिनका लगातार पालन किया गया है और लागू किया गया है, जिनके संश्लेषण और व्याख्या को यहां पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

"18. वसीयत के प्रमाण के मामले में सही कानूनी स्थिति क्या है? यह सर्वविदित है कि वसीयत का प्रमाण अदालतों में निर्णय के लिए एक आवर्ती विषय प्रस्तुत करता है और इस

विषय पर बड़ी संख्या में न्यायिक घोषणाएं होती हैं। वसीयत का प्रतिपादन करने वाला पक्ष या अन्यथा वसीयत के तहत दावा करने में कोई संदेह नहीं है कि एक दस्तावेज को साबित करने की मांग की जा रही है और, यह तय करने में कि इसे कैसे साबित किया जाए, हमें अनिवार्य रूप से वैधानिक प्रावधानों का उल्लेख करना चाहिए जो दस्तावेजों के प्रमाण को नियंत्रित करते हैं। धारा 67 और 68, साक्ष्य अधिनियम इस उद्देश्य के लिए प्रासंगिक हैं। धारा 67 के तहत, यदि किसी दस्तावेज पर किसी व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षर किए जाने का आरोप लगाया जाता है, तो उक्त व्यक्ति के हस्ताक्षर को उसकी लिखावट में साबित किया जाना चाहिए, और अधिनियम की धारा 45 और 47 के तहत इस तरह की लिखावट को साबित करने के लिए विशेषज्ञों और संबंधित व्यक्ति की लिखावट से परिचित व्यक्तियों की राय प्रासंगिक बनाई जाती है। धारा 68 कानून द्वारा सत्यापित किए जाने के लिए आवश्यक दस्तावेज के निष्पादन के प्रमाण से संबंधित है; और यह प्रदान करता है कि इस तरह के दस्तावेज का उपयोग साक्ष्य के रूप में तब तक नहीं किया जाएगा जब तक कि कम से कम गवाह को प्रमाणित करने वाले को इसके निष्पादन को साबित करने के उद्देश्य से नहीं बुलाया गया हो। ये प्रावधान आवश्यकताओं और प्रमाण की प्रकृति को निर्धारित करते हैं जिसे उस पक्ष द्वारा संतुष्ट किया जाना चाहिए जो कानून की अदालत में एक दस्तावेज पर निर्भर करता है। इसी तरह, भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 59 और 63 भी प्रासंगिक हैं। धारा 59 में यह प्रावधान है कि स्वस्थ दिमाग का प्रत्येक व्यक्ति, जो नाबालिग नहीं है, वसीयत द्वारा अपनी संपत्ति का निपटान कर सकता है और इस खंड के तीन दृष्टांत इंगित करते हैं कि संदर्भ में "स्वस्थ दिमाग का व्यक्ति" अभिव्यक्ति का क्या अर्थ है। धारा 63 में यह अपेक्षा की गई है कि वसीयतकर्ता वसीयत पर अपने चिह्न पर हस्ताक्षर करेगा या उस पर किसी अन्य व्यक्ति द्वारा उसकी उपस्थिति में और उसके निदेश द्वारा हस्ताक्षर किए जाएंगे और हस्ताक्षर या चिह्न इस प्रकार बनाया जाएगा कि यह प्रकट होगा कि वसीयत के रूप में लेखन को प्रभावी करने के लिए इसका इरादा था। इस धारा में यह भी अपेक्षा की गई है कि वसीयत को निर्धारित अनुसार दो या अधिक गवाहों द्वारा सत्यापित किया जाएगा। **इस प्रकार यह प्रश्न कि क्या प्रस्तावक द्वारा स्थापित वसीयत वसीयतकर्ता की अंतिम इच्छा साबित होती है, इन प्रावधानों के आलोक में तय किया जाना है। क्या वसीयतकर्ता ने वसीयत पर हस्ताक्षर किए हैं? क्या उसने वसीयत में स्वभाव की प्रकृति और प्रभाव को समझा? क्या उन्होंने वसीयत पर यह जानते हुए कि इसमें क्या है, अपने हस्ताक्षर किए थे? मोटे तौर पर कहा गया है कि यह इन सवालों का निर्णय है जो वसीयत के प्रमाण के सवाल पर खोज की प्रकृति को निर्धारित करता है।** प्रथम दृष्टया यह कहना सही होगा कि वसीयत को भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 63 द्वारा निर्धारित सत्यापन की विशेष आवश्यकताओं को छोड़कर किसी अन्य दस्तावेज की तरह साबित किया जाना है। जैसा कि अन्य दस्तावेजों के प्रमाण के मामले में होता है, इसलिए वसीयत के प्रमाण के मामले में गणितीय

निश्चितता के साथ प्रमाण की उम्मीद करना बेकार होगा। लागू किया जाने वाला परीक्षण ऐसे मामलों में विवेकपूर्ण दिमाग की संतुष्टि की सामान्य परीक्षा होगी।

19. हालांकि, एक महत्वपूर्ण विशेषता है जो अन्य दस्तावेजों से वसीयत को अलग करती है। अन्य दस्तावेजों के विपरीत वसीयत वसीयतकर्ता की मृत्यु से बोलती है, और इसलिए, जब इसे अदालत के समक्ष प्रस्तावित या पेश किया जाता है, तो वसीयतकर्ता जो पहले ही दुनिया से जा चुका है, यह नहीं कह सकता कि यह उसकी इच्छा है या नहीं; और यह पहलू स्वाभाविक रूप से प्रश्न के निर्णय में गंभीरता का एक तत्व पेश करता है कि क्या प्रस्तावित दस्तावेज दिवंगत वसीयतकर्ता की अंतिम इच्छा और वसीयतनामा साबित होता है। फिर भी, वसीयत के प्रमाण से निपटने में न्यायालय उसी जांच पर शुरू करेगा जैसा कि दस्तावेजों के प्रमाण के मामले में होता है। प्रस्तावक को संतोषजनक साक्ष्य द्वारा यह दिखाने के लिए कहा जाएगा कि वसीयत पर वसीयतकर्ता द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे, कि प्रासंगिक समय पर वसीयतकर्ता एक स्वस्थ मन की स्थिति में था कि वह स्वभाव की प्रकृति और प्रभाव को समझता है और अपने हस्ताक्षर को अपनी स्वतंत्र इच्छा के दस्तावेज पर रखता है। आमतौर पर जब वसीयत के समर्थन में पेश किए गए साक्ष्य उदासीन, संतोषजनक और वसीयतकर्ता के स्वस्थ दिमाग़ और निपटान की स्थिति और कानून द्वारा आवश्यक उसके हस्ताक्षर को साबित करने के लिए पर्याप्त होते हैं, तो न्यायालय प्रस्तावक के पक्ष में निष्कर्ष निकालने में न्यायसंगत होंगे। दूसरे शब्दों में, प्रस्तावक पर जिम्मेदारी को केवल इंगित किए गए आवश्यक तथ्यों के प्रमाण पर निर्वहन करने के लिए लिया जा सकता है।

22. यह स्पष्ट है कि प्रोबेट के लिए आवेदनों में या वसीयत पर कार्रवाई में उत्पन्न होने वाले तथ्य के महत्वपूर्ण, सुसंगत प्रश्नों को तय करने के लिए, साक्ष्य के मूल्यांकन के लिए कोई कठोर और तेज़ या अनम्य नियम निर्धारित नहीं किए जा सकते हैं। हालांकि, आम तौर पर यह कहा जा सकता है कि वसीयत के प्रस्तावक को वसीयत के उचित और वैध निष्पादन को साबित करना होगा और यदि वसीयत के निष्पादन के आसपास कोई संदिग्ध परिस्थितियां हैं, तो प्रस्तावक को ठोस और संतोषजनक साक्ष्य द्वारा न्यायालय के दिमाग से उक्त संदेह को दूर करना चाहिए ...

बाबू सिंह बनाम राम सहाय @ राम सिंह, (2008) 14 एस.सी.सी. 754 में उच्चतम न्यायालय को अधिनियम वर्ष 1872 की धारा 68 और 69 के प्रभाव पर विचार करने का अवसर मिला था। प्रासंगिक पैरा-17 और 18 यहां दिए गए हैं: -

"17. यह अन्य बातों के साथ-साथ ऐसे मामले में लागू होगा जहां प्रमाणित करने वाला गवाह या तो मर चुका है या अदालत के अधिकार क्षेत्र से बाहर है या प्रतिकूल पक्ष द्वारा रास्ते से बाहर रखा गया है या अथक तलाशी के बावजूद उसका पता नहीं लगाया जा सकता है। केवल उस घटना में, वसीयत को धारा 69 में इंगित तरीके से साबित किया जा सकता है, अर्थात, उन गवाहों की जांच करके जो वसीयतकर्ता या निष्पादक की लिखावट को साबित करने में सक्षम थे। सबूत का बोझ तब दूसरों पर स्थानांतरित किया जा सकता है।

18. जबकि, तथापि, एक वसीयत आमतौर पर भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 63 और अधिनियम की धारा 68 के प्रावधानों को

ध्यान में रखते हुए साबित किया जाना चाहिए, घटना में उसके सामग्री, जैसा कि यहां पहले देखा गया है, रिकॉर्ड पर लाया जाता है, निष्पादन और सत्यापन का सख्त सबूत शिथिल हो जाता है। हालांकि, हस्ताक्षर और लिखावट, जैसा कि धारा 69 में विचार किया गया है, साबित किया जाना चाहिए।

भरपुर सिंह बनाम शमशेर सिंह, (2009)3 एस.सी.सी. 687 में सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि यदि अधिनियम 1872 की धारा 68 के प्रावधानों का अनुपालन नहीं किया जा सकता है, तो उसमें निहित अन्य प्रावधान, अर्थात् धारा 69 और 70 लागू होंगे। प्रासंगिक पैरा-18 और 19 यहां दिए गए हैं:

"18. प्रतिवादी वासियतकत्री से संबंधित भूमि का बंधक था। उन्हें वासियतकत्री की कुछ संपत्तियों के संबंध में किरायेदार भी कहा जाता है। यह नहीं दिखाया गया है कि वह एक शिक्षित महिला थी। उसने अपने बाएं अंगूठे का निशान लगा रखा था। उपर्युक्त स्थिति में, जो प्रश्न पूछा जाना चाहिए था, वह यह था कि क्या वह इस मामले में स्वतंत्र सलाह ले सकती हैं। वसीयत के प्रमाण के उद्देश्य से, यह विचार करना आवश्यक होगा कि वर्ष 1962 में प्रचलित तथ्य क्या स्थिति थी। यहां तक कि बाद की घटना को मानते हुए, अर्थात, अपीलकर्ता अपनी मां की देखभाल नहीं कर रहे थे, जैसा कि इस तथ्य से अनुमान लगाया गया है कि उन्हें उनकी मृत्यु के छह दिन बाद ही उनकी मृत्यु की खबर मिली, यह सच है वही, हमारी राय में, बहुत महत्व नहीं होगा।

19. वसीयत को साबित करने के लिए आवश्यक प्रमाण की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 90 के प्रावधानों का कोई अनुप्रयोग नहीं है। वसीयत को भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 63(सी) और भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 68 के प्रावधानों के अनुसार साबित किया जाना चाहिए। यदि उसके उपबंधों का अनुपालन नहीं किया जा सकता है तो उसमें अंतर्विष्ट अन्य उपबंध अर्थात् भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 69 और 70 जिसमें उसके संबंध में अपवादों का उपबंध किया गया है, लागू होगी। एक साधारण दस्तावेज को साबित करने के लिए वैधानिक आवश्यकताओं का अनुपालन पर्याप्त नहीं है, क्योंकि भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 68 में कहा गया है कि निष्पादन को कम से कम एक प्रमाणित गवाह द्वारा साबित किया जाना चाहिए, यदि कोई प्रमाणित गवाह जीवित है और अदालत की प्रक्रिया के अधीन है और साक्ष्य देने में सक्षम है।

जगदीश प्रसाद बनाम भारत संघ के मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने यह निर्णय दिया था। राज्य, 2015 एस.सी.सी. ऑनलाइन डेल 14461 पैरा-13, 14 और 15 में निम्नानुसार देखा गया: -

"13. विधायिका इस तथ्य से अवगत थी कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो सकती है जहां दोनों प्रमाणित करने वाले गवाहों ने वसीयतकर्ता की मृत्यु से पहले या लाभार्थी द्वारा वसीयत का प्रतिपादन करने से पहले ही स्वर्ग सिधार गए हो। विधायिका की चेतना भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 69 में पाई जा सकती है, जो निम्नानुसार है: -

69. सबूत जहां कोई प्रमाणित गवाह पाया - इस तरह के कोई प्रमाणित गवाह पाया जा सकता है, या दस्तावेज़ यूनाइटेड किंगडम में निष्पादित किया गया है तात्पर्य, यह कम से कम एक गवाह को सत्यापित करने का सत्यापन कम से कम

उसकी लिखावट में है कि साबित किया जाना चाहिए, और दस्तावेज़ निष्पादित व्यक्ति के हस्ताक्षर उस व्यक्ति की लिखावट में है।

14. भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 69, ऐसी स्थिति से निपटने के दौरान जहां कोई प्रमाणित गवाह नहीं मिल सकता है, यह सबूत पेश करने की आवश्यकता है कि एक दस्तावेज पर हस्ताक्षर जिसे कानून को एक या अधिक गवाहों द्वारा सत्यापित करने की आवश्यकता होती है, निष्पादक के हैं और इस बात के सबूत के साथ कि एक गवाह द्वारा उसकी लिखावट में सत्यापन है।

15. कानून की परिकल्पना नहीं है कि यदि वसीयत के दोनों गवाहों की मृत्यु हो गई है या किसी कारण से उपलब्ध नहीं हैं, तो यह वसीयत का अंत होगा। भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 69 के तहत विधायिका द्वारा आगे का रास्ता निर्देशित किया गया है।

अधिनियम, 1925 की धारा 63 के तहत निष्पादित वसीयत को यह साबित करना होगा कि इसे धारा 68 के तहत कम से कम एक गवाह द्वारा निष्पादित किया गया था, अधिनियम, 1872 की धारा 68 सपठित अधिनियम, 1925 की धारा 63 की आवश्यकता पर पहले ही विचार किया जा चुका है और बी वेंकटमुनि बनाम सीजे अयोध्या राम सिंह (2006)13 एस.सी.सी. 449 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बरकरार रखा गया है।

यह केवल उस मामले में है जहां वादी एक मामले के साथ आते हैं कि वसीयत के प्रमाणित गवाहों की मृत्यु हो गई है या धारा 68 के तहत आवश्यक वसीयत के निष्पादन को साबित करने के लिए उपलब्ध नहीं है, तो कथित वसीयत को गवाहों में से एक गवाह की धारा 69 के तहत निष्पादक की लिखावट द्वारा साबित किया जाना आवश्यक है

धारा 68 के तहत वसीयत के निष्पादन को साबित करने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वसीयत के निष्पादन के पक्ष में अनुमान है, धारा 90 के तहत एक भ्रम है और इसमें कोई योग्यता नहीं है। संतोष कुमार गुप्ता बनाम हरविंदर नाथ गुप्ता, 1996 एस.सी.सी. ऑनलाइन इला. 1325 में इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने वसीयतनामा वाद का फैसला करते हुए कहा कि यदि सत्यापन करने वाले गवाह मृत हैं या उपलब्ध नहीं हैं, तो वसीयत का निष्पादन अधिनियम की धारा 69 के तहत निर्धारित मोड के अनुसार साबित किया जा सकता है, और न्यायालय को अधिनियम की धारा 90 के तहत अनुमान नहीं लगाना चाहिए और दस्तावेज को साक्ष्य में स्वीकार नहीं करना चाहिए लेकिन पक्ष को प्रमुख साक्ष्य द्वारा दस्तावेज़ को साबित करने का निर्देश दें। (रिपोर्ट का पैरा-15 देखें)।

एक वसीयत जिसे अधिनियम 1925 की धारा 63 के तहत निष्पादित किया गया है, धारा 68 के तहत अनिवार्य प्रावधान प्रदान किया गया है ताकि धारा 68, धारा 69 का अनुपालन न करने की स्थिति में इसके निष्पादन को साबित किया जा सके।

यह स्पष्ट है कि वसीयत को साबित करने का तरीका आमतौर पर भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 63 द्वारा वसीयत के मामले में निर्धारित सत्यापन की विशेष आवश्यकता को छोड़कर किसी अन्य दस्तावेज को साबित करने से अलग नहीं होता है। वसीयत को साबित करने का दायित्व प्रस्तावक पर है और वसीयत के निष्पादन के आसपास संदिग्ध परिस्थितियों की अनुपस्थिति

में वसीयतनामा क्षमता का प्रमाण और कानून द्वारा आवश्यक वसीयतकर्ता के हस्ताक्षर दायित्व का निर्वहन करने के लिए पर्याप्त है। हालांकि, जहां संदिग्ध परिस्थितियां हैं, वहां वसीयत को वास्तविक मानने से पहले न्यायालय की संतुष्टि के लिए उन्हें समझाने की जिम्मेदारी प्रस्तावक पर होगी।

एलआरएस, (1995) 4 एस.सी.सी. 459: ए.आई.आर. 1995 एस.सी. 1684 द्वारा रवीन्द्र नाथ मुखर्जी बनाम पंचानन बनर्जी (मृत) के मामले में, यह देखा गया था कि प्राकृतिक उत्तराधिकारियों के वंचित होने की परिस्थिति में कोई संदेह नहीं होना चाहिए क्योंकि वसीयत के निष्पादन के पीछे का पूरा विचार उत्तराधिकार की सामान्य रेखा में हस्तक्षेप करना है और इसलिए इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि वसीयत के हर मामले में प्राकृतिक उत्तराधिकारियों को वंचित कर दिया जाएगा। उत्तराधिकार के सामान्य तरीके को बदलने के लिए एक वसीयत निष्पादित की जाती है और चीजों की प्रकृति से यह प्राकृतिक उत्तराधिकारियों के हिस्से को पहले कम करने या वंचित करने के परिणामस्वरूप बाध्य होता है। यदि कोई व्यक्ति अपनी संपत्ति को अपने प्राकृतिक उत्तराधिकारियों को देने का इरादा रखता है, तो वसीयत को निष्पादित करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

शिवकुमार बनाम शरणबप्पा के मामले में, सिवसीयत अपील संख्या-6076 वर्ष 2009, जिसका निर्णय माननीय न्यायमूर्ति सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 24.04.2020 को किया गया था, वसीयत के प्रमाण से संबंधित न्यायिक प्रक्रिया को नियंत्रित करने वाले सिद्धांतों को निम्नानुसार सारांशित करता है:-

"1. आमतौर पर, एक वसीयत को किसी अन्य दस्तावेज की तरह साबित किया जाना चाहिए; लागू किया जाने वाला परीक्षण विवेकपूर्ण मन की संतुष्टि की सामान्य परीक्षा है। अन्य दस्तावेजों के प्रमाण को नियंत्रित करने वाले सिद्धांतों के समान, वसीयत के मामले में भी, गणितीय सटीकता के साथ प्रमाण पर जोर नहीं दिया जाना चाहिए।

2. चूंकि उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 63 के अनुसार, एक वसीयत को सत्यापित करना आवश्यक है, इसलिए इसे साक्ष्य के रूप में तब तक इस्तेमाल नहीं किया जा सकता जब तक कि कम से कम एक सत्यापन गवाह को उसके निष्पादन को साबित करने के उद्देश्य से नहीं बुलाया जाता है, यदि कोई प्रमाणित गवाह जीवित है और साक्ष्य देने में सक्षम है।

3. वसीयत की अनूठी विशेषता यह है कि यह वसीयतकर्ता की मृत्यु से बात करता है और इसलिए, इसका निर्माता उन परिस्थितियों के बारे में गवाही देने के लिए उपलब्ध नहीं है जिनमें इसे निष्पादित किया गया था। यह प्रश्न के निर्णय में गंभीरता का एक तत्व पेश करता है कि क्या प्रस्तावित दस्तावेज वसीयतकर्ता की अंतिम इच्छा है। प्रारंभिक दायित्व, स्वाभाविक रूप से, प्रस्तावक पर निहित है, लेकिन इसे मुख्य रूप से आवश्यक तथ्यों के प्रमाण पर छुट्टी दे दी गई है जो वसीयत बनाने में जाते हैं।

4. जिस मामले में वसीयत का निष्पादन संदिग्ध परिस्थितियों से घिरा हुआ है, वह एक अलग पायदान पर खड़ा है। संदिग्ध परिस्थितियों की उपस्थिति प्रस्तावक पर भार को भारी बना देती है और इसलिए, ऐसे मामलों में जहां दस्तावेज़ के निष्पादन पर उपस्थित परिस्थितियां संदेह को जन्म देती हैं, प्रस्तावक को दस्तावेज़

को वसीयतकर्ता की अंतिम इच्छा के रूप में स्वीकार किए जाने से पहले सभी वैध संदेहों को दूर करना चाहिए।

5. यदि वसीयत को चुनौती देने वाला कोई व्यक्ति वसीयत के निष्पादन के संबंध में मनगढ़ंत आरोप लगाता है या धोखाधड़ी, अनुचित प्रभाव, जबरदस्ती आदि का आरोप लगाता है, तो ऐसी दलीलों को उसके द्वारा साबित किया जाना चाहिए, लेकिन ऐसी दलीलों के अभाव में भी, वसीयत के निष्पादन के आसपास की बहुत ही परिस्थितियां संदेह को जन्म दे सकती हैं या क्या वसीयत वास्तव में वसीयतकर्ता द्वारा निष्पादित की गई थी और/या क्या वसीयतकर्ता अपनी मर्जी से काम कर रहा था। ऐसी स्थिति में, यह पुन प्रस्तावक की प्रारंभिक जिम्मेदारी का एक हिस्सा है कि वह इस मामले में सभी उचित शंकाओं को दूर करे।

6. एक परिस्थिति "संदिग्ध" है जब यह सामान्य नहीं है या 'सामान्य स्थिति में सामान्य रूप से अपेक्षित नहीं है या किसी सामान्य व्यक्ति से अपेक्षित नहीं है'। जैसा कि इस न्यायालय द्वारा कहा गया है, संदिग्ध विशेषताएं 'वास्तविक, जर्मन और वैध' होनी चाहिए, न कि केवल 'संदेह करने वाले मन की कल्पना।

7. क्या किसी विशेष सुविधा या सुविधाओं का एक संकलन "संदिग्ध" के रूप में योग्य है, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। एक अस्थिर या संदिग्ध हस्ताक्षर; वसीयतकर्ता का एक कमजोर या अनिश्चित दिमाग; संपत्ति का अनुचित स्वभाव; कानूनी उत्तराधिकारियों और विशेष रूप से आश्रितों का एक अन्यायपूर्ण बहिष्कार; लाभार्थी द्वारा वसीयत बनाने में एक सक्रिय या अग्रणी हिस्सा वगैरह कुछ ऐसी परिस्थितियां हैं जो संदेह को जन्म दे सकती हैं। उपर्युक्त परिस्थितियां केवल दृष्टांत हैं और किसी भी तरह से संपूर्ण नहीं हैं क्योंकि ऐसी कोई परिस्थिति या परिस्थितियों का संकलन हो सकता है जो वसीयत के निष्पादन के बारे में वैध संदेह को जन्म दे सकता है। दूसरी ओर, संदिग्ध होने के रूप में योग्य किसी भी परिस्थिति को प्रस्तावक द्वारा वैध रूप से समझाया जा सकता है। हालांकि, इस तरह के संदेह या संदेह को केवल स्वस्थ मन मस्तिष्क के प्रमाण और वसीयतकर्ता के मन की स्थिति का निपटान करके और सत्यापन के प्रमाण के साथ उसके हस्ताक्षर से दूर नहीं किया जा सकता है।

8. न्यायिक विवेक की संतुष्टि की परीक्षा तब लागू होती है जब वसीयतकर्ता की वसीयत के रूप में प्रतिपादित दस्तावेज संदिग्ध परिस्थितियों से घिरा होता है। इस तरह के परीक्षण को लागू करते समय, न्यायालय स्वयं को गंभीर प्रश्नों को संबोधित करेगा कि क्या वसीयतकर्ता ने वसीयत की सामग्री से अवगत होने और वसीयत में स्वभाव की प्रकृति और प्रभाव को समझने के बाद हस्ताक्षर किए थे?

9. अंतिम विश्लेषण में, जहां एक वसीयत का निष्पादन संदेह के घेरे में है, यह अनिवार्य रूप से न्यायालय के न्यायिक विवेक का मामला है और वसीयत की स्थापना करने वाले पक्ष को वसीयत के आसपास की संदिग्ध परिस्थितियों का ठोस और तार्किक स्पष्टीकरण देना होगा।

37. वसीयत के प्रमाण से संबंधित प्रावधानों के साथ-साथ ऊपर चर्चा किए गए विभिन्न ऐतिहासिक निर्णयों पर विचार करने के बाद, यह न्यायालय अब प्रस्तुत मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में स्थापित सिद्धांतों को लागू करने के लिए आगे बढ़ेगा।

इसके अलावा, सर्वोच्च न्यायालय ने राज कुमारी और अन्य बनाम सुरिंदर पाल शर्मा के मामले में पारित निर्णय में 2019 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 1747 में निम्नानुसार देखा है:

"12. हम पहले भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम और साक्ष्य अधिनियम के तहत वसीयत के निष्पादन और प्रमाण से संबंधित कानून की व्याख्या करेंगे। भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 63 का खंड (सी) इस प्रकार है:

"63. विशेषाधिकार रहित वसीयत का निष्पादन -- प्रत्येक वसीयतकर्ता, जो किसी अभियान में नियोजित या वास्तविक युद्ध में संलग्न सैनिक नहीं है, या इस प्रकार नियोजित या संलग्न वायुसैनिक या समुद्र में नाविक नहीं है, निम्नलिखित नियमों के अनुसार अपनी इच्छा का निष्पादन करेगा-

(क)-(ख) * * *

(ग) वसीयत को दो या दो से अधिक गवाहों द्वारा सत्यापित किया जाएगा, जिनमें से प्रत्येक ने वसीयतकर्ता को वसीयत पर हस्ताक्षर करते हुए देखा है या वसीयत पर अपना निशान लगाया है या किसी अन्य व्यक्ति को वसीयतकर्ता की उपस्थिति में और वसीयतकर्ता के निर्देश से वसीयत पर हस्ताक्षर करते देखा है, या वसीयतकर्ता से उसके हस्ताक्षर या निशान की व्यक्तिगत पावती प्राप्त की है या ऐसे अन्य व्यक्ति के हस्ताक्षर का; और प्रत्येक गवाह वसीयतकर्ता की उपस्थिति में वसीयत पर हस्ताक्षर करेगा, लेकिन यह आवश्यक नहीं होगा कि एक ही समय में एक से अधिक गवाह उपस्थित हों, और सत्यापन का कोई विशेष रूप आवश्यक नहीं होगा।

13. खंड (ग) के जनादेश के अनुसार, एक वसीयत को दो या दो से अधिक गवाहों द्वारा सत्यापित किया जाना आवश्यक है, जिनमें से प्रत्येक को वसीयतकर्ता के हस्ताक्षर को देखना चाहिए था या वसीयत पर अपना निशान लगाना चाहिए था या किसी अन्य व्यक्ति को उसकी उपस्थिति में वसीयत पर हस्ताक्षर करते हुए देखना चाहिए था और वसीयतकर्ता के निर्देश से या वसीयतकर्ता से उसके हस्ताक्षर या निशान की व्यक्तिगत पावती प्राप्त करनी चाहिए थी। वसीयत पर गवाह द्वारा वसीयतकर्ता की उपस्थिति में हस्ताक्षर किए जाने चाहिए, लेकिन यह आवश्यक नहीं है कि एक ही समय में एक से अधिक गवाह उपस्थित हों। सत्यापन का कोई विशेष रूप आवश्यक नहीं है। इस प्रकार, क़ानून में कोई नुस्खा नहीं है कि वसीयतकर्ता को केवल प्रमाणित गवाहों की उपस्थिति में वसीयत पर हस्ताक्षर करना चाहिए या यह कि सत्यापन करने वाले गवाहों को एक साथ वसीयत पर अपने हस्ताक्षर करने चाहिए, अर्थात, एक ही समय में, एक दूसरे और वसीयतकर्ता की उपस्थिति में।

14. भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 63 के खंड (ग) की कठोर आवश्यकताओं की आवश्यकता को कई निर्णयों में स्पष्ट समझाया गया है। एच. वेंकटचला आयंगर बनाम बी. एन. थिम्माजम्मा में; ए.आई.आर. 1959 एस.सी. 443 ने वसीयत के निष्पादन को मान्य करने के लिए वैधानिक और अनिवार्य आवश्यकताओं पर विस्तार करते हुए, इस न्यायालय ने वसीयत के बीच असमानताओं को उजागर किया था जो कि वसीयत के अन्य दस्तावेजों की तुलना में एक वसीयतनामा साधन है, इस बात पर जोर देकर कि वसीयत को वसीयतकर्ता के बाद जो दुनिया से चला गया है, अदालत के समक्ष पेश किया जाता है, जो यह नहीं कह सकता कि वसीयत उसकी अपनी है या यह वह नहीं है। यह तथ्य

उस प्रश्न पर निर्णय के लिए गंभीरता का एक तत्व पेश करता है जहां प्रस्तावित वसीयत को अंतिम वसीयत या दिवंगत वसीयतकर्ता के वसीयतनामा के रूप में साबित किया जाता है। इसलिए, वसीयत को सफल बनाने और साबित करने के लिए प्रस्तावक को संतोषजनक साक्ष्य द्वारा साबित करना आवश्यक है कि (i) वसीयत पर वसीयतकर्ता द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे; (ii) उस समय वसीयतकर्ता एक स्वस्थ मन की निपटान करने स्थिति में था; (iii) वसीयतकर्ता ने स्वभाव की प्रकृति और प्रभाव को समझा; और (iv) कि वसीयतकर्ता ने अपनी मर्जी के दस्तावेज पर अपना हस्ताक्षर किया था। आमतौर पर, जब वसीयत के समर्थन में पेश किए गए साक्ष्य कानून द्वारा आवश्यक वसीयतकर्ता की मन की स्वस्थ मन मस्तिष्क और निपटान की स्थिति और उसके हस्ताक्षर को साबित करने के लिए उदासीन, संतोषजनक और पर्याप्त होते हैं, तो अदालतों को प्रस्तावक के पक्ष में निष्कर्ष निकालने में उचित होगा। इस तरह के साक्ष्य आवश्यक तथ्यों को साबित करने के लिए प्रस्तावक पर दायित्व का निर्वहन करेंगे। साथ ही, इस न्यायालय ने कहा कि वसीयत के निष्पादन के आसपास की संदिग्ध परिस्थितियों को दूर करना आवश्यक है और इसलिए इस आशय के साक्ष्य के मूल्यांकन के लिए कोई कठोर और तेज या अनम्य नियम निर्धारित नहीं किए जा सकते हैं।

15. जसवंत कौर बनाम अमृत कौर में; (1997)1 एस.सी.सी. 369, यह माना गया था कि विच्छेदन से उत्पन्न संदेह को प्रस्तावक के केवल दावे से दूर नहीं किया जाता है कि वसीयत में वसीयतकर्ता के हस्ताक्षर हैं या वसीयतकर्ता स्वस्थ मन मस्तिष्क और निपटान की स्थिति में था जब वसीयत वसीयतकर्ता की पत्नी और बच्चों की तरह उन लोगों को विरासत में लेती है जिन्हें सामान्य रूप से संपत्ति में अपना उचित हिस्सा प्राप्त होता; उसी समय, वसीयतकर्ता के पास उन्हें बाहर करने के अपने कारण हो सकते हैं। इसलिए, वसीयत को वसीयतकर्ता की वैध अंतिम वसीयत के रूप में स्वीकार किए जाने से पहले सभी वैध संदेहों को दूर करना प्रस्तावक के लिए अनिवार्य है। इससे पहले, सुरेंद्र पाल बनाम डॉ (श्रीमती) सरस्वती अरोड़ा; (1974)2 एस.सी.सी. 600, इस न्यायालय ने देखा था कि प्रस्तावक को यह प्रदर्शित करना चाहिए कि वसीयत पर वसीयतकर्ता द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे और प्रासंगिक समय पर, वसीयतकर्ता एक स्वस्थ मन मस्तिष्क और निपटान की स्थिति में था और स्वभाव की प्रकृति और प्रभाव को समझ गया था, कि उसने अपनी स्वतंत्र इच्छा की गवाही पर अपने हस्ताक्षर किए थे और कम से कम दो गवाहों ने उसकी उपस्थिति में वसीयत को सत्यापित किया है। हालांकि, संदेह उत्पन्न हो सकता है जहां हस्ताक्षर संदिग्ध है या जब वसीयतकर्ता कमजोर दिमाग का है या अपनी संपत्ति प्राप्त करने में रुचि रखने वाले शक्तिशाली दिमागों से अभिभूत है या जहां स्वभाव अप्राकृतिक, असंभव और अनुचित प्रतीत होता है या जहां वसीयतकर्ता की स्वतंत्र इच्छा और दिमाग पर संदेह करने के अन्य कारण हैं। प्रमाण की प्रकृति और गुणवत्ता ऐसी अनिवार्यता के अनुरूप होनी चाहिए ताकि किसी भी संदेह को दूर किया जा सके जो एक उचित या विवेकपूर्ण व्यक्ति, मौजूदा परिस्थितियों में कर सकता है। जहां एक आपत्तिकर्ता द्वारा जबरदस्ती और धोखाधड़ी का आरोप लगाया जाता है, उसे साबित करने के लिए उस पर जिम्मेदारी है और उसकी विफलता पर, वसीयत की प्रोबेट को आवश्यक

रूप से तब दिया जाना चाहिए जब यह स्थापित किया जाता है कि वसीयतकर्ता के पास पूर्ण वसीयतनामा की क्षमता थी और वास्तव में उसने स्वतंत्र इच्छा और दिमाग के साथ वसीयत को निष्पादित किया था। रवीन्द्र नाथ मुखर्जी बनाम पंचानन बनर्जी (मृत) में एलआर द्वारा; (1995) 4 एस.सी.सी. 459 के मामले में, इस न्यायालय ने देखा था कि यदि वसीयत पंजीकृत है तो संदेह कम महत्वपूर्ण होगा और उप-रजिस्ट्रार प्रमाणित करता है कि इसे निष्पादक को पढ़ा गया था, जिसने ऐसा करने पर सामग्री को स्वीकार किया था। प्रत्येक मामले में, अदालत को भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 63 के खंड (सी) के जनादेश और आवश्यकताओं के बारे में संतुष्ट होना चाहिए।

16. जगदीश चंद शर्मा बनाम नारायण सिंह सैनी (मृत) एलआर के माध्यम से (2015)8 एस.सी.सी. 615, में इस न्यायालय ने भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 63 का उल्लेख करते हुए स्पष्ट किया था कि प्रावधानों पर विचार किया गया है कि वसीयत को वैध रूप से निष्पादित करने के लिए, वसीयतकर्ता को उस पर अपना निशान हस्ताक्षर करना होगा या उस पर हस्ताक्षर करना होगा या उस पर किसी अन्य व्यक्ति द्वारा उसकी उपस्थिति में और उसके निर्देश पर हस्ताक्षर किए जाने चाहिए। इसके अलावा, वसीयतकर्ता के हस्ताक्षर या निशान या उसके लिए हस्ताक्षर करने वाले व्यक्ति के हस्ताक्षर को इस तरह रखा जाना चाहिए कि यह वसीयत के रूप में लेखन को प्रभावी बनाने का इरादा था। धारा 63 में कहा गया है कि वसीयत को दो या दो से अधिक गवाहों द्वारा सत्यापित किया जाना चाहिए, जिनमें से प्रत्येक ने वसीयतकर्ता के हस्ताक्षर को देखा है या उस पर अपना निशान लगाया है या किसी अन्य व्यक्ति को उपस्थिति में और वसीयतकर्ता के निर्देश पर हस्ताक्षर करते देखा है, या वसीयतकर्ता से उसके हस्ताक्षर या निशान की व्यक्तिगत पावती प्राप्त की है या ऐसे अन्य व्यक्ति के हस्ताक्षर और प्रत्येक गवाह ने वसीयतकर्ता की उपस्थिति में वसीयत पर हस्ताक्षर किए हैं, हालांकि यह आवश्यक नहीं है कि एक ही समय में एक से अधिक गवाह उपस्थित हों और सत्यापन का कोई विशेष रूप आवश्यक नहीं है। वसीयत का निष्पादन और सत्यापन प्रकृति में अनिवार्य है और ज़रूरी आवश्यकताओं का पालन करने में किसी भी विफलता और कमी के परिणामस्वरूप संपत्ति के निपटान के साधन को अमान्य कर दिया जाएगा।

17. साक्ष्य अधिनियम की धारा 68 और 71, जो कानून द्वारा सत्यापित किए जाने के लिए आवश्यक दस्तावेजों के प्रमाण से संबंधित हैं, को निम्नानुसार पढ़ें:

"**68.** यदि किसी दस्तावेज को विधि द्वारा अनुप्रमाणित किया जाना अपेक्षित है, तो उसका साक्ष्य के रूप में तब तक उपयोग नहीं किया जाएगा जब तक कि साक्षी को कम से कम उसके निष्पादन को सिद्ध करने के प्रयोजन के लिए नहीं बुलाया गया हो, यदि कोई साक्षी जीवित है और न्यायालय की प्रक्रिया के अधीन है और साक्ष्य देने में समर्थ है:

बशर्ते कि किसी भी दस्तावेज के निष्पादन के प्रमाण में एक प्रमाणित गवाह को बुलाना आवश्यक नहीं होगा, जो वसीयत नहीं है, जिसे भारतीय पंजीकरण अधिनियम, 1908 (16 वर्ष 1908) के प्रावधानों के अनुसार पंजीकृत किया गया है, जब तक कि उस व्यक्ति द्वारा इसके

निष्पादन से इनकार नहीं किया जाता है जिसके द्वारा इसे निष्पादित किया गया है।

***

71. साक्ष्य जब साक्षी को प्रमाणित करना निष्पादन से इन्कार करता है -- यदि प्रमाणित करने वाला साक्षी दस्तावेज के निष्पादन से इन्कार करता है या स्मरण नहीं करता है तो उसका निष्पादन अन्य साक्ष्य द्वारा सिद्ध किया जा सकेगा।

18. जगदीश चंद शर्मा (उपरोक्त) में साक्ष्य अधिनियम की धारा 68 और 71 का उल्लेख करते हुए, यह देखा गया था:

"22.2. ये वैधानिक प्रावधान, इस प्रकार, कानून द्वारा आवश्यक दस्तावेज के लिए यह अनिवार्य बनाते हैं कि इसके निष्पादन को कम से कम एक गवाह द्वारा प्रमाणित किया जाए, यदि जीवित है, और अदालत की प्रक्रिया के अधीन है, शामिल कार्यवाही का संचालन करने और सबूत देने में सक्षम है। तथापि, इस कठोरता को उस मामले में कम किया जाता है जब किसी दस्तावेज को सत्यापित करने की भी आवश्यकता होती है, लेकिन वसीयत, यदि उसे पंजीकरण अधिनियम, 1908 के प्रावधानों के अनुसार पंजीकृत किया गया है, तब तक नहीं, जब तक कि उस व्यक्ति द्वारा इस दस्तावेज का निष्पादन नहीं किया जाता है जिसे निष्पादित करने के लिए कहा जाता है। मामले के किसी भी दृष्टिकोण में, हालांकि, परंतुक द्वारा दी गई छूट का कोई फायदा नहीं है। वसीयत का प्रमाण संभाव्य संभाव्यता वाले साक्ष्य में ग्राह्य होना चाहिए, दो गवाहों द्वारा सत्यापित किए जाने के लिए कानून द्वारा अपेक्षित दस्तावेज होने के नाते, आवश्यक रूप से सत्यापन करने वाले गवाहों में से कम से कम एक के माध्यम से इसके निष्पादन के प्रमाण की आवश्यकता होगी, यदि जीवित है, और संबंधित न्यायालय की प्रक्रिया के अधीन है और साक्ष्य देने में सक्षम है।

22.3. धारा 71 प्रदान करता है, तथापि, यदि प्रमाणित गवाह इनकार करता है या दस्तावेज़ के निष्पादन को याद नहीं करता है, तो इसका निष्पादन अन्य सबूतों द्वारा साबित किया जा सकता है। उपर्युक्त सांविधिक प्रावधानों की परस्पर क्रिया और अंतर्निहित विधायी उद्देश्य अभिलिखित सामग्री का मूल्यांकन करने और अंतिम निष्कर्षों को अभिलिखित करने में अत्यंत प्रासंगिक होंगे। इस पृष्ठभूमि में पक्षों द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य की जांच करना यह समीचीन होगा।

XXXXXXXXX

57.1. आधार में देखा गया, 1872 अधिनियम की धारा 71 को आवश्यक रूप से एक सख्त व्याख्या दी जानी चाहिए। इस प्रावधान से खेलने की अनुमति देने वाली दो आकस्मिकताएं, अर्थात्, पेश किए गए गवाह द्वारा निष्पादन को याद करने से इनकार या विफलता, इस प्रकार एक फोर्टिओरी को यह सुनिश्चित करने के लिए एक अर्थ बढ़ाया जाना चाहिए कि 1872 अधिनियम की धारा 71 द्वारा दी गई सीमित स्वतंत्रता किसी भी तरह से अधिनियम की धारा 63 और 1872 अधिनियम की धारा 68 के सार और प्रभावकारिता को मिटा या क्षीण नहीं करती है। वसीयत के निष्पादन और सत्यापन को साबित करने के लिए एक प्रमाणित गवाह की ओर से विफलता और उक्त घटना से इनकार करने या उसे याद करने में विफलता के बीच अंतर को अनिवार्य रूप से बनाए रखा जाना चाहिए। कोई भी अनुचित भोग, इन दो शर्तों के लिए अतिरिक्त उदार लचीलेपन की अनुमति देता है, अधिनियम

की धारा 63 और 1872 अधिनियम की धारा 68 की भविष्यवाणी को समाप्त कर देगा। प्रस्तावक को 1872 अधिनियम की धारा 71 के लाभ के लिए केवल तभी शुरू किया जा सकता है जब प्रमाणित गवाह/गवाह, जो जीवित हैं और पेश किए गए हैं और स्पष्ट शब्दों में या तो दस्तावेज के निष्पादन से इनकार करते हैं या उक्त घटना को याद नहीं कर सकते हैं। न केवल इस गवाह को विश्वसनीय और निष्पक्ष होना चाहिए, बल्कि पेश किए गए सबूतों को दस्तावेज के निष्पादन से बेहिचक इनकार करना चाहिए या इस तरह के तथ्य की वास्तविक विस्मृति को प्रमाणित करना चाहिए। यदि गवाही सत्य की अवहेलना करते हुए दस्तावेज़ के निष्पादन और सत्यापन का एक आकस्मिक वर्णन देती है, और इस तरह कानून के अनुसार इन दो आवश्यक चीजों को साबित करने में विफल रहती है, तो प्रस्तावक को 1872 अधिनियम की धारा 71 के कवर के तहत अन्य साक्ष्य जोड़ने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। इस तरह की मंज़ूरी न केवल 1872 अधिनियम की धारा 68 सपठित अधिनियम की धारा 63 की योजना के साथ असंगत होगी, बल्कि इसकी सर्वोच्चता और पवित्रता के लिए भी विलुप्त होगी, एक परिणाम, विधायी रूप से इरादा नहीं है। यदि प्रस्तावक द्वारा पेश किए गए गवाहों के साक्ष्य स्वाभाविक रूप से बेकार हैं और विश्वसनीयता में कमी है, तो 1872 अधिनियम की धारा 71 को उसे (प्रस्तावक) स्थिति से बाहर निकालने के लिए लागू नहीं किया जा सकता है ताकि अनुगमन करने की सुविधा मिल सके। समग्र दृष्टिकोण में सच्चाई और वास्तविकता के किसी भी स्पर्श के अभाव में, यह प्रावधान, जो अधिनियम की धारा 63 (सी) और 1872 अधिनियम की धारा 68 का विकल्प नहीं है, को इस तरह के असफल अंदाजे और प्रयास के पूरक के रूप में लागू नहीं किया जा सकता है।

57.2. 1872 अधिनियम की धारा 71 को, भले ही अधिनियम की धारा 63 और 1872 अधिनियम की धारा 68 में निहित जनादेश के परंतुक के समान माना जाता है, इसे निश्चित रूप से सामंजस्यपूर्ण रूप से समझा जाना चाहिए और एक उत्परिवर्तन असर के साथ छोड़ा नहीं जाना चाहिए। यह अंतर्निहित सिद्धांत अन्य बातों के साथ-साथ सीआईटी बनाम अजाक्स प्रोडक्ट्स लिमिटेड में इस न्यायालय के निर्णय में अंतर्निहित है।

19. एच. वेंकटचला आयंगर (उपरोक्त) का उल्लेख करने के बाद, जसवंत कौर (उपरोक्त) में इस न्यायालय ने कानून के निम्नलिखित प्रस्ताव निर्धारित किए थे:

"(1) आम तौर पर कहा गया है, एक वसीयत को किसी अन्य दस्तावेज की तरह साबित किया जाना चाहिए, ऐसे मामलों में विवेकपूर्ण दिमाग की संतुष्टि की सामान्य परीक्षा होने के कारण लागू किया जाने वाला परीक्षण; जैसा कि अन्य दस्तावेजों के प्रमाण के मामले में होता है, इसलिए वसीयत के प्रमाण के मामले में, कोई गणितीय निश्चितता के साथ प्रमाण पर जोर नहीं दे सकता है।

(2) चूंकि उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 63 में वसीयत को सत्यापित किए जाने की आवश्यकता होती है, इसलिए इसका उपयोग साक्ष्य के रूप में तब तक नहीं किया जा सकता जब तक कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 68 द्वारा अपेक्षित नहीं हो जाता है, कम से कम एक साक्षी को उसके निष्पादन को साबित करने के प्रयोजन के लिए, यदि कोई साक्षी जीवित है,

और न्यायालय की प्रक्रिया के अधीन है और साक्ष्य देने में सक्षम है, तो बुलाया जाता है।

(3) अन्य दस्तावेजों के विपरीत, वसीयत वसीयतकर्ता की मृत्यु से बोलती है और इसलिए वसीयत का निर्माता उन परिस्थितियों के रूप में गवाही देने के लिए कभी उपलब्ध नहीं होता है जिनमें वसीयत निष्पादित की गई थी। यह पहलू इस प्रश्न के निर्णय में गंभीरता का एक तत्व पेश करता है कि क्या प्रस्तावित दस्तावेज वसीयतकर्ता की अंतिम इच्छा और वसीयतनामा साबित होता है। आम तौर पर, प्रस्तावक पर निहित जिम्मेदारी को वसीयत बनाने में जाने वाले आवश्यक तथ्यों के प्रमाण पर निर्वहन करने के लिए लिया जा सकता है।

(4) ऐसे मामले जिनमें वसीयत का निष्पादन संदिग्ध परिस्थितियों से घिरा हुआ है, एक अलग पायदान पर खड़े होते हैं। एक अस्थिर हस्ताक्षर, एक कमजोर दिमाग, संपत्ति का एक अनुचित और अन्यायपूर्ण स्वभाव, प्रस्तावक स्वयं वसीयत बनाने में अग्रणी भूमिका निभाता है जिसके तहत उसे पर्याप्त लाभ प्राप्त होता है और ऐसी अन्य परिस्थितियां वसीयत के निष्पादन के बारे में संदेह पैदा करती हैं। उस संदेह को प्रस्तावक के मात्र दावे से दूर नहीं किया जा सकता है कि वसीयत में वसीयतकर्ता के हस्ताक्षर हैं या कि वसीयतकर्ता उस समय मन और स्मृति की स्वस्थ मन मस्तिष्क और निपटान की स्थिति में था जब वसीयत की गई थी, या यह कि वसीयतकर्ता की पत्नी और बच्चों की तरह जो आम तौर पर अपनी संपत्ति में अपना उचित हिस्सा प्राप्त करेंगे, उन्हें वंचित कर दिया गया था क्योंकि वसीयतकर्ता का उन्हें बाहर करने के कारण, अपना हो सकता था। संदिग्ध परिस्थितियों की उपस्थिति प्रारंभिक जिम्मेदारी को भारी बना देती है और इसलिए, ऐसे मामलों में जहां वसीयत के निष्पादन पर परिस्थितियाँ अदालत के संदेह को जगाती हैं, प्रस्तावक को दस्तावेज़ को वसीयतकर्ता की अंतिम इच्छा के रूप में स्वीकार करने से पहले सभी वैध संदेहों को दूर करना चाहिए।

(5) यह वसीयत के संबंध में है, जिसका निष्पादन संदिग्ध परिस्थितियों से घिरा हुआ है कि न्यायिक विवेक की संतुष्टि का परीक्षण विकसित किया गया है। यह परीक्षण इस बात पर जोर देता है कि इस प्रश्न का निर्धारण करने में कि क्या अदालत के समक्ष पेश किया गया एक उपकरण वसीयतकर्ता की अंतिम इच्छा है, अदालत को एक गंभीर प्रश्न तय करने के लिए कहा जाता है और संदिग्ध परिस्थितियों के कारण अदालत को पूरी तरह से संतुष्ट होना पड़ता है कि वसीयत वसीयतकर्ता द्वारा को वैध रूप से निष्पादित किया गया है।

(6) यदि कोई आगाह करने वाला वसीयत के निष्पादन के संबंध में धोखाधड़ी, अनुचित प्रभाव, जबरदस्ती आदि का आरोप लगाता है, तो ऐसी दलीलों को उसके द्वारा साबित किया जाना है, लेकिन ऐसी दलीलों के अभाव में भी, वसीयत के निष्पादन के आसपास की बहुत ही परिस्थितियां संदेह पैदा कर सकती हैं कि क्या वसीयतकर्ता अपनी स्वतंत्र इच्छा से कार्य कर रहा था। और फिर यह मामले में सभी उचित संदेहों को दूर करने के लिए प्रस्तावक के प्रारंभिक दायित्व का एक हिस्सा है।

20. एम.बी. रमेश (उपरोक्त) में विष्णु रामकृष्ण बनाम नाथू विट्ठल ए.आई.आर. 1949 बीओएम 266 में बॉम्बे उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा व्यक्त किए गए विचार का संदर्भ दिया गया था; जिसमें यह देखा गया था:

"27. [...] हम एक वसीयत के मामले से निपट रहे हैं और हमें अंतरात्मा की अदालत के रूप में समस्या से संपर्क करना चाहिए। यह हमें संतुष्ट करना है कि सामने रखा गया दस्तावेज गंगाबाई की अंतिम इच्छा और वसीयतनामा है या नहीं। यदि हम पाते हैं कि वासियतकत्री की इच्छाओं को केवल कुछ तकनीकी कमी के कारण विफल होने की संभावना है, तो हम अंतरात्मा की अदालत के रूप में ऐसी बात होने की अनुमति नहीं देंगे। हमने दूसरे मुद्दे पर श्री धरप को नहीं सुना है; लेकिन यह मानते हुए कि गंगाबाई के पास एक स्वस्थ दिमाग था और वह अपनी संपत्ति का निपटान करना चाहती थी जैसा कि उसने वास्तव में किया है, केवल तथ्य यह है कि वसीयत के प्रस्तावक लापरवाह थे - और घोर लापरवाही - धारा 63 की आवश्यकताओं का अनुपालन नहीं करने और वसीयत को साबित करने में जैसा कि उनके पास होना चाहिए, हमें खुद को संतुष्ट करने के लिए आवश्यक सबूत मांगने से नहीं रोकना चाहिए कि वसीयत को विधिवत निष्पादित किया गया था या नहीं। (महत्त्व सन्निविष्ट)

21. एम.बी. रमेश (उपरोक्त) के फैसले में जानकी नारायण भोईर बनाम नारायण नामदेव कदम (2003) 2 एस.सी.सी. 91 जिसमें साक्ष्य अधिनियम की धारा 68 और 71 के संदर्भ का भी उल्लेख है जिसमें यह देखा गया था:

"22. [...] 6. ... यह सच है कि यद्यपि एक वसीयत को दो गवाहों द्वारा सत्यापित किया जाना आवश्यक है, लेकिन साक्ष्य अधिनियम की धारा 68 के अनुसार सत्यापित गवाहों में से एक की जांच करके इसे साबित किया जा सकता है।

XXXXXXXXX

11. ... धारा 71 की सहायता केवल तभी ली जा सकती है जब सत्यापन करने वाले गवाह, जिन्हें बुलाया गया है, अन्य साक्ष्य द्वारा इसे साबित करने के लिए दस्तावेज के निष्पादन को याद करने से इनकार करते हैं या विफल रहते हैं। ...

12. ... धारा 71 में जब गवाह को प्रमाणित करने वाला, जिसे अकेले बुलाया गया है, वसीयत के निष्पादन को साबित करने में विफल रहा है और दूसरा गवाह उपलब्ध होने के बावजूद जांच नहीं की गई है।

22. एम.बी. रमेश (उपरोक्त) में पूर्वोक्त पहलुओं पर प्रकाश डालते हुए, यह माना गया कि:

"28. जैसा कि इस न्यायालय ने एच. वेंकटचला आयंगर और जसवंत कौर के मामले में भी कहा है, इस निष्कर्ष पर पहुंचते समय कि क्या वसीयत को विधिवत निष्पादित किया गया था, न्यायालय को परिस्थितियों की समग्रता के संबंध में अपनी अंतरात्मा को संतुष्ट करना चाहिए। वसीयत से संबंधित मामलों में न्यायालय की भूमिका यह जांचने तक सीमित है कि मृतक की अंतिम इच्छा के रूप में प्रतिपादित किया गया उपकरण वसीयतकर्ता द्वारा है या नहीं, और क्या यह स्वतंत्र और स्वस्थ मन मस्तिष्क का उत्पाद है [जैसा कि इस न्यायालय द्वारा गुरदेव कौर बनाम काकी के पैरा-77 में देखा गया है]। प्रस्तुत मामले में, इन कारकों के बारे में कोई विवाद नहीं है।

23. जगदीश चंद शर्मा (उपरोक्त) में एम.बी रमेश (उपरोक्त) में मामले के तथ्यों का संदर्भ दिया गया था कि यह देखने के लिए कि सत्यापन गवाह द्वारा दिए गए कथन से उभरने वाली परिस्थितियों की समग्रता पर विचार करने पर, इस गवाह की ओर से चूक, विशेष रूप से वसीयत पर अन्य सत्यापन गवाह द्वारा हस्ताक्षर के बारे में बताने के लिए वसीयत पर अन्य प्रमाणित

गवाह द्वारा हस्ताक्षर के बारे में बताने के लिए वसीयत की उपस्थिति में इस तथ्य को याद करने में विफलता होगी जो साक्ष्य अधिनियम की धारा 71 की सहायता से कमी को पूरा किया जा सकता है। यह देखा गया कि एम.बी. रमेश (उपरोक्त) में वसीयत की वैधता को परिचर एकवचन तथ्यों के संदर्भ में बरकरार रखा गया था।

24. 1921 में धीरा सिंह बनाम मोती लाल; 63 इंडस्ट्रीज़ कैस 266 में दूसरे सत्यापन गवाहों की जांच करने की आवश्यकता के सवाल पर, पटना उच्च न्यायालय के दो न्यायाधीशों ने माना था कि जहां प्रमाणित गवाह को न तो बुलाया गया था और न ही साक्ष्य अधिनियम की धारा 68 के प्रावधानों के तहत जांच की गई थी, धारा 71 का सहारा लेने की अनुमति नहीं है। साक्ष्य अधिनियम की धारा 68 के प्रावधानों के तहत, वादी/प्रस्तावक के लिए यह अनिवार्य है कि वह प्रमाणित गवाह को बुलाए, भले ही वह प्रतिवादी/प्रतिपक्षी हो। यह कहा गया था:

1. [...] धारा 68 में यह अपेक्षा की गई है कि कोई दस्तावेज जिसे विधि द्वारा सत्यापित किया जाना अपेक्षित है, साक्ष्य के रूप में तब तक उपयोग नहीं किया जाएगा जब तक कि कम से कम साक्षी को उसके निष्पादन को सिद्ध करने के प्रयोजन से नहीं बुलाया गया हो और धारा 71 यह अधिनियमित करती है कि यदि सत्यापन करने वाला साक्षी दस्तावेज के निष्पादन से इन्कार करता है या स्मरण नहीं करता है तो उसका निष्पादन अन्य साक्ष्यों द्वारा सिद्ध किया जा सकेगा।

2. प्रस्तुत मामले के साथ चारों तरफ एक मामला तुला सिंह बनाम गोपाल सिंह 38 इंडस्ट्रीज़ कैस 604: 1 पी.एल.जे. 389: 2 पी.एल.डब्ल्यू 353 का है। उस मामले में विद्वान न्यायाधीशों ने निर्णय दिया कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 68 अनिवार्य थी और जब तक कोई गवाह जीवित है और न्यायालय की प्रक्रिया के अधीन है, तब तक कोई भी दस्तावेज जिसे कानून द्वारा सत्यापित करने की आवश्यकता है, साक्ष्य में तब तक उपयोग नहीं किया जा सकता जब तक कि ऐसे गवाह को बुलाया न जाए। तथ्य यह है कि जब वह पक्ष द्रोही साबित होगा, (अपठनीय) इस कर्तव्य से दस्तावेज़ का उत्पादन करने वाले पक्ष को बहाना नहीं देता है। इसलिए, अधीनस्थ न्यायाधीश यह सोचने में गलत था कि प्रतिवादी संख्या-2 को बुलाना आवश्यक नहीं था।

25. विष्णु रामकृष्ण (उपरोक्त) जैसे पहले के अधिकांश निर्णय धीरा सिंह (उपरोक्त) में अनुपात का पालन करते हैं, माउंट मानकी कौर बनाम हंसराज सिंह जैसे कुछ अपवादों के साथ; ए.आई.आर. 1938 पैट 301, इस मुद्दे को जानकी नारायण भोईर (उपरोक्त) में विवाद और बहस से परे हल किया गया था, जिसमें यह माना गया है कि भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 63 के खंड (सी) में गवाह के रूप में दो या दो से अधिक व्यक्तियों द्वारा वसीयत के सत्यापन की आवश्यकता होती है और अनिवार्य है, यद्यपि साक्ष्य अधिनियम की धारा 68 उन लोगों को रियायत देती है जो कम से कम एक गवाह की जांच करके कानून की अदालत में वसीयत साबित करना और स्थापित करना चाहते हैं। दो गवाहों द्वारा सत्यापन और भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 63 के खंड (सी) द्वारा चिंतन तरीके से इसका निष्पादन वसीयत के निष्पादन को साबित कर सकता है। हालांकि, जहां जांच किए गए एक गवाह वसीयत के उचित निष्पादन को साबित करने में विफल रहता है, तो अन्य उपलब्ध सत्यापन गवाह को साक्ष्य

अधिनियम की धारा 68 द्वारा अनिवार्य प्रमाण की आवश्यकता का अनुपालन करने के लिए सभी मामलों में पूर्ण बनाने के लिए अपने साक्ष्य को पूरक करने के लिए बुलाया जाना चाहिए। यह अवधारित किया गया था:

"11. साक्ष्य अधिनियम की धारा 71 साक्ष्य अधिनियम की धारा 68 के अनिवार्य प्रावधानों के लिए एक सुरक्षा की प्रकृति में है, ऐसी स्थिति को पूरा करने के लिए जहां सत्यापित गवाहों को बुलाकर वसीयत के निष्पादन को साबित करना संभव नहीं है, हालांकि जीवित हैं। इस धारा में यह प्रावधान है कि यदि कोई साक्षी वसीयत के निष्पादन से इनकार करता है या याद नहीं करता है, तो उसका निष्पादन अन्य साक्ष्य द्वारा साबित किया जा सकता है। धारा 71 की सहायता केवल तभी ली जा सकती है जब सत्यापन करने वाले गवाह, जिन्हें बुलाया गया है, अन्य साक्ष्य द्वारा इसे साबित करने के लिए दस्तावेज के निष्पादन को याद करने से इनकार करते हैं या विफल रहते हैं। धारा 71 में ऐसे मामले पर कोई आवेदन नहीं है जहां एक प्रमाणित गवाह, जिसे अकेले बुलाया गया था, वसीयत के निष्पादन को साबित करने में विफल रहा है और अन्य प्रमाणित गवाह हालांकि उसी के निष्पादन को साबित करने के लिए उपलब्ध हैं, उन्हें अदालत के समक्ष तलब नहीं किया गया है, जिसके कारण सबसे अच्छी तरह से ज्ञात हैं। धारा 71 की भाषा से यह स्पष्ट है कि यदि कोई प्रमाणित गवाह दस्तावेज के निष्पादन से इनकार करता है या याद नहीं करता है, तो इसका निष्पादन अन्य सबूतों द्वारा साबित किया जा सकता है। हालांकि, ऐसे मामले में जहां एक प्रमाणित गवाह उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 63 के खंड (सी) के तहत आवश्यक वसीयत के उचित निष्पादन को साबित करने में विफल रहता है, यह नहीं कहा जा सकता है कि वसीयत साक्ष्य अधिनियम की धारा 68 के अनुसार साबित होती है। यह नहीं कहा जा सकता है कि यदि कोई गवाह दस्तावेज के निष्पादन से इनकार करता है या याद नहीं करता है, तो वसीयत के निष्पादन को अन्य साक्ष्य द्वारा साबित किया जा सकता है, जो अन्य प्रमाणित गवाहों के साक्ष्य के साथ होते हैं, हालांकि वसीयत के निष्पादन को साबित करने के लिए जांच के लिए उपलब्ध है। फिर भी एक और कारण यह है कि जब जांच किए गए गवाह को वसीयत के उचित निष्पादन को साबित करने में विफल रहता है, अन्य उपलब्ध सत्यापन गवाहों को क्यों बुलाया जाना चाहिए। साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 (जी) के तहत प्रतिकूल निष्कर्ष निकालने के दावे को टालना है। दी गई परिस्थितियों में, सर्वोत्तम संभव साक्ष्य को विचार के लिए न्यायालय के समक्ष रखना, धारा 71 अनुमेय है और एक सक्षम धारा है जो किसी पक्ष को कुछ परिस्थितियों में अन्य साक्ष्य प्रस्तुत करने की अनुमति देती है। लेकिन धारा 68 केवल एक समर्थकारी धारा नहीं है। यह ज़रूरी आवश्यकताओं को पूरा करता है, जिसे अदालत को यह मानने से पहले पालन करना होता है कि एक दस्तावेज साबित हो गया है। धारा 71 का उद्देश्य सहायता देना और एक ऐसे पक्ष के बचाव में आना है, जिसने अपना सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन किया था, लेकिन असहायता और असंभवता की स्थिति में धकेल दिया गया था, जिसे "अन्य सबूतों" द्वारा उचित निष्पादन साबित करने के किसी अन्य साधन के बिना भी निराश नहीं किया जा सकता है। उसी समय धारा 71 को इस प्रकार नहीं पढ़ा जा सकता है कि उसे वसीयत के निष्पादन के प्रमाण से संबंधित कानून के जनादेश को मंजूरी देने में सक्षम बनाने के

लिए वह अधिनियम की धारा 63 सपठित धारा 68 के अधीन किसी पक्षकार को उसके दायित्व से मुक्त कर सके और उदारतापूर्वक उसे उसकी इच्छा या विकल्प पर अन्यथा उपलब्ध कराने या न करने वाला आवश्यक गवाह अन्यथा उपलब्ध कराने या न करने की अनुमति दे सके और उसकी चूक पर प्रीमियम प्रदान कर सके।

26. इस फैसले ने मानकी कौर (उपरोक्त) के फैसले को खारिज कर दिया और विष्णु रामकृष्ण (उपरोक्त) के दृष्टिकोण को इस आशय से मंजूरी दे दी कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 71 की मांग की जा सकती है जब गवाहों को सत्यापित करने के लिए बुलाया जा रहा था, जो वसीयतकर्ता के हस्ताक्षर से इनकार करना या दस्तावेज़ के निष्पादन के रूप में खराब स्मरण के कारण या तो अपने स्वयं के हस्ताक्षर से इनकार करने के कारण वसीयत के निष्पादन को साबित करने में विफल रहे हैं। धारा 71 में कोई आवेदन नहीं है जब केवल एक गवाह को सत्यापित करने वाला जिसे बुलाया गया था और जांच की गई थी, वसीयत के निष्पादन को साबित करने में विफल रहा है और अन्य उपलब्ध सत्यापन गवाह को बुलाया नहीं गया था।

27. जानकी में अनुपात बेंगा बेहरा बनाम ब्रज किशोर नंदा (2007) 9 एस.सी.सी. 728 में दोहराया गया था। यह निर्णय इस मुद्दे की भी जांच करता है और सवाल करता है कि क्या भारतीय पंजीकरण अधिनियम, 1908 के प्रावधानों के तहत दस्तावेजों के पंजीकरण के मामले में एक उप-रजिस्ट्रार को संभवतः गवाह के रूप में माना जा सकता है। रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 52 और 58 का उल्लेख यह देखने के लिए किया गया था कि रजिस्ट्रीकरण अधिकारी का कर्तव्य पंजीकरण के लिए दस्तावेज प्रस्तुत करने वाले प्रत्येक व्यक्ति के हस्ताक्षर का पृष्ठांकन करना और उस आशय का पृष्ठांकन करना है, अर्थात् पंजीकरण के लिए दस्तावेज प्रस्तुत करने वाले व्यक्ति द्वारा केवल प्रवेश या निष्पादन का समर्थन करना। पंजीकरण अधिकारी दस्तावेज के निष्पादन के संदर्भ में पंजीकरण अधिकारी की उपस्थिति में किए गए धन के भुगतान या माल की डिलीवरी का समर्थन और प्रमाणन भी कर सकता है। संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 3 और भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 63 के अर्थ के भीतर अभिव्यक्ति 'गवाह को सत्यापित करना' का अर्थ है "एक तथ्य का गवाह"। दस्तावेजों के सत्यापन की दो वैध शर्तें हैं - (i) दो या दो से अधिक प्रमाणित गवाहों ने निष्पादक को उपकरण पर हस्ताक्षर करते देखा है; (ii) उनमें से प्रत्येक ने निष्पादक की उपस्थिति में साधन पर हस्ताक्षर किए हैं। इसके अलावा और महत्वपूर्ण बात यह है कि सत्यापन के लिए एनिमस अटेस्टेंडी की आवश्यकता होती है, अर्थात, एक व्यक्ति एक गवाह के रूप में इसे प्रमाणित करने के इरादे से एक दस्तावेज पर अपना हस्ताक्षर करता है। यदि कोई व्यक्ति केवल वैधानिक कर्तव्य के निर्वहन में किसी दस्तावेज पर अपने हस्ताक्षर करता है, तो उसे एक प्रमाणित गवाह के रूप में नहीं माना जा सकता है जैसा कि धर्म सिंह बनाम भारत संघ और अन्य के मामले में अवधारित किया गया था। एसो; 1990 पूरक एस.सी.सी. 684। इसी तरह, एक मुंशी या एक अधिवक्ता जिसने दस्तावेज का मसौदा तैयार किया है, वह प्रमाणित गवाह नहीं हो सकता है जैसा कि जगदीश चंद शर्मा (उपरोक्त) में इस न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया था, सत्यापन के लिए आवश्यक है कि गवाह को अपने हस्ताक्षर को

प्रमाणित करना चाहिए था, अर्थात, यह प्रमाणित करने के उद्देश्य से कि उसने निष्पादक हस्ताक्षर देखा है या उससे उसके हस्ताक्षर की व्यक्तिगत पावती प्राप्त की है।

(2021)11 एस.सी.सी. 209 में रिपोर्ट की गई कविता कंवर बनाम पामेला मेहता के मामले में माननीय न्यायमूर्ति सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की है:-

"23. यह ट्राइट रहता है कि एक वसीयत/वसीयतनामा दस्तावेज है जो वसीयतकर्ता की मृत्यु के बाद संचालन में आता है। इस तरह के दस्तावेज की अजीब प्रकृति ने कानून की अदालत में वसीयत बनाने और इसके सबूत के लिए कानूनों में गंभीर प्रावधान किए हैं। उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 59 में यह प्रावधान है कि स्वस्थ दिमाग का प्रत्येक व्यक्ति, जो नाबालिग नहीं है, वसीयत द्वारा अपनी संपत्ति का निपटान कर सकता है। एक वसीयत या उसका कोई हिस्सा, जिसका निर्माण धोखाधड़ी या जबरदस्ती या किसी ऐसे आयात के कारण हुआ है, जिसने वसीयतकर्ता की फ्री एजेंसी को छीन लिया है, उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 61 के तहत शून्य घोषित किया गया है; और इसके अलावा, उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 62 किसी भी समय वसीयत बनाने या बदलने में सक्षम बनाती है जब वह वसीयत द्वारा अपनी संपत्ति का निपटान करने के लिए सक्षम होता है। उत्तराधिकार अधिनियम के भाग IV का अध्याय III विशेषाधिकार रहित वसीयत के निष्पादन का प्रावधान करता है (जैसा कि अध्याय IV में प्रदान की गई विशेषाधिकार प्राप्त वसीयत से अलग है) जिसके साथ हम इस मामले में चिंतित नहीं हैं।

23.1. उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 61 और 63, जो वर्तमान उद्देश्य के लिए प्रासंगिक हैं, को उपयोगी रूप से निम्नानुसार निकाला जा सकता है:

"**61. धोखाधड़ी, जबरदस्ती या आयात से प्राप्त वसीयत** - वसीयत या वसीयत का कोई हिस्सा, जिसका निर्माण धोखाधड़ी या जबरदस्ती के कारण हुआ है, या ऐसे आयात से जो वसीयतकर्ता की मुक्त एजेंसी को छीन लेता है, शून्य है।

***

63. विशेषाधिकार रहित वसीयत का निष्पादन- प्रत्येक वसीयतकर्ता, जो किसी अभियान में नियोजित या वास्तविक युद्ध में लगा हुआ सैनिक न हो, या इस प्रकार नियोजित या संलग्न वायुसैनिक न हो, या समुद्र में नाविक न हो, निम्नलिखित नियमों के अनुसार अपनी इच्छा का निष्पादन करेगा-

(ए) वसीयतकर्ता वसीयत पर हस्ताक्षर करेगा या अपना निशान लगाएगा, या यह किसी अन्य व्यक्ति द्वारा उसकी उपस्थिति में और उसके निर्देश द्वारा हस्ताक्षरित किया जाएगा।

(ख) वसीयतकर्ता के हस्ताक्षर या निशान, या उसके लिए हस्ताक्षर करने वाले व्यक्ति के हस्ताक्षर को इस प्रकार रखा जाएगा कि यह प्रतीत होगा कि यह वसीयत के रूप में लेखन को प्रभावी करने के लिए आशयित था।

(ग) वसीयत को दो या दो से अधिक गवाहों द्वारा सत्यापित किया जाएगा, जिनमें से प्रत्येक ने वसीयतकर्ता को वसीयत पर हस्ताक्षर करते हुए देखा है या वसीयत पर अपना निशान लगाया है या किसी अन्य व्यक्ति को वसीयतकर्ता की उपस्थिति में और वसीयतकर्ता के निर्देश से वसीयत पर हस्ताक्षर करते देखा है, या वसीयतकर्ता से उसके हस्ताक्षर या निशान की व्यक्तिगत पावती प्राप्त की है, या ऐसे अन्य व्यक्ति के हस्ताक्षर; और प्रत्येक गवाह

वसीयतकर्ता की उपस्थिति में वसीयत पर हस्ताक्षर करेगा, लेकिन यह आवश्यक नहीं होगा कि एक ही समय में एक से अधिक गवाह उपस्थित हों, और सत्यापन का कोई विशेष रूप आवश्यक नहीं होगा।

23.2. उत्तराधिकार अधिनियम (धारा 74 से 111) के अध्याय VI में वसीयत के निर्माण के लिए विस्तृत प्रावधान किए गए हैं, जो अपने योग और पदार्थ में, विधायिका के इरादे को स्पष्ट करते हैं कि कोई भी अप्रासंगिक गलत विवरण या त्रुटि इच्छा के विरुद्ध काम नहीं करना है; और दृष्टिकोण एक वसीयत को प्रभावी करने के लिए होना चाहिए और जब यह पाया जाता है कि वसीयतकर्ता द्वारा मन की स्वस्थ अवस्था में निष्पादित किया गया है, जबकि अपनी मर्जी से काम कर रहे हैं। हालांकि, उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 81 के अनुसार, पेटेंट अस्पष्टता या वसीयत में कमी के मामले में बाहरी साक्ष्य अस्वीकार्य है; और उसकी धारा 89 के अनुसार, किसी भी निश्चित इरादे की अभिव्यक्ति नहीं करने वाली वसीयत या वसीयत को अनिश्चितता के लिए शून्य घोषित किया जाता है। धारा 81 और 89 के तहत पढ़ा जाता है:

"**81. पेटेंट अस्पष्टता या कमी के मामले में अग्राह्य बाहरी साक्ष्य-** जहां वसीयत में प्रथम द्रष्टया अस्पष्टता या कमी है, वसीयतकर्ता के इरादों के बारे में कोई बाहरी सबूत स्वीकार नहीं किया जाएगा।

***

89. वसीयत अनिश्चितता के लिए शून्य- एक वसीयत जो किसी निश्चित इरादे की अभिव्यक्ति नहीं करती है, अनिश्चितता के लिए शून्य है।

इसके अलावा, अब यह अच्छी तरह से तय हो गया है कि जब वसीयत संदिग्ध परिस्थितियों से घिरी होती है, तो न्यायालय उम्मीद करेगा कि प्रश्नगत दस्तावेज़ को वसीयतकर्ता की अंतिम इच्छा के रूप में स्वीकार करने से पहले वैध संदेह को हटा दिया जाना चाहिए।

23.3. जैसा कि देखा गया है, उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 63 के अनुसार, वसीयत को दो या दो से अधिक गवाहों द्वारा सत्यापित किया जाना चाहिए। इसलिए, वसीयत के रूप में प्रतिपादित किसी भी दस्तावेज का उपयोग साक्ष्य के रूप में तब तक नहीं किया जा सकता जब तक कि उसके निष्पादन को साबित करने के उद्देश्य से कम से कम एक सत्यापन गवाह की जांच नहीं की जाती है, यदि ऐसा गवाह उपलब्ध है और साक्ष्य अधिनियम की धारा 68 की आवश्यकताओं के अनुसार साक्ष्य देने में सक्षम है, जो निम्नानुसार है:

"**68.** यदि किसी दस्तावेज को विधि द्वारा अनुप्रमाणित किया जाना अपेक्षित है, तो उसका तब तक साक्ष्य के रूप में उपयोग नहीं किया जाएगा जब तक कि, यदि कोई साक्षी जीवित है और न्यायालय की प्रक्रिया के अधीन है और साक्ष्य देने में समर्थ है, साक्षी को कम से कम उसके निष्पादन को सिद्ध करने के प्रयोजन के लिए नहीं बुलाया गया हो:

बशर्ते कि किसी भी दस्तावेज के निष्पादन के प्रमाण में एक प्रमाणित गवाह को बुलाना आवश्यक नहीं होगा, जो वसीयत नहीं है, जिसे भारतीय पंजीकरण अधिनियम, 1908 (16 वर्ष 1908) के प्रावधानों के अनुसार पंजीकृत किया गया है, जब तक कि उस व्यक्ति द्वारा इसके निष्पादन से इनकार नहीं किया जाता है जिसके द्वारा इसे निष्पादित किया गया है।

24. अब हम वसीयत की जांच की प्रक्रिया के संबंध में सुसंगत निर्णयों द्वारा तय प्रासंगिक

सिद्धांतों पर ध्यान दे सकते हैं जब अदालत के समक्ष प्रस्तावित किया जाता है।

24.1. एच. वेंकटचला आयंगर [एच. वेंकटचला आयंगर बनाम बी. एन. थिम्माजम्मा, ए.आई.आर. 1959 एस.सी. 443: 1959 पूरक (1) एस.सी.आर 426] में, इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने निष्पादन और इच्छा के प्रमाण से संबंधित मुद्दों के विस्तार का पता लगाया और कुछ मौलिक मार्गदर्शक सिद्धांतों को प्रतिपादित किया जिनका लगातार पालन किया गया है और ऐसे मुद्दों से जुड़े लगभग सभी मामलों में लागू किया गया है। उक्त निर्णय के पैरा-18 से 22 में इस न्यायालय द्वारा संश्लेषण और व्याख्या को निम्नानुसार उपयोगी रूप से पुन: प्रस्तुत किया जा सकता है: (ए.आई.आर. पीपी 451-52)

"18. वसीयत के प्रमाण के मामले में सही कानूनी स्थिति क्या है? यह सर्वविदित है कि वसीयत का प्रमाण अदालतों में निर्णय के लिए एक आवर्ती विषय प्रस्तुत करता है और इस विषय पर बड़ी संख्या में न्यायिक घोषणाएं होती हैं। वसीयत का प्रतिपादन करने वाली पक्ष या अन्यथा वसीयत के तहत दावा करने में कोई संदेह नहीं है कि एक दस्तावेज को साबित करने की मांग की जा रही है और, यह तय करने में कि इसे कैसे साबित किया जाए, हमें अनिवार्य रूप से वैधानिक प्रावधानों का उल्लेख करना चाहिए जो दस्तावेजों के प्रमाण को नियंत्रित करते हैं। इस उद्देश्य के लिए साक्ष्य अधिनियम की धारा 67 और 68 प्रासंगिक हैं। धारा 67 के तहत, यदि किसी दस्तावेज पर किसी व्यक्ति द्वारा कथित रूप से हस्ताक्षर किए जाते हैं, तो उक्त व्यक्ति के हस्ताक्षर को उसकी लिखावट में साबित किया जाना चाहिए, और अधिनियम की धारा 45 और 47 के तहत इस तरह की लिखावट को साबित करने के लिए विशेषज्ञों और संबंधित व्यक्ति की लिखावट से परिचित व्यक्तियों की राय प्रासंगिक बनाई जाती है। धारा 68 कानून द्वारा सत्यापित किए जाने के लिए आवश्यक दस्तावेज के निष्पादन के प्रमाण से संबंधित है; और यह प्रदान करता है कि इस तरह के दस्तावेज का उपयोग साक्ष्य के रूप में तब तक नहीं किया जाएगा जब तक कि कम से कम गवाह को प्रमाणित करने वाले को इसके निष्पादन को साबित करने के उद्देश्य से नहीं बुलाया गया हो। ये प्रावधान आवश्यकताओं और प्रमाण की प्रकृति को निर्धारित करते हैं जिसे उस पक्ष द्वारा संतुष्ट किया जाना चाहिए जो कानून की अदालत में एक दस्तावेज पर निर्भर करता है। इसी तरह, भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 59 और 63 भी प्रासंगिक हैं। धारा 59 में यह प्रावधान है कि स्वस्थ दिमाग का प्रत्येक व्यक्ति, जो नाबालिग नहीं है, वसीयत द्वारा अपनी संपत्ति का निपटान कर सकता है और इस खंड के तीन दृष्टांत इंगित करते हैं कि संदर्भ में "स्वस्थ दिमाग का व्यक्ति" अभिव्यक्ति का क्या अर्थ है। धारा 63 में यह अपेक्षा की गई है कि वसीयतकर्ता वसीयत पर अपने चिह्न पर हस्ताक्षर करेगा या चिपकाएगा या उस पर किसी अन्य व्यक्ति द्वारा उसकी उपस्थिति में और उसके निदेश द्वारा हस्ताक्षर किए जाएंगे और हस्ताक्षर या चिह्न इस प्रकार बनाया जाएगा कि यह प्रकट होगा कि वसीयत के रूप में लेखन को प्रभावी करने के लिए इसका इरादा था। इस धारा में यह भी अपेक्षा की गई है कि वसीयत को निर्धारित अनुसार दो या अधिक गवाहों द्वारा सत्यापित किया जाएगा। इस प्रकार यह प्रश्न कि क्या प्रस्तावक द्वारा स्थापित वसीयत वसीयतकर्ता की अंतिम इच्छा

साबित होती है, इन प्रावधानों के आलोक में तय किया जाना है। क्या वसीयतकर्ता ने वसीयत पर हस्ताक्षर किए हैं? क्या उसने वसीयत में स्वभाव की प्रकृति और प्रभाव को समझा? क्या उन्होंने वसीयत पर यह जानते हुए कि इसमें क्या है, अपने हस्ताक्षर किए थे? मोटे तौर पर कहा गया है कि यह इन सवालों का निर्णय है जो वसीयत के प्रमाण के सवाल पर खोज की प्रकृति को निर्धारित करता है। प्रथम दृष्टया यह कहना सही होगा कि वसीयत को भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 63 द्वारा निर्धारित सत्यापन की विशेष आवश्यकताओं को छोड़कर किसी अन्य दस्तावेज की तरह साबित किया जाना है। जैसा कि अन्य दस्तावेजों के प्रमाण के मामले में होता है, इसलिए वसीयत के प्रमाण के मामले में गणितीय निश्चितता के साथ प्रमाण की उम्मीद करना बेकार होगा। लागू किया जाने वाला परीक्षण ऐसे मामलों में विवेकपूर्ण दिमाग की संतुष्टि की सामान्य परीक्षा होगी।

19. हालांकि, एक महत्वपूर्ण विशेषता है जो अन्य दस्तावेजों से वसीयत को अलग करती है। अन्य दस्तावेजों के विपरीत वसीयत वसीयतकर्ता की मृत्यु से बोलती है, और इसलिए, जब इसे अदालत के समक्ष प्रस्तावित या पेश किया जाता है, तो वसीयतकर्ता जो पहले ही दुनिया से जा चुका है, यह नहीं कह सकता कि यह उसकी इच्छा है या नहीं; और यह पहलू स्वाभाविक रूप से प्रश्न के निर्णय में गंभीरता का एक तत्व पेश करता है कि क्या प्रस्तावित दस्तावेज दिवंगत वसीयतकर्ता की अंतिम इच्छा और वसीयतनामा साबित होता है। फिर भी, वसीयत के प्रमाण से निपटने में न्यायालय उसी जांच पर शुरू करेगा जैसा कि दस्तावेजों के प्रमाण के मामले में होता है। प्रस्तावक को संतोषजनक साक्ष्य द्वारा यह दिखाने के लिए कहा जाएगा कि वसीयत पर वसीयतकर्ता द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे, कि प्रासंगिक समय पर वसीयतकर्ता एक स्वस्थ मन मस्तिष्क और निपटान की स्थिति में था, कि वह स्वभाव की प्रकृति और प्रभाव को समझता है और अपने हस्ताक्षर को अपनी स्वतंत्र इच्छा के दस्तावेज पर रखता है। आमतौर पर जब वसीयत के समर्थन में पेश किए गए साक्ष्य उदासीन, संतोषजनक और वसीयतकर्ता के स्वस्थ दिमाग़ और निपटान की स्थिति और कानून द्वारा आवश्यक उसके हस्ताक्षर को साबित करने के लिए पर्याप्त होते हैं, तो न्यायालय प्रस्तावक के पक्ष में निष्कर्ष निकालने में न्यायसंगत होंगे। दूसरे शब्दों में, प्रस्तावक पर जिम्मेदारी को केवल इंगित किए गए आवश्यक तथ्यों के प्रमाण पर निर्वहन करने के लिए लिया जा सकता है।

20. हालांकि, ऐसे मामले हो सकते हैं जिनमें वसीयत का निष्पादन संदिग्ध परिस्थितियों से घिरा हो सकता है। वसीयतकर्ता का कथित हस्ताक्षर बहुत अस्थिर और संदिग्ध हो सकता है और प्रस्तावक के मामले के समर्थन में सबूत है कि प्रश्नगत हस्ताक्षर वसीयतकर्ता का हस्ताक्षर है, हस्ताक्षर की उपस्थिति द्वारा बनाए गए संदेह को दूर नहीं कर सकता है; वसीयतकर्ता के मन की स्थिति बहुत कमजोर और दुर्बल दिखाई दे सकती है; और पेश किए गए सबूत वसीयतकर्ता की मानसिक क्षमता के रूप में वैध संदेह को दूर करने में सफल नहीं हो सकते हैं; वसीयत में किए गए प्रस्ताव प्रासंगिक परिस्थितियों के आलोक में अप्राकृतिक, असंभव या अनुचित प्रतीत हो सकते हैं; या वसीयत अन्यथा संकेत दे सकती है कि उक्त स्वभाव वसीयतकर्ता की स्वतंत्र इच्छा और मन का परिणाम नहीं हो सकता है। ऐसे मामलों में न्यायालय स्वाभाविक रूप से उम्मीद करेगा

कि दस्तावेज़ को वसीयतकर्ता की अंतिम इच्छा के रूप में स्वीकार करने से पहले सभी वैध संदेहों को पूरी तरह से हटा दिया जाना चाहिए। ऐसी संदिग्ध परिस्थितियों की उपस्थिति स्वाभाविक रूप से प्रारंभिक जिम्मेदारी को बहुत भारी बना देती है; और, जब तक इसे संतोषजनक ढंग से निर्वहन नहीं किया जाता है, न्यायालय दस्तावेज़ को वसीयतकर्ता की अंतिम इच्छा के रूप में मानने के लिए अनिच्छुक होंगे। यह सच है कि, यदि प्रस्तावित वसीयत के निष्पादन के संबंध में अनुचित प्रभाव, धोखाधड़ी या जबरदस्ती के प्रयोग का आरोप लगाते हुए एक कैविएट दायर किया जाता है, तो ऐसी दलीलों को कैविएटर्स द्वारा साबित करना पड़ सकता है; लेकिन इस तरह की दलीलों के बिना भी परिस्थितियां संदेह पैदा कर सकती हैं कि क्या वसीयतकर्ता वसीयत को निष्पादित करने में अपनी स्वतंत्र इच्छा से काम कर रहा था, और ऐसी परिस्थितियों में, यह मामले में इस तरह के किसी भी वैध संदेह को दूर करने के लिए प्रारंभिक जिम्मेदारी का एक हिस्सा होगा।

21. उन संदिग्ध परिस्थितियों के अलावा, जिनका हमने अभी उल्लेख किया है, कुछ मामलों में प्रतिपादित वसीयत एक और दुर्बलता का खुलासा करती है। प्रस्तावक स्वयं वसीयत के निष्पादन में एक प्रमुख हिस्सा लेते हैं जो उन्हें पर्याप्त लाभ प्रदान करते हैं। यदि यह दिखाया जाता है कि प्रस्तावक ने वसीयत के निष्पादन में एक प्रमुख हिस्सा लिया है और इसके तहत पर्याप्त लाभ प्राप्त किया है, तो इसे आम तौर पर वसीयत के निष्पादन में भाग लेने वाली एक संदिग्ध परिस्थिति के रूप में माना जाता है और प्रस्तावक को स्पष्ट और संतोषजनक साक्ष्य द्वारा उक्त संदेह को दूर करना आवश्यक है। यह वसीयत के संबंध में है जो ऐसी संदिग्ध परिस्थितियों को प्रस्तुत करता है कि अंग्रेजी न्यायालयों के फैसले अक्सर न्यायिक विवेक की संतुष्टि की परीक्षा का उल्लेख करते हैं। यह हो सकता है कि इस संबंध में न्यायिक विवेक का संदर्भ इंग्लैंड में सनकी न्यायालयों द्वारा की गई इसी तरह की टिप्पणियों से एक विरासत है, जब उन्होंने वसीयत के संदर्भ में अधिकार क्षेत्र का प्रयोग किया था; लेकिन इस संदर्भ में "विवेक" शब्द के उपयोग पर कोई भी आपत्ति, हमारी राय में विशुद्ध रूप से तकनीकी और अकादमिक होगी, यदि पांडित्यपूर्ण नहीं है। परीक्षण केवल इस बात पर जोर देता है कि इस प्रश्न का निर्धारण करने में कि क्या न्यायालय के समक्ष पेश किया गया एक उपकरण वसीयतकर्ता की अंतिम इच्छा है, न्यायालय एक गंभीर प्रश्न का निर्णय कर रहा है और उसे पूरी तरह से संतुष्ट होना चाहिए कि यह वैध रूप से उस वसीयतकर्ता द्वारा जो अब जीवित नहीं है, निष्पादित किया गया था।

22. यह स्पष्ट है कि प्रोबेट के लिए आवेदनों में या वसीयत पर कार्रवाई में उत्पन्न होने वाले तथ्य के महत्वपूर्ण, सुसंगत प्रश्नों को तय करने के लिए, साक्ष्य के मूल्यांकन के लिए कोई कठोर और तेज़ या अनम्य नियम निर्धारित नहीं किए जा सकते हैं। हालांकि, यह आम तौर पर कहा जा सकता है कि वसीयत के प्रस्तावक को वसीयत के उचित और वैध निष्पादन को साबित करना होगा और यदि वसीयत के निष्पादन के आसपास कोई संदिग्ध परिस्थितियां हैं, तो प्रस्तावक को ठोस और संतोषजनक साक्ष्य द्वारा न्यायालय के दिमाग से उक्त संदेह को दूर करना चाहिए। यह जोड़ना शायद ही आवश्यक है कि इन दो सामान्य और व्यापक सिद्धांतों के आवेदन का परिणाम हमेशा प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों

और पक्षों द्वारा पेश किए गए साक्ष्य की प्रकृति और गुणवत्ता पर निर्भर करेगा। यह बिल्कुल सच है कि, जैसा कि लॉर्ड डू पार्क द्वारा हार्म्स बनाम हिंकसन [हार्म्स बनाम हिंकसन, 1946 एस.सी.सी. ऑनलाइन पीसी 20: ए.आई.आर. 1946 पीसी 156: (1945-46) 50 सीडब्ल्यूएन 895] में देखा गया है, "जहां एक वसीयत पर संदेह का आरोप लगाया जाता है, नियम एक उचित संदेह को लागू करते हैं, अविश्वास में एक जिद्दी दृढ़ता नहीं। वे न्यायाधीश से मांग नहीं करते हैं, यहां तक कि गंभीर संदेह की परिस्थितियों में भी, एक दृढ़ और अभेद्य अविश्वसनीयता। उसे कभी भी सच्चाई के लिए अपना दिमाग बंद करने की आवश्यकता नहीं है। ऐसा कहना मूर्खतापूर्ण लगेगा, लेकिन फिर भी यह सच है कि ऐसे मामलों में भी सच्चाई की खोज में न्यायिक दिमाग हमेशा खुला होना चाहिए, हालांकि सतर्क और चौकस होना चाहिए।

(महत्त्व सन्निविष्ट)

24.2. पूर्णिमा देबी [पूर्णिमा देबी बनाम कुमार खगेंद्र नारायण देब, (1962) 3 एस.सी.आर 195: ए.आई.आर. 1962 एस.सी. 567] में, इस न्यायालय ने एच. वेंकटचला आयंगर [एच. वेंकटचला आयंगर बनाम बी.एन. थिम्माजम्मा, ए.आई.आर. 1959 एस.सी. 443: 1959 पूरक (1) एस.सी.आर 426] में उपरोक्त निर्णय का उल्लेख किया और आगे उन सिद्धांतों की व्याख्या की जो वसीयत के साबित होने को नियंत्रित करते हैं: (पूर्णिमा देबी केस [पूर्णिमा देबी बनाम कुमार खगेंद्र नारायण देब, (1962) 3 एस.सी.आर 195: ए.आई.आर. 1962 एस.सी. 567], ए.आई.आर. पी. 569, पैरा-5)

"5. इससे पहले कि हम इस मामले के तथ्यों पर विचार करें, उन सिद्धांतों को निर्धारित करना अच्छा है जो वसीयत के साबित होने को नियंत्रित करते हैं। इस पर इस न्यायालय द्वारा एच. वेंकटचला आयंगर बनाम बी. एन. थिम्माजम्मा [एच. वेंकटचला आयंगर बनाम बी. एन. थिम्माजम्मा, ए.आई.आर. 1959 एस.सी. 443: 1959 पूरक (1) एस.सी.आर 426] में विचार किया गया था। उस मामले में यह देखा गया था कि वसीयत को साबित करने का तरीका आमतौर पर भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 63 द्वारा वसीयत के मामले में निर्धारित सत्यापन की विशेष आवश्यकता को छोड़कर किसी अन्य दस्तावेज को साबित करने से अलग नहीं था। वसीयत को साबित करने का दायित्व प्रस्तावक पर था और वसीयत के निष्पादन के आसपास की संदिग्ध परिस्थितियों की अनुपस्थिति में, वसीयतनामा क्षमता का प्रमाण और कानून द्वारा आवश्यक वसीयतकर्ता के हस्ताक्षर दायित्व का निर्वहन करने के लिए पर्याप्त थे। हालांकि, जहां संदिग्ध परिस्थितियां थीं, वसीयत को वास्तविक मानने से पहले न्यायालय की संतुष्टि के लिए उन्हें समझाने की जिम्मेदारी प्रस्तावक पर होगी। यदि कैविएटर ने अनुचित प्रभाव, धोखाधड़ी या जबरदस्ती का आरोप लगाया है, तो इसे साबित करने की जिम्मेदारी उस पर होगी। यहां तक कि जहां ऐसी कोई दलील नहीं थी, लेकिन परिस्थितियों ने संदेह को जन्म दिया, यह प्रस्तावक के लिए न्यायालय की अंतरात्मा को संतुष्ट करने के लिए था। इसके अलावा, इस मामले में संदिग्ध परिस्थितियां क्या हैं, इस पर भी विचार किया गया। वसीयतकर्ता का कथित हस्ताक्षर बहुत अस्थिर और संदिग्ध हो सकता है और प्रस्तावक के मामले के समर्थन में सबूत है कि प्रश्नगत हस्ताक्षर वसीयतकर्ता का हस्ताक्षर था, हस्ताक्षर की उपस्थिति से उत्पन्न संदेह को

दूर नहीं कर सकता है। वसीयतकर्ता के दिमाग की स्थिति बहुत कमजोर और दुर्बल प्रतीत हो सकती है और पेश किए गए सबूत वसीयतकर्ता की मानसिक क्षमता के रूप में वैध संदेह को दूर करने में सफल नहीं हो सकते हैं; वसीयत में किए गए प्रस्ताव प्रासंगिक परिस्थितियों के आलोक में अप्राकृतिक, असंभव या अनुचित प्रतीत हो सकते हैं; या वसीयत अन्यथा संकेत दे सकती है कि उक्त प्रस्ताव वसीयतकर्ता की स्वतंत्र इच्छा और मन का परिणाम नहीं हो सकता है। ऐसे मामलों में, न्यायालय स्वाभाविक रूप से उम्मीद करेगा कि दस्तावेज़ को वसीयतकर्ता की अंतिम इच्छा के रूप में स्वीकार करने से पहले सभी वैध संदेहों को पूरी तरह से हटा दिया जाना चाहिए। इसके अलावा, एक प्रस्तावक स्वयं वसीयत के निष्पादन में एक प्रमुख हिस्सा ले सकता है जिसने उसे पर्याप्त लाभ प्रदान किया। यदि ऐसा था, तो इसे आम तौर पर वसीयत के निष्पादन में भाग लेने वाली एक संदिग्ध परिस्थिति के रूप में माना जाता था और प्रस्तावक को स्पष्ट और संतोषजनक साक्ष्य द्वारा संदेह को दूर करने की आवश्यकता होती थी। लेकिन यहां तक कि जहां संदिग्ध परिस्थितियां थीं और प्रस्तावक उन्हें हटाने में सफल रहा, न्यायालय प्रोबेट प्रदान करेगा, हालांकि वसीयत अप्राकृतिक हो सकती है और पूरी तरह से या आंशिक रूप से निकट संबंधों में कटौती कर सकती है। (महत्त्व सन्निविष्ट)

24.3. इंदु बाला बोस [इंदु बाला बोस बनाम मणींद्र चंद्र बोस, (1982) 1 एस.सी.सी. 20] में, इस न्यायालय ने फिर से कहा: (एस.सी.सी. पीपी 22-23, पैरा-7-8)

"7. इस न्यायालय ने माना है कि वसीयत को साबित करने का तरीका आमतौर पर उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 63 द्वारा वसीयत के मामले में निर्धारित सत्यापन की विशेष आवश्यकता को छोड़कर किसी अन्य दस्तावेज को साबित करने से अलग नहीं होता है। वसीयत को साबित करने का दायित्व प्रस्तावक पर है और वसीयत के निष्पादन के आसपास की संदिग्ध परिस्थितियों की अनुपस्थिति में, वसीयतनामा क्षमता का प्रमाण और कानून द्वारा आवश्यक वसीयतकर्ता के हस्ताक्षर दायित्व का निर्वहन करने के लिए पर्याप्त हैं। जहां हालांकि संदिग्ध परिस्थितियां हैं, अदालत द्वारा वसीयत को वास्तविक मानने से पहले अदालत की संतुष्टि के लिए उन्हें समझाने की जिम्मेदारी प्रस्तावक पर है। यहां तक कि जहां परिस्थितियां संदेह को जन्म देती हैं, यह प्रस्तावक के लिए है कि वह अदालत की अंतरात्मा को संतुष्ट करे। संदिग्ध परिस्थितियाँ वसीयतकर्ता के हस्ताक्षरों की वास्तविकता, वसीयतकर्ता के दिमाग की स्थिति, वसीयत में किए गए प्रस्ताव प्रासंगिक परिस्थितियों के आलोक में अप्राकृतिक, असंभव या अनुचित हो सकती हैं, या यह दिखाने के लिए वसीयत में अन्य संकेत हो सकते हैं कि वसीयतकर्ता का दिमाग स्वतंत्र नहीं था। ऐसे मामले में अदालत स्वाभाविक रूप से उम्मीद करेगी कि दस्तावेज को वसीयतकर्ता की अंतिम इच्छा के रूप में स्वीकार करने से पहले सभी वैध संदेहों को पूरी तरह से हटा दिया जाना चाहिए। यदि प्रस्तावक स्वयं वसीयत के निष्पादन में एक प्रमुख हिस्सा लेता है जो उसे पर्याप्त लाभ प्रदान करता है, तो यह भी एक परिस्थिति है जिसे ध्यान में रखा जाना चाहिए, और प्रस्तावक को स्पष्ट और संतोषजनक साक्ष्य द्वारा संदेह को दूर करना आवश्यक है। यदि प्रस्तावक संदिग्ध परिस्थितियों को दूर करने में सफल होता है तो अदालत प्रोबेट प्रदान करेगी, भले ही वसीयत अप्राकृतिक हो सकती है और पूरी तरह से या

आंशिक रूप से निकट संबंधों में कटौती कर सकती है। [देखें शशि कुमार बनर्जी बनाम सुबोध कुमार बनर्जी, ए.आई.आर. 1964 एस.सी. 529; एच. वेंकटचला आयंगर बनाम बीएन थिम्माजम्मा, ए.आई.आर. 1959 एस.सी. 443: 1959 पूरक (1) एस.सी.आर 426; रानी पूर्णिमा देवी बनाम कुमार खगेंद्र नारायण देव, ए.आई.आर. 1962 एस.सी. 567: (1962) 3 एस.सी.आर 195]

8. कहने की जरूरत नहीं है कि कोई भी और हर परिस्थिति एक "संदिग्ध" परिस्थिति नहीं है। एक परिस्थिति "संदिग्ध" होगी जब यह सामान्य नहीं है या सामान्य स्थिति में सामान्य रूप से अपेक्षित नहीं है या सामान्य व्यक्ति से अपेक्षित नहीं है। (महत्व दिया गया)

24.4. हम जसवंत कौर [जसवंत कौर बनाम अमृत कौर, (1977) 1 एस.सी.सी. 369] में संदेह में डूबी वसीयत से निपटने के लिए दिए गए सिद्धांतों का भी उपयोगी रूप से उल्लेख कर सकते हैं, जो इस प्रकार है: (एस.सी.सी. पृष्ठ 373, पैरा-9)

"9. ऐसे मामलों में जहां वसीयत का निष्पादन संदेह में डूबा हुआ है, इसका प्रमाण वादी और प्रतिवादी के बीच एक साधारण झूठ नहीं राहत है। आम तौर पर, एक प्रतिकूल कार्यवाही ऐसे मामलों में अदालत के विवेक का विषय बन जाती है और फिर सही सवाल जो विचार के लिए उठता है वह यह है कि क्या वसीयत के प्रस्तावक के नेतृत्व में साक्ष्य अदालत के विवेक को संतुष्ट करने के लिए है कि वसीयतकर्ता द्वारा विधिवत निष्पादित किया गया था। इस तरह की संतुष्टि तक पहुंचना तब तक असंभव है जब तक कि वसीयत बनाने वाला पक्ष वसीयत बनाने के आसपास की संदिग्ध परिस्थितियों का ठोस और ठोस स्पष्टीकरण नहीं देती। (महत्त्व सन्निविष्ट)

24.5. उमा देवी नांबियार [उमा देवी नांबियार बनाम टीसी सिधान, (2004) 2 एस.सी.सी. 321] में, इस न्यायालय ने शशि कुमार बनर्जी बनाम सुबोध कुमार बनर्जी [शशि कुमार बनर्जी बनाम सुबोध कुमार बनर्जी, ए.आई.आर. 1964 एस.सी. 529] में इस न्यायालय के संविधान पीठ के फैसले सहित वसीयत से संबंधित मामले के कानून की व्यापक समीक्षा की और कहा कि केवल प्राकृतिक उत्तराधिकारियों का बहिष्करण या उन्हें कम हिस्सा देना, अपने आप से, एक संदिग्ध परिस्थिति नहीं माना जाएगा। इस न्यायालय ने अन्य बातों के साथ-साथ निम्नानुसार देखा: (उमा देवी नांबियार मामला [उमा देवी नांबियार बनाम टीसी सिधान, (2004) 2 एस.सी.सी. 321], एस.सी.सी. पीपी 332- 34, पैरा-15-16)

"15. अधिनियम की धारा 63 विशेषाधिकार रहित वसीयत के निष्पादन से संबंधित है। यह निर्धारित करता है कि वसीयतकर्ता वसीयत पर हस्ताक्षर करेगा या अपना निशान लगाएगा या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा उसकी उपस्थिति में और उसके निर्देश द्वारा हस्ताक्षरित किया जाएगा। यह आगे निर्धारित करता है कि वसीयत को दो या दो से अधिक गवाहों द्वारा सत्यापित किया जाएगा, जिनमें से प्रत्येक ने वसीयतकर्ता को वसीयत पर हस्ताक्षर करते या अपना निशान लगाते हुए देखा है या किसी अन्य व्यक्ति को वसीयतकर्ता की उपस्थिति में वसीयत पर हस्ताक्षर करते देखा है और प्रत्येक गवाह वसीयतकर्ता की उपस्थिति में वसीयत पर हस्ताक्षर करेगा। भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 68 (संक्षेप में "साक्ष्य अधिनियम") वसीयत के प्रमाण में एक गवाह की जांच को अनिवार्य करती है, चाहे वह पंजीकृत हो

या नहीं। वसीयत के आधार पर किसी मामले से निपटने के दौरान सबूत के तरीके और दायित्व से संबंधित कानून और अदालत पर डाले गए कर्तव्य की कई निर्णयों में काफी विस्तार से जांच की गई है [एच. वेंकटचला आयंगर बनाम बी.एन. थिम्माजम्मा, ए.आई.आर. 1959 एस.सी. 443: 1959 पूरक (1) एस.सी.आर 426], [पूर्णिमा देबी बनाम कुमार खगेंद्र नारायण देब, (1962) 3 एस.सी.आर 195: ए.आई.आर. 1962 एस.सी. 567], [शशि कुमार बनर्जी बनाम सुबोध कुमार बनर्जी, ए.आई.आर. 1964 एस.सी. 529] इस न्यायालय के ... शशि कुमार बनर्जी मामले में इस न्यायालय की एक संविधान पीठ [शशि कुमार बनर्जी बनाम सुबोध कुमार बनर्जी, ए.आई.आर. 1964 एस.सी. 529] ने संक्षेप में कानून में केंद्र की स्थिति को निम्नानुसार इंगित किया: (ए.आई.आर. पृष्ठ 531, पैरा-4)

'4. ... वसीयत को साबित करने का तरीका आमतौर पर भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 63 द्वारा वसीयत के मामले में निर्धारित सत्यापन की विशेष आवश्यकता को छोड़कर किसी अन्य दस्तावेज को साबित करने से अलग नहीं होता है। वसीयत को साबित करने का दायित्व प्रस्तावक पर है और वसीयत के निष्पादन के आसपास की संदिग्ध परिस्थितियों की अनुपस्थिति में, वसीयतनामा क्षमता का प्रमाण और कानून द्वारा आवश्यक वसीयतकर्ता के हस्ताक्षर दायित्व का निर्वहन करने के लिए पर्याप्त हैं। जहां हालांकि संदिग्ध परिस्थितियां हैं, अदालत द्वारा वसीयत को वास्तविक मानने से पहले अदालत की संतुष्टि के लिए उन्हें समझाने की जिम्मेदारी प्रस्तावक पर है। जहां कैविएटर अनुचित प्रभाव, धोखाधड़ी और जबरदस्ती का आरोप लगाता है, उसे साबित करने का दायित्व उस पर है। यहां तक कि जहां ऐसी कोई दलील नहीं है, लेकिन परिस्थितियां संदेह को जन्म देती हैं, यह प्रस्तावक के लिए है कि वह अदालत की अंतरात्मा को संतुष्ट करे। संदिग्ध परिस्थितियां वसीयतकर्ता के हस्ताक्षर की वास्तविकता, वसीयतकर्ता के दिमाग की स्थिति, वसीयत में किए गए स्वभाव प्रासंगिक परिस्थितियों के प्रकाश में अप्राकृतिक, असंभव या अनुचित हो सकती हैं या यह दिखाने के लिए वसीयत में अन्य संकेत हो सकते हैं कि वसीयतकर्ता का दिमाग मुक्त नहीं था। ऐसे मामले में अदालत स्वाभाविक रूप से उम्मीद करेगी कि दस्तावेज को वसीयतकर्ता की अंतिम इच्छा के रूप में स्वीकार करने से पहले सभी वैध संदेह को पूरी तरह से हटा दिया जाना चाहिए। यदि प्रस्तावक स्वयं वसीयत के निष्पादन में भाग लेता है जो उसे पर्याप्त लाभ प्रदान करता है, तो यह भी एक परिस्थिति है जिसे ध्यान में रखा जाना चाहिए, और प्रस्तावक को स्पष्ट और संतोषजनक साक्ष्य द्वारा संदेह को दूर करना आवश्यक है। यदि प्रस्तावक संदिग्ध परिस्थितियों को दूर करने में सफल होता है तो अदालत प्रोबेट प्रदान करेगी, भले ही वसीयत अप्राकृतिक हो और पूरी तरह से या आंशिक रूप से निकट संबंधों में कटौती कर सकती है।

16. उत्तराधिकार के सामान्य तरीके को बदलने के लिए एक वसीयत निष्पादित की जाती है और चीजों की प्रकृति से, यह प्राकृतिक उत्तराधिकारियों के हिस्से को कम करने या वंचित करने के परिणामस्वरूप बाध्य है। यदि कोई व्यक्ति अपनी संपत्ति को अपने प्राकृतिक उत्तराधिकारियों को देने का इरादा रखता है, तो वसीयत को निष्पादित करने की कोई आवश्यकता नहीं है। यह सच है कि वसीयत के प्रस्तावक को सभी संदिग्ध

परिस्थितियों को दूर करना होगा। संदेह का अर्थ है संदेह, अनुमान या अविश्वास। लेकिन यह तथ्य कि प्राकृतिक उत्तराधिकारियों को या तो बाहर रखा गया है या उन्हें कम हिस्सा दिया गया है, बिना किसी और चीज के, एक संदिग्ध परिस्थिति नहीं माना जा सकता है, खासकर ऐसे मामले में जहां वसीयत एक संतान के पक्ष में की गई है। जैसा कि पी.पी.के. गोपालन नांबियार बनाम पी.पी.के. बालकृष्णन नांबियार [पी.पी.के. गोपालन नांबियार बनाम पी.पी.के. बालकृष्णन नांबियार, 1995 पूरक (2) एस.सी.सी. 664] में अवधारित किया गया है, यह वसीयत के प्रस्तावक का कर्तव्य है कि वह सभी संदिग्ध विशेषताओं को हटा दे, लेकिन विशेषताएं वास्तविक और संदिग्ध होनी चाहिए और संदेह करने वाले मन की कल्पना नहीं होनी चाहिए। यह माना गया है कि यदि प्रस्तावक संदिग्ध परिस्थितियों को दूर करने में सफल होता है, तो अदालत को वसीयत को प्रभावी करना होगा, भले ही वसीयत इस अर्थ में अप्राकृतिक हो सकती है कि उसने पूरी तरह से या आंशिक रूप से निकट संबंधों को काट दिया है। ... रवीन्द्र नाथ मुखर्जी बनाम पंचानन बनर्जी [रवीन्द्र नाथ मुखर्जी बनाम पंचानन बनर्जी, (1995) 4 एस.सी.सी. 459] में, यह देखा गया था कि प्राकृतिक उत्तराधिकारियों के वंचित होने की परिस्थिति में कोई संदेह नहीं होना चाहिए क्योंकि वसीयत के निष्पादन के पीछे का पूरा विचार उत्तराधिकार की सामान्य रेखा में हस्तक्षेप करना है और इसलिए, प्राकृतिक उत्तराधिकारियों को वसीयत के हर मामले में वंचित कर दिया जाएगा। बेशक, यह हो सकता है कि कुछ मामलों में वे पूरी तरह से प्रतिबंधित हैं और कुछ मामलों में आंशिक रूप से।

24.6. महेश कुमार [महेश कुमार बनाम विनोद कुमार, (2012) 4 एस.सी.सी. 387: (2012) 2 एस.सी.सी. (सीआईवी) 526] में, इस न्यायालय ने वसीयत से संबंधित साक्ष्य की मूल्यांकन करते हुए उच्च न्यायालय की ओर से दृष्टिकोण की त्रुटि का संकेत दिया: (एस.सी.सी. पीपी 405-06, पैरा-44-46)

"44. जिस मुद्दे की जांच की जानी बाकी है, वह यह है कि क्या उच्च न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचने में न्यायसंगत था कि दिनांक 10-2-1992 की वसीयत का निष्पादन संदेह से घिरा हुआ था और अपीलकर्ता संदेह को दूर करने में विफल रहा? शुरुआत में, हम यह देखना आवश्यक समझते हैं कि एकल न्यायाधीश ने शोभाग चंद (डी.डब्ल्यू-3) के बयान को गलत तरीके से पढ़ा और कुछ ऐसा दर्ज किया जो उनके बयान में प्रकट नहीं होता है। जबकि शोभाग चंद ने स्पष्ट रूप से कहा कि उन्होंने श्री हरिशंकर द्वारा वसीयत पर हस्ताक्षर करने के बाद गवाह के रूप में हस्ताक्षर किए थे, आक्षेपित निर्णय में निकाले गए उनके बयान के हिस्से से यह आभास होता है कि गवाहों ने निष्पादक द्वारा वसीयत पर हस्ताक्षर करने से पहले ही हस्ताक्षर कर दिए थे।

45. एकल न्यायाधीश द्वारा की गई एक और स्पष्ट त्रुटि यह है कि उन्होंने यह मानकर वसीयत की वैधता से संबंधित मुद्दे का फैसला किया कि दोनों सत्यापन गवाहों को एक साथ अपने हस्ताक्षर संलग्न करने की आवश्यकता थी। 1925 अधिनियम की धारा 63 (सी) में ऐसी कोई आवश्यकता नहीं है और यह स्थापित कानून है कि प्रमाणित गवाहों में से एक की परीक्षा पर्याप्त है। इतना ही नहीं, इस मुद्दे पर प्रतिकूल निष्कर्ष दर्ज करते हुए, एकल न्यायाधीश ने डीडब्ल्यू-3 और डी.डब्ल्यू-4 द्वारा दिए गए स्पष्ट बयानों पर विचार करने के लिए छोड़ दिया कि वसीयतकर्ता ने उनकी उपस्थिति में वसीयत को पढ़ा और हस्ताक्षर किए थे और उसके बाद उन्होंने अपने हस्ताक्षर संलग्न किए थे।

46. वसीयत का निष्पादन अत्यधिक संदिग्ध था कि धारण करने के लिए एकल न्यायाधीश द्वारा गिनाए गए अन्य कारण केवल अनुमानों / क़यासों पर आधारित हैं। एकल न्यायाधीश की टिप्पणी कि श्री हरिशंकर के हस्ताक्षर प्राप्त करने और कोरे कागज पर गवाहों को सत्यापित करने और पूर्व-हस्ताक्षरित कागजात पर श्री एस.के अग्रवाल, अधिवक्ता द्वारा मसौदा तैयार करने की संभावना को पक्षकारों की दलीलों और सबूतों से समर्थन की एक भी झलक नहीं मिलती है। यदि प्रतिवादी 1 यह दिखाना चाहता था कि श्री हरिशंकर और सत्यापित करने वाले गवाहों द्वारा खाली कागजात पर हस्ताक्षर करने के बाद अधिवक्ता द्वारा वसीयत का मसौदा तैयार किया गया था, तो वह जांच कर सकता था या कम से कम श्री एस.के अग्रवाल, एडवोकेट को बुला सकता था, जिन्होंने राजस्व बोर्ड के समक्ष उसका प्रतिनिधित्व किया था।

24.7. लीला राजगोपाल [लीला राजगोपाल बनाम कमला मेनन कोचरन, (2014) 15 एस.सी.सी. 570: (2015) 4 एस.सी.सी. (सीआईवी) 267] में अपीलकर्ता की ओर से उद्धृत एक अन्य निर्णय को भी संदर्भित किया जा सकता है जिसमें इस न्यायालय ने सिद्धांतों को संक्षेप में प्रस्तुत किया है कि अंततः वसीयत और संदिग्ध परिस्थितियों के संबंध में न्यायिक निर्णय सभी असामान्य विशेषताओं और संदिग्ध परिस्थितियों को एक साथ रखने और नहीं पर विचार करने के साथ मामले के समग्र दृष्टिकोण के आधार पर होगा किसी एक विशेषता के प्रभाव पर। इस न्यायालय ने कहा: (एस.सी.सी. पृष्ठ 576, पैरा-13)

"13. एक वसीयत में कुछ विशेषताएं हो सकती हैं और कुछ परिस्थितियों में निष्पादित की जा सकती हैं जो कुछ हद तक अप्राकृतिक प्रतीत हो सकती हैं। वसीयत में दिखाई देने वाली ऐसी असामान्य विशेषताएं या इसके निष्पादन के आसपास की अप्राकृतिक परिस्थितियां निश्चित रूप से स्वीकार किए जाने से पहले एक करीबी जांच को सही ठहराएंगी। यह इस तरह की जांच के आधार पर अदालत का एक समग्र मूल्यांकन है; असामान्य विशेषताओं और परिस्थितियों का संचयी प्रभाव जो इसके द्वारा किए जाने वाले आवश्यक निर्धारण में अदालत के साथ तौला जाएगा। न्यायिक फैसला, अंतिम उपाय में सभी असामान्य विशेषताओं और संदिग्ध परिस्थितियों पर विचार करने के आधार पर होगा न कि किसी एक विशेषता के प्रभाव पर जो एक वसीयत या एक .. परिस्थिति में पाया जा सकता है जो इसके निष्पादन या पंजीकरण के लिए अग्रणी प्रक्रिया से प्रकट हो सकता है। यह, इस विषय पर इस न्यायालय द्वारा बार-बार की गई घोषणाओं का सार है, जिसमें हमारे सामने संदर्भित और भरोसा किए गए निर्णय भी शामिल हैं।

24.8. हमें बार में उद्धृत सभी और अन्य निर्णयों के संदर्भों को गुणा करने की आवश्यकता नहीं है, जो तथ्यों और परिस्थितियों के दिए गए संकलन में इसे लागू करते समय अनिवार्य रूप से पूर्वोक्त सिद्धांतों पर आगे बढ़ते हैं। यह इंगित करना पर्याप्त होगा कि शिवकुमार बनाम शरणबसप्पा [शिवकुमार बनाम शरणबास अप्पा, (2021) 11 एस.सी.सी. 277] में हाल के एक फैसले में, इस न्यायालय ने प्रासंगिक निर्णयों को पार करने के बाद, वसीयत के प्रमाण से संबंधित न्यायिक प्रक्रिया को नियंत्रित करने वाले सिद्धांतों को संक्षेप में प्रस्तुत किया है: (एस.सी.सी. पीपी. 309-10, पैरा-12)

“12. ... 12.1. आमतौर पर, वसीयत को किसी अन्य दस्तावेज की तरह साबित करना होता है;

लागू किया जाने वाला परीक्षण विवेकपूर्ण मन की संतुष्टि की सामान्य परीक्षा है। अन्य दस्तावेजों के प्रमाण को नियंत्रित करने वाले सिद्धांतों के समान, वसीयत के मामले में भी, गणितीय सटीकता के साथ प्रमाण पर जोर नहीं दिया जाना चाहिए।

12.2. चूंकि उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 63 के अनुसार, वसीयत को सत्यापित करना आवश्यक है, इसलिए इसे साक्ष्य के रूप में तब तक उपयोग नहीं किया जा सकता जब तक कि, यदि कोई प्रमाणित गवाह जीवित है और साक्ष्य देने में सक्षम है, तो इसके निष्पादन को साबित करने के उद्देश्य से कम से कम एक सत्यापन गवाह को बुलाया न गया हो।

12.3. वसीयत की अनूठी विशेषता यह है कि यह वसीयतकर्ता की मृत्यु से बोलती है और इसलिए, इसका निर्माता उन परिस्थितियों के बारे में गवाही देने के लिए उपलब्ध नहीं है जिनमें इसे निष्पादित किया गया था। यह प्रश्न के निर्णय में गंभीरता का एक तत्व पेश करता है कि क्या प्रस्तावित दस्तावेज वसीयतकर्ता की अंतिम इच्छा है। प्रारंभिक दायित्व, स्वाभाविक रूप से, प्रस्तावक पर निहित है, लेकिन इसे मुख्य रूप से आवश्यक तथ्यों के प्रमाण पर निर्वहन किया जा सकता है जो वसीयत बनाने में जाते हैं।

12.4. वह मामला जिसमें वसीयत का निष्पादन संदिग्ध परिस्थितियों से घिरा हुआ है, एक अलग पायदान पर खड़ा है। संदिग्ध परिस्थितियों की उपस्थिति प्रस्तावक पर भार को भारी बना देती है और इसलिए, ऐसे मामलों में जहां दस्तावेज़ के निष्पादन पर परिचर परिस्थितियां संदेह को जन्म देती हैं, प्रस्तावक को दस्तावेज़ को वसीयतकर्ता की अंतिम इच्छा के रूप में स्वीकार करने से पहले सभी वैध संदेहों को दूर करना चाहिए।

12.5. यदि वसीयत को चुनौती देने वाला कोई व्यक्ति वसीयत के निष्पादन के संबंध में मनगढ़ंत आरोप लगाता है या धोखाधड़ी, अनुचित प्रभाव, जबरदस्ती आदि का आरोप लगाता है, तो ऐसी दलीलों को उसके द्वारा साबित किया जाना चाहिए, लेकिन ऐसी दलीलों के अभाव में भी, वसीयत के निष्पादन के आसपास की परिस्थितियाँ संदेह को जन्म दे सकती हैं या क्या वसीयतकर्ता द्वारा वास्तव में वसीयत निष्पादित की गई थी और/या क्या वसीयतकर्ता अपनी मर्जी से काम कर रहा था। ऐसी स्थिति में, यह पुन प्रस्तावक की प्रारंभिक जिम्मेदारी का एक हिस्सा है कि वह इस मामले में सभी उचित शंकाओं को दूर करे।

12.6. एक परिस्थिति "संदिग्ध" है जब यह सामान्य नहीं है या 'सामान्य स्थिति में सामान्य रूप से अपेक्षित नहीं है या किसी सामान्य व्यक्ति से अपेक्षित नहीं है'। जैसा कि इस न्यायालय द्वारा कहा गया है, संदिग्ध विशेषताएं "वास्तविक, जर्मन और वैध" होनी चाहिए, न कि केवल "संदेह करने वाले मन की कल्पना"।

12.7. क्या कोई अहम विशेषता या सुविधाओं का एक संकलन "संदिग्ध" के रूप में योग्य है, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। एक अस्थिर या संदिग्ध हस्ताक्षर; वसीयतकर्ता का एक कमजोर या अनिश्चित दिमाग; संपत्ति का अनुचित स्वभाव; कानूनी उत्तराधिकारियों और विशेष रूप से आश्रितों का एक अन्यायपूर्ण बहिष्कार; लाभार्थी द्वारा वसीयत बनाने में एक सक्रिय या अग्रणी हिस्सा वगैरह कुछ ऐसी परिस्थितियां हैं जो संदेह को जन्म दे सकती हैं। उपर्युक्त परिस्थितियां केवल दृष्टांत हैं और किसी भी तरह से संपूर्ण नहीं हैं क्योंकि ऐसी कोई परिस्थिति या परिस्थितियों का संकलन हो सकता है जो वसीयत के निष्पादन के बारे में वैध संदेह को जन्म दे सकता है। दूसरी ओर, संदिग्ध होने के योग्य किसी भी परिस्थिति को प्रस्तावक द्वारा वैध रूप से समझाया जा सकता है।

हालांकि, इस तरह के संदेह या शक को केवल स्वस्थ मन मस्तिष्क के प्रमाण और वसीयतकर्ता के मन की स्थिति का निपटान करके और सत्यापन के प्रमाण के साथ उसके हस्ताक्षर से दूर नहीं किया जा सकता है।

12.8. न्यायिक विवेक की संतुष्टि की परीक्षा तब लागू होती है जब वसीयतकर्ता की वसीयत के रूप में प्रतिपादित दस्तावेज संदिग्ध परिस्थितियों से घिरा होता है। इस तरह के परीक्षण को लागू करते समय, अदालत खुद को गंभीर प्रश्नों को संबोधित करेगी कि क्या वसीयतकर्ता ने इसकी सामग्री से अवगत होने और वसीयत में स्वभाव की प्रकृति और प्रभाव को समझने के बाद वसीयत पर हस्ताक्षर किए थे?

12.9. अंतिम विश्लेषण में, जहां वसीयत का निष्पादन संदेह में डूबा हुआ है, यह अनिवार्य रूप से अदालत के न्यायिक विवेक का मामला है और वसीयत स्थापित करने वाले पक्ष को वसीयत के आसपास की संदिग्ध परिस्थितियों का ठोस और ठोस स्पष्टीकरण देना होगा।

प्रस्तुत मामले में, यह कहा गया है कि वसीयत दिनांक 26.06.1986 को गवाहों अर्थात् बच्चू लाल और बेचन लाल द्वारा विधिवत साबित की गई थी।

तदनुसार, इस न्यायालय ने इन गवाहों के बयानों पर विचार किया, जो रिकॉर्ड में हैं।

संबंधित चकबंदी प्राधिकारियों के समक्ष पेश किए गए गवाहों बच्चू लाल और बेचन लाल के बयानों से यह स्पष्ट है कि संबंधित चकबंदी प्राधिकारी के समक्ष बच्चू लाल ने विशेष रूप से कहा था कि एक नरमत्ता लिखित वसीयत को उसके समक्ष लाया था और वसीयतकर्ता अर्थात् किशुन और जग्गनाथ (उप-प्रधान) के हस्ताक्षर और तुलसीराम (पंच) की निशानी अंगूठा पर विचार करने के बाद, उन्होंने वसीयत पर अपने हस्ताक्षर किए। इस प्रकार, बच्चू लाल को वसीयत का प्रमाणित गवाह नहीं माना जा सकता है। चकबंदी अधिकारी के समक्ष बेचन लाल के बयान पर भी विश्वास नहीं किया जा सकता क्योंकि यह गवाह बरकरार नहीं था। संबंधित चकबंदी प्राधिकरण के समक्ष इस गवाह ने कहा कि वसीयत रात 10 बजे लिखी गई थी, जबकि वसीयत के लेखक हरि प्रसाद के अनुसार, वसीयत 26.06.1986 को शाम 7 बजे लिखी गई थी। उन्होंने यह भी कहा कि वसीयत एक बच्चू लाल की उपस्थिति में लिखी गई थी, जबकि बच्चू लाल ने परीक्षा के दौरान विशेष रूप से कहा कि वसीयत उनकी उपस्थिति में नहीं लिखी गई थी। संबंधित प्राधिकरण के समक्ष बेचन लाल ने यह भी कहा कि वसीयत के वसीयतकर्ता अर्थात् किशुन ने स्वयं वसीयत के लिए स्टाम्प खरीदा था, हालांकि, स्टाम्प पेपर स्वयं बोलता है कि इसे लाभार्थियों में से एक घुरू द्वारा खरीदा गया था। इस प्रकार, इस गवाह की गवाही विश्वसनीय नहीं है और ऐसा होने के कारण, आक्षेपित आदेशों में चकबंदी अधिकारियों की टिप्पणियां उचित हैं और इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किए जाने योग्य नहीं हैं।

उपरोक्त के साथ-साथ माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों और अधिनियम वर्ष 1925 और अधिनियम वर्ष 1872 के प्रासंगिक प्रावधानों पर विचार करने के बाद, इस न्यायालय ने पाया कि याचिकाकर्ता चकबंदी अधिकारी के समक्ष वसीयत को साबित करने में विफल रहे। इस प्रकार, वसीयत के आधार पर उनका दावा उचित नहीं है। तदनुसार, इस न्यायालय का विचार है कि संबंधित चकबंदी अधिकारियों द्वारा यहां आक्षेपित आदेशों में दर्ज निष्कर्ष उचित हैं और भारत के संविधान के

अनुच्छेद 226 के तहत इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किए जाने योग्य नहीं हैं।

उपरोक्त कारणों से, रिट याचिका खारिज की जाती है।

(2023) 3 ILRA 244

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल वाद

दिनांक: इलाहाबाद 21.02.2023

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी के समक्ष

रिट सी संख्या 659/2023

इंडियन एक्सप्रेस प्राइवेट लिमिटेड ए-8, सेक्टर-7, नोएडा गौतमबुद्ध नगर ...याचिकाकर्ता

बनाम

यू.ओ.आई. और अन्य ...प्रतिपक्षी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: श्री सुनील कुमार त्रिपाठी, श्री देवेश त्रिपाठी, श्री संदीप पांडे

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: ए.एस.जी.आई., श्री अंकुर गोयल, सी.एस.सी., श्री रमेश चंद्र तिवारी

श्रम कानून - कार्यरत पत्रकार और अन्य समाचार पत्र कर्मचारियों (सेवा की शर्तें) और विविध प्रावधान अधिनियम, 1955 - धारा 17(1) - नियोक्ता से बकाया राशि की वसूली - अगर किसी समाचार पत्र कर्मचारी को नियोक्ता से कोई राशि बकाया है, तो वह राज्य सरकार से उस राशि की वसूली के लिए आवेदन कर सकता है - यदि किसी प्रश्न का उत्पन्न होता है कि समाचार पत्र कर्मचारी को उसके नियोक्ता से कितनी राशि बकाया है, तो राज्य सरकार उस प्रश्न को श्रम न्यायालय को भेज सकती है - श्रम न्यायालय का निर्णय राज्य सरकार को प्रेषित किया जाएगा और यदि श्रम न्यायालय द्वारा कोई राशि बकाया पाई जाती है, तो उसे वसूला जा सकता है - अधिनियम, 1955 की धारा 17(1) के तहत अधिकार स्पष्ट है - यदि राशि के निर्धारण में विवाद है तो निर्धारित प्राधिकारी श्रम न्यायालय को संदर्भित करेगा। (पैराग्राफ 10)

श्रम कानून - कार्यरत पत्रकार और अन्य समाचार पत्र कर्मचारियों (सेवा की शर्तें) और विविध प्रावधान अधिनियम, 1955 - धारा 17(1) - याचिकाकर्ता कंपनी, अर्थात, इंडियन एक्सप्रेस प्राइवेट लिमिटेड के श्रमिकों ने दावा किया कि उन्होंने कोविड-19 महामारी के दौरान अपनी सेवाएं दी हैं, हालांकि, नियोक्ता ने उनकी मासिक वेतन का एक निश्चित प्रतिशत कटौती किया - कटौती की गई राशि पर कोई विवाद नहीं था - कटौती से पहले कोई कारण नहीं दिया गया और न ही कोई पूर्व सूचना दी गई - निर्धारित प्राधिकारी के सामने विवाद था कि क्या नियोक्ता को राशि की कटौती करने का अधिकार है और क्या कटौती कानूनी रूप से वैध है - आयोजित - निर्धारित प्राधिकारी ने कटौती की वैधता के विवाद में प्रवेश किया, इसलिए उसने अधिनियम, 1955 की धारा 17(1) के तहत अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर जाकर कार्य किया और श्रम न्यायालय को संदर्भित न करके कानूनी त्रुटि की - अपीलित आदेश को अपास्त किया गया और निर्धारित प्राधिकारी को विवाद को श्रम न्यायालय में भेजने का निर्देश दिया गया (पैराग्राफ 10)

स्वीकृत। (ई-5)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. फिकस फैक्स प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य। रिट याचिका (सी)

डायरी संख्या 10983 का 2020, दिनांक 20.06.2020

2. प्रधान प्रबंधक/संघ प्रमुख एम/एस अमर उजाला बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य। (रिट-सी संख्या 11856 का 2018), निर्णय दिनांक 31.05.2018।

<u>माननीय न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी</u>

1. वर्तमान मामले में जिस मुद्दे पर विचार करने की आवश्यकता है वह है, "क्या कार्यरत पत्रकार और अन्य समाचार पत्र कर्मचारी (सेवा की शर्तें) और विविध प्रावधान अधिनियम, 1955 *(इसके बाद "अधिनियम, 1955" के रूप में संदर्भित)* के तहत निर्धारित प्राधिकारी अधिनियम, 1955 की धारा 17(1) के तहत कामगारों द्वारा दायर किए गए दावे पर विचार कर सकते हैं जबकि वह दावा विवादित हो ?

2. पार्टियों के विद्वान अधिवक्ताओं ने उपर्युक्त मुद्दे के संबंध में कानूनी स्थिति पर गंभीरता से विवाद नहीं किया है कि अखबार के कर्मचारियों द्वारा आवेदन अधिनियम, 1955 की धारा 17 की उप-धारा (1) के तहत कार्यरत पत्रकार (सेवा की शर्तें) और विविध प्रावधान नियम, 1957 (इसके बाद इसे "नियम, 1957" के रूप में संदर्भित किया गया) के नियम 36 के तहत भरा जाना चाहिए। वह आवेदन राज्य सरकार या ऐसे प्राधिकारी के समक्ष दायर किया जा सकता है, जिसे राज्य सरकार इस संबंध में निर्दिष्ट कर सकती है। जहां कोई विवाद नहीं है, राज्य सरकार या प्राधिकारी, इस प्रकार निर्दिष्ट, संतुष्ट होने पर कि कोई राशि बकाया है, कलेक्टर को उस राशि के लिए एक प्रमाण पत्र जारी करेगा और कलेक्टर, उसके बाद, उस राशि को भू-राजस्व के बकाया के रूप में वसूल करेगा। जहां कोई प्रश्न या विवाद उठता है तो विवाद के निर्णय के लिए श्रम न्यायालय को संदर्भ दिया जाना चाहिए। विवाद पर फैसला सुनाने के बाद, श्रम न्यायालय को अपना निर्णय राज्य सरकार या संदर्भ देने वाले प्राधिकारी को अग्रेषित करना होता है, जिस पर राशि अधिनियम, 1955 की धारा 17 की उप-धारा (1) द्वारा प्रदान किए गए तरीके से वसूल की जानी है। चूँकि धारा 17, समग्र रूप से, एक एकल निर्बाध योजना बनाती है, राज्य सरकार, उप-धारा (1) के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए, उन सभी कार्यों को करने के लिए एक प्राधिकरण निर्दिष्ट कर सकती है जो उसे अधिनियम 1955 की धारा 17 के तहत करने की शक्ति प्रदान करता है।

3. प्रतिवादी-याचिकाकर्ता-कंपनी के कर्मचारी, यानी, इंडियन एक्सप्रेस प्राइवेट लिमिटेड ने दावा किया है कि उन्होंने संबंधित अवधि यानी 01.04.2020 से 28.02.2021 के दौरान भी अपनी सेवाएं प्रदान की हैं, जब देश कोविड-19 महामारी के कारण प्रतिकूल स्थिति का सामना कर रहा था, हालांकि, फिर भी नियोक्ता ने उनके मासिक वेतन से कुछ प्रतिशत की कटौती की है और चूंकि राशि पूर्व-निर्धारित थी, इसलिए, अधिनियम, 1955 की धारा 17(1) के तहत विहित प्राधिकारी के पास दावे की अनुमति देने का अधिकार क्षेत्र है।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सुनील कुमार त्रिपाठी ने जोरदार तर्क दिया कि यह कटौती की गई राशि के निर्धारण के बारे में सवाल नहीं है क्योंकि इसमें कोई विवाद नहीं है कि उक्त

राशि की कटौती की गई थी। विहित प्राधिकारी के समक्ष प्रश्न यह था कि जब नियोक्ता एक मामला लेकर आया है कि कटौती कानूनी थी और इसके विपरीत प्रतिवादियों-कर्मचारियों ने प्रस्तुत किया है कि यह एक अवैध कटौती थी, इसलिए, कटौती की वैधता के बारे में एक विवाद उत्पन्न हुआ, जिसका निर्णय विहित प्राधिकारी द्वारा अधिनियम, 1955 की धारा 17(1) के तहत नहीं किया जा सका और विवाद के निर्णय के लिए एक सन्दर्भ श्रम न्यायालय को संदर्भित करना सही प्रक्रिया थी।

5. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि याचिकाकर्ता ने आपदा प्रबंधन अधिनियम, 2005 की धारा 10 (2) (आई) के तहत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए गृह मंत्रालय, नई दिल्ली द्वारा जारी अधिसूचना दिनांक 29.03.2020 को भी चुनौती दी है कि जिला कलेक्टर यह उपाय करेंगे कि सभी कर्मचारी, चाहे वे उद्योग में हों या दुकानों और वाणिज्यिक प्रतिष्ठानों में हो, अपने कार्यस्थलों पर अपने श्रमिकों के वेतन का भुगतान नियत तिथि पर, बिना किसी कटौती के, उस अवधि के लिए करेंगे जब लॉकडाउन के दौरान उनके प्रतिष्ठान बंद थे।

6. विद्वान वकील ने आगे कहा कि विवादित अधिसूचना मनमानी है और इस बात पर विचार किए बिना कि लॉकडाउन अवधि के दौरान समाचार पत्रों और पत्रिकाओं के अनियमित प्रकाशन के कारण नियोक्ता को वित्तीय नुकसान हुआ है, इसलिए, उन्हें कोई वेतन नहीं काटने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता है। हालाँकि, उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि विवादित अधिसूचना में दिए गए निर्देश पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से विवादित आदेश में विचार नहीं किया गया था।

7. प्रतिवादी-श्रमिकों के विद्वान अधिवक्ता श्री रमेश चंद्र तिवारी ने भी जोरदार तर्क दिया कि श्रमिकों ने लॉकडाउन की अवधि के दौरान और उसके बाद भी लगातार काम किया है और यह सुनिश्चित किया है कि प्रकाशन बंद नहीं किया जा सकता है और समाचार पत्र शुरू में ऑनलाइन मोड के माध्यम से प्रभावी ढंग से प्रकाशित और प्रसारित किए गए थे और उसके बाद भौतिक परिसंचरण द्वारा भी। वेतन कटौती की अवधि लॉकडाउन अवधि के बाद भी थी। कटौती से पहले कोई कारण नहीं बताया गया और कोई पूर्व सूचना जारी नहीं की गई। राशि पर विवाद नहीं किया गया और साथ ही नियोक्ता ने भी इस बात पर विवाद नहीं किया है कि प्रासंगिक अवधि के दौरान प्रकाशन नियमित था और इस संबंध में उन्होंने विवादित आदेश में दिए गए निष्कर्ष का उल्लेख किया। विद्वान वकील ने दिनांक 12.11.2014 की एक गजट अधिसूचना का भी हवाला दिया कि निर्धारित प्राधिकारी के पास अधिनियम, 1955 की धारा 17 (1) के तहत दायर आवेदन पर विचार करने की शक्ति है। उपरोक्त प्रस्तुतिकरण के समर्थन में विद्वान वकील ने सुप्रीम कोर्ट के **20.06.2020 को निर्णीत फिकस फैक्स प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य (रिट याचिका (सी) डायरी नंबर 10983/2020** और इस न्यायालय के **31.05.2018 को निर्णीत प्रधान प्रबंधक/यूनिट हेड मैसर्स अमर उजाला बनाम यूपी राज्य और**

अन्य (रिट-सी संख्या 11856/2018) के फैसले पर भरोसा जताया है।

8. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना और रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया।

9. जैसा कि ऊपर बताया गया है, अधिनियम, 1955 की धारा 17(1) के तहत शक्ति के संबंध में कानून की स्थिति स्पष्ट है कि यदि राशि के निर्धारण के संबंध में कोई विवाद है तो निर्धारित प्राधिकारी श्रम न्यायालय को एक संदर्भ संदर्भित करेगा।

10. वर्तमान मामले में, यह विवाद में नहीं है कि प्रासंगिक अवधि के लिए वेतन का कुछ प्रतिशत काटा गया था, इसलिए, कटौती की गई राशि विवाद में नहीं थी। हालाँकि, चूंकि निर्धारित प्राधिकारी के समक्ष एक विवाद उत्पन्न हुआ था कि नियोक्ता के पास राशि में कटौती करने की शक्ति है या नहीं, साथ ही कटौती कानूनी रूप से स्वीकार्य थी या नहीं और इसके लिए निर्धारित प्राधिकारी के समक्ष पक्षों ने दलीलों का आदान-प्रदान किया है और मौखिक साक्ष्य भी पेश किए हैं। विहित प्राधिकारी ने विवादित प्रश्नों, दलीलों और मौखिक साक्ष्यों पर विचार किया है और एक निष्कर्ष दर्ज किया है कि चूंकि निर्विवाद रूप से प्रकाशन नियमित था और प्रतिवादी-कर्मचारी नियमित रूप से काम कर रहे थे, इसलिए, कटौती अवैध थी या स्वीकार्य नहीं थी और प्रतिवादी कर्मचारी के पक्ष में और याचिकाकर्ता के खिलाफ आदेश पारित किया। चूंकि निर्धारित प्राधिकारी ने कटौती की वैधता निर्धारित करने के लिए विवाद के क्षेत्र में प्रवेश किया है, इसलिए, उसने अधिनियम, 1955 की धारा 17(1) के तहत प्रदान किए गए अपने अधिकार क्षेत्र से परे काम किया है और श्रम न्यायालय को संदर्भ न देकर कानूनी त्रुटि की है।

11. तदनुसार, दिनांक 07.12.2022 का आक्षेपित आदेश निरस्त किया जाता है। निर्धारित प्राधिकारी को आज से दो सप्ताह की अवधि के भीतर अधिनियम, 1955 के प्रावधानों के अनुसार विवाद को श्रम न्यायालय में इसके निर्धारण के लिए संदर्भित करने का निर्देश दिया जाता है। श्रम न्यायालय को न्यायालय के अन्य कामकाज के अधीन, इसके बाद छह महीने की अवधि के भीतर कार्यवाही समाप्त करने का भी निर्देश दिया जाता है।

12. याचिकाकर्ता-नियोक्ता उन प्रतिवादी-कर्मचारियों के साथ बैठक करने के लिए भी स्वतंत्र है, जिन्होंने लॉकडाउन अवधि के बाद भी वेतन कटौती के संबंध में विवाद को निपटाने के लिए कोविड-19 महामारी के दौरान अपने नियोक्ता का समर्थन किया है और यदि संभव हो तो उन्हें अनुमानित धनराशि वापस कर दी जाए।

13. जहां तक दिनांक 29.03.2020 की अधिसूचना को चुनौती देने का सवाल है, विवादित कार्यवाही के दौरान कोई संदर्भ नहीं दिया गया था और उस शक्ति को कोई चुनौती भी नहीं दी गई है जिसके तहत उक्त अधिसूचना जारी की गई थी। ऐसा कुछ भी रिकॉर्ड पर नहीं लाया गया है कि उक्त अधिसूचना के अनुसरण में कोई प्रतिकूल आदेश पारित किया गया हो। तदनुसार, दिनांक 29.03.2020 की अधिसूचना को रद्द करने की प्रार्थना खारिज की जाती है।

14. उपरोक्त निर्देशों/टिप्पणियों के साथ रिट याचिका निस्तारित की जाती है।

(2023) 3 ILRA 247

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल वाद

दिनांक: लखनऊ 24.02.2023

माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मोइन

के समक्ष

रिट सी संख्या - 1350 / 2023

श्रीमती सुबोध कांति ...याचिकाकर्ता

बनाम

जिला न्यायाधीश उन्नाव एवं अन्य ...प्रतिपक्षी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: आशीष कुमार रस्तोगी

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: पुरुषोत्तम अवस्थी, आशीष कुमार

क. सिविल कानून - उत्तर प्रदेश पंचायत राज अधिनियम, 1947 - धारा 12C - उत्तर प्रदेश पंचायत राज (चुनाव विवादों का निस्तारण) नियम, 1994 - चुनाव याचिका - विचार के लिए मुद्दा - क्या चुनाव याचिका में मुद्दों का तय करना चुनाव याचिका के निर्णय से पहले आवश्यक है? - निर्णय - अधिनियम 1947 की धारा 12C के तहत दायर की गई चुनाव याचिका में विवाद को निर्धारित प्राधिकरण द्वारा तय किया जाना चाहिए, जब तक कि निर्धारित प्राधिकरण प्रतिवादियों की ओर से उठाए गए प्रारंभिक आपत्ति के आधार पर चुनाव याचिका को निरस्त करने की प्रक्रिया न अपनाए। (पैरा 24)

निरस्त। (ई-5)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. मखान लाल बंगाल बनाम मनास भुनिया और अन्य (2001) 2 SCC 652
2. कैलाश बनाम नन्हकू और अन्य (2005) 4 SCC 480
3. कल्याण सिंह चौहान बनाम सी. पी. जोशी AIR 2011 सुप्रीम कोर्ट 1127
4. समर सिंह बनाम केदारनाथ @ के. एन. सिंह और अन्य 1987 (सप्लीमेंट) SCC 663
5. तारलोक सिंह बनाम अमृतसर नगर निगम और अन्य (1986) 4 SCC 27
6. के वेंकटेश्वर राव और अन्य बनाम बेक्कम नारसिम्हा रेड्डी और अन्य (1969) 1 SCR 679
7. कुलसुम बनाम राज्य उत्तर प्रदेश और अन्य 2018 (8) ADJ 182
8. उत्तमराव शिवदास जंकर बनाम रंजीत सिंह मोहिते पाटिल (2009) 13 SCC 131

<u>माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मोईन</u>

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता एवं प्रतिवादी संख्या-2 के विद्वान अधिवक्ता श्री पुरूषोत्तम अवस्थी को सुना गया।

2. तत्काल याचिका निम्नलिखित मुख्य अनुतोष हेतु प्रार्थना करते हुए प्रस्तुत की गई है:

> *"(i) उत्प्रेषण की प्रकृति में रिट, आदेश अथवा निदेश जारी करते हुए माननीय न्यायालय पुनरीक्षण संख्या 15/ 2022 (मुरली*

प्रसाद वर्मा बनाम श्रीमती सुबोध कांति एवं अन्य)में विरोधी पक्षकार संख्या-1 द्वारा पारित प्रश्नगत आदेश दिनांकित 05.01.2023 को अपास्त / रद्द करने की कृपा करें, जैसा कि इस याचिका के संलग्नक संख्या-1 निहित है।"

3. याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत वाद यह है कि याचिकाकर्ता को वर्ष 2021 के चुनाव में ग्राम फतेहुर, ब्लॉक परगना एवं तहसील सफीपुर, जिला उन्नाव के ग्राम प्रधान के रूप में निर्वाचित घोषित किया गया था। प्रतिवादी सं. 2 उक्त चुनाव में उम्मीदवारों में से एक था। प्रतिवादी संख्या 2 ने याचिकाकर्ता के चुनाव को चुनौती देते हुए उत्तर प्रदेश पंचायत राज अधिनियम, 1947 (इसके पश्चात अधिनियम, 1947 के रूप में संदर्भित) की धारा 12 सी के प्रावधानों के अंतर्गत विहित प्राधिकारी के समक्ष एक चुनाव याचिका प्रस्तुत की। चुनाव याचिका आदेश दिनांकित 23.05.2022 द्वारा खारिज कर दी गई जिसकी एक प्रति याचिका की संलग्नक 9 है। प्रतिवादी सं. 2 ने व्यथित होकर, विद्वान जिला न्यायाधीश, उन्नाव के समक्ष सिविल पुनरीक्षण संख्या 15/2022, मुरली प्रसाद वर्मा बनाम सुबोध कांति एवं अन्य वाद के संदर्भ में प्रस्तुत की, और विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय ने प्रश्नगत आदेश दिनांकित 05.01.2023, जिसकी प्रति याचिका की संलग्नक 1 है, द्वारा विहित प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश को अपास्त कर दिया एवं दिए गए निदेशों के आलोक में नए सिरे से निर्णय लेने हेतु वाद को विहित प्राधिकारी को प्रतिप्रेषित कर दिया।

4. विहित प्राधिकारी के आदेश को अपास्त करने हेतु पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा ग्रहण किया गया आधार यह था कि विहित प्राधिकारी द्वारा आदेश दिनांकित 23.05.2022 को पारित करने से पूर्व कोई मुद्दा निर्धारित नहीं किया गया था। इस संबंध में विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय ने **माखन लाल बांगल बनाम मानस भुनिया एवं अन्य, (2001) 2 SCC 652** वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया है।

5. उस आदेश को चुनौती देते हुए, जिसके द्वारा पुनरीक्षण न्यायालय ने मुद्दों को निर्धारित न करने के आधार पर नए सिरे से निर्णय लेने हेतु मामले को विहित प्राधिकारी को प्रतिप्रेषित कर दिया है, यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि किसी चुनाव याचिका पर निर्णय लेने हेतु मुद्दे निर्धारित करना अनिवार्य नहीं है क्योंकि अधिनियम, 1947 के प्रावधानों के अंतर्गत प्रस्तुत चुनाव याचिका पर सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रावधान कठोरता से लागू नहीं होते हैं। इस संबंध में **कैलास बनाम नन्हकू एवं अन्य, (2005) 4 SCC 480; कल्याण सिंह चौहान बनाम सी. पी. जोशी, AIR 2011 Supreme Court 1127; समर सिंह बनाम केदार नाथ @ के.एन. सिंह एवं अन्य, 1987 (supp) SCC 663; तरलोक**

सिंह बनाम अमृतसर नगर निगम एवं एक अन्य, (1986) 4 SCC 27; तथा **के वेंकटेश्वर राव एवं एक अन्य बनाम बेक्कम नरसिम्हा रेड्डी एवं अन्य, (1969) 1 SCR 679** में वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर विश्वास व्यक्त किया गया है।

6. उपरोक्त निर्णयों पर विश्वास व्यक्त करते हुए यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि उपरोक्त सभी वादों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारित किया है कि सिविल प्रकिया संहिता के प्रावधान चुनाव याचिका पर कठोरतापूर्वक लागू नहीं होते हैं और परिणामस्वरूप पुनरीक्षण न्यायालय के आदेश, जिसके अंतर्गत वाद को मात्र इस आधार पर निर्धारित प्राधिकारी को प्रतिप्रेषित कर दिया गया है कि चुनाव याचिका को खारिज करने से पूर्व विहित प्राधिकारी द्वारा कोई मुद्दा निर्धारित नहीं किया गया था, में इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप आवश्यक है।

7. दूसरी ओर प्रतिवादी संख्या-2 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री पुरूषोत्तम अवस्थी का तर्क है कि अधिनियम 1947 के प्रावधान को उस नियमावली, जो चुनाव याचिका के निर्णय हेतु बनाई गई है अर्थात् उत्तर प्रदेश पंचायत राज (चुनावी विवादों का निपटारा) नियमावली , 1994 (इसके पश्चात नियमावली 1994 के रूप में संदर्भित) स्पष्ट रूप चुनाव याचिका की सुनवाई की प्रक्रिया का प्रावधान करती है। उनका तर्क है कि वाद के इस पक्ष पर इस न्यायालय ने **कुलसुम बनाम उ०प्र० राज्य एवं अन्य, 2018 (8) ADJ 182** वाद में विचार किया है, जिसमें न्यायालय द्वारा **माखन लाल बांगल (उपरोक्त)** के साथ **उत्तमराव शिवदास जानकर बनाम रंजीतसिंह विजयसिंह मोहिते पाटिल, (2009) 13 SCC 131** वाद में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर विश्वास व्यक्त करते हुए यह माना गया है कि विहित प्राधिकारी को चुनाव याचिका पर निर्णय लेने से पूर्व अथवा पुनर्गणना हेतु निदेश देने से पूर्व मुद्दों को निर्धारित करना होगा जैसा कि **कुलसुम (उपरोक्त)** के वाद में था।

8. **माखन लाल बांगल (उपरोक्त)** वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास व्यक्त करते हुए प्रतिवादी संख्या- 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री पुरूषोत्तम अवस्थी का तर्क है कि सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से माना है कि एक चुनाव याचिका एक सिविल विचारण के समान है एवं मुद्दों को निर्धारित करने का चरण महत्वपूर्ण है क्योंकि उस दिन वाद के विचारण का विस्तार एक पथ तय करके निर्धारित किया जाता है जिस पर सुनवाई की कार्यवाही विचलन एवं भिन्नता को छोड़कर आगे की जायेगी। शीर्ष न्यायालय ने यह भी धारित किया है कि मुद्दों को निर्धारित और दर्ज किया जाएगा, जिस पर वाद का निर्णय निर्भर करेगा।

9. **माखन लाल बांगल(उपरोक्त)** वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की उपरोक्त टिप्पणियों पर विश्वास व्यक्त करते हुए प्रतिवादी संख्या- *2* के विद्वान अधिवक्ता श्री पुरूषोत्तम अवस्थी का तर्क यह है कि जब तक उन मुद्दों को विहित प्राधिकारी द्वारा निर्धारित नहीं किया जाता है जिनके आधार पर प्रतिवादी संख्या-*2* द्वारा प्रस्तुत चुनाव याचिका पर निर्णय लिया जाना था, प्रतिवादी संख्या-*2* द्वारा प्रस्तुत याचिका को सारांश एवं सरसरी तौर पर खारिज करना विधि के अनुरूप नहीं कहा जा सकता है।

अतः विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय ने मुद्दों को निर्धारित करने एवं चुनाव याचिका पर निर्णय लेने हेतु मामले को विहित प्राधिकारी को प्रतिप्रेषित करके विधि के अंतर्गत कोई त्रुटि नहीं की है।

10. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्तागण को सुना तथा अभिलेख का अवलोकन किया।

11. अभिलेख के परिशीलन से यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता को संबंधित ग्राम के ग्राम प्रधान के रूप में निर्वाचित घोषित किए जाने पर, प्रतिवादी संख्या- *2* द्वारा याचिकाकर्ता के चुनाव को चुनौती देते हुए एक चुनाव याचिका प्रस्तुत की गई थी। विहित प्राधिकारी ने आदेश दिनांक *23.05.2022* के अंतर्गत बिना कोई स्वीकार्य मुद्दे निर्धारित किए चुनाव याचिका खारिज कर दी। प्रतिवादी संख्या- *2* ने व्यथित होकर पुनरीक्षण प्रस्तुत किया एवं विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय ने आदेश दिनांक *05.01.2023* के अंतर्गत **माखन लाल बांगल (उपरोक्त)** के वाद में शीर्ष न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि पर विचार करने के उपरान्त एवं यह मानते हुए कि चुनाव याचिका खारिज करने से पूर्व विहित प्राधिकारी द्वारा कोई मुद्दा निर्धारित नहीं किया गया है, नए आदेश पारित करने हेतु मामले को विहित प्राधिकारी को प्रतिप्रेषित कर दिया गया है।

12. न्यायालय के समक्ष विचारणीय मुद्दा यह है कि क्या चुनाव याचिका पर निर्णय लेने से पूर्व चुनाव याचिका में मुद्दे निर्धारित करना अनिवार्य है?

13. उक्त मुद्दा **माखन लाल बांगल (उपरोक्त)** के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ द्वारा निर्णीत किये जाने के पश्चात अब अनिर्णीत नहीं रह गया है जहां इसे निम्नानुसार धारित किया गया है:

> ***"चुनाव याचिका एक सिविल विचारण के समान है। मुद्दों को निर्धारित करने का चरण एक महत्वपूर्ण चरण है क्योंकि उस दिन विचारण की परिधि उस पथ को निर्धारित करके विनिश्चित की जाती है जिस पर विचारण विचलन से विमुख हो आगे बढ़ेगा। अतः मुद्दों के विनिश्चयन हेतु जो तिथि तय की गई है वही सुनवाई हेतु भी तय की गई तिथि है। जब पक्षकारों के मध्य वास्तविक विवाद विनिश्चित किया जाता है, संघर्ष का क्षेत्र सीमित हो जाता है एवं न्यायालय के समक्ष वे बिंदु स्पष्ट हो जाते है जिनके संबंध में दोनों पक्षों के मध्य विवाद चल रहा है। सिविल विचारण का उचित निर्णय काफी हद तक मुद्दों के सही निर्धारण एवं विवाद में वास्तविक बिंदुओं को उचित रीति से निर्धारित करने पर निर्भर करता है जिन पर निर्णय लेना अपेक्षित है।*** *मुद्दों के निर्धारण से संबंधित सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XIV की योजना दर्शाती है कि एक मुद्दा तब उत्पन्न होता है जब तथ्य या विधि की किसी महत्वपूर्ण प्रस्थापना की पुष्टि एक पक्ष द्वारा की जाती है तथा दूसरे द्वारा इसका खंडन किया जाता है। एक पक्ष द्वारा प्रतिज्ञात एवं दूसरे द्वारा अस्वीकृत किए गए प्रत्येक महत्वपूर्ण प्रस्थापना को भिन्न मुद्दे की*

विषयवस्तु बनना चाहिए। न्यायालय का दायित्व है कि वह वादपत्र/याचिका एवं लिखित कथन/प्रतिवाद, यदि कोई हो, को पढ़े तथा फिर पक्षकारों के विद्वान अधिवक्तागण की सहायता से तथ्य या विधि की उन महत्वपूर्ण प्रस्थापनाओं का निर्धारण करें जिन पर पक्षकार के मध्य भिन्नता है। ***मुद्दों को निर्धारित एवं अभिलिखित किया जाएगा जिस पर वाद का निर्णय निर्भर करेगा। पक्षकारगण तथा उनके अधिवक्तागण मुद्दे निर्धारित करने की प्रक्रिया में न्यायालय की सहायता करने हेतु बाध्य हैं।*** *अधिवक्ता का कर्तव्य न्यायालय पर सन्निहित प्राथमिक दायित्व को कम नहीं करता है।* ***यह पीठासीन न्यायाधीश पर निर्भर है कि वह पर्याप्त रूप से अभिव्यक्त मुद्दों को निर्धारित करने हेतु प्रयास करें। समुचित वादबिंदुओं के निर्धारण में हुई चूक, ऐसी चूक के कारण उत्पन्न हुए पूर्वाग्रह के अधीन वाद को पुनर्विचारण हेतु प्रतिप्रेषित किये जाने का एक आधार हो सकती है।*** *यदि ऐसा प्रतीत होता है कि पक्षकार विधि अथवा तथ्य के किसी भी महत्वपूर्ण प्रश्न पर विवाद में नहीं हैं और न्यायालय तुरंत निर्णय सुना सकती है तब याचिका को प्रथम सुनवाई में निस्तारित किया जा सकता है। यदि पक्षकारों के मध्य विधि अथवा तथ्य के कुछ प्रश्नों पर विवाद हैं तब वाद अथवा याचिका को विचारण हेतु निर्धारित किया जाएगा जिसमें पक्षकारों से तथ्य के मुद्दों पर साक्ष्य प्रस्तुत करने का आह्वान किया जाएगा। साक्ष्य मुद्दों एवं तर्कों तक ही सीमित रहेंगे। मुद्दों एवं तर्कों के दायरे में न आने वाले विवादों पर कोई भी साक्ष्य सामान्यतः स्वीकार नहीं किया जाएगा क्योंकि प्रत्येक पक्ष उन मुद्दों के समर्थन में साक्ष्य पेश करता है जिन्हें साबित करने का भार उस पर होता है। किसी मुद्दे का उद्देश्य साक्ष्यों, तर्कों तथा निर्णय को किसी विशेष प्रश्न से आबद्ध करना है ताकि विवाद क्या है, इस पर कोई संदेह न रहे। तब मुद्दे के आधार पर किया गया यह निर्णय सटीक रूप से बता सकेगा कि विवाद का विनिश्चयन किस प्रकार किया गया था।"*

(न्यायालय द्वारा बल दिया गया)

14. इसी प्रकार माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **उत्तमराव शिवदास जानकर (उपरोक्त)** के मामले में निम्नानुसार धारित किया है:

"48. एक चुनाव याचिका में उच्च न्यायालय मूल क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय के रूप में कार्य करता है तथा ***चुनाव याचिका एक सिविल वाद है। ऐसे वाद में क्षेत्राधिकार कठोर प्रकृति में अपीलीय नहीं कहा जा सकता है।*** *स्पष्टतः उच्च न्यायालय ने अपनी शक्ति को मात्र एक अपीलीय प्राधिकारी के रूप में मानने में अवैध रूप से कार्य किया न कि एक मूल प्राधिकारी के रूप में, क्योंकि उसने मात्र यह प्रयास करने तथा निर्धारित करने हेतु कार्यवाही की कि निर्णय लेने की प्रक्रिया विधिक है अथवा नहीं। हमारे विचार में उच्च*

न्यायालय का वह दृष्टिकोण अवैध एवं अनुचित था।

*49. **उच्च न्यायालय मुद्दों को गुण-दोष के आधार पर निर्धारित करने एवं तद्पश्चात अपने संबंधित वादों के समर्थन में साक्ष्य प्रस्तुत करने हेतु कहने के लिए कर्तव्यबद्ध था।** उच्च न्यायालय को पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों के आधार पर प्रतिद्वंद्वी दावों की सत्यता की जांच करनी चाहिए थी एवं शपथपत्र की सत्यता का परीक्षण करना चाहिए था। उस संबंध में हस्तलेखन विशेषज्ञ की सलाह पर्याप्त होती एवं उसी आधार पर उच्च न्यायालय के लिए पक्षकारों के मध्य संपूर्ण वाद का निर्णय करना संभव हो सकता था। उच्च न्यायालय ने मूल क्षेत्राधिकार वाला न्यायालय होने के बावजूद अपीलीय क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय के रूप में कार्य किया एवं पक्षकारों को अपने तर्क के समर्थन में साक्ष्य प्रस्तुत करने की अनुमति दिए बिना याचिका खारिज कर दी।"*

(न्यायालय द्वारा बल दिया गया)

15. **माखन लाल बांगल (उपरोक्त)** एवं **के वेंकटेश्वर राव (उपरोक्त)** के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर विचार करते हुए इस न्यायालय ने **कुलसुम (उपरोक्त)** के वाद में निम्नानुसार धारित किया है:

*"अतः उत्तमराव शिवदास जानकर (उपरोक्त) एवं माखन लाल बांगल (उपरोक्त) के वाद में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि को ध्यान में रखते हुए मेरी राय में, **मुद्दों को पूर्व निर्धारित किए बिना मतों की पुनर्गणना का निदेश देने वाले विहित प्राधिकारी का आदेश विधि की दृष्टि से पूर्णतः अवैध तथा अपोषणीय है, तदनुसार इन्हें अपास्त किया जाता है।"***

(न्यायालय द्वारा बल दिया गया)

16. अतः उपरोक्त निर्णयों के परिशीलन से ज्ञात होता है कि चुनाव याचिका पर विचार करते समय चुनाव न्यायाधिकरण को चुनाव याचिका पर निर्णय लेने से पूर्व मुद्दे निर्धारित करने की आवश्यकता होती है।

17. **कैलाश (उपरोक्त)** के निर्णय में, जिस पर याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा अत्यधिक विश्वास व्यक्त किया गया हैं, सर्वोच्च न्यायालय ने लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1950 की धारा 87(1) के प्रावधानों पर विचार करते हुए धारित किया है कि चुनाव याचिका के विचारण हेतु उपबंधित प्रक्रिया की अनुप्रयोज्यता इसकी सभी कठोरताओं एवं सूक्ष्मताओं के साथ आकर्षित नहीं होती है और सिविल प्रक्रिया संहिता में निहित प्रक्रियात्मक नियम, अधिनियम 1947 के अंतर्गत चुनाव याचिकाओं की सुनवाई पर सुनम्यता के साथ मात्र दिशानिर्देशों के रूप में लागू होते हैं।

18. अधिनियम 1947 के प्रावधानों विशेषकर धारा 12- सी(5) के परिशीलन से यह ज्ञात होता है कि अधिनियम 1947 की धारा- 12 सी की उप-धारा(5) में यह प्रावधान किया गया है कि अधिनियम 1947 की धारा 12-सी की उप-धारा (4) के अंतर्गत विहित की जाने वाली शक्तियों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना,

नियमावली द्वारा अधिनियम 1947 की धारा-12सी की उपधारा(1) के अंतर्गत किसी प्रार्थनापत्र की संक्षिप्त सुनवाई तथा निस्तारण का प्रावधान किया जा सकता है। तत्पश्चात नियमावली 1994 बनाई गई हैं जो चुनाव याचिका की सुनवाई की प्रक्रिया उपबंधित करती हैं। कहीं भी नियमावली अथवा अधिनियम चुनाव न्यायाधिकरण को उसके समक्ष प्रस्तुत की गई चुनाव याचिका पर निर्णय लेने से पूर्व मुद्दे निर्धारित करने से नहीं रोकते हैं।

19. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **कल्याण सिंह चौहान (उपरोक्त)** के वाद में जिस पर याचिकाकर्ता द्वारा विश्वास व्यक्त किया गया है, **कैलाश (उपरोक्त)** के पूर्व निर्णय पर विचार करने के पश्चात निम्नवत धारित किया है:

> *"24. अतः उपरोक्त के दृष्टिगत यह स्पष्ट है कि चुनाव याचिका के पक्षकार को तात्विक तथ्य प्रस्तुत करना होगा और पर्याप्त साक्ष्य प्रस्तुत कर अपने दावे को पुष्ट करना होगा। न्यायालय तर्कों की सीमा से आगे नहीं बढ़ सकती है तथा जब तक किसी विशेष तथ्य अथवा विधि पर विवाद प्रस्तुत करने का तर्क न हों तब तक इस मुद्दे को निर्धारित नहीं किया जा सकता। अतः न्यायालय के लिए यह स्वीकार्य नहीं है कि वह किसी पक्ष को ऐसे साक्ष्य प्रस्तुत करने की अनुमति दे जो तर्क के अनुरूप नहीं है। यदि साक्ष्य प्रस्तुत भी किया जाता है तो यह उचित है कि इसे उपेक्षित कर दिया जाए क्योंकि इस पर विचार नहीं किया जा सकता।"*

20. अतः वास्तव में **कल्याण सिंह चौहान (उपरोक्त)** का निर्णय याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के तर्क का समर्थन करने के बजाय पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पारित आदेश का समर्थन करता है।

21. **समर सिंह (उपरोक्त)** वाद एक ऐसा वाद था जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने धारित किया था कि जहाँ कोई शिकायत या चुनाव याचिका किसी भी वाद हेतुक को प्रकट नहीं करती है वहाँ यह तर्क नहीं दिया जाता है कि जब कार्यवाही प्रारंभिक आपत्तियों पर निस्तारित की जा सकती है तब प्रतिवादीगण अथवा वादीगण द्वारा साक्ष्य प्रस्तुत करने में न्यायालय का महत्वपूर्ण समय क्यों नष्ट किया जाए।

22. अभिलेख पर प्रस्तुत तर्कों के अनुसार, याचिकाकर्ता का मामला यह नहीं है कि कुछ प्रारंभिक आपतियां थीं जो विहित प्राधिकारी के समक्ष प्रस्तुत की गई थीं, जिनके आधार पर चुनाव याचिका को संक्षेपतः खारिज कर दिया जाना चाहिए था। इसके अतिरिक्त **समर सिंह (उपरोक्त)** का निर्णय किसी चुनाव याचिका से संबंधित नहीं है एवं इस प्रकार वर्तमान वाद के तथ्यों हेतु इसकी कोई प्रासंगिकता नहीं है।

23. **के वेंकटेश्वर राव (उपरोक्त)** एवं **तरलोक सिंह (उपरोक्त)** वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय दो माननीय न्यायाधीशों का निर्णय हैं एवं स्वभाविक रुप से **माखन लाल बांगल (उपरोक्त)** के तीन न्यायाधीशों के निर्णय को वरीयता दी जायेगी।

24. उपरोक्त तर्क के साथ **माखन लाल बांगल (उपरोक्त)** एवं **उत्तमराव शिवदास जानकर**

(उपरोक्त) के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों तथा **कुलसुम (उपरोक्त)** के वाद में इस न्यायालय के निर्णय को ध्यान में रखते हुए यह स्पष्ट है कि अधिनियम 1947 की धारा 12 सी के अंतर्गत प्रस्तुत एक चुनाव याचिका में मुद्दों को विहित प्राधिकारी द्वारा निर्धारित किया जाना होता है जब तक कि विहित प्राधिकारी प्रतिवादीगण की ओर से प्रस्तुत प्रारंभिक आपत्ति पर चुनाव याचिका को खारिज हेतु कार्यवाही नहीं करता है।

25. उपरोक्त तर्क के दृष्टिगत प्रश्नगत आदेश में कोई अवैधता एवं कमी नहीं पाई जाती है, अतः आक्षेपित आदेश में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। तदनुसार पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा जारी निदेशों के अनुसार मामले पर निर्णय लेने हेतु विहित प्राधिकारी को कार्यवाही करने का निदेश देते हुए रिट याचिका का **निस्तारण** किया जाता है।

(2023) 3 ILRA 253

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल वाद

दिनांक: लखनऊ 01.03.2023

माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर

के समक्ष

रिट सी संख्या 2478 वर्ष 2022

मेसर्स राधिका कंस्ट्रक्शन्स ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिपक्षी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: श्री शिशिर चंद्र

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: सी.एस.सी., श्री तुषार वर्मा

A. सिविल कानून - खनन - अवैध खनन - उत्तर प्रदेश लघु खनिज (अनुदान) नियम, 1963 - नियम 58, 60 & 67 - रॉयल्टी किराया या अन्य बकाया का भुगतान न करने के परिणाम - राज्य सरकार खनन पट्टा समाप्त कर सकती है यदि पट्टेदार को नोटिस देकर तीस दिनों के भीतर राज्य सरकार के बकाया का भुगतान करने के लिए कहा गया हो, यदि वह भुगतान की तिथि के पंद्रह दिनों के भीतर नहीं किया गया - इस वाद में नोटिस की तारीख से तीस दिन दिनांक 11.05.2021 को समाप्त हो गए और उस तारीख के बाद पंद्रह दिन दिनांक 26.05.2021 को समाप्त हो गए, हालांकि निरस्त करने का आदेश दिनांक 26.4.2021 को वैधानिक अवधि समाप्त होने से पहले पारित किया गया - नियम 58 का उल्लंघन प्रतिवादियों द्वारा पट्टे की रद्दीकरण में किया गया - निरस्त करने का आदेश निरस्त किया गया (पैराग्राफ 30)

B. सिविल कानून - खनन - अवैध खनन - उत्तर प्रदेश लघु खनिज (अनुदान) नियम, 1963, नियम 58, 60, 67 - नियमों और पट्टे की शर्तों के उल्लंघन के परिणाम - यदि आरोप हैं कि अवैध खनन पट्टे के क्षेत्र से परे किया गया है, तो निरीक्षण रिपोर्ट में निरीक्षित क्षेत्र और अवैध खनन के आरोपित क्षेत्र के GPS कोऑर्डिनेट्स प्रदान किए जाने चाहिए - यह स्थापित करना होगा कि वास्तव में अवैध खनन पट्टे के क्षेत्र से परे किया गया था (पैराग्राफ 19, 23)

C. सिविल कानून - अवैध खनन - खनन पट्टा लाइसेंसों का रद्दीकरण - प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन - याचिका कर्ता को दिखाने के लिए नोटिस में केवल निरीक्षण टीम द्वारा दर्ज अवैध खनन के आरोप शामिल थे -

याचिकाकर्ता की जिम्मेदारी केवल निरीक्षण रिपोर्ट पर निर्धारित की गई, हालाँकि, निरीक्षण रिपोर्ट कभी भी याचिकाकर्ता को प्रदान नहीं की गई - जांच की प्रक्रिया स्पष्ट रूप से प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करती है, जिससे याचिका कर्ता की रक्षा को गंभीर नुकसान हुआ - जांच के दौरान कोई अन्य साक्ष्य या बयान दर्ज नहीं किए गए, और कोई दस्तावेज अभिलेख में नहीं लिए गए - निरीक्षण रिपोर्ट में यह नहीं प्रदर्शित किया गया कि निरीक्षण कब और कहाँ किया गया, कौन उपस्थित था, या यह याचिका कर्ता को आवंटित स्थान पर किया गया था या नहीं - भूखंड की पहचान के लिए उपयोग किए गए GPS कोऑर्डिनेट्स का कोई उल्लेख नहीं था - याचिका कर्ता को अवैध खनन के आरोप से जोड़ने के लिए कोई पर्याप्त और स्पष्ट सामग्री नहीं थी - जिला मजिस्ट्रेट द्वारा रद्दीकरण का आदेश बिना किसी सोच-समझ के उच्च प्राधिकरण यानी निदेशक, खनन और भूविज्ञान के निर्देश पर पारित किया गया - याचिका कर्ता द्वारा जवाब में जो आधार/रक्षा दी गई है, उसे न तो अपीलीय और न ही पुनरीक्षण प्राधिकरण द्वारा विचार किया गया, जिससे विवादित आदेश अवैध और मनमाना हो गया (पैराग्राफ 20, 23, 24)

D. सिविल कानून - अवैध खनन - खनन पट्टा लाइसेंसों का रद्दीकरण - पक्षपाती - डॉ. रोशन जैकब, जो भूविज्ञान और खनन के निदेशक थीं, ने जिला मजिस्ट्रेट को निर्देशित किया कि वे याचिकाकर्ता के विरुद्ध कार्यवाही करें और उसके खनन पट्टे को निरस्त करें, जिसे आदेश का पालन किया गया - इसके पश्चात उन्होंने स्वयं पुनरीक्षण प्राधिकरण के रूप में खनन पट्टे के रद्दीकरण के आदेश के विरुद्ध सुनवाई की और पुनरीक्षण को अस्वीकृत किया - पुनरीक्षण आदेश पक्षपाती के दोष से प्रभावित पाया गया (पैराग्राफ 27)

स्वीकृत।

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. रणवीर सिंह बनाम राज्य उत्तर प्रदेश और अन्य, 2017 (1) ADJ 240
2. मुस्तफा बनाम भारत संघ, (2022) 1 SCC 294

<u>माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर,</u>

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री शिशिर चंद्रा, के साथ ही विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री राकेश बाजपेयी, विशेष अधिवक्ता श्री तुषार वर्मा और प्रतिवादियों की ओर से अपर महाधिवक्ता श्री रमेश कुमार सिंह को सुना गया।

2. प्रस्तुत रिट याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ता ने राज्य सरकार द्वारा पारित आदेश दिनांक 16.3.2022, जिसके माध्यम से जिला मजिस्ट्रेट, बांदा द्वारा खनन पट्टे को निरस्त किए जाने हेतु पारित आदेश दिनांक 26.4.2021 के विरुद्ध याचिकाकर्ता द्वारा दायर किए गए पुनरीक्षण को खारिज कर दिया गया, को चुनौती दी है।

<u>प्रकरण के तथ्य:-</u>

3. प्रस्तुत प्रकरण के अधिनिर्णयन हेतु संक्षेप में आवश्यक तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता ने खनन हेतु ई-निविदा/ई-नीलामी के प्रतिक्रिया में नीलामी में भाग लिया और उसकी बोली को

उच्चतम घोषित किया गया और याचिकाकर्ता के पक्ष में दिनांक 6.6.2020 को पट्टा विलेख 6.6.2020 से 5.6.2025 तक की अवधि हेतु निष्पादित किया गया। खनन पट्टे के निष्पादन के पश्चात याचिकाकर्ता ने खनन कार्य प्रारम्भ कर दिया परन्तु अचानक 19.3.2021 को जिला मजिस्ट्रेट, बांदा द्वारा एकबार प्रयोग होने वाला पारणशब्द (ओ.टी.पी.) बंद कर दिया गया। इसके पश्चात, यह कथित है कि 13.3.2021 और 18.3.2021 के मध्य निदेशालय, खनन एवं भूतत्व, उत्तर प्रदेश के अधिकारियों की एक दल द्वारा निरीक्षण किया गया और अवैध खनन से संबंधित अनियमितताओं के संबंध में कुछ आरोप सही पाए गए तथा उपरोक्त निरीक्षण आख्या के आधार पर याचिकाकर्ता को 22.3.2021 को कारण बताओ नोटिस तामील करायी गयी। जिला मजिस्ट्रेट, बांदा द्वारा जारी कारण बताओ नोटिस के अनुसार यह उल्लेखित किया गया कि एक दल द्वारा निरीक्षण किया गया था जहां यह पाया गया कि याचिकाकर्ता अवैध खनन में संलिप्त है और उसने उस क्षेत्र से लघु खनिज निकाले हैं जोकि उसे आवंटित नहीं किया गया था तथा इतनी गहराई तक लघु खनिज निकाला गया जो उसको पट्टा विलेख के अनुसार अनुमेय नहीं था। तदनुसार, एक नोटिस दिया गया कि क्यों न पट्टा निरस्त कर दिया जाए। उक्त कारण बताओ नोटिस में उक्त अपराध हेतु अर्थदण्ड 50,000/- रुपये भी निर्धारित किया गया तथा 7,81,61,400/- रुपये स्वामिस्व की वसूली भी प्रस्तावित की गयी।

4. उपरोक्त कारण बताओ नोटिस के अनुसरण में याचिकाकर्ता ने 30.3.2021 को उत्तर प्रस्तुत किया जिसमें उन्होंने कारण बताओ नोटिस में लगाए गए आरोपों का खण्डन किया और वर्णित किया कि कारण बताओ नोटिस के अलावा याचिकाकर्ता को कोई तथ्य प्रदान नहीं किया गया जैसा कि न्यायालय द्वारा रिट सी संख्या 51986/ 2016 ***रणवीर सिंह बनाम उ.प्र. राज्य और अन्य, 2017 (1) एडीजे 240*** के प्रकरण में निर्देशित किया गया और अग्रेतर प्रस्तुत किया कि आरोपों के समर्थन में कोई विश्वसनीय साक्ष्य नहीं था और इसलिए, कारण बताओ नोटिस को निरस्त करने का अनुरोध किया गया।

5. याचिकाकर्ता के उत्तर पर विचार करने के उपरान्त जिला मजिस्ट्रेट ने अपने आदेश दिनांक 26 अप्रैल, 2021 के माध्यम से याचिकाकर्ता का खनन पट्टा निरस्त कर दिया। याची के उत्तर को खारिज करते हुए जिला मजिस्ट्रेट ने यह दर्ज किया है कि याची ने गैर आवंटित क्षेत्र से लघु खनिजों को निकाला और अतिरिक्त 12,970 घन मीटर रेत/मौरंग तथा 73,876 घन मीटर अवैध रूप से निकाली, इस तथ्य को प्रवर्तन दल द्वारा अपनी आख्या दिनांक 19.3.2021 में प्रतिवेदित किया गया। उन्होंने अग्रेतर पाया कि याचिकाकर्ता को 7,81,61,400/- रुपये स्वामिस्व की राशि जमा करने हेतु कहा गया था, परन्तु याचिकाकर्ता द्वारा उक्त राशि को भी जमा नहीं किया गया और तदनुसार उनका मत था कि याचिकाकर्ता से उक्त बकाया राशि की वसूली उत्तर प्रदेश लघु खनिज (रियायत) नियमावली, 1963 के नियम 41 (एच) (1) और 59 (2) के अन्तर्गत प्राविधानित अर्थदंड के साथ की जानी चाहिए। उन्होंने अग्रेतर इस तथ्य पर भी विचार किया कि निदेशक, खनन और भूतत्व, उत्तर प्रदेश द्वारा भौतिक निरीक्षण हेतु प्रवर्तन दल का गठन किया गया जिसने 14.3.2021 को स्थलीय निरीक्षण

कर 19.3.2021 को आख्या प्रस्तुत की, जिसमें यह पाया गया कि याचिकाकर्ता द्वारा 3.358 हेक्टेयर क्षेत्र में खनन कार्य किया गया और उक्त आदेश में आरोपित अन्य अवैध खनन के अतिरिक्त उसे आवंटित क्षेत्र से परे 73,876 घन मीटर रेत निकाली गई और यहां तक कि नदी के किनारे से भी इतनी गहराई तक रेत निकाली गई जो निर्धारित सीमा से अधिक थी। इस संबंध में याचिकाकर्ता के विरुद्ध प्राथमिकी भी दर्ज की गयी।

6. जिला मजिस्ट्रेट ने, निरीक्षण आख्या पर विश्वास किया और वर्णन किया कि निरीक्षण दल द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों के विपरीत याचिकाकर्ता न तो कोई साक्ष्य प्रस्तुत कर सका अथवा न ही अपना पक्ष साबित कर सका और इसलिए, याचिकाकर्ता के उत्तर को खारिज कर दिया और 7,81,61,400/- रुपये की राशि की वसूली हेतु आदेश पारित कर दिया और याचिकाकर्ता के पक्ष में जारी पट्टा विलेख को भी निरस्त कर दिया और उसे दो वर्ष की अवधि हेतु काली सूची में डाल दिया।

7. याचिकाकर्ता ने जिला मजिस्ट्रेट के आदेश दिनांक 26 अप्रैल, 2021 से क्षुब्ध होकर राज्य सरकार के समक्ष एक पुनरीक्षण प्रस्तुत किया, जोकि आक्षेपित आदेश दिनांक 16.3.2022 द्वारा निर्णीत हुआ और खारिज कर दिया गया। पुनरीक्षण प्राधिकारी ने याचिकाकर्ता के पुनरीक्षण को खारिज करते हुए और आक्षेपित आदेश पारित करते हुए इस तथ्य पर ध्यान दिया कि जिस पर याचिकाकर्ता को खनन पट्टा दिया गया था उस पर एक निरीक्षण किया गया और कुछ आरोप समक्ष प्रस्तुत हुए जिनके आधार पर याचिकाकर्ता को कारण बताओ नोटिस जारी किया गया जिसका उत्तर उसके द्वारा दिनांक 30.3.3021 को प्रस्तुत किया गया। याचिकाकर्ता का उत्तर संतोषजनक नहीं पाया गया और मात्र इस तथ्य के कारण कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोपों को निरीक्षण दल द्वारा निष्कर्षित किया गया था, जिला मजिस्ट्रेट के आदेश में कोई अवसन्नता नहीं पाई गई और तदनुसार पुनरीक्षण खारिज कर दिया गया।

8. प्रस्तुत याचिका में याचिकाकर्ता ने पट्टा विलेख को निरस्त किये जाने के साथ-साथ दिनांक 16.3.2022 के पुनरीक्षण आदेश और वसूली पर भी प्रश्न उठाया है।

<u>चुनौती के आधार:-</u>

9. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने सबसे पहले प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध निरस्तीकरण और वसूली का आदेश पारित करने से पूर्व याचिकाकर्ता को सुनवाई का कोई उचित अवसर नहीं दिया गया। अपनी तर्कों के समर्थन में उन्होंने प्रस्तुत किया है कि, वास्तव में, कोई निरीक्षण नहीं किया गया और 22.3.2021 के कारण बताओ नोटिस के अवलोकन से संकेत प्राप्त होता है कि याचिकाकर्ता को कारण बताओ नोटिस के साथ निरीक्षण आख्या की प्रति सहित कोई भी तथ्य उपलब्ध नहीं कराया गया तथा याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोपों का आधार बनने वाले प्रासंगिक दस्तावेजों और तथ्य के अभाव में पूरी कार्यवाही प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करते हुए की गई और तदनुसार यह अवैध, मनमानी और अपास्त किये जाने योग्य है।

10. दूसरी ओर, विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री राकेश बाजपेयी ने आक्षेपित आदेशों का समर्थन करते हुए कहा कि कारण बताओ नोटिस के अवलोकन से संकेत मिलता है कि कारण बताओ नोटिस में निरीक्षण आख्या की सम्पूर्ण अन्तर्वस्तु पुनः प्रस्तुत की गयी। उन्होंने इस तथ्य से विवाद नहीं किया कि निरीक्षण आख्या दिनांक 19.3.2021 की प्रति याचिकाकर्ता को कभी प्रदान नहीं की गयी।

11. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने अग्रेतर प्रस्तुत किया कि निरीक्षण आख्या और अन्य सभी प्रासंगिक दस्तावेज राज्य सरकार द्वारा प्रति शपथपत्र के साथ संलग्न किए गए हैं। अग्रेतर यह प्रस्तुत किया गया कि निरीक्षण आख्या 19.3.2021 को निदेशक, खनन एवं भूतत्व, उत्तर प्रदेश सरकार को प्रस्तुत की गई थी, जिन्होंने जिला मजिस्ट्रेट, बांदा को संबोधित करते हुए पत्र दिनांकित 20.3.2021 के माध्यम से याचिकाकर्ता के विरुद्ध कार्यवाही किये जाने हेतु निरीक्षण आख्या की एक प्रति अग्रेषित की थी। उक्त आख्या के साथ ही उन्होंने जिला मजिस्ट्रेट को उसमें उल्लिखित आदेश पारित करने के स्पष्ट निर्देश दिये थे। उक्त पत्र के क्रम संख्या 15 पर याचिकाकर्ता के नाम का उल्लेख मिलता है जिसमें जिला मजिस्ट्रेट को याचिकाकर्ता के विरुद्ध प्राथमिकी दर्ज करने, उसका खनन पट्टा निरस्त करने तथा उसका नाम काली सूची में डालने तथा उससे अवैध खनन के आरोपों के संबंध में वसूली किए जाने के निर्देश दिये गये। सुविधा हेतु निदेशक के निर्देशों को निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है:-

'स्वीकृत क्षेत्र से बाहर एवं सटे खण्ड के क्षेत्र में अवैध खनन तथा अन्य अनियमितता पाये जाने पर पट्टेधारक के विरूद्ध प्राथमिकी दर्ज कराते हुए नियमानुसार पट्टा निरस्तीकरण एवं पट्टेधारक का नाम काली सूची में डाला जाय तथा अवैध खनन के विरुद्ध पट्टाधारक से नियमानुसार राजस्व क्षति की धनराशि वसूल किये जाने की कार्यवाही की जाय।"

12. याचिकाकर्ता द्वारा यह भी प्रस्तुत किया गया है कि जिला मजिस्ट्रेट द्वारा बिना किसी विवेक का इस्तेमाल किये हुए सम्पूर्ण कार्यवाहियाँ आयोजित की गयी हैं और निदेशक, खनन और भूतत्व द्वारा जारी निर्देशों के अवलोकन से, जिला मजिस्ट्रेट जोकि सचिव (खनन और भूतत्व) के अधीनस्थ हैं, अनुपालन करने हेतु कर्तव्यबद्ध थे और वास्तव में, उन्होंने निर्देशों का अनुपालन किया और परिणामस्वरूप यह पूर्वाग्रह तथा जिला मजिस्ट्रेट द्वारा विवेक के उपयोग न करने का स्पष्ट प्रकरण है।

13. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने अग्रेतर इस आधार पर आक्षेपित आदेशों की आलोचना की है कि दल ए द्वारा 19 व्यक्तियों, जोकि, उनके पक्ष में जारी किए गए पट्टा अनुज्ञप्ति के पट्टा धारक थे, के संबंध में निरीक्षण किया गया था और निरीक्षण आख्या दिनांक 19.3.2021 के अनुसरण में सभी 19 व्यक्तियों के विरुद्ध कार्रवाई की गई और सभी मामलों में निदेशक, खनन एवं भूतत्व के निर्देशों/आदेशों, जैसा कि उनके पत्र दिनांक

20.3.2021 में निहित था, का जिला मजिस्ट्रेट द्वारा विधिवत अनुकरण और अनुपालन किया गया और उक्त सूची में सम्मिलित सभी व्यक्तियों के पट्टों को निरस्त कर दिया गया। अग्रेतर कथन किया गया कि सभी निरस्तीकरण आदेशों के विरुद्ध संबंधित व्यक्तियों ने राज्य सरकार के समक्ष पुनरीक्षण दायर किये, जोकि पुनः निदेशक (खनन और भूतत्व), वही अधिकारी जिसने सचिव (खनन एवं भूतत्व) उत्तर प्रदेश सरकार के रूप में अपनी क्षमता में दिनांक 20.3.2021 को पत्र लिखा था, द्वारा निर्णीत किये गये तथा क्रम संख्या 16 पर पुनरीक्षणकर्ता अर्थात् वीएआर एंटरप्राइजेज प्राइवेट लिमिटेड के पुनरीक्षण को छोड़कर सभी पुनरीक्षणों को खारिज कर दिया गया। वीएआर एंटरप्राइजेज प्राइवेट लिमिटेड द्वारा दायर पुनरीक्षण संख्या 128 (आर)/एसएम/2021 में पारित आदेश की एक प्रति को रिट याचिका के साथ संलग्न किया गया जिसमें उसी आख्या के आधार पर वीएआर एंटरप्राइजेज प्राइवेट लिमिटेड का पुनरीक्षण को यह कहते हुए अनुमत किया गया कि निरीक्षण आख्या में स्पष्ट खामियां थीं और उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता और यह इंगित करने हेतु कोई तथ्य नहीं है कि दोषी पट्टा धारक, वास्तव में, किसी भी अवैध खनन में सम्मिलित अथवा लिप्त था तथा उपरोक्त परिस्थितियों में सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार (खनन एवं भूतत्व) ने उसी तथ्य के आधार पर पुनरीक्षण प्राधिकारी की शक्ति का प्रयोग करते हुए आदेश दिनांक 24.2.2022 द्वारा उक्त पुनरीक्षण को अनुमत किया।

14. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने दिनांक 24.2.2022 के आदेश की समतुल्यता का दावा किया और प्रस्तुत किया कि वीएआर एंटरप्राइजेज प्राइवेट लिमिटेड के प्रकरण में पुनरीक्षण पर विचार करते समय पुनरीक्षण प्राधिकारी ने, उन्हीं तथ्यों के आधार पर और उन्हीं कारणों से याचिकाकर्ता का पुनरीक्षण खारिज कर, याचिकाकर्ता के विरुद्ध भेदभाव किया है।

15. इसके विपरीत, श्री राकेश बाजपेयी ने तर्क प्रस्तुत किया कि आक्षेपित आदेश पारित करने के पूर्व याचिकाकर्ता को सुनवाई का समुचित अवसर दिया गया था। उनका कथन है कि उत्तर प्रदेश लघु खनिज (रियायत) नियमावली, नियमावली 1963 के नियम 60 तथा 67 के अन्तर्गत निहित प्रावधानों के अनुसार, किसी भी निरस्तीकरण या काली सूची में डालने का आदेश पारित करने से पूर्व याचिकाकर्ता को सुनवाई का समुचित अवसर दिया जाना चाहिए। उनका कथन है कि निरीक्षण उक्त नियमावली के अन्तर्गत निर्धारित प्राधिकारी द्वारा किया गया था और उक्त निरीक्षण के अनुसार यह सुरक्षित रूप से कहा जा सकता है कि निरीक्षण आख्या के अनुसार याचिकाकर्ता को अवैध खनन में लिप्त पाया गया था और इसलिए, उसे कारण बताओ नोटिस जारी किया गया तथा उक्त कारण बताओ नोटिस का उत्तर प्राप्त होने के पश्चात ही पट्टा विलेख को निरस्त करने और अर्थदण्ड लगाने हेतु उक्त अधिनियम में निहित प्रावधानों के अनुसार कार्रवाई की गयी। उनका कथन है कि याचिकाकर्ता को सुनवाई का समुचित अवसर दिया गया था और परिणामस्वरूप यह कहा नहीं जा सकता कि कार्यवाहियाँ विधि प्रतिकूल हैं और इस प्रकार उन्होंने सम्पूर्ण कार्यवाही के साथ-साथ आक्षेपित आदेशों का भी समर्थन किया। उन्होंने

अग्रेतर दृढ़तापूर्वक कथन किया कि दिनांक 19.3.2021 की निरीक्षण आख्या की प्रति उपलब्ध न कराने से याचिकाकर्ता के प्रकरण पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा है और न ही जांच आख्या उपलब्ध न कराने से याचिकाकर्ता पर कोई प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है और इस प्रकार, यह नहीं कहा जा सकता है कि इसमें प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन है।

<u>परिचर्चा:-</u>

16. मैंने संबंधित पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना और अभिलेख का अवलोकन किया।

17. राज्य सरकार ने जिला बांदा में विभिन्न व्यक्तियों से अवैध खनन के संबंध में कुछ शिकायतें प्राप्त होने के पश्चात विभिन्न क्षेत्रों, जिनके खनन के उद्देश्य से पट्टा दिया गया था, का निरीक्षण करने हेतु तीन प्रवर्तन दलों का गठन किया। निदेशक, खनन एवं भूतत्व द्वारा पारित आदेश दिनांक 12.3.2021, जोकि अभिलेख पर है, इंगित करता है कि उक्त दल में सर्वेक्षक के साथ एक ही विभाग के तीन अधिकारी सम्मिलित थे। अग्रेतर यह प्रस्तुत किया गया है कि उक्त मंडलियों ने निरीक्षण किया और 19.3.2021 को निदेशक को अपनी निरीक्षण आख्यायें सौंपी। उक्त आख्या में निष्कर्ष मात्र उस क्षेत्र की सीमा तक सीमित है जिसमें खनन किया गया और प्रत्येक पट्टों के संबंध में निकाले गए खनिज की मात्रा का संकेत दिया गया है। यह भी अग्रेतर अवलोकन किया गया कि उक्त आख्या में इस बात का कोई उल्लेख नहीं है कि उक्त निरीक्षण कब किया गया अथवा क्या पट्टा धारकों को उक्त निरीक्षण के बारे में कभी सूचित किया गया या निरीक्षण किस तरीके से किया गया, ऐसे कुछ कारक हैं जिनका उल्लेख उक्त निरीक्षण आख्या में नहीं मिलता है। प्रत्येक अनुज्ञप्ति धारकों के संबंध में निरीक्षण आख्या में अत्यंत गोपनीय तरीके से मात्र इतना ही दर्ज किया गया है कि अनुज्ञप्ति धारक अवैध खनन में सम्मिलित हैं और उन मात्राओं का उल्लेख किया गया है जोकि सभी पट्टा धारकों द्वारा अवैध रूप से खनन किया गया।

18. दूसरी ओर, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने यह कथन किया कि उक्त निरीक्षण किया गया और सर्वेक्षक की डायरी में प्रविष्टियाँ की गईं, जिन्हें प्रति शपथपत्र में भी सम्मिलित किया गया है। यह देखा जा सकता है कि मात्र सर्वेक्षक ने ही आख्या पर हस्ताक्षर किये हैं। यह आश्चर्य की बात है कि यदि इस तथ्य को स्वीकार भी कर लिया जाए कि याचिकाकर्ता के संबंध में दिनांक 17.3.2021 को कुछ अनियमितताएं पाई गई थीं तो निरीक्षण दल के शेष सदस्यों ने उक्त सर्वेक्षण आख्या पर हस्ताक्षर क्यों नहीं किए, यह एक पहलू है जिसका उत्तर न तो प्रति शपथपत्र में प्रतिवादियों द्वारा और न ही इसका संतोषजनक उत्तर स्थायी अधिवक्ता द्वारा दिया गया और इसलिए, निरीक्षण स्वयं में संदिग्ध हो जाता है। सचिव, खनन एवं भूतत्व को सौंपी गई उक्त निरीक्षण आख्या के आधार पर ही याचिकाकर्ता के विरुद्ध और अन्य सभी पट्टा धारकों के विरुद्ध भी सम्पूर्ण कार्यवाही की गयी। अग्रेतर यह ध्यातव्य है कि पट्टा विलेख दिनांकित 6 जून, 2020 के अनुसार याचिकाकर्ता को निम्नलिखित क्षेत्र आवंटित किए गए थे:-

बिन्दु	अक्षान्तर	देशान्तर
क	25°43.419 उ	80° 33.858 पू
ख	25°43.350 उ	80° 33.977 पू
ग	25° 43.074 उ	80° 33.810 पू
घ	25°43.157 उ	80° 33.701 पू

19. अग्रेतर, उक्त खनन क्षेत्र को, उसमें वर्णन किये गये, पट्टे वाले क्षेत्र के उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम में अन्य भूखंडों के संदर्भ में वर्णित किया गया था। यह ध्यातव्य है कि निरीक्षण आख्या में मात्र यह दर्ज किया गया है कि याचिकाकर्ता ने खनन क्षेत्र के बाहर के क्षेत्रों से उत्खनन और लघु खनिज निकाले हैं। इसका कहीं भी उल्लेख नहीं किया गया कि निरीक्षण कब और कहाँ किया गया, निरीक्षण के दौरान कौन मौजूद थे और सबसे महत्वपूर्ण यह है कि याचिकाकर्ता को आवंटित स्थान पर निरीक्षण किया गया था या नहीं, यह भी संदिग्ध है क्योंकि भूखंड भूमंडलीय स्थिति निर्धारण प्रणाली निर्देशांक द्वारा पहचाना जा सकता है और इसमें कोई उल्लेख नहीं है कि भूखंड भूमंडलीय स्थिति निर्धारण प्रणाली निर्देशांकों का उपयोग भूखण्ड की पहचान हेतु किया गया। ये आवश्यक तथ्य हैं जोकि प्रकरण की तह तक जाते हैं। यदि याचिकाकर्ता के विरुद्ध यह आरोप हैं कि उसने पट्टे पर दिए गए क्षेत्र से परे अवैध रूप से खनन किया तो जांच दल का यह कर्तव्य था कि वह इसकी पहचान करे/बताए परन्तु प्रकरण को स्थापित करने का प्रयास नहीं किया गया कि वास्तव में, पट्टे वाले क्षेत्र से परे क्षेत्र पर अवैध खनन किया गया था। ये सभी तथ्य विस्तारपूर्वक वर्णित होने चाहिए थे क्योंकि आख्या में यह निष्कर्ष दर्ज किया गया था कि उक्त निष्कर्षण पट्टे वाले क्षेत्र से परे क्षेत्र में किया गया है तो निरीक्षण आख्या में उनके निर्देशांक देकर इसका वर्णन किया जाना चाहिए था जोकि नहीं किया गया।

20. उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों में इस न्यायालय का यह मत है कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध अवैध खनन के आरोप स्पष्ट रूप से स्थापित नहीं किए जा सके हैं और मात्र इस कथन से कि उसके द्वारा बड़ी मात्रा में खनिज निकाले गए हैं, स्वयमेव ही साबित नहीं होगा कि याचिकाकर्ता अवैध खनन में लिप्त था। आरोपों को साबित करने हेतु आरोपों के समर्थन में विश्वसनीय साक्ष्य एकत्र करना और प्रस्तुत करना राज्य का कर्तव्य है। इस संबंध में दिए गये तर्कों में, विशेष रूप से, ***रणवीर सिंह बनाम उ.प्र. राज्य व अन्य, 2017 (1) एडीजे 240*** के प्रकरण में इस न्यायालय के निर्णय पर आश्रय का बल है, जहां इस न्यायालय ने निम्नानुसार व्यवस्था दी:-

"33. एक बार जिम्मेदारी याचिकाकर्ता के कंधे पर लादनी थी, तो यह राज्य का दायित्व था कि उपलब्ध विश्वसनीय साक्ष्यों के माध्यम से साबित करे कि यह याचिकाकर्ता था, जोकि अवैध खनन में लिप्त था और उक्त निर्देश में, कारण बताओ नोटिस जारी करने के अलावा, सभी साक्ष्य जिन पर विश्वास किया जाना था, अर्थात् पदधारी जिन्होंने खोज और सर्वेक्षण किया और जो पदधारी

याचिकाकर्ता के विरुद्ध गवाही देने हेतु आगे आये, उनके नाम का खुलासा किया जाना चाहिए था और वास्तव में, उन्हें राज्य के प्रकरण, कि याचिकाकर्ता अवैध खनन में सम्मिलित था, के समर्थन हेतु प्रस्तुत किया जाना चाहिए था। इतना ही नहीं, प्रक्रिया के एक भाग के रूप में याचिकाकर्ता स्वयं के बचाव में साक्ष्यों, जोकि उसके विरुद्ध प्रस्तुत किये गये, की सत्यता पर प्रश्न उठाने तथा अपने स्वयं के साक्ष्य प्रस्तुत करने, यदि कोई हो, का उचित अवसर पाने का अधिकारी था। निर्णयकर्ता निष्पक्ष रूप से कार्य करने हेतु बाध्य है, क्योंकि वस्तुगत योजना के अंतर्गत उसके द्वारा किये गये निर्धारण के नागरिक प्रभाव होंगे, क्योंकि अवैध खनन के आरोपी उस व्यक्ति को आरोप सिद्ध होने पर वित्तीय दायित्व का वहन करना होगा और इसके विपरीत स्थिति में, राज्य को क्षति होगी।"

21. अग्रेतर यह ध्यातव्य है कि कार्यवाहियों के दौरान निरीक्षण आख्या के अतिरिक्त कोई अन्य साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया जो यह इंगित कर सके कि याचिकाकर्ता अथवा अन्य व्यक्ति अवैध खनन में लिप्त थे। इस संबंध में कोई भी साक्ष्य न तो इस न्यायालय के समक्ष और न ही प्रतिवादियों द्वारा की गई जांच के दौरान, जिसके परिणामस्वरूप पट्टा अनुज्ञप्तियाँ निरस्त कर दी गयीं, अभिलेख पर लाया गया।

<u>दस्तावेज़ न उपलब्ध कराया जाना:-</u>

22. प्रस्तुत प्रकरण में निरीक्षण आख्या उपलब्ध नहीं कराये जाने के संबंध में, यह विवादित नहीं है कि कारण बताओ नोटिस में मात्र अवैध खनन के संबंध में आरोप, जैसा कि निरीक्षण दल द्वारा दर्ज किया गया था, अन्तर्विष्ट थे। याचिकाकर्ता को निरीक्षण आख्या की प्रति कभी नहीं प्रदान की गयी। हालाँकि, स्थायी अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णयों, ***गोरखा सिक्योरिटी सर्विसेज बनाम सरकार (एनसीटी दिल्ली) और अन्य, (2014) 9 सर्वोच्च न्यायालय प्रकरण 105*** के प्रकरण सहित कई निर्णय हैं जहां यह व्यवस्था दी जा चुकी है कि यदि अपचारी को जांच आख्या नहीं दी जाती है तो कार्यवाही स्वयमेव अवैध और मनमानी तथा नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघनकारी नहीं होगी परन्तु अपचारी को यह दर्शाना होगा कि जांच आख्या की प्रति उपलब्ध न कराने के कारण उसके साथ पूर्वाग्रह कारित हुआ।

23. यह ध्यातव्य है कि प्रस्तुत प्रकरण में याचिकाकर्ता के विरुद्ध कार्यवाहियाँ मात्र निरीक्षण आख्या के आधार पर संचालित की गयी हैं। निर्विवाद रूप से, उक्त अन्वेषण के दौरान कोई अन्य तथ्य प्रस्तुत नहीं किया गया और न ही अन्वेषण के दौरान कोई साक्ष्य या बयान दर्ज किया गया। उक्त अन्वेषण के दौरान कभी भी कोई दस्तावेज अभिलेख पर नहीं लिये गये तथा अवैध खनन और अन्य आरोपों के संबंध में याचिकाकर्ता की दोषसिद्धि मात्र निरीक्षण आख्या

के आधार पर तय कर दी गयी। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि प्रकरण की प्रस्तुत परिस्थितियों में निरीक्षण आख्या एक आवश्यक तथ्य/दस्तावेज है, जिसे याचिकाकर्ता को प्रदान किया जाना चाहिए था क्योंकि यहां तक कि आक्षेपित आदेशों में भी याचिकाकर्ता को निरीक्षण आख्या दिनांकित 19 मार्च, 2021 के आधार पर अवैध खनन का दोषी ठहराया गया है। एक बार जब यह ज्ञात होता है कि कार्यवाही मात्र निरीक्षण आख्या के आधार पर की गई है, तो उस व्यक्ति, जिसके विरुद्ध कार्यवाही को सम्पन्न किया जाना है, को उक्त आख्या उपलब्ध न कराना अवश्य ही न्याय के विफल होने का गठन करता है क्योंकि उसे उन सभी तथ्यों को प्राप्त करने का अधिकार है जो उसके विरुद्ध आरोप/अभिकथन का गठन करते हैं ताकि वह आरोपों का पर्याप्त रूप से उत्तर दे सके और प्रभावी ढंग से अपना बचाव कर सके, जबकि प्रस्तुत प्रकरण में एकमात्र तथ्य/दस्तावेज जिसके आधार पर याचिकाकर्ता के विरुद्ध कार्रवाई की गई है, उसे उपलब्ध नहीं कराया गया है और इसलिए, यह सुरक्षित रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इस संबंध में याचिकाकर्ता के विरुद्ध जांच की कार्यवाहियाँ स्पष्ट रूप से प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन हैं तथा याचिकाकर्ता का बचाव गंभीर रुप से पूर्वाग्रहग्रस्त हुआ है। भले ही कारण बताओ नोटिस में आरोपों के योग और सार का उल्लेख किया गया है, परन्तु याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोपों को स्थापित करने के अलावा निरीक्षण आख्या अन्य पहलुओं के बारे में व्याख्या नहीं करती है कि निरीक्षण कैसे और कहाँ (स्थान) सम्पन्न किया गया, समिति द्वारा किस तरीके से निरीक्षण किया गया और क्या कथित तौर पर अवैध खनन में सम्मिलित व्यक्तियों को उक्त निरीक्षण करने से पहले कभी नोटिस दिया गया, कुछ कारक हैं जो उन व्यक्तियों हेतु बहुत महत्वपूर्ण तथ्य हैं, जिनके विरुद्ध कार्रवाई की गई है उन्हें अपने कृत्यों के बचाव करने का अधिकार है और उन्हें सभी वस्तुगत तथ्यों को जानने का अधिकार है और उसके पश्चात ही वे उक्त आख्या का जवाब दे सकेंगे। निरीक्षण आख्या के अभाव में उनका बचाव गंभीर रूप से पूर्वाग्रहग्रस्त हुआ और चूँकि उनका निहित अधिकार छीन लिया गया, जिसके निस्संदेह नागरिक परिणाम हैं। अभिलेखों के अवलोकन से यह स्पष्ट नहीं है कि निर्देशांक क्या थे, निरीक्षण कहां सम्पन्न किया गया और मात्र यह दर्ज करना कि जांच उन भूखंडों पर सम्पन्न की गई थी जिन पर पट्टा निष्पादित किया गया है, कुछ ऐसे कारक हैं जिन्हें अभियोजन पक्ष द्वारा दोषी पट्टा धारकों के विरुद्ध, उनके पट्टों को निरस्त करने और जुर्माने की वसूली, जैसे दंडात्मक निष्कर्ष देने से पूर्व आवश्यक रूप से साबित किया जाना चाहिए था। पट्टे में खनन हेतु आवंटित क्षेत्र को भूमंडलीय स्थिति निर्धारण प्रणाली निर्देशांकों सहित वर्णित किया गया है और, इसलिए, उस क्षेत्र के भूमंडलीय स्थिति निर्धारण प्रणाली के निर्देशांकों जिन पर निरीक्षण किया गया और पट्टे वाले क्षेत्र से परे क्षेत्र के निर्देशांकों को भी जिन पर, याचिकाकर्ता पर अवैध रूप से खनन करने का आरोप लगाया गया, उपलब्ध कराया जाना अनिवार्य था। किसी भी ठोस तथ्य या दस्तावेज़ के अभाव में अवैध खनन के आरोप को साबित करने की मांग की गई है। इस न्यायालय का सुविचारित मत है कि याचिकाकर्ता को अवैध खनन के आरोप से जोड़ने हेतु पर्याप्त ठोस तथ्य नहीं थे तथा ***रणवीर सिंह बनाम उ.प्र. राज्य (उपरोक्त)***, के निर्णय के अनुसार राज्य पर

दायित्व का निर्वहन नहीं किया गया और परिणामस्वरूप मात्र निरीक्षण आख्या के आधार पर याचिकाकर्ता के विरुद्ध कार्यवाही मनमानी है।

<u>पूर्वाग्रह:-</u>

24. नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन के अलावा, यह भी अग्रेतर ध्यातव्य है कि कार्यवाही स्वयं उस समय ही संदिग्ध हो गई जब निदेशक, भूतत्व और खनन ने जिला मजिस्ट्रेट को पट्टा धारकों के विरुद्ध एक विशेष तरीके से कार्यवाही करने और अनुज्ञप्ति निरस्त करने और उन्हें काली सूची में डालने का निर्देश दिया। यह उचित होता कि निदेशक, खनन एवं भूतत्व मात्र निरीक्षण आख्या को अग्रेषित करतीं और सक्षम प्राधिकारी अर्थात् जिला मजिस्ट्रेट को पट्टा धारकों को सुनवाई का उचित अवसर देने के पश्चात विधि के अनुसार अग्रेतर कार्यवाही का निर्देश देतीं, परन्तु जिला मजिस्ट्रेट को विशेष रूप से याचिकाकर्ता और अन्य समस्थिति व्यक्तियों के पट्टे को निरस्त करने और उन्हें काली सूची में डालने हेतु निर्देशित करने से यह स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि प्रतिवादियों ने अन्वेषण की कार्यवाहियों के परिणाम को पूर्वचिन्तित और पूर्वनिर्धारित कर लिया था, जिसे जिला मजिस्ट्रेट ने आज्ञाकारी रूप से अनुपालन किया और, इसलिए, निरस्तीकरण आदेश बिना किसी विवेक के प्रयोग और उच्च प्राधिकारी के आदेश पर पारित किया गया है और इसके अवलोकन से यह स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि याचिकाकर्ता द्वारा उत्तर में दिए गए आधार/बचाव पर अपीलीय या पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा भी विचार नहीं किया गया जिससे आक्षेपित आदेश अवैध और मनमाने प्रतिपादित हुये।

25. सचिव, उ.प्र. शासन द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 16.03.2022 का विरोध करते हुए यह प्रस्तुत किया गया है कि यह निर्णय डॉ. रोशन जैकब द्वारा लिया गया है, जोकि, निदेशक, भूतत्व और खनन का प्रभार भी संभाल रही थीं जब उन्होंने पत्र दिनांकित 20.03.2021 जारी किया था, जिसके द्वारा जिला मजिस्ट्रेट को उसके विरुद्ध कार्रवाई करने और उसे काली सूची में डालने के स्पष्ट निर्देश जारी किए गए थे। पूर्वाग्रह से संबंधित तर्क पर विचार करने हेतु इस संबंध में सर्वोच्च न्यायालय के प्रतिपादन पर विचार करना उपयोगी होगा।

26. ***मुस्तफा बनाम भारत संघ, (2022) 1 एससीसी 294*** के प्रकरण में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार व्यवस्था दी:-

> *__36.__ हमारे प्रकरण हेतु अधिक उपयुक्त जी. सरना बनाम लखनऊ विश्वविद्यालय [जी. सरना बनाम लखनऊ विश्वविद्यालय, (1976) 3 एससीसी 585: 1976 एससीसी (एल एंड एस) 474] होगा, जिसमें इसी तरह का प्रश्न इस न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ के समक्ष विचार हेतु प्रस्तुत हुआ, जिसमें चयन के समक्ष उपस्थित होने के पश्चात और उसकी नियुक्ति न हो पाने पर याचिकाकर्ता ने समिति*

चयन समिति के पांच में से तीन सदस्यों के विरुद्ध पूर्वाग्रह का आरोप लगाते हुए चयन परिणाम को चुनौती दी थी। उसने समिति के गठन को भी चुनौती दी थी। चुनौती को खारिज करते हुए, इस न्यायालय ने व्यवस्था दी: (एससीसी पृष्ठ 591, पैरा 15)

> *"15. हालाँकि, हम प्रस्तुत प्रकरण में पूर्वाग्रह की तर्कसंगतता या पूर्वाग्रह की वास्तविक संभावना के प्रश्न पर विचार करना आवश्यक नहीं समझते हैं क्योंकि इस तथ्य के बावजूद कि अपीलकर्ता को सभी प्रासंगिक तथ्य ज्ञात थे, उसने साक्षात्कार में उपस्थित होने से पूर्व अथवा साक्षात्कार के समय चयन समिति के गठन के विरुद्ध किंचित मात्र भी प्रयत्न नहीं किया। ऐसा प्रतीत होता है कि उसने स्वेच्छा से समिति के समक्ष उपस्थित होकर उससे अनुकूल अनुशंसा प्राप्त करने का अवसर प्राप्त कर लिया। ऐसा करके, अब उनके पास वापस पलटने और समिति के गठन पर प्रश्न उठाने का विकल्प शेष नहीं है। यह मत माणक लाल प्रकरण [माणक लाल बनाम प्रेम चंद सिंघवी, एआईआर 1957 एससी 425] में इस न्यायालय के निर्णय से बल प्राप्त करता है जहां कमोबेश ऐसी ही परिस्थितियां में, यह व्यवस्था दी गयी कि कार्यवाही के प्रारम्भिक चरण में अपीलकर्ता की समान दलील प्रस्तुत करने में विफलता ने उसके विरुद्ध स्वत्व त्याग की एक प्रभावी बाधा उत्पन्न कर दी। उसमें की गयी निम्नवत् टिम्पणियों को उद्धत किया जाना समीचीन है: (एआईआर पृष्ठ 432, पैरा 9)*
>
> *'9.... यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि*

अपीलकर्ता गठित अधिकरण से एक अनुकूल आख्या प्राप्त करने का एक अवसर प्राप्त करना चाहता था और जब उसने पाया कि उसे एक प्रतिकूल आख्या का सामना करना पड़ा है, तो उसने प्रस्तुत तकनीकी बिंदु को उठाने का तरीका अपनाया।' "

37. *जी. सरना [जी. सरना बनाम लखनऊ विश्वविद्यालय, (1976) 3 एससीसी 585: 1976 एससीसी (एल एंड एस) 474] में उपरोक्त निर्णय को मद्रास इंस्टीट्यूट ऑफ डेवलपमेंट स्टडीज बनाम के शिवसुब्रमण्यन [मद्रास इंस्टीट्यूट ऑफ डेवलपमेंट स्टडीज बनाम के शिवसुब्रमण्यन, (2016) 1 एससीसी 454: (2016) 1 एससीसी (एल एंड एस) 164] में संदर्भित किया गया, जिसमें सहायक प्रोफेसर के पद पर चयन को इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि उम्मीदवारों की लघुसूचीयन संकाय भर्ती नियमों के विपरीत थी। चुनौती को विबंधन के आधार पर अस्वीकार कर दिया गया था क्योंकि प्रतिवादी ने विज्ञापन के तथ्यों और नियमों में कथित भिन्नताओं पर कोई आपत्ति उठाए बिना, अपना आवेदन प्रस्तुत किया और विशेषज्ञों की समिति के समक्ष उपस्थित होकर चयन प्रक्रिया में सम्मिलित हुआ।*

38. *पी.डी. दिनाकरन (1) बनाम न्यायाधीश जांच समिति [पी.डी. दिनाकरन (1) बनाम न्यायाधीश जांच समिति, (2011) 8 एससीसी 380], में इस न्यायालय के निर्णय का संदर्भ लेना भी समान उपयुक्त होगा, जिसमें यह आरोप था कि न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968 की धारा 3(2) के अन्तर्गत राज्यों की परिषद् (राज्य सभा) के अध्यक्ष द्वारा गठित समिति के सदस्यों में से एक पूर्वाग्रहग्रस्त था। यह निर्णय पूर्वाग्रह और पक्षपात के प्रश्न पर देशी और विदेशी दोनों निर्णयों को बड़े पैमाने पर वर्णन और आत्मसात करता है और जी. सरना [जी. सरना बनाम लखनऊ विश्वविद्यालय, (1976) 3 एससीसी 585: 1976 एससीसी (एल एंड एस) 474] प्रकरण: (जी सरना प्रकरण [जी सरना बनाम*

लखनऊ विश्वविद्यालय, (1976) 3 एससीसी 585: 1976 एससीसी (एल एंड एस) 474], एससीसी पी 590, पैरा 11)] में निम्नलिखित टिप्पणियों को उद्धृत करता है।

"11. ...असली प्रश्न यह नहीं है कि क्या एक प्रशासनिक समिति का सदस्य अर्ध-न्यायिक शक्तियों का प्रयोग करते समय या अर्ध-न्यायिक कार्यों का निर्वहन करते समय पूर्वाग्रहग्रस्त था, क्योंकि किसी व्यक्ति के विवेक की परख करना कठिन है। जो देखना होगा वह यह है कि क्या यह विश्वास करने का एक उचित आधार है कि उसके पूर्वाग्रहग्रस्त होने की संभावना थी। पूर्वाग्रह के प्रश्न पर निर्णय लेने में मानवीय संभावनाओं और मानवीय आचरण के सामान्य कार्यप्रणाली को ध्यान में रखा जाना चाहिए।"

***39.** इसके पश्चात, अशोक कुमार यादव बनाम हरियाणा राज्य [अशोक कुमार यादव बनाम हरियाणा राज्य, (1985) 4 एससीसी 417: 1986 एससीसी (एल एंड एस) 88] का संदर्भ ग्रहण किया गया, जोकि ए.के. क्रेपक बनाम भारत संघ [ए.के. क्रेपक बनाम भारत संघ, (1969) 2 एससीसी 262] प्रकरण में संविधान पीठ के निर्णय को संदर्भित करता है। अशोक कुमार यादव [अशोक कुमार यादव बनाम हरियाणा राज्य, (1985) 4 एससीसी 417: 1986 एससीसी (एल एंड एस) 88] संघ लोक सेवा आयोग द्वारा चयन का एक प्रकरण था और इस निर्णय से निम्नलिखित उद्धरण कुछ महत्व के हैं: (अशोक कुमार यादव प्रकरण [अशोक कुमार यादव बनाम हरियाणा राज्य, (1985) 4 एससीसी 417: 1986 एससीसी (एल एंड एस) 88], एससीसी भौतिक उपस्थिति 442-43, पैरा 18)*

"18. हमें सीधे यह इंगित करना चाहिए कि ए.के. क्रेपक [ए.के. क्रेपक बनाम भारत संघ, (1969) 2 एससीसी 262] प्रशासनिक विधि के विकास में एक मील का पत्थर है और इसने इस देश में विधि-नियम को दृढ़ करने में बड़े स्तर पर योगदान दिया है। हम इस निर्णय में दिए गए महत्वपूर्ण सिद्धांत को थोड़ा सा भी कमजोर नहीं करना चाहेंगे, जिसने विधि-नियम की जड़ों को पोषित किया है और न्याय और निष्पक्षता को वैधता में सम्मिलित किया है। इसमें कोई संदेह नहीं है यदि योग्यता के आधार पर उम्मीदवारों का चयन करने के उद्देश्य से एक चयन समिति का गठन किया गया है और चयन समिति के सदस्यों में से एक का चयन हेतु उपस्थित होने वाले

उम्मीदवार से गहरा संबंध है, तो ऐसे सदस्य हेतु मात्र साक्षात्कार में भाग लेने से हटना पर्याप्त नहीं होगा परन्तु उसे पूरी चयन प्रक्रिया से पूरी तरह से हट जाना चाहिए और प्राधिकारियों से चयन समिति में उसके स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति को नामित करने हेतु कहना चाहिए, क्योंकि अन्यथा उसके द्वारा किए गए सभी चयन पूर्वाग्रह को प्रभावित करने की उचित संभावना के कारण दूषित हो जाएंगे जिससे चयन की प्रक्रिया प्रभावित होगी। परन्तु यहां स्थिति थोड़ी भिन्न है क्योंकि हरियाणा सिविल सेवा (कार्यकारी) और संबद्ध सेवाओं हेतु उम्मीदवारों का चयन उस उद्देश्य हेतु गठित किसी चयन समिति द्वारा नहीं किया जा रहा है, बल्कि यह हरियाणा लोक सेवा आयोग द्वारा किया जा रहा है जो कि संविधान के अनुच्छेद 316 के अन्तर्गत गठित एक आयोग है। यह एक आयोग है जिसमें एक अध्यक्ष और एक निश्चित संख्या में सदस्य होते हैं और एक संवैधानिक प्राधिकारी है। हमारे विचार में इस सिद्धांत कि जिसके अनुसार चयन समिति का कोई सदस्य, जिसका नजदीकी रिश्तेदार चयन हेतु उपस्थित हो रहा है, उसे चयन समिति का सदस्य बनने से मना कर देना चाहिए या उससे हट जाना चाहिए और यह नियुक्ति प्राधिकारी पर छोड़ देना चाहिए कि वह उसके स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति को नामांकित करे, को लोक सेवा आयोग जैसे संवैधानिक प्राधिकारी, चाहे वह केंद्र हो या राज्य, के मामले में इसे लागू करने की आवश्यकता नहीं है। यदि लोक सेवा आयोग का कोई सदस्य इस आधार पर चयन प्रक्रिया से पूरी तरह हट जाता है कि उसका कोई करीबी रिश्तेदार चयन हेतु उपस्थित हो रहा है, तो उसके स्थान पर सदस्य के अलावा किसी अन्य व्यक्ति को प्रतिस्थापित नहीं किया जा सकता है। और कभी ऐसा भी हो सकता है कि ऐसे सदस्य का स्थान लेने हेतु कोई अन्य सदस्य उपलब्ध न हो और लोक सेवा आयोग की कार्यप्रणाली प्रभावित हो सकती है। जब लोक सेवा आयोग के दो या दो से अधिक सदस्य मौखिक परीक्षा ले रहे होते हैं, तो वे व्यक्तियों के रूप में नहीं बल्कि लोक सेवा आयोग के रूप में कार्य कर रहे होते हैं। निःसंदेह, हमें यह स्पष्ट करना चाहिए कि जब लोक सेवा

आयोग के किसी सदस्य का कोई नजदीकी रिश्तेदार साक्षात्कार हेतु उपस्थित हो रहा हो, तो ऐसे सदस्य को उस उम्मीदवार के साक्षात्कार में भाग लेने से हट जाना चाहिए और उस उम्मीदवार की योग्यताओं के संबंध में किसी भी चर्चा में भाग नहीं लेना चाहिए और यहां तक कि उस उम्मीदवार को दिए गए अंक या आकलन भी उसके समक्ष प्रकट नहीं किए जाने चाहिए।"

40. रंजीत ठाकुर बनाम भारत संघ [रंजीत ठाकुर बनाम भारत संघ, (1987) 4 एससीसी 611: 1988 एससीसी (एल एंड एस) 1] में लागू "वास्तविक संभाव्यता परीक्षण", निम्नलिखित शब्दों में स्पष्ट किया गया है: (एससीसी भौतिक उपस्थिति 617-18, पैरा 15-17)

"15.... पूर्वाग्रह की वास्तविक संभाव्यता का परीक्षण यह है कि क्या प्रासंगिक जानकारी रखने वाला एक उचित व्यक्ति यह विचार कर सकता है कि पूर्वाग्रह संभाव्य है और क्या प्रतिवादी 4 द्वारा मात्र एक विशेष तरीके से ही प्रकरण पर निर्णय लेना संभाव्य है।

16. एक निर्णय का सार यह है कि वह न्यायिक प्रक्रिया के उचित पालन के पश्चात किया जाता है; कम से कम इसे पारित करने वाला न्यायालय अथवा न्यायाधिकरण प्राकृतिक न्याय की न्यूनतम आवश्यकताओं का निरीक्षण करता है कि; यह निष्पक्ष व्यक्तियों से अंगभूत है जोकि निष्पक्षता से, बिना किसी पूर्वाग्रह के और नेक नीयत से कार्य करते हैं। एक निर्णय जो पूर्वाग्रह या निष्पक्षता की कमी का परिणामहै, वह शून्य है और विचारण "गैर-न्यायिक न्यायाधीश के समक्ष" है...

17. पूर्वाग्रह की संभाव्यता के परीक्षणों के संबंध में पक्षकार के विवेक के अनुसार उस संबंध में आशंका की तर्कसंगतता प्रासंगिक है। हालाँकि, न्यायाधीश हेतु यह दृष्टिकोण उचित नहीं है कि वह स्वयं में मनन करे, तथा स्वयं से ईमानदारी से पूछे कि "क्या मैं पूर्वाग्रहग्रस्त हूँ?"; परन्तु उसे उसके समक्ष पक्षकार के विवेक की ओर अभिमुख होना चाहिए।"

27. स्थापित विधि एवं पूर्वाग्रह पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सुनाये गये निर्णयों के आलोक में, प्रस्तुत प्रकरण के तथ्यों की जांच करते हुए, इस न्यायालय का मत है कि डॉ. रोशन जैकब, जोकि निदेशक, भूतत्व और खनन भी थीं, ने

जिला मजिस्ट्रेट को याचिकाकर्ता के विरुद्ध कार्यवाही करने और उसके खनन पट्टे को निरस्त करने के निर्देश दिये थे, जिनके आदेश का विधिवत पालन किया गया, और तत्पश्चात उन्होंने स्वयं खनन पट्टे को निरस्त करने के आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण प्राधिकारी के रूप में सुनवाई करने और पुनरीक्षण को खारिज करने हेतु अग्रेतर कार्यवाही की, वह आदेश निश्चित रूप से पूर्वाग्रह के दोष से ग्रसित होगा। यह वह विशिष्ट अधिकारी है जिसने याचिकाकर्ता और अन्य समस्थिति व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही प्रारम्भ की, जिसके बारे में यह कहा जा सकता है कि उसने याचिकाकर्ता पर लगाए जाने वाले अर्थदंड के संबंध में पहले ही मन बना लिया था, जोकि उसके पत्र दिनांकित 20.03.2021 से स्पष्ट है और उन्होंने पुनरीक्षण पर निर्णय लेने हेतु अग्रेतर कार्यवाही की और इसलिए, वह अपने स्वयं के प्रकरण की एक न्यायाधीश थीं जोकि उस प्रकरण जोकि उनके द्वारा प्रारम्भ किया गया था तथा जिला मजिस्ट्रेट के आदेश, जोकि उनके आदेशों पर पारित किया गया था, को चुनौती देने वाले पुनरीक्षण का भी निर्णय कर रही थीं। प्रस्तुत प्रकरण के तथ्यों पर पूर्वाग्रह का आधार पूर्णतया लागू होता है तथा पुनरीक्षण को निरस्त करने वाला आदेश दिनांकित 16.03.2022 स्पष्ट रूप से अवैध, मनमाना है और पूर्वाग्रह से ग्रसित है।

28. इस न्यायालय ने पुनरीक्षण संख्या 128 (आर)/एसएम/2021 में वीएआर एंटरप्राइजेज प्राइवेट लिमिटेड के प्रकरण में पारित पुनरीक्षण आदेश का भी परीक्षण किया। यह ध्यातव्य है कि उसमें पुनरीक्षणकर्ता का भी सामना उसी निरीक्षण आख्या से था जिसमें उसे आवंटित पट्टे वाले क्षेत्र से परे क्षेत्र में अवैध खनन का भी दोषी ठहराया गया था। पुनरीक्षण प्राधिकारी ने मात्र इस आधार पर कि यह इंगित करने हेतु कोई तथ्य नहीं है कि पट्टा धारक वास्तव में अवैध खनन में संलिप्त था या सम्मिलित था पुनरीक्षण को अनुमति दी। यह स्पष्ट है कि उसी पुनरीक्षण प्राधिकारी ने एक प्रकरण में निरीक्षण आख्या को पृथक किया और वीएआर एंटरप्राइजेज प्राइवेट लिमिटेड पर कोई दायित्व बंधन करने से मना कर दिया, जबकि उसी तथ्य के आधार पर याचिकाकर्ता को अवैध खनन का दोषी माना। यह स्पष्ट रूप से भेदभावपूर्ण प्रकृति को दर्शाता है, जिसके अन्तर्गत दंड का आदेश पारित किया गया है और, इस प्रकार प्रशासनिक प्राधिकारी की कार्रवाई का पोषण नहीं किया जा सकता है।

<u>नियमावली 1963 के नियम 58 का उल्लंघन:-</u>

29. आक्षेपित आदेश की इस आधार पर भी चुनौती की गई है कि यह नियमावली 1963 के नियम 58 का उल्लंघन है। आक्षेपित आदेश के माध्यम से जिला मजिस्ट्रेट ने कारण बताओ नोटिस दिनांक 25.2.2021, 20.3.2021 और 12.4.2021 के अनुसरण में अंतिम आदेश पारित किये हैं। ऐसा कथन किया गया है कि उक्त नोटिस मात्र स्वामिस्व की बकाया राशि, जिसमें 2 प्रतिशत टीसीएस रु. 1,52,400/- और भी जिला खनन निधि (डी.एम.एफ.) का 10 प्रतिशत राशि 7,62,000/- रु., का भुगतान न करने पर उसकी वसूली के संबंध में थी।

30. इस संबंध में नियमावली 1963 का नियम 58 प्रावधानित करता है कि स्वामिस्व या अन्य देयकों का भुगतान न करने के परिणामस्वरूप प्रतिवादियों द्वारा इसकी पट्टेदार से वसूली, उसको तीस दिवसों के भीतर भुगतान किये जाने

हेतु दिये गये नोटिस की प्राप्ति, के पश्चात् ही की जा सकती है और यदि तीस दिवसों के भीतर भुगतान नहीं किया जाता है तो नोटिस के पंद्रह दिवसों की समाप्ति पर पट्टा निरस्त किया जा सकता है। इस संबंध में यह प्रस्तुत किया गया है कि नोटिस की तिथि से तीस दिवस मात्र 11.05.2021 को समाप्त होंगे और उक्त तिथि के पश्चात पंद्रह दिवस 26.05.2021 को समाप्त होंगे और वैधानिक प्रावधानों के अनुसार भी उक्त अवधि की समाप्ति अर्थात् 26.05.2021 से पूर्व याचिकाकर्ता का पट्टा निरस्त किये जाने का आदेश नहीं दिया जा सकता है जबकि प्रस्तुत प्रकरण में निरस्तीकरण का आदेश वैधानिक अवधि की समाप्ति से पूर्व 26.4.2021 को पारित किया गया है, इस प्रकार, यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि कारण बताओ नोटिस दिनांक 12.4.2021 के अनुसरण में उनका पट्टा निरस्त करके प्रतिवादियों द्वारा नियमावली 1963 के नियम 58 का घोर उल्लंघन किया गया है। अतः इस आधार पर भी निरस्तीकरण आदेश अवैध, मनमाना एवं नियमावली 1963 के नियम 58 का उल्लंघन है।

31. उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों के दृष्टिगत, इस न्यायालय का सुविचारित मत है कि राज्य सरकार द्वारा पुनरीक्षण संख्या 104 (आर)/एसएम/2021 में पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 16.3.2022 के साथ-साथ विपक्षी संख्या 3 अर्थात् जिला मजिस्ट्रेट, बांदा द्वारा पारित किया गया आदेश 26.4.2021 अवैध एवं मनमाना है, इसलिए निरस्त किया जाता है।

32. आरोपों की गंभीरता और वसूली की राशि को ध्यान में रखते हुए प्रतिवादियों को, यदि वे चाहें, याचिकाकर्ता के विरुद्ध विधि के अनुरुप अग्रेतर कार्यवाही करने की स्वतंत्रता दी जाती है।

33. उपरोक्त के दृष्टिगत, रिट याचिका **स्वीकार** की जाती है।

(2023) 3 ILRA 265

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल वाद

दिनांक: लखनऊ 22.02.2023

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती संगीता चंद्रा

माननीय मनीष कुमार

के समक्ष

रिट सी संख्या 2835/2008

मेसर्स वैद ऑर्गेनिक्स एंड केमिकल इंडस्ट्रीज लिमिटेड ... याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ...प्रतिपक्षी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: अखिलेश कालरा, अखिलेश कुमार कालरा, ज्योतिरेश पांडे, नरेंद्र शंकर शुक्ला, नरेंद्र शुक्ला, पूजा सिंह

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: सी.एस.सी., ए.के चतुर्वेदी, अलका वर्मा, कार्तिकेय दुबे, मनोज साहू

सिविल कानून - पट्टा - रद्दीकरण - उत्तर प्रदेश राज्य औद्योगिक विकास प्राधिकरण - जो प्रश्नगत भूमि याचिकाकर्ता को पट्टे पर दी गई थी, जो कि उत्तर प्रदेश राज्य औद्योगिक विकास निगम लिमिटेड द्वारा निर्धारित शर्तों के तहत है, जिसका हस्ताक्षर 1992 में हुआ था - याचिकाकर्ता को पट्टा समझौते की तिथि से दो साल के भीतर निर्माण करने और उत्पादन प्रारंभ करने की आवश्यकता थी - दो वर्ष की अवधि

दिनांक 30.4.1994 को समाप्त हो गई - याचिकाकर्ता के अनुरोध पर, समय को दो बार बढ़ाया गया लेकिन याचिकाकर्ता ने न तो कोई निर्माण किया और न ही उत्पादन प्रारंभ किया, जो पट्टा समझौते की धारा 4(e) और धारा 5 का उल्लंघन था - आपेक्षित आदेश द्वारा निगम ने 2008 में पट्टा समझौता निरस्त कर दिया - निर्णय - निगम को औद्योगीकरण को बढ़ावा देने के साथ ही रोजगार उत्पन्न करने और अर्थव्यवस्था के सुधार के लक्ष्य के लिए बनाया गया था - याचिकाकर्ता द्वारा पट्टे की शर्तों के पालन न करने के कारण, उस भूमि के लिए औद्योगिक विकास प्रभावित हुआ है, जो याचिकाकर्ता को आवंटित की गई थी - आपेक्षित आदेश में कोई कमी नहीं है।

निरस्त। (ई-5)

उद्धृत वाद सूची:

1. उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम महाराजा धर्मेंद्र प्रसाद सिंह [1989 SCC (2) 505]
2. आईटीसी लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [2011 (7) SCC 493]
3. राकेश कुमार गर्ग बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, रिट सी संख्या 68500 / 2015, निर्णय दिनांक 7.1.2016

माननीया न्यायमूर्ति श्रीमती संगीता चंद्रा

माननीय न्यायमूर्ति मनीष कुमार (मौखिक)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अखिलेश कुमार कालरा और प्रतिवादीगण के विद्वान अधिवक्ता श्री कार्तिकेय दुबे को सुना और अभिलेख का अवलोकन किया।

2. यह याचिका याचिकाकर्ता द्वारा याचिका के संलग्नक-1 में निहित दिनांक 10.3.2008 के आदेश को अपास्त करने और प्रतिवादी को लाइसेंस करार दिनांक 30.4.1992 में भूमि के शांतिपूर्ण कब्जे में हस्तक्षेप न करने का निर्देश देने हेतु दायर की गई है, जैसा कि याचिका के संलग्नक-4 में निहित है।

3. अधिवक्ता के तर्क के अनुसार याचिकाकर्ता का मामला यह है कि प्रतिवादी-उत्तर प्रदेश राज्य औद्योगिक विकास निगम लिमिटेड (एतस्मिनपश्चात "निगम" के रूप में संदर्भित) ने, पिछड़े जिले हरदोई में औद्योगीकरण को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से एक औद्योगिक क्षेत्र विकसित किया था जिसमें याचिकाकर्ता कंपनी ने एक रासायनिक उद्योग स्थापित करने के आशय से उक्त उद्देश्य हेतु एक औद्योगिक भूखंड के आवंटन हेतु आवेदन किया था। प्रतिवादी-निगम ने याचिकाकर्ता कंपनी को 17.7.1991 को भूखंड संख्या बी-9-10-11 और डी-11 आवंटित किया। यद्यपि याचिकाकर्ता ने 72 एकड़ जमीन हेतु आवेदन किया था परन्तु अंतिम क्षेत्रफल 119416.30 वर्ग मीटर आवंटित किया गया था, जिस हेतु कुल राशि 14,76,601.25 रुपये याचिकाकर्ता द्वारा प्रतिवादी के समक्ष एकमुश्त जमा की गई। इसके बाद पट्टा करार 30.4.1992 को निष्पादित किया गया था। तत्पश्चात, याचिकाकर्ता जिस रासायनिक उद्योग को स्थापित करना चाहता था, वह निर्मित माल के आयात पर प्रतिबंध के कारण स्थापित नहीं हो सका। तत्पश्चात, भारत सरकार की निर्यात आयात नीति को उदार बनाया गया और केंद्र सरकार ने निर्मित उत्पादों के ऐसे आयात की अनुमति दी जिसके परिणामस्वरूप उत्पाद की कीमतों में भारी गिरावट आई। इस प्रकार, याचिकाकर्ता जो उद्योग स्थापित करने जा रहा था वह अव्यवहार्य हो गया।

4. याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी-निगम को सूचित किया कि जिस उद्योग को शुरू में स्थापित करने का आशय था, वह विभिन्न कारणों से स्थापित नहीं किया जा सका और परियोजना अव्यवहार्य हो गई है। उन्होंने बागवानी के क्षेत्र में कुछ अन्य परियोजना शुरू करने के निर्णय के बारे में सूचित किया था जिस हेतु कुछ समय की आवश्यकता होगी। याचिकाकर्ता ने विस्तार हेतु आवेदन किया था जो दे दिया गया। इसके बाद, याचिकाकर्ता को 2005 में प्रतिवादी-निगम द्वारा एक नोटिस जारी किया गया था, जिसमें यह बताने हेतु कहा गया था कि उसका आवंटन रद्द क्यों न किया जाए क्योंकि याचिकाकर्ता ने करार की शर्तों का अनुपालन नहीं किया था और उस उद्देश्य हेतु औद्योगिक भूखंड का उपयोग नहीं किया था जिस हेतु उसे भूखंड आवंटित किया गया था। याचिकाकर्ता ने अविलम्ब उक्त नोटिस का प्रत्युत्तर दिया और सूचित किया कि वह अब एक औषधीय और सुगंधित फसल आधारित उद्योग स्थापित करने का आशय बना रहा है और आवश्यक मिट्टी परीक्षण आदि किया जाएगा जिस हेतु कुछ समय की आवश्यकता होगी। तदनुसार, उसके द्वारा किए गए नए प्रस्ताव के अनुसार भूमि का उपयोग करने हेतु उसे तीन वर्ष का अतिरिक्त समय दिया जाए। याचिकाकर्ता ने नया उद्योग स्थापित करने हेतु सभी प्रयास किए परन्तु प्रतिवादी ने दिनांक 10.3.2008 के आक्षेपित आदेश द्वारा याचिकाकर्ता को सूचित किया कि उसने 17.7.1991 को उनके पक्ष में किए गए आवंटन को रद्द कर दिया है और लाइसेंस करार दिनांक 30.4.1992 को भी रद्द कर दिया है क्योंकि याचिकाकर्ता करार के खंड 4(ई) के अंतर्गत शर्त का पालन करने में विफल रहा था। उक्त आक्षेपित आदेश में यह भी बताया गया कि निर्माण स्थान पर पदस्थ अवर अभियंता को एक सप्ताह के अंदर भूखंड में पुनः प्रवेश कर पुनर्प्रवेश ज्ञापन समर्पित करने का निदेश दिया गया है।

5. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि जब याचिकाकर्ता ने 2005 में उसे जारी किए गए कारण बताओ नोटिस के जवाब में अवधि विस्तार हेतु आवेदन किया था, तो उसे यह विश्वास था कि प्रतिवादी-निगम इस पर विचार करेगा, अवधि विस्तार हेतु आवेदन पर निर्णय लेगा और पुनर्प्रवेश हेतु उचित प्रक्रिया का अनुपालन करेगा। उसके बाद भी आक्षेपित आदेश पारित किया गया। यद्यपि, निगम के कर्मचारी 31.3.2008 को निर्माण स्थान पर आए और याचिकाकर्ता को सूचित किया कि उसे तुरन्त काँटेदार तार की बाड़ को हटा देना चाहिए और अपनी फसल काटनी चाहिए ताकि भूखंड का कब्जा प्रतिवादी-निगम द्वारा लिया जा सके।

6. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि जब मामला 1.4.2008 को इस न्यायालय के समक्ष नए वाद के रूप में प्रस्तुत किया गया था, तो न्यायालय ने प्रतिवादी के अधिवक्ता को निर्देश प्राप्त करने का निदेश दिया था,एवं न्यायालय ने टिप्पणी की कि यदि वहाँ फसलें हैं तो इस बीच इसे हटाया या काटा नहीं जाएगा। जब मामला 30.4.2008 को प्रस्तुत किया गया, तो 1.4.2008 को दी गई सुरक्षा को सूचीबद्ध होने की अगली तारीख तक जारी रखने का निदेश दिया गया। अभियोजन के अभाव में रिट याचिका को दो बार खारिज कर दिया गया था परन्तु फिर से बहाल कर दिया

गया था उसके बाद भी याचिकाकर्ता के पक्ष में अंतरिम आदेश जारी रहा और वह अभी भी विचाराधीन भूखंड पर काबिज है।

7. **उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम महाराजा धर्मेंद्र प्रसाद सिंह [1989 एससीसी (2) 505]** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित किए गए निर्णय के आधार पर यह तर्क दिया गया है कि एक बार पट्टा करार पर हस्ताक्षर हो जाने के उपरान्त, इसे मात्र एक सिविल वाद के माध्यम से और कब्ज़ा पुनः प्रारम्भ करने हेतु विधि की स्थापित प्रक्रिया अपनाकर रद्द किया जा सकता है जब अवधि विस्तार हेतु याचिकाकर्ता का आवेदन लंबित था तो प्रतिवादीगण आवंटन रद्द नहीं कर सकते थे।

8. दूसरी ओर, प्रतिवादीगण के विद्वान अधिवक्ता श्री कार्तिकेय दुबे ने प्रतिवादी संख्या 3 की ओर से प्रस्तुत प्रतिशपथपत्र की सामग्री के माध्यम से इस न्यायालय को अवगत कराया है। उक्त प्रतिशपथपत्र में प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता ने एक परियोजना रिपोर्ट सहित अल्कोहल आधारित रासायनिक उद्योग की स्थापना हेतु संडीला औद्योगिक क्षेत्र, हरदोई में भूखंड आवंटन हेतु दिनांक 18.4.1991 को एक आवेदन प्रस्तुत किया था। याचिकाकर्ता को 17.7.1991 को भूमि के चार भूखंड आवंटित किए गए थे। प्रारंभ में भूमि के चार भूखंड आवंटित किए गए थे और याचिकाकर्ता ने एक भूखंड के अभ्यर्पण हेतु आवेदन किया था, जिसे स्वीकृत कर लिया गया था। याचिकाकर्ता और निगम ने 30.4.1992 को एक करार पर हस्ताक्षर किए। याचिकाकर्ता को कब्जा देने की तिथि से नौ माह की अवधि में विनिर्माण इकाई का निर्माण प्रारम्भ करना था। याचिकाकर्ता को 9.7.1992 को कब्ज़ा सौंप दिया गया। याचिकाकर्ता ने विनिर्माण इकाई के निर्माण का कोई प्रयास नहीं किया, जिसे नौ माह के भीतर शुरू किया जाना चाहिए था और विनिर्माण को उसके दो वर्ष के भीतर शुरू किया जाना चाहिए था। याचिकाकर्ता को कारण बताओ नोटिस दिनांक 8.2.1996 को जारी किया गया है जिसमें तीस दिन में कारण बताने को कहा गया है कि क्यों न याचिकाकर्ता के पक्ष में आवंटन रद्द कर दिया जाए। इसके प्रत्युत्तर में, याचिकाकर्ता ने अल्कोहल आधारित रासायनिक उद्योग का निर्माण शुरू करने हेतु और तीन वर्ष अवधि बढ़ाने का अनुरोध किया। याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन और उसके उत्तर की प्रतियाँ प्रतिशपथपत्र के साथ क्रमशः संलग्नक संख्या सी-4 और सी-5 के रूप में संलग्न की गई हैं। याचिकाकर्ता के आवेदन पर विचार किया गया और निगम के प्रबंध निदेशक ने क्षेत्रीय कार्यालय, लखनऊ को अपने पत्र दिनांक 27.6.1996 के माध्यम से याचिकाकर्ता को अल्कोहल आधारित रासायनिक उद्योग स्थापित करने हेतु एक वर्ष की अवधि प्रदान की।

9. याचिकाकर्ता को तदनुसार पत्र दिनांक 17.7.1996 के माध्यम से अवधि विस्तार दिया गया था, परन्तु उक्त अवधि की समाप्ति से ठीक पूर्व, याचिकाकर्ता ने 25.6.1997 को एक और अभ्यावेदन प्रस्तुत किया जिसमें निर्माण पूरा करने और तीन वर्ष की अवधि के भीतर अल्कोहल आधारित रासायनिक उद्योग के विनिर्माण और उत्पादन प्रारम्भ करने हेतु अवधि बढ़ाने का अनुरोध किया गया था। याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन पर विचार किया गया और एक वर्ष की अवधि बढ़ाने का आदेश 19.11.1997 को

पारित किया गया। जब याचिकाकर्ता ने प्रश्नगत भूमि पर कोई निर्माण शुरू नहीं किया, तो 6.10.2005 को याचिकाकर्ता को पुनः एक कारण बताओ नोटिस जारी किया गया, जिसमें साठ दिनों की अवधि के भीतर कारण बताने हेतु कहा गया कि आवंटन के साथ-साथ करार दिनांक 30.4.1992 को, शर्तों के उल्लंघन के कारण रद्द क्यों न कर दिया जाए। इसके प्रत्युत्तर में, याचिकाकर्ता ने कोई अभ्यावेदन नहीं प्रस्तुत किया और अंततः क्षेत्रीय कार्यालय, लखनऊ ने पत्र दिनांक 30.6.2006 के माध्यम से आवंटन और करार दिनांक 30.4.1992 को रद्द करने हेतु प्रधान कार्यालय, कानपुर को एक प्रस्ताव प्रेषित किया। प्रधान कार्यालय को स्थिति स्पष्ट करने में कुछ समय लगा और संबंधित भूखंड का सर्वेक्षण करने के उपरान्त प्रश्नगत आदेश पारित नहीं किया गया था और यह पाया गया कि याचिकाकर्ता ने उसे आवंटित भूखंडों पर कोई निर्माण करने का कोई प्रयास नहीं किया था और उपरोक्त भूखंड खाली पड़े हैं।

10. निगम के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क भी प्रस्तुत किया गया है कि निगम, उत्तर प्रदेश राज्य के औद्योगिक विकास हेतु राज्य सरकार द्वारा स्थापित, एक वैधानिक निगम है। लघु और मध्यम उद्योग स्थापित करने हेतु सक्षम आवेदकों को आवंटन हेतु निगम हेतु राज्य द्वारा भूमि का अधिग्रहण किया जाता है। जो भूमि अधिग्रहीत की गई है वह उन आवेदकों को रियायती दर पर दी गई है जो करार में निर्धारित अनुसार औद्योगिक इकाइयों को स्थापित करने हेतु वास्तव में इच्छुक हैं। प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय को करार के प्रासंगिक खंडों के बारे में बताया, जिन्हें प्रश्नगत आदेश में उद्धृत किया गया है। पक्षकारों के बीच हस्ताक्षरित करार के खंड 4(ई) और खंड 5 यहाँ इस उद्देश्य हेतु प्रासंगिक हैं और अधोउद्धृत है।

> *4(ई) यह कि लाइसेंसधारी स्वयं की लागत पर भूमि के भूखंड पर ले-आउट योजना, ऊंचाई और डिजाइन के अनुसार निर्माण करेगा और अनुदानकर्ता और नगरपालिका या अन्य प्राधिकारी, दोनों द्वारा लिखित रूप से अनुमोदित किये जा सकने की स्थिति में होगा,एवं जो तात्विक रूप से कर्मकारों हेतु समुचित इमारत होगी जिसका उपयोग औद्योगिक कारखाने के रूप में किया जा सके, जिसमें सभी आवश्यक आउट हाउस, सीवर निकास और अन्य सहायक एवं उचित साधन होंगे जो भवन, नाली शौचालय और उन्हें सीवर से संपर्कित करने से संबंधित स्थानीय प्राधिकरण के नियम और उपनियमों के अनुरूप होंगे, तथा इस तरह के निर्माण को नौ माह की अवधि में या ऐसे विस्तारित समय में प्रारम्भ किया जाएगा, जिसे लाइसेंसधारी के अनुरोध पर अनुदाता द्वारा अपने विवेक से*

लिखित रूप में अनुमति दी जा सकती है, और उपयोग हेतु पूर्ण रुप से प्रयोग करने हेतु समाप्त किया जाएगा और इन प्रस्तुतियों की तारीख से 24 महीने की अवधि के भीतर या ऐसे विस्तारित समय के भीतर विनिर्माण और उत्पादन शुरू करेगा जिसे अनुदाता द्वारा अपने विवेक से लिखित रूप में या लाइसेंसधारी के अनुरोध पर अनुमति दी जा सकती है।

5. यदि लाइसेंसधारी उपयोग हेतु उपयुक्त भवनका निर्माण प्रारंभ करने और पूर्ण करने में विफल रहता है और इसमें दिए गए समय और रीति से विनिर्माण और उत्पादन प्रारंभ करने में विफल रहता है (इस परिप्रेक्ष्य में समय अनुबंध का सार है) या सम्यक तत्परता के साथ कार्य को आगे नहीं बढ़ाता है या नियत तिथि पर या उससे पूर्व प्रीमियम की ब्याज किस्त का भुगतान करने में असफल होता है, तब अनुदाता के पास उक्त भूमि और उस पर मौजूद समस्त चीजों पर पुनर्प्रवेश करने और पुनः कब्जा करने का अधिकार और शक्ति होगी, और तत्पश्चात इस करार का अवसान और समाप्ति हो जाएगी और, इस हेतु लाइसेंसधारी को किसी भी मुआवजे या भत्ते का भुगतान किए बिना, अनुदाता के अन्य समस्त विधिक अधिकारों और उपचारों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना उक्त भूखंड और भूमि पर समस्त निर्माण और सामग्री, संयंत्र और वस्तुएं अनुदाता की हो जाएगी। लाइसेंसधारी, अनुदाता ऐसे धन के भुगतान पर और/या ऐसे नियमों और शर्तों पर, जैसा कि अनुदाता द्वारा तय किया जा सकता है, उक्त भूमि पर लाइसेंसधारी के कब्जे को जारी रखने की अनुमति दे सकता है और/या किसी भी इमारत को हटाने या बदलने का निर्देश दे सकता है या निर्धारित समय के भीतर अनुदान की शर्तों के विपरीत संरचना का निर्माण या उपयोग किया जाता है, तो उसे पूर्ण कराने हेतु और लाइसेंसधारी से इसे पूर्ण करने की लागत और कुल प्रीमियम के 20% के बराबर राशि सहित आज तक देय बकाया ब्याज देय की वसूली

करें, उपयोग और व्यावसायिक शुल्क, और अन्य बकाया, यदि कोई हो, अनुदाता हेतु जब्त कर लिया जाएगा और लाइसेंसधारी किसी भी तरह के मुआवजे का हकदार नहीं होगा।

परन्तु यह कि लाइसेंसधारी समस्त बकाया, किराया और सभी नगरपालिका और अन्य करों का भुगतान करने के उपरान्त भूमि के भूखंड से उसके द्वारा बनाई गई सभी इमारतों, निर्माणों और संरचनाओं, यदि कोई हो, को हटाने और अपने लिए उपयुक्त बनाने हेतु स्वतंत्र होगा। तब दरें और देय मूल्यांकन और अनुदानकर्ता को होने वाली सभी क्षति और अन्य देयताएं और इस करार को रद्द करने या समाप्त करने की तारीख के तीन महीने के भीतर भूमि के भूखंड से सामग्री को हटाना होगा।

11. प्रतिवादी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि दिनांक 10.3.2008 के आदेश द्वारा आवंटन एवं करार को रद्द करने के उपरान्त दिनांक 17.3.2008 को 12: 30 बजे अपराह्न बजे प्रश्नगत भूमि पर पुनः कब्ज़ा कर लिया गया था,पुनः प्रवेश ज्ञापन की प्रति, प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा प्रस्तुत प्रतिशपथपत्र के संलग्नक सी-10 के रूप में प्रस्तुत की गई है। इस न्यायालय द्वारा पारित अंतरिम आदेश द्वारा प्रश्नगत आदेश पर रोक नहीं लगाई गई थी, अपितु मात्र फसल उपलब्ध होने की स्थिति में याचिकाकर्ताओं को फसल काटने का निदेश दिया गया था। यह नहीं कहा जा सकता कि याचिकाकर्ता का प्रश्नगत भूखंडों पर कब्जा है।

12. प्रतिवादी-निगम के विद्वान अधिवक्ता ने **आईटीसी लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [2011 (7) एससीसी 493]** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर और इस न्यायालय की खण्डपीठ द्वारा **रिट-सी संख्या 68500/2015 (राकेश कुमार गर्ग बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य)** में पारित आदेश दिनांक 7.1.2016 पर विश्वास व्यक्त किया है। न्यायालय के समक्ष जिला गौतम बुद्ध नगर में होटलों के निर्माण हेतु न्यू ओखला औद्योगिक विकास प्राधिकरण (एतस्मिनपश्चात "नोएडा" के रूप में संदर्भित) द्वारा आवंटित भूखंड के पट्टों के संबंध में प्रश्न था। पर्यटन को प्रोत्साहित करने हेतु उत्तर प्रदेश और पड़ोसी नगर नई दिल्ली में औद्योगिक और शहरी आबादी के विकास हेतु उत्तर प्रदेश औद्योगिक क्षेत्र विकास अधिनियम, 1976 के अन्तर्गत नोएडा का गठन किया गया है। कुछ भूखंड आवंटित किए गए थे, परन्तु पट्टा करार की शर्तों का अनुपालन न करने के कारण रद्दीकरण आदेश जारी किया गया था। न्यायालय ने इस प्रश्न पर विचार किया कि क्या " भूखंड का पट्टा रद्द किया जा सकता है?" न्यायालय ने प्रस्तर 21, 22, 23 में निम्नानुसार टिप्पणी की:

21. संपति अंतरण अधिनियम, 1882 (संक्षेप में 'टीपी अधिनियम') के प्रावधानों द्वारा शासित एक पट्टा मात्र इसे रद्द करने हेतु अथवा या इस घोषणा हेतु कि यह अवैध, शून्य एवं शून्यकरणीय है, कब्जे की वापसी की परिणामी राहत हेतु, एक सिविल वाद दायर करके रद्द किया जा सकता है। जब तक सक्षम क्षेत्राधिकार वाली न्यायालय ऐसी डिक्री नहीं प्रदान करती, पट्टा प्रभावी और बाध्यकारी बना रहेगा। पट्टेदार द्वारा पंजीकृत पट्टा विलेख को एकपक्षीय रद्द करने से न तो पट्टा समाप्त होगा और न ही पट्टेदार को कब्ज़ा पाने का अधिकार मिलेगा। निजी विधि के अन्तर्गत यह स्थिति है।

22. परन्तु जहाँ पट्टे का अनुदान किसी विधि या वैधानिक विनियमों द्वारा शासित होता है, और यदि ऐसी विधि स्पष्ट रूप से पट्टे को रद्द करने या प्रतिसंहरण करने की शक्ति सुरक्षित रखती है, तब पट्टादाता के रूप में, किसी प्राधिकरण हेतु विधिवत निष्पादित और पंजीकृत पट्टा विलेख को विधि में प्रदान किए गए रद्दीकरण के विशिष्ट आधार पर रद्द करने की अनुमति होगी, भले ही कब्जा प्रदान कर दिया गया हो।

23. अधिनियम के प्रावधानों के तहत उत्तर प्रदेश में नोएडा एक औद्योगिक और शहरी आबादी (जिसे नोएडा भी कहा जाता है) के विकास हेतु गठित एक प्राधिकरण है। धारा 7 प्राधिकरण को औद्योगिक विकास क्षेत्र में उसकी किसी भी भूमि या भवन को नीलामी, आवंटन या अन्यथा, ऐसे नियमों और शर्तों पर विक्रय करने, पट्टे पर देने या अन्यथा अंतरित करने का अधिकार देती है, जिन्हें शर्तों और बनाए गए किसी भी नियम के अन्तर्गत वह लागू करना उचित समझे। धारा 14 अंतरण की शर्तों के उल्लंघन हेतु जब्ती का प्रावधान करती है। उक्त धारा प्राधिकरण के मुख्य कार्यकारी अधिकारी को उस निर्माण स्थान या भवन को पुनः प्रारम्भ

करने का अधिकार देती है जिसे प्राधिकरण द्वारा हस्तांतरित किया गया था और निम्नलिखित दो परिस्थितियों में वह ऐसे हस्तांतरण के संबंध में भुगतान की गई पूर्ण धनराशि या उसका कुछ अंश जब्त कर सकता है: अ) प्राधिकरण द्वारा किसी निर्माण स्थान या भवन के अंतरण के कारण पट्टेदार द्वारा देय प्रतिफल राशि या उसकी किसी किस्त का पट्टेदार द्वारा भुगतान न करना; या बी) ऐसे अंतरण की किसी भी शर्त का उल्लंघन या पट्टेदार द्वारा अधिनियम के अन्तर्गत बनाए गए किसी भी नियम या विनियम का उल्लंघन। उप-धारा (2) में प्रावधान है कि जहाँ प्राधिकरण का मुख्य कार्यकारी अधिकारी धारा 14 की उप-धारा (1) के तहत किसी निर्माण स्थान या भवन को पुनः प्राप्त करता है, उसकी माँग पर, कलेक्टर इतने बल का प्रयोग कर जितना आवश्यक हो, उस पर हस्तांतरी व्यक्ति से कब्जा ले सकता है और उसे प्राधिकरण को सौंप सकता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि कोई पट्टेदार प्रीमियम या पट्टा किराया या अन्य देय राशि का भुगतान करने में चूक करता है, या पट्टा विलेख की किसी भी शर्त का उल्लंघन करता है या अधिनियम के तहत किसी भी नियम या विनियम का उल्लंघन करता है, तो नोएडा के मुख्य कार्यकारी अधिकारी सिविल मुकदमा दायर किए बिना, विधि में दी गयी रीति से पट्टे पर दिए गए भूखंड या भवन को पुनः प्राप्त कर सकता हैं। पुनः प्राप्त करने का अधिकार और पट्टे को एकपक्षीय रद्द करने का इसमें शामिल अधिकार दर्शाता है।

13. यह न्यायालय पाती है कि इस वाद में हमारे सामने उल्लिखित तथ्य लगभग वही हैं क्योंकि प्रश्नगत भूमि याचिकाकर्ता को वैधानिक निगम द्वारा पट्टा करार के निश्चित निबंधनों के अन्तर्गत पट्टे पर दी गई थी और याचिकाकर्ता को दो बार विस्तार दिया गया था। इन भूखंडों का आवंटन वर्ष 1991 में किया गया था और पट्टा करार पर वर्ष 1992 में हस्ताक्षर किए गए

थे। निगम ने पट्टा करार को रद्द करने हेतु वर्ष 2008 तक प्रतीक्षा की। याचिकाकर्ता को पट्टा करार की तिथि से दो वर्ष की अवधि के भीतर निर्माण करना और विनिर्माण शुरू करना था, क्योंकि माना जाता है कि पट्टा करार 30.4.1992 को निष्पादित किया गया था और दो वर्ष की अवधि 30.4.1994 को समाप्त हो गई थी। उसके बाद भी याचिकाकर्ता के अनुरोध पर दो बार समय विस्तारित किया गया परन्तु याचिकाकर्ता ने न तो कोई निर्माण किया और न ही उत्पादन प्रारंभ किया जो कि पट्टा करार के खंड 4 (ई) और खंड 5 का उल्लंघन है।

14. निगम का गठन औद्योगीकरण को प्रोत्साहित करने के साथ-साथ रोजगार सृजित करने और अर्थव्यवस्था की उन्नति हेतु किया गया है। याचिकाकर्ता द्वारा पट्टा विलेख की शर्तों का अनुपालन न करने के कारण, औद्योगिक विकास, जिस हेतु याचिकाकर्ता को भूमि आवंटित की गई थी, प्रभावित हुआ है।

15. इस न्यायालय को इस प्रकार आक्षेपित आदेश में कोई अशक्तता नहीं मिलती है।

16. तदनुसार, रिट याचिका **खारिज** की जाती है।

(2023) 3 ILRA 271

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल वाद

दिनांक: इलाहाबाद 09.02.2023

माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार,

माननीय न्यायमूर्ति राजेंद्र कुमार-IV,

के समक्ष

रिट सी संख्या 3175/2023

राजेश कुमार गुप्ता एवं अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिपक्षी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता: श्री कृष्ण मोहन मिश्रा, श्री एच.आर. मिश्रा

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: सी.एस.सी.

ए. सिविल कानून - शहरी भूमि (सीलिंग और नियमन) अधिनियम 1976 - धारा 10(4) - उस अवधि के दौरान जो अधिसूचना की प्रकाशन तिथि से प्रारंभ होती है और उस तिथि के साथ समाप्त होती है जो उप-धारा (3) के तहत किए गए घोषणा में निर्दिष्ट है - (i) कोई भी व्यक्ति अधिसूचना में निर्दिष्ट अतिरिक्त खाली भूमि को बिक्री के माध्यम से हस्तांतरित नहीं करेगा और इस प्रावधान का उल्लंघन करके किया गया कोई भी ऐसा हस्तांतरण अमान्य और शून्य माना जाएगा - धारा 10(1) के तहत अधिसूचना के अनुसार घोषित अतिरिक्त भूमि को धारा 10 के उप-धारा (4) के दृष्टिकोण से हस्तांतरित नहीं किया जा सकता है (पैराग्राफ 17, 18)

बी. सिविल कानून - शहरी भूमि (सीलिंग और नियमन) अधिनियम 1976 - धारा 10(1) के तहत अधिसूचना 17.07.1982 को जारी की गई, उसके पश्चात दिनांक 28.07.1990 को धारा 10(3) के तहत अधिसूचना जारी की गई - याचिकाकर्ता के पूर्वज ने वर्ष 1985 यानी धारा 10(1) के तहत अधिसूचना जारी होने के बाद में संपत्ति क्रय की - याचिकाकर्ता अतिरिक्त भूमि के बाद में खरीदार हैं जो धारा 10(1) के तहत अधिसूचना जारी होने के बाद खरीदी गई - याचिकाकर्ता ने अपने प्रतिनिधित्व में शहरी भूमि (सीलिंग और नियमन) निरसन अधिनियम,

1999 की धारा 3 के दृष्टिकोण से यह बताने की कोशिश की कि वे घोषित अतिरिक्त भूमि के स्वामित्व में हैं - आयोजित - अधिनियम की धारा 10 के उप-धारा 4 के दृष्टिकोण से, घोषित अतिरिक्त भूमि का हस्तांतरण शून्य है और याचिकाकर्ताओं पर कोई अधिकार, शीर्षक या प्राधिकार नहीं देता - इसके अतिरिक्त, वर्तमान रिट याचिका निरसन अधिनियम की तिथि से 22 वर्ष पश्चात और धारा 10(5) के तहत नोटिस जारी होने के तीन दशकों से अधिक समय बाद दायर की गई (पैराग्राफ 17, 21)

निरस्त। (ई-5)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम हरिराम 2013 (120) आरडी 241
2. राम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 2020 (147) आरडी 1
3. इक़रार और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 2020 (2) एडब्ल्यूसी 1288
4. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम जगदीश चंद्र 2014 (1) एडब्ल्यूसी 864
5. असम राज्य बनाम भास्कर ज्योति शर्मा और अन्य (2015) 5 एससीसी 321
6. शिव राम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 2015 (7) एडीजे 630
7. शिवगोंडा अन्ना पाटिल बनाम महाराष्ट्र राज्य (1999) 3 एससीसी 5
8. नगरपालिका परिषद, अहमदनगर बनाम शाह हैदर बेग (2000) 2 एससीसी 48
9. कपीलाबेन अम्बालाल पटेल और अन्य बनाम गुजरात राज्य 2021 (12) एससीसी 95
10. यू.ए. बशीर द्वारा जी.पी.ए. धारक बनाम राज्य कर्नाटक और अन्य सिविल अपील संख्या 3032 वर्ष 2010, निर्णय दिनांक 17 फरवरी, 2021

<u>माननीय न्यायमूर्ति श्री सुनीत कुमार</u>

<u>माननीय न्यायमूर्ति श्री राजेंद्र कुमार-चतुर्थ</u>

1. याचिकाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री एच.आर. मिश्रा, सहायक विद्वान अधिवक्ता श्री कृष्ण मोहन मिश्रा तथा विदवान शासकीय अधिवक्ता को सुना गया।

2. तत्काल रिट याचिका द्वारा याचिकाकर्ताओं ने राज्य के प्रतिवादी/सक्षम प्राधिकारी को 1999 के निरसन अधिनियम संख्या 15 (31 मार्च 1999 से प्रभावी) के मद्देनजर शहरी भूमि (सीलिंग और विनियमन) अधिनियम 1976, (संक्षिप्त 'अधिनियम') के तहत अधिशेष घोषित गांव-मुहाई सुघरपुर, टप्पा हवेली, पोस्ट हवेली, (पार्वती शिवपुरी कॉलोनी), तहसील सदर, जिला गोरखपुर में स्थित अराजी (खसरा) नंबर 24 की 3,480 वर्ग फुट भूमि को मुक्त करने का निर्देश देने की मांग की, जिसे शहरी भूमि (अधिकतम सीमा और विनियमन) अधिनियम 1976 (संक्षिप्त 'अधिनियम') के तहत अधिशेष घोषित किया गया है।

3. जैसा कि, तत्काल रिट याचिका से उत्पन्न तथ्य ये हैं कि याचिकाकर्ता अधिशेष भूमि आराजी खसरा नंबर 24 के उत्तरवर्ती खरीदार हैं जिसके मूल मालिक राम किसुन पुत्र कोदई थे, जिनका नाम विधिवत राजस्व अभिलेख में दर्ज था।

4. ऐसा प्रतीत होता है कि मूल भूमि मालिक ने अधिनियम की धारा 6 (1) के तहत मामला संख्या 3658 होने के नाते बयान प्रस्तुत किया, जिसमें ग्राम-चिलमापुर में खसरा नंबर 62 और 85; आवासीय भवन सहित रिटर्न में गांव-

मोहाई सुघरपुर में खसरा नंबर 42 और 43 और मिर्जापुर में खसरा नंबर 43 और 44 दाखिल किया गया था। सर्वेक्षण और निरीक्षण के बाद, धारा 8 (1) के तहत एक मसौदा बयान तैयार किया गया, जिसे 17 जून 1979 को भूमि मालिक को विधिवत रूप से पंजीकृत डाक द्वारा परोसा गया था, जो बिना सुपुर्दगी के वापस आ गया प्रतीत होता है, परिणामस्वरूप, मसौदा बयान के साथ एक और नोटिस 3 जून 1981 को जारी किया गया था, 25 जून 1981 को भूमि मालिक को विधिवत तामील किया गया था। भूमि मालिक ने मसौदा बयान के संबंध में कोई आपत्ति दर्ज नहीं की। सक्षम अधिकारी ने नोट किया कि मूल भूमि मालिक का नाम ग्राम- मोहाई सुघरपुर के खसरा नंबर 24 में दर्ज है। इसी प्रकार, अन्य भूखंडों के संबंध में, सक्षम प्राधिकारी ने धारा 8(4) के अंतर्गत आदेश पारित किया। इसके बाद, 24 अगस्त 1981 को धारा 9 के तहत अंतिम बयान जारी किया गया। अधिनियम की धारा 9 के चरण के बाद, धारा 10 (1) के तहत अधिसूचना 17 जुलाई 1982 को राज्य राजपत्र में प्रकाशित की गई थी, इसके बाद 28 जुलाई 1990 को धारा 10 (3) के तहत अधिसूचना प्रकाशित की गई थी। नतीजतन, अतिरिक्त खाली भूमि राज्य के पास निहित हो गई, जिसमें खसरा नंबर 24 भी शामिल है। इसके बाद 19 दिसंबर 1992 को सक्षम अधिकारी द्वारा धारा 10 (5) के तहत नोटिस जारी किया गया। सक्षम प्राधिकारी के अधिकृत प्रतिनिधि ने 3 अगस्त 1996 को मूल भूमि मालिक से अधिशेष खाली भूमि का कब्जा ले लिया था।

5. रिट याचिका के पैराग्राफ 6 में, यह दलील दी गई है कि अराजी खसरा नंबर 24, याचिकाकर्ता की मां, यानी श्रीमती अहिल्या देवी को 1985 में पंजीकृत बिक्री-विलेख द्वारा हस्तांतरित किया गया था। आरोप है कि राजस्व रिकॉर्ड में अहिल्या देवी का नाम उत्परिवर्तित हो गया, दावा किया जाता है कि तभी से याचिकाकर्ताओं का कब्जा है और उन्होंने अपना आवासीय मकान बना लिया है। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता की मां की मृत्यु 2020 में हुई थी, इसके बाद, याचिकाकर्ताओं ने राजस्व रिकॉर्ड में अपना नाम म्यूट करवाने के लिए नगर महापालिका, गोरखपुर से संपर्क किया। हालांकि, चूंकि विचाराधीन भूमि जो मूल रूप से राम किसन की थी, को अधिशेष घोषित किया गया था और 28 जुलाई 1990 की अधिसूचना के माध्यम से राज्य सरकार में निहित किया गया था, ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता का नाम उत्परिवर्तित नहीं किया गया था।

6. व्यथित याचिकाकर्ताओं ने विवादित जमीन पर मालिकाना हक का दावा हेतु जिला मजिस्ट्रेट गोरखपुर से संपर्क किया, जो आवासीय मकान 1985 में भूमि खरीदने के बाद पार्वती हाउसिंग को-ऑपरेटिव सोसायटी लिमिटेड कंपनी के नाम में एक हाउसिंग सोसायटी बनाया गया था. प्रत्यावेदन में याचिकाकर्ता ने सीलिंग की कार्यवाही से संपत्ति को मुक्त करने की मांग की।

7. इस तथ्यात्मक पृष्ठभूमि के मददेनजर, यह प्रस्तुत किया कि धारा 3 के मद्देनजर शहरी भूमि (सीमा और विनियमन) निरसन अधिनियम, 1999 (संक्षेप में) 'निरसन अधिनियम') जो 18 मार्च 1999 को लागू हुआ, याचिकाकर्ता की सम्पत्ति और भूमि को मुक्त किया जाए।

8. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि याचिकाकर्ता मूल अधिनियम निरस्त होने के बाद भी भूखंडों पर कब्ज़े में बना

है, इस स्तर पर यह आग्रह किया गया है कि याचिकाकर्ता को आधिक्य घोषित भूमि से बेदखल नहीं किया जा सकता है। सुप्रीम द्वारा दिए गए **यूपी राज्य बनाम हरि राम1** के निर्णय पर, साथ ही, इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय **राम सिंह बनाम. यूपी राज्य और अन्य, इकरार और अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य और उत्तर प्रदेश राज्य बनाम जगदीश चन्द्र** निर्णयों पर भरोसा किया गया है।

9. याचिकाकर्ता का मामला यह नहीं है कि मूल भूमि का मालिक हर स्तर पर अधिशेष भूमि की घोषणा का विरोध किया था या बेदखली के अनुरूप नहीं होने के संबंध में अधिकारियों के समक्ष कानून के साथ आपत्ति जताई थी।

10. असम राज्य बनाम भास्कर ज्योति शर्मा और अन्य मामले में, सुप्रीम कोर्ट का विचार था कि धारा 10 (5) के आधार पर कोई भी शिकायत बेदखली के उचित समय के भीतर की जानी चाहिए और ऐसा नहीं करने में भूमि मालिक को अधिनियम की धारा 10 (5) के तहत अपने अधिकार का त्याग किया जाना चाहिए। अनुच्छेद 16, 17, और 19 उद्धरण दिया जा रहा है:

> *"16. मामले को दूसरे नजरिये से भी देखा जा सकता है, ये मानते हुए कब्जे वाला व्यक्ति शिकायत कर सकता है, चाहे इसके बिना अंतिम विश्लेषण में बहुत अधिक लाभ हो, सवाल यह है कि क्या ऐसा है धारा के कथित उल्लंघन के काफी समय बाद शिकायत की जा सकती है, यदि पूर्ववर्ती से वास्तविक भौतिक कब्ज़ा ले लिया गया हो जैसा कि वर्तमान मामले में आरोप लगाया गया है, 7 दिसंबर, 1991 को भूमि का मालिक धारा 10 (5) के आधार पर कोई भी शिकायत ऐसी बेदखली के उचित समय के भीतर की जानी चाहिए थी। **अगर मालिक ने ऐसा नही किया हो,***
>
> ***जबरन** उस पर कब्जा की विधिकता प्राप्त हो जाएगी **ऐसी किसी भी स्थिति में मालिक या व्यक्ति कब्जे के तहत उसके अधिकार, अधिनियम की धारा 10 (5) को माफ कर दिया गया माना जाना चाहिए किसी अन्य दृष्टिकोण में हमारी राय में ,किसी वादी को शिकायत करने की आज्ञप्ति उसके पास इसलिए नहीं है कि किसी वास्तविक पूर्वाग्रह का सामना करना पड़ा है जिसका निवारण करने की आवश्यकता है लेकिन केवल इसलिए क्योंकि निरसन अधिनियम की आकस्मिक परिस्थिति ने उसे ऐसा करने के लिए प्रलोभित किया और उनकी बेदखली का निर्धारित प्रक्रिया के उल्लंघन होने के संबंध में मुद्दा उठा।***
>
> ***17. हरि राम के मामले (सुप्रा) में इस न्यायालय के निर्णय पर प्रतिवादियों द्वारा निर्भरता रखी गई थी। यह निर्णय, हमारे विचार में, उत्तरदाताओं को बहुत सहायता नहीं देता है। हम ऐसा इसलिए कहते हैं, क्योंकि यह न्यायालय हरि राम के मामले (सुप्रा) में इस बात पर विचार***

....

1 2013 (120) आरडी 241

2 2020 (147) आरडी 1

3 2020 (2) एडब्ल्यूसी 1288

4 2014 (1) एडब्ल्यूसी 864

5. (2015) 5 एससीसी 321 (पैरा-16, 17 और 19)

कर रहा था कि क्या धारा 10 (5) में दिखाई देने वाला शब्द 'हो सकता है' सक्षम प्राधिकारी को धारा 10 (6) के तहत विचाराधीन भूमि का भौतिक कब्जा लेने से पहले नोटिस जारी करने या न करने का विवेक देता है। यह सवाल कि क्या धारा 10 (5) का उल्लंघन और बिना किसी सूचना के संभावित बेदखली से बेदखली का कार्य समाप्त हो जाएगा या कानून की नजर में इसे गैर-स्थायी बना दिया जाएगा, उस मामले में विचार के लिए नहीं आया। *हमारी राय में, धारा 10 (5) जो निर्धारित करती है वह कार्रवाई का एक सामान्य और तार्किक तरीका है जिसका पालन अधिकारियों द्वारा धारा 10 (6) के तहत रहने वाले को बेदखल करने के लिए बल का उपयोग करने का निर्णय लेने से पहले किया जाना चाहिए। इस मामले में यदि दिसंबर 1991 में तत्कालीन मालिक की बेदखली के बारे में अपीलकर्ता का संस्करण सही है, तो यह तथ्य कि इस तरह की बेदखली धारा 10 (5) के तहत नोटिस के बिना थी, का कोई परिणाम नहीं होगा और निरसन अधिनियम की धारा 3 के प्रयोजनों के लिए कब्जा लेने के कार्य को समाप्त या समाप्त नहीं करेगा। ऐसा इसलिए है क्योंकि भाबादेब सरमा-पूर्व मालिक ने अपने जीवनकाल में किसी भी स्तर पर धारा 10 (5) के उल्लंघन के आधार पर कोई शिकायत नहीं की थी, जिसका अर्थ है कि उन्होंने ऐसा करने का अपना अधिकार माफ कर दिया था।*

19\. *इस विवाद के समर्थन में कि प्रतिवादी आज भी विचाराधीन भूमि के वास्तविक भौतिक कब्जे में हैं, टेलीफोन कनेक्शन के लिए भुगतान किए गए कुछ बिजली बिलों और बिलों पर भरोसा किया जाता है जो एक श्री सनातन वैश्य के नाम पर खड़े थे। यह तर्क दिया गया था कि उक्त सनातन वैश्य कोई और नहीं बल्कि प्रतिवादियों की संपत्ति के कार्यवाहक थे। हालांकि, उस दावे को साबित करने के लिए रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं है। टेलीफोन बिल और बिजली बिल भी केवल 2001 के बाद की अवधि से संबंधित हैं। हमारे सामने रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं है और न ही उच्च न्यायालय के समक्ष कुछ भी रखा गया था जिससे यह पता चलता हो कि 7 दिसंबर, 1991 से दिसंबर, 2003 में जीएमडीए को आवंटित की गई भूमि के मालिक या उसके कानूनी उत्तराधिकारियों के निधन के बाद भी कब्जा बना हुआ था। हमारे पास केवल समर्थन में हलफनामों के आधार पर पार्टियों के प्रतिद्वंद्वी दावे हैं। हमने पार्टियों के लिए बार-बार विद्वान वकील से पूछा कि क्या वे ज्ञानबा दिलावरसिंह जदेगा (सुप्रा) के मामले में निर्णय की समानता पर रिमांड पर, किसी भी दस्तावेजी साक्ष्य को जोड़ सकते हैं जो उच्च न्यायालय को वास्तविक कब्जे के संबंध में एक निष्कर्ष दर्ज करने में सक्षम करेगा। ऐसा होने के कारण, 9 का प्रश्न 4 कि क्या वास्तविक भौतिक कब्जा लिया गया था, तथ्य का एक गंभीर रूप से विवादित प्रश्न बना हुआ है, जो संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत कार्यवाही में उच्च न्यायालय द्वारा संतोषजनक निर्धारण के लिए उत्तरदायी नहीं है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि उच्च न्यायालय अपने विवेक से कुछ स्थितियों में इस तरह के निर्धारण पर हो सकता है।* ***इसलिए*** *बेदखली के*

सवाल पर निष्कर्ष निकालने के लिए उच्च न्यायालय को रिमांड दिया जाना हमें व्यवहार्य समाधान प्रतीत नहीं होता है।
(हमारे द्वारा जोर दिया गया)

11. भास्कर ज्योति शर्मा (सुप्रा) में इस न्यायालय के समन्वय पीठ **शिव राम सिंह बनाम यूपी राज्य और अन्य** मामले का अनुसरण किया, रिट याचिका समय बीत जाने के आधार पर खारिज कर दी गई, जिसमें देखा गया कि :

"हमें मामले के एक और पहलू पर भी ध्यान देना चाहिए, विशेष रूप से भास्कर ज्योति सरमा (सुप्रा) में सुप्रीम कोर्ट के हालिया फैसले के संबंध में। याचिकाकर्ता ने निरसन अधिनियम लागू होने के लगभग तीन साल बाद 2002 में पहली रिट याचिका दायर की थी। याचिकाकर्ता के प्रतिनिधित्व पर आदेश पारित करने के लिए जिला मजिस्ट्रेट को निर्देश देकर पहले की रिट याचिका का निपटारा करने के बाद, जिला मजिस्ट्रेट द्वारा 10 मई 2007 को एक आदेश पारित किया गया था। इसके बाद याचिकाकर्ता ने दो साल से अधिक की अवधि तक इंतजार किया, जब तक कि जुलाई 2009 में वर्तमान रिट याचिका दायर नहीं की गई। यदि याचिकाकर्ता को धारा 10 (5) के तहत उचित नोटिस के बिना भूमि से बेदखल कर दिया गया था, तो इस तरह की शिकायत प्रासंगिक समय पर उठाई जा सकती थी। वास्तव में, यह राज्य का हमेशा से मामला रहा है कि धारा 10 (5) के तहत एक नोटिस वास्तव में वर्तमान मामले में जारी किया गया था जो मूल फाइल से पैदा होगा जिसे अदालत के समक्ष पेश किया गया है। मुद्दा यह है कि क्या इस तरह की शिकायत लंबे समय बाद, अदालत के समक्ष की जा सकती है। याचिकाकर्ता ने पहली रिट याचिका दायर करने के लिए निरसन अधिनियम लागू होने के बाद लगभग तीन साल तक इंतजार किया था और उसके बाद जिला मजिस्ट्रेट के निष्कर्ष के बावजूद कि कब्जा 25 जून 1993 को लिया गया था। हमारे विचार में, इस तरह की देरी से चुनौती को किसी भी स्थिति में स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए।
(हमारे द्वारा जोर दिया गया)

12. **शिवगोंडा अन्ना पाटिल बनाम महाराष्ट्र राज्य7 में**, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने अधिनियम की धारा 10 को निपटारे के दौरान कहा कि याचिका अनुच्छेद 226 के तहत की कार्यवाही इस आधार पर फिर से शुरू करने के कि सक्षम प्राधिकारी ने कुछ तथ्यों पर विचार नहीं किया था।

....

6. 2015 (7) एडीजे 630
7. (1999) 3 एससीसी 5

दस वर्ष बाद, अतिरिक्त भूमि राज्य सरकार में निहित कर देने के बाद उच्च न्यायालय द्वारा सही ढंग से सरसरी तौर पर खारिज कर दिया गया था।

13. अधिमान्यता में विलम्ब एवं शिथिलता के प्रश्न का निर्णय करते समय अनुच्छेद 226 के तहत याचिका, **नगर परिषद अहमदनगर बनाम शाह हैदर बेग** में सर्वोच्च न्यायालय,का मानना था कि न्यायसंगत सिद्धांत, अर्थात्, "विलंब समता को पराजित करता है" के मामले में इसका पूर्ण उपयोग संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत राहत प्रदान करना होता है जहॉ विवेकाधीन राहत तभी मिल सकती है जब कोई अपने कार्य या आचरण को उसके अधिकारों के लिए नजरअंदाज न करे,

समानता एक सतर्क व्यक्ति का पक्ष लेती है बजाय अकर्मण्य वादी के, यह कानून का मूल सिद्धांत है।

14. हाल ही में **कपिलाबेन अम्बालाल पटेल एवं अन्य बनाम गुजरात राज्य**, सर्वोच्च न्यायालय ने मूल भूमि धारक के कानूनी उत्तराधिकारी/प्रतिनिधि द्वारा पेश किये गये तर्को को अत्याधिक विलम्ब के आधार पर स्वीकार करने से इनकार कर दिया।

> *"पीड़ित महसूस करते हुए, भूमि मालिकों ने इस अदालत का दरवाजा खटखटाया है। यह आग्रह किया जाता है कि प्रतिवादी राज्य द्वारा दावा किए गए तथ्य को प्रमाणित करने के लिए सबूत का कोई अंश नहीं है कि विचाराधीन भूमि का भौतिक कब्जा 20-3-1986 को लिया गया है। यह केवल कब्जे पंचनामा के रूप में एक कागज-कब्जा था। अपीलकर्ताओं के अनुसार, निरसन अधिनियम की तारीख के अनुसार विषय भूमि का वास्तविक कब्जा महत्वपूर्ण है और 1976 के अधिनियम के तहत राज्य अधिकारियों के सभी कार्यों को समाप्त करना आवश्यक है। राज्य में भूमि के निहित माने जाने के संबंध में 1976 अधिनियम की धारा 10 (3) के तहत अधिसूचना जारी करना निरसन अधिनियम के प्रयोजनों के लिए पर्याप्त नहीं है। विनायक काशीनाथ पर भरोसा किया गया है शिलकर बनाम कलेक्टर और सक्षम प्राधिकारी, (2012) 4 एससीसी 718, उत्तर प्रदेश राज्य बनाम हरि राम (2013) 4 एससीसी 280, गजानन कम्या पाटिल बनाम अतिरिक्त कलेक्टर और सक्षम प्राधिकारी (यूएलसी) (2014) 12 एससीसी 523 और मंगलसेन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2014) 15 एससीसी 332। इस न्यायालय का सुसंगत दृष्टिकोण यह है कि राज्य के अधिकारियों द्वारा भौतिक कब्जा लिया जाना चाहिए, जिसमें विफल होने पर निरसन अधिनियम के कारण कार्यवाही समाप्त हो जाएगी। अपीलकर्ताओं ने यह दिखाने के लिए राजस्व रिकॉर्ड पर भरोसा किया है कि 20-3-1986 को कब्जा पंचनामा किए जाने के बाद भी अपीलकर्ताओं/भूस्वामियों के पास निरंतर कब्जा बना रहा। राजस्व प्रविष्टियों का अनुमानित मूल्य है और प्रतिवादी राज्य इसका खंडन करने में विफल रहा है।*

....

8. (2000) 2 एससीसी 48

9. 2021 (12) एससीसी 95

15. **कपिलाबेन अंबालाल पटेल (सुप्रा)** के पैराग्राफ 25 में, न्यायालय देरी को उल्लिखित किया और उच्च न्यायालय के आदेश में हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया।

प्रासंगिक भाग इस प्रकार है:

> *"इसके अलावा, जो कुछ भी दावा किया गया है वह यह है कि उच्च न्यायालय ने यह मानने में गलती की कि रिट याचिका दायर करने में 14 साल की देरी हुई और इस बात की सराहना नहीं की कि 1976 के अधिनियम की धारा 10 (5) के तहत नोटिस 23-1-1986 को अंबालाल परसोतमभाई पटेल को नहीं दिया गया था क्योंकि वह पहले*

ही 31-12-1985 को समाप्त हो चुके थे और उन्हें भेजा गया नोटिस 2-2-1986 को टिप्पणी के साथ वापस कर दिया गया था, "मालिक ने कहा है कि समाप्त हो गया"। इसके अलावा, अंबालाल परसोत्तमभाई पटेल के कानूनी उत्तराधिकारियों को उक्त नोटिस दिया जाना चाहिए था......... जैसा कि यह हो सकता है, हम उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष को उलटने के इच्छुक नहीं हैं कि अपीलकर्ताओं द्वारा दायर रिट याचिका में निराशाजनक देरी हुई और उन्हें नुकसान हुआ। वर्तमान मामले के तथ्यों में यह एक संभावित दृष्टिकोण है।

16. इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा दिए गए याचिकाकर्ता के विद्वान वकील द्वारा भरोसा किया गया निर्णय **हरिराम (सुप्रा)** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर आधारित हैं। हरि राम (सुप्रा) पर विचार करने पर भास्कर ज्योति शर्मा (सुप्रा) में सुप्रीम कोर्ट का विचार था कि धारा 10 (5) में दिखाई देने वाला शब्द 'हो सकता है' सक्षम प्राधिकारी को धारा 10 (6) के तहत विचाराधीन भूमि पर भौतिक कब्जा लेने से पहले नोटिस जारी करने या न करने का विवेक देता है। यह सवाल कि क्या धारा 10 (5) का उल्लंघन और बिना किसी सूचना के संभावित बेदखली से बेदखली का कार्य समाप्त हो जाएगा या इसे कानून की नजर में गैर-स्थापित कर दिया जाएगा, हरि राम (सुप्रा) में विचार के लिए नहीं आया। इसके बाद, न्यायालय ने आगे कहा कि धारा 10 (5) के तहत नोटिस के बिना बेदखली के संबंध में अपीलकर्ता का मामला लेना भी कोई परिणाम नहीं होगा और निरसन अधिनियम की धारा 3 के प्रयोजनों के लिए कब्जा लेने के कार्य को समाप्त नहीं करेगा। ऐसा इसलिए है क्योंकि तत्कालीन भूमि मालिक ने अपने जीवनकाल के दौरान किसी भी स्तर पर धारा 10 (5) के उल्लंघन के आधार पर कोई शिकायत नहीं की थी, जिसका अर्थ है कि उसने ऐसा करने का अपना अधिकार माफ कर दिया था।

17. याचिकाकर्ताओं के हित में पूर्ववर्ती एक बाद का खरीदार है, शायद, एक हाउसिंग सोसाइटी से। किसी भी मामले में, धारा 10 (1) के तहत अधिसूचना के अनुसार अधिशेष घोषित अतिरिक्त भूमि को धारा 10 के उप-खंड (4) के मद्देनजर स्थानांतरित नहीं किया जा सकता था। स्थानांतरण कानून की नजर में एक शून्यता है।

18. धारा 10(4) का प्रासंगिक भाग निकाला गया है:

"10(4) उपधारा (1) के अधीन अधिसूचना के प्रकाशन की तारीख से आरंभ होने वाली और उपधारा (3) के अधीन की गई घोषणा में विनिर्दिष्ट तारीख को समाप्त होने वाली अवधि के दौरान-

(i) कोई भी व्यक्ति पूर्वोक्त अधिसूचना में विनिर्दिष्ट किसी अतिरिक्त खाली भूमि (उसके किसी भाग सहित) को बिक्री, बंधक, उपहार, पट्टे या अन्यथा अंतरित नहीं करेगा और इस प्रावधान के उल्लंघन में किया गया ऐसा कोई अंतरण शून्य और शून्य समझा जाएगा; और

(ii) कोई व्यक्ति ऐसी अतिरिक्त खाली भूमि के उपयोग में परिवर्तन नहीं करेगा या उसमें परिवर्तन नहीं कराएगा।

19. याचिकाकर्ताओं द्वारा स्वयं प्रस्तुत तथ्यों से यह स्पष्ट है कि धारा 10 (1) के तहत अधिसूचना 17 जुलाई 1982 को अधिसूचित की गई थी, इसके बाद 28 जुलाई 1990 को अधिसूचित धारा 10 (3) के तहत अधिसूचना जारी की गई थी। याचिकाकर्ता के हित में पूर्ववर्ती ने 1985 में संपत्ति खरीदी थी, अर्थात, धारा 10 (1) के तहत जारी अधिसूचना के बाद। तदनुसार, हस्तांतरण शून्य और शून्य होगा, उक्त संपत्ति के संबंध में याचिकाकर्ताओं को कोई अधिकार नहीं मिलेगा। अधिनियम की योजना के अनुसार, अधिकतम सीमा से अधिक भूमि का निर्धारण अधिनियम के लागू होने की तारीख को किया जाना है, जिसमें अधिकतम सीमा से अधिक खाली भूमि रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति से अपनी धारिता का विवरण (धारा 6) दर्ज करना अपेक्षित है। अन्य व्यक्तियों/तृतीय पक्ष/बाद के खरीदारों के पास तब तक आपत्ति दर्ज करने का कोई अधिकार या अधिकार नहीं है। अधिनियम की धारा 8 और धारा 9 के प्रावधान, सक्षम प्राधिकारी के लिए यह अनिवार्य बनाते हैं कि वह केवल 'संबंधित व्यक्ति' को नोटिस जारी करे या सुनवाई का अवसर प्रदान करे, अर्थात, वह व्यक्ति जिसने अधिनियम की धारा 6 के तहत बयान दायर किया है, (यूए बशीर थ्र जीपीए होल्डर बनाम कर्नाटक राज्य और अन्य 10 के पैराग्राफ 14 को देखें)। अधिनियम की धारा 10(1) के तहत अधिसूचना जारी करने के बाद ही अन्य व्यक्तियों/परवर्ती खरीददारों के दावों पर विचार किया जाएगा।

....

सिविल अपील संख्या 3032 सन 2010, जो 17 फरवरी, 2021 को निर्णय लिया गया।

20. दिए गए तथ्यों में, याचिकाकर्ता इसके बाद के खरीदार हैं धारा 10 (1) के तहत अधिसूचना के बाद अतिरिक्त भूमि घोषित की गई। उनके पास अधिकार नहीं है, न ही, धारा 10 (1) के चरण के बाद अतिरिक्त भूमि का हस्तांतरण है, कानून में अनुमत [धारा 10(4)] का कब्ज़ा/पुनः कब्ज़ा याचिकाकर्ताओं के हाथों अतिरिक्त अधिशेष भूमि का परिणाम है।

21. तत्काल रिट याचिका निरसन अधिनियम की तारीख से 22 साल बाद और धारा 10 (5) के तहत नोटिस के बाद से तीन दशकों से अधिक समय बीत जाने के बाद दायर की गई है। लिया गया एकमात्र स्टैंड एक नीरस बयान पर आधारित है कि याचिकाकर्ताओं के पास घोषित अतिरिक्त भूमि है। अधिनियम की धारा 10 की उपधारा 4 के मद्देनजर, घोषित अतिरिक्त भूमि का हस्तांतरण एक शून्यता है और याचिकाकर्ताओं को कोई अधिकार, शीर्षक या अधिकार प्रदान नहीं करता है।

22. याचिका के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, याचिका योग्यता रहित होने के कारण, तदनुसार, **खारिज** किया जाता है।

(2023) 3 ILRA 278

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल वाद

दिनांक: लखनऊ 01.03.2023

माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर

के समक्ष

रिट सी संख्या 4537/2022

मेसर्स जेएचवी स्टील लिमिटेड ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: पुष्पिला बिष्ट

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: सी.एस.सी., तुषार वर्मा

ए. सिविल कानून - खनन -अवैध खनन उत्तर प्रदेश लघु खनिज (रियायत) नियम, 1963 - नियम 58, 60 और 67- रॉयल्टी किराया या अन्य देय राशि का भुगतान न करने के परिणाम- राज्य सरकार पट्टेदार को नोटिस प्राप्त होने के तीस दिनों के भीतर राज्य सरकार को देय किसी भी राशि का भुगतान करने के लिए नोटिस देने के बाद खनन पट्टा समाप्त कर सकती है यदि भुगतान के लिए निर्धारित तिथि के पंद्रह दिनों के भीतर भुगतान नहीं किया गया था - वर्तमान वाद में नोटिस की तारीख से तीस दिन दिनांक 11.05.2021 को समाप्त हो गए और उक्त तिथि से पंद्रह दिन पश्चात दिनांक 26.05.2021 को समाप्त हो गए, हालांकि निरस्त करने का आदेश वैधानिक अवधि समाप्त होने से पूर्व दिनांक 26.4.2021 को पारित किया गया था - नियम 58 का पट्टा रद्द करने में प्रतिवादियों द्वारा घोर उल्लंघन किया गया - रद्द करने का आदेश अपास्त किया गया (पैरा 30)

बी. सिविल कानून खनन अवैध खनन उत्तर प्रदेश लघु खनिज (रियायत) नियमावली, 1963, नियम 58, 60, 67 पट्टे के नियमों और शर्तों के उल्लंघन के परिणाम - यदि आरोप पट्टा क्षेत्र से परे अवैध खनन के हैं, तो निरीक्षण रिपोर्ट में निरीक्षण किए गए क्षेत्र और कथित अवैध खनन से परे के क्षेत्र दोनों के जीपीएस निर्देशांक प्रदान करने होंगे - यह स्थापित किया जाना चाहिए कि अवैध खनन वास्तव में पट्टा क्षेत्र से परे क्षेत्र में किया गया था (पैरा 19, 23)

सी. सिविल कानून - अवैध खनन - खनन पट्टा लाइसेंसों को निरस्त करना - प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन - याचिकाकर्ता को जारी कारण बताओ नोटिस में केवल अवैध खनन के आरोप सम्मिलित थे - निरीक्षण दल द्वारा दर्ज किए गए, याचिकाकर्ता की दोषसिद्धि पूरी तरह से निरीक्षण रिपोर्ट के आधार पर तय की गई थी, हालांकि, निरीक्षण रिपोर्ट याचिकाकर्ता को कभी नहीं दी गई - जांच की कार्यवाही प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के स्पष्ट उल्लंघन में की गई थी, जिससे याचिकाकर्ता के बचाव को गंभीर रूप से नुकसान पहुंचा - जांच के दौरान कोई अन्य सबूत या बयान दर्ज नहीं किए गए थे, और कोई दस्तावेज अभिलेख पर नहीं लिया गया था - निरीक्षण रिपोर्ट में यह उल्लेख नहीं था कि कब और कहां निरीक्षण किया गया था, कौन मौजूद था, या यह याचिकाकर्ता को आवंटित स्थान पर किया गया था - भूखंड की पहचान के लिए इस्तेमाल किए गए जीपीएस निर्देशांक का कोई उल्लेख नहीं था - जिला मजिस्ट्रेट द्वारा पारित रद्दीकरण आदेश, अवैध खनन के आरोप उच्च अधिकारी अर्थात निदेशक, खनन एवं भूविज्ञान के निर्देशों पर कोई भी विवेक प्रयोग न करते हुए, याचिकाकर्ता द्वारा उत्तर में दिए गए आधारों/बचाव पर अपीलीय या पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा विचार तक नहीं किया गया, जिससे विवादित आदेश अवैध और मनमाना हो गया। (पैरा 20, 23, 24)

डी. सिविल कानून - अवैध खनन - खनन पट्टा लाइसेंस रद्द करना - पक्षपात - डॉ. रोशन जैकब, जो कि भूतत्व एवं खनिकर्म निदेशक थे, ने जिला मजिस्ट्रेट को याचिकाकर्ता के विरुद्ध कार्यवाही करने और उसका खनन पट्टा रद्द करने का

निर्देश दिया, जिसके पश्चात आदेश का विधिवत अनुपालन किया गया, बाद में उन्होंने खुद ही खनन पट्टा निरस्त करने के आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण प्राधिकारी के रूप में सुनवाई की और पुनरीक्षण को खारिज कर दिया। पुनरीक्षण आदेश पक्षपात के कारण प्रभावित माना गया। (पैरा 27)

स्वीकृत। (ई-5)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. रणवीर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2017 (1) ADJ 240
2. मुस्तफा बनाम भारत संघ, (2022) 1 SCC 294

<u>माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर,</u>

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्रीमती पुष्पिला बिष्ट के साथ ही विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री राकेश बाजपेयी, विशेष अधिवक्ता श्री तुषार वर्मा और प्रतिवादियों की ओर से अपर महाधिवक्ता श्री रमेश कुमार सिंह को सुना गया।

2. प्रस्तुत रिट याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ता ने राज्य सरकार द्वारा पारित आदेश दिनांक 29.6.2022, जिसके माध्यम से जिला मजिस्ट्रेट, बांदा द्वारा खनन पट्टे को निरस्त किए जाने हेतु पारित आदेश दिनांक 26.4.2021 के विरुद्ध याचिकाकर्ता द्वारा दायर किए गए पुनरीक्षण को खारिज कर दिया गया, को चुनौती दी है।

<u>प्रकरण के तथ्य:-</u>

3. प्रस्तुत प्रकरण के अधिनिर्णयन हेतु संक्षेप में आवश्यक तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता ने खनन हेतु ई-निविदा/ई-नीलामी के प्रतिक्रिया में नीलामी में भाग लिया और उसकी बोली को उच्चतम घोषित किया गया और याचिकाकर्ता के पक्ष में दिनांक 01.6.2020 को पट्टा विलेख 01.6.2020 से 31.5.2025 तक की अवधि हेतु निष्पादित किया गया। खनन पट्टे के निष्पादन के पश्चात याचिकाकर्ता ने खनन कार्य प्रारम्भ कर दिया परन्तु अचानक 19.3.2021 को जिला मजिस्ट्रेट, बांदा द्वारा एकबार प्रयोग होने वाला पारणशब्द (ओ.टी.पी.) बंद कर दिया गया। इसके पश्चात, यह कथित है कि 13.3.2021 और 18.3.2021 के मध्य निदेशालय, खनन एवं भूतत्व, उत्तर प्रदेश के अधिकारियों की एक दल द्वारा निरीक्षण किया गया और अवैध खनन से संबंधित अनियमितताओं के संबंध में कुछ आरोप सही पाए गए तथा उपरोक्त निरीक्षण आख्या के आधार पर याचिकाकर्ता को 22.3.2021 को कारण बताओ नोटिस तामील करायी गयी। जिला मजिस्ट्रेट, बांदा द्वारा जारी कारण बताओ नोटिस के अनुसार यह उल्लेखित किया गया कि एक दल द्वारा निरीक्षण किया गया था जहां यह पाया गया कि याचिकाकर्ता अवैध खनन में संलिप्त है और उसने उस क्षेत्र से लघु खनिज निकाले हैं जोकि उसे आवंटित नहीं किया गया था तथा इतनी गहराई तक लघु खनिज निकाला गया जो उसको पट्टा विलेख के अनुसार अनुमेय नहीं था। तदनुसार, एक नोटिस दिया गया कि क्यों न पट्टा निरस्त कर दिया जाए। उक्त कारण बताओ नोटिस में उक्त अपराध हेतु अर्थदण्ड 50,000/- रुपये भी निर्धारित किया गया तथा 10,39,68,500/- रुपये स्वामिस्व की वसूली भी प्रस्तावित की गयी।

4. उपरोक्त कारण बताओ नोटिस के अनुसरण में याचिकाकर्ता ने 30.3.2021 को उत्तर प्रस्तुत

किया जिसमें उन्होंने कारण बताओ नोटिस में लगाए गए आरोपों का खण्डन किया और वर्णित किया कि कारण बताओ नोटिस के अलावा याचिकाकर्ता को कोई तथ्य प्रदान नहीं किया गया जैसा कि न्यायालय द्वारा रिट सी संख्या 51986/ 2016 ***रणवीर सिंह बनाम उ.प्र. राज्य और अन्य, 2017 (1) एडीजे 240*** के प्रकरण में निर्देशित किया गया और अग्रेतर प्रस्तुत किया कि आरोपों के समर्थन में कोई विश्वसनीय साक्ष्य नहीं था और इसलिए, कारण बताओ नोटिस को निरस्त करने का अनुरोध किया गया।

5. याचिकाकर्ता के उत्तर पर विचार करने के उपरान्त जिला मजिस्ट्रेट ने अपने आदेश दिनांक 26 अप्रैल, 2021 के माध्यम से याचिकाकर्ता का खनन पट्टा निरस्त कर दिया। याची के उत्तर को खारिज करते हुए जिला मजिस्ट्रेट ने यह दर्ज किया है कि याची ने गैर आवंटित क्षेत्र से लघु खनिजों को निकाला और 1,15,465घन फीट रेत/मौरंग अवैध रूप से निकाली, इस तथ्य को प्रवर्तन दल द्वारा अपनी आख्या दिनांक 12.11.2020 में प्रतिवेदित किया गया। उन्होंने अग्रेतर पाया कि याचिकाकर्ता को 10,39,68,500/- रुपये स्वामिस्व की राशि जमा करने हेतु कहा गया था, परन्तु याचिकाकर्ता द्वारा उक्त राशि को भी जमा नहीं किया गया और तदनुसार उनका मत था कि याचिकाकर्ता से उक्त बकाया राशि की वसूली उत्तर प्रदेश लघु खनिज (रियायत) नियमावली, 1963 के नियम 41 (एच) (1) और 59 (2) के अन्तर्गत प्राविधानित अर्थदंड के साथ की जानी चाहिए। उन्होंने अग्रेतर इस तथ्य पर भी विचार किया कि निदेशक, खनन और भूतत्व, उत्तर प्रदेश द्वारा भौतिक निरीक्षण हेतु प्रवर्तन दल का गठन किया गया जिसने 19.3.2021 को स्थलीय निरीक्षण कर 19.3.2021 को आख्या प्रस्तुत की, जिसमें यह पाया गया कि याचिकाकर्ता द्वारा 7.555 हेक्टेयर क्षेत्र में खनन कार्य किया गया और उक्त आदेश में आरोपित अन्य अवैध खनन के अतिरिक्त उसे आवंटित क्षेत्र से परे 188875 घन फीट रेत निकाली गई और यहां तक कि नदी के किनारे से भी इतनी गहराई तक रेत निकाली गई जो निर्धारित सीमा से अधिक थी। इस संबंध में याचिकाकर्ता के विरुद्ध प्राथमिकी भी दर्ज की गयी।

6. जिला मजिस्ट्रेट ने, निरीक्षण आख्या पर विश्वास किया और वर्णन किया कि निरीक्षण दल द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों के विपरीत याचिकाकर्ता न तो कोई साक्ष्य प्रस्तुत कर सका अथवा न ही अपना पक्ष साबित कर सका और इसलिए, याचिकाकर्ता के उत्तर को खारिज कर दिया और 10,39,68,500/- रुपये की राशि की वसूली हेतु आदेश पारित कर दिया और याचिकाकर्ता के पक्ष में जारी पट्टा विलेख को भी निरस्त कर दिया और उसे दो वर्ष की अवधि हेतु काली सूची में डाल दिया।

7. याचिकाकर्ता ने जिला मजिस्ट्रेट के आदेश दिनांक 26 अप्रैल, 2021 से क्षुब्ध होकर राज्य सरकार के समक्ष एक पुनरीक्षण प्रस्तुत किया, जोकि आक्षेपित आदेश दिनांक 29.06.2022 द्वारा निर्णीत हुआ और खारिज कर दिया गया। पुनरीक्षण प्राधिकारी ने याचिकाकर्ता के पुनरीक्षण को खारिज करते हुए और आक्षेपित आदेश पारित करते हुए इस तथ्य पर ध्यान दिया कि जिस पर याचिकाकर्ता को खनन पट्टा दिया गया था उस पर एक निरीक्षण किया गया और कुछ आरोप

समक्ष प्रस्तुत हुए जिनके आधार पर याचिकाकर्ता को कारण बताओ नोटिस जारी किया गया जिसका उत्तर उसके द्वारा दिनांक 30.3.3021 को प्रस्तुत किया गया। याचिकाकर्ता का उत्तर संतोषजनक नहीं पाया गया और मात्र इस तथ्य के कारण कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोपों को निरीक्षण दल द्वारा निष्कर्षित किया गया था, जिला मजिस्ट्रेट के आदेश में कोई अवसन्नता नहीं पाई गई और तदनुसार पुनरीक्षण खारिज कर दिया गया।

8. प्रस्तुत याचिका में याचिकाकर्ता ने पट्टा विलेख को निरस्त किये जाने के साथ-साथ दिनांक 29.06.2022 के पुनरीक्षण आदेश और वसूली पर भी प्रश्न उठाया है।

<u>चुनौती के आधार:-</u>

9. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने सबसे पहले प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध निरस्तीकरण और वसूली का आदेश पारित करने से पूर्व याचिकाकर्ता को सुनवाई का कोई उचित अवसर नहीं दिया गया। अपनी तर्कों के समर्थन में उन्होंने प्रस्तुत किया है कि, वास्तव में, कोई निरीक्षण नहीं किया गया और 22.3.2021 के कारण बताओ नोटिस के अवलोकन से संकेत प्राप्त होता है कि याचिकाकर्ता को कारण बताओ नोटिस के साथ निरीक्षण आख्या की प्रति सहित कोई भी तथ्य उपलब्ध नहीं कराया गया तथा याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोपों का आधार बनने वाले प्रासंगिक दस्तावेजों और तथ्य के अभाव में पूरी कार्यवाही प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करते हुए की गई और तदनुसार यह अवैध, मनमानी और अपास्त किये जाने योग्य है।

10. दूसरी ओर, विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री राकेश बाजपेयी ने आक्षेपित आदेशों का समर्थन करते हुए कहा कि कारण बताओ नोटिस के अवलोकन से संकेत मिलता है कि कारण बताओ नोटिस में निरीक्षण आख्या की सम्पूर्ण अन्तर्वस्तु पुनः प्रस्तुत की गयी। उन्होंने इस तथ्य से विवाद नहीं किया कि निरीक्षण आख्या दिनांक 19.3.2022 की प्रति याचिकाकर्ता को कभी प्रदान नहीं की गयी।

11. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने अग्रेतर प्रस्तुत किया कि निरीक्षण आख्या और अन्य सभी प्रासंगिक दस्तावेज राज्य सरकार द्वारा प्रति शपथपत्र के साथ संलग्न किए गए हैं। अग्रेतर यह प्रस्तुत किया गया कि निरीक्षण आख्या 19.3.2021 को निदेशक, खनन एवं भूतत्व, उत्तर प्रदेश सरकार को प्रस्तुत की गई थी, जिन्होंने जिला मजिस्ट्रेट, बांदा को संबोधित करते हुए पत्र दिनांकित 20.3.2021 के माध्यम से याचिकाकर्ता के विरुद्ध कार्यवाही किये जाने हेतु निरीक्षण आख्या की एक प्रति अग्रेषित की थी। उक्त आख्या के साथ ही उन्होंने जिला मजिस्ट्रेट को उसमें उल्लिखित आदेश पारित करने के स्पष्ट निर्देश दिये थे। उक्त पत्र के क्रम संख्या 7 पर याचिकाकर्ता के नाम का उल्लेख मिलता है जिसमें जिला मजिस्ट्रेट को याचिकाकर्ता के विरुद्ध प्राथमिकी दर्ज करने, उसका खनन पट्टा निरस्त करने तथा उसका नाम काली सूची में डालने तथा उससे अवैध खनन के आरोपों के संबंध में वसूली किए जाने के निर्देश दिये गये। सुविधा हेतु निदेशक के निर्देशों को निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है:-

> *'स्वीकृत क्षेत्र से बाहर एवं सटे खण्ड के क्षेत्र में अवैध खनन तथा अन्य अनियमितता पाये*

जाने पर पट्टेधारक के विरूद्ध प्राथमिकी दर्ज कराते हुए नियमानुसार पट्टा निरस्तीकरण एवं पट्टेधारक का नाम काली सूची में डाला जाय तथा अवैध खनन के विरुद्ध पट्टाधारक से नियमानुसार राजस्व क्षति की धनराशि वसूल किये जाने की कार्यवाही की जाय।"

12. याचिकाकर्ता द्वारा यह भी प्रस्तुत किया गया है कि जिला मजिस्ट्रेट द्वारा बिना किसी विवेक का इस्तेमाल किये हुए सम्पूर्ण कार्यवाहियाँ की गयी हैं और निदेशक, खनन और भूतत्व द्वारा जारी निर्देशों के अवलोकन से, जिला मजिस्ट्रेट जोकि सचिव (खनन और भूतत्व) के अधीनस्थ हैं, अनुपालन करने हेतु कर्तव्यबद्ध थे और वास्तव में, उन्होंने निर्देशों का अनुपालन किया और परिणामस्वरूप यह पूर्वाग्रह तथा जिला मजिस्ट्रेट द्वारा विवेक के उपयोग न करने का स्पष्ट प्रकरण है।

13. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने अग्रेतर इस आधार पर आक्षेपित आदेशों की आलोचना की है कि दल ए द्वारा 19 व्यक्तियों, जोकि, उनके पक्ष में जारी किए गए पट्टा अनुज्ञप्ति के पट्टा धारक थे, के संबंध में निरीक्षण किया गया था और निरीक्षण आख्या दिनांक 19.3.2021 के अनुसरण में सभी 19 व्यक्तियों के विरुद्ध कार्रवाई की गई और सभी मामलों में निदेशक, खनन एवं भूतत्व के निर्देशों/आदेशों, जैसा कि उनके पत्र दिनांक 20.3.2021 में निहित था, का जिला मजिस्ट्रेट द्वारा विधिवत अनुकरण और अनुपालन किया गया और उक्त सूची में सम्मिलित सभी व्यक्तियों के पट्टों को निरस्त कर दिया गया। अग्रेतर कथन किया गया कि सभी निरस्तीकरण आदेशों के विरुद्ध संबंधित व्यक्तियों ने राज्य सरकार के समक्ष पुनरीक्षण दायर किये, जोकि पुनः निदेशक (खनन और भूतत्व), वही अधिकारी जिसने सचिव (खनन एवं भूतत्व) उत्तर प्रदेश सरकार के रूप में अपनी क्षमता में दिनांक 20.3.2021 को पत्र लिखा था, द्वारा निर्णीत किये गये तथा क्रम संख्या 16 पर पुनरीक्षणकर्ता अर्थात् वीएआर एंटरप्राइजेज प्राइवेट लिमिटेड के पुनरीक्षण को छोड़कर सभी पुनरीक्षणों को खारिज कर दिया गया। वीएआर एंटरप्राइजेज प्राइवेट लिमिटेड द्वारा दायर पुनरीक्षण संख्या 128 (आर)/एसएम/2021 में पारित आदेश की एक प्रति को रिट याचिका के साथ संलग्न किया गया जिसमें उसी आख्या के आधार पर वीएआर एंटरप्राइजेज प्राइवेट लिमिटेड का पुनरीक्षण को यह कहते हुए अनुमत किया गया कि निरीक्षण आख्या में स्पष्ट खामियां थीं और उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता और यह इंगित करने हेतु कोई तथ्य नहीं है कि दोषी पट्टा धारक, वास्तव में, किसी भी अवैध खनन में सम्मिलित अथवा लिप्त था तथा उपरोक्त परिस्थितियों में सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार (खनन एवं भूतत्व) ने उसी तथ्य के आधार पर पुनरीक्षण प्राधिकारी की शक्ति का प्रयोग करते हुए आदेश दिनांक 24.2.2022 द्वारा उक्त पुनरीक्षण को अनुमत किया।

14. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने दिनांक 24.2.2022 के आदेश की समतुल्यता का दावा किया और प्रस्तुत किया कि वीएआर

एंटरप्राइजेज प्राइवेट लिमिटेड के प्रकरण में पुनरीक्षण पर विचार करते समय पुनरीक्षण प्राधिकारी ने, उन्हीं तथ्यों के आधार पर और उन्हीं कारणों से याचिकाकर्ता का पुनरीक्षण खारिज कर, याचिकाकर्ता के विरुद्ध भेदभाव किया है।

15. इसके विपरीत, श्री राकेश बाजपेयी ने तर्क प्रस्तुत किया कि आक्षेपित आदेश पारित करने के पूर्व याचिकाकर्ता को सुनवाई का समुचित अवसर दिया गया था। उनका कथन है कि उत्तर प्रदेश लघु खनिज (रियायत) नियमावली, नियमावली 1963 के नियम 60 तथा 67 के अन्तर्गत निहित प्रावधानों के अनुसार, किसी भी निरस्तीकरण या काली सूची में डालने का आदेश पारित करने से पूर्व याचिकाकर्ता को सुनवाई का समुचित अवसर दिया जाना चाहिए। उनका कथन है कि निरीक्षण उक्त नियमावली के अन्तर्गत निर्धारित प्राधिकारी द्वारा किया गया था और उक्त निरीक्षण के अनुसार यह सुरक्षित रूप से कहा जा सकता है कि निरीक्षण आख्या के अनुसार याचिकाकर्ता को अवैध खनन में लिप्त पाया गया था और इसलिए, उसे कारण बताओ नोटिस जारी किया गया तथा उक्त कारण बताओ नोटिस का उत्तर प्राप्त होने के पश्चात ही पट्टा विलेख को निरस्त करने और अर्थदण्ड लगाने हेतु उक्त अधिनियम में निहित प्रावधानों के अनुसार कार्रवाई की गयी। उनका कथन है कि याचिकाकर्ता को सुनवाई का समुचित अवसर दिया गया था और परिणामस्वरूप यह कहा नहीं जा सकता कि कार्यवाहियाँ विधि प्रतिकूल हैं और इस प्रकार उन्होंने सम्पूर्ण कार्यवाही के साथ-साथ आक्षेपित आदेशों का भी समर्थन किया। उन्होंने अग्रेतर दृढ़तापूर्वक कथन किया कि दिनांक 19.3.2021 की निरीक्षण आख्या की प्रति उपलब्ध न कराने से याचिकाकर्ता के प्रकरण पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा है और न ही जांच आख्या उपलब्ध न कराने से याचिकाकर्ता पर कोई प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है और इस प्रकार, यह नहीं कहा जा सकता है कि इसमें प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन है।

<u>परिचर्चा:-</u>

16. मैंने संबंधित पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना और अभिलेख का अवलोकन किया।

17. राज्य सरकार ने जिला बांदा में विभिन्न व्यक्तियों से अवैध खनन के संबंध में कुछ शिकायतें प्राप्त होने के पश्चात विभिन्न क्षेत्रों, जिनके खनन के उद्देश्य से पट्टा दिया गया था, का निरीक्षण करने हेतु तीन प्रवर्तन दलों का गठन किया। निदेशक, खनन एवं भूतत्व द्वारा पारित आदेश दिनांक 12.3.2021, जोकि अभिलेख पर है, इंगित करता है कि उक्त दल में सर्वेक्षक के साथ एक ही विभाग के तीन अधिकारी सम्मिलित थे। अग्रेतर यह प्रस्तुत किया गया है कि उक्त मंडलियों ने निरीक्षण किया और 19.3.2021 को निदेशक को अपनी निरीक्षण आख्यायें सौंपी। उक्त आख्या में निष्कर्ष मात्र उस क्षेत्र की सीमा तक सीमित है जिसमें खनन किया गया और प्रत्येक पट्टों के संबंध में निकाले गए खनिज की मात्रा का संकेत दिया गया है। यह भी अग्रेतर अवलोकन किया गया कि उक्त आख्या में इस बात का कोई उल्लेख नहीं है कि उक्त निरीक्षण कब किया गया अथवा क्या पट्टा धारकों को उक्त निरीक्षण के बारे में कभी सूचित किया गया या निरीक्षण किस तरीके से किया गया, ऐसे कुछ

बिन्दु	अक्षान्तर	देशान्तर
क	25°37'23.28" उ	80° 16'58.18" पू
ख	25°37'15.62" उ	80° 16'51.93" पू
ग	25°37'20.56" उ	80° 16'37.64" पू
घ	25°37'34.95" उ	80° 16'43.36" पू

कारक हैं जिनका उल्लेख उक्त निरीक्षण आख्या में नहीं मिलता है। प्रत्येक अनुज्ञप्ति धारकों के संबंध में निरीक्षण आख्या में अत्यंत गोपनीय तरीके से मात्र इतना ही दर्ज किया गया है कि अनुज्ञप्ति धारक अवैध खनन में सम्मिलित हैं और उन मात्राओं का उल्लेख किया गया है जोकि सभी पट्टा धारकों द्वारा अवैध रूप से खनन किया गया।

18. दूसरी ओर, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने यह कथन किया कि उक्त निरीक्षण किया गया और सर्वेक्षक की डायरी में प्रविष्टियाँ की गईं, जिन्हें प्रति शपथपत्र में भी सम्मिलित किया गया है। यह देखा जा सकता है कि मात्र सर्वेक्षक ने ही आख्या पर हस्ताक्षर किये हैं। यह आश्चर्य की बात है कि यदि इस तथ्य को स्वीकार भी कर लिया जाए कि याचिकाकर्ता के संबंध में दिनांक 17.3.2021 को कुछ अनियमितताएं पाई गई थीं तो निरीक्षण दल के शेष सदस्यों ने उक्त सर्वेक्षण आख्या पर हस्ताक्षर क्यों नहीं किए, यह एक पहलू है जिसका उत्तर न तो प्रति शपथपत्र में प्रतिवादियों द्वारा और न ही इसका संतोषजनक उत्तर स्थायी अधिवक्ता द्वारा दिया गया और इसलिए, निरीक्षण स्वयं में संदिग्ध हो जाता है। सचिव, खनन एवं भूतत्व को सौंपी गई उक्त निरीक्षण आख्या के आधार पर ही याचिकाकर्ता के विरुद्ध और अन्य सभी पट्टा धारकों के विरुद्ध भी सम्पूर्ण कार्यवाही की गयी। अग्रेतर यह ध्यातव्य है कि पट्टा विलेख दिनांकित 1 जून, 2020 के अनुसार याचिकाकर्ता को निम्नलिखित क्षेत्र आवंटित किए गए थे:-

19. अग्रेतर, उक्त खनन क्षेत्र को, उसमें वर्णन किये गये, पट्टे वाले क्षेत्र के उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम में अन्य भूखंडों के संदर्भ में वर्णित किया गया था। यह ध्यातव्य है कि निरीक्षण आख्या में मात्र यह दर्ज किया गया है कि याचिकाकर्ता ने खनन क्षेत्र के बाहर के क्षेत्रों से उत्खनन और लघु खनिज निकाले हैं। इसका कहीं भी उल्लेख नहीं किया गया कि निरीक्षण कब और कहाँ किया गया, निरीक्षण के दौरान कौन मौजूद थे और सबसे महत्वपूर्ण यह है कि याचिकाकर्ता को आवंटित स्थान पर निरीक्षण किया गया था या नहीं, यह भी संदिग्ध है क्योंकि भूखंड भूमंडलीय स्थिति निर्धारण प्रणाली निर्देशांक द्वारा पहचाना जा सकता है और इसमें कोई उल्लेख नहीं है कि भूखंड भूमंडलीय स्थिति निर्धारण प्रणाली निर्देशांकों का उपयोग भूखण्ड की पहचान हेतु किया गया। ये आवश्यक तथ्य हैं जोकि प्रकरण की तह तक जाते हैं। यदि याचिकाकर्ता के विरुद्ध यह आरोप हैं कि उसने पट्टे पर दिए गए क्षेत्र से परे अवैध रूप से खनन किया तो जांच दल का यह कर्तव्य था कि वह इसकी पहचान करे/बताए परन्तु प्रकरण को स्थापित करने का प्रयास नहीं किया गया कि वास्तव में, पट्टे वाले क्षेत्र से परे क्षेत्र पर अवैध खनन किया गया था। ये सभी तथ्य विस्तारपूर्वक वर्णित होने चाहिए थे क्योंकि आख्या में यह

निष्कर्ष दर्ज किया गया था कि उक्त निष्कर्षण पट्टे वाले क्षेत्र से परे क्षेत्र में किया गया है तो निरीक्षण आख्या में उनके निर्देशांक देकर इसका वर्णन किया जाना चाहिए था जोकि नहीं किया गया।

20. उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों में इस न्यायालय का यह मत है कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध अवैध खनन के आरोप स्पष्ट रूप से स्थापित नहीं किए जा सके हैं और मात्र इस कथन से कि उसके द्वारा बड़ी मात्रा में खनिज निकाले गए हैं, स्वयमेव ही साबित नहीं होगा कि याचिकाकर्ता अवैध खनन में लिप्त था। आरोपों को साबित करने हेतु आरोपों के समर्थन में विश्वसनीय साक्ष्य एकत्र करना और प्रस्तुत करना राज्य का कर्तव्य है। इस संबंध में दिए गये तर्कों में, विशेष रूप से, ***रणवीर सिंह बनाम उ.प्र. राज्य व अन्य, 2017 (1) एडीजे 240*** के प्रकरण में इस न्यायालय के निर्णय पर आश्रय का बल है, जहां इस न्यायालय ने निम्नानुसार व्यवस्था दी:-

> *"33. एक बार जिम्मेदारी याचिकाकर्ता के कंधे पर लादनी थी, तो यह राज्य का दायित्व था कि उपलब्ध विश्वसनीय साक्ष्यों के माध्यम से साबित करे कि यह याचिकाकर्ता था, जोकि अवैध खनन में लिप्त था और उक्त निर्देश में, कारण बताओ नोटिस जारी करने के अलावा, सभी साक्ष्य जिन पर विश्वास किया जाना था, अर्थात् पदधारी जिन्होंने खोज और सर्वेक्षण किया और जो पदधारी याचिकाकर्ता के विरुद्ध गवाही देने हेतु आगे आये, उनके नाम का खुलासा किया जाना चाहिए था और वास्तव में, उन्हें राज्य के प्रकरण, कि याचिकाकर्ता अवैध खनन में सम्मिलित था, के समर्थन हेतु प्रस्तुत किया जाना चाहिए था। इतना ही नहीं, प्रक्रिया के एक भाग के रूप में याचिकाकर्ता स्वयं के बचाव में साक्ष्यों, जोकि उसके विरुद्ध प्रस्तुत किये गये, की सत्यता पर प्रश्न उठाने तथा अपने स्वयं के साक्ष्य प्रस्तुत करने, यदि कोई हो, का उचित अवसर पाने का अधिकारी था। निर्णयकर्ता निष्पक्ष रूप से कार्य करने हेतु बाध्य है, क्योंकि वस्तुगत योजना के अंतर्गत उसके द्वारा किये गये निर्धारण के नागरिक प्रभाव होंगे, क्योंकि अवैध खनन के आरोपी उस व्यक्ति को आरोप सिद्ध होने पर वित्तीय दायित्व का वहन करना होगा और इसके विपरीत स्थिति में, राज्य को क्षति होगी।"*

21. अग्रेतर यह ध्यातव्य है कि कार्यवाहियों के दौरान निरीक्षण आख्या के अतिरिक्त कोई अन्य साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया जो यह इंगित कर सके कि याचिकाकर्ता अथवा अन्य व्यक्ति अवैध खनन में लिप्त थे। इस संबंध में कोई भी साक्ष्य न तो इस न्यायालय के समक्ष और न ही प्रतिवादियों द्वारा की गई जांच के दौरान, जिसके परिणामस्वरूप पट्टा अनुज्ञप्तियाँ निरस्त कर दी गयीं, अभिलेख पर लाया गया।

<u>दस्तावेज़ न उपलब्ध कराया जाना:-</u>

22. प्रस्तुत प्रकरण में निरीक्षण आख्या उपलब्ध नहीं कराये जाने के संबंध में, यह विवादित नहीं है कि कारण बताओ नोटिस में मात्र अवैध खनन के संबंध में आरोप, जैसा कि निरीक्षण दल द्वारा दर्ज किया गया था, अन्तर्विष्ट थे। याचिकाकर्ता को निरीक्षण आख्या की प्रति कभी नहीं प्रदान की गयी। हालाँकि, स्थायी अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णयों, ***गोरखा सिक्योरिटी सर्विसेज बनाम सरकार (एनसीटी दिल्ली) और अन्य, (2014) 9 सर्वोच्च न्यायालय प्रकरण 105*** के प्रकरण सहित कई निर्णय हैं जहां यह व्यवस्था दी जा चुकी है कि यदि अपचारी को जांच आख्या नहीं दी जाती है तो कार्यवाही स्वयमेव अवैध और मनमानी तथा नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघनकारी नहीं होगी परन्तु अपचारी को यह दर्शाना होगा कि जांच आख्या की प्रति उपलब्ध न कराने के कारण उसके साथ पूर्वाग्रह कारित हुआ।

23. यह ध्यातव्य है कि प्रस्तुत प्रकरण में याचिकाकर्ता के विरुद्ध कार्यवाहियाँ मात्र निरीक्षण आख्या के आधार पर संचालित की गयी हैं। निर्विवाद रूप से, उक्त अन्वेषण के दौरान कोई अन्य तथ्य प्रस्तुत नहीं किया गया और न ही अन्वेषण के दौरान कोई साक्ष्य या बयान दर्ज किया गया। उक्त अन्वेषण के दौरान कभी भी कोई दस्तावेज अभिलेख पर नहीं लिये गये तथा अवैध खनन और अन्य आरोपों के संबंध में याचिकाकर्ता की दोषसिद्धि मात्र निरीक्षण आख्या के आधार पर तय कर दी गयी। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि प्रकरण की प्रस्तुत परिस्थितियों में निरीक्षण आख्या एक आवश्यक तथ्य/दस्तावेज है, जिसे याचिकाकर्ता को प्रदान किया जाना चाहिए था क्योंकि यहां तक कि आक्षेपित आदेशों में भी याचिकाकर्ता को निरीक्षण आख्या दिनांकित 19 मार्च, 2021 के आधार पर अवैध खनन का दोषी ठहराया गया है। एक बार जब यह ज्ञात होता है कि कार्यवाही मात्र निरीक्षण आख्या के आधार पर की गई है, तो उस व्यक्ति, जिसके विरुद्ध कार्यवाही को सम्पन्न किया जाना है, को उक्त आख्या उपलब्ध न कराना अवश्य ही न्याय के विफल होने का गठन करता है क्योंकि उसे उन सभी तथ्यों को प्राप्त करने का अधिकार है जो उसके विरुद्ध आरोप/अभिकथन का गठन करते हैं ताकि वह आरोपों का पर्याप्त रूप से उत्तर दे सके और प्रभावी ढंग से अपना बचाव कर सके, जबकि प्रस्तुत प्रकरण में एकमात्र तथ्य/दस्तावेज जिसके आधार पर याचिकाकर्ता के विरुद्ध कार्रवाई की गई है, उसे उपलब्ध नहीं कराया गया है और इसलिए, यह सुरक्षित रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इस संबंध में याचिकाकर्ता के विरुद्ध जांच की कार्यवाहियाँ स्पष्ट रूप से प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन हैं तथा याचिकाकर्ता का बचाव गंभीर रुप से पूर्वाग्रहग्रस्त हुआ है। भले ही कारण बताओ नोटिस में आरोपों के योग और सार का उल्लेख किया गया है, परन्तु याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोपों को स्थापित करने के अलावा निरीक्षण आख्या अन्य पहलुओं के बारे में व्याख्या नहीं करती है कि निरीक्षण कैसे और कहाँ (स्थान) सम्पन्न किया गया, समिति द्वारा किस तरीके से निरीक्षण किया गया और क्या कथित तौर पर अवैध खनन में सम्मिलित व्यक्तियों को उक्त निरीक्षण करने से पहले कभी नोटिस दिया गया, कुछ कारक हैं जो उन व्यक्तियों हेतु बहुत महत्वपूर्ण तथ्य हैं, जिनके विरुद्ध कार्रवाई की गई है उन्हें अपने कृत्यों के बचाव करने का

अधिकार है और उन्हें सभी वस्तुगत तथ्यों को जानने का अधिकार है और उसके पश्चात ही वे उक्त आख्या का जवाब दे सकेंगे। निरीक्षण आख्या के अभाव में उनका बचाव गंभीर रूप से पूर्वाग्रहग्रस्त हुआ और चूँकि उनका निहित अधिकार छीन लिया गया, जिसके निस्संदेह नागरिक परिणाम हैं। अभिलेखों के अवलोकन से यह स्पष्ट नहीं है कि निर्देशांक क्या थे, निरीक्षण कहां सम्पन्न किया गया और मात्र यह दर्ज करना कि जांच उन भूखंडों पर सम्पन्न की गई थी जिन पर पट्टा निष्पादित किया गया है, कुछ ऐसे कारक हैं जिन्हें अभियोजन पक्ष द्वारा दोषी पट्टा धारकों के विरुद्ध, उनके पट्टों को निरस्त करने और जुर्माने की वसूली, जैसे दंडात्मक निष्कर्ष देने से पूर्व आवश्यक रूप से साबित किया जाना चाहिए था। पट्टे में खनन हेतु आवंटित क्षेत्र को भूमंडलीय स्थिति निर्धारण प्रणाली निर्देशांकों सहित वर्णित किया गया है और, इसलिए, उस क्षेत्र के भूमंडलीय स्थिति निर्धारण प्रणाली के निर्देशांकों जिन पर निरीक्षण किया गया और पट्टे वाले क्षेत्र से परे क्षेत्र के निर्देशांकों को भी जिन पर, याचिकाकर्ता पर अवैध रूप से खनन करने का आरोप लगाया गया, उपलब्ध कराया जाना अनिवार्य था। किसी भी ठोस तथ्य या दस्तावेज़ के अभाव में अवैध खनन के आरोप को साबित करने की मांग की गई है। इस न्यायालय का सुविचारित मत है कि याचिकाकर्ता को अवैध खनन के आरोप से जोड़ने हेतु पर्याप्त ठोस तथ्य नहीं थे तथा ***रणवीर सिंह बनाम उ.प्र. राज्य (उपरोक्त)***, के निर्णय के अनुसार राज्य पर दायित्व का निर्वहन नहीं किया गया और परिणामस्वरूप मात्र निरीक्षण आख्या के आधार पर याचिकाकर्ता के विरुद्ध कार्यवाही मनमानी है।

<u>पूर्वाग्रह:-</u>

24. नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन के अलावा, यह भी अग्रेतर ध्यातव्य है कि कार्यवाही स्वयं उस समय ही संदिग्ध हो गई जब निदेशक, भूतत्व और खनन ने जिला मजिस्ट्रेट को पट्टा धारकों के विरुद्ध एक विशेष तरीके से कार्यवाही करने और अनुज्ञप्ति निरस्त करने और उन्हें काली सूची में डालने का निर्देश दिया। यह उचित होता कि निदेशक, खनन एवं भूतत्व मात्र निरीक्षण आख्या को अग्रेषित करतीं और सक्षम प्राधिकारी अर्थात् जिला मजिस्ट्रेट को पट्टा धारकों को सुनवाई का उचित अवसर देने के पश्चात विधि के अनुसार अग्रेतर कार्यवाही का निर्देश देतीं, परन्तु जिला मजिस्ट्रेट को विशेष रूप से याचिकाकर्ता और अन्य समस्थिति व्यक्तियों के पट्टे को निरस्त करने और उन्हें काली सूची में डालने हेतु निर्देशित करने से यह स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि प्रतिवादियों ने अन्वेषण की कार्यवाहियों के परिणाम को पूर्वचिन्तित और पूर्वनिर्धारित कर लिया था, जिसे जिला मजिस्ट्रेट ने आज्ञाकारी रूप से अनुपालन किया और, इसलिए, निरस्तीकरण आदेश बिना किसी विवेक के प्रयोग और उच्च प्राधिकारी के आदेश पर पारित किया गया है और इसके अवलोकन से यह स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि याचिकाकर्ता द्वारा उत्तर में दिए गए आधार/बचाव पर अपीलीय या पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा भी विचार नहीं किया गया जिससे आक्षेपित आदेश अवैध और मनमाने प्रतिपादित हुये।

25. सचिव, उ.प्र. शासन द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 29.06.2022 का विरोध करते हुए यह प्रस्तुत किया गया है कि यह निर्णय डॉ. रोशन जैकब द्वारा लिया गया है, जोकि, निदेशक,

भूतत्व और खनन का प्रभार भी संभाल रही थीं जब उन्होंने पत्र दिनांकित 20.03.2021 जारी किया था, जिसके द्वारा जिला मजिस्ट्रेट को उसके विरुद्ध कार्रवाई करने और उसे काली सूची में डालने के स्पष्ट निर्देश जारी किए गए थे। पूर्वाग्रह से संबंधित तर्क पर विचार करने हेतु इस संबंध में सर्वोच्च न्यायालय के प्रतिपादन पर विचार करना उपयोगी होगा।

26. ***मुस्तफा बनाम भारत संघ, (2022) 1 एससीसी 294*** के प्रकरण में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार व्यवस्था दी:-

> ***36.*** *हमारे प्रकरण हेतु अधिक उपयुक्त जी. सरना बनाम लखनऊ विश्वविद्यालय [जी. सरना बनाम लखनऊ विश्वविद्यालय, (1976) 3 एससीसी 585: 1976 एससीसी (एल एंड एस) 474] होगा, जिसमें इसी तरह का प्रश्न इस न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ के समक्ष विचार हेतु प्रस्तुत हुआ, जिसमें चयन के समक्ष उपस्थित होने के पश्चात और उसकी नियुक्ति न हो पाने पर याचिकाकर्ता ने समिति चयन समिति के पांच में से तीन सदस्यों के विरुद्ध पूर्वाग्रह का आरोप लगाते हुए चयन परिणाम को चुनौती दी थी। उसने समिति के गठन को भी चुनौती दी थी। चुनौती को खारिज करते हुए, इस न्यायालय ने व्यवस्था दी: (एससीसी पृष्ठ 591, पैरा 15)*
>
> *"15. हालाँकि, हम प्रस्तुत प्रकरण में पूर्वाग्रह की तर्कसंगतता या पूर्वाग्रह की वास्तविक संभावना के प्रश्न पर विचार करना आवश्यक नहीं समझते हैं क्योंकि इस तथ्य के बावजूद कि अपीलकर्ता को सभी प्रासंगिक तथ्य ज्ञात थे, उसने साक्षात्कार में उपस्थित होने से पूर्व अथवा साक्षात्कार के समय चयन समिति के गठन के विरुद्ध किंचित मात्र भी प्रयत्न नहीं किया। ऐसा प्रतीत होता है कि उसने स्वेच्छा से समिति के समक्ष उपस्थित होकर उससे अनुकूल अनुशंसा प्राप्त करने का अवसर प्राप्त कर लिया। ऐसा करके, अब उनके पास वापस पलटने और समिति के गठन पर प्रश्न उठाने का विकल्प शेष नहीं है। यह मत माणक लाल प्रकरण*

[माणक लाल बनाम प्रेम चंद सिंघवी, एआईआर 1957 एससी 425] में इस न्यायालय के निर्णय से बल प्राप्त करता है जहां कमोबेश ऐसी ही परिस्थितियां में, यह व्यवस्था दी गयी कि कार्यवाही के प्रारम्भिक चरण में अपीलकर्ता की समान दलील प्रस्तुत करने में विफलता ने उसके विरुद्ध स्वत्व त्याग की एक प्रभावी बाधा उत्पन्न कर दी। उसमें की गयी निम्नवत् टिम्पणियों को उद्धत किया जाना समीचीन है: (एआईआर पृष्ठ 432, पैरा 9)

'9.... यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि अपीलकर्ता गठित अधिकरण से एक अनुकूल आख्या प्राप्त करने का एक अवसर प्राप्त करना चाहता था और जब उसने पाया कि उसे एक प्रतिकूल आख्या का सामना करना पड़ा है, तो उसने प्रस्तुत तकनीकी बिंदु को उठाने का तरीका अपनाया।' "

***37.** जी. सरना [जी. सरना बनाम लखनऊ विश्वविद्यालय, (1976) 3 एससीसी 585: 1976 एससीसी (एल एंड एस) 474] में उपरोक्त निर्णय को मद्रास इंस्टीट्यूट ऑफ डेवलपमेंट स्टडीज बनाम के शिवसुब्रमण्यन [मद्रास इंस्टीट्यूट ऑफ डेवलपमेंट स्टडीज बनाम के शिवसुब्रमण्यन, (2016) 1 एससीसी 454: (2016) 1 एससीसी (एल एंड एस) 164] में संदर्भित किया गया, जिसमें सहायक प्रोफेसर के पद पर चयन को इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि उम्मीदवारों की लघुसूचीयन संकाय भर्ती नियमों के विपरीत थी। चुनौती को विबंधन के आधार पर अस्वीकार कर दिया गया था क्योंकि प्रतिवादी ने विज्ञापन के तथ्यों और नियमों में कथित भिन्नताओं पर कोई आपत्ति उठाए बिना, अपना आवेदन प्रस्तुत किया और विशेषज्ञों की समिति के समक्ष उपस्थित होकर चयन प्रक्रिया में सम्मिलित हुआ*

***38.** पी.डी. दिनाकरन (1) बनाम न्यायाधीश जांच समिति*

[पी.डी. दिनाकरन (1) बनाम न्यायाधीश जांच समिति, (2011) 8 एससीसी 380], में इस न्यायालय के निर्णय का संदर्भ लेना भी समान उपयुक्त होगा, जिसमें यह आरोप था कि न्यायाधीश (जांच) अधिनियम, 1968 की धारा 3(2) के अन्तर्गत राज्यों की परिषद् (राज्य सभा) के अध्यक्ष द्वारा गठित समिति के सदस्यों में से एक पूर्वाग्रहग्रस्त था। यह निर्णय पूर्वाग्रह और पक्षपात के प्रश्न पर देशी और विदेशी दोनों निर्णयों को बड़े पैमाने पर वर्णन और आत्मसात करता है और जी. सरना [जी. सरना बनाम लखनऊ विश्वविद्यालय, (1976) 3 एससीसी 585: 1976 एससीसी (एल एंड एस) 474] प्रकरण: (जी सरना प्रकरण [जी सरना बनाम लखनऊ विश्वविद्यालय, (1976) 3 एससीसी 585: 1976 एससीसी (एल एंड एस) 474], एससीसी पी 590, पैरा 11)] में निम्नलिखित टिप्पणियों को उद्धृत करता है।

"11. ...असली प्रश्न यह नहीं है कि क्या एक प्रशासनिक समिति का सदस्य अर्ध-न्यायिक शक्तियों का प्रयोग करते समय या अर्ध-न्यायिक कार्यों का निर्वहन करते समय पूर्वाग्रहग्रस्त था, क्योंकि किसी व्यक्ति के विवेक की परख करना कठिन है। जो देखना होगा वह यह है कि क्या यह विश्वास करने का एक उचित आधार है कि उसके पूर्वाग्रहग्रस्त होने की संभावना थी। पूर्वाग्रह के प्रश्न पर निर्णय लेने में मानवीय संभावनाओं और मानवीय आचरण के सामान्य कार्यप्रणाली को ध्यान में रखा जाना चाहिए।"

***39.** इसके पश्चात, अशोक कुमार यादव बनाम हरियाणा राज्य [अशोक कुमार यादव बनाम हरियाणा राज्य, (1985) 4 एससीसी 417: 1986 एससीसी (एल एंड एस) 88] का संदर्भ ग्रहण किया गया, जोकि ए.के. क्रेपक बनाम भारत संघ [ए.के. क्रेपक बनाम भारत संघ, (1969) 2 एससीसी 262] प्रकरण में संविधान पीठ के निर्णय को संदर्भित करता है। अशोक कुमार यादव [अशोक कुमार यादव बनाम हरियाणा राज्य, (1985) 4 एससीसी 417: 1986 एससीसी (एल एंड एस) 88] संघ लोक सेवा आयोग द्वारा चयन का एक प्रकरण था और इस निर्णय से निम्नलिखित उद्धरण कुछ महत्व के हैं: (अशोक कुमार यादव प्रकरण [अशोक कुमार यादव बनाम हरियाणा राज्य, (1985) 4 एससीसी 417: 1986 एससीसी (एल एंड एस) 88], एससीसी भौतिक उपस्थिति 442-43, पैरा 18)*

18. हमें सीधे यह इंगित करना चाहिए कि ए.के. क्रेपक [ए.के. क्रेपक बनाम

भारत संघ, (1969) 2 एससीसी 262] प्रशासनिक विधि के विकास में एक मील का पत्थर है और इसने इस देश में विधि-नियम को दृढ़ करने में बड़े स्तर पर योगदान दिया है। हम इस निर्णय में दिए गए महत्वपूर्ण सिद्धांत को थोड़ा सा भी कमजोर नहीं करना चाहेंगे, जिसने विधि-नियम की जड़ों को पोषित किया है और न्याय और निष्पक्षता को वैधता में सम्मिलित किया है। इसमें कोई संदेह नहीं है यदि योग्यता के आधार पर उम्मीदवारों का चयन करने के उद्देश्य से एक चयन समिति का गठन किया गया है और चयन समिति के सदस्यों में से एक का चयन हेतु उपस्थित होने वाले उम्मीदवार से गहरा संबंध है, तो ऐसे सदस्य हेतु मात्र साक्षात्कार में भाग लेने से हटना पर्याप्त नहीं होगा परन्तु उसे पूरी चयन प्रक्रिया से पूरी तरह से हट जाना चाहिए और प्राधिकारियों से चयन समिति में उसके स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति को नामित करने हेतु कहना चाहिए, क्योंकि अन्यथा उसके द्वारा किए गए सभी यन पूर्वाग्रह को प्रभावित करने की उचित संभावना के कारण दूषित हो जाएंगे जिससे चयन की प्रक्रिया प्रभावित होगी। परन्तु यहां स्थिति थोड़ी भिन्न है क्योंकि हरियाणा सिविल सेवा (कार्यकारी) और संबद्ध सेवाओं हेतु उम्मीदवारों का चयन उस उद्देश्य हेतु गठित किसी चयन समिति द्वारा नहीं किया जा रहा है, बल्कि यह हरियाणा लोक सेवा आयोग द्वारा किया जा रहा है जो कि संविधान के अनुच्छेद 316 के अन्तर्गत गठित एक आयोग है। यह एक आयोग है जिसमें एक अध्यक्ष और एक निश्चित संख्या में सदस्य होते हैं और एक संवैधानिक प्राधिकारी है। हमारे विचार में इस सिद्धांत कि जिसके अनुसार चयन समिति का कोई सदस्य, जिसका नजदीकी रिश्तेदार चयन हेतु उपस्थित हो रहा है, उसे चयन समिति का सदस्य बनने से मना कर देना चाहिए या उससे हट जाना चाहिए और यह नियुक्ति प्राधिकारी पर छोड़ देना चाहिए कि वह उसके स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति को नामांकित करे, को लोक सेवा आयोग जैसे संवैधानिक प्राधिकारी, चाहे वह केंद्र हो या राज्य, के मामले में इसे लागू करने की आवश्यकता नहीं है। यदि लोक सेवा आयोग का कोई सदस्य इस आधार पर चयन प्रक्रिया से पूरी तरह हट जाता है कि उसका कोई करीबी रिश्तेदार चयन हेतु उपस्थित हो रहा है, तो उसके स्थान पर सदस्य के अलावा किसी अन्य व्यक्ति को प्रतिस्थापित नहीं किया जा सकता है। और कभी ऐसा भी हो सकता है कि ऐसे सदस्य का स्थान लेने हेतु कोई अन्य सदस्य उपलब्ध न हो और लोक सेवा आयोग की कार्यप्रणाली प्रभावित हो सकती है। जब लोक सेवा आयोग के दो या दो से अधिक सदस्य मौखिक परीक्षा ले रहे होते हैं, तो वे व्यक्तियों के रूप में नहीं बल्कि लोक सेवा आयोग के रूप में कार्य कर रहे होते हैं। निःसंदेह, हमें यह स्पष्ट करना

चाहिए कि जब लोक सेवा आयोग के किसी सदस्य का कोई नजदीकी रिश्तेदार साक्षात्कार हेतु उपस्थित हो रहा हो, तो ऐसे सदस्य को उस उम्मीदवार के साक्षात्कार में भाग लेने से हट जाना चाहिए और उस उम्मीदवार की योग्यताओं के संबंध में किसी भी चर्चा में भाग नहीं लेना चाहिए और यहां तक कि उस उम्मीदवार को दिए गए अंक या आकलन भी उसके समक्ष प्रकट नहीं किए जाने चाहिए।"

40. रंजीत ठाकुर बनाम भारत संघ [रंजीत ठाकुर बनाम भारत संघ, (1987) 4 एससीसी 611: 1988 एससीसी (एल एंड एस) 1] में लागू "वास्तविक संभाव्यता परीक्षण", निम्नलिखित शब्दों में स्पष्ट किया गया है: (एससीसी भौतिक उपस्थिति 617-18, पैरा 15-17)

"15.... पूर्वाग्रह की वास्तविक संभाव्यता का परीक्षण यह है कि क्या प्रासंगिक जानकारी रखने वाला एक उचित व्यक्ति यह विचार कर सकता है कि पूर्वाग्रह संभाव्य है और क्या प्रतिवादी 4 द्वारा मात्र एक विशेष तरीके से ही प्रकरण पर निर्णय लेना संभाव्य है।

16. एक निर्णय का सार यह है कि वह न्यायिक प्रक्रिया के उचित पालन के पश्चात किया जाता है; कम से कम इसे पारित करने वाला न्यायालय अथवा न्यायाधिकरण प्राकृतिक न्याय की न्यूनतम आवश्यकताओं का निरीक्षण करता है कि; यह निष्पक्ष व्यक्तियों से अंगभूत है जोकि निष्पक्षता से, बिना किसी पूर्वाग्रह के और नेक नीयत से कार्य करते हैं। एक निर्णय जो पूर्वाग्रह या निष्पक्षता की कमी की परिणति है, वह शून्य है और विचारण "गैर-न्यायिक न्यायाधीश के समक्ष" है...

17. पूर्वाग्रह की संभाव्यता के परीक्षणों के संबंध में पक्षकार के विवेक के अनुसार उस संबंध में आशंका की तर्कसंगतता प्रासंगिक है। हालाँकि, न्यायाधीश हेतु यह दृष्टिकोण उचित नहीं है कि वह स्वयं में मनन करे, तथा स्वयं से ईमानदारी से पूछे कि "क्या मैं पूर्वाग्रहग्रस्त हूँ?"; परन्तु उसे उसके समक्ष पक्षकार के विवेक की ओर अभिमुख होना चाहिए।"

27. स्थापित विधि एवं पूर्वाग्रह पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सुनाये गये निर्णयों के आलोक में, प्रस्तुत प्रकरण के तथ्यों की जांच करते हुए, इस न्यायालय का मत है कि डॉ. रोशन जैकब, जोकि निदेशक, भूतत्व और खनन भी थीं, ने जिला मजिस्ट्रेट को याचिकाकर्ता के विरुद्ध कार्यवाही करने और उसके खनन पट्टे को निरस्त करने के निर्देश दिये थे, जिनके आदेश का विधिवत पालन किया गया, और तत्पश्चात

उन्होंने स्वयं खनन पट्टे को निरस्त करने के आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण प्राधिकारी के रूप में सुनवाई करने और पुनरीक्षण को खारिज करने हेतु अग्रेतर कार्यवाही की, वह आदेश निश्चित रूप से पूर्वाग्रह के दोष से ग्रसित होगा। यह वह विशिष्ट अधिकारी है जिसने याचिकाकर्ता और अन्य समस्थिति व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही प्रारम्भ की, जिसके बारे में यह कहा जा सकता है कि उसने याचिकाकर्ता पर लगाए जाने वाले अर्थदंड के संबंध में पहले ही मन बना लिया था, जोकि उसके पत्र दिनांकित 20.03.2021 से स्पष्ट है और उन्होंने पुनरीक्षण पर निर्णय लेने हेतु अग्रेतर कार्यवाही की और इसलिए, वह अपने स्वयं के प्रकरण की एक न्यायाधीश थीं जोकि उस प्रकरण जोकि उनके द्वारा प्रारम्भ किया गया था तथा जिला मजिस्ट्रेट के आदेश, जोकि उनके आदेशों पर पारित किया गया था, को चुनौती देने वाले पुनरीक्षण का भी निर्णय कर रही थीं। प्रस्तुत प्रकरण के तथ्यों पर पूर्वाग्रह का आधार पूर्णतया लागू होता है तथा पुनरीक्षण को निरस्त करने वाला आदेश दिनांकित 29.06.2022 स्पष्ट रूप से अवैध, मनमाना है और पूर्वाग्रह से ग्रसित है।

28. इस न्यायालय ने पुनरीक्षण संख्या 128 (आर)/एसएम/2021 में वीएआर एंटरप्राइजेज प्राइवेट लिमिटेड के प्रकरण में पारित पुनरीक्षण आदेश का भी परीक्षण किया। यह ध्यातव्य है कि उसमें पुनरीक्षणकर्ता का भी सामना उसी निरीक्षण आख्या से था जिसमें उसे आवंटित पट्टे वाले क्षेत्र से परे क्षेत्र में अवैध खनन का भी दोषी ठहराया गया था। पुनरीक्षण प्राधिकारी ने मात्र इस आधार पर कि यह इंगित करने हेतु कोई तथ्य नहीं है कि पट्टा धारक वास्तव में अवैध खनन में संलिप्त था या सम्मिलित था पुनरीक्षण को अनुमति दी। यह स्पष्ट है कि उसी पुनरीक्षण प्राधिकारी ने एक प्रकरण में निरीक्षण आख्या को पृथक किया और वीएआर एंटरप्राइजेज प्राइवेट लिमिटेड पर कोई दायित्व बंधन करने से मना कर दिया, जबकि उसी तथ्य के आधार पर याचिकाकर्ता को अवैध खनन का दोषी माना। यह स्पष्ट रूप से भेदभावपूर्ण प्रकृति को दर्शाता है, जिसके अन्तर्गत दंड का आदेश पारित किया गया है और, इस प्रकार प्रशासनिक प्राधिकारी की कार्रवाई का पोषण नहीं किया जा सकता है।

<u>नियमावली 1963 के नियम 58 का उल्लंघन:-</u>

29. आक्षेपित आदेश की इस आधार पर भी चुनौती की गई है कि यह नियमावली 1963 के नियम 58 का उल्लंघन है। आक्षेपित आदेश के माध्यम से जिला मजिस्ट्रेट ने कारण बताओ नोटिस दिनांक 13.11.2020, 10.3.2021 और 23.2.2021 के अनुसरण में अंतिम आदेश पारित किये हैं। ऐसा कथन किया गया है कि उक्त नोटिस मात्र स्वामिस्व की बकाया राशि, जिसमें 2 प्रतिशत टीसीएस रु. 20,74,860/- और भी जिला खनन निधि (डी.एम.एफ.) का 10 प्रतिशत राशि 2,21,61,600/- रु., का भुगतान न करने पर उसकी वसूली के संबंध में थी।

30. इस संबंध में नियमावली 1963 का नियम 58 प्रावधानित करता है कि स्वामिस्व या अन्य देयकों का भुगतान न करने के परिणामस्वरूप प्रतिवादियों द्वारा इसकी पट्टेदार से वसूली, उसको तीस दिवसों के भीतर भुगतान किये जाने हेतु दिये गये नोटिस की प्राप्ति, के पश्चात् ही की जा सकती है और यदि तीस दिवसों के भीतर भुगतान नहीं किया जाता है तो नोटिस के पंद्रह दिवसों की समाप्ति पर पट्टा निरस्त किया जा सकता है। इस संबंध में यह प्रस्तुत किया गया

है कि नोटिस की तिथि से तीस दिवस मात्र 11.05.2021 को समाप्त होंगे और उक्त तिथि के पश्चात पंद्रह दिवस 26.05.2021 को समाप्त होंगे और वैधानिक प्रावधानों के अनुसार भी उक्त अवधि की समाप्ति अर्थात् 26.05.2021 से पूर्व याचिकाकर्ता का पट्टा निरस्त किये जाने का आदेश नहीं दिया जा सकता है जबकि प्रस्तुत प्रकरण में निरस्तीकरण का आदेश वैधानिक अवधि की समाप्ति से पूर्व 26.4.2021 को पारित किया गया है, इस प्रकार, यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि कारण बताओ नोटिस दिनांक 12.9.2021 के अनुसरण में उनका पट्टा निरस्त करके प्रतिवादियों द्वारा नियमावली 1963 के नियम 58 का घोर उल्लंघन किया गया है। अतः इस आधार पर भी निरस्तीकरण आदेश अवैध, मनमाना एवं नियमावली 1963 के नियम 58 का उल्लंघन है।

31. उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों के दृष्टिगत, इस न्यायालय का सुविचारित मत है कि राज्य सरकार द्वारा पुनरीक्षण संख्या 104 (आर)/एसएम/2021 में पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 29.6.2022 के साथ-साथ विपक्षी संख्या 3 अर्थात् जिला मजिस्ट्रेट, बांदा द्वारा पारित किया गया आदेश 26.4.2021 अवैध एवं मनमाना है, इसलिए निरस्त किया जाता है।

32. आरोपों की गंभीरता और वसूली की राशि को ध्यान में रखते हुए प्रतिवादियों को, यदि वे चाहें, याचिकाकर्ता के विरुद्ध विधि के अनुरुप अग्रेतर कार्यवाही करने की स्वतंत्रता दी जाती है।

33. उपरोक्त के दृष्टिगत, रिट याचिका **स्वीकार** की जाती है।

(2023) 3 ILRA 290

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 29.03.2023

माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर

के समक्ष

रिट सी संख्या 4897/2022

श्रीमती शिवानी सिंह ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ...प्रतिपक्षी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: व्यक्तिगत रूप से

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: सी.एस.सी., दिव्यार्थ सिंह चौहान, मीनाक्षी सिंह परिहार

A. सिविल कानून - नाबालिग बेटी की अभिरक्षा - जुवेनाइल जस्टिस (देखभाल और बच्चों के संरक्षण) अधिनियम, 2015 - धारा 101 - अपील - अपीलीय प्राधिकरण को अतिरिक्त साक्ष्य लेने का अधिकार नहीं है - जुवेनाइल जस्टिस अधिनियम अपीलीय प्राधिकरण को अतिरिक्त साक्ष्य प्राप्त करने का कोई अधिकार नहीं प्रदान करता है - यह केवल उन आधारों पर अपील की जांच और निर्णय कर सकता है, जिन पर इसे दायर किया गया है - यदि अपीलीय प्राधिकरण को प्रतीत होता है कि समिति का आदेश गलत है और उसे अधिक साक्ष्य/सामग्री लेनी चाहिए थी, तो यह वाद को समिति के पास नए सिरे से निर्णय के लिए वापस भेज सकता है, लेकिन इसे "अतिरिक्त साक्ष्य" प्राप्त करने का कोई अधिकार नहीं था (पैराग्राफ 42)

B. सिविल कानून - नाबालिग बच्चे की अभिरक्षा, जिसे देखभाल और संरक्षण की आवश्यकता है - पारिवारिक न्यायालय अधिनियम, धाराएँ 7(1)(क), (ग) और 20 - जुवेनाइल जस्टिस (देखभाल और बच्चों के

संरक्षण) अधिनियम, 2015 - चाइल्ड वेलफेयर कमेटी (CWC) - नाबालिग की कस्टडी या पहुँच से संबंधित कार्यवाही में अधिकार पारिवारिक न्यायालय के समक्ष है - जे.जे. अधिनियम के तहत चाइल्ड वेलफेयर कमेटी नाबालिग की अभिभावकता और कस्टडी से संबंधित विवादित दावों का निस्तारण करने का अधिकार और शक्ति नहीं रखती - यदि माता-पिता में से किसी एक के कहने पर, CWC के सामने किसी बच्चे के दूसरे माता-पिता या व्यक्ति द्वारा दुर्व्यवहार की शिकायत की जाती है, और उस माता-पिता या व्यक्ति द्वारा कस्टडी भी मांगी जाती है, तो समिति के पास यह अधिकार होगा कि वह बच्चे को देखभाल और संरक्षण की आवश्यकता में घोषित करे, और उसे बच्चों के होम आदि में भेज दे, जब तक कि न्यायालय द्वारा अभिरक्षा के प्रश्नों पर निर्णय नहीं किया जाता - समिति द्वारा प्रयोग की गई शक्ति प्रशासनिक होती है, न्यायिक नहीं (पैराग्राफ 30, 34)

C. सिविल कानून - देखभाल और संरक्षण की आवश्यकता वाले बच्चों के संबंध में प्रक्रिया - जुवेनाइल जस्टिस (देखभाल और बच्चों के संरक्षण) अधिनियम, 2015 (2 of 2016) - धाराएँ 31 और 36 - जुवेनाइल जस्टिस (देखभाल और बच्चों के संरक्षण) मॉडल नियम, 2016 - नियम 18 और 19 - किसी भी बच्चे, जिसे देखभाल और संरक्षण की आवश्यकता है, को समिति के सामने प्रस्तुत किया जाना है - समिति को जांच करनी है और बच्चे के साथ बातचीत के पश्चात उसे माता-पिता या अभिभावक या बच्चों के होम में रखने के लिए दिशा-निर्देश जारी करने चाहिए, या बच्चे को सुरक्षित अभिरक्षा में रखने के लिए सक्षम व्यक्ति या सक्षम सुविधा में रखने का आदेश देना चाहिए - समिति का उद्देश्य बच्चे का पुनर्वास है - माना गया - इस वाद में, समिति द्वारा बच्चे की जांच किए जाने का कोई उल्लेख नहीं है, जो प्राथमिक कर्तव्य और जिम्मेदारी थी (पैराग्राफ 40)

D. जुवेनाइल जस्टिस (देखभाल और बच्चों के संरक्षण) अधिनियम, 2015 - चाइल्ड वेलफेयर कमेटी - इस वाद में, समिति द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया और तरीका पूरी तरह से मनमाना था - समिति ने याचिकाकर्ता (माँ) को खुद को बचाने का कोई सुनवाई का अवसर दिए बिना, अपनी नाबालिग बेटी की अभिरक्षा का वाद नियत किया और कहा कि वह बच्चे की भलाई का ध्यान नहीं रख सकती - शिकायत की प्रति कभी याचिकाकर्ता (माँ) को नहीं दी गई और न ही उसे कोई दस्तावेज दिए गए, जिन पर समिति के सामने शिकायतकर्ता ने भरोसा किया - समिति ने समाचार पत्रों में प्रकाशित जानकारी पर भरोसा किया और "fbing" बीमारी, जो चिकित्सा विज्ञान के लिए अभी भी अज्ञात है, को याचिकाकर्ता (माँ) से जोड़ा - समिति को पूरी तरह से ज्ञात था कि दादा, जो शिकायतकर्ता था, 78 वर्ष का था और फिर भी उसे एक सक्षम व्यक्ति घोषित किया, ताकि नाबालिग बच्चे की अभिरक्षा उसे सौंपी जा सके, जबकि प्रतिवादी संख्या 5 नोएडा में अपने पति के साथ रह रही थी और सुलतानपुर में नाबालिग बच्चे की देखभाल करने की स्थिति में नहीं थी, लेकिन उसे भी सक्षम व्यक्ति घोषित किया गया और अभिरक्षा सौंपी गई - समिति का आदेश अवैध और मनमाना था

और यह विचार करने की कमी से ग्रस्त था (पैराग्राफ 40)

स्वीकृत। (E-5)

उद्धृत वाद सूची:

1. गीतांजलि डोगरा बनाम राज्य और अन्य। CM(M) 1140/2018
2. तस्लीमा बेगम बनाम पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य (कोलकाता हाईकोर्ट) W.P. संख्या 19557(W) वर्ष 2017 निर्णय दिनांक 04.01.2018

माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर,

1. याचिकाकर्ता को वैयक्तिक रूप में, निजी प्रतिवादियों की ओर से श्री दिव्यार्थ सिंह द्वारा सहाय्यित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एच.जी.एस. परिहार तथा राज्य-प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित विद्वान स्थाई अधिवक्ता को सुना गया।

2. याचिकाकर्ता, जो एक नाबालिग बच्ची की मां है, ने बाल कल्याण समिति, सुल्तानपुर द्वारा पारित आदेश दिनांक 17/08/2021 को चुनौती दी है, जिसके तहत नाबालिग की अभिरक्षा उसके ससुर, पति और भाभी को सौंप दी गई तथा बाल कल्याण समिति (बाद में समिति के रूप में संदर्भित) के आदेश को बरकरार रखते हुए और याचिकाकर्ता द्वारा की गई अपील को खारिज करते हुए अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश दिनांक 06/12/2021 को भी चुनौती दी है।

3. वर्तमान विवाद याचिकाकर्ता और उसके पति, प्रतिवादी संख्या 4 के बीच एक कड़वे वैवाहिक संबंध का परिणाम है। याचिकाकर्ता और प्रतिवादी संख्या 4 के बीच विवाह 21/01/2014 को संपन्न हुआ था और उक्त विवाह से 30/10/2015 को एक बेटी का जन्म हुआ। याचिकाकर्ता और प्रतिवादी संख्या 4, दो साल तक सुल्तानपुर में रहे, जहां प्रतिवादी संख्या 4 नर्सिंग स्कूल चला रहे है, और 2017 में कभी-कभी याचिकाकर्ता नाबालिग बेटी के साथ लखनऊ चली जाया करती थीं जबकि प्रतिवादी संख्या 4 ने सुल्तानपुर में रहना और काम करना जारी रखा। सप्ताहांत के दौरान याचिकाकर्ता और उसकी बेटी से मिलने जाया करते थे। नाबालिग बच्चे को लखनऊ के एक स्कूल में दाखिला दिया गया था और याचिकाकर्ता के अनुसार उसके और उसके पति के साथ-साथ उसके ससुराल वालों के बीच 25/08/2021 से पहले संबंध मधुर थे, जिस तारीख को याचिकाकर्ता को समिति, सुलतानपुर के सामने पेश होने का निर्देश दिया गया था।

4. याचिकाकर्ता के ससुर, प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा समिति, सुल्तानपुर में अपनी पोती की अभिरक्षा की मांग करते हुए एक शिकायत की गई थी। उन्होंने अपनी शिकायत में कहा कि उनकी पोती का जन्म 30/10/2015 को लखनऊ में हुआ था। उनका बेटा और बहू शादी के बाद उनके साथ रह रहे थे, जब 2 साल बाद याचिकाकर्ता ने अपने पति पर बच्चे के लिए बेहतर शिक्षा सुनिश्चित करने के लिए लखनऊ स्थानांतरित होने का दबाव डाला और बाद में याचिकाकर्ता और नाबालिग बच्ची लखनऊ चले गए। उक्त शिकायत में याचिकाकर्ता के खिलाफ नाबालिग बेटी की देखभाल न करने

और उपेक्षा करने जैसे कई आरोप लगाए गए हैं। शिकायत के समर्थन में सीसीटीवी तस्वीरें, चिकित्सा क्षेत्र के विभिन्न विशेषज्ञों के प्रमाण पत्र भी प्रस्तुत किए गए और तदनुसार नाबालिग बच्चे की अंतरिम अभिरक्षण के लिए प्रार्थना की गई।

5. समिति के अध्यक्ष ने याचिकाकर्ता को 04/08/2021 को उपस्थित होने के लिए नोटिस जारी किया। दिनांक 04/08/2021 को जिला प्रोबेशन अधिकारी को निर्देशित किया गया कि नाबालिग की काउंसलिंग कराकर अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करें। 04/08/2021 को पुनः याचिकाकर्ता को 06/08/2021 को समिति के समक्ष उपस्थित होने के लिए नोटिस भेजा गया। 06/08/2021 को एक और नोटिस भेजा गया जिसमें याचिकाकर्ता को 11.08.2021 को नाबालिग बेटी के साथ उपस्थित होने का निर्देश दिया गया। यह आदेश दिया गया कि याचिकाकर्ता को काउंसलर श्रीमती गीता वर्मा के माध्यम से नोटिस दिया जाए। 12/08/2021 की आदेश पत्रक इंगित करती है कि समिति ने नोट किया कि याचिकाकर्ता को तामील नहीं हो सकी है और इसलिए उसे 13/08/2021 को समिति के सामने उपस्थित होने के लिए टेलीफोन पर सूचित किया गया था और फिर 13/08/2021 को उसे 16/08/2021 को उपस्थित होने हेतु निर्देशित किया गया।

6. दिनांक 16/08/2021 को याचिकाकर्ता नाबालिग बच्चे के साथ समिति के समक्ष उपस्थित हुई, जहां आदेश पत्रक के अनुसार याचिकाकर्ता ने अपने द्वारा दिए गए बयान पर हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया, और पूरी कार्यवाही 16/08/2021 को ही समाप्त कर दी गई, और मामला आदेशों के लिए सुरक्षित था, जो 17/08/2021 को परिदत्त किया गया था।

7. समिति ने दिनांक 17/08/2021 के आक्षेपित आदेश के माध्यम से प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा की गई शिकायत को स्वीकार कर लिया और यह निष्कर्ष निकाला कि याचिकाकर्ता मानसिक बीमारी का शिकार है जिसके कारण वह हिंसक हो जाती है। यहां तक कि समिति के समक्ष उनके द्वारा मांगे गए स्थगन को उनकी मानसिक बीमारी के लिए जिम्मेदार ठहराया गया था। याचिकाकर्ता ने अपने ससुर द्वारा प्रस्तुत चिकित्सीय अभिलेखों को अस्वीकृत किया क्योंकि यह उनके प्रभाव में तैयार की गई थी चूँकि वह महानिदेशक, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य के पद से सेवानिवृत्त हुए थे। समिति ने "पैरानॉइड व्यक्तित्व विकार" के संबंध में 06/07/2021 को एक स्थानीय समाचार पत्र में प्रकाशित एक लेख पर भी विश्वास व्यक्त किया और निष्कर्ष निकाला कि याचिकाकर्ता भी उसी विकार से पीड़ित है जिसके कारण वह हिंसक हो सकती है और ऐसे व्यक्ति अपनी गलती स्वीकार नहीं करते हैं।

8. आक्षेपित आदेश में समिति ने यह भी माना है कि याचिकाकर्ता "एफबिंग" से पीड़ित है, जो उनके अनुसार एक बीमारी है जहां एक व्यक्ति अपने फोन का अत्यधिक उपयोग करता है और परिणामस्वरूप यह माना जाता है कि "एफबिंग" के कारण वह अपनी नाबालिग बेटी की उपेक्षा करती है।

9. समिति ने इस तथ्य पर विचार किया कि शिकायतकर्ता, जो याचिकाकर्ता के

ससुर हैं, वो महानिदेशक, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सेवाएं, उत्तर प्रदेश के एक उच्च पद से सेवानिवृत्त हैं और नाबालिग बच्ची की देखभाल करने में आर्थिक रूप से सक्षम हैं। हालाँकि वह 78 वर्ष के हैं और इसलिए नाबालिग की देखभाल के लिए उन्हें अपने बेटे, प्रतिवादी संख्या 4 और उनकी बेटी रुचि सिंह - प्रतिवादी संख्या 5, जो नोएडा में अपने पति के साथ रह रही हैं, का समर्थन प्राप्त होगा। उन्होंने यह परिवचन दिया कि वे नाबालिग बच्ची की देखभाल प्रभावी ढंग से करेगी और तदनुसार नाबालिग बच्चे की अभिरक्षा याचिकाकर्ता से छीनकर प्रतिवादी संख्या 3, 4 और 5 को दे दी गई।

10. याचिकाकर्ता ने समिति, सुल्तानपुर के आदेश दिनांक 17/08/2021 से व्यथित होकर जिला मजिस्ट्रेट, सुल्तानपुर के समक्ष विशेष रूप से इस आधार पर अपील दायर की कि समिति ने याचिकाकर्ता को सुनवाई का कोई अवसर दिए बिना सर्वाधिक अवैध और मनमाने तरीके से उसकी नाबालिग बेटी की हिरासत के मामले का फैसला किया और इस तथ्य के अलावा किसी भी प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया था कि उसे कभी भी शिकायत की प्रति नहीं दी गई थी, न ही उसे कोई दस्तावेज प्रदान किया गया था जिस पर शिकायतकर्ता ने समिति के समक्ष विश्वास व्यक्त किया था। उन्होंने आगे कहा कि उन्हें कभी भी अपना बचाव करने का कोई मौका नहीं दिया गया, जो इस तथ्य से स्पष्ट है कि कुछ बयान पर भी उनके हस्ताक्षर नहीं थे, और पूरी कार्यवाही 16/08/2021 को बेहद जल्दबाजी में समाप्त कर दी गई। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि काउंसलर गीता वर्मा कभी उनसे मिली थीं, और समिति द्वारा किसी दस्तावेज़ की जांच नहीं की गई थी जो यह दर्शाता हो कि वह मानसिक रूप से अस्थिर थीं और अपनी बेटी की देखभाल करने में असमर्थ थीं।

11. याचिकाकर्ता ने समिति के आदेश से व्यथित होकर जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष अपील की, जिन्होंने दिनांक 06.12.2021 के आदेश के द्वारा अपील को ख़ारिज कर दिया। जिला मजिस्ट्रेट ने स्वीकार किया है कि समिति के आदेश में किसी भी सीसीटीवी फुटेज का उल्लेख नहीं है, लेकिन उस संबंध में अतिरिक्त साक्ष्य स्वयं अभिलेखित पर लेने के लिए आगे बढ़ते हुए अभिनिर्धारित किया कि सिविल प्रक्रिया संहिता के साथ-साथ दण्ड प्रक्रिया संहिता के तहत भी अतिरिक्त कार्रवाई का प्रावधान किया गया था। अपीलीय स्तर पर अतिरिक्त साक्ष्य लेने का प्रावधान होने के नाते, और स्वयं को "अपीलीय न्यायालय" की सभी शक्तियों और प्राधिकार से संपन्न मानते हुए, प्रतिवादियों द्वारा रखे गए अतिरिक्त साक्ष्यों की जांच करने के लिए अग्रसर हुए और केवल अतिरिक्त साक्ष्यों के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि याचिकाकर्ता मानसिक बीमारी से पीड़ित थी और नाबालिग बच्चे पर शारीरिक हमला और दुर्व्यवहार भी कर रही थी। जिला मजिस्ट्रेट ने याचिकाकर्ता के उन तर्कों को खारिज कर दिया कि प्रतिवादी संख्या 3 अपने बड़े बेटे के तलाक के लिए जिम्मेदार था, और प्रतिवादी संख्या 4, उसका

पति शराब का आदी था और शराबी था और इसलिए उसकी नाबालिग बेटी की अभिरक्षा उनमें से किसी को भी नहीं दिया जा सकता था, क्योंकि इस संबंध में कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किये गए थे। उन्होंने यह भी निष्कर्ष निकाला कि याचिकाकर्ता को समिति के समक्ष तय की गई तारीख के बारे में टेलीफोन पर सूचित किया गया था और इसलिए उन्हें पर्याप्त मौके दिए गए थे। अपने समक्ष प्रस्तुत साक्ष्यों के आधार पर वह संतुष्ट थे कि ऐसी स्थितियाँ मौजूद हैं जहाँ नाबालिग बच्ची का माँ के साथ रहना बच्ची के लिए हानिकारक हो सकता है और अपील को ख़ारिज कर दिया लेकिन उसे मिलने का अधिकार दे दिया गया।

12. याचिकाकर्ता ने समिति द्वारा पारित आदेशों के साथ-साथ जिला मजिस्ट्रेट द्वारा पारित अपीलीय आदेश पर भी इस आधार पर चुनौती दी है कि समिति ने प्राकृतिक मां से अभिरक्षा छीनकर उसके दादा जो उस नाबालिक बच्ची के प्राकृतिक संरक्षक नहीं हैं, को सौंपने में अपने अधिकार क्षेत्र का उल्लंघन किया है। यह प्रस्तुत किया गया था कि यदि प्रतिवादी, नाबालिग बच्ची की अभिरक्षा चाहते हैं तो केवल पारिवारिक न्यायालय अधिनियम, हिंदू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम के प्रावधानों के तहत या संरक्षक एवं प्रतिपाल्य अधिनियम 1890 के प्रावधानों के तहत, उचित न्यायालय ही समुचित अधिकरण हैं न कि किशोर न्याय अधिनियम के तहत समिति। यह प्रस्तुत किया गया कि पूरी कार्यवाही क्षेत्राधिकार के बाहर है और इस तरह अपास्त किए जाने योग्य है।

13. दूसरी ओर, प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एच.जी.एस. परिहार ने रिट याचिका का जोरदार विरोध किया है। उन्होंने समिति के साथ-साथ जिला मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेशों का समर्थन किया और प्रस्तुत किया कि समिति ने इसमें निहित अधिकार क्षेत्र का प्रयोग किया है। यह प्रस्तुत किया गया कि विभिन्न सीसीटीवी फुटेज और अन्य दस्तावेजी साक्ष्य उपलब्ध थे और अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष प्रस्तुत किए गए और उनकी उचित जांच के बाद, निष्कर्ष निकाला गया कि नाबालिग "देखभाल और सुरक्षा की आवश्यकता वाली बच्ची" थी क्योंकि उसकी मां ने उसका शारीरिक शोषण किया था, जो मानसिक बीमारी से भी पीड़ित पायी गयी।

14. प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा दायर एक तलाक की याचिका संख्या 2497 / 2021 पारिवारिक न्यायालय, लखनऊ के समक्ष लंबित है, और एफआईआर संख्या 0499/2021 के अंतर्गत भारतीय दण्ड संहिता की धारा 323, 504 एवं 506 के तहत याचिकाकर्ता के विरुद्ध एक आपराधिक मामला भी दर्ज किया गया है।

15. श्री एच.जी.एस. परिहार, वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2015 की धारा 2(14) के उपधारा (iii) में उल्लेखित "देखरेख और संरक्षण की आवश्यकता वाला बालक" की परिभाषा के अनुसार याचिकाकर्ता की बेटी इसकी परिधि में आएगी। इसमें याचिकाकर्ता

पर बच्ची को घायल करने, उसकी उपेक्षा करने का आरोप है। एक बार जब बच्ची को 'देखरेख और संरक्षण की आवश्यकता वाला बालक' घोषित कर दिया जाता है, तो बच्चे को किशोर न्याय अधिनियम की धारा 31 के प्रावधान के अनुसार समिति के समक्ष पेश किया जाता है, और अधिनियम की धारा 36 के तहत की गई पूछताछ के बाद, उस बच्चे की अभिरक्षा किसी योग्य व्यक्ति को भी दी जा सकती है। वर्तमान मामले में सलाहकार श्रीमती गीता वर्मा की आख्या मांगी गई थी और उसके बाद ही, बच्चे को उसके दादा, पिता और बुआ (चाची) के पास रखने के लिए धारा 37 के तहत अभिरक्षा देने का आदेश पारित किया गया है, जिन्हें योग्य व्यक्ति घोषित किया गया है।

16. नाबालिग बच्ची की अभिरक्षा के पहलू पर विचार करने और निर्णय लेने के लिए समिति के अधिकार क्षेत्र के संबंध में याचिकाकर्ता के तर्क पर विचार करते हुए, विशेष रूप से बच्ची को मां की अभिरक्षा से हटाकर दादा को सौंपना, के सन्दर्भ में किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम 2015 में दिए गए वैधानिक प्रावधानों की जांच करना आवश्यक है।

17. किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2015 की धारा 2(14)(iii) निम्नलिखित आशय का प्रावधान करती है:

2. इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो,-...........

....

(14) "देखरेख और संरक्षण की आवश्यकता वाला बालक" से ऐसा बालक अभिप्रेत है–

(i) ....

(ii) ....

(iii) जो किसी व्यक्ति के साथ रहता है (चाहे वह बालक का संरक्षक हो या नहीं) और ऐसे व्यक्ति ने--

(क) बालक को क्षति पहुंचाई है, उसका शोषण किया है, उसके साथ दुर्व्यवहार किया है या उसकी उपेक्षा की है अथवा बालक के संरक्षण के लिए अभिप्रेत तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि का अतिक्रमण किया है; या

(ख) बालक को मारने, उसे क्षति पहुंचाने, उसका शोषण करने या उसके साथ दुर्व्यवहार करने की धमकी दी है और उस धमकी को कार्यान्वित किए जाने की युक्तियुक्त संभावना है; या

(ग) किसी अन्य बालक या बालकों का वध कर दिया है,

उसके या उनके साथ दुर्व्यवहार किया है, उसकी या उनकी उपेक्षा या उसका या उनका शोषण किया है और प्रश्नगत बालक का उस व्यक्ति द्वारा वध् किए जाने, उसके साथ दुर्व्यवहार, उसका शोषण या उसकी उपेक्षा किए जाने की युक्तियुक्त संभावना है;"

18. यह देखना आवश्यक है कि उसी अधिनियम की धारा 2(23) के संदर्भ में यह प्रभाव निर्धारित किया गया है:

2(23) "न्यायालय" से ऐसा कोई सिविल न्यायालय अभिप्रेत है जिसे दत्तकग्रहण और संरक्षकता के मामलों में अधिकारिता प्राप्त है और इसके अंतर्गत जिला न्यायालय, कुटुंब न्यायालय और नगर सिविल न्यायालय भी सम्मिलित हैं"

19. याचिकाकर्ता ने हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 26 के प्रावधानों पर विश्वास जताया है जो निम्नानुसार अभिनिर्धारित है:

"धारा 26. अपत्यों की अभिरक्षा इस अधिनियम के अधीन होने वाली किसी भी कार्यवाही में न्यायालय अप्राप्तव्यय अपत्यों की अभिरक्षा, भरण - पोषण और शिक्षा के बारे में, यथासंभव उनकी इच्छा के अनुकूल, समय समय पर ऐसे आदेश पारित कर सकेगा और डिक्री में ऐसे आदेश पारित कर सकेगा और डिक्री में ऐसे उपबंध कर सकेगा जिन्हे वह न्यायसंगत और उचित समझे और डिक्री के पश्चात इस प्रयोजन से अर्जी द्वारा किये गए आवेदन पर ऐसे अपत्य की अभिरक्षा,भरण-पोषण और शिक्षा के बारे में समय-

समय पर ऐसे आदेश और उपबंध के सकी जो ऐसी डिक्री अभिप्राप्त करने की कार्यवाही के लंबित रहते ऐसी डिक्री या अंतरिम आदेश द्वारा किये जा सकते थे और न्यायालय पूर्वतन किये गए ऐसे किसी आदेश या उपबंध को समय-समय पर प्रतिसंहत या निलंबित कर सकेगा, अथवा उसमें फेर-फॉर कर सकेगा।"

20. याचिकाकर्ता अन्य बातों के अलावा हिन्दू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम, 1956 की धारा 6 (ए) और 13 के प्रावधानों पर विश्वास करती हैं, जो निम्नानुसार प्रभावी है : -

"धारा 6. हिन्दू अप्राप्तवय के नैसर्गिक संरक्षक - हिन्दू अप्राप्तवय के नैसर्गिक संरक्षक अप्राप्तवय के शरीर के बारे में और (अविभक्त कुटुंब की संपत्ति में उसके अविभक्त हित को छोड़कर) उसकी संपत्ति के बारे में भी निम्नलिखित हैं -

(क) किसी लड़के या अविवाहित लड़की की दशा में पिता और उसके पश्चात माता; परन्तु जिस अप्राप्तवय ने पांच वर्ष की आयु पूरी न कर ली हो उसके अभिरक्षा मामूली तौर पर माता के हाँथ में होगी;

और

धारा 13. (1) न्यायालय द्वारा किसी भी व्यक्ति के किसी हिन्दू अप्राप्तवय का संरक्षक नियुक्त या घोषित किये जाने में अप्राप्तवय के कल्याण पर सर्वोपरि ध्यान रखा जायेगा।

(2) यदि किसी भी व्यक्ति के विषय में न्यायालय की

यह राय हो कि उसके संरक्षक होने में अप्राप्तवय का कल्याण न होगा तो वह व्यक्ति इस अधिनियम के उपबंधों के आधार पर या ऐसी किसी भी विधि के आधार पर, हिन्दुओं में विवाहार्थ संरक्षकता के बारे में हो, संरक्षकता का हकदार न होगा।"

21. याचिकाकर्ता ने संरक्षक एवं प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 की धारा 12 और 25 के प्रावधानों पर भी विश्वास किया है, जो निम्नानुसार प्रभावी है: -

"12. (1) न्यायालय निर्देश दे सकेगा की वह व्यक्ति, यदि कोई हो, जिसकी अभिरक्षा में अप्राप्तवय है उसे ऐसे स्थान और समय पर और ऐसे व्यक्ति के समक्ष, जिसे उस न्यायालय ने नियुक्त किया है पेश करे या कराएं न्यायालय अप्राप्तवय के शरीर या सम्पति की अस्थायी अभिरक्षा और संरक्षण के लिए ऐसा आदेश दे सकेगा जैसा वह उचित समझे।

(2) यदि अप्राप्तवय ऐसी लड़की है, जिसे लोक समक्ष आने के लिए विवश नहीं किया जाना चाहिए, तो उपधारा (1) के अधीन उसेक पेश किये जाने के निर्देश में यह उपेक्षा होगी की वह देश की रूढ़ियों और रीतियों के अनुसार पेश की जाये।

(3) इस धारा की कोई भी बात -

(क) किसी अप्राप्तवय

लड़की को ऐसे व्यक्ति को, जो इस आधार पर कि वह उसका पति है उसका संरक्षक होने का दावा करता है, अस्थायी अभिरक्षा में रखने को न्यायालय को तब के सिवाय, प्राधिकृत न करेगी जब कि वह लड़की अपने माता-पिता की, यदि कोई हो, संपति से अभिरक्षा में पहले से ही है, अथवा	*कब्ज़ा रखता है, विधि के सम्यक अनुक्रम में अन्यथा बेकब्जा करें।*
(ख) उस व्यक्ति को किसे अप्राप्तवय की सम्पत्ति की अस्थायी अभिरक्षा और संरक्षण न्यस्त है, प्राधिकृत न करेगी कि वह किसी व्यक्ति को, जो भी ऐसी सम्पति पर	*25. (1) यदि प्रतिपाल्य अपने शरीर के संरक्षक की अभिरक्षा को छोड़ देता है या उससे हटा दिया जाता है, तो यदि न्यायालय इस राय का है की प्रतिपाल्य के लिए यह कल्याणकार होगा कि वह संरक्षक की अभिरक्षा में लौट आये, तो वह उसका लौट आने के लिए आदेश कर सकेगा और उस आदेश का प्रवर्तन करने के प्रयोजन से प्रतिपाल्य को गिरफ्तार करा सकेगा और संरक्षक की अभिरक्षा में रखे जाने के लिए*

उसे परिदत्त करा सकेगा।

(2) प्रतिपाल्य की गिरफ्तारी के प्रयोजन से न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता, 1882 (1882 का 10) की धारा 100 द्वारा प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट को प्रदत्त शक्ति का प्रयोग कर सकेगा।

(3) ऐसे व्यक्ति के पास, जो उसका संरक्षक नहीं है, प्रतिपाल्य का अपने संरक्षक की इच्छा के विरुद्ध निवास, स्वतःसंरक्षकता का पर्यवसान नहीं कर देता।"

22. गौरतलब है कि कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 की धारा 7 कुटुंब न्यायालय को प्रदत्त क्षेत्राधिकार प्रदान करती है और जो इस प्रकार प्रभावी है: -

"7. (1) इस अधिनियम के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए,--

(क) कुटुंब न्यायालय को, स्पष्टीकरण में निर्दिष्ट प्रकृति के वादों और कार्यवाहियों की बाबत, तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन किसी जिला न्यायालय या किसी अधीनस्थ सिविल न्यायालय द्वारा प्रयोक्तव्य पूर्ण अधिकारिता होगी और वह उसका प्रयोग करेगा;

(ख) कुटुंब न्यायालय के बारे में, ऐसी विधि के अधीन ऐसी अधिकारिता का प्रयोग करने के प्रयोजनों के लिए, यह समझ जायेगा कि यह ऐसी क्षेत्र के

लिए, जिस पर कुटुंब न्यायालय की अधिकारिता का विस्तार है, यथास्थिति, जिला न्यायालय या अधीनस्थ सिविल न्यायालय है।

स्पष्टीकरण *- इस उपधारा में निर्दिष्ट वाद और कार्यवाहियां निम्नलिखित प्रकृति के वाद और कार्यवाहियां हैं, अर्थात -*

(क) किसी विवाह के पक्षकारों के बीच (विवाह को, यथास्थिति, अकृत और शून्य घोषित करने के लिए या विवाह को बातिल करने के लिए) विवाह की अकृतता या दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन या न्यायिक पृथक्करण या विवाह के विघटन की डिक्री के लिए कोई वाद या कार्यवाही;

(ख) किसी व्यक्ति के विवाह की विधिमान्यता के बारे में या उसकी वैवाहिक प्रास्थिति के बारे में घोषणा के लिए कोई वाद या कार्यवाही;

(ग) किसी विवाह के पक्षकारों के बीच ऐसे पक्षकारों की या उनमे से किसी की संपत्ति की बाबत कोई विवाद या कार्यवाही;

(घ) किसी वैवाहिक सम्बन्ध से उत्पन्न परिस्थितियों में किसी आदेश या व्यादेश के लिए कोई वाद या कार्यवाही;

(ङ) किसी व्यक्ति के धर्मजत्व के बारे में किसी घोषणा के लिए कोई वाद या कार्यवाही;;
(च) भरणपोषण के लिए कोई वाद या कार्यवाही;
(छ) किसी व्यक्ति की संरक्षकता अथवा किसी अवयस्क की अभिरक्षा या उस तक पहुँच के सम्बन्ध में कोई वाद या कार्यवाही।
(2) इस अधिनियम के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए, किसी कुटुंब न्यायालय को -
(क) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के अध्याय 9 के आधीन (जो पत्नी, संतान और मत-पिता के भरणपोषण के लिए आदेश के सम्बन्ध में हैं) किसी प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट द्वारा प्रायोतव्य अधिकारिता; और

(ख) ऐसी अन्य अधिकारिता, जो किसी अन्य अधिनियमिति द्वारा उसको प्रदत्त की जाए, भी होगी और वह उसका प्रयोग करेगा।"

23. कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 के अध्याय-6 में धारा 20 इस आशय का प्रावधान करती है:-

"20. इस अधिनियम के उपबंध, तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में या इस अधिनियम से भिन्न किसी विधि के आधार पर प्रभाव रखने वाली किसी लिखत में

तद्संगत किसी बात के होते हुए भी प्रभावी होंगे।"

24. इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कुटुंब न्यायालय अधिनियम के मद्देनजर, उक्त अधिनियम की धारा 20 के साथ पठित धारा 7 (1)*(क)* और *(छ)* के प्रावधान, से यह स्पष्ट हो जाता है कि कार्यवाही के संबंध में क्षेत्राधिकार अभिरक्षा या किसी भी नाबालिग तक पहुंच अनिवार्य रूप से कुटुंब न्यायालय द्वारा निर्धारित की जानी चाहिए और किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण), अधिनियम, 2015 की धारा 2(14)(iii) के अनुसार यह समिति के अधिकार क्षेत्र में नहीं आ सकती है।

25. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, यह देखा गया है कि देखभाल और सुरक्षा की आवश्यकता वाले बच्चों के संबंध में प्रक्रिया, अधिनियम के अध्याय VI में प्रदान की गई है। यह प्रक्रिया धारा 31 से शुरू होती है जो देखरेख और संरक्षण की आवश्यकता वाले किसी बालक को विशेष रूप से उल्लिखित किसी व्यक्ति द्वारा समिति के समक्ष पेश करने से सम्बंधित है, जिसमें किसी पुलिस अधिकारी द्वारा या विशेष किशोर पुलिस एकक या पदाभिहित बालक कल्याण पुलिस अधिकारी या जिला बालक कल्याण एकक के किसी अधिकारी या तत्समय प्रवृत किसी श्रम विधि के अधीन नियुक्त निरीक्षक, किसी लोक सेवक, राज्य सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त ऐसी बालबद्ध सेवाओं या किसी स्वेच्छिक या गैर- सरकारी संगठन या किसी अभिकरण, बालक कल्याण अधिकारी या परिवीक्षा अधिकारी, किसी सामाजिक कार्यकर्ता या लोक भावना से युक्त नागरिक, स्वयं बालक या किसी नर्स, डाक्टर, परिचर्या गृह (नर्सिंग होम), अस्पताल या प्रसूति गृह के प्रबंध तंत्र शामिल हैं।

26. अधिनियम की धारा 36 के अनुसार धारा 31 के अधीन बालक को पेश किये जाने पर या रिपोर्ट की प्राप्ति पर, समिति द्वारा जाँच की जाएगी। धारा 36 और धारा 31 को संयुक्त रूप से पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाएगा कि सबसे पहले, बच्चे को उसमें उल्लिखित प्राधिकारियों द्वारा समिति के समक्ष प्रस्तुत किया जाना है, और समिति के समक्ष बच्चे को पेश करने पर एक जांच की जाएगी, और उक्त जांच पर विचार करने के बाद उचित आदेश पारित किया जाना चाहिए कि क्या बच्चे को बाल गृह में भेजा जाए या किसी उपयुक्त सुविधा में या उपयुक्त व्यक्ति के साथ भेजा जाए। इस स्तर पर हम यह भी अवलोकन करना चाहेंगे कि अधिनियम की धारा 31 के तहत एक रिपोर्ट के आधार पर भी समिति द्वारा जांच की जा सकती है।किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) मॉडल नियम, 2016 के अवलोकन साथ ही नियम 18 के प्रावधानुसार, बच्चे को समिति के समक्ष

प्रस्तुत किया जाए और बच्चे को समिति के समक्ष प्रस्तुत करने और इस संबंध में रिपोर्ट प्रस्तुत करने के बाद ही, समिति जांच करने के लिए आगे बढ़ती है, और उसके बाद यदि तथ्यों की पुष्टि होती है, तो बच्चे को देखभाल और सुरक्षा की आवश्यकता वाला बच्चा घोषित किया जाता है।

27. अधिनियम की योजना यह भी इंगित करती है कि अधिनियम की धारा 36 के अनुसार समिति के समक्ष बच्चे को पेश करने के बाद ही जांच शुरू होती है, और अधिनियम की धारा 37 के निर्देशानुसार उचित आदेश पारित किए जा सकते हैं।

28. किशोर न्याय अधिनियम, 2015 के विभिन्न प्रावधानों की जांच करने के बाद, यह स्पष्ट हो जाता है कि योजना का अंतर्निहित सूत्र, नाबालिग बच्चे का पुनर्वास है। धारा 36(3) यह प्रावधान करता है कि जाँच पूरी हो जाने के पश्चात, यदि समिति की यह राय है कि उक्त बालक का कोई कुटुंब या उसका कोई दृश्यमान सँभालने वाला नहीं है या उसे देखरेख या संरक्षण की लगातार आवश्यकता है तो उस बालक को विशिष्ट दत्तक ग्रहण अभिकरण में भेजा जा सकता है। धारा 37 में यह प्रावधान करता है कि समिति यह घोषित करने के बाद कि बच्चे को देखभाल और सुरक्षा की आवश्यकता है, उसका प्राथमिक कार्य बच्चे को माता-पिता या अभिभावक या परिवार को बहाल करना है, ऐसा न करने पर नाबालिग को बाल गृह, उपयुक्त सुविधा तंत्र, विशिष्ट दत्तक ग्रहण अभिकरण आदि में रखा जाना है। आगे इस अधिनियम की धारा 38, अनाथ या परित्यक्त बालक के संबंध में प्रावधान करती है, जहां समिति को ऐसे बच्चों को उनके माता-पिता या अभिभावकों के साथ रखने के लिए सभी प्रयास करने की आवश्यकता होती है, ऐसी परिस्थिति व्यवस्थ न बनने पर समिति बालक को दत्तकग्रहण के लिए विधिक रूप से मुक्त घोषित करेगी। अध्याय VII पूरी तरह से बच्चों के पुनर्वास और समाज में पुनः मिलाने की प्रक्रिया को समर्पित है, जहां यह प्रावधान किया गया है कि किसी भी बाल गृह, विशिष्ट दत्तक ग्रहण अभिकरण या अनाथ आश्रय का प्राथमिक उद्देश्य बच्चों का उद्धार और संरक्षण सुनिश्चित करना होगा। किशोर न्याय अधिनियम, 2015 में निहित उपरोक्त प्रावधानों पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि समिति का उद्देश्य बच्चे का पुनर्वास है। जब किसी बच्चे को समिति के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है, तो समिति द्वारा जांच शुरू की जाती है। उक्त पूछताछ में बच्चे के संबंध में सभी उपलब्ध विवरण एकत्र किये गये हैं। उसकी चिकित्सा और मनोवैज्ञानिक जांच की जा सकती है, जिसके अनुसार यह घोषणा करना आवश्यक है कि बच्चे को देखभाल और सुरक्षा की आवश्यकता है, और उसके बाद निर्धारित प्रावधानों के अनुसार बच्चे को बाल गृह सहित उपयुक्त संस्थान या

उपयुक्त व्यक्ति आदि किसी भी स्थान पर भेजा जा सकता है।

29. समिति का अधिकार क्षेत्र "जाँच" करने के बाद आवश्यक आदेश पारित करने तक ही सीमित है। यदि यह पाया जाता है कि बच्चे को देखभाल और सुरक्षा की आवश्यकता है तो अधिनियम में परिकल्पित आवश्यक आदेश पारित किए जा सकते हैं। ऐसे मामले भी हो सकते हैं जहां बच्चे के साथ उसके अपने ही माता-पिता द्वारा दुर्व्यवहार का आरोप हो, या अधिनियम की धारा 35 में दिए गए प्रावधान के अनुसार बच्चे को माता-पिता द्वारा स्वेच्छा से सौंपा/समर्पित किया गया हो, ऐसी स्थिति में उचित प्रक्रिया का पालन करने के बाद समिति बच्चे को योग्य व्यक्ति, उपयुक्त संस्थान, बाल गृह आदि सहित उचित स्थान पर भेज सकती है।

30. वैधानिक योजना का अवलोकन स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि 2015 के अधिनियम के तहत गठित और सशक्त समिति विवादित तथ्यों के न्यायिक निर्धारण की परिकल्पना नहीं करती है, जहां माता-पिता में से किसी एक के द्वारा दूसरे के विरुद्ध नाबालिक बच्चे के साथ दुर्व्यवहार के आरोप की शिकायत की गयी हो और ऐसे माता-पिता या व्यक्ति द्वारा अभिरक्षा की भी मांग की गयी हो। यदि ऐसा कोई मामला उत्पन्न होता है तो समिति अपनी शक्तियों के अंतर्गत बच्चे को देखभाल और सुरक्षा की आवश्यकता घोषित कर सकती है, और उसे बाल गृह आदि की उपयुक्त सुविधा में भेज सकती है, जब तक कि सक्षम क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय द्वारा अभिरक्षा के प्रश्नों पर निर्धारण या न्यायनिर्णयन लंबित हो, लेकिन अभिरक्षा को दूसरे माता-पिता या रिश्तेदार को सौंपना, नाबालिग की अभिरक्षा से संबंधित मामले का निर्णय करने जैसा होगा, और इस तरह, यह केवल अधिनियम की धारा 31 में परिकल्पित सीमित जांच के आधार पर नहीं किया जा सकता है। तथ्य और कानून के विवादित प्रश्नों को न्यायिक रूप से निर्धारित करना होगा, जो मामला, जैसा कि पहले चर्चा की गई है, केवल पारिवारिक न्यायालय अधिनियम, हिंदू अल्पसंख्यक और संरक्षकता अधिनियम या संरक्षक और वार्ड अधिनियम के तहत क्षेत्राधिकार का उपयोग करने वाले नियमित न्यायालयों के लिए होगा जो बच्चे के हित में नाबालिग बच्चे की अभिरक्षा एक माता-पिता से दूसरे माता-पिता को या एक माता-पिता से दूसरे व्यक्ति को देने के मुद्दे का निर्णय, नाबालिक बच्चे के हित में करेंगी। यह किशोर न्याय अधिनियम, 2015 की धारा 2 (23) में प्रदान की गई "न्यायालय" की परिभाषा के अनुरूप भी है, जहां गोद लेने और संरक्षकता न्यायालय के मामलों में मतलब सिविल न्यायालय होगा जिसके पास मामले में क्षेत्राधिकार है।

31. किशोर न्याय अधिनियम की धारा 40 यह भी इंगित करेगी कि

देखरेख और संरक्षण की आवश्यकता वाले बालक को उसके माता-पिता को प्रत्यावर्तित करना समिति का प्राथमिक कर्तव्य होगा। यहां तक कि अधिनियम की धारा 40 का अर्थ यह नहीं लगाया जा सकता है कि अभिरक्षा एक माता-पिता से छीनकर दूसरे को दी जा सकती है, क्योंकि उक्त धारा के तहत इस्तेमाल किया गया शब्द "प्रत्यावर्तन" और "माता-पिता" है और इसलिए केवल वहीं जहां बच्चा भाग गया है घर से, या किसी तीसरे व्यक्ति की अवैध अभिरक्षा में पाया जाता है, आदि प्रक्रिया का पालन करने के बाद उसे उसके माता-पिता को प्रत्यावर्तित किया जा सकता है। यह स्पष्ट है कि अधिनियम की धारा 40 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए एक माता-पिता के साथ बच्चे की अभिरक्षा दूसरे माता-पिता या रिश्तेदार को हस्तांतरित नहीं की जा सकती है।

32. कुटुंब न्यायालय अधिनियम की धारा 13 के तहत याचिकाकर्ता के खिलाफ प्रतिवादी संख्या 4 द्वारा दायर एक याचिका वाद संख्या 2479 / 2021, कुटुंब न्यायालय, लखनऊ के समक्ष लंबित है, जहां नाबालिग बच्चे की अभिरक्षा के मुद्दे को उचित रूप से निपटाया और निर्णीत किया जा सकता है।

33. एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू जो हमें यह अभिनिर्धारित करने के लिए प्रेरित करता है कि समिति को विवादास्पद अभिरक्षा के मामलों पर निर्णय लेने का अधिकार नहीं है, वह किशोर न्याय अधिनियम की योजना है, जहां प्रदान की गई प्रक्रिया "देखरेख और संरक्षण की आवश्यकता वाले बालक" के प्रस्तुत करने पर 2015 के अधिनियम की धारा 37 के अनुसार जांच करने तक सीमित है। जांच पूरी होने पर यदि समिति की राय है कि बच्चे के पास कोई पारिवारिक या प्रत्यक्ष समर्थन नहीं है और देखरेख और संरक्षण की निरंतर आवश्यकता है तो वह बच्चे को विशिष्ट दत्तक ग्रहण अभिकरण को भेज सकती है। ऐसी शक्ति का प्रयोग करते समय, बच्चे का कल्याण अत्यंत महत्वपूर्ण है, जिसे समिति द्वारा अभिलेख पर मौजूद सामग्री के आधार पर निष्पक्ष रूप से निर्धारित किया जाना है।

34. समिति में निहित शक्ति के प्रयोग के तरीके से संबंधित प्रावधानों का अवलोकन बच्चे के सर्वोत्तम हित को ध्यान में रखते हुए उसके संरक्षण के लिए आवश्यक आदेश पारित करने तक सीमित है। समिति द्वारा प्रयोग की जाने वाली शक्ति न्यायिक के बजाय प्रशासनिक प्रकृति की है, जिसमें कानून और तथ्य के विवादित प्रश्नों का निर्धारण शामिल है। जांच में केवल तथ्यों का पता लगाना होता है और बच्चे के सर्वोत्तम हित में आदेश पारित करना होता है। माता-पिता में से किसी एक को अभिरक्षा देने से संबंधित प्रकरण जहां मामला पति-पत्नी के बीच विवादित है, जहां दोनों नाबालिग

की अभिरक्षा पाने के लिए बेहतर स्थिति में होने का दावा करते हैं, तो मुद्दों को न्यायिक रूप से निर्धारित किया जाना चाहिए, न कि किशोर न्याय अधिनियम, 2015 में निहित प्रावधानों के अनुसार उचित प्रक्रिया और संक्षिप्त रीति से, और इस कारण से, नाबालिगों की संरक्षकता और अभिरक्षा के मामलों का निर्णय सक्षम सिविल अदालतों द्वारा साक्ष्य लेने और दोनों पक्षों को सुनवाई का उचित अवसर देने के बाद किया जाना उचित है। इस संबंध में किशोर न्याय अधिनियम की धारा 2(23) को भी ध्यान में रखना होगा जहाँ "न्यायालय" से ऐसा कोई सिविल न्यायालय अभिप्रेत है जिसे दत्तकग्रहण और संरक्षकता के मामलों में अधिकारिता प्राप्त है और इसके अंतर्गत जिला न्यायालय, कुटुंब न्यायालय और नगर सिविल न्यायालय भी सम्मिलित है। इसलिए, संरक्षकता से संबंधित मामलों के संबंध में, यहां तक कि किशोर न्याय अधिनियम, 2015 के अनुसार, यह सिविल न्यायालय हैं जिनके पास ऐसे मामलों को तय करने में प्राथमिकता और विशेष क्षेत्राधिकार होगा, और इसलिए इस न्यायालय का विचार है कि समिति के पास न तो नाबालिग की संरक्षकता और अभिरक्षा से संबंधित विवादित दावों पर निर्णय लेने का क्षेत्राधिकार है और न ही शक्ति।

35. गीतांजलि डोगरा बनाम राज्य और अन्य सीएम (एम) 1140/2018 के मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय ने माता-पिता में से किसी एक के मुलाक़ात अधिकारों से संबंधित मामलों से निपटने के लिए अपनी शक्तियों के संबंध में समिति की शक्तियों पर विचार करते हुए, जांच के बाद किशोर न्याय अधिनियम के प्रावधानों को निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:-

"30. इस प्रकार यह स्पष्ट है कि संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 के प्रावधानों के संदर्भ में सक्षम न्यायालय को एक नाबालिग बच्चे की संरक्षकता, मुलाक़ात और पहुंच के पहलुओं पर निर्णय लेने की शक्तियां प्रदान की गई हैं और जैसा कि यहां ऊपर कहीं और देखा गया है, मौजूदा मामले की परिस्थितियों में जहां कुटुंब न्यायालय, दिल्ली के समक्ष

पक्षों यानी याचिकाकर्ता और प्रतिवादी संख्या 2 के बीच मुकदमा लंबित है, प्रतिवादी संख्या 2 नाबालिग बच्चे तक पहुंच के अधिकारों के संबंध में निर्णय को कम करने के लिए किसी तरीके का सहारा नहीं ले सकता था, जो कि विधि न्यायालय द्वारा किया जाना है।

31. कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 की धारा 7(1) के संदर्भ में, जैसा कि ऊपर देखा गया है, दोनों पक्षों की ओर से की गई दलीलों पर विचार करते हुए, इस पहलू को ध्यान में रखते हुए कि

कुटुंब न्यायालय में नाबालिग बच्चे की मां और नाबालिग बच्चे के पिता के बीच जैसा कि याचिकाकर्ता की ओर से प्रस्तुत किया गया है और प्रतिवादी संख्या 1 की ओर से इसका खंडन नहीं किया गया है, कोई वाद लंबित है। क्योंकि अनुरक्षण की कार्यवाही उक्त न्यायालय के समक्ष लंबित है। न्यायालय ने कहा, यह स्पष्ट है कि मौजूदा मामले की परिस्थितियों में नाबालिग बच्चे को प्रतिवादी संख्या 2 तक अनुमति देने या पहुंच देने का अधिकार क्षेत्र केवल संबंधित कुटुंब न्यायालय

के पास निहित है।

32. इसके अलावा, इसे नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता कि बाल अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र कन्वेंशन (यूएनसीआरसी) का अनुच्छेद 9(1) इस आशय का है:

"1. राज्य पक्ष यह सुनिश्चित करेंगे कि किसी बच्चे को उसके माता-पिता से उनकी इच्छा के विरुद्ध अलग नहीं किया जाएगा, सिवाय इसके कि जब न्यायिक समीक्षा के अधीन सक्षम प्राधिकारी लागू कानून और प्रक्रियाओं के अनुसार यह निर्धारित करते हैं कि ऐसा अलगाव बच्चों के सर्वोत्तम हितों के लिए आवश्यक है। ऐसा निर्धारण किसी विशेष मामले में आवश्यक हो सकता है जैसे कि माता-पिता द्वारा बच्चे के साथ दुर्व्यवहार या उपेक्षा, या जहां माता-पिता अलग-अलग रह रहे हों और बच्चे के निवास स्थान के बारे में निर्णय लिया जाना चाहिए।"

यह भी स्पष्ट करता है कि इसे अलग से नहीं पढ़ा जा सकता और घरेलू कानून की अवहेलना करके नहीं पढ़ा जा सकता।

36. कलकत्ता उच्च न्यायालय ने **तस्लीमा बेगम बनाम पश्चिम बंगाल राज्य एवं अन्य** के मामले में रिट याचिका संख्या 19557(डब्ल्यू) / 2017 को इसी तरह की परिस्थितियों में 4 जनवरी

2018 को निर्णीत किया गया जो निम्नानुसार अभिनिर्धारित है:-

"वर्तमान मामले में, जिला न्यायाधीश के समक्ष बच्चों की अभिरक्षा के लिए मामला लंबित है। हालाँकि, ऐसी कार्यवाही यह तय करेगी कि संबंधित बच्चों के अभिभावक के रूप में किसे माना जाएगा। समिति अंतर्काल में बच्चों के कल्याण के लिए प्रदान कर सकती है।

प्रिया यादव (उपरोक्त) का विचार है कि, किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) नियम, 2016 के साथ पढ़ा जाने वाला 2015 का अधिनियम किसी बच्चे की अभिरक्षा मां से लेकर उसे उस मामले के तथ्यों में पिता को देने की शक्ति प्रदान नहीं करता है।"

37. दिल्ली उच्च न्यायालय के साथ-साथ कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा पारित उपरोक्त निर्णय का अवलोकन करने से संकेत मिलता है कि दोनों उच्च न्यायालयों ने भी एक समान दृष्टिकोण अपनाया है कि किशोर न्याय अधिनियम के प्रावधान उसे प्रतिवादित और अभिरक्षा से संबंधित विवादित मामले में निर्णय लेने की शक्ति नहीं देते हैं। जबकि यह केवल एक अंतरिम उपाय के रूप में, बच्चे के कल्याण में उचित आदेश पारित कर सकता है।

38. यद्यपि यहां ऊपर दर्ज निष्कर्ष वर्तमान मामले को अंतिम रूप से तय करने / निर्णीत करने के लिए पर्याप्त होगा, लेकिन जिस तरह से समिति ने मामले का फैसला करने के लिए आगे बढ़ाया है और साथ ही जिला मजिस्ट्रेट ने अपील की अपनी शक्ति का प्रयोग किया है, उसके लिए विशेष उल्लेख की आवश्यकता है।

39. किशोर न्याय अधिनियम के तहत गठित समिति का एकमात्र उद्देश्य बच्चे के सर्वोत्तम हित में कार्य करना है। समिति में शामिल व्यक्तियों से अपेक्षा की जाती है कि नाबालिग के

संबंध में एक भिन्न निर्णय पर पहुंचने से पहले वे अपने दृष्टिकोण में वस्तुनिष्ठ हों, बच्चे की जरूरतों के प्रति संवेदनशील हों और उनके सामने प्रस्तुत स्थिति का समग्र दृष्टिकोण रखें और देखभाल और सुरक्षा की आवश्यकता वाले बच्चों के संबंध में बहुत सावधानी से और सभी संभावित समाधान तलाशते हुए कार्य करें। उपरोक्त विशेषताओं के अभाव में कोई भी निर्णय अप्रभावी हो सकता है और बच्चे के सर्वोत्तम हित के लिए प्रतिकूल हो सकता है। वर्तमान मामले में बच्चे के दादा ने अपनी बहू (याचिकाकर्ता) के खिलाफ बच्चे के साथ दुराचार और दुर्व्यवहार करने का आरोप लगाते हुए शिकायत दर्ज कराई थी और बदले में नाबालिग की अभिरक्षा की मांग की थी। 22.07.2021 को इस न्यायालय द्वारा निर्देश जारी किए जाने के बाद ही समिति ने इस मुद्दे को उठाने का फैसला किया। याचिकाकर्ता को 02.08.2021 और 04.08.2021 को नोटिस जारी किए गए और उन्हें क्रमशः 04.08.2021 और 06.08.2021 को उपस्थित होने का निर्देश दिया गया। यह समझ में नहीं आता कि समिति को दो दिन के भीतर स्पीड पोस्ट से नोटिस मिलने की उम्मीद कैसे थी। आदेश-पत्र के अनुसार याचिकाकर्ता को 16.08.2021 को उपस्थित होने के लिए टेलीफोन पर सूचित किया गया था। याचिकाकर्ता उक्त तिथि पर अपनी नाबालिग बेटी के साथ उपस्थित हुई। उनका दावा है कि उन्होंने शिकायतकर्ता द्वारा लगाए गए आरोपों से इनकार किया है। उन्होंने पार्षद के साथ मुलाकात से इनकार किया है, उन्होंने अपने द्वारा दिए गए बयान पर हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया है और कहा है कि शिकायतकर्ता द्वारा प्रस्तुत सभी मेडिकल रिपोर्ट उनके ससुर के प्रभाव में थीं जो महानिदेशक चिकित्सा एवं स्वास्थ्य के वरिष्ठ पद से सेवानिवृत्त हुए थे। समिति ने बच्चे से बातचीत की और उसके बाद कार्यवाही समाप्त कर अपना आदेश सुरक्षित रख लिया।

40. समिति द्वारा दिनांक 17/08/2021 को पारित आदेश के अवलोकन से पता चलेगा कि पूरी जांच और चर्चा याचिकाकर्ता के आचरण और व्यवहार के संबंध में है। नाबालिग की अभिरक्षा के संबंध में समिति द्वारा निपटाए गए मुद्दे के परिप्रेक्ष्य में कोई उल्लेख या भनक तक भी नहीं है, जिसे समिति द्वारा निर्धारित किया गया था। समिति ने अखबार के लेखों में प्रकाशित जानकारी पर विश्वास जताया है, और याचिकाकर्ता को चिकित्सा विज्ञान के लिए अभी भी अज्ञात "एफबिंग" बीमारी के लिए जिम्मेदार ठहराया है और माना है कि वह बच्चे के कल्याण की देखभाल करने में असमर्थ है। विवाद पर निर्णय लेने के लिए समिति द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया और विधि, प्रथम दृष्टया, पूरी तरह से मनमाना है, इस तथ्य के साथ कि शिकायत की प्रति भी याचिकाकर्ता को कभी नहीं दी गई थी, उसके विरुद्ध प्रयोग की जाने वाली चिकित्सीय

अभिलेखों को समिति द्वारा कभी सत्यापित नहीं किया गया और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि समिति द्वारा बच्चे की जांच किए जाने का कोई उल्लेख नहीं है जो कि प्राथमिक कर्तव्य और जिम्मेदारी थी। इसका कोई कारण नहीं है कि 16/08/2021 को ही कार्यवाही इतनी जल्दबाजी में क्यों समाप्त की गई, जबकि याचिकाकर्ता अपनी बेटी के साथ उपस्थित हुई थी। हमने मूल अभिलेखों का भी अवलोकन किया है लेकिन 16/08/2021 से संबंधित कार्यवाही नहीं मिल सकी। प्रारंभ में आदेश पत्रक की एक छायाप्रति हमारे सामने पेश की गई थी, क्योंकि उसमें मौजूद आदेश गूढ़ थे और समिति की सही कार्यवाही का खुलासा नहीं करते थे और इसलिए यह न्यायालय पूरे मूल अभिलेख को मंगाने के लिए बाध्य था और हमने पाया कि हमारे सामने पेश की गई टंकित आदेश पत्रक, मूल फ़ाइल में समिति द्वारा रखी गई आदेश पत्रक से भिन्न थी। ऐसी प्रक्रिया की सराहना नहीं की जाती है और समिति जिस तरह से काम कर रही है उसमें विश्वास पैदा नहीं होता है। नाबालिग की अभिरक्षा सौंपने से पहले प्रतिवादी संख्या 3, 4 और 5 को उपयुक्त व्यक्ति घोषित करने के लिए कोई उचित कार्यवाही नहीं की गई। मॉडल नियमों में निर्धारित प्रक्रियाओं का भी पालन नहीं किया गया है, भले ही प्रतिवादी संख्या 3 ने नाबालिग बच्चे की अस्थायी अभिरक्षा के लिए प्रार्थना की थी, लेकिन अभिरक्षा बिना किसी समय सीमा या किसी अन्य आकस्मिकता के दी गई है, जैसे कि यह अभिरक्षा के संबंध में अंतिम निर्धारण है। समिति ने वर्तमान मामले में पूरी तरह से वैधानिक प्रावधानों और नियमों का उल्लंघन करते हुए कार्रवाई की है। हम इस तथ्य का भी संज्ञान लेते हैं कि निजी प्रतिवादियों द्वारा 22.3.2023 को इस आधार पर छूट के लिए एक आवेदन दायर किया गया है कि प्रतिवादी संख्या 3 वृद्ध और कमजोर है और विभिन्न बीमारियों से पीड़ित है, जबकि प्रतिवादी संख्या 5 उसके पति के साथ नोएडा में रह रहा है। उपरोक्त तथ्य प्रतिवादी संख्या 3 और 5 को उपयुक्त व्यक्ति घोषित करने से पहले समिति के समक्ष भी मौजूद थे। तथ्यों से स्वयं पता चलता है कि समिति का आदेश अवैध और मनमाना था और इसमें विवेक का प्रयोग नहीं किया गया था। वे पूरी तरह से जानते थे कि प्रतिवादी संख्या 3 (दादा) जो शिकायतकर्ता थे, 78 वर्ष के थे और फिर भी उन्हें केवल नाबालिग बच्चे की अभिरक्षा सौंपने के लिए एक उपयुक्त व्यक्ति घोषित करने के लिए आगे बढ़े, जबकि प्रतिवादी संख्या 5 नोएडा की निवासिनी थी। वह अपने पति के साथ रह रही थी और सुल्तानपुर में नाबालिग बच्चे की देखभाल करने की स्थिति में नहीं थी, लेकिन उसे भी एक योग्य व्यक्ति घोषित किया गया और अभिरक्षा सौंप दी गई।

41. दूसरी ओर, जिला मजिस्ट्रेट ने समिति के आदेश के विरुद्ध

अपील पर निर्णय लेते हुए सिविल प्रक्रिया संहिता के साथ-साथ आपराधिक प्रक्रिया संहिता के तहत "अपीलीय न्यायालय" की भूमिका निभाई है। उन्होंने स्वीकार किया है कि समिति के पास प्रतिवादियों को अभिरक्षा देने के लिए कोई विश्वसनीय सामग्री नहीं थी, लेकिन उन्होंने अतिरिक्त सबूतों पर विचार करने का निर्णय लिया, जो केवल प्रतिवादियों द्वारा दायर किए गए थे, और सीसीटीवी फुटेज के आधार पर और सबूतों के आधार पर इसमें यह निष्कर्ष निकाला गया कि याचिकाकर्ता बच्चे के साथ दुर्व्यवहार और बदसलूकी कर रही थी और परिणामस्वरूप प्रतिवादियों को अभिरक्षा सौंप दी गई।

42. आक्षेपित अपीलीय आदेश की वैधता के संबंध में, सबसे पहले, हम यह देखना चाहेंगे कि अपील में सुनवाई करने वाले एक प्रशासनिक अधिकारी को वैधानिक प्रावधानों के अनुरूप निर्णय लेना होगा जिसने उसे ऐसी शक्ति प्रदान की है। किशोर न्याय अधिनियम की धारा 101 के तहत समिति के आदेशों के विरुद्ध अपील का प्रावधान है। अधिनियम, अपीलीय प्राधिकारी को अतिरिक्त साक्ष्य प्राप्त करने की कोई शक्ति नहीं देता है, और इसलिए ऐसी किसी भी शक्ति के अभाव में किशोर न्याय अधिनियम, 2015 के तहत अपीलीय प्राधिकारी के पास अतिरिक्त साक्ष्य प्राप्त करने की कोई शक्ति नहीं होगी। यह केवल उन आधारों पर अपील की जांच और निर्णय कर सकता है जिन पर इसे दायर किया गया है। अन्यथा भी, समिति, जिसके आदेश के विरुद्ध अपील की गयी है, साक्ष्य नहीं लेती है, बल्कि केवल "जांच" के आधार पर आदेश पारित करती है जैसा कि अधिनियम की धारा 31 में निर्धारित किया गया है, और निश्चित रूप से अपीलीय प्राधिकारी के पास इससे अधिक कोई शक्ति नहीं होगी। निकाय को मूल रूप से मामले पर निर्णय लेने का अधिकार है। इस संबंध में यह है कि जिला मजिस्ट्रेट ने अपने क्षेत्राधिकार का अतिक्रमण किया है और अपील पर निर्णय करते समय स्पष्ट रूप से स्वयं को दिग्भ्रमित किया है। यदि अपीलीय प्राधिकारी का विचार था कि समिति का आदेश गलत था और उसे अधिक साक्ष्य/सामग्री लेनी/विचार करना चाहिए था, तो वह मामले को नए सिरे से तय करने के लिए मामले को वापस समिति को भेज सकता था, लेकिन उसमें निश्चित रूप से "अतिरिक्त साक्ष्य" प्राप्त करने की कोई शक्ति निहित नहीं थी। विभिन्न अन्य क़ानूनों में भी निर्धारित प्राधिकारियों द्वारा पारित आदेशों के विरुद्ध उच्च प्राधिकारी को अपील का प्रावधान प्रदान किया गया है, जहां वे उक्त क़ानून के तहत अधिकारों के निर्माण, समाप्ति या परिभाषित करने से संबंधित मामलों के बारे में निर्णय लेते हैं, लेकिन ऐसी अपीलों की तुलना सिविल प्रक्रिया संहिता या आपराधिक प्रक्रिया संहिता के तहत नियमित न्यायालय को प्रदान की गई अपील की शक्ति से नहीं की जा सकती। इन विशेष क़ानूनों के

तहत अपीलीय प्राधिकारी, वास्तव में न्यायाधिकरण सीमित क्षेत्राधिकार वाले हैं, और निर्धारित प्राधिकारी के आदेश के विरुद्ध अपील पर निर्णय लेने की शक्ति के अंतर्गत निहित हैं और इससे अधिक कुछ नहीं। ऐसे अपीलीय प्राधिकारी, वास्तव में, सीमित क्षेत्राधिकार वाले न्यायाधिकरण हैं जिनकी शक्तियों का प्रयोग संविधि में ही समाहित है और वे स्वयं को सिविल प्रक्रिया संहिता या आपराधिक प्रक्रिया संहिता के तहत किसी अपीलीय न्यायालय की शक्तियों का दावा नहीं कर सकते हैं।

43. समिति के साथ-साथ जिला मजिस्ट्रेट के आदेशों की जांच करने के बाद, इस न्यायालय का मानना है कि दोनों आदेश अवैध और मनमाने हैं और निरस्त किए जाने योग्य हैं। तदनुसार, रिट याचिका को **अनुमति** दी जाती है। बाल कल्याण समिति, सुल्तानपुर द्वारा पारित आदेश दिनांक 17/08/2021 तथा अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश दिनांक 06/12/2021 को अभिखण्डित किया जाता है।

44. याचिकाकर्ता की नाबालिग बच्ची की अभिरक्षा याचिकाकर्ता को तत्काल प्रत्यावर्तित की जाती है। याचिकाकर्ता के साथ-साथ प्रतिवादी संख्या 4 के लिए भी यह खुला होगा कि वे विधि के अनुसार अपनी नाबालिग बच्ची की अभिरक्षा पाने के लिए सक्षम न्यायालय से संपर्क कर सकते हैं।

(2023) 3 ILRA 304

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल वाद

दिनांक: लखनऊ 21.02.2023

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती संगीता चंद्रा

माननीय मनीष कुमार

के समक्ष

रिट सी संख्या 5797/2008

मेसर्स जी.बी. लॉन्स पी लिमिटेड... याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ...प्रतिपक्षी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: दीपक सेठ

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: सी.एस.सी., आई.बी. सिंह, मनीष जौहरी

उत्तर प्रदेश आवास एवं विकास परिषद अधिनियम, 1965 - नामांतरण फीस वसूलने का अधिकार - इस वाद में परिषद ने नामांतरण फीस के रूप में 5% की फीस की मांग की है जो कि असाइनमेंट के कुल मूल्य का है - यह तय किया गया कि नामांतरण का उद्देश्य परिषद के अभिलेख में नामांतरण को रजिस्टर करना है ताकि ऐसे करदाताओं से टैक्स वसूला जा सके - एक बार जब नामांतरण के लिए आवेदन किया जाता है, तो इसे संबंधित विभाग, अर्थात परिषद द्वारा जांचा जाना चाहिए और यदि कोई आपत्ति सुनवाई के बाद, अभिलेख में नामांतरण को लेकर बदलाव का निर्देश दिया जाता है, तो यह प्रक्रिया केवल कर की देनदारी निर्धारित करने के लिए होती है - फीस मूल रूप से प्रदान की गई सेवाओं के लिए ली जाती है और याचिकाकर्ता और परिषद के बीच कोई प्रतिफल का तत्व नहीं है क्योंकि आवास एवं विकास परिषद अपने आवंटियों या ट्रांसफरियों को कोई सेवा प्रदान नहीं करती, सिवाय इसके कि अभिलेख में सुधार किया जाए जो कि उसके अपने उद्देश्यों के लिए रखे गए हैं

- भले ही परिषद अपने अभिलेख में प्रविष्टियों को संशोधन के लिए कोई फीस ले सके, यह भौतिक रूप से वसूली नहीं की जा सकती है, और इसे मूल्य के अनुसार नहीं गिना जा सकता क्योंकि ऐसे वाद में होने वाले खर्च सामान्य होते हैं - परिषद का नामांतरण के वाद में कार्य वही रहता है चाहे आवेदक ट्रांसफरी, पट्टेदार या वसीयत के तहत लाभार्थी हो या अविवेचित उत्तराधिकार की स्थिति में हो - न्यायालय ने आपेक्षित आदेश को निरस्त कर दिया। (पैरा 21, 22, 23)

स्वीकृत। (E-5)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. कोलकाता नगर निगम एवं अन्य बनाम श्रेया मर्कैंटाइल प्रा. लि. एवं अन्य (2005) 4 SCC 245

<u>माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती संगीता चंद्रा</u>

<u>माननीय न्यायमूर्ति मनीष कुमार</u>

(मौखिक)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री दीपक सेठ, प्रतिवादी संख्या 2 और 3 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री मनीष जौहरी और राज्य प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना।

2. यह रिट याचिका प्रतिवादी संख्या 2 और 3 द्वारा अनुलग्नक क्रमांक क्रमशः 1 और 2 के रूप में दाखिल रिट याचिका में पारित दिनांक 16.05.2008 और 15.04.2004 के आदेशों को रद्द करने की प्रार्थना करते हुए दायर की गई है। प्रतिवादियों को दिनांक 16.05.2008 और 15.04.2004 के आक्षेपित आदेशों के अनुपालन में याचिकाकर्ता से किसी भी नामांतरण शुल्क की वसूली या मांग न करने का निर्देश भी मांगा गया है।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता कंपनी अधिनियम के अन्तर्गत निगमित एक कंपनी है। वर्तमान याचिका इसके प्रबंध निदेशक के माध्यम से दायर की गई है। कंपनी ने रुपये 10,42,80,800/- के कुल प्रतिफल में 3722.10 वर्ग मीटर का एक वाणिज्यिक प्लॉट संख्या 5/सी.पी.-105 इंदिरा नगर, लखनऊ को मानसरोवर अर्बन कोऑपरेटिव बैंक लिमिटेड (बाद में बैंक के रूप में संदर्भित) के सब-रजिस्ट्रार-3 लखनऊ के कार्यालय में पंजीकृत दिनांक 06.12.2008 के अंतरण पंजीकृत विलेख के माध्यम से खरीदा, जिसे उसने बदले में उ. प्र. आवास एवं विकास परिषद, लखनऊ (बाद में परिषद के रूप में संदर्भित) से पंजीकृत पट्टा विलेख दिनांक 25.08.1995 के माध्यम से कुल प्रीमियम रु. 68,52,258/- में खरीदा था।

4. याचिकाकर्ता के पक्ष में दिनांक 06.12.2006 के अंतरण विलेख के निष्पादन के तुरंत बाद, याचिकाकर्ता ने उचित मूल्यांकन के बाद नगर निगम, लखनऊ को गृह कर, जल कर और सीवर कर आदि का भुगतान करना आरम्भ कर दिया। चूँकि भूमि एक वाणिज्यिक भवन बनाने के लिए क्रय की गई थी, अतः याचिकाकर्ता ने परिषद को एक भवन योजना प्रस्तुत की, जिसे परिषद ने स्वीकृति दे दी और उसके बाद याचिकाकर्ता ने संबंधित भूमि पर निर्माण शुरू कर दिया। अचानक, परिषद ने अपने दिनांक 15.04.2004 के आदेश द्वारा संपत्ति के उत्तरवर्ती क्रेता से नामांतरण शुल्क वसूल करने का निर्णय

लिया, जिसे प्रारंभ में परिषद द्वारा किसी अन्य व्यक्ति को आवंटित किया गया था। परिषद ने नामांतरण शुल्क के लिए अंतरण विलेख के कुल प्रतिफल के 5% शुल्क की मांग की। परिषद द्वारा मांग की गई थी और याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी संख्या 3 के समक्ष प्रत्यावेदन प्रस्तुत करते हुए दिनांक 12.04.2007 को कहा कि यथामूल्य 5% नामांतरण शुल्क आरोपित करने का कोई औचित्य नहीं था क्योंकि यह एलडीए सहित अन्य स्थानीय प्राधिकारियों द्वारा वसूले जाने वाले नामांतरण शुल्क की तुलना में बहुत अधिक था, जो उस समय विक्रय प्रतिफल का मात्र 1 % था।

5. इसके अतिरिक्त, एल.डी.ए., उत्तर प्रदेश शहरी नियोजन एवं विकास अधिनियम, 1973 द्वारा प्राप्त शक्ति के अंतर्गत नामांतरण शुल्क आरोपित कर सकता है, परन्तु परिषद द्वारा ऐसा कोई अधिकार नही लिया जा सकता, क्योंकि यू.पी. आवास एवं विकास परिषद अधिनियम, 1965 परिषद को उपरोक्तानुसार नामांतरण शुल्क वसूलने का अधिकार नहीं देता है।

6. याचिकाकर्ता के प्रत्यावेदन के अनुक्रम में परिषद ने अपने अभिलेख में याचिकाकर्ता का नाम इस शर्त के साथ परिवर्तित करने का आदेश दिया कि याचिकाकर्ता मामले को अंतिम रूप देने के बाद पंद्रह दिनों के भीतर अपेक्षित शुल्क, यदि कोई हो, का भुगतान करेगा, एवं उक्त परिस्थितियों में क्षतिपूर्ति बांड प्रस्तुत करना आवश्यक था। याचिकाकर्ता द्वारा क्षतिपूर्ति बांड 25.04.2007 को प्रस्तुत किया गया था। अप्रैल, 2008 तक परिषद द्वारा कोई और कार्रवाई नहीं की गई, परन्तु 16.05.2008 को परिषद ने याचिकाकर्ता को एक पखवाड़े के भीतर नामांतरण शुल्क के रूप में रुपये 52,10,940/- जमा करने का नोटिस दिया अन्यथा भू-राजस्व के बकाया के रूप में इसकी वसूली के लिए याचिकाकर्ता के खिलाफ वसूली कार्यवाही प्रारम्भ की जानी थी।

7. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि प्रदत्त सेवाओं हेतु अनिवार्य रूप से शुल्क आरोपित किया जाता है और याचिकाकर्ता तथा परिषद के मध्य परस्पर प्रतिफल का कोई तत्व नहीं है क्योंकि परिषद याचिकाकर्ता को अपने अभिलेख को सही प्रकार से व्यवस्थित रखने के अतिरिक्त नामांतरण शुल्क के भुगतान हेत कोई सेवा प्रदान नहीं कर रहा है। कॉलोनी के रखरखाव से संबंधित सभी सेवाएं लखनऊ नगर निगम द्वारा प्रदान की जा रही हैं, जिसके लिए याचिकाकर्ता नगर निगम द्वारा लगाए गए शुल्क और करों का भुगतान कर रहा है। नामांतरण शुल्क लगाने या वसूलने के लिए अधिनियम, 1965 में कोई उपनियम, नियम या विनियम या कोई अन्य प्रावधान नहीं है। बिना किसी सेवा के इस तरह का नामांतरण शुल्क कर अधिरोपित करने के समान है जिसके लिए परिषद को राज्य सरकार या राज्य विधानमंडल द्वारा कोई अधिकार नहीं प्रत्यायोजित की गयी है। अधिनियम, 1965 सरकार को नियमावली बनाने की शक्ति और परिषद के बोर्ड को अधिनियम के प्रावधानों और नियमावली के अधीन विनियमन बनाने की शक्ति प्रदान करता है। आक्षेपित आदेश बिना अधिकार क्षेत्र के पारित किये गये हैं और इसलिए यह अपास्त किये जाने योग्य है।

8. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह भी तर्क दिया गया है कि जब याचिका दायर

की गई थी तब न्यायालय ने याचिकाकर्ता द्वारा 15 दिनों के भीतर 52,10,940/- रुपये का भुगतान करने अन्यथा अगले आदेश तक वसूली की कार्यवाही का सामना करने सम्बन्धी दिनांक 16.05.2008 के आदेश के प्रभाव और प्रवर्तन पर रोक लगा दी थी। प्रतिवादियों को भी अपना प्रतिशपथ-पत्र दाखिल करने के लिये समय दिया गया था।

9. परिषद द्वारा अंतरिम स्थगनादेश समाप्ति हेतु एक प्रार्थनापत्र सहित एक प्रतिशपथ-पत्र दायर किया गया है जिसमें कहा गया है कि आदेश दिनांक 15.04.2004 को परिषद के हित में आवास आयुक्त द्वारा आयोजित बैठक के अनुसरण में और आवास एवं विकास परिषद की संपत्ति के निस्तारण संबंधी विनियम, 1980 के विनियमन 18 के अन्तर्गत उन्हें प्रदत्त शक्तियों के दृष्टिगत पारित किया गया है , जो यह प्रावधान करता है कि आवास आयुक्त का निर्णय किसी भी मामले में अंतिम होगा और वह परिषद के हित में निर्णय लेने हेतु सक्षम होंगे। अतः, आवास आयुक्त ने वाणिज्यिक संपत्ति के अंतरण पर 5% नामांतरण शुल्क लगाने का निर्णय लिया है।

10. यह कहा गया है कि प्रारंभ में प्रश्नगत वाणिज्यिक भूखंड बैंक के पक्ष में आवंटित किया गया था और परिषद द्वारा 16.08.1995 को बैंक के पक्ष में पट्टा विलेख निष्पादित किया गया था। यद्यपि इंदिरा नगर योजना लखनऊ नगर निगम, लखनऊ को अंतरित कर दी गई है, यह केवल सड़क, सीवर और पार्क आदि की सेवाओं को बनाए रखने के लिए है, परन्तु संपत्तियों से संबंधित अधिकार अंतरित नहीं किया गया है और परिषद ही संपत्ति का स्वामी बना हुआ है तथा आवंटी उसके पट्टेदार हैं और कोई भी पट्टेदार, जो संपत्ति को आगे पट्टे पर देता है, उसे परिषद को पूर्व सूचना देकर ऐसा करना होगा। बैंक के संबंध में आवंटन इस शर्त के अधीन किया गया था कि वह उक्त भूमि को अंतरित कर सकता है, परन्तु केवल उसी उद्देश्य के लिए जिसके लिए इसे मूल रूप से आवंटित किया गया था। अधिनियम, 1965 की धारा 95 के अन्तर्गत, परिषद का बोर्ड विनियम बनाने के लिए अधिकृत है और विनियम 1980 में तैयार किए गए हैं। विनियम 18 के अन्तर्गत आवास आयुक्त को 5% नामांतरण शुल्क लगाने का आदेश निर्गत करने की शक्ति प्राप्त थी।

11. आगे कहा गया है कि याचिकाकर्ता ने 25.04.2007 को क्षतिपूर्ति बांड प्रस्तुत किया था और इसलिए वह भुगतान करने के अपने दायित्व से पीछे नहीं हट सकता है और वह आवास आयुक्त द्वारा 15.04.2004 को पारित आदेश को भी चुनौती नहीं दे सकता है। क्षतिपूर्ति बांड प्राप्त करने के बाद ही परिषद द्वारा विचाराधीन संपत्ति पर याचिकाकर्ता का नाम नामांतरित कर दिया गया था।

12. प्रतिवादियों द्वारा एक अनुपूरक प्रतिशपथ पत्र भी दाखिल किया गया है जिसमें प्रमुख सचिव द्वारा जारी शासनादेश दिनांक 06.02.1997 का उल्लेख किया गया है जिसमें सभी विकास प्राधिकरणों के उपाध्यक्षों को अपने स्तर पर नामांतरण शुल्क निर्धारित करने का निर्देश दिया गया है। उक्त शासनादेश को उत्तर प्रदेश आवास एवं विकास परिषद की दिनांक 21.07.2007 को आयोजित 198वीं परिषद की बैठक में प्रस्तुत किया जाना कहा गया है और परिषद से संबंधित

मामले को राज्य सरकार को संदर्भित करने का निर्णय लिया गया है।

13. राज्य सरकार द्वारा परिषद को ऐसी शक्ति प्रदान करने हेतु कोई निर्णय लिये जाने का कोई उल्लेख नहीं है।

14. यह भी कहा गया है कि दिनांक 15.04.2004 के आदेश को 14.03.2011 को आयोजित परिषद की 216वीं बैठक में लिए गए निर्णय के अनुपालन में दिनांक 29.04.2011 के एक अन्य आदेश द्वारा संशोधित किया गया था और यह विनिश्चय किया गया था कि मात्र 1% नामांतरण शुल्क भविष्य में लिया जाएगा परन्तु पूर्व मामलों को पुनः नहीं खोला जाएगा। दिनांक 29.04.2011 के आदेश की प्रति और 14.03.2011 को आयोजित परिषद की बैठक का कार्यवृत्त अनुपूरक प्रति शपथ-पत्र हेतु अनुलग्नक संख्या 2 के रूप में संलग्न है।

15. याचिकाकर्ता द्वारा दायर प्रत्युत्तर शपथ-पत्र में, रिट याचिका की विषय द्वारा आवास आयुक्त में दिनांक 15.04.2004 के आदेश को निर्गत करने और यथामूल्य नामांतरण शुल्क लगाने की शक्ति के अभाव को दोहराया गया है, जो कर की प्रकृति में है, जिसके लिए सक्षम विधायिका द्वारा विधिक स्वीकृति की आवश्यकता होती है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि मात्र क्षतिपूर्ति बांड प्रस्तुत करने का अर्थ यह नहीं होगा कि याचिकाकर्ता परिषद द्वारा यथामूल्य ऐसा नामांतरण शुल्क वसूलने से सहमत है।

16. कलकत्ता नगर निगम एवं अन्य बनाम श्रेय मर्केंटाइल प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य, (2005) 4 एससीसी 245 के वाद में, जहाँ निर्धारण के लिए उठे प्रश्न का उल्लेख रिपोर्ट के प्रस्तर 1 में किया गया है, जो निम्नवत है:

> *"क्या निगम की निर्धारण बहियों में स्वामी के नाम में परिवर्तन की प्रक्रिया का अधिरोपण "शुल्क" या "कर" की प्रकृति में है?*

17. इसके बाद, उस विशेष सिविल अपील के तथ्यों, जिस पर विचार किया जा रहा था, पर चर्चा की गई, जहाँ कुछ व्यक्तियों की कुछ संपत्ति प्रतिवादियों को अंतरण विलेख द्वारा विक्रय की गई थी। भवन काफी पुराना और जर्जर स्थिति में था। डेवलपर्स ने उपलब्ध पुराने ढांचे को तोड़ने के बाद एक नये भवन के निर्माण का निर्णय लिया। डेवलपर्स ने स्वीकृति हेतु भवन योजना प्रस्तुत की जिसे निगम ने नामांतरण के माध्यम से अभिलेख पर डेवलपर्स के नाम लिए बिना अस्वीकार कर दिया। डेवलपर्स ने पूर्व स्वामियों के नाम हटाकर और उनका नाम परिवर्तित कर नामांतरण हेतु आवेदन किया था, जिसके लिए निगम ने कलकत्ता नगर निगम (कराधान) विनियमन, 1989 के अन्तर्गत 3 लाख रुपये के नामांतरण शुल्क की मांग की थी, जिसे कलकत्ता उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिका दायर करके चुनौती दी गई थी। निर्णय और आदेश दिनांक 31.01.2000 द्वारा, विद्वान एकल न्यायाधीश ने धारित किया कि नामांतरण निगम की बहियों में स्वामी के नाम को परिवर्तित करने की प्रक्रिया थी; जो कि आक्षेपित विनियम पारस्परिक प्रतिफल की अपेक्षाओं को संतुष्ट करने में विफल रहे हैं; और यह कि निगम द्वारा नामांतरण पर बड़ी धनराशि वसूल कर शुल्क लगाने की अपनी शक्ति का उपयोग करना उचित

नहीं था, जो कराधान की प्रकृति का हिस्सा है। विद्वान एकल न्यायाधीश का मत था कि नामांतरण शुल्क लगाने की रूप में निगम ने कर लगाने के अतिरिक्त कुछ नहीं किया है। तदनुसार, रिट आवेदन की अनुमति दी गई।

18. विद्वान एकल न्यायाधीश के उक्त निर्णय से व्यथित होकर, निगम ने खण्ड पीठ का दरवाजा खटखटाया और खण्ड पीठ ने यह टिप्पणी करते हुए अपील खारिज कर दिया कि कलकत्ता नगर निगम अधिनियम की धारा 183 का आवश्यक उद्देश्य किसी के नाम को परिवर्तित करना था एवं करदाताओं को किसी भी प्रकार की कोई अन्य सेवा प्रदान नहीं की गई थी तथा धारा 183 (5) के अन्तर्गत, नामांतरण शुल्क केवल विनियमों द्वारा निर्धारित किया जाना था और शुल्क के रूप में कोई कर नहीं लगाया जाना था, निगम के पक्ष में ऐसा कोई प्रतिनिधिमंडल कभी नहीं बनाया गया था; यथामूल्य आधार पर अधिरोपित राशि की दर से ही दर्शित होता है कि अधिरोपित राशि कर की प्रकृति में थी; कि बिना वसीयत के उत्तराधिकार के अंतरण के मामले में नामांतरण हेतु निर्धारित अलग-अलग दरों से दर्शित होता है कि अधिरोपित राशि एक कर थी न कि शुल्क; कि उक्त प्रावधान परिसर के स्वामी के लाभ हेतु नहीं था अपितु यह वैधानिक अनुपालन हेतु था, जिसके अनुपालन में विफलता पर दांडिक परिणाम भुगतने पड़ सकते थे; कि करदाताओं को कोई लाभ नहीं दिया गया और इसके विपरीत, उक्त प्रावधान निगम के लाभ हेतु था; कि नामांतरण के लिए करदाताओं को प्रदान की गई सेवाओं की प्रकृति का अधिरोपित शुल्क की मात्रा से कोई संबंध नहीं था; यह शुल्क न तो विनियामक था और न ही प्रतिपूरक; और यह कि आक्षेपित विनियम भेदभावपूर्ण थे, क्योंकि क्रेताओं को उन लोगों की तुलना में अधिक शुल्क देना पड़ता था, जिन्हें बिना वसीयत के उत्तराधिकार के माध्यम से संपत्ति का स्वामित्व मिला था, इस तथ्य को पूरी तरह से उपेक्षित करते हुए कि कराधान के सभी व्यावहारिक उद्देश्यों हेतु ये दोनों समूह अपने आप में एक वर्ग का गठन करते थे। तदनुसार, आक्षेपित विनियमों को मनमाना और संविधान के अनुच्छेद 14 और 246 का उल्लंघनकारी धारित किया गया।

19. खण्ड पीठ के उक्त निर्णय की माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई थी और उक्त निर्णय की पुष्टि करते समय, सर्वोच्च न्यायालय ने महत्वपूर्ण पूर्वनिर्णयों का सन्दर्भ दिया था, उदाहरणतया ***पश्चिम बंगाल राज्य बनाम केसोराम इंडस्ट्रीज लिमिटेड, (2004) 10 SCC 201; सिंथेटिक्स एंड केमिकल्स लिमिटेड बनाम यूपी राज्य (1990) 1 SCC 109 एवं सीसीई बनाम छाता शुगर कंपनी लिमिटेड, (2004) 3 एससीसी 466*** दिया है, जिसमें शुल्क और कर के बीच किए गए अंतर का संदर्भ दिया गया था और यह टिप्पणी की गयी थी कि विनियमित करने की शक्ति का प्रयोग करने के रूप में, कोई भी शुल्क या अधिरोपित राशि, जिसका विनियमन को शासित करने के व्यय या लागत से कोई संबंध नहीं है, नहीं लगाया जा सकता है और केवल ऐसी अधिरोपित राशि को जिसे नियामक उपाय के एक भाग के रूप में माना जा सकता है, उचित ठहराया जा सकता है। विनियमित करने, विकसित करने या नियंत्रित करने की शक्ति में कर या शुल्क लगाने की शक्ति सम्मिलित नहीं होगी, सिवाय इस स्थिति के कि इसके कि जब यह प्रकृति में केवल नियामक हो।

किया है कि निर्विवाद रूप से अपीलकर्ता-निगम पानी की आपूर्ति, स्ट्रीट लाइट और उपागमन मार्गों आदि हेतु सामान्य जनों से कर एकत्र कर रहा था और इस प्रकार सेवा शुल्क या नामांतरण शुल्क के रूप में जो कर लगाने की मांग की गई थी, उसकी अनुमति नही दी सकती। न्यायालय ने प्रस्तर 19, 20, 21 और 22 में निम्नवत टिप्पणी भी किया:

> *19. नंद किश्वर बक्स रॉय बनाम गोपाल बक्स राय [AIR 1940 PC 93] के मामले में, न्यायालय ने नामांतरण कार्यवाही की प्रकृति पर चर्चा करते हुए निम्नवत टिप्पणी किया : (AIR pp. 94-95)*
>
> *"नामांतरण कार्यवाही केवल राजकोषीय जाँच की प्रकृति में है, जो राज्य के हित में यह सुनिश्चित करने के उद्देश्य से संस्थित की गई है कि संपत्ति के कब्जे के लिए कई दावेदारों में से किसको अधिक विश्वास के साथ उस पर कब्जा किया जा सकता है, जिसके लिए राजस्व का भुगतान किया जाएगा।"*
>
> *20. इसलिए, यह स्पष्ट है कि नामांतरण जाँच निगम के हित में कर उद्देश्यों हेतु संस्थित की गई है, न कि करदाता के हित हेतु।*
>
> *21. अब मनमाने, भेदभावपूर्ण और अनुच्छेद 14 के उल्लंघन के रूप में अधिरोपित राशि को चुनौती देने के प्रश्न पर विचार करते हुए, हम पाते हैं कि नामांतरण के संबंध में निगम के कार्य समान रहते है चाहे आवेदक किसी अन्तरण के अन्तर्गत अंतरिती हो या पट्टेदार या वसीयत के अन्तर्गत लाभार्थी हो या निर्वसीयत उत्तराधिकार के मामले में उत्तराधिकारी हो। एक बार जब नामांतरण हेतु आवेदन किया जाता है, तो विभाग द्वारा उसकी जांच की जाती है और आपत्तियों, यदि कोई हो, को सुनने के बाद, अभिलेख को परिवर्तित करने का आदेश दिया जाता है। अंततः, यह प्रयोग राजकोषीय उद्देश्य हेतु है। इसी प्रकार, संपत्ति का मूल्यांकन चाहे 50,000 रुपये से कम या 2 लाख रुपये से अधिक हो, नामांतरण प्रविष्टि करने में निगम का कार्य समान रहता है। इसी प्रकार, नामांतरण का कारण चाहे जो भी हो, चाहे वह अंतरण का मामला हो या न्यागमन का, सभी मामलों में नामांतरण की प्रक्रिया स्थिर है। सभी मामलों में होने वाला व्यय भी भिन्न-भिन्न नहीं हो सकता, चाहे संपत्ति का मूल्य कुछ भी हो या नामांतरण का कारण कुछ भी हो। इन परिस्थितियों में, संपत्ति के मूल्य और अंतरण के कारण के आधार पर भिन्न-भिन्न दरें वसूलने का कोई कारण नहीं बताया गया है। ऐसा करने से, अधिरोपित राशि का प्रभाव समान स्थिति वाले व्यक्तियों पर अलग-अलग पड़ता है जिसके परिणामस्वरूप संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन होता है। इसके अतिरिक्त, शुल्क की मात्रा तथाकथित "सेवाओं" के*

असंगत है, जो इस तरह के शुल्क अधिरोपित करने में मनमानी दर्शाने वाली एक और परिस्थिति है। जहाँ तक अनुच्छेद 14 का प्रश्न है, भारत में न्यायालयों ने हमेशा इस विषय का परीक्षण किया है कि क्या वर्गीकरण बोधगम्य अंतर पर आधारित था और क्या अंतर का विधि के उद्देश्य के साथ युक्तियुक्त संबंध था। (देखें ओम कुमार बनाम भारत संघ [(2001) 2 एससीसी 386]।)

22. उक्त परीक्षणों को आक्षेपित अधिरोपित राशि पर प्रयुक्त करने पर, हम पाते हैं कि अधिरोपित राशि अतार्किक, मनमानी, भेदभावपूर्ण और उक्त 1980 अधिनियम की धारा 183(5) से परे है।"

21. तर्कों एवं सुप्रीम कोर्ट के निर्णय से स्पष्ट है कि नामांतरण का उद्देश्य अंतरण को परिषद के अभिलेख में अभिलिखित करना है ताकि ऐसे करदाताओं से कर की वसूली की जा सके। जब नगर निगम को कॉलोनी के अंतरण के बाद परिषद को ऐसा कोई कर देय नहीं है, तो परिषद को नामांतरण शुल्क का भुगतान करने का कोई प्रश्न ही नहीं है। नामांतरण के संबंध में परिषद के कार्य समान रहते है चाहे आवेदक किसी अन्तरण के अन्तर्गत अंतरिती हो या पट्टेदार या वसीयत के अन्तर्गत या निर्वसीयत उत्तराधिकार के मामले में लाभार्थी हो। एक बार जब नामांतरण हेतु आवेदन किया जाता है, तो उसकी जांच संबंधित विभाग अर्थात परिषद द्वारा की जाती है और आपत्ति सुनने के बाद, यदि अभिलेख में किसी प्रविष्टि को अंतरिती के पक्ष में परिवर्तित करने का निर्देश दिया जाता है, तो ऐसा प्रयोग मात्र कर के रूप में भुगतान करने का दायित्व निर्धारित करने के राजकोषीय उद्देश्य हेतु है।

22. भले ही परिषद द्वारा अपने अभिलेख में प्रविष्टियों को सही करने हेतु कोई शुल्क लिया जा सकता है, परन्तु यह प्रकृति में स्वामित्वात्मक नहीं हो सकता है, और यथामूल्य गणना नहीं की जा सकती है क्योंकि ऐसे सभी मामलों में किए गए व्यय प्रकृति में नाममात्र हैं। यह तथ्य उन परिस्थितियों से भी सुनिश्चित किया जा सकता है जो दिनांक 15.04.2004 के आदेश से पूर्व उपलब्ध थीं क्योंकि परिषद द्वारा पहले कोई नामांतरण शुल्क नहीं लिया जा रहा था।

23. इस न्यायालय ने पाया है कि कलकत्ता नगर निगम (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिया गया निर्णय पूर्णतः लागू होता है। परिषद अपने आवंटियों या अंतरितियों को कोई सेवा प्रदान नहीं करती है, सिवाय उन अभिलेखों में सुधार के जो इसके द्वारा अपने उद्देश्यों हेतु रखे जाते हैं। इसलिए, दिनांक 15.04.2004 और 16.05.2008 के आक्षेपित आदेश निरस्त किये जाने योग्य है और इसके द्वारा निरस्त किये जाते हैं।

24. आनुषंगिक परिणाम इसी अनुक्रम में लागू होंगे।

25. उपरोक्त चर्चा के दृष्टिगत, वर्तमान रिट याचिका **स्वीकार** की जाती है।

(2023) 3 ILRA 310

मूल न्यायाधिकार

नागरिक पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद 17.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया,

रिट सी संख्या 7439/2023

मैसर्स साई इंटरप्राइजेज एवं अन्य। ......याचिकाकर्तागण

बनाम

ऋण वसूली अपीलीय न्यायाधिकरण, जेएल नेहरू रोड, टैगोर टाउन,इलाहाबाद और अन्य। ...प्रतिवादीगण

अधिवक्ता याचिकाकर्तागण: श्री संजय कुमार गुप्ता

अधिवक्ता प्रतिवादीगण: श्री पशुपति नाथ त्रिपाठी

(1) रिट सी संख्या. 7439 / 2023

A. अभ्यास और प्रक्रिया - ऋण वसूली और शोधन अक्षमता अधिनियम, 1993 - धारा 21 - वैधानिक अपील - पूर्व भुगतान का प्रावधान - पालन न करना - प्रभाव - वाक्यांश 'सुनी नहीं जाएगी' - क्षेत्र - माना गया कि ट्रिब्यूनल अपील पर विचार करने/निर्णय लेने से वंचित है और याचिकाकर्ता/अपीलकर्ता को अधिनियम के तहत किसी भी लाभ का अधिकारी नहीं होगा, क्योंकि अपील तकनीकी रूप से पोषणीय नहीं है, यदि भुगतान नहीं किया गया है - धारा 21 के तहत अनिवार्य भुगतान के अभाव में अपील दायर करने का एकमात्र लाभ यह होगा कि अपीलकर्ता को समय सीमा का लाभ प्राप्त होगा और कुछ नहीं। (पैरा 7 और 8)

रिट याचिका स्वीकृत। (ई-1)

उद्धृत वाद सूची :-

1. अनंतेश भक्त बनाम नयना एस भक्त; (2017) 5 SCC 185

माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिआ

1. याचिकाकर्ता द्वारा वर्तमान याचिका दिनांक 03.01.2023 के आदेश को चुनौती देते हुए दायर की गई है, जिसके तहत याचिकाकर्ता द्वारा दायर पुनर्स्थापना आवेदन को सीमा के आधार पर खारिज कर दिया गया है।

2. संक्षेप में तथ्य यह है कि प्रतिवादी बैंक द्वारा याचिकाकर्ता के खिलाफ डेब्ट्स रिकवरी ट्रिब्यूनल, पटना के समक्ष कार्यवाही शुरू की गई थी, जिसका फैसला याचिकाकर्ता के खिलाफ किया गया था। डीआरटी, पटना के आदेश के खिलाफ, याचिकाकर्ता ने डेब्ट्स रिकवरी अपीलेट, इलाहाबाद के समक्ष अपील दायर की, हालांकि, याचिकाकर्ता ने अपील के साथ कुछ डिपाजिट नहीं किया था जैसा कि रिकवरी ऑफ़ डेब्ट्स एंड बैंकरप्सी एक्ट, 1993 की धारा 21 के तहत आवश्यक है।

3. रिकॉर्ड के रूप में दस्तावेजों से, ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता को डिपाजिट करने के लिए समय दिया गया था, हालांकि, उसने डिपाजिट नहीं किया है जिसके कारण अपील खारिज हो गई। इसके बाद, जब याचिकाकर्ता ने धन की व्यवस्था की, तो उसने 20,00,000/- रुपये की राशि डिपाजिट करने के लिए एक आवेदन दिया और दिनांक 21.01.2020 के आदेश को रिकॉल की मांग की, जिसके तहत अपील को पूर्व-डिपाजिट के अभाव में खारिज कर

दिया गया था और प्रार्थना की गई थी कि उक्त आदेश को वापस ले लिया जाए और योग्यता के आधार पर निर्णय लिया जाए। उक्त रिकॉल आवेदन को आक्षेपित आदेश दिनांक 03.01.2023 के माध्यम से मुख्य रूप से इस आधार पर खारिज कर दिया गया है कि पुनर्स्थापना आवेदन ढाई साल की समाप्ति के बाद दायर किया गया है और यह अत्यधिक विलंबित है।

4. याचिकाकर्ता श्री संजय कुमार गुप्ता के वकील का तर्क यह है कि विचाराधीन अधिनियम के तहत, आरडीबी अधिनियम 1993 की धारा 21 के तहत अपील दायर करने का प्रावधान है। उनका तर्क है कि धारा 21 में निर्दिष्ट शर्त केवल अपील पर विचार करने के लिए है और उक्त के प्रावधान डीआरएटी को पूर्व-डिपाजिट सम्बंधित निर्देशित करने की कोई शक्ति प्रदान नहीं करते हैं और किसी भी मामले में, भले ही, कोई डिपाजिट नहीं किया जाता है, जैसा कि धारा 21 में निर्दिष्ट है, अपील खारिज नहीं की जा सकती है। आरडीबी अधिनियम, 1993 की धारा 21 का एकमात्र प्रभाव यह है कि अपील पर तब तक विचार नहीं किया जाएगा जब तक कि डिपाजिट (आवश्यकतानुसार) नहीं किया जाता है। उक्त विवाद पर चर्चा करने से पहले, आरडीबी अधिनियम की उक्त धारा 21 को पुन: प्रस्तुत करना आवश्यक है, जो इस प्रकार है:

"21. अपील दायर करने पर देय ऋण की राशि डिपाजिट करना। जहां किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा अपील की जाती है जिससे ऋण की राशि किसी बैंक या वित्तीय संस्था या बैंकों या वित्तीय संस्थाओं के संघ को देय है, अपीलीय अधिकरण द्वारा ऐसी अपील पर तब तक विचार नहीं किया जाएगा जब तक कि ऐसे व्यक्ति ने अपीलीय अधिकरण के पास धारा 19 के अधीन अधिकरण द्वारा यथा अवधारित उसके द्वारा इस प्रकार देय ऋण की रकम का पचास प्रतिशत राशि डिपाजिट न कर दी हो। परंतु अपीलीय अधिकरण लिखित में अभिलिखित किए जाने वाले कारणों के आधार पर ऐसी रकम से डिपाजिट की जाने वाली रकम को कम कर सकेगा जो इस धारा के तहत डिपाजिट किए जाने वाले ऐसे ऋण की राशि का पच्चीस प्रतिशत से कम नहीं होगी।

5. धारा 21 को पढ़ने पर, यह स्पष्ट है कि यह वैधानिक अपील का प्रावधान करता है, एक शर्त के साथ कि अपील पर विचार नहीं किया जा सकता है, यदि डिपाजिट, निर्दिष्ट के रूप में, शक्तियों के प्रयोग के अधीन, नहीं किया जाता है।

6. वाक्यांश " विचार नहीं किया जाएगा", सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न निर्णयों में विमर्श के लिए आया क्योंकि उक्त अभिव्यक्ति का उपयोग कई विधान में किया जाता है। अनंतेश भक्त बनाम नयना एस भक्त (2017) 5 एससीसी 185 के फैसले में सुप्रीम कोर्ट ने उक्त अभिव्यक्ति के अर्थ पर विचार किया और निम्नानुसार निर्धारित किया।

"20. मामले का एक और पहलू है जो जिला न्यायाधीश के आदेश को बनाए रखने के लिए पर्याप्त है। धारा 8(2) में "विचार नहीं किया जायेगा" वाले वाक्यांश का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार, जो निषिद्ध है वह आवेदन पर विचार करना है जब तक कि यह मूल मध्यस्थता समझौते या उसकी विधिवत प्रमाणित प्रति के साथ न हो.

21. पी. रामनाथ अय्यर के एडवांस्ड लॉ लेक्सिकॉन में " एंटरटेनेड " शब्द का विशिष्ट अर्थ है। शब्द " एंटरटेनेड " के रूप में परिभाषित किया गया है:

" एंटरटेन-(1) मन में रखना या विचार करना; विशेष रूप से, न्यायिक विचार देने के लिए (न्यायालय ने तब निरंतरता के लिए प्रस्तावों पर विचार किया)। (२) मनोरंजन करना या प्रसन्न करना। (3) अतिथि के रूप में (किसी व्यक्ति) को प्राप्त करना या (किसी व्यक्ति) को आतिथ्य प्रदान करना।

अभिव्यक्ति "एंटरटेन" का अर्थ है "विचार के लिए एक चीज को स्वीकार करना" और जब कोई मुकदमा या कार्यवाही को आरम्भ में ही नहीं फेंका जाता है, लेकिन अदालत इसे कानून के अनुसार विचार और निपटान के लिए प्राप्त करती है, तो इसे मुकदमे या कार्यवाही का विचारण करने के रूप में माना जाना चाहिए, चाहे अंतिम निर्णय कुछ भी हो।

22. ब्लैक' लॉ डिक्शनरी भी इस शब्द " एंटरटेन " को निम्नानुसार परिभाषित करती है:

" एंटरटेन, वि० [सं०] १. मन में रखना या विचार करना; विशेष रूप से, न्यायिक विचार देने के लिए।(न्यायालय ने तब निरंतरता के लिए प्रस्तावों पर विचार किया) ।

23. हिंदुस्तान कमर्शियल बैंक लिमिटेड बनाम पुन्नू साहू [हिंदुस्तान कमर्शियल बैंक लिमिटेड बनाम पुन्नू साहू, (1971) 3 एससीसी 124] में, शब्द "एंटरटेनेड " सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21 नियम 90 परंतुक में होने के रूप में विचार के लिए आया था। निर्णय के पैरा 2 में संशोधित परंतुक को नोटिस किया गया जो निम्नलिखित प्रभाव से था: (एससीसी पृष्ठ 125)

"2. संशोधित परंतुक, जिसके साथ हम इस अपील में संबद्ध हैं, इस प्रकार पढ़ता है:

'बशर्ते कि बिक्री को रद्द करने के लिए कोई आवेदन स्वीकार नहीं किया जाएगा-

(ए) किसी भी आधार पर जो आवेदक द्वारा उस तारीख को या उससे पहले लिया जा सकता था जिस पर बिक्री उद्घोषणा तैयार की गई थी; और

(ख) जब तक कि आवेदक बिक्री द्वारा वसूल की गई राशि के साढ़े बारह प्रतिशत से अधिक की राशि डिपाजिट नहीं करता है या ऐसी प्रतिभूति प्रस्तुत नहीं करता है जो न्यायालय अपने विवेक से तय कर सकता है, सिवाय इसके कि जब न्यायालय दर्ज किए जाने वाले कारणों के लिए इस खंड की आवश्यकताओं को समाप्त कर देता है:

परन्तु यह और कि कोई बिक्री अनियमितता या धोखाधड़ी के आधार पर तब तक रद्द नहीं की जाएगी जब तक कि तथ्यों के साबित न हो जाने पर न्यायालय संतुष्ट न हो जाए, कि आवेदक को ऐसी अनियमितता या धोखाधड़ी के कारण पर्याप्त क्षति हुई है।

24. पुन्नू साहू [हिंदुस्तान कमर्शियल बैंक लिमिटेड बनाम पुन्नू साहू, (1971) 3 एससीसी 124] मामले में अपीलकर्ता का तर्क यह था कि शब्द " एंटरटेन " कार्यवाही शुरू करने को संदर्भित करता है न कि उस चरण को जब अदालत विचार के लिए आवेदन लेती है। हाईकोर्ट ने उक्त दलील को खारिज कर दिया था। उच्च न्यायालय के उपरोक्त दृष्टिकोण को इस न्यायालय ने निर्णय के पैरा 4 में अनुमोदित

किया था। निम्नलिखित कहा गया था: (एससीसी पीपी 125-26)

"4. उच्च न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ता की ओर से यह तर्क दिया गया था और इस न्यायालय में यह तर्क दोहराया गया था, कि परंतुक का खंड (बी) वर्तमान कार्यवाही को नियंत्रित नहीं करता था क्योंकि विचाराधीन आवेदन कई महीने पहले दायर किया गया था उस खंड को परंतुक में जोड़ा गया था। यह अपीलकर्ता का तर्क है कि परंतुक में पाई गई अभिव्यक्ति " एंटरटेन " कार्यवाही की शुरुआत को संदर्भित करती है, न कि उस चरण को जब न्यायालय विचार के लिए आवेदन लेता है। इस तर्क को उच्च न्यायालय ने कुंदन लाल बनाम जगन नाथ शर्मा [कुंदन लाल बनाम जगन नाथ शर्मा, 1962 एससीसी ऑनलाइन सभी 38: एआईआर 1962 सभी 547] में उस न्यायालय के फैसले पर भरोसा करते हुए खारिज कर दिया था। धूम चंद जैन बनाम चमन लाल गुप्ता [धूम चंद जैन बनाम चमन लाल गुप्ता, 1962 एससीसी ऑनलाइन सभी 29: एआईआर 1962 सभी 543] और हाजी रहीम बक्स एंड संस बनाम फर्म समीउल्लाह एंड संस [हाजी रहीम बक्स एंड संस बनाम फर्म समीउल्लाह एंड संस, 1962 एससीसी ऑनलाइन सभी 156: एआईआर 1963 सभी 320] और फिर से महावीर सिंह बनाम गौरी शंकर [महावीर सिंह बनाम गौरी शंकर, 1963 एससीसी ऑनलाइन सभी 221: एआईआर 1964 सभी 289] वही दृष्टिकोण अपनाया गया था उक्त उच्च न्यायालय द्वारा । इन निर्णयों ने अभिव्यक्ति "मनोरंजन" की व्याख्या "पर अधिनिर्णय" या "योग्यता के आधार पर विचार करने के लिए आगे बढ़ें" के रूप में की है। उच्च न्यायालय के इस दृष्टिकोण को इस न्यायालय ने लक्ष्मीरतन इंजीनियरिंग वर्क्स लिमिटेड बनाम सीएसटी [लक्ष्मीरतन इंजी. वर्क्स लिमिटेड बनाम सीएसटी, एआईआर 1968 एससी 488] मामले में सही माना है।. हम उस निर्णय से बंधे हैं और इस तरह हम अपीलकर्ता के तर्क को स्वीकार करने में असमर्थ हैं कि परंतुक का खंड (बी) वर्तमान कार्यवाही पर लागू नहीं होता है।

25. एक और प्रासंगिक निर्णय मार्टिन और हैरिस लिमिटेड बनाम अतिरिक्त जिला न्यायाधीश [मार्टिन और हैरिस लिमिटेड बनाम अतिरिक्त. जिला न्यायाधीश, (1998) 1 SCC 732] है। उपरोक्त मामले में उत्तर प्रदेश शहरी भवन (लेटिंग, किराया और बेदखली का विनियमन) अधिनियम, 1972 (1972 का 13) की धारा 21 (1) परंतुक शब्द "मनोरंजन" विचार के लिए आया था। धारा 21 (1) का परंतुक निम्नलिखित प्रभाव से था: (एससीसी पी. 741, पैरा 8)

"8. ... बशर्ते कि जहां भवन मकान मालिक द्वारा अपनी खरीद से पहले एक किरायेदार के कब्जे में था, इस अधिनियम के प्रारंभ के बाद इस तरह की खरीद की जा रही है, खंड (ए) में उल्लिखित आधार पर कोई आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा, जब तक कि ऐसी खरीद की तारीख से तीन साल की अवधि समाप्त नहीं हो जाती है और मकान मालिक ने किरायेदार को इस तरह आवेदन से छह महीने से कम नोटिस नहीं दिया है, और ऐसी सूचना तीन वर्ष की पूर्वोक्त अवधि की समाप्ति से पहले भी दी जा सकती है:

26. उपरोक्त मामले में, धारा 21 (1) के तहत आवेदन मकान मालिक द्वारा खरीद

की तारीख से तीन साल की अवधि की समाप्ति से पहले दायर किया गया था। इस न्यायालय द्वारा यह माना गया था कि धारा 21 (1) के तहत पहले परंतुक में नियोजित शब्द " एंटरटेनेड " का अर्थ ऐसी कार्यवाही की " प्रथा " नहीं हो सकता है। पैरा 9 और 10 में, निम्नलिखित निर्धारित किया गया था: (मार्टिन और हैरिस मामला [मार्टिन और हैरिस लिमिटेड बनाम अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, (1998) 1 एससीसी 732], एससीसी पीपी 744-46)

"9. इसके अलावा, धारा 21 (1) के पहले परंतुक में एक आंतरिक संकेत है कि विधायिका ने अधिनियम की धारा 21 (1) (ए) के तहत कब्जे के लिए आवेदन के " एंटरटेनिंग " और इस तरह के आवेदन के "फाइलिंग" के बीच स्पष्ट अंतर किया है। जहां तक इस तरह के आवेदन को दाखिल करने का सवाल है, विधायिका द्वारा यह स्पष्ट रूप से इंगित किया गया है कि इस तरह के आवेदन को उस तारीख से छह महीने की समाप्ति से पहले दायर नहीं किया जा सकता है, जिस दिन मकान मालिक द्वारा किरायेदार को अधिनियम की धारा 21 (1) (ए) के तहत बेदखली की मांग की जाती है। शब्द, "मकान मालिक ने इस तरह के आवेदन से कम से कम छह महीने पहले किरायेदार को उस संबंध में एक नोटिस दिया है", स्वाभाविक रूप से इसका मतलब होगा कि इस तरह के आवेदन को दाखिल करने या निर्धारित प्राधिकरण को आवेदन स्थानांतरित करने से पहले कम से कम छह महीने पहले नोटिस होना चाहिए। इसी तरह की शब्दावली विधायिका द्वारा उसी परंतुक में नियोजित नहीं की जाती है, जहां तक धारा 21 (1) के खंड (ए) में उल्लिखित आधारों पर इस तरह के आवेदन पर विचार करने के लिए तीन साल की अवधि है, एक चरण तक पहुंचना चाहिए जब अदालत ने अपने न्यायिक दिमाग का इस्तेमाल किया और अधिनियम की धारा 21 (1) के खंड (ए) में उल्लिखित कब्जे के आधार से संबंधित योग्यता पर निर्णय के लिए मामला उठाया। नतीजतन, इस अधिनियम की इस योजना पर यह नहीं कहा जा सकता है कि अधिनियम की धारा 21 (1) के पहले परंतुक में विधायिका द्वारा नियोजित शब्द " एंटरटेन " का अर्थ निर्धारित प्राधिकारी के समक्ष ऐसी कार्यवाही की " प्रथा " होगा या कम से कम इसका मतलब प्रतिवादी को उपस्थित होने के लिए सम्मन जारी करके निर्धारित प्राधिकारी द्वारा इस तरह के आवेदन का संज्ञान लेना होगा। यह माना जाना चाहिए कि इसके विपरीत " एंटरटेन " शब्द केवल यह दिखाएगा कि जब तक धारा 21 (1) के खंड (ए) में उल्लिखित आधार पर कब्जे के लिए आवेदन निर्धारित प्राधिकारी द्वारा योग्यता के आधार पर विचार के लिए लिया जाता है, तब तक मकान मालिक द्वारा परिसर की खरीद की तारीख से कम से कम तीन साल की अवधि बीत चुकी होनी चाहिए।

10. ... अपीलकर्ता के लिए विद्वान वरिष्ठ वकील, श्री राव ने तब लक्ष्मीरतन इंजीनियरिंग वर्क्स लिमिटेड बनाम सीएसटी [लक्ष्मीरतन इंजी. वर्क्स लिमिटेड बनाम सीएसटी, एआईआर 1968 एससी 488] और हिंदुस्तान कमर्शियल बैंक लिमिटेड बनाम पुन्नू साहू [हिंदुस्तान कमर्शियल बैंक लिमिटेड बनाम पुन्नू साहू, (1971) 3 एससीसी 124]। मामलो में इस न्यायालय के दोनों निर्णयों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया। लक्ष्मीरतन इंजीनियरिंग [लक्ष्मीरतन इंजी. वर्क्स लिमिटेड बनाम सीएसटी, एआईआर 1968 एससी 488] में यह न्यायालय

उत्तर प्रदेश बिक्री कर अधिनियम, 1948 की धारा 9 के परंतुक में उल्लिखित " एंटरटेन " शब्द के अर्थ से कंसर्नड था। न्यायमूर्ति हिदायतुल्लाह, ने न्यायालय के लिए बोलते हुए उक्त अधिनियम की धारा 9 की वैधानिक योजना के आलोक में कहा कि धारा 9 के परंतुक में न्यायालय को निर्देश इस आशय का था कि न्यायालय एक अपील पर विचार करने के लिए आगे नहीं बढ़ेगा जो स्वीकार किए गए कर के भुगतान के संतोषजनक प्रमाण के साथ नहीं है। हिंदुस्तान कमर्शियल बैंक [हिंदुस्तान कमर्शियल बैंक लिमिटेड बनाम पुन्नू साहू, (1971) 3 एससीसी 124] में सिविल प्रक्रिया संहिता (सीपीसी) के आदेश 21 नियम 90 के परंतुक में पाया गया शब्द " एंटरटेन " न्यायालय के विचार के लिए आया। न्यायमूर्ति हेगड़े, ने इस संबंध में इस न्यायालय के दो विद्वान न्यायाधीशों की पीठ के लिए बोलते हुए कहा कि उक्त प्रावधान में " एंटरटेन " शब्द का अर्थ है "पर निर्णय लेना" या "योग्यता के आधार पर विचार करने के लिए आगे बढ़ना" और इसका अर्थ "कार्यवाही की शुरुआत" नहीं है। पूर्वोक्त निर्णय, हमारे विचार में, स्पष्ट रूप से दिखाते हैं कि जब किसी पक्ष को राहत देने के लिए किसी आवेदन पर विचार करने का प्रश्न उठता है और जब ऐसा आवेदन किसी भी आधार पर आधारित होता है जिस पर इस तरह के आवेदन पर विचार किया जाना है, तो इनमें से किसी भी आधार पर "इस तरह के आवेदन पर विचार" के बारे में प्रावधान का मतलब आवश्यक रूप से उन आधारों के गुणों के आधार पर आवेदन पर विचार करना होगा जिन पर यह आधार है। वर्तमान मामले में, इसलिए, यह माना जाना चाहिए कि जब विधायिका ने प्रदान किया है कि अधिनियम की धारा 21 (1) (ए) के तहत कोई भी आवेदन निर्धारित प्राधिकारी द्वारा अधिनियम की धारा 21 (1) में उल्लिखित आधार पर विचार नहीं किया जाएगा, तो मकान मालिक द्वारा संपत्ति की खरीद की तारीख से तीन साल की समाप्ति से पहले अधिनियम की धारा 21 (1) (ए) में उल्लिखित आधार पर निर्धारित प्राधिकारी द्वारा विचार किया जाना चाहिए।

27. वर्तमान मामले में जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, मूल सेवानिवृत्ति विलेख और साझेदारी विलेख प्रतिवादियों द्वारा 12 मई को दायर किए गए थे और यह मूल विलेखों को दाखिल करने के बाद ही अदालत ने आवेदन IA संख्या IV का फैसला करने के लिए कार्यवाही की।

28. धारा 8(2) की व्याख्या यह की जानी चाहिए कि न्यायालय धारा 8(2) के तहत पार्टी द्वारा दायर किसी भी आवेदन पर विचार नहीं करेगा जब तक कि यह मूल मध्यस्थता समझौते या विधिवत प्रमाणित प्रति के साथ नहीं है। ऐसी मूल या प्रमाणित प्रति के बिना आवेदन दाखिल करना, लेकिन उस समय रिकॉर्ड पर मूल मध्यस्थता समझौता लाना जब अदालत आवेदन पर विचार कर रही हो, उससे धारा 8 (2) के तहत आवेदन की अस्वीकृति नहीं होगी।

29. वर्तमान मामले में यह ध्यान रखना प्रासंगिक है कि सेवानिवृत्ति विलेख और साझेदारी विलेख पर भी वादी द्वारा भरोसा किया गया है। इसलिए, वादी का तर्क है कि प्रतिवादी का आवेदन IA संख्या IV मूल विलेखों के साथ नहीं था, इसलिए, अस्वीकार किए जाने के लिए उत्तरदायी है, स्वीकार नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार हमारा विचार है कि अपीलकर्ताओं की

यह दलील कि धारा 8 के तहत प्रतिवादियों का आवेदन अस्वीकार किये जाने योग्य, स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

7. इस प्रकार धारा 21 के पठन से ज्ञात होता है, उसमें प्रयुक्त वाक्यांश "विचार नहीं किया जाएगा" और सुप्रीम कोर्ट द्वारा समझाया गया कानून और जैसा कि ऊपर दर्ज किया गया है, यह स्पष्ट है कि ट्रिब्यूनल को अपील पर निर्णय लेने/निर्णय लेने/अपना दिमाग लगाने से रोक दिया गया है और याचिकाकर्ता/अपीलकर्ता किसी भी लाभ का हकदार नहीं होगा जो केवल अपील दायर करने के आधार पर अधिनियम के संदर्भ में प्राप्त होता है चूंकि अपील पर तकनीकी रूप से विचार भी नहीं किया गया है, अगर डिपाजिट नहीं किया गया है।

8. दिलचस्प सवाल यह उठता है कि क्या अपील केवल इस आधार पर खारिज की जा सकती है कि यह अनिवार्य पूर्व-डिपाजिट के बिना है? जैसा कि ऊपर बताया गया है, अपील के विचारण के संबंध में कानून से, यह स्पष्ट है कि जो विचार नहीं किया जा सकता है उसे भी खारिज नहीं किया जा सकता है। धारा 21 के तहत अनिवार्य डिपाजिट के बिना अपील दायर करने का एकमात्र लाभ यह होगा कि अपीलकर्ता सीमा के लाभ का हकदार होगा और इससे अधिक कुछ नहीं और बैंक या वित्तीय संस्थान उधारकर्ता के खिलाफ वसूली कार्यवाही शुरू करने और मुकदमा चलाने के लिए स्वतंत्र होंगे।

9. वर्तमान मामले में डीआरएटी ने केवल अत्यधिक देरी के आधार पर आवेदन को खारिज करने के लिए कानून में गलती की है। आदेश से, यह स्पष्ट है कि अपील पूर्व-डिपाजिट की कमी के कारण खारिज कर दी गई है जो ट्रिब्यूनल की कार्रवाई स्वयं खराब है, क्योंकि पूर्व-डिपाजिट की कमी के लिए, अपील पर तकनीकी रूप से विचार नहीं किया जा सकता है और इस प्रकार इसे खारिज भी नहीं किया जा सकता है।

10. प्रतिवादी बैंक के वकील, श्री पीएन त्रिपाठी का तर्क है कि याचिकाकर्ता ने बकाया राशि का भुगतान नहीं किया है और टालमटोल की रणनीति अपना रहा है और जब बैंक की बकाया राशि की वसूली के लिए कदम उठाए गए, तो उसने ऊपर बताए अनुसार राशि डिपाजिट करने के बाद आवेदन किया।

11. उक्त प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतीकरण के मद्देनजर, इस तथ्य के साथ कि वर्तमान रिट याचिका में उठाया गया मुद्दा आरडीबी अधिनियम, 1993 की धारा 21 की व्याख्या से संबंधित है, मैं मामले को लंबित रखने के लिए इच्छुक नहीं हूं, इस प्रकार, 03.01.2023 के आदेश को अपीलीय न्यायाधिकरण को योग्यता के आधार पर अपील सुनने और निर्णय लेने के निर्देशों के साथ अलग रखा गया है, कानून के अनुसार, सभी अभियान के साथ, अधिमानतः इस आदेश की प्रमाणित प्रति के उत्पादन की तारीख से चार महीने की अवधि के भीतर।

12. यह उपबंध किया गया है कि दोनों पक्षों में से किसी को भी अनावश्यक स्थगन प्रदान नहीं किया जाएगा।

13. डिमांड ड्राफ्ट (डीआरएटी द्वारा तैयार लेकिन स्वीकार नहीं) के रूप में 20,00,000/- रुपये की राशि आज से दो सप्ताह के भीतर डिपाजिट की जाएगी।

14. याचिकाकर्ता के लिए यह भी खुला होगा कि वह कानून के अनुसार किसी भी समाधान के लिए प्रतिवादी बैंक से संपर्क कर सकता है, यदि ऐसा सलाह दी जाती है।

16. रिट याचिका की अनुमति दी जाती है।

(2023) 3 ILRA 315

मूल न्यायाधिकार

नागरिक पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद 24.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार,

माननीय न्यायमूर्ति राजेंद्र कुमार-चतुर्थ,

रिट सी संख्या 10292/2007

श्रीमती शीला सचदेवा एवं अन्य। ...याचिकाकर्तागण

बनाम

यूपी राज्य एवं अन्य। ...प्रतिवादीगण

अधिवक्ता याचिकाकर्तागण: श्री संजीव कुमार, श्री एस.के. सिंह, श्री एस.के. श्रीवास्तव, श्री संजीव सिंह, श्री शशि नंदन, श्री राजेश शुक्ला, श्री रवि कांत (वरिष्ठ अधिवक्ता), श्री के.एन. त्रिपाठी (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता प्रतिवादीगण: सी.एस.सी., अपर महाधिवक्ता, डॉ. वाई.के. श्रीवास्तव

A. सिविल कानून - नाजुल भूमि - फ्रीहोल्ड अधिकार - शासनादेश दिनांक 31.12.2002 और 14.12.2004 - आवेदक के पक्ष में प्लॉट का एक हिस्सा पहले ही फ्रीहोल्ड किया जा चुका है - प्रभाव - शेष हिस्से के लिए फ्रीहोल्ड के लिए आवेदन निरस्त - वैधता को चुनौती दी गई - शासनादेश दिनांक 3.12.2002, 25% मूल्यांकन राशि के जमा पर फ्रीहोल्ड अधिकार प्रदान करने का, पर निर्भरता - अनुमति - निर्णय लिया गया, दिनांक 31.12.2002 का शासनादेश ऐसे नाजुल भूमि का संदर्भ नहीं देता है जिस पर सरकारी कार्यालय या कोई अन्य आवास खड़ा है और जो सरकारी विभाग / कार्यालय के अधिकार में है - फ्रीहोल्ड अधिकार के लिए आवेदन करने से आवेदक को कोई स्वीकृत अधिकार प्राप्त नहीं हुआ। (पैरा 15, 24, 30 और 36)

B. प्रक्रिया और विधि - आवेदन पर निर्णय - सरकारी नीति - लागूता - सरकारी निर्णय की तिथि पर लागू सरकारी नीति, आवेदकों के फ्रीहोल्ड अधिकार के लिए आवेदन निस्तारण के दौरान लागू होगी। (पैरा 36)

C. भारतीय संविधान - अनुच्छेद 296 - राज्य का स्वामित्व - 'नाजुल' शब्द - अर्थ - 'एस्कीट' का सिद्धांत - स्पष्ट किया गया - 'नाजुल' एक अरबी शब्द है। यह उस भूमि को संदर्भित करता है जो क्राउन (राजभूमि) अर्थात सरकारी भूमि से जुड़ी हुई है। यह केवल वही भूमि है जो राज्य के पास स्वामित्व में है क्योंकि यह संप्रभुता की क्षमता के कारण है - भारत के संविधान का अनुच्छेद 296, राज्य को ऐसे भूमि का स्वामित्व प्राप्त करने की शक्ति बनाए रखता है, जिसके संबंध में 'एस्कीट', 'लैप्स' या 'बोना वाकेंटिया' का सिद्धांत भारतीय संविधान के लागू होने से पूर्व लागू होता था। (पैरा 17 और 18)

रिट याचिका निरस्त। (E-1)

<u>उद्धृत वाद सूची :-</u>

1. शरिफ अहमद बनाम क्षेत्रीय परिवहन प्राधिकरण, मेरठ; (1978) 1 SCC 1

2. गुजरात पॉटरी वर्क्स बनाम बी.पी. सूद; AIR 1967 SC 964

3. वीरेंद्र साहनी एवं अन्य बनाम जिला अधिकारी / कलेक्टर, मऊ एवं अन्य; AIR 1997 ALL. 82

4. संगम उपनिवेश आवास एवं निर्माण सहकारी समिति लिमिटेड बनाम यूपी राज्य एवं अन्य; 2018 (7) ADJ 617

5. श्याम लाल बनाम दीप दास चेले राम चेले गरीब दास; (2016) 7 SCC 572

6. पियर्स लेस्ली और कंपनी लिमिटेड बनाम मिस वायलेट औच्टरलोनी वप्सनरे; AIR 1969 SC 843

7. राज्य बनाम ज़हूर अहमद; 1973 (2) SCC 547
8. प्रकट राय और अन्य बनाम राज्य उत्तर प्रदेश और अन्य; 2020(1) ADJ, 469 (DB)
9. आनंद कुमार शर्मा का मामला (FB); 2014(2) ADJ 742 (FB)

(द्वारा: न्यायमूर्ति सुनीत कुमार)

1- याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री रविकांत को सुना गया, जिनकी सहायता श्री संजीव कुमार ने की और राज्य -प्रत्यर्थियों के लिए श्री अजीत कुमार सिंह, विद्वान अपर महाधिवक्ता को सुना, जिनकी सहायता श्री अमित वर्मा, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने की ।

2- विवादित संपत्ति नज़ूल प्लॉट नंबर 10 सिविल स्टेशन इलाहाबाद (प्रयागराज) से संबंधित है, जिसकी माप 11761.41 वर्ग मीटर है। याचिकाकर्ता संपत्ति के फ्रीहोल्ड अधिकार का दावा करते हैं।

3- स्वीकृत तथ्यों के अनुसार राज्य प्रत्यर्थियों द्वारा श्रीमती खेतर दासी के पक्ष में 1 अप्रैल 1914 से 50 वर्षों तक की अवधि के लिए एक पट्टा निष्पादित किया गया था। इसके बाद उपरोक्त भूखंड नज़ूल रजिस्टर में लाला मट्टू मल के नाम पर दर्ज किया गया। लाला मट्टू मल की मृत्यु के बाद 4 दिसंबर 1935 को एक पंजीकृत पारिवारिक विभाजन के आधार पर क्षेत्र जिसका मापन 4211 वर्ग मीटर है लाला मट्टू मल के पुत्र गणेश प्रसाद सेठ के हिस्से में आया। गणेश प्रसाद सेठ की मृत्यु के बाद संपत्ति उनकी विधवा श्रीमती तारा देवी को हस्तांतरित कर दी गई। श्रीमती तारा देवी ने 26 जून 1972 को याचिकार्ताओं के पक्ष में एक वसीयत निष्पादित की।

4- इसमें कोई विवाद नहीं है कि पट्टे की शर्तें 15 मार्च 1963 को समाप्त हो गईं। राज्य प्रत्यर्थियों के पक्ष के अनुसार विवादित नजूल भूखंड शुरू में 16 मार्च 1863 को 20 वर्ष की अवधि के लिए पट्टे पर एक एएम जेलर को आवंटित किया गया था,जिसे तत्कालीन आयुक्त इलाहाबाद मंडल, इलाहाबाद द्वारा विधिवत निष्पादित किया गया। पट्टा 16 मार्च 1930 को समाप्त हो गया, जिसे 1 अप्रैल 1914 से अगले 50 वर्षों के लिए नवीनीकृत किया गया। वर्ष 1963 में पट्टे की समाप्ति पर फ्रीहोल्ड अधिकारों के लिए 27 साल बीतने के बाद याचिकाकर्ताओं ने 28 फरवरी 1999 को एक आवेदन दाखिल किया।

5- राज्य प्रत्यर्थियों के अनुसार याचिकाकर्ताओं को 26 जनवरी 2002 को 1427 वर्ग मीटर नजूल भूमि के लिए फ्रीहोल्ड अधिकार पहले ही दिए जा चुके हैं। इसके बाद 30 मार्च 2002 को याचिकाकर्ताओं को क्षेत्र जिसका मापन 612 वर्ग मीटर है पर अतिरिक्त फ्रीहोल्ड अधिकार दिए गए थे। दूसरे शब्दों में याचिकाकर्ताओं के पक्ष में 2084 वर्ग मीटर नजूल भूमि को फ्रीहोल्ड कर दिया गया। याचिकाकर्ता नज़ूल भूखंड के शेष हिस्से पर फ्रीहोल्ड अधिकार का दावा करते हैं।

6- ऐसा प्रतीत होता है कि नजूल भूमि के एक हिस्से पर एक इमारत खड़ी थी, जो उत्तर प्रदेश सरकार के खाद्य और आपूर्ति विभाग के कब्जे में थी, नजूल भूमि के उस हिस्से पर याचिकाकर्ता राज्य से फ्रीहोल्ड अधिकार का दावा करते हैं।

नजूल भूमि के निर्मित हिस्से पर फ्रीहोल्ड अधिकार की मांग करने वाले याचिकाकर्ताओं के आवेदन को राज्य सरकार ने 12 अक्टूबर 2006 को एक आदेश पारित करके खारिज कर दिया, जिसमें यह रेखांकित किया गया था कि इमारत राज्य सरकार विभाग के कब्जे में थी। फलस्वरूप उसमें संदर्भित शासनादेश के अनुसार जिस भूमि पर इमारत खड़ी है, उसके लिए फ्रीहोल्ड अधिकार का पट्टा याचिकाकर्ताओं को नहीं दिया जा सकता है। आक्षेपित आदेश के अनुसार दूसरे प्रत्यर्थी जिला मजिस्ट्रेट, इलाहाबाद (प्रयागराज) ने दिनांक 30 नवंबर 2006 के आदेश द्वारा इमारत/भूमि जिसका मापन1513.10 वर्ग मीटर है को फिर से शुरू किया। मौजूदा रिट याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ताओं ने उपरोक्त आदेशों पर आपत्ति जताई और नजूल भूमि के उक्त हिस्से पर फ्रीहोल्ड अधिकार का दावा कर रहे हैं।

7- यह प्रस्तुत किया गया है कि 28 फरवरी 1999 को याचिकाकर्ताओं ने क्षेत्र जिसका मापन 1289.20 वर्ग मीटर है के लिए फ्रीहोल्ड अधिकार हेतु एक आवेदन दाखिल किया था। शासनादेश के अनुसार याचिकाकर्ताओं द्वारा भूमि के स्वनिर्धारित मूल्यांकन का 25% 1,54,704 रुपए ट्रेजरी चालान संख्या डीपी- 2 के माध्यम से जमा किया गया। इसके अनुसरण में अपर जिला मजिस्ट्रेट द्वारा नजूल भूमि को फ्रीहोल्ड में परिवर्तन करने हेतु शेष राशि 3,16,700.84 रुपए के लिए एक डिमांड नोटिस जारी किया गया था। याचिकाकर्ताओं द्वारा 5 जून 2000 को राशि जमा की गई। इसके बाद अपर जिला मजिस्ट्रेट के कार्यालय द्वारा याचिकाकर्ता को एक प्रस्तावित फ्रीहोल्ड डीड प्रदान की गई। 5 जून 2000 को याचिकाकर्ताओं ने स्टांप पेपर के साथ एक फ्रीहोल्ड डीड प्रस्तुत किया। ऐसा प्रतीत होता है कि
इसके बाद राज्य की ओर से दूसरे प्रत्यर्थी द्वारा न तो डीड निष्पादित किया गया और न ही पंजीकरण के लिए अवसर दिया गया।

8- इस बीच राज्य सरकार के विशेष सचिव द्वारा 12 अक्टूबर 2006 को जारी किए गए आक्षेपित संचार द्वारा दूसरे प्रत्यर्थी को संबोधित करते हुए नजूल भूमि का वह हिस्सा जिसका मापन 1513.10 वर्ग मीटर है, उस पर जिला आपूर्ति कार्यालय का कार्यालय है। जिला आपूर्ति अधिकारी एवं अपर जिला मजिस्ट्रेट (ना.आ.) कार्य कर रहे थे, दिनांक 14 दिसंबर 2004 के शासनादेश के क्रम में जिला आपूर्ति अधिकारी, इलाहाबाद के कार्यालय को निर्धारित नियम एवं शर्तों पर आवंटित किया गया। इसके अनुसरण में जिला मजिस्ट्रेट ने 30 नवंबर 2006 को परिणामी आदेश पारित किया, जिसमें सीमांकन के बाद संपत्ति जिसका मापन 1513.10 वर्ग मीटर है को फिर से हासिल कर लिया गया।

9- दिनांक 14 दिसंबर 2004 के शासनादेश पर भरोसा करते हुए याचिकाकर्ताओं द्वारा संपत्ति के उस हिस्से पर जिसका मापन 1289.20 वर्ग मीटर है पर दिनांक 28 फरवरी 1999 के आवेदन के माध्यम से फ्रीहोल्ड अधिकार मांगा गया था, जिसे खारिज कर दिया गया। इसके बाद याचिकाकर्ताओं द्वारा फ्रीहोल्ड अधिकारों के लिए जमा की गई राशि ब्याज सहित वापस करने का आदेश पारित किया गया। तदनुसार नजूल भूमि जिसका मापन 1513.10 वर्ग मीटर है को जिला आपूर्ति अधिकारी के कार्यालय के प्रयोजनों के

लिए 12 अक्टूबर 2006 के शासनादेश के अनुसार फिर से शुरू की गई।

10- याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि चूंकि दूसरे प्रत्यर्थी ने फ्रीहोल्ड अधिकारों के लिए याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत आवेदन पर कार्यवाही की, इसीलिए दूसरे प्रत्यर्थी के कार्यालय द्वारा उठाई गई मांग राशि फ्रीहोल्ड डीड और स्टांप पेपर के साथ जमा की गई। यह आग्रह किया जाता है कि दूसरा प्रत्यर्थी इसके बाद पीछे नहीं हट सकता है बल्कि विलेख निष्पादित करने और इसे विधिवत पंजीकृत करने के लिए बाध्य है। आगे यह भी प्रस्तुत किया गया है कि दूसरे प्रत्यर्थी को राज्य सरकार के कार्यालय के पक्ष में संपत्ति वापस लेने और फिर से शुरू करने से रोका जाता है, इसलिए यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रत्यर्थियों को उस भूखंड के क्षेत्र के लिए फ्रीहोल्ड डीड निष्पादित करने का निर्देश दिया जाए। जिसके लिए कागजात विधिवत पूरे किए गए थे और निष्पादन तथा पंजीकरण के लिए प्रस्तुत किए गए थे।

11- याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने अपने तर्क के समर्थन में निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा जताया:

(i) शरीफ अहमद बनाम क्षेत्रीय परिवहन प्राधिकरण, मेरठ;

(ii) गुजरात पॉटरी वर्क्स बनाम बीपी सूद;

(iii) वीरेंद्र साहनी एवं अन्य बनाम जिला अधिकारी कलेक्टर, मऊ एवं अन्य;

(iv) संगम उपनिवेशन आवास एवं निर्माण सहकारी समिति लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 4 और;

(v) श्यामलाल बनाम दीपा दास चेला राम चेला गरीबदास ।

12- इसके खंडन में, राज्य प्रत्यर्थियों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि स्वीकार किया गया कि पट्टा वर्ष 1963 में समाप्त हो गया था। इसमें कोई विवाद नहीं है कि राज्य सरकार का कार्यालय नजूल भूखंड के निर्मित क्षेत्र पर मौजूद है और लगातार तब तक राज्य के कब्जे में रहा, जब तक कि इमारत को जीर्ण-शीर्ण और रहने के लिए अनुपयुक्त घोषित नहीं कर दिया गया। परिणामस्वरूप, इस न्यायालय द्वारा पारित यथास्थिति आदेश के मद्देनजर कार्यालय को दूसरे किराए के भवन में स्थानांतरित कर दिया गया।

13- आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ताओं द्वारा पट्टे के नवीनीकरण के लिए आवेदन लगभग तीन दशकों के बाद दाखिल किया गया है, याचिकाकर्ताओं के पास याचिकाकर्ताओं के पक्ष में राज्य सरकार पर नजूल भूखंड के एक हिस्से को फ्रीहोल्ड घोषित करने के लिए जोर देने का कोई निहित अधिकार और प्राधिकार नहीं है।

14- प्रतिद्वंदी प्रस्तुतियां विचारणीय हैं।

15- तथ्य यह है कि परस्पर संबंधित पक्ष विवाद में नहीं हैं। माना कि पूरा भूखंड राज्य का है और यह भी अविवादित है कि क्षेत्र जिसका मापन 2084 वर्ग मीटर है ,दो हिस्सों (1472+612 वर्ग मीटर) में पहले ही याचिकाकर्ताओं के पक्ष में फ्रीहोल्ड कर दिया गया है। नजूल भूखंड के उसे हिस्से पर याचिकाकर्ताओं का दावा निर्णय की तारीख पर लागू शासनादेशों के अनुसार स्वीकार कर दिया गया है जिस पर राज्य सरकार का कार्यालय संचालित था 14 अक्टूबर 2004 के

सरकारी आदेश में नजूल भूखंड का आवंटन सरकार के पक्ष में करने का आदेश दिया गया है जिस पर कार्यालय स्थापित किए गए हैं। दूसरे शब्दों में भूमि के उस हिस्से को पट्टाधारक के पक्ष में फ्रीहोल्ड नहीं किया जाएगा। इसके साथ ही वर्तमान रिट याचिका के लंबित होने के कारण, जीर्ण-शीर्ण भवन के विध्वंस के बाद जिला और आपूर्ति अधिकारी के कार्यालय का निर्माण 2010 से लंबित है।

16- निर्णय के लिए जो मूल प्रश्न उठता है, वह यह है कि 14 अक्टूबर 2004 के शासनादेश के अनुसार राज्य सरकार द्वारा नजूल भूखंड के लिए याचिकाकर्ताओं को फ्रीहोल्ड अधिकार देने से इनकार करना कहां तक उचित था, जिस पर राज्य सरकार का कार्यालय कार्यरत था।

17- 'नजूल' एक अरबी शब्द है। यह राजभूमि से जुड़ी भूमि को संदर्भित करता है जो सरकारी भूमि है। यह केवल ऐसी भूमि है जो स्वामित्व और संप्रभुता की क्षमता के कारण राज्य में निहित है, और 'बोना वेकेंशिया' के अधिकार का उपयोग, जो अभिव्यक्ति नजूल के अंतर्गत आता है, जैसा कि यह शब्द पिछले डेढ़ सौ वर्षों से जाना जाता है।

18- भारत के संविधान के अनुच्छेद 296 में ऐसी भूमि का स्वामित्व प्राप्त करने की राज्य की शक्ति को बरकरार रखा गया है, जिसके संबंध में भारत के संविधान के लागू होने से पहले 'राजगामी', 'व्यपगत' या 'स्वामीहीन' का सिद्धांत लागू होता है। उपरोक्त शक्ति संविधान लागू होने के बाद भी एकमात्र संशोधन के साथ लागू होती रही कि यदि ऐसी भूमि राज्य सरकार के क्षेत्र में स्थित है, तो यह राज्य में निहित होगी और अन्य मामलों में, यह भारत संघ में निहित होगी। (संदर्भ: **पियर्ष लेस्ली और कंपनी लिमिटेड बनाम मिस वायलेट आउच्तरलोनी वैप्स लेयर; उत्तर प्रदेश राज्य बनाम जहूर अहमद और प्रकृति राय और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य;**

19- सभी मंडल आयुक्तों, जिला मजिस्ट्रेटों और विकास प्राधिकरण के उपाध्यक्ष को संबोधित 14 अक्टूबर 2004 का शासनादेश, पट्टे पर दिए गए नजूल भूखंड पर बने कार्यालयों से संबंधित है, तदनुसार, नजूल भूमि के उस हिस्से को संबंधित राज्य विभागों को निःशुल्क आवंटित करना अनिवार्य है।

20- उपरोक्त उल्लिखित शासनादेश और इस मामले के प्रयोजनों के लिए प्रासंगिक पैराग्राफ लिया गया है-

विषय- प्रदेश के विभिन्न जनपदों में पट्टागत नजूल भूमि पर अवस्थित राजकीय कार्यालयों के पक्ष में नजूल भूमि का आवंटन नि:शुल्क किया जाना।

१- नजूल की जिस भूमि का वर्तमान में शासकीय (कार्यालय आवास या अन्य प्रयोजन हेतु) प्रयोग हो रहा हो उनके पट्टे की अवधि यदि समाप्त हो गई हो तो इसे फ्रीहोल्ड/नवीनीकरण तब तक न किया जाए जब तक कि उपयोगकर्ता विभाग द्वारा लिखित रूप में यह सूचित ना किया जाए कि अब उन्हें इस भूमि की आवश्यकता शासकीय उपयोग के लिए नहीं है।

२- ....

३- ऐसे प्रकरण जहां पट्टागत भूमि का आंशिक रूप से शासकीय प्रयोग हो रहा है तथा आंशिक रूप से यह पट्टाधारक के कब्जे में है उसमें यदि

शासकीय प्रयोग वाले विभाग को अपने विभागीय उत्तरदायित्वों के निर्वहन हेतु भूखंड/भवन की आवश्यकता है तो पट्टे की अवधि समाप्त होने पर पूरी भूमि प्रशासकीय विभाग को आवंटित कर दी जाएगी।

४-...................

५-...................

६- जिन मामलों में पूर्व में तत्समय प्रचलित नज़ूल नीति के अंतर्गत पट्टा धारकों के पक्ष में फ्रीहोल्ड करने हेतु स्वयं मूल्यांकन धनराशि जमा की जा चुकी है परंतु फ्रीहोल्ड डीड निष्पादित नहीं की गई है, उनमें भी शासकीय कार्यालय स्थित होने तथा उसके उपयोग के लिए आवश्यकता होने की स्थिति में फ्रीहोल्ड करने से मना किया जा सकेगा और जमा स्वमूल्यांकन धन राशि जमाकर्ता को सब्याज वापस कर दी जाएगी।

21-
उपर्युक्त सरकारी आदेश के अवलोकन पर, यह आदेश दिया गया है कि जहां भी, पट्टे पर दी गई नजूल भूमि पर सरकारी कार्यालय, आवासीय व्यवस्था या कोई अन्य गतिविधियां जारी हैं और पट्टे की अवधि समाप्त हो गई है, पट्टे का फ्रीहोल्ड/नवीनीकरण संबंधित विभाग से पूर्व अनुमोदन प्राप्त किए बिना नवीनीकृत/स्वीकृत नहीं किया जाएगा, चाहे वह संपत्ति राज्य के लिए आवश्यक हो। शासनादेश में आगे कहा गया है कि जहां पट्टे पर दी गई नजूल भूमि पर सरकारी कार्यालय स्थित हैं और राज्य विभाग के कब्जे में हैं, और संपत्ति कार्यालय के प्रयोजनों के लिए आवश्यक है, उसे पट्टे की समाप्ति पर संबंधित विभाग को आवंटित किया जाएगा।दूसरे शब्दों में, फ्रीहोल्ड का अधिकार नहीं दिया जाएगा।

22- सरकारी आदेश के पैराग्राफ 6 में स्पष्ट किया गया है कि जहां नजूल संपत्ति के पट्टा धारक ने स्वनिर्धारित मूल्यांकन की राशि जमा कर दी है, लेकिन फ्रीहोल्ड डीड अभी तक निष्पादित होनी है या निष्पादित नहीं हुई है, तो उसे नजूल भूमि के उस भाग के लिए निष्पादित नहीं किया जाएगा, जिस पर सरकारी कार्यालय स्थित है। तब ऐसी स्थिति में, जमा की गई राशि ब्याज सहित पट्टा धारक को वापस कर दी जाएगी।

23- विशिष्ट प्रश्न पर, याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने निष्पक्ष रूप से स्वीकार किया कि 14 अक्टूबर, 2004 के शासनादेश को वर्तमान रिट याचिका में चुनौती नहीं दी गई है।

24- इसके विपरीत, याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा 31 दिसंबर 2002 के शासनादेश पर भरोसा किया गया है, जिसमें 10 दिसंबर 2002 के शासनादेश को स्पष्ट किया गया है। 31 दिसंबर 2002 के शासनादेश के पैराग्राफ 3 में यह प्रावधान किया गया है कि समाप्त हो चुके पट्टे के पट्टाधारक, जिन्होंने 10 दिसंबर 2002 से पहले स्वनिर्धारित मूल्यांकन की 25% धनराशि जमा कर दिया है और शासन की नीति के अनुसार सभी औपचारिकताएं पूरी कर ली गई हैं, उस स्थिति में फ्रीहोल्ड के लिए लंबित सभी आवेदन पत्रों को 10 दिसंबर 2002 के शासनादेश के अनुसरण में संसाधित और पूर्ण किया गया।

25- 31 दिसंबर 2002 के शासनादेश के प्रासंगिक भाग से लिया गया है:-
"31.12.2002

विषय- नजूल भूमि के प्रबंध एवं निस्तारण के संबंध में जारी शासनादेश। दिनांक 10 दिसंबर 2002 के संबंध में मार्गदर्शन।
2- उक्त संबंध में यह स्पष्ट किया जाता है कि शासनादेश संख्या- 2873/9-आ-4-2002-152 एन /2000 टी0सी0 दिनांक 10 दिसंबर 2002 द्वारा प्रतिपादित नीति तत्काल प्रभाव से लागू की गई है। अतः दिनांक 10.12.2002 से पूर्व में जिन आवेदकों ने स्वमूल्यांकन की 25% धनराशि जमा करते हुए चालान की प्रति के साथ प्रार्थना पत्र प्रस्तुत कर दिया था तथा फ्रीहोल्ड की पात्रता संबंधी समस्त निर्धारित औपचारिकताएं पूर्ण कर दी थी, उन प्रकरणों में तत्कालीन नीति अनुसार दरें व शर्तें लागू होंगी। ऐसे मामलों में शासनादेश दिनांक 10.12.2002 लागू नहीं होगा।"

26- इसके अलावा, याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने नजूल भूमि संख्या. पीपी सिविल स्टेशन, इलाहाबाद के संबंध में उत्तर प्रदेश सरकार के विशेष सचिव द्वारा जिला मजिस्ट्रेट, इलाहाबाद को संबोधित 24 मार्च 2003 के आदेश पर भरोसा जताया था। जिसमें निर्देश दिया गया है कि यदि पट्टा धारक ने वर्ष 2000 में स्वनिर्धारित मूल्यांकन धनराशि राज्य राजकोष में जमा कर दी है, तो यह अनिवार्य था कि नजूल भूमि से संबंधित सरकारी नीति के अनुसार फ्रीहोल्ड अधिकार से इनकार नहीं किया जा सकता था।

27- उपर्युक्त उल्लिखित शासनादेशों और संचार माध्यमों में यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ताओं ने स्वीकार किया कि अपने आवेदन के अनुसरण में दिनांक 28 फरवरी 1999 के अनुसार औपचारिकताएं पूरी कर ली थीं, और 5 जून 2000 को प्लॉट की स्वनिर्धारित मूल्यांकन धनराशि जमा करने पर दूसरे प्रत्यर्थी के विलेख द्वारा आपूर्ति किए गए प्रस्तावित मसौदे को तैयार किया गया। यह आग्रह किया गया कि याचिकाकर्ताओं के साथ भेदभाव नहीं किया जा सकता है और फ्रीहोल्ड अधिकारों को 31 दिसंबर 2002 के शासनादेश के अनुसार निष्पादित किया जाना चाहिए।

28- प्रस्तुतियों के समर्थन में **संगम उपनिवासन आवास एवं निर्माण सहकारी समिति लिमिटेड (उपरोक्त)** पर भरोसा किया गया है जिसमें फ्री होल्ड अधिकारों की मांग करने वाले याचिका करता हूं **आनंद कुमार शर्मा** में पूर्ण पीठ के फैसले का जिक्र करने के बाद डिवीजन बेंच की यह राय थी कि एक बार फ्री होल्ड अधिकार देने का निर्णय हो जाता है तो आवेदकों के एक समूह के बीच भेदभाव का तत्व और कोई भी मनमाना कार्य मौलिक अधिकारों के उल्लंघन को जन्म देता है, जिसकी न्यायिक समीक्षा की अनुमति होगी। निर्णय का प्रासंगिक अंश यहां लिया गया है:-
"*हालांकि पूर्ण पीठ की प्रक्रिया आगे नहीं बढ़ी और इसीलिए हमें यह इंगित करना आवश्यक लगता है कि एक बार फ्रीहोल्ड अधिकार देने का निर्णय हो गया तो आवेदकों के एक ही समूह के बीच भेदभाव का तत्व और कोई भी मनमाना कृत्य मौलिक अधिकारों के उल्लंघन को बढ़ावा देगा, जिसे न्यायिक समीक्षा की अनुमति होगी। यह अवसर आने पर मनमाने कृत्य की अनिश्चित संभावना के किसी भी तत्व को हटा देगा।* "

29- इस पृष्ठभूमि में, याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि याचिकाकर्ताओं के साथ भेदभाव नहीं किया जा सकता क्योंकि यह

स्वीकार किया गया है कि याचिकाकर्ताओं ने 31 दिसंबर 2002 के शासनादेश के अनुसरण में फ्रीहोल्ड अधिकार से संबंधित सभी औपचारिकताएं पूरी कर लीं थीं और **संगम उपनिवासन आवास एवं निर्माण सहकारी समिति लिमिटेड (उपरोक्त)** में दिए गए निर्णय के अनुसार याचिकाकर्ता शेष नजूल भूखंड के फ्रीहोल्ड अधिकार के हकदार हैं।

30- हम याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता की दलील में योग्यता नहीं पाते हैं। याचिकाकर्ताओं द्वारा भरोसा किए गए शासनादेशों का सावधानीपूर्वक अध्ययन करने पर हमने पाया कि इससे याचिकाकर्ताओं को कोई सहायता नहीं मिली है। 10 दिसंबर 2002 और 31 दिसंबर 2002 के शासनादेशों में केवल इतना कहा गया है कि अगर नजूल भूखंड के पट्टाधारकों ने 10 दिसंबर 2002 से पहले फ्रीहोल्ड अधिकारों के लिए स्वनिर्धारित मूल्यांकन धनराशि जमा करके अपनी जिम्मेदारी पूरी कर ली है तो फ्रीहोल्ड डीड उनके पक्ष में निष्पादित की जाएगी। हालांकि सरकारी आदेश ऐसी नजूल भूमि का उल्लेख या विज्ञापन नहीं करता है जिस पर सरकारी कार्यालय या कोई अन्य आवास बना हो और वह सरकारी विभाग/ कार्यालय के कब्जे में हो। 14 दिसंबर 2004 के शासनादेश के अनुसार याचिकाकर्ताओं का उस नजूल भूमि पर आवंटन अस्वीकृत कर दिया गया है, जिस पर सरकारी कार्यालय संचालित हो रहा था। याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह अविवादित है कि याचिकाकर्ताओं को 2084 वर्ग मीटर की नजूल भूमि का फ्रीहोल्ड अधिकार पहले ही दिया जा चुका है। नजूल भूमि का एक हिस्सा जिसका मापन 1513.10 वर्ग मीटर है पर सरकारी कार्यालय कार्यरत था और सरकारी विभाग के कब्जे में था, 14 अक्टूबर 2004 के शासनादेश के अनुसार अगर विभाग ने कार्यालय/ आवास के प्रयोजनों के लिए संपत्ति के आवंटन की मांग की है तो जिला मजिस्ट्रेटों को नजूल भूखंड को फ्रीहोल्ड में परिवर्तित करने से रोक दिया गया है।

31- **आनंद कुमार शर्मा (उपरोक्त)** में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा संदर्भित प्रश्न लिया गया है:-

"1. क्या शासनादेश दिनांक 1.12.1998 (पैराग्राफ 7) और शासनादेश दिनांक 10.12.2002 (पैराग्राफ 5) के आधार पर फ्रीहोल्ड अधिकार प्रदान करने के लिए प्रस्तुत याचिकाकर्ता के 25.7.2005 से संबंधित आवेदन पत्र पर उस समय अस्तित्व में रही सरकारी नीति के अनुसार विचार करना चाहिए था या दिनांक 4.8.2006 के शासनादेश द्वारा संशोधित सरकारी नीति को 18.12.2006 को आवेदन पर निर्णय लेते समय ध्यान में रखा गया था?

32- दूसरे शब्दों में, न्यायालय के समक्ष प्रश्न यह था कि क्या फ्रीहोल्ड अधिकार के लिए आवेदन की तिथि पर लागू सरकारी नीति लागू होगी या सरकार के निर्णय की तिथि पर लागू सरकारी नीति लागू होगी।

33- पैराग्राफ 41 और 42 में न्यायालय ने स्पष्ट किया कि केवल फ्रीहोल्ड अधिकार देने के लिए आवेदन करने से याचिकाकर्ताओं को निहित अधिकार प्राप्त नहीं हुए।

34- पैराग्राफ 41 एवं 42 लिए गए हैं:-

"41. निहित अधिकार विभिन्न प्रकार या अधिकार की प्रकृति के संदर्भ में विभिन्न प्रकार के निहित अधिकार हो सकते हैं। यह सच है कि "निहित अधिकार" शब्द आमतौर पर किसी संपत्ति में अधिकार के संदर्भ में उपयोग किए जाते हैं, लेकिन निहित अधिकार की अवधारणा केवल भूमि के कब्जे के आनंद के अधिकार तक ही सीमित नहीं है। वर्तमान मामले में मुद्दा यह है कि क्या फ्रीहोल्ड अधिकार देने के लिए आवेदन जमा करके याचिकाकर्ता द्वारा कोई निहित अधिकार हासिल किया गया है।
42. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, इस विषय पर प्रासंगिक शासनादेशों और सर्वोच्च न्यायालय की घोषणाओं पर विचार करने के बाद, हमारा विचार है कि केवल फ्रीहोल्ड अधिकार देने के लिए आवेदन करने से, याचिकाकर्ता ने निहित अधिकार प्राप्त नहीं किया है।

35- इसके बाद अदालत ने निम्नलिखित शब्दों में संबंधित संदर्भ का उत्तर दिया:-
(i) दिनांक 1.12.1998 और 10.12.2002 के शासनादेशों के आधार पर फ्रीहोल्ड अधिकार देने के लिए दिनांक 25.7.2005 को प्रस्तुत याचिकाकर्ता के आवेदन पर आदेश पारित करते समय अस्तित्व में रही सरकार की नीति के अनुसार विचार करना चाहिए था। कलेक्टर द्वारा 18.12.2006 को आवेदन खारिज करते समय शासनादेश दिनांक 4.8.2006 पर सही भरोसा किया गया था।

36- पूर्ण न्यायालय का विचार था कि फ्रीहोल्ड अधिकार देने के लिए आवेदन द्वारा याचिकाकर्ता ने निहित अधिकार प्राप्त नहीं किया है। फ्रीहोल्ड अधिकार के लिए याचिकाकर्ताओं के आवेदनों का निपटारा करते समय सरकार के निर्णय की तिथि पर लागू सरकार की नीति लागू होगी।

37- तदनुसार, **आनंद कुमार शर्मा (उपरोक्त)** में निर्धारित कानून के मद्देनजर, फ्रीहोल्ड अधिकारों के लिए याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत आवेदन, सरकारी नीति के अनुसार विचार करने योग्य था, जो कि आवेदन पर आदेश पारित होने की तिथि पर अस्तित्व में थी। 14 दिसंबर 2004 के सरकारी आदेश के तहत सरकारी नीति के अनुसार याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत आवेदन के निस्तारण में राज्य प्रत्यर्थियों को उचित ठहराया गया था।

38- आक्षेपित आदेश में उल्लिखित है कि जिला आपूर्ति अधिकारी ने जीर्ण-शीर्ण संरचना को हटाकर नए भवन का निर्माण कर उसी भवन में कार्यालय जारी रखने की मांग की थी। बताया गया है कि निर्माण के लिए बजट भी स्वीकृत किया गया था, लेकिन वर्तमान रिट याचिका लंबित होने के कारण इसका निष्पादन नहीं हो सका। कार्यालय को किराए के दूसरे आवास में स्थानांतरित कर दिया गया।

39- याचिकाकर्ताओं की यह दलील कि याचिकाकर्ताओं के साथ भेदभाव किया गया है, निराधार है। याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह अविवादित है कि याचिकाकर्ताओं को इस नजूल भूखंड के 2084 वर्ग मीटर पर फ्रीहोल्ड का अधिकार दिया गया है, जैसा कि भूखंड के अन्य कब्जेदारों के मामले में है। इसके साथ ही याचिकाकर्ताओं ने नजूल प्लॉट नंबर पीपी सिविल स्टेशन, इलाहाबाद के पट्टाधारक के साथ समानता का दावा करते हुए

तर्क दिया कि चूंकि उन्हें फ्रीहोल्ड अधिकार दिए गए थे, उसी श्रेणी में आने वाले याचिकाकर्ताओं को भी फ्रीहोल्ड अधिकार दिया जाना चाहिए। समानता पर आधारित दावे में दम नहीं है। नजूल भूखंड संख्या 10, सिविल स्टेशन पर एक सरकारी कार्यालय का कब्जा था, जबकि नजूल भूखंड संख्या पीपी सिविल स्टेशन, इलाहाबाद पर सरकारी विभाग के कब्जे में ऐसी कोई इमारत नहीं है। शासनादेश दिनांक 14 अक्टूबर 2004 दर्शाता है कि ऐसी सभी नजूल भूमि, जिस पर सरकारी कार्यालय/ विभाग का कब्जा है। ऐसा नजूल भूखंड संख्या पीपी सिविल स्टेशन, इलाहाबाद के मामले में नहीं है। किसी भी मामले में, याचिकाकर्ता नजूल भूखंड संख्या पीपी सिविल स्टेशन, इलाहाबाद के पट्टाधारक/कब्जाधारी नहीं हैं, इसीलिए, याचिकाकर्ताओं के लिए यह प्रस्तुत करना संभव नहीं है कि नजूल भूखंड संख्या पीपी सिविल स्टेशन, इलाहाबाद के आवंटन के संबंध में उनके साथ भेदभाव किया गया है। **संगम उपनिवासन आवास एवं निर्माण सहकारी समिति लिमिटेड (उपरोक्त)** का संदर्भ याचिकाकर्ताओं के मामले में लागू नहीं होगा।

40- याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता आक्षेपित आदेश में किसी भी अवैधता, अनियमितता या विकृति को इंगित करने में विफल रहे।

41- तदनुसार रिट याचिका गुणहीन होने के कारण **खारिज** की जाती है।

42- राज्य प्रत्यर्थी को कानून के अनुसार सरकारी कार्यालय के निर्माण के लिए आगे बढ़ना होगा।

(2023) 3 ILRA 323

मूल न्यायाधिकार

नागरिक पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद29.07.2022

समक्ष

माननीय मुख्य न्यायमूर्ति राजेश बिंदल,
माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर,
रिट सी संख्या 19100/2022

नासिर अली एवं अन्य। ...याचिकाकर्तागण

बनाम

यूपी राज्य एवं अन्य. ...प्रतिवादीगण

अधिवक्ता याचिकाकर्तागण: श्री सूर्य प्रकाश दुबे, श्री वेद प्रकाश दुबे।

अधिवक्ता प्रतिवादीगण: श्री हरे राम (स्थायी अधिवक्ता), श्री धर्मेंद्र सिंह चौहान

A. अधिग्रहण कानून - भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 - धारा 4(1), 6(1) और 17(1) - अधिनियम की धारा 4(1) के तहत अधिसूचना के पश्चात विक्रय विलेख निस्पादन - अनुवर्ती क्रेता को कैसे शीर्षक प्रदान की जा सकती है - ध्वस्त करने के विरुद्ध अनुतोष की प्रार्थना - अनुमेयता - माना गया, इस बात में कोई विवाद नहीं है कि अधिनियम की धारा 4(1) के अंतर्गत अधिसूचना जारी होने के पश्चात भूमि स्वामी द्वारा विक्रय विलेख का निस्पादन निष्क्रिय है। यह हस्तांतरणकर्ता को कोई शीर्षक नहीं प्रदान करता है। अधिकतम, यह बाद में हस्तांतरणकर्ता को मालिक की ओर से क्षतिपूर्ति का दावा करने का अधिकार प्रदान कर सकता है - रिट याचिका में उठाए गए तर्कों के साथ ध्वस्त करने और बेदखली के विरुद्ध मांगी गई अनुतोष द्वारा,

विधिनुसार अन्यथा याचिकाकर्ता जो करना चाहते हैं, वह उस अधिग्रहण को मिटाना है जो अंतिमता प्राप्त कर चुका है और इसकी वैधता को सर्वोच्च न्यायालय तक पुष्टि की गई है। (पैराग्राफ 12 और 16)

B. अधिग्रहण कानून - भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 - धाराएं 4(1), 6(1) और 17(1) - स्थापित और निरंतर कब्जे का दावा - प्रभाव - माना गया, राज्य द्वारा भूमि अधिग्रहण के वाद में जहां अधिनियम 1894 की धारा 4(1) के तहत अधिसूचना जारी होने के पश्चात, धारा 17(1) सपठित धारा 6(1) के तहत एक घोषणा के अनुसार, भूमि धारा 17(2) के तहत राज्य में बिना किसी बंधन के स्वामित्व में आ गई है, वहां उस भूमि पर कब्जा करने वाला हर व्यक्ति एक अतिक्रमणकारी है, जिसे राज्य द्वारा निष्कासित किया जा सकता है। (पैरा 18)

रिट याचिका निरस्त। (E-1)

<u>उद्धृत वाद सूची :-</u>

1. मीरा साहनी बनाम दिल्ली के उपराज्यपाल एवं अन्य; (2008) 9 SCC 177
2. यूपी जल निगम, लखनऊ एवं अन्य बनाम कलरा प्रॉपर्टीज (पी) लिमिटेड एवं अन्य; (1996) 3 SCC 124
3. शिव कुमार एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य; (2019) 10 SCC 229
4. इंदौर विकास प्राधिकरण बनाम मनोहर लाल एवं अन्य; AIR 2020 SC 1496
5. श्योराज सिंह एवं अन्य बनाम यूपी राज्य एवं अन्य; 2021 SCC OnLine All 873

<u>माननीय मुख्य न्यायाधीश राजेश बिंदल, माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर।</u>

<u>आदेश</u>

1. तीनों याचिकाकर्ता एक साथ आए हैं और वर्तमान रिट याचिका दायर की है, क्योंकि उनके अलग-अलग और व्यक्तिगत कारण अलग-अलग नहीं हैं। याचिकाकर्तागण के कार्रवाई के कारणों में तथ्यों और कानून के सामान्य प्रश्न शामिल हैं, जिससे उन्हें प्रत्यर्थीगण के उसी समूह के खिलाफ एकजुट होने के लिए प्रेरित किया जाता है, जिसके खिलाफ वे राहत चाहते हैं। संक्षेप में, याचिकाकर्तागण की प्रार्थना दो गुना है : सबसे पहले, प्रत्यर्थीगण को आदेश दिया जाए कि वे याचिकाकर्तागण के घरों को न गिराएं, जो उनके संबंधित भूखंडों पर खड़े हैं, जब तक कि प्रत्यर्थीगण द्वारा उनके मामले पर विचार नहीं किया जाता है, जिसे 31.05.2022 के प्रतिनिधित्व के माध्यम से प्रचारित किया गया है; और दूसरा, प्रत्यर्थीगण को कानून के अनुसार छोड़कर, याचिकाकर्तागण के अपने संबंधित भूखंडों पर शांतिपूर्ण कब्जे में हस्तक्षेप न करने का आदेश दिया जाए।

2. इस याचिका को जन्म देने वाले तथ्य ये हैं: नासिर अली, पहला याचिकाकर्ता, गाँव हरुनगला, पोस्ट आरके विश्वविद्यालय, जिला बरेली का निवासी है और वर्तमान में गाँव डोहरिया, तहसील और जिला बरेली में रहता है। दूसरी याचिकाकर्ता, श्रीमती हसीना, गाँव चांदपुर बिचपुरी, तहसील और जिला बरेली की निवासी हैं और वर्तमान में गाँव डोहरिया, तहसील और जिला बरेली में रहती हैं। तीसरी याचिकाकर्ता, श्रीमती तस्लीम जहां, जगतपुर, नई बस्ती, तालाब, बरेली की निवासी हैं और वर्तमान में भी गाँव डोहरिया, तहसील और जिला बरेली में रहती हैं। पहले याचिकाकर्ता ने एक पंजीकृत बिक्री विलेख दिनांक 07.05.2018 के माध्यम से अनवर मियाँ पुत्र

मोहम्मद तकी पेंटर से गाँव डोहरिया में स्थित 83.61 वर्ग मीटर का एक भूखंड खरीदा। उक्त प्लॉट गांव का खसरा संख्या 58 पर स्थित है। इसे अनवर मियां ने जमीन के मूल दर्ज मालिक नरेश पुत्र गेंदन लाल से दिनांक 18.01.2004 को पंजीकृत विलेख के माध्यम से खरीदा था। दूसरी याचिकाकर्ता श्रीमती हसीना ने 167.22 वर्ग मीटर का एक प्लॉट, जो कि गांव डोहरिया के खसरा संख्या 58 का भी हिस्सा है, नरेश पुत्र गेंदन लाल से दिनांक 17.11.2011 को पंजीकृत विलेख के माध्यम से खरीदा। तीसरी याचिकाकर्ता श्रीमती तसलीम जहां ने 83.61 वर्ग मीटर का एक प्लॉट, जो कि गांव डोहरिया के खसरा संख्या 60 का हिस्सा है, रियासत अली और अनीस अहमद, बेटों मोहम्मद बच्चन से दिनांक 30.07.2019 को पंजीकृत विलेख के माध्यम से खरीदा। याचिकाकर्ता संख्या 3 के विक्रेता रियासत अली और अनीस अहमद ने 11.10.2010 को पंजीकृत बिक्री विलेख के माध्यम से लाल बहादुर नामक व्यक्ति से भूमि खरीदी थी। यह दावा किया गया है कि खसरा संख्या 60 से संबंधित राजस्व अभिलेखों में लाल बहादुर का नाम दर्ज है।

3. याचिकाकर्तागण का मामला यह है कि वे अपने-अपने भूखंडों पर निरंतर और निर्बाध कब्जे में हैं, जिस पर उन्होंने क्रमशः वर्ष 2018, 2011 और 2019 में अपने आवासीय घर बनाए हैं। याचिकाकर्ता उक्त मकानों में अपने परिवारों के साथ रहते हैं। यह भी दावा किया गया है कि खसरा संख्या 58 के मूल मालिक गेंदन लाल के बेटे नरेश का नाम, जिनके अधिकार अंततः याचिकाकर्ता संख्या 1 और 2 ने खरीदे थे, राजस्व रिकॉर्ड में दर्ज है। तीनों याचिकाकर्तागण में से प्रत्येक के भूखंडों वाली भूमि, जो खसरा संख्या 58 में दो और खसरा संख्या 60 में एक है, ग्राम डोहरिया , तहसील और जिला बरेली में स्थित है, को इसके बाद सामूहिक रूप से 'विवादित भूमि' के रूप में संदर्भित किया जाएगा।

4. दोनों पक्षों के बीच यह आम बात है कि भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 (संक्षेप में, '1894 का अधिनियम') की धारा 17(1) के साथ धारा 4(1) के तहत अधिसूचना 3 जून, 2004 को जारी की गई थी। धारा 4(1) के तहत उक्त अधिसूचना के बाद 1894 के अधिनियम की धारा 17(4) के साथ धारा 6(1) के तहत घोषणा की गई, जिसे राज्य सरकार द्वारा 4 जुलाई, 2004 को जारी किया गया। 2005. उपरोक्त दो अधिसूचनाएं राज्य सरकार द्वारा राम गंगा नगर आवासीय योजना, बरेली नाम से एक आवासीय कॉलोनी के विकास के लिए भूमि अधिग्रहण करने के लिए जारी की गई थीं। उपरोक्त परियोजना को बरेली विकास प्राधिकरण, बरेली (संक्षेप में, 'बीडीए') द्वारा निष्पादित किया जाना था। यहां यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि 1894 के अधिनियम के तहत जारी दो अधिसूचनाओं के जरिए, अहिरौला , चांदपुर बिचपुरी , मनोहर उर्फ रामनगर और डोहरिया गांवों में कुल 259.361597 हेक्टेयर भूमि बीडीए द्वारा विकास के उद्देश्य से राज्य सरकार द्वारा अधिग्रहित की गई थी। यह भी पक्षों के बीच मुद्दा नहीं है कि संदर्भित दो भूमि अधिग्रहण अधिसूचनाओं को इस न्यायालय के समक्ष कई रिट याचिकाओं के माध्यम से चुनौती दी गई थी , रिट याचिकाओं के उक्त समूह पर सुनवाई की गई तथा इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 06.09.2016 के निर्णय एवं आदेश द्वारा उसे खारिज कर दिया गया। इस न्यायालय ने अधिग्रहण को बरकरार रखा। इस न्यायालय के दिनांक 06.09.2016 के ऊपर उल्लिखित निर्णय को विशेष अनुमति अपील

के लिए एक याचिका के माध्यम से चुनौती दी गई थी, जो एसएलपी (सिविल) संख्या 25147/2016, पीयूष कुमार अग्रवाल एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य थी। विशेष अनुमति याचिका को भी सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 09.01.2017 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था। इसलिए, पक्षकार इस बात से सहमत प्रतीत होते हैं कि विवादित भूमि के अधिग्रहण को सर्वोच्च न्यायालय तक बरकरार रखा गया था।

5. विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी (संयुक्त संगठन), बरेली ने ग्राम डोहरिया , तहसील और जिला बरेली में अधिग्रहित भूमि के संबंध में एक पुरस्कार जारी किया। याचिकाकर्तागण का मामला यह है कि विवादित भूमि का कब्जा उनमें से किसी से नहीं लिया गया है और न ही कोई मुआवजा दिया गया है। विवादित भूमि पर आवासीय मकान अभी भी खड़े हैं और याचिकाकर्ता वहां शांतिपूर्वक रह रहे हैं। याचिकाकर्तागण के नाम पर बिजली कनेक्शन भी हैं और वे नगर निगम के अधिकारियों को जल कर का भुगतान करते हैं। याचिकाकर्तागण का कहना है कि 15.03.2022 को और उसके बाद त्वरित क्रम में, 20.04.2022 और 26.04.2022 को बीडीए के कुछ अधिकारी उनके घर आए और पैसे वसूलने के इरादे से याचिकाकर्तागण को परेशान किया

6. उपर्युक्त परिस्थितियों में वर्तमान रिट याचिका प्रस्तुत की गई है।

7. याचिकाकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता श्री सूर्य प्रकाश दुबे, प्रत्यर्थी संख्या 1 और 2 की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री हरे राम और प्रत्यर्थी संख्या 3 और 4 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री धर्मेंद्र सिंह चौहान को सुना गया।

8. याचिकाकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि बीडीए और उसके अधिकारी बहुत ही मनमाने और अवैध तरीके से काम कर रहे हैं। वे कानूनी कार्यवाही का सहारा लिए बिना ही याचिकाकर्तागण के घरों को ध्वस्त करना चाहते हैं। इस बात पर जोर दिया जाता है कि भूमि राम गंगा नगर आवासीय योजना, बरेली के लिए अधिग्रहित की गई थी और वर्तमान में याचिकाकर्तागण के घर विवादित भूमि पर, इसके आसपास के क्षेत्र में स्थित हैं। यह आग्रह किया जाता है कि अधिग्रहण का उद्देश्य आवासीय अपार्टमेंट प्रदान करना था, न कि पहले से मौजूद घरों को नष्ट करना। यह सुझाव दिया जाता है कि यदि उठाए गए निर्माण कानून के अनुसार नहीं पाए जाते हैं, तो याचिकाकर्तागण के मामले पर समझौता करने पर विचार किया जाना चाहिए। यह भी कहा जाता है कि मुआवजा, जो भुगतान नहीं किया गया है, को निर्माण के लिए समझौता शुल्क के विरुद्ध समायोजित करने का निर्देश दिया जा सकता है। यह आग्रह किया जाता है कि याचिकाकर्तागण के निर्माण, जो कानून का उल्लंघन नहीं करते हैं, को इस आधार पर अधिग्रहण से छूट दी जा सकती है कि वहां पहले से ही आवासीय घर मौजूद हैं और अधिग्रहण का उद्देश्य अंततः आवास प्रदान करना था। यह भी कहा गया है कि अधिग्रहण का उद्देश्य विफल हो गया है क्योंकि प्रस्तावित आवासीय योजना को बिल्कुल भी लागू नहीं किया गया है। विकास, यदि हुआ भी है तो वह बिना किसी एकरूपता के टुकड़ों में हुआ है।

9. यह तर्क दिया गया है कि इन परिस्थितियों में बी.डी.ए. को याचिकाकर्तागण के घरों को ध्वस्त

करने और उनकी जमीन पर जबरन कब्जा करने का कोई अधिकार नहीं है, जिसे उन्होंने पंजीकृत बिक्री विलेखों के माध्यम से वैध रूप से खरीदा है। यह भी आग्रह किया गया है कि हालांकि राज्य सरकार ने आवासीय कॉलोनी के रूप में विकास के उद्देश्य से भूमि का अधिग्रहण किया था, लेकिन बीडीए अब इस योजना का व्यवसायीकरण कर रहा है और याचिकाकर्तागण जैसे गरीब ग्रामीणों और आम लोगों की संपत्तियों पर अवैध रूप से कब्जा करने के बाद स्कूल, शॉपिंग मॉल, पार्क और उद्योगों के लिए भूखंड आवंटित कर रहा है। इस बात पर जोर दिया जाता है कि तीनों याचिकाकर्तागण के व्यक्तिगत भूखंडों के साथ विवादित भूमि बहुत छोटी है, जिस पर उनके साधारण आवास इकाइयाँ हैं। उन आवास इकाइयों को ध्वस्त करना और जबरन कब्जा करना, याचिकाकर्तागण को छत और आश्रय के उनके अधिकार से वंचित करने के अलावा संविधान के अनुच्छेद 300-ए के तहत उनके संवैधानिक अधिकार का उल्लंघन है।

10. राज्य सरकार की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता तथा बीडीए की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री चौहान ने इस याचिका को सुनवाई के लिए स्वीकार करने के प्रस्ताव का कड़ा विरोध किया है। उन्होंने एक स्वर में कहा कि यह याचिका गलत है। यह तर्क दिया गया है कि विवादित भूमि बीडीए की अधिग्रहित भूमि है, जहां याचिकाकर्ता अतिक्रमणकारी हैं। उन्हें निष्कासित करना तथा अतिक्रमण को समाप्त करना प्रत्यर्थीगण के अधिकार में है।

11. हमने बार में प्रस्तुत किए गए तर्कों पर ध्यानपूर्वक विचार किया है तथा रिकार्ड का अवलोकन किया है।

12. हमें तुरंत यह कहना चाहिए कि याचिकाकर्तागण द्वारा प्रस्तुत किए गए तर्कों पर केवल ध्यान दिया जाना चाहिए और उन्हें खारिज किया जाना चाहिए। तीनों याचिकाकर्तागण या उनके तत्काल पूर्ववर्तियों ने पंजीकृत बिक्री विलेखों के माध्यम से विवादित भूमि को सुरक्षित किया है, जो सभी 3 जून , 2004 के बाद निष्पादित किए गए थे, अर्थात, वह तिथि जिस दिन 1894 के अधिनियम की धारा 17(1) के साथ धारा 4(1) के तहत अधिसूचना जारी की गई थी। कानून के बारे में शायद ही कोई आपत्ति हो कि 1894 के अधिनियम की धारा 4(1) के तहत अधिसूचना जारी होने के बाद उसके मालिक द्वारा निष्पादित भूमि का कोई भी बिक्री विलेख शून्य है। यह हस्तांतरिती को कोई शीर्षक प्रदान नहीं करता है। सबसे अच्छा, यह बाद में हस्तांतरिती को मालिक के बदले में मुआवजे के लिए अपना दावा पेश करने का अधिकार प्रदान कर सकता है। 1894 के अधिनियम की धारा 4(1) के तहत अधिसूचना जारी होने के बाद निष्पादित किए गए हस्तांतरण से हस्तांतरिती में कोई भी हित नहीं बनता है।

13. यहाँ, यह न्यायालय पाता है कि 1894 के अधिनियम की धारा 4(1) के तहत अधिसूचना धारा 17(1) के प्रावधानों को लागू करते हुए जारी की गई थी और धारा 6(1) के तहत घोषणा धारा 17(4) को लागू करती है। उपरोक्त दो अधिसूचनाएँ 3 जून, 2004 और 4 जुलाई, 2005 को जारी की गई थीं। चूँकि धारा 17(1) लागू की गई थी, इसलिए यह स्पष्ट है कि 1894 के अधिनियम की धारा 5-ए के तहत जाँच को समाप्त कर दिया गया था और तत्काल कब्ज़ा कर लिया गया था। विवादित भूमि और अधिसूचना और धारा 4(1) और 6(1) के तहत घोषणा के अंतर्गत आने वाली सभी भूमियाँ सभी

बाधाओं से मुक्त होकर राज्य में निहित होंगी। इसलिए, याचिकाकर्तागण द्वारा दावा किए गए बिक्री विलेख, जिन पर उन्हें स्वामित्व प्रदान किया गया है, सभी शून्य हैं। विवादित भूमि पर निर्माण कार्य करने में याचिकाकर्तागण का कृत्य, जो राज्य की अधिग्रहित भूमि है, जिसे विकास के लिए बीडीए को सौंपा गया है, एक भोली और लापरवाह हरकत है। याचिकाकर्ता स्वामित्व बनाने के लिए इक्विटी का हवाला देकर अपने स्वयं के गलत कामों का लाभ नहीं उठा सकते, जहां एक शून्य लेनदेन के अलावा कुछ भी उन्हें नुकसान नहीं पहुंचाता।

14. 1894 के अधिनियम की धारा 4(1) के तहत अधिसूचना जारी होने के बाद निष्पादित बिक्री विलेखों की वैधता के संबंध में , जिसके बाद धारा 6(1) के तहत घोषणा की जाती है, **मीरा साहनी बनाम दिल्ली के लेफ्टिनेंट गवर्नर और अन्य, (2008) 9 एससीसी 177** में सुप्रीम कोर्ट के फैसले का संदर्भ लिया जा सकता है। मीरा साहनी (पूर्वोक्त) में, यह माना गया है:

> **17.** जब किसी भूमि का अधिग्रहण किया जाना हो, तो राज्य सरकार द्वारा भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 4 के तहत एक अधिसूचना जारी करना कानून के अनुसार सख्ती से आवश्यक है। उक्त अधिसूचना के बाद भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 6 के तहत एक घोषणा भी की जानी आवश्यक है और ऐसी अधिसूचना जारी होने के साथ ही मालिक द्वारा बनाया गया कोई भी भार या ऐसी अधिसूचना जारी होने के बाद किया गया कोई भी हस्तांतरण शून्य माना जाएगा और सरकार पर बाध्यकारी नहीं होगा। इस न्यायालय के कई निर्णयों ने कानून के उपरोक्त प्रस्ताव को मान्यता दी है जिसमें यह माना गया था कि बाद में खरीदार अधिग्रहण की कार्यवाही और अधिसूचना की वैधता या अधिनियम की धारा 6 के तहत घोषणा के बाद भूमि पर कब्जा लेने में अनियमितता को चुनौती नहीं दे सकता है।
>
> **18.** उ0प्र0 जल निगम बनाम कालरा प्रॉपर्टीज (प्रा.) लिमिटेड [(1996) 3 एससीसी 124] में इस न्यायालय द्वारा कहा गया था कि: (एससीसी पृष्ठ 126, पैरा 3)
>
> "3. ... इस मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, हम मामले को आगे स्थगित करने या मामले को उच्च न्यायालय के समक्ष नए सिरे से विचार के लिए भेजने के पक्ष में नहीं थे। यह अच्छी तरह से स्थापित कानून है कि धारा 4(1) के तहत अधिसूचना राजपत्र में प्रकाशित होने के बाद मालिक द्वारा बनाया गया कोई भी भार सरकार को बाध्य नहीं करता है और खरीदार को संपत्ति पर कोई अधिकार नहीं मिलता है।"
>
> **19.** स्नेह प्रभा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(1996) 7 एससीसी 426] में निम्नानुसार कहा गया है: (एससीसी पृष्ठ 430, पैरा 5)
>
> "5. ... यह स्थापित कानून है कि कोई भी व्यक्ति जो धारा 4(1) के तहत अधिसूचना के प्रकाशन के बाद भूमि खरीदता है, वह अपने जोखिम पर ऐसा करता है। धारा 4(1) के तहत अधिसूचना

के प्रकाशन का उद्देश्य सभी को यह सूचित करना है कि भूमि की आवश्यकता है या सार्वजनिक उद्देश्य के लिए इसकी आवश्यकता होने की संभावना है और अधिग्रहण की कार्यवाही किसी को भी इसके तहत अधिग्रहित भूमि पर कब्जा करने में बाधा डालती है। यह नामित अधिकारी को प्रारंभिक कार्य आदि करने के लिए भूमि पर प्रवेश करने के लिए अधिकृत करता है। इसलिए, धारा 4(1) के तहत अधिसूचना के प्रकाशन के बाद भूमि का कोई भी हस्तांतरण सरकार या अधिग्रहण के तहत लाभार्थी को बाध्य नहीं करता है। भूमि पर कब्जा लेने पर, अधिनियम की धारा 16 के तहत भूमि में सभी अधिकार, शीर्षक और हित राज्य में निहित हो जाते हैं, सभी बाधाओं से मुक्त होते हैं और इस प्रकार भूमि पर पूर्ण शीर्षक इसके तहत अधिग्रहित किया जाता है।"

20. कानून के उक्त प्रस्ताव को अजय कृष्ण सिंघल बनाम भारत संघ [(1996) 10 एससीसी 721] और स्टार वायर (इंडिया) लिमिटेड बनाम हरियाणा राज्य [(1996) 11 एससीसी 698] में भी दोहराया गया था।

15. यद्यपि **मीरा साहनी (पूर्वोक्त)** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय में पहले से ही इसका संदर्भ है, इस बिंदु पर लोकस क्लासिकस **उ0प्र0 जल निगम, लखनऊ जरिए इसके अध्यक्ष और अन्य बनाम कालरा प्रॉपर्टीज (पी) लिमिटेड, लखनऊ और अन्य, (1996) 3 एससीसी 124** में कानून का प्रवर्तन है, जहां यह अभिनिर्धारित किया गया है:

3. ... यह स्थापित कानून है कि धारा 4(1) के तहत अधिसूचना राजपत्र में प्रकाशित होने के बाद मालिक द्वारा बनाया गया कोई भी भार सरकार को बाध्य नहीं करता है और खरीदार संपत्ति पर कोई अधिकार प्राप्त नहीं करता है। इस मामले में, धारा 4(1) के तहत अधिसूचना 24-3-1973 को प्रकाशित हुई थी, भूमि का कब्ज़ा 5-7-1973 को लिया गया था और पंपिंग स्टेशन हाउस का निर्माण किया गया था। निस्संदेह, धारा 6 के तहत घोषणा बाद में 8-7-1973 को प्रकाशित हुई थी। धारा 5-ए के तहत जांच से छूट देते हुए धारा 17(4) के तहत शक्ति का प्रयोग किया गया था और धारा 9 के तहत नोटिस की सेवा पर कब्ज़ा लिया गया था, क्योंकि अत्यावश्यकता बहुत थी, अर्थात, बाढ़ के पानी को निकालने के लिए पंपिंग स्टेशन हाउस का निर्माण किया जाना था। परिणामस्वरूप, भूमि धारा 17(2) के तहत सभी भारों से मुक्त होकर राज्य में निहित हो गई। यह भी स्थापित कानून है कि एक बार कब्जा ले लिए जाने पर, धारा 17(2) के प्रभाव से, भूमि सभी भारों से मुक्त होकर राज्य में निहित हो जाती है, जब तक कि अधिग्रहण से वापसी के लिए राजपत्र में धारा 48(1) के तहत अधिसूचना प्रकाशित नहीं हो जाती। इसलिए, 1984 के अधिनियम 68 द्वारा संशोधित धारा 11-ए लागू नहीं होती और अधिग्रहण

समाप्त नहीं होता है। इसलिए, धारा 4(1) के तहत अधिसूचना और धारा 6 के तहत घोषणा वैध बनी रहेगी। अधिनियम के तहत अधिग्रहित भूमि को विनिवेशित करने का कोई अन्य प्रावधान नहीं है, जब तक कि, जैसा कि पहले कहा गया है, धारा 48(1) के तहत अधिसूचना प्रकाशित नहीं हो जाती और उसके अनुसार कब्जा वापस नहीं कर दिया जाता। इसके अलावा, चूंकि मेसर्स कालरा प्रॉपर्टीज, प्रत्यर्थी ने धारा 4(1) के तहत अधिसूचना प्रकाशित होने के बाद भूमि खरीदी थी, इसलिए राज्य के खिलाफ इसकी बिक्री शून्य है और इसने भूमि पर कोई अधिकार, शीर्षक या हित प्राप्त नहीं किया परिणामस्वरूप, यह स्थापित कानून है कि वह धारा 6 के तहत घोषणा के प्रकाशन से पहले अधिसूचना की वैधता या भूमि पर कब्जा लेने की नियमितता को चुनौती नहीं दे सकता है।

16. इस न्यायालय को लगता है कि विध्वंस और बेदखली के खिलाफ़ मांगी गई राहत की आड़ में, कानून के अनुसार नहीं, रिट याचिका में उठाए गए तर्कों के साथ, याचिकाकर्ता जो करना चाहते हैं, वह उस अधिग्रहण को मिटाना है जो अंतिम रूप ले चुका है और जिसकी वैधता सुप्रीम कोर्ट तक पुष्ट हो चुकी है। एक बात यह है कि याचिकाकर्तागण को सीधे और कपटपूर्ण तरीके से वह करने की अनुमति नहीं दी जा सकती जो वे सीधे कानून के तहत हासिल नहीं कर सकते।

17. इसके अलावा, याचिकाकर्ता 1894 के अधिनियम की धारा 4(1) के तहत अधिसूचना जारी होने के बाद खरीदार हैं, जिसके बाद धारा 6(1) के तहत घोषणा की गई है, जहां धारा 17(2) के तहत भूमि राज्य में निहित है, सभी बाधाओं से मुक्त है। उन्हें उस अधिग्रहण पर अप्रत्यक्ष तरीके से सवाल उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है, क्योंकि धारा 4(1) अधिसूचना जारी होने के बाद खरीदार होने के नाते उन्हें इसे सीधे चुनौती देने की अनुमति नहीं है। 1894 के अधिनियम की धारा 4(1) के तहत अधिसूचना जारी होने के बाद हस्तांतरण के तहत लेने वाले खरीदारों के अधिकार के बारे में, सुप्रीम कोर्ट ने **शिव कुमार और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य, (2019) 10 एससीसी 229** में बाद के खरीदारों में ऐसे किसी भी अधिकार के अस्तित्व को खारिज कर दिया, जो मिसाल की एक स्थिर रेखा को दोहराता है। **शिव कुमार (पूर्वोक्त)** भी एक ऐसा मामला था, जिसमें एक अनधिकृत कॉलोनी बसी थी और उसके सदस्य, जो याचिकाकर्ता थे, ने दावा किया था कि अवार्ड पारित होने के बावजूद वे विषयगत भूमि पर वास्तविक भौतिक कब्जे में थे। एनसीटी सरकार ने भूमि अधिग्रहण, पुनर्वास और पुनर्स्थापन अधिनियम, 2013 में उचित मुआवज़ा और पारदर्शिता का अधिकार 01.01.2014 से लागू होने के बाद, अनधिकृत कॉलोनी को अनंतिम रूप से नियमित कर दिया था। अनधिकृत कॉलोनी में बसने वालों ने दावा किया कि चूंकि राज्य या उनके अधिकारियों ने कभी वास्तविक भौतिक कब्ज़ा नहीं लिया, इसलिए अधिग्रहण समाप्त हो गया। उपरोक्त तथ्यों के संदर्भ में ही **शिव कुमार** में, सर्वोच्च न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों ने यह माना था:

> **8.** यह निर्धारित किया गया है कि क्रेता किसी भी आधार पर कब्जा लेने की कार्यवाही पर सवाल नहीं उठा सकते।

धारा 4 अधिसूचना के बाद क्रेता को भूमि पर कोई अधिकार नहीं मिलता क्योंकि बिक्री शुरू से ही शून्य है और उसे पॉलिसी के तहत भूमि पर दावा करने का कोई अधिकार नहीं है।

18. याचिकाकर्तागण द्वारा दावा की गई दूसरी राहत के समर्थन में, यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्तागण के पास स्थायी कब्ज़ा है और उन्होंने आवासीय घर बनाए हैं, जहाँ उनके परिवार रहते हैं। बीडीए सहित प्रत्यर्थी अधिकारी उन्हें कानून के अनुसार नहीं बल्कि जबरन बेदखल करने की धमकी दे रहे हैं। यह तर्क दिया गया है कि स्थायी कब्ज़ा रखने वाले अतिचारी को भी कानून के अनुसार बेदखल या बेदखल नहीं किया जा सकता है। याचिकाकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, कानून का यह निषेधादेश उस मामले में लागू होता है जहाँ अतिचारी को वास्तविक मालिक द्वारा भी बेदखल करने की मांग की जाती है। कानून के एक सामान्य प्रस्ताव के लिए, प्रस्तुतिकरण सही हो सकता है, लेकिन राज्य द्वारा भूमि अधिग्रहण के मामले में, जहां 1894 के अधिनियम की धारा 4(1) के साथ धारा 17(1) के तहत अधिसूचना जारी होने और धारा 6(1) के साथ धारा 17(4) के तहत घोषणा के बाद, भूमि धारा 17(2) के तहत राज्य में निहित हो गई है, सभी भारमुक्त, ऐसी भूमि पर कब्जा करने वाला प्रत्येक व्यक्ति अतिचारी है, जिसे राज्य द्वारा बेदखल किया जा सकता है। उपरोक्त सिद्धांत को सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ ने **इंदौर विकास प्राधिकरण बनाम मनोहरलाल एवं अन्य, एआईआर 2020 एससी 1496** में आधिकारिक रूप से निर्धारित किया है। इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने **श्योराज सिंह एवं अन्य बनाम उ0प्र0 राज्य एवं अन्य, 2021 एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 873** में, इंदौर विकास प्राधिकरण (पूर्वोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांत का पालन करते हुए माना है:

"20. "भूमि अधिग्रहण के पश्चात राज्य द्वारा भूमि पर कब्जा" का क्या अर्थ है, इस मुद्दे पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ ने इंदौर विकास प्राधिकरण बनाम मनोहरलाल एवं अन्य एआईआर 2020 एससी 1496 में भी विचार किया है। इसमें यह माना गया है कि भूमि अधिग्रहण और पुरस्कार पारित होने के पश्चात भूमि सभी प्रकार के बंधनों से मुक्त होकर राज्य में निहित हो जाती है। राज्य के पास भूमि का निहित होना कब्जे के साथ है। उसके पश्चात कब्जा रखने वाले किसी भी व्यक्ति को अतिचारी माना जाएगा । जब भूमि का बड़ा हिस्सा अधिग्रहित किया जाता है, तो राज्य को उस पर कब्जा बनाए रखने और भूमि का उपयोग होने तक उस पर खेती शुरू करने के लिए किसी व्यक्ति या पुलिस बल को नहीं लगाना चाहिए। अधिग्रहण की प्रक्रिया पूरी होने के पश्चात सरकार को उस पर निवास या भौतिक रूप से कब्जा करना भी नहीं चाहिए। यदि अधिग्रहण की प्रक्रिया पूरी हो जाने के पश्चात भूमि राज्य में निहित हो जाती है, तो किसी भी व्यक्ति द्वारा भूमि पर कब्जा बनाए रखना या किसी भी व्यक्ति द्वारा किया गया पुनः प्रवेश राज्य की भूमि पर अतिचार के अलावा और कुछ

नहीं है। प्रासंगिक अनुच्छेद 244, 245 और 256 नीचे उद्धृत हैं:

"244. 1894 के अधिनियम की धारा 16 में प्रावधान है कि राज्य सरकार द्वारा अवार्ड पारित करने के बाद भूमि पर कब्जा लिया जा सकता है और उसके बाद भूमि राज्य सरकार में सभी तरह के बंधनों से मुक्त हो जाती है। धारा 17(1) में तात्कालिकता के मामले में भी इसी तरह के प्रावधान किए गए हैं। 1894 के अधिनियम में "कब्जा" शब्द का इस्तेमाल किया गया है, जबकि 2013 के अधिनियम की धारा 24(2) में "भौतिक कब्जा" शब्द का इस्तेमाल किया गया है। यह प्रस्तुत किया गया है कि जब वास्तविक भौतिक कब्जा भूमिस्वामी के पास है, तो कब्जा लेने के लिए पंचनामा बनाना पर्याप्त नहीं है और धारा 24(2) के अनुसार वास्तविक भौतिक कब्जा लिया जाना चाहिए, किसी अन्य रूप में कब्जा नहीं। जब राज्य ने भूमि का अधिग्रहण कर लिया है और अवार्ड पारित हो गया है, तो भूमि सभी बंधनों से मुक्त होकर राज्य सरकार में निहित हो जाती है। राज्य में भूमि के निहित होने का कार्य कब्जे के साथ होता है, उसके बाद कब्जा बनाए रखने वाले किसी भी व्यक्ति को अतिचारी माना जाना चाहिए और उसे कब्जा करने का कोई अधिकार नहीं है। वह भूमि जो राज्य में निहित है, सभी भारों से मुक्त है।

245. यह प्रश्न उठता है कि क्या 1894 के अधिनियम के तहत कब्जा लेने और धारा 24(2) में प्रयुक्त "भौतिक कब्जा" के बीच कोई अंतर है। वास्तव में, 1894 के अधिनियम के तहत जो विचार किया गया था, उसमें कब्जा लेने का मतलब केवल भूमि का भौतिक कब्जा था। 2013 के अधिनियम के तहत कब्जा लेना हमेशा भूमि का भौतिक कब्जा लेने के बराबर था। जब राज्य सरकार भूमि का अधिग्रहण करती है और कब्जा लेने का ज्ञापन तैयार करती है , तो वह भूमि का भौतिक कब्जा लेने के बराबर होता है। अधिग्रहित की गई संपत्ति के बड़े हिस्से या अन्यथा पर, सरकार को किसी अन्य व्यक्ति या पुलिस बल को उस पर कब्जा करने और उस पर खेती शुरू करने के लिए नहीं रखना चाहिए, जब तक कि भूमि का उपयोग उस उद्देश्य के लिए न किया जाए जिसके लिए इसे

अधिग्रहित किया गया है। सरकार को कब्जा प्राप्त करने के बाद उस पर रहने या भौतिक रूप से कब्जा करने की अपेक्षा नहीं की जाती है, इसके लिए जांच कार्यवाही करके। इसके बाद, यदि भूमि पर कोई और कब्जा कर लिया जाता है या भूमि पर कोई पुनः प्रवेश किया जाता है या कोई व्यक्ति खुली भूमि पर खेती करना शुरू कर देता है या आउटहाउस में रहना शुरू कर देता है, आदि, तो उसे राज्य के कब्जे वाली भूमि पर अतिचारी माना जाता है। अतिचारी का कब्जा हमेशा वास्तविक स्वामी यानी मामले में राज्य सरकार के लाभ के लिए होता है।

xxxx

256. इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि अधिकार का अधिकार कब्ज़ा होने के साथ ही निहित होता है और 1894 के अधिनियम की धारा 16 और 17 के तहत क़ानून में प्रावधान है कि एक बार कब्ज़ा हो जाने के बाद, पूर्ण अधिकार का अधिकार हो जाता है। यह एक अपरिवर्तनीय अधिकार है और इसके बाद अधिकार का अधिकार कब्ज़ा होने के साथ ही निहित हो जाता है। धारा 16 के तहत निर्दिष्ट अधिकार का अधिकार विभिन्न चरणों के बाद होता है, जैसे कि धारा 4 के तहत अधिसूचना, धारा 6 के तहत घोषणा, धारा 9 के तहत नोटिस, धारा 11 के तहत पुरस्कार और फिर कब्ज़ा। सभी तरह के बंधनों से पूरी तरह मुक्त संपत्ति के अधिकार के वैधानिक प्रावधान को पूर्ण प्रभाव दिया जाना चाहिए। न केवल कब्ज़ा राज्य में निहित होता है बल्कि अन्य सभी बंधन भी तुरंत हटा दिए जाते हैं। भूमिधारक का स्वामित्व समाप्त हो जाता है । और राज्य संपत्ति का पूर्ण स्वामी और कब्ज़ा बन जाता है। इसके बाद संपत्ति पर भूस्वामी का कोई नियंत्रण नहीं रह जाता। वह संपत्ति को लेने और उस पर नियंत्रण करने के लिए कोई दुश्मनी नहीं रख सकता। भले ही उसने राज्य द्वारा कब्ज़ा किए जाने के बाद भी उस पर कब्ज़ा बनाए रखा हो या अन्यथा उस पर अतिक्रमण किया हो, वह अतिचारी है और अतिचारी का ऐसा कब्ज़ा उसके लाभ के लिए और मालिक की ओर से होता है ।" (प्रभाव वर्द्धित)

19. वर्तमान मामले में, जहां तक विवादित भूमि का संबंध है, याचिकाकर्ता कोई नहीं हैं। वे राज्य की भूमि पर अतिक्रमणकारी हैं, जिस पर

अधिग्रहण की कार्यवाही में पहले ही कब्ज़ा किया जा चुका है। केवल इसलिए कि एक बड़ी योजना के लिए अधिग्रहित भूमि के बड़े हिस्से में, कुछ दूरदराज के कोने को बिना सुरक्षा के छोड़ दिया गया है, याचिकाकर्तागण को शून्य बिक्री विलेखों के आधार पर, कब्जे के आधार पर अधिकार का दावा करने का अधिकार नहीं है। राज्य की ऐसी अधिग्रहित भूमि पर कब्जे के अधिकार का दावा स्वाभाविक रूप से इतना अवैध है कि इसे कब्जेदार का स्थायी कब्ज़ा नहीं माना जा सकता है, जिसे केवल न्यायिक प्रक्रिया के माध्यम से ही हटाया जा सकता है।

20. इन परिस्थितियों में, इस रिट याचिका में कोई बल नहीं है। यह **असफल** है और **खारिज** की जाती है।

(2023) 3 ILRA 332

मूल न्यायाधिकार

नागरिक पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद 20.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सूर्य प्रकाश केसरवानी,

माननीय न्यायमूर्ति अनीश कुमार गुप्ता,

रिट सी संख्या 28220/2022

तथा

अन्य सम्बद्ध वाद

राजेंद्र प्रसाद ...याचिकाकर्ता

बनाम

यूपी राज्य एवं अन्य ....प्रतिवादीगण

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री अरविन्द सिंह

अधिवक्ता प्रतिवादीगण: सी.एस.सी.

A. चरित्र प्रमाण पत्र - जारी करना और अस्वीकार करना - शासनादेश दिनांक 02.02.2023 - पैराग्राफ 6A और 6B - हालांकि फोरम प्रदान किया गया है, फिर भी प्रक्रियाएँ समाप्त नहीं की गई हैं - प्रभाव - उच्च न्यायालय ने पैराग्राफ 6A और 6B को लागू करने का निर्देश दिया - उच्च न्यायालय ने चरित्र प्रमाण पत्र के जारी, अस्वीकृति, निलंबन या रद्द करने आदि के लिए प्रक्रियाओं को समाप्त करने का भी निर्देश दिया। (पैराग्राफ 5 और 8)

रिट याचिकाएँ निस्तारित। (E-1)

<u>माननीय न्यायमूर्ति सूर्य प्रकाश केसरवानी</u>

<u>माननीय न्यायमूर्ति अनीश कुमार गुप्ता</u>

1. रिट-सी संख्या 28220/2022 में याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री अरविंद सिंह, रिट-सी संख्या 28071/2022 में याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री राहुल मिश्रा, रिट-सी संख्या 32690/2022 में याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री राकेश कुमार दूबे, रिट-सी संख्या 34443/2022 में याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता परमेश्वर कुमार चौधरी के होल्डिंग ब्रीफ श्री संतोष कुमार सिंह जिसने विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री राकेश कुमार पाण्डेय, रिट-सी संख्या 34611/2022 में याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री उत्कर्ष श्रीवास्तव, रिट-सी संख्या 36083/2022 में याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री शीतला प्रसाद पाण्डेय, रिट-सी संख्या 37521/2022 में याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री श्रवण कुमार पाण्डेय, रिट-सी संख्या 34540/2022 में याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री रमेश कुमार कुशवाहा तथा राज्य-प्रत्यर्थीगण की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री अंकुर टंडन की सहायता से विद्वान

अपर शासकीय अधिवक्ता श्री मनीष गोयल को सुना।

2. याचिकर्तागण की शिकायत या तो है: -

(क) चरित्र प्रमाणपत्र के लिए प्रार्थना पत्र अस्वीकृत किए जाने के विरुद्ध; या

(ख) उनके चरित्र प्रमाण-पत्रों का निलंबन या निरस्तीकरण; या

(ग) चरित्र प्रमाण पत्र जारी करने के लिए कोई साधन उपलब्ध न कराना; या

(घ) जिला मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेशों को चुनौती देने के लिए कोई मंच उपलब्ध न कराना, जिससे चरित्र प्रमाण-पत्र प्रार्थना पत्र पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े।

3. चूंकि वर्तमान रिट याचिकाकर्तागण में शामिल विवाद मुख्य रूप से उपर्युक्त बिंदुओं पर है और राज्य ने प्रत्यर्थी संख्या 1 का व्यक्तिगत हलफनामा दायर किया है जिसमें एक मंच प्रदान किया गया है और **विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता ने कहा है कि चरित्र प्रमाण पत्र देने या देने से इनकार करने के साधन तैयार किए जा रहे हैं,** इसलिए, पक्षकारगण के लिए विद्वान अधिवक्ता की सहमति से, इन सभी रिट याचिकाकर्तागण पर अंतिम रूप से सुनवाई हो रही है।

4. प्रत्यर्थी संख्या 1 की ओर से दायर अपने व्यक्तिगत हलफनामे दिनांक 20.02.2023 के पैराग्राफ संख्या 3 और 4 में श्री संजय प्रसाद, प्रमुख सचिव, गृह विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ ने निम्नानुसार कहा है:

> "3. इस संबंध में, यह यहां प्रस्तुत किया गया है कि चरित्र प्रमाण पत्र के दिशानिर्देशों के संबंध में उचित विचार करने के बाद, उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा दिनांक 02.02.2023 को एक शासनादेश जारी किया गया था, जिसमें यह कहा गया है कि दिनांक 02.11.2006, 12.12.2007 और 20.05.2013 के सरकारी आदेश के संदर्भ में, **यदि संबंधित जिला मजिस्ट्रेट/कलेक्टर द्वारा नए चरित्र प्रमाण पत्र के लिए कोई प्रार्थना पत्र अस्वीकार कर दिया जाता है, कारणों सहित ऐसी सूचना आवेदक को दी जाएगी और आवेदक एक माह के भीतर अभ्यावेदन के माध्यम से संबंधित संभागीय आयुक्त के पास जा सकता है, जिस पर संबंधित संभागीय आयुक्त दोनों पक्षों को सुनवाई का अवसर प्रदान करने के बाद एक तर्कसंगत आदेश पारित करेगा और इसकी सूचना संबंधित जिला मजिस्ट्रेट/कलेक्टर को दी जाएगी जो तदनुसार कार्य करेंगे।** दिनांक 02.02.2023 के सरकारी आदेश की एक वास्तविक फोटोस्टेट प्रति इसके साथ संलग्न की जा रही है और इसे इस शपथ पत्र में **अनुलग्नक संख्या पीए-1** के रूप में चिह्नित किया गया है।
>
> 4. यह भी प्रावधान किया गया है कि **पहले से जारी किए गए चरित्र प्रमाणपत्रों के संबंध में,** यदि किसी जिला मजिस्ट्रेट/कलेक्टर द्वारा इसे **रद्द** कर दिया जाएगा, **तो संबंधित व्यक्ति को उसके चरित्र प्रमाण पत्र को रद्द करने की सूचना दी जाएगी और एक महीने के भीतर वह संबंधित मंडलायुक्त के समक्ष अपना अभ्यावेदन दायर कर सकता है और दोनों पक्षों को अवसर देने के बाद संबंधित जिला**

मजिस्ट्रेट/कलेक्टर को सूचित किया जाएगा, जो तदनुसार कार्यवाही करेगा।"

5. **याचिकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता संयुक्त रूप से** प्रस्तुत करते हैं कि हालांकि राज्य सरकार द्वारा अब जी.ओ. संख्या 47/6-पु0-14-23-50(07)/2006 दिनांकित 02.02.2023 के माध्यम से एक मंच प्रदान किया गया है और फिर भी **राज्य सरकार द्वारा चरित्र प्रमाण पत्र प्रार्थना पत्र जारी करने या अस्वीकार करने या चरित्र प्रमाण पत्र को रद्द करने के लिए साधनों को अंतिम रूप नहीं दिया गया है।** याचिकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता ने चंद्रिका प्रसाद निषाद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (रिट याचिका संख्या 5018 (एमएस)/2005 निर्णीत दिनांक 12.07.2006 (पैराग्राफ संख्या 30, 31 व 101) में इस न्यायालय की विद्वान एकल पीठ द्वारा निर्धारित कानून की ओर भी हमारा ध्यान आकर्षित किया है, और इसके अनुसार शासनादेश दिनांक 05.01.2007 को जारी किया गया था।

6. विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता ने हमारा ध्यान 02.11.2006 के शासकीय आदेश और पीडब्ल्यूडी-टी-4 (चरित्र प्रमाण पत्र का प्रपत्र) के नोट संख्या 6 की ओर आकर्षित किया है। शासनादेश संख्या 47/6-पु0-14-23-50(07)/2006 दिनांक 02.02.2023 नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"<u>संख्या-47/6-पु०-14-23-50(07)/2006</u>

प्रेषक,

दुर्गा शंकर मिश्र,
मुख्य सचिव,
उत्तर प्रदेश शासन।

सेवा में,

1. समस्त अपर मुख्य सचिव/प्रमुख/सचिव/सचिव उत्तर प्रदेश शासन।

2. पुलिस महानिदेशक, उत्तर प्रदेश, लखनऊ।

3. समस्त विभागध्यक्ष, उत्तर प्रदेश, लखनऊ।

4. समस्त आयुक्त/जिलाधिकारी उत्तर प्रदेश।

5. समस्त पुलिस आयुक्त/वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक/पुलिस अधीक्षक, उत्तर प्रदेश।

गृह (पुलिस) अनुभाग-14 लखनऊः- दिनांक 02 फरवरी, 2023

विषयः- प्रदेश में माफिया गतिविधियों पर रोक लगाने हेतु मार्ग-दर्शक सिद्धान्त।

महोदय,

उपर्युक्त विषयक शासनादेश संख्या-4435/6-पु०-14-06-50(07)2006, दिनांक 02.11.2006, शासनादेश संख्या- 87यू०ओ०/6-पु०-14-07185/07, दिनांक 12.12.2007 एवं शासनादेश संख्या- 1624/6-पु०-14-06-50(07)/2006, दिनांक 20.05.2013 का संदर्भ ग्रहण करने का कष्ट करें।

2. शासनादेश संख्या-87यू०ओ०/6-पु०-14-07-185/07, दिनांक 12.12.2007 के साथ संलग्न प्रपत्र संख्या-पी०डब्लू०डी०टी-4 के प्रस्तर-6 में यह व्यवस्था निर्धारित की गयी थी कि " इस प्रमाण-पत्र के निर्गत करने अथवा निरस्त करने के संबंध में अन्तिम निर्णय सम्बन्धित जिला मजिस्ट्रेट/कलेक्टर का होगा"।

3. मा० उच्च न्यायालय, इलाहाबाद में योजित रिट याचिका संख्या-28220/2022 राजेन्द्र प्रसाद बनाम उ०प्र० राज्य व अन्य के साथ टैग रिट सी संख्या-37521/2022 पंकज कुमार तिवारी बनाम उ०प्र० राज्य व अन्य में पारित आदेश दिनांक 16.01.2023 के क्रम में सम्यक विचारोपरान्त

मुझे यह कहने का निर्देश हुआ है कि उपर्युक्त संदर्भित शासनादेश दिनांक 12.12.2007 के संलग्न प्रारूप पीडब्लूडी-टी-4 के निर्देश/नोट के अनुक्रम में प्रस्तर-6 के सम्बन्ध में निम्नवत व्यवस्था की जाती हैः-

6ए- "इस प्रमाण-पत्र को निर्गत करने अथवा निरस्त करने के संबंध में अन्तिम निर्णय सम्बन्धित जिला मजिस्ट्रेट/कलेक्टर का होगा। जिला मजिस्ट्रेट/कलेक्टर द्वारा नवीन चरित्र प्रमाण-पत्र प्रार्थना पत्र पत्र के सम्बन्ध में प्रार्थना पत्र को अस्वीकार किये जाने की स्थिति में कारण सहित अस्वीकरण सूचना आवेदक को तामील करायी जायेगी। आवेदक द्वारा सूचना तामील के 01 माह के अन्दर अपना प्रत्यावेदन सम्बन्धित मण्डलायुक्त के समक्ष प्रस्तुत किया जा सकेगा, जिस पर उभय पक्षों को सुनकर सम्बन्धित मण्डलायुक्त चरित्र प्रमाण पत्र निर्गत किये जाने अथवा न किये जाने के सम्बन्ध में अपना सुस्पष्ट अभिमत/निर्णय सम्बन्धित जिला मजिस्ट्रेट/कलेक्टर को प्रेषित करेगा। सम्बन्धित मण्डलायुक्त द्वारा चरित्र प्रमाण पत्र निर्गत किये जाने का निर्णय दिये जाने की स्थिति में जिला मजिस्ट्रेट/कलेक्टर उक्त निर्णय के समादर मे चरित्र प्रमाण पत्र निर्गत करेगा"।

6बी- पूर्व से निर्गत चरित्र प्रमाण-पत्र को जिला मजिस्ट्रेट/कलेक्टर द्वारा निरस्त किये जाने की दशा में आवेदक को निरस्तीकरण के कारण सहित सूचना तामील करायी जायेगी। आवेदक द्वारा सूचना तामील के 01 माह के अन्दर अपना प्रत्यावेदन सम्बन्धित मण्डलायुक्त के समक्ष प्रस्तुत किया जा सकेगा, जिस पर उभय पक्षों को सुनकर सम्बन्धित मण्डलायुक्त चरित्र प्रमाण पत्र बहाल किये जाने अथवा न किये जाने के सम्बन्ध में अपना सुस्पष्ट अभिमत/निर्णय सम्बन्धित जिला मजिस्ट्रेट/कलेक्टर को प्रेषित करेगा। सम्बन्धित मण्डलायुक्त द्वारा चरित्र प्रमाण पत्र बहाल किये जाने का निर्णय दिये जाने की स्थिति में जिला मजिस्ट्रेट/कलेक्टर उक्त निर्णय के समादर मे चरित्र प्रमाण पत्र बहाल करेगा" ।

4. शासनादेश संख्या- 87यू०ओ०/6-पु०-14-07-185/07, दिनांक 12.12.2007 के साथ संलग्न प्रपत्र संख्या-पी०डब्लू०डी०-टी-4 के प्रस्तर-6 को इस सीमा तक संशोधित समझा जाये। शासनादेशों को शेष शर्ते/प्रक्रिया यथावत रहेंगी।

भवदीय

(दुर्गा शंकर मिश्र)
मुख्य सचिव।"

7. विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता द्वारा एक बयान दिया गया है कि चरित्र प्रमाण पत्र जारी करने, निलंबन और रद्द करने आदि के लिए साधनों की तैयारी राज्य सरकार के स्तर पर प्रक्रिया में है, इसलिए, हम मामले के इस पहलू पर कोई राय व्यक्त नहीं करना चाहते हैं।

8. उपरोक्त सरकारी आदेश में राज्य सरकार द्वारा अपनाए गए स्वयं के रुख को ध्यान में रखते हुए और विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता द्वारा दिए गए बयान को ध्यान में रखते हुए कि चरित्र प्रमाण पत्र जारी करने, निलंबित करने या रद्द करने के लिए साधन तैयार करना राज्य सरकार द्वारा तैयार किया जा रहा है, हम राज्य सरकार को निर्देश देते हैं, जो निम्नानुसार है:

(i) पूर्वोक्त सरकारी आदेश के पैराग्राफ संख्या 3 के तहत पैराग्राफ संख्या 6ए, और 6बी को राज्य

सरकार और सभी संबंधित अधिकारियों द्वारा तुरंत लागू किया जाएगा।

(ii) उपरोक्त पैराग्राफ संख्या 6ए, या 6बी के तहत किसी व्यक्ति द्वारा किए गए अभ्यावेदन दिनांक 02.02.2023 के शासनादेश को संबंधित मंडल आयुक्त द्वारा सभी संबंधित पक्षों को सुनवाई का उचित अवसर प्रदान करने के बाद, बोलने और तर्कसंगत आदेश द्वारा अभ्यावेदन प्रस्तुत करने की तारीख से छह सप्ताह के भीतर निस्तारित किया जाएगा।

(iii) चूंकि ये रिट याचिकाएं इस न्यायालय के समक्ष कई महीनों से लंबित हैं, इसलिए हम सभी याचिकर्तागण को जिला मजिस्ट्रेट के आदेश के खिलाफ उपरोक्त पैराग्राफ संख्या 6ए, या 6बी, जैसा भी मामला हो, के तहत डिवीजनल कमिश्नर के समक्ष एक अभ्यावेदन देने के लिए 30 दिन का समय देते हैं।

(iv) जहां जिला मजिस्ट्रेट/कलक्टर प्रार्थना पत्र प्रस्तुत करने की तारीख से एक माह के भीतर आवेदक के चरित्र प्रमाण-पत्र प्रार्थना पत्र पर कोई आदेश पारित नहीं करता है तो ऐसे आवेदक को प्रमंडलीय आयुक्त के समक्ष अभ्यावेदन देने का भी अधिकार होगा जो अभ्यावेदन प्रस्तुत करने की तारीख से छह सप्ताह के भीतर संबंधित पक्षों को सुनवाई का उचित अवसर प्रदान करने के बाद उपयुक्त आदेश जारी करेगा।

(v) चरित्र प्रमाण पत्र प्रदान करने, अस्वीकृति, निलंबन या रद्द करने आदि के साधनों को अंतिम रूप दिया जाएगा और साधनों से युक्त एक उपयुक्त सरकारी आदेश आज से छह सप्ताह के भीतर राज्य सरकार द्वारा जारी किया जाएगा।

9. पूर्वोक्त निर्देशों के साथ, **सभी रिट याचिकार्तागण का निस्तारण किया जाता है।**

10. यह आदेश विद्वान अपर महाधिवक्ता द्वारा अनुपालन के लिए तीन दिनों के भीतर राज्य सरकार को सूचित किया जाएगा।

(2023) 3 ILRA 335

मूल न्यायाधिकार

नागरिक पक्ष

दिनांकः इलाहाबाद 02.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सूर्य प्रकाश केसरवानी,

माननीय न्यायमूर्ति जयन्त बनर्जी,

रिट सी संख्या 28379/2022

पैरामेडिकल काउंसिल ऑफ इंडिया...याचिकाकर्ता

बनाम

यू.ओ.आई. एवं अन्य. ...प्रतिवादीगण

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री अभय राज यादव

अधिवक्ता प्रतिवादीगण: ए.एस.जी.आई., श्री अनुराग शर्मा

A. सिविल कानून - राष्ट्रीय आयोग के सहयोगी और स्वास्थ्य पेशेवर अधिनियम, 2021 - धाराएँ 2(d), 2(j), 10, 11, 22, 29, 30, 31, 32 और 40 - पैरामेडिकल पाठ्यक्रम - संस्थान को मान्यता - याचिकाकर्ता द्वारा मान्यता प्रदान करने का दावा - अनुमति - निर्णय, पूरा अधिनियम यह प्रदर्शित करता है कि यह शिक्षा, पंजीकरण और सहयोगी और स्वास्थ्य पेशेवरों की लाइसेंसिंग, सहयोगी और स्वास्थ्य संस्थानों के नियमन और अन्य संबंधित वाद के तथ्यों से संबंधित एक व्यापक अधिनियम है - याचिकाकर्ता को शिक्षा और प्रशिक्षण देने वाले संस्थानों को मान्यता देने या किसी ऐसे संस्थान को पंजीकृत करने की अनुमति नहीं दी जा सकती, बशर्ते इसके कि अधिनियम

की योजना और शर्तों के अनुसार और जितनी अनुमति प्रदान की गई हो। (पैराग्राफ 9 और 10) रिट याचिका निरस्त। (E-1)

<u>माननीय न्यायमूर्ति श्री सूर्य प्रकाश केशरवानी</u>
<u>माननीय न्यायमूर्ति श्री जयन्त बनर्जी</u>

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अभय राज यादव और श्री अनुराग शर्मा, विद्वान केंद्र सरकार के स्थायी अधिवक्ता, को सुना।

2. याचिकाकर्ता ने वर्तमान रिट याचिका प्रतिवादी को निर्देश के लिए कि याचिकाकर्ता को पैरामेडिकल परिषद को मान्यता प्रदान करने तथा प्रदान करने वाली संस्थाओं को पंजीकृत करने के लिए पैरामेडिकल पाठ्यक्रम के क्षेत्र में , उत्तरदाताओं द्वारा पैरामेडिकल के लिए कोई नियामक निकाय के गठन तक, कार्य करने की अनुमति देने और याचिकाकर्ता के शांतिपूर्ण कामकाज पैरामेडिकल शिक्षा और प्रशिक्षण में हस्तक्षेप न करने के लिए, दाखिल की है।

3. इस रिट याचिका के अवलोकन से पता चलता है कि याचिकाकर्ता वास्तव में एक ऐसे कार्य का प्रयोग करने के लिए वैधता की मांग कर रहा है जो भारत के संविधान की सातवीं अनुसूची की संघ सूची के तहत प्रयोग करने योग्य संसद की विधायी शक्ति के क्षेत्र में है।

4. केंद्र सरकार के विद्वान स्थायी वकील ने हमारे सामने राष्ट्रीय सहयोगी और स्वास्थ्य सेवा पेशा आयोग अधिनियम, 2021 की राजपत्र अधिसूचना की एक प्रति रखी है। अधिनियम की धारा 2 (डी) और 2 (जे) क्रमशः "संबद्ध स्वास्थ्य पेशेवर" और "स्वास्थ्य देखभाल पेशेवर" को निम्नानुसार परिभाषित करती है: -

> "(घ) "संबद्ध स्वास्थ्य पेशेवर" में एक सहयोगी, तकनीशियन या प्रौद्योगिकीविद् शामिल है जो बीमारी,चोट या हानि के निदान और उपचार का समर्थन करने के लिए किसी भी तकनीकी और व्यावहारिक कार्य को करने के लिए प्रशिक्षित है, और किसी भी स्वास्थ्य देखभाल उपचार और रेफरल योजना के कार्यान्वयन का समर्थन करने के लिए एक चिकित्सा, नर्सिंग या किसी अन्य स्वास्थ्य देखभाल पेशेवर द्वारा सिफारिश की जाती है, और जिसने इस अधिनियम के तहत डिप्लोमा या डिग्री की कोई योग्यता प्राप्त की है, जिसकी अवधि दो हजार घंटे से कम नहीं होगी, जो दो साल से चार साल की अवधि में फैली हुई है, जिसे विशिष्ट सेमेस्टर में विभाजित किया गया है।
>
> 2 (जे) "हेल्थकेयर प्रोफेशनल" में एक वैज्ञानिक, चिकित्सक या अन्य पेशेवर शामिल है जो निवारक, उपचारात्मक, पुनर्वास, चिकित्सीय या प्रचारक स्वास्थ्य सेवाओं का अध्ययन, सलाह, शोध, पर्यवेक्षण प्रदान करता है और जिसने इस अधिनियम के तहत डिग्री की कोई योग्यता प्राप्त की है, जिसकी अवधि तीन साल से छह साल की अवधि में फैले तीन हजार छह सौ घंटे से कम नहीं होगी जो विशिष्ट सेमेस्टर में विभाजित है।

5. अधिनियम के अध्याय-II में अधिनियम के अंतर्गत निर्धारित ऐसी शक्तियों का प्रयोग करने और कर्तव्यों का निर्वहन करने

के लिए राष्ट्रीय संबद्ध एवं स्वास्थ्य परिचर्या व्यवसाय आयोग नामक आयोग के गठन का प्रावधान है। अधिनियम की धारा 10 के तहत, आयोग को अधिनियम की अनुसूची में निर्दिष्ट सहयोगी और स्वास्थ्य पेशेवरों की प्रत्येक मान्यता प्राप्त श्रेणी के लिए पेशेवर परिषद का गठन करने का अधिकार है। धारा 11 के तहत, आयोग का कर्तव्य ऐसे सभी कदम उठाना है जो वह शिक्षा के समन्वित और एकीकृत विकास को सुनिश्चित करने और अधिनियम के तहत सेवाओं के वितरण के मानकों के रखरखाव के लिए उचित समझे और अपने कार्यों को करने के प्रयोजनों के लिए, आयोग सहयोगी और स्वास्थ्य देखभाल से संबंधित शिक्षा और पेशेवर सेवाओं के शासन के लिए नीतियों और मानकों को तैयार कर सकता है; मित्र देशों और स्वास्थ्य पेशेवरों द्वारा देखे जाने वाले पेशेवर आचरण, आचार संहिता और शिष्टाचार को विनियमित करना; एक अप-टू-डेट ऑनलाइन और लाइव सेंट्रल रजिस्टर बनाने और बनाए रखने के लिए; प्रत्येक पेशे के अभ्यास का दायरा प्रदान करें; शिक्षा, पाठ्यक्रम, पाठ्यक्रम आदि के बुनियादी मानक प्रदान करना; डिप्लोमा, स्नातक, स्नातकोत्तर और डॉक्टरेट स्तर पर संस्थानों में प्रवेश के लिए सामान्य परामर्श के साथ योग्यता, समान प्रवेश परीक्षा प्रदान करना; व्यावसायिक अभ्यास या स्नातकोत्तर या डॉक्टरेट स्तर में प्रवेश के लिए निकास या लाइसेंसिंग परीक्षाओं और शिक्षाविदों के लिए राष्ट्रीय शिक्षक पात्रता परीक्षा आदि प्रदान करना। अधिनियम की धारा 12 के तहत, केंद्र सरकार को संबद्ध और स्वास्थ्य सेवा पेशेवरों से संबंधित मुद्दों पर आयोग को सलाह देने के लिए एक सलाहकार परिषद का गठन करने का अधिकार है।

6. अधिनियम का अध्याय III राज्य संबद्ध और स्वास्थ्य परिचर्या परिषद से संबंधित है। अधिनियम की धारा 22 राज्य सरकार को ऐसी शक्तियों का प्रयोग करने और अधिनियम के तहत निर्धारित कर्तव्यों का निर्वहन करने के लिए राज्य परिषद का गठन करने के लिए अधिकृत करती है। धारा 29 राज्य परिषद को संबद्ध और स्वास्थ्य पेशेवरों को विनियमित करने के लिए निर्दिष्ट स्वायत्त बोर्ड का गठन करने का अधिकार देती है।

7. अधिनियम की धारा 29, 30, 31 और 32 यह बताता है:-

"29. (1) राज्य परिषद, अधिसूचना द्वारा, संबद्ध और स्वास्थ्य देखभाल पेशेवरों को विनियमित करने के लिए निम्नलिखित स्वायत्त बोर्डों का गठन करेगी, अर्थात्, -

(ए) स्नातक संबद्ध और स्वास्थ्य देखभाल शिक्षा परिषद,

(बी) स्नातकोत्तर संबद्ध और स्वास्थ्य देखभाल शिक्षा परिषद,

(सी) संबद्ध और स्वास्थ्य देखभाल व्यवसायों का आकलन और

रेटिंग परिषद, और

(डी) संबद्ध और स्वास्थ्य देखभाल पेशे में नैतिकता और

पंजीकरण परिषद.

(2) उपधारा (1) के अधीन गठित स्वायत्त बोर्ड एक अध्यक्ष और प्रत्येक मान्यता प्राप्त श्रेणी से उतने सदस्य होंगे जितने विनियमों द्वारा विनिर्दिष्ट किए जाएं और राज्य सरकार द्वारा नियुक्त किए जाएंगे।

(3) अवर-स्नातक सहयोगी और स्वास्थ्य सेवा शिक्षा बोर्ड और स्नातकोत्तर संबद्ध और स्वास्थ्य सेवा शिक्षा बोर्ड स्नातक, स्नातकोत्तर स्तर और सुपर स्पेशियलिटी स्तर पर संबद्ध और स्वास्थ्य देखभाल शिक्षा के मानकों का निर्धारण करेगा, गतिशील पाठ्यक्रम सामग्री के आधार पर योग्यता विकसित करेगा, मानदंडों के खिलाफ संस्थागत मानकों की समीक्षा करेगा, संकाय विकास, मान्यता प्राप्त योग्यता के पाठ्यक्रमों का अनुमोदन और अन्य कार्यों के रूप में जैसा कि राज्य स्नातक और स्नातकोत्तर शिक्षा शिक्षा परिषद द्वारा सौंपा गया है ।

(4) संबद्ध और स्वास्थ्य देखभाल व्यवसाय मूल्यांकन और रेटिंग बोर्ड संस्थानों के निरीक्षण के लिए प्रदान करके, नए संबद्ध और स्वास्थ्य देखभाल संस्थानों की स्थापना के लिए अनुमति प्रदान करके संबद्ध और स्वास्थ्य देखभाल संस्थानों के मूल्यांकन और रेटिंग के लिए प्रक्रिया निर्धारित करेगा और सीट क्षमता, मूल्यांकनकर्ताओं को सूचीबद्ध करना, चेतावनी या जुर्माना लगाना, संस्थानों की मान्यता को वापस लेने की सिफारिश करना और न्यूनतम आवश्यक मानक का रखरखाव सुनिश्चित करने के लिए राज्य परिषद द्वारा सौंपे गए किसी अन्य कार्य को ।

(5) एलाइड एंड हेल्थकेयर प्रोफेशन एथिक्स एंड रजिस्ट्रेशन बोर्ड राज्य में सभी लाइसेंस प्राप्त संबद्ध और स्वास्थ्य देखभाल चिकित्सकों के ऑनलाइन और लाइव स्टेट रजिस्टर बनाए रखेगा, पेशेवर आचरण और नैतिकता को बढ़ावा देने को विनियमित करेगा और राज्य परिषद द्वारा सौंपे गए किसी भी अन्य कार्य को करेगा।

(6) अवर-स्नातक, संबद्ध और स्वास्थ्य देखभाल शिक्षा या स्नातकोत्तर संबद्ध और स्वास्थ्य देखभाल शिक्षा या संबद्ध और स्वास्थ्य देखभाल व्यवसाय मूल्यांकन और रेटिंग या संबद्ध और स्वास्थ्य देखभाल व्यवसाय नैतिकता और पंजीकरण ऐसे अन्य कार्य करेंगे जो नियमों द्वारा निर्दिष्ट किए जा सकते हैं।

30. राज्य परिषद का यह कर्तव्य होगा कि वह इस अधिनियम के अधीन शिक्षा के समन्वित और समेकित विकास को सुनिश्चित करने तथा सेवाओं के परिदान के मानकों को बनाए रखने के लिए ऐसे सभी कदम उठाए जो वह ठीक समझे और अपने कृत्यों का पालन करने के प्रयोजनों के लिए, राज्य परिषद-

(ए) मान्यता प्राप्त श्रेणियों का नाम दर्ज करें, राज्य में संबद्ध और स्वास्थ्य पेशेवरों द्वारा देखे जाने वाले पेशेवर आचरण, आचार संहिता और शिष्टाचार को लागू करें और अनुशासनात्मक कार्रवाई करें, जिसमें राज्य रजिस्टर से पेशेवरों का नाम हटाना शामिल है;

(बी) शिक्षा, पाठ्यक्रम, पाठ्यक्रम, शारीरिक और अनुदेशात्मक सुविधाओं, स्टाफ पैटर्न, कर्मचारियों की योग्यता, गुणवत्ता निर्देश, मूल्यांकन, परीक्षा, प्रशिक्षण, अनुसंधान, सतत व्यावसायिक शिक्षा के न्यूनतम मानकों को सुनिश्चित करना;

(सी) इस अधिनियम के तहत डिप्लोमा, स्नातक, स्नातकोत्तर और डॉक्टरेट स्तर पर संबद्ध और स्वास्थ्य देखभाल संस्थानों में प्रवेश के लिए सामान्य परामर्श के साथ एक समान प्रवेश परीक्षा सुनिश्चित करना;

(डी) इस अधिनियम के तहत संबद्ध और स्वास्थ्य पेशेवरों के लिए एक समान निकास या लाइसेंसिंग परीक्षा सुनिश्चित करना;

(ई) संबद्ध और स्वास्थ्य संस्थानों का निरीक्षण करें और राज्य में संबद्ध और स्वास्थ्य पेशेवरों को पंजीकृत करें;

(एफ) आयोग द्वारा जारी सभी निर्देशों का अनुपालन सुनिश्चित करना;

(जी) न्यूनतम मानक के लिए मशीनरी, सामग्री और सेवाएँ का ढांचा प्रदान करें;

(एच) पाठ्यक्रमों और प्रवेश क्षमता को मंजूरी या पाठ्यक्रमों के लिए मान्यता देना;

(आई) संस्थानों में मानक को बनाए रखने के लिए उन पर जुर्माना लगाना; और

(जे) इस अधिनियम के प्रावधान के तहत कार्यान्वयन के लिए राज्य सरकार द्वारा जो सौंपे गये ऐसे अन्य कार्य करना।

31. राज्य परिषद एक या अधिक मान्यता प्राप्त श्रेणियों से संबंधित मुद्दों की जांच करने और राज्य परिषद की सिफारिश करने और राज्य परिषद द्वारा अधिकृत किसी अन्य गतिविधि को करने के लिए भी आवश्यक रूप से आवश्यक कई पेशेवर सलाहकार बोर्डों का गठन कर सकती है।

32. (1) राज्य परिषद, राज्य संबद्ध और स्वास्थ्य देखभाल व्यवसायियों के रजिस्टर के रूप में ज्ञात मान्यता प्राप्त श्रेणियों में से प्रत्येक के लिए अलग-अलग भागों में व्यक्तियों का ऑनलाइन और लाइव राज्य रजिस्टर बनाए रखेगी, जिसमें व्यक्ति के नाम और उनकी किसी भी संबंधित मान्यता प्राप्त श्रेणियों से संबंधित योग्यताएं शामिल हैं, ऐसी रीति से जो विनियमों द्वारा विनिर्दिष्ट की जाएं।

(2) राज्य रजिस्टर में एलाइड और हेल्थकेयर प्रोफेशनल्स की शैक्षणिक योग्यता संस्थानों, प्रशिक्षण, कौशल और दक्षताओं का विवरण उनके पेशे से संबंधित तरीके से होगा, जैसा कि नियमों द्वारा निर्दिष्ट किया जा सकता है।

(3) राज्य रजिस्टर को भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 के अर्थ के भीतर एक सार्वजनिक दस्तावेज माना जाएगा, और राज्य परिषद द्वारा प्रदान की गई प्रमाणित प्रति द्वारा साबित किया जा सकता है।

8. अधिनियम का अध्याय V नए सहयोगियों स्वास्थ्य सेवा संस्थान की स्थापना से संबंधित है ।धारा 40 इस प्रकार है:-

“40. इस अधिनियम या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, इस अधिनियम के प्रारंभ की तारीख को और उसके बाद से-

(ए) कोई भी व्यक्ति एक संबद्ध और स्वास्थ्य सेवा संस्थान स्थापित नहीं करेगा; नहीं तो

(बी) कोई भी संबद्ध और स्वास्थ्य सेवा संस्थान-

(i) अध्ययन या प्रशिक्षण (अध्ययन या प्रशिक्षण के स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम सहित) का एक नया या उच्चतर पाठ्यक्रम खोलें, जो अध्ययन या प्रशिक्षण के प्रत्येक पाठ्यक्रम के छात्रों को किसी भी मान्यता प्राप्त सहयोगी और स्वास्थ्य योग्यता के

पुरस्कार के लिए खुद को अर्हता प्राप्त करने में सक्षम करेगा; नहीं तो

(ii) अध्ययन या प्रशिक्षण के किसी भी पाठ्यक्रम (अध्ययन या प्रशिक्षण के स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम सहित) में अपनी प्रवेश क्षमता में वृद्धि; नहीं तो

(iii) अध्ययन या प्रशिक्षण के किसी भी गैर-मान्यता प्राप्त पाठ्यक्रम (अध्ययन या प्रशिक्षण के स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम सहित) में छात्रों के एक नए बैच को स्वीकार करें,

इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार प्राप्त राज्य परिषद की पूर्व अनुमति को छोड़कर:

बशर्ते कि राज्य परिषद की पूर्व अनुमति के बिना अध्ययन के नए या उच्चतर पाठ्यक्रम या नए बैच के संबंध में किसी व्यक्ति को दी गई संबद्ध और स्वास्थ्य देखभाल योग्यता इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए एक मान्यता प्राप्त संबद्ध और स्वास्थ्य देखभाल योग्यता नहीं होगी:

परंतु यह और कि जहां राज्य सरकार द्वारा गठित कोई राज्य परिषद नहीं है, वहां आयोग इस धारा के प्रयोजनों के लिए पूर्व अनुमति देगा।

(2) (ए) प्रत्येक व्यक्ति या संबद्ध और स्वास्थ्य देखभाल संस्थान, उप-धारा (1) के तहत अनुमति प्राप्त करने के उद्देश्य से, खंड (बी) के प्रावधानों के अनुसार राज्य परिषद को एक योजना प्रस्तुत करेगा।

(बी) खंड (क) में निर्दिष्ट योजना ऐसे रूप में होगी और इसमें ऐसे विवरण होंगे और इस तरह के तरीके से पसंद किए जाएंगे और इस तरह के शुल्क के साथ केंद्र सरकार द्वारा निर्धारित किया जा सकता है।

(3) उप-धारा (2) के तहत एक योजना की प्राप्ति पर, राज्य परिषद ऐसे अन्य विवरण प्राप्त कर सकती है जो संबंधित व्यक्ति या संबद्ध और स्वास्थ्य देखभाल संस्थान से आवश्यक समझे जा सकते हैं, और उसके बाद, यह, -

(ए) यदि योजना दोषपूर्ण है और इसमें कोई आवश्यक विवरण नहीं है, तो संबंधित व्यक्ति या संबद्ध और स्वास्थ्य सेवा संस्थान को लिखित अभ्यावेदन देने के लिए उचित अवसर दें और यह ऐसे व्यक्ति या संबद्ध और स्वास्थ्य सेवा संस्थान के लिए खुला होगा कि वे राज्य परिषद द्वारा निर्दिष्ट दोषों, यदि कोई हों, को ठीक कर सकें;

(बी) उप-धारा (5) में निर्दिष्ट कारकों को ध्यान में रखते हुए योजना पर विचार करें।

(4) राज्य परिषद, योजना पर विचार करने के बाद और जहां आवश्यक हो, उप-धारा (2) के तहत ऐसे अन्य विवरण प्राप्त करने के बाद, जो संबंधित व्यक्ति या संबद्ध और स्वास्थ्य देखभाल संस्थान से उसके द्वारा आवश्यक समझे जा सकते हैं, और उप-धारा (5) में निर्दिष्ट कारकों को ध्यान में रखते हुए, या तो ऐसी शर्तों, यदि कोई हो, के साथ अनुमोदन कर सकती है, जैसा कि वह आवश्यक समझे या योजना को अस्वीकार कर सकती है और ऐसा कोई अनुमोदन उपधारा (1) के तहत अनुमति के रूप में गठित होगा:

बशर्ते कि ऐसी कोई योजना राज्य परिषद द्वारा अस्वीकृत नहीं की जाएगी, जब तक कि संबंधित व्यक्ति या संबद्ध और स्वास्थ्य देखभाल संस्थान को सुनवाई का उचित अवसर न दिया जाए:

बशर्ते कि इस उप-धारा में कुछ भी किसी भी व्यक्ति या संबद्ध और स्वास्थ्य देखभाल संस्थान को नहीं रोकेगा, जिसकी योजना को राज्य परिषद द्वारा एक नई योजना प्रस्तुत करने के लिए अनुमोदित नहीं किया गया है और इस धारा के प्रावधान ऐसी योजना पर लागू होंगे, जैसे कि ऐसी योजना उप-धारा (2) के तहत पहली बार प्रस्तुत की गई थी।

(5) राज्य परिषद, उपधारा (4) के अधीन आदेश पारित करते समय निम्नलिखित कारकों का सम्यक ध्यान रखेगी, अर्थात:-

(ए) क्या प्रस्तावित संबद्ध और स्वास्थ्य सेवा संस्थान या मौजूदा संबद्ध और स्वास्थ्य सेवा संस्थान जो अध्ययन या प्रशिक्षण का एक नया या उच्चतर पाठ्यक्रम खोलने की मांग कर रहे हैं, नियमों द्वारा निर्दिष्ट शिक्षा के बुनियादी मानकों की पेशकश करने की स्थिति में होंगे;

(बी) चाहे वह व्यक्ति जो एक संबद्ध और स्वास्थ्य सेवा संस्थान स्थापित करना चाहता है या मौजूदा संबद्ध और स्वास्थ्य सेवा संस्थान जो अध्ययन या प्रशिक्षण का एक नया या उच्चतर पाठ्यक्रम खोलना चाहता है या अपनी प्रवेश क्षमता बढ़ाना चाहता है, उसके पास पर्याप्त वित्तीय संसाधन हैं;

(ग) क्या स्टाफ, उपकरण, आवास, प्रशिक्षण, अस्पताल और अन्य सुविधाओं के संबंध में आवश्यक सुविधाएं संबद्ध और स्वास्थ्य देखभाल संस्थान के समुचित कामकाज को सुनिश्चित करने या अध्ययन या प्रशिक्षण के नए पाठ्यक्रम का संचालन करने या बढ़ी हुई प्रवेश क्षमता को समायोजित करने के लिए प्रदान की गई हैं या प्रदान की जाएंगी जैसा कि योजना में निर्दिष्ट किया जा सकता है;

(घ) क्या ऐसे संबद्ध और स्वास्थ्य परिचर्या संस्थान या अध्ययन या प्रशिक्षण के पाठ्यक्रम में भाग लेने वाले छात्रों की संख्या को ध्यान में रखते हुए या बढ़ी हुई

प्रवेश क्षमता के परिणामस्वरूप पर्याप्त सुविधाएं प्रदान की गई हैं या प्रदान की जाएंगी जैसा कि योजना में निर्दिष्ट किया जा सकता है;

(ङ) क्या ऐसे संबद्ध और स्वास्थ्य देखभाल संस्थान में भाग लेने की संभावना वाले छात्रों को उचित प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए कोई व्यवस्था की गई है या कार्यक्रम तैयार किया गया है या मान्यता प्राप्त संबद्ध और स्वास्थ्य देखभाल योग्यता रखने वाले व्यक्तियों द्वारा अध्ययन या प्रशिक्षण का पाठ्यक्रम;

(च) संबद्ध और स्वास्थ्य सेवा संस्थान में जनशक्ति की आवश्यकता; और

(छ) कोई अन्य कारक जैसा कि विनियमन द्वारा निर्दिष्ट किया जा सकता है।

(6) जहां राज्य परिषद उपधारा (4) के तहत एक आदेश पारित करती है, आदेश की एक प्रति व्यक्ति या संबद्ध और स्वास्थ्य देखभाल संस्थान को सूचित की जाएगी, जैसा भी मामला हो।

स्पष्टीकरण- इस खंड के प्रयोजनों के लिए, -

(ए) "व्यक्ति" में कोई विश्वविद्यालय, संस्थान या ट्रस्ट शामिल है, लेकिन इसमें केंद्र सरकार या राज्य सरकार शामिल नहीं है;

(बी) किसी संबद्ध और स्वास्थ्य परिचर्या संस्थान में अध्ययन या प्रशिक्षण के किसी पाठ्यक्रम (अध्ययन या प्रशिक्षण के स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम सहित) के संबंध में "प्रवेश क्षमता" से छात्रों की अधिकतम संख्या अभिप्रेत है जो अध्ययन या प्रशिक्षण के ऐसे पाठ्यक्रम में भर्ती होने के लिए समय-समय पर राज्य परिषद द्वारा तय की जा सकती है।

9. पूरे अधिनियम के अवलोकन से पता चलता है कि यह एक व्यापक अधिनियमन है जो शिक्षा, संबद्ध और स्वास्थ्य देखभाल पेशेवरों के पंजीकरण और लाइसेंसिंग, संबद्ध और स्वास्थ्य देखभाल संस्थानों के विनियमन और अन्य संबंधित मामलों के पहलुओं से संबंधित है।

10. सामान्य रूप से अधिनियम के जनादेश और विशेष रूप से अधिनियम की धारा 40 को देखते हुए, याचिकाकर्ता को शिक्षा और प्रशिक्षण प्रदान करने वाली संस्थाओं को मान्यता देने या अधिनियम की योजना और शर्तों के तहत अनुमेय सीमा तक छोड़कर, ऐसी किसी भी संस्था को पंजीकृत करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। कोई परमादेश, जैसा कि मांगा गया है, जारी किया जा सकता है।

11. ऊपर बताए गए सभी कारणों से, रिट याचिका खारिज की जाती है।

(2023) 3 ILRA 341

मूल न्यायाधिकार

नागरिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 14.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती संगीता चंद्रा,

माननीय न्यायमूर्ति मनीष कुमार,

रिट सी संख्या 29501/2017

लखनऊ आई हॉस्पिटल ...याचिकाकर्ता

बनाम

यू.ओ.आई. एवं अन्य ..प्रतिवादीगण

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: विजय दीक्षित

अधिवक्ता प्रतिवादीगण: सी.एस.सी., ए.एस.जी., अरुण प्रताप सिंह, मधुकर ओझा, प्रसून श्रीवास्तव, संजीव सिंह, सत्यजीत बनर्जी, तरनजीत सिंह मक्कड़

A. बीमा कानून - असंगठित श्रमिकों का सामाजिक सुरक्षा अधिनियम, 2008 - राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना - लाभार्थी, जो गैर-बी.पी.एल. वर्ग के अनौपचारिक क्षेत्र के हैं, अधिकांश बीमारियों के लिए ₹30,000/- तक के बीमाकृत राशि के लिए अस्पताल में भर्ती होने के पात्र थे - बीमा पॉलिसी - प्रीमियम भुगतान न करना - प्रभाव - निर्णय, बीमित का बीमाकृत राशि भुगतान किए गए प्रीमियम के अनुसार है। किसी भी पॉलिसी का अस्तित्व/जारी रहना प्रीमियम के भुगतान पर निर्भर है और इसका न भुगतान बीमा पॉलिसी के समाप्त होने का कारण बनेगा और उस आधार पर दावा निरस्त किया जा सकता है। (पैराग्राफ 40)

B. भारतीय संविधान - अनुच्छेद 226 - रिट - न्यायिक समीक्षा - परिसिमा - याचिकाकर्ता और बीमा कंपनी के बीच अनुबंध - कितना हस्तक्षेप किया जा सकता है - निर्णय, यह एक गैर-वैधानिक अनुबंध है जिसमें एक मध्यस्थता प्रावधान जोड़ा गया है जिसे याचिकाकर्ता ने स्वतंत्र रूप से हस्ताक्षित किया है। यदि याचिकाकर्ता किसी ऐसे अनुबंध के उल्लंघन का दावा करता है, तो याचिकाकर्ता के लिए उचित उपाय वैकल्पिक विवाद समाधान फोरम/मध्यस्थता न्यायालय के समक्ष उपस्थित होना है जैसा कि समझौते के अनुखंड 16.7 में उल्लेखित है। (पैराग्राफ 42 और 52)

रिट याचिका निरस्त। (E-1)

<u>उक्त वाद सूची :-</u>

1. राम बड़ाई सिंह एंड कंपनी बनाम राज्य बिहार और अन्य; (2015) 13 SCC 592
2. मेसर्स सूर्य कंस्ट्रक्शन बनाम राज्य उत्तर प्रदेश और अन्य; (2019) 16 SCC 794
3. ए.बी.एल. इंटरनेशनल लिमिटेड और अन्य बनाम एक्सपोर्ट क्रेडिट गारंटी कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड और अन्य; (2004) 3 SCC 553
4. सिविल अपील संख्या 3504-3505 OF 2010; गैस अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड बनाम इंडियन पेट्रोकेमिकल्स कॉर्पोरेशन लिमिटेड और अन्य, निर्णय दिनांक 08.02.2023
5. महाराष्ट्र चेस एसोसिएशन बनाम भारत संघ और अन्य; (2020) 13 SCC 285
6. रिट-सी संख्या 18949 / 2019; आनंद पॉलीक्लिनिक और ट्रॉमा सेंटर और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 3 अन्य, निर्णय दिनांक 07.08.2019
7. रिट सी संख्या 1048 / 2019; जीवन धारा अस्पताल और रिसर्च सेंटर और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, निर्णय दिनांक 05.07.2019
8. अंतरिम आदेश, दिनांक 21.05.2019, रिट सी संख्या 17347 / 2019; मेसर्स आशीर्वाद अस्पताल और रिसर्च सेंटर और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य
9. राधाकृष्ण अग्रवाल बनाम बिहार राज्य (1977) 3 SCC 457
10. बंचनिधि रथ बनाम ओडिशा राज्य; (1972) 4 SCC 781
11. हर शंकर बनाम उपयुक्त उत्पाद और कर आयुक्त; (1975) 1 SCC 737

12. महावीर ऑटो स्टोर्स बनाम इंडियन ऑयल कॉर्प.; (1990) 3 SCC 752

13. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम ब्रिज एंड रूफ कंपनी इंडिया लिमिटेड; (1996) 6 SCC 22

14. वेरिगामटो नवीन बनाम आंध्र प्रदेश सरकार; (2001) SCC 344

15. ABL इंटरनेशनल लिमिटेड बनाम एक्सपोर्ट क्रेडिट गारंटी कॉर्प ऑफ इंडिया लिमिटेड; (2004) 3 SCC 553.

<u>माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती संगीता चंद्रा</u>

<u>माननीय न्यायमूर्ति मनीष कुमार</u>

(मौखिक)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री विजय दीक्षित, उत्तर प्रदेश राज्य अर्थात प्रतिवादी संख्या 3 की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता, प्रतिवादी संख्या 4 की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री मधुकर ओझा, प्रतिवादी संख्या 6 की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री संजीव सिंह, प्रतिवादी संख्या 7 की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री सत्यजीत बनर्जी को सुना गया, एवं प्रतिवादी संख्या 8 एचडीएफसी एर्गो जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड की ओर से प्रस्तुत होने वाले श्री तरनजीत सिंह मक्कड़ की ओर से बीमारी के आधार पर स्थगन का अनुरोध किया गया है। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि प्रतिवादी संख्या 8 से देय सभी भुगतान याचिकाकर्ता द्वारा प्राप्त कर लिए गए हैं, जहां तक प्रतिवादी संख्या 8 का संबंध है, कोई भी जीवित नहीं है, अतः इस न्यायालय ने अंततः मामले की सुनवाई की कार्यवाही प्रारंभ की।

2. याचिकाकर्ता का वाद यह है कि असंगठित कर्मकार को सामाजिक सुरक्षा एवं कल्याण प्रदान करने और उससे जुड़े तथा प्रासंगिक मामलों हेतु भारत सरकार ने असंगठित कर्मकार सामाजिक सुरक्षा अधिनियम 2008 प्रस्तुत किया तथा असंगठित कर्मकार हेतु राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना (एतस्मिन पश्चात ' राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना' के रूप में संदर्भित) के नाम से एक कल्याण योजना प्रारंभ की गई, जिसमें फेरीवालों, घरेलू श्रमिकों, बीड़ी श्रमिकों, भवन एवं निर्माण कर्मकारों तथा उन कर्मकारों को शामिल किया गया है, जिन्होंने अस्पताल में भर्ती होने वाली बीमारियों को आच्छादित करने हेतु मनरेगा में 15 दिनों से अधिक समय तक कार्य किया था। योजना के अंतर्गत लाभार्थी अधिकांश बीमारियों हेतु रुपये 30,000/- तक के अस्पताल में भर्ती सम्बन्धी व्यय के कवरेज के हकदार थे तथा कवरेज को एक ही परिवार के पांच सदस्यों तक बढ़ाया गया था। यह योजना केंद्र सरकार द्वारा प्रायोजित थी जिसमें देश के अधिकांश राज्यों में 75 प्रतिशत प्रीमियम का भुगतान करना था तथा 25 प्रतिशत प्रीमियम का भुगतान राज्य सरकार को करना था।

3. राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना के अंतर्गत, आईसीआईसीआई लोम्बार्ड जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड को जिला लखनऊ सहित विभिन्न जिलों हेतु सूचीबद्ध किया गया था तथा आईसीआईसीआई लोम्बार्ड जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड ने गरीबी रेखा से नीचे के व्यक्तियों तथा राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना के अंतर्गत आने वाले लाभार्थियों को स्वास्थ्य बीमा सेवाएं प्रदान करने हेतु उ०प्र० सरकार के साथ एक समझौता किया था। दावे के निस्तारण हेतु भारत सरकार और राज्य सरकार द्वारा दिशानिर्देश जारी किए गए थे, जिसमें से

नवीनतम दिशानिर्देश भारत सरकार द्वारा दिनांक 17.07.2012 को जारी किया गया था तथा खंड 2 (iii) के अंतर्गत, यह प्रावधान किया गया है कि यदि बीमा कंपनी को आवश्यक प्रीमियम प्राप्त नहीं हुआ है तब उन्हें अस्पताल के दावे का निस्तारण भी करना होगा। यद्यपि बीमा कंपनी को यह इंगित करने की स्वतंत्रता दी गई थी कि भुगतान प्रीमियम प्राप्त होने के पश्चात किया जाएगा। बीमा कंपनी को दावे की प्राप्ति के तीस दिनों के भीतर उसका निस्तारण करना था किंतु वास्तविक भुगतान प्रीमियम प्राप्त होने के पश्चात करना था। चूंकि आईसीआईसीआई लोम्बार्ड जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड को लखनऊ जिले हेतु नामित किया गया था, याचिकाकर्ता-अस्पताल ने आईसीआईसीआई लोम्बार्ड जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड के साथ एक समझौता किया।

4. याचिकाकर्ता और आईसीआईसीआई लोम्बार्ड जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड के बीच अनुबंध वित्तीय वर्ष 2012-13, 2013-14 और 2014-15 हेतु था तथा प्रत्येक वर्ष एक नए अनुबंध पर हस्ताक्षर किए गए थे। याचिकाकर्ता ने विभिन्न लाभार्थियों को स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान कीं तथा भुगतान हेतु बिल जारी किए गए जिन्हें बीमा कंपनी ने दिनांक 31.10.2014 तक मंजूरी दे दी थी। वर्ष 2015 में, किसी भी पक्षकारों द्वारा उठाई गई शिकायत को प्रभावी रीति से संबोधित करने हेतु राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना द्वारा विभिन्न शिकायत निवारण समितियों का गठन किया गया था। चूंकि याचिकाकर्ता के कुछ दावों का निस्तारण आईसीआईसीआई लोम्बार्ड जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड द्वारा समय पर नहीं किया गया था, इसलिए उसने प्रतिवादी संख्या-5 अर्थात अध्यक्ष, जिला शिकायत निवारण समिति/मुख्य चिकित्सा अधिकारी, लखनऊ के समक्ष दावा प्रस्तुत किया तथा प्रतिवादी संख्या-5 को दावों के निस्तारण हेतु बार-बार ई-मेल भी भेजा गया।

5. दिनांक 06.11.2015 को प्रतिवादी सं- 5 ने याचिकाकर्ता को सूचित किया कि याचिकाकर्ता-अस्पताल के दावे का निस्तारण नहीं किया जा सका क्योंकि बीमा कंपनी को सरकार से प्रीमियम प्राप्त नहीं हुआ है और जैसे ही प्रीमियम प्राप्त होगा, दावे का निस्तारण किया जाएगा। इस संबंध में संपर्क किए जाने पर प्रतिवादी संख्या 5 ने दोनों पक्षों को सुनने के पश्चात दिनांक 07.09.2016 को एक आदेश पारित किया जिसमें प्रतिवादी संख्या 6 को आदेश के एक पखवाड़े के भीतर याचिकाकर्ता को सभी भुगतान करने का निर्देश दिया गया। प्रतिवादी संख्या- 6 द्वारा अभी भी इस आधार पर भुगतान नहीं किया गया कि राज्य सरकार द्वारा प्रीमियम का भुगतान नहीं किया गया है।

6. याचिकाकर्ता का वाद यह है कि एक बार प्रतिवादी संख्या 5 ने दिनांक 07.09.2016 को आदेश पारित कर प्रतिवादी संख्या 6 याचिकाकर्ता को एक पखवाड़े के भीतर भुगतान करने का निर्देश दिया, इस तथ्य की परवाह किए बिना कि प्रीमियम का भुगतान सरकार द्वारा किया गया था अथवा नहीं, यह बीमा कंपनी पर निर्भर था कि वह प्रतिवादी संख्या 5 के निर्देशों का अनुपालन करे तथा याचिकाकर्ता को देय भुगतान करे। जब कोई ध्यान नहीं दिया गया, तो याचिकाकर्ता निम्नलिखित मुख्य प्रार्थनाओं सहित न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत हुआ : -

" I. विरोधी पक्षकार संख्या 1 द्वारा जारी शासनादेश दिनांक 17.07.2012 के खंड 2(iii) के भाग को रद्द करने हेतु उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश अथवा निर्देश जारी करें, जैसा कि रिट याचिका के संलग्नक संख्या 1 में निहित है। अब तक यह बीमा कंपनी को दावों के सत्यापन के पश्चात भी अस्पताल का भुगतान तब तक रोकने का अधिकार देता है जब तक बीमा कंपनी को सरकार से प्रीमियम प्राप्त नहीं हो जाता।

II. परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें जिसमें विपरीत पक्ष संख्या 6 से 8 तक को आदेश दिया जाए कि दावों का भुगतान विपरीत पक्षकारों द्वारा प्रमाणित तथा सत्यापित किया जाए साथ ही विलंबित भुगतान पर 8% प्रति वर्ष की दर से ब्याज भी दिया जाए।

7. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि बीमा कंपनी शासनादेश दिनांक17.07.2012 के प्रावधानों का आश्रय ले रही है, जो उसे एक महीने के भीतर अस्पताल के दावे का निस्तारण करने का अधिकार देता है, किंतु सरकार से प्रीमियम प्राप्त होने तक भुगतान करने से इनकार करने का अधिकार देता है। शासनादेश दिनांक 17.07.2012 एवं उसके सुसंगत खंड को भी चुनौती दी गयी है।

8. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने रिट याचिका के संलग्नक 14 पर विश्वास व्यक्त किया है, जो जिला शिकायत निवारण समिति के अध्यक्ष के रूप में सी.एम.ओ. द्वारा लिए गए निर्णय की एक प्रति है। अस्पताल तथा बीमा कंपनी के प्रतिनिधियों को सुना गया एवं यह पाया कि अस्पताल ने बीमा कंपनी के साथ समझौते के अंतर्गत लाभार्थियों को मुफ्त स्वास्थ्य सेवाएँ प्रदान की थीं, और यह कि बीमा कंपनी द्वारा उसके दावे की प्रतिपूर्ति मात्र इसी आधार पर रोकी गई थी कि राज्य नोडल एजेंसी एवं बीमा कंपनी के मध्य विवाद था तथा राज्य नोडल एजेंसी द्वारा उसे कोई प्रीमियम नहीं दिया गया है; बीमा कंपनी अस्पताल द्वारा दावा की गई राशि को मात्र इस आधार पर नहीं रोक सकती थी कि राज्य सरकार/राज्य नोडल एजेंसी द्वारा कंपनी को किसी बीमा प्रीमियम का भुगतान नहीं किया गया था। सी.एम.ओ. ने निर्देश दिया था कि बीमा कंपनी 15 दिन के भीतर अस्पताल के बिलों का भुगतान करे। राज्य नोडल एजेंसी के मुख्य कार्यकारी अधिकारी ने भी दिनांक 25.11.2016 को बीमा कंपनी को पत्र लिखकर याचिकाकर्ता को जल्द से जल्द बकाया भुगतान करने का निर्देश दिया।

9. राज्य सरकार द्वारा प्रस्तुत प्रति शपथपत्र में यह बात सामने आई है कि राष्ट्रीय शिकायत निवारण समिति ने अपने आदेश दिनांक 08.01.2018 द्वारा बीमा एजेंसियों को विभिन्न अस्पतालों के दावों के निस्तारण हेतु राज्य नोडल एजेंसी द्वारा रुपये 3.63 करोड़ का भुगतान करने का निर्देश दिया था। यद्यपि ये आंकड़े अंतिम नहीं थे क्योंकि उत्तर प्रदेश स्वास्थ्य बीमा कल्याण समिति की एक उच्चाधिकार प्राप्त समिति ने बीमा कंपनियों द्वारा तैयार किए गए स्मार्ट कार्डों के सही आंकड़ों की सटीक पहचान करने हेतु

राज्य सरकार के विशेषज्ञ आईटी पेशेवरों के माध्यम से एक तीसरे पक्ष के ऑडिट का गठन करने का निर्णय लिया था तथा उसके बाद अंतिम भुगतान राज्य नोडल एजेंसी द्वारा बीमा कंपनियों को किया जाएगा। बीमा कंपनी तथा याचिकाकर्ता के मध्य समय-समय पर विस्तारित किये गए दिनांक 01.10.2012 के समझौते में, राज्य सरकार एक पक्ष नहीं है तथा उपरोक्त समझौते में राज्य नोडल एजेंसी और बीमा कंपनी के मध्य किसी भी विवाद में याचिकाकर्ता के किसी भी दावे हेतु राज्य सरकार को जिम्मेदार ठहराने के लिये कोई खंड शामिल नहीं था। भारत सरकार ने भी अपने आदेश दिनांक 17.07.2013 में सभी दावों को बीमा कंपनी द्वारा इलाज करने वाले अस्पतालों से ऐसे दावों की प्राप्ति से एक माह के भीतर अनिवार्य रूप से निस्तारित करने का निर्देश दिया था और जहाँ भी आवश्यक प्रीमियम बीमा कंपनी को प्राप्त नहीं हुआ था तथा यह दावा निस्तारण में देरी का कारण था, तब भी बीमा कंपनी द्वारा निर्धारित समय सीमा के भीतर दावों पर निर्णय लेना था तथा संबंधित अस्पताल को स्पष्ट रूप से बताना था कि भुगतान प्रीमियम प्राप्त होने के पश्चात किया जाएगा।

10. प्रतिवादी संख्या 6 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री संजीव सिंह ने याचिकाकर्ता-अस्पताल और प्रतिवादी संख्या 6 के मध्य हुए अनुबंध की प्रति के माध्यम से अनुच्छेद 16, जो विविध प्रावधानों से संबंधित है, और उसके खंड 7, जो समझौते और मध्यस्थता खंड पर लागू विधि से संबंधित है, को इंगित किया है। उन्होंने खंड 7 के उप खंड (ii) और (iii) को इंगित किया है जिसमें यह प्रावधान किया गया है कि समझौते अथवा उसके उल्लंघन, समाप्ति अथवा अनियमितता से उद्भूत होने वाले किसी भी विवाद अथवा दावे का मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 के प्रावधानों के अनुसार मध्यस्थता द्वारा निपटारा किया जाएगा। मध्यस्थ न्यायाधिकरण में तीन मध्यस्थ शामिल होंगे, प्रत्येक पक्ष द्वारा नियुक्त एक मध्यस्थ और मध्यस्थों की आपसी सहमति से नियुक्त एक अन्य मध्यस्थ, इस प्रकार नियुक्त किया गया। यह बताया गया है कि मध्यस्थता का स्थान मुंबई होगा और कोई भी अधिनिर्णय, चाहे वह अंतरिम हो अथवा अंतिम, केवल मुंबई में ही दिया जाएगा।

11. प्रतिवादी संख्या 6 की ओर से दायर प्रतिशपथपत्र के आधार पर श्री संजीव सिंह द्वारा यह तर्क दिया गया है कि केंद्र सरकार द्वारा दिनांक 17.07.2012 को जारी सलाहकार के अनुसार, प्रीमियम राशि प्राप्त नहीं होने पर बीमा कंपनी अस्पताल को भुगतान रोक सकती है। केंद्र तथा राज्य सरकार द्वारा प्रीमियम के भुगतान के अभाव में, बीमा कंपनी ने याचिकाकर्ता को सूचित किया था कि उसके द्वारा उठाए गए दावे पर मात्र राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना के अंतर्गत सरकार द्वारा ऐसे प्रीमियम का भुगतान करने के पश्चात ही विचार किया जाएगा। यह बीमा कंपनी का वाद है कि चूंकि प्रीमियम का भुगतान नहीं किया गया है, इसलिए बीमा कंपनी को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, याचिकाकर्ता स्वयं यह नहीं मान सकता कि उसके द्वारा उठाए गए बिल वास्तविक हैं और उत्तर देने वाले प्रतिवादीगण द्वारा प्रमाणित हैं, क्योंकि बीमा कंपनी द्वारा भुगतान किए गए प्रीमियम के अभाव में दावों पर कार्रवाई नहीं की गई है।

साथ ही, राज्य नोडल एजेंसी और सरकार ने राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना के अंतर्गत लाभार्थियों हेतु सत्यापित स्मार्ट कार्ड की सही संख्या के संदर्भ में प्रश्न उठाए हैं और राज्य नोडल एजेंसी एवं सरकार बीमा कंपनी द्वारा दावा की गई प्रीमियम राशि से इनकार कर रही है तथा जब तक स्मार्ट कार्ड के सत्यापन का मुद्दा सरकार/राज्य नोडल एजेंसी द्वारा तय नहीं किया जाता, तब तक यह नहीं कहा जा सकता कि याचिकाकर्ता-अस्पताल द्वारा स्मार्ट कार्ड लाभार्थियों के उपचार के आधार पर उठाया गया पूरा दावा वास्तविक एवं प्रमाणित है। आगे यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता ने यह स्थापित करने हेतु कोई दस्तावेज प्रस्तुत नहीं किया है कि याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए पूरे दावे को बीमा कंपनी द्वारा सत्यापित और प्रमाणित किया गया है।

12. यह भी तर्क दिया गया है कि जिला शिकायत निवारण समिति द्वारा पारित आदेश दिनांक 07.09.2016 को केंद्र सरकार द्वारा जारी शासनादेश दिनांक 17.07.2012 के खंड 2(iii) में निहित प्रावधानों की अनदेखी करते हुए तथा राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना के चरण 4 और 5 हेतु रुपये 62.63 करोड़ की बकाया प्रीमियम राशि का भुगतान अभी भी किया जाना बाकी है।

13. प्रतिवादी संख्या 6 के विद्वान अधिवक्ता श्री संजीव सिंह द्वारा दिये गये तर्कों को प्रतिवादी संख्या- 7- नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री सत्यजीत बनर्जी द्वारा स्वीकार किया गया।

14. दूसरी ओर, राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना के विद्वान अधिवक्ता श्री मधुकर ओझा ने प्रतिवादी संख्या 4 की ओर से प्रस्तुत प्रति शपथपत्र एवं पूरक प्रति शपथपत्र का उल्लेख किया है, जिसमें कहा गया है कि आईसीआईसीआई लोम्बार्ड जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड ने भारत सरकार द्वारा उ०प्र० राज्य में प्रारंभ की गई राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना के चौथे तथा पांचवें दौर में भाग लिया है और इस संबंध में नामांकित/सूचीबद्ध बीमा कंपनियों की मदद से उपरोक्त योजना को लागू करने हेतु राज्य नोडल एजेंसी नियुक्त की गई थी। राज्य सरकार/नोडल एजेंसी को बीमा कंपनी को राज्य के प्रीमियम के 25 प्रतिशत हिस्से का भुगतान करना था एवं शेष 75 प्रतिशत का भुगतान केंद्र सरकार द्वारा पहचाने गए लाभार्थियों के सत्यापित नामांकन डेटा के आधार पर करना था। बीमा कंपनी ने 1,06,680 लाभार्थियों को नामांकित किया तथा चौथे दौर में, राज्य नोडल एजेंसी को बीमा प्रीमियम के भुगतान हेतु चालान जारी किया। मात्र 85,452 लाभार्थियों की सही पहचान पाई गई, जिनके लिए दिसंबर 2012 से मई 2013 के मध्य आईसीआईसीआई लोम्बार्ड जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड को रुपये 2.78 करोड़ का बीमा प्रीमियम का भुगतान किया गया था।

15. सत्यापित लाभार्थियों के स्मार्ट कार्ड की संख्या और उस आधार पर भुगतान किए गए प्रीमियम के संबंध में राज्य नोडल एजेंसी के निर्णय से व्यथित बीमा कंपनी ने इसे सुधारने हेतु राज्य शिकायत निवारण समिति से संपर्क किया। राज्य शिकायत निवारण समिति ने नामांकित लाभार्थियों का वास्तविक अनुदान 84,291 पाया, जिसके लिए बीमा कंपनी को रुपये- 2.77 करोड़ का भुगतान किया जाना था

और इसलिए, राज्य नोडल एजेंसी द्वारा अतिरिक्त भुगतान किए गए रुपये 1,00,000/- की वसूली बीमा कंपनी से की जानी थी।

16. बीमा कंपनी ने उ०प्र० राज्य में राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना के 5वें दौर में भी भाग लिया तथा बीमा कंपनी ने 75,587 लाभार्थियों को नामांकन प्रदान किया जिस हेतु रुपये 1.72 करोड़ की प्रीमियम राशि के रूप में दावा किया गया। राज्य नोडल एजेंसी द्वारा सत्यापन करने पर 53,810 लाभार्थियों का आंकड़ा सही पाया गया, जिस हेतु रुपये 1.23 करोड़ का प्रीमियम मार्च 2014 से मार्च 2015 के मध्य बीमा कंपनी को भुगतान किया गया। बीमा कंपनी ने कथित असत्य सत्यापन को परिशोधन हेतु फिर से राज्य शिकायत निवारण समिति से संपर्क किया किंतु यह पाया गया कि आईसीआईसीआई लोम्बार्ड जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड से रुपये 6.03 करोड़ की राशि वसूली योग्य थी तथा राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना के 5वें दौर के अंत में प्रतिवादी संख्या- 6 को रुपये 9.66 करोड़ देय थे। राष्ट्रीय शिकायत निवारण समिति के आदेशानुसार दिनांक 08.01.2018, शपथ पत्र प्रस्तुत करने पर बीमा कंपनी को रुपये 3.63 करोड़ की राशि सशर्त भुगतान करनी होगी कि इस राशि का उपयोग केवल याचिकाकर्ता जैसे अस्पतालों के बकाया भुगतान हेतु किया जाएगा और पहचान किए गए लाभार्थियों के बीमा कंपनी द्वारा तैयार किए गए स्मार्ट कार्ड के उचित सत्यापन के पश्चात किया जाएगा।

17. उत्तर प्रदेश स्वास्थ्य बीमा कल्याण समिति की उच्चाधिकार प्राप्त समिति ने बीमा कंपनियों द्वारा तैयार किए गए स्मार्ट कार्ड के सही आंकड़े तक पहुंचने के लिए राज्य सरकार के विशेषज्ञ आईटी पेशेवरों के माध्यम से एक तृतीय पक्ष ऑडिट गठित करने का निर्णय लिया था और उसके पश्चात संबंधित बीमा कंपनी को राज्य नोडल एजेंसी द्वारा अंतिम भुगतान किया जाएगा।

18. नामांकन सॉफ़्टवेयर प्रक्रियाओं के सत्यापन के उद्देश्य से राज्य नोडल एजेंसी, प्रतिवादी संख्या- 4 द्वारा प्रस्तुत प्रति शपथपत्र में, यह कहा गया है कि बीमा कंपनी ने अज्ञात और अयोग्य लाभार्थियों हेतु कई फर्जी स्मार्ट कार्ड बनाए हैं, और प्रतिवादी संख्या- 4 ने उचित सत्यापन प्रक्रिया के पश्चात बीमा कंपनी द्वारा नामांकित लाभार्थियों का भुगतान किया है, जिसे सचिव, स्वास्थ्य और परिवार कल्याण, भारत संघ के निर्देश पर गठित भारत सरकार की सामाजिक लेखा परीक्षा टीम द्वारा सही पाया गया। राज्य नोडल एजेंसी द्वारा अपनाई गई सत्यापन प्रक्रिया को बीमा कंपनी द्वारा राज्य शिकायत निवारण समिति के समक्ष चुनौती दी गई थी तथा राज्य शिकायत निवारण समिति ने सत्यापित आंकड़ों में मामूली वृद्धि की थी और इस प्रकार के आदेश को बाद में राष्ट्रीय शिकायत निवारण समिति द्वारा बरकरार रखा गया था। सामाजिक लेखा परीक्षा टीम की सिफारिशों की एक प्रति प्रतिशपथ पत्र के संल्गनक में प्रस्तुत की गई है, जहाँ यह ध्यान दिया गया था कि प्रतिपूर्ति हेतु बीमा कंपनियों द्वारा प्रदान किए गए आंकड़ों की राज्य नोडल एजेंसी द्वारा अस्वीकृति मुख्य रूप से नामांकन-पूर्व विवरण में दर्शाए गए एक के अतिरिक्त परिवार के मुखिया के नाम में परिवर्तन के कारण थी। सोशल ऑडिट टीम ने बीमा कंपनी के दावों को असंबद्ध पाया था। समिति ने पाया

कि ऐसे सभी स्मार्ट कार्डों हेतु नामांकन का आंकड़ा, जहां परिवार के मुखिया के नाम में बदलाव हुआ था, अस्वीकार कर दिया जाना चाहिए तथा ऐसे सभी वाद में संबंधित बीमा कंपनी को कोई प्रीमियम नहीं देना होगा। यह भी पाया गया कि बीमा कंपनी ने एक ही यूनिक रिलेशनशिप संख्या (यूआरएन) पर कई स्मार्ट कार्ड जारी किए थे। राज्य नोडल एजेंसी ने इस बात पर बल दिया था कि ये डुप्लिकेट कार्ड नामांकन के दौरान क्षेत्र में बीमा कंपनी द्वारा निर्धारित प्रक्रियाओं का पालन नहीं करने का परिणाम थे, इसलिए त्रुटि की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता था। टीम ने पाया कि एक ही यूआरएन के अंतर्गत कई कार्ड जारी करना प्रतिबंधित है। राज्य नोडल एजेंसी को यूआरएन डेटा के विश्लेषण द्वारा डुप्लिकेट कार्ड के लाभार्थियों की पहचान करने का निर्देश दिया गया था तथा राज्य नोडल एजेंसी द्वारा तद्पश्चात मात्र एक कार्ड हेतु बीमा कंपनियों को भुगतान किया जाये। साथ ही, बीमा कंपनी द्वारा लाभार्थियों को मौके पर अर्थात नामांकन की तिथि पर स्मार्ट कार्ड के वितरण सुनिश्चित नहीं की गई थी। बीमा कंपनियां ऐसे सभी कार्डो हेतु आनुपातिक आधार पर प्रीमियम की मांग कर रही थीं, क्योंकि उनके अनुसार, ऐसे कार्ड लाभार्थियों तक पहुंचा दिए गए थे। राज्य नोडल एजेंसी ने इस बात पर बल दिया कि निविदा दस्तावेज में ही प्रावधान किया गया है कि मात्र वितरित कार्डों हेतु प्रीमियम का भुगतान आनुपातिक आधार पर किया जाना है। उचित लाभार्थी को कार्ड की डिलीवरी साबित करने की जिम्मेदारी बीमा कंपनी द्वारा निर्दिष्ट अवधि से अधिक देरी नहीं की गई थी।

19. दिनांक 01.10.2012 के समझौते के संबंध में, जिसे रिट याचिका का आधार बनाया गया है, राज्य नोडल एजेंसी की ओर से तर्क दिया गया है कि समझौता विशेष रूप से याचिकाकर्ता एवं बीमा कंपनी के मध्य था एवं राज्य नोडल एजेंसी उक्त समझौते में पक्षकार नहीं थी। भारत सरकार की सलाहकार दिनांक 17.07.2012 के संबंध में, यह प्रस्तुत किया गया है कि बीमा कंपनी को अस्पतालों से ऐसे दावों की प्राप्ति के एक माह के भीतर अनिवार्य रूप से सभी दावों का निपटान/सत्यापन करना होगा, और भले ही बीमा कंपनी द्वारा आवश्यक प्रीमियम प्राप्त न हुआ हो, यह अभी भी दावे का सत्यापन कर सकता है किंतु प्रीमियम प्राप्त होने के पश्चात भुगतान कर सकता है। बीमा कंपनी ने याचिकाकर्ता के दावे का सत्यापन नहीं किया है। यद्यपि, सरकार की ओर से ऐसी कोई सलाह जारी नहीं की गई, जिससे अस्पताल के दावे का सत्यापन भी रोका जा सके।

20. सचिव, स्वास्थ्य और परिवार कल्याण, भारत सरकार के निर्देश पर राज्य नोडल एजेंसी द्वारा गठित सामाजिक लेखा परीक्षा टीम नामांकन द्वारा सत्यापन, विशेष रूप से फर्जी नामांकन की संभावना के संबंध में सॉफ्टवेयर प्रोसेसिंग, नामांकित बीमा कंपनियाों के आंकड़ों की जांच के उद्देश्य से है। राज्य नोडल एजेंसी द्वारा अपनाई गई सत्यापन प्रक्रिया को राज्य शिकायत निवारण समिति में चुनौती दी गई थी, जिसे लाभार्थियों के सत्यापित आंकड़ों में मामूली वृद्धि के साथ निपटाया गया था और ऐसे आदेश को राष्ट्रीय शिकायत निवारण समिति द्वारा बरकरार रखा गया था। बीमा कंपनियों द्वारा तैयार किए गए लाभार्थियों के स्मार्ट कार्ड के

सत्यापन के बिना राज्य नोडल एजेंसी द्वारा भुगतान नहीं किया जा सकता है।

21. प्रतिवादी संख्या- 4 की ओर से प्रस्तुत पूरक प्रतिशपथपत्र में बाद के घटनाक्रम का उल्लेख किया गया है जिसमें जिला शिकायत निवारण समिति द्वारा पारित आदेश और राज्य नोडल एजेंसी द्वारा सत्यापन के पश्चात ही भुगतान करने के पारित आदेश को अभिलेख पर लाया गया है एवं यह बताया गया है कि पारित किसी भी आदेश को किसी भी बीमा कंपनी, प्रतिवादी संख्या 6, 7 तथा 8 द्वारा किसी भी उच्च फोरम अर्थात राष्ट्रीय शिकायत निवारण समिति अथवा किसी भी न्यायालय के समक्ष चुनौती नहीं दी गई है।

22. राज्य नोडल एजेंसी द्वारा प्रस्तुत एक पूरक प्रति शपथपत्र में कहा गया है कि राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना योजना के संचालन के दौरान, आईसीआईसीआई लोम्बार्ड जनरल इंश्योरेंस कंपनी ने राज्य नोडल एजेंसी को कुछ विसंगतियों की सूचना दी थी। अग्रिम जांच करने पर, विसंगतियां सही पाई गईं तथा नामांकन प्रक्रिया के दौरान उठाए गए फर्जी दावों की संभावना के संबंध में रिपोर्ट तथा एनजीआरसी की टिप्पणियों में भी इसका उल्लेख किया गया है। राज्य नोडल एजेंसी ने ऐसे सभी आंकड़ों के उचित सत्यापन तथा जांच के पश्चात उ०प्र० सरकार से अनुरोध किया, जिसने दिनांक 26.03.2021 को विभिन्न अस्पतालों/सेवा प्रदाताओं को भुगतान करने हेतु विभिन्न बीमा कंपनियों के पक्ष में राज्य के हिस्से के रुपये 7.27 करोड़ जारी किए हैं।

23. श्री संजीव सिंह ने पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत शपथ पत्र के आधार पर कहा है कि यद्यपि प्रतिवादी संख्या- 6 ने प्रीमियम के रूप में रुपये 64 करोड़ से अधिक का दावा किया है। राज्य नोडल एजेंसियों तथा राज्य सरकारों ने लगभग रुपये 10 करोड़ की राशि ही स्वीकार की है, जिसमें राज्य का हिस्सा तथा केंद्र सरकार का हिस्सा शामिल है।

24. श्री संजीव सिंह द्वारा पूरक प्रति शपथ-पत्र के कुछ अन्य प्रस्तर को यह दिखाने के लिए इंगित किया गया है कि भुगतान किए जा रहे प्रीमियम के संबंध में एक विवाद है, चूंकि भुगतान किए जा रहे प्रीमियम के संबंध में एक विवाद है, अतः प्रतिवादी संख्या-6 ने लाभार्थियों के इलाज तथा उसके द्वारा किए गए दावों हेतु याचिकाकर्ता को भुगतान रोक दिया है। किसी भी वाद में, यदि याचिकाकर्ता बीमा कंपनी और याचिकाकर्ता के मध्य समझौते की किसी भी शर्त के उल्लंघन से व्यथित है, तब उचित उपाय समझौते के खंड 16.7 के अंतर्गत होगा।

25. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **राम बड़ाई सिंह एंड कंपनी बनाम बिहार राज्य एवं अन्य [(2015) 13 SCC 592]** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया है जिसमें यह टिप्पणी की गई कि रिट याचिका का संवैधानिक उपचार हमेशा व्यथित पक्ष हेतु उपलब्ध होता है तथा पक्षकारों के मध्य एक समझौते में मध्यस्थता खंड वास्तव में रिट याचिका को पोषणीय नहीं बना सकता है।

26. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **मैसर्स सूर्या कंस्ट्रक्शन बनाम उ०प्र० राज्य एवं अन्य [(2019) 16 SCC 794]** मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय पर भी विश्वास व्यक्त किया है जहां अपीलकर्ता को देय राशि पूर्णतः निर्विवाद है तथा वास्तव में उच्च न्यायालय के समक्ष अवमानना कार्यवाही में स्वीकार की गई है, फिर भी उच्च न्यायालय ने संविदात्मक दायित्वों और तथ्यों के विवादित प्रश्नों के आधार पर मामले में हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **एबीएल इंटरनेशनल लिमिटेड एवं एक अन्य बनाम एक्सपोर्ट क्रेडिट गारंटी कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड एवं अन्य [(2004) 3 SCC 553]** में दिए गए निर्णय पर विश्वास व्यक्त करते हुए कहा कि कि एक बार पक्षकारों के मध्य हुए समझौते के अनुसरण में देय राशि स्वीकार कर ली गई तब उच्च न्यायालय हेतु अपीलकर्ता द्वारा मांगी गई राहत को अस्वीकार करना तथा पक्षकारों को समझौते के अंतर्गत उपलब्ध उपचारों से वंचित करना उचित नहीं था।

27. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **गैस अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड बनाम इंडियन पेट्रोकेमिकल्स कॉर्पोरेशन लिमिटेड एवं अन्य** के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के सिविल अपील संख्या 3504-3505/ 2010 में पारित निर्णय पर भी विश्वास जताया है, जिसका फैसला दिनांक 08.02.2023 को हुआ था तथा उसके प्रस्तर 20 में जहां न्यायालय ने पाया कि यद्यपि विवाद एक वाणिज्यिक अनुबंध से उत्पन्न हुआ है, ऐसे अनुबंध के खंडों को चुनौती देने वाली रिट याचिका विचारणीय थी क्योंकि यह विवादित नहीं था कि गैस अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड एक सार्वजनिक क्षेत्र का उपक्रम है तथा संविधान के अनुच्छेद 12 के अंतर्गत राज्य की परिभाषा के तहत योग्य है। अनुबंध में प्रवेश के समय, गेल देश में प्राकृतिक गैस की आपूर्ति के संबंध में एकाधिकार स्थिति का आनंद ले रहा था। इंडियन पेट्रोकेमिकल्स कॉर्पोरेशन लिमिटेड ने उचित बुनियादी ढाँचा स्थापित करने में काफी खर्च किया था, किंतु उसके पास गेल के साथ समझौता करने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं था। अतः पक्षकारों के मध्य लेनदेन में एक स्पष्ट सार्वजनिक तत्व शामिल था तथा रिट क्षेत्राधिकार का प्रयोग तब किया जा सकता है जब तक राज्य, यहां तक कि अपने संविदात्मक लेनदेन में भी, निष्पक्षता का स्तर प्रयोग करने में विफल रहता है अथवा कोई भेदभाव करता है।

28. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **महाराष्ट्र शतरंज एसोसिएशन बनाम भारत संघ एवं एक अन्य [(2020) 13 SCC 285]** तथा उसके प्रस्तर 11 के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय पर भी विश्वास व्यक्त किया है, जहां यह माना गया है कि संविधान का अनुच्छेद 226 उच्च न्यायालयों को रिट जारी करने की शक्ति प्रदान करता है, परिणामस्वरूप, न केवल मौलिक अधिकारों को लागू करने हेतु अपितु किसी अन्य उद्देश्य के लिए रिट जारी करने हेतु कार्रवाई करने का क्षेत्राधिकार प्रदान करता है।

29. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने उक्त निर्णय में विभिन्न प्रस्तरों का उल्लेख करते हुए कहा है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दोहराया है कि उच्च न्यायालय की शक्तियां

संपूर्ण प्रकृति की हैं और पूर्ण रुप से विवेकाधीन हैं तथा उनके विवेक पर कोई सीमा आरोपित नहीं की जा सकती है एवं वैकल्पिक उपचार से संबंधित अवरोध को स्व आरोपित सीमा का नियम माना जाये तथा यह कभी भी विधि का नियम नहीं रहा है, अपितु अनिवार्य रूप से नीति, सुविधा और विवेक का नियम है। वैकल्पिक उपचार के अस्तित्व के बावजूद, संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत राहत देना उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार अथवा विवेक के अंतर्गत है।

30. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने राज्य नोडल एजेंसी द्वारा प्रस्तुत पूरक प्रति शपथपत्र से बताया है कि इलाहाबाद में एक समन्वय न्याय खंड-पीठ ने बीमा कंपनी द्वारा विभिन्न अस्पतालों / याचिकाकर्ताओं को भुगतान करने का निर्देश दिया था तथा इस राशि के भुगतान में विलम्ब हेतु 9% प्रति वर्ष की दर से ब्याज का भुगतान करने का भी निर्देश जारी किया गया है। ऐसी ही एक रिट याचिका, अर्थात् रिट-सी संख्या 18949/ 2019, दिनांक 07.08.2019 को निर्णीत की गई थी।

31. इस न्यायालय ने याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा इंगित संलग्नक 5, 6 और 7 का अध्ययन किया है। यह SCA 5 से स्पष्ट है, जो **रिट-सी संख्या 18949/2019 आनंद पॉलीक्लिनिक और ट्रॉमा सेंटर एवं एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं तीन अन्य**,, में पारित आदेश दिनांक 07.08.2019 है कि राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना के अंतर्गत याचिकाकर्ताओं द्वारा दावा किए गए 13 लाख रुपये से अधिक का भुगतान उचित समय के भीतर करने हेतु ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी को निर्देश देने के लिए रिट याचिका प्रस्तुत की गई थी। न्यायालय ने दिनांक 08.07.2019 को एक अंतरिम आदेश पारित किया जिसमें प्रबंध निदेशक को उपस्थित होने तथा यह बताने का निर्देश दिया गया कि 12% प्रति वर्ष की दर से ब्याज के साथ भुगतान करने तथा याचिकाकर्ता को न्यायालय की शरण लेने हेतु अनुकरणीय लागत का निर्देश क्यों न जारी किया जाए। उसी के अनुसरण में, उप प्बंधक न्यायालय में उपस्थित हुए तथा एक शपथपत्र प्रस्तुत किया कि राशि का भुगतान टीडीएस काटने के पश्चात एनईएफटी/आरटीजीएस के द्वारा किया गया था। न्यायालय ने दिसंबर 2018 से ब्याज का भुगतान करने का निर्देश दिया क्योंकि राज्य नोडल एजेंसी के मुख्य कार्यकारी अधिकारी ने दिनांक 05.11.2018 को अस्पताल को ऐसा भुगतान करने का निर्देश दिया था।

32. दिनांक 08.08.2019 का आदेश एक निर्णय नहीं है क्योंकि संविदात्मक दायित्वों हेतु रिट याचिका की पोषणीयता के संबंध में कोई मुद्दा नहीं उठाया गया था जब पक्षकारों, जिनमें से कोई भी भारत के संविधान के अनुच्छेद 12 के अर्थ के अंतर्गत राज्य नहीं था, के मध्य समझौता हुआ था, जिसमे अनुबंध से उत्पन्न होने वाले विवादों के निपटारे हेतु मध्यस्थता का स्पष्ट प्रावधान किया गया है।

33. इस न्यायालय ने रिट-सी संख्या 1048/ 2019 **जीवन धारा अस्पताल एवं अनुसंधान केंद्र एवं एक अन्य बनाम उ०प्र० राज्य एवं तीन अन्य** में उसी समन्वय पीठ द्वारा दिनांक 05.07.2019 को पारित, और रिट-सी संख्या 17347/2019**मैसर्स आशीर्वाद हॉस्पिटल एंड रिसर्च सेंटर एवं एक अन्य बनाम भारत संघ एवं**

अन्य में अंतरिम आदेश दिनांक 21.05.2019: में पारित अंतरिम आदेश का अध्ययन भी किया है। सभी अंतरिम आदेश राज्य शिकायत निवारण समिति द्वारा ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी के क्षेत्रीय प्रबंधक को याचिकाकर्ता के अस्पतालों को भुगतान करने हेतु जारी किए गए निर्देशों का उल्लेख करते हैं और तदपश्चात, एक माह के भीतर भुगतान करने अथवा न्यायालय के समक्ष व्यक्तिगत रूप से पेश होने का निर्देश देते हैं। ऐसा कोई भी अंतरिम आदेश इस न्यायालय पर बाध्यकारी नहीं है।

34. **राम बड़ाई सिंह एंड कंपनी (उपरोक्त)** के मामले में इस न्यायालय ने हमारे समक्ष उद्धृत निर्णयों पर विचार किया है और पाया है कि, सुरक्षा जमा की देरी से वापसी पर ब्याज और अनुबंध पूरा होने के पश्चात श्रम लागत वृद्धि की वसूली के निर्देश के विरुद्ध एक रिट याचिका प्रस्तुत की गई थी और माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि उच्च न्यायालय इस पर ध्यान देने में विफल रहा कि समझौता बहुत पहले ही हो चुका था और मुकदमेबाजी के पूर्व दौर के साथ-साथ मुकदमेबाजी के तत्काल दौर में भी, प्रतिवादीगण ने मध्यस्थता खंड के आधार पर कभी कोई आपत्ति नहीं उठाई, अतः उच्च न्यायालय को मामले को वैकल्पिक उपचार के आधार पर नहीं भेजना चाहिए था, जहां किसी भी स्तर पर प्रतिवादी द्वारा ऐसी कोई आपत्ति नहीं उठाई गई थी। मध्यस्थता खंड की उपलब्धता हमेशा पीड़ित पक्ष के रिट याचिका प्रस्तुत करने के अधिकार को समाप्त नहीं करती है। राम बड़ाई सिंह एंड कंपनी (उपरोक्त) के वाद में, इस न्यायालय ने तथ्यों पर सावधानीपूर्वक विचार किया है और पाया है कि, बिहार सरकार के अधीक्षण अभियंता और याचिकाकर्ता-कंपनी के मध्य किए गए अनुबंध के संतोषजनक प्रदर्शन का प्रश्न था।

35. **मैसर्स सूर्या कंस्ट्रक्शंस (उपरोक्त)** मामले में याचिकाकर्ता द्वारा उत्तर प्रदेश जल निगम हेतु किए गए अतिरिक्त कार्य की स्वीकृत बकाया राशि का दावा किया गया था। उच्च न्यायालय ने उ०प्र० जल निगम को याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन पर निर्णय लेने के लिए कहा था और इस प्रकार के अभ्यावेदन पर निर्णय में, यह तथ्य सामने आया कि बकाया राशि स्वीकार कर ली गई थी तथा विभिन्न कारणों से भुगतान नहीं किया जा रहा था।

36. **गैस अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड (उपरोक्त)** के वाद में, विवाद दो सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के मध्य था, गैस की आपूर्ति में एकाधिकार धारक होने के नाते गेल ने आईपीसीएल के साथ ऐसी प्राकृतिक गैस की आपूर्ति के लिए एक अनुबंध किया था, जिसने हजीरा और गांधार स्थित प्लांट के मध्य पाइपलाइन बिछाने में रुपये 4500/- करोड़ से अधिक का निवेश करके एक प्लांट स्थापित किया था। गैस सप्लाई की प्रक्रिया तथा गैस की कीमत को लेकर विवाद था। अतः माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ऐसे तथ्यों के संदर्भ में प्रस्तर 20 में टिप्पणियाँ की थीं, जिसे याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने हमारे सामने पढ़ा है।

37. **महाराष्ट्र शतरंज एसोसिएशन (उपरोक्त)** के मामले में, अपीलकर्ता और सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 के अंतर्गत पंजीकृत संबद्ध सोसायटी और दूसरे प्रतिवादी ने बाद के संविधान और उपनियमों के रूप में भारत में शतरंज के

लिए एक पंजीकृत सोसायटी और नियंत्रण प्राधिकारी भी बनाई। प्रश्न किसी भी विवाद के निपटारे हेतु न्यायालय के स्थान/ क्षेत्राधिकार के संबंध में था। न्यायालय ने कहा था कि जहां कई न्यायालयों के पास विवाद की विषय वस्तु पर सुनवाई करने का क्षेत्राधिकार होगा, वहीं एक अनुबंध के पक्षकार यह निर्धारित कर सकते हैं कि एक मुकदमा अन्य न्यायालयों को छोड़कर विशेष रूप से कई न्यायालयों में से एक के समक्ष लाया जाएगा। महाराष्ट्र शतरंज एसोसिएशन (उपरोक्त) के वाद में दिया गया निर्णय, याचिकाकर्ता के वाद के तथ्यों पर स्पष्ट रूप से लागू नहीं है।

38. इस न्यायालय ने पक्षकारों के अधिवक्ताओं द्वारा उठाए गए तर्कों और उनकी ओर से प्रस्तुत शपथपत्रों में यह तथ्य पाया है कि राज्य नोडल एजेंसी और बीमा कंपनी के मध्य लाभार्थियों/स्मार्ट कार्ड के सत्यापन के संबंध में एक गंभीर विवाद है। दूसरी ओर, बीमा कंपनी के विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि चूँकि स्मार्ट कार्ड लाभार्थियों के सत्यापन के संबंध में उठाए गए विवाद के कारण प्रीमियम नहीं दिया गया है, अतएव वह याचिकाकर्ता को कोई भुगतान नहीं करेगी।

39. याचिकाकर्ता ने निस्संदेह केंद्र सरकार के परामर्श दिनांकित 17.07.2012 के खंड 2(iii) को चुनौती दी है, जो बीमा कंपनी को प्रीमियम का भुगतान न करने की स्थिति में मुआवजे का भुगतान रोकने का अधिकार देता है। परन्तु इस न्यायालय की राय है कि इस प्रकार का सलाह/नीतिगत निर्णय एक नियमित प्रकृति का है जो समस्त बीमा पॉलिसियों में पाया जाता है।

40. बीमाधारक का बीमा कवरेज भुगतान किए गए प्रीमियम के अनुसार होता है। किसी भी पॉलिसी का अस्तित्व/निरंतरता प्रीमियम के भुगतान पर निर्भर होता है और इसका भुगतान न करने पर बीमा पॉलिसी समाप्त हो जाएगी और दावा मात्र उसी आधार पर अस्वीकार किया जा सकता है। अतएव, भारत सरकार के परामर्श का खंड स्वैच्छिक या अनुचित या संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन नहीं है।

41. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने बताया कि याचिकाकर्ता समझौते के अन्तर्गत प्रदान की गई सेवाओं हेतु भुगतान का दावा कर रहा है।

42. एक अनुबंध से उत्पन्न मामले में राज्य द्वारा कार्रवाई की न्यायिक समीक्षा की परिधि के प्रश्न पर विचार करते समय, और अनुबंध के वैधानिक नहीं होने का क्या प्रभाव है, और इसमें न्यायिक समीक्षा हेतु अनुबंध संबंधी मामले में सार्वजनिक विधि तत्व क्या है, सर्वोच्च न्यायालय ने म.प्र. पावर (उपरिवर्णित) में, **राधाकृष्ण अग्रवाल बनाम बिहार राज्य (1977) 3 एससीसी 457** में की गई टिप्पणियों पर विचार किया; जहाँ एक पट्टे के अन्तर्गत रॉयल्टी की दर को संशोधित करने और विभिन्न आधारों पर पट्टे को रद्द करने के राज्य सरकार के आदेशों के विरुद्ध याचिकाएँ प्रस्तुत की गई थीं। न्यायालय की राय थी कि ऐसे मामलों में साधारणतया एकमात्र प्रश्न यह उठता है कि क्या शिकायत की गई कार्रवाई समझौते के अनुरूप थी। इसमें पूर्व दिए गए निर्णयों का उद्धरण दिया गया है, जहाँ सर्वोच्च न्यायालय ने देखा था कि एक लोक सेवक के रूप में उसके द्वारा किए गए अनुबंध से बाहर आने वाले किसी भी कर्तव्य या दायित्व

को संविधान के अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत रिट का तन्त्र द्वारा लागू नहीं किया जा सकता है।

43. **बंचनिधि रथ बनाम उड़ीसा राज्य (1972) 4 एससीसी 781** में, सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था कि यदि संविदा के संदर्भ में किसी अधिकार का दावा किया गया है तो ऐसे अधिकार को रिट याचिका में लागू नहीं किया जा सकता है। **हर शंकर बनाम उप उत्पाद एवं कराधान आयुक्त (1975) 1 एससीसी 737** में; संविधान पीठ ने कहा था कि "एक रिट याचिका संविदात्मक दायित्वों पर महाभियोग लगाने का उचित उपाय नहीं है।"

44. न्यायालय ने यह भी विचार किया कि यह अनुबंध है न कि संविधान द्वारा विनियमित कार्यकारी शक्ति जो पक्षकारों के संबंधों को नियंत्रित करती है। सर्वोच्च न्यायालय ने म.प्र. पावर (उपरिवर्णित) में **महावीर ऑटो स्टोर्स बनाम इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन (1990) 3 एससीसी 752** में इसके द्वारा की गई टिप्पणियों का उल्लेख किया; जहाँ पूर्व के मामलों में निर्णयों का जिक्र करते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था कि स्वेच्छाचारिता और भेदभाव के विरुद्ध तर्क और नियम, नागरिकों के साथ व्यवहार में निष्पक्ष व्यवहार और प्राकृतिक न्याय के नियम, राज्य के यंत्र द्वारा स्थिति या कार्रवाई में प्रयोज्य विधिक नियम के भाग हैं। भले ही नागरिकों के अधिकार संविदात्मक अधिकारों की प्रकृति में हैं, अनुबंध में प्रवेश करने या न करने के निर्णय की रीति, विधि और उद्देश्य, प्रासंगिकता और तर्कसंगतता, निष्पक्ष खेल, प्राकृतिक न्याय समानता और गैर-भेदभाव लेन-देन के प्रकार और लेन-देन की प्रकृति में, जैसा कि किसी विशेष मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में स्पष्ट है, की कसौटी पर न्यायिक समीक्षा के अधीन हैं। ।

45. **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम बृज एंड रूफ कंपनी इंडिया लिमिटेड (1996) 6 एससीसी 22;** में सर्वोच्च न्यायालय प्रतिवादी, , जो एक सार्वजनिक क्षेत्र निगम था और अपीलकर्ता राज्य से कथित तौर पर भुगतान की माँग कर रहा था, द्वारा प्रस्तुत एक रिट याचिका की सुनवाई कर रहा था। न्यायालय ने कहा कि विचाराधीन अनुबंध में अन्य बातों के साथ-साथ मध्यस्थता के संदर्भ में विवादों के निस्तारण हेतु प्रावधान करने वाले अनुच्छेद शामिल थे। उक्त परिस्थितियों में अनुच्छेद 226 का आश्रय लेना ग़लत पाया गया। न्यायालय ने इस प्रकार टिप्पणी की :-

"सर्वप्रथम, पक्षकारों के मध्य अनुबंध निजी विधि की परिधि में एक अनुबंध है। यह एक वैधानिक अनुबंध नहीं है। यह अनुबंध अधिनियम के प्रावधानों द्वारा या शायद, माल-विक्रय अधिनियम के कुछ प्रावधानों द्वारा शासित होता है। इस प्रकार अनुबंध के नियमों और शर्तों की व्याख्या से संबंधित किसी विवाद को रिट याचिका में नहीं उठाया जा सकता है और न ही उठाया गया। यह अनुबंध द्वारा प्रदान की गई या तो मध्यस्थता का मामला है या सिविल न्यायालय का मामला हो सकता है। <u>क्या अनुबंध के अन्तर्गत अपीलकर्ता-सरकार की ओर से प्रतिवादी को कोई राशि देय है और, यदि हाँ, तो कितनी और आगे यह प्रश्न कि क्या सरकार द्वारा किसी भी राशि का भुगतान करने से रोकना या इन्कार करना उचित है या नहीं, ये समस्त ऐसे मामले हैं जिन पर किसी रिट याचिका में विनिश्चयन नहीं किया जा सकता ।</u>"

(बल दिया गया)

46. म.प्र. पावर (उपरिवर्णित), सर्वोच्च न्यायालय ने वेरिगाम्टो नवीन बनाम आन्ध्र प्रदेश सरकार (2001) एससीसी 344 में दिए गए निर्णय पर भी विचार किया; जिसमें एक निगम को दिए गए खनन पट्टे और उप-पट्टा शामिल था, जिसे सरकार द्वारा अनुमति दी गई थी, जिसे बाद में वापस लेने की माँग की गई थी। सर्वोच्च न्यायालय ने प्रस्तर 21 में इस प्रकार टिप्पणी की: -

"21 .... जहाँ अनुबंध के उल्लंघन में वैधानिक दायित्व का उल्लंघन शामिल है, जब शिकायत से संबंधित आदेश वैधानिक प्राधिकारी द्वारा वैधानिक शक्ति का प्रयोग करते हुए किया गया था, यद्यपि वादहेतुक अनुबंध से उत्पन्न होता है या उससे संबंधित होता है,तब यह इसे सार्वजनिक विधि की परिधि में लाता है क्योंकि प्रयोग की गई शक्ति अनुबंध से भिन्न है। सरकार की अपनी पसंद के किसी भी व्यक्ति के साथ व्यापार करने की स्वतंत्रता सार्वजनिक हित के रूप में तर्कसंगतता और निष्पक्ष व्यवहार की शर्तों के अधीन है। एक अनुबंध में प्रवेश करने के उपरान्त, अनुबंध को रद्द करने पर, जो वैधानिक प्रावधानों की शर्तों के अधीन है, जैसा कि वर्तमान मामले में है, यह नहीं कहा जा सकता है कि मामला पूर्ण रुप से एक अनुबंध क्षेत्र में आता है..."

47. निर्णय के प्रस्तर 46 में म.प्र. पावर (उपरिवर्णित), सर्वोच्च न्यायालय ने ***एबीएल इंटरनेशनल लिमिटेड बनाम एक्सपोर्ट क्रेडिट गारंटी कॉर्प ऑफ इंडिया लिमिटेड (2004) 3 एससीसी 553*** में की गई टिप्पणियों पर विचार किया; जिसमें कंपनी अधिनियम के अन्तर्गत निगमित एक कंपनी शामिल थी, जो रिट याचिकाकर्ता द्वारा किए गए बीमा दावे को अस्वीकार कर रही थी, प्रस्तर 27 में निम्नानुसार वर्णित है: -

"27. हमारी उपरोक्त चर्चा से, रिट याचिका की पोषणीयता के संबंध में निम्नलिखित विधिक सिद्धांत उत्पन्न होते हैं:
(ए) एक उपयुक्त मामले में, राज्य या राज्य के एक साधन के विरुद्ध एक संविदात्मक दायित्व से उत्पन्न एक रिट याचिका पोषणीय है। (बी) मात्र इसलिये कि तथ्य के कुछ विवादित प्रश्न विचार हेतु प्रस्तुत हैं, यह एक आधार नहीं हो सकता है कि नियमकी भाँति समस्त मामलों में रिट याचिका पर विचार करने से इन्कार कर दिया जाए। (सी) मौद्रिक दावे के परिणामी अनुतोष से जुड़ी एक रिट याचिका भी पोषणीय है।"

48. उसी समय सर्वोच्च न्यायालय ने उसी निर्णय के प्रस्तर 28 में निम्नलिखित टिप्पणियाँ की थीं: -

"28. तथापि, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत रिट याचिका की पोषणीयता पर विचार और आपत्ति करते समय, न्यायालय को इस तथ्य को ध्यान में रखना चाहिए कि संविधान के अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत विशेषाधिकार रिट जारी करने की शक्ति संपूर्ण है और प्रकृति और संविधान के किसी भी अन्य प्रावधान द्वारा सीमित नहीं है। <u>मामले के तथ्यों के दृष्टिगत उच्च न्यायालय के पास रिट याचिका पर विचार करने या न करने का विवेक है। न्यायालय ने इस शक्ति के अभ्यास में खुद पर कुछ प्रतिबंध लगाए हैं। - - - और विशेषाधिकार रिट जारी</u>

करने के उच्च न्यायालय के इस संपूर्ण अधिकार का उपयोग साधारणतया न्यायालय द्वारा अन्य उपलब्ध उपचारों को छोड़कर नहीं किया जाएगा जब तक कि राज्य या उसके अंगो की ऐसी कार्रवाई स्वैच्छिक और अनुचित न हो ताकि संविधान के अनुच्छेद 14 के अभिदेश का उल्लंघन न हो अथवा अन्य अन्य वैध और विधिक कारणों से न हो जिस हेतु न्यायालय उक्त क्षेत्राधिकार का प्रयोग करना उचित और आवश्यक समझता है।"

(बल दिया गया)

49. सर्वोच्च न्यायालय ने इस आलोचना को परे कर दिया दिया कि वह उत्तर प्रदेश राज्य बनाम बृज एंड रूफ कॉर्पोरेशन (उपरिवर्णित), में उसके द्वारा निर्धारित सिद्धांतों का पालन नहीं कर रहा है। यह देखते हुए कि उक्त मामले में एक अनुबंध था जिसमें मध्यस्थता खंड था परन्तु एबीएल इंटरनेशनल (उपरिवर्णित) में कोई मध्यस्थता खंड नहीं था।

50. म.प्र. पावर (उपरिवर्णित) के मामले में उच्चतम न्यायालय ने इसके उपरान्त विधि में हाल के विकास पर विचार किया और कुछ सिद्धांत प्रतिपादित किये जहाँ अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत शक्तियों का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय संविदात्मक मामलों में भी हस्तक्षेप कर सकता है। अनुच्छेद 55 से 60 में यह निम्नानुसार देखा गया है: -

"55. अब हम जोशी टेक्नोलॉजीज इंटरनेशनल इनकार्पोरेशन बनाम भारत संघ में इस न्यायालय के निर्णय पर गौर कर सकते हैं, जिस पर अतिरिक्त विद्वान सॉलिसिटर जनरल ने भी विश्वास व्यक्त किया है। उक्त मामले में वास्तव में रिट याचिकाकर्ता की शिकायत शामिल थी कि यह आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 42 के लाभ का पात्र था, जिसमें कुछ कटौतियों का प्रावधान था। याचिकाकर्ता ने प्रतिवादी, भारत सरकार के साथ एक समझौता किया था। प्रतिवादी का वाद, अन्य बातों के अतिरिक्त, यह था कि याचिकाकर्ता के मामले में इस तथ्य से इन्कार करना था कि धारा 42 की चूक लापरवाही से हुई थी। रिट याचिका में प्रार्थना अनिवार्य रूप से अन्य बातों के साथ-साथ धारा 42 के अन्तर्गत कटौती हेतु पात्रता की घोषणा करने हेतु थी। यह उक्त मामले के निस्तारण के दौरान था कि इस न्यायालय ने निस्संदेह , अन्य बातों के साथ-साथ, एबीएल लिमिटेड (उपरिवर्णित) को विज्ञापित करने के साथ-साथ निम्नलिखित टिप्पणी भी की :-"69 । इस प्रकार उपरोक्त सिद्धांतों में स्थिति को संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है जैसा कि पूर्व चर्चा के संदर्भ में समझा जा सकता है जिसका उल्लेख हमने ऊपर किया है। इसके अनुसार, इसमें कोई संदेह नहीं है कि संविदात्मक मामलों में या जहाँ तथ्य के विवादित प्रश्न हों या यहाँ तक कि जब मौद्रिक दावा उठाया गया हो, तब भी रिट याचिका की पोषणीयता पर कोई पूर्ण प्रतिबंध नहीं है। साथ ही, विवेकाधिकार उच्च न्यायालय के पास है जिसका प्रयोग वह कुछ परिस्थितियों में करने से इंकार कर सकता है। इससे यह भी पता चलता है कि निम्नलिखित परिस्थितियों में, "सामान्य तौर पर", न्यायालय इस तरह के विवेक का प्रयोग नहीं करेगा:

69.1. न्यायालय इस मुद्दे की जाँच तब तक नहीं कर सकता जब तक कि कार्रवाई के साथ कोई सार्वजनिक विधि का कोई स्वरूप न जुड़ा हो।

69.2. जब भी अनुबंध में विवाद के निस्तारण का एक विशेष तरीका प्रदान किया जाता है, तो

उच्च न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत अपने विवेक का प्रयोग करने से इन्कार कर देगा और पक्ष को निस्तारण के उक्त तरीके पर निर्भर कर देगा, विशेषकर जब विवादों का निस्तारण मध्यस्थता के माध्यम से किया जाना हो।

69.3. यदि तथ्य संबंधी अत्यंत गंभीर विवादित प्रश्न हों जो जटिल प्रकृति के हों और उनके निर्धारण हेतु मौखिक साक्ष्य की आवश्यकता हो।

69.4. विशेष रूप से संविदात्मक दायित्वों से उत्पन्न होने वाले धन दावों पर असाधारण परिस्थितियों को छोड़कर साधारणतया विचार नहीं किया जाना चाहिए।"

"70. इसके अतिरिक्त, राज्य/सार्वजनिक प्राधिकरण द्वारा निजी पक्षकारों के साथ किए गए अनुबंधों से संबंधित विभिन्न स्थितियों/पहलुओं से निपटने वाले इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों से जो विधिक स्थिति उभरती है, उसे निम्नानुसार संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है:

70.1. अनुबंध में प्रवेश के चरण में, राज्य पूर्ण रुप से अपनी कार्यकारी क्षमता में कार्य करता है और निष्पक्षता के दायित्वों से बँधा होता है।

70.2. राज्य अपनी कार्यकारी क्षमता में, यहाँ तक कि संविदात्मक क्षेत्र में भी, निष्पक्ष रूप से कार्य करने हेतु बाध्य है और कुछ भेदभाव नहीं कर सकता है।

70.3. यहाँ तक कि ऐसे मामलों में जहाँ प्रश्न अनुबंध के क्षेत्र में प्रवेश करने से पूर्व प्रतिस्पर्धी दावों के चयन या उन पर विचार का है, संविधान के अनुच्छेद 14 के उल्लंघन का प्रश्न उठने से पूर्व तथ्यों की जाँच की जानी चाहिए और पता लगाना चाहिए। यदि वे तथ्य विवादित हैं और साक्ष्य के मूल्यांकन की आवश्यकता है, जिनकी सत्यता का परीक्षण मात्र विस्तृत साक्ष्य लेकर, गवाहों की जाँच और जिरह से ही किया जा सकता है, तो संविधान के अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत कार्यवाही में मामले का निर्णय सुविधाजनक या संतोषजनक ढंग से नहीं किया जा सकता है। ऐसे मामलों में न्यायालय पीड़ित पक्ष को सिविल वाद आदि के वैकल्पिक उपाय का सहारा लेने का निर्देश दे सकता है।

70.4. संविधान के अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय के रिट क्षेत्राधिकार का उद्देश्य स्वेच्छा से किए गए दायित्व से बचने की सुविधा प्रदान करना नहीं था।

70.5. संविदात्मक दायित्व से बचने हेतु रिट याचिका पोषणीय नहीं थी। अनुबंध में सहमत शर्तों के प्रदर्शन में व्यावसायिक कठिनाई, असुविधा या कठिनाई की घटना अनुबंध की शर्तों का पालन न करने का कोई औचित्य नहीं प्रदान कर सकती है, जिसे पक्षकारों ने खुली आँखों से स्वीकार किया था। ऐसा कभी नहीं हो सकता कि एक लाइसेंसधारी लाइसेंस पर कार्य कर सकता है यदि उसे ऐसा करना लाभदायक लगता है: और वह उन शर्तों को चुनौती दे सकता है जिनके अन्तर्गत वह लाइसेंस लेने हेतु सहमत हुआ है, यदि उसे अपना व्यवसाय संचालित करने हेतु व्यावसायिक रूप से अक्षम्य लगता है।

70.6. <u>साधारणतया, जहाँ अनुबंध के उल्लंघन की शिकायत की जाती है, ऐसे उल्लंघन की शिकायत</u>

करने वाला पक्ष अनुबंध के विशिष्ट अनुपालन हेतु मुकदमा कर सकता है, यदि अनुबंध विशेष रूप से निष्पादित करने में सक्षम है। अन्यथा, पार्टी हर्जाने हेतु मुकदमा कर सकती है।

70.7. यह धारित करते हुए कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन किए बिना कार्रवाई नहीं की जा सकती थी, रिट तब जारी की जा सकती है जहाँ विधि द्वारा असमर्थित कार्यकारी कार्रवाई होती है या यहाँ तक कि निगम के संबंध में भी विधि के समक्ष समानता या विधि की समान सुरक्षा से इन्कार किया जाता है या यदि यह दिखाया जा सकता है कि सार्वजनिक अधिकारियों की कार्रवाई बिना किसी सुनवाई और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करते हुए थी।

70.8. यदि निजी पक्ष और राज्य/साधन और/या राज्य की एजेंसी के मध्य अनुबंध एक निजी विधि के दायरे में है और इसमें सार्वजनिक विधि का कोई तत्व नहीं है, तो पीड़ित पक्ष हेतु सामान्य तरीका, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाने और उसके असाधारण क्षेत्राधिकार का उपयोग करने के बजाय सामान्य नागरिक विधि के अन्तर्गत दिए गए उपचारों को लागू करना है।

70.9. राज्य के साथ अनुबंध में सार्वजनिक विधि और निजी विधि तत्व के मध्य अंतर धुंधला होता जा रहा है। यद्यपि, इसे पूर्ण रुप से समाप्त नहीं किया गया है और जहाँ मामला पूर्ण रुप से अनुबंध के निजी क्षेत्र में आता है, इस न्यायालय ने यह स्थिति बनाए रखी है कि रिट याचिका पोषणीय नहीं है। सार्वजनिक विधि और निजी विधि के अधिकारों और उपायों के मध्य विरोधाभास प्रत्येक मामले की तथ्यात्मक गठन पर निर्भर करेगा और सार्वजनिक विधि के उपचारों और निजी विधि क्षेत्र के मध्य अंतर को सटीकता के साथ सीमांकित नहीं किया जा सकता है। वास्तव में, प्रत्येक मामले की उसके तथ्यों के आधार पर जाँच की जानी चाहिए कि क्या पक्षकारों के मध्य संविदात्मक संबंधों में सार्वजनिक तत्व का प्रतीक है। एक बार किसी विशेष मामले के तथ्यों पर यह पाया जाता है कि गतिविधि या विवाद की प्रकृति में सार्वजनिक विधि तत्व शामिल है, तो मामले की जाँच भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत रिट याचिकाओं में उच्च न्यायालय द्वारा की जा सकती है ताकि यह देखा जा सके कि कार्रवाई की गई है या नहीं राज्य और/या राज्य का साधन या एजेंसी निष्पक्ष, उचित और न्यायसंगत है या कि प्रासंगिक कारकों को ध्यान में रखा गया है और अप्रासंगिक कारकों को निर्णय लेने की प्रक्रिया में नहीं रखा गया है या कि निर्णय स्वैच्छिक नहीं है।

70.10. ऐसी स्थिति में, किसी नागरिक से मात्र उचित या वैध अपेक्षा करना, अपने आप में एक अलग प्रवर्तनीय अधिकार नहीं हो सकता है, परन्तु इस पर विचार करने और उचित महत्व देने में विफलता निर्णय को स्वैच्छिक बना सकती है, और इस प्रकार उचित विचार की आवश्यकताएँ होती हैं। एक वैध अपेक्षा अस्वेच्छाचारिता के सिद्धांत का हिस्सा बनती है।

70.11. संविदात्मक दायित्वों के क्षेत्र में आने वाले विवादों के संबंध में न्यायिक समीक्षा का दायरा अधिक सीमित हो सकता है और संदिग्ध मामलों में पक्षकारों को विशुद्ध रूप से संविदात्मक विवादों के न्यायनिर्णयन हेतु प्रदान किए गए

उपायों का सहारा लेकर उनके अधिकारों के न्यायनिर्णयन हेतु बाध्य किया जा सकता है।"

56. *केरल राज्य बनाम एम.के. जोस में, वह विशिष्ट प्रश्न जिसके बारे में हम चिंतित हैं, अर्थात्, किसी संविदात्मक मामले में रिट याचिका पर विचार करना और जहाँ विशिष्ट प्रश्न अनुबंध समाप्ति की वैधता था, विचारार्थ उपस्थित हुआ। हम निम्नलिखित पर गौर कर सकते हैं:*

"13. यदि तथ्य के विवादित प्रश्नों से जुड़े अनुबंध का उल्लंघन होता है, एक रिट न्यायालय को साधारणतया रिट याचिका पर विचार नहीं करना चाहिए। वर्तमान मामला स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि इसमें तथ्यात्मक विवाद शामिल हैं।"

57. इसके उपरान्त, न्यायालय ने एबीएल (उपरिवर्णित) में इस न्यायालय के निर्णय पर विस्तार से विचार किया और पाया कि यह एक ऐसा मामला था जहाँ न्यायालय ने अनुतोष प्रदान किया था क्योंकि दस्तावेजी साक्ष्य से तथ्य बिल्कुल स्पष्ट थे और यह बीमा अनुबंध के ऐसे खंडो के निर्वचन से संबंधित था। हमें एम.के. जोस (उपरिवर्णित) में मात्र अनुच्छेद 20 पर गौर करने की आवश्यकता है जो निम्नवत है:

"20. हमने उपरोक्त प्राधिकारियों को इस बात पर प्रकाश डालने हेतु संदर्भित किया है कि किन परिस्थितियों में अनुबंध संबंधी दावे या अनुबंध के उल्लंघन को चुनौती देने पर रिट न्यायालय द्वारा विचार किया जा सकता है। यह प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करता है। एबीएल इंटरनेशनल [(2004) 3 एससीसी 553] में जो मुद्दा उठा था, वह यह था कि राज्य का एक अंग बीमा-अनुबंध के खंडों पर एक अलग निर्वचन कर रहा था और बीमाधारक अनुबंध का भिन्न निर्वचन कर रहा था। न्यायालय ने इसे मात्र इसलिए उचित समझा क्योंकि बीमाकर्ता द्वारा कुछ बातें विवादित है, इसे तथ्य के विवादित प्रश्नों के दायरे में नहीं आना चाहिए। वास्तव में, तथ्य का कोई विवादित प्रश्न नहीं था, परन्तु इस हेतु बीमा-अनुबंध के निबंधनों के निर्वचन की आवश्यकता थी। इसी तरह, यदि जो सामग्री अभिलेख पर आती है, उससे यह यह स्पष्ट है कि रिट न्यायालय न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग कर सकती है परन्तु, वाद के विचारण की स्थिति में, उच्च न्यायालय ने साक्ष्य एकत्र करने हेतु एक आयोग नियुक्त किया है, प्रतिवादी से आपत्ति माँगे बिना इसे स्वीकार कर लिया गया और अनुबंध समाप्ति का आदेश रद्द कर दिया।"

(बल दिया गया)

58. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सुधीर कुमार सिंह में, प्रथम प्रतिवादी, सफल निविदाकर्ता एक वर्ष हेतु अनुबंध पर काम कर चुका था, जब उसे रद्द किया गया था। इस न्यायालय ने एबीएल (उपरिवर्णित) और जोशी टेक्नोलॉजी (उपरिवर्णित) सहित पूर्व के मामले के विधि को विस्तृत रूप से संदर्भित किया और अन्य बातों के साथ-साथ इस प्रकार कहा: - "23 । यह संकलित किया जा सकता है कि प्रत्येक मामला जिसमें एक नागरिक/व्यक्ति उसके मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के सम्बन्ध में रिट न्यायालय के समक्ष प्रार्थना प्रस्तुत करता है, एक ऐसा मामला है जिसमें एक "सार्वजनिक विधि तत्व" शामिल है, उस मामले के विपरीत जो मात्र अनुबंध के उल्लंघन और उससे होने वाले नुकसान से संबंधित है। जब भी प्राकृतिक न्याय के उल्लंघन की दलील

दी जाती है, उक्त याचिका, यदि पोषणीय पाई जाती है, तो संवैधानिक विधि में राज्य की स्वैच्छिक कार्रवाई के रूप में जानी जाती है, जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के प्रावधानों को आकर्षित करती है - नवाबखान अब्बासखान बनाम गुजरात राज्य (1974) 2 एससीसी 121 में प्रस्तर 7 पर देखें। अतएव, वर्तमान मामला एक ऐसा मामला है जिसमें "सार्वजनिक विधि तत्व" शामिल है जिसमें याचिकाकर्ता (हमारे समक्ष प्रतिवादी संख्या 1) जिसने रिट न्यायालय के दरवाजे खटखटाए थे, ने निष्पक्ष सुनवाई के नियम के उल्लंघन का आरोप लगाया था, क्योंकि निविदा को रद्द करने की पूरी कार्यवाही, रद्दीकरण सहित, उनकी पीठ पीछे तथ्यों के एकपक्षीय मूल्यांकन पर की गई थी।"

59. हम पूर्व में ही यह निष्कर्ष निकाल चुके हैं कि पीपीए एक वैधानिक अनुबंध नहीं है। यद्यपि, यह जाँच का अंत नहीं होगा। डॉ. ए.एम. सिंघवी, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का कहना है कि अनुबंध, एक वैधानिक अनुबंध नहीं होने के कारण, मात्र यह निर्धारित करने के उद्देश्य से प्रासंगिक होता है कि क्या न्यायालय को रिट आवेदक को वैकल्पिक उपचारों हेतु सौंप देना चाहिए। दूसरे शब्दों में, जबकि न्यायालय याचिका पर विचार करने या ऐसा करने से इन्कार करने का अपना विवेक बरकरार रखेगा, प्रत्येक मामले के तथ्यों में, न्यायालय द्वारा अनुतोष प्रदान करने के विरुद्ध कोई पूर्ण निषेध नहीं है, भले ही अनुबंध की समाप्ति को चुनौती किसी अनुबंध के मामले में दी गई हो, जो प्रकृति में वैधानिक नहीं है, जब उल्लंघन करने वाला पक्ष राज्य हो। दूसरे शब्दों में, तर्क यह है कि इस क्षेत्र में विधि में विकास देखा गया है और इससे भी अधिक, भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के वास्तविक दायरे की बढ़ती समझ के साथ एक तरह की क्रांति और रूपांतरकारी परिवर्तन देखा गया है। उनका कहना है कि राज्य अब डॉ. जेकेल और हाइड का खेल नहीं खेल सकता। इसकी प्रकृति ठोस हुई है। इसका चरित्र अनम्य है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि वह किस गतिविधि में शामिल है। यह अनुच्छेद 14 के निष्पक्ष कार्यवही के आदेश से प्रभावित होता रहेगा। निस्संदेह, प्रत्येक मामले के तथ्यों के आधार पर, अनुबंध से उत्पन्न मामलों में राज्य की कार्रवाई पर प्रहार करने हेतु न्यायालय के अधिकार क्षेत्र की सीमाओं का आश्चर्यजनक विस्तार हुआ है। न्यायालय स्वतंत्र है कि वह राज्य की कार्रवाई से जुड़े किसी मामले को इस आधार पर खारिज करने से इन्कार कर दे कि कार्रवाई वास्तव में स्वैच्छिक है।

60. <u>हम उन बिंदुओं के संबंध में अपने निष्कर्ष प्रस्तुत कर सकते हैं, जिन्हें हमने तैयार किया है:</u>

i. यह निस्संदेह सत्य है कि रिट क्षेत्राधिकार एक सार्वजनिक विधि उपाय है। एक मामला, जो पूर्ण रुप से सार्वजनिक निकाय के मामलों के निजी दायरे में आता है, उसे न्यायालय के रिट क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत निस्तारित नहीं किया जा सकता है।

ii. बरेली विकास प्राधिकरण (उपरिवर्णित) में निर्धारित सिद्धांत है कि गैर-वैधानिक अनुबंध के मामले में अधिकार केवल अनुबंध की शर्तों और निर्णयों द्वारा शासित होते हैं, जिनका पालन किया जाना चाहिए, जिसमें राधाकृष्ण अग्रवाल (उपरिवर्णित) भी शामिल हैं। एबीएल (उपरिवर्णित) में जो निर्धारित किया गया है और जैसा कि सुधीर कुमार सिंह (उपरिवर्णित) में हाल

के निर्णय में किया गया है, के आलोक में, यह प्रभावी नहीं रहेगा।

iii. मात्र यह तथ्य कि अनुतोष एक ऐसे अनुबंध के अन्तर्गत माँगा गया है जो वैधानिक नहीं है, किसी मामले में प्रतिवादी-राज्य को अनुबंध के अन्तर्गत अपनी कार्रवाई या निष्क्रियता की जाँच से बचने का अधिकार नहीं देगा, यदि शिकायत करने वाला पक्ष यह स्थापित करने में सक्षम है कार्रवाई/निष्क्रियता वास्तव में स्वैच्छिक है।

iv. निःसंदेह, जब राज्य उदारता का आशय रखता है, तो कार्रवाई की जाएगी और निस्संदेह, यह अनुबंध में प्रवेश करने से पूर्व के चरण से संबंधित है [आर.डी. शेट्टी (उपरिवर्णित) देखें]। इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह जाँच न्यायिक समीक्षा की प्रकृति के अन्तर्गत की जाएगी, जिसे टाटा सेल्युलर बनाम भारत संघ के निर्णय में घोषित किया गया है।

v. अनुबंध में प्रवेश करने के उपरान्त, कई प्रकार की परिस्थितियाँ हो सकती हैं, जो राज्य के साथ अनुबंध के किसी पक्ष को रिट याचिका प्रस्तुत करके अनुतोष प्राप्त करने हेतु कार्रवाई का कारण प्रदान कर सकती हैं।

vi. विस्तृत होने का आशय किए बिना, इसमें राज्य से पीड़ित पक्ष को देय राशि के भुगतान की माँग करने का अनुतोष शामिल हो सकता है। वास्तव में, राज्य से भुगतान करने के अपने दायित्वों का सम्मान करने हेतु कहा जा सकता है, जब तक कि भुगतान करने हेतु राज्य के दायित्व से संबंधित कोई गंभीर और वास्तविक विवाद न हो। इस तरह के विवाद में, साधारणतया, यह तर्क शामिल होगा कि पीड़ित पक्ष ने अपने दायित्वों को पूरा नहीं किया है और न्यायालय को पता चलता है कि राज्य द्वारा इस तरह का तर्क मात्र एक छलावा या दिखावा नहीं है।

vii. एक वैकल्पिक उपचार का अस्तित्व, निस्संदेह, एक संविदात्मक मामले में रिट याचिका में अनुतोष प्रदान करने से इन्कार करते समय ध्यान में रखा जाने वाला मामला है। फिर, यह प्रश्न कि क्या रिट याचिकाकर्ता को बहिष्कृत कर दिया जाना चाहिए, यह याचिकाकर्ता द्वारा माँगे गए दावे और अनुतोष की प्रकृति एवं उन प्रश्नों पर निर्भर करेगा, जिन पर निर्णय लिया जाना है, और, सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि क्या वहाँ तथ्य के विवादित प्रश्न हैं, जिनका समाधान मांगे गए अनुतोष प्रदान करने हेतु एक अनिवार्य प्रस्तावना के रूप में आवश्यक है। निःसंदेह, यद्यपि रिट न्यायालय में तथ्य के विवादित प्रश्नों पर निर्णय लेने पर भी कोई रोक नहीं है, विशेषकर जब विवाद मात्र दस्तावेजों के रहस्य को उजागर करने से जुड़ा हो, तो न्यायालय सिविल मुकदमे के माध्यम से पक्ष को अनुतोष दे सकता है।

viii. मध्यस्थता हेतु एक प्रावधान का अस्तित्व, जो विवाद समाधान की गति को तेज करने के उद्देश्य से एक मंच है, को रिट याचिका पर विचार करने हेतु एक निकट बाधा के रूप में देखा जाता है (इस संबंध में, एबीएल (उपरिवर्णित) में भी इस न्यायालय का दृष्टिकोण देखें)) एबीएल (उपरिवर्णित) में प्रस्तर-14 में अपनी टिप्पणियों द्वारा यह समझाते हुए कि इसने उत्तर प्रदेश राज्य बनाम ब्रिज एंड रूफ कंपनी में इस न्यायालय के निर्णय को किस प्रकार विभेदित किया।

ix. तथ्य के विवादित प्रश्नों से निपटने की आवश्यकता को रिट याचिका में उठाए गए

वास्तविक दावे को गिलोटिन करने हेतु एक स्मोकस्क्रीन नहीं बनाया जा सकता है, जब वास्तव में तथ्य के विवादित प्रश्न का समाधान एक रिट आवेदक को अनुतोष प्रदान करने हेतु अनावश्यक है।

x. अनुच्छेद 14 किसी रिट न्यायालय को राज्य द्वारा एक अनुबंध के उपरान्त भी राज्य की स्वैच्छिक कार्रवाई से निपटने में सक्षम बनाती है। विभिन्न प्रकार की परिस्थितियाँ अनुच्छेद 14 को लागू करने हेतु कार्रवाई के कारण उत्पन्न कर सकती हैं। इससे निपटने में न्यायालय का दृष्टिकोण, निस्संदेह, राज्य की स्वैच्छिक कार्रवाई से बचने की अत्यधिक आवश्यकता द्वारा निर्देशित होगा, ऐसे मामलों में जहाँ रिट उपचार राज्य द्वारा स्पष्ट रूप से अनुचित कार्रवाई से उत्पन्न होने वाले न्याय की विफलता को रोकने का एक प्रभावी और उचित साधन प्रदान करता है।

xi. अनुबंध की समाप्ति विभिन्न प्रकार की स्थितियों में पुनः उत्पन्न हो सकती है। उदाहरण हेतु, यदि किसी अनुबंध को किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा समाप्त किया जाता है, जिसने बिना किसी तर्क की आवश्यकता के यह प्रदर्शित किया है कि वह व्यक्ति अनुबंध को रद्द करने हेतु पूर्ण रुप से अनधिकृत है, तो पक्षकार को विस्तृत अनावश्यक कठिनाईयाँ और मुकदमेबाजी को टाले जा सकने वाले दौर हेतु बाध्य करने की कोई आवश्यकता नहीं हो सकती है। ऐसे मामले में, जहाँ हल होने हेतु कोई विवाद नहीं है, उच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के अन्तर्गत याचिकाकर्ता के मौलिक अधिकार को सुनिश्चित करने के अतिरिक्त, सार्वजनिक हित में भी अनुकूल होगा। जब राज्य द्वारा किसी अनुबंध को समाप्त करने की चुनौती की बात आती है, जो एक गैर-वैधानिक निकाय है, जो इस तरह के अनुबंध के अन्तर्गत शक्तियों/अधिकारों के कथित अभ्यास में कार्य कर रहा है, तो इसे प्रस्तुत करना एक जटिल मुद्दे को सरल बनाना होगा। न्यायालय के पक्ष में किसी भी अनम्य नियम को खारिज करते हुए याचिकाकर्ता को वैकल्पिक मंच पर जाने से मना कर दिया जाएगा। साधारणतया, राज्य द्वारा अनुबंध की समाप्ति के मामले, अपने संविदात्मक क्षेत्र के भीतर कार्य करते हुए, रिट न्यायालय द्वारा उचित निवारण हेतु उपयुक्त नहीं हो सकते हैं। निस्संदेह, अतएव यदि न्यायालय निष्कर्षों पर पहुँचने हेतु बाध्य है, जिसमें उन पहेलियों को हल करना शामिल है, जो तथ्यों के विवादित प्रश्नों द्वारा प्रस्तुत की जाती हैं। निस्संदेह, एबीएल लिमिटेड (उपरिवर्णित) के परिप्रेक्ष्य में, यदि किसी अनुबंध को अस्वीकार करने के मामले में विवाद को हल करने में मात्र दलीलों के आलोक में दस्तावेजी सामग्री के वास्तविक दायरे का मूल्यांकन करना शामिल है, तो न्यायालय अभी भी आवेदक को अनुतोष दे सकता है। हमें एक चेतावनी दर्ज करनी होगी। न्यायालय आज डॉकेट विस्फोट के बोझ तले दबी हुई हैं, जो वास्तव में चिंताजनक है। यदि किसी मामले में दस्तावेजों का एक बड़ा समूह शामिल है और न्यायालय को तथ्यों के निष्कर्षों पर विचार करने हेतु कहा जाता है और इसमें मात्र दस्तावेज़ का निर्वचन शामिल है, तो वैकल्पिक उपचार हेतु पक्ष को पीछे छोड़ना विवेक का अनुचित प्रयोग नहीं हो सकता है। यह न्यायालय को उसकी संवैधानिक शक्ति से वंचित करने हेतु नहीं है जैसा कि एबीएल (उपरिवर्णित) में निर्धारित है। यह सब प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करता है कि क्या, हल किए जाने वाले

विवाद के दायरे के दृष्टिगत, न्यायालय अभी भी याचिका पर विचार करेगा अथवा नहीं।

xii. ऐसे मामले में जब राज्य अनुबंध में एक पक्ष है और राज्य के विरुद्ध अनुबंध के उल्लंघन का आरोप लगाया गया है, तो उचित मंच पर सिविल कार्रवाई निस्संदेह पोषणीय है। परन्तु बात यहीं समाप्त नहीं होती। राज्य की स्थिति और निष्पक्षता से कार्य करने और अपने समस्त कार्यों में स्वेच्छाचारिता से बचने के कर्तव्य के दृष्टिगत, कार्रवाई के कारण पर संवैधानिक उपचार का सहारा लें, कि कार्रवाई स्वैच्छिक है, स्वीकार्य है (इस संबंध में कुमारी श्रीलेखा विद्यार्थी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य देखें)। यद्यपि, यह स्पष्ट किया जाना चाहिए कि राज्य द्वारा अनुबंध के उल्लंघन से जुड़े हर मामले को राज्य की स्वेच्छाचारितापूर्ण कार्रवाई के मामले के रूप में तैयार करके छिपाया नहीं जा सकता है। यद्यपि स्वेच्छाचारितापूर्ण कार्रवाई या निष्क्रियता की अवधारणा को किसी अपरिवर्तनीय मंत्र तक सीमित नहीं किया जा सकता है, और इसे प्रत्येक मामले के तथ्यों के संदर्भ में उजागर किया जाना चाहिए, यह मात्र अनुबंध के उल्लंघन का आरोप नहीं हो सकता है जो पर्याप्त होगा। मामले में ऐसी कार्रवाई/निष्क्रियता होना चाहिए, जो स्पष्ट रूप से अनुचित या नितांत तर्कहीन और किसी भी सिद्धांत से रहित होना चाहिए। एक कार्रवाई, जो पूर्ण रुप से दुर्भावनापूर्ण है, को शायद ही एक निष्पक्ष कार्रवाई के रूप में वर्णित किया जा सकता है और तथ्यों के आधार पर,यह स्वेच्छाचारितापूर्ण कार्रवाई की श्रेणी में आ सकती है। प्रश्न को न्यायालय द्वारा उठाया जाना चाहिए और उसका उत्तर दिया जाना चाहिए और हम मात्र यह कहना चाहते हैं कि उचित मामलों में अनुतोष प्रदान करने हेतु न्यायालय के पास विवेकाधिकार उपलब्ध है।

xiii. न्यायालय के मार्ग को प्रशस्त करने वाला एक मानदंड हस्तक्षेपकर्ता न्यायालय द्वारा सेवित सार्वजनिक हित का आयाम हो सकता है बजाय इसके कि मामले को वैकल्पिक मंच पर स्थानांतरित किया जाए।

xiv. एक अन्य प्रासंगिक मानदंड यह है कि, यदि न्यायालय ने मामले पर विचार किया है, तो, अपितु यह वर्जित नहीं है कि न्यायालय को उपरान्त के चरण में पक्षकार को पदावनत नहीं करना चाहिए, साधारणतया यह एक उचित विचार होगा, जो न्यायालय को उस कार्य को पूर्ण करने हेतु सहमत कर सकता है जो इसने शुरू किया था, बशर्ते कि रिट याचिका में गुण-दोष के आधार पर मामले का निर्णय करना क्षेत्राधिकार का सशक्त प्रयोग है।

xv. प्राकृतिक न्याय के उल्लंघन को एक सार्वजनिक विधिक तत्व की उपस्थिति को दर्शाने वाले आधार के रूप में मान्यता दी गई है और अनुच्छेद 14 के उल्लंघन के आधार पर वादहेतुक पाया जा सकता है। [सुधीर कुमार सिंह (उपरिवर्णित) देखें]।"

(बल दिया गया)

51. इस न्यायालय ने समझौते का सावधानीपूर्वक अध्ययन किया है और यह पाया है कि यह एक निजी बीमा कंपनी और याचिकाकर्ता के मध्य एक समझौता है और याचिकाकर्ता द्वारा माँगा गया मुख्य अनुतोष बीमा कंपनी को लाभार्थियों के इलाज में प्रदान की गई सेवा हेतु याचिकाकर्ता के भुगतान करने का निर्देश देने के संबंध में है। ।

52. इस न्यायालय ने यह भी पाया कि यह एक गैर वैधानिक अनुबंध है जिसमें एक मध्यस्थता खंड जुड़ा हुआ है जिस पर याचिकाकर्ता ने पूर्ण सम्मति से हस्ताक्षर किए थे। यदि याचिकाकर्ता ऐसे अनुबंध के किसी भी उल्लंघन का दावा करता है, तो याचिकाकर्ता हेतु उचित उपचार, निजी बीमा कंपनी और याचिकाकर्ता के मध्य हस्ताक्षरित समझौते के खंड 16.7 में उल्लिखित वैकल्पिक विवाद निवारण मंच/मध्यस्थता न्यायाधिकरण से संपर्क करना है। राज्य सरकार ऐसे अनुबंध में पक्षकार नहीं है।

53. अतएव इस न्यायालय को पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत विभिन्न शपथपत्रों के रूप में उठाए गए तथ्य के विवादित प्रश्नों को देखते हुए, हस्तक्षेप करने हेतु कोई अच्छा आधार नहीं मिला।

54. परिणामस्वरूप रिट याचिका खारिज की जाती है। याचिकाकर्ता समुचित मंच के सम्मुख उपस्थित होने हेतु स्वतंत्र है।

(2023) 3 ILRA 360

मूल न्यायाधिकार

नागरिक पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद 31.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सूर्य प्रकाश केसरवानी,
माननीय न्यायमूर्ति जयन्त बनर्जी,

रिट सी संख्या 30151/2022

पीयूष कुमार शर्मा ...याचिकाकर्ता

बनाम

यूपी राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादीगण

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: सूर्य प्रकाश पाठक
अधिवक्ता प्रतिवादीगण: सी.एस.सी.

A. आर्थिक कमजोर वर्ग योजना - ई.डब्लू.एस. सर्टिफिकेट - तहसीलदार द्वारा निरस्त करना - कार्यालय ज्ञापन दिनांक 31.01.2019 - खंड 4.1 और 4.2 - शब्द 'परिवार' - अर्थ - याचिकाकर्ता के परिवार के पास कुल आवासीय प्लॉट, ई.डब्लू.एस. योजना के खंड 4.1 में निर्दिष्ट अधिकतम संपत्ति से बहुत अधिक है - प्रभाव - ई.डब्लू.एस. स्थिति निर्धारित करने का परीक्षण - "परिवार" द्वारा विभिन्न स्थानों या शहरों की संपत्ति को ई.डब्लू.एस. स्थिति निर्धारित करने के लिए भूमि या संपत्ति धारण परीक्षण के लिए एकत्र किया जाएगा। (पैराग्राफ 15 और 16)

B. आर्थिक कमजोर वर्ग योजना - ई.डब्लू.एस. सर्टिफिकेट प्राप्त करने के लिए झूठा दावा - प्रभाव - अगर किसी व्यक्ति को ऐसे झूठे दावे के आधार पर नियुक्ति मिलती है, तो नियुक्ति के प्रस्ताव में निहित शर्तों का उपयोग करते हुए उसकी सेवाएँ समाप्त की जाएंगी - ई.डब्लू.एस. सर्टिफिकेट जारी करने के संबंध में ई.डब्लू.एस. योजना के सख्त प्रावधानों में कोई भी हिचकिचाहट या कमी, ई.डब्लू.एस. योजना के उद्देश्य की जड़ को दूषित करेगी, जिससे ऐसा कार्य भारतीय संविधान की योजना के लिए घृणित हो जाएगा। (पैराग्राफ 17 और 18)

रिट याचिका निरस्त। (E-1)

<u>माननीय न्यायमूर्ति सूर्य प्रकाश केसरवानी</u>
<u>माननीय न्यायमूर्ति जयंत बनर्जी</u>

याचिकाकर्ता के विद्वान वकील और विद्वान स्थायी वकील को सुना।

1. याचिकाकर्ता ने दिनांक 31.01.2023 को एक पूरक हलफनामा दायर किया है, जिसे रिकॉर्ड पर लिया गया है।
2. याचिकाकर्ता ने एक संशोधन आवेदन संख्या 2/2022 दिनांक 09.11.2022 को दाखिल किया था जिसे दिनांक 08.12.2022 के आदेश द्वारा अनुमति दी गई थी लेकिन संशोधनों को शामिल नहीं किया गया था। याचिकाकर्ता के विद्वान वकील के अनुरोध पर, आज हमने उन्हें रिट याचिका में संशोधन शामिल करने की अनुमति दी।

3. यह रिट याचिका निम्नलिखित राहत के लिए प्रार्थना करते हुए दायर की गई है:

   I. *याचिकाकर्ता के ई.डब्ल्यू.एस प्रमाणपत्र को नवीनीकृत करने के लिए उत्तरदाताओं संख्या 2 और 3 को निर्देश देकर परमादेश की प्रकृति में एक रिट आदेश या निर्देश जारी करें।*
   (I-a) प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा पारित 23 जून 2022 के आदेश को रद्द करते हुए सर्टिओरारी की प्रकृति में एक रिट आदेश या निर्देश जारी करें, जिसके तहत ई.डब्ल्यू.एस (आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग) प्रमाण पत्र देने के लिए उसका आवेदन खारिज कर दिया गया है।

   II. *प्रतिवादी संख्या 3 को लेखपाल, जोगेंद्र सिंह सोलंकी के खिलाफ प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने का निर्देश देकर परमादेश की प्रकृति में एक रिट आदेश या निर्देश जारी करें।*

4. वर्तमान मामले के संक्षेप में बताए गए तथ्य यह हैं कि पहले याचिकाकर्ता द्वारा की गई घोषणा पर कि उनके परिवार की वार्षिक आय आठ लाख रुपये से कम है और उनके परिवार के पास कोई भी निर्दिष्ट संपत्ति नहीं है, "आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग" (ईडब्ल्यूएस) का प्रमाण पत्र प्राप्त किया था, जो प्रमाण पत्र संख्या 1252 दिनांक 28.09.2021 वर्ष 2021-22 के लिए वैध है। इसके बाद, कुछ शिकायत की गई और एक सत्यापन किया गया जिसमें अधिकारियों द्वारा यह पाया गया कि याचिकाकर्ता के परिवार के पास खंडेहा गांव में 100 वर्ग गज 'घेर' के साथ 183 वर्ग गज का आवासीय घर है, और गांव छज्जुपुर में 150 वर्ग गज का एक आवासीय भूखंड भी है, जो ईडब्ल्यूएस का प्रमाण

पत्र प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्ति के परिवार के स्वामित्व के लिए निर्धारित भूमि/घर के क्षेत्र की अधिकतम सीमा से कहीं अधिक है। नतीजतन, अधिकारियों द्वारा याचिकाकर्ता को जारी किया गया ईडब्ल्यूएस प्रमाणपत्र तहसीलदार, खैर, अलीगढ़ द्वारा पारित आदेश दिनांक 23.06.2022 द्वारा रद्द कर दिया गया था, जिसे नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:

<u>कार्यालय तहसीलदार खैर, अलीगढ</u>

पत्रांक मीमो आर0सी0,/आई0जी0आर0एस0/2022
दिनांक 23 जून 2022
प्रभारी अधिकारी शिकायत
अलीगढ़य़।
महोदय,

श्री पीयूष कुमार शर्मा पुत्र सतीश चन्द्र शर्मा नि0 खण्डेहा पर0 टप्पल तह0 खैर जिला अलीगढ़ की जनसुनवाई पोर्टल पर प्राप्त शिकायती प्रार्थना पत्र शिकायत सं0- 92214300026602 का संदर्भ ग्रहण करने का कष्ट करें।

उपरोक्त के सम्बन्ध में रा0नि0 से जाँच आख्या प्राप्त की गयी। राजस्व निरीक्षक खैर द्वारा अपनी जाँच आख्या में उल्लिखित किया गया कि आवेदक व उसके परिवार के पास ग्राम खण्डेहा में 183 वर्गगज का आवासीय मकान व 100 वर्गगज का घेर तथा ग्राम छजूपुर में 150 वर्गरज का आवीसय प्लाट है। इस प्रकार पैतृक सम्पत्ति मिलाकर इनकी कुल परिसम्पत्ति 200 वर्गगज से अधिक है। उपरोक्त विवरण के अनुसार आवेदक प्रथम दृष्टिया ई0डब्लू0एस0 हेतु पात्र प्रतीत नहीं होता है।

अतः रा0नि0 की जाँच आख्या सन्दर्भित प्रार्थना पत्र को निक्षेपित किये जाने हेतु सादर प्रेषित है।

ह0अ0

प्रतिलिपिः- श्री पीयूष कुमार शर्मा पुत्र सतीश चन्द्र शर्मा नि0 खण्डेहा पर0 टप्पल तह0 खैर जिला अलीगढ़ को सूचनार्थ।

ह0अ0
तहसीलदार खैर।
अलीगढ़

5. दिनांक 23.06.2022 के उपरोक्त आदेश से व्यथित होकर याचिकाकर्ता ने वर्तमान रिट याचिका दायर की है।

6. याचिकाकर्ता के वकील का कहना है कि खंडेहा गांव में स्थित घर उनका पैतृक घर है, जिसमें उनके पिता के भाई और दो बहनों की हिस्सेदारी है और इसलिए, याचिकाकर्ता के पिता के हिस्से में केवल 20 वर्ग गज आते हैं और **याचिकाकर्ता** के पास 100 वर्ग गज 'घेर' जमीन नहीं है। 31.01.2023 के पूरक हलफनामे के पैराग्राफ-6 का हवाला देते हुए उन्होंने कहा कि इस प्रकार, याचिकाकर्ता के परिवार के पास 200 वर्ग गज से अधिक का आवासीय भूखंड/घर नहीं है और इसलिए, दिनांक 23.06.2022 के आक्षेपित आदेश द्वारा याचिकाकर्ता के

ईडब्ल्यूएस प्रमाणपत्र को रद्द करना पूरी तरह से मनमाना और अवैध है।

7. विद्वान स्थायी वकील आक्षेपित आदेश का समर्थन करते है।

8. हमने पक्षों के विद्वान वकील की दलीलों पर ध्यानपूर्वक विचार किया है और रिट याचिका के रिकॉर्ड का अवलोकन किया है।

9. इससे पहले कि हम पक्षों के लिए विद्वान वकील की प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर विचार करें, भारत सरकार, कार्मिक मंत्रालय, लोक शिकायत और पेंशन विभाग एवं प्रशिक्षण, नई दिल्ली, द्वारा दिनांक 31.01.2019 को जारी कार्यालय ज्ञापन संख्या 36039/1/2019-स्था (आरईएस) को पुन: प्रस्तुत करना उपयोगी होगा, जो निम्नानुसार आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के लिए आरक्षण प्रदान करता है

"सं.36039/1/2019-संस्थान (आरईएस)
भारत सरकार कार्मिक,
लोक शिकायत और पेंशन मंत्रालय
कार्मिक एवं प्रशिक्षण विभाग
नॉर्थ ब्लॉक, नई दिल्ली
दिनांक 3 जनवरी, 2019

<u>कार्यालय ज्ञापन</u>

विषय: भारत सरकार में सिविल पदों और सेवाओं में सीधी भर्ती में आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों (ईडब्ल्यूएस) के लिए आरक्षण।

इस विभाग के दिनांक 19.01.2019 के समसंख्यक कार्यालय ज्ञापन की निरंतरता में, अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति/अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए आरक्षण योजना के अंतर्गत शामिल नहीं किए गए ईडब्ल्यूएस के लिए आरक्षण के संबंध में सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय और कानूनी मामलों के विभाग के परामर्श से भारत सरकार में सिविल पदों एवं सेवाओं में सीधी भर्ती के संबंध में निम्नलिखित निर्देश जारी किए गए हैं।

<u>2. आरक्षण की मात्रा</u>

ईडब्ल्यूएस से संबंधित व्यक्ति, जो एससी, एसटी और ओबीसी के लिए आरक्षण की योजना के अंतर्गत नहीं आते हैं, उन्हें भारत सरकार में सिविल पदों और सेवाओं में सीधी भर्ती में 10% आरक्षण मिलेगा।

<u>3. आरक्षण से छूट:</u>

3.1 "वैज्ञानिक और तकनीकी" पद जो निम्नलिखित सभी शर्तों को पूरा करते हैं, उन्हें मंत्रालयों/विभागों द्वारा आरक्षण आदेशों के दायरे से छूट दी जा सकती है:

(i) पद संबंधित सेवा के ग्रुप ए में सबसे निचले ग्रेड से ऊपर के ग्रेड में होने चाहिए।

(ii) उन्हें कैबिनेट सचिवालय के संदर्भ में "वैज्ञानिक या तकनीकी" के रूप में वर्गीकृत किया जाना चाहिए [ओएम संख्या 85/11/सीएफ-61(1) दिनांक 28.12.1961], जिसके

अनुसार वैज्ञानिक और तकनीकी पदों के लिए योग्यताएं प्राकृतिक विज्ञान या सटीक विज्ञान या अनुप्रयुक्त विज्ञान या प्रौद्योगिकी निर्धारित हैं और, जिनके पदधारियों को अपने कर्तव्यों के निर्वहन में उस ज्ञान का उपयोग करना होता है।

(iii) पद 'अनुसंधान आयोजित करने के लिए' या 'अनुसंधान के आयोजन, मार्गदर्शन और निर्देशन के लिए' होने चाहिए।

3.2 उपरोक्त शर्तों को पूरा करने वाले किसी भी पद को आरक्षण योजना के दायरे से छूट देने से पहले संबंधित मंत्री का आदेश प्राप्त किया जाना चाहिए।

4. आय और संपत्ति का मानदंड:

4.1 ऐसे व्यक्ति जो एससी, एसटी और ओबीसी के लिए आरक्षण की योजना के अंतर्गत नहीं आते हैं और जिनके परिवार की सकल वार्षिक आय 8.00 लाख रुपये (केवल आठ लाख रुपये) से कम है, उन्हें आरक्षण के लाभ के लिए ईडब्ल्यूएस के रूप में पहचाना जाएगा। आय में आवेदन के वर्ष से पहले के वित्तीय वर्ष के लिए सभी स्रोतों यानी वेतन, कृषि, व्यवसाय, पेशे आदि से आय भी शामिल होगी।

इसके अलावा जिन व्यक्तियों के परिवार के पास निम्नलिखित में से कोई भी संपत्ति है, उन्हें ईडब्ल्यूएस के रूप में पहचाने जाने से बाहर रखा जाएगा, भले ही परिवार की आय कुछ भी हो:-

i. 5 एकड़ और उससे अधिक कृषि भूमि;

ii. 1000 वर्ग फुट और उससे अधिक का आवासीय फ्लैट;

iii. अधिसूचित नगर पालिकाओं में 100 वर्ग गज और उससे अधिक का आवासीय भूखंड;

iv. अधिसूचित नगर पालिकाओं के अलावा अन्य क्षेत्रों में आवासीय, 200 वर्ग गज और उससे अधिक का प्लॉट।

4.2. ईडब्ल्यूएस स्थिति निर्धारित करने के लिए भूमि या संपत्ति होल्डिंग परीक्षण लागू करते समय विभिन्न स्थानों या विभिन्न स्थानों/शहरों में एक "परिवार" द्वारा रखी गई संपत्ति को क्लब किया जाएगा।

4.3 इस प्रयोजन के लिए "परिवार" शब्द में आरक्षण का लाभ चाहने वाला व्यक्ति, उसके माता-पिता और 18 वर्ष से कम आयु के भाई-बहन और उसके पति/पत्नी और 18 वर्ष से कम आयु के बच्चे शामिल होंगे।

5. आय और संपत्ति प्रमाणपत्र जारी करने वाला प्राधिकारी और प्रमाणपत्र का सत्यापन:

5.1 सक्षम प्राधिकारी द्वारा जारी आय और संपत्ति प्रमाण पत्र प्रस्तुत करने पर ईडब्ल्यूएस के तहत आरक्षण का लाभ उठाया जा सकता है। निम्नलिखित प्राधिकारियों में से किसी एक द्वारा

अनुलग्नक-I में दिए गए निर्धारित प्रारूप में जारी किया गया आय और संपत्ति प्रमाणपत्र केवल उम्मीदवार के ईडब्ल्यूएस से संबंधित होने के दावे के प्रमाण के रूप में स्वीकार किया जाएगा: -

(i) जिला मजिस्ट्रेट/अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट/कलेक्टर/उपायुक्त/अतिरिक्त 'उपायुक्त/प्रथम श्रेणी वजीफा मजिस्ट्रेट/उपविभागीय मजिस्ट्रेट/तालुका मजिस्ट्रेट/कार्यकारी मजिस्ट्रेट/अतिरिक्त सहायक आयुक्त

(ii) (ii) मुख्य प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट/अतिरिक्त मुख्य प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट/प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट

(iii) (iii) राजस्व अधिकारी जो तहसीलदार के पद से नीचे का न हो

(iv) (iv) उपमंडल अधिकारी या वह क्षेत्र जहां उम्मीदवार और/या उसका परिवार सामान्य रूप से रहता है।

5.2 प्रमाणपत्र जारी करने वाला अधिकारी संबंधित राज्य/केंद्रशासित प्रदेश द्वारा निर्धारित उचित प्रक्रिया का पालन करते हुए सभी प्रासंगिक दस्तावेजों को सावधानीपूर्वक सत्यापित करने के बाद ही ऐसा करेगा।

5.3 उम्मीदवार द्वारा आय और संपत्ति प्रमाण पत्र जमा करने की महत्वपूर्ण तिथि को पद के लिए आवेदन प्राप्त करने की अंतिम तिथि के रूप में माना जा सकता है, उन मामलों को छोड़कर जहां महत्वपूर्ण तिथि अन्यथा तय की गई है।

5.4 नियुक्ति प्राधिकारियों को ईडब्ल्यूएस से संबंधित होने का दावा करने वाले उम्मीदवारों को नियुक्ति की पेशकश में निम्नलिखित खंड शामिल करना चाहिए: -

> *"नियुक्ति अनंतिम है और उचित चैनलों के माध्यम से आय और संपत्ति प्रमाण पत्र के सत्यापन के अधीन है और यदि सत्यापन से पता चलता है कि ईडब्ल्यूएस से संबंधित दावा फर्जी/झूठा है तो सेवाएं बिना कोई कारण बताए और बिना किसी पूर्वाग्रह के तुरंत समाप्त कर दी जाएंगी जाली/गलत प्रमाणपत्र प्रस्तुत करने के लिए भारतीय दंड संहिता के प्रावधानों के तहत ऐसी आगे की कार्रवाई की जा सकती है।"*
>
> *नियुक्ति प्राधिकारी को प्रमाणपत्र जारी करने वाले प्राधिकारी के माध्यम से उम्मीदवार द्वारा प्रस्तुत आय*

और संपत्ति प्रमाणपत्र की सत्यता को सत्यापित करना चाहिए

5.5 ऊपर उल्लिखित निर्देशों का कड़ाई से पालन किया जाना चाहिए ताकि किसी बेईमान व्यक्ति के लिए झूठे दावे के आधार पर रोजगार सुरक्षित करना संभव न हो और यदि किसी व्यक्ति को ऐसे झूठे दावे के आधार पर नियुक्ति मिलती है, तो उसकी सेवाएं नियुक्ति के प्रस्ताव में निहित शर्तों को लागू करते हुए समाप्त कर दी जाएंगी।

<u>6. आरक्षण को प्रभावित करना - रोस्टरों का रखरखाव:</u>

6.1 कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग ने पद आधारित आरक्षण रोस्टर के कार्यान्वयन के संबंध में 2 जुलाई 1997 को कार्यालय ज्ञापन संख्या 36012/2/96-स्था (आरईएस) प्रसारित किया था। पद आधारित आरक्षण रोस्टर बनाने और संचालित करने के सामान्य सिद्धांत उक्त कार्यालय ज्ञापन में निर्धारित सिद्धांतों के अनुसार होंगे।

6.2 प्रत्येक सरकारी प्रतिष्ठान अब सीधी भर्ती के लिए समूह-वार पद-आधारित आरक्षण रोस्टर रजिस्टर को अनुलग्नक II, III, IV और V में दिए गए प्रारूप के अनुसार पुनर्गठित करेगा, जैसा भी मामला हो, ईडब्ल्यूएस के लिए 10% आरक्षण को प्रभावी करने के लिए उन्हें इसमें एससी, एसटी और ओबीसी के साथ शामिल किया जाएगा। रोस्टर बिंदु तय करते समय, यदि ईडब्ल्यूएस रोस्टर बिंदु एससी/एसटी/ओबीसी के रोस्टर बिंदुओं के साथ मेल खाता है तो अगला उपलब्ध यूआर रोस्टर बिंदु ईडब्ल्यूएस को आवंटित किया गया है और "निचोड़ने" के सिद्धांत को भी ध्यान में रखा गया है। रोस्टर बनाते समय, कैडर नियंत्रण प्राधिकारी इसी तरह रोस्टर के अंतिम बिंदुओं को "निचोड़" सकते हैं ताकि निर्धारित 10% आरक्षण को पूरा किया जा सके।

6.3 जहां किसी भी भर्ती वर्ष में ईडब्ल्यूएस के लिए निर्धारित कोई रिक्ति ईडब्ल्यूएस से संबंधित उपयुक्त उम्मीदवार की अनुपलब्धता के कारण नहीं भरी जा सकती है, उस विशेष भर्ती वर्ष के लिए ऐसी रिक्तियों को बैकलॉग के रूप में अगले भर्ती वर्ष में आगे नहीं बढ़ाया जाएगा।

6.4 बेंचमार्क विकलांग व्यक्तियों/पूर्व सैनिकों के लिए कोटा के तहत चयनित ईडब्ल्यूएस से संबंधित व्यक्तियों को ईडब्ल्यूएस के लिए निर्धारित रोस्टर बिंदुओं के खिलाफ रखा जाएगा।

<u>7. अनारक्षित रिक्तियों पर समायोजन</u>

ईडब्ल्यूएस से संबंधित व्यक्ति को अनारक्षित रिक्ति के खिलाफ नियुक्ति के लिए प्रतिस्पर्धा करने के अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता है। ईडब्ल्यूएस से संबंधित व्यक्ति जिनका चयन आरक्षण के आधार पर नहीं बल्कि योग्यता के आधार पर किया जाता है, उन्हें आरक्षण के लिए निर्धारित कोटा में नहीं गिना जाएगा।

<u>8. ईडब्ल्यूएस के प्रतिनिधित्व के संबंध में पाक्षिक/वार्षिक रिपोर्ट:</u>

*मंत्रालय/विभाग **अनुबंध-VI** में दिए गए प्रारूप के अनुसार 15.2.2019 से अपने संबद्ध/अधीनस्थ कार्यालयों सहित एकल समेकित पाक्षिक रिपोर्ट भेजेंगे।*

01.01.2020 से, मंत्रालय/विभाग हर साल 1 जनवरी को यूआरएल यानी www.rrcps.nic.in पर केंद्र सरकार के तहत पदों/सेवाओं के संबंध में ईडब्ल्यूएस के प्रतिनिधित्व पर डेटा अपलोड करेंगे। सभी मंत्रालयों/विभागों को यूआरएल के संचालन के लिए दिशा-निर्देशों के साथ संबंधित यूजरकोड और पासवर्ड पहले ही उपलब्ध करा दिए गए हैं।

9. सरकारी प्रतिष्ठान द्वारा शिकायतों के रजिस्टर का रखरखाव:

9.1 प्रत्येक सरकारी प्रतिष्ठान विभाग के एक वरिष्ठ अधिकारी को शिकायत निवारण अधिकारी के रूप में नियुक्त करेगा।

9.2 किसी भी ईडब्ल्यूएस के खिलाफ रोजगार में भेदभाव से संबंधित किसी भी मामले से पीड़ित कोई भी व्यक्ति संबंधित सरकारी प्रतिष्ठान के शिकायत निवारण अधिकारी के पास शिकायत दर्ज कर सकता है। शिकायत निवारण अधिकारी का नाम, पदनाम और संपर्क विवरण वेबसाइट और संबंधित प्रतिष्ठान के कार्यालय में प्रमुखता से प्रदर्शित किया जाना चाहिए।

10. संपर्क अधिकारी:

मंत्रालय/विभाग/संबद्ध और अधीनस्थ कार्यालय ईडब्ल्यूएस के लिए आरक्षण के कार्यान्वयन की निगरानी के लिए संपर्क अधिकारी नियुक्त करेंगे।

11. आरक्षण की उपरोक्त योजना 01.02.2019 को या उसके बाद अधिसूचित होने वाली सभी सीधी भर्ती रिक्तियों के संबंध में प्रभावी होगी।

12. सभी मंत्रालयों/विभागों से अनुरोध है कि वे उपरोक्त निर्देशों को अपने नियंत्रण के तहत सभी नियुक्ति प्राधिकारियों के ध्यान में लाएँ। इस ओएम के प्रावधानों के कार्यान्वयन के संबंध में किसी भी कठिनाई के मामले में, संबंधित अधिकारी अपने प्रशासनिक मंत्रालय/विभाग के माध्यम से डीओपीएंडटी से परामर्श कर सकते हैं।

सम्मिलित: जैसा कि ऊपर बताया गया है।

(जी. श्रीनिवासन)
निदेशक
फ़ोन नंबर 011-23093074"

10. उपरोक्त कार्यालय ज्ञापन दिनांक 31.01.2019 (इसके बाद "ईडब्ल्यूएस योजना" के रूप में संदर्भित) में दी गई 'परिवार' शब्द की परिभाषा में प्रावधान है कि ईडब्ल्यूएस योजना के प्रयोजनों के लिए परिवार में शामिल होंगे इसमें आरक्षण का लाभ चाहने वाला व्यक्ति, उसके माता-पिता और 18 वर्ष से कम आयु के भाई-बहन, साथ ही उसका जीवनसाथी और 18 वर्ष से कम आयु के बच्चे शामिल होंगे। इस प्रकार, याचिकाकर्ता के मामले में परिवार में उसके माता-पिता शामिल होंगे। याचिकाकर्ता का दावा है कि उसकी उम्र करीब 21 साल है। उपरोक्त ईडब्ल्यूएस योजना के खंड 4.2 में प्रावधान है कि ईडब्ल्यूएस स्थिति निर्धारित करने के लिए भूमि

या संपत्ति होल्डिंग परीक्षण लागू करते समय विभिन्न स्थानों या विभिन्न स्थानों/शहरों में "परिवार" द्वारा रखी गई संपत्ति को क्लब किया जाएगा।

11. रिट याचिका के पैराग्राफ-26 और 27 में, याचिकाकर्ता ने निम्नानुसार कहा है:

*"**26.** याचिकाकर्ता के पिता के पास केवल एक भूखंड/संपत्ति है जिसका क्षेत्रफल 150.05 वर्ग मीटर है, जो परगना-टप्पल, ग्राम छज्जूपुर में स्थित है। इस माननीय न्यायालय के अवलोकनार्थ, उपरोक्त संपत्ति के पंजीकृत विक्रय विलेख की प्रति को इस रिट याचिका के **अनुबंध संख्या 10** के रूप में चिह्नित किया जा रहा है।*

***27.** ई.डब्लू.एस. के दिशानिर्देश के अनुसार, किसी भी व्यक्ति के पास 200 वर्ग मीटर से अधिक और 5 एकड़ से अधिक है, जबकि याचिकाकर्ता के पिता के पास केवल 150.05 वर्ग मीटर है, और याचिकाकर्ता के पास दो व्यक्ति हैं।*

12. दिनांक 23.01.2023 के पूरक शपथ पत्र के पैराग्राफ -4, 5 और 6 में, याचिकाकर्ता ने निम्नानुसार कहा है:

"4- जहां तक दिनांक 23.06.2022 के आदेश में उल्लेखित संपत्ति का संबंध है, जिस घर पर याचिकाकर्ता का होने का आरोप है वह वास्तव में याचिकाकर्ता के दादा की आबादी भूमि में स्थित एक पैतृक घर है और याचिकाकर्ता के पिता 2 भाई और 2 बहन हैं, उन सभी ने उक्त मकान को पांच हिस्सों में बांटा है, इसलिए याचिकाकर्ता के पिता को केवल पांचवां हिस्सा मिला है। घर केवल अनुपस्थित 100 गज का छोटा सा घर था और उसके बाद याचिकाकर्ता के पिता का हिस्सा केवल 20 गज था और इससे अधिक नहीं।

5- यह कि, याचिकाकर्ता के कब्जे में 100 वर्ग गज का कोई घेर नहीं है।

6- यह कि, छज्जूपुर गांव में जो दूसरी जमीन पिता के नाम पर है, वह केवल 150 वर्ग गज की है गांव छज्जूपुर एक ग्राम पंचायत है और नगर पालिका नहीं है।"

14. इस प्रकार, रिट याचिका के उपरोक्त पैराग्राफ और पूरक हलफनामे में याचिकाकर्ता द्वारा स्वीकार किए गए तथ्यों से यह स्पष्ट है कि 150 वर्ग गज का एक आवासीय भूखंड याचिकाकर्ता के पिता के स्वामित्व में है।

याचिकाकर्ता ने यह भी स्वीकार किया है कि 183 वर्ग गज में एक आवासीय घर है लेकिन उसने अस्पष्ट रूप से आरोप लगाया कि यह उसके दादा का पैतृक घर है जिसमें उसके पिता के एक भाई और दो बहनों की हिस्सेदारी है। न तो संबंधित घर पर पिता के भाई और बहनों का नाम दर्ज करने का कोई सबूत है और न ही रिट याचिका या पूरक हलफनामे में उनके नाम का खुलासा किया गया है। इस बात का कोई प्रमाण दाखिल नहीं किया गया है कि खंडेहा गांव स्थित मकान पुश्तैनी मकान है, जिसमें याचिकाकर्ता के पिता के अलावा कुछ अन्य लोगों की हिस्सेदारी है। 100 वर्ग गज के 'घेर' के संबंध में, याचिकाकर्ता ने केवल यह कहा है कि 100 वर्ग गज के 'घेर' पर उसका कब्जा नहीं है और इस प्रकार, उसने 100 वर्ग गज घेर पर अपने परिवार के कब्जे से इनकार नहीं किया है।

इस प्रकार, याचिकाकर्ता को यह स्वीकार किया गया है कि उसके परिवार के पास ग्राम छज्जूपुर में 150 वर्ग गज आवासीय भूखंड और खंडेहा में 100 वर्ग गज आवासीय भूमि/घेर के अलावा ग्राम खंडेहा में 183 वर्ग गज आवासीय भूमि पर एक घर है जिसके मालिक याचिकाकर्ता के पिता हैं या याचिकाकर्ता के मुताबिक, वह 183 वर्ग गज का मकान जाहिर तौर पर उनके पिता का है। इस प्रकार, याचिकाकर्ता के परिवार के स्वामित्व वाला कुल आवासीय भूखंड ईडब्ल्यूएस योजना के पैराग्राफ 4.1 में निर्दिष्ट अधिकतम संपत्ति से कहीं अधिक है।

15. चूंकि याचिकाकर्ता के स्वयं स्वीकृत मामले के अनुसार, उसके परिवार के स्वामित्व वाली संपत्ति ईडब्ल्यूएस योजना के पैरा -4 के तहत निर्दिष्ट अधिकतम संपत्ति से अधिक है, इसलिए, याचिकाकर्ता ईडब्ल्यूएस प्रमाणपत्र के लिए हकदार नहीं है।

16. जहां राज्य नागरिकों के कुछ वर्ग (वर्तमान मामले में ईडब्ल्यूएस) के संबंध में नियुक्तियों या पदों में आरक्षण का प्रावधान करना चाहता है, ईडब्ल्यूएस की पहचान और ईडब्ल्यूएस का प्रमाण पत्र जारी करने के लिए सरकार द्वारा बनाई गई कोई भी योजना, जैसे योजना की कड़ाई से व्याख्या की जानी चाहिए। उपरोक्त ईडब्ल्यूएस योजना के अवलोकन से इसमें कोई संदेह नहीं रह जाता है कि उसमें उल्लिखित आय और संपत्ति के मानदंडों की कड़ाई से व्याख्या की जानी चाहिए। जैसा कि पहले ही ऊपर कहा जा चुका है, "परिवार" शब्द को योजना में निर्दिष्ट किया गया है और ईडब्ल्यूएस स्थिति निर्धारित करने के लिए भूमि या संपत्ति स्वामित्व परीक्षण लागू करते समय विभिन्न स्थानों या विभिन्न स्थानों/शहरों में "परिवार" द्वारा रखी गई संपत्ति को जोड़ा जाएगा। ईडब्ल्यूएस योजना ईडब्ल्यूएस प्रमाणपत्र जारी करने वाले अधिकारी को संबंधित राज्य/केंद्र शासित प्रदेश द्वारा निर्धारित उचित प्रक्रिया का पालन करते हुए संबंधित दस्तावेजों के सावधानीपूर्वक सत्यापन के बाद ही ऐसा करने का निर्देश देती है। नियुक्ति प्राधिकारियों को ईडब्ल्यूएस से संबंधित उम्मीदवारों की नियुक्ति की पेशकश में निम्नलिखित खंड शामिल करने का भी आदेश दिया गया है: -

> *"नियुक्ति अनंतिम है और उचित चैनलों के माध्यम से आय और संपत्ति प्रमाण पत्र के सत्यापन के अधीन है और यदि सत्यापन से पता चलता है कि ईडब्ल्यूएस से संबंधित दावा फर्जी/झूठा है तो सेवाएं बिना कोई कारण बताए और बिना किसी पूर्वाग्रह*

के तुरंत समाप्त कर दी जाएंगी। जाली/गलत प्रमाणपत्र प्रस्तुत करने के लिए भारतीय दंड संहिता के प्रावधानों के तहत ऐसी आगे की कार्रवाई की जा सकती है।"

17. ईडब्ल्यूएस योजना में यह भी विशेष रूप से उल्लेखित है कि निर्देशों का सख्ती से पालन किया जाना चाहिए ताकि किसी बेईमान व्यक्ति के लिए झूठे दावे के आधार पर रोजगार प्राप्त करना संभव न हो और यदि किसी व्यक्ति को ऐसे झूठे दावे के आधार पर नियुक्ति मिलती है, तो नियुक्ति के प्रस्ताव में निहित शर्तों को लागू करते हुए उसकी सेवाएं समाप्त कर दी जाएंगी।

18. ईडब्ल्यूएस प्रमाण पत्र जारी करने के संबंध में ईडब्ल्यूएस योजना के सख्त प्रावधानों में कोई भी ढील या ढील ईडब्ल्यूएस योजना के उद्देश्य की जड़ को प्रभावित करेगी, जिससे ऐसा कार्य भारत के संविधान की योजना के लिए घृणित हो जाएगा।

19. उपरोक्त सभी कारणों से, हमें इस रिट याचिका में कोई योग्यता नहीं मिलती है। नतीजतन, रिट याचिका विफल हो जाती है और इसे खारिज कर दिया जाता है।

(2023) 3 ILRA 367

मूल न्यायाधिकार

नागरिक पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद 28.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती सुनीता अग्रवाल,

माननीय न्यायमूर्ति विपिन चन्द्र दीक्षित,

रिट सी संख्या 31153/2022

तथा

अन्य सम्बद्ध वाद

अनुज कुमार एवं अन्य। ...याचिकाकर्तागण

बनाम

यूपी राज्य एवं अन्य। ...प्रतिवादीगण

अधिवक्ता याचिकाकर्तागण: श्री सुनील कुमार सिंह, श्री अवधेश कुमार मालवीय, श्री जी.के. सिंह (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता प्रतिवादीगण: सी.एस.सी., श्री अतीकुर रहमान सिद्दीकी, श्री राकेश पांडे (वरिष्ठ अधिवक्ता)

A. स्थानीय निकाय कानून - उत्तर प्रदेश क्षेत्र पंचायत और जिला पंचायत अधिनियम, 1961 - धारा 15(13) - प्रमुख के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव - दिनांक 04.10.2022 को संशोधन - 'एक वर्ष' के भीतर अविश्वास का नोटिस न मिलने का केविएट 'दो वर्षों' में परिवर्तित कर दिया गया - प्रयोज्यता - संभावित या पूर्वव्यापी - निर्णय दिया गया कि, विधि के पूर्वव्यापी प्रभाव के विरुद्ध सामान्य नियम प्रक्रियात्मक प्रावधानों/विधि में संशोधनों पर लागू नहीं होता है - क्षेत्र पंचायत के प्रमुख द्वारा प्राप्त अविश्वास प्रस्ताव को प्रमुख द्वारा पदभार ग्रहण करने के 'दो वर्ष के भीतर' निरस्त करने में संबंधित कलेक्टर की कार्रवाई को अवैध नहीं कहा जा सकता। (पैरा 44 और 59)

B. अधिनियम की व्याख्या - पूर्वव्यापी के विरुद्ध नियम - प्रयोज्यता - प्रक्रियात्मक और सामग्री प्रावधानों के बीच भेद किया गया - नियमों के अपवाद स्पष्ट किए गए - यह मौलिक नियम है कि कोई अधिनियम इस तरह से नहीं समझा जाएगा कि उसका पूर्वव्यापी प्रभाव हो।

जब तक कि इसकी भाषा ऐसी न हो कि स्पष्ट रूप से ऐसी व्याख्या की आवश्यकता हो। किसी कानून को इस तरह से नहीं समझा जाना चाहिए कि इसका पूर्ववर्ती प्रभाव उसकी भाषा से अधिक हो - इसके अतिरिक्त, भविष्य में लागू होने वाले प्रावधानों के संबंध में कठोर नियम लागू नहीं होते हैं। प्रक्रिया संबंधी और सामग्री संबंधी प्रावधानों में इस नियम के लागू होने के लिए अंतर है - वास्तव में, सामान्य धारणा है कि प्रक्रिया में किए गए विधिक परिवर्तन लंबित और भविष्य की कार्यवाहियों पर लागू होते हैं। (पैर 33, 35 और 36)

सी. कानून की व्याख्या - शाब्दिक नियम - प्रयोज्यता - किसी भी कानून की व्याख्या जो अजीब स्थिति में ले जाती है, उसे टाला जाना चाहिए। यह माना जाता है कि विधायिका अजीब स्थिति का आशय नहीं रखती, या कि इसके अधिनियम से अजीब परिणाम नहीं होना चाहिए - यदि शाब्दिक व्याख्या के नियम को लागू करने से अजीब स्थिति बन रही है, तो इसे टालना चाहिए। (पैर 45)

रिट याचिका निरस्त। (ई-1)

<u>उद्धृत वाद सूची :-</u>

1. ईशा वलीमोहमद और अन्य बनाम वी. हाजी गुलाम मोहम्मद और हाजी दाद ट्रस्ट; 1974 (2) एससीसी 484

2. बांसिधर और अन्य बनाम राज्य राजस्थान और अन्य; 1989 (2) एससीसी 557

3. विकास त्रिवेदी और अन्य बनाम राज्य उत्तर प्रदेश और अन्य; 2013 (8) एडीजे 523

4. नगरपालिका परिषद पलई बनाम टी.जे. जोसेफ; 1963 एआईआर एससी 1561

5. ज़िले सिंह बनाम राज्य हरियाणा; 2004 (8) एससीसी 1

6. भगत राम शर्मा बनाम भारत सरकार; 1988 (Supp) एससीसी 30

7. राज्य राजस्थान बनाम मंगीलाल पिंडवाल; 1996 (5) एससीसी 60

8. फाइबर बोर्ड प्राइवेट लिमिटेड, बंगलोर बनाम आयकर आयुक्त, बंगलोर; 2015 (10) एससीसी 333

9. चेवेती वेंकन्ना यादव बनाम राज्य तेलंगाना और अन्य; 2017 (1) एससीसी 283

10. धर्म दत्त और अन्य बनाम भारत सरकार और अन्य; 2004 (1) एससीसी 712

11. मोहन लाल त्रिपाठी बनाम डी.एम., रायबरेली; 1992 (4) एससीसी 80

12. रिट याचिका संख्या 7717 वर्ष 2020; श्रीमती गीता पंडित राव बनाम राज्य कर्नाटक

13. त्रिम्बक दामोदर राजपुरकर बनाम आसाराम हिरामन पाटिल और अन्य; एआईआर 1966 एससी 1758

14. गजराज सिंह और अन्य बनाम राज्य परिवहन अपीलीय न्यायाधिकरण और अन्य; 1997 (1) एससीसी 650

15. विजय बनाम राज्य महाराष्ट्र; 2006 (6) एससीसी 289

16. केरल विश्वविद्यालय और अन्य बनाम मर्लिन जे.एन. और अन्य; 2022 (9) एससीसी 389

17. एन. टी. देवी कत्ती बनाम कर्नाटक लोक सेवा आयोग; 1990 (3) एससीसी 157

18. सिविल अपील संख्या 8919 वर्ष 2012; अजय मकन बनाम आदेश कुमार गुप्ता

19. आपराधिक अपील संख्या 34 वर्ष 2020; शिल्पा मित्तल बनाम एनईटी दिल्ली

20. पी. सुसीला और अन्य बनाम विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और अन्य; 2015 (8) एससीसी 129

21. भानुमती बनाम राज्य उत्तर प्रदेश और अन्य; 2010 (12) एससीसी 1

22. विकास त्रिवेदी बनाम राज्य उत्तर प्रदेश और अन्य 2013 (8) एडीजे 523 (FB); 2013 एससीसी ऑनलाइन अल्ल 14264

23. रिट याचिका संख्या 3171 (MB) 2012; राधे श्याम मौर्या बनाम राज्य उत्तर प्रदेश, 01.05.2012 को निर्णयित

24. आनंद गोपाल बनाम राज्य बंबई; AIR 1958 SC 915

25. पुलिस आयुक्त, दिल्ली और अन्य बनाम धवल सिंह; AIR 1999 SC 2326

26. मोहन लाल त्रिपाठी बनाम डी.एम., रायबरेली; 1992 (4) SCC 80

27. उषा भारती बनाम राज्य उत्तर प्रदेश; 2014 (7) SCC 663

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती सुनीता अग्रवाल,
माननीय न्यायमूर्ति श्री विपिन चंद्र दीक्षित,

1. याचिकाकर्ताओं की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री नवीन सिन्हा सहायक विद्वान अधिवक्ता श्री सैफुल इस्लाम सिद्दीकी और सुश्री ताहिरा काज़मी, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री राकेश पांडे सहायक विद्वान अधिवक्ता श्री रमेश चंद्र तिवारी और विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री जी. के. सिंह सहायक विद्वान अधिवक्ता श्री सुनील कुमार सिंह, राज्य की ओर से विद्वान अपर महाधिवक्ता श्री अजीत कुमार सिंह सहायक विद्वान अधिवक्ता श्री सुधांशु श्रीवास्तव और निजी प्रतिवादियों के लिए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अशोक खरे सहायक विद्वान अधिवक्ता श्री के. एस. कुशवाहा और श्री बीके शुक्ला, श्री संजीव कुमार त्यागी, श्री प्रभाकर दुबे, श्री एआर सिद्दीकी को सुना गया।

2. रिट याचिका के इस बैच में, उत्तर प्रदेश क्षेत्र पंचायत और जिला पंचायत अधिनियम, 1961 की धारा 15 (13) में अध्यादेश संख्या 8/2022, (संक्षेप में 'अधिनियम 1961 के रूप में) द्वारा संशोधन की प्रयोज्यता के संबंध से सामान्य प्रश्न का उदय होता है जिसके द्वारा "उसमें निर्धारित एक वर्ष" की अवधि को "दो वर्ष" से प्रतिस्थापित किया गया है। उक्त संशोधन दिनांक 04.10.2022 को लागू किया गया है और दिनांक 06.10.2022 के आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशित किया गया है। सभी संबंधित वाद में, धारा 15 की उप-धारा (2) के अनुसार अविश्वास प्रस्ताव आवेदन संबंधित जिला मजिस्ट्रेट/कलेक्टर को प्राप्त हुआ था और प्रस्ताव पर विचार करने के लिए बैठक बुलाने की तिथि संशोधन के प्रवर्तन से पूर्व तय की गई थी। लेकिन प्रस्ताव पेश किए जाने से पहले, धारा 15 की उप-धारा (13) में अध्यादेश द्वारा लाए गए संशोधन के कारण, संबंधित कलेक्टर ने व्यक्तिगत आदेश पारित किए कि संशोधनों के अनुसार प्रस्ताव को पूरा नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार, कोई विश्वास नहीं का प्रस्ताव निरस्त कर दिया गया।

3. संबंधित कलेक्टर की उक्त कार्रवाई को चुनौती देते हुए, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री नवीन सिंह ने द्वारा यह तर्क दिया गया कि अविश्वास प्रस्ताव आवेदन कलेक्टर द्वारा विधिवत प्राप्त किया गया था। बैठक की तिथि निर्वाचित सदस्यों को सूचित की गई थी, बैठक को एक या अन्य कारणों से स्थगित कर दिया गया था और स्थगित बैठक के लिए निर्धारित

तिथि से पूर्व अध्यादेश संख्या 8/2022 के माध्यम से संशोधन लागू किया गया है। अध्यादेश के प्रवर्तन की तिथि दिनांक 04.10.2022 है। अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत करने वाले निर्वाचित सदस्यों को उक्त प्रस्ताव पारित करने का अधिकार है। अविश्वास प्रस्ताव को पूर्ण करने के लिए धारा 15 (2) और (3) की आवश्यकताओं को पूरा किया गया था, संबंधित कलेक्टर द्वारा संक्षिप्त निरीक्षण समाप्त किया गया था, 1961 अधिनियम के तहत बनाए गए नियम के तहत निर्धारित रूप में लिखित रूप में आशय की सूचना की जांच के बाद अविश्वास प्रस्ताव को लाने के लिए निर्वाचित सदस्यों को पूर्ण करने के प्राप्त अधिकार को समाप्त नहीं जा सकता है। अध्यादेश संख्या 8/2022 प्रतिस्थापित प्रावधानों को पूर्वव्यापी बनाने का आशय व्यक्त नहीं करता है। धारा 15 की उपधारा (13) के निरसन/प्रतिस्थापन को केवल भावी प्रभाव दिया जा सकता है। सामान्य खंड अधिनियम, 1897 की धारा 6 (सी) को हमारे समक्ष यह प्रस्तुत करते हुए तर्क दिया गया कि जहां किसी भी वैधानिक प्रावधान/अधिनियम या विनियमन को किसी भी अधिनियमन द्वारा निरस्त कर दिया जाता है, जब तक कि कोई अलग इरादा प्रकट नहीं होता है, निरसन किसी भी अधिकार, विशेषाधिकार, दायित्व या दायित्व को प्रभावित नहीं करेगा, जो इस प्रकार निरस्त अधिनियमन के तहत अर्जित, अर्जित या वहन किया गया है। यह तर्क दिया गया था कि निर्वाचित सदस्यों द्वारा अविश्वास प्रस्ताव लाने का अधिकार उनके अधिकार के प्रयोग में उनके द्वारा उठाए गए कदमों से उनके पक्ष में अर्जित किया गया है। पुराने उपबंधों को निरस्त करने/नए उपबंधों को अधिनियमित करने से पूर्व निर्वाचित सदस्यों द्वारा प्रस्तुत किए गए आवेदन अविश्वास की अभिव्यक्ति है जिसे इस प्रयोजन के लिए एक बैठक द्वारा निष्कर्ष तक पहुंचाना होता है।

4. **ईशा वलीमोहमद और अन्य बनाम बनाम हाजी गुलाम मोहम्मद और हाजी दाद ट्रस्ट 1974(2) SCC 484; बंसीधर और अन्य बनाम राजस्थान राज्य और अन्य 1989(2) SCC557** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय द्वारा सामान्य खंड अधिनियम की धारा 6 के अनुसार निरसन के प्रभाव को रखने के लिए लिया गया है, यह दावा करने के लिए कि एक उपार्जित अधिकार उस अधिनियमन के निरसन से बच जाएगा क्योंकि अर्जित अधिकार को तब तक बचाया जाता है जब तक कि उन्हें स्पष्ट रूप से हटा नहीं दिया जाता है।

5. यह तर्क दिया गया कि यह एक अन्य वाद होता यदि धारा 15 द्वारा सदस्यों को अविश्वास प्रस्ताव लाने का अधिकार नहीं दिया गया होता और निरसन को प्रभावी बनाया गया होता। अन्यथा भी, इस न्यायालय के निर्णयों की एक श्रेणी में यह माना जाता है कि अधिनियम 1961 की धारा 15 (3) के प्रावधान प्रकृति में अनिवार्य हैं, धारा 15 की उप-धारा (2) के अनुसार उसे दिए गए आशय की लिखित सूचना की जांच के पश्चात कलेक्टर के पास अविश्वास प्रस्ताव को पूर्ण करने के लिए एक बैठक तय करने के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं है। **विकास त्रिवेदी और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 2013 (8) ADJ 523** में पूर्ण पीठ के निर्णय द्वारा उक्त प्रस्तुतियों को प्रमाणित करने के लिए निर्भरता व्यक्त किया गया है। यह तर्क दिया गया था कि कलेक्टर निर्वाचित सदस्यों द्वारा लाए गए प्रस्ताव को रोक नहीं सकता था

या तत्कालीन मौजूदा कानूनों में बदलाव के कारण इसे निरस्त नहीं कर सकता था।

6. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री राकेश पांडे द्वारा विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री नवीन सिन्हा के प्रस्तुतिकरण को समर्थन देते हुए यह तर्क दिया गया कि हमारे समक्ष वाद में अविश्वास प्रस्ताव निर्वाचित सदस्यों द्वारा प्रमुख, क्षेत्र पंचायत का पद ग्रहण करने के एक वर्ष बाद प्रस्तुत किया गया था। प्रस्ताव धारा 15 की उप-धारा (2) के अनुसार लाया गया था, कलेक्टर द्वारा निर्धारित बैठक स्थगित कर दी गई थी, 'एक वर्ष' की अवधि प्रदान करने वाले पूर्व प्रावधानों को दिनांक 04.10.2022 से एक अध्यादेश द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था जिसे दिनांक 06.10.2022 को अधिसूचित किया गया था। यह पूर्व प्रावधानों के प्रतिस्थापन का वाद है न कि निरसन या अपवादी खंड का वाद है। सामान्य नियम यह है कि प्रतिस्थापित प्रावधानों को प्रकृति में भावी माना जाना चाहिए; निहितार्थ द्वारा पूर्वव्यापी केवल एक अपवाद है। धारा 15 एक महत्वपूर्ण प्रावधान है जो अविश्वास प्रस्ताव के लिए प्रक्रिया की पूरी संरचना को निर्धारित करता है। अध्यादेश संख्या 8/2022 द्वारा संशोधित धारा 15(11) प्रक्रियात्मक है जबकि धारा 15 (13) विशेष्य है। धारा 15(13) के तहत जिला मजिस्ट्रेट/कलेक्टर की शक्ति पर प्रतिबंध या निषेध एक प्रमुख द्वारा पद ग्रहण करने से निर्धारित अवधि के भीतर एक प्रस्ताव का नोटिस प्राप्त करना है और इसके साथ आगे अग्रसित नहीं है। प्रासंगिक समय, तिथि पर जब अविश्वास प्रस्ताव कलेक्टर को दिया गया था या उसके द्वारा प्राप्त किया गया था, निर्धारित अवधि "एक वर्ष" थी, जिसका निर्वाचित सदस्यों द्वारा पालन किया गया था। एक बार प्रस्ताव उपस्थित हो जाने के बाद, उपधारा (13) के प्रतिस्थापित उपबंधों में 'एक वर्ष' के पूर्व उपबंध के स्थान पर 'दो वर्ष' का उपबंध करने के लिए निर्वाचित सदस्यों द्वारा यह मानकर प्रस्तुत किए गए अविश्वास प्रस्ताव को अस्वीकार करने या वापस करने के लिए कोई अनुप्रयोग नहीं होगा कि संशोधन के पश्चात् कलेक्टर के पास इसे प्राप्त करने की कोई शक्ति नहीं है। निर्विवादित स्थिति यह है कि जब प्रस्ताव पेश किया गया था, तो कलेक्टर इसे प्राप्त करने और संसाधित करने के लिए अपनी शक्ति के आसीन था। इसके अलावा, एक बार प्रस्ताव संसाधित हो जाने के बाद, प्रतिस्थापन प्रावधानों का कोई अनुप्रयोग नहीं होगा, जितना कि, अनुमान प्रतिस्थापित प्रावधानों की संभावना के बारे में है और निहित पूर्वव्यापी के विरुद्ध है। उपर्युक्त प्रस्तुतियों को प्रमाणित करने के लिए **नगर परिषद पलाई बनाम टीजे जोसेफ 1963 AIR SC 1561** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर निर्भरता व्यक्त किया गया।

7. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री नवीन सिन्हा और श्री राकेश पांडे के तर्कों को संबंधित वाद में याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित वरिष्ठ अधिवक्ता श्री जीके सिंह द्वारा अपनाया गया है।

8. इस तर्क के खंडन में राज्य प्रतिवादियों की ओर से विद्वान अपर महाधिवक्ता श्री अजीत कुमार सिंह द्वारा तर्क दिया गया कि प्रश्न यह नहीं है कि क्या अध्यादेश द्वारा प्रतिस्थापित अधिनियम, 1961 की धारा 15(13) के उपबंध पूर्वव्यापी हैं या नहीं। यह तर्क दिया गया कि अध्यादेश मौजूदा प्रावधानों का प्रतिस्थापन लाया गया है। अध्यादेश संख्या 8/2022 में प्रयुक्त शब्दों को **ज़िले सिंह बनाम हरियाणा राज्य 2004 (8) SCC 1** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय की

सहायता से उजागर किया गया है, जिसमें कहा गया है कि संशोधन अधिनियम द्वारा प्रतिस्थापन ने पूर्व प्रावधानों को प्रतिस्थापित कर दिया और नए प्रावधानों को लागू किया। पूर्व का अस्तित्व समाप्त हो जाता है और नया नियम अस्तित्व में आता है। प्रतिस्थापन "अतिलंघन" या "निरसन" से अलग है। विधि के प्रतिस्थापन के साथ, पूर्व से मौजूद विधि को जीवित नहीं रखा जा सकता है।

9. उक्त प्रस्तुतियों को प्रमाणित करने के लिए **भगत राम शर्मा बनाम भारत संघ 1988 (सप्लीमेंट) एससीसी 30, राजस्थान राज्य बनाम मांगीलाल पिंडवाल 1996 (5) एससीसी 60, फाइबर बोर्ड्स प्राइवेट लिमिटेड, बंगलौर बनाम आयकर आयुक्त, बंगलौर 2015 (10) एससीसी 333, चेवेती वेंकन्न्या यादव बनाम तेलंगाना राज्य और अन्य 2017 (1) एससीसी 283 और धर्म दत्त और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य 2004 (1) एससीसी 712** में सर्वोच्च न्यायालय ने उक्त प्रस्तुतियों को प्रमाणित करने के लिए उच्चतम न्यायालय के निर्णयों का आगे संदर्भ दिया गया है।

10. **मोहन लाल त्रिपाठी बनाम जिला मजिस्ट्रेट, रायबरेली 1992 (4) एससीसी 80** में निर्णय की सहायता से यह तर्क दिया गया कि किसी निर्वाचित प्रतिनिधि को हटाने का अधिकार विधि से परे है और इसका अस्तित्व अधिनियम के प्रावधानों के आधार पर तय किया जा सकता है। उस वाद के तथ्यों में, अविश्वास प्रस्ताव के लंबन पर अवधि को 'दो वर्ष' से घटाकर 'एक वर्ष' को

अध्यक्ष, नगरपालिका बोर्ड के समक्ष अध्यादेश द्वारा पेश किया जा सकता है, जो बाद में अधिनियम बन गया, इसको इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि किसी भी स्पष्ट और तर्कसंगत सिद्धांत का अभाव था और विधायिका ने "लूट प्रणाली" के रूप में सहारा लिया था, इस प्रकार संशोधन संवैधानिक रूप से अमान्य था। उसमें यह कहा गया था कि विधायी सक्षमता के अभाव अथवा मनमाने होने के कारण किसी विधायी कार्रवाई को दुर्भावना के आधार पर निरस्त नहीं किया जा सकता। निर्वाचित अध्यक्ष के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव लाने की अवधि के बारे में संशोधन विधायी नीति का वाद है, जिसके प्रज्ञान को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा जांच नहीं किया जा सकता है।

11. विद्वान अपर महाधिवक्ता द्वारा यह भी तर्क दिया गया था कि सर्वोच्च न्यायालय ने उसमें उल्लेख किया है कि निर्वाचित प्रतिनिधि के पद पर आसीन रहने का अधिकार न तो मौलिक अधिकार है और न ही सामान्य कानूनी अधिकार है, बल्कि विधि द्वारा सृजित एक विशेष अधिकार या राजनीतिक अधिकार या विशेषाधिकार है और यह प्राकृतिक या पूर्ण या निहित अधिकार नहीं है। इसी तरह, किसी निर्वाचित अधिकारी को उसके कार्यकाल की समाप्ति से पूर्व उसके पद से हटाने का अधिकार एक वैधानिक अधिकार है, जिसका प्रयोग केवल विधि की सीमाओं, अर्थात अविश्वास प्रस्ताव को स्थानांतरित करने के अधिकार के प्रयोग की तिथि को प्रचलित मौजूदा प्रावधानों के भीतर किया जा सकता है। जैसा कि वर्तमान मामले में, निर्वाचित सदस्यों को दिए गए अविश्वास प्रस्ताव को स्थानांतरित करने के अधिकार को विधायी क्षमता के भीतर लाए गए विधायी संशोधन द्वारा संशोधित कर दिया है, अविश्वास प्रस्ताव नहीं लाया जा सकता क्योंकि निर्वाचित सदस्यों ने दिनांक 04.10.2022 को या

उसके बाद अविश्वास प्रस्ताव को पारित करने का अपना अधिकार खो दिया है।

12. कर्नाटक उच्च न्यायालय के निर्णय **श्रीमती गीता पंडित राव बनाम कर्नाटक राज्य (रिट याचिका संख्या 7717/2020)** पर निर्भरता व्यक्त की गई व तर्क दिया गया कि कर्नाटक राज्य द्वारा अध्यादेश संख्या 2/2020 के अंतर्गत पारित संशोधन जिला पंचायत अध्यक्ष/उपाध्यक्ष के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत करने के लिए '30 माह' की अवधि को '15 माह' तक कम करने की चुनौती पर, कर्नाटक उच्च न्यायालय द्वारा इस प्रश्न पर विचार किया गया कि क्या अधिनियम और नियमों में आक्षेपित संशोधन प्रकृति में भावी या पूर्वव्यापी हैं। "प्रतिस्थापन" शब्द की व्याख्या के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विचार करते हुए, उसमें यह माना गया था कि संशोधन, जो प्रकृति में प्रक्रियात्मक है, प्रकृति में पूर्वव्यापी है और निर्वाचित कार्यालय को बनाए रखने के लिए जिला पंचायत के सदस्य के निहित अधिकार या अर्जित अधिकार के रूप में भावी नहीं है, जिला पंचायत के सदस्य के रूप में उनके पद ग्रहण करने की तिथि से प्रारंभ होगा। अध्यादेश संख्या 2/2020 के तहत जिला पंचायत के निर्वाचित अध्यक्ष/उपाध्यक्ष के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव लाने की अवधि को '30 महीने' से घटाकर '15 महीने' करना ऐसे अध्यक्ष/उपाध्यक्ष द्वारा पद ग्रहण करने की तिथि से लागू होगा।

13. **मोहन लाल त्रिपाठी (सुप्रा)** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर निर्भरता व्यक्त किया गया कि अविश्वास प्रस्ताव के प्रावधान, निर्वाचित प्रतिनिधि की वापसी, जब तक कि यह कानून के अनुसार है, लोकतंत्र के अमूर्त कानून पर प्रभाव नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार, निर्वाचित प्रतिनिधि द्वारा अविश्वास प्रस्ताव को रोकने की अवधि को कम करने में अध्यादेश की वैधता को चुनौती दी गई थी, जिसे निरस्त कर दिया गया था।

14. उसी सादृश्य पर, यह विद्वान अपर महाधिवक्ता द्वारा तर्क दिया गया कि धारा 15 की उपधारा (13) में संशोधन की व्याख्या करके, यह माना जा सकता है कि निर्वाचित प्रतिनिधि के पास 'दो वर्ष' की अवधि के लिए अपने निर्वाचित कार्यालय में बने रहने का 'निहित अधिकार' या 'अर्जित अधिकार' है, जो प्रमुख, क्षेत्र पंचायत के रूप में पद ग्रहण करने की तिथि से प्रारंभ होगा और इस मामले के दृष्टिकोण में, उस परिपे्रक्ष्य में संशोधन को भूतलक्षी प्रभाव से लागू किया जाना चाहिए। एक अन्य दृष्टिकोण से, निर्वाचित सदस्यों के अविश्वास प्रस्ताव लाने के अधिकार पर, यह माना जा सकता है कि उनके पास दिनांक 04.2.2010 से संशोधन के पश्चात अविश्वास प्रस्ताव को चलाने का कोई अधिकार नहीं बचा है, क्योंकि कलेक्टर इस पर कार्यवाही करने से प्रतिबंधित है। इस प्रकार, प्रस्तुत किया गया है कि दोनों दृष्टिकोणों से, याचिकाकर्ताओं द्वारा पेश किए गए अविश्वास प्रस्ताव, क्षेत्र पंचायत के निर्वाचित सदस्यों को नहीं किया जा सकता है। इसलिए, जिला मजिस्ट्रेट/कलेक्टर को उनके द्वारा लाए गए अविश्वास प्रस्ताव को निरस्त करने में कोई अवैधता नहीं कहा जा सकता है।

15. निर्वाचित प्रमुखों की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अशोक खरे ने **त्र्यंबक दामोदर राजपुरकर बनाम असाराम हीरामन पाटिल और अन्य AIR 1966 SC 1758** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है और यह प्रस्तुत किया कि प्रस्ताव लाने

के लिए निर्वाचित सदस्य के अधिकार की अभिव्यक्ति को संविधि की स्कीम के संदर्भ में उसका सही अर्थ दिया जाना चाहिए। यह तर्क दिया गया कि धारा 15 के तहत अविश्वास प्रस्ताव लाने का अधिकार केवल कलेक्टर द्वारा प्राप्त प्रस्ताव पर "निहित अधिकार या "अर्जित अधिकार" नहीं होगा। ऐसा अधिकार केवल उस प्रस्ताव पर अर्जित होता है जिसे मतदान, अर्थात अविश्वास प्रस्ताव पर निर्वाचित सदस्य द्वारा मतदान पर चर्चा की तिथि, पर रखा जाता है। इससे पूर्व निर्वाचित सदस्यों को अधिकार प्राप्त हो सकता था, संशोधन लागू हुआ। धारा 15 की उपधारा (1) केवल यह कहते हुए आकस्मिक अधिकार की बात करती है कि उसके बाद उपधारा (2) से (13) में निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार क्षेत्र पंचायत के प्रमुख में विश्वास व्यक्त करने वाला प्रस्ताव किया जा सकता है। प्रस्ताव बनाने के आशय की लिखित सूचना हालांकि कलेक्टर द्वारा प्राप्त और जांच की गई थी, लेकिन धारा 15 की उप-धारा (13) में लाए गए संशोधन के बाद, जिला मजिस्ट्रेट/कलेक्टर के लिए अविश्वास के प्रस्ताव को संसाधित करना असंभव हो गया। अविश्वास प्रस्ताव को आगे बढ़ाने के लिए जिला मजिस्ट्रेट के पास कोई विवेकाधिकार नहीं है क्योंकि विधायिका द्वारा जिला मजिस्ट्रेट की शक्ति पर प्रतिबंध लगाया गया है, जो किसी निर्वाचित प्रमुख के पद ग्रहण करने की तारीख से 'दो साल' की अवधि के लिए अविश्वास प्रस्ताव पर कार्रवाई कर सकता है।

16. **त्र्यंबक दामोदर राजपुरकर (सुप्रा**) में चर्चा को एक उदाहरण के रूप में, यह तर्क देने के लिए हमारे समक्ष प्रस्तुत किया गया है कि उसी सादृश्य पर, यह माना गया था कि किरायेदार को बेदखल करने का मकान मालिक का अधिकार संशोधन अधिनियम के तहत किरायेदारी की समाप्ति के अधीन था। जब तक किरायेदार को किरायेदारी को समाप्त करने के आशय से नोटिस नहीं दिया जाता था, पट्टे की अवधि समाप्त होने पर परिसर खाली करने के लिए नोटिस देकर असंशोधित प्रावधानों के तहत किरायेदार को बेदखल करने का कोई अधिकार मकान मालिक के पक्ष में अर्जित नहीं किया जा सकता है।

17. निर्वाचित प्रतिनिधियों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री एस. के. त्यागी ने **गजराज सिंह और अन्य बनाम राज्य परिवहन अपीलीय न्यायाधिकरण और अन्य "1997 (1) एससीसी 650, विजय बनाम महाराष्ट्र राज्य' 2006 (6) एससीसी 289 ; केरल विश्वविद्यालय और अन्य बनाम मर्लिन जेएन और अन्य 2022 (9) एससीसी 389** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर निर्भरता व्यक्त किया और तर्क दिया कि अधिनियमन की योजना के आधार पर एक अधिनियमन या संशोधन को उद्देश्यपूर्ण व्याख्या दी जानी है, विधायी संशोधन लाने का इरादा रखता है। यदि कोई कानून कुछ अन्य व्यक्तियों या आम तौर पर जनता पर एक समान हानि पहुंचाए बिना कुछ व्यक्तियों को लाभ प्रदान करता है, और जहां इस तरह के लाभ प्रदान करना विधायिका का उद्देश्य प्रतीत होता है, तो धारणा यह होगी कि ऐसा कानून, इसे एक उद्देश्यपूर्ण निर्माण देता है, इसे पूर्वव्यापी प्रभाव देने का आश्वासन करेगा। लंबित आवेदनों पर इसे पूर्वव्यापी लागू करने के लिए उपर्युक्त सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए एक प्रक्रियात्मक प्रावधान की व्याख्या की जानी चाहिए।

18. प्रत्युत्तर शपथपत्र में, याचिकर्ता की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि संशोधन के बाद कलेक्टर की

ओर से कार्रवाई की असंभवता से संबंधित वाद का उत्तर, जैसा कि निर्वाचित प्रमुख के लिए वरिष्ठ वकील श्री अशोक खरे द्वारा तर्क किया गया था, सामान्य खंड अधिनियम की धारा 6 के प्रावधान में निहित है, जो निर्वाचित सदस्यों द्वारा संशोधन से पूर्व उनके द्वारा प्रस्तुत अविश्वास प्रस्ताव को पूर्ण करने के अधिकार को सुरक्षित करता है । मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में असंभवता के सिद्धांत को लागू नहीं किया जा सकता है, क्योंकि निर्वाचित सदस्यों को प्रस्ताव को प्रभावित करने का अधिकार है। **एनटी देविन कट्टी बनाम कर्नाटक लोक सेवा आयोग 1990 (3) एससीसी 157** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का संदर्भ दिया गया है ताकि एक सादृश्य तैयार किया जा सके कि जिस व्यक्ति ने पद के चयन के लिए आवेदन किया है, उसे आवेदन की तिथि पर लागू मौजूदा नियम या आदेश के अनुसार चयन के लिए विचार करने का निहित अधिकार है। उसे चयन के लंबित रहने के दौरान नियमों के संशोधन पर नियमों के अनुसार चयन के लिए विचार किए जाने के सीमित अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता है क्योंकि वे विज्ञापन की तारीख में अस्तित्व में थे, जब तक कि संशोधित नियम पूर्वगामी प्रकृति के न हों।

19. राज्य-प्रतिवादियों की ओर से विद्वान वकीलों ने अपने तर्क प्रस्तुत करते हुए क़ानून की व्याख्या के सिद्धांतों के व्यक्त करने के लिए **अजय माकन बनाम आदेश कुमार गुप्ता सिविल अपील संख्या 89/2012, शिल्पा मित्तल बनाम दिल्ली राज्य आपराधिक अपील संख्या 34/2020** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर निर्भरता व्यक्त किया और यह तर्क दिया कि उद्देश्यपूर्ण व्याख्या देने के लिए, यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि व्याख्या सबसे अच्छी है जो पाठ्य व्याख्या को प्रासंगिक बनाती है। **पी सुशीला और अन्य बनाम विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और अन्य 2015 (8) एससीसी 129** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का भी संदर्भ दिया गया है ताकि मौजूदा अधिकार और निहित अधिकार के बीच अंतर और उन परिस्थितियों का वर्णन किया जा सके जिनमें मौजूदा प्रावधानों के संशोधन/प्रतिस्थापन के मामले में ऐसे अधिकारों का दावा किया जा सकता है।

20. पक्षकारों के विद्वान वकील को सुना और पत्रावली का अवलोकन किया।

21. पक्षकारों की ओर से विद्वान अधिवक्ता के प्रतिद्वंद्वी तर्कों के निस्तारण के लिए, हमें विधायी योजना को समझने की आवश्यकता है, जिस स्थापना में अधिनियम 1961 में धारा 15 को लागू किया गया है।

22. संविधान 73 संशोधन अधिनियम, 1992 द्वारा दिनांक 24.04.1993 से अनुच्छेद 243 से 243-0 के प्रस्तावना के साथ ही 'पंचायत' शब्द को अनुच्छेद 243 (घ) में परिभाषित किया गया है जिसका अर्थ ग्रामीण क्षेत्रों के लिए अनुच्छेद 243-ख के अधीन गठित स्वशासन की ऐसी संस्था (चाहे वह किसी भी नाम से ज्ञात हो) है। अनुच्छेद 243-ख के अनुसार, भारत के संविधान के भाग-IX के प्रावधानों के अनुसार प्रत्येक राज्य, ग्राम स्तर, मध्यवर्ती और जिला स्तर पर पंचायतों का गठन किया जाता है। संविधान (73 वां संशोधन) अधिनियम, 1992 से पूर्व, पंचायत से संबंधित संवैधानिक प्रावधान राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों में अनुच्छेद 40 तक ही सीमित थे।

23. अनुच्छेद 243 से 243-O के प्रारंभ ने स्थानीय स्वशासन की पिरामिड संरचना में

स्वशासन के लिए प्रदान किया। संविधान के 73वें संशोधन के तहत, पंचायत 'स्वशासन की संस्था' बन गई, जो पहले अनुच्छेद 40 के तहत मात्र एक इकाई थी। विकेंद्रीकरण को एक मुक्त समाज के बुनियादी मूल्यों के संरक्षण के लिए एक पूर्व शर्त के रूप में माना जाता है। 73वें संशोधन को एक बहुत शक्तिशाली 'सोशल इंजीनियरिंग का उपकरण' कहा गया है, जिसने भारतीय समाज की सदियों पुरानी, दमनकारी, मानव विरोधी परंपरा में भारी बदलाव लाने के लिए सामाजिक परिवर्तन की जबरदस्त क्षमता को उजागर किया है। (संदर्भ **भानुमती बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रस्तर संख्या 26 में निम्नानुसार अवलोकन किया गया था:

> 26. अन्य प्रतिनिधि लोकतंत्रों में लिखित संविधान और कानून के शासन के लिए प्रतिबद्ध विश्व सरकार के सिद्धांत भी संवैधानिक सिद्धांत का हिस्सा हैं। अमरीकी संविधान में यह स्वीकार किया गया है कि स्थानीय स्वशासन के अधिकार को शहरों और कस्बों में अंतनहित माना जाता है। इस तरह के अधिकारों को विधायिका द्वारा भी नहीं छीना जा सकता है। अमेरिकी न्यायशास्त्र से निम्नलिखित अंश बहुत शिक्षाप्रद हैं:
>
> > "भिन्नतापूर्वक यह विदित है कि, यह इन अधिकार क्षेत्रों में कानून के एक बाध्यकारी सिद्धांत के रूप में निर्धारित किया गया है कि एक क़ानून जो नगर निगम से स्व-शासन की अपनी शक्ति को छीनने का प्रयास करता है, सिवाय उन मामलों के जो पूरे राज्य के लिए चिंता का विषय हैं जो विधायिका की शक्ति से अधिक है और परिणामस्वरूप शून्य है। इस सिद्धांत के तहत, होम रूल का सिद्धांत, या स्थानीय मामलों के रूप में स्वशासन का अधिकार, संविधान से पहले मौजूद माना जाता है"।

24. लोकतांत्रिक रूप से संगठित इकाई को शासन की शक्ति प्रदान की गई है और इसका उद्देश्य जमीनी स्तर पर लोगों में संतुष्टि की भावना पैदा करना है। सत्ता के विकेंद्रीकरण के इस विचार के साथ, इसे जमीनी स्तर पर लोगों को प्रदान करते हुए, संविधान राज्य से अपेक्षा करता है कि वह पंचायत की संरचना, ग्राम सभा की अवधारणा, पंचायतों की संरचना, सीटों के आरक्षण, पंचायतों की अवधि, सदस्यता के लिए अयोग्यता, पंचायतों की शक्तियां, प्राधिकरण और जिम्मेदारी प्रदान करने और कर लगाने, पथकर और शुल्कों, पंचायतों के चुनाव की शक्ति प्रदान करने के लिए विधि निर्मित करें और अनुच्छेद 243 से 243-0 के अधीन निर्वाचन संबंधी मामलों में हस्तक्षेप करने के लिए न्यायालयों के लिए रोक का सृजन करने के लिए अनेक उपबंधों का चयन किया है।

25. अधिनियम, 1961 की स्थापना के लिए अधिनियमित उत्तर प्रदेश के जिलों में क्षेत्र पंचायत और जिला पंचायत के निर्माण क्षेत्र और जिला स्तर पर कुछ सरकारी कार्य करने के लिए, सरकारी कार्यों के लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण के सिद्धांत को आगे बढ़ाने और ग्रामीण क्षेत्रों में उचित नगरपालिका सरकार सुनिश्चित करने के लिए, और ग्राम सभाओं की शक्तियों और कार्यों को सहसंबंधित करने के लिए क्षेत्र पंचायतों और जिला पंचायतों के साथ उत्तर प्रदेश पंचायत राज अधिनियम '1947 किए गए। इस अधिनियम में क्षेत्र पंचायतों के गठन और निगमन, संरचना,

प्रमुखों के पद के लिए चुनाव, प्रमुख का कार्यकाल, क्षेत्र पंचायत की सदस्यता के लिए निरर्हता और अविश्वास प्रस्ताव की विधि का प्रावधान है। क्षेत्र पंचायत के प्रमुख के पद की अवधि, जो उनके चुनाव के बाद प्रारंभ होगी, क्षेत्र पंचायत की अवधि (धारा 9 के अनुसार) तक विस्तारित होगी, जो क्षेत्र पंचायत की प्रथम बैठक के लिए नियत तिथि से पांच वर्ष के लिए होगी। इस प्रकार, निर्वाचित प्रमुख क्षेत्र पंचायत के कार्यकाल की समाप्ति तक अपने पद पर बने रहते हैं, जो अयोग्यता और अविश्वास प्रस्ताव के अधीन होता है।

26. धारा 15(1) के सदस्यों को क्षेत्र पंचायत प्रमुख में विश्वास व्यक्त करते हुए एक प्रस्ताव का अधिकार प्रदान करती है। इस प्रकार किए गए प्रस्ताव पर धारा 15 की उपधारा (2) से (13) में अधिकथित प्रक्रिया के अनुसार कार्यवाही की जानी है। उपधारा (2) से (13) के प्रावधान, जैसा कि स्पष्ट है, प्रकृति में प्रक्रियात्मक हैं, क्योंकि वे उस तरीके को प्रदान करते हैं जिसमें निर्वाचित सदस्यों द्वारा पारित अविश्वास प्रस्ताव कलेक्टर द्वारा प्राप्त किया जाएगा और क्रियान्वन किया जाएगा। **विकास त्रिवेदी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य अन्य 2013 (8) एडीजे 523 (एफबी); 2013 एससीसी ऑनलाइन एल्ड 14264** में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ ने माना है कि 1961 के अधिनियम की धारा 15 एक वैधानिक प्रावधान है जो प्रमुख के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव लाने के लिए निर्वाचित सदस्यों के अधिकार को मान्यता देता है। कलेक्टर को नोटिस जारी करने के लिए सार्वजनिक कर्तव्य सौंपा गया है।

27. **राधेश्याम मौर्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य रिट याचिका संख्या 3171/2012 (एमबी)** निर्णित दिनांक 01.05.2012 में इस न्यायालय की खंडपीठ ने अपने निर्णय में 1961 के अधिनियम की धारा 15 के अधीन अविश्वास प्रस्ताव के विधायी पहलू पर विचार करते हुए यह निर्णय दिया गया है कि प्रस्ताव प्रस्तुत करते समय किसी आधार को व्यक्त नहीं किया जाना चाहिए। यह माना गया कि प्रस्ताव का अधिकार या बहस में भाग लेने का अधिकार सदस्यों में एक वैधानिक अधिकार है, जो अधिनियम की धारा 15 द्वारा प्रदत्त है। विधायिका ने अपने विवेक से क्षेत्र पंचायतों के सदस्यों को अविश्वास प्रस्ताव के लिए निर्धारित प्रारूप में मांग करने की शक्ति प्रदान की है। निर्वाचित प्रतिनिधि अपने निर्वाचक मंडल के प्रति जवाबदेह होते हैं और निर्वाचक अपने सदस्यों के साथ-साथ प्रमुख का भी चयन करते हैं। यह निर्वाचित प्रतिनिधियों का अधिकार है कि वे सांविधिक उपबंधों के अनुसार अविश्वास प्रस्ताव लाकर अपने अविश्वास में कमी दर्शाएं। अविश्वास प्रस्ताव की नीति में यह अंतनहित दर्शन है। पांच वर्ष के लिए चुनाव का अर्थ यह नहीं है कि निर्वाचित प्रतिनिधि को सार्वजनिक हित का ध्यान रखे बिना अपने तरीके से आगे बढ़ने की स्वतंत्र शक्ति मिल गई है। निर्वाचित निकाय के नेता के रूप में सार्वजनिक पद धारण करने वाले व्यक्तियों को सार्वजनिक दायित्व का निर्वहन करने के लिए चुना जाता है और वे तब तक पद पर बने रह सकते हैं जब तक कि लोगों द्वारा उन पर विश्वास व्यक्त किया जाता है।

28. **विकास त्रिवेदी (सुप्रा**) में पूर्ण पीठ ने खंडपीठ की उपरोक्त टिप्पणियों का ध्यान करते हुए सावधानी पूर्वक उल्लेख किया है कि क़ानून के सभी प्रावधानों का पालन करने की आवश्यकता है और अधिकारियों में कोई विवेक नहीं है और वे अपनी इक्षा पर अविश्वास प्रस्ताव को पूरा करने के लिए क़ानून के प्रावधानों की अवहेलना करने के लिए स्वतंत्र नहीं हैं। पूर्ण पीठ के समक्ष

प्रश्न, हालांकि, निर्धारित प्रक्रिया की अनिवार्य या निर्देशिका प्रकृति के संबंध में था, धारा 15 (3) (ii) के तहत कलेक्टर द्वारा नोटिस नियम द्वारा आवश्यक निर्धारित प्रपत्र में थी।

29. 1961 के अधिनियम की धारा 15 के आयात के बारे में उपर्युक्त टिप्पणियां यह समझने के लिए प्रासंगिक हैं कि धारा 15 के प्रावधान प्रक्रियात्मक प्रावधान हैं और क्षेत्र पंचायत प्रमुख के विरुद्ध निर्वाचित सदस्यों द्वारा लाए गए अविश्वास प्रस्ताव को लागू करने के अधिकार का प्रयोग क़ानून के ढांचे के भीतर किया जाना चाहिए। वैधानिक प्रावधानों का कड़ाई से पालन किया जाना चाहिए।

30. हम आगे उल्लेख कर सकते हैं कि उप-धारा (1) के धारा 15 क्षेत्र पंचायत के निर्वाचित सदस्यों को क्षेत्र पंचायत प्रमुख में विश्वास व्यक्त करने का प्रस्ताव लाने का वैधानिक अधिकार प्रदान करती है, उक्त अधिकार को धारा 15 की उपधारा (13) द्वारा ही कम कर दिया गया है जो एक चेतावनी देता है कि धारा 15 के तहत प्रस्ताव की कोई सूचना प्रमुख द्वारा पद ग्रहण करने के निर्धारित समय के भीतर प्राप्त नहीं की जाएगी। उप-धारा (13) में निर्धारित यह समयावधि जो 'एक वर्ष' थी, को अध्यादेश संख्या 8/2022 द्वारा दिनांक 4.10.2022 से बदलकर एक प्रमुख द्वारा पद ग्रहण करने के 'दो वर्ष' कर दिया गया है। इस प्रकार, संबंधित कलेक्टर को संशोधन के लागू होने की तिथि से 'दो साल' के भीतर क्षेत्र पंचायत के एक प्रमुख में विश्वास व्यक्त करने वाला प्रस्ताव प्राप्त करने से प्रतिबंधित किया जाता है, जो कि 04.10.2022 है।

31. विवाद यह है कि क्या "एक वर्ष" के स्थान पर "दो वर्ष" शब्दों का प्रतिस्थापन भावी या पूर्वव्यापी रूप से संचालित होगा। याचिकाकर्ताओं की ओर से विद्वान अधिवक्ताओं का तर्क यह है कि एक बार धारा 15 की उप-धारा (1) & (2) के अनुसार के प्रावधानों के अनुसार निर्वाचित सदस्यों द्वारा प्रस्तुत हो जाने के पश्चात कलेक्टर द्वारा अविश्वास प्रस्ताव प्राप्त किया गया है, कलेक्टर के समक्ष धारा 15 की उपधारा (5) से (11) के प्रावधानों के अनुसार अग्रसित होने के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं था क्योंकि कलेक्टर द्वारा निर्धारित तिथि के रूप में, लिखित प्रस्ताव की जांच के बाद, अविश्वास प्रस्ताव पर विचार करने के लिए स्थगित कर दिया गया था और संशोधन मध्य में पारित गए थे। यह तर्क दिया गया कि अविश्वास प्रस्ताव को प्रस्तुत करने के साथ, निर्वाचित सदस्यों ने धारा 15 में निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार कलेक्टर द्वारा बुलाई जाने वाली बैठक में मतदान के अपने अधिकार का प्रयोग किया है। निर्वाचित सदस्यों द्वारा प्रयोग किए गए अधिकार के साथ उनके पक्ष में एक और अधिकार बनाया गया जो एक "निहित अधिकार" या "अर्जित / मौजूदा प्रावधानों के किसी भी बचत खंड के बिना निरसन का प्रभाव, प्रत्याशित के रूप में प्रतिस्थापित प्रावधानों के आवेदन का अर्थ होगा। पूर्व प्रावधानों के प्रतिस्थापन के साथ, नए प्रावधानों को भावी प्रभाव देना है और पूर्वव्यापी, निहितार्थ द्वारा एक अपवाद है। निहित पूर्वव्यापी के विरुद्ध अनुमान है, निरसन के प्रभाव के साथ, 'अर्जित अधिकार' सामान्य खंड अधिनियम की धारा 6 के आधार पर अस्तित्व में रहेगा, जब तक कि उन्हें स्पष्ट रूप से हटा नहीं दिया जाता है। इस प्रकार, हमें याचिकाकर्ता/निर्वाचित सदस्यों द्वारा प्रयोग किए गए अधिकार के प्रभाव पर विचार करने की आवश्यकता है, जो कि निर्धारित प्रारूप में

कलेक्टर के समक्ष अविश्वास प्रस्ताव एक वैधानिक अधिकार है।

32. ऊपर उल्लेख किया गया है कि धारा 15 के प्रावधान लोकतांत्रिक सिद्धांतों पर आधारित हैं, ताकि जमीनी स्तर पर स्व-शासन के शासन को संरक्षित किया जा सके, और वे प्रकृति में प्रक्रियात्मक हैं, हमें पहले प्रक्रियात्मक संशोधनों के आवेदन के सिद्धांतों पर विचार करने की आवश्यकता है।

33. यह मौलिक नियम है कि कोई भी संविधि एक पूर्वव्यापी संचालन के लिए नहीं माना जाता है, जब तक कि इसकी भाषा स्पष्ट रूप से इस तरह के गठन की आवश्यकता नहीं है। एक विधि का अर्थ इस तरह से नहीं लगाया जाना चाहिए कि उसकी भाषा की तुलना में अधिक पूर्वव्यापी संचालन हो। आम तौर पर, दृढ़ धारणा है कि एक विधायिका पूर्व घटित चीज के संबंध में एक नई देयता लागू करने का आशय नहीं रखती है, क्योंकि आम तौर पर विधायिका के लिए ऐसा करना उचित नहीं होगा। लेकिन इस अनुमान को न केवल अधिनियम में व्यक्त शब्दों से दूर किया जा सकता है, बल्कि इसे विस्थापित करने के लिए पर्याप्त रूप से मजबूत परिस्थितियों से भी दूर किया जा सकता है।

34. सिद्धांत कानून 9वें संस्करण पर क्रेज़ में व्यक्त के रूप में कानून बनाने में न्यायालय द्वारा लागू सिद्धांत पूर्वव्यापी आवेदन खंडनयोग्य आशय नहीं माना जा रहा है कि माना जा रहा है, कि पूर्वव्यापी जहां आवश्यक को छोड़कर बचा जाना चाहिए। हालाँकि, यह नियम मौलिक और सीधे तरीके से लागू नहीं किया जा सकता है क्योंकि इसकी सटीक सीमा निर्धारित करने और इसे लागू करने के तरीके में कई कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं। इनमें से एक यह निर्धारित करने में है कि क्या एक क़ानून पूर्वव्यापी है, एक क़ानून के तहत कार्रवाई की संभावना से संबंधित है जो न केवल भविष्य के लिए प्रभावी है, बल्कि अतीत की घटनाओं, अर्थात अतीत की घटनाओं के संबंध में भविष्य की कार्रवाई, के संदर्भ में आंशिक रूप से लाया जाता है। एक और आवश्यक अंतर यह है कि पूर्वव्यापी संचालन, मौजूदा अधिकारों के साथ हस्तक्षेप एक और वाद है। जैसा कि अध्याय 10 में प्लैसिटम 10.3.7 पर विधान 9 वें संस्करण पर क्राइज में उल्लेख किया गया है:

"पूर्वव्यापी और मौजूदा अधिकारों को प्रभावित करने के बीच अंतर

> क्या है और क्या नहीं है के बीच एक और आवश्यक अंतर पूर्वव्यापी बकले लॉर्ड के वेस्ट बनाम ग्वेने के निर्णय के निम्नलिखित प्रस्तर में चित्रित किया गया है।
>
> पूर्वव्यापी प्रक्रिया एक वाद है। मौजूदा अधिकारों के साथ हस्तक्षेप एक अन्य वाद है। यदि कोई अधिनियम यह उपबंध करता है कि पूर्व तिथि की तरह कानून को वह माना जाएगा जो वह नहीं था, तो मैं समझता हूं कि यह अधिनियम पूर्वव्यापी है। यह मामला नहीं है। सिद्धांत के रूप में संसद का कोई अधिनियम पूर्वव्यापी होने के लिए पर्याप्त कारण के बिना नहीं है। व्यक्त करने के लिए, यह अनुमान है कि यह केवल भविष्य के बारे में प्रकट करता है। लेकिन ऐसी कोई धारणा नहीं है कि एक अधिनियम का उद्देश्य मौजूदा अधिकारों में हस्तक्षेप करना नहीं है। संसद के अधिकांश

अधिनियम, वास्तव में, मौजूदा अधिकारों में हस्तक्षेप करते हैं। "

35. हालांकि, पूर्वव्यापी के विरुद्ध कठोर नियम प्रक्रियात्मक प्रावधानों के संबंध में लागू नहीं होता है। पूर्वव्यापी प्रभाव से संबंधित नियम को लागू करने के प्रयोजन के लिए प्रक्रियात्मक और वास्तविक प्रावधानों के बीच अंतर है। जैसा कि पृष्ठ संख्या 436 पर 'क्रेज़' एट प्लेसिटम 10.3.9 में उल्लेख किया गया है, अपवाद की प्रकृति और इसके औचित्य को स्पष्ट रूप से लॉर्ड ब्राइटमैन के भाषण से क्राइज ऑन लेजिस्लेशन (9 वें संस्करण) में नोट किया गया है:

"व्याख्या विधियों के प्रावधानों के अतिरिक्त, सामान्य कानून में निर्माण का एक प्रथम दृष्टया नियम है कि एक क़ानून की पूर्वव्यापी रूप से व्याख्या नहीं की जानी चाहिए ताकि मौजूदा अधिकारों या दायित्व को क्षीण किया जा सके जब तक कि वह परिणाम इस्तेमाल की गई भाषा पर अपरिहार्य न हो। एक क़ानून पूर्वव्यापी है यदि यह मौजूदा कानूनों के तहत अर्जित निहित अधिकार को छीन लेता है या बाधित करता है, या एक नया दायित्व बनाता है, या एक नया कर्तव्य लगाता है, या पहले से ही अतीत की घटनाओं के संबंध में एक नई विकलांगता संलग्न करता है। हालांकि, एक विधि के मामले में एक अपवाद कहा जाता है जो विशुद्ध रूप से प्रक्रियात्मक है, क्योंकि किसी भी व्यक्ति के पास प्रक्रिया के किसी विशेष पाठ्यक्रम में निहित अधिकार नहीं है, लेकिन केवल निर्धारित समय के लिए किसी कार्रवाई के संचालन के नियमों के अनुसार मुकदमा चलाने या बचाव करने का अधिकार है।

36. विधि के पूर्वव्यापी संचालन के विरुद्ध सामान्य नियम प्रक्रियात्मक प्रावधानों पर लागू नहीं होता है। दरअसल, एक सामान्य धारणा यह है कि प्रक्रिया में वैधानिक परिवर्तन लंबित और साथ ही भविष्य की कार्यवाही पर लागू होता है।

37. यद्धपि, सार और प्रक्रिया के बीच अंतर पता लगाना या लागू करना हमेशा आसान नहीं होता है जैसा कि लॉर्ड ब्राइटमैन ने कहा है जिसे प्लेसिटम 10.3.9 में पृष्ठ '437 पर क्रेज ऑन लेजिस्लेशन (9h संस्करण) में उल्लेख किया गया है:

"लेकिन ये अभिव्यक्तियाँ पूर्वव्यापी और 'प्रक्रियात्मक', हालांकि एक विशेष संदर्भ में उपयोगी हैं, समतुल्य हैं और इसलिए भ्रामक हो सकती हैं। एक विधि जो किसी वाद के एक पहलू के संबंध में पूर्वव्यापी है (उदाहरण के लिए क्योंकि यह कार्रवाई के पूर्व-क़ानून कारण पर लागू होता है) एक ही समय में उसी वाद के दूसरे पहलू के संबंध में भावी हो सकता है (उदाहरण के लिए क्योंकि यह केवल कार्रवाई के उस कारण को सुनिश्चित करने के लिए कार्यवाही के बाद के क़ानून पर लागू होता है); और एक अधिनियम जो एक अर्थ में प्रक्रियात्मक है, विशेष परिस्थितियों में कार्यवाही को विनियमित करने से कहीं अधिक कर सकता है, क्योंकि यह एक व्याख्या

पर, कार्रवाई के कारण को पुनर्जीवित या नष्ट कर सकता है।

38. विधि पर क्रेज़ में ऊपर उल्लिखित सामान्य पूर्वसर्ग पूर्वव्यापी के विचार के लिए, वहाँ संबंधित प्रावधानों के सार पर विचार करने के लिए कोई विकल्प नहीं है, और सभी परिस्थितियों पर विचार करने के पश्चात यह माना जा सकता है कि विधायिका द्वारा क्या यथोचित परिणाम माना जा सकता है जिसे प्राप्त करने या विरक्त करने का आशय हो।

39. जैसा कि बेलीथ और बेलीथ 1966 (1) सभी ईआर 524 में लॉर्ड डेनिम द्वारा कहा गया है, यह नियम कि संसद के एक अधिनियम को पूर्वव्यापी प्रभाव नहीं दिया जाना है, केवल उन विधियों पर लागू होता है जो निहित अधिकार को प्रभावित करते हैं। यह कानून पर लागू नहीं होता है जो केवल रूप या प्रक्रिया या साक्ष्य की स्वीकार्यता या उस प्रभाव को बदलता है जो न्यायालय साक्ष्य को देते हैं।

40. यह सिद्धांत व्यक्त करते हुए कि "प्रक्रिया के कानून में एक परिवर्तन पूर्वव्यापी और निहित अधिकार के लिए संबंधित कानून के विपरीत संचालित होता है जो केवल भावी नहीं है, "उच्चतम न्यायालय ने मैक्सवेल में व्यक्त नियम के कारण को अनुमोदन के साथ **आनंद गोपाल बनाम बॉम्बे राज्य एआईआर 1958 एससी 915** में उद्धृत किया है: -

> किसी भी व्यक्ति को किसी भी प्रक्रिया में निहित अधिकार नहीं है। उसके पास केवल अभियोजन या बचाव का अधिकार उस न्यायालय द्वारा या उसके लिए समय के लिए निर्धारित तरीके से है जिसमें वाद लंबित है, और यदि, संसद के एक अधिनियम द्वारा, प्रक्रिया के तरीके में परिवर्तन किया जाता है, तो उसे परिवर्तित तरीके के अनुसार अग्रशित होने के अतिरिक्त अन्य कोई अन्य अधिकार नहीं है।

41. **पुलिस आयुक्त, दिल्ली और अन्य बनाम धवल सिंह एआईआर 1999 एससी 2326** में, यह कहा गया है कि:

> "न्यायाधिकरण और सीमा से संबंधित कानून प्रकृति में प्रक्रियात्मक है, जबकि कार्रवाई के अधिकार और अपील के अधिकार से संबंधित कानून भले ही उपचारात्मक प्रकृति में ठोस हो; कि एक प्रक्रियात्मक क़ानून को आम तौर पर पूर्वव्यापी रूप से लागू नहीं किया जाना चाहिए जहां परिणाम नई विकलांगता या दायित्व पैदा करने या पहले से पूरा किए गए लेनदेन के संबंध में नए कर्तव्यों को लागू करने के लिए होगा; वह क़ानून जो न केवल प्रक्रिया को बदलता है बल्कि नए अधिकार और दायित्व भी बनाता है, उसे भावी माना जाएगा, जब तक कि अन्यथा स्पष्ट रूप से या आवश्यक निहितार्थ द्वारा प्रदान नहीं किया जाता है।

42. इस प्रकार, यह व्यक्त किया गया था कि पिछली घटनाओं के लिए किसी विशेष क़ानून की प्रयोज्यता के प्रश्न को तय करने में, इस्तेमाल की जाने वाली भाषा निस्संदेह सबसे महत्वपूर्ण कारक है जिसे ध्यान में रखा जाना चाहिए, लेकिन प्रत्येक मामले में वास्तविक मुद्दा विधायिका के प्रमुख आशय प्रयोग की गई भाषा से इकट्ठा, इंगित वस्तु, प्रभावित अधिकारों की प्रकृति, और

जिन परिस्थितियों में संविधि पारित की जाती है, उसके रूप में है।

43. उपरोक्त कानूनी सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, हमें याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री राकेश पांडे के तर्कों पर विचार करते हुए तत्काल मामले में संशोधनों की प्रकृति की जांच करने की आवश्यकता है कि "एक वर्ष" के स्थान पर "दो वर्ष" शब्दों के "प्रतिस्थापन" का प्रभाव संशोधनों को भावी रूप से लागू करना होगा। यह तर्क स्पष्ट रूप से पूर्वव्यापी के विरुद्ध अनुमान के सामान्य सिद्धांत पर आधारित है।

44. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, क़ानून के पूर्वव्यापी संचालन के विरुद्ध सामान्य नियम प्रक्रियात्मक प्रावधानों/क़ानून में संशोधनों पर लागू नहीं होता है। यदि पुराने उपबंधों के प्रतिस्थापन शब्दों के साथ संशोधन की सरलीकृत व्याख्या, जैसा कि दावा किया गया है, लागू किया जाता है, तो इसका परिणाम यह होगा कि पिछले चुनाव में एक निर्वाचित प्रमुख, जिसके विरुद्ध उपधारा (13) में लागू संशोधन तक अविश्वास प्रस्ताव नहीं लाया गया है, अपने पद ग्रहण की तारीख से 'दो साल' की अवधि तक जारी रह सकेगा। जबकि एक अन्य प्रमुख जो उसी चुनाव में चुना जाता है, जिसके विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव संशोधनों यानी 04.10.2022 से पूर्व लाया गया है, उसको उसके पद ग्रहण करने से दो साल की अवधि समाप्त होने से पूर्व हटाया जा सकता है, यदि प्रस्ताव कलेक्टर द्वारा बुलाई गई बैठक में किया जाता है।

45. यह मानना विचित्र होगा कि राज्य विधायिका का आशय किसी प्रमुख के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव लाने के सदस्यों के अधिकार को पद ग्रहण करने को केवल ऐसे सदस्यों के लिए 'दो वर्ष' की अवधि के लिए कम करना था, जो एक वर्ष की अवधि समाप्त होने के बाद पहले से मौजूद प्रावधानों के तहत ऐसा प्रस्ताव नहीं ला सके या नहीं ला सके और इसके साथ ही, यह निर्वाचित सदस्यों को पारित करने या 'दो साल' (संशोधित प्रावधानों के अनुसार) की अवधि के भीतर उनके द्वारा लाए गए अविश्वास प्रस्ताव पर मतदान करने की अनुमति देगा, केवल इसलिए कि प्रस्ताव संशोधन से पूर्व प्रस्तुत किया गया था। यह व्याख्या का स्थापित नियम है कि क़ानून की कोई भी व्याख्या जो विसंगति की ओर ले जाती है, उससे बचा जाना चाहिए। यह माना जाता है कि विधायिका विसंगति का इरादा नहीं रखती है, या इसके अधिनियमन से विसंगति परिणाम होंगे। इसलिए, इस तरह के परिणाम से बचा जा सकता है, यदि अधिनियम की शर्तें क़ानून के उचित निर्माण से इसे स्वीकार करती हैं। यह अन्य सभी अनुमानों की तरह लागू होता है, इस प्रकार यदि व्याख्या के शाब्दिक नियम को लागू करके, निर्माण विसंगति पूर्वक हो रहा है तो इसे टाला जाना चाहिए।

46. हमारी सुविचारित राय में, संबंधित प्रावधान के उद्देश्य और सार का अध्ययन करने के पश्चात, विधायिका को उचित रूप से यह माना जा सकता है कि वह धारा 15 की उपधारा (13) में संशोधन लाकर, एक प्रमुख द्वारा पद ग्रहण करने के 'दो साल' की अवधि के भीतर अविश्वास प्रस्ताव लाने के लिए निर्वाचित सदस्यों के अधिकार को कम करना चाहता था।

47. निहित पूर्वव्यापी के विरुद्ध संभावना या अनुमान के नियम के सामान्य नियम को लागू करके संशोधनों की पूर्वव्यापी के विरुद्ध तर्क निरस्त किए जाने योग्य है।

48. अब प्रश्न निर्वाचित सदस्यों को धारा 15 की उपधारा (1) के आधार पर विधायिका द्वारा प्रदत्त अधिकारों को प्रमुख में विश्वास व्यक्त करने के लिए एक प्रस्ताव लाने के लिए अधिकार की प्रकृति के रूप में बना हुआ है।

49. याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री नवीन सिन्हा का तर्क यह है कि कलेक्टर के समक्ष निर्वाचित सदस्यों द्वारा अविश्वास प्रस्ताव को करने पर और कलेक्टर उस प्रस्ताव पर विचार करने के लिए क्षेत्र पंचायत की बैठक बुलाने की तारीख तय करने के साथ, निर्वाचित सदस्यों के पक्ष में एक निहित अधिकार बनाया गया है। मौजूदा प्रावधानों को निरस्त करके निर्वाचित सदस्यों को प्राप्त अधिकारों को कम नहीं किया जा सकता है। सामान्य खंड अधिनियम की धारा 6 को यह दावा करने के लिए लागू किया गया है कि इस तरह के अधिकार को प्रतिस्थापित प्रावधानों के किसी भी पूर्वव्यापी संचालन के बिना निरसन के प्रभाव पर विचार करके बचाया जाना चाहिए।

50. हालांकि यह तर्क प्रथम बार में आश्वस्त करने वाला प्रतीत रहा था, लेकिन उसी की गहरी जांच करने पर, हम पाते हैं कि कोई "निहित अधिकार" या उपार्जित अधिकार "केवल प्रमुख के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव को आगे बढ़ाकर निर्वाचित सदस्यों के पक्ष में नहीं बनाया गया है। **मोहन लाल त्रिपाठी बनाम जिला मजिस्ट्रेट, रायबरेली 1992 (4) एससीसी 80** में सर्वोच्च न्यायालय ने नगरपालिका बोर्ड अध्यक्ष के खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत करने की दो वर्ष' से 'एक' वर्ष की अवधि को कम करने के लिए संशोधन को चुनौती पर विचार करते हुए निम्न उल्लेख किया:

> "2. .... निर्वाचित प्रतिनिधि को हटाने का अधिकार कानून से बाहर होना चाहिए क्योंकि संवैधानिक प्रतिबंध के अभाव में अधिकारियों को वापस बुलाने के लिए कानून बनाना विधायिका की शक्ति के भीतर है। (अमेरिकन ज्यूरिसप्रूडेंस, वॉल्यूम 63, दूसरा संस्करण, पृष्ठ 238) इसके अस्तित्व या वैधता का निर्णय अधिनियम के प्रावधान पर किया जा सकता है न कि नीति के मामले के रूप में।

51. यह उसमें देखा गया था कि अध्यक्ष को हटाने के लिए अविश्वास प्रस्ताव की वैधता या अन्यथा वैधानिक प्रावधानों की प्रयोज्यता पर जांच की जानी चाहिए; जब तक यह कानून के अनुसार है, तब तक एक निर्वाचित प्रतिनिधि को वापस बुलाने पर न तो राजनीतिक दर्शन के आधार पर और न ही लोकतंत्र की अमूर्त धारणाओं के आधार पर हमला नहीं किया जा सकता है।

52. **उषा भारती बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2014 (7) एससीसी 663** में, सर्वोच्च न्यायालय ने अधिनियम '1961 की धारा 28 के तहत अविश्वास प्रस्ताव के प्रावधानों की अवधारणा पर विचार किया था। उसमें यह देखा गया कि:

> "45. . हमारी राय में, अविश्वास का प्रावधान प्रस्ताव, न केवल संविधान के भाग IX के अनुरूप है, लेकिन पंचायत सहायकों सहित निर्वाचित प्रतिनिधियों की पारदर्शिता और जवाबदेही सुनिश्चित करने के लिए भी मूलभूत है। यह प्रावधान एक स्पष्ट संदेश भेजता है कि एक निर्वाचित पंचायत अध्यक्ष केवल तब तक कार्य करना

जारी रख सकता है जब तक कि उसे पंचायत का विश्वास प्राप्त हो।

53. हमारी राय में, पंचायत अध्यक्ष जैसे निर्वाचित प्रतिनिधि जैसे पंचायत अध्यक्ष को हटाने के लिए मौलिक महत्व को हटाने का प्रावधान संस्था के लोकतांत्रिक कार्यकरण के साथ-साथ निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा किए गए कार्यों में पारदर्शिता और जवाबदेही को सुनिश्चित करने का है।

53. उपरोक्त के प्रकाश में, यह देखा जा सकता है कि किसी निर्वाचित प्रमुख को हटाने के लिए उपबंध करने का उद्देश्य निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा निष्पादित कार्यों में पारदशता और जवाबदेही सुनिश्चित करना है, परंतु प्रमुख में विश्वास व्यक्त करते हुए प्रस्ताव लाने के लिए निर्वाचित सदस्यों को प्रदत्त अधिकार का प्रयोग केवल संविधि के प्रावधानों, अधिनियम, 1961 की धारा 15 के अनुसार ही किया जा सकता है।

54. धारा 15 की उपधारा (1) और (2) के अधीन यथा प्रदत्त अविश्वास प्रस्ताव को प्रस्तुत करके ऐसे अधिकार का प्रयोग, हमारी सुविचारित राय में, प्रस्ताव लाने के आशय की अभिव्यक्ति मात्र है। प्रस्ताव प्रस्तुत करने का आशय, निर्वाचित सदस्यों को कलेक्टर द्वारा बुलाई गई बैठक में अविश्वास प्रस्ताव लाने के लिए कोई 'निहित अधिकार' प्रदान नहीं करता है। धारा 15 की उपधारा (3) के अनिवार्य प्रावधानों के अनुपालन के लिए कलेक्टर पर डाली गई बाध्यता, प्रस्ताव लाने के लिए निर्वाचित सदस्यों के अधिकार पर कोई असर नहीं पड़ेगा। धारा 15 की उपधारा (3) और (4ख) के अनुसार बैठक बुलाने की तिथि नियत करके प्रस्ताव पर विचार करने के लिए निर्वाचित सदस्यों के पक्ष में कोई निहित अधिकार या उपार्जित अधिकार सृजित नहीं किया जा सकता।

55. इसके अलावा, अविश्वास प्रस्ताव को आगे बढ़ाना उस पर मतदान के परिणाम पर निर्भर करेगा। यह एक और वाद होगा जहां बैठक आयोजित की गई थी और प्रस्ताव पर विचार किया गया था, उस मामले में निर्वाचित सदस्यों को कलेक्टर द्वारा निर्धारित बैठक के परिणाम के अनुसार अविश्वास प्रस्ताव को आगे बढ़ाने का अधिकार होगा। निर्वाचित सदस्यों के साथ उस मामले में "निहित अधिकार" बनाया गया होगा, जिसे धारा 15 की उपधारा (13) के प्रतिस्थापन द्वारा कम नहीं किया जा सकता था।

56. निर्वाचित सदस्यों द्वारा प्रस्ताव लाने के अधिकार का प्रयोग मात्र संशोधन की तिथि को कलेक्टर द्वारा प्राप्त अविश्वास प्रस्ताव के साथ आगे बढ़ने के "मौजूदा अधिकार" के अर्थ के भीतर आएगा। उक्त अधिकार को उस अवधि के प्रतिस्थापन द्वारा कम कर दिया गया है, जिसके दौरान प्रमुख के विरुद्ध अविश्वास 'एक वर्ष' से 'दो वर्ष' तक प्रस्ताव पेश किया जा सकता है। दिनांक 04.10.2022 से संशोधन के प्रभाव में आने पर, कलेक्टर/पीठासीन अधिकारी को बैठक बुलाकर प्रस्ताव को विचारार्थ पेश करने और उसे वाद-विवाद के लिए खुला घोषित करने के लिए यह अस्वीकार्य हो गया। कलेक्टर/पीठासीन अधिकारी द्वारा बुलाई गई बैठक में प्रस्ताव पर बहस करने के निर्वाचित सदस्यों के अधिकार, केवल "मौजूदा अधिकार" होने के कारण, प्रक्रियात्मक संशोधन के पूर्वव्यापी संचालन द्वारा कम कर दिया गया है, जिसमें किसी प्रमुख के पद ग्रहण करने के 'दो वर्ष' के भीतर उसके विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव नहीं लाया जा सकता है।

57. इसके अलावा, धारा 15 की उपधारा (13) की भाषा के आलोक में, "एक प्रमुख द्वारा पद ग्रहण करने के" शब्दों के कारण, उसमें निर्धारित दो वर्ष की अवधि" एक प्रमुख द्वारा पद ग्रहण करने की तारीख से संबंधित होगी।

58. सभी दृष्टिकोण से, प्रावधानों के सार व सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, इस बात पर विचार करते हुए कि विधायिका को यथोचित रूप से क्या परिणाम प्राप्त करना चाहता है, हम पाते हैं कि धारा 15 की उप-धारा (13) के तहत प्रक्रियात्मक प्रावधानों का प्रतिस्थापन पूर्वव्यापी रूप से लागू किया जाना है। निर्वाचित सदस्यों द्वारा पेश किए गए अविश्वास प्रस्ताव को "एक वर्ष" से दो वर्ष की अवधि के प्रतिस्थापन के बाद कलेक्टर द्वारा चर्चा के लिए पेश नहीं किया जा सकता है या बहस के लिए खुला घोषित नहीं किया जा सकता है।

59. उपरोक्त चर्चानुसार, सभी वाद में, कलेक्टर द्वारा क्षेत्र पंचायत प्रमुख के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव को "प्रमुख द्वारा कार्यालय मान्यता के दो वर्ष के भीतर" निरस्त करने से संबंधित कार्यवाही को अवैध नहीं कहा जा सकता है। वाद में कोई योग्यता नहीं है।

60. तदनुसार, सभी रिट याचिकाएं **निरस्त** की जाती हैं।

(2023) 3 ILRA 383

मूल न्यायाधिकार

नागरिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 09.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती सुनीता अग्रवाल,

माननीय न्यायमूर्ति विपिन चन्द्र दीक्षित,

रिट सी संख्या 32101/2022

श्रीमती जयन्त्रा देवी ...याचिकाकर्ता

बनाम

यूपी राज्य एवं अन्य। ..प्रतिवादीगण

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री अशोक कुमार त्रिपाठी, श्री राहुल अग्रवाल

अधिवक्ता प्रतिवादीगण: सी.एस.सी., श्री आदित्य कुमार सिंह, श्री अमित कुमार सिंह, श्री तरूण अग्रवाल, अजीत कुमार सिंह (ए.ए.जी.), श्री अशोक खरे (वरिष्ठ अधिवक्ता)

A. स्थानीय निकाय कानून - भारतीय संविधान - अनुच्छेद 226, 243O और 243ZG - रिट - पोषणीयता - वैकल्पिक उपाय - अविश्वास प्रस्ताव - इसकी वैधता पर चुनौती - चुनाव याचिका के वैकल्पिक उपाय की आपत्ति - अनुमति - आयोजित, दिनांक 30.09.2022 की बैठक की वैधता जो अधिनियम, 1961 की धारा 15 के प्रावधानों के विपरीत होने की बात है, अविश्वास प्रस्ताव' पर निर्भर होने के कारण चुनाव याचिका का विषय नहीं बन सकता - यदि याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 30.08.2022 को आयोजित बैठक की वैधता पर उठाई गई चुनौती को मान लिया जाता है कि यह अधिनियम की धारा 15(3)(ii) के अनिवार्य प्रावधानों का उल्लंघन है, तो उस दिन पारित प्रस्ताव को निरस्त करना होगा। परिणामस्वरूप, याचिकाकर्ता की कोई निरस्तीकरण नहीं होगा और इसलिए कोई रिक्ति नहीं होगी। दिनांक 14.10.2022 की अनुवर्ती अधिसूचना स्वतः आप शून्य हो जाएगी - उच्च न्यायालय ने रिट याचिका की पोषणीयता पर आपत्ति को निरस्त कर दिया। (पैराग्राफ 10)

B. स्थानीय निकाय कानून - उत्तर प्रदेश क्षेत्र पंचायत और जिला पंचायत अधिनियम, 1961 - धारा 15 (3) और (4B) - प्रमुख के विरुद्ध

अविश्वास प्रस्ताव - डी.एम. ने दिनांक 23.08.2022 की नोटिस द्वारा दिनांक 08.09.2022 को बैठक आयोजित किया - यद्धपि, अध्यक्ष ने अपनी माँ की बीमारी के कारण अनुपस्थिति की अनुमति मांगी, जो उचित रूप से दी गई - दिनांक 30.09.2022 को आयोजित स्थगित बैठक की वैधता को चुनौती इस आधार पर दी गई कि 23.08.2022 की नोटिस जो 08.09.2022 को तय की गई थी, अधिनियम, 1961 की धारा 15 की उपधारा (3) के खंड (ii) के अनुसार अनिवार्य मान्य नोटिस होगी - अनुमति - 30.09.2022 को बैठक में किया गया प्रस्ताव चुनौती दी गई - अनुमति विचारणीय- आयोजित, अध्यक्ष द्वारा 08.09.2022 को कलेक्टर द्वारा तय की गई बैठक में उपस्थित होने की असाधारण प्रतिकूल स्थिति के कारण, केवल इस तथ्य के कारण कि उन्होंने स्वयं बैठक को स्थगित नहीं किया या स्थगन के समय बैठक की तिथि और समय नहीं तय किया, लेकिन बाद में अपनी नियुक्ति के बाद सूचित किया, इससे 30.09.2022 को आयोजित बैठक में किए गए प्रस्ताव की वैधता प्रभावित नहीं होगी। यदि 08.09.2022 को तय बैठक के स्थगन में कोई कमी है, तो वह ठीक की जा सकती है। (पैराग्राफ 23 और 29)

रिट याचिका निरस्त। (E-1)

<u>उद्धृत वाद सूची :-</u>

1. यदु नाथ पांडे बनाम जिला पंचायत राज अधिकारी; 1986 यूपीएलबीईसी 62

2. कमला देवी बनाम राज्य उत्तर प्रदेश और अन्य; 2014 (2) एडीजे 327

3. कमल शर्मा बनाम राज्य उत्तर प्रदेश और अन्य; 2013 एससीसी ऑनलाइन अल्ल 8448

4. किरण सिंह बनाम राज्य उत्तर प्रदेश और अन्य; 2017 (5) एडब्ल्यूसी 5096

5. सुरेंद्र कुमार यादव बनाम राज्य उत्तर प्रदेश और अन्य; 2017 (3) एडब्ल्यूसी 2367 (LB)

6. आदेश सिंह यादव बनाम कलेक्टर बरेली; 2020 (5) एडीजे 418

7. नियाज़ुद्दीन बनाम राज्य उत्तर प्रदेश और अन्य; 2020 (1) AWC 794

8. हरि शंकर जैन बनाम सोनिया गांधी; 2008 (1) SCC 233

9. अमर नाथ जयसवाल बनाम राज्य उत्तर प्रदेश और अन्य; 1992 SCC Online

10. अइज़ाज़ अहमद बनाम नियाज़ अहमद और अन्य; 1975 SCC Online All 111

11. सरदार ज्ञान सिंह बनाम डी.एम. बिजनौर और अन्य; 1975 SCC Online All 144

12. अखिलेश कुमार कटियार बनाम राज्य उत्तर प्रदेश और अन्य; 2012 SCC Online All 4282

13. राज्य उत्तर प्रदेश बनाम मनबोधन लाल श्रीवास्तव; AIR 1957 SC 91214. रजा बुलंद शुगर कंपनी लिमिटेड रामपुर बनाम नगरपालिका बोर्ड, रामपुर; AIR 1965 SC 895

15. ज्ञान सिंह बनाम डी.एम., बिजनौर और अन्य; AIR 1975 इलाहाबाद 315

16. शरीफ-उद-दीन बनाम अब्दुल गनी लोन; 16 (1980) 1 SCC 403

17. विकास त्रिवेदी बनाम राज्य उत्तर प्रदेश और अन्य; 2013 SCC OnLine All 14264

18. किरण पाल सिंह बनाम राज्य उत्तर प्रदेश और अन्य; (2018) 7 SCC 521

19. भानुमति और अन्य बनाम राज्य उत्तर प्रदेश, इसके प्रधान सचिव और अन्य; 2010 (12) SCC 1

<u>माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती सुनीता अग्रवाल</u>
<u>माननीय न्यायमूर्ति विपिन चन्द्र दीक्षित</u>

1. याचिकाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री राहुल अग्रवाल और श्री अशोक कुमार त्रिपाठी, अतिरिक्त महाधिवक्ता श्री अजीत कुमार सिंह को राज्य-प्रतिवादियों के लिए अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री सुधांशु श्रीवास्तव ने सहायता प्रदान की और वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अशोक खरे को प्रतिवादी क्रमांक 6 के विद्वान अधिवक्ता श्री आदित्य कुमार सिंह के द्वारा सहायता प्रदान की गई, को सुना।

2. यह रिट याचिकाकर्ता 30.9.2022 को आयोजित बैठक में उनके खिलाफ किए गए 'अविश्वास प्रस्ताव' को चुनौती दे रही है, साथ ही भारत के चुनाव आयोग द्वारा क्षेत्र पंचायत हैसर बाजार, जिला संत कबीर नगर के ब्लॉक प्रमुख/प्रमुख के पद की रिक्ति को अधिसूचित करते हुए जारी की गई अधिसूचना को भी चुनौती दे रही है।

3. विवाद को निर्धारित करने के लिए प्रासंगिक तथ्य यह है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ 'अविश्वास' प्रस्ताव लाने का एक नोटिस, जिस पर क्षेत्र पंचायत हैसर बाजार निर्वाचन क्षेत्र के कुल 99 सदस्यों में से 76 सदस्यों द्वारा हस्ताक्षरित है, जिला को प्राप्त हुआ था। क्षेत्राधिकारी, संतकबीर नगर। जिला मजिस्ट्रेट ने दिनांक 23.8.2022 को एक नोटिस द्वारा 8.9.2022 को 'अविश्वास प्रस्ताव' पर विचार करने के लिए एक बैठक बुलाई। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि उक्त नोटिस 24.8.2022 को पंजीकृत डाक द्वारा भेजे गए थे। प्रेषण की तारीख और बैठक की निर्धारित तारीख के बीच की अवधि 15 दिनों से कम होने पर 'अविश्वास प्रस्ताव' नहीं लाया जा सकता था जिसे उ.प्र. की धारा 15(3)(ii) के अनिवार्य प्रावधानों के दृष्टिगत निर्धारित तिथि अर्थात 8.9.2022 क्षेत्र पंचायत और जिला पंचायत अधिनियम, 1961 (इसके बाद इसे "अधिनियम, 1961" कहा जाएगा)।

4. इस मामले में यह स्वीकृत तथ्य है कि 8.9.2022 को बैठक नहीं बुलाई जा सकी। इसे उपमंडल अधिकारी, धनघटा, जिला संत कबीर नगर, जिन्हें बैठक की अध्यक्षता करनी थी, द्वारा आपातकालीन अवकाश के आवेदन के कारण स्थगित कर दिया गया था। उनकी मां के खराब स्वास्थ्य के कारण पीठासीन अधिकारी द्वारा आपातकालीन अवकाश आवेदन दिनांक 6.9.2022 को इस प्रार्थना के साथ प्रस्तुत किया गया था कि उन्हें जिला मेरठ जाने के लिए स्टेशन छोड़ने की अनुमति दी जाए। उनकी मां की लंबी बीमारी के कारण 11.9.2022 तक छुट्टी बढ़ाने के लिए पीठासीन अधिकारी द्वारा दिनांक 7.9.2022 को एक और छुट्टी आवेदन दायर किया गया था। सक्षम प्राधिकारी द्वारा सेवा

नियमों के अनुसार पीठासीन अधिकारी अर्थात् उपमंडल अधिकारी, धनघटा, संत कबीर नगर को अवकाश विधिवत स्वीकृत किया गया था।

जिलाधिकारी, संत कबीर नगर ने कार्यालय आदेश दिनांक 7.9.2022 जारी कर सूचित किया है कि दिनांक 8.9.2022 को निर्धारित 'अविश्वास' की बैठक अपरिहार्य परिस्थितियों के कारण आयोजित नहीं की जा सकी और स्थगित कर दी गई है। इसके अलावा, उप-जिलाधिकारी, धनघटा/पीठासीन अधिकारी ने जिलाधिकारी, संत कबीर नगर को पत्र दिनांक 15.9.2022 द्वारा सूचित किया कि बैठक की अगली तिथि 30 सितंबर, 2022 को पूर्वाह्न 11:30 बजे कार्यालय क्षेत्र पंचायत हैसर बाजार के बैठक कक्ष में आयोजित की गई थी। बैठक की निर्धारित तिथि की सूचना क्षेत्र पंचायत के सभी सदस्यों, क्षेत्र पंचायत को दे दी गयी थी तथा बैठक की कार्यवाही दिनांक 30.9.2022, मतदान के परिणाम से पता चलता है कि कुल 99 सदस्यों में से 95 ने बैठक में भाग लिया था और अपने मताधिकार का प्रयोग किया. 95 में से 72 वोट 'अविश्वास प्रस्ताव' के पक्ष में थे और इसलिए इसे उपस्थित और मतदान करने वाले 50% से अधिक सदस्यों की संख्या के साथ पारित किया गया।

उपरोक्त उल्लेखित तथ्यों पर कोई विवाद नहीं है। हालांकि, याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री राहुल अग्रवाल ने तर्क दिया कि प्रारंभिक नोटिस दिनांक 23.8.2022 को बैठक के लिए 8.9.2022 तय किया गया था जिसको 24.8.2022 को भेजा गया और इसलिए बैठक के लिए निर्धारित तिथि की सूचना के 15 दिनों की अनिवार्य आवश्यकता पूरी नहीं की गई थी। दो अंतिम दिन, यानी पहली और आखिरी तारीख, यानी नोटिस भेजने की तारीख और बैठक के लिए तय की गई तारीख को अधिनियम, 1961 की धारा 15 खंड (ii) की उप-धारा (3) के अनुपालन के लिए गणना किए जाने वाले समय से बाहर रखा जाना चाहिए।

यदु नाथ पांडे बनाम जिला पंचायत राज अधिकारी' मामले में इस न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा किया गया है; **कमला देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**; **कमल शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, किरण सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; सुरेंद्र कुमार यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य; आदेश सिंह यादव बनाम कलेक्टर बरेली और नियाजुद्दीन बनाम स्टेट ऑफ यूपी और अन्य** यह दावा करते हैं कि धारा 15(3)(ii) के संदर्भ में 15 दिन का स्पष्ट नोटिस अनिवार्य है और उक्त प्रावधान का अनुपालन न करने से कार्यवाही ख़राब हो जाएगी।

5. तर्क यह है कि चूंकि प्रारंभिक नोटिस दिनांक 23.8.2022 (24.8.2022 को भेजा गया) कानून की नजर में गलत था, बैठक का बाद का स्थगन

और प्रस्ताव 30.9.2022 को उप-धारा के तहत प्रदान किए गए विस्तारित समय के भीतर किया गया (धारा 15 के 4-बी) को कानून में बुरा माना जाएगा। पूरी कार्यवाही अधिनियम, 1961 की धारा 15 के प्रावधानों के उल्लंघन में है। यह तर्क दिया गया है कि धारा 15(3)(ii) के प्रावधान अनिवार्य प्रकृति के हैं और इसका कोई भी उल्लंघन इलाज योग्य दोष नहीं है और इसे सुधारा नहीं जा सकता है। बैठक का स्थगन 8.9.2022 को निर्धारित है।

इसके अलावा, उप-धारा (4-बी) के अनुसार, जिस अधिकारी को ऐसी बैठक की अध्यक्षता करनी है, उसे बैठक स्थगित करने के अपने कारणों को दर्ज करना होगा, यदि वह ऐसी बैठक की अध्यक्षता करने में असमर्थ है। ऐसी बैठक को स्थगित करते समय, उसे तारीख और समय तय करना ऐसी बैठक के लिए तिथि नियुक्त की गई तिथि जो 25 दिनों से अधिक की नहीं होगी। इस प्रकार, उप-धारा (4-बी) की आवश्यकता यह है कि केवल पीठासीन अधिकारी ही ऐसी बैठक की अध्यक्षता करने में असमर्थता के कारणों को दर्ज करते हुए स्थगित बैठक की तारीख और समय तय करके निर्धारित बैठक को स्थगित कर सकता है। इस प्रकार, धारा 15 की उप-धारा (4-बी) के अनुसार कलेक्टर द्वारा अगली बैठक की सूचना के बाद पीठासीन अधिकारी द्वारा स्थगित बैठक की तारीख और समय की सूचना दी जाती है। कारणों की रिकॉर्डिंग और स्थगित बैठक की तारीख और समय तय करना पीठासीन अधिकारी द्वारा एक साथ किए जाने वाले कार्य हैं। इस प्रकार, जिला मजिस्ट्रेट द्वारा जारी कार्यालय आदेश के साथ 7.9.2022 को बैठक को स्थगित करना अधिनियम, 1961 की धारा 4-बी के प्रावधानों का उल्लंघन है। इसके अलावा, बैठक दिनांक 30.9.2022 को निर्देशों के तहत आयोजित की गई है इस न्यायालय द्वारा दिनांक 13.9.2022 के आदेश में जारी किया गया। पीठासीन अधिकारी स्वयं स्थगन की अनिवार्य प्रक्रिया का पालन करने में विफल रहे। तर्क यह है कि कार्यकारी अधिकारियों अर्थात् पीठासीन अधिकारी और कलेक्टर ने बैठक को स्थगित बैठक के रूप में आयोजित करने के लिए समय लेने के लिए धारा 15 के प्रावधानों को ताक पर रख दिया था। ऐसी गैरकानूनी तरीके से बुलाई गई बैठक का नतीजा कानून की नजर में कायम नहीं रह सकता।

6. इस प्रकार, निवेदन यह है कि चूंकि 30.9.2022 को आयोजित बैठक में 'अविश्वास प्रस्ताव' लाने की पूरी प्रक्रिया अवैध थी। प्रमुख क्षेत्र पंचायत के पद के लिए परिणामी रिक्ति और राज्य निर्वाचन आयोग, उ.प्र., लखनऊ द्वारा दिनांक 14.10.2022 को जारी की गई अधिसूचना भी निरस्त की जाने योग्य है। निवेदन यह है कि यदि बैठक ही अमान्य थी और परिणामी 'अविश्वास प्रस्ताव' अवैध है, तो रिक्ति को वैध रूप से विद्यमान नहीं माना जा सकता है, क्योंकि

कोई भी परिणामी चुनाव 'अविश्वास प्रस्ताव' के परिणाम पर निर्भर होता है।

7. श्री अशोक खरे विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री आदित्य कुमार सिंह की सहायता से प्रतिवादी संख्या 6 के विद्वान अधिवक्ता ने रिट याचिका की पोषणीयता को इस दावे के साथ चुनौती दी है कि वर्तमान रिट याचिका में की गई दूसरी प्रार्थना जिसमे प्रतिवादी संख्या 6 के चुनाव के साथ राज्य चुनाव आयोग द्वारा अधिसूचना जारी की गई, के मद्देनजर चुनौती दी गई है। याचिकाकर्ता के सामने एकमात्र उपाय चुनाव याचिका दायर करना है क्योंकि चुनाव की वैधता का मुद्दा भारत के संविधान के अनुच्छेद 243ZG के साथ पठित अनुच्छेद 243-O के तहत रोक के मद्देनजर केवल चुनाव याचिका के माध्यम से उठाया जा सकता है। इस प्रकार, रिट याचिका विचारणीय नहीं होने के कारण खारिज किये जाने योग्य है।

हरि शंकर जैन बनाम सोनिया गांधी मामले में शीर्ष न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा किया गया है; **अमर नाथ जयसवाल बनाम यूपी राज्य और अन्य** तथा **ऐजाज अहमद बनाम नियाज अहमद और अन्य**; **सरदार ज्ञान सिंह बनाम जिला मजिस्ट्रेट बिजनोर और अन्य"** और **अखिलेश कुमार कटियार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य उक्त दावे को प्रमाणित करने के लिए** मामले में इसी न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा किया गया है।

8. हालांकि, राज्य के उत्तरदाताओं के लिए विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने जिला मजिस्ट्रेट, संत कबीर नगर के व्यक्तिगत हलफनामे में दिए गए कथनों पर भरोसा करते हुए कहा है कि 'अविश्वास प्रस्ताव' को आगे बढ़ाने की प्रक्रिया में कोई निश्शक्तता नहीं है। बैठक वैध रूप से 30.9.2022 को आयोजित की गई थी और यह तथ्य कि बैठक में 99 में से 95 सदस्यों ने भाग लिया था, यह साबित करता है कि सभी सदस्यों को पर्याप्त समय देने वाली जानकारी दी गई थी। 8.9.2022 को निर्धारित बैठक के संबंध में, यह प्रस्तुत किया गया है कि जिला मजिस्ट्रेट, संत कबीर नगर को क्षेत्र पंचायत के 76 सदस्यों द्वारा हस्ताक्षरित याचिकाकर्ता के खिलाफ 'अविश्वास प्रस्ताव' लाने के इरादे की सूचना प्राप्त हुई है। 22.8.2022 को नोटरी शपथ पत्र के साथ उक्त लिखित सूचना पर हस्ताक्षर/अंगूठे के निशान की जांच/सत्यापन के लिए तीन अधिकारियों की एक समिति गठित की थी। क्षेत्र पंचायत हैसर बाजार के सभी 76 सदस्यों, जिन्होंने दिनांक 22.8.2022 के आशय की लिखित सूचना पर हस्ताक्षर किए थे, को नोटिस पर अपने हस्ताक्षरों के सत्यापन के लिए अपने विश्वसनीय और सत्यापित पहचान पत्र प्रस्तुत करने के साथ-साथ दायर किए गए शपथ पत्रों को प्रस्तुत करने के लिए कहा गया था।

उनके द्वारा दिनांक 23.8.2022 को लगभग अपराह्न 3:00 बजे। 76 सदस्यों के हस्ताक्षर/अंगूठे के निशान की प्रथम दृष्टया संतुष्टि पर, तीन सदस्य समिति ने दिनांक 22.8.2022 के आशय की लिखित सूचना और नोटरी शपथ पत्र पर हस्ताक्षरों के मिलान की संतुष्टि दर्ज की। इसके बाद जिलाधिकारी ने उपजिलाधिकारी, धनघटा, संत कबीर नगर को पत्र दिनांक 23 अगस्त 2022 जारी कर दिनांक 8.9.2020 को पूर्वाह्न 11:30 बजे निर्धारित स्थान पर बैठक की अध्यक्षता करने का निर्देश दिया।

इसके साथ ही 99 सदस्यों को 23 अगस्त 2022 को नोटिस जारी कर 'अविश्वास' प्रस्ताव के लिए निर्धारित तिथि 8.9.2022 को प्रातः 11:00 बजे तथा बैठक के निर्धारित स्थान की सूचना दी गई। प्रखंड विकास पदाधिकारी को सभी 99 सदस्यों को नोटिस देकर रिपोर्ट देने का निर्देश दिया गया. पत्र दिनांक 24.8.2022 के द्वारा प्रखण्ड विकास प्राधिकार द्वारा प्रतिवेदन प्रस्तुत किया गया कि 99 सदस्यों में से 78 को नोटिस प्राप्त हो चुका है तथा शेष 21 में से 15 सदस्यों के घर के विशिष्ट स्थानों पर नोटिस चिपका दिया गया है। शेष सदस्यों ने एक या दो दिनों के भीतर नोटिस प्राप्त करने का आश्वासन दिया था। विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि 8.9.2022 को निर्धारित बैठक का स्थगन पीठासीन अधिकारी द्वारा सामना की गई अपरिहार्य परिस्थितियों के कारण और दी गई सूचना पर किया गया था। पीठासीन अधिकारी, जिला मजिस्ट्रेट ने कार्यालय आदेश दिनांक 7.9.2022 जारी किया था जिसमें निर्धारित तिथि के स्थगन का कारण बताया गया था। बैठक के लिए निर्धारित तिथि एवं समय 30.9.2022 पूर्वाह्न 11:30 बजे की सूचना पीठासीन अधिकारी द्वारा जिला मजिस्ट्रेट को भेजी गई जिसके अनुपालन में सदस्यों द्वारा नोटिस भेजे एवं प्राप्त किये गये। इसलिए, 30.9.2022 को किए गए 'अविश्वास प्रस्ताव' से कोई भी निशक्तता नहीं जुड़ी जा सकती।

9. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं की उपरोक्त दलीलों से निपटते हुए, हमें पहले प्रतिवादी संख्या 6 के लिए श्री अशोक खरे विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता की दलीलों से निपटना आवश्यक है। रिट याचिका की पोषणीयता के बारे में, इस दलील पर कि रिट याचिका अविश्वास प्रस्ताव को चुनौती देने पर विचार नहीं किया जा सकता क्योंकि चुनाव के बाद रिक्ति के खिलाफ, याचिकाकर्ता के सामने एकमात्र उपाय चुनाव याचिका को चुनौती देना है।

10. इस प्रस्तुतीकरण से निपटते हुए, यह नोट करना पर्याप्त है कि वर्तमान रिट याचिका में उठाया गया मुद्दा याचिकाकर्ता के खिलाफ 30.9.2022 को आयोजित बैठक में किए गए 'अविश्वास प्रस्ताव' की वैधता के बारे में है। जहां

तक इसकी वैधता का संबंध है, अधिनियम, 1961 की धारा 15 के प्रावधानों का उल्लंघन होने के कारण, परिणामी रिक्ति का मुद्दा 'अविश्वास प्रस्ताव' पर निर्भर है, जो चुनाव याचिका का विषय नहीं हो सकता है। यह ध्यान देने योग्य है कि यदि बैठक ही अमान्य थी और परिणामी 'अविश्वास प्रस्ताव' अवैध है, तो रिक्ति को विद्यमान नहीं माना जा सकता है। यदि परिणामी रिक्ति के विरुद्ध परिणामी चुनाव अवैध पाया जाता है, तो वह स्वयं ही गिर जाएगा। वर्तमान मामले में रिक्ति निस्संदेह एक बैठक के बल पर पारित प्रस्ताव के कारण हुई है, जिसकी वैधता यहां चुनौती का विषय है। ऐसी रिक्ति का भरना रिक्ति की उपलब्धता पर ही निर्भर है, जो 'अविश्वास प्रस्ताव' से उत्पन्न होती है। हमारी राय में, 'अविश्वास प्रस्ताव' की वैधता या 30.9.2022 को आयोजित बैठक के बाद होने वाली रिक्ति का प्रश्न चुनाव याचिका का विषय नहीं हो सकता है। इसके अलावा जिस तारीख को वर्तमान रिट याचिका दायर की गई है, उस दिन राज्य चुनाव आयोग द्वारा केवल अधिसूचना दिनांक 14.10.2022 जारी की गई थी और मतदान के लिए निर्धारित तिथि 21 अक्टूबर, 2022 थी। जो न्यायालय के समक्ष याचिका की वैधता के बारे 'अविश्वास प्रस्ताव' और राज्य चुनाव आयोग द्वारा परिणामी रिक्ति की अधिसूचना के बारे में थी। यदि याचिकाकर्ता द्वारा 30.8.2022 को बुलाई गई बैठक की वैधता को उठाई गई चुनौती अधिनियम की धारा 15(3)(ii) के अनिवार्य प्रावधानों का उल्लंघन है, तो उक्त तिथि को पारित प्रस्ताव रद्द होना चाहिए। परिणाम यह है कि याचिकाकर्ता को हटाया नहीं जाएगा और इस प्रकार कोई रिक्ति नहीं होगी। आगामी अधिसूचना दिनांक 14.10.2022 खुद ही निरर्थक हो जाएगी। हमारे द्वारा लिया गया दृष्टिकोण **कमला देवी (उपरोक्त)** मामले में इस न्यायालय की खंडपीठ का निर्णय से समर्थित है।

इस प्रकार, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत क्षेत्राधिकार का आह्वान करने के लिए रिट याचिका की विचारणीयता पर आपत्ति खारिज की जा सकती है।

11. मौजूदा मामले के गुण-दोष के आधार पर, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की दलीलों से निपटने के लिए, हमें अधिनियम की योजना पर ध्यान देना आवश्यक है। अधिनियम, 1961 की धारा 15 के तहत 'अविश्वास प्रस्ताव' लागू करने की प्रक्रिया प्रदान की गई है।

12. अधिनियम के प्रावधानों पर विचार करने से पहले, हम ध्यान दें कि इस प्रश्न का निर्णय करने के लिए कि क्या वैधानिक प्रावधान अनिवार्य हैं या प्रकृति में निर्देशिका हैं, कोई सार्वभौमिक नियम नहीं रखा जा सकता है। "करेगा" या "हो सकता है" शब्द का प्रयोग भी इस प्रश्न के निर्धारण में निर्णायक कारक नहीं

है। प्रश्न पर विचार करते समय, क़ानून में निहित प्रावधान का उद्देश्य और उद्देश्य, वह सेटिंग और संदर्भ जिसमें प्रावधान होते हैं और वह उद्देश्य जो प्रावधानों द्वारा प्राप्त किया जाना है और प्रावधान बनाने में विधायी इरादे हैं। विचार करना आवश्यक है. [संदर्भ राज्य उ.प्र. बनाम मनबोधन लाल श्रीवास्तव]

रज़ा बुलंद शुगर कंपनी लिमिटेड रामपुर बनाम म्यूनिसिपल बोर्ड, रामपुर मामले में, इस प्रश्न पर विस्तार से विचार करते समय, कुछ सिद्धांत निर्धारित किए गए थे जिन्हें निम्नानुसार नोट किया जाना प्रासंगिक है: -

*"**पैरा 7** यह प्रश्न कि क्या किसी क़ानून का कोई विशेष प्रावधान जो पहली नज़र में अनिवार्य प्रतीत होता है, भले ही वह वर्तमान मामले में "करेगा" शब्द का उपयोग करता है - केवल निर्देशिका है, किसी भी सामान्य नियम को निर्धारित करके हल नहीं किया जा सकता है और प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करता है और उस उद्देश्य के लिए प्रावधान बनाने में क़ानून का उद्देश्य निर्धारण कारक है जिसके लिए प्रावधान किया गया है और उसकी प्रकृति, प्रावधान बनाने में विधायिका का इरादा, गंभीर सामान्य है चाहे प्रावधान को एक तरह से पढ़ा जाए या किसी अन्य तरीके से, किसी विशेष प्रावधान का दूसरे से संबंध होने से व्यक्तियों को असुविधा या अन्याय होता है; कि समान विषय से संबंधित प्रावधान और प्रावधान की भाषा सहित किसी विशेष मामले के तथ्यों पर उत्पन्न होने वाले अन्य विचारों को निष्कर्ष पर पहुंचने में ध्यान में रखा जाना चाहिए कि क्या कोई विशेष प्रावधान अनिवार्य है या निर्देशिका है।"*

13. इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के समक्ष **ज्ञान सिंह बनाम जिला मजिस्ट्रेट, बिजनौर और अन्य** में, यह प्रश्न संदर्भित किया गया था कि क्या यू.पी. की धारा 87 ए की उप-धारा (3) नगर पालिका अधिनियम, 1916 का दूसरा भाग जो जिला मजिस्ट्रेट द्वारा 'अविश्वास प्रस्ताव' पर विचार हेतु बैठक की सूचना भेजने की प्रक्रिया अनिवार्य या निर्देशिका प्रदान करता है।

रज़ा बुलंद शुगर कंपनी लिमिटेड रामपुर (उपरोक्त) में निर्धारित सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, उक्त क़ानून की योजना, व्ययवस्था और संदर्भ जिसमें प्रावधान होते हैं और जिस उद्देश्य को प्रावधानों द्वारा प्राप्त करने की मांग की जाती है, उसे ध्यान में रखते हुए, उसमें यह माना गया कि हालांकि धारा 87-ए की उप-धारा (3) का पहला भाग जिसके तहत जिला मजिस्ट्रेट को राष्ट्रपति के खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव पर विचार करने के लिए बोर्ड की बैठक बुलाने की आवश्यकता होती है, अनिवार्य है। जिला मजिस्ट्रेट को उसके द्वारा निर्धारित तिथि और समय पर बोर्ड के कार्यालय में प्रस्ताव पर विचार करने के लिए बोर्ड की बैठक बुलाने का सार्वजनिक कर्तव्य

निभाने की आवश्यकता होती है, उसके पास इस मामले में कोई विकल्प नहीं है। उसे प्रस्ताव प्रस्तुत करने की तारीख से 30 और 35 दिनों के भीतर एक तारीख पर बैठक बुलानी होगी। जिला मजिस्ट्रेट को सदस्यों को बैठक की सूचना भेजने का सार्वजनिक कर्तव्य निभाने का भी निर्देश दिया गया है, यह फिर से कानून की एक अनिवार्य आवश्यकता है जिसका सख्ती से पालन किया जाना चाहिए। लेकिन धारा 87-ए की उप-धारा (3) का दूसरा भाग जो सदस्यों को नोटिस भेजने में अपनाए जाने वाले आवश्यक तरीके को बताता है और यह बताता है कि बैठक की सूचना बोर्ड के प्रत्येक सदस्य को पंजीकृत डाक द्वारा उनके निवास स्थान पर भेजी जाएगी यह निर्देशित है। यह देखा गया कि इस प्रावधान का सार सदस्यों को जानकारी देना है ताकि वे इस उद्देश्य के लिए बुलाई गई बैठक में अविश्वास प्रस्ताव' पर विचार पर भाग लेने के अवसर का लाभ उठा सकें। यह माना गया कि धारा 87-ए की उप-धारा (3) के पहले भाग में जिला मजिस्ट्रेट को बैठक बुलाने और सदस्यों को नोटिस भेजना अनिवार्य बताया गया है, उस प्रावधान की कोई भी अवहेलना बैठक के मूल उद्देश्य को विफल कर देगी। हालाँकि, नोटिस की सेवा और उसके प्रकाशन का तरीका प्रकृति में निर्देशिका है, उसका पर्याप्त अनुपालन कानून की आवश्यकता को पूरा करेगा। इसमें यह माना गया है कि पंजीकृत डाक से नोटिस की सेवा और अन्यथा नोटिस के प्रकाशन का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि सदस्यों को बैठक की पर्याप्त सूचना मिलनी चाहिए, ताकि वे 'अविश्वास प्रस्ताव' पर बहस में भाग लेने में सक्षम हो सकें। बैठक। यदि सदस्यों को नोटिस पंजीकृत डाक से नहीं बल्कि अन्य तरीकों से भेजा जाता है और सदस्यों को सात स्पष्ट दिन दिए जाते हैं, तो वह उद्देश्य विफल नहीं होता है। विधायिका की यह मंशा कभी नहीं थी कि जब तक सदस्यों को पंजीकृत डाक से नोटिस नहीं भेजा जायेगा, तब तक सभा की कार्यवाही नहीं चलेगी।

14. **शरीफ-उद-दीन बनाम अब्दुल गनी लोन"** में, यह माना गया कि एक अनिवार्य नियम और एक निर्देशिका नियम के बीच अंतर यह है कि जबकि पूर्व का सख्ती से पालन किया जाना चाहिए, बाद के मामले में पर्याप्त अनुपालन पर्याप्त हो सकता है उस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए जिसके संबंध में नियम अधिनियमित किया गया है। निर्माण के नियमों के संबंध में व्यापक प्रस्ताव जिनका यह निर्धारित करने में पालन किया जाना चाहिए कि कानून का प्रावधान निर्देशिका है या अनिवार्य है, को निम्नानुसार संक्षेपित किया गया है: -

*"**पैरा 9**....XXXxxx... तथ्य यह है कि क़ानून कर्तव्य निर्धारित करते समय 'करेगा' शब्द का उपयोग करता है, इस सवाल पर निर्णायक नहीं है कि क्या यह एक अनिवार्य या निर्देशिका प्रावधान है। सही चरित्र का पता लगाने के लिए कानून के संबंध में, न्यायालय को उस उद्देश्य*

को सुनिश्चित करना होगा जिसके लिए कानून का प्रावधान विचाराधीन है और उसका डिज़ाइन और वह संदर्भ जिसमें इसे अधिनियमित किया गया है, यदि किसी कानून का उद्देश्य इसके अनुपालन न करने से विफल होना है। इसे अनिवार्य माना जाना चाहिए, लेकिन जब कानून का कोई प्रावधान किसी सार्वजनिक कर्तव्य के प्रदर्शन से संबंधित होता है और उस प्रावधान की अवहेलना में किए गए किसी भी कार्य को अमान्य करने से उन लोगों पर गंभीर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है जिनके लाभ के लिए इसे अधिनियमित किया गया है और साथ ही जिनका कर्तव्य के निष्पादन पर कोई नियंत्रण नहीं है, ऐसे प्रावधान को एक निर्देशिका माना जाना चाहिए।

हालाँकि, कानून का एक प्रावधान यह निर्धारित करता है कि अधिकार प्राप्त करने के लिए किसी व्यक्ति द्वारा एक निश्चित कार्य एक विशेष तरीके से किया जाना है और यह एक अन्य प्रावधान के साथ जुड़ा हुआ है जो दूसरे को छूट प्रदान करता है जब ऐसा कार्य नहीं किया जाता है। तरीके से, पूर्व को अनिवार्य माना जाना चाहिए। एक प्रक्रियात्मक नियम को आमतौर पर अनिवार्य नहीं माना जाना चाहिए यदि इसके अनुसरण में किए गए कार्य में दोष को बाद के चरण में उचित सुधार की अनुमति देकर ठीक किया जा सकता है, जब तक कि बाद में त्रुटि को सुधारने के लिए ऐसी अनुमति न दी जाए, कोई अन्य नियम उल्लंघन किया जाएगा. जब भी कोई क़ानून निर्धारित करता है कि एक विशेष कार्य एक विशेष तरीके से किया जाना है और यह भी निर्धारित करता है कि उक्त आवश्यकता का अनुपालन करने में विफलता एक विशिष्ट परिणाम की ओर ले जाती है, तो यह मानना मुश्किल होगा कि आवश्यकता अनिवार्य नहीं है और निर्दिष्ट परिणाम पालन नहीं करना चाहिए।

15. **विकास त्रिवेदी बनाम यूपी राज्य** में इस न्यायालय की एक पूर्ण पीठ ने अधिनियम, 1961 की धारा 15(2) और (3) के तहत कलेक्टर द्वारा भेजे गए नोटिस की वैधता के बारे में प्रश्नों पर निम्नानुसार विचार किया है: - (i) क्या नोटिस को अमान्य ठहराया जा सकता है क्योंकि इसकी प्रति जिन व्यक्तियों ने अविश्वास प्रस्ताव लाने के अपने इरादे की लिखित सूचना पर हस्ताक्षर किए थे, उनके नाम के साथ नोटिस नहीं भेजा गया था (ii) क्या बैठक बुलाने के नोटिस को केवल इस आधार पर अमान्य किया जा सकता है कि कुछ पृष्ठ उक्त नोटिस के साथ भेजी गई प्रस्तावित अविश्वास प्रस्ताव की प्रति में कुछ सदस्यों के हस्ताक्षर वाले प्रस्तावित प्रस्ताव को ही शामिल नहीं किया गया था।

ज्ञान सिंह (उपरोक्त) मामले में पूर्ण पीठ के पहले के फैसले के संबंध में, 74वें संशोधन अधिनियम, 1992 द्वारा भारत के संविधान के भाग IX-ए को शामिल करने के बाद उक्त निर्णय की प्रासंगिकता के संबंध में एक मुद्दा उठाया गया था। नगर पालिकाओं के संबंध में अनुच्छेद 243P से 243ZG में संवैधानिक योजना, **विकास त्रिवेदी (उपरोक्त)** में पूर्ण पीठ द्वारा यह माना

गया कि धारा 87-ए की व्याख्या **यू.पी. ज्ञान सिंह (उपरोक्त)** में पूर्ण पीठ द्वारा नगर पालिका अधिनियम, 1916 बहुत प्रासंगिक है और संविधान के 74वें संशोधन के बाद किसी भी तरह से इसके पूर्ववर्ती मूल्य को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है।

16. आगे प्रासंगिक वैधानिक प्रावधानों, वैधानिक व्याख्या के सिद्धांतों के माध्यम से जाने के बाद, यह विचार किया गया कि क्या अनुलग्नकों के साथ निर्धारित प्रोफार्मा के अनुसार नोटिस भेजने की आवश्यकता अनिवार्य है और इसका अनुपालन न करने से पूरी कार्यवाही प्रभावित होगी।

आगे यह माना गया कि *"जैसा कि ऊपर बताया गया है, 1961 अधिनियम की धारा 15 एक वैधानिक प्रावधान है जो प्रमुख के खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव लाने के लिए निर्वाचित सदस्यों के अधिकार को मान्यता देती है। कलेक्टर को नोटिस जारी करने का सार्वजनिक कर्तव्य सौंपा गया है। जैसा कि ऊपर बताया गया है दत्तराय मोरेश्वर बनाम बॉम्बे राज्य और अन्य मामले (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्धारित किया था कि सार्वजनिक कर्तव्य बनाने वाले क़ानून के प्रावधान निर्देशिका हैं और निजी अधिकार प्रदान करने वाले अनिवार्य हैं यदि कलेक्टर द्वारा नोटिस भेजते समय इस तर्क को स्वीकार किया जाता है हालाँकि बैठक की तारीख, समय और स्थान के संबंध में प्रासंगिक जानकारी दी गई है और नोटिस में यह भी उल्लेख किया गया है कि अमुक पदाधिकारियों के खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तावित किया गया है, लेकिन अविश्वास प्रस्ताव की प्रति संलग्न नहीं है, क्या इससे निराशा होगी? अधिनियम का उद्देश्य या वैधानिक प्रावधान के उद्देश्य और उद्देश्य को आगे बढ़ाना है, यह प्रश्न स्पष्ट रूप से उत्तर दिया जाना चाहिए, यदि सदस्यों को नोटिस और जानकारी दी जाती है जो बैठक के कलेक्टर द्वारा नोटिस देने का प्राथमिक उद्देश्य और उद्देश्य है बैठक बुलाते ही अविश्वास प्रस्ताव पढ़ा जाता है, हमारा मानना है कि यह मानना कि अविश्वास प्रस्ताव की प्रति न भेजने से पूरी कार्यवाही निष्प्रभावी हो जाएगी, 1961 अधिनियम धारा 15 के मूल उद्देश्यों और उद्देश्य को विफल करना होगा।*

रज़ा बुलंद शुगर कंपनी लिमिटेड रामपुर (उपरोक्त) में शीर्ष अदालत के फैसले के अनुपात को 1961 के अधिनियम कि धारा 15 की व्याख्या और 1961 के अधिनियम की धारा 15 (3) के प्रावधानों पर विचार करने के लिए लागू माना गया है। यह माना गया कि अधिनियम, 1961 के तहत बनाए गए नियमों के अनुसार निर्धारित प्रोफार्मा में नोटिस भेजने के तरीके को अनिवार्य नहीं कहा जा सकता है, जिसका उल्लंघन पूरी कार्यवाही को प्रभावित करेगा। यह माना गया कि 'अविश्वास प्रस्ताव' की कार्यवाही तभी की जाएगी जब नियमों के तहत नोटिस भेजने के निर्धारित प्रारूप फॉर्म-2 के साथ पठित नियम 2 के प्रावधानों का पर्याप्त अनुपालन किया

जाएगा। उक्त प्रावधान का पर्याप्त अनुपालन अविश्वास की कार्यवाही को प्रभावित नहीं करेगा।

17. इस प्रकार, यह माना गया कि: (1) कलेक्टर द्वारा धारा 15(3)(ii) के तहत निर्धारित प्रपत्र में नोटिस देने की आवश्यकता है जो की नियम 2 और फॉर्म-2 अनिवार्य नहीं है और प्रावधानों के पर्याप्त अनुपालन पर कार्यवाही को प्रभावित नहीं किया जाएगा। हालाँकि, यह प्रश्न कि क्या उक्त प्रावधान का पर्याप्त अनुपालन हुआ है, प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। इस प्रकार, यह निष्कर्ष निकाला गया कि जब प्रस्तावित अविश्वास प्रस्ताव पर आवश्यक सदस्यों द्वारा हस्ताक्षर किए जाते हैं, तो बैठक बुलाने के नोटिस को केवल इस आधार पर अमान्य नहीं किया जा सकता है कि प्रस्तावित प्रस्ताव के कुछ पृष्ठ जिनमें केवल कुछ सदस्यों के हस्ताक्षर हैं, नोटिस के साथ साथ भेजे गए थे।

18. **किरण पाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य"** में, सर्वोच्च न्यायालय एक निर्वाचित प्रमुख क्षेत्र पंचायत के कहने पर अविश्वास प्रस्ताव के दूसरे नोटिस को चुनौती देने पर विचार कर रहा था। उस मामले के तथ्यों में, उत्तर प्रदेश क्षेत्र पंचायत और जिला पंचायत अधिनियम, 1961 की धारा 15(2) के तहत एक प्रमुख के खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव लाने के इरादे से एक आवेदन संबंधित जिले के जिला मजिस्ट्रेट/कलेक्टर द्वारा प्राप्त किया गया था आवेदकों में से एक जिला मजिस्ट्रेट/कलेक्टर ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय में याचिका दायर कर कलेक्टर को अधिनियम की धारा 15(2) के तहत नोटिस स्वीकार करने और अविश्वास प्रस्ताव की कार्यवाही को सुचारू करने के लिए उचित कदम उठाने का निर्देश देने की मांग की जिससे इसका एक तर्कपूर्ण समाधान हो सके। उक्त रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान, अविश्वास प्रस्ताव लाने के इरादे की एक और लिखित सूचना संबंधित जिला मजिस्ट्रेट/कलेक्टर को दी गई, जिस पर विचार के लिए क्षेत्र पंचायत की बैठक बुलाने का नोटिस जारी किया गया कि क्षेत्र पंचायत कार्यालय में निर्धारित तिथि एवं समय पर अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत करें। वोट डालने के बाद अविश्वास प्रस्ताव लाया गया। निर्वाचित प्रमुख क्षेत्र पंचायत, जिनके खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव लाया गया था, ने पहले नोटिस के लंबित रहने के दौरान वैधानिक अस्वीकार्यता के आधार पर दूसरे नोटिस पर प्रहार किया। इसका विरोध किया गया और इसमें कहा गया है कि पहले नोटिस के लंबित रहने के दौरान दूसरा नोटिस जारी नहीं किया जा सकता था और धारा 15 की उप-धारा (2) के प्रावधानों के अनुसार बैठक नहीं की जा सकती थी।

19. धारा 15 की उप-धारा (2) की योजना पर विचार करने के बाद, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह माना गया कि अविश्वास प्रस्ताव लाने के

इरादे की लिखित सूचना प्राप्त होने पर, ऐसे प्रारूप में, जो निर्धारित किया जा सकता है, हस्ताक्षर किए जाएं। क्षेत्र पंचायत के कुल निर्वाचित सदस्यों की कम से कम आधी संख्या, प्रस्तावित प्रस्ताव की एक प्रति के साथ, नोटिस पर हस्ताक्षर करने वाले सदस्यों में से किसी एक द्वारा, क्षेत्राधिकार रखने वाले कलेक्टर को व्यक्तिगत रूप से दी जाएगी। क्षेत्र पंचायत को उपधारा (3) के अंतर्गत जिलाधिकारी द्वारा बैठक बुलाने की आवश्यकता पूरी हो गई है। इस स्तर पर, कलेक्टर का अधिकार क्षेत्र केवल यह पता लगाने के लिए नोटिस को स्कैन करना है कि क्या यह वैध नोटिस की आवश्यक आवश्यकताओं को पूरा करता है। उक्त विवेक का प्रयोग, प्रकृति में सारांश है और नोटिस की वैधता के संबंध में विस्तृत पूछताछ नहीं की जा सकती है। धारा 15 की उप-धारा (3) में कहा गया है कि नोटिस की डिलीवरी की तारीख से 30 दिनों के भीतर एक बैठक बुलाई जानी चाहिए और इसके अलावा सभी निर्वाचित सदस्यों को कम से कम 15 दिनों का नोटिस दिया जाना चाहिए। क्षेत्र पंचायत. इसलिए, कलेक्टर के पास धोखाधड़ी, अनुचित प्रभाव या जबरदस्ती से संबंधित तथ्यों के गंभीर रूप से विवादित प्रश्नों पर निष्कर्ष दर्ज करने के लिए किसी क्षेत्र में प्रवेश करने की कोई शक्ति नहीं है। उसका एकमात्र कर्तव्य यह निर्धारित करना है कि धारा 15 की उप-धारा (2) के तहत विचार के अनुसार कोई वैध नोटिस दिया गया है या नहीं। नियमित जांच करने के लिए उसकी गहराई में जाने से प्रावधान विफल हो जाएगा। उन्हें अपनी सीमा में रहकर काम करना चाहिए और बाकी सब बैठक पर तय करने के लिए छोड़ देना चाहिए। यह दलील कि एक बार धारा 15(2) के तहत एक नोटिस दिया गया था, एक वर्ष की समाप्ति के बाद अविश्वास का दूसरा नोटिस प्राप्त नहीं किया जाना चाहिए, बिना किसी तथ्य के खारिज कर दिया गया, हालांकि, धारा 15(12) के तहत निषेध यह तभी लागू होगा जब कोई बैठक हो और धारा 15 के प्रावधानों के अनुसार प्रस्ताव पर अमल नहीं किया गया हो या बैठक कोरम के अभाव में आयोजित `नहीं की जा सकी हो।

20. उपरोक्त निर्णयों को ध्यान में रखते हुए सिद्धांतों को निर्धारित करना वैधानिक प्रावधानों के अनिवार्य होने या होने की प्रकृति का निर्धारण निर्देशिका, भाग IX में अनुच्छेद 243 से 243-0 की योजना संविधान जिसके अनुसार प्रत्येक राज्य में पंचायतों का गठन आवश्यक है भाग IX के प्रावधानों के अनुसार ग्राम एवं जिला स्तर पर उसमें यह देखा गया कि अनुच्छेद 243 (डी) 'पंचायत' को परिभाषित करता है इसका मतलब स्वशासन की एक संस्था (अनुच्छेद 243बी के तहत गठित) (चाहे जिस भी नाम से जाना जाए) ग्रामीण क्षेत्रों के लिए है। उक्त लेख स्थानीय पिरामिडीय संरचना में जमीनी स्तर पर स्वशासन की भावना प्रज्वलित की। स्वशासन का मूल उद्देश्य जैसा कि शक्ति प्रदान करने में कल्पना की गई थी लोकतांत्रिक रूप से संगठित इकाइयों में शासन की भावना पैदा करना है जमीनी स्तर पर लोगों में संतुष्टि की भवन लानी है। .

भानुमती और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य अपने प्रधान सचिव और अन्य के माध्यम से 73वें संवैधानिक संशोधन पर विचार करते हुए अनुच्छेद '26' में शीर्ष न्यायालय की टिप्पणी को निम्नानुसार नोट किया गया है: -

"26. जो अनुच्छेद 40 के तहत निदेशक सिद्धांतों में से एक के रूप में अस्पष्ट स्थिति में था, उसे 73वें संवैधानिक संशोधन के माध्यम से पंचायत के कामकाज के लिए विस्तृत प्रावधान के साथ संवैधानिक व्यवस्था के एक अलग हिस्से में बदल दिया गया। इसके पीछे मुख्य उद्देश्य लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण सुनिश्चित करना है। सहभागी लोकतंत्र का गांधीवादी सिद्धांत ताकि पंचायत शासन की एक संस्था के रूप में लोगों का व्यवहार्य और उत्तरदायी निकाय बन सके और इस प्रकार यह आम आदमी के सम्मान को प्रेरित करके गरिमा के साथ आवश्यक स्थिति प्राप्त कर सके और कार्य कर सके, हमारे निर्णय में, यह संविधान का 73 वां संशोधन लोकतांत्रिक गणतंत्रवाद की व्यावहारिक दृष्टि को मजबूत करने के लिए पेश किया गया था जो संवैधानिक ढांचे में निहित है।"

21. उ0प्र0 के अन्तर्गत बनायी गयी वैधानिक योजना के उद्देश्य पर विचार करते हुए क्षेत्र पंचायत और जिला पंचायत अधिनियम, 1961, **किरण पाल सिंह (उपरोक्त)** में सर्वोच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 243-2430 की योजना पर विचार किया। यह नोट किया गया कि इस प्रकार, कानून बनाने के लिए राज्यों की शक्ति का स्रोत संविधान में शामिल किया गया है। राज्य विधायिकाओं द्वारा जो कानून बनाये गये अन्य बातों के साथ-साथ, पंचायतों का कार्यकाल तय किया गया है और अयोग्यता के अधीन निर्वाचित सदस्यों की निरंतरता के लिए सुरक्षा भी प्रदान की गई है और अविश्वास के वोट की विधि को आगे बढ़ाया गया है। धारा 15 की उप-धारा (13) के प्रावधान जो यह प्रावधान करते हैं कि धारा 15 के तहत किसी प्रस्ताव की कोई सूचना उसमें निर्धारित समय के भीतर प्राप्त नहीं होगी, एक प्रमुख द्वारा कार्यालय ग्रहण करने से ग्रामीण शासन स्थिरता के सिद्धांत के अनुरूप है। निर्वाचित व्यक्ति को कदाचार के मामले में पद से हटाने का प्रावधान है। इस प्रकार, सरकारी कार्यों के लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण के सिद्धांतों को आगे बढ़ाने के लिए जमीनी स्तर पर शासन में स्थिरता लाने के लिए वैधानिक योजना तैयार की गई है। इसमें यह भी प्रावधान है कि ग्रामीण स्तर पर लोकतंत्र को लोकतंत्र के मूल्यों को ध्यान में रखना चाहिए और इसलिए, एक प्रमुख को तब हटाया जा सकता है जब उसके खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव पारित हो जाता है और एक बार अविश्वास प्रस्ताव फेल हो जाने पर इसे एक साल तक दोबारा नहीं लाया जा सकता।

22. क़ानून के निर्माण के उपरोक्त सिद्धांतों को अनिवार्य या निर्देशिका के रूप में और **किरण**

पाल सिंह (उपरोक्त) में चर्चा के अनुसार राज्य विधानमंडल द्वारा परिकल्पित वैधानिक योजना को ध्यान में रखते हुए, हमें अविश्वास प्रस्ताव को पूरा करने की प्रक्रिया पर ध्यान देना आवश्यक है जो अधिनियम, 1961 की धारा 15 में इस प्रकार है:-

"15. प्रमुख पर अविश्वास प्रस्ताव या [***] (1) क्षेत्र पंचायत के प्रमुख या किसी भी [***] में विश्वास की कमी व्यक्त करने वाला प्रस्ताव बनाया जा सकता है और उसके अनुसार निम्नलिखित उप-अनुभागों में निर्धारित प्रक्रिया के साथ आगे बढ़ाया जा सकता है।

(2) प्रस्तावित प्रस्ताव की एक प्रति के साथ क्षेत्र पंचायत के कुल निर्वाचित सदस्यों की कम से कम आधी संख्या द्वारा निर्धारित प्रारूप में प्रस्ताव करने के इरादे की एक लिखित सूचना दी जाएगी। नोटिस पर हस्ताक्षर करने वाले सदस्यों में से किसी एक द्वारा व्यक्तिगत रूप से क्षेत्र पंचायत पर अधिकार क्षेत्र रखने वाले कलेक्टर को दिया जाएगा।

(3) कलेक्टर तदुपरान्त-

(1) क्षेत्र पंचायत के कार्यालय में प्रस्ताव पर विचार करने के लिए उसके द्वारा नियुक्त तिथि पर क्षेत्र पंचायत की बैठक बुलाएगा, जो उप-धारा के तहत नोटिस की तारीख से तीस दिन के बाद की नहीं होगी (2) उसे सौंप दिया गया; और

(ii) क्षेत्र पंचायत के निर्वाचित सदस्यों को ऐसी बैठक की कम से कम पंद्रह दिन की सूचना ऐसी रीति से देनी होगी, जो निर्धारित की जाए।

स्पष्टीकरण- इस उप-धारा में निर्दिष्ट तीस दिनों की अवधि की गणना करने में, वह अवधि जिसके दौरान इस धारा के तहत किए गए प्रस्ताव के खिलाफ दायर याचिका पर सक्षम न्यायालय द्वारा जारी किया गया स्थगन आदेश, यदि कोई हो, लागू है और साथ ही अतिरिक्त समय जो भी लगे तो सदस्यों को बैठक की नई सूचनाएं जारी करने में आवश्यकता पड़ने पर इसे बाहर रखा जाएगा।

(4) उस उप-विभाग का उप-विभागीय अधिकारी जिसमें क्षेत्र पंचायत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करती है, ऐसी बैठक की अध्यक्षता करेगा:

बशर्ते कि यदि क्षेत्र पंचायत एक से अधिक उपखण्डों में क्षेत्राधिकार का प्रयोग करती है या उपखण्ड अधिकारी किसी कारण से अध्यक्षता नहीं कर सकता है, तो कलेक्टर द्वारा नामित कोई वैतनिक अतिरिक्त या सहायक कलेक्टर बैठक की अध्यक्षता करेगा:

(4-ए) यदि बैठक के लिए नियत समय से एक घंटे के भीतर ऐसा अधिकारी बैठक की अध्यक्षता करने के लिए उपस्थित नहीं होता है, तो बैठक उप-धारा (4-बी) के तहत उसके द्वारा नियुक्त की जाने वाली तारीख और समय तक स्थगित कर दी जाएगी।).

(4-बी) यदि उपधारा (4) में उल्लिखित अधिकारी बैठक की अध्यक्षता करने में असमर्थ है, तो वह अपने कारण दर्ज करने के बाद, बैठक को ऐसी अन्य तारीख और समय के लिए स्थगित कर सकता है जो वह नियुक्त कर सकता है पर उपधारा (3) के तहत बैठक के लिए नियुक्त तिथि से 25 दिन से ज्यादा नहीं। वह बिना देर किए कलेक्टर को बैठक स्थगित होने की लिखित सूचना देगा। कलेक्टर उप-धारा (3) के तहत निर्धारित तरीके से सदस्यों को अगली बैठक के लिए कम से कम दस दिन का नोटिस देगा।

(5) उप-धारा (4-ए) और (4-बी) में दिए गए प्रावधान के अलावा, इस धारा के तहत किसी प्रस्ताव पर विचार करने के उद्देश्य से बुलाई गई बैठक स्थगित नहीं की जाएगी।

(6) जैसे ही इस धारा के तहत बुलाई गई बैठक शुरू होगी, पीठासीन अधिकारी क्षेत्र पंचायत को वह प्रस्ताव पढ़कर सुनाएगा, जिस पर विचार करने के लिए बैठक बुलाई गई है और इसे बहस के लिए खुला घोषित करेगा।

(7) इस धारा के तहत प्रस्ताव पर कोई भी बहस स्थगित नहीं की जाएगी।

(8) ऐसी बहस बैठक शुरू होने के लिए नियत समय से दो घंटे की समाप्ति पर स्वचालित रूप से समाप्त हो जाएगी, यदि यह पहले समाप्त नहीं हुई है। बहस के समापन पर या दो घंटे की उक्त अवधि की समाप्ति पर, जो भी पहले हो, प्रस्ताव पर मतदान कराया जाएगा जो निर्धारित तरीके से होगा गुप्त मतदान द्वारा।

(9) पीठासीन अधिकारी प्रस्ताव के गुण-दोष पर नहीं बोलेगा और वह उस पर वोट देने का हकदार नहीं होगा।

(10) बैठक के कार्यवृत्त की एक प्रति, प्रस्ताव की प्रति और उस पर मतदान के परिणाम के साथ, पीठासीन अधिकारी द्वारा बैठक की समाप्ति पर तुरंत राज्य सरकार और क्षेत्र के जिला पंचायत को भेजी जाएगी।।

(11) यदि प्रस्ताव क्षेत्र पंचायत के कुल निर्वाचित सदस्यों की संख्या के आधे से अधिक के समर्थन से पारित किया जाता है-

(ए) पीठासीन अधिकारी क्षेत्र पंचायत के कार्यालय के नोटिस बोर्ड पर एक नोटिस चिपकाकर और राजपत्र में इसे अधिसूचित करके तथ्य को प्रकाशित करेगा: और

(बी) प्रमुख या [***], जैसा भी मामला हो, क्षेत्र पंचायत का कार्यालय के नोटिस बोर्ड पर उक्त नोटिस लगाए जाने की अगली तारीख से पद पर बने रहना बंद कर देगा और उसे खाली कर देगा।

(12) यदि प्रस्ताव को पूर्वोक्त रूप से स्वीकार नहीं किया जाता है या यदि कोरम के अभाव में बैठक आयोजित नहीं की जा सकती है, तो उसी प्रमुख या [***] में विश्वास की कमी व्यक्त करने वाले किसी भी बाद के प्रस्ताव की कोई सूचना तब तक प्राप्त नहीं की जाएगी जब तक ऐसी बैठक की तारीख से [एक वर्ष] की समाप्ति नहीं होगी।

(13) इस धारा के तहत किसी प्रस्ताव की कोई सूचना किसी प्रमुख या [***], जैसा भी मामला हो, के पद ग्रहण करने के [एक वर्ष) के भीतर प्राप्त नहीं होगी।"

अधिनियम, 1961 की धारा 15 की उपधारा (1) में प्रावधान है कि क्षेत्र पंचायत के प्रमुख में विश्वास की कमी व्यक्त करने वाला प्रस्ताव धारा 15 के (13) तक उपधारा (2) में निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार बनाया और आगे बढ़ाया जा सकता है। धारा 15 की उप-धारा (2) में उस तरीके की आवश्यकता है जिसमें क्षेत्र पंचायत पर अधिकार क्षेत्र रखने वाले कलेक्टर को प्रस्ताव करने के इरादे की एक लिखित सूचना दी जा सकती है। उप-धारा (3) कलेक्टर को प्रस्ताव पर विचार करने के लिए क्षेत्र पंचायत के कार्यालय में उनके द्वारा नियुक्त तिथि पर क्षेत्र पंचायत की बैठक बुलाने का आदेश देती है, जो नोटिस की डिलीवरी की तारीख से तीस दिन के भीतर नहीं होनी चाहिए। उसे उपधारा (2) के तहत. यह कलेक्टर को ऐसी बैठक के लिए क्षेत्र पंचायत के निर्वाचित सदस्यों को निर्धारित तरीके से (नियमों के तहत) पंद्रह दिनों से कम समय में नोटिस देने का भी आदेश देता है। उपधारा (4) में आगे कहा गया है कि संबंधित उप-विभाग जिसमे क्षेत्र पंचायत कार्य करती है के उपविभागीय अधिकारी जिसके अधिकार क्षेत्र मे क्षेत्र पंचायत आती है वह ऐसी बैठक की अध्यक्षता करेगा। उपधारा (3)(i) के प्रावधानों के अनुसार कलेक्टर द्वारा निर्धारित बैठक के स्थगन की प्रक्रिया अधिनियम, 1961 की उपधारा (4-ए) एवं (4-बी) में प्रदान की गई है। उप-धारा (5) में आगे प्रावधान है कि धारा 15 के तहत किसी प्रस्ताव पर विचार करने के उद्देश्य से बुलाई गई बैठक को उप-धारा (4-ए) और (4-बी) में दिए गए प्रावधानों के अलावा स्थगित नहीं किया जा सकता है। धारा 15 के तहत बुलाई गई बैठक में प्रस्ताव को कैसे आगे बढ़ाया जाएगा इसकी प्रक्रिया उप-धारा (6) से उप-धारा (11) में प्रदान की गई है। यदि प्रस्ताव लागू नहीं होता है या कोरम के अभाव में बैठक नहीं हो पाती है तो परिणाम उप-धारा (12) में प्रदान किया गया है। उपधारा (13) अविश्वास प्रस्ताव की सूचना प्रमुख द्वारा कार्यालय ग्रहण करने के एक वर्ष के भीतर प्राप्त करने पर प्रतिबंध लगाती है।

हम ध्यान दें कि 4.10.2022 को लाए गए संशोधनों द्वारा उप-धारा (13) के प्रावधानों को एक वर्ष की अवधि को दो वर्ष में बदलने के लिए संशोधित किया गया है। लेकिन हमें उक्त संशोधन से कोई सरोकार नहीं है क्योंकि इस मामले में अविश्वास प्रस्ताव उक्त संशोधन से पहले ही लाया जा चुका है।

23. वर्तमान मामले के तथ्यों में हमारे सामने सवाल यह है कि क्या दिनांक 23.8.2022 को 8.9.2022 को तय करने वाला नोटिस उप-धारा (3) के खंड (ii) के अनुसार पंद्रह दिनों का अनिवार्य वैध नोटिस होगा। अधिनियम, 1961 की धारा 15 क्षेत्र पंचायत के निर्वाचित सदस्यों को कलेक्टर द्वारा बैठक बुलाने के लिए निर्धारित तिथि और समय की सूचना देती है। हमें याचिकाकर्ता के अधिवक्ता के तर्कों को ध्यान में रखते हुए इस पर विचार करने की आवश्यकता है कि यदि धारा 15 की उप-धारा (3) (ii) के तहत 15 से कम अवधि में बैठक की तारीख तय करने का नोटिस दिया गया था। क्या उक्त प्रावधान की आवश्यकता के विरूद्ध दिनांक 30.9.2022 को आयोजित स्थगित बैठक में किया गया अविश्वास प्रस्ताव वैधानिक आवश्यकता का उल्लंघन होगा या नहीं।

जिलाधिकारी, संत कबीर नगर के रुख के अनुसार, अविश्वास प्रस्ताव की बैठक कार्यालय क्षेत्र पंचायत, हैसर बाजार के मीटिंग हॉल में पहले 8.9.2022 को सुबह 11:00 बजे निर्धारित की गई थी और 23.8.2022 को उक्त संबंध में एक नोटिस जारी किया गया। नोटिस तामील कराने के लिए तैनात किए गए खंड विकास अधिकारी, संत कबीर नगर की रिपोर्ट दिनांक 24.8.2022 को रिकॉर्ड में लाया गया है, जिसमें यह दर्शाया गया है कि क्षेत्र पंचायत के 99 सदस्यों में से 78 सदस्यों को 23.8..2022 ही को नोटिस दिया गया था। शेष 21 में से पंद्रह सदस्यों ने नोटिस प्राप्त करने से इनकार कर दिया था और इसलिए इसे उनके घर के विशिष्ट स्थानों पर चिपका दिया गया था। शेष 6 सदस्यों, जिन्होंने यह कहकर नोटिस प्राप्त करने से इनकार कर दिया था कि उन्हें एक या दो दिनों के भीतर नोटिस प्राप्त करेंगे। इसके लिए ग्राम पंचायत सचिव और सहायक विकास अधिकारी (पंचायत) को निर्देश जारी किए गए हैं। इसके अलावा डाक के माध्यम से नोटिस 24.8.2022 को क्षेत्र पंचायत के 99 सदस्यों को भेजा गया था।

24. जिला मजिस्ट्रेट के अपने व्यक्तिगत हलफनामे दिनांक 31.10.2022 के उक्त दावे के जवाब में, प्रत्युत्तर हलफनामे में यह दावा किया गया है कि याचिकाकर्ता के लिए पैराग्राफ में दिए गए जवाब के अंदर कथनों का प्रमाण एकत्र करना संभव नहीं था।। तर्क यह है कि अधिनियम में अविश्वास प्रस्ताव के नोटिस की तामील के लिए पंजीकृत डाक से नोटिस भेजने के अलावा कोई अन्य प्रक्रिया नहीं दी गई है। नोटिस की

व्यक्तिगत सेवा के संबंध में कथन एक बाद का विचार है और इसे किसी भी तरीके से साबित नहीं किया जा सका जैसा कि अधिनियम, 1961 के तहत कार्यवाही के लिए जाना जाता है। इस प्रकार, उप-धारा के अनुसार 15 दिनों की अवधि की गणना करने में (धारा 15 के 3)(ii), नोटिस भेजने की तारीख, यानी 24.8.2022 और बैठक के लिए तय की गई तारीख यानी 8.9.2022 को बाहर रखा जाएगा। चूंकि उक्त प्रावधान की अनिवार्य आवश्यकता के मुकाबले उक्त अवधि पंद्रह दिनों से कम हो जाएगी, इसलिए बैठक की तारीख 8.9.2022 तय करने वाला 23.8.2022 का प्रारंभिक नोटिस क़ानून के अनिवार्य प्रावधानों का उल्लंघन होगा।

25. इस प्रस्तुतिकरण के समर्थन में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा ऊपर उल्लेखित निर्णयों पर भरोसा जताया गया है, जिसमें अविश्वास प्रस्ताव का प्रस्ताव अनिवार्य प्रावधान जिसके लिए पंद्रह दिन की स्पष्ट सूचना की आवश्यकता होती है के उल्लंघन करते हुए किया गया था को अमान्य माना गया है।

26. हम ध्यान दे सकते हैं कि इस मामले में स्थिति अलग है, क्योंकि पीठासीन अधिकारी अर्थात संबंधित उप-विभाग के उप-विभागीय अधिकारी द्वारा अपनी माँ की बीमारी के कारण सामना की गई आपातकालीन स्थिति के कारण कलेक्टर द्वारा निर्धारित तिथि 8.9.2022 को अविश्वास प्रस्ताव की बैठक आयोजित नहीं की जा सकी। ।

27. वर्तमान मामले में 30.9.2022 को किए गए अविश्वास प्रस्ताव की वैधता को चुनौती देने के लिए उपर्युक्त निर्णयों पर याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा लगाई गई निर्भरता का कोई फायदा नहीं है। यदि एक क्षण के लिए यह मान भी लिया जाए कि खंड विकास अधिकारी की रिपोर्ट दिनांक 24.8.2022 एवं स्पष्ट अवधि के अनुसार 23.8.2022 को क्षेत्र पंचायत के निर्वाचित सदस्यों को व्यक्तिगत रूप से अविश्वास प्रस्ताव का नोटिस नहीं दिया गया था। धारा 15 की उपधारा (3)(ii) के प्रावधानों के अनुसार अविश्वास प्रस्ताव पर चर्चा के लिए निर्वाचित सदस्यों को पन्द्रह दिन का समय नहीं दिया गया, इससे आगामी कार्यवाही की वैधता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। 30.9.2022 को बैठक हुई, जबकि कलेक्टर द्वारा निर्धारित तिथि 8.9.2022 को अविश्वास प्रस्ताव नहीं लाया गया।

28. बैठक के स्थगन के समय पीठासीन अधिकारी द्वारा उप-धारा (4-बी) की आवश्यकता का पालन न करने के संबंध में, यह ध्यान दिया जा सकता है कि उप-धारा (4-बी) दो भागों में है: पहला भाग पीठासीन अधिकारी को धारा 15 की उप-धारा (3) के तहत दिए गए नोटिस में कलेक्टर द्वारा निर्धारित बैठक के स्थगन के अपने कारणों को दर्ज करने का आदेश देता है।

बैठक को स्थगित करते समय, ऐसी बैठक की अध्यक्षता करने में असमर्थता के कारण उसे एक तारीख और समय तय करना आवश्यक है जो उप-धारा (3) के तहत बैठक के लिए नियुक्त तिथि से 25 दिनों के बाद का नहीं होगा। उन्हें बैठक के स्थगन की देरी के बिना कलेक्टर को लिखित रूप में सूचित करने की भी आवश्यकता है। पीठासीन अधिकारी के तरफ से कलेक्टर द्वारा निर्धारित बैठक स्थगित करने के कारणों को दर्ज करना अनिवार्य है। यह भी अनिवार्य है कि स्थगित बैठक खंड (4-बी) के तहत निर्धारित अवधि के भीतर आयोजित की जाए, जो कलेक्टर द्वारा निर्धारित बैठक की तारीख से 25 दिनों के बाद की नहीं है। बैठक के स्थगन की सूचना पीठासीन अधिकारी द्वारा कलेक्टर को देना भी अनिवार्य है। विधायिका द्वारा निर्धारित अनिवार्य प्रक्रिया पीठासीन अधिकारी/उपविभागीय अधिकारी की धारा 15 की उपधारा (3) के तहत कलेक्टर द्वारा निर्धारित बैठक को अपनी इच्छानुसार स्थगित करने और समयसीमा का पालन करने की शक्ति को प्रतिबंधित करना है। बैठक में अविश्वास प्रस्ताव को आगे बढ़ाने का प्रावधान किया गया. उप-धारा (4-बी) के तहत, कलेक्टर को उप-धारा (3) के तहत निर्धारित तरीके से पीठासीन अधिकारी द्वारा निर्धारित अगली बैठक के स्पष्ट 10 दिनों के साथ सदस्यों को नोटिस देना आवश्यक है। प्रावधान की भावना के अनुरूप, कलेक्टर द्वारा स्थगित बैठक के सदस्यों को 10 स्पष्ट दिनों के नोटिस के साथ सूचना देना भी अनिवार्य है, लेकिन पीठासीन अधिकारी, यानी उप-विभागीय अधिकारी द्वारा स्थगित बैठक की तारीख और समय तय करने की आवश्यकता है। -स्थगन के समय संबंधित उपखण्ड के उपखण्ड अधिकारी स्वयं निर्देशित होते हैं। वह सेटिंग और संदर्भ जिसमें उप-धारा (4-बी) घटित होती है और जिस उद्देश्य को उक्त प्रावधान द्वारा प्राप्त किया जाना है और प्रावधान बनाने में विधायी इरादे को इस प्रकार पाया जा सकता है: -

(i) पीठासीन अधिकारी, जब तक कि उसकी असमर्थता दर्शाने के लिए लिखित में कारण दर्ज न हो, धारा 15 की उप-धारा (3) के तहत कलेक्टर द्वारा निर्धारित बैठक को स्थगित नहीं करेगा;

(ii). धारा 15 की उपधारा (2) के अनुसार निर्वाचित सदस्यों द्वारा विश्वास प्रस्ताव लाने के इरादे की सूचना पर धारा 15 का उपधारा (3)(i) में निर्धारित तीस दिनों की अवधि के भीतर विचार किया जाएगा।)

(iii) हालाँकि, उप-धारा (3) के तहत निर्धारित बैठक के स्थगन के मामले में, स्थगित बैठक की तारीख उप-धारा (3) के तहत बैठक के लिए नियुक्त तिथि से पच्चीस दिनों के भीतर तय की जानी चाहिए।

(iv) स्थगित बैठक की अवधि प्रदान करने का उद्देश्य और विधायी मंशा और बैठक स्थगित करने के लिए उप-विभागीय अधिकारी द्वारा

कारण दर्ज करने की आवश्यकता यह सुनिश्चित करना है कि निर्वाचित सदस्यों द्वारा पेश किए गए अविश्वास प्रस्ताव पर विचार किया जाए। लोकतांत्रिक सिद्धांतों की भावना जिसके आधार पर धारा 15 के प्रावधान को समझा गया है और कलेक्टर या पीठासीन अधिकारी जैसे प्रशासनिक अधिकारियों की ओर से किसी भी ढिलाई के कारण इसमें देरी नहीं की जाएगी, जिन्हें प्रस्ताव और बैठक की अध्यक्षता; क्रमश प्राप्त करना अनिवार्य है।

धारा 15 की उप-धारा (4-बी) में आने वाले वाक्यांश "बैठक को ऐसी अन्य तारीख और समय पर स्थगित करें जो वह नियुक्त कर सकता है" को अनिवार्य नहीं माना जा सकता है ताकि धारा 15 की उपधारा (4-बी) के तहत अपेक्षित उपधारा (3) के तहत बैठक के लिए नियुक्त तिथि से 25 दिनों के भीतर आयोजित बैठक की वैधता प्रभावित हो।

29. वर्तमान मामले में, उप-विभागीय अधिकारी, जिन्हें उप-धारा (4) के अनुसार बैठक की अध्यक्षता करनी थी, उनकी माँ की बीमारी से अचानक उत्पन्न स्थिति के कारण छुट्टी पर चले जाने के कारण 8.9.2022 को बैठक आयोजित नहीं कर सके। अनुविभागीय अधिकारी द्वारा बैठक की अध्यक्षता करने में असमर्थता के कारण की सूचना देते हुए छुट्टी का आवेदन विधिवत प्रस्तुत किया गया था। उक्त अधिकारी द्वारा बैठक से एक दिन पहले 7.9.2022 को दिए गए अवकाश आवेदन की अनुमति दी गई और अवकाश नियमों के अनुसार अवकाश स्वीकृत किया गया। बैठक के स्थगन की सूचना जिलाधिकारी/जिला मजिस्ट्रेट, संत कबीर नगर द्वारा कार्यालय आदेश दिनांक 7 सितम्बर, 2022 जारी कर सदस्यों को दी गयी। उपजिलाधिकारी/पीठासीन अधिकारी द्वारा निर्धारित स्थगित बैठक की तिथि एवं समय दिनांक 30.9.2022 पूर्वाह्न 11:30 बजे जिलाधिकारी, संत कबीर नगर को उनके अवकाश से लौटते ही सूचित कर दिया गया था। क्षेत्र पंचायत के निर्वाचित सदस्यों को स्पष्ट दस दिन का नोटिस दिया गया था और अविश्वास प्रस्ताव 30.9.2022 को उपखण्ड अधिकारी द्वारा निर्धारित तिथि और समय पर बहुमत से पारित किया गया था। दिनांक 8.9.2022 को कलेक्टर द्वारा निर्धारित बैठक की अध्यक्षता करने हेतु पीठासीन अधिकारी को अभूतपूर्व प्रतिकूल परिस्थिति का सामना करना पड़ा, केवल इस तथ्य पर कि उन्होंने स्वयं बैठक स्थगित नहीं की अथवा स्थगन के समय ही बैठक की तिथि एवं समय निर्धारित नहीं किया लेकिन बाद में छुट्टी के बाद अपने कार्यभार संभालने पर इसकी सूचना दी, इस कारण 30.9.2022 को आयोजित बैठक में किए गए प्रस्ताव को अमान्य नहीं किया जाएगा। दिनांक 8.9.2022 को निर्धारित बैठक के स्थगन में तथा स्थगित बैठक की तिथि एवं समय निर्धारित नहीं करने में यदि कोई दोष है

तो इस तथ्य से ठीक हो सकता है कि स्थगित बैठक की तिथि पीठासीन अधिकारी द्वारा यथाशीघ्र अवसर अनुकूल होते ही निर्धारित कर दी गई थी और उप-धारा (4-बी) में निर्धारित पच्चीस दिनों की अवधि के भीतर और स्थगित बैठक की सूचना कलेक्टर द्वारा निर्वाचित सदस्यों को उक्त प्रावधान के तहत निर्धारित समय के भीतर दी गई थी।

30. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि 7.9.2022 को पीठासीन अधिकारी द्वारा जिला मजिस्ट्रेट, संत कबीर नगर को सूचना देकर बैठक को स्थगित करना धारा 15 के उप-धारा (3) (ii) के प्रावधानों से छुटकारा पाने का एक उपकरण था। उनके अनुसार शुरू में निर्वाचित सदस्यों को पन्द्रह दिनों का स्पष्ट नोटिस नहीं दिया गया था, इससे हम प्रभावित नहीं होते हैं, हालाँकि, हमारे सामने यह तर्क देने के लिए कुछ भी नहीं लाया जा सका कि पीठासीन अधिकारी ने छुट्टी के लिए आवेदन नहीं किया था या छुट्टी विधिवत नहीं थी जो उन्हे दिया गया। पीठासीन अधिकारी द्वारा सामना की गई परिस्थिति की सच्चाई तथा बैठक स्थगित करने के कारण की जांच हमारे द्वारा नहीं की जा सकती है।

उपरोक्त चर्चा के लिए, हमने पाया कि पीठासीन अधिकारी की ओर से अधिनियम, 1961 की धारा 15 की उप-धारा (4-बी) के अनिवार्य प्रावधानों का कोई उल्लंघन नहीं किया गया है। निर्णय लेने की प्रक्रिया में कोई त्रुटि नहीं है। इसलिए, दिनांक 30.9.2022 के समाधान को चुनौती बरकरार नहीं रखी जा सकती।

रिट याचिका गुणहीन होने के कारण **खारिज** की जाती है।

(2023) 3 ILRA 399

मूल न्यायाधिकार

नागरिक पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद 17.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सूर्य प्रकाश केसरवानी,

माननीय न्यायमूर्ति अनीश कुमार गुप्ता,

रिट सी संख्या 32847/2022

आनंद कुमार ...याचिकाकर्ता

बनाम

यूपी राज्य एवं अन्य। ...प्रतिवादीगण

अधिवक्ता याचिकाकर्ता:

श्री प्रशांत पांडे

अधिवक्ता प्रतिवादीगण:

सी.एस.सी., श्री उदित चंद्रा

ए. उत्तर प्रदेश विद्युत आपूर्ति संहिता, 2005 - प्रस्तर 2(oo), 4.1 और 4.3 - विद्युत कनेक्शन - दुकान के किरायेदार का अधिकार - अन्य भाग पर देय, लेकिन दुकान पर नहीं - प्रभाव - आयोजित, अधिनियम, 2003 के अनुसार, संपत्ति किरायेदार को बिजली कनेक्शन का अधिकार है और लाइसेंसी ऐसे किरायेदार को बिजली कनेक्शन देने से इनकार नहीं कर सकता - लाइसेंसी किसी आवेदक से यह कहकर बिजली कनेक्शन से इनकार नहीं करेगा कि ऐसे संपत्ति के अन्य हिस्सों पर देय नहीं भुगतान किए गए

हैं, न ही लाइसेंसी ऐसे आवेदकों से अन्य हिस्सों के अंतिम भुगतान बिलों का रिकॉर्ड मांगेगा। (पैरा 13 और 17)
याचिका निस्तारित। (ई-1)

<u>उद्धृत वाद सूची :-</u>
1. सीमा मंसूर बनाम यूपी पावर कॉर्पोरेशन और अन्य; 2014 (6) एडीजे 672

<u>(द्वारा: न्यायमूर्ति, अनीश कुमार गुप्ता)</u>

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री प्रशांत पाण्डेय, राज्य प्रत्यर्थी संख्या 1 के विद्वान स्थायी अधिवक्ता और प्रत्यर्थी संख्या 2 और 3 के विद्वान अधिवक्ता श्री उदित चंद्रा को सुना गया।

2. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता, मकान संख्या सीके-48/207 रहमत मार्केट, हड़हा सराय, वाराणसी में 7'4" x 7' माप की एक छोटी सी दुकान का किरायेदार है। आरोप है कि वह 1997 से उक्त दुकान का किरायेदार है और वह ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों का उपयोग करता है। अब, वह एक बिजली कनेक्शन चाहता है और उस उद्देश्य के लिए उसने 22.2.2022 को प्रत्यर्थी संख्या 3 के समक्ष उक्त परिसर में बिजली कनेक्शन के लिए एक प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया, लेकिन प्रत्यर्थी इस बहाने से बिजली कनेक्शन नहीं दे रहे हैं कि जिस भवन में याचिकाकर्ता की दुकान स्थित है, उसके संबंध में कुछ बकाया है।

3. प्रतिवादियों द्वारा बिजली कनेक्शन न दिए जाने से व्यथित होकर याचिकाकर्ता ने निम्नलिखित राहत की प्रार्थना करते हुए वर्तमान रिट याचिका दायर की है:-

> *" i . प्रत्यर्थी संख्या 3 को याचिकाकर्ता की दुकान अर्थात सीके-48/207 रहमत मार्केट, हड़हा सराय, वाराणसी में प्रावधानों के अनुसार बिजली कनेक्शन प्रदान करने के लिए परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करना।"*

4. प्रत्यर्थी संख्या 2 और 3 के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि चूंकि प्रश्नगत भवन के संबंध में बकाया है, इसलिए याचिकाकर्ता द्वारा अधिगृहित दुकान के लिए कोई नया विद्युत कनेक्शन नहीं दिया जा सकता।

5. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने दलील दी कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध या उसके कब्जे वाले परिसर अर्थात दुकान के संबंध में कोई विद्युत बकाया नहीं है, इसलिए याचिकाकर्ता को नया विद्युत कनेक्शन देने में कोई कानूनी बाधा नहीं है।

6. हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं के प्रस्तुतिकरण पर ध्यानपूर्वक विचार किया है।

7. हम पाते हैं कि उत्तर प्रदेश विद्युत आपूर्ति संहिता, 2005 (जिसे आगे संहिता, 2005 कहा जाएगा) के पैरा 4.1 में विद्युत आपूर्ति प्रदान करने का प्रावधान है, जिसे नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:-

"अध्याय 4

आपूर्ति अनुदान की प्रक्रिया

> ***4.1 लाइसेंसधारी का आपूर्ति करने का दायित्व:***
>
> *लाइसेंसधारी अपने आपूर्ति क्षेत्र में स्थित किसी परिसर के स्वामी या अधिभोगी द्वारा किए गए* प्रार्थना पत्र *पर, आवश्यक शुल्कों के भुगतान और*

अन्य अनुपालन दर्शाते हुए पूर्ण प्रार्थना पत्र *की प्राप्ति के एक माह के भीतर ऐसे परिसर को विद्युत आपूर्ति प्रदान करेगा:*

बशर्ते कि किसी गांव या बस्ती या ऐसे क्षेत्र से आपूर्ति के लिए प्रार्थना पत्र *के मामले में, जहां बिजली की आपूर्ति का कोई प्रावधान नहीं है, आयोग मामले-दर-मामला आधार पर आपूर्ति के प्रावधान के लिए समय अवधि को उचित रूप से बढ़ाएगा:*

यह भी प्रावधान है कि किसी भी पुराने उपभोक्ता/परिसर, जहां स्वामित्व बदल गया है, के संबंध में विद्युत देय राशि के बकाया के मामले में, नए मालिकों को नया कनेक्शन केवल खंड 4.3(एफ) में दिए गए अनुसार बकाया राशि का प्रमाण-पत्र प्रस्तुत करने के बाद ही जारी किया जाएगा: तथा

बशर्ते कि यदि किसी परिसर पर बिजली का बिल बकाया है, तो उसी परिसर में *नए आवेदक/या पुराने उपभोक्ता को नया कनेक्शन जारी नहीं किया जाएगा। कनेक्शन तब भी जारी नहीं किया जाएगा, जब-*

(i) आवेदक (एक व्यक्ति होने के नाते) चूककर्ता उपभोक्ता का सहयोगी या रिश्तेदार है (जैसा कि कंपनी अधिनियम, 1956 की धारा 2 और 6 में परिभाषित किया गया है),

(ii) या जहां आवेदक एक कंपनी या निगमित निकाय या संघ या व्यक्तियों का निकाय है, चाहे वह निगमित हो या नहीं, या कृत्रिम न्यायिक व्यक्ति है, जो चूककर्ता उपभोक्ता को नियंत्रित करता है, या उसमें नियंत्रक हित रखता है, बशर्ते कि लाइसेंसधारी इस आधार पर विद्युत कनेक्शन देने से इंकार नहीं करेगा, जब तक कि आवेदक को अपना मामला प्रस्तुत करने का अवसर प्रदान नहीं किया जाता है और लाइसेंसधारी द्वारा नामित अधिकारी द्वारा तर्कपूर्ण आदेश पारित नहीं किया जाता है।"

8. प्रत्यर्थी संख्या 2 और 3 के विद्वान अधिवक्ता ने संहिता, 2005 के पैरा 4.1 के तीसरे प्रावधान पर भारी निर्भरता दिखाई है तथा दलील दी है कि चूंकि परिसर अर्थात प्रश्नगत भवन पर बिजली का बकाया है, इसलिए याचिकाकर्ता द्वारा अधिगृहित दुकान के संबंध में कोई नया कनेक्शन नहीं दिया जा सकता।

9. हम पाते हैं कि प्रत्यर्थी संख्या 2 और 3 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत दलीलें पूरी तरह से गलत हैं।

10. शब्द "अधिभोगी" और शब्द "परिसर" को संहिता, 2005 के पैरा 2(ओओ) और पैरा 2(एसएस) में निम्नानुसार परिभाषित किया गया है:-

(ओओ) ***"अधिभोगी"*** *से तात्पर्य उस परिसर के अधिभोगी स्वामी या प्राधिकृत व्यक्ति से है जहां ऊर्जा का उपयोग किया जाता है या उपयोग किए जाने का प्रस्ताव है।*

(एसएस) ***"परिसर"*** *से तात्पर्य भवन/शेड/मैदान आदि के क्षेत्र/भाग से है, जिसके लिए एकल उपभोक्ता के लिए विद्युत कनेक्शन हेतु* प्रार्थना पत्र *किया गया है या उसे स्वीकृत किया गया है।"*

11. एक ही परिसर के संबंध में बकाया राशि के कारण नए विद्युत कनेक्शन पर प्रतिबंध, संहिता, 2005 के पैरा 4.1 के तीसरे प्रावधान में प्रदान किया गया है। "परिसर" शब्द को संहिता, 2005 की धारा 2(एसएस) में परिभाषित किया गया है, कि परिसर भवन/शेड/मैदान आदि का एक क्षेत्र/भाग है, जिसके लिए एकल उपभोक्ता के लिए विद्युत कनेक्शन के लिए प्रार्थना पत्र किया गया है या स्वीकृत किया गया है। इस प्रकार, याचिकाकर्ता द्वारा अधिगृहीत दुकान संहिता, 2005 के पैरा 2(एस.एस.) के अर्थ के भीतर एक परिसर है, और यदि याचिकाकर्ता दुकान का किरायेदार है तो वह किरायेदार होने के नाते यानी अधिभोग में अधिकृत व्यक्ति संहिता, 2005 के पैरा 2(ओओ) के अर्थ के भीतर अधिभोगी होगा।

12. सीमा मंसूर बनाम यूपी पावर कॉरपोरेशन और 3 अन्य, 2014 (6) एडीजे 672 में रिपोर्ट किए गए, इस न्यायालय ने उद्देश्यों और कारणों के कथन और विद्युत अधिनियम, 2003 की धारा 42 और 43 पर भरोसा करते हुए, विद्युत आपूर्ति संहिता, 2005 के खंड 4.4 के साथ पढ़ा, निम्नानुसार टिप्पणी की:

> *"**7.** विद्युत उपक्रमों ने अपनी एकाधिकारवादी स्थिति के कारण सार्वजनिक उपयोगिता का चरित्र प्राप्त कर लिया है। राज्य ने अपनी विधायी शक्ति का प्रयोग करते हुए विद्युत के उत्पादन, पारेषण, वितरण, व्यापार और उपयोग से संबंधित कानूनों को समेकित करने और आम तौर पर विद्युत उद्योग के विकास के लिए अनुकूल उपाय करने तथा उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा करने और सभी क्षेत्रों में विद्युत की आपूर्ति करने के लिए विद्युत अधिनियम, 2003 को अधिनियमित किया है। विद्युत अधिनियम, 2003 के उद्देश्यों और कारणों के कथन से भी यही परिलक्षित होता है।*
>
> ***8.** अधिनियम की धारा 42 वितरण लाइसेंसधारी के कर्तव्यों से संबंधित है। उक्त धारा इस प्रकार है :*
>
> > *"42. वितरण लाइसेंसधारी और खुली पहुंच के कर्तव्य.- (1) वितरण लाइसेंसधारी का यह कर्तव्य होगा कि वह अपने आपूर्ति क्षेत्र में कुशल, समन्वित और मितव्ययी वितरण प्रणाली विकसित करे और बनाए रखे तथा इस अधिनियम में अंतर्विष्ट उपबंधों के अनुसार विद्युत की आपूर्ति करे।*
>
> **9.** *अधिनियम की धारा 43 में लाइसेंसधारक पर अनुरोध पर विद्युत ऊर्जा की आपूर्ति करने का दायित्व डाला गया है। उक्त धारा की उपधारा (1) इस प्रकार है :*
>
> > *"43. अनुरोध पर आपूर्ति करने का कर्तव्य.- (1) प्रत्येक वितरण लाइसेंसधारी, किसी परिसर के स्वामी या अधिभोगी द्वारा किए गए* प्रार्थना पत्र *पर, ऐसे आपूर्ति की मांग करने वाले* प्रार्थना पत्र *की प्राप्ति के एक*

माह के भीतर ऐसे परिसर को विद्युत की आपूर्ति करेगा:

बशर्ते

कि जहां ऐसी आपूर्ति के लिए वितरण मेन्स का विस्तार या नए उप-स्टेशनों को चालू करना अपेक्षित हो, वहां वितरण लाइसेंसधारी ऐसे विस्तार या चालू होने के तुरंत बाद या समुचित आयोग द्वारा विनिर्दिष्ट अवधि के भीतर ऐसे परिसरों को विद्युत की आपूर्ति करेगा:

बशर्ते

कि किसी गांव, पुरवा या क्षेत्र के मामले में, जहां बिजली की आपूर्ति का कोई प्रावधान नहीं है, समुचित आयोग उक्त अवधि को बढ़ा सकता है, जैसा कि वह ऐसे गांव, पुरवा या क्षेत्र के विद्युतीकरण के लिए आवश्यक समझे।

(2) प्रत्येक वितरण लाइसेंसधारी का यह कर्तव्य होगा कि वह, यदि अपेक्षित हो, उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट परिसरों को विद्युत आपूर्ति देने के लिए विद्युत संयंत्र या विद्युत लाइन उपलब्ध कराए:

परन्तु

कोई भी व्यक्ति किसी ऐसे परिसर के लिए, जिसकी पृथक आपूर्ति हो, किसी लाइसेंसधारी से विद्युत की आपूर्ति की मांग करने या उसे प्राप्त करना जारी रखने का हकदार नहीं होगा, जब तक कि वह लाइसेंसधारी के साथ समुचित आयोग द्वारा अवधारित मूल्य का भुगतान करने के लिए सहमत न हो जाए।

(3) यदि वितरण लाइसेंसधारी उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट अवधि के भीतर विद्युत आपूर्ति करने में असफल रहता है तो वह प्रत्येक दिन के लिए एक हजार रुपए तक के जुर्माने का दायी होगा।

***10**. विद्युत अधिनियम, 2003 के प्रावधानों को पढ़ने से पता चलता है कि प्रत्येक वितरण लाइसेंसधारी का दायित्व न केवल अपने आपूर्ति क्षेत्र में कुशल, समन्वित और किफायती वितरण प्रणाली विकसित करना है, बल्कि उसे बनाए रखना भी है। विद्युत अधिनियम की धारा 43 के प्रावधान वितरण लाइसेंसधारी पर न केवल मालिक को बल्कि आपूर्ति क्षेत्र की सीमाओं के भीतर स्थित परिसर के अधिभोगी को भी बिजली की आपूर्ति करने का वैधानिक कर्तव्य डालते हैं, बशर्ते कि मालिक या अधिभोगी द्वारा इस संबंध में प्रार्थना पत्र किया जाए और तदनुसार किसी भी परिसर के मालिक या अधिभोगी को, जैसा भी मामला हो, वितरण लाइसेंसधारी से ऐसी बिजली की आपूर्ति करने और प्राप्त करने का वैधानिक*

अधिकार है। बेशक, यह अधिकार इस उद्देश्य के लिए प्रदान की गई औपचारिकताओं को पूरा करने के अधीन है।

11. *विद्युत आपूर्ति संहिता, 2005 जिसका संदर्भ प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा यह तर्क देने के लिए दिया गया है कि मालिक की सहमति के बिना बिजली कनेक्शन नहीं दिया जा सकता है, 2005 में लागू किया गया यह संहिता लाइसेंसधारी और उपभोक्ताओं के एक-दूसरे के प्रति दायित्वों को सूचीबद्ध करता है और उपभोक्ताओं को कुशल, लागत प्रभावी और उपभोक्ता अनुकूल सेवा प्रदान करने के लिए प्रथाओं के सेट को निर्दिष्ट करता है। 2005 संहिता के खंड 2.2 (ओओ) के तहत 'अधिभोगी' का अर्थ उस परिसर का मालिक या अधिकृत व्यक्ति है जहाँ ऊर्जा का उपयोग किया जाता है या उपयोग करने का प्रस्ताव है। खंड 4.4 आपूर्ति के लिए* प्रार्थना पत्र *के प्रसंस्करण के लिए प्रक्रिया निर्धारित करता है। खंड 4.4 (ए) जो वर्तमान मामले के उद्देश्य के लिए प्रासंगिक है, इस प्रकार है :*

> *"4.4. आपूर्ति हेतु* प्रार्थना पत्र *का प्रसंस्करण।*
>
> *(क) नए कनेक्शन के लिए* प्रार्थना पत्र, *निर्धारित प्रपत्र (अनुलग्नक 4.1) में और सभी प्रकार से पूर्ण तथा निर्धारित पंजीकरण-सह-प्रसंस्करण शुल्क के साथ, लाइसेंसधारी द्वारा निर्दिष्ट कार्यालय में दो प्रतियों में निम्नलिखित दस्तावेजों की सत्यापित सत्य प्रतियों के साथ दायर किया जाएगा:*
>
> *(i) पंजीकृत बिक्री विलेख या विभाजन विलेख या उत्तराधिकार या वारिस प्रमाणपत्र या अंतिम वसीयत विलेख या कब्जे का प्रमाण जैसे वैध पावर ऑफ अटॉर्नी या नवीनतम किराया भुगतान रसीद या वैध पट्टा विलेख या अनुबंध 4.2 के अनुसार क्षतिपूर्ति फॉर्म के रूप में परिसर के स्वामित्व का प्रमाण। परिसर के स्वामित्व के संबंध में मुकदमेबाजी के मामले में, उचित न्यायालय के आदेश की प्रति संलग्न करनी होगी ।*
>
> *(ii) स्थानीय प्राधिकरण का अनुमोदन/अनुमति/एनओसी, यदि किसी कानून/संविधि के अंतर्गत आवश्यक हो।*
>
> *(iii) साझेदारी फर्म के मामले में, साझेदारी विलेख।*
>
> *(iv) लिमिटेड कंपनी के मामले में, ज्ञापन, एसोसिएशन के लेख, निगमन प्रमाणपत्र और निदेशकों की सूची/प्रमाणपत्र पते।*
>
> *नया आपूर्ति कनेक्शन प्राप्त करने के लिए मालिक की सहमति (अनुलग्नक 4.3)।*

12. इस चरण में विद्युत आपूर्ति संहिता 2005 के प्रासंगिक अनुलग्नक का भी संदर्भ लिया जा सकता है। खंड 4.4 के संदर्भ में अनुलग्नक 4.3 नया आपूर्ति कनेक्शन प्राप्त करने के लिए मालिक की सहमति का एक प्रारूप है। खंड 4.4 के संदर्भ में अनुलग्नक 4.2 क्षतिपूर्ति बांड का एक रूप है जो उस स्थिति में दिया जाना है जब इच्छुक उपभोक्ता परिसर का मालिक नहीं है। इसे नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है :

अनुलग्नक 4.2

(संदर्भ खंड 4.4)

फॉर्म निशुल्क उपलब्ध है

क्षतिपूर्ति बांड

(यदि इच्छुक उपभोक्ता परिसर का मालिक नहीं है)

सेवा में

_______________ अभियंता,

प्रेषक _______________

____

____

चूंकि नीचे वर्णित भूमि/परिसर श्री/श्रीमती .... का है और मैं उक्त भूमि/परिसर का केवल पट्टेदार/किराएदार/कब्जाधारी हूं, जहां मैंने उक्त/परिसर के लिए बिजली कनेक्शन के लिए प्रार्थना पत्र किया है और मैं श्री/श्रीमती .... की सहमति प्राप्त करने में सक्षम नहीं हूं, लेकिन कब्जे का सबूत प्रस्तुत किया है, यानी वैध पावर ऑफ अटॉर्नी/नवीनतम किराया भुगतान रसीद/पंजीकृत पट्टा विलेख।

इसके अतिरिक्त, मैं, आपूर्ति की उन शर्तों पर मुझे विद्युत कनेक्शन दिए जाने के प्रतिफल में, जिसके लिए मैंने अनुबंध निष्पादित किया है, आगे लाइसेंसधारी को सभी प्रकार के नुकसानों और दावों से क्षतिपूर्ति करने और सुरक्षित रखने के लिए सहमत हूं, जिसमें मुकदमे की लागत, मूल याचिकाएं और सभी प्रकार की कानूनी या अन्य कार्यवाहियां शामिल हैं, जो लाइसेंसधारी को उक्त भूमि/परिसर के मालिक (चाहे ऐसे मालिक उक्त श्री/श्रीमती _______________ हों या कोई अन्य) द्वारा या उसके कहने पर किसी धमकी या कार्रवाई के कारण उठानी पड़ सकती हैं या लगने की संभावना है। मैं आगे यह भी सहमत हूं कि भूमि/परिसर के मालिक की सहमति के बिना मुझे दिए गए विद्युत कनेक्शन के परिणामस्वरूप होने वाली ऐसी हानि, क्षति और अन्य दावे भी मुझसे और मेरी संपत्तियों से राजस्व वसूली अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत, ऐसी वसूली के समय लागू, या ऐसी अन्य कार्यवाहियों के द्वारा, जिन्हें लाइसेंसधारी आरंभ करना उचित समझे, वसूल किए जा सकते हैं।

मैं ऐसी वसूली और कार्यवाहियों की लागत के लिए भी स्वयं को उत्तरदायी मानता हूँ।

स्थान

तारीख

गवाह

पट्टेदार/किराएदार/कब्जाधारी के हस्ताक्षर

(1)

(2)

13. अधिनियम की धारा 43 लाइसेंसधारी पर न केवल परिसर के मालिक द्वारा बल्कि परिसर में रहने वाले किसी भी अधिकृत व्यक्ति द्वारा भी प्रार्थना पत्र किए जाने पर विद्युत ऊर्जा की आपूर्ति करने का दायित्व डालती है, जिसे संहिता 2005 के तहत परिसर में रहने वाले किसी भी अधिकृत

व्यक्ति को शामिल करने के लिए परिभाषित किया गया है। किराएदार परिसर में रहने वाला अधिकृत व्यक्ति होगा।

***14**. संहिता 2005 के खंड 4.4 का अवलोकन करने से पता चलता है कि नए कनेक्शन के लिए प्रार्थना पत्र के साथ अनुलग्नक 4.2 के अनुसार क्षतिपूर्ति फॉर्म भी दाखिल किया जा सकता है। इसका उद्देश्य ऐसे किरायेदारों को सक्षम बनाना है, जिनके संबंध में मालिक या मकान मालिक नए कनेक्शन के लिए अनापत्ति प्रमाण पत्र देने से इनकार कर देते हैं।*

***15.** उपरोक्त अनुलग्नक 4.2 का अवलोकन करने से पता चलता है कि जैसा कि उपरोक्त फॉर्म को पढ़ने से स्पष्ट है, इसका उद्देश्य लाइसेंसधारी को किसी भी नुकसान के लिए क्षतिपूर्ति करना है जो भवन पर कब्जा करने वाले किसी व्यक्ति के किसी भी कार्य के कारण हो सकता है, भले ही वह मालिक न हो। इस प्रकार, कोड 2005 परिसर के मालिक के सहमति पत्र या उसके अभाव में परिसर के पट्टेदार/किराएदार या अधिभोगी द्वारा क्षतिपूर्ति बांड का प्रावधान करता है। इस प्रकार, आशय स्पष्ट है कि या तो किरायेदार/पट्टाधारक या अधिभोगी द्वारा अपना पता छोड़े बिना भूमि खाली करने और गायब होने की स्थिति में लाइसेंसधारियों को क्षतिपूर्ति करने के लिए मालिक की सहमति होनी चाहिए या वैकल्पिक रूप से किरायेदार/पट्टाधारक या अधिभोगी भूमि या परिसर के मालिक की सहमति के बिना उसे दिए गए बिजली कनेक्शन के कारण लाइसेंसधारी को हुए किसी नुकसान या क्षति की क्षतिपूर्ति करने का वचन दे सकता है, जिससे उस नुकसान की भरपाई उससे और उसकी संपत्ति से उस वसूली के समय लागू राजस्व अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत या ऐसी अन्य कार्यवाही के माध्यम से की जा सकेगी, जिसे लाइसेंसधारी आरंभ करना उचित समझे।*

***16.** उपर्युक्त प्रावधानों को पढ़ने से यह स्पष्ट है कि लाइसेंसधारी उचित प्रार्थना पत्र किए जाने पर विद्युत ऊर्जा की आपूर्ति करने के लिए बाध्य है और परिसर के प्रत्येक मालिक या अधिभोगी, जिसमें किरायेदार भी शामिल होगा, को विद्युत अधिनियम, 2003 और विद्युत आपूर्ति संहिता 2005 के प्रावधानों के तहत आवश्यकताओं को पूरा करने के अधीन लाइसेंसधारी से विद्युत आपूर्ति के लिए प्रार्थना पत्र करने और प्राप्त करने का वैधानिक अधिकार है।*

13. इस प्रकार , **सीमा मंसूर (पूर्वोक्त)** के मामले में पूर्वोक्त निर्णय में की गई टिप्पणियों और अधिनियम, 2003 की योजना के अनुसार, परिसर का अधिभोगी विद्युत कनेक्शन का हकदार है और लाइसेंसधारी परिसर के ऐसे अधिभोगी को विद्युत कनेक्शन देने से इनकार नहीं कर सकता है।

14. उपरोक्त निष्कर्ष को **संहिता, 2005 के खंड 4.3 के उपखंड (एफ) (वी) और (एच)** से भी समर्थन मिलता है, जो इस प्रकार है:

"(एफ) (i) ....

(ii) ....

(iii) ....

(iv) ....

*(v) **चूककर्ता उपभोक्ता के विरुद्ध वसूली की कार्यवाही**, तथा जहां चूककर्ता उपभोक्ता कोई कंपनी है, वहां कंपनी के निदेशकों से वसूली की कार्यवाही **सुनिश्चित की जाएगी।** जहां किसी वित्तीय संस्थान ने लाइसेंसधारकों को परिसंपत्तियों पर प्रभार दिए बिना संपत्ति की नीलामी की है, वहां संबंधित वित्तीय संस्थान के समक्ष सावधानीपूर्वक कार्यवाही करते हुए दावे दर्ज किए जा सकते हैं।*

(एच) ऐसे उप-विभाजित परिसरों के लिए नया कनेक्शन केवल तभी दिया जाएगा जब ऐसे उप-विभाजित परिसरों के लिए बकाया राशि का हिस्सा आवेदक द्वारा विधिवत भुगतान कर दिया गया हो। ***लाइसेंसधारी किसी आवेदक को केवल इस आधार पर कनेक्शन देने से इनकार नहीं करेगा कि ऐसे परिसरों के अन्य हिस्सों पर बकाया राशि का भुगतान नहीं किया गया है, न ही लाइसेंसधारी ऐसे आवेदकों से अन्य हिस्सों के अंतिम भुगतान किए गए बिलों का रिकॉर्ड मांगेगा।"***

15. प्रत्यर्थी संख्या 3 का यह मामला स्वीकार किया गया है कि याचिकाकर्ता द्वारा कब्जा की गई दुकान के लिए कोई विशेष बकाया नहीं है। कथित बकाया मेसर्स राजस्थान थ्रेड, अज़मुल खान, श्री शारदा पीडी सिंह, मोहिउद्दीन अहमद के खिलाफ था। इन व्यक्तियों का याचिकाकर्ता द्वारा कब्जा की गई दुकान से कोई संबंध नहीं बताया गया है।

16. यदि उपरोक्त व्यक्तियों के विरुद्ध बकाया था, जैसा कि प्रत्यर्थी संख्या 2 और 3 द्वारा आरोपित किया गया है, तो वे संहिता, 2005 की धारा 4.3 के उप-धारा (एफ) (वी) के अनुसार चूककर्ता उपभोक्ताओं के विरुद्ध बकाया राशि की वसूली के लिए कार्यवाही शुरू कर सकते थे।

17. संहिता, 2005 के खंड 4.3 के उप-खंड (एच) के तहत यह अनिवार्य किया गया है कि लाइसेंसधारी किसी आवेदक को इस आधार पर बिजली कनेक्शन देने से मना नहीं करेगा कि ऐसे परिसर के अन्य हिस्सों पर बकाया राशि का भुगतान नहीं किया गया है, न ही लाइसेंसधारी ऐसे आवेदकों से अन्य हिस्सों के अंतिम भुगतान किए गए बिलों का रिकॉर्ड मांगेगा। प्रतिवादियों के अधिवक्ता याचिकाकार्ता द्वारा कब्जा किए गए परिसर के लिए विशेष रूप से किसी भी बकाया राशि के बारे में कोई सामग्री प्रस्तुत करने में सक्षम नहीं हैं ।

18. इसलिए, अधिनियम और संहिता के उपरोक्त प्रावधानों से उल्लिखित योजना के मद्देनजर, याचिकाकर्ता द्वारा कब्जा किए गए विशिष्ट परिसर में बिजली कनेक्शन के लिए याचिकाकर्ता के प्रार्थना पत्र को प्रत्यर्थी संख्या 2 और 3 द्वारा अस्वीकार नहीं किया जा सकता है और इसके बजाय इसे प्रत्यर्थी संख्या 2 और 3 द्वारा कानून के अनुसार विचार और संसाधित करने की आवश्यकता है।

19. पूर्वोक्त सभी कारणों से, इस रिट याचिका को अंतिम रूप से प्रत्यर्थी संख्या 3-उप मंडल अधिकारी, नगरीय विद्युत वितरण उप मंडल, हथुआ मार्केट, वाराणसी को निर्देश के साथ

निस्तारण किया जाता है कि वह नए विद्युत कनेक्शन के लिए याचिकाकर्ता के प्रार्थना पत्र पर विचार करें और याचिकाकर्ता और भवन के मालिक को सुनवाई का उचित अवसर प्रदान करने के बाद इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तारीख से चार सप्ताह के भीतर कानून के अनुसार उचित निर्णय लें।

20. यह स्पष्ट किया जाता है कि इस आदेश के मुख्य भाग में की गई किसी भी टिप्पणी को भवन के मकान मालिक, जो हमारे समक्ष नहीं है, और याचिकाकर्ता के बीच मकान मालिक-किरायेदार संबंध पर निष्कर्ष के रूप में नहीं माना जाएगा।

(2023) 3 ILRA 405

मूल न्यायाधिकार

नागरिक पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद 27.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा,
माननीय न्यायमूर्ति अजीत सिंह,

रिट सी संख्या 36691/2004

जोर सिंह उर्फ छोटे लाल ...याचिकाकर्ता

बनाम

यूपी राज्य एवं अन्य। ...प्रतिवादीगण

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री के.के. त्रिपाठी, श्री राम दयाल तिवारी, श्री सुभाष चन्द्र यादव, श्री वैभव गोस्वामी, श्री. एम.डी. सिंह शेखर (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता प्रतिवादीगण: सी.एस.सी., श्री अभिनव कृष्ण श्रीवास्तव

ए. सीलिंग कानून - शहरी भूमि (सीलिंग और विनियमन) अधिनियम, 1976 - धारा 8(4) और 10(6) - अधिशेष भूमि - अधिग्रहण न करना - प्रभाव - धारा 10(6) के अंतर्गत कार्रवाई करने से पूर्व नोटिस कितना आवश्यक है - निर्णय, यद्धपि धारा 10(6) के अंतर्गत कार्रवाई करने से पूर्व नोटिस की आवश्यकता नहीं है, लेकिन 2013 (4) एससीसी 280 (पैराग्राफ 37) में उच्चतम न्यायालय के निर्णय के अनुसार, अधिनियम, 1976 की धारा 10(6) के अंतर्गत कार्रवाई से पूर्व नोटिस अनिवार्य है - जब धारा 10(6) के तहत कोई नोटिस नहीं था, तब कब्जे का हस्तांतरण भी नहीं हो सकता था - उच्च न्यायालय ने आदेश दिया कि याचिकाकर्ता को विवादित भूमि से निष्कासित नहीं किया जा सकता। (पैरा 25, 26 और 27)

रिट याचिका स्वीकृत। (E-1)

<u>उद्धृत वाद सूची :-</u>

1. राज्य बनाम हरिराम; 2013 (4) SCC 280
2. हरिनाम सिंह और अन्य बनाम राज्य बनाम यूपी; 2018 (4) ADJ 749

<u>माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा</u>
<u>माननीय न्यायमूर्ति अजीत सिंह</u>

यह रिट याचिका इस प्रार्थना के साथ दायर की गई है कि ग्राम टीकलापुरा, मजरा बिनगवां, परगना एवं तहसील एवं जिला-कानपुर नगर की गाटा संख्या 61 क्षेत्रफल 204.8 वर्ग मीटर, गाटा संख्या 219 क्षेत्रफल 8106.10 वर्ग मीटर, गाटा संख्या 220 क्षेत्रफल 1638.80 वर्ग मीटर, गाटा संख्या 62

क्षेत्रफल 1229.10 वर्ग मीटर, गाटा संख्या 63 क्षेत्रफल 4199.10 वर्ग मीटर, गाटा संख्या 64 क्षेत्रफल 13127.37 वर्ग मीटर तथा गाटा संख्या 61 क्षेत्रफल 1024.25 वर्ग मीटर की अधिशेष भूमि को याचिकाकर्ता की खतौनियों में दर्ज किया जाए। साथ ही यह प्रार्थना की गई है कि ग्राम टीकलापुरा, मजरा बिनगवां, परगना एवं तहसील एवं जिला-कानपुर नगर की गाटा संख्या 61 क्षेत्रफल 204.8 वर्ग मीटर, गाटा संख्या 219 क्षेत्रफल 8106.10 वर्ग मीटर, गाटा संख्या 220 क्षेत्रफल 1638.80 वर्ग मीटर, गाटा संख्या 62 क्षेत्रफल 1229.10 वर्ग मीटर, गाटा संख्या 63 क्षेत्रफल 4199.10 वर्ग मीटर, गाटा संख्या 64 क्षेत्रफल 13127.37 वर्ग मीटर तथा गाटा संख्या 61 क्षेत्रफल 1024.25 वर्ग मीटर में समाहित कुल क्षेत्रफल 30512.63 वर्ग मीटर (एतदपश्चात प्रश्नगत भूमि के रूप में संदर्भित) को याचिकाकर्ता से न छीना जाए।

याचिकाकर्ता का मामला यह है कि जब याचिकाकर्ता के पूर्ववर्ती-हितधारक और उसके पश्चात याचिकाकर्ता का उस भूमि पर कब्जा बना हुआ था, जिसे पहले अधिशेष घोषित किया गया था और जिसे याचिकाकर्ता से कभी नहीं छीना गया था, तब सीलिंग अधिकारी गलत तरीके से भूमि को राज्य की मान रहे थे।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कथन किया है कि वर्ष 1398एफ से 1401एफ के खसरे (रिट याचिका का परिशिष्ट-3) और उसके पश्चात वर्ष 1420एफ (07.02.2017 को दायर पूरक शपथपत्र का परिशिष्ट एस.ए.-3) के खसरे इंगित करते है कि याचिकाकर्ता के पूर्ववर्ती-हितधारक और उसके पश्चात याचिकाकर्ता का प्रश्नगत भूमि पर कब्जा था।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कथन किया है कि यदि शहरी भूमि (सीमा और विनियमन) अधिनियम, 1976 (एतदपश्चात "1976 का अधिनियम" के रूप में संदर्भित) के अंतर्गत, प्रश्नगत भूमि को 1976 के अधिनियम की धारा 8 (4) के अंतर्गत अधिशेष घोषित किया गया था तथा भूमि का कब्जा शहरी भूमि (सीमा और विनियमन) निरसन अधिनियम, 1999 (एतदपश्चात "1999 का अधिनियम" के रूप में संदर्भित) के प्रारंभ होने पर या उससे पहले नहीं लिया गया था, याचिकाकर्ता सीलिंग प्राधिकारियों के किसी भी आदेश के अनुसरण में बेदखल नहीं किया जाएगा। चूँकि याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने 1999 के अधिनियम की धारा 3 को पढ़ा, जिसे यहाँ निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया जा रहा हैः-

"**3. बचावः**- (1) मूल अधिनियम के निरसन से प्रभावित नहीं होगाः-

(ए) धारा 10 की उपधारा (3) के अंतर्गत किसी भी खाली भूमि का अधिकार, जिसका कब्जा राज्य सरकार द्वारा या किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा ले लिया गया है जिसे इस संबंध में राज्य सरकार द्वारा या सक्षम प्राधिकारी द्वारा विधिवत अधिकृत किया गया है;

(बी) धारा 20 की उपधारा (1) के अंतर्गत छूट देने वाले किसी भी आदेश की या उसके अंतर्गत की गई किसी कार्रवाई की वैधता, किसी भी न्यायालय के विपरीत निर्णय के बावजूद;

(सी) धारा 20 की उप-धारा (1) के अंतर्गत छूट देने की शर्त के रूप में राज्य सरकार को किया गया कोई भी भुगतान।

(2) जहां -

(ए) मूल अधिनियम की धारा 10 उप-धारा (3) के अंतर्गत किसी भी भूमि को राज्य सरकार में निहित माना जाता है, परन्तु जिसका कब्जा राज्य सरकार द्वारा या राज्य सरकार द्वारा इस संबंध में अधिकृत किसी व्यक्ति या सक्षम प्राधिकारी द्वारा नहीं लिया गया है; तथा

(बी) ऐसी भूमि के संबंध में राज्य सरकार द्वारा किसी राशि का भुगतान किया गया है,

तब, ऐसी भूमि तब तक वापस नहीं की जाएगी जब तक कि भुगतान की गई धनराशि, यदि कोई हो, राज्य सरकार को वापस नहीं कर दी गई हो।

इसलिए, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कथन किया है कि चूंकि याचिकाकर्ता का उपरोक्त खातों पर भौतिक कब्जा चला आ रहा है जिन्हें पूर्व में 1976 के अधिनियम के अंतर्गत अधिशेष घोषित किया गया था, तो 1999 के अधिनियम के आने के कारण, याचिकाकर्ता प्रश्नगत भूमि का मालिक बना रहेगा और याचिकाकर्ता का कब्जा बना रहेगा।

वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कथन किया है कि याचिकाकर्ता जिसका पूर्ववर्ती-हितधारक श्री भीखू पुत्र देशराज था और जो प्रश्नगत भूमि का कब्जाधारी मालिक था, उसे किसी भी समय सीलिंग प्राधिकारियों द्वारा पारित किसी भी आदेश के अनुसरण में बेदखल नहीं किया गया था।

रिट याचिका के पैरा 13 में, याचिकाकर्ता ने कथन किया है कि वास्तव में, पूर्ववर्ती-हितधारक को 1976 के अधिनियम की धारा 8(3) व 8(4) के अंतर्गत पारित किए गए किसी भी आदेश के बारे में कोई जानकारी नहीं थी तथा वास्तव में, पूर्ववर्ती हितधारक को 1976 के अधिनियम के अंतर्गत विभिन्न कार्यवाहियों के बारे में तभी पता चला जब माह अप्रैल-2003 में उन्हें बेदखल करने की मांग की गई। यह कहा गया है कि इसके पश्चात दुर्भाग्यवश 09.06.2003 को उनकी मृत्यु हो गई।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि इसके पश्चात याचिकाकर्ता, जो कि एक अपंजीकृत वसीयत दिनांकित 27.05.2003 के कारण भीखू के स्थान पर आ गया था, ने मामले का प्रतिवाद शुरू कर दिया और जब बेदखली प्रभावी हो रही थी, तो उसने वर्तमान रिट याचिका दायर की। विद्वान अधिवक्ता ने कथन किया कि उसके पश्चात याचिकाकर्ता को दिनांक 28.05.1985 के आदेश से अवगत कराया गया, जिसकी प्रमाणित प्रति दिनांक 06.02.2004 को प्राप्त की गई थी। यह दस्तावेज 1976 के अधिनियम की धारा 10(5) के अंतर्गत एक आदेश था तथा 1976 के अधिनियम की धारा 10(5) के अंतर्गत इस आदेश द्वारा, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कथन किया कि याचिकाकर्ता के पूर्ववर्ती-हितधारक को प्रश्नगत भूखंडों से बेदखल करने की मांग की गई थी, जिसका क्षेत्रफल 30512.60 वर्ग मीटर था।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कथन किया है कि 1976 के अधिनियम की धारा 10(5) के अंतर्गत आदेश से पूर्व 1976 के अधिनियम की धारा 10(5) के अंतर्गत कोई नोटिस नहीं दिया गया था। उन्होंने आगे कहा कि वास्तव में, याचिकाकर्ता या उसके पूर्ववर्ती हितधारक से कभी भी कब्जा नहीं लिया गया था तथा कब्जे के सभी हस्तांतरण केवल कागजी लेनदेन थे।

एक दस्तावेज प्रस्तुत करने पर, जिसे प्रति शपथ पत्र में अनुलग्नक संख्या सी.ए.-1 के रूप में दाखिल किया गया है, जो राज्य के अनुसार एक आदेश था जिसके द्वारा 1976 के अधिनियम की धारा 10(6) के अंतर्गत कब्जा लिया गया था, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने कथन किया कि यह दस्तावेज भी केवल एक कागजी लेनदेन था। उनका कथन है कि 1976 के अधिनियम की धारा 10(6) के अंतर्गत यदि कब्जा लिया जाना था तो पहले एक नोटिस दिया जाना चाहिए था और कब्जा भूस्वामी/किरायेदार द्वारा कलेक्टर को दिया जाना चाहिए था। उनका कथन है कि यह दस्तावेजी कब्जा जिलाधिकारी, कानपुर नगर द्वारा पर्यवेक्षक कानूनगो को दिनांक 22.01.1987 को दिया गया था। विद्वान अधिवक्ता

ने यह भी कहा कि इस दस्तावेज पर किसी भी स्वतंत्र साक्षी के हस्ताक्षर नहीं थे जो कब्जे के हस्तांतरण का साक्ष्य दे सकता था।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **2013(4) एस.सी.सी. 280 (उत्तर प्रदेश राज्य बनाम हरि राम)** में सूचित निर्णय के पैरा-36 व 37 पर विश्वास व्यक्त किया और कथन किया कि यदि 1976 के अधिनियम की धारा 10(5) के अंतर्गत कब्जे का शांतिपूर्ण हस्तांतरण नहीं हुआ तो राज्य बलपूर्वक कब्जा कर सकता था। उन्होंने कथन किया कि उपरोक्त निर्णय के पैरा सं0 37 के अनुसार, 1976 के अधिनियम की धारा 10(6) के अंतर्गत बिना किसी नोटिस के भूमिधरी की बेदखली नहीं की जा सकती। विद्वान अधिवक्ता ने निर्णय के पैरा सं0 36 और 37 पर अत्यधिक विश्वास व्यक्त किया है, जिन्हें यहां निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया जा रहा हैः-

''36. अधिनियम बलपूर्वक बेदखल करने का प्रावधान करता है परन्तु केवल तब जब कोई व्यक्ति धारा 10 की उपधारा (5) के अंतर्गत किसी आदेश का पालन करने से इनकार करता है या विफल रहता है। धारा 10 की उपधारा (6) पुनः ''कब्जे'' की बात करती है जो कहती है, यदि कोई व्यक्ति उप-धारा (5) के अंतर्गत दिए गए आदेश का पालन करने इनकार करता है या विफल रहता है, तो सक्षम प्राधिकारी राज्य सरकार को दी जाने वाली खाली भूमि पर कब्जा कर सकता है और उस उद्देश्य के लिए, बल - जैसा आवश्यक हो - का उपयोग किया जा सकता है। इस प्रकार, उपधारा (6), उपधारा (5) के अंतर्गत आदेश का पालन करने से इनकार करने या विफल रहने वाले व्यक्ति की स्थिति पर विचार करती है, ऐसी स्थिति में, सक्षम प्राधिकारी बल का उपयोग करके कब्जा कर सकता है। इसलिए, भूमि की जबरन बेदखली का सहारा केवल उसी स्थिति में लिया जा रहा है, जो धारा 10 की उपधारा (6) के अंतर्गत आती है न कि उपधारा (5) के अंतर्गत। इसलिए उपधारा (5) और (6), दोनों स्थितियों का ध्यान रखती है, अर्थात नोटिस देकर कब्जा लेना, जो कि ''शांतिपूर्ण बेदखली'' है और धारा 10(5) के अंतर्गत अभ्यर्पण या कब्जा देने में विफलता पर, धारा 10 की उप-धारा (6) के अंतर्गत ''बलपूर्वक बेदखली'' करना।

37. धारा 10 की उपधारा (5) एवं (6) के अंतर्गत नोटिस देना अनिवार्य है। हालाँकि उसमें ''सकता है'' शब्द का प्रयोग किया गया है, दोनों उप-धाराओं में ''सकता है'' शब्द को ''करेगा'' के रूप में समझा जाना चाहिए क्योंकि एक न्यायालय जिसे विधि को लागू करने का कार्य करना है, उसको इसके उन परिणामों को तय करने की आवश्यकता है, जिनका विधायिका द्वारा पालन करने की मंशा, लागू करने में विफलता से बचने पर था। धारा 10 की उप-धारा (5) या उप-धारा (6) के अंतर्गत नोटिस जारी न करने का प्रभाव यह है कि इसके परिणामस्वरूप भूमि धारक को बिना नोटिस के बेदखल किया जा सकता है, इसलिए ''सकता है'' शब्द को ''करेगा'' पढ़ा जाए।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि **2018 (4) ए.डी.जे. 749 (हरिनाम सिंह व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य)** में इस न्यायालय द्वारा सूचित निर्णय के अनुसार, कब्जे का ज्ञापन एक पूर्णतः दिखावटी दस्तावेज था क्योंकि इसमें कोई भूमिधारी के हस्ताक्षर नहीं थे। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आगे कहा कि जैसा कि 2018 (4) ए.डी.जे. 749 में दिए गए निर्णय में कहा गया है, जिलाधिकारी से पर्यवेक्षक कानूनगो को भूमि का हस्तांतरण पूर्णतः अकल्पनीय था। विद्वान अधिवक्ता ने कथन किया कि किसी भी विधि के अंतर्गत ऐसा कोई प्रावधान नहीं है कि स्वंय जिलाधिकारी भूमि को किसी अन्य राज्य प्राधिकारी अर्थाता पर्यवेक्षक कानूनगो को हस्तांतरित कर देगा।

उनका कहना है कि यदि कोई स्थानांतरण हुआ भी था तो जिलाधिकारी को स्वयं अथवा उनकी ओर से किसी को कब्जा लेना चाहिए था। चूंकि विद्वान अधिवक्ता ने 2018(4) ए.डी.जे. 749 के पैरा संख्या 19, 20 व 21 पर अत्यधिक बल दिया है, उसे यहां पुनः प्रस्तुत किया जा रहा हैः-

"19. उपरोक्त विधि को वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू करने पर, प्रथम उदाहरण में हम पाते हैं कि याचिकाकर्ताओं के पिता, जो कि भूमिधारी थे, को अधिनियम, 1976 की धारा 10 (6) के अंतर्गत अपेक्षित कोई नोटिस नहीं दिया गया है। धारा 10(5) के अंतर्गत नोटिस के पश्चात, चूंकि भूमिधारी ने कब्जा नहीं छोड़ा, इसलिए प्रत्यर्थीगण के लिए धारा 10(6) के अंतर्गत बलपूर्वक कब्जा लेने के लिए अधिकृत करने के लिए नोटिस जारी करना अनिवार्य था। दूसरे उदाहरण में हमें कब्जे का वह मेमो मिलता है जिस पर प्रत्यर्थीगण ने काफी विश्वास व्यक्त किया है और जिसे धारा 10(6) के अंतर्गत कब्जे की सुपुर्दगी देने के साक्ष्य के दस्तावेज के रूप में जवाबी शपथपत्र में प्रस्तुत किया गया है तथा विद्वान अपर महाधिवक्ता द्वारा इसका जोरदार बचाव किया गया है, हम यह पाया गया कि इस दस्तावेज में भूमिधारी के हस्ताक्षर नहीं हैं और इसके अतिरिक्त, यह दस्तावेज ऐसे बयान को भी स्वीकार करता है जो भूमिधारी को बलपूर्वक बेदखल करने के मेमो के मामले में समझ से परे है। दस्तावेज में यह लिखा है कि जिलाधिकारी निर्धारित प्राधिकारी के आदेश के अंतर्गत पर्यवेक्षक कानूनगो को कब्जा दे रहा है। हम यह समझने में असफल हैं कि जिलाधिकारी पर्यवेक्षक कानूनगो को कब्जा कैसे देगा जबकि कानून में यह है कि जिलाधिकारी की ओर से कब्जा लेना है। कब्जा मेमो केवल यह प्रमाणित करता है कि भूमि का कब्जा अमुक गवाहों की उपस्थिति में लिया गया है। ऊपर उद्धृत प्रमाणों से, हमें विश्वास है कि बलपूर्वक बेदखल करने के मामलों में, जिन साक्षीगणों ने हस्ताक्षर किए हैं वे जनता से होने चाहिए। यदि एक राजस्व अधिकारी साक्षी के रूप में हस्ताक्षर करता है और दूसरा राजस्व अधिकारी अन्य राजस्व अधिकारी को भूमि सौंपता है, तो ऐसा दस्तावेज केवल एक दिखावा होगा। यह वास्तव में एक खेदजनक स्थिति है कि राजस्व अधिकारियों ने न केवल इस दस्तावेज का बचाव किया है, अपितु अपने तर्कों में इसका उल्लेख भी किया है कि इस दस्तावेज के आधार पर कब्जे की सुपुर्दगी प्रभावी ढंग से ली गई है। रिट याचिका में यह तर्क उठाया गया कि कथित कब्जा मेमो में कब्जा देने वाले व्यक्ति के हस्ताक्षर याचिकाकर्ताओं के पिता राम सिंह के नहीं हैं। जिलाधिकारी ने अपने पत्र दिनांकित 09.07.2017 में इस तथ्य को स्वीकार किया है कि कब्जा देने वाले व्यक्ति नायब तहसीलदार अर्थात् राम आसरे वर्मा है। इस प्रकार, रिट याचिका में उठाए गए तर्क को स्वीकार किया गया है कि यह भूमिधारी राम सिंह नहीं था, जिसने कब्जा सौंपा था। इन परिस्थितियों में, हम यह मानने के लिए बाध्य हैं कि अधिनियम, 1976 की धारा 10(6) के अंतर्गत याचिकाकर्ताओं के पिता से कोई बलपूर्वक बेदखली नहीं की गई थी और उन्होंने कब्जा बनाए रखा और उनकी मृत्यु के पश्चात याचिकाकर्ताओं का कब्जा हो गया और प्रश्नगत भूमि पर उनका वास्तविक भौतिक कब्जा बना हुआ है और वे निरसन अधिनियम के लाभ के हकदार हैं।

20. इस प्रकार, उपरोक्त के दृष्टिगत, प्रश्नगत भूमि के संबंध में, निरसन अधिनियम, 1999 के अंतर्गत सीलिंग की कार्यवाही समाप्त हो गई है तथा प्रत्यर्थीगण को किसी भी प्रकार से याचिकाकर्ताओं के प्रश्नगत भूमि के कब्जे में हस्तक्षेप करने से रोका

जाता है और राजस्व अधिकारियों को तदनुसार भूमि अभिलेखों में आवश्यक सुधार करने का निर्देश दिया जाता है।

21. इस मामले में, हम अत्यंत विचित्र परिस्थिति पाते है जहां राजस्व अधिकारियों ने कब्जे की सुपुर्दगी दिखाते हुए एक हेरफेर किया हुआ दस्तावेज तैयार किया और उसके पश्चात, उक्त दस्तावेज के आधार पर मामले को पूरी तरह से जानते हुए भी प्रतिवाद किया कि दस्तावेज कब्जे के मेमो का वैध दस्तावेज नहीं है तथा अधिनियम, 1976 की धारा 10(6) के अंतर्गत कभी कोई नोटिस नहीं दिया गया है। याचिकाकर्ताओं को न केवल अनावश्यक रूप से परेशान किया गया है और वर्तमान मुकदमेबाजी के लिए मजबूर किया गया है, अपितु प्रत्यर्थीगण ने बहुत ही हानिकारक प्रकार से इस मुद्दे का धोखाधड़ी के आधार पर प्रतिवाद किया है। यदि हम राज्य के प्रत्यर्थीगण के आचरण को नजरअंदाज कर देते तो हम अपने कर्तव्य में असफल हो जाते। राज्य प्राधिकारियों से अपेक्षा की जाती है कि वे सही तथ्य और अत्यंत ईमानदारी के साथ प्रस्तुत करें, परन्तु वर्तमान मामले में हमें इसकी सबसे अधिक कमी नजर आती है। विधि के अनुसार तैयार किए गए दस्तावेज को प्रस्तुत करना, कई दोषों के कारण गलत हो सकता है, परन्तु किसी दस्तावेज को अवैध होने के बावजूद विधिक रूप से निष्पादित दस्तावेज के रूप में प्रस्तुत करना, न्यायिक कार्यवाही के दौरान एक अनुचित कार्य और आचरण है। हम हैरान हैं कि मामले के दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में अपना पक्ष छोड़ने के बजाय, राज्य के प्रत्यथीगण ने न केवल तर्कों के माध्यम से दस्तावेज का बचाव किया, अपितु बचाव में तर्क भी दिए। हमारी सुविचारित राय है कि इस मुकदमे को राज्य के अधिकारियों द्वारा विवश किया गया है क्योंकि उन्होंने अवैध रूप से सीलिंग की कार्यवाही को समाप्त नहीं मानते हुए, याचिकाकर्ताओं के दावे की अनुमति नहीं दी और इसलिए याचिकाकर्ता अनुकरणीय हर्जे का हकदार है। याचिकाकर्ता उस हर्जे के हकदार हैं जिसकी मात्रा हम 2 लाख रुपये के रूप में निर्धारित करते हैं। हर्जे का भुगतान पहली बार में ही राज्य द्वारा याचिकाकर्ताओं को किया जाएगा। हालाँकि, राज्य उन व्यक्तियों से उक्त राशि वसूल करने के लिए स्वतंत्र होगा, जो लापरवाही और उपेक्षा और जानबूझकर धोखाधड़ी करने और जाली आधिकारिक दस्तावेज बनाने, के ऐसे कृत्य के लिए जिम्मेदार हैं।''

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आगे कहा कि वर्ष 1983 में जारी किए गए निर्देश का पूरी तरह से गैर-अनुपालन हुआ था, जिसे उत्तर प्रदेश शहरी भूमि सीमा (राशि और संबद्ध मामलों का कब्जा भुगतान लेना) निर्देश, 1983 कहा जाता था।

चूंकि यू.एल.सी. प्रपत्र-1, 2 और 3 को विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा न्यायालय में प्रस्तुत किया गया, न्यायालय ने उनका अवलोकन किया और पाया कि निश्चित रूप से वह खंड जहां यह उल्लेख किया जाना था कि कब्जा ले लिया गया है, उसको विधि अनुसार नहीं भरा गया था तथा इस तथ्य पर याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने काफी बल दिया।

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आगे कहा कि रिट याचिका के पैरा सं0 11 में याचिकाकर्ता ने निम्न प्रकार कहा थाः-

"11. यह कि, याचिकाकर्ता अभी भी विवादित भूमि पर भौतिक कब्जा रखता है और कृषि कार्य कर रहा है।''

उन्होंने कथन किया कि इस पैरा का उत्तर प्रति शपथ पत्र के पैरा सं0 16 में दिया गया था। चूँकि याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने पैरा सं0 16

पर विश्वास व्यक्त किया, इसे यहां निम्न प्रकार से पुनः प्रस्तुत किया जा रहा हैः-

"16. यह कि रिट याचिका के पैरा सं0 11 की अन्तर्वस्तु को खारिज कर दिया गया है। याचिकाकर्ता का कथित कब्जा अवैध है और उस कब्जे के आधार पर याचिकाकर्ता निरसन अधिनियम के अंतर्गत किसी भी राहत का हकदार नहीं है।''

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कथन किया कि याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 07.02.2017 को दाखिल पूरक शपथ पत्र के पैरा सं0 6 में कहा गया कि याचिकाकर्ता का प्रश्नगत भूमि पर कब्जा था। अनुपूरक शपथपत्र के पैरा सं0 6 को यहां निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया जा रहा हैः-

"6. यह कि विवादित भूमि पर याचिकाकर्ता का वास्तविक कब्जा खसरा 1420 फसली से स्पष्ट है। जिसकी प्रति याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 26.11.2016 को प्राप्त की गई। खसरा 1420 फसली का उद्धरण इसके साथ दाखिल किया जा रहा है और इस पूरक शपथ पत्र में परिशिष्ट सं0 एस.ए.-3 के रूप में चिह्नित किया गया है। खसरे में, फसल की खेती पूर्व से ही दर्ज है जो विवादित भूमि पर याचिकाकर्ता के पूर्ववर्ती के वास्तविक कब्जे को दर्शाती है।''

अनुपूरक प्रतिशपथपत्र के पैरा सं0 9 में उत्तर दिया गया कि हालांकि कब्जा था, जो कि अवैध था। चूंकि याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रति शपथपत्र का पैरा 9 पढ़ा गया, इसलिए उसे यहां निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया जा रहा हैः-

"9. यह कि पैरा सं0 6 की अन्तर्वस्तु, जैसा कहा गया है, स्वीकार नहीं किया गया है, इसलिए अस्वीकार कर दिया जाता है। सही तथ्य यह है कि वर्ष 1420 फसली के खसरे में कृषि एवं शहरी सीमा दोनों दर्ज है। उपरोक्त से यह स्पष्ट है कि प्रश्नगत भूमि पर कृषि अवैध है तथा अतिक्रमण के समान है तथा याचिकाकर्ता का किसी भी प्रकार का कब्जा अवैध है। उपरोक्त तथ्यों को इस माननीय न्यायालय द्वारा रिट याचिका सं0 28180/2007 (सुरेश कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य) तथा रिट याचिका संख्या 37193/2017 (सुरेश कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य) में दिए गए निर्णयों से भी बल मिलता है जिसमें माननीय न्यायालय ने यह निर्णय लेते हुए प्रसन्नता व्यक्त की है कि इस प्रकार के कृषि उपयोग को अवैध और अनधिकृत माना जाएगा।''

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आगे कहा कि याचिकाकर्ता के पास रिट याचिका दायर करने का अधिकार था जैसा कि उसने रिट याचिका में ही कहा था कि उसे वसीयत दिनांकित 27.05.2003 के कारण संबंधित संपत्ति विरासत में मिली थी। इस तथ्य का उल्लेख रिट याचिका के पैरा सं0 9 में किया गया। रिट याचिका का पैरा सं0 9 जिसमें इस तथ्य को बताया गया है, को यहां निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया जा रहा हैः-

''9. यह कि, भीखू ने दिनांक 27.05.2003 को याचिकाकर्ता के पक्ष में एक अपंजीकृत वसीयत निष्पादित की है। भीखू द्वारा याचिकाकर्ता के पक्ष में निष्पादित अपंजीकृत वसीयत दिनांकित 27.05.2003 की सत्यापित/फोटोस्टेट प्रति इस रिट याचिका के साथ परिशिष्ट सं0 6 के रूप में दाखिल की जा रही है।''

राज्य के प्रतिशपथपत्र में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कथन किया कि राज्य ने पैरा सं0 8 व 9 की अन्तर्वस्तु को प्रति शपथपत्र के पैरा सं0 14 में मात्र अस्पष्ट रूप से अस्वीकार कर दिया था। प्रति शपथ पत्र के पैरा सं0 14 को यहां निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया जा रहा हैः-

"14. यह कि रिट याचिका के पैरा सं0 8 व 9 की अन्तर्वस्तु याचिकाकर्ता की विशेष जानकारी में हैं, इसलिए उन्हें इसके संबंध में विशुद्ध साक्ष्य देने होंगे।''

राज्य का प्रतिनिधित्व अपर महाधिवक्ता श्री एम.सी. चतुर्वेदी, वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा किया गया, जिनकी सहायता श्री मोहन श्रीवास्तव और सुश्री शुभ्रा सिंह, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने की। वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एम.सी. चतुर्वेदी ने कथन किया कि सर्वप्रथम याचिकाकर्ता के पास कोई वाद अधिकार नहीं था क्योंकि वह केवल वास्तविक भूमिधारी भीखू का उत्तराधिकारी था, जिसकी मृत्यु दिनांक 09.06.2003 को हो गई थी। उन्होंने कहा कि यदि राज्य द्वारा कब्जा लिए जाने पर कोई आपत्ति की जानी थी तो भीखू को आगे आना चाहिए था। दूसरे, विद्वान अपर महाधिवक्ता ने कथन किया कि प्रश्नगत भूखंडों का कब्जा पूर्व में दिनांक 22.1.1987 को वापस ले लिया गया था और इसलिए, याचिकाकर्ता ने अत्यंत विलम्ब से उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया था।

मामले के अभिलेख विद्वान अपर महाधिवक्ता द्वारा सीलबंद लिफाफे में पेश किये गये और उन्होंने मूल दस्तावेज दिखाए जिनके द्वारा कब्जा लिया गया था। यह दस्तावेज भी अनुलग्नक सं0 सी.ए.-1 के रूप में दिनांक 19.03.2005 को प्रति शपथपत्र के साथ दाखिल किया गया था। इसलिए, विद्वान अपर महाधिवक्ता ने कथन किया कि याचिकाकर्ता यह तर्क नहीं दे सका कि वो कब्जाधारी था।

इसके पश्चात विद्वान अपर महाधिवक्ता ने आगे कहा कि वैधानिक आदेश के अनुसार 1976 के अधिनियम की धारा 10(5) के अंतर्गत आदेश पारित होने के बाद नोटिस जारी करने की कोई आवश्यकता नहीं थी। इसलिए, विद्वान अपर महाधिवक्ता ने कथन किया कि मामले में योग्यता नहीं थी और तदनुसार रिट याचिका खारिज की जानी चाहिए।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री वैभव गोस्वामी की सहायता से श्री एम.डी. सिंह शेखर, वरिष्ठ अधिवक्ता को तथा राज्य के लिए सुश्री शुभ्रा सिंह की सहायता से श्री एम.सी. चतुर्वेदी, विद्वान अपर महाधिवक्ता को और कानपुर विकास प्राधिकरण के विद्वान अधिवक्ता श्री अभिनव कृष्ण श्रीवास्तव को, सुनने के पश्चात, इस न्यायालय का मत है कि रिट याचिका स्वीकार किए जाने योग्य है।

याचिकाकर्ता वास्तविक भूमिधारी का उत्तराधिकारी है। यह संपत्ति उसे एक वसीयत के जरिए विरासत में मिली थी। वसीयत पर किसी भी न्यायालय में सवाल नहीं उठाया गया था। इसलिए, विद्वान अपर महाधिवक्ता की आपत्ति कि याचिकाकर्ता के पास कोई वाद अधिकार नहीं है, आधारहीन है। साथ ही अभिलेखों से, हम पाते हैं कि याचिकाकर्ता का विचाराधीन भूखंडों पर कब्जा था। यहां तक कि दिनांक 19.03.2005 को दाखिल प्रति शपथपत्र के पैरा सं0 16 में भी राज्य ने याचिकाकर्ता के कब्जे को स्वीकार किया था। राज्य द्वारा दिनांक 16.05.2018 को दाखिल पूरक शपथपत्र के पैरा सं0 8 में भी यही स्थिति थी। 1999 के अधिनियम के अंतर्गत, एकमात्र निर्धारण कारक यह था कि क्या राज्य सरकार ने दिनांक 18.03.1999 से पहले अतिरिक्त भूमि का वास्तविक भौतिक कब्जा ले लिया था। यह प्रश्न अप्रासंगिक है कि क्या भूमि धारकों ने 1976 के अधिनियम की धारा 8(4) के अंतर्गत पारित आदेशों को स्वीकार किया था। मात्र यह देखना था कि याचिकाकर्ता के पास कब्जा था या नहीं। वर्तमान मामले में, हम पाते हैं कि प्रति शपथपत्र के साथ अनुलग्नक-1 के रूप में दाखिल

दस्तावेज दिनांकित 22.01.1987 को तथा इसके असल को भी हमने तब देखा था जब अपर महाधिवक्ता द्वारा अभिलेख प्रस्तुत किये गये थे, वो दिखावटी दस्तावेज थे। राज्य द्वारा निश्चित रूप से कोई कब्जा नहीं लिया गया था और कब्जे का कोई वास्तविक हस्तांतरण नहीं हुआ था। यद्यपि 1976 के अधिनियम की धारा 10(6) के अंतर्गत, हम पाते हैं कि 1976 के अधिनियम की धारा 10(6) के अंतर्गत कार्रवाई करने से पूर्व नोटिस की कोई आवश्यकता नहीं है, परन्तु माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय 2013 (4) एस.सी.सी. 280 (पैरा 37) के अनुसार, 1976 के अधिनियम की धारा 10(6) के अंतर्गत कार्रवाई से पहले एक नोटिस अनिवार्य है।

ऐसी परिस्थितियों में, हम पाते हैं कि जब 1976 के अधिनियम की धारा 10 (6) के अंतर्गत कोई नोटिस नहीं था, तो कब्जे का हस्तांतरण भी नहीं हो सकता था। दस्तावेज अनुलग्नक सी.ए.-1 भी एक दस्तावेज था जो एक दिखावटी हस्तांतरण का सबूत था। भूमिधारी ने कब्जा नहीं सौंपा था। अपितु जिलाधिकारी ने पर्यवेक्षक कानूनगो को कब्जा सौंप दिया था। ऐसा नहीं किया जा सका था। इसके अलावा स्थानांतरण के साक्षी के रूप में कोई स्वतंत्र साक्षी भी नहीं था। साथ ही, हमने पाया कि यू.एल.सी. प्रपत्र 1, 2 व 3 विधि अनुसार नहीं भरे गए हैं। सब कुछ अत्यंत अनुचित तरीके से किया गया प्रतीत होता है। साथ ही चूंकि दस्तावेज दिनांकित 22.01.987 को एक दिखावटी दस्तावेज माना गया है, इसलिए निश्चित रूप से कोई स्थानांतरण नहीं हुआ था। इससे भी बड़ी बात यह है कि प्रति शपथपत्र में यह स्वीकारोक्ति है कि याचिकाकर्ता का कब्जा था, हालांकि अवैध था।

ऐसी परिस्थितियों में, रिट याचिका **स्वीकार** की जाती है। याचिकाकर्ता को प्रश्नगत भूमि से बेदखल नहीं किया जाए, जिसे अतिरिक्त भूमि घोषित किया गया है। साथ ही राजस्व प्रविष्टियों में यदि याचिकाकर्ता का नाम हटा दिया गया है तो उसे गाटा सं0 61 क्षेत्रफल 204.8 वर्ग मीटर, गाटा सं0 219 क्षेत्रफल 8106.10 वर्ग मीटर, गाटा सं0 220 क्षेत्रफल 1638.80 वर्ग मीटर, गाटा सं0 62 क्षेत्रफल 1229.10 वर्ग मीटर, गाटा सं0 63 क्षेत्रफल 4199.10 वर्ग मीटर, गाटा सं0 64 क्षेत्रफल 13127.37 वर्ग मीटर तथा गाटा सं0 61 क्षेत्रफल 1024.25 वर्ग मीटर ग्राम टीकापुरवा, मजरा बिनगवां, परगना व जिला कानपुर नगर, में बहाल किया जाए।

हम इस तथ्य से अवगत हैं कि रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान कोई अंतरिम आदेश लागू नहीं था। ऐसी परिस्थितियों में, न केवल याचिकाकर्ता का नाम राजस्व अभिलेखों में दर्ज किया जाना चाहिए, बल्कि राज्य अधिकारियों को यह भी सुनिश्चित करना चाहिए कि यदि याचिकाकर्ता को रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान जबरन बेदखल किया गया है, तो उसे संबंधित भूमि पर कब्जा दिया जाए। हम यह भी प्रदान करते हैं कि यदि बेदखली के परिणामस्वरूप कुछ अपरिवर्तनीय परिवर्तन हुए हैं, अर्थात यह कहने को कि याचिकाकर्ता को कब्जा नहीं दिया जा सकता है तो याचिकाकर्ता को भूमि को अधिग्रहित मानकर मुआवजा दिया जाए।

जो असल दस्तावेज न्यायालय को सौंपे गए थे, उन्हें सीलबंद लिफाफे में रखा जाए और संबंधित अधिकारियों को सौंपने के लिए महानिबंधक को वापस किया जाए।

(2023) 3 ILRA 414
मूल न्यायाधिकार
नागरिक पक्ष
दिनांक:इलाहाबाद 16.02.2023
समक्ष
माननीय न्यायमूर्ति महेश चन्द्र त्रिपाठी,
माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार सिंह,
रिट सी संख्या 38977/2022

मिठाई लाल एवं अन्य। ...याचिकाकर्तागण
बनाम
यूपी राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादीगण

अधिवक्ता याचिकाकर्तागण: श्री यादवेन्द्र कुमार यादव, सुश्री पूनम यादव, श्री राज करण यादव

अधिवक्ता प्रतिवादीगण: सी.एस.सी., श्री रवि प्रकाश पांडे

A. भारतीय संविधान - अनुच्छेद 226 - रिट - पोषणीयता - अभाव - भूमि को दिनांक 03.06.1981 को शहरी भूमि (सीलिंग और विनियमन) अधिनियम, 1976 की धारा 8(3) के तहत अधिशेष भूमि घोषित किया गया - प्रकाशन भी किया गया - सीलिंग अधिनियम की धारा 33 के तहत वैधानिक अपील का कोई उपाय नहीं किया गया - सीलिंग अधिनियम की धारा 45 के तहत दायर आवेदन भी वर्ष 1998 में निरस्त कर दिया गया - प्रभाव - याचिकाकर्ताओं ने 40 से अधिक वर्षों के विलंब के पश्चात धारा 10 (6) के तहत कब्जे और नोटिस का वाद उठाया है और इस विलंब का कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है - प्रभाव - न्यायिक सिद्धांत, अर्थात, "विलंब समानता का अभाव" का पूर्ण रूप से अनुच्छेद 226 के तहत अनुतोष प्रदान करने के वाद में उपयोग होता है - शाह हैदर बेग के निर्णय पर निर्भरता व्यक्त किया गया - आयोजित, रिट याचिका अत्यधिक समयबद्ध है और रिट याचिका में अत्यधिक देरी का कोई कारण नहीं दिया गया है। (पैरा 10, 12 और 19)

रिट याचिका निरस्त। (E-1)

उद्धृत वाद सूची :-

1. लल्ला और अन्य बनाम राज्य यूपी और अन्य; 2014 AIR (107) 484
2. राज्य बनाम हरिराम; JT 2013 (4) SC 275
3. राज्य असम बनाम भास्कर ज्योति शर्मा और अन्य; (2015) 5 SCC 321
4. रिट याचिका संख्या 91/2006; लालजी चौबे बनाम राज्य एम.पी. और अन्य
5. रिट सी संख्या 41628 / 2011; श्रीमती कलावती देवी बनाम राज्य यूपी और अन्य, निर्णय दिनांक 18.1.2023
6. रिट सी संख्या 69115 / 2009; लाल सिंह और अन्य बनाम सक्षम प्राधिकरण शहरी भूमि सीलिंग और विनियमन और अन्य, निर्णय दिनांक 23.1.2023
7. देहरी रोहतास लाइट रेलवे बनाम जिला बोर्ड भोजपुर और अन्य; (1992) 2 SCC 598
8. शिवगोंडा अन्ना पाटिल बनाम राज्य महाराष्ट्र; (1999) 3 SCC 5
9. नगर परिषद, अहमदनगर बनाम शाह हैदर बेग; (2000) 2 SCC 48
10. यूपी जल निगम और अन्य बनाम जसवंत सिंह और अन्य; (2006) 11 SCC 464
11. तुकाराम काना जोशी और अन्य बनाम MIDC और अन्य; (2013) 1 SCC 353

12. राज्य असम बनाम भास्कर ज्योति शर्मा और अन्य; (2015) 5 SCC 321

13. शिव राम सिंह बनाम राज्य यूपी और अन्य; 2015 (7) ADJ 630

14. कपिलाबेन अंबालाल पटेल और अन्य बनाम राज्य गुजरात; 2021 (12) SCC 95

15. रिट सी संख्या 41628 / 2011; श्रीमती कलावती देवी बनाम राज्य यूपी और अन्य, निर्णय दिनांक 18.01.2023

माननीय महेश चंद्र त्रिपाठी.जे.
माननीय विवेक कुमार सिंह, जे.

1. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री राज करण यादव को सुना गया; श्री राज मोहन उपाध्याय, राज्य प्रत्यर्थी संख्या के लिए विद्वान स्थायी अधिवक्ता। 1 से 2 और श्री रवि प्रकाश पांडे, वाराणसी विकास प्राधिकरण के विद्वान अधिवक्ता।

2. इस याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ताओं ने निम्नलिखित राहत की प्रार्थना की है:-

"ए. उपरोक्त रिट याचिका में अनुलग्नक संख्या 4 और 5 के रूप में प्रतिवादी नंबर 2 द्वारा पारित आदेश दिनांक 18.03.1998 के साथ-साथ 20.04.2022 को रद्द करने के लिए सर्टिओरी की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें।

बी. प्रतिवादियों को केस संख्या 323/1613/2166/80-81 (राज्य बनाम मुसमात, बच्चन सिंह की पत्नी) ग्राम सुसुवाही, परगना देहात की कार्यवाही को समाप्त करने का निर्देश देते हुए परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें। अम्मानत, जिला वाराणसी, शहरी भूमि (सीमा और विनियमन) निरसन अधिनियम, 1999 (1999 का अधिनियम संख्या 15) की धारा 3 (2) (ए) के तहत।

सी. परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें जिसमें उत्तरदाताओं को ग्राम सुसुवाही, परगना देहात अम्मानत, जिला वाराणसी में स्थित भूमि धारक के नाम पर राजस्व रिकॉर्ड को सही करने का निर्देश दिया जाए।"

3. भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत इस रिट याचिका को कार्यालय द्वारा आक्षेपित आदेश के पारित होने की 90 दिनों की सामान्य अवधि से 142 दिन अधिक बताया गया है।

4. मामले के तथ्य संक्षेप में यह हैं कि याचिकाकर्ता संख्या 1 से 4 के पिता और याचिकाकर्ता संख्या 5-12 बच्चन के दादा की मृत्यु 17.02.1976 से पहले हो गई थी। मूल मालिक अर्थात् बच्चन की भूमि को अधिशेष घोषित करने के लिए, कलेक्टर/सक्षम प्राधिकारी, शहरी भूमि सीमा, वाराणसी ने शहरी भूमि (सीमा और विनियमन) अधिनियम, 1976 के प्रावधानों के तहत एक मामला स्थापित किया और इसलिए, याचिकाकर्ता संख्या 1 से 4 की मां ने धारा 6 के तहत सीलिंग रिटर्न दाखिल किया (1) सीलिंग एक्ट का. मामले को केस के रूप में दर्ज किया गया क्रमांक 323/1613/2166/80-81 (**राज्य बनाम मुसमात केवली, ग्राम सुसुवाही, परगना देहात अम्मानत, जिला वाराणसी**) एवं एक सूचना सीलिंग अधिनियम की धारा 8(3) के तहत मूल पर तामील किया गया था ।

1. "सीलिंग एक्ट"

10.3.1981 को मालिक। उसने 30 दिनों के भीतर नोटिस पर कोई आपत्ति दर्ज नहीं की और इस प्रकार, यह माना गया कि उसे उक्त नोटिस पर कोई आपत्ति नहीं है। अंत में, सक्षम प्राधिकारी ने 03.6.1981 को मूल मालिक के स्वामित्व वाली 7097.49 वर्ग मीटर की भूमि को अधिशेष घोषित कर दिया और सीलिंग अधिनियम की धारा 9 के तहत एक मसौदा बयान और आवश्यकता के अनुसार आधिकारिक राजपत्र में एक अधिसूचना प्रकाशित की। सीलिंग अधिनियम की धारा 10(1) के अंतर्गत। इसके बाद पत्र दिनांक 03.6.1981 (रिट याचिका का अनुलग्नक-1) में अधिशेष भूमि का विवरण बताते हुए कलेक्टर को निर्देशित किया गया कि वे प्रश्नाधीन भूमि पर कब्जा लेने की कार्यवाही करें।

5. याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील का कहना है कि याचिकाकर्ताओं के पिता/दादा की मृत्यु 17.02.1976 से पहले हो गई थी।याचिकाकर्ता संख्या 1 से 4 की मां ने सीलिंग एक्ट की धारा 6 (1) के तहत सीलिंग रिटर्न दाखिल किया। याचिकाकर्ताओं का प्रश्नाधीन भूमि पर वास्तविक कब्ज़ा है। न तो प्रतिवादियों ने उक्त भूमि का मूल स्वामी से कब्जा लिया है और न ही उसने उत्तरदाताओं को कब्जा दिया है। उपरोक्त भूमि में प्रतिवादियों द्वारा आज तक कोई तृतीय पक्ष हित सृजित नहीं किया गया है। राज्य सरकार ने 02.4.1994 को एक सरकारी आदेश जारी कर यूपी राज्य के सभी सक्षम अधिकारियों को निर्देश दिया। कृषि भूमि के संबंध में आगे की कार्यवाही को रोकने के लिए, जिसे धारा 8 (4) के तहत सीलिंग भूमि घोषित किया गया है और धारा 10 (5) के तहत नोटिस जारी किया गया है, लेकिन कब्जा लेने के लिए धारा 10 (6) के तहत कोई कार्यवाही शुरू नहीं की गई है। उक्त सरकारी आदेश के अनुसरण में, सक्षम प्राधिकारी ने 18.3.1999 तक याचिकाकर्ताओं की सभी कृषि भूमि के संबंध में धारा 10 (6) के तहत कार्यवाही पूरी नहीं की है और धारा 10 (6) के तहत कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान, अधिनियम सं. 1976 के 33 को शहरी भूमि (सीमा और विनियमन) निरसन अधिनियम, 1999 द्वारा 18.3.1999 से निरस्त कर दिया गया है और इसलिए, मूल मालिक के खिलाफ इस मामले की सभी कार्यवाही धारा 3/4 के तहत समाप्त होने योग्य हैं। निरसन अधिनियम. यह प्रस्तुत किया गया है कि पहले याचिकाकर्ताओं ने 2021 की रिट सी संख्या 35232 (**मिठाई लाल और 11 अन्य बनाम यूपी राज्य और 2 अन्य**) को प्राथमिकता देकर इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया था।

2. निरसन अधिनियम

उत्तरदाताओं को विवाद में भूमि से बेदखल न करने का आदेश देने वाले एक परमादेश के लिए और इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने याचिकाकर्ताओं को दो महीने के भीतर प्रतिनिधित्व दाखिल करके प्राधिकरण से संपर्क करने की स्वतंत्रता के साथ 12.1.2022 को रिट याचिका का निपटारा कर दिया था। अपनी दलील के समर्थन में, उन्होंने **लल्ला और अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य** और **राज्य बनाम हरि राम** के मामले में दिए गए निर्णयों पर भरोसा जताया है।

6. इसके विपरीत, विद्वान स्थायी वकील ने कुंडी के मुद्दे पर रिट याचिका की स्थिरता के संबंध में प्रारंभिक आपत्ति उठाई है कि वर्तमान रिट

याचिका कब्जा लेने के लगभग 40 वर्षों के बाद दायर की गई है और परिणामस्वरूप, यह नहीं है मनोरंजन के पात्र हैं। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ताओं के पूर्ववर्ती हित में, सीलिंग अधिनियम के तहत कार्यवाही तैयार की गई थी और सीलिंग अधिनियम की धारा 10 (3) के तहत अधिसूचना विधिवत अधिसूचित की गई थी, जिसके बाद धारा 10 (5) के तहत नोटिस दिया गया था। सीलिंग एक्ट. सीलिंग एक्ट के तहत कार्यवाही को बहुत पहले ही अंतिम रूप दे दिया गया था और इस प्रकार, देरी और देरी के आधार पर रिट याचिका खारिज की जा सकती है। इसके समर्थन में, उन्होंने **असम राज्य बनाम भास्कर ज्योति सरमा और अन्य** में रिपोर्ट किए गए सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर भरोसा जताया है। उन्होंने **लालजी चौबे बनाम मप्र राज्य और दूसरा** में पारित इस न्यायालय की डिवीजन बेंच के फैसले पर भरोसा जताया है। जिसमें यह देखा गया कि एक बार अधिनियम, 1976 की धारा 10(5) के तहत अनुपालन हो गया है तो यह माना जा सकता है कि कब्जा विधिवत ले लिया गया है। उन्होंने **श्रीमती कलावती देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य.' और लाल सिंह एवं अन्य। सक्षम प्राधिकारी शहरी भूमि सीमा और विनियमन एवं अन्य।"** के निर्णयों पर भी भरोसा जताया है।

3. 2014 एआईआर (107) 484
4. जेटी 2013 (4) एससी 275
5. (2015) 5 एससीसी 321
6. डब्ल्यू.ए. नं.91/2006

7. 2011 की रिट-सी संख्या 41628 का निर्णय 18.1.2023 को हुआ ।
8. 2009 की रिट-सी संख्या 69115 का निर्णय 23.1.2023 को हुआ ।

7. हमने प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर विचार किया है और रिकॉर्ड पर रखी गई सामग्री का अवलोकन किया है।

8. हमने पाया कि याचिकाकर्ताओं के पिता/दादा की मृत्यु 17.02.1976 से पहले हो गई थी और इसलिए, याचिकाकर्ता संख्या 1 से 4 की मां ने सीलिंग अधिनियम की धारा 6 (1) के तहत सीलिंग रिटर्न दाखिल किया। सीलिंग अधिनियम के तहत कार्यवाही सक्षम प्राधिकारी द्वारा शुरू की गई थी, जिसे केस नंबर 323/1613/2166/80-81 (राज्य बनाम मुसमात केवली) के रूप में दर्ज किया गया था। इसके बाद, सीलिंग अधिनियम की धारा 8 (3) के तहत मूल मालिक को 10.3.1981 को नोटिस दिया गया, जिस पर उसने कोई आपत्ति दर्ज नहीं की। अंततः, सक्षम प्राधिकारी ने 03.6.1981 को मूल मालिक के स्वामित्व वाली 7097.49 वर्ग मीटर की भूमि को अधिशेष घोषित कर दिया और सीलिंग अधिनियम की धारा 9 के तहत मसौदा बयान और आधिकारिक राजपत्र में एक अधिसूचना प्रकाशित की। सीलिंग अधिनियम की धारा 10(1) की आवश्यकता। कलेक्टर को पत्र दिनांक 03.6.1981 द्वारा प्रश्नकर्ता की भूमि पर कब्जा लेने की कार्यवाही करने हेतु निर्देशित किया गया था।

9. यह विवादित नहीं है कि सीलिंग अधिनियम की धारा 10 (5) के तहत नोटिस जारी किया गया था और भूमि मालिक द्वारा इस पर कोई आपत्ति नहीं की गई थी। इसलिए, भूमि मालिक को धारा 10 (6) के तहत नोटिस जारी करने का कोई अवसर नहीं था। रिकॉर्ड यह भी दर्शाता है कि मिठाई लाल (याचिकाकर्ता नंबर 1), लालमन, राकेश बहादुर, मान बहादुर, लाल बहादुर, विजय

बहादुर स्वर्गीय बच्चन के पुत्र और स्वर्गीय बच्चन की पत्नी विधवा केवली देवी ने 07.2.1997 को एक हलफनामे द्वारा समर्थित आवेदन दायर किया था। और 21.1.1998 को सीलिंग कार्यवाही में यह कहते हुए कि उन्हें सीलिंग अधिनियम की धारा 8 (3) और धारा 9 के तहत नोटिस नहीं मिला है। वे व्यक्तिगत रूप से 1500 वर्ग मीटर भूमि पाने के हकदार थे और इसके अलावा भूमि उपयोग रिपोर्ट में कुछ विसंगतियां थीं, इसलिए, मास्टर प्लान बुलाने के बाद प्राधिकरण को आवेदकों को उनके व्यक्तिगत शेयरों के लिए अधिकार प्रदान करना होगा और तदनुसार आदेश देना होगा। दिनांक 05.7.1981 को सीलिंग एक्ट की धारा 8(4) के तहत निरस्त किये जाने योग्य था। यह इंगित करने के लिए पर्याप्त है कि उक्त राहत सीलिंग अधिनियम की धारा 45 के तहत दी गई थी, जो लिपिकीय त्रुटियों के सुधार से संबंधित है। जबकि 18.03.1998 को उक्त आवेदन पर विचार करते हुए विहित प्राधिकारी, शहरी भूमि सीलिंग ने राय दी थी कि मामला वास्तव में सीलिंग अधिनियम की धारा 45 के अंतर्गत नहीं आएगा, लेकिन यदि याचिकाकर्ता दिनांक 05.6.1981 के आदेश से असंतुष्ट हैं तो प्रभावी उपाय है धारा 33 के तहत अपील को प्राथमिकता देने के लिए और आगे देखा गया कि धारा 10 (3) के तहत अधिसूचना पहले ही अधिसूचित की जा चुकी है और विवादित भूमि को 03.6.1981 को अधिशेष घोषित कर दिया गया था और सभी बाधाओं से मुक्त राज्य में निहित कर दिया गया था और तदनुसार, आवेदन दिनांकित थे 07.2.1992 और 21.1.1998 को 18.3.1998 को खारिज कर दिया गया।

10. हमने आगे पाया कि रिकॉर्ड पर ऐसा कुछ भी नहीं है जो यह दर्शाता हो कि उपरोक्त आदेशों को कभी भी याचिकाकर्ताओं द्वारा चुनौती दी गई थी और माना जाता है कि सीलिंग अधिनियम की धारा 33 के तहत अपील भी नहीं की गई थी। हम यह भी देख सकते हैं कि पहले याचिकाकर्ता ने सीलिंग अधिनियम की धारा 45 के तहत अन्य दावेदारों के साथ उपरोक्त आवेदन दायर किए थे, जिन्हें वर्ष 1998 में खारिज कर दिया गया था और वास्तव में इसे अंतिम रूप दिया गया था। तब से उन्होंने इस मामले पर कोई हलचल नहीं की और वे सभी लंबे समय तक इंतजार करते रहे। अचानक वे गहरी नींद से जाग गए और उत्तरदाताओं को विवादित भूमि से याचिकाकर्ताओं को बेदखल न करने का आदेश देने वाले परमादेश के लिए 2021 की रिट सी संख्या 35232 (**मिठाई लाल और 11 अन्य बनाम यूपी राज्य और 2 अन्य**) को प्राथमिकता दी। सीलिंग अधिनियम के प्रावधानों के अनुसरण में डिवीजन बेंच द्वारा 12.1.2022 को याचिकाकर्ताओं को प्रतिनिधित्व दाखिल करके उत्तरदाताओं से संपर्क करने की स्वतंत्रता के साथ इसका निपटारा किया गया। उक्त आदेश के प्रत्युत्तर में विहित प्राधिकारी द्वारा आदेश दिनांक 20.4.2022 पारित किया गया है जिसमें दर्शाया गया है कि धारा 9, 10 (1), 10 (3) एवं 10 (5) के अनुपालन के पश्चात भूमि को अधिशेष घोषित किया गया है। यहां तक कि पूर्ववर्ती मालिकों के नाम भी हटा दिए गए और 25.1.1992 को राज्य का नाम बदल दिया गया। फलस्वरूप पत्रांक संख्या 147 दिनांक 12.12.1997 के माध्यम से अधिशेष भूमि भी वाराणसी विकास प्राधिकरण को सौंप दी गयी। इसलिए, निर्धारित. शहरी भूमि सीमा के तहत प्राधिकरण, वाराणसी के पास मामले में आगे बढ़ने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है और तदनुसार, प्रतिनिधित्व का निपटारा 20.4.2022

को किया गया था। जाहिर है याचिकाकर्ताओं ने उठाया है । 40 वर्ष से अधिक समय बीत जाने के बाद सीलिंग अधिनियम की धारा 10 (6) के तहत कब्ज़ा और नोटिस जारी करना और देरी के लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं है।

11. मामले के उक्त पहलू पर **डेहरी रोहतास लाइट रेलवे बनाम जिला बोर्ड भोजपुर और अन्य,** में विस्तार से विचार किया गया है। जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ नं.

13 निम्नानुसार:-

"वह नियम जो कहता है कि न्यायालय विलंबित और पुराने दावे की जांच नहीं कर सकता है, कानून का नियम नहीं है बल्कि विवेक के उचित और उचित प्रयोग पर आधारित अभ्यास का नियम है। प्रत्येक मामले को अपने स्वयं के तथ्यों पर निर्भर होना चाहिए। यह सब इस पर निर्भर करेगा मौलिक अधिकार का उल्लंघन क्या है और दावा किया गया उपाय क्या है और देरी कैसे हुई। जिस सिद्धांत पर देरी या देरी के आधार पर पार्टी को राहत देने से इनकार किया जाता है वह यह है कि देरी के कारण जो अधिकार दूसरों को प्राप्त हुए हैं याचिका दायर करने में तब तक परेशान होने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए जब तक कि देरी के लिए उचित स्पष्टीकरण न हो। ऐसे मामलों में देरी का निर्धारण करने के लिए वास्तविक परीक्षण यह है कि याचिकाकर्ता को समानांतर अधिकार बनाने से पहले रिट कोर्ट में आना चाहिए और इसकी समाप्ति समय किसी भी कमी या लापरवाही के लिए जिम्मेदार नहीं है। परीक्षण समय के भौतिक संचालन के लिए नहीं है। जहां आचरण को उचित ठहराने वाली परिस्थितियां मौजूद हैं, वहां जो अवैधता प्रकट होती है उसे लापरवाही के एकमात्र आधार पर कायम नहीं रखा जा सकता है। त्रिलोक चंद (सुप्रा) में जिस निर्णय पर भरोसा किया गया वह वर्तमान मामले के तथ्यों पर भिन्न है। रेलवे उपक्रम के शुद्ध मुनाफे पर आधारित लेवी अधिकार से परे थी और बाद के वर्षों से संबंधित मामले में उच्च न्यायालय की घोषणा के बाद लंबित कार्यवाही में देर से ही सही, इसकी अवैध प्रकृति पर सवाल उठाया गया है। ऐसी स्थिति में, अपीलकर्ता के दावे को देरी के एकमात्र आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता है। हमारी राय है कि उच्च न्यायालय ने रिट याचिका को समय रहते खारिज करना और मांगी गई राहत देने से इनकार करना गलत था। हालाँकि हम इस बात से सहमत हैं कि मुकदमा सही ढंग से खारिज कर दिया गया है।"

(महत्व जोड़ें)

12. इसी प्रकार, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **शिवगोंडा अन्ना पाटिल बनाम महाराष्ट्र राज्य** में सीलिंग मामलों से संबंधित देरी और खामियों पर भी विचार किया है। जहां याचिकाकर्ता ने भूमि को अधिशेष घोषित करने और राज्य सरकार में निहित होने के बाद दस साल की काफी देरी के बाद संपर्क किया था और रिट याचिका को उच्च न्यायालय द्वारा सरसरी तौर पर खारिज कर दिया गया था और इसे सर्वोच्च न्यायालय ने भी मंजूरी दे दी थी। माननीय शीर्ष न्यायालय ने भी विचार किया है । अनुच्छेद 226 के तहत याचिका को प्राथमिकता देने में देरी और देरी भारत का संविधान **नगरपालिका परिषद, अहमदनगर बनाम शाह हैदर बेग"** में।

9. (1992) 2 एससीसी 598

10. (1999) 3 एससीसी 5

और यह माना कि न्यायसंगत सिद्धांत, अर्थात्, "विलंब दोष इक्विटी" का संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत राहत देने के मामले में पूर्ण आवेदन है।

13. सुप्रीम कोर्ट ने **यू.पी. जल निगम एवं अन्य बनाम. जसवन्त सिंह और एक अन्य** ने अनुमोदन के साथ कानून का हवाला दिया । लैचेस से संबंधित, जैसा कि इंग्लैंड के हेल्सबरी के कानून में संक्षेपित किया गया है। उपरोक्त निर्णय से प्रासंगिक उद्धरण नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

"12. कानून के विवरण को हैल्सबरी के इंग्लैंड के कानून, पैरा 911, पृष्ठ 395 में भी संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है:

"यह निर्धारित करने में कि क्या इतनी देरी हुई है कि लापरवाही हुई है, विचार किए जाने वाले मुख्य बिंदु हैं:

(1) दावेदार की ओर से सहमति; और

(ii) प्रतिवादी की ओर से स्थिति में कोई परिवर्तन हुआ हो।.

इस अर्थ में सहमति का मतलब किसी अधिकार का उल्लंघन होने पर खड़े रहना नहीं है, बल्कि उल्लंघन पूरा हो जाने और दावेदार को इसके बारे में पता चलने के बाद सहमति देना है। दावेदार को ऐसा उपचार देना अन्याय है, जहां उसने अपने आचरण से ऐसा किया है, जिसे उचित रूप से इसकी छूट के बराबर माना जा सकता है; या जहां अपने आचरण और उपेक्षा से, हालांकि उपाय को माफ नहीं करते हुए, उसने दूसरे पक्ष को ऐसी स्थिति में डाल दिया है, जिसमें उसे रखना उचित नहीं होगा यदि बाद में उपाय पर जोर दिया जाए। ऐसे मामलों में समय की चूक और देरी सबसे अधिक महत्वपूर्ण होती है। इन विचारों पर लैचेस का सिद्धांत आधारित है।"

(महत्व जोड़ें)

14. **तुकाराम काना जोशी एवं अन्य बनाम एम आई डी सी और अन्य"** में। सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रकार टिप्पणी की:-

"12. राज्य, विशेष रूप से एक कल्याणकारी राज्य जो कानून के शासन द्वारा शासित होता है, खुद को संविधान द्वारा प्रदान की गई स्थिति से परे किसी भी स्थिति में नहीं रख सकता है। हमारा संविधान एक जैविक और लचीला है। देरी और देरी को एक के रूप में अपनाया जाता है राहत देने के लिए अधिकार क्षेत्र के प्रयोग को अस्वीकार करने के लिए विवेक का तरीका। एक और पहलू है। न्यायालय को न्यायिक विवेक का प्रयोग करने की आवश्यकता है। उक्त विवेकाधिकार मामलों के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर है। विलंब और देरी अभ्यास से इनकार करने के पहलुओं में से एक है विवेक का। यह एक पूर्ण बाधा नहीं है। इसमें शमन करने वाले कारक, कारण कार्रवाई की निरंतरता आदि हो सकते हैं। इसके अलावा, यदि पूरी बात न्यायिक विवेक को झटका देती है, तो न्यायालय को विवेक का अधिक प्रयोग करना चाहिए, जब कोई तीसरा पक्ष हित न हो शामिल

है। इस प्रकार विश्लेषण करने पर, याचिका देरी और विलंब के सिद्धांत से प्रभावित नहीं होती है क्योंकि यह कोई संवैधानिक सीमा नहीं है, कार्रवाई का कारण निरंतर है और इसके अलावा यह स्थिति निश्चित रूप से न्यायिक विवेक को झकझोरती है।

13. विलंब माफ़ी का प्रश्न विवेक का है और होना ही चाहिए मामले के तथ्यों के आधार पर निर्णय लिया जाएगा, क्योंकि ये अलग-अलग होते हैं । एक मामले से दूसरे मामले में. यह इस बात पर निर्भर करेगा कि मौलिक अधिकार का उल्लंघन क्या है और दावा किए गए उपाय क्या हैं और देरी कब और कैसे हुई। यह नहीं है कि न्यायालयों के लिए अपनी शक्तियों का प्रयोग करने के लिए कोई सीमा अवधि है ।

11. (2000) 2 एस सी सी 48

12. (2006) 11 एस सी सी 464

13. (2013) 1 एस सी सी 353

अनुच्छेद 226 के तहत, न ही ऐसा कोई मामला हो सकता है जहां अदालतें एक निश्चित अवधि बीतने के बाद किसी मामले में हस्तक्षेप नहीं कर सकती हैं। ऐसा कोई मामला हो सकता है जहां न्याय की मांग इतनी प्रबल हो कि उच्च न्यायालय देरी के बावजूद हस्तक्षेप करने को इच्छुक हो। अंततः, यह न्यायालय के विवेक का मामला होगा और इस तरह के विवेक का प्रयोग निष्पक्षतापूर्वक और उचित तरीके से किया जाना चाहिए ताकि न्याय को बढ़ावा दिया जा सके न कि उसे पराजित किया जा सके। पार्टी की रक्षा की वैधता को काफी हद तक न्यायसंगत सिद्धांतों पर आजमाया जाना चाहिए। (देखें: पी.एस. सदाशिवस्वामी बनाम टी.एन. राज्य एआईआर 1974 एससी 2271; मध्य प्रदेश राज्य और अन्य बनाम नंदलाल जयसवाल और अन्य, ए आई आर 1987 एस सी 251; और त्रिदीप कुमार डिंगल और अन्य बनाम पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य, (2009) 1 एस सी सी 768;)

14. इस बारे में कोई सख्त नियम नहीं बनाया जा सकता है कि कब उच्च न्यायालय को उस पक्ष के पक्ष में अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने से इंकार कर देना चाहिए जो इसे काफी देरी के बाद स्थानांतरित करता है और अन्यथा लापरवाही का दोषी है। विवेक का प्रयोग विवेकपूर्ण और उचित ढंग से किया जाना चाहिए। यदि आवेदक द्वारा किया गया दावा कानूनी रूप से टिकाऊ है, तो देरी को माफ कर दिया जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में, जहां आचरण को उचित ठहराने वाली परिस्थितियां मौजूद हैं, वहां जो अवैधता प्रकट होती है, उसे केवल लापरवाही के आधार पर कायम नहीं रखा जा सकता है। जब पर्याप्त न्याय और तकनीकी विचार एक-दूसरे के खिलाफ खड़े हो जाते हैं, तो पर्याप्त न्याय के मुद्दे को प्राथमिकता दी जानी चाहिए, क्योंकि गैर-जानबूझकर की गई देरी के कारण दूसरा पक्ष अन्याय में निहित अधिकार का दावा नहीं कर सकता है। यदि याचिकाकर्ताओं के अधिकार वास्तव में सामने आए हैं तो अदालत को याचिकाकर्ताओं की ओर से देरी करके निर्दोष पक्षों को नुकसान नहीं पहुंचाना चाहिए। (वीडियो: दुर्गा प्रसाद बनाम आयात और निर्यात के मुख्य नियंत्रक और अन्य, एआईआर 1970 एससी

769; कलेक्टर, भूमि अधिग्रहण, अनंतनाग और अन्य बनाम एमएसटी कातिजी और अन्य, ए आई आर 1987 एस सी 1353; डेहरी रोहतास लाइट रेलवे कंपनी लिमिटेड बनाम जिला बोर्ड, भोजपुर और अन्य, ए आई आर 1993 एससी 802; दयाल सिंह और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य, ए आई आर 2003 एससी 1140; और शंकरा को-ऑप हाउसिंग सोसाइटी लिमिटेड बनाम एम. प्रभाकर और अन्य, ए आई आर 2011 एस सी 2161)।"

15. **असम राज्य बनाम भास्कर ज्योति शर्मा और अन्य** में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निम्नानुसार आयोजित किया गया था: -

"16. इस मुद्दे को दूसरे नजरिए से भी देखा जा सकता है. यह मानते हुए कि ए कब्जे वाला व्यक्ति शिकायत कर सकता है, भले ही अंतिम विश्लेषण में ज्यादा लाभ न हो, सवाल यह है कि क्या ऐसी शिकायत धारा 10(5) के कथित उल्लंघन के लंबे समय बाद की जा सकती है। यदि वास्तविक भौतिक कब्ज़ा 7 दिसंबर, 1991 को तत्कालीन भूमि मालिक से ले लिया गया था जैसा कि वर्तमान मामले में आरोप लगाया गया है, तो धारा 10(5) के आधार पर कोई भी शिकायत ऐसी बेदखली के उचित समय के भीतर की जानी चाहिए थी। यदि मालिक ने ऐसा नहीं किया, तो जबरन कब्ज़ा लेना समय की चूक से वैधता प्राप्त कर लेगा। ऐसी किसी भी स्थिति में मालिक या कब्जे वाले व्यक्ति को अधिनियम की धारा 10(5) के तहत अपना अधिकार माफ कर दिया गया माना जाना चाहिए। हमारी राय में, कोई भी अन्य दृष्टिकोण, एक वादी को शिकायत करने का लाइसेंस देगा, इसलिए नहीं कि उसे किसी वास्तविक पूर्वाग्रह का सामना करना पड़ा है जिसका निवारण किया जाना चाहिए, बल्कि केवल इसलिए कि निरसन अधिनियम की आकस्मिक परिस्थिति ने उसे अपने संबंध में मुद्दा उठाने के लिए प्रेरित किया। बेदखल करना निर्धारित प्रक्रिया का उल्लंघन है।

17. उत्तरदाताओं द्वारा इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा रखा गया था हरि राम के मामले में (सुप्रा)। हमारे विचार से, यह निर्णय बहुत अधिक लाभदायक नहीं है उत्तरदाताओं को सहायता. हम ऐसा इसलिए कहते हैं, क्योंकि यह न्यायालय हरि में था । राम के मामले (सुप्रा) पर विचार करते हुए कि क्या 'शब्द' प्रकट हो सकता है । धारा 10(5) सक्षम प्राधिकारी को जारी करने या न करने का विवेक देता है । प्रश्नगत भूमि पर भौतिक कब्ज़ा लेने से पहले एक नोटिस जारी करना धारा 10(6) के तहत. सवाल यह है कि क्या धारा 10(5) का उल्लंघन है और बिना सूचना के संभावित बेदखली बेदखली के कार्य को निष्प्रभावी कर देगी स्वयं या इसे कानून की नजर में गैर-स्थायी बनाना विचाराधीन नहीं है ।

14. (2015) 5 एस सी सी 321

18. उस मामले में। हमारी राय में, धारा 10(5) जो निर्धारित करती है वह कार्रवाई का एक सामान्य और तार्किक तरीका है जिसका पालन अधिकारियों द्वारा धारा 10(6) के तहत कब्जेदार को बेदखल करने के लिए बल का उपयोग करने का निर्णय लेने से पहले किया जाना चाहिए। मौजूदा मामले में यदि दिसंबर 1991 में पूर्ववर्ती मालिक को बेदखल करने के संबंध में अपीलकर्ता का बयान सही है, तो यह तथ्य कि धारा 10(5)

के तहत बिना किसी नोटिस के इस तरह की बेदखली की गई थी, इसका कोई परिणाम नहीं होगा और यह अधिनियम को खराब या नष्ट नहीं करेगा। निरसन अधिनियम की धारा 3 के प्रयोजनों के लिए कब्ज़ा लेना। ऐसा इसलिए है क्योंकि भाबादेब सरमा-तत्कालीन मालिक ने अपने जीवनकाल के दौरान किसी भी स्तर पर धारा 10(5) के उल्लंघन के आधार पर कोई शिकायत नहीं की थी, जिसका अर्थ यह हो कि उन्होंने ऐसा करने का अपना अधिकार छोड़ दिया था।

19. इस तर्क के समर्थन में कि उत्तरदाताओं के पास आज भी प्रश्नाधीन भूमि का वास्तविक भौतिक कब्ज़ा है, निर्भरता कुछ बिजली बिलों और टेलीफोन कनेक्शन के लिए भुगतान किए गए बिलों पर रखी गई है जो किसी श्री सनातन वैश्य के नाम पर थे। यह तर्क दिया गया कि श्री सनातन वैश्य कोई और नहीं बल्कि प्रतिवादियों की संपत्ति के देखभालकर्ता थे। हालाँकि, उस दावे को पुष्ट करने के लिए रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं है। टेलीफोन बिल और बिजली बिल भी 2001 के बाद की अवधि के ही हैं। हमारे समक्ष रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं है और न ही उच्च न्यायालय के समक्ष ऐसा कुछ रखा गया है जो यह सुझाव दे कि 7 दिसंबर, 1991 से दिसंबर, 2003 में जीएमडीए को संबंधित भूमि आवंटित होने की तारीख के बीच मालिक या उनके निधन के बाद उनके कानूनी उत्तराधिकारी बने रहे। कब्जे में हो. हमारे पास पार्टियों के प्रतिद्वंद्वी दावे हैं जो उनके समर्थन में हलफनामों पर आधारित हैं। हमने बार-बार पार्टियों के विद्वान वकील से पूछा कि क्या वे ज्ञानबा दिलावरसिंह जडेगा (सुप्रा) के मामले में फैसले की सादृश्यता पर रिमांड पर, कोई दस्तावेजी सबूत पेश कर सकते हैं जो उच्च न्यायालय को वास्तविक कब्जे के संबंध में निष्कर्ष दर्ज करने में सक्षम करेगा। . वे ऐसे किसी भी सबूत को इंगित या संदर्भित करने में असमर्थ थे। ऐसा होने पर यह प्रश्न कि क्या वास्तविक भौतिक कब्ज़ा लिया गया था, तथ्य का एक गंभीर रूप से विवादित प्रश्न बना हुआ है, जो संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत कार्यवाही में उच्च न्यायालय द्वारा संतोषजनक निर्धारण के लिए उत्तरदायी नहीं है, भले ही उच्च न्यायालय कुछ मामलों में अपने विवेक से काम ले। ऐसे दृढ़ संकल्प पर स्थितियाँ। इसलिए, बेदखली के सवाल पर निष्कर्ष निकालने के लिए उच्च न्यायालय को भेजा गया रिमांड हमें कोई व्यवहार्य समाधान प्रतीत नहीं होता है।"

(हमारे द्वारा दिया गया जोर)

16. माननीय सर्वोच्च न्यायालय का उपरोक्त के निर्णय **भास्कर ज्योति शर्मा और अन्य** (सुप्रा) में समन्वय का पालन किया गया है । इस न्यायालय की खंडपीठ ने **शिव राम सिंह बनाम यूपी राज्य** के मामले में और अन्य जिनमें रिट याचिका निम्नलिखित टिप्पणियों के साथ निम्न आधार पर खारिज कर दी गई थी: -

"हमें विशेष रूप से मामले के दूसरे पहलू पर भी ध्यान देना चाहिए भास्कर ज्योति सरमा सुप्रीम कोर्ट के हालिया फैसले के संबंध में (सुप्रा)। याचिकाकर्ता ने 2002 में लगभग तीन बार पहली रिट याचिका दायर की निरसन अधिनियम लागू होने के वर्षों बाद। पहले की रिट के बाद जिलाधिकारी को पारित करने का निर्देश देकर याचिका निस्तारित कर दी गयी । याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन पर आदेश पारित किया गया । 10

मई 2007 को जिला मजिस्ट्रेट। इसके बाद याचिकाकर्ता ने इंतजार किया । जुलाई में वर्तमान रिट याचिका दायर होने तक दो साल से अधिक की अवधि 2009. यदि याचिकाकर्ता को उचित सूचना के बिना भूमि से बेदखल कर दिया गया था । धारा 10(5) के तहत, ऐसी शिकायत यहां उठाई जा सकती थी । प्रासंगिक समय. वास्तव में, यह हमेशा से राज्य का मामला रहा है ।

15. 2015 (7) ए डी जे 630

धारा 10(5) के तहत एक नोटिस, वास्तव में, वर्तमान मामले में जारी किया गया था जो कि मूल फ़ाइल से लिया जाएगा जिसे न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया है। मुद्दा यह है कि क्या ऐसी शिकायत लंबे समय बाद न्यायालय के समक्ष की जा सकती है। याचिकाकर्ता ने निरसन अधिनियम लागू होने के बाद पहली रिट याचिका दायर करने के लिए लगभग तीन साल तक इंतजार किया था और उसके बाद जिला मजिस्ट्रेट के निष्कर्ष के बावजूद कि 25 तारीख को कब्जा ले लिया गया था, प्रतिनिधित्व के निपटान के बाद दो साल से अधिक की अवधि तक इंतजार किया था। जून 1993। हमारे विचार में, किसी भी स्थिति में, इतनी देर से दी गई चुनौती पर विचार नहीं किया जाना चाहिए।"

(हमारे द्वारा दिया गया जोर)

17. कपिलाबेन अंबालाल पटेल और अन्य बनाम गुजरात राज्य", में शीर्ष अदालत ने देरी और देरी पर विस्तार से विचार किया है और अत्यधिक देरी के आधार पर मूल भूमि धारक के कानूनी उत्तराधिकारियों/प्रतिनिधियों द्वारा दायर याचिका को स्वीकार करने से इनकार कर दिया है। फैसले का प्रासंगिक पैराग्राफ यहां नीचे दिया गया है:-

"व्यथित महसूस करते हुए, भूमि मालिकों ने इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है। यह आग्रह किया गया है कि प्रतिवादी राज्य द्वारा दावा किए गए तथ्य को साबित करने के लिए कोई सबूत नहीं है कि प्रश्न में भूमि का भौतिक कब्ज़ा 20-3-1986 को ले लिया गया है। यह केवल कब्ज़ा पंचनामा के रूप में एक कागज़-कब्जा था। अपीलकर्ताओं के अनुसार, निरसन अधिनियम की तारीख के अनुसार विषय भूमि का वास्तविक कब्ज़ा महत्वपूर्ण है और 1976 के तहत राज्य अधिकारियों की सभी कार्रवाइयों को समाप्त करने में शामिल है। अधिनियम। भूमि को राज्य में निहित करने के संबंध में 1976 अधिनियम की धारा 10(3) के तहत अधिसूचना जारी करना ही निरसन अधिनियम के प्रयोजनों के लिए पर्याप्त नहीं है। विनायक काशीनाथ शिल्कर बनाम कलेक्टर और सक्षम प्राधिकारी पर भरोसा रखा गया है। , (2012) 4 एससीसी 718, यूपी राज्य बनाम हरि राम (2013) 4 एससीसी 280, गजानन कमल्या पाटिल बनाम अतिरिक्त कलेक्टर और सक्षम प्राधिकारी (यूएलसी) (2014) 12 एससीसी 523 और मंगलसेन बनाम यूपी राज्य (2014)) 15 एससीसी 332। इस न्यायालय का सुसंगत दृष्टिकोण यह है कि राज्य के अधिकारियों द्वारा भौतिक कब्ज़ा अवश्य लिया जाना चाहिए, ऐसा न करने पर निरसन अधिनियम के कारण कार्यवाही समाप्त हो जाएगी। अपीलकर्ताओं ने यह दिखाने के लिए राजस्व रिकॉर्ड पर भरोसा किया है कि 20-3-1986 को कब्ज़ा पंचनामा बनने के बाद भी अपीलकर्ताओं/ज़मींदारों के पास लगातार कब्ज़ा बना रहा। राजस्व प्रविष्टियों का अनुमानित मूल्य है और प्रतिवादी राज्य इसका खंडन करने में विफल रहा है।

"इसके अलावा, जो कुछ भी दावा किया गया है वह यह है कि उच्च न्यायालय ने गलती की है । यह मानते हुए कि रिट याचिका दायर करने में 14 साल की देरी हुई थी

इस बात की सराहना नहीं की जा रही है कि 1976 अधिनियम की धारा 10(5) के तहत नोटिस दिनांकित है 23-1-1986, अम्बालाल परसोत्तमभाई पटेल को उनकी तरह सेवा नहीं दी गई । 31-12-1985 को पहले ही समाप्त हो चुका था और उन्हें भेजा गया नोटिस जल्द ही वापस कर दिया गया था । 2-2-1986 को टिप्पणी के साथ नहीं भेजा गया "उक्त मालिक की मृत्यु हो गई है"। इसके अलावा, कानूनी अंबालाल परसोत्तमभाई पटेल के उत्तराधिकारियों को सेवा दी जानी चाहिए थी । नोटिस में कहा गया है... चाहे जो भी हो, हम इसे उलटने के इच्छुक नहीं हैं । उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा दर्ज निष्कर्ष कि रिट अपीलकर्ताओं द्वारा दायर याचिका में निराशाजनक देरी हुई और इसका खामियाजा भुगतना पड़ा । वर्तमान मामले के तथ्यों में यह एक संभावित दृष्टिकोण है।"

18. हाल ही में इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने भी विचार किया है । सीलिंग अधिनियम और निरसन अधिनियम बाद के क्रेता के लिए मान्य है

16. 2021 (12) एस सी सी 95

श्रीमती कलावती देवी बनाम यूपी राज्य और अन्य" और 18.1.2023 को रिट याचिका को इस आधार पर खारिज कर दिया कि मालिक ने कभी भी किसी प्राधिकरण या अदालत के समक्ष अपनी बेदखली का विरोध या आंदोलन नहीं किया। इन परिस्थितियों में, बाद का खरीदार प्रक्रिया को चुनौती नहीं दे सकता है। विक्रय विलेख के प्रारंभ में ही शून्य होने के आधार पर विलंबित चरण में बेदखली का। निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ संख्या 22, 23 और 24 को यहां नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

"22. अधिनियम की धारा 10(1) के तहत नोटिस की तारीख से 16 साल बाद याचिकाकर्ता को धारा 10(5) के तहत नोटिस जारी करने का सवाल ही नहीं उठता। राज्य ने बहुत पहले 1981 में ही जमीन के मालिक से कब्जा ले लिया था। 1994 में भूमि के बाद के हस्तांतरण, उसके बाद याचिकाकर्ता के नाम का उत्परिवर्तन, याचिकाकर्ता के अधिकार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। कानून की नजर में, पूर्व मालिक द्वारा अधिशेष भूमि का हस्तांतरण अमान्य है। यानी शून्य एब-इनिशियो याचिकाकर्ता को कोई अधिकार या स्वामित्व प्रदान नहीं करेगा। अधिनियम के तहत कार्यवाही समाप्त होने के बाद, राज्य द्वारा कब्जा लेने पर याचिकाकर्ता का कब्जा, केवल राज्य भूमि के अतिक्रमण का मामला होगा। निरसन अधिनियम होगा याचिकाकर्ता की सहायता के लिए नहीं आएंगे, बल्कि, याचिकाकर्ता का मामला धारा 10(1)/10(3) के तहत अधिसूचना के बाद अधिशेष भूमि के बाद के खरीदार होने के नाते निरसन अधिनियम के दायरे और दायरे में नहीं आएगा।

23. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, याचिकाकर्ता के पास अधिकार का अभाव है, और किसी भी मामले में, याचिकाकर्ता द्वारा 2006 में इस न्यायालय से संपर्क करके और एक याचिका दायर करके, रिट याचिका

संख्या 14698 के तहत कार्यवाही देर से शुरू की गई। 2006 में कलेक्टर को निर्णय लेने हेतु निर्देशित कर निराकरण किया गया। इसके अनुसरण में, 27.04.2011 को आक्षेपित आदेश पारित किया गया, जिसके तहत, दूसरा प्रतिवादी तथ्यों को दर्ज करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि पूर्व मालिक द्वारा भूमि का हस्तांतरण, अधिशेष घोषित, राज्य में निहित, शून्य है दस्तावेज़ और याचिकाकर्ता को कोई अधिकार और स्वामित्व प्रदान नहीं करता है। पूर्ववर्ती कार्यकाल धारक (खेलई) के पास भूमि हस्तांतरित करने का कोई शीर्षक या स्वामित्व नहीं था, याचिकाकर्ता राज्य भूमि पर कथित कब्जे के बल पर निरसन अधिनियम के मद्देनजर अपनी बेदखली के लिए आंदोलन नहीं कर सकता है। धारा 10(3) के तहत अधिसूचना पर अधिशेष भूमि राज्य के पास निहित हो गई, जिसके बाद 1981 में धारा 10(5) के तहत भूमि के पूर्व मालिक (खेलाई) को बेदखल कर दिया गया। मालिक ने कभी भी किसी प्राधिकारी के समक्ष अपनी बेदखली का विरोध या आंदोलन नहीं किया। या न्यायालय. इन परिस्थितियों में, बाद वाला खरीदार (याचिकाकर्ता) बिक्री विलेख के शुरू से ही अमान्य होने के आधार पर विलंबित चरण में बेदखली की प्रक्रिया को चुनौती नहीं दे सकता है।

24. तदनुसार, रिट याचिका गुणहीन होने के कारण खारिज की जाती है।"

19. उपरोक्त कारणों से और निर्धारित कानून के मद्देनजर भी **भास्कर ज्योति शर्मा** (सुप्रा), **कपिलाबेन अंबालाल पटेल** (सुप्रा) और एक समन्वय पीठ **शिव राम सिंह** (सुप्रा) के के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा मामले में इस न्यायालय के निर्णय के अनुसार, हमें रिट याचिका में कोई योग्यता नहीं मिली। यह रिट याचिका भी अत्यधिक समयबाधित है और इसमें अत्यधिक देरी का कोई कारण नहीं बताया गया है।

(2023) 3 ILRA 423

मूल न्यायाधिकार

नागरिक पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद 24.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार,

माननीय न्यायमूर्ति राजेंद्र कुमार-चतुर्थ,

रिट सी संख्या 53996/2012

कैलाश प्रसाद तिवारी ..याचिकाकर्ता

बनाम

यूपी राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादीगण

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: श्री एस.वी. गोस्वामी, श्री प्रदीप कुमार सिंह

अधिवक्ता प्रतिवादीगण: सी.एस.सी., श्री अभिनव कृष्ण श्रीवास्तव, श्री सरोज यादव, श्रीमती चन्द्र कला चतुर्वेदी, श्री विवेक वर्मा

A. सीलिंग कानून - उत्तर प्रदेश शहरी भूमि (सीलिंग और विनियमन) अधिनियम 1976 - धारा 6(1) - अधिशेष भूमि - धारा 8(3) के तहत नोटिस प्राप्त होने की तिथि से निर्धारित समय के भीतर कोई आपत्ति नहीं दर्ज की गई - धारा 8(4) के तहत सीलिंग सीमा से अधिक भूमि की घोषणा करने का आदेश पारित किया गया - नोटिस धारा 10(5) के अनुसार, भूमि का कब्जा लिया गया - भूमि स्वामी ने किसी भी चरण में विरोध नहीं किया, जिससे यह संकेत मिलता है

कि उसने ऐसा करने का अपना अधिकार छोड़ दिया - प्रभाव - अधिशेष भूमि पर कब्जे का दावा - अनुमेयता - माना गया, केवल जो बात कही गई है, वह यह है कि वह अधिशेष भूमि पर कब्जे में है। लेकिन, याचिकाकर्ता इस पर मूक है कि क्या किसी भी समय जब उसे बहिष्कृत किया गया, भूमि मालिक ने अधिकारियों के समक्ष कोई आपत्ति/विरोध दर्ज किया था। (प्रस्तर 18 और 19)

B. भारतीय संविधान - अनुच्छेद 226 - रिट - पोषणीयता - विलंब - रिट याचिका अधिनियम अपास्त होने के 13 वर्ष पश्चात और धारा 10(5) के तहत नोटिस जारी होने के बाद तीन दशकों (36 साल) के पश्चात योजित की गई - प्रभाव - माना गया, समुचित सिद्धांत, अर्थात् "विलंब न्याय को परास्त कर देता है" संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत अनुतोष प्रदान करने के लिए इस वाद में पूर्व रूप से लागू होता है। विवेकाधीन राहत तब प्राप्त हो सकती है जब कोई अपने कार्य या आचरण के द्वारा अपने अधिकारों को नजरअंदाज न करे। न्याय उस सतर्क व्यक्ति के पक्ष में है, न कि आलसी वादकारी के, और यह कानून का मूल सिद्धांत है। (पैराग्राफ 13)

रिट याचिका निरस्त। (E-1)

<u>उद्धृत वाद सूची :-</u>

1. राज्य बनाम हरिराम; 2013 (120) RD 241

2. राम सिंह बनाम राज्य यूपी और अन्य; 2020 (147) RD 1

3. इकरार और अन्य बनाम राज्य यूपी और अन्य; 2020 (2) AWC 1288

4. राज्य बनाम जगदीश चंद्र; 2014 (1) AWC 864

5. राज्य असम बनाम भास्कर ज्योति शर्मा और अन्य; (2015) 5 SCC 321 (पैराग्राफ-16, 17 और 19)

6. शिव राम सिंह बनाम राज्य यूपी और अन्य; 2015 (7) ADJ 630

7. शिवगोंडा अन्ना पाटिल बनाम राज्य महाराष्ट्र; (1999) 3 SCC 5

8. नगर परिषद, अहमदनगर बनाम शाह हैदर बेग; (2000) 2 SCC 48

9. कपिलाबेन अंबालाल पटेल और अन्य बनाम राज्य गुजरात; 2021 (12) SCC 95

10. नागरिक अपील संख्या 3032 का 2010; जी.पी.ए. धारक द्वारा यू.ए. बशीर बनाम राज्य कर्नाटक और अन्य, निर्णय दिनांक 17 फरवरी, 2021

(न्यायमूर्ति सुनीत कुमार द्वारा प्रदत्त)

1. पी.के सिंह, याचिकाकर्ता के विद्वान वकील, सुश्री मनीषा चतुर्वेदी को राज्य-उत्तरदाताओं के लिए पेश होने वाले विद्वान वकील श्रीमती चंद्र कला चतुर्वेदी का संक्षिप्त विवरण देते हुए और श्री अभिनव कृष्ण श्रीवास्तव, विकास प्राधिकरण के लिए उपस्थित विद्वान वकील को सुना।

2. याचिकाकर्ता ने अन्य बातों के साथ-साथ राज्य-प्रतिवादी को यह निर्देश देने की मांग की है कि वह गांव-बारा सिरोही, तहसील और जिला-कानपुर नगर में स्थित प्लॉट नंबर 1356, 1723, 1112, 1104 और 1163 के शांतिपूर्ण कब्जे में हस्तक्षेप न करे। याचिकाकर्ता ने जिला न्यायाधीश/अपीलीय प्राधिकारी, कानपुर नगर

द्वारा 1999 की विविध अपील संख्या 20/70 (कैलाश प्रसाद बनाम सक्षम प्राधिकारी) में पारित दिनांक 27 जुलाई 2011 के आदेश को रद्द करने की भी मांग की है।

3. वर्तमान मामले के तथ्य, संक्षेप में कहा गया है, यह है कि याचिकाकर्ता के हित में पूर्ववर्ती ने यूपी शहरी भूमि (सीलिंग और विनियमन) अधिनियम 1976 (संक्षेप में 'अधिनियम' के लिए) की धारा 6 (1) के तहत बयान / रिटर्न दायर किया, जिसमें उसकी भूमि / संपत्ति का विवरण केस नंबर 8683 है। सर्वेक्षण करने पर, 5758.81 वर्ग मीटर की भूमि/संपत्ति, याचिकाकर्ता के कब्जे में अधिकतम सीमा से अधिक पाई गई।

4. नतीजतन, 04 अगस्त 1979 के नोटिस के साथ धारा 8 (3) के तहत भूमि मालिक को एक मसौदा बयान दिया गया। याचिकाकर्ता ने आपत्ति दर्ज करके नोटिस का जवाब नहीं दिया, परिणामस्वरूप, धारा 8 (4) के तहत आदेश 26 मार्च 1983 को पारित किया गया, जिसमें अधिनियम के तहत सीलिंग सीमा से अधिक 5758.81 वर्ग मीटर भूमि घोषित की गई। अधिनियम की धारा 9 और 10 (1) के तहत कार्यवाही पूरी होने पर, अधिनियम की धारा 10 (2) के तहत भूमि मालिक या किसी अन्य इच्छुक व्यक्ति से अनापत्ति प्राप्त करने पर, अधिनियम की धारा 10 (3) के तहत एक अधिसूचना 31 अक्टूबर 1985 को जारी की गई थी, जिसे 15 जनवरी 1986 को राज्य में अधिशेष खाली भूमि को निहित करने वास्ते आधिकारिक राजपत्र में विधिवत प्रकाशित किया गया था। इसके बाद, अधिनियम की धारा 10 (5) के तहत 16 दिसंबर 1986 को एक नोटिस जारी किया गया था, जिसके अनुसरण में, सक्षम प्राधिकारी के अधिकृत व्यक्ति ने 12 नवंबर 1991 को अधिशेष भूमि का कब्जा ले लिया था।

5. ऐसा प्रतीत होता है कि बाद में, श्री बाबू के पुत्र अशोक कुमार कुशवाहा ने 1 अप्रैल 2006 को एक अभ्यावेदन दायर किया, जिसमें अनुरोध किया गया कि प्लॉट नंबर 1192, जिसे अधिशेष घोषित किया गया था, याचिकाकर्ता का स्वामित्व नहीं था। ऐसा प्रतीत होता है कि सक्षम प्राधिकारी द्वारा 13 जुलाई 2006 के आदेश के तहत अभ्यावेदन स्वीकार किया गया था, परिणामस्वरूप, प्लॉट नंबर 1192, अशोक कुमार कुशवाहा के पक्ष में जारी किया गया था और उनका नाम राजस्व रिकॉर्ड में विधिवत म्यूटेशन किया गया था।

6. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता 18 मार्च 1999 से मूल अधिनियम के निरस्त होने के बाद भी भूखंडों के कब्जे में है। यह आग्रह किया जाता है कि इस स्तर पर, याचिकाकर्ता को अधिशेष घोषित भूमि से बेदखल नहीं किया जा सकता है। उत्तर प्रदेश राज्य बनाम हरि राम के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णयों के साथ-साथ राम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, इकरार एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के मामले में इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णयों पर भरोसा किया गया है।

7. यह याचिकाकर्ता का मामला नहीं है कि भूमि मालिक ने किसी भी स्तर पर अधिशेष भूमि की घोषणा का विरोध किया था या कानून के अनुसार बेदखली के संबंध में अधिकारियों के समक्ष आपत्ति जताई थी।

8. ऐसा प्रतीत होता है कि 1999 की अपील संख्या 20/70, याचिकाकर्ता द्वारा 18 फरवरी 1999 को जिला न्यायाधीश के समक्ष दायर की

गई थी। अपील में जो कार्रवाई की बात कही गई है, वह यह है कि 30 दिसंबर 1998 को कानपुर विकास प्राधिकरण जमीन का सीमांकन कर रहा था। इसके बाद, याचिकाकर्ता ने 4 जनवरी 1999 को लेखपाल से संपर्क किया, और राजस्व रिकॉर्ड के अवलोकन पर, यह पता चला कि कानपुर विकास प्राधिकरण का नाम राजस्व रिकॉर्ड में उत्परिवर्तित किया गया था। इसके बाद, याचिकाकर्ता ने अपने वकील से संपर्क किया और शहरी छत से संबंधित फाइल का निरीक्षण किया और 12 फरवरी 1999 को 6 मार्च 1982 के आदेश की प्रति प्राप्त की, उसके बाद, अपील शुरू की। अपील के ज्ञापन में, यह दलील दी गई थी कि याचिकाकर्ता के हित में पूर्ववर्ती प्लॉट नंबर 1356, 1723, 1104, 1112 और 1163 भूमि मालिक था। रिट याचिका में स्थापित दलीलों के साथ-साथ 18 फरवरी 1999 को शुरू की गई अपील के ज्ञापन के अवलोकन पर, यह याचिकाकर्ता का मामला नहीं है कि याचिकाकर्ता या याचिकाकर्ता के हित में पूर्ववर्ती ने अधिनियम के तहत कार्यवाही के किसी भी चरण में अपनी बेदखली या घोषित भूमि की घोषणा / अधिग्रहण का विरोध किया था।

9. शहरी भूमि (अधिकतम सीमा और विनियमन) निरसन अधिनियम, 1999 (संक्षेप में 'निरसन अधिनियम'), 18 मार्च 1999 को प्रभावी हुआ, उक्त तारीख को लंबित कार्यवाही/अपील को स्थगित कर दिया गया। नतीजतन, याचिकाकर्ता द्वारा शुरू की गई अपील कानून के संचालन से समाप्त हो गई और याचिकाकर्ता के देरी माफी आवेदन को खारिज करने वाली उक्त अपील पर पारित 27 जुलाई 2012 का आदेश शून्य है।

10. असम राज्य बनाम भास्कर ज्योति शर्मा और अन्य के मामले में, सुप्रीम कोर्ट का विचार था कि धारा 10 (5) के आधार पर कोई भी शिकायत बेदखली के उचित समय के भीतर की जानी चाहिए थी और ऐसा नहीं करने पर भूमि मालिक को अधिनियम की धारा 10 (5) के तहत अपने अधिकार का त्याग किया जाना चाहिए। पैरा 16, 17, और 19 इस प्रकार है:-

> "16. इस मुद्दे को दूसरे दृष्टिकोण से भी देखा जा सकता है। यह मानते हुए कि कब्जे में एक व्यक्ति शिकायत कर सकता है, अंतिम विश्लेषण में बहुत लाभ के बिना कोई फर्क नहीं पड़ता, सवाल यह है कि क्या धारा 10 (5) के कथित उल्लंघन के लंबे समय बाद ऐसी शिकायत की जा सकती है। यदि वास्तविक भौतिक कब्जा 7 दिसंबर, 1991 को तत्कालीन भूमि मालिक से ले लिया गया था, जैसा कि वर्तमान मामले में आरोप लगाया गया है, तो धारा 10 (5) के आधार पर कोई भी शिकायत इस तरह की बेदखली के उचित समय के भीतर की जानी चाहिए थी। **यदि मालिक ने ऐसा नहीं किया, तो जबरन कब्जा लेने से समय की सरासर चूक से वैधता प्राप्त हो जाएगी। ऐसी किसी भी स्थिति में मालिक या कब्जे वाले व्यक्ति को अधिनियम की धारा 10 (5) के तहत अपने अधिकार का त्याग करने वाला माना जाना चाहिए। हमारी राय में, कोई अन्य दृष्टिकोण वादी को शिकायत करने का लाइसेंस देगा, इसलिए नहीं कि उसे किसी वास्तविक पूर्वाग्रह का सामना करना पड़ा है जिसे दूर करने की आवश्यकता है, बल्कि केवल इसलिए कि निरसन अधिनियम की आकस्मिक**

परिस्थिति ने उसे निर्धारित प्रक्रिया के उल्लंघन में अपने बेदखली के बारे में मुद्दा उठाने के लिए लुभाया।

17. **हरिराम के मामले (सुप्रा) में इस न्यायालय के निर्णय पर उत्तरदाताओं द्वारा भरोसा किया गया था। यह निर्णय, हमारे विचार में, उत्तरदाताओं को बहुत सहायता नहीं देता है। हम ऐसा इसलिए कहते हैं, क्योंकि यह न्यायालय हरि राम के मामले (सुप्रा) में इस बात पर विचार कर रहा था कि क्या धारा 10 (5) में दिखाई देने वाला शब्द 'हो सकता है' सक्षम प्राधिकारी को धारा 10 (6) के तहत विचाराधीन भूमि का भौतिक कब्जा लेने से पहले नोटिस जारी करने या न जारी करने का विवेक देता है। यह सवाल कि क्या धारा 10 (5) का उल्लंघन और बिना सूचना के संभावित बेदखली से बेदखली का कार्य स्वयं निष्फल हो जाएगा या इसे कानून की नजर में गैर-स्थायी बना दिया जाएगा, उस मामले में विचार के लिए नहीं आया।** हमारी राय में, धारा 10 (5) जो निर्धारित करती है वह कार्रवाई का एक सामान्य और तार्किक तरीका है जिसका पालन अधिकारियों द्वारा धारा 10 (6) के तहत कब्जा करने वाले को बेदखल करने के लिए बल का उपयोग करने का निर्णय लेने से पहले किया जाना चाहिए। इस मामले में यदि दिसंबर 1991 में तत्कालीन मालिक की बेदखली के संबंध में अपीलकर्ता का संस्करण सही है, तो यह तथ्य कि इस तरह की बेदखली धारा 10 (5) के तहत नोटिस के बिना हुई थी, का कोई परिणाम नहीं होगा और निरसन अधिनियम की धारा 3 के प्रयोजनों के लिए कब्जा लेने के कार्य को निष्फल या समाप्त नहीं करेगा। ऐसा इसलिए है क्योंकि भाबादेव सरमा,पूर्व मालिक, ने अपने जीवनकाल में किसी भी स्तर पर धारा 10 (5) के उल्लंघन के आधार पर कोई शिकायत नहीं की थी, जिसका अर्थ है कि उन्होंने ऐसा करने के अपने अधिकार को माफ कर दिया था।

19. इस तर्क के समर्थन में कि प्रतिवादी आज भी विचाराधीन भूमि के वास्तविक भौतिक कब्जे में हैं, कुछ बिजली बिलों और टेलीफोन कनेक्शन के लिए भुगतान किए गए बिलों पर भरोसा किया जाता है जो एक श्री सनातन वैश्य के नाम पर थे। यह तर्क दिया गया था कि श्री सनातन वैश्य प्रतिवादियों की संपत्ति के कार्यवाहक के अलावा कोई नहीं थे। हालांकि, उस दावे को साबित करने के लिए रिकॉर्ड पर कुछ भी नहीं है। टेलीफोन बिल और बिजली बिल भी केवल 2001 के बाद की अवधि से संबंधित हैं। हमारे समक्ष रिकार्ड में ऐसा कुछ भी नहीं है और न ही उच्च न्यायालय के समक्ष ऐसा कुछ रखा गया जिससे यह पता चले कि 7 दिसम्बर, 1991 से दिसम्बर, 2003 में जीएमडीए को प्रश्नगत भूमि आवंटित किए जाने की तारीख तक उसके मालिक या उसके कानूनी उत्तराधिकारियों का उसकी मृत्यु के बाद भी कब्जा बना रहा। हमारे पास समर्थन में केवल हलफनामों के आधार

पर पार्टियों के प्रतिद्वंद्वी दावे हैं। हमने पक्षकारों के विद्वान वकीलों से बार-बार पूछा कि क्या वे ज्ञानबा दिलावरसिंह जडेजा (सुप्रा) के मामले में निर्णय की समानता पर रिमांड पर कोई दस्तावेजी साक्ष्य पेश कर सकते हैं जो उच्च न्यायालय को वास्तविक कब्जे के संबंध में एक निष्कर्ष दर्ज करने में सक्षम बनाएगा। वे ऐसे किसी भी सबूत को इंगित करने या संदर्भित करने में असमर्थ थे। ऐसा होने के कारण, यह प्रश्न कि क्या वास्तविक भौतिक कब्जे को ले लिया गया था, तथ्य का एक गंभीर रूप से विवादित प्रश्न बना हुआ है, जो संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत कार्यवाही में उच्च न्यायालय द्वारा संतोषजनक निर्धारण के लिए उत्तरदायी नहीं है, चाहे उच्च न्यायालय इस तरह के निर्धारण पर कुछ स्थितियों में अपने विवेक से ही क्यू न हो। इसलिए बेदखली के सवाल पर निष्कर्ष निकालने के लिए उच्च न्यायालय को रिमांड दिया जाना हमें एक व्यवहार्य समाधान नहीं लगता है। (हमारे द्वारा महत्व पे जोर दिया गया)

11. भास्कर ज्योति शर्मा (सुप्रा) के बाद शिव राम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य में इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ के बाद, रिट याचिका को इस आधार पर खारिज कर दिया गया था, जिसमें निम्नानुसार टिप्पणी की गई थी:

"हमें मामले के एक अन्य पहलू पर भी ध्यान देना चाहिए, विशेष रूप से भास्कर ज्योति सरमा (सुप्रा) में सुप्रीम कोर्ट के हालिया फैसले के संबंध में। याचिकाकर्ता ने निरसन अधिनियम लागू होने के लगभग तीन साल बाद 2002 में पहली रिट याचिका दायर की थी। याचिकाकर्ता के प्रतिनिधित्व पर जिला मजिस्ट्रेट को आदेश पारित करने का निर्देश देकर पहले की रिट याचिका का निपटारा किए जाने के बाद, जिला मजिस्ट्रेट द्वारा 10 मई 2007 को एक आदेश पारित किया गया था। इसके बाद याचिकाकर्ता ने जुलाई 2009 में वर्तमान रिट याचिका दायर होने तक दो साल से अधिक की अवधि तक इंतजार किया। यदि याचिकाकर्ता को धारा 10 (5) के तहत उचित नोटिस के बिना भूमि से बेदखल कर दिया गया होता, तो इस तरह की शिकायत प्रासंगिक समय पर उठाई जा सकती थी। वास्तव में, यह राज्य का मामला रहा है कि धारा 10 (5) के तहत एक नोटिस जारी किया गया था, वास्तव में, वर्तमान मामले में जो मूल फाइल से उत्पन्न होगा जिसे अदालत के समक्ष पेश किया गया है। मुद्दा यह है कि क्या इस तरह की शिकायत लंबे समय के बाद, न्यायालय के समक्ष की जा सकती है। याचिकाकर्ता ने पहली रिट याचिका दायर करने के लिए निरसन अधिनियम लागू होने के बाद लगभग तीन साल तक इंतजार किया था और उसके बाद जिला मजिस्ट्रेट के इस निष्कर्ष के बावजूद अभ्यावेदन के निपटान के बाद दो साल से अधिक की अवधि के लिए इंतजार किया था कि कब्जा 25 जून 1993 को लिया गया

था। हमारे विचार में, इस तरह की विलम्बित चुनौती को किसी भी स्थिति में स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए।

(हमारे द्वारा महत्व पे जोर दिया गया)

12. शिवगोंडा अन्ना पाटिल बनाम महाराष्ट्र राज्य में, जिसमें, सुप्रीम कोर्ट ने अधिनियम की धारा 10 से निपटने के दौरान कहा कि अनुच्छेद 226 के तहत रिट याचिका इस आधार पर कार्यवाही को फिर से खोलने के लिए कि सक्षम प्राधिकारी ने कुछ तथ्यों पर विचार नहीं किया था, दस साल बाद दायर किया गया था, अतिरिक्त भूमि राज्य सरकार में निहित होने के बाद, उच्च न्यायालय द्वारा सरसरी तौर पर खारिज कर दी गई थी।

13. अनुच्छेद 226 के तहत याचिका को प्राथमिकता देने में देरी और देरी के सवाल पर फैसला करते हुए, नगरपालिका परिषद, अहमदनगर बनाम शाह हैदर बेग में सुप्रीम कोर्ट ने माना कि संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत राहत प्रदान करने के मामले में "देरी इक्विटी को हरा देती है" नामक न्यायसंगत सिद्धांत का पूरा इस्तेमाल है। विवेकाधीन राहत दी जा सकती है बशर्ते कि किसी ने अपने कार्य या आचरण से अपने अधिकारों को दरकिनार न किया हो। इक्विटी एक अकर्मण्य वादी के बजाय एक सतर्क का पक्ष लेती है और यह कानून का मूल सिद्धांत है।

14. हाल ही में, **कपिलाबेन अंबालाल पटेल और अन्य बनाम गुजरात राज्य** में, सुप्रीम कोर्ट ने अत्यधिक देरी के आधार पर मूल भूमि धारक के कानूनी उत्तराधिकारियों/प्रतिनिधियों द्वारा स्थापित दलीलों को स्वीकार करने से इनकार कर दिया। न्यायालय ने भूमि मालिक की दलील पर ध्यान दिया:

"पीड़ित महसूस करते हुए, भूमि मालिकों ने इस अदालत का दरवाजा खटखटाया है। यह आग्रह किया जाता है कि प्रतिवादी राज्य द्वारा इस तथ्य को प्रमाणित करने के लिए कोई सबूत नहीं है कि विचाराधीन भूमि का भौतिक कब्जा 20-3-1986 को लिया गया है। यह केवल कब्जे पंचनामा के रूप में एक कागज-कब्जा था। अपीलकर्ताओं के अनुसार, निरसन अधिनियम की तारीख के अनुसार विषय भूमि का वास्तविक कब्जा महत्वपूर्ण है और 1976 के अधिनियम के तहत राज्य अधिकारियों के सभी कार्यों को समाप्त करने पर जोर देता है। राज्य में भूमि के निहित होने के संबंध में 1976 अधिनियम की धारा 10 (3) के तहत अधिसूचना जारी करना निरसन अधिनियम के प्रयोजनों के लिए पर्याप्त नहीं है। विनायक काशीनाथ शिलकर बनाम कलेक्टर और सक्षम प्राधिकारी, (2012) 4 एससीसी 718, उत्तर प्रदेश राज्य बनाम हरि राम (2013) 4 एससीसी 280, गजानन कामल्या पाटिल बनाम अतिरिक्त कलेक्टर और सक्षम प्राधिकारी (यूएलसी) (2014) 12 एससीसी 523

और मंगलसेन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2014) 15 एससीसी 332, पर भरोसा किया गया है। इस न्यायालय का सुसंगत दृष्टिकोण यह है कि राज्य के अधिकारियों द्वारा भौतिक कब्जा लिया जाना चाहिए, जिसमें विफल होने पर निरसन अधिनियम के कारण कार्यवाही समाप्त हो जाएगी। अपीलकर्ताओं ने यह दिखाने के लिए राजस्व रिकॉर्ड पर भरोसा किया है कि 20-3-1986 को कब्जा पंचनामा किए जाने के बाद भी अपीलकर्ताओं/भूस्वामियों के पास निरंतर कब्जा बना रहा। राजस्व प्रविष्टियों का अनुमानित मूल्य है और प्रतिवादी राज्य इसका खंडन करने में विफल रहा है।

15. कपिलाबेन अंबालाल पटेल (सुप्रा) के पैराग्राफ 25 में, न्यायालय ने देरी को नोट किया और उच्च न्यायालय के आदेश में हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया। प्रासंगिक भाग इस प्रकार है:

> "इसके अलावा, इस आधार पर जो कुछ भी दावा किया गया है वह यह है कि उच्च न्यायालय ने यह मानने में गलती की कि रिट याचिका दायर करने में 14 साल की देरी हुई थी और इस बात की सराहना नहीं की गई थी कि 1976 के अधिनियम दिनांक 23-1-1986 की धारा 10 (5) के तहत नोटिस अंबालाल परसोत्तमभाई पटेल को तामील नहीं किया गया था क्योंकि वह पहले ही 31-12-1985 को समाप्त हो चुके थे और उन्हें भेजा गया नोटिस 2-2-1986 को टिप्पणी " मालिक की मृत्यु हो गई है " के साथ वापस कर दिया गया था । इसके अलावा, अंबालाल पुरुषोत्तमभाई पटेल के कानूनी उत्तराधिकारियों को उक्त नोटिस दिया जाना चाहिए था......... जैसा कि यह हो सकता है, हम उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष को उलटने के इच्छुक नहीं हैं कि अपीलकर्ताओं द्वारा दायर रिट याचिका में निराशाजनक देरी हुई और 'अवधि का बीत जाना' का सामना करना पड़ा। यह वर्तमान मामले के तथ्यों में एक संभावित दृष्टिकोण है।

16. इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा दिए गए याचिकाकर्ता के विद्वान वकील द्वारा विस्वस्त निर्णय हरिराम (सुप्रा) में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर आधारित हैं। भास्कर ज्योति शर्मा (सुप्रा) मामले में सुप्रीम कोर्ट ने हरिराम (सुप्रा) पर विचार करने के बाद कहा था कि धारा 10(5) में दिखाई देने वाला शब्द 'हो सकता है' सक्षम प्राधिकारी को धारा 10(6) के तहत विचाराधीन भूमि का भौतिक कब्जा लेने से पहले नोटिस जारी करने या न जारी करने का विवेक देता है। यह सवाल कि क्या धारा 10 (5) का उल्लंघन और बिना सूचना के संभावित बेदखली से बेदखली का कार्य स्वयं निष्फल हो जाएगा या इसे कानून की नजर में गैर-स्थापित कर दिया जाएगा, हरिराम (सुप्रा) में विचार के लिए नहीं आया। इसके बाद, न्यायालय ने आगे कहा कि धारा 10 (5) के तहत नोटिस के बिना

बेदखली के संबंध में अपीलकर्ता का मामला लेने से भी कोई परिणाम नहीं होगा और निरसन अधिनियम की धारा 3 के प्रयोजनों के लिए कब्जा लेने के कार्य को निष्फल या समाप्त नहीं किया जाएगा। ऐसा इसलिए है क्योंकि तत्कालीन भूमि मालिक ने अपने जीवनकाल में किसी भी स्तर पर धारा 10 (5) के उल्लंघन के आधार पर कोई शिकायत नहीं की थी, जिसका अर्थ है कि उसने ऐसा करने के अपने अधिकार का त्याग किया था।

17. अधिनियम की योजना के अनुसार, अधिकतम सीमा से अधिक भूमि का निर्धारण अधिनियम के लागू होने की तारीख को किया जाना है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को अपनी होल्डिंग का विवरण दर्ज करने की आवश्यकता होती है (धारा 6)। अन्य व्यक्तियों/तृतीय पक्ष/बाद के खरीदारों के पास तब तक आपत्ति दर्ज करने का कोई आधार या अधिकार नहीं है। अधिनियम की धारा 8 और धारा 9 के प्रावधान सक्षम प्राधिकारी के लिए यह अनिवार्य बनाते हैं कि वह केवल 'संबंधित व्यक्ति' को नोटिस जारी करे या सुनवाई का अवसर प्रदान करे, अर्थात वह व्यक्ति जिसने अधिनियम की धारा 6 के तहत बयान दायर किया है, (यूए बशीर थ्र. जीपीए होल्डर बनाम कर्नाटक राज्य और अन्य के पैराग्राफ 14 को देखें)। अधिनियम की धारा 10(1) के तहत अधिसूचना जारी किए जाने के बाद ही अन्य व्यक्तियों/उत्तरवर्ती क्रेताओं के दावों पर विचार किया जाएगा।

18. रिकॉर्ड के अनुसार, यह विवाद में नहीं है कि 4 अगस्त 1979 के ड्राफ्ट स्टेटमेंट के साथ धारा 8 (3) के तहत विधिवत नोटिस भूमि मालिक को दिया गया था। नोटिस प्राप्त होने की तारीख से निर्धारित समय के भीतर कोई आपत्ति दर्ज नहीं की गई थी, इसके बाद, अधिनियम की धारा 8 (4) के तहत एक आदेश 26 मार्च 1982 को पारित किया गया, जिसमें अधिकतम सीमा से अधिक भूमि घोषित की गई। धारा 9 के तहत अंतिम विवरण, अधिनियम की धारा 10 (1) और 10 (3) के तहत अधिसूचना के बाद, आधिकारिक राजपत्र में विधिवत प्रकाशित किया गया। इसके बाद धारा 10(5) के तहत नोटिस के अनुसरण में भूमि का कब्जा ले लिया गया। भूमि मालिक ने किसी भी स्तर पर यह कहते हुए विरोध नहीं किया कि उसने ऐसा करने के अपने अधिकार का त्याग कर दिया है।

19. तत्काल रिट याचिका निरसन अधिनियम से 13 साल बाद और धारा 10 (5) के तहत नोटिस के बाद से तीन दशकों (36 वर्ष) के अंतराल के बाददायर की गई है। रिट क्षेत्राधिकार में पहली बार कब्जे का प्रश्न उठाया जा रहा है। याचिकाकर्ता ने सभी प्रासंगिक तथ्यों की वकालत नहीं की है, बल्कि, राज्य-प्रतिवादी द्वारा दायर जवाबी हलफनामे में रिकॉर्ड पर लाए गए भौतिक तथ्यों को दबाया है। केवल एक ही दृष्टिकोण अपनाया गया है जो इस बयान पर आधारित है कि अधिशेष भूमि पर उनका कब्जा है। लेकिन, याचिकाकर्ता इस बात पर चुप है कि क्या किसी भी समय बेदखल होने पर कोई आपत्ति भूमि मालिक ने अधिकारियों के समक्ष आपत्ति/विरोध दर्ज किया था। ना तो , यह 1999 में दायर अपील के ज्ञापन में याचिकाकर्ता का मामला है, कि याचिकाकर्ता अधिशेष भूमि के कब्जे में है, न ही, ब्याज में उसके पूर्ववर्ती ने स्वेच्छा से अधिशेष खाली भूमि को आत्मसमर्पण नहीं किया था या राज्य की कार्रवाई का विरोध किया था।

20. इसके अलावा, विकास प्राधिकरण का नाम, कब्जे के बाद याचिकाकर्ता द्वारा स्थापित मामले

के अनुसार राजस्व रिकॉर्ड में विधिवत उत्परिवर्तित किया गया था। कब्जे / बेदखली का मुद्दा तथ्य का प्रश्न होने के कारण रिट क्षेत्राधिकार में 13 वर्षों के बाद देर से नहीं उठाया जा सकता है।

21. इसके मद्देनजर, रिट याचिका योग्यता से रहित होने के कारण, तदनुसार खारिज की जाती है।

22. लागत के सम्बन्ध मे कोई आदेश नहीं।

(2023) 3 ILRA 430

मूल न्यायाधिकार

नागरिक पक्ष

दिनांकः इलाहाबाद 21.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजीत कुमार,

रिट सी संख्या 58897/2012

यूपी राज्य और अन्य ...याचिकाकर्तागण

बनाम

कोमल यादव @ राम कोमल और अन्य। ..प्रतिवादीगण

अधिवक्ता याचिकाकर्तागण: श्री अनूप कुमार श्रीवास्तव, श्री अमित मनोहर (अतिरिक्त सी.एस.सी.)

अधिवक्ता प्रतिवादीगण: श्री चंद्रभान गुप्ता, एस.सी., श्री श्याम नारायण, श्री सुधांशु नारायण

A. श्रम कानून - भारतीय संविधान - अनुच्छेद 226 - अनुतोष - हस्तक्षेप का क्षेत्र - संदर्भ - समय सीमा, इसमें कितनी बाधा आती है - श्रमिक का निर्णय पाने का अधिकार - कितनी सुरक्षा दी जानी चाहिए - आयोजित, यदि एक श्रमिक सरकारी विभाग में अपनी सेवाएं समाप्त कर रहा है, तो वह विशेष लाभ की स्थिति में नहीं रह सकता - यदि वाद सुलह अधिकारी के पास लंबित रहा और राज्य संदर्भ बनाने में अपना समय लेता है, तो संबंधित श्रमिक को केवल विलंब के कारण निर्णय से वंचित नहीं किया जाना चाहिए, विशेष रूप से जब संदर्भ बनाने के लिए कोई समय सीमा निर्धारित नहीं की गई है - उच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 226 के तहत न्यायसंगत क्षेत्राधिकार के तहत अनुतोष में हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया। (पैरा 17)

B. श्रम कानून - औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 - धाराएं 6N, 6P और 6Q - छटनी - अनुतोष - पुनर्नियुक्ति के साथ देय वेतन - वन विभाग - दैनिक वेतन पर श्रमिकों की नियुक्ति - देय वेतन के भुगतान के लिए सिद्धांत - प्रयोज्यता - निर्णय लिया गया कि वन विभाग में, वन कार्य के लिए लोगों को दैनिक वेतन पर नियुक्त करने की प्रथा है - जहां न तो विभाग याचिकाकर्ता के काम करने का विवाद कर सकता है, न ही किसी गवाह को प्रस्तुत कर सकता है जो उसके पक्ष में परीक्षण दे, विभाग का अचानक श्रमिक को एक दिन निष्कासित करना विधि विरुद्ध सही ठहराया गया - उच्च न्यायालय ने देय वेतन पर पुरस्कार के ब्याज भाग को अस्थिर बताया। (पैरा 18, 22 और 25)

रिट याचिका आंशिक रूप से स्वीकृत। (ई-1)

<u>उद्धृत वाद सूची :-</u>

1. उत्तराखंड सरकार और अन्य बनाम राज कुमार; 2019 (14) SCC 353

2. मुख्य अभियंता, रंजीत सागर डैम और अन्य बनाम श्याम लाल 2006 (9) SCC 124

3. उत्तर प्रदेश सरकार और अन्य बनाम राम स्वरूप और अन्य 2003 (99) FLR 665

4. सिविल विविध रिट याचिका संख्या 28491 / 2006; उत्तर प्रदेश सरकार और अन्य बनाम श्री प्रह्लाद और अन्य
5. दीपाली गुंडू सुरवसे बनाम क्रांति जूनियर अध्यापक; 2013 (139) FLR 541
6. स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक बनाम प्रधान अधिकारी, केंद्रीय सरकार औद्योगिक न्यायालय और अन्य; 2014 लॉसूट (अल) 3872
7. विशेष अनुमति याचिका नं. 32554 / 2018; इलाहाबाद बैंक और अन्य बनाम अवतार भूषण भारतीय, निर्णित दिनांक 22.04.2022
8. विशेष अनुमति याचिका (नागरिक) डायरी नं. 5426 / 2020; अभिमन्यु और अन्य बनाम प्रमुख सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार और अन्य।
9. दीपाली गंडू सुर्वासे बनाम क्रांति जूनियर अध्यापक महाविद्यालय (डी.एड.) और अन्य; 2013 (10) SCC 324
10. सिविल अपील संख्या 6890 वर्ष 2022; जीतुभा खन्सांजी जडेजा बनाम कच्छ जिला पंचायत, उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्णित दिनांक 23.09.2022

<u>माननीय न्यायमूर्ति श्री अजीत कुमार</u>

श्री अमित मनोहर, विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता, श्री आरएम विश्वकर्मा, याचिकाकर्ताओं के लिए विद्वान स्थायी अधिवक्ता और प्रतिवादी नंबर 1 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री सुधांशु नारायण को सुना गया।

याचिकाकर्ता नंबर 1 उत्तर प्रदेश सरकार का वन विभाग है और याचिकाकर्ता नंबर 2 सोहागीबरवा रेंज (शिवपुर), महाराजगंज का वन रेंज अधिकारी है। याचिकाकर्ता औद्योगिक न्यायाधिकरण द्वारा दिनांक 04.11.2011 को दिए गए फैसले से व्यथित हैं, जिसमें प्रतिवादी-कर्मचारी कोमल यादव उर्फ राम कोमल (इसके बाद 'कर्मचारी' के रूप में संदर्भित) को 9% की दर से ब्याज सहित बकाया वेतन के साथ बहाल करने का निर्देश दिया गया है।

न्यायालय के समक्ष तीन प्रकार की दलीलें दी गई हैं:-

(ए) यह संदर्भ समय की दृष्टि से अत्यधिक वर्जित था क्योंकि यह श्रमिक की कथित छंटनी दिनांक 09.08.1991 के लगभग एक दशक के बाद किया गया था;

(बी) विभाग एक वन विभाग है और अनुचित श्रम अभ्यास का कोई इतिहास नहीं होने के कारण, श्रमिक को बहाल करने का निर्देश नहीं दिया जा सकता था और इसके बजाय एकमुश्त मुआवजे का आदेश दिया जाना चाहिए था; और
(सी) अधिकरण को बिना कोई विशेष कारण बताए 9% की दर से ब्याज के साथ बकाया वेतन का भुगतान करने का निर्देश देना उचित नहीं था, ताकि ब्याज के भुगतान का निर्देश दिया जा सके।

याचिकाकर्ता विभाग का तर्क है कि बहाली के बजाय सिर्फ मुआवजा भुगतान का निर्देश दिया जा सकता था. उन्होंने उत्तराखंड राज्य और अन्य बनाम राज कुमार;2019 (14) एससीसी 353 के मामले में फैसले पर भरोसा किया है।

इसके विपरीत, प्रतिवादी-कर्मचारी, श्री सुधांशु नारायण की ओर से उपस्थित विद्वान

अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि राज्य सरकार द्वारा संदर्भ देने में देरी अपने आप में संदर्भ को अस्वीकार करने का आधार नहीं होगी, क्योंकि समय के साथ यह वर्जित है।

याचिकाकर्ता उस विभाग के साथ मामले को आगे बढ़ा रहा था जो पहले से ही कट ऑफ डेट के भीतर नियोजित कुछ दैनिक रेटेड श्रमिकों के अवशोषण में व्यस्त था, हालांकि, मामला पहले से ही सुलह अधिकारी का ध्यान आकर्षित कर रहा था और वर्ष 2000 में भी उसने ऐसा किया था।

विभाग से अपना दावा दोहराया. यह तर्क दिया गया है कि यदि राज्य ने संदर्भ देने में समय लिया है, तो लिया गया समय उसके नियंत्रण में था, इसलिए उसे इसके लिए दंडित नहीं किया जाना चाहिए। उनका कहना है कि न तो याचिकाकर्ता और न ही राज्य सरकार को किसी भी देरी और देरी के लिए किसी भी तरह से जिम्मेदार कहा जा सकता है। अपने तर्क के समर्थन में, विद्वान अधिवक्ता ने मुख्य अभियंता, रणजीत सागर बांध और अन्य बनाम शाम लाल 2006 (9) एससीसी 124 के मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर भरोसा किया है।

प्रतिस्पर्धी प्रतिवादी-कामगार के अधिवक्ता ने दूसरा तर्क दिया कि विभाग का अपनी मर्जी से श्रमिकों को काम पर रखने और उन्हें नौकरी से निकालने का इतिहास रहा है और यही कारण है कि कई दशकों से विभाग को उच्च न्यायालय के समक्ष बड़ी संख्या में मुकदमों का सामना करना पड़ रहा है। अंततः ऐसे दैनिक वेतन भोगी श्रमिकों/अनौपचारिक श्रमिकों के समायोजन पर विचार करने के निर्देश जारी किए गए. उनका कहना है कि अभी भी कई याचिकाएं लंबित हैं, जहां ऐसे दैनिक वेतनभोगी कर्मचारियों को न्यूनतम वेतन देने के निर्देश जारी किए गए हैं, जिन्हें नियमित कैडर में शामिल नहीं किया जा सका है। अपने उपरोक्त तर्क के समर्थन में, प्रतिवादी-कर्मचारी ने उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम राम स्वरूप और अन्य 2003 (99) एफएलआर 665 और उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम श्री प्रहलाद और अन्य की सिविल विविध रिट याचिका संख्या 28491 सन 2006 में पारित हुए मामले में उच्च न्यायालय के एक आदेश पर भरोसा किया है। प्रतिवादी-कामगार के अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया कि यदि कामगार ने 240 दिन काम किया था, तो वह बहाल होने का हकदार था, लेकिन उसे निकाल दिया गया था। विभाग की ओर से ऐसा कृत्य निश्चित रूप से औद्योगिक विवाद अधिनियम, 197 (संक्षेप में '1947 का अधिनियम') की धारा 6एन, 6पी और 6क्यू का उल्लंघन होगा और इसलिए, ऐसा कर्मचारी बहाली का पात्र होगा।

प्रतिस्पर्धी प्रतिवादी-कामगार के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिया गया तीसरा तर्क यह है कि एक बार जब कामगार की बर्खास्तगी को अवैध छंटनी के रूप में पाया गया, तो कामगार न केवल बहाली का हकदार हो गया, बल्कि बकाया वेतन का भी हकदार हो गया। उनका कहना है कि अधिकरण बकाया वेतन का केवल 50% ब्याज सहित देने में काफी उचित रहा है

और इसलिए, अधिकरण द्वारा पारित पुरस्कार को विशेष रूप से विभाग के मामले के दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में गलत नहीं ठहराया जा सकता है। अपने तर्क के समर्थन में, विद्वान अधिवक्ता ने **दीपाली गुंडू सुरवासे बनाम क्रांति जूनियर अध्यापक 2013 (139) एफएलआर 541** के मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर भरोसा किया है। **स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक बनाम पीठासीन अधिकारी, केंद्र सरकार औद्योगिक न्यायाधिकरण और अन्य 2014 मुकदमा (सभी) 3872** के मामले में इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ के फैसले पर भी उन पर भरोसा किया गया है। उन्होंने 22.04.2022 को विशेष अनुमति याचिका संख्या 32554 सन 2018 **इलाहाबाद बैंक और अन्य बनाम अवतार भूषण भारतीय** के मामले में दिए गए सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर भी भरोसा किया है, जिसके द्वारा उच्च न्यायालय द्वारा पारित 50% बैकवेज आदेश को बरकरार रखा गया था।

प्रतिवादी-कर्मचारी के अधिवक्ता ने **अभिमन्यु और अन्य बनाम यूपी के प्रमुख सचिव राज्य और अन्य** के मामले में एक निर्णय दिया है, जो उसी वन विभाग द्वारा पारित किया गया था, जहां 50% बैकवेज़ के साथ बहाली को उच्च न्यायालय द्वारा इसी तरह की परिस्थिति में बरकरार रखा गया था। इसी विभाग के ऐसे दो अन्य कर्मियों के साथ दिनांक 28.02.2018 को निर्णय लिया गया. उक्त निर्णय के विरुद्ध विशेष अनुमति याचिका दायर की गई विशेष अनुमति याचिका (सिविल) डायरी नंबर 5426 सन 2020 को भी खारिज कर दिया गया।

संबंधित पक्षों की ओर से की गई प्रतिद्वंद्वी दलीलों से निपटने से पहले, मामले के तथ्यों को संक्षेप में संदर्भित करना अनिवार्य हो जाता है।

प्रतिवादी-कर्मचारी ने अधिकरण के समक्ष दावा किया कि वह फरवरी, 1987 के महीने में तत्कालीन जिले गोरखपुर (अब जिला महराजगंज) के वन विभाग के निचलौल रेंज में गेट-मैन के रूप में कार्यरत था। बाद में, उन्हें सोहागीबरवा यूनिट में स्थानांतरित कर दिया गया, जो पहले निचलौल रेंज का हिस्सा था, लेकिन बाद में एक स्वतंत्र रेंज बन गया और याचिकाकर्ता ने गेट-मैन की क्षमता में बैरियर पर अपने कर्तव्यों का निर्वहन किया।. यह दावा किया गया था कि कुछ अधिकारी उनसे नाराज हो गए थे क्योंकि उन्होंने निर्धारित वेतनमान की मांग की थी और उनके आग्रह पर, उन्हें 09.08.1991 को अचानक विभाग के अधिकारियों द्वारा मौखिक रूप से निकाल दिया गया था और इसलिए, उन्हें कभी भी काम करने की अनुमति नहीं दी गई थी। इसलिए, प्रतिवादी-कर्मचारी ने दावा किया कि उसने फरवरी, 1987 से अगस्त, 1991 तक वन रेंज में एक बैरियर पर गेट-मैन के रूप में वन विभाग के साथ काम किया है, यानी एक भी दिन के ब्रेक के बिना नियमित रूप से 4 साल से अधिक समय तक काम किया है।

इसके विपरीत, विभाग ने प्रतिवादी के इस दावे का खंडन किया कि उसे काम पर रखा गया था और फिर निकाल दिया गया। विभाग के पास कोई रिकॉर्ड उपलब्ध नहीं था, क्योंकि यह संदर्भ रोजगार से उनकी कथित छंटनी के 12 साल से अधिक समय के बाद दिया गया था, औद्योगिक विवाद खारिज किए जाने योग्य था। अधिकरण के समक्ष यह दलील दी गई कि विभाग की अपनी चयन समिति थी और जब भी रिक्ति निकलती थी, उसका विधिवत प्रकाशन किया

जाता था और निर्धारित चयन प्रक्रिया के माध्यम से एक व्यक्ति को नियोजित किया जाता था। विभाग ने अधिकरण के समक्ष यह दलील भी दी कि स्थापित कानून यह है कि रोजगार में पिछले दरवाजे से प्रवेश नहीं होगा, जैसा कि सुप्रीम कोर्ट ने कई फैसलों में कहा है और इस प्रकार, विभाग ने प्रस्तुत किया कि प्रतिवादी-कर्मचारी ने ऐसा किया है किसी भी राहत के पात्र नहीं ।

प्रतिवादी-कर्मचारी ने कई दस्तावेज दाखिल किए जैसे उसके द्वारा उठाया गया मांग पत्र दिनांक 06.04.2000, उसके द्वारा हस्ताक्षरित रजिस्ट्री रसीदें, काम करने का प्रमाण पत्र, स्थानांतरण आदेश, बैरियर पर चेक किए गए वाहनों की प्रविष्टि वाला रजिस्टर और अप्रैल, 1991 से बनाए गए उपस्थिति रजिस्टर की प्रतियां। कर्मचारी ने अधिकरण के समक्ष गवाही दी कि उसकी नियुक्ति 02.02.1987 को हुई थी और वह अप्रैल 1987 से निचलौल रेंज में काम करता था। जब उसका स्थानांतरण सोहगीबरवा रेंज में हुआ, तो वह वाहन की जांच करता था। उन्होंने बताया कि काम तीन शिफ्टों में किया जाता था और उन्हें केवल 08.08.1991 तक काम करने की अनुमति थी, यानी एक दिन पहले उन्हें 09.08.1991 को विभाग के अधिकारियों द्वारा मौखिक रूप से निकाल दिया गया था। उन्होंने दावा किया कि उन्हें कोई रोजगार पत्र नहीं दिया गया था और उन्हें 299/- रुपये प्रति माह पर नियुक्त किया गया था और बाद में इसे बढ़ाकर 750/- रुपये प्रति माह कर दिया गया था और विभाग से निकाले जाने के समय उन्हें यही राशि मिल रही थी। कर्मचारी की ओर से एक जयराम यादव भी गवाह-बक्से में दाखिल हुआ। ये सज्जन निकसी मुंशी (निर्यात मुहर्रिर) के रूप में कार्यरत थे जो बाद में सेवानिवृत्त हो गये। उन्होंने बताया कि कोमल यादव ने उनके साथ काम किया था और कोमल यादव फरवरी, 1987 में निचलौल रेंज में कार्यरत थीं। उन्होंने यह भी बताया कि बैरियर पर गेट-मैन का कर्तव्य बैरियर को उठाना था जब वाहन चेकिंग के लिए आता था और फिर वाहन को रास्ता दिए जाने के बाद बैरियर को नीचे उतारना । उन्होंने आगे कहा कि बाद में उन्हें (कामगार को) सोहागीबरवा रेंज में स्थानांतरित कर दिया गया जहां उन्होंने अगस्त, 1991 तक काम किया, यानी उस दिन तक जब कर्मचारी को निकाल दिया गया था। उन्होंने बताया कि ड्यूटी शिफ्ट में होती थी और कोमल यादव एक शिफ्ट में 12 घंटे की ड्यूटी करती थी। उन्होंने जमा किया कि वह कोमल यादव की कोई हाजिरी नहीं ले रहे थे और विभाग का एक अधिकारी ही हाजिरी लेता था।

याचिकाकर्ता-विभाग की ओर से, एक विजयकांत पांडे को गवाह के रूप में अधिकरण के समक्ष पेश किया गया था जो वन विभाग में वन रेंजर के रूप में कार्यरत थे। उन्होंने कहा कि सड़क के किनारे, रेलवे स्टेशन, ग्राम समाज रोड और अन्य सार्वजनिक स्थानों पर पेड़ लगाने की विश्व बैंक की योजना थी और चूंकि विभाग पर कार्यभार अधिक था, इसलिए आवश्यकता को पूरा करने और उपयोग करने के लिए विश्व बैंक जो फंड देता था, वह पौधारोपण के काम में लग जाता था। बागान का काम ख़त्म होने के साथ ही मज़दूर की सेवाएँ ख़त्म हो जाती थीं और किसी भी मज़दूर को स्थायी तौर पर नियोजित नहीं किया जाता था। वे दैनिक वेतन के आधार पर कार्यरत थे और विश्व बैंक की परियोजना 1991 में समाप्त होने के बाद से। उन्होंने बताया कि वह वर्ष 2005 से और प्रासंगिक अवधि 1987 से 1991 के दौरान वन अधिकारी के पद पर शिवपुर

रेंज में तैनात थे। वह बलिया रेंज में कार्यरत थे। उन्होंने रेंज के दैनिक वेतनभोगी कर्मियों की सूची के दस्तावेज विभाग द्वारा तैयार किये जाने की बात स्वीकारी, लेकिन प्रतिवादी कर्मी को पहचानने से इंकार कर दिया. उन्होंने स्वीकार किया कि चूंकि वह संबंधित क्षेत्र में काम नहीं कर रहे थे, इसलिए वह प्रतिवादी-कर्मचारी के बारे में कुछ नहीं कह सकते।

अधिकरण ने रिकॉर्ड पर लाए गए दस्तावेजी सबूतों और पार्टियों के गवाहों द्वारा दिए गए बयानों की सराहना की, रजिस्टर जिसमें राजाराम और गफ्फार आदि दो दैनिक वेतन भोगी श्रमिकों की बाद की नियुक्ति दिखाई गई थी, इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि कामगार द्वारा दिए गए बयान और विभागीय गवाह द्वारा उसके गवाहों का खंडन नहीं किया जा सका, क्योंकि दस्तावेज़ों से पता चला कि प्रतिवादी-कर्मचारी ने विभाग के साथ 240 दिनों तक दैनिक दर्ज़ा प्राप्त कर्मचारी के रूप में काम किया और विभाग के अधिकारियों ने उसे पहले से कोई नोटिस दिए बिना निकाल दिया। अधिकरण ने निष्कर्ष निकाला कि प्रतिवादी ने 240 दिनों से अधिक समय तक काम किया है, जैसा कि किए गए बयानों से परिलक्षित होता है और विभागीय गवाह द्वारा इसका खंडन नहीं किया जा सकता है, इसलिए अपरिहार्य निष्कर्ष यह था कि प्रतिवादी-कर्मचारी को पूरी तरह से अवैध रूप से हटा दिया गया था। अधिकरण ने निष्कर्ष निकाला कि यदि कर्मचारी विश्व बैंक की किसी परियोजना में काम कर रहा था, तो उसे कुछ वृक्षारोपण कार्य करने के लिए एक ही स्थान पर तैनात किया जाना चाहिए था, लेकिन सबूतों से पता चला कि श्रमिक ने एक ही स्थान पर किसी बाधा पर काम किया और फिर उसे वन क्षेत्र के भीतर कोई अन्य स्थान पर स्थानांतरित कर दिया गया। । इसलिए, अधिकरण ने माना कि 1947 के अधिनियम की धारा 6-एन, 6-पी और 6-क्यू का उल्लंघन करते हुए कर्मचारी की छंटनी अवैध थी और 240 दिनों से अधिक समय तक काम करने के बाद वह निश्चित रूप से सेवा से बर्खास्तगी से पहले नोटिस का हकदार था। इस प्रकार, प्रतिवादी-कर्मचारी की मौखिक समाप्ति को अमान्य ठहराया गया और कर्मकार को सेवा में बहाल करने का निर्देश दिया गया। चूंकि, प्रतिवादी-कर्मचारी ने 240 दिनों तक काम किया और औद्योगिक कानूनों के वैधानिक प्रावधानों के अनुपालन में छंटनी को अवैध माना गया, इसलिए उसे 50% की सीमा तक बकाया वेतन का भी हकदार माना गया। अधिकरण ने ब्याज भुगतान का भी निर्देश दिया।

संबंधित पक्षों के विद्वान वकीलों को सुनने, बार में उठाए गए उनके तर्कों और अधिकरण के फैसले का अध्ययन करने के बाद, दो मुद्दों पर ध्यान देने की जरूरत है:-

(i) क्या संदर्भ अत्यधिक देर से लिया गया था और अस्वीकृति के योग्य था?; और

(ii) क्या ब्याज सहित बकाया वेतन का भुगतान उचित है।

याचिकाकर्ता-विभाग की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि इस तरह के विलंबित संदर्भ को खारिज कर दिया जाना चाहिए। मेरे सुविचारित विचार में, केवल इसलिए कि संदर्भ देने में देरी हुई, संदर्भ को अस्वीकार करने का आधार नहीं होगा। मुख्य अभियंता रणजीत सागर बांध (सुप्रा) के मामले में, सुप्रीम कोर्ट ने माना है कि देरी के आधार पर संदर्भ को अस्वीकार करने के लिए कोई सार्वभौमिक फॉर्मूला नहीं दिया जा सकता है क्योंकि संदर्भ देने की शक्ति का प्रयोग करने के

लिए सरकार के लिए कोई समय सीमा निर्धारित नहीं थी। . न्यायालय का विचार था कि कुछ तर्कसंगत आधार होने चाहिए, जिस पर ऐसी अवधि बीतने के बाद शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए, जिसे अन्यथा संदर्भ की मांग करने वाले पक्षों को देरी और देरी का दोषी ठहराने के लिए पर्याप्त कहा जा सकता है। हालांकि यह सच है कि इस तरह के पुराने मामले को राज्य सरकार की संदर्भ देने की शक्तियों का सहारा लेकर नहीं खोला जा सकता है, लेकिन यह सब मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगा। अनुच्छेद 9 और 10 के माध्यम से, न्यायालय ने इस प्रकार कहा:

> *9. जहां तक संदर्भ मांगने में देरी का सवाल है, सार्वभौमिक अनुप्रयोग का कोई सूत्र निर्धारित नहीं किया जा सकता है। यह प्रत्येक व्यक्तिगत मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगा।*
>
> *10. हालाँकि, इस न्यायालय द्वारा की गई कुछ टिप्पणियों पर ध्यान देने की आवश्यकता है। नेदुंगडी बैंक लिमिटेड बनाम के.पी. माधवनकुट्टी और अन्य (2000 (2) एससीसी 455) पैराग्राफ 6 में इसे इस प्रकार नोट किया गया था:*
>
> *"6. कानून उचित सरकार के लिए अधिनियम की धारा 10 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करने के लिए कोई समय-सीमा निर्धारित नहीं करता है। ऐसा नहीं है कि इस शक्ति का प्रयोग किसी भी समय किया जा सकता है और उन मामलों को पुनर्जीवित करने के लिए किया जा सकता है जो पहले ही सुलझ चुके हैं। शक्ति का प्रयोग यथोचित और तर्कसंगत तरीके से किया जाना चाहिए। हमें ऐसा कोई तर्कसंगत आधार नहीं दिखता है जिसके आधार पर केंद्र सरकार ने प्रतिवादी को सेवा से बर्खास्त करने के आदेश के लगभग सात साल बीत जाने के बाद इस मामले में शक्तियों का प्रयोग किया हो। समय का संदर्भ दिया गया था, कोई औद्योगिक विवाद अस्तित्व में नहीं था या यह भी कहा जा सकता था कि इसकी आशंका थी। जो विवाद पुराना है, वह अधिनियम की धारा 10 के तहत संदर्भ का विषय नहीं हो सकता है। जब किसी विवाद को पुराना कहा जा सकता है यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। जब मामला अंतिम हो गया है, तो यह हमें असंगत प्रतीत होता है कि वर्तमान मामले जैसी परिस्थितियों में अधिनियम की धारा 10 के तहत संदर्भ दिया जाए। वास्तव में यह हो सकता है कहा कि जिस समय प्रश्न का संदर्भ दिया गया था उस समय कोई विवाद लंबित नहीं था। प्रतिवादी द्वारा प्रस्तावित एकमात्र आधार यह था कि दो अन्य कर्मचारी जिन्हें सेवा से बर्खास्त कर दिया गया था, उन्हें बहाल कर दिया गया था। किन परिस्थितियों में उन्हें बर्खास्त किया गया और बाद में बहाल किया गया, इसका कहीं उल्लेख नहीं किया गया है। औद्योगिक विवाद उठाने के लिए प्रतिवादी द्वारा उठाई गई मांग प्रथम दृष्टया खराब और अक्षम थी।"*

सरकारी विभाग में काम करने वाला एक कर्मचारी यदि अपनी सेवाओं से सेवानिवृत्त हो रहा है, तो वह सौदेबाजी की स्थिति में नहीं हो सकता है। एक गरीब दैनिक वेतनभोगी कर्मचारी को एक अच्छी सुबह में अचानक निकाल दिया जाता है, जो उसके साथ किए गए व्यवहार के लिए अपनी दुखद कहानी पर केवल विलाप कर सकता है। यदि मामला सुलह अधिकारी के पास लंबित है और राज्य ने संदर्भ देने में अपना समय लिया है, तो संबंधित कर्मचारी को केवल देरी के लिए न्यायनिर्णयन से इनकार नहीं किया जाना चाहिए,

खासकर उन परिस्थितियों में जब संदर्भ देने के लिए कोई समय सीमा निर्धारित नहीं है। अनुच्छेद 226 के तहत मेरे न्यायसंगत क्षेत्राधिकार में, मैं इस आधार पर पुरस्कार में हस्तक्षेप करने का इरादा नहीं रखता हूं और इसलिए याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए तर्क को खारिज कर दिया जाता है।

दूसरे पहलू पर आते हैं कि अधिकरण को बकाया वेतन और ब्याज के साथ बहाली का निर्देश नहीं देना चाहिए था और एकमुश्त मुआवजे के भुगतान का आदेश देना चाहिए था क्योंकि विभाग के पास अनुचित श्रम अभ्यास का कोई इतिहास नहीं है, मुझे लगता है कि वर्तमान मामला इसी का है। वन विभाग और यह एक खुला रहस्य है कि वन विभाग में लोगों को दैनिक वेतन के आधार पर वन कार्य में लगाने की प्रथा है। हजारों दैनिक वेतनभोगी/अनौपचारिक मजदूरों ने संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रिट याचिकाओं के माध्यम से इस न्यायालय में जाकर नियमितीकरण की मांग की है और अभी भी कई रिट याचिकाएं अवशोषण के लिए लंबित हैं। उत्तराखंड राज्य बनाम राज कुमार (सुप्रा) का मामला भारत संचार निगम लिमिटेड विभाग से संबंधित है, जबकि याचिकाकर्ता का मामला वन विभाग का है, जहां इतिहास नियमित आधार पर आकस्मिक मजदूरों या दैनिक रेटेड श्रमिकों को काम पर रखने का रहा है और फिर उन्हें अवैध रूप से नौकरी से निकालो. ऐसे विभिन्न श्रमिकों के संबंध में संदर्भों की एक श्रृंखला बनाई गई है जहां 50% बैकवेज़ के साथ बहाली का आदेश दिया गया है और इसलिए, मेरे विचार में, विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता, अमित मनोहर द्वारा उद्धृत निर्णय तथ्यों पर अलग मामला है और उसकी कोई मदद नहीं है। अभिमन्यु और अन्य (सुप्रा), यूपी राज्य और अन्य बनाम राम स्वरूप और अन्य (सुप्रा) और यूपी राज्य और अन्य बनाम श्री प्रहलाद और अन्य (सुप्रा) के मामले सभी वन विभाग से संबंधित हैं। तो, इतिहास कुछ और ही है जो विभाग की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है। वास्तव में, विभाग किसी भी अधिकारी को गवाह के रूप में पेश करने में विफल रहा, जो निचलौल रेंज या अब सोहागीबरवा यूनिट में काम कर चुका हो। विभागीय गवाह ने विश्व बैंक की कुछ वृक्षारोपण योजना का उल्लेख किया जिसमें दैनिक दर वाले श्रमिकों को लगाया जाता था लेकिन यह भी बताने में विफल रहा कि प्रतिवादी-कर्मचारी वहां लगे हुए थे। उन्होंने संबंधित रेंज के श्रमिकों की सूची स्वीकार की, लेकिन कहा कि वह काम करने वाले को नहीं जानते, इसलिए वह कुछ नहीं कहेंगे। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि यदि किसी अधिकारी ने प्रासंगिक अवधि के दौरान संबंधित रेंज में कभी काम नहीं किया है, तो उसे वहां दैनिक वेतनभोगी कर्मचारियों की नियुक्ति के बारे में कुछ भी पता नहीं होगा। इस अधिकारी ने स्वीकार किया कि वह प्रासंगिक समय पर बलिया में काम कर रहा था और इसलिए उसे पेश नहीं किया जाना चाहिए था। विभाग वास्तव में प्रतिवादी-कर्मचारी के नेतृत्व में स्थापित दावे और उनके दावे का खंडन करने में विफल रहा। उठाए गए एक स्पष्ट प्रश्न पर, विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता न तो पेश किए गए दस्तावेजी साक्ष्य पर विवाद कर सकते हैं, न ही इस बात पर विवाद कर सकते हैं कि श्रमिक का गवाह जिसने रेंज के बैरियर पर श्रमिक के काम का समर्थन किया था, वह विभाग का कर्मचारी नहीं था। विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता भी ऐसे

श्रमिकों द्वारा वन विभाग के साथ मुकदमेबाजी के इतिहास पर विवाद नहीं कर सके, जैसा कि प्रतिवादी-कर्मचारी के अधिवक्ता ने उद्धृत किया है। इस प्रकार, मुझे विभाग में कर्मचारी की बहाली के निर्देश देने वाले औद्योगिक न्यायाधिकरण के फैसले में कानून की स्पष्ट त्रुटि और दोष जैसी कोई खामी नहीं मिली। जहां तक बकाया वेतन भुगतान का सवाल है तो इन सभी मामलों में 50 फीसदी बकाया वेतन भुगतान का निर्देश दिया गया है और मामला वन विभाग से संबंधित है. अभियुम्नायु और अन्य (सुप्रा) के मामले में भी, 50% बैकवेज का आदेश दिया गया था जिसके खिलाफ एसएलपी खारिज कर दी गई थी, केवल देरी के आधार पर हो सकता है लेकिन बैकवेज से संबंधित कानूनी प्रस्ताव पर, मुझे लगता है कि इस मामले में इलाहाबाद बैंक और अन्य (सुप्रा), इस उच्च न्यायालय ने बैंक के अधिकारी/कर्मचारी की बहाली पर 50% बकाया वेतन का भुगतान करने का निर्देश दिया था। सुप्रीम कोर्ट के समक्ष एसएलपी दायर की गई थी। उक्त मामले में सुप्रीम कोर्ट ने कई निर्णयों का हवाला दिया और फिर विभाग और उसके कर्मचारी के बीच संतुलन बनाने के एक अधिनियम के रूप में बकाया वेतन के 50% के भुगतान को उचित ठहराया। उक्त प्रकरण में अधिकारी-कर्मचारी को विभाग द्वारा अवैधानिक एवं गलत कृत्य करते हुए सेवा से बर्खास्त करना पाया गया।

दीपाली गुंडू सुरवासे बनाम क्रांति जूनियर अध्यापक महाविद्यालय (डी.एड.) और अन्य 2013 (10) एससीसी 324 के मामले में पैरा 33 के माध्यम से बकाया वेतन के भुगतान के सिद्धांत को विस्तृत करते हुए, न्यायालय ने इस प्रकार कहा है:

"33. उपर्युक्त निर्णयों से जो प्रस्ताव निकाले जा सकते हैं वे हैं:

i) गलत तरीके से सेवा समाप्ति के मामलों में, सेवा की निरंतरता और बकाया वेतन के साथ बहाली सामान्य नियम है।

ii) उपरोक्त नियम इस शर्त के अधीन है कि पिछले वेतन के मुद्दे पर निर्णय लेते समय, न्यायनिर्णयन प्राधिकारी या न्यायालय कर्मचारी/कर्मचारी की सेवा की अवधि, कदाचार की प्रकृति, यदि कोई हो, को ध्यान में रख सकता है। कर्मचारी/कर्मचारी, नियोक्ता की वित्तीय स्थिति और इसी तरह के अन्य कारक।

iii) आम तौर पर, एक कर्मचारी या कामगार जिसकी सेवाएं समाप्त कर दी गई हैं और जो अपना वेतन वापस पाने का इच्छुक है, उसे निर्णय लेने वाले प्राधिकारी या प्रथम दृष्टया न्यायालय के समक्ष या तो दलील देनी होगी या कम से कम एक बयान देना होगा कि वह लाभकारी रूप से नियोजित नहीं था या कम वेतन पर नियोजित किया गया था। यदि नियोक्ता पूर्ण बकाया वेतन के भुगतान से बचना चाहता है, तो उसे दलील देनी होगी और यह साबित करने के लिए ठोस साक्ष्य भी पेश करना होगा कि कर्मचारी/कर्मचारी लाभप्रद रूप से नियोजित था और उसे बर्खास्तगी से पहले प्राप्त वेतन के बराबर वेतन मिल रहा था। ऐसा इसलिए है क्योंकि यह स्थापित कानून है कि किसी विशेष तथ्य के अस्तित्व को साबित करने का भार उस व्यक्ति पर होता है जो इसके

अस्तित्व के बारे में सकारात्मक अनुमान लगाता है। किसी नकारात्मक तथ्य को साबित करने की तुलना में सकारात्मक तथ्य को साबित करना हमेशा आसान होता है। इसलिए, एक बार जब कर्मचारी यह दिखाता है कि वह नियोजित नहीं था, तो नियोक्ता पर जिम्मेदारी होती है कि वह विशेष रूप से दलील दे और साबित करे कि कर्मचारी लाभप्रद रूप से नियोजित था और उसे समान या काफी हद तक समान परिलब्धियां मिल रही थीं।

iv) वे मामले जिनमें श्रम न्यायालय/औद्योगिक न्यायाधिकरण औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 11-ए के तहत शक्ति का प्रयोग करता है और पाता है कि भले ही कर्मचारी/कर्मचारी के खिलाफ की गई जांच प्राकृतिक न्याय के नियमों के अनुरूप है और/या प्रमाणित है स्थायी आदेश, यदि कोई हो, लेकिन यह मानता है कि सज़ा साबित हुए कदाचार के अनुपात से अधिक थी, तो उसके पास पूरा पिछला वेतन न देने का विवेक होगा। हालाँकि, यदि श्रम न्यायालय/औद्योगिक न्यायाधिकरण को पता चलता है कि कर्मचारी या कामगार किसी भी कदाचार का दोषी नहीं है या नियोक्ता ने गलत आरोप लगाया है, तो पूरा पिछला वेतन देने का पर्याप्त औचित्य होगा।

v) ऐसे मामले जिनमें सक्षम न्यायालय या न्यायाधिकरण को पता चलता है कि नियोक्ता ने वैधानिक प्रावधानों और/या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का घोर उल्लंघन किया है या कर्मचारी या कामगार को प्रताड़ित करने का दोषी है, तो संबंधित न्यायालय या न्यायाधिकरण पूरा बकाया वेतन भुगतान का निर्देश देना पूरी तरह उचित है। ऐसे मामलों में, वरिष्ठ न्यायालयों को संविधान के अनुच्छेद 226 या 136 के तहत शक्ति का प्रयोग नहीं करना चाहिए और श्रम न्यायालय द्वारा पारित पुरस्कार आदि में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।केवल इसलिए कि कर्मचारी/कर्मचारी की पूरी बकाया मजदूरी पाने की पात्रता या उसे भुगतान करने के नियोक्ता के दायित्व पर एक अलग राय बनने की संभावना है। न्यायालयों को हमेशा यह ध्यान में रखना चाहिए कि गलत/अवैध सेवा समाप्ति के मामलों में, गलत करने वाला नियोक्ता है और पीड़ित कर्मचारी है और कर्मचारी को पूर्ण बकाया वेतन के रूप में उसका बकाया भुगतान करने के बोझ से मुक्त करके नियोक्ता को उसके गलत कार्यों का प्रीमियम देने का कोई औचित्य नहीं है।

vi) कई मामलों में, वरिष्ठ न्यायालयों ने इस आधार पर प्राथमिक न्यायनिर्णयन प्राधिकारी के फैसले में हस्तक्षेप किया है कि मुकदमेबाजी को अंतिम रूप देने में काफी समय लग गया है, यह नजरअंदाज करते हुए कि अधिकांश मामलों में पक्ष ऐसी देरी के लिए जिम्मेदार नहीं हैं। मामलों के निपटारे में देरी का प्रमुख कारण बुनियादी ढांचे और जनशक्ति की कमी

है। इसके लिए वादकारियों को दोषी नहीं ठहराया जा सकता या दंडित नहीं किया जा सकता। यह किसी कर्मचारी या कामगार के साथ घोर अन्याय होगा यदि उसे केवल इसलिए पिछला वेतन देने से इनकार कर दिया जाए क्योंकि उसकी सेवा समाप्ति और बहाली के आदेश को अंतिम रूप दिए जाने के बीच लंबा अंतराल है। ***न्यायालयों को यह ध्यान में रखना चाहिए कि इनमें से अधिकांश मामलों में, नियोक्ता कर्मचारी या कामगार की तुलना में लाभप्रद स्थिति में है। वह पीड़ित की पीड़ा को लम्बा करने के लिए सर्वोत्तम कानूनी मस्तिष्क की सेवाओं का लाभ उठा सकता है, यानी, कर्मचारी या कामगार, जो एक निश्चित मात्रा में प्रसिद्धि वाले अधिवक्ता पर पैसा खर्च करने की विलासिता बर्दाश्त नहीं कर सकता है। इसलिए, ऐसे मामलों में हिंदुस्तान टिन वर्क्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम हिंदुस्तान टिन वर्क्स प्राइवेट लिमिटेड के कर्मचारी (सुप्रा) मामले में सुझाए गए पाठ्यक्रम को अपनाना समझदारी होगी।***

vii) जेके सिंथेटिक्स लिमिटेड बनाम केपी अग्रवाल (सुप्रा) में की गई टिप्पणी कि बहाली पर कर्मचारी/कर्मचारी अधिकार के रूप में सेवा की निरंतरता का दावा नहीं कर सकता है, यहां ऊपर उल्लिखित तीन न्यायाधीश पीठों के निर्णयों के अनुपात के विपरीत है और इसे अच्छा कानून नहीं माना जा सकता है।. फैसले का यह हिस्सा किसी कर्मचारी/कर्मचारी की बहाली की अवधारणा के भी खिलाफ है।

(जोर दिया गया)

उपरोक्त फैसले पर भरोसा करते हुए, जीतुभा खानसांगजी जाडेजा बनाम कच्छ जिला पंचायत के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने 23.09.2022 को पैराग्राफ 12 के तहत फैसला सुनाया:

"12. दीपाली गुंडू सुरवासे बनाम क्रांति जूनियर अध्यापक महाविद्यालय और अन्य 3 के एक हालिया फैसले में, इस अदालत ने एक पुनर्स्थापनात्मक दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता पर प्रकाश डाला, जब एक अदालत को इस बात पर विचार करना होता है कि क्या किसी कर्मचारी को बहाल करना है या नहीं और यदि हां, तो बकाया वेतन की सीमा क्या है आदेश दिया जाना है। अदालत ने कहा:

> *"22. किसी कर्मचारी को उसी पद पर बहाल करने का विचार, जिस पर वह बर्खास्तगी, निष्कासन या सेवा समाप्ति से पहले था, का तात्पर्य यह है कि कर्मचारी को उसी पद पर रखा जाएगा, जहां वह नियोक्ता द्वारा की गई अवैध कार्रवाई के बिना होता। . किसी ऐसे व्यक्ति को लगी चोट, जिसे बर्खास्त कर दिया गया है या हटा दिया गया है या अन्यथा सेवा से हटा दिया गया है, को आसानी से पैसे के संदर्भ में नहीं मापा जा सकता है। एक आदेश के पारित होने के साथ, जो नियोक्ता-कर्मचारी संबंध को विच्छेद करने का प्रभाव डालता है, बाद वाले का स्रोत आय समाप्त हो जाती है। न केवल संबंधित कर्मचारी, बल्कि उसका पूरा परिवार गंभीर विपत्तियों से पीड़ित होता है। वे जीविका के स्रोत से वंचित हो जाते हैं। बच्चे पौष्टिक भोजन और जीवन में शिक्षा और उन्नति के सभी अवसरों से वंचित हो जाते हैं।*

कभी-कभी, परिवार भुखमरी से बचने के लिए रिश्तेदारों और अन्य परिचितों से उधार लेना पड़ता है।

ये कष्ट तब तक जारी रहते हैं जब तक सक्षम न्यायिक मंच नियोक्ता द्वारा की गई कार्रवाई की वैधता पर निर्णय नहीं ले लेता। ऐसे कर्मचारी की बहाली, जो सक्षम न्यायिक/अर्ध-न्यायिक निकाय या न्यायालय के इस निष्कर्ष से पहले होती है कि नियोक्ता द्वारा की गई कार्रवाई प्रासंगिक वैधानिक प्रावधानों या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के विपरीत है, कर्मचारी को पूर्ण बकाया वेतन दावा करने का अधिकार देती है।. यदि नियोक्ता कर्मचारी को पिछला वेतन देने से इनकार करना चाहता है या परिणामी लाभ प्राप्त करने के उसके अधिकार का विरोध करना चाहता है, तो यह उसका विशेष रूप से अनुरोध करने और साबित करने का काम है कि बीच की अवधि के दौरान कर्मचारी लाभप्रद रूप से नियोजित था और समान परिलब्धियाँ प्राप्त कर रहा था। किसी कर्मचारी को बकाया वेतन देने से इनकार करना, जो नियोक्ता के अवैध कृत्य के कारण पीड़ित हुआ है, अप्रत्यक्ष रूप से संबंधित कर्मचारी को दंडित करने और नियोक्ता को परिलब्धियों सहित बकाया वेतन का भुगतान करने के दायित्व से मुक्त करके पुरस्कृत करने के समान होगा।

"उपरोक्त सिद्धांत को लागू करते हुए जहां न तो विभाग याचिकाकर्ता के कामकाज पर विवाद कर सकता है, न ही अपने पक्ष में गवाही देने वाले किसी साथी कर्मचारी की गवाही पर विवाद करने के लिए कोई गवाह पेश कर सकता है, विभाग का दृष्टिकोण सही माना गया। एक ठीक सुबह कामगार को अचानक नौकरी से निकालना ग़ैरक़ानूनी है। इसलिए, मुझे सीधे तौर पर बकाया वेतन के भुगतान के लिए श्रम न्यायालय के आदेश में कोई अनुचितता या विकृति नहीं दिखती।

इसी तरह मुझे यहां भी ऐसा मामला नजर आया है, जहां एक गरीब चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी, जैसे कि एक दैनिक वेतन भोगी कर्मचारी/अनौपचारिक कर्मचारी, संबंधित वन रेंज में एक बैरियर पर लगभग चार वर्षों से अपने काम और आचरण के बारे में किसी भी शिकायत के बिना काम कर रहा है और फिर भी वह नियमित वेतन की मांग करने पर नौकरी से निकाल दिया गया। किसी सरकारी विभाग के इस दृष्टिकोण को कतई स्वीकार नहीं किया जा सकता। सरकार एक आदर्श नियोक्ता है. मैंने पाया है कि कई निर्णयों में न केवल कर्मियों को बैकवेज़ के साथ वन विभाग में बहाल करने का निर्देश दिया गया है, बल्कि कई याचिकाएं इस न्यायालय के समक्ष हैं, जहां दैनिक वेतनभोगी कर्मियों, जिन्हें सेवा में समाहित किया जाना था, को भी वापस ले लिया गया है। न्यूनतम वेतनमान का भुगतान करने का निर्देश दिया।
यह निष्कर्ष दिए जाने पर कि विभाग से निकाले जाने के बाद से प्रतिवादी कर्मचारी रोजगार से बाहर था और उसके पास कोई लाभकारी रोजगार नहीं था और खंडन में कुछ भी नहीं दिखाया गया था, श्रम न्यायालय को यह नहीं कहा जा सकता कि उसने बैकवेज़ के लिए निर्देश जारी करने में गलती की है। इन परिस्थितियों में, 50% बकाया वेतन के निर्देश को पूरी तरह से अतार्किक नहीं कहा जा सकता है, जिससे भारत के संविधान के

अनुच्छेद 226 के तहत शक्ति के प्रयोग में हस्तक्षेप की आवश्यकता हो। हालाँकि, मुझे अधिकरण द्वारा अपने फैसले के तहत बकाया वेतन पर ब्याज के भुगतान के लिए कोई विशेष कारण नहीं बताया गया है।

इसलिए, दिनांक 04.11.2011 के फैसले का ब्याज भाग अस्थिर माना जाता है।

उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, जबकि मैं औद्योगिक न्यायाधिकरण द्वारा प्रतिवादी-कर्मचारी को बकाया वेतन के साथ बहाल करने का निर्देश देने वाले दिनांक 04.11.2011 के फैसले में हस्तक्षेप करने से इनकार करता हूं, मैं उस फैसले को रद्द करता हूँ, जहां तक यह बकाया वेतन और उस पर ब्याज के भुगतान का निर्देश देता हूँ।

फैसले के लागत भाग में भी हस्तक्षेप नहीं किया जाता है।

इस प्रकार, उपरोक्तानुसार रिट याचिका को आंशिक रूप से स्वीकार किया जाता है।

लागत के बारे में कोई आदेश नहीं दिया गया है।

(2023) 3 ILRA 440

मूल न्यायाधिकार

नागरिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 08.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर,

रिट सी संख्या 1000609/2003

हरि नारायण शुक्ला ...याचिकाकर्ता

बनाम

यूपी राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादीगण

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: जी.एम. कामिल

अधिवक्ता प्रतिवादीगण: सी.एस.सी., पं. एस. चंद्रा

A. सिविल कानून - भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 - धारा 33 (1), (4), और उपधारा (5) का प्रावधान - चार वर्ष पश्चात कार्यवाही प्रारंभ करना - पोषणीयता - बिक्री पत्र को धारा 33(1) के अंतर्गत जब्त किया गया - समय सीमा की प्रयोज्यता - धारा 33(1) और 33(4) की कार्यवाही में अंतर - प्रभाव - आयोजित, जब कोई दस्तावेज जो ठीक से स्टाम्प नहीं किया गया है और जो अधिनियम 1899 की धारा 33(1) के तहत जब्त किया गया है, तब आवश्यक प्रावधान केवल धारा 38 के अंतर्गत पालन करने होंगे, न कि अधिनियम 1899 की धाराओं 33(4) और (5) के तहत। इस प्रकार, अधिनियम की धारा 33(5) के तहत प्रदान की गई समय सीमा तब लागू नहीं होगी जब कार्यवाही अधिनियम की धारा 33(1) के तहत की जा रही हो और यह केवल तभी उपलब्ध होगी जब कार्यवाही कलेक्टर द्वारा अधिनियम 1899 की धारा 33(4) के तहत की गई हो। (पैराग्राफ 16)

B. सिविल कानून - भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 - धारा 33 (1), (4), (5) और उपधारा (5) का प्रावधान - चार वर्ष की समय सीमा - इसकी प्रयोज्यता की तिथि - आयोजित, जब कोई हस्तांतरण का दस्तावेज किसी नामित न्यायालय या प्राधिकरण के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया जाता है जैसा कि अधिनियम 1899 की धाराओं 33 या 47-ए में उल्लिखित है, तो उपरोक्त समय सीमा तभी प्रभावी होगी जब ऐसा अपंजीकृत हस्तांतरण दस्तावेज प्रथम बार किसी नामित प्राधिकरण के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है - आगे कहा गया कि समय सीमा केवल तब प्रभावी होगी जब व्यक्ति को किसी ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध किसी

कार्यवाही के बारे में जानकारी हो और न कि उस कार्यवाही या दस्तावेज की तिथि से प्रभावी होगी। (पैराग्राफ 18 और 20)

C. सिविल कानून - भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 - धाराएँ 33, 40 और 47A - कार्यवाही - वैधता - याचिकाकर्ता को अपंजीकृत दस्तावेज से कोई लाभ नहीं हुआ - प्रभाव - कहा गया कि अधिनियम 1899 के तहत धारा 33/40/47A के तहत कार्यवाही केवल तब प्रारंभ की जा सकती है जब कोई व्यक्ति अपंजीकृत या कम मूल्य वाले हस्तांतरण दस्तावेज से लाभ उठाए - अधिनियम 1899 की धाराओं 33/40/47A के तहत कार्यवाही तब भी की जा सकती है जब अपंजीकृत हस्तांतरण दस्तावेज से कोई लाभ नहीं मिला हो। {पैराग्राफ 23 और 29(iii)}

D. सिविल कानून - भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 - धारा 33 - कमी की गणना - उपयुक्त तिथि, जिस पर गणना की जा सकती है - कहा गया कि कम मूल्य या अपंजीकृत दस्तावेज की मूल्यांकन और उसकी कमी की गणना उस समय की जाएगी जब दस्तावेज पर हस्ताक्षर किए गए थे और न कि जब इसे जब्त किया गया या प्रस्तुत किया गया। {पैराग्राफ 27 और 29(iv)}
रिट याचिका आंशिक रूप से स्वीकृत। (ई-1)

<u>उल्लेखित वाद सूची :-</u>

1. साईबाबा बनाम बार काउंसिल ऑफ इंडिया और अन्य; (2003) 6 SCC 186

2. राजेंद्र प्रसाद गर्ग बनाम मुख्य नियंत्रक राजस्व प्राधिकरण और अन्य; (2002) 93 RD 198

<u>माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर,</u>

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री जी.एम. कामिल और विपक्षी पक्षों की ओर से विद्वान शासकीय अधिवक्ता श्री देवेन्द्र मोहन शुक्ला साथ ही साथ श्री अजय कुमार सिंह को सुना गया ।

2. याचिका, भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 (इसके बाद 1899 के अधिनियम के रूप में संदर्भित) की धारा 33 के तहत याचिकाकर्ता के पक्ष में निष्पादित विक्रय विलेख दिनांक 12.08.1985 को जब्त करने के आदेश दिनांक 09.08.2002 को चुनौती देते हुए दायर की गई है। 1899 के अधिनियम के तहत कार्यवाही की संधार्यता के संबंध में याचिकाकर्ता की प्रारंभिक आपत्तियों को खारिज करने वाले दिनांक 17.02.2003 के आदेश को भी चुनौती दी गई है। 1899 के अधिनियम की धारा 33/40 के तहत प्रारम्भ की गई सम्पूर्ण कार्यवाही को रद्द करने की प्रार्थना भी की गई है।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि दिनांक 12.08.1985 को हस्तांतरण के एक अपंजीकृत लिखत के माध्यम से याचिकाकर्ता के पक्ष में एक विक्रय विलेख निष्पादित किया गया था। यह प्रस्तुत किया गया है कि बाद में उ.प्र. जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 (इसके बाद 1950 के अधिनियम के रूप में संदर्भित) की धारा 229-बी के तहत घोषणा के लिए एक मुकदमा याचिकाकर्ता द्वारा दायर किया गया था और जिसे प्रकरण संख्या87 के रूप में दर्ज किया गया। यह प्रस्तुत किया गया है कि मुकदमे का फैसला, निर्णय और आदेश दिनांक 17.05.2002 के द्वारा सुनाया गया था, जिसके बाद एक प्रत्याहार प्रार्थनापत्र दायर किया गया था और दिनांक 20.08.2002 के आदेश के माध्यम से, प्रारंभिक

निर्णय और आदेश दिनांक 17.05.2002 को वापस ले लिया गया था। यह प्रस्तुत किया गया है कि इसके बाद उपरोक्त घोषणा वाद में कार्यवाही शुरू हुई लेकिन इसकी वर्तमान स्थिति के संबंध में उनके पास कोई निर्देश नहीं है।

4. यह प्रस्तुत किया गया कि इस बीच चूंकि निर्णय और डिक्री दिनांक 17.05.2002,एक अपंजीकृत विक्रय विलेख दिनांकित12.08.1985 के आधार पर पारित किया गया था, उसे 1899 के अधिनियम की धारा 33 के तहत जब्त कर लिया गया और इसकी एक प्रमाणित प्रति को अभिदेश आदेश दिनांक 09.08.2002 के माध्यम से संबंधित प्राधिकारी को भेज दिया गया था, जिसके बाद याचिकाकर्ता के खिलाफ प्रकरण संख्या 318/343/2002 के रूप में अधिनियम की धारा 33 और 40 की सहपठित धारा 47-क के तहत कार्यवाही शुरू की गई। यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता द्वारा पूर्वोक्त कार्यवाही की संधार्यता के संबंध में मुख्य रूप से इस आधार पर प्रारंभिक आपत्ति दायर की गई थी कि 1899 के अधिनियम की धारा 33(5) के प्रावधान के अनुसार विलेख के निष्पादन की तारीख से चार साल की अवधि के बाद ऐसी कार्यवाही शुरू नहीं की जा सकती। आपत्तियों में दूसरा आधार यह लिया गया कि चूंकि याचिकाकर्ता ने उपरोक्त विलेख से कोई लाभ नहीं लिया, अन्यथा भी स्टांप शुल्क देय नहीं था। तीसरी आपत्ति यह थी कि अभिदेश आदेश दिनांक 09.08.2002 में, स्टांप शुल्क की कमी को गलत तरीके से दर्शाया गया है क्योंकि लिखत के निष्पादन की तिथि के अनुसार मूल्यांकन करने के बजाय वर्ष 2002 के अनुसार मूल्यांकन दर्ज किया गया।

5. यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए उपरोक्त दलीलों को दिनांक 17.02.2003 के आक्षेपित आदेश के माध्यम से मुख्य रूप से इस आधार पर खारिज कर दिया गया है कि दस्तावेज़ के निष्पादन की तिथि से कार्यवाही शुरू करने के लिए चार साल की सीमा वर्तमान प्रकरण में लागू नहीं होगी चूंकि निष्पादन के बाद दस्तावेज कभी भी किसी प्राधिकारी के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया था और याचिकाकर्ता द्वारा छिपाकर रखा गया था और इस तरह परिसीमन केवल दस्तावेज़ की प्रस्तुति की तिथि से ही लागू होगी। आदेश में यह भी कहा गया है कि चूंकि दस्तावेज वर्ष 2002 में ही प्रस्तुत किया गया था, इसलिए इसमें, स्टांप शुल्क में कमी दर्शाने के लिए वर्ष 2002 को वर्ष मानकर दर्ज किये गये मूल्यांकन में कोई त्रुटि नहीं है ।

6. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि आक्षेपित आदेश पारित करते समय, संबंधित प्राधिकारी, खास तौर से परिसीमन की प्रयोज्यता के संबंध में, एक त्रुटिपूर्ण निष्कर्ष पर पहुंचे हैं क्योंकि ऐसा परिसीमन, अधिनियम की धारा 33 में स्पष्ट रूप से इंगित है जिसके तहत स्वयं दस्तावेज़ को जब्त कर लिया गया और इसलिए परिसीमन की अनुपयुक्तता के संबंध में आक्षेपित आदेश में कोई ठोस कारण नहीं दर्शाया गया है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि विलेख का मूल्यांकन, इसके निष्पादन की तिथि अगस्त, 1985 से न करके, वर्ष 2002 से करने का कोई कारण नहीं दर्शाया गया है। प्राधिकारी ने इस तथ्य पर भी ध्यान नहीं दिया है कि याचिकाकर्ता ने उपरोक्त विलेख से कोई लाभ प्राप्त नहीं किया।

7. विपक्षियों की ओर से उपस्थित विद्वान शासकीय अधिवक्ता श्री देवेन्द्र मोहन शुक्ला ने याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई दलीलों का खंडन करते हुए कहा कि अधिनियम

1899 की धारा 33(5) के प्रावधानों के अनुसार, जो चार साल की परिसीमन अवधि प्रदान की गई है, वर्तमान मामले में अप्रयोज्य होगी क्योंकि जब्ती 1899 के अधिनियम की धारा 33(1) के अनुसार हुई है और इसलिए 1899 के अधिनियम की धारा 33(4) में बताई गई प्रक्रिया के बजाय 1899 के अधिनियम की धारा 38 में बताई गई प्रक्रिया लागू होगी। चूंकि 1899 के अधिनियम की धारा 38 किसी परिसीमन अवधि का प्रावधान नहीं करती है, इसलिए याचिकाकर्ता की उक्त दलील को अस्वीकार करने में संबंधित प्राधिकारी द्वारा कोई त्रुटि नहीं की गयी। यह प्रस्तुत किया गया है कि अन्यथा भी, जब अचल संपत्ति के हस्तांतरण के लिए एक दस्तावेज निष्पादित हो गया और पंजीकरण के लिए या किसी सार्वजनिक प्राधिकरण के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया है, तो ऐसे निष्पादन के संबंध में कोई ज्ञान राजस्व अधिकारियों द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता है और इसलिए विकल्प के रुप में, चार वर्ष की परिसीमन के प्रावधान को दस्तावेज़ की जानकारी की तिथि से लागू किया जाना चाहिए, न कि इसके निष्पादन की तिथि से।

8. यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि जब याचिकाकर्ता ने घोषणात्मक वाद दायर किया और उसे एक अपंजीकृत विक्रय विलेख दिनांकित 12.08.1985 के आधार पर डिक्री प्राप्त हो गई, इससे यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता ने पहले ही उपरोक्त लिखत से लाभ प्राप्त कर लिया है और इस तरह, उस आधार पर याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की दलीलों को सही ढंग से खारिज किया गया। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता ने रिट याचिका के पैराग्राफ -4 में यह भी स्वीकार किया है कि याचिकाकर्ता उक्त विक्रय विलेख दिनांक 12.08.1985 के आधार पर प्रश्नगत संपत्ति पर स्वामित्व प्राप्त किया और काबिज है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि चूंकि विलेख को सत्रह वर्षों तक अधिकारियों से छिपा कर रखा गया और केवल वर्ष 2002 में घोषणात्मक कार्यवाही में प्रस्तुत किया गया, इसलिए वर्ष 1985 के बजाय वर्ष 2002 से मूल्यांकन करने में कोई त्रुटि नहीं हुई है।

9. वर्तमान विवाद के उचित निर्णय के लिए, निम्नलिखित प्रश्नों पर अधिनिर्णयन की आवश्यकता होगी:-

(i) क्या 1899 के अधिनियम की धारा 33(5) के प्रावधान में निर्धारित चार साल की परिसीमन अवधि उन मामलों में,जहां दस्तावेज़ 1899 के अधिनियम की धारा 33(1) के तहत जब्त किया गया है, लागू होगी?

(ii) क्या प्रकरण में, 1899 के अधिनियम की धारा 33(5) के तहत प्रावधानित परिसीमन अवधि, हस्तांतरण के एक लिखत के निष्पादन की तिथि से लागू होगी या जब इसे 1899 के अधिनियम की धारा 33(1) या 33(4) के तहत दर्शायी गयी कार्यवाही में प्रस्तुत किया गया, उस तिथि से लागू होगी?

(iii) क्या किसी निर्धारिती के विरुद्ध, जबकि उसने हस्तांतरण के अपंजीकृत लिखत से कोई लाभ प्राप्त नहीं किया हो, 1899 के अधिनियम की धारा 33/40/47क के तहत कार्यवाही शुरू की जा सकती है?

(iv) क्या हस्तांतरण के लिखत और उस पर स्टांप शुल्क की कमी का मूल्यांकन, लिखत के निष्पादन की तिथि पर किया जाना है या जब इसे जब्त किया जाता है?

10. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत दलीलों पर विचार करने पर, यह स्पष्ट है और स्वीकार्य है कि 12.08.1985 को याचिकाकर्ता के

पक्ष में अचल संपत्ति से संबंधित एक विक्रय विलेख निष्पादित किया गया था। उपरोक्त दस्तावेज़ को वर्ष 2002 में घोषणात्मक कार्यवाही में पेश करने से पहले कभी भी पंजीकरण के लिए या यहां तक कि किसी भी सार्वजनिक प्राधिकरण के समक्ष किसी अन्य कार्यवाही में प्रस्तुत नहीं किया गया था, जहां संबंधित न्यायालय ने इसे अमुद्रांकित पाया, अधिनियम 1899 की धारा 33 (1) के तहत इसे जब्त कर लिया और आदेश दिनांक 09.08.2002 के माध्यम से एक अभिदेश, 1899 के अधिनियम की धारा 40 और 47क के तहत कार्यवाही के लिए, निर्धारित प्राधिकारी को किया। दिनांक 09.08.2002 के आदेश का अवलोकन यह इंगित करता है कि विलेख का मूल्यांकन के लिए दिनांक 17.05.2002 को लिया गया है और अभिदेश आदेश में स्टांप शुल्क की कमी को प्रकट किया गया है, जिसके बाद अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों के तहत याचिकाकर्ता के खिलाफ कार्यवाही शुरू करने के लिए हस्तांतरण के लिखत की एक प्रमाणित प्रति निर्धारित प्राधिकारी को भेज दी गई है।

प्रश्न (i): **क्या 1899 के अधिनियम की धारा 33(5) के प्रावधान में निर्धारित चार साल की परिसीमन अवधि उन मामलों में, जहां दस्तावेज़ 1899 के अधिनियम की धारा 33(1) के तहत जब्त किया गया है, लागू होगी?**

11. उपरोक्त उद्देश्य के लिए, 1899 के अधिनियम की धारा 33, 38 और 47ए का उल्लेख करना प्रासंगिक है जो इस प्रकार हैं: -

*"33. **लिखतों का परीक्षण और जब्ती**- (1) विधि या पक्षकारों की सहमति से साक्ष्य लेने के लिये अधिकृत, पुलिस अधिकारी के सिवाय, सार्वजनिक कार्यालय का प्रभारी, प्रत्येक व्यक्ति, जिसके समक्ष, उसके कर्तव्यों के सम्पादन में कोई ऐसा विलेख प्रस्तुत किया जाये, या आ जाये, जो उसकी राय में स्टाम्प शुल्क से प्रभार्य है और उसे प्रतीत हो कि वह विलेख यथाविधि स्टाम्पित नहीं है, उसे जब्त करेगा।*

(2) इस प्रयोजन से, ऐसा प्रत्येक व्यक्ति, यह सुनिश्चित करने के लिये कि विलेख के निष्पादन या प्रथम निष्पादन के समय भारत में प्रचलित विधि में निर्धारित मूल्य और प्रकार के स्टाम्प से स्टाम्पित है, उसके समक्ष ऐसे प्रस्तुत किये गये या आये, प्रत्येक ऐसे प्रभार्य विलेख का परीक्षण करेगा।

परन्तु-

(क) यहां पर किसी बात से किसी मजिस्ट्रेट या फौजदारी न्यायालय के जज से, यह अपेक्षा करना नहीं माना जायेगा कि यदि वह ऐसा करना उचित न समझे, तो दण्ड प्रकिया संहिता, 1973 की धारा 125 से 128 तक और 145 से 148 तक के अधीन हो रही कार्रवाई के सिवाय, अन्य किसी कार्रवाई में उसके समक्ष प्रस्तुत होने वाले या आने वाले लिखत का परीक्षण करे या उसको जब्त करे;

(ख) उच्च न्यायालय के जज के मामले में, इस धारा के अधीन लिखत का परीक्षण करने और जब्त करने का दायित्व, उस अधिकारी को प्रतिनिहित किया जा सकता है जिसे न्यायालय इस कार्य के लिये नियुक्त करे;

(3) संदेह की दशा में, राज्य सरकार यह निश्चित कर सकती है कि कौन कार्यालय सार्वजनिक कार्यालय माने जायेंगे और कौन व्यक्ति सार्वजनिक कार्यालयों के प्रभारी अधिकारी माने जायेंगे;

(4) जब अदा किये गये स्टाम्प शुल्क में कमी किसी लिखतकी नकल से ज्ञात हो, तो कलेक्टर स्वयमेंव, या किसी न्यायालय, या स्टाम्प

आयुक्त, या अपर स्टाम्प आयुक्त, या स्टाम्प उप-आयुक्त या सहायक स्टाम्प आयुक्त या राजस्व परिषद् द्वारा इस कार्य के लिये अधिकृत अधिकारी के संदर्भ पर, विलेख पर अदा किये गये स्टाम्प शुल्क की पर्याप्तता के बारे में अपनी सन्तुष्टि करने के प्रयोजन से, मूल विलेख को तलब कर सकता है और उसके समक्ष प्रस्तुत किया गया ऐसा विलेख उसके कार्य के सम्पादन में उसके समक्ष प्रस्तुत हुआ, या आया हुआ, माना जायेगा।

(5) कलेक्टर द्वारा निर्धारित अवधि के अन्दर विलेख प्रस्तुत न किये जाने की दशा में, वह, लिखत की नकल पर धारा 40 के अधीन दण्ड सहित स्टाम्प शुल्क (यदि हो) की अदायगी की अपेक्षा कर सकता है।

परन्तु लिखत के निष्पादन की तारीख से चार वर्ष की अवधि के बाद उप-धारा (4) और उप-धारा (5) के अधीन कोई कार्यवाही नहीं की जावेगी।

परन्तु यह और कि राज्य सरकार की पूर्व अनुमति से उपधारा (4) और उप-धारा (5) के अधीन कोई कार्यवाही लिखत के निष्पादन की तारीख से चार वर्ष की अवधि के पश्चात, किन्तु आठ वर्ष की अवधि के पूर्व की जा सकती है।"

*"38. **जब्त किये गये लिखतों पर कार्रवाई कैसे की जाये-** (1) जब धारा 33 के अधीन किसी लिखत को जब्त करने वाले व्यक्ति को, विधि या पक्षकारों की सहमति से साक्ष्य लेने का अधिकार प्राप्त हो, और वह ऐसे लिखत को धारा 35 के प्रावधानानुसार दण्ड की अदायगी पर या धारा 37 के प्रावधानानुसार शुल्क की अदायगी पर साक्ष्य में स्वीकार करे, तो वह उस लिखत की एक प्रमाणित नकल, ऐसे प्रमाणक के साथ जिसमें उसके सम्बन्ध में वसूल किये गये शुल्क और दन्ड की राशि व्यक्त की गई हो, कलेक्टर के पास भेजेगा, और उस राशि को कलेक्टर या उस व्यक्ति के पास भेजेगा जिसे इस कार्य के लिये कलेक्टर ने नियुक्त करे।*

(2) अन्य किसी दशा में लिखत को जब्त करने वाला व्यक्ति उसे मूल रूप में कलेक्टर के पास भेजेगा।"

*"**47-क. लिखत का अवमूल्यन-** (1) (क) यदि किसी लिखत, जिस पर सम्पत्ति के बाजारी मूल्य पर शुल्क प्रभार्य हो, की विषयवस्तु ऐसी सम्पत्ति की उक्त लिखत में उल्लिखित बाजार मूल्य, इस अधिनियम के अधीन बनाये गये नियमों के अनुसार अवधारित न्यूनतम बाजार मूल्य से कम हो, तो रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 के अधीन नियुक्त रजिस्ट्रीकरण अधिकारी, इस अधिनियम में किसी प्रतिकूल बात के होते हुए भी, ऐसी लिखत प्रस्तुत करने के ठीक पश्चात् और रजिस्ट्रीकरण के लिए उसे स्वीकार करने और उक्त अधिनियम की धारा 52 के आधीन कोई कार्रवाही करने के पहले, धारा 29 के अधीन स्टाम्प शुल्क देने के लिए दायी व्यक्ति से उक्त नियमावली के अनुसार अवधारित न्यूनतम मूल्य के आधार पर यथासंगणित स्टाम्प शुल्क की कमी को देने की अपेक्षा करेगा और रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 23 के अनुसार पुनः प्रस्तुत करने के लिए लिखत को वापस लौटा देगा।*

(ख) जब खण्ड (क) के आधीन दिये जाने के लिए अपेक्षित स्टाम्प शुल्क की कमी को किसी लिखत के सम्बन्ध में दे दिया जाता है और लिखत को रजिस्ट्रीकरण के लिए पुनः प्रस्तुत किया जाता है तो रजिस्ट्रीकरण अधिकारी उस पर पृष्ठांकन द्वारा प्रमाणित करेगा कि उसके सम्बन्ध में स्टाम्प शुल्क की कमी को दे दिया गया है और

अदा करने वाले व्यक्ति के नाम और आवास को सत्यापित करके उसे रजिस्ट्रीकृत करेगा।

(ग) इस अधिनियम के किन्हीं अन्य उपबन्धों में किसी बात के होते हुए भी, स्टाम्प शुल्क की कमी को यथाविहित घोषणा के साथ छापित स्टाम्प के रूप में खण्ड (क) के अधीन अदा किया जा सकता है।

(घ) यदि कोई व्यक्ति खण्ड (क) में निर्दिष्ट आदेश को प्राप्त करने के पश्चात् स्टाम्प शुल्क की कमी की अदायगी नहीं करता है और लिखत को रजिस्ट्रीकरण के लिए पुनः प्रस्तुत करता है तो रजिस्ट्रीकर्ता अधिकारी लिखत को रजिस्ट्रीकृत करने के पूर्व ऐसी सम्पत्ति के बाजार मूल्य और उस पर देय उचित शुल्क को अवधारित करने के लिए उसे कलेक्टर को अभिदिष्ट करेगा।"

(2) उपधारा (1) के आधीन अभिदेश प्राप्त होने पर कलेक्टर पक्षों को सुनवाई का उचित अवसर देने और ऐसी रीति से, जो इस अधिनियम के अधीन बनाये गये नियमों द्वारा नियत की जाए, जाँच करने के पश्चात् सम्पत्ति का बाजार मूल्य जो ऐसी लिखत की विषयवस्तु हो, और उस पर देय उचित शुल्क अवधारित करेगा।

(3) कलेक्टर, स्वप्रेरणा से, या किसी न्यायालय या स्टाम्प आयुक्त या किसी अपर स्टाम्प आयुक्त या उप स्टाम्प आयुक्त या सहायक स्टाम्प आयुक्त या राज्य सरकार द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत किसी अधिकारी के अभिदेश पर, किसी लिखत को, जिस पर सम्पत्ति के बाजार मूल्य पर शुल्क प्रभार्य हो और जो उपधारा (1) के अधीन उसे पहले से, अभिदिष्ट न हो, सम्पत्ति का बाजार मूल्य जो ऐसे लिखत की विषयवस्तु हो, और उस पर देय शुल्क की सत्यता के सम्बन्ध में अपना समाधान करने के प्रयोजन के लिये, निबन्धन की तारीख से चार वर्ष के भीतर मँगा सकता है और उसका परीक्षण कर सकता है, और यदि ऐसे परीक्षण के पश्चात् उसे यह विश्वास करने का कारण हो कि लिखत में ऐसी सम्पत्ति का बाजार मूल्य ठीक प्रकार से नहीं दिखाया गया है तो वह ऐसी सम्पत्ति का बाजार मूल्य और उस पर देय शुल्क अवधारित कर सकता है:

परन्तु राज्य सरकार की पूर्व अनुमति से, इस उपधारा के अधीन कोई कार्यवाही लिखत के जिस पर सम्पत्ति के बाजार मूल्य पर शुल्क प्रभार्य हो, निबन्धन की तारीख से चार वर्ष की अवधि के पश्चात् किन्तु आठ वर्ष की अवधि के पूर्व की जा सकती है।

स्पष्टीकरण - उपधारा (1) के अधीन रजिस्ट्रीकर्ता अधिकारी के किसी आदेश के अधीन किसी व्यक्ति द्वारा स्टाम्प शुल्क की कमी की अदायगी कलेक्टर को उपधारा (3) के अधीन किसी लिखत पर कार्यवाही प्रारम्भ करने से नहीं रोकेगी।

(4) यदि उपधारा (2) के अधीन जाँच और उपधारा (3) के अधीन परीक्षण करने पर कलेक्टर सम्पत्ति के बाजार मूल्य को -

(एक) ठीक प्रकार से उल्लिखित और लिखत के सम्यक् रूप से स्टाम्पित पाये तो वह पृष्ठांकन द्वारा प्रमाणित करेगा कि यह सम्यक् रूप से स्टाम्पित है और उसे उस व्यक्ति को वापस करेगा जिसने अभिदेश किया हो;

(दो) ठीक प्रकार से उल्लिखित न पाये और लिखत को सम्यक् रूप से स्टाम्पित न पाये तो वह अपेक्षा करेगा कि उचित शुल्क या कमी को पूरा करने के लिए अपेक्षित रकम और साथ साथ शास्ति की रकम जो उचित शुल्क या उसके कमी वाले भाग की रकम के चार गुने से अनधिक होगी, दी जाये।

(4-क) कलेक्टर यह भी अपेक्षा करेगा कि उपधारा (4) के खण्ड (दो) के अधीन दिये जाने के लिए अपेक्षित स्टाम्प शुल्क की कमी की रकम या शास्ति के साथ लिखत के निष्पादन के दिनांक से वास्तविक अदायगी के दिनांक तक संगणित स्टाम्प शुल्क की कमी की रकम पर डेढ़ प्रतिशत प्रतिमाह की दर से साधारण ब्याज दिया जाये:

परन्तु यदि स्टाम्प शुल्क की कमी की रकम में अपील या पुनरीक्षण के तहत या किसी सक्षम न्यायालय या प्राधिकारी के किसी आदेश द्वारा फेरफार किया गया हो तो इस उपधारा के अधीन ब्याज के रकम की पुनः संगणना की जायेगी।

(4-ख) उपधारा (4-क) के अधीन देय ब्याज की रकम देय रकम में जोड़ दी जायेगी और उसे सभी प्रयोजनों के लिए, दिये जाने के लिए अपेक्षित रकम का अंश भी समझा जायेगा।

(4-ग) जहाँ स्टाम्प शुल्क की कमी की वसूली किसी न्यायालय या प्राधिकारी के किसी आदेश द्वारा स्थगित रही हो और तत्पश्चात् ऐसा स्थगन आदेश रद्द कर दिया गया हो, वहाँ उपधारा (4-क) में निर्दिष्ट ब्याज किसी ऐसी अवधि के लिए भी देय होगा, जिसके दौरान ऐसा स्थगन आदेश प्रवृत्त रहा हो।

(4-घ) इस अधिनियम के उपबन्धों के अधीन किसी व्यक्ति द्वारा अदा की गयी या जमा की गयी या उससे वसूल की गयी या उसे प्रतिदेय किसी रकम को पहले उसके विरुद्ध बकाया स्टाम्प शुल्क की कमी या शास्ति के प्रति समायोजित किया जायेगा और तत्पश्चात् आधिक्य को, यदि कोई हो, उसके द्वारा देय ब्याज, यदि कोई हो, को प्रति समायोजित किया जायेगा।"

(5) उपधारा (2) या उपधारा (3) के आधीन कलेक्टर के सामने प्रस्तुत लिखत को उसके कृत्यों के पालन में उसके सामने आया हुआ माना जायेगा।

(6) यदि लिखत कलेक्टर द्वारा विनिर्दिष्ट अवधि के भीतर प्रस्तुत नहीं किया जाता है तो वह स्टाम्प शुल्क की कमी, यदि कोई हो, लिखत की प्रति पर उपधारा (2) और (4) में दी गई प्रक्रिया के अनुसार शास्ति के साथ संदाय करने की अपेक्षा कर सकता है।"

12. अधिनियम की धारा 33(1) को पढ़ने से कतिपय प्राधिकारियों की ओर संकेत मिलता है जिन्हें किसी ऐसे लिखत, जो उनके समक्ष प्रस्तुत किया गया है या उनके कार्यों के निष्पादन के दौरान प्रर्दशित होता है और जो विधिवत मुद्रांकित नहीं है, को ज़ब्त करने की शक्ति दी गई है। अधिनियम की धारा 33(2) में निर्धारित प्राधिकारी को अभिदेश के पूर्व की प्रक्रिया इंगित की गई है, जबकि उप-धारा (3) राज्य सरकार की शक्ति, यह निर्धारित करने के लिए कि कौन से कार्यालय सार्वजनिक कार्यालय माने जाएंगे, को इंगित करती है।

13. धारा 33(1) और धारा 33(4) को संयुक्त रूप से पढ़ने से, उपरोक्त दोनों प्रावधानों के बीच अंतर स्पष्ट रूप से सामने आता है। जबकि धारा 33(1) में, कतिपय अधिकारियों को, एक ऐसे लिखत जो साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है और जो विधिवत मुद्रांकित नहीं है, को जब्त करने की शक्ति दी गई है, धारा 33 की उपधारा (4) कलेक्टर की शक्ति को इंगित करती है जहां लिखत की एक प्रति से स्टांप शुल्क की अदायगी में कमी का मूल्यांकन किया जाता है और जहां न्यायालय या उसमें निर्दिष्ट प्राधिकारियों द्वारा एक अभिदेश किया जाता है। यह प्रासंगिक है कि 1899 के अधिनियम की धारा 33(4) के प्रावधान केवल उपलब्ध कराये गये लिखत पर भुगतान

किए गए शुल्क की पर्याप्तता के संबंध में कलेक्टर की संतुष्टि के उद्देश्य के लिए हैं और केवल उस उद्देश्य के लिए, कलेक्टर के पास मूल दस्तावेज़ को मंगाने की शक्ति है। 1899 के अधिनियम की धारा 33(1) की प्रयोज्यता के मामले में, स्टांप शुल्क की पर्याप्तता के बारे में उक्त संतुष्टि उक्त उप-धारा में इंगित प्राधिकारियों द्वारा की जानी आवश्यक है और इस निष्कर्ष पर कि लिखत विधिवत मुद्रांकित नहीं है, उसे जब्त करने की शक्ति प्रदान की गई है। इस प्रकार, 1899 के अधिनियम की धारा 33 की उपधारा (1) और (4) के बीच स्पष्ट अंतर यह है कि उपधारा (1) में, जिस प्राधिकारी के समक्ष दस्तावेज़ प्रस्तुत किया गया है, उसे स्टाम्प शुल्क की अपर्याप्तता के संबंध में संतुष्टि होने पर उसको जब्त करने की शक्ति दी गई है, जबकि उप-धारा (4) के तहत, दस्तावेज़ को जब्त कर सकने की किसी शक्ति के बिना ही स्टाम्प शुल्क की अपर्याप्तता निर्धारित करने की शक्ति केवल कलेक्टर में निहित की गई है।

1899 के अधिनियम की धारा 33(1) और 33(4) सहपठित धारा 47-क(3) के बीच का अंतर भी उक्त प्रावधानों के बीच अंतर को प्रकट करता है जहां धारा 33(1) मुख्य रूप से, बिना मुद्रांकित या अधोमूल्यन वाले लिखत को साक्ष्य के तौर पर प्रस्तुत करने से संबंधित है। यहां तक कि, धारा 33 और धारा 47क(3) के तहत कार्यवाही शुरू करने की परिसीमन अवधि भी बिल्कुल अलग है, धारा 33(5) में परिसीमन लिखत के निष्पादन की तिथि से शुरू होती है जबकि धारा 47-क(3) परिसीमन अवधि को लिखत के पंजीकृत होने की तिथि से प्रारम्भ करती है।

14. उपरोक्त अंतर, धारा 38 को पढ़ने पर अधिक स्पष्ट हो जाएगा, जोकि स्पष्ट रूप से उस प्रावधान को इंगित करता है जिसमें एकबार लिखतों, जोकि विधिवत मुद्रांकित नहीं हैं, को जब्त करने के बाद पालन की जाने संबंधी प्रक्रिया है। धारा 38(1) स्पष्ट रूप से इंगित करती है कि यदि संबंधित प्राधिकारी द्वारा स्टांप शुल्क की अपर्याप्तता पाई जाती है, तो उक्त प्राधिकारी स्टांप शुल्क की अपर्याप्तता को इंगित करेगा, उसके बाद लिखत की एक प्रमाणित प्रति कलेक्टर को भेजेगा। 1899 के अधिनियम की धारा 38(2) के तहत, प्रत्येक अन्य मामले में, लिखत मूल रूप में कलेक्टर को भेजा जाना है। धारा 38 की उप-धारा (1) और (2) के तहत विशिष्ट भेद यह प्रतीत होता है कि उप-धारा (1) के संदर्भ में, जहां स्टांप शुल्क की कमी की गणना की गई है वहाँ, लिखत की एक प्रमाणित प्रति भेजा जाना आवश्यक है और जहां इसकी गणना नहीं की गई है वहाँ, मूल दस्तावेज को कलेक्टर के पास अग्रिम कार्यवाही के लिए भेजा जाना आवश्यक है।

15. धारा 33(1) और धारा 33(4) और (5) के मध्य अंतर, 1899 के अधिनियम की धारा 47क को पढ़ने से भी स्पष्ट होता है, जिसके तहत जिन दस्तावेजों को नामित प्राधिकारियों द्वारा जब्त कर लिया गया है, उनके लिए कोई अभिदेश नहीं उपलब्ध कराता है और 1899 के अधिनियम की धारा 47-क(2) और (3) के तहत स्वयं कलेक्टर द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया को केवल इंगित करता है।

16. अन्यथा भी, यदि यह व्यवस्था दी जाती है कि धारा 33(4) और (5), 1899 के अधिनियम की धारा 33(1) का अनुसरण करते हैं, तो वह 1899 के अधिनियम की धारा 38 के प्रावधानों को निष्प्रभावी कर देगी, जोकि अधिनियम के विशेष प्रावधानों को लागू करते समय विधायिका की मंशा नहीं हो सकती। इस प्रकार यह स्पष्ट

है कि ऐसे मामलों में जहां एक लिखत साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, जो विधिवत मुद्रांकित नहीं है और जिसको 1899 के अधिनियम की धारा 33 (1) के तहत जब्त कर लिया जाता है, तो मात्र धारा 38 के तहत प्रावधानों का पालन किया जाना है, न कि 1899 के अधिनियम की धाराओं 33(4) और (5) का। इस प्रकार, अधिनियम की धारा 33(5) के तहत प्रावधानित परिसीमन अवधि, अधिनियम की धारा 33(1) के तहत प्रवत्त कार्यवाही की स्थिति में लागू नहीं होगी और मात्र तभी उपलब्ध होगी जब, 1899 के अधिनियम की धारा 33(4) के तहत कलेक्टर द्वारा कार्यवाही की जाएगी।

17. यहां ऊपर की गई चर्चाओं के मद्देनजर, यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता के लिए परिसीमन अवधि उपलब्ध नहीं थी क्योंकि उसका दस्तावेज़ 1899 के अधिनियम की धारा 33(1) के तहत जब्त कर लिया गया था, प्रश्न संख्या (i) का उत्तर याचिकाकर्ता के विरुद्ध नकारात्मक है।.

<u>प्रश्न संख्या (ii):</u> **क्या प्रकरण में, 1899 के अधिनियम की धारा 33(5) के तहत प्रावधानित परिसीमन अवधि, हस्तांतरण के एक लिखत के निष्पादन की तिथि से लागू होगी या जब इसे 1899 के अधिनियम की धारा 33(1) या 33(4) के तहत दर्शायी गयी कार्यवाही में प्रस्तुत किया गया, उस तिथि से लागू होगी?**

18. उपरोक्त पहलू के संबंध में, यह स्पष्ट है कि अधिनियम की धारा 33(5) का प्रावधान एक विशिष्ट शर्त लगाता है कि अधिनियम की उपधारा (4) या (5) के तहत लिखत के निष्पादन की तिथि के चार वर्ष की अवधि के बाद कोई कार्रवाई नहीं की जा सकती है। हालाँकि, यद्यपि उपरोक्त प्रावधान में नकारात्मक शर्तें छिपी हैं, फिर भी एक परिदृश्य हो सकता है जैसा कि वर्तमान प्रकरण में, जहां एक दस्तावेज़ पक्षकारों के मध्य निष्पादित किया जाता है और 1899 के अधिनियम की धारा 33 के तहत या यहां तक कि इसे धारा 47-क के तहत किसी भी नामित प्राधिकारी के समक्ष प्रस्तुत किए बिना चार साल से अधिक अवधि के लिए अपने पास रखा जाना, पाया जाता है। प्रावधान ऐसे किसी भी परिदृश्य को दृष्टिगत नहीं रखता है लेकिन वर्तमान प्रकरण में, यह स्पष्ट रूप से विदित और स्वीकार्य है कि यद्यपि हस्तांतरण का लिखत 12.08.1985 को निष्पादित किया गया था, इसे पहली बार वर्ष 2002 में घोषणात्मक कार्यवाही में प्रस्तुत किया गया। ऐसी परिस्थितियों में, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि राजस्व अधिकारियों को ऐसे किसी भी बिना मुद्रांकन लगे हुए और अपंजीकृत हस्तांतरण लिखत के निष्पादन के संबंध में कोई जानकारी रही होगी। स्वाभाविक रूप से, निजी व्यक्तियों के बीच अपंजीकृत दस्तावेजों के निष्पादन के संबंध में ऐसी कोई जानकारी प्राधिकारी हासिल नहीं कर सकते हैं, खासकर उस मामले में जहां ऐसे दस्तावेजों को किसी नामित प्राधिकारी के समक्ष प्रस्तुत किए बिना, निष्पादक या लिखत के लाभार्थी की सुरक्षित हिरासत में रख लिया गया हो। ऐसी परिस्थितियों में, यह नहीं कहा जा सकता है कि अधिनियम की धारा 33(5) के प्रावधानों के तहत चार साल की परिसीमन अवधि लिखत के निष्पादन की तारीख से लागू होगी। इस न्यायालय के सुविचारित मत में, ऐसे मामलों में जहां, हस्तांतरण का एक लिखत 1899 के अधिनियम की धारा 33 या 47-क के तहत किसी नामित न्यायालय या प्राधिकरण के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया जाता है, परिसीमन की उपरोक्त अवधि, उस तिथि से लागू होगी जब ऐसा

अपंजीकृत हस्तांतरण लिखत पहली बार ऐसे किसी नामित प्राधिकारी के समक्ष प्रस्तुत किया गया|

19. **साईंबाबा बनाम बार काउंसिल ऑफ इंडिया और एक अन्य** (2003) 6 एससीसी 186 में प्रतिवेदित मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ऐसे कठोर प्रावधानों का निर्वचन निम्नवत किया है: -

*"**9.** जहां तक समीक्षा याचिका दायर करने के लिए परिसीमन अवधि की प्रारम्भ का संबंध है, हमारी स्पष्ट राय है कि धारा 48-कक में अभिव्यक्त "उस आदेश की तिथि" का तात्पर्य पुनर्विचार याचिकाकर्ता को आदेश की सूचना या जानकारी की तिथि को समझा जाना चाहिए। जहां विधि किसी व्यक्ति को उपाय प्रदान करता है, अस्पष्टता के मामले में प्रावधान को इस प्रकार समझा जाना चाहिए कि उपाय का प्रयोजन व्यावहारिक हो और प्राधिकारी को प्रदत्त शक्ति का प्रयोग सार्थक और प्रभावी हो। ऐसी परिकल्पना, जो प्रावधान को निरर्थक बना दे, करने से बचना चाहिए। सच है, व्याख्या की प्रक्रिया का उपयोग एक मृत प्रावधान में हृदय को प्रत्यारोपित करने के लिए नहीं किया जा सकता है; हालाँकि, विधिक प्रावधान की परिकल्पना की शक्ति का प्रयोग हमेशा इस प्रकार किया जा चाहिए कि डूबते दिल को धड़कन मिल जाए।"*

*"**10.** राजा हरिश्चंद्र राज सिंह बनाम उप भूमि अधिग्रहण अधिकारी [एआईआर 1961 एससी 1500: (1962) 1 एससीआर 676] में इस न्यायालय के विचारणार्थ एक समरुप बिंदु प्रस्तुत हुआ। भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 की धारा 18, कलेक्टर के अधिनिर्णय की तिथि से छह महीने के भीतर, न्यायालय का अभिदेश प्राप्त करने हेतु दायर किए जाने वाले एक आवेदन पर विचार करता है। यह व्यवस्था दी गयी कि "अधिनिर्णय की तिथि" केवल उस समय के संदर्भ में निर्धारित नहीं की जा सकती, जब अधिनिर्णय पर कलेक्टर द्वारा हस्ताक्षर किए जाता है या उनके कार्यालय में उनके द्वारा पारित किया गया। इसमें इस प्रश्न पर विचार करना शामिल होना चाहिए कि उसकी जानकारी संबंधित पक्ष को वास्तव में या रचनात्मक रूप से कब हुयी। यदि ऐसी सत्य स्थिति है, तो संबंधित धारा में अभिव्यक्त "अधिनिर्णय की तिथि" शब्दों पर एक शाब्दिक और यांत्रिक परिकल्पना करना, उचित नहीं होगा। यह निष्पक्ष और न्यायसंगत है कि निर्णय की सूचना उस पक्ष को दी जाए जिसके अधिकार अंततः प्रभावित होंगे या जो निर्णय से प्रभावित होगा। ऐसे निर्णय से प्रभावित होने वाले पक्ष को जानकारी, चाहे वास्तविक हो या रचनात्मक, एक आवश्यक तत्व है जिसे निर्णय को लागू करने से पहले संतुष्ट किया जाना चाहिए। इस प्रकार, यह समझा जा सकता है कि अधिनिर्णय करने में, केवल अधिनिर्णय लेखन का भौतिक कार्य या उस पर हस्ताक्षर करना या यहां तक कि उसे कलेक्टर के कार्यालय में दाखिल करना शामिल नहीं हो सकता है; इसमें संबंधित पक्ष को उक्त अधिनिर्णय की सूचना, वास्तविक या रचनात्मक रूप से, सम्मिलित होनी चाहिए। "कलेक्टर के अधिनिर्णय की तिथि से" शब्दों का शाब्दिक या यांत्रिक अर्थ लगाए जाने की व्यवस्था को अनुचित ठहराया गया। न्यायालय ने उस अभिव्यक्ति को व्यावहारिक अर्थ प्रदान करते हुए यह व्यवस्था दी कि, तिथि से तात्पर्य यह है कि जब अधिनिर्णय की सूचना पक्षकार को संप्रेषित की जाती है या उसके द्वारा वास्तविक या रचनात्मक रूप से ज्ञात होती है।"*

*"**14.** किसी संबंधित व्यक्ति या व्यथित व्यक्ति से प्रावधान द्वारा प्रदत्त समीक्षा के अधिकार का उपयोग करने की उम्मीद कैसे की जा सकती है जब तक कि उसे आदेश वास्तविक या रचनात्मक रूप से संप्रेषित या ज्ञात न हो? इसलिए, "उस आदेश की तिथि" शब्द का तात्पर्य समीक्षा किए जाने वाले आदेश की, वास्तविक या रचनात्मक रुप से, सूचना या ज्ञान की तारीख को माना जाना चाहिए।"*

20. उपरोक्त निर्णय को विरचित प्रश्न पर लागू करने पर, यह स्पष्ट है कि परिसीमन केवल उस तिथि से लागू हो सकती है जब किसी व्यक्ति को, ऐसे व्यक्ति के खिलाफ किसी भी कार्यवाही के बारे में पता चलता है, न कि ऐसी कार्यवाही के कार्यान्वयन या लिखत की तिथि से, जैसा कि वर्तमान प्रकरण में है।

यह सामान्य बात है कि राजस्व अधिकारियों ऐसे किसी भी दस्तावेज़, जोकि 1899 के अधिनियम की धारा 33 के तहत कार्यवाही में साक्ष्य के रूप में या 1899 के अधिनियम की धारा 47 ए के तहत प्रस्तुति के लिए भी प्रस्तुत नहीं किया गया है, के निष्पादन के बारे में नहीं जान सकते हैं क्योंकि उनसे ऐसे दस्तावेज़, जोकि भली प्रकार दुर्भावनापूर्ण होकर निष्पादन के बाद से दोनों पक्षों में से किसी एक के पास परिसीमन अवधि का लाभ उठाने के लिए चार साल बीतने का इंतजार करने के कारण से रहता है, के निष्पादन के बारे में जानने की उम्मीद नहीं की जाती है ।

21. उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, उपरोक्त परिसीमन के संबंध में याचिकाकर्ता द्वारा कोई लाभ प्राप्त नहीं किया जा सकता है और इस प्रकार प्रश्न संख्या (ii) का उत्तर याचिकाकर्ता के विरुद्ध नकारात्मक है।

<u>प्रश्न संख्या (iii):</u> **क्या किसी निर्धारिती के विरुद्ध, जबकि उसने हस्तांतरण के अपंजीकृत लिखत से कोई लाभ प्राप्त नहीं किया हो, 1899 के अधिनियम की धारा 33/40/47क के तहत कार्यवाही शुरू की जा सकती है?**

22. उपरोक्त प्रश्न के संबंध में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने विशेष रूप से प्रस्तुत किया है कि यद्यपि विक्रय विलेख 12.08.1985 को याचिकाकर्ता के पक्ष में निष्पादित किया गया था, लेकिन प्रारम्भ में 1950 के अधिनियम की धारा 229-बी के तहत घोषणात्मक वाद में याचिकाकर्ता के पक्ष में घोषित किये गये निर्णय और आदेश दिनांक 17.05.2002 से याचिकाकर्ता को कोई लाभ नहीं हुआ क्योंकि तत्पश्चात् उपरोक्त निर्णय और आदेश को दिनांक 20.08.2002 के आदेश द्वारा वापस ले लिया गया। इस प्रकार दलील यह है कि जब ऐसे अपंजीकृत लिखत का लाभ याचिकाकर्ता को कभी प्रदान नहीं किया गया था, तो ऐसी कार्यवाही शुरू करने का कोई अवसर नहीं था।

23. प्रस्तुत दलीलों पर विचार करके, अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री से यह स्पष्ट है कि 1950 के अधिनियम की धारा 229-बी के तहत घोषणात्मक वाद मुख्यतया 12.08.1985 के विक्रय विलेख के आधार पर दायर किया गया था। उक्त कार्यवाही 17.05.2002 को याचिकाकर्ता के पक्ष में एक डिक्री पारित होने के साथ समाप्त हुई। ऐसे में, यह नहीं कहा जा सकता कि याचिकाकर्ता ने दिनांक 12.08.1985 के विक्रय विलेख से कोई लाभ नहीं प्राप्त किया। अन्यथा भी, 1899 के अधिनियम के तहत ऐसा कोई प्रावधान नहीं है कि धारा 33/40/47क के तहत कार्यवाही केवल तभी शुरू की जा सकती है जब कोई व्यक्ति बिना मुद्रांकित या अधोमूल्यन

वाले हस्तांतरण के लिखत से लाभ प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की दलीलें स्पष्ट रूप से मिथ्या हैं और इसलिए खारिज कर दी गईं।

24. ऐसे में, प्रश्न संख्या (iii) का उत्तर याचिकाकर्ता के विरुद्ध नकारात्मक है।

प्रश्न संख्या (iv): **क्या हस्तांतरण के लिखत और उस पर स्टांप शुल्क की कमी का मूल्यांकन, लिखत के निष्पादन की तिथि के अनुसार किया जाना है या इसे जब जब्त किया जाता है?**

25. याचिकाकर्ता ने अपनी प्रारंभिक आपत्ति में स्पष्ट रूप से दलील दी है कि चूंकि दस्तावेज़ अगस्त, 1985 में निष्पादित किया गया था, अभिदेशकर्ता प्राधिकारी ने लिखत का मूल्यांकन 2002 के अनुरुप करने में गलती की है। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने दलील दी, कि अधिनियम की धारा 33 के तहत या धारा 47क के तहत शुरू की गई कार्यवाही के मामले में, लिखत के मूल्यांकन में स्टांप ड्यूटी की कमी को, उसके निष्पादन की तिथि पर जैसी हो, न कि इसे प्रस्तुत करने या जब्त करने की तारीख पर, तय की जानी चाहिए।

26. उपरोक्त प्रस्तुतीकरण के संबंध में, यह स्पष्ट है कि अधिनियम की धारा 33(2) में यह प्रावधान है कि स्टांप शुल्क के भुगतान की पर्याप्तता सुनिश्चित करने के लिए, यह वही तिथि है जब उक्त लिखत का निष्पादन किया गया या पहली बार निष्पादन किया गया, उसमें जो भी उपयुक्त हो। इस प्रकार, धारा 47क(1)(क) प्रावधान करती है कि किसी संपत्ति के बाजारी मूल्य पर प्राभार्य शुल्क अधिनियम के तहत बनाए गए नियमों के अनुसार निर्धारित किया जाना है, साथ ही धारा 47क(4-क) में भी कमी होने पर अधिरोपित साधारण ब्याज लिखत के निष्पादन की तिथि से निर्धारित किया गया है, जो 1899 के अधिनियम की धारा 40 के अनुरूप भी है। 1899 के अधिनियम के तहत ऐसा कोई प्रावधान नहीं दिखता है जहां स्टांप शुल्क के मूल्यांकन या कमी की गणना दस्तावेज़ को प्रस्तुत करने या ज़ब्त करने की तिथि से की जानी अपेछित हो।

27. जैसा कि ऊपर बताये गये, 1899 के अधिनियम की धारा 33 के विशिष्ट प्रावधानों के दृष्टिगत, इस न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि ऐसे अधोमूल्यन वाले या बिना मुद्रांकित लिखत और उसकी कमी के मूल्यांकन की गणना विलेख के निष्पादन की तिथि पर जैसी हो पर की जानी है, न कि उस तिथि से जब इसे जब्त किया गया या प्रस्तुत किया गया।

उक्त पहलू पर, इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा **राजेंद्र प्रसाद गर्ग बनाम मुख्य नियंत्रक राजस्व प्राधिकरण और अन्य** (2002) 93 आरडी 198 के मामले में, पहले ही निम्नलिखित तरीके से विचार किया जा चुका है:-

"6. भारतीय स्टाम्प अधिनियम की धारा 3 उन लिखतों का प्रावधान करती है जो शुल्क के साथ प्रभार्य हैं। अधिनियम की धारा 3 पर विचार और उसकी व्याख्या, एआईआर 1954 एचपी 51 में प्रतिवेदित किए गए श्री कीर्ति राम के मामले में की गई। उक्त मामले में, अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों का अवलोकन करने के बाद, निम्नानुसार निर्णय किया गया:

"अब, नामांकन का प्रमाणपत्र, अनुसूची I के अनुच्छेद 30 के अन्तर्गत आने वाला एक लिखत है, यह अधिनियम की धारा 3 के तहत अनिवार्य रूप से स्टांप शुल्क के साथ प्रभार्य है। और चूंकि अधिनियम की धारा 2 (6) के तहत "प्रभार्य" का अर्थ है, जब प्रश्नगत लिखत निष्पादित किया जाता है, तो यह स्पष्ट है कि महत्वपूर्ण तिथि

जो लागू विधि को निर्धारित करती है, वह लिखत के निष्पादन की तिथि है।"

7. धारा 2 की उपधारा (6), जो प्रभार्य शब्द को परिभाषित करती है, में उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा कोई संशोधन नहीं किया गया है, इसलिए, श्री कीर्ति राम (उपरोक्त) के मामले में निर्णय, पूरी तरह से वर्तमान प्रकरण के तथ्यों पर लागू होता है। इसी तरह का दृष्टिकोण मद्रास उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा आईएलआर (5) मैड सीरीज़ 394 (एफबी) मामले में लिया गया था, जिसमें यह गौर किया गया कि शुल्क की गणना, दस्तावेज़ के निष्पादन के समय विधि की आवश्यकता के संदर्भ में की जानी चाहिए।"

28. इस प्रकार, प्रश्न संख्या (iv) का उत्तर याचिकाकर्ता के पक्ष में सकारात्मक है।

29. उपरोक्त के दृष्टिगत प्रश्नों के उत्तर इस प्रकार हैं:-

(i) अधिनियम, 1899 की धारा 33(5) के प्रावधान में निर्धारित चार साल की परिसीमन अवधि, जहां एक दस्तावेज़ 1899 के अधिनियम की धारा 33(1) के तहत जब्त किया गया है, अप्रयोज्य होगी।

(ii) स्पष्ट रुप से, अधिनियम की धारा 33(5) के तहत परिकल्पित परिसीमन केवल उस तिथि से लागू होगी, जब कोई लिखत/ दस्तावेज़ अधिनियम, 1899 की धारा 33(1) या 33(4) के तहत निर्दिष्ट कार्यवाही में प्रस्तुत किया गया है, न कि उसके निष्पादन की तिथि से।

(iii) यद्यपि, हस्तांतरण के अपंजीकृत लिखत से कोई लाभ प्राप्त नहीं किया गया हो, 1899 के अधिनियम की धारा 33/40/47क के तहत कार्यवाहियाँ पोषणीय हैं।

(iv) हस्तानांतरण के लिखत/ दस्तावेज और उस पर स्टांप शुल्क की कमी के मूल्यांकन की गणना लिखत के निष्पादन की तिथि पर जैसा हो किया जाना है, न कि उस तिथि से जब 1899 के अधिनियम के तहत कार्यवाही शुरू की गयी हो।

30. उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर को दृष्टिगत रखते हुए, विशेष रूप से प्रश्न संख्या (iv) के संबंध में, यह स्पष्ट है कि प्राधिकारियों ने हस्तांतरण के लिखत के मूल्यांकन और उसमें कमी को उस तिथि, जब इसे जब्त किया गया, से निर्धारित करने में गलती की, जबकि इसे वास्तव में इसके निष्पादन की तिथि 12.08.1985 से लिया जाना चाहिए था।

31. उपरोक्त पर विचार करते हुए, याचिका पूर्वोक्त सीमा तक सफल होती है। प्रकरण निर्धारित प्राधिकारी को, मूल्यांकन करने और 12.08.1985 को भुगतान किए जाने वाले आवश्यक स्टांप शुल्क में कमी के निर्धारण हेतु भेजा जाता है।

32. तदनुसार, याचिका **आंशिक रूप से स्वीकार** की जाती है और प्राधिकारियों द्वारा मूल्यांकन, स्टांप शुल्क की कमी और जुर्माने के संबंध में दर्ज किए गए निष्कर्षों को, ऊपर दिए गए निर्देशों के अनुसार पुन: निर्धारण किए जाने हेतु, अपास्त किया जाता है।

(2023) 3 ILRA 451

मूल न्यायाधिकार

नागरिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 23.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह,

रिट सी संख्या 1002728/1992

बाबा गुरु सरन दास चेला बाबा गुरु चरण दास ...याचिकाकर्ता

बनाम

यूपी राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादीगण

अधिवक्ता याचिकाकर्ता: मो. आरिफ खान, मोहम्मद असलम खान

अधिवक्ता प्रतिवादीगण: सी.एस.सी.

A. सीलिंग कानून - भूमि जोत अधिनियम, 1960 पर सीलिंग - धारा 10(2) - भूमि को अधिशेष भूमि के रूप में घोषित करना - भूमि याचिकाकर्ता के नाम पर दर्ज थी, न कि मठ या ट्रस्ट के नाम पर - प्रभाव - भूमि का दावा किया गया कि इसे मठ के रूप में उपयोग किया जा रहा है और इसका आय धार्मिक कार्यों के लिए उपयोग किया जा रहा है - विश्वसनीयता - धारा 6(1)(f) के तहत लाभ, कितना दावा किया जा सकता है - कहा गया कि यह सिद्ध नहीं किया जा सका कि विवादित संपत्ति दिनांक 01-05-1959 से पूर्व 'मठ' के रूप में चैरिटेबल और धार्मिक उद्देश्यों के लिए उपयोग की जा रही थी।

याचिकाकर्ता ने 'बाबा गुरु शरण दास' के नाम पर पंजीकृत किसी 'मठ' या 'ट्रस्ट' के संबंध में कोई दस्तावेज प्रदर्शित करने में भी विफल रहा, जो प्रथम दृष्टया से यह प्रदर्शित करता है कि यह एक व्यक्तिगत संपत्ति है और इसका प्रयोग किसी धार्मिक या चैरिटेबल उद्देश्य के लिए नहीं किया जा रहा है - अगर ज़मीन की आय का भाग चैरिटेबल उद्देश्यों के लिए नहीं लगाया जा रहा है, तो 'अधिनियम 1960' की धारा 6(1)(f) के प्रावधानों का लाभ नहीं प्रदान किया जा सकता है। (पैरा 25, 26 और 27)
याचिका निरस्त। (ई-1)
<u>उद्धृत वाद सूची :-</u>

1. श्री राधाजी ब्रिजमान मंदिर और अन्य बनाम जिला जज, बांदा और अन्य; 1979(5) एएलआर, 132
2. मतलूब अली बनाम अतिरिक्त जिला और सत्र न्यायाधीश, प्रथम और अन्य; 1979 आरडी 32
3. अविनाश चंद्र तिवारी बनाम अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, न्यायालय कक्ष संख्या 3, उन्नाव और अन्य; 2011 (86) एएलआर 662

<u>माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह</u>

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री मोहम्मद असलम खान की सहायता से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री मो. आरिफ खान, तथा राज्य के विद्वान अधिवक्ता श्री सुनील कुमार खरे की सहायता से विद्वान् मुख्य स्थायी अधिवक्ता- II श्री शैलेन्द्र कुमार सिंह को सुना।

2. वर्तमान याचिका द्वारा याचिकाकर्ता ने अपर आयुक्त, फैज़ाबाद मंडल, फैज़ाबाद द्वारा पारित आदेश दिनांक 13.04.1992 तथा विहित प्राधिकारी (सीलिंग), जिला- बाराबंकी द्वारा पारित आदेश दिनांक 29.06.1987 को चुनौती दी है।

3. वाद की तथ्यात्मक संरचना यह है कि दिनांक 11.09.1974 को याचिकाकर्ता को उत्तर प्रदेश भूमि जोत सीमा अधिरोपण अधिनियम , 1960 की धारा 10(2) के अंतर्गत एक नोटिस जारी किया गया। उपरोक्त नोटिस द्वारा याचिकाकर्ता से यह प्रदर्शित करना अपेक्षित किया गया कि क्यों न अधिनियम, 1960 की धारा 10 (1) के अंतर्गत उसका बयान सही मान लिया जाए। याचिकाकर्ता के कथनानुसार, उसे नोटिस

की तामील नहीं की गई थी एवं परिणामस्वरूप वह आपत्ति नहीं प्रस्तुत कर सका, और इस कारण विहित प्राधिकारी (सीलिंग) जिला- बाराबंकी ने आदेश दिनांक 25.11.1974 पारित किया जिसके द्वारा प्रश्नगत भूमि को अधिशेष भूमि घोषित कर दिया गया।

4. ज्यों ही उपरोक्त तथ्य का ज्ञान याचिकाकर्ता को हुआ, उसने अधिनियम, 1960 की धारा 11(2) के अंतर्गत विहित प्राधिकारी के समक्ष प्रार्थनापत्र दिनांक 02.01.1975 प्रस्तुत किया। उसके तत्काल उपरान्त याचिकाकर्ता ने दिनांक 09.01.1975 को याचिकाकर्ता ने स्थल निरीक्षण हेतु एक अन्य प्रार्थनापत्र प्रस्तुत किया। दिनांक 20.01.1975 को उसने पुनः एक प्रार्थनापत्र प्रस्तुत किया जिसमें यह उल्लेख था कि 'बाबा गुरु चरण दास' 'कुटी-मणिपुर' के 'महंत' हैं एवं प्रश्नगत संपत्ति एक 'मठ' की है एवं यह संपत्ति न्यास की है तथा वहाँ पर 'मठ' का कब्जा है। उसने यह अभिकथन भी किया कि 'मठ' की आय पूर्णतः धार्मिक एवं धर्मार्थ उद्देश्यों हेतु प्रयोग की जाती है, याचिकाकर्ता एवं उसके वंशजो हेतु नहीं। उपरोक्त प्रार्थनापत्र पर विहित प्राधिकारी ने आदेश पारित किया एवं नायब तहसीलदार, हैदरगढ़ को दिनांक 25.01.1975 तक निरीक्षण करने एवं आख्या प्रस्तुत करने का निदेश जारी किया। इसके अनुपालन में नायब तहसीलदार ने मामले की जांच की एवं इस आशय की आख्या प्रस्तुत की कि प्रश्नगत भूमि असिंचित है क्योंकि यह नहर अथवा नलकूप के कमांड क्षेत्र में नहीं आती। उन्होंने यह आख्या भी दी कि भूखंड सं. 1024 एक झील है एवं अधिकाँश क्षेत्र में धान की बुआई की गई है, तथा भूमि 'मठ' की है एवं याचिकाकर्ता महंत है। उपरोक्त आख्या पर, दिनांक 10.03.1975 के आदेश द्वारा विहित अधिकारी ने याचिकाकर्ता के विरुद्ध जारी नोटिस उन्मोचित कर दिया। आदेश दिनांक 10.03.1975 से व्यथित होकर, उत्तर प्रदेश राज्य ने अधिनियम, 1960 की धारा 13 के अंतर्गत अपील प्रस्तुत की जो अपर आयुक्त, फैज़ाबाद मंडल के दिनांक 26.04.1976 के आदेश द्वारा स्वीकार की गई, तथा मामले को विरोधी पक्षकार संख्या 3 अर्थात विहित प्राधिकारी को नए सिरे से निर्णय हेतु प्रतिप्रेषित कर दिया गया।

5. मामले के विहित प्राधिकारी के समक्ष प्रतिप्रेषित होने के पश्चात, प्राधिकारी ने याचिकाकर्ता द्वारा अधिनियम, 1960 की धारा 11(2) के अंतर्गत प्रस्तुत प्रार्थनापत्र खारिज कर दिया क्योंकि विलंब के सम्बन्ध में प्रस्तुत स्पष्टीकरण पर्याप्त नहीं पाया गया। उपरोक्त आदेश से व्यथित हो, वर्तमान याचिकाकर्ता ने पुनः एक अपील प्रस्तुत की जिसे 27.08.1977 को स्वीकार कर लिया गया एवं मामले को पुनः विरोधी पक्षकार संख्या 3 को नए सिरे से निर्णय पारित करने हेतु प्रतिप्रेषित कर दिया गया।

6. प्रकरण को निर्णीत करते समय, विहित प्राधिकारी ने आदेश दिनांक 26.03.1981 द्वारा यह धारित किया कि संपत्ति 'बाबा साहब कबीर पंथी संत' के मठ की है एवं मठ की आय का प्रयोग धार्मिक एवं धर्मार्थ उद्देश्यों हेतु किया जाता है। उपरोक्त आदेश पारित करते समय, विहित प्राधिकारी ने नायब तहसीलदार की आख्या पर एवं फसली 1359 के खतौनी एवं जोत चकबंदी अधिनियम के फॉर्म 23 तथा फॉर्म 41 की प्रविष्टियों पर विचार किया।

7. आदेश को चुनौती देते हुए उत्तर प्रदेश राज्य ने अपील प्रस्तुत की जिसे दिनांक 13.03.1984

को स्वीकार कर लिया गया एवं प्रकरण पुनः विरोधी पक्षकार संख्या 3 को, इस अतिरिक्त वादबिंदु को विरचित करते हुए कि प्रश्नगत मठ/ न्यास धर्मार्थ अथवा धार्मिक न्यास है अथवा नहीं, प्रकरण को निर्णीत करने का आदेश दिया गया। उपरोक्त आदेश के उपरांत, विरोधी पक्षकार संख्या 2 ने पूर्व विरचित 3 वादबिन्दुओं के अतिरिक्त 5 अन्य वादबिन्दुओं को विरचित किया। आपत्तिकर्ता ने फसली 1359, 1380, 1390 एवं 1392 की खतौनी प्रस्तुत की एवं साक्षियों ने भी अभिसाक्ष्य प्रस्तुत किया कि वादग्रस्त संपत्ति एक न्यासी 'बाबा गुरु चरण दास' के नाम से एक 'मठ' की है, एवं यह व्यक्तिगत संपत्ति नहीं है। उत्तर प्रदेश राज्य ने प्रभु नाथ तेवरी, लेखपाल एवं दुर्गा बक्श सिंह, नायब तहसीलदार को परीक्षित करवाया। साक्ष्यों एवं साक्षियों के बयानों पर विचाररोपरांत, विहित प्राधिकारी ने आदेश पारित किया एवं अधिनियम, 1960 की धारा 6(f) का लाभ देना अस्वीकृत 10-15-3 बीघा भूमि को अधिशेष भूमि घोषित किया। उपरोक्त आदेश से व्यथित हो, याचिकाकर्ता द्वारा आयुक्त, फैज़ाबाद मंडल, फैज़ाबाद के समक्ष अपील प्रस्तुत की गई जिसे आदेश दिनांक 13.04.1992 द्वारा खारिज कर दिया गया, जिसे इस रिट याचिका द्वारा चुनौती दी गई है।

8. याचिकाकर्ता हेतु उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का तर्क यह है कि प्रारम्भ में अधिनियम, 1960 के धारा 10(2) के अंतर्गत नोटिस की तामील किये बिना आदेश पारित किया गया था, तदोपरांत याचिकाकर्ता ने उसे चुनौती दी और उसे सुना जाना अनुमत किया गया। उन्होंने यह भी कहा कि यह सुनिश्चित विधि है कि एक 'न्यास' अपंजीकृत हो सकता है एवं कोई संपत्ति मौखिक रूप से धार्मिक अथवा धर्मार्थ उद्देश्यों हेतु समर्पित की जा सकती है, एवं विरोधी पक्षकार अर्थात उत्तर प्रदेश राज्य विहित प्राधिकारी के समक्ष इसका खंडन करने में विफल रहा है।

9. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने अपने तर्कों के समर्थन हेतु ***श्री राधाजी बृजमन मंदिर एवं अन्य बनाम जिला न्यायाधीश, बांदा एवं अन्य, 1979(5) ALR, 132*** के निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया है एवं निर्णय के उद्धरण प्रस्तुत किया है, जो अधोवर्णित है : -

"वर्तमान वाद में विचाराधीन बंदोबस्त धार्मिक और धर्मार्थ उद्देश्यों के लिये थी और इस बात का कोई संकेत नहीं था कि आय का कोई भी भाग किसी बसने वाले या किसी अन्य व्यक्ति के लाभ के लिए था। प्रश्न यह है कि क्या बंदोबस्ती के अंतर्गत आने वाली भूमि को अधिनियम के अंतर्गत कार्यवाही हेतु विचार से छूट दी गई है। स्वीकृत रूप से प्रश्नगत बंदोबस्ती 1 मई, 1959 से पूर्व सृजित की गई थी। तब से भूमि एक सार्वजनिक धार्मिक और धर्मार्थ बंदोबस्ती के अंतर्गत देवताओं द्वारा धारित है। बंदोबस्ती के अंतर्गत, बंदोबस्ती की आय का कोई भी भाग पूर्णतः या आंशिक रूप से निवास करने वाले या उसके परिवार के सदस्यों या उसके वंशजों के हितार्थ आरक्षित नहीं किया गया था। प्रश्नगत बंदोबस्त खंड (च) में वर्णित परिक्षण को पूर्णतः संतुष्ट करता है, और परिणामस्वरूप बंदोबस्ती के अंतर्गत धारित की गई भूमि को काश्तकार, अर्थात् राधा कृष्ण जी महाराज की अधिशेष भूमि पर लागू सीमा क्षेत्र के विनिश्चय के प्रयोजन हेतु विचारण से स्वतंत्र रखा जाना था। धारा 6(1)(च) वहां लागू होती है जहां भूमि काश्तकार के पास

होती है। विधि यह अपेक्षा नहीं करती कि कि बंदोबस्ती स्वयं काश्तकार द्वारा सृजित की जानी चाहिये। एकमात्र अपेक्षा यह है कि भूमि किसी सार्वजनिक धार्मिक न्यास या बंदोबस्ती या संस्था द्वारा काश्तकार द्वारा धारित होनी चाहिये। इसमें कोई विवाद नहीं है कि अधिवासी और उसकी पत्नी की निःसंतान मृत्यु हो गई और, इसलिए ऐसा प्रश्न ही नहीं उठता कि बंदोबस्ती की आय को अधिवासी, या उसके परिवार के सदस्यों या उसके वंशजों के हित में पूर्णतः अथवा आंशिक रूप से व्यय किया जा रहा है । भले ही संपत्ति की आय के लेखा-जोखा का वर्तमान न्यासीगण द्वारा उचित रूप से रख-रखाव नहीं किया गया है ,परन्तु यह काश्तकार को धारा 6 के खंड (च) से उप-धारा (1) में निहित प्रावधानों के लाभ से वंचित करने का आधार नहीं होगा।"

10. उपरोक्त का सन्दर्भ देते हुए, उनका अभिकथन है कि न्यायालय द्वारा यह धारित किया गया है कि यदि 'न्यास' के आय के अभिलेख के रख-रखाव में कोई कमी है तो यह अधिनियम, 1960 की धारा 6 के खंड (च) से उप-धारा (1) में निहित प्रावधानों के लाभ से वंचित करने का आधार नहीं होगा

11. पुनः उन्होंने ***मतलूब अली बनाम प्रथम अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, 1979 RD 32 (इलाहाबाद उच्च न्यायालय)*** पर विश्वास व्यक्त करते हुए यह अभिकथन किया कि यह धारित किया गया है कि अधिनियम, 1960 की धारा 6(1)(एफ) में उल्लिखित प्रथम अपेक्षा मई, 1959 के प्रथम दिवस के पूर्व किसी सार्वजनिक धार्मिक अथवा धर्मार्थ वक़्फ, बंदोबस्त न्यास अथवा संस्थान द्वारा अथवा के अंतर्गत भूमि है, एवं जहाँ तक वर्तमान प्रकरण का संबंध है, 'मठ' मई, 1959 के प्रथम दिवस को अस्तित्व में था।

12. उन्होंने पुनः अभिकथन किया कि यद्यपि कुछ भूखंडों को सिचित भूमि घोषित किया गया था, किन्तु अभिलेख पर वर्तमान साक्ष्य प्रदर्शित करते हैं कि प्रश्नगत भूखंड नहर अथवा राज्य के स्वामित्व के अंतर्गत किसी नलकूप के कमांड क्षेत्र के अंतर्गत नहीं आते। उनका अभिकथन है कि यदि संपत्ति की आय के अभिलेख का न्यासी द्वारा रख-रखाव नहीं किया जाता, तब भी यह किसी काश्तकार को अधिनियम, 1960 की धारा 6(एफ) में निहित प्रावधानों के लाभ से वंचित करने का आधार नहीं होगा, एवं वर्तमान वाद में नायब तहसीलदार एवं ग्राम के एक व्यक्ति का बयान उपलब्ध है कि प्रश्नगत संपत्ति एक 'मठ' की है जिसे धार्मिक एवं धर्मार्थ उद्देश्यों हेतु स्थापित किया गया है, एवं संपत्ति की आय का याचिकाकर्ता अथवा उसके वंशजों द्वारा प्रयोग नहीं किया गया है, एवं उत्तर प्रदेश राज्य विहित प्राधिकारी अथवा अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष यह सिद्ध करने में सफल नहीं हो सका संपत्ति का प्रयोग धार्मिक एवं धर्मार्थ उद्देश्यों हेतु नहीं किया जा रहा था।

13. पुनः उन्होंने तर्क प्रस्तुत किया कि प्रश्नगत भूमि 1359 फसली में 'बाबा मठ' क नाम में दर्ज है, एवं प्रश्गात संपत्ति वर्तमान याचिकाकर्ता के 'गुरु' को विरासत में प्राप्त हुई थी, एवं राजस्व अभिलेख की प्रविष्टियों में 'चेला'शब्द का उल्लेख है; अतः इसे याचिकाकर्ता की व्यक्तिगत संपत्ति नहीं कहा जा सकता। उनका अभिकथन राज्य सरकार न सिर्फ साक्ष्यों का अभिखंडन करने में

विफल रही है अपितु ऐसा कोई अभिलेख प्रस्तुत करने में भी विफल रही है जो दर्शाता हो कि प्रश्नगत संपत्ति धर्मार्थ उद्देश्यों हेतु प्रयोग नहीं की जा रही थी। अतः, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का यह अभिकथन है कि विहित प्राधिकारी तथा अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश पोषणीय नहीं है एवं अपास्त किये जाने योग्य है।

14. वहीं दूसरी ओर, राज्य का प्रतिनिधित्व कर रहे विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता - द्वितीय ने उपरोक्त तर्कों का प्रबल विरोध करते हुए अभिकथन किया है कि प्रश्नगत संपत्ति धार्मिक एवं धर्मार्थ उद्देश्यों हेतु प्रयोग नहीं की जा रही थी, एवं यह 'मठ' अथवा 'न्यास' की संपत्ति नहीं वरन व्यक्तिगत उद्देश्यों एवं हित हेतु प्रयोग की जा रही थी। अपने तर्कों के समर्थन में उन्होंने यह भी कहा कि राज्य को प्रति-परीक्षा की अनुमति देते समय नायब तहसीलदार द्वारा प्रस्तुत आख्या दिनांक 13.02.1975 का परीक्षण नहीं किया गया था

15. उन्होंने यह भी कहा कि यद्यपि याचिकाकर्ता अधिनियम, 1960 की धारा 6(1)(च) के प्रावधानों के लाभ का दावा कर रहा है, किन्तु वह यह स्थापित करने में विफल रहा है कि वह एक धार्मिक एवं धर्मार्थ न्यास / मठ का प्रबंधक है, एवं यह प्रथमदृष्टया स्पष्ट है कि प्रश्नगत भूमि व्यक्ति के नाम दर्ज है, एवं यह किसी 'न्यास' अहवा 'मठ' के नाम दर्ज नहीं है। उन्होंने यह भी कहा कि याचिकाकर्ता यह सिद्ध करने में भी विफल रहा कि प्रश्नगत भूमि की समस्त आय धार्मिक अथवा धर्मार्थ उद्देश्यों हेतु प्रयोग की जा रही है, जो कि अधिनियम, 1960 की धारा 6(1)(च) का लाभ प्राप्त करने हेतु प्रमुख शर्तों में से एक है।

16. अपने तर्कों में उन्होंने यह भी कहा कि याचिकाकर्ता यह सिद्ध नहीं कर सका कि 'न्यास/ मठ' कभी भी पंजीकृत था, एवं यदि कभी भी 'न्यास' होने का दावा किया गया है तो इस भारतीय न्यास अधिनियम, 1882 की धारा 5 के प्रावधानों के अनुसार निबंधीकृत होना चाहिये।

17. उन्होंने ***अविनाश चंद्र तिवारी बनाम अपर जिला न्यायाधीश, न्यायालय संख्या- 3, उन्नाव एवं अन्य [2011 (86) ALR 662]*** की ओर न्यायालय का ध्यान आकृष्ट करते हुए यह भी कहा कि माननीय न्यायालय ने यह धारित किया है कि मात्र यह तथ्य कि आमजन को स्थान पर आने अथवा पूजा की अनुमति है, सार्वजनिक 'न्यास' होने का साक्ष्य नहीं होगा।

18. पुनः यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि दिनांक 29.06.1987 के आदेश से यह स्पष्ट है कि विहित प्राधिकारी ने अपीलीय आदेश 20.03.1984 के निदेश के अनुपालन में पाँच प्रश्न विरचित किये थे, एवं भूमि के सिंचित अथवा असिंचित होने के प्रश्न विरचित करने का कोई भी निदेश नहीं था। उनका अभिकथन है कि संपत्ति किसी 'मठ' अथवा 'न्यास' की नहीं है, अपितु यह व्यक्ति के नाम दर्ज संपत्ति है जिसका व्यक्ति विशेष हेतु प्रयोग हो रहा है न कि धार्मिक अथवा धर्मार्थ उद्देश्य हेतु। अतः, याचिकाकर्ता का वाद गुणविहीन होने के कारण खारिज होने योग्य है।

19. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्तागण को सुनने एवं अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री के परिशीलनोपरांत यह प्रकट होता है कि प्रश्नगत संपत्ति के अधिशेष संपत्ति घोषित किये जाने के सम्बन्ध में विवाद उत्पन्न हुआ। प्रारम्भ में

याचिकाकर्ता को 11.09.1974 को एक नोटिस जारी किया गया, जो कि याचिकाकर्ता के कथनानुसार कभी भी उसे तामील नहीं किया गया। परिणामस्वरूप, वाद संस्थित किया गया जिसमें याचिकाकर्ता सफल हुआ उसकी आपत्तियों पर अधिनियम, 1960 की धारा 11(2) के अंतर्गत विचार किया गया। तत्पश्चात, प्रकरण अपीलीय न्यायालय के स्तर तक पहुँचा एवं इसे आदेश दिनांक 30.03.1984 द्वारा विहित प्राधिकारी को अतिरिक्त वादबिंदु विरचित करने के निदेश के साथ प्रतिप्रेषित कर दिया गया। तत्पश्चात विहित प्राधिकारी ने अतिरिक्त वादबिंदु विरचित किये एवं दिनांक 29.06.1987 को आदेश पारित किया गया जिसके द्वारा अधिनियम, 1960 की धारा 6(च) के प्रावधानों का लाभ प्रदान किये जाने का याचिकाकर्ता का दावा खारिज कर दिया गया। एक अपील भी संस्थित की गई जिसका निर्णय विहित प्राधिकारी के आदेश दिनांक 13.04.1992 को पुष्ट करते हुए किया गया क्योंकि अपीलीय प्राधिकारी को विहित प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश में कोई अवैधता अथवा दुर्बलता नहीं मिली।

20. जब इस न्यायालय ने विहित प्राधिकारी के आदेश दिनांक 29.06.1987 का परीक्षण किया तो यह प्रकट हुआ कि पाँच अतिरिक्त प्रश्न विरचित किये गए थें जिनमें यह प्रश्न सम्मिलित था कि क्या प्रश्नगत संपत्ति धार्मिक 'मठ' की थी एवं क्या यह दिनांक 01.05.1959 के पूर्व भी मठ के रूप में दर्ज था एवं क्या उपरोक्त संपत्ति द्वारा प्राप्त आय धार्मिक एवं धर्मार्थ उद्देश्यों हेतु प्रयोग की जा रही थी एवं यह प्रश्न भी सम्मिलित था कि क्या वंशजगण भी कथित 'न्यास' अथवा 'मठ' के हितधारी थें।

21. उपरोक्त बिंदु पर निर्णय लेते समय विचारण न्यायालय की चर्चाओं के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि विचाराधीन भूमि वर्तमान याचिकाकर्ता के नाम पर दर्ज है, न कि किसी "मठ" या "न्यास" के नाम पर और इस संबंध में कोई लिखित निबंधन या शर्तें नहीं है। विहित प्राधिकारी साक्ष्यों और साक्षियों के परीक्षण के उपरांत इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि याचिकाकर्ता द्वारा कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया जा सका कि संबंधित संपत्ति की आय का उपयोग धार्मिक या धर्मार्थ उद्देश्यों के लिये किया जा रहा था या याचिकाकर्ता के परिवार के सदस्य/वंशज प्रश्नगत भूमि के लाभार्थी नहीं हैं। उन्होंने संबंधित क्षेत्र के नायब तहसीलदार और लेखपाल के बयानों पर भी विचार किया है कि विचाराधीन संपत्ति गुरु शरण दास की व्यक्तिगत संपत्ति है।

22. इस न्यायालय ने यह भी देखा है कि 1359 फसली की नकल खतौनी एवं वर्तमान खतौनियों में विरोधाभास है और दिनांक 01-05-1959 से पूर्व कथित "मठ" की उत्पत्ति सिद्ध नहीं की जा सकी है, जो कि "अधिनियम 1960" की धारा 6(1)(च) में उल्लिखित सीमांत तिथि है। नायब तहसीलदार की रिपोर्ट दिनांक 13-04-1975 का परीक्षण करते समय उत्तर दिया गया कि नायब तहसीलदार ने इस तथ्य का उल्लेख नहीं किया कि उनकी इस संतुष्टि का आधार क्या है कि प्रश्नाधीन भूमि 'मठ' की भूमि है तथा कब इसका गठन किया गया और भूमि "मठ" के नाम पर दर्ज की गई।

23. अपीलीय प्राधिकारी ने निष्कर्ष दर्ज किया है कि नायब तहसीलदार ने भी अपनी आख्या में इस तथ्य का उल्लेख नहीं किया है कि क्या प्रश्नगत संपत्ति की आय का उपयोग महंत के साथ-साथ उनके परिवार के सदस्यों के लिए भी

नहीं किया जा रहा था, यद्यपि याचिकाकर्ता द्वारा नायब तहसीलदार की आख्या पर प्रत्येक स्तर पर अत्यधिक बल दिया गया है।

24. वास्तव में, मूलतः, दो प्रश्न थे, जिन पर विहित प्राधिकारी और अपीलीय प्राधिकारी द्वारा विचार किया जाना था। प्रथम बिंदु यह है कि क्या विचाराधीन संपत्ति "मठ" या "न्यास" की संपत्ति है और जिसकी आय का उपयोग धार्मिक या धर्मार्थ उद्देश्यों के लिए किया जा रहा था और द्वितीय बिंदु यह है कि क्या "अधिनियम 1960" की धारा 6 (1) (एफ) के लाभों हेतु, क्या "न्यास" अथवा "मठ" अनिवार्य रूप से पंजीकृत होना चाहिए या नहीं।

25. प्रथम बिंदु, जिसका उत्तर विहित प्राधिकारी द्वारा दिया गया है, वह यह है कि नायब तहसीलदार की दिनांक 13-02-1975 की आख्या पर याचिकाकर्ता द्वारा दृढ़ विश्वास व्यक्त किया गया था, हालांकि, यह स्पष्ट है कि नायब तहसीलदार की एक पंक्ति की आख्या के अतिरिक्त, जिसके अनुसार संबंधित संपत्ति "मठ" की संपत्ति है, कोई अन्य विवरण नहीं है कि क्या साक्ष्य एवं अभिलेख थे, जिनके आधार पर नायब तहसीलदार ने आख्या दी कि संपत्ति "मठ" की है। नायब तहसीलदार ने अपनी आख्या दिनांक 13-04-1975 में यह भी प्रकट नहीं किया है कि विचाराधीन संपत्ति की आय का उपयोग धर्मार्थ या धार्मिक उद्देश्यों के लिए किया जा रहा था, सिवाय इस तथ्य के कि आमतौर पर "कबीर पंत" के संत आया जाया करते थे और धार्मिक समारोहों पर होने वाले व्यय को प्रश्नगत संपत्ति की आय से पूरा किया जाता था, लेकिन, इससे यह स्पष्ट नहीं होता है कि क्या संबंधित संपत्ति की समस्त आय का उपयोग धर्मार्थ और धार्मिक उद्देश्यों के लिए किया जा रहा था। यह स्थापित विधि है कि भले ही भूमि की आय का भाग धर्मार्थ उद्देश्यों के लिए उपयोग नहीं किया जाता है, तब 'अधिनियम 1960' की धारा 6(1)(च) के प्रावधानों का लाभ नहीं दिया जा सकता है।

26. इसके अतिरिक्त, याचिकाकर्ता किसी भी दस्तावेज़ द्वारा यह सिद्ध नहीं कर सका कि प्रश्नगत संपत्ति की आय का उपयोग धर्मार्थ और धार्मिक उद्देश्यों के लिए किया गया था और वह यह भी सिद्ध करने में विफल रहा है कि वह या उसके परिवार के सदस्य प्रश्नगत संपत्ति की आय के लाभार्थी नहीं हैं। इसके अतिरिक्त, 1359 फसली की नकल खतौनी एवं वर्तमान वर्ष की नकल खतौनी में भी तात्विक विरोधाभास है और इसलिए, यह सिद्ध नहीं किया जा सका कि प्रश्नगत संपत्ति के दिनांक 01-05-1959 से पूर्व "मठ" होने के कारण, उसका उपयोग धर्मार्थ और धार्मिक उद्देश्यों के लिए किया जा रहा था।

27. इस न्यायालय ने इस तथ्य पर भी गौर किया है कि याचिकाकर्ता "बाबा गुरु शरण दास" के नाम पर दर्ज किसी भी "मठ" या "न्यास" के संबंध में कोई भी दस्तावेज प्रस्तुत करने में विफल रहा है, जो प्रथम दृष्टया, दर्शाता है कि यह एक निजी संपत्ति है और इसका उपयोग किसी भी धार्मिक या धर्मार्थ उद्देश्यों के लिए नहीं किया जा रहा है, और इन सभी बिंदुओं को निर्धारित प्राधिकारी के साथ-साथ अपीलीय प्राधिकारी द्वारा अत्यंत विस्तारपूर्वक निस्तारित किया गया है। इसलिए वर्तमान प्रकरण गुणविहीन है।

28. परिणामस्वरूप, रिट याचिका **निरस्त** की जाती है।

29. दाखिल दफ्तर की जाती है।

(2023) 3 ILRA 458

मूल न्यायाधिकार

नागरिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 17.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पवार,

रिट सी संख्या 1007259/2013

सी/एम प्रतिभा शिक्षण समिति एवं अन्य। ..याचिकाकर्तागण

बनाम

यूपी राज्य एवं अन्य। ...प्रतिवादीगण

अधिवक्ता याचिकाकर्तागण: गिरीश चंद्र वर्मा

अधिवक्ता प्रतिवादीगण: सी.एस.सी., अदित मिश्रा, जी.एम. कामिल, मनीष वैश्य, राकेश चंद्र तिवारी

ए. समिति - सोसाइटीज रजिस्ट्रेशन एक्ट, 1860 - धारा 25(2) और (3) - चुनाव - समिति की अवधि समाप्त - सहायक रजिस्ट्रार द्वारा धारा 25(2) के तहत कोई आदेश नहीं पारित किया गया - प्रभाव - चुनाव आयोजित कराने की समिति की शक्ति - वैधता को चुनौती दी गई - निर्णय, प्रबंधन समिति अपनी अवधि समाप्त होने के पश्चात भी चुनाव आयोजित कराने के लिए बैठक बुला सकती है जब तक कि इसे सोसाइटी के नियमों के तहत विशेष रूप से प्रतिबंधित नहीं किया गया है। यह अधिकार तब तक प्रभावी रहता है जब तक रजिस्ट्रार धारा 25(2) के तहत कोई आदेश नहीं पारित करता है, जिसके पश्चात प्रबंधन समिति द्वारा धारा 25 के उपधारा (3) के आलोक में कोई अन्य बैठक नहीं बुलाई जा सकती। (पैरा 7)

याचिका स्वीकृत। (ई-1)

<u>**उद्धृत वाद सूची :-**</u>

1. सी/एम विद्यावती उच्चतर माध्यमिक विद्यालय बनाम सहायक रजिस्ट्रार और अन्य; 2005(3) यूपीएलबीईसी 2410

2. विनोद कुमार वर्सनाय बनाम राज्य उत्तर प्रदेश और अन्य; (डी.बी.) 2017 (3) ई.एस.सी. 1529

<u>**माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पवार**</u>

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्तागण और विपक्षी 1 और 2 के विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता और साथ ही प्रत्यर्थी संख्या 3 के विद्वान अधिवक्ता श्री अनिल तिवारी को सुना गया, जिसकी सहायता श्री आर.सी. तिवारी, विद्वान अधिवक्ता ने की।

2. इस रिट याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने डिप्टी रजिस्ट्रार, फर्म, सोसाइटीज और चिट्स, फैजाबाद क्षेत्र, फैजाबाद, प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा पारित दिनांक 23.9.2013 के प्रमाणिक निरस्तीकरण आदेश की प्रकृति में एक रिट के लिए प्रार्थना की है।

एक और रिट दायर कर प्रत्यर्थी संख्या 2 को निर्देश दिया गया है कि वह दिनांक 23.9.2013 के विवादित आदेश को प्रभावी न करे तथा याचिकाकर्ता के कामकाज में बाधा न डाले।

3. याचिकाकर्ता संख्या 1 पंजीकृत सोसायटी है, याचिकाकर्ता संख्या 2 संस्थापक प्रबंधक है तथा प्रत्यर्थी संख्या 3 अन्य पदाधिकारियों सहित संस्थापक अध्यक्ष था। दिनांक 28.7.2008 को

आयोजित बैठक में वर्ष 2008-09 के लिए सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 (संक्षेप में अधिनियम) की धारा 4 के अंतर्गत प्रबंध समिति की कार्यकारी समिति की सूची पंजीकृत कराने का निर्णय लिया गया। दिनांक 15.6.2008 के प्रस्ताव में साधारण निकाय के 39 सदस्यों की सूची को अनुमोदित किया गया। उप रजिस्ट्रार ने दिनांक 22.10.2008 के आदेश द्वारा वर्ष 2008-09 के लिए सूची के पंजीकरण का आदेश पारित किया। दिनांक 30.11.2008 को पंजीकरण के नवीनीकरण के साथ-साथ साधारण निकाय के 35 नए सदस्यों की सदस्यता के लिए प्रस्ताव पारित किया गया। प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया गया तथा साधारण निकाय की स्वीकृत संख्या 74 हो गई।

दिनांक 9.12.2008 को सोसायटी के नवीनीकरण हेतु दस्तावेजों के साथ प्रत्यर्थी संख्या 2 के समक्ष पत्र प्रस्तुत किया गया। दिनांक 20.12.2008 के आदेश के अनुसार सोसायटी का नवीनीकरण किया गया तथा प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा अगले पांच वर्षों के लिए नवीनीकरण प्रमाण पत्र जारी किया गया। दिनांक 21.12.2008 को सोसायटी के चुनाव कराने हेतु प्रस्ताव पारित किया गया। चुनाव का कार्यक्रम अधिसूचित किया गया तथा दिनांक 18.1.2009 के चुनाव हेतु पृथक एजेंडा जारी किया गया। साधारण सभा के 74 सदस्यों की सूची भी प्रकाशित की गई। बैठक की अध्यक्षता प्रत्यर्थी संख्या 3 ने अध्यक्ष के रूप में की। दिनांक 18.1.2009 को प्रबन्ध समिति का चुनाव हुआ जिसमें याचिकाकर्ता संख्या 2 को पुनः प्रबन्धक तथा प्रत्यर्थी संख्या 3 को अध्यक्ष चुना गया। दिनांक 18.1.2009 की इस बैठक की पुष्टि दिनांक 8.9.2009 की बैठक में की गई। दिनांक 10.2.2009 को, दिनांक 21.12.2008, 18.1.2009, 3.2.2009 के संकल्प और पदाधिकारियों की सूची तथा सामान्य निकाय के सदस्यों की सूची, प्रत्यर्थी संख्या 2 के समक्ष प्रत्यर्थी संख्या 3 और याचिकाकर्ता द्वारा विधिवत हस्ताक्षरित अन्य दस्तावेजों के साथ प्रस्तुत की गई।

दिनांक 18.1.2009 के चुनाव के अनुसार पदाधिकारियों के पंजीकरण हेतु दिनांक 6.11.2012 को पत्र भेजा गया था। जिसे प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा विधिवत पंजीकृत किया गया। प्रत्यर्थी संख्या 3 ने चुनाव के चार वर्ष से अधिक समय तक सोसायटी के अध्यक्ष का दर्जा प्राप्त करने के पश्चात मनगढ़ंत कहानी बनाकर सोसायटी को समयबाधित घोषित करने हेतु प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया, जिस पर प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा भेजे गए नोटिस के विरूद्ध याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 16.5.2013 को विस्तृत उत्तर प्रस्तुत किया गया। दिनांक 6.1.2012 को प्रत्यर्थी संख्या 3 के विरुद्ध पुलिस थाना दीवान में धारा 467, 468, 471, 419, 420 आई.पी.सी. के अन्तर्गत प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई गई। प्रत्यर्थी संख्या 2 ने दिनांक 23.9.2013 के आक्षेपित आदेश द्वारा सोसायटी को समय-बाधित घोषित किया है, तथा कहा है कि सोसायटी का चुनाव 20.12.2008 तक सम्पन्न हो जाना चाहिए था, जो कि नहीं हुआ है, तथा इस आधार पर सोसायटी की प्रबन्ध समिति को 20.12.2008 से समय-बाधित घोषित

किया है, तथा आगे यह निर्देश दिया है कि सामान्य निकाय के 12 सदस्यों में से प्रबन्ध समिति का चुनाव कराया जाए।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने दलील दी कि इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि सोसायटी की प्रबंधन समिति का चुनाव 74 सदस्यों की सूची से हुआ था, जिसे प्रत्यर्थी संख्या 2 ने खुद सोसायटी के पदाधिकारियों की सूची दर्ज करके दिनांक 6.11.2012 को आदेश पारित करके मान्यता दी थी, जो रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 17 में निहित है। इसलिए दिनांक 18.1.2009 का चुनाव मान्यता प्राप्त था और प्रत्यर्थी संख्या 2 के ज्ञान में था।

यह प्रस्तुत किया गया है कि अधिनियम की धारा 25(2) और (3) के प्रावधानों के संयुक्त वाचन से यह स्पष्ट है कि जब तक उप रजिस्ट्रार अधिनियम की धारा 25(2) के तहत आदेश पारित नहीं करते, तब तक सोसायटी समाप्त नहीं होगी और निवर्तमान प्रबंध समिति के पास तदनुसार चुनाव कराने के सभी अधिकार और अधिकार हैं। उन्होंने प्रबंधन समिति, **विद्यावती उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, शाहपुर, सरायं, आजमगढ़ और अन्य बनाम सहायक रजिस्ट्रार, फर्म, सोसायटी और चिट्स, आजमगढ़ क्षेत्र, आजमगढ़ और अन्य** 2005 (3) उ0प्र0एलबीईसी 2410 (प्रासंगिक पैरा 6, 7 और 8) में इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है। उन्होंने **विनोद कुमार वार्ष्णेय बनाम उ0प्र0 राज्य और अन्य** (डीबी) 2017 (3) ईएससी 1529 (प्रासंगिक पैरा 17, 18 और 19) में इस न्यायालय की डिवीजन बेंच के फैसले पर भी भरोसा किया है।

5. प्रत्यर्थी संख्या 3 की ओर से उपस्थित विद्वान अपर मुख्य स्थायी तिवारी और विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री राकेश तिवारी ने याचिका का विरोध किया है।

6. यह विवादित नहीं है कि सोसायटी का चुनाव वर्ष 2008 में हुआ था। सोसायटी के पदाधिकारियों की सूची वर्ष 2008-09 के लिए उप रजिस्ट्रार द्वारा दिनांक 22.10.2008 के आदेश द्वारा पंजीकृत की गई थी। प्रबंध समिति का कार्यकाल 20.12.2008 को समाप्त हो गया था। यह भी विवादित नहीं है कि प्रबंध समिति का कार्यकाल समाप्त होने के बाद उप रजिस्ट्रार द्वारा अधिनियम की धारा 25(2) के तहत कोई आदेश पारित नहीं किया गया था। इस संबंध में कानून इस न्यायालय द्वारा उपर्युक्त संदर्भित मामलों में तय किया गया है। सुविधा के लिए **प्रबंधन समिति और अन्य बनाम सहायक रजिस्ट्रार, फर्म सोसायटी और अन्य (उपरोक्त)** के पैरा 6, 7 और 8 नीचे पुन: प्रस्तुत किए गए हैं :

"6. वर्तमान रिट याचिका में उठाए गए विवाद को समझने के लिए सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1960 की धारा 25(2) और (3) का संदर्भ लेना प्रासंगिक होगा, जो नीचे उद्धृत हैं:

"25. पदाधिकारियों के निर्वाचन से संबंधित विवाद-(1) ??????..

(2) जहां उपधारा (1) के अधीन किए गए आदेश के तहत कोई चुनाव रद्द कर दिया जाता है या कोई पदाधिकारी अपने पद पर बने रहने के लिए अब और हकदार नहीं माना जाता है या जहां रजिस्ट्रार का यह समाधान हो जाता है कि किसी सोसायटी के पदाधिकारियों का कोई चुनाव उस सोसायटी के नियमों में विनिर्दिष्ट समय के भीतर नहीं हुआ है, वहां वह ऐसे पदाधिकारी या पदाधिकारियों के चुनाव के लिए ऐसी सोसायटी की साधारण सभा की बैठक बुला सकता है और

ऐसी बैठक की अध्यक्षता और संचालन रजिस्ट्रार या उसके द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत किसी अधिकारी द्वारा किया जाएगा और बैठकों और चुनावों से संबंधित सोसायटी के नियमों में उपबंध आवश्यक संशोधनों के साथ ऐसी बैठक और चुनाव पर लागू होंगे।

(3) जहां रजिस्ट्रार द्वारा उपधारा (2) के अधीन बैठक बुलाई जाती है, वहां किसी अन्य प्राधिकारी द्वारा या सोसायटी का पदाधिकारी होने का दावा करने वाले किसी व्यक्ति द्वारा निर्वाचन के प्रयोजनार्थ कोई अन्य बैठक नहीं बुलाई जाएगी। स्पष्टीकरण: इस धारा के प्रयोजनों के लिए, 'विहित प्राधिकारी' से तात्पर्य राज्य सरकार द्वारा आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशित अधिसूचना द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत कार्यालय या न्यायालय से है।" 7. उपर्युक्त धारा को मात्र पढ़ने से ही यह स्थापित हो जाएगा कि समाज के पदाधिकारियों के चुनाव कराने के प्रयोजनार्थ बैठक बुलाने का अधिकार राज्य सरकार के पास है।

स्पष्टीकरण: इस धारा के प्रयोजनों के लिए, 'विहित प्राधिकारी' से राज्य सरकार द्वारा राजपत्र में प्रकाशित अधिसूचना द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत कार्यालय या न्यायालय अभिप्रेत है।"

7. उक्त धारा को पढ़ने से ही यह स्थापित हो जाता है कि निवर्तमान प्रबंध समिति के पदाधिकारियों के चुनाव कराने के उद्देश्य से बैठक बुलाने का अधिकार तथा पदाधिकारियों के कार्यकाल की समाप्ति के पश्चात सोसायटी का अधिकार तभी समाप्त हो जाता है जब रजिस्ट्रार अधिनियम की धारा 25(2) के अंतर्गत प्रबंध समिति के नए चुनाव कराने के उद्देश्य से सोसायटी की आम सभा की बैठक बुलाने का आदेश पारित करता है। केवल इसी स्तर पर निवर्तमान पदाधिकारियों को उक्त उद्देश्य के लिए कोई भी बैठक बुलाने से वंचित किया जाता है।

8. वर्तमान मामले के तथ्यों में यह स्वीकार किया जाता है कि रजिस्ट्रार द्वारा धारा 25(2) के तहत ऐसा कोई आदेश पारित नहीं किया गया था। इस प्रकार नए चुनाव कराने के लिए आम सभा की बैठक बुलाने की शक्ति खोई नहीं गई और न ही सोसायटी के उपनियमों में या सोसायटी पंजीकरण अधिनियम के तहत निवर्तमान पदाधिकारियों द्वारा नए चुनाव कराने पर कोई रोक है। ऐसी परिस्थितियों में सोसायटी के पदाधिकारियों के कार्यकाल की समाप्ति के बाद भी 2.3.2003 को जो चुनाव हुए हैं, उन्हें किसी भी तरह से अवैध या अमान्य नहीं कहा जा सकता और इस संबंध में उठाई गई आपत्तियों को कानूनी रूप से बरकरार नहीं रखा जा सकता।

वार्ष्णेय केस (पूर्वोक्त) के पैरा 17, 18 और 19 नीचे पुन: प्रस्तुत हैं:

17. मामले पर हमारे गहन विचार के बाद और अधिनियम की धारा 25(2) और 25(3) की भाषा पर विचार करने और अधिनियम की धारा 25(2) और 25(3) के संयुक्त वाचन के बाद, यह स्पष्ट है कि रजिस्ट्रार के पास चुनाव कराने के उद्देश्य से बैठक बुलाने की शक्ति और अधिकार क्षेत्र है यदि वह संतुष्ट है कि चुनाव समाज के नियमों में निर्दिष्ट समय के भीतर नहीं हुआ है। हालांकि, अधिनियम की धारा 25(3) यह मानती है कि चुनाव कराने के उद्देश्य से बैठक किसी अन्य प्राधिकारी या समाज का पदाधिकारी होने का दावा करने वाले किसी अन्य व्यक्ति द्वारा बुलाई जा सकती है, जिसका अर्थ है कि यदि प्रबंधन समिति का कार्यकाल समाप्त हो जाता है, तो प्रबंधन समिति तब भी बैठक बुला सकती है और चुनाव

करा सकती है जब तक कि रजिस्ट्रार द्वारा चुनाव कराने के लिए अधिनियम की धारा 25(2) के तहत आदेश पारित नहीं किया जाता है।

18. हमारा मानना है कि अधिनियम की धारा 25(2) और धारा 25(3) के संयुक्त वाचन से, चुनाव कराने के उद्देश्य से बैठक बुलाने की प्रबंध समिति की शक्ति तभी समाप्त हो जाती है जब रजिस्ट्रार ने अधिकार क्षेत्र ग्रहण कर लिया हो और अधिनियम की धारा 25(2) के तहत बैठक बुलाने के लिए कदम उठाए हों। हम यह भी स्पष्ट करते हैं कि जब तक अधिनियम की धारा 25(2) के तहत रजिस्ट्रार द्वारा बैठक बुलाने और चुनाव कराने का आदेश पारित नहीं किया जाता है, तब तक चुनाव कराने के उद्देश्य से बैठक बुलाने की शक्ति प्रबंध समिति के पास बनी रहती है, भले ही इसकी अवधि समाप्त हो गई हो, जब तक कि उस सोसायटी के नियमों में इसे विशेष रूप से प्रतिबंधित न किया गया हो। इस संबंध में, प्रबंध समिति, दादर आश्रम ट्रस्ट सोसायटी और अन्य बनाम महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी और अन्य, 2017 (1) एडीजे 1 में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के निर्णय से हमारा दृष्टिकोण पुष्ट होता है, जिसमें पूर्ण पीठ ने कहा था:-

"जैसा कि उप-धारा (3) को पढ़ने से स्पष्ट होगा, चुनाव के प्रयोजनार्थ बैठक बुलाने के लिए किसी अन्य प्राधिकारी या व्यक्ति की शक्ति और अधिकारिता केवल उस स्थिति में समाप्त हो जाती है, जब रजिस्ट्रार द्वारा उप-धारा (2) के अधीन बैठक पहले ही बुलाई जा चुकी हो। वास्तव में उप-धारा (3) यह मानती है कि चुनाव के प्रयोजनार्थ बैठक वास्तव में किसी अन्य प्राधिकारी या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा बुलाई जा सकती है। उस अन्य प्राधिकारी या व्यक्ति की ऐसी बैठक बुलाने की शक्ति केवल तभी समाप्त हो जाती है, जब रजिस्ट्रार ने बैठक बुलाने के लिए उप-धारा (2) के अधीन अधिकारिता ग्रहण कर ली हो और कदम उठा लिए हों।"

19. उपरोक्त के आलोक में, प्रश्न संख्या 1 का उत्तर यह है कि प्रबंध समिति अपने कार्यकाल की समाप्ति के बाद भी चुनाव कराने के उद्देश्य से बैठक बुला सकती है, जब तक कि उसे अपनी सोसायटी के नियमों के तहत विशेष रूप से वर्जित न किया गया हो। ऐसा अधिकार तब तक जारी रहता है जब तक रजिस्ट्रार अधिनियम की धारा 25(2) के तहत आदेश पारित नहीं कर देता, जिसके बाद अधिनियम की धारा 25 की उप-धारा (3) के मद्देनजर प्रबंध समिति द्वारा कोई और बैठक नहीं बुलाई जा सकती ।

7. इस न्यायालय द्वारा पारित उपरोक्त निर्णयों के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि प्रबंध समिति अपने कार्यकाल की समाप्ति के बाद भी चुनाव कराने के उद्देश्य से बैठक बुला सकती है, जब तक कि सोसायटी के नियमों के तहत इसे विशेष रूप से प्रतिबंधित न किया गया हो। यह अधिकार तब तक जारी रहता है जब तक रजिस्ट्रार अधिनियम की धारा 25(2) के तहत आदेश पारित नहीं कर देता, जिसके बाद अधिनियम की धारा 25 की उपधारा (3) के मद्देनजर प्रबंध समिति द्वारा कोई अन्य बैठक नहीं बुलाई जा सकती।

8. इस मामले में, यह सच है कि वर्ष 2008 में प्रबंध समिति का कार्यकाल समाप्त होने के बाद कोई आदेश पारित नहीं किया गया था, इसलिए 18.1.2009 को निवर्तमान प्रबंध समिति द्वारा आयोजित चुनाव पूरी तरह से वैध थे। इस कारण से प्रबंध समिति समयबद्ध नहीं होती है, क्योंकि रजिस्ट्रार द्वारा अधिनियम की धारा 25(2) के तहत कोई आदेश पारित नहीं किया गया था।

इसलिए, इस कारण से, आक्षेपित आदेश अपोषणीय है।

9. तदनुसार रिट याचिका स्वीकार की जाती है और दिनांक 23.9.2013 (पूर्वोक्त) का आक्षेपित आदेश रद्द किया जाता है।

(2023) 3 ILRA 462

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 21.02.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान

आवेदन अंतर्गत धारा 378 संख्या 17 / 2023

उत्तर प्रदेश राज्य ...आवेदक

बनाम

आरिफ अनवर हाशमी और अन्य ...विपक्षी पक्षकार

आवेदक के अधिवक्ता: जी.ए., सुलखान सिंह, सुशील कुमार सिंह

विपक्षी पक्षकार के अधिवक्ता: मनोज कुमार मिश्रा, आनंद मणि त्रिपाठी, रोशन बाबू गुप्ता

(क) - आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 378, 462 और 465 - उत्तर प्रदेश गिरोहबन्द और समाज विरोधी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1986 - धारा 3(1) और 18 - अपील की अनुमति के लिए आवेदन - आपेक्षित आदेश न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से बाहर पारित किया गया - प्रतिवादियों द्वारा अपील का विरोध धारा 462 और 465 के आधार पर किया गया - न्यायालय ने पाया कि, यदि किसी विशेष निर्धारित न्यायालय का अस्तित्व है जो ऐसे विवाद को निस्तारित और निर्णय पारित करने के लिए है, तो अधिकार उस न्यायालय के पास ही होगा और यदि ऐसे विवाद का निर्णय किसी अन्य न्यायालय द्वारा किया गया है, तो यह अभिलेख पर एक गलती होगी, जिसे अश्विनी कुमार उपाध्याय में उच्चतम न्यायालय के निर्णय के प्रकाश में न्याय की विफलता माना जा सकता है - उच्चतम न्यायालय का निर्णय देश का कानून है और यदि कोई दिशा-निर्देश तैयार किए गए हैं और पूरे राज्य में पालन किया जा रहा है, तो इससे विमुख होना उच्चतम न्यायालय के आदेश का उल्लंघन होगा - इसलिए, धारा 462 और 465(2) दंड प्रक्रिया संहिता का प्रावधान लागू नहीं होगा और आपेक्षित आदेश कानून की दृष्टि में स्थायी नहीं होगा - परिणामस्वरूप, वर्तमान अपील की अनुमति दी गई और वाद को निर्धारित न्यायालय में उसके गुण दोष के आधार पर निस्तारण के लिए वापस भेजा गया - निर्देश जारी किए गए। (पैराग्राफ - 6, 7, 8, 11)

अपील स्वीकृत। (E-11)

<u>उद्धृत वाद सूची: -</u>

अश्विनी कुमार उपाध्याय बनाम भारत संघ और अन्य (रिट याचिका संख्या 699/2016 - अंतरिम आदेश दिनांक 04.12.20218 और निर्णित दिनांक 09.11.2023)

<u>माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान</u>

1. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्तागण श्री आलोक सरन, श्री राजेश कुमार सिंह द्वारा सहाय्यित विद्वान शासकीय अधिवक्ता श्री विमल

श्रीवास्तव, प्रतिवादी सं० 1 एवं 3 की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री मनोज कुमार मिश्रा, प्रतिवादी सं० 2 एवं 6 की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री मनोज कुमार मिश्रा तथा प्रतिवादी सं० 2 एवं 6 की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री ए.एम. त्रिपाठी तथा प्रतिवादी सं०4 एवं 5 की ओर से विद्वान अधिवक्तागण सुश्री पूर्णिमा मिश्रा एवं श्री रोशन बाबू गुप्ता को सुना।

2. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने अनुपूरक शपथ-पत्र दाखिल किया है, जिसे अभिलेख पर ग्रहण किया गया है। श्री मनोज कुमार मिश्रा ने अपील तथा अन्तरिम राहत के विरुद्ध आपत्ति प्रस्तुत की है। दोनो आपत्तियों को भी अभिलेख पर ग्रहण किया गया है।

3. उ०प्र० गिरोहबन्द और समाज विरोधी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम1986, की धारा 3(1) के अन्तर्गत थाना-सदुल्लानगर, जिला-बलरामपुर के मु०-अपराध संख्या 156/2020 से उत्पन्न आपराधिक प्रकीर्ण संदर्भ सं०-984/2022 में विशेष न्यायधीश (गैंगस्टर एक्ट) / विशेष न्यायधीश (पोक्सो एक्ट), बलरामपुर द्वारा पारित आदेश दिनांक 23.12.2022 के विरुद्ध उ०प्र० गिरोहबन्द और समाज विरोधी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम1986 (इसके बाद "गैंगस्टर एक्ट" के रुप में सन्दर्भित) के धारा 18 के अन्तर्गत यह अपील दायर की गयी है।

4. विद्वान शासकीय अधिवक्ता श्री विमल श्रीवास्तव का सर्वप्रथम महत्वपूर्ण तर्क यह है कि प्रश्नगत विषय उस पक्षकार से सम्बन्धित है, जो उतरौला के विधायक रहे है तथा राज्य सरकार द्वारा पूर्व विधायक को अनुमन्य पेंशन प्राप्त कर रहे है। उपरोक्त आक्षेपित आदेश के प्रस्तर-35 द्वारा उपरोक्त तथ्य पर विचार किया गया है। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि आक्षेपित आदेश दिनांक 23.12.2022 विशेष न्यायधीश (गैंगस्टर एक्ट) / विशेष न्यायधीश (पाक्सो एक्ट), बलरामपुर द्वारा पारित किया गया है। विद्वान शासकीय अधिवक्ता के अनुसार उपरोक्त न्यायालय किसी भी मामले पर निर्णय नहीं दे सकता है या **अश्विनी कुमार उपाध्याय बनाम भारत संघ एवं अन्य, रिट याचिका (सिविल) संख्या 699/ 2016** में सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के आलोक में ऐसा आदेश पारित नहीं कर सकता है। उपरोक्त निर्णय के प्रासंगिक प्रस्तर 5 एवं 9 को निम्नवत पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है: -

"5. 4.12.2018 को इस न्यायालय ने निम्नलिखित निदेश निर्गत किए:-

"1. प्रत्येक जिले में एक सत्र न्यायालय और एक मजिस्ट्रियल न्यायालय को नामित करने के बजाय हम प्रत्येक उच्च न्यायालय से पूर्व और वर्तमान विधायकों से जुड़े आपराधिक मामलों को उतने सत्र न्यायालयों और मजिस्ट्रियल न्यायालयों को सौंपने/आवंटित करने का अनुरोध करते हैं, जितना संबंधित उच्च न्यायालय उचित, उपयुक्त और समीचीन समझे। हमारे अनुसार, यह पूर्व और वर्तमान विधायकों से जुड़े सभी मामलों को जिले की एक विशेष न्यायालय में केंद्रित करने के बजाय एक अधिक प्रभावी कदम होगा।

2. ऊपर वर्णित, विद्वान न्यायमित्र द्वारा इंगित प्रक्रियात्मक कदमों का

पालन ऊपरउल्लिखित निदेशों के अनुसार आवंटित प्रत्येक नामित न्यायालय द्वारा किया जाएगा, सिवाय उन मामलों के जिनमें वर्तमान सांसदों/विधायकों का अपराध आजीवन कारावास / मृत्युदण्ड से दंडित हो। वर्तमान विधायकों और पूर्व विधायकों से जुड़े मामलों के बीच कोई अंतर किये बिना ऊपर बताए गए क्रम में एम.पी./एम.एल.ए. के मामलों में पूर्ववर्ती को प्राथमिकता देते हुए कार्रवाई की जाएगी।

3. इस स्तर पर, हमारा विचार है कि उपरोक्त निर्देश बिहार और केरल राज्यों में पूर्व और वर्तमान विधायकों से संबंधित मामलों पर लागू किए जाने चाहिए।

राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली, जहाँ स्थिति कुछ भिन्न है तथा दूरी एवं क्षेत्रों की कठिनाइयां नहीं आती हैं, विशेष न्यायालयों (सत्र न्यायालय और मजिस्ट्रियल कोर्ट दोनों) द्वारा वादों की सुनवाई जारी रहेंगी।

4. जहाँ तक केरल और बिहार राज्यों से जुड़े मामलों का प्रश्न है, ऐसे मामलों के अभिलेख जो दोनों राज्यों में विशेष न्यायालयों को प्रेषित किए गए हैं, उन्हें क्षेत्राधिकार वाली न्यायालयों में पुनः प्रेषित किया जाएगा, जहाँ से अभिलेख ऊपर निर्दिष्ट विधि से निस्तारित किये जाने हेतु प्रेषित किये गये हैं। यह तत्काल किया जाएगा।

5. केरल (केरल राज्य) और पटना (बिहार राज्य) के उच्च न्यायालयों की रजिस्ट्री इस मामले में अविलम्ब आवश्यक कार्रवाई प्रारंभ करेगी।

6. पहले से स्थापित अन्य विशेष न्यायालय कार्य करती रहेंगी और उन्हें सौंपे गए मामलों का विचारण तब तक करती रहेंगी जब तक कि इस न्यायालय द्वारा इस संबंध में अगले आदेश पारित नहीं कर दिए जाते।

7. उपरोक्त दो राज्यों केरल और बिहार के जिलों में नामित न्यायालय उन मामलों में , जिनमे अभी तक आरोप पत्र दायर नहीं किए गए हैं; जहाँ कारण बताते हुए अभी तक आरोप निर्धारित नहीं किए गए हैं; एवं जहाँ मामले तैयार हैं, उनके विचारण की प्रगति के संबंध में उच्च न्यायालय को मासिक रिपोर्ट प्रस्तुत करेंगे। तदोपरांत उच्च न्यायालय उक्त रिपोर्टों को इस न्यायालय की रजिस्ट्री को अग्रेषित करेंगे और एक प्रति श्री विजय हंसारिया, विद्वान न्याय मित्र को भेजेंगे, जिनसे अनुरोध है कि वे उक्त रिपोर्टों को पढ़ें और इस न्यायालय के समक्ष दी गई जानकारी को प्रस्तुत कर अगली तिथि/सुनवाई की तिथियों पर समुचित रीति से न्यायालय की सहायता करें।"

9. उपरोक्त निदेश उच्च न्यायालयों को उन मामलों को सत्र न्यायालयों में स्थानांतरित करने के लिए बाध्य नहीं करते हैं जो मजिस्ट्रेट द्वारा विचारणीय हैं। दिनांक 4 दिसंबर 2018 के आदेश में निहित निदेश क्षेत्राधिकार के उन प्रावधानों का स्थान नहीं लेते हैं जो या तो आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 में निहित है या उन अधिनियमों द्वारा शासित अपराधों के विचारण को नियंत्रित करने वाले अन्य विशेष अधिनियमों में सम्मिलित हैं। इस न्यायालय के निदेश पूर्व और वर्तमान विधायकों से जुड़े आपराधिक मामलों को सत्र न्यायालयों या, जैसा भी मामला हो, मजिस्ट्रियल न्यायालयों को सौंपने और आवंटित करने का आदेश देते हैं। यह विधि के नियंत्रक प्रावधानों के अनुसार होना चाहिए, जैसा प्रयोज्य हो। परिणामस्वरूप, जहाँ कोई मामला दंड संहिता के अंतर्गत एक मजिस्ट्रेट द्वारा विचारणीय है, तो मामले को सक्षम अधिकारिता वाली मजिस्ट्रेट न्यायालय को सौंपा/आवंटित किया जाना होगा और इस न्यायालय के 4 दिसंबर 2018 के आदेश को, मामले का विचारण सत्र न्यायालय द्वारा किये जाने के एक निदेश के रूप में नहीं माना जा सकता है। उत्तर प्रदेश राज्य में, इस न्यायालय के दिनांक 4 दिसंबर 2018 के निदेशों के अनुसार मजिस्ट्रेट द्वारा विचारणीय मामलों की सुनवाई हेतु किसी भी मजिस्ट्रेट न्यायालय को विशेष न्यायालय के रूप में नामित नहीं किया गया है। 16 अगस्त 2019 को इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा निर्गत अधिसूचना इस न्यायालय के आदेश में निहित निदेशों की स्पष्ट गलत निर्वचन पर आधारित है।"

5. विद्वान शासकीय अधिवक्ता, जो अपीलकर्ता के अधिवक्ता हैं, ने प्रस्तुत किया है कि सर्वोच्च न्यायालय के पूर्वोक्त आदेश के आलोक में, आक्षेपित आदेश क्षेत्राधिकार से रहित है; इसलिये यह अपास्त/रद्द किये जाने योग्य है। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने भी आक्षेपित आदेश को चुनौती देते हुए कुछ आपत्तियाँ प्रस्तुत की हैं कि गैंगस्टर अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों का पालन नहीं किया गया है, लेकिन मैं इस स्तर पर उन आपत्तियों पर विचार नहीं कर रहा हूँ, क्योंकि आक्षेपित आदेश न्यायालय द्वारा पारित किया जा चुका है, जिसके पास ऐसा आदेश पारित करने का अधिकार क्षेत्र नहीं था। इसलिए ऐसा आदेश अपास्त/रद्द किये जाने योग्य है।

6. हालाँकि, प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता, विशेष रूप से श्री मनोज कुमार मिश्रा ने यह तर्क प्रस्तुत करते हुए इस न्यायालय का ध्यान दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 462 और 465 की ओर आकर्षित किया है कि मात्र इस कारण से कि आक्षेपित कार्यवाही गलत न्यायालय द्वारा विनिश्चत की गई है, आक्षेपित आदेश को अपास्त नहीं किया जा सकता है। उन्होंने यह तर्क भी प्रस्तुत किया है कि यदि कार्यवाही गलत न्यायालय के समक्ष चल रही थी, तो लोक अभियोजक को संबंधित न्यायालय के समक्ष विशिष्ट आपत्ति उठानी चाहिए थी, लेकिन

आक्षेपित आदेश पारित होने तक लोक अभियोजक द्वारा ऐसी कोई आपत्ति नहीं उठाई गई है। इसलिए, उन्होंने तर्क दिया कि लोक अभियोजक/राज्य की ओर से हुई चूक के परिणाम से प्रतिवादियों को कष्ट नहीं पहुँचना चाहिए। श्री मनोज कुमार मिश्रा ने इस अपील में यह आपत्ति भी प्रस्तुत की है कि इस आधार को विशिष्टतः ग्रहण नहीं किया गया है कि आक्षेपित आदेश उस न्यायालय द्वारा पारित किया गया है, जिसके पास ऐसा आदेश पारित करने का अधिकार क्षेत्र ही नहीं था। इसलिए, वर्तमान अपील खारिज की जा सकती है।

7. जैसा भी हो, **अश्विनी कुमार उपाध्याय** (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के पश्चात न्यायालयों को सांसदों/विधायकों से संबंधित मामलों के विचारण हेतु नामित किया गया है और यदि मामला किसी सांसद/विधायक के विषय से संबंधित है, तो नामित न्यायालय के पास ऐसे मामले पर पूर्णतः विधि के अनुसार सख्ती से निर्णय करने का अधिकार क्षेत्र होगा। विशेष रूप से, पक्षकारों द्वारा इस विषय पर विवाद नहीं किया गया है कि आक्षेपित आदेश उस न्यायालय द्वारा पारित किया गया है, जिसके पास ऐसा अधिकार क्षेत्र नहीं था; इसलिए, भले ही इस आधार को इस अपील में नहीं उठाया गया है, किन्तु उपरोक्त तथ्य को ध्यान में रखते हुए, जो दर्शाता है कि अभिलेख में स्पष्ट त्रुटि है,आक्षेपित आदेश विधि की दृष्टि में पोषणीय नहीं हो सकता है।

8. जहाँ तक दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 462 का प्रश्न है, पूर्वोक्त धारा में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि कार्यवाही, यदि गलत न्यायालय द्वारा विनिश्चत की गई है, मात्र इस कारण से अपास्त नहीं की जा सकती है कि यह गलत न्यायालय द्वारा विनिश्चत की गई है, जब तक कि ऐसा प्रतीत न हो कि ऐसी त्रुटि से वास्तव में न्याय की विफलता हुई है। **अश्विनी कुमार उपाध्याय** (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय में इस उद्देश्य की व्याख्या की गई है कि एमपी/एमएलए से संबंधित मामलों का विचारण मात्र नामित न्यायालय द्वारा ही क्यों निर्णीत किया जाना चाहिए। इसलिए, यदि इस प्रकार के मामले के विचारण और निर्णय हेतु कोई विशिष्ट न्यायालय नामित है, तो उस मामले के विचारण और निर्णय लेने का अधिकार क्षेत्र मात्र उस न्यायालय के पास है और यदि विचाराधीन मामले का निर्णय किसी अन्य न्यायालय द्वारा किया गया है, तो मेरे लिए यह एक त्रुटि होगी, जिसे न्याय की विफलता माना जा सकता है। इसके अतिरिक्त, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय देश की विधि है और यदि सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के अनुपालन में,कोई दिशानिर्देश तैयार एवं प्रसारित किया गया है तथा संपूर्ण राज्य में उनका पालन किया जा रहा है, तो इसका व्यतिक्रम सर्वोच्च न्यायालय के आदेश की अवज्ञा होगी और सांसदों/विधायकों से संबंधित मामलों के विचारण और निर्णय लेने हेतु इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा निर्गत दिशानिर्देश तैयार करने के उद्देश्य को विफल कर देगा। इसलिए, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 465 (2) का प्रावधान प्रयोज्य नहीं होगा, जो यह उपबंध करता है कि यदि उचित चरण में किसी भी पक्ष द्वारा विशिष्ट आपत्ति प्रस्तुत नहीं की गई है और क्षेत्राधिकारविहीन न्यायालय द्वारा आदेश पारित किया गया है तो उसे अपास्त नहीं किया जा सकता है। वर्तमान मामलों में,

जिला/सत्र न्यायाधीश, एमपी/एमएलए से संबंधित मामलों को विचारण हेतु नामित न्यायालय में स्थानांतरित करने हेतु कर्तव्यबद्ध थे। इसी प्रकार, यदि संबंधित जिला/सत्र न्यायाधीश द्वारा जिस न्यायालय में मामला स्थानांतरित किया गया है, उसके पास एमपी/एमएलए से संबंधित मामलों के विचारण या निर्णीत किये जाने का कोई अधिकार या अधिकार क्षेत्र नहीं है, तो उसे आगे नहीं बढ़ना चाहिए। विशेष रूप से, संबंधित न्यायालय ने आक्षेपित आदेश के प्रस्तर 35 में इस तथ्य पर विचार किया है कि एक पक्षकार विधायक रहा है और विधायक हेतु अनुमन्य पेंशन प्राप्त कर रहा है। वर्तमान मामले में, आक्षेपित आदेश उस न्यायालय द्वारा पारित किया गया है जिसके पास ऐसा आदेश पारित करने का अधिकार क्षेत्र नहीं है; इसलिए, उपरोक्त आदेश विधि की दृष्टि में पोषणीय नहीं है। साथ ही, यह भी देखा गया है कि प्रतिवादियों की ओर से कोई त्रुटि नहीं की गयी है क्योंकि उन्होंने कार्यवाही में भाग लिया है और उन्होंने इस मामले में टालमटोल करने का प्रयास नहीं किया है।

9. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता के तर्कों पर विचार करते हुए और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का परिशीलन करते हुए, मैंने पाया कि दिनांक 23.12.2022 के आदेश में स्पष्ट त्रुटि है क्योंकि इसे ऐसे न्यायालय द्वारा पारित किया गया है, जो कि **अश्विनी कुमार उपाध्याय** (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय के आदेश तथा उसके बाद इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा निर्गत दिशानिर्देश के आलोक में ऐसा आदेश पारित करने का अधिकार क्षेत्र नही रखता था।

10. इसलिए, अपील की अनुमति हेतु वर्तमान आवेदन **स्वीकृत** किया जाता है।

11. विशेष न्यायाधीश (गैंगस्टर अधिनियम)/ विशेष न्यायाधीश (पोक्सो अधिनियम), बलरामपुर द्वारा आपराधिक प्रकीर्ण संदर्भ वाद संख्या 984/2022 में पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 23.12.2022 को मात्र क्षेत्राधिकार संबंधी त्रुटि के आधार पर अपास्त/रद्द कर दिया गया है क्योंकि मैंने मामले के गुण-दोष पर विचार नहीं किया है। मामले को वापस बलरामपुर में संबंधित नामित न्यायालय में, संबंधित पक्षकारों को सुनवाई का अवसर प्रदान करते हुए, गुण-दोष के आधार पर, पूर्णतः विधि के अनुसार, यथासंभव, इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से तीन मास की अवधि में त्वरित निर्णय हेतु प्रतिप्रेषित किया जाता है।

12. तदनुसार, अपील भी **स्वीकार** की जाती है।

(2023) 3 ILRA 466

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 27.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान

आवेदन अन्तर्गत धारा 482 सं. 1974 सन् 2023

पुरुषोत्तम चौधरी ...आवेदक

बनाम

सी.बी.आई., लखनऊ ...प्रतिपक्षी

आवेदक की ओर से अधिवक्ता: प्रांशु अग्रवाल

प्रतिपक्षी की ओर से अधिवक्ता: अनुराग कुमार सिंह

10. आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या - 1974/2023 - पुरुषोत्तम चौधरी बनाम केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 64, 82 और 83 - विचारणीय न्यायालय ने आवेदक के विरुद्ध यह मानते हुए जमानती वारंट जारी किया कि समन सेवा में आने के बावजूद - आवेदक उपस्थित नहीं हुआ - समन धारा 64 Cr.P.C. के अनुसार सेवा नहीं किया गया - समन न तो आवेदक पर और न ही किसी पुरुष परिवार सदस्य पर सेवा किया गया - कम से कम एक अन्य समन सेवा किया जाना चाहिए - धारा 82 और 83 Cr.P.C. के तहत केवल अभियोजन के आवेदन पर, जो एक शपथपत्र के साथ समर्थित हो, जारी किया जाना चाहिए कि सभी उचित प्रयासों के बावजूद आरोपी समन से बच रहा है - आपेक्षित आदेश निरस्त।

आवेदन स्वीकृत। (E-9)

उद्धृत वाद सूची:

1. इंदर मोहन गोस्वामी और अन्य बनाम उत्तरांचल राज्य और अन्य, 2007 AIR SCW 6679
2. विनोद कुमार सिंह @ विनोद सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, आवेदन अंतर्गत धारा 482/378/407 संख्या 5195 वर्ष 2021

माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान,

1. प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता श्री पी.चक्रवर्ती एवं श्री प्रांशू अग्रवाल, एवं सी.बी.आई. के विद्वान अधिवक्ता श्री अनुराग कुमार सिंह को सुना।

2. इस प्रार्थनापत्र के माध्यम से प्रार्थी ने दिनांक 24.1.2023 के उस आदेश को रद्द करने की प्रार्थना की है जिसके माध्यम से गैर-जमानती वारंट जारी करने का आदेश दिया गया था एवं दिनांक 08.02.2023 के उस आदेश को भी रद्द करने की प्रार्थना की है जिसके माध्यम से गैर-जमानती वारंट एवं साथ ही आर.सी. संख्या 8(ए)/2014, भा.द.सं. की धारा 120बी/409, 420, 511 के अंतर्गत एवं भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(2) आर/डब्ल्यू 13(1)(डी), पी.एस. सी.बी.आई./ए.सी.बी., लखनऊ से उद्भूत दं.प्र.सं. की धारा 82 के अंतर्गत अपराध संख्या 01/2023, सी.बी.आई. बनाम भगवती प्रसाद वर्मा एवं अन्य, विशेष न्यायाधीश, सी.बी.आई., न्यायालय संख्या 2, लखनऊ की न्यायालय द्वारा जारी करने का आदेश दिया गया था।

3. सर्वप्रथम प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय का ध्यान दिनांक 10.1.2023 के आदेश की ओर आकर्षित किया, जिसके अंतर्गत विद्वान विचारण न्यायालय ने प्रार्थी के विरुद्ध जमानती वारंट जारी किया है, यह मानते हुए कि समन जारी होने के बावजूद वह उपस्थित नहीं हुआ। प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता को दं.प्र.सं. की धारा 64 के संदर्भ में समन नहीं भेजा गया है जो प्रावधान करता है कि यदि वह व्यक्ति जिसकी न्यायालय में उपस्थिति आवश्यक है, वह घर में उपस्थित नहीं है तो ऐसा समन परिवार के किसी भी पुरुष सदस्य को दिया जाना चाहिए, किंतु परिवार की एक महिला सदस्य को समन भेजा गया है। यदि तर्क हेतु यह मान लिया जाए कि प्रार्थी के परिवार के सदस्य (भाभी) को ऐसा समन भेजा गया है एवं याचिकाकर्ता उस समन पर उपस्थित नहीं हुआ तो विचारण न्यायालय उसके विरुद्ध समन जारी कर सकती है, परन्तु उसी

धारणा के आधार पर प्रार्थी को उसके रिश्तेदार के माध्यम से समन तामील कराया गया है तो उसके विरुद्ध जमानती वारंट जारी नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि यह दं.प्र.सं. की धारा 64 की अवहेलना है।

4. इसके अतिरिक्त, निर्धारित की गई अगली तिथि अर्थात 24.1.2023 की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है। उस तिथि को इस तथ्य की पुष्टि किए बिना कि आवेदक को निर्धारित तिथि अर्थात 24.1.2023 के बारे में सूचित किया गया था एवं दिनांक 10.1.2023 को उसके विरुद्ध जमानती वारंट जारी होने के बारे में सूचित किया गया था, सीधे गैर-जमानती वारंट जारी किया गया है। श्री चक्रवर्ती ने इस न्यायालय का ध्यान दिनांक 8.2.2023 के तृतीय आदेश की ओर आकर्षित किया है जिसके अंतर्गत विद्वान विचारण न्यायालय ने सीधे गैर जमानती वारंट जारी कर दिया एवं धारा 82 दं.प्र.सं. की उद्घोषणा इस तथ्य की पुष्टि किए बिना की कि आवेदक को दिनांक 24.1.2023 को जारी गैर जमानती वारंट के बारे में जानकारी है या नहीं।

5. श्री चक्रवर्ती ने इंद्र मोहन गोस्वामी एवं अन्य बनाम उत्तरांचल राज्य एवं अन्य, 2007 एआईआर एससीडब्ल्यू 6679 के संबंध में शीर्ष न्यायालय के आदेश पर विश्वास व्यक्त किया है जिसके अंतर्गत माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा अपनाई जा रही ऐसी प्रक्रिया की निंदा की है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इंद्र मोहन गोस्वामी (उपरोक्त) के वाद में कहा है कि यदि संबंधित न्यायालय के समक्ष किसी व्यक्ति/आरोपी की उपस्थिति आवश्यक है, तो उसे पहले समन जारी किया जाना चाहिए था एवं न्यायालय को इस पक्ष पर सावधान रहना चाहिए कि यदि संबंधित व्यक्ति समन पर संबंधित न्यायालय के समक्ष उपस्थित नहीं हुआ है, जबकि उस पर ऐसे समन की तामील नहीं की गई है, तथापि, उसके परिवार के सदस्य को, फिर से समन जारी किया जाना चाहिए था एवं यदि विद्वान विचारण न्यायालय आश्वस्त है कि तामील के बावजूद संबंधित व्यक्ति पर समन के बाद वह जानबूझकर विधि की प्रक्रिया से बचने की कोशिश कर रहा है, तो जमानती वारंट जारी किया जा सकता है, किन्तु लेकिन एन.बी.डब्ल्यू जारी करने से पहले ऐसे व्यक्ति के विरूद्ध एन.बी.डब्ल्यू. जारी करते समय न्यायालय को बहुत सावधान रहना चाहिए क्योंकि इससे किसी भी अभियुक्त व्यक्ति के जीवन एवं स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार पर असर पड़ता है। इंदर मोहन गोस्वामी (उपरोक्त) वाद में शीर्ष न्यायालय ने इस आशय के दिशानिर्देश जारी किए हैं कि किन परिस्थितियों में कठोर आदेशिका जारी की जानी चाहिए:

> *"....व्यक्तिगत स्वतंत्रता एवं राज्य के हित के संबंध में सभ्य देशों ने माना है कि स्वतंत्रता सभी मानवों हेतु सर्वाधिक मूल्यवान है। व्यक्तिगत स्वतंत्रता एवं राज्य के हित सभ्य देशों की रातें अमेरिकी स्वतंत्रता की घोषणा 1776, पुरुषों एवं नागरिकों के अधिकार से संबंधित फ्रांसीसी घोषणा 1789, मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा एवं नागरिक एवं राजनीतिक अधिकारों की अंतर्राष्ट्रीय संविदा 1966 सभी का सामान उद्घोष है - स्वतंत्रता प्रत्येक मनुष्य का प्राकृतिक एवं अविभाज्य अधिकार है। इसी तरह, हमारे संविधान*

का अनुच्छेद 21 यह घोषणा करता है कि विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अतिरिक्त किसी को भी उसकी स्वतंत्रता से वंचित न किया जाएगा...

गैर-जमानती वारंट जारी करने में व्यक्तिगत स्वतंत्रता में हस्तक्षेप सम्मिलित है। गिरफ्तारी एवं कारावास का अर्थ है किसी व्यक्ति को सर्वाधिक मूल्यवान अधिकार से वंचित करना। इसलिए न्यायालयों को गैर-जमानती वारंट जारी करने से पहले बेहद सावधानी बरतनी होगी।

जमानती या गैर-जमानती वारंट कभी भी तथ्यों की उचित जांच एवं विवेक का पूर्ण उपयोग किए बिना जारी नहीं किए जाने चाहिए, क्योंकि वारंट जारी होने पर बेहद गंभीर परिणाम एवं प्रभाव होते हैं..."

[बल दिया गया]

6. श्री चक्रवर्ती ने तर्क प्रस्तुत किया है कि यदि वर्तमान वाद के तथ्यों एवं परिस्थितियों को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इंद्र मोहन गोस्वामी (उपरोक्त) वाद के दिशानिर्देशों की कसौटी पर परखा जाता है, तो जिन आदेशों के अंतर्गत गैर-जमानती वारंट एवं दं.प्र.सं. की धारा 82 के अंतर्गत उद्घोषणा जारी की गई है, वे आदेश निरस्त किये जाने योग्य होंगे। श्री चक्रवर्ती ने धारा 482/378/407 के अंतर्गत प्रार्थनापत्र संख्या 5195/2021 (विनोद कुमार सिंह @ विनोद सिंह बनाम उ.प्र. राज्य) वाद में पारित दिनांक 10.12.2021 के निर्णय एवं आदेश पर भी विश्वास व्यक्त किया है, जिसके अंतर्गत इस न्यायालय ने इस न्यायालय की समन्वय पीठ के आदेश पर विश्वास व्यक्त करते हुए यह निदेश दिया है कि दं.प्र.सं. की धारा 82 के अंतर्गत उद्घोषणा जारी करने से पूर्व न्यायालय को यह दिखाने एवं समझाने हेतु अभियोजन पक्ष के शपथ पत्र के साथ समर्थित इस आशय का एक प्रार्थनापत्र होना चाहिए कि अभियोजन पक्ष द्वारा समन, जमानती वारंट एवं गैर-जमानती वारंट की तामील करने के सभी संभावित प्रयासों के बावजूद ऐसा व्यक्ति उपस्थित नहीं हो रहा है, इसलिए संबंधित न्यायालय, दं.प्र.सं. की धारा 82 के अंतर्गत उद्घोषणा जारी कर सकता है एवं विद्वान विचारण न्यायालय, ऐसे प्रार्थनापत्र की सामग्री से संतुष्ट होने के बाद, जो एक शपथ पत्र द्वारा समर्थित है, धारा 82 दं.प्र.सं. के अंतर्गत उद्घोषणा जारी कर सकता है। परन्तु ऐसी उद्घोषणा भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत निहित किसी भी व्यक्ति के मौलिक अधिकार का उल्लंघन करते हुए सरसरी तौर पर जारी नहीं की जा सकती है।

7. इसलिए, श्री चक्रवर्ती ने कहा है कि दिनांक 10.1.2023, 24.1.2023 एवं 8.2.2023 के प्रश्नगत आदेश स्पष्ट रूप से अवैध एवं अनुचित हैं, उन्हें रद्द किया जा सकता है। प्रार्थी वचन देता है कि वह अगली निर्धारित तिथि अर्थात 13.3.2023 को संबंधित विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित होगा एवं कार्यवाही में भाग लेगा। श्री चक्रवर्ती ने न्यायालय को यह भी अवगत कराया है कि चूँकि प्रार्थी की पुत्री का विवाह 25.1.2023 को तय हुआ था, इसलिए, वह 10.1.2023 एवं 24.1.2023 को संबंधित विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित नहीं हो

सका एवं इस तथ्य को आवेदक के परिवार के सदस्यों द्वारा आदेशिका वाहक को अवगत कराया गया जैसा कि भेजी गई रिपोर्ट को याचिका के साथ अनुलग्नक संख्या 5 के रूप में संलग्न किया गया है। हालाँकि, ऐसी रिपोर्ट में उसका अगला भाग, जो इंगित करता है कि प्रार्थी ने वचन दिया है कि वह न्यायालय के समक्ष निर्धारित तिथि पर उपस्थित होगा, सही नहीं है, अपितु प्रार्थी ने अपने परिवार के सदस्य के माध्यम से आदेशिका वाहक को कोई वचन नहीं दिया है कि वह 10.1.2023 को संबंधित न्यायालय के समक्ष उपस्थित होगा। हर हाल में वह अगली तिथि पर उपस्थित होगा एवं कार्यवाही में समुचित रीति से भाग लेगा।

8. सी.बी.आई. के विद्वान अधिवक्ता श्री अनुराग कुमार सिंह ने दिनांक 10.1.2023, 24.1.2023 एवं 8.2.2023 के आक्षेपित आदेशों का बचाव करने का प्रयास करते हुए कहा है कि जब आदेशिका वाहक ने 8.1.2023 को वर्तमान प्रार्थी के परिवार के सदस्यों से संपर्क किया, एवं उन्हें अवगत कराया कि ऐसी आदेशिका प्रार्थी की भाभी को तामील करा दी गई है कि अगली तिथि 10.1.2023 नियत की गई है, एवं आदेशिका वाहक ने प्रार्थी से बात की, जिसने आश्वासन दिया कि वह अगली निर्धारित तिथि पर उपस्थित होगा, इसलिए, बावजूद इस तथ्य को जानते हुए कि अगली तिथि विचारण न्यायालय से पहले ही तय हो चुकी है, विधि की प्रक्रिया से बचा जा रहा है जो प्रार्थी से पहले से ही अनपेक्षित है। इसलिए, विद्वान विचारण न्यायालय ने 10.1.2023 को जमानती वारंट जारी किया है। हालांकि, आगे यह पूछे जाने पर कि क्या वर्तमान प्रार्थी को उसके विरुद्ध दिनांक 10.1.2023 को जमानती वारंट जारी किये जाने तथा अगली तिथि 24.1.2023 निर्धारित किये जाने की जानकारी दी गयी, तो श्री सिंह ने कहा कि इस संबंध में उनके पास कोई विशिष्ट निर्देश नहीं है।

9. यह पूछे जाने पर कि क्या दं.प्र.सं. की धारा 64 के आलोक में समन तामील किया गया है, श्री सिंह ने स्पष्ट रूप से कहा है कि प्रार्थी के परिवार के किसी भी पुरुष सदस्य को ऐसा समन तामील नहीं कराया गया है। यह पूछने पर कि क्या वर्तमान प्रार्थी को न्यायालय में निर्धारित तिथियों की जानकारी दी गई थी तथा अगली तिथि 8.2.2023 निर्धारित की गई है तथा 24.1.2023 को एन.बी.डब्ल्यू. उनके विरुद्ध जारी किया गया है, श्री सिंह ने पुनः कहा है कि उनके पास इस आशय का कोई विशिष्ट निर्देश नहीं है कि प्रार्थी को पूर्व तिथि एवं आदेश की सूचना दी गयी है अथवा नहीं। अंत में, श्री सिंह से पूछा गया कि क्या दं.प्र.सं. की धारा 82 के अंतर्गत आवेदक के विरुद्ध उद्घोषणा की मांग करते हुए विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष शपथ पत्र द्वारा समर्थित कोई प्रार्थनापत्र दायर किया गया है, श्री सिंह ने कहा है कि उस बिंदु पर भी उनके पास कोई विशिष्ट निर्देश नहीं है।

10. पक्षों के विद्वान अधिवक्तागण को सुनने और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का परिशीलन करने के बाद, मेरी सुविचारित राय है कि यदि किसी व्यक्ति/अभियुक्त की विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थिति आवश्यक है तो सबसे पहले समन जारी किया जाना चाहिए था और यदि संबंधित व्यक्ति निर्धारित तिथि पर संबंधित न्यायालय के समक्ष उपस्थित नहीं होता है तो संबंधित न्यायालय को पहले यह सत्यापित

करना चाहिए कि आवेदक को ऐसा समन तामील किया गया है या नहीं और यदि उसे व्यक्तिगत रूप से ऐसा समन तामील नहीं कराया गया है तो कम से कम एक और समन भेजा जाना चाहिए और अगली तिथि पर इस तथ्य को सत्यापित किया जाना चाहिए कि क्या संबंधित व्यक्ति को ऐसा समन तामील कराया गया है या नहीं, और यदि न्यायालय आश्वस्त है कि संबंधित व्यक्ति को समन तामील होने के बावजूद वह इस प्रक्रिया से बच रहा है, तब विधि के अनुसार जमानती वारंट जारी किया जा सकता है। परन्तु गैर-जमानती वारंट के चरण में न्यायालय को उचित सावधानी बरतनी चाहिए एवं स्वयं को संतुष्ट करना चाहिए कि कुछ तिथियों पर जमानती वारंट की तामील के बावजूद विधि की प्रक्रिया को टाला जा रहा है, एवं मात्र उस चरम परिस्थिति में गैर-जमानती वारंट जारी किया जाना चाहिए क्योंकि विधि की ऐसी प्रक्रिया सीधे तौर पर किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता से संबंधित है, जिसकी गारंटी भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत दी गई है। दूसरे शब्दों में एन.बी.डब्ल्यू जारी करने से पूर्व विद्वान विचारण न्यायालय हेतु उचित सतर्कता और सावधानी आवश्यक है, एवं एन.बी.डब्ल्यू. सरसरी तौर पर जारी नहीं किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त, यदि विद्वान विचारण न्यायालय दं.प्र.सं. की धारा 82 और 83 के अंतर्गत उद्घोषणा जारी करने को तैयार है, तब ऐसे आरोपी व्यक्तियों के विरुद्ध सावधानी और सतर्कता बढ़ा दी जाएगी और उद्घोषणा से संबंधित ऐसे आदेश मात्र अभियोजन पक्ष की प्रार्थना पर जारी किए जा सकते हैं, जो इस आशय के एक शपथ पत्र के साथ समर्थित होगी कि अभियुक्त को समन, जमानती वारंट एवं गैर जमानती वारंट तामील करने के समस्त संभव युक्तियुक्त प्रयास करने के बावजूद वह आदेशिका से बच रहा / रही है, एवं न्यायालय द्वारा इस आशय के विशिष्ट एवं ठोस कारण बताने के उपरान्त कि अब दं.प्र.सं. की धारा 82 एवं धारा 83 दं.प्र.सं. के अंतर्गत कार्यवाही प्रारंभ करने के अतिरिक्त कोई अन्य विकल्प शेष नहीं है, ऐसी उद्घोषणा जारी की जा सकती है परन्तु **इंद्र मोहन गोस्वामी (उपरोक्त)** के वाद में शीर्ष न्यायालय के आदेश के दृष्टिगत ऐसी उद्घोषणा सरसरी तौर पर जारी नहीं की जा सकती। वर्तमान वाद में प्रार्थी को दं.प्र.सं. की धारा 64 के अंतर्गत समन नहीं भेजा गया है जो प्रावधान करता है कि यदि वह व्यक्ति, जिसकी न्यायालय में उपस्थिति आवश्यक है, घर में उपस्थित नहीं है तो ऐसा समन परिवार के किसी भी पुरुष सदस्य को दिया जाना चाहिए, लेकिन परिवार की एक महिला सदस्य को समन तामील कराया गया है।

11. यदि वर्तमान वाद के तथ्यों और परिस्थितियों को **इंद्र मोहन गोस्वामी (उपरोक्त)** के वाद में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय की कसौटी पर परखा जाता है तो मैं पाता हूं कि दिनांक 10.1.2023, 24.1.2023 और 8.2.2023 के प्रश्नगत आदेश अविधिपूर्ण होने के कारण अपास्त किए जाने योग्य हैं।

12. तदनुसार दिनांक 10.1.2023, 24.1.2023 और 8.2.2023 के आदेशों को अपास्त किया जाता है।

13. चूँकि अगली तिथि 13.3.2023 तय की गई है, इसलिए, वर्तमान याचिकाकर्ता को आगे की कार्यवाही में भाग लेने हेतु दिनांक 13.3.2023 को संबंधित विद्वान न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने का निदेश दिया जाता है, और

विद्वान विचारण न्यायालय, दिनांक 10.1.2023, 24.1.2023 एवं 8.2.2023 के आक्षेपित आदेशों को अनदेखा कर, विधि के अनुसार कठोरतापूर्वक कार्यवाही कर सकता है के। हालाँकि, यह स्पष्ट किया जाता है कि यदि याचिकाकर्ता 13.3.2023 को विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित नहीं होता है, तो इस आदेश का लाभ उसे उपलब्ध नहीं होगा और विद्वान विचारण न्यायालय उसके विरुद्ध कोई भी उचित कदम उठा सकता है जो विधिसम्मत हो।

14. यह स्पष्ट किया जाता है कि याचिकाकर्ता उचित न्यायालय के समक्ष अन्य समुचित उपचार हेतु प्रार्थना प्रस्तुत कर सकता है, जिसके लिए किसी स्वतंत्रता की आवश्यकता नहीं है।

15. उपरोक्त निबंधनों के अंतर्गत याचिका स्वीकार की जाती है।

(2023) 3 ILRA 471

मूल अधिकार क्षेत्र

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 22.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति दिनेश कुमार सिंह

आवेदन अन्तर्गत धारा 482 सं. 4227 सन् 2023

परवेज़ परवाज़ और अन्य ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ...प्रतिपक्षी

आवेदक की ओर से अधिवक्ता: श्री मनौवर हुसैन, सुश्री फातमा अंजुम, एस.एफ.ए. नकवी (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिपक्षी की ओर से अधिवक्ता: जी.ए.

9. आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या - 4227 / 2023 - परवेज़ परवाज़ और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य।

आपराधिक कानून - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 482 - उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियाँ - पहले से उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित वाद को फिर से खोलने के लिए नहीं प्रयोग की जानी चाहिए - आपराधिक कार्यवाही में रेज ज्यूडिकाटा का सिद्धांत लागू होता है।

अपराधी कानून - दण्ड प्रक्रिया संहिता - धारा 196 - धारा 196 Cr.P.C. के तहत अभियोजन के लिए अनुमति - एक बार अनुमति ठुकरा दी गई और वाद सर्वोच्च न्यायालय तक अंतिमता प्राप्त कर गया, विचारणीय न्यायालय इसे पुनः विचार नहीं किया जा सकता और अनुवर्ती कार्यवाही में फिर से इस वाद का निर्णय नहीं ले सकती - धारा 156(3) Cr.P.C. के तहत जांच - जब अभियोजन के लिए अनुमति ठुकरा दी गई हो, तब किसी लोक सेवक के विरुद्ध अनुमति नहीं है।

आवेदन निरस्त। (E-9)

उद्धृत वाद सूची:

1. भगत राम बनाम राजस्थान राज्य, 1972 (2) SCC 466
2. अनिल कुमार और अन्य बनाम एम.के. अय्यप्पा और अन्य, (2013) 10 SCC 705

माननीय न्यायमूर्ति दिनेश कुमार सिंह

1. प्रस्तुत याचिका धारा 482 द०प्र०स० के तहत दायर की गई है, जिसमें अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश-3 (बलात्कार और पॉक्सो), गोरखपुर द्वारा अंतिम रिपोर्ट संख्या-1230 वर्ष

2017 (परवेज परवाज बनाम योगी आदित्यनाथ और अन्य) धारा 153, 153-ए, 153-बी, 295, 295-बी, 147, 148, 395, 436, 435, 302, 427 और 452 सपठित धारा 7 आपराधिक कानून संशोधन, थाना-कैंट, जिला गोरखपुर के तहत मामला दर्ज किया गया है, में पारित आदेश दिनांक 11.10.2022 को चुनौती दी गयी है।

2. विद्वान विचारण न्यायालय ने याचिकाकर्ता द्वारा दायर विरोध याचिका को यह कहते हुए खारिज कर दिया है कि चूंकि धारा 196 द०प्र०स० के तहत अभियुक्त पर मुकदमा चलाने की मंजूरी पहले ही अस्वीकार कर दी गई थी और उक्त आदेश को याचिकाकर्ता/शिकायतकर्ता द्वारा उच्चतम न्यायालय में चुनौती दी गई थी और उच्चतम न्यायालय ने अपील को खारिज कर दिया था, इसलिए, विरोध याचिका स्वीकार नहीं की जा सकती और विचारण न्यायालय आदेश में, कथित आरोपी के अभियोजन के लिए मंजूरी देने से इनकार करते हुए, हस्तक्षेप नहीं कर सकता। मुकदमेबाजी का एक अच्छा-बुरा (मिश्रित) इतिहास है और एक संक्षिप्त सर्वेक्षण का उल्लेख किया जाना आवश्यक है। याचिकाकर्ता ने शुरू में आपराधिक रिट याचिका संख्या-16095 वर्ष 2007 दायर करके इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया था। इस न्यायालय की खंडपीठ ने दिनांक 24.10.2007 के आदेश के माध्यम से यह कहते हुए रिट याचिका को खारिज कर दिया कि याचिकाकर्ता, यदि ऐसा करने की सलाह दी जाती है, तो श्री योगी आदित्यनाथ और अन्य के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज करने के निर्देश के लिए धारा 156(3) द०प्र०स० के तहत एक आवेदन दायर कर सकता है। इसके बाद, याचिकाकर्ता ने धारा 156(3) द०प्र०स० के तहत आरोपियों के खिलाफ धारा 120-बी, 153-ए, 153-बी, 295-ए, 295-बी, 143, 147, 435, 436, 452, 427, 395, 302 और 307 भ०द०वि० और 3/4 सार्वजनिक संपत्ति अधिनियम और रेलवे अधिनियम को नुकसान की रोकथाम के तहत प्राथमिकी दर्ज करने के लिए एक आवेदन दायर किया।

3. उक्त आवेदन को विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने दिनांक 29.07.2008 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया था। इसके बाद, याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय के समक्ष आपराधिक पुनरीक्षण संख्या-2346 वर्ष 2008 दायर की। इस न्यायालय ने दिनांक 26-09-2008 के आदेश के तहत विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, गोरखपुर द्वारा पारित दिनांक 29-07-2008 के आदेश को रद्द कर दिया और विधि के अनुसार नया आदेश पारित करने के लिए मामले को विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को वापस भेज दिया। यह भी निर्देश दिया गया कि प्राथमिकी दर्ज होने के बाद, धारा 156(3) द०प्र०स० के तहत याचिकाकर्ता द्वारा दायर आवेदन के आधार पर उचित जांच सुनिश्चित की जानी चाहिए।

4. रिमांड पर, गोरखपुर संसदीय निर्वाचन क्षेत्र के तत्कालीन संसद सदस्य श्री योगी आदित्यनाथ सहित पांच आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ थाना-कैंट, जिला गोरखपुर में 02.11.2008 को प्राथमिकी दर्ज की गई।

5. अभियुक्त ने आपराधिक पुनरीक्षण संख्या-2346 वर्ष 2008 में इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 26.09.2008 के खिलाफ आपराधिक अपील संख्या-2039 वर्ष 2012 दायर करके सर्वोच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया। उच्चतम न्यायालय ने दिनांक 13.12.2012 के

आदेश के तहत उक्त अपील को खारिज कर दिया।

6. याचिकाकर्ता, यह मानते हुए कि प्राथमिकी में जांच एजेंसी द्वारा जांच ठीक से नहीं की जा रही थी, निम्नलिखित प्रार्थनाओं के लिए आपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या-21733 वर्ष 2008 दायर करके इस न्यायालय से संपर्क किया: -

"i. परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करना और जांच मामले के अपराध प्रतिवादियों को एक स्वतंत्र जांच एजेंसी द्वारा निष्पक्ष और न्यायसंगत तरीके से संख्या-2776 वर्ष 2008 (अनुलग्नक संख्या-1) को निर्देशित करना न कि आपराधिक जांच विभाग की अपराध शाखा द्वारा आदेश दिनांक 3.11.2008 के अनुसार (संलग्नक संख्या-9)

ii. परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करना और उत्तरदाताओं को भारतीय दंड संहिता की उपयुक्त धारा अर्थात 120-बी, 121, 121-ए, 122 भ०द०वि० धारा 3/4 सार्वजनिक संपत्ति को नुकसान की रोकथाम अधिनियम, 1984 और धार्मिक संस्था (दुरुपयोग निवारण) अधिनियम, 1988 के प्रावधान को अपराध संख्या-2776 वर्ष 2008 में शामिल करने और साजिश के मुद्दे की भी जांच करने के लिए निर्देश देना;

iii. परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करना और उत्तरदाताओं को उन अधिकारियों के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्रवाई करने का निर्देश देना और आदेश देना जो प्रासंगिक समय पर कानून के अनुसार कार्य करने में विफल रहे और दोषियों के खिलाफ आपराधिक कार्रवाई शुरू करने के लिए कोई कार्रवाई नहीं की;

iv. याचिकाकर्ताओं को पर्याप्त सुरक्षा प्रदान करने के लिए प्रतिवादी संख्या-1 को निर्देश देने और आदेश देने के लिए परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करना;

v) एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करना, जिसे यह माननीय न्यायालय मामले की परिस्थितियों में उचित समझे;

vi. याचिकाकर्ताओं के पक्ष में याचिका की लागत का आदेश देना;

vii. संयुक्त सचिव (गृह), उत्तर प्रदेश सरकार के हस्ताक्षर के तहत एसपी सी.बी.सी.आई.डी. लखनऊ को जारी किया गया (इस रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या-16) आक्षेपित पत्र दिनांक 3.5.2017 को रद्द करते हुए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करना, जिसके तहत आरोपी व्यक्तियों की अभियोजन स्वीकृति से इनकार कर दिया गया है; और

viii. प्रतिवादी संख्या-2 द्वारा प्रतिवादी संख्या-1 को संबोधित कर जारी किया गया दिनांक 9.5.2017 के पत्र (संलग्नक संख्या-17), जिसके तहत यह उल्लेख किया गया है कि अंतिम रिपोर्ट दिनांक 6.5.2017 द्वारा मामले को बंद कर दिया गया है, को रद्द करते हुए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करना।

7. रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान प्रार्थना संख्या-7 और 8 जोड़े गए क्योंकि 03.05.2017 को धारा 196 द०प्र०स० के तहत अभियोजन मंजूरी राज्य सरकार द्वारा अस्वीकार कर दी गई थी और अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी। इस न्यायालय की खंडपीठ ने दिनांक 22.02.2008 के निर्णय और आदेश के तहत उक्त रिट याचिका का निर्णय लिया। डिवीजन बेंच ने निर्धारण के लिए निम्नलिखित तीन मुद्दों को विरचित किया:

"(1) जब राज्य निष्पक्ष और न्यायसंगत तरीके से किसी अपराध की जांच करने के अपने वैधानिक और संवैधानिक कर्तव्य का पालन करने

में विफल रहता है, तो क्या संविधान के अनुच्छेद 226 द्वारा प्रदत्त अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय को किसी अन्य जांच एजेंसी द्वारा की जाने वाली जांच को स्थानांतरित करने की शक्ति निहित है।

(2) क्या इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, राज्य मामले में निष्पक्ष जांच करने के अपने वैधानिक कर्तव्य का पालन करने में विफल रहा है और निष्पक्ष जांच सुनिश्चित करने के लिए इसे किसी अन्य स्वतंत्र एजेंसी को हस्तांतरित किया जा सकता है।

(3) क्या राज्य एक आपराधिक मामले में प्रस्तावित अभियुक्त के संबंध में धारा 196 द०प्र०स० के तहत एक आदेश पारित कर सकता है, जो इस बीच मुख्यमंत्री के रूप में चुना जाता है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 163 के तहत प्रदान की गई योजना के अनुसार कार्यकारी प्रमुख है।

8. अंक संख्या-3 का उत्तर निम्नानुसार दिया गया: -

"उपरोक्त चर्चाओं और आधिकारिक न्यायिक निर्णयों के मद्देनजर, जब भी यह स्थापित हो जाता है कि जांच निष्पक्ष, उचित और स्वतंत्र नहीं रही है, तो उच्च न्यायालय को किसी अन्य जांच एजेंसी द्वारा की जाने वाली जांच को स्थानांतरित करने की शक्ति निहित है और इसे सूचनाकर्ता/पीड़ित या क्षुब्ध व्यक्ति द्वारा लागू किया जा सकता है। अंक संख्या-1 का उत्तर तदनुसार दिया गया है।

9. मुद्दा संख्या-2 का उत्तर देते हुए, डिवीजन बेंच ने माना है कि किसी अन्य जांच एजेंसी द्वारा जांच को स्थानांतरित करने का निर्देश रिकॉर्ड पर पर्याप्त सामग्री के अभाव में इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए नहीं दिया जाना चाहिए कि इस तरह की सामग्री उस एजेंसी से जांच स्थानांतरित करने के लिए प्रथम दृष्टया मामले का खुलासा करेगी जिसे राज्य द्वारा किसी अन्य एजेंसी को अपराध की जांच करने के लिए सौंपा गया था, लेकिन इस तरह की शक्ति का प्रयोग लापरवाही से, नियमित तरीके से या केवल शिकायतकर्ता द्वारा लगाए गए कुछ आरोपों पर नहीं किया जाना चाहिए। डिवीजन बेंच ने कहा कि याचिका के रिकॉर्ड पर रखी गई किसी भी अन्य सामग्री को बहुत उपेक्षित नहीं किया गया था, जिसके आधार पर एक निष्कर्ष निकाला जा सकता था कि जांच निष्पक्ष और स्वतंत्र रूप से आगे नहीं बढ़ रही थी, जिसमें किसी अन्य एजेंसी को इसे स्थानांतरित करने की मांग की गई थी।

10. डिवीजन बेंच ने रिट याचिका और तथ्यात्मक आधार में किए गए कथनों को निकालने के लिए जहमत उठायी, जांच को किसी अन्य एजेंसी को स्थानांतरित करने के लिए राहत मांगी। डिवीजन बेंच ने मामले के मूल रिकॉर्ड को बुलाया था, जिसमें केस डायरी भी शामिल थी ताकि अदालत की अंतरात्मा को संतुष्ट किया जा सके कि क्या उचित जांच की गई थी या नहीं और रिकॉर्ड पर लाए गए सबूतों पर विस्तार से चर्चा की थी। डिवीजन बेंच ने कहा कि 21 गवाहों के बयान दर्ज किए गए थे, जिसमें याचिकाकर्ता संख्या-1 और उसके द्वारा नामित कुछ अन्य गवाह शामिल थे। श्री योगी आदित्यनाथ सहित चार आरोपियों के बयान भी दर्ज किए गए। जांच एजेंसी ने दो पुलिस अधिकारियों, श्याम नारायण सिंह, थानाध्यक्ष और बृजेंद्र सिंह के बयान भी दर्ज किए, जो कथित तौर पर घटना के समय मौजूद थे और ड्यूटी पर थे। केस डायरी से पता चलता है कि श्री योगी आदित्यनाथ के कथित भाषण वाली एक अन्य कॉम्पैक्ट डिस्क (डीवीडी)

को याचिकाकर्ता द्वारा 14.03.2013 को धारा 161 द०प्र०स० के तहत अपना बयान दर्ज करने के समय सी.बी.सी.आई.डी. को सबूत के रूप में प्रदान किया गया था। जांच एजेंसी ने 25.05.2014 को एक कॉम्पैक्ट डिस्क प्राप्त की, जिसमें याचिकाकर्ता द्वारा सौंपी गई कॉम्पैक्ट डिस्क में दर्ज आवाज के साथ तुलना के लिए सर्किल ऑफिसर, पिपराइच से श्री योगी आदित्यनाथ की स्वीकृत आवाज थी। दोनों कॉम्पैक्ट डिस्क (डीवीडी) को जांच एजेंसी द्वारा 02.07.2014 को विधि विज्ञान प्रयोगशाला, लखनऊ में फोरेंसिक जांच के लिए भेजा गया था। हालांकि, प्रयोगशाला ने जांच एजेंसी को कॉम्पैक्ट डिस्क वापस कर दी, जिसमें कहा गया था कि प्रयोगशाला आवश्यक फोरेंसिक विश्लेषण करने के लिए सुसज्जित नहीं थी। इसके बाद, जांच एजेंसी ने फिर से दो कॉम्पैक्ट डिस्क को विधि विज्ञान प्रयोगशाला, मधुवन चौक, नई दिल्ली भेजा। उक्त प्रयोगशाला ने इस आधार पर जांच एजेंसी को कॉम्पैक्ट डिस्क वापस कर दी कि यह केवल दिल्ली के क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र के भीतर घटना (घटनाओं) का विश्लेषण करने के लिए अधिकृत था। तत्पश्चात्, जांच एजेंसी ने दिनांक 14.08.2014 को अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट से आदेश प्राप्त करने के बाद श्री योगी आदित्यनाथ की स्वीकृत नमूना आवाज वाली केस डायरी के साथ केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो, सी.जी.ओ परिसर, नई दिल्ली की प्रयोगशाला को कॉम्पैक्ट डिस्क भेजी। सी.बी.आई. प्रयोगशाला ने काम्पैक्ट डिस्क की जांच करने के बाद क्रमश दिनांक 13.10.2014 और 14.10.2014 को रिपोर्टें प्रस्तुत कीं। रिपोर्ट के साथ-साथ गवाहों के बयानों सहित रिकॉर्ड में आए अन्य साक्ष्य प्राप्त करने के बाद, जांच एजेंसी ने 09.04.2015 को मसौदा अंतिम रिपोर्ट तैयार की और भेजा, जिसमें आरोपी पर धारा 505 भ०द०वि० सपठित धारा 143, 153, 153-ए, 295-ए के तहत अपराध का आरोप लगाया गया और उक्त रिपोर्ट को सक्षम प्राधिकारी द्वारा अनुमोदन के लिए वरिष्ठ अधिकारियों को भेज दिया गया। धारा 505 भ०द०वि० सपठित धारा 143, 153, 153-ए, 295-ए के तहत अपराध के लिए धारा 173(2) द०प्र०स० के तहत तैयार की गई अंतिम रिपोर्ट में अन्य अपराधों के आरोपों के समर्थन में कोई सबूत नहीं मिला, जिनके लिए प्राथमिकी दर्ज की गई थी।

11. याचिकाकर्ता का आरोप है कि याचिकाकर्ता द्वारा अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट की अदालत में दायर कॉम्पैक्ट डिस्क (डीवीडी) को धारा 156(3) द०प्र०स० के तहत कार्यवाही में 05.05.2008 को शपथ पत्र के साथ फोरेंसिक जांच के लिए नहीं भेजा गया था, लेकिन एक नकली कॉम्पैक्ट डिस्क भेजी गई थी, इस तरह, प्रयोगशाला द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट का कोई परिणाम नहीं था और इस प्रकार, जांच एजेंसी निष्पक्ष और विवेकपूर्ण जांच करने के अपने वैधानिक कर्तव्य पालन करने में विफल रही, डिवीजन बेंच ने माना था कि यह याचिकाकर्ता था जिसने धारा 161 द०प्र०स० के तहत अपना बयान दर्ज करने के समय सी.बी.सी.आई.डी. को एक और कॉम्पैक्ट डिस्क की आपूर्ति की थी, और उक्त डिस्क को फोरेंसिक जांच के लिए भेजा गया था। विश्लेषण के बाद, सी.बी.आई. प्रयोगशाला ने वीडियो सामग्री के संबंध में दिनांक 13.10.2014 को दो रिपोर्ट और आवाज की जांच के संबंध में दिनांक 14.10.2014 को एक और रिपोर्ट प्रस्तुत की। कॉम्पैक्ट डिस्क की फोरेंसिक जांच से पता चलेगा कि वीडियो वाली डीवीडी मूल नहीं थी और उन्हें

संपादित और छेड़छाड़ की गई थी। खंडपीठ द्वारा दिए गए निर्णय में न्यायिक जांच रिपोर्ट निकाली गई है। डिवीजन बेंच ने माना था कि केस डायरी के अवलोकन से और की गई जांच के गहन विश्लेषण से, जैसा कि केस डायरी से दर्शाया गया है, जांच एजेंसी की ओर से निष्पक्ष, और स्वतंत्र तरीके से जांच करने के लिए अपने वैधानिक कर्तव्य का पालन करने में कोई विफलता नहीं थी और इसलिए, जांच को किसी अन्य एजेंसी को स्थानांतरित करने का कोई आधार नहीं मिला। मुद्दा संख्या-3 के संबंध में, डिवीजन बेंच ने अभियोजन पक्ष के लिए मंजूरी देने से इनकार करने या आदेश में किसी अन्य अवैधता के संबंध में जांच के संचालन में या निर्णय लेने की प्रक्रिया में कोई प्रक्रियात्मक त्रुटि नहीं पाई, जिसके लिए भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने असाधारण क्षेत्राधिकार के प्रयोग में इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की आवश्यकता थी।

12. डिवीजन बेंच ने नोट किया कि रिकॉर्ड से पता चला है कि जांच एजेंसी द्वारा जांच के दौरान एकत्र की गई सभी सामग्री को मंजूरी देने वाले प्राधिकारी के समक्ष रखा गया था, और इसकी व्यक्तिपरक संतुष्टि पूरी सामग्री के अवलोकन पर पहुंची थी। इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता है कि मंजूरी प्राधिकारी द्वारा दर्ज की गई व्यक्तिपरक संतुष्टि पर पहुंचने के लिए कोई वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन नहीं किया गया था। मंजूरी से इनकार करने वाला आदेश, सक्षम प्राधिकारी द्वारा उचित दिमाग लगाने के बाद पारित किया गया था। धारा 196 द०प्र०स० लोक सेवकों के लिए कष्टप्रद और दुर्भावनापूर्ण अभियोजन के खिलाफ एक ढाल है।

13. इस न्यायालय की डिवीजन बेंच ने जांच के संचालन में या निर्णय लेने की प्रक्रिया में, अभियोजन की मंजूरी से इनकार करने या आदेश में किसी अन्य अवैधता या कोई प्रक्रियात्मक त्रुटि नहीं पाई, जिसमें इस न्यायालय द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने असाधारण अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए हस्तक्षेप किया जा सकता था। नतीजतन, रिट याचिका खारिज कर दी गई।

14. याचिकाकर्ता रुका नहीं और इस न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 22.02.2018 से असंतुष्ट होकर, उसने एस.एल.पी. (सी.आर.एल.) संख्या-6190 वर्ष 2018 से उत्पन्न आपराधिक अपील संख्या-1343 वर्ष 2022 दायर करके सर्वोच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया।

15. अपील की सुनवाई के दौरान, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने मुद्दा संख्या-1 और 2 पर जोर नहीं दिया, जैसा कि डिवीजन बेंच ने अपने फैसले और आदेश दिनांक 22.02.2018 में तय किया था। दलीलें केवल धारा 196 द०प्र०स० के तहत मुकदमा चलाने की मंजूरी से इनकार करने से संबंधित मुद्दे संख्या-3 पर दी गई थीं। उच्चतम न्यायालय ने इस तथ्य पर ध्यान दिया कि जांच खत्म हो गई थी और जांच एजेंसी द्वारा 06.05.2017 को क्लोजर रिपोर्ट (एफ.आर. संख्या-01 वर्ष 2017) अदालत में दायर की गई थी। अंतिम/समापन रिपोर्ट के विरुद्ध एक विरोध याचिका दायर की गई थी। यह विचारण न्यायालय के समक्ष विचारार्थ लंबित था।

16. उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों के मद्देनजर, उच्चतम न्यायालय ने अभियोजन के लिए मंजूरी से इनकार करने के मुद्दे पर दोनों पक्षों द्वारा उठाए गए तर्कों और उक्त मुद्दे के संबंध में की गई कानूनी प्रस्तुतियों पर जाना आवश्यक नहीं समझा। तथापि, अभियोजन की

मंजूरी के मुद्दे पर कानूनी प्रश्न को उपयुक्त मामले में विचार किए जाने के लिए खुला छोड़ दिया गया था। उच्चतम न्यायालय ने अपील को खारिज करते हुए कहा था कि -

"12. इस मामले में, दूसरे प्रतिवादी की ओर से एक संक्षिप्त हलफनामा दायर किया गया था, जिसमें यह कहा गया है कि एफ.आर. संख्या-1/17 दिनांक 06.05.2017 के तहत जांच बंद कर दी गई थी। यह स्थिति अपीलकर्ताओं द्वारा विवादित नहीं है। इस प्रकार, अब तक जो स्थिति उभरती है वह यह है कि जांच एक क्लोजर/रेफर रिपोर्ट में समाप्त हुई है। अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने हमें सूचित किया है कि एक विरोध याचिका दायर की गई है जो विचारण न्यायालय के समक्ष विचाराधीन है।

13. पूर्वोक्त परिस्थितियों में, हम अभियोजन के लिए मंजूरी से इनकार करने के मुद्दे पर दोनों पक्षों द्वारा उठाए गए तर्कों और उक्त मुद्दे के संबंध में उठाई जाने वाली कानूनी दलीलों में जाना आवश्यक नहीं समझते हैं। हालांकि, हमें लगता है कि यह उचित है कि मंजूरी के मुद्दे पर कानूनी सवालों को खुला छोड़ दिया जाए ताकि उचित मामले में विचार किया जा सके।

17. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, धारा 482 द०प्र०स० के तहत इस याचिका में चुनौती विचारण न्यायालय के दिनांक 11.10.2022 के निर्णय को दी गई है, जिसमें विद्वान विचारण न्यायालय ने अंतिम/क्लोजर रिपोर्ट संख्या-1 वर्ष 2017 दिनांक 06.05.2017 के खिलाफ विरोध याचिका को खारिज कर दिया है। आक्षेपित आदेश से पता चलेगा कि याचिकाकर्ता ने फिर से वही मुद्दा उठाया था यानी आदेश की वैधता/वैधता, अभियोजन के लिए मंजूरी से इनकार करना और कॉम्पैक्ट डिस्क का मुद्दा जो सर्वोच्च न्यायालय तक अंतिम रूप प्राप्त कर चुका था। विद्वान विचारण न्यायालय ने अपने सुविचारित आक्षेपित निर्णय में कहा है कि एक बार अभियोजन के लिए मंजूरी की वैधता का मुद्दा सर्वोच्च न्यायालय तक पहुंच गया था, तो उसी मुद्दे को फिर से नहीं खोला जा सकता था। उच्च न्यायालय द्वारा आपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या-21733 वर्ष 2008 में पारित अपने निर्णय और आदेश दिनांक 22.02.2018 में अनुचित जांच के मुद्दे का भी निर्णय लिया गया था, और उच्चतम न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ता ने उक्त मुद्दे को सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष नहीं उठाया और एकमात्र मुद्दा, जिसे उच्चतम न्यायालय के समक्ष उठाया गया था, अभियोजन की मंजूरी के लिए इनकार करने के आदेश की वैधता थी। इसके मद्देनजर, विचारण न्यायालय ने माना है कि अंतिम/क्लोजर रिपोर्ट संख्या-01 वर्ष 2017 में हस्तक्षेप करने का कोई आधार नहीं है और विरोध याचिका को खारिज कर दिया।

18. श्री एस.एफ.ए. नकवी, वरिष्ठ अधिवक्ता, सुश्री फातमा अंजुम और श्री मूनौव्वर हुसैन, अधिवक्ताओं द्वारा सहायता प्रदान की गई है कि आदेश की वैधता का सवाल, अभियोजन के लिए मंजूरी से इनकार करते हुए, उच्चतम न्यायालय द्वारा खुला छोड़ दिया गया था और इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता है कि इस मुद्दे को अंतिम रूप मिल गया था। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता द्वारा क्लोजर/अंतिम रिपोर्ट संख्या-01 वर्ष 2017 के खिलाफ दायर विरोध याचिका पर निर्णय लेते समय, विचारण न्यायालय अभियोजन की मंजूरी से इनकार करते हुए आदेश की वैधता के मुद्दे पर फैसला कर सकता था/करना चाहिए था। वरिष्ठ अधिवक्ता ने फिर से जांच एजेंसी द्वारा कथित अनुचित जांच

का मुद्दा उठाया है और प्रस्तुत किया है कि उपरोक्त पर विचार करते हुए, आक्षेपित आदेश को रद्द कर दिया जाना चाहिए और विचारण न्यायालय को अंतिम/क्लोजर रिपोर्ट के मुद्दे पर नए सिरे से फैसला करने का निर्देश दिया जाना चाहिए।

19. दूसरी ओर, श्री मनीष गोयल, अतिरिक्त महाधिवक्ता, ए.के.सैंड, अतिरिक्त सरकारी अधिवक्ता, द्वारा सहायता प्राप्त, प्रतिवादी - राज्य का प्रतिनिधित्व करते हुए, ने प्रस्तुत किया है कि विरोध याचिका में उठाए गए मुद्दों और इस याचिका को सर्वोच्च न्यायालय तक अंतिम रूप दिया गया था। याचिकाकर्ता को एक ही मुद्दे को बार-बार उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। उच्चतम न्यायालय ने मंजूरी और कानूनी प्रस्तुतियों के सवाल को एक उपयुक्त मामले में फैसला करने के लिए खुला छोड़ दिया था, लेकिन इस मामले में फिर से नहीं। अतिरिक्त महाधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता के वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा उठाया गया तर्क कि विचारण न्यायालय को मंजूरी देने से इनकार करते हुए आदेश की वैधता के सवाल का फैसला करना चाहिए था, पूरी तरह से गलत है। एक बार जब उच्चतम न्यायालय ने अभियोजन की मंजूरी देने से इनकार करते हुए आदेश की वैधता की दलील पर विचार नहीं किया है, तो विचारण न्यायालय ने उक्त मुद्दे पर विचार करने से इनकार कर दिया है। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि अनुचित जांच का सवाल उठाना याचिकाकर्ता के लिए नहीं है क्योंकि तीन मुद्दों में से दो मुद्दों को याचिकाकर्ता द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष नहीं रखा गया था। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता इस राज्य के निर्वाचित और लोकप्रिय मुख्यमंत्री के खिलाफ मुकदमा चलाने में लिप्त रहा है, जिन्होंने वर्ष 2017 में राज्य का कार्यभार संभालने के बाद से राज्य का चेहरा बदल दिया है। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि कुछ ताकतें राज्य की प्रगति को पटरी से उतारने के लिए लोकप्रिय मुख्यमंत्री के खिलाफ काम कर रही हैं। इस तरह के कष्टप्रद अभियोजन से सख्ती से निपटा जाना चाहिए। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता का 14 मामलों का एक लंबा आपराधिक इतिहास है, जो निम्नानुसार होगा: -

"1. प्राथमिकी/अपराध संख्या-0430 वर्ष 1992, धारा 10/13 (1) भ०द०वि० की धारा 153ए/188 सपठित गैरकानूनी गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम, 1967, थाना-राजघाट, जिला गोरखपुर;

2. आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम की धारा 7 सपठित धारा 143, 336 और 427 भ०द०वि० के तहत प्राथमिकी/अपराध संख्या-0226 वर्ष 2003, थाना-राजघाट, जिला गोरखपुर;

3. प्राथमिकी/अपराध संख्या-0255 वर्ष 2003, धारा 143, 195ए/253ए/505 खा भ०द०वि० के साथ धारा 7 आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम, राजघाट, जिला गोरखपुर;

4. प्राथमिकी/अपराध संख्या-0260 वर्ष 2003, धारा 3 (II) राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम, थाना-राजघाट, जिला गोरखपुर;

5. प्राथमिकी/अपराध संख्या-01079 वर्ष 2010, धारा 147, 148, 149, 307 और 354 भ०द०वि० के साथ धारा 3 (II)(v) एस.सी./एस.टी. अधिनियम, थाना-राजघाट, जिला गोरखपुर;

6. प्राथमिकी/अपराध संख्या-0112 वर्ष 1992, धारा 452, 323, 504 और 506 भ०द०वि०, थाना-राजघाट, जिला गोरखपुर;

7. प्राथमिकी/अपराध संख्या-0175 वर्ष 2018, भ०द०वि० की धारा 376 डी के तहत, थाना-राजघाट, जिला गोरखपुर;

8. 0817 वर्ष 2010, धारा 147, 352, 323, 504, 506 और 307 के तहत धारा 7 आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम सपठित थाना-कोतवाली, जिला गोरखपुर;

9. प्राथमिकी/अपराध संख्या-0402ए वर्ष 1991, धारा 448/506 भ०द०वि०, थाना-कोतवाली, जिला गोरखपुर;

10. प्राथमिकी/अपराध संख्या-0303 वर्ष 1983, धारा 2 राष्ट्र अपमान निवारण अधिनियम, थाना-कोतवाली, जिला गोरखपुर;

11. प्राथमिकी/अपराध संख्या-0101 वर्ष 2001, धारा 279/304 भ०द०वि०, थाना-कोतवाली, जिला गोरखपुर;

12. धारा 3 (II)(v) एस.सी./एस.टी. अधिनियम, थाना-राजघाट, जिला गोरखपुर सपठित धारा 395, 147, 148, 149, 307 और 504 भ०द०वि० के तहत प्राथमिकी/अपराध संख्या-0479ए वर्ष 2004;

13. प्राथमिकी/अपराध संख्या-01063 वर्ष 2018, धारा 120-बी, 193, 195, 196, 419, 420, 467, 468, 469, 474 और 481 भ०द०वि० के तहत, थाना-कैंट, जिला गोरखपुर; और

14. प्राथमिकी/अपराध संख्या-0679 वर्ष 2019, धारा 120-बी, 347, 365, 392, 452 और 506 भ०द०वि०, थाना-कैंट, जिला गोरखपुर।

20. राज्य की ओर से यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता धारा 156(3) द०प्र०स० के तहत अपने आवेदन के अनुसार एक सामाजिक कार्यकर्ता होने का दावा करता है। जैसा कि उल्लेख किया गया है, गंभीर अपराधों का आपराधिक इतिहास रखने वाले ऐसे व्यक्ति को सामाजिक कार्यकर्ता नहीं कहा जा सकता है। ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता एक ढोंगी है जिसे उन ताकतों द्वारा स्थापित किया गया है, जो श्री योगी आदित्यनाथ, राज्य और भारत के प्रतिकूल हैं। जब वे राजनीति में उसके उदय को रोकने में सफल नहीं हो सके तो उन्होंने एक ढोंगी की स्थापना की, याचिकाकर्ता को कष्टप्रद अभियोजन में शामिल किया गया। इस तरह के मुकदमे से लड़ने के लिए याचिकाकर्ता के संसाधनों की जांच की जानी चाहिए। इसलिए, यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रस्तुत याचिका न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग के अलावा और कुछ नहीं है, और इसे एक अनुकरणीय लागत के साथ खारिज करने की आवश्यकता है।

21. मैंने याचिकाकर्ता के वरिष्ठ अधिवक्ता के साथ-साथ प्रतिवादी - राज्य के लिए अतिरिक्त महाधिवक्ता द्वारा दी गई प्रस्तुतियों पर विचार किया है।

22. ऊपर उन तथ्यों और मुद्दों को विस्तार से निकाला गया है जो विवाद में नहीं हैं। प्रश्न, जिसका उत्तर दिए जाने की आवश्यकता होगी, यह है कि क्या आदेश की वैधता के मुद्दे पर निर्णय लेने के लिए, जब उच्चतम न्यायालय ने आपराधिक अपील को खारिज कर दिया था और मंजूरी के सवाल को एक उपयुक्त मामले में जवाब देने के लिए छोड़ दिया था, तो विद्वान विचारण न्यायालय को ऐप्रोच किया जा सकता था। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, उच्चतम न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा उठाया गया एकमात्र सवाल धारा 196 द०प्र०स० के तहत अभियोजन के लिए मंजूरी देने से इनकार करने के आदेश की वैधता के बारे में था। हालांकि, उच्चतम न्यायालय ने तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, इस मुद्दे

का जवाब नहीं दिया और अपील को खारिज कर दिया और इस प्रकार, डिवीजन बेंच के फैसले को अंतिम रूप दिया गया। उक्त मुद्दे पर विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा फिर से फैसला नहीं किया जा सकता था। मैं पाता हूं कि उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्णय लिए जाने के बाद विचारण न्यायालय ने उक्त प्रश्न पर विचार करने से ठीक ही इंकार कर दिया है। एक बार मंजूरी का प्रश्न अंतिम रूप से सुलझ जाने के बाद, विचारण न्यायालय पुलिस रिपोर्ट या विरोध याचिका पर संज्ञान नहीं ले सकता था क्योंकि अभियुक्त, एक लोक सेवक होने के नाते, अभियोजन के लिए सक्षम प्राधिकारी द्वारा मंजूरी के बिना कोई संज्ञान नहीं लिया जा सकता था।

23. उच्चतम न्यायालय ने 1972 (2) एस.सी.सी. 466 (भगत राम बनाम राजस्थान राज्य) में रिपोर्ट किए गए मामले में माना है कि न्यायिक निर्णय का सिद्धांत आपराधिक कार्यवाही पर भी लागू होता है, और उसी कार्यवाही के बाद के चरण में किसी व्यक्ति को ऐसे अपराध के लिए दोषी ठहराने की अनुमति नहीं है जिसके संबंध में उसके बरी होने का आदेश पहले ही पारित किया जा चुका है। धारा 403 द०प्र०स० के प्रावधान न्यायिक निर्णय के उसी सिद्धांत पर आधारित हैं। उक्त निर्णय के पैराग्राफ 12, 13 और 14 निम्नानुसार पढ़ेगा: -

"12. ऊपर दिए गए तथ्यों के सार से ऐसा प्रतीत होता है कि भगत राम और राम स्वरूप दोनों को विशेष न्यायाधीश ने बरी कर दिया था। दो अभियुक्तों के बरी होने के खिलाफ राजस्थान राज्य द्वारा दायर अपील पर, न्यायमूर्तिगण त्यागी और लोढ़ा ने राम स्वरूप के बरी होने से संबंधित आदेश को बनाए रखा। जहां तक भगत राम का संबंध है, हालांकि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 5(1)(ए) और भारतीय दंड संहिता की धारा 161 के तहत अपराधों के लिए उनकी बरी होने की शुद्धता के बारे में दोनों न्यायाधीशों के बीच मतभेद था, उन्होंने धारा 120-बी, 218, 347 और 389 भ०द०वि० के तहत आरोपों के संबंध में भगत राम के बरी होने के संबंध में सहमति व्यक्त की। भगत राम के बरी होने के खिलाफ राज्य की अपील को उस हद तक खारिज कर दिया गया था। डिवीजन बेंच के विद्वान न्यायाधीशों द्वारा किया गया आदेश निम्नानुसार है:

"कोर्ट द्वारा: परिणाम यह है कि प्रतिवादी राम स्वरूप के बरी होने के आदेश के खिलाफ राज्य की अपील खारिज की जाती है। राज्य की अपील जहां तक यह प्रतिवादी भगत राम को भारतीय दंड संहिता की धारा 347, 218, 389 और 120-बी के तहत बरी करने से संबंधित है, भी खारिज कर दी गई है। भारतीय दंड संहिता की धारा 161 और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 5(1)(ए) के तहत भगत राम को बरी करने के बारे में मतभेद के मद्देनजर, मामले को तीसरे न्यायाधीश को भेजने के लिए माननीय मुख्य न्यायाधीश के समक्ष रखा जा सकता है।

13. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि धारा 120 बी, 218, 347 और 389 भ०द०वि० के तहत अपराधों के लिए भगत राम के बरी होने के खिलाफ राज्य की अपील को डिवीजन बेंच द्वारा खारिज कर दिया गया था, हमारी राय में, तीसरे न्यायाधीश के लिए मामले को फिर से खोलने और धारा 347 के तहत अपराधों के लिए भगत राम को दोषी ठहराने की अनुमति नहीं थी, 389 और 120 बी भ०द०वि० इस मामले को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 429 के तहत न्यायमूर्ति जगत नारायण को भेजा गया था क्योंकि

न्यायमूर्तिगण त्यागी और लोढ़ा के बीच मतभेद था, धारा 161 भ०द०वि० के तहत अपराधों के लिए भगत राम के बरी होने की शुद्धता के बारे में न्याय और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 5(1)(ए) जगत नारायण, न्याय केवल मामले के इस पहलू पर जा सकता है और अपने निष्कर्ष पर पहुंच सकता है। वर्तमान ऐसा मामला नहीं था जिसमें भगत राम के बरी होने या दोषी ठहराए जाने से संबंधित पूरे मामले को दो न्यायाधीशों के बीच मतभेद के कारण खुला छोड़ दिया गया था। यदि ऐसी स्थिति होती तो भगत राम से संबंधित पूरे मामले पर जगत नारायण, न्याय द्वारा वैध रूप से विचार किया जा सकता था और वह भगत राम के संबंध में विचारण न्यायाधीश द्वारा किए गए बरी करने के आदेश की शुद्धता के बारे में मामले में अपना दृष्टिकोण बना सकते थे। इसके विपरीत, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, धारा 120-बी, 218, 347 और 389 भ०द०वि० के तहत अपराधों के लिए भगत राम को बरी करने के फैसले को बरकरार रखते हुए डिवीजन बेंच द्वारा एक स्पष्ट आदेश दिया गया था और उस संबंध में राज्य की अपील खारिज कर दी गई थी। डिवीजन बेंच का उपरोक्त निर्णय न्यायमूर्ति जगत नारायण पर बाध्यकारी था और उन्होंने डिवीजन बेंच के आदेश के बावजूद धारा 120-बी, 218 और 347 भ०द०वि० के तहत अपराधों के लिए भगत राम को दोषी ठहराने में गलती की थी। हमारी राय में, यह विद्वान न्यायाधीश की क्षमता के भीतर नहीं था कि वह मामले को फिर से खोले और डिवीजन बेंच के पहले के आदेश के सामने दोषसिद्धि के उपरोक्त आदेश को पारित करे, जिसके तहत उक्त तीन आरोपों के संबंध में विचारण न्यायाधीश द्वारा भगत राम को बरी करने के आदेश की पुष्टि की गई थी। डिवीजन बेंच का आदेश जब तक इस न्यायालय में अपील में रद्द नहीं किया जाता, तब तक पार्टियों के बीच बाद की सभी कार्यवाही में बाध्यकारी और निर्णायक था। न्यायिक निर्णय का सिद्धांत आपराधिक कार्यवाही पर भी लागू होता है और उसी कार्यवाही के बाद के चरण में या किसी अन्य बाद की कार्यवाही में किसी व्यक्ति को ऐसे अपराध के लिए दोषी ठहराने की अनुमति नहीं है जिसके संबंध में उसके बरी होने का आदेश पहले ही दर्ज किया जा चुका है। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 403 में सन्निहित अभियोजन के लिए एक रोक के रूप में स्वतः बरी होने की दलील उपरोक्त संपूर्ण सिद्धांत पर आधारित है।

14. सांबाशिवम बनाम लोक अभियोजक, मलाया के संघीय के मामले में, लॉर्ड मैकडरमोट ने कहा: *"एक वैध आरोप पर और एक वैध परीक्षण के बाद एक सक्षम अदालत द्वारा सुनाए गए बरी करने के फैसले का प्रभाव पूरी तरह से यह कहकर नहीं बताया गया है कि बरी किए गए व्यक्ति को उसी अपराध के लिए फिर से कोशिश नहीं की जा सकती है। इसमें यह जोड़ा जाना चाहिए कि निर्णय पक्षों के बीच बाद की सभी कार्यवाही में बाध्यकारी और निर्णायक है।*

कहावत 'रेस जुडिकाटा प्रोवेरिटेट एसिपिटर' सिविल कार्यवाही की तुलना में आपराधिक के लिए कम लागू नहीं है। यहां, अपीलकर्ता को अपने कब्जे में गोला-बारूद होने के आरोप में पहले मुकदमे में बरी कर दिया गया था, अभियोजन पक्ष उस फैसले की शुद्धता को स्वीकार करने के लिए बाध्य था और दूसरे परीक्षण में इसे चुनौती देने के लिए कोई भी कदम उठाने से रोक दिया गया था।

उपरोक्त टिप्पणियों को प्रीतम सिंह बनाम पंजाब राज्य के मामले में इस न्यायालय द्वारा अनुमोदन के साथ उद्धृत किया गया था। इसलिए, हमारी राय है कि न्यायमूर्ति जगत नारायण जहां तक उन्होंने धारा 120-बी, 218 और 347 भ०द०वि० के तहत अपराधों के लिए भगत राम को दोषी ठहराया है, का फैसला कायम नहीं रह सकता है।

24. प्रस्तुत मामले में, मंजूरी की वैधता का प्रश्न इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा तय किया गया था, जिसके खिलाफ उच्चतम न्यायालय ने अपील को खारिज कर दिया था और इसलिए, आदेश की वैधता का सवाल, अभियुक्त की धारा 196 द०प्र०स० के तहत अभियोजन के लिए मंजूरी से इनकार करना अंततः सुलझ गया, और उक्त मुद्दा उसी मामले की बाद की कार्यवाही में न्यायिक निर्णय के सिद्धांत द्वारा वर्जित है। इसलिए, विचारण न्यायालय ने सही माना है कि विरोध याचिका पर फैसला करते समय उक्त मुद्दे को फिर से नहीं खोला जा सकता है।

25. (2013) 10 एस.सी.सी. 705 (अनिल कुमार और अन्य बनाम एमके अयप्पा और अन्य) में रिपोर्ट किए गए मामले में उच्चतम न्यायालय ने माना है कि उचित मंजूरी की दलील पर मजिस्ट्रेट धारा 156 द०प्र०स० के तहत शक्ति का आह्वान करते हुए लोक सेवक के खिलाफ जांच का आदेश नहीं दे सकता है।

"21. अपीलकर्ताओं के लिए उपस्थित वरिष्ठ अधिवक्ता ने यह तर्क दिया कि मंजूरी की आवश्यकता केवल प्रकृति में प्रक्रियात्मक है और इसलिए, निर्देशिका या फिर धारा 19 (3) को ओटियोस प्रदान किया जाएगा। हमें इस तर्क को स्वीकार करना मुश्किल लगता है। धारा 19 की उपधारा (3) का उद्देश्य प्राप्त करना है, जो उन परिस्थितियों में लागू होता है जहां एक विशेष न्यायाधीश ने पहले ही निष्कर्ष, सजा या आदेश दे दिया है। ऐसी स्थिति में, मंजूरी की अनुपस्थिति के आधार पर अपील, पुष्टि या पुनरीक्षण में अदालत द्वारा इसे उलटा या परिवर्तित नहीं किया जाएगा। इसका अर्थ यह नहीं है कि स्वीकृति प्राप्त करने की अपेक्षा अनिवार्य अपेक्षा नहीं है। एक बार जब यह ध्यान दिया जाता है कि कोई पूर्व मंजूरी नहीं थी, जैसा कि पहले से ही ऊपर संदर्भित विभिन्न निर्णयों में इंगित किया गया है, तो मजिस्ट्रेट धारा 156(3) द०प्र०स० के तहत शक्तियों का आह्वान करते हुए एक लोक सेवक के खिलाफ जांच का आदेश नहीं दे सकता है। उपरोक्त कानूनी स्थिति, जैसा कि पहले ही संकेत दिया गया है, पारसनाथ सिंह और सुब्रमण्यम स्वामी मामलों में स्पष्ट रूप से बताई गई है।

22. इसके अलावा, सेना मुख्यालय बनाम सी.बी.आई. में इस न्यायालय ने निम्नानुसार राय दी: (एस.सी.सी. पृष्ठ 261, पैरा 82-83)

"82. इस प्रकार, उपरोक्त के मद्देनजर, मंजूरी के मुद्दे पर कानून को इस आशय से संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है कि मंजूरी का प्रश्न एक लोक सेवक की रक्षा के लिए सर्वोपरि महत्व का है जिसने अपने कर्तव्य का पालन करते समय अच्छे विश्वास में काम किया है। किसी बेईमान व्यक्ति की शिकायत पर लोक सेवक को अनावश्यक रूप से परेशान न किया जाए, इसके लिए कार्यकारी प्राधिकारी की ओर से उसकी रक्षा करना अनिवार्य है.....

83. यदि कानून को मंजूरी की आवश्यकता है, और अदालत मंजूरी के बिना एक लोक सेवक के खिलाफ कार्यवाही करती है, तो लोक सेवक को अधिकार क्षेत्र का मुद्दा उठाने का अधिकार है

क्योंकि पूरी कार्रवाई शुरू से ही शून्य हो सकती है।

26. एक बार अभियोजन के लिए मंजूरी देने से इनकार कर दिया गया था, जांच, यहां तक कि अन्यथा धारा 156(3) द०प्र०स० के तहत एक आदेश द्वारा नहीं की जा सकती थी जैसा कि प्रस्तुत मामले में है। याचिकाकर्ता एक व्यस्त निकाय प्रतीत होता है जो खुद कई आपराधिक मामलों का सामना कर रहा है, और वह 2007 से इस मामले को लड़ रहा है। याचिकाकर्ता को विचारण न्यायालय, इस कोर्ट और उच्चतम न्यायालय के समक्ष इस मामले को लड़ने के लिए वकीलों को नियुक्त करने में भारी खर्च करना पड़ा होगा। मुकदमेबाजी/लड़ने के लिए उसके संसाधन जांच का विषय होना चाहिए। श्री मनीष गोयल, अतिरिक्त महाधिवक्ता द्वारा उठाए गए सबमिशन में कुछ बल हो सकता है कि याचिकाकर्ता एक ढोंगी है जिसे उन ताकतों द्वारा स्थापित किया गया है, जो उत्तर प्रदेश राज्य के वर्तमान मुख्यमंत्री श्री योगी आदित्यनाथ का विरोध कर रहे हैं, और ताकतें, जो उत्तर प्रदेश और भारत राज्य की प्रगति नहीं चाहते हैं। उक्त पहलू की जांच करना राज्य का काम है, हालांकि, यह न्यायालय इस संबंध में आगे कुछ नहीं कहना चाहता है या कोई निर्देश नहीं देना चाहता है।

27. उपरोक्त टिप्पणियों के साथ, यह याचिका आज से चार सप्ताह के भीतर "सेना कल्याण कोष युद्ध हताहतों" में जमा करने के लिए 1,00,000/- रुपये (एक लाख) की अनुकरणीय लागत के साथ खारिज कर दी गई है, जिसमें विफल रहने पर इसे याचिकाकर्ता की संपत्ति/संपत्ति से भूमि राजस्व के बकाया के रूप में वसूल किया जाएगा।

(2023) 3 ILRA 481

मूल अधिकार क्षेत्र

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 21.09.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान

आवेदन अन्तर्गत धारा 482 सं. 4392 सन् 2016

राजीव कुमार ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ...प्रतिपक्षी

आवेदक की ओर से अधिवक्ता: श्री अशोक कुमार, श्री सचिन कनौजिया

प्रतिपक्षी की ओर से अधिवक्ता: जी.ए., श्री चंद्र भान दुबे

11. आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या - 4392 / 2016 - राजीव कुमार बनाम राज्य उत्तर प्रदेश और 2 अन्य।

अपराधिक कानून - दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 482 - पीड़ित ने आवेदक से अपनी इच्छा से विवाह किया, जिससे न्यायालय को कार्यवाही निरस्त करने की अनुमति मिली - पक्षों ने पहले ही अपने विवाद को सुलझा लिया था - धारा 482 CrPC के तहत अंतर्निहित शक्तियों का उपयोग करके आपराधिक कार्यवाही को रद्द किया जा सकता है - कुछ संज्ञेय और गैर-संयोजनीय अपराधों में भी - यदि वाद मुख्यतः नागरिक से संबंधित हो, जैसे कि वाणिज्यिक, वित्तीय, वैवाहिक या पारिवारिक विवाद - यदि दोष सिद्ध होने की संभावना कम है और जारी रखना उत्पीड़न और अन्याय का कारण बनेगा।

आवेदन स्वीकृत। (E-9)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. माफत लाल और अन्य बनाम राजस्थान राज्य, 2022 लॉसूट (SC) 463
2. गुफरान शेख @ गनी मुनावर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 10258 वर्ष 2021 निर्णय दिनांक 28.07.2022
3. ज्ञान सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2012) 10 SCC 303
4. पारबतभाई आहीर @ पारभथभाई भीमसिंहभाई कर्मूर और अन्य बनाम गुजरात राज्य और अन्य, (2017) 9 SCC 641
5. नरेंद्र सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य और अन्य। (2014) 6 SCC 466
6. मध्य प्रदेश राज्य बनाम लक्ष्मी नारायण और अन्य। (2019) 5 SCC 688
7. मदन मोहन एबॉट बनाम पंजाब राज्य, (2008) 4 SCC 582

<u>माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान</u>

विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री चन्द्रभान दुबे दुबारा पुकारे जाने पर भी उपस्थित नहीं हुए।

आवेदक की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री सचिन कनौजिया, राज्य की ओर से विद्वान अपर महाधिवक्ता श्री अमित सिंह चौहान को सुना गया तथा अभिलेखों का परिशीलन किया गया।

सीआरपीसी की धारा 482 के तहत यह आवेदन आईपीसी की धारा 363, 366 और 376 और पोक्सो अधिनियम की धारा 3/4 के तहत, पुलिस स्टेशन दोघट, जिला बागपत, के अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, बागपत में आरोप पत्र दिनांक 25.06.2015 और संज्ञान आदेश दिनांक 30.07.2015 के साथ-साथ मुकदमा अपराध संख्या 118/2015 से उत्पन्न, आपराधिक मामला संख्या 36/2015 (राज्य बनाम राजीव कुमार) की संपूर्ण कार्यवाही को रद्द करने के लिए दायर किया गया है।

दिनांक 13.09.2022 को निम्नलिखित आदेश पारित किया गया:-

> *"कार्यालय रिपोर्ट दिनांक 13.09.2022 के अनुसार विपक्षी पक्षकार संख्या 2 को व्यक्तिगत रूप से नोटिस दिया गया है।*
>
> *आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि आवेदक ने विपक्षी पक्षकार संख्या 3 से विवाह कर लिया है तथा वे सुखी वैवाहिक जीवन जी रहे हैं।*
>
> *विपक्षी पक्षकार संख्या 2 (विपक्षी पक्षकार संख्या 3 के मामा) द्वारा एफआईआर दर्ज कराई गई है, जो न्यायालय में उपस्थित न होकर पक्षकारों के वैवाहिक जीवन को बर्बाद करने का प्रयास कर रहा है। ऐसी स्थिति में और माननीय सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न निर्णयों के मद्देनजर, वर्तमान मामले में कार्यवाही जारी रखना कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा।*
>
> *उपरोक्त के मद्देनजर, आवेदक के साथ-साथ विपक्षी*

पक्षकार संख्या 3 को अगली तारीख पर न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने दिया जाए। सूचीबद्ध दिनांक 21.09.2022। अंतरिम आदेश को सूचीबद्ध होने की अगली तारीख तक बढ़ा दिया गया है।"

न्यायालय के दिनांक 13.09.2022 के आदेश के अनुपालन में, आवेदक अर्थात् राजीव कुमार और विपक्षी पक्षकार संख्या 3 अर्थात् उपासना अपने साढ़े चार वर्षीय पुत्र के साथ आज न्यायालय में उपस्थित हुए, जिनकी पहचान कर ली गई है तथा आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा हस्ताक्षर भी सत्यापित कर लिए गए हैं।

आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री सचिन कनौजिया द्वारा प्रत्युत्तर शपथपत्र दायर किया गया है, जिसमें गवाह उपासना है, जो आवेदक की पत्नी है।

पूछे जाने पर विपक्षी पक्षकार संख्या 3, उपासना ने बताया कि उसने आवेदक से अपनी मर्जी से शादी की है और सुखी वैवाहिक जीवन जी रही है। उनकी शादी से उन्हें एक पुत्र प्राप्त हुआ है, जो वर्तमान में साढ़े चार साल का है। उनकी जन्मतिथि के अनुसार, शादी के समय उनकी उम्र लगभग साढ़े 17 साल थी। उसने यह भी कहा है कि उसके ससुराल वालों ने उनकी शादी को स्वीकार कर लिया है और वह उनके साथ खुशी-खुशी रह रही है। उसने यह भी कहा है कि एफआईआर उसके मामा यानी विपक्षी पक्षकार संख्या 2 ने दर्ज कराई है, जो उपासना की शादीशुदा जिंदगी को बर्बाद करने की कोशिश कर रहा है। उसने आगे कहा है कि उसने अपनी स्वतंत्र इच्छा, सहमति से और किसी भी प्रकार के बाहरी दबाव, दबाव या धमकी के बिना समझौता किया है और इस न्यायालय के समक्ष गवाही दी है।

आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि संबंधित पक्षों के बीच हुए समझौते के कारण उनके बीच सभी विवाद समाप्त हो गए हैं, इसलिए इस न्यायालय द्वारा उपरोक्त मामले में आवेदक के विरुद्ध आगे की कार्यवाही रद्द की जानी चाहिए। अपने तर्क के समर्थन में, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने **मफत लाल एवं अन्य बनाम राजस्थान राज्य 2022 मुकदमा (एससी) 463** और दिनांक 28.07.2022 को आवेदन अन्तर्गत धारा 482 संख्या 10258/2021 में पारित **गुफरान शेख उर्फ गनी मुनव्वर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** मामले में इस न्यायालय के निर्णय पर भी अवलम्ब लिया।

विद्वान ए.जी.ए. ने उपरोक्त तथ्य पर कोई विवाद नहीं किया है तथा न्यायालय में कहा है कि चूंकि संबंधित पक्षकारों ने ऊपर उल्लिखित तरीके से अपने विवाद को सुलझा लिया है, इसलिए उन्हें आवेदकों के खिलाफ आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने में कोई आपत्ति नहीं है। आगे बढ़ने से पहले **ज्ञान सिंह बनाम पंजाब राज्य के मामले (2012) 10 एससीसी 303** मामले का संक्षिप्त संदर्भ देना उचित होगा, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से अवधारित किया है कि कुछ संज्ञेय और गैर-शमनीय अपराधों के संबंध में भी पक्षों के बीच समझौता किया जा सकता है। सर्वोच्च न्यायालय के उक्त निर्णय का प्रासंगिक भाग इस प्रकार है:-

"57. उपरोक्त चर्चा से जो स्थिति उभर कर आती है, उसे

संक्षेप में इस प्रकार कहा जा सकता है: अपने अंतर्निहित क्षेत्राधिकार के तहत किसी आपराधिक कार्यवाही या एफआईआर या शिकायत को रद्द करने की उच्च न्यायालय की शक्ति, संहिता की धारा 320 के तहत अपराधों को कम करने के लिए आपराधिक न्यायालय को दी गई शक्ति से भिन्न है। निहित शक्ति व्यापक है तथा इसमें कोई वैधानिक सीमा नहीं है, लेकिन इसका प्रयोग ऐसी शक्ति में निहित दिशानिर्देशों के अनुसार किया जाना चाहिए, जैसे (i) न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करना या (ii) किसी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकना। किन मामलों में आपराधिक कार्यवाही या शिकायत या एफ.आई.आर. को रद्द करने की शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है, जहां अपराधी और पीड़ित ने अपने विवाद को सुलझा लिया है, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा और कोई श्रेणी निर्धारित नहीं की जा सकती है। हालाँकि, ऐसी शक्ति का प्रयोग करने से पहले उच्च न्यायालय को अपराध की प्रकृति और गंभीरता पर उचित ध्यान देना चाहिए। मानसिक विकृति के जघन्य और गंभीर अपराध या हत्या, बलात्कार, डकैती आदि जैसे अपराधों को उचित रूप से रद्द नहीं किया जा सकता, भले ही पीड़ित या पीड़ित के परिवार और अपराधी ने विवाद सुलझा लिया हो। ऐसे अपराध निजी प्रकृति के नहीं होते तथा समाज पर गंभीर प्रभाव डालते हैं। इसी प्रकार, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम जैसे विशेष कानूनों के अंतर्गत अपराधों या उस क्षमता में कार्य करते समय लोक सेवकों द्वारा किए गए अपराधों के संबंध में पीड़ित और अपराधी के बीच कोई समझौता, ऐसे अपराधों से संबंधित आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए कोई आधार प्रदान नहीं कर सकता है। लेकिन आपराधिक मामले, जिनमें मुख्य रूप से सिविल वाद शामिल होते हैं, निरस्तीकरण के प्रयोजनों के लिए अलग स्तर पर आते हैं, विशेष रूप से वाणिज्यिक, वित्तीय, व्यापारिक, सिविल, साझेदारी या ऐसे ही अन्य लेन-देन से उत्पन्न अपराध या दहेज आदि से संबंधित विवाह से उत्पन्न अपराध या पारिवारिक विवाद, जहां गलती मूल रूप से निजी या व्यक्तिगत प्रकृति की होती है

और पक्षकारों ने अपने पूरे विवाद को सुलझा लिया होता है। इस श्रेणी के मामलों में, उच्च न्यायालय आपराधिक कार्यवाही को रद्द कर सकता है, यदि उसके विचार में, अपराधी और पीड़ित के बीच समझौते के कारण, दोषसिद्धि की संभावना बहुत कम है और आपराधिक मामले को जारी रखने से अभियुक्त को भारी उत्पीड़न और पूर्वाग्रह का सामना करना पड़ेगा तथा पीड़ित के साथ पूर्ण समझौता होने के बावजूद आपराधिक मामले को रद्द न करने से उसके साथ अत्यधिक अन्याय होगा। दूसरे शब्दों में, उच्च न्यायालय को इस बात पर विचार करना चाहिए कि क्या आपराधिक कार्यवाही जारी रखना न्याय के हित के प्रतिकूल या अनुचित होगा या आपराधिक कार्यवाही जारी रखना कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा, भले ही पीड़ित और अपराधी के बीच समझौता हो चुका हो और क्या न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करना है, यह उचित है कि आपराधिक मामले को समाप्त कर दिया जाए और यदि उपरोक्त प्रश्न/प्रश्नों का उत्तर सकारात्मक है, तो उच्च न्यायालय आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के अपने अधिकार क्षेत्र में होगा।"

सर्वोच्च न्यायालय ने **परबतभाई अहीर उर्फ परभतभाई भीमसिंहभाई करमूर और अन्य बनाम गुजरात राज्य और अन्य, (2017) 9 एससीसी 641** मामले में सीआरपीसी की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों के बारे में व्यापक सिद्धांतों का सारांश देते हुए अवधारित किया है कि ये शक्तियां सीआरपीसी की धारा 320 के प्रावधानों से बाधित नहीं होती हैं।

सर्वोच्च न्यायालय ने **नरिंदर सिंह एवं अन्य बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य (2014) 6 एससीसी 466** तथा **मध्य प्रदेश राज्य बनाम लक्ष्मी नारायण एवं अन्य (2019) 5 एससीसी 688** के मामले में उन सिद्धांतों का सारांश प्रस्तुत किया है और प्रतिपादित किया है जिनके द्वारा उच्च न्यायालय पक्षकारों के बीच समझौते को पर्याप्त उपचार देने में निर्देशित होगा तथा समझौते को स्वीकार करते समय तथा कार्यवाही को रद्द करते समय या आपराधिक कार्यवाही जारी रखने के निर्देश के साथ समझौते को स्वीकार करने से इनकार करते समय संहिता की धारा 482 के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करेगा।

वर्तमान मामले में, इसमें कोई संदेह नहीं है कि आई.पी.सी. की संबंधित धाराओं 363, 366 और 376 तथा पोक्सो अधिनियम की धाराओं 3/4 के तहत अपराध सीआरपीसी की धारा 320 के तहत समझौता योग्य नहीं हैं।

हालांकि, जैसा कि **ज्ञान सिंह, नरेंद्र सिंह, परबतभाई अहीर और लक्ष्मी नारायण** के मामलों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा स्पष्ट किया गया है, सीआरपीसी की धारा 320 के प्रावधानों

द्वारा सीआरपीसी की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय की शक्ति बाधित नहीं होती है और यदि न्याय के उद्देश्यों के लिए या किसी भी अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए मामले के दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में आवश्यक हो तो सीआरपीसी की धारा 482 के तहत अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करके एफ.आई.आर. के साथ-साथ आपराधिक कार्यवाही को भी रद्द किया जा सकता है, यहां तक कि उन मामलों में भी जो समझौता योग्य नहीं हैं जहां पक्षकारों ने आपस में मामले को सुलझा लिया है।

मदन मोहन एबॉट बनाम पंजाब राज्य, (2008) 4 एससीसी 582 के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने इस बात पर जोर दिया और सलाह दी कि आपराधिक कार्यवाही में समझौते के मामले में, इस मामले की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, अधिक प्रभावी और सार्थक मुकदमेबाजी का फैसला करने के लिए न्यायालय के समय को बचाने के लिए, जमीनी हकीकत पर आधारित और कानून की तकनीकी बातों से परे, एक सामान्य ज्ञान दृष्टिकोण को लागू किया जाना चाहिए।

उपर्युक्त निर्णयों में सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से माना है कि कुछ संज्ञेय और असंज्ञेय अपराधों के संबंध में भी पक्षों के बीच समझौता किया जा सकता है। वर्तमान मामला भी ऐसा मामला है जहां दो सामाजिक हित आपस में टकरा रहे हैं। वर्तमान मामले में शामिल अपराध के लिए अपराधियों को दंडित करना समाज के हित में है, लेकिन साथ ही पति अपनी पत्नी का ख्याल रख रहा है और यदि पति को सामाजिक हित के लिए दोषी ठहराया जाता है और सजा सुनाई जाती है, तो पत्नी बहुत बड़ी परेशानी में पड़ जाएगी और उनका भविष्य बर्बाद हो जाएगा। यह समाज के हित में भी है कि परिवार के कल्याण के लिए उन्हें बसाया जाए और पुनः स्थापित किया जाए।

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए तथा पक्षकारों के अधिवक्तागणों द्वारा प्रस्तुत किए गए तर्कों पर विचार करते हुए, न्यायालय का विचार है कि पीड़िता/विपक्षी पक्षकार संख्या 3 ने स्वयं इस न्यायालय के समक्ष कहा है कि उसने अपनी इच्छा से आवेदक से विवाह किया है तथा वह सुखी वैवाहिक जीवन जी रही है। विवाह के परिणामस्वरूप उन्हें एक पुत्र की प्राप्ति हुई, जो वर्तमान में साढ़े चार वर्ष का है। इसलिए, उपर्युक्त आपराधिक मामले की कार्यवाही को लम्बा खींचने से कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा नहीं होगा क्योंकि पक्षकार पहले ही अपने विवाद को सुलझा चुके हैं।

तदनुसार, आरोप पत्र दिनांक 25.06.2015 और संज्ञान आदेश दिनांक 30.07.2015 तथा साथ ही आईपीसी की धारा 363, 366 और 376 और पोक्सो अधिनियम की धारा 3/4 के तहत, मुकदमा अपराध संख्या 118/2015 से उत्पन्न, आपराधिक मामला संख्या 36/2015 (राज्य बनाम राजीव कुमार), थाना दोघट, जिला-बागपत, में अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, बागपत द्वारा संपूर्ण कार्यवाही **रद्द** की जाती है।

तदनुसार, आवेदन **स्वीकार** किया जाता है। लागत के सम्बन्ध में कोई आदेश नहीं दिया जाएगा। इस आदेश की एक प्रति तुरन्त निचली अदालत को प्रमाणित की जाए।

(2023) 3 ILRA 485

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 28.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति दिनेश कुमार सिंह

आवेदन अन्तर्गत धारा 482 सं. 5106 सन् 2022

सह

अन्य संबंधित मामले

सुबेश कुमार सिंह ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ...प्रतिपक्षी

आवेदक की ओर से अधिवक्ता: एस.एम. सिंह रॉयकवार, सुमीत ताहिलरमानी

प्रतिपक्षी की ओर से अधिवक्ता: जी.ए., अनुराग कुमार सिंह, नरेंद्र कुमार शर्मा, रोमिल सागर

14. आवेदन अंतर्गत 482 संख्या 5106/2022- सुभेश कृष्ण सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य।

अपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता - धाराएँ 173 और 197 - सेवानिवृत्त/सेवा में पुलिस/सरकारी अधिकारियों के विरुद्ध आरोप - जो आधिकारिक दायित्व के निर्वहन में जांच के दौरान कार्यरत थे - सीबीआई ने यह निष्कर्ष निकालने के बाद समाप्ति रिपोर्ट दाखिल की कि यह आत्महत्या थी - विरोध याचिका - अनुपूरक बंद रिपोर्ट - फिर से विरोध दाखिल किया गया - मजिस्ट्रेट ने दूसरी अंतिम रिपोर्ट को निरस्त किया और विरोध याचिका को शिकायत मामले के रूप में माना - धारा 197 Cr.P.C. के तहत कोई पूर्व अनुमति नहीं थी - मजिस्ट्रेट को शिकायतकर्ता के अनुमान पर कार्य नहीं करना चाहिए था - समन से पूर्व प्रबल सामग्री और मजबूर करने वाले आधार की उपलब्ध कारणों का होना जरूरी है-शिकायत में धारा 302 और 120-B IPC के तहत अपराध का खुलासा नहीं हुआ-आदेश को निरस्त किया गया।

आवेदनों को अनुमति दी गई। (E-9)

उद्धृत वाद सूची:

1. डी. देवराज बनाम ओवेस सबीर हुसैन, (2020) 7 SCC 695
2. पेप्सी फूड लिमिटेड और अन्य बनाम विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट & अन्य, (1998) 5 SCC 749
3. मेहमूद उल रहमान बनाम खाजिर मोहम्मद टुंडा और अन्य, (2015) 12 SCC 420

<u>माननीय न्यायमूर्ति दिनेश कुमार सिंह</u>

1. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (एतस्मिनपश्चात "सीआरपीसी" के रूप में सन्दर्भित) की धारा 482 के तहत इन सात याचिकाकर्ताओं ने शिकायत मामला संख्या 3845/2019 में विद्वान विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट, सीबीआई, लखनऊ द्वारा पारित समन आदेश दिनांक 07.07.2022 को चुनौती देते हुए याचिका दायर की है।

2. इन याचिकाकर्ताओं द्वारा संक्षेप में बताए गए तथ्य यह हैं कि भारत सरकार ने 12.04.2003 को 'राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन' (एतस्मिनपश्चात "एनआरएचएम" के रूप में संदर्भित) नाम से एक योजना शुरू की थी जिसका उद्देश्य सभी व्यक्तियों, विशेषकर दूरदराज के क्षेत्रों में रहने वाले समाज के गरीब वर्ग को सुलभ,

पर्याप्त और सस्ती स्वास्थ्य सेवा प्रदान करना था। योजना के कार्यान्वयन को विकेन्द्रित करने तथा उक्त योजना के कार्यान्वयन के लिए संसाधन जुटाने हेतु केन्द्र सरकार और राज्य सरकारों के बीच अलग-अलग समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए गए। उत्तर प्रदेश सरकार के साथ ऐसा समझौता ज्ञापन 12.11.2006 को हस्ताक्षरित किया गया था। उक्त ज्ञापन के अनुसार, मिशन के लिए 85% धनराशि केन्द्र सरकार द्वारा उपलब्ध कराई जानी थी, जबकि राज्य सरकार को कुल धनराशि का 15% योगदान देना था।

3. राज्य स्वास्थ्य सोसाइटी (एतस्मिनपश्चात "एसएचएस" के रूप में संदर्भित) की स्थापना मुख्य सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार की अध्यक्षता में की गई थी और क्षय रोग, अंधापन और कुष्ठ रोग उन्मूलन के कार्यान्वयन में शामिल मौजूदा राज्य एजेंसियों के साथ-साथ आरसीएच आदि के लिए अन्य राज्य अधिकार प्राप्त समिति को एसएचएस के साथ विलय कर दिया गया था।

4. एनआरएचएम को लागू करते समय सरकारी अधिकारियों द्वारा निजी व्यक्तियों के साथ सक्रिय मिलीभगत और षडयंत्र के तहत बड़े पैमाने पर गड़बड़ी, सरकारी धन की हेराफेरी और धोखाधड़ी के आरोप पर जनहित याचिका संख्या 3611 (एम/बी) 2011, 3301 (एम/बी) 2011 और 2647 (एम/बी) 2011 दायर की गई। इस न्यायालय ने आदेश दिनांक 15 नवम्बर, 2011 द्वारा निम्नानुसार निर्देश दिया:-

> *"..................हम प्रथम दृष्टया आश्वस्त हैं कि एनआरएचएम के क्रियान्वयन और निष्पादन में गंभीर वित्तीय और प्रशासनिक अनियमितताएं हुई हैं, जिनमें विभिन्न स्तरों पर ठेके देने, सामान, वस्तुएं आदि खरीदने का मामला भी शामिल है।*
>
> *.................उपरोक्त तथ्य और परिस्थितियां एनआरएचएम के प्रारम्भ से ही सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश में एनआरएचएम के मामलों की प्रारंभिक जांच करने के लिए सीबीआई को संदर्भित करने का मामला बनाती हैं।*
>
> *इसलिए हम सीबीआई के निदेशक को निर्देश देते हैं कि वे सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश राज्य में एनआरएचएम के क्रियान्वयन और कार्यान्वयन तथा ऐसे क्रियान्वयन के दौरान विभिन्न स्तरों पर निधियों के उपयोग के मामले में प्रारंभिक जांच करें तथा उन व्यक्तियों के संबंध में नियमित मामला दर्ज करें जिनके विरुद्ध प्रथम दृष्टया संज्ञेय अपराध बनता है तथा कानून के अनुसार कार्यवाही करें। प्रारंभिक जांच वर्ष 2005-06 से लेकर आज तक की अवधि के लिए की जाएगी।..."*

5. इस न्यायालय द्वारा जारी निर्देशों के अनुपालन में, सीबीआई ने प्रारंभिक जांच करने के बाद, वर्ष 2009-2010 के दौरान एनआरएचएम के तहत विभिन्न वस्तुओं की आपूर्ति/खरीद के लिए यूपी लघु उद्योग निगम को आवंटित धन के उपयोग में अनियमितताओं के मामले में

आरसी संख्या 01(ए)/2012 दिनांक 02.01.2012 के तहत एफआईआर दर्ज की।

6. मई, 2010 में, उत्तर प्रदेश राज्य सरकार ने शासनादेश संख्या 1570/धारा-2-5-10-7(109) दिनांक 05.05.2010 के तहत मुख्य चिकित्सा अधिकारी (एतस्मिनपश्चात "सीएमओ" के रूप में सन्दर्भित) के पद को जिला परियोजना अधिकारी (परिवार कल्याण) और सीएमओ (स्वास्थ्य) में विभाजित कर दिया। एनआरएचएम योजना के अंतर्गत उत्तर प्रदेश के विभिन्न जिलों के सीएमओ (परिवार कल्याण) को दवाओं और उपकरणों की खरीद, संविदा जनशक्ति और एम्बुलेंस की भर्ती, सूचना, शिक्षा और संचार पर व्यय के लिए पर्याप्त धनराशि उपलब्ध कराई गई थी, जिसमें दीवार लेखन, बैनर, पोस्टर और विज्ञापन आदि के माध्यम से प्रचार शामिल था।

7. डॉ वाई.एस. सचान दिनांक 26.07.2007 से 08.09.2010 तक सीएमओ, लखनऊ के कार्यालय में उप मुख्य चिकित्सा अधिकारी के पद पर तैनात रहे थे, जब डॉ अनिल कुमार शुक्ला सीएमओ, लखनऊ के रूप में कार्यरत थे। विभाजन के बाद, डॉ ए.के. शुक्ला को सीएमओ (स्वास्थ्य), लखनऊ के पद पर तैनात किया गया, जबकि 15.05.2010 को डॉ राजेंद्र प्रसाद कुशवाहा को जिला परियोजना अधिकारी (परिवार कल्याण), लखनऊ के पद पर तैनात किया गया। दिनांक 24.07.2010 को डॉ. विनोद कुमार आर्य (एतस्मिनपश्चात "वी.के. आर्य" के रूप में सन्दर्भित) को डॉ. राजेन्द्र प्रसाद कुशवाहा के उत्तराधिकारी के रूप में नियुक्त किया गया। डॉ. वाई.एस. सचान को आदेश संख्या 1529/5-9-2010-09(221/10) दिनांक 09.09.2010 द्वारा सीएमओ (स्वास्थ्य), लखनऊ के कार्यालय से जिला परियोजना अधिकारी (परिवार कल्याण), लखनऊ के कार्यालय में स्थानांतरित किया गया था। अक्टूबर, 2010 माह में जिला परियोजना अधिकारी (परिवार कल्याण) के पद को सीएमओ (परिवार कल्याण) के रूप में पुनः नामित किया गया।

8. डॉ. वी.के. आर्या की 27.10.2010 की सुबह, जब वे विकास नगर, लखनऊ स्थित अपने घर के पास सुबह की सैर कर रहे थे, कुछ अज्ञात मोटरसाइकिल सवार हमलावरों ने गोली मारकर हत्या कर दी थी। प्रथम सूचना रिपोर्ट (एतस्मिनपश्चात "एफआईआर" के रूप में सन्दर्भित) मुकदमा अपराध संख्या 0322/2010 के तहत डॉ. वी.के. आर्य की पत्नी डॉ. (श्रीमती) शशि कुमारी की शिकायत पर आईपीसी की धारा 302 के तहत थाना विकास नगर, लखनऊ में पंजीकृत किया गया था। इस मामले में स्थानीय पुलिस ने पहले विजय दुबे, अभय सिंह, अंशु दीक्षित, अमित कुमार दीक्षित और अजय मिश्रा को गिरफ्तार किया था। हत्या के बाद दिनांक 22.11.2010 को सीएमओ (परिवार कल्याण), लखनऊ का प्रभार डॉ. वाई.एस. सचान को दिया गया, जिन्होंने नियमित सीएमओ की अनुपस्थिति में दिनांक 25.02.2011 तक प्रभारी सीएमओ (परिवार कल्याण), लखनऊ के पद पर कार्य किया। वित्तीय वर्ष 2010-2011 के दौरान, राज्य स्वास्थ्य समिति से एनआरएचएम योजनाओं के विभिन्न शीर्षों के अंतर्गत लखनऊ जिले को कुल 32.49 करोड़ रुपये की धनराशि प्राप्त हुई, जिसमें से कुल 19.35 करोड़ रुपये की धनराशि व्यय की गई। डॉ. वाई.एस. सचान ने प्रभारी सीएमओ (परिवार कल्याण), लखनऊ के पद पर अपने कार्यकाल के दौरान विभिन्न मदों में 8 करोड़ 21 लाख रुपये की धनराशि खर्च की।

9. डॉ. वी.के. आर्य की हत्या के बाद, डॉ. बी.पी. सिंह को 25.02.2011 को सीएमओ (परिवार कल्याण), लखनऊ के पद पर तैनात किया गया तथा डॉ. वाई.एस. सचान उनके डिप्टी सीएमओ के रूप में काम करते रहे। दिनांक 02.04.2011 की सुबह, डॉ. बी.पी. सिंह की भी उनके घर के पास मोटरसाइकिल सवार अज्ञात हमलावरों द्वारा गोली मारकर हत्या कर दी गई थी, जब वे सुबह की सैर कर रहे थे, ठीक उसी तरह जैसे डॉ. वी.के. आर्य की हत्या की गई थी। इस संबंध में, एफआईआर मुकदमा अपराध संख्या 0269/2011 दिनांक 02.04.2011, आईपीसी की धारा 302 के तहत थाना गोमती नगर, लखनऊ में पंजीकृत किया गया था। जांच उपनिरीक्षक श्री अभिमन्यु धर द्विवेदी, थाना प्रभारी द्वारा की गई। दिनांक 04.04.2011 को गोमती नगर थाने के प्रभारी एवं मामले के विवेचनाधिकारी श्री अभिमन्यु धर द्विवेदी ने डॉ. बी.पी. सिंह की हत्या के मामले में कुछ सुराग पाने के लिए डॉ. वाई.एस. सचान से पूछताछ की तथा उनका बयान दर्ज किया, लेकिन कोई सफलता नहीं मिली।

10. दिनांक 02.04.2011 को डॉ. बी.पी. सिंह की हत्या के बाद, वित्तीय वर्ष 2010-2011 के दौरान एनआरएचएम फंड की हेराफेरी, गबन, धोखाधड़ी और जालसाजी आदि के आरोप में डॉ. वाई.एस. सचान और दो अन्य के खिलाफ आईपीसी की धारा 409, 419, 420, 467, 468 और 471 के तहत थाना वजीरगंज, लखनऊ में दिनांक 05.04.2011 को मुकदमा अपराध संख्या 0112/2011 के तहत एफआईआर दर्ज की गई थी। दिनांक 05.04.2011 को डॉ. वाई.एस. सचान को क्राइम ब्रांच, हजरतगंज, लखनऊ में तलब किया गया। डॉ. वाई.एस. सचान को मुकदमा अपराध संख्या 0112/2011 के संबंध में उसी दिन गिरफ्तार कर लिया गया तथा 06.04.2011 को जिला कारागार, लखनऊ भेज दिया गया।

11. दोनों सीएमओ की हत्या के मद्देनजर, दोनों स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रियों ने 07.04.2011 को इस्तीफा दे दिया तथा उसी दिन प्रमुख सचिव (स्वास्थ्य) श्री प्रदीप शुक्ला का भी स्थानांतरण कर दिया गया। वित्तीय वर्ष 2009-2010 के दौरान सीएमओ कार्यालय, लखनऊ में एनआरएचएम निधियों के दुरुपयोग, गड़बड़ी, धोखाधड़ी के लिए डॉ वाई.एस. सचान और डॉ ए.के. शुक्ला के खिलाफ आईपीसी की धारा 409, 419, 420, 467, 468 और 471 के तहत दिनांक 07.04.2011 को थाना वजीरगंज, लखनऊ में मुकदमा अपराध संख्या 0115/2011 के तहत एक और एफआईआर भी दर्ज की गई थी। डॉ. वाई.एस. सचान दिनांक 05.04.2011 से 06.04.2011 तक न्यायिक हिरासत में रहे। उच्च रक्तचाप और मधुमेह के कारण डॉ. वाई.एस. सचान को दिनांक 06.04.2011 को जिला कारागार अस्पताल, लखनऊ में भर्ती कराया गया था। दिनांक 08.04.2011 को डा. वाई.एस. सचान को थाना वजीरगंज, लखनऊ में पंजीकृत मुकदमा अपराध संख्या 0112/2011 में 48 घंटे के लिए पुलिस कस्टडी रिमांड पर लिया गया था, किन्तु पुनः उन्हें सायं 5.30 बजे बलरामपुर जिला अस्पताल में भर्ती कराया गया। डॉ. वाई.एस. सचान को दिनांक 10.04.2011 को बलरामपुर जिला अस्पताल से छुट्टी दे दी गई और जिला कारागार, लखनऊ भेज दिया गया, जहां उन्हें जिला कारागार अस्पताल में भर्ती कराया गया और 11.04.2011 को छुट्टी दे दी गई। डॉ. वाई.एस. सचान को दिनांक 13.04.2011 को मुकदमा अपराध संख्या 0112/2011 में पुनः एक दिन के लिए पुलिस हिरासत रिमांड पर लिया

गया। हालांकि, जेल डॉक्टर ने कहा कि उनकी पुलिस हिरासत बलरामपुर जिला अस्पताल के विशेषज्ञ की मंजूरी पर निर्भर है। डॉ. वाई.एस. सचान को बलरामपुर जिला अस्पताल में भर्ती कराया गया और अगले दिन यानी दिनांक 14.04.2011 को छुट्टी दे दी गई तथा पुनः जिला कारागार, लखनऊ भेज दिया गया। डॉ. वाई.एस. सचान दिनांक 10.04.2011 से 11.04.2011 तक, 16.04.2011 से 07.06.2011 तक तथा 11.06.2011 से 22.06.2011 तक (अपनी मृत्यु तक) जिला कारागार अस्पताल, लखनऊ में भर्ती रहे।

12. यह नोट करना प्रासंगिक होगा कि दिनांक 05.04.2011 को प्रारंभिक गिरफ्तारी के दो माह पश्चात, जब डा. वाई.एस. सचान को दिनांक 10.06.2011 को थाना वजीरगंज में दर्ज मुकदमा अपराध संख्या 0115/2011 के संबंध में 24 घंटे के लिए पुनः पुलिस हिरासत रिमांड पर लिया गया था, तो न्यायालय से अनुमति प्राप्त करने के पश्चात दिनांक 15.06.2011 को थाना गोमती नगर में दर्ज मुकदमा अपराध संख्या 0269/2011 (डा. बी.पी. सिंह हत्याकांड) के संबंध में विवेचनाधिकारी, श्री अभिमन्यु धर द्विवेदी द्वारा दूसरी बार उनका बयान दर्ज किया गया था। दिनांक 17.06.2011 को, उत्तर प्रदेश पुलिस की स्पेशल टास्क फोर्स (एतस्मिनपश्चात "एसटीएफ" के रूप में सन्दर्भित) लखनऊ ने डॉ. बी.पी. सिंह की हत्या के लिए आनंद प्रकाश तिवारी, राम कृष्ण वर्मा और विनोद शर्मा को गिरफ्तार किया और पूछताछ के दौरान उन्होंने उक्त मामले में डॉ. वाई.एस. सचान की मिलीभगत का खुलासा किया था। उसी दिन यानि 17.06.2011 को शाम को उत्तर प्रदेश सरकार के तत्कालीन कैबिनेट सचिव ने एक प्रेस कॉन्फ्रेंस बुलाकर दावा किया कि दोनों सीएमओ की हत्या डॉ. वाई.एस. सचान के इशारे पर की गई थी। दिनांक 18.06.2011 को उपनिरीक्षक श्री अभिमन्यु धर द्विवेदी ने मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, लखनऊ की अदालत में डॉ. वाई.एस. सचान को अदालत के समक्ष पेश करने के लिए एक आवेदन दायर किया ताकि उन्हें मुकदमा अपराध संख्या 0269/2011 के संबंध में न्यायिक हिरासत में भेजा जा सके। तदनुसार, डॉ. वाई.एस. सचान को दिनांक 20.06.2011 को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, लखनऊ की अदालत में पेश किया गया। उपनिरीक्षक श्री अभिमन्यु धर द्विवेदी ने न्यायालय की अनुमति के बाद 21.06.2011 को जिला कारागार, लखनऊ में डॉ. वाई.एस. सचान का आगे का बयान दर्ज किया। दिनांक 22.06.2011 को डॉ. वाई.एस. सचान का शव लखनऊ कारागार अस्पताल के अप्रयुक्त शौचालय की पहली मंजिल पर पाया गया। दिनांक 23.06.2011 को, डॉ. वाई.एस. सचान की पत्नी डॉ. मालती सचान ने थानाध्यक्ष, थाना गोसाईंगंज, लखनऊ को एक शिकायत भेजी, जिसमें आरोप लगाया गया कि उनके पति की दिनांक 22.06.2011 को जेल अस्पताल, लखनऊ में हत्या कर दी गई। डॉ. वाईएस सचान की पत्नी डॉ. मालती सचान द्वारा भेजी गई शिकायत के आधार पर, मुकदमा अपराध संख्या 0276/2011 दिनांक 26.06.2011 के तहत अज्ञात व्यक्ति/व्यक्तियों के विरुद्ध आईपीसी की धारा 120-बी और 302 के तहत एफआईआर दर्ज की गई थी।

13. डॉ. मालती सचान ने अपनी शिकायत में आरोप लगाया कि दिनांक 05.04.2011 को उनके पति को वजीरगंज पुलिस, लखनऊ द्वारा परिवार कल्याण विभाग में बड़े पैमाने पर वित्तीय

अनियमितताओं से संबंधित मामले में पूछताछ के लिए बुलाया गया था और इसमें उच्च पदस्थ अधिकारियों की संलिप्तता प्रतीत होती है। इससे पहले दो सीएमओ की भी हत्या हो चुकी है। उनके पति को परिवार कल्याण विभाग में करोड़ों रुपए की गड़बड़ी के आरोप में राज्य सरकार के जिम्मेदार अधिकारियों द्वारा रची गई एक सुनियोजित आपराधिक साजिश के तहत जेल भेज दिया गया। शुरुआत में उनके खिलाफ वित्तीय अनियमितताओं के आरोप लगे थे, लेकिन बाद में उनका नाम डॉ. वी.के. आर्य और डॉ. बी.पी. सिंह की हत्या से भी जुड़ा, जो उस समय लखनऊ के सीएमओ (परिवार कल्याण) थे। 23.06.2011 को उनके पति को न्यायालय में उपस्थित होना था तथा वे सरकार में उच्च प्रभावशाली व्यक्तियों की संलिप्तता का खुलासा कर सकते थे। उच्च प्रभावशाली व्यक्तियों को बचाने के लिए उनके पति को गंभीर चोटें पहुंचाकर योजनाबद्ध तरीके से उनकी हत्या कर दी गई।

14. इस न्यायालय ने (सच्चिदानंद सच्चे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य) द्वारा दायर रिट याचिका संख्या 6601 (एम/बी)/2011 (पीआईएल) में पारित दिनांक 14.07.2011 के आदेश द्वारा सीबीआई को डॉ. वाईएस सचान की मृत्यु के कारणों, परिस्थितियों और कारण की जांच करने का निर्देश दिया था। थाना गोसाईगंज में दर्ज एफआईआर अपराध संख्या 0276/2011 को आईपीसी की धारा 302 और 120-बी के तहत दिनांक 15.07.2011 को थाना सीबीआई/एससीबी/लखनऊ में एफआईआर संख्या आरसी 0532011एस0004/2011 के रूप में पुनः पंजीकृत किया गया।

15. सीबीआई ने डॉ. वाईएस सचान की मृत्यु के संबंध में इस न्यायालय द्वारा पारित उक्त आदेश के अनुसरण में संज्ञान लिया।

16. विवेचनाधिकारी (एतस्मिनपश्चात "आईओ" के रूप में सन्दर्भित) अभिमन्यु धर द्विवेदी द्वारा 15.06.2011 को दर्ज बयान के अनुसार, डॉ वाई.एस. सचान ने दोनों सीएमओ की हत्या के मामले में अपनी संलिप्तता स्वीकार की। डॉ. वी.के. आर्य के मामले में उन्होंने स्वीकार किया कि दिनांक 14.10.2010 और 18.10.2010 के सरकारी आदेश जारी होने के बाद डॉ. वी.के. आर्य द्वारा चेक पर हस्ताक्षर करने के लिए उन्हें द्वितीय हस्ताक्षरकर्ता नहीं बनाया गया, जिसके कारण उन्हें कोई आर्थिक लाभ नहीं मिल रहा था। डॉ. बी.पी. सिंह के मामले में, उन्होंने (डॉ. वाई.एस. सचान) स्वीकार किया कि डॉ. बी.पी. सिंह ने सीएमओ (परिवार कल्याण), लखनऊ के रूप में अपने कार्यकाल के दौरान वाहनों की भर्ती, सरकारी भवनों के रखरखाव और सुरक्षा गार्डों की भर्ती आदि के लिए किए गए विभिन्न भुगतानों के लिए उन्हें अपमानित किया था। उन पर अपने सहयोगी राम कृष्ण वर्मा को 1.05 लाख रुपये का धोखाधड़ीपूर्ण भुगतान करने का भी आरोप लगाया गया था। डॉ. बी.पी. सिंह वित्तीय अनियमितताओं के लिए उन्हें दोषी ठहराने पर तुले हुए थे। वे मामले को सुलझाने के लिए डॉ. बी.पी. सिंह के घर भी गये, लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ। उन्होंने डॉ. बी.पी. सिंह द्वारा उनके साथ किए गए दुर्व्यवहार की बात अपने सहयोगी श्री राम कृष्ण वर्मा तक सीमित रखी, जिन्होंने उन्हें आश्वासन दिया कि वे डॉ. बी.पी. सिंह से छुटकारा दिलाएंगे, जैसा कि डॉ. वी.के. आर्य के मामले में किया गया था।

17. उत्तर प्रदेश पुलिस की एसटीएफ, लखनऊ दोनों सीएमओ की हत्या के मामलों को सुलझाने के लिए लखनऊ पुलिस के साथ मिलकर काम कर रही थी। दिनांक 17.06.2011 को एसटीएफ, लखनऊ ने डॉ. बी.पी. सिंह की हत्या में संलिप्तता के कारण तीन अभियुक्तों, राम कृष्ण वर्मा, आनंद प्रकाश तिवारी और विनोद शर्मा को गिरफ्तार किया। पूछताछ के दौरान तीनों ने एसटीएफ के समक्ष स्वीकार किया कि दोनों सीएमओ की हत्या डा. वाई.एस. सचान के इशारे पर की गई थी और उसके बाद कैबिनेट सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार ने 17.06.2011 की शाम को एक प्रेस कॉन्फ्रेंस आयोजित कर कहा कि पुलिस जांच के अनुसार दोनों सीएमओ (डा. वी. के. आर्य और डा. बी. पी. सिंह) की हत्या डा. वाई. एस. सचान के इशारे पर की गई थी। उक्त सम्मेलन को इलेक्ट्रॉनिक और प्रिंट मीडिया दोनों द्वारा व्यापक कवरेज दी गई।

18. ऐसा कहा गया है कि दिनांक 21.06.2011 को दर्ज किए गए डॉ वाई.एस. सचान के पुलिस बयान के अनुसार, डॉ वाई.एस. सचान के मित्र राम कृष्ण वर्मा ने उन्हें आनंद प्रकाश तिवारी से मिलवाया था। आनंद प्रकाश तिवारी को डॉ. बी.पी. सिंह की हत्या के लिए 7 लाख रुपये की पेशकश की गई थी। आनंद प्रकाश तिवारी को इस काम के लिए 50,000/- रुपये एडवांस दिए गए थे। डॉ वाई.एस. सचान आनंद प्रकाश तिवारी को अपने दफ्तर ले गए और उन्हें अपना लक्ष्य यानी डॉ बी.पी. सिंह दिखाया। उन्होंने आनंद प्रकाश तिवारी को डॉ. बी.पी. सिंह का आवासीय पता भी उपलब्ध कराया और अपना घर भी दिखाया। डॉ. वाई.एस. सचान रणनीति बनाने के लिए अपने सहयोगियों से फोन पर बात नहीं कर रहे थे, बल्कि राम कृष्ण वर्मा के माध्यम से या व्यक्तिगत रूप से रूपरेखा बता रहे थे। दिनांक 02.04.2011 की सुबह आनन्द प्रकाश तिवारी डॉ. बी.पी. सिंह की हत्या करने के बाद बची हुई रकम लेने उनके पास आया। आनन्द प्रकाश तिवारी ने उन्हें अपराध में प्रयुक्त पिस्तौल सौंप दी, जिसे डा. वाई.एस. सचान ने अपने कार्यालय में छिपा लिया था और पुलिस को बरामद कराने के लिए तैयार थे।

19. डॉ. वाई.एस. सचान की मृत्यु के संबंध में अपनी जांच में सीबीआई ने पाया कि 22.06.2011 को शाम को जेल बंद करते समय डॉ. वाई.एस. सचान गायब पाए गए। तलाशी लेने पर रात करीब 20.15 बजे उसका शव रहस्यमय परिस्थितियों में जेल अस्पताल के निर्माणाधीन माइनर ऑपरेशन थियेटर के प्रथम तल पर एक अप्रयुक्त शौचालय में मिला। उसके शरीर पर कट के निशान थे और उसकी गर्दन में चमड़े की बेल्ट बंधी हुई थी। बेल्ट का बकल वाला सिरा शौचालय के वेंटिलेटर में उलझा हुआ पाया गया। शव को शौचालय से बाहर निकालकर जेल अस्पताल के डॉक्टर द्वारा जांच के लिए पहली मंजिल पर गलियारे में रखा गया। जांच के बाद डॉ. वी.वी. त्रिपाठी ने करीब 20.30 बजे उन्हें मृत घोषित कर दिया। डॉ. वाई.एस. सचान की मृत्यु की सूचना गोसाईगंज, लखनऊ के थाना प्रभारी को दी गई तथा उसी दिन मोहनलालगंज के तहसीलदार श्री जितेन्द्र श्रीवास्तव द्वारा जांच की गई। जांच कार्यवाही दिनांक 22.06.2011 को 23:15 बजे से दिनांक 23.06.2011 को 01:30 बजे तक संचालित की गई। जांच की कार्यवाही पूरी होने के बाद एफएसएल टीम, जिसमें जीवविज्ञान, सीरोलॉजी, भौतिकी, बैलिस्टिक्स, फोटोग्राफी के विशेषज्ञ और उनके सहायक कर्मचारी शामिल थे, घटनास्थल पर पहुंचे और

खोजी कुत्तों को भी काम पर लगाया गया। दिनांक 22/23.06.2011 की रात्रि में एफ.एस.एल., लखनऊ के विशेषज्ञों द्वारा घटनास्थल एवं शव की फोटोग्राफी एवं वीडियो रिकार्डिंग की गई।

20. शव परीक्षण के लिए डॉक्टरों का एक पैनल गठित किया गया। पोस्टमार्टम रिपोर्ट के अनुसार, डॉ. वाई.एस. सचान के शरीर पर 8 घाव और गर्दन पर एक निशान था। मौत का कारण सदमे और रक्तस्राव बताया गया।

21. एफएसएल ने 22.06.2011 और 23.06.2011 को घटनास्थल के निरीक्षण के संबंध में दिनांक 18.07.2011 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की और एफएसएल रिपोर्ट के अनुसार मृतक के गले में एक चमड़े की बेल्ट गाँठ से बंधी हुई पाई गई, शौचालय के फर्श पर खून फैला हुआ था और जम गया था। शौचालय के दरवाजे पर पानी जैसे तरल पदार्थ से आधी भरी एक प्लास्टिक की बोतल भी मिली, वेंटिलेटर की लोहे की छड़ पर खून पाया गया तथा संदिग्ध परिस्थितियों में एक आधा शेविंग ब्लेड भी बरामद किया गया।

22. डॉ. बी.एस. अरोड़ा, अतिरिक्त निदेशक और डॉ. एस.सी. मित्तल, संयुक्त निदेशक, राज्य फोरेंसिक मेडिसिन विशेषज्ञ, उत्तर प्रदेश सरकार ने अपनी रिपोर्ट दिनांक 22.07.2011 में कहा कि डॉ. वाई.एस. सचान की मृत्यु आत्महत्या का मामला नहीं लगती।

23. जांच के दौरान सीबीआई ने सीएफएसएल, सीबीआई, नई दिल्ली के विशेषज्ञों के साथ-साथ एम्स, नई दिल्ली के फोरेंसिक मेडिसिन और टॉक्सिकोलॉजी विभाग के प्रोफेसर और प्रमुख डॉ. टी.डी. डोगरा की सेवाएं लीं। विशेषज्ञों ने घटनास्थल से कुछ नमूने एकत्र किए और उस स्थान की तस्वीरें भी ली गईं। निरीक्षण के दौरान, किसी भी भौतिक सुराग/मौके का पता लगाने के लिए जेल अस्पताल परिसर की भी तलाशी ली गई, हालांकि, कोई भी आपत्तिजनक वस्तु नहीं मिली। डॉ. एम.एस. दहिया, उप निदेशक, एफएसएल, गांधीनगर, गुजरात ने भी घटनास्थल का निरीक्षण किया। जिला जेल, लखनऊ में लगे सीसीटीवी कैमरों की फुटेज को स्कैन/जांच किया गया ताकि किसी व्यक्ति या वाहन की आवाजाही का पता लगाया जा सके।

24. सीबीआई ने चोटों की प्रकृति और मृत्यु के कारण पर राय लेने के लिए एम्स, नई दिल्ली में विशेषज्ञों का एक मेडिकल बोर्ड गठित करने की मांग की। जांच के दौरान जब्त/बरामद दस्तावेजों के हस्तलेख विशेषज्ञों की विशेषज्ञ राय भी मांगी गई। संदिग्ध व्यक्तियों की पॉलीग्राफ जांच भी कराई गई।

25. एम्स, नई दिल्ली के मेडिकल बोर्ड की राय थी कि मृतक ने पहले आत्महत्या के ज्ञात स्थानों पर, जहां धमनियां और शिराएं स्थित हैं, अर्थात् कलाई, कोहनी, गर्दन और वंक्षण क्षेत्र में घाव करके खुद को मारने का प्रयास किया होगा। जो चोटें आईं, उनमें कोई धमनी या नस नहीं कटी, बल्कि सतही नसें कट गईं, जिनसे खून बह रहा था, लेकिन यह खून बहुत धीमी गति से बह रहा था। इसलिए, कुछ समय बाद, जब मृतक को एहसास हुआ कि चोटें उसे जल्दी नहीं मार रही हैं, तो उसने बेल्ट की मदद से खुद को फांसी लगाने का प्रयास किया होगा जिसमें वह सफल रहा था और इसलिए, इस मामले में मौत का तात्कालिक कारण चोटों से रक्तस्राव के साथ फांसी लगाने के परिणामस्वरूप दम घुटना था। यह अवलोकन एम्स, नई दिल्ली के डॉक्टरों के बोर्ड द्वारा पोस्टमार्टम रिपोर्ट, पोस्टमार्टम परीक्षा की वीडियो रिकॉर्डिंग तथा 22/23.06.2011 को

लिए गए शव और घटनास्थल के फोटोग्राफों का अवलोकन/परीक्षण करने के बाद किया गया। बोर्ड ने सीबीआई द्वारा तैयार किये गये प्रश्नों का विस्तार से उत्तर दिया जो सीबीआई की जांच रिपोर्ट का हिस्सा है।

26. सात जेल अधिकारियों और जेल अस्पताल में कार्यरत एक दोषी अजमत उल्लाह बेग की पॉलीग्राफ जांच की गई और उन्होंने डॉ. वाई.एस. सचान की हत्या से संबंधित किसी भी गड़बड़ी में अपनी संलिप्तता से इनकार किया तथा सीबीआई को किसी भी महत्वपूर्ण मामले में उनकी संलिप्तता नहीं मिली। सीबीआई ने साक्ष्यों और विशेषज्ञों की राय का विश्लेषण करने के बाद यह निष्कर्ष निकाला कि मृतक ने आत्महत्या की थी।

27. सीबीआई द्वारा सीआरपीसी की धारा 173(2) के तहत प्रस्तुत अंतिम/समापन रिपोर्ट में सीबीआई द्वारा विशेषज्ञों की मदद से की गई विस्तृत वैज्ञानिक जांच शामिल थी, जो कई पृष्ठों की है और उक्त विस्तृत वैज्ञानिक जांच के आधार पर, सीबीआई ने निष्कर्ष निकाला था कि डॉ. वाई.एस. सचान ने आत्महत्या की थी, और यह हत्या का मामला नहीं था। समापन रिपोर्ट में यह भी खुलासा किया जाएगा कि डॉ. वाई.एस. सचान की मृत्यु के संबंध में सीरोलॉजिकल शव परीक्षण करने वाले विशेषज्ञों ने पाया था कि 18.06.2011 की अखबारों की रिपोर्ट देखने के बाद डॉ. वाई.एस. सचान अत्यधिक दबाव/तनाव में थे, जिसमें दो सीएमओ की हत्या में उनकी संलिप्तता की व्यापक रूप से रिपोर्ट की गई थी। 18.06.2011 के बाद से वह बहुत परेशान था और खाना खाने में उसकी रुचि कम हो गई थी। उसका रक्तचाप बहुत अधिक था। उन्होंने एक विशिष्ट सुसाइड नोट लिखा था, जो घटना के दिन उनके सामान के बीच से बरामद हुआ था, जिससे पता चलता है कि यह उनके हाथ से लिखा गया था। चोटें स्वयं द्वारा लगाई गई प्रतीत होती हैं, विशेष रूप से स्पष्ट घावों के अभाव में।

28. सीबीआई ने जिला कारागार, लखनऊ में जेल को ताला लगाने और खोलने की प्रक्रिया/अभ्यास तथा कैदियों और जेल कर्मचारियों की गिनती और 22.06.2011 को इस संबंध में वास्तविक घटनाओं की भी जांच की।

29. रिपोर्ट में उल्लेख किया गया है कि डॉ. वाई.एस. सचान 22.06.2011 को प्रातः 6 बजे जेल का ताला खुलने के समय वार्ड संख्या 2 में मौजूद थे। वह सुबह जल्दी उठकर मॉर्निंग वॉक पर जाता था। घटना के दिन उसे सुबह वार्ड में सह-कैदियों फुरकान, रामगोपाल वर्मा और कैलाश ने देखा था। कैदी श्रीपाल वर्मा ने डॉ. वाई.एस. सचान को हाथ में पानी की बोतल लेकर वार्ड नंबर 2 से बाहर जाते देखा था। कैदी राम पाल वर्मा, जिसे वार्ड नंबर 2 में बेड नंबर 14 आवंटित किया गया था, ने डॉ. वाई.एस. सचान को अपना मुँह धोते/साफ करते देखा था। दिनांक 22.06.2011 की सुबह करीब 7.30 बजे उन्होंने बोतल में पानी भरा। डॉ. वाई.एस. सचान पैंट और शर्ट पहने हुए थे।

30. शाम को जेल अस्पताल की गिनती और ताला लगाने के दौरान, जब हेड वार्डर, श्री बाबू राम दुबे द्वारा कैदियों की संख्या नियंत्रण कक्ष को बताई गई, तो ड्यूटी पर मौजूद चीफ हेड वार्डर ने जेल अस्पताल में एक कैदी की कमी की विसंगति का पता लगाया। कंट्रोल रूम ने इसकी सूचना श्री बाबू राम दुबे को दी और उन्हें कंट्रोल रूम में बुलाया। जब श्री बाबू राम दुबे ने डॉ. वाई.एस. सचान के रिमांड पर जाने के बारे में बताया तो उनसे डॉ. वाई.एस. सचान को रिमांड पर भेजने के लिए डिप्टी जेलर, अंडर ट्रायल

अनुभाग के कार्यालय द्वारा जारी की गई पर्ची के बारे में पूछा गया। तलाशी लेने पर उक्त पर्ची उपलब्ध नहीं पाई गई। जब इस तथ्य की जांच डिप्टी जेलर (अंडर ट्रायल) के कार्यालय व मुख्य द्वार से की गई तो पुष्टि हुई कि डॉ. वाई.एस. सचान को 22.06.2011 को रिमांड पर नहीं भेजा गया था। इसके बाद डॉ. वाई.एस. सचान की तलाश शुरू की गई।

31. जेल अस्पताल परिसर में डॉ. वाई.एस. सचान की खोज करते हुए हेड वार्डर श्री बाबू राम दुबे जेल अस्पताल की पहली मंजिल पर गए तो उन्होंने ऑपरेशन थियेटर से जुड़े अप्रयुक्त शौचालय का दरवाजा आंशिक रूप से खुला पाया। उसने दरवाजा धक्का देकर खोला तो शौचालय के कमोड के ऊपर एक व्यक्ति बैठा हुआ था। जेल अस्पताल की पहली मंजिल पर बिजली की आपूर्ति नहीं थी, लेकिन ऑपरेशन थियेटर और शौचालय के वेंटिलेटर की खिड़कियों के शीशों से रोशनी आने के कारण दृश्यता थी। हेड वार्डर बाबू राम दुबे ने पहली मंजिल से चिल्लाकर बताया कि डॉ. वाई.एस. सचान शौचालय में पाए गए हैं। श्री दुबे की चीख सुनकर श्री भीमसेन मुकुंद, वार्डर दान सिंह और अन्य लोगों के साथ जेल अस्पताल की पहली मंजिल पर पहुंचे।

32. प्रथम मंजिल पर पहुंचकर श्री भीमसेन मुकुंद ने शौचालय के अंदर जाकर जांच की। डॉ. वाई.एस. सचान को शौचालय से बाहर निकाला गया और उनके शव को गलियारे में रख दिया गया। डॉ. वी.वी. त्रिपाठी ने जांच के बाद उसे मृत घोषित कर दिया। इसकी सूचना फोन पर श्री वी.के. गुप्ता, आई.जी.पी. (जेल प्रशासन एवं सुधार सेवाएं) को दी गई। श्री अनिल सागर, जिला मजिस्ट्रेट, लखनऊ; श्री डी.के. ठाकुर, डीआईजी, लखनऊ; एफएसएल, लखनऊ और श्री एस.एच.एम. रिजवी, वरिष्ठ जेल अधीक्षक द्वारा पुलिस स्टेशन गोसाईगंज के स्टेशन अधिकारी को एक पत्र भेजा गया। खोजी कुत्ते मौके पर पहुंचे।

33. सूचना मिलने पर श्री वी.के. गुप्ता, आईजीपी (जेल प्रशासन एवं सुधार सेवाएं); श्री अनिल सागर, जिला मजिस्ट्रेट, लखनऊ; श्री डी.के. ठाकुर, डीआइजी, लखनऊ; एफएसएल के विशेषज्ञ व अन्य लोग मौके पर पहुंचे और घटनास्थल का निरीक्षण किया। जाँच की कार्यवाही का संचालन श्री जीतेन्द्र श्रीवास्तव, तहसीलदार, मोहनलालगंज द्वारा किया गया। श्री वी.के. गुप्ता ने वार्ड नंबर 2 के कैदियों से पूछताछ की। इसके बाद उन्होंने डॉ. वाई.एस. सचान के बिस्तर के किनारे स्टील रैक पर पड़े उनके निजी सामान की तलाशी ली। उन्होंने डॉ. वाई.एस. सचान के सामान से एक नोट/कागज निकाला और उसे पढ़ने के बाद अपनी जेब में रख लिया। इसके बाद, श्री वी.के. गुप्ता पुनः प्रथम तल पर गए और फोन पर किसी को उक्त नोट की विषय-वस्तु पढ़कर सुनाई। नोट की कुछ बातें श्री जे.पी. श्रीवास्तव ने भी सुनीं। परीक्षण के दौरान, श्री जे.पी. श्रीवास्तव ने कहा कि उन्होंने सुना था कि "मुझे अपने परिवार से कोई शिकायत नहीं है, ना ही कारागार के अधिकारियो से"।

34. श्री वी.के. गुप्ता ने दिनांक 22/23.06.2011 की मध्य रात्रि में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया को डा. वाई.एस. सचान की मृत्यु के संबंध में एक संक्षिप्त साक्षात्कार दिया और उन्होंने बताया कि जो नोट/कागज मिला है, उसे सुसाइड नोट कहा जा सकता है। हाथ से लिखी कोई चीज मिली है, लेकिन जब तक हस्तलिपि की जांच नहीं हो जाती और अन्य बातों की पुष्टि नहीं हो जाती, तब तक इस बारे में कुछ भी स्पष्ट नहीं कहा जा सकता।

35. डॉ. बी.पी. सिंह की हत्या के मामले को सुलझाने के लिए लखनऊ पुलिस पर भारी दबाव था, इसलिए विभिन्न टीमों का गठन कर उन्हें मामले को सुलझाने का काम सौंपा गया। उक्त उद्देश्य के लिए तत्कालीन पुलिस महानिरीक्षक, लखनऊ जोन, लखनऊ के पर्यवेक्षण में निरीक्षक श्री अनिल सिंह एवं डी.के. शाही तथा उपनिरीक्षक, के.एन. सिंह की एक टीम भी गठित की गई थी। डॉ. वाई.एस. सचान को उपनिरीक्षक श्री शहजाउर रहीम द्वारा द्वितीय एनआरएचएम घोटाले (थाना वजीरगंज में दर्ज मुकदमा अपराध संख्या 115/2011) में दिनांक 10.06.2011 की सुबह 24 घंटे के लिए रिमांड पर लिया गया था। 10/11/06/2011 की मध्य रात्रि में उन्हें पुलिस स्टेशन चिनहट ले जाया गया, जहां इंस्पेक्टर श्री अनिल सिंह और अन्य लोगों की टीम द्वारा उनसे पूछताछ की गई। दिनांक 11.06.2011 की सुबह उसे वापस जिला कारागार, लखनऊ में भेज दिया गया, जहां निरीक्षक श्री अनिल सिंह और उपनिरीक्षक श्री के.एन. सिंह द्वारा उससे पुनः पूछताछ की गई।

36. पूछताछ के दौरान, डॉ वाई.एस. सचान ने डॉ ए.के. शुक्ला को दिए जाने वाले एक हस्तलिखित नोट/पत्र को इंस्पेक्टर श्री अनिल सिंह को दिया, जिन्होंने उक्त पत्र को लखनऊ जोन के तत्कालीन पुलिस महानिरीक्षक श्री सुबेह कुमार सिंह को सौंप दिया। जांच के दौरान उक्त पत्र श्री सुबेश कुमार सिंह द्वारा सीबीआई के समक्ष प्रस्तुत किया गया। डॉ वाई.एस. सचान द्वारा डॉ ए.के. शुक्ला को संबोधित दिनांक 11.06.2011 को लिखा गया पत्र इस प्रकार होगा: "सीएमओ डॉ. ए.के. शुक्ला, मैं जेल में बहुत परेशान हो गया हूं। मेरे परिवार की हालत खराब है। आपने मेरी कुछ मदद नहीं किया। अगर आप ने मदद नहीं की तो अगली रिमांड की तारीख पर पुलिस और मीडिया को बता दूंगा कि दोनों सीएमओ की हत्या आपने करवाया है। मेरे परिवार की सुरक्षा का ध्यान रखिएगा। आपका"।

37. उक्त नोट से यह संकेत मिलता है कि डॉ. वाई.एस. सचान और डॉ. ए.के. शुक्ला दोनों सीएमओ की हत्या में शामिल थे।

38. सीबीआई ने विशेषज्ञों की राय सहित सभी कोणों से गहन, विस्तृत और वैज्ञानिक जांच के बाद निष्कर्ष निकाला कि दिनांक 22.06.2011 को जेल अस्पताल में डॉ. वाई.एस. सचान की मृत्यु को हत्या बताने वाला कोई साक्ष्य रिकॉर्ड में नहीं आया तथा जेल अस्पताल के शौचालय की पहली मंजिल पर किसी दूसरे व्यक्ति की उपस्थिति का कोई साक्ष्य नहीं मिल सका। जांच के दौरान एकत्र किए गए साक्ष्यों में गवाहों के बयान, एम्स, नई दिल्ली के निदेशक मंडल की विशेषज्ञ राय, सीएफएसएल विशेषज्ञों की रिपोर्टें जिनमें जैविक रिपोर्ट, भौतिकी, फिंगरप्रिंट, हस्तलेख विशेषज्ञ, रासायनिक परीक्षक और फोरेंसिक मनोवैज्ञानिक शामिल थे, सभी ने संकेत दिया कि डॉ वाई.एस. सचान ने आत्महत्या की थी।

39. जांच के दौरान सामने आए साक्ष्यों में परिस्थितिजन्य साक्ष्य भी शामिल थे, जिनसे पता चला कि डॉ. वाई.एस. सचान सीएमओ की हत्या के मामलों में अपनी संलिप्तता के खुलासे के बाद बेहद परेशान और तनावग्रस्त थे और उन्होंने भोजन करना भी बंद कर दिया था। एम्स, नई दिल्ली के डॉक्टरों के बोर्ड की राय थी कि डॉ. वाई.एस. सचान के मामले में मौत का कारण कई आत्मघाती घावों के साथ-साथ मृत्यु-पूर्व फांसी थी, जिसकी पुष्टि मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्यों से भी हुई, जो जांच के दौरान रिकॉर्ड पर आए।

तत्कालीन वार्डर पहेंद्र सिंह और तत्कालीन हेड वार्डर बाबू राम दुबे की ओर से कैदियों की वास्तविक गिनती करने और सही प्रविष्टियां रखने में कुछ चूक हुई थी, साथ ही तत्कालीन आईजीपी (जेल प्रशासन और सुधार सेवाएं) श्री वी.के. गुप्ता की ओर से डॉ वाई.एस. सचान द्वारा लिखे गए नोट को रिकॉर्ड में लाने और उसे गायब करने में विफलता हुई थी, जिसके मद्देनजर सीबीआई ने उनके खिलाफ उचित विभागीय कार्रवाई करने के लिए उत्तर प्रदेश सरकार के साथ मामला उठाया था।

40. सीबीआई ने 27.09.2012 को धारा 173 (2) सीआरपीसी के तहत समापन रिपोर्ट दायर की, जिसके बाद यह निष्कर्ष निकला कि डॉ. वाई.एस. सचान की मृत्यु हत्या नहीं, बल्कि आत्महत्या थी। शिकायतकर्ता ने विरोध याचिका दायर कर जांच में विभिन्न खामियों का आरोप लगाया तथा आगे जांच की मांग की।

41. सीबीआई ने विरोध याचिका पर जवाब दाखिल किया, तथापि, विद्वान मजिस्ट्रेट ने 22.02.2013 के आदेश द्वारा सीबीआई को अपराध की आगे की जांच के निर्देश दिए।

42. सीबीआई ने आगे की जांच की और विद्वान मजिस्ट्रेट के आदेश में उजागर किए गए सभी पहलुओं के साथ-साथ शिकायतकर्ता द्वारा उक्त विरोध याचिका में लगाए गए प्रत्येक आरोप की जांच करने के बाद एक पूरक समापन रिपोर्ट अर्थात, (i) चोटें खुद से नहीं लगी थीं (ii) ब्लेड की बरामदगी संदिग्ध (iii) एम्स के फोरेंसिक मेडिसिन विशेषज्ञों के बोर्ड के पैनल और पोस्टमॉर्टम जांच करने वाले डॉक्टरों के पैनल के बीच मतभेद (iv) बेल्ट पर उचित जांच नहीं (v) फार्मासिस्ट से पुलिस द्वारा लिए गए सर्जिकल चाकू पर कोई रिपोर्ट नहीं (vi) अनिल कुमार सिंह और याचिकाकर्ता, सुबेश कुमार सिंह के धारा 161 सीआरपीसी के तहत बयान, जो संबंधित नोट के लिए दर्ज किए गए थे (vii) सीबीआई का दृष्टिकोण आत्महत्या के मामले के रूप में निष्कर्ष की ओर था (viii) सीजेएम जांच रिपोर्ट; और (ix) विशेषज्ञों के बोर्ड (एम्स) की दूसरी राय दायर की।

43. शिकायतकर्ता पूरक समापन रिपोर्ट से भी संतुष्ट नहीं था और उसने डॉ. वाई.एस. सचान की हत्या और साक्ष्यों को गायब करने के मामले में मुकदमा चलाने के लिए सात आरोपियों (याचिकाकर्ताओं) को बुलाने के लिए फिर से विरोध याचिका दायर की।

44. सीबीआई ने विरोध याचिका पर जवाब दाखिल किया।

45. विद्वान मजिस्ट्रेट ने दिनांक 19.11.2019 के आदेश के तहत विरोध याचिका को शिकायत मामला मानते हुए दूसरी अंतिम रिपोर्ट को खारिज कर दिया था। शिकायतकर्ता मालती सचान का बयान धारा 200 सीआरपीसी के तहत दर्ज किया गया और छह गवाहों के बयान धारा 202 सीआरपीसी के तहत दर्ज किए गए। इसके बाद, उक्त आदेश पारित किया गया, जिसमें याचिकाकर्ताओं को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 सपठित धारा 120-बी के तहत मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया गया।

46. याचिकाकर्ता पूर्व सरकारी कर्मचारी हैं। धारा 197 सीआरपीसी के तहत कोई पूर्व मंजूरी नहीं है। धारा 197 सीआरपीसी के तहत अनिवार्य मंजूरी का अभाव, अन्यथा आक्षेपित आदेश को अमान्य कर देगा। संक्षेप में, आरोप साक्ष्यों को गायब करने का है।

47. (2020) 7 एससीसी 695 (डी. देवराज बनाम ओवैस सबीर हुसैन) मामले में, पुलिस अधिकारी (अपराध का आरोपी) के संबंध में, कर्तव्यों का

निर्वहन करते समय, पैराग्राफ 65 से 75 में आदेश दिया गया है, जो इस प्रकार है: -

"65. कर्नाटक पुलिस अधिनियम की धारा 170 के साथ दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के अंतर्गत किसी पुलिस अधिकारी द्वारा कथित रूप से किए गए अपराध पर विचार करने और/या उसका संज्ञान लेने के लिए मंजूरी की आवश्यकता से संबंधित कानून, इस न्यायालय द्वारा, अन्य बातों के साथ-साथ, ऊपर उल्लिखित अपने निर्णयों द्वारा अच्छी तरह से स्थापित किया गया है।

66. किसी पुलिस अधिकारी के विरुद्ध उसके आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन से संबंधित किसी भी कृत्य के लिए मुकदमा चलाने के लिए सरकार की मंजूरी आवश्यक है, ताकि पुलिस अधिकारी को उत्पीड़नकारी, प्रतिशोधात्मक, प्रतिशोधात्मक और तुच्छ कार्यवाही का सामना करने से बचाया जा सके। अभियोजन के लिए सरकार से मंजूरी की आवश्यकता, एक ईमानदार पुलिस अधिकारी को आपराधिक कार्रवाई शुरू करने से प्रतिशोधात्मक प्रतिशोध के डर के बिना, कुशलतापूर्वक अपने आधिकारिक कर्तव्यों का निर्वहन करने का विश्वास देगी, जिससे उन्हें कर्नाटक पुलिस अधिनियम की धारा 170 के साथ दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के तहत संरक्षण प्राप्त होगा। साथ ही, यदि पुलिसकर्मी ने कोई गलत कार्य किया है, जो आपराधिक अपराध है और जिसके लिए उसे अभियोजन का पात्र होना पड़ता है, तो उपयुक्त सरकार की मंजूरी से उसके खिलाफ मुकदमा चलाया जा सकता है।

67. किसी पुलिस अधिकारी द्वारा किया गया प्रत्येक अपराध दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 तथा कर्नाटक पुलिस अधिनियम की धारा 170 के अंतर्गत नहीं आता। कर्नाटक पुलिस अधिनियम की धारा 170 के साथ दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 के तहत दी गई सुरक्षा की अपनी सीमाएं हैं। संरक्षण केवल तभी उपलब्ध है जब लोक सेवक द्वारा किया गया कथित कार्य उसके आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन से युक्तिसंगत रूप से जुड़ा हो और आधिकारिक कर्तव्य आपत्तिजनक कार्य को छिपाने का मात्र एक तरीका न हो। पुलिस अधिकारी के कर्तव्य के दायरे से बाहर किए गए अपराध के लिए निश्चित रूप

से मंजूरी की आवश्यकता नहीं होगी। उदाहरण के लिए, घरेलू सहायिका पर हमला करने या घरेलू हिंसा में लिप्त होने वाले पुलिसकर्मी को निश्चित रूप से सुरक्षा का हकदार नहीं माना जाएगा। हालांकि, यदि कोई कार्य किसी दर्ज आपराधिक मामले की जांच के आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन से जुड़ा है, तो वह कार्य निश्चित रूप से कर्तव्य के रंग में आता है, भले ही वह कार्य कितना भी अवैध क्यों न हो।

68. यदि किसी पुलिसकर्मी ने अपने आधिकारिक कर्तव्य का पालन करते हुए अपने कर्तव्य से अधिक कार्य किया है, लेकिन उस कार्य और आधिकारिक कर्तव्य के पालन के बीच उचित संबंध है, तो यह तथ्य कि आरोपित कार्य अपने कर्तव्य से अधिक है, पुलिसकर्मी को उसके विरुद्ध आपराधिक कार्रवाई शुरू करने के लिए सरकारी मंजूरी के संरक्षण से वंचित करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं होगा।

69. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 तथा कर्नाटक पुलिस अधिनियम की धारा 170 की भाषा और स्वरूप से यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि अनुमति की आवश्यकता न केवल आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में किए गए कार्यों के लिए है, बल्कि आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में किए गए कथित कार्य और/या ऐसे कर्तव्य या प्राधिकार के तहत या उससे अधिक आड़ में किए गए कार्य के लिए भी अनुमति की आवश्यकता है।

70. यह तय करने के लिए कि क्या मंजूरी आवश्यक है, परीक्षण यह है कि क्या कार्य आधिकारिक कर्तव्य से पूरी तरह से असंबद्ध है या क्या आधिकारिक कर्तव्य के साथ कोई उचित संबंध है। किसी पुलिसकर्मी या किसी अन्य लोक सेवक के ऐसे कार्य के मामले में, जो उसके आधिकारिक कर्तव्य से संबंधित न हो, मंजूरी का प्रश्न ही नहीं उठता। हालांकि, यदि पुलिसकर्मी के विरुद्ध आरोपित कृत्य उसके आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन से उचित रूप से जुड़ा हुआ है, तो इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि पुलिसकर्मी ने अपनी शक्तियों के दायरे का उल्लंघन किया है और/या कानून की परिधि से बाहर जाकर काम किया है।

71. यदि पुलिसकर्मी के विरुद्ध दर्ज की जाने वाली

शिकायत में आरोपित कृत्य किसी आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन से उचित रूप से जुड़ा हुआ है, तो उस पर तब तक संज्ञान नहीं लिया जा सकता जब तक कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 और/या कर्नाटक पुलिस अधिनियम की धारा 170 के अंतर्गत समुचित सरकार की अपेक्षित मंजूरी प्राप्त न हो जाए।

72. इस प्रश्न पर कि किस स्तर पर परीक्षण न्यायालय को यह जांच करनी है कि क्या मंजूरी प्राप्त कर ली गई है और यदि नहीं, तो क्या आपराधिक कार्यवाही को प्रारम्भ में ही रोक दिया जाना चाहिए, इस न्यायालय के विभिन्न निर्णय हैं।

73. जबकि इस न्यायालय ने डी.टी. विरुपाक्षप्पा [डी.टी. विरुपाक्षप्पा बनाम सी. सुभाष, (2015) 12 एससीसी 231: (2016) 1 एससीसी (क्रि) 82] में अवधारित किया है कि उच्च न्यायालय ने माताजोग डोबे मामले में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, एक शिकायत का संज्ञान लेने वाले निचली अदालत के आदेश को रद्द न करने में गलती की थी [डी.टी. विरुपाक्षप्पा बनाम सी. सुभाष, 2013 एससीसी ऑनलाइन कर 10774] [माताजोग डोबे बनाम एच.सी. भारी, एआईआर 1956 एससी 44: 1956 क्रि एलजे 140] इस न्यायालय ने अवधारित किया है कि यह हमेशा आवश्यक नहीं है कि शिकायत दर्ज होते ही और उसमें निहित आरोपों के आधार पर धारा 197 के तहत मंजूरी की आवश्यकता पर विचार किया जाए। शिकायतकर्ता यह खुलासा नहीं कर सकता कि अपराध का गठन करने वाला कार्य सरकारी कर्तव्य के निर्वहन में और/या कर्तव्य के रंग में किया गया था या किए जाने का प्रकल्पित था।

हालाँकि, बाद में मुकदमे के दौरान या पुलिस या न्यायिक जांच के दौरान प्रकाश में आने वाले तथ्य मंजूरी की आवश्यकता को स्थापित कर सकते हैं। इस प्रकार, मंजूरी आवश्यक है या नहीं, इसका निर्धारण कार्यवाही के किसी भी स्तर पर किया जा सकता है।

74. यह सर्वविदित है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत आवेदन, उन कार्यवाहियों को रद्द करने के लिए स्वीकार्य है जो मंजूरी के अभाव में गलत हैं, तुच्छ हैं या

अदालती प्रक्रिया का दुरुपयोग करती हैं। यदि शिकायत के आधार पर आरोपित कृत्य का सरकारी कर्तव्य के साथ उचित संबंध प्रतीत होता है, जहां आपराधिक कार्यवाही स्पष्ट रूप से दुर्भावना से प्रेरित है और गुप्त उद्देश्य से शुरू की गई है, तो न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए कार्यवाही को रद्द करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत शक्ति का प्रयोग करना होगा।

75. यह मानने का भी कोई कारण नहीं है कि अभियोजन के मामले में मंजूरी रोक ली जाएगी, जहां शिकायत में सार हो और किसी भी मामले में, यदि मंजूरी देने से इनकार कर दिया जाता है, तो पीड़ित शिकायतकर्ता कानून का सहारा ले सकता है। पुनरावृत्ति की कीमत पर, यह दोहराया जाता है कि वर्तमान मामले के अभिलेखों से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि शिकायतकर्ता ने पुलिस द्वारा ज्यादती का आरोप लगाया है, जब प्रतिवादी अपराध संख्या 12/2012 के संबंध में जांच के दौरान हिरासत में था। स्पष्टतः, शिकायत कर्तव्य के नाम पर किए गए कार्य से संबंधित है।"

48. विद्वान मजिस्ट्रेट ने समन आदेश जारी करते समय, धारा 302 सपठित धारा 120-बी आईपीसी के तहत याचिकाकर्ताओं को समन करने के कारणों को दर्ज करने में विफल रहे हैं। आक्षेपित आदेश में न तो विवेक का प्रयोग किया गया है और न ही यह प्रत्येक पहलू और आरोपों पर सीबीआई द्वारा प्रस्तुत जांच रिपोर्ट से संबंधित है।

49. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, सीबीआई ने पहली क्लोजर रिपोर्ट दायर की थी, और उसके बाद, विद्वान मजिस्ट्रेट के निर्देशन में उजागर किए गए बिंदुओं के अलावा आगे की जांच की और फिर से क्लोजर रिपोर्ट दायर की थी। हालाँकि, विद्वान मजिस्ट्रेट ने दोनों क्लोजर रिपोर्ट को खारिज कर दिया और विरोध याचिका को 'शिकायत मामला' माना।

50. विद्वान मजिस्ट्रेट को शिकायत के आधार पर संज्ञान लेते समय पुलिस रिपोर्ट पर संज्ञान लेने की तुलना में अधिक सतर्क और सावधान रहना होगा, क्योंकि बाद वाले परिदृश्य में मजिस्ट्रेट को पुलिस रिपोर्ट का लाभ प्राप्त होता है, जिसे जांच एजेंसी द्वारा साक्ष्य और सामग्री एकत्र करने के बाद दायर किया जाएगा। इस मामले में मजिस्ट्रेट को पुलिस रिपोर्ट का लाभ नहीं मिला, जो शिकायतकर्ता के सिद्धांत के विपरीत है। विद्वान मजिस्ट्रेट का यह कर्तव्य था कि वह शिकायत के आरोपों पर व्यक्तियों को आईपीसी की धारा 302 के तहत अपराध के लिए मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाते समय अधिक सावधान रहे। सीबीआई द्वारा प्रस्तुत जांच रिपोर्ट के निष्कर्ष को खारिज करने के लिए मजबूत कारण और पर्याप्त सामग्री होनी चाहिए। हालांकि, सीआरपीसी की धारा 200 और 202 के तहत दर्ज शिकायतकर्ता और गवाहों के बयान से

पता चलता है कि वे उन्हीं आरोपों के संबंध में हैं जिनकी सीबीआई द्वारा गहन, निष्पक्ष, उचित और वैज्ञानिक तरीके से जांच की गई थी और शिकायत के सिद्धांत में कोई तथ्य नहीं पाया गया था। कोई नया साक्ष्य और सामग्री रिकॉर्ड पर नहीं लाई गई है। आईपीसी की धारा 302 के तहत अपराध के लिए संज्ञान लेने के लिए विद्वान मजिस्ट्रेट के सामने कुछ भी नया नहीं था।

51. ये आरोप सेवानिवृत्त/सेवारत सार्वजनिक/पुलिस अधिकारियों के खिलाफ हैं, जो पुलिस द्वारा जांच के दौरान अपने आधिकारिक कर्तव्य का निर्वहन कर रहे थे। मजिस्ट्रेट को शिकायतकर्ता के अनुमान पर कार्य नहीं करना चाहिए था। शिकायतकर्ता सीबीआई की जांच में खामियों के नए सिद्धांत से ग्रस्त है। किसी व्यक्ति को समन करने से पहले पुख्ता सबूत और ठोस कारण होना जरूरी है। किसी व्यक्ति को आपराधिक मामले में सुनवाई के लिए बुलाना एक गंभीर मामला है। वर्तमान मामले में शिकायत से भारतीय दंड संहिता की धारा 302 और 120-बी के तहत अपराध का खुलासा नहीं होगा।

52. (1998) 5 एससीसी 749 (पेप्सी फूड्स लिमिटेड और अन्य बनाम विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट और अन्य) मामले के पैराग्राफ-28 में निम्नानुसार अवधारित किया गया है:-

> "28. आपराधिक मामले में अभियुक्त को तलब करना एक गंभीर मामला है। आपराधिक कानून को सामान्य रूप से लागू नहीं किया जा सकता। ऐसा नहीं है कि आपराधिक कानून लागू करने के लिए शिकायतकर्ता को अपनी शिकायत में लगाए गए आरोपों के समर्थन में केवल दो गवाह ही लाने होते हैं। अभियुक्त को सम्मन करने वाले मजिस्ट्रेट के आदेश में यह प्रतिबिंबित होना चाहिए कि उन्होंने मामले के तथ्यों और उस पर लागू कानून पर अपना ध्यान केंद्रित किया है। उसे शिकायत में लगाए गए आरोपों की प्रकृति तथा उनके समर्थन में मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्यों की जांच करनी होगी और यह देखना होगा कि क्या यह शिकायतकर्ता के लिए आरोपी पर आरोप सिद्ध करने में सफल होने के लिए पर्याप्त है। ऐसा नहीं है कि अभियुक्त को बुलाने से पहले प्रारंभिक साक्ष्य दर्ज करने के समय मजिस्ट्रेट मूक दर्शक होता है। मजिस्ट्रेट को रिकार्ड में लाए गए साक्ष्यों की सावधानीपूर्वक जांच करनी होती है और वह स्वयं भी शिकायतकर्ता और उसके गवाहों से प्रश्न पूछ सकता है ताकि आरोपों की सत्यता का पता लगाया जा सके और फिर जांच की जा सके कि क्या प्रथम दृष्टया सभी या किसी भी आरोपी द्वारा कोई अपराध किया गया है।"

53. (2015) 12 एससीसी 420 (महमूद उल रहमान बनाम खजीर मोहम्मद टुंडा और अन्य) के पैराग्राफ 21, 22 और 23 में निम्नानुसार अवधारित किया गया है:-

> *"21. सीआरपीसी की धारा 190(1)(बी) के तहत मजिस्ट्रेट को पुलिस रिपोर्ट का लाभ प्राप्त है और सीआरपीसी की धारा 190(1)(सी) के तहत उसे अपराध होने की जानकारी या ज्ञान है। लेकिन सीआरपीसी की धारा 190(1)(ए) के तहत, उसके पास केवल एक शिकायत है। इसलिए संहिता निर्दिष्ट करती है कि "तथ्यों की शिकायत जो ऐसे अपराध का गठन करती है"। इसलिए, अगर शिकायत में किसी अपराध का खुलासा नहीं होता है, तो मजिस्ट्रेट सीआरपीसी की धारा 190(1)(ए) के तहत संज्ञान नहीं लेंगे। शिकायत को बस खारिज कर दिया जाना चाहिए।*
>
> *22. सीआरपीसी की धारा 190(1)(ए) के तहत मजिस्ट्रेट द्वारा उठाए गए कदमों और उसके बाद सीआरपीसी की धारा 204 के तहत उठाए गए कदमों से यह प्रतिबिंबित होना चाहिए कि मजिस्ट्रेट ने तथ्यों और बयानों पर अपने विवेक का प्रयोग किया है और वह संतुष्ट है कि मामले में आगे बढ़ने के लिए आधार है, जिसके तहत उस व्यक्ति को अदालत के समक्ष उपस्थित होने के लिए कहा गया है जिसके खिलाफ कानून के उल्लंघन का आरोप लगाया गया है। कार्यवाही के लिए आधार पर संतुष्टि का अर्थ यह होगा कि शिकायत में आरोपित तथ्य एक अपराध का गठन करेंगे, और जब दर्ज किए गए बयानों के साथ विचार किया जाएगा, तो प्रथम दृष्टया, अभियुक्त को अदालत के समक्ष जवाबदेह बनाया जाएगा। इसमें कोई संदेह नहीं कि उस स्तर पर कोई औपचारिक आदेश या मौखिक आदेश पारित करने की आवश्यकता नहीं है। दंड प्रक्रिया संहिता के अनुसार, शिकायत खारिज होने पर सीआरपीसी की धारा 203 के तहत स्पष्ट आदेश पारित किया जाना आवश्यक है, तथा उसमें भी कारण केवल संक्षेप में बताना आवश्यक है। दूसरे शब्दों में, मजिस्ट्रेट को अपने समक्ष दायर प्रत्येक शिकायत का संज्ञान लेने तथा प्रक्रिया जारी करने में डाकघर की तरह काम नहीं करना है। मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश में पर्याप्त संकेत होना चाहिए कि वह इस बात से संतुष्ट है कि शिकायत*

में लगाए गए आरोप एक अपराध है और जब दर्ज किए गए बयानों और सीआरपीसी की धारा 202 के तहत जांच या जांच के परिणाम के साथ विचार किया जाता है, तो आरोपी आपराधिक अदालत के समक्ष जवाबदेह है, उपस्थिति के लिए आदेश जारी करके सीआरपीसी की धारा 204 के तहत आरोपी के खिलाफ कार्यवाही करने का आधार है। मन के प्रयोग का सर्वोत्तम प्रदर्शन संतुष्टि पर मन के प्रकटीकरण द्वारा होता है। यदि किसी मामले में ऐसा कोई संकेत नहीं है, जहां मजिस्ट्रेट धारा 190/204 सीआरपीसी के तहत कार्यवाही करता है, तो सीआरपीसी की धारा 482 के तहत उच्च न्यायालय आपराधिक न्यायालय की शक्ति के दुरुपयोग को रोकने के लिए अपनी अंतर्निहित शक्ति का उपयोग करने के लिए बाध्य है। आपराधिक न्यायालय के समक्ष अभियुक्त के रूप में उपस्थित होना एक गंभीर मामला है, जो समाज में व्यक्ति की गरिमा, आत्म-सम्मान और छवि को प्रभावित करता है। इसलिए, आपराधिक अदालत की प्रक्रिया को उत्पीड़न का हथियार नहीं बनाया जाना चाहिए।

23. मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश का अध्ययन करने के बाद, हम इस बात से संतुष्ट हैं कि संज्ञान लेने और अपीलकर्ताओं को आदेश जारी करने में विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा विवेक के प्रयोग का कोई संकेत नहीं मिलता है। यह तर्क कि मन का प्रयोग अनुमान से किया जाना चाहिए, स्वीकार्य नहीं है। आगे यह तर्क भी स्वीकार्य नहीं है कि बिना विवेक के प्रक्रिया जारी नहीं की जाएगी। यद्यपि सीआरपीसी की धारा 190/204 के स्तर पर कोई औपचारिक या मौखिक या तर्कपूर्ण आदेश की आवश्यकता नहीं है, फिर भी मजिस्ट्रेट द्वारा अपराध के घटित होने के तथ्यों और सीआरपीसी की धारा 200 के तहत दर्ज किए गए बयानों पर पर्याप्त संकेत होना चाहिए, ताकि अपराधी के खिलाफ कार्यवाही की जा सके। इसमें कोई संदेह नहीं कि उच्च न्यायालय का यह कहना सही है कि आरोपों की सत्यता साक्ष्य का प्रश्न है। सवाल आरोपों की सत्यता का नहीं है, बल्कि सवाल यह है कि क्या प्रतिवादी आपराधिक अदालत के समक्ष जवाबदेह हैं। विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश

में इस संबंध में कोई संकेत नहीं है।"

54. सीबीआई के निष्कर्षों का उल्लेख ऊपर विस्तार से किया गया है ताकि यह उजागर किया जा सके कि सीबीआई ने किस प्रकार विस्तृत वैज्ञानिक, सावधानीपूर्वक और निष्पक्ष जांच की और इस निष्कर्ष पर पहुंची कि यह हत्या का मामला नहीं, बल्कि आत्महत्या का मामला था। विद्वान मजिस्ट्रेट के समक्ष ऐसी रिपोर्ट को खारिज/अनदेखा करने के लिए पर्याप्त सामग्री और साक्ष्य उपलब्ध होने चाहिए थे। पुनरावृत्ति की कीमत पर, यहां यह उल्लेख किया जाता है कि सीबीआई द्वारा प्रस्तुत रिपोर्टों को खारिज करने के लिए विद्वान मजिस्ट्रेट के समक्ष कोई बात नहीं आई है।

55. उपर्युक्त चर्चा के मद्देनजर, प्रश्नगत अपराध के लिए याचिकाकर्ताओं के अभियोजन हेतु मंजूरी के आदेश के अभाव में, संज्ञान का आदेश कानून की दृष्टि से गलत है तथा इसे अपास्त किया जाना चाहिए। वैसे भी, आक्षेपित आदेश, जो विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा विवेक का प्रयोग न करने को प्रकट करता है तथा सीआरपीसी की धारा 173 (2) के तहत सीबीआई द्वारा दायर क्लोजर रिपोर्ट को खारिज करने के लिए कोई पुख्ता सबूत और सामग्री न होने के बावजूद, याचिकाकर्ताओं को, जो सेवानिवृत्त/सेवारत सरकारी अधिकारी हैं, धारा 302 सपठित धारा 120-बी आईपीसी के तहत इतने गंभीर अपराध के लिए मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाना, निरर्थक और कुछ हद तक अपमानजनक है। अतः, आक्षेपित आदेश को अपास्त किया जाता है।

56. तदनुसार, सभी याचिकाओं को **अनुमति** दी जाती है।

(2023) 3 ILRA 500

मूल अधिकार क्षेत्र

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 13.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सैयद आफताब हुसैन रिजवी

आवेदन अन्तर्गत धारा 482 सं. 12297 सन् 2021

नंद किशोर गुप्ता **...आवेदक**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **...प्रतिपक्षी**

आवेदक की ओर से अधिवक्ता: श्री प्रीत पाल सिंह राठौर, श्री अनिल तिवारी (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिपक्षी की ओर से अधिवक्ता: जी.ए., श्री अशोक कुमार द्विवेदी

13. आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या - 12297 / 2021- नंद किशोर गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य।

अपराध कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 227 - विचारणीय न्यायालय को यह सुनिश्चित करने के लिए अपने न्यायिक मन का प्रयोग करना चाहिए कि क्या धारा 227 CrPC के तहत प्राथमिक वाद मौजूद है - उसे सबूतों की समीक्षा करनी चाहिए कि क्या आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त आधार हैं, व्यापक संभावनाओं और सबूतों के प्रभाव को देखते हुए - यदि सबूत केवल संदेह

उत्पन्न करते हैं तो आरोपी को दोषमुक्त किया जा सकता है, न कि गंभीर संदेह - आपेक्षित आदेश गलत है।

याचिका स्वीकृत (E-9)

उद्धृत वाद सूची:

1. योगेश @ सचिन जगदीश जोशी बनाम महाराष्ट्र राज्य (2008) 10 SCC 394
2. पी. विजयन बनाम केरल राज्य और अन्य (2010) 2 SCC 398
3. श्रीमती शिव कुमारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2012 (78) ACC 605,
4. अजय सिंह और अन्य बनाम छत्तीसगढ़ राज्य और अन्य (2017) 3 SCC 330
5. पी. विजयन बनाम केरल राज्य और अन्य (2010) 2 SCC 398
6. योगेश @ सचिन जगदीश जोशी बनाम महाराष्ट्र राज्य (2008) 10 SCC 394
7. पंचो बनाम हरियाणा राज्य (2012) (77) ACC 269
8. शरत बाबू डिगुमर्ति बनाम सरकार (NCT दिल्ली (2017) 2 SCC 18
9. सीबीआई बनाम अखिलेश (2005) 1 SCC 478
10. प्रदीप कुमार @ प्रदीप कुमार वर्मा बनाम बिहार राज्य और अन्य (2007) 7 SCC 413
11. सियाराम उर्फ शिव राम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2022 (118) ACC 877
12. श्रीमती शिला देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 2022 (119) ACC 482

<u>माननीय न्यायमूर्ति सैयद आफताब हुसैन रिज़वी</u>

1. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री प्रीत पाल सिंह राठौड़ और उ. प्र. राज्य-विपक्षी पार्टी क्रमांक-1 के विद्वान ए.जी.ए. को सुना।

2. सीआर.पी.सी. की धारा 482 के तहत यह आवेदन आई.पी.सी. की धारा 419, 420 एवं 3(1) उ.प्र. गैंगेस्टर अधिनियम एवं समाज विरोधी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1986, थाना खोराबार, जनपद गोरखपुर के तहत 2010 के वाद अपराध संख्या 406 से उत्पन्न 2011 के जी.टी. क्रमांक 148 में अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या.04/गैंगस्टर अधिनियम, गोरखपुर द्वारा पारित आदेश दिनांक 8.02.2021 के साथ- साथ उपरोक्त मुकदमे की सम्पूर्ण कार्यवाही को रद्द करने के लिए दायर किया गया है।

3. प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 25.03.2010 को विपक्षी संख्या 2 द्वारा वाद अपराध संख्या 406/2010 धारा 419, 420, 272, 273 आई.पी.सी. एवं खाद्य अपमिश्रण अधिनियम, 1954 की धारा 7/16 थाना खोराबार, जिला गोरखपुर में दर्ज की गई। एफ.आई.आर. के आरोपों के अनुसार, इंस्पेक्टर राजेंद्र प्रसाद पांडे के नेतृत्व में एक पुलिस दल ने मुखबिर से प्राप्त सूचना पर कि राम दुलारे पासवान के *अहाता* में नंद किशोर गुप्ता द्वारा मिठाई बनाने और गोरखपुर शहर और अन्य शहरों में आपूर्ति करने के लिए स्वास्थ्य के लिए हानिकारक नकली *खोया* तैयार किया जा रहा है, लगभग 2 p.m. पर छापा मारा, प्रमोद कुमार, रमेश कुमार केवट, रंजीत वर्मा, रामेश्वर गिरि और जैकी वर्मा को गिरफ्तार किया गया। एक वाहन यू.पी. 53 ए टी 0995 टाटा मैजिक भी मौके पर मिली जिस पर 11 बंडल मिल्क केक, 30 बंडल *बर्फी* व पैकिंग डिब्बे जिस पर शिव शंकर स्वीट्स स्पेशल पी.जी. ग्रुप

लिखा हुआ था और डिब्बों पर बर्फी, मुस्कान का देशी घी, ड्राई फ्रूट काजू और पिस्तावाला डोंडा बर्फी छपी हुआ था बरामद की गई। गिरफ्तार लोगों ने बताया कि वे मजदूर हैं। उन्होंने यह भी बताया कि मिठाई बनाने की प्रक्रिया में *सूजी* को चीनी और रिफाइंड के साथ मिलाकर नकली *खोया* बनाया जाता है, जिससे मिल्क केक और *डोडा बर्फी* तैयार की जाती है और नंद किशोर गुप्ता द्वारा आपूर्ति के लिए पैक किया जाता है। *सूजी*, चीनी, रिफाइंड, मिल्क पाउडर के साथ नकली *मावा* तैयार करने में इस्तेमाल होने वाले बर्तन और गैस सिलेंडर, खाली डिब्बे और खाली मिठाई के पैकेट भी बरामद किए गए, पैकेटों पर निर्माण की कोई तारीख मुद्रित नहीं थी। गिरफ्तार लोग लाइसेंस नहीं दिखा सके। गिरफ्तार व्यक्तियों ने यह भी बताया कि नंद किशोर गुप्ता नकली *खोया* और मिल्क केक तथा उससे तैयार होने वाली *डोडा बर्फी* बनाने का कारोबार करता है, जिसे वह *देशी घी* की शुद्ध मिठाई के रूप में आपूर्ति करता था और यह स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। नमूना एकत्र किया गया और मौके पर ही वसूली ज्ञापन तैयार किया गया। उत्तर प्रदेश गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधियाँ (रोकथाम) अधिनियम की धारा 3(1) के तहत कार्यवाही प्रारम्भ करने के लिए दिनांक 31.03.2010 को एक रिपोर्ट जिला मजिस्ट्रेट को भेजी गई थी। दिनांक 06.04.2010 के आदेश द्वारा जिला मजिस्ट्रेट द्वारा अनुमोदन के उपरान्त धारा 3(1) उ.प्र. 1986 का अधिनियम क्रमांक 7 भी जोड़ा गया। एकत्र किए गए नमूने को रासायनिक जांच के लिए भेजा गया था। रासायनिक जांच रिपोर्ट में यह पाया गया कि नमूना मिलावटी नहीं है। जांच अधिकारी ने गवाहों के बयान दर्ज किए और जांच के बाद केवल धारा 419, 420 आईपीसी एवं 3(1) उ.प्र. गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधियाँ (रोकथाम) अधिनियम के तहत आरोप पत्र प्रस्तुत किया। आरोपी नंद किशोर गुप्ता द्वारा परीक्षण न्यायालय के समक्ष सीआर.पी.सी. की धारा 227 के तहत आरोपमुक्ति आवेदन 12-ख दायर किया गया। आवेदन में आरोप लगाया गया है कि आवेदक-आरोपी निर्दोष है, रिकॉर्ड पर कोई सबूत नहीं है कि आरोपी को मौके पर गिरफ्तार किया गया था या उसके कब्जे से कुछ भी आपत्तिजनक बरामद किया गया था, उ. प्र. गैंगेस्टर एवं समाज विरोधी क्रियाकलाप (रोकथाम) अधिनियम का अपराध किसी साक्ष्य के जोड़ा गया है, आरोपी के विरुद्ध आईपीसी की धारा 419 एवं 420 के तहत अपराध के लिए आरोप तय करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं है, गैंग चार्ट में किसी अन्य मामले का उल्लेख नहीं है, गैंग चार्ज की स्वीकृति के समय धारा 419, 420, 272, 273 आई.पी.सी. और खाद्य मिलावट अधिनियम, 1954 के 7/16 के तहत केवल एक ही मामले का उल्लेख किया गया है और रासायनिक परीक्षक की रिपोर्ट प्राप्त किए बिना अनुमोदन प्रदान किया गया है। खाद्य अपमिश्रण अधिनियम की धारा 16, 17 और 22 के अंतर्गत अपराध का कोई साक्ष्य नहीं है, आरोप पत्र दाखिल करने के लिए जिला मजिस्ट्रेट से कोई मंजूरी नहीं ली गई है, आवेदक- अभियुक्त का नाम गिरफ्तार आरोपी के इकबालिया बयान के आधार पर जोड़ा गया है, जबकि बिना किसी संतोषजनक और पर्याप्त स्पष्टीकरण के केवल दो अभियुक्तों के खिलाफ गैंगस्टर एक्ट के तहत कार्यवाही शुरू की गई है। उपरोक्त आधार पर उन्मोचन का दावा किया गया था। विद्वान परीक्षण न्यायालय ने दिनांक 08.02.2021 के आदेश के तहत उन्मोचन आवेदन को खारिज कर दिया।

4. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि आवेदक मिठाई/*मावा* का व्यवसाय करता है जो विधि-अनुरूप पंजीकृत है और उसके पास वैध लाइसेंस है। आवेदक को विपक्षी नंबर 2 और उसके सहयोगियों द्वारा अपनी शक्ति और पद का दुरुपयोग करके झूठा फंसाया गया है। एफ.आई.आर. दर्ज करने के ठीक बाद विपक्षी पक्ष क्र. 2 ने उत्तर प्रदेश गैंगेस्टर एवं असामाजिक क्रियाकलाप (रोकथाम) अधिनियम की धारा 3(1) के तहत आवेदक के खिलाफ कार्यवाही शुरू करने की सिफारिश करने के लिए जिला मजिस्ट्रेट को एक रिपोर्ट सौंपी जो उनके द्वारा दिनांक 06.04.2010 को संस्तुत की गई एवं धारा 3(1) उ.प्र. 1986 का अधिनियम क्रमांक 7 जोड़ा गया। जांच अधिकारी द्वारा एकत्र किए गए नमूने को रासायनिक जांच के लिए भेजा गया था। 27.04.2010 को प्रस्तुत सार्वजनिक विश्लेषक की रिपोर्ट पुष्टि करती है कि कोई मिलावट रिपोर्ट नहीं की गई थी। इसके बाद जांच अधिकारी ने अभियोजन पक्ष के गवाहों से पूछताछ की। उन्होंने प्रथम सूचक का दिनांक 08.05.2010 को, उपनिरीक्षक सूरज नाथ सिंह का दिनांक 24.05.2010 को तथा अन्य पुलिस कर्मियों तथा खाद्य निरीक्षक अजीत कुमार मिश्र, शिव कुमार गुप्ता का दिनांक 05.06.2010 को तथा खाद्य निरीक्षक चन्द्रभान, अमरदेव माहेश्वरी, कांस्टेबल अमरेश यादव का दिनांक 05.12.2010 को परीक्षण किया किन्तु उनके बयान अभियोजन पक्ष के मामले की पुष्टि नहीं करते और उनमें काफी विरोधाभास है। 05.06.2010 के बाद कोई और जांच नहीं की गई और उपलब्ध सामग्री के आधार पर जांच अधिकारी ने आरोप पत्र दायर किया। आगे यह भी तर्क दिया गया कि मौके पर कोई वसूली ज्ञापन तैयार नहीं किया गया था और उस पर किसी स्वतंत्र गवाह के हस्ताक्षर नहीं हैं। पूरे आरोप पत्र में कोई स्वतंत्र गवाह नहीं है। विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि प्रारंभ में एफ.आई.आर. खाद्य अपमिश्रण अधिनियम की धारा 7/16 के तहत भी दर्ज किया गया था, जबकि इस अधिनियम को नए अधिनियम यानी खाद्य सुरक्षा और मानक अधिनियम, 2006 द्वारा निरस्त कर दिया गया था। एक बार खाद्य अपमिश्रण अधिनियम को खाद्य सुरक्षा और मानक अधिनियम द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया, खाद्य अपमिश्रण अधिनियम की धारा 7/16 के तहत कोई एफ.आई.आर. दर्ज नहीं किया जाना चाहिए था। इसके अलावा रासायनिक परीक्षण में सार्वजनिक विश्लेषक द्वारा कोई मिलावट नहीं पाई गई और जांच अधिकारी ने धारा 272, 273 आई.पी.सी एवं खाद्य अपमिश्रण अधिनियम की धारा 7/16 हटा दी और केवल धारा 419, 420 आई.पी.सी. एवं 3(1) उ.प्र. गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधियाँ (रोकथाम) अधिनियम के तहत आरोप पत्र दायर किया। जब बरामद वस्तुओं में कोई मिलावट नहीं पाई गई तो आवेदक के खिलाफ आरोप पत्र दायर करने का कोई औचित्य नहीं था। आगे तर्क दिया गया कि आवेदक के विरुद्ध आई.पी.सी. की धारा 419 और 420 के तहत कोई अपराध नहीं बनता है। रासायनिक परीक्षण रिपोर्ट में उल्लेखित है कि प्रश्नगत नमूना केवल सादा केक है, मिल्क केक का नहीं। आवेदक ने कभी भी जालसाजी नहीं की और तथाकथित केक को मिल्क केक होने का दावा नहीं किया, लेकिन अधिक से अधिक यह गलत ब्रांडिंग का मामला हो सकता है जो खाद्य सुरक्षा और मानक अधिनियम की धारा 52 के अंतर्गत आता है और खाद्य सुरक्षा और मानक अधिनियम की धारा 68 के तहत फैसला सुनाया

जा सकता है और अधिनियम की धारा 69 के तहत शमनीय है। धारा 52 के तहत पारित आदेश खाद्य सुरक्षा अपीलीय न्यायाधिकरण के समक्ष अधिनियम की धारा 70 के तहत अपील योग्य है और द्वितीय अपील उच्च न्यायालय में की जा सकती है। विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि खाद्य सुरक्षा और मानक अधिनियम, 2006 इसी उद्देश्य के लिए पूर्ण संहिता है। यह विशेष कानून है जबकि भारतीय दंड संहिता सामान्य कानून है। धारा 419 और 420 आई.पी.सी. गलत ब्रांडिंग के लिए आकृष्ट नहीं किया जा सकता केवल खाद्य सुरक्षा और मानक अधिनियम में दिए गए प्रावधानों और कानून के अनुसार ही शिकायत दर्ज की जा सकती है। यह भी तर्क दिया गया है कि सह-अभियुक्त के इकबालिया बयान को छोड़कर, आवेदक के खिलाफ कोई सबूत नहीं है और सह-अभियुक्तों का इकबालिया बयान साक्ष्य में स्वीकार्य नहीं है। अगला तर्क यह है कि अभियोजन पक्ष के मामले के समर्थन में कोई ठोस, विश्वसनीय और निश्चयात्मक साक्ष्य नहीं है, फिर भी मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर ठीक से विचार किए बिना और केस डायरी पर सामग्री की सावधानीपूर्वक जांच किए बिना परीक्षण अदालत ने आरोपमुक्त करने के आवेदन को खारिज कर दिया है। आक्षेपित आदेश अवैध है और न्यायिक विवेक के प्रयोग के बिना पारित किया गया है।आरोपमुक्त करने के आवेदन को अस्वीकार करते समय, निचली अदालत ने अभियोजन पक्ष के मामले पर पूरी तरह से भरोसा किया है और ऐसा करने का कोई कारण दर्ज किए बिना आवेदक द्वारा की गई याचिका को पूरी तरह से नजरअंदाज और खारिज कर दिया है। विद्वान परीक्षण अदालत इस बात पर विचार करने में विफल रही है कि कोई उचित जांच नहीं की गई है और पर्याप्त सामग्री एकत्र किए बिना आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया है। विद्वान निचली अदालत ने मामले के विधिक पक्ष पर भी विचार नहीं किया है और इस पर कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया है। पूरी केस डायरी में आवेदक के खिलाफ किसी गिरोह से संबंध या गैंगस्टर गतिविधियों में शामिल होने के संबंध में कोई सामग्री नहीं है। जांच अधिकारी ने अपनी शक्ति का दुरुपयोग किया है और एक अकेले मामले के आधार पर आवेदक के खिलाफ गैंगस्टर अधिनियम के प्रावधानों को लागू किया है, जिसकी जांच चल रही थी। अभियोजन का पूरा मामला झूठा और निराधार है। कहानी गढ़ी गई है और अभिप्रेरित है। मामले की पूरी कार्यवाही अवैध, मनमानी, अन्यायपूर्ण और स्पष्ट रूप से भेदभावपूर्ण और गलत है। विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित केस कानूनों पर भरोसा जताया है:

(1). श्रीमती शिव कुमारी बनाम यूपी राज्य 2012 (78) एससी 605,

(2). अजय सिंह और अन्य बनाम छत्तीसगढ़ राज्य और अन्य (2017) 3 एससीसी 330,

(3). पी. विजयन बनाम केरल राज्य और अन्य (2010) 2 एससीसी 398,

(4). योगेश उर्फ सचिन जगदीश जोशी बनाम महाराष्ट्र राज्य (2008) 10 एससीसी 394,

(5). पंचो बनाम हरियाणा राज्य (2012) (77) एसीसी 269,

(6). शरत बाबू दिगुमर्ती बनाम सरकार (एनसीटी दिल्ली (2017) 2 एससीसी 18,

(7). सीबीआई बनाम अखिलेश (2005) 1 एससीसी 478,

(8). प्रदीप कुमार उर्फ प्रदीप कुमार वर्मा बनाम बिहार राज्य और अन्य (2007) 7 एससीसी 413,

(9). सियाराम उर्फ शिवराम बनाम राज्य उ.प्र. 2022 (118) एसीसी 877,

(10). श्रीमती शिला देवी बनाम यूपी राज्य और दूसरा 2022 (119) एसीसी 482।

5. विद्वान ए.जी.ए. ने दलील दी कि एफ.आई.आर. आवेदक-अभियुक्त सहित छह नामित अभियुक्तों के खिलाफ दर्ज किया गया है और अभियोजन की कहानी का सार यह है कि वे मानव जीवन के लिए खतरनाक नकली *मावा* और मिलावटी मिठाई तैयार कर रहे थे। विभिन्न सामान बरामद किए गए हैं और सह-अभियुक्त को मौके पर ही गिरफ्तार कर लिया गया है। प्रथम सूचक और उसके साथियों ने सीआर.पी.सी. की धारा 161 के तहत अपने बयानों में अभियोजन पक्ष का समर्थन किया है। जांच अधिकारी ने विभिन्न खाद्य निरीक्षकों के बयान भी दर्ज किए हैं। गहन जांच के बाद आरोपी-आवेदक की संलिप्तता दर्शाते हुए विश्वसनीय और ठोस साक्ष्य एकत्र किए गए हैं और संबंधित धाराओं में आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया है। आगे यह तर्क दिया गया है कि रासायनिक परीक्षक की रिपोर्ट अभियोजन पक्ष के मामले की पुष्टि करती है कि आवेदक मिठाइयों के व्यवसाय में शामिल था जो कि इसकी पैकेजिंग पर मुद्रित निर्धारित मानकों के अनुरूप नहीं थे। अतः, धारा 419, 420 आई.पी.सी. एवं धारा 3(1) उ.प्र. गैंगस्टर एवं समाज विरोधी क्रियाकलाप (रोकथाम) अधिनियम के तहत आवेदक के विरुद्ध अपराध बनता है। अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों एवं सामग्री को ध्यान में रखते हुए आरोप पत्र पर संज्ञान लिया गया है। आरोप तय करने के लिए अभियुक्त-आवेदक के खिलाफ पर्याप्त सबूत होने के विशिष्ट निष्कर्ष को दर्ज करने के बाद निचली अदालत द्वारा आरोपमुक्त करने के आवेदन को उचित रूप से खारिज कर दिया गया है। अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 02 (गैंगस्टर एक्ट), गोरखपुर द्वारा पारित आदेश दिनांक 8.02.2021 न्यायसंगत, वैध और उचित है और यह किसी भी अवैधता या अशक्तता से ग्रस्त नहीं है।

6. एफ.आई.आर. के आरोप यह हैं कि पुलिस दल ने सूचना पर कार्रवाई की कि मिलावटी और अप्रिय मिठाइयों की आपूर्ति और तैयारी के लिए नकली *मावा* तैयार किया जा रहा है। शुरुआत में एफ.आई.आर. धारा 419, 420, 272, 273 आई.पी.सी. और खाद्य अपमिश्रण अधिनियम, 1954 की धारा 7/16 के तहत दर्ज किया गया था। यह निर्विवाद तथ्य है कि 25.03.2021 को एफ.आई.आर. दर्ज होने के बाद जांच अधिकारी ने 31.03.2021 को जिला मजिस्ट्रेट को एक रिपोर्ट सौंपी, जिसमें आरोपी को यूपी गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधियाँ (रोकथाम) अधिनियम की धारा 3(1) के तहत अपराध के लिए सम्मिलित करने के लिए उनकी मंजूरी मांगी गई। 06.04.2010 को अनुमोदन प्रदान किया गया और उपरोक्त धारा जोड़ी गयी। यह भी विवादित नहीं है कि रासायनिक जांच के लिए भेजा गया नमूना मिलावटी नहीं पाया गया है। इससे केवल यह पता चलता है कि नमूना मिल्क केक नहीं बल्कि साधारण केक था। जांच अधिकारी ने आई.पी.सी. की धारा 272, 273 एवं खाद्य अपमिश्रण अधिनियम 1954 की धारा 7/16 हटा दी एवं धारा 419, 420 आई.पी.सी. एवं उ.प्र. गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधियाँ (रोकथाम) अधिनियम की धारा 3(1) के तहत आरोप पत्र प्रस्तुत किया है। यह भी विवादित नहीं है कि एफ.आई.आर. दर्ज करते समय खाद्य

अपमिश्रण अधिनियम के प्रावधान लागू नहीं थे और इसे खाद्य सुरक्षा और मानक अधिनियम, 2006 द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था। खाद्य पदार्थों की गलत ब्रांडिंग से खाद्य सुरक्षा और मानक अधिनियम के प्रावधानों के तहत निपटा गया है और यह अधिनियम की धारा 52 के तहत दंडनीय है। यह अधिनियम अपने आप में एक पूर्ण संहिता है और विशेष कानून होने के कारण यह भारतीय दंड संहिता के प्रावधानों का अधिरोहण कर देगा। एफ.आई.आर. के आरोपों पर उ0प्र0 गैंगस्टर एवं समाज विरोधी क्रियाकलाप (रोकथाम) अधिनियम की धारा 3(1) के अन्तर्गत कार्यवाही प्रारंभ की गई कि आवेदक मानव स्वास्थ्य के लिए हानिकारक नकली *मावा* और मिठाइयाँ तैयार करने और बेचने में शामिल है। वर्तमान मामले को छोड़कर कोई अन्य मामला गैंगचार्ट में नहीं दर्शाया गया है। रासायनिक परीक्षक की रिपोर्ट ने स्वास्थ्य के लिए हानिकारक खाद्य पदार्थों में मिलावट के अभियोजन मामले की पुष्टि नहीं की है। अधिक से अधिक यह मिसब्रांडिंग की ओर ही इशारा करता है।

7. विद्वान परीक्षण न्यायालय ने आक्षेपित आदेश द्वारा आरोप मुक्ति आवेदन को खारिज करते हुए केवल एफ.आई.आर. के अनुसार अभियोजन संस्करण के आरोपों का वर्णन किया है और केस डायरी पर उपलब्ध साक्ष्यों का उचित मूल्यांकन किए बिना यह पाया कि इस स्तर पर मामले पर गुण-दोष के आधार पर विचार नहीं किया जा रहा है, आरोप तय करने के लिए केवल अभियोजन साक्ष्य पर विचार किया जाना है, यह देखा जाना चाहिए कि क्या अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर, प्रथम दृष्टया मामला बनता है अथवा नहीं और यहां तक कि केवल संदेह के आधार पर भी आरोप तय किया जा सकता है, आरोप मुक्ति आवेदन को खारिज कर दिया है। विद्वान परीक्षण न्यायालय ने आरोपी-आवेदक द्वारा उसके आरोप मुक्ति आवेदन में उठाए गए किसी भी तथ्यात्मक और विधिक बिंदु पर विचार नहीं किया है। विद्वान परीक्षण न्यायालय भी पूरे मामले के विधिक पक्ष को समझने में विफल रहा है।

8. यह स्थापित कानून है कि निचली परीक्षण न्यायालय आरोपमुक्त करने के आवेदन पर विचार करते समय केवल डाकघर के रूप में कार्य नहीं कर रही है। यह साक्ष्य के माध्यम से यह पता लगाने के लिए है कि क्या किसी संदिग्ध पर मुकदमा चलाने के लिए पर्याप्त आधार हैं, अदालत को व्यापक संभावना, साक्ष्य के कुल प्रभाव और बुनियादी दुर्बलताओं पर विचार करना होगा। ***पी. विजयन बनाम केरल राज्य और एक अन्य (2010) 2 एस. सी. सी. 398*** में सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि "अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए कोई पर्याप्त आधार नहीं" शब्द स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं कि न्यायाधीश अभियोजन पक्ष के कहने पर आरोप तय करने के लिए केवल डाकघर नहीं है, बल्कि यह निर्धारित करने के लिए मामले के तथ्यों के प्रति अपने न्यायिक मस्तिष्क का प्रयोग करना पड़ता है कि अभियोजन पक्ष द्वारा विचारण के लिए मामला बनाया गया है अथवा नहीं।

9. ***योगेश उर्फ सचिन जगदीश जोशी बनाम महाराष्ट्र राज्य (2008) 10 एससीसी 394 में***, अनु.-16 में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की है:

> *"यह अति सामान्य बात है कि धारा में प्रयुक्त शब्द "अभियुक्त के खिलाफ कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार नहीं" मामले के तथ्यों पर*

न्यायाधीश की ओर से न्यायिक मस्तिष्क के उपयोग का स्वयंसिद्ध प्रमाण हैं यह निर्धारित करने के लिए कि क्या मुकदमे के विचारण के लिए अभियोजन पक्ष द्वारा मामला बनाया गया है। हालाँकि, इस तथ्य का आकलन करने में, सीमित उद्देश्य में, न्यायाधीश के पास यह पता लगाने हेतु सामग्री के मूल्यांकन की शक्ति है कि आरोपी के खिलाफ प्रथम दृष्टया मामला बनाया गया है अथवा नहीं। प्रथम दृष्टया मामले को निर्धारित करने का परीक्षण प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करता है और इस संबंध में सार्वभौमिक अनुप्रयोग का नियम निर्धारित करना न तो संभव है और न ही वांछनीय है। हालाँकि, कुल मिलाकर, यदि दो दृष्टिकोण समान रूप से संभव हैं और न्यायाधीश को यह समाधान हो जाता है कि उसके सामने प्रस्तुत किए गए साक्ष्य केवल संदेह को जन्म देता है जो गंभीर संदेह से भिन्न है, तो वह अभियुक्त को दोषमुक्त करना पूर्ण रूप से उसके अधिकार में होगा। इस स्तर पर, उसे यह नहीं देखना है कि मुकदमा दोषसिद्धि में समाप्त होगा अथवा नहीं। अनुप्रयुक्त व्यापक परीक्षण यह है कि क्या अभिलेख पर मौजूद सामग्री, यदि खंडन नहीं किया गया है, तो दोषसिद्धि को उचित रूप से संभव बनाती है।"

10. विद्वान परीक्षण न्यायालय ने आरोपमुक्त करने के आवेदन की प्रत्येक प्रासंगिक सामग्री पर विचार नहीं किया है और उसे सरसरी तरीके से खारिज कर दिया है। यद्यपि आरोपमुक्ति आवेदन का निपटान करते समय विचारण न्यायालय अभियुक्त के बचाव का मूल्यांकन नहीं कर सकता है, किन्तु साथ ही अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री पर विचारोपरांत आरोपमुक्ति आवेदन की सामग्री और दलीलों पर विचार करना और निर्णय लेना विचारण न्यायालय का दायित्व है। यदि कोई विशिष्ट अनुनय किया गया है, तो विचारण अदालत को इस पर विचार करना चाहिए और कथनात्मक और तार्किक आदेश द्वारा इसका समाधान करना चाहिए। विचारण अदालत दलीलों को स्वीकार या अस्वीकार कर सकती है, लेकिन यह सुस्पष्ट होना चाहिए और यह देखा जाना चाहिए कि विचारण अदालत ने आरोपमुक्ति के आवेदन का निपटान करते समय अपने न्यायिक मस्तिष्क का अनुप्रयोग किया है। विचारण न्यायालय ने आक्षेपित आदेश द्वारा आरोपमुक्त करने के आवेदन का निपटारा करते समय प्रासंगिक दलीलों पर विचार नहीं किया है और इसे यंत्रवत तरीके से खारिज कर दिया है, इसलिए आरोपमुक्त करने के आवेदन पर विचारण न्यायालय द्वारा एक नया आदेश पारित करने की आवश्यकता है।

11. तदनुसार, धारा 482 सीआर.पी.सी. के तहत यह आवेदन अनुमन्य है। आई.पी.सी. की धारा 419, 420 एवं 3(1) उ.प्र. गैंगेस्टर अधिनियम एवं समाज विरोधी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1986, थाना खोराबार, जनपद गोरखपुर के तहत 2010 के वाद अपराध संख्या 406 से उत्पन्न 2011 के जीटी क्रमांक 148 में अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, न्यायालय

संख्या.04/गैंगस्टर अधिनियम, गोरखपुर द्वारा पारित आदेश दिनांक 8.02.2021 को इसके द्वारा निरस्त किया जाता है। विचारण न्यायालय को निर्देश दिया जाता है कि वह पक्षों को सुनवाई का अवसर देने के बाद, पूर्णरूपेण कानून के अनुसार कथनात्मक एवं तर्कसंगत आदेश द्वारा शीघ्रता से आवेदक के आरोपमुक्ति आवेदन पर एक नया आदेश पारित करे।

(2023) 3 ILRA 500

मूल अधिकार क्षेत्र

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 18.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा

आवेदन अन्तर्गत धारा 482 सं. 37389 सन् 2022

दारा सिंह @ दारा निषाद ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ...प्रतिपक्षी

आवेदक की ओर से अधिवक्ता: श्री सुजीत कुमार, श्री प्रमोद कुमार साहनी, श्री अमरेंद्र नाथ सिंह

प्रतिपक्षी की ओर से अधिवक्ता: जी.ए., श्री मनोज कुमार

12. आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या - 37389 / 2022 - दारा सिंह @ दारा निषाद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य।

अपराध कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 293 - आग्नेयास्त्र के मामलों में बैलिस्टिक विशेषज्ञ की राय महत्वपूर्ण होती है - जांच के दौरान आग्नेयास्त्र और अपराध कारतूस दोनों को बरामद करना जरूरी है - बैलिस्टिक विशेषज्ञ की जांच की आवश्यकता वाद की परिस्थितियों पर निर्भर करती है - अगर आरोपी बैलिस्टिक विशेषज्ञ का प्रति परीक्षा चाहता है, तो विचारणीय न्यायालय को इसकी अनुमति देनी चाहिए - विशेषज्ञ की राय देने वाले बैलिस्टिक विशेषज्ञ को बुलाने और उसकी जांच करने के लिए आधार उपलब्ध है - विचारणीय न्यायालय का आदेश जो विशेषज्ञ की जांच की याचिका को निरस्त करता है, उसे अपास्त किया जाता है। ट्रायल कोर्ट को विशेषज्ञ गवाह को बुलाने और जांच करने का निर्देश दिया गया है। आरोपी को प्रति परीक्षा की अनुमति दी जाएगी।

याचिका स्वीकृत। (E-9)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. रामदयाल बनाम दिल्ली कॉर्प., AIR 1970 SC366
2. भूपिंदर सिंह बनाम पंजाब राज्य, AIR, 1988 SC 1011
3. गुलाब बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2021 SCC ऑनलाइन SC1211

<u>माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा</u>

1. आवेदक की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री अमरेंद्र नाथ सिंह, श्री प्रमोद कुमार सिंह और सुजीत कुमार एवं विपक्षी संख्या 2 की तरफ से विद्वान अधिवक्ता श्री मनोज कुमार एवम् राज्य की ओर से विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना गया तथा पत्रावली का परिशीलन किया गया।

2. प्रार्थी ने धारा-482 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत जी. टी. वाद संख्या-55 सन् 2007, राज्य विरुद्ध दारा निषाद एवं अन्य अपराध संख्या-253, सन् 2006, अंतर्गत धारा-147, 148, 149, 302 भारतीय दण्ड संहिता तथा धारा - 3 (1),

उत्तर-प्रदेश गुण्डा अधिनियम्, थाना-बड़हलगंज, जिला - गोरखपुर में अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या-3, विशेष न्यायाधीश, गुण्डा अधिनियम् को निरस्त करने के लिए प्रस्तुत किया गया है।

3. संक्षेप में याचिका के तथ्य यह है कि विपक्षी संख्या-2 द्वारा दर्ज कराये गये प्रथम सूचना रिपोर्ट, दिनांकित 10.06.2006 के अंतर्गत विपक्षी संख्या-2 का बयान धारा-161 दण्ड प्रक्रिया संहिता में अंकित किया गया, जिसमें उन्होंने प्रार्थी के विरुद्ध कोई विशिष्ट आरोप नहीं लगाया है। आरोपपत्र प्रस्तुत करने के उपरांत मुख्य न्यायिक दण्डाधिकारी गोरखपुर द्वारा संज्ञान लिया गया तथा मामले को सत्र सुपुर्द किया गया तथा सत्र वाद का विचारण प्रारम्भ हुआ। प्रार्थी को झूठा फंसाया गया है। प्रार्थी के पास शस्त्र अनुज्ञप्ति के आधार पर एक राइफल है, अतः राजनीतिक व्यक्ति होने के कारण उसे दूषित आशयों से राइफल का प्रयोग करते हुए दिखाया गया है। शस्त्र विशेषज्ञ की आख्या विधि विज्ञान प्रयोगशाला लखनऊ से मंगाई गई। बचाव में साक्ष्य प्रस्तुत करने के अवसर पर यह ज्ञात हुआ कि विशेषज्ञ की आख्या नहीं मंगाई गई है। तदुपरांत शस्त्र विशेषज्ञ को साक्षी के रूप में आहूत करने के लिए प्रार्थनापत्र प्रस्तुत किया गया। क्योंकि वही बता सकते हैं कि किस प्रकार का आग्नेयास्त्र प्रयोग हुआ है। उक्त प्रार्थनापत्र को विचारण न्यायालय ने यह कहते हुए दिनांक 17.10.2022 को खारिज कर दिया कि यह विलंब करने के लिए दूषित प्रार्थनापत्र है, जिससे न्यायिक अपहानि होगी। अंततः परीक्षक/चिकित्सक अशोक कुमार यादव का साक्ष्य प्रस्तुत किया गया है, अतः उपरोक्त परिस्थितियों में प्रश्नगत आदेश निरस्त साक्ष्य हेतु शस्त्र विशेषज्ञ को परीक्षित करने का आदेश पारित किया जाए।

4. पत्रावली पर संलग्नक-5 के रूप में विधि विज्ञान प्रयोगशाला के आग्नेयास्त्र विशेषज्ञ की आख्या दिनांकित 24.02.2007 भी प्रस्तुत की गई है। आग्नेयास्त्र के संबंध में पृष्ठ संख्या - 55 पर मूल आख्या की छायाप्रति संलग्न की गई है। धारा - 293 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अनुसार विधि विज्ञान प्रयोगशाला की आख्या प्रदर्श डालने योग्य एवं साक्ष्य में स्वतः ग्राह्य होती है, परंतु न्यायालय उचित समझे, तो ऐसे विशेषज्ञ को उसके द्वारा प्रस्तुत आख्या के संबंध में साक्षी के रूप में आहूत कर सकता है। धारा -293(4) के अनुसार यह धारा आग्नेयास्त्र विशेषज्ञ के संबंध में भी प्रयुक्त होती है। आग्नेयास्त्र विशेषज्ञ की आख्या में देशी पिस्तौल से विवादित कारतूस, चिह्नित ई. सी. - 1, देशी पिस्तौल चिह्नित 1/07 द्वारा चलाये जाने का परिणाम दिया गया है तथा अन्य मत भी दिए गए हैं। प्रार्थी के अनुसार अभियोजन ने उसके द्वारा राइफल से फायर कर हत्या करने एवं राइफल को घटना में प्रयुक्त करने का कथन किया है। वर्ष 2005 में संशोधन के द्वारा मुख्य विस्फोटक नियंत्रक का नाम भी विशेषज्ञों की सूची में सम्मिलित किया गया है। वैसे भी आग्नेयास्त्र विशेषज्ञ विधि विज्ञान प्रयोगशाला के वैज्ञानिक एवम् विशेषज्ञ माने जाएंगे। **रामदयाल विरुद्ध दिल्ली कार्पोरेशन ए.आई. आर. 1970, उच्चतम न्यायालय 366,** में यह अवधारित किया गया है कि अभियुक्त को जन विश्लेषक को परीक्षित एवं प्रतिपरीक्षित करने का अधिकार विद्यमान है। **भूपिंदर सिंह विरुद्ध पंजाब राज्य, ए.आई.आर. 1988, उच्चतम न्यायालय 1011** में अवधारित किया गया कि

रासायनिक परीक्षक मृत्यु के कारणों के बारे में मात्र एक आख्या देता है, जिसके अनौपचारिक साक्ष्य की आवश्यकता नहीं है, परंतु न्यायालय यदि उचित समझे, तो रासायनिक परीक्षक को आख्या के संबंध में बुलाकर उसे परीक्षित करा सकती है। **जयमाल सिंह विरुद्ध उत्तर- प्रदेश राज्य, 1987 (1), क्राइम्स 760 इलाहाबाद उच्च न्यायालय** में अवधारित किया गया कि जहां शस्त्र विशेषज्ञ की आख्या निदेशक अथवा उप निदेशक द्वारा हस्ताक्षरित नहीं है, ऐसी आख्या शस्त्र विशेषज्ञ के साक्ष्य के बिना ग्राह्य नहीं है। ऐसे मामले हो सकते हैं, जिनमें न्याय हित में रासायनिक विशेषज्ञ को साक्षी के रूप में आहूत करना तथा उनका परीक्षण आवश्यक हो । धारा-293(3) के अंतर्गत न्यायालय को शक्ति प्राप्त है कि ऐसे विशेषज्ञ को साक्षी स्वरूप आहूत कर सके।

5. **गुलाब बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2021 एस. सी. सी. ऑनलाइन (उच्चतम न्यायालय) 1211** के निर्णय का पैरा 19 से 23 महत्वपूर्ण है, जिसे निम्नवत् अंकित किया जाता है-

"19. मृतक को प्रवेश और निकास द्वार पर बंदूक की गोली से चोट लगी थी। इसलिए अपराध के हथियार की बरामदगी न होना अभियोजन पक्ष के मामले को अविश्वसनीय नहीं बनाएगा, जिसने पीडब्लू 1, 2 और 3 के प्रत्यक्षदर्शी विवरण पर भरोसा किया है। **सुखवंत सिंह बनाम पंजाब राज्य4 में, डॉ ए एस आनंद** (तत्कालीन विद्वान मुख्य न्यायाधीश) ने दो न्यायाधीशों की पीठ की ओर से बोलते हुए कहा :

"21. इस मामले में एक और कमी है। हम पाते हैं कि यद्यपि पीडब्लू 6, एएसआई रघुबीर सिंह द्वारा मौके से एक खाली कारतूस बरामद किया गया था और अपीलकर्ता की गिरफ्तारी के समय उसके कब्जे से कुछ कारतूसों के साथ एक पिस्तौल जब्त की गई थी, फिर भी अभियोजन पक्ष ने, न जाने किस कारण, बरामद खाली कारतूस और जब्त पिस्तौल को जांच और विशेषज्ञ की राय के लिए बैलिस्टिक विशेषज्ञ के पास नहीं भेजा। तुलना अपराध और आरोपी के बीच लिंक साक्ष्य प्रदान कर सकती थी। यह फिर से अभियोजन पक्ष की ओर से एक चूक है जिसके लिए न तो विचारण न्यायालय में और न ही हमारे सामने कोई स्पष्टीकरण दिया गया है। **इस बात पर जोर देने की शायद ही जरूरत है कि ऐसे मामलों में जहां चोटें आग्नेयास्त्रों के कारण होने वाली घटना के कारण हैं, जांच के दौरान बरामद किए गए आग्नेयास्त्र और अपराध कारतूस के संबंध में बैलिस्टिक विशेषज्ञ की राय काफी महत्वपूर्ण होती है, ताकि आरोपी को अपराध से जोड़ा जा सके। ऐसे मामलों में विचारण न्यायालय के समक्ष विशेषज्ञ की राय पेश न करना अभियोजन पक्ष के मामले की विश्वसनीयता को काफी हद तक प्रभावित करता है।"**

(प्रभाव वर्धित)

20. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा जिस उपरोक्त उद्धरण पर भरोसा किया गया है, उसमें इस बात पर जोर दिया गया है कि ऐसे मामले में जहां आग्नेयास्त्र से चोट पहुंचाई गई हो, बैलिस्टिक विशेषज्ञ की राय काफी महत्वपूर्ण होती है, जहां जांच के दौरान आग्नेयास्त्र और अपराध कारतूस दोनों बरामद किए गए हों। ऐसे मामले में विशेषज्ञ की राय पेश न करने से अभियोजन पक्ष के मामले की विश्वसनीयता प्रभावित होती है।

21. हालाँकि, इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों वाली पीठ ने गुरुचरण सिंह बनाम पंजाब राज्य

मामले में इस न्यायालय की नजीरों का विश्लेषण किया है और माना कि घातक हथियार के उपयोग से जुड़े हर मामले में बैलिस्टिक विशेषज्ञ से परीक्षा कराना कोई कठोर नियम नहीं है। न्यायमूर्ति पी बी गजेन्द्रगडकर (तत्कालीन विद्वान मुख्य न्यायाधीश) के माध्यम से, इस न्यायालय ने धारित किया:

"41. हालांकि, यह तर्क दिया गया है कि प्रत्येक मामले में जहां किसी अभियुक्त व्यक्ति पर घातक हथियार से हत्या का अपराध करने का आरोप लगाया जाता है, अभियोजन पक्ष का यह कर्तव्य है कि वह विशेषज्ञ साक्ष्य द्वारा यह साबित करे कि यह संभव है या कम से कम संभवना है कि चोटें उस हथियार से लगी हों जिससे और जिस तरीके से कथित तौर पर उन्हें कारित किया जाना अभिकथित है; और इस प्रस्ताव के समर्थन में, **मोहिंदर सिंह बनाम राज्य [(1950) एससीआर 821]** में इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया गया है। उस मामले में, इस न्यायालय ने माना कि जहां अभियोजन पक्ष का कहना यह था कि अभियुक्त ने मृतक को बंदूक से गोली मारी थी, लेकिन यह संभावना प्रतीत हुई कि मृतक को चोटें राइफल से लगी थीं और यह साबित करने के लिए किसी योग्य विशेषज्ञ का कोई साक्ष्य नहीं था कि चोटें बंदूक से लगी थीं, और चोटों की प्रकृति भी ऐसी थी कि गोलियां एक से अधिक व्यक्तियों द्वारा चलाई गई होंगी, न कि केवल एक व्यक्ति द्वारा, और यह दिखाने के लिए कोई सबूत नहीं था कि किसी दूसरे व्यक्ति ने भी गोली चलाई थी, और मौखिक साक्ष्य ऐसा था जो निष्पक्ष नहीं था, विशेषज्ञ की जांच न करना अभियोजन पक्ष के मामले में एक गंभीर दुर्बलता होगी। **यह ध्यान देने योग्य होगा कि ये टिप्पणी ऐसे मामले में की गई थी जहाँ अभियोजन पक्ष के साक्ष्य में गंभीर दुर्बलताएँ थीं और इन टिप्पणियों के प्रभाव को निर्धारित करने में, उन तथ्यों को भूलना उचित या सही नहीं होगा जिनके संबंध में की गई थी। ये टिप्पणी एक कठोर नियम निर्धारित करने का दावा नहीं करती है कि हर मामले में जहाँ किसी आरोपी व्यक्ति पर घातक हथियार से हत्या का आरोप लगाया गया हो, अभियोजन पक्ष का मामला आरोप साबित करने में तभी सफल हो सकता है जब किसी विशेषज्ञ का परीक्षण कराया जाए। ऐसे मामलों की कल्पना करना संभव है जहाँ प्रत्यक्ष साक्ष्य ऐसे निर्विवाद चरित्र का हो और पोस्टमार्टम नोट्स द्वारा प्रकट की गई चोटों की प्रकृति प्रत्यक्ष साक्ष्य के साथ इतनी स्पष्ट रूप से सुसंगत हो कि बैलिस्टिक विशेषज्ञ की जांच आवश्यक न हो। जहां प्रत्यक्ष साक्ष्य संतोषजनक या निष्पक्ष नहीं है या जहां कथित तौर पर बंदूक से चोटें पहुंचाई गई हैं और प्रथम दृष्टया ऐसा प्रतीत होता है कि चोटें राइफल से आयीं हैं, निस्संदेह स्पष्ट असंगति को ठीक किया जा सकता है या मौखिक साक्ष्य को बैलिस्टिक विशेषज्ञ के साक्ष्य को प्रस्तुत करके पुष्ट किया जा सकता है। किन मामलों में अभियोजन पक्ष के मामले को साबित करने के लिए बैलिस्टिक विशेषज्ञ की जांच आवश्यक है, यह स्वाभाविक रूप से प्रत्येक मामले की परिस्थितियों पर निर्भर करेगा।** इसलिए, हमें नहीं लगता कि श्री पुरुषोत्तम का यह तर्क देना सही है कि प्रत्येक मामले में जहां किसी आरोपी व्यक्ति द्वारा आग्नेयास्त्र का इस्तेमाल किया गया है, प्रत्यक्ष साक्ष्य के अलावा, अभियोजन पक्ष को बैलिस्टिक विशेषज्ञ का साक्ष्य प्रस्तुत करना चाहिए, चाहे प्रत्यक्ष साक्ष्य कितना भी अच्छा क्यों न हो और रिकॉर्ड पर उक्त प्रत्यक्ष साक्ष्य पर संदेह करने का कोई कारण न हो।

(प्रभाव वर्धित)

22. इसी तरह, पंजाब राज्य बनाम जुगराज सिंह में इस न्यायालय की दो न्यायाधीशों वाली पीठ ने पाया कि अभियोजन पक्ष के मामले में आसपास की परिस्थितियाँ बरामद हथियार की बैलिस्टिक जांच के बिना, घातक हथियार से हुई मौत को साबित करने के लिए पर्याप्त हैं। न्यायालय ने न्यायमूर्ति आर पी सेठी के माध्यम नोट किया:

"18. इस मामले में विवेचना अधिकारी ने स्पष्ट रूप से कहा कि जब्त की गई बंदूकें काम करने की स्थिति में नहीं थीं और उन्होंने अपने विवेक से पाया कि उन्हें बैलिस्टिक विशेषज्ञ के पास उनकी राय के लिए भेजने से कोई उद्देश्य पूरा नहीं होगा। जांच अधिकारी से जिरह में यह पता लगाने के लिए कोई और सवाल नहीं पूछा गया कि बंदूकें खराब होने के बावजूद फायर पिन ठीक थी या नहीं। दो प्रत्यक्षदर्शियों के ठोस सबूतों और अन्य परिस्थितियों की मौजूदगी में हमें नहीं लगता कि इस मामले में विशेषज्ञ का परीक्षण न करने से किसी भी तरह से प्रत्यक्षदर्शियों द्वारा पेश किए गए कथानक की विश्वसनीयता को प्रभावित किया है।"

23. यह मामला ऐसा नहीं है, जिसमें आग्नेयास्त्र या कारतूस बरामद होने के बावजूद अभियोजन पक्ष बैलिस्टिक विशेषज्ञ की रिपोर्ट पेश करने में विफल रहा हो। इसलिए, बैलिस्टिक विशेषज्ञ द्वारा रिपोर्ट पेश करने में विफलता, जो किसी विशेष हथियार से होने वाली घातक चोटों की गवाही दे सके, प्रत्यक्ष चश्मदीद गवाहों के विश्वसनीय साक्ष्य को चुनौती देने के लिए पर्याप्त नहीं है।"

6. इस न्यायालय के मतानुसार प्रस्तुत वाद के तथ्यों एवम् परिस्थितियों में यदि विशेषज्ञ की प्रति-परीक्षा की वाँछा अभियुक्त द्वारा की जाती है, तो कोई कारण नहीं है कि उसे खारिज किया जाए । यह उचित होगा कि शस्त्र विशेषज्ञ जिसने शस्त्र संबंधी आख्या प्रस्तुत किया है, को मुख्य एवं प्रति परीक्षा के लिए आहूत किया जाए। इस न्यायालय के मतानुसार प्रस्तुत वाद के तथ्यों एवं परिस्थितियों में आयुध विशेषज्ञ, जिन्होंने इस अपराध संख्या में आख्या प्रस्तुत किया है, उनको साक्ष्य के लिए आहूत किये जाने का पर्याप्त आधार विद्यमान है। अतः यह याचिका *स्वीकार की जाती* है तथा आदेश दिनांकित 17.10.2022 खण्डित किया जाता है तथा विचारण न्यायालय को आदेशित किया जाता है कि वह अभियुक्त द्वारा प्रस्तुत 117-ख प्रार्थनापत्र को स्वीकार कर शस्त्र विशेषज्ञ को विशेष वाहक द्वारा अथवा सामान्य प्रकार से आहूत कर उसे परीक्षित कर प्रार्थी/ अभियुक्त को उसकी प्रति परीक्षा का अवसर प्रदान करे।

(2023) 3 ILRA 510

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक वाद

दिनांक: इलाहाबाद 20.03.2023

माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ

के समक्ष

आपराधिक प्रकीर्ण जमानत निरस्तीकरण आवेदन (धारा 438 Cr.P.C. के अंतर्गत) संख्या 36/2023

ईशा अग्रवाल ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ..प्रतिपक्षी

आवेदक के अधिवक्ता: श्री वीरेंद्र सिंह, श्री प्रतीक कुमार श्रीवास्तव, श्री वी.पी. श्रीवास्तव (वरिष्ठ अधिवक्ता), श्रीमती ईशा अग्रवाल (व्यक्तिगत रूप से)

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: जी.ए., श्री मनु शर्मा, श्री दिनेश कुमार पांडे

ए. दंड कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 439(2) - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धाराएँ 186, 228, 352, 353, 354, 354-D, 506 और 509 - सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 - धारा 67 - आवेदक जो सिविल जज, जूनियर डिवीजन के तौर पर तैनात थीं, एक प्रैक्टिसिंग वकील ने उनके CUG नंबर और फेसबुक पर अभद्र संदेश भेजना प्रारंभ कर दिया और न्यायालय कक्ष में उन्हें लगातार घूरते रहे - यह वाद उस समय का है जब एक न्यायिक अधिकारी/अध्यक्ष न्यायालय को लिंग के आधार पर परेशान किया गया है - प्रतिवादी के मोबाइल फोन की बरामदगी से यह सिद्ध होता है कि उसने आवेदक के विरुद्ध कथित अपराध को अंजाम देने के लिए उक्त मोबाइल फोन का इस्तेमाल किया - सत्र अदालत ने प्रतिवादी को जमानत दी, लेकिन सत्र जज ने प्रतिवादी के आचरण के प्रभाव पर विचार नहीं किया कि इसका न्यायिक प्रणाली के कामकाज पर नकारात्मक असर पड़ेगा। उनका आचरण न केवल आपराधिक था, बल्कि उन्होंने न्यायालय की अवमानना भी की क्योंकि उनके कार्य ने न्याय के प्रवाह में बाधा डाली और न्याय के प्रशासन में रुकावट पैदा की - इसलिए, निचली अदालत द्वारा प्रतिवादी को दी गई जमानत निरस्त की जाती है। (पैराग्राफ 1 से 10)

जमानत स्थगन आवेदन स्वीकृत की जाती है। (ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

सतेन्द्र कुमार अंतिल बनाम सी.बी.आई. और अन्य, एसएलपी (क्रिम.) नंबर 5191 / 2021

<u>माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ</u>

आवेदक श्रीमती ईशा अग्रवाल को वैयक्तिक रूप से ;विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री मनु शर्मा को; राज्य के लिए विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना गया और अभिलेख में प्रस्तुत सामग्री का अवलोकन किया गया।

यह जमानत निरस्तीकरण प्रार्थना पत्र आवेदक द्वारा मुकदमा अपराध संख्या 577/2022 भा0दं0सं0 की धाराओं 186, 228, 352, 353, 354, 354-डी, 506, 509 एवं सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम की धारा 67 के तहत पुलिस थाना कोतवाली, जिला महाराजगंज में अभियुक्त-विपक्षी संख्या 2 अभय प्रताप को सत्र न्यायाधीश, महाराजगंज के न्यायालय द्वारा जमानत प्रार्थना पत्र संख्या 1927/2022 अभय प्रताप बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में 17.12.2022 को दी गई जमानत को गलत तरीके से **सत्येंद्र कुमार अंतिल बनाम सीबीआई और अन्य के मामले में विशेष अनुमति याचिका (आपराधिक) संख्या 5191/2021 के दिनांक 11.07.2022** के निर्णय का अवलंब लेते हुए रद्द करने की प्रार्थना करते हुए दायर किया गया है।

आवेदक वर्तमान में महानगर मजिस्ट्रेट, कानपुर नगर के पद पर तैनात है। प्रश्नगत घटना के समय, वह जिला न्यायालय, महराजगंज में सिविल न्यायाधीश (जूनियर डिवीजन)/न्यायिक

मजिस्ट्रेट के रूप में तैनात थीं। जब वह अपना न्यायिक कर्तव्य निभा रही थीं, तो विपक्षी संख्या 2, अभय प्रताप, जो उसी न्यायालय में एक अभ्यासरत अधिवक्ता भी है, ने आवेदक के फेसबुक अकाउंट पर संदेशों के माध्यम से अप्रिय संदेश भेजना और कुछ टिप्पणियाँ डालना शुरू कर दिया। विपक्षी संख्या 2 के संदेशों पर ध्यान देने पर, आवेदक ने विपक्षी संख्या 2 को संदेश भेजने से रोक दिया। इसके बाद विपक्षी संख्या 2 ने आवेदक का आधिकारिक मोबाइल नंबर प्राप्त कर लिया और उस पर संदेश भेजना शुरू कर दिया। वह बिना किसी काम के उसके न्यायालय में आता था और लगातार उनको घूरता रहता था। जब विपक्षी संख्या 2 द्वारा सहनशीलता की सीमा पार कर दी गई, तो आवेदक ने उसके खिलाफ 11.11.2022 को पुलिस थाना कोतवाली, महराजगंज में प्राथमिकी दर्ज कराई और 11.11.2022 को जिला न्यायाधीश, महराजगंज के माध्यम से इस न्यायालय को एक अभ्यावेदन भी भेजा। विपक्षी संख्या 2 कभी भी आवेदक से फेसबुक या किसी मीडिया मंच के माध्यम से नहीं जुड़ा था और न ही आवेदक द्वारा कभी उसका मित्र अनुरोध स्वीकार किया गया था। विपक्षी संख्या 2 ने आवेदक को 29.9.2021 से संदेश भेजना शुरू कर दिया और उसके बाद उसने उसे विभिन्न संदेश भेजे, जिनका आवेदक ने कभी जवाब नहीं दिया। 17.7.2022 को रात्रि में लगभग 1:58 बजे उसने संदेश भेजा, "आई लव यू ईशा", उसने फिर सन्देश भेजा "इस जन्म में नहीं तो अगले जन्म में तुझे पाने की कोशिश प्रयास करता रहूंगा और हो सके तो सातों जन्म"। विपक्षी संख्या 2 के आचरण से तंग आकर आवेदक ने दिनांक 17.7.2022 को विपक्षी संख्या 2 को फेसबुक अकाउंट पर निरुद्ध कर दिया। उनके सीयूजी मोबाइल नंबर पर उसने 8.11.2022 को सुबह 4:31 बजे सन्देश भेजा, "गुड मॉर्निंग" और फिर "आई लव यू बेबी"। विपक्षी संख्या 2 को 23.11.2022 को गिरफ्तार किया गया था और विद्वान सत्र न्यायाधीश ने **सतेंद्र कुमार अंतिल (उपरोक्त)** के मामले का अवलंब लेते हुए 17.12.2022 को उसे जमानत दे दी।

आवेदक न्यायालय में वैयक्तिक रूप से उपस्थित हुईं और प्रस्तुत किया कि वह एक न्यायिक अधिकारी हैं और जिला न्यायालय, महाराजगंज में सिविल न्यायाधीश (जूनियर डिवीजन) के रूप में तैनात थीं, जब विपक्षी संख्या 2 ने उनके खिलाफ अवांछनीय और आपत्तिजनक व्यवहार किया था। वह अपने काम पर ध्यान कैंद्रित करने की स्थिति में नहीं थीं और अपनी सुरक्षा को लेकर आशंकित थीं। वह अपने न्यायिक कर्तव्यों का स्वतंत्र रूप से निर्वहन करने से विचलित थीं और उन्हें विपक्षी संख्या 2 द्वारा उनकी प्रतिष्ठा को धूमिल करने का लगातार डर सता रहा था। उनकी शादी तय हो गई थी और ये संदेश भविष्य में उनके वैवाहिक जीवन को नष्ट कर सकते थे और उनके भावी वैवाहिक जीवन को प्रभावित कर सकते थे। विपक्षी संख्या 2 खतरनाक प्रवृत्ति का प्रदर्शन कर रहा है और उससे सख्ती से निपटा जाना चाहिए और उसे दी गई जमानत रद्द कर दी जानी चाहिए। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि जमानत आदेश में **सतेंद्र कुमार अंतिल (उपरोक्त)** के निर्णय पर विद्वान सत्र न्यायाधीश का अवलंबन उचित नहीं है क्योंकि जब 17.12.2022 को उसकी जमानत स्वीकार की गई थी तो विपक्षी संख्या 2 के खिलाफ आरोप पत्र दायर नहीं किया गया था। विद्वान सत्र न्यायाधीश ने कहा है कि विपक्षी

संख्या 2 के विरुद्ध आरोप पत्र तैयार है। तब तक इसे दाखिल नहीं किया गया था। विपक्षी संख्या 2 के विरुद्ध सभी अपराध जमानतीय प्रकृति के नहीं हैं। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि विद्वान सत्र न्यायाधीश का यह निष्कर्ष कि विपक्षी संख्या 2 के खिलाफ आरोप-पत्र तैयार है, अनुचित है। दिनांक 15.2.2023 के प्रत्युत्तर शपथ पत्र के माध्यम से आवेदक ने न्यायिक मजिस्ट्रेट, महाराजगंज के न्यायालय द्वारा जारी प्रश्नावली को अभिलेख पर लाया है, जिससे पता चलता है कि 17.12.2022 तक मुकदमा अपराध संख्या 577/2022 में आरोप पत्र दायर नहीं किया गया था और न ही उस पर उस तिथि तक संज्ञान लिया गया था। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि शीर्ष न्यायालय के **सतेंद्र कुमार अंतिल (उपरोक्त)** के निर्णय का लाभ उसको गलत तरीके से दिया गया है क्योंकि उसे अन्वेषक अधिकारी द्वारा आरोप-पत्र प्रस्तुत करने से पहले गिरफ्तार किया गया था।

विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि विपक्षी संख्या 2 आवेदक से बिना शर्त माफी मांग रहा है क्योंकि उसके मन में देश के कानून और न्यायिक बिरादरी के प्रत्येक सदस्य के प्रति सर्वोच्च सम्मान है। उसने कहा है कि ऐसे किसी भी कृत्य के लिए उसे क्षमा किया जा सकता है, जिससे आवेदक के पद, सम्मान, भावनाओं को ठेस पहुंची हो। उसने पूर्व में किये गये दुष्कर्मों को न दोहराने का संकल्प लिया है। उसने आगे प्रस्तुत किया कि कथित सभी अपराधों में सात साल तक की सजा का प्रावधान है और उसे दी गई जमानत की किसी भी शर्त का उसने उल्लंघन नहीं किया है।

विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अन्वेषक अधिकारी द्वारा बरामद किए गए विपक्षी संख्या 2 के मोबाइल फोन से यह पाया गया कि विपक्षी संख्या 2 द्वारा उपर्युक्त फोन का इस्तेमाल आवेदक के खिलाफ कथित अपराध करने के लिए किया गया था।

परस्पर विरोधी तर्कों को सुनने के बाद, इस न्यायालय ने पाया कि विद्वान सत्र न्यायाधीश ने विपक्षी संख्या 2 को जमानत देते समय न तो मामले की उचित, कानूनी और तथ्यात्मक स्थिति पर विचार किया है और न ही न्यायालय की एक महिला पीठासीन अधिकारी के खिलाफ ऐसे अपराध करने में शामिल अभियुक्त को जमानत देने के भविष्य के दुष्परिणामों पर ध्यान दिया है। अभिलेख से यह स्पष्ट है कि **सतेंद्र कुमार अंतिल (उपरोक्त)** के मामले में शीर्ष न्यायालय के निर्णय का अवलंब लेते हुए, जब उसे विद्वान सत्र न्यायाधीश, महराजगंज द्वारा जमानत दी गई थी, तो विपक्षी संख्या 2 के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया था। अन्वेषण प्रगति पर था तभी दिनांक 23.11.2022 को विपक्षी संख्या 2 को सलाखों के पीछे डाल कर कारागार भेज दिया गया। यह सच हो सकता है कि विपक्षी संख्या 2 के खिलाफ सभी अपराध 7 साल से कम कारावास की सजा के साथ दंडनीय हैं, लेकिन सभी अपराध जमानतीय नहीं हैं। भा0दं0सं0 की धारा 353 और 354 के तहत कम से कम दो कथित दंडनीय अपराध गैर जमानतीय हैं। यह ऐसा मामला नहीं है जहां अधिकार के मामले पर जमानत दी जानी चाहिए थी। आमतौर पर लंबित परीक्षण में जमानत के मामलों में उदार दृष्टिकोण अपनाया जाता है जहां अपराध 7 साल से कम की सजा के साथ दंडनीय होते हैं। इस मामले के तथ्य सामान्य घटनाक्रम से अलग हैं। यह एक ऐसा मामला है जहां एक न्यायिक

अधिकारी/न्यायालय की पीठासीन अधिकारी को लिंग के आधार पर परेशान किया गया है। विपक्षी संख्या 2, जो कोई और नहीं बल्कि न्यायालय का बहुत ही जिम्मेदार अधिकारी है, की ओर से कठोर आचरण अपेक्षित था। विपक्षी संख्या 2 के आचरण का प्रभाव ऐसा है कि इसका जनसाधारण स्तर पर न्यायिक प्रणाली के कामकाज पर हानिकारक प्रभाव पड़ेगा। उस प्रसंग में सत्र न्यायाधीश को इस पर विचार करना चाहिए था, लेकिन ऐसा नहीं किया गया है। इस न्यायालय का विचार है कि उपर्युक्त परिस्थितियों और इस तथ्य को देखते हुए कि अन्वेषण प्रगति पर है, विपक्षी संख्या 2 को जमानत देना उचित नहीं ठहराया जा सकता है। फलत: अवर न्यायालय द्वारा विपक्षी संख्या 2 को दी गई जमानत रद्द की जाती है। विपक्षी संख्या 2 को संबंधित न्यायालय के समक्ष तत्काल अभ्यर्पण करने का निर्देश दिया जाता है।

विचारण न्यायालय को छह महीने के भीतर विपक्षी संख्या 2 के खिलाफ परीक्षण समाप्त करने का निर्देश दिया गया है।

इस मामले से अलग होने से पहले, इस न्यायालय ने पाया कि विपक्षी संख्या 2, अर्थात् अभय प्रताप का आचरण न केवल प्रकृति में आपराधिक था और न्यायालय के एक अधिकारी के लिए अशोभनीय था, बल्कि उसने न्यायालय की आपराधिक अवमानना भी की थी यद्यपि यह कृत्य न्याय की प्रक्रिया में हस्तक्षेप और न्याय प्रशासन में बाधा के समान है।

"आपराधिक अवमानना" का अर्थ है किसी भी मामले का प्रकाशन (चाहे शब्दों द्वारा, बोले गए या लिखित या संकेतों द्वारा, या दृश्य प्रतिनिधित्व द्वारा, या अन्यथा) या कोई अन्य कार्य करना जो: 1. निंदा करता है या बदनाम करने की प्रवृत्ति रखता है, या नीचा दिखाता है या किसी न्यायालय के प्राधिकार को कम करने की प्रवृत्ति रखता है, या 2. किसी न्यायिक कार्यवाही के उचित अनुक्रम पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है, या हस्तक्षेप करता है या हस्तक्षेप करने की प्रवृत्ति रखता है; या 3. किसी अन्य तरीके से न्याय प्रशासन में हस्तक्षेप करता है या हस्तक्षेप करने की प्रवृत्ति रखता है, या बाधा डालता है या बाधा डालने की प्रवृत्ति रखता है। अधिनियम की धारा 2(ग) न्याय की अदालतों में हस्तक्षेप या न्याय प्रशासन में बाधा डालने या न्यायालय के अधिकार को बदनाम करने या कम करने पर जोर देती है। धारा 10 अधीनस्थ न्यायालयों की अवमाननाओं को दंडित करने की उच्च न्यायालय की शक्ति से संबंधित है। धारा 12 न्यायालय की अवमानना के लिए सज़ा से संबंधित है। धारा 14(2) अवमानना के आरोप वाले व्यक्ति को उस न्यायाधीश या न्यायाधीशों के अलावा किसी अन्य न्यायाधीश द्वारा उसके खिलाफ आरोप की सुनवाई की अनुमति देती है, जिनकी उपस्थिति या सुनवाई में अपराध होने का आरोप लगाया गया है और अदालत की राय है कि ऐसा करने के लिए यह व्यावहारिक है। अधिनियम की धारा 15 न्यायालय को आपराधिक अवमानना के संज्ञान के लिए स्वत: कार्रवाई करने का अधिकार देती है।

आवेदक के खिलाफ विपक्षी संख्या 2 का आचरण यौन उत्पीड़न के कृत्यों का सामना करने वाली जिला न्यायालय की महिला पीठासीन अधिकारियों के मन में डर पैदा करने जैसा था। यदि ऐसे कृत्य या उसकी आशंका मात्र हो तो

किसी भी न्यायालय की पीठासीन अधिकारी से यह उम्मीद नहीं की जा सकती है कि वह न्याय प्रशासन के अपने आधिकारिक कर्तव्यों को संतुलित और शांत मन की स्थिति के साथ स्वतंत्र और निष्पक्ष रूप से निभाएंगी। बोले गए शब्दों और लिखित शब्दों के माध्यम से उत्पीड़न और न्यायालय में पीछा करने की आशंका हमेशा उनके दिमाग पर हावी रहेगी। ऐसी स्थिति में जहां न्यायालय की पीठासीन अधिकारी स्वयं सुरक्षित नहीं हैं, यह उम्मीद नहीं की जा सकती कि वह अपने समक्ष शील की रक्षा के लिए उपस्थित होने वाले मुवक्किलों को विपक्षी संख्या 2 जैसे अभियुक्तों के अनुचित आक्रमण और उत्पीड़न से बचा पाएंगी। इस न्यायालय के समक्ष दूसरे जिले का एक और ऐसा मामला आया है, जिसमें भविष्य में तारीख तय की गई है और ऐसा प्रतीत होता है कि यह दुर्भाव जिला न्यायालयों में तेजी से फैल रहा है। इस न्यायालय के समक्ष पहले भी जो मामला आया था, उसमें जिला न्यायालय के एक अधिवक्ता द्वारा एक महिला पीठासीन अधिकारी के खिलाफ इस तरह का अपराध करना शामिल था। ऐसी स्थिति में, इस न्यायालय का दृढ़ मत है कि इससे पहले कि यह संकट और बढ़ जाए, विपक्षी संख्या 2 की तरह अभियुक्त के खिलाफ आपराधिक अवमानना के लिए कार्यवाही शुरू करके कठोर निर्णयों से निपटा जाना चाहिए। ऐसे मामलों में शून्य सहनशीलता की नीति अनिवार्य हो गई है।

तदनुसार, इस न्यायालय की रजिस्ट्री को निर्देश दिया जाता है कि वह विपक्षी संख्या 2, अभय प्रताप द्वारा की गई आपराधिक अवमानना का स्वत: संज्ञान लेने के लिए इस मामले को दो सप्ताह के भीतर समुचित पीठ के समक्ष रखे।

(2023) 3 ILRA 513

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक वाद

दिनांक: इलाहाबाद 01.03.2023

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती ज्योत्सना शर्मा के समक्ष

आपराधिक प्रकीर्ण अग्रिम जमानत आवेदन (धारा 438 Cr.P.C. के तहत) संख्या - 846/2023

सृजन सिंह ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ...प्रतिपक्षी

आवेदक के अधिवक्ता: श्री अजीत सिंह, श्री शगीर अहमद (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: जी.ए., श्री अंकित कपूर, श्री प्रशांत पांडे

ए. आपराधिक 60-ए- आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 438 - भारतीय दंड संहिता-1860-धारा 307 एवं 506-आवेदन-निरस्त-पुरानी दुश्मनी के कारण प्रतिवादियों को मारने की कोशिश करने का आरोप-आवेदक द्वारा पहले दर्ज की गई एफआईआर से यह स्पष्ट है-एफआईआर का कोई रंगीन या बढ़ा-चढ़ा कर प्रस्तुत करने का कोई संभावन नहीं-घायल को कई चोटें आईं-केवल मौखिक साक्ष्य नहीं, अन्य साक्ष्य जैसे सीसीटीवी फुटेज, स्थल निरीक्षण रिपोर्ट, जो अभियोजन के सिद्धांत का समर्थन करती है-आवेदक की संलिप्तता को दिखाने के लिए पर्याप्त साक्ष्य हैं-

इसलिए, यह अग्रिम जमानत देने के लिए उचित मामला नहीं है। (पैराग्राफ 1 से 6)

जमानत आवेदन को अस्वीकृत किया जाता है। (ई-6)

उद्धृत वाद सूची:

1. रवि कपूर बनाम राज्य राजस्थान (2012) AIR SC 2986
2. एलीस्टर एंथनी पेरेरा बनाम राज्य महाराष्ट्र (2012) 2 SCC 648
3. के.राजापंडियन बनाम राज्य एनसीटी दिल्ली (2022) लॉसूट (दिल्ली) 1085

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती ज्योत्सना शर्मा,

1. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री अजीत सिंह की सहायता से श्री शगीर अहमद, वरिष्ठ अधिवक्ता को, प्रथम शिकायतकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता, श्री प्रशांत पांडेय को, राज्य की ओर से विद्वान एजीए श्री ओपी मिश्रा को सुना और अभिलेख पर कागजात का अवलोकन किया।

2. वर्तमान आवेदन, आवेदक-**सृजन सिंह** की ओर से मुकदमा अपराध संख्या 0421/2022 धारा 307 और 506 आईपीसी के तहत, पुलिस स्टेशन भेलूपुर, जिला वाराणसी में अग्रिम जमानत की मांग करते हुए दायर किया गया है।

3. घटना के दिन यानी 26.12.2022 को दोपहर लगभग 1 बजे एफआईआर में लगाए गए आरोपों के अनुसार, आशुतोष तिवारी नामक व्यक्ति अपने दोस्त शारिक के साथ अपनी मोटरसाइकिल पर जा रहा था; जैसे ही वह आरपीएफ बैरक के पास पहुंचा, पुरानी दुश्मनी को लेकर सृजन सिंह पुत्र मनोज (वर्तमान आवेदक) ने उसे जान से मारने की नीयत से जानबूझकर आशुतोष तिवारी के ऊपर अपनी चार पहिया गाड़ी चढ़ा दी; प्रथम सूचना रिपोर्ट में यह आरोप लगाया गया है कि यह कृत्य उद्देश्यपूर्ण और जानबूझकर किया गया था; उस चार पहिया वाहन में तीन अन्य सह-अभियुक्त भी बैठे थे; आशुतोष और उसके दोस्त शारिक को कई गंभीर चोटें आईं; सृजन सिंह और मनोज सिंह यह सोच कर अपनी चार पहिया गाड़ी से भाग निकले कि उनकी मौत हो गयी है; पूरी घटना सीसीटीवी कैमरे में रिकॉर्ड हो गई; उन्हें अस्पताल में भर्ती कराया गया और आगे के इलाज के लिए दूसरे अस्पताल में रेफर किया गया; उन्हें लगी चोटें जीवन के लिए खतरनाक थीं।

4. आवेदक की ओर से तर्क दिया गया कि वह वाहन नहीं चला रहा था और उसे दुश्मनी के कारण इस मामले में झूठा फंसाया गया है; आवेदक के पारिवारिक ड्राइवर राजेश सिंह ने कहा है कि वास्तव में घटना के समय वही चार पहिया वाहन चला रहा था; अगला तर्क यह है कि अधिक से अधिक यह उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक गाड़ी चलाने का मामला है और आईपीसी की धारा 307 और 506 के तहत कोई अपराध नहीं बनता है; जांच निष्पक्ष तरीके से नहीं की गई है; आईपीसी की धारा 307 के तहत मामला बनाने के लिए इसे तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत किया गया है।

उपरोक्त बिंदु पर जोर देने के लिए, **रवि कपूर बनाम राजस्थान राज्य एआईआर 2012 एससी 2986** मामले में दिया गया सर्वोच्च न्यायालय के एक निर्णय का हवाला मेरे समक्ष दिया गया

है। मैंने उपरोक्त निर्णय का अवलोकन किया। ऐसा प्रतीत होता है कि सर्वोच्च न्यायालय ने 'उपेक्षा', 'सदोष उपेक्षा', 'समुचित सावधानी', 'स्वयं प्रमाणित सिद्धांत', 'उतावलेपन और दोषी उतावलेपन के बीच अंतर' और आईपीसी की धारा 279 के कुछ अन्य मामलों के आलोक में शब्दों के अर्थ का विश्लेषण किया है। उपरोक्त निर्णय के आधार पर, यह तर्क दिया जाता है कि यह मामला अनिवार्य रूप से केवल आईपीसी की धारा 279 के दायरे में आता है, न कि आईपीसी की धारा 307 के दायरे में। मैं यह समझने में असफल हूं कि इस न्यायालय के समक्ष जिस मुद्दे पर जोर दिया गया है, उस पर यह निर्णय कैसे उपयोगी हो सकता है। संयोग से, फैसले के पैरा-15 में, सर्वोच्च न्यायालय ने **एलिस्टर एंथोनी परेरा बनाम महाराष्ट्र राज्य (2012) 2 एससीसी 648** मामले में अपने फैसले का उल्लेख किया है; इस तथ्य पर प्रकाश डालते हुए कि यदि कोई व्यक्ति लापरवाही और उपेक्षापूर्ण रूप से गाड़ी चलाता है, तो उसके जोखिम के बारे में जानता है कि एक विशेष परिणाम होने की संभावना है और परिणाम वास्तव में घटित होते हैं, तो उसे कार्य के साथ-साथ परिणामों के लिए भी दोषी ठहराया जा सकता है। मेरे विचार में जहां कार्य या तो जानबूझकर किया जाता है या परिणामों के बारे में सचेत जागरूकता के साथ किया जाता है, वहां जल्दबाजी और लापरवाही से किए गए कार्य और खतरनाक परिणामों की संभावना के ज्ञान के साथ किसी भी जल्दबाजी या लापरवाही से किए गए कार्य के बीच अंतर की बारीकियों में जाने की कोई आवश्यकता नहीं है। मेरे विचार में इस तथ्य के मद्देनजर आवेदक को इस फैसले का कोई लाभ नहीं मिल सकता है कि आरोपी आवेदक का कृत्य कथित तौर पर आशय से और जानबूझकर किया गया था।

एक अन्य निर्णय जो मेरे सामने उद्धृत किया गया है वह ***के.राजापांडियन बनाम दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्य क्षेत्र; 2022 लॉ सूट (दिल्ली) 1085*** है, जिसका फैसला 06.05.2022 को हुआ। मैंने उपरोक्त निर्णय का भी अवलोकन किया है। मैं फिर यह समझने में असफल रहा कि यह निर्णय आवेदक को कैसे कोई लाभ दे सकता है।

5. दूसरे पक्ष द्वारा अग्रिम जमानत आवेदन का कुछ तथ्यों, परिस्थितियों और आवेदक द्वारा उठाए गए बिंदु के जवाब में उत्तर की ओर इशारा करते हुए जोरदार विरोध किया गया है, जो इस प्रकार हैं:-

(i) चन्द्रशेखर, शारिक, रितेश कुमार और एक घायल सहित कई स्वतंत्र गवाह हैं, जिन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि आवेदक चार पहिया वाहन चला रहा था और उसने जानबूझकर अपने वाहन की दिशा बदल दी और उन पर गाड़ी चढ़ा दी; यह ईश्वर की कृपा है कि वे बच गये हैं;
(ii) घायलों को कई चोटें लगीं जो घातक साबित हो सकती थीं यदि उन्हें समय पर चिकित्सा सहायता नहीं दी जाती;
(iii) केवल प्रेरक मौखिक साक्ष्य ही नहीं, सीसीटीवी फुटेज, घटनास्थल निरीक्षण रिपोर्ट जैसे अन्य साक्ष्य भी हैं जो अभियोजन सिद्धांत की पुष्टि करते हैं;
(iv) इस मामले में, किसी भी रंगीन या अतिरंजित संस्करण या गलत निहितार्थ की संभावना को

खारिज करते हुए त्वरित तरीके से प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई है;

(vii) दोनों पक्षों के बीच तनावपूर्ण संबंध थे; इस तथ्य को सृजन सिंह (वर्तमान आवेदक) द्वारा शारिक खान और 2 अन्य के खिलाफ आईपीसी की धारा 279, 504, 323, 427, 506, 342 के तहत दर्ज की गई पिछली प्रथम सूचना रिपोर्ट से काफी बल मिलता है। आगे यह तर्क दिया गया है कि यदि शत्रुता झूठे आरोप लगाने के कारणों में से एक हो सकती है, तो यह उन कारणों में से एक हो सकता है जिसने आरोपी को दूसरे पक्ष के व्यक्तियों को मारने की कोशिश करने के लिए प्रेरित किया;

(viii) अपने आदमी द्वारा अपराध स्वीकार करना यह दर्शाता है कि आवेदक चीजों को अपने पक्ष में करने के लिए दूसरों पर अपना प्रभाव डाल सकता है;

(ix) यह तर्क दिया गया है कि इस मामले में आवेदक की संलिप्तता दिखाने के लिए पर्याप्त से अधिक सबूत हैं और वह मुख्य आरोपी व्यक्तियों में से एक है, इसलिए यह अग्रिम जमानत देने के लिए उपयुक्त मामला नहीं है।

6. मैंने आरोपों की प्रकृति, दोनों पक्षों की दलीलों पर विचार किया और रिकॉर्ड पर मौजूद सभी सामग्रियों का अध्ययन किया। यह ध्यान दिया जा सकता है कि अग्रिम जमानत नियमित जमानत का विकल्प नहीं है। अग्रिम जमानत देने के मानदंड कुछ मामलों में नियमित जमानत देने से मौलिक रूप से भिन्न हैं। इन असाधारण शक्तियों के प्रयोग के लिए कुछ परिस्थितियों के अस्तित्व की आवश्यकता होती है जो न्याय के उद्देश्यों को आगे बढ़ाने और कानून की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के उद्देश्य से इस अदालत को कानून की नियमित प्रक्रिया में हस्तक्षेप करने के लिए प्रेरित कर सकती हैं। मुझे यह राय बनाने के लिए कोई सामग्री नहीं मिली कि आवेदक का नाम केवल उसके नाम को बदनाम करने के लिए घसीटा गया है। मुझे आवेदक को अग्रिम जमानत का लाभ देने के लिए कोई भी आधार पर्याप्त नहीं लगता, इसलिए वर्तमान अग्रिम जमानत आवेदन **खारिज** किया जाता है।

7. **यह स्पष्ट किया जाता है कि इसमें की गई टिप्पणियाँ किसी भी तरह से परीक्षण के किसी भी चरण में विद्वान परीक्षण न्यायाधीश के सामने मौजूद सामग्री के आधार पर उन्हें अपनी स्वतंत्र राय बनाने में प्रभावित नहीं करेंगी।**

(2023) 3 ILRA 516

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक वाद

दिनांक: इलाहाबाद 28.02.2023

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान

के समक्ष

आपराधिक प्रकीर्ण अग्रिम जमानत आवेदन (U/S 438 Cr.P.C.) संख्या 1346 / 2023

और

आपराधिक प्रकीर्ण अग्रिम जमानत आवेदन (U/S 438 Cr.P.C.) संख्या 1348 / 2023

विनोद बिहारी लाल ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ...प्रतिपक्षी

आवेदक के अधिवक्ता: श्री राजीव लोचन शुक्ला, श्री कुमार विक्रांत

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: जी.ए.

ए. आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 438 - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धाराएँ 153-A, 506, 420, 467, 468 और 471 - उत्तर प्रदेश अवैध धर्मांतरण निषेध अधिनियम, 2021 - धाराएँ 3 और 5(1) - समाज के कमजोर वर्गों के संबंध में धर्मांतरण के आरोप - आवेदक प्रभावशाली व्यक्ति हैं जो विदेशों से जुटाए गए फंड का इस्तेमाल कर रहे हैं - आवेदक पुलिस के साथ सहयोग नहीं कर रहे हैं जबकि उन्हें गैर-जमानती वारंटों के बारे में जानकारी है - सुरक्षा दी गई लेकिन आवेदकों ने जांच अधिकारी के सामने पेश होने के लिए सुनिश्चित नहीं किया, जो प्रदर्शित करता है कि उनकी जांच में सहयोग करने की कोई मंशा नहीं है - इसके अलावा, आवेदकों को केवल इसलिए नहीं छोड़ा जा सकता कि उनका नाम FIR में नहीं है - वर्तमान वाद में, जनता की भावनाएँ सम्मिलित हैं, जहाँ भारत जैसे किसी भी धर्मनिरपेक्ष देश में यह शांति और सामंजस्य को तोड़ने के बराबर होगा - इसलिए, धारा 438 Cr.P.C. की शक्ति का उपयोग नियमित जमानत के विकल्प के रूप में सामान्य तरीके से नहीं किया जा सकता। (पैरा 1 से 47)

बी. अग्रिम जमानत' देने की शक्ति असाधारण होती है और केवल विशेष वाद में तब उपयोग की जाती है जब यह दिखता है कि किसी व्यक्ति को झूठा फंसाया गया है या उसके विरुद्ध निरर्थक मामला दर्ज किया गया है या यह दिखाने के लिए उचित आधार हैं कि किसी अपराध का आरोपी व्यक्ति भागने की संभावना नहीं रखता है, या जमानत पर रहते हुए अपनी स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं करेगा, तब यह शक्ति प्रयोग में लाई जाती है। (पैरा 9)

आवेदन अस्वीकृत किया जाता है। (ई-6)

उद्धृत वाद सूची:

1. मनीष यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, ABAIL संख्या 4645 वर्ष 2022

2. सुरेश बाबू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, ABAIL संख्या 3532 वर्ष 2022

3. नाथू सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य। (2021) 6 SCC 64

4. रेव. स्टेनिस्लॉस बनाम मध्य प्रदेश राज्य एवं अन्य। (1977) 1 SCC 677

5. अली @ अली अहमद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, ABAIL संख्या 2904 वर्ष 2022

6. अमीश देवगन बनाम भारत संघ एवं अन्य। (2021) 1 SCC 1

7. श्री गुरबक्श सिंह सिब्बिया एवं अन्य बनाम पंजाब राज्य। (1980) 2 SCC 565

8. सिद्धाराम सतलिंगप्पा मेहतेरे बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य। (2011) 1 SCC 694

9. सुषिला अग्रवाल एवं अन्य बनाम राज्य (NCT दिल्ली) एवं अन्य। (2020) 5 SCC 1

10. सुमिता प्रदीप बनाम अरुण कुमार सी.के. एवं अन्य। (2022) SCC ऑनलाईन SC 1529

11. पोकर राम बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य।

12. साधना चौधरी बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य।

13. पोकर राम बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य। (1985) 2 SCC 597

14. जोस प्रकाश जॉर्ज एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, CMWP 1814 वर्ष 2023

15. साधना चौधरी बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य। (2022) SCC ऑनलाईन SC 869

16. श्री गुरबक्श सिंह सिब्बिया एवं अन्य बनाम पंजाब राज्य। (1980) 2 SCC 565

17. विपिन कुमार धीर बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य। (2021) AIR SC 4865
18. पी. चिदंबरम बनाम ED (2019) 9 SCC 24
19. के.एच. नज़र बनाम मैथ्यू के. जेकब एवं अन्य। (2020) 14 SCC 126
20. दीपिका सिंह बनाम CAT एवं अन्य। (2022) SCC ऑनलाईन SC 1088
21. लवेश बनाम राज्य (NCT दिल्ली) (2012) 8 SCC 730
22. एम.पी. राज्य बनाम प्रदीप शर्मा (2014) 2 एससीसी 171
23. धर्म परिवर्तन का मुद्दा, WP (सिविल) संख्या 63 वर्ष 202224. बादशाह बनाम उर्मिला बादशाह गोडसे (2014) 1 एससीसी 188
25. महादेव मीना बनाम प्रवीण राठौर और अन्य (2021) एससीसी ऑनलाइन एससी 804

<u>माननीय श्रीमती न्यायमूर्ति मंजू रानी चौहान</u>

1. दोनों अग्रिम जमानत आवेदन मुकदमा अपराध संख्या 224 वर्ष 2022 में धारा 153-ए, 506, 420, 467, 468, 471 भारतीय दंड संहिता, 18601 और 3 और 5 (1) उत्तर प्रदेश धर्म संपरिवर्तन प्रतिषेध अधिनियम, 2021 (यूपी अधिनियम संख्या 3 वर्ष 2021) 2, थाना कोतवाली, जिला फतेहपुर के मामले में दायर की गयी हैं।

2. अभियोजन पक्ष के संस्करण के रूप में प्रस्तुत प्रकरण यह है कि सूचनाकर्ता हिमांशु दीक्षित द्वारा एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई गई थी जिसमें आरोप लगाया गया था कि हिंदू धर्म के लगभग 90 व्यक्तियों को इवेंजेलिकल चर्च ऑफ़ इंडिया, हरिहरगंज, फतेहपुर में उनके अनुचित प्रभाव में लाने, जबरदस्ती करने और धोखाधड़ी करने और आसान पैसे का वादा करके उन्हें लालच देकर ईसाई धर्म में धर्मांतरण के उद्देश्य से एकत्र किया गया है; यह सूचना मिलने पर, सरकारी अधिकारी उस स्थान पर पहुंचे और पादरी विजय मसीहा से पूछताछ की; उन्होंने खुलासा किया कि धर्मांतरण की प्रक्रिया पिछले 34 दिनों से चल रही थी और यह प्रक्रिया 40 दिनों के भीतर पूरी हो जाएगी; (क) क्या यह सच है कि वे मिशन अस्पताल में भर्ती मरीजों का भी धर्मांतरण करने का प्रयास कर रहे हैं और कर्मचारियों ने इसमें सक्रिय भूमिका निभाई है; सरकारी अधिकारियों ने 35 व्यक्तियों (प्राथमिकी में नामित) और 20 अज्ञात व्यक्तियों को हिंदू समुदाय के 90 व्यक्तियों के ईसाई धर्म में धर्मांतरण में शामिल पाया। प्राथमिकी में भ०द०वि० की धारा 153ए, 506, 420, 467, 468 और उत्तर प्रदेश विधि विरुद्ध धर्म संपरिवर्तन प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3/5 (1) के तहत मामला दर्ज किया गया और मामले की जांच की गई।

3. **<u>अग्रिम जमानत आवेदन संख्या 1346 वर्ष 2023 में आवेदक के लिए अधिवक्ता के तथ्य और तर्क</u>** :

3.1 श्री राजीव लोचन शुक्ला और श्री कुमार विक्रांत, अधिवक्ता आवेदक के लिए उपस्थित हुए।

3.2 आवेदक की ओर से उपस्थित अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि आवेदक, वर्तमान में, निदेशक (प्रशासन), सैम हिगिनबॉटम कृषि, प्रौद्योगिकी और विज्ञान विश्वविद्यालय, नैनी, प्रयागराज (इलाहाबाद), एक ईसाई अल्पसंख्यक संस्थान के रूप में काम कर रहा है। वह शुआटस में 37 साल के बेदाग सेवा करियर का लंबा कार्यकाल रखता है, हालांकि, राज्य में राजनीतिक परिवर्तन के

कारण, वह 2017 और 2018 के बीच 11 आपराधिक मामलों में उलझा हुआ है। आवेदक ईसाई धर्म को मानता है। उन्हें सामूहिक धर्मांतरण के झूठे मामले में फंसाया जा रहा है, जबकि 14.4.2022 को आवेदक और उनके परिवार के सदस्यों को गुरुवार को मौंडी की विशेष प्रार्थना में भाग लेने के लिए शांतिपूर्वक एकत्रित किया गया था, जिसमें संबंधित चर्चों में ईसाई समुदाय विशेष प्रार्थना करने के लिए शामिल होता है। हालांकि, सूचनाकर्ता अपने करीबी सहयोगियों के साथ चर्च में घुस गया और अराजकता और अशांति पैदा कर दी। सूचनाकर्ता द्वारा धारा 153ए, 506, 420, 467, 468 भ०द०वि० और उत्तर प्रदेश विधि विरुद्ध धर्म संपरिवर्तन प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3/5(1) के तहत प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई गई।

3.3 आवेदक के अधिवक्ता ने आगे कहा कि घटना की तारीख से लगभग आठ महीने बाद, आवेदक को धारा 41(1) दंड प्रक्रिया संहिता, 19736, दिनांक 16.12.2022 (अनुलग्नक-1) के तहत नोटिस जारी किया गया है, जिससे आवेदक की गिरफ्तारी की आशंका बढ़ गई है। जाहिर है, ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त नोटिस बयान दर्ज कराने के उद्देश्य से जारी किया गया था। गिरफ्तारी की आशंका के संबंध में अपनी दलील को साबित करने के लिए, वह अदालत का ध्यान द०प्र०स० की धारा 41 (1) की ओर आकर्षित करते हैं, जिसमें कहा गया है कि कोई भी पुलिस अधिकारी मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना और वारंट के बिना किसी भी व्यक्ति को गिरफ्तार कर सकता है जो संज्ञेय अपराध करता है।

3.4 आवेदक के अधिवक्ता ने गवाहों इस्साक फ्रैंक और दिनेश शुक्ला के बयानों की ओर न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है, जो द०प्र०स० की धारा 164 के तहत दर्ज किए गए हैं। वह प्रस्तुत करता है कि अभियोजन पक्ष का स्टार गवाह, इस्साक फ्रैंक, स्वयं ईसाई धर्म से संबंधित है और प्रयागराज में रहता है, इस प्रकार, उसके धर्मांतरण का कोई अवसर नहीं उठता। चूंकि इस्साक फ्रैंक को चार्जशीट किया गया था और सेवाओं से बर्खास्त कर दिया गया था और बाद में माफी मांगने के बाद उन्हें बहाल कर दिया गया था, इस प्रकार, वह एक हितबद्ध गवाह है। दूसरा गवाह दिनेश शुक्ला एक पूर्व छात्र है जिसे छात्राओं के साथ दुर्व्यवहार के आरोप में निलंबित कर दिया गया था। अधिवक्ता ने इस मामले में गवाह के रूप में श्री दिनेश शुक्ला की निष्पक्षता पर सवाल उठाए।

3.5 विवेचनाधिकारी - अमित कुमार मिश्रा, को भी आवेदक के अधिवक्ता द्वारा अभियोजन पक्ष के अन्य गवाहों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंधों के कारण थाना नैनी, प्रयागराज के चौकी प्रभारी होने के रूप में अविश्वास किया गया है।

3.6 आवेदक के अधिवक्ता ने आगे कहा कि सामूहिक धर्मांतरण के संबंध में आवेदक के खिलाफ कोई आरोप नहीं है, क्योंकि आवेदक प्राथमिकी में निर्दिष्ट तारीख को फतेहपुर में मौजूद नहीं था।

3.7 आवेदक के अधिवक्ता ने अधिनियम, 2021 की धारा 3 पर जोर दिया है जो गलत बयानी, बल, धोखाधड़ी, अनुचित प्रभाव, जबरदस्ती और प्रलोभन द्वारा एक धर्म से दूसरे धर्म में रूपांतरण पर प्रतिबंध लगाता है, स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट करता है कि पूर्वोक्त आधार पर एक धर्म से दूसरे धर्म में रूपांतरण निषिद्ध है। सामूहिक धर्मांतरण के प्रयोजनों के लिए प्रलोभन और अनुचित प्रभाव के बारे में झूठे आरोप लगाए गए हैं। यह भी आरोप लगाया गया है कि अस्पताल में मरीजों

को मुफ्त इलाज प्रदान किया जा रहा है, जिसे सामूहिक धर्मांतरण के उद्देश्यों के लिए प्रलोभन नहीं कहा जा सकता है।

3.8 आवेदक के अधिवक्ता ने 'प्रलोभन' और 'अनुचित प्रभाव' की परिभाषा पर जोर दिया। वह प्रस्तुत करता है कि जिन रोगियों को इसकी तत्काल आवश्यकता है, उन्हें मुफ्त उपचार प्रदान करना, अनुचित प्रभाव या प्रलोभन नहीं है, बल्कि यह राज्य की ओर से जरूरतमंद व्यक्तियों को बुनियादी सुविधाएं प्रदान करने में विफलता होगी।

3.9 अधिनियम, 2021 की धारा 5 पर जोर देते हुए, जिसमें अधिनियम, 2021 की धारा 3 के प्रावधानों के उल्लंघन के लिए सजा प्रदान की गई है, आवेदक के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि प्रलोभन के लिए सजा एक वर्ष से कम नहीं होगी, जिसे तीन साल तक बढ़ाया जा सकता है। उक्त प्रावधान को आगे रखते हुए, उन्होंने यह प्रस्तुत करने की कोशिश की कि अपराध प्रकृति में गंभीर नहीं है और आवेदक, जो एक सम्मानित व्यक्ति है, के खिलाफ साबित होने के लिए कोई आरोप नहीं है, हालांकि, उसे अपराध में फंसाने के लिए ठोस प्रयास किए जा रहे हैं और उसे संबंधित व्यक्तियों के लिए सबसे अच्छी तरह से ज्ञात कारणों से पीड़ित किया जा रहा है।

3.10 आवेदक के अधिवक्ता ने आगे कहा कि अधिनियम, 2021 की धारा-7 के अनुसार अधिनियम, 2021 के तहत सभी अपराधों को सत्र न्यायालयों द्वारा संज्ञेय और विचारणीय माना जाता है, इसलिए, धारा का अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए इस संबंध में नोटिस जारी करने से आवेदक की गिरफ्तारी की आशंका होती है। गिरफ्तारी की आशंका को कम करने के लिए, उन्होंने धारा 209 और 437 द०प्र०स० के प्रावधान भी लगाए हैं।

3.11 अग्रिम जमानत आवेदन के पैराग्राफ-13 में, यह छह मामले एक राजनीतिक संगठन, अर्थात् दिवाकर नाथ त्रिपाठी और डॉ श्याम प्रकाश द्विवेदी के पदाधिकारियों द्वारा आवेदक के खिलाफ दर्ज किया गया है कि आरोप लगाया गया है जो दर्शाता है कि आवेदक को मामले में घसीटा जा रहा है.

3.12 अग्रिम जमानत आवेदन के समर्थन में दायर हलफनामे के पैराग्राफ-37 में, आवेदक के अधिवक्ता ने उस प्रक्रिया के बारे में उल्लेख किया है जिसे बपतिस्मा के माध्यम से धर्मांतरण के लिए अपनाया जाना है।

3.13 जांच के दौरान एकत्र किए गए साक्ष्यों से, विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता द्वारा कुछ सी.डी परचे रखे गए हैं, जिनमें कुछ व्यक्तियों के धारा 161 और 164 द०प्र०स० के तहत बयान दर्ज किए गए हैं, हालांकि, आवेदक के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि धारा 164 द०प्र०स० के तहत बयानों को द०प्र०स० की धारा 161 के तहत बयान पर महत्व दिया जाना चाहिए। जैसा कि पहले ही प्रस्तुत किया जा चुका है, आवेदक का नाम दो हितबद्ध गवाहों और विवेचनाधिकारी के बयानों के आधार पर मामले में सामने आया है, जो आवेदक के खिलाफ पक्षपाती हैं। धारा 164 द०प्र०स० पर भरोसा नहीं किया जा सकता है, क्योंकि यह बाद में सोचा गया मूव है और जिन व्यक्तियों ने पहले ऐसा कोई आरोप नहीं लगाया था, वे प्राथमिकी दर्ज होने के कई दिनों के बाद गलत आवेदन के साथ आ रहे हैं। वह यह भी प्रस्तुत करता है कि उपरोक्त मामले में आवेदक की भागीदारी दिखाने

के लिए आवेदक को जोड़ने वाली कोई भी सामग्री आज तक नहीं रखी गई है।

3.14 श्री शुक्ला ने मनीष यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और सुरेश बाबू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के मामले में क्रमशः 14.7.2022 और 16.7.2022 के मामले में इस न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा किया, जिसमें यह देखा गया है कि अग्रिम जमानत आवेदन दाखिल करने के समय आवेदक घोषित अपराधी नहीं था, घोषित अपराधी की अग्रिम जमानत याचिका पर विचार करने के लिए सर्वोच्च न्यायालय द्वारा लगाई गई रोक आकर्षित नहीं करेगी।

3.15 आवेदक के अधिवक्ता ने अदालत को आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 1814 वर्ष 2023 होने के नाते एक रिट याचिका दायर करने से भी अवगत कराया, जिसमें पीड़ित द्वारा दायर 23.1.2023 की प्राथमिकी को चुनौती दी गई है, जिसमें अपराध संख्या 54 वर्ष 2023 को जन्म दिया गया है, धारा 420, 467, 468, 506, 120-बी भ०द०वि० और अधिनियम की धारा 3/5 (1) के तहत, 2021, जिसमें निर्णय को माननीय डिवीजन बेंच द्वारा आरक्षित करने की सूचना दी गई थी।

3.16 गिरफ्तारी की आशंका को दर्शाने वाले कुछ फोटोग्राफ आवेदक के अधिवक्ता द्वारा रखे गए हैं।

4. **<u>202310 के अग्रिम जमानत आवेदन संख्या 1348 में आवेदक के अधिवक्ता के तथ्य और तर्क:</u>**

4.1 श्री जी.एस चतुर्वेदी, वरिष्ठ अधिवक्ता श्री कुमार विक्रांत, अधिवक्ता आवेदक के लिए उपस्थित हुए।

4.2 वरिष्ठ अधिवक्ता प्रस्तुत करता है कि आवेदक एक वैज्ञानिक और शुआटस का कुलपति है। उन्हें घटना के दिन कथित तौर पर हुई घटनाओं की श्रृंखला के बारे में पता नहीं है। आवेदक का इवैंजेलिकल चर्च ऑफ़ इंडिया, हरिहरगंज, फतेहपुर या मिशन अस्पताल से कोई सरोकार नहीं है। आवेदक के खिलाफ पुलिस अधिकारियों की पूर्वकल्पित धारणा के कारण उन्हें अवैध रूप से विवाद में घसीटा गया है।

4.3 आवेदक के अधिवक्ता द्वारा यह भी तर्क दिया गया है कि अपराध केवल पांच साल तक के कारावास के साथ दंडनीय है, इस प्रकार, द०प्र०स० की पहली अनुसूची के प्रावधानों के अनुसार, पांच साल की सजा मामूली अपराधों में है, इसलिए आवेदक को अग्रिम जमानत से इनकार नहीं किया जाना चाहिए। उन्होंने आगे तर्क दिया कि दूसरे धर्म में धर्मांतरण अपने आप में अपराध नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए स्वयं को परिवर्तित करने की प्रक्रिया का पालन करना खुला है, हालाँकि, यह प्रलोभन देने से नहीं होना चाहिए। प्रलोभन एक प्रस्ताव है और यह दो प्रकार का होता है: एक तो बल से या प्रलोभन से।

4.4 वरिष्ठ अधिवक्ता आगे प्रस्तुत करता है कि आवेदक को मामले में मज़ा लेने के लिए फंसाया गया है। यदि स्वीकारोक्ति को कुछ समय के लिए नजरअंदाज कर दिया जाता है, तो यह दिखाने के लिए कुछ भी नहीं है कि धर्मांतरण हुआ था। उन्होंने यह भी कहा कि लगभग नौ महीने बाद, आवेदक का नाम, इस्साक फ्रैंक के बयान में सामने आया। आपराधिक इतिहास के संबंध में, वह प्रस्तुत करता है कि अभियुक्त का आपराधिक इतिहास प्रासंगिक है, लेकिन जहां अभियुक्त के खिलाफ कोई सबूत नहीं है, जमानत देने के लिए आपराधिक इतिहास को ध्यान में नहीं रखा जाना चाहिए। वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह भी प्रस्तुत किया गया है कि जहां तक

इकबालिया बयानों का संबंध है, ये पूरी तरह से अस्वीकार्य हैं और साथ ही 65-70 व्यक्तियों के बयान प्राथमिकी के शब्दशः पुनरुत्पादन हैं।

4.5 आगे यह तर्क दिया गया है कि धर्मांतरण के संबंध में जो आरोप चल रहे हैं, उन्हें अधिकतम धर्मांतरण की तैयारी कहा जा सकता है और यह नहीं कहा जा सकता है कि व्यक्तियों को एक धर्म से दूसरे धर्म में परिवर्तित करने का प्रयास भी किया जा रहा था। अधिनियम, 2021 की धारा 8 और 9 पर भरोसा करते हुए, जो एक विशेष अधिनियम है, वह आगे प्रस्तुत करता है कि अधिनियम, 2021 के प्रावधानों को सख्ती से लागू किया जाना चाहिए क्योंकि किसी भी व्यक्ति के बलपूर्वक धर्मांतरण को रोकने के लिए उपरोक्त धाराओं में सुरक्षा उपाय प्रदान किए गए हैं।

4.6 वरिष्ठ अधिवक्ता प्रस्तुत करता है कि अधिनियम, 2021 की धारा 8 और 9 को ध्यान में रखते हुए, आवेदक के खिलाफ इस संबंध में कोई आरोप नहीं पाया गया है। 2021 का अधिनियम 27.11.2020 को लागू हुआ। सामूहिक धर्मांतरण के लिए व्यक्तियों को लुभाने के प्रयोजनों के लिए धन उपलब्ध कराने के संबंध में आरोपों का अभाव है क्योंकि सामूहिक धर्मांतरण के प्रयोजनों के लिए निधियों की हेराफेरी में आवेदक की कोई गतिविधि नहीं पाई गई है।

4.7 आवेदक के वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि पहले आवेदक द्वारा एक रिट याचिका दायर की गई थी, जिसमें धारा 153ए, 506, 420, 467, 468 भ०द०वि० और अधिनियम, 2021 की धारा 3/5 (1) के तहत अपराध संख्या 224 वर्ष 2022 को जन्म देते हुए प्राथमिकी को चुनौती दी गई थी, जिसे लोकस के आधार पर खारिज कर दिया गया था क्योंकि आवेदक का नाम प्रथम सूचना रिपोर्ट में नहीं था।

4.8 अंत में, नाथू सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 12 के मामले में सुप्रीम कोर्ट द्वारा पारित एक फैसले पर भरोसा करते हुए वरिष्ठ अधिवक्ता प्रस्तुत करता है कि असाधारण परिस्थितियों के कारण कुछ समय के लिए गिरफ्तारी की आशंका वाले व्यक्ति की रक्षा करना आवश्यक है जैसा कि वर्तमान मामले में है और कुछ व्यक्तियों को पहले ही अग्रिम जमानत पर रिहा कर दिया गया है; आवेदक समानता के आधार पर भी इसके लिए पात्र है।

5. **<u>राज्य की प्रस्तुतियाँ:</u>**

5.1 श्री मनीष गोयल, अतिरिक्त महाधिवक्ता/वरिष्ठ अधिवक्ता श्री ए.के सैंड और श्री अमित सिंह चौहान, अतिरिक्त सरकारी अधिवक्ता-I, राज्य के लिए उपस्थित होते हैं।

5.2 श्री मनीष गोयल, अतिरिक्त महाधिवक्ता, राज्य की ओर से उपस्थित होकर प्रस्तुत करते हैं कि यह सामूहिक धर्मांतरण का मामला है, इस प्रकार, अधिनियम, 2021 की धारा-5 का प्रावधान लागू होगा, जिसमें दस साल तक की सजा निर्धारित है। वह प्रस्तुत करता है कि अधिनियम, 2021 का उद्देश्य गलत बयानी, बल, अनुचित प्रभाव, जबरदस्ती, प्रलोभन या किसी भी धोखाधड़ी के माध्यम से एक धर्म से दूसरे धर्म में गैरकानूनी रूपांतरण पर रोक लगाना है। प्राथमिकी भ०द०वि० की धारा 153 ए के तहत दर्ज की गई है, जिसमें सद्भाव बनाए रखने के लिए पूर्वाग्रहपूर्ण कृत्यों की परिकल्पना की गई है और चूंकि यह सार्वजनिक शांति के खिलाफ अपराध है, इसलिए, जहां तक तीसरे पक्ष द्वारा प्राथमिकी दर्ज करने की प्रक्रिया से संबंधित वैधता है, पीड़ितों ने भी प्राथमिकी दर्ज की थी जिसमें

कार्रवाई का अलग कारण बनाया गया था और भ०द०वि० की कई धाराओं के तहत प्राथमिकी भी दर्ज की गई है। इसलिए, तीसरे पक्ष को सार्वजनिक शांति के खिलाफ अपराध के लिए प्राथमिकी दर्ज करने से बाहर नहीं किया जा सकता है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि जिन अपराधों के लिए वर्तमान प्राथमिकी दर्ज की गई है, उनके प्रतिकूल प्रभाव हैं क्योंकि कुछ अपराध ऐसे हैं जो किसी व्यक्ति के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करते हैं जबकि दूसरे बड़े पैमाने पर जनता को प्रभावित करते हैं। अन्य व्यक्तियों के साथ आवेदकों की मिलीभगत दिखाने वाले विवरणों की बहुतायत है जो सामूहिक धर्मांतरण को बढ़ावा देने के उद्देश्यों के लिए नियमित रूप से जुड़े हुए थे।

5.3 श्री गोयल आगे प्रस्तुत करते हैं कि पुलिस ने पाया कि नाबालिगों सहित लगभग 100 आवेदन पत्र थे, साथ ही ईसाई धर्म को अपनाने और प्रचार करने के लिए पर्चे भी थे, जिसमें उल्लेख किया गया था कि यदि कोई ईसाई धर्म अपनाता है तो 35000/- रुपये का भुगतान किया जाएगा; ईसाई धर्म का प्रचार करने और लोगों को इकट्ठा करने और उन्हें धर्मांतरण के उद्देश्य के लिए प्रेरित करने के लिए लाने के लिए विभिन्न स्थानों पर जाने के लिए प्रशिक्षक थे।

5.4 अपर महाधिवक्ता ने अधिनियम, 2021 की धारा 2 की सामग्री पर जोर दिया, जो प्रलोभन, जबरदस्ती, रूपांतरण, धोखाधड़ी के साधन, सामूहिक रूपांतरण, नाबालिग, धर्म, धर्म परिवर्तक और अनुचित प्रभाव की परिभाषाओं को विस्तृत करता है। इसके बाद, वह इस्साक फ्रैंक (सीडी -51) के बयान से पता चलता है कि विभिन्न देशों से धन कैसे प्राप्त किया जा रहा था और बाद में विभिन्न प्रकार के संगठन हैं और वर्तमान में श्री आर.बी. के संगठन में चैनलाइज़ किया गया था। यह भी तर्क दिया गया है कि द०प्र०स० की धारा 4 विशेष अधिनियम में प्रावधान के अधिनियमन के अधीन, समान प्रावधानों द्वारा जांच करने का प्रावधान करती है। यहां, अधिनियम, 2021 जांच के लिए कोई तंत्र प्रदान नहीं करता है, और, यदि हां, तो दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधान लागू होंगे और अधिनियम, 2021 द०प्र०स० के संचालन को प्रतिबंधित नहीं करता है।

5.5 आवेदक - आर.बी लाल द्वारा दायर एक रिट याचिका के संबंध में प्रस्तुतिकरण का जवाब देते हुए, श्री मनीष गोयल ने प्रस्तुत किया कि हालांकि याचिका को इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि आवेदक का नाम प्राथमिकी में नहीं था, परन्तु, उक्त मामले में डिवीजन बेंच द्वारा यह देखा गया है कि कानून की स्थापित स्थिति के अनुसार, यदि प्राथमिकी के अवलोकन पर उसमें हर शब्द को सही माना जाता है, यदि किसी अपराध का खुलासा नहीं किया जाता है, तो प्राथमिकी रद्द कर दी जा सकती है। वर्तमान मामले में हालांकि याचिका को सुनवाई योग्य नहीं होने के कारण खारिज कर दिया गया था क्योंकि आवेदक का नाम पूर्वोक्त मामले में नहीं था, प्राथमिकी के अवलोकन से आवेदक के खिलाफ अपराध का खुलासा होता है और उक्त प्राथमिकी के अनुसार जांच के दौरान, आवेदक की दोषीता को इंगित करने के लिए सामग्री साक्ष्य एकत्र किए गए हैं।

5.6 एस.आई.टी द्वारा आवेदक वी.बी.लाल के कार्यालय में पुलिस छापे की प्रस्तुतियों के संबंध में अपर महाधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि टीम का गठन धन की हेराफेरी के संबंध में प्राथमिकी

में आरोपों के बारे में मामले की जांच के लिए किया गया था।

5.7 सामूहिक धर्मांतरण में आवेदक की संलिप्तता पर जोर देते हुए, अतिरिक्त महाधिवक्ता दिखाते है कि 2017 से अस्पताल के अपराध के एक स्वतंत्र गवाह और कर्मचारी संतोष कुमार सैनी के बयान ने खराब आर्थिक स्थिति वाले हिंदू परिवार से संबंधित कई व्यक्तियों के नामों का खुलासा किया था, जिन्हें धर्मांतरण द्वारा अन्य धर्म अपनाने के लिए मजबूर किया गया था। उन्होंने धर्मांतरण के लिए समाज के सीमांत वर्ग के व्यक्तियों को दिए गए प्रलोभनों के बारे में बताया। उन्होंने 24.1.2023 की हरिहरगंज घटना का भी खुलासा किया जिसमें प्रभावशाली व्यक्तियों की पहचान (सीडी-68) की ओर इशारा किया गया था।

5.8 श्री गोयल प्रस्तुत करते हैं कि आवेदकों को गैर-जमानती वारंट जारी किए गए हैं और यह सर्वोच्च न्यायालय का एक अच्छी तरह से स्थापित कानून है कि जिसमें जमानती वारंट चल रहे हैं, ऐसे मामलों में आरोपी-आवेदक अग्रिम जमानत के हकदार नहीं हैं। यह आवेदक की दोषपूर्णता है कि वह केवल यह स्थापित करे कि वह अग्रिम जमानत देने का हकदार है। उन्होंने सायपाल और किशनपाल के बयानों की ओर न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है, जिसमें आगे कहा गया है कि 27.1.2023 को 43 व्यक्तियों के खिलाफ चार्जशीट प्रस्तुत की गई है और अधिनियम, 2021 की धारा 8 भी जोड़ी गई है। इस प्रकार, आवेदकों की दोषीता उस प्रकार के कार्य से अच्छी तरह से स्थापित होती है जो वह कर रहा था और साथ ही जिस तरीके से धन को चैनलाइज़ किया जा रहा था।

5.9 आवेदकों के अधिवक्ता ने रेव स्टेनिस्लॉस बनाम मध्य प्रदेश राज्य और अन्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के एक फैसले को भी रिकॉर्ड पर रखा, जिसमें 'प्रलोभन' शब्द विचार के लिए गया और अभिव्यक्ति 'सार्वजनिक व्यवस्था' पर बड़े पैमाने पर विचार किया गया है।

5.10 आवेदकों द्वारा अवज्ञा प्रदर्शित करने के लिए, अतिरिक्त महाधिवक्ता ने इस न्यायालय द्वारा 09.2.2023 को दिए गए अंतरिम आदेश पर निम्नलिखित शब्दों में न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया:

"यह प्रदान किया जाता है कि, यदि आवेदक 13 और 15 फरवरी, 2023 को विवेचनाधिकारी के समक्ष उपस्थित होता है और 13 फरवरी, 2023 को विवेचनाधिकारी के समक्ष इस आशय का एक वचन दायर करता है, तो जांच को आगे बढ़ाने के लिए अपना पासपोर्ट, यदि कोई हो, तो आत्मसमर्पण कर देता है, विवेचनाधिकारी यह सुनिश्चित करेगा कि न तो आवेदक को गिरफ्तार किया जाए और न ही 15.2.2023 तक वर्तमान मामले में कोई दंडात्मक कार्रवाई की जाए। यह भी निर्देश दिया जाता है कि संबंधित वरिष्ठ अधिकारी और विवेचनाधिकारी यह सुनिश्चित करेंगे कि आवेदक को 13 और 15 फरवरी, 2023 को गिरफ्तार नहीं किया जाए जब वह जांच में सहयोग करने के लिए आए।

5.11 आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि आवेदकों से अपेक्षा की गई थी कि वे आदेश में दी गई तारीखों यानी 13 फरवरी और 15 फरवरी, 2023 को विवेचनाधिकारी के समक्ष उपस्थित होने की जांच में सहयोग करेंगे, लेकिन वे इस न्यायालय के निर्देशों का पालन करने में विफल रहे, जबकि विवेचनाधिकारी ने 13 फरवरी 2023 रात 11:40 बजे तक और 15 फरवरी, 2023 को

रात 11:21 बजे तक को उनका इंतजार किया, इस प्रकार आवेदकों का आचरण इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश का उल्लंघन है जो द०प्र०स० की धारा 438 की भावना का अनादर करता है और स्वतंत्रता का दुरुपयोग भी है, इसलिए आवेदक इस आधार पर अग्रिम जमानत पर रिहा होने के हकदार नहीं हैं।

5.12 अली @ अली अहमद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 2 अन्य के मामले में इस न्यायालय के एक फैसले पर भरोसा करते हुए श्री मनीष गोयल प्रस्तुत करते हैं कि यह आवश्यक नहीं है कि अभियुक्त को अपराधी घोषित किया जाए, लेकिन, जांच में सहयोग नहीं करने का इरादा पर्याप्त है, जैसा कि वर्तमान मामले में है, गैर-जमानती वारंट के ज्ञान के बाद भी आवेदक पुलिस के साथ सहयोग नहीं कर रहे हैं और इस प्रकार वे अग्रिम जमानत पर रिहा करने पर विचार के हकदार नहीं हैं ।

5.13 अतिरिक्त महाधिवक्ता ने अमीश देवगन बनाम भारत संघ और अन्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया, जिसमें कम स्वायत्तता के सिद्धांतों पर जोर दिया गया था जिसमें धन, जाति, लिंग के मामले में समाज के वंचित वर्ग की रक्षा की जानी चाहिए। वह प्रस्तुत करता है कि विचाराधीन अस्पताल जो एक मिशन अस्पताल है, कम स्वायत्तता का सबसे अच्छा उदाहरण है।

5.14 यह तर्क दिया जाता है कि वर्तमान मामले में आवेदकों की भागीदारी दिखाने के लिए निम्नलिखित सामग्री एकत्र की गई है:

(i) गवाह प्रमोद कुमार दीक्षित, संजय सिंह और राजेश कुमार त्रिवेदी के बयान, जो सी.डी पर्चा नंबर 9 का हिस्सा हैं और स्वतंत्र गवाहों अर्थात् किशन और सत्य पाल के बयान जो सी.डी पर्चा नंबर 12 का हिस्सा हैं, को धर्मांतरण के लिए लुभाया गया है।

(ii) सी.डी पर्चा संख्या 15, 16, 20 और 29 से पता चलता है कि प्राथमिकी में उल्लिखित सभी धाराओं में रिमांड स्वीकार किया गया था।

(iii) सी.डी पर्चा नंबर 18 में, पीड़ित किशन और सत्यपाल ने पूरे संस्करण को विस्तार से बताया है।

(iविवेचनाधिकारी) सी.डी पर्चा संख्या 26 में दस गवाहों के बयान दिखाए गए हैं, अर्थात्, हनी पुत्र रामपाल; सुरेश पुत्र कल्लू; रिया डी/ओ गोविंद; बृजेश कुमार पुत्र रजनीश प्रसाद; रमेश पुत्र पन्नालाल; रामपाल पुत्र स्वर्गीय बाजपाली; अशोक कुमार पुत्र स्वर्गीय सुआलल; विजय पुत्र स्वर्गीय चंकू प्रसाद; विजय पुत्र स्वर्गीय विश्कर्मा लोहार और अमित मौर्य पुत्र राम श्रीओमणि मौर्य। उन्होंने कहा है कि चर्च विजय मसीहा (पादरी) और अन्य आरोपी व्यक्तियों के साथ बड़ी संख्या में लोगों के ईसाई धर्म में अवैध धर्मांतरण में शामिल है।

(विवेचनाधिकारी) सी.डी पर्चा नंबर 29 में पीड़ित संजय सिंह का बयान दर्ज किया गया है। सी.डी परचा नंबर 36 से पता चलता है कि 39 आरोपी व्यक्तियों ने धारा 82 द०प्र०स० के तहत आदेश प्राप्त किए हैं।

(विवेचनाधिकारीi) पीड़ित वीरेंद्र कुमार का बयान सी.डी पर्चा 38 में दर्ज किया गया है। सी.डी पर्चा नंबर 41, जो दर्शाता है कि धारा 91 द०प्र०स० के तहत नोटिस डॉ. मैथ्यू सैमुअल, चेयरमैन, ब्रॉडवेल क्रिश्चियन हॉस्पिटल सोसाइटी, फतेहपुर को दिया गया था। नोटिस का जवाब देते हुए उन्होंने सोसायटी के कर्मचारी 17 आरोपी व्यक्तियों के आधार कार्ड की कॉपी, सोसायटी के

रजिस्ट्रेशन पेपर के साथ बैंक अकाउंट डिटेल भी दी।

(विवेचनाधिकारीi) दाउद मसीहा और रत्ना मसीहा सह-अभियुक्त व्यक्तियों ने आवेदकों और अन्य अभियुक्त व्यक्तियों की सहायता से धर्मांतरण के बारे में कबूल किया है, जो आवेदकों सहित विभिन्न संगठनों का नाम लेते हैं, जो इस तरह के अपराध में शामिल हैं, जो सी.डी पर्चा संख्या 46 में दर्ज हैं।

(विवेचनाधिकारीii) पर्चा नंबर 48 स्वतंत्र गवाह दिनेश शुक्ला का बयान है, जिसकी जांच 19.12.2022 को की गई थी, जिसने आवेदकों की संलिप्तता बताई है। सी.डी परचा संख्या 50 में उन व्यक्तियों के बयान दर्ज किए गए हैं जिन्होंने आवेदकों के नामों का उल्लेख किया है और अपराध में अपनी जटिलता दिखाई है।

(विवेचनाधिकारीiii) सी.डी परचा नंबर 54 में उन लाभार्थियों की सूची दिखाई गई है जिनका धर्मांतरण किया गया था और उनकी तस्वीरें ब्रॉडवेल क्रिश्चियन अस्पताल से मिली थीं।

(ix) द०प्र०स० की धारा 41(2) के तहत डॉ. मैथ्यू सैमुअल और परमिंदर सिंह, क्लर्क को नोटिस के बावजूद, वे सी.डी पर्चा नंबर 55 से स्पष्ट होने के कारण उपस्थित नहीं हुए।

(x) सी.डी पर्चा नंबर 61 में धर्मांतरण में शामिल विभिन्न संस्थाओं के नाम सामने आए हैं।

(xi) सी.डी परचा नंबर 64 ब्रॉडवेल क्रिश्चियन अस्पताल से मिले सामूहिक धर्मांतरण के संबंध में विभिन्न दस्तावेजों का संग्रह है, जिसमें धर्म परिवर्तन के संबंध में सामग्री भी मिली है।

(xii) शुआटस बैंक खाते का विवरण और विवरण विवेचनाधिकारी द्वारा लिया गया था जो सी.डी पर्चा नंबर 67 का हिस्सा है। 27.1.2023 को 44 आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ आरोप पत्र दायर किया गया है।

5.15 उपरोक्त आधारों के अलावा, अतिरिक्त महाधिवक्ता निम्नलिखित आधारों पर अग्रिम जमानत आवेदनों का विरोध किया है:

(i) इस घटना से एक समुदाय के व्यक्तियों में काफी हलचल और तनाव उत्पन्न हो गया और कानून एवं व्यवस्था की स्थिति भी उत्पन्न हो गई। इसके बाद, एक समुदाय के लोग एक स्थान पर एकत्र हुए और नारे लगाए और पुलिस को उन्हें नियंत्रित करने में मुश्किल हुई और यदि वे पर्याप्त रूप से तैयार और सतर्क नहीं होते तो कोई भी अप्रिय घटना हो सकती थी।

(ii) एक गवाह श्री किशन द्वारा यह कहा गया है कि अपने बच्चों को मुफ्त चिकित्सा सहायता, शिक्षा और रोजगार और मौद्रिक लाभ जैसे एक ही तरह के आश्वासनों पर जब वह उनके विश्वास में परिवर्तित हो जाता है, तो उसे इस प्रक्रिया में फुसलाया गया; कि उसका आधार कार्ड ले लिया गया और उसका नाम श्री किशन से बदलकर किशन जोसेफ कर दिया गया; आरोपी व्यक्तियों द्वारा उसे धमकी भी दी गई थी कि अगर उसने किसी को घटना के बारे में बताया, तो उसकी जान को खतरा होगा।

(iii) आवेदकों और उनके सहयोगियों द्वारा रचा गया एक बड़ा षड्यंत्र था जिसके व्यापक प्रभाव थे; वे सामूहिक धर्मांतरण के लिए संगठित तरीके से काम कर रहे थे। यह ऐसा मामला नहीं है जहां एक व्यक्ति को उसकी अंतरात्मा द्वारा एक अलग धर्म में परिवर्तित होने के लिए प्रेरित किया गया था, लेकिन, आरोपी व्यक्तियों ने एक-दूसरे के साथ मिलकर व्यवस्थित रूप से उन व्यक्तियों को प्रभावित किया जो आमतौर पर चिकित्सा उपचार या अन्यथा के लिए उनके संपर्क में आते

थे। उनकी खराब सामाजिक-आर्थिक स्थिति का फायदा उठाकर उन्हें सामूहिक धर्मांतरण में भाग लेने के लिए लुभाया गया। आसान पैसे, नौकरी आदि के प्रस्ताव को इस घटना में उन्हें लुभाने के लिए एक प्रलोभन के रूप में इस्तेमाल किया गया था। यह घटना सतह पर इतनी गंभीर नहीं लग सकती है, लेकिन इसके पीछे एक छिपा हुआ एजेंडा था।

(iv) यह भी तर्क दिया जाता है कि इस तर्क में कोई सार नहीं है कि आवेदकों को झूठा फंसाया गया है या प्राथमिकी को प्रेरित किया गया था।

(v) इस स्तर पर जमानत इस मामले में प्रभावी जांच में बाधा साबित हो सकती है।

5.16 अतिरिक्त महाधिवक्ता अग्रिम जमानत आवेदन को खारिज करते हुए, सत्र न्यायालय ने एक अपराध में जांच में आवेदकों के असहयोग के बारे में विस्तार से चर्चा की है जो बड़े पैमाने पर जनता को प्रभावित कर रहा है।

6. मैंने पक्षकारों की ओर से उपस्थित अधिवक्ता द्वारा दी गई प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर विचार किया है और रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया है।

7. मामले की गंभीरता, जिसमें इस न्यायालय के समक्ष आवेदक अग्रिम जमानत देने के लिए हैं, 'रूपांतरण' है। दोनों आवेदनों में आवेदक के रूप में शीर्षक वाली पार्टी इसे 'कानून द्वारा रूपांतरण' कहती है, हालांकि, पार्टी - प्रतिवादी ने इसे 'प्रलोभन के लिए रूपांतरण' के रूप में शब्द दिया।

8. यह न्यायालय आवेदकों के अधिवक्ता और राज्य के लिए अतिरिक्त महाधिवक्ता, तथ्यात्मक और कानूनी पहलुओं, उद्देश्य और सिद्धांतों के लिए दिए गए तर्कों को अग्रिम जमानत देने के लिए शर्तों के साथ-साथ उसके संबंध में तय कानून के साथ संरेखित करना अधिक उपयुक्त समझता है।

9. **<u>अग्रिम जमानत के उद्देश्यों को संक्षेप में निम्नानुसार किया गया है:</u>**

(i) अग्रिम जमानत देने की शक्ति प्रकृति में असाधारण है और केवल अपवादिक मामलों में जहां ऐसा प्रतीत होता है कि किसी व्यक्ति को झूठा फंसाया गया है या उसके विरुद्ध तुच्छ मामला शुरू किया गया है या यह मानने के लिए युक्तियुक्त आधार हैं कि किसी अपराध के अभियुक्त व्यक्ति के फरार होने की संभावना नहीं है, या अन्यथा जमानत पर रहते हुए उसकी स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं है, ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए। इसलिए, 'प्रकृति में असामान्य और असाधारण' होने के कारण शक्ति केवल न्यायिक सेवा के उच्च सोपानों, यानी सत्र न्यायालय और उच्च न्यायालय को सौंपी गई है।

(ii) न्यायिक राय का टकराव कि क्या उच्च न्यायालय के पास गिरफ्तारी की प्रत्याशा में जमानत का आदेश देने की अंतर्निहित शक्तियां थीं और प्रभावशाली व्यक्तियों के कृत्यों को रोकने की आवश्यकता थी, जो अपने प्रतिद्वंद्वियों को अपमानित करने के उद्देश्य से या अन्य प्रयोजनों के लिए उन्हें कुछ दिनों के लिए जेल में हिरासत में रखकर झूठे मामलों में फंसाने की कोशिश कर रहे थे, भारत के विधि आयोग द्वारा अपनी 41वीं रिपोर्ट में अग्रिम जमानत से संबंधित उपबंध पुरस्थापित करने के लिए तैयार की गई है।

(iii) चूंकि अधिकांश चीजों का एक स्याह पक्ष होता है, इसलिए संहिता के इस प्रावधान को भी करें। इस कानून को बनाने के पीछे उद्देश्य निर्दोष को फंसने से रोकना था, लेकिन समय के साथ, तस्वीर बदल गई है और अब जघन्य अपराधों के

आरोपी और यहां तक कि आदतन अपराधी भी बार-बार इसका आह्वान कर रहे हैं, जो इस धारा द्वारा दी जाने वाली राहत का इरादा नहीं था।

(iv) न्यायालयों ने महसूस किया है कि दांडिक न्याय परिदान प्रणाली में उच्चतर स्तरों पर विधायिका द्वारा प्रदत्त व्यापक विवेकाधीन शक्ति को सार्वभौमिक अनुप्रयोग के लिए 'स्ट्रेट-जैकेट' नियमों के रूप में नहीं रखा जा सकता है क्योंकि जमानत देने या न देने का प्रश्न विभिन्न परिस्थितियों पर इसके उत्तर के लिए निर्भर करता है, जिसका संचयी प्रभाव न्यायिक निर्णय में प्रवेश करना चाहिए। एक परिस्थिति, जो किसी दिए गए मामले में, निर्णायक हो जाती है, किसी अन्य मामले में कोई महत्व हो सकती है या नहीं भी हो सकती है। फिर भी, धारा के तहत विवेक का प्रयोग उचित सावधानी के साथ किया जाना चाहिए, जो इसके प्रयोग को उचित ठहराने वाली परिस्थितियों पर निर्भर करता है।

(v) संहिता की धारा 438(1) में एक शर्त निर्धारित की गई है जिसे अग्रिम जमानत दिए जाने से पूर्व पूरा किया जाना है। आवेदक को यह दिखाना होगा कि उसके पास यह विश्वास करने का कारण है कि उसे गैर-जमानती अपराध के लिए गिरफ्तार किया जा सकता है। अभिव्यक्ति "विश्वास करने का कारण" का उपयोग दर्शाता है कि यह विश्वास कि आवेदक को गिरफ्तार किया जा सकता है, उचित आधार पर स्थापित किया जाना चाहिए। केवल भय विश्वास नहीं है, इस कारण से, आवेदक के लिए यह दिखाना पर्याप्त नहीं है कि उसे किसी प्रकार की अस्पष्ट आशंका है कि कोई उसके खिलाफ आरोप लगाने जा रहा है, जिसके अनुसरण में उसे गिरफ्तार किया जा सकता है।

(vi) यह एक कठोर नियम के रूप में निर्धारित नहीं किया जा सकता है कि अग्रिम जमानत तब तक नहीं दी जा सकती जब तक कि प्रस्तावित आरोप दुर्भावना से सक्रिय न हो; और समान रूप से, यदि आवेदक के फरार होने का कोई भय नहीं है तो अग्रिम जमानत अवश्य दी जानी चाहिए। प्रस्तावित आरोपों की प्रकृति और गंभीरता, उन घटनाओं का संदर्भ जो आरोप लगाने की संभावना रखते हैं, मुकदमे में आवेदक की उपस्थिति सुरक्षित नहीं होने की एक उचित संभावना, एक उचित आशंका, कि गवाहों के साथ छेड़छाड़ की जाएगी और जनता या राज्य के बड़े हित, कुछ ऐसे विचार हैं जिन्हें अदालत अग्रिम जमानत के लिए आवेदन पर फैसला करते समय ध्यान में रखती है।

(vii) इस विचार के मूल्यांकन में कि क्या आवेदक के फरार होने की संभावना है, इस बात का कोई अनुमान नहीं हो सकता है कि धनी और शक्तिशाली खुद को मुकदमे के लिए प्रस्तुत करेंगे और विनम्र और गरीब न्याय के मार्ग से भाग जाएंगे, और इससे अधिक यह अनुमान हो सकता है कि पूर्व में अपराध करने की संभावना नहीं है और बाद वाले के द्वारा इसे करने की अधिक संभावना है। जमानत प्रदान करने के लिए याचिका पर आवश्यक रूप से विचार करते समय, यदि जनहित की आवश्यकता हो, तो जांच के उद्देश्य से हिरासत में नागरिक की हिरासत पर विचार किया जा सकता है और उसे खारिज कर दिया जा सकता है, अन्यथा जांच में बाधाएं आ सकती हैं, जिसके परिणामस्वरूप साक्ष्य का छेड़छाड़ हो सकता है।

(viii) उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया है कि अग्रिम जमानत अधिकार के मामले के रूप में नहीं दी जा सकती। यह अनिवार्य रूप से संविधान

के लागू होने के लंबे समय बाद प्रदत्त एक वैधानिक अधिकार है और इसे संविधान के अनुच्छेद 21 का एक आवश्यक घटक नहीं माना जा सकता है। इसलिए अपराधों की एक विशेष श्रेणी के लिए इसे लागू न करने को अनुच्छेद 21 का उल्लंघन नहीं माना जा सकता है।

(ix) न्यायालयों पर यह कर्तव्य थोपा गया है कि वे तथ्यों की ध्यानपूर्वक जांच करें और यह सुनिश्चित करें कि अन्वेषण में कोई पूर्वाग्रह उत्पन्न न हो। यह एक नाजुक संतुलन है जिससे नागरिक की स्वतंत्रता और आपराधिक न्याय प्रणाली के संचालन दोनों की रक्षा की जानी चाहिए। ऐसे अभियुक्तों से हिरासत में पूछताछ करना जांच एजेंसी के लिए आवश्यक है ताकि व्यक्तियों द्वारा की गई आपराधिक साजिशों में शामिल सभी लिंक का पता लगाया जा सके जो अंततः मुख्य त्रासदी का कारण बने।

(x) जहां यह बताया जाता है कि कार्रवाई दुर्भावनापूर्ण या दूषित है, न्यायालयों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे उत्पीड़न और अनुचित निरोध को रोककर निष्कर्ष निकालें और न्याय करें। आवेदक द्वारा विशिष्ट घटनाओं और तथ्यों का खुलासा किया जाना चाहिए ताकि अदालत को उसके विश्वास की तर्कसंगतता का न्याय करने में सक्षम बनाया जा सके, जिसका अस्तित्व धारा द्वारा प्रदत्त शक्ति के प्रयोग का अनिवार्य शर्त है।

(xi) लेकिन, ऐसी अग्रिम जमानत देते समय, न्यायालय ऐसी शर्तें लगा सकता है जो वह ठीक समझे, लेकिन शर्तें लगाने का उद्देश्य व्यक्ति द्वारा जांच में बाधा डालने की संभावना से बचना होना चाहिए। कठोर, कष्टदायक और अत्यधिक शर्तें जो अग्रिम जमानत के उद्देश्य को कुंठित करती हैं, उन्हें लागू नहीं किया जा सकता है। किसी अभियुक्त को धारा में उल्लिखित शर्तों के अलावा किसी भी शर्त के अधीन करना अदालत के अधिकार क्षेत्र से बाहर है।

(xii) प्राथमिकी दाखिल करना धारा 438 के तहत शक्ति के प्रयोग के लिए पूर्ववर्ती शर्त नहीं है और एक उचित विश्वास पर स्थापित संभावित गिरफ्तारी की आसन्नता को मौजूद दिखाया जा सकता है, भले ही प्राथमिकी अभी तक दायर न की गई हो। प्राथमिकी दायर होने के बाद भी जब तक कि आवेदक को गिरफ्तार नहीं किया गया हो, अग्रिम जमानत दी जा सकती है। किसी आरोपी की गिरफ्तारी के बाद इस प्रावधान को लागू नहीं किया जा सकता है। इसके अलावा, द०प्र०स० की धारा 438 में निहित हितकारी प्रावधान न्यायालय को व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित होने से रोकने में सक्षम बनाने के लिए पेश किए गए थे। इसे तकनीकी आधार पर बंद करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है जैसे कि चालान प्रस्तुत किए जाने के बाद अग्रिम जमानत नहीं दी जा सकती है।

10. वर्तमान मामले में, भ०द०वि० की अन्य धाराओं यानी धारा 153ए, 506, 420, 467, 468, 471 भ०द०वि० के बीच आने वाले अपराधों के अलावा, अधिनियम, 2021 की धारा 3 और 5(1) के तहत शामिल प्रलोभन, धोखे या बल के उपयोग से धार्मिक रूपांतरण का आरोप शामिल है। धर्मांतरण का आरोप समाज के कमजोर वर्गों के संबंध में है। यहां आवेदक अग्रिम जमानत देने के लिए प्रार्थना कर रहे हैं, इस प्रकार, वर्तमान मामले पर लागू तथ्यों और कानून का विज्ञापन करने से पहले, द०प्र०स० की धारा 438 को उद्धृत करना उचित है:

"438. गिरफ्तारी की आशंका वाले व्यक्ति को जमानत देने का निर्देश। (1) जहां किसी व्यक्ति

के पास यह विश्वास करने का कारण है कि उसे गैर-जमानती अपराध करने के आरोप में गिरफ्तार किया जा सकता है, वहां वह इस धारा के अधीन निदेश के लिए उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय को आवेदन कर सकेगा कि ऐसी गिरफ्तारी की दशा में उसे जमानत पर रिहा किया जाएगा; और वह न्यायालय, अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित कारकों पर विचार करने के बाद, अर्थात् -

(i) आरोप की प्रकृति और गंभीरता;

(ii) आवेदक के पूर्ववृत्त जिसमें यह तथ्य भी शामिल है कि क्या वह पहले किसी संज्ञेय अपराध के संबंध में न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि पर कारावास काट चुका है;

(iii) आवेदक के न्याय से भागने की संभावना; और

(iv) जहां आरोप आवेदक को गिरफ्तार करके उसे चोट पहुंचाने या अपमानित करने के उद्देश्य से लगाया गया है; या तो आवेदन को तुरंत अस्वीकार कर दें या अग्रिम जमानत देने के लिए अंतरिम आदेश जारी करें:

परन्तु जहाँ उच्च न्यायालय या, यथास्थिति, सत्र न्यायालय ने इस उपधारा के अधीन कोई अंतरिम आदेश पारित नहीं किया है या अग्रिम जमानत देने के लिए आवेदन को अस्वीकार कर दिया है, वहाँ यह किसी थाना के भारसाधक अधिकारी के लिए खुला होगा कि वह ऐसे आवेदन में अभियुक्त द्वारा पकडे गए अभियोग के आधार पर वारंट के बिना आवेदक को गिरफ्तार कर सकता है।

(2) जहां उच्च न्यायालय या, यथास्थिति, सत्र न्यायालय, उपधारा (1) के अधीन अग्रिम जमानत देने के लिए अंतरिम आदेश जारी करना समीचीन समझता है, वहां न्यायालय उसमें वह तारीख इंगित करेगा, जिस पर अग्रिम जमानत देने के लिए आवेदन पर आदेश पारित करने के लिए अंतिम सुनवाई की जाएगी, जैसा कि न्यायालय ठीक समझे, और यदि न्यायालय अग्रिम जमानत देने का कोई आदेश पारित करता है, तो ऐसे आदेश में अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित शर्तें शामिल होंगी, अर्थात-

(i) कि आवेदक जब कभी अपेक्षित हो, पुलिस अधिकारी द्वारा पूछताछ के लिए स्वयं को उपलब्ध कराएगा;

(ii) कि आवेदक, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से, मामले के तथ्यों से परिचित किसी भी व्यक्ति को कोई प्रलोभन, धमकी या वादा नहीं करेगा ताकि उसे न्यायालय या किसी पुलिस अधिकारी को ऐसे तथ्यों को प्रकट करने से रोका जा सके;

(iii) आवेदक न्यायालय की पूर्व अनुमति के बिना भारत नहीं छोड़ेगा; और

(iv) ऐसी अन्य शर्तें जो उप-धारा के तहत लगाई जा सकती हैं।

(3) के तहत जमानत इस प्रकार दी गई मानो उस धारा के अधीन जमानत दी गई हो।

स्पष्टीकरण-उपधारा (1) के अधीन निदेश के लिए आवेदन पर किया गया अंतिम आदेश; इस संहिता के प्रयोजन के लिए वादकालीन आदेश के रूप में नहीं समझा जाएगा।

(3) जहां न्यायालय उपधारा (1) के अधीन अंतरिम आदेश देता है वहां वह तत्काल कम से कम सात दिन की सूचना देगा और साथ में ऐसे आदेश की एक प्रति लोक अभियोजक और पुलिस अधीक्षक को तामील की जाएगी ताकि लोक अभियोजक को सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर मिल सके जब आवेदन की न्यायालय द्वारा अंतिम सुनवाई की जाएगी।

(4) उपधारा के अधीन अंतरिम आदेश में दर्शाई गई तारीख को

(2), न्यायालय लोक अभियोजक और आवेदक को सुनेगा और उनके तर्कों पर उचित विचार करने के बाद, वह अंतरिम आदेश की पुष्टि, संशोधन या रद्द कर सकता है।

(5) यथास्थिति, उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय उपधारा (1) के अधीन अग्रिम जमानत की मंजूरी के लिए आवेदन का अंतिम रूप से निपटारा ऐसे आवेदन की तारीख के तीस दिन के भीतर करेगा;

(6) इस धारा के प्रावधान लागू नहीं होंगे, -

(क) से उत्पन्न अपराधों के लिए, -

(i) विधिविरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1967;

(ii) स्वापक औषधि एवं मनप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985;

(iii) शासकीय गोपनीयता अधिनियम, 1923;

(iv) उत्तर प्रदेश गैंगस्टर और असामाजिक कार्यकलाप (निवारण) अधिनियम, 1986।

(ख) उन अपराधों में, जिनमें मृत्युदंड दिया जा सकता है।

(7) यदि इस धारा के अधीन कोई आवेदन किसी व्यक्ति द्वारा उच्च न्यायालय को किया गया है तो उसी व्यक्ति द्वारा किया गया कोई आवेदन सत्र न्यायालय द्वारा ग्रहण नहीं किया जाएगा। [2019 का उत्तर प्रदेश अधिनियम 4, धारा 2 (1-6-2019 से)

11. शब्द 'प्रलोभन' और 'अनुचित प्रभाव', जिससे पूरा मुद्दा घिरा हुआ है, जैसा कि अधिनियम, 2021 की धारा 2 में परिभाषित किया गया है, इस प्रकार है:

(ए) "प्रलोभन" का अर्थ है और इसके अंतर्गत निम्नलिखित के रूप में किसी प्रलोभन का प्रस्ताव शामिल है-

(i) कोई उपहार, संतुष्टि, आसान धन या भौतिक लाभ या तो नकद या वस्तु के रूप में;

(ii) रोजगार, किसी धामक निकाय द्वारा चलाए जा रहे प्रतिष्ठित स्कूल में निशुल्क शिक्षा; नहीं तो

(iii) बेहतर जीवन शैली, दैवीय नाराजगी या अन्यथा;

*** *** *** *** ***

(त्र) "अनुचित प्रभाव" से एक व्यक्ति द्वारा अपनी शक्ति या दूसरे पर प्रभाव का अविवेकपूर्ण उपयोग अभिप्रेत है ताकि दूसरे व्यक्ति को ऐसे प्रभाव का प्रयोग करने वाले व्यक्ति की इच्छा के अनुसार कार्य करने के लिए राजी किया जा सके;

12. श्री गुरबख्श सिंह सिब्बिया और अन्य बनाम पंजाब राज्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय की एक संविधान पीठ ने अग्रिम जमानत देने के लिए विचारों पर विस्तार से विचार किया। गुरबख्श सिंह सिब्बिया (उपरोक्त) में संविधान पीठ के फैसले पर भरोसा करते हुए, सिद्धराम सतलिंगप्पा म्हेत्रे बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने अग्रिम जमानत के लिए आवेदन से निपटने के दौरान विचार किए जाने वाले मापदंडों और कारकों को निर्धारित किया:

"112. ...

(i) गिरफ्तारी से पहले आरोप की प्रकृति और गंभीरता तथा अभियुक्त की सही भूमिका को ठीक से समझा जाना चाहिए;

(ii) आवेदक के पूर्ववृत्त जिसमें यह तथ्य भी शामिल है कि क्या अभियुक्त ने पहले किसी संज्ञेय अपराध के संबंध में न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि पर कारावास भुगता है;

(iii) आवेदक के न्याय से भागने की संभावना;

(iv) अभियुक्त के समान या अन्य अपराधों को दोहराने की संभावना की संभावना;

(v) जहां आरोप केवल आवेदक को गिरफ्तार करके उसे घायल करने या अपमानित करने के उद्देश्य से लगाए गए हैं;

(vi) अग्रिम जमानत प्रदान करने का प्रभाव, विशेषकर बड़ी संख्या में ऐसे मामलों में जो बहुत बड़ी संख्या में लोगों को प्रभावित करते हैं;

(vii) न्यायालयों को अभियुक्त के विरुद्ध संपूर्ण उपलब्ध सामग्री का बहुत सावधानी से मूल्यांकन करना चाहिए। अदालत को मामले में आरोपी की वास्तविक भूमिका को भी स्पष्ट रूप से समझना चाहिए। जिन मामलों में अभियुक्त को दंड संहिता, 1860 की धारा 34 और 149 की मदद से फंसाया जाता है, अदालत को और भी अधिक सावधानी के साथ विचार करना चाहिए क्योंकि मामलों में अतिनिहितार्थ सामान्य ज्ञान और चिंता का विषय है;

(viii) अग्रिम जमानत मंजूर किए जाने के अनुरोध पर विचार करते समय दो कारकों नामत स्वतंत्र, निष्पक्ष और पूर्ण जांच के प्रति कोई पूर्वाग्रह नहीं होना चाहिए और अभियुक्त के उत्पीड़न, अपमान और अनुचित नजरबंदी को रोका जाना चाहिए;

(ix) न्यायालय गवाह के साथ छेड़छाड़ की युक्तियुक्त आशंका अथवा शिकायतकर्ता को खतरे की आशंका पर विचार करेगा;

(x) अभियोजन में छोटी छोटी बातों पर पर हमेशा विचार किया जाना चाहिए और जमानत प्रदान करने के मामले में केवल वास्तविकता के तत्व पर विचार किया जाना चाहिए और अभियोजन की वास्तविकता के बारे में कुछ संदेह होने की स्थिति में, घटनाओं के सामान्य क्रम में, अभियुक्त जमानत के आदेश का हकदार है।

13. धारा 438 द०प्र०स० के तहत आवेदनों से निपटने में मार्गदर्शक सिद्धांत सुप्रीम कोर्ट की एक अन्य संविधान पीठ द्वारा सुशीला अग्रवाल और अन्य बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली) और अन्य 20 के मामले में निर्धारित किए गए हैं। उद्धरित समापन कारक इस प्रकार पढ़ें:

"92. यह न्यायालय, दो निर्णयों में उपरोक्त चर्चा के प्रकाश में, और संदर्भ के उत्तरों के प्रकाश में, एतद्द्वारा स्पष्ट करता है कि द०प्र०स० की धारा 438 के तहत आवेदनों से निपटने वाले न्यायालयों द्वारा निम्नलिखित को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

92.1. गुरबख्श सिंह सिब्बिया बनाम पंजाब राज्य के फैसले के अनुरूप, जब कोई व्यक्ति गिरफ्तारी की आशंका की शिकायत करता है और आदेश के लिए संपर्क करता है, तो आवेदन ठोस तथ्यों (और अस्पष्ट या सामान्य आरोपों पर नहीं) पर आधारित होना चाहिए जो एक या अन्य विशिष्ट अपराध से संबंधित हों। अग्रिम जमानत मांगने वाले आवेदन में अपराध से संबंधित आवश्यक तथ्य होने चाहिए, और आवेदक को गिरफ्तारी क्यों आशंकित होती है, साथ ही कहानी का उसका पक्ष भी होना चाहिए। ये अदालत के लिए आवश्यक हैं जो खतरे या आशंका, इसकी गंभीरता और किसी भी शर्त की उपयुक्तता का मूल्यांकन करने के लिए अपने आवेदन पर विचार करना चाहिए। यह आवश्यक नहीं है कि प्राथमिकी दर्ज होने के बाद ही आवेदन को स्थानांतरित किया जाना चाहिए; इसे पहले भी पेश किया जा सकता है, जब तक कि तथ्य स्पष्ट न हों और गिरफ्तारी की आशंका के लिए उचित आधार हो।

92.2. यह अदालत के लिए उचित हो सकता है, जो धारा 438 के तहत एक आवेदन के साथ संपर्क किया जाता है, धमकी (गिरफ्तारी की) की

गंभीरता के आधार पर लोक अभियोजक को नोटिस जारी करने और तथ्यों को प्राप्त करने के लिए, यहां तक कि सीमित अंतरिम अग्रिम जमानत देते हुए भी।

92.3. द०प्र०स० की धारा 438 में कुछ भी अदालतों को समय के संदर्भ में राहत को सीमित करने के लिए मजबूर या बाध्य नहीं करता है, या प्राथमिकी दर्ज करने पर, या पुलिस द्वारा किसी गवाह के बयान की रिकॉर्डिंग के दौरान, या जांच के दौरान आदि। एक आवेदन (अग्रिम जमानत देने के लिए) पर विचार करते समय अदालत को अपराध की प्रकृति, व्यक्ति की भूमिका, जांच के पाठ्यक्रम को प्रभावित करने की संभावना, या सबूतों के साथ छेड़छाड़ (गवाहों को डराने सहित), न्याय से भागने की संभावना (जैसे देश छोड़ना), आदि पर विचार करना होता है। अदालतों को न्यायसंगत होगा - और धारा 437 (3) द०प्र०स० [धारा 438 (2) के आधार पर] में वर्णित शर्तों को लागू करना चाहिए। अन्य प्रतिबंधात्मक शर्तों को लागू करने की आवश्यकता को मामला-दर-मामला आधार पर और राज्य या जांच एजेंसी द्वारा उत्पादित सामग्री के आधार पर आंका जाना होगा। ऐसी विशेष या अन्य प्रतिबंधात्मक शर्तें लगाई जा सकती हैं यदि मामला या मामले वारंट करते हैं, लेकिन सभी मामलों में नियमित तरीके से नहीं लगाया जाना चाहिए। इसी तरह, अग्रिम जमानत देने की शर्तों को सीमित किया जा सकता है, यदि वे किसी भी मामले या मामलों के तथ्यों में आवश्यक हैं; हालाँकि, ऐसी सीमित शर्तों को हमेशा लागू नहीं किया जा सकता है।

92.4. न्यायालयों को आम तौर पर अपराधों की प्रकृति और गंभीरता, आवेदक को जिम्मेदार भूमिका और मामले के तथ्यों जैसे विचारों द्वारा निर्देशित किया जाना चाहिए, जबकि यह विचार करते हुए कि अग्रिम जमानत दी जाए, या इसे अस्वीकार कर दिया जाए। अनुदान देना है या नहीं, यह विवेक का विषय है; समान रूप से क्या और यदि हां, तो किस तरह की विशेष शर्तें लगाई जानी हैं (या नहीं लगाई जानी हैं) मामले के तथ्यों पर निर्भर हैं, और अदालत के विवेक के अधीन हैं।

92.5. अग्रिम दी गई जमानत, अभियुक्त के आचरण और व्यवहार के आधार पर, मुकदमे के अंत तक आरोप पत्र दाखिल करने के बाद जारी रह सकती है।

92.6. अग्रिम जमानत का आदेश इस अर्थ में नहीं होना चाहिए कि यह अभियुक्त को आगे के अपराध करने और गिरफ्तारी से अनिश्चितकालीन सुरक्षा की राहत का दावा करने में सक्षम नहीं होना चाहिए। यह अपराध या घटना तक सीमित होना चाहिए, जिसके लिए किसी विशिष्ट घटना के संबंध में गिरफ्तारी की आशंका मांगी गई है। यह भविष्य की घटना के संबंध में काम नहीं कर सकता है जिसमें अपराध करना शामिल है।

92.7. अग्रिम जमानत का आदेश किसी भी तरह से पुलिस या जांच एजेंसी के अधिकारों या कर्तव्यों को सीमित या प्रतिबंधित नहीं करता है, जो उस व्यक्ति के खिलाफ आरोपों की जांच करता है जो गिरफ्तारी पूर्व जमानत चाहता है और उसे दिया जाता है।

92.8. जांच प्राधिकारी की आवश्यकताओं को सुविधाजनक बनाने के लिए "सीमित हिरासत" या "डीम्ड हिरासत" के बारे में सिब्बिया में टिप्पणियां, धारा 27 के प्रावधानों को पूरा करने के उद्देश्य से पर्याप्त होंगी, एक लेख की वसूली की स्थिति में, या एक तथ्य की खोज, जो इस तरह की घटना (यानी समझा हिरासत) के दौरान

किए गए बयान से संबंधित है। ऐसी स्थिति में, अभियुक्त को अलग से आत्मसमर्पण करने और नियमित जमानत मांगने के लिए कहने का कोई सवाल (या आवश्यकता) नहीं है। सिब्बिया ने देखा था कि: (एस.सी.सी पी. 584, पैरा 19)

"19. ...यदि अवसर उत्पन्न होता है, तो अभियोजन पक्ष के लिए यह संभव हो सकता है कि वह उत्तर प्रदेश राज्य में इस न्यायालय द्वारा बताए गए सिद्धांत को लागू करके जमानत पर रिहा किए गए व्यक्ति द्वारा दी गई जानकारी के अनुसरण में किए गए तथ्यों की खोज के संबंध में साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के लाभ का दावा कर सकता है। उत्तर प्रदेश बनाम देवमन उपाध्याय।

92.9. यह पुलिस या जांच एजेंसी के लिए खुला है कि वह संबंधित अदालत में जाए, जो अग्रिम जमानत देती है, धारा 439 (2) के तहत किसी भी शब्द के उल्लंघन की स्थिति में, जैसे कि फरार, जांच के दौरान गैर-सहयोग, चोरी, धमकी या जांच या मुकदमे के परिणाम को प्रभावित करने के उद्देश्य से गवाहों को प्रलोभन देने की स्थिति में आरोपी को गिरफ्तार करने के निर्देश के लिए, आदि।

14. सुमिता प्रदीप बनाम अरुण कुमार सीके और अन्य 23 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कई अग्रिम जमानत मामलों में आम तर्क को देखते हुए कि हिरासत में पूछताछ की आवश्यकता नहीं है, ने देखा कि कानून की गंभीर गलत धारणा प्रतीत होती है कि यदि अभियोजन पक्ष द्वारा हिरासत में पूछताछ का कोई मामला नहीं बनता है, तब यह अकेले अग्रिम देने के लिए एक अच्छा आधार होगा। उक्त निर्णयों का प्रासंगिक हिस्सा इस प्रकार है:

"16. ... अग्रिम जमानत के कई मामलों में, हमने एक आम तर्क पर ध्यान दिया है कि हिरासत में पूछताछ की आवश्यकता नहीं है और इसलिए, अग्रिम जमानत दी जा सकती है। कानून की एक गंभीर गलत धारणा प्रतीत होती है कि यदि अभियोजन पक्ष द्वारा हिरासत में पूछताछ का कोई मामला नहीं बनता है, तो अग्रिम जमानत देने के लिए यह एक अच्छा आधार होगा। अग्रिम जमानत मांगने वाले आवेदन पर निर्णय लेते समय अन्य आधारों के साथ हिरासत में पूछताछ प्रासंगिक पहलुओं में से एक हो सकती है। ऐसे कई मामले हो सकते हैं जिनमें आरोपी की हिरासत में पूछताछ की आवश्यकता नहीं हो सकती है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि आरोपी के खिलाफ प्रथम दृष्टया मामले को नजरअंदाज किया जाना चाहिए या उसकी अनदेखी की जानी चाहिए और उसे अग्रिम जमानत दी जानी चाहिए। पहली और सबसे महत्वपूर्ण बात जिस पर अदालत को अग्रिम जमानत याचिका की सुनवाई करनी चाहिए, वह है आरोपी के खिलाफ प्रथम दृष्टया मामला। इसके बाद, सजा की गंभीरता के साथ-साथ अपराध की प्रकृति पर भी गौर किया जाना चाहिए। अग्रिम जमानत को अस्वीकार करने के लिए हिरासत में पूछताछ एक आधार हो सकती है। हालांकि, भले ही हिरासत में पूछताछ की आवश्यकता न हो, ये अपने आप में, अग्रिम जमानत देने का आधार नहीं हो सकता है।

15. अग्रिम जमानत देते समय धारा 438 की शक्ति का प्रयोग कारणों के अनुसार या निर्धारण के लिए प्रासंगिक विचारों पर नहीं किया जाना चाहिए। पोकर राम बनाम राजस्थान राज्य और अन्य के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने माना है कि अग्रिम जमानत कुछ हद तक अपराध की जांच

के क्षेत्र में हस्तक्षेप करती है। उक्त मामले का प्रासंगिक अंश निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया गया है:

11. ... *अग्रिम जमानत कुछ हद तक अपराध की जांच के क्षेत्र में हस्तक्षेप करती है और अदालत को विवेकाधीन प्रकृति की ऐसी शक्ति का प्रयोग करने में सतर्क और चौकस रहना चाहिए।* ...."

<u>वर्तमान मामलों के तथ्यों पर स्थापित कानून की प्रयोज्यता:</u>

16. जहां तक कारक संख्या के रूप में। (i) जैसा कि धारा 438 में बताया गया है - 'आरोप की प्रकृति और गंभीरता', दोनों आवेदकों की ओर से पेश अधिवक्ता ने न्यायालय को यह समझाने की कोशिश की कि चूंकि अधिनियम, 2021 की धारा 5 के तहत अधिनियम, 2021 की धारा-3 के प्रावधानों के उल्लंघन के लिए प्रदान की गई सजा केवल एक वर्ष के कारावास को आकर्षित करती है जो पांच साल तक बढ़ सकती है, इसलिए, अपराध उस श्रेणी में नहीं आता है जो अग्रिम जमानत देने पर प्रभाव डाल सकती है।

16.1 यह न्यायालय पाता है कि हालांकि अपराध केवल पांच साल के कारावास का वारंट करता है, हालांकि, धारा 5 के परंतुक में यह भी परिकल्पना की गई है कि सामूहिक धर्मांतरण के संबंध में उल्लंघन तीन साल से कम नहीं की अवधि के लिए कारावास को आकर्षित करेगा, लेकिन दस साल तक बढ़ाया जा सकता है और अधिनियम की धारा 3/5 (1) के अलावा प्राथमिकी भी, 2021 में भ०द०वि० की धारा 153ए, 506, 420, 467, 468, 471 के तहत अपराध शामिल हैं, जिसके लिए मजिस्ट्रेट ने प्रारंभिक चरण में रिमांड जारी नहीं किया था, हालांकि, बाद में शेष धाराओं में भी रिमांड दी गई है।

17. दूसरा कारक जिस पर धारा 438 में विचार करने की आवश्यकता है, वह यह है कि 'आवेदक, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से, मामले के तथ्यों से परिचित किसी भी व्यक्ति को कोई प्रलोभन, धमकी या वादा नहीं करेगा ताकि उसे अदालत या किसी पुलिस अधिकारी को ऐसे तथ्यों का खुलासा करने से रोका जा सके। आवेदकों के अधिवक्ता ने संबंधित आवेदकों के प्रोफाइल का प्रदर्शन किया है जिसमें कहा गया है कि उनका अपराध से कोई संबंध नहीं है और वे कभी भी किसी को प्रेरित करने, धमकी देने या वादा करने के बारे में नहीं सोच सकते हैं, इस प्रकार स्थिति को प्रभावित नहीं माना जाता है।

17.1 आवेदकों की स्थिति के संबंध में तौले गए तर्क दर्शाते हैं कि शायद ही यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि ऐसा कोई प्रभाव नहीं किया जाएगा जहां प्रश्नगत अपराध प्रलोभन का है क्योंकि पीड़ित समाज के सीमांत वर्ग से संबंधित हैं और प्राथमिकी दर्ज करने के लिए आगे आ रहे हैं। अतिरिक्त महाधिवक्ता द्वारा दी गई दलीलें आवेदकों के तर्क से आगे निकल गईं।

18. तीसरे कारक के संबंध में कि आवेदक न्याय से नहीं भागेंगे और अपने अंत में सहयोग का विस्तार करेंगे, उन्होंने 09.02.2023 को पारित अंतरिम आदेश में जारी इस न्यायालय के निर्देशों का पालन न करके आश्वासन को हिला दिया है। असहयोग के कारण गैर-जमानती वारंट जारी करना और इस न्यायालय द्वारा अंतरिम संरक्षण दिए जाने के बाद भी विवेचनाधिकारी के समक्ष उपस्थिति सुनिश्चित करने में विफल रहना भी आवेदकों की विश्वसनीयता को तोड़ता है जिसे उन्होंने तर्कों में प्रस्तुत करने की कोशिश की थी।

19. इस तथ्य के संबंध में कि अधिनियम, 2021 की प्रासंगिक धाराओं के तहत आवश्यक

रूप से किसी सक्षम व्यक्ति द्वारा प्राथमिकी दर्ज नहीं की गई है। इस न्यायालय को लगता है कि प्राथमिकी भ०द०वि० की अन्य धाराओं के तहत भी दर्ज की गई थी, जिसमें भ०द०वि० की धारा 153-ए भी शामिल है, इसलिए, यह केवल इस आधार पर खारिज करने के लिए उत्तरदायी नहीं है कि यह एक ऐसे व्यक्ति द्वारा दर्ज किया गया है जो किसी राजनीतिक संगठन का सचिव है।

20. आवेदक के अधिवक्ता द्वारा यह बताया गया कि पीड़ितों द्वारा मामला अपराध संख्या 54 वर्ष 2023 और मामला अपराध संख्या 55 वर्ष 2023 को अधिनियम, 2021 की धारा 3/5(1) सहित संबंधित धाराओं के तहत दर्ज किया गया है, उनमें से एक यानी अपराध संख्या 54 वर्ष 2023 को इस न्यायालय के डिवीजन के समक्ष चुनौती दी गई थी, जिसमें निर्णय 03.2.2023 सुरक्षित रखा गया था। वर्तमान मामले में निर्णय 17.2.2023 को दोपहर के भोजन से पहले सुरक्षित रखा गया था, जिसके बाद यह ज्ञात हुआ कि इस न्यायालय की डिवीजन बेंच ने उसी दिन यानी 17.2.2023 को आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 1814 वर्ष 2023 में निर्णय दिया है। उपरोक्त निर्णय पारित करते हुए, डिवीजन बेंच ने एक टिप्पणी की है कि 2023 के अपराध संख्या 224 वाली प्राथमिकी दिनांक 15.4.2022 को इसे बनाने के लिए सक्षम व्यक्ति द्वारा दर्ज नहीं की गई थी।

21. प्राथमिकी से ही पता चलता है कि यह अधिनियम, 2021 की धारा 3/5 (1) सहित भ०द०वि० की धारा 153-ए, 506, 420, 467, 468, 471 में दर्ज किया गया है, जिसे इस न्यायालय की डिवीजन बेंच के समक्ष 2023 की आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 324 में चुनौती दी गई थी, जिसमें रिट याचिका को सुनवाई योग्य नहीं मानते हुए खारिज कर दिया गया था, बेंच की ओर से एक टिप्पणी आई कि तय स्थिति के अनुसार, प्राथमिकी के अवलोकन और उसमें हर शब्द को सही रखने पर, यदि किसी अपराध का खुलासा नहीं किया जाता है, तो प्राथमिकी रद्द की जा सकती है। यह भी देखा गया कि यदि जांच के दौरान कोई सबूत एकत्र किया जाता है, तो रिट अदालत द्वारा उस पर विचार या सराहना नहीं की जा सकती है। वर्तमान मामले में प्राथमिकी, अधिनियम, 2021 की धारा 3/5 (1) के अलावा भ०द०वि० के तहत अपराधों के लिए अन्य धाराएं शामिल हैं, इसलिए, प्राथमिकी में कथनों को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है जब आवेदकों के खिलाफ समाज के एक बड़े वर्ग को प्रभावित करने वाले अपराध के लिए भौतिक साक्ष्य एकत्र किए गए हैं जो सार्वजनिक व्यवस्था को बाधित करते हैं और तथ्य यह है कि पीड़ित भी प्राथमिकी दर्ज करने के लिए आगे आए हैं।

22. जैसा कि यह हो सकता है, जोस प्रकाश जॉर्ज (उपरोक्त) में इस न्यायालय की डिवीजन बेंच की टिप्पणी प्राथमिकी के कोई परिणाम नहीं होने के बारे में (जब यह आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 1814 वर्ष 202325 के साथ-साथ वर्तमान मामले में रिट कोर्ट के समक्ष प्रश्न में नहीं है), यह है कि उपरोक्त प्राथमिकी के संबंध में कोई आशंका नहीं हो सकती है जिसका कोई परिणाम नहीं है और नहीं है अस्तित्व में। अन्यथा भी यह आवश्यक नहीं है कि आवेदकों के खिलाफ प्राथमिकी अस्तित्व में होनी चाहिए जब पीड़ितों द्वारा सामूहिक धर्मांतरण के अपराध में उनकी संलिप्तता दिखाई जा रही हो जो अब आवेदकों के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज करने के लिए आगे आए हैं।

23. अभियुक्त की गिरफ्तारी और नजरबंदी का उद्देश्य मुख्य रूप से मुकदमे के समय उसकी उपस्थिति को सुरक्षित करना है और यह सुनिश्चित करना है कि यदि वह दोषी पाया जाता है तो वह सजा प्राप्त करने के लिए उपलब्ध है। यदि प्रासंगिक समय पर उपस्थिति सुनिश्चित की जा सकती है, अन्यथा आपराधिक कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान अभियुक्त को स्वतंत्रता से वंचित करना अनुचित और अन्यायपूर्ण होगा।

24. द०प्र०स० की धारा 438 के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए, न्यायालय ने दिनांक 09.2.2023 के आदेश के तहत आवेदकों को इस शर्त के साथ संरक्षण दिया था कि वे जांच में सहयोग करेंगे और 13 और 15 फरवरी, 2023 को विवेचनाधिकारी के समक्ष पेश होंगे। जैसा कि अतिरिक्त महाधिवक्ता द्वारा बताया गया है, आवेदक उपस्थित नहीं हुए, जिस पर आवेदकों के अधिवक्ता द्वारा विवाद नहीं किया गया है। हालांकि, आवेदक के अधिवक्ता श्री शुक्ला - विनोद बिहारी ने अदालत को तस्वीरें दिखाईं, जो आवेदक की सत्यता साबित करते हुए कि पुलिस अधिकारियों की एक टीम ने आवेदकों में से एक के कार्यालय में प्रवेश किया था, इसलिए गिरफ्तारी की आशंका थी, जिसके लिए विद्वान एजीए ने पहले ही प्रस्तुत किया है कि मामले में जांच के लिए एस.आई.टी की एक टीम का गठन किया गया है, जिसमें निधियों के चैरनाइजेशन से संबंधित आपराधिक मामले पहले से ही लंबित हैं।

25. न्यायालय ने पाया कि आवेदकों ने स्वतंत्रता का दुरुपयोग किया है जो आवेदकों को सुरक्षा प्रदान करते समय शर्तों में से एक थी, इसलिए, वे दावा के अनुसार राहत के हकदार नहीं हैं।

26. मामले पर बहस करते समय, सजा की अवधि पर जोर दिया गया है ताकि एक ऐसा मामला बनाया जा सके जहां अपराध प्रकृति में गंभीर नहीं है। संगत धाराओं के उपबंधों को देखते हुए दंड की अवधि का उल्लेख किया गया है, जो दस वर्ष तक है लेकिन यह केवल दण्ड की अवधि नहीं है, बल्कि अपराध की प्रकृति पर भी विचार किया जाना चाहिए क्योंकि यह मानव शरीर या समाज को व्यापक रूप से प्रभावित कर रहा है और यही मायने रखता है और इसकी प्रासंगिकता है। वर्तमान मामले में, जैसा कि पहले ही विद्वान एजीए द्वारा बताया जा चुका है, सामूहिक धर्मांतरण के बारे में भौतिक साक्ष्य एकत्र किए गए हैं जो बड़े पैमाने पर समाज को प्रभावित करते हैं और इसलिए यह एक गंभीर अपराध है और इसे हल्के में नहीं लिया जा सकता है।

27. पर्याप्त सबूत का पता लगाया गया है जो बड़े पैमाने पर जनता को प्रभावित करने के कारण से संबंधित अपराध में आवेदकों की भागीदारी साबित करता है, इस प्रकार, इस तरह के अपराध को सामान्य पाठ्यक्रम में नहीं लिया जा सकता है। विवेचनाधिकारी द्वारा चैनेलाइजिंग फंडिंग से संबंधित साक्ष्य एकत्र करने के प्रयास किए जा रहे हैं, जिसमें आवेदकों को जांच में सहयोग करना आवश्यक है। ऐसे मामलों में, जांच को विवेचनाधिकारी के माध्यम से आवेदकों को इस न्यायालय के संरक्षण में रखे बिना आगे बढ़ना चाहिए, जो कानून की प्रक्रिया से अच्छी तरह वाकिफ हैं और कानून प्रवर्तन तंत्र का एक हिस्सा हैं। साधना चौधरी बनाम राजस्थान राज्य और अन्य 26 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का संदर्भ दिया जा सकता है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि कानून का पालन करने वाला व्यक्ति (उसमें अभियुक्त) होने के

नाते, कानून का पालन आम आदमी द्वारा सामान्य रूप से अपेक्षा से अधिक कठोर होना चाहिए। यहां आवेदकों को उच्च पद प्राप्त होता है, इस प्रकार, उन्हें अंतरिम संरक्षण की शर्तों के बारे में मेहनती होना चाहिए था जिसके तहत उन्हें उसमें उल्लिखित निर्धारित तिथियों पर विवेचनाधिकारी के सामने उपस्थित होने के लिए कहा गया था।

28. जैसा कि विभिन्न निर्णयों में चर्चा की गई है, अग्रिम जमानत देते समय कुछ प्रासंगिक कारकों पर विचार किया जाना चाहिए, उनमें से एक, अपराध की गंभीरता होने के नाते, यह न्यायालय पाता है कि वर्तमान मामला अग्रिम जमानत के लिए एक साधारण मामले से आगे निकल गया है, जहां, वर्तमान आवेदन के लंबित रहने के दौरान पीड़ितों द्वारा कई प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई हैं, जिन्हें अनुचित प्रभाव या प्रलोभन से परिवर्तित किया गया है। यह न्यायालय इस तथ्य से अपनी आँखें बंद नहीं कर सकता है कि व्यक्तियों के सामूहिक धर्मांतरण के संबंध में भौतिक साक्ष्य एकत्र किए गए हैं और इस मामले ने कहीं अधिक गंभीर मोड़ ले लिया है जहाँ पीड़ित साक्ष्य देने के लिए आगे आ रहे हैं, इस प्रकार, यदि संरक्षण प्रदान किया जाता है, तो यह जाँच की प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न करेगा।

29. अग्रिम जमानत देने के संबंध में दिशानिर्देशों पर विचार करते हुए, पोकर राम बनाम राजस्थान राज्य और अन्य27 के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने श्री गुरबख्श सिंह सिब्बिया और अन्य बनाम पंजाब राज्य28 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ के फैसले के बारे में चर्चा की और देखा कि इस बात पर विचार करने में सावधानी बरती गई थी कि क्या आवेदक के फरार होने की संभावना है, कोई अनुमान नहीं हो सकता है कि अमीर और शक्तिशाली खुद को मुकदमे के लिए प्रस्तुत करेंगे और विनम्र और गरीब न्याय के मार्ग से भाग जाएंगे, और इससे भी अधिक, एक अनुमान हो सकता है कि पूर्व में अपराध करने की संभावना नहीं है और बाद वाले इसे करने की अधिक संभावना रखते हैं: पोकर राम (उपरोक्त) में उक्त निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ इस प्रकार है:

"6. गुरबख्श सिंह सिब्बिया बनाम पंजाब राज्य में संविधान पीठ के फैसले में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि "जमानत के एक सामान्य आदेश और अग्रिम जमानत के आदेश के बीच अंतर यह है कि जबकि पूर्व गिरफ्तारी के बाद दिया जाता है और इसलिए इसका मतलब पुलिस की हिरासत से रिहाई है, बाद में गिरफ्तारी की प्रत्याशा में दी जाती है और इसलिए गिरफ्तारी के क्षण में प्रभावी होती है"। जमानत के बाद के आदेश के विपरीत, यह एक पूर्व-गिरफ्तारी कानूनी प्रक्रिया है जो निर्देश देती है कि यदि जिस व्यक्ति के पक्ष में यह जारी किया गया है, उसे उस आरोप पर गिरफ्तार किया जाता है जिसके संबंध में निर्देश जारी किया गया है, तो उसे जमानत पर रिहा कर दिया जाएगा। धारा 438 के तहत एक निर्देश का उद्देश्य धारा 46 (1) या कारावास द्वारा परिकल्पित स्पर्श से सशर्त प्रतिरक्षा प्रदान करना है। पैरा 31 में, चंद्रचूड़, सीजे ने अग्रिम जमानत के लिए एक आवेदन और जांच के दौरान गिरफ्तारी के बाद जमानत के लिए एक आवेदन की जांच करते समय प्रासंगिक विचारों के बीच अंतर को स्पष्ट रूप से रेखांकित किया। विद्वान मुख्य न्यायाधीश कहते हैं कि अग्रिम जमानत के संबंध में, यदि प्रस्तावित आरोप न्याय के लक्ष्यों को आगे बढ़ाने के उद्देश्यों से नहीं बल्कि किसी गुप्त उद्देश्य से उपजा प्रतीत होता है, तो उद्देश्य

आवेदक को गिरफ्तार करके उसे घायल करना और अपमानित करना है, आवेदक की गिरफ्तारी की स्थिति में जमानत पर रिहा करने का निर्देश आम तौर पर दिया जाएगा। यह देखा गया कि "यह एक कठोर नियम के रूप में निर्धारित नहीं किया जा सकता है कि अग्रिम जमानत तब तक नहीं दी जा सकती जब तक कि प्रस्तावित आरोप दुर्भावना से प्रेरित न हो; और, समान रूप से, अग्रिम जमानत दी जानी चाहिए यदि कोई डर नहीं है कि आवेदक फरार हो जाएगा। कुछ प्रासंगिक विचार जो विवेक को नियंत्रित करते हैं, उनमें देखा गया है "प्रस्तावित आरोपों की प्रकृति और गंभीरता, आरोपों के निर्माण की संभावना वाली घटनाओं का संदर्भ, मुकदमे में आवेदक की उपस्थिति सुरक्षित नहीं होने की एक उचित संभावना, एक उचित आशंका है कि गवाहों के साथ छेड़छाड़ की जाएगी और 'जनता या राज्य के बड़े हित', कुछ विचार हैं जिन्हें अदालत को अग्रिम जमानत के लिए आवेदन पर फैसला करते समय ध्यान में रखना है। एक चेतावनी दी गई थी कि "इस विचार के मूल्यांकन में कि क्या आवेदक के फरार होने की संभावना है, इस बात का कोई अनुमान नहीं हो सकता है कि अमीर और शक्तिशाली खुद को मुकदमे के लिए प्रस्तुत करेंगे और विनम्र और गरीब न्याय के मार्ग से भाग जाएंगे, इससे अधिक कोई अनुमान हो सकता है कि पूर्व में अपराध करने की संभावना नहीं है और बाद वाले के अपराध करने की अधिक संभावना है यह"।

30. यह एक स्थापित कानून है कि अग्रिम जमानत देने के मामले पर विचार करते समय, न्यायालय को अभियोजन पक्ष के गवाहों को प्रभावित करने, परिवार के सदस्यों को धमकाने, न्याय से भागने, अन्य बाधाएं पैदा करने और निष्पक्ष जांच करने के लिए अभियुक्त की संभावना को नजरअंदाज नहीं करना चाहिए। विपिन कुमार धीर बनाम पंजाब राज्य और अन्य 29 के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि भले ही अभियुक्त को भगोड़ा घोषित करने में कोई प्रक्रियात्मक अनियमितता हो, लेकिन यह अपने आप में गिरफ्तारी पूर्व जमानत देने के लिए एक न्यायसंगत आधार नहीं था। निर्णय का प्रासंगिक हिस्सा नीचे उद्धृत किया गया है:

"13. यहां तक कि अगर प्रतिवादी-अभियुक्त को भगोड़ा घोषित करने में कोई प्रक्रियात्मक अनियमितता थी, तो यह अपने आप में गंभीर अपराध के मामले में गिरफ्तारी पूर्व जमानत देने के लिए एक न्यायसंगत आधार नहीं था, सिवाय इसके कि उच्च न्यायालय केस-डायरी और रिकॉर्ड पर अन्य सामग्री के अवलोकन पर, प्रथम दृष्टया, संतुष्ट है कि यह झूठे या अतिरंजित आरोप का मामला है। यहां ऐसा मामला नहीं होने के कारण, उच्च न्यायालय ने प्रतिवादी-अभियुक्त को अग्रिम जमानत देने में गलत आधार पर काम किया।

31. 04.2.2023 को गैर-जमानती वारंट जारी किए गए हैं, हालांकि, यह मानते हुए कि इसे जारी करने के लिए उचित प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया था, विवेचनाधिकारी के समक्ष पेश होने की शर्त के साथ 04.2.2023 के बाद सुरक्षा प्रदान की गई थी, जिसे आवेदक सुनिश्चित करने में विफल रहे। आवेदकों के पेश न होने से पता चलता है कि उनका जांच में सहयोग करने का कोई इरादा नहीं है।

32. वर्तमान प्राथमिकी के अनुसार अपराध के साथ-साथ जांच के दौरान एकत्र की गई सामग्री और पीड़ितों द्वारा दर्ज की गई प्राथमिकी, बड़े पैमाने पर जनता की भावनाएं शामिल हैं, जिसमें भारत जैसे किसी भी धर्मनिरपेक्ष देश में शांति

और सद्भाव को भंग करना होगा जो सार्वजनिक व्यवस्था को प्रभावित करेगा। आवेदकों को केवल इस तथ्य पर विचार करने के लिए माफ नहीं किया जा सकता है कि उनका नाम प्रथम सूचना रिपोर्ट में नहीं दिया गया है।

33. हालांकि द०प्र०स० की धारा 438 का उद्देश्य व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा करना है। दो अधिकारों के बीच एक नाजुक संतुलन स्थापित करने की आवश्यकता है यानी एक व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक हित की रक्षा करना जैसा कि पी. चिदंबरम बनाम प्रवर्तन निदेशालय 30 के मामले में आयोजित किया गया है। उक्त निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ यहां पुन: प्रस्तुत किए गए हैं:

"72. हम इस तथ्य से अवगत हैं कि द०प्र०स० की धारा 438 की शुरूआत के पीछे विधायी मंशा व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा करना और उसे अपमानित होने की संभावना से बचाना और अनावश्यक पुलिस हिरासत के अधीन होना है। हालांकि, अदालत को यह भी ध्यान रखना चाहिए कि एक आपराधिक अपराध केवल एक व्यक्ति के खिलाफ अपराध नहीं है, बल्कि बड़ा सामाजिक हित दांव पर है। इसलिए, दो अधिकारों के बीच एक नाजुक संतुलन स्थापित करने की आवश्यकता है - किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक हित की रक्षा करना। यह नहीं कहा जा सकता है कि अग्रिम जमानत देने से इनकार करना भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत अपीलकर्ता को दिए गए अधिकारों से वंचित करना होगा। *** *** *** *** ***

74. आमतौर पर, गिरफ्तारी कई उद्देश्यों को सुरक्षित करने के उद्देश्य से जांच की प्रक्रिया का एक हिस्सा है। ऐसी परिस्थितियां हो सकती हैं जिनमें अभियुक्त भौतिक तथ्यों और प्रासंगिक जानकारी की खोज के लिए जानकारी प्रदान कर सकता है। अग्रिम जमानत मिलने से जांच में बाधा आ सकती है। गिरफ्तारी पूर्व जमानत का उद्देश्य व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार और जांच एजेंसी के अब तक एकत्र की गई सामग्री के बारे में आरोपी से पूछताछ करने और अधिक जानकारी एकत्र करने के अधिकार के बीच संतुलन बनाना है, जिससे संबंधित जानकारी की वसूली हो सकती है। राज्य बनाम अनिल शर्मा 31 में, सुप्रीम कोर्ट ने निम्नानुसार आयोजित किया: (एस.सी.सी पी. 189, पैरा 6)

"6. हम सीबीआई के इस निवेदन में बल पाते हैं कि संहिता की धारा 438 के तहत अनुकूल आदेश के साथ अच्छी तरह से स्थापित संदिग्ध से पूछताछ करने की तुलना में हिरासत में पूछताछ गुणात्मक रूप से अधिक उन्मूलन-उन्मुख है। इस तरह के मामले में, एक संदिग्ध व्यक्ति की प्रभावी पूछताछ कई उपयोगी सूचनाओं और उन सामग्रियों को अलग करने में जबरदस्त लाभ है जो छुपाई गई होंगी। इस तरह की पूछताछ में सफलता तब तक नहीं मिल सकती है जब संदिग्ध व्यक्ति जानता है कि पूछताछ के दौरान वह अच्छी तरह से सुरक्षित है और गिरफ्तारी पूर्व जमानत आदेश से अछूता है। बहुत बार ऐसी स्थिति में पूछताछ एक मात्र अनुष्ठान तक कम हो जाएगी। यह तर्क कि हिरासत में पूछताछ व्यक्ति के थर्ड-डिग्री तरीकों के अधीन होने के खतरे से भरा है, को स्वीकार करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इस तरह के तर्क को सभी आपराधिक मामलों में सभी अभियुक्तों द्वारा आगे बढ़ाया जा सकता है। न्यायालय को यह मानना होगा कि जिम्मेदार पुलिस अधिकारी खुद को एक जिम्मेदार तरीके से संचालित करेंगे

और जिन लोगों को अपराधों को रोकने का काम सौंपा गया है, वे खुद को अपराधी के रूप में पेश नहीं करेंगे।

34. उन तर्कों के संबंध में कि द०प्र०स० की धारा 4 में समान प्रावधानों द्वारा जांच करने का प्रावधान है, विशेष अधिनियम (अधिनियम, 2021 जांच के लिए कोई तंत्र प्रदान नहीं करता है) में प्रावधान के अधिनियमन के अधीन, सुप्रीम कोर्ट के एक फैसले का संदर्भ केएच नजर बनाम मैथ्यू के जैकब और अन्य32 के मामले में किया गया है जिसमें यह माना गया है कि लाभकारी कानून के प्रावधानों का अर्थ लगाया जाना चाहिए एक उद्देश्य-उन्मुख दृष्टिकोण और एक लाभकारी कानून के प्रावधानों के शाब्दिक निर्माण से बचा जाना चाहिए:

"11. एक लाभकारी कानून के प्रावधानों को एक उद्देश्य-उन्मुख दृष्टिकोण के साथ समझा जाना चाहिए। अधिनियम को अपने उद्देश्यों को बढ़ावा देने के लिए एक उदार निर्माण प्राप्त करना चाहिए। साथ ही, एक लाभकारी कानून के प्रावधानों के शाब्दिक निर्माण से बचना होगा। यह अदालत का कर्तव्य है कि वह कानून बनाने में विधायिका की मंशा को समझे। एक बार जब इस तरह के इरादे का पता लगाया जाता है, तो क़ानून को एक उद्देश्यपूर्ण या कार्यात्मक व्याख्या प्राप्त करनी चाहिए।

12. ओ. चिन्नप्पा रेड्डी, जे. के शब्दों में, लाभकारी कानून के वैधानिक निर्माण के सिद्धांत इस प्रकार हैं: (वर्कमेन केस, एस.सी.सी पृष्ठ 76, पैरा 4)

"4. वैधानिक निर्माण के सिद्धांत अच्छी तरह से तय हैं। 'सामाजिक कल्याण कानून और मानवाधिकार' कानून जैसे उदार आयात के क़ानूनों में होने वाले शब्दों को प्रोक्रस्टीन बेड में नहीं रखा जाना चाहिए या लिलिपुटियन आयामों में सिकुड़ जाना चाहिए। इन कानूनों के निर्माण में शाब्दिक निर्माण की अशुद्धता से बचा जाना चाहिए और इसके गलत उपयोग की विलक्षणता को पहचाना और कम किया जाना चाहिए। न्यायाधीशों को इस तरह के क़ानूनों के "रंग", "सामग्री" और "संदर्भ" से अधिक चिंतित होना चाहिए (हमने प्रेन बनाम सिममंड्स में लॉर्ड विल्बरफोर्स की राय से शब्द उधार लिए हैं)। उसी राय में लॉर्ड विल्बरफोर्स ने बताया कि कानून को शाब्दिक व्याख्या के कुछ द्वीप में पीछे नहीं छोड़ा जाना चाहिए, लेकिन भाषा से परे पूछताछ करना है, तथ्यों के मैट्रिक्स से अलग नहीं है जिसमें वे सेट हैं; कानून की व्याख्या केवल आंतरिक भाषाई विचारों पर नहीं की जानी चाहिए। हमारे सामने उद्धृत मामलों में से एक, जो कि सुरेंद्र कुमार वर्मा बनाम केंद्र सरकार औद्योगिक न्यायाधिकरण-सह-श्रम न्यायालय 33 है, हमें यह कहने का अवसर मिला था: (सुरेंद्र कुमार वर्मा, एस.सी.सी पृष्ठ 447, पैरा 6)

'6. ... "रोटी और मक्खन" विधियों की व्याख्या में शब्दार्थ विलासिता को गलत तरीके से रखा गया है। कल्याणकारी विधियों को, आवश्यकता के अनुसार, एक व्यापक व्याख्या प्राप्त करनी चाहिए। जहां कानून को कुछ प्रकार की शरारतों के खिलाफ राहत देने के लिए डिज़ाइन किया गया है, अदालत को व्युत्पत्ति संबंधी भ्रमण करके अतिक्रमण नहीं करना है। "

13. एक क़ानून की व्याख्या करते समय, समस्या या शरारत जिसे दूर करने के लिए क़ानून को डिज़ाइन किया गया था, पहले पहचाना जाना चाहिए और फिर एक निर्माण जो समस्या को दबाता है और उपाय को आगे बढ़ाता है, उसे अपनाया जाना चाहिए। ..."

35. दीपिका सिंह बनाम केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण और अन्य34 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा हाल ही में उपरोक्त निर्णय का पालन किया गया है।

36. आवेदकों के अधिवक्ता द्वारा इस तथ्य के बारे में उठाए गए सबमिशन के लिए कि आवेदकों को आवेदन दाखिल करने के समय अपराधी घोषित नहीं किया गया था, इस न्यायालय ने रिकॉर्ड से पाया कि उन्हें 04.2.2022 को उनके खिलाफ गैर-जमानती वारंट जारी किए जाने का ज्ञान था। आवेदकों को अपराध के बारे में अच्छी तरह से पता था क्योंकि धारा 41 (1) द०प्र०स० के तहत उन्हें नोटिस दिया गया था, जिसका जवाब प्रस्तुत किया गया था और सामग्री साक्ष्य एकत्र करने के बाद जब संबंधित धाराओं के तहत कुछ व्यक्तियों की रिमांड ली गई थी। आवेदकों को जांच में सहयोग करने की आवश्यकता थी, लेकिन वे तब से फरार हैं, जिसके परिणामस्वरूप 04.2.2023 को गैर-जमानती वारंट जारी किए गए।

37. यहां वर्तमान मामले में, 09.2.2023 को उन्हें दी गई अंतरिम सुरक्षा के बाद भी आवेदकों ने जांच में सहयोग नहीं किया, इसलिए, उन्हें यह रुख अपनाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है कि घोषित अपराधी के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा लगाई गई रोक आवेदकों के मामले में लागू नहीं होती है।

38. लवेश बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) 35 के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने माना है कि आम तौर पर फरार होने के मामले में, अग्रिम जमानत देने की शक्ति का प्रयोग नहीं किया जाता है। उक्त निर्णय का मध्य प्रदेश राज्य बनाम प्रदीप शर्मा 36 के मामले में पालन किया गया है।

39. जहां तक वंचितों की कम स्वायत्तता के बारे में अतिरिक्त महाधिवक्ता के तर्कों का संबंध है, यह राज्य का कर्तव्य है कि वह ऐसी गतिविधियों की जांच करे जो ऐसे व्यक्तियों को धमकाने वाली, अपमानजनक, डराने वाली हों और समाज के कमजोर वर्ग के अधिकारों और हितों को हर तरह से प्रभावित करती हों और दूसरी ओर अधिकांश व्यक्तियों को प्रभावित करती हों।

40. इसकी व्याख्या इस तरह से भी की जा सकती है कि आवेदकों के खिलाफ लगाए गए सामूहिक धर्मांतरण के आरोप, जो प्रभावशाली व्यक्ति हैं, और वे उपरोक्त उद्देश्य के लिए विदेशी समूहों से एकत्रित धन को चैनलाइज कर रहे हैं, इस तरह का कृत्य अपराध की गंभीरता को दर्शाता है, इसलिए, प्रस्तुत प्रकरण अग्रिम जमानत देने के लिए उपयुक्त नहीं है क्योंकि सुरक्षा का मुद्दा और नागरिकों के विवेक की स्वतंत्रता के अधिकार और स्वतंत्र रूप से दावा करने के अधिकार का उल्लंघन है, धर्म का अभ्यास और प्रचार शामिल है।

41. मुझे धर्म परिवर्तन के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष लंबित एक मामले के संदर्भ का उल्लेख करना उचित लगता है, जिसका शीर्षक 'इन रे: द इश्यू वर्ष रिलिजन कन्वर्जन37' है, जिसमें न्यायालय ने 14.11.2022 को जवाबी हलफनामा देते हुए निम्नानुसार देखा:

"धर्म के कथित धर्मांतरण के संबंध में मुद्दा अगर सही और सत्य पाया जाता है, तो यह एक बहुत ही गंभीर मुद्दा है जो अंततः राष्ट्र की सुरक्षा को प्रभावित कर सकता है और नागरिकों के विवेक की स्वतंत्रता और धर्म को स्वतंत्र रूप

से मानने, अभ्यास करने और प्रचार करने के अधिकार का उल्लंघन कर सकता है।

इसलिए, यह बेहतर है कि केंद्र सरकार अपना रुख स्पष्ट करे और इस बात का जवाब दे कि भारत संघ और/या अन्य द्वारा बलपूर्वक, प्रलोभन या कपटपूर्ण तरीके से ऐसे जबरन धर्मांतरण को रोकने के लिए और क्या कदम उठाए जा सकते हैं। ...."

42. बादशाह बनाम उर्मिला बादशाह गोडसे38 के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि न्यायालय की भूमिका समाज में कानून के उद्देश्य को समझना और कानून को अपने उद्देश्य को प्राप्त करने में मदद करना है। लेकिन समाज का कानून एक जीवित जीव है। यह एक दिए गए तथ्यात्मक और सामाजिक वास्तविकता पर आधारित है जो लगातार बदल रहा है। उच्चतम न्यायालय ने यह भी टिप्पणी की है कि समाज में कमजोर समूहों को विशेष सुरक्षा और लाभ प्रदान करने वाले अनेक सामाजिक न्याय विधान हैं। बादशाह (उपरोक्त) में फैसले के प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे पुन: प्रस्तुत किए गए हैं:

14. हाल ही में, इसी दिशा में, इस बात पर जोर दिया गया है कि न्यायालयों को "सामाजिक न्याय निर्णयन" में अलग-अलग दृष्टिकोण अपनाने होंगे, जिसे "सामाजिक संदर्भ अधिनिर्णयन" के रूप में भी जाना जाता है क्योंकि केवल "प्रतिकूल दृष्टिकोण" बहुत उपयुक्त नहीं हो सकता है। समाज में कमजोर वर्गों को विशेष सुरक्षा और लाभ देने वाले अनेक सामाजिक न्याय विधान मौजूद हैं। माधव मेनन ने इसका स्पष्ट वर्णन किया है:

"इसलिए, यह सम्मानपूर्वक प्रस्तुत किया जाता है कि 'सामाजिक संदर्भ निर्णय' अनिवार्य रूप से समानता न्यायशास्त्र का अनुप्रयोग है जैसा कि संसद और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अदालतों के समक्ष प्रस्तुत असंख्य स्थितियों में विकसित किया गया है, जहां असमान पक्षों को प्रतिकूल कार्यवाही में खड़ा किया जाता है और जहां अदालतों को समान न्याय देने के लिए कहा जाता है। एक असमान लड़ाई में गरीबों की विकलांगता को बढ़ाने वाली सामाजिक-आर्थिक असमानताओं के अलावा, प्रतिकूल प्रक्रिया स्वयं कमजोर पार्टी के नुकसान के लिए संचालित होती है। ऐसी स्थिति में, न्यायाधीश को न केवल शामिल पक्षों की असमानताओं के प्रति संवेदनशील होना चाहिए, बल्कि कमजोर पक्ष के प्रति भी सकारात्मक रूप से इच्छुक होना चाहिए यदि असंतुलन के परिणामस्वरूप न्याय की हत्या नहीं होती है। यह परिणाम सामाजिक संदर्भ निर्णय या सामाजिक न्याय निर्णय द्वारा प्राप्त किया जाता है।

**** ***

16. कानून लोगों के बीच संबंधों को नियंत्रित करता है। यह व्यवहार के पैटर्न को निर्धारित करता है; यह समाज के मूल्यों को दर्शाता है। अदालत की भूमिका समाज में कानून के उद्देश्य को समझना और कानून को अपने उद्देश्य को प्राप्त करने में मदद करना है। लेकिन समाज का कानून जीवित है। यह एक दिए गए तथ्यात्मक और सामाजिक वास्तविकता पर आधारित है जो लगातार बदल रहा है। कभी-कभी कानून में परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन से पहले होता है और यहां तक कि इसे उत्तेजित करने का इरादा भी होता है। ज्यादातर मामलों में, हालांकि, कानून में बदलाव सामाजिक वास्तविकता में बदलाव का परिणाम है। दरअसल, जब सामाजिक वास्तविकता बदलती है, तो कानून को भी बदलना चाहिए। जिस तरह सामाजिक वास्तविकता में

परिवर्तन जीवन का नियम है, उसी तरह सामाजिक वास्तविकता में परिवर्तन के प्रति जवाबदेही कानून का जीवन है। यह कहा जा सकता है कि कानून का इतिहास समाज की बदलती जरूरतों के लिए कानून को अपनाने का इतिहास है। संवैधानिक और वैधानिक दोनों व्याख्याओं में, अदालत को कानून के व्यक्तिपरक और वस्तुनिष्ठ उद्देश्यों के बीच उचित संबंध निर्धारित करने में विवेक का प्रयोग करना चाहिए।

43. आवेदक प्रभावशाली व्यक्ति हैं जिनकी अन्य मामलों में भी आवश्यकता होती है, जिसमें एस.आई.टी का गठन संस्था के धन के चैनलाइजेशन की जांच करने के लिए किया गया है, जो विवेचनाधिकारी द्वारा आज तक एकत्र की गई सामग्री के अनुसार, सामूहिक रूपांतरण के प्रयोजनों के लिए उपयोग किया जा रहा है।

44. इस तथ्य के संबंध में कि अग्रिम जमानत पर पहले ही कई व्यक्तियों को रिहा किया जा चुका है, इसलिए, समानता का दावा किया गया है, इस न्यायालय ने पाया कि जमानत देते समय, आरोपी की भूमिका पर ध्यान केंद्रित किया जाना चाहिए, घटना के संबंध में अभियुक्त की स्थिति के साथ-साथ पीड़ितों पर भी विचार किया जाना चाहिए, जैसा कि महादेव मीणा बनाम प्रवीण राठौर और अन्य 39 के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने माना है।

45. इस न्यायालय ने पाया कि अभियुक्त प्रभावशाली व्यक्ति हैं जो सामूहिक धर्मांतरण में शामिल हैं क्योंकि इस संबंध में सबूत पहले ही विवेचनाधिकारी द्वारा एकत्र किए जा चुके हैं, इसलिए वे अग्रिम जमानत पर रिहा किए गए अन्य व्यक्तियों के साथ समानता का दावा नहीं कर सकते।

46. यह ध्यान में रखा जा सकता है कि अग्रिम जमानत केवल उपयुक्त मामलों में प्रयोग किया जाने वाला एक असाधारण उपाय है। धारा 438 द०प्र०स० के तहत मिली शक्ति का नियमित जमानत के विकल्प के रूप में नियमित तरीके से उपयोग नहीं किया जा सकता है। यह विवेकाधीन शक्ति उस तरह के तथ्यों के अस्तित्व की मांग करती है जहां अदालत संतुष्ट हो कि न्याय के कारण को आगे बढ़ाने और कानून की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए इसका हस्तक्षेप आवश्यक है।

47. पक्षों के अधिवक्ताओं की प्रस्तुतियों के माध्यम से प्रकरण में जाने के बाद, अपराध के आरोप की प्रकृति और आवेदकों की भूमिका अत्यधिक प्रभावशाली व्यक्ति होने के नाते, धर्मार्थ कार्यों के पीछे उनका इरादा संदिग्ध प्रतीत होता है और समाज के सीमांत वर्ग के हित को प्रभावित करता है; कानून के उद्देश्य और समाज पर उसके प्रभाव मद्देनज़र, मुझे यह अग्रिम जमानत देने के लिए एक उपयुक्त मामला नहीं लगता है।

48. अग्रिम जमानत आवेदन खारिज किये जाते हैं।

(2023) 3 ILRA 541

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक वाद

दिनांक: इलाहाबाद 28.02.2023

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान के समक्ष

आपराधिक प्रकीर्ण अग्रिम जमानत आवेदन (U/S 438 Cr.P.C.) संख्या 1425 of 2023

और

आपराधिक प्रकीर्ण अग्रिम जमानत आवेदन (U/S 438 Cr.P.C.) संख्या 1376 of 2023

परमिंदर सिंह और अन्य ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ...प्रतिपक्षी

आवेदकों के अधिवक्ता: सुश्री मैरी पुंचा (शीब जोस), श्री मोहम्मद. कलीम, श्री रिजवान अहमद, श्री दिलीप कुमार (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: जी.ए.

ए. आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 438 - भारतीय दंड संहिता,1860-धाराएँ 153-ए, 506, 420, 467, 468 और 471 - उत्तर प्रदेश धर्मांतरण निषेध अधिनियम, 2021-धाराएँ 3 और 5(1) - समाज के कमजोर वर्गों के संबंध में धर्मांतरण के आरोप - आवेदक प्रभावशाली व्यक्ति हैं जो विदेशी समूह से जुटाए गए धन का उपयोग कर रहे हैं - आवेदक गैर जमानती वारंट के बारे में जानने के बावजूद पुलिस के साथ सहयोग नहीं कर रहे हैं - सुरक्षा दी गई लेकिन आवेदक जांच अधिकारी के सामने प्रस्तुत होने में असफल रहे, इससे यह साफ होता है कि वे जांच में सहयोग करने का आशय नहीं रखते - इसके अलावा, आवेदकों को सिर्फ इस आधार पर छूट नहीं दी जा सकती कि उनका नाम FIR में नहीं है - वर्तमान वाद में, बड़े पैमाने पर जनता की भावनाएँ जुड़ी हुई हैं, जहाँ किसी धर्मनिरपेक्ष देश जैसे भारत में इसका परिणाम शांति और सौहार्द को तोड़ने में हो सकता है - इसलिए, धारा 438 सीआरपीसी के तहत शक्ति का उपयोग सामान्य तरीके से नियमित जमानत के विकल्प के रूप में नहीं किया जा सकता। (पैराग्राफ 1 से 47)

बी. 'अग्रिम जमानत' देने की शक्ति असाधारण होती है और केवल अपवादात्मक वाद में ही इसका प्रयोग किया जा सकता है, जहाँ यह स्पष्ट हो कि किसी व्यक्ति को झूठा फंसाया गया है या उसके खिलाफ गलत मामला दर्ज किया गया है या यह मानने के लिए उचित कारण हैं कि किसी अपराध का आरोपी व्यक्ति फरार होने या जमानत पर रहते हुए अपनी स्वतंत्रता का दुरुपयोग करने वाला नहीं है, ऐसी स्थिति में ही यह शक्ति प्रयोग में लाई जानी चाहिए। (पैराग्राफ 9)

आवेदन निरस्त किया गया। (ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. मनीष यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, जमानत संख्या 4645 / 2022
2. सुरेश बाबू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, जमानत संख्या 3532 / 2022
3. नाथू सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य। (2021) 6 एससीसी 64
4. रेव. स्टैनिसलॉस बनाम मध्य प्रदेश राज्य और अन्य। (1977) 1 एससीसी 677
5. अली @ अली अहमद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, जमानत संख्या 2904 वर्ष 2022
6. अमीश देवगन बनाम भारत सरकार और अन्य। (2021) 1 एससीसी 1
7. श्री गुरबख्श सिंह सिब्बिया और अन्य बनाम पंजाब राज्य। (1980) 2 एससीसी 565
8. सिद्धाराम सतलिंगप्पा मेहतेरे बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य। (2011) 1 एससीसी 694
9. सुशिला अग्रवाल और अन्य बनाम दिल्ली एनसीटी राज्य और अन्य। (2020) 5 एससीसी 1
10. सुमिता प्रदीप बनाम अरुण कुमार सी.के. और अन्य। (2022) एससीसी ऑनलाइन एससी 1529 11. पोकर राम बनाम राजस्थान राज्य और अन्य।

12. साधना चौधरी बनाम राजस्थान राज्य और अन्य।
13. पोकर राम बनाम राजस्थान राज्य और अन्य। (1985) 2 एससीसी 597
14. जोस प्रकाश जॉर्ज और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य। CMWP 1814 वर्ष 2023
15. साधना चौधरी बनाम राजस्थान राज्य और अन्य। (2022) एससीसी ऑनलाइन एससी 869
16. श्री गुरबख्श सिंह सिब्बिया और अन्य बनाम पंजाब राज्य। (1980) 2 एससीसी 565
17. विपिन कुमार धीर बनाम पंजाब राज्य और अन्य। (2021) AIR SC 4865
18. पी. चिदंबरम बनाम ईडी (2019) 9 एससीसी 24
19. के.एच. नाज़र बनाम मैथ्यू के. जेकब और अन्य। (2020) 14 एससीसी 126
20. दीपिका सिंह बनाम कैट और अन्य। (2022) एससीसी ऑनलाइन एससी 1088
21. लवेश बनाम स्टेट (दिल्ली एनसीटी) (2012) 8 SCC 730
22. स्टेट बनाम एम.पी. प्रदीप शर्मा (2014) 2 SCC 171
23. धार्मिक रूपांतरण का वाद, WP (सिविल) संख्या 63 का 2022
24. बादशाह बनाम उर्मिला बादशाह गोडसे (2014) 1 SCC 188
25. महादेव मीना बनाम प्रवीण राठौर और अन्य (2021) SCC ऑनलाईन SC 804

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान

1. दोनों अग्रिम जमानत आवेदन धारा 153-ए, 506, 420, 467, 468, 471 भारतीय दंड संहिता, 1860 और 3 और 5 (1) के तहत वाद अपराध संख्या 224/2022 विधि-विरुद्ध धर्म परिवर्तन प्रतिषेध अधिनियम, 2021 (उ.प्र. अधिनियम संख्या 3 सन् 2021) थाना कोतवाली, जिला फ़तेहपुर, अग्रिम जमानत स्वीकृत करने के लिए दायर किए गए हैं।

2. जैसा कि अभियोजन पक्ष का संस्करण सामने आया है, तत्काल मामला यह है कि मुखबिर-हिमांशु दीक्षित द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई गई थी, जिसमें आरोप लगाया गया था कि हिंदू धर्म के लगभग 90 लोगों को अनुचित प्रभाव, जबरदस्ती के तहत ईसाई धर्म में परिवर्तित करने के उद्देश्य से इवेंजेलिकल चर्च ऑफ इंडिया, हरिहरगंज, फतेहपुर में एकत्रित किया गया है और धोखाधड़ी करके तथा आसानी से पैसे कमाने का वादा करके उन्हें फुसलाया जा रहा है। यह जानकारी मिलने पर सरकारी अधिकारी वहां पहुंचे और पादरी विजय मासैया से पूछताछ की। उन्होंने खुलासा किया कि धर्मांतरण की प्रक्रिया पिछले 34 दिनों से चल रही थी और यह प्रक्रिया 40 दिनों के भीतर पूरी हो जाएगी। वे मिशन अस्पताल में भर्ती मरीजों को भी परिवर्तित करने की कोशिश कर रहे हैं और कर्मचारियों ने इसमें सक्रिय भूमिका निभाई है। सरकारी अधिकारियों ने 35 व्यक्तियों (एफ.आई.आर. में नामित) और 20 अज्ञात व्यक्तियों को हिंदू समुदाय के 90 व्यक्तियों को ईसाई धर्म में परिवर्तित करने में शामिल पाया। धारा 153ए, 506, 420, 467, 468 आईपीसी के तहत एफ आई आर दर्ज किया गया था और धारा- 3/5(1) उत्तर प्रदेश विधि विरुद्ध धर्म संपरिवर्तन प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3/5(1) लगाई गई और मामले की जांच की गई।

3. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री दिलीप कुमार, श्री रिज़वान अहमद, विद्वान वकील जो आवेदकों के लिए उपस्थित हुए द्वारा सहायता प्राप्त, विद्वान अपर महाधिवक्ता/विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री मनीष गोयल, विद्वान एजीए-I, श्री अमित सिंह चौहान और विद्वान एजीए श्री पंकज श्रीवास्तव जो राज्य-प्रतिवादी के लिए उपस्थित हुए है, के द्वारा सहायता प्रदान की गई।

4. अग्रिम जमानत आवेदन संख्या 1425/2023 में संक्षिप्त तथ्य:

4.1 प्रथम सूचना रिपोर्ट में आवेदकों को आरोपी के रूप में नामित नहीं किया गया है। आवेदक क्र. 1 एक सिख है. वह ब्रॉडवेल क्रिश्चियन हॉस्पिटल, फ़तेहपुर में क्लर्क/कैशियर के रूप में अपने कर्तव्यों का पालन करता है, जबकि आवेदक नं. 2 इलाहाबाद में बाइबिल समारोह के बिशप हैं। आवेदक क्र. 2 लगभग 64 वर्ष के व्यक्ति हैं और उनका ब्रॉडवेल क्रिश्चियन हॉस्पिटल, फ़तेहपुर से किसी भी प्रकार का कोई सरोकार नहीं है। हालाँकि, वह ब्रॉडवेल क्रिश्चियन सोसाइटी का सदस्य था और उसका नाम आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 91 के तहत नोटिस के जवाब में प्रस्तुत दस्तावेजों से पता चलता है कि वह एक समय इस सोसाइटी सदस्य था।

<u>5. अग्रिम जमानत आवेदन संख्या 1376/2023 में संक्षिप्त तथ्य:</u>

5.1. प्रथम सूचना रिपोर्ट में आवेदक को आरोपी नहीं बनाया गया है। वह पेशे से एक डॉक्टर हैं और 07.3.2010 से मसूरी से स्थानांतरित होने के बाद देहरादून में हरबर्टपुर क्रिश्चियन हॉस्पिटल सोसाइटी में वरिष्ठ हड्डी रोग विशेषज्ञ (एमएस) के रूप में कार्यरत हैं। उनके पास नेशनल बोर्ड (डीएनबी) का डिप्लोमा है।

<u>6. आवेदकों की ओर से तर्क:</u>

6.1 आवेदकों परमिंदर सिंह और पॉल सिगामोनी आरजेमोनी के आपराधिक विविध अग्रिम जमानत आवेदन संख्या 1425/2023 के संबंध में आवेदकों के विद्वान वकील ने धारा 91 सीआरपीसी के तहत जारी दिनांक 22.11.2022 के नोटिस पर न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया। (आवेदकों के अग्रिम जमानत आवेदन के पृष्ठ-34 पर संलग्न), प्रबंधक, ब्रॉडवेल क्रिश्चियन मिशन अस्पताल, हरिहरगंज, जिला फतेहपुर को उसमें उल्लिखित दस्तावेजों की आवश्यकता है यानी (1) अस्पताल से संबंधित आरोपी व्यक्तियों का नाम, पता और वर्तमान स्थिति; (2) अस्पताल का पंजीकरण प्रमाणपत्र; (3) अस्पताल की खाता संख्या और, (3) 01.01.2022 से अस्पताल को सहायता प्रदान करने वाले व्यक्तियों/संस्थानों का विवरण। इसके अलावा, उन्होंने न्यायालय का ध्यान एक अन्य नोटिस की ओर आकर्षित करने की मांग की, जो बाद में सीआरपीसी की धारा 41(1) के तहत आवेदकों को जारी किया गया था। 31.1.2023 को. उनका कहना है कि उक्त नोटिस जारी होने पर, आवेदकों को गिरफ्तारी की आशंका हुई, इसके बाद जिला न्यायाधीश, फतेहपुर के समक्ष अग्रिम जमानत अर्जी दायर की गई, जिसे 19.1.2023 को खारिज कर दिया गया।

6.2 जहां तक आपराधिक विविध में आवेदक मैथ्यू सैमुअल का सवाल है। अग्रिम जमानत

आवेदन संख्या 1376/2023 का संबंध है, आवेदक की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ वकील का कहना है कि आवेदक को प्रथम सूचना रिपोर्ट में आरोपी के रूप में नामित नहीं किया गया है। वह पेशे से एक डॉक्टर हैं और 07.3.2010 से मसूरी स्थानांतरित होने के बाद देहरादून के हरबर्टपुर क्रिश्चियन हॉस्पिटल सोसाइटी में वरिष्ठ हड्डी रोग विशेषज्ञ (एमएस) के रूप में कार्यरत हैं। उनके पास नेशनल बोर्ड (डीएनबी) का डिप्लोमा है। आवेदक के विद्वान वकील ने सीआरपीसी की धारा 91 के तहत जारी दिनांक 22.11.2022 के एक नोटिस की ओर न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है। (सह-अभियुक्त परमिंदर के अग्रिम जमानत आवेदन के पृष्ठ 34 पर संलग्न), प्रबंधक, ब्रॉडवेल क्रिश्चियन मिशन अस्पताल, हरिहरगंज, जिला फतेहपुर को उन व्यक्तियों को भेजा गया है जिन्हें बाद में इसमें उल्लिखित दस्तावेजों की आवश्यकता होती है यानी (1) नाम, पता और वर्तमान स्थिति अस्पताल से संबंधित आरोपी व्यक्ति; (2) अस्पताल का पंजीकरण प्रमाणपत्र; (3) अस्पताल की खाता संख्या और, (3) 01.01.2022 से अस्पताल को सहायता प्रदान करने वाले व्यक्तियों/संस्थानों का विवरण। इसके अलावा, उन्होंने न्यायालय का ध्यान एक अन्य नोटिस की ओर आकर्षित करने की मांग की जो आवेदक को सीआरपीसी की धारा 41(1) के तहत जारी किया गया था। 31.1.2023 को, तत्काल आवेदन के साथ अनुबंध-4 के रूप में संलग्न। उनका कहना है कि उक्त नोटिस जारी होने पर आवेदक को अपनी गिरफ्तारी की आशंका हुई, उसके बाद जिला न्यायाधीश, फतेहपुर के समक्ष अग्रिम जमानत अर्जी दायर की गई, जिसे 19.1.2023 को खारिज कर दिया गया। आवेदक ब्रॉडवेल क्रिश्चियन सोसाइटी का सदस्य है। उक्त सोसायटी विभिन्न स्थानों पर विभिन्न अस्पताल चलाती है, जिसमें फ़तेहपुर के साथ-साथ देहरादून के अस्पताल भी शामिल हैं जहाँ आवेदक तैनात है। आवेदक को वर्ष 2005 में एक सदस्य के रूप में शामिल किया गया था। वह सोसायटी की बैठकों में कभी-कभी फ़तेहपुर सहित विभिन्न स्थानों पर जाता था, जो ब्रॉडवेल अस्पताल के साथ आवेदक का एकमात्र संबंध है।

6.3 विद्वान वरिष्ठ वकील का तर्क है कि वास्तविक क्षेत्र में इस मामले की खूबियों के अलावा, एक कानूनी दलील यह है कि एफआईआर श्री हिमांशु दीक्षित, सह-मंत्री, विश्व हिंदू परिषद के कहने पर दर्ज की गई है, जो वह व्यक्ति नहीं हैं। उत्तर प्रदेश गैरकानूनी धर्म परिवर्तन निषेध अधिनियम, 2021 के प्रावधानों के मद्देनजर प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के लिए सक्षम। उन्होंने आगे कहा कि एफआईआर में इस आशय का कोई उल्लेख नहीं है और न ही कोई ऐसी सामग्री उपलब्ध कराई गई है जो उस व्यक्ति की क्षमता स्थापित करती है जिसके उदाहरण पर एफआईआर दर्ज की गई है, जो कानूनी स्पेक्ट्रम पर एफआईआर को दोष देती है।

6.4 आवेदकों के विद्वान वकील ने अदालत का ध्यान एक रिमांड आदेश की ओर आकर्षित किया है, जिसके तहत संबंधित मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने अन्य धाराओं में रिमांड से इनकार करते हुए इसे केवल आईपीसी की धारा 153ए/506 के तहत दिया है। जांच प्रक्रिया में है। आवेदक, वर्तमान घटना से बिल्कुल भी जुड़े हुए नहीं हैं। वे उस घटना स्थल पर मौजूद नहीं थे जहां बड़े पैमाने पर धर्म परिवर्तन किया जा रहा था, हालांकि, केवल सोसायटी के साथ उनके जुड़ाव के कारण, जो पांच अस्पताल चलाती है,

अपराध के कमीशन में मिलीभगत को आकर्षित नहीं करेगी और आवेदकों को ऐसा महसूस नहीं हो रहा है। जांच की प्रक्रिया में सहयोग करने से कतराते हैं लेकिन हिरासत में पूछताछ करने के बजाय, वे अग्रिम जमानत देने की मांग करते हैं।

6.5 जहां तक आईपीसी की धारा 153ए और 506 का संबंध है, आवेदकों के विद्वान वकील का कहना है कि यह साबित हो गया है कि आवेदक घटना स्थल पर मौजूद नहीं थे। पूर्व मिलन की दृष्टि को सिद्ध करने के लिए कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है।

6.6 आवेदकों के विद्वान वकील ने अपने तर्क को आगे बढ़ाते हुए कहा कि उस तारीख को पेश किए गए नौ व्यक्तियों को मजिस्ट्रेट द्वारा जमानत पर रिहा कर दिया गया है।

6.7 विद्वान वरिष्ठ वकील यह भी बताते हैं कि कुछ अन्य व्यक्तियों को पहले ही अग्रिम जमानत पर रिहा कर दिया गया है, इस प्रकार आवेदक समता के आधार पर इसके हकदार हैं।

6.8 विद्वान वकील का अगला तर्क है कि धारा 4 सी.आर.पी.सी. प्रावधान है कि यदि कोई विशेष क़ानून है, तो जांच और परीक्षण के साथ-साथ विशेष क़ानून के अनुसार जांच की जाएगी। धारा 4 के प्रयोजनों के लिए यह एक कानूनी प्रथम सूचना रिपोर्ट होनी चाहिए, हालाँकि, वर्तमान मामले में सूचक अधिनियम, 2021 प्रावधानों के अनुसार सक्षम नहीं है। विधायिका ने अपेक्षित दुरुपयोग को ध्यान में रखते हुए एक सामान्य व्यक्ति को प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने से रोक दिया और यह, अपने आप में, राज्य का मामला है कि अधिनियम, 2021 के तहत एफआईआर दर्ज की गई थी। हालांकि, सूचक ने एफआईआर शुरू करने का कोई अधिकार नहीं।

<u>7. राज्य द्वारा प्रस्तुतियाँ:</u>

7.1 श्री मनीष गोयल, अतिरिक्त. महाधिवक्ता का कहना है कि यह सामूहिक धर्म परिवर्तन का मामला है, इसलिए अधिनियम, 2021 की धारा 5 का प्रावधान लागू होगा, जिसमें दस साल तक की सजा का प्रावधान है। उनका मानना है कि अधिनियम, 2021 का उद्देश्य गलत बयानी, बल, अनुचित प्रभाव, जबरदस्ती, प्रलोभन या किसी कपटपूर्ण तरीके से एक धर्म से दूसरे धर्म में गैरकानूनी रूपांतरण पर रोक लगाना है। एफआईआर आईपीसी की धारा 153ए के तहत दर्ज की गई है, जो सद्भाव के रखरखाव के लिए हानिकारक कृत्यों की परिकल्पना करती है और चूंकि यह सार्वजनिक शांति के खिलाफ अपराध है, इसलिए, तीसरे पक्ष द्वारा एफआईआर दर्ज करने की प्रक्रिया की वैधता के संबंध में, पीड़ितों ने भी एफआईआर दर्ज की थी। कार्रवाई का अलग-अलग कारण और आईपीसी की कई धाराओं के तहत एफआईआर भी दर्ज की गई है, इसलिए, सार्वजनिक शांति के खिलाफ अपराध के लिए तीसरे पक्ष को एफआईआर दर्ज करने से नहीं हटाया जा सकता है। उनका आगे तर्क है कि जिन अपराधों के लिए वर्तमान एफआईआर दर्ज की गई है, उनके परस्पर विरोधी प्रभाव हैं क्योंकि कुछ अपराध ऐसे हैं जो किसी व्यक्ति के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करते हैं, जबकि अन्य बड़े पैमाने पर यानी जनता को प्रभावित करते हैं। ऐसे विवरणों की प्रचुरता है जो आवेदकों की अन्य व्यक्तियों के साथ मिलीभगत को दर्शाते हैं जो

बड़े पैमाने पर धर्मांतरण को बढ़ावा देने के उद्देश्य से नियमित रूप से जुड़े हुए थे।

7.2 श्री गोयल ने आगे कहा कि पुलिस ने पाया कि ईसाई धर्म अपनाने और प्रचार करने के लिए पैम्फलेट के साथ नाबालिगों सहित लगभग 100 आवेदन पत्र थे, जिनमें उल्लेख किया गया था कि यदि कोई ईसाई धर्म अपनाता है तो रु 35000/- का भुगतान किया जाएगा तथा ईसाई धर्म का प्रचार-प्रसार कैसे करें, यह शिक्षित करने के लिए प्रशिक्षक थे और विभिन्न स्थानों पर जाकर लोगों को इकट्ठा करें और उन्हें धर्मांतरण के लिए प्रेरित करें।

7.3 विद्वान अतिरिक्त. महाधिवक्ता ने अपने तर्कों के दौरान अधिनियम, 2021 की धारा 2 की सामग्री पर जोर दिया, जो प्रलोभन, जबरदस्ती, धर्मांतरण, धोखाधड़ी के साधन, सामूहिक रूपांतरण, नाबालिग, धर्म, धर्म परिवर्तन और अनुचित प्रभाव की परिभाषाओं को विस्तृत करता है। इसके बाद, उन्होंने कहा कि इस्साक फ्रैंक का बयान (सीडी-51) दिखाता है कि कैसे विभिन्न देशों से पैसा प्राप्त किया जा रहा था और बाद में इसे चैनलाइज़ किया गया। विभिन्न प्रकार के संगठन हैं और वर्तमान का संचालन श्री आर.बी. लाल[1º] द्वारा किया जाता है। यह भी तर्क दिया गया है कि सीआरपीसी की धारा 4. विशेष अधिनियम में प्रावधान के अधिनियमन के अधीन, समान प्रावधानों द्वारा की जाने वाली जांच का प्रावधान है। यहां अधिनियम, 2021 जांच के लिए कोई तंत्र प्रदान नहीं करता है, और यदि हां, तो आपराधिक प्रक्रिया संहिता के प्रावधान लागू होंगे, साथ ही अधिनियम, 2021 सीआरपीसी के संचालन पर रोक नहीं लगाता है।

7.4 बड़े पैमाने पर धर्मांतरण में आवेदक की संलिप्तता पर जोर देते हुए, एएजी ने पाया कि अपराध के एक स्वतंत्र गवाह और 2017 से अस्पताल के कर्मचारी संतोष कुमार सैनी के बयान से पता चलता है कि खराब आर्थिक स्थिति वाले हिंदू परिवार के कई व्यक्तियों के नामों का खुलासा करने के लिए उन्हें मजबूर किया गया था। धर्म परिवर्तन कर दूसरा धर्म अपनाना. उन्होंने धर्म परिवर्तन के लिए समाज के हाशिए पर रहने वाले वर्ग के लोगों को दिए जाने वाले प्रलोभन के बारे में बताया। उन्होंने प्रभावशाली व्यक्तियों की पहचान बताते हुए दिनांक 24.1.2023 की हरिहरगंज घटना का भी खुलासा किया (सीडी-68)।

7.5 श्री गोयल ने आगे कहा कि आवेदकों को गैर-जमानती वारंट जारी किए गए हैं और यह शीर्ष न्यायालय का एक सुस्थापित कानून है कि जहां गैर-जमानती वारंट लागू हैं, ऐसे मामलों में आरोपी-आवेदक अग्रिम जमानत के हकदार नहीं हैं। यह स्थापित करना केवल आवेदक का दोषी है कि वह अग्रिम जमानत पाने का हकदार है। उन्होंने सयापाल और किशनपाल के बयानों पर अदालत का ध्यान आकर्षित किया है और कहा है कि 27.1.2023 को 43 व्यक्तियों के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया है और अधिनियम, 2021 की धारा 8 भी जोड़ी गई है। इस प्रकार, आवेदक जिस तरह का काम कर रहा था और जिस तरह से धन का उपयोग किया जा रहा था, उससे उसकी दोषीता अच्छी तरह से स्थापित हो जाती है।

7.6 आवेदकों के विद्वान वकील ने **रेव स्टेनिस्लास बनाम मध्य प्रदेश राज्य** और अन्य

के मामले में शीर्ष अदालत के फैसले को भी रिकॉर्ड पर रखा, जिसमें 'प्रलोभन' शब्द पर विचार किया गया और बड़े पैमाने पर 'सार्वजनिक आदेश' के साथ की अभिव्यक्ति की गई है।

7.7 **अली @ अली अहमद बनाम यूपी राज्य और 2 अन्य**[11] के मामले में एक फैसले पर भरोसा करते हुए श्री मनीष गोयल का कहना है कि यह आवश्यक नहीं है कि आरोपी को घोषित अपराधी घोषित किया जाए, लेकिन, जांच में सहयोग न करने का इरादा पर्याप्त है, क्योंकि वर्तमान मामले में गैर-जमानती वारंट की जानकारी होने के बाद भी आवेदक हैं। पुलिस के साथ सहयोग नहीं कर रहे हैं और इस प्रकार वे अग्रिम जमानत पर रिहा किये जाने के हकदार नहीं हैं।

7.8 ज्ञात हुआ कि एएजी ने अमीश देवगन बनाम भारत संघ और अन्य के मामले में निर्णय पर भरोसा किया, जिसमें कम स्वायत्तता के सिद्धांतों पर जोर दिया गया था, जिसमें धन, जाति, लिंग के मामले में समाज के वंचित वर्ग की रक्षा की जानी थी। उनका मानना है कि जिस अस्पताल की बात की जा रही है वह एक मिशन अस्पताल है, जो कम स्वायत्तता का सबसे अच्छा उदाहरण है।

7.9 यह तर्क दिया गया है कि वर्तमान मामले में आवेदकों की संलिप्तता दिखाने के लिए निम्नलिखित सामग्री एकत्र की गई है:

(i) गवाह प्रमोद कुमार दीक्षित, संजय सिंह और राजेश कुमार त्रिवेदी के बयान, जो सीडी परचा नंबर 9 का हिस्सा हैं और स्वतंत्र गवाहों, अर्थात् केशन और सत्यपाल, जो सीडी पर्च संख्या 12 का हिस्सा हैं, को धर्म परिवर्तन के लिए प्रलोभन दिया गया बताया गया है।

(ii) सीडी परचा संख्या 15, 16, 20 और 29 से पता चलता है कि एफआईआर में उल्लिखित सभी धाराओं में रिमांड स्वीकार कर लिया गया था।

(iii) सीडी पर्चा नंबर 18 में पीड़ित केशन और सत्यपाल ने पूरी बात विस्तार से बताई है।

(iv) सीडी परचा संख्या 26 में दस गवाहों के बयान दिखाए गए हैं, अर्थात् हनी पुत्र रामपाल; सुरेश पुत्र कल्लू; रिया पुत्री गोविंद; ब्रिजेश कुमार पुत्र रजनेश प्रसाद; रमेश पुत्र पन्नालाल; रामपाल पुत्र स्वर्गीय बाजपाली; अशोक कुमार पुत्र स्वर्गीय सुआलाल; विजय पुत्र स्वर्गीय चुनकू प्रसाद; विजय पुत्र स्वर्गीय विश्कर्मा लोहार, और अमित मौर्य पुत्र राम श्रीओमणि मौर्य। उन्होंने कहा है कि चर्च विजय मासैया (पादरी) और अन्य आरोपी व्यक्तियों के साथ बड़ी संख्या में लोगों को गैरकानूनी तरीके से ईसाई धर्म में परिवर्तित करने में शामिल है।

(v) सीडी पर्चा संख्या 29 में पीड़ित संजय सिंह का बयान दर्ज किया गया है। सीडी परचा नंबर 36 से पता चलता है कि 39 आरोपी व्यक्तियों ने सीआरपीसी की धारा 82 के तहत आदेश प्राप्त किए हैं।

(vi) पीड़ित वीरेंद्र कुमार का बयान सीडी परचा संख्या 38. सीडी परचा संख्या 41 में दर्ज किया गया है, जो दर्शाता है कि धारा 91 सीआरपीसी के तहत नोटिस दिया गया है। डॉ. मैथ्यू सैमुअल, चैरिमैन, ब्रॉडवेल क्रिश्चियन हॉस्पिटल सोसाइटी,

फ़तेहपुर को दिया गया। उक्त नोटिस का जवाब देते हुए, उन्होंने सोसायटी के कर्मचारी होने के नाते 17 आरोपी व्यक्तियों के आधार कार्ड की प्रतियां, सोसायटी पंजीकरण कागजात के साथ बैंक खाते का विवरण प्रदान किया।

(vi) आरोपी दाउद मासिया और रत्ना मासिया के सह-आरोपियों ने आवेदकों और अन्य आरोपी व्यक्तियों की सहायता से किए जा रहे धर्म परिवर्तन के बारे में कबूल किया है, जिसमें ऐसे अपराध में शामिल होने के वाले आवेदकों सहित विभिन्न संगठनो के नाम बताए गए हैं जो सीडी परचा संख्या 46 में दर्ज हैं।

(vii) परचा संख्या 48 स्वतंत्र गवाह दिनेश शुक्ला का बयान है, जिसकी 19.12.2022 को जांच की गई, जिसने आवेदकों की मिलीभगत बताई है। सीडी परचा नंबर 50 में उन व्यक्तियों के बयान दर्ज किए गए हैं जिन्होंने आवेदकों के नामों का उल्लेख किया है और अपराध में अपनी संलिप्तता दिखाई है।

(viii) सीडी परचा संख्या 54 में उन लाभार्थियों की सूची दिखाई गई है जिनका धर्मांतरण किया गया था और उनकी तस्वीरें ब्रॉडवेल क्रिश्चियन अस्पताल से मिली थीं।

(ix) सीआरपीसी की धारा 41(2) के तहत नोटिस के बावजूद। डॉ. मैथ्यू सैमुअल और परमिंदर सिंह, क्लर्क, वे नहीं आये जैसा कि सीडी परचा संख्या 55 से स्पष्ट है।

(x) सीडी पर्चा नंबर 61 में धर्मांतरण में शामिल विभिन्न संस्थाओं के नाम उजागर किये गये हैं।

(xi) सीडी परचा नंबर 64 ब्रॉडवेल क्रिश्चियन अस्पताल से मिले सामूहिक धर्मांतरण के संबंध में विभिन्न दस्तावेजों का एक संग्रह है जिसमें धार्मिक रूपांतरण के संबंध में सामग्री भी मिली है।

(xii) शुआट्स बैंक खाते के विवरण और विवरण *(statements)* आई.ओ. द्वारा लिए गए थे। जो सीडी पारचा संख्या 67 का हिस्सा है। 27.1.2023 को 44 आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ आरोप पत्र दायर किया गया है।

7.10 उपरोक्त आधारों के अलावा, विद्वान एएजी ने निम्नलिखित आधारों पर अग्रिम जमानत आवेदनों का विरोध किया है:

(i) इस घटना ने एक समुदाय के लोगों के बीच बहुत अशांति और तनाव पैदा कर दिया और कानून और व्यवस्था की स्थिति भी पैदा कर दी। इसके बाद एक समुदाय के लोगों ने एक जगह जमा होकर नारेबाजी की और पुलिस को उन्हे नियंत्रित करने में काफी दिक्कत हुई और यदि वे पर्याप्त रूप से तैयार और सतर्क नहीं होते तो कोई भी अप्रिय घटना घट सकती थी।

(ii) गवाहों में से एक श्री केशन ने कहा है कि उनके बच्चों को मुफ्त चिकित्सा सहायता, शिक्षा और रोजगार और उनके विश्वास में परिवर्तित होने पर मौद्रिक लाभ जैसे समान आश्वासनों पर उन्हें इस प्रक्रिया में शामिल किया गया था; उनका आधार कार्ड ले लिया गया और उनका नाम श्री केशन से बदलकर केशन जोसेफ कर दिया गया तथा आरोपियों द्वारा उसे धमकी भी दी गई कि

यदि उसने घटना के बारे में किसी को बताया तो उसकी जान को खतरा होगा।

(iii) आवेदकों और उनके सहयोगियों द्वारा व्यापक प्रभाव वाली एक बड़ी साजिश रची जा रही थी; वे बड़े पैमाने पर धर्मांतरण के लिए संगठित तरीके से काम कर रहे थे। यह ऐसा मामला नहीं है जहां किसी व्यक्ति को उसकी अंतरात्मा ने एक अलग धर्म में परिवर्तित होने के लिए प्रेरित किया था, बल्कि, आरोपी व्यक्ति एक-दूसरे के साथ मिलकर व्यवस्थित रूप से उन लोगों को प्रभावित करने लगे जो आमतौर पर चिकित्सा उपचार या अन्यथा उनके संपर्क में आते थे। बड़े पैमाने पर धर्मांतरण में भाग लेने के लिए उन्हें लुभाने के लिए उनकी खराब सामाजिक-आर्थिक स्थिति का फायदा उठाया गया। इस घटना में उन्हें लुभाने के लिए आसान पैसे, नौकरी आदि की पेशकश को प्रलोभन के रूप में इस्तेमाल किया गया था। यह घटना ऊपरी तौर पर भले ही इतनी गंभीर न लगे लेकिन इसके पीछे एक छिपा हुआ एजेंडा था।

(iv)) यह भी तर्क दिया गया है कि इस तर्क में कोई दम नहीं है कि आवेदकों को झूठा फंसाया गया है या एफ.आई.आर. एक प्रेरित किया गया था.

(v) इस स्तर पर जमानत इस मामले में प्रभावी जांच में बाधा साबित हो सकती है।

7.11 विद्वान एएजी का कहना है कि अग्रिम जमानत आवेदन को खारिज करते समय सत्र न्यायालय ने किसी अपराध की जांच में आवेदकों का गैर सहयोग के बारे में विस्तार से चर्चा की है। जो बड़े पैमाने पर जनता को प्रभावित कर रहा है।

8. मैंने पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान वकील द्वारा दी गई प्रतिद्वंद्वी दलीलों पर विचार किया है और रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया है।

9. मामले का गंभीरता, जिसमें इस न्यायालय के समक्ष आवेदक अग्रिम जमानत देने के लिए हैं, 'रूपांतरण' है। दोनों आवेदनों में आवेदक शीर्षक वाली पार्टी ने इसे 'कानून द्वारा धर्मांतरण' कहा है, हालांकि, प्रतिवादी पक्ष ने इसे 'प्रलोभन के लिए धर्मांतरण' कहा है।

10. यह न्यायालय आवेदकों के विद्वान वकील और राज्य के विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों, तथ्यात्मक और कानूनी पहलुओं, वस्तु और सिद्धांतों को अग्रिम जमानत देने के लिए शर्तों की सामग्री के साथ संरेखित करना अधिक उपयुक्त समझता है। जैसा कि उसके संबंध कानून में तय हुआ है।

11. धारा 438 सीआरपीसी का उद्देश्य. यह है कि किसी व्यक्ति को व्यक्तिगत प्रतिशोध या शिकायतकर्ता या सीधे या पर्दे के पीछे से चीजों को संचालित करने वाले किसी अन्य व्यक्ति की शिकायत को संतुष्ट करने के लिए अनावश्यक रूप से परेशान या अपमानित नहीं किया जाना चाहिए। यह अच्छी तरह से स्थापित है कि इस न्यायालय को विधायिका द्वारा प्रदत्त विवेकाधीन शक्ति को स्ट्रेटजैकेट फॉर्मूले में नहीं रखा जा सकता है, लेकिन अग्रिम जमानत देने या अस्वीकार करने की ऐसी विवेकाधीन शक्ति का

प्रयोग उपलब्ध सामग्री के आधार पर उचित मामलों में सावधानी से किया जाना चाहिए। विशेष मामले के तथ्यों का मूल्यांकन करने और अन्य प्रासंगिक कारकों (आरोप की प्रकृति और गंभीरता, आरोपी की भूमिका, आरोपी का आचरण, आपराधिक इतिहास, आवेदकों के न्याय से भागने की संभावना, गवाहों से छेड़छाड़ की आशंका या धमकी) पर विचार करने के बाद शिकायतकर्ता, जांच, मुकदमे या समाज आदि में अग्रिम जमानत दिए जाने का प्रभाव) परस्पर विरोधी हितों, अर्थात् व्यक्तिगत स्वतंत्रता की शुद्धता और समाज के हित के बीच सावधानीपूर्वक सटीकता के साथ संतुलन बनाए रखना।

12. वर्तमान मामले में, अपराधों के अलावा आईपीसी की अन्य धाराओं यानी धारा 153-ए, 506, 420, 467, 468, 471 आईपीसी के अलावा, धारा 3 और के तहत प्रलोभन, धोखे या बल के उपयोग से धार्मिक रूपांतरण का आरोप शामिल है। अधिनियम, 2021 की धारा 5(1) सम्मिलित है। धर्मांतरण का आरोप समाज के कमजोर वर्गों के संबंध में है। यहां आवेदक अग्रिम जमानत दिए जाने की प्रार्थना कर रहे हैं, इसलिए, वर्तमान मामले पर लागू तथ्यों और कानून पर ध्यान देने से पहले, सीआरपीसी की धारा 438 को उद्धृत करना उचित है:

"438. गिरफ्तारी की आशंका वाले व्यक्ति को जमानत देने के लिए निर्देश- (1) जहां किसी व्यक्ति के पास यह विश्वास करने का कारण है कि उसे गैर-जमानती अपराध करने के आरोप में गिरफ्तार किया जा सकता है, तो वह उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय में आवेदन कर सकता है। इस धारा के तहत एक निर्देश के लिए कि ऐसी गिरफ्तारी की स्थिति में उसे जमानत पर रिहा कर दिया जाएगा और अदालत, अन्य बातों के अलावा, निम्नलिखित कारकों पर विचार करने के बाद, अर्थात्: -

(i) आरोप की प्रकृति और गंभीरता;

(ii) आवेदक के पूर्ववृत्त में यह तथ्य शामिल है कि क्या वह पहले किसी संज्ञेय अपराध के संबंध में अदालत द्वारा दोषी ठहराए जाने पर कारावास की सजा काट चुका है;

(iii) आवेदक के न्याय से भागने की संभावना; और

(iv) जहां आवेदक को गिरफ्तार करके घायल करने या अपमानित करने के उद्देश्य से आरोप लगाया गया है; या तो आवेदन को तुरंत खारिज करें या अग्रिम जमानत देने के लिए अंतरिम आदेश जारी करें:

बशर्ते कि जहां उच्च न्यायालय या, जैसा भी मामला हो, सत्र न्यायालय ने इस उप-धारा के तहत कोई अंतरिम आदेश पारित नहीं किया है या अग्रिम जमानत देने के लिए आवेदन खारिज कर दिया है, यह पुलिस स्टेशन के प्रभार अधिकारी के लिए खुला होगा कि ऐसे आवेदन में लगाए गए आरोप के आधार पर आवेदक को बिना वारंट के गिरफ्तार करे।

(2) जहां उच्च न्यायालय या, जैसा भी मामला हो, सत्र न्यायालय, उप-धारा (1) के तहत अग्रिम जमानत देने के लिए अंतरिम आदेश जारी करना

समीचीन समझता है, न्यायालय उसमें उस तारीख का संकेत देगा, जिस दिन अग्रिम जमानत देने के आवेदन पर अंतिम रूप से आदेश पारित करने के लिए सुनवाई की जाएगी, जैसा कि न्यायालय उचित समझे, या यदि न्यायालय अग्रिम जमानत स्वीकृत करने का कोई आदेश पारित करता है तो ऐसे आदेश में अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित शर्तें शामिल होंगी, अर्थात्-

(i) कि आवेदक आवश्यकता पड़ने पर स्वयं को पुलिस अधिकारी द्वारा पूछताछ के लिए उपलब्ध कराएगा;

(ii) कि आवेदक, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से, मामले के तथ्यों से परिचित किसी भी व्यक्ति को कोई प्रलोभन, धमकी या वादा नहीं करेगा ताकि उसे अदालत या किसी पुलिस अधिकारी को ऐसे तथ्यों का खुलासा करने से रोका जा सके;

(iii) कि आवेदक न्यायालय की पूर्व अनुमति के बिना भारत नहीं छोड़ेगा; और

(iv) ऐसी अन्य शर्तें जो धारा 437 की उपधारा (3) के तहत लगाई जा सकती हैं, जैसे कि जमानत उस धारा के तहत दी गई हो।

स्पष्टीकरण- उप-धारा (1) के तहत निर्देश के लिए आवेदन पर दिया गया अंतिम आदेश; इस संहिता के प्रयोजन के लिए एक अंतर्वर्ती आदेश के रूप में नहीं समझा जाएगा।

(3) जहां न्यायालय उपधारा (1) के तहत अंतरिम आदेश देता है वहाँ यह सात दिन से कम का नोटिस नहीं देगा। ऐसे आदेश की एक प्रति के साथ नोटिस, लोक अभियोजक और पुलिस अधीक्षक को तामील किया जाएगा, ताकि लोक अभियोजक को सुनवाई का उचित अवसर दिया जा सके जब आवेदन पर न्यायालय द्वारा अंतिम रूप से सुनवाई की जाएगी।

(4) उपधारा के अंतर्गत अंतरिम आदेश (2) में दर्शायी गयी तिथि पर न्यायालय लोक अभियोजक और आवेदक को सुनेगा और उनकी दलीलों पर उचित विचार करने के बाद, वह अंतरिम आदेश की पुष्टि, संशोधन या रद्द कर सकता है।

(5) उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय, जैसा भी मामला हो, उप-धारा (1) के तहत अग्रिम जमानत देने के लिए एक आवेदन का अंतिम रूप से ऐसे आवेदन की तारीख से तीस दिनों के भीतर निपटान करेगा;

(6) इस धारा के प्रावधान लागू नहीं होंगे,-

(ए) से उत्पन्न होने वाले अपराधों के लिए, -

(i) गैरकानूनी गतिविधियाँ (रोकथाम) अधिनियम, 1967;

(ii) स्वापक औषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम,
1985:

(iii) शासकीय गुप्त अधिनियम, 1923;

(iv) उत्तर प्रदेश के गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधियाँ (रोकथाम) अधिनियम, 1986. (बी) उन अपराधों में, जिनमें मृत्युदंड दिया जा सकता है।

(7) यदि इस धारा के तहत किसी व्यक्ति द्वारा उच्च न्यायालय में आवेदन किया गया है, तो उसी व्यक्ति का कोई आवेदन सत्र न्यायालय द्वारा विचार नहीं किया जाएगा किया जाएगा। [ऊपर। 2019 का अधिनियम 4, धारा 2 (1-6-2019 से)।

13. अधिनियम, 2021 की धारा 2 में परिभाषित शब्द **'प्रलोभन'** और **'अनुचित प्रभाव'**, जिनसे पूरा मुद्दा जुड़ा है, इस प्रकार हैं:

(ए) "प्रलोभन" का अर्थ है और इसमें निम्नलिखित के रूप में किसी प्रलोभन की पेशकश शामिल है-

(i) नकद या वस्तु के रूप में कोई उपहार, संतुष्टि, आसान धन या भौतिक लाभ;

(ii) रोजगार, किसी धार्मिक संस्था द्वारा संचालित प्रतिष्ठित स्कूल में मुफ्त शिक्षा; या

(iii) बेहतर जीवनशैली, दैवीय अप्रसन्नता या अन्यथा;

***

***

(जे) "अनुचित प्रभाव" का अर्थ है एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति पर अपनी शक्ति या प्रभाव का अचेतन उपयोग, ताकि दूसरे व्यक्ति को ऐसा प्रभाव डालने वाले व्यक्ति की इच्छा के अनुसार कार्य करने के लिए प्रेरित किया जा सके;

14. **श्री गुरबख्श सिंह सिब्बिया और अन्य बनाम पंजाब राज्य** के मामले में शीर्ष न्यायालय की एक संविधान पीठ ने अग्रिम जमानत देने के विचार पर विस्तार से विचार किया। **गुरबख्श सिंह सिब्बिया (उपरोक्त)** में संविधान पीठ के फैसले पर भरोसा करते हुए, **सिद्धराम सतलिंगप्पा म्हेत्रे बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य** के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने अग्रिम जमानत के लिए आवेदन से निपटने के दौरान विचार किए जाने वाले पैरामीटर और कारक निर्धारित किए:

"112....

(i) गिरफ्तारी से पहले आरोप की प्रकृति और गंभीरता और आरोपी की सटीक भूमिका को ठीक से समझा जाना चाहिए;

(ii) आवेदक के पूर्ववृत्त में यह तथ्य शामिल है कि क्या आरोपी पहले किसी संज्ञेय अपराध के संबंध में अदालत द्वारा दोषी ठहराए जाने पर कारावास की सजा काट चुका है;

(iii) आवेदक के न्याय से भागने की संभावना;

(iv) अभियुक्त द्वारा समान या अन्य अपराध दोहराने की संभावना;

(v) जहां आरोप केवल आवेदक को गिरफ्तार करके उसे घायल करने या अपमानित करने के उद्देश्य से लगाए गए हैं;

(vi) विशेष रूप से बहुत बड़ी संख्या में लोगों को प्रभावित करने वाले बड़े पैमाने के मामलों में अग्रिम जमानत देने का प्रभाव;

(vii) अदालतों को अभियुक्तों के खिलाफ उपलब्ध संपूर्ण सामग्री का बहुत सावधानी से मूल्यांकन करना चाहिए। अदालत को मामले में आरोपी की सटीक भूमिका को भी स्पष्ट रूप से समझना चाहिए। जिन मामलों में अभियुक्त को दंड संहिता, 1860 की धारा 34 और 149 की मदद से फंसाया जाता है, अदालत को और भी अधिक सावधानी और सावधानी से विचार करना चाहिए क्योंकि मामलों में अतिशयता सामान्य ज्ञान और चिंता का विषय है;

(viii) अग्रिम जमानत देने की प्रार्थना पर विचार करते समय, दो कारकों के बीच संतुलन बनाया जाना चाहिए, अर्थात् स्वतंत्र, निष्पक्ष और पूर्ण जांच पर कोई पूर्वाग्रह नहीं होना चाहिए और उत्पीड़न, अपमान और अनुचित हिरासत की रोकथाम होनी चाहिए। अभियुक्त का;

(ix) अदालत गवाह के साथ छेड़छाड़ की उचित आशंका या शिकायतकर्ता को खतरे की आशंका पर विचार करेगी;

(x) अभियोजन में तुच्छता पर हमेशा विचार किया जाना चाहिए और यह केवल वास्तविकता का तत्व है जिस पर जमानत देने के मामले में विचार किया जाना चाहिए और अभियोजन की वास्तविकता के बारे में कुछ संदेह होने की स्थिति में, घटनाओं के सामान्य क्रम में, आरोपी जमानत के आदेश का हकदार है।"

15. सीआरपीसी की धारा 438 के तहत आवेदनों से निपटने में मार्गदर्शक सिद्धांत सुशीला अग्रवाल और अन्य बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली) और अन्य के मामले में सुप्रीम कोर्ट की एक अन्य संविधान पीठ द्वारा निर्धारित किए गए हैं। उपरोक्त समापन तत्व निम्नानुसार हैं:-

"92. यह न्यायालय, दो निर्णयों में उपरोक्त चर्चा के आलोक में, और संदर्भ के उत्तरों के आलोक में, यह स्पष्ट करता है कि सीआरपीसी की धारा 438 के तहत आवेदनों पर विचार करते हुए निम्नलिखित को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

92.1. गुरबख्श सिंह सिब्बिया बनाम पंजाब राज्य के फैसले के अनुरूप, जब कोई व्यक्ति गिरफ्तारी की आशंका की शिकायत करता है और आदेश के लिए संपर्क करता है, तो आवेदन एक या अन्य विशिष्ट अपराध से संबंधित ठोस तथ्यों (और अस्पष्ट या सामान्य आरोपों पर नहीं) पर आधारित होना चाहिए। अग्रिम जमानत की मांग करने वाले आवेदन में अपराध से संबंधित आवश्यक तथ्य शामिल होने चाहिए, और आवेदक को उचित रूप से गिरफ्तारी की आशंका क्यों है, साथ ही कहानी का उसका पक्ष भी खतरे का मूल्यांकन करने के लिए अदालत के लिए आवश्यक है या आशंका, इसकी गंभीरता या गंभीरता और किसी भी शर्त की उपयुक्तता जिसे लागू करना आवश्यक नहीं है कि एक आवेदन केवल एफआईआर दर्ज होने के बाद ही दायर किया जाना चाहिए, जब तक कि तथ्य स्पष्ट न हों; और गिरफ्तारी की आशंका के लिए उचित आधार है।

92.2. अदालत के लिए, जहां धारा 438 के तहत आवेदन के साथ संपर्क किया जाता है, धमकी (गिरफ्तारी) की गंभीरता के आधार पर लोक अभियोजक को नोटिस जारी करने और सीमित अंतरिम अग्रिम जमानत देते समय भी तथ्य प्राप्त करने की सलाह दी जा सकती है।

92.3. सीआरपीसी की धारा 438 में ऐसा कुछ भी नहीं है, जो अदालतों को समय के संदर्भ में, या एफआईआर दर्ज करने पर, या पुलिस द्वारा

किसी गवाह के बयान दर्ज करने पर, जांच या पूछताछ आदि के दौरान राहत को सीमित करने वाली शर्तों को लागू करने के लिए मजबूर या बाध्य करता है। किसी आवेदन पर विचार करते समय (अग्रिम जमानत देने के लिए) अदालत को अपराध की प्रकृति, व्यक्ति की भूमिका, जांच के दौरान उसके प्रभावित होने की संभावना, या सबूतों के साथ छेड़छाड़ (गवाहों को डराने-धमकाने सहित), न्याय से भागने की संभावना (जैसे) पर विचार करना होगा। देश छोड़ना), आदि। अदालतें उचित होंगी और उन्हें सीआरपीसी की धारा 437(3) में वर्णित शर्तें लगानी चाहिए [धारा 438(2) के आधार पर]। अन्य प्रतिबंधात्मक शर्तों को लागू करने की आवश्यकता का निर्णय मामला-दर-मामला आधार पर और राज्य या जांच एजेंसी द्वारा उत्पादित सामग्री के आधार पर किया जाना चाहिए। ऐसी विशेष या अन्य प्रतिबंधात्मक शर्तें तब लगाई जा सकती हैं जब मामला या मामला उचित हो, लेकिन सभी मामलों में इसे नियमित तरीके से नहीं लगाया जाना चाहिए। इसी तरह, अग्रिम जमानत देने को सीमित करने वाली शर्तें दी जा सकती हैं, यदि वे किसी मामले या मामलों के तथ्यों में आवश्यक हों; हालाँकि, ऐसी सीमित शर्तें हमेशा लागू नहीं की जा सकतीं।

92.4. अग्रिम जमानत दी जाए या इससे इंकार किया जाए, इस पर विचार करते समय न्यायालयों को आम तौर पर विचारों द्वारा निर्देशित होना चाहिए जैसे कि अपराध की प्रकृति और गंभीरता, आवेदक की भूमिका तथा केस के तथ्य आदि।

अनुदान देना या न देना विवेक का विषय है; समान रूप से क्या और यदि हां, तो किस प्रकार की विशेष शर्तें लगाई जानी हैं (या नहीं लगाई जानी हैं) मामले के तथ्यों पर निर्भर हैं, और अदालत के विवेक के अधीन हैं।

92.5. आरोपी के आचरण और व्यवहार के आधार पर दी गई अग्रिम जमानत, आरोप-पत्र दाखिल होने के बाद मुकदमे के अंत तक जारी रह सकती है।

92.6. अग्रिम जमानत का आदेश इस अर्थ में "खाली" नहीं होना चाहिए कि इससे आरोपी को आगे अपराध करने और गिरफ्तारी से अनिश्चितकालीन सुरक्षा की राहत का दावा करने में सक्षम नहीं होना चाहिए। इसे उस अपराध या घटना तक ही सीमित रखा जाना चाहिए, जिसके लिए किसी विशिष्ट घटना के संबंध में गिरफ्तारी की आशंका मांगी गई है। यह किसी भविष्य की घटना के संबंध में काम नहीं कर सकता जिसमें कोई अपराध शामिल हो।

92.7. अग्रिम जमानत का आदेश किसी भी तरह से उस व्यक्ति के खिलाफ आरोपों की जांच करने के लिए पुलिस या जांच एजेंसी के अधिकारों या कर्तव्यों को सीमित या प्रतिबंधित नहीं करता है जो गिरफ्तारी से पहले जमानत चाहता है और उसे दी गई है।

92.8.जांच प्राधिकारी की आवश्यकताओं को सुविधाजनक बनाने के लिए "सीमित हिरासत" या "डीम्ड हिरासत" के संबंध में सिब्बिया की टिप्पणियां, किसी वस्तु की बरामदगी, या खोज की स्थिति में, धारा 27 के प्रावधानों को पूरा करने के उद्देश्य से पर्याप्त तथ्य होंगी। जो ऐसी घटना के दौरान दिए गए

बयान से संबंधित है (अर्थात हिरासत में समझा गया)। ऐसी स्थिति में, आरोपी को अलग से आत्मसमर्पण करने और नियमित जमानत लेने के लिए कहने का कोई सवाल (या आवश्यकता) नहीं है। सिब्बिया ने पाया था कि: (एससीसी पी. 584, पैरा 19)

"19. यदि और जब अवसर आता है, तो अभियोजन पक्ष के लिए जमानत पर रिहा किए गए व्यक्ति द्वारा प्रदान की गई जानकारी के अनुसरण में इस न्यायालय द्वारा यूपी राज्य बनाम देवमन उपाध्याय में कहा गया सिद्धांत तथ्यों की खोज के संबंध में साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के लाभ का दावा करना संभव हो सकता है।

92.9. यह पुलिस या जांच एजेंसी के लिए खुला है कि वह फरार, गैर-जैसे किसी भी शर्त के उल्लंघन की स्थिति में आरोपी को धारा 439 (2) के तहत गिरफ्तार करने के निर्देश के लिए संबंधित अदालत में जा सकती है, जो अग्रिम जमानत देती है। जांच के दौरान सहयोग करना, जांच या मुकदमे के नतीजे को प्रभावित करने के उद्देश्य से गवाहों को टालना, डराना या प्रलोभन देना आदि।"

16. शीर्ष न्यायालय ने **सुमिता प्रदीप बनाम अरुण कुमार सी.के. और अन्य** के मामले में नोटिस में कई अग्रिम जमानत मामलों में आम तर्क दिया जा रहा है कि हिरासत में पूछताछ की आवश्यकता नहीं है। यह देखा गया कि कानून की एक गंभीर गलत धारणा प्रतीत होती है कि यदि अभियोजन पक्ष द्वारा हिरासत में पूछताछ का कोई मामला नहीं बनाया गया है, तो वह अकेले ही अग्रिम अनुदान देने का अच्छा आधार होगा।। उक्त निर्णयों का प्रासंगिक भाग इस प्रकार है:

"16... कई अग्रिम जमानत मामलों में, हमने देखा है कि एक सामान्य तर्क यह आवेदन पर निर्णय लेते समय हिरासत में पूछताछ अन्य आधारों के साथ-साथ विचार किए जाने वाले प्रासंगिक पहलुओं में से एक हो सकती है ऐसे मामले जिनमें आरोपी से हिरासत में पूछताछ की आवश्यकता नहीं हो सकती है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि आरोपी के खिलाफ प्रथम दृष्टया मामले को नजरअंदाज कर दिया जाना चाहिए और उसे अग्रिम जमानत दे दी जानी चाहिए। सबसे पहली और महत्वपूर्ण बात यह है कि अदालत सुनवाई कर रही है अग्रिम जमानत आवेदन पर विचार किया जाना चाहिए कि यह आरोपी के खिलाफ प्रथम दृष्टया मामला है, इसके बाद सजा की गंभीरता के साथ अपराध की प्रकृति को भी देखा जाना चाहिए। **हिरासत में पूछताछ अग्रिम जमानत को अस्वीकार करने का एक आधार हो सकता है। हालाँकि, भले की हिरासत में पूछताछ आवश्यक या आवश्यक नहीं है, अपने आप में, अग्रिम जमानत देने का आधार नहीं हो सकता।"**

17. अग्रिम जमानत देते समय धारा 438 की शक्ति का उपयोग कारणों या निर्धारण के लिए प्रासंगिक या प्रासंगिक विचारों के आधार पर नहीं किया जाना चाहिए। **पोकर राम बनाम राजस्थान राज्य और अन्य** के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने माना है कि अग्रिम जमानत कुछ हद तक अपराध की जांच के क्षेत्र में हस्तक्षेप करती है। उक्त मामले का प्रासंगिक अंश निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया गया है:

11... अग्रिम जमानत कुछ हद तक अपराध की जांच के क्षेत्र में हस्तक्षेप करती है और अदालत को विवेकाधीन प्रकृति की ऐसी

शक्ति का प्रयोग करने में सतर्क और सतर्क रहना चाहिए..."

<u>वर्तमान मामलों के तथ्यों पर स्थापित कानून की प्रयोज्यता:</u>

18. जहाँ तक कारक संख्या की बात है। (i) जैसा कि धारा 438 में बताया गया है- 'आरोप की प्रकृति और गंभीरता', दोनों आवेदकों की ओर से उपस्थित विद्वान वकील ने अदालत को यह समझाने की कोशिश की कि चूंकि उल्लंघन के लिए अधिनियम, 2021 की धारा 5 के तहत प्रावधान किया गया है। अधिनियम, 2021 की धारा-3 के प्रावधानों के तहत केवल एक साल की कैद का प्रावधान है जिसे पांच साल तक बढ़ाया जा सकता है, इसलिए यह अपराध उस श्रेणी में नहीं आता है जो अग्रिम जमानत देने में बाधक हो सकता है।

19. इस न्यायालय ने पाया कि हालांकि अपराध के लिए केवल पांच साल की कैद की सजा है, तथापि, धारा 5 के प्रावधान में यह भी परिकल्पना की गई है कि सामूहिक धर्मांतरण के संबंध में उल्लंघन के लिए कम से कम तीन साल की कैद होगी, लेकिन इसे दस साल तक बढ़ाया जा सकता है। एफआईआर में अधिनियम, 2021 की धारा 3/5(1) के अलावा धारा 153ए, 506, 420, 467, 468, 471 आईपीसी के तहत अपराध शामिल हैं, जिसके लिए मजिस्ट्रेट ने प्रारंभिक चरण में रिमांड जारी नहीं किया था, हालांकि, बाद में रिमांड जारी किया गया है। शेष अनुभागों में भी प्रदान किया गया है।

20. धारा 438 के विचार के लिए दूसरा कारक यह आवश्यक है कि '**आवेदक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से, मामले के तथ्यों से परिचित किसी भी व्यक्ति को कोई प्रलोभन, धमकी या वादा नहीं करेगा ताकि उसे ऐसे तथ्यों का न्यायालय या किसी पुलिस अधिकारी को' खुलासा करने से रोका जा सके।** आवेदकों के लिए विद्वान वकील ने संबंधित आवेदकों की प्रोफ़ाइल का प्रदर्शन करते हुए कहा है कि इस अपराध से उनका कोई संबंध नहीं है और ऐसा उत्प्रेरित करने या और किसी को मना करने के लिए धमकी देने के बारे में कभी सोच भी नहीं सकता और इस प्रकार बताई गई स्थिति को प्रभावित नहीं माना जाता है।

21. आवेदकों की स्थिति के संबंध में दिए गए तर्कों से पता चलता है कि शायद ही यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि जहां प्रश्न में अपराध प्रलोभन का है, वहां ऐसा कोई प्रभाव नहीं डाला जाएगा क्योंकि पीड़ित समाज के सीमांत वर्ग से हैं और एफआईआर दर्ज करने के लिए आगे आ रहे हैं। विद्वान एएजी द्वारा दिए गए तर्क आवेदकों के तर्क से आगे निकल गए।

22. तीसरे पहलू के संबंध में कि आवेदक न्याय से भागेंगे नहीं और अपनी ओर से सहयोग करेंगे, इस पर नीचे की अदालत द्वारा पहले ही चर्चा की जा चुकी है कि आवेदक जांच में सहयोग नहीं कर रहे हैं और वर्तमान में उनके खिलाफ एनबीडब्ल्यू जारी किया गया है।

23. इस तथ्य के संबंध में कि एफआईआर किसी सक्षम व्यक्ति द्वारा दर्ज नहीं की गई है जैसा कि अधिनियम, 2021 की संबंधित धाराओं के तहत आवश्यक है। इस न्यायालय का मानना है कि एफआईआर आईपीसी की धारा 153-ए सहित आईपीसी की अन्य धाराओं के तहत भी दर्ज की

गई थी, इसलिए, यह केवल इस आधार पर बेदखल करने के लिए उत्तरदायी नहीं है कि यह मामला किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा दर्ज कराया गया है जो किसी राजनीतिक संगठन का सचिव है।

24. अभियुक्त की गिरफ्तारी और हिरासत का उद्देश्य मुख्य रूप से मुकदमे के समय उसकी उपस्थिति सुनिश्चित करना और यह सुनिश्चित करना है कि यदि वह दोषी पाया जाता है तो वह सजा पाने के लिए उपलब्ध है। यदि अन्यथा प्रासंगिक समय पर उपस्थिति सुनिश्चित की जा सकती है, तो आपराधिक कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान अभियुक्त को स्वतंत्रता से वंचित करना अनुचित और अन्यायपूर्ण होगा।

25. मामले पर बहस करते समय, सजा की अवधि पर जोर दिया गया है ताकि ऐसा मामला बनाया जा सके जहां अपराध गंभीर प्रकृति का न हो। संबंधित धाराओं के प्रावधानों पर गौर करें तो सजा की अवधि बताई गई है, जो दस साल तक है, लेकिन यह सिर्फ सजा की अवधि नहीं है बल्कि अपराध की प्रकृति को ध्यान में रखा जाना चाहिए जो बड़े पैमाने पर मानव शरीर या समाज को प्रभावित कर रही है और यही मायने रखती है और इसकी प्रासंगिकता भी है। वर्तमान मामले में, जैसा कि विद्वान एजीए द्वारा पहले ही बताया जा चुका है, सामूहिक धर्मांतरण के संबंध में भौतिक साक्ष्य एकत्र किए गए हैं जो बड़े पैमाने पर समाज को प्रभावित करता है और इसलिए यह एक गंभीर अपराध है और इसे हल्के में नहीं लिया जा सकता है।

26. पर्याप्त साक्ष्य सामने आए हैं जो बड़े पैमाने पर जनता को प्रभावित करने से संबंधित अपराध में आवेदकों की संलिप्तता को साबित करते हैं, इस प्रकार, ऐसे अपराध को सामान्य तरीके से नहीं लिया जा सकता है। जांच अधिकारी द्वारा फंडिंग को चैनलाइज़ करने से संबंधित साक्ष्य एकत्र करने के प्रयास किए जा रहे हैं, जिसमें आवेदकों को जांच में सहयोग करना आवश्यक है। ऐसे मामलों में, जांच को आवेदकों के बिना इस न्यायालय के संरक्षण में जांच अधिकारी के माध्यम से आगे बढ़ना चाहिए जो कानून की प्रक्रिया से अच्छी तरह वाकिफ है और कानून प्रवर्तन मशीनरी का एक हिस्सा है। **साधना चौधरी बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य** के मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले का संदर्भ लिया जा सकता है, जिसमें सुप्रीम कोर्ट ने कहा था कि कानून का पालन करने वाला व्यक्ति होने के नाते, कानून का पालन सामान्य तौर पर एक आम आदमी द्वारा कानून के पालन की अपेक्षा अधिक कठोर होना चाहिए। .

27. जैसा कि विभिन्न निर्णयों में चर्चा की गई है, अग्रिम जमानत देते समय कुछ प्रासंगिक कारकों पर विचार किया जाना चाहिए, उनमें से एक, अपराध की गंभीरता है, इस न्यायालय ने पाया कि वर्तमान मामला अग्रिम जमानत के लिए एक साधारण मामले से आगे निकल गया है, जहां वर्तमान आवेदन के लंबित रहने के दौरान, पीड़ितों द्वारा कई प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई गई हैं, जिनका अनुचित प्रभाव या प्रलोभन से धर्म परिवर्तन कराया गया है। यह न्यायालय इस तथ्य से अपनी आंखें नहीं मूंद सकता कि बड़े पैमाने पर लोगों के धर्म परिवर्तन के संबंध में भौतिक साक्ष्य एकत्र किए गए हैं और यह मामला कहीं अधिक गंभीर मोड़ ले चुका है जहां पीड़ित साक्ष्य देने के लिए आ रहे हैं। इस प्रकार, यदि सुरक्षा

प्रदान की जाती है, तो इससे जांच की प्रक्रिया में बाधा आएगी।

28. **पोकर राम बनाम राजस्थान राज्य और अन्य** के मामले में अग्रिम जमानत देने के संबंध में सुप्रीम कोर्ट के दिशानिर्देशों पर विचार करते समय **श्री गुरबख्श सिंह सिब्बिया और अन्य बनाम राज्य** के मामले में शीर्ष अदालत की संविधान पीठ के फैसले के बारे में चर्चा की गई। पंजाब के और देखा गया कि विचार के मूल्यांकन में सावधानी बरती गई थी कि क्या आवेदक के भागने की संभावना है, ऐसा कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता है कि अमीर और ताकतवर खुद को मुकदमे के लिए प्रस्तुत करेंगे और विनम्र और गरीब भाग जाएंगे न्याय की प्रक्रिया, और इससे भी अधिक यह धारणा हो सकती है कि पूर्व में अपराध करने की संभावना नहीं है और बाद में अपराध करने की अधिक संभावना है: **पोकर राम (उपरोक्त)** में उक्त निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ इस प्रकार पढ़ता है:

"6. गुरबख्श सिंह सिब्बिया बनाम पंजाब राज्य में संविधान पीठ का निर्णय स्पष्ट रूप से कहता है कि "जमानत के सामान्य आदेश और अग्रिम जमानत के आदेश के बीच अंतर यह है कि जबकि पूर्व जमानत गिरफ्तारी के बाद दी जाती है और इसलिए इसका मतलब रिहाई है पुलिस की हिरासत से, गिरफ्तारी की प्रत्याशा में जमानत दी जाती है और इसलिए गिरफ्तारी के समय ही प्रभावी होती है। गिरफ्तारी के बाद जमानत के आदेश के विपरीत, यह एक पूर्व-गिरफ्तारी कानूनी प्रक्रिया है जो निर्देश देती है कि यदि व्यक्ति जिसके पक्ष में इसे जारी किया जाता है, उसके बाद उस आरोप पर गिरफ्तार कर लिया जाता है जिसके संबंध में निर्देश जारी किया जाता है, उसे जमानत पर रिहा कर दिया जाएगा। धारा 438 के तहत एक निर्देश का उद्देश्य धारा 46(1) के अनुसार स्पर्श से सशर्त छूट प्रदान करना है। या कारावास। पैरा 31 में, चंद्रचूड़, सीजे ने अग्रिम जमानत के लिए एक आवेदन और जांच के दौरान गिरफ्तारी के बाद जमानत के लिए एक आवेदन की जांच करते समय प्रासंगिक विचारों के बीच अंतर को स्पष्ट रूप से सीमांकित किया। विद्वान मुख्य न्यायाधीश का कहना है कि अग्रिम जमानत के संबंध में, यदि प्रस्तावित आरोप न्याय के उद्देश्यों को आगे बढ़ाने के उद्देश्यों से नहीं बल्कि किसी गुप्त उद्देश्य से उत्पन्न होता प्रतीत होता है, जिसका उद्देश्य आवेदक को गिरफ्तार करके उसे घायल करना और अपमानित करना है, तो एक निर्देश घटना में आवेदक को जमानत पर रिहा करने हेतु है जो उसकी गिरफ्तारी होने की स्थिति में की जाएगी। यह देखा गया कि "यह एक कठोर नियम के रूप में निर्धारित नहीं किया जा सकता है कि अग्रिम जमानत तब तक नहीं दी जा सकती जब तक कि प्रस्तावित आरोप दुर्भावना से प्रेरित न हो; और, समान रूप से, यदि आवेदक को कोई डर नहीं है तो अग्रिम जमानत दी जानी चाहिए फरार हो जायेंगे" कुछ प्रासंगिक विचार जो विवेक को नियंत्रित करते हैं, उसमें ध्यान दिया गया है "प्रस्तावित आरोपों की प्रकृति और गंभीरता, उन घटनाओं का संदर्भ जो आरोप लगाए जाने की संभावना है, आवेदक की उपस्थिति सुरक्षित नहीं होने की उचित संभावना है।" मुकदमा, एक उचित आशंका कि गवाहों के साथ छेड़छाड़ की जाएगी और 'जनता या राज्य के बड़े हित', कुछ ऐसे विचार हैं जिन्हें अदालत को अग्रिम जमानत के लिए आवेदन तय करते समय ध्यान में रखना

होगा। एक चेतावनी दी गई थी कि "इस विचार के मूल्यांकन में कि क्या आवेदक के भागने की संभावना है, इस बात का कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता है कि अमीर और शक्तिशाली लोग खुद को मुकदमे के लिए प्रस्तुत करेंगे और विनम्र और गरीब इस प्रक्रिया से भाग जाएंगे।" न्याय, किसी भी हद तक यह धारणा हो सकती है कि पूर्व में अपराध करने की संभावना नहीं है और बाद में अपराध करने की अधिक संभावना है"।

29. यह एक स्थापित कानून है कि अग्रिम जमानत देने के मामले पर विचार करते समय, अदालत को अभियोजन पक्ष के गवाहों को प्रभावित करने, परिवार के सदस्यों को धमकी देने, न्याय से भागने, अन्य बाधाएं पैदा करने और निष्पक्ष जांच करने की आरोपी की संभावना को नजरअंदाज नहीं करना चाहिए। **विपिन कुमार धीर बनाम पंजाब राज्य और अन्य** के मामले में शीर्ष अदालत ने माना है कि भले ही आरोपी को भगोड़ा घोषित करने में कोई प्रक्रियात्मक अनियमितता हो, लेकिन यह गिरफ्तारी से पहले जमानत देने का उचित आधार नहीं है। फैसले का प्रासंगिक हिस्सा यहां नीचे उद्धृत किया गया है:

"13. भले ही प्रतिवादी-अभियुक्त को भगोड़ा घोषित करने में कोई प्रक्रियात्मक अनियमितता थी, लेकिन यह अपने आप में गंभीर अपराध के मामले में गिरफ्तारी से पहले जमानत देने का उचित आधार नहीं था, सिवाय इसके कि उच्च न्यायालय ने मामले पर गौर किया हो- डायरी और रिकॉर्ड पर मौजूद अन्य सामग्री से प्रथम दृष्टया यह संतुष्ट है कि यह झूठा या अतिरंजित आरोप का मामला है। यहां ऐसा नहीं होने पर, उच्च न्यायालय ने प्रतिवादी-अभियुक्त को अग्रिम जमानत देने में गलत आधार दिया।“

30. वर्तमान एफआईआर के साथ-साथ पीड़ितों द्वारा दर्ज की गई एफआईआर और जांच के दौरान एकत्र की गई सामग्री, बड़े पैमाने पर जनता की भावनाएं शामिल हैं, जिसमें भारत जैसे किसी भी धर्मनिरपेक्ष देश में सद्भाव को तोड़ना होगा जो सार्वजनिक व्यवस्था को प्रभावित करेगा। केवल इस तथ्य को ध्यान में रखकर आवेदकों को माफ नहीं किया जा सकता कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में उनका नाम नहीं है।

31. यद्यपि धारा 438 सी.आर.पी.सी. का उद्देश्य व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा करना है। दोनों अधिकारों के बीच एक नाजुक संतुलन स्थापित करने की आवश्यकता है यानी किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक हित की रक्षा करना, जैसा कि पी. चिदंबरम बनाम प्रवर्तन निदेशालय के मामले में माना गया है। उक्त निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ यहां पुन: प्रस्तुत किए गए हैं:

"72. हम इस तथ्य से अवगत हैं कि धारा 438 सीआरपीसी की शुरुआत के पीछे विधायी मंशा व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा करना और उसे अपमानित होने की संभावना और अनावश्यक पुलिस हिरासत में रहने से बचाना है। हालांकि, अदालत यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि एक आपराधिक अपराध केवल एक व्यक्ति के खिलाफ अपराध नहीं है, बल्कि व्यापक सामाजिक हित दांव पर है, इसलिए किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा करने वाले दो अधिकारों के बीच एक नाजुक संतुलन स्थापित

किया जाना आवश्यक है सामाजिक हित में यह नहीं कहा जा सकता कि अग्रिम जमानत देने से इंकार करना भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत अपीलकर्ता को प्रदत्त अधिकारों से वंचित करना होगा।

***

74. आमतौर पर, गिरफ्तारी कई उद्देश्यों को सुरक्षित करने के उद्देश्य से जांच की प्रक्रिया का एक हिस्सा है। ऐसी परिस्थितियाँ हो सकती हैं जिनमें अभियुक्त ऐसी जानकारी प्रदान कर सकता है जिससे भौतिक तथ्यों और प्रासंगिक जानकारी की खोज हो सके। अग्रिम जमानत दिए जाने से जांच में बाधा आ सकती है। गिरफ्तारी-पूर्व जमानत व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार और जांच एजेंसी को अब तक एकत्र की गई सामग्री के बारे में आरोपी से पूछताछ करने के बीच संतुलन बनाना है और जांच एजेंसी को अधिक जानकारी एकत्र करने का अधिकार है जिससे प्रासंगिक जानकारी की प्राप्त किया जा सके। राज्य बनाम अनिल शर्मा में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया: (एससीसी पृष्ठ 189, पैरा 6)

'6. हमें सीबीआई की इस बात में दम नजर आता है कि हिरासत में पूछताछ किसी संदिग्ध से पूछताछ करने की तुलना में गुणात्मक रूप से अधिक पूछताछ-उन्मुख है, जो संहिता की धारा 438 के तहत अनुकूल आदेश से अच्छी तरह से जुड़ा हुआ है। इस तरह के मामले में, किसी संदिग्ध व्यक्ति से प्रभावी पूछताछ कई उपयोगी सूचनाओं और सामग्रियों को उजागर करने में बहुत फायदेमंद होती है, जिन्हें छुपाया गया होता। इस तरह की पूछताछ में सफलता नहीं मिलेगी यदि संदिग्ध व्यक्ति को पता हो कि पूछताछ के दौरान वह अच्छी तरह से संरक्षित है और गिरफ्तारी पूर्व जमानत आदेश से अछूता है। अक्सर ऐसी स्थिति में पूछताछ महज़ एक रस्म बनकर रह जाती है। यह तर्क कि हिरासत में पूछताछ व्यक्ति को थर्ड-डिग्री तरीकों के अधीन किए जाने के खतरे से भरी होती है, को मानने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इस तरह का तर्क सभी आपराधिक मामलों में सभी आरोपियों द्वारा दिया जा सकता है। न्यायालय को यह मानना होगा कि जिम्मेदार पुलिस अधिकारी खुद को जिम्मेदार तरीके से संचालित करेंगे और जिन्हें अपराधों से मुक्ति दिलाने का काम सौंपा गया है, वे खुद को अपराधी के रूप में आचरण नहीं करेंगे।"

32. इस तर्क के संबंध में कि सीआर.पी.सी. की धारा 4. विशेष अधिनियम (अधिनियम, 2021 जांच के लिए कोई तंत्र प्रदान नहीं करता है) में प्रावधान के अधिनियमन के अधीन, समान प्रावधानों द्वारा की जाने वाली जांच का प्रावधान करता है, सुप्रीम कोर्ट के एक फैसले का संदर्भ के.एच. नज़र बनाम मैथ्यू के. जैकब और अन्य" के मामले में दिया गया है, जिसमें यह माना गया है कि लाभकारी कानून के प्रावधानों को उद्देश्य-उन्मुख दृष्टिकोण और शाब्दिक रूप से समझा जाना चाहिए। लाभकारी कानून के प्रावधानों के निर्माण से बचना होगा।

"11. एक लाभकारी कानून के प्रावधानों को उद्देश्य-उन्मुख दृष्टिकोण के साथ समझा जाना चाहिए। अधिनियम को अपने उद्देश्यों को बढ़ावा देने के लिए एक उदार निर्माण प्राप्त करना चाहिए। साथ ही, एक लाभकारी

कानून के प्रावधानों के शाब्दिक निर्माण से बचना होगा। कानून बनाने में विधायिका की मंशा पर विचार करना न्यायालय का कर्तव्य है। एक बार ऐसा इरादा सुनिश्चित हो जाने पर, क़ानून को एक उद्देश्यपूर्ण या कार्यात्मक व्याख्या मिलनी चाहिए।

12. ओ. चिन्नप्पा रेड्डी, जे. के शब्दों में, लाभकारी कानून के वैधानिक निर्माण के सिद्धांत इस प्रकार हैं: (कर्मचारी मामला, एससीसी पृष्ठ 76, पैरा 4)

"4. वैधानिक निर्माण के सिद्धांत अच्छी तरह से स्थापित हैं। उदारवादी आयात के क़ानूनों में आने वाले शब्द जैसे 'सामाजिक कल्याण कानून और मानवाधिकार कानून को प्रोक्रस्टियन बेड में नहीं रखा जाना चाहिए या लिलिपुटियन आयामों में सिकुड़ना नहीं चाहिए। इन विधानों को लागू करने में पाखंड शाब्दिक निर्माण से बचा जाना चाहिए और इसके दुरुपयोग की विलक्षणता को पहचाना और कम किया जाना चाहिए। न्यायाधीशों को ऐसे क़ानूनों के "रंग", "सामग्री" और "संदर्भ" के बारे में अधिक चिंतित होना चाहिए (हमने लॉर्ड विल्बरफोर्स से ये शब्द उधार लिए हैं)। प्रीन बनाम सिमंड्स में राय)। उसी राय में लॉर्ड विल्बरफोर्स ने बताया कि कानून को शाब्दिक व्याख्या के किसी द्वीप में पीछे नहीं छोड़ा जाना चाहिए, बल्कि उस भाषा से परे पूछताछ करना है, जिसमें वे सेट किए गए तथ्यों के मैट्रिक्स से अलग हैं; कानून की व्याख्या केवल आंतरिक भाषाई आधार पर नहीं की जानी चाहिए, हमारे सामने उद्धृत मामलों में से एक में, यानी सुरेंद्र कुमार वर्मा बनाम केंद्रीय सरकार औद्योगिक न्यायाधिकरण-सह-श्रम न्यायालय, हमारे पास यह कहने का अवसर था: (सुरेंद्र कुमार वर्मा, एससीसी पी. 447, पैरा 6)

6. ..."रोटी और मक्खन" क़ानून की व्याख्या में अर्थ संबंधी विलासिता का स्थान ग़लत है। कल्याणकारी क़ानूनों को, आवश्यकतानुसार, व्यापक व्याख्या मिलनी चाहिए। जहां कानून कुछ प्रकार की बुराई के खिलाफ राहत देने के लिए बनाया गया है, वहां अदालत का उद्देश्य व्युत्पत्ति संबंधी भ्रमण करके अतिक्रमण करना नहीं है।"

13. किसी क़ानून की व्याख्या करते समय, सबसे पहले उस समस्या या शरारत की पहचान की जानी चाहिए जिसके समाधान के लिए क़ानून बनाया गया था और फिर उस निर्माण को अपनाया जाना चाहिए जो समस्या को दबाता है और उपाय को आगे बढ़ाता है...।"

33. उपरोक्त निर्णय का हाल ही में दीपिका सिंह बनाम केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण और अन्य के मामले में शीर्ष न्यायालय द्वारा पालन किया गया है।

34. इस तथ्य के संबंध में आवेदकों के विद्वान वकील द्वारा उठाई गई दलीलों पर कि आवेदक जांच में सहयोग नहीं कर रहे थे, इस न्यायालय को लगता है कि उन्हें सीआरपीसी की धारा 41(1) के तहत नोटिस के रूप में अपराध की जानकारी थी। उन्हें दिया गया था, जिसका जवाब प्रस्तुत किया गया और भौतिक साक्ष्य एकत्र करने के बाद, जब प्रासंगिक धाराओं के तहत कुछ लोगों का रिमांड लिया गया, तो आवेदकों को जांच में सहयोग करने की आवश्यकता थी, लेकिन वे तब से फरार हैं, जिसके परिणामस्वरूप 04.2.2023 को गैर - जमानती वारंट जारी किया गया।

35. **लवेश बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली)** के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने माना है कि आम तौर पर फरारी के मामले में अग्रिम जमानत देने की शक्ति का प्रयोग नहीं किया जाता है। उक्त निर्णय का पालन **मध्य प्रदेश राज्य बनाम प्रदीप शर्मा** के मामले में किया गया है।

36. जहां तक वंचितों की कम स्वायत्तता के संबंध में विद्वान एएजी के तर्कों का संबंध है, यह राज्य का कर्तव्य है कि वह ऐसी गतिविधियों की जांच करे जो ऐसे व्यक्तियों को धमकी दे रही हैं, अपमानित कर रही हैं, डरा रही हैं और समाज के कमजोर वर्ग के अधिकारों और हितों को प्रभावित कर रही हैं। प्रत्येक सम्मान और दूसरी ओर अधिकांश व्यक्तियों को प्रभावित करता है।

37. इसकी व्याख्या इस तरह भी की जा सकती है कि जैसे आरोप आवेदकों के खिलाफ लगाए गए हैं वह सामूहिक धर्म परिवर्तन का मामला है और जांच अधिकारी द्वारा एकत्र की गई सामग्री के आधार पर आवेदकों की मिलीभगत पाई गई है, आवेदक सोसायटी से जुड़े हुए हैं, ऐसा कृत्य अपराध की गंभीरता को दर्शाता है, इसलिए तत्काल मामला उचित नहीं है अग्रिम जमानत देने के लिए क्योंकि सुरक्षा का मुद्दा और नागरिकों के विवेक की स्वतंत्रता के अधिकार और धर्म को स्वतंत्र रूप से मानने, अभ्यास करने और प्रचार करने के अधिकार का उल्लंघन शामिल है।

38. मुझे धर्म परिवर्तन के संबंध में शीर्ष न्यायालय के समक्ष लंबित एक मामले के संदर्भ का उल्लेख करना उचित लगता है, जिसका शीर्षक **इन रे: धर्म परिवर्तन का मुद्दा** है, जिसमें न्यायालय ने 14.11.2022 को जवाबी हलफनामा देते हुए कहा था अंतर्गत:

"कथित धर्म परिवर्तन के संबंध में मुद्दा यदि सही और सत्य पाया जाता है, तो यह एक बहुत ही गंभीर मुद्दा है जो अंततः राष्ट्र की सुरक्षा को प्रभावित कर सकता है और नागरिकों के विवेक की स्वतंत्रता और स्वतंत्र रूप से धर्म अपनाने धर्म का आचरण और प्रचार करने के अधिकार का उल्लंघन कर सकता है।"

इसलिए, यह बेहतर है कि केंद्र सरकार अपना रुख स्पष्ट कर सकती है और इस पर जवाब दाखिल कर सकती है कि इस तरह के जबरन धर्मांतरण को रोकने के लिए भारत संघ और/या अन्य द्वारा क्या कदम उठाए जा सकते हैं, चाहे वह बलपूर्वक, प्रलोभन या धोखाधड़ी के माध्यम से हो। .

39. **बादशाह बनाम उर्मिला बादशाह गोडसे** के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि न्यायालय की भूमिका समाज में कानून के उद्देश्य को समझना और कानून को उसके उद्देश्य को प्राप्त करने में मदद करना है। लेकिन एक समाज का कानून एक जीवित जीव है। यह एक दी गई तथ्यात्मक और सामाजिक वास्तविकता पर आधारित है जो लगातार बदल रही है। सुप्रीम कोर्ट ने यह भी देखा है कि समाज में कमजोर समूहों को विशेष सुरक्षा और लाभ देने वाले कई सामाजिक न्याय कानून हैं बादशाह (उपरोक्त) को नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:

14. हाल ही में, इसी दिशा में इस बात पर जोर दिया गया है कि अदालतों को "सामाजिक न्याय निर्णय" में अलग-अलग दृष्टिकोण अपनाने होंगे, जिसे "सामाजिक संदर्भ निर्णय" के रूप में भी जाना जाता है क्योंकि केवल "प्रतिकूल

दृष्टिकोण" बहुत उपयुक्त नहीं हो सकता है। समाज में कमजोर समूहों को विशेष सुरक्षा और लाभ देने वाले कई सामाजिक न्याय कानून हैं। प्रो. माधव मेनन इसका स्पष्ट रूप से वर्णन करते हैं:

"इसलिए, यह सम्मानपूर्वक प्रस्तुत किया जाता है कि 'सामाजिक संदर्भ का निर्णय' अनिवार्य रूप से समानता न्यायशास्त्र का अनुप्रयोग है जैसा कि संसद और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अदालतों के समक्ष प्रस्तुत असंख्य स्थितियों में विकसित किया गया जहां असमान पक्षों को प्रतिकूल कार्यवाही में खड़ा किया जाता है और जहां अदालतों को समान न्याय देने के लिए कहा जाता है। असमान लड़ाई में गरीबों की अक्षमताओं को बढ़ाने वाली सामाजिक-आर्थिक असमानताओं के अलावा, प्रतिकूल प्रक्रिया स्वयं कमजोर पक्ष के नुकसान के लिए संचालित होती है। ऐसी स्थिति में, न्यायाधीश को न केवल इसमें शामिल पक्षों की असमानताओं के प्रति संवेदनशील होना होगा, बल्कि कमजोर पक्ष के प्रति भी सकारात्मक रूप से झुकना होगा, यदि असंतुलन के परिणामस्वरूप अन्याय न हो। यह परिणाम जिसे हम सामाजिक संदर्भ निर्णय या सामाजिक न्याय निर्णय कहते हैं, उसके द्वारा प्राप्त किया जाता है।"

***

***

16. कानून लोगों के बीच संबंधों को नियंत्रित करता है। यह व्यवहार के पैटर्न निर्धारित करता है। यह समाज के मूल्यों को दर्शाता है। न्यायालय की भूमिका समाज में कानून और कानून को उद्देश्य को समझने की है और उसके उद्देश्य को प्राप्त करने में मदद करना है। लेकिन

किसी समाज का कानून जीवंत है। यह तथ्यात्मक और सामाजिक वास्तविकता पर आधारित है जो लगातार बदल रही है।कभी-कभी कानून में परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन से पहले होता है और होता भी है और इसे प्रेरित करने का उद्देश्य भी होता है। यहाँ तक कि इसे उत्तेजित करने का भी इरादा है। हालाँकि, ज्यादातर मामलों में कानून में बदलाव सामाजिक वास्तविकता में बदलाव का परिणाम है। दरअसल, जब सामाजिक वास्तविकता बदलती है, तो कानून भी बदलना चाहिए। जिस प्रकार सामाजिक वास्तविकता में परिवर्तन जीवन का नियम है, उसी प्रकार सामाजिक वास्तविकता में परिवर्तन के प्रति प्रतिक्रिया ही कानून का जीवन है। यह कहा जा सकता है कि कानून का इतिहास कानून को समाज की बदलती जरूरतों के अनुसार ढालने का इतिहास है। संवैधानिक और वैधानिक व्याख्या दोनों में, न्यायालय से कानून के व्यक्तिपरक और वस्तुनिष्ठ उद्देश्यों के बीच उचित संबंध निर्धारित करने में विवेक का प्रयोग करने की अपेक्षा की जाती है।

40. इस तथ्य के संबंध में कि कई व्यक्तियों को अग्रिम जमानत पर पहले ही रिहा किया जा चुका है, इसलिए, समानता का दावा किया गया है, इस न्यायालय का मानना है कि जमानत देते समय, आरोपी की भूमिका, उसके संबंध में आरोपी की स्थिति पर ध्यान दिया जाना चाहिए। घटना के साथ-साथ पीड़ितों पर भी विचार किया जाना बेहद महत्वपूर्ण कारक हैं, जैसा कि **महादेव मीना बनाम प्रवीण राठौड़ और अन्य** के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने माना है।

41. इस न्यायालय ने पाया कि आरोपी ब्रॉडवेल क्रिश्चियन सोसाइटी से जुड़े व्यक्ति हैं और बड़े पैमाने पर धर्मांतरण में शामिल हैं क्योंकि इस संबंध में साक्ष्य जांच अधिकारी द्वारा एकत्र किए गए हैं, जिन्होंने पाया कि वे उस परिसर के संरक्षक थे जहां से अपराध साबित करने वाली प्रासंगिक सामग्री की बरामदगी हुई थी जहाँ बड़े पैमाने पर धर्म परिवर्तन कराया गया है।

42. यह ध्यान में रखा जा सकता है कि अग्रिम जमानत एक असाधारण उपाय है जिसका प्रयोग केवल उपयुक्त मामलों में ही किया जाना चाहिए। सीआरपीसी की धारा 438 के तहत शक्ति। इसे नियमित जमानत के विकल्प के रूप में नियमित तरीके से उपयोग नहीं किया जा सकता है। यह विवेकाधीन शक्ति उस प्रकार के तथ्यों के अस्तित्व की मांग करती है जहां अदालत संतुष्ट हो कि न्याय के उद्देश्य को आगे बढ़ाने और कानून की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए उसका हस्तक्षेप आवश्यक है।

43. पक्षों के विद्वान वकील की दलीलों को देखने के बाद, अपराध के आरोप की प्रकृति, आवेदकों की सोसायटी से जुड़े व्यक्तियों की भूमिका, धर्मार्थ कार्यों के पीछे उनकी मंशा संदिग्ध प्रतीत होती है, जो सीमांत वर्ग के हितों को प्रभावित करती है। समाज, कानून का उद्देश्य और समाज पर उसका प्रभाव, मुझे यह अग्रिम जमानत देने के लिए उपयुक्त मामला नहीं लगता।

44. अग्रिम जमानत आवेदन खारिज किये जाते हैं।

(2023) 3 ILRA 560

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक वाद

दिनांक: लखनऊ 20.02.2023

माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान के समक्ष

आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या 1943/2023

गोविंद प्रकाश पांडे ...आवेदक

बनाम

प्रवर्तन निदेशालय, भारत सरकार ...प्रतिपक्षी

आवेदक के अधिवक्ता: अविरल राज सिंह, आलोक कुमार सिंह, ध्रुव कुमार सिंह, पलाश बनर्जी, ऋत्विक राय, वैभव तिवारी

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: रोहित त्रिपाठी

ए. आपराधिक कानून - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 439 - धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002 - धाराएँ 3 और 4 - इस वाद में, जब आवेदक ने अधिवक्ता के समक्ष प्रस्तुत होकर समन का पालन किया, तो उसे गिरफ्तार करने की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि उसने कभी भी कानून की प्रक्रिया का उल्लंघन नहीं किया, उसने पूरे समय जांच में सहयोग किया, और जांच एजेंसी ने कभी भी उसे पी.एम.एल.ए की धारा 19 के तहत गिरफ्तार करने का विचार नहीं किया, इसके बावजूद वह ई.डी. के समक्ष अपनी बयान दर्ज कराने दो बार प्रस्तुत हुआ, जो कि पी.एम.एल.ए की धारा 50 के तहत समन जारी होने के बाद हुआ था, और ई.डी. ने माननीय अदालत में यह अनुरोध नहीं किया कि वर्तमान आवेदक की गिरफ्तारी आवश्यक है - आवेदक की जमानत आवेदन को यह कहते हुए निरस्त कर दिया गया कि पी.एम.एल.ए की धारा 45 की

दोनों शर्तें पूरी नहीं हो रही हैं, बिना इस महत्वपूर्ण पहलू पर विचार किए कि जांच एजेंसी ने कभी भी आवेदक को पी.एम.एल.ए की धारा 19 के तहत गिरफ्तार नहीं किया - इसलिए, पी.एम.एल.ए की धारा 45 की सख्ती वर्तमान मामले में लागू नहीं होगी - माननीय न्यायालय ने सर्वोच्च न्यायालय के अमन प्रीत सिंह और सतेन्द्र कुमार अंतिल के तय कानून के सिद्धांत का पालन किए बिना आवेदक की हिरासत में लिया। (पैराग्राफ 1 से 29)

बी. 2002 अधिनियम की धारा 45 में दी गई दोनों शर्तें, हालांकि आरोपी के जमानत के अधिकार को प्रतिबंधित करती हैं, लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि धारा 45 में दी गई शर्तें जमानत देने पर पूर्ण रोक लगाती हैं। विवेकाधिकार न्यायालय में निहित होता है, जो कि मनमाना या असंगत नहीं बल्कि न्यायिक है, जो कि 2002 अधिनियम की धारा 45 के तहत कानून के सिद्धांतों द्वारा मार्गदर्शित होता है... (पैराग्राफ 26)

जमानत आवेदन स्वीकृत। (ई-6)

<u>**उद्धृत वाद सूची:**</u>

1. सतेन्द्र कुमार अंतिल बनाम सीबीआई एवं अन्य (2022) 10 एससीसी 51
2. अमन प्रीत सिंह बनाम सीबीआई द्वारा निदेशक (2021) एससीसी ऑनलाईन एससी 941
3. कटार सिंह बनाम ई.डी., एसएलपी (क्रिम.) नंबर 12635 साल 2022
4. राणा कपूर बनाम ई.डी. (2022) एससीसी ऑनलाईन दिल्ली 4065
5. विजय मदनलाल चौधरी एवं अन्य बनाम भारत सरकार एवं अन्य (2022) एससीसी ऑनलाईन एससी 929
6. गौतम कुंडू बनाम ई.डी (पी.एम.एल.ए), भारत सरकार, मनोज कुमार, सहायक निदेशक, पूर्वी क्षेत्र (2015) 16 एससीसी 1

<u>**माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान**</u>

1. प्रार्थी के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री जयदीप नारायण माथुर के सहायक विद्वान अधिवक्ता श्री ऋत्विक राय, श्री राजीव शकर भटनागर, श्री बीरेंद्र कुमार मिश्रा, श्री अंशुमान मोहित चतुर्वेदी, श्री अग्नि सेन, श्री वैभव तिवारी एवं श्री अविरल राय के साथ प्रवर्तन निदेशालय के विद्वान अधिवक्ता श्री रोहित त्रिपाठी को सुना।

2. श्री रोहित त्रिपाठी ने प्रति शपथ-पत्र दाखिल किया है एवं उसे अभिलेख पर लिया गया है।

3. प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, वर्तमान प्रार्थी धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002 की धारा 3 एवं 4 के अंतर्गत ECIR No.ECIR/04/PMLA/LZO/2012 से उत्पन्न सत्र वाद संख्या 2791/ 2022 में दिनांक10.01.2023 से जेल में है जो वर्तमान में विद्वान विशेष न्यायाधीश, PMLA, लखनऊ के न्यायालय में लंबित है।

4. वाद के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि वर्तमान वाद उ०प्र० राज्य में राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन (एतस्मिनपश्चात् "एनआरएचएम" के रूप में संदर्भित) से संबंधित है, जो केंद्र सरकार एवं राज्य सरकार के संयुक्त प्रयासों से शुरू किया गया था। मैसर्स जागरण सॉल्यूशंस की स्थापना वर्ष 2005 में जागरण प्रकाशन लिमिटेड (संक्षेप में "जेपीएल") की एक इकाई के रूप में की गई

थी। जागरण सॉल्यूशंस एक ब्रांड सक्रियण, बैठक प्रोत्साहन सम्मेलन एवं कार्यक्रम (संक्षेप में "एमआईसीई"), खुदरा एवं आईएसपी, ग्रामीण विपणन तथा सक्रियण परामर्श की व्यावसायिक गतिविधियों में शामिल प्रतिष्ठित कंपनी है। जागरण सॉल्यूशंस ने अब तक 500 करोड़ रुपये से अधिक के कुल कारोबार के साथ 4500 से अधिक परियोजनाओं को क्रियान्वित किया है तथा उसके खाते में 63 राष्ट्रीय स्तर तथा 76 अंतर्राष्ट्रीय स्तर के पुरस्कार हैं।

5. प्रार्थी वर्ष 2007 में वरिष्ठ लेखा प्रबंधक के रूप में जागरण सॉल्यूशंस में शामिल हुए एवं वर्तमान में जागरण सॉल्यूशंस के व्यापार प्रमुख के रूप में कार्यरत हैं। अपने आधिकारिक कर्तव्यों के रूप में, प्रार्थी ने जागरण सॉल्यूशंस हेतु व्यवसाय विकास एवं ग्राहक सेवा का कार्य किया।

6. महानिदेशक, परिवार कल्याण, उ०प्र०, ने एक विज्ञापन प्रकाशित किया जिसमें तीन वर्ष की अवधि हेतु उ०प्र० के चयनित जिलों में एमएमयू संचालित करने के लिए निजी बोलीदाताओं की मांग की गई। जागरण सॉल्यूशंस ने प्रस्ताव हेतु अनुरोध (संक्षेप में "आरएफपी") में विज्ञापित के अनुसार सभी 15 जिलों में एमएमयू प्रदान करने हेतु एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया। जागरण सॉल्यूशंस द्वारा प्रस्तुत वित्तीय प्रस्ताव में प्रति एमएमयू लागत के रूप में रुपये 1,36,97,098/- का समग्र मूल्य (पूंजीगत व्यय और आवर्ती व्यय) उद्धृत किया गया। जागरण सॉल्यूशंस के वित्तीय प्रस्तावों को मंजूरी दे दी गई एवं फर्म ने महानिदेशक, परिवार कल्याण के साथ चार विभिन्न समझौते किए। NRHM से संबंधित मामले में भारी गड़बड़ी, धोखाधड़ी एवं जालसाजी की शिकायत पर, मामला सीबीआई को भेजा गया तथा दिनांक 15.11.2011 को रिट याचिका संख्या- 3611(एमबी)/ 2011, 3301 (एमबी) /2011 एवं 2647(एमबी) /2011, में उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश के अनुसार दिनांक 19.11.2011 को सीबीआई ने प्रारंभिक जांच दर्ज की। प्रारंभिक जांच की रिपोर्ट के अनुक्रम में, सीबीआई ने मेसर्स जागरण सॉल्यूशंस के विरुद्ध दिनांक 05.02.2012 को भा०द०सं० की धारा 420, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (इसके पश्चात इसे "PC Act" कहा जाएगा) की धारा 13(2) r/w धारा 13(1)(d) के अंतर्गत प्र०सू०रि० संख्या- RC 04(A)/2012, SCU-V/SC-II, नई दिल्ली (प्र०सू०रि०) दर्ज की।

7. प्रवर्तन निदेशालय ने दिनांक14.04.2012 को ECIR/04/PMLA/LZO/2012 (ECIR) भी दर्ज किया है।

8. विशेषतः, उच्च न्यायालय एवं शीर्ष न्यायालय में कुछ मुकदमों के पश्चात, वर्तमान प्रार्थी के पिता की मृत्यु के कारण निर्धारित तिथि पर न्यायालय में उपस्थित न होने के कारण अप्रत्यक्ष अपराध के संबंध में विशेष न्यायाधीश, पीसी अधिनियम द्वारा दिनांक 03.07.2014 को न्यायिक हिरासत में भेज दिया गया था। यद्यपि उनके अधिवक्ता विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष विधिवत उपस्थित हुए थे। तत्पश्चात आपराधिक विविध द्वितीय जमानत प्रार्थनापत्र संख्या 934/ 2015 (संलग्नक संख्या 11) में पारित आदेश दिनांक 28.08.2015 के अंतर्गत वर्तमान प्रार्थी को इस न्यायालय द्वारा जमानत दे दी गई थी। दिनांक 28.08.2015 के उपरोक्त आदेश में, इस न्यायालय ने पाया कि प्रार्थी ने

समस्त अन्वेषण में सहयोग किया, फरार नहीं हुआ है एवं प्रार्थी द्वारा साक्ष्यों के साथ छेड़छाड़ की कोई संभावना नहीं है। इस न्यायालय ने प्रार्थी को कथित दुरुपयोग की गई राशि रुपये 4.89 करोड़ विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष जमा करने का निर्देश दिया। प्रार्थी ने आदेश दिनांक 28.08.2015 के अनुपालन में उक्त राशि रूपये 4.89 करोड़ जमा कर दी है।

9. चूंकि प्रवर्तन निदेशालय (एतस्मिनपश्चात् "E.D." के रूप में संदर्भित) ECIR को प्रोत्साहन करने में धन-शोधन निवारण अधिनियम, 2002 (एतस्मिनपश्चात् "PMLA" के रूप में संदर्भित) के अंतर्गत अपनी जांच जारी रख रहा था, प्रार्थी ने जांच में विधिवत सहयोग किया एवं उसका बयान पीएमएलए की धारा 50 के अंतर्गत प्रवर्तन निदेशालय द्वारा दिनांक 23.12.2016 एवं 10.06.2019 को दर्ज किया गया था। चूंकि वर्तमान प्रार्थी जांच में ठीक से सहयोग कर रहा था, अतः उसे पीएमएलए की धारा 19 के अंतर्गत जांच के दौरान ईडी द्वारा गिरफ्तार नहीं किया गया था।

10. ईसीआईआर के पंजीकरण के 10 वर्ष से अधिक समय के पश्चात, ईडी ने दिनांक05.12.2022 को पीएमएलए की धारा 45 के साथ पठित धारा 44 के अंतर्गत अभियोजन शिकायत दर्ज की, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ वर्तमान प्रार्थी तथा जेपीएल को अभियुक्त सं० 3 एवं 4 बनाया गया। विशेष न्यायाधीश, पीएमएलए ने दिनांक17.12.2022 को अभियोजन की शिकायत पर संज्ञान लिया एवं प्रार्थी को दिनांक10.01.2023 को उपस्थित होने हेतु दिनांक22.12.2022 को समन जारी किया, यद्यपि प्रार्थी पर समन की मात्र आन्वयिक तामील की गई। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने कहा है कि प्रार्थी अथवा जेपीएल की कोई भी संपत्ति ई.डी. द्वारा कुर्क नहीं की गई है।

11. दिनांक 22.12.2022 को प्रार्थी के विरुद्ध समन जारी किया गया है। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने कहा है कि प्रार्थी को जारी किए गए उपरोक्त समन में ईडी द्वारा प्रस्तुत अभियोजन शिकायत की प्रति, बयानों की प्रति तथा शिकायत के प्रासंगिक दस्तावेज शामिल नहीं थे, जो दं०प्र०सं० की धारा 204 (3) एवं 208 का स्पष्ट उल्लंघन है। सुविधा हेतु दं०प्र०सं० की धारा 204 (3) एवं 208 को निम्नवत पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है: -

> ***"204. (3)*** *लिखित परिवाद पर संस्थित कार्यवाही में उपधारा (1) के अधीन जारी किए गए प्रत्येक समन या वारंट के साथ उस परिवाद की एक प्रतिलिपि होगी ।*
>
> ***208. सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय अन्य मामलों में अभियुक्त को कथनों और दस्तावेजों की प्रतिलिपियां देना-****जहां पुलिस रिपोर्ट से भिन्न आधार पर संस्थित किसी मामले में, धारा 204 के अधीन आदेशिका जारी करने वाले मजिस्ट्रेट को यह प्रतीत होता है कि अपराध अनन्यतः सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय है, वहां मजिस्ट्रेट निम्नलिखित में से प्रत्येक की एक प्रतिलिपि अभियुक्त को अविलंब निःशुल्क देगा :-*
>
> *(i) उन सभी व्यक्तियों के, जिनकी मजिस्ट्रेट द्वारा परीक्षा की जा चुकी है,*

धारा 200 या धारा 202 के अधीन लेखबद्ध किए गए कथन ;

(ii) धारा 161 या धारा 164 के अधीन लेखबद्ध किए गए कथन, और संस्वीकृतियां, यदि कोई हों;

(iii) मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश की गई कोई दस्तावेजें, जिन पर निर्भर रहने का अभियोजन का विचार है :

परंतु यदि मजिस्ट्रेट का समाधान हो जाता है कि ऐसी कोई दस्तावेज विशालकाय है, तो वह अभियुक्त को उसकी प्रतिलिपि देने के बजाय यह निदेश देगा कि उसे स्वयं या प्लीडर द्वारा न्यायालय में उसका निरीक्षण ही करने दिया जाएगा ।

12. इस आशय का विशिष्ट विवरण जमानत आवेदन के प्रस्तर-8 (xxix) में दिया गया है।

13. श्री माथुर ने कहा है कि उपरोक्त तथ्य को उसके प्रस्तर-37 में प्रतिशपथपत्र में स्वीकार किया गया है, जो दर्शाता है कि जब कार्यवाही चल रही थी, तब अभियुक्त अथवा उसके अधिवक्ता ने कभी भी प्रतियां नहीं मांगी, यद्यपि प्रवर्तन निदेशालय हमेशा अभियुक्त-आवेदक को दस्तावेजों की प्रतियां उपलब्ध कराने हेतु तैयार है तथा उन प्रतियों को प्रवर्तन निदेशालय के कार्यालय से एकत्र किया जा सकता है। श्री माथुर के अनुसार, प्रार्थी को समन नहीं दिए जाने के बावजूद, उसे तिथि पता चल गई, अतः वह दिनांक 10.01.2023 को विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुआ जहां उसे हिरासत में ले लिया गया। स्वीकृत रूप से प्रार्थी अथवा उसके अधिवक्ता को शिकायत एवं अन्य प्रासंगिक दस्तावेजों की प्रतियां उपलब्ध नहीं कराई गई हैं। उसी तिथि को प्रार्थी की ओर से जमानत हेतु प्रार्थनापत्र प्रस्तुत किया गया था; उस पर, प्रवर्तन निदेशालय के विद्वान अधिवक्ता ने आपत्ति दर्ज करने हेतु समय की मांग की, अतः प्रार्थी ने यह बताते हुए अंतरिम जमानत मांगी कि वर्तमान प्रार्थी को धन शोधन निवारण अधिनियम की धारा 19 के अंतर्गत प्रवर्तन निदेशालय द्वारा गिरफ्तार नहीं किया गया है, उसने जांच में सहयोग किया है एवं कभी भी विधि की प्रक्रिया का उल्लंघन नहीं किया है, अतः वह सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **सतेन्द्र कुमार अंतिल बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो एवं एक अन्य, (2022) 10 SCC 51** के निर्णय में पारित आदेश के आलोक में कार्यवाही में सहयोग करने का वचन देता है; उन्हें अंतरिम जमानत दी जाये। किंतु उनकी अंतरिम जमानत अर्जी दिनांक 10.01.2023 को विद्वान विचारण न्यायालय ने खारिज कर दी थी तथा दिनांक 18.01.2023 नियत करते हुए प्रार्थी को न्यायिक हिरासत में भेज दिया गया था। वर्तमान प्रार्थी की नियमित जमानत अर्जी को विद्वान विचारण न्यायालय ने दिनांक 24.01.2023 को यह कहते हुए खारिज कर दिया था कि धन शोधन निवारण अधिनियम की धारा 45 की दोहरी शर्तें अनिवार्य हैं तथा वे शर्तें पूरी नहीं होती हैं, अतः प्रार्थी जमानत का हकदार नहीं है।

14. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री जयदीप नारायण माथुर ने प्रस्तुत किया है कि सर्वोच्च न्यायालय ने **अमन प्रीत सिंह बनाम सीबीआई निदेशक द्वारा, 2021 SCC ऑनलाइन SC 941** में धारित किया है कि यदि अन्वेषण के

दौरान, अभियुक्त ने अन्वेषण में सहयोग किया है एवं अन्वेषण एजेंसी द्वारा उसे गिरफ्तार नहीं किया गया है, तब उसे मात्र इसलिये गिरफ्तार नहीं किया जाना चाहिए कि आरोप पत्र दायर कर दिया गया है। उसने उपरोक्त निर्णय के प्रस्तर 10, 11 एवं 12 का उल्लेख किया है, जो निम्नवत हैं: -

"10. उपरोक्त के अध्ययन से ज्ञात होता है कि दं०प्र०सं० की धारा 170 के अंतर्गत शक्तियों का प्रयोग करते समय यह एक मजिस्ट्रेट के लिए मार्गदर्शक सिद्धांत है। अभियुक्त पर मुकदमा चलाने हेतु अधिकृत मजिस्ट्रेट अथवा न्यायालय को तत्काल आरोप पत्र स्वीकार करना होगा तथा दं०प्र०सं० की धारा 173 के अंतर्गत प्रतिपादित प्रक्रिया के अनुसार कार्यवाही करनी होगा। यह उचित टिप्पणी की गई है कि ऐसे वाद में मजिस्ट्रेट अथवा न्यायलय को हमेशा समन आदेशिका जारी करने की आवश्यकता होती है, गिरफ्तारी का वारंट नहीं। यदि वह गिरफ्तारी के वारंट जारी करने के विवेक का प्रयोग करना चाहता है तब उसे दं०प्र०सं० की धारा 87 के अंतर्गत बताए गए कारणों को दर्ज करना आवश्यक है कि अभियुक्त या तो फरार है या उसने समन का पालन नहीं किया है या समन की उचित तामील के साक्ष्य के बावजूद उपस्थित होने से इनकार कर दिया है। वास्तव में उच्च न्यायालय द्वारा उपरोक्त उप- प्रस्तर (iii) में की गई टिप्पणियाँ एहतियात की प्रकृति में हैं।

11. जहां तक वर्तमान वाद का संबंध है तथा दं०प्र०सं० की धारा 170 के अंतर्गत सामान्य सिद्धांत हैं, सबसे सटीक टिप्पणियाँ एक गैर-जमानती अपराध के आरोपी के संदर्भ में उच्च न्यायालय के निर्णय के उप-प्रस्तर (v) में हैं जिसकी अन्वेषण की अवधि के दौरान हिरासत की आवश्यकता नहीं थी। ऐसे परिदृश्य में, यह उचित है कि अभियुक्त को जमानत पर रिहा कर दिया जाए क्योंकि अन्वेषण के दौरान उसे गिरफ्तार नहीं किए जाने अथवा हिरासत में पेश नहीं किए जाने की परिस्थितियां ही उसे जमानत पर रिहा करने के लिए पर्याप्त हैं। निर्णयाधार संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है कि यदि कोई व्यक्ति मुक्त किया गया है तथा कई वर्षों से स्वतंत्र है तथा उसे अन्वेषण के दौरान कभी गिरफ्तार भी नहीं किया गया है तब अचानक उसकी गिरफ्तारी का निर्देश देना एवं मात्र इसलिए जेल में डाल देना क्योंकि आरोप पत्र दाखिल हो चुका है, यह जमानत देने के नियंत्रक सिद्धांतों के विपरीत होगा। हम इससे अधिक सहमत नहीं हैं।

12. हम कह सकतें हैं कि इसमें उपरोक्त टिप्पणी सिद्धार्थ बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2021 SCC ऑनलाइन SC 615 में की गई हमारी टिप्पणियों की पूरक होगी तथा इसे उस निर्णय के साथ पढ़ा जाना चाहिए।

15. श्री माथुर ने **सतेंद्र कुमार अंतिल** (उपरोक्त) प्रस्तर-2के संदर्भ में इस न्यायालय का ध्यान

सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय की ओर आकर्षित किया है; जहां निर्णय प्रस्तर-2 को लागू करने हेतु तीन श्रेणियाँ इंगित की गई हैं जो कि निम्नवत है:-

"2. हस्तक्षेप हेतु प्रार्थना पत्र की अनुमति देने के पश्चात, दिनांक7-10-2021 [सतेंदर कुमार अंतिल बनाम सीबीआई, (2021) 10 SCC 773: (2022) 1 SCC (Cri) 153] को एक उचित आदेश पारित किया गया था। इसे निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया गया है: (सतेंदर कुमार अंतिल मामला [सतेंदर कुमार अंतिल बनाम सीबीआई, (2021) 10 SCC 773: (2022) 1 SCC (Cri) 153], SCC pp 774-76, प्रस्तर 2-11)

"2. हमें दोनों विद्वान अपर सॉलिसिटर जनरल श्री एसवी राजू एवं विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री सिद्धार्थ लूथरा, के द्वारा सहायता प्रदान की गई है एवं विद्वान अपर सॉलिसिटर जनरल द्वारा दिए गए सुझावों के संदर्भ में व्यापक सर्वसम्मति है। सुझावों के संदर्भ में, अपराध वर्गीकृत किया गया है एवं संबंधित न्यायालयों के विवेक को बाधित किए बिना एवं वैधानिक प्रावधानों के दृष्टिगत जमानत देने हेतु दिशानिर्देश प्रतिपादित करने की मांग की गई है।

3. हम दिशानिर्देशों को स्वीकार करने एवं विचारण न्यायालयों के लाभ हेतु उन्हें न्यायालय के आदेश का हिस्सा बनाने के इच्छुक हैं। दिशानिर्देश निम्नवत हैं:

"श्रेणियों/अपराधों के प्रकार

(ए) 7 वर्ष अथवा उससे कम कारावास की सजा वाले अपराध श्रेणी बी एवं डी में नहीं आते हैं।

(बी) ऐसे अपराध जिनमें मृत्युदंड, आजीवन कारावास अथवा 7 वर्ष से अधिक कारावास की सजा हो सकती है।

(सी) NDPS (धारा 37), PMLA (धारा 45), UAPA [धारा 43-डी(5)], कंपनी अधिनियम, [धारा 212(6)], आदि जैसे जमानत हेतु सक्त प्रावधानों वाले विशेष अधिनियमों के अंतर्गत दंडनीय अपराध है।

(डी) आर्थिक अपराध विशेष अधिनियमों के अंतर्गत नहीं आते हैं।

अपेक्षित शर्तें

(1) जांच के दौरान गिरफ्तार नहीं किया जाना।

(2) जब भी बुलाया गया तब अन्वेषण अधिकारी के समक्ष उपस्थित होकर पूर्ण जांच में सहयोग किया।

(सिद्धार्थ बनाम उ०प्र० राज्य [सिद्धार्थ बनाम उ०प्र० राज्य, (2022) 1 SCC 676: (2022) 1 SCC (Cri) 423])(ऐसे अभियुक्त को आरोप पत्र के साथ अग्रेषित करने की आवश्यकता नहीं है।

***श्रेणी ए** आरोप-पत्र दाखिल करने/शिकायत का संज्ञान लेने के पश्चात*

(ए) पहली बार में साधारण समन/अधिवक्ता के द्वारा अनुमति सहित उपस्थिति।

(बी) यदि ऐसा कोई अभियुक्त समन की तामील के बावजूद उपस्थित नहीं होता है तब शारीरिक उपस्थिति हेतु जमानती वारंट जारी किया जा सकता है।

(सी) जमानती वारंट जारी होने के बावजूद उपस्थित न होने पर गैर जमानती वारंट।

(डी) गैर जमानती वारंट को रद्द किया जा सकेगा अथवा अभियुक्त की शारीरिक उपस्थिति पर बल दिए बिना जमानती वारंट/समन में परिवर्तित किया जा सकेगा, यदि गैर जमानती वारंट के निष्पादन से पूर्व अभियुक्त की ओर से ऐसा आवेदन प्रस्तुत किया जाता है तब अभियुक्त को सुनवाई की अगली तिथि पर शारीरिक रूप से उपस्थित होने का वचन देना होगा।

(ई) अभियुक्त को शारीरिक हिरासत में लिए बिना अथवा जमानत याचिका पर निर्णय होने तक अंतरिम जमानत देकर, ऐसे अभियुक्त की जमानत याचिका पर निर्णय लिया जाये।

श्रेणियां बी/डी

प्रक्रिया के अनुसार न्यायालय में अभियुक्त की उपस्थिति पर जमानत याचिका पर गुण-दोष के आधार पर निर्णय लिया जाएगा।

श्रेणी सी

NDPS की(धारा 37), PMLA की धारा 45, कंपनी अधिनियम की धारा 212(6), UAPA, POSCO की धारा 43-डी(5)आदि, के अंतर्गत जमानत के प्रावधानों के अनुपालन की अतिरिक्त शर्त के साथ श्रेणी बी एवं डी के समान है।

4. यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि श्रेणी ए पुलिस मामलों एवं शिकायत मामलों दोनों से संबंधित है।

5. विचारण न्यायालय एवं उच्च न्यायालय जमानत याचिकाओं पर विचार करते समय उपरोक्त दिशानिर्देशों को ध्यान में रखेंगे। विद्वान अपर सॉलिसिटर जनरल द्वारा जो चेतावनी दी गई कि जहां अभियुक्त ने जांच में सहयोग नहीं किया है, न ही अन्वेषण अधिकारियों के समक्ष प्रस्तुत हुए हैं, न ही समन का उत्तर दिया है, जब न्यायालय को प्रतीत होता है कि वाद को पूर्ण करने हेतु अभियुक्त की न्यायिक हिरासत आवश्यक है जहां संभावित पुनर्प्राप्ति सहित आगे की जांच की आवश्यकता है, उपरोक्त दृष्टिकोण उन्हें लाभ नहीं दे सकता है, जिससे हम सहमत हैं।

6. हम श्री लूथरा द्वारा प्रस्तुत एक पहलू पर भी गौर कर सकते हैं कि जमानत पर विचार करने हेतु नोटिस जारी करते समय, विचारण न्यायालय को जांच के दौरान अभियुक्त के आचरण के दृष्टिगत अंतरिम जमानत देने से नहीं रोका जाता है जिसमें गिरफ्तारी की

आवश्यकता नहीं होती है। इस पहलू पर भी हम अपनी सहमति देंगे एवं स्वाभाविक रूप से जमानत याचिका पर अंततः विचार किया जाएगा, जो वैधानिक प्रावधानों द्वारा निर्देशित होगा।

7. विद्वान अपर सॉलिसिटर जनरल के सुझाव, जिन्हें हमने अपनाया है, ने अपराधों के एक विभिन्न समूह को "आर्थिक अपराध" के रूप में वर्गीकृत किया है जो विशेष अधिनियमों के अंतर्गत नहीं आते हैं। इस संबंध में, श्री लूथरा के तर्कों पर यह कहना पर्याप्त है कि यह न्यायालय संजय चंद्रा बनाम सीबीआई [संजय चंद्रा बनाम सीबीआई, (2012) 1 SCC 40: (2012) 1 SCC (Cri) 26: (2012) 2 SCC (L&S) 397] ने प्रस्तर 39 में टिप्पणी की है कि जमानत देने का निर्धारण करते समय दोनों पहलुओं को ध्यान में रखा जाये:

(ए) आरोप की गंभीरता एवं

(बी) सजा की गंभीरता।

अतः ऐसा नहीं है कि आर्थिक अपराधों को पूर्णतः उपरोक्त दिशानिर्देशों से बाहर कर दिया गया है अपितु अपराधों की एक भिन्न प्रकृति बनती है, अतः आरोप की गंभीरता को ध्यान में रखना होगा किंतु साथ ही, विधि द्वारा लगाए गए दंड की गंभीरता भी एक कारक होगी।

8. हम विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई सहायता एवं विद्वान अपर सॉलिसिटर जनरल द्वारा अपनाए गए सकारात्मक दृष्टिकोण की सराहना करते हैं।

9. विशेष अनुमति याचिका का निपटारा हो गया है एवं मामले को आगे सूचीबद्ध करने की आवश्यकता नहीं है।

10. इस आदेश की एक प्रति विभिन्न उच्च न्यायालयों के निबंधकों को प्रदान की जाए ताकि आगे विचारण न्यायालयों में प्रदान की जा सके ताकि अनावश्यक जमानत के मामले इस न्यायालय में न आएं।

11. यही एकमात्र उद्देश्य है जिस हेतु हमने ये दिशानिर्देश जारी किए हैं, किंतु वे न्यायालयों की शक्तियों पर बाध्य नहीं हैं।"

16. श्री माथुर ने कहा है कि वर्तमान वाद श्रेणी 'सी' से संबंधित है, जो कि निर्णय के प्रस्तर-86 में निपटाया गया है, जो निम्नवत है: -

"विशेष अधिनियम (श्रेणी सी)

86. अब हम श्रेणी सी पर आएंगे। हम व्यक्तिगत अधिनियमों से निपटना नहीं चाहते हैं क्योंकि प्रत्येक विशेष अधिनियम के पीछे एक उद्देश्य होता है, जिसके बाद कठोर शर्तें लगाई गई है। विलंब को नियंत्रित करने वाला सामान्य सिद्धांत इन श्रेणियों पर भी लागू होगा। स्पष्ट करने हेतु, संहिता की धारा 436-ए में निहित प्रावधान किसी विशिष्ट प्रावधान के अभाव में विशेष

अधिनियमों पर भी लागू होंगे। उदाहरणतः NDPS अधिनियम की धारा 37 के अंतर्गत प्रदान की गई सख्ती ऐसे वाद में आड़े नहीं आएगी क्योंकि हम किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता पर विचार कर रहें हैं। हमारा मानना है कि जितनी अधिक सख्ती होगी, निर्णय उतना ही जल्दी होगा। आख़िरकार, इस प्रकार के वादों में गवाहों की संख्या बहुत कम होगी एवं मुकदमे को लम्बा खींचने का कोई औचित्य नहीं होगा। संभवतः प्रक्रिया में तेजी लाने हेतु इस न्यायालय के निर्देशों का अनुपालन करने की आवश्यकता है तथा संहिता की धारा 309 का सख्ती से अनुपालन करने की भी आवश्यकता है।"

17. श्री माथुर ने इस न्यायालय का ध्यान **कटार सिंह बनाम प्रवर्तन निदेशालय विशेष अनुमति अपील याचिका (Crl) संख्या- 12635/ 2022** में शीर्ष न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 09.01.2023 के निर्णय एवं आदेश, की ओर भी आकर्षित किया है, जिसमें कहा गया है कि सर्वोच्च न्यायालय ने इस तथ्य पर विचार करते हुए उस अभियुक्त की स्वतंत्रता की रक्षा की, कि जांच एजेंसी ने जांच आरंभ होने पर PMLA की धारा 19 के अंतर्गत अभियुक्त को गिरफ्तार नहीं किया था। सुविधा हेतु, आदेश दिनांक 09.01.2023 निम्नवत् है: -

"दस्तावेजों/तथ्यों/संलग्नकों को प्रस्तुत करने से छूट एवं छूट हेतु आवेदन आधिकारिक अनुवाद प्रस्तुत करने की अनुमति है।

याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि याचिकाकर्ता पूर्व से ही अनुसूचित अपराध के संबंध में चार साल से अधिक समय तक पूर्व-विचारण हिरासत का सामना कर चुके हैं, जांच एजेंसी ने जांच आरंभ होने पर धारा 19 पीएमएलए के अंतर्गत याचिकाकर्ताओं को गिरफ्तार नहीं किया था, जब जांच आरंभ हुई, तो ज्ञात हुआ कि वे क्रमशः लगभग 66,70, 68 एवं 67 वर्ष की आयु के वरिष्ठ नागरिक हैं एवं SLP (Crl) संख्या 12635/2022 एवं 12615/2022 में याचिकाकर्ताओं की संपत्ति भी रुपये 8,00,000/- एवं 5,50,000/- की कुर्क की गई है एवं SLP (Crl) संख्या 12646/2022 तथा 12919/2022 में याचिकाकर्ताओं ने संबंधित मामलों में रुपये 11,88,000/- तथा 50,00,000/- की कथित राशि जमा की है।आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि दोषसिद्धि के वाद में कारावास की कुल अवधि मात्र सात वर्ष है तथा PMLA की धारा 45 लागू नहीं होगी क्योंकि यह पूर्व-संशोधन है।

नोटिस जारी करें।

इस मध्य, याचिकाकर्ताओं को गिरफ्तार नहीं किया जाएगा, किंतु वे आगे की जांच में सहयोग करना जारी रखेंगे।"

18. श्री माथुर ने **राणा कपूर बनाम प्रवर्तन निदेशालय, 2022 SCC ऑनलाइन Del 4065** वाद में दिल्ली उच्च न्यायालय के निर्णय का भी हवाला दिया है, यह प्रस्तुत करने हेतु लगभग समान तथ्यों एवं परिस्थितियों में, दिल्ली उच्च न्यायालय ने अभियुक्तगण व्यक्तियों को

जमानत दे दी है। निर्णयाधार प्रस्तर 33 तथा 34 में दर्शाया गया है, जो निम्नवत हैं: -

"33. प्रार्थी को सीबीआई द्वारा दर्ज आरसी सं॰ 2232021A0005 वाली प्र॰सू॰रि॰ में नहीं फंसाया गया था। प्रार्थी को प्रतिवादी/प्रवर्तन निदेशालय द्वारा प्रस्तुत वर्तमान आपराधिक शिकायत में फंसाया गया था एवं अभियुक्त सं॰- 2 के रूप में प्रस्तुत किया गया था। अन्वेषण अधिकारी ने प्रार्थी को जानबूझकर गिरफ्तार नहीं किया। प्रार्थी ने जांच में भाग लिया क्योंकि पीएमएलए की धारा 50 के अंतर्गत उसके तीन बयान दर्ज किए गए थे। प्रतिवादी ने यह भी आरोप नहीं लगाया कि आवेदक ने न तो जांच में भाग लिया और न ही सहयोग किया। संबंधित विशेष न्यायालय ने वर्तमान आपराधिक शिकायत पर संज्ञान लेने के पश्चात अभियुक्तगण व्यक्तियों को प्रार्थी सहित बुलाने का आदेश दिया। वर्तमान शिकायत दर्ज होने के पश्चात भी अन्वेषण अधिकारी ने प्रार्थी की हिरासत हेतु आवेदन नहीं किया। सह-अभियुक्त गौतम थापर को जांच के दौरान अन्वेषण अधिकारी द्वारा जानबूझकर गिरफ्तार किया गया था तथा विशेष न्यायालय एवं उच्च न्यायालय द्वारा जमानत देने से इनकार कर दिया गया था। ऐसे में प्रार्थी सह-अभियुक्त गौतम थापर से अलग पायदान पर खड़ा है। श्रीमान संजीव अग्रवाल, विशेष न्यायाधीश (पीसी अधिनियम) (सीबीआई)-02 राउज़ एवेन्यू जिला न्यायालय, नई दिल्ली, की न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 20.01.2022 के अंतर्गत जमानत आवेदन खारिज होने के कारण प्रार्थी को हिरासत में ले लिया गया। प्रार्थी मुख्य रूप से गुण-दोष के आधार पर जमानत नहीं मांग रहा है, अपितु सतिंदर कुमार अंतिल के फैसले के प्रस्तर संख्या- 65 में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणी के आधार पर एवं ऐसे आवेदक को धारा 45 पीएमएलए की कसौटी की आवश्यकता नहीं है। पीएमएलए की धारा 45 के अनुसार शर्तें लागू होंगी, यदि प्रार्थी ने जांच के दौरान गिरफ्तारी के पश्चात संहिता की धारा 439 के अंतर्गत अथवा जांच के दौरान अपनी गिरफ्तारी की आशंका हेतु संहिता की धारा 438 के अंतर्गत आवेदन प्रस्तुत किया हो।

जैसा कि प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत वर्तमान आपराधिक शिकायत में उल्लेख किया गया है कि प्रार्थी को अन्वेषण एजेंसी द्वारा अन्वेषण के दौरान गिरफ्तार नहीं किया गया था।

प्रार्थी के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा दिए गए इस तर्क में कानूनी बल है कि सतिंदर कुमार अंतिल वाद में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित टिप्पणियों/विधि प्रस्ताव के मद्देनजर प्रार्थी जमानत का हकदार है। संहिता की धारा 170 का यह आदेश नहीं है कि यदि अन्वेषण के दौरान अभियुक्त को हिरासत में नहीं लिया गया अथवा

गिरफ्तार नहीं किया गया तो समन आदेश के पश्चात न्यायालय में प्रस्तुत होने के बाद गिरफ्तार किया जा सकता है अथवा हिरासत में लिया जा सकता है, विशेषतः जब न तो अन्वेषण एजेंसी और न ही अभियोजन एजेंसी ने अभियुक्त की गिरफ्तारी की मांग की हो।

34. प्रतिवादी के विद्वान विशेष अधिवक्ता द्वारा दिये गये तर्क हैं कि प्रार्थी ने सतिंदर कुमार अंतिल के प्रस्तर संख्या 65 की गलत व्याख्या की है जो कि अनुपयुक्त है। प्रतिवादी के विद्वान विशेष अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्क में कोई दम नहीं है कि प्रार्थी को जमानत देने से पूर्व पीएमएलए की धारा 45 का परीक्षण उत्तीर्ण करना आवश्यक है। यदि अन्वेषण के दौरान प्रार्थी को गिरफ्तार कर लिया जाता तो स्थिति अलग होती। जैसा कि ऊपर बताया गया है कि अन्वेषण एजेंसी ने जानबूझकर अन्वेषण के दौरान अथवा आरोप पत्र प्रस्तुत करने के उपरांत प्रार्थी को गिरफ्तार नहीं किया। प्रतिवादी के विशेष अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों एवं निर्णय विधि पर दिए गए तथ्यों एवं परिस्थितियों के उचित परिप्रेक्ष्य में विचार किया जाता है, किंतु वे वर्तमान जमानत आवेदन का विरोध करने में प्रतिवादी को विधि की मदद नहीं देते हैं।"

19. अतः संक्षेप में कहें तो, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री माथुर ने प्रस्तुत किया है कि वर्तमान प्रार्थी को विधेय अपराध में जमानत देते समय, इस न्यायालय ने पाया कि प्रार्थी ने कभी भी विधि की प्रक्रिया का उल्लंघन नहीं किया है तथा जांच करने में पूर्णतः सहयोग किया है। रुपये 4.89 करोड़ की राशि जमा करने का निर्देश जारी किया गया था, जिसे प्रार्थी ने वर्ष 2015 में ही जमा कर दिया है। तब से, प्रार्थी प्रवर्तन निदेशालय द्वारा की जा रही जांच में सहयोग कर रहा है क्योंकि उसे पीएमएलए की धारा 50 के अंतर्गत अपना बयान दर्ज करने हेतु दो बार बुलाया गया है एवं वर्तमान प्रार्थी ने अपना बयान दर्ज करवा दिया है। प्रवर्तन निदेशालय ने पीएमएलए की धारा 19 के अंतर्गत प्रार्थी को गिरफ्तार नहीं किया क्योंकि जांच एजेंसी ने जांच के दौरान प्रार्थी को गिरफ्तार करना उचित नहीं समझा क्योंकि वह सहयोग कर रहा था। अभियोजन पक्ष की शिकायत दर्ज होने के उपरांत, विद्वान विचारण न्यायालय ने संज्ञान लिया एवं दं०प्र०सं० की धारा 204 (3) के अनिवार्य प्रावधानों का अनुपालन किए बिना प्रार्थी को समन जारी किया, क्योंकि शिकायत की प्रति न तो प्रार्थी को दी गई थी और न ही कोई प्रासंगिक दस्तावेज़ उपलब्ध कराये गयें हैं, यहां तक कि जब वर्तमान प्रार्थी दिनांक 10.01.2023 को विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुआ, तब अभियोजन शिकायत अथवा उसके सहायक दस्तावेजों में से कोई भी दस्तावेज उपलब्ध नहीं कराया गया। उपरोक्त ही नहीं, जब प्रार्थी विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुआ तब दं०प्र०सं० की धारा 208 के अनुपालन में प्रार्थी को बयानों एवं अन्य दस्तावेजों की प्रतियां भी प्रदान नहीं की गईं। वर्तमान प्रार्थी को **अमन प्रीत सिंह** (उपरोक्त) एवं **सतेंद्र कुमार अंतिल** (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के

आलोक में अंतरिम जमानत दी जा सकती थी; किंतु उनकी अंतरिम जमानत अर्जी खारिज कर दी गई है तथा उन्हें पूर्णतया अवैध एवं अनुचित रीति से न्यायिक हिरासत में भेज दिया गया है। अतः उनकी जमानत अर्जी यह कहते हुए खारिज कर दी गई कि पीएमएलए की धारा 45 की दोनों शर्तें पूरी नहीं हो रही हैं, प्रासंगिक पहलू पर विचार किए बिना कि अन्वेषण एजेंसी ने कभी भी प्रार्थी को पीएमएलए की धारा 19 के अंतर्गत गिरफ्तार नहीं किया है और न ही दिनांक 10.01.2023 को जब प्रार्थी विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुआ था तब भी विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष कोई अनुरोध नहीं किया गया था। अतः श्री माथुर के अनुसार, ऐसी परिस्थितियों में, वर्तमान वाद में पीएमएलए की धारा 45 के प्रावधान लागू नहीं होगें। वर्तमान प्रार्थी वचन देता है कि वह विचारण की कार्यवाही में सहयोग करेगा तथा जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं करेगा और यदि वह जमानत पर है तो जमानत आदेश के सभी नियमों एवं शर्तों का पालन करेगा।

20. इसके विपरीत, प्रवर्तन निदेशालय के विद्वान अधिवक्ता श्री रोहित त्रिपाठी ने प्रस्तुत किया है कि धन शोधन के अपराध के अभियुक्त व्यक्ति को केवल तभी रिहा किया जा सकता है जब पीएमएलए की धारा 45 के अंतर्गत निर्धारित शर्तें पूरी हों अर्थात अभियोजन/ प्रवर्तन निदेशालय को अभियुक्त/ प्रार्थी की रिहाई/जमानत का विरोध करने हेतु एक अवसर दिया जाता है एवं यदि अभियुक्त को रिहा किया जाता है तब उचित कारण दर्ज करना होगा कि अभियुक्त ने धन शोधन का अपराध नहीं किया है। अपने पूर्वोक्त निवेदन के समर्थन में, उन्होंने **विजय मदनलाल चौधरी एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य, 2022 SCC ऑनलाइन SC 929,** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के प्रस्तर 398 तथा 399 पर भरोसा जताया है, जो निम्नवत है:-

> *"398 अतः यह इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों एवं राज्य की नीति के साथ अंतरराष्ट्रीय समुदाय के दृष्टिकोण से पूर्णतः व्यवस्थित है कि धन शोधन का अपराध एक व्यक्ति द्वारा जानबूझकर अपने लाभ को बढ़ाने के उद्देश्य से, राष्ट्र एवं समाज के हितों की अनदेखी करते हुए की जाती है जिसे किसी भी प्रकार से नगण्य प्रकृति का अपराध नहीं कहा जा सकता है। अतः यह राज्य के हित में कानून प्रवर्तन एजेंसियों को एक आनुपातिक प्रभावी तंत्र प्रदान किया जाना चाहिए ताकि इस प्रकार के अपराधों से निपटा जा सके क्योंकि राष्ट्र की संपति को इन खतरनाक अपराधियों से सुरक्षित रखा जाना है। जैसा कि उपरोक्त में, धन शोधन के षडयंत्र में जो त्रि-स्तरीय प्रक्रिया है, गुप्त रूप से रची जाती है तथा गुपचुप अंजाम दिया जाता है, इसलिए राज्य हेतु ऐसा सख्त कानून बनाना अनिवार्य हो जाता है, जो अपराधी को न केवल आनुपातिक रूप से दंडित करता है, अपितु अपराध को रोकने में भी मदद करता है एवं एक निवारक प्रभाव पैदा करता है।*
>
> *399. अधिनियम 2002 के वाद में, संसद को धन शोधन के अपराध को*

हमारे देश की संप्रभुता एवं अखंडता सहित वित्तीय प्रणालियों हेतु एक गंभीर खतरा मानने में कोई हिचक नहीं थी। अतः टिप्पणियाँ एवं विशेष रूप से निकेश ताराचंद शाह बनाम भारत संघ, (2018) 11 SCC 1 के प्रस्तर 47 में, उस संबंध में संसद की धारणा पर संदेह करने की प्रकृति है, जो कि न्यायिक समीक्षा के दायरे से परे है। यह विधि को स्पष्टतः स्वेच्छित घोषित करने का आधार नहीं हो सकता है।"

21. श्री त्रिपाठी ने **गौतम कुंडू बनाम प्रवर्तन निदेशालय (धन-शोधन निवारण अधिनियम), भारत सरकार, मनोज कुमार, सहायक निदेशक, पूर्वी क्षेत्र, (2015) 16 SCC 1** के द्वारा, सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के प्रस्तर 37 का भी हवाला दिया है;जो निम्नवत है: -

"37.हमारा इस तथ्य को छोड़कर अन्य तथ्यों पर विचार करने का इरादा नहीं है, माना जाता है कि अपीलकर्ता के विरुद्ध पीएमएलए की धारा 4 के अंतर्गत दंडनीय अपराध करने के आरोप में शिकायत दर्ज की गई थी। अपीलकर्ता की ओर से तर्क दिया गया कि अपीलकर्ता के खिलाफ SEBI अधिनियम की धारा 24 के तहत कोई अपराध नहीं बनता है जो कि पीएमएलए के अंतर्गत एक अनुसूचित अपराध है, जांच के दौरान एकत्र की गई सामग्री से विचार किया जायेगा एवं आगे सक्षम न्यायालय द्वारा विचार किया जायेगा। हम इस स्तर पर इस संबंध में खुद को व्यक्त करने का इरादा नहीं रखते हैं क्योंकि इससे अन्य कार्यवाही में पक्षकारों के वाद पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। हमें यकीन है कि इस स्तर पर यह उम्मीद नहीं की जाती है कि अभियुक्त का अपराध साक्ष्य के द्वारा उचित संदेह से परे स्थापित किया जाना है

हमने वाईएस जगन मोहन रेड्डी बनाम सीबीआई [वाईएस जगन मोहन रेड्डी बनाम सीबीआई, (2013) 7 SCC 439: (2013) 3 SCC (Cri) 552] में नोट किया है कि इस न्यायालय ने टिप्पणी की है कि: (SCC p 449, प्रस्तर 34)

"34.... गहरी साजिशों वाले एवं सार्वजनिक धन की भारी हानि वाले आर्थिक अपराधों को गंभीरता से लेने की जरूरत है एवं उन्हें गंभीर अपराध माना जाये जो संपूर्ण देश की अर्थव्यवस्था को प्रभावित कर रहे हैं तथा इससे देश के वित्तीय स्वास्थ्य हेतु गंभीर खतरा पैदा हो रहा है। ..."

22. जब श्री रोहित त्रिपाठी से पूछा गया कि क्या जांच एजेंसी ने जांच के दौरान प्रार्थी के विरुद्ध सामग्री, साक्ष्यों तथा आरोपों के आधार पर प्रार्थी को गिरफ्तार करने के बारे में कभी सोचा है? तब जांच के दौरान श्री त्रिपाठी ने स्पष्ट रूप से कहा कि जांच एजेंसी ने दिनांक 14.04.2012 को ECIR के अनुसार प्रार्थी को गिरफ्तार करने के

बारे में नहीं सोचा। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया है कि प्रार्थी को जांच में सहयोग करने एवं पीएमएलए की धारा 50 के अंतर्गत अपना बयान दर्ज करने हेतु समन जारी किया गया था तथा प्रार्थी को विधिवत दिनांक23.12.2016 एवं 10.06.2019 को ईडी के समक्ष पेश हुए, अतः श्री त्रिपाठी ने प्रस्तुत किया है कि वर्तमान प्रार्थी को पीएमएलए की धारा 19 के अंतर्गत गिरफ्तार नहीं किया गया है।

23. यह पूछे जाने पर कि प्रार्थी को दं०प्र०सं० की धारा 204 (3) एवं 208 के अनुपालन में शिकायत की प्रति, बयानों की प्रतियां तथा प्रासंगिक दस्तावेजों को क्यों नहीं उपलब्ध कराये गये हैं, श्री त्रिपाठी ने कहा है कि ऐसी प्रतियां प्रार्थी अथवा उसके अधिवक्ता द्वारा इसकी मांग नहीं की गई थी, इसलिए इसे उपलब्ध नहीं कराया गया।यद्यपि उन्होंने प्रस्तुत किया है कि इसे प्रार्थी अथवा उसके अधिवक्ता को उक्त दस्तावेजों को उपलब्ध किया जाएगा, किंतु वर्तमान समय में वह इस बात पर विवाद नहीं कर सकते कि दं०प्र०सं० की धारा 204 (3) एवं 208 का अनिवार्य अनुपालन नहीं किया गया है ।

24. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता को सुना एवं अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया।

25. आरंभ में पीएमएलए की धारा 45 पर विचार करना उचित होगा, जिसमें प्रावधान है कि जमानत देने से पूर्व, दोनों शर्तों को ध्यान से देखना होगा। वर्तमान वाद में, यह अभियोजन पक्ष का स्वीकृत वाद है कि दिनांक 14.04.2012 को ECIR दर्ज करने के पश्चात, ईडी ने पीएमएलए की धारा 19 के अंतर्गत वर्तमान प्रार्थी को गिरफ्तार करने की प्रयास नहीं किया गया है। वर्ष 2015 में अप्रत्यक्ष अपराध में जेल से वर्तमान प्रार्थी की रिहाई के पश्चात भी, वर्तमान प्रार्थी को दिनांक 23.12.2016 एवं 10.06.2019 को अपना बयान दर्ज करने हेतु पीएमएलए की धारा 50 के अंतर्गत ईडी द्वारा दो बार बुलाया गया था, जहां प्रार्थी उपस्थित हुआ तथा उनका बयान दर्ज किया परंतु ईडी ने पीएमएलए की धारा 19 के अंतर्गत प्रार्थी को गिरफ्तार नहीं किया है। अतः यह स्पष्ट है कि अन्वेषण में वर्तमान प्रार्थी के उचित सहयोग एवं उसके विरुद्ध साक्ष्य, सामग्री तथा आरोपों को देखते हुए, अन्वेषण अधिकारी ने प्रार्थी को पीएमएलए की धारा 19 के अंतर्गत गिरफ्तार करना उचित नहीं समझा। दूसरे शब्दों में, अन्वेषण के दौरान उनकी गिरफ्तारी की आवश्यकता नहीं थी। अभिलेखों से यह भी स्पष्ट है कि अन्वेषण में प्रार्थी के उचित सहयोग के पश्चात, ईडी द्वारा अभियोजन शिकायत प्रस्तुत की गई थी, जहां विद्वान विचारण न्यायालय ने संज्ञान लिया एवं प्रार्थी को समन जारी किया तथा प्रार्थी विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष अपनी दलील देते हुए प्रत्येक तथ्य एवं परिस्थितियों से अवगत कराते हुए जमानत की मांग की तथा वचन दिया कि वह विचारण की कार्यवाही में उसी प्रकार सहयोग करेगा जैसे उसने जांच में सहयोग किया है, परंतु ईडी के विद्वान अधिवक्ता के आपत्ति दर्ज करने के अनुरोध पर, जमानत याचिका स्थगित कर दी गई। ; तब प्रार्थी ने अपनी वास्तविकता के संबंध में अभिकथन प्रस्तुत करते हुए अंतरिम जमानत हेतु प्रार्थना की, किंतु **अमन प्रीत सिंह** (उपरोक्त) एवं **सतेंद्र कुमार अंतिल** (उपरोक्त) वादों में शीर्ष न्यायालय के आदेशों

पर विचार किए बिना प्रार्थी की अंतरिम जमानत अर्जी खारिज कर दी गई। यहां तक कि उनकी नियमित जमानत याचिका भी इसी आधार पर खारिज कर दी गई है कि पीएमएलए की धारा 45 की दोनों शर्तें पूरी नहीं हो रही हैं, जबकि वर्तमान वाद में, प्रार्थी को पीएमएलए की धारा 19 के अंतर्गत जांच एजेंसी द्वारा गिरफ्तार नहीं किया गया है एवं प्रवर्तन निदेशालय के अधिवक्ता को, विचारण न्यायालय द्वारा उचित रुप से सुना गया था, अतः पीएमएलए की धारा 45 की सख्ती से वर्तमान वाद में लागू नहीं किया गया।

26. पीएमएलए की धारा 44 के उप-खंड (2) में प्रावधान है कि इस धारा में शामिल किसी भी बात को दं०प्र०सं० की धारा 439 के अंतर्गत जमानत के संबंध में उच्च न्यायालय की विशेष शक्ति को प्रभावित करने वाला नहीं माना जाएगा। शीर्ष न्यायालय ने **विजय मदनलाल चौधरी** (उपरोक्त) में प्रस्तर 400 के अंतर्गत निम्नवत धारित किया है:-

> *"400. यह ध्यान देने योग्य है कि 2002 अधिनियम की धारा 45 के अंतर्गत प्रदान की गई जुड़वां शर्तें, यद्यपि अभियुक्त के जमानत देने के अधिकार को प्रतिबंधित करती हैं, किंतु यह नहीं कहा जा सकता है कि धारा 45 के अंतर्गत प्रदान की गई शर्तें जमानत देने पर पूर्ण प्रतिबंध लगाती हैं। विवेक न्यायालय में निहित है जो मनमाना या तर्कहीन नहीं है अपितु न्यायिक है, जो अधिनियम 2002 की धारा 45 के अंतर्गत प्रदान किए गए विधि के सिद्धांतों द्वारा निर्देशित है..."*

27. अन्वेषण एजेंसी द्वारा दं०प्र०सं० की धारा 204 (3) एवं 208 के अंतर्गत परिभाषित वर्तमान प्रार्थी के वैधानिक अधिकारों का उल्लंघन किया गया है, क्योंकि उन्हें शिकायत की प्रति, बयानों की प्रति एवं अन्य प्रासंगिक दस्तावेज उपलब्ध नहीं कराए गए हैं।

28. सर्वोच्च न्यायालय ने **अमन प्रीत सिंह** (उपरोक्त) एवं **सतेंद्र कुमार अंतिल** (उपरोक्त) में स्पष्टतः कहा है कि प्रत्येक वाद में किसी भी व्यक्ति की गिरफ्तारी अनिवार्य नहीं है, किंतु किसी आरोपी व्यक्ति की स्वतंत्रता को कम करने से पूर्व, प्रासंगिक तथ्यों तथा परिस्थितियों की कल्पना की जाये। वर्तमान वाद में प्रथमदृष्टया, समन जारी होने के पश्चात विचारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत होने पर प्रार्थी को हिरासत में लेने की कोई आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि उसने कभी भी विधि की प्रक्रिया का उल्लंघन नहीं किया तथा पूरी जांच में सहयोग किया। अन्वेषण एजेंसी ने उन्हें पीएमएलए की धारा 19 के अंतर्गत गिरफ्तार करने के बारे में कभी नहीं सोचा, जबकि वह पीएमएलए की धारा 50 के अंतर्गत जारी किए गए समन के अंतर्गत दो बार अपना बयान दर्ज कराने हेतु प्रवर्तन निदेशालय के समक्ष प्रस्तुत हुए थे तथा विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष प्रवर्तन निदेशालय का कोई अनुरोध नहीं था कि वर्तमान प्रार्थी की गिरफ्तारी आवश्यक है। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने **अमन प्रीत सिंह** (उपरोक्त) एवं **सतेंद्र कुमार अंतिल** (उपरोक्त) के संदर्भ में शीर्ष न्यायालय के विधि के निर्धारित प्रस्ताव का पालन किए बिना वर्तमान प्रार्थी को हिरासत ले ली है।

29. अतः उपरोक्त के दृष्टिगत जमानत प्रार्थनापत्र स्वीकार किया जाता है।

30. प्रार्थी-गोविंद प्रकाश पांडे को निम्नवत शर्तों के साथ संबंधित विचारण न्यायालय के समक्ष व्यक्तिगत बंधपत्र तथा रुपये1,00,000/- के दो प्रतिभू प्रस्तुत करने पर उपरोक्त अपराध मामले में जमानत पर रिहा किया जाता है:-

(I) प्रार्थी को इस आशय का एक वचन पत्र दाखिल करना होगा कि जब साक्षी न्यायालय में उपस्थित हों तब वह साक्ष्य हेतु निर्धारित तिथियों पर किसी भी स्थगन की मांग नहीं करेगा। इस शर्त में चूक होने की स्थिति में, विचारण न्यायालय इसे जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग मानेगा एवं विधि के अनुसार आदेश पारित करेगा।

(ii) प्रार्थी व्यक्तिगत रूप से अथवा अपने अधिवक्ता के द्वारा, प्रत्येक निर्धारित तिथि पर विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित रहेगा। बिना पर्याप्त कारण के उसकी अनुपस्थिति की स्थिति में, विचारण न्यायालय भारतीय दंड संहिता की धारा 229-ए के अंतर्गत उसके खिलाफ कार्रवाई कर सकता है।

(iii) यदि विचारण के दौरान प्रार्थी जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग करता है तथा अपनी उपस्थिति सुनिश्चित करने हेतु दं०प्र०सं० की धारा 82 के अंतर्गत उद्घोषणा जारी की जाती है तथा प्रार्थी ऐसी उद्घोषणा में निर्धारित तिथि पर न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने में विफल रहता है, तब भारतीय दंड संहिता की धारा 174-ए के अंतर्गत विचारण न्यायालय उसके खिलाफ विधि के अनुसार कार्यवाही आरंभ करेगा।

(iv) प्रार्थी को (i) वाद प्रारम्भ (ii) आरोप निर्धारित करने एवं (iii) दं०प्र०सं० की धारा 313 के अंतर्गत बयान दर्ज करने हेतु निर्धारित तिथियों पर विचारण न्यायालय के समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित रहना होगा। यदि विचारण न्यायालय के मत में प्रार्थी की अनुपस्थिति जानबूझकर अथवा बिना पर्याप्त कारण के है, तब विचारण न्यायालय स्वतंत्र होगा कि वह इस प्रकार की चूक को जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग माने तथा उसके खिलाफ विधि के अनुसार आगे बढ़े।

(v) प्रार्थी न्यायालय की पूर्व अनुमति के बिना भारत नहीं छोड़ेगा।

31. समापन से पूर्व, यह स्पष्ट किया जाता है कि मैंने मुद्दे के गुण-दोषों में प्रवेश नहीं किया है, अतः विद्वान विचारण न्यायालय इस आदेश के किसी भी टिप्पणी अथवा निष्कर्ष से प्रभावित हुए बिना विचारण का संचालन एवं समापन करेगा क्योंकि टिप्पणियाँ मात्र इस जमानत प्रार्थना पत्र के निस्तारण तक ही सीमित हैं।

(2023) 3 ILRA 572

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक वाद

दिनांक: इलाहाबाद 28.02.2023

माननीय न्यायमूर्ति दिनेश कुमार सिंह के समक्ष

आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या 4602/2023

और

आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या 4605/2023

रमाकांत यादव ...**आवेदक**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...**प्रतिपक्षी**

आवेदक के अधिवक्ता: श्री सौम्या चतुर्वेदी, श्री गोपाल एस. चतुर्वेदी (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: जी.ए., श्री महेश चंद्र चतुर्वेदी (ए.ए.जी.)

ए. आपराधिक कानून - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 439 - भारतीय दंड संहिता, 1860- धाराएँ 272, 273, 34, 420, 467, 468, 471 - उत्पाद शुल्क अधिनियम-धारा 60-ए - नौ निर्दोष लोग जहरीली शराब पीने से मारे गए, जो आरोपी आवेदक के नियंत्रण में कथित तौर पर खरीदी गई थी-आरोपी का 48 आपराधिक इतिहास है- सह-आरोपी को जमानत मिल गई है- लेकिन नौ लोग आरोपी के लालच और अमानवीयता के कारण मरे- ऐसे अपराधियों ने ऐसे अपराध करके धन जमा किया है- इसीलिए, आवेदक को जमानत पर रिहा नहीं किया जा सकता। (पैराग्राफ 1 से 19)

जमानत याचिका निरस्त की जाती है। (ई-6)

<u>माननीय न्यायमूर्ति दिनेश कुमार सिंह</u>

1. श्री गोपाल एस. चतुर्वेदी, वरिष्ठ अधिवक्ता, जिनको आरोपी आवेदक का प्रतिनिधित्व करने वाली अधिवक्ता सुश्री सौम्या चतुर्वेदी द्वारा सहायता प्रदान की गई, और श्री महेश चंद्र चतुर्वेदी, वरिष्ठ महाधिवक्ता/अतिरिक्त महाधिवक्ता, डब्ल्यू.एच.ओ. को श्री संजय सिंह, अतिरिक्त सरकारी अधिवक्ता, द्वारा सहायता प्रदान की गई, जो प्रतिवादी - राज्य का प्रतिनिधित्व कर रहे थे, को सुना।

2. धारा 439 द०प्र०स० के तहत ये दो जमानत याचिकाएं निम्नलिखित मामलों में जमानत मांगती हैं: -

"i) धारा 60A आबकारी अधिनियम के साथ धारा 272, 273 और 34 भ०द०वि० के तहत अपराध/प्राथमिकी संख्या--060 वर्ष 2022, थाना-फूलपुर, जिला: आजमगढ़ में दर्ज की गई; और

ii. धारा 272, 273, 34, 420, 467, 468, 471 भ०द०वि० और 60-ए आबकारी अधिनियम के तहत अपराध/प्राथमिकी संख्या-039 वर्ष 2022 थाना-अहरौला, जिला: आजमगढ़ में दर्ज की गई।

3. प्राथमिकी पीड़ितों के परिवार द्वारा दर्ज की गई, जिनकी सह-अभियुक्त, रंगेश यादव, एक लाइसेंसधारी, जो आरोपी-आवेदक की बहन का पोता है, उसके करीबी रिश्तेदार की शराब की दुकान से कथित तौर पर खरीदी गई देशी शराब का सेवन करने के बाद मर गई थी। सह आरोपी रंगेश यादव जिला जौनपुर का रहने वाला है, लेकिन उसे जिला: आजमगढ़ के टाउन माहुल में देशी शराब की दुकान का लाइसेंस जारी किया गया है। यह आरोप लगाया गया है कि यद्यपि लाइसेंसधारी सह-अभियुक्त रंगेश यादव है, लेकिन दुकान का वास्तविक नियंत्रण वर्तमान आरोपी-आवेदक के पास है।

4. आरोप है कि सह-आरोपी रंगेश यादव के नाम पर लाइसेंसी दुकान से खरीदी गई जहरीली शराब पीने से नौ लोगों की मौत हो गई थी। प्राथमिकी में यह भी आरोप लगाया गया है कि सह-आरोपी रंगेश यादव अन्य आरोपियों सूर्यभान, पुनीत कुमार यादव, रामभोज और अशोक यादव के साथ लाइसेंसी दुकान से नकली देशी शराब बना रहे थे और बेच रहे थे, जिसके परिणामस्वरूप नौ लोगों की मौत हो गई है। आरोपी-आवेदक के नियंत्रण में कथित रूप से दुकान से खरीदी गई शराब पीने के बाद मरने वाले मृतक के विसरा की फोरेंसिक जांच में मिथाइल अल्कोहल/एथिल अल्कोहल जहरीला पदार्थ पाया गया। जमानत अर्जियों के साथ विसरा की रिपोर्ट भी रिकॉर्ड में रखी गई है।

5. जांच के दौरान अपराध के मामले में आरोपी-आवेदक का नाम प्रकाश में आया है, हालांकि, शुरू में प्राथमिकी में उसका नाम नहीं था।

6. जांच पूरी करने के बाद आरोपी-आवेदक और सह-आरोपी के खिलाफ आबकारी अधिनियम की धारा 60-ए सपठित धारा 272, 273, 34, 420, 467, 468 और 471 भ०द०वि० के तहत आरोप पत्र दायर किया गया है। यहां यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि उत्तर प्रदेश संशोधन के अनुसार धारा 272 भ०द०वि० के तहत अपराध में आजीवन कारावास तक का प्रावधान है।

7. आरोपी-आवेदक आजमगढ़ संसदीय क्षेत्र से चार बार सांसद रहा था और फूलपुर-पवई विधान सभा क्षेत्र से पांच बार विधान सभा सदस्य के रूप में चुना गया था। वर्तमान में भी, वह उत्तर प्रदेश विधान सभा में उक्त निर्वाचन क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करते हैं।

8. आरोपी-आवेदक एक और बाहुबली है, जो पूर्वी उत्तर प्रदेश का एक खूंखार अपराधी और माफिया डॉन है, जहां बाहुबली और माफिया संस्कृति प्रचलित है। उत्तर प्रदेश का यह हिस्सा बिहार से सटा हुआ है और कुछ हद तक राजनीतिक विमर्श और संस्कृति बिहार जैसी ही है। इन माफियाओं ने अपराधों की आय से अंधाधुंध धन और संपत्ति जमा की है। उन्हें राज्य के सत्तारूढ़ अभिजात वर्ग का संरक्षण और कानून से संरक्षण प्राप्त है। अपराध की दुनिया में प्रवेश करने के बाद ये माफिया, डॉन और अपराधी गरीबों, कानून का पालन करने वाले नागरिकों पर प्रभाव, आतंक और भय का प्रयोग कर रहे हैं और हजारों करोड़ रुपये की जबरन / अवैध संपत्ति अर्जित कर चुके हैं। सैकड़ों जघन्य अपराध करने के बावजूद वे छूट जाने में सफल रहे हैं। वे निर्वाचित भी हो जाते हैं और विधि-निर्माता भी बन जाते हैं। यह भारतीय लोकतांत्रिक नीति पर कलंक है।

9. अभियुक्त-आवेदक के आपराधिक इतिहास से पता चलता है कि वह 48 अन्य आपराधिक मामलों और जघन्य अपराधों में शामिल रहा है, जिसमें हत्या के आठ मामले शामिल होंगे, धारा 302 भ०द०वि० के तहत दर्ज हत्या के मामलों के अलावा, मामलों में धारा 307, 364 और 376 भ०द०वि०, गैंगस्टर अधिनियम, अधिनियम और एस.सी./एस.टी. अधिनियम आदि के तहत अपराध शामिल हैं। अभियुक्त-आवेदक की ऐसी समृद्ध आपराधिक पृष्ठभूमि, जिसे जमानत आवेदन के अनुलग्नक -11 के माध्यम से रिकॉर्ड पर रखा गया है, यहां नीचे उद्धृत किया गया है: -

"i. अपराध/प्राथमिकी संख्या-043 वर्ष 1977, थाना-दीदारगंज, आजमगढ़;

ii. अपराध/प्राथमिकी संख्या-049 वर्ष 1983, थाना-दीदारगंज, आजमगढ़;

iii. अपराध/प्राथमिकी संख्या-94-ए वर्ष 1983, थाना-दीदारगंज, आजमगढ़;

iv. अपराध/प्राथमिकी संख्या-0111 वर्ष 1983, थाना-फूलपुर, आजमगढ़;

v. अपराध/प्राथमिकी संख्या-0200 वर्ष 1983, थाना-फूलपुर, आजमगढ़;

vi. अपराध/प्राथमिकी संख्या-074 वर्ष 1985, थाना-शाहगंज, जौनपुर;

vii. अपराध/प्राथमिकी संख्या-062 वर्ष 1986, थाना-दीदारगंज, आजमगढ़;

viii. अपराध/प्राथमिकी संख्या-094 वर्ष 1986, थाना-फूलपुर, आजमगढ़;

ix. एन.सी.आर. नंबर 075 वर्ष 1983, थाना-दीदारगंज, आजमगढ़;

10. एन.सी.आर. नंबर 0118 वर्ष 1984, थाना-दीदारगंज, आजमगढ़;

11. एन.सी.आर. नंबर 0123 वर्ष 1984, थाना-दीदारगंज, आजमगढ़;

12. एन.सी.आर. नंबर 0104/1985, थाना-दीदारगंज, आजमगढ़;

13. 1985 का एन.सी.आर. नंबर 0105, थाना-दीदारगंज, आजमगढ़;

14. 1985 का एन.सी.आर. नंबर 0188, थाना-दीदारगंज, आजमगढ़;

15. 1986 का एन.सी.आर. नंबर 0168, थाना-दीदारगंज, आजमगढ़;

16. 1987 का एन.सी.आर. नंबर 028, थाना-दीदारगंज, आजमगढ़;

17. 1987 की प्राथमिकी/प्राथमिकी/083, थाना-अहरौला; आजमगढ़;

18. 1987 का अपराध/प्राथमिकी संख्या-087, थाना-अहरौला, आजमगढ़;

19. 1987 का अपराध/प्राथमिकी संख्या-099, थाना-शाहगंज, आजमगढ़;

20. 1990 का अपराध/प्राथमिकी संख्या-36, थाना-शाहगंज, आजमगढ़;

21. 1991 का अपराध/प्राथमिकी संख्या-0108, थाना-दीदारगंज, आजमगढ़;

22. 1993 का अपराध/प्राथमिकी संख्या-06, थाना-दीदारगंज, आजमगढ़;

23. 1995 का अपराध/प्राथमिकी संख्या-0425, थाना हजरतगंज, लखनऊ;

24. 1995 का अपराध/प्राथमिकी संख्या-062, थाना-फूलपुर, आजमगढ़;

25. 1997 की प्राथमिकी/प्राथमिकी, थाना-दीदारगंज, आजमगढ़;

26. 1998 की प्राथमिकी संख्या-036, थाना-फूलपुर, आजमगढ़;

27. अपराध/प्राथमिकी संख्या-0300 वर्ष 2000, थाना-फूलपुर, आजमगढ़;

28. अपराध/प्राथमिकी संख्या-0198 वर्ष 2001, थाना-फूलपुर, आजमगढ़;

29. अपराध/प्राथमिकी संख्या-0256 वर्ष 2002, थाना-अहरौला, आजमगढ़;

30. अपराध/प्राथमिकी संख्या-0407 वर्ष 2004, थाना-दीदारगंज, आजमगढ़;

31. अपराध/प्राथमिकी संख्या-0123 वर्ष 2004, थाना सरायमीर, आजमगढ़;

32. अपराध/प्राथमिकी संख्या-049 वर्ष 2004, थाना-अहरौला, आजमगढ़;

33. अपराध/प्राथमिकी संख्या-0412 वर्ष 2005, थाना-फूलपुर, आजमगढ़;

34. अपराध/प्राथमिकी संख्या-0512 वर्ष 2005, थाना-फूलपुर, आजमगढ़;

35. अपराध/प्राथमिकी संख्या-0156 वर्ष 2006, थाना-दीदारगंज, आजमगढ़;

36. अपराध/प्राथमिकी संख्या-067 वर्ष 2008, थाना पवई, आजमगढ़;

37. अपराध/प्राथमिकी संख्या-0622 वर्ष 2009, थाना-फूलपुर, आजमगढ़;

38. अपराध/प्राथमिकी संख्या-0241 वर्ष 2009, थाना-दीदारगंज, आजमगढ़;

39. अपराध/प्राथमिकी संख्या-0960 वर्ष 2010, थाना-फूलपुर, आजमगढ़;

40. अपराध/प्राथमिकी संख्या-056 वर्ष 2011, थाना कोतवाली, आजमगढ़;

41. अपराध/प्राथमिकी संख्या-012 वर्ष 2016, थाना पवई, आजमगढ़;

42. अपराध/प्राथमिकी सं.015 वर्ष 2016, थाना पवई, आजमगढ़;

43. अपराध/प्राथमिकी संख्या-024 वर्ष 2016, थाना-फूलपुर, आजमगढ़;

44. अपराध/प्राथमिकी संख्या-088 वर्ष 2017, थाना-फूलपुर, आजमगढ़;

45. अपराध/प्राथमिकी संख्या-058 वर्ष 2020, थाना सिधारी, आजमगढ़;

46. अपराध/प्राथमिकी संख्या-063 वर्ष 2020, थाना सिधारी, आजमगढ़;

47. अपराध/प्राथमिकी संख्या-060 वर्ष 2022, थाना-फूलपुर, आजमगढ़; और

48. अपराध/प्राथमिकी संख्या-039 वर्ष 2022, थाना-अहरौला, आजमगढ़।

10. आपराधिक मामलों के पूर्वोक्त विवरण से पता चलता है कि पहला अपराध, जो अभियुक्त-आवेदक ने किया था, वर्ष 1977 से संबंधित है और पहली हत्या, जिसमें वह आरोपी था, वर्ष 1983 से संबंधित है। ऐसे खूंखार अपराधी, गैंगस्टर, बाहुबली और माफिया बार-बार लोकसभा सदस्य और विधान सभा सदस्य के रूप में चुने गए। इससे पता चलता है कि दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र की चुनाव प्रणाली में कुछ गंभीर रूप से गलत है, जहां अपराधी, वर्तमान आरोपी-आवेदक की तरह, ऐसे लोग लोकसभा/विधान सभा के सदस्य के रूप में बार-बार चुने जाते हैं और कानून निर्माता बन जाते हैं।

11. इस न्यायालय ने एक अन्य बाहुबली, वर्तमान सांसद अतुल कुमार सिंह की जमानत याचिका को खारिज करते हुए आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या-5473 वर्ष 2022 में पारित आदेश दिनांक 07.06.2022 के तहत राजनीति और संसद में अपराधियों के प्रवेश की बढ़ती प्रवृत्ति को नोट किया था। यह बताया गया है कि लोकसभा के वर्तमान सदस्यों, जो 2019 के आम चुनावों में चुने गए हैं, में से 43% आपराधिक पृष्ठभूमि से हैं, जिसमें जघन्य अपराध भी शामिल हैं। आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या-5473 वर्ष 2020 में पारित आदेश के कुछ प्रासंगिक पैराग्राफ यहां दिए गए हैं: -

" 14. पब्लिक इंटरेस्ट फाउंडेशन और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य: (2019) 3 एस.सी.सी. 224 के मामले में सुप्रीम कोर्ट की एक संविधान पीठ ने वर्ष 244 वीं विधि आयोग की रिपोर्ट पर ध्यान दिया है जिसमें यह कहा गया था कि 30 प्रतिशत या 152 मौजूदा सांसदों के खिलाफ आपराधिक मामले लंबित थे, जिनमें से लगभग आधे यानी 76 में गंभीर आपराधिक मामले थे। यह घटना हर आम चुनाव के साथ बढ़ी है। 2004 में लोकसभा सांसदों के 24 प्रतिशत मामलों में आपराधिक मामले लंबित थे, जो 2009 के चुनावों में बढ़कर 30 प्रतिशत हो गए। 2014 में यह बढ़कर 34 प्रतिशत हो गया और 2019 में, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, लोकसभा के लिए चुने गए 43 प्रतिशत संसद सदस्यों के खिलाफ आपराधिक मामले लंबित हैं। उच्चतम न्यायालय ने राजनीति के अपराधीकरण और चुनाव सुधारों की अनिवार्य आवश्यकताओं का न्यायिक नोटिस लिया है। हत्या, बलात्कार, अपहरण और डकैती जैसे गंभीर और जघन्य अपराधों के आरोपी व्यक्तियों को राजनीतिक दलों से चुनाव लड़ने के लिए टिकट मिला और यहां तक कि बड़ी संख्या में मामलों में चुने जाने के कई मामले सामने आए हैं।

15. सुप्रीम कोर्ट ने कहा है कि इससे कानून तोड़ने वालों के कानून निर्माता बनने और पुलिस सुरक्षा के इर्द-गिर्द घूमने की बहुत ही अनिच्छादित और शर्मनाक स्थिति पैदा होती है। उक्त मामले में सुप्रीम कोर्ट ने भारत के चुनाव आयोग को राजनीति में अपराधीकरण को रोकने के लिए उचित उपाय करने का निर्देश दिया है,

लेकिन दुर्भाग्य से अपराधियों, ठगों और कानून तोड़ने वालों के हाथों में जा रहे भारतीय लोकतंत्र की रक्षा के लिए संसद की सामूहिक इच्छाशक्ति उक्त दिशा में आगे नहीं बढ़ी है। यदि राजनेता कानून तोड़ने वाले हैं, तो नागरिक जवाबदेह और पारदर्शी शासन की उम्मीद नहीं कर सकते हैं और कानून के शासन द्वारा शासित समाज एक काल्पनिक विचार है। आजादी के बाद हर चुनाव के साथ जीतने वाले योग्य उम्मीदवारों को टिकट देने में जाति, समुदाय, नस्ल, लिंग, धर्म आदि जैसी पहचानों की भूमिका अधिक से अधिक प्रमुख होती जा रही है। धन और बाहुबल के साथ मिलकर इन पहचानों ने राजनीति में अपराधियों के प्रवेश को आसान बना दिया है और हर राजनीतिक दल बिना किसी अपवाद के (डिग्री और सीमा में कुछ अंतर के साथ) चुनाव जीतने के लिए इन अपराधियों का उपयोग करता है। गंभीर आपराधिक आरोपों वाले उम्मीदवारों को टिकट देने से चुनावी राजनीति और चुनावों में नागरिक समाज, कानून का पालन करने वाले नागरिकों का विश्वास और भरोसा टूटेगा।

16. इस बात पर कोई विवाद नहीं कर सकता कि वर्तमान समय की राजनीति अपराध, पहचान, संरक्षण, बाहुबल और धन के जाल में फंसी हुई है। अपराध और राजनीति के बीच सांठगांठ लोकतांत्रिक मूल्यों और कानून के शासन पर आधारित शासन के लिए गंभीर खतरा है। संसद और राज्य विधानमंडल के चुनाव और यहां तक कि स्थानीय निकायों और पंचायतों के चुनाव बहुत महंगे मामले हैं। रिकॉर्ड से पता चलता है कि आपराधिक रिकॉर्ड वाले लोकसभा के निर्वाचित सदस्य बेहद अमीर उम्मीदवार हैं। उदाहरण के लिए 2014 के लोकसभा चुनाव में हत्या से संबंधित आपराधिक आरोपों वाले 23 विजेताओं में से 16 करोड़पति थे। उम्मीदवारों के फिर से चुने जाने के बाद उनकी संपत्ति और आय कई गुना बढ़ जाती है जो इस तथ्य से स्पष्ट है कि 2014 में, 165 सांसदों जो फिर से चुने गए, उनकी औसत संपत्ति वृद्धि 5 वर्षों में 7.5 करोड़ रुपये थी।

17. पहले 'बाहुबली' और अन्य अपराधी जाति, धर्म और राजनीतिक आश्रय सहित विभिन्न विचारों पर उम्मीदवारों को समर्थन प्रदान करते थे, लेकिन अब अपराधी खुद राजनीति में प्रवेश कर रहे हैं और चुने जा रहे हैं क्योंकि राजनीतिक दलों को आपराधिक पृष्ठभूमि वाले उम्मीदवारों, जिनके खिलाफ जघन्य अपराध दर्ज हैं, को टिकट देने में कोई संकोच और बाधा नहीं है। पुष्टि किए गए आपराधिक इतिहास पत्रक और यहां तक कि जो लोग सलाखों के पीछे हैं, उन्हें विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा टिकट दिया जाता है और आश्चर्यजनक रूप से उनमें से कुछ चुने भी जाते हैं।

18. लोकतंत्र और देश को लोकतांत्रिक सिद्धांतों और कानून के शासन पर शासित करने के लिए अपराधियों को राजनीति, संसद या विधायिका में प्रवेश करने से रोकने के लिए अपनी सामूहिक इच्छाशक्ति दिखाना संसद की जिम्मेदारी है।

19. नागरिक समाज की भी जिम्मेदारी है कि वह जाति, समुदाय आदि के संकीर्ण और तुच्छ विचारों से ऊपर उठे और यह सुनिश्चित करे कि आपराधिक पृष्ठभूमि वाला उम्मीदवार निर्वाचित न हो। राजनीति का अपराधीकरण और सार्वजनिक जीवन में भ्रष्टाचार भारत, इसकी लोकतांत्रिक राजनीति और दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र के लिए सबसे बड़ा खतरा बन गया है। संगठित अपराध, राजनेताओं और नौकरशाहों के बीच एक अपवित्र गठबंधन है और उनके बीच

यह सांठगांठ व्यापक वास्तविकता बन गई है। इस घटना ने कानून प्रवर्तन एजेंसियों और प्रशासन की विश्वसनीयता, प्रभावशीलता और निष्पक्षता को खत्म कर दिया है। इसके परिणामस्वरूप देश के प्रशासन और न्याय वितरण प्रणाली में विश्वास और भरोसे की कमी हुई है क्योंकि वर्तमान अभियुक्त-आवेदक जैसे अभियुक्त गवाहों पर जीत हासिल करते हैं, जांच को प्रभावित करते हैं और अपने पैसे, बाहुबल और राजनीतिक शक्ति का उपयोग करके सबूतों के साथ छेड़छाड़ करते हैं। संसद और राज्य विधानसभा में पहुंचने वाले अपराधियों की खतरनाक संख्या सभी के लिए खतरे की घंटी है। संसद और भारत निर्वाचन आयोग से अपेक्षा की जाती है कि वे अपराधियों को राजनीति से दूर रखने और आपराधिक राजनेताओं और नौकरशाहों के बीच अपवित्र सांठगांठ को तोड़ने के लिए प्रभावी उपाय करें।

20. राजनीतिक व्यवस्था का यह अपवित्र गठजोड़ आरोपी-आवेदक, गैंगस्टर, खूंखार अपराधी और 'बाहुबली' जैसे व्यक्ति को संसद तक पहुंचाने और कानून निर्माता बनने का परिणाम है। यह न्यायालय अपराध की जघन्यता, अभियुक्त की शक्ति, रिकॉर्ड पर उपलब्ध साक्ष्य, समाज पर प्रभाव, अभियुक्त द्वारा सबूतों के साथ छेड़छाड़ की संभावना और अपनी बाहुबल और धन शक्ति का उपयोग करके गवाहों को प्रभावित करने/जीतने की संभावना को देखते हुए यह नहीं पाता है कि इस स्तर पर आरोपी-आवेदक को जमानत पर छोड़ने का कोई आधार है। इसलिए जमानत याचिका खारिज की जाती है।

12. एक अन्य मामले यानी आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या-46494 वर्ष 2021 में दिनांक 13.06.2022 के आदेश के तहत, एक अन्य बाहुबली, माफिया डॉन और सबसे खूंखार अपराधी के संबंध में, इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने उल्लेख किया है कि उक्त माफिया ने अपने मामलों को इस तरह से प्रबंधित किया था कि उसे उसके खिलाफ कोई सजा नहीं मिली है, जो वास्तव में न्यायिक व्यवस्था के लिए एक चुनौती है कि इतना खूंखार और सफेदपोश अपराधी अपराजित और बेरोकटोक बना रहा।

13. इस न्यायालय ने आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या-22865 वर्ष 2020 में पारित अपने निर्णय और आदेश दिनांक 21.02.2023 में, आरोपी आवेदक के भाई, जो कई बार लोकसभा सदस्य और विधान सभा सदस्य के रूप में भी चुने गए थे, के 80 से अधिक मामलों के आपराधिक इतिहास को ध्यान में रखते हुए कहा है कि जघन्य अपराधों में कट्टर अपराधियों और माफिया डॉनों के बच निकलने और फिर निर्वाचित होने और बनने की घटना विधि निर्माताओं का लोकतंत्र, विधि के शासन और समाज के लिए शुभ संकेत नहीं है, जिसे विधि के शासन द्वारा शासित किया जाना है। आरोपी-आवेदक के भाई द्वारा दायर आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या-22865 वर्ष 2020 में पारित आदेश दिनांक 21.02.2023 के पैराग्राफ-9 को निम्नानुसार उद्धृत किया जा रहा है:

"9. आरोपी आवेदक ने कथित तौर पर वर्ष 1974 में हत्या का पहला अपराध किया था और अपराध की दुनिया में अपनी लंबी और खतरनाक यात्रा के 48 वर्षों में, उसे हाल ही में वर्ष 2022 में केवल दो मामलों में दोषी ठहराया जा सका। यह घटना बहुत ही चिंताजनक है और लोकतांत्रिक राजनीति और कानून के शासन द्वारा शासित समाज के लिए अच्छा नहीं है। सरकार के सभी

अंगों यानी कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका को इस तरह के खूंखार अपराधी को कई जघन्य अपराधों में छोड़ देने के लिए दोष साझा करना चाहिए, जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है। ऐसे अपराधी का समाज में कोई स्थान नहीं होना चाहिए।

14. श्री गोपाल एस. चतुर्वेदी, वरिष्ठ अधिवक्ता, अभियुक्त-आवेदक का प्रतिनिधित्व करते हुए, प्रस्तुत करते हैं कि आरोपी-आवेदक को वर्तमान मामलों में झूठा फंसाया गया है क्योंकि उसका अपने रिश्तेदार की शराब की दुकान के व्यवसाय से कोई लेना-देना नहीं है। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि प्राथमिकी दर्ज करने के साढ़े पांच महीने बाद, मृतक के परिवारों के बयान दर्ज किए गए, जो स्टीरियोटाइप हैं, जिसमें आरोप लगाया गया है कि आरोपी-आवेदक शराब की दुकान के पीछे असली व्यक्ति है और उसके संरक्षण के नीचे, सह-अभियुक्त, रंगेश यादव शराब की दुकान चलाते हैं। आरोपी-आवेदक का नकली शराब के निर्माण और बिक्री पर पूरा नियंत्रण है। यह प्रस्तुत किया गया है कि इन बयानों का कोई साक्ष्य मूल्य नहीं है और, वे सुनी-सुनाई सबूत हैं, जो बिना रिकॉर्ड पर कुछ भी पुष्टि करने और शराब की दुकान चलाने, नकली शराब बनाने और बेचने में आरोपी-आवेदक की भागीदारी का सुझाव देते हैं, जैसा कि आरोप लगाया गया है, या अन्यथा। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि हालांकि आरोपी-आवेदक का कई मामलों का आपराधिक इतिहास है, हालांकि, उसे जमानत से इनकार नहीं किया जा सकता है, क्योंकि एक लंबा आपराधिक इतिहास, अगर अपराध में उसकी भागीदारी का सुझाव देने के लिए कोई सबूत नहीं है, जिसके लिए वह जमानत चाहता है, तो आरोपी को जमानत देने से इनकार करने का एकमात्र आधार नहीं हो सकता है। इसलिए, यह प्रस्तुत किया जाता है कि आरोपी आवेदक, जो 27.07.2022 से जेल में बंद है, को जमानत पर रिहा किया जाना चाहिए।

15. दूसरी ओर, प्रतिवादी - राज्य की ओर से, श्री महेश चंद्र चतुर्वेदी, अतिरिक्त महाधिवक्ता, जमानत आवेदन का जोरदार विरोध करते हैं और प्रस्तुत करते हैं कि सह-अभियुक्त, रंगेश यादव जिला जौनपुर का निवासी है और, वह केवल एक मुखौटा है और शराब की दुकान, नकली शराब के निर्माण और बिक्री के पीछे असली चेहरा, आरोपी-आवेदक है। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि अभियुक्त-आवेदक को जब भी किसी मामले में जमानत पर रिहा किया गया था, उसने एक के बाद एक अपराध किए थे और उसे दी गई जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग किया था। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि एक जघन्य अपराध करने के बाद, वह बरी हो सकता है क्योंकि उसके आतंक, भय और प्रभाव से गवाह मुकर गए। इसलिए, यह प्रस्तुत किया गया है कि आरोपी-आवेदक द्वारा, यदि जमानत पर छोड़ा जाता है तो गवाहों को प्रभावित करने या उन्हें आतंकित करने की पूरी संभावना है, और ऐसा अपराधी जमानत पर छोड़े जाने का हकदार नहीं है।

16. श्री महेश चंद्र चतुर्वेदी, अतिरिक्त महाधिवक्ता द्वारा आगे प्रस्तुत किया गया है कि आरोपी-आवेदक कई जघन्य अपराधों में बरी हो सकता है क्योंकि कोई भी गवाह ऐसे खूंखार अपराधी, गैंगस्टर और माफिया डॉन के खिलाफ गवाही देने की हिम्मत नहीं करेगा। वह जिला: आजमगढ़ और आसपास के जिलों के लोगों के दिलों और दिमागों में अद्वितीय आतंक और भय पैदा कर सकता है। गवाह मुकर जाएंगे या उसे

मुकदमे में घसीटा जाएगा ताकि गवाह थक जाएं या केस समाप्त हो जाएं।

17. मैंने अभियुक्त-आवेदक और प्रतिवादी - राज्य की ओर से दी गई प्रस्तुतियों पर विचार किया है।

18. हालांकि आरोप पत्र से पता चलता है कि आरोपी-आवेदक का नाम लेने वाले गवाहों के बयान घटना की तारीख से साढ़े पांच महीने बाद दर्ज किए जा सके हैं, लेकिन यह सच प्रतीत होता है कि ऐसे खूंखार अपराधी, माफिया डॉन और गैंगस्टर के खिलाफ मुंह खोलना गवाहों और उनके परिवारों के जीवन और स्वतंत्रता के लिए खतरा हो सकता है। जब गवाहों को उनकी भलाई, सुरक्षा और संरक्षा का आश्वासन दिया जाता, तभी वे आरोपी-आवेदक के खिलाफ बयान देने के लिए आगे आते।

प्राथमिकी में, यह विशेष रूप से उल्लेख किया गया है कि सह-अभियुक्त, रंगेश यादव की दुकान के लिए, जहां से मृतक द्वारा शराब खरीदी गई थी और इसके सेवन के बाद, वे गंभीर रूप से बीमार हो गए और अंततः उनकी मृत्यु हो गई। गवाहों ने विशेष रूप से कहा है कि विचाराधीन दुकान आरोपी-आवेदक के नियंत्रण में है और रंगेश केवल एक फ्रंट-मैन है, लेकिन पर्दे के पीछे वास्तविक व्यक्ति आरोपी आवेदक है। आरोपी-आवेदक ही रंगेश यादव के नाम से शराब की दुकान का लाइसेंस हासिल कर सकता था, जो आरोपी-आवेदक की बहन का पोता है। कथित तौर पर आरोपी-आवेदक के नियंत्रण में दुकान से खरीदी गई जहरीली शराब पीने से नौ निर्दोष लोगों की मौत हो गई थी। आरोपी-आवेदक का एक लंबा आपराधिक इतिहास है और जघन्य अपराधों के ऐसे खूंखार अपराधी के लिए किसी को कोई सहानुभूति नहीं हो सकती है। इस न्यायालय को ऐसे जघन्य अपराध में नरमी नहीं बरतनी चाहिए। आरोपियों के लालच और अमानवीय कृत्य के कारण नौ लोगों की मौत हो गई थी। वर्तमान आरोपी-आवेदक जैसे अपराधियों ने अपराध करके बेतरतीब संपत्ति अर्जित की है। शराब लाभदायक व्यवसाय है और ज्यादातर माफियाओं द्वारा नियंत्रित किया जाता है। हालांकि, सह-अभियुक्त, रंगेश यादव को इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या-26822 वर्ष 2022 में पारित आदेश दिनांक 07.09.2022 के माध्यम से जमानत दे दी है, हालांकि, उक्त आदेश में अपराध की योग्यता, जघन्यता और इसके सामाजिक प्रभाव पर विचार नहीं किया गया है, जो निम्नानुसार है: -

"सुश्री तनीषा जहांगीर मुनीर, आवेदक के लिए विद्वान अधिवक्ता, श्री शशि शेखर तिवारी, राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना।

2. आवेदक द्वारा वर्तमान जमानत आवेदन केस अपराध संख्या-0039 वर्ष 2022 में धारा 272, 273, 34, 420, 467, 468, 471 भ०द०वि० और आबकारी अधिनियम की धारा 60-ए, पीएस अहरौला, जिला: आजमगढ़ के तहत जमानत पर छोड़े जाने की प्रार्थना के साथ दायर किया गया है।

3. उपरोक्त मामला आवेदक रंगेश यादव और चार अन्य नामित आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ दर्ज प्राथमिकी दिनांक 21.02.2022 के आधार पर दर्ज किया गया है, जिसमें आरोप लगाया गया है कि 20 फरवरी, 2022 को सूचनाकर्ता के पिता ने आवेदक की दुकान से देशी शराब खरीदी थी, जिसके सेवन के बाद सूचनाकर्ता के पिता की मृत्यु हो गई थी। इस मामले में फंसाए गए अन्य

आरोपी व्यक्तियों को आवेदक द्वारा नियोजित सेल्समैन बताया जाता है।

जमानत याचिका के समर्थन में दायर हलफनामे में, यह कहा गया है कि आवेदक निर्दोष है और उसे वर्तमान मामले में झूठा फंसाया गया है।

5. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि इसी तरह के आरोपों के आधार पर, मामला अपराध संख्या 60 वर्ष 2022, धारा 272, 273, 302, 34 भ०द०वि० और यूपी आबकारी अधिनियम की धारा 60 (ए) और यूपी आबकारी अधिनियम की धारा 60 (ए) के तहत मामला अपराध संख्या 40 वर्ष 2022, धारा 272, 273 भ०द०वि० और यूपी आबकारी अधिनियम की धारा 60 (ए) आवेदक के खिलाफ दर्ज की गई थी और उपरोक्त दोनों मामलों में, आवेदक को इस न्यायालय द्वारा क्रमशः आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या-26819 वर्ष 2022 और 31534 वर्ष 2022 में पारित दिनांक 29.06.2022 और 25.07.2022 के आदेशों के माध्यम से जमानत दी गई है। उन्होंने आगे कहा कि आवेदक के अलावा अन्य सभी आरोपी व्यक्तियों को वर्तमान मामले में जमानत दे दी गई है।

6. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने आवेदक को जमानत देने की प्रार्थना का विरोध किया है, लेकिन पूर्वोक्त तथ्यों पर विवाद नहीं कर सका।

7. उपरोक्त तथ्यों और प्रस्तुतियों पर विचार करने और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि आवेदक को इसी तरह के आरोपों से जुड़े दो अन्य मामलों में जमानत दी गई है और इस तथ्य को भी ध्यान में रखते हुए कि अन्य सभी सह-अभियुक्तों को जमानत दे दी गई है, जबकि आवेदक 23.02.2022 से जेल में बंद है, मेरा विचार है कि आवेदक समानता के आधार पर जमानत पर रिहा होने का हकदार है। तदनुसार जमानत आवेदन को अनुमति दी जाती है।

8. आवेदक - रंगेश यादव को अपराध संख्या 0039 वर्ष 2022 के तहत धारा 272, 273, 34, 420, 467, 468, 471 भ०द०वि० और आबकारी अधिनियम की धारा 60-ए, पीएस अहरौला, जिला: आजमगढ़ के तहत एक व्यक्तिगत बांड और दो विश्वसनीय जमानतदार प्रस्तुत करने पर जमानत पर रिहा किया जाए, जो निम्नलिखित शर्तों के अधीन संबंधित न्यायालय की संतुष्टि के लिए एक व्यक्तिगत बांड और दो विश्वसनीय जमानतदार प्रस्तुत करता है:

(i) आवेदक विचारण के दौरान साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ नहीं करेगा।

(ii) आवेदक किसी भी गवाह को प्रभावित नहीं करेगा।

(iii) आवेदक निर्धारित तारीख को विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित होगा, जब तक कि व्यक्तिगत उपस्थिति से छूट न दी गई हो।

(iv) आवेदक मामले के तथ्यों से परिचित किसी व्यक्ति को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रलोभन, धमकी या वादा नहीं करेगा जिससे कि वह किसी पुलिस अधिकारी को न्यायालय के समक्ष ऐसे तथ्यों का खुलासा करने से रोके जा सके या साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ न कर सके।

उपरोक्त किसी भी शर्त के उल्लंघन के मामले अभियोजन पक्ष जमानत रद्द करने की मांग करते हुए इस न्यायालय के समक्ष एक आवेदन जमानत दायर करने के लिए स्वतंत्र होगा।

19. पूर्वोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, यह न्यायालय पाता है कि आरोपी आवेदक जमानत पर छोड़े जाने का हकदार नहीं है। इस प्रकार, इन आवेदनों को इस स्तर पर खारिज किया जाता है।

(2023) 3 ILRA 580

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक वाद

दिनांक: इलाहाबाद 28.02.2023

श्रीमती ज्योत्सना शर्मा

के समक्ष

आपराधिक प्रकीर्ण अग्रिम जमानत आवेदन (धारा 438 Cr.P.C. के तहत) संख्या 11542/2022

किशोर ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ...प्रतिपक्षी

आवेदक के अधिवक्ता: श्री राकेश पाठक, श्री शशांक शेखर तिवारी

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: जी.ए., श्री प्रेम शंकर पांडे

ए. आपराधिक कानून - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 438 - भारतीय दंड संहिता, 1860-धाराएँ 307, 504 और 506- पोषणीयता - नाबालिग के लिए उसके अभिभावक/पिता के माध्यम से अग्रिम जमानत आवेदन -नाबालिग न्याय अधिनियम, 2015 की धारा 8(1) के अनुसार नाबालिग न्याय बोर्ड को कानून के साथ संघर्ष में बच्चों से संबंधित सभी कार्यवाही करने का विशेष अधिकार दिया गया है - नाबालिग न्याय अधिनियम में कहीं भी नहीं कहा गया है कि धारा 438 सीआर.पी.सी. का आवेदन कानून के साथ संघर्ष में बच्चों पर लागू होगा-हालांकि नाबालिग न्याय अधिनियम की धारा 8(2) उच्च न्यायालय या बच्चों की न्यायालय को समान अधिकार देती है लेकिन केवल तब जब मामला अपील या पुनर्विचार या अन्यथा उसके सामने लाया जाए- बच्चों की न्यायालय या सत्र अदालत या उच्च न्यायालय को पूर्व-गिरफ्तारी जमानत देने के लिए स्वायत्त अधिकार देने के लिए नाबालिग न्याय अधिनियम की धारा 8(2) के तहत कोई स्पष्ट प्रावधान नहीं है- नाबालिग न्याय अधिनियम, 2015 की धारा 12 जमानती और गैर-जमानती अपराधों पर समान रूप से लागू होती है- जमानत के प्रावधानों के लिए कोई भेद नहीं रखा गया है जैसा कि धारा 436 से 439 सीआर.पी.सी. के प्रावधानों के तहत रखा गया है- नाबालिग न्याय अधिनियम एक व्यापक कानून है जिसमें कानून के साथ संघर्ष में बच्चों से संबंधित सभी प्रावधान शामिल हैं और धारा 438 सीआर.पी.सी. के प्रावधान अनुपयुक्त और असंगत हैं जो अधिनियम के द्वारा हासिल किए जाने वाले उद्देश्य और लक्ष्य के खिलाफ हैं। (पैराग्राफ 1 से 19)

आवेदन निरस्त किया जाता है। (E-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. रामन एवं अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य (2022) SCC OnLine Bom 1470

2. शाहाब अली एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2020) 2 ADJ 130

<u>माननीय श्रीमती ज्योत्स्ना शर्मा, न्यायमूर्ति</u>

1. ऐसा प्रतीत होता है कि आवेदक किशोर का नाम पुनरीक्षण ज्ञापन में प्रकट किया गया है। आवेदक की ओर से यह गलती रजिस्ट्री द्वारा पकड़ में आने से बच गई। रजिस्ट्री के संबंधित अनुभाग को निर्देश दिया गया है कि आधिकारिक वेबसाइट पर डेटा में दिखाए गए संशोधन के शीर्षक से आवेदक-नाबालिग का नाम हटा दें और उसका" नाबालिग 'एक्स' अपने अभिभावक/पिता

के माध्यम से, जिला प्रयागराज" के रूप में प्रतिनिधित्व करें।

2. आवेदक की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री राकेश पाठक और राज्य की ओर से विद्वान एजीए, ओ.पी. मिश्रा को इस अग्रिम जमानत आवेदन की पोषणीयता के बिंदु को सुना।

3. वर्तमान आवेदन प्राथमिकी / मुकदमा अपराध संख्या 0362 सन् 2022 आईपीसी की धारा 307, 504 व 506 थाना करछना, जनपद प्रयागराज में अग्रिम जमानत की मांग करते हुए नाबालिग की ओर से उसके अभिभावक / पिता के माध्यम से दायर किया गया है।

4. आवेदक की ओर से (जिसने स्वीकार किया कि वह नाबालिग है) यह तर्क दिया गया है कि किसी नाबालिग को सीआरपीसी की धारा 438 के तहत उपलब्ध सुरक्षा से वंचित नहीं किया जा सकता है सिर्फ इसलिए कि वह वयस्क नहीं है। इस प्रतिवाद का राज्य ने पुरजोर विरोध किया है।

5. किशोर न्याय (बाल देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2015 के लागू होने से पहले, किशोर न्याय (बाल देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2000 लागू था। 2015 के नए अधिनियम को लागू करने के उद्देश्यों और कारणों के विवरण में, यह उल्लेख किया गया है कि कई मुद्दों के समाधान के लिए 2000 के मौजूदा अधिनियम में कई बदलावों की आवश्यकता थी। यह प्रस्तावित किया गया था कि 2000 के मौजूदा अधिनियम को निरस्त कर दिया जाएगा क्योंकि देखभाल और सुरक्षा के सामान्य सिद्धांतों को प्रदान करने के लिए अन्य बातों के साथ-साथ व्यापक विधान की आवश्यकता तीव्रता से महसूस की गई थी; लागू की जाने वाली प्रक्रिया; ऐसे बच्चों के लिए पुनर्वास और सामाजिक पुनः एकीकरण के उपाय, अनाथ, परित्यक्त और आत्मसमर्पण किए गए बच्चों को गोद लेना, और बच्चों के खिलाफ किए गए अपराध। बच्चों के सर्वोत्तम हित को ध्यान में रखते हुए, यह आशा की गई थी कि कानून इस प्रकार बाल-अनुकूल दृष्टिकोण अपनाकर कठिन परिस्थितियों में बच्चों की उचित देखभाल, सुरक्षा, विकास, उपचार और सामाजिक पुनः एकीकरण सुनिश्चित करेगा। उद्देश्यों और कारणों का विवरण स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि विधायिका का आशय कुछ दूरगामी उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए अपराधों में शामिल बच्चों से निपटने के लिए व्यापक वैधानिक प्रावधानों को प्रदान करना है, साथ ही बच्चों के सर्वोत्तम हित के सिद्धांत द्वारा प्रकाशित मार्ग पर सावधानीपूर्वक चलना है।

6. किशोर न्याय अधिनियम, 2015 की धारा 1 (4) में एक गैर-अप्रत्याशित उपखंड शामिल है और इसे नीचे दिए गए संदर्भ के लिए पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है: -

"(4) फिलहाल लागू किसी भी अन्य कानून में किसी बात के होते हुए भी, इस अधिनियम के प्रावधान देखभाल और सुरक्षा की आवश्यकता वाले बालकों और कानून का उल्लंघन करने वाले बालकों से संबंधित सभी मामलों पर लागू होंगें। इसमें शामिल हैं-

(i) कानून का उल्लंघन करने वाले बच्चों की गिरफ्तारी, हिरासत, अभियोजन, जुर्माना या कारावास, गोद लेना, पुनर्वास और पुनः एकीकरण;

(ii) देखभाल और सुरक्षा की आवश्यकता वाले बच्चों का पुनर्वास एकीकरण और पुनर्स्थापना, गोद लेने, बहाली से संबंधित प्रक्रियाएं और निर्णय या आदेश।"

वाक्यांश "किसी भी अन्य कानून में निहित किसी भी बात के होते हुए भी" का उपयोग करने के अलावा, धारा 1 (4) दो और वाक्यांशों का उपयोग करती है जो वर्तमान संदर्भ में सार्थक हैं। वे विधि का उल्लंघन करने वाले बच्चों के संबंध में "सभी मामले" हैं और दूसरा शब्द "जिसके अंतर्गत है" कानून का उल्लंघन करने वाले बच्चों की गिरफ्तारी, हिरासत, अभियोजन,

दंड या कारावास पुनर्वास और सामाजिक जांच शामिल है। प्रावधान स्पष्ट, साफ और अस्पष्टता से मुक्त हैं। अचूक निष्कर्ष जो हो सकता है वह यह है कि यह अधिनियम बाल अपराधियों से संबंधित सभी मामलों से जिसमें गिरफ्तारी, हिरासत और अभियोजन शामिल है, व्यापक रूप से निपटने का प्रयास करता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि अधिनियम का व्यापक उद्देश्य पीड़ित और बड़े पैमाने पर समाज की न्याय की मांगों को संतुलित करने की आवश्यकता को भूले बगैर, सुधारात्मक दृष्टिकोण को लागू करते हुए बच्चों को समाज की मुख्य धारा में वापस लाना है। आइए संक्षेप में देखें कि इस अधिनियम द्वारा इस उद्देश्य को कैसे प्राप्त किया जाता है।

7. किसी भी निष्कर्ष पर पहुंचने से पहले, इस अधिनियमन के कुछ प्रावधानों से गुजरना उपयोगी होगा जो अंतर की रेखा पर प्रकाश डालेगा जिसे सी.आर.पी.सी. के प्रावधानों की तुलना में इस कानून को अंतिम रूप देते समय विधायिका द्वारा ईमानदारी से बनाए रखा गया है।

8. गौरतलब है कि सीआरपीसी की धारा 4 (2) कहती है कि किसी भी अन्य कानून के तहत सभी अपराधों की जांच, पूछताछ, मुकदमा चलाया जाएगा और अन्यथा सीआरपीसी के प्रावधानों के अनुसार निपटा जाएगा, लेकिन ऐसे अपराधों की जांच करना, विचारण करना या अन्यथा उनसे निपटना, जांच के तरीके या स्थान को विनियमित करने वाले उस समय के लिए लागू अधिनियमन के अधीन होगा। उपरोक्त प्रावधानों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सी.आर.पी.सी. के प्रावधान. केवल वहीं लागू होंगें जहां विशेष अधिनियमन किसी विशेष मुद्दे पर मौन है।

9. अब प्रश्न उठता है कि क्या सीआरपीसी की धारा 438 की प्रयोज्यता उन मामलों में निहितार्थ या अन्यथा खारिज की जाती है जहां किशोर न्याय अधिनियम, 2015 लागू है?सबसे पहले सीआरपीसी की धारा 438 (1) के बारे में जानें जो निम्न प्रकार है:-

"जहां किसी भी व्यक्ति के पास यह विश्वास करने का कारण है कि गैर-जमानती अपराध करने का आरोप होने पर उसे गिरफ्तार किया जा सकता है, वह इस धारा के तहत निर्देश के लिए उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय में आवेदन कर सकता है कि ऐसी गिरफ्तारी की स्थिति में उसे जमानत पर रिहा कर दिया जाएगा; और यह कि न्यायालय चाहे, तो अन्य बातों के साथ-साथ, निम्नलिखित कारकों को ध्यान में रखते हुए, अर्थात् :-

(1) आरोप की प्रकृति और गंभीरताः

(ii) आवेदक का पूर्ववृत्त जिसमें यह तथ्य भी शामिल है कि क्या वह किसी संज्ञेय अपराध के संबंध में न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि पर पहले कारावास की सजा काट चुका हो;

(iii) आवेदक के न्याय से भागने की संभावना; और (iv) जहां आरोप आवेदक को इस प्रकार गिरफ्तार करके अपमानित करते हुए, चोट पहुंचाने या घायल करने के उद्देश्य से लगाया

गया है तो आवेदन को तुरंत अस्वीकार करें या अग्रिम जमानत के लिए अंतरिम आदेश जारी करें:

बशर्ते कि, जहां उच्च न्यायालय या, जैसा भी मामला हो, सत्र न्यायालय, ने इस उप-धारा के तहत कोई अंतरिम आदेश पारित नहीं किया है या अग्रिम जमानत देने के लिए आवेदन खारिज कर दिया है, यह थाने के प्रभारी अधिकारी को इस तरह के आवेदन में लगाए गए आरोप के आधार पर आवेदक को बिना वारंट के गिरफ्तार करने का अधिकार होगा। सीआरपीसी की धारा 438 "गिरफ्तारी की आशंका" की बात करती है।

10. सीआरपीसी का अध्याय V व्यक्तियों की गिरफ्तारी से संबंधित है। धारा 41 से लेकर 60 (ए) तक गिरफ्तारी से संबंधित कई प्रावधान हैं, गिरफ्तारी, कौन गिरफ्तार कर सकता है; गिरफ्तारी को कैसे प्रभावित किया जा सकता है; उससे जुड़े प्रासंगिक मामले। किशोर न्याय अधिनियम के प्रावधानों में जानते हुए, सौहार्दपूर्ण ढंग से और जानबूझकर "गिरफ्तारी" शब्द के उपयोग से परहेज किया गया है, इसके बजाय कानून का उल्लंघन करने वाले बच्चों के संबंध में "आशंका" शब्द का उपयोग किया गया है। और यह प्रतिस्थापन अकारण नहीं है।

11. किशोर न्याय अधिनियम, 2015 का अध्याय IV कानून का उल्लंघन करने वाले बच्चों के संबंध में प्रक्रिया से संबंधित है; इस अध्याय में सबसे महत्वपूर्ण धारा 10 से धारा 12 भी शामिल है जो अन्य बातों के साथ-साथ बोर्ड के समक्ष "पहली उपस्थिति" प्रदान करती है (इस शब्द का उपयोग यहां इसके व्यापक अर्थ में किया जा रहा है)। किशोर न्याय अधिनियम, 2015 की धारा 10, 11 और 12 को एक स्पष्ट तस्वीर देने के लिए नीचे पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है, जो कानून का उल्लंघन करने वाले बच्चों के संबंध में अधिनियम में परिकल्पित की गई है।

"धारा 10. कानून का उल्लंघन करने वाले कथित बच्चों की आशंका। (1) जैसे ही कानून का उल्लंघन करने वाले कथित बच्चों को पुलिस द्वारा पकड़ लिया जाता है, ऐसे बच्चे को विशेष किशोर पुलिस इकाई या नामित बाल कल्याण पुलिस अधिकारी, के प्रभार में रखा जाएगा, जो बच्चे को बिना किसी समय की हानि के लेकिन यात्रा के लिए आवश्यक समय को छोड़कर, उस स्थान से जहां ऐसे बच्चे को पकड़ा गया था, बच्चे को पकड़ने के चौबीस घंटे की अवधि के भीतर बोर्ड के समक्ष प्रस्तुत करेगा, :

बशर्ते कि किसी भी मामले में, कानून का उल्लंघन करने वाले कथित बच्चे को पुलिस हिरासत में नहीं रखा जाएगा या जेल में बंद नहीं किया जाएगा।

(2) राज्य सरकार इस अधिनियम के अनुरूप नियम बनाएगी,

(i) उन व्यक्तियों (पंजीकृत स्वैच्छिक या गैर-सरकारी संगठनों सहित) के लिए प्रावधान करना जिनके माध्यम से कानून के उल्लंघन में कथित किसी भी बच्चे को बोर्ड के समक्ष पेश किया जा सकता है;

(ii) उस तरीके का प्रावधान करना जिसके तहत कानून का उल्लंघन करने वाले कथित बच्चे को, जैसा भी मामला हो, अवलोकन गृह या सुरक्षित स्थान पर भेजा जा सके।

धारा 11. उस व्यक्ति की भूमिका जिसके प्रभार में कानून का उल्लंघन करने वाले बच्चों को रखा गया है। कोई भी व्यक्ति जिसके प्रभार में कानून

का उल्लंघन करने वाला कोई बच्चा रखा गया है, जब तक आदेश लागू है, तब तक उस पर उक्त बच्चे की जिम्मेदारी होगी, जैसे कि उक्त व्यक्ति बच्चे का माता-पिता हो और बच्चे के भरण-पोषण के लिए जिम्मेदार होः

बशर्ते कि बच्चा बोर्ड द्वारा बताई गई अवधि के लिए ऐसे व्यक्ति के प्रभार में बना रहेगा, किसी बात के होते हुए भी भले ही उक्त बच्चे पर माता-पिता या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा दावा किया गया हो, सिवाय इसके कि जब बोर्ड की राय हो कि माता- पिता या कोई अन्य व्यक्ति ऐसे बच्चे का प्रभार लेने के उपयुक्त है।

धारा 12. ऐसे व्यक्ति को जमानत, जो स्पष्ट रूप से बच्चा है और कानून का उल्लंघन करने का आरोप है- (1) जब कोई व्यक्ति, जो स्पष्ट रूप से बच्चा है और जिस पर आरोप लगाया जाता है कि उसने कोई जमानती या गैर-जमानती अपराध किया है, उसे पुलिस द्वारा गिरफ्तार या हिरासत में लिया जाता है या बोर्ड के समक्ष उपस्थित होने या लाए जाने पर, ऐसे व्यक्ति को, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) या उस समय लागू किसी अन्य कानून में किसी भी बात के होते हुए भी, प्रतिभू पर या उसके बिना रिहा कर दिया जाएगा या परिवीक्षा अधिकारी या किसी योग्य व्यक्ति की देखरेख में रखा गयाः

बशर्ते कि ऐसे व्यक्ति को इस प्रकार रिहा नहीं किया जाएगा यदि यह विश्वास करने के लिए उचित आधार प्रतीत होता है कि रिहाई से उस व्यक्ति को किसी ज्ञात अपराधी के साथ जुड़ने की संभावना है या उक्त व्यक्ति को नैतिक, शारीरिक या मनोवैज्ञानिक खतरे में डाल देगा या व्यक्ति की रिहाई न्याय का अंत कर देगी, और बोर्ड जमानत से इनकार करने के कारणों और उन परिस्थितियों को दर्ज करेगा जिनके कारण ऐसा निर्णय लिया गया।

(2) जब पकड़े गए ऐसे व्यक्ति को थाने के प्रभारी अधिकारी द्वारा उपधारा (1) के तहत जमानत पर रिहा नहीं किया जाता है, तो ऐसा अधिकारी उस व्यक्ति को केवल एक अवलोकन गृह 1 में रखवाएगा [या सुरक्षित स्थान, जैसा भी मामला हो] उस तरीके से होगा जैसा विहित किया जा सकता है जब तक कि व्यक्ति को बोर्ड के समक्ष नहीं लाया जा सके।

(3) जब ऐसे व्यक्ति को बोर्ड द्वारा उप-धारा (1) के तहत जमानत पर रिहा नहीं किया जाता है, तो वह उसे एक अवलोकन गृह या सुरक्षित स्थान पर भेजने का आदेश देगा, जैसा भी मामला हो, व्यक्ति के संबंध में जांच लंबित होने की अवधि के लिए, जैसा कि आदेश में निर्दिष्ट किया जा सकता है।

(4) जब कानून का उल्लंघन करने वाला कोई बच्चा जमानत आदेश के सात दिनों के भीतर जमानत की शर्तों को पूरा करने में असमर्थ हो, तो ऐसे बच्चे को जमानत की शर्तों में संशोधन के लिए बोर्ड के समक्ष पेश किया जाएगा।"

अस्वीकरणः -"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बंधित प्रयोग के लिए है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जाएगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिए मान्य होगा।"

यह स्पष्ट है कि पकड़े जाने के तुरंत बाद, उसे या तो निरीक्षण गृह या सुरक्षित स्थान पर रखा

जाएगा और न तो जेल और न ही हवालात में रखा जाएगा और उसकी देखभाल की जाएगी।

यह भी बिल्कुल स्पष्ट है कि 2015 के अधिनियम के इस अध्याय में कानून के उल्लंघन में कथित बच्चों की गिरफ्तारी से लेकर सभी प्रावधान शामिल हैं; बोर्ड के समक्ष ऐसे बच्चे की उपस्थिति; उसे जमानत देना; जमानत न मिलने पर बच्चे के साथ कैसे व्यवहार करें; कथित तौर पर कानून के उल्लंघन में फंसे बच्चे को बोर्ड के समक्ष पेश करने से पहले (बिना किसी आशंका के) या पकड़े जाने के बाद पेश करने के लिए कहां रखा जाए; जमानत देने से पहले या जमानत देने के बाद; एक जांच का आयोजन (जो धारा 14 के तहत बोर्ड के समक्ष पहली प्रस्तुति से शुरू होता है); किसी जांच को पूरा करने का तरीका और समय सीमा; उसके विरुद्ध जो आदेश पारित किये जा सकते हैं; वे आदेश जो उसके विरुद्ध पारित किये जा सकते हैं और वे आदेश जो उसके विरुद्ध पारित नहीं किये जा सकते हैं; वे स्थान जहाँ उसे हिरासत में लिया जा सकता है; और उपरोक्त सभी के संबंध में कई अन्य मामले। गिरफ़्तारी शब्द का अभाव स्पष्ट है।

12. किशोर न्याय अधिनियम 2015 की धारा 8 (1) को पढ़ने से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि किशोर न्याय बोर्ड को कानून के उल्लंघन वाले बच्चों से संबंधित अधिनियम के तहत सभी कार्यवाही से निपटने के लिए अनन्य शक्ति दी गई है।

किशोर न्याय अधिनियम की धारा 8 (1) इस प्रकार है:-

"फिलहाल लागू किसी भी अन्य कानून में किसी भी बात के होते हुए भी, लेकिन इस अधिनियम में अन्यथा स्पष्ट रूप से प्रदान किए गए को छोड़कर, किसी भी जिले के लिए गठित बोर्ड के पास इस अधिनियम के तहत विधि का उल्लंघन करने वाले बच्चों से संबंधित सभी कार्यवाहियों से विशेष रूप से निपटने की शक्ति होगी, ऐसे बोर्ड के क्षेत्राधिकार में।"

किशोर न्याय अधिनियम की धारा 8 (2) इस प्रकार है:-

"इस अधिनियम के तहत या इसके तहत बोर्ड को प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग उच्च न्यायालय और बाल न्यायालय द्वारा भी किया जा सकता है, जब कार्यवाही धारा 19 के तहत या अपील, पुनरीक्षण या अन्यथा उनके समक्ष आती है।"

एक ओर, बोर्ड को दी गई शक्तियाँ तब तक अनन्य हैं जब तक कि किशोर न्याय अधिनियम, 2015 में किसी भी स्पष्ट प्रावधान द्वारा बचाया नहीं गया हो। दूसरी ओर सीआरपीसी की धारा 438 के प्रावधानों के संदर्भ में किशोर अपराधियों के मामलों में हस्तक्षेप के लिए कोई खिड़की खुली नहीं छोड़ी गई है। किशोर न्याय अधिनियम में कहीं भी यह नहीं कहा गया है कि सीआर.पी.सी. की धारा 438 कानून का उल्लंघन करने वाले बच्चों के लिए लागू होगा। यद्यपि किशोर न्याय अधिनियम की धारा 8 (2) उच्च न्यायालय या बाल न्यायालय को समान शक्ति देती है, लेकिन केवल तभी जब मामले को अपील या पुनरीक्षण या अन्यथा उसके समक्ष लाया जाता है। किशोर न्याय अधिनियम की धारा 8 (2) के प्रावधानों के आधार पर बाल न्यायालय या सत्र न्यायालय या उच्च न्यायालय को अग्रिम जमानत देने के लिए क्षेत्राधिकार ग्रहण करने का अधिकार देने वाला कोई स्पष्ट प्रावधान नहीं है।

13. किशोर न्याय अधिनियम, 2015 के तहत निर्णय पदानुक्रम की योजना के तहत बोर्ड मूल क्षेत्राधिकार के न्यायालय के रूप में कार्य करता

है, बाल न्यायालय मध्यस्थ स्तर पर और कुछ मामलों में विचारण न्यायालय के रूप में भी कार्य करता है (उन बच्चों के लिए जिन पर वयस्क के रूप में मुकदमा चलाया जाता है)। अपीलें आम तौर पर बाल न्यायालय (धारा 101) और उच्च न्यायालय पुनरीक्षण (धारा 102) में की जाएंगी। यह भी उपयोगी रूप से देखा जा सकता है कि यहां का बाल न्यायालय सत्र न्यायालय के बराबर या इसके विपरीत नहीं है। बाल न्यायालय को किशोर न्याय अधिनियम की धारा 2 (20) के तहत बाल अधिकार संरक्षण आयोग अधिनियम, 2005 के तहत स्थापित न्यायालय या पॉक्सो अधिनियम, 2012 के तहत एक विशेष न्यायालय के रूप में परिभाषित किया गया है और जहां ऐसे न्यायालय नहीं हैं, उसके बाद केवल सत्र न्यायालय हैं। जबकि सीआरपीसी की धारा 438 के तहत शक्तियां केवल उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय के लिए उपलब्ध हैं। यह मानना तर्कसंगत नहीं है कि कानून का उल्लंघन करने वाले बच्चों के संबंध में सीआरपीसी की धारा 438 के तहत शक्तियां बाल न्यायालय द्वारा प्रयोग की जा सकती हैं (या सत्र न्यायालय द्वारा प्रयोग की जा सकती हैं) सिर्फ इसलिए कि सीआर.पी.सी. की धारा 438 में सत्र न्यायालय का जिक्र है.यदि ऐसी व्याख्या की जाती है, तो यह किशोर न्याय अधिनियम, 2015 में 'न्यायालयों' की पूरी योजना को परेशान कर देगी।

14 (i). यह भी ध्यान दिया जा सकता है कि एक वयस्क को आम तौर पर हर उस अपराध के लिए गिरफ्तार किया जा सकता है जो पुलिस द्वारा संज्ञेय है, लेकिन कानून उल्लंघन करने वाले बच्चों के मामले में, उसे आमतौर पर संज्ञेय मामलों में गिरफ्तार / कैद नहीं किया जा सकता है। यह कहना संकीर्ण व्याख्या होगी कि विधायिका ने केवल बच्चों के अनुकूल लगने के लिए 'गिरफ्तारी' शब्द को 'आशंका' के साथ प्रतिस्थापित कर दिया। यह प्रतिस्थापन अधिनियम के उद्देश्यों के अनुरूप उद्देश्यपूर्ण है।

14(ii). किशोर न्याय अधिनियम, 2015 में दिए गए बाल अपराधी की गिरफ्तारी के कारण/आधार गुणात्मक रूप से वयस्कों की गिरफ्तारी के कारणों / आधारों से भिन्न हैं और एक दृष्टिकोण बदलाव काफी स्पष्ट है। साथ ही यह भी ध्यान दिया जा सकता है कि जहां मामला जघन्य प्रकृति का हो या जहां यह आरोप लगाया गया हो कि मामला वयस्कों के साथ संयुक्त रूप से किया गया है, वहां प्राथमिकी दर्ज करने पर भी स्पष्ट रोक है। किशोर न्याय (देखभाल और संरक्षण) मॉडल नियमावली, 2016 का नियम 8 प्राथमिकी दर्ज करने और आशंका की बात करता है:

"8. पुलिस और अन्य एजेंसियों की पूर्व पेशी कार्रवाई (1) कोई भी प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज नहीं की जाएगी, सिवाय इसके कि जहां बच्चे द्वारा जघन्य अपराध किए जाने का आरोप लगाया गया हो, या जब ऐसा अपराध संयुक्त रूप से वयस्क के साथ किए जाने का आरोप हो। अन्य सभी मामलों में, विशेष किशोर पुलिस इकाई या बाल कल्याण पुलिस अधिकारी बच्चे द्वारा किए गए कथित अपराध के बारे में जानकारी सामान्य दैनिक डायरी में दर्ज करेगा और उसके बाद फॉर्म में बच्चे की सामाजिक पृष्ठभूमि की रिपोर्ट दर्ज करेगा और जिन परिस्थितियों में बच्चे को पकड़ा गया, जहां भी लागू हो, और इसे पहली सुनवाई से पहले बोर्ड को अग्रेषित करेगा:

बशर्ते कि जब तक कि यह बच्चे के सर्वोत्तम हित में न हो, पकड़ने की शक्ति का प्रयोग केवल जघन्य अपराधों के संबंध में किया जाएगा, । छोटे और गंभीर अपराधों से जुड़े अन्य सभी मामलों और ऐसे मामलों के लिए जहां बच्चे को पकड़ना बच्चे के हित में आवश्यक नहीं है, पुलिस या विशेष किशोर पुलिस इकाई या बाल कल्याण पुलिस अधिकारी बच्चे द्वारा कथित अपराध की प्रकृति के बारे में जानकारी अग्रेषित करेंगें बोर्ड को फॉर्म 1 में उसकी सामाजिक पृष्ठभूमि की रिपोर्ट के साथ भेजा जाएगा और बच्चे के माता-पिता या अभिभावक को सूचित किया जाएगा कि बच्चे को बोर्ड के समक्ष सुनवाई के लिए कब पेश किया जाना है।

.. (4).

(5)....

(6).

(7)... (8).

(9)....

14 (iii). गिरफ़्तारी / आशंका के कारणों / कारणों का अपराध की प्रकृति से बहुत अधिक लेना-देना नहीं हो सकता है। संज्ञेय और असंज्ञेय अपराध के बीच अंतर की रेखा किशोरों के मामले में कुछ हद तक धुंधली हो गई है। उसे केवल वहीं पकड़ा (गिरफ्तार) किया जा सकता है जहां अपराध जघन्य प्रकृति का हो या जहां बच्चे के सर्वोत्तम हित के लिए ऐसा कदम आवश्यक हो। इसके बाद धारा 8(1) के में छोटे अपराधों और गंभीर अपराधों में गिरफ्तारी के बारे में प्रावधान जोड़ा गया है। इसका स्पष्ट निहितार्थ है कि आशंका की शक्ति का प्रयोग केवल उपयुक्त मामलों में ही किया जाना चाहिए, भले ही इसकी संज्ञेयता कुछ भी हो और यह अन्य विचारों पर निर्भर करेगा। और मेरे विचार में यदि हम सीआरपीसी की धारा 438 के इस प्रावधान को शामिल करने का प्रयास करते हैं। चीज़ों की योजना में, यह गंतव्य तक पहुँचने से पहले सही रास्ता भूलने जैसा होगा।

15(i). जहां अपराध छोटे या गंभीर अपराध की श्रेणी में आता हो वहां प्राथमिकी दर्ज नहीं की जा सकती। यहां सीआरपीसी में दी गई पंक्तियों में कोई भेद नहीं रखा गया है। प्रावधान यह नहीं कहते कि यदि अपराध संज्ञेय है तो प्राथमिकी दर्ज की जाए। इसके अलावा जैसा कि पहले चर्चा की गयी कि कथित तौर पर कानून का उल्लंघन करने वाले किसी बच्चे को तब तक गिरफ्तार नहीं किया जा सकता जब तक कि यह बच्चे के सर्वोत्तम हित में न हो या जघन्य अपराध का मामला न हो। आम तौर पर उसे छोटे और गंभीर अपराध के मामले में कानूनी रूप से गिरफ्तार नहीं किया जा सकता है।

15 (ii). जहां पकड़ने की शक्तियां कानूनी रूप से प्रयोग योग्य हैं, बच्चे को विशेष किशोर पुलिस इकाई या बाल कल्याण पुलिस अधिकारी के प्रभार में रखा जाना है। किसी भी स्थिति में बच्चे को पुलिस हिरासत में बंद नहीं किया जा सकता। बोर्ड के समक्ष बच्चे को पेश करने से पहले भी, यदि आवश्यक हो, तो उसे हिरासत में नहीं बल्कि अवलोकन गृह में रखा जाएगा। उसे हथकड़ी, जंजीर या किसी अन्य प्रकार से बेड़ी नहीं लगाई जा सकती। यहां तक कि बाल कल्याण पुलिस अधिकारी को भी वर्दी में नहीं बल्कि सादे कपड़ों में रहना आवश्यक है।

15(iii). ऊपर उल्लिखित सभी प्रावधान स्पष्ट रूप से इंगित करते हैं कि यद्यपि गिरफ्तारी और गिरफ्तारी शब्द के बीच कुछ समानता है, तथापि

इस विशेष कानून को लागू करने के पीछे के विचार को स्पष्ट करने और अन्य विधानों में प्रयुक्त गिरफ्तारी शब्द से आवश्यक अंतर को प्राथमिकता देने के लिए अन्य की तुलना में आशंका के हल्के शब्द को प्राथमिकता दी गई है। संक्षेप में कहें तो 'गिरफ्तारी' के सामान्य निहितार्थ गायब हैं। किसी किशोर की हिरासत प्रकृति में दंडात्मक नहीं है और सुरक्षात्मक है।

15 (iv). मॉडल नियमावली, 2016 का नियम 9 तभी लागू होता है जब कानून का उल्लंघन करने वाला कोई बच्चा पकड़ा जाता है। जब ऐसे पकड़े गए बच्चे को बोर्ड के सामने पेश किया जाता है, तो बोर्ड उसे पर्यवेक्षण गृह या सुरक्षित स्थान या उपयुक्त सुविधा या उपयुक्त व्यक्ति के पास भेज सकता है। उसको जेल नहीं भेजा जा सकता।

16. उपरोक्त प्रावधान को नोट करने के बाद, मैं किशोर न्याय अधिनियम, 2015 की धारा 12 पर वापस आता हूं। (इसे पैरा 10 में पुनः प्रस्तुत किया गया है)।

जैसा कि धारा 12 की भाषा से बहुत स्पष्ट है कि सीआरपीसी की धारा 436 से 439 के प्रावधानों के तहत जमानत के प्रावधानों की प्रयोज्यता के लिए कोई भेद नहीं रखा गया है; किशोर न्याय अधिनियम, 2015 की धारा 12 जमानती और गैर-जमानती अपराधों पर समान रूप से लागू होती है। दूसरे, कानून का यह प्रावधान तीन स्थितियों की बात करता है जो इस प्रकार हैं:-

(i) जहां कथित तौर पर कानून का उल्लंघन करने वाले किसी बच्चे को पुलिस द्वारा पकड़ा जाता है और हिरासत में लिया जाता है;

(1) जहां वह उपस्थित होता है (निश्चित रूप से ऐसी स्थितियां उत्पन्न होती हैं जब उसे पकड़ा नहीं जाता है और मॉडल नियमावली, 2016 के नियम 8 (1) के परंतुक के अनुसार बोर्ड के समक्ष उपस्थित होने के लिए उसके अभिभावक को सूचना भेज दी जाती है); और (ii) जब उसे बोर्ड के सामने लाया गया हो (वह स्थिति तब उत्पन्न होती है जब उसे बाल कल्याण पुलिस अधिकारी या विशेष किशोर पुलिस इकाई का प्रभारी बनाया गया हो)।

धारा 12 फिर से उप-धारा (1) के मध्य में वाक्यांश का उपयोग करती है जो कहती है कि 'दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 में कुछ समय के लिए बल में रहते हुए भी,' ज़मानत के साथ या उसके बिना जमानत पर रिहा किया जाना चाहिए या एक परिवीक्षा अधिकारी या किसी योग्य व्यक्ति की देखरेख में पर्यवेक्षण के तहत रखा जाना चाहिए। । इस प्रावधान का प्राकृतिक और शाब्दिक अर्थ यह दर्शाता है कि अपराधों की श्रेणी के होते हुए भी, जिसके लिए कानून का उल्लंघन करने वाले बच्चे को बोर्ड के सामने पेश किया गया या लाया गया या पेश किया गया, उसे जमानत पर रिहा किया जा सकता है या उसे रिहा नहीं किया जा सकता है और किसी परिवीक्षा अधिकारी या किसी योग्य व्यक्ति की देखरेख में रखा जाएगा। जब उसे रिहा नहीं किया जा रहा हो तो उसे केवल निरीक्षण गृह या सुरक्षित स्थान पर ही रखा जा सकता है। जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, प्रावधान सीआरपीसी के तहत जमानत के प्रावधानों से मौलिक रूप से भिन्न हैं। गिरफ्तारी की आशंका जो सीआरपीसी की धारा 438 की प्रयोज्यता के लिए एक आवश्यक पूर्व शर्त है किशोरों के मामले में यह बिल्कुल अनुचित है। मेरे विचार में किशोर न्याय अधिनियम के प्रावधानों के तहत प्रयुक्त

अर्थ में "गिरफ्तारी" शब्द को "आशंका" शब्द से प्रतिस्थापित नहीं किया जा सकता है।

17. मेरे दृढ़ विचार में, किशोर न्याय अधिनियम, 2015 में एक बाल अपराधी के संबंध में एक अलग और विशेष प्रक्रिया रखी गई है ताकि उन सभी पहलुओं से व्यापक रूप से निपटा जा सके जो एक आपराधिक मामले में उत्पन्न हो सकते हैं, चाहे वह एफआईआर दर्ज करके किसी के द्वारा शुरू किया गया हो या नहीं। ऐसे कई संकेतक हैं जो इस विचार या राय को बनाने से इनकार करते हैं कि किसी किशोर की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए अग्रिम जमानत के प्रावधान लागू होंगे। अधिनियम में एक योजना है जो पूर्व पेशी और पश्च पेशी चरणों में ऐसे किशोरों से निपटती है। कुछ बिंदुओं पर पहले ही विचार किया जा चुका है और कुछ और बिंदु जोड़े जा सकते हैं। किसी बच्चे को जमानत पर रिहा करते समय जिन कारकों पर विचार किया जाना चाहिए, उनमें स्पष्ट रूप से ज्ञात अपराधियों के साथ उसके संपर्क में आने की संभावना, उसके शारीरिक, नैतिक या मनोवैज्ञानिक खतरे के संपर्क में आने की संभावना या अन्यथा न्याय का अंत होने की संभावना शामिल है।। उपरोक्त कारक यह निष्कर्ष निकालने के लिए पर्याप्त हैं कि धारा 12 के प्रावधान बच्चे के सर्वोत्तम हित को ध्यान में रखते हुए बनाए गए हैं। यह ध्यान दिया जा सकता है कि ऐसी परिस्थितियां हो सकती हैं जहां एक बच्चे को बाल देखभाल संस्थान में रखना बच्चे के सर्वोत्तम हित की सेवा के लिए सबसे अच्छा विकल्प हो सकता है, एक सिद्धांत जो धारा 3 के तहत इस अधिनियम के उद्घाटन में जगह पाता है। अध्याय ॥ धारा 3 में 16 सिद्धांतों की गणना की गई है जिन्हें इस अधिनियम के प्रावधानों को लागू करते समय बोर्ड सहित केंद्र सरकार या राज्य सरकार और अन्य एजेंसियों, जैसा भी मामला हो, को ध्यान में रखना होगा। इन सिद्धांतों में, बहुत महत्वपूर्ण रूप से सुरक्षा का सिद्धांत शामिल है जो कहता है कि यह सुनिश्चित करने के लिए सभी उपाय किए जाएंगे कि बच्चा सुरक्षित है और देखभाल और सुरक्षा प्रणाली के संपर्क में रहते हुए और उसके बाद उसे किसी भी तरह की हानि, शोषण या दुर्व्यवहार का शिकार नहीं होना पड़े। मेरे विचार में, कानून का उल्लंघन करने वाले बच्चों से निपटने के लिए कानून की एक समग्र यांत्रिक प्रणाली स्थापित की गई है। निहितार्थ से, ऐसे अंतराल, यदि कोई हों, को बाहर करने की आवश्यकता है जहां एक बच्चे के साथ प्रक्रिया के नियमित कानून के तहत निपटा जा सकता है। उस स्थिति में, जब सीआरपीसी की धारा 438 के प्रावधान किशोर के मामलों में बने रहने की अनुमति दी गई है, अधिनियम का लक्ष्य ल और उद्देश्य विफल हो जाएगा। कानून की व्याख्या इस तरह से नहीं की जा सकती, जिससे इस अधिनियम द्वारा प्राप्त किए जाने वाले व्यापक और गंभीर उद्देश्य में बाधा उत्पन्न हो।

18. आवेदक ने, इस अग्रिम जमानत आवेदन की विचारणीयता के बिंदु पर जोर देते हुए, मेरे सामने रमन और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य 2022 एससीसी ऑनलाइन बॉम 1470 में मुंबई उच्च न्यायालय, औरंगाबाद पीठ द्वारा दिए गए निर्णय को रखा है; जिसमें रखरखाव के प्रश्न पर विचार किया गया और खण्ड पीठ द्वारा इसका उत्तर निम्नानुसार दिया गयाः-

किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2015 के तहत परिभाषित "एक

'बच्चा' और "कानून का उल्लंघन करने वाला बच्चा" दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 438 के तहत एक आवेदन दायर कर सकता है।"

19. उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, मैं सम्मानपूर्वक मुंबई उच्च न्यायालय की राय से असहमत हूं। मेरी राय को शहाब अली और अन्य बनाम उ०प्र० राज्य; 2020 (2) एडीजे 130 मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के निर्णय से पर्याप्त समर्थन मिलता है। मेरा दृढ़ मत है कि किशोर न्याय अधिनियम एक व्यापक विधान है जिसमें कानून का उल्लंघन करने वाले बच्चों के संबंध में सभी प्रावधान शामिल हैं और शामिल हैं। योजना के साथ-साथ अधिनियम द्वारा प्राप्त किए जाने वाले लक्ष्य और उद्देश्य के साथ असंगत होने के कारण सीआरपीसी की धारा 438 के प्रावधान का प्रयोग नहीं है।

(2023) 3 ILRA 589

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक वाद

दिनांक: इलाहाबाद 11.01.2023

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती ज्योत्सना शर्मा के समक्ष

आपराधिक प्रकीर्ण अग्रिम जमानत आवेदन (U/S 438 Cr.P.C.) संख्या 12334/2022

रहीस **...आवेदक**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य **...प्रतिपक्षी**

आवेदक के अधिवक्ता: श्री विदित नारायण मिश्रा

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: जी.ए.

ए. आपराधिक कानून - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 438 - भारतीय दंड संहिता-1860-धाराएँ 380, 427 और 457-याचिका-निरस्त- एटीएम से 17 लाख रुपये लूटे गए- आवेदक का नाम स्वीकारोक्ति के बयान में आया है-हालांकि सह-आरोपी द्वारा दी गई स्वीकारोक्ति या बयान न्यायालय में विश्वसनीय साक्ष्य के रूप में नहीं स्वीकार किया जा सकता, लेकिन यह जांच के वाद में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है-इसलिए, आवेदक को अग्रिम जमानत देना न केवल उचित और प्रभावी जांच में रुकावट डालेगा, बल्कि असली अपराधियों की रक्षा में भी भूमिका निभा सकता है-इसके अतिरिक्त, अगर अग्रिम जमानत दी जाती है तो बाकी राशि की वसूली की संभावना भी खत्म हो जाती है-धारा 438 सीआर.पी.सी. का प्रयोग नियमित जमानत के विकल्प के रूप में नियमित रूप से नहीं किया जा सकता। (पैराग्राफ 1 से 8)

जमानत याचिका निरस्त की जाती है। (ई-6)

माननीय श्रीमति ज्योत्सना शर्मा, न्यायाधीश

1। याची के विद्वान अधिवक्ता श्री विदित नारायण मिश्रा को सुना, श्री ओ० पी० मिश्रा, विद्वान अतिरिक्त सरकारी अधिवक्ता, राज्य की ओर से, तथा रिकॉर्ड पर उपलब्ध कागजों का परिशीलन किया।

2। वर्तमान याचिका केस क्राइम नंबर० 255 सन 2021, अंतर्गत धारा 380, 427, तथा 457 भारतीय दंड संहिता, थाना दनकौर, ज़िला गौतम बुद्ध नगर, में अग्रिम जमानत प्राप्त करने हेतु प्रस्तुत की गई है।

3। अभियोजन पक्ष के अनुसार, बिलासपुर स्थित एक पंजाब नेशनल बैंक का ए० टी० एम०

13.07.2021/14.07.2021 की रात को एक गैस कटर द्वारा काट कर खोला गया था तथा नगद चुरा लिया गया था। इस आधार पर एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई तथा उस पर जांच की गई। तीन लोगों को गिरफ्तार किया गया जिनके नाम, नासिर, शहीद और इमरान है तथा प्रत्येक के पास से 80,000/- रुपए पुलिस द्वारा बरामद किए गए। वर्तमान याची का नाम गिरफ्तार हुए एक व्यक्ति ने पुलिस द्वारा दर्ज किए गए अपने बयान में घटना में शामिल व्यक्ति के तौर पर उल्लेखित किया है तथा इसके विरुद्ध विवेचना प्रचलित है।

4। याची की ओर से यह तर्क दिया गया कि उसका नाम गिरफ्तार किए गए एक व्यक्ति द्वारा अपने बयान में उद्घाटित किया गया है जिस पर वैधानिक रूप से कोई विश्वास नहीं किया जा सकता क्योंकि इसका कोई साक्ष्यगत मूल्य नहीं है। आगे कहा गया कि वर्तमान याची का गिरफ्तार किए गए एक व्यक्ति नासिर से शत्रुतापूर्ण संबंध है, अतः, उसने इसका नाम लिया है। यह पूर्णतः निर्दोष है तथा इसकी स्वच्छंदता की रक्षा अग्रिम याचिका स्वीकार कर किए जाने योग्य है।

5। अग्रिम जमानत याचिका का राज्य द्वारा पुरजोर विरोध इस संबंध में मेरे समक्ष प्रस्तुत निम्नवत तथ्य तथा परिस्थितियों के क्रम में किया गया।

(१) ए० टी० एम० से कुल मिला कर 17 लाख से अधिक एक संगठित रूप से ए० टी० एम० को गैस कटर से काट कर लूटा गया था। अब तक संकलित साक्ष्य प्रदर्शित करते हैं कि कई व्यक्ति इस में शामिल थे जिनका नाम गिरफ्तार किए गए व्यक्तियों द्वारा लिया गया है।

(२) यह तर्क भी दिया गया कि यद्यपि अभियुक्त का कुबूलनामा या बयान विश्वसनीय साक्ष्य की परीक्षा भले ही पास न कर सके परंतु यह मुकदमें के दौरान जांच में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

(३) आगे यह तर्क भी दिया गया कि याची की गिरफ्तारी से पहले दी गई जमानत न केवल उचित एवं कारगर जांच में बाधा पहुंचाएगी बल्कि वास्तविक अपराधियों को बचाने में भूमिका भी निभाएगी। इस अग्रिम जमानत याचिका के इस चरण पर स्वीकार किए जाने से बाकी बची धनराशि की बरामदगी की संभावना भी समाप्त हो जाएगी।

6। प्रथम दृष्टाया ऐसा प्रतीत नहीं होता कि इसे इस मामले में दुर्भावनापूर्ण रूप से गिरफ्तार करवा कर अपमानित या नीचा दिखने के लिए फंसाया गया है। इस बात का भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि अग्रिम जमानत एक असाधारण उपचार है जिसे उचित मामलों में ही प्रयोग में लाना चाहिए। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 में प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग नियमित रूप से साधारण जमानत के विकल्प के तौर पर नहीं किया जा सकता। यह विवेकाधीन शक्ति एसे तथ्यों के अस्तित्व की मांग करती है जहां न्यायालय इस बात को ले कर संतुष्ट हो कि न्याय के उद्देश्य को आगे बढ़ाने और कानूनी प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए उसका हस्तक्षेप आवश्यक है। इसके अलावा, जहां चोरी की गई नकदी का खुलासा करने और मामले को प्रभावी ढंग से

उद्घाटित करने के लिए गहन और कुशल पूछताछ की आवश्यकता हो सकती है, वहां गिरफ्तारी से पहले जमानत एक अनुकूल कदम नहीं हो सकता है।

7। इस मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुये मुझे यह अग्रिम जमानत का लाभ देने का उचित मामला नहीं लगता।

8। अतः यह अग्रिम जमानत याचिका अस्वीकार की जाती है।

9। यह स्पष्ट किया जाता है कि आवेदक की अग्रिम जमानत को खारिज करने में की गई टिप्पणियाँ किसी भी तरह से विद्वान ट्रायल जज को मामले के किसी भी चरण में उनके समक्ष उपलब्ध तथ्यों के आधार पर अपनी स्वतंत्र राय बनाने में प्रभावित नहीं करेंगी।

(2023) 3 ILRA 591

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक वाद

दिनांक: लखनऊ 22.02.2023

माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान के समक्ष

आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या 12591 / 2022

शिव प्रिया ...आवेदक

बनाम

प्रवर्तन निदेशालय, लखनऊ जोन ...प्रतिपक्षी

आवेदक के अधिवक्ता: मोहम्मद गयासुद्दीन खान

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: रोहित त्रिपाठी, रोहित त्रिपाठी

ए. आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 439 - धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002-धारा 3 और 4- यह मामला PMLA के अपराध से संबंधित है जिसमें ED द्वारा शिकायत दर्ज की गई है- आवेदक से पहले ही 28.95 करोड़ रुपये की धनराशि बरामद की जा चुकी है- PMLA की धारा 45 के कठोर प्रावधान पूरे हो चुके हैं, आवेदक ने पहले ही सजा का आधे से ज्यादा समय व्यतीत कर लिया है, और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दी गई अंतरिम जमानत का दुरुपयोग नहीं किया है- इसके अलावा, यह विचरण जल्दी खत्म होने की कोई संभावना नहीं है क्योंकि कुल 150 अभियोजन गवाह हैं और अभी तक केवल दो गवाहों का परीक्षण किया गया है- इसलिए, आवेदक को सर्वोच्च न्यायालय के K.A. Najeeb में दिए गए निर्देश का लाभ मिलना चाहिए। (पैराग्राफ 1 से 29)

B. 2002 अधिनियम की धारा 45 द्वारा दिए गए दोहरी शर्तें, भले ही अभियुक्त के जमानत के अधिकार को सीमित करती हों, लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि ये शर्तें जमानत स्वीकृति पर पूरी तरह से रोक लगाती हैं। यह विवेक न्यायालय में होता है जो न तो मनमाना है और न ही असंगत, बल्कि न्यायिक है, जैसा कि 2002 अधिनियम की धारा 45 में कानून के सिद्धांतों द्वारा मार्गदर्शित किया गया है। (पैराग्राफ 18)

जमानत आवेदन स्वीकृत किया जाता है। (E-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. भारत संघ बनाम के. ए. नजीब (2021) 3 SCC 713 2. रामचंद करुणाकरन बनाम E.D. एवं अन्य, CRLA संख्या 1650 वर्ष 2022 {SLP (Crl.) संख्या 6061 वर्ष 2020}

<u>माननीय न्यायमूर्ति राजेश सिंह चौहान</u>

1. आवेदक की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री आई.बी. सिंह और उनके सहायक श्री अमित सिन्हा, श्री आदित्य वैभव सिंह और श्री एम.जी. खान तथा प्रवर्तन निदेशालय (ई.डी.) की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री रोहित त्रिपाठी को सुना गया।

2. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, वर्तमान आवेदक (शिव प्रिया) सहायक निदेशक प्रवर्तन निदेशालय बनाम अजय कुमार एवं अन्य, अपराध/ईसीआईआर सं. 06/पीएमएलए/एलकेजेडओ/ , अन्तर्गत धारा 3/4 धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002 थाना-ईडी/लखनऊ, से उद्भूत सत्र वाद सं. 1266/2020, जो विद्वान विशेष न्यायाधीश-पीएमएलए, लखनऊ (उ.प्र.) के समक्ष लंबित है, में दिनांक 03.12.2019 से जेल में बंद है।

3. आवेदक के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री आई.बी. सिंह के अनुसार, वर्तमान आवेदक आम्रपाली ग्रुप ऑफ़ कंपनीज़ (जिसे आगे "एजीसी" के नाम से संदर्भित किया जाएगा) में पूर्व निदेशक है, जो नोएडा/ग्रेटर नोएडा, उत्तर प्रदेश में रियल एस्टेट और उससे जुड़े व्यवसाय में था। वर्तमान आवेदक की योग्यता सिविल इंजीनियर होने के कारण उसकी भूमिका आर्किटेक्चरल प्लानिंग और इंजीनियरिंग की अवधारणा तक सीमित थी और वह कंपनी की वित्तीय योजना में शामिल नहीं था। वर्तमान आवेदक अल्ट्रा-होम कंस्ट्रक्शन प्राइवेट लिमिटेड यानी एजीसी की प्रमुख कंपनी में निदेशक होने के कारण वेतन ले रहा था और कानून के तहत उनकी परियोजना से संबंधित पेशेवर सेवाएं प्रदान करने के लिए अन्य कंपनियों से पेशेवर शुल्क प्राप्त कर रहा था। उक्त कंपनी के कई खरीदार खुद को व्यथित महसूस कर रहे हैं क्योंकि उन्हें फ्लैट/प्लॉट नहीं दिए गए हैं, जबकि उन खरीदारों ने कंपनी में अपनी बड़ी रकम जमा किया था, वर्ष 2018 में धारा 406, 420, 409 और 120-बी भा.दं.सं. के तहत वर्तमान आवेदक सहित कंपनी के निदेशकों के खिलाफ मामला 30 एफआईआर दर्ज हैं और आर्थिक अपराध शाखा, दिल्ली पुलिस (संक्षेप में ईओडब्ल्यू) ने वर्तमान आवेदक सहित कंपनी के निदेशकों को गिरफ्तार कर लिया है। वर्तमान आवेदक को नोएडा पुलिस ने दिनांक 11.10.2018 को हिरासत में लिया था। उपरोक्त गिरफ्तारी रिट याचिका (सिविल) सं. 940/2017; बिक्रम चटर्जी बनाम भारत संघ और अन्य में पारित सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के अनुसरण में की गई थी ताकि एफआईआर के आरोपों से संबंधित फोरेंसिक ऑडिटर की सहायता / पूरा किया जा सके। दिनांक 26.02.2019 को ईओडब्ल्यू, दिल्ली पुलिस ने वर्तमान आवेदक को हिरासत में ले लिया।

4. दिनांक 01.07.2019 को, ई.डी. ने प्रवर्तन मामले सूचना रिपोर्ट (जिसे आगे "ईसीआईआर" कहा जाएगा) सं. ईसीआईआर/06/पीएमएलए/एलकेजेडओ/2019 दायर किया। ई.डी. ने दिनांक 03.12.2019 को वर्तमान आवेदक को हिरासत में ले लिया।

5. दिनांक 16.03.2020 को वर्तमान आवेदक के खिलाफ सत्र वाद सं. 1266/2020 दर्ज किया गया। दिनांक 13.08.2020 को 04 सह-आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ आपराधिक शिकायत/सत्र वाद सं. 1234/2021 दर्ज किया गया। दिनांक 06.04.2022 को वर्तमान आवेदक को शामिल करते हुए 03 आपराधिक शिकायत/सत्र वाद सं. 1266/2020, 1234/2021 और 1219/2022 को समेकित किया गया। दिनांक 26.04.2022 को

वर्तमान आवेदक के खिलाफ आरोप विरचित किए गए।

6. आवेदक के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री आई.बी. सिंह ने कहा है कि दिनांक 21.05.2022 से लेकर अब तक 15 तिथियां तय की जा चुकी हैं, तथा केवल दो अभियोजन पक्ष के गवाहों की जांच की जा सकी है तथा पी.डब्लू.-3 की मुख्य परीक्षण दिनांक 01.02.2023 को पूरा हुआ है, लेकिन आज तक उससे जिरह नहीं की जा सकी है। श्री सिंह ने यह दिखाने के लिए ऑर्डर-शीट की प्रमाणित प्रति दाखिल की है कि अभियोजन पक्ष की ओर से असहयोग के कारण अभियोजन पक्ष के गवाह/गवाहों का परीक्षण ठीक से नहीं हो सका है, साथ ही वर्तमान आवेदक/बचाव पक्ष की ओर से मामले में नियमित रूप से भाग लिया जा रहा है।

7. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे कहा है कि अभियोजन पक्ष के 150 गवाह हैं, जिनका परीक्षण किया जाना है और यदि दिनांक 21.05.2022 से मुकदमे की प्रगति देखी जाए, जिसमें अभियोजन पक्ष के गवाह सहयोग नहीं कर रहे हैं, तो विचाराधीन मुकदमा अगले पांच या छह वर्षों में पूरा नहीं हो सकता। इसके अलावा, यदि वर्तमान आवेदक की न्यायिक हिरासत की कुल अवधि पर विचार किया जाए, तो यह उसकी हिरासत की पहली तारीख यानी दिनांक 11.10.2018 से लगभग चार वर्ष और चार महीने है और यदि ईडी द्वारा ली गई हिरासत की अवधि पर विचार किया जाए, तो यह तीन वर्ष और तीन महीने से अधिक है और जिस अपराध के लिए मुकदमा चल रहा है, उसके लिए अधिकतम सजा सात वर्ष है। इसलिए, पहली स्थिति में वर्तमान आवेदक ने आधी से अधिक सजा काट ली है और दूसरी स्थिति में वर्तमान आवेदक ने लगभग आधी सजा काट ली है।

8. आवेदक के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे कहा है कि वर्तमान आवेदक उसी मामले में उन्हीं आरोपों के लिए दिनांक 11.10.2018 से न्यायिक हिरासत में है, हालांकि, एजेंसियां अलग-अलग हैं। इसलिए, उसकी कुल हिरासत अवधि चार साल और चार महीने से अधिक मानी जा सकती है। यदि मुकदमे की प्रगति वैसी ही रही, तो संभावना है कि वर्तमान आवेदक को सजा की अधिकतम अवधि यानी सात साल की सजा काटनी होगी।

9. श्री सिंह ने अवगत कराया है कि वर्तमान आवेदक को रिट याचिका (आराधिक) सं. 311 सन् 2022; शिव प्रिया बनाम एन.सी.टी. दिल्ली और अन्य में पारित दिनांक 22.08.2022 के आदेश द्वारा सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अंतरिम जमानत प्रदान की गई थी और वह दिनांक 07.11.2022 तक अंतरिम जमानत पर रहा। इसके बाद, उसने सी.एम.एम. ईस्ट डिस्ट्रिक्ट, कड़कड़डूमा कोर्ट, दिल्ली की अदालत के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया। उसने सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दी गई अंतरिम जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं किया। वह दिनांक 07.11.2022 से फिर से हिरासत में है। श्री सिंह ने अनुलग्नक संख्या आरए-3 का उल्लेख किया है जो दिनांक 03.12.2019 से 24.08.2022 तक ई.डी. के मामले में हिरासत से संबंधित वर्तमान आवेदक का हिरासत प्रमाण पत्र है।

10. आवेदक की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री आई.बी. सिंह ने **भारत संघ बनाम**

के.ए. नजीब (2021) 3 एससीसी 713 मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश के पैरा 14, 15 और 17 का हवाला देते हुए कहा है कि चूंकि मुकदमे को शीघ्रता से समाप्त करने की कोई संभावना नहीं है और आवेदक ने काफी समय तक कारावास भोगा है, इसलिए उसे जमानत पर रिहा किया जा सकता है। पैरा-14, 15 और 17 इस प्रकार हैं:-

"14. इस मामले के तथ्य ऊपर बताए गए इन दो उदाहरणों से भी अधिक गंभीर हैं। न केवल प्रतिवादी पांच साल से अधिक समय से जेल में है, बल्कि 276 गवाहों का परीक्षण होना बाकी है। आरोप दिनांक 27.11.2020 को तय किए गए हैं। इसके अलावा, अपीलकर्ता एनआईए को दो अवसर दिए गए, जिन्होंने अपने गवाहों की अंतहीन सूची का परीक्षण कराने में कोई रुचि नहीं दिखाई। यह भी उल्लेखनीय है कि जिन तेरह सह-आरोपियों को दोषी ठहराया गया है, उनमें से किसी को भी आठ साल से अधिक कठोर कारावास की सजा नहीं दी गई है। इसलिए यह वैध रूप से उम्मीद की जा सकती है कि यदि दोषी पाया जाता है, तो प्रतिवादी को भी उसी सीमा के भीतर सजा मिलेगी। यह देखते हुए कि इस तरह के कारावास का दो तिहाई हिस्सा पहले ही पूरा हो चुका है, ऐसा प्रतीत होता है कि प्रतिवादी ने न्याय से भागने के अपने कृत्यों के लिए पहले ही भारी कीमत चुकाई है।

15. इस न्यायालय ने अनेक निर्णयों में स्पष्ट किया है कि संविधान के भाग III द्वारा गारंटीकृत स्वतंत्रता अपने सुरक्षात्मक दायरे में न केवल उचित प्रक्रिया और निष्पक्षता को शामिल करेगी, बल्कि न्याय और त्वरित सुनवाई तक पहुँच को भी शामिल करेगी। सुप्रीम कोर्ट लीगल एड कमेटी (विचाराधीन कैदियों का प्रतिनिधित्व) बनाम भारत संघ15 में, यह माना गया कि विचाराधीन कैदियों को मुकदमे के लंबित रहने तक अनिश्चित काल तक हिरासत में नहीं रखा जा सकता। आदर्श रूप से, किसी भी व्यक्ति को अपने कृत्यों के प्रतिकूल परिणाम तब तक नहीं भुगतने चाहिए जब तक कि यह किसी तटस्थ मध्यस्थ के समक्ष स्थापित न हो जाए। हालाँकि, वास्तविक जीवन की व्यावहारिकताओं के कारण जहाँ एक प्रभावी विचारण सुनिश्चित करना और संभावित अपराधी को मुकदमे के लंबित रहने की स्थिति में समाज के लिए जोखिम को

कम करना है, न्यायालयों को यह तय करने का काम सौंपा जाता है कि किसी व्यक्ति को मुकदमे के लंबित रहने तक रिहा किया जाना चाहिए या नहीं। एक बार जब यह स्पष्ट हो जाता है कि समय पर सुनवाई संभव नहीं होगी और अभियुक्त ने काफी समय तक कारावास भोगा है, तो न्यायालयों को आम तौर पर उन्हें जमानत पर रिहा करना होगा।

16. ...

17. इस प्रकार यह हमारे लिए स्पष्ट है कि यूएपीए की धारा 43-डी (5) जैसे वैधानिक प्रतिबंधों की उपस्थिति संविधान के भाग III के उल्लंघन के आधार पर जमानत देने की संवैधानिक न्यायालयों की क्षमता को समाप्त नहीं करती है। वास्तव में, एक क़ानून के तहत प्रतिबंधों के साथ-साथ संवैधानिक क्षेत्राधिकार के तहत प्रयोग की जाने वाली शक्तियों को अच्छी तरह से सुसंगत बनाया जा सकता है। जबकि कार्यवाही शुरू होने पर, न्यायालयों से जमानत देने के खिलाफ विधायी नीति को समझने की उम्मीद की जाती है, लेकिन ऐसे प्रावधानों की कठोरता तब कम हो जाएगी जब उचित समय के भीतर मुकदमा पूरा होने की कोई संभावना न हो और पहले से ही कैद की अवधि निर्धारित सजा के एक बड़े हिस्से से अधिक हो गई हो। ऐसा दृष्टिकोण यूएपीए की धारा 43-डी (5) जैसे प्रावधानों की संभावना के खिलाफ सुरक्षा करेगा, जिन्हें जमानत से इनकार करने या त्वरित सुनवाई के संवैधानिक अधिकार के बड़े पैमाने पर उल्लंघन के लिए एकमात्र आधार के रूप में इस्तेमाल किया जा रहा है।

11. आवेदक की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री आई.बी. सिंह ने **रामचंद करुणाकरण बनाम प्रवर्तन निदेशालय एवं अन्य (आपराधिक अपील सं. 1650 सन् 2022, एसएलपी (क्रि.) सं. 6061 सन् 2020 से उत्पन्न) दिनांकित 23.09.2022** के मामले में दिए गए सर्वोच्च न्यायालय के आदेश का भी हवाला दिया है, जिसमें कहा गया है कि उपरोक्त मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने उक्त आरोपी व्यक्ति को इस तथ्य को देखते हुए जमानत दी थी कि उक्त आरोपी व्यक्ति ने पीएमएलए से संबंधित अपराध के संबंध में वास्तविक हिरासत के तीन वर्ष से अधिक समय पूरा कर लिया है। हालाँकि उपरोक्त आरोपी व्यक्ति वरिष्ठ नागरिक था। वर्तमान मामले में, आवेदक ने पीएमएलए से संबंधित अपराध के संबंध में वास्तविक हिरासत के तीन वर्ष से अधिक समय पूरा कर लिया है। इसलिए,

उसे जमानत दी जा सकती है। प्रासंगिक पैरा-6 इस प्रकार है:-

> "6. हम वर्तमान में पीएमएल अधिनियम के प्रावधानों के तहत दायर शिकायत से उत्पन्न कार्यवाही पर विचार कर रहे हैं। वर्तमान मामले में, अपीलकर्ता को दिनांक 19.06.2019 को हिरासत में लिया गया था और तब से वह हिरासत में है। इस प्रकार, अपीलकर्ता ने पीएमएल अधिनियम से संबंधित अपराध के संबंध में तीन साल से अधिक की वास्तविक हिरासत पूरी कर ली है।"

12. आवेदक के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री आई.बी. सिंह ने यह भी कहा कि वर्तमान आवेदक को इस मुद्दे के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 21.02.2022 के आदेश के माध्यम से नियमित रूप से सुनवाई का अवसर दिया गया था, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा रिसीवर नियुक्त किया गया था और रिसीवर ने वर्तमान आवेदक से संबंधित वसूली के संबंध में प्रथम दृष्टया विसंगति पाई है। फोरेंसिक ऑडिटर द्वारा राशि को काफी कम कर दिया गया था।

13. श्री सिंह ने कहा है कि प्रवर्तन निदेशालय द्वारा आरोपित राशि 95.54 करोड़ रुपये थी। फोरेंसिक ऑडिटर द्वारा हटाई गई राशि 68.88 करोड़ रुपये थी। इसलिए, वास्तविक शेष राशि 26.66 करोड़ रुपये है। आवेदक से 28.95 करोड़ रुपये की राशि पहले ही वसूल की जा चुकी है। इसलिए, वर्तमान आवेदक को पूरी उम्मीद है कि मुकदमे के समापन के बाद, उसे न केवल आरोपों से बरी किया जाएगा, बल्कि उसे 2.29 करोड़ रुपये की राशि वापस भी की जाएगी। इसलिए, उपरोक्त के मद्देनजर, वर्तमान आवेदक से कोई राशि वसूलने योग्य नहीं है।

14. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने यह भी कहा कि ई.डी. के विद्वान अधिवक्ता ने गलत उल्लेख किया है कि वर्तमान आवेदक के खिलाफ अनुसूचित अपराधों से संबंधित 19 मामले दर्ज किए गए हैं, जिनके आधार पर वर्तमान मामले में जांच की गई थी और आवेदक ज्यादातर मामलों में न्यायिक हिरासत में है। हालाँकि, वर्तमान ईसीआईआर 14 मामलों के आधार पर पंजीकृत की गई थी, यानी एफआईआर सं. 336/2018, 273/2017, 561/2017, 563/2017, 565/2017, 566/2017, 118/2018, 70/2018, 219/2018, 783/2017, 44/2018, 213/2017, 767/2017 और 123/2018। ईसीआईआर की प्रति पहले से ही रिकॉर्ड पर है और जमानत आवेदन के अनुलग्नक संख्या 4 के रूप में दायर की गई है। आवेदक को किसी भी पूर्ववर्ती अपराध में गिरफ्तार नहीं किया गया है क्योंकि उस आशय का चार्ट पहले से ही रिकॉर्ड पर है और जमानत आवेदन के अनुलग्नक सं. 20 के रूप में दायर किया गया है।

15. इसके विपरीत, ई.डी. के विद्वान अधिवक्ता श्री रोहित त्रिपाठी ने कहा कि आवेदक ने इस आवेदन के माध्यम से ईसीआईआर/06/पीएमएलए/एलकेजेडओ/2019 से उत्पन्न सत्र मामला सं. 1266 सन् 2020 में

जमानत के लिए प्रार्थना की है। उन्होंने यह भी कहा कि वर्तमान मामले में जांच/विवेचना भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा रिट याचिका (सिविल) सं. 940 सन् 2017; बिक्रम चटर्जी बनाम यूओआई और अन्य के माध्यम से शुरू/निगरानी की गई थी। यह भी कहा गया कि सह-अभियुक्त, अर्थात् अनिल कुमार शर्मा की जमानत याचिका को इस माननीय न्यायालय द्वारा तीन मौकों पर इस तथ्य के बावजूद खारिज कर दिया गया है कि उक्त आवेदक ने चिकित्सा आधार पर व्यापक रूप से दलील दी थी। उस पर श्री आई.बी. सिंह, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने कहा कि उनकी जमानत याचिकाओं को या तो जांच के दौरान या आरोप तय होने से पहले खारिज कर दिया गया था।

16. श्री त्रिपाठी ने आगे कहा है कि शिकायत के अनुसार, विभिन्न आरोपी व्यक्तियों द्वारा 5982.84 करोड़ रुपये की राशि का दुरुपयोग किया गया है और वर्तमान आवेदक की न केवल सार्वजनिक धन की लूट के लाभार्थी के रूप में बल्कि हजारों संभावित घर खरीदारों द्वारा जमा किए गए धन के दुरुपयोग के बारे में निर्णय लेने की प्रक्रिया में सक्रिय रूप से शामिल होने में भी प्रमुख भूमिका थी। धन के दुरुपयोग की प्रक्रिया में वर्तमान आवेदक की भूमिका और उसके परिणामस्वरूप लूटे गए धन से उसका लाभ प्राप्त करना ई.डी. द्वारा एकत्र किए गए दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्यों द्वारा पुख्ता तौर पर स्थापित किया गया है। वर्तमान आवेदक और अपराध की आय सहित आरोपी व्यक्तियों द्वारा अपनाई गई कार्यप्रणाली, साक्ष्य काफी मजबूत हैं। इस संबंध में श्री त्रिपाठी ने शिकायत ज्ञापन (अनुलग्नक सं. 7) के पैरा 4.12 से 4.21 तथा पैरा 5.1.17, 5.1.24, 5.1.26, 5.1.50, 5.1.52, 5.1.54 एवं 5.1.55 से 5.1.65 की ओर इस न्यायालय का ध्यान आकृष्ट किया है।

17. श्री त्रिपाठी ने दलील दी है कि ऊपर बताए गए सबूत ज्यादातर बैंक खातों और आरोपियों के बयानों के रूप में हैं, जिन पर कोई विवाद नहीं किया गया है। किसी भी मामले में, पीएमएलए की धारा 24 में निर्धारित विपरीत अनुमान के मद्देनजर, इन दस्तावेजों के बारे में सबूत के भार का निर्वहन करना आवेदक का कर्तव्य है। आवेदक/आरोपी रिकॉर्ड पर कोई भी ठोस या विश्वसनीय सामग्री पेश करने में बुरी तरह विफल रहा है जो उसके खिलाफ़ अनुमान को प्रथम दृष्टया खारिज कर सके।

18. श्री त्रिपाठी ने आगे कहा कि वर्तमान मामला ऐसा है जिसमें आरोपी व्यक्तियों पर निर्दोष भावी घर खरीदारों द्वारा जमा किए गए सार्वजनिक धन की सामूहिक लूट करने तथा उक्त धन को लूटने तथा अपने निजी लाभ के लिए इसका उपयोग करने के लिए विभिन्न अपराधों के आरोप लगाए गए हैं। इसलिए, वर्तमान आवेदक के खिलाफ भारी और अकाट्य सबूतों को देखते हुए, वर्तमान आवेदन पीएमएलए की धारा 45 (i) में निर्धारित दोहरे परीक्षण को पास नहीं करता है। यह, इस तथ्य के साथ कि शिकायत की गई कार्रवाई में हजारों निर्दोष भावी घर खरीदारों के धन का दुरुपयोग शामिल है, वर्तमान आवेदक को जमानत पर रिहा होने का अधिकार नहीं देता है। इसलिए, वर्तमान जमानत आवेदन खारिज किए जाने योग्य है।

19. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना गया तथा अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया गया।

20. शुरू में ही यह स्पष्ट है कि मैं इस मुद्दे के मेरिट में नहीं पड़ रहा हूँ, क्योंकि यह विद्वान विचारण न्यायालय का अधिकार क्षेत्र है कि वह पूरे मुद्दे, पक्षों की दलीलों और रिकॉर्ड पर उपलब्ध संपूर्ण सामग्री और साक्ष्यों पर गौर करे। इस आदेश पर विचार और अवलोकन केवल जमानत आवेदन के निस्तारण तक ही सीमित होगा। इसलिए, विद्वान विचारण न्यायालय इस आदेश के किसी भी टिप्पणी या निष्कर्ष से प्रभावित नहीं होगा और किसी भी पक्ष को छोटी तारीखें तय करके अनावश्यक स्थगन दिए बिना कानून के अनुसार स्वतंत्र रूप से विचारण का संचालन और समापन करेगा और यदि कोई भी पक्ष विचारण कार्यवाही में उचित रूप से सहयोग नहीं करता है तो कानून के तहत स्वीकार्य कोई भी उचित बलपूर्वक कदम उठाया जा सकता है।

21. वर्तमान मामले में, निस्संदेह, वर्तमान आवेदक को उन्हीं आरोपों के लिए दिनांक 11.10.2018 को हिरासत में लिया गया था, जिनके लिए ईडी ने संबंधित ईसीआईआर दायर की है। हालांकि, दिल्ली पुलिस की आर्थिक अपराध शाखा ने दिनांक 26.10.2019 को वर्तमान आवेदक को हिरासत में लिया है और प्रवर्तन निदेशालय ने दिनांक 03.12.2019 को हिरासत में लिया है। इसलिए, सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए वर्तमान आवेदक चार साल और चार महीने से अधिक समय से न्यायिक हिरासत में है और यदि प्रवर्तन निदेशालय द्वारा ली गई न्यायिक हिरासत की अवधि पर विचार किया जाए, तो यह तीन साल और तीन महीने से अधिक है। निर्विवाद रूप से, जिस अपराध के लिए मुकदमा चल रहा है, उसके लिए अधिकतम सजा सात साल है। इसलिए, दोनों स्थितियों में वर्तमान आवेदक ने सजा का आधा हिस्सा पूरा कर लिया है।

22. विद्वान विचारण न्यायालय के आदेश-पत्र की प्रमाणित प्रति से पता चलता है कि दिनांक 26.04.2022 को आरोप विरचित किए गए थे, उसके बाद दिनांक 21.05.2022 से अभियोजन पक्ष के गवाह का परीक्षण किया जाना था। उल्लेखनीय है कि दिनांक 21.05.2022 से अब तक 15 तारीखें दी गई हैं लेकिन केवल 02 अभियोजन पक्ष के गवाहों का परीक्षण किया जा सका है और अभियोजन पक्ष के गवाह सं. 3 का मुख्य परीक्षण दिनांक 01.02.2023 को पूरा हो गया है, लेकिन वह बाद की तारीखों में जिरह नहीं कर सका। ऑर्डरशीट से पता चलता है कि अभियोजन पक्ष के गवाह ठीक से सहयोग नहीं कर रहे हैं और इस आशय की कोई रिपोर्ट नहीं है कि आवेदक/बचाव पक्ष की ओर से कोई स्थगन मांगा गया है। उल्लेखनीय है कि अभियोजन पक्ष के 150 गवाह हैं, जिनमें से 02 अभियोजन पक्ष के गवाहों का परीक्षण पूरा हो गया है। इसलिए, यदि मुकदमे की प्रगति समान रहती है, तो मुकदमे को शीघ्रता से समाप्त करने की कोई संभावना नहीं है, कम से कम यह अगले पांच या छह वर्षों में पूरा होने की संभावना नहीं है और उस स्थिति में वर्तमान आवेदक को मुकदमा पूरा होने से पहले ही अधिकतम सात साल की सजा काटनी होगी। उपरोक्त परिस्थितियों में, **के.ए. नजीब (उपरोक्त)** के मामले को संदर्भित करना प्रासंगिक होगा जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि एक बार यह स्पष्ट हो जाने पर कि निश्चित रूप से मुकदमा संभव नहीं होगा और अभियुक्त ने काफी समय तक कारावास भोगा है, न्यायालय सामान्यतः उसे जमानत पर रिहा करने के लिए

बाध्य होगा। **के.ए. नजीब (उपरोक्त)** के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष मामला गैरकानूनी गतिविधि (रोकथाम) अधिनियम, 1967 (संक्षेप में यूएपीए) के अपराध से संबंधित था, जिसमें सजा पीएमएलए के तहत निर्धारित सजा से अधिक कठोर है।

23. वर्तमान मामले में, मैं पाता हूँ कि निश्चित रूप से सुनवाई संभव नहीं होगी और वर्तमान आवेदक ने काफी समय तक कारावास भोगा है, जैसा कि ऊपर विचार किया गया है, इसलिए वर्तमान आवेदक को **के.ए. नजीब (उपरोक्त)** के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का लाभ दिया जा सकता है।

24. रामचंद करुणाकरण (उपरोक्त) के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए बाद के निर्णय में, जिसमें मामला पीएमएलए के अपराध से संबंधित है, जिसमें शिकायत ई.डी. द्वारा दायर की गई है। सर्वोच्च न्यायालय ने इस तथ्य पर विचार करते हुए अभियुक्त व्यक्तियों को जमानत प्रदान की कि उक्त अभियुक्त व्यक्तियों ने पीएमएलए के अपराध के संबंध में वास्तविक हिरासत के तीन वर्ष से अधिक समय पूरा कर लिया है। एक और तथ्य पर विचार किया जा सकता है कि वर्तमान आवेदक को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अंतरिम जमानत प्रदान की गई थी और जैसे ही अंतरिम जमानत की अवधि समाप्त हुई, उसने तुरंत विचारण न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया और अपनी अंतरिम जमानत की अवधि के दौरान उसने जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं किया और जमानत आदेश की सभी शर्तों का पालन किया।

25. इस चरण में, मैं विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री आई.बी. सिंह की दलीलों पर विचार नहीं कर रहा हूँ कि आवेदक से वास्तविक राशि से अधिक राशि पहले ही वसूल की जा चुकी है, क्योंकि उक्त राशि सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के अनुपालन में फोरेंसिक ऑडिटर द्वारा निर्धारित की गई है और ये बातें मुकदमे की कार्यवाही का विषय बनी रहेंगी। इसलिए, वास्तविक राशि क्या है और वर्तमान आवेदक से कितनी राशि वसूल की जानी है, इसका निर्धारण विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा सभी प्रासंगिक साक्ष्यों और सामग्रियों पर विचार करने के साथ-साथ पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं की दलीलों को सुनने के बाद किया जाएगा। फोरेंसिक ऑडिटर की राय का परीक्षण विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा साक्ष्य अधिनियम के सख्त सिद्धांतों के आलोक में किया जाएगा, हालाँकि, फोरेंसिक ऑडिटर की राय एक विशेषज्ञ की राय है, इसलिए विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा इस पर सावधानीपूर्वक विचार किया जाएगा।

26. ई.डी. के विद्वान अधिवक्ता, श्री रोहित त्रिपाठी से पूछा गया है कि क्या मुकदमे को शीघ्रता से समाप्त करने की कोई संभावना है, जहां कुल 150 अभियोजन पक्ष के गवाहों का परीक्षण किया जाना है और दिनांक 21.05.2022 से आज तक केवल दो अभियोजन पक्ष के गवाहों का परीक्षण किया गया है, श्री त्रिपाठी ने कहा है कि वह ई.डी. के विद्वान अधिवक्ता को निर्देश देंगे जो विद्वान विचारण न्यायालय के समक्ष मामले का संचालन कर रहे हैं कि वे मुकदमे को शीघ्रता से पूरा करने के लिए आवश्यक कदम उठाएं, हालांकि उन्होंने उचित रूप से कहा है कि कुल 150 अभियोजन पक्ष के गवाहों की जांच

करने में कुछ पर्याप्त समय लगेगा। उनसे आगे यह भी पूछा गया है कि क्या वर्तमान आवेदक ने सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दी गई अंतरिम जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग किया है, उन्होंने प्रस्तुत किया है कि वर्तमान आवेदक के खिलाफ इस आशय की कोई प्रतिकूल जानकारी नहीं है।

27. रामचंद करुणाकरण (उपरोक्त) के मामले के संबंध में आगे पूछे जाने पर, जहां सर्वोच्च न्यायालय ने पीएमएलए के एक अपराध के लिए आरोपी व्यक्ति को इस तथ्य पर विचार करते हुए जमानत दी थी कि उक्त आरोपी ने वास्तविक हिरासत के तीन वर्ष से अधिक समय पूरा कर लिया है, श्री त्रिपाठी ने कहा है कि चूंकि सर्वोच्च न्यायालय ने आरोपी व्यक्ति को जमानत दी है, इसलिए, उनके पास उस पर कहने के लिए कुछ नहीं है लेकिन सर्वोच्च न्यायालय द्वारा एक और तथ्य देखा गया था कि उक्त आरोपी व्यक्ति एक वरिष्ठ नागरिक था।

28. चूंकि ई.डी. के विद्वान अधिवक्ता को मामले पर विस्तार से सुना जा चुका है और अपराध की कार्यवाही को आगे बढ़ाने के लिए आवेदक से 28.95 करोड़ रुपये पहले ही वसूल किए जा चुके हैं और इस कथन पर विचार करते हुए कि अब उससे वसूलने के लिए कुछ भी नहीं बचा है, मुझे यह उचित लगता है कि वर्तमान आवेदक को जमानत पर रिहा किया जा सकता है क्योंकि पीएमएलए की धारा 45 संतुष्ट होती है, विशेष रूप से इस तथ्य के मद्देनजर कि वर्तमान आवेदक पहले ही आधी से अधिक सजा काट चुका है, उसने सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दी गई अंतरिम जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं किया है और इस बात की कोई संभावना नहीं है कि मुकदमे को शीघ्रता से समाप्त किया जा सके क्योंकि कुल 150 अभियोजन पक्ष के गवाह हैं और अब तक केवल दो अभियोजन पक्ष के गवाहों की जांच की गई है। सर्वोच्च न्यायालय ने **सतेंद्र कुमार अंतिल बनाम सीबीआई और अन्य विशेष अनुमति याचिका (आपराधिक) सं. 5191 सन् 2021** में आदेश के पैरा-86 में, निम्नानुसार अवधारित किया गया है:-

> "विशेष अधिनियम (श्रेणी सी)
>
> 86. अब हम श्रेणी सी पर आते हैं। हम अलग-अलग अधिनियमों पर विचार नहीं करना चाहते हैं, क्योंकि प्रत्येक विशेष अधिनियम के पीछे एक उद्देश्य होता है, जिसके बाद उसमें कठोरता का समावेश होता है। देरी को नियंत्रित करने वाला सामान्य सिद्धांत इन श्रेणियों पर भी लागू होगा। यह स्पष्ट करने के लिए, संहिता की धारा 436-ए में निहित प्रावधान किसी विशिष्ट प्रावधान के अभाव में विशेष अधिनियमों पर भी लागू होगा। उदाहरण के लिए, एनडीपीएस अधिनियम की धारा 37 के तहत प्रदान की गई कठोरता ऐसे मामले में आड़े नहीं आएगी, क्योंकि हम किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता पर विचार कर रहे हैं। हमें लगता है कि जितनी अधिक कठोरता होगी,

निर्णय उतना ही जल्दी होना चाहिए। आखिरकार, इस प्रकार के मामलों में गवाहों की संख्या बहुत कम होगी और मुकदमे को लंबा खींचने का कोई औचित्य नहीं हो सकता है। शायद प्रक्रिया को तेज करने के लिए इस न्यायालय के निर्देशों का पालन करने और संहिता की धारा 309 का कड़ाई से अनुपालन करने की आवश्यकता है।"

29. तदनुसार, जमानत आवेदन स्वीकार किया जाता है।

30. वर्तमान आवेदक (शिव प्रिया) को उपरोक्त अपराध संख्या के मामले में 2,00,000/- रुपये के निजी मुचलके तथा समान राशि के दो जमानतदार प्रस्तुत करने पर संबंधित न्यायालय की संतुष्टि पर निम्नलिखित शर्तों के साथ जमानत पर रिहा किया जाए :-

(i) आवेदक इस आशय का शपथपत्र दाखिल करेगा कि वह साक्ष्य के लिए निर्धारित तिथियों पर जब गवाह न्यायालय में उपस्थित होंगे, किसी स्थगन की मांग नहीं करेगा। इस शर्त का पालन न करने की स्थिति में, विचारण न्यायालय इसे जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग मानकर कानून के अनुसार आदेश पारित कर सकता है।

(ii) आवेदक प्रत्येक निर्धारित तिथि पर विचारण न्यायालय के समक्ष व्यक्तिगत रूप से या अपने अधिवक्ता के माध्यम से उपस्थित रहेगा। पर्याप्त कारण के बिना उसकी अनुपस्थिति की स्थिति में विचारण न्यायालय उसके विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 229-ए के अंतर्गत कार्यवाही कर सकता है।

(iii) यदि आवेदक विचारण के दौरान जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग करता है और उसकी उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए धारा 82 दं.प्र.सं. के अंतर्गत उद्घोषणा जारी की जाती है और यदि आवेदक ऐसी उद्घोषणा में निर्धारित तिथि पर न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने में विफल रहता है, तो विचारण न्यायालय उसके विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 174-ए के अंतर्गत कानून के अनुसार कार्यवाही शुरू करेगा।

(iv) आवेदक को (i) केस शुरू करने, (ii) आरोप विरचित करने और (iii) धारा 313 दं.प्र.सं. के तहत बयान दर्ज करने के लिए तय की गई तारीखों पर विचारण न्यायालय के समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित रहना होगा। यदि विचारण न्यायालय की राय में आवेदक की अनुपस्थिति जानबूझकर या बिना किसी पर्याप्त कारण के है, तो विचारण न्यायालय के लिए इस तरह की चूक को जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग मानने और कानून के अनुसार उसके खिलाफ कार्यवाही करने का विकल्प होगा।

(2023) 3 ILRA 599

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक वाद

माननीय न्यायमूर्ति दिनेश कुमार सिंह

के समक्ष

आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या 22865/2020

उमाकांत यादव ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ..प्रतिपक्षी

आवेदक के अधिवक्ता: श्री राम प्रताप यादव, श्री देवब्रत यादव, श्री अमरेंद्र नाथ सिंह (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: जी.ए., श्री हनुमान दीन वर्मा

ए. आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 439 - भारतीय दंड संहिता, 1860-धाराएँ 120-बी, 454, 380 और 447 - सार्वजनिक संपत्ति को नुकसान रोकने का अधिनियम, 1984-धारा 3(2)(क)-आरोपी-आवेदक, उसके बेटे और अन्य सह-आरोपी ने गांधी आश्रम की उक्त संपत्ति पर बलात कब्जा कर लिया था-आरोपी-आवेदक दो बार उत्तर प्रदेश का सांसद और एक बार विधायक रहा है-लोग उसके विरुद्ध शिकायत करने की हिम्मत नहीं कर पाते थे क्योंकि वह सत्ताधारी वर्ग के करीब था, उसके पास शक्ति, आतंक और डर था-आवेदक की 80 मामलों की समृद्ध लेकिन बदनाम आपराधिक इतिहास उसकी अपराध की दुनिया में लंबी और भयानक यात्रा को दर्शाती है-ऐसा व्यक्ति कानून के शासन से शासित नागरिक समाज के लिए एक निरंतर खतरा है। (पैराग्राफ 1 से 12)

जमानत आवेदन निरस्त किया जाता है। (ई-6)

उद्धृत वाद सूची:

पब्लिक इंटरेस्ट फाउंडेशन और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य (2019) 3 SCC 224।

<u>माननीय न्यायमूर्ति दिनेश कुमार सिंह</u>

1. आवेदक की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अमरेंद्र नाथ सिंह के सहायक विद्वान अधिवक्ता श्री राम प्रताप यादव के साथ साथ शिकायतकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री हनुमान दीन वर्मा तथा राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री जे.पी.एस. चौहान को सुना गया।

2. सीआरपीसी की धारा 439 के तहत वर्तमान जमानत आवेदन मुकदमा अपराध संख्या 260/2019, आईपीसी की धारा 120-बी, 454, 380, 447 और सार्वजनिक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम, 1984 की धारा 3(2)(क), थाना-फूलपुर, जिला- आजमगढ़ में आरोपी आवेदक द्वारा जमानत की मांग करते हुए दायर किया गया है।

3. संबंधित एफ.आई.आर. लाल चंद यादव पुत्र राम बुझारत की लिखित शिकायत पर दिनांक 04 अक्टूबर 2019 को पंजीकृत की गई थी, जिसमें आरोप लगाया गया था कि 27 सितंबर 2019 को शाम लगभग 5-6 बजे वर्तमान आरोपी आवेदक के उकसावे पर उसके बेटों रविकांत यादव और दिनेशकांत यादव और कई अज्ञात साथियों ने गांधी आश्रम के ताले तोड़ दिए और सरकारी संपत्ति और दस्तावेज चोरी कर लिए। उक्त गांधी आश्रम का निर्माण विश्व बैंक द्वारा दी गई धनराशि से तथा आश्रम द्वारा स्वयं जुटाई गई धनराशि से किया गया था। सरकारी सम्पत्ति एवं दस्तावेजों को लूटने के बाद आरोपी प्रार्थी द्वारा उक्त आश्रम को गुलाबी रंग से रंग दिया गया तथा आश्रम भवन पर आरोपी प्रार्थी एवं उसके पुत्रों ने कब्जा कर लिया। घटना के समय आश्रम परिसर में कोई भी मौजूद नहीं था।

4. अगले दिन जब शिकायतकर्ता जो गांधी आश्रम का प्रभारी था, कार्यालय आया तब उसे घटना की जानकारी हो सकी। उक्त शिकायत के आधार पर संबंधित एफ.आई.आर. दर्ज की गई।

5. उक्त गांधी आश्रम का निर्माण गाटा संख्या 113 की भूमि पर किया गया था, जो नजूल भूमि है और उक्त भवन 1963 में निर्माण पूरा होने के बाद से गांधी आश्रम के कब्जे में था। आरोपी आवेदक, उसके पुत्रों और अन्य सह-आरोपियों ने गांधी आश्रम की उक्त संपत्ति पर जबरन कब्जा कर लिया था।

6. आरोपी आवेदक पूर्वी उत्तर प्रदेश का एक और बाहुबली, गैंगस्टर और खूंखार अपराधी है, जो बिहार राज्य से सटा हुआ है और बाहुबली, माफिया और गैंगस्टर स्वभाव के लिए जाना जाता है। आरोपी आवेदक एक खूंखार अपराधी है, जो उसके लंबे, समृद्ध लेकिन जघन्य अपराधों के अपमानजनक आपराधिक इतिहास से स्पष्ट है, जिसमें भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत हत्या के 15 मामले शामिल हैं। हाल ही में उसे दो मामलों में दोषी ठहराया गया था। एक मामला, जिसके लिए उसे दोषी ठहराया गया है, वह आईपीसी की धारा 302 के तहत अपराध है, और दूसरा मामला, जिसके लिए उसे दोषी ठहराया गया है, वह आईपीसी की धारा 420 के तहत अपराध है।

7. आरोपी आवेदक दो बार संसद सदस्य और एक बार उत्तर प्रदेश विधानसभा का सदस्य रह चुका है। जघन्य अपराधों के आरोपी आवेदक का समृद्ध लेकिन शर्मनाक आपराधिक इतिहास यह उजागर करता है कि उसने अपने राजनीतिक प्रभाव, बाहुबल, माफिया और डॉन छवि का उपयोग करके अपराध की आय से कई सौ करोड़ रुपये की संपत्ति अर्जित की थी। उसे कई जघन्य अपराधों के मामलों में बरी किया गया था, क्योंकि वह गवाहों को अपने पक्ष में कर लेता था या उन्हें मजबूर कर देता था या उन्हें खत्म करवा देता था, जिस पर सर्वोच्च न्यायालय ने भी संज्ञान लिया था। सत्तारूढ़ अभिजात वर्ग के साथ उसकी निकटता, शक्ति और आतंक और भय के कारण लोग उसके खिलाफ शिकायत करने का साहस नहीं कर सके, जो उसने क्षेत्र के लोगों के दिल और दिमाग में पैदा कर दिया था। आरोपी आवेदक का 80 मामलों का वृहद लेकिन शर्मनाक आपराधिक इतिहास नीचे दिया गया है:

"1. उमाकान्त यादव पुत्र श्रीपतित यादव सा० चकगंज अलीशाह (सरावाँ), थाना-दीदारगंज, आजमगढ

क्र. सं	**मु.अ.सं**	**धारा**	**थाना**	**जनपद**
1	29/21	3(1) उ० प्र० गैंगस्टर एक्ट	दीदारगंज	आजमगढ़
2	260/19	120 बी, 454,38,447 भादवि व 3(2) क सार्व० सम्पत्ति0 क्षति नि० अधि०	फूलपुर	आजमगढ़
3	546/07	3/4 गुण्डा एक्ट	दीदारगंज	आजमगढ़
4	56/98	147,323,504,506,427 भादवि व 3(1)10 एससी/एसटी एक्ट	दीदारगंज	आजमगढ़

5	127/97	3 / 4 गुण्डा एक्ट	दीदारगंज	आजमगढ़
6	06/93	302 भादवि	दीदारगंज	आजमगढ़
7	194/92	364,506 भादवि	दीदारगंज	आजमगढ़
8	108/91	147,148,149,364,302,201,452 भादवि	दीदारगंज	आजमगढ़
9	16/88	147,148,149,323,324 भादवि	दीदारगंज	आजमगढ़
10	24/84	147,148,353,307 भादवि	दीदारगंज	आजमगढ़
11	94 ए/83	302 भादवि	दीदारगंज	आजमगढ़
12	43/77	323, 325 भादवि	दीदारगंज	आजमगढ़
13	298/07	147,148,149,307,440,427,504,5 06, भादवि	फूलपुर	आजमगढ़
14	36/98	147,336,307,427 भादवि	फूलपुर	आजमगढ़
15	94/86	147,148,149,302 भादवि	फूलपुर	आजमगढ़
16	47 ए/84	147,148,149,307 भादवि	फूलपुर	आजमगढ़
17	200/83	147,148,149,302,307 भादवि	फूलपुर	आजमगढ़
18	83/87	364 भादवि	अहरौला	आजमगढ़
19	87/87	3(1) उ०प्र० गैंगेस्टर एक्ट	अहरौला	आजमगढ़
20	49/83	325,323,332,504 भादवि	दीदारगंज	आजमगढ़
21	111/83	307 भादवि	फूलपुर	आजमगढ़
22	200/83	147,148,149,307,302 भादवि	फूलपुर	आजमगढ़
23	86/94	147,148,149,302 भादवि	फूलपुर	आजमगढ़
24	62/86	364 भादवि	दीदारगंज	आजमगढ़
25	141/90	147,148,323,504,506 भादवि	दीदारगंज	आजमगढ़

26	62/95	3(1) उ०प्र० गैंगस्टर एक्ट	फूलपुर	आजम गढ़
27	135/94	420,467,468,471 भादवि	दीदारगंज	आजम गढ़
28	137/94	25 आर्म्स-एक्ट	दीदारगंज	आजम गढ़
29	104/85	504,506 भादवि	दीदारगंज	आजम गढ़
30	105/85	504,506 भादवि	दीदारगंज	आजम गढ़
31	93/14	147,148,149,302,364,201 भादवि	दीदारगंज	आजम गढ़
32	407/04	110 सीआरपीसी	दीदारगंज	आजम गढ़
33	241/09	110 सीआरपीसी	दीदारगंज	आजम गढ़
34	622/09	307,302 भादवि	फूलपुर	आजम गढ़
35	156/06	142,143,186,353,341 भादवि	दीदारगंज	आजम गढ़
36	28/87	379 भादवि	दीदारगंज	आजम गढ़
37	132/15	147,148,323,352,506 भादवि	दीदारगंज	आजम गढ़
38	NCR 75/83	504,506 भादवि	दीदारगंज	आजम गढ़
39	NCR 118/84	323,504,506 भादवि	दीदारगंज	आजम गढ़
40	NCR 123/84	504,506 भादवि	दीदारगंज	आजम गढ़
41	NCR 168/86	323,504,506 भादवि	दीदारगंज	आजम गढ़
42	171/91	147,143,194,307 भादवि	फूलपुर	आजम गढ़
43	307/07	147,148,353,506 भादवि व 7 सीएलए एक्ट	फूलपुर	आजम गढ़
44	22/88	171,504,506 भादवि	दीदारगंज	आजम गढ़
45	10/92	382,506 भादवि	दीदारगंज	आजम गढ़
46	86/93	3(1) उ०प्र० गैंगेस्टर एक्ट	दीदारगंज	आजम गढ़
47	09/92	41,411 भादवि	दीदारगंज	आजम गढ़
48	121/97	3 /4 उ०प्र० गुण्डा एक्ट	दीदारगंज	आजम गढ़
49	NCR 57/86	323,504,506 भादवि	दीदारगंज	आजम गढ़

50	57/84	147,149,353,307 भादवि	सरायमीर	आजमगढ़
51	85/89	420,467,471 भादवि	सरायमीर	आजमगढ़
52	86/89	3/25/27 आम्स- एक्ट	सरायमीर	आजमगढ़
53	NCR 54/89	323,504,506 भादवि	सरायमीर	आजमगढ़

प्रभारी डीसीआरबी
आजमगढ़
प्रभारी डी.सी.आर.बी.
आजमगढ़।

उक्त संबंध में जनपद के समस्त थानों से जरिरये आर० टी० सेट जानकारी की गयी तो उपरोक्त अभिभयक्त के विवरूद्ध जनपद जौनपुर में विनम्न अभिभयोग पंजीकृत होना पाया गया।

क्र. सं.	**मु.अ. सं.**	**धारा**	**थाना**	**जनपद**
1	85/74	364, 302, 201 भादवि	शाहगंज	जौनपुर
2	87/92	27/25 ए एक्ट	शाहगंज	जौनपुर
3	36/90	302, 120 बी भादवि	शाहगंज	जौनपुर
4	71/1985	364/302 भादवि	शाहगंज	जौनपुर
5	469/1990	396/302 भादवि	शाहगंज	जौनपुर
6	96/1990	3/25 ए एक्ट	शाहगंज	जौनपुर
7	NCR-NO 136/91	323/504/506 भादवि	शाहगंज	जौनपुर
8	109/1994	147/148/149/323/504/506/427/307	सिंगरामऊ	जौनपुर
9	497/1997	504/506 भादवि	शाहगंज	जौनपुर

10	25/1998	504/506 भादवि	शाहगंज	जौनपुर
11	179/1995	3(1) उ०प्र० गिरोहबंद अधि०	शाहगंज	जौनपुर
12	82/1995	147/148/149/307/302/224/332/333/427 भादवि 7 सीएलए एक्ट	जी.आर.पी. शाहगंज	जौनपुर
13	03/2000	419/420 भादवि	शाहगंज	जौनपुर
14	501/2002	3(1) उ०प्र० गुण्डा अधि०	शाहगंज	जौनपुर
15	648/2003	147/148/149/504/302 भादवि 7 सीएलए	शाहगंज	जौनपुर
16	652/2003	3(1) उ०प्र० गिरोहबंद अधि०	शाहगंज	जौनपुर
17	461/2014	420/467/468/471 भादवि	लाईनबाजार	जौनपुर
18	654/2015	147/148/323/506/363/307 भादवि 3(2)	शाहगंज	जौनपुर

		5 एस सी०/ एस० टी० एक्ट		
19	355/2019	504/506/427 भाद वि	शाहगंज	जौनपुर
20	74/85	364/302/201 भाद वि	शाहगंज	जौनपुर
21	650/07	147/148/149/302/307/120 बी भाद वि	सरायख्वाजा	जौनपुर
22	968/14	174 ए भाद वि	लाइन बाजार	जौनपुर
23	2079/17	419/420/467/468 भाद वि	लाइन बाजार	जौनपुर
24	158/06	347/323/506/147 भाद वि	खुटहन	जौनपुर
25	NCR NO. 99/2000	323, 504 भाद वि	खुटहन	जौनपुर
26	21/14	506 भाद वि	खुटहन	जौनपुर
27	97/91	147, 323, 188 भाद वि	खुटहन	जौनपुर

रिपोर्ट सेवा में प्रेषित है।
प्रभारी डीसीआरबी,
जौनपुर।"

8. ट्रायल कोर्ट ने जमानत आवेदन संख्या 935/2020 में पारित आदेश दिनांक 11.06.2020 के तहत जमानत आवेदन को खारिज करते हुए आरोपी आवेदक के लंबे आपराधिक इतिहास को ध्यान में रखा है। आरोपी आवेदक एक भू-माफिया होने के अलावा एक डॉन,

गैंगस्टर और खूंखार अपराधी भी है। इस न्यायालय ने एक अन्य बाहुबली और वर्तमान सांसद, अर्थात् अतुल कुमार सिंह उर्फ अतुल राय पुत्र श्री भरत सिंह की जमानत याचिका को खारिज करते हुए, आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या 5473/2022 में पारित आदेश दिनांक 07.06.2022 के तहत दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र की सबसे बड़ी विडंबना का उल्लेख किया था और कहा था कि 2019 के आम चुनावों में निर्वाचित हुए लोकसभा के 43% सदस्यों पर आपराधिक मामले हैं, जिनमें जघन्य अपराधों से संबंधित मामले भी शामिल हैं। आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या 5473/2022 में पारित उक्त निर्णय दिनांक 07.06.2022 के प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत हैं:

"14. **पब्लिक इंटरेस्ट फाउंडेशन एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य: (2019) 3 एससीसी 224** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ ने विधि आयोग की 244वीं रिपोर्ट का संज्ञान लिया जिसमें कहा गया था कि 30 प्रतिशत या 152 मौजूदा सांसदों के विरुद्ध आपराधिक मामले लंबित थे, जिनमें से लगभग आधे यानी 76 के विरुद्ध गंभीर आपराधिक मामले थे। हर आम चुनाव के साथ यह प्रवृत्ति बढ़ती गई है। 2004 में 24 प्रतिशत लोकसभा सांसदों पर आपराधिक मामले लंबित थे, जो 2009 के चुनावों में बढ़कर 30 प्रतिशत हो गए। 2014 में यह बढ़कर 34 प्रतिशत हो गया और 2019 में, जैसा कि ऊपर बताया गया है, लोकसभा के लिए निर्वाचित 43 प्रतिशत सांसदों के विरुद्ध आपराधिक मामले लंबित हैं। सर्वोच्च न्यायालय ने राजनीति के अपराधीकरण और चुनाव सुधारों की अनिवार्य आवश्यकताओं का न्यायिक संज्ञान लिया है। ऐसे कई उदाहरण हैं जब हत्या, बलात्कार, अपहरण और डकैती जैसे गंभीर और जघन्य अपराधों के आरोपी व्यक्तियों को राजनीतिक दलों से चुनाव लड़ने के लिए टिकट मिल गया और यहां तक कि वे बड़ी संख्या में चुनाव जीत भी गए।

15. सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि इससे बहुत ही अवांछित और शर्मनाक स्थिति पैदा हो जाती है, जिसमें कानून तोड़ने वाले लोग कानून निर्माता बन जाते हैं और पुलिस संरक्षण में घूमते हैं। उक्त मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने भारत के चुनाव आयोग को राजनीति में अपराधीकरण को रोकने के लिए उचित कदम उठाने का निर्देश दिया है, लेकिन दुर्भाग्य से संसद की सामूहिक इच्छाशक्ति अपराधियों, गुंडों और कानून तोड़ने वालों के

हाथों में जा रहे भारतीय लोकतंत्र की रक्षा के लिए उक्त दिशा में आगे नहीं बढ़ी है। यदि राजनेता कानून तोड़ने वाले हैं, तो नागरिक जवाबदेह और पारदर्शी शासन की उम्मीद नहीं कर सकते और कानून के शासन द्वारा शासित समाज एक काल्पनिक विचार होगा। स्वतंत्रता के बाद प्रत्येक चुनाव में, जीतने योग्य उम्मीदवारों को टिकट देने में जाति, समुदाय, जातीयता, लिंग, धर्म आदि जैसी पहचानों की भूमिका अधिक से अधिक प्रमुख होती गई है। धन और बाहुबल के साथ इन पहचानों ने राजनीति में अपराधियों का प्रवेश आसान बना दिया है और बिना किसी अपवाद के प्रत्येक राजनीतिक दल (कुछ हद और सीमा में अंतर के साथ) चुनाव जीतने के लिए इन अपराधियों का उपयोग करता है। गंभीर आपराधिक आरोपों वाले उम्मीदवारों को टिकट देने से इस देश के नागरिक समाज और कानून का पालन करने वाले नागरिकों का चुनावी राजनीति और चुनावों में विश्वास और भरोसा टूट जाएगा।

16. इस बात से कोई इंकार नहीं कर सकता कि वर्तमान राजनीति अपराध, पहचान, संरक्षण, बाहुबल और धन के जाल में फंसी हुई है। अपराध और राजनीति के बीच गठजोड़ लोकतांत्रिक मूल्यों और कानून के शासन पर आधारित शासन के लिए गंभीर खतरा है। संसद और राज्य विधानमंडल के चुनाव और यहां तक कि स्थानीय निकायों और पंचायतों के चुनाव भी बहुत महंगे होते हैं। रिकार्ड से पता चलता है कि आपराधिक रिकॉर्ड वाले लोकसभा के निर्वाचित सदस्य अत्यंत धनी उम्मीदवार हैं। उदाहरण के लिए, 2014 के लोकसभा चुनाव में हत्या से संबंधित आपराधिक आरोपों वाले 23 विजेताओं में से 16 करोड़पति थे। उम्मीदवारों के दोबारा निर्वाचित होने के बाद, उनकी संपत्ति और आय कई गुना बढ़ जाती है, जो इस तथ्य से स्पष्ट है कि 2014 में, 165 सांसद जो दोबारा निर्वाचित हुए, उनकी औसत संपत्ति वृद्धि 5 वर्षों में 7.5 करोड़ रुपये थी।

17. पहले, 'बाहुबली' और अन्य अपराधी जाति, धर्म और राजनीतिक आश्रय सहित विभिन्न आधारों पर उम्मीदवारों को समर्थन प्रदान करते थे, लेकिन अब अपराधी स्वयं राजनीति में प्रवेश कर रहे

हैं और निर्वाचित हो रहे हैं, क्योंकि राजनीतिक दलों को आपराधिक पृष्ठभूमि वाले उम्मीदवारों को टिकट देने में कोई हिचकिचाहट नहीं है, जिनमें उनके खिलाफ जघन्य अपराध दर्ज हैं। पुष्ट आपराधिक इतिहास वाले अपराधियों और यहां तक कि सलाखों के पीछे बंद लोगों को भी विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा टिकट दिया जाता है और आश्चर्य की बात है कि उनमें से कुछ निर्वाचित भी हो जाते हैं।

18. यह संसद की जिम्मेदारी है कि वह अपराधियों को राजनीति, संसद या विधानमंडल में प्रवेश करने से रोकने के लिए अपनी सामूहिक इच्छाशक्ति दिखाए, ताकि लोकतंत्र और लोकतांत्रिक सिद्धांतों और कानून के शासन पर चलने वाले देश को बचाया जा सके।

19. नागरिक समाज की भी जिम्मेदारी है कि वह जाति, समुदाय आदि की संकीर्ण सोच से ऊपर उठकर यह सुनिश्चित करे कि आपराधिक पृष्ठभूमि वाला कोई उम्मीदवार चुनाव न जीत पाए। राजनीति का अपराधीकरण और सार्वजनिक जीवन में भ्रष्टाचार भारत की लोकतांत्रिक राजनीति और दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र के लिए सबसे बड़ा खतरा बन गया है। संगठित अपराध, राजनेताओं और नौकरशाहों के बीच एक अपवित्र गठबंधन है और उनके बीच यह गठजोड़ व्यापक वास्तविकता बन गया है। इस घटना ने कानून प्रवर्तन एजेंसियों और प्रशासन की विश्वसनीयता, प्रभावशीलता और निष्पक्षता को ख़त्म कर दिया है। इसके परिणामस्वरूप देश के प्रशासन और न्याय वितरण प्रणाली में विश्वास की कमी हो गई है, क्योंकि वर्तमान आरोपी-आवेदक जैसे आरोपी गवाहों को अपने पक्ष में कर लेते हैं, जांच को प्रभावित करते हैं और धन, बाहुबल और राजनीतिक शक्ति का उपयोग करके सबूतों के साथ छेड़छाड़ करते हैं। संसद और राज्य विधानसभाओं तक अपराधियों की बढ़ती संख्या सभी के लिए चेतावनी है। संसद और भारत के चुनाव आयोग से अपेक्षा की जाती है कि वे अपराधियों को राजनीति से दूर करने तथा अपराधी राजनेताओं और नौकरशाहों के बीच अपवित्र गठजोड़ को तोड़ने के लिए प्रभावी कदम उठाएं।

> 20. राजनीतिक प्रतिष्ठान की यह अपवित्र सांठगांठ और असावधानी ही आरोपी आवेदक जैसे व्यक्ति, एक गैंगस्टर, दुर्दांत अपराधी और 'बाहुबली' को संसद तक पहुंचाने और कानून निर्माता बनने का परिणाम है। यह न्यायालय अपराध की जघन्यता, अभियुक्त की ताकत, अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य, समाज पर पड़ने वाले प्रभाव, अभियुक्त द्वारा साक्ष्यों के साथ छेड़छाड़ करने की संभावना तथा अपने बल और धन बल का प्रयोग करके गवाहों को प्रभावित करने/उनका दिल जीतने की संभावना को ध्यान में रखते हुए यह आदेश दिया है.....।"

9. आरोपी आवेदक ने कथित तौर पर वर्ष 1974 में हत्या का पहला अपराध किया था और अपराध की दुनिया में अपने लंबे और जघन्य सफर के 48 वर्षों में, उसे हाल ही में वर्ष 2022 में केवल दो मामलों में ही दोषी ठहराया जा सका। यह घटना बहुत ही परेशान करने वाली है और यह लोकतांत्रिक राजनीति और कानून के शासन द्वारा संचालित समाज के लिए शुभ संकेत नहीं है। सरकार के सभी अंगों अर्थात कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका को इस बात के लिए दोषी ठहराया जाना चाहिए कि उन्होंने ऐसे खूंखार अपराधी को कई जघन्य अपराधों में बेखौफ घूमने दिया, जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है। ऐसे अपराधी का समाज में कोई स्थान नहीं होना चाहिए।

10. इसलिए, यह न्यायालय यह नहीं मानता कि ऐसे खूंखार अपराधी को जमानत पर रिहा करने की अनुमति दी जानी चाहिए। ऐसा व्यक्ति कानून के शासन द्वारा शासित नागरिक समाज के लिए निरंतर खतरा बना रहता है। वह समाज और शांतिपूर्वक रहने वाले तथा कानून का पालन करने वाले नागरिकों के लिए खतरा है।

11. उपरोक्त तथ्यों के समग्र परिप्रेक्ष्य में, इस न्यायालय को आरोपी आवेदक को जमानत पर रिहा करने का कोई आधार नहीं दिखता।

12. फलस्वरूप, जमानत आवेदन ***अस्वीकार*** किया जाता है।

(2023) 3 ILRA 606

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक वाद

दिनांक: इलाहाबाद 27.02.2023

माननीय न्यायमूर्ति मयंक कुमार जैन

आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या 46008 वर्ष 2022

शशिधर गौरव मिश्रा @ शशिधर मिश्रा
...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिपक्षी

आवेदक के अधिवक्ता: श्री शैलेंद्र सिंह, सुश्री कुमुदिनी शुक्ला

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: जी.ए., अरविंद कुमार मिश्रा, श्री अरुण कुमार मिश्रा, श्री आर.के. ओझा (वरिष्ठ अधिवक्ता)

ए. आपराधिक कानून - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 439 - भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 306- मृतका ने अपने ससुराल में

शादी के 10 वर्ष पश्चात अवांछित परिस्थितियों के चलते आत्महत्या की- मृतका के खिलाफ SSP और मजिस्ट्रेट को झूठा आवेदन दिया गया और पति ने यह भी कहा कि पत्नी/मृतका मानसिक रोगी है, जबकि वह M.A. क्वालिफाइड थी और पिछले 10 सालों से पढ़ा रही थी- आवेदक ने अपनी पत्नी पर फेसबुक पर भी झूठे आरोप लगाए, जिससे वह गहरे आहत हुई और उसकी गरिमा को ठेस पहुँची, अंततः परिस्थितियों ने उसे आत्महत्या करने पर मजबूर कर दिया- इसके अतिरिक्त, आवेदक द्वारा वाराणसी मानसिक अस्पताल का झूठा प्रिस्क्रिप्शन पेश किया गया, जबकि मृतका कभी भी उस अस्पताल में भर्ती नहीं हुई- जब उसे पीटा गया, तो उसने पुलिस को डिजिटल शिकायत दी और शिकायत के सामग्री खुद मृतका की मानसिक स्थिति को दर्शाती है। (पैराग्राफ 1 से 19)

बी. यदि आरोपी अपने कार्यों और लगातार आचरण से ऐसी स्थिति पैदा करता है जिससे मृतका को आत्महत्या के अलावा कोई विकल्प नहीं दिखाई देता, तो वाद भारतीय दंड संहिता की धारा 306 के अंतर्गत आ सकता है। यदि आरोपी पीड़ित की आत्म-सम्मान और आत्म-मान को नुकसान पहुँचाने में सक्रिय भूमिका निभाता है, जिससे अंततः पीड़ित आत्महत्या करने के लिए मजबूर हो जाता है, तो आरोपी को आत्महत्या के लिए उकसाने का दोषी माना जा सकता है। (पैराग्राफ 18)

आवेदन निरस्त किया गया। (ई-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. राजेश बनाम हरियाणा राज्य (2020) 15 SCC 359

2. एस.एस. चीना बनाम विजय कुमार महाजन एवं अन्य (2010) 12 SCC 190

3. उदे सिंह बनाम हरियाणा राज्य (2019) 17 SCC 301

4. एम. अर्जुनन बनाम राज्य (2019) 3 SCC 315

5. अमलेन्दु पाल बनाम पश्चिम बंगाल राज्य (2010) 1 SCC 707

<u>माननीय न्यायमूर्ति मयंक कुमार जैन</u>

1. अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा दायर अनुपालन शपथ पत्र रिकॉर्ड पर लिया जाता है।

2. आवेदक के अधिवक्ता श्री शैलेंद्र सिंह को, राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता श्री एस.के. ओझा और शिकायतकर्ता के अधिवक्ता ए. के मिश्रा को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

3. आवेदक की ओर से केस अपराध संख्या-119 वर्ष 2022 में धारा 306 भ०द०वि०, थाना कोतवाली, प्रयागराज के तहत आवेदक को जमानत पर रिहा करने की प्रार्थना के साथ वर्तमान जमानत आवेदन दायर किया गया है।

4. मामले का संक्षिप्त तथ्य यह है कि मृतका के पिता अमरनाथ त्रिपाठी ने आवेदक और परिवार के अन्य सदस्यों के खिलाफ प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई थी, जिसमें कहा गया था कि उनकी बेटी निशा त्रिपाठी का विवाह वर्ष 2011 में आवेदक के साथ हिंदू रीति-रिवाजों के अनुसार हुआ था। उसने 14 लाख रुपये खर्च किए और शादी में एक हुंडई आई-10 कार दी। शादी के एक महीने बाद उसकी सास ने मृतका से झगड़ा करना शुरू कर दिया और उसे शादी तोड़ने की धमकी दी। उनकी बेटी प्रयागराज के जगत तारन

इंटरमीडिएट कॉलेज में शिक्षिका के पद पर कार्यरत थी। आवेदक के एक अन्य महिला के साथ अवैध संबंध थे। यह तथ्य उनकी बेटी द्वारा सूचनाकर्ता को सुनाया गया था, लेकिन उन्होंने उसे धैर्य रखने के लिए कहा। घटना की तारीख से दो साल पहले आवेदक ने उसकी बेटी को पीटा था। इसको लेकर पुलिस से शिकायत की गई। घटना की तारीख से पहले उनकी बेटी उनके घर आई थी और उस समय उसकी तबीयत ठीक नहीं थी। उसे भूतों का डर सताता था। एक सप्ताह के बाद, आवेदक उसे अपने साथ ले गया। आवेदक ने अपना और उसका मोबाइल बंद कर दिया। 19.05.2022 को शाम करीब 6.00 बजे उन्हें सूचना मिली कि उनकी बेटी की मौत हो गई है। वह अपनी बेटी के घर पहुंचे और पाया कि उनकी बेटी का शव फर्श पर पड़ा था। आवेदक अपनी बेटी को प्रताड़ित कर रहा था और उसके साथ क्रूरता का व्यवहार कर रहा था। आवेदक के परिवार के अन्य सदस्य भी इसी गतिविधियों में लिप्त थे।

5. आवेदक के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि आवेदक निर्दोष है और उसे वर्तमान मामले में झूठा फंसाया गया है। यह प्रस्तुत किया गया है कि शुरू में पहली सूचना रिपोर्ट धारा 302 भ०द०वि० के तहत दर्ज की गई थी, लेकिन शव परीक्षण रिपोर्ट के आधार पर मामले को धारा 306 भ०द०वि० के तहत परिवर्तित कर दिया गया था और आरोप पत्र पहले ही दायर किया जा चुका था। आवेदक मृतका निशा त्रिपाठी का पति है। आवेदक का विवाह वर्ष 2011 में मृतका के साथ हुआ था। प्राथमिकी में लगाए गए आरोप झूठे और मनगढ़ंत हैं और उनमें कोई दम नहीं है। मृतका के साथ कभी कोई क्रूरता नहीं की गई। यह प्रस्तुत किया गया है कि मृतका की मानसिक स्थिति वर्ष 2019-20 से बिगड़ने लगी थी और वह रुक-रुक कर हिंसक घटनाओं से पीड़ित थी, जिसमें आवेगी, आक्रामक, हिंसक व्यवहार और गुस्से में मौखिक प्रकोप के बार-बार अचानक आने वाले एपिसोड शामिल थे। आवेदक को सूचनाकर्ता द्वारा स्वयं इस आधार पर चिकित्सा सहायता प्रदान करने से रोक दिया गया था कि मृतका उच्च योग्य महिला थी और वह किसी भी प्रकार की मानसिक बीमारी से पीड़ित नहीं हो सकती थी। बाद में, मृतका ने मानसिक बीमारी के प्रमुख लक्षण प्रदर्शित करना शुरू कर दिया, जिसमें स्वयं से मुस्कुराना, आत्म-बुदबुदाना, लगातार देखे जाने की आशंका, मृत लोगों और भगवान को देखकर मतिभ्रम, फोन और बैंक खाते के हैक होने की आशंका आदि शामिल थे। वह कई मौकों पर आवेदक और उसके परिवार के सदस्यों के साथ दुर्व्यवहार और शारीरिक हमला करती थी। आवेदक ने एस.एस.पी. प्रयागराज कार्यालय में शिकायत की, जिसे मध्यस्थता के लिए भेजा गया था, लेकिन मृतका संबंधित अधिकारी के सामने पेश नहीं हुई। चूंकि पुलिस अधिकारियों द्वारा कोई कार्रवाई नहीं की गई, इसलिए आवेदक ने धारा 156(3) द०प्र०स० के तहत आवेदन दायर किया और उसके बाद उसी तरीके से एक और आवेदन भी दायर किया गया। आवेदक को सक्षम न्यायालय के समक्ष तलाक की याचिका दायर करने के लिए मजबूर किया गया था। उन्होंने मनोचिकित्सक से उसकी जांच कराई और मानसिक स्वास्थ्य अधिनियम, 2017 के तहत आवेदन किया। मृतका जगत तारन गर्ल्स इंटरमीडिएट कॉलेज, प्रयागराज में एक शिक्षक के रूप में कार्यरत थी और उसे अपनी निराधार आशंकाओं के कारण इस्तीफा देने के लिए मजबूर होना पड़ा। मार्च-अप्रैल, 2022 के आसपास, उसने

मतिभ्रम होना और आवाजें सुनना शुरू कर दिया। मृतका ने 19.04.2022 को अपनी चिकित्सा स्थिति के कारण आवेदक द्वारा बिना किसी उकसावे, जबरदस्ती या उकसावे के फांसी लगाकर आत्महत्या कर ली। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि विवाह से एक बच्चा पैदा हुआ था जो अब 10 साल का है और आवेदक के साथ रह रहा है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि मृतका की मृत्यु का कारण मृत्यु पूर्व फांसी के परिणामस्वरूप श्वासावरोध होना पाया गया था। मृतका के शरीर पर कोई अन्य चोट नहीं पाई गई। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि मनोचिकित्सक के साथ किए गए परामर्श और उसके फेसबुक अकाउंट पर पोस्ट को भी एक प्रत्युत्तर हलफनामे के माध्यम से रिकॉर्ड पर लाया गया है जो मृतका की मानसिक स्थिति को भी इंगित करता है। मनोचिकित्सक ने उसे इलाज के लिए मानसिक अस्पताल रेफर कर दिया।

6. अपने सबमिशन के समर्थन में, आवेदक के अधिवक्ता ने राजेश बनाम हरियाणा राज्य, (2020) 15 एस.सी.सी. 359 में पारित माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया, जिसमें यह माना गया है कि "जिस व्यक्ति को आत्महत्या के लिए उकसाने के लिए कहा गया है, उसने आत्महत्या के कृत्य को सुविधाजनक बनाने के लिए उकसाने या कुछ कार्य करके सक्रिय भूमिका निभाई होगी। यह तर्क दिया जाता है कि रिकॉर्ड पर कोई सबूत उपलब्ध नहीं है जो यह साबित कर सके कि आवेदक कथित अपराध के कमीशन में दूर से भी शामिल था।

7. अधिवक्ता ने एस.एस चीना बनाम विजय कुमार महाजन और अन्य, (2010) 12 एस.सी.सी. 190, (ii) उड़े सिंह बनाम हरियाणा राज्य, (2019) 17 एस.सी.सी. 301, (iii) एम. अर्जुनन बनाम राज्य, (2019) 3 एस.सी.सी. 315 और (iv) अमलेंदु पाल बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, (2010) 1 एस.सी.सी. 707 में पारित माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया।

8. यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि आवेदक 21.05.2022 से जेल में बंद है, जिसका कोई आपराधिक इतिहास नहीं है और यदि उसे जमानत पर रिहा किया जाता है, तो वह जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं करेगा और मुकदमे में सहयोग करेगा।

9. इसके विपरीत, अतिरिक्त सरकारी अधिवक्ता के साथ-साथ सूचनादाता के अधिवक्ता ने जमानत देने की प्रार्थना का विरोध किया और तर्क दिया कि मृतका को आवेदक और उसके परिवार के सदस्यों द्वारा मानसिक और शारीरिक रूप से प्रताड़ित किया गया था। मृतका की कथित बीमारी, धारा 156(3) द०प्र०स० के तहत आवेदन दायर करने और तलाक याचिका दायर करने के संबंध में आवेदक द्वारा बताए गए सभी घटनाक्रम वर्ष 2021 से संबंधित हैं। आवेदक के साथ शादी के तुरंत बाद मृतका को मानसिक और शारीरिक क्रूरता के अधीन किया गया था। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि तलाक की याचिका भी वर्ष 2021 में दायर की गई थी। वर्ष 2021 में मानसिक स्वास्थ्य अधिनियम, 2017 के तहत कथित आवेदन किया गया, जिससे पता चलता है कि आवेदक द्वारा एक विशेष अवधि में एक साजिश के तहत सभी कार्यवाही शुरू की गई थी। मृतका एक उच्च शिक्षित महिला थी और वह पिछले 10 वर्षों से जगत तारन इंटरमीडिएट कॉलेज, प्रयागराज में एक शिक्षक थी, इसलिए उसकी मानसिक बीमारी के संबंध में सभी आरोप झूठे और मनगढ़ंत हैं।

10. यह भी प्रस्तुत किया गया है कि जहां तक मनोचिकित्सक के नुस्खे का संबंध है, रोगी की अनुपस्थिति में ध्यान की सलाह दी गई थी। यह संभव नहीं है कि एक डॉक्टर ध्यान लिख सकता है या रोगी की अनुपस्थिति में उच्च केंद्र का उल्लेख कर सकता है, इसलिए, जमानत आवेदन को एक रंग देने के लिए नुस्खे का उत्पादन किया जाता है। यह भी जोरदार ढंग से प्रस्तुत किया गया है कि इस तरह के पर्चे को, जब आवेदक द्वारा जमानत याचिका दायर की गई थी, विचारण न्यायालय के समक्ष दायर नहीं किया गया था। न्यायालय के आदेशों के तहत राज्य द्वारा अनुपालन जवाबी हलफनामा दायर किया गया था जिसमें डॉक्टर का बयान दायर किया गया था जिसमें डॉक्टर ने कहा था कि परामर्श के समय रोगी उसके समक्ष उपस्थित नहीं था, इसलिए पूरी कवायद किसी भी तरह से आवेदक के मामले का समर्थन नहीं करती है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि सूचनाकर्ता, उसकी पत्नी और अन्य गवाहों ने लगातार प्रथम सूचना रिपोर्ट के संस्करण की पुष्टि की है। आवेदक और उसके परिवार के सदस्यों ने ऐसे हालात पैदा किए कि निशा त्रिपाठी को आत्महत्या करने के लिए मजबूर होना पड़ा।

11. यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि परिवार के किसी भी सदस्य ने शिकायतकर्ता और उसके परिवार को उसकी बेटी की मृत्यु के बारे में सूचित नहीं किया। मृतका की मौत की जानकारी पुलिस ने दी। सूचनाकर्ता और उसके परिवार के सदस्यों की अनुपस्थिति में उसके शव को नीचे लाया गया। आवेदक द्वारा अपनी पत्नी के खिलाफ झूठे आरोप लगाते हुए तलाक का मामला दर्ज करना आत्महत्या करने के लिए प्रत्यक्ष रूप से उकसावा था। वह अपनी गरिमा को कम करने वाले झूठे आरोपों से बहुत आहत थी। यह भी तर्क दिया गया है कि शादी के दस साल की अवधि के दौरान, आवेदक द्वारा उसकी मानसिक बीमारी के बारे में कोई शिकायत नहीं की गई थी। वह भूगोल में एमए की डिग्री रखने वाली एक मेधावी छात्रा थी और उसने एनईटी और सीटीईटी परीक्षा भी उत्तीर्ण की और पिछले दस वर्षों से पढ़ा रही थी। आवेदक और उसके परिवार के सदस्य उसे बुराइयों के डर में डालकर ऐसा माहौल बना रहे थे कि उसके साथ कुछ गलत है। आवेदक घटनास्थल से भाग गया और उसे 20.05.2022 को गिरफ्तार कर लिया गया और अन्य आरोपी अभी भी फरार हैं। 23.07.2021 को आवेदक ने मृतका निशा त्रिपाठी को बेरहमी से पीटा और उसने संबंधित चौकी प्रभारी को सूचित किया और मृतका द्वारा एक डिजिटल शिकायत दर्ज कराई गई। उस शिकायत की सामग्री मृतका की मानसिक स्थिति को दर्शाती है।

12. मैंने पक्षकारों की सलाह सुनी है और अभिलेख का अवलोकन किया है।

13. 'उकसावा' और 'आत्महत्या का उकसावा' क्रमशः धारा 107 और 306 भ०द०वि० के तहत परिभाषित किया गया है। धारा 107 और 306 भ०द०वि० को पुन: पेश करना उचित समझा जाता है, जो इस प्रकार है:

वह व्यक्ति किसी चीज़ के किए जाने का दुष्प्रेरण करता है, जो -

1. *उस चीज़ को करने के लिए किसी व्यक्ति को उकसाता है; अथवा*
2. *उस चीज़ को करने के लिए किसी षड्यंत्र में एक या अधिक अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों के साथ सम्मिलित होता है,*

यदि उस षडयंत्र के अनुसरण में, कोई कार्य या अवैध चूक होती है; अथवा

3. उस चीज़ के किए जाने में किसी कार्य या अवैध लोप द्वारा जानबूझ कर सहायता करता है ।

स्पष्टीकरण 1-- अगर कोई व्यक्ति जानबूझकर दुर्व्यपदेशन या तात्विक तथ्य द्वारा, जिसे प्रकट करने के लिए वह आबद्ध है, जानबूझकर छिपाने द्वारा, स्वेच्छा से किसी चीज़ का किया जाना कारित करता है अथवा कारित करने का प्रयत्न करता है, तो उसे उस चीज़ को करने के लिए उकसाना कहा जाता है ।

स्पष्टीकरण 2--जो कोई, किसी कार्य के जाने से पहले या उसके समय पर, उस कार्य के जाने को बनाने के लिए और इस प्रकार उसके जाने को बनाने के लिए कुछ करता है, वह उस कार्य को करने में सहायता करता है ऐसा कहा जाता है।

306. आत्महत्या का दुष्प्रेरण: यदि कोई व्यक्ति आत्महत्या करता है, तो जो कोई भी ऐसी आत्महत्या के लिए उकसाएगा, उसे किसी एक अवधि के लिए कारावास से दंडित किया जाएगा जिसे दस साल तक बढ़ाया जा सकता है, और जुर्माने के लिए भी उत्तरदायी होगा।

14. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने मामलों की श्रेणी में जमानत के लिए आवेदन पर विचार करते समय ध्यान में रखे जाने वाले कारकों को सुलझाया है जैसे कि निर्णय का पृष्ठ 25

15. इस मामले में, यह स्वीकार किया जाता है कि आवेदक का विवाह मृतका के साथ 11 वर्ष पहले हुआ था और वर्ष 2014 में उनके विवाह से एक पुरुष बच्चे का जन्म हुआ था। वैवाहिक जीवन के दस साल की लंबी अवधि में, मृतका के खिलाफ उसके व्यवहार और उसकी मानसिक बीमारी के बारे में कोई शिकायत नहीं थी।

16. आवेदक के अधिवक्ता ने इस बात पर भरोसा किया कि वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, प्रयागराज के समक्ष मृतका के व्यवहार और आचरण के बारे में कुछ विवरण देते हुए एक आवेदन दायर किया गया था और यह प्रार्थना की गई थी कि एक रिपोर्ट दर्ज की जाए और आवेदक और उसके परिवार के सदस्यों के जीवन की रक्षा की जाए। इसके बाद आवेदक की मां श्यामा मिश्रा द्वारा थानाध्यक्ष, कोतवाली, प्रयागराज को मृतका के व्यवहार का वर्णन करते हुए एक आवेदन दिया गया। इसके बाद चूंकि पुलिस द्वारा कोई कार्रवाई नहीं की गई, इसलिए धारा 156(3) द०प्र०स० के तहत एक आवेदन मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, इलाहाबाद की अदालत के समक्ष दायर किया गया और उसके बाद उसी धारा के तहत एक और आवेदन दायर किया गया। मृतका की मानसिक स्थिति के बारे में संबंधित थाना द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट पर भरोसा किया गया है। तलाक याचिका संख्या 193 वर्ष 2021 भी दायर की गई थी, जिसमें उससे तलाक मांगने वाली मृतका के व्यवहार और आचरण का उल्लेख किया गया था। मृतका द्वारा इस्तेमाल की गई भाषा को इंगित करने के लिए कुछ फेसबुक पोस्ट भी रिकॉर्ड पर रखे गए थे, जिसमें आरोप लगाया गया था कि इस तरह के पोस्ट में इस्तेमाल की गई भाषा भी उसकी मानसिक स्थिति को इंगित करती है।

17. रिकॉर्ड के अवलोकन से पता चलता है कि एस.एस.पी. प्रयागराज, थानाध्यक्ष कोतवाली, प्रयागराज को दिया गया आवेदन, धारा 156(3) द०प्र०स० के तहत पहला और बाद का आवेदन फरवरी, 2021 से जुलाई, 2021 की अवधि के दौरान स्थानांतरित किया गया था। आवेदक द्वारा

हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13 के तहत तलाक की याचिका 27.01.2021 को दायर की गई थी। यह कहने के लिए पर्याप्त है कि सभी अभ्यास वर्ष 2021 के दौरान किए गए थे। शादी की तारीख के बाद से इस अवधि से पहले, ऐसा प्रतीत होता है कि सब कुछ ठीक था और सुचारू रूप से चल रहा था। यहां यह उल्लेख करना उचित है कि पुलिस प्राधिकरण और न्यायालय के समक्ष दिए गए आवेदनों की सामग्री और तलाक याचिका में लिए गए आधार भी कमोबेश समान हैं। आवेदक की सदाशयता दिखाने के लिए, उसने अपनी पत्नी-मृतका के इलाज के लिए एक सक्षम मनोचिकित्सक से परामर्श किया। प्रत्युत्तर शपथ-पत्र के माध्यम से पर्चा दायर किया गया था जिसमें ध्यान की विधि लिखी गई थी और रोगी को मूल्यांकन और आईपीडी प्रबंधन के लिए मानसिक अस्पताल, वाराणसी भेजा गया था। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि रोगी संबंधित डॉक्टर के सामने उपस्थित नहीं था। अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा अनुपालन शपथ-पत्र के माध्यम से यह जानकारी रिकॉर्ड में लाई गई थी कि मृतका को वाराणसी के मानसिक अस्पताल में कभी भर्ती नहीं किया गया था। इससे यह भी संकेत मिलता है कि यह कवायद आवेदक द्वारा सिर्फ अपनी जमानत याचिका को रंग देने के लिए की गई थी। इस समय सूचनादाता के अधिवक्ता के तर्क को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि उपरोक्त नुस्खे को विचारण न्यायालय के समक्ष दायर नहीं किया गया था। यह भी आरोप है कि आवेदक ने मृतका निशा त्रिपाठी को 15.05.2022 को अपने पिता के जन्म दिवस में भाग लेने की अनुमति नहीं दी और उसका मोबाइल स्विच ऑफ था। ऐसा प्रतीत होता है कि आवेदक द्वारा दिए गए विभिन्न आवेदनों और तलाक की याचिका में मृतका के खिलाफ लगाए गए आरोपों ने उसे मानसिक यातना और अवसाद का कारण बना दिया, जिसने उसे आत्महत्या करने के लिए प्रेरित किया।

18. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उड़े सिंह और अन्य बनाम हरियाणा राज्य, (2019) 17 एस.सी.सी. 301 में कहा कि:

"16.1 यह पता लगाने के उद्देश्य से कि क्या किसी व्यक्ति ने किसी अन्य व्यक्ति द्वारा आत्महत्या के लिए उकसाया है, विचार यह होगा कि क्या अभियुक्त आत्महत्या के कार्य को उकसाने का दोषी है। जैसा कि इस न्यायालय द्वारा ऊपर दिए गए निर्णयों में समझाया और दोहराया गया है, उकसाने का अर्थ है किसी कार्य को करने के लिए आगे बढ़ना, आगे बढ़ना, उकसाना, या प्रोत्साहित करना। यदि आत्महत्या करने वाले व्यक्ति अतिसंवेदनशील थे और अन्यथा अभियुक्त की कार्रवाई से आमतौर पर इसी तरह के परिस्थितिग्रस्त व्यक्ति को आत्महत्या करने के लिए प्रेरित करने की उम्मीद नहीं की जाती है, तो अभियुक्त को आत्महत्या के लिए उकसाने का दोषी ठहराना सुरक्षित नहीं होगा। लेकिन, दूसरी ओर, यदि अभियुक्त अपने कृत्यों और अपने निरंतर आचरण से ऐसी स्थिति पैदा करता है जिससे मृतका को आत्महत्या करने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं लगता है, तो मामला धारा 306 भ०द०वि० के दायरे के भीतर आ सकता है। यदि अभियुक्त पीड़ित के आत्मसम्मान को धूमिल करने में सक्रिय भूमिका निभाता है, जो अंततः पीड़ित को आत्महत्या करने के लिए प्रेरित करता है, तो अभियुक्त को आत्महत्या के लिए उकसाने का दोषी ठहराया जा सकता है। ऐसे मामलों में अभियुक्त की ओर से

आशय/इरादा के प्रश्न की जांच अभियुक्त के वास्तविक कृत्यों और कर्मों के संदर्भ में की जाएगी और यदि कार्य और कर्म केवल ऐसी प्रकृति के हैं जहां अभियुक्त का इरादा उत्पीड़न या क्रोध के प्रदर्शन से ज्यादा कुछ नहीं है, तो एक विशेष मामला आत्महत्या के लिए उकसाने के अपराध से कम हो सकता है। हालांकि, अगर आरोपी मृतका को शब्दों या कर्मों से तब तक परेशान या दुखी करता रहा जब तक कि मृतका ने प्रतिक्रिया नहीं दी या उसे उकसाया नहीं गया, तो एक विशेष मामला आत्महत्या के लिए उकसाने का हो सकता है। मानव व्यवहार के नाज़ुक विश्लेषण का मामला होने के कारण, प्रत्येक मामले की अपने तथ्यों पर जांच की जानी चाहिए, जबकि अभियुक्त और मृतका के कार्यों और मानस पर असर डालने वाले सभी आसपास के कारकों को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

16.2. हम यह भी देख सकते हैं कि मानव मन प्रभावित हो सकता है और असंख्य तरीकों से प्रतिक्रिया कर सकता है; और दूसरे के दिमाग पर एक की कार्रवाई का प्रभाव कई असंगत है। इसी तरह की कार्रवाइयों को अलग-अलग व्यक्तियों द्वारा अलग-अलग तरीके से निपटाया जाता है; और जहां तक किसी अन्य मानव की कार्रवाई के लिए किसी विशेष व्यक्ति की प्रतिक्रिया का संबंध है, इसका अनुमान लगाने या आकलन करने के लिए कोई विशिष्ट प्रमेय या मापदंड नहीं है। यहां तक कि एक लड़की के उत्पीड़न के सवाल से संबंधित कारकों के संबंध में, कई कारकों पर विचार किया जाना चाहिए जैसे उम्र, व्यक्तित्व, परवरिश, ग्रामीण या शहरी सेटअप, शिक्षा आदि। यहां तक कि छेड़खानी की अक्षमता और एक युवा लड़की पर इसके प्रभाव की प्रतिक्रिया भी कई कारकों के लिए भिन्न हो सकती है, जिनमें पृष्ठभूमि, आत्मविश्वास और परवरिश शामिल हैं। इसलिए, प्रत्येक मामले को अपने तथ्यों और परिस्थितियों पर निपटाया जाना चाहिए।

19. मामले के पूरे तथ्यों और परिस्थितियों, पक्षों के लिए अधिवक्ता की प्रस्तुतियों, साक्ष्य की प्रकृति और अपराध की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए, मामले के गुण-दोष पर कोई राय व्यक्त किए बिना, न्यायालय का विचार है कि आवेदक जमानत का हकदार नहीं है, इसलिए, जमानत आवेदन खारिज किया जाता है।

20. ऊपर किए गए किसी भी अवलोकन को गुण दोष के आधार पर किसी भी निष्कर्ष के रूप में नहीं माना जाएगा और परीक्षण को पूर्वाग्रहित नहीं करेगा।

(2023) 3 ILRA 612

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 01.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अंजनी कुमार मिश्रा,

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चन्द्र शर्मा,

आपराधिक अपील संख्या 258/2018

ऋषि तलवार ...अपीलकर्ता

बनाम

यूपी राज्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री विजित सक्सैना, श्री अताउल्लाह मुबारक अहमद, श्री जी.एस. चौहान, श्री कुलदीप सक्सैना, श्री राजीव लोचन शुक्ल, श्री रणजीत सिंह, श्री शाश्वत किशोर चतुर्वेदी, श्री सोमेश खरे, श्री विमलेन्दु त्रिपाठी, श्री मो. आमिर, श्री अश्विनी कुमार ओझा

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए., श्री अमित कुमार

श्रीवास्तव

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302 - हत्या - आर्म्स एक्ट, 1959- धाराएँ 25 और 27-A - हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 - धारा 13B - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धाराएँ 125, 128, 161, 293, 313 - भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धाराएँ 3(2), 6, 11, 32(1), 53, 59, 63, 65A, 65B, 73, 106 और 118 - परिस्थितिजन्य साक्ष्य - परिस्थितियों की श्रृंखला पूर्ण - पत्नी की हत्या - साक्ष्य का भार हमेशा अभियोजन पक्ष पर होता है - संदेह के परे प्रमाण का सिद्धांत आपराधिक परीक्षणों में लागू होता है -संदेह उचित कहा जाएगा यदि वे अमूर्त अटकलों के उत्साह या अति-भावनात्मक प्रतिक्रिया से मुक्त हों- यदि PW-11 द्वारा दर्ज कथन पर विचार नहीं किया जाता है, तो मृतक द्वारा दिया गया जानकारी आरोपी को दोषी ठहराने के लिए पर्याप्त साक्ष्य है - सभी परिस्थितिजन्य साक्ष्यों की श्रृंखला आपस में जुड़ी हुई है - कारण यह था कि पत्नी और पति के बीच कोई अच्छे संबंध नहीं थे और आरोपी तलाक का आदेश चाहता था, आरोपी की उपस्थिति का स्वीकार करना, यह सिद्ध करता है कि आरोपी उसी घर में था जहाँ मृतक की हत्या की गई - मृतक ने अपनी मौत से पहले अपने माता-पिता को यातना, पिटाई और दुर्व्यवहार के बारे में बताया - आरोपी द्वारा अपनी बहनों और माँ के सामने की गई अतिरिक्त न्यायिक कथन, हथियार की बरामदगी जो मौके पर पाए गए खाली कारतूसों से मेल खाती है - आरोपी और मृतक का एक साथ घर में होना, आरोपी का अनुपस्थिति सिद्ध करने में असफल होना ये सभी परिस्थितियों की श्रृंखला हैं जो अभेद्य और अटूट हैं। (पैराग्राफ 73, 104, 106)

अपील निरस्त की जाती है। (E-13)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. रोहताश बनाम राजस्थान राज्य, AIR 2007 SCW 44
2. मोतीलाल और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, AIR 2010 SC 281
3. हरबंस कौर और अन्य बनाम हरियाणा राज्य, AIR 2005 SC 2989
4. रविंदर कुमार और अन्य बनाम पंजाब राज्य, AIR 2001 SC 3570
5. सी. मगेश बनाम कर्नाटक राज्य, AIR 2010 SCW 3194
6. भगवान जगन्नाथ मार्कड बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2016) 10 SCC 537
7. चरणपाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2006) 6 SCC 662
8. महाराष्ट्र राज्य बनाम तुलसी राम भानु दास कंबला, AIR 2007 SC 3042
9. सुच्चा सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2003) 7 SCC 643
10. पूजा पाल बनाम भारत संघ, (2016) 3 SCC 135
11. श्यामा घोष बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, AIR 2012 SC 3539
12. जी. पार्श्वनाथ बनाम कर्नाटक राज्य, AIR 2010 SC 2914
13. संदीप बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2012) 6 SCC 107
14. पृथ्वीराज सिंह बनाम पंजाब राज्य, 2012 (76) ACC 680 (SC)
15. जगदीश बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2009 (67) ACC 295 (SC)

16. पंजाब राज्य बनाम कर्णेल सिंह, 2003 (47) ACC 654 (SC)
17. जोशिंदर यादव बनाम बिहार राज्य, (2014) 4 SCC 42
18. बिनय कुमार सिंह बनाम बिहार राज्य, AIR 1997 SC 322
19. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम बशिष्ट राय और अन्य, 2006 (5) ALJ (NOC) 902 (All)
20. जेंटेला विजयवर्धन राव और अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, AIR 1996 SC 2791
21. मुकेश बनाम दिल्ली राज्य और अन्य, AIR 2017 SC 2161
22. ओम प्रकाश बनाम राजस्थान राज्य और अन्य, (2012) 5 SCC 201
23. अदालत पंडित बनाम बिहार राज्य, (2010) 6 SCC 469
24. मदन बनाम महाराष्ट्र राज्य, AIR 2018 SC 2007
25. शारद बर्डिचंद सरदा बनाम महाराष्ट्र राज्य, AIR 1984 SC 1622
26. भागीरथ बनाम हरियाणा राज्य, (1977) 1 SCC 481
27. पाकला नारायण स्वामी बनाम सम्राट, AIR 1939 प्रिवी काउंसिल 47
28. मध्य प्रदेश राज्य बनाम धरकोले, AIR 2005 SC 44
29. परमजीत सिंह बनाम उत्तराखंड राज्य, AIR 2011 SC 200
30. नारायण सिंह बनाम हरियाणा राज्य, (2004) 13 SCC 264
31. बाबूलाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2003) 12 SCC 490
32. शारदा बनाम राजस्थान राज्य, 2010 (68) ACC 274 (SC)
33. लक्ष्मण बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2002) 6 SCC 710
34. बलवीर सिंह बनाम पंजाब राज्य, AIR 2006 SC 3221
35. नरेंद्र कुमार बनाम स्टेट (NCT) ऑफ दिल्ली, AIR 2016 SC 150
36. गोविंदराजु @ गोविंदा बनाम स्टेट द्वारा श्रीरामपुरम पी.एस. और अन्य, AIR 2012 SC 1292
37. नथिया बनाम स्टेट, (2016) 10 SCC 298
38. भीम सिंह बनाम उत्तराखंड राज्य, (2015) 4 SCC 281 (पैरा 23)
39. शारद बर्डिचंद सरदा बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1984) 4 SCC 116 (पैरा 120 और 121)
40. पश्चिम बंगाल राज्य बनाम दीपक हल्दर, (2009) 7 SCC
41. गोवा राज्य बनाम पांडुरंग मोहिते, AIR 2009 SC 1066
42. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सतीश, (2005) 3 SCC 114
43. रोहताश कुमार बनाम हरियाणा राज्य, 2013 (82) ACC 401 (SC) (पैरा 25)
44. पृथीपाल सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2012) 1 SCC 10
45. अशोक बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2015) 4 SCC 393
46. जय प्रकाश तिवारी बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 2017 SCC ऑनलाइन MP 2329
47. शिवाजी चिंतप्पा पाटिल बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2008 SCC ऑनलाइन बॉम्बे 1859
48. प्रमिला बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, आपराधिक अपील संख्या 700/ 2021
49. मध्य प्रदेश राज्य बनाम रमेश, (2011) 4 SCC 786

50. रविंदर सिंह @ कुकू बनाम पंजाब राज्य, 2022 लाइव लॉ (SC) 461
51. विक्रम सिंह @ विक्की वालिया और अन्य बनाम पंजाब राज्य और अन्य, AIR 2017 SC 3227
52. महाराष्ट्र राज्य बनाम कमल अहमद मोहम्मद वकील अंसारी और अन्य, 2013 CrLJ 2069

53. दिल्ली (NCT) राज्य बनाम नवजोत संधू @ अफसान गुरु, (2005) SCC (Crl) 1715
54. अनवर पी.वी.एस बनाम पी.के. बशीर, (2014) 10 SCC 473 (तीन-न्यायाधीश बेंच)
55. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम अजय कुमार शर्मा, 2016 (92) ACC 981 (SC) (पैराग्राफ 14)
56. आर.एम. मल्कानी बनाम महाराष्ट्र राज्य, AIR 1973 SC 157
57. राम सिंह और अन्य बनाम कर्नल राम सिंह, 1985 (Supp) SCC 616
58. हरपाल सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2017) 1 SCC 734
59. विक्रम सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2017) 8 SCC 518
60. कर्नाटक लोकायुक्त पी.एस. बेंगलुरु बनाम एम.आर.Hiremath, 2019 0 सुप्रीम 590 (SC)
61. अर्जुन पंडितराव खोलकर बनाम कैलाश कुशानराव गोरणट्याल और अन्य, AIR 2020 SC 4908
62. मोहम्मद आरिफ @ अशफाक बनाम दिल्ली (NCT) राज्य, 2022 0 सुप्रीम (SC) 1113
63. कालू @ कल्याण सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (आपराधिक अपील संख्या 1459 / 2009)

(द्वारा: माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा)

1. यह अपील दोषी अभियुक्त ऋषि तलवार द्वारा एस.टी नंबर 238 वर्ष 2014 (यूपी राज्य बनाम ऋषि तलवार), अन्तर्गत धारा 302 भ०द०वि०, अपराध संख्या 211 वर्ष 2014 और एस.टी नंबर 239 वर्ष 2014 (यूपी राज्य बनाम ऋषि तलवार), अन्तर्गत धारा 25/27-ए शस्त्र अधिनियम, अपराध संख्या 212 वर्ष 2014 में दोषी ठहराए जाने और सजा देने के आदेश दिनांक 11.10.2017 के खिलाफ की गई है, जिसके द्वारा अपीलकर्ता को दोषी ठहराया गया और धारा 302 भ०द०वि० के तहत आजीवन कारावास और 50,000 रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई गई और जुर्माना अदा नहीं करने पर तीन महीने के अतिरिक्त कारावास की सजा सुनाई गई और शस्त्र अधिनियम, 1959 की धारा 27 के तहत पांच साल के कठोर कारावास और 10000/- रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई गई और जुर्माना अदा न करने पर एक माह का अतिरिक्त कारावास भुगतना होगा। यह भी निर्देश दिया गया था कि दोनों सजाएं साथ-साथ चलेंगी।

2. संक्षेप में, मामले के तथ्य यह हैं कि सूचनादाता मनोहर लाल सूरी, निवासी नरूला नवी मुंबई, मृतका श्वेता के पिता और आरोपी के ससुर, ने 30.04.2014 को एक प्राथमिकी दर्ज कराई, जिसमें कहा गया कि उनकी बेटी श्वेता की शादी 27.11.2003 को सामाजिक रीति-रिवाजों के अनुसार आरोपी ऋषि तलवार पुत्र दीपक तलवार निवासी मिशन कंपाउंड सर्व नगर, झांसी के साथ हुई थी। शादी के कुछ दिनों बाद ही ऋषि तलवार ने सूचनादाता की बेटी को पीटना शुरू कर दिया। उनकी बेटी फोन पर आरोपी द्वारा मारपीट और गाली-गलौज के बारे में

शिकायतकर्ता को बताती थी। शादी के बाद आरोपी ने न तो शिकायतकर्ता की बेटी को शिकायतकर्ता से मिलने दिया और न ही उसे रिश्तेदारी में कहीं जाने दिया गया। वह उसे तलाक के लिए धमकाता था और पैसे की मांग करता था और कहता था कि वह तलाक ले ले अन्यथा वह उसे जान से मार देगा।

3. 28.04.2014 को लगभग 08:00 बजे उनकी बेटी ने उन्हें टेलीफोन पर सूचित किया कि ऋषि ने उस दिन उसे पीटा था और 3-4 दिनों से ऐसा कर रहा था। फिर करीब 11-12 बजे उसने फोन किया जहां उसने कहा कि ऋषि अभी भी उसे पीट रहा है और उसने कहा कि पापा उसे और उसके बच्चों को यहां से ले जाओ नहीं तो ऋषि उन्हें जान से मार देगा। इस पर उन्होंने अपनी बेटी से कहा कि वह सुबह आएंगे।

4. दिनांक 29.04.2014 को प्रातः 04:45 बजे आरोपी की मां श्रीमती आशा तलवार ने शिकायतकर्ता के मोबाइल नंबर 9821154419 पर मिस्ड कॉल किया। जब शिकायतकर्ता ने वापस फोन किया, तो फोन बंद था। उसके बाद करीब 11 बजे शिकायतकर्ता की बहू श्रीमती चारू सूरी (जो आरोपी की बहन है) ने भी फोन कर के सूचना दी कि ऋषि तलवार ने श्वेता की गोली मारकर हत्या कर दी है। शिकायतकर्ता ने तुरंत झांसी पुलिस और उसके रिश्तेदार कमल राज को लगभग 01:00 बजे सूचित किया और अनुरोध किया कि जब तक वह और उसका परिवार झांसी नहीं पहुंच जाता तब तक कोई कार्रवाई न की जाए। वह खुद अपनी बेटी की हालत देखकर कानूनी कार्रवाई करते। हत्या में आरोपी की मां श्रीमती आशा और बहन चारू सूरी भी शामिल हैं।

5. दिनांक 30.04.2014 की रात लगभग 01:00 बजे शिकायतकर्ता अपनी पत्नी श्रीमती शक्ति सूरी, दामाद उमेश विष्णु शिर्के और पुत्री मोनिका उमेश शिर्के के साथ पुत्री श्वेता के घर पहुंचा तो देखा कि उसका शव बाथरूम में पड़ा हुआ है, जिसे ऋषि तलवार ने गोली मारकर हत्या कर दी! सूचना देने वाले ने कानूनी सहारा लेने का अनुरोध किया।

6. उपरोक्त तहरीर के आधार पर ऋषि तलवार, आशा तलवार (आरोपी की मां) और चारु सूरी (आरोपी की बहन) के खिलाफ 30.04.2014 को दोपहर 02:00 बजे थाना सीपरी बाजार, जिला झांसी में भ०द०वि० की धारा 302, 120-बी के तहत 2014 के अपराध संख्या 211 में मामला दर्ज किया गया था।

7. विवेचना अधिकारी ने जांच शुरू की और तहरीर और चिक प्राथमिकी की नकल की और तहरीर लेखक, शिकायतकर्ता और अन्य गवाहों के बयान दर्ज किए और आरोपी की तलाश में चले गए। शिकायतकर्ता की पत्नी की निशानदेही पर वह आरोपी के घर पहुंचा, जहां उसे सुबह 07:30 बजे उस समय गिरफ्तार कर लिया गया, जब वह अपने घर के गेट पर ताला लगा रहा था। पूछने पर उसने अपना नाम ऋषि तलवार बताया। व्यक्तिगत तलाशी में उसकी पैंट के बाईं ओर से 32 बोर के दो जिंदा कारतूस के साथ मेड इन यूएसए नंबर 405 बरामद किया गया। उसने 29.04.2014 की रात को बरामद पिस्तौल से अपनी पत्नी श्वेता तलवार की हत्या करने की बात कबूल कर ली। आरोपी को हिरासत में ले लिया गया और बरामद केस प्रॉपर्टी को मौके पर ही सील कर दिया गया और उसकी नमूना सील भी तैयार कर ली गई। कमाल राज और अजहर खान को छोड़कर कोई भी बरामदगी का गवाह बनने के लिए आगे नहीं आया। मौके पर ही रिकवरी मेमो तैयार किया गया और उसकी कॉपी

आरोपी को मुहैया कराई गई। इस संबंध में 2014 के अपराध संख्या 212 में धारा 25/27 शस्त्र अधिनियम के तहत दिनांक 01.05.2014 को सुबह 09:45 बजे थाना सीपरी बाजार में आरोपी के खिलाफ मामला दर्ज किया गया था।

8. 2014 के अपराध संख्या 211 में, भ०द०वि० की धारा 302 के तहत आरोपी अपीलकर्ता, ऋषि तलवार के खिलाफ अकेले आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था (उसकी माँ और बहन को बरी करते हुए)। 2014 के अपराध संख्या 212 में धारा 25/27-ए आर्म्स एक्ट के तहत जांच के बाद आरोपियों के खिलाफ धारा 25/27 आर्म्स एक्ट के तहत चार्जशीट पेश की गई थी।

9. मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, झांसी ने संज्ञान लेने के बाद 23.07.2014 को सत्र न्यायालय में दोनों मामले प्रस्तुत किए, जिन्हें क्रमशः 2014 के एसOटीO नंबर 238 और 2014 के एस.टी. नंबर 239 के रूप में क्रमांकित किया गया था। 17.04.2015 को धारा 302 भ०द०वि० और धारा 25/27 आर्म्स एक्ट के तहत आरोप तय किए गए, जिससे आरोपी ने इनकार कर दिया और विचारण की मांग की।

10. अभियोजन पक्ष द्वारा निम्नलिखित गवाहों से पूछताछ की गई है:-

(i) अ०सा०-1, मनोहर लाल सूरी, शिकायतकर्ता, मृतका के पिता और आरोपी के ससुर; (ii) अ०सा०-2, कमल राज, खाली कारतूस 32 बोर, खून से सने और सादे फर्श की बरामदगी और पिस्तौल और कारतूसों की फर्द बरामदगी का गवाह; (iii) अ०सा०-3, अजहर खान, पिस्तौल और कारतूसों की बरामदगी और गिरफ्तारी का गवाह; (iv) अ०सा०-4, कुमारी अंचिता, मृतका और आरोपी की पुत्री; (v) अ०सा०-5, मोनिका उमेश शिर्के, सूचनादाता की पुत्री; (vi) अ०सा०-6, हेड कांस्टेबल, लेखक, चिक प्राथमिकी, कायमी जीडी (केस जीडी का पंजीकरण) तैयार करने वाले सतीश कुमार द्विवेदी; (vii) अ०सा०-7, डा सुशील कुमार गुप्ता, वह चिकित्सक जिसने पोस्टमार्टम रिपोर्ट प्रदर्श क-8 और सामग्री संख्या 1-5 तैयार की और साबित की; (viii) अ०सा०-8, उमेश विष्णु शिर्के, प्रदर्श क-1 के लेखक और जांच के गवाह प्रदर्श क-2; (ix) अ०सा०-9, श्रीमती शक्ति सूरी, मृतका की मां; (x) अ०सा०-10, राम भजन, विवेचना अधिकारी; (xi) अ०सा०-11, सुधीर सूरी, मृतका का भाई; (xii) अ०सा० 12, मृतका के भाई सुधीर सूरी के दोस्त रवींद्र शर्मा; (xiii) अ०सा०-13, श्रीमती चारू सूरी, मृतका की भाभी (भाभी/ननद); (xiv) अ०सा०-14 लालाराम वर्मा, नोटरी अधिवक्ता जिन्होंने प्रदर्श क-18 और प्रदर्श क 19, विधि विज्ञान प्रयोगशाला रिपोर्ट, पेपर नंबर 86-ए/3 और 89-ए को साबित किया।

11. शस्त्र अधिनियम की धारा 25/27 के तहत 2014 के अपराध संख्या 212 में 2014 के एसOटीO नंबर 239 में मौखिक साक्ष्य हैं; (i) एसआई दिनेश सिंह, विवेचना अधिकारी, जिन्होंने अपने द्वितीयक साक्ष्य द्वारा नक्शा प्रदर्श क-6, आरोप-पत्र प्रदर्श क-7 और चिक प्राथमिकी, प्रदर्श क-8 को साबित किया; (ii) फोटोकॉपी जीडी 6-ए, 7-ए और अभियोजन स्वीकृति पेपर 9-ए

12. आरोपी का बयान दर्ज किया गया है जिसमें आरोपी ने आरोपों से इनकार किया है और कहा है कि वह खुद अंचिता से जानकारी मिलने के बाद सुबह 04:30 बजे थाना पहुंचा था। उन्होंने चारु सूरी के साथ किसी भी तरह की बातचीत से इनकार किया। उन्होंने कहा कि वह 28.04.2014 को रात 09:00 बजे तक अपने घर पर रहे। इसके बाद वह दिल्ली के लिए रवाना हो गए। उन्होंने आगे कहा कि रवि नाम के एक व्यक्ति ने अपने

घर में अपनी पत्नी की हत्या कर दी थी, लेकिन उसे ब्लैकमेल करने के लिए, उसके पिता ने यह झूठा मामला दर्ज कराया था। उन्होंने कहा कि चारू सूरी झांसी में रह रही हैं और स्वीकार किया कि वह अपने पति सुधीर सूरी के साथ नहीं रह रही थीं। उन्होंने अधिवक्ता श्री जनार्दन व्यास और नोटरी अधिवक्ता श्री लालाराम वर्मा के साथ किसी भी दोस्ती या दुश्मनी के बारे में अनभिज्ञता व्यक्त की।

13. आरोपी-अपीलकर्ता के अनुसार, अभियोजन स्वीकृति जाली और गलत है और पैसे वसूलने और उसे ब्लैकमेल करने के लिए बनाई गई थी। उसके अनुसार उसने अपनी पत्नी की हत्या नहीं की है। घटना के समय वह घर पर नहीं था, बल्कि दिल्ली जाने के लिए अपने घर से निकला था।

14. अभियुक्त-अपीलकर्ता ने बचाव में निम्नलिखित गवाहों से पूछताछ की है: -

(i) ब० सा०- 1, महेंद्र दुबे; (ii) ब० सा०-2, अनिल कुमार सिंह।

15. अभियोजन पक्ष द्वारा एस.टी. संख्या 238/2014, अन्तर्गत धारा 302 भा.द.वि, में निम्नलिखित दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत किए गए हैं: -

(i) प्रदर्श क-1 तहरीर, (ii) प्रदर्श क-2, जांच; (iii) प्रदर्श क-3 दो खाली कारतूसों 32 बोर के संबंध में फर्द बरामदगी; (iv) प्रदर्श क-4 रक्त से सने और सादे फर्श के टुकड़ों का नमूना लेने के संबंध में फर्द बरामदगी; (v) प्रदर्श क-5, आरोपी से पिस्तौल और कारतूसों की बरामदगी के संबंध में रिकवरी मेमो; (vi) प्रदर्श क-6, चिक प्राथमिकी; (vii) केए-7, कायमी जीडी की कार्बन कॉपी (प्राथमिकी दर्ज करना); (viii) प्रदर्श क-8, पोस्टमार्टम रिपोर्ट; (ix) प्रदर्श क-9, फोटॉ नाश; (x) प्रदर्श क-10, पुलिस फॉर्म-13; (xi) प्रदर्श क-11, सीएमओ को लिखा गया पत्र; (xii) प्रदर्श क-12, नमूना मुहर; (xiii) प्रदर्श क-13, घटना स्थल का नक्शा; (xiv) पिस्तौल और कारतूसों की बरामदगी के संबंध में नक्शा प्रदर्श क-14; (xv) प्रदर्श क-15 भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अंतर्गत आरोप-पत्र; (xvi) प्रदर्श क-16 चारू सूरी और आरोपी ऋषि तलावर के बीच बातचीत की सीडी (xvii) प्रदर्श क-17, आवेदन संख्या 114-बी; (xix) प्रदर्श क-18, अधिवक्ता जनार्दन व्यास, शपथ लेने वाले चारू सूरी के हस्ताक्षर और मुहर, चारू सूरी और उनके अधिवक्ता के हस्ताक्षर; (xx) प्रदर्श क-19, नोटरी रजिस्टर की फोटोकॉपी; (i) मैगजीन के साथ देसी पिस्तौल, दो खाली और दो जिंदा कारतूस, प्रयुक्त गोली के धातु के दो टुकड़े के संबंध में विधि विज्ञान प्रयोगशाला रिपोर्ट 86-ए/3; (ii) मृतका के कपड़े, खून से सने और फर्श के सादे टुकड़े आदि के संबंध में विधि विज्ञान प्रयोगशाला रिपोर्ट 89-ए।

16. वस्तु प्रदर्श: -

(i) वस्तु प्रदर्श 1 से 3, शव से बरामद धातु के दो टुकड़े और गोली; (ii) वस्तु प्रदर्श 4, माचिस का डिब्बा; (iii) ट्रस (बंडल); (iv) वस्तु प्रदर्श 6 और 7, खून आलूदा और सादे फर्श के टुकड़े; (v) वस्तु प्रदर्श-8, पिस्तौल; (vi) वस्तु प्रदर्श 9 और 10, 32 बोर के दो जिंदा कारतूस; (vii) वस्तु प्रदर्श 11 और 12, 32 बोर के दो खाली कारतूस; और (viii) वस्तु प्रदर्श 13 और 14, दो ट्रस।

17. एस.टी. संख्या 239/2014, अपराध संख्या 212/2014, अन्तर्गत धारा 25/27 शस्त्र अधिनियम, में साक्ष्य में प्रदर्श क-6, बरामदगी का नक्शा, प्रदर्श क-7, चार्जशीट, प्रदर्श क-8, चिक प्राथमिकी, 6-ए और 7-ए जीडी में प्राथमिकी

दर्ज करने की वापसी, पेपर नंबर 9- ए अभियोजन स्वीकृति शामिल है।

18. संक्षेप में, गवाहों के साक्ष्य नीचे प्रस्तुत किए गए हैं: -

अ०सा०-1 मृतका के पिता और आरोपी के ससुर मनोहर लाल सूरी ने कहा कि 27.11.2003 को उनकी बेटी श्वेता तलवार की शादी झांसी निवासी ऋषि तलवार के साथ सामाजिक रीति-रिवाजों के अनुसार हुई थी। उनकी बेटी उन्हें फोन पर बताती थी कि ऋषि तलवार अक्सर उसके साथ मारपीट करता है और छोटी-छोटी बातों पर झगड़ा करता है, गालियां देता है और कहता है कि अगर उसने उसे पैसे नहीं दिए, तो वह उसे तलाक दे देगा। उनकी बेटी श्वेता से दो बेटियों का जन्म हुआ। ऋषि श्वेता को बताता था कि उसका रवि के साथ कुछ अफेयर है जो उसकी अनुपस्थिति में उसके घर आया करता था। 29.04.2014 को ऋषि तलवार की मां ने एक फोन किया जो कट गया। जब उसने वापस फोन किया तो फोन बंद था। सुबह 11:00 बजे उन्हें अपने बेटे की पत्नी, चारू सूरी, ऋषि तलवार की बहन का फोन आया कि श्वेता को गोली मार दी गई है। उन्होंने झांसी पुलिस और रिश्तेदारों को फोन किया और निर्देश दिया कि उनके झांसी पहुंचने तक कोई कार्रवाई न की जाए। उन्होंने आगे कहा कि 28.04.2014 की रात 08:00 बजे श्वेता ने एक फोन किया और कहा कि ऋषि पिछले 3-4 दिनों से उसे पीट रहा था। उसने उसे घर के ऊपरी हिस्से में जाने और बात न करने के लिए कहा। फिर रात 11:30 बजे उसने फिर फोन किया और कहा कि ऋषि उसे पीट रहा है जिसके कारण उसकी नाक से खून बह रहा है। इसके अलावा, उसने उससे कहा कि वह आए और उसे उसके बच्चों के साथ ले जाए अन्यथा ऋषि उसे मार देगा। उन्होंने सांत्वना दी कि वह सुबह आएंगे और उन्हें ले जाएंगे। वह 29.04.2014 की रात झांसी आया था। वह ऋषभ होटल में रुका था। उन्होंने अपने दामाद उमेश शिर्के को एक आवेदन दिया था और उस पर हस्ताक्षर करने के बाद थाना सीपरी बाजार गए और आवेदन दायर किया।

(II) अ०सा०-2, कमल राज ने गवाही दी कि 29.04.2014 को शिकायतकर्ता ने उन्हें फोन पर उनकी बेटी की मौत के बारे में सूचित किया था। दिनांक 29/30.04.2014 की रात 01:00 से 01:30 बजे शिकायतकर्ता और उसका परिवार अपने होटल यानी ऋषभ होटल पहुंचा और 02:00 से 02:30 बजे थाना सीपरी बाजार गया था। सुबह 03:00 बजे उन्हें फोन किया गया और सूचित किया गया कि शिकायतकर्ता और निसार खान ऋषि तलवार के घर गए जहां उन्होंने बाथरूम में श्वेता का मृत शरीर पड़ा देखा। विवेचना अधिकारी ने जांच के बाद शव को पोस्टमार्टम के लिए भेज दिया, जिस पर उनके और निसार खान के हस्ताक्षर थे। गवाह ने जांच प्रदर्श क-2, फर्द प्रदर्श.क-3 और प्रदर्श क-4 पर अपने हस्ताक्षर की पहचान की। विवेचना अधिकारी ने 01.05.2014 को सुबह लगभग 09:00 बजे उसे ऋषि तलवार के घर बुलाया था, जहां से वह ऋषि तलवार और अजहर के साथ थाना सीपरी बाजार आया, जहां उसने और अजहर ने कुछ दस्तावेजों पर हस्ताक्षर किए। गवाह ने कागज संख्या 15 ए, प्रदर्श क-5 पर अपने हस्ताक्षर की पहचान की। इस गवाह ने इस बात से इनकार किया कि आरोपी ऋषि तलवार ने उसके सामने अपराध कबूल किया था या विवेचना अधिकारी ने ऋषि तलवार के पास से एक देसी पिस्तौल और दो जिंदा कारतूस बरामद किए थे।

(III) गवाह को अपने बयान से मुकरने की घोषणा की गई और एडीजीसी (आपराधिक) द्वारा उससे जिरह की गई। उन्होंने द० प्र० स० की धारा 161 के तहत दर्ज अपने बयान से इनकार किया और पंचायतनामा तैयार करने और खाली कारतूस 32 बोर की बरामदगी और मौके पर प्रदर्श क-4 पर हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया। प्रदर्श पढ़े जाने के बाद उन्होंने 01.05.2014 को सुबह लगभग 07:30 बजे आरोपी की गिरफ्तारी और उसके कब्जे से देसी पिस्तौल और दो जिंदा कारतूस की बरामदगी और रिकवरी मेमो तैयार करने और आरोपी के अपराध के कबूलनामे से भी इनकार किया। आरोपी द्वारा जिरह में उसने कहा कि पुलिस ने उसकी मौजूदगी में ऋषि तलवार को गिरफ्तार नहीं किया था। पुलिस का फोन आने पर जब वह पहुंचे तो ऋषि तलवार पहले से ही थाने में हिरासत में थे।

(IV) अ०सा०-3, अजहर खान ने भी अभियोजन पक्ष के खिलाफ गवाही दी है और उसे अपने बयान से मुकरने वाला घोषित किया गया है। उन्होंने कहा कि 01.05.2015 को ऋषि तलवार को उनकी उपस्थिति में उनके दरवाजे से गिरफ्तार नहीं किया गया था। वह अपने नियोक्ता कमल राज के साथ सुबह 09:00 बजे पहुंचे थे और ऋषि तलवार को पहले से ही पुलिस हिरासत में पाया। थाना में कुछ कागजात पर हस्ताक्षर किए गए थे। उसके पास से कोई पिस्तौल या कारतूस बरामद नहीं हुआ। ऋषि तलवार ने अपनी पत्नी श्वेता की हत्या की बात कबूल नहीं की थी। गवाह ने प्रदर्श क-5 पर अपने हस्ताक्षर की पहचान की। गवाह को अपने बयान से मुकर जाने की घोषणा कर दी गई। एडीजीसी (फौजदारी) द्वारा जिरह के दौरान गवाह ने द० प्र० स० की धारा 161 के तहत दर्ज अपने बयान से इनकार कर दिया और कहा कि वह यह नहीं बता सकता कि विवेचना अधिकारी ने इसे क्यों दर्ज किया। इस गवाह ने 01.05.2014 को सुबह 07:30 बजे अपने दरवाजे से अभियुक्त ऋषि तलवार की बरामदगी और गिरफ्तारी से भी इनकार किया। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया कि आरोपी ने उनके सामने अपना अपराध कबूल कर लिया है। इस गवाह ने बस अपने हस्ताक्षर की पहचान की है, लेकिन कहा था कि यह कहना गलत है कि पुलिस ने उसके सामने रिकवरी मेमो तैयार किया था और केस प्रॉपर्टी उसके सामने सील कर दी गई थी। आरोपी के अधिवक्ता द्वारा जिरह में इस गवाह ने कहा कि विवेचना अधिकारी ने सादे कागज पर उसके हस्ताक्षर कराए और उस पर कुछ भी नहीं लिखा था। कमल ने भी उनके साथ इस पर हस्ताक्षर किए थे। उन्होंने कहीं भी पिस्टल या कारतूस दिखने से इनकार किया।

(v) अ०सा०-4, कुमारी अंचिता तलवार (लगभग 11 वर्ष) मृतका और आरोपी की बेटी है। भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 118 के तहत उसका परीक्षण किया गया और यह निष्कर्ष निकालने के बाद कि गवाह सवालों की प्रकृति और महत्व को समझता है और ठीक से जवाब दे सकता है और शपथ का अर्थ जानता है, उसके साक्ष्य दर्ज किए गए थे। गवाही के दौरान इस गवाह ने उसके पिता को पहचान लिया और कहा कि उसकी मां श्वेता तलवार थी। वे दो बहनें और एक भाई हैं। उनकी छोटी बहन जानवी तलवार हैं और उनके छोटे भाई रुद्राक्ष सूरी हैं जो उनकी चाची (बुवा) के बेटे हैं। उनके अनुसार, यह घटना 29.04.2014 को लगभग 09:00 बजे हुई। वह अपनी छोटी बहन के साथ अपने माता-पिता के साथ थी और कुछ समय बाद उसके पिता ट्रेन से दिल्ली चले गए। आधे घंटे बाद रवि अंकल आए

थे और घंटी बजाया! उसकी माँ ने दरवाजा खोला, वह ड्राइंग रूम में बैठ गया। वह घर के अंदर टीवी देख रही थी। वे दोनों बात कर रहे थे और कुछ समय बाद उसने सुना कि वे झगड़ा कर रहे थे तो उसने टीवी की आवाज कम कर दी और सुना कि वे क्या कह रहे थे। रवि ने उसकी माँ को उसके साथ चलने के लिए कहा। उसकी मां ने उसके साथ जाने से इनकार कर दिया क्योंकि उसका पति घर में नहीं था और उसके बच्चे वहां अकेले थे। रवि ने जबरदस्ती शुरू कर दी; उसकी मां ने घर से बाहर निकलने को कहा तो उसने अपनी जेब से एक छोटी बंदूक निकाल ली। उसकी मां डर गई और जान बचाने के लिए बाथरूम की तरफ भागने लगी और बाथरूम का दरवाजा बंद करने लगी लेकिन इससे पहले ही रवि ने गोली चला दी और उसकी मां गिर गई। जब वह जोर-जोर से रोने और चिल्लाने लगी तो उसने धमकी दी और उसके वहां होने के बारे में कुछ न कहने की बात कही। घर के ऊपरी हिस्से में जाने के बाद वह अपनी बहन के पास गई और बताया कि रवि अंकल ने उनकी मां की हत्या कर दी है। जब वह साथ बाहर गई तो केवल अनिल सिंह और संजीव पांडे चाचा वहां आए थे और उसने उन्हें सभी तथ्य बताए थे। उन्होंने कहा कि वे पुलिस को बुला रहे हैं। जब वह अपने घर पर अकेले रहने से घबरा रही थी, तो वह कुछ समय के लिए अनिल सिंह के घर में और कुछ समय के लिए संजीव पांडे के घर पर रुकी। अगले दिन जब उसके नाना आए तो उसने उन्हें इस बारे में बताया। उसने थाना जाने की बात कही। 01.05.2014 को सुबह 04:00 बजे जब उसके पिता पहुंचे, तो उसने अपनी मां के बारे में सब कुछ बताया। उसके पिता ने कहा कि वह थाना जा रहा था लेकिन वह वापस नहीं आया।

(VI) इस गवाह को अपने बयान से मुकरने की घोषणा की गई थी और एडीजीसी (आपराधिक) द्वारा उससे जिरह की गई थी, लेकिन उसने अभियोजन पक्ष के बयान का समर्थन नहीं किया और धारा 161 द० प्र० स० के तहत दर्ज सबूतों को अस्वीकार कर दिया। उसने कहा कि वर्तमान में वह अपनी दादी, चाची (बुआ), भाई और बहन के साथ रह रही थी। वह उस दिन अपनी चाची (बुआ), श्रीमती चारू सूरी के साथ आई थी। इस गवाह ने कहा है कि उसके माता-पिता के अच्छे संबंध थे। उन्होंने कभी लड़ाई या झगड़ा नहीं किया।

(VII) अ०सा०-5 में मृतका की बहन, उमेश विष्णु सिरके की पत्नी मोनिका उमेश सिरके ने कहा कि उसकी छोटी बहन श्वेता की शादी 27-11-2003 को ऋषि तलवार के साथ हुई थी। श्वेता जब भी बॉम्बे आती थीं तो बताती थीं कि उनके पति ऋषि तलवार उनके साथ मारपीट और गाली-गलौज करते थे, और हमेशा पैसों की मांग करते थे। 28.04.2014 को शाम को श्वेता तलवार ने अपनी मां के मोबाइल पर फोन किया और बताया कि ऋषि तलवार उसके साथ मारपीट और झगड़ा कर रहा है और 4-5 दिन पहले भी ऋषि तलवार ने उसके साथ मारपीट की थी। उस समय वह (गवाह) अपनी मां के घर पर थी और उसने अपनी मां से फोन/मोबाइल लिया और श्वेता से बात की और उसे शांत रहने के लिए कहा और श्वेता को सूचित किया कि मम्मी और पापा ने एक-दूसरे से बात की है और उसे लेने जाएंगे।

(VIII) 29.04.2014 को चारू सूरी ने अपनी मां श्रीमती शांति मनोहर लाल सूरी के मोबाइल पर कॉल किया, जिनका मोबाइल नंबर उन्हें याद नहीं था; यह बताते हुए कि ऋषि तलवार ने श्वेता को गोली मार दी और कहा कि वे सभी झांसी के

लिए रवाना हो जाएं। उस समय दिन के 11:30 या 12:00 बज रहे थे। वह स्कूल जा रही थी। उसका पति उसे झांसी जाने के लिए ले जाने के लिए आया था, फिर उन्होंने मुंबई छोड़ दिया और झांसी की यात्रा की। वे ऋषभ होटल आए और वहीं रुक गए और वहां से पुलिस बुलाकर श्वेता के घर चले गए। वहां बाथरूम में उसकी बहन का शव खून से लथपथ पड़ा था। इसके बाद उसकी मां रोने लगी। चारू जो कि उनकी भाभी थी उनके मोबाइल में एक रिकॉर्डिंग सिस्टम था जिसमें सारे कॉल रिकॉर्ड हो गए थे जिससे उन्हें पता चला कि ऋषि ने शूटिंग के बाद चारू सूरी को फोन किया था और अपना जुर्म कबूल करते हुए कहा था कि उन्होंने श्वेता को दो गोलियां मारी हैं। शव बाथरूम में पड़ा हुआ है। उसने उस मोबाइल की रिकॉर्डिंग की सीडी तैयार करवा ली थी और वही सीडी कोर्ट में लग गई। उन्होंने कहा था कि जिस सीडी के आधार पर ऋषि तलवार की जमानत याचिका जिला न्यायाधीश और माननीय उच्च न्यायालय की अदालत से खारिज कर दी गई थी। जिरह में गवाह ने स्वीकार किया कि आरोपी ने उसकी मौजूदगी में गोली नहीं चलाई क्योंकि वह उस समय मुंबई में थी। विवेचना अधिकारी ने दिनांक 02.05.2014 को उसका बयान दर्ज किया था। सीडी में रिकॉर्डिंग के तथ्य को छोड़कर, अदालत में उनके द्वारा बताई गई बाकी बातों से भी विवेचना अधिकारी को अवगत करा दिया गया था। उन्होंने स्वीकार किया कि आरोपी द्वारा पिटाई और गाली-गलौज के बारे में मृतका द्वारा सूचना देने की तारीख और समय न तो उनकी याद में है और न ही मुंबई के थाना में रिपोर्ट की गई थी क्योंकि इसकी कार्यवाही केवल झांसी में ही की जा सकती थी। उसने और उसके पिता ने न तो मोबाइल के माध्यम से मामले की सूचना दी थी और न ही पुलिस को सूचित किया था। उसने खुद कहा कि चारू सूरी (भाभी) मामले को सुलझाती थी और लड़कियों को समझाती थी और (लड़कियों की ओर इशारा करते हुए) सुलह कराती थी।

(IX) उसने गवाही दी कि यह विवाह उसके संबंधियों में हुआ था। ऋषि तलवार की माँ श्रीमती आशा तलवार उनकी सगी चाची (मौसी) थीं जो उनकी माँ की सगी बड़ी बहन हैं। श्वेता अपने बड़ों की माफी के खातिर अपने ससुराल वापस चली जाती थी। उन्होंने आगे कहा कि उन्हें तथ्यों के बारे में पता चला कि बातचीत की रिकॉर्डिंग अंतिम संस्कार के एक सप्ताह बाद की गई थी। अंतिम संस्कार 30.04.2014 को शाम 04:30 बजे हुआ। उसे रिकॉर्डिंग के बारे में पता चलने की सही तारीख याद नहीं है। उसने स्वीकार किया कि उसने सीडी पर कॉल रिकॉर्डिंग के बारे में विवेचना अधिकारी को सूचित नहीं किया था क्योंकि मुकदमेबाजी के कारण वह अंतिम संस्कार के बाद मुंबई चली गई थी। उसने यह नहीं सोचा कि यह बात विवेचना अधिकारी को बताना जरूरी है, यहां तक कि मोबाइल से भी। उसने इस सुझाव को अस्वीकार कर दिया कि चारु के मोबाइल की ऐसी कोई रिकॉर्डिंग नहीं है। उसकी मौसी फोन पर माफी मांगकर सुलह करा लेती थी। उसे अपनी चाची का फोन नंबर याद नहीं था, लेकिन उसने बयान दिया था कि वह अपने माता-पिता से मोबाइल फोन पर माफी मांगती थी, लेकिन अपने माता-पिता के मोबाइल नंबर भी याद नहीं कर सकती थी। उसने खुद कहा कि यह ज्ञात नहीं था कि स्थिति हत्या तक कैसे आ सकती है। वह अपने वैवाहिक घर में रहती थी और उसे अपने माता-पिता से बात करने के बाद घटना के बारे में पता चला। चारू भाभी भी उसे बताती थी,

उसके पास कोई निजी जानकारी नहीं थी। उसने विवेचना अधिकारी को बताया था कि आरोपी हमेशा पैसे की मांग करता था, अगर उसके बयान में ऐसा नहीं लिखा है, तो वह कारण नहीं बता सकती है। उसने विवेचना अधिकारी को बताया कि वह उस दिन अपनी मां के घर पर थी। उसने श्वेता से उसकी मां के फोन पर बात की थी और उससे कहा था कि शांत रहो, वह और उसके पिता उसे लेने झांसी आएंगे। यदि यह विवेचना अधिकारी द्वारा नहीं लिखा गया था, तो वह कारण नहीं बता सकती हैं। उसने कहा कि क्योंकि वह अपने माता-पिता के घर के पास रहती थी, इसलिए, वह 2013 और 2014 के वर्ष में कई बार वहां आई थी, हालांकि वह सही संख्या नहीं बता सकती है। उन्होंने कहा कि जब श्वेता मुंबई जाती थीं, तो वह मामले की जानकारी देती थीं, वह उस दिन, तारीख, महीने या वर्ष को नहीं बता सकती जब मृतका ने उनसे ऐसा कहा था। वह उस दिन, तारीख और महीने को नहीं बता सकी जब चारु ने मामले को सुलझा लिया था। उन्हें वह दिन, तारीख और महीना याद नहीं है जब आशा तलवार ने माफी मांगी थी। उसने आगे कहा कि 29.04.2014 को लगभग 11:30 से 12:00 बजे चारु ने अपनी मां को फोन किया था, लेकिन उसे चारु या उसकी मां (गवाह की) का मोबाइल नंबर याद नहीं है। उसने स्वीकार किया कि यह बातचीत रिकॉर्ड नहीं की गई थी, केवल मोबाइल स्टेटमेंट उपलब्ध है लेकिन यह रिकॉर्ड में नहीं है। उसने स्वीकार किया कि 29.04.2014 को वह अपने माता-पिता और पति के साथ लगभग 11:30-12:00 बजे झांसी पहुंची थी और अतरकेश के रास्ते ऋषभ होटल गई थी। वहां पहुंचने के बाद उसके पिता ने पुलिस को फोन किया था और कमल राज की गाड़ी का इस्तेमाल करते हुए वे रात 12:30 से 01:00 बजे के बीच ऋषि तलवार के घर पहुंचे, जहां पुलिस भी पहुंच चुकी थी और वहां पहले से ही एक हवलदार मौजूद था। चूंकि उसकी मां की तबीयत ठीक नहीं थी, इसलिए वे वापस ऋषभ होटल आ गए, जहां वे अगले चार दिनों तक रहे। उसने कहा कि यह तथ्य कि चारू ने उन्हें फोन पर झांसी जाने के लिए कहा था, उसने विवेचना अधिकारी को बताया था, अगर उसने इसे रिकॉर्ड नहीं किया था, तो वह कारण नहीं बता सकती।

(X) इस गवाह ने स्वीकार किया कि वह रवि को जानती थी। उसका पति उमेश आगे की पुलिस कार्रवाई के लिए आरोपी के घर गया था। वह, उसके माता-पिता और उसका पति एक साथ थाना गए थे। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि 29.04.2014 को लगभग 11:30 - 12:00 बजे चारु ने अपनी मां को यह सूचित करने के लिए फोन नहीं किया था कि ऋषि तलवार ने श्वेता को गोली मार दी थी।

(XI) अ०सा०-6 सतीश कुमार द्विवेदी, एचसीपी ने बयान दिया था कि 30.04.2014 को शिकायतकर्ता मनोहर लाल सूरी के तहरीर के आधार पर उन्होंने चिक नंबर 120, 2014 रात 02:00 बजे तैयार किया था और 2014 के अपराध संख्या 211 में आरोपी ऋषि तलवार और अन्य के खिलाफ धारा 302, 120-बी भ०द०वि० के तहत प्राथमिकी दर्ज कराई थी। इस गवाह ने चिक प्राथमिकी प्रदर्श क-6 को साबित कर दिया था। इस गवाह ने मामले की संस्था के संबंध में कार्बन कॉपी जीडी प्रदर्श क-7 भी साबित की थी। जिरह में इस गवाह ने जवाब दिया था कि शिकायतकर्ता के साथ उमेश विष्णु सिरके भी आए थे। उन्होंने कहा कि थाना से चिक प्राथमिकी भेजने की तारीख संबंधित कॉलम में नोट नहीं

की गई थी, बल्कि इसे आउटगोइंग कॉलम 'पोस्ट ऑफिस' में चिह्नित किया गया था। सी.ओ. के हस्ताक्षर के नीचे तारीख का उल्लेख नहीं किया गया है। वह यह भी स्वीकार करते हैं कि इस पर सीजेएम के कोई हस्ताक्षर नहीं थे। इस गवाह ने इस बात से इनकार किया कि चिक रिपोर्ट और जीडी को समय पूर्व तैयार किया गया था।

(XII) अ०सा०-7, डॉ. सुशील कुमार गुप्ता, जिन्होंने पोस्टमार्टम किया, ने कहा कि 30.04.2014 को लगभग 12:30 बजे उन्होंने मृतका के शव का पोस्टमार्टम किया था। बाहरी परीक्षणों में उन्होंने मृतका के पूरे शरीर में कठोरता को पाया। इस गवाह को मृतका के शरीर पर निम्नलिखित चोटें मिलीं: -

"(1) बाएं पार्श्विका की हड्डी पर गोली का घाव (पंचर) हो गया, बाएं पिन्ना से 3 सेमी ऊपर उल्टे घाव में 1 x 1 सेमी आकार का झुलसना मौजूद है, घाव गहरा हो जाता है, आंख की दीवार के पीछे 2 सेमी की गोली बरामद होती है, कोई निकास घाव नहीं होता है। बाएं पार्श्विका और ललाट की हड्डी के किनारे टूट गए थे।

(2) बंदूक की गोली (पंचर) घाव 1 x 1 सेमी आकार, नाभि से 5 सेमी ऊपर झुलसन मौजूद, उल्टे घाव और घाव में गन पाउडर मौजूद थे, एक्स-रे में कोई निकास घाव मौजूद नहीं था। बाईं ओर 3 सेमी पार्श्व से थैली तक गहराई में पेलेट देखे गए जिनके संभावित प्रभाव का पता नहीं लगाया जा सका।

(XIII) आंतरिक परीक्षण में, मस्तिष्क संकुचित पाया गया। दाढ़ दांत से एक धातु की टोपी बरामद की गई थी। अन्नप्रणाली लाल थी। दाएं और बाएं फेफड़े क्रमशः 380 ग्राम और 320 ग्राम थे। दिल खाली था। पेट में 50 ग्राम अर्ध-पचा हुआ भोजन था। छोटी आंत और अपेंडिक्स में काइम और गैसें मौजूद थीं। बड़ी आंत और मेसेंटरी वाहिकाओं में मल पदार्थ और गैसें थीं। तिल्ली संकुचित थी और इसका वजन 150 ग्राम था। किडनी संकुचित थी, दोनों 200 ग्राम के थे। मूत्राशय खाली था। जननांग अंग और गर्भाशय सगर्भ नहीं थे।

(XIV) इस गवाह के अनुसार, मृतका की मृत्यु पोस्टमार्टम से पहले गोली लगने की चोटों के कारण सदमे और रक्तस्राव के कारण हुई। इस गवाह ने पोस्टमार्टम रिपोर्ट प्रदर्श क-8 साबित की है और पीली धातु की एक गोली और धातु के दो टुकड़ों की बरामदगी भी साबित की है। इस गवाह ने साबित कर दिया है कि गोली सामग्री एक्स-1 है। धातु सामग्री का टुकड़ा एक्स -2 और बरामद दो मोलर टूथ कैप सामग्री का टुकड़ा एक्स -3, माचिस सामग्री एक्स -4 और मैच सामग्री एक्स -5 का ट्रस। जिरह में इस गवाह ने राय दी है कि मृत्यु के समय में 06 घंटे का अंतर हो सकता है। रात में लगभग 10:00 - 11:00 बजे मृत्यु होने की संभावना है।

(XV) अ०सा०-8 के बहनोई उमेश विष्णु सिरके ने बताया कि मृतका की शादी 10-11 साल पहले आरोपी के साथ हुई थी। जब मृतका मुंबई गई, तो उसे पता था कि उसे झांसी में पीटा गया था। वह कारण नहीं जान सका। 29.04.2014 को दोपहर लगभग 12:00 बजे उनकी सास श्रीमती शक्ति देवी सूरी ने उन्हें फोन किया और उन्हें अपने घर आने के लिए कहा क्योंकि चारू सूरी ने उन्हें फोन पर सूचित किया था कि ऋषि तलवार ने श्वेता को गोली मार दी है। मनोहर लाल सूरी ने झांसी की एस.एस.पी श्रीमती अपर्णा गांगुली और उनके रिश्तेदार कमल राज को सूचित किया कि झांसी पहुंचने तक कोई कार्रवाई नहीं

की जानी चाहिए। दिनांक 29.04.2014 को लगभग 11:45 से 12:00 बजे वे ऋषभ होटल, झांसी पहुँचे जहाँ से वे कमल राज के साथ थाना पहुँचे। वहां से वे ऋषि तलवार के घर गए जहां एक पुलिसकर्मी तैनात था। थोड़ी देर बाद 2-3 पुलिसकर्मियों के साथ पुलिस की एक गाड़ी वहां पहुंची और अंदर जाकर बाथरूम दिखाया जहां श्वेता का शव पड़ा था। शव को देखकर श्रीमती शक्ति देवी सूरी, मनोहर लाल सूरी और श्रीमती मोनिका सिरके जोर-जोर से रोने लगीं। श्रीमती शक्ति देवी सूरी की बिगड़ती सेहत के कारण, वे उन्हें वापस ऋषभ होटल ले गए और फिर मनोहर लाल सूरी के कहने पर थाना चले गए। उन्होंने एक तहरीर प्रदर्श क-1 लिखी थी, मौके पर ही प्रदर्श क-2 तैयार किया गया था। इस गवाह ने दोनों कागजों पर अपने हस्ताक्षर की पहचान की।

(XVI) इस गवाह ने आगे गवाही दी कि मुंबई में अपने घर पर उसने श्वेता के ससुराल वालों द्वारा उसके साथ मार-पीट के बारे में सुना। वह पुलिस और एसएचओ की उपस्थिति में थाना में लिखित शिकायत लिखने की बात स्वीकार करता है। एसएचओ ने रिपोर्ट लिखने में कोई मदद नहीं की। मनोहर लाल बोलते चले गए और वह शिकायत लिख रहे थे। उन्हें लेखन की थोड़ी याद है। उन्होंने श्वेता के घर पर पूछताछ पर हस्ताक्षर किए। उन्होंने आगे कहा कि जांच में उन्होंने नोट किया है कि शव कहां मिला था और रक्त का नमूना लिया गया था। कपड़ों और लाश की स्थिति भी लिखी हुई थी। बाथरूम से एक खाली कारतूस की बरामदगी भी इसमें लिखी हुई है। विवेचना अधिकारी ने उससे घटना के बारे में पूछा था। उन्होंने 04:00 से 04:30 बजे के बीच पूछताछ के कागजात पर पर हस्ताक्षर किए। उन्होंने कहा कि उन्होंने विवेचना अधिकारी को बयान दिया था कि वे निशा सिरके को छोड़कर करीब 12:00 बजे थाने गए थे। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि 29.04.2014 को उनकी सास ने उन्हें फोन नहीं किया था और यह नहीं कहा था कि चारू सूरी ने फोन के माध्यम से सूचित किया था कि ऋषि तलवार ने श्वेता की हत्या कर दी है। इस गवाह ने बचाव पक्ष के सभी सुझावों से इनकार किया।

(XVII) अ०सा०-9, मृतका की मां शक्ति सूरी ने गवाही दी कि उनकी बेटी श्वेता तलवार की शादी लगभग 11-12 साल पहले आरोपी ऋषि तलवार से हुई थी। कुछ दिनों के बाद, आरोपी ने उसकी बेटी को पीटना और गाली देना शुरू कर दिया, जिसे वह फोन पर बताती थी। उनकी बेटी से दो बेटियों का जन्म हुआ। आरोपी ऋषि तलवार हमेशा उसकी बेटी को पीटने के बाद भेज देता था। 28.04.2014 को उनकी बेटी श्वेता ने 08:00 बजे फोन किया कि आरोपी उसे गंभीर रूप से पीट रहा है। उसने उसे और उसकी बेटियों को वहां से ले जाने के लिए कहा और फिर उसने सांत्वना दी कि अगली सुबह वह उसे लेने आ रही है। रात 11:00 बजे उसे अपने पति के फोन पर अपनी बेटी का फोन आया जिसमें कहा गया था कि ऋषि बहुत गाली दे रहा है और धमकी दे रहा है कि वह उसे जान से मार देगा। उसके पति ने कहा कि वह अपनी मां के साथ आ रहा है। करीब 05:00 बजे उनके पति के फोन पर एक मिस्ड कॉल आई। उसने वापस फोन किया लेकिन किसी ने फोन नहीं उठाया। इसके बाद 29.04.2014 को सुबह 11:00 बजे उनकी बहू चारू सूरी ने अपने पति के फोन पर फोन किया और कहा कि वे सभी अभी तक नहीं गए हैं, वहां ऋषि तलवार ने श्वेता को गोली मार दी तो उसने अपने पति से फोन लिया और उससे बात की। उसने भी यही

बात उसे बताई तो उसके पति ने ऋषभ होटल के मालिक कमल राज को फोन किया और मामले की जानकारी लेने को कहा। उन्होंने झांसी के एस०पी को फोन किया और घटना के बारे में सूचित किया और उन्हें वहां पहुंचने तक कोई कार्रवाई नहीं करने के लिए भी कहा। 30.04.2014 को 01:00 बजे वे झांसी पहुंचे और ऋषि तलवार के घर गए जहां श्वेता का मृत शरीर बाथरूम में पड़ा था। घटना की रिपोर्ट उसके पति ने दर्ज कराई थी।

(XVIII) जिरह में इस गवाह ने गवाही दी कि उसकी बेटी फोन पर पिटाई के बारे में बताती थी, वह तारीख नहीं बता सकती। वह यह नहीं बता पाई कि 10 साल में आरोपी ने कितनी बार उसकी बेटी को पीटा है। जब भी उसकी बेटी उसके घर आती थी, तो वह अपनी मेडिकल जांच नहीं कराती थी, लेकिन उसके हाथ, पैर और नाक में भी चोटों के निशान थे। दिनांक 28.04.2014 को लगभग 08:00 बजे उसके फोन पर एक कॉल आई। उसे अपनी मृत बेटी का मोबाइल नंबर याद नहीं था। जब उसे रात 11:00 बजे अपने पति के फोन पर कॉल आया, तो यह रिकॉर्ड नहीं किया गया था। दिनांक 29.04.2014 को सुबह 05:00 बजे उनके पति के जिस नंबर से मिस्ड कॉल की गई थी, वह उन्हें पता नहीं था लेकिन वह आशा तलवार के नाम पर सेव था जिसका फोन नंबर 8454840444 है। उसने यह नंबर इंस्पेक्टर को बताया था। उन्होंने अपने पति के हाथ से फोन लिया तो उनकी बहू ने भी कहा था कि ऋषि तलवार ने श्वेता को गोली मारी थी, अगर इसे विवेचना अधिकारी ने रिकॉर्ड नहीं किया तो वह कारण नहीं बता सकतीं। वह 30.04.2014 की रात लगभग 12:00 से 12:15 बजे ट्रेन से झांसी पहुंची। वे चारों सीधे ऋषि तलवार के घर पहुंचे और देखा कि श्वेता की डेड बॉडी बाथरूम में पड़ी है। उसका पति थाने में मामले की रिपोर्ट करने गया। जब उसने अपनी बेटी का मृत शरीर देखा, तो वह घबरा गई और बहुत गुस्सा हुई। आज भी उसे लगता है कि लाश उसकी आंखों के सामने है। जब वह पहुंची तो ऋषि तलवार वहां नहीं थे। वह बेहोश हो गई और एक घंटे के बाद पानी छिड़कने के बाद होश में आई। शव बाथरूम में लाल रंग के प्रिंटेड कुर्ते और सफेद पजामा में उल्टा पड़ा हुआ था। उसे रोका गया था, इसलिए, वह अपनी बेटी की लाश से चिपककर नहीं रो सकती थी। तत्पश्चात् वह 03.05.2014 को मुम्बई लौट आई। इस गवाह ने बचाव पक्ष के सभी सुझावों से इनकार किया और इस बात से इनकार किया कि गुस्से में भावुक होकर वह आरोपी के खिलाफ सबूत दे रही थी।

(XIX) अ०सा०-10, राम भजन सिंह, विवेचना अधिकारी ने कहा कि 30.04.2014 को उन्हें एसएचओ, थाना सिपारी बाजार, झांसी के रूप में तैनात किया गया था। उस दिन ऋषि तलवार के खिलाफ भ०द०वि० की धारा 302, 120-बी के तहत 2014 के अपराध संख्या 211 में मामला दर्ज किया गया था, जिसकी जांच उन्होंने की थी। उन्होंने सीडी का पेपर नंबर 1 तैयार किया, लिखित शिकायत और चिक प्राथमिकी की नकल की और एचसीपी, सतीश चंद्र द्विवेदी और शिकायतकर्ता मनोहर लाल सूरी के बयान दर्ज किए और मौके पर पहुंचे, जांच की, एसआई अहमद रजब के लिखित में जांच रिपोर्ट तैयार की और कागजात तैयार किए यानी फोटोनाश, चालान नाश, सीएमओ और आरआई को पत्र, नमूना मुहर और उन्हें भेजा था। इस गवाह ने जांच रिपोर्ट प्रदर्श क-2, फोटोनाश प्रदर्श क-9, चालाननाश प्रदर्श क-10, सीएमओ प्रदर्श क-11

को लिखे पत्र और नमूना सील प्रदर्श क-12 को साबित किया। उन्होंने शिकायतकर्ता की निशानदेही पर घटना स्थल का निरीक्षण किया और नक्शा प्रदर्श क-13 तैयार किया और इसे साबित किया। उन्होंने घटना स्थल से 32 बोर के दो खाली कारतूस बरामद किए, रिकवरी मेमो प्रदर्श क-3 तैयार किया, नमूना सील तैयार की, खून से सने और फर्श के सादे टुकड़े लिए, इसका रिकवरी मेमो तैयार किया, इसे सील कर दिया और इसे प्रदर्श क-4 साबित कर दिया। दिनांक 01.05.2014 को जब वह आरोपी की तलाश में था तो शिकायतकर्ता की निशानदेही पर आरोपी को उसके घर के गेट पर ताला लगाते हुए गिरफ्तार कर लिया गया। उसकी निजी तलाशी में 32 बोर की एक पिस्तौल और दो जिंदा कारतूस बरामद किए गए। उन्होंने आरोपी को सुबह 07:30 बजे गिरफ्तार कर लिया। गवाह ने गिरफ्तारी ज्ञापन, हथियारों और कारतूसों की बरामदगी को प्रदर्श क-5 साबित कर दिया है। उन्होंने बरामद पिस्टल और कारतूस को मौके पर ही सील कर नमूना सील तैयार किया और थाने आने के बाद प्राथमिकी दर्ज कराई। 02.05.2014 को उन्होंने केस डायरी में पोस्टमार्टम की सामग्री दर्ज की, श्रीमती मोनिका सिरके, उमेश विष्णु सिरके, श्रीमती शक्ति सूरी और शिकायतकर्ता मनोहर लाल सूरी के बयान दर्ज किए। उन्होंने डॉ सुशील कुमार का बयान दर्ज किया जिन्होंने शव परीक्षण किया और 17.05.2014 को जांच की नकल की। उन्होंने कांस्टेबल मोहम्मद अहमद, महिला कांस्टेबल श्रीमती गीता देवी और एसआई अहमद खान के बयान सीडी में दर्ज किए। उन्होंने केस डायरी में 23.05.2014 को श्रीमती चारू सूरी के हलफनामे की सामग्री का उल्लेख किया, कमल राज के बयान दर्ज किए, सूचनादाता - मनोहर लाल सूरी और गवाह अजहर के पूरक बयान दर्ज किए। दिनांक 25.05.2014 को उन्होंने अपराध में प्रयुक्त हथियार की बरामदगी के स्थान का प्रदर्श क-14 मानचित्र तैयार किया और श्रीमती आशा तलवार, श्रीमती चारू सूरी, कुमारी अनीता, कुमारी जान्हवी और कांस्टेबल जितेंद्र सिंह के बयान दर्ज किए। दिनांक 05.06.2014 को उन्होंने इरशाद और निसार का बयान दर्ज किया, जो जांच के गवाह थे और भ०द०वि० की धारा 120-बी को हटा दिया। पर्याप्त सबूत मिलने के बाद उन्होंने आरोपी के खिलाफ भ०द०वि० की धारा 302 के तहत 2014 की चार्जशीट नंबर 168 (प्रदर्श क -15) प्रस्तुत की। गवाहों के समक्ष खून से सने और फर्श के सादे टुकड़े पेश किए गए, जिन्हें उसने सामग्री के रूप में साबित किया। उन्होंने देसी पिस्तौल, वस्तु प्रदर्श 8 तथा 32 बोर के दो जिंदा कारतूस, वस्तु प्रदर्श 9 तथा 10, खाली कारतूस वस्तु प्रदर्श 11 और 12 तथा ट्रस, वस्तु प्रदर्श 13 के संबंध में रिकवरी मेमो को साबित किया।

(XX) जिरह में इस गवाह ने स्वीकार किया था कि पिस्तौल की ट्रस पर न तो आरोपी से बरामदगी के गवाहों के हस्ताक्षर दिखाई दे रहे हैं और न ही ट्रस पर कागज की कोई शीट चिपकाई गई है। तारीख का भी उल्लेख नहीं किया गया है। सील पठनीय नहीं हैं। जिन बक्सों में फर्श के टुकड़े रखे गए थे, वे गवाह के सामने मौजूद नहीं थे, लेकिन टुकड़े मौजूद थे। रिकवरी मेमो में पहचान के किसी संकेत का उल्लेख नहीं किया गया था। खाली कारतूसों के रिकवरी मेमो में कोई समय का उल्लेख नहीं किया गया है। उन्होंने स्वीकार किया कि पिस्तौल को कब्जे में लेने के बाद उसे न तो रुई में रखा गया और न ही आरोपियों के फिंगर प्रिंट लिए गए क्योंकि पर्याप्त

सबूत पहले से ही उपलब्ध थे। वह आरोपी का रिमांड लेने मजिस्ट्रेट के पास गया था। इस तथ्य का उल्लेख केवल जीडी में किया गया है। उसने रिमांड मजिस्ट्रेट के समक्ष पिस्तौल जमा की थी और प्रविष्टि करने के लिए कॉपी और केस डायरी पेश की थी। बारीकी से देखने के बाद, गवाह ने कहा कि केस डायरी और ट्रस पर, सीजेएम, झांसी के दिनांक 01.05.2014 के हस्ताक्षर दिखाई देते हैं।

(XXI) उन्होंने स्वीकार किया कि उन्होंने यह नहीं लिखा था कि शिकायतकर्ता सीधे ऋषभ होटल में आया और लिखित शिकायत तैयार की और उसके बाद प्राथमिकी दर्ज की। वहां से वह आरोपी के घर गया और पहली बार अपनी बेटी का शव देखा। वह स्वीकार करते हैं कि यह नहीं लिखा है कि उनकी बेटी का फोन प्राप्त करने के बाद शिकायतकर्ता ने उसे सांत्वना दी और घर के ऊपरी हिस्से में जाने की बात कही। उन्होंने कहा कि छोटी-छोटी डिटेल नहीं लिखी जाती है, सिर्फ पिटाई का जिक्र होता है। यह नहीं लिखा है कि मृतका की नाक से खून बह रहा था। उन्होंने कहा कि केस डायरी में इस बात का जिक्र है कि आरोपी पैसे की मांग करता था और मारपीट कर तलाक मांगता था। यह गवाह स्वीकार करता है कि हालांकि तलाक देना नहीं लिखा गया था, लेकिन यह लिखा था कि आरोपी कहता था कि तलाक ले लो अन्यथा वह उसे मार देगा। वह स्वीकार करता है कि शिकायतकर्ता - मनोहर सूरी ने गवाही दी थी कि उसकी बहू श्वेता की हत्या के बाद, चारू सूरी अपने बेटे के साथ मुंबई वापस नहीं लौटी थी।

(XXII) अ०सा०-11 सूचनादाता मनोहर लाल सूरी के बेटे सुधीर सूरी ने अदालत में गवाही दी है, जबकि आरोप पत्र में गवाह के तौर पर उसका जिक्र नहीं था। खुली अदालत में इस गवाह ने लैपटॉप पर सीडी चलाई और गवाही दी कि उसने गूगल अकाउंट से कंटेंट डाउनलोड किया है, जिसमें उसकी पत्नी चारु सूरी की कॉल रिकॉर्डिंग और उसके एस.एम.एस सेव हैं। अप्रैल 2012 में उसने एडमिन सॉफ्टवेयर खरीदा था। उन्होंने खरीद बिल प्रदर्श क-16 भी दायर किया और इसे साबित किया। उनके मुताबिक, इस सॉफ्टवेयर का इस्तेमाल कर उनकी पत्नी चारू सूरी की सारी बातचीत रिकॉर्ड हो गई और उसे गूगल अकाउंट में सेव कर लिया गया जो आज भी उनके ई-मेल अकाउंट में सेव है। उसके फोन में एडमिन कंट्रोल होता था और जब भी उसे रिकॉर्डिंग सुनने की इच्छा होती थी तो वह उसे गूगल अकाउंट से डाउनलोड कर लेता था। उन्होंने यह भी कहा कि उन्होंने इस सीडी के साथ कोई छेड़छाड़ नहीं की है। कोर्ट में उन्होंने जो बातचीत की वो उनके गूगल अकाउंट की तरह ही है. इस गवाह ने गवाही दी और रिकॉर्डिंग का विवरण प्रस्तुत किया जो निम्नानुसार हैं:

"(i) पहली रिकॉर्डिंग में चारू सूरी और उसके भाई ऋषि तलवार के बीच श्वेता तलवार की हत्या के बारे में बातचीत है। इस बातचीत में ऋषि तलवार अपनी बहन के सामने कबूल कर रहा है कि उसने अपनी पत्नी श्वेता तलवार की हत्या की थी और उसकी डेड बॉडी घर पर थी। उसने उससे कहा कि वह इस तथ्य को दूसरों तक न पहुंचाए क्योंकि वह शव को छिपाने के लिए समय चाहता है। यह सुनकर चारु सूरी रो पड़ी कि उसने उसे क्यों मारा और उसे कोई दया क्यों नहीं आई। अब सब कुछ बर्बाद हो गया है। उसने यह भी पूछा कि बच्चे कहां हैं, जवाब में उसने कहा कि वे घर के ऊपरी हिस्से में थे।

(ii) दूसरी रिकॉर्डिंग उसकी पत्नी चारू सूरी और नीरू सहाय, उसकी भाभी और उसकी सास आशा तलवार के बीच बातचीत है जिसमें उसकी पत्नी फोन करती है और नीरू को बताती है कि हमारे भाई ऋषि तलवार ने श्वेता तलवार की गोली मारकर हत्या कर दी है। उन्होंने यह भी बताया कि यह जानकारी नहीं फैलानी चाहिए क्योंकि भाई को कुछ घंटों का समय चाहिए। या तो वह घर छोड़ देता या बंदूक के साथ आत्मसमर्पण कर देता! इसके अलावा आशा तलवार ने भी नीरू के साथ फिर से इसी बात की पुष्टि की है कि ऋषि ने ही श्वेता की गोली मारकर हत्या की थी। उसने अदालत को सूचित किया कि उसकी पत्नी का मोबाइल नंबर 8454840444 है। उसने यह भी कहा कि यह मोबाइल नंबर उसके पिता मनोहर लाल सूरी के नाम पर था, जिसका बिल वह चुकाता था। इस नंबर पर उसने एडमिन कंट्रोल सॉफ्टवेयर भी इंस्टॉल किया हुआ है। वह बिल की राशि का भुगतान करता है। पत्नी के बारे में संदेह के कारण, उसने सॉफ्टवेयर स्थापित किया था। 28.04.2014 को वह अपनी पत्नी और बेटे के साथ लगभग 05:00 से 06:00 बजे अपनी सास से मिलने गया था, लेकिन रात में घर में खराब स्थिति के कारण, वह निकटतम होटल में गया और रात में वहां रुका। दूसरे दिन दिनांक 29.04.2014 को सुबह लगभग 04:00 बजे वह पुनः अपने ससुराल आया और अपनी पत्नी को कई बार फोन किया लेकिन उसकी पत्नी, सास और बेटा वहां नहीं थे। फिर जब उसने तथ्यों को जानना चाहा, तो उसने अपनी पत्नी को फोन किया लेकिन उसने उसे कोई जानकारी नहीं दी। इस पर उन्होंने इसे अपने गूगल अकाउंट में डाउनलोड किया और रिकॉर्डिंग सुनने के बाद उन्हें पता चला कि सुबह 05:45 बजे ऋषि तलवार ने अपनी बहन से फोन पर संपर्क किया था और इस बात की जानकारी दी थी। रिकॉर्डिंग सुनने के बाद उसने अपनी पत्नी से पूछा कि उसने ये सारी बातें उसे क्यों नहीं बताईं। धर्मशाला से वह टैक्सी से दिल्ली आया था। दूसरी रिकॉर्डिंग उनकी भाभी नीरू सहाय के मोबाइल नंबर 9915702175 पर की गई। वह इस रिकॉर्डिंग की सभी आवाजों को बहुत अच्छी तरह से पहचानते हैं और पुष्टि करते हैं कि ये आवाजें ऋषि तलवार, चारू, नीरू सहाय और आशा तलवार की थीं।

(XXIII) प्रति परीक्षण में उसने स्वीकार किया कि उसके पास आवाज़ों को पहचानने के लिए कोई डिग्री या डिप्लोमा नहीं है और न ही वह आवाज़ों को पहचानने का काम करता है लेकिन वह और नीरू सहाय, उसकी भाभी दोनों 10-12 वर्षों से एक-दूसरे के साथ बात कर रहे हैं, इसलिए, वह उनकी आवाज़ को पहचानता है। इसी तरह, वह यह नहीं बता सकते कि उन्होंने ऋषि तलवार के साथ कब और किस तारीख को बात की, लेकिन 10-12 वर्षों से वह उनके साथ बातचीत कर रहे हैं। उन्होंने स्वीकार किया कि अदालत में चलाई गई रिकॉर्डिंग के अलावा उनके पास वे सभी रिकॉर्डिंग भी हैं जिसमें उनकी पत्नी ने ऋषि तलवार से बात की है। गवाह इस बात को लेकर आश्वस्त नहीं था कि इस तरह की रिकॉर्डिंग उपलब्ध है या नहीं। उन्होंने कहा कि उन्होंने उनके और आशा तलवार के बीच हुई बातचीत को अलग से रिकॉर्ड नहीं किया था। 01/02.05.2014 के बाद चारू सूरी का मोबाइल फोन उपयोग में नहीं था। वह यह नहीं बता सकता कि उसकी पत्नी ने उस फोन के साथ क्या किया। उन्होंने करीब एक महीने बाद इस फोन नंबर को स्विच ऑफ करवा दिया। उनकी पत्नी चारू सूरी ने उनके पास आने से मना कर दिया

था। उसने इस फोन को तुरंत बंद नहीं किया क्योंकि वह उम्मीद कर रहा था कि उसकी पत्नी उसके पास आएगी। एक महीने बाद उन्होंने तलाक की अर्जी दाखिल कर दी थी।

(XXIV) उन्होंने जांच के दौरान विवेचना अधिकारी को यह सीडी उपलब्ध कराई थी। उनके पिता ने यह सीडी सौंपी थी लेकिन वह यह नहीं कह सकते कि उसका परिणाम क्या हुआ। उन्होंने स्वीकार किया है कि वह विवेचना अधिकारी से कभी नहीं मिले और अदालत में दिए गए तथ्य के बारे में अदालत और पुलिस को सूचित नहीं किया गया था। न तो पुलिस ने उसे बुलाया और न ही वह अपने आप गया। उन्होंने स्वीकार किया कि सीडी पर उनके या उनके पिता या अदालत द्वारा हस्ताक्षर नहीं किए गए हैं, लेकिन उन्होंने खुद कहा कि उनके अधिवक्ता अरुण कुमार दीक्षित ने सीडी पर हस्ताक्षर किए हैं। यह सच है कि इस पर कोई तारीख नहीं है। उन्होंने कहा कि सीडी की पहली रिकॉर्डिंग 29.04.2014 को सुबह 6:00 बजे उपलब्ध हुई थी। दूसरी रिकॉर्डिंग लगभग आधे घंटे बाद की है। इस मौके पर अधिवक्ता अरुण कुमार दीक्षित ने सीडी पर अपने हस्ताक्षर की पहचान की और अदालत को सूचित किया कि यह सीडी उनके मुवक्किल ने 12.08.2014 को दी थी।

(XXI) अ०सा०-12 रविंदर शर्मा ने कहा कि वह मनोहर लाल सूरी और उनके परिवार के सदस्यों और उनकी बेटी श्वेता को भी जानता है, जिसकी मृत्यु हो चुकी है; दोनों परिवारों के बीच पारिवारिक संबंध हैं। वह शिकायतकर्ता के परिवार के घर जाया करता था। वह जानता है कि श्वेता सूरी की शादी झांसी में ऋषि तलवार के साथ हुई थी। वह कभी झांसी नहीं गए थे। कोर्ट की सूचना पर वह सबूत के लिए झांसी आया था।

(XXVI) जिरह में इस गवाह ने गवाही दी कि इस मामले के संबंध में पुलिस ने उससे पूछताछ नहीं की थी। वह शिकायतकर्ता मनोहर लाल सूरी के साथ नहीं बल्कि अलग से आए हैं। अदालत का समन उन्हें भेज दिया गया। अदालत द्वारा पूछताछ किए जाने पर, इस गवाह ने जवाब दिया कि वह मुंबई में श्वेता सूरी से मिला था। वह उसका पति से कभी नहीं मिला। वह उसे केवल नाम से जानता है। उनके पास इस मामले के बारे में कोई व्यक्तिगत जानकारी नहीं है। सुधीर सूरी ने उन्हें फोन पर बताया कि उनकी बहन की हत्या कर दी गई है। श्वेता सूरी की हत्या में उसका कोई हाथ नहीं है। अगर किसी गवाह ने उसका नाम लिया है तो उसने गलत तरीके से ऐसा किया है। उसने आरोपी की तस्वीर देखी है, इसलिए वह उसे पहचानता है। उन्होंने कभी भी फोन पर या आमने-सामने कोई बातचीत नहीं की। श्वेता सूरी के साथ उनका रिश्ता उनके दोस्त की बहन होने के कारण था और पारिवारिक परिस्थितियां थीं।

(XXVII) अ०सा०-13, मृतका की भाभी चारू सूरी ने गवाही दी कि आरोपी उसका छोटा भाई है और मृतका उसकी भाभी थी, शिकायतकर्ता मनोहर लाल सूरी उसका ससुर है। उसके भाई आरोपी ऋषि तलवार की शादी उसके ससुर मनोहर लाल सूरी की बेटी श्वेता से हुई थी। इस शादी से दो बेटियां अंकिता तलवार (12 साल) और जाह्नवी तलवार (लगभग 08 साल) का जन्म हुआ। शादी के बाद उससे पहले न तो उसके भाई और भाभी श्वेता के बीच कोई झगड़ा हुआ और न ही यह उसकी जानकारी में है। शादी के बाद वह अपने पति, ससुर और सास के साथ मुंबई के नरूला में रहती थी। 28.04.2014 को वह अपने पति सुधीर सूरी और बच्चों के साथ धर्मशाला, हिमाचल में

अपनी मां आशा तलवार के घर पर थी। वह अपने द्वारा इस्तेमाल किए गए मोबाइल नंबर को याद नहीं कर सकी, लेकिन उसने इनकार कर दिया कि यह 8454840444 है। 28.04.2014 और 29.04.2014 को न तो उसके भाई ऋषि और न ही उसकी भाभी श्वेता ने उसे फोन किया था। उसे अपनी मां का मोबाइल नंबर याद नहीं था।

(XXVIII) इस गवाह के अनुसार मोबाइल नंबर 9805489464 उसकी माँ के पास नहीं था। दिनांक 29.04.2014 को शाम 05:00 से 06:00 बजे तक उसके भाई ऋषि ने उसे फोन नहीं किया था और यह भी नहीं कहा था कि उसने उसकी पत्नी श्वेता को गोली मार दी है। शादी के बाद श्वेता झांसी में ऋषि तलवार के साथ रहीं। उसके भाई ऋषि ने उसे कभी परेशान नहीं किया। यह कहना गलत है कि उसका भाई किसी भी तरह से श्वेता से छुटकारा पाना चाहता था। श्वेता के खिलाफ उसके भाई द्वारा तलाक की याचिका के बारे में उसने अनभिज्ञता व्यक्त की, अगर ऐसा था, तो उसकी भाभी तलाक के बाद भी अपने भाई के साथ रहती थी और अपने बच्चों के साथ मरते दम तक रहती थी। यह सच है कि श्वेता की हत्या ऋषि तलवार के घर में की गई थी और उसकी डेड बॉडी वहीं मिली थी। यह भी सच है कि उसके ससुर मनोहर लाल सूरी ने उसके भाई ऋषि, मां आशा और उसके खिलाफ श्वेता की हत्या करने के लिए प्राथमिकी दर्ज कराई थी। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि इस संबंध में उन्होंने 05.05.2014 को एस.एस.पी, झांसी को एक आवेदन और हलफनामा दायर किया था।

(XXIX) इस गवाह के मुकर जाने की घोषणा की गई और अभियोजन पक्ष ने उससे जिरह की जिसमें उसने गवाही दी कि घटना के समय वह अपने पति के साथ रहती थी लेकिन घटना के बाद वह उसके साथ नहीं रह रही थी। उनके बीच कोई तलाक नहीं है लेकिन धारा 125 द० प्र० स० के तहत एक आदेश पारित किया गया है और धारा 128 द० प्र० स० की कार्यवाही चल रही है। जून, 2014 के महीने में उन्होंने एक आवेदन दायर किया था जिसमें कहा गया था कि आवेदन पत्र संख्या 15-ए/4 और शपथ पत्र 15-ए/12/224 पर उनके हस्ताक्षर नहीं थे। वह जानती थी कि 05.05.2014 के बाद उसे और उसकी मां को मामले से मुक्त कर दिया गया था। इस गवाह ने विवेचना अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए बयान को अस्वीकार कर दिया और अधिवक्ता जनार्दन व्यास और नोटरी अधिवक्ता लाला राम वर्मा के बारे में भी अनभिज्ञता व्यक्त की। इस गवाह ने अपने अधिवक्ता रमेश चंद्र अग्रवाल द्वारा तैयार आवेदन संख्या 114-बी प्रदर्श क-17 पर हस्ताक्षर को पहचाना और यह भी स्वीकार किया कि वह उनके कक्ष से अदालत में आई है। उन्होंने स्वीकार किया कि यह जानने के बाद भी कि आवेदन और शपथ पत्र 15-ए पर उनके हस्ताक्षर अधिवक्ता जनार्दन व्यास द्वारा सत्यापित हैं और नोटरी अधिवक्ता लाला राम वर्मा द्वारा प्रमाणित हैं, उन्होंने कोई शिकायत नहीं की थी।

(XXX) लोक अभियोजक के अनुरोध पर और अभियुक्त के अधिवक्ता की सहमति से प्रदर्श क -7 की तुलना पेपर नंबर 15-ए-1/14 से की गई और अदालत ने पाया कि दोनों दस्तावेजों पर चारु सूरी के हस्ताक्षर थे। हस्ताक्षर ज्यादातर समान थे, लेकिन इस गवाह ने इनकार कर दिया कि 05.05.2014 को उसने आवेदन और हलफनामा तैयार किया और हस्ताक्षर करने के बाद एस.एस.पी, झांसी के समक्ष पेश किया। गवाह ने अभियोजन पक्ष के अधिवक्ता के सुझावों से भी इनकार किया।

(XXXI) अभियुक्त द्वारा जिरह में, गवाह ने गवाही दी कि प्रदर्श क-17 में अधिवक्ता ने उन तथ्यों को लिखा था जो उसने बताए थे। 29.04.2014 की रात 11:00 से 12:00 बजे के बीच किसी ने सूचना दी कि रवि नाम के व्यक्ति ने श्वेता को गोली मार दी थी जब ऋषि दिल्ली में थे, लेकिन यह बात उसने किसी अदालत या किसी अधिकारी को नहीं बताई। उसने बयान दिया कि उसने अधिकारी को मौखिक रूप से सूचित किया था। उसने कहा कि घटना के दिन जब वह हिमाचल में थी, तो सारी बातचीत उसके पति के फोन से की गई थी। इस घटना के बाद उसके अपने पति के साथ संबंधों में खटास आ गई। उसे पता नहीं था कि उसका पति उसका फोन टैप कर रहा है। उसके ससुर उसे पसंद नहीं करते और उसके पति के संबंध (उसके साथ) खराब थे।

(XXXII) अ०सा०-14, लाला राम वर्मा, नोटरी एडवोकेट, सिविल कोर्ट, झांसी ने गवाही दी कि वह एक नोटरी अधिवक्ता थे। इस गवाह ने पेपर नंबर 11-ए2 से 11-ए4 को पहचाना और बयान दिया कि चारू सूरी उनके पास उन कागजात के साथ आई थीं, जिन पर उनके हस्ताक्षर की पहचान अधिवक्ता जनार्दन व्यास ने की थी। शपथ पत्र चारु सूरी को पढ़कर सुनाया गया। उसने अपनी मुहर और हस्ताक्षर लगाए; गवाह ने हलफनामे पर अपने हस्ताक्षर और मुहर को प्रमाणित किया। नोटरी रजिस्टर में उक्त शपथ पत्र दिनांक 05.05.2014 को क्रम संख्या 2866 पर दर्ज किया गया था जिस पर श्रीमती चारू सूरी के हस्ताक्षर हैं। गवाह ने अपने द्वारा सत्यापित रजिस्टर के उस पृष्ठ की फोटोकॉपी भी दायर की और इसे प्रदर्श क-19 साबित किया।

(XXXIII) जिरह में इस गवाह ने स्वीकार किया कि यह सच है कि हलफनामे पर कोई तस्वीर नहीं थी। हलफनामे पर न तो कोई फोटो है और न ही चारु सूरी की उम्र का उल्लेख किया गया था। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि उनकी मुहर में 'सही होने के लिए सत्यापित शब्द' नहीं लिखा गया था। इस गवाह के अनुसार, वह व्यक्तिगत रूप से अपराधी को नहीं जानता था। हलफनामा उनके पास पहले से तैयार होकर आया था। उनसे पहले चारु सूरी ने न तो इसे टाइप किया था और न ही हस्ताक्षर किए थे। चारू सूरी और अधिवक्ता इस हलफनामे के साथ आए थे। यह सच है कि जनार्दन व्यास अधिवक्ता की मुहर और उनके पंजीकरण की तारीख उस पर नहीं लिखी गई थी। गवाह ने सुझावों से इनकार कर दिया।

19. अभियोजन पक्ष के साक्ष्य समाप्त होने के बाद, आरोपी का बयान धारा 313 द० प्र० स० के तहत दर्ज किया गया है जिसमें उसने सभी सवालों को गलत बताते हुए इनकार कर दिया। इसके अलावा, उन्होंने बन्दूक पिस्तौल, मैगज़ीन और जिंदा कारतूस की गिरफ्तारी और बरामदगी के संबंध में कहा कि वह अपनी बेटी अंचिता से जानकारी मिलने के बाद सुबह 04.30 बजे तक थाना पहुंच चुके थे। घटना के दिन उन्होंने चारु सूरी से बात नहीं की थी और यह भी कहा था कि चारू सूरी ने उनकी निंदा नहीं की थी। उन्होंने आगे जवाब दिया कि मृतका 29.04.2014 को रात 09:00 बजे तक घर पर रही। इसके बाद वह दिल्ली चले गए थे। रवि ने ही मृतका की हत्या की थी लेकिन मृतका के पिता ने उसे ब्लैकमेल करने के लिए झूठी शिकायत दर्ज कराई है। उन्होंने स्वीकार किया कि चारू सूरी झांसी में अलग घर में रह रही हैं। अभियोजन की मंजूरी फर्जी और गलत है और उसने अपनी पत्नी की हत्या नहीं की थी। घटना के समय वह घर पर

मौजूद नहीं था, लेकिन घर से बाहर दिल्ली गया हुआ था। उसे झूठा फंसाया गया है।

20. बचाव पक्ष में तीन गवाहों से पूछताछ की गई है जो निम्नानुसार हैं:-

(1) ब० सा० -1, महेंद्र दुबे ने गवाही दी कि उसकी दुकान, प्रकाश ट्रेडर्स, सदर बाजार, झांसी में है। वह एक ए-श्रेणी के सरकारी ठेकेदार और जनरल ऑर्डर सप्लायर हैं। वह आरोपी ऋषि तलवार को जानता है जो एक ए-क्लास सरकारी ठेकेदार और सेना आपूर्तिकर्ता भी है। मोटर पार्ट्स उसके द्वारा बेचे जाते हैं। वह कश्मीरी गेट, दिल्ली से सामान खरीदता है। ऋषि तलवार दिल्ली से सामान भी खरीदते थे। 29.04.2014 को वह दिल्ली गया था और रात 08:30 बजे घर से निकला था। वह झांसी रेलवे स्टेशन पहुंचे जहां ऋषि तलवार कतार में थे और उनसे दिल्ली के लिए टिकट खरीदने के लिए कहा और इसके लिए उन्होंने पैसे भी प्रदान किए थे। उसने दो खिड़की टिकट खरीदे। इसके बाद वह ट्रेन का इंतजार करने लगा। वह दक्षिणी एक्सप्रेस से दिल्ली गए थे जो रात 09:30 बजे झांसी से रवाना होती है। वे 05:00-05:30 बजे निजामुद्दीन रेलवे स्टेशन पहुंचे। इसके बाद वह वेटिंग रूम में बैठ गया और नाश्ता किया। सुबह 09:30 बजे वे कश्मीरी गेट गए और मोटर पार्ट्स खरीदे। ऋषि तलवार ने कहा कि डीलरों से अपना सामान भी ले लो और उसके लिए उन्होंने रसीद प्रदान की और कहा कि बैठक है, इसलिए उनका सामान बुक किया। उन्होंने 01.05.2014 को सामान बुक किया और 02.05.2014 को झांसी लौट आए।

(2) जब वह बिल देने गया, तो आरोपी की दुकान बंद थी और एक कर्मचारी दुकान के बाहर खड़ा था, जिसे उसने रसीद सौंपी थी। स्टाफ ने बताया कि ऋषि तलवार को अपनी पत्नी की हत्या के मामले में जेल भेजा गया है।

(3) जिरह में उन्होंने कहा कि उनकी दुकान ऋषि तलवार की दुकान से 40-50 मीटर दूर है। यह कहना गलत है कि वह ऋषि तलवार का कारोबार देखते हैं। उन्होंने अदालत में मौजूद चारू तलवार को पहचान लिया और स्वीकार किया कि उन्हें गवाही के लिए कोई समन नहीं मिला था। वह चारु के कहने पर गवाही देने आया था। ऋषि तलवार और चारू तलवार के साथ उनके करीब 25 साल से अच्छे कारोबारी रिश्ते हैं। यह कहना गलत है कि वह मामले को आगे बढ़ाने के लिए अदालत में आते हैं। इस गवाह ने स्वीकार किया कि उसने आरोपी ऋषि के अधिवक्ता श्री रमेश अग्रवाल द्वारा लिखे गए अपने हस्ताक्षर में स्थगन आवेदन पत्र संख्या 138-बी और 137-बी 1 दायर किया था। उन्होंने किसी भी पुलिस अधिकारी को लिखित में यह जानकारी नहीं दी थी कि घटना के दिन वह और ऋषि तलवार दिल्ली में थे। गवाह ने खुद कहा कि उसने एस.ओ, राम भजन सिंह को बताया था। उन्होंने किसी भी पुलिस अधिकारी को लिखित में यह जानकारी नहीं दी थी। उन्होंने किसी भी उच्च अधिकारी से शिकायत नहीं की थी कि उनके द्वारा सूचित तथ्य को एस.ओ, राम भजन सिंह द्वारा नहीं माना गया था। उन्होंने आगे कहा कि एक बार वह एस.एस.पी, झांसी के पास गए थे, हालांकि वह मौजूद नहीं थे। उन्होंने यह जानकारी न तो वहां लिखित में दी और न ही डाक के माध्यम से भेजी।

(4) अदालत द्वारा पूछे जाने पर, गवाह ने गवाही दी कि यह सच है कि वह मामले को आगे बढ़ाता था और आरोपी ऋषि तलवार के साथ व्यावसायिक संपर्क के कारण अदालत में आता

था क्योंकि उसके मामले को आगे बढ़ाने के लिए परिवार का कोई वरिष्ठ सदस्य नहीं है। दिल्ली में 30.04.2014 को लगभग 11:00 - 12:00 बजे दोनों अलग हो गए, तब तक उन्हें घटना की जानकारी नहीं मिली थी। उन्होंने आगे कहा कि निश्चित रूप से यह तथ्य आश्चर्यजनक है कि पति को अपनी पत्नी की हत्या के बारे में मोबाइल फोन पर भी सूचित नहीं किया गया था, लेकिन वह कारण नहीं बता सकता है।

(5) ब० सा०- -2, अनिल कुमार सिंह ने बयान दिया कि ऋषि तलवार उनके पड़ोसी हैं और अपनी पत्नी और दो बेटियों, अंकिता और जान्हवी के साथ उनके घर के सामने रहते हैं। उन्होंने उन्हें कभी एक-दूसरे से लड़ते हुए नहीं देखा, इसके अलावा वे शांति से रह रहे थे। ऋषि तलवार का मोटर पार्ट्स का बिजनेस है और खरीदारी के लिए दिल्ली जाते थे। 29.04.2014 को वह अपने घर पर था। रात करीब 10:30 बजे उन्होंने एक लड़की की चीख सुनी, वह घर से बाहर आए और अंकिता और जाह्नवी को वहां पाया और चीखने का कारण पूछा तो उन्होंने बताया कि रवि अंकल ने उसकी मां श्वेता को गोली मार दी है और उसके पिता दिल्ली गए हुए हैं। जब वह घर में दाखिल हुए तो उन्हें वहां श्वेता की डेड बॉडी मिली तो उन्होंने ऋषि तलवार को फोन किया। कई अन्य लोग भी वहां जमा हो गए, जिन्होंने पुलिस को सूचित किया। आधे घंटे बाद पहुंची पुलिस ने घटना की जानकारी पुलिस को दी।

(6) जिरह में गवाह ने गवाही दी कि वह रोजाना ऋषि तलवार के घर नहीं जाता था। वह यह नहीं कह सकता कि घर के अंदर पत्नी और पति के बीच झगड़ा होता था। वह पी०डब्लू०डी० /आरईएस में अनुबंध करता था। उनके घर एक-दूसरे के आमने-सामने हैं। वह न तो किसी पुलिस अधिकारी को सूचना देने गए और न ही मौके पर मौजूद किसी पुलिस अधिकारी को लिखित में दिया और न ही किसी वरिष्ठ अधिकारी को बताने गए। आज पहली बार वह अदालत को बता रहा था। उन्होंने किसी अदालत या कहीं भी हलफनामा भी नहीं दिया था। यह सच है कि घटना के अगले दिन आरोपी थाने जाने की बात कहकर घर से निकला था। अगले दिन ऋषि तलवार को जेल भेज दिया गया। उन्होंने ऋषि तलवार को उनके मोबाइल नंबर 8853202916 से फोन किया था। बेटियों ने उनका नंबर दे दिया था। उन्हें सूचित किया गया कि घटना के दिन रात लगभग 08:00-09:00 बजे वह दिल्ली गए थे। दोनों बेटियों ने उनके घर का दरवाजा खटखटाया था। पुलिस आधे घंटे बाद आई, तब तक वह घर से बाहर खड़ा रहा। एक कांस्टेबल को वहीं छोड़कर पुलिस वापस लौट गई। 01:00 बजे के बाद वह भी सोने चले गए। पुलिस ने कहा था कि जरूरत के अनुसार वे उसे बुलाएंगे। शव पानी के नल के पास था। श्वेता सलवार-सूट में थीं। वह रंग नहीं बता सकता था। उसने पुलिस को फोन नहीं किया। पड़ोसी संजीव पांडे, मनीष अग्रवाल, बबलू अग्रवाल और सक्सेना जी आए थे। उन्होंने पुलिस को सूचित किया कि बेटियों ने उन्हें सूचित किया था कि रवि चाचा ने उनकी मां को गोली मार दी है। उसने रवि अंकल के बारे में नहीं पूछा। ऋषि तलवार ने उन्हें सुबह लगभग 07:00-08:00 बजे थाना जाने के लिए सूचित किया था। यह जानने के बाद कि ऋषि तलवार को अपनी पत्नी की हत्या के आरोप में जेल भेजा गया है, उन्होंने किसी भी पुलिस अधिकारी को इस तथ्य की जानकारी नहीं दी। कांस्टेबल से समन मिलने के बाद वह खुद गवाही देने आया था। गवाह ने इस

बात से इनकार किया कि पड़ोसी होने के नाते वह झूठे सबूत दे रहा था।

(7) अदालत द्वारा पूछे जाने पर गवाह ने जवाब दिया कि उसने गोली चलने की आवाज नहीं सुनी थी क्योंकि टीवी चालू था। वह बाहर आया ही था कि बेटियां चीखते हुए घर से बाहर निकलीं।

21. **<u>अपील के आधार</u>:-**

(1) अपीलकर्ता ने यह आधार लिया है कि शिकायतकर्ता, अ०सा०-1 एक चश्मदीद गवाह नहीं है और उसके सबूत पूरी तरह से अविश्वसनीय हैं। एकमात्र चश्मदीद गवाह अ०सा०-4 कुमारी अंचिता हैं। निचली अदालत उसके सबूतों की सराहना करने में विफल रही थी। उसने कहा था कि रवि असली अपराधी है और अपीलकर्ता शहर से बाहर था। रवि पर मुकदमा न चलाना, अपीलकर्ता पर दोष मढ़ने और उसे दंडित करने का कोई आधार नहीं है। घटना का समय निर्धारित नहीं किया गया है। पोस्टमार्टम घंटों के बाद किया गया लेकिन कोई रिगर मॉर्टिस नहीं मिली। हत्या का कारण बनने के लिए तनावपूर्ण संबंधों के बारे में कोई विश्वसनीय सबूत रिकॉर्ड पर नहीं लाया गया है। अपीलकर्ता की ओर से कोई मकसद नहीं था। विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ता और श्रीमती चारू सूरी, अ०सा०-13 के बीच बातचीत वाली सीडी पर भरोसा करना उचित नहीं था।

(2) सीडी के रूप में साक्ष्य भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 65-बी द्वारा किया जाता है। परीक्षण में सॉफ्टवेयर का कोई लाइसेंस प्रस्तुत नहीं किया गया था। निचली अदालत ने सीडी पर केवल इस आधार पर भरोसा किया था कि अ०सा०-13 ने आवाज परीक्षण का दावा नहीं किया है। आपराधिक न्याय में यह स्थापित कानून है कि अभियोजन पक्ष को अपने मामले को अपने स्वयं के साक्ष्य पर साबित करना होता है, न कि जांच या बचाव पक्ष की कमजोरी पर। 05.05.2014 को शपथ पत्र घटना के एक सप्ताह बाद निष्पादित किया गया था और अ०सा०-13 भी एक नामित आरोपी था लेकिन उसके खिलाफ आरोप-पत्र दायर नहीं किया गया था। इस हलफनामे को अ०सा०-13 द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था, लेकिन किसी भी मामले में संभावना है कि इसे जबरदस्ती प्राप्त किया गया हो।

(3) दिनांक 01.05.2014 को सुबह 07.30 बजे अ०सा०10 द्वारा अपीलकर्ता से वसूली दिखाई गई है, जबकि अभियोजन पक्ष के अनुसार, प्राथमिकी 30.04.2014 को दर्ज की गई थी, जिसके अनुसार घटना 29.04.2014 को शाम 04:45 बजे हुई थी। यह सोच से परे है कि ऐसी परिस्थितियों में अपीलकर्ता अपने साथ हथियार ले जाएगा। विचारण न्यायालय ने गलत तरीके से आरोपी पर सबूत का बोझ डाल दिया है कि हत्या किसने की है, जबकि इस बात के पर्याप्त सबूत हैं कि अपीलकर्ता 29.04.2014 को रात में 09:30 बजे सदर्न एक्सप्रेस द्वारा दिल्ली के लिए अपने निवास से निकला था। विचारण न्यायालय इस पहलू पर विचार करने में पूरी तरह से विफल रहा है। लागू किया गया निर्णय और आदेश कानून में त्रुटिपूर्ण है और पूरी तरह से अनुचित है। अभियोजन पक्ष उचित संदेह से परे अपने मामले को साबित करने में पूरी तरह से विफल रहा है। यह भ्रामक सबूतों पर आधारित है। विचारण न्यायालय द्वारा दी गई सजा और जुर्माना पूरी तरह से अवैध, अत्यधिक और अनुचित है। दोषसिद्धि और सजा रिकॉर्ड पर साक्ष्य के भार के विरुद्ध है। इसलिए, अपील की अनुमति दी जाए और विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश को रद्द कर दिया जाए।

22. पक्षों के अधिवक्ताओं को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

23. **<u>अपील पर निर्णय निम्नानुसार लिया जाता है:-</u>**

(1) इस मामले में, शिकायतकर्ता और अन्य गवाहों के अनुसार, मारे जाने से पहले, मृतका ने अपने माता-पिता को 28.04.2014 को 08:00 बजे टेलीफोन के माध्यम से आरोपी द्वारा दुर्व्यवहार के बारे में सूचित किया और उसने यह भी बताया कि आरोपी पिछले 3-4 दिनों से उसे पीट रहा था। मृतका ने फिर से 11:00 - 12:00 बजे फोन किया कि आरोपी अभी भी उसे पीट रहा था। उसने अपने पिता से अनुरोध किया कि वह उसे उसके बच्चों के साथ ले जाए अन्यथा आरोपी ऋषि उसे मार देगा। शिकायतकर्ता ने उसे आश्वासन दिया कि वह सुबह आएगा। अ०सा०-1, शिकायतकर्ता ने फिर से बयान दिया कि 29.04.2014 को सुबह 04:55 बजे आरोपी की मां श्रीमती आशा तलवार ने उसके मोबाइल नंबर 9821154419 पर मिस्ड कॉल किया और जब उसने वापस कॉल किया, तो उसका फोन बंद था। सुबह करीब 11:00 बजे उनकी बहू चारू सूरी ने फोन कर के जानकारी दी कि ऋषि तलवार ने श्वेता की गोली मारकर हत्या कर दी है। इसके बाद एस.एस.पी झांसी और उनके रिश्तेदार कमलराज को सूचित करने के बाद वह मुंबई से रवाना हुए और 29/30.04.2014 की रात लगभग 01:00 बजे वह अपनी पत्नी, दामाद और बेटी के साथ झांसी पहुंचे और पाया कि उनकी बेटी श्वेता तलवार का शव बाथरूम में पड़ा हुआ था, जिसे ऋषि तलवार ने गोली मारकर मार डाला था।

(2) सूचना देने वाले द्वारा घटना स्थल पर पहुंचने के एक घंटे बाद दिनांक 30.04.2014 को तड़के 02:00 बजे प्राथमिकी दर्ज की गई थी। देरी क्यों हुई, यह शिकायतकर्ता अ०सा०-1 द्वारा ठीक से समझाया गया है। अ०सा०-5, मृतका की बड़ी बहन मोनिका और शेष गवाहों ने भी स्वीकार किया है कि शिकायतकर्ता 29/30.04.2014 की रात झांसी पहुंचा था। इस प्रकार, प्राथमिकी दर्ज करने में कोई देरी नहीं है। लिखित शिकायत में सभी आवश्यक तथ्यों का उल्लेख किया गया है। प्राथमिकी एक विश्वकोश नहीं है। अपराध के होने से संबंधित सभी तथ्यों का उल्लेख करना आवश्यक नहीं है।

24. **रोहताश बनाम राजस्थान राज्य, ए.आई.आर 2007 एससीडब्ल्यू 44** में यह माना गया था कि प्राथमिकी पूरे मामले का विश्वकोश नहीं है और इसमें सभी विवरण शामिल करने की आवश्यकता नहीं है।

25. यह परिस्थितिजन्य साक्ष्यों पर आधारित मामला है। सूचना देने वाला और तथ्य के अन्य गवाह मौके पर मौजूद नहीं थे। केवल अ०सा०-4 कुमारी अंचिता ही उपस्थित बताई जा रही हैं, जिन्होंने अभियोजन पक्ष के बयान का समर्थन नहीं किया है।

26. **मोतीलाल और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, ए.आई.आर 2010 एससी 281** में यह माना गया था कि प्राथमिकी में घटना के बारे में हर मिनट का विवरण शामिल करने की आवश्यकता नहीं है। यह आवश्यक नहीं है कि घटना स्थल पर मौजूद प्रत्येक व्यक्ति का नाम प्राथमिकी में बताया जाना चाहिए।

27. **हरबंस कौर और एक अन्य बनाम हरियाणा राज्य, ए.आई.आर 2005 एससी 2989** में यह माना गया था कि प्राथमिकी दर्ज करने में लंबी देरी को भी नजरअंदाज किया जा सकता है यदि

गवाहों के पास आरोपी को फंसाने का कोई मकसद नहीं है और देरी के लिए स्वीकार्य कारण दिए हैं।

28. रविंदर कुमार और एक अन्य बनाम पंजाब राज्य, ए.आई.आर 2001 एससी 3570 मामले में यह माना गया था कि जब इस आधार पर आलोचना की जाती है कि किसी मामले में प्राथमिकी में देरी हुई थी, तो अदालत को यह देखना होगा कि इतनी देरी क्यों हुई। विलंब के कारणों की जांच की जानी चाहिए। अगर किसी बयान को गढ़ने के पीछे किसी गलती की वजह से ऐसा नहीं किया गया है, तो प्राथमिकी को दूषित करने के लिए देरी को आधार नहीं बनाया जा सकता है.

29. **सी. मगेश बनाम कर्नाटक राज्य, ए.आई.आर 2010 एससीडब्ल्यू 3194** मामले में यह माना गया था कि प्राथमिकी ठोस सबूत नहीं है, इसका उपयोग केवल इसके निर्माता की पुष्टि के लिए किया जा सकता है।

30. इस मामले में शिकायतकर्ता की बेटी की उसके दामाद द्वारा मृत्यु हो गई है। इस बात का कोई सबूत नहीं है कि शिकायतकर्ता की कोई दुश्मनी थी या झूठे निहितार्थ का तत्काल या दूरस्थ कारण था। सबूतों से यह स्थापित होता है कि आरोपी और मृतका का पारिवारिक जीवन अच्छा नहीं था और या तो तलाक की याचिका चल रही थी या उनके बीच तलाक की डिक्री पारित की गई थी। तब भी नाबालिग बेटियों की खातिर मृतका आरोपी पति के घर में रह रही थी। इस प्रकार, बचाव पक्ष का यह तर्क कि प्राथमिकी पूर्व-दिनांकित या पूर्व-निर्धारित है, साबित नहीं होता है और इस संबंध में दिए गए तर्क को खारिज कर दिया जाता है।

<u>**हेतुक**</u>

31. लिखित शिकायत के अनुसार, अपराध करने के पीछे का मकसद यह है कि आरोपी शादी के तुरंत बाद मृतका को पीटता था। मृतका अपने परिवार के सदस्यों और माता-पिता को आरोपियों द्वारा पिटाई और गालियों के बारे में बताती थी। वह अक्सर तलाक के लिए धमकी देता था, पैसे मांगता था और मृतका को तलाक नहीं मिलने पर जान से मारने की धमकी देता था। इन तथ्यों को शिकायतकर्ता अ०सा०-1 मनोहर लाल सूरी ने साबित किया है।

32. अ०सा०-4, मृतका की बेटी कुमारी अंचिता ने आरोपी द्वारा जिरह में गवाही दी है कि उसके माता-पिता के बीच संबंध अच्छे थे और कभी कोई झगड़ा नहीं हुआ। लेकिन अ०सा०-4 के इस सबूत को रिकॉर्ड पर अन्य सबूतों द्वारा पुष्टि नहीं की जाती है।

33. अ०सा०-5, मृतका की बड़ी बहन मोनिका उमेश सिरके ने अभियोजन पक्ष के पक्ष में गवाही दी और लिखित शिकायत में आरोपी द्वारा कथित दुर्व्यवहार के बारे में तथ्यों को साबित किया है। इस गवाह के अनुसार आरोपी ऋषि तलवार की मां श्रीमती आशा तलवार उसकी सगी मौसी और उसकी मां की बड़ी बहन है। वह अपने बेटे के आचरण के बारे में बहाने बनाती थी, इसलिए, उसकी माफी पर विचार करते हुए, श्वेता अपने पति के घर वापस चली जाती थी। उसने फिर से गवाही दी कि चारू सूरी, उसकी भाभी लड़कियों का संदर्भ देकर सुलह करती थी, फिर श्वेता अपने पति के घर वापस चली जाती थी।

34. अ०सा०-8 के तहत मृतका के बहनोई उमेश विष्णु सिरके ने भी अभियोजन पक्ष के पक्ष में गवाही दी है। अ०सा०-9, श्रीमती शक्ति सूरी, मृतका की मां ने अभियोजन पक्ष के समर्थन में बयान दिया है कि आरोपी अक्सर मृतका को

पीटते थे और गाली देते थे और हत्या से पहले भी, उसे शारीरिक और मानसिक रूप से प्रताड़ित किया गया था।

35. अ०सा०-11, मृतका के भाई सुधीर सूरी ने भी अभियोजन पक्ष के पक्ष में गवाही दी है और आरोपी, उसकी बहन, चारू सूरी और उसकी मां की कॉल रिकॉर्डिंग को पेश किया है और उसके कबूलनामे के बारे में साबित किया है।

36. अ०सा०-13, मृतका की भाभी (भाभी/ननद) चारू सूरी ने अभियोजन पक्ष के बयान का समर्थन नहीं किया है और उसे अपने बयान से मुकरने वाला घोषित किया गया है, हालांकि इससे पहले 05.05.2014 को एस.एस.पी झांसी को एक आवेदन उनके अधिवक्ता जनार्दन व्यास के माध्यम से दिया गया था। हालांकि गवाह ने उपरोक्त आवेदन और हलफनामे के निष्पादन से इनकार करने की कोशिश की लेकिन वह इसमें सफल नहीं हो सकी।

37. यह भी साक्ष्य में आया है कि आरोपी और मृतका के बीच विवाह टूट गया था और हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13-बी के तहत 2013 की तलाक याचिका संख्या 740, 17.12.2013 को दर्ज की गई थी, जिसमें मृतका का पता **नेरुला**, नवी मुंबई दिखाया गया है, इस तर्क के साथ कि दोनों 18 सितंबर से अलग-अलग रह रहे थे। लेकिन 2011 में, मृतका घटना की तारीख तक अपने बच्चों के साथ एक ही घर में रह रही थी क्योंकि हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13-बी के तहत निर्धारित छह महीने की वैधानिक अवधि समाप्त नहीं हुई थी।

38. मृतका की अभियुक्त के घर में अप्राकृतिक मृत्यु हुई है, इसलिए, यदि अभियुक्त का दोष साबित नहीं होता है तो भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 के तहत आरोपी पर मृतका की अप्राकृतिक मृत्यु की परिस्थितियों को साबित करने का बोझ होगा।

39. इस मामले में विवेचना अधिकारी द्वारा दिनांक 30.04.2014 को 02:00 बजे से 02:25 बजे तक प्राथमिकी दर्ज करने के बाद जांच की गई, जिसमें गवाहों ने राय दी है कि मृतका की मौत गोली लगने से हुई है। बाएं कान के ऊपर और नाभि के ऊपर तीन उंगलियों पर खून से सनी चोट थी। जांच में अपराध संख्या और धाराओं का उल्लेख किया गया है। गवाहों का कहना है कि मृतका की मौत गोली लगने से हुई थी, जिसकी पुष्टि पोस्टमार्टम रिपोर्ट से भी होती है। जांच साक्ष्य का एक ठोस टुकड़ा नहीं है। जांच का उद्देश्य प्रथम दृष्टया मौत के तात्कालिक कारण का पता लगाना है। आरोपी के नाम या अपराध में इस्तेमाल किए गए हथियार या गवाहों के नाम आदि का उल्लेख करने की कोई आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार इस मामले में यह पाया गया है कि जांच नियमों के अनुसार की गई है।

40. 30.04.2014 को दोपहर 12:30 बजे पोस्टमार्टम शुरू हुआ। अ०सा०-7 के साक्ष्य में पोस्टमार्टम रिपोर्ट के विवरण का उल्लेख किया गया है। यह पाया गया है कि जांच रिपोर्ट, पोस्टमार्टम रिपोर्ट और मौखिक साक्ष्य एक-दूसरे की पुष्टि करते हैं। इसलिए पोस्टमार्टम रिपोर्ट पर आगे चर्चा करने की कोई जरूरत नहीं है।

गवाह

41. इस मामले में अ०सा०-1, शिकायतकर्ता - मनोहर लाल सूरी पिता हैं; अ०सा०-5, मोनिका उमेश सिरके बड़ी बहन हैं; अ०सा० 8, उमेश विष्णु सिरके बहनोई हैं; अ०सा०-9, श्रीमती शक्ति सूरी मां हैं और अ०सा०-11, सुधीर सूरी मृतका के भाई हैं। इस प्रकार, वे मृतका और शिकायतकर्ता के

परिवार के सदस्य और रिश्तेदार हैं। उन सभी ने अभियोजन पक्ष के बयान का समर्थन किया है और मृतका पर आरोपी के दुर्व्यवहार और बन्दूक का उपयोग करके आरोपी द्वारा हत्या के बारे में सबूत जोड़े हैं। मृतका और आरोपी के बच्चों के अलावा घर में और कोई मौजूद नहीं था। यदि गवाह शिकायतकर्ता या मृतका के परिवार के सदस्य या रिश्तेदार हैं और उनके साक्ष्य ठोस, सच्चे, विश्वसनीय और किसी भी पूर्वाग्रह से मुक्त हैं, तो सावधानीपूर्वक जांच के बाद इस पर भरोसा किया जा सकता है।

42. उपरोक्त गवाहों के अलावा अ०सा०-4, मृतका और आरोपी की बेटी कुमारी अंचिता और अ०सा०-13, मृतका की भाभी (भाभी/ननद) श्रीमती चारू सूरी से भी पूछताछ की गई है। इन गवाहों के सबूतों की भी जांच की जानी है क्योंकि वे आरोपी और मृतका से संबंधित हैं। दोनों पक्षों द्वारा यह स्वीकार किया जाता है कि अ०सा०-4, मृतका और आरोपी की बेटी कुमारी अंचिता अपराध के समय घर में मौजूद थी। सबसे पहले, भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 118 के तहत उसका परीक्षण किया गया और उसे सक्षम गवाह घोषित किया गया और उसके बाद शपथ पर उसकी गवाही दी गई। इस गवाह के अनुसार यह घटना 29.04.2014 को रात 09:00 बजे हुई, उसके पिता के दिल्ली जाने के आधे घंटे बाद, रवि अंकल आए और घंटी बजाई; उसकी माँ ने दरवाजा खोला; वह ड्राइंग रूम में बैठ गया; वह घर के अंदर टीवी देख रही थी। वे बात कर रहे थे और कुछ समय बाद उसने सुना कि वे झगड़ा कर रहे थे। उसने टीवी का वॉल्यूम कम कर दिया और रवि अंकल को उसकी मां पर उसके साथ जाने के लिए दबाव डालते हुए सुना। उसकी मां ने यह कहकर मना कर दिया कि उसका पति घर में नहीं है और बच्चे अकेले हैं। इसके बाद रवि अंकल ने बल प्रयोग करना शुरू कर दिया। जब उसकी माँ ने उसे छोड़ने के लिए कहा, तो उसने एक छोटी बंदूक निकाली; डरी हुई उसकी मां बाथरूम की तरफ भागने लगी और दरवाजा बंद करने की कोशिश करने लगी लेकिन इससे पहले कि वह कामयाब हो पाती, रवि अंकल ने उस पर गोली चला दी और वह गिर गई। वह रोने लगी! उसने उसे धमकी दी कि वह उसके वहां आने के बारे में किसी को न बताए। वह घर के ऊपरी हिस्से में गई और अपनी छोटी बहन को सूचित किया कि रवि चाचा ने उनकी मां की हत्या कर दी है। वह उस घर से बाहर गई जहां अनिल सिंह और संजीव पांडे चाचा उससे मिले थे, उसने उन्हें सारी बात बता दी थी। उन्होंने कहा कि वे थाना में फोन कर रहे थे। चूंकि वह घर में खुद से घबरा रही थी, इसलिए वह कुछ समय के लिए अनिल सिंह और संजीव पांडे के घर पर रही। अगले दिन जब उसके नाना आए, तो उसने उन्हें तथ्य बताए जब उन्होंने कहा कि वह थाना जा रहे हैं। दिनांक 01.05.2014 को प्रातः 04:00 बजे उसके पिता आए और उसने अपनी माँ के बारे में ये सारी बातें बताईं। उसके पिता ने कहा कि वह थाना जा रहा था लेकिन वापस नहीं आया।

43. गवाह को अपने बयान से मुकर जाने की घोषणा कर दी गई और अभियोजन पक्ष ने उससे जिरह की लेकिन वह बरकरार रही और उसने अभियोजन पक्ष के बयान का समर्थन नहीं किया। निचली अदालत ने इस गवाह को विश्वसनीय नहीं पाया है और उसके सबूतों को स्वीकार नहीं किया है। इस गवाह ने स्वीकार किया है कि वह अपनी बुआ, श्रीमती चारू सूरी, अ०सा० 13 के साथ अदालत में आई थी और उसके और उसके

चचेरे भाई रुद्रांश के साथ रह रही थी। इस प्रकार, यह साबित होता है कि वह चारु सूरी के दबाव और आदेश के तहत थी, जिसने अभियोजन पक्ष के खिलाफ और अपने आरोपी भाई के समर्थन में भी गवाही दी है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस गवाह को समझाया गया था कि उसकी मां की मृत्यु हो गई थी और उसके पिता जीवित थे लेकिन जेल में थे, इसलिए यदि वह शत्रुतापूर्ण बयान नहीं देती, तो उसका जीवन बर्बाद हो जाएगा और उसके पिता को दंडित किया जाएगा और उसकी देखभाल और रखरखाव करने वाला कोई नहीं होगा।

44. अ०सा०-13, आरोपी की बड़ी बहन चारू सूरी ने अभियोजन पक्ष के बयान का समर्थन नहीं किया है। इस गवाह ने यह स्वीकार नहीं किया है कि आरोपी मृतका को प्रताड़ित और परेशान करता था और उससे छुटकारा पाना चाहता था। उसने इस बात से अनभिज्ञता जताई कि उसके भाई ने तलाक के लिए याचिका दायर की है। आगे उन्होंने स्वीकार किया कि अगर ऐसा होता तो भी उनकी भाभी आखिरी वक्त तक अपने भाई और बच्चों के साथ रहती थीं। अभियोजन पक्ष का यह मामला है कि इस गवाह ने दिनांक 05.05.2014 को पेपर नंबर 15-ए/1 और उसी तारीख का हलफनामा एस.एस.पी, झांसी के समक्ष प्रस्तुत किया था, जो पेपर नंबर 15-ए/2 से 15-ए/4 हैं। इस गवाह ने आवेदन और हलफनामे पर अपने हस्ताक्षर से इनकार कर दिया था। इस गवाह को अपने बयान से मुकर जाने का दोषी घोषित कर दिया गया है और अभियोजन पक्ष ने उससे जिरह की है। उपरोक्त आवेदन और हलफनामा अधिवक्ता जनार्दन व्यास द्वारा तैयार और हस्ताक्षरित किया गया था, जिन्होंने इस गवाह की पहचान भी की है। अधिवक्ता लाला राम वर्मा ने हलफनामे को अधिसूचित किया। यह गवाह स्वीकार करता है कि इन दोनों अधिवक्ताओं के साथ कोई दुश्मनी नहीं थी। इस गवाह ने आवेदन संख्या 114-बी प्रदर्श क-17 पर अपने हस्ताक्षर स्वीकार किए। इस गवाह ने यह भी स्वीकार किया कि वह अपने भाई (आरोपी) के अधिवक्ता रमेश चंद्र अग्रवाल के चैंबर से आई थी। इस प्रकार, यह साबित होता है कि इस गवाह को आरोपी के अधिवक्ता द्वारा समर्थित किया गया है। इस गवाह ने यह भी स्वीकार किया कि उसकी ओर से पेश किए गए कुछ स्थगन आवेदन उसी अधिवक्ता रमेश चंद्र अग्रवाल द्वारा तैयार किए गए थे और पेश किए गए थे। यह गवाह स्वीकार करती है कि उसने फर्जी हलफनामा तैयार करने के संबंध में वकीलों के खिलाफ कोई शिकायत नहीं की थी, लेकिन उसने आगे कहा कि अदालत में केवल एक आवेदन दिया गया था, हालांकि इस गवाह द्वारा ऐसा कोई आवेदन दायर नहीं किया गया है।

45. भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 73 के तहत अदालत को हस्ताक्षर, लेखन या मुहर की तुलना अन्य स्वीकृत या सिद्ध हस्ताक्षर, लेखन या मुहर के साथ करने की शक्ति है। विचारण न्यायालय ने पेपर नंबर 15-ए/4 पर उपलब्ध हस्ताक्षरों की तुलना प्रदर्श क-17 से की और पाया कि दोनों हस्ताक्षरों में अधिकतम समानता है।

46. इस प्रकार, निचली अदालत ने निष्कर्ष निकाला है कि पेपर नंबर 15-ए/1 से 15-ए/4 इस गवाह द्वारा तैयार, हस्ताक्षरित और प्रस्तुत किए गए थे, जिसमें वह स्वीकार करती है कि उसके भाई ने अपराध किया था।

47. **भगवान जगन्नाथ मरकड बनाम महाराष्ट्र राज्य (2016) 10 एससीसी 537, चरणपाल**

बनाम यूपी राज्य (2006) 6 एससीसी 662, महाराष्ट्र राज्य बनाम तुलसी राम भानु दास कांबला ए.आई.आर 2007 एससी 3042, सुच्चा सिंह बनाम पंजाब राज्य (2003) 7 एससीसी 643 और कई अन्य मामलों में यह माना गया है कि आपराधिक मामले में गवाह की गवाही को केवल इसलिए खारिज नहीं किया जा सकता है क्योंकि गवाह रिश्तेदार है या अपराध के पीड़ित के परिवार के सदस्य ऐसे मामलों में अदालत को ऐसे गवाह के साक्ष्य की जांच करने में सावधानीपूर्वक और सतर्क दृष्टिकोण अपनाना होगा और यदि संबंधित गवाह की गवाही अन्यथा विश्वसनीय पाई जाती है, तो आरोपी को ऐसे संबंधित गवाह की गवाही के आधार पर दोषी ठहराया जा सकता है। इसलिए, मृतका के पिता, माता, बहन और भाई के साक्ष्य को इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता है कि वे मृतका के रिश्तेदार हैं।

48. **सुच्चा सिंह** (उपरोक्त) और **पूजा पाल बनाम भारत संघ (2016) 3 एससीसी 135, श्यामा घोस बनाम पश्चिम बंगाल राज्य ए.आई.आर 2012 एससी 3539, जी पार्श्वनाथ बनाम कर्नाटक राज्य, ए.आई.आर 2010 एससी 2914** और कई अन्य मामलों में यह माना गया है कि एक पक्षद्रोही गवाह के साक्ष्य को स्पष्ट रूप से खारिज नहीं किया जा सकता है। दोनों पक्ष अपने साक्ष्य के ऐसे हिस्सों पर भरोसा करने के हकदार हैं जो उनके मामलों में सहायता करते हैं। इस मामले में, अ०सा०-4, मृतका और आरोपी की बेटी कुमारी अंचिता और आरोपी की बहन अ०सा०-13, श्रीमती चारू सूरी अपने बयान से मुकर गई हैं और अभियोजन पक्ष के बयान का समर्थन नहीं किया है। इस गवाह ने पृष्ठ -2 पर गवाही दी है कि 29.04.2014 को रात 09:00 बजे घटना के समय उसके पिता, माता, बहन - जान्हवी और वह खुद मौजूद थे, हालांकि कुछ समय बाद उसके पिता ट्रेन से दिल्ली चले गए। उसके अनुसार, आधे घंटे बाद रवि चाचा आए और मृतका को मार डाला, लेकिन किसी अन्य व्यक्ति ने रवि को घटना से पहले या बाद में आरोपी के घर में प्रवेश करते या बाहर निकलते हुए नहीं देखा था। उन दिनों सीसीटीवी कैमरे अक्सर कई व्यक्तियों द्वारा लगाए जाते थे, लेकिन संबंधित स्थानों पर घटना से पहले या बाद में या घटना के समय रवि की उपस्थिति स्थापित करने के लिए ऐसी कोई वीडियो क्लिप नहीं बनाई गई है। यह स्वीकार किया गया तथ्य है कि रवि मुंबई में रहता है। मृतका के भाई सुधीर सूरी और रवि दोनों दोस्त हैं। आरोपी ने तलाक की याचिका की प्रति पेश नहीं की है जिससे पता चले कि रवि के साथ मृतका के अवैध संबंधों के कारण उसने तलाक के लिए याचिका दायर की थी। इस तरह के आधार का कोई भी प्रस्तुतीकरण बचाव को रद्द नहीं करता है। इसलिए आरोपी और मुकरने वाले गवाहों यानी कुमारी अंचिता और चारू सूरी द्वारा आधार लिया गया, द० प्र० स० की धारा 313 के तहत इस संबंध में बयान भी विश्वसनीय नहीं है। एक स्वतंत्र पुलिस एजेंसी ने मामले की जांच की है और घटना की तारीख और समय पर रवि के मुंबई से झांसी पहुंचने का पता नहीं चला है।

49. गवाही के समय, अ०सा०-4, कुमारी अंचिता तलवार अपनी बुआ - अ०सा०-13, चारू सूरी के साथ रह रही थी, इसलिए, उसने इस तरह से गवाही दी थी। कम उम्र का बच्चा होने के नाते उसे आसानी से अपने आरोपी पिता के पक्ष में सबूत देने के लिए आश्वस्त किया जा सकता था। निष्कर्ष यह है कि इस गवाह के साक्ष्य को बचाव पक्ष के पक्ष में नहीं पढ़ा जा सकता है, लेकिन

इस गवाह के साक्ष्य से यह स्थापित होता है कि मृतका को कथित तारीख और समय पर और आरोपी के घर में कथित घटना स्थल पर बंदूक की गोली से मारा गया था।

50. अ०सा०-13, चारू सूरी घटना स्थल पर मौजूद नहीं थी और उसने इस बात से इनकार किया है कि आरोपी ने उसे फोन किया और उसे मृतका की हत्या के बारे में सूचित किया, जिस पर उसने उसे डांटा और अपने ससुराल वालों को सूचित किया। उसके पति अ०सा०-11 सुधीर सूरी के साक्ष्य और अदालत में पेश की गई रिकॉर्डिंग से यह स्थापित होता है कि आरोपी ने उसे मोबाइल पर इकबालिया बयान दिया था और उसने आरोपी के इस इकबालिया बयान से अपने ससुराल वालों को भी अवगत कराया था। इस गवाह ने एस.एस.पी, झांसी के समक्ष एक आवेदन पत्र संख्या 15-ए/2, 15-ए/4 भी पेश किया था, जिसमें उसने स्वीकार किया है कि आरोपी ने मृतका की हत्या की थी। बाद में उन्होंने अपने बयान से मुकरने की कोशिश की, लेकिन अ०सा०-14, लाला राम वर्मा, नोटरी एडवोकेट के सबूतों से यह स्थापित होता है कि कथित हलफनामा उन्होंने अधिवक्ता श्री जनार्दन व्यास की मदद से निष्पादित किया था और श्रीमती चारू सूरी द्वारा उनके समक्ष पेश किए गए हलफनामे पर हस्ताक्षर करने के बाद उन्होंने उनके समक्ष शपथ ली थी, जिसे उन्होंने विधिवत प्रमाणित किया था।

51. इस गवाह ने स्वतंत्र रूप से सबूत पेश नहीं किए हैं, लेकिन वह आरोपी के अधिवक्ता श्री रमेश चंद्र अग्रवाल के संपर्क में थी। वह उनके चैंबर में जाया करती थीं और उनके चैंबर से सबूत जुटाने के लिए अदालत आई थीं। आरोपी के अधिवक्ता ने उसके लिए अलग-अलग तारीखों पर स्थगन याचिका दायर की थी। इस प्रकार अभियोजन पक्ष के खिलाफ और आरोपी के पक्ष में गवाही काफी स्वाभाविक है। इसके अलावा, उसने अपने पति को छोड़ दिया और झांसी में अलग रहने लगी। बदली हुई परिस्थितियों में इस गवाह ने अभियोजन पक्ष के पक्ष में गवाही नहीं दी है। इसलिए, उनका बयान बचाव पक्ष के पक्ष में विश्वसनीय और स्वीकार्य नहीं है।

52. इस मामले में मृतका आरोपी की पत्नी थी जो अपने बच्चों के साथ उसके घर में रह रही थी। घटना घर के अंदर हुई थी। इसलिए, साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 लागू होती है। तैयार संदर्भ के लिए धारा 106 को निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

"106. विशेष रूप से ज्ञान के भीतर तथ्य को साबित करने का भार *– जब कोई तथ्य विशेष रूप से किसी व्यक्ति के ज्ञान में होता है, तो उस तथ्य को साबित करने का बोझ उस पर होता है।*

व्याख्या

(अ) जब कोई व्यक्ति उस कार्य के चरित्र और परिस्थितियों के अलावा किसी अन्य इरादे से करता है, जो अधिनियम के चरित्र और परिस्थितियों का सुझाव देता है, तो उस इरादे को साबित करने का भार उस पर होता है।

(ब) ए पर बिना टिकट रेलवे पर यात्रा करने का आरोप लगाया जाता है। यह साबित करने का भार कि उनके पास टिकट था, उन पर है।

53. यह धारा अभियोजन पक्ष द्वारा तथ्य को साबित करने के भार का अपवाद है।

54. **संदीप बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2012) 6 एससीसी 107, पृथीपाल सिंह बनाम पंजाब राज्य, 2012 (76) एसीसी 680 (एससी), जगदीश बनाम यूपी राज्य, 2009 (67) एसीसी 295 (एससी) और पंजाब राज्य बनाम करनैल सिंह, 2003 (47) एसीसी 654 (एससी)** में यह माना गया था

कि कानून अभियोजन पक्ष पर ऐसे साक्ष्य का नेतृत्व करने का कर्तव्य डालता है जो लगभग असंभव है या किसी भी दर पर बेहद मुश्किल है। अभियोजन पक्ष का कर्तव्य ऐसे सबूतों का नेतृत्व करना है जो मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए नेतृत्व करने में सक्षम हैं। यहां साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 को ध्यान में रखना आवश्यक है जो कहती है कि जब कोई तथ्य विशेष रूप से किसी व्यक्ति के ज्ञान में होता है, तो उस तथ्य को साबित करने का बोझ उस पर होता है। जहां हत्या जैसा अपराध एक घर के अंदर गुप्त रूप से किया जाता है, तो मामले को स्थापित करने का प्रारंभिक बोझ निस्संदेह अभियोजन पक्ष पर होगा, लेकिन आरोप को स्थापित करने के लिए उसके द्वारा नेतृत्व किए जाने वाले सबूतों की प्रकृति और मात्रा उसी स्तर की नहीं हो सकती है जैसा कि परिस्थितिजन्य साक्ष्य के अन्य मामलों में आवश्यक है। बोझ तुलनात्मक रूप से एक हल्के चरित्र का होगा। साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 के मद्देनजर, घर में रहने वालों पर एक ठोस स्पष्टीकरण देने का बोझ होगा कि अपराध कैसे किया गया था। घर में रहने वाले लोग केवल चुप रहकर और इस आधार पर कोई स्पष्टीकरण नहीं देकर बच नहीं सकते कि इसे स्थापित करने का बोझ पूरी तरह से अभियोजन पक्ष पर है कि वह कोई स्पष्टीकरण दे।

55. **जोशिंदर यादव बनाम बिहार राज्य, (2014) 4 एससीसी 42** में यह माना जाता है कि जहां पति या उसके रिश्तेदार द्वारा क्रूरता और उत्पीड़न अंततः जहर देकर दुल्हन की हत्या का कारण बना, परिस्थितिजन्य साक्ष्य ने जहर देकर हत्या की पुष्टि की, भले ही विधि विज्ञान प्रयोगशाला से विसरा रिपोर्ट रिकॉर्ड पर नहीं लाई गई थी, लेकिन मृतका के पिता और भाई की पुष्टि करने वाले सबूत विश्वसनीय पाए गए थे। माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा यह माना गया है कि उपस्थित परिस्थितियों के कारण अभियुक्त व्यक्तियों के अपराध का अनूठा निष्कर्ष निकला कि कैसे मृतका का शव नदी में पाया गया था, यह उनके विशेष और व्यक्तिगत ज्ञान के भीतर था, लेकिन साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 के तहत आरोपी व्यक्तियों द्वारा भार का निर्वहन नहीं किया गया था और धारा 313 द० प्र० स० के तहत उनके द्वारा गलत स्पष्टीकरण दिया गया था, जिससे प्रतिकूल निष्कर्ष निकाला गया था। माननीय उच्चतम न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धारा 302/149, 498-ए, 201 के तहत अपराधों के लिए आरोपी व्यक्तियों की दोषसिद्धि की पुष्टि की।

56. उपरोक्त सभी न्यायिक मिसालों और निष्कर्षों का कोई फायदा नहीं होगा यदि अभियुक्त अपनी यह बात साबित करने में सफल हो जाता है कि वह घटना की कथित तारीख और समय पर मौके पर मौजूद नहीं था। इस तथ्य पर अलग से निर्णय निम्नानुसार लिया गया है:-

(1) अभियुक्त ने यह दलील दी है कि 29.04.2014 को वह अपनी दुकान के लिए वस्तुओं की खरीद के लिए दिल्ली गया था। आरोपी ने अपनी दलील को साबित करने के लिए दो गवाहों से पूछताछ की है।

(2) ब० सा०--1, महेंद्र दुबे ने गवाही दी है कि झांसी के सदर बाजार में प्रकाश ट्रेडर्स के नाम से उसकी दुकान है। वह एक ए-श्रेणी के सरकारी ठेकेदार और जनरल ऑर्डर सप्लायर हैं। उनके अनुसार, आरोपी एक ए-क्लास सरकारी ठेकेदार और सेना आपूर्तिकर्ता भी है। वह अपनी दुकान

में मोटर पार्ट्स बेचते हैं। उनके अनुसार 29.04.2014 को वह दिल्ली गए थे और रात 08:30 बजे अपने घर से निकले थे। जब वह रेलवे स्टेशन पहुंचे और कतार में खड़े हुए, तो ऋषि तलवार आए और दिल्ली के लिए टिकट खरीदने के लिए पैसे प्रदान किए। इसलिए, उसने दिल्ली के लिए दो टिकट खरीदे। वे दोनों सदर्न एक्सप्रेस से निजामुद्दीन रेलवे स्टेशन, दिल्ली पहुंचे और वेटिंग रूम में नाश्ता किया, इसके बाद वे लगभग 09:30 बजे कश्मीरी गेट के लिए रवाना हुए। वहां दोनों ने मोटर पार्ट्स खरीदे। इसके बाद ऋषि तलवार ने रसीद प्रदान की और कहा कि उनकी एक बैठक थी और उन्होंने अपना सामान भी बुक करने का अनुरोध किया। फिर उन्होंने 01.05.2014 को सामान बुक किया और 02.05.2014 को झांसी लौट आए, जहां उन्हें पता चला कि ऋषि तलवार को उनकी पत्नी की हत्या के संबंध में जेल भेज दिया गया है। इस गवाह ने इस बात से इनकार किया है कि वह आरोपी का कारोबार भी देखता है, लेकिन स्वीकार किया कि कोर्ट रूम में चारू तलवार पीछे खड़ी थी। उन्हें कोई समन नहीं मिला। वह चारु के कहने पर गवाही देने आया था। इस गवाह ने स्वीकार किया कि उसके ऋषि और चारू के साथ करीब 25 साल से अच्छे कारोबारी संबंध हैं। इस गवाह ने आरोपी ऋषि के अधिवक्ता श्री रमेश अग्रवाल द्वारा लिखे गए दो स्थगन आवेदन दायर किए थे। इसलिए, अभियोजन पक्ष ने तर्क दिया कि यह गवाह स्वतंत्र रूप से गवाही नहीं दे रहा था, बल्कि आरोपी और उसकी बहन चारु सूरी के इशारे पर अपने अधिवक्ता की मदद से आरोपी के पक्ष में गवाही दे रहा था। यह गवाह स्वीकार करता है कि 02.05.2014 को उसे पता चला कि ऋषि तलवार अपनी पत्नी श्वेता की हत्या के लिए जेल में है। तब भी उन्होंने किसी पुलिस अधिकारी को लिखित में यह जानकारी नहीं दी कि घटना के समय ऋषि तलवार उनके साथ दिल्ली में थे। इस तरह की गवाही के बाद इस गवाह ने खुद कहा कि उसने एस.ओ. राम भजन सिंह को बताया था। इस गवाह ने आगे कहा कि उसके बाद आज तक उसने किसी भी पुलिस अधिकारी को लिखित में नहीं दिया कि उस दिन ऋषि तलवार उसके साथ थे। उन्होंने एस.ओ. द्वारा संज्ञान नहीं लेने के बारे में उच्च अधिकारियों से भी शिकायत नहीं की थी। उन्होंने यह सूचना लिखित रूप में या डाक से या व्यक्तिगत रूप से एस.एस.पी, झांसी को नहीं दी थी।

(4) विचारण न्यायालय ने गवाह से जिरह भी की है जिसमें उसने स्वीकार किया कि यह सच है कि वह आरोपी के साथ व्यापारिक संबंधों के कारण आरोपी के अधिवक्ता के पास आता था. 30.04.2014 को 11:00 से 12:00 बजे के बीच वह और ऋषि तलवार एक-दूसरे से अलग हो गए, तब तक दोनों में से किसी को भी फोन पर घटना के बारे में जानकारी नहीं मिली थी। लेकिन इस गवाह ने आगे गवाही दी है कि यह अजीब लगता है कि पति को पत्नी की हत्या के बारे में फोन पर भी सूचित नहीं किया गया था लेकिन वह इसका कारण नहीं बता सकता है। आरोपी के पास मौका था कि वह उस दुकानदार को पेश करे जिसकी दुकान से उसने सामान खरीदा था लेकिन ऐसा नहीं किया गया।

(5) ब० सा०- -2, अनिल कुमार सिंह आरोपी का पड़ोसी है जिसने आरोपी के अच्छे व्यवहार का सबूत दिया है और कहा कि आरोपी और मृतका शांति से रह रहे थे और उन्हें लड़ाई और झगड़ा करते हुए नहीं देखा गया था।

(6) आपराधिक कार्यवाही में साक्ष्य अधिनियम की धारा 53 के अनुसार, यह तथ्य प्रासंगिक है कि अभियुक्त एक अच्छे चरित्र का है लेकिन यदि उसके अच्छे चरित्र का प्रमाण जोड़ा जाता है तो साक्ष्य अधिनियम की धारा 54 के अनुसार, बुरे चरित्र के बारे में साक्ष्य प्रासंगिक हो जाता है। अभियोजन पक्ष के गवाहों के साक्ष्य से यह साबित होता है कि उनका वैवाहिक जीवन अच्छा नहीं था। घटना के दिन भी आरोपी द्वारा मृतका को कई बार बुरी तरह पीटा गया था, जिसके बाद उसने अपने माता-पिता से मदद मांगी थी। इस गवाह के अनुसार 29.04.2014 को रात करीब 10:30 बजे उसने एक लड़की की चीख सुनी। जब वह अपने घर से बाहर आया तो अंचिता और जान्हवी ने उससे मुलाकात की और जानकारी दी कि रवि अंकल ने उनकी मां को गोली मार दी है और यह भी बताया कि उनके पिता दिल्ली गए हुए हैं। जब वह घर में दाखिल हुआ तो वहां श्वेता की डेड बॉडी पड़ी थी। इसके बाद उन्होंने ऋषि तलवार को फोन किया।

(7) यदि तर्क के लिए इस गवाह के साक्ष्य को स्वीकार किया जाता है, तो आरोपी को रात लगभग 10:30 बजे अपनी पत्नी की हत्या के बारे में सूचित किया गया था। हालांकि जिरह में इस गवाह ने अपनी बात को संभालने की कोशिश की और कहा कि वह आरोपी से मोबाइल पर संपर्क करने में सफल नहीं हुआ, अगर ऐसा था, तो मुख्य परीक्षण में गवाही क्यों नहीं दी गई, यह प्रासंगिक है। यदि आरोपी शहर से बाहर था और इस तरह की घटना किसी अन्य व्यक्ति द्वारा की गई थी, तो यह गवाह और बेटियां टेलीफोन, मोबाइल या टेलीफोन बूथ से आरोपी को सूचित करने के लिए पर्याप्त सक्षम थीं। ऐसा प्रतीत होता है कि इस संबंध में गवाह से जिरह में साक्ष्य सही नहीं है। उनके अनुसार, आधे घंटे के बाद पुलिस मौके पर पहुंची। अगर बच्चों ने इस गवाह को आरोपी का मोबाइल नंबर उपलब्ध कराया होता तो पुलिस भी इतनी सक्षम थी कि बच्चों से मोबाइल फोन ले सकती थी और आरोपी से बात कर सकती थी। इसका मतलब है कि बच्चों को भी पता था कि आरोपी असली अपराधी है, इसलिए उन्हें सूचित करने का कोई कारण नहीं था।

(8) इस साक्षी ने रवि को घटना के स्थान पर या उसके आस-पास भी नहीं देखा है। यह गवाह यह भी स्वीकार करता है कि संजीव पांडे नाम के एक व्यक्ति ने भी आरोपी को फोन किया था। संजीव पांडे से पूछताछ नहीं की गई है। इस प्रकार, यदि तर्क के लिए यह स्वीकार किया जाता है कि घटना की तारीख और समय पर आरोपी दिल्ली के रास्ते में था, तो इस तरह के तथ्य का पता चलने के बाद कोई भी पति तुरंत घर लौट आएगा और व्यावसायिक उद्देश्यों के लिए नहीं जाएगा। यह सब दिखाता है कि इस गवाह के सबूत भी झूठ का पुलिंदा हैं। इस प्रकार, इस न्यायालय की राय है कि इन दो गवाहों के साक्ष्य से यह स्थापित नहीं होता है कि घटना के समय अभियुक्त शहर से बाहर था और घर में नहीं था।

(9) बचाव पक्ष के दोनों गवाह या तो एक ही व्यापार में श्रमिक हैं या आरोपी के पड़ोसी हैं, लेकिन उनके साक्ष्य लिटमस टेस्ट के निर्धारित मानदंडों को पार करने में सफल नहीं हुए।

57. विचारण न्यायालय ने जमानत याचिका के तथ्य को इंगित किया था जिसमें अभियुक्त ने कबूल किया है कि 29.04.2014 की रात को वह घर पर था। रात में किसी अज्ञात व्यक्ति ने उसके घर में घुसकर उसकी पत्नी की हत्या कर दी। इस प्रकार, आरोपी ने घटना के समय अपनी

उपस्थिति स्वीकार कर ली है। जमानत आवेदन के पैराग्राफ 10 में उन्होंने उल्लेख किया है कि वह घटना के समय अपने घर पर थे और 30.04.2014 को प्राथमिकी दर्ज करने के बाद, उन्हें 01.05.2014 को झूठी गिरफ्तारी दिखाते हुए गिरफ्तार किया गया था, उनके कब्जे से नकली रिवॉल्वर और कारतूस बरामद किए गए थे। आरोपी ने मृतका की हत्या के आरोप में रवि को झूठा फंसाने की भी कोशिश की है। अगर वह वास्तव में दिल्ली गए होते, तो जमानत याचिका में अलीबी (अन्यत्र उपस्थिति) की याचिका का उल्लेख किया गया होता।

58. इस प्रकार, जमानत याचिका के कथनों से यह स्पष्ट है कि बाद में कानूनी सहायता लेने के बाद, आरोपी ने एक मनगढ़ंत कहानी बनाई कि मृतका की हत्या से पहले वह झांसी छोड़ कर दिल्ली चला गया था। इस संबंध में, उनके अप्राकृतिक और अकल्पनीय व्यवहार पर पहले ही चर्चा की जा चुकी है और यह निष्कर्ष निकाला गया है कि वह दिल्ली नहीं गए थे। इस तरह के लिखित कबूलनामे से यह भी स्थापित होता है कि अ०सा०-4 कुमारी अंचिता तलवार, अ०सा०-13, श्रीमती चारू सूरी और ब० सा०--1 तथा ब० सा०--2 ने गलत बयान दिया और अदालत को गुमराह करने की पूरी कोशिश की, जिसके लिए उन पर भ०द०वि० के अध्याय X और XI के तहत झूठे सबूत देने का मुकदमा चलाया जाना चाहिए था।

59. साक्ष्य अधिनियम की धारा 11 के तहत आलिबी (अन्यत्र उपस्थिति) की दलील की गणना की जाती है। धारा 11 निम्नानुसार है: -

"11. जब ऐसे तथ्य जो अन्यथा प्रासंगिक न हों, प्रासंगिक हो जाते हैं।— ऐसे तथ्य जो अन्यथा प्रासंगिक नहीं हैं, प्रासंगिक हैं -

(1) यदि वे मुद्दे या प्रासंगिक तथ्य में किसी भी तथ्य के साथ असंगत हैं;

(2) यदि वे स्वयं या अन्य तथ्यों के संबंध में किसी तथ्य के अस्तित्व या गैर-अस्तित्व को मुद्दे या प्रासंगिक तथ्य में अत्यधिक संभावित या असंभव बनाते हैं।

<u>व्याख्या</u>

(क) प्रश्न यह है कि क्या ए ने एक निश्चित दिन कलकत्ता में अपराध किया था। तथ्य यह है कि, उस दिन, ए लाहौर में था, प्रासंगिक है। तथ्य यह है कि, जिस समय अपराध किया गया था, उस समय के पास, ए उस स्थान से कुछ दूरी पर था जहां इसे अंजाम दिया गया था, जो इसे अत्यधिक असंभव बना देगा, हालांकि असंभव नहीं है, कि उसने इसे अंजाम दिया, प्रासंगिक है।

(ख) प्रश्न यह है कि क्या क ने कोई अपराध किया है। परिस्थितियां ऐसी हैं कि अपराध ए, बी, सी या डी द्वारा किया गया होगा, हर तथ्य जो दिखाता है कि अपराध किसी और द्वारा नहीं किया जा सकता था और यह बी, सी या डी द्वारा नहीं किया गया था, प्रासंगिक है।

60. **बिनय कुमार सिंह बनाम बिहार राज्य, ए.आई.आर 1997 एससी 322** मामले में यह माना गया था कि जब अभियोजन पक्ष द्वारा विश्वसनीय सबूतों के माध्यम से घटना स्थल पर अभियुक्त की उपस्थिति संतोषजनक रूप से स्थापित की गई है, तो आम तौर पर अदालत इस आशय के किसी भी जवाबी सबूत पर विश्वास करने में धीमी होगी कि घटना के समय वह कहीं और था। लेकिन अगर अभियुक्त द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य इस गुणवत्ता और इस मानक के हैं कि अदालत घटना के समय घटनास्थल पर उसकी उपस्थिति के बारे में कुछ उचित संदेह पर विचार कर सकती है, तो इसमें कोई संदेह नहीं है कि

अभियुक्त उस उचित संदेह के लाभ का हकदार होगा। ऐसी परिस्थितियों में, आरोपी पर बोझ बहुत अधिक होता है। इसलिए, यह इस प्रकार है कि अलीबी (अन्यत्र उपस्थिति) की दलील को स्थापित करने के लिए ठोस साक्ष्य की आवश्यकता है।

61. प्रश्न यह उठता है कि क्या मृतका द्वारा अपने माता-पिता को फोन/मोबाइल पर दिया गया बयान साक्ष्य अधिनियम की धारा 6 और 32 (आई) के तहत स्वीकार्य है या नहीं। तैयार संदर्भ के लिए खंड 6 निम्नानुसार है: -

"(6) एक ही लेन-देन का हिस्सा बनने वाले तथ्यों की प्रासंगिकता- ऐसे तथ्य जो हालांकि जारी नहीं हैं, लेकिन एक ही लेनदेन का हिस्सा बनने के लिए किसी तथ्य से इतने जुड़े हुए हैं, प्रासंगिक हैं, चाहे वे एक ही समय और स्थान पर हुए हों या अलग-अलग समय और स्थानों पर हुए हों।

व्याख्या

(अ) ए पर बी को पीट-पीटकर उसकी हत्या करने का आरोप है। ए या बी या पिटाई के समय या उसके कुछ समय पहले या बाद में जो कुछ भी कहा या किया गया, वह एक प्रासंगिक तथ्य है।

62. **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम बशिष्ठ राय और अन्य, 2006 (5) एएलजे (एनओसी) 902 (सभी)** में यह माना गया था कि धारा 6 के आवेदन के लिए, यह आवश्यक है कि तथ्य बहुत दूरस्थ नहीं होना चाहिए बल्कि एकल लेनदेन का एक हिस्सा होना चाहिए। घटना के तुरंत बाद हत्या के चश्मदीद गवाह द्वारा आरोपी की भागीदारी के बारे में जो कुछ भी कहा जाता है, वह साक्ष्य होगा, वह धारा 6 के तहत साक्ष्य में स्वीकार्य होगा।

63. **जेंटेला विजयवर्धन राव और एक अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, ए.आई.आर 1996 एससी 2791** में यह माना गया था कि विवाद के सिद्धांत का सार यह है कि तथ्य, हालांकि मुद्दे में नहीं है, मुद्दे में तथ्य से इतना जुड़ा हुआ है कि "एक ही लेनदेन का हिस्सा बन जाता है"। मोटे तौर पर, यह नियम सामान्य नियम का अपवाद है कि धारा 6 के तहत सुनी-सुनाई बात साक्ष्य स्वीकार्य नहीं है, जो मुद्दे में तथ्य के संबंध में ऐसे बयान या तथ्य की सहजता और तात्कालिकता के कारण है। लेकिन यह आवश्यक है कि इस तरह के तथ्य या बयान एक ही लेनदेन का एक हिस्सा होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, इस तरह के बयान को उन कृत्यों के साथ समकालीन बनाया जाना चाहिए जो अपराध का गठन करते हैं या कम से कम उसके तुरंत बाद। लेकिन अगर कोई अंतराल था, भले ही यह मामूली हो, जो बयान के निर्माण के लिए पर्याप्त था, तो यह तर्क का हिस्सा नहीं है।

64. **मुकेश बनाम राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली राज्य और अन्य, ए.आई.आर 2017 एससी 2161 (तीन न्यायाधीशों की पीठ) और संदीप बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2012) 6 एससीसी 107** में यह माना गया था कि अभियोग की याचिका को साबित करने की जिम्मेदारी आरोपी पर है। यदि अभियुक्त ने पर्याप्त रूप से बोझ का निर्वहन नहीं किया है, तो अभियोजन पक्ष के बयान पर विश्वास किया जाना चाहिए, जो अन्यथा स्वीकार्य था।

65. **ओम प्रकाश बनाम राजस्थान राज्य और एक अन्य (2012) 5 एससीसी 201** मामले में यह माना गया था कि अन्यत्र उपस्थिति की दलील पहली बार में ही उठाई जानी चाहिए और यह साक्ष्य के ठोस प्रमाण के अधीन है और इसे हल्के

में स्वीकार नहीं किया जा सकता है, सबूतों की कमी के बावजूद केवल इस सिद्धांत की सहायता से कि एक निर्दोष व्यक्ति को अपनी दलील के अनुसार दोषसिद्धि दर्ज करके अन्याय का सामना नहीं करना पड़ सकता है। **अदालत पंडित बनाम बिहार राज्य, (2010) 6 एससीसी 469** में इसी तरह के तथ्यों पर यह माना गया था कि जहां हत्या के मुकदमे में, हत्या की जगह दूर नहीं है, गवाह सहकर्मी हैं और अपराध के समय कथित लेवी कार्य के बारे में कोई उचित दस्तावेजी सबूत नहीं है, यह माना गया है कि अलीबी (अन्यत्र उपस्थिति) की याचिका को सही तरीके से खारिज कर दिया गया था।

66. इससे पहले अभियोजन पक्ष के गवाह अ०सा०-1, मृतका के शिकायतकर्ता पिता, अ०सा०-5, मोनिका, अ०सा०-8, उमेश, अ०सा०9, श्रीमती शक्ति सूरी और अ०सा०-11, सुधीर सूरी ने सफलतापूर्वक साबित किया है कि घटना से पहले मृतका को आरोपियों ने बुरी तरह पीटा था, इसलिए उसने मोबाइल/टेलीफोन के माध्यम से अपने माता-पिता से संपर्क किया, जिस पर उन्होंने आकर उसे अपने बच्चों के साथ लाने का आश्वासन दिया।

67. इस न्यायालय के अनुसार, इस तरह का बयान उसी लेनदेन का हिस्सा था, इसलिए, घटना से पहले मृतका द्वारा की गई बातचीत और मृतका की हत्या के बाद अ०सा०-13, चारू सूरी द्वारा की गई बातचीत प्रासंगिक और साक्ष्य में स्वीकार्य है।

68. इस न्यायालय के अनुसार, उपरोक्त गवाहों के साथ मृतका की बातचीत साक्ष्य अधिनियम की धारा 32 (1) के तहत भी प्रासंगिक है।

"32 ऐसे मामले जिनमें मृत व्यक्ति या जिसे ढूढ़ा नहीं जा सकता आदि के द्वारा प्रासंगिक तथ्य का बयान प्रासंगिक है। *– किसी ऐसे व्यक्ति, जो मर चुके हैं, या जिन्हें खोजा नहीं जा सकता है, या जो सबूत देने में असमर्थ हो गए हैं, या जिनकी उपस्थिति बिना किसी देरी या व्यय के प्राप्त नहीं की जा सकती है, द्वारा दिए गए प्रासंगिक तथ्यों के लिखित या मौखिक बयान, जो मामले की परिस्थितियों में न्यायालय को अनुचित प्रतीत होता है, निम्नलिखित मामलों में स्वयं प्रासंगिक तथ्य हैं: -*

1. **जब यह मृत्यु के कारण से संबंधित हो -** जब किसी व्यक्ति द्वारा उसकी मृत्यु के कारण के बारे में या लेन-देन की किसी भी परिस्थिति, जिसके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हुई, के बारे में बयान दिया जाता है, उन मामलों में जिनमें उस व्यक्ति की मृत्यु का कारण प्रश्न में आता है। इस तरह के बयान प्रासंगिक हैं चाहे जिस व्यक्ति ने उन्हें बनाया था, वह उस समय मृत्यु की उम्मीद के तहत था या नहीं था, जब वे किए गए थे, और कार्यवाही की प्रकृति जो भी हो सकती है जिसमें उसकी मृत्यु का कारण सवाल उठता है।

x x x x x

व्याख्या

(क) प्रश्न यह है कि क्या ए की हत्या बी द्वारा की गई थी; या ए एक लेनदेन में प्राप्त चोटों से मर जाता है जिसके दौरान उसे मूर्छित किया गया था। सवाल यह है कि क्या वह बी द्वारा मूर्छित किया गया था; या सवाल यह है कि क्या ए को बी द्वारा ऐसी परिस्थितियों में मार दिया गया था कि ए की विधवा द्वारा बी के खिलाफ मुकदमा दायर

किया जाएगा। ए द्वारा उसकी मौत के कारण के बारे में दिए गए बयान, क्रमशः हत्या, बलात्कार और विचाराधीन कार्रवाई योग्य गलत का उल्लेख करते हुए, प्रासंगिक तथ्य हैं।

69. **मदन बनाम महाराष्ट्र राज्य, ए.आई.आर 2018 एससी 2007** में यह माना गया था कि मृत्यु पूर्व बयान सुनी-सुनाई बातों की स्वीकार्यता के खिलाफ नियम का अपवाद है।

70. यद्यपि सुनी-सुनाई बातें साक्ष्य में स्वीकार्य नहीं हैं, लेकिन यदि पीड़ित की मृत्यु हो जाती है, तो किसी भी जीवित व्यक्ति को दिए गए उसके पिछले बयान भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 32 (1) के तहत साक्ष्य के रूप में प्रासंगिक और स्वीकार्य हो जाते हैं यदि यह उसकी मृत्यु के कारण से संबंधित है। यदि उन्होंने इस संबंध में कोई वक्तव्य दिया है तो उस पर विचार किया जा सकता है। बयान हर मामले या कार्यवाही में प्रासंगिक होगा जिसमें उस व्यक्ति की मृत्यु का कारण मुद्दा है। भारतीय कानून में यह आवश्यक नहीं है कि जिस व्यक्ति ने कोई घोषणा की है, वह वास्तव में एक हमले की उम्मीद कर रहा था जो उसे मार देगा। इसलिए, यह अंग्रेजी कानून के विपरीत है (देखें **शरद बिरदीचंद सारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य, ए.आई.आर 1984 एससी 1622)। भागीरथ बनाम हरियाणा राज्य (1977) 1 एससीसी 481** मामले में, सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि यदि घोषणाकर्ता वास्तव में मर गया है और बयान उसकी मृत्यु के आसपास की परिस्थितियों की व्याख्या करता है, तो बयान प्रासंगिक होगा, भले ही बयान देने के समय मृत्यु का कोई कारण न बताया गया हो।

71. **पकला नारायण स्वामी बनाम सम्राट ए.आई.आर 1939 प्रिवी काउंसिल 47** मामले में, आरोपी ने प्रिवी काउंसिल में इस आधार पर अपील की कि मृतका का अपनी पत्नी को दिया गया बयान कि 'वह आरोपी के पास जा रहा था' धारा 32 (1) के तहत गलत तरीके से स्वीकार किया गया था और पुलिस को आरोपी का बयान कि मृतका अपने स्थान पर पहुंचा था, धारा 162 द० प्र० स० का उल्लंघन था। लॉर्ड एटकिन और अन्य लॉर्डशिप इस राय में थे कि 'प्रयुक्त' शब्द का प्राकृतिक अर्थ इनमें से किसी भी सीमा को व्यक्त नहीं करता है। बयान मृत्यु का कारण उत्पन्न होने से पहले या मृतका के पास अपनी हत्या का अनुमान लगाने का कोई कारण होने से पहले किया जा सकता है। परिस्थितियां एक ही लेनदेन की परिस्थितियां होनी चाहिए; भय या संदेह सहित सामान्य अभिव्यक्ति चाहे किसी विशेष व्यक्ति की हो या अन्यथा और मृत्यु के अवसर से सीधे संबंधित नहीं है, स्वीकार्य नहीं होगी। लेकिन मृतका द्वारा दिए गए बयान कि वह उस स्थान पर जा रहा था जहां वह वास्तव में मारा गया था, या ऐसा कोई भी बयान जो इस तरह की कार्यवाही के लिए कारण दे सकता है, उसी लेनदेन में "परिस्थितियां" होंगी और ऐसा होगा कि क्या वह व्यक्ति आरोपी के लिए ज्ञात था या अज्ञात था। "एक ही लेनदेन की परिस्थितियां" एक वाक्यांश है जो निस्संदेह कुछ सीमा ओं को बताता है। यह "परिस्थितिजन्य साक्ष्य" शब्द के अनुरूप नहीं हो सकता है, जिसमें सभी प्रासंगिक तथ्यों के साक्ष्य शामिल हैं। दूसरी ओर यह "रेस गेस्टे" (संबंधित तथ्य) की तुलना में संकरा है। परिस्थितियों का वास्तविक घटना के साथ निकट संबंध होना चाहिए।

72. यदि हम मामले के तथ्य की तुलना **पकला नारायण स्वामी** (उपरोक्त) के मामले के तथ्यों से करते हैं, तो हमें कई समानताएं मिलती हैं। इस मामले में अ०सा०-1, अ०सा०-5, अ०सा०-8, अ०सा०-9 और अ०सा०-11 के साक्ष्यों से यह सिद्ध होता है कि 28.04.2014 को रात लगभग 08:00 बजे मृतका ने टेलीफोन पर सूचना दी कि ऋषि ने उसे बुरी तरह पीटा है और यह 3-4 दिनों से जारी था। फिर रात के लगभग 11-12 बजे उसने फोन किया और बताया कि ऋषि अभी भी उसे पीट रहा है और उसने कहा कि "पापा उसे और उसके बच्चों को वहां से ले जाओ, अन्यथा ऋषि उन्हें मार देगा"। इस पर उसने मृतका को सुबह आने की बात कही। इस मामले में उपरोक्त परिस्थितियों में मृतका का ऐसा बयान भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 32 (1) के तहत भी स्वीकार्य है और इस आधार पर भी अभियुक्त दोषी और सजा के लिए उत्तरदायी है।

73. साक्ष्य का भार हमेशा अभियोजन पक्ष पर होता है: संदेह की छाया से परे सबूत की अवधारणा को आपराधिक परीक्षणों में लागू किया जाना है। संदेह को उचित कहा जाएगा यदि वे अमूर्त अटकलों के लिए उत्साह से मुक्त हैं या अति-भावनात्मक प्रतिक्रिया से मुक्त हैं। आरोपी व्यक्तियों के अपराध के बारे में संदेह वास्तविक और पर्याप्त होना चाहिए, जो केवल अस्पष्ट आशंका के विपरीत सबूतों की कमी से उत्पन्न होता है। एक उचित संदेह एक काल्पनिक, तुच्छ या केवल एक संभावित संदेह नहीं है, बल्कि तर्क और सामान्य ज्ञान के आधार पर एक उचित संदेह है। इसे सबूतों से विकसित होना चाहिए **(मध्य प्रदेश राज्य बनाम धारकोले, ए.आई.आर 2005 एससी 44** के अनुसार)।

74. आपराधिक मामलों में सबूत का बोझ अभियोजन पक्ष पर यह साबित करने के लिए होता है कि अभियुक्त उस अपराध का दोषी है जिसके साथ उस पर आरोप लगाया गया है। अभियोजन पक्ष इस मुद्दे के सकारात्मक होने का दावा करता है और इसलिए, उसे अपना मामला साबित करना होगा। अदालत इस धारणा के साथ शुरू होती है कि आरोपी निर्दोष है। अभियुक्त की बेगुनाही का मतलब इससे अधिक कुछ नहीं है कि उचित संदेह से परे मामले को साबित करने के लिए अभियोजन पक्ष पर बोझ है, यह अभियुक्त नहीं है जिसे अदालत को संतुष्ट करना है कि वह निर्दोष है। यदि इस बात पर उचित संदेह है कि क्या आरोपी ने मृतका की हत्या की है, अभियोजन पक्ष ने मामला नहीं बनाया है, तो आरोपी बरी होने का हकदार है। अपराध जितना गंभीर होता है, उतना ही सख्त सबूत की आवश्यकता होती है। **(देखें: परमजीत सिंह बनाम उत्तराखंड राज्य, ए.आई.आर 2011 एससी 200)**।

75. **नारायण सिंह बनाम हरियाणा राज्य (2004) 13 एससीसी 264, बाबूलाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2003) 12 एससीसी 490 और शारदा बनाम राजस्थान राज्य 2010 (68) एसीसी 274 (एससी)** मामले में यह माना गया था कि मृत्यु के कगार पर खड़े व्यक्ति द्वारा मृत्यु पूर्व दिए गए बयान की एक विशेष पवित्रता है क्योंकि उस गंभीर क्षण में किसी व्यक्ति के गलत बयान देने की संभावना नहीं है। आसन्न मृत्यु की छाया अपने आप में मृतका की मृत्यु की परिस्थितियों के बारे में उसके बयान की सच्चाई की गारंटी है। लेकिन साथ ही मृत्यु पूर्व बयान, किसी भी अन्य सबूत की तरह, स्वीकार्य होने के लिए विश्वसनीयता की कसौटी पर परीक्षण किया जाना

चाहिए। यह और भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि आरोपी को जिरह करके बयान की सत्यता पर सवाल उठाने का अवसर नहीं मिलता है। मृत्यु पूर्व दिया गया बयान, यदि विश्वसनीय पाया जाता है, तो दोषसिद्धि का आधार बन सकता है। एक व्यक्ति जो आसन्न मृत्यु का सामना कर रहा है, यहां तक कि इस दुनिया में बने रहने की छाया भी व्यावहारिक रूप से अस्तित्वहीन है, झूठ का हर मकसद खत्म हो जाता है। मन केवल सत्य बोलने के लिए सबसे शक्तिशाली नैतिक कारणों से बदल जाता है। मरने वाले व्यक्ति के शब्दों के साथ महान गंभीरता और पवित्रता जुड़ी होती है क्योंकि मृत्यु के कगार पर एक व्यक्ति झूठ बोलने या एक निर्दोष व्यक्ति को फंसाने के लिए एक मामला गढ़ने की संभावना नहीं रखता है। कहावत यह है कि "नेमो मोरिटुरस प्रेसुमितुर मेंटियर" (एक व्यक्ति अपने कंधों पर झूठ का बोझ उठाए हुए अपने सृष्टा से नहीं मिलना चाहेगा!) मैथ्यू अर्नोल्ड ने कहा, "सच्चाई एक मरते हुए आदमी के होंठों पर बैठती है। साक्ष्य की प्रजातियों को स्वीकार करने पर सामान्य सिद्धांत यह है कि वे चरम सीमा में की गई घोषणाएं हैं, जब पार्टी मृत्यु के बिंदु पर है, और जब इस दुनिया की हर आशा चली जाती है, जब झूठ का हर मकसद चुप हो जाता है और मन को सच बोलने के लिए सबसे शक्तिशाली विचार से प्रेरित किया जाता है; स्थिति इतनी गंभीर है कि कानून इसे उस दायित्व के बराबर मानता है जो न्याय की अदालत में प्रशासित सकारात्मक शपथ द्वारा लगाया जाता है।

76. हालांकि इस मामले में मृत्यु पूर्व कोई औपचारिक बयान नहीं है क्योंकि किसी भी व्यक्ति या अधिकारियों द्वारा मृतका का मृत्यु पूर्व बयान दर्ज नहीं किया गया है, लेकिन जब उसे आरोपी द्वारा बुरी तरह से पीटा गया था और गंभीर रूप से घायल कर दिया गया था और जब उसने अपने माता-पिता को फोन किया था, जिन्होंने उसे अपनी जान बचाने के लिए घर के ऊपरी हिस्से में जाने की सलाह दी थी और वे कल आएंगे और उसे वापस ले जाएंगे, इस तरह की बातचीत जो मृतका द्वारा अपने जीवन के डर से की गई थी, उसे अपने माता-पिता को दिया गया मृत्यु पूर्व बयान के रूप में बहुत अच्छी तरह से माना जा सकता है। इस निष्कर्ष को **मुकेश बनाम दिल्ली राज्य (एनसीटी) और अन्य, ए.आई.आर 2017 एससी 2161 (तीन न्यायाधीशों की पीठ)** में सुप्रीम कोर्ट द्वारा निर्धारित सिद्धांत से समर्थन मिलता है, जिसमें यह माना गया था कि इशारों और लेखन द्वारा मृत्यु पूर्व बयान स्वीकार्य है। इस तरह का मृत्यु पूर्व बयान न केवल स्वीकार्य है, बल्कि इसमें साक्ष्य मूल्य भी है। इसके अलावा, **लक्ष्मण बनाम महाराष्ट्र राज्य (2002) 6 एससीसी 710 (पांच न्यायाधीशों की पीठ) और बलवीर सिंह बनाम पंजाब राज्य ए.आई.आर 2006 एससी 3221** में यह माना गया था कि मजिस्ट्रेट द्वारा मृत्यु पूर्व बयान दर्ज करना अनिवार्य नहीं है और इसे किसी भी व्यक्ति द्वारा दर्ज किया जा सकता है। **लक्ष्मण बनाम महाराष्ट्र राज्य** (उपरोक्त) मामले में यह कहा गया था कि मृत्यु पूर्व बयान दर्ज करने के लिए कोई वैधानिक फॉर्म आवश्यक नहीं है। मृत्यु पूर्व बयान मौखिक या लिखित रूप में और संचार के किसी भी तरीके जैसे संकेत, शब्द या अन्यथा द्वारा किया जा सकता है, संकेत सकारात्मक और निश्चित है। मृत्युपूर्व बयान घोषणाकर्ता द्वारा मौखिक रूप से भी दिया जा सकता है। मृत्यु पूर्व बयान को लिखकर देना अनिवार्य नहीं है।

77. **नरेंद्र कुमार बनाम दिल्ली राज्य (एनसीटी), ए.आई.आर 2016 एससी 150** में यह माना गया था कि जहां साक्ष्य अधिनियम की धारा 32 के तहत दर्ज मृत्यु पूर्व बयान में मृतका के हस्ताक्षर या अंगूठे का निशान नहीं था और दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा जारी दिशानिर्देशों का उल्लंघन करने का आरोप लगाया गया था, यह माना गया है कि दिशानिर्देशों का पालन करने में दोष प्रकृति में तुच्छ है। पर्याप्त सबूतों से साबित होने वाले मृत्यु पूर्व बयान को खारिज नहीं किया जा सकता है।

78. इस प्रकार, आरोपी के आक्रामक आचरण के बारे में अपनी मृत्यु से पहले मृतका द्वारा दी गई जानकारी को मृत्यु पूर्व बयान के रूप में माना जाएगा क्योंकि ऐसी जानकारी देने के तुरंत बाद उसे आरोपी द्वारा मार दिया गया था।

79. अभियोजन पक्ष के अनुसार, अपराध होने के बाद आरोपी ने अपनी बहन अ०सा०-13, चारू सूरी को सूचित किया और पूरी कहानी सुनाई कि उसने मृतका को कैसे मारा। अ०सा०-13, चारू सूरी द्वारा अपने ससुराल वालों को यह बताया गया था और उन्हें झांसी जाने के लिए जोर दिया गया था और इस संबंध में निम्नलिखित सबूतों पर फिर से चर्चा की जाती है: -

(1) लिखित शिकायत में यह उल्लेख किया गया है कि दिनांक 29.04.2014 को सुबह 04:45 बजे आरोपी की मां श्रीमती आशा तलवार ने उसके मोबाइल पर एक मिस्ड कॉल किया और कुछ समय बाद जब उसने वापस कॉल किया, तो उसका फोन बंद था। सुबह 11:00 बजे आरोपी की बहन उसकी बहू चारू सूरी (अ०सा०-13) ने फोन कर के बताया कि ऋषि तलवार ने श्वेता की गोली मारकर हत्या कर दी है। हालांकि अ०सा०-13 चारू सूरी ने इनकार कर दिया है और आरोपी ऋषि तलवार ने भी चारू सूरी के सामने इस तरह का न्यायेत्तर संस्वीकृति देने से इनकार कर दिया है, लेकिन इलेक्ट्रॉनिक सबूतों और अ०सा०-11 सुधीर सूरी के सबूतों से यह साबित होता है कि पहली रिकॉर्डिंग में ऋषि तलवार ने अपनी बहन चारू सूरी को बताया था कि उसने अपनी पत्नी श्वेता तलवार की गोली मारकर हत्या कर दी और उसकी डेड बॉडी घर में ही थी। दूसरी रिकॉर्डिंग से साबित होता है कि चारू सूरी और उसकी बहन, नीरू सहाय और गवाह आशा तलवार की सास के बीच मृतका की हत्या के बारे में बातचीत हुई थी, जिसमें चारू सूरी नीरू को सूचित करती है कि उनके भाई ऋषि तलवार ने श्वेता तलवार की गोली मारकर हत्या कर दी थी। इस बातचीत में आशा तलवार ने नीरू से इस बात की पुष्टि भी की थी। आरोपी द्वारा अपनी बहन और मां के सामने किए गए न्यायिकेत्तर संस्वीकृति की पुष्टि इलेक्ट्रॉनिक सबूतों से की जा रही है। बचाव पक्ष किसी भी मान्यता प्राप्त संस्थान से इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य और उपकरण का परीक्षण कराने के लिए स्वतंत्र था, अगर उन्हें अ०सा०-11, सुधीर सूरी द्वारा झूठे साक्ष्य के मिश्रण के बारे में संदेह था, लेकिन ऐसा नहीं किया गया है और अदालत ने साक्ष्य अधिनियम की धारा 65-बी के तहत साक्ष्य को स्वीकार कर लिया है। सुधीर सूरी साक्ष्य के रूप में स्वीकार्य है और यह भी स्थापित किया गया है कि आरोपी ने अपनी बहनों और मां के सामने अपने अपराध की एक न्यायिकेत्तर स्वीकारोक्ति की है।

(2) इस मामले में ओकुलर और मेडिकल साक्ष्य में कोई भिन्नता नहीं है, हालांकि सबूत का कोई चश्मदीद गवाह नहीं है। अ०सा०-4 कुमारी अंचिता तलवार, जिनके बारे में कहा जाता है कि वह घटनास्थल पर मौजूद थीं, ने अभियोजन पक्ष का

समर्थन नहीं किया है, लेकिन अ०सा०-11 द्वारा पेश किए गए इलेक्ट्रॉनिक सबूत, परिस्थितिजन्य साक्ष्य और आरोपी द्वारा दिए गए इकबालिया बयान से यह स्थापित होता है कि मृतका की हत्या बंदूक की गोली से हुई थी, जिसकी पुष्टि पोस्टमार्टम रिपोर्ट और जांच में भी हुई है। इसलिए, चिकित्सा साक्ष्य और अन्य सबूतों के बीच कोई विरोधाभास या भिन्नता नहीं है। यहां तक कि बचाव पक्ष भी स्वीकार करता है कि मृतका की मौत बंदूक की गोली से हुई थी।

(3) अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार आरोपी से कथित हथियार की कोई वास्तविक बरामदगी नहीं की गई है और उसकी गिरफ्तारी झूठी है। जब वह प्राथमिकी दर्ज कराने के लिए थाना गए, तो उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और गेट पर ताला लगाते हुए गिरफ्तार दिखाया गया।

(4) दिनांक 01.05.2014 को आरोपी को उस समय गिरफ्तार किया गया जब वह सुबह लगभग 07:30 बजे घर के गेट पर ताला लगा रहा था और 32 बोर की एक देसी पिस्तौल जिस पर "मेड इन यूएसए नंबर 405" लिखा हुआ था और बैरल पर "ओएमई आर्मी सप्लाई" लिखा हुआ था, साथ ही दो जिंदा कारतूस बरामद किए गए थे। आईओ के पूछने पर आरोपी ने स्वीकार किया कि उसने 29.04.2014 की रात को इसी पिस्तौल से अपनी पत्नी की हत्या की थी। इसे मौके पर ही सील कर दिया गया। रिकवरी मेमो ठीक से तैयार किया गया था और गवाहों द्वारा हस्ताक्षरित किया गया था।

(5) प्रदर्श क-3, 32 बोर के दो खाली कारतूसों का रिकवरी मेमो भी मौके से बरामद किया गया। इस संबंध में विधि विज्ञान प्रयोगशाला रिपोर्ट 86-ए/3 द० प्र० स० की धारा 293 के तहत साक्ष्य के रूप में स्वीकार्य है, जिससे यह स्थापित होता है कि घटना स्थल से बरामद दो खाली कारतूस आरोपी के कब्जे से बरामद देसी पिस्तौल द्वारा निष्पादित किए गए थे। इस संबंध में गवाह अ०सा०-2, कमल राज और अ०सा०-3, अजहर खान को बयान से मुकरने की घोषणा की गई है, लेकिन इस संबंध में विचारण न्यायालय ने **गोविंदराजू @ गोविंदा बनाम राज्य द्वारा श्रीरामपुरम पीएस और एक अन्य, ए.आई.आर 2012 एससी 1292** के मामले पर भरोसा किया है, जिसमें यह कहा गया था कि ऐसे पुलिस कर्मियों के सबूतों में घोर खामी के अभाव में पुलिस कर्मियों द्वारा किसी भी वसूली को संदिग्ध नहीं माना जाएगा।

(6) विवेचना अधिकारी, अ०सा०-10, राम भजन सिंह ने वसूली साबित कर दी है। उसकी आरोपियों से कोई दुश्मनी नहीं थी और विधि विज्ञान प्रयोगशाला रिपोर्ट से यह भी साबित हो गया है कि घटना स्थल पर मिले खाली कारतूसों को आरोपी के कब्जे से बरामद देसी पिस्तौल से गोली मारी गई थी। बचाव पक्ष के गवाहों ने स्वीकार किया है कि आरोपी सेना की सामग्री का ए-श्रेणी का आपूर्तिकर्ता था, इसलिए इस तरह की फायर-आर्म उसे आसानी से उपलब्ध हो सकती थी। इस प्रकार, इसमें कोई संदेह नहीं है कि आरोपी के कब्जे से फायर आर्म और जिंदा कारतूस बरामद नहीं किए गए थे या इसे आरोपी के पास गलत तरीके से फंसाने के लिए लगाया गया होगा।

(7) उपरोक्त चर्चा के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि आरोपी और मृतका के बीच संबंध सौहार्दपूर्ण नहीं थे, लेकिन मृतका अपने बच्चों के भविष्य की खातिर आरोपी के साथ रह रही थी। आरोपी द्वारा मृतका के साथ हमेशा क्रूरता की जाती थी, जिसके बारे में वह अपने माता-पिता को सूचित करती थी। इस दुर्भाग्यपूर्ण

घटना से पहले उसे आरोपियों द्वारा बुरी तरह से पीटा गया था और उसके माता-पिता ने उसे जान बचाने के लिए घर के ऊपरी हिस्से में जाने की सलाह दी थी, लेकिन वह इसमें सफल नहीं हो सकी और आरोपी द्वारा मार दी गई। यदि मृतका की हत्या किसी अन्य व्यक्ति ने की होती तो आरोपी को भी गोली चलाने या मृतका की जान बचाने के दौरान कुछ चोटें आ सकती थीं क्योंकि यह स्थापित हो गया है कि वह घटना की तारीख और समय पर घर से बाहर नहीं था। इसके अलावा, फर्श पर गिरे खाली कारतूस भी आरोपी के कब्जे से बरामद बन्दूक से मेल खाते हैं। अगर पुलिस ने उसे झूठा फंसाया होता, तो निश्चित रूप से बरामद फायर-आर्म के साथ कारतूसों के मिलान में कुछ भिन्नता होती। इसके अलावा आरोपी ने अपनी बहन चारू सूरी और उसकी मां के सामने एक अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारोक्ति की, जिसे अ०सा०-11, सुधीर सूरी द्वारा इलेक्ट्रॉनिक उपकरण की सहायता से रिकॉर्ड किया गया था। कोई हो-हल्ला न करना, कोई प्राथमिकी दर्ज न करना, आरोपी द्वारा मृतका की हत्या के बारे में ससुराल वालों को सूचित नहीं करना भी कुछ महत्वपूर्ण बिंदु हैं जो इंगित करते हैं कि आरोपी के अलावा किसी और ने अपराध नहीं किया था और वह गायब होने और मृतका के शव और अन्य आपत्तिजनक सामग्री को घटनास्थल से छिपाने की सोच रहा था जिसमें वह सफल नहीं हो सका।

(8) जब यह साबित हो जाता है कि अ०सा०-4 कुमारीअंचिता तलवार की गवाही सही नहीं है और उसने अभियोजन पक्ष का समर्थन नहीं किया था, इसलिए, यह मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित मामला बना हुआ है।

80. यह **परिस्थितिजन्य साक्ष्यों** पर आधारित मामला है। किसी और ने अपराध होते नहीं देखा है, लेकिन गवाह आरोपी व्यक्तियों के विरोधी नहीं हैं।

81. **नाथिया बनाम राज्य (2016) 10 एससीसी 298, भीम सिंह बनाम उत्तराखंड राज्य (2015) 4 एससीसी 281 (पैरा 23), शरद बिरधीचंद सारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1984) 4 एससीसी 116 (पैरा 120 और 121), पश्चिम बंगाल राज्य बनाम दीपक हलदर, (2009) 7 एससीसी (तीन न्यायाधीशों की पीठ**) के मामलों में सुप्रीम कोर्ट ने निम्नलिखित सिद्धांत निर्धारित किए हैं:

(i) जिस परिस्थिति से अपराध का निष्कर्ष निकाला जाना है, वह न केवल होना चाहिए बल्कि निश्चित रूप से होना चाहिए और "पूर्णतः स्थापित" होना चाहिए;

(ii) इस प्रकार स्थापित तथ्य केवल अभियुक्त के अपराध की परिकल्पना के अनुरूप होने चाहिए, अर्थात्, उन्हें किसी अन्य परिकल्पना पर स्पष्ट नहीं किया जाना चाहिए, सिवाय इसके कि अभियुक्त दोषी है;

(iii) परिस्थितियों को प्रकृति और प्रवृत्ति में निर्णायक होना चाहिए;

(iv) उन्हें सिद्ध की जाने वाली परिकल्पना को छोड़कर हर संभव परिकल्पना को बाहर करना चाहिए; और

(v) साक्ष्य की एक श्रृंखला ऐसी होनी चाहिए जो अभियुक्त की बेगुनाही के अनुरूप निष्कर्ष के लिए कोई उचित आधार न छोड़े और ऐसा होना चाहिए कि सभी मानवीय संभावनाओं में यह कार्य अभियुक्त द्वारा किया गया हो।

82. **भीम सिंह** (उपरोक्त) मामले में यह माना गया था कि जब निष्कर्ष केवल परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित होना है, तो परिस्थितियों की श्रृंखला में कोई अवरोध नहीं होना चाहिए।

83. **गोवा राज्य बनाम पांडुरंग मोहिते, ए.आई.आर 2009 एससी 1066 और उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सतीश (2005) 3 एससीसी 114 मामले** में सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि "आखिरी बार एक साथ देखे गए" की परिस्थितियां अपने आप में नहीं हैं और आवश्यक रूप से यह निष्कर्ष निकालती हैं कि यह अपराध आरोपी ने किया था। आरोपी और अपराध के बीच संपर्क स्थापित करने के लिए कुछ और होना चाहिए। आखिरी बार जिंदा देखे जाने और शव की बरामदगी के बीच समय का अंतर इतना कम होना चाहिए कि आरोपी के अलावा किसी अन्य व्यक्ति के अपराध के कर्ता होने की संभावना असंभव हो जाए।

84. **रोहताश कुमार बनाम हरियाणा राज्य, 2013 (82) एसीसी 401 (एससी) (पैरा 25) और पृथीपाल सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2012) 1 एससीसी 10 में** सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि यदि यह स्थापित हो जाता है कि पीड़ित और आरोपी को आखिरकार एक साथ देखा गया था तो सबूत का बोझ आरोपी पर आ जाता है कि वह बताए कि घटना कैसे हुई थी। इस संबंध में कोई स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने में अभियुक्त की ओर से विफलता उसके खिलाफ एक बहुत मजबूत धारणा को जन्म देगी।

85. **अशोक बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2015) 4 एससीसी 393** मामले में सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि सबूत का प्रारंभिक बोझ अभियोजन पक्ष पर है कि वह अभियुक्त के अपराध की ओर इशारा करते हुए पर्याप्त सबूत जोड़े। हालांकि, यदि यह स्थापित हो जाता है कि आरोपी को आखिरी बार मृतका के साथ देखा गया था, तो अभियोजन पक्ष को यह साबित करने की छूट दी जाती है कि घटना में क्या हुआ था क्योंकि आरोपी को खुद घटना का विशेष ज्ञान होगा और साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 के अनुसार खुद पर सबूत का बोझ होगा। लेकिन आखिरी बार एक साथ देखा जाना अपने आप में एक निर्णायक सबूत नहीं है। घटना के आसपास की अन्य परिस्थितियों के साथ-साथ आरोपी और मृतका के बीच संबंध, उनके बीच दुश्मनी, दुश्मनी का पिछला इतिहास, आरोपी से हथियार की बरामदगी आदि, मृतका की मृत्यु का स्पष्टीकरण न देना आदि आरोपी के अपराध की धारणा को जन्म दे सकते हैं।

86. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित न्यायिक मिसालों पर भरोसा किया है: -

(1) **जय प्रकाश तिवारी बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 2017 एससीसी ऑनलाइन एमपी 2329** में पीड़ित को कोई बन्दूक की चोट नहीं हुई थी। उसकी मां को घटना का चश्मदीद गवाह नहीं पाया गया। कथित घटना में जब्त हथियार को स्पष्ट रूप से जोड़ने के लिए कोई बैलिस्टिक रिपोर्ट नहीं थी। आरोपी अपीलकर्ता के खिलाफ एक अन्य आपराधिक मामले में शिकायत पहले ही दर्ज की जा चुकी थी, जिसमें उसे पहले ही बरी कर दिया गया था। बचाव पक्ष को निचली अदालत ने सरसरी तौर पर निपटाया। इसलिए दोषसिद्धि और सजा के आदेश को रद्द कर दिया गया। उपर्युक्त मामले के तथ्य प्रस्तुत मामले के तथ्यों से काफी अलग हैं। इसलिए अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा निर्धारित सिद्धांत अपीलकर्ता के पक्ष में लागू नहीं होता है।

(2) **शिवाजी चिंताप्पा पाटिल बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2008 एससीसी ऑनलाइन बॉम 1859** में यह माना गया था कि मृत्यु का कारण फांसी के परिणामस्वरूप श्वासावरोध के कारण कार्डियक श्वसन अवरोध था। पोस्टमार्टम रिपोर्ट पर लगभग तीन महीने की देरी के साथ हस्ताक्षर किए गए थे। मकसद साबित नहीं हुआ और घटनाओं की श्रृंखला बरकरार नहीं पाई गई। उद्धृत मामले के तथ्य और अभियोजन पक्ष द्वारा जोड़े गए सबूत हाथ में लिए गए मामले से पूरी तरह से अलग हैं। इसलिए उपरोक्त मामले में निर्धारित सिद्धांत अपीलकर्ता के पक्ष में लागू नहीं किया जा सकता है।

(3) **प्रमिला बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, आपराधिक अपील संख्या 700/2021 ने 28.07.2021 को निर्णीत** में यह माना गया कि अ०सा०-2 बाल गवाह पर भरोसा किया गया था और दोषसिद्धि आयोजित की गई थी, लेकिन इस मामले में अ०सा० 4, अंचिता तलवार ने अभियोजन पक्ष के बयान का समर्थन नहीं किया है। सुप्रीम कोर्ट ने यहां **मध्य प्रदेश राज्य बनाम रमेश (2011) 4 एससीसी 786** के मामले को संदर्भित किया था, जिसमें यह कहा गया था कि एक बाल गवाह के साक्ष्य का अधिक सावधानी से मूल्यांकन किया जाना चाहिए क्योंकि वह ट्यूशन के लिए अतिसंवेदनशील है। इस मामले में यह साबित होता है कि अ०सा०-4 की गवाह अंचिता तलवार अपनी बुआ के साथ रह रही थी, जिन्होंने पति का घर भी छोड़ दिया था और आरोपी के बच्चों के साथ झांसी में अपने मायका में रह रही थीं, इसलिए, इस बात की बहुत अधिक संभावना थी कि अ०सा०-4 को सिखाया गया होगा और उस स्थिति में अदालत इस तरह के बयान को आंशिक रूप से या पूरी तरह से खारिज कर सकती है। उद्धृत मामले में अपीलकर्ता मृतका के साथ सीधे तौर पर जुड़ा नहीं था क्योंकि वह मृतका के पति के एक अन्य भाई की पत्नी थी। यह ऐसा मामला नहीं है जिसमें ठूसा हुआ कपड़ा जैसे तथ्य मृतका के मुंह में होने चाहिए, बल्कि यह दो बंदूक-गोलियों के कारण हुई हत्या थी। पोस्टमार्टम रिपोर्ट अभियोजन पक्ष के मामले और कहानी के अनुरूप नहीं पाई गई। इसलिए संदेह का लाभ देते हुए अपीलकर्ता को बरी कर दिया गया। दोनों मामलों में दिए गए तथ्यों और सबूतों से तुलना करने पर यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि दोनों मामलों में तथ्यों और सबूतों के कारण कई भिन्नताओं के कारण उपरोक्त मामले में निर्धारित सिद्धांत को तत्काल मामले में लागू नहीं किया जा सकता है।

(4) **रविंदर सिंह @ कुकू बनाम पंजाब राज्य, 2022 लाइव लॉ (एससी) 461** में यह माना गया था कि इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य पेश करने के लिए धारा 65-बी (4) के तहत प्रमाण पत्र एक अनिवार्य आवश्यकता है। यह भी माना गया कि इस तरह के प्रमाण पत्र के स्थान पर मौखिक साक्ष्य संभवतः नहीं लगाया जा सकता है। यह भी माना गया कि परिस्थितिजन्य साक्ष्य और अनुमान के आधार पर मामलों में अभियुक्त के अपराध के बारे में उचित संदेह से परे साबित किया जाना चाहिए और उन परिस्थितियों से अनुमान लगाए जाने वाले प्रमुख तथ्यों के साथ निकटता से संबंधित दिखाया जाना चाहिए। वर्तमान मामले में अदालत की सुरक्षित अभिरक्षा में एक सीडी रखी गई थी, जिसे गवाह अ०सा०-11, सुधीर सूरी ने लैपटॉप में चलाया था, जिसके बारे में उसने गवाही दी थी कि उसने गूगल अकाउंट से सीडी अपलोड की थी जिसमें उसकी पत्नी चारू सूरी का फोन और एसएमएस रिकॉर्ड और सेव है।

उन्होंने एडमिन सॉफ्टवेयर की खरीद का बिल भी प्रदान किया। यह सच है कि ऐसा कोई प्रमाण पत्र प्राप्त नहीं किया गया है। इसके अलावा, यदि अ०सा०-11 द्वारा प्रस्तुत इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य को तिरस्कृत किया जाता है, तो सभी उचित संदेहों से परे आरोपी अपीलकर्ता के खिलाफ परिस्थितिजन्य साक्ष्य की श्रृंखला को साबित करने के लिए रिकॉर्ड पर पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 65-बी (4) निम्नानुसार है: -

"65 बी। इलेक्ट्रॉनिक अभिलेखों की स्वीकार्यता। (4) किसी भी कार्यवाही में जहां इस धारा के आधार पर साक्ष्य में बयान देना वांछित है, निम्नलिखित में से कोई भी काम करने वाला प्रमाण पत्र, अर्थात्,

> *(क) विवरण वाले इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड की पहचान करना और जिस तरीके से इसे प्रस्तुत किया गया था;*
>
> *(ख) उस इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख के उत्पादन में शामिल किसी उपकरण का ऐसा विवरण देना जो यह दर्शाने के प्रयोजनार्थ उपयुक्त हो कि इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख किसी कंप्यूटर द्वारा निर्मित किया गया था;*
>
> *(ग) उपधारा में उल्लिखित शर्तों में से किसी एक मामले से निपटना* (2) संबंधित उपकरण के संचालन या प्रासंगिक गतिविधियों के प्रबंधन (जो भी उचित हो) के संबंध में एक जिम्मेदार आधिकारिक पद पर आसीन व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षरित किया जाना और करना प्रमाण पत्र में बताए गए किसी मामले का प्रमाण होगा; और इस उप-धारा के प्रयोजनों के लिए यह पर्याप्त होगा कि किसी मामले को बताने वाले व्यक्ति के ज्ञान और विश्वास के अनुसार कहा जाए।

87. इस संबंध में विचारण न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला है कि अ०सा० 11, सुधीर सूरी ने अप्रैल, 2012 में सॉफ्टवेयर खरीदा था। उक्त सॉफ्टवेयर की खरीद के संबंध में बिल की एक प्रति इस गवाह द्वारा प्रदर्श क-16 के रूप में दायर की गई है, जिससे यह स्पष्ट है कि सॉफ्टवेयर को लाइसेंस दिया गया था। इसके बाद श्रीमती चारू सूरी के फोन में की गई सभी बातचीत को कॉल रिकॉर्डिंग के रूप में गूगल अकाउंट में सेव कर लिया गया, जो इस गवाह के अनुसार अभी भी उसकी ईमेल आईडी में सेव हैं। गवाह ने स्पष्ट किया है कि उसने गूगल अकाउंट से सीडी डाउनलोड करके बनाई थी और सीडी कोर्ट में चलाई गई थी। जो बातचीत हुई है वह वही बातचीत है जो उन्होंने अपने गूगल अकाउंट पर सुनी थी।

88. इस इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य की स्वीकार्यता पर प्रश्न चिह्न उठाते हुए यह तर्क दिया गया है कि अधिनियम की धारा 65-ख के अनुपालन में सीडी के निर्माता से इसके निर्माण की प्रक्रिया और इसकी वास्तविकता के संबंध में कोई प्रमाण पत्र प्राप्त नहीं किया गया है। इस पहलू पर अदालत ने ध्यान दिया है। गवाह अ०सा०-11 द्वारा एक एडमिन सॉफ्टवेयर के प्रभाव के तहत गूगल अकाउंट में रिकॉर्डिंग के रूप में स्वचालित रूप से उपलब्ध सीडी में सहेजी गई बातचीत, सुधीर सूरी को प्राथमिक साक्ष्य के रूप में माना जा सकता है और उस स्थिति में अधिनियम की धारा 65-

बी के तहत प्रमाण पत्र की आवश्यकता नहीं रहती है।

89. विचारण न्यायालय ने **विक्रम सिंह @ विक्की वालिया और एक अन्य बनाम पंजाब राज्य और एक अन्य, ए.आई.आर 2017 एससी 3227** पर भरोसा किया है, जिसमें अपहरण और जबरन वसूली से संबंधित एक मामले में धारा 65-बी की व्याख्या करते हुए, शीर्ष अदालत ने निर्धारित किया था कि टेप रिकॉर्ड की गई बातचीत द्वितीयक साक्ष्य नहीं है और इसके लिए धारा 65-बी के तहत वांछित प्रमाण पत्र की आवश्यकता नहीं है और धारा 65 (बी) का पालन करने की कोई आवश्यकता नहीं है, जब एक इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य को प्राथमिक साक्ष्य के रूप में अदालत में पेश किया जाता है। इसके अलावा, विचारण न्यायालय की यह भी राय थी कि चूंकि सीडी इस तरह की बातचीत से संबंधित है जिसे एक लाइसेंस प्राप्त सॉफ्टवेयर के माध्यम से डाउनलोड किया गया है, इसलिए इस सीडी में मौजूद बातचीत की वास्तविकता के बारे में रत्ती भर भी संदेह नहीं है।

90. यह भी उल्लेखनीय है कि अ०सा०-13 के रूप में जांच की गई आरोपी की बहन श्रीमती चारू सूरी ने अपने साक्ष्य में स्वीकार किया है कि जिस दिन उनके पति यानी सुधीर सूरी, अ०सा०-11 का बयान दर्ज किया गया था, उस दिन वह भी अदालत आई थीं और उन्हें इसमें कोई संदेह नहीं है कि उनके पति उनका फोन टेप करते थे। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि श्रीमती चारू सूरी की उपस्थिति में अदालत में चलाई गई उपरोक्त सीडी की वास्तविकता को किसी भी स्तर पर उनके साक्ष्य में या कोई आवेदन देकर इनकार नहीं किया गया था। उसकी आवाज से मेल खाने के लिए आवाज परीक्षण की कोई मांग न तो उसने की और न ही बचाव में आरोपी ने की। इस प्रकार, उक्त सीडी में मौजूद बातचीत साक्ष्य में स्वीकार्य है।

91. विचारण न्यायालय ने आगे निष्कर्ष निकाला कि साक्ष्य में इस पहली रिकॉर्डिंग की प्रासंगिकता को देखते हुए, अदालत के समक्ष स्थिति स्पष्ट है कि इस बातचीत को आरोपी की अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारोक्ति माना जा सकता है, आरोपी का कथित कबूलनामा चारु सूरी से पहले हुआ है, अपने स्वयं के साक्ष्य से अदालत में इसे औपचारिक रूप से साबित कर दिया होगा। लेकिन अदालत की राय है कि चूंकि घटना के बाद आरोपी और उसकी बहन के बीच बातचीत घटना की प्राकृतिक अभिव्यक्ति के रूप में हुई है, इसलिए इस बातचीत को निश्चित रूप से भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 6 के तहत साक्ष्य में प्रासंगिक माना जाएगा। इस संबंध में विचारण न्यायालय ने **महाराष्ट्र राज्य बनाम कमाल अहमद मोहम्मद अधिवक्ता अंसारी और अन्य, 2013 सीआरएलजे 2069** पर भरोसा किया है।

92. विचारण न्यायालय ने दिल्ली के साइटेशन **स्टेट (एनसीटी) बनाम नवजोत संधू @ अफसान गुरु (2005) एससीसी (सीआरएल) 1715 (संसद हमले के मामले के रूप में जाना जाता है)** का हवाला दिया है, जिसे **अनवर पीवी बनाम पीके बशीर, (2014) 10 एससीसी 473 (तीन-न्यायाधीशों की पीठ)** के फैसले द्वारा खारिज कर दिया गया है, जिसमें यह फैसला सुनाया गया है कि धारा 65 बी (4) के तहत द्वितीयक साक्ष्य की स्वीकार्यता के लिए प्रमाण पत्र आवश्यक है। इस मामले में अ०सा०-13 ने स्वीकार किया है कि उसे कोई संदेह नहीं था कि उसका पति उसका फोन टैप कर रहा था। यह बयान पुष्टि करता है

कि उसका बयान उसके पति, सुधीर सूरी, अ०सा०-11 द्वारा दर्ज किया गया था।

93. इस स्तर पर इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड के संबंध में प्रासंगिक कानून का वर्णन करना आवश्यक है। साक्ष्य अधिनियम की धारा 65 बी (4) निम्नानुसार है: -

(4) किसी भी कार्यवाही में जहां इस धारा के आधार पर साक्ष्य में बयान देना वांछित है, निम्नलिखित में से कोई भी काम करने वाला प्रमाण पत्र, अर्थात्,

> *(क) विवरण वाले इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड की पहचान करना और जिस तरीके से इसे प्रस्तुत किया गया था;*
>
> *(ख) उस इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख के उत्पादन में शामिल किसी उपकरण का ऐसा विवरण देना जो यह दर्शाने के प्रयोजनार्थ उपयुक्त हो कि इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख किसी कंप्यूटर द्वारा निर्मित किया गया था;*
>
> *(ग) उपधारा (2) में उल्लिखित शर्तों में से किसी से संबंधित किसी मामले से निपटना, और संबंधित उपकरण के संचालन या प्रासंगिक गतिविधियों के प्रबंधन (जो भी उचित हो) के संबंध में जिम्मेदार आधिकारिक पद पर आसीन व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षरित किया जाना प्रमाण पत्र में उल्लिखित किसी मामले का प्रमाण होगा; और इस उप-धारा के प्रयोजनों के लिए यह पर्याप्त होगा कि किसी मामले को बताने वाले व्यक्ति के ज्ञान और विश्वास के अनुसार कहा जाए।*

94. **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम अजय कुमार शर्मा, 2016 (92) एसीसी 981 (एससी) (पैरा 14)** में यह निर्धारित किया गया है कि "कॉम्पैक्ट डिस्क" एक "दस्तावेज" है जिस पर दोनों पक्षों या उनके अधिवक्ताओं द्वारा प्रवेश और इनकार किया जा सकता है।

95. **मुकेश बनाम दिल्ली राज्य (एनसीटी) और अन्य मामले में, ए.आई.आर 2017 एससी 2161 (तीन न्यायाधीशों की पीठ)** कंप्यूटर सेल विशेषज्ञ ने सीसीटीवी फुटेज से कोई छेड़छाड़ या संपादन नहीं होने का खुलासा किया। इसे साक्ष्य अधिनियम की धारा 65 बी के तहत स्वीकार्य माना गया था।

96. साक्ष्य अधिनियम की धारा 3 (2) के तहत इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड दस्तावेज हैं और वे धारा 17, 22 ए, 34, 35, 39, 45 ए, 47-ए, 59, 65-ए, 65-बी, 67-ए, 73-ए, 81-ए, 85-ए, 85-बी, 85-सी, 88, 88-ए, 90-ए और 13 के तहत प्रासंगिक और स्वीकार्य हैं।

97. **आर.एम. मलकानी बनाम महाराष्ट्र राज्य, ए.आई.आर 1973 एससी 157 और राम सिंह और अन्य बनाम कर्नल राम सिंह, 1985 (एसयूपीपी) एससीसी 616 और दिल्ली राज्य (एनसीटी) (उपरोक्त)** में यह माना गया है कि टेप रिकॉर्डर में रिकॉर्ड की गई प्रासंगिक बातचीत साक्ष्य में स्वीकार्य है।

98. **अनवर** (उपरोक्त) और **हरपाल सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2017) 1 एससीसी 734** मामले में सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड का प्रमाण साक्ष्य अधिनियम के तहत पेश किया गया एक विशेष परंतुक है। साक्ष्य अधिनियम की धारा 65 ए के साथ धारा 59 और 65 बी के साथ पढ़ा गया शीर्षक यह मानने के लिए पर्याप्त है कि इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड से संबंधित साक्ष्य पर

विशेष प्रावधान साक्ष्य अधिनियम की धारा 65 बी के तहत निर्धारित प्रक्रिया द्वारा शासित होंगे। यह अपने आप में एक संपूर्ण संहिता है। एक विशेष कानून होने के नाते, धारा 63 और 65 के तहत द्वितीयक साक्ष्य पर सामान्य कानून को लागू करना होगा। इसलिए द्वितीयक साक्ष्य के माध्यम से एक इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड को साक्ष्य में स्वीकार नहीं किया जाएगा जब तक कि धारा 65 बी के तहत आवश्यकताओं को पूरा नहीं किया जाता है। इस प्रकार, सीडी, वीसीडी, चिप, आदि के मामले में दस्तावेज लेते समय प्राप्त धारा 65 बी के संदर्भ में प्रमाण पत्र के साथ होगा, जिसके बिना उस इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड से संबंधित द्वितीयक साक्ष्य अस्वीकार्य है।

99. **विक्रम सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2017) 8 एससीसी 518** में, फिरौती कॉल की मूल टेप रिकॉर्ड की गई बातचीत को पुलिस को सौंप दिया गया था, यह माना गया है कि मूल टेप रिकॉर्ड प्राथमिक साक्ष्य था, इसलिए इसकी स्वीकार्यता के लिए साक्ष्य अधिनियम की धारा 65 बी के तहत प्रमाण पत्र की आवश्यकता नहीं थी। ऐसा प्रमाण पत्र केवल द्वितीयक साक्ष्य के लिए अनिवार्य है और प्राथमिक साक्ष्य के लिए नहीं।

100. **राज्य द्वारा कर्नाटक लोकायुक्त पीएस बेंगलुरु बनाम एमआर हिरेमठ, 2019 0 सुप्रीम 590 (एससी)** में यह माना गया है कि धारा 65 बी के तहत प्रमाण पत्र को मुकदमे में साक्ष्य के रूप में पेश करने की मांग की जाती है, न कि आरोप तय करने के चरण में।

101. **अर्जुन पंडितराव खोलकर बनाम कैलाश कुशानराव गोरंट्याल और अन्य, ए.आई.आर 2020 एससी 4908 (तीन न्यायाधीशों की पीठ)** में यह माना गया है कि धारा 65 बी (4) के तहत आवश्यक प्रमाण पत्र इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड के माध्यम से साक्ष्य की स्वीकार्यता के लिए एक शर्त है। इस तरह के प्रमाण पत्र के स्थान पर मौखिक साक्ष्य संभवतः पर्याप्त नहीं हो सकता है क्योंकि धारा 65 बी (4) कानून की एक अनिवार्य आवश्यकता है। धारा 65 बी (4) में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि द्वितीयक साक्ष्य केवल तभी स्वीकार्य है जब बताए गए बताए गए तरीके से किया जाए, अन्यथा नहीं। अन्यथा धारण करने से धारा 65बी (4) लागू हो जाएगी। धारा 65 बी की उप-धारा (4) में अपेक्षित प्रमाण पत्र अपरिहार्य है यदि मूल दस्तावेज स्वयं प्रस्तुत किया गया है। यह एक लैपटॉप कंप्यूटर, एक कंप्यूटर टैबलेट या यहां तक कि एक मोबाइल फोन के मालिक द्वारा किया जा सकता है, गवाह बॉक्स में कदम रखकर और यह साबित करके कि संबंधित डिवाइस जिस पर मूल जानकारी पहली बार संग्रहीत की जाती है, उसका स्वामित्व और / या उसके द्वारा संचालित है। ऐसे मामलों में जहां 'कंप्यूटर', जैसा कि परिभाषित किया गया है, 'कंप्यूटर सिस्टम' या 'कंप्यूटर नेटवर्क' का एक हिस्सा होता है और ऐसे नेटवर्क या सिस्टम को भौतिक रूप से अदालत में लाना असंभव हो जाता है, तो ऐसे इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड में निहित जानकारी को साबित करने का एकमात्र साधन धारा 65 बी (1) के अनुसार हो सकता है, साथ ही धारा 65 बी (4) के तहत अपेक्षित प्रमाण पत्र भी हो सकता है।

102. **मोहम्मद आरिफ @ अशफाक बनाम दिल्ली राज्य (एनसीटी), 2022 0 सुप्रीम (एससी) 1113 (तीन न्यायाधीशों की पीठ)** मामले में शीर्ष अदालत ने **नवजोत संधू (उपरोक्त) और अनवर (उपरोक्त)** के फैसले और अन्य फैसलों पर चर्चा की और कहा कि 'अब यह तय किया जाना चाहिए

कि **अनवर पीवी** (उपरोक्त) में इस अदालत का निर्णय, जैसा कि **अर्जुन पंडितराव** (उपरोक्त) में स्पष्ट किया गया है, साक्ष्य अधिनियम की धारा 65 बी पर घोषित कानून है। पैरा 22 में **अर्जुन पंडितराव** (उपरोक्त) के निर्णय का संदर्भ दिया गया है जो निम्नानुसार है:-

"73 संदर्भ का उत्तर इस प्रकार यह कहते हुए दिया जाता है कि:

73.1. अनवर पी.वी. बनाम पी.के. बशीर, (2014) 10 एससीसी 473, जैसा कि हमने ऊपर स्पष्ट किया है, साक्ष्य अधिनियम की धारा 65-बी पर इस न्यायालय द्वारा घोषित कानून है। टॉमासो ब्रूनो बनाम मामले में फैसला। उत्तर प्रदेश राज्य, (2015) 7 एससीसी 178, लाइलाज होने के कारण, कानून को सही ढंग से निर्धारित नहीं करता है। इसके अलावा, शफी मोहम्मद बनाम जज। हिमाचल प्रदेश राज्य, (2018) 2 एससीसी 801 और दिनांक 3-4-2018 के फैसले को शफी मोहम्मद के रूप में रिपोर्ट किया गया। v. हिमाचल प्रदेश राज्य, (2018) 5 एससीसी 311, कानून को सही ढंग से निर्धारित नहीं करते हैं और इसलिए उन्हें खारिज कर दिया जाता है।

73.2. ऊपर उल्लिखित स्पष्टीकरण यह है कि धारा 65-बी (4) के तहत आवश्यक प्रमाण पत्र अनावश्यक है यदि मूल दस्तावेज स्वयं प्रस्तुत किया गया है। यह लैपटॉप कंप्यूटर, कंप्यूटर टैबलेट या यहां तक कि एक मोबाइल फोन के मालिक द्वारा किया जा सकता है, गवाह बॉक्स में कदम रखकर और यह साबित करके कि संबंधित डिवाइस, जिस पर मूल जानकारी पहली बार संग्रहीत की जाती है, उसके स्वामित्व और / या संचालित है। ऐसे मामलों में जहां "कंप्यूटर" "कंप्यूटर सिस्टम" या "कंप्यूटर नेटवर्क" का एक हिस्सा होता है और ऐसे सिस्टम या नेटवर्क को भौतिक रूप से अदालत में लाना असंभव हो जाता है, तो ऐसे इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड में निहित जानकारी प्रदान करने का एकमात्र साधन धारा 65-बी (1) के अनुसार हो सकता है, साथ ही धारा 65-बी (4) के तहत अपेक्षित प्रमाण पत्र भी हो सकता है। अनवर पी.वी. बनाम पी.के. बशीर (2014) 10 एससीसी 473 में पैरा 24 में अंतिम वाक्य जो पढ़ता है

"... यदि साक्ष्य अधिनियम की धारा 62 के तहत प्राथमिक साक्ष्य के रूप में इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड का उपयोग किया जाता है ... " इस प्रकार स्पष्ट किया जाता है; इसे "साक्ष्य अधिनियम की धारा 62 के तहत,..." शब्दों के बिना पढ़ा जाना चाहिए।

इस स्पष्टीकरण के साथ, अनवर पीवी बनाम पीके बशीर, (2014) 10 एससीसी 473 के पैरा 24 में बताए गए कानून पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता नहीं है।

73.3. पैरा 64 (उपरोक्त) में जारी किए गए सामान्य निर्देशों का पालन उन न्यायालयों द्वारा किया जाएगा जो

इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य से निपटते हैं, ताकि उनके संरक्षण और उचित स्तर पर प्रमाण पत्र का उत्पादन सुनिश्चित किया जा सके। ये निर्देश सभी कार्यवाहियों में तब तक लागू होंगे, जब तक कि सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम की धारा 67-सी के तहत नियम और निर्देश और दूरसंचार और इंटरनेट सेवा प्रदाताओं द्वारा अनुपालन के लिए डेटा प्रतिधारण शर्तें तैयार नहीं की जाती हैं।

103. उपरोक्त के आधार पर क्या यह नहीं कहा जा सकता है कि अ०सा०-11, सुधीर सूरी द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य मूल और प्राथमिक दस्तावेज है जिसके लिए धारा 65 बी (4) के तहत कोई प्रमाण पत्र आवश्यक नहीं था।

104. भारत के विभिन्न हिस्सों से घटना के तुरंत बाद मृतका के माता-पिता, भाई, बहन और बहनोई का पहुंचना यह साबित करता है कि मृतका ने अपनी मृत्यु से पहले अपने माता-पिता को फोन पर सभी कथित जानकारी दी थी। न तो यह अभियोजन पक्ष का मामला है और न ही बचाव पक्ष का कि किसी और ने मृतका के माता-पिता को यह जानकारी दी थी। इस प्रकार मृतका द्वारा अपनी मृत्यु से ठीक पहले अपने माता-पिता को दी गई जानकारी को साक्ष्य अधिनियम की धारा 6 और धारा 32 (1) के तहत स्वीकार्य माना जाएगा। इसलिए, भले ही अ०सा०-11, सुधीर सूरी द्वारा दर्ज किए गए बयान पर विचार नहीं किया जाता है, लेकिन मृतका द्वारा दी गई जानकारी को आरोपी को दोषी ठहराने के लिए पर्याप्त साक्ष्य माना जाएगा।

105. **कल्लू @ कल्याण सिंह बनाम यूपी राज्य मामले में, 2009 की आपराधिक अपील संख्या 1459 (एएचसी, डीबी) ने 11.07.2022 को निर्णीत** में यह माना गया कि जहां आरोपी पति अपने दो बच्चों के साथ रामलीला देखने गया था, जब वह वापस आया तो उसने अपनी पत्नी को मृत पाया। उद्धृत मामले में अ०सा०-1, अ०सा०-2, अ०सा०-6, अ०सा०-7, अ०सा०-8, अ०सा०-9 और अ०सा०-13 को पक्षद्रोही घोषित किया गया था। परिस्थितिजन्य साक्ष्यों की श्रृंखला बरकरार और अटूट नहीं पाई गई लेकिन हाथ में आए मामले में ऐसा नहीं है। इसलिए, निर्धारित सिद्धांत वर्तमान मामले में लागू नहीं होता है।

106. इस मामले में परिस्थितिजन्य साक्ष्य की सभी श्रृंखलाएं एक-दूसरे से जुड़ी हुई हैं। मकसद यह था कि पत्नी और पति के बीच कोई सौहार्दपूर्ण संबंध नहीं था और आरोपी तलाक की डिक्री प्राप्त करना चाहता था, उसकी जमानत याचिका में उसके द्वारा स्वीकार किए गए आरोपी की उपस्थिति, इस बात का सबूत कि आरोपी उस घर में मौजूद था जहां मृतका की हत्या की गई थी, कि मृतका ने अपनी मृत्यु से ठीक पहले अपने माता-पिता को यातना, पिटाई और दुर्व्यवहार के बारे में बताया था। आरोपी द्वारा अपनी बहनों और मां के सामने किया गया न्यायिकेत्तर संस्वीकृति, मौके पर मिले खाली कारतूसों से मेल खाने वाले हथियार की बरामदगी, आरोपी और मृतका की घर में एक साथ मौजूदगी, आरोपी की दलील को साबित करने में नाकामी उन परिस्थितियों की जंजीरें हैं जो बरकरार और अटूट हैं। इस प्रकार, इस मामले में जोड़े गए साक्ष्य भी परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर मामलों में प्रतिपादित मानदंडों को पूरा करते हैं।

107. उपर्युक्त चर्चा के आधार पर, इस न्यायालय का यह भी मत है कि एएसजे/एफटीसी, कोर्ट नंबर 2 झांसी द्वारा दिनांक 11.10.2017 को पारित

आक्षेपित निर्णय और दोषसिद्धि और सजा का आदेश तथ्यात्मक और कानूनी रूप से सही और वैध है और इसमें हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है।

108. अपील में कोई बल नहीं है और इसे खारिज किया जा सकता है। तदनुसार, अपील **खारिज** की जाती है।

109. निचली अदालत के रिकॉर्ड को इस फैसले की एक प्रति के साथ संबंधित अदालत को वापस भेजा जाए।

(2023) 3 ILRA 654

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद 15.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर,

माननीय न्यायमूर्ति अजीत सिंह,

जेल अपील संख्या 323/2017

राम अवतार @ गणेश ...अपीलकर्ता

बनाम

यूपी राज्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: जेल से, श्री बृज राज

अधिवक्ता प्रतिवादी: अपर शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धाराएँ 300, 302 और 304 भाग II - हत्या - अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों (अत्याचारों की रोकथाम) अधिनियम, 1989 - धारा 3(2)(v) - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धाराएँ 161, 313, 329 - भारत का संविधान - अनुच्छेद 21 - दंड के विरुद्ध अपील - एफआईआर के अनुसार - दिनांक 19.12.2013 को, वादी की पत्नी गाँव के बाहर लहसुन के खेत में काम कर रही थी - लगभग 1:00 बजे आरोपी, जो उसी गाँव का निवासी है, वहाँ पहुँचा और उसे 'कुदाल' से मारने लगा - शिकायतकर्ता और एक अन्य व्यक्ति वहाँ पहुँचे और देखा कि आरोपी भाग गया - शिकायतकर्ता को पता चला कि उसकी घायल पत्नी मौके पर ही मर गई - शिकायतकर्ता के द्वारा उठाए गए शोर को सुनकर अन्य गाँव वाले पहुँच गए - सत्र न्यायालय ने उपरोक्त धाराओं के तहत आरोप तय किए - आजीवन कारावास की सजा दी गई - आयोजित, आरोपी और मृतका के बीच द्वेष और आपराधिक विवाद था - मृतका पर हमला पूर्व योजना के तहत नहीं था और यह अचानक हुआ - केवल एक चोट महत्वपूर्ण हिस्से पर थी, जो घातक सिद्ध हुआ - अपराधी को कोई अनुचित लाभ नहीं उठाना चाहिए था या क्रूरता से कार्य नहीं करना चाहिए था - भारतीय दंड संहिता की धारा 300 में दिए गए अपवाद का लाभ पाने के लिए पात्र - आरोपी मानसिक रूप से अस्वस्थ था - यह जानबूझकर नहीं बल्कि हत्या का मृत्यु बिना आशय के थी - सजा धारा 302 IPC से परिवर्तित होकर 304 भाग II IPC में की गई और SC/ST अधिनियम के तहत अपराध नहीं बना। अपील आंशिक रूप से स्वीकार की गई है।

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. गुजरात राज्य बनाम मंजीबेन (R/आपराधिक पुष्टि वाद संख्या 1 वर्ष 2018 के साथ R/आपराधिक अपील संख्या 474 वर्ष 2019)
2. विष्णु बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (आपराधिक अपील संख्या 204 वर्ष 2021)
3. पिंटू गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (आपराधिक अपील संख्या 4083 वर्ष 2017)

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेन्द्र ठाकर
माननीय न्यायमूर्ति अजीत सिंह

1. यह जेल अपील अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश/एससी/एसटी (पी.ए.) अधिनियम, गाजीपुर द्वारा मुकदमा अपराध संख्या 468/2013, थाना एल्हापुर, जिला-गाजीपुर से उत्पन्न एस.एस.टी. संख्या 12/2014 (राज्य बनाम राम अवतार उर्फ गणेश) अन्तर्गत धारा 302 भा0दं0सं0 और धारा 3(2)वी एससी/एसटी अधिनियम में दिनांक 22.11.2016 को पारित निर्णय के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है, जिसके द्वारा उसे धारा 302 भा0दं0सं0 के अंतर्गत दोषी करार देते हुए आजीवन कारावास और 10,000/- रुपये के जुर्माने तथा धारा 3(2)वी एससी/एसटी अधिनियम के अंतर्गत आजीवन कारावास और 10,000/- रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई गई है और जुर्माना अदा न करने की स्थिति में अभियुक्त को तीन माह का अतिरिक्त कारावास भुगतना होगा। दोनों सजाएं साथ-साथ चलेंगी।

2. अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान न्यायमित्र श्री बृज राज और राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए. को सुना गया।

3. अभिलेखों से संक्षिप्त तथ्य यह प्राप्त हुए कि एक प्रथम सूचना रिपोर्ट मुकदमा अपराध संख्या 468/2013 धारा 302 भा0दं0सं0 व धारा 3(2)वी एससी/एसटी एक्ट के अन्तर्गत थाना दुल्हपुर , जिला गाजीपुर में दर्ज कराई गई थी। एफआईआर में आरोप लगाया गया था कि 19.12.2013 को सूचनाकर्ता की पत्नी लालती देवी गांव के बाहर लहसुन के खेत में निराई कर रही थी। लगभग 1:00 बजे उसी गांव का निवासी राम अवतार उर्फ गणेश वहां पहुंचा और सूचनाकर्ता की पत्नी पर कुदाल से हमला करने लगा। उसी समय वादी भी भल्लू राम पुत्र मुखराम के साथ वहां पहुंच गया और उन्हें देखकर अभियुक्त राम अवतार उर्फ गणेश कुदाल लेकर मौके से भाग गया। जब वादी अन्य लोगों के साथ घटनास्थल पर पहुंचा तो उसने पाया कि उसकी घायल पत्नी की घटनास्थल पर ही मृत्यु हो गई थी। शिकायतकर्ता द्वारा शोर मचाने पर अन्य ग्रामीण घटनास्थल पर पहुंचे तथा अपनी पत्नी के शव को वहां छोड़कर शिकायतकर्ता ने मामले की सूचना पुलिस को दी।

4. जांच शुरू होने पर, जांच अधिकारी ने घटनास्थल का निरीक्षण किया, गवाहों के बयान दर्ज किए, साइट प्लान तैयार किया और जांच पूरी होने के बाद धारा 302 भा0दं0सं0 और धारा 3(2)वी एससी/एसटी एक्ट के तहत विद्वान मजिस्ट्रेट को आरोप पत्र प्रस्तुत किया। विद्वान मजिस्ट्रेट ने आरोपी को तलब किया और उसे सत्र न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया क्योंकि प्रथम दृष्टया आरोप धारा 302 भा0दं0सं0 और 3(2)वी एससी/एसटी एक्ट के तहत अपराध के लिए थे।

5. सम्मन किए जाने पर आरोपी-अपीलकर्ता ने खुद को निर्दोष बताया और मुकदमा चलाए जाने की मांग की। विद्वान सत्र न्यायाधीश ने धारा 302 भा0दं0सं0 और 3(2)वी एससी/एसटी अधिनियम के तहत आरोप तय किए।

6. मुकदमा शुरू हुआ और अभियोजन पक्ष ने 8 गवाहों की जांच की जो इस प्रकार हैं:

1	राजेन्द्र राम	पीडब्ल्यू 1
2	गुल्लू राम	पीडब्ल्यू 2
3	रामअधार	पीडब्ल्यू 3
4	डॉ0 तारकेश्वर	पीडब्ल्यू 4
5	हेड कांस्टेबल हीरा राम	पीडब्ल्यू 5
6	राम सिंह	पीडब्ल्यू 6
7	डॉ0 प्रभाकर राम	पीडब्ल्यू 7
8	खलीकुजमा	पीडब्ल्यू 8

7. प्रत्यक्ष कथन के समर्थन में निम्नलिखित दस्तावेज दाखिल किए गए और सिद्ध किए गए:

1	लिखित रिपोर्ट	प्रदर्श क-1
2	पंचायतनामा	प्रदर्श क-2
3	पोस्टमार्टम रिपोर्ट	प्रदर्श क-3
4	चिक एफआईआर	प्रदर्श क-4
5	जी.डी. की प्रति	प्रदर्श क-5
6	घटनास्थल से खून से व सादा मिट्टी	प्रदर्श क-6
7	साइट प्लान	प्रदर्श क-7
8	आरोप पत्र	प्रदर्श क-8
9	सी.एम.ओ. को पत्र	प्रदर्श क-9
10	प्रतिसार निरीक्षक	प्रदर्श क-10
11	चालान लाश	प्रदर्श क-11
12	पुलिस फॉर्म 379	प्रदर्श क-12
13	स्पेशिमेन स्टाम्प	प्रदर्श क-13

8. मुकदमे के अंत में और अभियुक्त के बयानों को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के तहत दर्ज करने और अभियोजन पक्ष और बचाव पक्ष की ओर से दलीलें सुनने के बाद, विद्वान सत्र न्यायाधीश ने अभियुक्त-अपीलकर्ता को ऊपर वर्णित अनुसार दोषी ठहराया।

9. अभियुक्त-अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने दलील दी कि उन्होंने कभी भी अवर न्यायालय या इस न्यायालय के समक्ष जमानत के लिए आवेदन नहीं किया। उन्होंने आगे दलील दी कि अभियुक्त मानसिक रूप से अस्वस्थ था और वह 2014 से मानसिक रोग के लिए मानसिक चिकित्सालय वाराणसी में उपचाराधीन था। घटना न तो पूर्व नियोजित थी और न ही पूर्व नियोजित थी और यह क्षणिक आवेश में घटित हुई। अभियुक्त का मृतक की हत्या करने का कोई इरादा नहीं था। उन्होंने यह भी दलील दी कि जांच अधिकारी ने अपने बयान में यह प्रमाणित किया है कि अभियुक्त 'कुशवाहा' जाति का था, अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति वर्ग का नहीं था। उन्होंने पीडब्लू1 रामाधार पुत्र मोसफिर का बयान धारा 161 दं0प्र0सं0 के तहत दर्ज किया , जिसमें उसने स्पष्ट रूप से कहा कि उसने अभियुक्त को ' कुदाल ' के साथ भागते देखा था । उसने उसे पकड़ने की कोशिश की लेकिन अभियुक्त भागने में सफल रहा। उसने यह भी गवाही दी कि उसने अभियुक्त को मृतक की हत्या करते नहीं देखा। पी.डब्लू.2 गुल्लू राम ने बयान दिया है कि न तो उसने अभियुक्त को हत्या करते देखा था और न ही अभियुक्त द्वारा प्रयुक्त अपशब्द सुने थे।

10. अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि जहां तक एससी/एसटी अधिनियम, 1989 की धारा 3(2)(v) के तहत अपराध के होने का संबंध है, विद्वान सत्र न्यायाधीश ने आरोपी को इस तथ्य के कारण दोषी ठहराया कि पीड़ित अनुसूचित जाति समुदाय से संबंधित व्यक्ति था, हालांकि मृतक की जाति के कारण अपराध किए जाने के संबंध में कोई आरोप नहीं थे और ऐसा कोई अपराध किए जाने का आरोप नहीं था जो

एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3(2)(v) के प्रावधान को आकर्षित करता हो।

11. राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने दलील दी है कि मृतक अनुसूचित जाति समुदाय से है और विद्वान ट्रायल जज के फैसले को सिर्फ़ इसलिए गलत नहीं ठहराया जा सकता क्योंकि सूचना देने वाले ने अत्याचार के बारे में चुप्पी साध रखी है। दलील दी गई है कि घटना मृतक की जाति के कारण हुई। यह भी दलील दी गई है कि किसी खास जाति के व्यक्ति पर कोई भी हमला अपराध होगा। राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने दलील दी है कि आरोपी ने मृतक की हत्या इसलिए की क्योंकि वह निचले तबके से थी और इसलिए धारा 3(2)वी एससी/एसटी अधिनियम के तहत दोषसिद्धि उचित है।

12. अभियुक्त-अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि मानसिक बीमारी की प्रकृति के संबंध में विचारण न्यायालय का दायित्व है कि वह कोड की धारा 329 के तहत जांच करे ताकि यह पता लगाया जा सके कि अभियुक्त-अपीलकर्ता अपना बचाव करने में सक्षम है या नहीं। धारा 329 दं0प्र0सं0 अनिवार्य है। विचारण न्यायालय को धारा 329 दं0प्र0सं0 के तहत जांच करनी चाहिए थी और उसके बाद ही आरोप तय करने और साक्ष्य दर्ज करने के साथ आगे बढ़ सकता था। धारा 329 (आई) दं0प्र0सं0 के अनुसार न्यायालय का कर्तव्य है कि वह मानसिक रूप से अस्वस्थ होने और अभियुक्त की खुद का बचाव करने में असमर्थता के ऐसे तथ्य की जांच करे। यदि रिकॉर्ड पर लाई गई सामग्री के आधार पर न्यायालय इस तरह संतुष्ट है, तो उसे तदनुसार निष्कर्ष दर्ज करना चाहिए और ऐसे मामले में परीक्षण को स्थगित करना होगा। धारा 329 दं0प्र0सं0 में निहित प्रावधान एक ऐसे व्यक्ति के खिलाफ मुकदमा आगे नहीं बढ़ाने के महत्वपूर्ण उद्देश्य की पूर्ति करते हैं, जो मानसिक रूप से अस्वस्थ होने के कारण खुद का बचाव करने में असमर्थ है। यह समझना कठिन नहीं है कि ऐसी आवश्यकता अनिवार्य प्रकृति की होगी। किसी विकृत मानसिकता वाले व्यक्ति के खिलाफ कार्यवाही करना और उसे आपराधिक अपराध का दोषी ठहराना भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत निहित गारंटी का स्पष्ट रूप से उल्लंघन होगा, जिसके अनुसार कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया का पालन किए बिना किसी भी व्यक्ति को उसके जीवन या स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जाएगा।

13. अभियुक्त-अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि भले ही अभियुक्त ने ऐसी दलील न दी हो और भले ही बचाव पक्ष के अधिवक्ता ने इस पर गौर करने की जहमत न उठाई हो, फिर भी अगर दस्तावेजों के रूप में रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री अपीलकर्ता-अभियुक्त की मानसिक स्थिति के बारे में कुछ बताती है, तो यह विचारण न्यायालय का कर्तव्य है कि वह सामग्री पर गौर करे और धारा 329 दं0प्र0सं0 के प्रावधानों के अनुसार अभियुक्त की बचाव में उतरने की क्षमता का पता लगाए । विचारण न्यायालय की संतुष्टि को कम से कम शब्दों में दर्ज किया जाना चाहिए। धारा 329 के प्रावधान एक बेकार औपचारिकता नहीं है, बल्कि अभियुक्त व्यक्ति को एक निष्पक्ष सुनवाई सुनिश्चित करने के लिए गणना की गई है जो स्पष्ट रूप से एक पागल व्यक्ति को नहीं दी जा सकती है और उन प्रावधानों का पालन न करने पर मुकदमे को एक तमाशा में बदल दिया

जाना चाहिए। इसलिए, न्यायालयों को अपीलकर्ता/अभियुक्त की संदिग्ध मानसिक स्थिति के मामले से निपटने से बचना चाहिए।

14. इस न्यायालय ने इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर गौर करने के बाद, जो तथ्य रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री से स्पष्ट है, वह यह है कि अभियुक्त और मृतक के बीच दुश्मनी थी और मृतक और अभियुक्त के बीच आपराधिक मुकदमा चला था। रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री साक्ष्य से यह भी पता चलता है कि अभियुक्त द्वारा मृतक पर हमला पूर्व नियोजित नहीं था और यह मृतक और अभियुक्त के बीच अचानक हुए विवाद में हुआ था और अभियुक्त का मृतक को मारने का कोई इरादा नहीं था। अभियुक्त द्वारा पहुंचाई गई चोट प्रकृति के सामान्य क्रम में मृत्यु का कारण बनने के लिए पर्याप्त थी या नहीं, इसका निर्धारण मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर किया जाना चाहिए । इस मामले में, केवल एक चोट महत्वपूर्ण अंग पर लगी थी, जो घातक साबित हुई। घटना के दौरान लगी चोट निर्णायक कारक नहीं है, लेकिन महत्वपूर्ण बात यह है कि घटना अचानक और बिना सोचे-समझे हुई होगी और अपराधी ने गुस्से में आकर काम किया होगा। बेशक, अपराधी ने कोई अनुचित लाभ नहीं उठाया होगा या क्रूर या असामान्य तरीके से काम नहीं किया होगा। जहां, अचानक झगड़े के दौरान, कोई व्यक्ति क्षण की उत्तेजना में एक ऐसा उपकरण उठा लेता है जो हथियार के रूप में कार्य करता है और जिससे चोटें आती हैं, जिनमें से एक घातक साबित होती है, वह भारतीय दंड संहिता की धारा 300 में दिए गए अपवाद के लाभ का हकदार होगा।

15. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई प्रतिद्वंद्वी दलीलों पर विचार करने के बाद, हम आरोपी-अपीलकर्ता की मानसिक स्थिति के बारे में सत्र न्यायाधीश के निष्कर्ष से सहमत हैं, क्योंकि हमें कोई विश्वसनीय सबूत नहीं मिला है कि आरोपी मानसिक रूप से अस्वस्थ था। गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा गुजरात राज्य बनाम मंजूबेन के मामले में आर/क्रिमिनल कन्फर्मेशन केस संख्या 1/2018 और आर/क्रिमिनल अपील संख्या 474/2019 के निर्णय से हमारा मत पुष्ट होता है।

16. हमारे सामने ऐसे तथ्य हैं जो यह साबित करते हैं कि अपीलकर्ता का मृतक की हत्या करने का कोई पूर्व इरादा नहीं था। चोटों से पता चलता है कि यह जानबूझकर नहीं किया गया था , बल्कि यह बिना किसी इरादे के हत्या थी। आरोपी-अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने बताया है कि आरोपी-अपीलकर्ता 10 साल से अधिक समय से जेल में है ।

17. उपरोक्त चर्चा से यह स्पष्ट है कि अपीलकर्ता का मृतक की मृत्यु कारित करने का कोई इरादा नहीं था। हालाँकि, उसे पता था कि कथित हथियार के इस्तेमाल से मृत्यु होने की संभावना है और उसने जानबूझकर शारीरिक चोटें पहुँचाईं , जिससे मृत्यु होने की संभावना थी और उपरोक्त के मद्देनजर, अपीलकर्ता के खिलाफ धारा 304 भा0दं0सं0 के भाग-II के तहत मामला बनता है और उसे धारा 302 भा0दं0सं0 के तहत दंडनीय अपराध का दोषी नहीं पाया जाता है।

18. आरोपी-अपीलकर्ताओं के खिलाफ धारा 3(2)वी एससी/एसटी एक्ट के तहत अपराध नहीं बनता है क्योंकि अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989

की धारा 3(2)वी के तहत अपराध किए जाने का कोई सबूत नहीं था। न तो प्रथम सूचना रिपोर्ट और न ही अभियोजन पक्ष के गवाहों की मौखिक गवाही से दूर-दूर तक यह पता चलता है कि अपराध केवल इस आधार पर किया गया है कि मृतक एक विशेष समुदाय से संबंधित है। आपराधिक अपील संख्या 204/2021 में 28.1.2021 को निर्णीत **विष्णु बनाम उ0प्र0 राज्य** के मामले में और आपराधिक अपील संख्या 4083/2017 में 28.7.2022 को निर्णीत **पिंटू गुप्ता बनाम उ0प्र0 राज्य** के मामले में निर्णय भी आरोपी-अपीलकर्ताओं की मदद करेगा।

19. मामले को देखते हुए आरोपी की सजा को धारा 302 भा0दं0सं0 से बदलकर 304 भाग-II भा0दं0सं0 किया जाता है।

20. इन सभी तथ्यों पर विचार करते हुए यह उचित एवं सही होगा कि अभियुक्त को उसके द्वारा पहले से जेल में बिताई गई अवधि के बराबर की सजा दी जाए तथा जुर्माना भी लगाया जाए।

21. परिणामस्वरूप वर्तमान अभियुक्त की सजा को धारा 302 भा0दं0सं0 से धारा 304 भाग-II में परिवर्तित किया जाता है और उसे धारा 304 भाग-II के तहत दोषी ठहराया जाता है, क्योंकि वह पहले ही जेल में सजा काट चुका है और उस पर कोई जुर्माना नहीं लगाया जाता है क्योंकि अपीलकर्ता एक गरीब व्यक्ति है और वह अपने लिए अधिवक्ता भी नहीं रख सकता है। विचारण न्यायालय द्वारा आदेशित जुर्माना रद्द किया जाता है।

22. श्री बृज राज, विद्वान न्यायमित्र ने अपीलार्थी राम अवतार उर्फ गणेश की ओर से इस अपील पर बहस की है और उन्हें पारिश्रमिक के रूप में 15,000/- रुपये का भुगतान किया जाएगा।

23. कार्यालय को निर्देश दिया जाता है कि वह अवर न्यायालय के रिकॉर्ड के साथ इस निर्णय की एक प्रति अवर न्यायालय को सूचनार्थ तथा आवश्यक अनुपालन हेतु प्रेषित करे।

(2023) 3 ILRA 659

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 15.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती रेनू अग्रवाल,

आपराधिक अपील संख्या 476/1994

देवी दयाल एवं अन्य। ...अपीलकर्तागण

बनाम

यूपी राज्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्तागण: जे.पी.मौर्य, अरूण कुमार शुक्ल, जयन्त सिंह तोमर, संतोष कुमार कन्नौजिया, शकील अहमद, उपेन्द्र शर्मा, वरुण

अधिवक्ता प्रतिवादी: शासकीय अधिवक्ता

ए. अपराधिक कानून- भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 394, 397, 366 और 376 - अभियोजन पक्ष के साक्ष्य को पी.डब्ल्यू. 2, 3 और 4 द्वारा समर्थन मिला, जो अभियोजिका के भाई और माता-पिता हैं, क्योंकि उसे आरोपी देवी दयाल और अम्बिका पासी ने उनके सामने अपहरण किया और बाकी आरोपियों ने घरेलू सामान, गहने और नकद लूट लिया, गवाह अशिक्षित हैं और गवाही घटना के तीन वर्ष बाद दर्ज की गई थी और गवाहों की गवाही समय के अंतराल में दर्ज की गई, इसलिए भिन्नताएँ होना स्वाभाविक हैं। (पैराग्राफ 32, 35)

बी. अपराधिक कानून- भारतीय दंड संहिता, 1860 - अभियोजन पक्ष ने घटना स्थल को प्रमाणित किया क्योंकि अभियोजिका ने स्वयं उस जगह को बताया जहां सभी आरोपियों ने उसका बलात्कार किया - घटना स्थल को विवेचक ने नक्शा नजरी में भी दिखाया है, इसलिए घटना स्थल को लेकर कोई संदेह नहीं है - पी.डब्ल्यू.7 रामदयाल ने साक्ष्य दिया कि वादी और आरोपी के पिता के बीच जमीन को लेकर दुश्मनी थी और यह भी कि देवी दयाल के पिता ने अभियोजिका को अपनी बहू के रूप में स्वीकार करने से इनकार कर दिया, तर्क स्वयं में विरोधाभासी हैं, अगर उनके बीच जमीन को लेकर मजबूत दुश्मनी है, तो यह संभव नहीं है कि वादी अपनी बेटी की शादी आरोपी से करे - डब्ल्यू.2 ने कहा कि शिकायतकर्ता और अपीलकर्ता के पिता के बीच दुश्मनी थी लेकिन इस संबंध में कोई कानूनी दस्तावेज नहीं पेश किया गया - इसलिए अपीलकर्ता का बचाव किसी ठोस सबूत से समर्थित नहीं है - विचारणीय न्यायालय का आदेश अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के साथ मेल खाता है, आयोजित - अपील खारिज। (पैराग्राफ 36, 38, 43)

अपील निरस्त। (ई-13)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. बलवंत सिंह & अन्य बनाम राज्य पंजाब, एआईआर 1997 सुप्रीम कोर्ट पृष्ठ 1080

2. गुरुचरण सिंह बनाम राज्य हरियाणा, 1973 एसीसी पृष्ठ 04

3. राज्य महाराष्ट्र बनाम चंद्रप्रकाश केवाल चंद जैन, जी एआईआर 1990 पृष्ठ 658

<u>**माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती रेनू अग्रवाल**</u>

वर्तमान आपराधिक अपील दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 374(2) के अंतर्गत, धारा 394, 397, 366 और 376 भा०द०स० के अंतर्गत, थाना मितौली, जिला लखीमपुर खीरी में दर्ज मुकदमा अपराध संख्या 170/1989 से उत्पन्न सत्र परीक्षण संख्या 73/1990 (राज्य बनाम देवी दयाल और 3 अन्य) में दिनांक 22.10.1994 को श्री जगदीश प्रसाद, विशेष/अपर सत्र न्यायाधीश, लखीमपुर खीरी द्वारा अपीलकर्ताओं को धारा 376/366 भा०द०स० के अंतर्गत दोषी ठहराते हुए और धारा 376 के अंतर्गत दस वर्ष के कठोर कारावास और धारा 366 के अंतर्गत और पाँच वर्ष के कठोर कारावास की सजा देते हुए पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध दायर की गई है। दोनों सजा एक साथ चलने का निर्देश दिया गया है।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय के दिशा-निर्देशों के अनुसार, पीड़िता का नाम प्रकट नहीं किया गया है। उसका नाम अक्षर "X" के रूप में संदर्भित किया गया है।

संक्षेप में मामले के तथ्यों को देखें तो, दिनांक 10/11.06.1989 की रात लगभग 12:00 बजे यानि मध्यरात्रि को, सूचनाकर्ता बुद्धा चमार अपनी पत्नी, अपनी बेटियों - गोदा और पीड़िता "X" और अपने बेटे राम प्रसाद के साथ अपने पुराने मकान के आंगन में सो रहा था और एक ढिबरी जला रखी थी, बंदूक और देशी पिस्तौल से लैस चार लोग घर में घुसे और उसकी बेटी पीड़िता "X" को उठाकर ले गए जिसकी उम्र लगभग 18 वर्ष थी। उसकी बेटी यानि पीड़िता "X" की चीख-पुकार पर उसकी पत्नी, उसकी बेटी गोदा और बेटा जग गए और उन्होंने देखा कि देवी दयाल, अर्जुन पासी, अंबिका पासी और फरीद खान नाम के अभियुक्त उसकी बेटी पीड़िता "X" का अपहरण

कर रहे थे जिसे देवी दयाल और अंबिका पासी द्वारा बंदूक की नोक पर ले जाया जा रहा था और अभियुक्त अर्जुन पासी और फरीद खान ने उसकी पत्नी और बेटी गोदा की नथ, सुतिया और पायल और कपड़े और 1,000/- रुपये सहित अन्य घरेलू सामान लूट लिए। जब उन्होंने शोर मचाया और गाँव के लोग एकत्र हुए तो अभियुक्त भाग निकले। उसने अपनी बड़ी बेटी पीड़िता "X" को खोजने की कोशिश की, जो लगभग एक घंटे पश्चात गांव के पूर्वी हिस्से से नदी पार करके गीले कपड़ों में आई। उसने पूरी कहानी बताई कि चारों लोग उसे पिराई नदी के पार ले गए और झाड़ियों में उसकी इच्छा के विरुद्ध बारी-बारी से बलात्कार किया और उसके साथ बलात्कार करने के पश्चात सभी फरार हो गए।

लिखित तहरीर के आधार पर, 11.06.1989 को प्राथमिकी दर्ज की गई और इसे धारा 394, 397, 366 और 376 भा०द०स० के अंतर्गत थाना मितौली, जिला लखीमपुर खीरी में मुकदमा अपराध संख्या 170/1989 के रूप में दर्ज किया गया। मामले की जांच उप-निरीक्षक देवीदीन सिंह को सौंपी गई, जिन्होंने पीड़िता "X" का धारा 161 द०प्र०स० के अंतर्गत बयान दर्ज किया और उसका 11.06.1989 को शाम करीब 5:15 बजे अ०सा०-7 डॉ. इंद्रा चोपड़ा द्वारा चिकित्सीय परीक्षण किया गया। डॉक्टर को उसके गुप्तांगों, बाएं उदर या जांघ पर किसी प्रकार की चोट का कोई निशान नहीं मिला। उसकी आंतरिक जांच करने पर योनिच्छद पुराना फटा हुआ पाया गया। जांच अधिकारी परिवादी के घर गया और परिवादी से पूछताछ की और उस स्थान का दौरा किया जहां बलात्कार किया गया था और घटनास्थल के निरीक्षण के पश्चात, नक्शा नज़री प्रदर्श क-2 के रूप में तैयार किया, ढिबरी बरामद की और उसका बरामदगी का फर्द तैयार किया और इसे प्रदर्श क-4 के रूप में प्रमाणित किया। जांच अधिकारी ने पीड़िता "X" का पेटीकोट लिया, और उसका बरामदगी का फर्द तैयार किया जिसे प्रदर्श क-5 के रूप में प्रमाणित किया। 13.06.1989 को अभियुक्त अर्जुन पासी और फरीद खान को गिरफ्तार किया। पर्याप्त साक्ष्य एकत्र करने के उपरांत समस्त आरोपित व्यक्तियों के विरुद्ध धारा 394 और 376 भा०द०स० के अंतर्गत आरोप पत्र दिनांक 23.06.1989 को प्रदर्श क-6 के रूप में प्रस्तुत किया।

अभियुक्त विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुए और उन पर धारा 394/376 भा०द०स० के अंतर्गत आरोप तय किए गए और उन्हें अभियुक्त-अपीलकर्ताओं को पढ़कर सुनाया गया। अभियुक्त अपीलकर्ताओं ने सभी आरोपों से इनकार कर दिया और विचारण की मांग की।

वाद को साबित करने के लिए, अभियोजन पक्ष ने अ०सा०-1 पीड़िता 'X' से पूछताछ की, जिसने पूरी कहानी सुनाई। अ०सा०-2 राम प्रसाद, अभियोक्त्री का भाई, अ०सा०-3 बुद्धा, परिवादी, जिसने लिखित तहरीर को प्रदर्श क-1 के रूप में साबित किया, और अ०सा०-4 श्रीमती लक्ष्मी, परिवादी की पत्नी, जिसने आरोपियों द्वारा लूटपाट के तथ्यों और पीड़िता 'X' के अपहरण की पुष्टि की। अ०सा०-5 उप-निरीक्षक, देवीदीन सिंह, जिन्होंने मामले की जांच की थी और नक्शा नज़री को प्रदर्श क-2 और प्रदर्श क-3 के रूप में, ढिबरी की फर्द को प्रदर्श क-4 के रूप में, पेटीकोट की बरामदगी की फर्द को प्रदर्श क-5 के रूप में और आरोप पत्र को प्रदर्श क-6 के रूप में साबित किया। अ०सा०-6 हेड कांस्टेबल शिव मंगल सिंह, जिन्होंने लिखित तहरीर के आधार पर चिक रिपोर्ट तैयार की थी और उसे प्रदर्श क-7 के रूप में

साबित किया था और जी.डी. संख्या 12 में प्रविष्टि के आधार पर मामले को प्रदर्श क-8 के रूप में दर्ज किया था। उन्होंने यह भी कहा कि उन्होंने पीड़िता 'X' को कॉन्स्टेबल बालक राम के साथ चिकित्सीय परीक्षण के लिए भेजा था। अ०सा०-7 डॉ. इंद्रा चोपड़ा ने, जिन्होंने पीड़िता 'X' का चिकित्सीय परीक्षण किया था, चिकित्सीय रिपोर्ट को प्रदर्श क-9 के रूप में साबित किया।

अभियोजन पक्ष के साक्ष्यों के समाप्त होने के पश्चात, अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के बयान धारा 313 द०प्र०स० के अंतर्गत दर्ज किए गए। सभी अभियुक्त-अपीलकर्ताओं ने अभियोजन पक्ष के आरोपों से इंकार किया और कहा कि उन्हें शत्रुतावश इस मामले में झूठा फंसाया गया है। अभियुक्त देवी दयाल ने कहा कि उसके परिवार और बुद्धा के परिवार के मध्य घर और पेड़ को लेकर दुश्मनी थी। यह भी कहा गया कि परिवादी अपनी बेटी पीड़िता 'X' के विवाह उससे कराना चाहता था, लेकिन उसने इनकार कर दिया था क्योंकि पीड़िता 'X' का चरित्र अच्छा नहीं था, इसलिए उसे इस मामले में झूठा फंसाया गया है। अभियुक्त अर्जुन पासी ने कहा कि कथित घटना के दिन वह अपनी बेटी के विवाह में व्यस्त था। अभियुक्त अंबिका पासी ने कहा कि घटना के दिन वह सह-अभियुक्त अर्जुन पासी की बेटी के विवाह में था। वह सह-अभियुक्त अर्जुन पासी का भतीजा है।

आरोपियों को प्रतिरक्षा साक्षी प्रस्तुत करने का अवसर दिया गया और उन्होंने निम्नलिखित प्रतिरक्षा साक्षीगण प्रस्तुत किए:

103. प्र०सा०-1 रशीद।

प्र०सा०-2 राम दयाल।

प्र०सा०-3 राम किशुन।

प्र०सा०-1 राशिद ने कहा कि फरीद खान 10:00 बजे के बाद से 10/11.06.1989 की आधी रात को उसकी भतीजी परवीन के विवाह में सम्मिलित होने के लिए उसके घर पर था।

प्र०सा०-2 राम दयाल ने कहा कि उनका घर परिवादी बुद्धा के घर के बगल में था, जो अभियुक्त देवी दयाल के भूखंड को हड़पना चाहता था और उसने यह भी कहा कि परिवादी अपनी बेटी पीड़िता 'X' का विवाह देवी दयाल से कराना चाहता था, लेकिन उसने(देवी दयाल ने) उसकी खराब छवि के कारण विवाह से इनकार कर दिया था, इसलिए देवी दयाल को वर्तमान वाद में झूठा फंसाया गया है।

प्र०सा०-3 राम किशुन ने कहा है कि लगभग पांच साल पहले जेठ माह की सप्तमी को शनिवार के दिन वह अभियुक्त अर्जुन पासी की बेटी के विवाह में शामिल होने गया था और अर्जुन पासी और अंबिका पासी पूरी रात वहीं पर थे।

अदालत में प्रस्तुत साक्ष्यों के आधार पर, विद्वान विचारण न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के पास से कुछ भी बरामद नहीं हुआ है, इसलिए लूटपाट किए जाने का सिद्धांत विश्वसनीय नहीं है। प्रतिरक्षा साक्ष्य की समीक्षा करते हुए, विद्वान विचारण न्यायालय ने कहा कि फरीद खान धारा 313 द०प्र०स० के अंतर्गत उल्लिखित अन्यत्र उपस्थित होने के अभिवाक् को

साबित करने में विफल रहा। विद्वान विचारण न्यायालय ने यह भी कहा कि देवी दयाल का यह सिद्धांत कि उसे झूठा फंसाया गया क्योंकि परिवादी अपनी बेटी पीड़िता 'X' के विवाह देवी दयाल से कराना चाहता था और उसने शादी से इनकार कर दिया था, विश्वसनीय नहीं है, इसलिए प्र०सा०-2 राम दयाल का बयान अभियुक्त देवी दयाल को बचाने में सहायक नहीं है। प्र०सा०-3 राम किशुन के साक्ष्य पर भी न्यायालय ने भरोसा नहीं किया और यह पाया गया है कि अभियोजन पक्ष ने अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के विरुद्ध धारा 366 और 376 भा०द०स० के अंतर्गत लगाए गए आरोपों को सफलतापूर्वक स्थापित किया है। अतः, विद्वान विचारण न्यायालय ने धारा 366 और 376 भा०द०स० के अंतर्गत दोषसिद्धि का आदेश पारित किया और अभियुक्त-अपीलकर्ताओं को धारा 394 और 397 भा०द०स० के आरोपों से दोषमुक्त कर दिया।

दिनांक 22.10.1994 के निर्णय और आदेश से व्यथित होकर, दोषी अपीलकर्ताओं ने वर्तमान अपील दायर करके इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है।

अपीलकर्ताओं के लिए विद्वान अधिवक्ता श्री संतोष कुमार कन्नौजिया, राज्य-प्रतिवादी के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता-I श्री मनीष कुमार पांडे को सुना और अभिलेखों पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया।

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि विद्वान निचले न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश अभिलेख पर मौजूद साक्ष्यों के विपरीत है। अभियोजन का संस्करण चिकित्सीय साक्ष्य से पुष्ट नहीं होता है। अभियोजन की पूरी कहानी अत्यधिक असंभाव्य और अप्राकृतिक प्रतीत होती है, क्योंकि पीड़िता 'X' ने कहा है कि चार व्यक्तियों द्वारा सामूहिक बलात्कार के पश्चात, वह फिर नदी पार करके वापस आई। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि दंड अत्यधिक कठोर है, इसलिए विद्वान विचारण न्यायालय का निर्णय और आदेश रद्द किए जाने योग्य है।

इसके विपरीत, राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता-I ने यह प्रस्तुत करते हुए उपरोक्त तर्कों का पुरजोर विरोध किया है कि अभियोजन पक्ष ने ठोस साक्ष्यों सहित युक्तियुक्त संदेह से परे अपना वाद साबित किया है। सभी अभियुक्त-अपीलकर्ताओं की पहचान गवाहों द्वारा घटना के समय जल रही ढिबरी की रोशनी में की गई थी। चिकित्सीय साक्ष्यों ने धारा 376 भा०द०स० के अंतर्गत अपराध की पुष्टि की थी, अतः विद्वान विचारण न्यायालय का निर्णय और आदेश कायम रखे जाने योग्य है।

प्रारम्भ में ही, यहां यह उल्लेख करना आवश्यक है कि अभियुक्त-अपीलकर्ता संख्या 4 फरीद खान, कथित रूप से जिसकी मृत्यु 06.09.2018 को हो चुकी है, के विरुद्ध अपील आदेश दिनांक 24.11.2022 के अनुसार समाप्त कर दी गई है।

किसी भी नतीजे पर पहुंचने से पहले गवाहों के साक्ष्य को देखा जाना है।

अ०सा०-1 पीड़िता 'X' ने कहा है कि अभियुक्त देवी दयाल उसके गांव में रहता है। अभियुक्त अर्जुन पासी और अंबिका पासी मानहन गांव में रहते थे। अभियुक्त फरीद मिस्त्री मितौली में रहता है। घटना की रात, जब वह आंगन में अपनी बहन गोदा के साथ चारपाई पर सो रही थी और उसकी मां आंगन में दूसरी चारपाई पर सो रही थी और अन्य परिवार के सदस्य चटाई पर सो रहे थे और उसके पिता घर के दरवाजे के बाहर सो रहे थे, तो अभियुक्त-अपीलकर्ता देवी दयाल, अर्जुन पासी, अंबिका पासी और फरीद मिस्त्री उनके घर में घुसे उसका बलपूर्वक अपहरण कर लिया। देवी दयाल और अंबिका पासी बंदूक से लैस थे, अर्जुन पासी आधे बोर की बंदूक से लैस था और फरीद मिस्त्री देशी पिस्तौल से लैस था। देवी दयाल और अंबिका पासी उसे पिराई नदी के पार ले गए और उसे *ढाक (पलाश)* और *खजूरिया* के पेड़ के नीचे फेंक दिया और सभी चार अभियुक्त-अपीलकर्ताओं ने एक-एक करके उसके साथ बलात्कार किया। जब वे चले गए, तो वह खुद ही नदी पार करके अपने घर वापस आई। अभियुक्त-अपीलकर्ताओं ने बटुआ, आभूषण, सुतिया, नथ, 1000/- रुपये और अन्य घरेलू सामान लूट लिए।

अ०सा०-2 रामप्रसाद ने शपथपूर्वक कहा है कि घटना की रात उसकी दोनों बहनें गोदा और पीड़िता "X" आंगन में खाट पर सो रही थीं। वह भी पास में दूसरी चारपाई पर सो रहा था। उसके पिता कॉलोनी के कमरे में सो रहे थे और दरवाजे पर ढिबरी जल रही थी। उसी समय अभियुक्त-अपीलकर्ता घर में घुसे और अभियुक्त देवी दयाल और अंबिका पासी ने उसकी बहन पीड़िता 'X' का अपहरण कर लिया, जबकि अभियुक्त फरीद और अर्जुन पासी घर का सामान, आभूषण और नकदी ले गए और अभियुक्त देवी दयाल और अंबिका पासी बंदूक से लैस थे, अर्जुन पासी जो आधे बोर की बंदूक से और फरीद जो देशी पिस्तौल से लैस था सभी गांव के पूर्व दिशा की ओर चले गए। उसकी बहन पीड़िता 'X' एक घंटे पश्चात वापस आई और उसे पूरी कहानी सुनाई।

अ०सा०-3 बुद्धा, जो इस मामले के परिवादी हैं, ने अ०सा०-1 और अ०सा०-2 के बयानों की पुष्टि की।

अ०सा०-4 लक्ष्मी, जो पीड़िता 'X' की मां है, ने अभियोजन संस्करण और अ०सा०-1, अ०सा०-2 और अ०सा०-3 के बयानों की पुष्टि की। उसने यह भी कहा कि उसने सभी आरोपियों को ढिबरी की रोशनी में पहचाना और चीख पुकार पर सूरज, बदलू, जयलाल और अन्य गांववाले घटनास्थल पर पहुंचे। यह भी कथन किया गया है कि गवाह जयलाल आरोपियों के साथ मिला हुआ है और गवाह सूरज की मृत्यु हो चुकी है।

अ०सा०-5 उप निरीक्षक देवीदीन सिंह, जो इस मामले के जांच अधिकारी हैं, ने शपथपूर्वक कहा है कि एफ.आई.आर. दर्ज करने के पश्चात, उन्होंने मामले की जांच शुरू की। उन्होंने हेड मोहर्रिर शिव मंगल सिंह का बयान दर्ज किया और परिवादी के घर का दौरा किया, अभियुक्त-अपीलकर्ताओं देवी दयाल, अर्जुन पासी, अंबिका पासी और फरीद के घर की तलाशी ली लेकिन न तो कोई अभियुक्त गिरफ्तार हुआ और न ही उनके घर से कोई चोरी की संपत्ति बरामद हुई। इसके पश्चात, उन्होंने उस स्थान का दौरा किया जहां आरोपियों ने पीड़िता के साथ बलात्कार किया और नक्शा नज़री तैयार किया। उन्होंने ढिबरी और पीड़िता 'X' का पेटीकोट बरामद किया और

उनकी बरामदगी का फर्द अलग-अलग तैयार किया और न्यायालय में उन्हें क्रमशः प्रदर्श क-4 और प्रदर्श क-5 के रूप में साबित किया और सभी संबंधित साक्ष्य एकत्रित करने के पश्चात, उन्होंने आरोप-पत्र प्रस्तुत किया, जिसे उन्होंने न्यायालय में प्रदर्श क-6 के रूप में साबित किया।

अ०सा०-6 हेड कांस्टेबल शिव मंगल सिंह, जिन्होंने एफ.आई.आर. को प्रदर्श क-7 और जी.डी. नंबर 12 को प्रदर्श क-8 के रूप में साबित किया और सी.एम.ओ. को पत्र लिखा और पीड़िता 'X' को कांस्टेबल 298 बालक राम और उसके माता-पिता के साथ चिकित्सा परीक्षण के लिए भेजा।

अ०सा०-7 डॉ. इंद्रा चोपड़ा, जिन्होंने कहा कि उन्होंने 11.06.1989 को पीड़िता 'X' का चिकित्सीय परीक्षण किया और चिकित्सीय रिपोर्ट को साबित किया, जिसमें योनिच्छद पुराना फटा हुआ पाया गया। गर्भाशय आकार में सामान्य था। योनिक स्मीयर लिया और हिस्टोपैथोलॉजिकल परीक्षण के लिए भेजा। वह बलात्कार किये जाने के बारे में कोई राय नहीं दे सकीं और कहा कि पीड़िता 'X' संभोग या इस इस तरह की क्रिया की आदी थी और चिकित्सीय रिपोर्ट को प्रदर्श क-9 के रूप में साबित किया।

प्र०सा०-1 राशिद, जिसने कहा है कि फरीद खान 10/11.06.1989 के मध्य की रात्रि को 10:00 बजे से उसकी भतीजी परवीन के विवाह में शामिल होने के लिए उसके घर पर था।

प्र०सा०-2 राम दयाल ने कहा कि उनका घर परिवादी बुद्धा के घर के बगल में था और वह अभियुक्त देवी दयाल का भूखंड हड़पना चाहता था और आगे कहा कि परिवादी अपनी बेटी पीड़िता 'X' के विवाह देवी दयाल से कराना चाहता था और देवी दयाल के पिता ने इंकार कर दिया, इसलिए उन्हें इस मामले में झूठा फंसाया गया है।

प्र०सा०-3 राम किशुन ने कहा कि लगभग पांच साल पहले जेठ माह की सप्तमी को शनिवार के दिन, वह अभियुक्त अर्जुन पासी की बेटी के विवाह में गया था और पूरी रात अर्जुन पासी और अंबिका पासी वहीं रहे।

अभियोजन पक्ष की कहानी के अनुसार, पीड़िता 'X' और उसकी छोटी बहन गोदा आंगन में एक ही चारपाई पर सो रही थीं और उसका भाई पास में दूसरी चारपाई पर सो रहा था। पीड़िता 'X' की मां और अन्य बच्चे भी पास में चटाई पर सो रहे थे जब आरोपियों ने घर में प्रवेश किया और पीड़िता 'X' का अपहरण कर लिया और पिराई नदी के पार ले गए। जहां तक लूटपाट का प्रश्न है, विद्वान विचारण न्यायालय ने पाया कि अभियुक्तों के कब्जे से कुछ भी बरामद नहीं हुआ, इसलिए किसी भी अभियुक्त को धारा 394 और 397 भा०द०स० के अंतर्गत दोषी नहीं ठहराया गया। जहां तक बलात्कार की घटना का सवाल है, बलात्कार चार व्यक्तियों द्वारा किया गया था, इसलिए पीड़िता 'X' की तरफ से संघर्ष की अधिक संभावना नहीं है। अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता की ओर से तर्क दिया गया कि कथित तौर पर चार अपीलकर्ताओं द्वारा अभियोक्त्री 'X' के साथ बलात्कार किया गया, लेकिन अभियोक्त्री के शरीर पर चोट के कोई निशान नहीं पाए गए। अभियोजन पक्ष के संस्करण के अनुसार, उसे *पलाश* के वृक्ष के नीचे फेंका गया और बलात्कार किया गया। अगर उसने कोई प्रतिरोध किया होता, तो अभियोक्त्री की पीठ पर कुछ चोटें अवश्य

होतीं। अ०सा०-7 डॉ. इंद्रा चोपड़ा ने अभियोक्त्री के शरीर पर कोई बाहय या आंतरिक चोटें नहीं पाई थीं। यह तर्क औचित्यहीन है। यह नहीं कहा जा सकता कि जब भी प्रतिरोध किया जाता है, तो अभियोक्त्री के शरीर पर कुछ चोटें आनी ही चाहिए। अपीलकर्ता संख्या में चार थे और एक अठारह वर्षीया पीड़िता लड़की से यह उम्मीद नहीं की जा सकती थी कि वह ऐसा प्रतिरोध करेगी जिससे उसके शरीर पर चोटें आएं। यह कहना भी गलत है कि कोई चोट नहीं थी। जैसा कि अ०सा०-7 डॉ. इंद्रा चोपड़ा द्वारा उल्लेख किया गया है कि मौजूद योनिच्छद पुराना फटा हुआ था। इस संबंध में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **बलवंत सिंह और एक अन्य बनाम पंजाब राज्य** एआईआर 1997 सुप्रीम कोर्ट पृष्ठ 1080 में कहा कि यदि अभियोक्त्री प्रतिरोध करने में असफल होती है तो बलात्कार के दौरान उसके शरीर पर चोटों का सदैव पाया जाना आवश्यक नहीं है। सर्वोच्च न्यायालय ने **गुरचरण सिंह बनाम हरियाणा राज्य 1973 एसीसी** पृष्ठ 04 में भी कहा है कि वर्तमान मामले में अभियोक्त्री की ओर से हिंसक और कड़े प्रतिरोध का अभाव वास्तव में सरासर भीरुता के कारण अपरिहार्य के प्रति असहाय समर्पण का संकेत भी दे सकता है। अतः, अभियोक्त्री के शरीर पर चोटों की अनुपस्थिति मात्र, अभियोजन पक्ष के सम्पूर्ण वाद को खारिज नहीं करती।

यहां यह उल्लेख करना भी प्रासंगिक है कि अभियोक्त्री "X" ने अभियोजन के संस्करण की पूर्णतयाः पुष्टि की। यह भी स्पष्ट है कि जान से मारने की धमकी के तहत पीड़िता के साथ बलात्कार किया गया। अभियोजन पक्ष के संस्करण के अनुसार, चारों आधे बोर की बंदूक और देशी पिस्तौल से लैस थे। इसलिए, अभियोक्त्री से प्रतिरोध या किसी भी प्रकार के संघर्ष की उम्मीद नहीं की जा सकती।

अपीलकर्ताओं की ओर से यह भी प्रस्तुत किया गया है कि घटना का कोई स्वतंत्र गवाह नहीं है। यहां यह उल्लेख करना भी उचित होगा कि पीड़िता को चारों अभियुक्त द्वारा पेराई नदी के पार ले जाया गया था। इस घटना का कोई स्वतंत्र गवाह नहीं हो सकता, हालांकि अभियोक्त्री कटघरे में उपस्थित हुई और एफ.आई.आर. के संस्करण की पूर्णतयाः पुष्टि की। अभियोक्त्री के बयान को केवल इसलिए अविश्वसनीय नहीं माना जा सकता क्योंकि कोई पुष्टिकारक साक्ष्य नहीं है। इस संबंध में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **महाराष्ट्र राज्य बनाम चंद्रप्रकाश केवल चंद जैन** एआईआर 1990 पृष्ठ 658 में कहा है कि "सामान्यतः एक भारतीय महिला अपनी प्रतिष्ठा को खतरे में डालकर झूठे बलात्कार के आरोप लगाने में बहुत संकोच करेगी, जब तक कि उसके पास ऐसा करने के लिए अत्यधिक दृढ पूर्वाग्रह या कारण न हो। इसलिए, पीड़िता 'X' का बयान, जो अभियोजन पक्ष के संस्करण की पूर्णतया पुष्टि करता है, को संदेहास्पद और अविश्वसनीय नहीं माना जा सकता क्योंकि धारा 366 भा०द०स० के अंतर्गत आरोपों को साबित करने के लिए अभियोक्त्री के एकल बयान पर विश्वास किया जा सकता है।" माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **महाराष्ट्र राज्य बनाम चंद्रप्रकाश केवल चंद जैन** के उपरोक्त मामले में पैराग्राफ 16 में दिशा-निर्देश दिए हैं, जहां यह कहा गया है कि "*..... लेकिन यदि पीड़िता वयस्क है और पूरी समझ रखती है तो न्यायालय को उसके साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि का आधार बनाने का हक है, जब तक कि यह न दर्शाया जाए कि वह अस्थिर और*

अविश्वसनीय है । यदि मामले के अभिलेख पर प्रस्तुत होने वाली परिस्थितियों की समग्रता यह दर्शाती है कि अभियोक्त्री के पास अभियुक्त व्यक्ति को झूठा फंसाने का कोई मजबूत उद्देश्य नहीं है, तो अदालत को आम तौर पर उसके साक्ष्य को स्वीकार करने में कोई हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिए.... "। पैरा 17 में, आगे कहा गया है कि " दुर्लभतम मामलों के अतिरिक्त पुष्टिकरण पर जोर देना उस महिला, जो किसी अन्य की वासना का शिकार है, को एक अपराध के सहयोगी के साथ समतुल्य करना है, और इस प्रकार नारीत्व का अपमान करना है। एक महिला को यह बताकर कि उसकी व्यथा की कहानी पर तब तक विश्वास नहीं किया जाएगा जब तक कि उसे भौतिक विवरणों से पुष्ट नहीं किया जाता, जैसा कि किसी अपराध में भागीदार के मामले में होता है, जले पर नमक छिड़कने जैसा होगा।......... ऐसे मामलों में न्यायालय द्वारा अपेक्षित साक्ष्य का स्तर इस तथ्य को ध्यान में रखकर रखना चाहिए कि ऐसे अपराध आम तौर पर गुप्त रूप से किए जाते हैं और अभियोक्त्री के अलावा किसी अन्य व्यक्ति का प्रत्यक्ष साक्ष्य बहुत कम ही उपलब्ध होता है। न्यायालयों को यह भी समझना चाहिए कि आम तौर पर एक महिला, खासकर एक युवा लड़की, अपनी पवित्रता से सम्बंधित मिथ्या आरोप लगाकर अपनी प्रतिष्ठा को दांव पर नहीं लगाएगी।"

आक्षेपित वाद में, अभियोक्त्री के बयान की पुष्टि अ०सा० 2, 3 और 4 ने की है, जो अभियोक्त्री के भाई और माता-पिता हैं, क्योंकि अभियुक्त देवी दयाल और अंबिका पासी द्वारा उनके सामने पीड़िता का अपहरण किया गया था और बाकी अभियुक्तों ने घर के सामान, गहने और नकदी लूटे थे।

अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के पक्ष में उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क दिया कि कथित तौर पर अभियोक्त्री का अपहरण कर उसे पेराई नदी के पार ले जाया गया, लेकिन इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि उसे घास या पत्तों पर फेंका गया और बलात्कार किया गया। अभियोक्त्री के कपड़ों पर घास या पत्तों का कोई अंश नहीं मिला। न्यायालय को यह तर्क अत्यधिक कमजोर लगता है क्योंकि अभियोक्त्री 'X' ने खुद अपने बयान में कहा कि बलात्कार के पश्चात सभी अभियुक्त भाग गए थे। फिर, वह खुद नदी पार कर आई और जब वह गांव पहुंची, तो उसके कपड़े गीले थे। इसलिए, अभियोक्त्री के कपड़ों पर घास या पत्तों की मौजूदगी का पता नहीं चल सकता था।

अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया कि अभियोक्त्री के कपड़ों पर कोई भी खून के धब्बे या शुक्राणु नहीं मिले। दी गयी परिस्थिति में, पीड़िता ने नदी पार की और उसके कपड़े गीले थे। इसलिए, पीड़िता के शरीर या कपड़ों पर पत्ते, घास और खून के धब्बे या शुक्राणुओं का पाया जाना संभव नहीं है।

अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि गवाहों के बयानों में गंभीर तथ्यात्मक विरोधाभास हैं और विद्वान विचारण न्यायालय ने उन विरोधाभासों को संबोधित नहीं किया। गवाहों के बयानों का अवलोकन करने पर, गवाहों के बयानों में कोई वृहद् विरोधाभास नहीं है क्योंकि उन सभी ने अभियोक्त्री की गवाही को ही संपुष्ट किया। हालांकि, छोटे-मोटे विरोधाभास हैं। यह ध्यान में रखना चाहिए कि गवाह अशिक्षित हैं और घटना की तारीख से तीन साल के अंतराल के पश्चात

बयान दर्ज किए गए और गवाहों के बयान, समय के अंतराल के साथ, टुकड़ों में दर्ज किए गए। इसलिए, विसंगतियां होना स्वाभाविक है। मामूली विसंगतियों के आधार पर, यदि गवाह अन्यथा सत्यवादी हैं, तो उनके बयान को खारिज नहीं किया जा सकता।

अभियोजन पक्ष ने घटना स्थल को साबित कर दिया है क्योंकि पीड़िता ने स्वयं उस स्थान को इंगित किया है जहां सभी अभियुक्त-अपीलकर्ताओं ने उसका बलात्कार किया था। घटना स्थल को जांच अधिकारी ने नक्शा नज़री में भी दिखाया है और इसलिए, घटना स्थल के बारे में कोई संदेह नहीं है।

अभियुक्त-अपीलकर्ताओं ने बचाव में अन्यत्र उपस्थित होने के अभिवाक् की दलील रखी लेकिन वे इसे विचारण न्यायालय और अपीलीय न्यायालय में साबित नहीं कर सके। अभियुक्त अपीलकर्ता ने यह साबित करने के लिए कि अभियुक्त अर्जुन पासी अपनी ही बेटी के विवाह में था, विवाह का निमंत्रण पत्र दाखिल नहीं किया। हालाँकि, यदि दुर्भाग्यपूर्ण तारीख को विवाह था, तो अपीलकर्ता के पास अपनी बेटी के विवाह का निमंत्रण पत्र होना चाहिए। अभियुक्त अंबिका पासी ने भी अन्यत्र उपस्थित होने के अभिवाक् की दलील रखी कि वह सह-अपीलकर्ता अर्जुन पासी की बेटी के विवाह में गया था लेकिन वह यह साबित नहीं कर सका कि अर्जुन पासी की बेटी का विवाह था और उसने विवाह में भाग लिया था। जहां तक अभियुक्त फरीद खान का सवाल है, उसने धारा 313 के अंतर्गत दर्ज अपने बयान में कहा कि वह अपनी भतीजी परवीन के विवाह में सम्मिलित होने गया था, लेकिन फरीद खान भी अपनी भतीजी के विवाह को साबित नहीं कर सका। वह न्यायालय को यह भी नहीं बता सका कि उसकी भतीजी का विवाह कहां संपन्न हुआ था। यह भी उल्लेखनीय है कि अभियुक्त फरीद खान, जिसकी मृत्यु 06.09.2018 को बताई गई है, का मामला 24.11.2022 के आदेश के अनुसार निरस्त मानकर खारिज कर दिया गया है। इसलिए, कोई भी अभियुक्त अन्यत्र उपस्थित होने के अभिवाक् की अपनी दलील साबित नहीं कर सका।

अ०सा०7 रामदयाल ने न्यायालय में बयान दिया कि परिवादी और अभियुक्त देवी दयाल के पिता के बीच भूमि को लेकर दुश्मनी थी और यह भी कि देवी दयाल के पिता ने अभियोक्त्री को अपनी बहू के रूप में स्वीकार करने से इनकार कर दिया था। इसलिए, अभियुक्त देवी दयाल को झूठा फंसाया गया है। ये दोनों तर्क परस्पर विरोधाभासी हैं और समानांतर नहीं चल सकते। यदि परिवादी और अभियुक्त देवी दयाल के पिता के बीच भूमि को लेकर गहरी दुश्मनी है तो इस बात की कोई संभावना नहीं है कि परिवादी अपनी बेटी का विवाह देवी दयाल से करेगा। डी.डब्ल्यू.-2 ने बयान दिया कि परिवादी और अपीलकर्ता देवी दयाल के पिता के बीच दुश्मनी थी लेकिन कोई भी दस्तावेज, जो भूमि से संबंधित किसी मुकदमे को साबित करता हो, बचाव साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत नहीं किया गया है। इसलिए, अपीलकर्ता का बचाव किसी ठोस साक्ष्य से समर्थित नहीं है।

अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि अभियुक्त देवी दयाल चार साल की सजा काट चुका है, अभियुक्त अंबिका पासी तीन साल और दो महीने की सजा काट चुका है और अभियुक्त अर्जुन दो साल की सजा काट चुका है,

इसलिए अपीलकर्ताओं की सजा को पहले से काटी जा चुकी सजा तक कम करने की प्रार्थना की गयी है। यह भी कहा गया कि आरोपियों की इस मामले के अतिरिक्त कोई आपराधिक पृष्ठभूमि नहीं है। इसलिए मामले में नरम रुख अपनाया जा सकता है।

धारा 376(2)(जी) भा०द०स० के अंतर्गत, सामूहिक बलात्कार के मामले में, कठोर कारावास दस साल से कम नहीं होना चाहिए। चूंकि अभियुक्त व्यक्तियों पर धारा 376(2)(जी) भा०द०स० के अंतर्गत अभियोग लगाया गया है, अतः यह दस साल की सजा को पहले से काटी जा चुकी सजा तक कम करने के लिए उपयुक्त मामला नहीं है।

अपीलकर्ताओं द्वारा कोई स्वीकार्य कारण नहीं बताया गया है कि उन्हें मामले में झूठा क्यों फंसाया गया है। अपीलकर्ताओं द्वारा धारा 313 द०प्र०स० के अंतर्गत अपने दर्ज बयानों के दौरान कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है कि उन्हें इस मामले में झूठा क्यों फंसाया गया है। इसके विपरीत, अभियोक्त्री ने बहुत सारे शब्दों में स्पष्ट रूप से अभियोजन पक्ष के संस्करण का यह तथ्य साबित किया कि उसे अभियुक्त देवी दयाल ले गया था और सभी अपीलकर्ताओं ने उसकी इच्छा के विरुद्ध बलात्कार किया था।

इसलिए, अभियोजन पक्ष ने धारा 366 और 376 भा०द०स० के अंतर्गत अभियोक्त्री की ठोस गवाही के साथ साथ अ०सा०-2 और अ०सा०-4, जो अभियोक्त्री के भाई और माता-पिता हैं, के साक्ष्यों से सभी आरोपियों के विरुद्ध आरोपों को युक्तियुक्त संदेह से परे साबित कर दिया है। यह भी उल्लेखनीय है कि अ०सा०-7 डॉ. इंद्रा चोपड़ा ने चिकित्सीय रिपोर्ट तैयार की, जिसमें योनिच्छद पुराना फटा हुआ पाया गया था। इन परिस्थितियों में, जहां अभियोक्त्री ने सभी अपीलकर्ताओं के विरुद्ध बलात्कार का मामला स्पष्ट रूप से साबित किया है और अपीलकर्ता ऐसे जघन्य अपराध में अपीलकर्ताओं को झूठा फँसाने पर कोई स्पष्टीकरण नहीं दे सके।

विचारण न्यायालय का निर्णय ठोस साक्ष्यों पर आधारित है और अभिलेख पर मौजूद साक्ष्यों के साथ सुसंगत पाया गया है। अपराध में सभी चारों आरोपियों की संलिप्तता पाई गई है और विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश बरकरार रखा जाने योग्य है और अपील खारिज किये जाने योग्य है।

अपील **खारिज** की जाती है। विचारण न्यायालय का निर्णय बरकरार रखा जाता है। अपीलकर्ता संख्या 4 फरीद खान, जिनके बारे में कहा गया है कि उनकी मृत्यु 06.09.2018 को हो गई थी, के विरुद्ध अपील दिनांक 24.11.2022 के आदेश के तहत निरस्त मानकर खारिज कर दी गई है। अपीलकर्ता संख्या 1, 2 और 3, अर्थात् देवी दयाल, अर्जुन और अंबिका जमानत पर हैं। उन्हें निर्णय की तिथि से एक महीने के भीतर संबंधित न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण करना होगा और शेष सजा काटने के लिए जेल भेजा जाएगा। विद्वान विचारण न्यायालय सजा का वारंट तैयार करेगा और उन्हें जेल भेजेगा।

आरोपियों के व्यक्तिगत बंधपत्र और जमानत बंधपत्र **निरस्त** किए जाते हैं।

विचारण न्यायालय के अभिलेख के साथ इस फैसले की प्रमाणित प्रति आवश्यक सूचना

और अनुपालन के लिए संबंधित विचारण न्यायालय को भेजी जाए।

(2023) 3 ILRA 668

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 19.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति दिनेश कुमार सिंह, जे।

2021 की आपराधिक अपील संख्या 564

शुभांश चंद श्रीवास्तव ... अपीलार्थी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ... प्रतिवादी

अपीलकर्ता के लिए वकील: नंदित के। श्रीवास्तव, अनिल कुमार त्रिपाठी, अनुराग शुक्ला, एच।बी। सिंह, प्रीतमा शास्त्री, पूर्णेंदु चक्रवर्ती

प्रतिवादी के लिए वकील: बीरेश्वर नाथ, एस.बी.पांडेय, शिव पी.

आपराधिक कानून - भ्रष्टाचार रोकथाम अधिनियम, 1988 - धाराएँ 7, 13(1)(d) और 13(2) - आरोपी-अपीलकर्ता ने शिकायतकर्ता से बकाया वेतन बिल/भुगतान सुनिश्चित करने के लिए रिश्वत की मांग की - धारा 7 और 13(2) के तहत दोषी ठहराया गया - छोटी-मोटी गलतियाँ अभियोजन के पूरे वाद को रिश्वत की मांग, स्वीकार्यता और वसूली के संबंध में नहीं नष्ट करेंगी - मांग और स्वीकार्यता सिद्ध हुई - राशि आरोपी के कार्यालय की मेज के दराज से बरामद की गई - धारा 7 और 13 के तहत दोषी ठहराने के लिए आरोपी सरकारी कर्मचारी द्वारा अवैध लाभ की मांग और स्वीकार्यता का सही प्रमाण होना ज़रूरी है - आरोपी द्वारा मांग का प्रमाण बिना पैसे का केवल कब्जा और वसूली अपराध नहीं बनाती है - वादी के साक्ष्य (प्रत्यक्ष/प्राथमिक/मौखिक/दस्तावेजी साक्ष्य) की अनुपस्थिति में, अभियोजन द्वारा प्रस्तुत किए गए अन्य साक्ष्यों के आधार पर अधिनियम की धारा 7, 13(2)/13(1) के आधार पर सार्वजनिक कर्मचारी की दोषिता/गिल्ट का अनुमान लगाने की अनुमति होगी।

अपील निरस्त की गई। (ई-15)

उद्धृत वाद सूची:

1. पी. सत्यनारायण मूर्ति बनाम जिला पुलिस निरीक्षक, राज्य आंध्र प्रदेश एवं अन्य, (2015) 10 एससीसी 152

2. नीरज दत्ता बनाम राज्य: 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 1724

<u>माननीय न्यायमूर्ति दिनेश कुमार सिंह</u>

1. प्रस्तुत अपील अपीलकर्ता द्वारा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (इसके बाद 'पी.सी. अधिनियम, 1988' के रूप में संदर्भित) की धारा 27 सपठित दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (इसके बाद 'द०प्र०स०' के रूप में संदर्भित) की धारा 374(2) के तहत विशेष न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 30.03.2012 के खिलाफ दायर की गई है। भ्रष्टाचार निरोधक (पश्चिम), सी.बी.आई., लखनऊ मामला संख्या- 14 वर्ष 1999 (राज्य बनाम सुभाष चंद श्रीवास्तव) के तहत पी.सी. अधिनियम, 1988 की धारा 7 और 13(2) के साथ 13(1)(डी) के तहत, आर.सी. संख्या- 6 (ए)/1999, थाना-

सी.बी.आई./एसपीई/ए.सी.बी., लखनऊ से उत्पन्न हुआ, जिसके तहत विशेष न्यायाधीश ने अपीलकर्ता को दोषी ठहराया और 1,500/- रुपये के जुर्माने के साथ 6 महीने के कठोर कारावास की सजा सुनाई। और पी.सी. अधिनियम, 1988 की धारा 7 के तहत अपराध के लिए जुर्माना के चूक में 15 दिन अतिरिक्त साधारण कारावास, और पी.सी. अधिनियम, 1988 की धारा 13(1)(डी) सपठित धारा 13(2) के तहत अपराध के लिए जुर्माना न लगाने पर 1,500 रुपये के जुर्माने के साथ 1 वर्ष का कठोर कारावास और 15 दिन का अतिरिक्त साधारण कारावास की सज़ा सुनाई। यह निर्देश दिया गया था कि दोनों सजाएं साथ-साथ चलेंगी।

2. अपीलकर्ता डी.आर.एम. (कार्मिक), उत्तर रेलवे, लखनऊ के कार्यालय में स्थापना अनुभाग में कार्यालय अधीक्षक-द्वितीय के रूप में तैनात था और कार्य कर रहा था। राम कुमार-चतुर्थ, जो डीजल सहायक, आलमबाग कार्यालय माल लॉबी, मवैया, उत्तर रेलवे, लखनऊ के रूप में तैनात था, द्वारा दिनांक 30.01.1999 को शिकायत दर्ज कराई गई थी, जिसमें आरोप लगाया गया था कि अभियुक्त-अपीलकर्ता ने अक्टूबर और नवंबर के महीनों के लिए बकाया वेतन बिल/भुगतान की तैयारी सुनिश्चित करने के पक्ष में श्री राम कुमार-IV से कानूनी पारिश्रमिक के अलावा अवैध परितोषण के रूप में 2,000/- रुपये की रिश्वत की राशि की मांग की थी। अक्टूबर और नवंबर, 1998 के महीने में शिकायतकर्ता क्रमशः 8 दिन और 12 दिन की छुट्टी पर था।

3. शिकायत के आधार पर, उसी दिन यानी 13.01.1999 को सी.बी.आई. द्वारा पी.सी. अधिनियम, 1988 की धारा 7 के तहत एक प्राथमिकी दर्ज की गई थी। श्री जयंत कश्मीरी, निरीक्षक, सी.बी.आई., लखनऊ द्वारा सत्यापन किया गया था। शिकायतकर्ता के वेतन बिलों के संबंध में चार्ज मेमो भेजने के लिए 14.01.1999 को रिश्वत राशि की पहली किस्त के रूप में 1,000/- रुपये स्वीकार करते हुए आरोपी अपीलकर्ता को रंगे हाथों पकड़ा गया था।

4. विवेचना पूरी होने के बाद, सी.बी.आई. ने आरोप पत्र प्रस्तुत किया प्रदर्श (क-36) के तहत पी.सी. अधिनियम, 1988 की धारा 7 और 13(2)/13(1)(डी) के तहत अभियुक्त-अपीलकर्ता के खिलाफ दायर किया। अदालत ने आरोप पत्र पर संज्ञान लिया और आरोपी को मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया। विचारण न्यायालय ने आरोपी-अपीलकर्ता के खिलाफ 25.02.2002 को पी.सी. अधिनियम, 1988 की धारा 7 और 13(2) / 13(1)(डी) के तहत आरोप तय किए, जिसमें उसने दोषी नहीं होने का अनुरोध किया और विचारण का दावा किया।

5. के दौरान, यह देखा गया कि अक्टूबर और नवंबर, 1998 के महीनों के लिए शिकायतकर्ता, राम कुमार से संबंधित छुट्टी खाता/सलाह नोट तैयार करना अभियुक्त-अपीलकर्ता के पास लंबित था और उसी की तैयारी के लिए और शिकायतकर्ता के पक्ष में छुट्टी की अवधि के लिए भुगतान जारी करना सुनिश्चित करने के लिए, अभियुक्त अपीलकर्ता ने 2000/- रुपये की रिश्वत राशि की मांग की। शिकायतकर्ता जो उक्त राशि का भुगतान करने को तैयार नहीं था, तो उसने सी.बी.आई. के पास शिकायत दर्ज कराई, और एक जाल बिछाया गया और आरोपी-अपीलकर्ता को शिकायतकर्ता से 1,000/- रुपये की रिश्वत की पहली किस्त मांगते और स्वीकार करते हुए रंगे हाथों पकड़ा गया। आरोपी-अपीलकर्ता की मेज की दराज से रिश्वत की राशि बरामद की गई।

आरोपी-अपीलकर्ता मौके से भागने में सफल रहे, क्योंकि उस समय कोई हाथ नहीं धोया जा सका?

6. अभियोजन पक्ष ने अपने मामले को साबित करने के लिए 11 गवाहों का परीक्षण किया। अभियुक्त-अपीलकर्ता का बयान 21.2.2012 को द०प्र०स० की धारा 313 के तहत दर्ज किया गया था और उसकी प्रार्थना इनकार करने की थी। उन्होंने अपने बचाव में कोई मौखिक या दस्तावेजी सबूत पेश नहीं किया। विचारण न्यायालय ने प्रदर्शों के विश्लेषण करने के बाद आरोपी अपीलकर्ता के खिलाफ रिश्वत मांगने, स्वीकार करने और वसूली के संबंध में आरोप को उचित संदेह से परे साबित पाया, और इस प्रकार, आरोपी-अपीलकर्ता को दोषी ठहराया और सजा सुनाई, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है।

7. अभियुक्त-अपीलकर्ता की ओर से पेश अधिवक्ता श्री अनुराग शुक्ला ने प्रस्तुत किया है कि हालांकि अभियोजन पक्ष आरोपी-अपीलकर्ता के खिलाफ आरोप लगाने के अपने मामले को साबित करने में विफल रहा है, लेकिन विचारण न्यायालय ने अभियुक्त-अपीलकर्ता को रिकॉर्ड पर लाए गए सबूतों की उचित मूल्यांकन किए बिना दोषी ठहराया और सजा सुनाई है।

8. आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि विचारण न्यायालय ने निर्धारण के लिए निम्नलिखित चार बिंदु तैयार किए हैं, जो अनिवार्य रूप से उस अपराध के तत्व हैं जिसके लिए अभियुक्त-अपीलकर्ता पर आरोप लगाया गया था: -

"(i) क्या श्री सुभाष चंद श्रीवास्तव शिकायतकर्ता को कोई एहसान या अहित करने की स्थिति में थे?

(ii) क्या श्री सुभाष चन्द श्रीवास्तव ने शिकायतकर्ता से अपना दावा पारित करने के लिए 2000/- रुपए की रिश्वत मांगी थी?

(iii) क्या अभियुक्त ने शिकायतकर्ता से रिश्वत के रूप में 1000/- रुपए स्वीकार किए थे?

(iv) क्या अभियुक्तों से रिश्वत के रूप में 1000/- रुपये की कथित राशि बरामद की गई थी?

विद्वान विचारण न्यायालय ने पूरे निर्णय में निर्धारण के लिए तैयार किए गए पूर्वोक्त बिंदुओं में से किसी का भी उत्तर नहीं दिया है और इसलिए, आक्षेपित निर्णय कानून में गलत है और इसे रद्द किया जाने की आवश्यकता है।

9. आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि अभियुक्त-अपीलकर्ता के कब्जे से 1,000/- रुपये की कोई वसूली नहीं हुई थी। अ०सा०-2, शिकायतकर्ता 1,000/- रुपये की रिश्वत की वसूली की जगह साबित करने में विफल रहा था। एक स्थान पर शिकायतकर्ता (अ०सा०-2) ने अपने बयान में कहा था कि उसने अलमारी में एक लिफाफे में पैसा रखा था, हालांकि, पृष्ठ 10 पर, उसने कहा था कि लिफाफे में पैसे आरोपी-अपीलकर्ता की सीट के दराज में रखे गए थे।

10. जब शिकायतकर्ता आरोपी-अपीलकर्ता के कार्यालय में पहुंचा, तो उससे अभियुक्त-अपीलकर्ता द्वारा रिश्वत या अवैध परितोषण की कोई मांग नहीं की गई। आरोपी-अपीलकर्ता ने कथित तौर पर शिकायतकर्ता से पूछा, "कैसे आए हो?"

11. शिकायतकर्ता के वेतन बिलों की तैयारी डी.आर.एम., उत्तर रेलवे, लखनऊ (अ०सा०-9) के कार्यालय में तत्कालीन हेड क्लर्क श्री वेद प्रकाश तिवारी द्वारा की जानी थी, और अभियुक्त-अपीलकर्ता की इसमें कोई भूमिका नहीं थी। वह छुट्टी रिकॉर्ड रखने के लिए जिम्मेदार नहीं था। रिश्वत की मांग के संबंध में साक्ष्य आरोपी-अपीलकर्ता और शिकायतकर्ता के बीच रिकॉर्ड की

गई बातचीत पर आधारित थे, हालांकि, मुकदमे के दौरान इसे पेश नहीं किया गया था।

12. स्वतंत्र गवाह, सतीश कुमार श्रीवास्तव (अ०सा०-3) ने उस दराज को नहीं देखा था जिसमें से रिश्वत की राशि बरामद की गई थी क्योंकि वह मेज के दूसरी तरफ खड़ा था। कथित तौर पर रिश्वत वसूलने वाले स्वतंत्र गवाह कपिल नाथ रस्तोगी को सुनवाई के दौरान पेश नहीं किया गया।

13. यह प्रस्तुत किया गया है कि अभियोजन पक्ष यह साबित करने में विफल रहा है कि आरोपी अपीलकर्ता घटना के कथित दृश्य से गायब हो गया था, इसके बजाय उसे मौके पर ही गिरफ्तार कर लिया गया था। ट्रैप टीम लंच के समय आरोपी-अपीलकर्ता के कार्यालय पहुंची और शिकायतकर्ता ने शरारतपूर्ण तरीके से रिश्वत की राशि आरोपी-अपीलकर्ता की टेबल की दराज में डाल दी।

14. अभियुक्त-अपीलकर्ता के अधिवक्ता श्री अनुराग शुक्ला ने प्रस्तुत किया है कि यह आपराधिक न्यायशास्त्र का मूल सिद्धांत है कि सबूत का बोझ हमेशा अभियोजन पक्ष पर होता है, और इसे कभी स्थानांतरित नहीं किया जाता है। यह केवल जिम्मेदारी है जो मंच से मंच पर स्थानांतरित होती है। केवल आरोप के आधार पर दोषसिद्धि नहीं हो सकती जब तक कि उचित संदेह से परे ठोस और विश्वसनीय साक्ष्य द्वारा आरोप साबित नहीं किया जाता है।

15. अभियोजन पक्ष अभियुक्त-अपीलकर्ता से रिश्वत की मांग के किसी भी मकसद को साबित करने में विफल रहा था क्योंकि अभियुक्त-अपीलकर्ता शिकायतकर्ता को कोई पक्ष देने की स्थिति में नहीं था। प्रस्तुत मामले में, न तो मांग साबित हुई है और न ही आरोपी-अपीलकर्ता के कब्जे से वसूली की गई थी।

16. दूसरी ओर, सी.बी.आई. की ओर से पेश अधिवक्ता श्री शिव पी. शुक्ला ने प्रस्तुत किया है कि अभियोजन पक्ष उचित संदेह से परे आरोपी-अपीलकर्ता के खिलाफ आरोप साबित करने में सक्षम रहा है। विद्वान विचारण न्यायालय ने सबूतों पर विस्तार से विचार किया है और सही माना है कि अभियुक्त-अपीलकर्ता ने शिकायतकर्ता से 1,000/- रुपये की रिश्वत राशि की मांग की थी और स्वीकार की थी, जिसे अभियुक्त-अपीलकर्ता की मेज के दराज से बरामद किया गया था। इसलिए, उन्होंने प्रस्तुत किया है कि अभियोजन पक्ष के गवाहों के साक्ष्य और अभियोजन पक्ष के नेतृत्व में दस्तावेजी सबूतों पर विचार करते हुए, आरोपी-अपीलकर्ता द्वारा दायर अपील खारिज करने योग्य है।

17. अपील में निर्णय के लिए, अभियुक्त अपीलकर्ता के खिलाफ अपने मामले के समर्थन में अभियोजन पक्ष द्वारा लाए गए सबूतों पर ध्यान देना उचित होगा।

18. अ०सा०-1, श्री एस.एम.एन.इस्लाम, जो वरिष्ठ मंडल कार्मिक अधिकारी, उत्तर रेलवे, लखनऊ के रूप में तैनात थे, ने अदालत के समक्ष गवाही दी थी कि अभियुक्त-अपीलकर्ता को तृतीय श्रेणी के पद पर डी.आर.एम. (कार्मिक) कार्यालय में ओ.एस.-II के रूप में तैनात किया गया था। गवाह आरोपी अपीलकर्ता को नियुक्त करने और पद से हटाने के लिए सक्षम था। सी.बी.आई. ने उनसे आरोपी-अपीलकर्ता के अभियोजन को मंजूरी देने का अनुरोध किया। उनके सामने लाए गए मामले, तथ्यों और सामग्री पर विचार करने के बाद, उन्होंने आरोपी अपीलकर्ता के अभियोजन के लिए मंजूरी देते हुए आदेश पारित किया। उन्होंने

मंजूरी आदेश को साबित किया, जिसे प्रदर्श क-1 के रूप में चिह्नित किया गया था।

19. अ०सा०-2, श्री राम कुमार-चतुर्थ, डीजल सहायक, उत्तर रेलवे लखनऊ, मामले के शिकायतकर्ता थे, जिन्होंने अपनी गवाही में कहा कि शिकायतकर्ता अक्टूबर और नवंबर, 1988 के महीने में 20 दिनों के लिए छुट्टी पर था। इस अवधि के लिए उन्हें कोई वेतन नहीं मिला। उन्होंने 31.01.1999 को आरोपी-अपीलकर्ता जो डीलिंग असिस्टेंट थे, से मुलाकात की और उनसे पूछा कि उनका वेतन क्यों काटा गया। आरोपी-अपीलकर्ता ने उससे 2,000 रुपये की रिश्वत मांगी। शिकायतकर्ता सी.बी.आई. के कार्यालय में पहुंचा और एस.पी को शिकायत दी। उन्होंने सी.बी.आई. कार्यालय में दी गई शिकायत को साबित किया, जिसे प्रदर्श क-2 रूप में चिह्नित किया गया था। एस.पी. सी.बी.आई. ने उन्हें श्री जयंत कश्मीरी से मिलवाया और उनसे कहा कि जयंत कश्मीरी उनके मामले की विवेचना करेंगे। जयंत कश्मीरी ने बीमा कंपनी से सतीश श्रीवास्तव को फोन किया और शिकायतकर्ता को उनसे मिलवाया। जयंत कश्मीरी ने उसे एक टेप रिकॉर्डर दिया और उसे और सतीश श्रीवास्तव को डी.आर.एम. कार्यालय में इस निर्देश के साथ भेजा कि शिकायतकर्ता को टेप रिकॉर्डर में उसके और आरोपी-अपीलकर्ता के बीच बातचीत रिकॉर्ड करनी चाहिए। उसी दिन अर्थात दिनांक 13.01.1999 को लगभग 2:15 से 2:30 बजे अ०सा०-2 सतीश श्रीवास्तव के साथ आरोपी-अपीलकर्ता के कार्यालय में गया। आरोपी-अपीलकर्ता ने 2000/- रुपये की मांग की, जो टेप रिकॉर्डर में दर्ज थी। रिश्वत मांगने पर, गवाह ने कहा कि चूंकि उसे केवल एक दिन का वेतन मिला था, इसलिए वह आरोपी अपीलकर्ता को 2,000 रुपये कैसे देगा। जब गवाह ने कहा कि वह 2,000/- रुपये का भुगतान नहीं कर पाएगा, तो अभियुक्त-अपीलकर्ता ने कहा कि उसे 1,000/- रुपये की दो किस्तों में 2,000/- रुपये का भुगतान करना होगा। यह गवाही दी गई कि इसके बाद, वह और सतीश श्रीवास्तव सी.बी.आई. कार्यालय वापस आए और जयंत कश्मीरी को कैसेट और रिकॉर्डर दिया। जयंत कश्मीरी ने बातचीत को सुना, जो रिकॉर्ड की गई थी और उन्होंने कैसेट को सील कर दिया और लिफाफे पर गवाहों और अन्य लोगों के हस्ताक्षर प्राप्त किए।

20. अ०सा०-3, सतीश कुमार श्रीवास्तव जो आशुलिपिक, राष्ट्रीय बीमा कंपनी, क्षेत्रीय कार्यालय, हजरतगंज, लखनऊ के रूप में तैनात थे, ने गवाही दी थी कि 13.01.1999 को उन्हें श्री ए.के.वर्मा, ए.ओ. सतर्कता अधिकारी से सी.बी.आई. कार्यालय, हजरतगंज पहुंचने के निर्देश मिले, जहां वे लगभग 3.00-3:30 बजे पहुंचे। सी.बी.आई. अधिकारियों ने उसे शिकायतकर्ता और कपिलनाथ रस्तोगी से मिलवाया। उन्हें श्री राम कुमार (अ०सा०-2) की शिकायत के बारे में बताया गया और उन्हें पढ़ने के लिए शिकायत (प्रदर्श क-2) दी गई। शिकायत को सत्यापित करने के लिए, गवाह को शिकायतकर्ता के साथ डी.आर.एम. कार्यालय भेजा गया जहां सुभाष चंद्रा तैनात थे। डी.आर.एम. कार्यालय के लिए रवाना होने से पहले उन्हें एक टेप रिकॉर्डर और खाली कैसेट दिया गया, जिसे उन्हें दिखाया गया। उन्हें निर्देश दिया गया कि डी.आर.एम. कार्यालय पहुंचने के बाद, टेप रिकॉर्डर लगाया जाना चाहिए और बातचीत खत्म होने के बाद, टेप रिकॉर्डर को बंद कर दिया जाना चाहिए। इस गवाह ने इस आशय की गवाही दी कि जब वे आरोपी-अपीलकर्ता के कार्यालय पहुंचे, तो

शिकायतकर्ता ने आरोपी-अपीलकर्ता से छुट्टी के लिए वेतन के भुगतान के बारे में पूछा। अभियुक्त-अपीलकर्ता ने उससे पूछा कि वह पैसे लाया है या नहीं, जिस पर शिकायतकर्ता ने अपनी गरीबी के बारे में बताया और कहा कि वह 2-3 दिनों में कुछ पैसे की व्यवस्था करेगा, जिस पर आरोपी-अपीलकर्ता ने कहा कि 1,000 रुपये पहले दिए जाने चाहिए और शेष राशि शिकायतकर्ता को उसका वेतन प्राप्त करने के बाद दी जानी चाहिए। इसके बाद वे वापस सी.बी.आई. कार्यालय आ गए। कार्यालय वापस पहुंचने पर, टेप चलाया गया जिसमें आरोपी-अपीलकर्ता और शिकायतकर्ता के बीच बातचीत रिकॉर्ड की गई थी। शिकायतकर्ता ने सामग्री प्रदर्श-2 को देखने के बाद कहा कि इस पर उसके हस्ताक्षर हैं।

21. अ०सा०-4, श्री राजेश कुमार शुक्ला, वरिष्ठ लिपिक, वरिष्ठ अनुभाग अभियंता, लोको एनआर, लखनऊ ने गवाही दी थी कि वह 1995 से उपर्युक्त पद पर तैनात थे और उन्हें अनुपस्थित विवरण तैयार करने, छुट्टी आवेदन का संकलन, बीमारी प्रमाण पत्र और कर्मचारियों के फिटनेस प्रमाण पत्र तैयार करने का काम करने की अनुमति दी गई थी। उन्होंने डी 26 (प्रदर्श क-18) अनुपस्थित बयान साबित किया था, जिसमें शिकायतकर्ता यानी राम कुमार-IV डीजल सहायक का नाम क्रम संख्या-35 पर है। इसके अलावा, उन्होंने डी-27 और डी-28, डी-29 (प्रदर्श क-19, क-20 और क-21) की तैयारी के बारे में गवाही दी थी। उन्होंने यह भी कहा कि ड्यूटी चार्ट के अलावा अनुपस्थिति बयान में, शिकायतकर्ता का बीमारी प्रमाण पत्र था। उन्होंने 16.10.1998 से 10 दिनों के लिए शिकायतकर्ता के बीमारी प्रमाण पत्र को साबित किया जिसे सामग्री प्रदर्श क-20 के रूप में चिह्नित किया गया था। उन्होंने 23.03.1998 से 24.04.1998 तक फिटनेस प्रमाण पत्र भी साबित किया, जिसके लिए डीएमओ, आलमबाग द्वारा 23.03.1998 से 10 दिनों के लिए बीमारी प्रमाण पत्र जारी किया गया था, जिसे सामग्री प्रदर्श 21 और 22 के रूप में चिह्नित किया गया था।

22. अ०सा०-5 रमेश चंद्र भाटिया, तत्कालीन नियंत्रक, ने शपथ पर गवाही दी थी कि शिकायतकर्ता, राम कुमार-चतुर्थ ने उनकी अधीनता के तहत काम किया था और उसका छुट्टी रिकॉर्ड लोको शेड, आलमबाग में रखा जा रहा था। उन्होंने संबंधित कर्मचारी की छुट्टी के रखरखाव और काम से उनकी अनुपस्थिति के विवरण के बारे में प्रक्रिया भी बताई थी। उन्होंने अपनी मौखिक गवाही में प्रदर्श क-37 साबित किया था।

23. अ०सा०-6, श्री राजीव श्रीवास्तव, तत्कालीन वरिष्ठ मंडल चिकित्सा अधिकारी, लोको शेड, आलमबाग, लखनऊ ने शपथ पर गवाही दी थी कि वह रेलवे कर्मचारियों के बीमार और फिटनेस प्रमाण पत्र जारी करने के लिए अधिकृत थे और राम कुमार-IV के प्रदर्श क-16, क-20 और क-24 साबित हुए थे

24. अ०सा०-7 सुरेश चंद श्रीवास्तव, तत्कालीन एपीओ (बिल) डी.आर.एम.एनआर/लखनऊ ने अपनी मौखिक गवाही में कहा था कि उनका काम आगे की प्रक्रिया के लिए लेखा अनुभाग को विधिवत विवेचना करने के बाद बिलों को अग्रेषित करना था। उन्होंने डी-25 को चार्ज मेमो (प्रदर्श क-25) के रूप में पहचाना था, जिसे आगे की प्रक्रिया के लिए आरोपी सुभाष चंद श्रीवास्तव को भेज दिया गया था। उन्होंने उपरोक्त दस्तावेज पर आरोपियों के हस्ताक्षर का सत्यापन भी किया।

25. अ०सा०-8 अनूप कुमार श्रीवास्तव, तत्कालीन ओ.एस.-I, गोपनीय अनुभाग, डी.आर.एम./ एनआर, लखनऊ ने गवाही दी थी कि आरोपी वर्ष 1997 के दौरान प्रतिष्ठान में तैनात था और उसने जब्ती ज्ञापन भी साबित किया था

26. अ०सा०-9 वेद प्रकाश त्रिपाठी, तत्कालीन हेड क्लर्क डी.आर.एम./एनआर/लखनऊ ने अपनी मौखिक गवाही में कहा था कि उनका मुख्य कर्तव्य लोको शेड आलमबाग के कर्मचारियों के वेतन बिल तैयार करना था। लखनऊ। उन्होंने वेतन बिलों की तैयारी और इसके लिए विचार किए जाने वाले दस्तावेजों के बारे में प्रक्रिया के बारे में भी बताया था। उन्होंने प्रदर्श क-25, क-25/1, Ka25/2, प्रदर्श क-26, क-26/1, क-26/2 के दस्तावेजों को भी सत्यापित किया था।

27. अ०सा०-10 जयंत कश्मीरी, तत्कालीन निरीक्षक, सी.बी.आई./ए.सी.बी., लखनऊ ने अपनी मौखिक परीक्षण में गवाही दी थी कि शिकायतकर्ता राम कुमार-चतुर्थ की शिकायत के आधार पर आरोपी सुभाष चंद श्रीवास्तव के खिलाफ आर.सी. दर्ज की गई थी। उसने प्रारंभिक विवेचना की और अंत में रिश्वत के पैसे मांगने और स्वीकार करते हुए आरोपी को रंगे हाथों पकड़ने के लिए जाल बिछाया। उन्होंने प्रदर्श क-5, क-6, क-17, क-28, क-30 से क-33, सामग्री प्रदर्श-3 से 5 और सामग्री प्रदर्श-23 साबित किया था

28. अ०सा०-11 श्री बी.एस. मिश्रा, प्रस्तुत मामले के विवेचना अधिकारी, जिन्हें दिनांक 15.1.1999 के आदेश के तहत इस मामले की विवेचना का काम सौंपा गया था, ने प्रदर्श क-27, क-29, क-34, क-35, क-36 साबित किया था।

29. न्यायालय को यह विचार करना होगा कि अभियोजन पक्ष अभियुक्त-अपीलकर्ता द्वारा शिकायतकर्ता से रिश्वत की मांग और स्वीकृति को साबित करने में सक्षम है या नहीं। शिकायतकर्ता से रिश्वत की मांग की पुष्टि स्वयं शिकायतकर्ता अ०सा०-2 के साथ-साथ सतीश श्रीवास्तव, एक स्वतंत्र गवाह (अ०सा०-3) की गवाही से हुई थी, जो ट्रैप की कार्यवाही से एक दिन पहले 13.01.1999 को शिकायतकर्ता के साथ अभियुक्त-अपीलकर्ता के कार्यालय में गए थे। दिनांक 13.01.1999 को परिवादी एवं अ०सा०-3 आरोपी-अपीलार्थी द्वारा रिश्वत मांगने के आरोप के सत्यापन के लिए अभियुक्त-अपीलार्थी के कार्यालय गए थे। इन दो गवाहों अर्थात अ०सा०-2 और अ०सा०-3 ने अपनी गवाही में शिकायतकर्ता से अभियुक्त द्वारा 2,000/- रुपये की मांग को साबित किया था, जिसका भुगतान 1,000/- रुपये की दो किस्तों में किया जाना था।

30. अभियोजन का मामला 1,000/- रुपये की रिश्वत स्वीकार करने और वसूलने के लिए है। शिकायतकर्ता और अ०सा०-3 ने अदालत में गवाही दी थी कि अभियुक्त-अपीलकर्ता के पूछने पर रिश्वत की राशि दराज में डाल दी गई थी और अन्य स्वतंत्र गवाह कपिल नाथ रस्तोगी द्वारा टीएलओ (अ०सा०-10) की उपस्थिति में आरोपी-आवेदक की कार्यालय की मेज़ के दराज से बरामद की गई थी, जो हालांकि, परीक्षण के दौरान सी.बी.आई. द्वारा पेश नहीं किया गया। अ०सा०-3 की गवाही शिकायतकर्ता को आरोपी-अपीलकर्ता के कार्यालय की मेज के दराज में 1,000/- रुपये डालने के लिए कहने के संबंध में अडिग रही थी, और शिकायतकर्ता ने आरोपी-अपीलकर्ता के दराज में 1,000/- रुपये की रिश्वत डाल दी, जिसे गवाहों की उपस्थिति में दराज से ही बरामद किया गया था।

31. अभियुक्त अपीलकर्ता की ओर से पेश अधिवक्ता श्री अनुराग शुक्ला का प्रस्तुतिकरण कि अभियुक्त-अपीलकर्ता का शिकायतकर्ता के कथित छुट्टी खाते या वेतन के भुगतान से कोई लेना-देना नहीं था और इसलिए, शिकायतकर्ता से रिश्वत की किसी भी मांग के लिए कोई सवाल ही नहीं था और आरोपी-अपीलकर्ता शिकायतकर्ता पर कोई एहसान करने की स्थिति में नहीं था क्योंकि घटना से पहले ही उसका छुट्टी खाता शून्य था। यह तर्क रिश्वत मांगने के मकसद के संबंध में है। यदि अभियोजन शिकायतकर्ता से रिश्वत की मांग और स्वीकृति को साबित करने में सक्षम था तो मकसद अप्रासंगिक हो जाएगा। अ०सा०-2, अ०सा०-3 और अ०सा०-10 की गवाही 1,000/- रुपये की रिश्वत की मांग और स्वीकृति को पूरी तरह से साबित करेगी जो अभियुक्त-अपीलकर्ता के कार्यालय की मेज़ के दराज से बरामद की गई थी। श्री अनुराग शुक्ला की यह दलील कि अ०सा०-2 की गवाही अकाट्य नहीं थी और इसे विश्वसनीय नहीं कहा जा सकता क्योंकि एक समय में, उन्होंने कहा कि उन्होंने रिश्वत की राशि अलमारी में रखी थी और बाद में इस कथन को सही किया कि वह टेबल को अलमीरा मानते हैं और इसलिए, इस तरह की गवाही को विश्वसनीय नहीं कहा जा सकता है और विचारण न्यायालय को इस तरह की गवाही पर भरोसा नहीं करना चाहिए था। यह मामूली विसंगति रिश्वत की मांग, स्वीकृति और वसूली के बारे में अभियोजन पक्ष के पूरे मामले को नष्ट नहीं करेगी। जब मांग और स्वीकृति साबित हो जाती है और आरोपी-अपीलकर्ता के कार्यालय की मेज के दराज से राशि वसूल की जाती है, तो यह मामूली विसंगति अप्रासंगिक हो जाएगी।

32. अभियुक्त-अपीलकर्ता के लिए उपस्थित अधिवक्ता ने प्रतिपरीक्षा में अ०सा०-3 का वह बयान प्रस्तुत किया है कि चूंकि वह मेज के सामने बैठा था इसलिए उसने उस दराज को नहीं देखा जिसमें रिश्वत रखी गई थी और इसलिए, उक्त गवाह को रिश्वत की स्वीकृति और वसूली का गवाह नहीं माना जा सकता है, वह भी खारिज करने योग्य है।

33. अ०सा०-3 ने शुरू से ही अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया था और जिरह में केवल एक बयान कि उसने दराज को बिल्कुल नहीं देखा था, यह कहने के लिए पर्याप्त नहीं होगा कि अभियोजन पक्ष अभियुक्त अपीलकर्ता के दराज से रिश्वत की स्वीकृति और वसूली के संबंध में मामला साबित नहीं कर सका।

34. यह स्थापित कानून है कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 7 और 13 के तहत दोषसिद्धि दर्ज करना आवश्यक है, आरोपी लोक सेवक द्वारा अवैध परितोषण की मांग और स्वीकृति का उचित प्रमाण आवश्यक है। यह भी तय किया गया है कि अभियुक्त द्वारा मांग के सबूत के बिना केवल धन रखना और उसकी वसूली पी.सी. अधिनियम, 1988 की धारा 7 और 13(2)/13(1)(डी) के तहत अपराध नहीं है (पी. सत्यनारायण मूर्ति बनाम जिला पुलिस निरीक्षक, आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य, (2015) 10 एस.सी.सी. 152)

35. शब्द "मांग" पी.सी. अधिनियम, 1988 के तहत जगह नहीं पाता है, लेकिन इसे व्याख्यात्मक प्रक्रिया द्वारा क़ानून में वस्तुतः डाला गया है। भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 20 में अपराध की कतिपय सांविधिक धारणा प्राप्त होती है। धारा 7 को धारा

20 के साथ संयोजन में पढ़ा जाना चाहिए जो निम्नानुसार है: -

"20. ऐसी उपधारणा जहाँ लोक सेवक विधिक पारिश्रमिक से भिन्न परितोषण स्वीकार करता है

(1) जहां, धारा 13 की उपधारा (1) की धारा 7 या धारा 11 या खंड (क) या खंड (ख) के तहत दंडनीय अपराध के किसी भी परीक्षण में यह साबित हो जाता है कि एक आरोपी व्यक्ति ने इसे स्वीकार कर लिया है या प्राप्त किया है या स्वीकार करने के लिए सहमत हो गया है या खुद के लिए, या किसी अन्य व्यक्ति के लिए, किसी भी व्यक्ति से कोई संतुष्टि (कानूनी पारिश्रमिक के अलावा) या कोई मूल्यवान चीज प्राप्त करने का प्रयास किया है; यह तब तक माना जाएगा, जब तक कि इसके विपरीत साबित न हो जाए, कि उसने उस परितोषण या उस मूल्यवान चीज को, जैसा भी मामला हो, एक मकसद या इनाम के रूप में स्वीकार किया या प्राप्त करने के लिए सहमत या स्वीकार करने के लिए सहमति व्यक्त की या प्राप्त करने का प्रयास किया, जैसा कि धारा 7 में उल्लेख किया गया है या, जैसा भी मामला हो, बिना विचार के या एक विचार के लिए जिसे वह अपर्याप्त जानता है।

(2) जहां धारा 12 या धारा 14 के खंड (बी) के तहत दंडनीय अपराध के किसी भी परीक्षण में, यह साबित हो जाता है कि किसी भी परितोषण (कानूनी पारिश्रमिक के अलावा) या किसी भी मूल्यवान चीज को दिया गया है या देने की पेशकश की गई है या देने का प्रयास किया गया है एक आरोपी व्यक्ति, यह माना जाएगा, जब तक कि इसके विपरीत साबित न हो कि उसने उस परितोषण या उस मूल्यवान वस्तु, जैसा भी मामला हो, को एक मकसद या इनाम के रूप में दिया या देने का प्रयास किया, जैसा कि धारा 7 में उल्लेख किया गया है, या जैसा भी मामला हो, बिना विचार के या एक विचार के लिए जिसे वह अपर्याप्त जानता है।

(3) उपधारा (1) और उपधारा (2) में किसी बात के होते हुए भी, यदि परितोषण या पूर्वोक्त बात, उसकी राय में, इतनी तुच्छ है कि भ्रष्टाचार का कोई हस्तक्षेप उचित रूप से नहीं किया जा सकता है, तो न्यायालय उक्त उपधाराओं में से किसी में भी निर्दिष्ट उपधारणा निकालने से मना कर सकेगा।

36. भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 20 के शब्दों के साथ सादा पढ़ने का अर्थ होगा कि यदि यह साबित किया जा सकता है कि एक लोक सेवक ने परितोषण प्राप्त किया है, तो धारा 20 वैधानिक धारणा में लाती है कि उसने अधिनियम की धारा 7 में निर्धारित अवैध उद्देश्य से इसे प्राप्त किया है। यह सबूत के बोझ को आरोपी पर स्थानांतरित कर देता है, जिसे यह साबित करने की आवश्यकता होती है कि जो प्राप्त हुआ है वह एक मूल्यवान विचार है और अवैध परितोषण नहीं है।

37. नीरज दत्ता बनाम राज्य: 2022 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 1724 के मामले में हाल के फैसले में संविधान पीठ ने माना है कि पी.सी. अधिनियम, 1988 की धारा 7 और 13(2)/13(1)(डी)(i) और (ii) के तहत अपराध का गठन करने के लिए, यदि कोई रिश्वत देने वाला किसी लोक सेवक द्वारा उसी की कोई पूर्व मांग किए बिना भुगतान करने की पेशकश करता है और लोक सेवक रिश्वत स्वीकार करता है और प्राप्त करता है, तो यह भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 7 के तहत स्वीकृति का मामला होगा। यदि लोक सेवक स्वयं मांग करता है और रिश्वत देने वाले द्वारा मांग

स्वीकार की जाती है और रिश्वत देने वाले द्वारा रिश्वत का भुगतान किया जाता है, तो यह अधिनियम की धारा 13(1)(डी)(i) और 13(1)(डी)(ii) के तहत प्राप्ति का मामला है।

38. यह माना गया है कि यदि मूलभूत तथ्य साबित हो जाते हैं, तो अवैध परितोषण की प्राप्ति का अनुमान लगाया जाएगा। यदि तथ्य की ऐसी धारणा उठाई जाएगी, तो यह अभियुक्त द्वारा खंडन के अधीन है, हालांकि, यदि अनुमान का खंडन नहीं किया जाता है, तो अपराध निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 20 के तहत प्रदान किए गए अनुसार अपराध साबित हो जाता है।

39. पूर्वोक्त निर्णय के पैरा 4 और 5 में, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 7 और 13(1)(डी) के तहत अपराध का गठन करने के लिए सामग्री का उल्लेख किया गया है और उक्त निर्णय के पैरा 4 और 5 को यहां उद्धृत किया गया है: -

4. अधिनियम की धारा 7 के तत्व निम्नलिखित हैं:

(i) अभियुक्त को लोक सेवक होना चाहिए या लोक सेवक होने की अपेक्षा करनी चाहिए;

ii) उसे किसी व्यक्ति से स्वीकार करना चाहिए या प्राप्त करना चाहिए या स्वीकार करने के लिए सहमत होना चाहिए या प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए;

iii) खुद के लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए;

iv) कानूनी पारिश्रमिक के अलावा कोई पारितोष;

v) किसी भी आधिकारिक कार्य को करने या करने के लिए या कोई पक्ष या पक्षपात दिखाने के लिए एक मकसद या इनाम के रूप में।

5. अधिनियम की धारा 13(1)(डी) में निम्नलिखित तत्व हैं जिन्हें लोक सेवक के अपराध को

क़ानून के दायरे में लाने से पहले साबित करना होगा, अर्थात्, -

(i) अभियुक्त को लोक सेवक होना चाहिए;

(ii) भ्रष्ट या अवैध तरीकों से, अपने लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए कोई मूल्यवान वस्तु या आर्थिक लाभ प्राप्त करता है; या लोक सेवक के रूप में अपने पद का दुरुपयोग करके, अपने लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए कोई मूल्यवान वस्तु या आर्थिक लाभ प्राप्त करता है; या लोक सेवक के रूप में पद धारण करते हुए, किसी भी व्यक्ति के लिए बिना किसी सार्वजनिक हित के कोई मूल्यवान वस्तु या आर्थिक लाभ प्राप्त करता है।

(iii) धारा 13(1)(डी) के तहत अपराध बनाने के लिए, यह आवश्यक नहीं है कि मूल्यवान वस्तु या आर्थिक लाभ एक मकसद या इनाम के रूप में प्राप्त किया जाना चाहिए।

(iv) स्वीकार करने के लिए एक समझौता या प्राप्त करने का प्रयास धारा 13(1)(डी) के भीतर नहीं आता है।

(vi) केवल किसी मूल्यवान वस्तु या आर्थिक लाभ को स्वीकार करना इस उपबंध के अधीन अपराध नहीं है।

(vii) इसलिए, इस उपबंध के अधीन अपराध का निर्धारण करने के लिए वास्तविक प्राप्ति होनी चाहिए।

(viii) चूंकि विधायिका ने दो अलग-अलग अभिव्यक्तियों अर्थात् "प्राप्त" या "स्वीकार करता है" का प्रयोग किया है, इन दोनों के बीच अंतर को नोट किया जाना चाहिए।

40. उक्त निर्णय के पैरा 74 में, धारा 7 और 13(1)(डी) के तहत अभियुक्त/लोक सेवक के अपराध को स्थापित करने के लिए कानून को संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है, जो निम्नानुसार होगा: -

"74. पूर्वोक्त चर्चा से जो उभरता है वह संक्षेप में निम्नानुसार है:

(ए) अभियोजन पक्ष द्वारा जारी किए गए तथ्य के रूप में एक लोक सेवक द्वारा अवैध परितोषण की मांग और स्वीकृति का प्रमाण अधिनियम की धारा 7 और 13(1)(डी)(i) और (ii) के तहत आरोपी लोक सेवक के अपराध को स्थापित करने के लिए अनिवार्य है।

(ख) अभियुक्त के अपराध को सिद्ध करने के लिए अभियोजन पक्ष को पहले गैर-कानूनी परितोषण की मांग को सिद्ध करना होता है और तदुपरांत स्वीकृति को तथ्य के रूप में सिद्ध करना होता है। इस तथ्य को या तो प्रत्यक्ष साक्ष्य द्वारा साबित किया जा सकता है जो मौखिक साक्ष्य या दस्तावेजी साक्ष्य की प्रकृति में हो सकता है।

(ग) इसके अतिरिक्त, जारी किए गए तथ्य, नामत अवैध परितोषण की मांग का प्रमाण और स्वीकृति को प्रत्यक्ष मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य के अभाव में परिस्थितिजन्य साक्ष्य द्वारा भी सिद्ध किया जा सकता है।

(घ) मुद्दे में तथ्य अर्थात् लोक सेवक द्वारा अवैध परितोषण की मांग और स्वीकृति को साबित करने के लिए, निम्नलिखित पहलुओं को ध्यान में रखना होगा

(i) यदि लोक सेवक से बिना किसी मांग के रिश्वत देने वाले द्वारा भुगतान करने का प्रस्ताव है और बाद वाला केवल प्रस्ताव स्वीकार करता है और अवैध परितोषण प्राप्त करता है, तो यह अधिनियम की धारा 7 के अनुसार स्वीकृति का मामला है। ऐसे मामले में, लोक सेवक द्वारा पूर्व मांग की आवश्यकता नहीं है।

(ii) दूसरी ओर, यदि लोक सेवक मांग करता है और रिश्वत देने वाला मांग को स्वीकार करता है और मांगे गए परितोषण को निविदा देता है जो बदले में लोक सेवक द्वारा प्राप्त किया जाता है, तो यह प्राप्ति का मामला है। प्राप्ति के मामले में, अवैध परितोषण की पूर्व मांग लोक सेवक से निकलती है। यह अधिनियम की धारा 13(1)(डी)(i) और (ii) के तहत अपराध है।

(iii) उपरोक्त (i) और (ii) के दोनों मामलों में, क्रमशः रिश्वत देने वाले द्वारा पेशकश और लोक सेवक द्वारा मांग को अभियोजन पक्ष द्वारा एक तथ्य के रूप में साबित किया जाना है। दूसरे शब्दों में, बिना किसी और चीज के अवैध परितोषण को स्वीकार करना या प्राप्त करना इसे अधिनियम की धारा 7 या धारा 13(1)(डी), (i) और (ii) के तहत अपराध नहीं बना देगा। इसलिए, अधिनियम की धारा 7 के अंतर्गत, अपराध को क़ानून के दायरे में लाने के लिए, रिश्वत देने वाले की ओर से एक प्रस्ताव अवश्य दिया जाना चाहिए जिसे लोक सेवक द्वारा स्वीकार कर लिया जाए और यह अपराध बन जाए। इसी प्रकार, लोक सेवक द्वारा रिश्वत देने वाले द्वारा स्वीकार किए जाने पर पूर्व मांग और बदले में लोक सेवक द्वारा प्राप्त भुगतान किया जाता है, अधिनियम की धारा 13(1)(डी) और (i) और (ii) के तहत प्राप्त अपराध होगा।

(ङ) किसी अवैध परितोषण की मांग और स्वीकृति अथवा प्राप्ति के संबंध में तथ्य की धारणा किसी न्यायालय द्वारा अनुमान के माध्यम से तभी लगाई जा सकती है जब मूलभूत तथ्य संगत मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य द्वारा सिद्ध हो

गए हों न कि उसके अभाव में। रिकॉर्ड पर सामग्री के आधार पर, न्यायालय के पास यह विचार करते समय तथ्य की धारणा को उठाने का विवेक है कि अभियोजन पक्ष द्वारा मांग का तथ्य साबित किया गया है या नहीं। बेशक, तथ्य की एक धारणा अभियुक्त द्वारा खंडन के अधीन है और खंडन अनुमान के अभाव में खड़ा है।

(च) यदि शिकायतकर्ता मुकर जाता है या उसकी मृत्यु हो जाती है या विचारण के दौरान वह साक्ष्य देने के लिए अनुपलब्ध होता है तो अवैध परितोषण की मांग किसी अन्य गवाह को साक्ष्य देकर साबित की जा सकती है जो मौखिक रूप से या दस्तावेजी साक्ष्य द्वारा साक्ष्य पुन: दे सकता है या अभियोजन परिस्थितिजन्य साक्ष्य द्वारा मामले को साबित कर सकता है। मुकदमा समाप्त नहीं होता है और न ही इसके परिणामस्वरूप आरोपी लोक सेवक को बरी करने का आदेश होता है।

(छ) जहां तक अधिनियम की धारा 7 का संबंध है, जारी किए गए तथ्यों के प्रमाण के आधार पर, धारा 20 में न्यायालय को यह पूर्वधारणा करने का अधिदेश दिया गया है कि अवैध परितोषण उक्त धारा में यथा उल्लिखित प्रयोजन अथवा पुरस्कार के प्रयोजन से किया गया था। उक्त अनुमान को अदालत द्वारा कानूनी अनुमान या कानून में अनुमान के रूप में उठाया जाना है। बेशक, उक्त अनुमान भी खंडन के अधीन है। धारा 20 अधिनियम की धारा 13(1)(d)(i) और (ii) पर लागू नहीं होती है।

(ज) हम स्पष्ट करते हैं कि अधिनियम की धारा 20 के तहत कानून में अनुमान बिंदु (ई) में ऊपर संदर्भित तथ्य की धारणा से अलग है क्योंकि पूर्व में एक अनिवार्य अनुमान है जबकि बाद वाला प्रकृति में विवेकाधीन है।

41. उच्चतम न्यायालय ने इस संदर्भ का उत्तर दिया है कि शिकायतकर्ता के साक्ष्य (प्रत्यक्ष/प्राथमिक/मौखिक/दस्तावेजी साक्ष्य) के अभाव में, अभियोजन पक्ष द्वारा पेश किए गए अन्य साक्ष्यों के आधार पर अधिनियम की धारा 7, 13(2)/13(1)(डी) के तहत लोक सेवक के दोष/अपराध की अनुमानित कटौती करने की अनुमति होगी।

42. उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून की निहाई पर सबूतों को ध्यान में रखते हुए, मेरा विचार है कि अभियोजन पक्ष शिकायतकर्ता से अभियुक्त-अपीलकर्ता द्वारा रिश्वत की मांग, स्वीकृति और वसूली के मामले को साबित करने में सक्षम रहा है। इस प्रकार, मुझे प्रस्तुत अपील में कोई योग्यता और गुण नहीं मिला, अत: जिसे एतद्द्वारा खारिज किया जाता है। जमानत बांड रद्द कर दिए जाते हैं और ज़ामिनान को उन्मोचित किया जाता है।

43. अभियुक्त-अपीलकर्ता को विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा दी गई सजा काटने के लिए विचारण न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण करने का निर्देश दिया जाता है। विचारण न्यायालय के रिकॉर्ड को विचारण न्यायालय को वापस प्रेषित किया जाए।

(2023) 3 ILRA 678

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 11.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर,

माननीय न्यायमूर्ति अजीत सिंह,

आपराधिक अपील संख्या 911/2013

श्याम देव एवं अन्य. ...अपीलकर्तागण

बनाम

यूपी राज्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्तागण: धीरेन्द्र कुमार श्रीवास्तव, श्री रमा शंकर, श्री राय साहब यादव, श्री शशि शंकर त्रिपाठी, श्री सुरेंद्र सिंह

अधिवक्ता प्रतिवादी: शासकीय अधिवक्ता

अपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धाराओं 302/34, 498A, 304B और 304 (II) - हत्या - दहेज निषेध अधिनियम, 1961 - धाराएँ 3/4 - साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 32 - दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील - मृतक के भाई द्वारा FIR - शादी में, आरोपी-अपीलकर्ताओं को पर्याप्त दहेज दिया गया था और उन्होंने अतिरिक्त राशि और मोटरसाइकिल की मांग की - जब मांग पूरी नहीं हुई, तो मृतक को आरोपी द्वारा परेशान किया गया - वादी को पता चला कि आरोपियों ने मृतक पर केरोसिन तेल डालकर आग लगाने की कोशिश की - विचारणीय न्यायालय ने आरोप तय किए - अभियोजन पक्ष ने 8 गवाहों का परीक्षण किया - मृत्यु पूर्व कथन - पी.डब्ल्यू.1 की गवाही के अनुसार घटना के 11 दिन बाद सेप्सिस के कारण मौत हुई - (पैराग्राफ 3, 4, 5, 8)

आयोजित: मृत्यु पूर्व घोषणा और पोस्टमार्टम रिपोर्ट का विश्लेषण करते समय यह स्वीकार नहीं किया जा सकता कि यह आकस्मिक मौत थी। यह एक हत्या थी और आकस्मिक मृत्यु नहीं थी। वाद के तथ्यों और परिस्थितियों की जांच करते हुए और मेडिकल अधिकारी की राय को ध्यान में रखते हुए और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांत को देखते हुए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यह मौत पूर्व नियोजित नहीं थी। कोई भी आरोपी सुधारने में असमर्थ नहीं है और इसलिए, उन्हें सुधारने का अवसर देने के लिए सभी उपाय किए जाने चाहिए ताकि उन्हें समाज में वापस लाया जा सके। आरोपियों को 12 साल की सजा पूर्ण करने की सूचना मिली है और यह पर्याप्त सजा होगी। जुर्माना और डिफॉल्ट सजा बरकरार है। (पैराग्राफ 11, 12, 16, 21, 23)

<u>अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। (ई-13)</u>

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. बेगाई मंडल @ बेगाई मंडल बनाम बिहार राज्य (क्रिमिनल अपील संख्या 1418 / 2004)
2. चिर्रा शिवराज बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (क्रिमिनल अपील संख्या 514 / 2010)
3. श्रीमती रमा देवी उर्फ रामकांति बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (क्रिमिनल अपील संख्या 1438 / 2010)
4. श्रीमती कांति और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (क्रिमिनल अपील संख्या 2558 / 2011)
5. गोविंदप्पा और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य (2010) 6 एससीसी 533
6. तुकाराम और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2011) 4 एससीसी 250
7. बी.एन. कावतकर और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य, रिपोर्टेड में 1994 SUPP (1) एससीसी 304
8. वीरान और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2011) 5 एससीआर 300
9. मोहम्मद गियासुद्दीन बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, एआईआर 1977 एससी 1926
10. देव नारायण मंडल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2004) 7 एससीसी 257

11. रवादा ससिकला बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, एआईआर 2017 एससी 1166
12. जमील बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2010) 12 एससीसी 532
13. गुरु बसवराज बनाम कर्नाटका राज्य, (2012) 8 एससीसी 734
14. सुमेर सिंह बनाम सुरजभान सिंह, (2014) 7 एससीसी 323
15. राज्य पंजाब बनाम बावा सिंह, (2015) 3 एससीसी 441
16. राज बाला बनाम राज्य हरियाणा, (2016) 1 एससीसी 463

<u>माननीय डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर, न्यायमूर्ति</u>
<u>माननीय अजीत सिंह, न्यायमूर्ति</u>
(मौखिक निर्णय)

1. अपीलार्थी की ओर से विद्वान अधिवक्ता और राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए. को सुना गया।

2. यह अपील अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश न्यायालय संख्या 13, वाराणसी द्वारा 2010 के सत्र परीक्षण संख्या 500 (उ.प्र. राज्य बनाम श्याम देव और अन्य) जिसमें अपीलार्थीगण को भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 (इसके बाद इसे 'आईपीसी' के रूप में संदर्भित किया जाएगा) के तहत आजीवन कारावास के लिए दोष सिद्ध ठहराया गया और 5000/- का जुर्माना भी लगाया गया है, जिसका भुगतान न करने पर अपीलार्थीगण को तीन महीने की अतिरिक्त कारावास की सजा काटनी होगी और अपीलार्थी संख्या 2 को आईपीसी की धारा 498 ए के तहत तीन वर्ष के सश्रम कारावास के लिए दोष सिद्ध ठहराया गया और 2000/- रुपये का जुर्माना भी लगाया गया है जिसका भुगतान न करने पर अपीलार्थी संख्या 2 को दो महीने की अतिरिक्त कैद भुगतनी होगी, में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 01.01.2013 को चुनौती देती है।

3. रिकॉर्ड से निकाले गए संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि मृतका का विवाह श्याम देव के साथ हुआ था। प्राथमिकी में खुलासा हुआ कि शादी में आरोपी अपीलार्थीगण को पर्याप्त दहेज दिया गया था, लेकिन इसके बावजूद उन्होंने मृतका को परेशान करना शुरू कर दिया और रुपये 50,000/- और एक मोटरसाइकिल की मांग की।। जब उक्त मांग पूरी नहीं हो सकी तो सभी आरोपियों द्वारा मृतका को प्रताड़ित किया जाने लगा। किसी व्यक्ति ने मुखबिर को बताया कि आरोपी व्यक्तियों ने मिट्टी का तेल छिड़क कर उसे जलाने की कोशिश की थी। मृतका के भाई की शिकायत के आधार पर प्रथम सूचना रिपोर्ट 20.04.2010 को दर्ज की गई थी। भारतीय दंड संहिता की धारा 498 ए और 304 बी सपठित दहेज निषेधअधिनियम की धारा 3/4 के तहत अपराध के लिए जांच शुरू की गई। जांच श्याम देव (मृतका के पति), विंध्याचली (ननद/जेठानी) के खिलाफ आईपीसी की धारा 498 ए और 304 बी और डी.पी. की धारा 3/4 के तहत आरोप पत्र दाखिल करने के साथ समाप्त हुई। कार्यवाही करना। इन संक्षिप्त तथ्यों पर अभियोजन चलाया गया।

4. आरोपियों को तलब किया गया और विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश द्वारा आईपीसी की धारा 498 ए और 304 बी और डी.पी. की धारा 4 साथ में वैकल्पिक आरोपों आईपीसी की धारा 302 सपठित धारा 34 के तहत आरोप तय किए

गए। अभियुक्तों ने खुद को निर्दोष बताया और विचारण चाहा। जिस अपराध के लिए अभियुक्त पर आरोप लगाया गया था, वह सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय था, इसलिए, अभियुक्त अपीलार्थीगण को सत्र न्यायालय को सौंप दिया गया था।

5. मुकदमा शुरू हुआ और अभियोजन पक्ष ने 8 गवाहों से पूछताछ की जो इस प्रकार हैं:

1	विनोद सहनी	अ.सा. 1
2	गुड़िया	अ.सा.2
3	कुत्तर देवी	अ.सा. 3
4	म्रतुंजय सिंह	अ.सा. 4
5	डॉ. डी.के. सिंह	अ.सा.5
6	डॉ. आलोक सिंह	अ.सा.6
7	डॉ. डी.के. कश्यप	अ.सा.7
8	रामानंद कुशवाहा	अ.सा.8

6. चश्मदीद बयान के समर्थन में निम्नलिखित दस्तावेज दायर किए गए:

1	लिखित रिपोर्ट	प्रदर्श क 1
2	मृत्युकालिक बयान	प्रदर्श क 2
3	पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट	प्रदर्श क 3
4	मृत्यु प्रमाण पत्र	प्रदर्श क 4
5	मृत्यु के बाद की जानकारी	प्रदर्श क 5
6	पंचायतनामा	प्रदर्श क 6
7	सूचकांक के साथ नक्शा नजरी	प्रदर्श क 7
8	आरोप पत्र	प्रदर्श क 8

7. विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश ने उपरोक्त आरोपी अपीलार्थीगण को दोष सिद्ध ठहराया है।

8. अपीलार्थी की ओर से विद्वान अधिवक्ता ने सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 2004 की आपराधिक अपील संख्या 1418 (बेंगई मंडल उर्फ बेगाई मंडल बनाम बिहा राज्य) में 11 जनवरी, 2010 को निर्णीत, 2010 की आपराधिक अपील संख्या 514 (चिरा शिवराज बनाम आंध्र प्रदेश राज्य) 26 नवंबर, 2010 को निर्णीत, और 2010 की आपराधिक अपील संख्या 1438 (श्रीमती रमा देवी उर्फ रमाकांति बनाम उ.प्र. राज्य) में इस न्यायालय के निर्णय 7.10.2014 को और 2011 की आपराधिक अपील संख्या 2558 (श्रीमती कांति और अन्य) में निर्णीत निर्णयों का अवलम्ब लिया है और तर्क दिया कि दोषपूर्ण आरोप है और अभियोजन पक्ष के गवाहों की जांच के बाद आरोप दोबारा तय नहीं किया जा 5सकता था, जिन्होंने अभियोजन पक्ष का समर्थन नहीं किया था। अपीलार्थी की ओर से विद्वान अधिवक्ता द्वारा किया गया प्रतिवाद है, और विकल्प में, यह प्रस्तुत किया गया है कि यह एक ऐसा मामला है जो आईपीसी की धारा 304 भाग। या भाग ।। से आगे नहीं जाता है। आरोपी का मृतका को खत्म करने का कोई इरादा नहीं था और मौत घटना के 11 दिनों के बाद सेप्टीसीमिया के कारण हुई थी, जैसा कि अ.सा.1 की गवाही में भी कहा गया था कि घटना के 11 दिनों के बाद उसकी मृत्यु हो गई थी।

9. इसके विपरीत, क्योंकि राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए. ने तर्क दिया है कि मृत्युकालिक

बयान विश्वसनीय है और इसलिए, विद्वान न्यायाधीश ने कोई त्रुटि नहीं की है या ऐसी कोई त्रुटि नहीं है जिसके लिए इस अपील में इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की आवश्यकता हो। इसके अलावा, अपराध की वीभत्सता और अभियोजन पक्ष के गवाहों के साक्ष्य को देखते हुए इस न्यायालय को मामले में कोई नरमी नहीं दिखानी चाहिए। इसे आगे विद्वान ए.जी.ए. द्वारा प्रस्तुत किया गया है आईपीसी की धारा 300 की सामग्री को विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा सही माना गया है, जिन्होंने मामले के तथ्यों पर कानून का अनुप्रयोग किया है।

10. हमने गवाहों के साक्ष्य और पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट पर विचार किया है, जिसमें कहा गया है कि मृतका के शरीर पर चोटें मौत का कारण होंगी और यह मानववध था, हम नीचे दिए गए न्यायालय के निष्कर्ष से सहमत हैं।

11. अपीलार्थी की ओर से विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि मृतका की मृत्यु जलने की चोटों के कारण हुई जो वह खाना बनाते समय दुर्घटनावश लग गई थी। मृत्युकालिक बयान और पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट को देखते समय, हम आरोपी-अपीलार्थीगण के अधिवक्ता की इस दलील को स्वीकार नहीं कर सकते कि यह एक आकस्मिक मौत थी।

12. इसलिए, हमारी सुविचारित राय है कि विद्वान न्यायाधीश ने मृत्युकालिक बयान पर भरोसा करके कोई गलती नहीं की है। गोविंदप्पा और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य, (2010) 6 एससीसी 533 के निर्णय के आलोक में, अब हमारे पास साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 32 के तहत मृत्युकालिक बयान और उसके साक्ष्य मूल्य को स्वीकार करने का कोई कारण नहीं है। हम आश्वस्त हैं कि घटना के बारे में मृतका द्वारा अ.सा.3 को सूचित किया गया था और इसलिए अधिवक्ता का तर्क था कि यह एक आकस्मिक मृत्यु थी, जो घर में खाना पकाने के दौरान आकस्मिक रूप से जलने से हुई थी, इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है। हमारा विचार है कि यह एक मानववध था, न कि आकस्मिक मृत्यु।

13. यह हमें अगले प्रश्न पर ले जाता है कि क्या यह एक आपराधिक हत्या थी या क्या यह आईपीसी की धारा 300 के किसी अपवाद के अंतर्गत आएगा?

14. भारतीय दंड संहिता की धारा 299 का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा, जो इस प्रकार है:
"299. आपराधिक मानववधः जो कोई मृत्यु कारित करने के इरादे से, या ऐसी शारीरिक क्षति कारित करने के इरादे से, जिससे मृत्यु कारित होने की संभावना हो, या यह जानते हुए कि ऐसे कृत्य से मृत्यु कारित होने की संभावना है, कोई कार्य करके मृत्यु कारित करता है, आपराधिक मानववध का अपराध करता है।"

15. 'हत्या' और 'आपराधिक मानववध' के बीच अकादमिक अंतर ने हमेशा न्यायालयों को परेशान किया है। भ्रम तब पैदा होता है, जब न्यायालय इन धाराओं में विधायिका द्वारा उपयोग किए गए शब्दों के वास्तविक दायरे और अर्थ को नजरअंदाज कर देते हैं और खुद को छोटे-छोटे निष्कर्षों में उलझा लेते हैं। इन प्रावधानों की व्याख्या और अनुप्रयोग के लिए दृष्टिकोण का सबसे सुरक्षित तरीका आईपीसी की धारा 299

और 300 के विभिन्न खंडों में उपयोग किए गए कुंजी शब्दों को ध्यान में रखना है। निम्नलिखित तुलनात्मक तालिका दोनों अपराधों के बीच अंतर के बिंदुओं को समझने में सहायक होगी।

धारा 299	धारा 300
कोई व्यक्ति सदोष मानव वध करता है यदि वह कार्य ,जिससे मृत्यु करित हुई हो ,किया गया हो -	कुछ अपवादों के अधीन सदोष मानव वध हत्या है यदि वह कार्य किया गया है जिसके कारन मृत्यु हुई है।

आशय

मौत करित करने के इरादे से ,या	मौत करित करने के इरादे से ,या
ऐसी शारीरिक चोट करित करने के इरादे से जिससे मृत्यु होने की संभावना हो , या	ऐसी शारीरिक चोट कारित करने की संभावना जब अपराधी को मालूम हो कि उस व्यक्ति की मृत्यु का कारण बन सकती है जिसे नुकसान पहुँचाया गया है;
ज्ञान	ज्ञान
(सी) इस ज्ञान के साथ कि इस कार्य से मृत्यु होने की संभावना है।	(4) इस ज्ञान के साथ कि तुरंत खतरनाक है कि यह ना है कि यह मृत्यु या ऐसी चोट का कारण बनेगी त्यु होने की संभावना है, कि ऊपर उल्लेख किया मृत्यु या ऐसी चोट का ठाने के लिए कोई बहाना चाहिए।

16. यह एक स्वीकृत तथ्य है कि मृत्यु सेप्टीसीमिया के कारण हुई थी और घटना के 11 दिन बाद हुई थी। आरोपी अपीलार्थीगण मृतका के पति और सिस्टर - इन ला (जेठानी) हैं। आरोपी अपीलार्थीगण 10 साल से अधिक समय से जेल में हैं और वे निर्दोष बरी होने के लिए बहस नहीं कर रहे हैं और कम सजा का अनुरोध कर रहे हैं। इसलिए, चिकित्सा अधिकारी की राय के साथ वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की समग्र जांच और (2011) 4 एससी 250 में प्रकाशित तुकाराम और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य मामले में और 1994 एसयूपीपी (1) एससीसी 304 में प्रकाशित बी.एन. कवताकर और अन्य बनाम राज्य कर्नाटक राज्य और वीरन और अन्य बनाम म.प्र. राज्य (2011) 5 एससीआर 300 में निर्णीत सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांत पर विचार करते हुए, हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि मृत्यु पूर्व नियोजित नहीं थी। हमारे द्वारा पूर्व में की गई चर्चा हमें अपने निष्कर्ष को बरकरार रखने की अनुमति देगी जो निर्णायक रूप से मानती है कि अपराध आई.पी.सी. की धारा 302 के तहत दंडनीय नहीं है लेकिन यह आईपीसी की धारा 304 (भाग II) के तहत आपराधिक मानववध हैं। हम अपीलार्थी की ओर से विद्वान अधिवक्ता द्वारा बेंगई मंडल उर्फ बेगई मंडल बनाम बिहा राज्य, चिर्रा शिवराज बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, श्रीमती रमा देवी उर्फ रमाकांति बनाम उत्तर प्रदेश राज्य & बी श्रीमती कांति एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (उपरोक्त) में अवलम्ब लिए गए निर्णयों पर भी दृढ़ हैं।

17. अब देखना यह है कि दण्ड की मात्रा क्या होगी। इस संबंध में हमें भारत में प्रचलित दंड सिद्धांत का विश्लेषण करना होगा।

18. मोहम्मद गियासुद्दीन बनाम. एपी राज्य, [एआईआर 1977 एससी 1926], दंड में पुनर्वास

और सुधारात्मक पहलुओं की व्याख्या करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने यह देखा है कि:

"अपराध एक विकृतिजन्य विपथन है। अपराधी को आम तौर पर छुड़ाया जा सकता है और राज्य को बदला लेने के बजाय उसका पुनर्वास करना होगा। जो उप-संस्कृति असामाजिक व्यवहार की ओर ले जाती है, उसका मुकाबला अनुचित क्रूरता से नहीं, बल्कि पुनर्संस्कृति द्वारा किया जाना चाहिए। इसलिए, दंडविद्या में रुचि का ध्यान व्यक्ति में है और लक्ष्य उसे समाज के लिए बचाना है। इस प्रकार कठोर और क्रूर दंड देना अतीत और प्रतिगामी समय का अवशेष है। मानव आज एक ऐसे व्यक्ति को फिर से आकार देने की प्रक्रिया के रूप में सजा देता है जो आपराधिकता में बिगड़ गया है और आधुनिक समुदाय की सामाजिक सुरक्षा के साधन के रूप में अपराधी के पुनर्वास में प्राथमिक हिस्सेदारी है। इसलिए हमारे आपराधिक न्यायालयों में 'आतंकी' दृष्टिकोण के बजाय एक चिकित्सीय दृष्टिकोण लागू होना चाहिए, क्योंकि व्यक्ति की क्रूर कारावास केवल उसके मन को आघात पहुँचाती है। यदि आपको किसी व्यक्ति को प्रतिशोधात्मक रूप से दंडित करना है, तो आपको उसे चोट पहुंचानी होगी। यदि आपको उसे सुधारना है, तो आपको उसे सुधार करना ही होगा और, मनुष्य चोटों से नहीं सुधरते।"

19. देव नारायण मंडल बनाम उ.प्र. राज्य [(2004) 7 एससीसी 257] में 'उचित वाक्य' की व्याख्या की गई थी। यह देखते हुए कि सजा न तो अत्यधिक कठोर होनी चाहिए और न ही हास्यास्पद रूप से कम होनी चाहिए। सजा की अवधि निर्धारित करते समय अदालत को 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखना चाहिए। सजा किसी दिए गए मामले के तथ्यों पर आधारित होनी चाहिए। अपराध की गंभीरता, अपराध करने का तरीका, आरोपी की उम्र और लिंग को ध्यान में रखा जाना चाहिए। दण्ड देने में न्यायालय के विवेकाधिकार का प्रयोग मनमाने ढंग से या मनमर्जी से नहीं किया जा सकता।

20. रावदा शशिकला बनाम एपी राज्य एआईआर 2017 एससी 1166 में, सर्वोच्च न्यायालय ने जमील बनाम उ.प्र. राज्य [(2010) 12 एससीसी 532], गुरु बसवराज बनाम कर्नाटक राज्य, [(2012) 8 एससीसी 734], सुमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह, [(2014) 7 एससीसी 323], पंजाब राज्य बनाम बावा सिंह, [(2015)) 3 एससीसी 441], और राज बाला बनाम हरियाणा राज्य, [(2016) 1 एससीसी 463] मामले में दिए गए निर्णय का हवाला दिया और दोहराया है कि, सजा प्रणाली के संचालन में, कानून को तथ्यात्मक आ व्यूह के आधार पर सुधारात्मक तंत्र या निवारण को अपनाना चाहिए। प्रत्येक मामले में तथ्य और परिस्थितियाँ, अपराध की प्रकृति, जिस तरह से इसकी योजना बनाई गई और कारित किया गया, अपराध करने का हेतुक, अभियुक्तों का आचरण, इस्तेमाल किए गए हथियारों की प्रकृति और अन्य सभी परिस्थितियाँ प्रासंगिक तथ्य हैं जिन पर विचार किया जाएगा। इसके अलावा, दंड सुनाने में अनुचित सहानुभूति न्याय व्यवस्था को और अधिक नुकसान पहुंचाएगी और कानून की प्रभावकारिता में जनता के विश्वास को कमजोर करेगी। अपराध की प्रकृति और उसके करने के तरीके को ध्यान में रखते हुए उचित दंड अधिनिर्णीत करना प्रत्येक न्यायालय का कर्तव्य है। सर्वोच्च न्यायालय ने आगे कहा कि न्यायालयों को न केवल अपराध

के पीडित बल्कि बडे पैमाने पर समाज के हित को भी ध्यान में रखना चाहिए। उचित दंड की व्यवस्था पर विचार करते समय, संपूर्ण समाज पर अपराध के प्रभाव और विधि के शासन को संतुलित करने की आवश्यकता है। देश में न्यायिक प्रवृत्ति सुधार और दण्ड के बीच संतुलन बनाने की रही है। समाज की सुरक्षा और आपराधिक प्रवृत्ति पर रोक लगाना कानून का उद्देश्य होना चाहिए जिसे अपराधियों और गलत काम करने वालों पर उचित दण्ड देकर हासिल किया जा सकता है। व्यवस्था और शांति बनाए रखने के एक उपकरण के रूप में कानून को समाज के सामने आने वाली चुनौतियों का प्रभावी ढंग से सामना करना चाहिए, क्योंकि समाज अपराध और असामंजस्य के गंभीर खतरों के तहत लंबे समय तक टिक नहीं सकता है और विकसित नहीं हो सकता है। इसलिए, दण्ड देने में अनुचित उदारता से बचना आवश्यक है। इस प्रकार, देश में अपनाया गया आपराधिक न्याय न्यायशास्त्र प्रतिशोधात्मक नहीं बल्कि सुधारात्मक और सुधारकारी है। साथ ही, हमारी आपराधिक न्याय प्रणाली में अंतर्निहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से भी बचा जाना चाहिए।

21. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और हमारे देश में आपराधिक न्यायशास्त्र को ध्यान में रखते हुए, जो सुधारात्मक और सुधारकारी है और प्रतिशोधात्मक नहीं है, यह न्यायालय मानता है कि कोई भी आरोपी व्यक्ति सुधार करने में असमर्थ नहीं है और इसलिए, उन्हें सामाजिक धारा में वापस लाने के लिए सुधार का अवसर देने के लिए सभी उपाय किए जाने चाहिए।

22. जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, 'दंड के सुधारात्मक सिद्धांत' को अपनाया जाना है और इस कारण से, 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखते हुए दंड देना आवश्यक है। आक्षेपित निर्णय के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि मामले के संपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों तथा अपराध की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए सत्र न्यायालय द्वारा दी गई आजीवन कारावास का दंड बहुत कठोर है। जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि आपराधिक न्याय प्रणाली में अंतर्निहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से बचना चाहिए।

23. बताया गया है कि आरोपी अपीलार्थीगण ने 12 साल की सजा काट ली है और इसलिए, हमारा मानना है कि यह अवधि पर्याप्त सजा होगी। जुर्माना और व्यतिक्रम की सजा बरकरार रखी गई है। यदि अभियुक्त अपीलार्थीगण किसी अन्य मामले में वांछित नहीं हैं, तो उन्हें तुरंत रिहा किया जाए। वह रिहाई कीतिथि से चार सप्ताह के भीतर जुर्माना जमा करेगा और यदि जुर्माना जमा नहीं किया गया तो उसे व्यतिक्रम की सजा भुगतनी होगी।

24. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित न्यायाधीश और आदेश उपरोक्त सीमा तक संशोधित होंगे। रिकॉर्ड तुरंत सत्र न्यायालय को वापस भेजा जाए।

25. इसलिए, हम आरोपी अपीलार्थीगण की आजीवन कारावास की सजा को 10 साल के

सश्रम कारावास में परिवर्तित करते हैं। जुर्माना और व्यतिक्रम बनाए रखा जाता है। अगर 10 साल का कारावास पूरा हो गया हो, यदि दण्ड की अवधि और व्यतिक्रम पूरा हो गया हो, यदि वे किसी अन्य मामले में वांछित नहीं हैं, तो अभियुक्त-अपीलार्थीगण को मुक्त कर दिया जाए।

(2023) 3 ILRA 684

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 15.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती रेनू अग्रवाल,

आपराधिक अपील संख्या 1013/2000

राजेंद्र प्रसाद @ गप्पू ...अपीलकर्ता

बनाम

यूपी राज्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: रमाकांत जयसवाल, न्याय मित्र, गोपेश त्रिपाठी

अधिवक्ता प्रतिवादी: शासकीय अधिवक्ता

अपराधिक कानून- भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 363, 366 और 376 - बलात्कार - भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 - 114-ए - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 164, 313 - दिनांक 05.05.1992 को आरोपी ने वादी के घर में घुसकर उसकी नाबालिग बेटी को बहला-फुसलाकर ले गया - घटना तीन लोगों ने देखी - घटना के समय वादी शादी में गई हुई थी - वादी ने 12.05.1992 को आरोपी के विरुद्ध एफआईआर दर्ज कराई - विचारणीय न्यायालय ने उपरोक्त धाराओं के तहत आरोप तय किए और कहा कि घटना के समय पीड़िता नाबालिग थी और नाबालिग की सहमति का कोई प्रभाव नहीं है - आरोपी ने पीड़िता को शादी के लिए बहलाया और उसका बलात्कार किया - अपील में चुनौती दी गई - आयोजित, कोई अस्पष्टता और अवैधता नहीं - पुष्टि करने और निरस्त होने योग्य है। (पैराग्राफ 4, 7, 10, 40)

आयोजित: विवेचक का यह कर्तव्य था कि वह पीड़िता की उम्र को स्कूल के दस्तावेजों से जांचे। अगर इसकी विवेचना नहीं की गई तो यह विवेचक की गलती है जिसके लिए पीड़िता की उम्र को विवादित नहीं किया जा सकता। अभियोजन पक्ष के वाद को विवेचक द्वारा की गई कमी के आधार पर नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। पीड़िता की गवाही 17.06.1992 को धारा 164 सीआरपीसी के तहत दर्ज की गई थी। लेकिन विचारणीय न्यायालय ने इस निर्णय में उस गवाही पर चर्चा नहीं की। अभिलेख पर धारा 164 सीआरपीसी के तहत कोई गवाही नहीं मिली लेकिन यह स्थापित कानून है कि सर्वोच्च न्यायालय के कई निर्णयों ने कहा है कि धारा 164 सीआरपीसी के तहत पीड़िता की गवाही केवल एक साक्ष्य का टुकड़ा है। पीड़िता की गवाही में कोई प्रमुख विरोधाभास नहीं है जो विचरण के दौरान दर्ज की गई और आरोपी को केवल पीड़िता की गवाही के आधार पर दोषी ठहराया जा सकता है। अपील निरस्त की जाती है। उसे संबंधित सी.जे.एम. के सामने आत्मसमर्पण करने का निर्देश दिया गया है। आरोपी की व्यक्तिगत बंधन और जमानत बंधन निरस्त कर दी गई है। (पैराग्राफ 30, 35, 36, 42, 43)

अपील निरस्त। (ई-13)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. XYZ बनाम गुजरात राज्य (2019) 10 SCC 337

2. जावेद बनाम दिल्ली राज्य, 2022 SCC ऑनलाईन डेल 4182

3. राम बिहारी यादव बनाम बिहार राज्य और अन्य, MANU/SC/0302/1998

4. फूल सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2022) 2 SCC 74

<u>माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती रेणु अग्रवाल</u>

1. अपीलकर्ता हेतु विद्वान न्याय मित्र श्री गोपेश त्रिपाठी और राज्य हेतु विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री वीर राघव चौबे को सुना।

2. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 374 (2) के अंतर्गत यह आपराधिक अपील, अपराध संख्या-234/1992 अंतर्गत धारा- 363, 366, 376 भा०दं०सं०, थाना- गोसाईगंज, जिला- लखनऊ से उद्भूत सत्र विचारण संख्या- 460/1996 में अपर सत्र न्यायाधीश, लखनऊ द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 10.11.2000 के विरुद्ध दायर की गई है। उक्त आदेश में अभियुक्त-अपीलकर्ता, राजेंद्र प्रसाद उर्फ गप्पू को भा०दं०सं० की धारा 363 के अंतर्गत दो वर्ष के कठोर कारावास के साथ 1,000/- रुपये के जुर्माने, भा०दं०सं० की धारा 366 के अंतर्गत दो वर्ष के कठोर कारावास के साथ 1,000/- रुपये के जुर्माने, भा०दं०सं० की धारा 376 के अंतर्गत सात वर्ष के कठोर कारावास के साथ 5,000/- रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई गयी एवं दोषी ठहराया गया है। आक्षेपित निर्णय में यह भी निर्देशित किया गया कि जुर्माने का भुगतान न करने पर, अपीलकर्ता को धारा 363 भा०दं०सं० के अंतर्गत छह महीने का अतिरिक्त कारावास, धारा 363 भा०दं०सं० के अंतर्गत छह माह का अतिरिक्त कारावास और धारा 376 भा०दं०सं० के अंतर्गत तीन वर्ष का अतिरिक्त कारावास भुगतना होगा।

3. माननीय सर्वोच्च न्यायालय के दिशानिर्देश के अनुसार पीड़िता का नाम उजागर नहीं किया गया है। उसका नाम अक्षर 'X' से संदर्भित है।

4. मुकदमे के संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं कि दिनांक 05.05.1992 की रात्रि लगभग 11:00 बजे, अभियुक्त राजेन्द्र प्रसाद उर्फ गप्पू परिवादी के घर में घुसा और उसकी नाबालिग पुत्री, जिसकी जन्मतिथि 20.08.1980 है, को बहला-फुसलाकर भगा ले गया। इस घटना को साक्षीगण विनोद कुमार, मोतीलाल, राम दशरथ और शत्रुघ्न ने देखा। जब अभियुक्त राजेंद्र प्रसाद उर्फ गप्पू और पीड़िता घर के अंदर थे, तब साक्षीगण परिवादी के घर में गए। घटना के समय परिवादी एक विवाह में सम्मिलित होने नारायणपुर गया था। परिवादी ने अपनी पुत्री की तलाश की परन्तु वह मिल नहीं सकी। परिवादी को ज्ञात हुआ कि राजेंद्र प्रसाद उर्फ गप्पू ने उसकी पुत्री का अपहरण कर लिया है।

5. लिखित रिपोर्ट के आधार पर अंतर्गत भारतीय दंड संहिता की धारा 363 व 366 के अंतर्गत थाना गोसाईगंज जिला लखनऊ में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करायी गयी। दिनांक 11.05.1992 को लगभग 15:40 बजे चिक रिपोर्ट भी जी.डी. संख्या 27 को पृष्ठांकित करते हुए तैयार की गई।

6. अन्वेषण उप निरीक्षक आर.डी. सिंह द्वारा किया गया, जिन्होंने परिवादी और पीड़िता के बयान दर्ज किए, घटना स्थल का निरीक्षण किया और नक्शा-नजरी तैयार किया। अन्वेषण के दौरान पीड़िता को कैसरबाग बस स्टैंड से बरामद किया गया। अन्वेषण अधिकारी ने प्रदर्श क-2 बरामदगीनामा, बरामदगी स्थल का नक्शा-नजरी प्रदर्श क-6 तैयार किया और पीड़िता को उसके माता-पिता के सुपुर्द किया। पीड़िता का

चिकित्सीय परीक्षण महिला चिकित्सक द्वारा किया गया, जिसने चिकित्सीय रिपोर्ट- प्रदर्श क-4 तैयार की,तथा पीड़िता के आयु निर्धारण हेतु भी उसका चिकित्सकीय परीक्षण किया गया। एक्स-रे रिपोर्ट,प्रदर्श क-3 और एक्स-रे प्लेट, वस्तु प्रदर्श -1 विषय-वस्तु, अभिलेख पर है। चिकित्सक की यह राय थी कि पीड़िता की आयु 16 से 17 वर्ष के मध्य थी। अन्वेषण पूर्ण होने के पश्चात, आरोप-पत्र सक्षम अधिकारिता युक्त न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया।

7. मामला सत्र न्यायालय के सुपुर्द किया गया जहां अभियुक्त उपस्थित हुआ और उसके विरूद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 363, 366 और 376 के अंतर्गत आरोप को विरचित किये गए। अभियुक्त/अपीलकर्ता ने अपने ऊपर लगाए गए आरोपों से इनकार किया और मुकदमा चलाए जाने का अनुरोध किया।

8. अपने मुकदमे को सिद्ध करने के लिये, अभियोजन पक्ष द्वारा निम्नलिखित साक्षीगण को प्रस्तुत किया गया: -

"(i) अभियोजन साक्षी -1, मुन्ना लाल (परिवादी)

(ii) अभियोजन साक्षी-2, पीड़िता।

(iii) अभियोजन साक्षी-3, डॉ. जे.पी. गुप्ता, रेडियोलॉजिस्ट।

(iv) अभियोजन साक्षी-4, डॉ. मृदुला शर्मा।

(v) अभियोजन साक्षी-5, उप निरीक्षक आर.डी. सिंह।

(vi) अभियोजन साक्षी-6, राम सुमिरन।

(vii) अभियोजन साक्षी-7, सेवानिवृत्त उपनिरीक्षक देव नाथ दुबे।"

9. मौखिक साक्ष्य के अतिरिक्त निम्नलिखित दस्तावेज साक्ष्य भी तैयार किए गए एवं न्यायालय में सिद्ध किये गए: -

"(i) प्रदर्श क -1, लिखित रिपोर्ट।

(ii) प्रदर्श क -2, बरामदगीनामा।

(iii) प्रदर्श क -3. एक्स-रे रिपोर्ट।

(iv) प्रदर्श क-4, चिकित्सीय रिपोर्ट।

(v) प्रदर्श क -5, नक्शा-नजरी ।

(vi) प्रदर्श क -6, बरामदगी स्थल का नक्शा-नजरी।

(vii) प्रदर्श क -7, आरोप-पत्र।

(viii) प्रदर्श क -8, चिक रिपोर्ट।

(ix) प्रदर्श क-9, रोजनामचाआम दिनांक 11.05.1992 की कार्बन प्रतिलिपि।

10. विद्वान विचारण न्यायालय ने शासकीय अधिवक्ता और अभियुक्त के विद्वान अधिवक्ता को सुना और अभिलेखों का परिशीलन करने के उपरान्त न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि घटना के दिनांक को पीड़िता अवयस्क थी और अवयस्क की सहमति अप्रभावी होती है। अभियुक्त अवयस्क पीड़िता को विवाह के उद्देश्य से बहला-फुसला कर भगा ले गया और उसके साथ बलात्कार किया। विचारण न्यायालय इस निष्कर्ष पर भी पहुंची कि अभियुक्त की आयु 25 वर्ष थी और न्यायालय ने अभियुक्त को कथित अपराध का दोषी पाया। उक्त निर्णय एवं आदेश दिनांक 10.11.2000 से व्यथित हो, वर्तमान अपील प्रस्तुत की गई है।

11. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह अभिकथन प्रस्तुत किया गया है कि विद्वान

विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश त्रुटिपूर्ण एवं मुकदमे के तथ्यों के विपरीत है। घटना के समय पीड़िता 18 वर्ष की थी और प्रथम सूचना रिपोर्ट अत्यधिक विलम्बपूर्वक दर्ज की गई थी। न्यायालय में कोई प्रत्यक्षदर्शी साक्षी प्रस्तुत नहीं किया गया और यदि अभियोजन कथानक को सच माना जाए तो अभियोजक की सहमति का निष्कर्ष अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री से प्राप्त होना चाहिए था। अतः यह प्रार्थना की जाती है कि अपीलकर्ता को प्रदान की गई दोषसिद्धि और सजा को अपास्त किया जाए।

12. इसके विपरीत, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया कि प्रथम सूचना रिपोर्ट के अनुसार पीड़िता अवयस्क थी और प्रथम सूचना रिपोर्ट में ही उसकी जन्मतिथि दिनांक 20.08.1980 अंकित थी तथा घटना 05.05.1992 को घटित हुई। उपरोक्त तथ्यों के आलोक में, पीड़िता अवयस्क थी और उसकी सहमति उपधारित नहीं की जा सकती। विचारण न्यायालय का निर्णय और आदेश, विचारण न्यायालय में प्रस्तुत किये गए साक्ष्यों के अनुरूप है, अतः अपील खारिज होने योग्य है।

13. अभियोजन पक्ष के साक्ष्य की पुनरावृत्ति हेतु, अभियोजन साक्षी-1 मुन्ना लाल ने कहा कि वह अपनी पत्नी सरस्वती देवी के साथ अपने रिश्तेदार के विवाह में नारायणपुर गया था और उसकी पुत्री अर्थात पीड़िता एवं उसका पुत्र अर्थात बृजमोहन घर पर थे। घटना के वक्त उसकी पुत्री की आयु लगभग 12 वर्ष थी। दिनेश चंद्र शर्मा उन्हें नारायणपुर में इस घटना की जानकारी देने गये थे। जब वह वापस आया तो उसकी पुत्री उसके घर से गायब थी, तथा उसके गाँव के विनोद कुमार, मोतीलाल, राम दशरथ और शत्रुघ्न ने उन्हें सूचित किया था कि उन्होंने अभियुक्त राजेंद्र प्रसाद उर्फ गप्पू को उसके घर में घुसते हुए देखा था और उन्होंने उस कोठरी का दरवाजा बंद कर दिया था जिसमे अभियुक्त पीड़िता के साथ था। अभियुक्त राजेंद्र प्रसाद उर्फ गप्पू ने दरवाजे का एक हिस्सा हटा दिया और पीड़िता को पीछे की तरफ से अपने साथ ले गया। परिवादी ने यह भी बताया कि पीड़िता घर से 3,000/- रुपये और आभूषण ले गई थी। उसने गांव में अपनी पुत्री को खोजा किन्तु उसके संबंध में पता नहीं चल सका। इस साक्षी ने लिखित रिपोर्ट दिनांक 11.05.1992 को प्रमाणित किया तथा शपथपूर्वक कथन किया कि उसकी पुत्री की जन्मतिथि 20.08.1980 है। अभियोजन साक्षी-1 ने अपनी बेटी का बरामदगीनामा सिद्ध किया एवं उस पर अपने हस्ताक्षर की पहचान की।

14. अभियोजन साक्षी-2, पीड़िता ने कथन किया कि घटना के दिनांक को उसके माता-पिता एक विवाह में सम्मिलित होने गये थें। उसका भाई दुकान पर सोने चला गया। रात्रि लगभग 10:00 - 11:00 बजे अभियुक्त राजेंद्र प्रसाद उर्फ गप्पू और उर्मिला उसके घर आए और दरवाजा खटखटाया। पीड़िता के घर में ही एक छोटी सी दुकान थी। अभियुक्त राजेंद्र ने दरवाजा खटखटाया और उर्मिला भी उसके साथ थी। उर्मिला की आवाज सुनकर, उसने दरवाजा खोला। अभियुक्त राजेंद्र ने पुकार (पान मसाला) मांगा। इस पर, उसने उत्तर दिया कि दुकान पर ताला लगा हुआ है और वह इस समय पुकार (पान मसाला) नहीं दे सकती। उर्मिला ने कहा कि वे लोग बाहर खड़े हैं, वह उन्हें पान मसाला दे सकती है। जब वह खिड़की से कोठरी (छोटे कमरे) में

दाखिल हुई, तो आरोपी भी कोठरी (छोटे कमरे) में घुस गया और उर्मिला ने बाहर से दरवाजा बंद कर दिया। हल्ला सुनकर पड़ोसी वहां जमा हो गए और उन्होंने दरवाजा बाहर से बंद कर दिया। अभियुक्त राजेंद्र प्रसाद उर्फ गप्पू ने पीड़िता को धमकी दी कि अगर वह उसके साथ नहीं जाएगी तो वह चाकू से मार देगा, और वह पीड़िता को अपने साथ ले गया। आरोपी राजेंद्र प्रसाद उर्फ गप्पू उसे पहले लखनऊ, फिर फैजाबाद ले गया और एक महीने तक उसे एक घर में रखा। वृद्धा गृहस्वामिनी ने उसे भोजन और वस्त्र प्रदान किये। अभियुक्त ने उसके साथ बलात्कार किया। दिनांक 10.06.1992 को जब वह अभियुक्त के साथ लखनऊ आ रही थी, तब उसने अपने परिचितगण रामअवतार और पूरनमासी को देखा; उसने शोर मचाया तो पुलिस कर्मियों ने 10 कदम की दूरी पर अभियुक्त को गिरफ्तार कर लिया। बरामदगीनामा तैयार किया गया और उसने उस पर अपने अंगूठे का निशान लगाया।

15. अभियोजन साक्षी-3, डॉ. जे. पी. गुप्ता ने एक्स-रे किया और एक्स-रे रिपोर्ट और एक्स-रे प्लेट तैयार की। दोनों ही कागज न्यायालय में उनके द्वारा सिद्ध किये गए, और उन्होंने पीड़िता की आयु 16 से 17 वर्ष के मध्य निर्धारित की।

16. अभियोजन साक्षी-4 डॉ. मृदुला शर्मा ने अभिसाक्ष्य में बताया कि उन्होंने 11.06.1992 को लगभग 12:15 बजे पीड़िता का चिकित्सकीय परीक्षण किया, जिसे C.P. 2259 सिद्धेश्वरी तिवारी द्वारा लाया गया था। पीड़िता के शरीर पर कोई वाह्य चोट नहीं पाई गई। पैथोलॉजिकल और रेडियोलॉजिकल रिपोर्ट के अनुसार बलात्कार के संबंध में कोई राय नहीं दी जा सकी। अभियोजन साक्षी-4 ने चिकित्सकीय आख्या प्रदर्श क-6 को सिद्ध भी किया।

17. अभियोजन साक्षी-5, उप निरीक्षक आर. डी. सिंह न्यायालय में उपस्थित हुए और प्रदर्श क-5 नक्शा नजरी, प्रदर्श क-2, बरामदगीनामा, प्रदर्श क -6, बरामदगी स्थल का नक्शा नजरी और प्रदर्श क -7, आरोप-पत्र को सिद्ध किया। उन्होंने यह कथन भी किया कि उन्होंने पीड़िता को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 164 के अंतर्गत बयान दर्ज कराने हेतु प्रस्तुत किया था।

18. अभियोजन साक्षी-6, राम सुमिरन- प्रथम सूचना रिपोर्ट लेखक, जिन्होंने परिवादी मुन्ना लाल के कथन को लेखबद्ध किया था, ने न्यायालय में प्रथम सूचना रिपोर्ट को प्रमाणित किया कि यह उनके हस्तलेख में है।

19. अभियोजन साक्षी-7, उप निरीक्षक देव नाथ दुबे एक औपचारिक साक्षी हैं, जिन्होंने चिक रिपोर्ट संख्या 143, दिनांक 11.05.1992, प्रदर्श क -8, चिक रिपोर्ट और प्रदर्श क-9 अर्थात रोजनामचा आम को सिद्ध किया।

20. अभियोजन साक्ष्य के समापन के पश्चात दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अंतर्गत अभियुक्त का कथन दर्ज किया गया था, जिसमें उसने कथन किया कि उसे इस मामले में झूठा फंसाया गया है। परिवादी मुन्ना के साथ, सिंघाड़ा काटने के सम्बन्ध में उसका विवाद हुआ था, इसलिए उसे झूठे मामले में फंसाया गया है। अपीलकर्ता ने अपने बचाव में दो साक्षी प्रस्तुत किये, जो कि क्रमशः प्रतिरक्षा साक्षी-1 उर्मिला और प्रतिरक्षा साक्षी-2, राम अवतार हैं :-

> "प्रतिरक्षा साक्षी-1, उर्मिला ने कथन किया कि उसे यह पता था कि पीड़िता

आरोपी के साथ भाग गई है परन्तु वह अपने घर पर थी क्योंकि घटना के दिनांक से दो दिन पूर्व ही उसने एक बच्चे को जन्म दिया था।

प्रतिरक्षा साक्षी-2, राम अवतार ने कथन किया कि घटना के समय वह उपस्थित नहीं था। उप निरीक्षक ने एक सादे कागज पर उसके अंगूठे का निशान ले लिया था।"

21. अभिलेख के परिशीलन से यह स्पष्ट है कि घटना दिनांक 05.05.1992 को घटित हुई थी, यद्यपि प्रथम सूचना रिपोर्ट पाँच दिन के विलम्ब से दिनांक 12.05.1992 को दर्ज की गई थी। घटनास्थल से थाने की दूरी 7 किलोमीटर पश्चिम दिशा में है।

22. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि प्रथम सूचना रिपोर्ट पांच दिन के अत्यधिक विलम्ब से दर्ज की गई है किन्तु परिवादी द्वारा स्वयं इसका उल्लेख प्रथम सूचना रिपोर्ट में किया गया है तथा प्रथम सूचना रिपोर्ट में विलम्ब का यह स्पष्टीकरण दिया है कि उसने अपनी पुत्री को गांव में खोजा, जब उसे अपनी पुत्री का पता नहीं चल सका तो उसने थाने में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई। इसलिए प्रथम सूचना रिपोर्ट में हुए विलम्ब से प्रथम सूचना रिपोर्ट की सत्यता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

23. यहां पर यह उल्लेख करना आवश्यक है कि दिनांक 10.06.1992 को पीड़िता को तब बरामद किया गया था जब वह अभियुक्त अपीलकर्ता के साथ रिक्शा पर आ रही थी। बरामदगीनामा प्रदर्श क -2 के रूप में अभिलेख पर उपलब्ध है, जिस पर अभियुक्त राजेंद्र प्रसाद उर्फ गप्पू के हस्ताक्षर भी हैं। इसलिए यह तथ्य निर्विवाद है कि अभियुक्त पीड़िता को बहला-फुसलाकर अपने साथ ले गया था, और वह इस अवधि में राजेंद्र प्रसाद उर्फ गप्पू की अभिरक्षा में रही, जब तक कि वह अभियुक्त के कब्जे से बरामद नहीं हो गई।

24. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि पीड़ित के शरीर पर कोई वाह्य अथवा आंतरिक चोट नहीं पाई गई। अभियोजन साक्षी-4, डॉ. मृदुला शर्मा ने शपथपूर्वक कहा कि पीड़िता के किसी भी अंग पर कोई ताजी वाह्य चोट नहीं है। योनिच्छद (Hymen) फट गई थी और ठीक हो गई थी और पैथोलॉजिकल रिपोर्ट के अनुसार, बलात्कार के सम्बन्ध में डॉक्टर द्वारा कोई राय नहीं दी गई थी किन्तु अभियोजन साक्षी-2, पीड़िता ने स्वयं अभियोजन पक्ष के इस कथन की पुष्टि की कि अभियुक्त उसे बस से लखनऊ और उसके बाद फैजाबाद ले गया। उसने बताया कि उसने शोर नहीं मचाया क्योंकि अभियुक्त ने उसे जान से मारने की धमकी दी थी। उसने यह भी कथन किया कि अगर उर्मिला ने उनका घर खटखटाया नहीं होता तो वह दरवाजा नहीं खोलती। साक्षी ने यह कहा है कि आरोपी ने उसकी सहमति के विरुद्ध उसके संग बलात्कार किया। अपने बयान के पृष्ठ संख्या- 8 पर उसने यह कहा कि उसने अभियुक्त को उसके साथ बलात्कार करने से रोकने के लिए बल का प्रयोग किया। वह कमरे से भाग नहीं सकी क्योंकि आरोपी सदैव उस कमरे को बंद रखता था। अतः पीड़िता की ओर से सहमति का कोई प्रश्न ही नहीं है।

25. भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 114-A को अधोउद्धृत है:-

*"**114A** - बलात्संग के लिए कतिपय अभियोजन में सम्मति के न होने के बारे में उपधारणा –*

भारतीय दण्ड संहिता (1860 का 45) की धारा 376 की उपधारा (2) के खण्ड (क), खण्ड (ख), खण्ड (ग), खण्ड (घ), खण्ड (ङ), खण्ड (च), खण्ड (छ), खण्ड (ज), खण्ड (झ), खण्ड (ञ), खण्ड (ट), खण्ड (ठ), खण्ड (ड) या खण्ड (ढ) के अधीन बलात्संग के किसी अभियोजन में, जहां अभियुक्त द्वारा मैथुन किया जाना साबित हो जाता है और प्रश्न यह है कि क्या वह उस स्त्री की, जिसके बारे में यह अभिकथन किया गया है कि उससे बलात्संग किया गया है, सम्मति के बिना किया गया और ऐसी स्त्री अपने साक्ष्य में न्यायालय के समक्ष यह कथन करती है कि उसने सम्मति नहीं दी थी, वहां न्यायालय यह उपधारणा करेगा कि उसने सम्मति नहीं दी थी।]"

26. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **XYZ बनाम गुजरात राज्य (2019) 10 एससीसी 337** के प्रस्तर 15 में निम्नवत धारित किया है: -

"सुनवाई के दौरान, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 114-A का प्रावधान हमारे समक्ष प्रस्तुत किया। भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 114-A बलात्संग के लिए कतिपय अभियोजन में सम्मति के न होने के बारे में उपधारणा से संबंधित है। उपरोक्त धारा के पठान से यह स्पष्ट हो जाता है कि, जहां आरोपी द्वारा यौन संबंध सिद्ध होता है और प्रश्न यह है कि क्या यह उस महिला की सहमति के बिना था जिसके साथ कथित तौर पर बलात्कार किया गया था, और ऐसी महिला न्यायालय के समक्ष अपने साक्ष्य में कथन करती है कि उसने सहमति नहीं दी थी, वहाँ न्यायालय यह उपधारणा करेगी कि उसने सहमति नहीं दी थी।"

27. इसके अतिरिक्त, माननीय उच्चतम न्यायालय ने **जावेद बनाम राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली राज्य 2022 SCC Online Del 4182** के प्रस्तर 7 में निम्नवत धारित किया है: -

"16 वर्ष की आयु में अवयस्क की सहमति, विशेष रूप से, जब आवेदक 23 वर्ष का था और पहले से ही विवाहित था, आवेदक को जमानत से वंचित कर देता है। अवयस्क की सहमति विधि की दृष्टि में कोई सहमति नहीं है।"

28. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा यह अभिकथन प्रस्तुत किया गया है कि पीड़िता की आयु 12 वर्ष है, अतः अवयस्क की सहमति का कोई प्रभाव नहीं होगा।

29. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि पीड़िता की चिकित्सकीय आयु 16 से 17 वर्ष के मध्य पाई गई है क्योंकि घुटने के आसपास का एपिफेसिस आंशिक युक्त था, एवं और कलाई के आसपास का एपिफेसिस आंशिक युक्त नहीं था, अतः डॉक्टर की राय में, आयु लगभग 16-17 वर्ष है।

30. अभिलेख के परिशीलन से यह स्पष्ट है कि अन्वेषण अधिकारी द्वारा आयु का कोई प्रमाण

एकत्र नहीं किया गया है। यद्यपि परिवादी ने विशेष रूप से विद्यालय दस्तावेज़ के अनुसार पीड़िता की जन्मतिथि 20.06.1980 अंकित की थी। अन्वेषण अधिकारी का यह कर्तव्य था कि वह विद्यालय के दस्तावेज़ से पीड़िता की आयु की पुष्टि करे। यदि जन्मतिथि अन्वेषण अधिकारी द्वारा विद्यालय प्रमाण पत्र से सत्यापित नहीं की जाती है, तो यह अन्वेषण अधिकारी की त्रुटि है जिस कारण से पीड़ित की आयु पर विवाद नहीं किया जा सकता है। अन्वेषण अधिकारी द्वारा त्रुटि के आधार पर अभियोजन वाद को खारिज नहीं किया जा सकता है।

31. इसके अतिरिक्त, **राम बिहारी यादव बनाम बिहार राज्य और अन्य, MANU/SC/0302/1998** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारित किया है कि अन्वेषण अधिकारी की ओर से चूक की स्थिति में, अभियोजन पक्ष के साक्ष्य को ऐसी चूक के प्रभाव से परे हो कर देखा जाना चाहिए ताकि यह पता लगाया जा सके कि क्या उक्त साक्ष्य विश्वसनीय है अथवा नहीं।

> *"ऐसे मामलों में, अभियोजन पक्ष के कथानक का परीक्षण ऐसी चूकों और अधिकारियों के दूषित आचरण से निष्प्रभावित रखते हुए करना होगा अन्यथा जानबूझकर की गई रिष्टियां जारी रहेगी और परिवादी पक्ष को न्याय नहीं मिलेगा, और यह स्पष्ट रूप से विधि प्रवर्तनकारी एजेंसियों अपितु न्याय प्रशासन में भी लोगों के विश्वास को विचलित कर देगा।"*

32. यह सुस्थापित विधि है कि जहां शैक्षिक दस्तावेज से आयु का विशिष्ट प्रमाण उपलब्ध है, वहाँ डॉक्टर की राय को महत्त्व नहीं दिया जा सकता है। यद्यपि अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि इस विधि को किशोर न्याय अधिनियम, 2013 में संशोधन द्वारा सम्मिलित किया गया है। इस संशोधन से पूर्व, चिकित्सकीय साक्ष्य आयु के प्रमाण के रूप में मान्य था। यदि यह मान भी लिया जाए कि चिकित्स्कीय साक्ष्य स्वीकार्य है, तब भी चिकित्सीय आयु मात्र एक राय है और चिकित्सीय राय अनुमान पर आधारित होती है। परिवादी ने प्रथम सूचना रिपोर्ट में ही विशिष्ट जन्म तिथि का कथन किया था। जन्मतिथि से यह स्पष्ट है कि घटना के समय पीड़िता 12 वर्ष की थी।

33. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि अभियोजन साक्षी-3 ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह कहा है कि "पीड़िता की आयु न तो 15 वर्ष और न ही 18 वर्ष विनिश्चित की जा सकती है"; अतः, पीड़िता की आयु 15 वर्ष से कम नहीं हो सकती है और अभियोजन पक्ष द्वारा उल्लिखित पीड़िता की आयु विश्वसनीय नहीं है।

34. यह पुनरावृत्ति की जाती है कि चिकित्सीय राय मात्र एक राय है जो परिवादी,जो पीड़िता का पिता है, द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट में वर्णित एवं सिद्ध की गई जन्म तिथि को प्रतिस्थापित नहीं कर सकती है। अभियोजन पक्ष ने पीड़िता की आयु के संबंध में सबूत के अपने भार का निर्वहन कर दिया है। अभियुक्त द्वारा, अभियोजन पक्ष द्वारा पीड़िता की सिद्ध की गई आयु के खंडन हेतु अपने बचाव में कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है।

35. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह भी तर्क दिया गया है कि धारा 164 के अंतर्गत पीड़िता का दर्ज किया गया बयान अभिलेख पर

नहीं पाया गया। यद्यपि, पीड़िता का ऐसा बयान दर्ज कर लिया गया था। यह सत्य है कि 17.06.1992 को धारा 164 के अंतर्गत पीड़िता का बयान दर्ज किया गया था। किन्तु विद्वान विचारण न्यायालय ने धारा 164 के अंतर्गत दर्ज किए गए बयान पर अपने निर्णय में चर्चा नहीं की। धारा 164 के अंतर्गत दर्ज बयान अभिलेख पर नहीं पाया गया, किन्तु माननीय सर्वोच्च न्यायालय के कई निर्णयों में यह धारित किया गया है कि धारा 164 के अंतर्गत पीड़िता का दर्ज किया गया बयान मात्र एक साक्ष्य है। धारा 164 के अंतर्गत पीड़िता के दर्ज बयान का साक्ष्य मूल्य अभियोजन संस्करण की पुष्टि अथवा खंडन करना है। पीड़िता ने परीक्षण के दौरान पीठासीन अधिकारी के समक्ष शपथपूर्वक दर्ज कराए गए अपने बयान में अभियोजन कथानक की पुष्टि की थी। अतः, यदि धारा 164 के अंतर्गत पीड़िता के दर्ज बयान की चर्चा निर्णय में नहीं की गई है,तो न्यायालय में दर्ज पीड़िता का बयान असत्य एवं अविश्वसनीय नहीं हो जाता।

36. विचारण के दौरान दर्ज किए गए पीड़िता के बयान में कोई महत्वपूर्ण विरोधाभास नहीं है और बयान ने इस स्तर तक विश्वास पैदा किया कि अभियुक्त को मात्र पीड़िता के बयान के आधार पर ही दोषी ठहराया जा सकता है।

37. **फूल सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2022) 2 SCC 74**, के प्रासंगिक प्रस्तर निम्नवत है, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय निम्नानुसार मत व्यक्त किया है: -

> 4.1 यह प्रस्तुत किया जाता है कि वर्तमान वाद में विद्वान विचारण न्यायालय और साथ ही उच्च न्यायालय ने अभियोजन पक्ष/पीड़िता के एकमात्र साक्ष्य के आधार पर अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के अंतर्गत अपराध के लिए दोषी ठहराया है। इस प्रकार अभियोजक की विश्वसनीयता पर संदेह करने का कोई कारण नहीं है। यह प्रस्तुत किया गया है कि पीड़िता का प्रतिपरीक्षण करते समय उससे कोई ऐसा प्रश्न भी नहीं पूछा गया कि अभियुक्त के विरुद्ध झूठा मुकदमा दर्ज किया गया था।
>
> 4.2 यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि एक बार जब यह पाया जाता है कि पीड़िता विश्वसनीय है, तो उस मुक़दमे में, एकमात्र साक्षी पीड़िता के बयान पर विश्वास करते हुए, बलात्कार के लिए भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के अंतर्गत सजा दी जा सकती है। **गणेशन बनाम राज्य, (2020) 10 SCC 573; संतोष प्रसाद बनाम बिहार राज्य, (2020) 3 SCC 443; एच.पी. राज्य बनाम मंगा सिंह, (2019) 16 SCC 759;** और **राज्य (एनसीटी दिल्ली) बनाम पंकज चौधरी, (2019) 11 SCC 575**, निर्णयविधियों का इस न्यायालय द्वारा आश्रय लिया गया है।
>
> 4.3 यह प्रस्तुत किया गया है कि **पंकज चौधरी (उपरोक्त)** के वाद में, इस न्यायालय द्वारा विशेष रूप से टिप्पणी की गई है एवं यह धारित किया गया है कि पीड़िता के एकमात्र परिसाक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि की जा सकती है यदि यह आत्मविश्वास को प्रेरित करती है और विधि का ऐसा कोई नियम नहीं

है कि सम्पुष्टि के बिना पीड़िता के साक्ष्य पर विश्वास नहीं किया जा सकता है ।

5.2 **गणेशन (उपरोक्त)** के वाद में, इस न्यायालय ने यह टिप्पणी की है एवं यह धारित किया है कि पीड़िता/अभियोजन पक्ष के साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि हो सकती है, जब पीड़िता का बयान विश्वसनीय, बेदाग एवं खरा पाया जाता है। उपरोक्त वाद में, इस न्यायालय को पीड़िता के एकमात्र साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि के संबंध में इस न्यायालय के निर्णयों की श्रृंखला पर विचार करने का अवसर मिला। प्रस्तर संख्या 10.1 से 10.3 में, निम्नवत टिप्पणी की गई है एवं यह धारित किया गया है:-

10.1. क्या यौन उत्पीड़न, छेड़छाड़ इत्यादि सम्बन्धी वाद में पीड़िता के एकमात्र साक्ष्य पर दोषसिद्धि हो सकती है। इस सम्बन्ध में विजय **[विजय बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2010) 8 SCC 1911]** निर्णयविधि के प्रस्तर 9 से 14 में निम्नवत टिप्पणी की गई है: (SCC pp. 195-98)

"9. **महाराष्ट्र राज्य चंद्रप्रकाश केवलचंद जैन (महाराष्ट्र राज्य चंद्रप्रकाश केवलचंद जैन, (1990) 1 SCC 550)** में इस न्यायालय ने धारित किया कि एक महिला, जिसका यौन उत्पीड़न हुआ है, अपराध की सह-अभियुक्त नहीं अपितु किसी अन्य व्यक्ति की वासना की शिकार है, और इसलिए उसके साक्ष्य का किसी सह-अभियुक्त की भाँति संदेह के साथ परीक्षण करने की आवश्यकता नहीं है। न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की: -

> *'16. यौन अपराध की पीड़िता की किसी सह-अभियुक्त से समानता नहीं की जा सकती । वह वास्तव में अपराध की शिकार है। साक्ष्य अधिनियम में यह कहीं नहीं कहा गया है कि उसके साक्ष्य को तब तक स्वीकार नहीं किया जा सकता जब तक कि वह भौतिक विवरणों से पुष्ट न हो। वह निस्संदेह अंतर्गत धारा 118 के तहत एक सक्षम साक्षी है और उसके साक्ष्य को वही महत्व मिलना चाहिए जो शारीरिक हिंसा के मामलों में घायल व्यक्ति के साक्ष्य को दिया जाता है। उसके साक्ष्य के मूल्यांकन में उसी स्तर की सतर्कता एवं सावधानी बरतनी चाहिए जैसी किसी घायल परिवादी या गवाह के मामले में बरती जाती है, इससे अधिक नहीं।*

*10. **उ. प्र. राज्य बनाम पप्पू (उत्तर प्रदेश राज्य बनाम पप्पू, (2005) 3 SCC 594]** में इस न्यायालय ने धारित किया कि ऐसे वाद में भी जहां यह प्रदर्शित किया गया है कि लड़की सहज प्रवाह वाली या संभोग की आदी है, अभियुक्त को बलात्कार के आरोप से मुक्त करने*

का आधार नहीं हो सकता है। उस विशेष अवसर के लिए उसकी सहमति को स्थापित किया जाना चाहिए। पीड़िता पर चोट की अनुपस्थिति एक ऐसा कारक नहीं हो सकती है जो न्यायालय को अभियुक्त को दोषमुक्त करने के लिए प्रेरित कर सके। पुनः न्यायालय ने कहा कि पीड़िता के एकमात्र साक्ष्य पर दोषसिद्धि हो सकती है और यदि न्यायालय पीड़िता के बयान से संतुष्ट नहीं है, तो वह प्रत्यक्ष या परिस्थितिजन्य अन्य साक्ष्य मांग सकती है, जिससे उसका परिसाक्ष्य सम्पुष्ट किया जा सके। न्यायालय ने निम्नवत धारित किया दिया: (SCC p. 597, para 12).

> *12. यह सुस्थापित है कि बलात्कार के अपराध का शिकार होने की शिकायत करने वाली पीड़िता अपराध के बाद सह-अभियुक्त नहीं होती है। उसके लिए विधि का कोई ऐसा नियम नहीं है कि पीड़िता के परिसाक्ष्य के आधार पर, साक्ष्य की भौतिक विवरणों से सम्पुष्टि के अभाव में, कार्रवाई नहीं की जा सकती। उसका स्तर घायल साक्षी से भी ऊंचा है। पश्चातवर्ती मामले में, शारीरिक रूप पर चोट लगती है, जबकि पूर्ववर्ती मामले में यह चोट शारीरिक होने के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक और भावनात्मक भी होती है। हालाँकि, यदि तथ्यों के न्यायालय को पीड़िता के कथा को उसके प्रत्यक्ष मूल्य पर स्वीकार करना कठिन लगता है, तो वह प्रत्यक्ष या परिस्थितिजन्य साक्ष्य का अन्वेषण कर सकती है, जो उसके साक्ष्य के सम्बन्ध में आश्वस्त करे।"*

*11. **पंजाब राज्य बनाम गुरमीत सिंह {पंजाब राज्य बनाम गुरमीत सिंह, (1996) 2 SCC 3841}** निर्णयविधि में इस न्यायालय ने धारित किया कि यौन उत्पीड़न, छेड़छाड़ आदि से जुड़े मामलों में, न्यायालय ऐसे मामलों पर अधिकतम संवेदनशीलता सहित विचार करने हेतु कर्तव्यबद्ध है। अभियोजक के बयान में तुच्छ विरोधाभास या महत्वहीन विसंगतियां अन्यथा विश्वसनीय अभियोजन मामले को खारिज करने का आधार नहीं होनी चाहिए। यौन उत्पीड़न की पीड़िता का साक्ष्य सजा के लिए पर्याप्त है और इसके लिए किसी भी पुष्टि की आवश्यकता नहीं है जब तक कि कोई ठोस कारण न हो। न्यायालय न्यायिक विवेक की संतुष्टि हेतु उसके बयान से आश्वस्त हो सकने वाले कारकों का अन्वेषण कर सकती है। पीड़िता का बयान किसी घायल साक्षी की तुलना में अधिक विश्वसनीय है क्योंकि वह सह-अभियुक्त नहीं होती है।*

*12. **उड़ीसा राज्य बनाम ठुकुरा बेसरा{(उड़ीसा राज्य थाहारू बेसरा, (2002) 9 SCC 86}** में इस न्यायालय ने माना कि बलात्कार मात्र शारीरिक हमला नहीं है, अपितु प्रायः यह पीड़िता के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को नष्ट कर देता है। बलात्कारी असहाय महिला की आत्मा को अपमानित करता है और इसलिए सम्पूर्ण वाद की पृष्ठभूमि में पीड़िता के साक्ष्य का मूल्यांकन करना चाहिए और ऐसे मामलों में, अन्य साक्षियों परीक्षण न करना अभियोजन पक्ष की गंभीर दुर्बलता नहीं हो सकती है, मुख्य रूप से जहां गवाहों ने अपराध होते नहीं देखा है।*

*13. **हिमाचल प्रदेश राज्य बनाम रघुबीर सिंह {स्टेट ऑफ एच. पी. बनाम रघुबीर सिंह, (1993) 2 SCC 622}** में इस न्यायालय ने माना कि दोषसिद्धि के निर्णय पर विचार करने से पूर्व पीड़िता के साक्ष्य की पुष्टि हेतु किसी अन्य साक्ष्य को तलाश करने की कोई विधिक बाध्यता नहीं है। साक्ष्यों का मूल्यांकन किया जाना चाहिए, न कि उन्हें गिना जाना चाहिए। यदि पीड़िता का साक्ष्य विश्वास प्रेरित करता हैं और वह परिस्थितियां, जो उसकी सत्यता के विरुद्ध है, अनुपस्थित है, तब पीड़िता के एकमात्र साक्ष्य पर दोषसिद्धि की जा सकती है। इसी प्रकार के दृष्टिकोण की पुनरावृत्ति, इस न्यायालय द्वारा वाहिद खान बनाम म.प्र. राज्य, **(वाहिद खान बनाम म.प्र. राज्य, (2010) 2 SCC 9)** में, पूर्व निर्णय **रामेश्वर बनाम राजस्थान राज्य [रामेश्वर बनाम राजस्थान राज्य, AIR 1952 SC 541]** का आश्रय लेते हुए की गई है।*

14. इस प्रकार, इस बिंदु पर प्रकट होने वाली विधि इस आशय की है कि पीड़िता का बयान यदिविश्वसनीय पाया जाता है, तो किसी पुष्टि की आवश्यकता नहीं है। न्यायालय, पीड़िता की एकमात्र गवाही पर अभियुक्त को दोषी ठहरा सकता है।"

*5.3 **पंकज चौधरी (उपरोक्त)** के मामले में, यह धारित किया गया कि एक सामान्य नियम के रूप में, यदि विश्वसनीय है, तो अभियुक्त की सजा बिना किसी पुष्टि के, एकमात्र साक्ष्य पर आधारित हो सकती है। आगे यह देखा गया और धारित किया गया कि पीड़िता के एकमात्र साक्ष्य पर न्यायालय द्वारा मात्र धारणाओं और अनुमानों के आधार पर संदेह नहीं किया जाना चाहिए। प्रस्तर 29 में, यह टिप्पणी की गई है एवं धारित किया गया है: -*

*"29. यह अब विधि का सुस्थापित सिद्धांत है कि पीड़िता के एकमात्र साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि की जा सकती है, यदि यह आत्मविश्वास को प्रेरित करती है **{विष्णु बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2006) 1 SCC 283}**। इस न्यायालय के निर्णयों की श्रृंखला से यह सुस्पष्ट है कि विधि का कोई ऐसा नियम या व्यवहार नहीं है कि पीड़िता के साक्ष्य के आधार पर संपुष्टि के अभाव में विश्वास नहीं किया जा सकता है, और जैसा कि धारित किया गया है कि संपुष्टि बलात्कार के मामले में दोषसिद्धि के लिए अनिवार्य शर्त नहीं है। यदि पीड़िता का साक्ष्य किसी*

प्राथमिक दुर्बलता से ग्रस्त नहीं है और "संभाव्यता कारक" इसे अविश्वसनीय नहीं बनाता है, तो सामान्य नियम के अनुसार, चिकित्सीय साक्ष्य के अलावा किसी अन्य संपुष्टि पर बल देने का कोई कारण नहीं है, जहाँ वाद की परिस्थितियों के दृष्टिगत, चिकित्सीय साक्ष्य से आशा की जा सकती है ***[राजस्थान राज्य बनाम एन. के. {राजस्थान राज्य बनाम एन. के., (2000) 5 SCC 301}"***।

38. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने बचाव पक्ष की साक्षी उर्मिला के बयान पर ध्यान आकर्षित किया था, जो वही महिला है जिसके बारे में यह कहा गया है कि वह अभियुक्त राजेंद्र प्रसाद उर्फ गप्पू के साथ पीड़िता का दरवाजा खटखटाने आई थी और उसने शपथ पर कहा था कि वह राजेंद्र प्रसाद उर्फ गप्पू के साथ नहीं आई थी क्योंकि उसने दो दिन पहले एक बच्चे को जन्म दिया था। वह हितबद्ध साक्षी है और कुछ सीमा तक, उसने अपराध कारित करने में अपीलकर्ता की सहायता की, इसलिए बचाव पक्ष की साक्षी उर्मिला के बयान पर विश्वास नहीं किया जा सकता है। जहां तक प्रतिरक्षा साक्षी -2 राम अवतार का प्रश्न है, वह बरामदगी का गवाह है, जिसने बरामदगीनामा पर अपने अंगूठे का निशान लगाया था। उसने परीक्षण के दौरान बरामदगीनामा पर अपने हस्ताक्षर स्वीकार किए, किन्तु उसने बरामदगीनामा की विषय-वस्तु से इनकार किया। यह पहले ही सिद्ध हो चुका है कि जब पीड़िता को बरामद किया गया था तब वह अभियुक्त के साथ थी और बरामदगीनामा पर अभियुक्त राजेंद्र प्रसाद उर्फ गप्पू द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे, इसलिए बरामदगीनामा पर संदेह नहीं किया जा सकता था, भले ही प्रतिरक्षा साक्षी-2 राम अवतार ने विषय-वस्तु से इनकार किया हो।

39. अपीलकर्ता का मामला यह है कि उसका सिंघाड़े के संबंध में विवाद था, जिसे मुन्ना ने बोया था और आरोपी अपीलकर्ता ने गैरकानूनी रीति से काट लिया था, किन्तु घटना के संबंध में कोई प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह कोई बड़ी घटना नहीं थी। अभियोजन पक्ष ने समग्र साक्ष्य में इस तथ्य को प्रमाणित किया कि पीड़िता को दिनांक 05.05.1992 को राजेंद्र प्रसाद गप्पू द्वारा बहला-फुसलाकर भगाया गया, तथा दिनांक 10.06.1992 को उसे अभियुक्त राजेंद्र प्रसाद गप्पू के कब्जे से बरामद किया गया। बरमदगीनामा पर अभियुक्तगण के साथ-साथ साक्षीगण द्वारा हस्ताक्षर किये गए, विलम्ब का स्पष्टीकरण दिया गया है, पीड़िता की आयु का विशेष रूप से प्रथम सूचना रिपोर्ट में जन्म तिथि के साथ-साथ परिवादी के बयान द्वारा भी उल्लेख किया गया है। पीड़िता अवयस्क सिद्ध हुई और उसकी सहमति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इसके अलावा, पीड़िता की सहमति अभियुक्त के पक्ष में उपधारित नहीं की जा सकी। अभियुक्त अपीलकर्ता द्वारा सहमति को स्पष्ट साक्ष्य द्वारा सिद्ध किया जाना है।

40. विचारण न्यायालय ने अपने निर्णय में सभी तथ्यों पर चर्चा और उनका निस्तारण किया है। विचारण न्यायालय के निर्णय में कोई अस्पष्टता और अवैधता नहीं है और विचारण न्यायालय के निर्णय पुष्ट किये जाने योग्य है, अपील निरस्त की जा सकती है।

41. जहां तक दंड का प्रश्न है, विद्वान विचारण न्यायालय ने आदेश पारित करते समय अपीलकर्ता की कम आयु पर विचार करते हुए भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के अंतर्गत सात वर्ष के सश्रम कारावास का दंडादेश पारित किया है, जो इस मामले में विहित न्यूनतम सजा है। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता विचारण न्यायालय द्वारा प्रदान की गई सजा को कम करने के लिए कोई परिस्थिति नहीं प्रदर्शित कर सके, अतः विचारण न्यायालय द्वारा दी गई सजा की भी पुष्टि की जाती है।

42. अपील **निरस्त** की जाती है। अभियुक्त जमानत पर है, वह निर्णय के दिनांक से एक माह के अवधि में संबंधित मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष समर्पण करेगा और उसे जेल भेजा जाएगा, जहाँ वह विचारण न्यायालय द्वारा दी गई सजा भुगतेगा ।

43. अभियुक्त के व्यक्तिगत बंधपत्र एवं जमानत बंधपत्र निरस्त किये जाते हैं।

44. इस निर्णय की प्रमाणित प्रति विचारण न्यायालय के अभिलेख सहित आवश्यक सूचना एवं अनुपालनार्थ संबंधित विचारण न्यायालय को भेजी जाए।

(2023) 3 ILRA 694

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 16.03.2023

समक्ष

दी हों'बीएलई दिनेश कुमार सिंह.

2015 की आपराधिक अपील संख्या 1057

बंशराज ... प्रार्थी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ... प्रतिवादी

अपीलकर्ता के लिए वकील: पुर्णेन्दु चक्रवर्ती, रमेश चन्द्र पाठक

प्रतिवादी के लिए वकील: बीरेश्वर नाथ, शिव पी. शुक्ला

अपराधिक कानून - भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 - धाराएँ 7, 13(1)(डी), 13(2), और धारा 20 - साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 3 - आरोपी-अपीलकर्ता ने TCR तैयार करने और किए गए काम के भुगतान के लिए रिश्वत की मांग की - धारा 7 और 13(2) के तहत दोषी ठहराया गया - वादी ने अपने साक्ष्य में मांग को पूरी तरह से सिद्ध किया - स्वतंत्र गवाह के साक्ष्य ने वादी की गवाही का पूरी तरह से समर्थन किया - आरोपी-अपीलकर्ता के ऑफिस टेबल के दराज से मिले दागदार पैसे से कोई संदेह नहीं होता - अन्य साक्ष्य, जैसे हाथ और कपड़े का गुलाबी होना, भी "दागदार" पैसे की वसूली का समर्थन करते हैं - आरोपी ने अपनी आवाज का नमूना देने से इनकार कर दिया - घटनाओं की श्रृंखला आरोपी की दोषिता की ओर इशारा करती है - अभियोजन को पहले अवैध लाभ की मांग और उसके बाद की स्वीकृति को सिद्ध करना होगा, यह तथ्य सीधे साक्ष्य के माध्यम से सिद्ध किया जा सकता है, जो मौखिक साक्ष्य या दस्तावेजी साक्ष्य के रूप में हो सकता है।

अपील निरस्त। (ई-15)

उद्धृत वाद सूची:

1. नीरज दत्ता बनाम राज्य (दिल्ली के एन.सी.टी. 2022 एससीसी ऑनलाईन एससी 1724)

2. के. शांथम्मा बनाम तेलंगाना राज्य ((2022) 4 एससीसी 574)

3. एम.के. हर्षन बनाम केरल राज्य ((1996) 11 एससीसी 720)
4. सी.एम. गिरीश बाबू बनाम सीबीआई, चित्तूर, केरल उच्च न्यायालय ((2009) 3 एससीसी 779)
5. सुराजमल बनाम राज्य (दिल्ली प्रशासन ((1979) 4 एससीसी 725)
6. एम. नारसिंगा राव बनाम आंध्र प्रदेश राज्य ((2001) 1 एससीसी 691)
7. महाराष्ट्र राज्य बनाम ज्ञानेश्वर लक्ष्मण राव वानखेडे ((2009) 15 एससीसी 200)

<u>माननीय न्यायमूर्ति दिनेश कुमार सिंह</u>

1. प्रस्तुत आपराधिक अपील अन्तर्गत धारा 374(2) दण्ड प्रकिया संहिता, नियमित मुकदमा संख्या 0062011ए0001/2011 से उत्पन्न, आपराधिक मुकदमा संख्या 01/ 2011 (कम्प्यूटरीकृत संख्या 1600001/ 2011) (राज्य, केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो, लखनऊ के माध्यम से बनाम बंशराज) अन्तर्गत धारा 7 और 13 (2) सहपठित धारा 13 (i)(घ) भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988, (इसके बाद इसे "भ्र.नि. अधिनियम, 1988" के रूप में संदर्भित किया जायेगा) थाना केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो/भ्रष्टाचार निरोधक ब्यूरो, लखनऊ में विद्वान विशेष न्यायाधीश, केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो, न्यायालय संख्या 4, लखनऊ द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 31.08.2015 के विरुद्ध दायर किया गया है, जिसके माध्यम से अभियुक्त-अपीलकर्ता को दोषी ठहराया गया और निम्नानुसार सजा सुनाई गई: -

i. धारा 7 भ्र.नि. अधिनियम, 1988 के अन्तर्गत तीन वर्ष का सश्रम कारावास और 30,000/- रुपये का जुर्माना और जुर्माना रकम जमा न करने की स्थिति में छः मास का अतिरिक्त सश्रम कारावास; और

ii. धारा 13(2) सहपठित धारा 13(i)(घ) भ्र.नि. अधिनियम, 1988 के अन्तर्गत चार वर्ष का सश्रम कारावास और 40,000/-रुपये का जुर्माना एवं जुर्माना रकम जमा न करने पर एक वर्ष का अतिरिक्त सश्रम कारावास।

यह भी निर्देश दिया गया कि दोनों सजाएं साथ-साथ चलेंगी और कारागार में व्यतीत की गयी अवधि को दी गयी सजा में समायोजित किया जायेगा।

2. प्रथम सूचना रिपोर्ट में, अभियोजन का प्रकरण यह था कि अभियुक्त-अपीलकर्ता बंशराज, वरिष्ठ कार्यकारी अभियंता (वैद्युत एवं यांत्रिक) (इसके बाद इसे "वै एवं यां" के रूप में संदर्भित किया जायेगा), काकरी परियोजना, राष्ट्रीय कोयला लिमिटेड, सोनभद्र, उत्तर प्रदेश (इसके बाद इसे "राकोलि" के रूप में संदर्भित किया जायेगा) के रुप में पदस्थापित था, जोकि शिकायतकर्ता आर.के. मित्तल को उच्च वोल्टता ओवरहेड लाइन के ध्वस्तीकरण और सृजन कार्य के लिए रिश्वत मांगकर उत्पीडित करता था।

3. काकरी परियोजना के क्षेत्र में खदानों में आवश्यकता पड़ने पर निविदा जारी की जाती थी। तकनीकी समिति सदस्य श्री पी. राय, मुख्य अभियंता (खदान) थे, लेकिन उनकी अनुपस्थिति में, अभियुक्त-अपीलकर्ता, वरिष्ठ कार्यकारी अभियंता (वै एवं यां) होने से, तकनीकी समिति

सदस्य के रूप में कार्य करता था। निविदा समिति की सिफारिशें (इसके बाद "निससि" के रूप में संदर्भित) अभियुक्त-अपीलकर्ता द्वारा की जाती थीं।

4. शिकायतकर्ता, आर.के. मित्तल एल-1 था। अभियुक्त-अपीलकर्ता ने कथित तौर पर शिकायतकर्ता से 2,600/- रुपये लाने के लिए कहा अन्यथा, वह शिकायतकर्ता के काम में विघ्न उत्पन्न करेगा। अभियुक्त-अपीलकर्ता ने कथित तौर पर शिकायतकर्ता को यह भी बताया कि पिछले निससि के उसके 7,000/- रुपये अवशेष थे और शिकायतकर्ता को पिछला बकाया अवशेष रकम 7,000/-रुपये भी लाने को कहा।

5. शिकायतकर्ता ने अभियुक्त-अपीलकर्ता द्वारा रिश्वत की उक्त मांग के संबंध में 13.01.2011 को केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो/भ्रष्टाचार निरोधक ब्यूरो को एक शिकायत दी।

6. शिकायत की पुष्टि के पश्चात्, केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने मुकदमा दर्ज किया। पूर्व-पाश और पश्च-पाश कार्यवाहियों के दौरान, अभियुक्त-अपीलकर्ता को 18.01.2011 की दोपहर लगभग 2 बजे, 9,600/- रुपये शिकायतकर्ता के पक्ष में निससि करने हेतु और 20,000/- रुपये शिकायतकर्ता द्वारा किए गए कार्य के बिलों के विरुद्ध किए गए भुगतान के संबंध में, शिकायतकर्ता से मांग करते और स्वीकार करते हुए गिरफ्तार किया गया।

7. अन्वेषण पूर्ण करने के पश्चात्, अभियुक्त-अपीलकर्ता के विरुद्ध आरोप पत्र अन्तर्गत धारा 7 और धारा 13 (2) सहपठित धारा 13 (i)(घ) भ्र.नि. अधिनियम, 1988 दायर किया गया। उक्त आरोप पत्र पर 06.05.2011 को विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा संज्ञान लिया गया तथा अभियुक्त-अपीलकर्ता को विचारण हेतु तलब किया गया।

8. 08.07.2011 को धारा 7 सहपठित धारा 13(2) और 13(i)(घ) भ्र.नि. अधिनियम, 1988 के अन्तर्गत अपराध हेतु आरोप तय किया गया।

9. अभियुक्त-अपीलकर्ता ने आरोप से इन्कार किया और विचारण की मांग की।

10. अभियोजन पक्ष ने अपना मुकदमा साबित करने के लिए 9 साक्षियों को परीक्षित कराया और 20 अभिलेखों को प्रमाणित किया।

11. अभियुक्त-अपीलकर्ता ने अपने बचाव में 5 साक्षियों को परीक्षित कराया।

12. अभियुक्त-अपीलकर्ता का बयान अन्तर्गत धारा 313 दण्ड प्रकिया संहिता दर्ज किया गया, जिसमें उसने कथन किया कि उसके अभियोजन की स्वीकृति बिना विवेक इस्तेमाल किए दी गई थी और उसने शिकायतकर्ता से किसी रिश्वत की माँग की थी और स्वीकार की थी, का खण्डन किया। उसने यह भी कथन किया कि पूर्व-पाश और पश्च-पाश कार्यवाहियाँ अवैध थीं और अभियोजन पक्ष द्वारा अभिलेख पर प्रस्तुत किए गए प्रमाणों का खण्डन किया। उसने यह भी कथन किया कि केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने उसे गिरफ्तार करने के पश्चात् पश्च-पाश ज्ञाप (प्रदर्श क-3) और अन्य अभिलेखों पर उसके हस्ताक्षर ले लिए। रिश्वत की रकम 29,600/- रूपये की

उससे बरामदगी के संबंध में, अभियुक्त-अपीलकर्ता ने कथन किया कि यह गलत था और जब वह अपनी जीप से मध्याहन-भोजन करने जा रहा था उस समय शिकायतकर्ता, जोकि उसे मार्ग में मिला, ने कहा कि "श्रीमान् मैंने दराज में रख दिया था"। बाद में, उसे समझ आया कि शिकायतकर्ता ने रकम रखा था और उसे जीप से उतरते ही केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा गिरफ्तार कर लिया गया। उसके पास से कोई रकम बरामद नहीं हुआ। उसकी गिरफ्तारी के बाद कागजों पर साक्षियों के हस्ताक्षर लिये गये। उसने पश्च-पाश ज्ञाप, डी-6 (प्रदर्श क-4) पर अपने हस्ताक्षरों का खण्डन किया। अभियुक्त-अपीलकर्ता ने राम नारायण डबले (अभियोजन साक्षी-4) द्वारा अपने कार्यालय-मेज की दराज से रिश्वत की रकम की पुनः प्राप्ति का भी खण्डन किया और, अपनी उंगलियों को डुबोने के बाद विलयन के गुलाबी होने का भी खण्डन किया। उसने प्रदर्शकों क- 2 से क-6 और भौतिक प्रदर्श (भौप्र-1 से भौप्र-10) का खण्डन किया। अभियुक्त-अपीलकर्ता ने प्रमोद कुमार सिंह, अभियोजन साक्षी-3 द्वारा तैयार किए गए ज्ञापन डी-12 (प्रदर्श क-20) का खण्डन किया। उसने कथन किया कि पूर्व-पाश और पश्च-पाश का न तो ध्वनि अभिलेखी न्यायालय में प्रस्तुत किया गया और न ही साबित किया गया। न तो पाश अयाजकीयता अधिकारी और न ही केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य के संबंध में साक्ष्य अधिनियम की धारा 65-ख के अन्तर्गत कोई प्रमाण पत्र प्रस्तुत किया।

13. अपने बचाव में, अभियुक्त-अपीलकर्ता ने दस्तावेज़ प्रस्तुत किए और इसे साबित किया।

14. विद्वान विचारण न्यायालय ने साक्ष्यों के विस्तृत विश्लेषण के पश्चात् आरोप सिद्ध पाया और अभियुक्त-अपीलकर्ता को भ्र.नि. अधिनियम, 1988 की धारा 7 सहपठित धारा 13 (2) और 13(i)(घ) के अन्तर्गत अपराध के लिए दोषी ठहराया और उसे सज़ा सुनायी, जैसा कि उपरिवर्णित है।

15. अभियुक्त-अपीलकर्ता की ओर से, श्री पूर्णेदु चक्रवर्ती ने तर्क दिया कि अभियोजन पक्ष अभियुक्त-आवेदक से रिश्वत रकम की मांग, स्वीकृति और वसूली को साबित करने में विफल रहा है; भ्र.नि. अधिनियम, 1988 की धारा 7 और धारा 13 (2) सहपठित 13 (i)(घ) के अन्तर्गत अपराध के लिए किसी अभियुक्त को दोषी ठहराये जाने हेतु अभियुक्त द्वारा रिश्वत की रकम की मांग, स्वीकृति और वसूली को सिद्ध किया जाना अपरिहार्य है; अभियुक्त-अपीलकर्ता शिकायतकर्ता पर अनुग्रह करने की स्थिति में नहीं था; अभियोजन साक्षी-5, वासुदेव आद्य, जो राकोलि काकरी परियोजना में उप महाप्रबंधक (वित्त) के रूप में पद स्थापित थे, ने कार्य अनुबंध की पूरी प्रक्रिया और राकोलि में इसके निष्पादन के बारे में बताया; अभियोजन साक्षी-5 ने अपने साक्ष्य में कथन किया कि शिकायतकर्ता, ठेकेदार के बिलों पर 10.12.2010 को हस्ताक्षर किए गए; साज़ सामान प्रभारी, जग मोहन ने बिलों की जाँच की और उन पर हस्ताक्षर किए; जग मोहन द्वारा बिलों को संसाधित करने के बाद, पर्यवेक्षी क्षमता वाले अभियुक्त-अपीलकर्ता ने भी 10.12.2010 को बिलों की जाँच की और हस्ताक्षर किए; इस अभियोजन साक्षी-5 ने दस्तावेज़ संख्या 15 (शिकायतकर्ता को आवंटित कार्य आदेश) और दस्तावेज़ संख्या 14 (शिकायतकर्ता द्वारा प्रस्तुत बिल) को प्रमाणित किया।

16. अभियुक्त-आवेदक की ओर से, विद्वान अधिवक्ता श्री चक्रवर्ती ने अग्रेतर कथन किया

कि राकोलि काकरी परियोजना में पदस्थापित डी.एन. मंडल, बचाव साक्षी-2 ने दस्तावेज़ संख्या ए94/4 को ए94/25 को साबित किया। ये दस्तावेज़ शिकायतकर्ता की स्वामित्व कंपनी मेसर्स विमल इलेक्ट्रिकल वर्क्स की निससि और साख के संबंध में हैं। इस साक्षी ने ड्यूटी-चार्ट, निससि और साख को, सत्यापन हेतु प्रस्तुत कार्य आदेश और बिलों को, कूटरचित अभिलेखों के आधार पर कार्य आदेश प्राप्त करने के लिए मेसर्स विमल इलेक्ट्रिकल वर्क्स को कारण बताओ नोटिसों को और निरस्तीकरण को, राकोलि की निविदा प्राप्त करने से मेसर्स विमल इलेक्ट्रिकल वर्क्स को विवर्जित किया जाना और काली सूची में डाले जाने को साबित किया। बचाव साक्षी-3, राकोलि ककरी परियोजना में पदस्थापित राम निवास शर्मा ने 13.04.2015 को दर्ज अपने बयान में दस्तावेज ए94/12 (प्रदर्श ख-12, जो मेसर्स विमल इलेक्ट्रिकल वर्क्स को काली सूची में डाले जाने का आदेश है) को साबित किया। इस बचाव साक्षी ने यह भी कथन किया कि वह 18.01.2011 को कार्यस्थल-कार्यालय पर उपस्थित था और वह अभियुक्त-अपीलकर्ता के साथ दोपहर 2 बजे कार्यस्थल-कार्यालय से मध्याहन-भोजन करने के लिए निकला था। कार्यस्थल-कार्यालय 24 घंटे खुला रहता था। अभियुक्त-अपीलकर्ता अपनी जीप के पास गया और वह उसके साथ इस साक्षी की मोटरसाइकिल की ओर गया। शिकायतकर्ता कार्यस्थल-कार्यालय के अंदर गया और पांच मिनट के भीतर बाहर आ गया। उसके मोबाइल पर कॉल आई थी। इसके बाद, शिकायतकर्ता अभियुक्त-अपीलकर्ता के पास आया और उससे बात करने लगा। इस बीच, केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो के अधिकारी भी पहुंचे और अभियुक्त-अपीलकर्ता को कार्यस्थल-कार्यालय ले गए। उक्त साक्षी ने अभियुक्त-अपीलकर्ता द्वारा शिकायतकर्ता से की गई किसी भी रिश्वत की रकम की मांग और स्वीकृति का विशिष्ट रूप से खण्डन किया।

17. श्री चक्रवर्ती ने राकोलि काकरी परियोजना में पदस्थापित बचाव साक्षी-4, सुरेश सिंह के साक्ष्य की ओर इस न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया। केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा आरोप-पत्र के साथ दायर साक्षियों की सूची में वह अभियोजन साक्षी-10 भी था। हालाँकि, केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने उक्त साक्षी को परीक्षित नहीं कराया। उक्त बचाव साक्षी ने 18.01.2011 को हुई घटनाओं को कालानुक्रमिक क्रम में समझाया। उसने कथन किया कि बचाव साक्षी-3, राम निवास शर्मा मध्याहन-भोजन के समय कार्यस्थल-कार्यालय के बाहर अभियुक्त-अपीलकर्ता के साथ उपस्थित था। इस साक्षी की उपस्थिति का साक्ष्य उपस्थिति-पत्र (कागज संख्या ए94/2) द्वारा दिया गया। बचाव साक्षी-5, लालजी, जोकि राकोलि काकरी परियोजना में ड्राइवर था, ने 18.01.2011 की कालानुक्रमिक घटनाओं की भी व्याख्या की। यह साक्षी आरोप-पत्र में, अभियोजन पक्ष के साक्षियों की सूची में क्रम संख्या 8 पर था, लेकिन उससे भी केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा परीक्षित नहीं कराया गया। इस साक्षी ने अपने बयान में कथन किया कि 18.01.2011 को दोपहर 2 बजे वह अभियुक्त-अपीलकर्ता को मध्याहन-भोजन के लिए सरकारी वाहन में उसके आवास पर ले जा रहा था। जब वाहन 14-15 मीटर आगे चला तो शिकायतकर्ता एक अन्य व्यक्ति के साथ वहां आ गया और मोटरसाइकिल को जीप के सामने खड़ा कर दिया और अभियुक्त-अपीलकर्ता से बात करने लगा और कथन किया कि "सर मैंने दराज में

रख दिया है"। उसी समय, 4-5 अन्य व्यक्ति वहां आए और अभियुक्त-अपीलकर्ता को जीप से उतार दिया गया और कार्यस्थल-कार्यालय में ले जाया गया। बाद में, उसे ज्ञात हुआ कि ये 4-5 व्यक्ति केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो से थे। उसने अन्वेषण के दौरान दण्ड प्रकिया संहिता की धारा 161 के अन्तर्गत अपना बयान दर्ज कराये जाने का खण्डन किया। उसने यह भी कथन किया कि केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने उसे कभी भी अन्वेषण हेतु महाप्रबंधक के कार्यालय में नहीं बुलाया अथवा उसका बयान दर्ज नहीं किया। उसने कथन किया कि केवल एक बार, उसे आवाज़ की पहचान करने हेतु महाप्रबंधक के कार्यालय में बुलाया गया था। जब लैपटॉप में आवाज चलायी गयी तो इस साक्षी ने बताया कि आवाज साफ नहीं थी, इसलिए वह पहचानने की स्थिति में नहीं था। उसने कथन किया कि हालांकि वह अभियुक्त-अपीलकर्ता के साथ काम कर रहा था, लेकिन वह अभियुक्त-अपीलकर्ता की आवाज नहीं पहचान सका।

18. अभियुक्त-अपीलकर्ता की ओर से, श्री चक्रवर्ती ने अग्रेतर तर्क दिया कि अभियोजन साक्षी-2 और अभियोजन साक्षी-4, छाया-साक्षी, राम नारायण डबले के साक्ष्य में भौतिक विरोधाभास हैं। अभियोजन साक्षी-2 ने गवाही दी कि उसने अभियुक्त-अपीलकर्ता के निर्देशानुसार स्वयं रिश्वत की रकम को अभियुक्त-अपीलकर्ता के कार्यालय-मेज की दराज में रखा था। अभियुक्त-अपीलकर्ता ने अपने दाहिने हाथ से मेज की दराज बंद की थी। हालाँकि, अभियोजन साक्षी-4, छाया-साक्षी, ने अपनी परीक्षा में कथन किया कि जब अभियुक्त-अपीलकर्ता को गिरफ्तार किया गया, तो वह कार्यस्थल-कार्यालय आया और कार्यालय-मेज के दराज के अंदर डायरी पाई और रिश्वत की रकम डायरी पर रखा हुआ था और मेज की दराज आधी खुली हुई थी। श्री चक्रवर्ती ने यह भी तर्क दिया कि अभियुक्त-अपीलकर्ता को केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो ने मार्ग में रोक लिया था, जब वह अपने आधिकारिक वाहन से मध्याहन-भोजन करने जा रहा था। स्वतःस्फूर्त प्रतिक्रिया थी "मैंने कोई पैसे नहीं लिया है"। इस स्वतःस्फूर्त बयान को विचार कर बाद में दिया गया नहीं कहा जा सकता, बल्कि इससे निर्दोषता का पता चलता है। जिस तरह से कार को रोका गया, उससे शिकायतकर्ता के आचरण पर गंभीर संदेह पैदा होता है। यदि अभियुक्त-अपीलकर्ता ने शिकायतकर्ता से रिश्वत की रकम स्वीकार कर लिया था तो जब वह मध्याहन-भोजन के लिए जा रहा था तो उसने रिश्वत की रकम को आधी खुली दराज में क्यों छोड़ दिया। इसलिए, उन्होंने तर्क दिया कि अभियोजन पक्ष अभियुक्त-अपीलकर्ता के विरुद्ध युक्तियुक्त संदेह से परे प्रकरण साबित करने में विफल रहा है। विचारण न्यायालय द्वारा शिकायतकर्ता के आचरण पर विचार नहीं किया गया।

19. दूसरी ओर, प्रतिवादी केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो के विद्वान अधिवक्ता श्री शिव पी. शुक्ला ने तर्क दिया कि अभियोजन पक्ष ने निश्चयात्मक और विश्वसनीय साक्ष्यों के आधार पर अभियुक्त-अपीलकर्ता के विरुद्ध प्रकरण को युक्तियुक्त संदेह से परे साबित किया है। अग्रेतर तर्क प्रस्तुत किया गया कि वर्तमान प्रकरण में माँग, स्वीकृति और वसूली पूर्णतया साबित हैं। साक्षियों की गवाही में मामूली विरोधाभास, अलंकृत करने वाले हैं और वर्तमान प्रकरण को नष्ट करने के लिए महत्वपूर्ण नहीं हैं। विचारण न्यायालय ने अभियुक्त-अपीलकर्ता को दोषी ठहराते समय

प्रत्येक साक्ष्य पर विस्तार से विचार किया है। अभियोजन पक्ष ने प्रकरण को युक्तियुक्त संदेह से परे साबित किया है और अपील किया गया निर्णय और आदेश, न तो साक्ष्य की मूल्यांकन में और न ही विधि में, किसी भी अवैधता या विकृति से ग्रस्त नहीं हैं और इसलिए, अपील, कोई योग्यता और सार नहीं होने के कारण, खारिज किये जाने योग्य है।

20. इस अपील में जो प्रश्न विचाराधीन है, वह यह है कि क्या अभियोजन पक्ष अभियुक्त-अपीलकर्ता द्वारा रिश्वत की रकम की मांग और स्वीकृति को साबित करने में सक्षम रहा है। भ्र.नि. अधिनियम, 1988 की धारा 7, 13(i)(घ) और 13(2) के प्रावधान, जो कि प्रासंगिक हैं, यहां निम्नवत् उद्धृत हैं: -

> ***"7. लोक सेवक द्वारा पदीय कार्य के लिए वैध पारिश्रमिक से भिन्न परितोषण लिया जाना-***
>
> *जो कोई लोक सेवक होते हुए या होने की प्रत्याशा रखते हुए वैध पारिश्रमिक से भिन्न किसी प्रकार का भी कोई परितोषण इस बात के करने के लिए हेतु या इनाम के रुप में किसी व्यक्ति से अपने लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए प्रतिगृहीत या अभिप्राप्त करेगा या प्रतिगृहीत करने को सहमत होगा या अभिप्राप्त करने का प्रयत्न करेगा या प्रतिगृहीत करने को सहमत होगा या अभिप्राप्त करने का प्रयत्न करेगा कि वह लोक सेवक अपना कोई पदीय कार्य करे या करने से प्रविरत रहे अथवा किसी व्यक्ति को अपने पदीय कृत्यों के प्रयोग में कोई अनुग्रह दिखाए या दिखाने से प्रविरत रहे अधवा केंद्रीय सरकार या किसी राज्य की सरकार या संसद या किसी राज्य विधान मंडल में या धारा 2 के खंड (ग) में निर्दिष्ट किसी स्थानीय प्राधिकारी निगम या सरकारी कंपनी में या किसी लोक सेवक के यहां, चाहे वह नामित हो या नहीं, किसी व्यक्ति का कोई उपकार या अपकार करे या करने का प्रयत्न करे, वह कारावास से, जिसकी अवधि छह मास से कम नहीं होगी किंतु पांच वर्ष तक की हो सकेगी और जुर्माने से भी दंडित किया जाएगा।*
>
> *स्पष्टीकरण- (क) "लोक सेवक होने की प्रत्याशा रखते हुए"- यदि कोई व्यक्ति जो किसी पद पर होने की प्रत्याशा न रखते हुए, दूसरों को प्रवंचना से यह विश्वास करा कर कि वह किसी पद पर होने वाला है और यह कि तब वह उनका उपकार करेगा, उससे परितोषण अभिप्राप्त करेगा, तो वह छल करने का दोपी हो सकेगा किंतु वह इस धारा में परिभाषित अपराध का दोषी नहीं है।*
>
> *(ख) "परितोषण"- 'परितोषण' शब्द रकम संबंधी परितोषण तक, या उन परितोषणों तक ही, जो रकम में आके जाने योग्य है, निबंधित नहीं है।*
>
> *(ग) "वैध पारिश्रमिक"- "वैध पारिश्रमिक" शब्द उस पारिश्रमिक तक ही निबंधित नहीं है जिसकी मांग कोई लोक सेवक विधि पूर्ण रुप से कर सकता है, किन्तु इसके*

अंतर्गत वह समस्त पारिश्रमिक आता है जिसको प्रतिगृहीत करने के लिए उस सरकार या संगठन द्वारा, जिसकी सेवा में वह है, उसे अनुज्ञा दी गई है।

(घ) "करने के लिए हेतुक या इनाम"- वह व्यक्ति ही वह कार्य करने के लिए हेतुक या इनाम के रूप में, जिसे करने का उसका आशय नहीं है, या जिसे करने की स्थिति में वह नहीं है या जो उसने नहीं किया है, परितोषण प्राप्त करता है, इस पद के अंतर्गत आता है।

(ङ.) जहां कोई लोक सेवक किसी व्यक्ति को यह गलत विश्वास करने के लिए उत्प्रेरित करता है कि सरकार में उसके असर से उस व्यक्ति को कोई हक अभिप्राप्त हुआ है, और इस प्रकार उस व्यक्ति को इस सेवा के लिए पुरस्कार के रूप में लोक सेवक को रकम या कोई अन्य परितोषण देने के लिए उत्प्रेरित करता है, तो यह इस धारा के अधीन लोक सेवक द्वारा किया गया अपराध होगा।

*"13. **लोक सेवक द्वारा आपराधिक अवचार- (1) कोई लोक सेवक आपराधिक अवचार का अपराध करने वाला कहा जाता है-***

(क) ....

(ख) ....

(ग) ....

(घ) यदि वह-

(i) भ्रष्ट या अवैध साधनों से अपने लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए कोई मूल्यवान चीज या रकम संबंधी फायदा अभिप्राप्त करता है; या

(ii) लोक सेवक के रूप में अपनी स्थिति का अन्यथा दुरुपयोग करके अपने लिए या किसी अन्य के लिए कोई मूल्यवान चीज या रकम संबंधी फायदा अभिप्राप्त करता है; या

(iii) लोक सेवक के रूप में पद धारण करके किसी व्यक्ति के लिए कोई मूल्यवान चीज या रकम संबंधी फायदा बिना किसी लोक हित के अभिप्राप्त करता है।

(ङ) ....

स्पष्टीकरण- इस धारा के प्रयोजनों के लिए 'आय के ज्ञात स्रोत' से अभिप्रेत है किसी विधिपूर्ण स्रोत से प्राप्त आय, जिस प्राप्ति की संसूचना, लोक सेवक को तत्समय लागू किसी विधि, नियमों या आदेशों के उपबंधों के अनुसार दे दी गई है।

(2) कोई लोक सेवक जो आपराधिक अवचार करेगा इतनी अवधि के लिए, जो एक वर्ष से कम की न होगी किंतु जो सात वर्ष तक की हो सकेगी, कारावास से दंडनीय होगा और जुर्माने का भी दायी होगा।"

21. भ्र.नि. अधिनियम, 1988 की धारा 20 निम्नानुसार है: -

"20. जहां लोक सेवक कोई असम्यक् लाभ प्रतिगृहीत करता है वहां उपधारणा - जहां धारा 7 के अधीन या धारा 11 के अधीन दंडनीय किसी अपराध के किसी विचारण में यह साबित कर दिया जाता है कि किसी अपराध के अभियुक्त लोक सेवक ने किसी व्यक्ति से कोई असम्यक् लाभ अपने लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए प्रतिगृहीत या अभिप्राप्त किया है या अभिप्राप्त करने का प्रयत्न किया है, वहां जब तक प्रतिकूल साबित न कर दिया जाए यह उपधारणा की जाएगी की उसने, यथास्थिति या तो स्वयं उसके द्वारा या किसी अन्य लोक सेवक के द्वारा किसी लोक कर्तव्य को अनुचित रूप से या बेईमानी से निष्पादित करने के लिए या निष्पादित करवानेके लिए धारा 7 के अधीन हेतु या इनाम के रूप में उस अवैध परितोषण को, बिना किसी प्रतिफल के या किसी ऐसे प्रतिफल के लिए जिसके बारे में वह यह जानता है कि वह धारा 11 के अधीन अपर्याप्त है, प्रतिगृहीत या अभिप्राप्त किया है या अभिप्राप्त करने का प्रयत्न किया है।"

22. संविधि के स्पष्ट शब्दों का तात्पर्य यह होगा कि यदि यह साबित किया जा सकता है कि एक लोक सेवक ने अवैध परितोषण अभिप्राप्त किया है, तो धारा 20 भ्र.नि. अधिनियम, 1988 एक वैधानिक प्रकल्पना लाती है कि उसने इसे धारा 7 भ्र.नि. अधिनियम, 1988 में निर्धारित अवैध उद्देश्य से प्राप्त किया है। इससे सिद्धिभार अभियुक्त पर आ जाता है। उसे यह भार निर्वहन करना होगा कि जो कुछ प्राप्त हुआ है वह मूल्यवान प्रतिफल के लिए है न कि अवैध परितोषण के लिए। संविधि भ्र.नि. अधिनियम, 1988 के अन्तर्गत अपराध के गठन के लिए अवैध परितोषण की 'माँग' का प्रावधान नहीं करती है। इसे एक व्याख्यात्मक प्रक्रिया द्वारा सर्वोच्च न्यायालय द्वारा आभासी रुप से संविधि में सम्मिलित किया गया है। अभियुक्त के अपराध को सामने लाने के लिए, अभियोजन पक्ष को पहले अवैध परितोषण की मांग और उसके बाद की स्वीकृति को तथ्य के रूप में साबित करना होगा। वाद विषय में इस तथ्य को अन्यथा प्रत्यक्ष साक्ष्य द्वारा साबित किया जा सकता है जो कि मौखिक साक्ष्य या अभिलेखीय साक्ष्य की प्रकृति में हो सकता है।

23. किसी लोक सेवक द्वारा किया गया भ्रष्टाचार राज्य और समग्र समाज के विरुद्ध अपराध है। सर्वोच्च न्यायालय ने ***2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 1724 (नीरज दत्ता बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली सरकार)*** में इस संदर्भ का उत्तर दिया है कि "क्या परिस्थितिजन्य साक्ष्य का उपयोग अवैध परितोषण की मांग को सिद्ध करने के लिए किया जा सकता है"। उक्त प्रकरण में, संविधान पीठ ने व्यवस्था दी कि शिकायतकर्ता के साक्ष्य (प्रत्यक्ष/प्राथमिक, मौखिक/अभिलेखीय साक्ष्य) के अभाव में, अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत अन्य साक्ष्यों के आधार पर अधिनियम की धारा 7 और धारा 13(1)(घ) सहपठित धारा 13(2) के अन्तर्गत एक लोक सेवक के अभियोज्यता/अपराध के आनुमानिक निर्णय करने की अनुमति है। उक्त निर्णय का पैराग्राफ-7 इस प्रकार पठित है:-

"7. राम कृष्ण बनाम दिल्ली राज्य, एआईआर 1956 एससी 476 ("राम

कृष्ण") के संदर्भ में यह आगे निरीक्षण किया गया कि अधिनियम की धारा 13(1)(क) और (ख) के प्रयोजनार्थः

> *"यह पर्याप्त है अगर एक लोक सेवक के रूप में अपने पद का दुरुपयोग करके कोई व्यक्ति अपने लिए कोई आर्थिक लाभ प्राप्त करता है, भले ही उसका कृपा या अकृपा दर्शाने का उद्देश्य या प्रतिफल कुछ भी हो।"*

24. यदि शिकायतकर्ता पक्षद्रोही हो जाता है, या मर जाता है या मुकदमे के दौरान अपना साक्ष्य देने में असमर्थ हो जाता है, तो अवैध परितोषण की मांग को किसी अन्य साक्षी के साक्ष्य के आधार पर सिद्ध किया जा सकता है, जो फिर से कोई भी साक्ष्य, मौखिक या अभिलेखीय साक्ष्य प्रस्तुत कर सकता है, या अभियोजन पक्ष परिस्थितिजन्य साक्ष्य से प्रकरण को साबित कर सकता है। ऐसी स्थिति में, मुकदमा समाप्त नहीं होगा और न ही यह अभियुक्त-लोक सेवक को दोषमुक्ति के आदेश में परिणित होगा। सर्वोच्च न्यायालय ने कई निर्णयों में व्यवस्था दी है कि लोक सेवक द्वारा मांग और रिश्वत की पेशकश को अभियोजन पक्ष द्वारा प्रकरण में तथ्य के रूप में साबित करना होगा। मात्र अवैध परितोषण स्वीकार करना या प्राप्त करना, बिना कुछ अधिक के, इसे अधिनियम की धारा 7 या धारा 13 (1)(घ), (i) और (ii) क्रमशः के अन्तर्गत अपराध नहीं होगा। भ्र.नि. अधिनियम, 1988 की धारा 7 के अन्तर्गत अपराध स्थापित करने हेतु लोक सेवक द्वारा रिश्वत की मांग और उसके द्वारा इसकी स्वीकृति का प्रमाण अपरिहार्य है। मांग या अवैध परितोषण को सिद्ध करने में अभियोजन पक्ष की विफलता घातक होगी और केवल अभियुक्त द्वारा प्राप्त रकम की पुनःप्राप्ति से धारा 7 या 13 भ्र.नि. अधिनियम, 1988 के अन्तर्गत अपराध संस्थापित नहीं होगा और इसके अन्तर्गत उसकी दोषसिद्धि नहीं होगी जैसा कि ***(2022) 4 एससीसी 574 (के. शांतम्मा बनाम तेलंगाना राज्य)*** में व्यवस्था दी गयी है।

25. अभियुक्त-अपीलकर्ता राकोलि ककारी परियोजना, सोनभद्र में प्रबंधक (वै एवं यां) के रूप में पदस्थापित था। शिकायतकर्ता, अभियोजन साक्षी-2 राकोलि में एक ठेकेदार था। वह बिजली का ठेका लेता रहता था। कथित तौर पर, अभियुक्त-अपीलकर्ता द्वारा निससि तैयार करने और किए गए कार्य का भुगतान करने के लिए रिश्वत की रकम की माँग की गयी। शिकायतकर्ता अभियोजन साक्षी-2 ने अपनी गवाही में अभियुक्त-अपीलकर्ता द्वारा 2,600/- रुपये की मांग, जोकि वर्तमान निससि अर्थात् 2,67,270/- रुपये का 1% है और 7,000/- रुपये कुछ पुराने निससि के संबंध में तथा 20,000/- रुपये शिकायतकर्ता द्वारा किए गए कार्य के भुगतान के लिए, को पूर्णतया साबित किया है। शिकायतकर्ता ने यह रकम अपने दो बैंक खातों से निकाली थी, यह तथ्य साबित हो गया है। अभियुक्त-अपीलार्थी ने दिनांक 18.01.2011 को जब शिकायतकर्ता छाया साक्षी जय कुमार बंसल (अभियोजन साक्षी-7) के साथ कार्यालय पहुंचा, तो शिकायतकर्ता (अभियोजन साक्षी-2) से पूछा की कि क्या शिकायतकर्ता पैसे लाया था, तब शिकायतकर्ता 'हां' कहा और अभियुक्त-अपीलकर्ता द्वारा पूछने पर उसने 29,600/-रुपये, रिश्वत की रकम, अभियुक्त-अपीलकर्ता के कार्यालय-मेज की

दराज में रख दी। इस स्वतंत्र छाया साक्षी के साक्ष्य ने शिकायतकर्ता की गवाही की पूर्णतया पुष्टि की। अभियुक्त-अपीलकर्ता के कार्यालय-मेज की दराज से रिश्वत की रकम की बरामदगी कोई संदेह पैदा नहीं करती है। रिश्वत की रकम रामनारायण डबले द्वारा बरामद की गयी। अन्य साक्ष्य, जैसे कि हाथ धोया जाना और कपड़ा गुलाबी हो जाना, अभियुक्त-अपीलकर्ता के कार्यालय-मेज की दराज, जो उसके नियंत्रण में थी, से दागी रकम की बरामदगी का पूर्णतया समर्थन करते हैं।

26. अभियुक्त-अपीलकर्ता ने ध्वनि अभिलेखी, जोकि शिकायतकर्ता अभियोजन साक्षी-2 की जेब में रखा था, में दर्ज आवाज के मिलान के लिए अपनी आवाज का नमूना देने से इन्कार कर दिया। जब सीडी चलाई गई, तो शिकायतकर्ता, अभियोजन साक्षी-2 ने अपनी आवाज और रिश्वत की रकम की मांग करने वाले अभियुक्त-अपीलकर्ता की आवाज को पूरी तरह से पहचान लिया। रिश्वत की रकम की मांग और स्वीकृति के संबंध में अभियोजन साक्षी-2, अभियोजन साक्षी-4 और अभियोजन साक्षी-7 की गवाही अक्षुण्ण रही। चाहे दराज पूरी तरह से बंद हो या आधी खुली हो, इससे अभियुक्त-अपीलकर्ता के विरुद्ध आरोप साबित करने में कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ेगा। यह न्यायालय शिकायतकर्ता, अभियोजन साक्षी-2 से रिश्वत की रकम प्राप्त करने के बाद उसे घर नहीं ले जाने से अपने विचार को प्रतिस्थापित नहीं कर सकता है। अभियुक्त-अपीलकर्ता रिश्वत की रकम को घर क्यों नहीं ले गया, यह उसे तय करना है, और न्यायालय अभियुक्त-अपीलकर्ता द्वारा इस तरह की कार्य के लिए तर्क का अनुमान नहीं लगा सकती है। हालाँकि, चूँकि अभियुक्त-अपीलकर्ता रिश्वत की रकम को घर नहीं ले गया, इससे शिकायतकर्ता और वसूली साक्षी सहित स्वतंत्र साक्षियों के साक्ष्य मिथ्या नहीं होंगे।

27. किसी अभियुक्त की दोषसिद्धि को प्रकल्पना पर आधारित नहीं किया जा सकता, लेकिन अभियोजन पक्ष को निश्चयात्मक और विश्वसनीय साक्ष्य प्रस्तुत कर अभियुक्त के विरुद्ध अपराध को युक्तियुक्त संदेह से परे साबित करना होगा। वर्तमान प्रकरण में, घटनाओं की श्रृंखला की प्रत्येक कड़ी अभियोजन पक्ष द्वारा उस संबंध में दिए गए प्रमाणों द्वारा अभियुक्त-अपीलकर्ता के अपराध की ओर इशारा करती है जो संतुष्ट करती है कि श्रृंखला पूर्ण थी। सर्वोच्च न्यायालय ***(1996) 11 एससीसी 720 (एम.के. हर्षन बनाम केरल राज्य)*** में कुछ इसी तरह की परिस्थितियों में, जहां दागी रकम को अभियुक्त के दराज में रखा गया था, जिसने इसका खण्डन किया और कथन किया कि इसे उसके बिना ज्ञान के दराज में रखा गया था, अनुच्छेद-8 में निम्नानुसार व्यवस्था दी:-

> *"अभियुक्त का यह तर्क है कि वह सायं 4 बजे से पहले कार्यालय में नहीं था और वह लगभग 4 बजे ही कार्यालय में दाखिल हुआ था और जब वह अपनी आसन पर था, तो पाश दल उसके कार्यालय में घुसा और यह तर्क काफी हद तक संकेत देता है कि उसकी जानकारी के बिना दागी रकम उसकी मेज की दराज में रख दिया गया होगा। हमें कुछ चिंता है और डीएसपी के साथ-साथ अन्य पाश साक्षियों की ओर से यह दर्शाने का प्रयास किया जाना चाहिए था*

कि अभियुक्त ने दराज में डालने के पूर्व या उसके पश्चात् नोटों को संभाला गया था उसके द्वारा उसे सीधे तौर पर दागी रकम की प्राप्ति से जोड़ने की कोशिश की गयी। जबकि अभियुक्त का तर्क यह है कि उसे उसकी जानकारी के बिना उसकी दराज में डाल दिया गया। जैसा कि उपरिवर्णित है, अभियोजन साक्षी 1 ने यह बयान दिया कि अभियोजन साक्षी 11 ने अभियुक्त को मुद्रा नोटों को छूने के लिए कहा और उसके बाद उसकी उंगलियों को तरल में डुबोया गया जो गुलाबी हो गया। यह महत्वपूर्ण है कि अभियोजन साक्षी 8, एक अन्य सतर्कता अधिकारी, जो पूरे समय अभियोजन साक्षी 11 के साथ में था, ने गवाही दी कि आवश्यक संकेत दिए जाने के पश्चात्, पाश दल आगे बढ़ा। अभियोजन साक्षी 1 बाहर आया, उनसे मिला और बताया कि अभियुक्त ने रकम स्वीकार कर ली है और उसने इसे मेज के बाएं शीर्ष दराज में रख दिया है और यह सुनकर पाश दल अभियुक्त के कमरे में प्रवेश कर गया। उसकी गवाही से ज्ञात होता है कि अभियोजन साक्षी 1 ने उसे बताया कि अभियुक्त ने रकम स्वीकार कर ली है और उसने स्वयं ही रकम मेज के बाएं शीर्ष दराज में रख दिया है। अभियोजन साक्षी 11 ने यह भी बयान दिया कि अभियोजन साक्षी 1 ने बाहर आकर उसे बताया कि उसने अभियुक्त को रिश्वत के रूप में मुद्रा नोट दिए हैं और इसे बाएं दराज में रखा गया था और उसके बाद पाश दल कार्यालय में प्रवेश कर गया। इन दोनों साक्षियों ने यह भी बयान दिया कि अभियुक्त को गिलास में उपस्थित तरल पदार्थ में अपना दाहिना हाथ डुबाने के लिए कहा गया और जब उसने ऐसा किया तो उसका रंग गुलाबी हो गया। इसलिए, उनके कथनानुसार, जैसा कि अभियोजन साक्षी 1 द्वारा सूचित किया गया था, अभियुक्त ने स्वयं रकम प्राप्त की और उसे दराज में रख दिया और परिणामस्वरूप जब उसने अपनी उंगलियां डुबोईं तो घोल गुलाबी हो गया। लेकिन दूसरी ओर अभियोजन पक्ष का सकारात्मक प्रकरण, जैसा कि अभियोजन साक्षी 1 द्वारा बताया गया है, यह है कि अभियुक्त ने कभी भी मुद्रा नोटों को नहीं छुआ और उसने ही उसे मेज की दराज में रखा था। यह ध्यातव्य है कि अभियोजन साक्षी 3, एक कांस्टेबल, को अभियोजन साक्षी 1 के साथ भेजा गया था। उसे बाहर इंतजार करने और संकेत प्रसारित करने के लिए कहा गया। अभियोजन साक्षी 11 ने जिरह में स्वीकार किया कि अभियोजन साक्षी 3 देख सकता था कि अभियुक्त के कार्यालय में क्या हो रहा था, लेकिन अभियोजन साक्षी 3 ने अभियुक्त के कार्यालय में कुछ भी होते हुए देखने के बारे में कुछ नहीं कथन किया। उसने यह भी नहीं बताया कि जब अभियोजन साक्षी 1 धन लेकर अंदर गया तो उसने अभियुक्त को उसके आसन पर देखा। इन परस्पर विरोधी बयानों और इस महत्वपूर्ण पहलू पर संदेहास्पद वैशिष्टय

के आलोक में, अभियुक्त का यह तर्क कि उसकी जानकारी के बिना नोट दराज में रखे गए थे, असंभव प्रतीत नहीं होता है। किसी भी दशा में, उपरोक्त कारणों से अभियोजन साक्षी 1 का साक्ष्य पूर्णतया विश्वसनीय प्रतीत नहीं होता है। इसी संदर्भ में न्यायालयों ने सतर्क किया है कि विवेक के नियम के रूप में, कुछ पुष्टि आवश्यक है। रिश्वतखोरी के इस तरह के सभी मामलों में, दो पहलू महत्वपूर्ण होते हैं। प्रथमतः, एक मांग होनी चाहिए और दूसरा, इस अर्थ में स्वीकृति होनी चाहिए कि अभियुक्त ने अवैध परितोषण प्राप्त किया है। मात्र माँग ही अपराध स्थापित करने के लिए पर्याप्त नहीं है। इसलिए, दूसरा पहलू, अर्थात् स्वीकृति बहुत महत्वपूर्ण है और जब अभियुक्त यह तर्क लेकर अग्रेतर उपस्थित होता है कि मुद्रा नोट उसकी जानकारी के बिना दराज में रखे गए थे, तो यह दर्शाने हेतु पुख्ता साक्ष्य होने चाहिए कि यह अभियुक्त की मौन स्वीकृति के साथ था कि रकम अवैध परितोषण के तौर पर दराज में रखा गया था। दुर्भाग्यवश, वर्तमान प्रकरण में इस पहलू पर हमारे पास अभियोजन साक्षी 1 के अलावा कोई अन्य साक्ष्य नहीं है। चूंकि अभियोजन साक्षी 1 का साक्ष्य कमज़ोर हैं, इसलिए हमने कुछ पुष्टि खोजने का प्रयास किया परन्तु व्यर्थ रहा। ऐसा कोई अन्य साक्षी या कोई अन्य परिस्थिति नहीं है जो अभियोजन साक्षी 1 के साक्ष्य का समर्थन करती हो कि रिश्वत के रूप में यह दागी रकम अभियुक्त के निर्देशानुसार दराज में रखी गयी थी। जब तक हम इस पहलू पर संतुष्ट नहीं हो जाते, यह व्यवस्था देना कठिन है कि अभियुक्त ने अधिनियम की धारा 5(1)(घ) के अर्थान्तर्गत मौन रुप से अवैध परितोषण प्रतिगृहीत कर लिया या उसे अभिप्राप्त कर लिया, विशेषकर जबकि अभियुक्त का कथन ऐसा संभावित प्रतीत होता हो।"

28. यहां अभियोजन साक्षी-2 और अभियोजन साक्षी-4 के साक्ष्य से पता चलता है कि अभियुक्त-अपीलकर्ता ने रिश्वत की रकम की मांग की थी और उसने इसे शिकायतकर्ता को कार्यालय-मेज की दराज में रखने के लिए कहकर स्वीकार कर लिया था, जिसे अभियुक्त-अपीलकर्ता ने स्वयं खोला था और, इसलिए, यह केवल मांग नहीं है, बल्कि शिकायतकर्ता को उसे दराज में रखने के लिए कहकर रिश्वत की रकम स्वीकार करना भी है। इस संबंध में अभियोजन साक्षी-2 के साक्ष्य में कोई अवसन्नता नहीं है।

29. ***(2009) 3 एससीसी 779 (सी.एम. गिरीश बाबू बनाम सी.बी.आई., सिचिन, केरल उच्च न्यायालय)*** में सर्वोच्च न्यायालय ने व्यवस्था दी कि रकम की माँग करने और स्वीकार करने के लिए ठोस प्रमाणों के अभाव में केवल अभियुक्त से रकम की वसूली ही पर्याप्त नहीं है। सर्वोच्च न्यायालय ने व्यवस्था दी कि यह जानते हुए कि यह रिश्वत है, रकम की स्वैच्छिक रूप से स्वीकृति नहीं थी। सर्वोच्च न्यायालय ने अभिलेखीय साक्ष्य के विश्लेषण करने के उपरान्त, उक्त निर्णय के पैराग्राफ 18, 19 और 20 में निम्नानुसार व्यवस्था दी:-

*"**18.** सूरजमल बनाम राज्य (दिल्ली प्रशासन) [(1979) 4 एससीसी 725: 1980 एससीसी (सीआरआई) 159] में इस न्यायालय ने (एससीसी पृष्ठ 727, पैरा 2 पर) यह अवलोकन किया कि केवल दागी रकम की वसूली जोकि परिस्थितियों, जिसके अन्तर्गत भुगतान किया गया है, से पृथक है अभियुक्त को दोषी ठहराने के लिए पर्याप्त नहीं है, जब प्रकरण में मौलिक सबूत विश्वसनीय नहीं हैं। किसी भी साक्ष्य के अभाव में, जोकि रिश्वत के भुगतान को साबित करे या यह दर्शाए कि अभियुक्त ने यह जानते हुए कि रिश्वत है, स्वेच्छा से रकम स्वीकार किया, मात्र वसूली स्वयंमेव ही अभियुक्त के विरुद्ध अभियोजन के आरोप को सिद्ध नहीं कर सकती है।*

***19.** केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि साबित करने का दायित्व अपीलकर्ता पर था कि वह यह स्पष्ट करे कि पाश के दौरान उससे बरामद की गई रकम उसके आधिपत्य में कैसे आई। विद्वान अधिवक्ता का तर्क स्पष्ट रूप से भ्र.नि. अधिनियम, 1988 की धारा 20 पर आधारित है जो निम्नानुसार है:*

> *"धारा-20 जहां लोक सेवक वैध पारिश्रमिक से भिन्न परितोषण प्रतिगृहीत करता है, वहां उपधारणा- (1) जहां धारा 7 या धारा 11 या धारा 13 की उपधारा (1) के खंड (क) या खंड (ख) के अधीन दंडनीय अपराध के किसी विचारण में यह साबित कर दिया जाता है कि अभियुक्त व्यक्ति ने किसी व्यक्ति से (वैध पारिश्रमिक से भिन्न) कोई परितोषण या कोई मूल्यवान चीज अपने लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए प्रतिगृहीत या अभिप्राप्त की है अथवा प्रतिगृहीत करने के लिए सहमति दी है या अभिप्राप्त करने का प्रयत्न किया है। वहां जब तक प्रतिकूल साबित न कर दिया जाए यह उपधारणा की जाएगी कि उसने, यथास्थिति, उस परितोषण या मूल्यवान चीज को ऐसे हेतु या इनाम के रूप में, जैसा धारा 7 में वर्णित है, या, यथास्थिति, प्रतिफल के बिना या ऐसे प्रतिफल के लिए, जिसका अपर्याप्त होना वह जानता है, प्रतिगृहीत या अभिप्राप्त किया है अथवा प्रतिगृहीत करने के लिए सहमत हुआ है या अभिप्राप्त करने का प्रयत्न किया है।*
>
> *(2) जहां धारा 12 के अधीन या धारा 14 के खंड (ख) के अधीन दंडनीय अपराध के किसी विचारण में यह साबित कर दिया जाता है कि अभियुक्त व्यक्ति ने (वैध पारिश्रमिक से भिन्न) कोई परितोषण या कोई मूल्यवान चीज दी है या देने की प्रस्थापना की है, या देने का प्रयत्न किया है, वहां जब तक प्रतिकूल साबित न कर*

दिया जाए यह उपधारणा की जाएगी कि उसने, यथास्थिति, उस परितोषण या मूल्यवान चीज को ऐसे हेतु या इनाम के रूप में, जैसा धारा 7 में वर्णित है, या, यथास्थिति, प्रतिफल के बिना या ऐसे प्रतिफल के लिए, जिसका अपर्याप्त होना वह जानता हो, दिया है या देने की प्रस्थापना की है या देने का प्रयत्न किया है।

(3) उपधारा (1) और (2) में किसी बात के होते हुए भी न्यायालय उक्त उपधाराओं में से किसी में निर्दिष्ट उपधारणा करने से इंकार कर सकेगा यदि पूर्वोक्त परितोषण या चीज, उसकी राय में, इतनी तुच्छ है कि भ्रष्टाचार का कोई निष्कर्ष युक्तियुक्त रूप से नहीं निकाला जा सकता।"

***20.** एम. नरसिंगा राव बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य [(2001) 1 एससीसी 691: 2001 एससीसी (सीआरआई) 258] में तीन न्यायाधीशों की खंडपीठ ने इस तर्क पर व्यवहृत किया कि परितोषण प्रतिगृहीत साबित करने के लिए यह पर्याप्त नहीं है कि कुछ मुद्रा नोट लोक सेवक को सौंपे गए और अभियोजन का यह अतिरिक्त कर्तव्य है कि वह यह साबित करे कि जो भुगतान किया गया वह परितोषण के फलस्वरुप है, दृष्टिगत किया गया: (एससीसी पृष्ठ 700, पैरा 24)*

"24.... हमारे विचार में इस प्रकरण से विस्तार से व्यवहृत करना आवश्यक नहीं है क्योंकि हाल ही में हमारे द्वारा दिए गए एक निर्णय में उक्त पक्ष विस्तार से व्यवहृत किया जा चुका है। (मधुकर भास्करराव जोशी बनाम महाराष्ट्र राज्य [(2000) 8 एससीसी 571: 2001 एससीसी (सीआरआई) 34] के माध्यम से) उक्त निर्णय में हमारे द्वारा दी गयी निम्नलिखित अभिव्यक्ति विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाए गए उपरोक्त विवाद का उत्तर होगा: (मधुकर प्रकरण [(2000) 8 एससीसी 571: 2001 एससीसी (सीआरआई) 34], एससीसी पृष्ठ 577, पैरा 12)

'12. पूर्वधारणा हेतु तथ्यों पर आधारित आधार यह है कि परितोषण का भुगतान या प्रतिगृहण हुआ था। एक बार जब उक्त आधार स्थापित हो जाता है तो यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि उक्त परितोषण को किसी भी आधिकारिक कार्य को करने या न करने के लिए "हेतु या इनाम के रूप में" प्रतिगृहीत किया गया था। इसलिए "परितोषण" शब्द को इनाम के अर्थ में विस्तारित करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि इनाम उस प्रकल्पना का परिणाम है जिसे न्यायालय को इस तथ्यात्मक आधार पर आहरित करना होगा कि परितोषण का भुगतान किया गया था। यह फिर से "परितोषण या

किसी मूल्यवान चीज" जैसे एक-दूसरे से सटे दो भावों के संयोजन को देखकर और मजबूत होगा। यदि किसी मूल्यवान चीज की प्रतिगृहीति से यह धारणा बनाने में मदद मिल सकती है कि इसे किसी आधिकारिक कार्य को करने या न करने के लिए हेतु या इनाम के रूप में स्वीकार किया गया था, तो "परितोषण" शब्द को इस संदर्भ में लोक सेवक, जिसने इसे प्राप्त किया, को संतुष्टि देने के लिए किसी भी भुगतान के अर्थ में माना जाना चाहिए।"

30. उक्त सिद्धांत कोई नया नहीं है, बल्कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ***(1979) 4 एससीसी 725 (सूरजमल बनाम राज्य (दिल्ली प्रशासन))*** में प्रतिपादित सिद्धांत की पुनरावृत्ति है।

31. ***(2001) 1 एससीसी 691 (एम. नरसिंगा राव बनाम आंध्र प्रदेश राज्य)*** में, धारा 20 भ्र.नि. अधिनियम, 1988 की उप-धारा 1 को व्यवहृत करते हुए प्रकल्पना लगाने के संबंध में, जहां लोक सेवक वैध पारिश्रमिक के अलावा अन्य परितोषण प्रतिगृहीत करता है, पैराग्राफ 14, 15, 16, 17, 18 और 19 में निम्नानुसार व्यवस्था दी गयी: -

*"**14.** जब उपधारा विधिक उपधारणा को व्यवहृत करती है तो इसे भय के रूप में समझा जाना चाहिए अर्थात् एक आदेश के स्वर में यह माना जाना चाहिए कि अभियुक्त ने आधिकारिक कार्य आदि में कुछ भी करने या न करने के लिए एक हेतु या इनाम के रूप में परितोषण प्रतिगृहीत किया है, यदि धारा के पूर्व भाग में परिकल्पित शर्त संतुष्ट होती है। धारा 20 के अन्तर्गत ऐसी विधिक उपधारणा बनाने की एकमात्र शर्त यह है कि विचारण के दौरान यह साबित किया जाना चाहिए कि अभियुक्त ने किसी भी परितोषण को प्रतिगृहीत कर लिया है या प्रतिगृहीत करने के लिए सहमत हो गया है। धारा यह नहीं कहती है कि उक्त शर्त को प्रत्यक्ष साक्ष्य के माध्यम से संतुष्ट किया जाना चाहिए। इसकी एकमात्र आवश्यकता यह है कि यह साबित किया जाना चाहिए कि अभियुक्त ने परितोषण प्रतिगृहीत कर लिया है या प्रतिगृहीत करने के लिए सहमत हो गया है। प्रत्यक्ष साक्ष्य उन तरीकों में से एक है जिसके माध्यम से किसी तथ्य को साबित किया जा सकता है। लेकिन यह साक्ष्य अधिनियम में परिकल्पित एकमात्र तरीका नहीं है।*

__15.__ "प्रमाण" शब्द को उसी अर्थ में समझने की आवश्यकता है जिसमें इसे साक्ष्य अधिनियम में परिभाषित किया गया है क्योंकि प्रमाण साक्ष्य की स्वीकार्यता पर निर्भर करता है। किसी तथ्य को तब प्रमाणित माना जाता है, जब उसके समक्ष उपस्थित मामलों पर विचार करने के बाद, न्यायालय या तो उसके अस्तित्व पर विश्वास करती है, या उसके अस्तित्व को इतना संभावित मानती है कि एक विवेकशील व्यक्ति को, विशेष प्रकरण की परिस्थितियों में,

इस प्रकल्पना पर कार्य करना चाहिए कि यह विद्यमान है। यह साक्ष्य अधिनियम में "साबित" शब्द के लिए दी गई परिभाषा है। आवश्यकता इस बात की है कि ऐसी सामग्रियों का प्रस्तुत किया जाए जिसके आधार पर न्यायालय इस प्रकल्पना पर पहुंचने के लिए युक्तियुक्त कार्रवाई कर सके कि कोई तथ्य विद्यमान है। तथ्य का प्रमाण उसके अस्तित्व की संभावना के स्तर पर निर्भर करता है। प्रकल्पना तक पहुंचने के लिए आवश्यक मानक यह है कि एक विवेकशील व्यक्ति अपने से संबंधित किसी भी महत्वपूर्ण प्रकरण में कार्य करे। हॉकिन्स बनाम पॉवेल्स टिलरी स्टीम कोल कंपनी लिमिटेड [(1911) 1 केबी 988: 1911 डब्ल्यूएन 53] में माननीय न्यायमूर्ति फ्लेचर मौलटन एल. ने निम्नवत् पर्यवेक्षण किया:

> *"प्रमाण का तात्पर्य कठोर गणितीय प्रदर्शन का प्रमाण नहीं है, क्योंकि यह असंभव है; इसका तात्पर्य ऐसे साक्ष्य से है जो एक युक्तियुक्त व्यक्ति को एक विशेष निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए प्रेरित करेगा।"*

16. *उक्त पर्यवेक्षण समय की कसौटी पर खरा उतरा है और अब इसका प्रमाण के मानक के रूप में अनुसरण किया जा सकता है। निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए न्यायालय प्रस्तुत या साबित किए गए तथ्यों से निकाले जाने वाले निष्कर्षों की प्रक्रिया का उपयोग कर सकती है। इस तरह के निष्कर्ष विधि में प्रकल्पना के सद्दश हैं। विधि न्यायालय को किसी भी तथ्य के अस्तित्व को प्रकल्पित करने का पूर्ण विवेक देता है जिसके घटित होने की संभावना उसे लगती है। उस प्रक्रिया में न्यायालय विशेष प्रकरण के तथ्यों के साथ-साथ प्राकृतिक घटनाओं, मानवीय आचरण, सार्वजनिक या निजी व्यवसाय के सामान्य कार्यप्रणाली को ध्यान में रख सकती है। साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 में स्पष्ट रूप से विवेक की परिकल्पना की गई है।*

17. *प्रकल्पना अन्य सिद्ध तथ्यों से निकाला गया किसी निश्चित तथ्य का निष्कर्ष है। किसी दूसरे तथ्य से किसी तथ्य के अस्तित्व का निष्कर्ष निकालते समय, न्यायालय केवल बुद्धिमान तर्क की प्रक्रिया को लागू कर रही है जो एक विवेकशील व्यक्ति का दिमाग समान परिस्थितियों में करेगा। प्रकल्पना अन्य तथ्यों से निकाला जाने वाला अंतिम निष्कर्ष नहीं है। लेकिन यह अंतिम भी हो सकता है अगर बाद में अक्षुब्ध रहे। साक्ष्य के कानून में प्रकल्पना एक नियम है जो साक्ष्य के दायित्व को स्थानांतरित करने के चरण को दर्शाता है। किसी निश्चित तथ्य या तथ्यों से न्यायालय एक निष्कर्ष निकाल सकती है और वह तब तक बना रहेगा जब तक कि ऐसी प्रकल्पना अस्वीकृत या खारिज न हो जाए।*

18. *किसी निष्कर्ष पर पहुंचने के उद्देश्य से न्यायालय तथ्यात्मक प्रकल्पना पर आश्रय कर सकता है। जब*

तक प्रकल्पना को अस्वीकृत या खारिज या खंडित नहीं किया जाता है, तब तक न्यायालय प्रकल्पना को साक्ष्य के समान मान सकती है। हालाँकि, विवेक की सावधानी के रूप में हमें यह देखना होगा कि जब तक कोई वैधानिक बाध्यता न हो, तब तक एक और विवेकाधीन प्रकल्पना का अनुप्रयोग करने के लिये उस प्रकल्पना का उपयोग करना असुरक्षित हो सकता है। इस न्यायालय ने सुरेश बुधरमल कलानी बनाम महाराष्ट्र राज्य [(1998) 7 एससीसी 337: 1998 एससीसी (सीआरआई) 1625] (एससीसी पृष्ठ 339, पैरा 5): में ऐसा संकेत दिया है "एक प्रकल्पना केवल तथ्यों से रेखांकित की जा सकती है- अन्य प्रकल्पनाओं से नहीं- संभावित और तार्किक तर्क की प्रक्रिया द्वारा।"

***19.** साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 का दृष्टांत (क) कथन करता है कि न्यायालय यह प्रकल्पना कर सकती है कि "एक व्यक्ति जिसके पास चोरी के तुरंत बाद चोरी का सामान को आधिपत्य है, वह या तो चोर है या उसने यह जानते हुए भी कि सामान चोरी हो गया है, प्राप्त किया है, जब तक वह अपने आधिपत्य का हिसाब नहीं दे सकता"। उस दृष्टांत का उपयोग वर्तमान संदर्भ में भी लाभप्रद रूप से किया जा सकता है जब अभियोजन पक्ष ने विश्वसनीय सामग्री प्रस्तुत की कि अपीलकर्ता की जेब में 500 रुपये के फिनोलफथेलिन-लिप्त मुद्रा नोट थे जब उसकी भ्रष्टाचार निरोधक ब्यूरो के अभियोजन साक्ष्य -7, डीएसपी द्वारा तलाशी ली गई थी। इससे यह अवधारित नहीं किया जा सकता है या जरूरी नहीं है कि उसने वह रकम किसी और से स्वीकार की है क्योंकि ऐसी संभावना है कि कोई और या तो उन मुद्रा नोटों को उसकी जेब में भर देगा या चुपचाप उसे उसमें डाल देगा। लेकिन अन्य परिस्थितियाँ, जो इस प्रकरण में साबित हुई हैं और दागी मुद्रा नोटों की खोज से पहले और बाद में, न्यायालय को तथ्यात्मक प्रकल्पना करने में मदद करने के लिए प्रासंगिक और उपयोगी हैं कि अपीलकर्ता ने स्वेच्छा से मुद्रा नोट प्राप्त किए थे।*

32. ***(2009) 15 एससीसी 200 (महाराष्ट्र राज्य बनाम ज्ञानेश्वर लक्ष्मण राव वानखेड़े)*** में, सर्वोच्च न्यायालय ने व्यवस्था दी कि अभियुक्त से वसूले गये वैध पारिश्रमिक के अलावा अन्य रकम के संबंध में अभियोग से मुक्ति की प्रकल्पना का भार अभियुक्त पर है, परन्तु अभियोजन को मूलभूत तथ्य साबित करने होंगे। उक्त निर्णय का पैराग्राफ-16 निम्नवत् पठित है:-

> *"**16**. निर्विवाद रूप से, अधिनियम के प्रावधानों के अन्तर्गत किसी अपराध के गठन हेतु अवैध परितोषण की माँग एक अनिवार्य शर्त है। इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कि क्या किसी अपराध के सभी घटक अर्थात अवैध परितोषण की रकम की मांग, स्वीकृति और वसूली संतुष्ट हो गई है या नहीं, न्यायालय को अभिलेख पर लाए गए तथ्यों और*

परिस्थितियों को उनकी संपूर्णता में ध्यान में रखना चाहिए। उक्त उद्देश्य हेतु, निर्विवाद रूप से, प्रकल्पनित साक्ष्य, जैसा कि अधिनियम की धारा 20 में निर्धारित है, को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए, लेकिन उसके संबंध में, यह घिसी-पिटी बात है, अभियुक्त पर साबित करने के दायित्व के मानक के प्रतिकुल में अभियोजन पक्ष पर साबित करने के दायित्व के मानक अलग-अलग होंगे। हालांकि, इससे पहले, अभियुक्त को बुलाया जाता है यह समझाने के लिए कि प्रश्नगत रकम उसके आधिपत्य में कैसे पाई गई, अभियोजन पक्ष द्वारा मूलभूत तथ्यों का संस्थापन किया जाना चाहिए। अधिनियम की धारा 20 के प्रावधानों को लागू करते समय, न्यायालय को अभियुक्त द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण, यदि कोई हो, को केवल संभाव्यता की प्रधानता की कसौटी पर, न कि सभी युक्तियुक्त संदेह से परे प्रमाण की कसौटी पर, पर विचार करना आवश्यक है।"

33. अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों को दृष्टिगत रखते हुए, मेरा मत है कि अभियोजन पक्ष अपने दायित्व का निर्वहन करने में सक्षम रहा है और उसने अभियुक्त-अपीलकर्ता द्वारा शिकायतकर्ता से रिश्वत की रकम की मांग और स्वीकृति के आरोप के संबंध में मूलभूत तथ्य प्रस्तुत किए हैं जबकि अभियुक्त-अपीलकर्ता अपने कार्यालय की मेज की दराज में पाए गए दागी रकम के लिए अपने दायित्व का निर्वहन में सक्षम नहीं है। इसके दृष्टिगत, मेरा निष्कर्ष है कि अपील में कोई उत्कृष्टता और तत्व नहीं है, इसे **खारिज** किया जाता है।

34. अभियुक्त-अपीलकर्ता जमानत पर है। उसके जमानत बंधपत्र रद्द किये जाते हैं। प्रतिभूओं को उन्मोचित किया जाता है। अभियुक्त-अपीलकर्ता को सजा भुगतने के लिए तुरंत हिरासत में लेने का निर्देश दिया जाता है। विचारण न्यायालय के अभिलेख को अविलम्ब विद्वान विचारण न्यायालय में वापस भेजा जाए।

(2023) 3 ILRA 707

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 16.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति दिनेश कुमार सिंह, जे।

2021 की आपराधिक अपील संख्या 1588
के साथ जुड़ा हुआ है
2021 की आपराधिक अपील संख्या 1761 और
2021 की 1837

इन्द्र प्रताप तिवारी ...वादी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ... प्रतिवादी

अपीलकर्ता के लिए वकील: धीरेन्द्र कुमार मिश्रा, ईशान बघेल, मनोज कुमार मिश्रा, सलील कुमार श्रीवास्तव

प्रतिवादी के लिए वकील: जी।ए।, अनुज पांडे, अशोक पांडे, सुशील कुमार सिंह

अपराधिक कानून-अपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973- धाराएं 154, 221 & 223- भारतीय

साक्ष्य अधिनियम, 1872- धारा 65- अभियुक्त-अपीलकर्ताओं ने जाली मार्कशीट के आधार पर दाखिला लिया- IPC की धारा 420, 468, 471 के तहत दोषसिद्धि- अभियोजन गवाहों का साक्ष्य बिना किसी विरोध के गया- उनकी गवाही में ऐसा कुछ नहीं है जो यह प्रदर्शित करें कि उनके पास अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के खिलाफ कोई व्यक्तिगत दुश्मनी है या वे झूठा बयान दे रहे हैं- विचरण के दौरान दस्तावेजों की स्वीकार्यता को लेकर कोई आपत्ति नहीं उठाई गई और दस्तावेजों को गवाहों द्वारा सिद्ध किया गया, इसलिए अपील में ऐसी आपत्ति उठाना उनके लिए संभव नहीं है- अभियुक्त-अपीलकर्ता यह तर्क नहीं दे सकते कि वे किसी भी तरह से सामान्य एफ.आई.आर., एक चार्जशीट और सभी तीन आरोपित-अपीलकर्ताओं के लिए एक ही चार्ज से प्रभावित हुए हैं- आरोप समान हैं, गवाह सामान्य थे, जिन्होंने दस्तावेजों को सिद्ध किया और चार्ज के समर्थन में गवाही दी। (पैराग्राफ 21, 22, 29, 30, 31)

भारतीय दंड संहिता-1860-धाराएं 420, 468 & 471- तकनीकी आधार के अतिरिक्त कोई तर्क नहीं दिया गया कि धारा 468, 471 और 420 IPC के तहत अपराध नहीं बनते।

अपील निरस्त। (E-15)

उद्धृत वाद सूची:

1. मुद्धसानी वेंकट नरसैया (मृत) द्वारा कानूनी प्रतिनिधियों बनाम मुद्धसानी सरोजना (2016) 12 SCC 288

2. आर.वीएसई. वेंकटाचला गौंडर बनाम अरुलमिगु विश्वेश्वरस्वामी & वीएसपी. मंदिर और अन्य, (2003) 8 SCC 752: AIR 2003 SC 4548

3. पी.सी. पुरुषोत्तम रेड्डियार बनाम वीएसएस. परमल (1972) 1 SCC 9: AIR 1972 SC 608

4. श्रीमती सुधा अग्रवाल बनाम छठे अतिरिक्त जिला जज, गाज़ियाबाद, 2006 (3) ADJ 429

5. बिहारी प्रसाद एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (1996) SCC (Cri) 271

<u>माननीय न्यायमूर्ति दिनेश कुमार सिंह</u>

1. प्रस्तुत तीनों अपील अन्तर्गत धारा 374(2) दण्ड प्रकिया संहिता, मुकदमा अपराध संख्या 24/1992 से उत्पन्न, विशेष मुकदमा संख्या 3012/2018 (राज्य बनाम फूल चन्द्र यादव व अन्य) थाना राम जन्म भूमि, जनपद फैजाबाद में विद्वान विशेष न्यायाधीश(एमपी/एमएलए)/ अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 3, फैजाबाद द्वारा पारित उभय-निष्ठ निर्णय और आदेश दिनांक 18.10.2021 के विरुद्ध दायर किये गये है, जिसके माध्यम से अभियुक्तगण-अपीलकर्ता को दोषसिद्ध ठहराया गये और निम्नानुसार सजा सुनाई गयी: -

भारतीय दण्ड संहिता की धारा 420 के अन्तर्गत प्रत्येक को तीन वर्ष का कारावास और 6,000/- रुपये का जुर्माना और जुर्माने की राशि जमा न करने पर अठारह दिन का अतिरिक्त साधारण कारावास; और

भारतीय दण्ड संहिता की धारा 468 के अन्तर्गत प्रत्येक को पाँच वर्ष का कारावास और 8,000/- रुपये का जुर्माना और जुर्माने की राशि जमा न करने पर बीस दिन का अतिरिक्त साधारण कारावास; और

भारतीय दण्ड संहिता की धारा 471 के अन्तर्गत प्रत्येक को दो वर्ष का कारावास और 5,000/- रुपये का जुर्माना और जुर्माने की राशि जमा न करने पर पन्द्रह दिन का अतिरिक्त साधारण कारावास।

<u>तथ्य:-</u>

2. संक्षेप में, अभियोजन का प्रकरण यह है कि के.एस. साकेत स्नातकोत्तर महाविद्यालय, फैजाबाद के प्रधानाचार्य, श्री यदुवंश राम त्रिपाठी ने 16.2.1992 को वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, फैजाबाद को एक शिकायत की, जिसमें आरोप लगाया गया कि उन्होंने अपने पिछले पत्र दिनांक 14.2.1992 में अभियुक्तगण-अपीलकर्ताओं के संबंध में सूचित किया था, कि उन्होंने कूटरचित अंकतालिका के आधार पर प्रवेश प्राप्त कर लिया। यह आरोप लगाया गया कि अभियुक्तगण-अपीलकर्ता फूल चन्द्र यादव पुत्र तिलकधारी यादव, जिसका अनुक्रमांक 60999 था, 1986 में विज्ञान स्नातक भाग-I की परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो गया और बैक पेपर लिखने के बावजूद वह विज्ञान स्नातक भाग-I की परीक्षा उत्तीर्ण नहीं कर सका और, इसलिए, वह विज्ञान स्नातक भाग- II में प्रवेश पाने हेतु पात्र नहीं था, परन्तु कूटरचित अंकतालिका में कूटरचना करके और आपराधिक षड़यंत्र के अन्तर्गत कागजातों में हेराफेरी करके, उसने विज्ञान स्नातक भाग-I उत्तीर्ण करने की कूटरचित अंकतालिका प्राप्त की थी। 1986 की बैक पेपर परीक्षा का परिणाम, जिसमें अभियुक्त फूल चन्द्र यादव ने स्वयं को उत्तीर्ण घोषित करने के लिए अपने अंकों में कूटरचना की थी, की प्रतिलिपि भी पत्र के साथ संलग्न की गई थी। इस कूटरचित और मनगढ़ंत अंकतालिका के आधार पर, उसने शैक्षणिक सत्र 1986-87 के लिए विज्ञान स्नातक भाग- II में प्रवेश प्राप्त कर लिया और महाविद्यालय के तत्कालीन प्रधानाचार्य ने उक्त अभियुक्तगण-अपीलकर्ता के प्रवेश प्रपत्र को मंजूरी दे दी थी। उक्त पत्र के साथ महाविद्यालय के तत्कालीन प्रधानाचार्य द्वारा सत्यापित प्रवेश प्रपत्र की एक प्रति भी संलग्न की गई थी।

3. अभियुक्तगण-अपीलकर्ता, इंद्र प्रताप तिवारी वर्ष 1990 में अनुक्रमांक 4263 के साथ पूर्व छात्र के रूप में विज्ञान स्नातक भाग- II परीक्षा में उपस्थित हुआ। वह उक्त परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो गया। विज्ञान स्नातक भाग- II परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने के बावजूद, अभियुक्त-अपीलकर्ता, इंद्र प्रताप तिवारी ने कथित तौर पर विश्वविद्यालय द्वारा दिनांक 8.12.1990 को जारी एक कूटरचित अंकतालिका प्रस्तुत की और शैक्षणिक सत्र 1990-91 के लिए विज्ञान स्नातक भाग- III में प्रवेश पा लिया। उक्त कूटरचित अंकतालिका की प्रति पत्र के साथ संलग्न की गई थी। उसे महाविद्यालय द्वारा कारण बताओ नोटिस दिया गया था, परन्तु उक्त नोटिस का कोई जवाब नहीं दिया गया और इसके उपरान्त, विज्ञान स्नातक भाग-III में उसका प्रवेश रद्द कर दिया गया और छात्र संघ के सचिव पद पर उसका चुनाव भी अवैध घोषित कर दिया गया। अभियुक्त-अपीलकर्ता इंद्र प्रताप तिवारी के विज्ञान स्नातक भाग-III में प्रवेश रद्द करने और छात्र संघ के सचिव पद पर उसके चुनाव को रद्द करने के उक्त आदेश की प्रति भी महाविद्यालय के प्रधानाचार्य के पत्र के साथ संलग्न की गई थी।

4. उक्त पत्र में यह भी आरोप लगाया गया कि अभियुक्त-अपीलकर्ता कृपा निधान तिवारी ने वर्ष

1989 में अनुक्रमांक 51570 के साथ विधि स्नातक भाग-1 की परीक्षा दी थी, परन्तु वह अनुत्तीर्ण रहा। विधि स्नातक भाग-1 की परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने के बावजूद, उसने विश्वविद्यालय द्वारा कथित तौर पर जारी की गई कूटरचित अंकतालिका के आधार पर शैक्षणिक सत्र 1989-90 के लिए 11.3.1991 को विधि स्नातक भाग-2 में प्रवेश प्राप्त कर लिया। पत्र के साथ कूटरचित अंकतालिका और प्रवेश पत्र की प्रति संलग्न की गई थी। जब प्रधानाचार्य को इस कूटरचना की जानकारी हुई तो उन्होंने कृपा निधान तिवारी को कारण बताओ नोटिस दिया, परन्तु उसने उक्त नोटिस का कोई जवाब नहीं दिया और इसके पश्चात् विधि स्नातक भाग-2 में उसका प्रवेश रद्द कर दिया गया।

5. उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर, प्रधानाचार्य ने वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, फैजाबाद से इन तीनों अभियुक्तगणों-अपीलकर्ताओं के विरुद्ध उचित विधिक कार्यवाही करने का अनुरोध किया, जिन्होंने कूटरचित और मनगढ़ंत अंकतालिकाओं/कागजातों के आधार पर प्रवेश लिया और महाविद्यालय प्रशासन और विश्वविद्यालय के साथ प्रवंचना किया।

6. इस पत्र पर वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, फैजाबाद ने 18.2.1992 को थानेदार, थाना राम जन्म भूमि, अयोध्या को प्रकरण दर्ज करने और अपराध की अन्वेषण करने का निर्देश दिया। उक्त निर्देश के अनुसरण में, तीनों अभियुक्तगणों-अपीलकर्ताओं के विरुद्ध प्राथमिकी मुकदमा अपराध संख्या 24/ 1992 पर अन्तर्गत धारा 420, 467, 468, 471 भारतीय दण्ड संहिता थाना राम जन्म भूमि, अयोध्या में दर्ज की गई।

7. अन्वेषण अधिकारी ने अन्वेषण पूरा करने के उपरान्त 19.7.1996 को तीनों अभियुक्तगणों-अपीलकर्ताओं के विरुद्ध आरोप पत्र अन्तर्गत धारा 468, 471 और 420 भारतीय दण्ड संहिता दायर किया। संज्ञान लेने के उपरान्त, अभियुक्तगणों-अपीलकर्ताओं को 4.9.1996 को तलब किया गया। हालाँकि, विशेष न्यायाधीश (एमपी/एमएलए), न्यायालय संख्या 1, फैजाबाद द्वारा 9.12.2019 को ही आरोप तय किए जा सके, जोकि निम्नानुसार पठित हैं: -

> *"(i) यह कि 18.2.1992 से पूर्व विभिन्न अवसरों पर फूल चन्द्र यादव ने 1986 में के.सी. साकेत स्नातकोत्तर महाविद्यालय से विज्ञान स्नातक भाग-I की परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने के बावजूद, अभियुक्त इंद्र प्रताप तिवारी ने 1990 में विज्ञान स्नातक भाग-2 की परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने और अभियुक्त कृपा निधान तिवारी ने 1989 में विधि स्नातक भाग-I की परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो जाने पर प्रवंचना कर इन परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने के लिए कूटरचित अंकतालिका तैयार की, इस प्रकार आरोपियों का उक्त कृत्य धारा 468 के अन्तर्गत दंडनीय अपराध है, जिस पर न्यायालय द्वारा संज्ञान लिया जा चुका है।*
>
> *(ii) यह कि यह तथ्य ज्ञात होते हुए भी कि ये अंकतालिका*

कूटरचित थीं, कूटरचित अंकतालिका के आधार पर अभियुक्त फूल चन्द्र यादव ने विज्ञान स्नातक भाग- II में, इंद्र प्रताप तिवारी ने विज्ञान स्नातक भाग-III में और कृपा निधान तिवारी ने विधि स्नातक भाग-II में प्रवेश प्राप्त कर लिया और, अभियुक्तगणों-अपीलकर्ताओं का यह कृत्य भारतीय दण्ड संहिता की धारा 471 के अन्तर्गत दंडनीय अपराध था और न्यायालय द्वारा उक्त अपराध के लिए संज्ञान लिया जा चुका है।

(iii) यह कि कूटरचित अंकतालिका के आधार पर, अभियुक्तगणों-अपीलकर्ताओं ने महाविद्यालय को धोखा देकर अगली कक्षा में प्रवेश प्राप्त कर लिया और ऐसा अपराध धारा 420भारतीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत दंडनीय है, जिस हेतु न्यायालय द्वारा संज्ञान लिया जा चुका है।"

8. अभियुक्तगणों ने आरोपों का खण्डन किया और विचारण की अनुरोध किया।

<u>प्रमाण:-</u>

9. अभियोजन पक्ष ने अपना प्रकरण प्रमाणित करने के लिए तीन साक्षियों अभियोजन साक्षी-1 महेंद्र कुमार अग्रवाल, अभियोजन साक्षी-2, राम बहादुर सिंह और अभियोजन साक्षी-3 श्रीकांत पाठक को परीक्षित कराया।

10. अभियोजन साक्षी-1 महेंद्र कुमार अग्रवाल ने अपने मुख्य परीक्षा में बताया कि उनकी नियुक्ति महाविद्यालय में 1.10.1966 को हुई थी। वर्ष 1992 में श्री यदुवंश राम त्रिपाठी के.एस. साकेत स्नातकोत्तर महाविद्यालय के प्रधानाचार्य थे। साक्षी प्रासंगिक समय पर, महाविद्यालय के कार्यालय अधीक्षक के रूप में कार्यरत था। अभियुक्त-अपीलकर्ता, कृपा निधान तिवारी विधि स्नातक भाग- I का छात्र था और महाविद्यालय के सारणीयन पंजिका के अनुसार, वह सभी सात प्रश्नपत्रों में केवल 120 अंक हासिल कर सका और अनुत्तीर्ण हो गया। इसी प्रकार, अभियुक्तगण-अपीलकर्ता, इंद्र प्रताप तिवारी और फूल चन्द्र यादव भी क्रमशः 1990 और 1986 में विज्ञान स्नातक भाग- II और विज्ञान स्नातक भाग- I परीक्षाओं में अनुत्तीर्ण हुए थे। उसने अग्रेतर कथन किया कि अन्वेषण अधिकारी अन्वेषण के सिलसिले में महाविद्यालय आये थे और उसने उन्हें सारणीयन पंजिका दिखायी थी। उसने यह भी कथन किया कि वह तत्कालीन प्रधानाचार्य डॉ. यदुवंश राम त्रिपाठी की लिखावट और हस्ताक्षर जानता है। उसने कागज संख्या 4ए/6 व 6ए/1, 6ए/3 व 6ए/5 व 6ए/7 को प्रमाणित किया, जिन पर तत्कालीन प्रधानाचार्य डॉ. यदुवंश राम त्रिपाठी के हस्ताक्षर थे। इन कागजातों को प्रदर्श क-1 से प्रदर्श क-7 के रूप में चिह्नित किया गया था। साक्षी ने कथन किया कि तीनों अभियुक्तगणों-अपीलकर्ताओं ने कूटरचित अंकतालिका के आधार पर अगली कक्षा में प्रवेश लिया था। उसने अग्रेतर कथन किया कि उसके साथ काम करने वाले कार्यालय सहायक गुरु चरण यादव की मृत्यु हो चुकी है। उसने महाविद्यालय के सारणीयन पंजिका के आधार पर अन्वेषण अधिकारी को जानकारी दी थी।

11. अभियोजन साक्षी-2, राम बहादुर सिंह ने अपने मुख्य परीक्षा में कथन किया कि वर्ष 1992 में वह अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद में वरिष्ठ सहायक (गोपनीय) के पद पर कार्यरत था। डॉ. यदुवंश राम त्रिपाठी, तत्कालीन प्रधानाचार्य के.एस. साकेत स्नातकोत्तर महाविद्यालय, फैजाबाद ने उससे अभियुक्तगण-अपीलकर्ता तीन छात्रों, फूल चन्द्र यादव, इंद्र प्रताप तिवारी और कृपा निधान तिवारी के परीक्षा परिणामों के संबंध में जानकारी प्रदान करने का अनुरोध किया था। उसने बताया कि विश्वविद्यालय के अभिलेख का परीक्षण करने के उपरान्त उसने तीनों छात्रों के परिणामों का सत्यापन भेजा था। उसके द्वारा महाविद्यालय को भेजे गए कागजात यानी 6ए/1, 6ए/3, 6ए/6 और 6ए/7 की प्रमाणित प्रतिलिपि साक्षी द्वारा सत्यापित की गयी।

12. अभियोजन साक्षी-3, श्रीकान्त पाठक ने अपने मुख्य परीक्षा में कथन किया कि हेड मोहर्रिर शिवाजी मिश्रा उसके साथ जनपद फैजाबाद एवं बाराबंकी में तैनात रहे। उसने हेड मोहर्रिर शिवाजी की लिखावट और हस्ताक्षर देखे थे और वह उनकी लिखावट और हस्ताक्षर से पूर्णतया परिचित था। उसने अग्रेतर कथन किया कि कागज संख्या 4ए/1 और 4ए/2 हेड मोहर्रिर शिवाजी मिश्रा की लिखावट और हस्ताक्षर में थे और उसने उनके हस्ताक्षरों को सत्यापित किया। इन कागजातों को प्रदर्श क-8 के रूप में चिह्नित किया गया। उसने अग्रेतर कथन किया कि उप-निरीक्षक राम चन्द्र सिंह उसके साथ जनपद गोंडा में तैनात थे, और उसने उन्हें लिखते हुए देखा था और वह श्री राम चन्द्र सिंह के हस्ताक्षर जानता था। उसे लिखावट और हस्ताक्षर की पूरी जानकारी थी। उसने अग्रेतर कथन किया कि कागज संख्या 3ए/1, आरोप पत्र संख्या 11 दिनांकित 20.1.1996 उप-निरीक्षक, राम चन्द्र सिंह की लिखावट और हस्ताक्षर में था और उसने इसे सत्यापित किया और प्रदर्श क-9 के रूप में चिह्नित किया गया।

13. अभियोजन पक्ष के साक्ष्य समाप्त होने के उपरान्त, अभियुक्तगणों-अपीलकर्ताओं के बयान अन्तर्गत धारा 313 दण्ड प्रकिया संहिता दर्ज किये गये। उन्होंने अपने विरुद्ध साक्ष्यों और परिस्थितियों का खण्डन किया और कथन किया कि उन्हें शत्रुतावश झूठा फंसाया गया है। वे निर्दोष थे। हालाँकि, अभियुक्तगणों-अपीलकर्ताओं ने कोई मौखिक या दस्तावेजी बचाव साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया।

14. विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों का विश्लेषण करने और प्रकरण के पूरे तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के उपरान्त, ऊपर बताए अनुसार अभियुक्तगणों-अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराया और सजा सुनाई।

<u>तर्क :-</u>

15. अभियुक्तगणों-अपीलकर्ताओं की ओर से श्री आई.बी. सिंह विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री ईशान बघेल की सहायता से, डॉ. सलिल कुमार श्रीवास्तव और श्री दिवाकर सिंह ने तर्क दिया कि तीन पृथक घटनाओं के संबंध में और तीन पृथक आरोपियों के संबंध में एक उभय-निष्ठ प्राथमिकी दर्ज की गई थी और तीनों आरोपियों के विरुद्ध एक उभय-निष्ठ आरोप पत्र दायर किया गया, जिस पर उभय-निष्ठ आरोप तय किए गए। उन्होंने अग्रेतर प्रस्तुत किया कि तीनों अपीलकर्ताओं के बीच आपराधिक षड्यंत्र और दुष्प्रेरण का कोई आरोप नहीं था। अभियुक्तगण-

अपीलकर्ता तीन व्यक्ति हैं और दण्ड प्रकिया संहिता की धारा 154 के अनुसार, प्राथमिकी एक अपराध से संबंधित होनी चाहिए न कि कई अपराधों से, जो एक कार्यवाही का हिस्सा नहीं हैं और एक दूसरे से संबंधित नहीं हैं। अग्रेतर यह प्रस्तुत किया गया है कि दण्ड प्रकिया संहिता की धारा 221 और 223 के अन्तर्गत पृथक व्यक्तियों के विरुद्ध पृथक आरोप तय किए जाने चाहिए और पृथक विचारण किया जाना चाहिए। हालाँकि, उक्त प्रक्रिया का उल्लंघन करते हुए अभियुक्तगणों-अपीलकर्ताओं पर संयुक्त रूप से मुकदमा चलाया गया। अग्रेतर यह तर्क दिया गया कि अभियुक्तगणों-अपीलकर्ताओं की दोषसिद्धि अगली कक्षा में प्रवेश पाने के लिए कूटरचित अंकतालिका का उपयोग करने पर आधारित है। अभियुक्तगणों-अपीलकर्ताओं द्वारा कथित रूप से कूटरचित अंकतालिका की केवल छायाप्रति ही विचारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई थीं। मूल प्रतियाँ विचारण न्यायालय के समक्ष कभी भी प्रस्तुत नहीं की गईं। विचारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किए गए दस्तावेज़ भारतीय साक्ष्य अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार प्रमाणित नहीं किए गए। विद्वान विचारण न्यायालय ने भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 65 के घोर उल्लंघन में द्वितीयक साक्ष्य के आधार पर अभियुक्तगणों-अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराया था। अभियुक्तगणों-अपीलकर्ताओं पर विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया का उल्लंघन करते हुए एक साथ मुकदमा चलाया गया और उन्हें दोषी ठहराया गया, जिसने पूरी विचारण की कार्यवाही को दूषित कर दिया।

16. दूसरी ओर, श्री यू.सी. वर्मा, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता, श्री राव नरेंद्र सिंह विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता की सहायता से, ने तर्क दिया कि अभियुक्तगणों-अपीलकर्ताओं ने, अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत और साक्षियों द्वारा प्रमाणित, दस्तावेजी साक्ष्य की स्वीकार्यता के संबंध में कभी आपत्ति नहीं की। विचारण के दौरान अभियुक्तगणों-अपीलकर्ताओं द्वारा किसी भी प्रकार की कोई आपत्ति नहीं की गई। उन्होंने कभी भी खण्डन नहीं किया कि अगली कक्षा में प्रवेश प्राप्त करने हेतु यह उनके द्वारा प्रस्तुत की गई अंकतालिका और प्रवेश प्रपत्र नहीं थे। जब अभियुक्तगणों-अपीलकर्ताओं ने कभी भी उन कागजातों के अस्तित्व का खण्डन नहीं किया, जिनके आधार पर उन्होंने अगली कक्षा में प्रवेश लिया, और उन्होंने कभी आपत्ति नहीं की, तो वे अपील के इस चरण में इस आपत्ति को उठाने को स्वतंत्र नहीं हैं। अग्रेतर यह प्रस्तुत किया गया कि अभियुक्तगणों-अपीलकर्ताओं ने भारतीय दण्ड संहिता की धारा 468, 471 और 420 के अन्तर्गत अपराध के लिए एक साथ मुकदमा चलाने या एक प्राथमिकी दर्ज करने या उभय-निष्ठ आरोप तय करने के संबंध में कोई आपत्ति नहीं की।

17. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने अग्रेतर तर्क प्रस्तुत किया कि अभियुक्तगण-अपीलकर्ता पृथक हो सकते हैं, परन्तु उन्होंने, कूटरचित और मनगढ़ंत दस्तावेज़ों के आधार पर अगली कक्षा में प्रवेश लेकर और महाविद्यालय को धोखा देकर, समरुप अपराध कारित किया था। यह भी तर्क प्रस्तुत किया गया कि तीनों साक्षियों ने अभियुक्तगणों - अपीलकर्ताओं के विरुद्ध अभियोजन प्रकरण को पूर्णतया प्रमाणित किया है। जबकि अभियुक्तगणों-अपीलकर्ताओं ने आपत्ति नहीं की, जोकि वे यहां कर रहे हैं, उनकी आपत्तियाँ खारिज की जानी चाहिए। अग्रेतर यह तर्क प्रस्तुत

किया गया कि साक्षियों द्वारा कागजातों को विधिवत प्रमाणित किया गया है क्योंकि वे कागजातों के लेखकों को जानते थे। जब विचारण प्रारम्भ हुआ तो स्वयं प्रधानाचार्य जीवित नहीं थे और अन्य साक्षी भी मर चुके थे। यह भी प्रस्तुत किया गया कि अभियुक्त-अपीलकर्ता, इंद्र प्रताप तिवारी एक माफिया, गैंगस्टर और खूंखार अपराधी है और अपील पर निर्णय लेते समय उसका चरित्र पर विचार भी महत्वपूर्ण है। अभियोजन ने अभियुक्त-अपीलकर्ता, इंद्र प्रताप तिवारी, का आपराधिक इतिहास अभिलेख पर प्रस्तुत किया, जोकि निम्नानुसार है:-

"1. मुकदमा अपराध संख्या 258/ 1991, अन्तर्गत धारा 1478, 148, 149 व 307 भारतीय दण्ड संहिता, थाना राम जन्म भूमि, अयोध्या;

2. मुकदमा अपराध संख्या 20/ 1992, अन्तर्गत धारा 379, 427, 436, 454, 451, 504 व 186 भारतीय दण्ड संहिता, थाना रामजन्मभूमि, अयोध्या;

3. मुकदमा अपराध संख्या 24/ 1992, अन्तर्गत धारा 420, 467, 468 व 471 भारतीय दण्ड संहिता, थाना राम जन्म भूमि, अयोध्या;

4. मुकदमा अपराध संख्या 68/ 2012, अन्तर्गत धारा 147, 148, 323, 504, 506 व 427 भारतीय दण्ड संहिता, थाना महराजगंज, अयोध्या;

5. मुकदमा अपराध संख्या 1352/ 1991, अन्तर्गत धारा 147, 148, 323 व 504 भारतीय दण्ड संहिता, थाना कोतवाली नगर, अयोध्या;

6. मुकदमा अपराध संख्या 397/ 1993, अन्तर्गत धारा 147, 148, 149 व 302 भारतीय दण्ड संहिता, थाना कोतवाली नगर, अयोध्या;

7. मुकदमा अपराध संख्या 776/ 1995 अन्तर्गत धारा 3 गुण्डा अधिनियम, थाना कोतवाली नगर, अयोध्या;

8. मुकदमा अपराध संख्या 618/ 1995, अन्तर्गत धारा 147, 148, 149 व 307 भारतीय दण्ड संहिता, थाना कोतवाली नगर, अयोध्या;

9. मुकदमा अपराध संख्या 286/ 1997 अन्तर्गत धारा 302 भारतीय दण्ड संहिता, थाना कोतवाली नगर, अयोध्या;

10. मुकदमा अपराध संख्या 1684/ 1997 अन्तर्गत धारा 3(1) उ.प्र. गैंगस्टर अधिनियम, थाना कोतवाली नगर, अयोध्या;

11. मुकदमा अपराध संख्या 771/ 1996 अन्तर्गत धारा 392, 411 व 504 भारतीय दण्ड संहिता, थाना कोतवाली नगर, अयोध्या;

12. मुकदमा अपराध संख्या 981/ 1999, अन्तर्गत धारा 147, 148, 149, 120-बी व 302 भारतीय दण्ड संहिता, थाना कोतवाली नगर, अयोध्या;

13. मुकदमा अपराध संख्या 1150/ 1999, अन्तर्गत धारा 504 व 506 भारतीय दण्ड संहिता, थाना कोतवाली नगर, अयोध्या;

14. मुकदमा अपराध संख्या 1593/ 1999 अन्तर्गत धारा 3(1) उ.प्र. गैंगस्टर अधिनियम, थाना कोतवाली नगर, अयोध्या;

15. मुकदमा अपराध संख्या 824/ 1997 अन्तर्गत धारा ¾ गुंडा अधिनियम, थाना कोतवाली नगर, अयोध्या;

16. मुकदमा अपराध संख्या 2157/ 2001 अन्तर्गत धारा 143, 504, 427, 386 भारतीय दण्ड संहिता व धारा 3(1) उ.प्र. गैंगस्टर अधिनियम, थाना कोतवाली नगर, अयोध्या;

17. मुकदमा अपराध संख्या 2234/ 2001, अन्तर्गत धारा 353, 504 व 506 भारतीय दण्ड संहिता, थाना कोतवाली नगर, अयोध्या;

18. मुकदमा अपराध संख्या 814/ 2002 अन्तर्गत धारा 147, 323, 386 भारतीय दण्ड संहिता व धारा 3(1) उ.प्र. गैंगस्टर अधिनियम, थाना कोतवाली नगर, अयोध्या;

19. मुकदमा अपराध संख्या 1658/ 2002, अन्तर्गत धारा 386, 504 व 506 भारतीय दण्ड संहिता, थाना कोतवाली नगर, अयोध्या;

20. मुकदमा अपराध संख्या 2256/ 2002 अन्तर्गत धारा 323 व 506 भारतीय दण्ड संहिता, थाना कोतवाली नगर, अयोध्या;

21. आपराधिक मुकदमा संख्या 2724/ 2002 अन्तर्गत धारा ¾ गुण्डा अधिनियम, थाना कोतवाली नगर, अयोध्या;

22. मुकदमा अपराध संख्या 240/ 2005, अन्तर्गत धारा 298 नगर पालिका अधिनियम व धारा 341 व 506 भारतीय दण्ड संहिता, थाना कोतवाली नगर, अयोध्या;

23. मुकदमा अपराध संख्या 220/ 1994, अन्तर्गत धारा 147, 148, 149 व 307 भारतीय दण्ड संहिता, थाना कोतवाली नगर, अयोध्या;

24. मुकदमा अपराध संख्या 828/ 1997, अन्तर्गत धारा ¾ गुण्डा अधिनियम, थाना कोतवाली नगर, अयोध्या;

25. मुकदमा अपराध संख्या 417/ 1993, अन्तर्गत धारा 307 व 506 भारतीय दण्ड संहिता, थाना कोतवाली अयोध्या, अयोध्या;

26. मुकदमा अपराध संख्या 418/ 1993 अन्तर्गत धारा 147, 148, 149 व 307 भारतीय दण्ड संहिता, थाना कोतवाली अयोध्या, अयोध्या;

27. मुकदमा अपराध संख्या 419/ 1993 अन्तर्गत धारा 25 शस्त्र अधिनियम, थाना कोतवाली अयोध्या, अयोध्या;

28. मुकदमा अपराध संख्या 6/ 1997, अन्तर्गत धारा 147, 148, 149, 120-बी व 302 भारतीय दण्ड संहिता, थाना खंडासा, अयोध्या;

29. मुकदमा अपराध संख्या 9/ 1997, अन्तर्गत धारा 504 व 506 भारतीय दण्ड संहिता, थाना खंडासा, अयोध्या;

30. मुकदमा अपराध संख्या 19/ 2002, अन्तर्गत धारा 110-जी दण्ड प्रकिया संहिता, थाना पूराकलन्दर, अयोध्या;

31. मुकदमा अपराध संख्या 431/ 2001 अन्तर्गत धारा 3(1) उ.प्र. गैंगस्टर अधिनियम, थाना पूराकलंदर, अयोध्या;

32. मुकदमा अपराध संख्या 131/ 2005, अन्तर्गत धारा 147, 148, 308, 323, 504 व 506 भारतीय दण्ड संहिता व धारा 7 दण्ड विधि संशोधन अधिनियम, थाना पूराकलंदर, अयोध्या;

33. मुकदमा अपराध संख्या 105/ 1996 अन्तर्गत धारा 323, 504 व 506 थाना गोसाईंगंज, अयोध्या;

34. मुकदमा अपराध संख्या 387/ 1986, अन्तर्गत धारा 324, 323, 504 व 506 भारतीय दण्ड संहिता, थाना गोसाईंगंज, अयोध्या; और

35. मुकदमा अपराध संख्या 620/ 2005 अन्तर्गत धारा 147, 323, 504 व 506 भारतीय दण्ड संहिता, थाना गोसाईंगंज, अयोध्या।"

18. इसी तरह अन्य दोनों अभियुक्तगणों-अपीलकर्ताओं, फूल चन्द्र यादव और कृपा निधान तिवारी पर भी कुछ अन्य मुकदमे थे, जोकि निम्नानुसार पठित हैं:-

"1. मुकदमा अपराध संख्या 16/ 1991, अन्तर्गत धारा 323, 504 और 506 भारतीय दण्ड संहिता, थाना राम जन्म भूमि, अयोध्या;

2. 1. मुकदमा अपराध संख्या 20/ 1992, अन्तर्गत धारा 379, 427, 436, 454, 451, 504 व 186 भारतीय दण्ड संहिता, थाना राम जन्म भूमि, अयोध्या; तथा

3. मुकदमा अपराध संख्या 24/ 1992, अन्तर्गत धारा 420, 467, 468 और 471 भारतीय दण्ड संहिता, थाना रामजन्म भूमि, अयोध्या। तथा

1. मुकदमा अपराध संख्या 104/ 1992 अन्तर्गत धारा 323 भारतीय दण्ड संहिता व धारा 145 व 146 आर.ए. अधिनियम, थाना जी.आर.पी. फैजाबाद, अयोध्या।"

19. तकनीकी आधार उठाने के अतिरिक्त, कोई तर्क नहीं दिया गया है कि अभियुक्तगणों-अपीलकर्ताओं के विरुद्ध अन्तर्गत धारा 468, 471 और 420 भारतीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत अपराध आकर्षित नहीं होता है। अत: ये तकनीकी तर्क अस्वीकार किये जाने योग्य हैं।

20. मैंने उभयपक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा दी गई दलीलों पर विचार किया और साथ ही विद्वान विचारण न्यायालय के निर्णय एवं आदेश तथा अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों का अवलोकन किया।

21. अभियोजन साक्षी-1 महेंद्र कुमार अग्रवाल और अभियोजन साक्षी-2 राम बहादुर सिंह ने अभियुक्तगणों-अपीलकर्ताओं की कूटरचित अंकतालिका और प्रवेश प्रपत्र को प्रमाणित किया, जिसके आधार पर उन्होंने प्रवेश लिया था। उनके बयानों में ऐसा कुछ भी नहीं है जो यह सुझाव दे सके कि अभियुक्तगणों-अपीलकर्ताओं के विरुद्ध बयान देने में उनका कोई स्वार्थ साधना थी या वे झूठी गवाही दे रहे थे। अभियोजन साक्षी-1 महेंद्र कुमार अग्रवाल, जोकि महाविद्यालय में कार्यालय अधीक्षक के रूप में कार्यरत थे, ने विशेष रूप से बताया कि महाविद्यालय के सारणीकरण रजिस्टर और छात्रों द्वारा प्राप्त अंकों से, यह स्पष्ट था कि तीनों अभियुक्तगण-अपीलकर्ता क्रमशः विज्ञान स्नातक भाग- I, विज्ञान स्नातक भाग- II और विधि स्नातक भाग- I में अनुत्तीर्ण हो गए थे। हालाँकि, उन्होंने कूटरचित और मनगढ़ंत अंकतालिकाओं के आधार पर अगली कक्षा में प्रवेश ले लिया था। बचाव पक्ष द्वारा उक्त साक्षी के समक्ष कोई संकेत नहीं प्रस्तुत किया गया कि इन आरोपियों ने अगली कक्षा में

प्रवेश लेने के लिए ये अंकतालिका (कूटरचित वाली) प्रस्तुत नहीं की थीं। अभियोजन पक्ष के साक्षियों के साक्ष्यों का खंडन नहीं किया गया और, यह न्यायालय, उनके साक्ष्यों को अभियुक्तगणों-अपीलकर्ताओं के विरुद्ध आरोप प्रमाणित करने के लिए ठोस और विश्वसनीय, पाती है। जब अभियुक्तगणों-अपीलकर्ताओं ने परीक्षण के दौरान कागजातों की स्वीकार्यता के संबंध में कोई आपत्ति नहीं की और कागजातों को साक्षियों द्वारा प्रमाणित कर दिया गया, तो इस स्तर पर अपील में ऐसी आपत्ति करना उनके लिए उपलब्ध नहीं है।

22. तीनों साक्षियों की प्रतिपरीक्षा से ज्ञात होता है कि अभियुक्तगणों-अपीलकर्ताओं ने साक्षियों की प्रतिपरीक्षा में अपना पक्ष नहीं रखा।

<u>**निर्णय विधि:-**</u>

23. सर्वोच्च न्यायालय ने ***मुद्दसानी वेंकट नरसैय्या (मृत) कानूनी प्रतिनिधियों के माध्यम से बनाम मुद्दसानी सरोजना,*** (2016) 12 एससीसी 288 के प्रकरण में यह व्यवस्था दी कि जिरह तथ्य का प्रकरण है न कि प्रक्रिया का। प्रतिद्वंद्वी से जिरह करते समय अपना पक्ष रखा जाना चाहिए। निर्णय का पैराग्राफ 15 जो कि प्रासंगिक है, निम्नवत है:-

> *"**15.** इसके अलावा, विक्रय विलेख के निष्पादन के तथ्य के संबंध में वादी के साक्षियों से कोई प्रभावी प्रतिपरीक्षा नहीं की गयी, विक्रय विलेख के निष्पादन के तथ्य के संबंध में अभियोजन साक्षी 1 और अभियोजन साक्षी 2 से प्रतिपरीक्षा नहीं की गयी। प्रतिपरीक्षा तथ्य का प्रकरण है न कि प्रक्रिया का, जिसमें प्रतिद्वंद्वी से प्रतिपरीक्षा करते समय अपना पक्ष रखा जाना चाहिए। प्रतिपरीक्षा न करने का प्रभाव यह होता है कि साक्षी का बयान विवादग्रस्त नहीं हुआ। भोजू मंडल बनाम देबनाथ भगत [भोजू मंडल बनाम देबनाथ भगत, एआईआर 1963 एससी 1906] में इस न्यायालय द्वारा साक्षियों से प्रतिपरीक्षा न करने के प्रभाव पर विचार किया गया। इस न्यायालय ने इस आधार पर एक दलील को खारिज कर दिया कि इसे पूर्व में न तो साक्षियों के समक्ष प्रस्तुत किया गया और न ही अधीनस्थ न्यायालयों के समक्ष सुझाव दिया गया। पक्षकार को अपना पक्ष साक्षी के समक्ष रखना होगा। यदि ऐसे कोई प्रश्न नहीं पूछे जाते हैं तो न्यायालय यह उपधारणा करेगी कि साक्षी का कथन स्वीकार कर लिया गया है जैसा कि चूनी लाल द्वारका नाथ बनाम हार्टफोर्ड फायर इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड [चूनी लाल द्वारका नाथ बनाम हार्टफोर्ड फायर*

इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, 1957 एससीसी ऑनलाइन पी एंड एच 177: एआईआर 1958 पी एंड एच 440] में व्यवस्था दी गयी है।"

24. सर्वोच्च न्यायालय ने ***आर.वी.ई. वेंकटचला गौंडर बनाम अरुल्मिगु विश्वेसरस्वामी और वी.पी. टेम्पल व एक अन्य,*** (2003) 8 एससीसी 752: एआईआर 2003 एससी 4548 के प्रकरण में पैराग्राफ 20 पर यह व्यवस्था दी कि सामान्यतया, साक्ष्य की ग्राह्यता पर आपत्ति तब ही की जानी चाहिए जब इसे प्रस्तुत किया जा रहा हो और न कि उसके उपरान्त। एक बार जब दस्तावेज़ को साक्ष्य के रूप में स्वीकार कर लिया गया है और एक प्रदर्श के रूप में चिह्नित किया गया तो यह आपत्ति, कि इसे साक्ष्य के रूप में स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए था या दस्तावेज़ को प्रमाणित करने के लिए अपनाया गया तरीका अनियमित है, दस्तावेज़ को एक प्रदर्श के रुप में चिह्नित करने के उपरान्त किसी भी चरण में उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ 20 निम्नवत है:-

*"**20.** प्रत्यर्थी-प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने अपनी तर्क के समर्थन में रोमन कैथोलिक मिशन बनाम मद्रास राज्य [एआईआर 1966 एससी 1457] पर विश्वास व्यक्त किया कि एक दस्तावेज जोकि साक्ष्य में स्वीकार्य नहीं है, हालांकि अभिलेख पर लाया जा चुका है, उसे विचारण से बाहर रखा जाना चाहिए। उपर्युक्त प्रकरण में विधि की प्रस्थापना से हमें कोई आपत्ति नहीं है । हालाँकि, वर्तमान मामला एक ऐसा प्रकरण है जिसमें आवश्यकता है कि विधि की सही स्थिति स्पष्ट की जाये। सामान्यतः, एक साक्ष्य की स्वीकार्यता पर आपत्ति तब ही करनी चाहिए जब इसे प्रस्तुत किया जाए और उपरान्त में नहीं। कागजातों की साक्ष्य में स्वीकार्यता की आपत्तियों को दो वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है: (i) एक आपत्ति कि जिस दस्तावेज़ को प्रमाणित किया जाना है वह स्वयं साक्ष्य में अस्वीकार्य है; और (ii) जहां आपत्ति दस्तावेज़ की साक्ष्य में स्वीकार्यता पर विवाद नहीं करती है, बल्कि इसे अनियमित या अपर्याप्त होने का आरोप लगाते हुए साक्ष्य के तरीके की ओर निर्देशित होती है। प्रथम प्रकरण में, मात्र इसलिए कि किसी दस्तावेज़ को "एक प्रदर्श" के रूप में चिह्नित किया गया है, इसकी स्वीकार्यता पर आपत्ति वर्जित नहीं है और इसे उत्तरवर्ती चरण में या अपील या पुनरीक्षण में भी उठाया जा सकता है। उत्तरवर्ती प्रकरण में, जब साक्ष्य प्रस्तुत किया जाए तभी आपत्ति*

की जानी चाहिए और एक बार दस्तावेज़ को साक्ष्य में स्वीकार कर लिया गया है और एक प्रदर्श के रूप में चिह्नित किया गया है, तो आपत्ति कि इसे साक्ष्य में स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए था या दस्तावेज़ को प्रमाणित करने के लिए अपनाया गया तरीका अनियमित था, को दस्तावेज़ को प्रदर्श के रूप में चिह्नित करने के उपरान्त किसी भी स्तर पर होने की अनुमति नहीं दी जा सकती। उत्तरवर्ती प्रस्ताव निष्पक्ष व्यवहार का नियम है। महत्वपूर्ण परीक्षण यह है कि क्या कोई आपत्ति, यदि उचित समय पर की जाती, तो साक्ष्य प्रस्तुत करने वाले पक्ष को दोष को ठीक करने और साक्ष्य के ऐसे तरीके का सहारा लेने में सक्षम बनाती है जो नियमित हो। आपत्ति करने में चूक घातक हो जाती है क्योंकि उसकी विफलता से आपत्ति करने का अधिकारी पक्ष साक्ष्य प्रस्तुत करने वाले पक्ष को इस धारणा पर कार्य करने की अनुमति देता है कि विपरीत पक्ष साक्ष्य के तरीके के बारे में गंभीर नहीं है। दूसरी ओर, एक त्वरित आपत्ति दो कारणों से साक्ष्य प्रस्तुत करने वाले पक्ष पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालती है: सबसे प्रथम, यह न्यायालय को अपना विवेक इस्तेमाल करने और स्वीकार्यता के प्रश्न पर उसी समय अपना निर्णय सुनाने में सक्षम बनाता है; और दूसरे, साक्ष्य प्रस्तुत करने वाले पक्ष के द्वारा साक्ष्य को प्रमाणित करने के तरीके के बारे में न्यायालय का साक्ष्य प्रस्तुत करने वाले पक्ष के विरुद्ध निष्कर्ष दिये जाने की स्थिति में, साक्ष्य नेतृत्वकर्ता पक्ष के लिए नियमित तरीके से या साक्ष्य के तरीके की अनुमति देने हेतु न्यायालय की कृपा याचना का अवसर उपलब्ध हो जाता है और इस प्रकार विपक्षी द्वारा उठायी गयी आपत्ति दूर हो जाती है। ऐसी प्रथा और प्रक्रिया दोनों पक्षों के लिए उचित है। यहां ऊपर उल्लिखित दो प्रकार की आपत्तियों में से, उत्तरवर्ती प्रकरण में, त्वरित और समय पर आपत्ति उठाने में विफलता किसी दस्तावेज़ के औपचारिक प्रमाण पर जोर देने की आवश्यकता से छूट के समान है, जिस दस्तावेज़ को स्वयं साक्ष्य में स्वीकार्य प्रमाणित करने की मांग की गई है। प्रथम प्रकरण में, मौन स्वीकृति से उच्च न्यायालय में आपत्ति उठाने में कोई अवरोध नहीं होगा।'

25. इसी प्रकार, सर्वोच्च न्यायालय ने ***पी.सी. पुरूषोतम रेडियार बनाम. वी.एस. पेरुमल*** (1972) 1 एससीसी 9: एआईआर 1972 एससी 608 के प्रकरण में व्यवस्था दी है कि यदि दस्तावेज़ों को बिना किसी आपत्ति के चिह्नित किया जाता है, तो दूसरे पक्ष को उनकी स्वीकार्यता पर आपत्ति करने का अधिकार नहीं होगा। उक्त निर्णय के पैराग्राफ 18 और 19 यहां नीचे उद्धत हैं: -

> *"**18.** अब उन बैठकों के संबंध में किए गए व्यय के प्रश्न पर आते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है अपीलकर्ता को इसे प्रमाणित करना होगा। प्रतिवादी के अनुसार उसने उसके चुनाव संबंध में कोई हिसाब किताब नहीं रखा। उसके चुनाव पर होने वाला व्यय खास तौर से प्रतिवादी की जानकारी में है। उसने उस संबंध में कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया। उसने उन बैठकों के आयोजन का पूर्णतया खण्डन किया। पूर्व उल्लेखित कारणों से खण्डन को स्वीकार नहीं किया जा सकता। इसलिए अब हमें यह ज्ञात करना होगा कि उन बैठकों के संबंध में कितना व्यय किया जाना उचित होगा। यहां तक कि प्रतिवादी के अनुसार उसके द्वारा आयोजित सात बैठकों में, उसने 225 रुपये से अधिक का व्यय किया। इसका तात्पर्य यह है कि उसने औसतन प्रति बैठक में करीब 32 रुपये का व्यय किया। यह स्पष्टतः कमतर अनुमान है। परन्तु अगर हम इसे सही भी मानें, तो पूर्व में बताई गई चार बैठकों के लिए उसने 128 रुपये का व्यय किया होगा। यदि, पूर्व में उल्लेखित, इस व्यय को रुपये 1886/9 पैसे की राशि में जोड़ा जाता है तो किया गया कुल व्यय, 2000 रुपये की निर्धारित सीमा से अधिक है। इसलिए प्रतिवादी धारा 123(6) में उल्लिखित भ्रष्ट आचरण का स्पष्ट रूप से दोषी है।*
>
> ***19.** इस प्रकरण को त्यागने से पूर्व प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता श्री राममूर्ति द्वारा उठाए गए तर्कों में से एक का उल्लेख करना आवश्यक है। उन्होंने तर्क प्रस्तुत किया कि पूर्व उल्लिखित पुलिस रिपोर्टें साक्ष्य के तौर पर अस्वीकार्य हैं क्योंकि उन बैठकों को आच्छादित करने वाले हेड कांस्टेबलों से प्रकरण में पूछताछ नहीं की गई है। उन रिपोर्टों को बिना किसी आपत्ति के चिन्हित कर लिया गया। इसलिए अब प्रतिवादी उनकी स्वीकार्यता पर आपत्ति करने के लिए स्वतंत्र नहीं है, भगत राम बनाम खाटू राम [एआईआर*

1929 पीसी 110: 116 आईसी 394] का अवलोकन करें।"

26. यह न्यायालय ने भी ***श्रीमती सुधा अग्रवाल बनाम षष्ठम अपर जनपद न्यायाधीश, गाजियाबाद,*** 2006 (3) एडीजे 429 के प्रकरण में यह व्यवस्था दी कि यदि कोई पक्ष द्वितीयक साक्ष्य की स्वीकार्यता के संबंध में आपत्ति उठाना चाहता है, तो ऐसी आपत्ति सकारात्मक रूप से विचारण के स्तर पर उठाई जानी चाहिए ताकि दूसरे पक्ष को ऐसी न्यूनता दूर करने का अवसर प्राप्त हो सके। एक बार जब दस्तावेज़ को साक्ष्य के रूप में स्वीकार कर लिया गया है और एक प्रदर्श के रूप में चिह्नित किया जा चुका है, तो यह आपत्ति कि इसे साक्ष्य के रूप में स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए था या दस्तावेज़ को प्रमाणित करने के लिए अपनाया गया तरीका अनियमित है, को दस्तावेज़ को एक प्रदर्श के रूप में चिह्नित करने के उपरान्त किसी भी चरण में उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

27. यह सुस्थापित विधि है कि अन्वेषण अधिकारी का परीक्षण न कराया जाना अभियोजन पक्ष हेतु घातक नहीं है यदि अभियोजन का पक्ष अन्यथा साक्ष्य द्वारा प्रमाणित होता है, और साक्ष्य प्राथमिकी में दर्ज प्रकरण के अनुरूप है। मात्र अन्वेषण अधिकारी का परीक्षण न कराये जाने से, अभियोजन का प्रकरण, यदि यह अन्यथा अभिलेख पर लाए गए अन्य साक्ष्यों से प्रमाणित होता है, विफल नहीं होना चाहिए।

28. सर्वोच्च न्यायालय ने ***बेहारी प्रसाद और अन्य बनाम बिहार राज्य*** (1996) एससीसी (सीआरआई) 271 के प्रकरण में पैराग्राफ 21 और 23 में निम्नानुसार व्यवस्था दी: -

"21. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा हमें वर्णित किए गये प्रकरण के तथ्यों और परिस्थितियों तथा विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश और उच्च न्यायालय के निर्णयों एवं प्रकरण में प्रस्तुत किए गए साक्ष्यों पर विचार करने के उपरान्त और पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत तर्कों पर विचार करने के उपरान्त, हमें ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रकरण में प्रत्यक्षदर्शियों द्वारा अभियोजन का पक्ष साबित कर दिया गया है। मृतक द्वारा एक दुकान कक्ष हेतु इस न्यायालय तक एक लंबी लड़ाई लड़ी गई थी। अन्ततः न्यायालय के माध्यम से दुकान के कब्जे की हस्तांतरण घटना की तिथि पर तय की गई थी। इसलिए, यह काफी स्वाभाविक था कि उक्त प्रत्यक्षदर्शी, मृतक के करीबी रिश्तेदार होने के नाते, घटना के समय और स्थान पर मौजूद थे। हमारे मत में, राज्य के विद्वान अधिवक्ता का तर्क भी न्यायोचित है कि प्रकरण के तथ्यों के अनुसार बुजुर्ग रिश्तेदारों के साथ अभियुक्त

की 14 वर्षीय पुत्री की उपस्थिति भी असामान्य नहीं थी। अभियुक्तगण 2 से 4 और मृतक-अभियुक्त रामेश्वर, मृतक से संबंधित होने के बावजूद, मृतक के प्रति बुरी भावना और द्वेष रखते थे। वास्तव में, मृतक द्वारा रामेश्वर के विरुद्ध बेदखली का मुकदमा भी दायर कर रखा था। इसलिए, यह काफी संभव था कि उन्होंने श्योजी प्रसाद के विरुद्ध बेदखली डिक्री के निष्पादन को विफल करने में श्योजी प्रसाद का पक्ष लिया। हालाँकि, अभियुक्तगणों ने कुछ समय के लिए नायब नाजिर को प्रभावित करके न्यायालय के माध्यम से डिक्री के निष्पादन को विफल करने में कामयाब रहे, ताकि प्रासंगिक तथ्यों का पता लगाए बिना ऐसे किरायेदार के बयान के अंकित मूल्य पर किसी तीसरे पक्ष के पक्ष में स्वतंत्र किरायेदारी के प्रकरण को स्वीकार किया जा सके और इस तरह डिक्री को क्रियान्वित किए बिना उसे वापस भेज दिया जाए, अभियुक्तों को पूर्णतया ज्ञात था कि इस न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई बेदखली की डिक्री उनके समक्ष थी। इसलिए, वे काफी उत्तेजित थे और यह बिल्कुल भी असंभव नहीं है कि वे डिक्री-धारक मृतक राम बाबू के विरुद्ध प्रतिशोध की भावना से भर गए।

23. हालाँकि, हमें ऐसा प्रतीत होता है कि संपूर्ण केस डायरी को विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश द्वारा प्रदर्शित करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए थी। प्रकरण के तथ्यों से हमें ऐसा प्रतीत होता है कि प्रत्यक्षदर्शियों के साक्ष्यों से हत्या करने में अभियुक्तों की संलिप्तता स्पष्ट रूप से स्थापित हुयी है। ऐसे साक्ष्य प्राथमिकी में वर्णित किए गए प्रकरण और चिकित्सा साक्ष्य के भी अनुरूप हैं। अतः अन्वेषण अधिकारी के परीक्षण न कराये जाने से अभियोजन का प्रकरण निष्फल नहीं हो जाना चाहिए। हम यहां यह भी संकेत देना चाहते हैं कि यह तर्क देना उचित नहीं होगा कि यदि किसी प्रकरण में अन्वेषण अधिकारी को परीक्षित नहीं कराया जाता है, तो ऐसे प्रकरण को इस आधार पर निष्फल हो जाना चाहिए कि अभियुक्त अभियोजन पक्ष के साक्षियों से प्रभावी ढंग से जिरह करने और पुलिस के समक्ष उनके बयानों में विरोधाभास सामने लाने के

अवसर से वंचित रह गये। किसी अभियुक्त द्वारा पूर्वाग्रह झेले जाने वाला प्रकरण तथ्यों पर निर्भर होना चाहिए और कोई सार्वभौमिक बंधन विधि नहीं निर्धारित जानी चाहिए कि अन्वेषण अधिकारी का परीक्षण न कराये जाने से आपराधिक विचारण स्वयमेव दूषित हो जाता है। अतः, यह अपील विफल होती है एवं खारिज की जाती है। अपीलकर्ता जोकि जमानत पर रिहा हैं, उन्हें सजा भुगतने हेतु अभिरक्षा में लिया जाए।"

निष्कर्ष:-

29. भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 65 के अनुसार एक दस्तावेज़ को ऐसे व्यक्ति द्वारा प्रमाणित किया जाना चाहिए, जो उसके लेखक की लिखावट से परिचित हो। अभियोजन साक्षी 1 महेंद्र कुमार अग्रवाल, अभियोजन साक्षी-2 राम बहादुर सिंह और अभियोजन साक्षी-3 श्रीकांत पाठक ने कागजातों अर्थात् कागज संख्या 4ए/6 और 6ए/1, 6ए/3 और 6ए/5 और 6ए/6 और 6ए/7 को प्रमाणित किया है कि वे तत्कालीन प्रधानाचार्य यदुवंश राम त्रिपाठी और उपनिरीक्षक राम बहादुर सिंह की लिखावट और हस्ताक्षर से परिचित थे।

30. इसके दृष्टिगत्, मैं अभियुक्तगणों-अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता के इस तर्क में कोई बल नहीं पाता हूँ कि दस्तावेज़ भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 65 के प्रावधानों के अनुसार प्रमाणित नहीं किए गए थे।

31. इस स्तर पर उठायी गयी तकनीकी आपत्तियों की कोई प्रासंगिकता नहीं है। अभियुक्तगणों-अपीलकर्ताओं ने अपनी अंकतालिका में कूटरचना की और यह जानते हुए भी कि यह कूटरचित है, अगली कक्षा में प्रवेश ले लिया और इस प्रकार, उन्होंने भारतीय दण्ड संहिता की धारा 420, 468 और 471 के अन्तर्गत अपराध कारित किया है। प्रवेश सुरक्षित करने के स्पष्ट उद्देश्यों से अंकतालिका का उपयोग करने हेतु कूटरचना की गई थी। अभियुक्तगण-अपीलकर्ता यह कहने की स्थिति में नहीं हैं कि वे सभी तीनों अभियुक्त-अपीलकर्ता उभय-निष्ठ प्रथम सूचना रिपोर्ट, एक आरोप पत्र और समान आरोप और एक विचारण से किसी भी प्रकार क्षतिग्रस्त थे। आरोप एक जैसे हैं। साक्षी उभयनिष्ठ थे, जिन्होंने दस्तावेज़ों को प्रमाणित किया था और आरोप के समर्थन में गवाही दी थी। इसलिए, मेरा सुविचारित मत है कि इस संबंध में तकनीकी तर्क में कोई सार नहीं है और इसे खारिज किया जाता है।

32. अनिवार्य रूप से, भारतीय दण्ड संहिता की धारा 468 के अन्तर्गत, धोखाधड़ी के प्रयोजनों हेतु कूटरचित दस्तावेज़ का उपयोग करने के इरादे से कूटरचना करना, अपराध है, जबकि धारा 471 भारतीय दण्ड संहिता के आवश्यक तत्व धोखाधड़ी या बेईमानी से किसी भी दस्तावेज़ या इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख, जिसके बारे में अभियुक्त जानता है या उसके कूटरचित होने का विश्वास करने का कारण हो, को वास्तविक के रूप में उपयोग करना है।

33. अभियोजन पक्ष के साक्ष्यों से, अभियुक्तगणों-अपीलकर्ताओं के विरुद्ध भारतीय दण्ड संहिता की धारा 420, 468 और 471 के अन्तर्गत अपराध कारित किया जाना पूर्णतया पाया जाता है और प्रमाणित होता है और, विद्वान

विचारण न्यायालय ने उपरोक्त अपराधों हेतु अभियुक्तगणों-अपीलकर्ताओं को उचित रुप से दोषसिद्ध ठहराया और सजा सुनायी है।

34. इसके दृष्टिगत्, मैं इन अपीलों में कोई सार नहीं पाता हूँ, जोकि एतद्द्वारा निरस्त किये जाते है। अभियुक्तगण-अपीलकर्ता जमानत पर हैं। उनके जमानत बंधपत्र रद्द किये जाते हैं और प्रतिभूओं को मुक्त किया जाता है। विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा सुनायी गई सजा को भुगतने हेतु उन्हें अविलम्ब अभिरक्षा में ले लिया जाए। विचारण न्यायालय का अभिलेख अविलम्ब वापस भेजा जाए।

(2023) 3 ILRA 718

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 14.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद,

आपराधिक अपील संख्या 2070/2021

नजमी बेगम ...अपीलार्थी

बनाम

यूपी राज्य एवं अन्य। ...प्रतिवादीगण

अधिवक्ता अपीलकर्ता: नदीम मुर्तजा, अंजनी कुमार मिश्रा

अधिवक्ता प्रतिवादी: शासकीय अधिवक्ता

अपराधिक कानून - उत्तर प्रदेश गिरोहबन्द और समाज विरोधी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम,. 1986 - धाराएं 2/3, 14 (1), 15(1), 15 (2), 16 (1), 17 - भारतीय दंड संहिता, 1860 - अध्याय 16, 17 और 22 - अपीलकर्ता के पति और 2 अन्य के विरुद्ध एफआईआर दिनांक 01-01-2021 दर्ज की गई - आरोप - आरोपी समाज विरोधी क्रियाकलाप में सम्मिलित हैं, डर के चलते कोई भी उनके विरुद्ध गवाह नहीं बन पाया - अपीलकर्ता और उसके पति की अचल संपत्तियां और वाहन जब्त कर लिए गए - प्रतिनिधित्व दायर किए गए - निरस्त - अपीलकर्ता का तर्क - जिला मजिस्ट्रेट ने गलत तरीके से यह मानते हुए संपत्ति को जब्त किया कि ये संपत्तियां समाज विरोधी क्रियाकलाप में सम्मिलित होकर अर्जित की गई हैं - अपीलकर्ता का नाम एफआईआर में नहीं है, उसे आरोपी के पति की पत्नी होने के नाते फंसाया गया है, जिनकी संपत्ति पहले ही विचारणीय न्यायालय द्वारा दोषमुक्त किया जा चुका है- न तो गैंगस्टर है और न ही उसने इन संपत्तियों को समाज विरोधी क्रियाकलाप में शामिल होकर कमाया है - आयोजित, आपेक्षित आदेश निरस्त किया गया - जिला मजिस्ट्रेट को अपीलकर्ता की संपत्तियों को मुक्त करने का निर्देश दिया गया। (पैराग्राफ 4, 5, 7, 8, 9, 11, 28, 29)

आयोजित: यह स्पष्ट है कि संपत्ति को जब्ती का विषय बनाना चाहिए कि वह गैंगस्टर अधिनियम के तहत एक अपराध द्वारा अधिग्रहित की गई हो। जिला मजिस्ट्रेट को इस बिंदु पर अपनी संतोषजनक रिकॉर्डिंग करनी होगी और इसे किसी भी अपील में चुनौती नहीं दी जा सकती। केवल जिला मजिस्ट्रेट के सामने धारा 15 के तहत एक प्रतिनिधित्व दिया जाता है और यदि वह ऐसे प्रतिनिधित्व पर संपत्ति को मुक्त करने से इनकार करता है, तो तब प्रभावित व्यक्ति को उस न्यायालय का संदर्भ देना होगा जिसमें अपराध की सुनवाई करने का अधिकार है। न्यायालय, धारा 15 (2) के तहत देखेगी कि क्या संपत्ति गैंगस्टर द्वारा अपराध के परिणामस्वरूप

अधिग्रहित की गई थी और उसे धारा 16 के तहत अपनी जांच के आधार पर अपनी स्वयं की निष्कर्ष अभिलिखित करनी होगी। यदि न्यायालय यह पाती है कि संपत्ति गैंगस्टर द्वारा अधिग्रहित नहीं की गई, तो अदालत संपत्ति को मुक्त करने का आदेश पारित करेगी। इसलिए, धारा 16 के तहत जांच, धारा 14, 15 और 17 के प्रावधानों का पालन भी अधिनियम के अनुसार नहीं किया गया और इसे यहां निरस्त किया जाता है। (पैराग्राफ - 19, 26, 27)

अपील स्वीकृत। (E-13)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. श्रीमती मैना देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2013(83) ACC 902
2. श्रीमती शांति देवी पत्नी श्री राम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2007(2) ALJ 483 (इलाहाबाद)
3. राजबीर सिंह त्यागी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 2018 SCC ऑनलाइन All 5986

<u>माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद</u>

1. पक्षकारों के मध्य तर्कों का आदान-प्रदान पहले ही हो चुका है एवं यह अभिलेख में हैं। वाद अंतिम सुनवाई हेतु पूर्णतः तैयार है।

2. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री नदीम मुर्तजा एवं राज्य के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री वली नवाज खान एवं सुश्री स्निधा सिंह तथा श्री मनोज सिंह को सुना तथा अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का परिशीलन किया।

3. विचारण न्यायालय के अभिलेख का परिशीलन किया।

4. वर्तमान अपील, अपीलकर्ता, अर्थात् नजमी बेगम द्वारा उ०प्र० गिरोहबन्द और समाज विरोधी क्रिया कलाप निवारण (गतिविधियों का निवारण) अधिनियम, 1986 (इसके पश्चात ' गिरोहबन्द अधिनियम' के रूप में संदर्भित) की धारा 18 के अंतर्गत विशेष न्यायाधीश / गिरोहबन्द अधिनियम/अपर सत्र न्यायाधीश न्यायालय संख्या 5, सीतापुर द्वारा मुकदमा अपराध संख्या 3/2021 अंतर्गत गिरोहबंद अधिनियम की धारा 2/3 थाना कोतवाली, जिला सीतापुर से उद्भूत आपराधिक विविध वाद संख्या 122/2021, नजमी बेगम बनाम राज्य में पारित निर्णय एवं आदेश दिनांक 30.10.2021 के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है, जिसके अंतर्गत विद्वान विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ता की ओर से गिरोहबन्द अधिनियम की धारा 15(1) के अंतर्गत प्रस्तुत प्रार्थना पत्र को खारिज कर दिया है तथा जिला मजिस्ट्रेट, सीतापुर द्वारा पारित आदेश दिनांक 22.02.2021 की पुष्टि की है जिसमें अपीलकर्ता की संपत्ति की कुर्की का निर्देश दिया गया है।

5. वाद के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि प्रारंभ में श्री तेज प्रकाश सिंह, थाना प्रभारी, थाना कोतवाली, जिला सीतापुर द्वारा दिनांक 01-01-2021 को अपीलकर्ता के पति एवं 2 अन्य के विरुद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई गई , जो मुकदमा अपराध संख्या 0003/2021 है जिसमें यह आरोप लगाया गया कि अभियुक्तगण असामाजिक गतिविधियों में शामिल हैं तथा मुहल्ले में उनके द्वारा पैदा किए गए डर के कारण किसी ने भी उनके विरुद्ध साक्ष्य प्रस्तुत करने की हिम्मत नहीं की है। वे भारतीय दंड संहिता के अध्याय 16, 17 तथा 22 के अंतर्गत अवैध गतिविधियों में शामिल हैं।

6. विद्वान अधिवक्ता श्री नदीम मुर्तजा का कहना है कि उत्तर प्रदेश गिरोहबन्द और समाज विरोधी क्रियाकलाप निवारण (गतिविधियों का निवारण) अधिनियम की धारा 2/3 के अंतर्गत, वाद अपराध संख्या 0003/2021 में अपीलकर्ता के पति के सबंध में, थाना कोतवाली, जिला सीतापुर में दर्ज, अपीलकर्ता के पति एवं सह-अभियुक्त अहमद हुसैन उर्फ छन्नू ने प्रथम सूचना रिपोर्ट को रद्द करने हेतु माननीय न्यायालय का दरवाजा खटखटाया तथा इस माननीय न्यायालय ने विविध बेंच संख्या 410/2021 में आदेश दिनांक 08-01-2021 द्वारा अपीलकर्ता के पति एवं सह-अभियुक्त अहमद हुसैन उर्फ छन्नू की गिरफ्तारी पर रोक लगा दी।

7. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि पुलिस थाना कोतवाली, जिला लखनऊ में दर्ज मुकदमा अपराध संख्या 003/2021 की प्रथम सूचना रिपोर्ट अनुक्रम में आगे कार्यवाही करते हुए, प्रतिवादी संख्या 2 ने उत्तर प्रदेश गिरोहबन्द और समाज विरोधी क्रिया कलाप निवारण (गतिविधियों का निवारण) अधिनियम, 1986 की धारा 14(1) के अंतर्गत अपनी शक्तियों का प्रयोग किया एवं अपीलकर्ता एवं उसके पति की अचल संपत्तियों को कुर्क करने का आदेश दिनांक 02.01.2021 को पारित किया। इसके अतिरिक्त, दिनांक 02.01.2021 को प्रतिवादी संख्या- 2 द्वारा एक अन्य आदेश पारित किया गया, जिसके अंतर्गत अपीलकर्ता एवं उसके पति के ऑटोमोबाइल वाहनों को उत्तर प्रदेश गिरोहबन्द और समाज विरोधी क्रिया कलाप निवारण (गतिविधियों का निवारण) अधिनियम, 1986 की धारा 14(1) के अंतर्गत कुर्क किया गया।

8. प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा पारित उपरोक्त कुर्की आदेश दिनांक 02.01.2021 से व्यथित होने के कारण, गिरोहबन्द अधिनियम की धारा 15 (1) के अंतर्गत प्रतिवादी संख्या 2 के समक्ष दिनांक 03.02.2021 एवं 05.02.2021 के अभ्यावेदन प्रस्तुत किए गए थे, जिसमें अपीलकर्ता की संपत्तियों को कुर्की से मुक्त करने की मांग की गई थी। यद्यपि, उपरोक्त अभ्यावेदन को प्रतिवादी संख्या 2 के एक सामान्य आदेश दिनांक 22.02.2021 द्वारा खारिज कर दिया गया था। उपरोक्त आदेश दिनांक 22.02.2021 को पारित करते हुए प्रतिवादी संख्या 2 ने उन संपत्तियों के संबंध में मामले को उत्तर प्रदेश गिरोहबन्द और समाज विरोधी क्रिया कलाप निवारण (गतिविधियों का निवारण) अधिनियम, 1986 की धारा 16 (1) के अंतर्गत विद्वान गिरोहबन्द न्यायालय के समक्ष भेज दिया, जो उनके द्वारा निर्मुक्त नहीं की गई थीं; तथा इसके पश्चात विद्वान गिरोहबन्द न्यायालय ने गिरोहबन्द अधिनियम की धारा 17 के अंतर्गत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए दिनांक 30.10.2021 को प्रश्नगत आदेश पारित किया।

9. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे बताया कि विशेष न्यायाधीश गिरोहबन्द अधिनियम/अपर सत्र न्यायाधीश न्यायालय संख्या- 5, सीतापुर के विद्वान न्यायालय ने उसी आपराधिक वाद अर्थात पुलिस थाना कोतवाली, जिला सीतापुर में दर्ज प्र०सू०रि० मुकदमा अपराध संख्या 0003/2021 में आगे कार्यवाही करते हुए अपने आदेश दिनांक 27/08/2021 द्वारा मुजीब अहमद (अपीलकर्ता के पति) की संपत्तियों को निर्मुक्त किया जो प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा उत्तर प्रदेश गिरोहबन्द और समाज विरोधी क्रिया कलाप निवारण (गतिविधियों का निवारण) अधिनियम, 1986 की धारा 14 (1) के अंतर्गत कुर्क की गई थीं। आगे बताया गया कि अपीलकर्ता का पति

(मुजीब अहमद) उपरोक्त प्र०सू०रि० में अभियुक्त है किंतु अपीलकर्ता उपरोक्त प्र०सू०रि० में अभियुक्त नहीं है।

10. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे बताया कि राज्य ने विद्वान विशेष न्यायाधीश गिरोहबन्द अधिनियम/अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या- 5, सीतापुर द्वारा आपराधिक विविध वाद संख्या 121/2021, मुजीब अहमद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, धारा 16(2) उत्तर प्रदेश गिरोहबन्द और समाज विरोधी क्रिया कलाप निवारण (गतिविधियों का निवारण) अधिनियम, 2016 थाना कोतवाली नगर, जिला सीतापुर, में पारित निर्णय एवं आदेश दिनांक 27.08.2021, जिसके द्वारा जब्त की गई संपत्ति को अभियुक्त के पति मुजीब अहमद के पक्ष में निर्मुक्त किया गया, के विरुद्ध शासकीय अपील संख्या- 1000112/ 2021 द्वारा दं०प्र०सं० की धारा 378(3) के अंतर्गत अपील प्रस्तुत की थी। यद्यपि, शासकीय अपील संख्या 1000112/ 2021 में अपील की अनुमति हेतु प्रार्थना पत्र को खारिज कर दिया गया था तथा अपील को आदेश दिनांक 14.12.2022 द्वारा प्रवेश के चरण में ही खारिज कर दिया गया।

11. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि जिला मजिस्ट्रेट ने इस गलत उपधारणा पर अपीलकर्ता की संपत्ति तथा वाहन को अनुचित रीति से कुर्क किया है कि उक्त संपत्ति अपीलकर्ता द्वारा असामाजिक गतिविधियों में शामिल आय से अर्जित की गई है, जबकि प्र०सू०रि० में अपीलकर्ता का नाम नहीं है। उसे मात्र अभियुक्त मुजीब अहमद की पत्नी होने के कारण वर्तमान वाद में फंसाया गया है जिसकी संपत्ति विचारण न्यायालय द्वारा पूर्व में ही निर्मुक्त की जा चुकी है। अपीलकर्ता न तो गिरोहबंद है और न ही उसने इन संपत्तियों को असामाजिक गतिविधियों में शामिल हो कर अर्जित किया है। आगे यह तर्क दिया गया है कि विवाद में कुछ संपत्ति तथा वाहन अपीलकर्ता के नाम पर नहीं हैं, किंतु जिला मजिस्ट्रेट द्वारा अपने आदेश दिनांक 02-01-2021 में यह माना है कि यह उसके द्वारा असामाजिक गतिविधियों में शामिल होने से अर्जित किया गया है।

12. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि विद्वान विचारण न्यायालय ने प्रश्नगत आदेश पारित करते समय, प्रार्थना पत्र की सामग्री एवं उक्त प्रार्थना पत्र के साथ संलग्न दस्तावेजों को ठीक से अध्ययन किए बिना तथा अपीलकर्ता की ओर से प्रस्तुत किए गए दस्तावेजी साक्ष्य का अध्ययन किए बिना, उक्त प्रार्थना पत्र को यह मानकर त्रुटिपूर्ण रीति से खारिज कर दिया है कि प्रश्नगत संपत्ति असामाजिक गतिविधियों में लिप्त होने वाली आय से अर्जित की गई है, तथा गलत निर्वचन किया कि अपीलकर्ता ने यह साबित करने हेतु कोई दस्तावेज दाखिल नहीं किया है कि उक्त प्रश्नगत संपत्ति असामाजिक गतिविधियों में लिप्त होने वाली आय से अर्जित नहीं की गई है।

13. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि विद्वान विचारण न्यायालय ने विवादित संपत्ति की निर्मुक्ति हेतु अपीलकर्ता के प्रार्थना पत्र को खारिज करते हुए विधि में त्रुटि की थी। विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि अपीलकर्ता ने प्रार्थना पत्र में संपत्ति का पूर्ण विवरण दिया था, उसी संदर्भ को निम्नवत पुन: प्रस्तुत किया गया है:-

I. अपीलकर्ता द्वारा दिनांक 06.03.2009 को भूखंड संख्या- 263, ग्राम सराईभाट तहसील सीतापुर, क्षेत्रफल - 0.336 हेक्टेयर, पंजीकृत विक्रय विलेख द्वारा रुपये 1,25,000 में ऋचा मंगलानी से खरीदी गई थी। यह इंगित किया गया है कि भूखंड संख्या 263 ग्राम सरायभाट, तहसील सीतापुर, में अपीलकर्ता ने पंजीकृत विक्रय विलेख दिनांक 13.07.2011 द्वारा कुछ भाग को अपनी भाभी अर्थात् श्रीमती रिजवाना के पक्ष में स्थानांतरित कर दिया है, अपीलकर्ता ने वर्तमान अपील द्वारा मांग की है भूखंड संख्या 263 ग्राम सरायभाट, तहसील सीतापुर, को मात्र उस सीमा तक, जहां तक उसका स्वामित्व है, निर्मुक्त किया जाए।

II. अपीलकर्ता द्वारा दिनांक 06.03.2009 को भूखंड संख्या 264 ग्राम सराय भाट तहसील सीतापुर, जिसका क्षेत्रफल 0.845 हेक्टेयर है, माणिक कैलाश चंद्र नामक व्यक्ति से पंजीकृत विक्रय विलेख द्वारा रु 3,20,000 के एवज में क्रय किया गया था।

III. अपीलकर्ता द्वारा दिनांक 06.03.2009 को भूखंड संख्या 265 ग्राम सराय भाट तहसील सीतापुर,जिसका क्षेत्रफल 0.312 हेक्टेयर है, माणिक कैलाश चंद्र नामक व्यक्ति से पंजीकृत विक्रय विलेख द्वारा रु 1,10,000 के एवज में क्रय किया गया था।

IV. अपीलार्थी द्वारा दिनांक 06.03.2009 को भूखंड संख्या 263, 264 तथा 265, ग्राम सराय भाट, तहसील सीतापुर, पंजीकृत विक्रय विलेख द्वारा क्रय की गई थी तथा उपरोक्त भूमि के एवज में जो धनराशि दी गई थी, वह अपीलकर्ता के बहनोई सत्तार अली द्वारा दिनांक 04.03.2009 को हस्तांतरित कर दिया गया था। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि रु. 14,00,000/- अपीलकर्ता के बैंक खाते में स्थानांतरित किये गए थे तथा उसका उपयोग उसने उपरोक्त भूमि क्रय करने हेतु किया। अपीलकर्ता ने पहले ही अपना बैंक विवरण आपराधिक अपील के ज्ञापन के साथ संलग्नक संख्या- 12 में संलग्न कर दिया है।

V. अपीलकर्ता द्वारा भूखंड संख्या 263, 264 तथा 265 ग्राम सराय भाट, तहसील सीतापुर, का उपयोग मेसर्स एफ.आई.टी. ब्रिकफ़ील्ड के नाम में ईंटभट्टा संचालित करने हेतु किया जा रहा है। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि मैसर्स एफआईटी ब्रिकफील्ड वर्ष 2009-10 से क्रियाशील है। मेसर्स एफआईटी ब्रिकफील्ड के प्रारंभ से संबंधित प्रासंगिक दस्तावेज एवं अन्य प्रासंगिक दस्तावेज जो इस तथ्य को पुष्ट करते हैं कि इन्हें आपराधिक अपील के ज्ञापन के साथ संलग्नक संख्या 14

में पहले से ही संलग्न किया जा चुका है।

VI. मकान संख्या 447, बट्सगंज, सीतापुर के संबंध में यह प्रस्तुत किया गया है कि भूखंड जिस पर उपरोक्त मकान बनाया गया है, उसने अपने बहनोई से खरीदा था। एखलाक अहमद ने पंजीकृत विक्रय विलेख द्वारा दिनांक 16.01.2008 को रुपये 1,25,000/- में उपरोक्त भूमि खरीदने के पश्चात, अपीलकर्ता ने वर्ष 2009 में यूनियन बैंक ऑफ इंडिया से रुपये 12,00,000/- का ऋण लिया तथा उसके घर का निर्माण कार्य शुरू किया। बाद में वर्ष 2014 तथावर्ष 2017 में घर की मरम्मत और उसमें बदलाव हेतु भारतीय स्टेट बैंक से रुपये 20,54,050/- , रुपये 15,00,000/- तथा रुपये 20,00,000/- की धनराशि ऋण पर ली गई थी। अपीलकर्ता (मुजीब अहमद) के पति द्वारा किसान क्रेडिट कार्ड पर रुपये 13,38,176/- का ऋण लिया गया था तथा इसका उपयोग उपरोक्त मकान की मरम्मत तथा परिवर्तन के उद्देश्य हेतु किया गया था। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि अपीलकर्ता ने बैंकों से रुपये 68,54,050/- का ऋण लिया था और उसका उपयोग उपरोक्त घर में मरम्मत और परिवर्तन के उद्देश्य से किया था: अतः उपरोक्त घर में नवीनीकरण तथा परिवर्तन के उद्देश्य से उपयोग किया गया धन उचित, सुलेखित तथा वैध स्रोतों से आता है। उपरोक्त ऋणों से संबंधित दस्तावेज़ पहले ही आपराधिक अपील में संलग्नक संख्या 17 और 18 में संलग्न किए जा चुके हैं।

VII. उपरोक्त के अतिरिक्त, अपीलकर्ता ने रुपये 24,00,000/- , रुपये 10,00,000/- , रुपये 14,00,000/- , रुपये 4,00,000/- , रुपये 5,50,000/- , रुपये 4,00,00/- , रुपये 4,50,000/- , रुपये 75,000/- तथा रुपये 2,50,000/- उसके जीजा सत्तार से, धनराशि भी उधार ली थी जो क्रमशः दिनांक 24.10.2013, 28.07.2014, 11.08.2014, 12.08.2014, 05.09.2014, 06.09.2014, 30.09 2014 तथा 02.02.2015, को उसके बैंक खाते में स्थानांतरित किए गए थे। संक्षेप में, अपीलकर्ता ने रुपये 69,25,000/- की राशि अपने जीजा अर्थात सत्तार अली से उधार ली थी तथा उपरोक्त धनराशि का उपयोग अपीलकर्ता द्वारा मकान संख्या 447, बट्सगंज, सीतापुर के नवीनीकरण तथा उपरोक्त घर में परिवर्तन करने हेतु किया गया था।अपीलकर्ता के बहनोई, सत्तार अली, सऊदी अरब ऑयल कंपनी (सऊदी अरामको) के कर्मचारी थे तथा वर्ष 2020 तक वहां काम करते थे, और उनका वार्षिक वेतन यूएस डॉलर 109,056,00/- (8096,099.33/-) रुपये) था। अतः यह प्रस्तुत किया गया है कि सत्तार अली द्वारा अपीलकर्ता को जो पैसा भेजा गया था और आगे मकान संख्या 447 बट्सगंज सीतापुर में परिवर्तन करने हेतु इस्तेमाल किया गया

था, वह विधिक रीति से अर्जित किया गया था। अपीलकर्ता के बैंक विवरण की प्रतियां और साथ ही सत्तार अली (अपीलकर्ता के बहनोई) के वेतनमान से संबंधित दस्तावेजों को आपराधिक अपील के ज्ञापन के साथ क्रमशः संलग्नक संख्या 19 तथा 20 के रूप में युक्त किया गया है।

VIII. भूखंड संख्या 447ए, बट्सगंज, सीतापुर के संबंध में यह प्रस्तुत किया गया है कि अपीलकर्ता द्वारा दिनांक 21.05.2013 को विक्रय विलेख द्वारा रुपये 1,50,000/- के एवज में कुछ व्यक्तियों से खरीदा गया था। आगे यह भी प्रस्तुत किया गया है कि उसी भूखंड का कुछ हिस्सा अपीलकर्ता के पति द्वारा खरीदा गया था तथा उसे विचारण न्यायालय द्वारा निर्मुक्त किया गया है।
IX. भूखंड संख्या 485, बट्सगंज, सीतापुर के संबंध में, यह प्रस्तुत किया गया है कि इसे अपीलकर्ता द्वारा स्वयं की अर्जित आय से दिनांक 11.05.2013 को अब्दुल सलाम से खरीदा गया था।

X. कार, पंजीकरण संख्या यू.पी. 34 एवी 0555, के संबंध में यह प्रस्तुत किया गया है कि इसे अपीलकर्ता ने भारतीय स्टेट बैंक से ऋण प्राप्त करने के पश्चात क्रय किया था, जिसकी वह ईएमआई चुका रही है। कार ऋण से संबंधित दस्तावेज़ आपराधिक अपील के ज्ञापन के साथ संलग्नक संख्या 23 के रूप में संलग्न किए गए हैं।

14. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि जिला मजिस्ट्रेट सीतापुर द्वारा पारित आदेश दिनांक 22-02-2021 से यह पता नहीं चलता है कि प्रतिवादी संख्या -2 के पास "विश्वास करने का कारण" था कि अपीलकर्ता द्वारा गिरोहबंद अधिनियम के अंतर्गत अपराध कारित कर के प्रश्नगत संपत्ति अर्जित की गई थी, बल्कि उपरोक्त आदेश मात्र संदेह एवं अनुमान के आधार पर पारित किया गया है।

15. श्री मनोज सिंह, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने प्रबल तर्क दिया है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने प्रश्नगत आदेश पारित करने से पूर्व अभिलेख पर मौजूद सामग्री का उचित मूल्यांकन किया है। जिला मजिस्ट्रेट, सीतापुर ने पूर्णतः संतुष्ट होने के पश्चात दिनांक 02-01-2021 को आदेश पारित किया है कि अपीलकर्ता ने गिरोहबंद अधिनियम के अंतर्गत निर्धारित असामाजिक गतिविधियों में शामिल होकर अवैध रीति से प्रश्नगत संपत्ति अर्जित की है, अतः प्रश्नगत आदेश में कोई अवैधता, अशक्तता अथवा विकृति नहीं है। विद्वान विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध दस्तावेजी साक्ष्य सहित संपूर्ण सामग्री पर विचार करने के पश्चात उचित परिप्रेक्ष्य में प्रश्नगत निर्णय तथा आदेश पारित किया है एवं इसमें किसी प्रकार के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।
16. मैंने दोनों पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता को सुना तथा विचारण अदालत द्वारा पारित निर्णय एवं आदेश का अध्ययन किया है।

17. गिरोहबंद अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों का उल्लेख करना उचित एवं आवश्यक प्रतीत होता है जो निम्नवत हैं:-

__2. परिभाषा --__ इस अधिनियम में,--
(क) ''संहिता'' का तात्पर्य दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 से है;

(ख) ''गिरोह'' का तात्पर्य ऐसे व्यक्तियों के समूह से है जो लोक-व्यवस्था को अस्त-व्यस्त करने या अपने या किसी अन्य व्यक्ति के लिए कोई अनुचित दुनियावी (टेम्पोरल), आर्थिक, भौतिक या अन्य लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से या तो अकेले या समूहिक रूप से हिंसा, या हिंसा की धमकी या प्रदर्शन, या अभित्रास, या प्रपीड़न द्वारा, या अन्य प्रकार से निम्नलिखित समाज विरोधी क्रियाकलाप करते हैं, अर्थात्--

(i) भारतीय दण्ड संहिता के अध्याय 16, या अध्याय 17, या अध्याय 22 के अधीन दण्डनीय अपराध; या

(ii) संयुक्त प्रान्त आबकारी अधिनियम, 1910 या नारकोटिक ड्रग्स एण्ड साइक्रोट्रापिक सब्सटैन्सेज ऐक्ट, 1985 या तत्समय प्रवृत किसी अन्य विधि के किन्हीं उपबन्धों का उल्लंघन करके किसी शराब या मादक या अनिष्टकर मादक द्रव्य या अन्य मादकों या स्वापकों का आसवन या निर्माण या संग्रह या परिवहन या आयात या निर्यात, या विक्रय या वितरण या किन्हीं पौधों की खेती करना; या

(iii) विधि सम्मत प्रक्रिया से भिन्न प्रक्रिया द्वारा स्थावर सम्पति पर अध्यासन करना या कब्जा लेना, या स्थावर सम्पति पर चाहें स्वयं या अन्य किसी व्यक्ति के पक्ष में हक या कब्जा के लिए मिथ्या दावा करना; या

(iv) किसी लोक सेवक या किसी साक्षी को अपने विधिपूर्ण कर्तव्यों का पालन करने से रोकना या रोकने के लिए प्रयत्न करना; या

(v) स्त्री तथा लड़की अनौतिक व्यापार दमन अधिनियम, 1956 के अधीन दण्डनीय अपराध; या

(vi) सार्वजनिक द्यूत अधिनियम, 1867 की धारा 3 के अधीन दण्डनीय अपराध; या

(vii) किसी सरकारी विभाग, स्थानीय निकाय या सार्वजनिक या निजी उपक्रम द्वारा या उसकी ओर से किसी पट्टे या अधिकार के लिए, या माल के संभरण या किये जाने वाले कार्य के लिए, विधिपूर्वक

संचालित किसी नीलाम में बोली लगाने या विधिपूर्वक मांगे गये टेण्डर देने से किसी व्यक्ति को रोकनाय या (viii) किसी व्यक्ति को अपने विधिपूर्ण कारबार, वृत्ति, व्यापार या जीविका या उससे सम्बद्ध किसी अन्य विधिपूर्ण क्रियाकलाप को सुचारू रूप से करने से रोकना या उसमें विघ्न डालना; या

(ix) भारतीय दण्ड संहिता की धारा 171-ङ के अधीन दण्डनीय अपराध, या मतदाता को अपने मताधिकार का प्रयोग करने से शारीरिक रूप से रोककर किसी विधिपूर्वक होने वाले किसी सार्वजनिक निर्वाचन को रोकना या उसमें बाधा डालना; या

(x) अन्य व्यक्तियों को साम्प्रदायिक सामंजस्य में विघ्न डालने के लिए हिंसा करने के लिए उद्दीप्त करना; या

(xi) जनता में दहशत, संत्रास या आतंक फैलाना; या

(xii) सार्वजनिक या निजी उपक्रमों या कारखानों के कर्मचारियों या स्वामियों या अध्यासियों को आतंकित करना या उन पर हमला करना और उनकी सम्पति को हानि पहुंचाना; या

(xiii) किसी व्यक्ति को इस मिथ्या व्यपदेशन पर कि उसे विदेश में कोई सेवायोजन, व्यापार या वृति उपलब्ध करायी जायेगी, ऐसे विदेश में जाने के लिए उत्प्रेरित करना या उत्प्रेरित करने का प्रयास करना; या

(xiv) फिरौती उद्यापित करने के आशय से किसी व्यक्ति का व्यपहरण या अपहरण करना; या

(xv) किसी वायुयान या सार्वजनिक परिवहन यानों को उसके पूर्वनिर्धारित मार्ग से जाने से पथान्तरित करना या अन्यथा रोकना;

**(xvi)साहूकारी विनियमन अधिनियम,1976 के अधीन दण्डनीय अपराध;*

(xvii) गोवध निवारण अधिनियम, 1955 और पशुओं के प्रति क्रूरता का निवारण अधिनियम,1960 में उपबन्धों के उल्लंघन में मवेशियों के

अवैध परिवहन और/या तस्करी के कार्यों में संलिप्तता;

(xviii) वाणिज्यिक शोषण, बंधुआ श्रम, बालश्रम, यौन शोषण, अंग हटाने तथा दुर्व्यापार, भिक्षावृत्ति और इसी प्रकार के क्रियाकलापों के प्रयोजनों हेतु मानव दुर्व्यापार करना;

(xix) विधि विरूद्व क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1966 के अधीन दण्डनीय अपराध;

(xx) जाली भारतीय करेंसी नोट का मुद्रण, परिवहन और परिचालन करना;

(xxi) नकली दवाओं का उत्पादन, विक्रय और वितरण में अन्तग्रस्त होना;

(xxii) आयुध अधिनियम, 1959 की धारा 5, 7 और 12 के उल्लंघन में आयुध एवं गोला, बारूद के विनिर्माण, विक्रय और परिवहन में अन्तग्रस्त होना;

(xxiii) भारतीय वन अधिनियम, 1927 और वन्य जीव संरक्षण अधिनियम, 1972 के उल्लंघन में आर्थिक अभिलाभ के लिए गिराना अथवा वध करना, उत्पादों की तस्करी करना;

(xxiv) आमोद तथा पणकर अधिनियम, 1979 के अधीन दण्डनीय अपराध;

(xxv) राज्य की सुरक्षा, लोक व्यवस्था और जीवन की गति को भी प्रभावित करने वाले अपराधों में संलिप्त होना।"

(ग) 'गिरोहबन्द" का तात्पर्य किसी गिरोह के सदस्य या सरगना या संगठक से है और इसके अन्तर्गत कोई ऐसा व्यक्ति भी है जो खण्ड (ख) में प्रगणित किसी गिरोह के क्रियाकलाप के लिए, चाहे ऐसे क्रियाकलाप के किए जाने के पूर्व या पश्चात्, दुष्प्रेरित करता है या उसमें सहायता देता है, या किसी ऐसे व्यक्ति को जिसने ऐसे क्रियाकलाप किये हों, संश्रय देता है;

(घ) "लोक सेवक" का तात्पर्य भारतीय दण्ड संहिता की धारा 21 में या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में यथापरिभाषित लोक सेवक से है और इसके अन्तर्गत कोई ऐसा व्यक्ति भी है जो राज्य की पुलिस या अन्य प्राधिकारियों को इस अधिनियम के अधीन दण्डनीय किसी अपराध के अन्वेषण या अभियोजन या दण्ड में,

चाहें ऐसे अपराध या अपराधी के सम्बन्ध में सूचना या साक्ष्य देकर या किसी अन्य रीति से, विधिपूर्वक सहायता करता है;

(ङ) "किसी लोक सेवक के कुटुम्ब का सदस्य" का तात्पर्य उसके माता-पिता या पति या पत्नी, और भाई, बहिन, पुत्र, पुत्री, पौत्र, पौत्री, या इनमें से किसी के पति या पत्नी से है और इसके अन्तर्गत लोक सेवक पर आश्रित या उसके साथ निवास करने वाला कोई व्यक्ति और कोई ऐसा व्यक्ति भी है जिसके कल्याण में लोक सेवक हित रखता हो;

(च) इस अधिनियम में प्रयुक्त किन्तु अपरिभाषित, और दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 या भारतीय दंड संहिता में परिभाषित शब्दों और पदों के क्रमशः वहीं अर्थ होंगे जो ऐसी संहिताओं में उनके लिए दिए गये हैं।

***3. शास्ति -** (1) किसी गिरोहबन्द को दोनों में से किसी भांति के कारावास से ऐसी अवधि के लिए जो दो वर्ष से कम न होगी और जो दस वर्ष तक हो सकेगी और जुर्माने से भी जो पांच हजार रूपये से कम नहीं होगा, दण्डित किया जायगाः*

परन्तु किसी गिरोहबन्द को जो किसी लोक सेवक के शरीर के प्रति या लोक सेवक के कुटुम्ब के किसी सदस्य के शरीर के प्रति कोई अपराध करता है दोनों में से किसी भांति के कारावास से ऐसी अवधि के लिए जो तीन वर्ष से कम न होगी और जुर्माना से भी, जो पांच हजार रूपये से कम नहीं होगा, दण्डित किया जायगा।

(2) किसी ऐसे व्यक्ति को जो लोक सेवक होते हुये चाहे स्वयं या अन्य के माध्यम से किसी गिरोहबन्द की किसी रीति से अवैध रूप से सहायता या समर्थन, चाहे गिरोहबन्द द्वारा कोई अपराध किये जाने के पूर्व या पश्चात् करता है, या विधिपूर्ण उपाय करने से विरत रहता है या इस संबंध में किसी न्यायालय या अपने वरिष्ठ अधिकारियों के निदेशों को कार्यान्वित करने से जानबूझकर बचता है, दोनों में से किसी भांति के कारावास से ऐसी अवधि के लिए जो दस वर्ष तक की हो सकेगी, किन्तु तीन वर्ष से कम न होगी और जुर्माने से भी दंडित किया जायगा।

18. वर्तमान वाद में सम्मिलित वादबिन्दुओं का समाधान गिरोहबंद अधिनियम की धारा 14, 15 एवं 17 के प्रावधानों पर विचार कर किया जा सकता है, जो निम्नानुसार हैं:-

***14. सम्पति की कुर्की--**(1) यदि जिला मजिस्ट्रेट को यह विश्वास करने का कारण हो कि किसी व्यक्ति के कब्जे में स्थित कोई सम्पति, चाहे वह जंगम हो या स्थावर, किसी गिरोहबन्द के द्वारा इस अधिनियम के अधीन विचारणीय*

किसी अपराध कार्य के परिणामस्वरूप अर्जित की गयी है तो वह ऐसी सम्पत्ति को कुर्क करने का आदेश दे सकता है, चाहे किसी न्यायालय द्वारा ऐसे अपराध का संज्ञान किया गया हो या नहीं।

(2) प्रत्येक ऐसी कुर्की पर संहिता के उपबन्ध, यथावश्यक परिवर्तन सहित,लागू होंगे।

(3) संहिता के उपबन्धों के होते हुए भी, जिला मजिस्ट्रेट, उपधारा (1) के अधीन कुर्क की गयी किसी सम्पत्ति का प्रशासक नियुक्त कर सकता है और प्रशासक को ऐसी सम्पत्ति के सर्वोत्तम हित में उसका प्रबन्ध करने की सभी शक्तियां होंगी।

(4) जिला मजिस्ट्रेट ऐसी सम्पत्ति के उचित और प्रभावी प्रबन्ध के लिए प्रशासक को पुलिस सहायता की व्यवस्था कर सकता है।

15. सम्पति को निर्मुक्त करना--*(1) जहाॅ कोई सम्पत्ति धारा 14 के अधीन कुर्क की जाय, वहाॅ उसका दावेदार, ऐसी कुर्की की जानकारी के दिनांक से तीन मास के भीतर जिला मजिस्ट्रेट को अपने द्वारा उस सम्पत्ति के अर्जन की परिस्थितियों और स्रोतों को दर्शाते हुए अभ्यावेदन कर सकता है।*

(2) यदि उपधारा (1) के अधीन किये गये दावे की वास्तविकता के बारे में जिला मजिस्ट्रेट का समाधान हो जाय तो वह कुर्क की गयी सम्पत्ति को तत्काल निर्मुक्त कर देगा और तदुपरांत ऐसी सम्पत्ति दावेदार को सौंप दी जायेगी।

16. न्यायालय द्वारा सम्पत्ति के अर्जन के स्वरुप के बारे में जाँच:--

(1) जहाॅ धारा 15 की उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट अवधि के भीतर कोई अभ्यावेदन न दिया जाय या जिला मजिस्ट्रटे धारा 15 की उपधारा (2) के अधीन सम्पत्ति को निर्मुक्त नहीं करता है, वहाॅ वह मामले को अपनी रिपोर्ट के साथ इस अधिनियम के अधीन अपराध का विचाराण करने के लिए अधिकारितायुक्त न्यायालय को निर्दिष्ट करेगा।

(2) जहाॅ जिला मजिस्ट्रेट ने किसी सम्पत्ति को धारा 14 की उपधारा (1) के अधीन कुर्क करने से इन्कार किया है या किसी सम्पत्ति को धारा 15 की उपधारा (2) के अधीन निर्मुक्त करने का आदेश दिया है, वहाॅ राज्य सरकार या कोई व्यक्ति जो इस प्रकार इन्कार करने या निर्मुक्त करने से व्यथित हो, यह जांच करने के लिए कि क्या सम्पत्ति इस अधिनियम के अधीन विचारणीय किसी अपराध कार्य के द्वारा या उसके परिणामस्वरूप अर्जित की गयी थी, उपधारा (1) में निर्दिष्ट न्यायालय को प्रार्थना पत्र-पत्र दे सकता है। ऐसा न्यायालय, यदि वह न्याय के हित में ऐसा करना आवश्यक या समीचीन

समझे, ऐसी सम्पत्ति सम्पत्ति को कुर्क करने का आदेश दे सकता है।

(3) (क) उपधारा (1) के अधीन निर्देश या उपधारा (2) के अधीन प्रार्थना पत्र-पत्र की प्राप्ति पर न्यायालय जांच के लिए कोई दिनांक नियत करेगा और उसकी नोटिस उपधारा (2) के अधीन प्रार्थना पत्र-पत्र देने वाले व्यक्ति या, यथास्थिति, धारा 15 के अधीन अभ्यावेदन देने वाले व्यक्ति और राज्य सरकार और किसी अन्य व्यक्ति को भी जिसका हित मामले में अन्तग्ग्रस्त प्रतीत हो,, देगा।

(ख) इस प्रकार नियत दिनांक को या किसी पश्चातवर्ती दिनांक को जब तक के लिए जांच आस्थगितकी जाय, न्यायालय पक्षकारों की सुनवाई करेगा, उनके द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य ग्रहण करेगा, ऐसे और साक्ष्य लेगा जिसे वह आवश्यक समझे, यह विनिश्चय करेगा कि क्या सम्पत्ति किसी गिरोहबन्द द्वारा इस अधिनियम के अधीन विचारणीय किसी अपराध कार्य के परिणामस्वरूप अर्जित की गयी थी और धारा 17 के अधीन ऐसा आदेश देगा जैसा मामले की परिस्थितियों में न्यायसंगत और आवश्यक हो।

(4) उपधारा (3) के अधीन जांच के प्रयोजनों के लिए विशेष न्यायालय को निम्नलिखित विषयों के सम्बन्ध में ऐसी शक्तियां होंगी जो सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के अधीन किसी वाद पर विचारण करते समय सिविल न्यायालय की होती है, अर्थात्--

(क) किसी व्यक्ति को समन कराना और उसे हाजिर कराना और शपथ पर उसका परीक्षण करना;

(ख) दस्तावेजों का पता लगाने और उन्हें प्रस्तुत करने की अपेक्षा करना;

(ग) शपथ-पत्रों पर साक्ष्य ग्रहण करना;

(घ) किसी न्यायालय या कार्यालय से कोई सार्वजनिक अभिलेख या उसकी प्रति अधियाचित करना;

(ङ) साक्षियों या दस्तावेजों के परीक्षण के लिए कमीशन जारी करना;

(च) व्यतिक्रम के लिए निर्देश को खारिज करना या उसे एक पक्षीय विनिश्चित करना;

(छ) व्यतिक्रम के लिए खारिज करने के आदेश या एकपक्षीय विनिश्चय को अपास्त करना।

(5) भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 में किसी प्रतिकूल बात के होते हुए भी, इस धारा के अधीन किसी कार्यवाही में यह साबित करने का भार कि प्रश्नगत सम्पत्ति या उसका कोई भाग किसी गिरोहबन्द द्वारा इस अधिनियम के

अधीन विचारणीय किसी अपराध कार्य के परिणामस्वरूप अर्जित नहीं किया गया था, सम्पत्ति पर दावा करने वाले व्यक्ति पर होगा।

17.जाॅच के पश्चात् आदेश:- *यदि ऐसी जांच पर न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि सम्पत्ति किसी गिरोहबन्द द्वारा इस अधिनियम के अधीन विचारणीय किसी अपराध कार्य के परिणामस्वरूप अर्जित नहीं की गयी थी तो वह उस सम्पत्ति को ऐसे व्यक्ति के पक्ष में निर्मुक्त करने का आदेश देगा जिसके कब्जे से वह कुर्क की गयी थी। किसी अन्य मामले में न्यायालय सम्पत्ति को कुर्क करके,अधिहरण करके या सम्पत्ति पर कब्जा पाने के लिए हकदार व्यक्ति को देकर, या अन्य प्रकार से उसका निस्तारण करने का ऐसा आदेश दे सकता है, जैसा वह उचित समझे।*

19. अब यह पूर्णतः निर्धारित हो गया है कि अधिनियम की धारा 14 के अंतर्गत कुर्की का विषय बनाई जा रही संपत्ति को अधिनियम के अंतर्गत विचारणीय अपराध कारित कर एक गिरोहबंद द्वारा अर्जित किया गया होगा। जिला मजिस्ट्रेट को इस बिन्दु पर अपनी संतुष्टि दर्ज करनी होगी। जिला मजिस्ट्रेट की संतुष्टि को किसी भी अपील में चुनौती नहीं दी जा सकती है। अधिनियम की धारा 15 के अंतर्गत जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष मात्र एक प्रत्यावेदन प्रदान किया जाता है और यदि वह इस प्रकार के प्रत्यावेदन पर संपत्ति मुक्त करने से इंकार कर देता है, तब उस स्थिति में अधिनियम के अंतर्गत व्यथित व्यक्ति को अपराध की कोशिश करने के क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय का संदर्भ देना होगा। अधिनियम के अंतर्गत धारा 15 की उप-धारा (2) के अंतर्गत किए गए संदर्भ में निस्तारण करते हुये न्यायालय को यह देखना होगा कि क्या संपत्ति अधिनियम के अंतर्गत विचारणीय अपराध के परिणामस्वरूप एक गिरोहबंद द्वारा अर्जित की गई थी और इस प्रश्न पर विचार करना होगा एवं अधिनियम की धारा 16 के अंतर्गत उसके द्वारा की गई पूछताछ के आधार पर स्वयं के निष्कर्ष को दर्ज करना होगा। यदि न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि संपत्ति गिरोहबंद द्वारा अधिनियम के अंतर्गत विचारणीय अपराध के परिणामस्वरूप अर्जित नहीं की गई थी, तब न्यायालय उस व्यक्ति के पक्ष में संपत्ति जारी करने का आदेश देगा जिसके कब्जे से यह कुर्क की गई थी।

20. **संहिता की धारा 16 के अंतर्गत न्यायिक जांच की शक्ति प्रदान करने के पीछे का उद्देश्य किसी व्यक्ति को उसकी संपत्ति से वंचित करने में जिला मजिस्ट्रेट द्वारा शक्ति के मनमाने प्रयोग की जांच करना तथा विधि के शासन को बहाल करना है, अतः इस प्रश्न के संबंध में सच्चाई का पता लगाने हेतु एक औपचारिक जांच करना न्यायालय का एक मुख्य कर्तव्य है कि क्या संपत्ति अधिनियम के अंतर्गत विचारणीय अपराध के परिणामस्वरूप अथवा उसके द्वारा अर्जित की गई थी। अधिनियम की धारा 17 के अंतर्गत पारित किए जाने वाले आदेश में न्यायालय के निष्कर्ष के समर्थन में कारणों तथा साक्ष्य का खुलासा किया जाये। न्यायालय को डाकघर अथवा राज्य अथवा जिला मजिस्ट्रेट के**

मुखपत्र के रूप में कार्य करने का अधिकार नहीं है। यदि किसी व्यक्ति का उसके द्वारा अर्जित की गई संपत्ति की अवधि के दौरान कोई आपराधिक विवरण नहीं है, तब उस संपत्ति को अधिनियम के अंतर्गत विचारणीय अपराध के परिणामस्वरूप अथवा उसके द्वारा अर्जित की गई संपत्ति कैसे माना जा सकता है, यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है जिसका उत्तर न्यायालय को देना होगा। उपरोक्त प्रश्न के अतिरिक्त, न्यायालय द्वारा विचार किया जाने वाला अन्य महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या वह संपत्ति जो अभियुक्त के विरुद्ध अधिनियम के अंतर्गत मामला दर्ज होने अथवा गिरोहबंद चार्ट के प्रथम वाद के दर्ज होने से पूर्व अधिनियम की धारा 14 के अंतर्गत जिला मजिस्ट्रेट द्वारा कुर्की की जा सकती है।

21. उपरिल्लिखित अधिनियम की धारा 14 के प्रावधान, जिला मजिस्ट्रेट को इस अधिनियम के अंतर्गत विचारणीय अपराध के परिणामस्वरूप गिरोहबंद द्वारा अर्जित संपत्ति को कुर्क करने का अधिकार देते हैं। जिला मजिस्ट्रेट कुर्क की गई **किसी भी संपत्ति के सर्वोत्तम हित में ऐसी संपत्ति का प्रबंधन करने हेतु प्रशासक नियुक्त कर सकता है, किंतु यह विश्वास करने का कारण होना चाहिए कि किसी भी व्यक्ति के कब्जे में कोई भी संपत्ति चाहे वह चल अथवा अचल हो, परिणामस्वरूप गिरोहबंद द्वारा अर्जित की गई है इस अपराध के घटित होने के परिणामस्वरूप, इस अधिनियम के अंतर्गत विचारणीय है, किंतु जिला मजिस्ट्रेट ने अपने आदेश में कुर्क की गई संपत्ति के संबंध में यह विश्वास करने का कारण रखते हुए अपना स्पष्टीकरण दर्ज नहीं किया है कि यह गिरोहबंद अधिनियम के अंतर्गत विचारणीय अपराध के घटित होने के परिणामस्वरूप अपीलकर्ताओं द्वारा अर्जित की गई थी, यद्यपि अधिनियम की धारा 16 के अंतर्गत संदर्भ का निर्णय करते समय, विचारण न्यायालय ने साक्ष्य का मूल्यांकन नहीं किया तथा यांत्रिक रीति से जिला मजिस्ट्रेट द्वारा की गई टिप्पणियों पर भरोसा जताते हुए प्रश्नगत आदेश पारित कर दिया, जो कि अवैध एवं अनुचित दृष्टिकोण है।**

22. **श्रीमती मैना देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2013(83) ACC 902** के प्रस्तर -8, 9 एवं 10 के वाद में इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने निम्नवत धारित किया:-

> *8. मामले के तथ्यों, परिस्थितियों, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा दिये गये तर्कों पर विचार करते हुए एवं अभिलेख के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि वर्तमान वाद में शामिल मुद्दे को गिरोहबंद अधिनियम की धारा 14, 15 एवं 17 के प्रावधानों पर विचार करके हल किया जाये, जो अधोलिखित हैं:-*
>
> > ***15. सम्पति को निर्मुक्त करना--****(1) जहाॅ कोई सम्पति धारा 14 के अधीन कुर्क की जाय, वहाॅ उसका दावेदार, ऐसी कुर्की की जानकारी के दिनांक से तीन मास के भीतर जिला मजिस्ट्रेट को अपने द्वारा उस सम्पति के अर्जन की परिस्थितियों और स्रोतों को दर्शाते हुए अभ्यावेदन कर सकता है।*

(2) यदि उपधारा (1) के अधीन किये गये दावे की वास्तविकता के बारे में जिला मजिस्ट्रेट का समाधान हो जाय तो वह कुर्क की गयी सम्पत्ति को तत्काल निर्मुक्त कर देगा और तदुपरांत ऐसी सम्पत्ति दावेदार को सौंप दी जायेगी।

17.जाॅच के पश्चात् आदेश:- *यदि ऐसी जांच पर न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि सम्पत्ति किसी गिरोहबन्द द्वारा इस अधिनियम के अधीन विचारणीय किसी अपराध कार्य के परिणामस्वरूप अर्जित नहीं की गयी थी तो वह उस सम्पत्ति को ऐसे व्यक्ति के पक्ष में निर्मुक्त करने का आदेश देगा जिसके कब्जे से वह कुर्क की गयी थी। किसी अन्य मामले में न्यायालय सम्पत्ति को कुर्क करके,अधिहरण करके या सम्पत्ति पर कब्जा पाने के लिए हकदार व्यक्ति को देकर, या अन्य प्रकार से उसका निस्तारण करने का ऐसा आदेश दे सकता है, जैसा वह उचित समझे।*

9. गिरोहबंद अधिनियम के उपर्युक्त प्रावधानों के आलोक में जिला मजिस्ट्रेट को इस अधिनियम के अंतर्गत विचारणीय अपराध के परिणामस्वरूप गिरोहबंद द्वारा अर्जित किसी भी व्यक्ति की चल या अचल संपत्तियों को कुर्क करने का अधिकार है। किंतु ऐसी शक्तियों का प्रयोग करने हेतु जिला मजिस्ट्रेट को यह विश्वास करने का कारण होना चाहिए कि ऐसी संपत्ति इस अधिनियम के अंतर्गत विचारणीय अपराध के परिणामस्वरूप एक गिरोहबंद द्वारा अर्जित की गई थी। विश्वास करने का कारण शब्द "संतुष्ट" शब्द से अधिक मजबूत है, इसे उन कारणों पर पारित किया जाना चाहिए जो प्रासंगिक एवं महत्वपूर्ण हैं। वर्तमान वाद में, विचारण न्यायालय के अभिलेख के परिशीलन से ऐसा प्रतीत होता है कि पुलिस थाना सराय लक-हांसी, जिला मऊ के प्रभारी अधिकारी द्वारा प्रस्तुत पुलिस रिपोर्ट के आधार पर ही जिला मजिस्ट्रेट, मऊ ने अपीलकर्ता के दो घरों को कुर्क किया है। जिला मजिस्ट्रेट को विश्वास करने का कोई कारण बताने हेतु कोई सामग्री नहीं दी गई थी कि प्रश्नगत संपत्ति गिरोहबंद राज बहादुर सिंह द्वारा इस अधिनियम के अंतर्गत विचारणीय अपराध के परिणामस्वरूप अर्जित की गई थी। यह जिला मजिस्ट्रेट की वस्तुपरक संतुष्टि को भी दूषित करता है। विद्वान जिला मजिस्ट्रेट के पास पुलिस रिपोर्ट के समर्थन में कोई सामग्री नहीं थी क्योंकि अपीलकर्ता के दोनों घरों को उसके पुत्र राज बहादुर सिंह ने अधिग्रहित कर लिया था। विद्वान जिला मजिस्ट्रेट ने गिरोहबंद अधिनियम की धारा 15 के

अंतर्गत अपीलकर्ता द्वारा कुर्क किए गए घरों को निर्मुक्त करने हेतु दिए गए प्रार्थना पत्र को खारिज कर दिया। प्रार्थना पत्र समय के भीतर ही प्रस्तुत किया गया था, प्रार्थना पत्र जिला मजिस्ट्रेट, मऊ, हेतु एक अभ्यावेदन था, इसमें उन स्रोतों का खुलासा करने वाले सभी विवरण थे जिनके द्वारा अपीलकर्ता द्वारा दोनों घरों का अधिग्रहण किया गया था। किंतु विद्वान जिला मजिस्ट्रेट ने अपीलकर्ता द्वारा बताए गए स्रोतों पर विचार नहीं किया और दिनांक 29.12.2008 के आदेश के अंतर्गत प्रार्थनापत्र खारिज कर दिया। उन सभी स्रोतों के स्पष्टीकरण पर उचित रूप से विचार नहीं किया गया है जिनके द्वारा अपीलकर्ता ने मकान अधिग्रहण किया। अतः प्रश्नगत आदेश दिनांक 29.12.2008 अवैध हो गया है। विद्वान विशेष न्यायाधीश (गिरोहबंद अधिनियम), आज़मगढ़ ने गिरोहबंद अधिनियम की धारा 17 के अंतर्गत अपीलकर्ता द्वारा दिए गए प्रार्थना पत्र को गिरोहबंद अधिनियम की धारा 14 के प्रावधानों एवं जिला मजिस्ट्रेट द्वारा दर्ज किए गए 'कारणों की प्रासंगिकता' पर विचार किए बिना खारिज कर दिया कि अपीलकर्ता के पुत्र गिरोहबंद राज बहादुर सिंह ने इस अधिनियम के अंतर्गत विचारणीय अपराध के परिणामस्वरूप दोनों कुर्क किए गए मकानों का अधिग्रहण कर लिया था। आपराधिक विविध प्रार्थना पत्र संख्या 2/2009 में विद्वान विशेष न्यायाधीश (गिरोहबंद अधिनियम)/अपर सत्र न्यायाधीश, आज़मगढ़ द्वारा पारित आदेश दिनांक 17.3.2009 भी अवैध है।

10. उपरोक्त विवेचना के दृष्टिगत जिला मजिस्ट्रेट, मऊ द्वारा गिरोहबंद अधिनियम की धारा 14(1) के अंतर्गत अपीलार्थी के दो मकानों को कुर्क करने का आदेश, जिला मजिस्ट्रेट, मऊ द्वारा पारित आदेश दिनांक 29.12.2008 , जिसके द्वारा गिरोहबंद अधिनियम की धारा 15 के अंतर्गत प्रार्थना पत्र खारिज कर दिया गया है, तथा आपराधिक विविध आवेदन संख्या 2/ 2009 में विद्वान विशेष न्यायाधीश (गिरोहबंद अधिनियम), अपर सत्र न्यायाधीश, आज़मगढ़ द्वारा पारित आदेश दिनांक 17.3.2009 अवैध हैं एवं इन्हें निरस्त किया जाता है तथा जिला मजिस्ट्रेट, मऊ को निदेशित किया जाता है कि वह मोहल्ला चांदमारी, इमिलियान, थाना सराय लाकहांसी, जिला मऊ में स्थित दोनों मकान संख्या 204-डी/8 और 205-डी/9 को अपीलार्थी के पक्ष में तत्काल निर्मुक्त कराएं।

23. इसके अतिरिक्त, इस न्यायालय की एक अन्य समन्वय पीठ ने **श्रीमती शांति देवी पत्नी श्री राम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2007(2) ALJ 483 (इलाहाबाद)** के प्रस्तर-9, 10 और 11 के वाद में निम्नवत धारित किया है:-

9. इन धाराओं को संयुक्त रूप से पढ़ने से ज्ञात होता है कि पहले यह

सिद्ध करना होगा कि गिरोहबंद अथवा उसकी ओर से किसी व्यक्ति का संपत्ति पर कब्जा है या रहा है, तथा ऐसी संपत्ति इस अधिनियम के अंतर्गत विचारणीय अपराध कारित कर के अर्जित की गई है, तभी जिला मजिस्ट्रेट को मामले में कार्यवाही तथा संपत्ति कुर्क करने का क्षेत्राधिकार प्राप्त होता है। मात्र तब, जब प्रारंभिक भार उन्मोचित हो जाता है, इसका संतोषजनक स्पष्टीकरण देने की जिम्मेदारी गिरोहबंद अथवा ऐसे व्यक्ति पर आ जाती है। किंतु यदि यह पाया जाता है कि संबंधित व्यक्ति गिरोहबंद नहीं था और उसने इस अधिनियम के अंतर्गत विचारणीय किसी अपराध हेतु संपत्ति अर्जित नहीं की थी, तब संपत्ति को धारा 17 के प्रावधान के अनुसार निर्मुक्त किया जाना होगा। दूसरे शब्दों में, अभियोजन पक्ष पर यह दिखाने का प्रारंभिक भार है कि संबंधित व्यक्ति एक गिरोहबंद है और उसने अधिनियम के तहत विचारणीय आपराधिक गतिविधि के कारण संपत्ति अर्जित की है।

10. अतः धारा 14 के अंतर्गत कार्यवाही के लिये जिला मजिस्ट्रेट के वस्तुपरक अवधारण हेतु सामग्री होनी चाहिए कि व्यक्ति या तो किसी गिरोह का सदस्य, नेता अथवा आयोजक है एवं उसने अधिनियम के अंतर्गत किसी भी अपराध को कारित कर के कोई संपत्ति अर्जित की है। उसमें बताए गए उसके आपराधिक कृत्यों एवं उसके द्वारा अर्जित की गई संपत्ति के मध्य कोई संबंध होना चाहिए। किसी भी अपराध में उसकी संलिप्तता ही उसकी संपत्ति कुर्क करने हेतु पर्याप्त नहीं है। दूसरे शब्दों में यह पता लगाना आवश्यक है कि क्या उसकी संपत्ति का अधिग्रहण किसी गिरोह का सदस्य, नेता अथवा आयोजक होने के नाते अधिनियम में उल्लिखित किसी भी अपराध कारित करने का परिणाम था। हो सकता है कि किसी ने कई अपराध किए हों, किंतु यदि उसके द्वारा अर्जित संपत्ति वैध संसाधनों द्वारा अर्जित की गई है, तब अधिनियम की धारा 14 के अंतर्गत उसके विरुद्ध कोई कार्रवाई नहीं की जा सकती है।

11. बदन सिंह उर्फ बद्दो बनाम उ०प्र० राज्य, 2002 Cri LJ 1392: 2001 All LJ2852 के मामले में इस न्यायालय द्वारा यह धारित किया गया है कि अधिनियम की धारा 14 एक कठोर प्रावधान है जो किसी व्यक्ति के संपत्ति के अधिकार को प्रभावित करती है, जो संविधान के अंतर्गत एक मौलिक अधिकार है। अतः प्रारंभिक भार राज्य पर था कि वह आवश्यक सामग्रियों के साथ जिला मजिस्ट्रेट को संतुष्ट करे कि एक गिरोहबंद ने किसी अपराध के परिणामस्वरूप संपत्ति अर्जित की थी। इस वाद में यह भी धारित किया गया है कि अधिनियम में यह प्रावधान नहीं है कि संपत्ति को कुर्की से निर्मुक्त कराने की मांग करने वाले पीड़ित व्यक्ति को उसके अधिग्रहण हेतु आय का स्रोत सिद्ध करना होगा।

24. इसके अतिरिक्त, इस न्यायालय की एक अन्य समन्वय पीठ ने **राजबीर सिंह त्यागी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 2018 एससीसी ऑनलाइन एआईआई 5986** के वाद में प्रस्तर 16 एवं 18 में निम्नवत धारित किया : -

> *" 16. उपरोक्त दो परिभाषाओं को संयुक्त रूप से पढ़ने पर प्रतीत होता है कि किसी व्यक्ति के विरुद्ध धारा 14 के अंतर्गत कार्रवाई करने हेतु, जिला मजिस्ट्रेट के वस्तुनिष्ठ अवधारण के लिए सामग्री होनी चाहिए कि उसके द्वारा किसी गिरोह के सदस्य, नेता अथवा आयोजक के रूप में अधिनियम के अंतर्गत किसी अपराध के परिणामस्वरूप कोई संपति अर्जित की गई है । उसके आपराधिक कृत्य एवं उसके द्वारा अर्जित संपत्ति के मध्य संबंध होना चाहिये। किसी भी अपराध में उसकी भागीदारी मात्र उसकी संपत्ति को कुर्क करने हेतु पर्याप्त नहीं है। दूसरे शब्दों में, यह पता लगाना आवश्यक है कि क्या उसकी संपत्ति का अधिग्रहण किसी गिरोह का सदस्य, नेता अथवा आयोजक होने के कारण अधिनियम में उल्लिखित किसी अपराध के परिणामस्वरूप हुआ था। हो सकता है कि किसी ने कई अपराध किए हों, किंतु यदि उसके द्वारा अर्जित संपत्ति वैध स्रोत से थी, तब अधिनियम की धारा 14 के अंतर्गत उसके विरुद्ध कोई कार्रवाई नहीं की जा सकती है।*
>
> *18. अधिनियम की धारा 14 एक कठोर प्रावधान है जो किसी के संपत्ति के अधिकार को प्रभावित करता है जो संविधान के अंतर्गत एक संवैधानिक अधिकार है। अतः जिला मजिस्ट्रेट को आवश्यक सामग्रियों के साथ संतुष्ट करने का प्रारंभिक भार राज्य पर था कि याचिकाकर्ता राजबीर सिंह त्यागी ने एक गिरोहबंद होने के नाते एक अपराध के परिणामस्वरूप संपत्ति अर्जित की थी। यद्यपि ऐसा नहीं किया गया, इसलिए कुर्की आदेश को अवैध बताते हुए, याचिकाकर्ताओं द्वारा संपत्तियों को निर्मुक्त करने हेतु एक अभ्यावेदन प्रस्तुत करके एक कदम उठाया गया था। उक्त प्रार्थना को इस टिप्पणी के साथ खारिज कर दिया गया कि याचिकाकर्ता घर बनाने और चल संपत्ति अर्जित करने हेतु आय का स्रोत स्थापित नहीं कर सके। मेरी राय में जिला मजिस्ट्रेट के इस दृष्टिकोण की विधि के अंतर्गत कोई स्वीकृति नहीं है। अधिनियम में यह प्रावधान नहीं है कि संपत्तियों को कुर्की से निर्मुक्त कराने की मांग करने वाले पीड़ित व्यक्ति को उसके अधिग्रहण हेतु आय का स्रोत सिद्ध करना होगा। अतः अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों के परिप्रेक्ष्य में, मेरी सुविचारित राय है कि जिला मजिस्ट्रेट, मुजफ्फर नगर द्वारा पारित कुर्की का आदेश अवैध, एकपक्षीय एवं अभिलेख पर सामग्री के भार के विरुद्ध है।"*

25. विधि की उपरोक्त स्थापित प्रस्थापना एवं **श्रीमती मैना देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2013(83) ACC 902** एवं **श्रीमती शांति देवी पत्नी श्री राम बनाम उ०प्र० राज्य 2007(2) ALJ 483 (All)**, एवं **राजबीर सिंह त्यागी बनाम उ०प्र० राज्य एवं अन्य 2018 SCC ऑनलाइन All 5986** के वाद में इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के दृष्टिगत, इस न्यायालय का विचार है कि प्रश्नगत संपत्ति, जो कुर्क की गई थी, अपीलकर्ता द्वारा विधिक संसाधनों से अपनी आय द्वारा, न कि अधिनियम के अंतर्गत विचारणीय किसी अपराध को कारित कर के, अर्जित की गई थी। जैसा कि यह स्थापित विधि है कि अधिनियम की धारा 14 के अंतर्गत कुर्की का विषय बनाई जा रही संपत्ति को एक गिरोहबंद एवं अधिनियम के अंतर्गत विचारणीय अपराध कारित द्वारा अर्जित किया जाना होना चाहिये और साथ ही अपीलकर्ता के पति मुजीब अहमद की जब्त की गई संपत्ति, जो अपराध संख्या 0003 /2021 में अभियुक्त है, को भी विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा मुजीब अहमद के पक्ष में जारी कर दिया गया था और वर्तमान अपीलकर्ता सह अभियुक्त की पत्नी है, जिसका नाम भी प्रथम सूचना रिपोर्ट में नहीं बताया गया है किंतु वर्तमान वाद में मात्र सह-अभियुक्त की पत्नी होने के कारण फंसाया गया है। और साथ ही प्रश्नगत आदेश उन कारणों से पारित नहीं किया गया जो प्रासंगिक एवं महत्वपूर्ण हैं। वर्तमान वाद में न्यायालय के आदेशों एवं अभिलेख के परिशीलन से ऐसा प्रतीत होता है कि मात्र पुलिस की विवेचना के आधार पर ही जिला मजिस्ट्रेट ने प्रश्नगत संपत्ति को कुर्क कर लिया है, जिला मजिस्ट्रेट को इस बात पर विश्वास करने हेतु कोई सामग्री नहीं दी गई थी कि विचाराधीन संपत्ति वर्तमान अपीलकर्ता गिरोहबंद द्वारा इस अधिनियम के अंतर्गत विचारणीय अपराध के परिणामस्वरूप अर्जित की गई थी। यह अभिलेख से जिला मजिस्ट्रेट की व्यक्तिपरक संतुष्टि को भी दूषित करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि जिला मजिस्ट्रेट के पास इस पुलिस रिपोर्ट के समर्थन में कोई सामग्री नहीं है कि प्रश्नगत संपत्ति वर्तमान अपीलकर्ता द्वारा गिरोहबंद के रूप में अर्जित की गई थी, यद्यपि कार्यवाही अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार नहीं की गई थी। कुर्की के प्रश्नगत आदेशों को पारित करते समय विवेक का प्रयोग करे बिना यांत्रिक रीति से आदेश पारित किया गया और यह एकपक्षीय है। अतः विद्वान विशेष न्यायाधीश गिरोहबंद अधिनियम/अपर सत्र न्यायाधीश न्यायालय संख्या-5 सीतापुर द्वारा पारित आदेश भी अवैध है तथा वह भी निरस्त किये जाने योग्य है।

26. वाद के उपरोक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों के दृष्टिगत, विद्वान न्यायालय के प्रश्नगत निर्णय एवं आदेश को सही परिप्रेक्ष्य में पारित किया हुआ नहीं कहा जा सकता है क्योंकि यह विधि की दृष्टि में वहनीय नहीं है तथा इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप के योग्य है। अभियोजन यह स्थापित करने में विफल रहा है कि गिरोहबंद अधिनियम की धारा 2 तथा 3 के प्रावधान अपीलकर्ता के वाद में प्रयोज्य हैं, और इसके अतिरिक्त अपीलकर्तागण की संपत्ति भी विधि के अनुसार कुर्क नहीं की गई है, क्योंकि अभियोजन यह स्थापित करने में विफल रहा है कि उक्त अपीलकर्ता द्वारा अर्जित एवं स्वामित्व वाली संपत्ति और वाहन असामाजिक गतिविधियों में सम्मिलित आय से अर्जित है। धारा 16 के अंतर्गत, अधिनियम के प्रावधानों के अनुरूप जाँच

नहीं की गई थी, धारा 14, 15 और 17 के प्रावधानों का भी अधिनियम के अनुसार पालन नहीं किया गया था, अतः उसके अनुसरण में आरंभ की गई सम्पूर्ण कार्यवाही दूषित हो गई है।

27. तदनुसार, वर्तमान अपील **स्वीकार** की जाती है। मुकदमा अपराध संख्या 0003/2021, धारा 2/3 गिरोहबंद अधिनियम, थाना कोतवाली, जिला सीतापुर से उद्भूत आपराधिक प्रकीर्ण वाद संख्या 122/2021, नाजमी बेगम बनाम राज्य वाद में विद्वान विशेष न्यायाधीश, गिरोहबंद अधिनियम/अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 5, सीतापुर द्वारा पारित प्रश्नगत निर्णय एवं आदेश दिनांक 30-10-2021 को निरस्त किया जाता है।

28. फलस्वरूप जिला मजिस्ट्रेट, सीतापुर द्वारा पारित आदेश दिनांक 22-02-2021 को भी **निरस्त** किया जाता है।

29. जिला मजिस्ट्रेट, सीतापुर को निदेश दिया जाता है कि दिनांक 02-01-2021 के आदेश के अंतर्गत अपीलकर्ता की कुर्क संपत्तियों को अपीलकर्ता के पक्ष में तत्काल निर्मुक्त किया जाए।

30. वादव्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं किया जा रहा है।

(2023) 3 ILRA 732

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद 28.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर,

माननीय न्यायमूर्ति अजीत सिंह,

आपराधिक अपील संख्या 3212/2014

धर्ममुनि जोशी एवं अन्य। ...अपीलकर्तागण

बनाम

यूपी राज्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्तागण: श्री रमेश प्रसाद, श्री बीरेंद्र सिंह, श्री हफ़ीज़ खान, श्री हंस प्रताप सिंह, श्री सैयद अली इमाम

अधिवक्ता प्रतिवादीगण: शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धाराएँ 366, 368, 376 - बलात्कार के लिए सजा - अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 - धारा 3 (2) (v) - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धाराएँ 156 (3), 313 - सजा के विरुद्ध अपील - एफ.आई.आर. के अनुसार - पीड़िता को कुछ विषाक्त दवा दी गई - दोनों भाइयों ने एक साल तक उसके साथ बलात्कारी संबंध बनाए - सत्र न्यायाधीश ने आरोप तय किए - अभियोजन ने 7 गवाहों की गवाही दी - मेडिकल साक्ष्य अभियोजन के पक्ष को समर्थन नहीं करता क्योंकि कोई आंतरिक/बाहय चोट नहीं पाई गई। (पैराग्राफ 4, 6, 7, 11)

अपील स्वीकृत की गई। (E-13)

आयोजित: अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य यह नहीं प्रदर्शित करता है कि बलात्कार की घटना इस आधार पर हुई कि पीड़िता एक विशेष समुदाय से थी। न एफ.आई.आर. में और न ही मौखिक गवाही में इसका कोई सुझाव दिया गया है। पीड़िता की चिकित्सा रिपोर्ट में उसके निजी अंग पर कोई चोट नहीं मिली। अपीलकर्ताओं द्वारा

पीड़िता के साथ कोई बलात्कारी संबंध नहीं था। यह तथ्य कि शादी के बाद भी उसने अपने तीन बच्चों को छोड़ दिया और वह अभियुक्त के साथ रह रही थी। उसकी गवाही यह सिद्ध नहीं करती कि उसे किसी प्रकार के संबंध में मजबूर किया गया था। विवादित निर्णय और आदेश को निरस्त किया जाता है। (पैराग्राफ 15, 16, 20, 21)

उद्धृत वाद सूची:

1. पट्टन जमाल वली बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, 2021 (4) सुप्रीम 16
2. दिनेश @ बुद्ध बनाम राजस्थान राज्य, 2006 (2) सुप्रीम 363
3. कैनी राजन बनाम केरल राज्य, 2013 0 सुप्रीम (एससी) 896
4. विष्णु बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (अपराधिक अपील संख्या 204 वर्ष 2021)
5. पिंटू गुप्ता बनाम राज्य उत्तर प्रदेश (क्रिमिनल अपील संख्या 4083 वर्ष 2017)
6. पट्टन जमाल वली बनाम राज्य आंध्र प्रदेश, 2021 SCC ऑनलाईन SC 343

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकेर
माननीय न्यायमूर्ति अजित सिंह

1. अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता श्री सैयद अली इमाम और राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना।

2. इस मुकदमे का सबसे दुर्भाग्यपूर्ण पहलू यह है कि इस तथ्य के बावजूद कि यह घटना वर्ष 2008 में हुई थी, आरोपी 07.08.2014 से जेल में हैं।

3. यह अपील विशेष न्यायाधीश (एस.सी./एस.टी.अधिनियम)/अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, बांदा द्वारा विशेष आपराधिक मामला संख्या-77 और 107 वर्ष 2008 में धारा 366, 368, 376 भ०द०वि० और 3(2)V एस.सी./एस.टी. अधिनियम (राज्य बनाम धर्ममुनि जोशी और बालखंडी गिरि) के तहत पारित निर्णय और आदेश दिनांक 07.08.2014 को चुनौती देती है, जिसमें विद्वान विशेष न्यायाधीश ने आरोपियों, धर्ममुनि जोशी और बालखंडी गिरि को भारतीय दंड संहिता, 1860 (इसके बाद 'भ०द०वि०' के रूप में संदर्भित) की धारा 3(2)(v) के साथ अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 (इसके बाद एस.सी./एस.टी. अधिनियम के रूप में संदर्भित) की धारा 3(2)(v) के तहत दोषी ठहराया और सजा सुनाई है, और उन्हें 10,000/- रुपये के जुर्माने के साथ आजीवन कारावास की सजा सुनाई (डिफ़ॉल्ट सजा एक वर्ष), धारा 368 के अंतर्गत उन्हें 5000/- रुपए के जुर्माने के साथ दस वर्ष के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई और जुर्माना अदा न करने पर और छह माह के साधारण कारावास की सजा दी गई। अभियुक्त-अपीलकर्ता, धर्ममुनि जोशी को धारा 366 भ०द०वि० के तहत 5,000 रुपये के जुर्माने के साथ दस साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई और जुर्माना अदा न करने की स्थिति में छह महीने के साधारण कारावास से भी सजा सुनाई गई।

4. प्राथमिकी से निकाले गए संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि अभियोक्त्री को कुछ दवाएं दी गई थीं, जिनका इसमें विषाक्त प्रभाव पड़ता है और इस तरह उसे आरोपी का उनके घर तक पीछा करने का लालच दिया गया और उसके बाद, दोनों भाइयों ने एक साल तक उसके साथ जबरन यौन संबंध बनाए और एक साल बाद उसने धारा

156(3) द०प्र०स० के तहत एक आवेदन दायर किया, जिसकी परिणति जांच में हुई।

5. विवेचनाधिकारी ने लगभग पांच गवाहों के बयान दर्ज करने के बाद मामले की जांच की और नक्शा नज़री तैयार किया और पूछताछ की और पूरक रिपोर्ट दर्ज की, चोट की रिपोर्ट एकत्र करने के बाद, अभियोकत्री के मामले को प्राथमिकी में परिणत किया और आरोपी-अपीलकर्ताओं के खिलाफ आरोप पत्र दायर किया गया।

6. अभियुक्त का प्रकरण सत्र न्यायालय के लिए प्रतिबद्ध था क्योंकि मामला सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय था। विद्वान सत्र न्यायाधीश ने अभियुक्त पर आरोप तय किए। आरोपी को आरोप पढ़कर सुनाया गया, जिससे उन्होंने इन्कार किया और विचारण चाहा।

7. आरोप को साबित करने के लिए, अभियोजन पक्ष ने निम्नलिखित गवाहों की जांच की है जो निम्नानुसार हैं:

1	अभियोकत्री	अ०सा०-1
2	शंकर गिरी	अ०सा०-2
3	भरत गिरी	अ०सा०-3
4	डॉ श्रीमती अनीता सागर	अ०सा०-4
5	लाल मन वर्मा	अ०सा०-5
6	किशन लाल	अ०सा०-6
7	विजय त्रिपाठी	अ०सा०-7

8. चक्षुक संस्करण के समर्थन में निम्नलिखित दस्तावेज दायर किए गए थे:

1	प्राथमिकी	प्रदर्श क-5
2	तहरीरी रिपोर्ट	प्रदर्श क-1
3	मजरूबी रिपोर्ट	प्रदर्श क-2
4	पूरक रिपोर्ट	प्रदर्श क-3
5	आरोप पत्र	प्रदर्श क-7
6	आरोप पत्र	प्रदर्श क-8
7	नक़्शा नज़री सारणी के साथ	प्रदर्श क-3A
8	नक़्शा नज़री सारणी के साथ	प्रदर्श क-4

9. मुकदमे के अंत में और धारा 313 द०प्र०स० के तहत अभियुक्त का बयान दर्ज करने और अभियोजन और बचाव पक्ष की ओर से दलीलें सुनने के बाद, विद्वान विशेष न्यायाधीश ने अपीलकर्ता को दोषी ठहराया, जैसा कि पूर्वोक्त उल्लेख किया गया है।

10. जहां तक एस.सी./एस.टी. अधिनियम की धारा 3(2)(v) के तहत अपराध करने का संबंध है, अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि अपराध एस.सी./एस.टी. अधिनियम के 3(2)(v) के दायरे में नहीं आएगा क्योंकि यह साबित करने के लिए आवश्यक सामग्री में से कोई भी सामग्री नहीं है कि उक्त अधिनियम प्रतिबद्ध था क्योंकि अभियोकत्री उक्त समुदाय से संबंधित है और न ही यह ठोस सबूतों से साबित होता है कि अभियोक्ता ने इसलिए अपराध प्रतिबद्ध किया है (यदि कोई हो) क्योंकि वह उक्त समुदाय से संबंधित थी।

11. जहां तक धारा 376 भ०द०वि० के तहत अपराध करने का संबंध है, अपीलकर्ता के

अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि अभियुक्त को प्रस्तुत मामले में झूठा फंसाया गया है। चिकित्सा साक्ष्य अभियोजन पक्ष के संस्करण का समर्थन नहीं करते हैं क्योंकि अभियोकत्री पर कोई आंतरिक/बाहरी चोट नहीं पाई गई थी। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि विशेष न्यायाधीश का निष्कर्ष अनुमानों और क़यासों पर आधारित है और इसे पलटने की आवश्यकता है। अपने तर्क के समर्थन में, अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने पाटन जमाल वली बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, 2021 (4) सुप्रीम 16, दिनेश @ बुद्ध बनाम राजस्थान राज्य, 2006 (2) सुप्रीम 363, कैनी राजन बनाम राज्य केरल, 2013 0 सुप्रीम (एस.सी.) 896 और आपराधिक अपील संख्या-204 वर्ष 2021 (विष्णु बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) संख्या-4083 वर्ष 2017 (पिंटू गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) ने 28.7.2022 को फैसला सुनाया गया, में इस न्यायालय के फैसले पर भी भरोसा किया है और तर्क दिया है कि एस.सी./एस.टी. अधिनियम की धारा (3)(2)(v) और धारा 366, 368, 376 भ०द०वि० की कोई सामग्री नहीं बनती है, इसलिए दोषसिद्धि को रद्द करने की आवश्यकता है।

12. प्रतिवाद, राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि अभियुक्त की दोषसिद्धि न्यायसंगत और उचित है क्योंकि कथित रूप से किए गए अपराधों के तत्व बहुत अधिक हैं। आगे अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया है कि अभियुक्त-अपीलकर्ता अभियोक्ता की जाति से अच्छी तरह वाकिफ थे और केवल उसकी जाति के कारण उपरोक्त अपराध उसके साथ किया गया है और इसलिए, विद्वान विशेष न्यायाधीश का निष्कर्ष न्यायसंगत और उचित है। अपर शासकीय अधिवक्ता ने पाटन जमाल वली (उपरोक्त) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर बहुत भरोसा किया है। आरोपी ने भी उक्त फैसले पर भरोसा किया है।

13. इससे पहले कि हम पक्षों के अधिवक्ताओं द्वारा दिए गए सबूतों और तर्कों पर चर्चा करने का उद्यम करें, एस.सी./एस.टी. अधिनियम की धारा 3(2)(v) और भ०द०वि० की धारा 366, 368 और 375 के प्रावधानों पर चर्चा करना उचित होगा, जो निम्नानुसार हैं:

"3. अत्याचार के अपराधों के लिए दंड

(1)..................... xx............... xx.......

(2) जो कोई अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य न हो, - (i) .... एक्स..........

(ii).................... xx...........

(iii) .... xx...........

(iv) .... xx...............

(v) भारतीय दंड संहिता (45 वर्ष 1860) के अधीन किसी व्यक्ति या सम्पति के विरुद्ध इस आधार पर दस वर्ष या उससे अधिक की अवधि के कारावास से दंडनीय कोई अपराध करता है कि ऐसा व्यक्ति अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य है या ऐसी संपत्ति ऐसे सदस्य की है, वह आजीवन कारावास और जुर्माने से दंडनीय होगा।

366. जो कोई किसी स्त्री का अपहरण या व्यपहरण इस आशय से करता है कि वह विवश हो जाए या यह जानते हुए कि वह विवश होगी, किसी व्यक्ति से उसकी इच्छा के विरुद्ध विवाह करने के लिए विवश होगा या इस क्रम में कि उसे अवैध संभोग के लिए विवश या बहकाया जा सके, या यह जानते हुए कि उसे अवैध संभोग के लिए विवश या बहकाया जाएगा, दोनों में से किसी

भांति के कारावास से, जिसकी अवधि दस वर्ष तक की हो सकेगी, दण्डित किया जाएगा और जुर्माने से भी दण्डनीय होगा; [और जो कोई, इस संहिता में यथा परिभाषित आपराधिक अभित्रास के माध्यम से या प्राधिकार के दुरूपयोग या विवशता की किसी अन्य विधि के द्वारा, किसी महिला को किसी स्थान से इस आशय से जाने के लिए प्रेरित करेगा कि वह यह जानते हुए कि यह संभावना है कि उसे किसी अन्य व्यक्ति के साथ अवैध संभोग के लिए विवश या बहकाया जाएगा, पूर्वोक्त के रूप में दंडनीय होगा]।

368. गलत तरीके से छिपाना या कारावास में रखना, अपहरण या अपहरण किया गया - जो कोई, यह जानते हुए कि किसी व्यक्ति का अपहरण कर लिया गया है या उसका व्यपहरण कर लिया गया है, ऐसे व्यक्ति को गलत तरीके से छुपाता है या कैद करता है, वह उसी रीति से दण्डित किया जाएगा जैसे उसने ऐसे व्यक्ति का व्यपहरण या व्यपहरण उसी आशय या ज्ञान से किया था या उसी प्रयोजन के लिए किया था जिसके लिए वह ऐसे व्यक्ति को कारावास में छुपाता या निरुद्ध करता है।

[375. बलात्कार- एक आदमी को "बलात्कार" करने के लिए कहा जाता है, जो इसके बाद को छोड़कर, निम्नलिखित छह विवरणों में से किसी के तहत आने वाली परिस्थितियों में एक महिला के साथ संभोग करता है:

(पहला) - उसकी इच्छा के विरुद्ध।

(दूसरा) - उसकी सहमति के बिना।

(तीसरा) - उसकी सहमति से, जब उसकी सहमति उसे या किसी ऐसे व्यक्ति को डालकर प्राप्त की गई है जिसमें वह मृत्यु या चोट के भय में हो।

(चौथा) - उसकी सहमति से, जब आदमी जानता है कि वह उसका पति नहीं है, और उसकी सहमति इसलिए दी गई है क्योंकि वह मानती है कि वह एक ऐसा आदमी है जिससे वह खुद को कानूनी रूप से विवाहित मानती है।

(पांचवां) - उसकी सहमति से, जब ऐसी सहमति देने के समय, मन की अस्वस्थता या नशा के कारण या उसके द्वारा व्यक्तिगत रूप से या किसी अन्य विचित्र या हानिकारक पदार्थ के माध्यम कारण, वह उस की प्रकृति और परिणामों को समझने में असमर्थ है जिसके लिए वह सहमति देती है।

(छठा) - उसकी सहमति से या उसके बिना, जब वह सोलह वर्ष से कम आयु की हो।

स्पष्टीकरण -- बलात्कार के अपराध के लिए आवश्यक संभोग का गठन करने के लिए प्रवेश पर्याप्त है।

(अपवाद) - किसी पुरुष द्वारा अपनी ही पत्नी के साथ, पत्नी की आयु पंद्रह वर्ष से कम न होने के कारण, संभोग करना बलात्कार नहीं है।

14. कानून के उपरोक्त प्रावधानों को अब अभियोजन पक्ष के गवाहों के दस्तावेजी साक्ष्य के साथ-साथ चक्षुक संस्करण के मद्देनजर देखा जाएगा।

15. रिकॉर्ड पर मौजूद सबूत इस आधार पर बलात्कार के कमीशन के सिद्धांत को उजागर नहीं करते हैं कि अभियोक्त्री एक विशेष समुदाय से संबंधित है। न तो प्राथमिकी और न ही मौखिक गवाही दूर से भी ऐसा सुझाव देती है। धारा 376 भ०द०वि० के साथ पठित धारा 375 और एस.सी./एस.टी. अधिनियम की धारा 3(2)(v) के प्रावधानों को आकर्षित करने के लिए, अपराध के उक्त अवयवों को साबित करना होगा।

16 शिकायतकर्ता की मेडिकल रिपोर्ट में उसके प्राइवेट पार्ट पर कोई चोट नहीं पाई गई थी। योनि के स्राव से दो स्लाइड ली गईं और जांच के लिए

भेजी गईं। चिकित्सक द्वारा प्राप्त पैथोलॉजी रिपोर्ट और पूरक रिपोर्ट तैयार की गई। अनुपूरक रिपोर्ट में ऐसा कोई जीवित अथवा मृत शुक्राणुजोजा नहीं पाया गया जो बलात्कार के संबंध में अभियोजन पक्ष के मामले को ध्वस्त करता हो। न तो मृत और न ही जीवित शुक्राणुजोज़ा पाया गया था। उसका पांच महीने का भ्रूण चल रहा था।

17. इस निर्णय से पता चलता है कि विद्वान सत्र न्यायाधीश ने अभियुक्त-अपीलकर्ता को दोषी ठहराया है जहां अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 3(2)(v) के तहत अपराध करने का कोई सबूत नहीं था। न तो प्रथम सूचना रिपोर्ट और न ही अभियोजन पक्ष के गवाहों की मौखिक गवाही से दूर-दूर तक यह संकेत मिलता है कि उपरोक्त अपराध इस आधार पर किया गया था कि अभियोक्त्री एक विशेष समुदाय से संबंधित है।

18. मेडिकल रिपोर्ट में किसी शुक्राणुजोज़ा की उपस्थिति नहीं दिखाई देती है। उसके प्राइवेट पार्ट पर कोई चोट नहीं पाई गई। दुर्भाग्यवश, विद्वान न्यायाधीश ने भारतीय दंड संहिता की धारा 375 के घटकों के बारे में कहीं भी चर्चा नहीं की है। विद्वान सत्र न्यायाधीश ने यह भी माना है कि चूंकि वह विवाहित महिला थी, इसलिए उसे किसी प्रकार की चोट लगने की कोई आवश्यकता नहीं है। विद्वान सत्र न्यायाधीश ने इस तथ्य पर विचार किया है कि शुक्राणुजोज़ा पाया जा सकता है या नहीं भी पाया जा सकता है। महत्वपूर्ण पहलू हैं शुक्राणुजोज़ा को साबित न करना और किसी प्रकार की चोटों का पता न लगाना जो हमें विद्वान सत्र न्यायाधीश के निर्णय को पलटने की अनुमति देगा। जहां तक एस.सी./एस.टी. अधिनियम की धारा 3(2)(v) के तहत अपराध करने का संबंध है, इसका कोई निष्कर्ष नहीं है। केवल इस आधार पर कि पीड़िता और उसके परिवार के सदस्य एक विशेष समुदाय से संबंधित हैं, क्या यह कहा जा सकता है कि अपराध किया गया है? जवाब 'न' है। हम पाटन जमाल वली बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, 2021 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 343 में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले से भी मजबूत हैं, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया है:

"58. यह मुद्दा कि क्या अपराध किसी व्यक्ति के खिलाफ इस आधार पर किया गया था कि ऐसा व्यक्ति एस.सी. या एस.टी. समुदाय का सदस्य है या ऐसी संपत्ति किसी ऐसे सदस्य की है, अभियोजन पक्ष द्वारा मुकदमे में साक्ष्य के आधार पर स्थापित किया जाना है। हम सत्र न्यायाधीश से सहमत हैं कि अभियोजन पक्ष का मामला केवल इसलिए विफल नहीं होगा क्योंकि अ०सा०-1 ने पुलिस को दिए अपने बयान में यह उल्लेख नहीं किया था कि अपराध उसकी बेटी के खिलाफ किया गया था क्योंकि वह अनुसूचित जाति की महिला थी। हालांकि, अभियोजन पक्ष के पास यह दिखाने के लिए कोई अलग से सबूत नहीं है कि आरोपी ने अ०सा०-2 की जाति पहचान के आधार पर अपराध किया है। हालांकि यह मानना उचित होगा कि अभियुक्त अ०सा०-2 की जाति जानता था क्योंकि ग्राम समुदाय कसकर बुने हुए हैं और आरोपी भी अ०सा०-2 के परिवार का परिचित था, धारा 3(2)(v) की भाषा को ध्यान में रखते हुए ज्ञान को स्वयं अपराध के कमीशन का आधार नहीं कहा जा सकता है क्योंकि यह उस समय था जब प्रस्तुत मामले में अपराध किया गया था। जैसा कि हमने ऊपर चर्चा की है, अ०सा०-2 के उत्पीड़न की प्रतिच्छेदन प्रकृति के

कारण, यह स्थापित करना मुश्किल हो जाता है कि अपराध करने का कारण क्या था - चाहे वह उसकी जाति, लिंग या विकलांगता हो। यह एक प्रावधान की सीमा पर प्रकाश डालता है जहां एक गलत कार्य का कारण एक ही जमीन से उत्पन्न होता है या जिसे हम एकल अक्ष मॉडल के रूप में संदर्भित करते हैं।

59. यह उल्लेख करना उचित है कि अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) संशोधन अधिनियम, 2015 द्वारा धारा 3(2)(v) में संशोधन किया गया था, जो 26 जनवरी 2016 को लागू हुआ था। धारा 3(2)(v) के तहत "के आधार पर" शब्दों को "यह जानते हुए कि ऐसा व्यक्ति अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य है" के साथ प्रतिस्थापित किया गया है। इसने यह साबित करने की सीमा को कम कर दिया है कि जाति की पहचान के आधार पर अपराध किया गया था, एक ऐसी सीमा तक जहां केवल ज्ञान एक दोषसिद्धि को बनाए रखने के लिए पर्याप्त है। धारा 8 जो अपराधों के बारे में अनुमानों से संबंधित है, को खंड (सी) को शामिल करने के लिए भी संशोधित किया गया था ताकि यह प्रावधान किया जा सके कि यदि अभियुक्त पीड़ित या उसके परिवार से परिचित था, तो अदालत यह मान लेगी कि अभियुक्त पीड़ित की जाति या जनजाति की पहचान से अवगत था, जब तक कि अन्यथा साबित न हो। संशोधित धारा 8 इस प्रकार है:

"8. अपराधों के बारे में धारणा - इस अध्याय के तहत किसी अपराध के लिए अभियोजन में, यदि यह साबित हो जाता है कि:

(ए) अभियुक्त ने [इस अध्याय के तहत अपराध करने के आरोपी व्यक्ति द्वारा किए गए अपराधों के संबंध में कोई वितीय सहायता], या उचित रूप से संदेह है कि ऐसे व्यक्ति ने अपराध का दुष्प्रेरण किया था, विशेष न्यायालय यह मान लेगा, जब तक कि इसके विपरीत साबित न हो जाए।

(ख) इस अध्याय के अधीन व्यक्तियों के किसी समूह ने कोई अपराध किया है और यदि यह साबित हो जाता है कि किया गया अपराध भूमि या किसी अन्य विषय से संबंधित किसी विद्यमान विवाद का परिणाम था तो यह समझा जाएगा कि वह अपराध सामान्य आशय को प्रगाढ़ करने या सामान्य उद्देश्य के अभियोजन में किया गया था।

[(ग) अभियुक्त को पीड़ित या उसके परिवार का व्यक्तिगत ज्ञान था, न्यायालय यह समझेगा कि अभियुक्त पीड़ित की जाति या जनजाति की पहचान से अवगत था, जब तक कि इसके विपरीत साबित न हो जाए।

महिलाओं और बच्चों के विरुद्ध अत्याचारों पर संसद की स्थायी समिति की रिपोर्ट में यह टिप्पणी की गई है कि बरी होने की उच्च दर प्रभावी और शक्तिशाली समुदायों के निरंतर अपराध के लिए उनके विश्वास को बढ़ाती है और अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति समुदायों की महिलाओं के विरुद्ध लैंगिक हिंसा के मामले दर्ज करते समय अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम के उपबंधों को शामिल करने की सिफारिश करती है। हालांकि, जैसा कि हमने नोट किया है, एस.सी. और सत्र विचारण महिलाओं के खिलाफ अपराधों में दरार पड़ने का एक तरीका साक्ष्य बोझ के कारण है जो प्रतिच्छेदन उत्पीड़न के मामलों में मिलना लगभग असंभव हो जाता है। यह विशेष रूप से मामला है जब अदालतें धारा 3(2)(v) के तहत "जमीन पर" की आवश्यकता को "केवल आधार पर" के

रूप में पढ़ती हैं। एस.सी. और सत्र विचारण अधिनियम के तहत वर्तमान शासन ने संशोधन के बाद अधिनियम की धारा 3(2)(v) के तहत कार्य-कारण की आवश्यकता को बदलकर अधिनियम के तहत एक अंतर-अनुभागीय विश्लेषण के संचालन की सुविधा प्रदान की है, जिसमें ज्ञान की आवश्यकता है जो शासन को उस तरह के साक्ष्य के प्रति संवेदनशील बनाती है जो इस तरह के मामलों में उत्पन्न होने की संभावना है। हालांकि, चूंकि धारा 3(2)(v) में संशोधन किया गया था और धारा 8 के खंड (c) को अधिनियम 1 वर्ष 2016 द्वारा 26 जनवरी 2016 से प्रभावी किया गया था, इसलिए ये संशोधन मामले पर लागू नहीं होंगे। प्रस्तुत मामले में अपराध 31 मार्च 2011 को संशोधन से पहले हुआ है। इसलिए, हम मानते हैं कि प्रस्तुत मामले में साक्ष्य यह स्थापित नहीं करते हैं कि प्रस्तुत मामले में अपराध इस आधार पर किया गया था कि ऐसा व्यक्ति एस.सी. या एस.टी. समुदाय का सदस्य है।

19. भले ही, हम अ०सा०-1 के साक्ष्य से देखते हैं, जो 35 वर्ष की आयु में थी, ने कहीं भी मौखिक गवाही में यह उल्लेख नहीं किया है कि अभियुक्त ने उसे अपने घर में बंदी बनाकर रखा था क्योंकि वह एक विशेष समुदाय से थी और इसलिए, आरोप स्वयं साबित नहीं हुआ है। आरोपी को आरोपों के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता था। उसके पास जाति प्रमाण पत्र नहीं है, जिसे एस.सी./एस.टी. अधिनियम की धारा 3(2)(v) को लागू करने के लिए विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा देखना आवश्यक था, जो निर्णय में भी अनुपस्थित है। केवल इसलिए कि माता-पिता एक विशेष समुदाय से थे और उसका विवाह पहले गंगाराम बाजपेयी के साथ हुआ था, इसका अर्थ यह नहीं है कि यह साबित हो गया कि वह कृत्य इसलिए किया गया क्योंकि वह एक विशेष समुदाय से थी। इस प्रकार, एस.सी./एस.टी. अधिनियम की धारा 3(2)(v) के तहत दोषसिद्धि को बरकरार नहीं रखा जा सकता है और इसे रद्द किया जाता है।

20. यह साबित करने के लिए कोई चिकित्सा साक्ष्य नहीं है कि जब उसे अपने घर ले जाया गया था तो उसे आरोपियों द्वारा घसीटा गया था। पाटन जमाल वली बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, दिनेश @ बुद्ध बनाम राजस्थान राज्य, कैनी राजन बनाम राज्य केरल और विष्णु (उपरोक्त) में अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णय अभियुक्तों के लाभ में असमर्थ होगा। एक और पहलू यह है कि अ०सा०-1 एक वर्ष तक रहने के बाद एक अधिवक्ता के साथ कमिश्नरेट में गई थी, वहां भी उसने कोई हो-हल्ला नहीं मचाया है। यह नहीं कहा जा सकता कि वह अपनी इच्छा के विरुद्ध कैद थी। न तो यह कहा जा सकता है और न ही यह साबित होता है कि अपीलकर्ताओं द्वारा अभियोक्ता के साथ जबरन यौन संबंध बनाए गए थे। हम राज्य के अधिवक्ता द्वारा दी गई दलीलों को स्वीकार करने में असमर्थ हैं कि यह बलात्कार का मामला था। भ०द०वि० की धारा 366, 368 और 375 के तत्व साबित नहीं होते हैं। तथ्य यह है कि शादी के बाद भी उसने अपने तीन बच्चों को छोड़ दिया है और वह आरोपी के साथ रह रही थी। उसके साक्ष्य ये साबित नहीं करते हैं कि उसे किसी भी तरह के रिश्ते में मजबूर किया गया था।

21. उपर्युक्त के मद्देनजर, इस अपील की अनुमति दी जाती है। इस अपील में लगाए गए निर्णय और आदेश को रद्द किया जाता है। आरोपी-अपीलकर्ताओं को उनके खिलाफ लगाए

गए आरोपों से बरी कर किया जाता है। आरोपी इस न्यायालय के दिनांक 10.2.2023 के आदेश के अनुसार जमानत पर हैं। उन्हें आत्मसमर्पण करने की जरूरत नहीं है।

22. अभिलेख और कार्यवाही को तत्काल विचारण न्यायालय को वापस भेजा जाए।

(2023) 3 ILRA 738

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद 28.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर,

माननीय न्यायमूर्ति अजीत सिंह,

आपराधिक अपील संख्या 5149/2012

संलग्न

जेल अपील संख्या 5203/2012

मुकेश @ जीत लाल @ जटेये ...अपीलकर्ता

बनाम

यूपी राज्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री रत्नेश कुमार जयसवाल, श्री श्याम बाबू वैश्य, श्री चेतन चटर्जी (ए.सी.)

अधिवक्ता प्रतिवादी: शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धाराएँ 307/34, 504 और 506 - हत्या का प्रयास - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 313 - दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील - एफआईआर के अनुसार - दिनांक 16.10.2009 को, वादी, उसके चचेरे भाई और उसके चाचा अपने खेत में सिंचाई के लिए गए थे - लगभग एक साल पहले शिकायतकर्ता की चाची और आरोपी की पत्नी के बीच गाली-गलौज हुई थी और इसी कारण उनके बीच दुश्मनी थी - दोनों आरोपी व्यक्ति खेत के पास पहुँचे और गंदी भाषा का प्रयोग किया - आरोपी ने महेश की पीठ पर गोली चलाई - सत्र न्यायालय ने आरोप तय किए - आजीवन कारावास की सजा दी गई - कोई स्वतंत्र गवाह का परीक्षण नहीं हुआ - डॉक्टर ने अपनी कथन में कहा कि अगर उचित उपचार नहीं दिया गया तो यह घातक हो सकता है।(पैरा 2, 3, 5, 6, 11)

आयोजित: विचारणीय न्यायालय ने सही तरीके से आरोपियों को दोषी ठहराया क्योंकि PW1 और PW2 के विरुद्ध विश्वसनीय साक्ष्य थे, जो चिकित्सा साक्ष्य से पूरी तरह से समर्थित थे। सजा निर्धारित करते समय, न्यायालय को अनुपात का सिद्धांत ध्यान में रखना चाहिए। अपराध की गंभीरता, अपराध करने का तरीका, आरोपी की उम्र और लिंग को ध्यान में रखा जाना चाहिए। न्यायालय की सजा देने की विवेकाधीनता मनमाने या तर्कहीन तरीके से नहीं की जा सकती। यह देखते हुए कि अपीलकर्ताओं द्वारा पहले ही जो अवधि व्यतीत की गई है और दोनों अपीलकर्ता अपने चालीस के मध्य में युवा व्यक्ति हैं; उनके परिवारों में कोई आजीविका कमाने वाला नहीं है और उन्होंने अपनी की गई गलती को समझा है। (पैरा 14 ,18, 22)

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की गई है। (ई-13)

<u>**उद्धृत वाद सूची:**</u>

1. मोहम्मद गियासुद्दीन बनाम राज्य एपी, AIR 1977 SC 1926

2. श्याम सुंदर बनाम पुराण, (1990) 4 SCC 731

3. राज्य मध्य प्रदेश बनाम नजाब खान, (2013) 9 SCC 509
4. जमील बनाम राज्य उत्तर प्रदेश, (2010) 12 SCC 532
5. गुरु बसवराज बनाम राज्य कर्नाटक, (2012) 8 SCC 734
6. देव नारायण मंडल बनाम राज्य उत्तर प्रदेश, (2004) 7 SCC 257
7. श्याम नारायण बनाम राज्य (NCT दिल्ली), (2013) 7 SCC 77
8. सूमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह, (2014) 7 SCC 323
9. राज्य पंजाब बनाम बावा सिंह, (2015) 3 SCC 441
10. राज बाला बनाम हरियाणा राज्य, (2016) 1 SCC 463
11. कोकैयाबाई यादव बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, (2017) 13 SCC 449
12. रावड़ा सशिकला बनाम एपी राज्य, AIR 2017 SC 1166
13. जमील बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2010) 12 SCC 532
14. गुरु बसवराज बनाम कर्नाटक राज्य, (2012) 8 SCC 734
15. सूमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह, (2014) 7 SCC 323
16. पंजाब राज्य बनाम बावा सिंह, (2015) 3 SCC 441 17. राज बाला बनाम हरियाणा राज्य, (2016) 1 SCC 463

<u>(प्रति माननीय न्यायमूर्ति अजित सिंह)</u>

1. अपीलकर्ताओं-अभियुक्तों के लिए श्री चेतन चटर्जी और मिस निशि मेहरोत्रा, एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र), राज्य की ओर से उपस्थित अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

2. यह आपराधिक अपील विशेष न्यायाधीश (ई.सी. अधिनियम), मिर्जापुर द्वारा सत्र परीक्षण संख्या-14 वर्ष 2010 (राज्य बनाम हरि नारायण और अन्य) में पारित निर्णय और आदेश 22.10.2012 के खिलाफ दायर की गई है, जो केस अपराध संख्या-1096 वर्ष 2009 से उद्भूत है, जिसके तहत अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराया गया है और धारा 307/34 भ०द०वि० के तहत आजीवन कारावास और 3000/- रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई गई है और जुर्माना अदा न करने पर आरोपी को अतिरिक्त एक वर्ष कारावास की सजा सुनाई गई है, धारा 504 भ०द०वि० के तहत प्रत्येक को एक वर्ष कठोर कारावास और 1000/- रुपये का जुर्माना और जुर्माना अदा न करने पर तीन माह का कठोर कारावास, धारा 506 भ०द०वि० के तहत, 4 वर्ष का कठोर कारावास और 2,000/- रुपये का जुर्माना और जुर्माना अदा न करने पर अभियुक्त को आठ माह का कठोर कारावास भुगतना होगा। सभी सजाएं साथ-साथ चलेंगी।

3. इस घटना की प्रथम सूचना हरि कुमार गौड़ द्वारा दिनांक 16.10.2009 को थाना-चुनार, जिला-मिर्जापुर में दर्ज कराई गई तथा प्रथम सूचना रिपोर्ट में उल्लेख किया गया कि दिनांक 16.10.2009 को रात्रि लगभग 8:30 बजे सूचनाकर्ता, उसका चचेरा भाई योगेश कुमार एवं उसका चाचा सदानंद गौड़ सिंचाई के लिए अपने खेत में गए थे। रात करीब 9:16 बजे आरोपी हरि नारायण @ देवगंडा @ झिंगुरी पुत्र श्यामा बिंद मजदूरी करता था और पत्नी व बच्चों के साथ ससुराल में रहा करता था। लगभग एक साल

पहले एक गाली-गलौज (अपमानजनक शब्दों) का आदान-प्रदान सूचना देने वाले की चाची और आरोपी हरि नारायण की पत्नी @ देवगांडा @ झिंगुड़ी के बीच हुआ और इसी कारण उनके बीच दुश्मनी थी। आरोपियों ने गंभीर परिणाम भुगतने की धमकी दी लेकिन सूचनाकर्ता ने इसे गंभीरता से नहीं लिया। दूसरा आरोपी मुकेश गांव देवगौड़ा आता था, इसीलिए सूचनाकर्ता को वह जानता था। रात करीब 9:15 बजे दोनों आरोपी अपनी-अपनी मोटरसाइकिल से खेत के पास पहुंचे। सूचनाकर्ता के भाई को देखते ही दोनों आरोपियों ने गंदी भाषा का प्रयोग किया और उस समय आरोपी मुकेश ने अपनी पिस्टल निकाल ली और सूचना देने वाले महेश के भाई ने भागने की कोशिश की तो आरोपी हरि नारायण @ देवगांडा @ झिंगुरी ने महेश की पीठ पर गोली चला दी। हम डर गए और मैदान की ओर भाग गए। महेश जमीन पर गिर पड़ा। महेश पर हमला करने के बाद दोनों आरोपी अपनी मोटरसाइकिल पर मौके से फरार हो गए। घायल को मिर्जापुर अस्पताल ले जाया गया, जहां से उसे प्राथमिक उपचार के बाद बीएचयू अस्पताल रेफर कर दिया गया।

4. आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ मामला दर्ज किया गया था। जांच के बाद पुलिस ने धारा 307, 504 और 506 भ०द०वि० के तहत चार्जशीट दाखिल की। विद्वान मजिस्ट्रेट ने आरोपी व्यक्तियों को बुलाया और उन्हें सत्र न्यायालय में उपारपित किया क्योंकि प्रथम दृष्टया आरोप धारा 307, 504 और 506 भ०द०वि० के तहत अपराधों के लिए थे।

5. बुलाए जाने पर, आरोपी-अपीलकर्ताओं ने दोषी नहीं होने का अनुरोध किया और मुकदमा चलाने का दावा किया। विद्वान सत्र न्यायाधीश ने धारा 307, 504 और 506 भ०द०वि०के तहत आरोप विरचित किए।

6. मुकदमा शुरू हुआ और अभियोजन पक्ष ने 6 गवाहों की जांच की जो इस प्रकार हैं:

1	हरी ओम	अ०सा०-1
2	महेश कुमार गौण	अ०सा०-2
3	डॉ ए के पाण्डेय	अ०सा०-3
4	कॉन्सटबल श्याम सुंदर	अ०सा०-4
5	डॉ प्रेम शंकर	अ०सा०-5
6	एस आई पन्नाग भूषण	अ०सा०-6

7. चक्षुक संस्करण के समर्थन में निम्नलिखित दस्तावेज दायर किए गए और साबित हुए:

1	शिकायत	प्रदर्श क-1
2	फ़र्द बरामदगी	प्रदर्श क-2
3	चिकित्सीय परीक्षण रिपोर्ट	प्रदर्श क-3
4	प्राथमिकी	प्रदर्श क-4
5	जी डी की कॉपी	प्रदर्श क-5
6	एडमिशन स्लिप	प्रदर्श क-6
7	रोगी की हिस्ट्री	प्रदर्श क-7
8	आपरेटिव नोट्स	प्रदर्श क-8
9	चिकित्सीय परीक्षण रिपोर्ट	प्रदर्श क-9

10	डिस्चार्ज नोट्स	प्रदर्श क-10
11	एक्स रे रिपोर्ट	प्रदर्श क-11
12	एक्स रे रिपोर्ट	प्रदर्श क-12
13	नक़्शा नज़री	प्रदर्श क-13
14	आरोप पत्र	प्रदर्श क-14
15	फ़र्द बरामदगी	प्रदर्श क-15

8. मुकदमे के अंत में और धारा 313 द०प्र०स० के तहत अभियुक्त के बयान दर्ज करने और अभियोजन और बचाव पक्ष की ओर से दलीलें सुनने के बाद, विद्वान सत्र न्यायाधीश ने अभियुक्त-अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराया, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है।

9. विचारण न्यायालय ने गवाहों के बयान दर्ज किए और दोनों पक्षों की दलीलें सुनने के बाद, अपीलकर्ताओं को पूर्वोक्त के रूप में दोषी ठहराया।

10. इस न्यायालय ने रिकॉर्ड पर उपलब्ध साक्ष्यों का अवलोकन किया है। शिकायतकर्ता हरिओम गौड़ अ०सा०- 1, जिसने घटना देखी थी, ने आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ गवाही दी है और अ०सा०- 2 महेश कुमार गौड़ ने विशेष रूप से आरोपी व्यक्तियों को नामजद किया है और उनके साक्ष्य की पुष्टि अ०सा०- 3 डॉ ए.के. पांडे के चिकित्सा साक्ष्य द्वारा की गई है।

11. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने विशेष रूप से कहा है कि इस मामले में किसी भी स्वतंत्र गवाह की जांच नहीं की गई है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया है कि घायल महेश कुमार गौण को चोटें नहीं आई थीं, जिसके बारे में कहा जा सकता है कि वे जीवन के लिए घातक थे और डॉक्टर ने अपने बयान में कहीं भी उल्लेख नहीं किया है कि घायल को लगी चोटें सामान्य परिस्थितियों में जीवन के लिए घातक थीं। डॉक्टर ने केवल यह उल्लेख किया है कि यदि उचित उपचार नहीं दिया गया होता तो चोट घातक हो सकती है। अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि यह घटना दोनों गुटों के बीच पिछली दुश्मनी के कारण हुई है और घटना अचानक हुई थी और आरोपी व्यक्तियों ने घायल महेश कुमार गौण को मौत के इरादे से चोट नहीं पहुंचाई थी। वह आगे प्रस्तुत करता है कि आरोपी मुकेश @ जीत लाल @ जेतये के कहने पर अन्य आरोपी हरि नारायण @ देवगांडा @ झिंगुरी ने घायल पर गोली चलाई, जो उसकी पीठ पर लगी। घायल के गैर-महत्वपूर्ण हिस्से पर चोटें आई हैं। घायलों को मिली चोटें हालांकि गंभीर थीं, लेकिन जीवन के लिए घातक नहीं थीं। अपीलकर्ताओं को धारा 307 भ०द०वि० के तहत दोषी नहीं ठहराया जा सकता था, लेकिन उन्हें केवल धारा 324 के साथ धारा 34 भ०द०वि० के तहत सबूत के अनुसार दोषी ठहराया गया था।

12. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि यह घटना वर्ष 2009 में हुई थी। अभियुक्त मुकेश @ जीत लाल @ जेताया 19.10.2009 से जेल में है और अभियुक्त हरि नारायण @ देवगंडा @ झिंगुड़ी दिनांक 22.10.2012 से जेल में है। दोनों आरोपियों को वर्ष 2012 में दोषी ठहराया गया था। उन्होंने आगे कहा कि आरोपी व्यक्तियों ने हिरासत की मानसिक और शारीरिक पीड़ा का सामना किया है और उन्होंने वर्ष 2012 से आपराधिक मुकदमे की मानसिक पीड़ा का सामना किया है।

13. अपर शासकीय अधिवक्ता ने अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों का जोरदार विरोध किया है और प्रस्तुत किया है कि आरोपी हरि नारायण @ देवगांडा @ झिंगुरी ने घायल महेश कुमार गौण पर गोली चलाई थी, जिससे उसे गंभीर चोट लगी थी और डॉक्टर की राय के अनुसार घायल को लगी चोट खतरनाक और जीवन के लिए घातक थी। गोली घायलों की पीठ के केंद्र में लगी थी और उन्हें विचारण न्यायालय ने धारा 34 भ०द०वि० सपठित धारा 307 के तहत सही ठहराया है।

14. हमने रिकॉर्ड पर उपलब्ध पूरी सामग्री का अवलोकन किया है और सबूतों पर बारीकी से विचार किया है, हमारी राय है कि विचारण न्यायालय ने आरोपी व्यक्तियों को सही ठहराया है क्योंकि आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ अ०सा०-1 सूचनाकर्ता और अ०सा०- 2 के घायल होने के विश्वसनीय सबूत थे, जो चिकित्सा साक्ष्य द्वारा पूरी तरह से पुष्टि की गई थी। अभियुक्त क्रमश 19.10.2009 और 22.10.2012 से जेल में हैं। अपीलकर्ताओं के पुराने वकीलों ने सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न निर्णयों और अभियुक्तों की कम उम्र और घटना के तरीके पर विचार करते हुए सजा को संशोधित करने के लिए वैकल्पिक प्रार्थना पर विचार करने के लिए प्रार्थना की है। निम्नलिखित निर्णय का संदर्भ आवश्यक होगा।

15. मो. गियासुद्दीन बनाम स्टेट ऑफ ए.पी., [ए.आई.आर. 1977 एस.सी. 1926], सजा में पुनर्वास और सुधारात्मक पहलुओं की व्याख्या करते हुए सुप्रीम कोर्ट द्वारा देखा गया है:

"अपराध एक पैथोलॉजिकल विपथन है। अपराधी को आमतौर पर सुधारा जा सकता है और राज्य को बदला लेने के बजाय पुनर्वास करना होगा। उप-संस्कृति जो असामाजिक व्यवहार की ओर ले जाती है, उसका मुकाबला अनुचित क्रूरता से नहीं बल्कि पुनर्संस्कृतिकरण द्वारा किया जाना चाहिए। इसलिए, व्यक्ति और लक्ष्य में पेनोलॉजी में रुचि का ध्यान उसे समाज के लिए उबारना है। कठोर और बर्बर दंड का प्रहार इस प्रकार अतीत और प्रतिगामी समय का अवशेष है। मानव आज एक ऐसे व्यक्ति को फिर से आकार देने की प्रक्रिया के रूप में सजा देता है जो आपराधिकता में बिगड़ गया है और आधुनिक समुदाय की सामाजिक रक्षा के साधन के रूप में अपराधी के पुनर्वास में प्राथमिक हिस्सेदारी है। इसलिए हमारी आपराधिक अदालतों में 'आतंक' के दृष्टिकोण के बजाय चिकित्सीय होना चाहिए, क्योंकि व्यक्ति की क्रूर कैद केवल उसके दिमाग की पंगुता पैदा करती है। यदि आप किसी व्यक्ति को प्रतिशोध की सजा देना चाहते हैं, तो आपको उसे घायल करना होगा। यदि आप उसे सुधारना चाहते हैं, तो आपको उसे सुधारना होगा और, मानव का चोटों से सुधार नहीं होगा।

16. शाम सुंदर बनाम पुराण, (1990) 4 एस.सी.सी. 731 में, जहां उच्च न्यायालय ने धारा 304 भाग 1 के तहत अपराध के लिए सजा को कम कर दिया, उच्चतम न्यायालय ने कहा कि सजा को अपर्याप्त होने के कारण बढ़ाया जाना चाहिए। यह अवधारित किया गया था:

"किसी विशेष अपराध के लिए सजा तय करते समय अदालत को अपराध की प्रकृति, जिन परिस्थितियों में यह किया गया था, अपराधी द्वारा दिखाए गए विचार-विमर्श की डिग्री को ध्यान में रखना चाहिए। सजा की माप अपराध की गंभीरता के अनुपात में होना चाहिए।

17. मध्य प्रदेश बनाम नजब खान, (2013) 9 एस.सी.सी. 509 में, उच्च न्यायालय ने

दोषसिद्धि को बरकरार रखते हुए, पहले से ही काटी गई 3 साल की सजा को कम कर दिया जो केवल 15 दिन थी। उच्चतम न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा दी गई सजा को बहाल कर दिया। जमील बनाम यूपी राज्य (2010) 12 एस.सी.सी. 532, गुरु बसवराज बनाम कर्नाटक राज्य, (2012) 8 एस.सी.सी. 734 में दिए गए निर्णयों का उल्लेख करते हुए अदालत ने इस प्रकार कहा:

"सजा प्रणाली के संचालन में, कानून को सुधारात्मक मशीनरी या तथ्यात्मक मैट्रिक्स के आधार पर निवारण को अपनाना चाहिए। प्रत्येक मामले में तथ्य और दी गई परिस्थितियां, अपराध की प्रकृति, जिस तरीके से इसकी योजना बनाई गई और उसे अंजाम दिया गया, अपराध करने का मकसद, अभियुक्त का आचरण, इस्तेमाल किए गए हथियारों की प्रकृति और अन्य सभी परिस्थितियां प्रासंगिक तथ्य हैं जो विचार के क्षेत्र में प्रवेश करेंगे। हम यह भी दोहराते हैं कि अपर्याप्त सजा देने के लिए अनुचित सहानुभूति कानून की प्रभावकारिता में जनता के विश्वास को कम करने के लिए न्याय वितरण प्रणाली को अधिक नुकसान पहुंचाएगी। यह अदालत का कर्तव्य है कि वह अपराध की प्रकृति और जिस तरीके से इसे निष्पादित या प्रतिबद्ध किया गया था, उसके संबंध में उचित सजा दे। अदालतों को उचित सजा देने पर विचार करते समय न केवल अपराध के पीड़ितों के अधिकारों को बल्कि पूरे समाज को भी ध्यान में रखना चाहिए।

18. देव नारायण मंडल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(2004) 7 एस.सी.सी. 257] में 'उचित दंड' की व्याख्या यह देखते हुए की गई थी कि दंड अत्यधिक कठोर या हास्यास्पद रूप से कम नहीं होना चाहिए। सजा की मात्रा का निर्धारण करते समय, अदालत को 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखना चाहिए। सजा किसी दिए गए मामले के तथ्यों पर आधारित होनी चाहिए। अपराध की गंभीरता, अपराध करने का तरीका, आरोपी की उम्र और लिंग को ध्यान में रखा जाना चाहिए। सजा देने में न्यायालय के विवेक का प्रयोग मनमाने ढंग से या सनकी तरीके से नहीं किया जा सकता है।

19. बाद के निर्णयों में, सर्वोच्च न्यायालय ने आनुपातिकता के सिद्धांत की पुष्टि करके आनुपातिक सजा पर जोर दिया है। श्याम नारायण बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली), (2013) 7 एस.सी.सी. 77 में, यह बताया गया था कि किसी भी अपराध के लिए सजा का एक सामाजिक लक्ष्य है। अपराध की प्रकृति और अपराध करने के तरीके के संबंध में सजा दी जानी है। सजा देने का मूल उद्देश्य इस सिद्धांत पर आधारित है कि आरोपी को यह महसूस करना चाहिए कि उसके द्वारा किए गए अपराध ने न केवल पीड़ित के जीवन में सेंध लगाई है, बल्कि सामाजिक ताने-बाने में भी सेंध लगाई है। सिर्फ सजा का मकसद यह है कि समाज को इस तरह के अपराध से फिर से नुकसान न हो। किए गए अपराध और लगाए गए दंड के बीच आनुपातिकता के सिद्धांत को ध्यान में रखा जाना चाहिए। समग्र रूप से समाज पर प्रभाव को देखना होगा। इसी तरह का विचार सुमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह, (2014) 7 एस.सी.सी. 323, पंजाब राज्य बनाम बावा सिंह, (2015) 3 एस.सी.सी. 441, और राज बाला बनाम हरियाणा राज्य, (2016) 1 एस.सी.सी. 463 में व्यक्त किया गया है।

20. कोकैयाबाई यादव बनाम छत्तीसगढ़ राज्य (2017) 13 एस.सी.सी. 449 में, यह देखा गया है कि सुधारक अपराधी जो अपने गलत कामों

को समझते हैं, अपने कृत्यों को समझने में सक्षम हैं, बाहरी दुनिया में एक उपयोगी जीवन जीने की इच्छा के साथ नागरिकों में विकसित और वर्णित हैं, दुनिया को मानवीय बनाने की क्षमता रखते हैं।

21. रवाडा शशिकला बनाम आंध्र प्रदेश राज्य 2017 एस.सी. 1166 में, उच्चतम न्यायालय ने जमील बनाम यूपी राज्य (2010) 12 एस.सी.सी. 532, गुरु बसवराज बनाम कर्नाटक राज्य, (2012) 8 एस.सी.सी. 734, सुमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह, (2014) 7 एस.सी.सी. 323, पंजाब राज्य बनाम बावा सिंह, (2015) 3 एस.सी.सी. 441, और राज बाला बनाम हरियाणा राज्य, (2016) 1 एस.सी.सी. 463 और दोहराया है कि, सजा प्रणाली के संचालन में, कानून को तथ्यात्मक मैट्रिक्स के आधार पर सुधारात्मक मशीनरी या निवारक को अपनाना चाहिए। प्रत्येक मामले में तथ्य और दी गई परिस्थितियां, अपराध की प्रकृति, जिस तरीके से इसकी योजना बनाई गई और उसे अंजाम दिया गया, अपराध करने का उद्देश्य, अभियुक्त का आचरण, प्रयुक्त हथियारों की प्रकृति और अन्य सभी परिस्थितियां प्रासंगिक तथ्य हैं जो विचारणीय क्षेत्र में प्रवेश करेंगे। इसके अलावा, सजा देने में अनुचित सहानुभूति न्याय व्यवस्था को अधिक नुकसान पहुंचाएगी और कानून की प्रभावकारिता में जनता के विश्वास को कम करेगी। प्रत्येक न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह अपराध की प्रकृति और उसके कृत्य के तरीके को ध्यान में रखते हुए उचित सजा दे। उच्चतम न्यायालय ने आगे कहा कि अदालतों को न केवल अपराध के पीड़ित के अधिकार को बल्कि बड़े पैमाने पर समाज को भी ध्यान में रखना चाहिए। उचित दंड देने पर विचार करते समय, पूरे समाज पर अपराध के प्रभाव और कानून के शासन को संतुलित करने की आवश्यकता है। देश में न्यायिक प्रवृत्ति सुधार और सजा के बीच संतुलन बनाने की ओर रही है। समाज की सुरक्षा और आपराधिक प्रवृत्ति पर मुहर लगाना कानून का उद्देश्य होना चाहिए जिसे अपराधियों और गलत काम करने वालों पर उचित सजा देकर प्राप्त किया जा सकता है। कानून, व्यवस्था और शांति बनाए रखने के लिए एक उपकरण के रूप में, समाज के सामने आने वाली चुनौतियों का प्रभावी ढंग से सामना करना चाहिए, क्योंकि समाज अपराध और असामंजस्य के गंभीर खतरों के तहत लंबे समय तक सहन और विकसित नहीं हो सकता है। इसलिए यह आवश्यक है कि सजा देने में अनुचित उदारता से बचा जाए। इस प्रकार, देश में अपनाया गया दांडिक न्याय विधिशास्त्र प्रतिशोधात्मक नहीं है बल्कि सुधारात्मक और संशोधात्मक है। साथ ही, हमारी आपराधिक न्याय प्रणाली में अंतर्निहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से भी बचा जाना चाहिए।

22. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों और इस मामले में अपीलकर्ताओं द्वारा पहले से ही गुजारी गई वास्तविक अवधि और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि इस मामले में आरोपी व्यक्तियों द्वारा पहले ही काफी अवधि पूरी की जा चुकी है और तथ्य यह है कि दोनों अपीलकर्ता अपने मध्य चालीसवें वर्ष में युवा व्यक्ति हैं; उनके परिवारों में कोई कमाने वाला नहीं है और अब तक उन्हें अपने द्वारा की गई गलती का एहसास हो गया है और वे अपने आचरण के प्रति पश्चाताप करते हैं और अपने विनम्र और सहकारी व्यवहार के साथ उस समाज के लिए सेवा करना आवश्यक महसूस करते हैं जिससे वे संबंधित हैं और अब वे खुद को कानून का पालन करने वाले नागरिक

में बदलना चाहते हैं, मेरा विचार है कि उन्हें स्वयं में सुधार लाने और जिस समाज से वे संबंध रखते हैं, उसमें अपना बेहतर योगदान देने का अवसर दिया जाना चाहिए।

23. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, रिकॉर्ड पर उपलब्ध सबूतों पर विचार करते हुए और चोट की प्रकृति पर विचार करते हुए, यह न्यायालय आरोपी व्यक्तियों द्वारा पहले से ही की गई सजा को बदलना उचित समझता है।

24. नतीजतन, इस मामले में अपीलकर्ताओं द्वारा जेल में पहले से ही गुजारी गई अवधि को ध्यान में रखते हुए और साथ ही यह विचार करते हुए कि उन्होंने मुकदमे की शारीरिक और मानसिक पीड़ा का सामना किया है और 10 साल की लंबी अवधि के लिए दोषी ठहराए जाने के बाद, धारा 307/34 के तहत उन्हें दी गई सजा को प्रत्येक को 2000 रुपये के जुर्माने के साथ जेल में पहले से ही काटी गई सजा में बदला जाता है।

25. अभियुक्त-अपीलकर्ताओं को निर्देश दिया जाता है कि वे निर्णय पारित होने की तारीख से तीन महीने के भीतर निचली न्यायपालिका के समक्ष 2,000 रुपये का जुर्माना जमा करें और उन्हें रिहा कर दिया जाए और उपरोक्त निर्देश के अनुसार जुर्माना अदा न करने की स्थिति में उन्हें पंद्रह दिनों की अवधि के लिए साधारण कारावास भुगतना होगा।

26. उपरोक्त शर्तों में अपील की आंशिक रूप से अनुमति है।

27. कार्यालय को निर्देश दिया जाता है कि वह इस आदेश की एक प्रति सत्र न्यायाधीश, मिर्जापुर को अनुपालन के लिए प्रेषित करे।

28. कार्यालय को विचारण न्यायालय के रिकॉर्ड को तुरंत वापस भेजने का भी निर्देश दिया जाता है।

29. श्री चेतन चटर्जी और मिस निशि मेहरोत्रा, एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) ने अपीलकर्ताओं, मुकेश @ जीत लाल @ जेतये और हरि नारायण @ देवगांडा @ झिंगुरी की ओर से इस अपील में बहस की है और उन्हें उच्च न्यायालय कानूनी सहायता समिति द्वारा पारिश्रमिक के रूप में 15,000/- रुपये दिया जाएगा।

(2023) 3 ILRA 745

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 14.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर,

माननीय न्यायमूर्ति अजीत सिंह,

आपराधिक अपील संख्या 5303/2008

शाहिद ...अपीलकर्ता

बनाम

यूपी राज्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री एस.के. गुप्ता, श्री अंबरीश कुमार कश्यप, श्री हफीज खान, श्री एस.के. विद्यार्थी, श्री एस.आर. वर्मा

अधिवक्ता प्रतिवादी: शासकीय अधिवक्ता

अपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860- धाराएँ 376 - बलात्कार के लिए दंड - अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 - धारा 3 (2) (v)- दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धाराएँ 313, 433- दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील - एफआईआर के अनुसार - दिनांक 03.12.2006 को, जब पीड़िता बाहर खेल रही थी, आरोपी ने उसे अपने घर

बुलाया और बलात्कार किया - विचारणीय न्यायालय ने आरोप तय किए - अभियोजन पक्ष ने 12 गवाहों का परीक्षण किया - कोई दस्तावेजी साक्ष्य यह सिद्ध नहीं करता कि घायल अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का है, जो न तो जांच अधिकारी के समक्ष और न ही सत्र न्यायालय में प्रस्तुत किया गया - कोई स्वतंत्र गवाह का परीक्षण नहीं किया गया - पीड़िता और P.W.1 को आरोपी नहीं पता था - P.W.1 ने बलात्कार की घटना से इनकार किया - कोई आंतरिक/बाहय चोट नहीं मिली (पैरा 2, 3, 5, 6, 9, 10)

आयोजित: अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य बलात्कार की घटना कथन को प्रदर्शित करता है कि पीड़िता एक विशेष समुदाय की है। न तो एफआईआर और न ही मौखिक गवाही ने इसका सुझाव दिया है। यह विश्वास करने लायक नहीं है कि कोई व्यक्ति जो यौन अपराध करना चाहता है, वह पीड़िता से उसका नाम, जाति पूछेगा और फिर अवैध कार्य करेगा। पीड़िता चार साल की बच्ची है और घटना को पीड़िता ने ठीक से समझाया है, इसलिए ऐसे कार्य की संभावना है। आरोपी को धारा 376 के तहत सही ढंग से दोषी ठहराया गया है - 'सुधारात्मक दंड का सिद्धांत' अपनाया जाना चाहिए और 'अनुपात का सिद्धांत' ध्यान में रखते हुए दंड लगाने की जरूरत है। इसलिए, अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम के तहत लगाए गए आरोपों से मुक्त किया गया। (पैरा 14, 15, 17, 24, 25)

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की गई। (E-13)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. विष्णु बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (अपराधिक अपील संख्या 204 / 2021)
2. पिंटू गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (अपराधिक अपील संख्या 4083 / 2017)
3. वेद प्रकाश बनाम हरियाणा राज्य, JIC 1996 SC 18 4. पट्टन जमाल वली बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, 2021 SCC ऑनलाईन SC 343
5. मोहम्मद गियासुद्दीन बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, (AIR 1977 SC 1926)
6. देव नारायण मंडल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2004) 7 SCC 257
7. रवादा साशिकला बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, AIR 2017 SC 1166
8. जामील बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2010) 12 SCC 532 9. गुरु बसवराज बनाम कर्नाटक राज्य, (2012) 8 SCC 734
10. सुमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह, (2014) 7 SCC 323
11. राज्य पंजाब बनाम बावा सिंह, (2015) 3 SCC 441
12. राज बाला बनाम राज्य हरियाणा, (2016) 1 SCC 463

<u>माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकेर</u>
<u>माननीय न्यायमूर्ति अजीत सिंह</u>

1. अभियुक्त-अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अमरीश कश्यप और राज्य की ओर से ए.जी.ए. को सुना।

2. यह अपील विशेष न्यायाधीश (एससी/एसटी एक्ट), कानपुर नगर द्वारा विशेष सत्र परीक्षण संख्या 670/2007 (राज्य बनाम शाहिद) में पारित दिनांक 04.12.2007 के निर्णय और आदेश को चुनौती देती है, जिसमें विद्वान विशेष न्यायाधीश ने अभियुक्त-अपीलकर्ता, शाहिद को भारतीय दंड संहिता, 1860 (इसके बाद

भा0दं0सं0 के रूप में संदर्भित) की धारा 376 के तहत आजीवन कारावास और 10,000 रुपये के जुर्माने के लिए दोषी ठहराया और सजा सुनाई है, इसके आगे 363भा0दं0सं0 सपठित धारा 3 (2) (v) अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 (इसके बाद इसे इसके बाद एससी/एसटी अधिनियम कहा गया है) के तहत 5 वर्ष के कठोर कारावास और 5000/- रुपये के जुर्माने के लिए दोषी ठहराते हुए उसे आजीवन कारावास और 10,000/- रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई और जुर्माना अदा करने में चूक के मामले में आगे चलकर एक वर्ष के साधारण कारावास की सजा हो सकती है।

3. अभिलेख से प्राप्त संक्षिप्त तथ्य यह है कि अभियोक्ता के पिता विजय कुमार ने पुलिस स्टेशन कैंट कानपुर नगर को एक शिकायत दर्ज कराई जिसमें कहा गया था कि 03.12.2006 को लगभग 4.00 बजे, जब अभियोक्ता घर के बाहर खेल रही थी, आरोपी-अपीलकर्ता, शाहिद ने उसे पीछे से पकड़ लिया, शाहिद ने उसे अपने घर में बहला-फुसलाकर अपने घर में ले गया और उसके साथ बलात्कार करना शुरू कर दिया। अभियोक्ता द्वारा शोर मचाने पर सूचनाकर्ता अपने पड़ोसियों के साथ घटना स्थल पर पहुंचा जहां उन्होंने देखा कि आरोपी उसके साथ दुष्कर्म कर रहा है, आरोपी वहां से भाग गया। आरोप है कि अभियोक्ता को चोटें आईं और सूचनाकर्ता उसे थाने लेकर आया।

4. एफआईआर दर्ज करने के बाद, जांच तेज की गई। अभियोक्ता की मेडिकल जांच कराई गई। जांच अधिकारी ने गवाहों के बयान लेने के बाद, अभियुक्त-अपीलकर्ता के खिलाफ भा0दं0सं0 की धारा 376 और एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3 (2) (वी) के तहत आरोप पत्र प्रस्तुत किया।

5. अभियुक्त सत्र न्यायालय के लिए प्रतिबद्ध था क्योंकि मामला सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय था। विद्वान सत्र न्यायाधीश ने अभियुक्तों पर आरोप तय किए। आरोपी ने खुद को बेकसूर बताया और वह चाहता था कि उस पर मुकदमा चलाया जाए।

6. आरोप को साबित करने के लिए, अभियोजन पक्ष ने 12 गवाहों की जांच की है जो निम्नानुसार हैं:

1	विजय कुमार उर्फ विज्जन	पीडब्लू 1
2	निकेता उर्फ अन्नू	पीडब्लू 2
3	डॉ0 अवनीश कुमार	पीडब्लू 3
4	अजयवीर सिंह	पीडब्लू 4
5	ज्योत्स्ना कुमारी	पीडब्लू 5
6	रणवीर सिंह	पीडब्लू 6
7	अखलाल अहमद खान	पीडब्लू 7
8	अजय कुमार त्रिवेदी	पीडब्लू 8
9	आर.पी. गुप्ता	पीडब्लू 9
10	विकास राम	पीडब्लू 10
11	ए.एम. खान	पीडब्लू 11
12	एस.बी. मिश्रा	पीडब्लू 12

7. नेत्र संस्करण के समर्थन में निम्नलिखित दस्तावेज दायर किए गए थे:

1	एफ.आई.आर.	प्रदर्श क 3
2	लिखित रिपोर्ट	प्रदर्श क 1
3	अंडरवियर का फर्द बरामदगी	प्रदर्श क 9
4	एक्स-रे रिपोर्ट	प्रदर्श क 10

5	डिस्चार्ज स्लिप	प्रदर्श क 2
6	चोट रिपोर्ट	प्रदर्श क 5
7	पूरक रिपोर्ट	प्रदर्श क 6
8	मेडिको लीगल परीक्षण रिपोर्ट	प्रदर्श क 12
9	आरोप पत्र	प्रदर्श क 7
10	फोरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला की रिपोर्ट	प्रदर्श क 11
11	सूची के साथ नक्शा नजरी	प्रदर्श क 8

8. मुकदमे के अंत में और दं0प्र0सं0 की धारा 313 के तहत अभियुक्त का बयान दर्ज करने और अभियोजन और बचाव पक्ष की ओर से दलीलें सुनने के बाद, विद्वान विशेष न्यायाधीश ने अपीलकर्ता को उपरोक्त के रूप में दोषी ठहराया।

9. जहां तक एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3 (2) (v) के तहत अपराध करने का संबंध है, यह विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया है कि एफआईआर में कहीं भी यह नहीं कहा गया है कि घायल एक विशेष समुदाय से संबंधित है। जांच अधिकारी या सत्र न्यायालय के समक्ष यह साबित करने के लिए कि घायल अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का है, कोई दस्तावेजी साक्ष्य पेश नहीं किया गया। अभियोजन पक्ष द्वारा किसी स्वतंत्र गवाह की जांच नहीं की गई है। अभियोक्ता द्वारा कहा गया है कि वह आरोपी को नहीं जानती थी। पी.डब्ल्यू.1 ने कहा था कि वह अभियुक्त को नहीं जानता था और अपनी जिरह में उसने अपराध करने से इनकार किया था और इसलिए, एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3 (2) (v) के तहत अपराध करने के लिए कोई मामला नहीं बनता है और विद्वान विशेष न्यायाधीश के निष्कर्ष को पलटने की आवश्यकता है।

10. जहां तक भा0दं0सं0 की धारा 376 के तहत अपराध करने का संबंध है, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि अभियुक्त को वर्तमान मामले में झूठा फंसाया गया है। चिकित्सा साक्ष्य अभियोजन पक्ष के संस्करण का समर्थन नहीं करता है क्योंकि अभियोक्ता के व्यक्ति पर कोई आंतरिक / बाहरी चोट नहीं पाई गई थी, हालांकि एफआईआर और चिकित्सा परीक्षा शीघ्र थी। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि यहां तक कि पीडब्ल्यू 1 ने भी अपनी जिरह में बलात्कार के कमीशन से इनकार किया है और विशेष न्यायाधीश का निष्कर्ष अनुमानों और अनुमानों पर आधारित है और इसे बदलने की आवश्यकता है। अपने तर्क के समर्थन में, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आपराधिक अपील संख्या 204/2021 **(विष्णु बनाम उत्तर प्रदेश राज्य)** में इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है, जिसका निर्णय 28.1.2021 को हुआ था और आपराधिक अपील संख्या 4083/2017 **(पिंटू गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य)** में 28.7.2022 को फैसला किया गया था और तर्क दिया है कि एससी/एसटी अधिनियम की धारा (3) (2) (v) और भा0दं0सं0 की धारा 376 का कोई भी तत्व नहीं बनता है और, इसलिए, दोषसिद्धि को रद्द किए जाने की आवश्यकता है।

11. इसके विपरीत राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए. ने प्रस्तुत किया है कि अभियुक्त की

दोषसिद्धि न्यायसंगत और उचित है क्योंकि एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3 (2) (v) और धारा 376 के तहत अपराध के तत्व बहुत अधिक साबित होते हैं। विद्वान ए.जी.ए. द्वारा आगे प्रस्तुत किया गया है कि पीडब्ल्यू 2, अभियोक्ता, ने कहा है कि गैरकानूनी कृत्य करने से पहले, अभियुक्त ने उसका नाम, जाति और उसके पति का नाम पूछा था और इसलिए, विद्वान विशेष न्यायाधीश का पता लगाना न्यायसंगत और उचित है।

12. इससे पहले कि हम साक्ष्य और पक्षों के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों पर चर्चा करने का उद्यम करें, भा0दं0सं0 की धारा 375 पर चर्चा करना उचित होगा जो निम्नानुसार है:

"3. अत्याचार के अपराधों के लिए दंड-

(1)..................... xx............... xx.......

(2) जो कोई अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य नहीं है,--

(i)..................... xxx..........

(ii).................... xx...........

(iii)............... xxx...........

(iv)............. xxx...............

(v) भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) के अधीन किसी व्यक्ति या संपत्ति के विरुद्ध दस वर्ष या उससे अधिक की अवधि के कारावास से दंडनीय कोई अपराध इस आधार पर करता है कि ऐसा व्यक्ति अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य है या ऐसी संपत्ति ऐसे सदस्य की है, आजीवन कारावास और जुर्माने से दंडनीय होगी।

[375. बलात्कार--किसी पुरुष को "बलात्कार" का दोषी कहा जाता है, जो इसके बाद के मामले को छोड़कर, निम्नलिखित छह विवरणों में से किसी के अंतर्गत आने वाली परिस्थितियों में किसी महिला के साथ संभोग करता है:--

(पहला) - उसकी इच्छा के विरुद्ध।

(दूसरा) - उसकी सहमति के बिना।

(तीसरा) - उसकी सहमति से, जब उसकी सहमति उसे या किसी ऐसे व्यक्ति को डालकर प्राप्त की गई है जिसमें वह मृत्यु या चोट के डर में रुचि रखती है।

(चौथा) - उसकी सहमति से, जब आदमी जानता है कि वह उसका पति नहीं है, और उसकी सहमति इसलिए दी गई है क्योंकि वह मानती है कि वह एक और आदमी है जिसके साथ वह है या खुद को कानूनी रूप से विवाहित मानती है।

(पांचवां) - उसकी सहमति से, जब, ऐसी सहमति देने के समय, मन की अस्वस्थता या नशे के कारण या उसके द्वारा व्यक्तिगत रूप से या किसी अन्य के माध्यम से किसी भी अप्रिय या हानिकारक पदार्थ के सेवन के कारण, वह उस चीज की प्रकृति और परिणामों को समझने में असमर्थ है जिसके लिए वह सहमति देती है।

(छठा) - उसकी सहमति के साथ या उसके बिना, जब वह सोलह वर्ष से कम उम्र की हो। स्पष्टीकरण--बलात्कार के अपराध के लिए आवश्यक संभोग का गठन करने के लिए प्रवेश पर्याप्त है।

(अपवाद) - एक पुरुष द्वारा अपनी पत्नी के साथ संभोग, पत्नी की उम्र पंद्रह वर्ष से कम न हो, बलात्कार नहीं है।

13. कानून के उपरोक्त प्रावधानों को अब अभियोजन पक्ष के गवाहों के दस्तावेजी साक्ष्य के साथ-साथ नेत्र संस्करण के मद्देनजर देखा जाएगा। पी.डब्ल्यू.1 ने अपनी जिरह में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है कि उसने अपीलकर्ता को अभियोक्ता के साथ किसी भी प्रकार का संभोग करते नहीं देखा है। पीडब्ल्यू 3, जिसकी मौखिक गवाही पर विचार किया गया है, ने भी स्पष्ट रूप से कहा है कि वह निर्णायक रूप से यह नहीं कह सकता है कि क्या इच्छा के खिलाफ या अभियोक्ता की सहमति के खिलाफ संभोग किया गया था।

14. अभिलेख पर साक्ष्य इस आधार पर बलात्कार के कमीशन के सिद्धांत पर प्रकाश डालते हैं कि अभियोक्ता एक विशेष समुदाय से संबंधित है। न तो एफआईआर और न ही मौखिक गवाही ने दूर से इसका सुझाव दिया है। भा0दं0सं0 की धारा 376 और एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3 (2) (v) के साथ पठित धारा 375 के प्रावधानों को आकर्षित करने के लिए, उक्त अपराध के अवयवों को साबित करना होगा।

15. निर्णय से पता चलता है कि विद्वान सत्र न्यायाधीश ने अभियुक्त-अपीलकर्ता को दोषी ठहराया है, हालांकि अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 3 (2) (v) के तहत अपराध करने का कोई सबूत नहीं था। यह विश्वास करने योग्य नहीं है कि एक व्यक्ति जो यौन अपराध करना चाहता है, वह अभियोक्ता से उसका नाम और उसकी जाति पूछेगा और फिर गैरकानूनी कार्य करेगा। पीडब्ल्यू 1 जो अभियोक्ता के पिता हैं, ने कहा है, उन्होंने यह भी कहा था कि वह आरोपी-अपीलकर्ता को नहीं जानते थे। अवर न्यायालय के समक्ष अभियोजन पक्ष द्वारा भरोसा किया गया निर्णय अर्थात् **वेद प्रकाश बनाम हरियाणा राज्य, जेआईसी 1996 एससी 18** के इस मामले के तथ्यों पर लागू नहीं हो सकता है।

16. विद्वान सत्र न्यायाधीश ने इस तथ्य पर विचार किया है कि शुक्राणुजोज़ा पाया जा सकता है या नहीं भी पाया जा सकता है। महत्वपूर्ण पहलू हैं (ए) अभियोजन 4 साल का बच्चा है, (बी) उसने घटना सुनाई है, (सी) मेडिकल रिपोर्ट और पीडब्ल्यू -5 की मौखिक गवाही जो हमें सत्र न्यायाधीश के फैसले को पलटने की अनुमति नहीं देगी

17. अभियोक्ता के साक्ष्य पर चार साल की बच्ची पर संदेह नहीं किया जा सकता है और यह इस तथ्य का पूर्ण प्रमाण है कि आरोपी ने उसे घर में रखा था, जिस तरह से घटना हुई थी उसे अभियोक्ता द्वारा ठीक से समझाया गया है और इसलिए, डॉक्टर के चिकित्सा साक्ष्य इस आशय की गवाही देते हैं कि इस तरह के कृत्य की संभावना है। इस मामले के मद्देनजर, हम आश्वस्त हैं कि अपीलकर्ता को धारा 376 के तहत सही दोषी ठहराया गया है।

18. जहां तक धारा 376 पर निष्कर्षों का संबंध है, कोई निष्कर्ष नहीं है। जहां तक एससी/एसटी एक्ट की धारा 3 (2) (v) के तहत अपराध करने का सवाल है, केवल इस आधार पर कि शिकायतकर्ता और उसके परिवार के सदस्य एक विशेष समुदाय से संबंधित हैं, क्या यह कहा जा सकता है कि अपराध किया गया है? जवाब न है। **पाटन जमाल वली बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 343** में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले से भी हम अपने विचार से मजबूत हुए हैं, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया है:

"58. यह मुद्दा कि क्या अपराध किसी व्यक्ति के खिलाफ इस आधार पर किया गया था कि ऐसा व्यक्ति अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य है या ऐसी संपत्ति ऐसे सदस्य की है, अभियोजन पक्ष द्वारा परीक्षण में साक्ष्य के आधार पर स्थापित किया जाना है। हम सत्र न्यायाधीश से सहमत हैं कि अभियोजन पक्ष का मामला केवल इसलिए विफल नहीं होगा क्योंकि पीडब्ल्यू 1 ने पुलिस को दिए अपने बयान में यह उल्लेख नहीं किया था कि अपराध उसकी बेटी के खिलाफ किया गया था क्योंकि वह अनुसूचित जाति की महिला थी। हालांकि, अभियोजन पक्ष के नेतृत्व में यह दिखाने के लिए कोई अलग सबूत नहीं है कि आरोपी ने पीडब्ल्यू 2 की जाति पहचान के आधार पर अपराध किया है। हालांकि यह मानना उचित होगा कि अभियुक्त पीडब्ल्यू 2 की जाति जानता था क्योंकि ग्राम समुदाय कसकर बुने हुए हैं और आरोपी भी पीडब्ल्यू 2 के परिवार का परिचित था, धारा 3 (2) (v) की भाषा को ध्यान में रखते हुए, ज्ञान को अपराध के कमीशन का आधार नहीं कहा जा सकता है, जैसा कि वर्तमान मामले में अपराध किए जाने के समय था। जैसा कि हमने ऊपर चर्चा की है, पीडब्लू2 के उत्पीड़न की प्रतिच्छेदन प्रकृति के कारण, यह स्थापित करना मुश्किल हो जाता है कि अपराध करने का कारण क्या था - चाहे वह उसकी जाति, लिंग या विकलांगता हो। यह एक प्रावधान की सीमा पर प्रकाश डालता है जहां एक गलत कार्य का कारण एक ही जमीन से उत्पन्न होता है या जिसे हम एकल अक्ष मॉडल के रूप में संदर्भित करते हैं।

59. यह उल्लेख करना उचित है कि धारा 3 (2) (v) को अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) संशोधन अधिनियम, 2015 द्वारा संशोधित किया गया था, जो 26 जनवरी 2016 को लागू हुआ था। धारा 3 (2) (v) के तहत "के आधार पर" शब्दों को "यह जानते हुए कि ऐसा व्यक्ति अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य है" के साथ प्रतिस्थापित किया गया है। इससे यह साबित करने की दहलीज कम हो गई है कि जातिगत पहचान के आधार पर अपराध किया गया था, जहां दोषसिद्धि को बनाए रखने के लिए केवल ज्ञान पर्याप्त है। धारा 8 जो अपराधों के रूप में अनुमानों से संबंधित है, को खंड (सी) को शामिल करने के लिए भी संशोधित किया गया था ताकि यह प्रावधान किया जा सके कि यदि अभियुक्त पीड़ित या उसके परिवार से परिचित था, तो न्यायालय यह मान लेगी कि अभियुक्त पीड़ित की जाति या आदिवासी पहचान से अवगत था जब तक कि अन्यथा साबित न हो। संशोधित धारा 8 इस प्रकार है:

> "8. अपराधों के बारे में धारणा- इस अध्याय के अधीन किसी अपराध के अभियोजन में, यदि यह सिद्ध हो जाता है कि

(ए) अभियुक्त ने [इस अध्याय के तहत अपराध करने के आरोपी व्यक्ति द्वारा किए गए अपराधों के संबंध में कोई वित्तीय सहायता], या यथोचित रूप से संदिग्ध, अपराध करने का संदेह किया, विशेष न्यायालय तब तक मान लेगा, जब तक कि इसके विपरीत साबित न हो जाए, कि ऐसे व्यक्ति ने अपराध को उकसाया था;

(बी) इस अध्याय के अधीन व्यक्तियों के किसी समूह ने कोई अपराध किया है और यदि यह सिद्ध हो जाता है कि किया गया अपराध भूमि या किसी अन्य विषय से संबंधित किसी विद्यमान विवाद का अनुक्रम था तो यह माना जाएगा कि वह अपराध सामान्य आशय को आगे बढ़ाने में या सामान्य उद्देश्य के अभियोजन में किया गया था।

[(सी) अभियुक्त को पीड़ित या उसके परिवार का व्यक्तिगत ज्ञान था, न्यायालय यह मान लेगा कि अभियुक्त पीड़ित की जाति या जनजाति पहचान से अवगत था, जब तक कि इसके विपरीत साबित न हो।]

60. महिलाओं और बच्चों के विरुद्ध अत्याचारों पर संसद की स्थायी समिति की रिपोर्ट में यह टिप्पणी की गई है कि दोषमुक्ति की उच्च दर निरंतर अपराध के लिए प्रभुत्वशाली और शक्तिशाली समुदायों के विश्वास को प्रेरित और बढ़ाती है और अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति समुदायों की महिलाओं के विरुद्ध लैंगिक हिंसा के मामले दर्ज करते समय अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति अधिनियम के उपबंधों को शामिल करने की सिफारिश करती है। हालांकि, जैसा कि हमने नोट किया है, एससी और एसटी महिलाओं के खिलाफ अपराधों में दरारें पड़ने के तरीकों में से एक साक्ष्य बोझ के कारण है जो अंतर-उत्पीड़न के मामलों में मिलना लगभग असंभव हो जाता है। यह विशेष रूप से मामला है जब अदालतें धारा 3 (2) (v) के तहत "जमीन पर" की आवश्यकता को "केवल के आधार पर" के रूप में पढ़ती हैं। SC & ST अधिनियम के तहत वर्तमान शासन ने, संशोधन के बाद, अधिनियम की धारा 3(2)(v) के तहत कार्य-कारण की आवश्यकता को ज्ञान की आवश्यकता के साथ बदलकर अधिनियम के तहत एक अंतर-अनुभागीय विश्लेषण के संचालन की सुविधा प्रदान की है, जिससे शासन इस तरह के मामलों में उत्पन्न होने वाले साक्ष्य के प्रति संवेदनशील हो जाता है। 61 हालांकि, चूंकि धारा 3 (2) (v) में संशोधन किया गया था और धारा 8 के खंड (सी) को 26 जनवरी 2016 से प्रभावी 2016 के अधिनियम 1 द्वारा डाला गया था, इसलिए ये संशोधन इस मामले पर लागू नहीं होंगे। वर्तमान

मामले में अपराध 31 मार्च 2011 को संशोधन से पहले हुआ है। इसलिए, हम मानते हैं कि वर्तमान मामले में सबूत यह स्थापित नहीं करते हैं कि वर्तमान मामले में अपराध इस आधार पर किया गया था कि ऐसा व्यक्ति एससी या एसटी का सदस्य है। इसके परिणामस्वरूप धारा 3 (2) (v) के तहत दोषसिद्धि को रद्द करना होगा।

19. **विष्णु (पूर्वोक्त) और पिंटू गुप्ता (पूर्वोक्त)** में अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णय भी इस मामले के तथ्यों पर लागू होंगे। यह **विष्णु (पूर्वोक्त)** के समान मामला है जहां वह व्यक्ति अपराध न करने के लिए जेल में बंद था जिसके लिए उसे दंडित किया गया था।

20. **मो. गियासुद्दीन बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, [एआईआर 1977 एससी 1926]** मामले में सजा में पुनर्वास और सुधारात्मक पहलुओं की व्याख्या करते हुए सुप्रीम कोर्ट द्वारा निम्नवत बताया गया है:

"अपराध एक पैथोलॉजिकल विपथन है। अपराधी को आमतौर पर छुड़ाया जा सकता है और राज्य को बदला लेने के बजाय पुनर्वास करना होगा। उप-संस्कृति जो पूर्व-सामाजिक व्यवहार की ओर ले जाती है, उसका मुकाबला अनुचित क्रूरता से नहीं बल्कि पुनर्संस्कृतिकरण द्वारा किया जाना चाहिए। इसलिए, व्यक्ति और लक्ष्य में पेनोलॉजी में रुचि का ध्यान उसे समाज के लिए उबारना है। कठोर और बर्बर दंड का प्रहार इस प्रकार अतीत और प्रतिगामी समय का अवशेष है। मानव आज एक ऐसे व्यक्ति को फिर से आकार देने की प्रक्रिया के रूप में सजा देता है जो आपराधिकता में बिगड़ गया है और आधुनिक समुदाय की सामाजिक रक्षा के साधन के रूप में अपराधी के पुनर्वास में प्राथमिक हिस्सेदारी है। इसलिए हमारी आपराधिक न्यायालयों में 'आतंक' दृष्टिकोण के बजाय एक चिकित्सीय होना चाहिए, क्योंकि व्यक्ति की क्रूर कैद केवल उसके दिमाग की पंगुता पैदा करती है। यदि आप किसी व्यक्ति को प्रतिशोध की सजा देना चाहते हैं, तो आपको उसे घायल करना होगा। यदि आप उसे सुधारना चाहते हैं, तो आपको उसे सुधारना होगा और, पुरुषों को चोटों से सुधार नहीं होगा।

21. **देव नारायण मंडल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(2004) 7 एससीसी 257]** में 'उचित वाक्य' की व्याख्या यह देखते हुए की गई थी कि वाक्य या तो अत्यधिक कठोर या हास्यास्पद रूप से कम नहीं होना चाहिए। सजा की मात्रा का निर्धारण करते समय, न्यायालय को 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखना चाहिए। सजा किसी दिए गए मामले के तथ्यों पर आधारित होनी चाहिए। अपराध की गंभीरता, अपराध करने का तरीका, आरोपी की उम्र और लिंग को ध्यान में रखा जाना चाहिए। सजा देने में न्यायालय के विवेक का प्रयोग मनमाने ढंग से या सनकी तरीके से नहीं किया जा सकता है।

22. **रावदा शशिकला बनाम आंध्र प्रदेश राज्य एआईआर 2017 एससी 1166** में, सुप्रीम कोर्ट ने **जमील बनाम उ0प्र0 राज्य [(2010) 12 एससीसी 532], गुरु बसवराज बनाम कर्नाटक राज्य, [(2012) 8 एससीसी 734], सुमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह, [(2014) 7 एससीसी 323], पंजाब राज्य बनाम बावा सिंह, [(2015) 3 एससीसी 441], और राज बाला बनाम हरियाणा राज्य, [(2016) 1 एससीसी 463]** में संदर्भित किया और दोहराया है कि, सजा प्रणाली के संचालन में, कानून को तथ्यात्मक मैट्रिक्स के आधार पर सुधारात्मक मशीनरी या निवारक विधि

अपनाना चाहिए। प्रत्येक मामले में तथ्य और दी गई परिस्थितियां, अपराध की प्रकृति, जिस तरीके से इसकी योजना बनाई गई और प्रतिबद्ध की गई, अपराध करने का मकसद, अभियुक्त का आचरण, इस्तेमाल किए गए हथियारों की प्रकृति और अन्य सभी उपस्थित परिस्थितियां प्रासंगिक तथ्य हैं जो विचारणीय क्षेत्र में आएंगे। इसके अलावा, सजा में अनुचित सहानुभूति न्याय वितरण को अधिक नुकसान पहुंचाएगी और कानून की प्रभावकारिता में जनता के विश्वास को कम करेगी। प्रत्येक न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह अपराध की प्रकृति और उसके किए जाने के तरीके को ध्यान में रखते हुए उचित सजा सुनाए। सुप्रीम कोर्ट ने आगे कहा कि न्यायालयों को न केवल अपराध के पीड़ित के अधिकार को ध्यान में रखना चाहिए बल्कि बड़े पैमाने पर समाज को भी ध्यान में रखना चाहिए। उचित सजा देने पर विचार करते समय, पूरे समाज पर अपराध के प्रभाव और कानून के शासन को संतुलित करने की आवश्यकता है। देश में न्यायिक प्रवृत्ति सुधार और दंड के बीच संतुलन बनाने की ओर रही है। समाज की सुरक्षा और आपराधिक प्रवृत्ति पर मुहर लगाना कानून का उद्देश्य होना चाहिए जिसे अपराधियों और गलत काम करने वालों पर उचित सजा देकर हासिल किया जा सकता है। कानून, व्यवस्था और शांति बनाए रखने के लिए एक उपकरण के रूप में, समाज के सामने आने वाली चुनौतियों का प्रभावी ढंग से सामना करना चाहिए, क्योंकि समाज लंबे समय तक अपराध और असामंजस्य के गंभीर खतरों के तहत सहन और विकसित नहीं हो सकता है। इसलिए सजा देने में अनुचित उदारता से बचना आवश्यक है। इस प्रकार, देश में अपनाया गया आपराधिक न्याय न्यायशास्त्र प्रतिशोधात्मक नहीं बल्कि सुधारात्मक और सुधारात्मक है। साथ ही, हमारी दांडिक न्याय प्रणाली में अंतनहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से भी बचा जाना चाहिए।

23. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और हमारे देश में आपराधिक न्यायशास्त्र को ध्यान में रखते हुए, जो सुधारात्मक और सुधार योग्य है और प्रतिशोधात्मक नहीं है, यह न्यायालय मानता है कि कोई भी आरोपी व्यक्ति सुधार करने में असमर्थ नहीं है और इसलिए, उन्हें सामाजिक धारा में लाने के लिए सुधार का अवसर देने के लिए सभी उपायों को लागू किया जाना चाहिए।

24. जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, 'दंड के सुधारवादी सिद्धांत' को अपनाया जाना है और इस कारण से, 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखते हुए दंड देना आवश्यक है।

25. इसलिए, हम अभिनिर्धारित करते हैं कि यह साबित हो गया है कि धारा 376 के तहत अपराध किया गया है। अभियुक्त-अपीलकर्ता को एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3 (2) (v) के तहत उसके खिलाफ लगाए गए आरोपों से बरी किया जाता है। हम संबंधित जेल प्राधिकरण को आरोपी-अपीलकर्ता को मुक्त करने का निर्देश देते हैं, यदि किसी अन्य अपराध में वारंट नहीं है।

26. अभिलेख और कार्यवाही को तुरंत विचारण न्यायालय को वापस प्रेषित किया जाए।

27. यह न्यायालय दोनों विद्वान अधिवक्तागण का न्यायालय की सहायता करने और इस मामले का निर्णय करवाने के लिए आभारी है।

28. यह न्यायालय भा0दं0सं0 की धारा 376 के तहत जेल में पहले से ही सजा काट रही सजा से

इनकार करती है। आरोपी को एससी/एसटी एक्ट की धारा 3 (2) (v) के तहत बरी किया जाता है।

29. हम, इस सर्वव्यापी निर्देश द्वारा, रजिस्ट्रार (लिस्टिंग) को निर्देश देते हैं कि वह संबंधित रजिस्ट्री को **विष्णु (पूर्वोक्त)** में इस न्यायालय के फैसले का पालन करने के लिए प्रेरित करे, जिसका अभी तक पालन नहीं किया जा रहा है क्योंकि 2021 के बाद भी, मामलों को सूचीबद्ध नहीं किया जा रहा है। यहां तक कि इस मामले को केवल अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा लिस्टिंग प्रार्थना पत्र दायर करने के बाद सूचीबद्ध किया गया है क्योंकि आरोपी 14 साल से अधिक समय से जेल में है। जेल अधिकारियों द्वारा उनके मामले पर माफी के लिए विचार नहीं किया गया है, हालांकि 14 साल की कैद खत्म हो गई है और शीर्ष न्यायालय और इस न्यायालय के निर्देश हैं। यहां तक कि अगर न्यायालयों का कोई निर्देश नहीं है, तो दं0प्र0सं0 की धारा 433 के तहत संबंधित अधिकारी छूट के लिए आरोपी के मामले पर विचार करने के लिए बाध्य हैं।

(2023) 3 ILRA 753

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 04.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर,
माननीय न्यायमूर्ति मो. अज़हर हुसैन इदरीसी,

आपराधिक अपील संख्या 7842/2017

अशोक ...अपीलकर्ता

बनाम

यूपी राज्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री अरूण कुमार त्रिपाठी, श्री शशांक मौर्य, श्री के.के. सिंह

अधिवक्ता प्रतिवादी: शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धाराएँ 302 और 304 - हत्या - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 313 - साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 27 - दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील - अभियोजन ने 8 गवाहों का परीक्षण किया - आयोजित, तीनों साक्षी ने घटना के समय अपनी उपस्थिति सिद्ध की - उनके बयानों से प्रतीत होता है कि घटना छत पर रेत इकट्ठा करने के वाद में हुई और आरोपी ने मृतक के सिर पर पीछे से तीन जानलेवा वार किए और वह मर गया - गवाहों का प्रत्यक्ष साक्ष्य और शव परीक्षण रिपोर्ट प्रदर्शित करती है कि चोटें मौत का कारण थीं और यह हत्या थी - गवाहों के बयान सुसंगत हैं और कोई प्रमुख विरोधाभास नहीं है - तीनों गवाह एक-दूसरे से और मृतक से जुड़े हुए हैं, उनका बयान विश्वसनीय है, क्योंकि वे प्रत्यक्षदर्शी गवाह थे - आरोपी ने मृतक या गवाहों के साथ किसी दुश्मनी को सिद्ध करने में असफल रहा - अभियोजन द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य ने संदेह से परे वाद सिद्ध किया - मौत की योजना नहीं बनाई गई थी, आरोपी को यह पता था और आशय था कि उसकी कार्रवाई मृतक को शारीरिक नुकसान पहुंचाएगी, लेकिन वह मृतक को मारना नहीं चाहता था - इसलिए, अपराध आईपीसी की धारा 302 के तहत दंडनीय नहीं है, बल्कि आईपीसी की धारा 304 (I) के तहत हत्या के बराबर न होने वाली गैर इरादतन हत्या के रूप में दंडनीय है (पैराग्राफ 9, 17, 34, 38, 39) अपील आंशिक रूप से स्वीकृत की जाती है। (ई-13)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. अप्पा भाई बनाम गुजरात राज्य, AIR 1988 S.C. 696 2. अशोक कुमार चौधरी बनाम बिहार राज्य, 2008 (61) ACC 972
3. वीरन और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2011) 5 SCR 300
4. तुकाराम और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2011) 4 SCC 250
5. बी.एन. कावाटकर और अन्य बनाम राज्य कर्नाटक, 1994 SUPP (1) SCC 304
6. मोहम्मद गियासुद्दीन बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, AIR 1977 SC 1926
7. देव नारायण मंडल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2004) 7 SCC 257
8. रावड़ा ससिकला बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, AIR 2017 SC 1166
9. जामील बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2010) 12 SCC 532
10. गुरु बसवराज बनाम कर्नाटक राज्य, (2012) 8 SCC 734
11. सुमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह, (2014) 7 SCC 323
12. राज्य पंजाब बनाम बावा सिंह, (2015) 3 SCC 441 13. राज बाला बनाम हरियाणा राज्य, (2016) 1 SCC 463

(न्यायमूर्ति मो. अज़हर हुसैन इदरीसी के अनुसार)

1. विद्वान अधिवक्ता श्री शशांक मौर्य की ओर से उपस्थित श्री के.के. सिंह, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और राज्य की ओर से श्री नागेंद्र कुमार श्रीवास्तव, विद्वान ए.जी.ए. को सुना।

2. हालांकि अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने इस आधार पर जमानत आवेदन पर जोर देते हुए दलीलें दी हैं कि अपीलकर्ता वर्ष 2012 से जेल में बंद है और निकट भविष्य में अपील के निस्तारण की संभावना बहुत कम है। जहां तक जमानत का सवाल है, हमने रिकॉर्ड, दिए गए फैसले और तथ्यात्मक डेटा का अध्ययन किया है, हालांकि, अपीलकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई दलीलों और उसकी कैद की अवधि को ध्यान में रखते हुए, न्याय के हित में यह उचित होगा कि अपील की सुनवाई किया जाए और गुण-दोष के आधार पर निर्णीत किया जाय। तदनुसार, हम इस अपील पर अंतिम रूप से निर्णय लेने के लिए आगे बढ़ रहे हैं।

3. यह अपील विशेष न्यायाधीश डी.ए.ए./अपर सत्र न्यायाधीश, कक्ष संख्या 3, फर्रुखाबाद द्वारा 2012 के सत्र परीक्षण संख्या 234 (राज्य बनाम अशोक) में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 5.8.2015 को चुनौती देती है, जिसके तहत विद्वान सत्र न्यायाधीश ने अभियुक्त-अपीलकर्ता, अशोक को भारतीय दंड संहिता, 1860 (एतस्मिनपश्चात 'आईपीसी' के रूप में संदर्भित) की धारा 302 के तहत दोषी ठहराया है और 50,000/- रुपये के जुर्माने के साथ आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई और जुर्माना अदा न करने की स्थिति में उसे एक वर्ष का साधारण कारावास और भुगतना होगा।

4. संक्षेप में, अभियोजन की कहानी के तथ्य यह हैं कि प्रथम सूचना रिपोर्ट 19.8.2012 को लगभग 13.10 बजे पूर्वाहन सूचनादाता श्रीमती सुनीता द्वारा अभियुक्त/अपीलकर्ता अशोक के विरूद्ध अपने पति की हत्या के लिए धारा 304 आईपीसी के तहत दर्ज की गई है और इस तथ्य का खुलासा किया कि वादी अपने पति सिकंदर और अपने दो बच्चों प्रीति और विशाल के साथ

मिलकर अपने घर की छत पर रेत जमा कर रही थी। उसके सगे देवर (पति का भाई) अशोक, जिसका घर उसके घर के बिल्कुल बगल में था, ने यह कहते हुए रोक दिया कि रेत का एक भी कण उसकी तरफ नहीं आना चाहिए। इसी बात पर वह गंदी-गंदी गालियां देने लगा और जानमाल की धमकी देने लगा। वादी का पति अपने खेत से अपने पिता को बुलाने के लिए आगे बढ़ा। आरोपी अपीलकर्ता अपने गुस्से को पचा नहीं सका और उसने उसका पीछा किया। वादी, उसकी बेटी (प्रीति) और उसका बेटा (विशाल) इस डर से आगे बढ़ गए कि आरोपी अपीलकर्ता पीड़ित को अकेला पाकर उस पर हमला कर सकता है। आरोपी/अपीलकर्ता और पीड़ित दिलीप मौर्य के करौंधा के बगीचे के अंदर पहुंचे। वहां फिर से उनमें नोकझोंक और हाथापाई होने लगी। वादी और उसके बच्चों ने चीख-पुकार मचाई और पीड़ित को बचाने की कोशिश की। आरोपी/अपीलकर्ता (अशोक) टकोरा (कुल्हाड़ी) से लैस था, उसने वादी के पति सिकंदर पर पीछे से वार किया। जिसके परिणामस्वरूप पीड़ित के सिर में कुल्हाड़ी लगने से उसे घातक चोटें आईं। पीड़ित गंभीर हालत में जमीन पर गिर पड़ा और आरोपी अपीलकर्ता घटना स्थल से भाग गया। वादी, विनोद (पीड़ित और हमलावर का एक और भाई) की मदद से घायल सिकंदर को लोहिया अस्पताल, फर्रुखाबाद ले आयी और उसे वहां भर्ती कराया। अस्पताल में घायल की जांच की गयी। इसके बाद उसे इलाज के लिए कानपुर रेफर कर दिया गया। कानपुर जाते समय रास्ते में कन्नौज से थोड़ा आगे उन्होंने दम तोड़ दिया। सिकंदर की लाश को वापस लोहिया अस्पताल लाया गया और शवगृह में रख दिया गया। वादी द्वारा लिखित आवेदन (प्रदर्श क-1) के आधार पर मुकदमा अपराध संख्या 236 सन 2013 अन्तर्गत धारा 304 आई.पी.सी. थाना मऊदरवाजा, फर्रुखाबाद में पंजीकृत किया गया था। घटना का विवरण चिक एफआईआर (प्रदर्श क-9) में दर्ज किया गया और उसे जनरल डायरी (जी.डी.) में दर्ज किया गया था और उसी की कॉर्बन कॉपी तैयार की गई थी। प्रारंभिक जांच एस.आई. जग मोहन सिंह को सौंपी गई।

5. जांच शुरू होने पर विवेचना अधिकारी ने गवाहों के बयान दर्ज किए, घटनास्थल का नक्शा-नजरी तैयार किया, गवाहों की मौजूदगी में खून से सने और सादे मिट्टी को इकट्ठा किया और उनकी फर्द तैयार किया। आरोपी/अपीलकर्ता को 19.08.2012 को पुलिस हिरासत में लिया गया और उसका बयान 19.8.2012 को शाम लगभग 5.00 बजे दर्ज किया गया। पुलिस हिरासत में आरोपी अपीलार्थी का बयान दर्ज किया गया। अपना बयान दर्ज करने के दौरान, उसने खुलासा किया कि कथित अपराध को अंजाम देने में इस्तेमाल की गई कुल्हाड़ी उसने करौंधा के बगीचे में एक पेड़ के नीचे छिपा दी थी। उसके खुलासे पर, उसे उक्त बगीचे में ले जाया गया और गवाह बलबीर और धनीराम की उपस्थिति में, करौंधा के बगीचे में एक पेड़ के नीचे खुदाई के बाद आरोपी/अपीलकर्ता की निशानदेही पर उक्त कुल्हाड़ी (भौतिक प्रदर्श- 1) बरामद की गई। किनारे पर खून लगा हुआ था और कुल्हाड़ी में जगह-जगह मिट्टी भी चिपकी हुई थी। उक्त कुल्हाड़ी का विवरण रिकवरी मेमो (प्रदर्श क-5) में अंकित था जिस पर गवाहों के हस्ताक्षर प्राप्त किये गये थे। रिकवरी मेमो विवेचना अधिकारी द्वारा तैयार किया गया था। विवेचना अधिकारी ने बरामदगी स्थल का नक्शा-नजरी (प्रदर्श क-6) भी तैयार किया।

6. दिनांक 19.8.2012 को लोहिया अस्पताल से मृतक की मृत्यु (प्रदर्श क-15) की सूचना प्राप्त हुई। मृतक सिकंदर का पंचायत-नामा (प्रदर्श क-11) 19.8.2012 को 12.30 बजे तैयार की गई थी। पंचनामा के गवाहों के राय के अनुसार, पीड़ित सिकंदर की मृत्यु उसके सिर पर लगी घातक चोटों के कारण हुई। हालांकि मौत का असली कारण जानने के लिए मृतक के शव का पोस्टमार्टम कराना जरूरी है। अत: सी.एम.ओ. का पत्र (प्रदर्श क-12), फोटो लाश (प्रदर्श क-13), लाश चालान (प्रदर्श क-14) आदि सौंपने के साथ आवश्यक औपचारिकताएं पूरी करने के बाद, मृतक सिकंदर के शव को विधिवत कपड़े में लपेटकर सील कर दिया गया और शव परीक्षण के लिए शवगृह ले जाया गया। संबंधित दस्तावेज कांस्टेबल 663 राम नजर और कांस्टेबल 707 प्रताप भान को सौंप दिए गए। मृतक सिकंदर का पोस्टमार्टम दिनांक 19.8.2012 को लगभग 3.00 बजे डॉक्टर वी.वी. पुष्कर द्वारा किया गया। मृतक की पोस्टमार्टम रिपोर्ट (प्रदर्श क- 2) डॉ. वी.वी. पुष्कर द्वारा तैयार की गई थी।

7- बाद की जांच द्वितीय विवेचना अधिकारी एस.आई.अनूप कुमार को स्थानांतरित कर दी गई। उचित जांच और आरोपी/अपीलकर्ता की संलिप्तता को दर्शाने वाली विश्वसनीय और ठोस सामग्री और साक्ष्य एकत्र करने के बाद, विवेचना अधिकारी (आई.ओ.) द्वारा फर्रुखाबाद के विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष धारा 304 आईपीसी के तहत आरोप पत्र (प्रदर्श क-8) प्रस्तुत किया गया, जिन्होंने 09.10.2012 को आईपीसी की धारा 304 के तहत अपराध का संज्ञान लिया। चूंकि अपराध विशेष रूप से सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय था, इसलिए सत्र न्यायालय फर्रुखाबाद को सौंप दिया गया। विद्वान सत्र न्यायालय ने इसे सुनवाई के लिए विशेष न्यायाधीश (डी.ए.ए.) फर्रुखाबाद की अदालत में स्थानांतरित कर दिया।

8. दिनांक 05.02.2013 को विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश ने आरोपी/अपीलकर्ता के खिलाफ आईपीसी की धारा 304 के तहत आरोप तय किया। बाद में 13.12.2013 को धारा 302 आई.पी.सी. के तहत वैकल्पिक आरोप भी लगाया गया। दोनों आरोपों को पढ़ा गया और आरोपी/अपीलकर्ता को समझाया गया। उसने आरोपों से इन्कार किया और विचारण की मांग की।

9. आरोपों को सही साबित करने के लिए अभियोजन पक्ष ने आठ गवाहों से पूछताछ की जो इस प्रकार हैं:-

1	श्रीमती सुनीता	पीडब्लू1
2	प्रीति	पीडब्लू2
3	डॉ. वी.वी. पुष्कर	पीडब्लू3
4	विशाल	पीडब्लू4
5	एस.आई. जगमोहन	पीडब्लू5
6	एस.आई. अनूप कुमार	पीडब्लू6
7	एचसीपी 174-ईश्वर दयाल	पीडब्लू7
8	कांस्टेबल धनपाल सिंह	पीडब्लू8

10. चश्मदीद कथानक के समर्थन में, निम्नलिखित दस्तावेज़ भी दायर किए गए और साबित किए गए: -

क्र.सं.	**विवरण**	**प्रदर्श संख्या**	**द्वारा सिद्ध किया गया**
1	लिखित रिपोर्ट (तहरीर)	प्रदर्श क-1	पी.डब्लू. 1
2	पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट	प्रदर्श क 2	पी.डब्लू. 3
3	नक्शा नजरी - घटनास्थल	प्रदर्श क-3	पी.डब्लू. 5
4	खून से सना हुआ और सादी मिट्टी की फर्द बरामदगी	प्रदर्श क-4	पी.डब्लू. 5
5	अपराध में प्रयुक्त हथियार की फर्द बरामदगी	प्रदर्श क-5	पी.डब्लू. 5
6	बरामदगी स्थल का नक्शा नजरी	प्रदर्श क-6	पी.डब्लू. 5
7	आरोपियों की गिरफ्तारी का मेमो	प्रदर्श क-7	पी.डब्लू. 5
8	आरोप पत्र	प्रदर्श क-8	पी.डब्लू. 6
9	चिक एफ.आई.आर.	प्रदर्श क-9	पी.डब्लू. 7
10	कार्बन कॉपी काइमी जी.डी.	प्रदर्श क-10	पी.डब्लू. 7
11	पंचायतनामा	प्रदर्श क-11	पी.डब्लू. 8
12	सी.एम.ओ. को अनुरोध पत्र	प्रदर्श क-12	पी.डब्लू. 8
13	फोटो शव	प्रदर्श क - 13	पी.डब्लू. 8
14	मृतक का विवरण	प्रदर्श क-14	पी.डब्लू. 8
15	अस्पताल द्वारा मृत्यु की जानकारी	प्रदर्श क-15	पी.डब्लू. 8
16	गिरफ्तार की जी. डी.	प्रदर्श क-16	पी.डब्लू. 7

17	अपराध करने में प्रयुक्त हथियार (कुल्हाड़ी)	भौतिक प्रदर्श -1	पी.डब्लू. 5

11. अभियोजन साक्ष्य पूर्ण होने पर अभियुक्त का बयान सीआरपीसी की धारा 313 के तहत दर्ज किया गया था जिसमें उसने बयान दिया था कि गवाहों के बयान झूठे और असत्य हैं, उसने खुद को निर्दोष बताया और मनगढ़ंत झूठे मामले में गलत फंसाने के लिए दुश्मनी का बचाव लिया। बचाव पक्ष ने कोई साक्ष्य पेश नहीं किया है।

12. अभियोजन और बचाव पक्ष की ओर से दलीलें सुनने के बाद, विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश ने उपरोक्त आरोपी/अपीलकर्ता को निर्णय और आदेश दिनांक 05.08.2015 के तहत दोषी ठहराया। उक्त निर्णय से व्यथित होकर अभियुक्त अपीलकर्ता ने वर्तमान अपील प्रस्तुत की।

13. वर्तमान अपील से निपटने के लिए, सबसे पहले, अभियोजन साक्ष्य का विश्लेषण करना उचित है। अभियोजन पक्ष ने तथ्यों के तीन गवाहों अर्थात् पी.डब्ल्यू.1 श्रीमती सुनीता जो सूचनादाता और चश्मदीद गवाह है, पीडब्लू-2 प्रीति और पीडब्ल्यू-4 विशाल जो तथ्यों के चश्मदीद गवाह भी हैं, को परीक्षित किया है।

14. अपनी परीक्षा में पीडब्लू-1 श्रीमती सुनीता ने शपथपूर्वक बयान दिया है कि वह अपने पति सिकंदर और अपने दो बच्चों पीडब्ल्यू-2 प्रीति और पीडब्ल्यू-4 विशाल के साथ मिलकर अपने घर की छत पर रेत जमा कर रही थी। उसके देवर (उसके पति का भाई) आरोपी/अपीलकर्ता अशोक, जिसका घर उसके घर के बगल में था, ने यह कहते हुए रोक दिया कि रेत का एक भी कण उसकी तरफ नहीं आना चाहिए। इस मुद्दे पर उसने उन्हें गंदी-गंदी गालियां और जान-माल की धमकियां देना शुरू कर दिया। उसका पति खेत से अपने पिता को बुलाने के लिए आगे बढ़ा, लेकिन आरोपी अपने गुस्से को पचा नहीं सका और उसके पीछे चला गया। वादी, उसकी बेटी प्रीति और बेटा विशाल इस डर से आगे बढ़ गए कि आरोपी अपीलकर्ता पीड़ित को अकेला पाकर उस पर हमला कर सकता है। आरोपी अपीलकर्ता और पीड़ित दिलीप मौर्य के करौंधा के बगीचे के अंदर पहुंचे, वहां फिर से आरोपी अपीलकर्ता और उसके पति सिकंदर के बीच विवाद और हाथापाई होने लगी। वादी और उसके बच्चों ने चीख-पुकार मचाई और पीड़ित को बचाने की कोशिश की। आरोपी अपीलकर्ता (अशोक) टकोरा (कुल्हाड़ी) से लैस था, उसने सिकंदर के सिर पर पीछे से वार किया। उसने उसके सिर पर कुल्हाड़ी के तीन वार किये। इन चोटों पर कुल्हाड़ी से हमला किया। जिसके परिणामस्वरूप पीड़ित के सिर में घातक चोटें आईं। वह गंभीर हालत में जमीन पर गिर गया और आरोपी/अपीलकर्ता उन्हें धमकियां देते हुए घटना स्थल से भाग गए। वादी ने विनोद, अपने एक अन्य देवर पी.डब्ल्यू.-1 की मदद से घायल को लोहिया अस्पताल फर्रुखाबाद लेकर आयी। वहां घायल की जांच की गई और बाद में इलाज के लिए कानपुर रेफर कर दिया गया। कानपुर जाते समय रास्ते में कन्नौज से थोड़ा आगे पीड़ित ने दम तोड़ दिया। मृतक सिकंदर के शव को वापस लोहिया अस्पताल लाया गया। वहां मृतक सिकंदर का पंचनामा किया गया। वादी ने एक कागज पर घटना की सूचना लिखवाई, जिस पर उसके अंगूठे का निशान लिया गया। उसने तहरीर (लिखित सूचना) को प्रदर्श क-1 के रूप

में साबित किया। विवेचना अधिकारी ने उसकी निशानदेही पर घटनास्थल का दौरा किया था। और उसके पति का पंचनामा लोहिया अस्पताल, फर्रुखाबाद में की गई।

15. पीडब्लू-2 प्रीति और पीडब्लू-4 विशाल मृतक के बच्चे हैं, जिनकी उम्र अदालत में गवाही दर्ज कराने के समय क्रमशः 16 वर्ष और 12 वर्ष थी। उन्होंने बताया कि वे 19.08.2012 को सुबह लगभग 6.30 बजे घटना के समय घटनास्थल पर मौजूद थे। छत पर रेत जमा करने को लेकर उनके पिता और चाचा अशोक, जिनका घर उनके घर के बगल में है, के बीच कुछ झगड़ा हुआ था। चाचा ने रेत जमा करने का विरोध किया और धमकी दी कि रेत का एक भी कण उनकी ओर नहीं आना चाहिए। इसके बाद उनके पिता खेत से अपने पिता (उनके बाबा) को बुलाने गए। उन्होंने और उनकी मां ने इस आशंका पर अपने पिता का पीछा किया कि चाचा अशोक पीड़ित के पास अकेले आकर उस पर हमला कर सकते हैं। अशोक अपने पिता और टकोरा के साथ पीछे-पीछे चला, जब वे दिलीप मौर्या के करौंधा के बगीचे में पहुंचे तो वहां अशोक और उनके पिता सिकंदर के बीच फिर झगड़ा और हाथापाई होने लगी। उन्होंने अपने पिता को बचाने के लिए चीखना और शोर मचाना शुरू कर दिया। उसने उनके पिता के सिर में पीछे की ओर से कुल्हाड़ी से तीन वार किए। जिसके परिणामस्वरूप उनके पिता को सिर में तीन घातक चोटें आईं। वह गिर गया और चाचा अशोक वहां से भाग गया। उनकी मां चाचा विनोद की मदद से उनके पिता को इलाज के लिए राम मनोहर लोहिया अस्पताल, फर्रुखाबाद ले गईं। जहां से उसे कानपुर भेजा गया लेकिन रास्ते में ही उसकी मौत हो गई।

16- बचाव पक्ष के विद्वान अधिवक्ता ने पी.डब्ल्यू-1 सुनीता, पी.डब्लू.-2 प्रीति और पी.डब्लू.-4 विशाल से अच्छी तरह जिरह की। जिरह में सभी गवाहों ने दोहराया कि घटना के समय वे सभी घटनास्थल पर मौजूद थे। वे घटना के चश्मदीद गवाह हैं। पी.डब्लू.-1 ने बताया कि जब उसका पति घर से निकला तो आरोपी टकोरा लेकर उसके पीछे चला गया। इस आशंका से कि मृतक को अकेले पाकर कहीं वह मृतक पर हमला न कर दे। इसलिए वे सब भी मृतक के पीछे-पीछे चल दिए, जब वे करौंधा के बाग में पहुंचे तो वहां अभियुक्त और मृतक के बीच हाथापाई हो गई। मारपीट के दौरान आरोपी ने मृतक के सिर पर कुल्हाड़ी से तीन वार किए। उसने अपने पति को बचाने की कोशिश की। उसका पति गिर गया और अशोक कुल्हाड़ी लेकर भाग गया। वह अपने देवर विनोद व अन्य लोगों की मदद से पति को घटना स्थल से लोहिया अस्पताल ले गई। उसके पति के सिर से खून बह रहा था। कानपुर ले जाते समय रास्ते में कन्नौज के पास उनकी मृत्यु हो गई। उसने आरोपी को चार छड़ी की दूरी पर भागते देखा। उसने और उसके बच्चों ने अशोक का पीछा नहीं किया क्योंकि उसके हाथ में कुल्हाड़ी थी। उन्होंने इस सुझाव से इनकार किया कि घटना के समय वह घटनास्थल पर मौजूद नहीं थीं। वह 11 बजे थाने में आवेदन लेकर पहुंची। इसके बाद वह उस अस्पताल गई जहां उसके पति का शव रखा हुआ था। उसके दोनों बच्चे भी उसके साथ थे और उन्होंने आरोपी को मृतक के सिर पर कुल्हाड़ी से वार करते हुए देखा। पीडब्लू.-2 और पीडब्लू.- 4 ने भी पी.डब्लू.-1 के कथन की पुष्टि की। उनके बयान में कोई बड़ा विरोधाभास नहीं पाया गया।

17. इस प्रकार, उपरोक्त तीनों गवाहों ने घटना के समय घटना स्थल पर अपनी उपस्थिति प्रमाणित की। उनके बयानों से पता चला कि घटना छत पर रेत इकट्ठा करने के मुद्दे पर हुई थी और आरोपी ने मृतक के सिर पर पीछे से टकोरा (कुल्हाड़ी) से तीन घातक वार किए और इन घातक चोटों के कारण उसकी मृत्यु हो गई।

18. अभियोजन मामले की पुष्टि में, अभियोजन ने पीडब्ल्यू- 4 डॉ. वी.वी. पुष्कर को भी परीक्षित किया है। डॉक्टर ने सशपथ बयान दिया कि उन्होंने 19.8.2012 को लगभग 3.30 बजे दिन में सिकंदर (मृतक) का पोस्टमार्टम किया था। शव को सिपाही 663 राम नजर व 707 होम गार्ड प्रताप भान द्वारा सीलबंद हालत में लाया गया। सील का मिलान और संबंधित पत्र व दस्तावेज की प्राप्ति के बाद मृतक सिकंदर का पोस्टमार्टम किया गया।

19. (i)- **<u>मृत्यु पूर्व चोटें;-</u>** पोस्टमार्टम करने पर, मृतक सिकंदर के शरीर पर निम्नलिखित मृत्यु पूर्व चोटें पाई गईं-

1- सिर के बायीं ओर बायें कान के ऊपर और पीछे 11 सेमी x 4 सेमी x कपाल गुहा तक गहरा कटा हुआ घाव। मस्तिष्क की अन्तर्वस्तु बाहर आ रही है। बायीं पार्श्विका और पश्चकपाल हड्डी कटी हुई फ्रैक्चर।

2- कटा हुआ घाव सिर के बाईं ओर 10 सेमी x 2 सेमी x कपाल गुहा तक गहरा, चोट संख्या 1 से 2 सेमी ऊपर हड्डी के कटने, फ्रैक्चर, मेनिन्जिस और मस्तिष्क में।

3- कटा हुआ घाव सिर के बायीं ओर हड्डी पर 7 सेमी x 1 सेमी x हड्डी तक गहरा, चोट संख्या 2 से 3 सेमी ऊपर, नीचे की हड्डी का कटा हुआ फ्रैक्चर।

(ii)- डॉक्टर के कथन के अनुसार, मृत्यु के बाद, शरीर की अकड़न पूरे अंगों पर मौजूद था। शरीर औसत गठन का था। मुंह और आंखें बंद थीं। सिर पर ड्रेसिंग मटेरियल मौजूद था। दाहिनी कलाई में विगो मौजूद था।

(iii)- डॉक्टर की राय है कि **सिकंदर की मौत का कारण सदमा और रक्तस्राव है, जो मृत्यु पूर्व चोटों के परिणामस्वरूप है।**

(iv)- पी.डब्लू.-3 डॉ. वी.वी. पुष्कर ने यह भी कहा कि पोस्टमॉर्टम जांच रिपोर्ट उन्होंने अपनी लिखावट और हस्ताक्षर से तैयार की थी। उन्होंने पी.एम.आर. को प्रदर्श क-2 के रूप में सिद्ध किया तथा एस.पी. फर्रुखाबाद एवं दो अन्य को भेजा गया।

(v)- यह भी पुष्टि की गई कि सिकंदर के शरीर पर उपरोक्त चोटें 19.8.2012 को तेज धार वाले हथियार के वार से आई थीं।

20. इस प्रकार, चिकित्सीय साक्ष्य ने प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य और अभियोजन मामले का समर्थन किया है।

21. पी.डब्लू.-5 विवेचना अधिकारी एस.आई. जग मोहन सिंह ने बताया कि खुलासे पर आरोपी ने अपने बयान अन्तर्गत धारा 161 सी.आर.पी.सी. में घटना में प्रयुक्त हथियार टकोरा (कुल्हाड़ी) को अभियुक्त की निशानदेही पर गवाह धनी राम और बलवीर की उपस्थिति में करौंधा के बागीचे में एक पेड़ के नीचे बरामद किया गया, अदालत में परीक्षण के दौरान जब हथियार पेश किया गया तो उसने कहा कि यह वही हथियार है जो उसने करौंधा के बागीचे में अभियुक्त की निशानदेही पर बरामद किया था। तथ्य की यह खोज भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के तहत साक्ष्य में प्रासंगिक और स्वीकार्य है। उन्होंने कुल्हाड़ी को भौतिक प्रदर्श नंबर 1. के रूप में सिद्ध किया।

22. पीडब्ल्यू- 7 ईश्वर दयाल ने चिक एफआईआर को प्रदर्श क- 9 के रूप में साबित किया है। उन्होंने जी.डी. की कार्बन कॉपी को भी प्रदर्श क- 10 के रूप में सिद्ध किया। और पोस्टमार्टम के लिए अनुरोध पत्र और सीलबंद शव के साथ पोस्टमार्टम के लिए भेजे गए अन्य कागजात को भी प्रदर्श क-11 से क- 14 के रूप में उनके द्वारा सिद्ध किये गये।

23. पी डब्ल्यू- 5, एस.आई. जग मोहन सिंह मामले के प्रथम विवेचनाधिकारी। उन्होंने प्रदर्श का- 3 के रूप में नक्शा नजरी तैयार किया। उन्होंने खून से सनी और सादी मिट्टी भी एकत्र की और एक मेमो प्रदर्श क- 4 तैयार किया। उन्होंने आरोपी को हथियापुर रेलवे क्रॉसिंग के पास से गिरफ्तार भी कर लिया। गिरफ्तारी मेमो भी उनके द्वारा तैयार किया गया था जिसे उन्होंने प्रदर्श क- 7 के रूप में साबित किया। उन्होंने आगे बताया कि उन्होंने गवाहों धनीराम और बलबीर की मौजूदगी में अभियुक्त की निशानदेही पर करौंधा के बाग से कुल्हाड़ी बरामद कर ली। उन्होंने कुल्हाड़ी की बरामदगी की मेमो को प्रदर्श क- 5 के रूप में साबित किया और कुल्हाड़ी को भी भौतिक प्रदर्श क-1 के रूप में साबित किया। अपनी परीक्षा में आगे कहा कि उन्होने घटनास्थल और बरामदगी के स्थान का नक्शा नजरी प्रदर्श क- 3 और क- 6 के रूप में तैयार किया है। उन्होंने बताया कि बाद में जांच पीडब्ल्यू- 6 एस.आई. अनूप कुमार तिवारी को स्थानांतरित कर दी गई।

24. पी.डब्लू.-6 अनूप कुमार तिवारी ने कहा कि उन्होंने पी.डब्ल्यू- 5 जगमोहन सिंह से जांच अपने हाथ में ले ली है। विवेचना पूरी होने के बाद, उन्होंने आरोप पत्र दायर किया जिसे उन्होंने प्रदर्श क- 8 के रूप में साबित किया।

25. अपीलकर्ता के विद्वान वकील ने तर्क दिया कि तथ्यों के गवाह मृतक से संबंधित हैं और इस प्रकार वे हितबद्ध साक्षी हैं। आगे यह तर्क दिया गया कि विनोद आदि जैसे अन्य गवाह भी उपलब्ध थे लेकिन अभियोजन पक्ष ने उनको परीक्षित नहीं किया। इसलिए, अभियोजन पक्ष के गवाहों की गवाही विश्वसनीय नहीं है, विद्वान ए.जी.ए. ने तर्क का खंडन किया। इस संबंध में यह उल्लेख किया जा सकता है, यह सच है कि पी.डब्ल्यू.-1 सुनीता, पी.डब्लू. -2 कुमारी प्रीति एवं पी.डब्लू.- 4 विशाल मृतक सिकंदर की पत्नी, बेटी और बेटा हैं, लेकिन, यह उल्लेख किया जा सकता है कि वे न केवल मृतक से संबंधित हैं, बल्कि अभियुक्त /अपीलकर्ता से भी संबंधित हैं। हालाँकि, अभियुक्त/अपीलकर्ता द्वारा ऐसा कुछ भी नहीं दिखाया जा सका कि वे अभियुक्तों के प्रति शत्रुता और द्वेष पाल रहे थे, इसलिए उनकी गवाही को केवल मृतक के साथ उनके संबंधों के कारण खारिज नहीं किया जा सकता है।

26. विद्वान निचली अदालत ने अभियोजन पक्ष के गवाहों के साक्ष्य पर विश्वास किया जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय ने **अप्पा भाई बनाम गुजरात राज्य ए.आई.आर. 1988 एस.सी. 696 एवं अशोक कुमार चौधरी बनाम बिहार राज्य 2008 (61) एसीसी 972** में प्रतिपादित किया है कि किसी भी स्वतंत्र गवाह के अभाव में संबंधित गवाह के साक्ष्य को खारिज नहीं किया जा सकता है। यदि, घटना के समय गवाह की उपस्थिति साक्ष्य द्वारा स्थापित की जाती है, तो मृतक के परिवार के सदस्य होने के आधार पर उनकी गवाही को खारिज नहीं किया जा सकता है। अभियोजक ने सिद्ध किया है कि जिन गवाहों से पूछताछ की गई वे घटना के समय घटनास्थल पर मौजूद थे और उन्होंने देखा कि आरोपी ने

दिलीप मौर्य के बगीचे में मृतक सिकंदर के सिर पर पीछे से कुल्हाड़ी से तीन वार किए थे।

27. यहां तक कि पी.डब्ल्यू.-2 (प्रीति) और पी.डब्ल्यू.-4 (विशाल), मृतक सिकंदर की नाबालिग बेटी और बेटा की गवाही भी आरोपी अपीलकर्ता के खिलाफ अपराध साबित करने के लिए पर्याप्त थे क्योंकि वे अपने स्वाभाविक तरीके से घटना, घटना की गंभीरता को समझने में सक्षम थे और स्थितियों और पूछे गए सवालों को समझने में सक्षम थे। इसलिए, नाबालिगों (पी.डब्ल्यू.-2 और 4) के ऐसे सबूतों की अन्य पुख्ता और भरोसेमंद सबूतों के साथ पुष्टि को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। नाबालिगों के साक्ष्य (पी.डब्ल्यू.-2 और पी.डब्ल्यू.- 4) घटना को स्वाभाविक और सरल तरीके से प्रकट करने के लिए आत्मविश्वास को प्रेरित करते हैं, अभियोजन पक्ष के गवाहों 1, 2 और 3 की जिरह में कोई असंगति नहीं है। उन्होंने अभियोजन कथानक को स्वाभाविक और मूल रूप से बिना किसी बनावट के सुनाया था।

28. इसके अलावा, ऐसा कोई कारण नहीं है कि गवाह, जो मृतक सिकंदर के करीबी रिश्तेदार थे, असली अपराधी को छोड़कर आरोपी/अपीलकर्ता को झूठा फंसा देंगे। जिरह में गवाहों के साक्ष्य से ऐसा कुछ भी ठोस नहीं निकला जिससे अभियोजन कथानक पर संदेह किया जा सके। उनके साक्ष्य विश्वसनीय, भरोसेमंद और सभी दोषों से मुक्त हैं। यह एक स्थापित कानून है कि किसी तथ्य को साबित करने के लिए गवाहों की बहुलता नहीं बल्कि गुणवत्ता की आवश्यकता होती है। यदि गवाहों की संख्या पर जोर दिया जाएगा तो न्याय वितरण प्रभावित और बाधित होगा। इसके अलावा, विनोद घटना का चश्मदीद गवाह नहीं था। घटना ख़त्म होने के बाद वह घटनास्थल पर पहुंचे। इसलिए, गवाह के रूप में उसको परीक्षित न किये जाने से अभियोजन मामले पर कोई असर नहीं पड़ेगा। इस प्रकार, निचली अदालत ने अभियुक्त/अपीलकर्ता को मृतक की हत्या के अपराध का दोषी ठहराते हुए अभियोजन साक्ष्य को सही ढंग से स्वीकार किया है।

29. यह उल्लेख किया जा सकता है कि अभियोजन पक्ष के प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य रिकॉर्ड पर मौजूद चिकित्सीय साक्ष्य द्वारा समर्थित हैं। पी.डब्लू.-3 डॉ. वी.वी. पुष्कर ने अपनी जिरह में कहा कि मृतक के सिर पर तीन घाव थे, पीड़ित के शरीर पर काफी खून बहा था और एक धारदार हथियार द्वारा कारित मृत्यु पूर्व चोटों के परिणामस्वरूप सदमे और रक्तस्राव के कारण पीड़ित की मृत्यु हो गई। इसके अलावा पुलिस हिरासत में आरोपी के बयान में किये गये खुलासे के आधार पर घटना में प्रयुक्त हथियार भी बरामद कर लिया गया। अभियुक्त के बयान का यह हिस्सा भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के तहत प्रासंगिक था। उसी की निशानदेही पर गवाहों के सामने करौंधा के बाग से पेड़ के नीचे छुपाया गया हथियार (कुल्हाड़ी) बरामद किया गया। हथियार को भौतिक प्रदर्श-1 के रूप में अदालत के समक्ष प्रदर्शित किया गया था। औपचारिक गवाह चिक और जी.डी. लेखक और विवेचनाधिकारी ने भी अभियोजन मामले की पुष्टि की।

30. मामलों के तथ्यों और परिस्थितियों से यह पता चलता है कि अपराध बहुत ही क्रूर तरीके से किया गया था, पीड़ित के महत्वपूर्ण अंग पर कई चोटें पहुंचाई गई थीं, गवाहों की गवाही भरोसेमंद और विश्वसनीय है। बचाव पक्ष यह समझाने में विफल रहा है कि पीड़ित को उसके शरीर के महत्वपूर्ण हिस्से (सिर) पर गंभीर चोटें कैसे लगीं,

सिवाय जैसा कि अभियोजन कथानक में बताया गया है। इस प्रकार, अभियोजन पक्ष के गवाहों के साक्ष्य आरोपी अपीलकर्ता के अपराध की परिकल्पना के अनुरूप हैं और कोई अन्य परिकल्पना नहीं है। विद्वान विशेष सत्र न्यायाधीश ने रिकॉर्ड पर मौजूद सभी साक्ष्यों का अवलोकन करने के बाद दोषसिद्धि और सजा का आदेश पारित किया और सही निष्कर्ष पर पहुंचे कि यह आरोपी/अपीलकर्ता ही था जिसने अकेले ही पीड़ित को घातक और भयानक चोटें पहुंचाने का गंभीर अपराध किया था। इस प्रकार, आक्षेपित निर्णय को इस सीमा तक बरकरार रखा जा सकता है।

31. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि यह घटना तत्कालिक रूप से घटित हुई जो दो भाइयों के बीच अचानक झगड़े के कारण उत्पन्न हुई। यह प्रस्तुत किया गया है कि आरोपी ने मृतक के साथ हत्या करने की पूर्व-योजना नहीं बनाई थी।

32. वैकल्पिक रूप से, यह भी प्रस्तुत किया गया है कि अधिक से अधिक, यह मृत्यु मानववध हो सकता है जो हत्या की श्रेणी में नहीं आता और आईपीसी की धारा 304-II या धारा 304-I के तहत दंडनीय है। यदि अदालत निर्णय लेती है कि आरोपी आईपीसी की धारा 302 के तहत दोषी है, तो आरोपी को कारावास की निश्चित अवधि की सजा दी जा सकती है क्योंकि मौत आरोपी की ओर से कोई भयानक कृत्य नहीं है।

33. दूसरी ओर, राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए. का मानना है कि मृतक की ओर से कोई गंभीर और अचानक उकसावे की कार्रवाई नहीं हुई थी और अपराध की भीषणता और अभियोजन पक्ष के गवाहों के साक्ष्य को देखते हुए, इस अदालत को मामले में कोई नरमी नहीं दिखानी चाहिए। आगे विद्वान ए.जी.ए. द्वारा प्रस्तुत किया गया है कि आईपीसी की धारा 300 की सामग्री को विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा सही माना गया है, जिन्होंने मामले में तथ्यों पर कानून लागू किया है।

34. हमने गवाहों के प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य और पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट पर विचार किया है जिसमें कहा गया है कि मृतक के शरीर पर चोटें मौत का कारण थीं और यह मानव वध था। चिकित्सीय साक्ष्य ने भी प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य का समर्थन किया है। गवाहों के बयान सुसंगत हैं। उनके बयानों में कोई बड़ा विरोधाभास नहीं है और यहां-वहां छोटे-मोटे विरोधाभासों को नजरअंदाज किया जाना चाहिए क्योंकि उन्होंने अभियोजन मामले को बिल्कुल भी नुकसान नहीं पहुंचाया है। हालाँकि, तथ्यों के तीनों गवाह एक-दूसरे से संबंधित हैं और मृतक के साथ हैं, लेकिन उनकी गवाही विश्वसनीय है, क्योंकि वे चश्मदीद गवाह थे और ऐसा कोई कारण नहीं है कि वे आरोपी को झूठा क्यों फंसाएंगे। अभियुक्त/अपीलकर्ता मृतक या गवाहों के साथ कोई दुश्मनी साबित करने में विफल रहा है। इस प्रकार, अभियोजन द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य ने अभियोजन मामले को उचित संदेह से परे स्थापित कर दिया है। इसलिए, हम विचारण न्यायालय के निष्कर्षों से सहमत हैं।

35. यह हमें अगले प्रश्न पर ले जाता है कि क्या यह एक साजिशन हत्या थी या आईपीसी की धारा 300 के किसी अपवाद के अंतर्गत आएगा?

36. भारतीय दंड संहिता की धारा 299 का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा, जो इस प्रकार है:

> ***"299. गैर इरादतन मानव वध:*** *जो भी कोई मृत्यु कारित करने के आशय से या ऐसी शारीरिक क्षति पहुँचाने के आशय से जिससे मृत्यु होना सम्भाव्य हो, या*

यह जानते हुए कि यह सम्भाव्य है कि ऐसे कार्य से मृत्यु होगी कोई कार्य करके मृत्यु कारित करता है वह गैर इरादतन हत्या का अपराध करता है ।

37. "हत्या" और "गैर इरादतन हत्या" के बीच अकादमिक अंतर ने हमेशा न्यायालयों को परेशान किया है। भ्रम तब पैदा होता है, जब न्यायालय इन धाराओं में विधायिका द्वारा उपयोग किए गए शब्दों के वास्तविक दायरे और अर्थ को नजरअंदाज कर देते हैं और खुद को छोटे-छोटे निष्कर्षों में उलझा लेते हैं। इन प्रावधानों की व्याख्या और अनुप्रयोग के लिए दृष्टिकोण का सबसे सुरक्षित तरीका आईपीसी की धारा 299 और 300 के विभिन्न खंडों में उपयोग किए गए कीवर्ड को ध्यान में रखना है। निम्नलिखित तुलनात्मक तालिका दोनों अपराधों के बीच अंतर के बिंदुओं को समझने में सहायक होगी: -

धारा 299	**धारा 300**
कोई व्यक्ति गैर इरादतन मानव वध करता है यदि वह कार्य, जिससे मृत्यु कारित हुई हो, किया गया हो-	कुछ अपवादों के अधीन गैर इरादतन मानव वध हत्या है यदि वह कार्य किया गया है जिसके कारण मृत्यु हुई है।

आशय

(ए) मौत कारित करने के इरादे से; या	(1) मृत्यु कारित करने के इरादे से; या
(बी) ऐसी शारीरिक चोट पहुंचाने के इरादे से, जिससे मृत्यु होने की संभावना हो; या	(2) ऐसी शारीरिक चोट पहुंचाने के इरादे से, जैसा कि अपराधी जानता है कि उस व्यक्ति की मृत्यु की संभावना है जिसे क्षति कारित किया गया है;
ज्ञान	**ज्ञान**
(सी) इस ज्ञान के साथ कि इस कार्य से मृत्यु होने की संभावना है।	(4) इस ज्ञान के साथ कि यह कार्य तुरंत खतरनाक है यह पूरी संभावना है कि यह मृत्यु कारित करेगी या ऐसी शारीरिक चोट जिससे मृत्यु होने की संभावना है, और मृत्यु या ऐसी चोट का जोखिम उठाने के लिए बिना किसी बहाने के, जैसा कि ऊपर बताया गया है।

38. उपरोक्त चर्चा के निष्कर्ष से, ऐसा प्रतीत होता है कि अभियुक्त द्वारा की गई मृत्यु पूर्व नियोजित नहीं थी, अभियुक्त को यह ज्ञान और आशय था कि उसके कृत्य से मृतक को शारीरिक नुकसान होगा, लेकिन वह मृतक को खत्म नहीं करना चाहता था। इसलिए वर्तमान मामला आईपीसी की धारा 300 के अपवाद 1 और 4 के अंतर्गत आता है। धारा 299 पर विचार करते समय जैसा कि यहाँ प्रस्तुत किया गया है, सर्वोच्च न्यायालय के द्वारा **वीरन और अन्य बनाम मप्र राज्य (2011) 5 एससीआर 300** के वाद मे किये गये अवलोकन के अनुसार किया गया अपराध धारा 304 भाग- I के अंतर्गत आएगा और इसे भी ध्यान में रखना होगा।

39. चिकित्सा अधिकारी की राय के साथ वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की समग्र

जांच और **तुकाराम और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2011), 4 एससीसी 250** के मामले में और **बी.एन. कवताकर और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य, 1994 एसयूपीपी (1) एससीसी 304** में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांत पर विचार करते हुए, हम निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि मृत्यु पूर्व नियोजित नहीं थी। हमारे द्वारा चर्चा की गई नजीरें हमें अपने निष्कर्ष को बरकरार रखने की अनुमति देंगी, जिसमें हम निर्णायक रूप से मानते हैं कि अपराध आईपीसी की धारा 302 के तहत दंडनीय नहीं है लेकिन यह गैर इरादतन हत्या है और आईपीसी की धारा 304 (भाग I) के तहत दंडनीय है।

40. अब, यह देखना होगा कि क्या सजा की मात्रा बहुत कठोर है और इसमें संशोधन की आवश्यकता है। इस संबंध में हमें भारत में प्रचलित दंड सिद्धांत का विश्लेषण करना होगा।

41. **मोहम्मद गियासुद्दीन बनाम ए पी राज्य, [एआईआर 1977 एससी 1926]**, में सजा में पुनर्वास और सुधारात्मक पहलुओं की व्याख्या करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने यह देखा है:

> "अपराध एक पैथोलॉजिकल विपथन है। अपराधी को आम तौर पर छुड़ाया जा सकता है और राज्य को बदला लेने के बजाय उसका पुनर्वास करना होगा। जो उप-संस्कृति असामाजिक व्यवहार की ओर ले जाती है, उसका मुकाबला अनुचित क्रूरता से नहीं, बल्कि पुनर्संस्कृति द्वारा किया जाना चाहिए। इसलिए, किसी व्यक्ति का दण्डशास्त्र में रुचि और लक्ष्य उसे समाज के लिए बचाना है। इस प्रकार कठोर और क्रूर दंड देना अतीत और प्रतिगामी समय का अवशेष है। आज मनुष्य सज़ा देने को एक ऐसे व्यक्ति को फिर से आकार देने की प्रक्रिया के रूप में देखता है जो अपराधी बन गया है और आधुनिक समुदाय की सामाजिक सुरक्षा के साधन के रूप में अपराधी के पुनर्वास में प्राथमिक हिस्सेदारी है। इसलिए हमारे आपराधिक न्यायालयों में 'आतंकवाद में' दृष्टिकोण के बजाय एक चिकित्सीय दृष्टिकोण लागू होना चाहिए, क्योंकि व्यक्ति को क्रूरतापूर्ण कारावास केवल उसके दिमाग पर चोट पैदा करती है। यदि आपको किसी व्यक्ति को प्रतिशोधात्मक रूप से दंडित करना है, तो आपको उसे घायल करना होगा। यदि आप उसे सुधारना चाहते हैं, तो आपको उसे सुधारना होगा और, लोग चोटों से नहीं सुधरते हैं।"

42. 'उचित दण्ड' शब्द की व्याख्या **देव नारायण मंडल बनाम यूपी राज्य [(2004) 7 एससीसी 257]** में यह देखते हुए की गई थी कि सजा न तो अत्यधिक कठोर होनी चाहिए और न ही हास्यास्पद रूप से कम होनी चाहिए। सजा की अवधि निर्धारित करते समय अदालत को 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखना चाहिए। सजा किसी दिए गए मामले के तथ्यों पर आधारित होनी चाहिए। अपराध की गंभीरता, अपराध करने का तरीका, आरोपी की उम्र और लिंग को ध्यान में रखा जाना चाहिए। सज़ा देने में न्यायालय के विवेक का प्रयोग मनमाने ढंग से या मनमर्जी से नहीं किया जा सकता।

43. **रावदा शशिकला बनाम एपी राज्य एआईआर 2017 एससी 1166 में**, सर्वोच्च न्यायालय ने **जमील बनाम यूपी राज्य [(2010) 12 एससीसी 532], गुरु बसवराज बनाम कर्नाटक राज्य, [(2012) 8 एससीसी 734], सुमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह, [(2014) 7 एससीसी 323], पंजाब राज्य बनाम बावा सिंह, [(2015) 3 एससीसी 441], और राज बाला बनाम हरियाणा राज्य, [(2016) 1 एससीसी 463]** के निर्णयों को संदर्भित किया और यह दोहराया है कि, सजा प्रणाली के संचालन में, कानून को तथ्यात्मक मैट्रिक्स के आधार पर सुधारात्मक मशीनरी या निवारण को अपनाना चाहिए। प्रत्येक मामले में तथ्य और परिस्थितियाँ, अपराध की प्रकृति, जिस तरह से इसकी योजना बनाई गई और सम्पादित किया गया, अपराध करने का उद्देश्य, अभियुक्त का आचरण, इस्तेमाल किए गए हथियारों की प्रकृति और अन्य सभी परिस्थितियाँ प्रासंगिक तथ्य हैं जिसपर विचार किया जाना चाहिए। आगे, सजा सुनाने में अनुचित सहानुभूति न्याय व्यवस्था को और अधिक नुकसान पहुंचाएगी और कानून की प्रभावकारिता में जनता के विश्वास को कमजोर करेगी। अपराध की प्रकृति और उसके करने के तरीके को ध्यान में रखते हुए उचित सजा देना प्रत्येक न्यायालय का कर्तव्य है। सर्वोच्च न्यायालय ने आगे कहा कि अदालतों को न केवल अपराध से पीड़ित के अधिकार को ध्यान में रखना चाहिए, बल्कि बड़े पैमाने पर समाज को भी ध्यान में रखना चाहिए। उचित दंड देने पर विचार करते समय, समग्र रूप से समाज पर अपराध के प्रभाव और कानून के शासन को संतुलित करने की आवश्यकता है। देश में न्यायिक प्रवृत्ति सुधार और सजा के बीच संतुलन बनाने की रही है। समाज की सुरक्षा और आपराधिक प्रवृत्ति पर रोक लगाना कानून का उद्देश्य होना चाहिए जिसे अपराधियों और गलत काम करने वालों पर उचित सजा देकर हासिल किया जा सकता है। व्यवस्था और शांति बनाए रखने के एक उपकरण के रूप में कानून को समाज के सामने आने वाली चुनौतियों का प्रभावी ढंग से सामना करना चाहिए, क्योंकि समाज अपराध और असामंजस्य के गंभीर खतरों के तहत लंबे समय तक टिक नहीं सकता है और विकास नहीं कर सकता है। इसलिए, सज़ा देने में अनुचित उदारता से बचना आवश्यक है। इस प्रकार, देश में अपनाया गया आपराधिक न्याय न्यायशास्त्र प्रतिशोधात्मक नहीं बल्कि सुधारात्मक है। साथ ही, हमारी आपराधिक न्याय प्रणाली में अंतर्निहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से भी बचा जाना चाहिए।

44. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और हमारे देश में आपराधिक न्यायशास्त्र को ध्यान में रखते हुए, जो सुधारात्मक है और प्रतिशोधात्मक नहीं है, यह न्यायालय मानता है कि कोई भी आरोपी व्यक्ति सुधार करने में असमर्थ नहीं है और इसलिए, उन्हें सामाजिक धारा में लाने के लिए सुधार का अवसर देने के लिए सभी उपाय किए जाने चाहिए।

45. जैसा कि ऊपर चर्चा किया गया है, 'दंड का सुधारात्मक सिद्धांत' अपनाया जाना चाहिए और इस कारण से, 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखते हुए दंड देना आवश्यक है। आक्षेपित निर्णय के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि मामले के संपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों तथा अपराध की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए निचली अदालत द्वारा दी गई आजीवन कारावास की सजा बहुत कठोर है। जैसा कि ऊपर चर्चा किया गया है माननीय सर्वोच्च

न्यायालय ने माना है कि आपराधिक न्याय प्रणाली में अंतर्निहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से बचा जाना चाहिए।

46. उपरोक्त के दृष्टिगत अभियुक्त-अपीलार्थी को 10 वर्ष के कठोर कारावास की सजा दी जाती है। **"299. गैर इरादतन मानव वध:** *जो भी कोई मृत्यु कारित करने के आशय से, या ऐसी शारीरिक क्षति पहुँचाने के आशय से जिससे मृत्यु होना सम्भाव्य हो, या यह जानते हुए कि यह सम्भाव्य है कि ऐसे कार्य से मृत्यु होगी, कोई कार्य करके मृत्यु कारित करता है, वह गैर इरादतन हत्या का अपराध करता है।* जुर्माना घटाकर रु. 5000/- कर दिया गया है। हालांकि, डिफ़ॉल्ट सजा कायम है। यदि 10 साल की सजा पहले ही खत्म हो चुकी है, तो आरोपी-अपीलकर्ता, यदि वह किसी अन्य मामले में वांछित नहीं है, को तुरंत मुक्त कर दिया जाए। वह रिहाई की तारीख से चार सप्ताह के भीतर जुर्माना जमा करना होगा और यदि जुर्माना जमा नहीं किया गया तो डिफ़ॉल्ट की सजा भुगतने के लिए उसे फिर से जेल में डाल दिया जाएगा।

47. परिणामस्वरूप, अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। विद्वान विशेष न्यायाधीश डी.ए.ए./अपर सत्र न्यायाधीश कोर्ट संख्या 3 द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 05.08.2015 को उपरोक्त सीमा तक संशोधित माना जाएगा। रिकॉर्ड तुरंत ट्रायल कोर्ट को वापस भेजा जाए।

(2023) 3 ILRA 765

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 23.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुरेश कुमार गुप्ता

167 का आपराधिक संशोधन संख्या 2023

सुधा मुतनहेलिया .. पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और उत्तर प्रदेश ... विपक्षिगण

पुनरीक्षणकर्ता के लिए वकील: नागेन्द्र मोहन सिंह, प्रदीप कुमार सेन

विपक्षिगण के लिए वकील: जी.ए.

आपराधिक कानून - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धाराएँ 156 (3) और 397) - धारा 156 (3) के तहत एक आवेदन में प्रस्तावित अभियुक्त को न तो मजिस्ट्रेट के समक्ष आवेदन पर सुनवाई का अधिकार है और न ही पुनरावलोकन न्यायालय के समक्ष। अभियुक्त को तब तक सुनवाई का अधिकार नहीं है जब तक उसे अदालत द्वारा सम्मन नहीं किया जाता है और वह सम्मन होने तक कोई आपत्ति नहीं उठा सकता। इसलिए उसे धारा 156 (3) के तहत उसके विरुद्ध पारित आदेश को चुनौती देने का अधिकार नहीं दिया जा सकता। यदि मजिस्ट्रेट ने धारा 156 (3) के तहत पुलिस को प्राथिमिकी दर्ज करने और जांच करने का निर्देश दिया है, तो ऐसे आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण धारा 397 Cr.P.C. के तहत मान्य नहीं है।

पुनरीक्षण मान्य नहीं है और इस प्रकार निरस्त किया गया। (E-15)

उद्धृत वाद सूची:

1. भारत संघ बनाम विन चड्ढा 1993 SCC (आपराधिक) 1171

2. फादर थॉमस बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2011 (72) ACC 564 (इलाहाबाद) (पूर्ण पीठ)।

माननीय न्यायमूर्ति सुरेश कुमार गुप्ता

अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता, एवं राज्य हेतु विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता, श्री एस.पी. तिवारी, को सुना और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का परिशीलन किया।

इस आपराधिक पुनरीक्षण के माध्यम से, पुनरीक्षणकर्ताओं ने निम्नलिखित प्रार्थना की है:-

"इसलिए, यह अत्यंत सविनय प्रार्थना की जाती है कि माननीय न्यायालय, आपराधिक वाद संख्या 3033/ 2022 में विद्वान सिविल जज (जूनियर डिवीजन) / एफटीसी / जेएम बहराइच द्वारा पारित आदेश दिनांक 27.01.2023 को अपास्त करने की कृपा करें, जिसके माध्यम से परिवादी द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156 (3) के अंतर्गत प्रस्तुत प्रार्थनापत्र को स्वीकार कर लिया गया है।

पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने अभिकथन किया है कि विद्वान सिविल जज (जूनियर डिवीजन)/एफ.टी.सी./जे.एम. बहराईच द्वारा आपराधिक मुकदमा संख्या 3033/ 2022 में दिनांक 27.01.2023 को पारित आदेश त्रुटिपूर्ण है एवं विद्वान मजिस्ट्रेट के क्षेत्राधिकार से परे है।परिवादी द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156 (3) के अन्तर्गत प्रस्तुत प्रार्थनापत्र अप्रत्यक्ष आशयपूर्ण था। विवाद भू-संपत्ति से संबंधित है और विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा एफआईआर दर्ज करने और मामले का अन्वेषण करने का आदेश विधि के सिद्धांतों के विरूद्ध है।

राज्य की ओर से विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री एस.पी. तिवारी ने अभिकथन प्रस्तुत किया है कि यह पुनरीक्षण दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156 (3) के अन्तर्गत प्रार्थनापत्र को स्वीकृत किये जाने के आदेश के विरुद्ध पोषणीय नहीं है क्योंकि प्रस्तावित अभियुक्त को तब तक सुनवाई का कोई विधिक अधिकार नहीं है जब तक कि उसके विरुद्ध समन आदेश पारित नहीं किया जाता है।

अपने तर्क के समर्थन में विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने ***भारत संघ बनाम विन चड्ढा, 1993 एससीसी (आपराधिक) 1171*** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया है, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारित किया है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156 (3) के अन्तर्गत प्रार्थनापत्र में किसी प्रस्तावित अभियुक्त को मजिस्ट्रेट के समक्ष आवेदन पर या पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण में सुनवाई का कोई अधिकार नहीं है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भी ***फादर थॉमस बनाम यूपी राज्य, 2011 (72) एसीसी 564 (इलाहाबाद) (पूर्ण पीठ)*** के मामले में इस न्यायालय के निर्णय की पुष्टि की है, जिसमें इस न्यायालय ने धारित किया है कि किसी अभियुक्त को दंड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत न्यायालय द्वारा सम्मन किए जाने से पहले सुनवाई का कोई अधिकार नहीं है और उसे सम्मन के चरण तक कोई भी आपत्ति प्रस्तुत करने के लिए कोई अधिकार नहीं मिला है और परिणामस्वरूप उसे दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156 (3) के अन्तर्गत उसके विरुद्ध पारित आदेश को उसके सम्मन से पूर्व चुनौती देने का अधिकार नहीं दिया जा सकता है। यदि मजिस्ट्रेट ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156 (3) के अन्तर्गत पुलिस को एफआईआर दर्ज करने और अन्वेषण

करने का निदेश देते हुए प्रार्थनापत्र को स्वीकार कर लिया है, तो ऐसे आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397 के अन्तर्गत स्वीकार्य नहीं है।

पक्षकारों के विद्वान अधिवक्तागण को सुनने के बाद और विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा विश्वास किए गए निर्णय विधियों को ध्यान में रखते हुए, मुझे आपराधिक मुकदमा संख्या 3033/ 2022 में विद्वान सिविल जज (जूनियर डिवीजन)/एफ.टी.सी./जे.एम. बहराईच द्वारा पारित दिनांक 27.01.2023 के आक्षेपित निर्णय और आदेश में कोई अवैधता या कमी नहीं मिली।

(2023) 3 ILRA 766

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 14.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद

आवेदन अन्तर्गत धारा 482 सं. 1743 वर्ष 2021

मोहम्मद अब्दुल खालिक ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ...प्रतिपक्षी

आवेदक की ओर से अधिवक्ता: अख्तर जहां, बहार अली

प्रतिपक्षी की ओर से अधिवक्ता: जी.ए.

8. आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या - 1743 / 2021 - मोहम्मद अब्दुल खालिक बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य।

आपराधिक कानून - उत्तर प्रदेश गाय वध निवारण अधिनियम, 1955 - धाराएँ 3, 5 और 8 - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 482 - गाय/गोमांस के वध, बिक्री/परिवहन पर रोक - अपराधों के लिए कारावास और जुर्माने की सजा - धारा 482 Cr.P.C. - उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियाँ - प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने या न्याय के अंत को सुरक्षित करने के लिए - आपराधिक कार्यवाही को निरस्त करना - परीक्षण: क्या आरोप प्रथम दृष्टया अपराध स्थापित करते हैं, अंतिम सजा की संभावना कम है, कार्यवाही जारी रखने में उपयोगी उद्देश्य - गाय का वध - धार्मिक भावनाएँ - गाय हिंदू धर्म में पूजनीय है - धर्मनिरपेक्ष समाज में धार्मिक मान्यताओं का सम्मान करने की आवश्यकता - प्रारंभिक चरण में निरस्त करना - जहाँ सामग्री प्रथम दृष्टया विशेष कानून जैसे गाय वध अधिनियम के तहत अपराध का आयोग प्रकट करती है, वहाँ उचित नहीं है।

आवेदन निरस्त। (E-9)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. आर.पी. कपूर बनाम राज्य पंजाब, AIR 1960 S.C.866
2. हरियाणा राज्य बनाम भजनलाल, 1992 SCC (Crl.)426
3. बिहार राज्य बनाम पी.पी. शर्मा, 1992 SCC (Crl.)192
4. ज़ंडू फार्मास्युटिकल वर्क्स लिमिटेड बनाम मोहम्मद साराफ़ुल हक और अन्य, (पैराग्राफ-10) 2005 SCC (Cri.)283
5. एस.डब्ल्यू. पलांकटकर और अन्य बनाम राज्य बिहार, 2002 (44) ACC 168

माननीय न्यायमूर्ति शमीम अहमद

प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता श्री बहार अली के साथ राज्य के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता-I श्री प्रेम प्रकाश, श्रीमती किरण सिंह तथा श्री हरि शंकर वाजपेयी को सुना एवं अभिलेख का परिशीलन किया।

प्रार्थी द्वारा आरोप पत्र संख्या 424/2019 के साथ वाद संख्या- 1548/2020 राज्य बनाम मोहम्मद खालिक की संपूर्ण कार्यवाही, जो मुकदमा अपराध संख्या 462/2018 अंतर्गत धारा 3/5/8 उत्तर प्रदेश गो-वध निवारण अधिनियम, 1955 (इसके पश्चात 'अधिनियम 1955' के रूप में संदर्भित), पुलिस स्टेशन देवा, जिला बाराबंकी से उद्भूत है एवं विद्वान अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, न्यायालय संख्या-16, बाराबंकी में लंबित है, को रद्द करने की प्रार्थना के साथ वर्तमान आवेदन प्रस्तुत किया गया है।

वाद के तथ्य संक्षेप में यह है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 02.11.2019 को थाना देवा, जिला बाराबंकी में इस आरोप के साथ दर्ज करायी गयी थी कि सूचनाकर्ता द्वारा मिली सूचना पर जब सहायक उप-निरीक्षक -धर्मेन्द्र कुमार यादव व अन्य पुलिस कर्मी सरसौड़ी गांव में स्कूल के पास मौके पर पहुंचे, उन्होंने एक व्यक्ति को बोरी पकड़े हुए आते देखा, पुलिस कर्मियों को देखकर उस व्यक्ति ने वापस लौटने का प्रयास किया किंतु पुलिस ने उसे पकड़ लिया तथा उसकी तलाशी लेने पर उसके पास रखी बोरी में गोवंश का गोमांस बरामद हुआ। पूछताछ करने पर उक्त व्यक्ति ने अपना नाम जहूर बताया, उसने बताया कि वह प्रार्थी के साथ गौहत्या का कार्य करता है तथा उसे बेचने हेतु लखनऊ जा रहा था।

प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि पशु चिकित्सक की ओर से कोई रासायनिक विश्लेषण रिपोर्ट नहीं है कि बरामद किया गया मांस गोवंश का है या नहीं तथा किसी भी रासायनिक विश्लेषण रिपोर्ट के अभाव में, अन्वेषण अधिकारी ने प्रार्थी के विरुद्ध आरोप पत्र प्रस्तुत किया, जिसके पश्चात विद्वान मजिस्ट्रेट ने भी औपचारिक रुप से संज्ञान लिया तथा प्रार्थी को विचारण हेतु समन भेजा।

इसके विपरीत, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्तागण का कहना है कि अन्वेषण अधिकारी द्वारा आरोप पत्र उचित रीति से प्रस्तुत किया गया था तथा विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा लिया गया संज्ञान भी विधि अनुसार था। गाै-मांस सहित गिरफ्तार सह-अभियुक्त जहूर के इकबालिया बयान में प्रार्थी का नाम प्रकाश में आया, जिसने कबूल किया कि वह तथा प्रार्थी गाय की हत्या में शामिल थे, अतः प्रथम दृष्टया प्रार्थी के विरुद्ध अधिनियम 1955 की धारा 3/5/8 के अंतर्गत अपराध बनता है।

पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिये गये तर्कों पर विचार करने के पश्चात एवं आरोप पत्र के साथ संज्ञान आदेश एवं प्र०सू०रि० के अवलोकन के पश्चात, अधिनियम, 1955 की धारा 3/5/8 के अंतर्गत प्रार्थीगण के विरुद्ध प्रथम दृष्टया अपराध बनता है। अधिनियम, 1955 की धारा 3/5/8 के अंतर्गत, मुकदमा अपराध संख्या-525/2020 की कार्यवाही को रद्द करने हेतु कोई वाद नहीं बनता है। निर्णय हेतु अधिनियम, 1955 अंतर्गत धारा 3, 5, एवं 8 को इस वाद में उद्धृत करना प्रासंगिक है:

> **3. गोवध पर प्रतिषेध** - (1) उन दशाओं को छोड़कर जिनके लिये यहां आगे

व्यवस्था है, कोई व्यक्ति उत्तर प्रदेश के किसी स्थान में -

(क) गाय का, अथवा

(ख) सांड या बैल का, जब तक कि उसने उस क्षेत्र के सक्षम प्राधिकारी से जहां कि उस सांड़ या बैल का वध किया जाना है, उसके संबंध में यह लिखित प्रमाण-पत्न कि वह वध करने के योग्य है प्राप्त न कर लिया हो,

न तो वध करेगा न वध करवायेगा, न उसे वध के लिये प्रस्तुत करेगा या करवायेगा, भले ही तत्समयं प्रचलित किसी अन्य विधि में कोई वात हो श्रथवा कोई प्रतिकूल रूढ़ि अथवा प्रथा हो ।

2-- किसी सांड अथवा बैल जिसके संबंध में उपधारा (1) (ख) के अधीन प्रमाण-पत्र जारी किया जा चुका है, प्रमाण-पत्र में व्यक्त स्थान के अतिरिक्त किसी स्थान पर वध नहीं किया जाएगा।

(3) सक्षम प्राधिकारी द्वारा उपधारा (1) (ख) के अधीन प्रमाण-पत्र केवल तब दिया जायगा जब कि वह कारण लेखबद्ध करने के पश्चात् यह प्रमाणित कर दें कि-

(क) सांड अथवा बैल पंद्रह वर्ष से अधिक का न हो, अथवा

(ख) वह सांड़ प्रजनन कार्य के लिये स्थायी रूप से अयोग्य तथा अनुपयोगी हो गया है

या वह बैल भारवाहन तथा किसी प्रकार के कृषि कार्य के लिये स्थायी रूप से अयोग्य तया अनुपयोगी हो गया है :

प्रतिबन्ध यह है कि स्थायी अयोग्यता या अनुपयोगिता जानबूझ कर उत्पन्न न की गई हो।

(4) सक्षम प्राधिकारी उपधारा (3) के अधीन प्रमाण-पत्र जारी करने अथवा प्रमाण-पत्र जारी करना अस्वीकृत करने से पूर्व अपनी आज्ञा को लेखबद्ध करेगा।

(5) राज्य सरकार किसी भी समय इस धारा के अधीन किये गये कार्य को वैधता का उसके औचित्य के विषय में अपना समाधान करने के प्रयोजन से किसी भी मामले का अभिलेख मंगा सकती है तथा उसकी जांच कर सकती है और उस पर ऐसी आज्ञा दे सकती हैं, जो वह उचित समझे ।

6) यहां दिये हुए उपबन्धों के अधीन रहते हुए, इस धारा के अधीन किया गया कोई भी कार्य अन्तिम होगा और उस पर आपत्ति नहीं की जा सकेगी।

5. **गोमांस बेचने का प्रतिषेध**-यहां पर दिये गये अपवाद को छोड़कर तथा समय विशेष पर प्रचलित किसी अन्य विधि में "किसी बात के होते हुए भी, कोई भी व्यक्ति सिवाय ऐसे चिकित्सकीय प्रयोजनों के निमित्त जो नियत किये जायं, किसी भी रूप में गोमांस-अथवा तज्जन्य पदार्थ न बेचेगा न परिवहन करेगा, न बेचने अथवा परिवहन के लिये प्रस्तुत करेगा और न बिकवायेगा अथवा परिवहन करवायेगा ।

"5-**क--गाय आदि के परिवहन का विनियमन** (1) कोई व्यक्ति राज्य के

भीतर किसी स्थान. सिवाय राज्य सरकार द्वारा इस निमित्त अधिसूचित आदेश के प्राधिकृत किसी अधिकारी द्वारा जारी किये गये अनुज्ञा-पत्र के और सिवाय ऐसी अनुज्ञा-पत्र के निबन्धन और शर्तों के अनुसार, किसी गाय, सांड़ या बैल का जिसका उत्तर प्रदेश में किसी स्थान पर वध किया जाना इस प्रधि-नियम के अधीन दण्डनीय है, न तो परिवहन करेगा, न परिवहन करने के लिये प्रस्तुत करेगा और न परिवहन करायेगा ।

(2) ऐसा अधिकारी प्रत्येक गाय, सांड़ या बैल के लिए पांच रुपये से प्रतधिक ऐसा शुल्क जिसे नियत किया जाये, देने पर अनुज्ञा-पत्र जारी करेगा:

प्रतिबंधित यह है कि कोई शुल्क प्रभार्य नहीं होगा यदि गाय, सांड़ या बैल का परिवहन अनुज्ञा-पत्र में विनिदिष्ट छः मास से अनधिक अवधि के लिए हो।

(3) यदि अनुज्ञा-पत्र पर सीमित अवधि के लिए गाय, सांड़ या बैल का परिवहन करने वाला व्यक्ति अनुज्ञा-पत्र में विदिनिष्ट अवधि के भीतर ऐसी गाय, सांड़ या बैल को राज्य में वापस न लाये, तो यह समझा जाएगा कि उसने उपधारा (1) के उपबंधों का उल्लंघन किया है।

(4) अनुज्ञा-पत्र का प्रारूप, उसके लिए आवेदन पत्र का प्रारूप और ऐसे आवेदन पत्र के निस्तारण की प्रक्रिया ऐसी होगी जो नियत की जाए।

(5) राज्य सरकार या उसके द्वारा इस निमित सामान्य या विशेष अधिसूचित आदेश से प्रधिकृत कोई अधिकारी, इस धारा के अधीन की गयी कार्रवाई की वैधता या औचित्य के संबंध में अपना समाधान करने के प्रयोजनार्थ किसी समय किसी मामले के अभिलेख को मंगा सकता है और उसका परीक्षण कर सकता है और ऐसा आदेश उस पर दे सकता है जैसा वह उचित समझे]।

6) जहाँ उक्त वाहन इस अधिनियम के अधीन सक्षम प्राधिकारी या प्राधिकृत प्रयोगशाला द्वारा गोमांस से सम्बन्धित होना पुष्टिकृत कर दिया गया हो, वहाँ तब तक चालक, आपरेटर तथा परिवहन से सम्बन्धित स्वामी को इस अधिनियम के अधीन अपराध से आरोपित किया जायेगा, जब तक कि यह सिद्ध नहीं हो जाता है कि परिवहन के साधन की समस्त सावधानियों के होते हुए और उसकी जानकारी के बिना अपराध में प्रयुक्त परिवहन के साधन का प्रयोग अपराध करने के निमित्त किसी अन्य व्यक्ति द्वारा किया गया है।

(7) इस अधिनियम और सुसंगत नियमावली के उपबन्धों का उल्लंघन करके गोमांस या गाव और उसके वंशज का परिवहन करने वाला यान, विधि प्रवर्तन अधिकारियों द्वारा अधिहृत तथा ज़ब्त कर लिया जायेगा। सम्बन्धित जिला मजिस्ट्रेट / पुलिस आयुक्त अधिहरण तथा निर्मुक्ति की समस्त कार्यवाहियाँ करेगा।

(8) अभिग्रहित यान द्वारा परिवहन किये गये गाय तथा गोवंश या गोमांस,

विधि प्रवर्तन अधिकारियों द्वारा अधिहृत एवं अभिग्रहित किये जायेंगे। | संबंधित जिला मजिस्ट्रेट / आयुक्त यथास्थिति अधिहरण तथा निर्मुक्ति की समस्त कार्यवाहियाँ करेगा।

(9) अभिग्रहित गायों तथा उसके गोवंश के भरण-पोषण पर व्यय की |वसूली अभियुक्त से वर्ष की अवधि तक अथवा गाय या गोवंश को
| निर्मुक्त किये जाने तक, जो भी पहले हो, स्वामी के पक्ष में की जायेगी।

(10) जहाँ कोई व्यक्ति इस अधिनियम की धारा 3, 5 तथा 8 के अधीन कोई अपराध करने, उसका दुष्प्रेरण करने या प्रयास करने के लिये अभियोजित किया जाता है और अभियुक्त के पास गोमांस या गाय के होने की पुष्टि अभियोजन द्वारा कर दी गयी है और सक्षम प्राधिकारी या प्राधिकृत प्रयोगशाला द्वारा परिवहन की गई चीजों का गोमांस होना पुष्टि कर दिया गया हो वहाँ न्यायालय की यह उपधारणा होगी कि ऐसे व्यक्ति ने. यथास्थिति, ऐसा अपराध किया है या ऐसा अपराध करने का प्रयास या दुष्प्रेरण किया है, जब तक अन्यथा सिद्ध न हो जाये।

(11) जहाँ तलाशी अधिग्रहण, व्ययन एवं जब्तीकरण के संबंध में इस अधिनियम अथवा सम्बन्धी नियमावली के उपबंध मौन हो, वहां दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 के सुसंगत उपबन्ध प्रभावी होंगे।

5 ख-जो कोई किसी गाय या उसके गोवंश को ऐसी शारीरिक क्षति कारित करता है जो उसके जीवन को संकटापन्न करे यथा गोवंश का अंग-भंग करना, उनके जीवन को संकटापन्न करने वाली किसी परिस्थिति में उनका परिवहन करना, उनके जीवन को संकटापन्न करने के आशय से भोजन पानी आदि का लोप करना, वह ऐसी अवधि के कठोर कारावास, जो अन्यून एक वर्ष होगी और जो सात वर्ष तक हो सकती जुर्माना, से और ऐसे जुर्माना, जो अन्यून एक लाख रुपये होगा, और जो तीन लाख रुपये तक हो सकता है, से दण्डित किया जायेगा।

8 (1) - जो कोई धारा 3, धारा 5 या धारा 5 क के उपबन्धों का उल्लंघन करता है या उल्लंघन करने का प्रयास करता है या उल्लंघन करने के लिए दुष्प्रेरित करता है वह ऐसी अवधि के कठोर कारावास, जो अन्यून तीन वर्ष होगी और जो दस वर्ष तक हो सकती है, से, और ऐसे जुर्माना, जो अन्यून तीन लाख रूपये होगा और जो पाँच लाख रुपये तक हो सकता है, से दण्डनीय किसी अपराध का दोषी होगा।

(2) जो कोई इस अधिनियम के अधीन किसी अपराध की दोषसिद्धि के पश्चात् इस अधिनियम के अधीन किसी अपराध का पुनः दोषी हो तो वह द्वितीय दोष सिद्धि हेतु उक्त अपराध के लिये उपबंधित दोहरे दण्ड से दण्डित किया जायेगा।

(3) धारा-5 क के उपबन्ध के उल्लघंन के अभियुक्त व्यक्ति का नाम तथा फोटोग्राफ मुहल्ला में ऐसे किसी महत्वपूर्ण स्थान पर जहाँ अभियुक्त समान्यतः निवास करता हो अथवा ऐसे किसी सार्वजनिक स्थल पर जहाँ वह विधि प्रवर्तन अधिकारियों से स्वयं को छिपाता हो, प्रकाशित किया जायेगा

तदनुसार, प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता के इस तर्क में **कोई बल नहीं** है, कि प्रार्थी के विरुद्ध किसी अपराध का खुलासा नहीं किया गया है तथा वर्तमान अभियोजन उत्पीड़न के उद्देश्य से दुर्भावनापूर्ण प्रयाेजन से स्थापित किया गया है।

हम एक धर्मनिरपेक्ष देश में रह रहे हैं तथा हमें सभी धर्मों का सम्मान करना चाहिए और हिंदू धर्म में मान्यता तथा विश्वास है कि गाय दैवीय तथा प्राकृतिक उपकार की प्रतिनिधि है अतः इसकी रक्षा एवं पूजा की जानी चाहिए। गाय को विभिन्न देवी-देवताओं से भी संबंधित किया गया है, विशेष रूप से भगवान शिव (जिनका वाहन नंदी, एक बैल है), भगवान इंद्र (बुद्धिमान देने वाली गाय कामधेनु से निकटता से जुड़े हुए हैं), भगवान कृष्ण (अपनी युवावस्था में एक चरवाहा), एवं सामान्य देवी-देवता (उनमें से कई मातृ गुणों के कारण) गाय हिंदू धर्म के सभी पशुओं में सर्वाधिक पवित्र है। इसे कामधेनु अथवा दिव्य गौ एवं सभी इच्छाओं की पूर्ति करने वाली के रूप में जाना जाता है। पौराणिक कथा के अनुसार, वह समुद्रमंथन अथवा देवताओं एवं राक्षसों द्वारा किए गए समुद्र के महान मंथन के समय क्षीरसागर से निकली थीं। उन्हें सप्तऋषियों के सम्मुख प्रस्तुत किया गया एवं कालान्तर में वे ऋषि वशिष्ठ की शरण में आ गईं। उसके पैर चार वेदों का प्रतीक हैं; उसके दुग्ध का स्रोत चार पुरुषार्थ (अथवा उद्देश्य, अर्थात धर्म अथवा धार्मिकता, अर्थ अथवा भौतिक धन, काम अथवा इच्छा एवं मोक्ष अथवा मुक्ति) है; उसके सींग देवताओं का प्रतीक हैं, उसका मुख सूर्य एवं चंद्र का, तथा उसके स्कंध अग्नि अथवा आग के देवता का प्रतीक हैं। उनका वर्णन अन्य रूपों में जैसे *नंदा, सुनंदा, सुरभि, सुशीला एवं सुमना* रूपों में भी किया गया है:

गौपूजन के सूत्रपात का संकेत वैदिक काल (दूसरी सहस्राब्दी 7वीं शताब्दी ईसा पूर्व) से भी हो सकता है। दूसरी सहस्राब्दी ईसा पूर्व भारत में प्रवेश करने वाले इंडो-यूरोपीय लोग चरवाहे थे; मवेशियों का प्रमुख आर्थिक महत्व था जो उनके धर्म में परिलक्षित होता था। दूध देने वाली गायों का वध तेजी से प्रतिबंधित कर दिया गया। यह महान संस्कृत महाकाव्य *महाभारत* के कुछ हिस्सों एवं *मनु-स्मृति* ("मनु की परंपरा") के रूप में ज्ञात धार्मिक एवं नैतिक संहिता में निषिद्ध है, एवं दूध देने वाली गाय को ऋग्वेद में पूर्व से ही "*अवध्य*" कहा गया था। गाय को दी जाने वाली श्रद्धा की कोटि का संकेत उपचार शुद्धि के अनुष्ठानों एवं *पंचगव्य*, गाय के पांच उत्पादों - दूध, दही, मक्खन, मूत्र और गोबर के उपयोग से होता है।

तत्पश्चात अहिंसा ("चोट न पहुंचाना") के आदर्श के उदय के साथ, जीवित प्राणियों को हानि पहुंचाने की इच्छा की अनुपस्थिति, गाय अहिंसक उदारता के जीवन का प्रतीक बन गई। इसके अतिरिक्त, क्योंकि उसके उत्पाद पोषण प्रदान करते थे, **गाय मातृत्व एवं धरती माता से जुड़ी हुई थी** एवं कई रियासतों में गोहत्या के विरुद्ध विधि 20वीं सदी तक प्रवर्तित रही ।

पौराणिक कथाओं में यह भी कहा गया है कि ब्रह्मा ने पुजारियों एवं गायों को एक ही समय में जीवन दिया ताकि पुजारी धार्मिक ग्रंथों का पाठ कर सकें जबकि गायें अनुष्ठानों में घृत (घी) दे सकें। **जो भी गो हत्या करता है अथवा दूसरों को करने देता है, वह अपने शरीर पर बालों की संख्या के समान वर्षों तक नरक में सड़ता हुआ माना जाता है।** इसी प्रकार बैल को भगवान शिव के वाहन के रूप में दर्शाया गया है जो कि नर मवेशियों के प्रति सम्मान का प्रतीक है।

महाभारत में, भीष्म (युद्धरत दलों के नेतृत्वकर्ताओं के पितामह) का मानना है कि गाय जीवन भर मनुष्यों को दूध प्रदान कर पालनहार माता के रूप में कार्य करती है, अतः वह वास्तव में विश्वमाता है। पुराणों में कहा गया है कि गौदान से अधिक धार्मिक कुछ भी नहीं है। भगवान राम को अनेक गायें उपहार में दी गयीं थीं।

19वीं एवं 20वीं सदी के अंत में, भारत में गायों की रक्षा हेतु एक आंदोलन खड़ा हुआ, जिसने भारत सरकार से देश में तत्काल प्रभाव से गोहत्या पर प्रतिबंध लगाने की मांग करके नागरिकों को एकजुट करने का प्रयास किया।

इस न्यायालय ने भी आशा एवं विश्वास जताया है कि केंद्र सरकार देश में गौहत्या पर प्रतिबंध लगाने तथा उसे 'संरक्षित राष्ट्रीय पशु' घोषित करने का उचित निर्णय ले सकती है।

अभिलेख पर उपलब्ध सामग्रियों के परिशीलन एवं वर्तमान वाद के तथ्यों के अवलोकन और तत्पश्चात प्रस्तुत तर्कों पर विचार करने के पश्चात, ऐसा प्रतीत नहीं होता कि प्रार्थी के विरुद्ध कोई अपराध स्थापित नहीं किया गया है।

आदेशिका जारी करने की प्रक्रिया के चरण में विचारण न्यायालय से अभिलेख पर मौजूदा सामग्री को विस्तार से जांच एवं मूल्यांकन करने की अपेक्षा नहीं की जाती है, मात्र यह देखा जाना चाहिए कि प्रथम दृष्टया संज्ञेय अपराध का खुलासा किया गया है या नहीं। निम्नवत वादों में सर्वोच्च न्यायालय ने दिशानिर्देश भी प्रतिपादित किए हैं जहां उच्च न्यायालय द्वारा अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए आपराधिक कार्यवाही में हस्तक्षेप किया जा सकता है तथा रद्द किया जा सकता है: - **(i) आर.पी. कपूर बनाम पंजाब राज्य, AIR 1960 S.C. 866, (ii) हरियाणा राज्य बनाम भजनलाल, 1992 SCC (Crl .)426, (iii) बिहार राज्य बनाम पी.पी. शर्मा, 1992 SCC (Crl .)192 एवं (iv) झंडू फार्मास्युटिकल वर्क्स लिमिटेड बनाम मो. सराफुल हक एवं एक अन्य, (प्रस्तर-10) 2005 SCC (Crl .)283।**

उपरोक्त निर्णयों के माध्यम से सर्वोच्च न्यायालय ने प्रारंभिक चरण में कार्यवाही को रद्द करने की विधिक स्थिति विनिश्चित कर दी है। न्यायालय द्वाराकिया जाने वाला परीक्षण यह है कि क्या लगाए गए निर्विवाद आरोप से प्रथम दृष्टया अपराध स्थापित होता है तथा अंतिम दोषसिद्धि की संभावना कम है तथा आपराधिक कार्यवाही जारी रखने की अनुमति देने से कोई उपयोगी उद्देश्य पूर्ण होने की संभावना नहीं है। **एस.डब्लू. पलानकट्टकर एवं एक अन्य बनाम बिहार राज्य, 2002 (44) ACC 168,** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह धारित किया गया है कि आपराधिक कार्यवाही को रद्द करना एक नियम के बजाय एक अपवाद है। दं०प्र०सं की धारा 482 के अंतर्गत उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियां स्वयं तीन परिस्थितियों की परिकल्पना करती हैं जिनके अंतर्गत

अंतर्निहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया जा सकता है: - (i) संहिता के अंतर्गत आदेश को प्रभावी करने हेतु, (ii) न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने हेतु ; (iii) अन्यथा न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करना। उच्च न्यायालय की शक्ति अत्यंत व्यापक है किंतु वास्तविक एवं सारभूत न्याय करने हेतु इसका उपयोग बहुत सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए जिस हेतु ही न्यायालय मौजूद है।

उच्च न्यायालय कोई जांच आरंभ नहीं करेगा क्योंकि यह विचारण न्यायाधीश/न्यायालय का कार्य है। **किसी वाद में आरोप पत्र/आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने की सीमा पर, हस्तक्षेप को असाधारण नहीं कहा जा सकता क्योंकि यह प्रथम दृष्टया एक अपराध के घटित होने का खुलासा करता है। परिणामस्वरूप वाद संख्या 1548/2020, राज्य बनाम मो. खालिक जो अपराध संख्या 462/2018, धारा 3/5/8 उत्तर प्रदेश गोवध निवारण अधिनियम, 1955, थाना देवा, जिला बाराबंकी के अंतर्गत, से उद्भूत होने वाले आरोप-पत्र/आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने की प्रार्थना को अस्वीकार करता है। दं०प्र०सं की धारा 482 के अंतर्गत प्रार्थी द्वारा प्रस्तुत इस प्रार्थनापत्र में कोई बल नहीं है।**

पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत पूर्वोक्त तर्कों एवं माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उपरोक्त उल्लिखित निर्णयों के दृष्टिगत, यह न्यायालय वर्तमान आवेदन में कोई गुण नहीं पाता है तथा यह खारिज किये जाने योग्य है।

तदनुसार, दं०प्र०सं की धारा 482 के अंतर्गत प्रार्थी द्वारा प्रस्तुत वर्तमान प्रार्थनापत्र खारिज किया जाता है।

(2023) 3 ILRA 772

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 24.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह

आवेदन अन्तर्गत धारा 482 सं. 9839 वर्ष 2022

छोटक्की @ किरण ...**आवेदक**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ...**प्रतिपक्षी**

आवेदक की ओर से अधिवक्ता: अरविंद कुमार वर्मा

प्रतिपक्षी की ओर से अधिवक्ता: जी.ए.

17. आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 9839/2022-छोटकी @किरण बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

सिविल कानून - किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम-धारा 7A- एफआईआर वर्ष 2000 में दर्ज हुई-आवेदक नाबालिग थी-अभियुक्त-फिर शादी कर ली और अपने पति के साथ अलग रहने लगी-शादी से पहले-उभरी और जमानत पर रिहा हुई-आवेदक को कभी समन नहीं मिला- वर्ष 2022 में आवेदक ने आवेदन दिया कि घटना के समय वह नाबालिग थी-गौर नहीं किया गया-जब भी नाबालिग होने का दावा किया जाए-न्यायालय तुरंत उम्र तय करने के लिए जांच करेगी-यह दावा किसी भी चरण में उठाया जा सकता है-यहां तक कि वाद का अंतिम निस्तारण होने या अपील में अंतिम आदेश के बाद भी- विलंब निरस्तीकरण का कारण

नहीं हो सकती-आपेक्षित आदेश निरस्त किया गया।

आवेदन स्वीकृत। (E-9)

उद्धृत वाद सूची:

अबुजर होसैन @ गुलाम होसैन बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, 2012 (10) SCC 489

माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह

1. आवेदिका हेतु विद्वान अधिवक्ता श्री अरविंद कुमार वर्मा एवं राज्य हेतु विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री अनिरुद्ध कुमार सिंह को सुना।

2. चूँकि इस मामले में शुद्ध विधिक प्रश्न सम्मिलित है, इसलिए विपक्षी संख्या. 2 को नोटिस समाप्त किया जाता है।

3. वर्तमान आवेदन के माध्यम से, आवेदिका ने आपराधिक वाद संख्या 3095 वर्ष2001, जो मुकदमा अपराध संख्या 172 वर्ष 2001 अंतर्गत धारा 498ए, 304बी भारतीय दण्ड संहिता एवं धारा 3/4 दहेज प्रतिषेध अधिनियम, पुलिस स्टेशन पिसावां, जिला सीतापुर से उद्भूत है, में विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, सीतापुर द्वारा पारित गैर-जमानती वारंट से संबंधित दिनांक 27.09.2022 के आक्षेपित आदेश एवं आक्षेपित आदेश दिनांक 07.12.2022 को रद्द करने की प्रार्थना की है ।

4. वाद की तथ्यात्मक संरचना यह है कि कथित घटना के समय आवेदिका नाबालिग (तेरह वर्ष की) थी, क्योंकि उसकी जन्म तिथि 20.07.1988 प्रदर्शित की गई है। विपक्षी संख्या 2, श्री रामचंद्र ने वर्तमान आवेदिका के साथ-साथ अन्य सह-अभियुक्त व्यक्तियों के विरूद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की। तत्पश्चात अन्वेषण हुआ एवं आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया। कथित घटना के बाद, आवेदिका ने ग्राम मल्हपुर चौबे निवासी प्रकाश नामक व्यक्ति से विवाह कर लिया एवं अपनी ससुराल में रहने लगी, जिससे उसे सम्मन नहीं मिल सका एवं अंततः जब 27.09.2022 को गैर-जमानती वारंट जारी हुआ, तो उसे वाद के बारे में पता चला और उसने अपने अधिवक्ता से संपर्क किया, जिन्होंने 14.10.2022 को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, सीतापुर के समक्ष एक आवेदन दायर किया एवं प्रार्थना की कि मामले को सुनवाई के लिए किशोर न्याय बोर्ड को भेजा जाए, क्योंकि वह उस घटना के समय तेरह वर्ष की थी। उक्त आवेदन पर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, सीतापुर ने दिनांक 07.12.2022 को आदेश पारित किया, जिसके द्वारा प्रार्थना पत्र खारिज कर दिया गया, गैर जमानती वारंट का आदेश पारित किया गया एवं आवेदिका के विरूद्ध धारा 82 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत उद्घोषणा जारी की गई। इस प्रकार आवेदिका ने वर्तमान आवेदन के माध्यम से आदेश दिनांक 27.09.2022 एवं 07.12.2022 को चुनौती दी।

5. आवेदिका के अधिवक्ता का तर्क यह है कि वादी राम चंद्र द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 498 ए, 304 बी एवं दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3/4 के अंतर्गत पुलिस स्टेशन पिसावां, जिला सीतापुर में 04.09.2000 को एक प्राथमिकी दर्ज की गई थी, एवं वर्तमान आवेदिका, जो उक्त घटना की तिथि पर अवयस्क थी, को वर्तमान मामले में अंतरस्थ हेतु से फंसाया गया है क्योंकि घटना की तिथि पर आवेदिका की आयु उसकी जन्मतिथि के अनुसार तेरह वर्ष थी। उसका कथन है कि जब यह तथ्य संज्ञान में आया कि वर्तमान आवेदिका एवं परिवार के सभी सदस्यों के विरूद्ध

प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई है, तो आवेदिका ने संबंधित न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया एवं विचारण न्यायालय द्वारा दिनांक 08.02.2001 के आदेश के अंतर्गत उसे जमानत दे दी गई।

6. पुन: निवेदन यह है कि अन्वेषण अधिकारी ने अन्वेषण किया एवं आवेदिका के परिवार के सदस्यों के विरूद्ध मुकदमा अपराध संख्या 172 वर्ष 2000में आरोप पत्र प्रस्तुत किया। आवेदिका के विरूद्ध अन्वेषण लंबित रखा गया, परन्तु बाद में विपक्षी संख्या 2 के प्रभाव में दिनांक 24.03.2001 को आवेदिका को वयस्क मानते हुए उसके विरुद्ध भी आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था, यद्यपि आरोप पत्र से स्पष्ट है कि वर्तमान आवेदिका की आयु लगभग तेरह वर्ष थी जैसा कि आरोप पत्र में ही अंकित है।

7. उन्होंने तर्क दिया कि आवेदिका के विरूद्ध आरोप पत्र प्रस्तुत करने के उपरान्त, वाद वर्ष 2001 के आपराधिक वाद संख्या 3095, (राज्य बनाम छोटक्की उर्फ किरण) के रूप में दर्ज किया गया था, लेकिन न तो आवेदिका को कोई नोटिस दिया गया एवं न ही कोई समन दिया गया। विचारण न्यायालय ने इस तथ्य को सुनिश्चित किए बिना ही कि आवेदिका पर समन तामील किया गया है या नहीं, आवेदिका के विरूद्ध गैर-जमानती वारंट जारी करने की कार्यवाही प्रारंभ कर दी एवं जैसे ही गैर-जमानती वारंट जारी करने के संबंध में तथ्य सामने आए, आवेदिका ने दिनांक 14.10.2022 को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, सीतापुर के समक्ष एक आवेदन दायर किया एवं आवेदन प्रस्तुत करते समय तर्क दिया गया कि चूँकि घटना की तिथि पर आवेदिका अवयस्क थी, अत: मामला संबंधित किशोर न्याय बोर्ड को स्थानांतरित कर दिया जाए। उन्होंने यह भी कहा कि मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, सीतापुर ने अपने न्यायिक विवेक का उपयोग किए बिना एवं पत्रावली पर उपलब्ध सामग्रियों की उचित जाँच किए बिना ही, आवेदिका के आवेदन को अस्वीकृत कर दिया, गैर-जमानती वारंट जारी कर दिया एवं दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 82 के अंतर्गत उद्घोषणा की कार्यवाही प्रारंभ कर दी।

8. पुन:, उन्होंने यह तर्क प्रस्तुत किया कि विद्वान विचारण न्यायालय ने किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2000 (इसके बाद 'अधिनियम, 2000' के रूप में संदर्भित) की मौजूदा धारा 7 ए के प्रावधानों की अनदेखी की है, साथ ही साथ इस तथ्य को भी अनदेखा किया है कि आवेदिका घटना की तिथि पर अवयस्क थी। इस प्रकार, न्यायालय ने स्पष्ट रूप से अवैधता की है।

9. संदर्भ हेतु, अधिनियम, 2000 की धारा 7ए निम्नवत है:-

> "7ए. किसी न्यायालय के समक्ष किशोरावस्था का दावा किए जाने पर अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया-
>
> (1) जब कभी किसी न्यायालय के समक्ष किशोरावस्था का कोई दावा किया जाता है या न्यायालय की यह राय है कि अभियुक्त व्यक्ति अपराध कारित होने की तारीख़ को किशोर था तब न्यायालय ऐसे व्यक्ति की आयु का अवधारण करने के लिए जांच करेगा, ऐसा साक्ष्य लेगा

जो आवश्यक हो (किन्तु शपथ-पत्र पर नहीं) और इस बारे में उसकी निकटतम आयु का कथन करते हुए निष्कर्ष अभिलिखित करेगा कि वह व्यक्ति किशोर या बालक है अथवा नहीं:

परंतु किशोरावस्था का दावा किसी न्यायालय के समक्ष किया जा सकेगा और उसे किसी भी प्रक्रम पर, यहां तक कि मामले के अंतिम निपटान के पश्चात भी, मान्यता दी जाएगी और ऐसे दावे का इस अधिनियम में और उसके अधीन बनाए गए नियमों के उपबंधों के अनुसार अवधारण किया जाएगा, भले ही उसकी किशोरावस्था इस अधिनियम के प्रारंभ की तारीख को या उससे पहले समाप्त हो गई हो।

(2) यदि न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि कोई व्यक्ति उपधारा (1) के अधीन अपराध कारित करने की तारीख को किशोर था, तो वह उस किशोर को समुचित आदेश पारित किए जाने के लिए बोर्ड को भेजेगा, और यदि न्यायालय द्वारा कोई दंडादेश पारित किया गया है तो यह समझा जाएगा कि उसका कोई प्रभाव नहीं है।

10. उपरोक्त प्रावधानों का उल्लेख करते हुए, उनका तर्क है कि विचारण न्यायालय ने आवेदिका की किशोरावस्था निर्धारण के संबंध में एक भी शब्द नहीं कहा, इस प्रकार, किशोरावस्था के निर्धारण के लिए जाँच संबंधी प्रावधान का स्पष्ट रूप से उल्लंघन किया गया है। विचारण न्यायालय ने हालांकि आक्षेपित आदेश में आवेदिका के तर्क पर ध्यान दिया कि घटना के समय उसकी आयु 13 वर्ष थी, लेकिन न तो कोई चर्चा है एवं न ही निष्कर्ष दर्ज किया गया है।

11. पुन: उन्होंने कहा कि अधिनियम, 2000 की धारा 49 आयु की उपधारणा एवं अवधारण से संबंधित है एवं इस प्रकार, यह जाँच करना सक्षम प्राधिकारी हेतु भी अनिवार्य है कि कथित अभियुक्त बालक है या नहीं।

12. पुन: उन्होंने तर्क दिया कि आयु अवधारण की प्रक्रिया विशेष रूप से किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) नियमावली, 2007 के नियम 12 के अंतर्गत प्रदान की गई है। प्रक्रिया के संबंध में विस्तृत नियम मात्र इस तथ्य को विहित करने के लिए निर्धारित किए गए हैं कि किसी भी किशोर पर अधिनियम, 2000 में निर्धारित प्रक्रिया के अलावा किसी अन्य प्रक्रिया से विचारण नहीं किया जाना चाहिए, एवं इस प्रकार उनका कथन है कि विचारण न्यायालय ने उस प्रक्रिया को नहीं अपनाया, जिसका पालन आयु निर्धारण हेतु किया जाना था। अंत में, उनका कथन है कि चूँकि विचारण न्यायालय ने प्रथम बार आवेदिका द्वारा आवेदन प्रस्तुत करने के बाद भी वर्तमान आवेदिका को किशोरता का लाभ देना अस्वीकृत कर दिया है, इसलिए, विचारण न्यायालय ने मात्र आवेदिका के आवेदन को ही अस्वीकृत नहीं किया है अपितु विधि के प्रावधानों को भी अनदेखा कर दिया है।

13. अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने अबुज़ार हुसैन उर्फ गुलाम हुसैन बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, 2012 (10) एससीसी 489 की निर्णय विधि पर विश्वास व्यक्त किया एवं उपरोक्त

फैसले के प्रस्तर 39.1 का उल्लेख किया है, जिसमें यह स्पष्ट रूप से माना गया है कि किशोरता का दावा किसी भी स्तर पर उठाया जा सकता है, यहां तक कि मुकदमा समाप्त होने एवं अपील पर निर्णय होने के बाद भी।

14. अनुच्छेद 39.1 निम्नवत है:-

> *"39.1 वाद के अंतिम रूप से निस्तारित होने के बाद भी किसी भी स्तर पर किशोरता का दावा किया जा सकता है। वाद के अंतिम रूप से निस्तारित होने के बाद इसे इस न्यायालय के समक्ष प्रथम बार उठाया जा सकता है। किशोरता का दावा उठाने में विलंब इस प्रकार के दावे को अस्वीकृत करने का आधार नहीं हो सकता है। किशोरवयता का दावा अपील में उठाया जा सकता है, भले ही विचारण न्यायालय के समक्ष न उठाया गया हो एवं पहली बार इस न्यायालय के समक्ष उठाया जा सकता है, भले ही विचारण न्यायालय एवं अपील न्यायालय के समक्ष न उठाया गया हो।"*

15. पूर्वोक्त पर विश्वास व्यक्त करते हुए, उन्होंने कहा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारित किया है कि किशोरता का दावा उठाने में देरी ऐसे दावे को अस्वीकार करने का आधार नहीं हो सकती है एवं इसे अपील के चरण में भी उठाया जा सकता है, यदि विचारण न्यायालय के समक्ष नहीं उठाया गया हो।

16. पुन: यह कथन किया गया है कि चूँकि यह आरोप पत्र के साथ-साथ प्राथमिक विद्यालय धधनामऊ द्वारा जारी विद्दालय स्थानन्तरण प्रमाण पत्र से भी स्पष्ट है, जिसे प्रार्थना पत्र के संलग्नक संख्या 3 के रूप में संलग्न किया गया है एवं जिसमें बताया गया है कि घटना के समय आवेदिका की आयु 13 वर्ष थी क्योंकि उसकी जन्मतिथि 20.07.1988 है, एवं आरोप पत्र में इस तथ्य का भी उल्लेख है कि आवेदिका की आयु घटना के समय 13 वर्ष थी। घटना के समय वर्तमान आवेदिका 13 वर्ष की थी। उनका कहना है कि निस्संदेह वर्तमान आवेदिका कथित घटना की तिथि पर अवयस्क थी एवं इस प्रकार, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, सीतापुर के पास आवेदिका के मुकदमे में आगे की कार्यवाही का कोई क्षेत्राधिकार क्षेत्र नहीं है एवं मामले को किशोर न्याय बोर्ड को वापस भेज दिया जाना चाहिए था। पुनः उन्होंने कहा कि इसलिए मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा दिनांक 07.12.2022 को पारित आदेश अवैध है एवं शीर्ष न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि के विरूद्ध है एवं इस प्रकार, यह अपोषणीय है।

17. दूसरी ओर, विद्वान राज्य अधिवक्ता ने आवेदिका के विद्वान अधिवक्ता के तर्कों का विरोध करते हुए कहा कि घटना वर्ष 2000 में हुई थी एवं यह एक स्वीकृत तथ्य है कि वर्तमान आवेदिका, प्राथमिकी दर्ज होने के उपरांत, विचारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत हुई एवं उसे जमानत पर रिहा कर दिया गया, जिससे पता चलता है कि आपराधिक मामला आवेदिका की जानकारी में भली भाँति था। पुन: उन्होंने कहा कि चूँकि विचारण न्यायालय को सही पता नहीं बताया गया था, इसलिए, उसी पते पर समन भेजा गया जो विचारण न्यायालय के अभिलेख पर उपलब्ध था, एवं उपस्थित न होने की स्थिति में विचारण न्यायालय ने गैर-जमानती वारंट जारी

किया एवं अन्य आनुषंगिक कार्यवाहियों का अवलंबन लिया, एवं जब पुलिस किसी प्रकार वर्तमान आवेदिका के स्थान तक पहुँच सकी, तो वह बाध्यकारी परिस्थितियों में विचारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत हुई। इस प्रकार, यह प्रदर्शित होता है कि आवेदिका आशयपूर्वक बचने का प्रयास कर रही थी एवं विगत 20 वर्षों से कार्यवाही से बच रही थी, जिस कारण वाद की कार्यवाही विलंबित हो रही थी। पुन: उन्होंने कहा कि वर्तमान आवेदिका इस न्यायालय के समक्ष निर्दोष नहीं आई है एवं उसने विधि की प्रक्रिया एवं विचारण न्यायालय द्वारा दी गई जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग किया है।

18. इस बिंदु पर राज्य के विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि चूँकि आवेदिका के विरूद्ध गैर-जमानती वारंट जारी किया गया था एवं दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 82 की कार्यवाही भी प्रारंभ की गई थी एवं इसलिए, एक बार आवेदिका द्वारा आवेदन प्रस्तुत किया गया था। इन सभी परिस्थितियों पर विस्तार से चर्चा करते हुए इसे अस्वीकृत कर दिया गया एवं यह अबूझ है कि जब आवेदिका की जानकारी में यह तथ्य था कि घटना के समय वह नावयस्क थी, तो उसने बीस वर्ष तक अधिनियम, 2000 की धारा 7ए के प्रावधानों का लाभ क्यों नहीं लिया। इस प्रकार, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, सीतापुर द्वारा पारित आदेश में कोई भी अवैधता या विकृति नहीं है एवं यह आवेदन अस्वीकृत किए जाने योग्य है।

19. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने एवं अभिलेखों के परिशीलनोपरांत, यह ज्ञात होता है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट वर्ष 2000 में धारा 498-ए, 304 बी भारतीय दंड संहिता सहपठित दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3/4 के अंतर्गत दर्ज की गई थी। वर्तमान आवेदिका को फंसाया गया था। इसके बाद, उसने विवाह कर लिया एवं अपने पति के साथ अलग रहने लगी। हालांकि विवाह के पूर्व वह विचारण न्यायालय में प्रस्तुत हुई, जमानत हेतु आवेदन किया एवं उसे जमानत मिल गई। इससे यह भी पता चलता है कि आवेदिका को डाक द्वारा कभी भी समन नहीं दिया गया। विचारण न्यायालय के अभिलेख में आवेदिका का पैतृक पता था एवं पक्षकारों ने आवेदिका के वैवाहिक स्थान का आवासीय/डाक पता प्रदान नहीं किया था। आवेदिका के कथनानुसार, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 82 के अंतर्गत गैर-जमानती वारंट के साथ-साथ उद्घोषणा की कार्यवाही जब उसके संज्ञान में आई, तब वह विचारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत हुई एवं स्वयं को किशोर घोषित करने हेतु एक आवेदन प्रस्तुत किया।

20. जब इस न्यायालय ने इस आवेदन में संलग्न विद्वान विचारण न्यायालय के दिनांक 07.12.2022 के प्रश्नगत आदेश की जाँच की, तो यह तथ्य सामने आया कि दिनांक 14.10.2022 का एक आवेदन विचारण न्यायालय के समक्ष था, जिसके अंतर्गत आवेदिका ने घटना के समय अपनी आयु 13 वर्ष दिखाते हुए अपने किशोर होने का दावा किया था। विचारण न्यायालय ने हालांकि आदेश में आवेदिका के उपरोक्त आवेदन एवं प्रार्थना का उल्लेख किया है, किंतु आवेदिका की किशोरता का निर्धारण करने के मुख्य बिंदु पर कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया गया है।

21. वर्तमान मामले में, आयु का निर्धारण करने एवं आवेदिका को विधि का उल्लंघन करने वाले

किशोर/बालक के रूप में घोषित करने हेतु आवेदन प्रस्तुत किया गया था, किन्तु विचारण न्यायालय ने इस पर विचार नहीं किया एवं प्रार्थिनी की प्रार्थना को अनसुना करते हुए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 82 के अंतर्गत गैर-जमानती वारंट एवं उद्घोषणा जारी की है।

22. यह न्यायालय विधिक प्रावधानों के साथ-साथ किशोरता के दावे के संबंध में शीर्ष न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि से अनभिज्ञ नहीं है। अधिनियम, 2000 की धारा 7 (ए) के वाचन से ज्ञात होता है कि 'जब भी' किसी न्यायालय के समक्ष किशोर होने का दावा किया जाता है एवं न्यायालय की राय है कि अपराध करने की तिथि पर आरोपी किशोर था , न्यायालय व्यक्ति की आयु निर्धारित करने हेतु आवश्यक साक्ष्य लेकर तत्काल जाँच करेगा, ताकि इस निष्कर्ष पर पहुंच सके कि ऐसा आरोपी किशोर है अथवा नहीं।

23. अधिनियम, 2000 की धारा 7(ए) इस तथ्य पर बल देती है कि किशोर होने का दावा किसी भी स्तर पर किया जा सकता है, यहाँ तक कि विचारण न्यायालय के समक्ष मामले के अंतिम निस्तारण के उपरान्त या अपील में अंतिम आदेश पारित होने के उपरान्त भी। यह भी धारित किया गया है कि किशोर होने का दावा करने में विलंब किशोर होने का दावा अस्वीकृत करने का आधार नहीं हो सकती।

24. उपरोक्त चर्चा से यह प्रकट होता है कि अधिनियम, 2007 की धारा 7 (ए) के प्रावधानों में लक्षित विधायिका की मंशा अत्यंत स्पष्ट हो जाती है क्योंकि इसमें उल्लेख है कि, 'जब भी किशोरता का दावा उठाया जाता है, एवं यह स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि ऐसे अभियुक्त को घटना के समय उसके किशोर होने का दावा करने का पूर्ण अवसर दिया गया है एवं इसे 'किसी भी न्यायालय' के समक्ष उठाया जा सकता है, जो इंगित करता है कि इसे यहां तक कि अपील न्यायालय के साथ-साथ विचारण न्यायालय में भी उठाया जा सकता है। किशोरवयता के दावे पर अपील में फैसला सुनाया जा सकता है, भले ही विचारण न्यायालय के समक्ष इस पर विचार न किया गया हो।

25. जहाँ तक वर्तमान वाद का प्रश्न है, मामला सुनवाई के चरण में है, हालांकि यह वर्ष 2000 का है एवं लगभग 22 वर्ष के विलंब उपरांत, आवेदिका अपने किशोर होने का दावा कर रही है, किंतु विधिक प्रावधानों के अनुसार, विलंब ऐसे दावों पर विचार करने का आधार नहीं हो सकता है। किंतु प्रथमदृष्टया यह प्रतीत होता है कि मजिस्ट्रेट, आक्षेपित आदेश पारित करते समय। किशोरवयता के दावे पर निर्णय लेने के संबंध में, अयुक्तियुक्त तो प्रतीत होते ही हैं, विधिक प्रावधानों के साथ-साथ शीर्ष न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून से भी अनभिज्ञ प्रतीत होते हैं। इसके अतिरिक्त 14.10.2022 को आवेदन प्रस्तुत करते समय आवेदिका की ओर से कोई चूक या त्रुटि नहीं हुई है।

26. परिणामस्वरूप अपराध क्रमांक 172/2001 से उद्भूत वर्ष 2001 के वाद संख्या 3095 में विचारण न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 07.12.2022 को एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है।

27. मामला संबंधित विचारण न्यायालय को वापस भेजा जाता है।

28. आवेदिका इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने के दिनांक से 30 दिनों की अवधि में विचारण न्यायालय के समक्ष एक नवीन आवेदन प्रस्तुत करने हेतु स्वतंत्र है, एवं यदि ऐसा कोई आवेदन प्रस्तुत किया जाता है, तो विधि अनुसार उस पर ठीक अगले 45 दिवस की अवधि में निर्णय लिया जाएगा।

29. उपरोक्त अवधि हेतु, गैर-जमानती वारंट के साथ-साथ दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 82 के अंतर्गत उद्घोषणा की कार्यवाही स्थगित रहेगी।

30. उपरोक्त निदेशों एवं टिप्पणियों के साथ, एतदद्वारा आवेदन स्वीकृत किया जाता है।

(2023) 3 ILRA 777

मूल अधिकार क्षेत्र

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 09.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा

आवेदन अन्तर्गत धारा 482 सं. 26037 वर्ष 2022

रुचि मित्तल @ श्रीमती रुचि गर्ग ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ...प्रतिपक्षी

आवेदक की ओर से अधिवक्ता: श्री सुनील कुमार

प्रतिपक्षी की ओर से अधिवक्ता: जी.ए., श्री भानु प्रकाश सिंह, श्री विजय प्रकाश मिश्रा

4. आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या - 26037 / 2022 - रुचि मित्तल @ श्रीमती रुचि गर्ग बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य।

आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता - धारा 156 (3) और 397 - धारा 482 के तहत आवेदन जो धारा 156(3) के आदेश के विरुद्ध है, शिकायत के रूप में आवश्यक नहीं है - धारा 397 Cr.P.C. के तहत पुनरीक्षण उचित उपाय है।

आवेदन खारिज। (E-9)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. अतुल पांडे @ परम प्रज्ञान पांडे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2021 लॉसूट (अल) 603
2. जगन्नाथ वर्मा एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2015 (88) आल क्रि. 1
3. ललित कुमारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2014 (84) आल क्रि. 719
4. सुखवाई बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2008 क्रि.एल.जे 472
5. सकिरी वासु बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2008 (60) आल क्रि. 689
6. मोहम्मद यूसुफ बनाम अफाक जहां, 2006 (54) आल क्रि. 530
7. गोपाल दास सिंडी बनाम असम राज्य, AIR 1961 SC 986

<u>माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा</u>

1. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री सुनील कुमार, राज्य के लिए विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता श्री पंकज कुमार त्रिपाठी और विपक्षी पक्ष संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री भानु प्रकाश सिंह को सुना।

2. यह आवेदन धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत, आपराधिक प्रकीर्ण आवेदन संख्या 462 वर्ष 2021 (पुरानी संख्या 343 वर्ष 2021, श्रीमती रुचि मित्तल बनाम अमित मित्तल और अन्य), अंतर्गत धारा 156(3) दण्ड प्रक्रिया संहिता

में अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट-प्रथम, गौतमबुद्ध नगर द्वारा पारित, आवेदन अंतर्गत धारा 156(3) दण्ड प्रक्रिया संहिता को एक शिकायत का मामला मानने संबंधी आदेश दिनांक 25.07.2022 को निरस्त करने हेतु दायर किया गया है। यह भी प्रार्थना की गई है कि आक्षेपित आदेश को निरस्त करने के बाद, पुलिस को मामला दर्ज करने और जांच शुरू करने और जांच रिपोर्ट प्रस्तुत करने का निर्देश देने वाला एक नया आदेश दिया जाए। वैकल्पिक रूप से, एसीजेएम-I, गौतमबुद्ध नगर को धारा 156(3) दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत उपरोक्त आवेदन को निर्धारित समय के भीतर सुनने और निर्णय लेने का निर्देश देने की भी प्रार्थना की गई है।

3. गुण दोष में प्रवेश करने से पहले, सबसे पहले यह उल्लेख करना उचित होगा कि श्री भानु प्रकाश सिंह, विद्वान अधिवक्ता, बिना किसी सूचना के विपक्षी संख्या 2 की ओर से उपस्थित हुए, जिसके बारे में आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि उन्हें मामले में उपस्थित होने और बहस करने का कोई अधिकार नहीं है। उन्होंने उस आदेश पत्र की ओर भी ध्यान दिलाया जिसमें पहले 17.10.2022 को इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ द्वारा यह देखा गया था कि यह एक पुनरीक्षण नहीं है और श्री विजय प्रकाश मिश्रा, विद्वान अधिवक्ता (जो विपक्षी पक्ष संख्या 2 की ओर से पेश हुए थे) का कोई अधिकार नहीं है। यद्यपि, बहस की समाप्ति के पश्चात आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने विपक्षी संख्या 2 की ओर से उपस्थित हुए विद्वान अधिवक्ता श्री भानु प्रकाश सिंह की मौजूदगी, उपस्थिति और बहस का विरोध नहीं किया।

4. विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता और विपक्षी पक्ष संख्या 2 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि धारा 482 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत एक आवेदन सुनवाई योग्य नहीं है। आवेदक ने आपराधिक पुनरीक्षण दायर करने के बजाय धारा 482 दण्ड प्रक्रिया संहिता के तहत एक आवेदन अर्थात वर्तमान आवेदन दायर किया है जो पोषणीय नहीं है।

5. संलग्न शपथ पत्र में, आवेदक ने पूरे प्रकरण तथा पक्षकारों के मध्य लंबित मामलों का विवरण दिया है। स्वीकार्य रूप से, आवेदक विपक्षी पक्ष संख्या 2, अमित मित्तल की कानूनन विवाहिता पत्नी है। विपक्षी पक्ष संख्या 3 एवं 4 आवेदक के ससुर एवं सास हैं। विपक्षी पक्ष संख्या 5 आवेदक के पति का भाई है और विपक्षी पक्ष संख्या 6, विपक्षी पक्ष संख्या 5 की पत्नी है।

6. पक्षकारों के तर्क के आधार पर, यह प्रतीत होता है कि इस शिकायत के बजाय विपक्षी पक्ष संख्या 2 द्वारा बुलंदशहर में तलाक की याचिका और दो आपराधिक मामले, एक धारा 406 भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत और दूसरा धारा 420 भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत, भी लंबित हैं। संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम के अंतर्गत एक मामला और धारा 125 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत एक मामला भी पक्षकारों के बीच लंबित है और धारा 406 और 420 भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत मामलों की कार्यवाही पर इस न्यायालय द्वारा रोक लगा दी गई थी। आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह भी तर्क दिया गया कि बिना किसी अधिकार के प्रतिवादी द्वारा धारा 340 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत एक

आवेदन दायर किया गया है और अब तक विपक्षी पक्षों द्वारा अंतरिम रखरखाव का कोई भुगतान नहीं किया गया है। उनके अनुसार चूँकि विपक्षीगण बुलन्दशहर एवं गौतमबुद्ध नगर की सिविल अदालतों में अधिवक्ता हैं, अत: आवेदक शिकायत पर मुकदमा चलाने में असमर्थ है तथा चूँकि संज्ञेय अपराध घटित होने का आरोप लगाया गया है, अत: आवेदन को शिकायत के रूप में मानने के बजाय संबंधित मजिस्ट्रेट को आवेदन स्वीकार कर लेना चाहिए था और मामला दर्ज कर जांच करने का आदेश पारित करना चाहिए था। आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया कि सबसे पहले धारा 156 (3) दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत आवेदन एसीजेएम-द्वितीय की अदालत में दायर किया गया था, लेकिन पीठासीन अधिकारी को आवेदन पर फैसला करना मुश्किल हो गया क्योंकि विपक्षी पक्ष संख्या 1 गौतमबुद्धनगर में प्रैक्टिस करने वाला अधिवक्ता है, इसलिए, एसीजेएम-द्वितीय के अनुरोध पर मामले को एसीजेएम-प्रथम की अदालत में स्थानांतरित कर दिया गया, लेकिन एसीजेएम-प्रथम की अदालत के पीठासीन अधिकारी को भी यह मुश्किल लगा और उन्होंने, आवेदन अंतर्गत धारा 156(3) दंड प्रक्रिया संहिता की कार्यवाही को सुनने और निर्णय लेने में अनिच्छा दिखाते हुए सीजेएम, गौतमबुद्धनगर को एक पत्र लिखा। मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, गौतमबुद्ध नगर ने इसे स्थानांतरित करने से इनकार कर दिया। असहाय होकर, एसीजेएम-I ने धारा 156(3) दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत आवेदन को एक शिकायत में बदल दिया, जो न्याय के उद्देश्य को पूरा नहीं करेगा और उपस्थित परिस्थितियों में, आवेदक एक महिला होने के नाते शिकायत पर मुकदमा चलाने में सक्षम नहीं होगी।

7. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने धारा 397(2) दंड प्रक्रिया संहिता पर ध्यान दिलाते हुए तर्क दिया कि आक्षेपित आदेश एक अंतरिम आदेश है जिसमें कोई संशोधन नहीं है।

8. उसके विपरीत, विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ द्वारा निर्णित **अतुल पांडे @ परम प्रज्ञान पांडे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2021 लॉसुइट (सभी) 603** के उद्धरण का आश्रय लिया एवं तर्क दिया कि आवेदक द्वारा व्यक्त की गई परिस्थितियाँ फॉर्म को नहीं बदलेंगी। उपरोक्त मामले में, न्यायालय ने **जगन्नाथ वर्मा और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2015 (88) सभी सीआरसी 1, ललित कुमारी बनाम उत्तर प्रदेश सरकार, 2014 (84) सभी सीआरसी 719, सुखवाई बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2008 सीआरएलजे 472, साकिरी वासु बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2008 (60) सभी सीआरसी 689, मो. यूसुफ बनाम अफाक जहां, 2006- (54) सभी सीआरसी 530 और गोपाल दास सिंदी बनाम असम राज्य, एआईआर 1961 एससी 986** के निर्णय को उद्धृत करते हुए, निष्कर्ष निकाला कि यदि धारा 156(3) दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत एक आवेदन खारिज कर दिया गया है या इसे शिकायत में बदल दिया गया है, तो पीड़ित पक्ष धारा 397 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत संशोधन दाखिल कर सकता है। यह भी माना गया है कि ऐसे आवेदन को अस्वीकार करने या धारा 156(3) दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत आवेदन को शिकायत में बदलने से संबंधित आदेश एक अंतरिम आदेश नहीं है और इसे पीड़ित पक्ष द्वारा केवल पुनरीक्षण दाखिल करके चुनौती दी जा सकती है।

9. इस मामले और उक्त मामले के तथ्य प्रकृति में समान हैं। **अतुल पांडे (उपरोक्त)** में

अली हसन द्वारा धारा 156(3) दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत एक आवेदन दायर किया गया था, जिसे स्वीकार किया गया था और इसे एक शिकायत के रूप में माना गया था। व्यथित होकर, धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत एक आवेदन दायर किया गया था, जिसकी पोषणीयता पर सवाल उठाया गया था। विद्वान एकल न्यायाधीश ने उपरोक्त न्यायिक उदाहरणों का हवाला देते हुए कहा कि ऐसी परिस्थितियों में धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत आवेदन सुनवाई योग्य नहीं है। निर्णय का प्रासंगिक भाग इस प्रकार है:-

"16. इस न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा जगन्नाथ वर्मा (उपरोक्त) मामले में निर्धारित कानून के आलोक में, मुझे लगता है कि आक्षेपित आदेश पुनरीक्षण योग्य है। आक्षेपित आदेश के विरुद्ध, आवेदक के पास उपलब्ध उचित उपाय, धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत आवेदन दायर करके इस न्यायालय का, उसके असाधारण क्षेत्राधिकार में, दरवाजा खटखटाने के बजाय, धारा 397 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत एक पुनरीक्षण दायर करना है। मामले में संभावित आरोपी सुनवाई का हकदार है।

17 . पूर्ववर्ती विवरण के मद्देनजर, मुझे लगता है कि जगन्नाथ वर्मा (उपरोक्त) में पूर्ण पीठ द्वारा निर्धारित कानून इस मामले के तथ्यों पर पूरी तरह से लागू है। न्यायिक अनुशासन मुझे आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा बनाए गए मामले के गुण दोष में प्रवेश करने से रोकता है।

18. आवेदक के पास उपलब्ध धारा 397 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत पुनरीक्षण दाखिल करने के वैकल्पिक उपाय के अस्तित्व के आधार पर आवेदन अंतर्गत धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता तदनुसार निरस्त किया जाता है।"

10. उपरोक्त चर्चा के आधार पर, यह न्यायालय भी विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा निर्धारित सिद्धांतों से सहमत है और उसकी राय है कि आक्षेपित आदेश के विरुद्ध धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत कार्यवाही चलने योग्य नहीं है और आवेदक को पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण दायर करना चाहिए था।

11. तदनुसार, यह आवेदन पोषणीय न होने के कारण निरस्त किया जाता है। आवेदक संबंधित पुनरीक्षण न्यायालय में पुनरीक्षण दायर करने के लिए स्वतंत्र है।

12. कार्यालय को, आवेदक के अधिवक्ता को आक्षेपित आदेश की प्रमाणित प्रति लौटाने का निर्देश दिया जाता है।

(2023) 3 ILRA 780

मूल अधिकार क्षेत्र

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 13.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति शेखर कुमार यादव

आवेदन अन्तर्गत धारा 482 सं. 39234 वर्ष 2022

सुनीता पांडे **...आवेदक**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...प्रतिपक्षी**

आवेदक की ओर से अधिवक्ता: श्री रवींद्र प्रकाश श्रीवास्तव

प्रतिपक्षी की ओर से अधिवक्ता: जी.ए.

5. आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या - 39234 / 2022 - सुनीता पांडे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य।

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता - धाराएँ 375 और 376 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 319 - आवेदक एफ.आई.आर. में नामित नहीं है - न ही चार्जशीट में - लेकिन पीड़िता ने अपनी गवाही अंतर्गत धारा 164 Cr.P.C. में अपने संबंध का उल्लेख किया है - धारा 319 CrPC के तहत अतिरिक्त अभियुक्त के रूप में समन करना - आपेक्षित - धारा 319 CrPC के तहत अतिरिक्त अभियुक्त को केवल परीक्षण के दौरान प्रस्तुत किए गए साक्ष्य के आधार पर समन किया जाना चाहिए, न कि केवल जांच के दौरान संकलित सामग्रियों के आधार पर - महिला को गैंगरेप के लिए अभियुक्त के रूप में प्रस्तुत किया जाना - 2013 के संशोधन के बाद अनुमति - यदि कोई महिला गैंगरेप के कार्य में समूह के साथ सहायता करती है, तो उसे धारा 376D IPC के तहत दंडनीय अपराध के लिए अभियोजित किया जा सकता है क्योंकि वहाँ इस्तेमाल किया गया "व्यक्ति" शब्द लिंग विशेष नहीं है और इसमें महिलाएं भी सम्मिलित हैं।

आवेदन निरस्त। (E-9)

उद्धृत वाद सूची:

1. प्रिया पटेल बनाम मध्य प्रदेश राज्य एवं अन्य, (2006) 3 SCC (Cri.) 96
2. राजस्थान राज्य बनाम हेमराज एवं अन्य, 2009 (12) SCC 402
3. हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य, (2014) 3 SCC 92
4. मंजीत सिंह बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य, (2021) SCC ऑनलाइन SC 632

माननीय न्यायमूर्ति शेखर कुमार यादव

1. आवेदक की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री रविन्द्र प्रकाश श्रीवास्तव और राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए. श्री आर.पी. मिश्रा को सुना गया तथा अभिलेख का अवलोकन किया गया।

2. वर्तमान प्रार्थना पत्र आवेदक सुनीता पाण्डेय द्वारा दिनांक 03.12.2018 के आक्षेपित आदेश को रद्द करने के लिए दायर किया गया है, जिसके तहत आवेदक को धारा 319 दं0प्र0सं0 के तहत प्रदत्त शक्ति के तहत धारा 376-डी, 212 भा0दं0सं0 के तहत मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया गया है, साथ ही विशेष आपराधिक (यौन) मुकदमा संख्या 08/2016 (राज्य बनाम फणींद्र मणि ओझा उर्फ डबलू और अन्य) की संपूर्ण कार्यवाही, जो मुकदमा अपराध संख्या 874/2015, अन्तर्गत धारा 376-डी और 212 भा0दं0सं0, थाना- कोतवाली बांसी, जिला- सिद्धार्थ नगर से उत्पन्न हुआ है और अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश- प्रथम, सिद्धार्थ नगर की न्यायालय में लम्बित है, को उपरोक्त मामले की आगे की कार्यवाही पर रोक लगाने के लिए दायर किया गया है।

3. एफआईआर के अनुसार, घटना दिनांक 24.06.2015 को घटित हुई तथा दिनांक 28.07.2015 को अज्ञात व्यक्तियों के विरुद्ध मुकदमा अपराध संख्या 874/2015 धारा 363 व 366 भा0दं0सं0 के अन्तर्गत एफआईआर दर्ज की गई, जिसमें आरोप लगाया गया कि कोई व्यक्ति सूचनाकर्ता की लगभग 15 वर्षीय पुत्री को बहला-फुसलाकर अपने साथ ले गया है।

4. पीड़िता का बयान धारा 161 और 164 दं0प्र0सं0 के तहत दर्ज किया गया है। पीड़िता ने धारा 164 दं0प्र0सं0 के तहत दर्ज अपने बयान में कहा है कि आवेदक कथित घटना में शामिल था, लेकिन आवेदक का नाम चार्जशीट में नहीं था। इसके बाद, विपक्षी संख्या 2 ने आवेदक को बुलाने के लिए धारा 319 दं0प्र0सं0 के तहत एक

प्रार्थना पत्र दायर किया और अवर न्यायालय ने दिनांक 03.12.2018 के आदेश के तहत आवेदक को धारा 376-डी और 212 दं0प्र0सं0 के तहत अपराध के लिए मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया है। यह वह आदेश है जो इस न्यायालय के समक्ष चुनौती का विषय है।

5. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने दलील दी कि आवेदक एक महिला है, इसलिए आवेदक के खिलाफ धारा 376-डी भा0दं0सं0 के तहत कोई अपराध नहीं बनता है और उसे विचारण न्यायालय द्वारा गलत तरीके से बुलाया गया है। आगे यह तर्क दिया गया कि आवेदक को धारा 319 दं0प्र0सं0 के तहत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए बुलाया गया है। केवल पीड़ित (पीडब्लू-1) के बयान और कुछ अन्य बाहरी दस्तावेजों पर भरोसा करते हुए, जो वास्तव में पर्याप्त नहीं हैं। उनका तर्क है कि उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों के मद्देनजर, चुनौती के तहत आक्षेपित आदेश कानून की स्पष्ट त्रुटि से दूषित है और न्याय की स्पष्ट रूप से विफलता है, और इसलिए, इसे रद्द किया जाना चाहिए।

6. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया है कि विचारण न्यायालय ने आवेदक को भा0दं0सं0 की धारा 376-डी और भा0दं0सं0 की धारा 212 के तहत दंडनीय अपराध के लिए समन भेजकर बड़ी गलती की है। यह तर्क दिया गया है कि एक महिला बलात्कार नहीं कर सकती है और इसलिए, उस पर सामूहिक बलात्कार के लिए मुकदमा नहीं चलाया जा सकता क्योंकि यह नहीं कहा जा सकता कि महिला का बलात्कार करने का इरादा था। अपने तर्क के समर्थन में उन्होंने **प्रिया पटेल बनाम मध्य प्रदेश राज्य और अन्य, (2006) 3 एससीसी (क्रि।) 96** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के एक फैसले पर भरोसा किया। उन्होंने आगे **2009 (12) एससीसी 402** में प्रतिवेदित **राजस्थान राज्य बनाम हेमराज और अन्य** मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि आवेदक को भा0दं0सं0 की धारा 376 (2) (जी) के स्पष्टीकरण के संदर्भ में भी दोषी नहीं ठहराया जा सकता है।

संशोधन से पहले भा0दं0सं0 की धारा 375 और 376(2)(जी) का सार निम्नानुसार है :-

> **375. बलात्कार** - वह पुरुष "बलात्कार" करता है, जो, इसके पश्चात अपवादित मामले के सिवाय, किसी स्त्री के साथ निम्नलिखित छह में से किसी भी प्रकार की परिस्थिति में मैथुन करता है:-
>
> पहला, उसकी इच्छा के विरुद्ध।
>
> दूसरा, उसकी सहमति के बिना।
>
> तीसरा.-- उसकी सहमति से, जब उसकी सहमति उसे या किसी ऐसे व्यक्ति को, जिससे वह हितबद्ध है, मृत्यु या क्षति का भय दिखाकर प्राप्त की गई हो।
>
> चौथा.-- उसकी सहमति से, जबकि पुरुष जानता है कि वह उसका पति नहीं है, और उसकी सहमति इसलिए दी गई है क्योंकि वह विश्वास करती है कि वह कोई दूसरा पुरुष है जिसके साथ वह विधिपूर्वक विवाहित है या होने का विश्वास करती है।
>
> पांचवां.-- अपनी सहमति से, जब ऐसी सहमति देते समय, वह मानसिक विकृति या नशे के कारण या उसके द्वारा व्यक्तिगत रूप से या किसी अन्य के माध्यम से किसी मादक या अस्वास्थ्यकर पदार्थ के सेवन के कारण,

उस वस्तु की प्रकृति और परिणामों को समझने में असमर्थ हो, जिसके लिए वह सहमति दे रही है।

छठी बात.-- जब वह सोलह वर्ष से कम आयु की हो, तो उसकी सहमति से या उसके बिना।

स्पष्टीकरण.-- बलात्कार के अपराध के लिए आवश्यक यौन संभोग गठित करने के लिए प्रवेश पर्याप्त है।

अपवाद.-- किसी पुरुष द्वारा अपनी पत्नी के साथ, जबकि पत्नी की आयु पन्द्रह वर्ष से कम न हो, संभोग करना बलात्कार नहीं है।]

376. बलात्कार के लिए दंड (1) जो कोई, उपधारा (1) द्वारा उपबंधित मामलों के सिवाय, बलात्कार करेगा, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि सात वर्ष से कम नहीं होगी किन्तु आजीवन हो सकेगी या ऐसी अवधि के लिए, जो दस वर्ष तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा, जब तक कि बलात्कार की शिकार स्त्री उसकी अपनी पत्नी न हो और बारह वर्ष से कम आयु की न हो, ऐसी स्थिति में वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि दो वर्ष तक की हो सकेगी या जुर्माने से या दोनों से दंडित किया जाएगा:

बशर्ते कि न्यायालय पर्याप्त और विशेष कारणों से, जिनका उल्लेख निर्णय में किया जाएगा, सात वर्ष से कम अवधि के कारावास का दण्ड दे सकेगा।

(2) जो कोई,- -

xx xx xx xx xx

(जी) सामूहिक बलात्कार करेगा, उसे कठोर कारावास से दण्डित किया जाएगा, जिसकी अवधि दस वर्ष से कम नहीं होगी किन्तु जो आजीवन हो सकेगी और जुर्माने से भी दण्डित किया जाएगा:

बशर्ते न्यायालय, निर्णय में उल्लिखित किए जाने वाले पर्याप्त और विशेष कारणों से, दस वर्ष से कम अवधि के लिए दोनों में से किसी भांति के कारावास का दंडादेश दे सकेगा। स्पष्टीकरण 1.-- जहां किसी स्त्री के साथ व्यक्तियों के समूह में से एक या अधिक द्वारा, जो अपने सामान्य आशय को अग्रसर करने में कार्य कर रहे हैं, बलात्संग किया जाता है, वहां प्रत्येक व्यक्ति के बारे में यह समझा जाएगा कि उसने इस उपधारा के अर्थ में सामूहिक बलात्संग किया है।

7. दूसरी ओर, विद्वान ए.जी.ए. ने आवेदक के विद्वान अधिवक्ता के दलीलों का विरोध किया और प्रस्तुत किया कि आवेदक ने कथित अपराध किया है और यह नहीं कहा जा सकता है कि एक महिला होने के नाते आवेदक या एक महिला धारा 376-डी आई.पी.सी. के तहत अपराध नहीं कर सकती है। आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा जिन निर्णयों पर भरोसा किया गया है, वे कोई मदद नहीं करते हैं क्योंकि वे धारा 375 से 376 ई आई.पी.सी. के प्रावधानों में संशोधन से पहले से संबंधित हैं।

8. मैंने आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिये गये तर्क तथा दं0प्र0सं0 की धारा 319 के प्रावधानों पर विचार किया है और इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि आक्षेपित आदेश में कोई हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। संहिता की धारा 319

का दायरा और सीमा **हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य और अन्य, (2014) 3 एससीसी 92** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा स्पष्ट किया गया है। यह अभिनिर्धारित किया गया है कि, धारा 319 दं0प्र0सं0 के तहत अपनी शक्तियों को लागू करने के लिए न्यायालय द्वारा जो कुछ भी आवश्यक है , वह यह है कि उसके सामने पेश किए गए सबूतों से वह संतुष्ट हो जाए कि जिस व्यक्ति के खिलाफ कोई आरोप नहीं लगाया गया है, लेकिन जिसकी मिलीभगत स्पष्ट प्रतीत होती है, उसके खिलाफ आरोपी के साथ मुकदमा चलाया जाना चाहिए। हरदीप सिंह के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित अनुपात को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **मंजीत सिंह बनाम हरियाणा राज्य और अन्य, (2021) एससीसी ऑनलाइन एससी 632** मामले में समझाया गया है। सर्वोच्च न्यायालय ने इस मुद्दे पर अपने बाद के निर्णयों को देखने के बाद, धारा 319 दं0प्र0सं0 के तहत न्यायालय की शक्तियों के दायरे और दायरे का सारांश दिया। और माना है कि यह केवल जांच या परीक्षण के दौरान न्यायालय द्वारा एकत्र की गई सामग्री है, न कि मामले की जांच के दौरान जांच एजेंसी द्वारा एकत्र की गई सामग्री जिसका उपयोग अतिरिक्त आरोपी को आक्षेपित करते समय किया जा सकता है। सर्वोच्च न्यायालय ने यह स्पष्ट कर दिया है कि धारा 319 दं0प्र0सं0 में आने वाले शब्द "**साक्ष्य**" का अर्थ केवल ऐसा साक्ष्य है जो बयानों के संबंध में न्यायालय के समक्ष रखा जाता है और उन दस्तावेजों के संबंध में होता है जिनका उपयोग न्यायालय द्वारा जांच के दौरान एकत्र की गई सामग्री के अलावा सभी तथ्यों को उजागर करने के लिए किया जा सकता है। यह भी निर्धारित किया गया है कि परीक्षण के दौरान दर्ज किए गए साक्ष्य के अलावा, संज्ञान लेने के बाद और परीक्षण शुरू होने से पहले न्यायालय द्वारा प्राप्त की गई किसी भी सामग्री का उपयोग केवल पुष्टि के लिए और दं0प्र0सं0 की धारा 319 के तहत शक्ति का उपयोग करने के लिए न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए साक्ष्य का समर्थन करने के लिए किया जा सकता है।

9. जहां तक आवेदक के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि एक महिला बलात्कार नहीं कर सकती है और इसलिए, उस पर सामूहिक बलात्कार के लिए मुकदमा नहीं चलाया जा सकता है, भारतीय दंड संहिता, 1860 के अधिनियम 13/2013 द्वारा धारा 375 से 376 ई भा0दं0सं0 के संशोधित प्रावधानों को देखने के बाद यह सही नहीं है।

10. प्रिया पटेल (पूर्वोक्त) का मामला सामूहिक बलात्कार का मामला था, जहां अपीलकर्ता की पत्नी ने धारा 376(2)(जी) भा0दं0सं0 के अर्थ में सामूहिक बलात्कार को अंजाम देने में मदद की। धारा 375 और 376 भा0दं0सं0 के प्रावधानों पर विस्तृत चर्चा के बाद , अन्य बातों के अलावा, यह अभिनिर्धारित किया गया कि सामूहिक बलात्कार के अपराध के कथित अपराध के लिए किसी महिला पर मुकदमा नहीं चलाया जा सकता।

11. हालांकि, धारा 375 भा0दं0सं0 और 376 भा0दं0सं0 के संशोधित प्रावधानों को देखते हुए, यह सवाल कि क्या कोई महिला बलात्कार का अपराध कर सकती है, भा0दं0सं0 की धारा 375 की स्पष्ट भाषा से ही स्पष्ट हो जाता है, जिसमें स्पष्ट रूप से कहा गया है कि बलात्कार का कृत्य केवल **'पुरुष'** द्वारा किया जा सकता है, न कि "**किसी महिला**" द्वारा। इसलिए, कोई महिला बलात्कार नहीं कर सकती। लेकिन धारा 376-डी

भा0दं0सं0 के संशोधित प्रावधान को फिर से देखें, जो **सामूहिक बलात्कार** का एक अलग और अलग अपराध है- जिसके अनुसार- "जहां किसी महिला का बलात्कार **'एक या अधिक व्यक्तियों'** द्वारा किया जाता है, <u>जो एक समूह बनाते हैं या एक समान इरादे से कार्य करते हैं</u>, उनमें से प्रत्येक व्यक्ति बलात्कार का अपराध करने वाला माना जाएगा और उसे कठोर कारावास से दंडित किया जाएगा, जिसकी अवधि बीस वर्ष से कम नहीं होगी, लेकिन जो आजीवन कारावास तक हो सकती है, जिसका अर्थ उस व्यक्ति के शेष प्राकृतिक जीवन के लिए कारावास होगा, और जुर्माना भी लगाया जाएगा"। इस प्रकार, धारा 376-डी भा0दं0सं0 में प्रयुक्त भाषा से यह देखा जा सकता है कि धारा 376-डी भा0दं0सं0 के तहत अपराध को स्थापित करने के लिए अभियोजन पक्ष को यह दर्शाने के लिए साक्ष्य प्रस्तुत करना होगा कि **एक या अधिक व्यक्तियों** ने मिलकर काम किया है और ऐसी घटना में, यदि बलात्कार एक भी व्यक्ति द्वारा किया गया है, तो सभी आरोपी दोषी होंगे, भले ही पीड़िता के साथ उनमें से एक या अधिक द्वारा बलात्कार किया गया हो। दूसरे शब्दों में , यह प्रावधान संयुक्त दायित्व के सिद्धांत को दर्शाता है और उस दायित्व का सार समान इरादे का अस्तित्व है, जो समान इरादे से पूर्व सहमति की अपेक्षा करता है, जिसे कार्रवाई के दौरान अपराधियों के आचरण से निर्धारित किया जा सकता है। ऐसे मामलों में, अपराध के कमीशन में संयुक्तता के एक निश्चित उपाय को चिह्नित करते हुए आपराधिक साझेदारी होनी चाहिए। धारा में प्रयुक्त शब्द "व्यक्ति" को संकीर्ण अर्थ में नहीं समझा जाना चाहिए। धारा 11 भा0दं0सं0 "व्यक्ति" को परिभाषित करती है क्योंकि इसमें कोई भी कंपनी या संघ या व्यक्तियों का निकाय शामिल है, चाहे वह निगमित हो या नहीं। शॉर्टर ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी में "व्यक्ति" शब्द को भी दो तरह से परिभाषित किया गया है: सबसे पहले, इसे "एक व्यक्ति" या "पुरुष, महिला या बच्चा" के रूप में परिभाषित किया गया है; और, दूसरे, "मानव के जीवित शरीर" के रूप में। इस प्रकार, एक महिला बलात्कार का अपराध नहीं कर सकती है, लेकिन अगर उसने लोगों के एक समूह के साथ बलात्कार के कृत्य में मदद की है, तो संशोधित प्रावधानों के मद्देनजर उस पर सामूहिक बलात्कार का मुकदमा चलाया जा सकता है। पुरुष के विपरीत, एक महिला को भी यौन अपराधों का दोषी ठहराया जा सकता है। एक महिला को भी सामूहिक बलात्कार का दोषी ठहराया जा सकता है यदि उसने लोगों के एक समूह के साथ बलात्कार के कृत्य में मदद की हो ।

12. उपरोक्त तथ्यों और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून को ध्यान में रखते हुए, मुझे इस स्तर पर विचारण न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने की कोई गुंजाइश नहीं दिखती। **प्रार्थना पत्र में कोई बल नहीं है और तदनुसार इसे खारिज किया जाता है।**

(2023) 3 ILRA 784

मूल अधिकार क्षेत्र

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 15.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान

आवेदन अन्तर्गत धारा 482 सं. 41169 वर्ष 2022

ताड़कनाथ एवं अन्य ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिपक्षी

आवेदकों की ओर से अधिवक्ता: सुश्री जिज्ञासा सिंह

प्रतिपक्षी की ओर से अधिवक्ता: जी.ए.

6. आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या - 41169 / 2022 - तडकनाथ और 3 अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य।

आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धाराएँ 190, 202, 216, 218 और 228 - अपराधों का जोड़ना या कम करना - केवल परीक्षण न्यायालय द्वारा आरोप तय करने के समय अनुमति है - मजिस्ट्रेट समनिंग के चरण में पुलिस रिपोर्ट पर आधारित मामलों में अपराधों को जोड़ या घटा नहीं सकता - उचित चरण आरोप तय करना है - निजी शिकायतों पर आधारित वाद में, मजिस्ट्रेट के पास धारा 190/202 Cr.P.C. के तहत पूछताछ के बाद धाराएँ जोड़ने या घटाने की शक्ति है - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - पुलिस रिपोर्ट पर आधारित वाद बनाम शिकायत का वाद - अलग प्रक्रियाएँ निर्धारित हैं - इन्हें एक साथ नहीं मिश्रित किया जा सकता - मजिस्ट्रेट का आदेश जिसमें आरोपों में सम्मिलित धाराएँ नहीं हैं, वह अस्थिर है और उसे निरस्त किया जाना चाहिए।

आवेदन खारिज। (E-9)

उद्धृत वाद सूची:

राज्य बनाम गिरीश राधाकृष्णन वार्डे, AIR 2014 सुप्रीम कोर्ट 620।

माननीय न्यायाधीश श्रीमती मंजू रानी चौहान

1. दिन के दौरान प्रार्थियों के विद्वान अधिवक्ता को आवेदन के ज्ञापन में आवश्यक सुधार करने की अनुमति दी गई।

2. वाद को पुनः पुकारा गया है।

3. प्रार्थी की विद्वान अधिवक्ता, सुश्री जिज्ञासा सिंह, राज्य की ओर से विद्वान एजीए, श्री अमित सिंह चौहान को सुना गया और अभिलेखों का अवलोकन किया गया।

4. आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 106/2018 (मंजू श्रीवास्तव बनाम यूपी राज्य और अन्य) में विद्वान सत्र न्यायालय, भदोही-ज्ञानपुर द्वारा पारित दिनांक 06.06.2019 के आदेश तथा भारतीय दंड संहिता की धारा 302, 427, 447 के अधीन मुकदमा अपराध संख्या 0125/2016, मुकदमा संख्या 5673/2016 (राज्य बनाम ताड़कनाथ एवं अन्य), थाना कोइरौना, जनपद भदोही एवं उपरोक्त मुकदमा अपराध की सम्पूर्ण आपराधिक कार्यवाही में विरोध याचिका में न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वितीय, भदोही, ज्ञानपुर द्वारा पारित दिनांक 18.10.2022 के समन आदेश को रद्द करने के लिए सीआरपीसी की धारा 482 के तहत यह आवेदन दायर किया गया है।

5. यह न्यायालय, प्रतिपक्ष संख्या 2 को नोटिस जारी किये बिना, वर्तमान मामले में विशुद्ध रूप से कानूनी प्रश्नों पर मुद्दे का निर्णय कर रही है।

6. मामले का तथ्य यह है कि प्रतिपक्ष संख्या 2 ने प्रार्थियों के विरुद्ध आईपीसी की धारा 302, 323, 504, 506, 427 और 447 के तहत अपराध के लिए एफआईआर दर्ज की है। जांच के बाद आईपीसी की धारा 323, 504, 506 के तहत अपराध के लिए दिनांक 20.09.2016 को आरोप

पत्र दायर किया गया है। आरोप पत्र से पीड़ित होते हुए प्रतिपक्ष संख्या 2 ने संबंधित मजिस्ट्रेट के समक्ष मुकदमा संख्या 5673/2016 (राज्य बनाम ताड़कनाथ और अन्य) के रूप में 26.10.2016 को विरोध याचिका दायर की और प्रार्थियों द्वारा इसका विरोध किया गया। उक्त याचिका को विद्वान न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वितीय, भदोही-ज्ञानपुर द्वारा दिनांक 02.11.2018 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था, जिसके विरूद्ध प्रतिपक्ष संख्या 2 ने संबंधित अदालत के समक्ष आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 106/2018 (मंजू श्रीवास्तव बनाम राज्य और अन्य) के रूप में पुनरीक्षण दायर किया। उपरोक्त आपराधिक पुनरीक्षण को विद्वान सत्र न्यायाधीश, भदोही-ज्ञानपुर द्वारा दिनांक 06.06.2019 के आदेश द्वारा अनुमति दी गई थी और मामले को पुनर्विचार के लिए निचली न्यायालय को वापस भेज दिया गया था, इसलिए, संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा मामले की दोबारा सुनवाई की गई और भारतीय दंड संहिता की धारा 302, 427 और 447 के तहत प्रार्थियों को समन करते हुए दिनांक 18.10.2022 के आदेश द्वारा विरोध याचिका को अनुमति दी गई थी।

7. प्रार्थियों के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि मजिस्ट्रेट उस अपराध के अलावा जिसके लिए आरोप पत्र दायर किया गया है, किसी और अपराध को जोड़ या घटा नहीं सकता है। समन करने के चरण में किसी भी अपराध को जोड़ने या घटाने की अनुमति नहीं है और इसकी अनुमति विचारण न्यायालय द्वारा केवल आरोप तय करने के समय ही है। अपने तर्क के समर्थन में उन्होंने गुजरात राज्य बनाम गिरीश राधाकृष्णन वर्दे एआईआर 2014 सुप्रीम कोर्ट 620 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है। शीर्ष अदालत के उक्त निर्णय का प्रासंगिक भाग इस प्रकार है:

"14. इसलिए, सवाल यह उठता है कि क्या शिकायतकर्ता/सूचनाकर्ता/अभियोजन पक्ष को उपचार की मांग करने से रोका जाएग, यदि जांच अधिकारी आईपीसी की उन सभी धाराओं को शामिल न करके, जिनके तहत एफआईआर में उद्घाटित तथ्यों के बावजूद अपराध माना जा सकता है, वे अपने कर्तव्य में विफल रहे हों। जवाब स्पष्ट रूप से नकारात्मक होना चाहिए क्योंकि उन धाराओं के बहिष्करण की अवहेलना करके जो अपराध का गठन करतीं हैं, अभियोजन पक्ष को पूर्वाग्रह से ग्रस्त होने नहीं दिया जा सकता है यदि जांच अधिकारी किसी भी कारण उन सभी अपराधों को उस आरोप पत्र में शामिल करने में विफल रहें हो जो उस एफआईआर पर आधारित था जिसपर पर जांच की गई थी। लेकिन फिरआगे सवाल यह उठता है कि क्या इस कमी को उस मजिस्ट्रेट द्वारा पूरा करने की अनुमति दी जा सकती है जिसके समक्ष मामला आरोप पत्र दायर करने के पश्चात् संज्ञान लेने के लिए आता है और जैसा कि पहले ही कहा गया है, उस मामले में जो पुलिस रिपोर्ट पर आधारित है, मजिस्ट्रेट संज्ञान लेने के समय धाराएं जोड़ या घटा नहीं सकते हैं क्योंकि इसकी अनुमति विचारण न्यायालय द्वारा सीआरपीसी की धारा 216, 218 के तहत या धारा 228 के तहत, यथास्थिति, आरोप तय करने के समय ही होगी जिसका अर्थ यह है कि आरोप पत्र दायर करने के बाद अभियोजन पक्ष के लिए आरोप तय करने के चरण में उचित विचारण न्यायालय के समक्ष चुनौती के लिए खुला होगा जो यह स्थापित करने के लिए होगा कि तथ्यों की दी गई स्थिति के

अनुसार, उन उचित धाराओं को लगाने की अनुमति दी जा सकेगी जो अभियोजन पक्ष के अनुसार लगायी जानी चाहिए। इसके साथ ही, इस स्तर पर आरोपी को यह प्रस्तुत करने की भी स्वतंत्रता है कि क्या किसी विशेष प्रावधान के तहत आरोप तय किया जाना चाहिए या नहीं और पुलिस रिपोर्ट पर आधारित किसी मामले में यह निर्धारित करने के लिए यह उचित न्यायाधिकरण है कि क्या आरोप तय किया जा सकता है और क्या जांच के दौरान एकत्र किए गए तत्व और एफआईआर और आरोप पत्र में उद्घाटित तथ्यों के आधार पर एक विशेष धारा को जोड़ा या हटाया जा सकता है।

15. वैकल्पिक रूप से, यदि कोई मामला सीआरपीसी की धारा 190 या 202 के तहत मजिस्ट्रेट के समक्ष दर्ज की गई शिकायत पर आधारित है, तो मजिस्ट्रेट को शिकायत की जांच करने और उसके बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचने का पूरा प्राधिकार और क्षेत्राधिकार प्रदान किया गया है कि क्या शिकायत में उल्लिखित धाराओं के आधार पर संज्ञान लिया जाना उचित है या आगे धाराएं जोड़ी या घटाई जानी चाहिए थीं। शिकायत के मामले में जांच करने की मजिस्ट्रेट की शक्तियों और पुलिस स्टेशन में दर्ज मामले के आधार पर पुलिस जांच, जहां पुलिस के जांच अधिकारी अध्याय XII के तहत जांच करते हैं, को चित्रित करने वाली दो प्रणालियों को सी.आर.पी.सी. में स्पष्ट रूप से परिभाषित किया गया है, और इन प्रक्रियाओं के संबंध में बिल्कुल कोई भी अस्पष्टता नहीं है।

16. अध्याय XII के तहत पुलिस रिपोर्ट और अध्याय XIV और XV के तहत मजिस्ट्रियल शिकायत पर आधारित मामले में अपनाई जाने वाली स्पष्ट कार्रवाई के बावजूद, जब दिए गए मामले में सीआरपीसी के प्रावधानों को लागूकरने की बात आती है तो प्रभावित पक्ष अक्सर असमंजस की स्थिति में फंस जाते हैं, जैसा कि वर्तमान मामले में हुआ है, चूंकि मजिस्ट्रेट की शक्तियां, जो मजिस्ट्रेट के समक्ष शिकायत पर आधारित मामले से निपटने के लिए है और पुलिस रिपोर्ट/एफआईआर के आधार पर पुलिस की शक्तियां का अधिव्यापन होने दिया गया है और कार्रवाई के दो अलग-अलग तरीकों को एक साथ जोडने का प्रयास किया गया है जो कि सही प्रक्रिया नहीं है क्योंकि यह सीआरपीसी के प्रावधानों के अनुरूप नहीं है। प्रभावित पक्षों को खुद को अवगत कराना होगा कि यदि पुलिस द्वारा एफआईआर के आधार पर कोई मामला सीआरपीसी की धारा 154 के तहत दर्ज किया गया है और जांच के बाद आरोप पत्र दायर किया गया है, तो जाहिर तौर पर एफआईआर और जांच के दौरान एकत्र किए गए तत्व जिससे आरोप पत्र तैयार होगा, के आधार पर कौन सी धाराएं लागू होंगी, इसके सही चरण को उचित विचारण न्यायालय के समक्ष आरोप तय करने के समय ही निर्धारित किया जाएगा। वैकल्पिक रूप से, यदि मामला मजिस्ट्रेट के समक्ष दर्ज शिकायत से उत्पन्न होता है, तो सीआरपीसी की धारा 190 और 200 के तहत निर्धारित प्रक्रिया का स्पष्ट रूप से पालन करना होगा।

17. चूंकि वर्तमान मामला पुलिस के समक्ष दर्ज एफआईआर पर आधारित है, इसलिए धाराएं जोड़ने या घटाने का सही चरण आरोप तय करने के समय निर्धारित करना होगा। लेकिन उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने आक्षेपित निर्णय तथा आदेश में ऐसा करने के

लिए यथार्थता और स्पष्टता के साथ कारण नहीं बताए हैं और यह दर्ज करके एक अनौपचारिक टिप्पणी की है कि उचित चरण में विचारण न्यायालय के पास यह निर्धारित करने की शक्ति होगी कि मामले को अंतिम रूप से सुनवाई के लिए भेजे जाने से पहले कौन सा प्रावधान लागू किया जाना है। उच्च न्यायालय के आदेश का नतीजा यह है कि अपीलकर्ता-गुजरात राज्य द्वारा प्रतिनिधित्व किए गए अभियोजन को उपचार रहित छोड़ा जा सकता है क्योंकि मजिस्ट्रेट के आदेश को रद्द करने से ऐसी स्थिति उत्पन्न होने की संभावना है जहां अभियोजन के पास, क्या अतिरिक्त शुल्कों को शामिल करने या बाहर करने की अनुमति दी जा सकती है या नहीं के रूप में, याचिका में सुधार या उसके मूल्यांकन के लिए कोई उपचार ना हो। वास्तव में, विद्वान अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश के आदेश को बरकरार रखते हुए, उच्च न्यायालय ने इस तथ्य को भी अनदेखा कर दिया है कि अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, जिनके समक्ष मुख्य न्यायिकमजिस्ट्रेट के आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण दायर किया गया था, इस आधार पर पुनरीक्षण की अनुमति दे सकते थे कि मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा क्षेत्राधिकार का गलत प्रयोग हुआ जिन्होंने आरोप पत्र में तीन और धाराएं जोड़ने की अनुमति दी थी। लेकिन अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश ने ऐसा करने के बजाय सीधे मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश को रद्द कर दिया है, बजाय इसके कि खुद को क्षेत्राधिकार की त्रुटि संबंधित प्रश्न पर विचार करने और मजिस्ट्रेट द्वारा अपनाए जाने वाले सही कार्यवाही को निर्धारित करने तक ही सीमित रखें। वास्तव में, उच्च न्यायालय तथा विद्वान अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश द्वारा अपीलकर्ता-गुजरात राज्य को सीआरपीसी की धारा 228 के तहत आरोप तय करते समय आरोप जोड़ने का सवाल उठाने की अनुमति देकर कार्रवाई का सही तरीका निर्धारित किया जाना चाहिए था और प्रभावित पक्षों द्वारा अपनाई जाने वाली कार्रवाई का सही तरीका निर्धारित किए बिना मजिस्ट्रेट के आदेश को रद्द करने वाला एक व्यापक आदेश पारित नहीं करना चाहिए था, जिसके परिणामस्वरूप मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, अपर जिला और सत्र न्यायाधीश और उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा तीन आदेश पारित किए गए, फिर भी यह अभियोजन-गुजरात राज्य द्वारा अपनाई जाने वाली कार्रवाई के उचित तरीके पर प्रकाश डालकर विवाद को हल नहीं कर सके, क्योंकि वह मजिस्ट्रेट ने भी, जिन्होंने आरोप पत्र दायर करने के बाद धाराएं जोड़ने की अनुमति दी थी, इस पर ध्यान नहीं दिया कि यह मामला मजिस्ट्रेट के समक्ष दर्ज शिकायत के मामले से नहीं उत्पन्न हुआ था बल्कि एक पुलिस स्टेशन में पुलिस रिपोर्ट/एफआईआर से उत्पन्न हुआ था।"

8. विद्वान एजीए उपरोक्त कानूनी स्थिति पर विवाद नहीं कर सकता है कि संबंधित मजिस्ट्रेट विरोध याचिका पर विचार नहीं कर सकता है और प्रार्थियों को उन धाराओं के तहत समन नहीं कर सकता है जिनमें आरोप पत्र दायर नहीं किया गया है।

9. उपरोक्त के दृष्टिगत, भारतीय दंड संहिता की धारा 302, 427, 447 के तहत मुकदमा अपराध संख्या 0125/2016, मुकदमा संख्या 5673/2016 (राज्य बनाम ताड़कनाथ एवं अन्य) थाना कोइरौना, जिला भदोही में न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वितीय, भदोही, ज्ञानपुर द्वारा विरोध याचिका

में पारित दिनांक 18.10.2022 के समन आदेश को एतदद्वारा अपास्त किया जाता है।

10. हालाँकि, विद्वान मजिस्ट्रेट आरोप तय करने के समय आरोपी के विरुद्ध अन्य अपराध का संज्ञान लेने के लिए मामले पर विचार करने के लिए स्वतंत्र है।

11. उपरोक्त निर्देश सहित आवेदन तदनुसार स्वीकार किया जाता है। लागत के सम्बंध में कोई आदेश नहीं किया जाएगा।

(2023) 3 ILRA 788

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 07.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौमित्र दयाल सिंह

आवेदन अन्तर्गत धारा 482 सं. 41885 वर्ष 2022

प्रशांत जायसवाल ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिपक्षी

आवेदक की ओर से अधिवक्ता: श्री सुदर्शन सिंह, श्री विनय कुमार

प्रतिपक्षी की ओर से अधिवक्ता: जी.ए.

7. आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या - 41885 / 2022 - प्रशांत जायसवाल बनाम राज्य उत्तर प्रदेश और अन्य।

आपराधिक कानून - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धाराएँ 173(5), 175(6) और 207 - विवेचक द्वारा प्रस्तुत दस्तावेज़ - आरोपित को प्रति कॉपी दी जानी चाहिए - सिवाय इसके कि दस्तावेज़ धारा 207 के प्रावधान के तहत बहुत बड़ा हो - दस्तावेज़ों को आरोपित से रोकना - केवल सीमित परिस्थितियों में जैसे कि पीड़ित/गवाह के गोपनीयता के वाद में - न्यायालय को अधिकारों का संतुलन बनाना चाहिए और दस्तावेज़ों को अस्वीकार करने से पहले उचित जांच करनी चाहिए।

आपराधिक कानून - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 327 - इन-कैमरा विचरण - आरोपित को अपनी रक्षा के लिए दस्तावेज़ प्रदान करने से मना नहीं करता - अदालत अदालत के बाहर प्रकाशन पर रोक लगा सकती है - आरोपित को दस्तावेज़/सामग्री प्रदान करना - न्याय के अधिकार का आवश्यक घटक - दस्तावेज़ों को अस्वीकार करने का आदेश - सामग्री की जांच करनी चाहिए, जांच करनी चाहिए, पक्षों को सुनना चाहिए और संतुलन बनाते हुए तर्कसंगत आदेश पारित करना चाहिए - केवल आशंकाएँ दस्तावेज़ों की आपूर्ति को रोकने के लिए पर्याप्त नहीं हैं - आदेश निरस्त किया गया।

आवेदन निस्तारित। (E-9)

उद्धृत वाद सूची:

1. पी. गोपालकृष्णन @ दिलीप बनाम केरल राज्य और अन्य, (2020) 9 SCC 161
2. शमशेर सिंह वर्मा बनाम हरियाणा राज्य, (2016) 15 SCC 485
3. मनु शर्मा बनाम राज्य (2010) 6 SCC 1
4. वी.के. ससीकला बनाम राज्य, (2012) 9 SCC 771

<u>माननीय न्यायमूर्ति सौमित्र दयाल सिंह</u>

1. आवेदक के अधिवक्ता श्री सुदर्शन सिंह और राज्य के लिए अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता को सुना।

2. सत्र विचारण संख्या 699 वर्ष 2022 (राज्य बनाम प्रशांत जायसवाल) में भ०द०वि० की धारा - 376, 323, 504, 506 के तहत पेपर नंबर 10-ख पर निचली अदालत द्वारा पारित आदेश दिनांक 21.11.2022 को चुनौती दी गई है। उस आदेश के अनुसार विद्वान निचली अदालत ने आवेदक/अभियुक्त व्यक्ति द्वारा दायर आवेदन को खारिज कर दिया है। इस प्रकार इसने आवेदक को केस डायरी के हिस्से के रूप में विवेचनाधिकारी द्वारा प्रस्तुत पेन ड्राइव पर उपलब्ध डेटा की प्रति कॉपी उपलब्ध कराने से इनकार कर दिया।

3. आवेदक के लिए अधिवक्ता प्रस्तुत करना है कि आवेदक को पेन ड्राइव की क्लोन कॉपी प्रदान करना आवश्यक है ताकि उसे कुछ हिस्सों के साथ अभियोजन पक्ष के गवाह का सामना करने का उचित अवसर मिल सके। चूंकि उस पेन ड्राइव पर डेटा धारा 173 द०प्र०स० (6) के लिए संदर्भित सामग्री नहीं है, बल्कि, यह धारा 173 (5) द०प्र०स० के लिए संदर्भित डेटा प्रतीत होता है, अभियुक्त को निष्पक्ष सुनवाई के हित में उसी की एक प्रति प्रदान करने का पूरा अधिकार है जो सीधे उसके मौलिक अधिकार से संबंधित है।

4. निचली अदालत द्वारा दिए गए तर्क के अनुसार, यह प्रस्तुत किया गया है, यदि पेन ड्राइव पर डेटा आवेदक को उपलब्ध कराया जाता है, तो पीड़ित की गोपनीयता का उल्लंघन करने के संबंध में इसके द्वारा गंभीर त्रुटि की गई है। इस संदर्भ में वह प्रस्तुत करेगा कि निष्पक्ष सुनवाई के लिए आवेदक के मौलिक अधिकार का उल्लंघन, गोपनीयता की चिंताओं को आवेदक द्वारा सार्वजनिक करने से रोकने के लिए प्रदान करके, निचली अदालत द्वारा निरकारण किया जा सकता है; डेटा का कोई भी हिस्सा जो इस प्रकार आवेदक को उपलब्ध कराया जा सकता है। किसी भी मामले में, आवेदक को ऑडियो लेनदेन की पूरी प्रतिलेख प्रदान की जानी चाहिए थी। अंत में यह प्रस्तुत किया गया है कि ऑडियो रिकॉर्डिंग का सिर्फ एक बार प्लेबैक, आवेदक और उसके अधिवक्ता को अभियोजन पक्ष के गवाह से पूछे जाने वाले सटीक प्रश्नों को तैयार करने का पूर्ण और उचित अवसर देने के लिए, पर्याप्त नहीं हो सकता है। कथित पीड़ित की गोपनीयता के बारे में अस्पष्ट चिंता पर, बचाव के अधिकार को कम नहीं किया जा सकता है। यदि अनुमति दी जाती है तो यह आवेदक के गंभीर पूर्वाग्रह के लिए, मुकदमे की कार्यवाही की निष्पक्षता और भेदभाव से रहित कार्यवाही को गंभीर रूप से प्रभावित कर सकता है।

5. दूसरी ओर, अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता प्रस्तुत ने प्रस्तुत किया कि वर्तमान में यह स्पष्ट नहीं है कि अभियोजन पक्ष ने भरोसा किया है और डेटा/ऑडियो लेनदेन के किसी भी हिस्से को पेन-ड्राइव पर रिकॉर्ड करने का दावा किया गया है। जब तक कि पहले ऐसा नहीं किया जाता, आवेदक ऐसे दस्तावेज/सामग्री उपलब्ध कराने के अधिकार का दावा नहीं कर सकता।

6. पक्षों के अधिवक्ताओं को सुनने और रिकॉर्ड का अवलोकन करने के बाद, धारा 173 (5) और (6) और धारा 207 द०प्र०स० निम्नानुसार पढ़ने के बाद:

"173. जांच पूरी होने पर पुलिस अधिकारी की रिपोर्ट-

(5) जब ऐसी रिपोर्ट किसी ऐसे मामले के संबंध में हो जिस पर धारा 170 लागू होती है, तो

पुलिस अधिकारी रिपोर्ट के साथ मजिस्ट्रेट को अग्रेषित करेगा-

(ए) सभी दस्तावेज या उसके प्रासंगिक उद्धरण जिन पर अभियोजन पक्ष जांच के दौरान मजिस्ट्रेट को पहले से भेजे गए लोगों के अलावा अन्य पर भरोसा करने का प्रस्ताव करता है;

(ख) धारा 161 के अधीन उन सभी व्यक्तियों के अभिलिखित बयान, जिनसे अभियोजन पक्ष अपने गवाह के रूप में परखने का प्रस्ताव करता है।

(6) यदि पुलिस अधिकारी की यह राय है कि ऐसे किसी कथन का कोई भाग कार्यवाहियों की विषय-वस्तु के लिए सुसंगत नहीं है या अभियुक्त के समक्ष उसका प्रकटीकरण न्याय के हित में आवश्यक नहीं है और लोकहित में अनुचित है तो वह कथन के उस भाग को इंगित करेगा और मजिस्ट्रेट से उस भाग को अभियुक्त को दी जाने वाली प्रतियों से, और इस तरह के अनुरोध करने के लिए अपने कारणों को बताते हुए, अपवर्जित करने का अनुरोध करते हुए एक नोट संलग्न करेगा ।

207. अभियुक्त को पुलिस रिपोर्ट और अन्य दस्तावेजों की प्रति देना- किसी ऐसे मामले में जहां पुलिस रिपोर्ट पर कार्यवाही संस्थित की गई है, मजिस्ट्रेट बिना किसी देरी के अभियुक्त को निम्नलिखित में से प्रत्येक की एक-एक प्रति निशुल्क प्रस्तुत करेगा:-

(i) पुलिस रिपोर्ट;

(ii) धारा 154 के अधीन दर्ज प्रथम सूचना रिपोर्ट;

(iii) धारा 161 की उपधारा (3) के अधीन उन सभी व्यक्तियों के अभिलिखित कथन, जिनसे अभियोजन पक्ष अपने साक्षी के रूप में पूछताछ करने का प्रस्ताव करता है, उसमें से किसी भाग को छोड़कर, जिसके संबंध में पुलिस अधिकारी द्वारा धारा 173 की उपधारा (6) के अधीन ऐसे अपवर्जन का अनुरोध किया गया है;

(iv) धारा 164 के अधीन अभिलिखित संस्वीकृति और कथन, यदि कोई हों;

(v) धारा 173 की उपधारा (5) के अधीन पुलिस रिपोर्ट के साथ मजिस्ट्रेट को अग्रेषित कोई अन्य दस्तावेज या उसका सुसंगत उद्धरण

परन्तु मजिस्ट्रेट, कथन के ऐसे किसी भाग को, जो खंड (iii) में निर्दिष्ट है, पढ़ने के पश्चात् और अनुरोध के लिए पुलिस अधिकारी द्वारा दिए गए कारणों पर विचार करने के पश्चात् निदेश दे सकेगा कि कथन के उस भाग या उसके ऐसे भाग की एक प्रति, जो मजिस्ट्रेट उचित समझे, अभियुक्त को दी जाएगी: परंतु यह और कि यदि मजिस्ट्रेट का यह समाधान हो जाता है कि खंड (v) में निर्दिष्ट कोई दस्तावेज स्वैच्छिक है, तो वह अभियुक्त को उसकी प्रति देने के बजाय, निदेश देगा कि उसे केवल व्यक्तिगत रूप से या न्यायालय में अधिवक्ता के माध्यम से इसका निरीक्षण करने की अनुमति दी जाएगी।

7. पी. गोपाल कृष्णन @ दिलीप बनाम केरल राज्य और अन्य, (2020) 9 एस.सी.सी 161 में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया पर उपलब्ध सामग्री/साक्ष्य के संदर्भ में, सुप्रीम कोर्ट ने निम्नानुसार देखा था: -

"अंत में, हम मानते हैं कि मेमोरी कार्ड/पेन ड्राइव की सामग्री इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड होने के कारण एक दस्तावेज के रूप में मानी जानी चाहिए। यदि अभियोजन पक्ष उसी पर भरोसा कर रहा है, तो आमतौर पर, अभियुक्त को उसकी एक क्लोन प्रति दी जानी चाहिए ताकि वह मुकदमे के दौरान एक प्रभावी बचाव पेश कर सके। हालांकि, शिकायतकर्ता/गवाह या उसकी पहचान की गोपनीयता जैसे मुद्दों से जुड़े मामलों

में, अदालत को मुकदमे के दौरान प्रभावी बचाव पेश करने के लिए अभियुक्त और उसके अधिवक्ता या विशेषज्ञ को केवल निरीक्षण प्रदान करने में न्यायसंगत ठहराया जा सकता है। न्यायालय दोनों पक्षों के हितों को संतुलित करने के लिए उपयुक्त निर्देश जारी कर सकता है

8. इस प्रकार, सिद्धांत रूप से, इसे मान्यता दी जानी चाहिए, पेन ड्राइव/इलेक्ट्रॉनिक फॉर्म पर उपलब्ध सामग्री/साक्ष्य एक दस्तावेज है। शमशेर सिंह वर्मा बनाम हरियाणा राज्य, (2016) 15 एस.सी.सी 485 में, यह मान्यता दी गई थी, एक कॉम्पैक्ट डिस्क एक दस्तावेज है। फिर, धारा 173 द०प्र०स० (5) के लिए सामग्री संदर्भित होने के नाते, न कि धारा 173 (6) द०प्र०स० के लिए, इसे आरोपी व्यक्ति को मूल की क्लोन कॉपी के रूप में आपूर्ति की जा सकती है। इसके अलावा, धारा 207 द०प्र०स० के तहत, अभियुक्त के अधिकार को धारा 173 द०प्र०स० की उप-धारा (5) के तहत पुलिस रिपोर्ट के साथ मजिस्ट्रेट को अग्रेषित किसी भी अन्य दस्तावेज या प्रासंगिक उद्धरण की आपूर्ति करने के अधिकार को आमतौर पर केवल तभी कम किया जा सकता है जब यह बहुत बड़ा हो। उस स्थिति में मजिस्ट्रेट पूरी प्रति की आपूर्ति के बजाय इसके निरीक्षण की अनुमति दे सकता है। धारा 173 और धारा 207 द०प्र०स० के बीच अंतर मनु शर्मा बनाम राज्य (2010) 6 एस.सी.सी 1 में स्पष्ट किया गया था। उसमें, यह देखा गया था:

"219. विशेष रूप से प्रकटीकरण के संबंध में अभियोजक की भूमिका और दायित्व को हमारे कानून के तहत अंग्रेजी प्रणाली के तहत प्रचलन के बराबर नहीं किया जा सकता है जैसा कि पूर्वोक्त है। लेकिन साथ ही निष्पक्ष सुनवाई की मांग को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। जहां एक दस्तावेज जो संदिग्ध रूप से, धोखाधड़ी से या जांच के दौरान अभियुक्त को अनुचित लाभ पहुंचाकर प्राप्त किया गया है, यह विभिन्न परिणामों का हो सकता है; इस तरह के दस्तावेज को अभियोजक के विवेक में अभियुक्त को देने से मना किया जा सकता है कि अभियोजन पक्ष ऐसे दस्तावेजों पर भरोसा करता है या नहीं, हालांकि अन्य मामलों में खुलासा करने का दायित्व अधिक निश्चित होगा। जैसा कि पहले ही देखा गया है कि धारा 207 के प्रावधानों का इस विषय पर एक भौतिक प्रभाव है और एक दिलचस्प पठन है। इस प्रावधान के लिए न केवल यह आवश्यक या अनिवार्य है कि अदालत को बिना किसी देरी के और मुफ्त में आरोपी को पुलिस रिपोर्ट, प्रथम सूचना रिपोर्ट, बयान, धारा 161 के तहत दर्ज किए गए व्यक्तियों के इकबालिया बयान की प्रतियां प्रस्तुत करनी चाहिए, जिन्हें अभियोजन पक्ष गवाह के रूप में जांचना चाहता है, निश्चित रूप से, संहिता की धारा 173(6) के तहत विचार किए गए बयान या दस्तावेज के किसी भी हिस्से को छोड़कर, कोई अन्य दस्तावेज या उसका सुसंगत उद्धरण जो धारा 173 की उपधारा (5) के अधीन पुलिस द्वारा मजिस्ट्रेट को प्रस्तुत किया गया हो। धारा 173 के प्रावधानों के विपरीत, जहां विधायिका ने अभिव्यक्ति का उपयोग किया है 'दस्तावेज जिन पर अभियोजन भरोसा करता है" संहिता की धारा 207 के तहत उपयोग नहीं किया जाता है। इसलिए, संहिता की धारा 207 के प्रावधानों को उदार और प्रासंगिक अर्थ देना होगा ताकि इसके उद्देश्य को प्राप्त किया जा सके। इतना ही नहीं, धारा 173 (5) के तहत रिपोर्ट के साथ मजिस्ट्रेट को प्रस्तुत किए गए दस्तावेजों में वे दस्तावेज शामिल होंगे, जिन्हें संहिता की धारा 170 (2)

की आवश्यकता के अनुसार जांच के दौरान मजिस्ट्रेट को भेजा जाना है।

220. दस्तावेजों के प्रकटीकरण के संबंध में अभियुक्त का अधिकार सीमित है, लेकिन संहिताबद्ध है और एक निष्पक्ष जांच और परीक्षण की नींव है। ऐसे मामलों में, अभियुक्त पुलिस फाइल के हर दस्तावेज या यहां तक कि उन हिस्सों पर दावा करने के लिए एक अपरिहार्य कानूनी अधिकार का दावा नहीं कर सकता है, जिन्हें अदालत के आदेशों के अनुसार धारा 173 (2) के तहत रिपोर्ट में संलग्न दस्तावेजों से बाहर रखने की अनुमति है। लेकिन अभियुक्त के कुछ अधिकार संहिताबद्ध कानून के साथ-साथ संवैधानिक क्षेत्राधिकार की न्यायसंगत अवधारणाओं से भी प्रभावित होते हैं, क्योंकि इस तरह की प्रक्रिया में पर्याप्त भिन्नता निष्पक्ष सुनवाई के आधार को ही कुंठित कर देगी। धारा 207, धारा 243 के दायरे के भीतर दस्तावेजों का दावा करने के लिए अपनी संपूर्णता में धारा 173 के प्रावधानों के साथ पठित और संहिता की धारा 91 के तहत अदालत की शक्ति दस्तावेजों को बुलाने के लिए संकेत देती है और उपदेश प्रदान करती है जो अभियुक्त के बयान और दस्तावेजों की प्रतियों का दावा करने के अधिकार को नियंत्रित करेगी जो अभियोजन पक्ष ने जांच के दौरान एकत्र किए हैं और जिस पर वे भरोसा करते हैं।

221. न्यायालय के लिए यह कहना मुश्किल होगा कि अभियुक्त को दस्तावेजों की प्रतियों का दावा करने या सामान्य डायरी का हिस्सा होने के लिए अदालत से अनुरोध करने का कोई अधिकार नहीं है, जो उसमें बताए गए कानून के मूल अवयवों को संतुष्ट करने के अधीन है। एक दस्तावेज जो वास्तविक रूप से प्राप्त किया गया है और अभियोजन पक्ष के मामले पर असर डालता है, उसे लोक अभियोजक की राय में, न्याय और निष्पक्ष जांच और विचारण के हित में अभियुक्त को प्रकट किया जाना चाहिए। फिर उस दस्तावेज को अभियुक्त को निष्पक्ष बचाव का मौका देते हुए प्रकट किया जाना चाहिए, खासकर जब इस तरह के दस्तावेज का गैर-उत्पादन या प्रकटीकरण आपराधिक न्याय के प्रशासन और अभियुक्त की रक्षा को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करेगा।

222. अंग्रेजी प्रणाली के तहत अभियोजक के प्रकटीकरण और कर्तव्यों की अवधारणा, हमारी राय में, इस स्तर पर भारतीय आपराधिक न्यायशास्त्र पर कठोर शब्दों एवं भाव में लागू नहीं की जा सकती है। हालांकि, हम इस विचार के हैं कि प्रकटीकरण के सिद्धांत को कुछ हद तक विस्तारित अर्थ देना होगा। जहां तक वर्तमान मामले का संबंध है, हमने पहले ही देखा है कि निष्पक्ष सुनवाई के लिए अभियुक्त के अधिकार के प्रति कोई पूर्वाग्रह नहीं किया गया था और बैलिस्टिक रिपोर्टों में से एक की प्रति प्रस्तुत न करने से न्याय के लक्ष्यों में बाधा नहीं आई थी। अभियोजन पक्ष द्वारा दस्तावेज़ की सत्यता पर संदेह की कुछ छाया भी बनाई गई थी और अभियोजन पक्ष ने इस दस्तावेज़ पर भरोसा नहीं करने का विकल्प चुना था। इन परिस्थितियों में मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में आरोपी के खुलासे के अधिकार को कोई झटका नहीं लगा है। आरोपियों ने निचली अदालत के समक्ष इस मुद्दे को गंभीरता से भी नहीं उठाया।

9. इसके अलावा, <u>वी.के शशिकला बनाम राज्य, (2012) 9 एस.सी.सी 771</u> में, जैसा कि मुद्दा उठता है यदि धारा 313 द०प्र०स० के चरण में एक अभियुक्त उन दस्तावेजों का हकदार था जिन पर अभियोजन पक्ष द्वारा भरोसा नहीं किया गया

था, यहां तक कि बचाव पक्ष द्वारा ऐसे दस्तावेजों की जांच करने की अनुमति दी गई थी। तब यह देखा गया था:

"13. मामले के उक्त पहलू पर विस्तार पर जाए बिना, अब संहिता के उन प्रावधानों पर ध्यान दिया जाना चाहिए जो किसी मामले की जांच पूरी होने के बाद की स्थिति/चरण से निपटते हैं। इस संबंध में धारा 173 (5) के प्रावधानों को विशेष रूप से नोट किया जा सकता है। उक्त प्रावधान जांच एजेंसी के लिए यह अनिवार्य बनाता है कि वह संबंधित सभी दस्तावेजों/बयानों आदि को अदालत को अग्रेषित करे/प्रेषित करे, जिन पर अभियोजन पक्ष मुकदमे के दौरान भरोसा करने का प्रस्ताव करता है। हालांकि, धारा 173 (5) धारा 173 (6) के प्रावधानों के अधीन है, जो विवेचनाधिकारी को यह शक्ति प्रदान करता है कि वह संबंधित अदालत से धारा 173 (5) के तहत अग्रेषित बयान या दस्तावेजों के किसी भी हिस्से को आरोपी को दी जाने वाली प्रतियों से बाहर करने का अनुरोध करे।

14. धारा 173 के तहत रिपोर्ट और संलग्न दस्तावेजों की प्राप्ति पर, मामले से निपटने के लिए क्षेत्राधिकार रखने वाले न्यायालय को यह तय करने की आवश्यकता है कि क्या, जिस स्थिति में अदालत के समक्ष अभियुक्त की उपस्थिति के लिए समन जारी किया जाना है, वह कथित अपराध का संज्ञान लिया जाना है। ऐसी उपस्थिति पर, धारा 207 द०प्र०स० के तहत, संबंधित अदालत को आरोपी को निम्नलिखित दस्तावेजों की प्रतियां प्रस्तुत करनी होती हैं:

1. पुलिस रिपोर्ट;

2. धारा 154 के तहत दर्ज की गई प्रथम सूचना रिपोर्ट;

3. धारा 161 की उपधारा (3) के अधीन उन सभी व्यक्तियों के अभिलिखित कथन, जिनसे अभियोजन पक्ष अपने गवाह के रूप में परखने का प्रस्ताव करता है, उसमें से किसी ऐसे भाग को छोड़कर, जिसके संबंध में धारा 173 की उपधारा (6) के अधीन पुलिस अधिकारी द्वारा ऐसे बहिष्करण का अनुरोध किया गया है;

4. धारा 164 के तहत दर्ज किए गए संस्वीकृति और बयान, यदि कोई हों;

5. धारा 173 की उपधारा (5) के तहत पुलिस रिपोर्ट के साथ मजिस्ट्रेट को अग्रेषित कोई अन्य दस्तावेज या प्रासंगिक उद्धरण।

15. जबकि धारा 207 का पहला परंतुक अदालत को अभियुक्त को प्रस्तुत की जाने वाली प्रतियों से बाहर रखने का अधिकार देता है, जो धारा 173 (6) द्वारा कवर किया जा सकता है; धारा 207 का दूसरा परंतुक अदालत को अभियुक्त को दस्तावेजों का निरीक्षण प्रदान करने का अधिकार देता है, यदि, अदालत की राय में अभियुक्त को दस्तावेजों की प्रतियां प्रस्तुत करना व्यावहारिक नहीं है क्योंकि इसमें भारी मात्रा में सामग्री है। इस स्तर पर हम इस बात पर जोर देना चाहेंगे कि संहिता के पूर्वोक्त उपबंधों का उल्लेख करते हुए हमने जानबूझकर मजिस्ट्रेट अभिव्यक्ति के स्थान पर न्यायालय अभिव्यक्ति का प्रयोग किया है क्योंकि विभिन्न विशेष अधिनियमों के अंतर्गत संहिता द्वारा यथा अधिदेशित मजिस्ट्रेट द्वारा उच्चतर न्यायालय (सत्र न्यायालय) में किसी मामले की वचनबद्धता की आवश्यकता को समाप्त कर दिया गया है और एक विशेष संविधि के अंतर्गत गठित विशेष न्यायालयों को यह अधिकार दिया गया है जांच एजेंसी से सीधे संबंधित दस्तावेजों के साथ जांच की रिपोर्ट और

उसके बाद अपराध का संज्ञान लेने के लिए, यदि आवश्यक हो।

17. किसी आपराधिक मामले की जांच के दौरान बड़ी संख्या में दस्तावेजों की जब्ती एक सामान्य विशेषता है। जांच की प्रक्रिया पूरी होने के बाद और धारा 173 द०प्र०स० के तहत अदालत में रिपोर्ट प्रस्तुत करने से पहले, जांच एजेंसी की ओर से उचित मात्रा में दिमाग का इस्तेमाल संहिता में अंतर्निहित है। दिमाग का ऐसा प्रयोग उन विशिष्ट अपराधों (अपराधों) के संबंध में है जिन्हें विवेचनाधिकारी अभियुक्त द्वारा किए गए अपराध के बारे में मान सकता है और जांच के दौरान जब्त किए गए विशिष्ट दस्तावेजों और अभिलेखों की पहचान और विवरण भी, जो कथित रूप से किए गए अपराध (अपराधों) के संबंध में विवेचनाधिकारी के निष्कर्ष का समर्थन करता है। हालांकि यह केवल ऐसी रिपोर्टें हैं जो अभियोजन मामले का समर्थन करती हैं जिन्हें हर स्थिति में धारा 173 (5) के तहत अदालत में भेजा जाना आवश्यक है, जहां जब्त किए गए कुछ कागजात और दस्तावेज अभियोजन मामले का समर्थन नहीं करते हैं और इसके विपरीत, अभियुक्त का समर्थन करते हैं, विवेचनाधिकारी पर एक कर्तव्य डाला जाता है कि वह,यदि आवश्यक हो, तो उस स्तर पर ही अभियुक्त को दोषमुक्त करने के लिए, एकत्र किए गए दस्तावेजों और सामग्रियों के दो सेटों का मूल्यांकन करे और। हालांकि, ऐसी स्थिति की कल्पना करना असंभव नहीं है कि क्या विवेचनाधिकारी जब्त दस्तावेजों के उस हिस्से की अनदेखी करता है जो अभियुक्त का पक्ष लेता है और अदालत को केवल उन दस्तावेजों को अग्रेषित करता है जो अभियोजन पक्ष का समर्थन करते हैं। यदि अभियुक्त द्वारा ऐसी स्थिति की ओर इशारा किया जाता है और ऐसे दस्तावेज, वास्तव में, अदालत को भेज दिए गए हैं, तो क्या यह अदालत का कर्तव्य नहीं होगा कि वह अभियुक्त को ऐसे दस्तावेज उपलब्ध कराए, भले ही उन्हें अभियोजन पक्ष द्वारा चिह्नित और प्रदर्शित नहीं किया गया हो? ऐसी स्थिति में जहां ऐसे दस्तावेजों को विवेचनाधिकारी द्वारा अदालत को नहीं भेजा जाता है, क्या होगा ? यह एक सवाल है जो वर्तमान मामले में नहीं उठता है। हमारे सामने जो स्थिति उत्पन्न हुई है, वह एक ऐसी स्थिति है जहां स्पष्ट रूप से अभियुक्त द्वारा मांगे जा रहे मामले के अचिह्नित और अप्रकाशित दस्तावेजों को धारा 173 (5) के तहत अदालत को भेज दिया गया था, लेकिन अभियोजन पक्ष द्वारा उन पर भरोसा नहीं किया जा रहा है। हालांकि अभियोजन पक्ष ने इस मुद्दे पर कुछ बादल डालने की कोशिश की है कि क्या अचिह्नित और अप्रकाशित दस्तावेज धारा 173 द०प्र०स० के तहत रिपोर्ट का हिस्सा हैं, अभियोजन पक्ष द्वारा इस बात से इनकार नहीं किया गया है कि उक्त अचिह्नित और अप्रकाशित दस्तावेज वर्तमान में अदालत की हिरासत में हैं। इसके अलावा, आरोपी ने विचारण न्यायालय (2012 की आई.ए संख्या-711) के समक्ष अपने आवेदन में उक्त दस्तावेजों का विशिष्ट विवरण प्रस्तुत किया था और जांच एजेंसी द्वारा तैयार की गई विशिष्ट जब्ती सूचियों के संदर्भ में इसका सहसंबंध किया था। ऐसी परिस्थितियों में, यह सुरक्षित रूप से माना जा सकता है कि वर्तमान मामले में जो हुआ है, वह यह है कि जांच की रिपोर्ट के साथ-साथ बड़ी संख्या में दस्तावेज अदालत को भेजे गए हैं, जिनमें से अभियोजन पक्ष ने केवल उसके एक हिस्से पर भरोसा किया है, शेष को अचिह्नित और अप्रदर्शित छोड़ दिया है।

10. इस प्रकार, केवल सामान्य नियम के अपवाद के माध्यम से, यह मान्यता प्राप्त हो सकती है कि न्यायालय अभियोजन पक्ष द्वारा भरोसा किए जा रहे दस्तावेजों के एक सरल निरीक्षण के लिए अनुमति देने के लिए उचित हो सकता है। वैधानिक रूप से वे अपवाद धारा 173 द०प्र०स० (6) के साथ पठित धारा 207 (iii) और धारा 173 (5) द०प्र०स० के साथ पठित धारा 207 (v) के तहत उत्पन्न हो सकते हैं। उसी समय, धारा 207 के पहले परंतुक के आधार पर, मजिस्ट्रेट ऐसी घटना में अभियुक्त को बयान के किसी भी हिस्से को प्रस्तुत करने की अनुमति देने के लिए विवेक रखता है। इसके अलावा, धारा 207 के दूसरे परंतुक के आधार पर, मजिस्ट्रेट केवल किसी भी दस्तावेज, यदि यह बहुत बड़ा है, (द०प्र०स० की धारा 176 (5) द्वारा कवर) के निरीक्षण की अनुमति दे सकता है।

11. फिर, पी. गोपाल कृष्णन (सुप्रा) मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले के आधार पर, जहां शिकायतकर्ता/गवाह या उसकी पहचान की गोपनीयता के मुद्दे शामिल हो सकते हैं, क्योंकि दोनों पक्षों के हितों के संतुलन की आवश्यकता हो सकती है, मजिस्ट्रेट, इसकी पूरी प्रति की आपूर्ति की जगह पर, केवल एक दस्तावेज के निरीक्षण की अनुमति दे सकता है।

12. इस प्रकार, एक दस्तावेज की पूरी प्रति से इनकार सामान्य नियम अर्थात्, अभियुक्त को सामग्री उपलब्ध कराया जाना उसका एक अधिकार है, के लिए एक अपवाद है। नियम के अपवाद को तराशने के लिए, उनका अस्तित्व न्यायसंगत और उचित आधार होना चाहिए। वे या तो धारा 173 द०प्र०स० (6) से उत्पन्न हो सकते हैं, जब पुलिस अधिकारी ने यह राय बनाई हो कि किसी भी बयान का खुलासा या तो प्रासंगिक नहीं है या इसका खुलासा न्याय के हित में आवश्यक नहीं है या जनहित में अनुचित है। फिर भी, धारा 207 के पहले परंतुक के आधार पर राय और कारण (इसे जन्म देते हुए) विद्वान मजिस्ट्रेट के बेहतर ज्ञान के अधीन रहेंगे। उस स्तर पर, विद्वान मजिस्ट्रेट, पूरे बयान या दस्तावेज के बजाय, इसका एक हिस्सा अभियुक्त को देने की अनुमति दे सकता है। दूसरा, यदि धारा 173 (5) द०प्र०स० के तहत कवर नहीं किए गए दस्तावेज बहुत बड़े हैं तो, इस कारण से विद्वान मजिस्ट्रेट अभियुक्त को इसके उद्धरण देने की अनुमति दे सकता है।

13. उस प्रकाश में देखा जाए तो स्पष्ट रूप से, पी. गोपाल कृष्णन (सुप्रा) मामले में सुप्रीम कोर्ट द्वारा बनाया गया अपवाद, धारा 207 द०प्र०स० के पहले परंतुक के संदर्भ में है जो न्याय के हित में नहीं है या सार्वजनिक हित में अनुचित है। तथापि, मजिस्ट्रेट द्वारा लिया जाने वाला निर्णय विवेकाधीन होने के कारण, निजता आदि के उल्लंघन के बारे में गंभीर चिंताओं को जन्म देने वाले विशेष/विशिष्ट तथ्यों पर विवेकपूर्ण ढंग से दिमाग लगाने के आधार पर प्रयोग किया जाएगा।

14. जब न्यायालय जांच के दौरान एकत्र की गई सामग्री को किसी अभियुक्त को देने से इनकार करना चाहता है और उसे केवल अदालत के रिकॉर्ड से उसी को देखने का अवसर देने का प्रस्ताव करता है, तो न्यायालय एक निर्णय ले रहा है, जो संभवतः मुकदमे की निष्पक्षता और पूर्णता के साथ-साथ इसके अंतिम परिणाम पर भी प्रभावी हो सकता है। इसके अलावा, यह निर्णय यदि किसी अन्य व्यक्ति की गोपनीयता की रक्षा के लिए कारण पर आधारित या प्रेरित है, तो तथ्यों और कानून दोनों पर अच्छी तरह से तर्क दिया जाना चाहिए।

15. इसलिए, इससे पहले कि न्यायालय ऐसा कर सके, उसे यह सुनिश्चित करने के लिए सामग्री की जांच, जो सामग्री उसके खिलाफ भरोसा की जा रही है, यह जांच करनी चाहिए कि शिकायतकर्ता या गवाह आदि की गोपनीयता की रक्षा करने का हित आरोपी व्यक्ति को उपलब्ध कराने की आवश्यकता से अधिक है। इसमें, यह संबंधित गवाह/शिकायतकर्ता से भी बात कर सकता है और उसके विचारों का पता लगा सकता है। यदि आवश्यक हो, तो यह औपचारिक आपत्तियों पर विचार कर सकता है और उसका उत्तर दे सकता है और ऐसे आदेश पारित कर सकता है जो मुकदमे की कार्यवाही की निष्पक्षता को बाधित करने के जोखिम के बिना दोनों पक्षों के अधिकारों और हितों को संतुलित कर सकता है।

16. वर्तमान मामले में यह अभ्यास निचली अदालत द्वारा नहीं किया गया प्रतीत होता है। इसने केवल आवेदक द्वारा प्रस्तुत आवेदन और अभियोजन पक्ष द्वारा व्यक्त की गई सामान्य चिंता पर विचार किया है। यदि न्यायालय ने स्वयं सामग्री की जांच की होती और उसके बाद आदेश पारित करने के लिए आगे बढ़ती, तो वह निर्णय तथ्यों पर आधारित होता और पक्षों की वास्तविक चिंताओं कानिराकरण करता। इसमें न्यायालय ने यह भी विचार किया हो सकता है कि क्या बातचीत के प्रतिलेख या उसके किसी हिस्से या भाग की आपूर्ति बचाव की आवश्यकता को पूरा कर सकती है। निश्चित रूप से, दस्तावेज़ की मात्रा यहां कोई समस्या नहीं है क्योंकि पूरा दस्तावेज़ पेन ड्राइव में सेव होगा।

17. धारा 327 द०प्र०स० के आधार पर निचली अदालत का तर्क सही नहीं हो सकता है। उस प्रावधान के लिए मूल रूप से इस तरह के मुकदमे (धारा 376 भ०द०वि० के तहत अपराध को शामिल करना) को कैमरे में आयोजित करने की आवश्यकता होती है। धारा 327 द०प्र०स० की उप-धारा (3) अदालत की अनुमति के बिना ऐसी कार्यवाही के संबंध में किसी भी मामले के मुद्रण या प्रकाशन को प्रतिबंधित करती है। स्पष्ट रूप से, उस प्रावधान में बचाव स्थापित करने के उद्देश्य से केस डायरी पर मौजूद दस्तावेज की प्रति उपलब्ध कराने के लिए आरोपी व्यक्ति के आवेदन पर लागू नहीं होगा। यह प्रावधान मुख्य रूप से न्यायालय की कार्यवाही के बाहर, तीसरे पक्ष द्वारा मुद्रण या प्रकाशन के खिलाफ लागू होता है। किसी भी मामले में, धारा 327 द०प्र०स० के आधार पर, यह अदालत के पास रहेगा कि वह आरोपी व्यक्ति को अदालत की कार्यवाही के बाहर, ऐसी सामग्री के किसी भी हिस्से के किसी भी माध्यम से कोई प्रकाशन करने से रोकता है।

18. इसके अलावा, विद्वान निचली अदालत के आदेश में एक और दोष मौजूद प्रतीत होता है, क्योंकि आदेश के पहले भाग में यह सुझाव दिया गया है कि वांछित दस्तावेज की प्रति पहले ही आवेदक को सौंप दी गई थी। तर्क का वह हिस्सा बाद के तर्क के साथ संघर्ष करेगा कि पेन-ड्राइव की ऐसी क्लोन प्रति आरोपी व्यक्ति को देने की आवश्यकता नहीं है, जो पीड़ित की गोपनीयता की चिंताओं से उत्पन्न होती है।

19. मामले को जिस भी तरीके से देखा जाए, वर्तमान में निचली अदालत द्वारा पारित आदेश में तर्क की कमी पाई जाती है। ऊपर की गई चर्चा के मद्देनजर, उक्त आदेश पोषणीय नहीं है। इसे एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है। ऊपर की गई टिप्पणी को ध्यान में रखते हुए, एक नया आदेश पारित करने के लिए मामले को निचली अदालत को भेजा जाता है। इस प्रक्रिया को निचली

अदालत को आदेश के संचार की तारीख से एक महीने के भीतर पूरा किया किया जाना चाहिए।

20. तदनुसार, वर्तमान आवेदन का निपटान किया जाता है।

(2023) 3 ILRA 795

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 15.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति बृज राज सिंह

क्रिमिनल मिस्लेनियस एंटीसिपेटरी बेल अप्लीकेशन सं. 3574 सन् 2023

संदीप जोशी ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ...प्रतिपक्षी

आवेदक की ओर से अधिवक्ता: प्रदीप कुमार त्रिपाठी

प्रतिपक्षी की ओर से अधिवक्ता: जी.ए.

अपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या 3574 / 2023

(A) आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धाराएँ 376, 323 और 506 - लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 - धारा 3/4 - धारा 40 - बच्चे का विशेषज्ञों की सहायता लेने का अधिकार, आदि - बच्चे के परिवार या अभिभावक को अपनी पसंद के वकील या कानूनी सेवा प्राधिकरण के माध्यम से कानूनी सहायता का अधिकार - कानूनी सहायता की आवश्यकता है और संबंधित SHO/विशेष किशोर पुलिस यूनिट (SJPU) पीड़ित या शिकायतकर्ता को मामले की जानकारी देंगे - बच्चों को यौन अपराधों से सुरक्षा नियम, 2020 - नियम 4(13) और 4(15) - बच्चे की देखभाल और सुरक्षा से संबंधित प्रक्रिया - audi alteram partem। (पैरा - 4)

वादी या किसी व्यक्ति को जो बच्चे के पीड़ित की ओर से है - कार्यवाही में पक्षकार बनाया जाएगा - यदि किसी व्यक्ति को जमानत आवेदन में विपक्षी पक्ष बनाया गया - उस व्यक्ति पर सेवा का तरीका - न्यायालय को सुनिश्चित करना होगा - बच्चे के पीड़ित की पहचान किसी भी समय जांच या सुनवाई के दौरान नहीं बताई जाएगी। (पैरा - 3)

निर्णय:- वादी/पीड़ित को नोटिस जारी किया जाना चाहिए ताकि उन्हें उच्च न्यायालय में योजित पंजीकृत आवेदन की तारीख के बारे में जानकारी दी जा सके। (पैरा - 7)

जमानत आवेदन लंबित। (E-7)

उद्धृत वाद सूची:

रोहित बनाम सचिव गृह लखनऊ, उत्तर प्रदेश राज्य, जमानत संख्या 8227 / 2021।

माननीय न्यायमूर्ति बृजराज सिंह

1. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री राजेश कुमार सिंह एवं राज्य की ओर से विद्वान एजीए को सुना।

2. जमानत के लिए वर्तमान आवेदन आवेदक द्वारा मुकदमा अपराध सं. 434 सन् 2023 अन्तर्गत धारा 376, 323, 506 भा.दं.सं. और 3/4 लैंगिक अपराध से बच्चों का संरक्षण अधिनियम, थाना हरगांव, जिला सीतापुर के तहत जमानत के लिए दायर किया गया है।

3. इस न्यायालय के समक्ष मामले- **जमानत सं. 8227 सन् 2021 (रोहित बनाम उ.प्र. राज्य द्वारा सचिव गृह, लखनऊ)** में दो प्रश्न उभर कर सामने आए:

"(i) क्या शिकायतकर्ता या पीड़ित बच्चे की ओर से किसी व्यक्ति को कार्यवाही में एक पक्ष बनाया जाना चाहिए; और

(ii) यदि ऐसे किसी व्यक्ति को जमानत आवेदन में विरोधी पक्ष बनाया जाना है, तो ऐसे व्यक्ति को तामील का तरीका क्या होना चाहिए, क्योंकि न्यायालय को यह सुनिश्चित करना होगा कि जांच या परीक्षण के दौरान पीड़ित बच्चे की पहचान किसी भी समय उजागर न की जाए।"

4. न्यायालय ने उपरोक्त दो मुद्दों पर चर्चा करते हुए विस्तृत आदेश पारित किया है और न्यायालय ने उक्त मामले के पैराग्राफ -10 में राय दी है कि अपनी पसंद के अधिवक्ता के माध्यम से कानूनी सहायता का अधिकार अनिवार्य है और समन्वय पीठ द्वारा दूसरे प्रश्न का उत्तर भी दिया गया है। निर्देश जारी करते हुए, न्यायालय ने आदेश पारित किया कि कानूनी सहायता की आवश्यकता है और संबंधित थाना प्रभारी/विशेष किशोर पुलिस इकाई (SJPU) पीड़ित या मामले के शिकायतकर्ता को सूचित करेगी। रोहित (उपरोक्त) मामले में उक्त निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत किए गए हैं: -

> "10. पोक्सो अधिनियम की धारा 40 का सरसरी तौर पर अवलोकन करने पर केवल यही पता चलता है कि यह बच्चे के परिवार या अभिभावक को अपनी पसंद के अधिवक्ता या विधिक सेवा प्राधिकरण के माध्यम से कानूनी सहायता का अधिकार प्रदान करता है। हालांकि, ऐसी कानूनी सहायता निरर्थक होगी यदि बच्चे के परिवार या अभिभावक को उक्त कानूनी कार्यवाही के बारे में जानकारी नहीं है। किसी व्यक्ति को उचित और प्रभावी कानूनी सहायता तभी दी जा सकती है जब ऐसे व्यक्ति को लंबित कार्यवाही के बारे में जानकारी हो। यदि व्यक्ति को कार्यवाही के बारे में जानकारी नहीं है, तो उसे कोई कानूनी सहायता नहीं दी जा सकती।
>
> 11. यौन अपराधों से बच्चों का संरक्षण नियमावली, 2020 (संक्षेप में "नियमावली, 2020") पोक्सो अधिनियम के उद्देश्य को प्रभावी बनाने के लिए बनाई गयी है। इस मामले के उद्देश्य के लिए नियम 4(13) और 4(15) प्रासंगिक हैं, जो इस प्रकार हैं:
>
> **"4. बालक की देखभाल एवं संरक्षण के संबंध में प्रक्रिया-**
>
> (13) एस.आई.पी.यू. या स्थानीय पुलिस की यह जिम्मेदारी होगी कि वह बच्चे और बच्चे के माता-पिता या अभिभावक या अन्य व्यक्ति

जिस पर बच्चे का भरोसा और विश्वास हो, और जहां सहायक व्यक्ति नियुक्त किया गया हो, ऐसे व्यक्ति को अभियुक्त की गिरफ्तारी, दायर आवेदन और अदालती कार्यवाही सहित घटनाक्रम के बारे में सूचित रखे।

(14) ....

(15) एसजेपीयू, स्थानीय पुलिस या सहायक व्यक्ति द्वारा बच्चे और बच्चे के माता-पिता या अभिभावक या अन्य व्यक्ति, जिस पर बच्चे का भरोसा और विश्वास हो, को प्रदान की जाने वाली जानकारी में निम्नलिखित शामिल हैं, परंतु यह इन्हीं तक सीमित नहीं है: -

(i) सार्वजनिक और निजी आपातकालीन और संकट सेवाओं की उपलब्धता;

(ii) आपराधिक अभियोजन में शामिल प्रक्रियात्मक कदम;

(iii) पीड़ित के मुआवजे के लाभों की उपलब्धता;

(iv) अपराध की जांच की स्थिति, पीड़ित को सूचित करने के लिए उचित सीमा तक और इस सीमा तक कि यह जांच में हस्तक्षेप नहीं करेगा;

(v) संदिग्ध अपराधी की गिरफ्तारी;

(vi) संदिग्ध अपराधी के खिलाफ आरोप दायर करना;

(vii) अदालती कार्यवाही की अनुसूची जिसमें बच्चे को उपस्थित होना आवश्यक है या उपस्थित होने का हकदार है;

(viii) अपराधी या संदिग्ध अपराधी की जमानत, रिहाई या हिरासत की स्थिति;

(ix) विचारण के बाद फैसला सुनाना; और

(x) अपराधी को दिए गए दण्ड।

XX X

13. इसलिए, पोक्सो अधिनियम की धारा 40 के साथ-साथ नियमावली, 2020 के नियम 4(13) और 4(15) को पढ़ने से यह स्पष्ट है कि इस न्यायालय को यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि एसजेयूपी या स्थानीय पुलिस बच्चे के परिवार या अभिभावक को सूचित करे और आरोपी द्वारा दायर जमानत आवेदनों सहित सभी कार्यवाहियों के संबंध में उन्हें आवश्यकतानुसार कानूनी सहायता भी प्रदान करे। इस प्रकार, शिकायतकर्ता को

पक्षकार बनाना आवश्यक है, और यदि शिकायतकर्ता बच्चे का पारिवारिक सदस्य या अभिभावक नहीं है, तो इस न्यायालय के समक्ष दायर जमानत आवेदनों में शिकायतकर्ता के साथ बच्चे के पारिवारिक सदस्य या अभिभावक को प्रतिपक्षी के रूप में शामिल किया जा सकता है।

14. प्रत्येक पोक्सो अपराध मामले में बच्चे के माता-पिता/अभिभावक को जमानत आवेदन की नोटिस तामील करने का एक और कारण है। पोक्सो अधिनियम और नियमावली, 2020 के नियमों के अवलोकन से मामले से जुड़े प्रत्येक व्यक्ति सहित न्यायालयों पर यह दायित्व आता है कि वे ऐसे हालात और माहौल प्रदान करें जिसमें पीड़ित बच्चा और उसका परिवार सुरक्षित महसूस करे। न्यायिक कार्यवाही की पूरी जानकारी और उसमें भाग लेने का अवसर प्रदान करना पीड़ित बच्चे और उसके परिवार को समाज की न्याय प्रणाली में अपना विश्वास बनाए रखने और इस प्रकार सुरक्षित महसूस करने में सही दिशा में एक कदम होगा।

XX X

18. प्रत्येक मामले में नोटिस संबंधित पुलिस स्टेशन के जांच अधिकारी/एसएचओ के माध्यम से शिकायतकर्ता और/या बच्चे के माता-पिता/संरक्षक को दिया जाएगा। संबंधित पुलिस स्टेशन के जांच अधिकारी/एसएचओ को यह सुनिश्चित करना होगा कि जांच, सुनवाई या नोटिस की तामील के दौरान किसी भी तरह से बच्चे की पहचान उजागर न हो।

XX X

22. शिकायतकर्ता या बच्चे के परिवार/संरक्षक को जारी किए जाने वाले प्रत्येक नोटिस में हिन्दी भाषा में उपरोक्त विवरण भी शामिल किया जाएगा ताकि यदि वह चाहे तो विधिक सेवा प्राधिकरण से सहायता ले सके।"

5. विद्वान एजीए-I श्री राजेश कुमार सिंह ने दलील दी है कि पोक्सो अधिनियम, 2012 की धारा 40 एक वैधानिक अधिदेश है, जिसके अनुसार पीड़ित को न्यायालय के समक्ष अपना पक्ष रखने का अधिकार है। पोक्सो अधिनियम की धारा 40 नीचे उद्धृत है:-

"40. विशेषज्ञों आदि की सहायता लेने का बच्चे का अधिकार - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 301 के प्रावधान के अधीन, बच्चे का परिवार या अभिभावक इस अधिनियम के

तहत किसी भी अपराध के लिए अपनी पसंद के कानूनी अधिवक्ता की सहायता पाने का हकदार होगा:

बशर्ते कि यदि बच्चे का परिवार या अभिभावक अधिवक्ता की सेवा लेने में असमर्थ हैं, तो विधिक सेवा प्राधिकरण उन्हें अधिवक्ता उपलब्ध कराएगा।"

6. विशेष प्रश्न पर मुझे विद्वान ए.जी.ए.-I श्री राजेश कुमार सिंह द्वारा बताया गया कि जैसे ही जी.ए. कार्यालय को नोटिस प्राप्त होता है, सूचना संबंधित पुलिस स्टेशन को भेज दी जाती है और संबंधित पुलिस स्टेशन पीड़ित या शिकायतकर्ता को मामले के अनुसार सूचित करता है। हालांकि, उन्होंने दलील दी है कि सूचना देते समय, पुलिस शिकायतकर्ता/पीड़ित को सूचित करती है कि मामला उच्च न्यायालय में दायर है, और यह केवल पीड़ित या परिवार के सदस्य को दी गई सूचना है। यह प्रथा है कि नोटिस के दस दिनों के बाद, आवेदन दायर किए जाते हैं लेकिन पीड़ित या परिवार के सदस्य को न्यायालय द्वारा निर्धारित तिथि का पता नहीं होता है, केवल जी.ए. कार्यालय में पंजीकृत नोटिस संख्या के बारे में सूचित किया जाता है, उच्च न्यायालय के कार्यालय में पंजीकृत आवेदन की संख्या के बारे में आगे कोई विवरण नहीं दिया जाता है।

7. यौन अपराध से बच्चों के संरक्षण अधिनियम की धारा 40 में यह अनिवार्य किया गया है कि किसी बच्चे को विधिक सहायता लेने का अधिकार है और मेरा मानना है कि उच्च न्यायालय में दायर पंजीकृत आवेदन में तय की गई विशिष्ट तिथि के बारे में शिकायतकर्ता या पीड़ित को सूचित किया जाना चाहिए। मेरी राय में, पोक्सो अधिनियम की धारा 40 के साथ दूसरे पक्ष को भी सुनने का अधिकार के सिद्धांतों को लागू करते हुए, मेरा मानना है कि शिकायतकर्ता/पीड़ित को नोटिस जारी किया जाना चाहिए।

8. इसलिए, मैं प्रतिपक्षी सं. 2 को नोटिस जारी करता हूं, जो निर्धारित तिथि को या उससे पहले वापस किए जाने योग्य होगा।

9. इस मामले को दिनांक 10.4.2023 को शीर्ष 20 मामलों में सूचीबद्ध करें।

10. मामले को स्थगित करने से पहले, मैं विद्वान एजीए-I श्री राजेश कुमार सिंह द्वारा प्रदान की गई विधिक सहायता की सराहना करता हूं।

(2023) 3 ILRA 798

अपीलीय क्षेत्राधिकार
आपराधिक पक्ष
दिनांक: लखनऊ 20.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति बृज राज सिंह

क्रिमिनल मिस्लेनियस एंटीसिपेटरी बेल अप्लीकेशन सं. 3794 सन् 2023

विश्वनाथ ...**आवेदक**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...**प्रतिपक्षी**

आवेदक की ओर से अधिवक्ता: त्रिपुरेश मिश्रा
प्रतिपक्षी की ओर से अधिवक्ता: जी.ए.

अपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या 3794 / 2023

(A) आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धाराएँ 323, 504, 506 और 304 -

चार अभियुक्त - हमला करने का आरोप - मृतक को सिर पर एक चोट लगी - शरीर के गैर-जरूरी हिस्सों पर दो और चोटें आईं - एक आरोपी को जमानत प्राप्त हुई - आवेदनकर्ता का मामला सह-आरोपियों के वाद के तुल्य - पहले का कोई आपराधिक इतिहास नहीं - न्यायिक प्रक्रिया से भागने या गवाहों के साथ छेड़छाड़ की कोई संभावना नहीं। (पैरा - 3)

निर्णय:- सभी अभियुक्त को हमले की सामान्य भूमिका दी गई। अभिलेख में बताए गए चोटें के अवलोकन में स्पष्ट नहीं हैं। यह जमानत का एक उचित वाद है। मुख्य चिकित्सा अधिकारी को निर्देश। भविष्य की शव परीक्षण रिपोर्ट या चिकित्सक द्वारा तैयार की गई चोट की रिपोर्ट टाइप की गई और पाठन में स्पष्ट होनी चाहिए, ताकि इसे आसानी से पढ़ा जा सके। (पैरा - 6,10) **जमानत आवेदन स्वीकृत।** (E-7)

<u>माननीय न्यायमूर्ति बृज राज सिंह,</u>

प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता श्री त्रिपुरेश मिश्रा और सुश्री चंद्रिका रानी उपाध्याय और राज्य के लिए विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री राजेश कुमार सिंह को सुना।

वर्तमान जमानत प्रार्थना पत्र प्रार्थी द्वारा मुकदमा अपराध संख्या 252/2022 अन्तर्गत धारा 323,504,506,304 भा०द०सं०, थाना-पंचदेवरा, जिला-हरदोई जमानत पर छोड़े जाने की प्रार्थना के साथ दायर की गई है।

प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया है कि चार अभियुक्त हैं जिनके विरूद्ध हमले का आरोप लगाया गया है और मृतक को एक चोट उसके सिर पर और अन्य दो चोटें शरीर के गैर-महत्वपूर्ण हिस्सों पर लगी थीं। प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि सभी अभियुक्त गणों के विरूद्ध सामान्य आरोप लगाए गए हैं और एक अभियुक्त हरीश चंद्र को इस न्यायालय ने आपराधिक प्रकीर्ण जमानत प्रार्थना पत्र संख्या 3114/2023 में पारित आदेश दिनांक 28.02.2023 के अन्तर्गत जमानत दे दी है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि प्रार्थी का मामला सह-अभियुक्त हरिश्चंद्र के मामले के समान है। प्रार्थी का कोई पूर्व आपराधिक इतिहास नहीं है और न्यायिक प्रक्रिया से भागने या गवाहों के साथ छेड़छाड़ की कोई संभावना नहीं है और यदि प्रार्थी जमानत पर छूट जाता है, तो वह जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं करेगा। प्रार्थी दिनांक 28.10.2022 से कारागार में है।

यद्यपि विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने जमानत के लिए प्रार्थना का विरोध किया परन्तु उपरोक्त तथ्यों पर विवाद नहीं किया जा सका कि सह-अभियुक्त- हरीश चंद्र को इस न्यायालय द्वारा जमानत दी गई है।

श्री राजेश कुमार सिंह, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने कहा है कि संबंधित डॉक्टर द्वारा दायर चोट रिपोर्ट पढ़ने योग्य नहीं है।

मामले के गुण-दोषो पर कोई राय व्यक्त किए बिना और पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने और मामले के समग्र तथ्यों और परिस्थितियों के साथ-साथ इस तथ्य पर विचार करने के बाद कि सह-अभियुक्त- हरीश चंद्र को इस न्यायालय द्वारा जमानत दी गई है और सभी अभियुक्त गणों पर हमले की सामान्य भूमिका का आरोप

लगाया गया है, मुझे लगता है कि यह जमानत के लिए उपयुक्त मामला है।

प्रार्थी, अर्थात् **विश्वनाथ**, को निम्नलिखित शर्तों के साथ संबंधित न्यायालय की संतुष्टि के लिए व्यक्तिगत बांड और समान राशि की दो प्रतिभू प्रस्तुत करने पर उपरोक्त मामला अपराध संख्या में जमानत पर रिहा किया जा सकता है: -

(i) प्रार्थी को इस आशय का एक वचनबंध दाखिल करना होगा कि जब साक्षी न्यायालय में उपलब्ध हों तो वह साक्ष्य के लिए निर्धारित तिथियों पर किसी भी स्थगन की मांग नहीं करेगा। इस शर्त में चूक होने की स्थिति में, विचारण न्यायालय इसे जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग मानेगा और विधि संगत आदेश पारित करेगा।

(ii) प्रार्थी व्यक्तिगत रूप से या अपने अधिवक्ता के माध्यम से, प्रत्येक निर्धारित तिथि पर विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित रहेगा। बिना पर्याप्त कारण के उसकी अनुपस्थिति की स्थिति में, विचारण न्यायालय उसके विरूद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 229-ए के अन्तर्गत कार्यवाही कर सकता है।

(iii) यदि प्रार्थी मुकदमे के दौरान जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग करता है और उसकी उपस्थिति सुनिश्चित करने हेतु सीआरपीसी की धारा 82 के अन्तर्गत उद्घोषणा निर्गत किया जाता है तथा प्रार्थी ऐसी उद्घोषणा में निर्धारित तिथि पर न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने में विफल रहता है तो विचारण न्यायालय उसके विरूद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 174-ए के अन्तर्गत विधि संगत कार्यवाही प्रारम्भ करेगा।

(iv) प्रार्थी (i) वाद को प्रारम्भ करने, (ii) आरोप तय करने और (iii) सीआरपीसी की धारा 313 के अन्तर्गत बयान दर्ज करने के लिए निर्धारित तिथियों पर विचारण न्यायालय के समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित रहेगा। यदि विचारण न्यायालय की राय में प्रार्थी की अनुपस्थिति जानबूझकर या बिना पर्याप्त कारण के है, तो विचारण न्यायालय इस तरह के व्यतिक्रम को जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग मानने के लिए स्वतंत्र होगा और उसके विरूद्ध विधि संगत कार्यवाही करेगा।

यह स्पष्ट किया गया है कि इस आदेश में की गई टिप्पणियाँ इस जमानत प्रार्थना पत्र के विनिश्चय के उद्देश्य तक ही सीमित हैं और किसी भी तरह से मामले की गुण दोषों पर अभिव्यक्ति के रूप में नहीं मानी जायेंगी। विचारण न्यायालय इस आदेश में किसी भी बात से अप्रभावित साक्ष्य के आधार पर अपने स्वतंत्र निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए पूरी तरह से स्वतंत्र होगा।

इस स्तर पर, यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि चोट रिपोर्ट के अवलोकन से, ऐसा प्रतीत होता है कि रिपोर्ट में उल्लिखित चोटें अपठनीय हैं और अभियोजन पक्ष के साथ-साथ प्रार्थी पक्ष को भी चोट रिपोर्ट पढ़ने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

न्यायालय का मत है कि भविष्य में डॉक्टर द्वारा तैयार की गई पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट या चोट रिपोर्ट टाइप की हुई और सुपाठ्य होनी चाहिए, ताकि उसे आसानी से पढ़ा जा सके। अतः मैं प्रमुख सचिव, चिकित्सा स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण,

उ0प्र0 शासन, लखनऊ को निदेश करता हूँ कि जिले के सभी मुख्य चिकित्सा अधिकारियों को उचित निर्देश निर्गत करें कि पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट के साथ-साथ चोट रिपोर्ट भी टाइप किए गए प्रारूप में लिखी जाएगी।

इस न्यायालय के वरिष्ठ निबंधक को इस आदेश की एक प्रति प्रमुख सचिव, चिकित्सा स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण, उ.प्र. शासन, लखनऊ को आवश्यक अनुपालन हेतु तत्काल अग्रेषित करने हेतु निदेशित किया जाता है।

इस मामले को दो महीने के बाद निगरानी हेतु सूचीबद्ध किया जाएगा कि इस न्यायालय द्वारा निर्गत निदेशों के अनुपालन में क्या कार्रवाई की गई है।

इस मामले को 25.05.2023 को सूचीबद्ध करें।

(2023) 3 ILRA 800

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक वाद

दिनांक: इलाहाबाद 11.10.2022

माननीय न्यायमूर्ति कृष्ण पहल

के समक्ष

आपराधिक प्रकीर्ण अग्रिम जमानत आवेदन संख्या - 7977 / 2021

(धारा 438 Cr.P.C. के तहत)

चौधरी प्रताप सिंह ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ..प्रतिपक्षी

आवेदक के अधिवक्ता: श्री अमित डागा

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: जी.ए., श्री अखिलेश मिश्रा, श्री अंशुमान विधु चंद्र, श्री मेहुल खरे, श्री जगदेव सिंह

ए. आपराधिक कानून - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा 438-भारतीय दंड संहिता, 1860-धाराएँ 323 और 376-आवेदक पर आरोप है कि उसने वादी को एक अच्छी नौकरी दिलाने का वादा किया-जब वह आवेदक से मिली तो उसने दो व्यक्तियों के साथ बलात्कार किया-एनबीडब्ल्यू और धारा 82 और 83 सीआर.पी.सी. की प्रक्रिया पहले से प्रारंभ हो चुकी है और आवेदक के विरुद्ध आपराधिक इतिहास है-आरोप गंभीर प्रकृति के हैं-भजन लाल का वाद वर्तमान मामले पर लागू नहीं होता-आवेदक ने उच्च न्यायालय में धारा 482 सीआर.पी.सी. के प्रावधानों को दो बार प्रस्तुत किया लेकिन असफल रहा, जिसे आवेदक ने अग्रिम जमानत आवेदन में नहीं बताया-आवेदक साफ-सुथरे हाथों के साथ नहीं आया-आवेदक ने जांच के कानून की आवश्यकताओं पर ध्यान नहीं दिया और इस संबंध में विभिन्न निर्णयों में उच्चतम न्यायालय द्वारा किए गए विचारों पर भी ध्यान नहीं दिया। (पैरा 1 से 17)

जमानत आवेदन अस्वीकृत किया गया। (ई-6)

संदर्भित वाद सूची:

शिवम बनाम राज्य उत्तर प्रदेश एवं अन्य.. (2021) एयरऑनलाइन आल 484

माननीय न्यायमूर्ति कृष्ण पहल

1. आवेदक की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री अमित डागा, शिकायतकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री मेहुल खरे तथा राज्य की ओर से विद्वान अपर महाधिवक्ता श्री विभव आनंद सिंह

को सुना गया तथा अभिलेख का अवलोकन किया गया।

2. वर्तमान प्रार्थना पत्र आपराधिक शिकायत प्रकरण संख्या 1407/2018, धारा 323, 376-डी भा0दं0सं0, पुलिस स्टेशन- भोपा, जिला-मुजफ्फरनगर में अग्रिम जमानत की मांग करते हुए आवेदक को अग्रिम जमानत पर रिहा करने की प्रार्थना के साथ पेश किया गया है।

अभियोजन पक्ष की कहानी:-

3. शिकायतकर्ता श्रीमती संगीता कौर पत्नी दुल्ली सिंह ने दिनांक 16.11.2016 को संबंधित मजिस्ट्रेट के समक्ष शिकायत दर्ज कराई थी कि शिकायतकर्ता एक दलित महिला है और वह सुशील चौधरी पुत्र धर्मवीर सिंह के परिवार से बहुत अच्छी तरह से परिचित थी। कहा जाता है कि सुशील ने शिकायतकर्ता को प्रताप सिंह (आवेदक) पुत्र गोविंद सिंह जिला उधम सिंह नगर, उत्तराखंड से मिलवाया था। शिकायतकर्ता को बताया गया था कि आवेदक अर्बन बैंक काशीपुर का अध्यक्ष है और किसान इंटर कॉलेज, कुंडेश्वरी , जिला उधम सिंह नगर, उत्तराखंड का प्रबंधक भी है और कहा जाता है कि आवेदक ने शिकायतकर्ता को अच्छी नौकरी दिलाने का वादा किया था। दिनांक 24.9.2016 को उक्त सुशील चौधरी ने शिकायतकर्ता के पति को बताया कि दिनांक 25.9.2016 को उसके रिश्तेदार को किसी निजी काम से मोरना, मुजफ्फर नगर आना है। बताया जाता है कि शिकायतकर्ता 25.9.2016 की दोपहर 12 बजे मोरना पेट्रोल पंप, मुजफ्फर नगर पहुंची थी। बताया जाता है कि आवेदक गुड़गांव निवासी सुशील और दीपक के साथ कार संख्या यूके 18 6677 से आई थी। बताया जाता है कि शिकायतकर्ता का पति उसे छोड़कर अपने घर चला गया था। शिकायतकर्ता आवेदक और उक्त व्यक्तियों के साथ कार में शुक्रताल , मुजफ्फर नगर की ओर चली गई। आवेदक और उसके साथियों ने रास्ते में शराब पी ली। बताया जाता है कि आवेदक ने शिकायतकर्ता के साथ दुर्व्यवहार करना शुरू कर दिया। विरोध करने पर उसे मारा-पीटा और गाली-गलौज की और उक्त सभी व्यक्तियों ने उसके साथ सामूहिक बलात्कार किया। बताया जाता है कि आवेदक ने अपने मोबाइल में इसका वीडियो भी बना लिया था। बताया जाता है कि उक्त कृत्य के बाद शिकायतकर्ता को परतापुर में फेंक दिया गया । बाईपास , मेरठ। घर पहुंचकर शिकायतकर्ता ने अपने पति को घटना की जानकारी दी, जो अगले दिन थाने गया लेकिन पुलिस ने कोई कार्रवाई नहीं की। इस तरह शिकायत दर्ज कराई गई।

प्रतिद्वंदी तर्क:-

4. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि आवेदक की भतीजी प्रियंका पुत्री ललित कुमार ने कई वर्ष पूर्व विपुल कुमार नामक व्यक्ति से प्रेम विवाह किया था। आवेदक ने अपनी भतीजी प्रियंका के उक्त प्रेम विवाह का विरोध किया था। समय बीतने के साथ आवेदक के भाई अर्थात प्रियंका के पिता ने अपनी पुत्री के उक्त प्रेम विवाह को स्वीकार कर लिया तथा उसके पति विपुल कुमार के साथ उसके संबंध मधुर हो गए। आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा है कि उनकी भतीजी के पति विपुल कुमार का आपराधिक इतिहास रहा है तथा उसके विरुद्ध पश्चिमी उत्तर प्रदेश तथा उत्तराखंड के उधम सिंह नगर में विभिन्न स्थानों पर कुल नौ मुकदमें लंबित हैं। उक्त दामाद विपुल कुमार ने आवेदक तथा उसके भाइयों की पैतृक सम्पत्ति हड़पने का भरपूर प्रयास किया। आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा है कि उक्त शिकायत

उक्त भतीजी तथा उसके पति विपुल कुमार के कहने पर आवेदक पर दबाव बनाने के लिए दर्ज कराई गई है, ताकि वह आवेदक की सम्पत्ति उसके नाम कराने में बाधा न बने।

5. विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा है कि शिकायतकर्ता ने 20.4.2017 को विचारण न्यायालय के समक्ष हलफनामे के साथ एक प्रार्थना पत्र दिया था जिसमें आरोपी आवेदक के खिलाफ आगे न बढ़ने का अनुरोध किया गया था क्योंकि उसके साथ बलात्कार करने वाला व्यक्ति प्रताप सिंह नाम का कोई अन्य व्यक्ति था। उक्त प्रार्थना पत्र हलफनामे के साथ अनुलग्नक-12 के रूप में संलग्न है। विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा है कि शिकायतकर्ता और उसके पति दुल्ली सिंह ने 17.1.2018 को विचारण न्यायालय के समक्ष हलफनामे के साथ एक प्रार्थना पत्र दिया था जिसमें कहा गया था कि विचारण न्यायालय के रिकॉर्ड पर धारा 164 दं0प्र0सं0 के तहत दर्ज शिकायतकर्ता का बयान झूठा है क्योंकि इसे प्रियंका और उसके पति विपुल के कहने पर दर्ज किया गया है। उक्त प्रार्थना पत्र हलफनामे के साथ अनुलग्नक संख्या 16 के रूप में संलग्न है।

6. विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा है कि शिकायतकर्ता ने 22.1.2018 को विचारण न्यायालय के समक्ष एक प्रार्थना पत्र दायर किया था, जिसमें सभी आरोपियों के खिलाफ शिकायत प्रकरण की कार्यवाही को समन आदेश को खारिज करके बंद करने का अनुरोध किया गया था। विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा है कि शिकायतकर्ता ने 7.2.2018 को विचारण न्यायालय के समक्ष पुलिस सुरक्षा प्रदान करने के लिए फिर से एक प्रार्थना पत्र दायर किया, क्योंकि उसे अपनी जान को खतरा महसूस हुआ।

7. विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि विचारण न्यायालय ने 3.8.2018 को एक आदेश पारित किया था जिसमें शिकायतकर्ता को प्रत्येक आरोपी व्यक्ति के खिलाफ प्रक्रिया जारी करने के लिए कहा गया था क्योंकि उसने एक ही नाम प्रताप सिंह के दो अलग-अलग व्यक्तियों के खिलाफ आरोप लगाए थे। विचारण न्यायालय के उक्त आदेश को शिकायतकर्ता ने आपराधिक संशोधन संख्या 245/2018 में संशोधन न्यायालय के समक्ष चुनौती दी थी और इसे गुण-दोष के आधार पर खारिज कर दिया गया था।

8. विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि विचारण न्यायालय ने बिना कोई ठोस कारण बताए आवेदक और अन्य आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ 2.3.2021 को गैर-जमानती वारंट जारी किया है।

9. विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि आवेदक ने पुलिस स्टेशन काशीपुर जिला उधम सिंह नगर, उत्तराखंड में धारा 386, 388, 389 और 120-बी भा0दं0सं0 के तहत शिकायतकर्ता के खिलाफ एक प्राथमिकी दर्ज की थी और उसे आरोपी के रूप में गिरफ्तार किया गया था और उसका बयान धारा 164 दं0प्र0सं0 के तहत दर्ज किया गया था । जिसमें शिकायतकर्ता ने स्पष्ट रूप से कहा है कि आवेदक और सुशील ने उसके साथ किसी भी प्रकार का यौन उत्पीड़न नहीं किया है और उनके खिलाफ झूठा प्रकरण दर्ज किया गया है।

10. विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि गहन जांच के बाद शिकायतकर्ता सहित चार आरोपियों के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था।

11. विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि शिकायतकर्ता को तुच्छ एफआईआर दर्ज करने की आदत है क्योंकि उसने पीएस गजरौला , जिला

जेपी नगर में धारा 452, 342, 506 भा0दं0सं0 और 3 (2) (वीए) एससी / एसटी एक्ट के तहत केस क्राइम संख्या 169 / 2018 में एफआईआर दर्ज की थी। यह कहा गया है कि उक्त एफआईआर में पुलिस द्वारा एक क्लोजर रिपोर्ट दायर की गई थी और यहां तक कि शिकायतकर्ता ने संबंधित मजिस्ट्रेट के समक्ष उक्त क्लोजर रिपोर्ट को स्वीकार करने के लिए प्रार्थना पत्र दायर किया था, जिसे 14.7.2018 को स्वीकार कर लिया गया था। वर्तमान शिकायत प्रकरण में पेश किए गए एक अन्य गवाह, सुमित कुमार ने भी धारा 328 और 506 भा0दं0सं0 के तहत पीएस कोतवाली मंडी, जिला सहारनपुर में एफआईआर संख्या 273 / 2019 दर्ज किया था दिनांक 23.11.2020 की उक्त विरोध याचिका के बावजूद न्यायालय ने दिनांक 20.2.2021 के आदेश के तहत समापन रिपोर्ट को स्वीकार करने में प्रसन्नता व्यक्त की। शिकायतकर्ता की एक अन्य करीबी मित्र श्रीमती उषा ने भी थाना सिंभावली , जिला हापुड़ में एफआईआर संख्या 308/2019 के रूप में एक एफआईआर दर्ज कराई थी, जिसमें अंतिम रिपोर्ट विचारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई है, जो निर्णय के लिए लंबित है। उक्त विपुल कुमार ने भी आवेदक के खिलाफ एसीजेएम-I, बिजनौर की अदालत में 16.3.2020 को एक शिकायती प्रकरण दायर किया था, जिसे विचारण न्यायालय ने दिनांक 4.3.2021 के आदेश के तहत खारिज कर दिया था। विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा है कि आवेदक के खिलाफ सभी प्रकरण प्रतिशोध की भावना से दायर किए गए हैं और पक्ष एक-दूसरे के विरोधी हैं

12. विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि आवेदक का पांच मामलों में आपराधिक इतिहास है, जिसे स्पष्ट किया जा चुका है। उन्होंने आपराधिक अपील संख्या 577/2017 (एसएलपी (आपराधिक) संख्या 287/2017 से उत्पन्न) और हरियाणा राज्य एवं अन्य बनाम भजन लाल एवं अन्य 1992 पूरक (1) सुप्रीम कोर्ट केस 335 में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा किया है।

13. इसके विपरीत, शिकायतकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री मेहुल खरे ने ज़मानत प्रार्थना पत्र का पुरज़ोर विरोध किया है और कहा है कि आवेदक साफ़ हाथों से नहीं आया है क्योंकि उसने दं0प्र0सं0 की धारा 482 के तहत प्रार्थना पत्र संख्या 13983/2017 दायर करके समन आदेश को चुनौती दी थी। उक्त याचिका को इस न्यायालय ने दिनांक 5.5.2017 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया था।

14. विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि आवेदक के समक्ष धारा 482 दं0प्र0सं0 संख्या 42944/2017 के तहत एक और प्रार्थना पत्र भी दायर किया गया था जिसे फिर से खारिज कर दिया गया था। विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि आवेदक ने सुप्रीम कोर्ट के समक्ष एक विशेष अनुमति याचिका दायर की थी जिसे भी दिनांक 6.4.2018 के आदेश के तहत खारिज कर दिया गया था।

15. शिकायतकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि आवेदक इलाके का एक शक्तिशाली व्यक्ति है। विद्वान अधिवक्ता ने यह भी कहा है कि आवेदक के खिलाफ 2.3.2021 को NBW जारी किया गया था और आवेदक के खिलाफ धारा 82 और 83 Cr.PC के तहत कार्यवाही पूरी हो चुकी है। **एआईआरऑनलाइन 2021 इलाहाबाद 484** में प्रतिवेदित **शिवम बनाम उ0प्र0 राज्य और अन्य** में इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के आलोक

में आवेदक अग्रिम जमानत का हकदार नहीं है, और यह भी तथ्य है कि आवेदक का आपराधिक इतिहास रहा है। एफआईआर में लगाए गए आरोप गंभीर प्रकृति के हैं।

निष्कर्ष:-

16. उपरोक्त प्रकरण **शिवम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (पूर्वोक्त)** में पारित इस न्यायालय के निर्णय के पैराग्राफ 45 द्वारा पूरी तरह से कवर किया गया है, क्योंकि यह एक स्वीकृत तथ्य है कि आवेदक ने इस न्यायालय में दं0प्र0सं0 की धारा 482 के प्रावधानों को दो बार उठाया और असफल रहा। निर्णय के पैराग्राफ 45 को नीचे उद्धृत किया जा रहा है:-

> "45) जब किसी अभियुक्त द्वारा उसके विरुद्ध आरोप-पत्र प्रस्तुत किए जाने के पश्चात अग्रिम जमानत मांगी जाती है, तो अग्रिम जमानत प्रार्थना पत्र में निम्नलिखित विवरण दिए जाने अपेक्षित होते हैं, ताकि सही निष्कर्ष पर पहुंचा जा सके कि क्या अभियुक्त के विरुद्ध प्रस्तुत आरोप-पत्र, जांच के कानून की अपेक्षाओं को पूरा कर सकता है, जैसा कि ऊपर विचार किया गया है तथा सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इस संबंध में विभिन्न निर्णयों में किए गए विचार को भी ध्यान में रखा गया है: -
>
> (i) जांच अधिकारी द्वारा एकत्रित संपूर्ण सामग्री के साथ आरोप-पत्र को अग्रिम जमानत प्रार्थना पत्र का हिस्सा बनाया जाना चाहिए;
>
> (ii) अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के संदर्भ में स्पष्ट दलील दी जानी चाहिए जिसमें यह बताया जाना चाहिए कि आवेदक का प्रकरण ऊपर वर्णित पैराग्राफ 41 के किस उप-पैराग्राफ के अंतर्गत आता है ;
>
> (iii) यह भी स्पष्ट दलील दी जानी चाहिए कि आवेदक का प्रकरण पूर्वोक्त पैरा 43 द्वारा वर्जित नहीं है ;
>
> (iv) अग्रिम जमानत प्रार्थना पत्र के समर्थन में हलफनामे में स्पष्ट कथन होना चाहिए कि आवेदक ने किसी भी कार्यवाही में इस न्यायालय के समक्ष आरोप-पत्र को चुनौती नहीं दी है;
>
> (v) यदि आवेदक ने आरोप-पत्र प्रस्तुत करने के पश्चात किसी अन्य कार्यवाही के माध्यम से इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है और किसी कार्यवाही में कोई आदेश प्राप्त किया है, तो इसका खुलासा अग्रिम जमानत प्रार्थना पत्र में किया जाएगा; और (vi) अग्रिम जमानत प्रार्थना पत्र में स्पष्ट दलील दी जानी चाहिए कि आरोप-पत्र प्रस्तुत करने के पश्चात आवेदक ने किसी न्यायालय का दरवाजा नहीं खटखटाया है और ऐसी कोई कार्यवाही लंबित नहीं है।

17. गैर जमानती वारंट और धारा 82 और 83 दं0प्र0सं0 के तहत कार्यवाही पहले ही पूरी हो चुकी है और आवेदक के खिलाफ आपराधिक प्रकरण दर्ज हैं। आवेदक के खिलाफ आरोप गंभीर प्रकृति के हैं। भजन लाल (पूर्वोक्त) का निर्णयज विधि वर्तमान प्रकरण पर लागू नहीं होता ।

18. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत तर्कों पर समुचित विचार करने तथा आवेदक के आरोपों और पूर्ववृत्त की प्रकृति और आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत निर्णयज विधियों पर विचार करने के पश्चात, मैं

यह नहीं पाता कि आवेदक इस प्रकरण में अग्रिम जमानत पर रिहा किये जाने का हकदार है।

19. उपरोक्त के मद्देनजर, आवेदक की अग्रिम जमानत अर्जी **खारिज** की जाती है।

(2023) 3 ILRA 804

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 15.11.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुरेश कुमार गुप्ता

क्रिमिनल मिस्लेनियस एंटीसिपेटरी बेल अप्लीकेशन सं. 9023 सन् 2022

डॉ. अर्चना गुप्ता ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रत्यर्थी

आवेदक की ओर से अधिवक्ता: श्री पुनीत भदौरिया

प्रत्यर्थी की ओर से अधिवक्ता: जी.ए., श्री कुलदीप सिंह यादव

अग्रिम जमानत आवेदन संख्या 9023 / 2022

(A) अपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - सेक्शन 438 - अग्रिम जमानत - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 419, 420, 467, 468 और 471 - जब आरोपी 'गायब' है और 'घोषित अपराधी' के तौर पर घोषित किया गया है - तब अग्रिम जमानत प्रदान करने का प्रश्न ही नहीं उत्पन्न होता है - जब किसी व्यक्ति के विरुद्ध वारंट जारी हो चुका है और वह गायब है या खुद को छिपा रहा है ताकि वारंट की कार्रवाई से बच सके और उसे संहिता की धारा 82 के तहत अपराधी घोषित किया गया है, तो वह अग्रिम जमानत का पात्र नहीं है। (पैराग्राफ - 7)

आवेदक के विरुद्ध चार्ज-शीट दायर की गई - उसने जानबूझकर विचारणीय न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं हुआ - इसी वजह से आवेदक के विरुद्ध विचरण प्रारंभ नहीं हो सका - आवेदक के विरुद्ध संहिता की धारा 82 के तहत प्रक्रिया प्रारंभ की गई - उसे एक अभिकर्ता घोषित किया गया - सत्र न्यायालय ने अग्रिम जमानत निरस्त कर दी। (पैराग्राफ - 8)

आयोजित:- आवेदक के विरुद्ध आरोप स्थापित हैं। आवेदक को अग्रिम जमानत का पात्र नहीं है क्योंकि उसे संहिता की धारा 82 के तहत अभिकर्ता/प्रोक्लेम्ड ऑफेंडर के रूप में घोषित किया गया है। (पैराग्राफ - 8)

अग्रिम जमानत आवेदन निरस्त। (E-7)

<u>उद्धृत वाद सूची:-</u>

प्रेम शंकर प्रसाद बनाम बिहार राज्य, अपराधिक अपील संख्या 1209 / 2021।

<u>माननीय न्यायमूर्ति सुरेश कुमार गुप्ता</u>

आवेदक के विद्वान अधिवक्ता अधिवक्ता, राज्य की ओर से विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता और प्रथम सूचनादाता के विद्वान अधिवक्ता को सुना।

वर्तमान प्रार्थना पत्र अंतर्गत धारा-438 दं.प्र.सं. आवेदक द्वारा मुकदमा अपराध संख्या 460/2017, धारा-419, 420, 467, 468, 471 भा.दं.सं., थाना-जसवन्त नगर, जिला-इटावा में

गिरफ्तारी की आशंका जताते हुए अग्रिम जमानत की मांग हेतु प्रस्तुत किया गया है।

आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने कथन किया है कि आवेदक निर्दोष है और उसे वर्तमान मामले में झूठा फंसाया गया है। विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में आरोपों के अनुसार, प्रथम सूचनादाता मौजा-राजमऊ, तहसील-जसवंत नगर, इटावा में स्थित आराजी गाटा संख्या 151/1 के 2.3960 हेक्टेयर में से 0.5320 हेक्टेयर का वास्तविक भौतिक कब्जाधारी व स्वामी है और उसका नाम विधिवत राजस्व अभिलेखों में दर्ज है। उसकी संपत्ति हड़पने के इरादे से, आवेदक ने एक गुमनाम महिला प्रभा देवी पत्नी रामचन्द्र से एक विक्रय समझौता किया और उसके पश्चात दिनांक 21.04.2017 को उसके पक्ष में विक्रय विलेख निष्पादित कर दिया और उक्त फर्जी व बनावटी विक्रय विलेख के आधार पर आवेदक प्रथम सुचनादाता की संपत्ति हड़पना चाहता था।

आवेदक के अधिवक्ता ने आगे कहा कि अभियोजन की पूरी कहानी पूरी तरह से झूठी और मनगढ़न्त है। आवेदक ने राजस्व रिकॉर्ड के सत्यापन के बाद प्रभा देवी पत्नी रामचन्द्र से जमीन खरीदी। प्रथम विक्रय समझौता दोनों पक्षों के बीच निष्पादित किया गया था, तब तक प्रश्नगत संपत्ति के संबंध में किसी ने कोई विवाद नहीं उठाया था। वर्तमान में, आवेदक के पास प्रश्नगत संपत्ति का वास्तविक भौतिक कब्जा है और जब उसने अपने अस्पताल के लिए उस पर निर्माण करना शुरू किया, तो प्रथम सूचनादाता ने उससे अवैध धन की मांग की। प्रथम सूचनादाता एक प्रसिद्ध महिला है और पिछले सत्र की ग्राम प्रधान थी और जब आवेदक ने ऐसा करने से इनकार कर दिया, तो प्रथम सूचनादाता ने झूठे और काल्पनिक आधार पर प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई, जिसमें आरोप लगाया गया कि विक्रय विलेख छदम व्यक्ति के माध्यम से निष्पादित किया गया था। आगे यह भी कथन किया गया है कि प्रथम सूचनादाता का वास्तविक नाम कंथश्री उर्फ प्रभा देवी पत्नी रामचन्द्र उर्फ रामबाबू है। तत्पश्चात प्रथम सूचनादाता ने प्रश्नगत संपत्ति के विक्रय विलेख को रद्द करने के लिए दीवानी वाद मूल वाद संख्या 433/2017 दायर किया, जो सिविल जज (जे.डी.), इटावा के समक्ष लंबित है। वास्तव में, आवेदक स्वयं प्रथम सूचनादाता द्वारा की गई धोखाधड़ी का शिकार हुई, जिसके विरुद्ध आवेदक ने स्वयं ही दिनांक 02.07.2017 को प्रथम सूचनादाता एवं अन्य के विरुद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट मुकदमा अपराध संख्या 484/2017 अंतर्गत धारा-420, 406, 467, 468 भा.दं.सं. दर्ज कराई।

आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि आवेदक प्रमाणित क्रेता है। इससे पूर्व आवेदक के विरुद्ध आरोप पत्र दाखिल करने के बाद, उसने प्रार्थना पत्र अंतर्गत धारा-482 दं.प्र.सं. संख्या 25709/2019 के माध्यम से इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया था, जो अभी भी इस न्यायालय के समक्ष लंबित है और आज तक कोई अंतरिम आदेश पारित नहीं किया गया है और अंततः, आवेदक ने संबंधित सत्र न्यायालय के समक्ष अग्रिम जमानत आवेदन दायर किया लेकिन उसे खारिज कर दिया गया। आगे कथन किया गया है कि विवेचना के दौरान, आवेदक को आपराधिक प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 19374/2017 में इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ द्वारा पारित आदेश दिनांकित 18.09.2017 द्वारा आरोप पत्र दाखिल करने तक गिरफ्तारी से संरक्षित किया गया है। पक्षकारों के मध्य सिविल

विवाद है। विवेचना के दौरान आवेदक ने जांच में पूरा सहयोग किया। परन्तु विवेचना अधिकारी ने बिना कोई ठोस और विश्वसनीय साक्ष्य जुटाए, आवेदक के विरूद्ध आरोप पत्र दाखिल कर दिया। आगे यह तर्क किया गया है कि आवेदक के विरूद्ध दं.प्र.सं. की धारा-82 के अंतर्गत कार्यवाही नियमित तरीके से शुरू की गई थी। आवेदक मुकदमे में सहयोग करने को तैयार है।

आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कथन किया कि दं.प्र.सं. की धारा 82 के अंतर्गत प्रक्रिया जारी होने के बाद जहां तक अग्रिम जमानत की पोषणीयता का संबंध है, आवेदक के अधिवक्ता ने इस न्यायालय द्वारा आपराधिक प्रकीर्ण रिट अग्रिम जमानत प्रार्थना पत्र संख्या 4645/2022 में पारित निर्णय पर विश्वास व्यक्त किया, जिसका प्रासंगिक भाग यहां पुनः प्रस्तुत किया जा रहा हैः-

"25. शीर्ष अदालत ने घोषित अपराधी को अग्रिम जमानत लेने से रोक दिया है। जो व्यक्ति विधिक प्रक्रिया का पालन नहीं कर रहा है और जानबूझकर जांच से बच रहा है, वो भी जांच प्रक्रिया में सहयोग करने के लिए विवेचना अधिकारी द्वारा सभी आवश्यक कदम उठाए जाने के बावजूद, उदाहरण-समन भेजा गया परन्तु कोई लाभ नहीं हुआ, तत्पश्चात जमानती वारंट भी जारी किए गए परन्तु फिर से बिना किसी स्वीकार्य और ठोस कारण के वह जांच में सहयोग नहीं कर रहा है, अंततः गैर-जमानती वारंट तामील हो चुका है परन्तु उस पर कोई ध्यान नहीं दिया गया है, तो विवेचना अधिकारी के पास धारा-82/83 दं.प्र.सं. के अंतर्गत उद्घोषणा के अलावा कोई विकल्प नहीं है। यहां यह भी प्रासंगिक है कि संबंधित न्यायालय को कोई भी कठोर कदम उठाने से पहले यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि उपरोक्त सभी कार्यवाही अर्थात समन, जमानती वारंट और गैर-जमानती वारंट उस व्यक्ति को विधिवत दिए गए हैं और वह जानबूझकर इनसे बच रहा है। सम्मन, जमानती वारंट और गैर-जमानती वारंट जारी करना पर्याप्त नहीं होगा, परन्तु जो सबसे महत्वपूर्ण है वह है व्यक्ति पर इसकी तामील क्योंकि जब तक ऐसी प्रक्रिया पूर्ण नहीं हो जाती, तब तक शीर्ष अदालत के इंद्र मोहन गोस्वामी (उपरोक्त) में पारित आदेशानुसार कोई और कठोर कदम नहीं उठाया जाना चाहिए क्योंकि ये ठोस कदम सीधे तौर पर व्यक्ति की स्वतंत्रता से संबंधित हैं जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत संरक्षित है।

26. इसलिए, यदि उपरोक्त प्रक्रिया से व्यक्ति बचता है, तो उद्घोषणा मांगने के लिए कोई भी उचित आवेदन विवेचना अधिकारी द्वारा शपथपत्र के साथ संबंधित न्यायालय को अवगत कराने के लिए दायर किया जा सकता है कि किस प्रकार समन, जमानती वारंट और गैर-जमानती वारंट व्यक्ति पर तामील होने के बावजूद भी वह जानबूझकर जांच में सहयोग करने से परहेज कर रहा है, और न्यायालय ऐसे आवेदन के कथनों पर उचित संतुष्टि होने के पश्चात उद्घोषणा जारी कर सकती है। मात्र इन परिस्थितियों में ही उस व्यक्ति को उद्घोषित अपराधी घोषित किया जा सकता है और उसकी अग्रिम जमानत प्रार्थना पत्र पर सुनवाई नहीं की जानी चाहिए। दूसरे शब्दों में, अग्रिम जमानत प्रार्थना पत्र दाखिल करने से पूर्व उस व्यक्ति को अपराधी घोषित किया जाना चाहिए और उसकी अग्रिम जमानत अर्जी गुण-दोष के आधार पर सुनवाई का अधिकार खो देगी।"

विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता के साथ-साथ प्रथम सूचनादाता के अधिवक्ता ने आवेदक की

प्रार्थना का जोरदार विरोध किया और कथन किया कि आवेदक के विरूद्ध वर्ष 2018 में पहले ही आरोप पत्र दाखिल किया जा चुका है और मामला तब से ही लंबित है। आरोप पत्र दाखिल होने के बाद से, आवेदक जानबूझकर कार्यवाही से अनुपस्थित चल रही है। नतीजतन, दिनांक 22.02.2022 को धारा-82 दं.प्र.सं. की प्रक्रिया आवेदक के विरूद्ध शुरू की गई और उसे भगोड़ा घोषित कर दिया गया। यह भी कथन किया गया है कि आवेदक ने भगोड़ा घोषित होने के काफी बाद अग्रिम जमानत की मांग के लिए विद्वान अधीनस्थ न्यायालय आया था और उसके अग्रिम जमानत आवेदन को दिनांक 18.08.2022 को सत्र न्यायालय ने खारिज कर दिया गया था। आवेदक के असहयोग के कारण, मुकदमा अभी भी विचारण न्यायालय के समक्ष लंबित है। आवेदक के विरूद्ध पर्याप्त सबूत उपलब्ध हैं। आवेदक को गलत फंसाने का कोई आधार नहीं है। अतएव आवेदक का प्रार्थना पत्र निरस्त किये जाने योग्य है। उसने **आपराधिक अपील संख्या 1209/2021 में प्रेम शंकर प्रसाद बनाम बिहार राज्य के मामले में दिनांक 21.10.2021 को दिए गए** माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भी विश्वास व्यक्त किया है, जिसका प्रासंगिक भाग यहां नीचे पुनः प्रस्तुत किया जा रहा हैः-

''16.हाल ही में लावेश बनाम राज्य (एन.सी.टी. दिल्ली) (2012) 8 एस.सी.सी. 730 में, इस न्यायालय (जिसमें हम दोनों पक्षकार थे) ने संहिता की धारा-82 के अंतर्गत भगोड़ा या अपराधी घोषित किए गए व्यक्ति को धारा-438 के अंतर्गत राहत देने की गुंजाइश पर विचार किया। पैरा-12 में इस न्यायालय ने निम्नानुसार कहाः- (एस.सी.सी. पृष्ठ 733)

''12.इन सामग्रियों और सूचनाओं से, यह स्पष्ट है कि वर्तमान अपीलकर्ता पूछताछ और जांच के लिए उपलब्ध नहीं था और उसे भगोड़ा घोषित कर दिया गया था। आम तौर पर, जब अभियुक्त 'भगोड़ा' हो जाता है और उसे 'घोषित अपराधी' घोषित कर दिया जाता है, तो अग्रिम जमानत देने का कोई सवाल ही नहीं है। हम दोहराते हैं कि जब कोई व्यक्ति जिसके विरूद्ध वारंट जारी किया गया था और वह वारंट के निष्पादन से बचने के लिए फरार है या खुद को छुपा रहा है और संहिता की धारा-82 के संदर्भ में घोषित अपराधी के रूप में घोषित किया गया है, तो वह अग्रिम जमानत से राहत पाने का हकदार नहीं है।''

मामले के संपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, मेरा विचार है कि आवेदक के विरूद्ध आरोप अच्छी तरह से स्थापित है। आवेदक के विरूद्ध आरोप-पत्र दाखिल होने के बाद, वह जानबूझकर विचारण न्यायालय के समक्ष अनुपस्थित रही और इस कारण, आज तक आवेदक के विरूद्ध मुकदमा शुरू नहीं हो सका। इसके अलावा, उपरोक्त निर्णय से यह स्पष्ट है कि यदि किसी को संहिता की धारा-82 के अनुसार भगोड़ा/घोषित अपराधी घोषित किया जाता है, तो वह अग्रिम जमानत की राहत पाने का हकदार नहीं है। इस प्रकार, शीर्ष अदालत द्वारा प्रतिपादित विधि के अनुसार यह अग्रिम जमानत के लिए उपयुक्त मामला नहीं है। परिणामस्वरूप, प्रार्थना पत्र अंतर्गत धारा-438 दं.प्र.सं. **खारिज** किया जाता है।

(2023) 3 ILRA 808

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 11.10.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान

क्रिमिनल मिस्लेनियस एंटीसिपेटरी बेल अप्लीकेशन सं. 10800 वर्ष 2022 (धारा 438 दं.प्र.सं. के तहत)

अखलाख अहमद ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिपक्षी

आवेदक की ओर से अधिवक्ता: श्री तव्वाब अहमद खान

प्रतिपक्षी की ओर से अधिवक्ता: जी.ए.

अग्रिम जमानत आवेदन संख्या 10800 / 2022

(A) अपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 41A और 438 - अग्रिम जमानत - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 365, 342 और 420 - उत्तर प्रदेश विधि विरुद्ध धर्म संपरिवर्तन प्रतिषेध अध्यादेश, 2020 - धारा 3, 5(1) - कोई भी व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को एक धर्म से दूसरे धर्म में बदलने के लिए झूठ, बल, अनुचित प्रभाव, दबाव, प्रलोभन या किसी भी धोखाधड़ी के तरीके का उपयोग नहीं करेगा - कोई भी व्यक्ति ऐसे परिवर्तन को बढ़ावा, मनाने या साजिश करने का काम नहीं करेगा - अग्रिम जमानत का उद्देश्य व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार और जांच एजेंसी के आरोपी से पूछताछ के अधिकार के मध्य संतुलन बनाना है, ताकि अब तक एकत्रित सामग्री के बारे में जानकारी मिल सके और अधिक जानकारी प्राप्त की जा सके जो संबंधित जानकारी की रिकवरी की दिशा में ले जा सके। (पैराग्राफ - 12)

वादी को सह-अभियुक्त द्वारा नौकरी का वादा किया गया - उसे एक मदरसा और मस्जिद में ले जाया गया - उस पर अपने धर्म को बदलने के लिए दबाव डाला गया - वह भागने में सफल रहा - एफआईआर में लगाए गए आरोप - आवेदक पर लोगों को धर्म बदलने के लिए मजबूर करने का आरोप। (पैराग्राफ - 8,12)

आयोजित:- आवेदक के विरुद्ध प्रथम दृष्टया अपराध सिद्ध हुआ। अन्य सह-अभियुक्त पहले से ही नियमित जमानत प्राप्त कर चुके हैं। अग्रिम जमानत देने से पूछताछ में रुकावट आएगी और उपयोगी जानकारी और सामग्री तथ्यों का खुलासा नहीं हो पाएगा। आवेदक के पक्ष में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के तहत विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग करने का कोई वाद नहीं प्राप्त होता है। (पैराग्राफ - 12,13)

अग्रिम जमानत आवेदन निरस्त। (E-7)

<u>उद्धृत वाद सूची:-</u>

1. पी. चिदंबरम बनाम डायरेक्टरेट ऑफ एनफोर्समेंट, (2019) 9 SCC 24
2. साधना चौधरी बनाम राजस्थान राज्य और अन्य, 2022 (237) AIC 205 (SC)
3. सुषिला अग्रवाल एवं अन्य बनाम स्टेट (NCT ऑफ दिल्ली) & अन्य, (2020) 5 SCC पेज 1 (106)

<u>माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान</u>

1. आवेदक के विद्वान वकील श्री तव्वाब अहमद खान, श्री केपी पाठक अपर शासकीय अधिवक्ता को राज्य के लिए सुना और रिकार्ड का अवलोकन किया।

2. वर्तमान आवेदन 2022 के केस क्राइम नंबर 408 में धारा 365, 342, 420 भा.द.स और उत्तर प्रदेश गैरकानूनी धर्म संपरिवर्तन प्रतिषेध अधिनियम 2021, थाना -कोतवाली, जिला- फतेहपुर की धारा 3, 5 (1) के तहत अग्रिम जमानत के लिए दायर किया गया है, इस प्रार्थना के साथ कि गिरफ्तारी की स्थिति में, आवेदक को जमानत पर रिहा किया जा सकता है।

3. प्रथम सूचना रिपोर्ट के तथ्यों के अनुसार, शिकायतकर्ता ने आरोप लगाया है कि उसे सह-आरोपी अरमान अली द्वारा रोजगार का वादा किया गया था, जिसके बाद उसे एक मदरसा और एक मस्जिद में ले जाया गया और उस पर अपना धर्म परिवर्तन करने के लिए दबाव डाला गया, लेकिन वह किसी तरह भागने में सफल रहा।

4. आवेदक के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि आवेदक निर्दोष है और उसे आशंका है कि उसे उपर्युक्त मामले में गिरफ्तार किया जा सकता है, जबकि उसके खिलाफ कोई विश्वसनीय सबूत नहीं है। वह आगे प्रस्तुत करता है कि आवेदक को वर्तमान मामले में गलत मकसद के कारण फंसाया गया है। आवेदक के पास मेसर्स ग्लेज ट्रेडिंग इंडिया प्राइवेट लिमिटेड की फ्रैंचाइजी है और कंपनी के एक एजेंट यानी अरमान अली को एजेंटों की संख्या बढ़ाने का काम सौंपा गया था, जिसके लिए अरमान अली ने बताया कि उन्होंने किसी इरशाद और एक अन्य एजेंट को भोजन और आवास के लिए 10,000 रुपये की राशि जमा की है तथापि, चूंकि वे कभी भी उक्त कंपनी के एजेंट के रूप में कार्य करना जारी नहीं रखना चाहते थे और धन वापसी की मांग की थी, जब धनराशि वापस नहीं की गई तो अन्य अभियुक्त व्यक्तियों सहित आवेदक के विरुद्ध एक झूठा और तुच्छ मामला बनाया गया है। उन्होंने आगे कहा कि आवेदक का दो मामलों का आपराधिक इतिहास है, जिसे जमानत आवेदन के समर्थन में हलफनामे के पैरा 19 में संतोषजनक ढंग से समझाया गया है। आवेदक जांच और विचारण के दौरान सहयोग करने का वचन देता है और जब भी जांच एजेंसी या न्यायालय द्वारा आवश्यक होगा, वह उपस्थित होगा। यह कहा गया है कि यदि आवेदक को अग्रिम जमानत दी जाती है, तो वह जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं करेगा और जांच के दौरान सहयोग करेगा और जमानत की सभी शर्तों का पालन करेगा।

5. इसके विपरीत, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने आवेदक को अग्रिम जमानत देने की प्रार्थना का विरोध करते हुए कहा कि आवेदक का नाम प्राथमिकी में है। उन्होंने आगे कहा कि द.प्र.स की धारा 41ए के तहत वर्तमान मामले के जांच अधिकारी द्वारा 21.09.2022 को नोटिस भेजा गया था, लेकिन आवेदक जांच अधिकारी के सामने पेश होने में विफल रहा और इस तरह उसने जांच में सहयोग नहीं किया। वह आगे प्रस्तुत करता है कि मामला द.प्र.स की धारा 438 की श्रेणी में नहीं आता है। इसलिए प्रार्थना के अनुसार राहत नहीं दी जा सकती।

6. पक्षकारों के लिए विद्वान वकील द्वारा की गई प्रस्तुतियों पर विचार करते हुए और रिकॉर्ड का अवलोकन करते हुए, इस न्यायालय ने पाया कि प्राथमिकी में लगाए गए आरोपों से, आवेदक के खिलाफ प्रथम दृष्टया अपराध बनता है। आरोपों की प्रकृति और जांच के चरण को ध्यान

में रखते हुए, जांच एजेंसी को जांच की प्रक्रिया में पर्याप्त स्वतंत्रता दी जानी चाहिए।

7. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 का उद्देश्य यह है कि किसी व्यक्ति को शिकायतकर्ता या किसी अन्य व्यक्ति के व्यक्तिगत प्रतिशोध या द्वेष को संतुष्ट करने के लिए अनावश्यक रूप से परेशान या अपमानित नहीं किया जाना चाहिए जो सीधे या पर्दे के पीछे से चीजों का संचालन कर रहा है। यह अच्छी तरह से तय है कि इस अदालत को विधायिका द्वारा प्रदत्त विवेकाधीन शक्ति को स्ट्रेटजैकेट फॉर्मूला में नहीं रखा जा सकता है, लेकिन अग्रिम जमानत देने या इनकार करने की ऐसी विवेकाधीन शक्ति का उपयोग उपयुक्त मामलों में सावधानी से किया जाना चाहिए विशेष मामले के तथ्यों का मूल्यांकन करने बाद और अन्य प्रासंगिक कारकों (आरोप की प्रकृति और गंभीरता, अभियुक्त की भूमिका, अभियुक्त का आचरण, आपराधिक पूर्ववृत्त, आवेदक के न्याय से भागने की संभावना, गवाहों के साथ छेड़छाड़ करने की आशंका या शिकायतकर्ता को धमकी देने, जांच, विचारण या समाज आदि में अग्रिम जमानत प्रदान करने के प्रभाव आदि) मे परस्पर विरोधी हितों, अर्थात् व्यक्तिगत स्वतंत्रता की पवित्रता और समाज के हित के बीच संतुलन बनाए रखने के साथ सावधानीपूर्वक सटीकता के साथ।

8. अग्रिम जमानत देने से हिरासत में पूछताछ में बाधा आ सकती है और उपयोगी जानकारी और भौतिक तथ्यों और सूचनाओं का खुलासा नहीं होगा। **पी. चिदंबरम बनाम प्रवर्तन निदेशालय के मामले में, (2019) 9 एससीसी 24 में रिपोर्ट किया गया**, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार आयोजित किया: -

"74. **आमतौर पर, गिरफ्तारी कई उद्देश्यों को सुरक्षित करने के उद्देश्य से जांच की प्रक्रिया का एक हिस्सा है। ऐसी परिस्थितियां हो सकती हैं जिनमें अभियुक्त भौतिक तथ्यों और प्रासंगिक जानकारी की खोज के लिए जानकारी प्रदान कर सकता है। अग्रिम जमानत मिलने से जांच में बाधा आ सकती है। गिरफ्तारी से पहले जमानत का मकसद व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार और जांच एजेंसी के अधिकार के बीच संतुलन बनाना है, ताकि आरोपी से अब तक एकत्र की गई सामग्री के बारे में पूछताछ की जा सके और अधिक जानकारी एकत्र की जा सके, जिससे प्रासंगिक जानकारी की बरामदगी हो सकती है.** सीबीआई द्वारा प्रतिनिधितवित राज्य बनाम अनिल शर्मा (1997) 7 एससीसी 187 द्वारा, सुप्रीम कोर्ट ने निम्नानुसार आयोजित किया: -

"6. हम सीबीआई की इस दलील में दम पाते हैं कि हिरासत में पूछताछ एक संदिग्ध से पूछताछ करने की तुलना में गुणात्मक रूप से अधिक उन्मूलन-उन्मुख है, जो संहिता की धारा 438 के तहत अनुकूल आदेश के साथ अच्छी तरह से जुड़ा हुआ है। इस तरह के मामले में एक संदिग्ध व्यक्ति से प्रभावी पूछताछ से कई उपयोगी सूचनाओं और सामग्रियों को अलग करने में जबरदस्त फायदा होता है जिन्हें छुपाया जा सकता था। इस तरह की पूछताछ में सफलता तब मिलेगी जब संदिग्ध व्यक्ति जानता

है कि वह पूछताछ के दौरान गिरफ्तारी पूर्व जमानत आदेश से अच्छी तरह से सुरक्षित और अछूता है। बहुत बार ऐसी स्थिति में पूछताछ केवल एक अनुष्ठान भर हो जाएगी। यह तर्क कि हिरासत में पूछताछ व्यक्ति के थर्ड-डिग्री तरीकों के अधीन होने के खतरे से भरा है, को स्वीकार करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इस तरह के तर्क को सभी आपराधिक मामलों में सभी अभियुक्तों द्वारा आगे बढ़ाया जा सकता है। अदालत को यह मानना होगा कि जिम्मेदार पुलिस अधिकारी खुद को जिम्मेदार तरीके से संचालित करेंगे और जिन लोगों को अपराधों को सुलझाने का काम सौंपा गया है, वे खुद को अपराधियों के जैसा आचरण नहीं करेंगे।

81. **जांच के चरण में अग्रिम जमानत प्रदान करने से जांच एजेंसी को अभियुक्त से पूछताछ करने और उपयोगी जानकारी एकत्र करने और उन सामग्रियों को एकत्र करने में निराशा हो सकती है जिन्हें छुपाया जा सकता था। इस तरह की पूछताछ में सफलता तब नहीं मिलेगी जब अभियुक्त को पता हो कि वह अदालत के आदेश से सुरक्षित है। ...."**

9. साधना चौधरी बनाम राजस्थान राज्य और अन्य,2022 (237) एआईसी 205 (एससी) में रिपोर्ट किया गया, के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के एक अन्य निर्णय में, , सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार माना था: -

"14. द.प्र.स की धारा 438 के तहत अग्रिम जमानत की प्रयोज्यता या अनुदान पर कानून को संक्षेप में निम्नानुसार प्रस्तुत किया जा सकता है:

14.1. श्री गुरबख्श सिंह सिब्बिया और अन्य बनाम पंजाब राज्य, के मामले में, इस न्यायालय की एक संविधान पीठ, मुख्य न्यायाधीश वाईवी चंद्रचूड़, अदालत के लिए बोलते हुए, अग्रिम जमानत देने के लिए विचारों पर विस्तार से चर्चा की।

14.2. सिद्धाराम सतलिंगप्पा म्हेत्रे बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य में; इस न्यायालय ने श्री गुरबख्श सिंह सिब्बिया में संविधान पीठ के फैसले पर भरोसा करते हुए रिपोर्ट के पैराग्राफ 112 में कहा कि अग्रिम जमानत के लिए आवेदन से निपटने के दौरान निम्नलिखित कारकों और मापदंडों पर विचार किया जाना चाहिए:

"(i) गिरफ्तारी से पहले आरोप की प्रकृति और गंभीरता और अभियुक्त की सटीक भूमिका को ठीक से समझा जाना चाहिए;

(ii) आवेदक के पूर्ववृत्त सहित यह तथ्य भी कि क्या अभियुक्त ने पहले किसी संज्ञेय अपराध के संबंध में किसी न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि पर कारावास की सजा काटी है;

(iii) आवेदक के न्याय से भागने की संभावना;

(iv) अभियुक्त के समान या अन्य अपराधों को दोहराने की संभावना;

(v) जहां आरोप केवल आवेदक को गिरफ्तार करके उसे घायल करने या अपमानित करने के उद्देश्य से लगाए गए हैं;

(vi) अग्रिम जमानत प्रदान करने का प्रभाव, विशेषकर ऐसे मामलों में जिनमें बड़ी संख्या में लोग प्रभावित होते हैं;

(vii) न्यायालयों को अभियुक्त के विरुद्ध उपलब्ध संपूर्ण तथ्य का बहुत सावधानीपूर्वक मूल्यांकन करना चाहिए। अदालत को मामले में अभियुक्तों की सटीक भूमिका को भी स्पष्ट रूप से समझना चाहिए। जिन मामलों में अभियुक्त को दंड संहिता, 1860 की धारा 34 और 149 की मदद से फंसाया जाता है, अदालत को और भी अधिक सावधानी और एहतियात के साथ विचार करना चाहिए क्योंकि मामलों में अति-निहितार्थ सामान्य ज्ञान और चिंता का विषय है;

(viii) अग्रिम जमानत मंजूर करने के अनुरोध पर विचार करते समय दो कारकों के बीच संतुलन बनाया जाना चाहिए, जैसे स्वतंत्र, निष्पक्ष और पूर्ण जांच-पड़ताल पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं डाला जाना चाहिए और अभियुक्त के उत्पीड़न, अपमान और अनुचित हिरासत का निवारण होना चाहिए;

(ix) न्यायालय द्वारा गवाहों के साथ छेड़छाड़ किए जाने की युक्तियुक्त आशंका अथवा शिकायतकर्ता को धमकी की आशंका पर विचार किया जाएगा;

(x) अभियोजन में उपयोगशून्यतापूर्वक पर हमेशा विचार किया जाना चाहिए और जमानत प्रदान करने के मामले में केवल वास्तविकता के तत्व पर विचार किया जाना चाहिए और अभियोजन की वास्तविकता के बारे में कुछ संदेह होने की स्थिति में, घटनाओं के सामान्य क्रम में, अभियुक्त जमानत के आदेश का हकदार है।

14.3. सुशीला अग्रवाल और अन्य बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) और अन्य के मामले में हाल ही में संविधान पीठ के एक और फैसले में, रिपोर्ट के पैराग्राफ 85 में न्यायमूर्ति रवींद्र भट्ट ने धारा 438 के तहत आवेदनों से निपटने में मार्गदर्शक सिद्धांत निर्धारित किए। न्यायमूर्ति एमआर शाह ने एक अलग राय लिखी थी। जस्टिस अरुण मिश्रा, जस्टिस इंदिरा बनर्जी और जस्टिस विनीत सरन दोनों की राय से सहमत थे। पैराग्राफ 92, 92.1 से 92.9 में बताए गए समापन मार्गदर्शक कारकों को यहां पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"92. यह न्यायालय, दो निर्णयों में उपरोक्त चर्चा के आलोक में, और संदर्भ के उत्तरों के आलोक में, एतद्द्वारा स्पष्ट करता है कि द.प्र.स की धारा 438 के तहत आवेदनों से निपटने वाली अदालतों द्वारा निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

92.1. श्री गुरबख्श सिंह सिब्बिया और अन्य बनाम पंजाब राज्य के मामले में दिए गए निर्णय के अनुरूप, जब कोई व्यक्ति गिरफ्तारी की आशंका की शिकायत और आदेश के लिए संपर्क करता है, तो आवेदन ठोस तथ्यों (और अस्पष्ट या सामान्य आरोपों पर नहीं) पर आधारित होना चाहिए जो एक या अन्य विशिष्ट अपराध से संबंधित हो।

अग्रिम जमानत की मांग करने वाले आवेदन में अपराध से संबंधित आवश्यक तथ्य होने चाहिए, और आवेदक को गिरफ्तारी की आशंका क्यों है, साथ ही कहानी का उसका पक्ष भी होना चाहिए। ये अदालत के लिए आवश्यक हैं कि खतरा, इसकी ग्रेविटी या गंभीरता और लगाई जाने वाली किसी भी अवस्था की उपयुक्तता का मूल्यांकन करने के लिए उसके आवेदन पर विचार करना चाहिए। यह आवश्यक नहीं है कि प्राथमिकी दर्ज होने के बाद ही आवेदन किया जाना चाहिए; इसे पहले भी पेश किया जा सकता है, जब तक कि तथ्य स्पष्ट हों और गिरफ्तारी की आशंका के लिए उचित आधार हो।

92.2. धारा 438 के तहत आवेदन के साथ संपर्क की जाने वाली अदालत के लिए यह सलाह दी जा सकती है कि वह सरकारी वकील को नोटिस जारी करे और तथ्यों को प्राप्त करे, यहां तक कि सीमित अंतरिम अग्रिम जमानत देते हुए भी।

92.3. द.प्र.स की धारा 438 में ऐसा कुछ भी नहीं है जो अदालतों को समय के संदर्भ में राहत को सीमित करने के लिए शर्तों को लागू करने के लिए मजबूर या बाध्य करता है, या एफआईआर दर्ज करने, या पुलिस द्वारा किसी गवाह के बयान दर्ज करने पर, जांच या पूछताछ आदि के दौरान एक आवेदन (अग्रिम जमानत देने के लिए) पर विचार करते समय अदालत को अपराध की प्रकृति, व्यक्ति की भूमिका, जांच के दौरान उसके प्रभावित करने की संभावना, या सबूतों के साथ छेड़छाड़ (गवाहों को डराने सहित), न्याय से भागने की संभावना (जैसे देश छोड़ना) आदि पर विचार करना होगा।

अदालतों को उचित ठहराया जाएगा - और द.प्र.स की धारा 437 (3) [धारा 438 (2) के आधार पर] में वर्णित शर्तों को लागू करना चाहिए। अन्य प्रतिबंधात्मक शर्तों को लागू करने की आवश्यकता को मामला-दर-मामला आधार पर और राज्य या जांच एजेंसी द्वारा उत्पादित सामग्रियों के आधार पर आंका जाना चाहिए। इस तरह की विशेष या अन्य प्रतिबंधात्मक शर्तें लगाई जा सकती हैं यदि मामला या मामले की जरूरत है, लेकिन सभी मामलों में नियमित तरीके से ऐसा नहीं लगाया जाना चाहिए। इसी तरह, अग्रिम जमानत देने को सीमित करने वाली शर्तों को दिया जा सकता है, यदि वे किसी भी मामले या मामलों के तथ्यों में आवश्यक हैं; हालाँकि, ऐसी सीमित शर्तों को हमेशा लागू नहीं किया जा सकता है।

92.4. न्यायालयों को आम तौर पर अपराधों की प्रकृति और गंभीरता, आवेदक की जिम्मेदार भूमिका और मामले के तथ्यों जैसे विचारों द्वारा मार्गदर्शित होना चाहिए, जब अग्रिम जमानत देने या इसे अस्वीकार करने पर विचार किया जा रहा हो। अनुदान देना है या नहीं, यह विवेक का विषय है; समान रूप से क्या और यदि हां, तो

किस तरह की विशेष शर्तें लगाई जानी हैं (या नहीं लगाई जानी हैं) मामले के तथ्यों पर निर्भर हैं, और अदालत के विवेक के अधीन हैं।

92.5. अग्रिम जमानत, अभियुक्त के आचरण और व्यवहार के आधार पर, मुकदमे के अंत तक आरोप पत्र दायर करने के बाद जारी रह सकती है।

92.6. अग्रिम जमानत का आदेश इस अर्थ में "व्यापक" नहीं होना चाहिए कि यह अभियुक्त को आगे अपराध करने और गिरफ्तारी से अनिश्चितकालीन सुरक्षा की राहत का दावा करने में सक्षम बना दे। यह उस अपराध या घटना तक सीमित होना चाहिए, जिसके लिए किसी विशिष्ट घटना के संबंध में गिरफ्तारी की आशंका मांगी गई है। यह भविष्य की घटना के संबंध में काम नहीं कर सकता है जिसमें अपराध शामिल है।

92.7. अग्रिम जमानत का एक आदेश किसी भी तरह से पुलिस या जांच एजेंसी के अधिकारों या कर्तव्यों को सीमित या प्रतिबंधित नहीं करता है जो उस व्यक्ति के खिलाफ आरोपों की जांच करना जो गिरफ्तारी पूर्व जमानत चाहता है और उसे दिया जाता है।

92.8. खोजी प्राधिकरण की आवश्यकताओं को सुविधाजनक बनाने के लिए "सीमित हिरासत" या "डीम्ड हिरासत" के बारे में सिब्बिया में टिप्पणियां, एक लेख की वसूली की स्थिति में या एक तथ्य की खोज मे , धारा 27 के प्रावधानों को पूरा करने के उद्देश्य से पर्याप्त होंगी, जो इस तरह की घटना के दौरान दिए गए बयान से संबंधित है (यानी हिरासत में लिया गया)। ऐसी स्थिति में, आरोपी को अलग से आत्मसमर्पण करने और नियमित जमानत लेने के लिए कहने का कोई सवाल (या आवश्यकता) नहीं है। सिब्बिया (सुप्रा) ने निष्कर्षित किया था कि "यदि और जब अवसर आता है, तो अभियोजन पक्ष के लिए **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम देवमान उपाध्याय** में इस न्यायालय द्वारा बताए गए सिद्धांत को लागू करके जमानत पर रिहा किए गए व्यक्ति द्वारा प्रदान की गई जानकारी के अनुसरण में किए गए तथ्यों की खोज के संबंध में साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के लाभ का दावा करना संभव हो सकता है।

92.9. यह पुलिस या जांच एजेंसी के लिए संबंधित अदालत है, जो अग्रिम जमानत देता है, धारा 439 (2) के तहत एक निर्देश के लिए, किसी भी अवधि के उल्लंघन की स्थिति में, जैसे कि फरार, जांच के दौरान असहयोग, चोरी, धमकी या जांच या परीक्षण के परिणाम को प्रभावित करने के उद्देश्य से गवाहों को प्रलोभन, आदि।

10. **सुशीला अग्रवाल और अन्य बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली) और अन्य (सुप्रा)** के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार देखा है: -

> "इस स्तर पर, बाद के कुछ मामलों में की गई टिप्पणियों पर स्पष्ट करना आवश्यक होगा कि क्या धारा 438 अनुच्छेद 21 का एक आवश्यक तत्व है।

कुछ निर्णयों, विशेष रूप से राम कृष्ण बलोठिया, (1995) 3 एससीसी 221 और जय प्रकाश सिंह, (2012) 4 एससीसी 379 ने माना कि अग्रिम जमानत का प्रावधान अनुच्छेद 21 का एक अनिवार्य घटक नहीं है, विशेष रूप से अग्रिम जमानत देते समय अदालतों के विवेक पर सीमाएं लगाने के संदर्भ में, या तो समय के बिंदु में राहत को सीमित करना, या अपराध की प्रकृति, या किसी घटना के होने के संबंध में कुछ अन्य प्रतिबंध मे। इस तरह के अवलोकन सिब्बिया मामले में संविधान पीठ द्वारा घोषित शक्ति की व्यापक शर्तों के विपरीत हैं। बड़ी बेंच ने विशेष रूप से माना था कि "बाधाओं और शर्तों का अत्यधिक उदार संचार जो धारा 438 में नहीं पाया जाना है, इसके प्रावधानों को संवैधानिक रूप से कमजोर बना सकता है क्योंकि व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार को अनुचित प्रतिबंधों के अनुपालन पर निर्भर नहीं किया जा सकता है। (पैरा 54)

"धारा 438 द.प्र.स के अधिनियमन का कारण एक स्वतंत्र और लोकतांत्रिक देश में व्यक्तिगत स्वतंत्रता के महत्वपूर्ण आधार की संसदीय स्वीकृति थी। संसद व्यक्तिगत स्वतंत्रता के प्रति सम्मान को बढ़ावा देना चाहती थी और आपराधिक न्यायशास्त्र के एक मौलिक सिद्धांत को प्रधानता प्रदान करना चाहती थी, जिसमें कहा गया था कि प्रत्येक व्यक्ति को तब तक निर्दोष माना जाता है जब तक कि वह दोषी नहीं पाया जाता है। जीवन और स्वतंत्रता प्रत्येक व्यक्ति के पोषित गुण हैं। स्वतंत्रता की ललक प्रत्येक मनुष्य के लिए स्वाभाविक है। धारा 438 प्रत्येक व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता से संबंधित प्रक्रियात्मक प्रावधान है, जो निर्दोषता की धारणा के लाभ का हकदार है। चूंकि जमानत से इनकार करना व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित करने के बराबर है, इसलिए अदालत को धारा 438 के दायरे पर अनावश्यक प्रतिबंध लगाने के खिलाफ झुकाव दिखाना चाहिए, खासकर जब विधायिका द्वारा नहीं लगाया गया हो। (पैरा 56)"

"अग्रिम जमानत के लिए आवेदन: गुरबख्श सिंह सिब्बिया, (1980) 2 एससीसी 565 में फैसले के अनुरूप, जब कोई व्यक्ति गिरफ्तारी की आशंका और आदेश के लिए शिकायत करता है, तो आवेदन ठोस तथ्यों (और अस्पष्ट या सामान्य आरोपों पर नहीं) पर आधारित होना चाहिए जो एक या अन्य विशिष्ट अपराध से संबंधित हो। अग्रिम जमानत की मांग करने वाले आवेदन में अपराध से संबंधित आवश्यक तथ्य होने चाहिए, और आवेदक को गिरफ्तारी की आशंका क्यों है, साथ ही कहानी का उसका पक्ष भी होना चाहिए। ये अदालत के लिए आवश्यक हैं कि खतरे या आशंका, इसकी ग्रैविटी या गंभीरता और किसी भी शर्त की उपयुक्तता का मूल्यांकन करने के लिए उसके आवेदन पर विचार करना चाहिए। यह आवश्यक नहीं है कि प्राथमिकी दर्ज होने के बाद ही आवेदन किया जाना चाहिए; इसे पहले भी पेश

किया जा सकता है, जब तक कि तथ्य स्पष्ट हों और गिरफ्तारी की आशंका के लिए उचित आधार हो। (पैरा 92.1 और 85.1)

11. अग्रिम जमानत देना है या नहीं, यह विवेक का विषय है; समान रूप से क्या और यदि हां, तो किस तरह की विशेष शर्तें लगाई जानी हैं (या नहीं लगाई जानी हैं) मामले के तथ्यों पर निर्भर हैं, और न्यायालय के विवेक के अधीन हैं। इसके अतिरिक्त, अग्रिम जमानत अभियुक्त के आचरण और व्यवहार पर निर्भर करेगी जो विचारण के अंत तक आरोप पत्र दायर करने के बाद भी जारी रहेगी और अग्रिम जमानत का आदेश किसी भी मामले में पुलिस या जांच एजेंसी के अधिकारों या कर्तव्यों को सीमित या प्रतिबंधित नहीं करता है, उस व्यक्ति के खिलाफ आरोपों की जांच करने के लिए जो अग्रिम जमानत चाहता है और उसे दिया जाता है।

12. अभिलेखों के अवलोकन से, ऐसा प्रतीत होता है कि आवेदक नामित अभियुक्त है और आवेदक के खिलाफ आरोप उत्तर प्रदेश विधि विरुद्ध धर्म संपरिवर्तन प्रतिषेध अधिनियम, 2021 से संबंधित है, जो एक गंभीर अपराध है जिसके लिए दस वर्ष तक की कैद और 50,000/- रुपये का जुर्माना हो सकता है। अधिनियम में कहा गया है कि "कोई भी व्यक्ति प्रत्यक्ष या अन्यथा, गलत बयानी, बल, अनुचित प्रभाव, जबरदस्ती, प्रलोभन या किसी भी धोखाधड़ी के माध्यम से किसी अन्य व्यक्ति को एक धर्म से दूसरे धर्म में परिवर्तित नहीं करेगा। कोई भी व्यक्ति ऐसे धर्मांतरण के लिए नहीं उकसाएगा, न ही इसके लिए राजी करेगा और न ही षडयंत्र रचेगा। प्राथमिकी में लगाए गए आरोपों से आवेदक लोगों को अपना धर्म बदलने के लिए मजबूर करने में शामिल है। प्रथम दृष्टया, आवेदक के खिलाफ अपराध बनता है। अन्य सह-अभियुक्तों, अर्थात् अलीम, मोहसिन, यासीन, यासीन मंसूरी @ गुलाम यासीन मंसूरी और अरमान अली को इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा पहले ही नियमित जमानत दे दी गई है।

13. उपरोक्त के आलोक में, इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, पक्षकारों के लिए विद्वान वकीलों की प्रस्तुतियाँ, अभियोजन के मामले के अनुसार आवेदक को सौंपी गई भूमिका, आरोप की गंभीरता और प्रकृति के साथ-साथ ऊपर वर्णित कारणों को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय का विचार है कि धारा 438 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत अपनी विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग करने का कोई मामला आवेदक के पक्ष में नहीं बनता है।

14. तदनुसार, द.प्र.स की धारा 438 के तहत इस आवेदन को कानून के तहत प्रदान किए गए उचित उपाय का लाभ उठाने की स्वतंत्रता के साथ **खारिज** कर दिया गया है।

15. यह स्पष्ट किया जाता है कि इस स्तर पर इस आदेश में की गई टिप्पणियां इस अग्रिम जमानत आवेदन के निर्धारण के उद्देश्य से सीमित हैं और किसी भी तरह से मामले की योग्यता पर अभिव्यक्ति के रूप में नहीं मानी जाएंगी। इस मामले का जांच अधिकारी रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री/सबूतों के

आधार पर कानून के अनुसार अपने स्वतंत्र निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए पूरी तरह से स्वतंत्र होगा।

(2023) 3 ILRA 814

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 06.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान

क्रिमिनल मिस्लेनियस एंटीसिपेटरी बेल अप्लीकेशन सं. 10958 वर्ष 2022

(धारा 438 दं.प्र.सं. के तहत)

सोहित कुमार एवं अन्य ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिपक्षी

आवेदक की ओर से अधिवक्ता : श्री गौरव कक्कड़

प्रतिपक्षी की ओर से अधिवक्ता: जी.ए., श्री मनोज कुमार त्रिपाठी, श्री विनोद कुमार त्रिपाठी

अग्रिम जमानत आवेदन संख्या 10958 / 2022

(A) अपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 438 - अग्रिम जमानत - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 323, 325, 354, 452, 504 & 506, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निरोधक) अधिनियम, 1989 - धारा 3(2)(V)a, 3(1)r, 3(1)s, 18, 18A - जिन वाद में SC/ST एक्ट के तहत अपराध का आरोप लगाया गया है, वहां अग्रिम जमानत तभी दी जा सकती है जब न्यायालय को यह संतोष हो कि लगाए गए आरोपों से SC/ST एक्ट के तहत वाद नहीं बनता। जिनके विरुद्ध वारंट जारी किया गया है और वो फरार हैं या खुद को छिपा रहे हैं ताकि वारंट की तामील से बच सकें, उन्हें अग्रिम जमानत का लाभ नहीं प्राप्त होगा। (पैरा - 12, 17)

दो समूहों के बीच अचानक झगड़ा - जाति के संकेत देने वाले शब्द जानबूझकर इस्तेमाल किए गए - आवेदक पूछताछ और जांच के लिए उपलब्ध नहीं हैं - आवेदक विचरण का सामना करने से बच रहे हैं - उनके विरुद्ध गैर-जमानती वारंट जारी किए गए। (पैरा - 7, 17)

आयोजित: - आवेदकों के विरुद्ध SC/ST एक्ट के तहत अपराध सिद्ध हुआ। जिनके विरुद्ध वारंट जारी किया गया है और वो फरार हैं या खुद को छिपा रहे हैं, उन्हें अग्रिम जमानत का लाभ नहीं प्राप्त होगा। (पैरा - 17)

अग्रिम जमानत आवेदन निरस्त। (E-7)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. पृथ्वी राज चौहान बनाम भारत संघ & अन्य, (2020) 4 SCC 727
2. पी. चिदंबरम बनाम प्रवर्तन निदेशालय, (2019) 9 SCC 24
3. साधना चौधरी बनाम राज्य राजस्थान & अन्य, 2022 (237) AIC 205 (SC)
4. प्रेम शंकर प्रसाद बनाम राज्य बिहार & अन्य, AIR (2021) SC 5125

<u>माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान</u>

1. आवेदकों के अधिवक्ता श्री गौरव कक्कड, प्रतिपक्षी संख्या-2 के अधिवक्ता श्री मनोज कुमार

त्रिपाठी, और राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता श्री अमित सिंह चौहान को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

2. वर्तमान आवेदन धारा 452, 354, 323, 325, 504, 506 भ०द०वि० और एस.सी./एस.टी. अधिनियम की धारा 3(2)(v)ए, 3(1)आर और 3(1)एस के तहत केस अपराध संख्या- 840 वर्ष 2021, थाना-कोतवाली शहर, जिला-बिजनौर से उद्भूत सत्र विचारण संख्या-145 वर्ष 2022 में अग्रिम जमानत के लिए दायर किया गया है, आवेदकों को जमानत पर रिहा किया जा सकता है।

3. धारा 438 द०प्र०स० में निहित समवर्ती क्षेत्राधिकार के माध्यम से उपरोक्त जमानत आवेदन के अधिकार क्षेत्र की स्वीकार्यता के लिए एक प्रारंभिक आपत्ति प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता द्वारा उठाई गई है।

4. प्रारंभिक आपत्ति का जवाब देते हुए, आवेदक के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि एस.सी./एस.टी. अधिनियम के तहत मामलों में अग्रिम जमानत देने के खिलाफ, यदि कोई प्रथम दृष्टया मामला नहीं बनता है या जहां न्यायिक जांच पर शिकायत प्रथम दृष्टया दुर्भावनापूर्ण पाई जाती है, कोई पूर्ण रोक नहीं हो सकती है। (2020) 4 एस.सी.सी. 727 में रिपोर्ट किए गए पृथ्वी राज चौहान बनाम भारत संघ और अन्य के मामले में पारित सर्वोच्च न्यायालय के तय कानून के अनुसार, यदि शिकायत एस.सी./एस.टी. अधिनियम, 1989 के प्रावधानों की प्रयोज्यता के लिए प्रथम दृष्टया मामला नहीं बनाती है, तो धारा 18 और 18ए(i) द्वारा बनाई गई रोक लागू नहीं होगी। एकमात्र चेतावनी यह है कि शक्ति का संयम से उपयोग किया जाना चाहिए और इसका उपयोग इस प्रकार नहीं किया जाना चाहिए कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के तहत क्षेत्राधिकार को उसमें परिवर्तित किया जा सके।

5. इस प्रकार, मामले के गुण-दोष में प्रवेश करते समय यह देखने के लिए कि क्या एस.सी./एस.टी. अधिनियम की धारा 18 और 18 ए (i) के तहत रोक वर्तमान मामले पर लागू होती है, आवेदक के अधिवक्ता ने निम्नलिखित तथ्य रखे हैं: -

i) श्रीमती सुनीता द्वारा 08.12.2021 को दोपहर लगभग 13:50 बजे वर्तमान आवेदकों और एक अनिल कुमार के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज कराई गई है, जिसमें आरोप लगाया गया है कि पीड़िता के पति की किराने की दुकान है और सामान मांगते समय, अनिल कुमार, नामजद आरोपी ने दुकान में प्रवेश किया और जब पीड़िता ने उसे दुकान में प्रवेश करने से रोक दिया, उसे दुकान के बाहर खड़े होने के लिए कहा, उसे दुकान में बिल्कुल अकेला पाया, बुरे इरादे से पीड़िता को पकड़ लिया और उसकी शीलता को अपमानित करने की कोशिश की। उपरोक्त आरोपी व्यक्ति ने "चमार-छट्टा" जैसे जातिगत सांकेतिक शब्दों का इस्तेमाल किया। पीड़िता द्वारा शोर गुल मचाया गया, जिस पर उसका बेटा, मनीष और बहनोई, दिनेश दुकान पर पहुंचे और उसके बाद, उपरोक्त आरोपी, अनिल कुमार ने अन्य सह-आरोपियों को बुलाया, जो वर्तमान मामले में आवेदक हैं और वे सभी सामान्य इरादे से हाथों में रॉड, डंडा और तेज धार वाले हथियार लेकर पीड़िता के घर में घुस गए और पीड़िता और उसके परिवार के सदस्यों पर हमला किया। आरोपी अनिल कुमार के पास देसी पिस्तौल थी जबकि सोहित (आवेदक संख्या-1) के पास लोहे की रॉड थी। आरोपी आकाश और अक्षय (क्रमशः आवेदक संख्या-2 और 3) डंडा अपने साथ ले गए थे। उक्त आरोपियों ने पीड़िता, उसके बेटे और देवर

की हत्या करने के इरादे से उन पर हमला किया। पीड़िता और उसके परिजनों का शोर सुनकर उपरोक्त व्यक्तियों को बचाने के लिए लोग वहां जमा हो गए। इसके बाद आरोपी व्यक्तियों ने वहां से भागते समय जातिसूचक शब्दों का प्रयोग किया।

ii) प्राथमिकी लगभग एक महीने और तीन दिनों की देरी के बाद बिना किसी उचित स्पष्टीकरण के दर्ज की गई है, जो पूरी कहानी को गलत साबित करती है।

(iii) प्रथम सूचना रिपोर्ट में आवेदकों के विरुद्ध केवल सामान्य आरोप लगाए गए हैं।

iv) यह पक्षों के बीच अचानक लड़ाई थी और आवेदकों की ओर से घायलों को चोट पहुंचाने का कोई मकसद या इरादा नहीं था।

v) धारा 164 द०प्र०स० के तहत पीड़ित के बयान का अवलोकन करने से पता चलता है कि आवेदकों के खिलाफ धारा एस.सी./एस.टी. अधिनियम के तहत कोई अपराध नहीं बनता है।

vi) आवेदकों को ग्राम पार्टी बंदी के कारण वर्तमान मामले में झूठा फंसाया गया है जैसा कि जमानत आवेदन के समर्थन में हलफनामे के पैरा 24 में जोर दिया गया है।

धारा एस.सी./एस.टी. अधिनियम के तहत अपराध आवेदकों के खिलाफ लागू नहीं होता है क्योंकि एस.सी./एस.टी. अधिनियम की धारा 3(2)(वीए) के अनुसार, ऐसा अपराध केवल तभी बनेगा जब किसी व्यक्ति या संपत्ति के खिलाफ जातिसूचक शब्दों का इस्तेमाल किया जाता है, यह जानते हुए कि ऐसा व्यक्ति अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य है या ऐसी संपत्ति ऐसे सदस्य की है।

viii) वर्तमान मामले में, यह व्यक्तियों के दो समूहों के बीच अचानक लड़ाई थी, इसलिए, यदि ऐसे किसी भी शब्द का उपयोग किया गया है, तो यह संयोग से था, यह नहीं जानते हुए कि पीड़ित एस.सी./एस.टी. समुदाय से संबंधित है।

6. उपरोक्त प्रस्तुतियों की संचयी ताकत पर, आवेदक के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि आवेदक निर्दोष हैं और उन्हें आशंका है कि उन्हें उपर्युक्त मामले में गिरफ्तार किया जा सकता है, जबकि उनके खिलाफ कोई विश्वसनीय सबूत नहीं है। वह आगे प्रस्तुत करता है कि आवेदकों को पार्टी बंदी के कारण वर्तमान मामले में झूठा फंसाया गया है। धारा 325 भ०द०वि० के तहत अपराध जमानती है। आवेदक जांच और विचारण के दौरान सहयोग करने का वचन देते हैं और जांच एजेंसी अथवा न्यायालय द्वारा आवश्यकता पड़ने पर वे उपस्थित होंगे। यह कहा गया है कि यदि आवेदकों को अग्रिम जमानत दी जाती है, तो वे जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं करेंगे और जांच के दौरान सहयोग करेंगे और जमानत की सभी शर्तो का पालन करेंगे।

7. इसके विपरीत, अपर शासकीय अधिवक्ता के साथ-साथ प्रतिपक्षी संख्या- 2 के अधिवक्ता ने आवेदकों को अग्रिम जमानत देने की प्रार्थना का विरोध करते हुए कहा कि आवेदकों का नाम प्राथमिकी में है। आवेदकों के अधिवक्ता द्वारा दी गई दलीलों से संकेत मिलता है कि यह दो समूहों के व्यक्तियों के बीच अचानक लड़ाई थी, इस तथ्य से संकेत मिलता है कि जातिसूचक शब्दों का जानबूझकर इस्तेमाल किया गया है। प्राथमिकी के अवलोकन से ही यह स्पष्ट है कि धारा एस.सी./एस.टी. अधिनियम के तहत अपराध बनता है।

8. वे आगे प्रस्तुत करते हैं कि विवेचनाधिकारी द्वारा एकत्र की गई सामग्री से, अपराध के कमीशन की जटिलता दिखाने वाले विश्वसनीय

और मज़बूत के साथ-साथ दस्तावेजी साक्ष्य पाए गए हैं, इसलिए, आवेदकों के खिलाफ 24.12.2021 को धारा 452, 354, 323, 325, 504, 506 भ०द०वि० और धारा 3(2)(v)ए, एस.सी./एस.टी. अधिनियम के 3(1)आर और 3(1)एस में आरोप पत्र दाखिल किया गया। इसके बाद, उपरोक्त आरोप पत्र के आधार पर संबंधित अदालत द्वारा 04.03.2022 को संज्ञान लिया गया है। वे आगे प्रस्तुत करते हैं कि चूंकि एस.सी./एस.टी. अधिनियम की धाराओं सहित आवेदकों के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया है, इसलिए, वर्तमान अग्रिम जमानत याचिका सुनवाई योग्य नहीं है क्योंकि अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 18 के मद्देनजर, धारा 438 द०प्र०स० के प्रावधान अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम 1989 के तहत किए गए अपराध से संबंधित नहीं हैं।

9. जहां तक मामले के गुण-दोष का संबंध है, वर्तमान मामले में, दो व्यक्तियों, अर्थात् मनीष और दिनेश को चोट लगी है और उनकी 06.11.2021 को चिकित्सकीय जांच की गई है। मनीष और दिनेश की एक्सरे रिपोर्ट के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि उन्हें फ्रैक्चर हुआ है। आवेदक मुकदमे का सामना करने से बच रहे हैं, इसलिए उनके खिलाफ गैर-जमानती वारंट पहले ही जारी किए जा चुके हैं। वे आगे प्रस्तुत करते हैं कि मामला धारा 438 द०प्र०स० की श्रेणी में नहीं आता है। इसलिए प्रार्थना के अनुसार राहत नहीं दी जा सकती।

10. पक्षकारों के अधिवक्ताओं द्वारा की गई प्रस्तुतियों पर विचार करते हुए और रिकॉर्ड का अवलोकन करते हुए, इस न्यायालय ने पाया कि प्राथमिकी में लगाए गए आरोपों से, आवेदकों के खिलाफ प्रथम दृष्टया अपराध बनता है।

11. सुलभ संदर्भ के लिए, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 18 और 18-क तथा धारा 3 (1)(धा) के प्रावधानों को नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है:-

"18. संहिता की धारा 438 का इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध करने वाले व्यक्तियों को लागू न करना--इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध करने के आरोप में किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी अंतर्वलित किसी मामले के संबंध में संहिता की धारा 438 की कोई बात लागू नहीं होगी।

18-क. कोई पूछताछ या अनुमोदन अपेक्षित नहीं है--(1) इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए-

(क) किसी व्यक्ति के विरुद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट के रजिस्ट्रीकरण के लिए प्रारम्भिक जांच अपेक्षित नहीं होगी; नहीं तो

(ख) विवेचनाधिकारी को, यदि आवश्यक हो, किसी ऐसे व्यक्ति की, जिसके विरुद्ध इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध करने का अभियोग लगाया गया है, गिरफ्तारी के लिए अनुमोदन की आवश्यकता नहीं होगी और इस अधिनियम या संहिता के अधीन उपबंधित प्रक्रिया से भिन्न कोई प्रक्रिया लागू नहीं होगी।

(2) संहिता की धारा 438 के प्रावधान किसी भी न्यायालय के किसी निर्णय या आदेश या निर्देश के बावजूद इस अधिनियम के तहत किसी मामले पर लागू नहीं होंगे।

एस.सी./एस.टी. अधिनियम की धारा 3(1)(एस) - अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी भी सदस्य को जाति के नाम से सार्वजनिक दृष्टि

के भीतर किसी भी स्थान पर अपमानित करना है।

12. कानूनी स्थिति यह है कि एक अपराध में अग्रिम जमानत केवल तभी दी जा सकती है जब न्यायालय संतुष्ट हो कि लगाए गए आरोप प्रथम दृष्टया एस.सी./एस.टी. अधिनियम के तहत मामला नहीं बनाते हैं। अधिनियम की धारा 18क के लागू होने के बाद भी कानून की स्थिति जस की तस बनी हुई है। सर्वोच्च न्यायालय ने (2020) 4 एस.सी.सी. 727 में रिपोर्ट किए गए पृथ्वी राज चौहान बनाम भारत संघ और अन्य के मामले में निम्नानुसार देखा है: -

"11. धारा 438 द०प्र०स० के प्रावधानों की प्रयोज्यता के संबंध में, यह 1989 अधिनियम के तहत मामलों पर लागू नहीं होगा। हालांकि, यदि शिकायत 1989 अधिनियम के प्रावधानों की प्रयोज्यता के लिए प्रथम दृष्टया मामला नहीं बनाती है, तो धारा 18 और 18-ए (i) द्वारा बनाई गई रोक लागू नहीं होगी। हमने पुनर्विचार याचिकाओं पर फैसला करते हुए इस पहलू को स्पष्ट किया है।

13. प्राथमिकी के अवलोकन से ही, यह स्पष्ट है कि एस.सी./एस.टी. के तहत अपराध किया गया है। आवेदकों के खिलाफ मामला बनता है। इसलिए, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 18 (2) के मद्देनजर वर्तमान अग्रिम जमानत याचिका सुनवाई योग्य नहीं है, जिसमें यह उल्लेख किया गया है कि धारा 438 द०प्र०स० के प्रावधान अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम 1989 के तहत किए गए अपराध से संबंधित नहीं हैं।

14. जहां तक मामले के गुण-दोष का संबंध है, धारा 438 द०प्र०स० का उल्लेख करना उचित होगा, जिसे यहां नीचे पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

"438. गिरफ्तारी की आशंका वाले व्यक्ति को जमानत देने का निदेश।

(1) जब किसी व्यक्ति के पास यह विश्वास करने का कारण हो कि उसे गैर-जमानती अपराध करने के आरोप में गिरफ्तार किया जा सकता है, तो वह इस धारा के अधीन निदेश के लिए उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय को आवेदन कर सकेगा; और वह न्यायालय, यदि वह उचित समझे, निर्देश दे सकता है कि ऐसी गिरफ्तारी की स्थिति में, उसे जमानत पर रिहा कर दिया जाएगा।

(2) जब उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय उपधारा (1) के अधीन कोई निदेश देता है तब वह उस विशेष मामले के तथ्यों के आलोक में ऐसे निदेशों में ऐसी शर्तें सम्मिलित कर सकेगा, जो वह ठीक समझे, जिसके अंतर्गत निम्नलिखित भी हैं-

(i) एक शर्त है कि व्यक्ति जब भी आवश्यक हो, पुलिस अधिकारी द्वारा पूछताछ के लिए स्वयं को उपलब्ध कराएगा;

(ii) ऐसी शर्त कि वह व्यक्ति, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से, मामले के तथ्यों से परिचित किसी व्यक्ति को कोई प्रलोभन, धमकी या वचन नहीं देगा जिससे उसे न्यायालय या किसी पुलिस अधिकारी को ऐसे तथ्यों का खुलासा करने से रोका जा सके;

(iii) एक शर्त है कि व्यक्ति न्यायालय की पूर्व अनुमति के बिना भारत नहीं छोड़ेगा;

(iv) ऐसी अन्य शर्त जो धारा 437 की उपधारा (3) के अधीन अधिरोपित की जाए मानो जमानत उस धारा के अधीन दी गई हो।

(3) यदि ऐसे व्यक्ति को तत्पश्चात् ऐसे आरोप पर किसी थाना के भारसाधक अधिकारी द्वारा

बिना वारंट के गिरफ्तार किया जाता है और वह गिरफ्तारी के समय या जमानत देने के लिए ऐसे अधिकारी की अभिरक्षा में रहते हुए किसी समय तैयार किया जाता है तो उसे जमानत पर रिहा किया जाएगा; और यदि ऐसे अपराध का संज्ञान लेते हुए कोई मजिस्ट्रेट यह विनिश्चय करता है कि उस व्यक्ति के विरुद्ध सर्वप्रथम वारंट जारी किया जाना चाहिए तो वह उपधारा (1) के अधीन न्यायालय के निदेश के अनुरूप जमानती वारंट जारी करेगा।

15. अग्रिम जमानत देने से हिरासत में पूछताछ में बाधा आ सकती है और उपयोगी जानकारी और भौतिक तथ्यों और सूचनाओं का खुलासा नहीं होगा। पी. चिदंबरम बनाम प्रवर्तन निदेशालय के मामले में, (2019) 9 एस.सी.सी. 24 में रिपोर्ट किया गया, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया: -

"74. आमतौर पर, गिरफ्तारी कई उद्देश्यों को सुरक्षित करने के उद्देश्य से जांच की प्रक्रिया का एक हिस्सा है। ऐसी परिस्थितियां हो सकती हैं जिनमें अभियुक्त भौतिक तथ्यों और प्रासंगिक जानकारी की खोज के लिए जानकारी प्रदान कर सकता है। अग्रिम जमानत मिलने से जांच में बाधा आ सकती है। गिरफ्तारी से पहले जमानत का मकसद व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार और जांच एजेंसी के अधिकार के बीच संतुलन बनाना है, ताकि आरोपी से अब तक एकत्र की गई सामग्री के बारे में पूछताछ की जा सके और अधिक जानकारी एकत्र की जा सके, जिससे प्रासंगिक जानकारी की बरामदगी हो सकती है।

सी.बी.आई. बनाम अनिल शर्मा (1997) 7 एस.सी.सी. 187 द्वारा राज्य प्रतिनिधि में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया: -

"6. हम सी.बी.आई. की इस दलील में बल पाते हैं कि हिरासत में पूछताछ एक संदिग्ध से पूछताछ करने की तुलना में गुणात्मक रूप से अधिक उन्मूलन-उन्मुख है, जो संहिता की धारा 438 के तहत अनुकूल आदेश के साथ अच्छी तरह से जुड़ा हुआ है। इस तरह के मामले में एक संदिग्ध व्यक्ति से प्रभावी पूछताछ से कई उपयोगी सूचनाओं और सामग्रियों को अलग करने में जबरदस्त फायदा होता है जिन्हें छुपाया जा सकता था। इस तरह की पूछताछ में सफलता तब मिलेगी जब संदिग्ध व्यक्ति जानता है कि वह पूछताछ के दौरान गिरफ्तारी पूर्व जमानत आदेश से अच्छी तरह से सुरक्षित और अछूता है। बहुत बार ऐसी स्थिति में पूछताछ केवल एक 'फॉर्मलटी' तक कम हो जाएगी। यह तर्क कि हिरासत में पूछताछ व्यक्ति के थर्ड-डिग्री तरीकों के अधीन होने के खतरे से भरा है, को स्वीकार करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इस तरह के तर्क को सभी आपराधिक मामलों में सभी अभियुक्तों द्वारा आगे बढ़ाया जा सकता है। अदालत को यह मानना होगा कि जिम्मेदार पुलिस अधिकारी खुद को जिम्मेदार तरीके से संचालित करेंगे और जिन लोगों को अपराधों को सुलझाने का काम सौंपा गया है, वे खुद अपराधियों के रूप में आचरण नहीं करेंगे।

81. जांच के चरण में अग्रिम जमानत का अनुदान अभियुक्त से पूछताछ करने और उपयोगी जानकारी और उन सामग्रियों को एकत्र करने में जांच एजेंसी को निराश कर सकता है जिन्हें छुपाया जा सकता है। इस तरह की पूछताछ में सफलता तब नहीं मिलेगी जब अभियुक्त को पता

न हो कि वह अदालत के आदेश से वंचित है। ......"

16. साधना चौधरी बनाम राजस्थान राज्य और अन्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के एक अन्य फैसले में, 2022 (237) ए.आई.सी. 205 (एस.सी.) में रिपोर्ट किया गया, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार माना था: -

"14. धारा 438 द०प्र०स० के तहत अग्रिम जमानत की प्रयोज्यता या अनुदान पर कानून को निम्नानुसार संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है: 14.1. श्री गुरबख्श सिंह सिब्बिया और अन्य बनाम पंजाब राज्य मामले में इस न्यायालय की एक संविधान पीठ ने न्यायालय की ओर से बोलते हुए अग्रिम जमानत देने के विचारों पर विस्तार से चर्चा की।

14.2. सिद्धाराम सतलिंगप्पा म्हेत्रे बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य में इस न्यायालय ने श्री गुरबख्श सिंह सिब्बिया में संविधान पीठ के फैसले पर भरोसा करते हुए रिपोर्ट के पैराग्राफ 112 में अग्रिम जमानत के लिए आवेदन से निपटने के दौरान निम्नलिखित कारकों और मापदंडों पर विचार किया जाना चाहिए:

"(i) गिरफ्तारी से पहले आरोप की प्रकृति और गंभीरता और अभियुक्त की सटीक भूमिका को ठीक से समझा जाना चाहिए;

(ii) आवेदक के पूर्ववृत्त सहित यह तथ्य भी कि क्या अभियुक्त ने पहले किसी संज्ञेय अपराध के संबंध में किसी न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि पर कारावास की सजा काटी है;

(iii) आवेदक के न्याय से भागने की संभावना;

(iv) अभियुक्त के समान या अन्य अपराधों को दोहराने की संभावना;

(v) जहां आरोप केवल आवेदक को गिरफ्तार करके उसे घायल करने या अपमानित करने के उद्देश्य से लगाए गए हैं;

(vi) अग्रिम जमानत प्रदान करने का प्रभाव, विशेषकर ऐसे मामलों में जिनमें बड़ी संख्या में लोग प्रभावित होते हैं;

(vii) न्यायालयों को अभियुक्त के विरुद्ध उपलब्ध संपूर्ण सामग्री का बहुत सावधानीपूर्वक मूल्यांकन करना चाहिए। अदालत को मामले में अभियुक्तों की सटीक भूमिका को भी स्पष्ट रूप से समझना चाहिए। जिन मामलों में अभियुक्त को दंड संहिता, 1860 की धारा 34 और 149 की मदद से फंसाया जाता है, अदालत को और भी अधिक सावधानी और सतर्कता के साथ विचार करना चाहिए क्योंकि मामलों में अति प्रभाव सामान्य ज्ञान और चिंता का विषय है;

(viii) अग्रिम जमानत मंजूर करने के अनुरोध पर विचार करते समय दो कारकों के बीच संतुलन बनाया जाना चाहिए, नामत स्वतंत्र, निष्पक्ष और पूर्ण जांच-पड़ताल पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं डाला जाना चाहिए और अभियुक्त के उत्पीड़न, अपमान और अनुचित हिरासत का निवारण होना चाहिए;

(ix) न्यायालय द्वारा गवाहों के साथ छेड़छाड़ किए जाने की युक्तियुक्त आशंका अथवा शिकायतकर्ता को धमकी की आशंका पर विचार किया जाएगा;

(x) अभियोजन में तुच्छता पर हमेशा विचार किया जाना चाहिए और जमानत प्रदान करने के मामले में केवल वास्तविकता के तत्व पर विचार किया जाना चाहिए और अभियोजन की वास्तविकता के बारे में कुछ संदेह होने की स्थिति में, घटनाओं के सामान्य क्रम में, अभियुक्त जमानत के आदेश का हकदार है।

14.3. सुशीला अग्रवाल और अन्य बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) और अन्य 3 के मामले में हाल ही में संविधान पीठ के एक और फैसले में, रिपोर्ट के पैराग्राफ 85 में न्यायमूर्ति रवींद्र भट्ट ने धारा 438 के तहत आवेदनों से निपटने में मार्गदर्शक सिद्धांत निर्धारित किए। जस्टिस एम.आर शाह ने एक अलग राय लिखी थी। जस्टिस अरुण मिश्रा, जस्टिस इंदिरा बनर्जी और जस्टिस विनीत सरन दोनों की राय से सहमत थे। पैराग्राफ 92, 92.1 से 92.9 में बताए गए समापन मार्गदर्शक कारकों को यहां पुन: प्रस्तुत किया गया है:

"92. यह न्यायालय, दो निर्णयों में उपरोक्त चर्चा के आलोक में, और संदर्भ के उत्तरों के आलोक में, एतद्द्वारा स्पष्ट करता है कि धारा 438 द०प्र०स० के तहत आवेदनों से निपटने वाली अदालतों द्वारा निम्नलिखित को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

92.1. श्री गुरबख्श सिंह सिब्बिया और अन्य बनाम पंजाब राज्य में निर्णय के अनुरूप, जब कोई व्यक्ति गिरफ्तारी की आशंका और आदेश के लिए शिकायत करता है, तो आवेदन ठोस तथ्यों (और अस्पष्ट या सामान्य आरोपों पर नहीं) पर आधारित होना चाहिए जो एक या अन्य विशिष्ट अपराध से संबंधित हो। अग्रिम जमानत की मांग करने वाले आवेदन में आवेदक को गिरफ्तारी की आशंका क्यों है, साथ ही कहानी का उसका पक्ष, अपराध से संबंधित आवश्यक तथ्य होने चाहिए। ये अदालत के लिए आवश्यक है जिसे उसके आवेदन पर विचार करना चाहिए और खतरे या आशंका, इसकी गंभीरता और किसी भी शर्त की उपयुक्तता का मूल्यांकन करना चाहिए जिसे लगाया जा सकता है। यह आवश्यक नहीं है कि प्राथमिकी दर्ज होने के बाद ही आवेदन किया जाना चाहिए; इसे पहले भी पेश किया जा सकता है, जब तक कि तथ्य स्पष्ट न हों और गिरफ्तारी की आशंका के लिए उचित आधार हो।

92.2. अदालत के लिए यह उचित हो सकता है, जिसे धारा 438 के तहत एक आवेदन के साथ संपर्क किया जाता है, जो गिरफ्तारी की धमकी की गंभीरता पर निर्भर करता है कि वह लोक अभियोजक को नोटिस जारी करे और तथ्यों को प्राप्त करे, यहां तक कि सीमित अंतरिम अग्रिम जमानत देते हुए भी।

92.3. धारा 438 द०प्र०स० में ऐसा कुछ भी नहीं है जो अदालतों को समय के संदर्भ में राहत को सीमित करने वाली शर्तों को प्राथमिकी दर्ज करने पर, या पुलिस द्वारा किसी गवाह के बयान को दर्ज करने के लिए, जांच या पूछताछ आदि के दौरान लागू करने के लिए मजबूर या बाध्य करता है। एक आवेदन (अग्रिम जमानत देने के लिए) पर विचार करते समय अदालत को अपराध की प्रकृति, व्यक्ति की भूमिका, जांच के दौरान उसके प्रभावित करने की संभावना, या सबूतों के साथ छेड़छाड़ (गवाहों को डराने सहित), न्याय से भागने की संभावना (जैसे देश छोड़ना) आदि पर विचार करना होगा।

अदालतों को सही होंगी - और धारा 437 द०प्र०स० (3) [धारा 438 (2) के आधार पर] में वर्णित शर्तों को लागू करना चाहिए। अन्य प्रतिबंधात्मक शर्तों को लागू करने की आवश्यकता को मामला-दर-मामला, और राज्य या जांच एजेंसी द्वारा उत्पादित सामग्रियों के आधार पर आधार पर आंका जाना चाहिए। यदि मामला या मामले वारंट करते हैं, इस तरह की विशेष या अन्य प्रतिबंधात्मक शर्तें लगाई जा सकती हैं। लेकिन सभी मामलों में नियमित तरीके से नहीं लगाया जाना चाहिए। इसी तरह, अग्रिम जमानत देने को

सीमित करने वाली शर्तों को दिया जा सकता है, यदि वे किसी भी मामले या मामलों के तथ्यों में आवश्यक हैं; हालाँकि, ऐसी सीमित शर्तों को हमेशा लागू नहीं किया जा सकता है।

92.4. न्यायालयों को आम तौर पर अपराधों की प्रकृति और गंभीरता, आवेदक को जिम्मेदार भूमिका और मामले के तथ्यों जैसे विचारों द्वारा निर्देशित किया जाना चाहिए, जबकि अग्रिम जमानत देने या इसे अस्वीकार करने पर विचार करना चाहिए। अनुदान देना है या नहीं, यह विवेक का विषय है; क्या समान रूप से और यदि हां, तो किस तरह की विशेष शर्तें लगाई जानी हैं (या नहीं लगाई जानी हैं) मामले के तथ्यों पर निर्भर हैं, और अदालत के विवेक के अधीन हैं।

92.5. अग्रिम जमानत, अभियुक्त के आचरण और व्यवहार के आधार पर, मुकदमे के अंत तक आरोप पत्र दायर करने के बाद जारी रह सकती है।

92.6. अग्रिम जमानत का एक आदेश इस अर्थ में "व्यापक" नहीं होना चाहिए कि यह अभियुक्त को आगे अपराध करने और गिरफ्तारी से अनिश्चितकालीन सुरक्षा की राहत का दावा करने में सक्षम नहीं होना चाहिए। यह उस अपराध या घटना तक सीमित होना चाहिए, जिसके लिए किसी विशिष्ट घटना के संबंध में गिरफ्तारी की आशंका मांगी गई है। यह भविष्य की घटना के संबंध में काम नहीं कर सकता है जिसमें अपराध शामिल है।

92.7. अग्रिम जमानत का एक आदेश किसी भी तरह से पुलिस या जांच एजेंसी के अधिकारों या कर्तव्यों को सीमित या प्रतिबंधित नहीं करता है, जो उस व्यक्ति के खिलाफ आरोपों की जांच करने के लिए है जो अग्रिम जमानत चाहता है और उसे दिया जाता है।

92.8. जांच प्राधिकारी की आवश्यकताओं को सुविधाजनक बनाने के लिए "सीमित हिरासत" या "समझी गई हिरासत" के बारे में सिब्बिया में टिप्पणियां, धारा 27 के प्रावधानों को पूरा करने के उद्देश्य से पर्याप्त होंगी, एक वस्तु की बरामदगी की स्थिति में, या एक तथ्य की खोज, जो इस तरह की घटना (यानी समझा हिरासत) के दौरान किए गए बयान से संबंधित है। ऐसी स्थिति में, आरोपी को अलग से आत्मसमर्पण करने और नियमित जमानत लेने के लिए कहने का कोई सवाल (या आवश्यकता) नहीं है। सिब्बिया (उपरोक्त) ने कहा था कि "यदि और जब अवसर उत्पन्न होता है, तो अभियोजन पक्ष के लिए उत्तर प्रदेश राज्य बनाम देवमन उपाध्याय में इस न्यायालय द्वारा बताए गए सिद्धांत को लागू करके जमानत पर रिहा किए गए व्यक्ति द्वारा प्रदान की गई जानकारी के अनुसरण में किए गए तथ्यों की खोज के संबंध में साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के लाभ का दावा करना संभव हो सकता है।

92.9. यह पुलिस या जांच एजेंसी के लिए संबंधित अदालत में विकल्प खुला है कि, जो धारा 439 (2) के तहत एक निर्देश के लिए अग्रिम जमानत देता है, किसी भी अवधि के उल्लंघन की स्थिति में, जैसे कि फरार, जांच के दौरान असहयोग, चोरी, धमकी या जांच या परीक्षण के परिणाम को प्रभावित करने के उद्देश्य से गवाहों को प्रलोभन आदि में अदालत को संपर्क करें।

17. इन सामग्रियों और सूचनाओं से, यह स्पष्ट है कि वर्तमान आवेदक पूछताछ और जांच के लिए उपलब्ध नहीं थे और उनके खिलाफ गैर-जमानती वारंट जारी किए गए थे, इसलिए, एक व्यक्ति जिसके खिलाफ वारंट जारी किया गया है और वारंट के निष्पादन से बचने के लिए फरार

है या खुद को छुपा रहा है, वह अग्रिम जमानत की राहत का हकदार नहीं है। उपरोक्त को सर्वोच्च न्यायालय ने प्रेम शंकर प्रसाद बनाम बिहार राज्य और एक अन्य ए.आई.आर. (2021) एस.सी. 5125 के मामले में माना है। उक्त निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ संख्या 16 निम्नानुसार है: -

"16. हाल ही में, लवेश बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली) [(2012) 8 एस.सी.सी. 730] में, इस न्यायालय (जिसमें हम दोनों पक्षकार थे) ने धारा 438 के तहत राहत देने के दायरे पर विचार किया, जिसे संहिता की धारा 82 के संदर्भ में भगोड़ा या घोषित अपराधी घोषित किया गया था। पैरा 12 में, इस न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया: (एस.सी.सी पृष्ठ 733)

"12. इन सामग्रियों और सूचनाओं से, यह स्पष्ट है कि वर्तमान अपीलकर्ता पूछताछ और जांच के लिए उपलब्ध नहीं था और उसे 'भगोड़ा' घोषित किया गया था। आम तौर पर, जब आरोपी 'फरार' होता है और उसे 'अपराधी' घोषित किया जाता है, तो अग्रिम जमानत देने का कोई सवाल ही नहीं उठता। हम दोहराते हैं कि जब कोई व्यक्ति जिसके खिलाफ वारंट जारी किया गया था और वारंट के निष्पादन से बचने के लिए फरार या खुद को छुपा रहा है और संहिता की धारा 82 के संदर्भ में अपराधी के रूप में घोषित किया गया है, तो वह अग्रिम जमानत की राहत का हकदार नहीं है।

उपरोक्त निर्णय से यह स्पष्ट है कि यदि संहिता की धारा 82 के अनुसार किसी को भगोड़ा/घोषित अपराधी घोषित किया जाता है, तो वह अग्रिम जमानत की राहत का हकदार नहीं है।

इस प्रकार उच्च न्यायालय ने धारा 82-83 द०प्र०स० के तहत कार्यवाही की अनदेखी करते हुए प्रतिवादी संख्या-2 आरोपी को अग्रिम जमानत देने में त्रुटि की है।

18. उपरोक्त के आलोक में, इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, पक्षकारों के अधिवक्ताओं की प्रस्तुतियाँ, अभियोजन के मामले के अनुसार आवेदकों को सौंपी गई भूमिका, आरोप की गंभीरता और प्रकृति के साथ-साथ ऊपर वर्णित कारणों को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय का विचार है कि धारा 438 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत अपनी विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग करने का कोई मामला आवेदक के पक्ष में नहीं बनता है।

19. तदनुसार, धारा 438 द०प्र०स० के तहत इस आवेदन को कानून के तहत प्रदान किए गए उचित उपाय का लाभ उठाने की स्वतंत्रता के साथ खारिज किया जाता है।

20. यह स्पष्ट किया जाता है कि इस स्तर पर इस आदेश में की गई टिप्पणियां इस अग्रिम जमानत आवेदन के निर्धारण के उद्देश्य से सीमित हैं और किसी भी तरह से मामले के गुण-दोष पर अभिव्यक्ति के रूप में नहीं मानी जाएंगी। इस मामले का विवेचनाधिकारी रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री/सबूतों के आधार पर कानून के अनुसार अपने स्वतंत्र निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए पूरी तरह से स्वतंत्र होगा।

(2023) 3 ILRA 823

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 09.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट

क्रिमिनल मिस्लेनियस एंटीसिपेटरी बेल अप्लीकेशन सं. 55026 वर्ष 2021

सह
क्रिमिनल मिस्लेनियस एंटीसिपेटरी बेल अप्लीकेशन सं. 38452 वर्ष 2021, 42694 वर्ष 2021, 50905 वर्ष 2021, 38124 वर्ष 2021, 10907 वर्ष 2022, 45095 वर्ष 2021, 2135 वर्ष 2022, 55734 वर्ष 2021

मोनीश **...आवेदक**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य **...प्रतिपक्षी**

आवेदक की ओर से अधिवक्ता: श्री शिव प्रकाश तिवारी

प्रतिपक्षी की ओर से अधिवक्ता: जी.ए.

अपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या 55026 / 2021

(A) अपराधिक कानून - जुवेनाइल जस्टिस (केयर एंड प्रोटेक्शन ऑफ चिल्ड्रेन) एक्ट, 2015 - धारा 94 - उम्र का अनुमान और निर्धारण, जुवेनाइल जस्टिस (केयर एंड प्रोटेक्शन ऑफ चिल्ड्रेन) रूल्स, 2007 - नियम 12(3) - उम्र के निर्धारण में अपनाने वाली प्रक्रिया, जुवेनाइल जस्टिस (केयर एंड प्रोटेक्शन ऑफ चिल्ड्रेन) एक्ट, 2000 - धारा 49, जुवेनाइल जस्टिस (केयर एंड प्रोटेक्शन ऑफ चिल्ड्रेन) मॉडल रूल्स, 2016 - नियम 54 (18) (iv) - बच्चों के विरुद्ध अपराधों के मामलों में प्रक्रिया - लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 - धारा ¾, धारा 29, धारा 34 - बच्चे द्वारा अपराध करने और विशेष न्यायालय द्वारा उम्र के निर्धारण की प्रक्रिया - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 376, 506, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 - सेक्शन 3(2)(v), 3(2)(va), 3(1)(2) एससी/एसटी अधिनियम - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 161, 164 - जमानत के न्यायशास्त्र में मौलिक अधिकारों का समावेश संविधानिक कानून में एक स्थायी तत्व है। (पैरा -71)

आवेदक (वयस्क) ने पीड़िता (नाबालिग) के साथ अनुचित यौन कृत्य किए - अभियोजन का वाद एफआईआर में रखा गया - पीड़िता 15 साल की है, लेकिन उसकी उम्र 13 साल और 3 महीने है - उम्र से संबंधित साक्ष्य में महत्वपूर्ण असंगतियां - पीड़िता को गलत तरीके से नाबालिग दिखाया गया - आवेदक और पीड़िता के मध्य करीबी संबंध थे - एफआईआर पीड़िता के माता-पिता के विरोध का परिणाम है - आवेदक कोई भागने वाला खतरा नहीं है - आवेदक ने हमेशा जांच में सहयोग किया - आवेदक अंतरिम जमानत पर है। (पैरा - 2, 96)

(B) जुवेनाइल जस्टिस (केयर एंड प्रोटेक्शन ऑफ चिल्ड्रेन) एक्ट, 2015 - धारा 94 - उम्र का अनुमान और निर्धारण - जमानत के चरण में - क्या पीड़िता की उम्र का निर्धारण जेजे एक्ट, 2015 के धारा 94 के अनुसार किया जाएगा? - अगर नहीं - जब किसी आरोपी द्वारा चुनौती दी जाती है, तब पीओसीएसओ एक्ट के तहत जमानत आवेदन में पीड़िता की उम्र का आकलन करने का तरीका - निर्णय - जेजे एक्ट, 2015 का धारा 94 जमानत आवेदनों पर लागू नहीं होना चाहिए, क्योंकि यह आरोपी के जमानत के अधिकार का उल्लंघन करेगा - पीओसीएसओ एक्ट के तहत जमानत आवेदन में पीड़िता की उम्र पर विचार करने का तरीका जांच की दिशा

और प्रासंगिक कारकों द्वारा मार्गदर्शित होना चाहिए - जेजे एक्ट, 2015 में उम्र के निर्धारण के लिए स्कूल प्रमाणपत्र, जन्म तिथि के प्रमाणपत्र, और चिकित्सा रिपोर्ट जैसे उम्र संबंधित दस्तावेजों पर विचार करने की आवश्यकता है - आरोपी को पीड़िता की उम्र की सत्यता को चुनौती देने का अधिकार है। (पैरा - 13, 91, 92, 93)

(C) लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 - धारा 29 - पीओसीएसओ एक्ट, 2012 के धारा 29 के तहत दोषी आशय का अनुमान - क्या जमानत के चरण में आरोपी के खिलाफ लागू होता है? - निर्णय - पूर्व विचरण जमानत पर लागू नहीं है - न्यायालय को अभियोजन के सभी चरणों में आरोपी की रक्षा पर विचार करना चाहिए। (पैरा -13,94)

निर्णय:- न्यायालय को पीड़िता की उम्र को चुनौती का स्वतंत्र रूप से मूल्यांकन करने का कर्तव्य है - जमानत आदेश में उम्र का आकलन अस्थायी है - दस्तावेजों के प्रायोगिक मूल्य के आधार पर - जमानत देने के लिए कोई कठोर या संकीर्ण सूत्र निर्धारित करना उचित नहीं है। आवेदक एक कानून का पालन करने वाला नागरिक है जिसने जांच में सहयोग दिया है और वह भागने वाला खतरा नहीं है। पीड़िता के घर में जबरदस्ती घुसने का कोई प्रमाण नहीं है। पीड़िता के पास वर्तमान वाद के अलावा कोई आपराधिक इतिहास नहीं है। (पैरा - 93)

जमानत आवेदन स्वीकृत। (E-7)

<u>**उद्धृत वाद सूची:**</u>

1. भोला भगत बनाम बिहार राज्य, (1997) 8 SCC 720

2. जितेंद्र राम बनाम झारखंड राज्य, (2006) 9 SCC 428

3. बाबू पासी बनाम झारखंड राज्य, (2008) 13 SCC 133

4. जबर सिंह बनाम दिनेश एवं अन्य, (2010) 3 SCC 757

5. प्रकाश राय बनाम बिहार राज्य, (2008) 15 SCC 223

6. रविंदर सिंह गोरखी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2006) 5 SCC 584

7. गोपीनाथ घोष बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, 1984 सप्लीमेंट SCC 228

8. भोुप राम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (1989) 3 SCC 1

page 2

9. भोला भगत बनाम बिहार राज्य, (1997) 8 SCC 720

10. हरी राम बनाम राजस्थान राज्य, (2009) 13 SCC 211

11. अबुजार हुसैन @ गुलाम हुसैन बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, (2012) 10 SCC 489

12. महादेव बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य, (2013) 14 SCC 637

13. मध्य प्रदेश राज्य बनाम अनूप सिंह, (2015) 7 SCC 773

14. जर्नैल सिंह बनाम हरियाणा राज्य, (2013) 7 SCC 263

15. पराग भाटी (किशोर) द्वारा कानूनी अभिभावक-मां-राजनी भाटी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, (2016) 12 SCC 744

16. अश्वनी कुमार सक्सेना बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2012) 9 SCC 750

17. अबुजार हुसैन @ गुलाम हुसैन बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, 2012 (10) SCC 489

18. संजीव कुमार गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, (2019) 12 SCC 370

19. राम विजय सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, आपराधिक अपील संख्या 175 का 2021

20. ऋषिपाल सिंह सोलंकी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, (2022) 8 SCC 602

21. मुक्करब और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2017) 2 SCC 210

22. नूर आगा बनाम पंजाब राज्य, (2008) 16 SCC 417

23. तोफान सिंह बनाम तमिलनाडु राज्य, (2021) 4 SCC 1

24. बिहार राज्य बनाम राजबल्लव प्रसाद @ राजबल्लाव प्रसाद यादव, (2017) 2 SCC 178

25. शाहिद हुसैन बिस्वास बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, 2017 SCC ऑनलाइन कल 5023

26. नवीन धनिराम बराईये बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2018 SCC ऑनलाइन बंबई 1281

27. जॉय बनाम केरल राज्य, 2019 SCC ऑनलाइन केरल 783

28. धर्मेंद्र सिंह बनाम (दिल्ली एनसीटी सरकार), 2020 SCC ऑनलाइन दिल्ली 1267

29. मेनका गांधी बनाम भारत संघ, (1978) 4 SCC 494

30. नरेंद्र सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2004) 10 SCC 699

31. रंजीतसिंह ब्रह्मजीतसिंह शर्मा बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2005 (5) SCC 294

32. गुडिकांति नरसिंहुलु और अन्य बनाम पी.पी., एच.सी. ऑफ ए.पी., (1978) 1 SCC 240

33. हुसैन और अन्य बनाम भारत संघ, (2017) 5 SCC 702

34. सम्राट बनाम एच.एल. हचिंसन और अन्य, एआईआर 1931 इलाहाबाद 356

35. रंजीतसिंह ब्रह्मजीतसिंह शर्मा बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2005) 5 SCC 294

36. निकेश तराचंद शाह बनाम भारत सरकार और अन्य, (2018) 11 SCC 1

37. मेनका गांधी बनाम भारत सरकार, (1978) 4 SCC 494

38. अर्णब मनोरंजन गोस्वामी बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य, 2020 SCC ऑनलाइन 964

माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट

1. चर्चा को सुविधाजनक बनाने के लिए निर्णय को निम्नलिखित वैचारिक ढांचे में संरचित किया जा रहा है:

I	परिचय		
II	विद्वान अधिवक्ताओं की दलीलें		
III	विचार के लिए उत्पन्न होने वाले मुद्दे		
IV	सांविधिक योजनाएं		
V	जेजे अधिनियम की धारा 94: केस कानून		
VI	दो अनुमान:	एक: जेजे अधिनियम, 2015 की धारा 94 के तहत आयु से संबंधित दस्तावेजों की शुद्धता का अनुमान	दोः पोक्सो अधिनियम की धारा 29 के तहत जन्म संबंधी अनुमान
VII	जेजे अधिनियम की धारा 94 और पॉक्सो अधिनियम की धारा 29 के तहत निष्पक्ष सुनवाई और अनुमान के मानदंड और पीड़ित की उम्र निर्धारित		

	करने के लिए उक्त अधिनियम की प्रयोज्यता		
VIII	जमानत का अधिकार:	एक: संवैधानिक दृष्टिकोण	दोः पॉक्सो एक्ट के तहत जमानत के मापदंड
IX	पॉक्सो अधिनियम के तहत जमानत: निष्कर्ष	एक: जेजे अधिनियम, 2015 की धारा 94 और पॉक्सो अधिनियम के तहत जमानत	दोः पॉक्सो अधिनियम की धारा 29 और 30 और पॉक्सो अधिनियम के तहत जमानत
X	जमानत याचिका पर आदेश		

I. परिचय:

2. अभियोजन पक्ष का वाद संक्षेप में यह है। पीड़ित नाबालिग है। आवेदक ने उसके साथ अनुचित यौन कृत्य किया। आवेदक बालिग है।

3. आवेदक के अधिवक्ता श्री एस. पी. तिवारी ने अभियोजन पक्ष के मामले में दर्शाई गई पीड़ित की उम्र को चुनौती दी है और ये प्रस्तुतियां दी हैं:

(i) पीड़ित के माता-पिता द्वारा उसे जीवन में लाभ देने के लिए स्कूल के रजिस्टरों में एक झूठी जन्म तिथि दर्ज की गई थी।

(ii) परिवार रजिस्टर और आधार कार्ड जैसे विभिन्न दस्तावेज जो उसकी वास्तविक आयु को दर्शाते हैं और अभियोजन पक्ष के मामले के विपरीत हैं, प्रस्तुत नहीं किए गए हैं।

पैथोलॉजिकल रिपोर्ट दर्शाती है कि पीड़ित की उम्र 17 वर्ष है।

(iv) पीड़ित वास्तव में बालिग है। हालांकि, नवीनतम वैज्ञानिक मानदंडों और चिकित्सा प्रोटोकॉल के अनुसार उसकी उम्र निर्धारित करने के लिए विशेषज्ञ डॉक्टरों द्वारा कोई चिकित्सा जांच नहीं की गई क्योंकि यह अभियोजन पक्ष के मामले को गलत साबित करेगा।

(v) एफआईआर में उल्लिखित पीड़ित की आयु में विसंगतियां, सीआरपीसी की धारा 161, सीआरपीसी की धारा 164 के तहत पीड़ित का बयान, स्कूल प्रमाण पत्र और पैथोलॉजिकल रिपोर्ट में उम्र पीड़ित के अल्पसंख्यक के संबंध में अभियोजन पक्ष के मामले को बदनाम करती है।

4. आशीष हलधर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या 10907/2022) मामले में आवेदक के अधिवक्ता श्री सफीउल्लाह ने दलील दी है कि रेडियोलॉजिकल/मेडिकल रिपोर्ट के अनुसार पीड़ित की आयु 18 वर्ष है। हालांकि, स्कूल के प्रमाण पत्र में उसकी उम्र 13 साल 06 महीने और 27 दिन दर्ज है। पीड़ित ने सीआरपीसी की धारा 161 और सीआरपीसी की धारा 164 के तहत अपने बयानों में कहा है कि उसकी उम्र 18 साल है। प्राथमिकी के साथ-साथ पहले मुखबिर के बयान में पीड़ित की उम्र 14 वर्ष बताई गई है।

5. पीड़ित की उम्र के संबंध में इसी तरह की विसंगतियां अन्य संबंधित जमानत आवेदनों में भी मौजूद हैं।

6. राज्य के अतिरिक्त सरकारी अधिवक्ता श्री ऋषि चड्ढा का तर्क है कि किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2015 की धारा 94 में कहा गया है कि इसमें उल्लिखित दस्तावेजों में दर्शाई गई उम्र निर्णायक है और इसे

जमानत की कार्यवाही में चुनौती नहीं दी जा सकती है। इसके अलावा, अपराध का खुलासा प्राथमिकी में किया गया है जो अकेले यौन अपराधों से बच्चों का संरक्षण अधिनियम, 2012 की धारा 29 के तहत अपराध की धारणा को ट्रिगर करने के लिए पर्याप्त है।

7. बार के कई सदस्यों ने कहा कि कानून के ये दो बड़े सवाल पॉक्सो अधिनियम, 2012 के तहत जमानत आवेदनों में नियमित रूप से सामने आते हैं. कानून में अस्पष्टता को समाप्त करने के लिए इस मुद्दे पर निर्णय लेने की आवश्यकता है।

8. साथ के सभी जमानत आवेदनों में कानून के समान प्रश्न उठते हैं।

9. इस स्तर पर, न्यायालय ने बार के सदस्यों से कानून के सवालों पर अदालत की सहायता करने का अनुरोध किया।

10. आवेदकों के वकीलों के अलावा, श्री नज़रुल इस्लाम जाफरी, सुश्री नासिरा आदिल द्वारा सहायता प्राप्त वरिष्ठ अधिवक्ता; श्री विनय सरन, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री सौमित्र द्विवेदी, अधिवक्ता की सहायता से; श्री श्वेताश्व अग्रवाल, अधिवक्ता; श्री राजीव लोचन शुक्ला, अधिवक्ता और सुश्री गुंजन जादवानी, अधिवक्ता ने स्वेच्छा से न्यायालय की सहायता की।

11. राज्य की ओर से राज्य के अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता श्री ऋषि चड्ढा ने अपनी दलीलें प्रस्तुत की हैं।

II. आवेदकों और बार के विद्वान सदस्यों के अधिवक्ता की ओर से प्रस्तुतियां:

12. आवेदक और बार के अन्य सदस्यों के अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि:

(i) पॉक्सो अधिनियम अपराधों के तहत जमानत आवेदन पर विचार करते समय पीड़ित की उम्र को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

(ii) अभियुक्त जमानत कार्यवाही में पीड़ित की उम्र को चुनौती दे सकता है।

(iii) अधिकारियों द्वारा जेजे अधिनियम, 2015 की धारा 94 के तहत जांच की उदार व्याख्या पर ध्यान दिया जाता है।

(iv) जेजे अधिनियम, 2015 की धारा 94 और पॉक्सो अधिनियम, 2012 की धारा 29 के तहत अनुमान जमानत के स्तर पर आरोपी के अधिकारों को पूर्वाग्रह से ग्रस्त नहीं कर सकते हैं।

(v) पॉक्सो अधिनियम के अंतर्गत बड़ी संख्या में मामले भागे हुए जोड़ों से संबंधित हैं और ऐसे संबंधों के प्रति पारिवारिक विरोध से उत्पन्न होते हैं। जमानत याचिका में सबूतों को बाहर रखने या पीड़ित की उम्र को चुनौती देने को सीमित करना, जो अक्सर बालिग होने की सीमा पर होता है और कभी-कभी गलत होता है, आरोपी के लिए न्याय का हनन होगा।

राज्य की ओर से अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुतियां:

(i) पॉक्सो अधिनियम एक विशेष अधिनियम है जहां विधायिका ने पीड़ितों के हितों की रक्षा के लिए कड़े प्रावधान किए हैं जो नाबालिग हैं।

(ii) जेजे अधिनियम, 2015 की धारा 94 की कड़ाई से व्याख्या की जाएगी और विधायिका के इरादे को लागू करने के लिए जमानत के स्तर पर लागू किया जाएगा।

(iii) पॉक्सो अधिनियम, 2012 की धारा 29 की धारणा प्राथमिकी के पंजीकरण पर शुरू की गई है, अन्यथा इसका उद्देश्य विफल हो जाएगा।

विधायी इरादा स्पष्ट रूप से अपराधों की गंभीरता को देखते हुए जमानत के अधिकार को प्रतिबंधित करना था।

III. विचार के लिए उत्पन्न होने वाले मुद्दे:

13. इस प्रकार जमानत आवेदन और अन्य साथी जमानत आवेदनों में विचार के लिए कानून के निम्नलिखित प्रश्न उठते हैं:

I. क्या जमानत के चरण में पीड़ित की आयु जेजे अधिनियम, 2015 की धारा 94 के अनुसार निर्धारित की जाएगी? यदि नहीं, तो पॉक्सो अधिनियम के तहत जमानत याचिका में पीड़ित की उम्र का आकलन करने का तरीका क्या है, जब एक आरोपी द्वारा इसे चुनौती दी जाती है?

II. क्या पॉक्सो अधिनियम, 2012 की धारा 29 के तहत गैर-इरादतन इरादे का अनुमान जमानत के चरण में आरोपी के खिलाफ लागू होता है?

IV. सांविधिक योजनाएं:

14. पॉक्सो अधिनियम के तहत पीड़ित बच्चे की उम्र का निर्धारण किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) मॉडल नियम, 2016 के नियम 54 (18) (iv) के साथ किशोर न्याय अधिनियम, 2015 की धारा 94 में उल्लिखित आयु के निर्धारण की प्रक्रिया के अनुसार किया जाना है। प्रावधान इस प्रकार बताते हैं:

"94. आयु का अनुमान और निर्धारण *(1) जहाँ समिति या बोर्ड के लिए इस अधिनियम के किसी उपबन्ध के अधीन उसके समक्ष लाए गए व्यक्ति की उपस्थिति के आधार पर (साक्ष्य देने के प्रयोजन के अतिरिक्त) कि उक्त व्यक्ति बालक है, समिति या बोर्ड बालक की आयु यथा-यथासंभव बताते हुए ऐसी टिप्पणी दर्ज करेगा और आगे उम्र की की पुष्टि की प्रतीक्षा किए बिनाधारा 14 या धारा 36 के अधीन जांच को आगे बढ़ाएगा, जैसा भी मामला हो, ।*

(2) यदि समिति या बोर्ड के पास इस संबंध में संदेह के लिए उचित आधार है कि उसके समक्ष लाया गया व्यक्ति बच्चा है या नहीं, तो समिति या बोर्ड, जैसा भी वाद हो, निम्नलिखित प्राप्त करके साक्ष्य मांगकर आयु निर्धारण की प्रक्रिया शुरू करेगा -

(i) स्कूल से जन्म तिथि प्रमाण पत्र, या संबंधित परीक्षा बोर्ड से मैट्रिक या समकक्ष प्रमाण पत्र, यदि उपलब्ध हो; और उसकी अनुपस्थिति में;

(ii) किसी निगम या नगरपालिका प्राधिकरण या पंचायत द्वारा दिया गया जन्म प्रमाण पत्र; (iii) और केवल (i) और (ii) के अभाव में, आयु का निर्धारण समिति या बोर्ड के आदेश पर किए गए ऑसिफिकेशन टेस्ट या किसी अन्य नवीनतम चिकित्सा आयु निर्धारण परीक्षण द्वारा किया जाएगा: बशर्ते समिति या बोर्ड के आदेश पर आयोजित ऐसा आयु निर्धारण परीक्षण ऐसे आदेश की तारीख से पंद्रह दिनों के भीतर पूरा किया जाएगा।

(3) समिति या बोर्ड द्वारा इस अधिनियम के प्रयोजन के लिए उसके समक्ष इस प्रकार लाए गए व्यक्ति की आयु के रूप में दर्ज की गई आयु, उस व्यक्ति की सही आयु मानी जाएगी।

जे.जे. नियम, 2016 के नियम 54(18)(iv)

"54. बच्चों के खिलाफ अपराधों के मामलों में प्रक्रिया- *(18) (iv) अधिनियम के तहत बच्चों के खिलाफ अपराधों के संबंध में पीड़ित की आयु निर्धारण के लिए, अधिनियम की धारा 94 के तहत बोर्ड और समिति के लिए अनिवार्य प्रक्रियाओं का पालन किया जाना चाहिए।*

15. बच्चे की उम्र के निर्धारण की प्रक्रिया पोक्सो अधिनियम, 2012 की धारा 34 में प्रदान की गई है। प्रावधान यहां निकाला जा रहा है:

"34. बच्चे द्वारा अपराध करने के मामले में प्रक्रिया और विशेष अदालत द्वारा उम्र

का निर्धारण। (1) जहां इस अधिनियम के तहत कोई अपराध किसी बच्चे द्वारा किया जाता है, ऐसे बच्चे को 1 [किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2015 (2016 का 2)] के प्रावधानों के तहत निपटाया जाएगा।

(2) यदि विशेष न्यायालय के समक्ष किसी कार्यवाही में कोई प्रश्न उठता है कि कोई व्यक्ति बच्चा है या नहीं, तो ऐसे प्रश्न का निर्धारण विशेष न्यायालय द्वारा ऐसे व्यक्ति की आयु के बारे में स्वयं को संतुष्ट करने के बाद किया जाएगा और वह ऐसे निर्धारण के कारणों को लिखित रूप में दर्ज करेगा।

(3) विशेष न्यायालय द्वारा किया गया कोई भी आदेश केवल किसी परवर्ती प्रमाण से अमान्य नहीं समझा जाएगा कि उपधारा के अधीन उसके द्वारा निर्धारित व्यक्ति की आयु

(2) उस व्यक्ति की सही उम्र नहीं थी।

16. किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2004 की धारा 49 को किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) नियम, 2007 के नियम 12 (3) के साथ पढ़ा जाता है:

<u>"49. आयु का अनुमान और निर्धारण</u>

(1) जहाँ किसी सक्षम प्राधिकारी को यह प्रतीत होता है कि इस अधिनियम के किसी उपबन्ध के अधीन उसके समक्ष लाया गया व्यक्ति (साक्ष्य देने के प्रयोजन के अतिरिक्त) किशोर या बालक है, तब सक्षम प्राधिकारी उस व्यक्ति की आयु के संबंध में यथोचित जांच करेगा और उस प्रयोजन के लिए ऐसे साक्ष्य लेगा जो आवश्यक हों (परन्तु शपथ-पत्र नहीं) और यह निष्कर्ष लिखेगा कि वह व्यक्ति एक किशोर या बच्चा है या नहीं, और जितना करीब हो सके उसकी लगभग उम्र लिखेगा।

(2) किसी सक्षम प्राधिकारी का कोई भी आदेश केवल किसी अनुवर्ती प्रमाण के आधार पर अमान्य नहीं समझा जाएगा कि जिस व्यक्ति के संबंध में आदेश दिया गया है वह किशोर या बच्चा नहीं है, और सक्षम प्राधिकारी द्वारा दर्ज की गई आयु इस प्रकार उसके समक्ष लाए गए व्यक्ति की आयु है, इस अधिनियम के प्रयोजन के लिए, उस व्यक्ति की वास्तविक आयु मानी जाएगी।

जेजे नियम, 2007 के नियम 12 (3):

"12. आयु के निर्धारण में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया: *(3) कानून का उल्लंघन करने वाले बच्चे या किशोर से संबंधित प्रत्येक मामले में, आयु निर्धारण जांच अदालत या बोर्ड द्वारा या, जैसा भी वाद हो, समिति द्वारा साक्ष्य प्राप्त करके की जाएगी-*

(क) (i) मैट्रिक या समकक्ष प्रमाण पत्र, यदि उपलब्ध हो; और उसकी अनुपस्थिति में;

(ii) स्कूल (प्ले स्कूल के अलावा) से जन्म की तारीख प्रमाण पत्र; और उसकी अनुपस्थिति में;

(iii) किसी निगम या नगरपालिका प्राधिकरण या पंचायत द्वारा दिया गया जन्म प्रमाण पत्र;

(ख) और केवल उपरोक्त खंड (क) के (i), (ii) या (iii) की अनुपस्थिति में, एक विधिवत गठित मेडिकल बोर्ड से चिकित्सा राय मांगी जाएगी, जो किशोर या बच्चे की आयु घोषित करेगा। यदि आयु का सटीक मूल्यांकन नहीं किया जा सकता है, तो न्यायालय या बोर्ड या, जैसा भी वाद हो, समिति, उनके द्वारा दर्ज किए जाने वाले कारणों के लिए, यदि आवश्यक समझा जाए, तो एक वर्ष के अंतराल के भीतर उसकी

आयु पर विचार करके बच्चे या किशोर को लाभ दे सकती है।

और, ऐसे मामले में आदेश पारित करते समय, उपलब्ध साक्ष्य, या चिकित्सीय राय, जैसा भी वाद हो, पर विचार करने के बाद, उसकी आयु और किसी खंड (क) (i), (ii), (iii) में से किसी में विनिर्दिष्ट साक्ष्य में से किसी एक को रिकॉर्ड करेगा या उसके अभाव में, खंड (ख) ऐसे बच्चे या किशोर के साथ जो कानून के समक्ष रूबरू हो, के संबंध में आयु का निर्णायक प्रमाण होगा।

v. <u>जेजे अधिनियम की धारा 94 : विधि व्यवस्था</u>:

17. कानूनी विमर्श का जैविक विकास वैधानिक अधिनियमों और न्यायिक उदाहरणों की एक प्रमुख विशेषता है जो कानून के साथ संघर्ष करने वाले किशोरों और अपराध के शिकार बच्चों से निपटते हैं। जेजे अधिनियम, 2000 को जेजे नियम, 2007 के साथ पढ़ा जाता है, जो वर्तमान अधिनियमन से पहले कानून के विकास की समझ में सहायता करेगा, और मौजूदा संविधियों की व्याख्या में सहायता करेगा।

18. किशोर न्याय अधिनियम, 1986 की धारा 32 के दायरे और उद्देश्य की व्याख्या करते हुए सुप्रीम कोर्ट ने भोला भगत बनाम बिहार राज्य में किशोर न्याय अधिनियम, 2000 की धारा 49 के साथ *परिमटेरिया* में एक प्रावधान पर इस प्रकार ध्यान दिया:

"18. जब किसी अभियुक्त की ओर से यह दलील दी जाती है कि वह अधिनियम के तहत अभिव्यक्ति की परिभाषा के अर्थ के भीतर एक "बच्चा" था, तो ***अदालत के लिए यह अनिवार्य हो जाता है कि यदि वह आरोपी द्वारा दावा की गई उम्र के बारे में किसी भी संदेह पर विचार करता है कि वह आरोपी की उम्र के सवाल के निर्धारण के लिए स्वयं एक जांच आयोजित करें या जांच का कारण बनें और यदि आवश्यक हो तो पार्टियों को उस संबंध में साक्ष्य का नेतृत्व करने के लिए कहकर मामले के संबंध में एक रिपोर्ट मांगें।*** *। सामाजिक रूप से उन्मुख कानून की लाभकारी प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, यह अदालत का दायित्व है कि जहां ऐसी याचिका उठाई जाती है, वह सावधानी के साथ उस याचिका की जांच करे और और उस याचिका के बारे में सकारात्मक निष्कर्ष वापस किए बिना वह अपने हाथ नहीं बांध सकता है, न ही आरोपी के प्रावधानों के लाभ से इनकार कर सकता है। अदालत को जांच करनी चाहिए और किसी न किसी तरह से उम्र के संबंध में निष्कर्ष वापस करना चाहिए। (जोर दिया गया)*

19. **जितेंद्र राम बनाम झारखंड राज्य** ने स्पष्ट किया कि किसी अपात्र व्यक्ति के साथ केवल अभियुक्त द्वारा दिए गए अपराध की दलील पर उदारता से व्यवहार नहीं किया जा सकता है। **जितेंद्र राम** (सुप्रा) के अनुसार नाबालिग होने के मुद्दे को प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में गुण-दोष के आधार पर आंका जाना था।

20. झारखंड किशोर न्याय (बच्चों की देखरेख और संरक्षण) नियम, 2003 का नियम 22, जो जेजे नियम, 2007 के नियम 12 के अनुरूप है, **बबलू पासी बनाम झारखंड** मामले में जारी किया गया था। **बबलू पासी**

(सुप्रा) में सुप्रीम कोर्ट ने आयु निर्धारण के लिए एक सार्वभौमिक सूत्र निर्धारित करने से इनकार कर दिया, और इसके बजाय अदालत के समक्ष सामग्री और सबूतों के आधार पर प्रत्येक मामले को निम्नानुसार रखने की आवश्यकता को दोहराया:

"22. यह अच्छी तरह से स्थापित है कि किसी व्यक्ति की आयु निर्धारित करने के लिए एक अमूर्त सूत्र निर्धारित करना न तो संभव है और न ही वांछनीय है। जन्म तिथि रिकॉर्ड पर सामग्री के आधार पर और पार्टियों द्वारा प्रस्तुत सबूतों के आधार पर निर्धारित की जानी है। **किसी व्यक्ति की उम्र के बारे में चिकित्सा साक्ष्य, हालांकि एक बहुत ही उपयोगी मार्गदर्शक कारक है, निर्णायक नहीं है और अन्य ठोस सबूतों के साथ इस पर विचार किया जाना चाहिए**। (जोर दिया गया)

21. बबलू पासी (सुप्रा) में जन्म तिथि, स्कूल रजिस्टरों में प्रवेश और मेडिकल बोर्ड की राय साबित करने के तरीके जैसे दस्तावेजों के साक्ष्य मूल्य का मूल्यांकन निम्नलिखित तरीके से किया गया था:

"27. ... उक्त अधिनियम की धारा 35 में कहा गया है कि किसी लोक सेवक द्वारा अपने आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में किए गए मुद्दे या प्रासंगिक तथ्य को बताने वाली किसी सार्वजनिक या अन्य आधिकारिक पुस्तक, रजिस्टर, रिकॉर्ड में प्रविष्टि अपने आप में एक प्रासंगिक तथ्य है।

28. यह कहा जाता है कि धारा 35 के तहत स्वीकार्य दस्तावेज प्रस्तुत करने के लिए, तीन शर्तों को पूरा करना होगा, अर्थात्: (i) जिस प्रविष्टि पर भरोसा किया जाता है वह सार्वजनिक या अन्य आधिकारिक पुस्तक, रजिस्टर या रिकॉर्ड में एक होना चाहिए; (ii) यह एक प्रविष्टि होनी चाहिए जिसमें किसी तथ्य या प्रासंगिक तथ्य को दर्शाया गया हो, और (iii) यह एक लोक सेवक द्वारा अपने आधिकारिक कर्तव्यों के निर्वहन में, या विशेष रूप से कानून द्वारा संलग्न अपने कर्तव्य के निष्पादन में किया जाना चाहिए। **स्कूल रजिस्टर में की गई जन्म तिथि से संबंधित प्रविष्टि अधिनियम की धारा 35 के तहत प्रासंगिक और स्वीकार्य है, लेकिन स्कूल रजिस्टर में किसी व्यक्ति की उम्र के बारे में प्रविष्टि उस सामग्री के अभाव में व्यक्ति की उम्र साबित करने के लिए बहुत अधिक साक्ष्य मूल्य की नहीं है, जिस पर उम्र दर्ज की गई थी।**

(जोर दिया गया)

29. इसलिए, तथ्यों के आधार पर, यह दिखाने के लिए साक्ष्य के अभाव में कि आरोपी के नाम पर मतदाता सूची में प्रविष्टि किस सामग्री पर की गई थी, केवल मतदाता सूची की एक प्रति प्रस्तुत करना, हालांकि धारा 35 के संदर्भ में एक सार्वजनिक दस्तावेज, अभियुक्त की आयु साबित करने के लिए पर्याप्त नहीं था। ***इसी तरह, हालांकि मेडिकल बोर्ड की रिपोर्ट का संदर्भ दिया गया है, जिसमें आरोपी की उम्र 17-18 वर्ष दिखाई गई है, लेकिन आदेश में कोई संकेत नहीं है कि बोर्ड ने मेडिकल बोर्ड के किसी भी सदस्य को तलब किया था और उनका बयान दर्ज किया था या नहीं***। ऐसा भी प्रतीत होता है कि आरोपी की शारीरिक उपस्थिति

ने बोर्ड को इस निष्कर्ष पर पहुंचने में मदद की है, जो एक अपराधी की उम्र निर्धारित करने के लिए एक निर्णायक कारक नहीं हो सकता है। (जोर दिया गया)

22. साक्ष्य अधिनियम की धारा 35 के आलोक में जेजे अधिनियम, 2000 सहपठित जेजे नियम, 2007 की योजना के तहत आयु निर्धारण के मुद्दे का परीक्षण जबर सिंह बनाम दिनेश और अन्य में यह कहते हुए किया गयाः

"27... प्रवेश फॉर्म में विपक्ष नंबर 1 की जन्म तिथि की प्रविष्टि, स्कूल रिकॉर्ड और स्थानांतरण प्रमाण पत्र साक्ष्य अधिनियम की धारा 35 में निर्धारित शर्तों को पूरा नहीं करते थे क्योंकि प्रविष्टि किसी भी सार्वजनिक या आधिकारिक रजिस्टर में नहीं थी और न तो लोक सेवक द्वारा अपने आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में या कानून द्वारा विशेष रूप से निर्धारित कर्तव्य के पालन में किसी व्यक्ति द्वारा की गई थी। देश का प्रतिनिधित्व करने के लिए और इसलिए, कथित अपराध के समय विपक्ष नंबर 1 की आयु निर्धारित करने के उद्देश्य से साक्ष्य अधिनियम की धारा 35 के तहत प्रविष्टि प्रासंगिक नहीं थी।

23. **जबर सिंह** (सुप्रा) ने **ज्योति प्रकाश राय बनाम बिहार राज्य और रविंदर सिंह गोरखी बनाम बिहार उत्तर प्रदेश राज्य** में निर्धारित कानून को भी दोहराया गया है कि आयु का निर्धारण उक्त संविधियों के अंतर्गत प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में तथा न्यायालय के समक्ष साक्ष्यों के मूल्यांकन पर किया जाना है।

24. **जितेंद्र सिंह** (सुप्रा) मामले में सुप्रीम कोर्ट ने **गोपीनाथ घोष बनाम पश्चिम बंगाल, भूप राम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, भोला भगत बनाम बिहार राज्य और हरि राम बनाम राजस्थान राज्य** मामले में अपने पहले के फैसलों को दोहराया और उच्चतम न्यायालय ने आयु निर्धारण की जांच के दायरे को सीमित नहीं किया क्योंकि इस तरह की जांच के लिए प्रथम दृष्टया वाद यह कहते हुए बनाया गया था:-

"9. जांच का निर्देश देने के लिए प्रथम दृष्टया वाद बनाने का भार हमारी राय में इस मामले में पूरा किया गया है क्योंकि अपीलकर्ता ने आवेदन के साथ स्कूल छोड़ने के प्रमाण पत्र और मार्कशीट की एक प्रति दायर की है जिसमें अपीलकर्ता की जन्म तिथि 24-5-1988 बताई गई है। उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता को जमानत देने के अपने आदेश में जिस मेडिकल जांच का हवाला दिया है, उससे यह भी पता चलता है कि अपीलकर्ता की आयु परीक्षा की तारीख को 17 वर्ष है। ये दस्तावेज इस स्तर पर जांच और तथ्यों के सत्यापन के निर्देश देने के लिए पर्याप्त हैं।

10. हम यह भी जोड़ना चाहेंगे कि ऊपर उल्लिखित सामग्री का सत्यापन किया जाना अभी बाकी है और इसकी वास्तविकता और विश्वसनीयता निर्धारित की जानी है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि कुछ ऐसी परिस्थितियां हैं जो अपीलकर्ता द्वारा आधार बनाए गए दस्तावेजों की वास्तविकता के बारे में संदेह पैदा कर सकती हैं। उदाहरण के लिए, मृतक आशा देवी, जिसकी शादी अपीलकर्ता से हुई थी, उसकी मृत्यु के समय रायबरेली के जिला

अस्पताल के पैथोलॉजिस्ट डॉ. अशोक कुमार शुक्ला के अनुसार 19 वर्ष की आयु में थी। इसका मतलब यह होगा कि अपीलकर्ता पति अपनी पत्नी से बहुत छोटा था जो भारतीय संदर्भ में सामान्य अभ्यास नहीं है और ऐसा हो सकता है लेकिन कभी कभी! इसलिए यह तथ्य भी कि अपीलकर्ता ने 17-11-2009 को स्कूल छोड़ने का प्रमाण पत्र प्राप्त किया यानी उच्च न्यायालय द्वारा पहली अपील के परीक्षण और निपटान के समापन के बाद, यह निर्धारित करने के लिए संबंधित स्कूल रिकॉर्ड की बारीकी से जांच की आवश्यकता हो सकती है कि क्या यह किसी भी संदेह, निर्माण या हेरफेर से मुक्त है। यह भी आरोप है कि मतदाता सूची में आरोपी की उम्र लगभग 20 वर्ष दिखाई गई है, जबकि पंचायत रजिस्टर में उसकी उम्र 19 वर्ष दिखाई गई है।

11. अपीलकर्ता की आयु का निर्धारण करते समय इन सभी पहलुओं को निचली अदालत द्वारा बारीकी से और सावधानीपूर्वक जांच की आवश्यकता होगी। अपीलकर्ता जितेंद्र सिंह के भाई-बहनों और उनके माता-पिता की जन्म तिथि भी इन पहलुओं पर काफी प्रकाश डाल सकती है और प्रश्न के उचित निर्धारण के लिए इस पर ध्यान देना पड़ सकता है। यह कहना पर्याप्त है कि वर्तमान में हम इसे जांच का निर्देश देने के लिए उपयुक्त वाद मानते हैं, उस निर्देश को अपीलकर्ता की सही उम्र के संबंध में किसी भी अंतिम राय की अभिव्यक्ति के रूप में नहीं लिया जाना चाहिए, जिसके मामले को संबंधित सामग्री के आधार पर स्वतंत्र रूप से जांचना होगा।

25. नाबालिग होने की जांच का आदेश देने और इस तरह की जांच के दायरे पर संतोष की प्रक्रिया को रेखांकित करते हुए सुप्रीम कोर्ट ने **अबूजर हुसैन उर्फ गुलाम हुसैन बनाम पश्चिम बंगाल राज्य** मामले में इस प्रकार निर्धारित किया है:

"39.2. दोषसिद्धि के बाद नाबालिग होने के संबंध में दावा करने के लिए, दावेदार को कुछ सामग्री पेश करनी होगी जो प्रथम दृष्टया अदालत को संतुष्ट कर सके कि नाबालिग होने के दावे की जांच आवश्यक है। प्रारंभिक भार उस व्यक्ति द्वारा निर्वहन किया जाना है जो कायाकल्प का दावा करता है।

39.3 **प्रथम दृष्टया न्यायालय को कौन सी सामग्री संतुष्ट करेगी और/या प्रारंभिक भार के निर्वहन के लिए पर्याप्त है, इसे सूचीबद्ध नहीं किया जा सकता है और न ही यह निर्धारित किया जा सकता है कि साक्ष्य के एक विशिष्ट टुकड़े को क्या महत्व दिया जाना चाहिए जो नाबालिग होने की धारणा बढ़ाने के लिए पर्याप्त हो सकता है, लेकिन नियम 12 (3) (ए) (आई) से (iii) में उल्लिखित दस्तावेज निश्चित रूप से अदालत की प्रथम दृष्टया संतुष्टि के लिए पर्याप्त होंगे। अपराधी की उम्र के बारे में नियम 12 के तहत आगे की जांच की आवश्यकता है।** *संहिता की धारा 313 के तहत दर्ज किया गया बयान बहुत अस्थायी है और आमतौर पर नाबालिग होने के दावे को सही ठहराने या अस्वीकार करने के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता है। दोषसिद्धि के बाद प्राप्त स्कूल छोड़ने के प्रमाण पत्र या मतदाता सूची आदि जैसे दस्तावेजों की*

विश्वसनीयता और / या स्वीकार्यता प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगी और कोई कठोर और तेज़ नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता है कि उन्हें प्रथम दृष्टया स्वीकार या अस्वीकार किया जाना चाहिए। अकबर, शेख और पवन के मामले में ये दस्तावेज प्रथम दृष्टया विश्वसनीय नहीं पाए गए, जबकि जितेंद्र सिंह में दस्तावेज जैसे स्कूल छोड़ने का प्रमाण पत्र, मार्कशीट और मेडिकल रिपोर्ट को अपीलकर्ता की उम्र की जांच और सत्यापन का निर्देश देने के लिए पर्याप्त माना गया था। यदि ऐसे दस्तावेज प्रथम दृष्टया अदालत का विश्वास पैदा करते हैं, तो अदालत धारा 7 ए के प्रयोजनों के लिए ऐसे दस्तावेजों पर कार्रवाई कर सकती है और अपराधी की उम्र के निर्धारण के लिए जांच का आदेश दे सकती है। (जोर दिया गया)

48. **यदि कोई लकड़ी का दृष्टिकोण अपनाता है, तो वह जांच का निर्देश देने से पहले प्रमाण पत्र से कम कुछ नहीं कह सकता है, चाहे वह स्कूल से हो या नगरपालिका प्राधिकरण से अदालत की अंतरात्मा को संतुष्ट करेगा। लेकिन, फिर जांच का निर्देश देना आरोपी को किशोर घोषित करने के समान नहीं है। आवश्यक प्रमाण का मानक दोनों के लिए अलग है। पूर्व में, अदालत केवल एक प्रथम दृष्टया निष्कर्ष दर्ज करती है। उत्तरार्द्ध में अदालत साक्ष्य पर एक घोषणा करती है, कि वह केवल तभी जांच और स्वीकार करती है जब वह इस तरह की स्वीकृति के योग्य हो**। जांच के निर्देश देने के स्तर पर दृष्टिकोण को और अधिक उदार होना आवश्यक है, ऐसा न हो कि न्याय की परिहार्य अवहेलना हो। यह कहना पर्याप्त है कि हलफनामों को आम तौर पर जांच का निर्देश देने के लिए पर्याप्त आधार के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है, लेकिन उन्हें स्वीकार नहीं किया जाना कानून का शासन नहीं है, बल्कि विवेक का नियम है। इसलिए, न्यायालय प्रत्येक मामले में संबंधित कारकों पर विचार करेगा, आवश्यकता पड़ने पर बेहतर हलफनामा दाखिल करने पर जोर देगा, और यहां तक कि माता-पिता की उम्र, भाई-बहनों की उम्र और इसी तरह की जानकारी सहित प्रासंगिक मानी जाने वाली किसी भी अतिरिक्त जानकारी को वाद-दर-वाद आधार पर निर्णय लेने से पहले प्रस्तुत करने का निर्देश देगा कि धारा 7 ए के तहत जांच की जानी चाहिए या नहीं। यह अंततः इस बात पर निर्भर करेगा कि अदालत प्रथम दृष्टया निष्कर्ष के लिए ऐसी सामग्री का मूल्यांकन कैसे करती है कि अदालत जांच का निर्देश दे सकती है या नहीं। (जोर दिया गया)

26. **महादेव बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य** मामले में उच्चतम न्यायालय ने पीड़ित की आयु के निर्धारण के लिए जेजे नियम, 2007 के नियम 12 (3) (बी) को लागू किया और कहा:

"12. ..... नियम 12 (3) (बी) के तहत, यह विशेष रूप से प्रावधान किया गया है कि केवल 12 (3) (ए) (आई) से (iii) के तहत वर्णित वैकल्पिक तरीकों की अनुपस्थिति में, चिकित्सा राय मांगी जा सकती है। किशोर की आयु का पता लगाने के लिए प्रचलित ऐसे सांविधिक नियम के आलोक में, हमारी

सुविचारित राय में, पीड़ित की आयु का पता लगाने के उद्देश्य से न्यायालयों द्वारा भी उसी मानदंड का सही ढंग से पालन किया जा सकता है।
(जोर दिया गया)

13. हमारे उपरोक्त तर्क के आलोक में, मामले में, स्कूल द्वारा जारी किए गए प्रमाण पत्र थे जिसमें अभियोक्ता ने अपनी पांचवीं कक्षा की थी और प्रदर्श 54 के तहत उक्त स्कूल द्वारा जारी स्कूल छोड़ने के प्रमाण पत्र में, अभियोक्ता की जन्म तिथि स्पष्ट रूप से 20.05.1990 के रूप में नोट की गई है, और यह दस्तावेज पीडब्ल्यू -11 द्वारा भी साबित किया गया था। स्थानांतरण प्रमाण पत्र के साथ-साथ प्राथमिक विद्यालय लातूर द्वारा बनाए गए प्रवेश फॉर्म के अलावा, जहां अभियोक्ता ने अपनी प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त की थी, ने भी जन्म तिथि 20.5.1990 की पुष्टि की। अभियोक्ता की उम्र पर पहुंचने के लिए नीचे दिए गए न्यायालयों द्वारा उक्त साक्ष्य पर भरोसा करना कि घटना के समय अभियोक्ता 18 वर्ष से कम आयु का था, पूरी तरह से उचित था और हमें इसमें हस्तक्षेप करने का कोई अच्छा आधार नहीं मिला।

27. **महादेव** (सुप्रा) में अनुपात का पालन **मध्य प्रदेश राज्य बनाम अनूप सिं**ह में किया गया था। 28. हालांकि, पीड़ित की उम्र निर्धारित करने के लिए जेजे नियम, 2007 को लागू करते समय, सुप्रीम कोर्ट ने **जरनैल सिंह बनाम हरियाणा राज्य** ने प्रावधानों पर सख्त रुख अपनाया और पीड़ित की आयु निर्धारित करने के लिए जांच के दायरे को सीमित कर दिया:

"भले ही नियम 12 केवल कानून के साथ संघर्ष करने वाले बच्चे की उम्र निर्धारित करने के लिए सख्ती से लागू होता है, हमारा विचार है कि उपरोक्त वैधानिक प्रावधान उम्र निर्धारित करने का आधार होना चाहिए, यहां तक कि अपराध के शिकार बच्चे के लिए भी। क्योंकि, हमारे विचार में, जहां तक अल्पसंख्यक के मुद्दे का संबंध है, कानून का उल्लंघन करने वाले बच्चे और अपराध के शिकार बच्चे के बीच शायद ही कोई अंतर है। इसलिए, हमारी सुविचारित राय में, अभियोक्ता अभियोजन साक्षी-6 की आयु निर्धारित करने के लिए 2007 के नियमों के नियम 12 को लागू करना उचित होगा। निर्णायक रूप से आयु निर्धारित करने का तरीका, ऊपर निकाले गए नियम 12 के उप-नियम (3) में व्यक्त किया गया है। उपर्युक्त प्रावधान के तहत, नियम 12 (3) में उल्लिखित कई विकल्पों में से पहले उपलब्ध आधार को अपनाकर बच्चे की उम्र का पता लगाया जाता है। यदि, नियम 12 (3) के तहत विकल्पों की योजना में, एक विकल्प को पूर्ववर्ती खंड में व्यक्त किया जाता है, तो इसका बाद के खंड में व्यक्त किए गए विकल्प पर अभिभावी प्रभाव पड़ता है। उपलब्ध उच्चतम रेटेड विकल्प, निर्णायक रूप से नाबालिग की उम्र निर्धारित करेगा। नियम 12 (3) की योजना में, संबंधित बच्चे का मैट्रिक (या समकक्ष) प्रमाण पत्र, उच्चतम रेटेड विकल्प है। यदि उक्त प्रमाण पत्र उपलब्ध है, तो किसी अन्य साक्ष्य पर भरोसा नहीं किया जा सकता है। केवल उक्त

प्रमाण पत्र के अभाव में, नियम 12 (3), उस स्कूल में दर्ज की गई जन्म तिथि पर विचार करने की परिकल्पना करता है, जिसमें पहले बच्चे ने भाग लिया था। यदि जन्म तिथि की ऐसी प्रविष्टि उपलब्ध है, तो उसमें दर्शाई गई जन्म तिथि को अंतिम और निर्णायक माना जाना चाहिए, और किसी अन्य सामग्री पर भरोसा नहीं किया जाना चाहिए। केवल इस तरह की प्रविष्टि के अभाव में, नियम 12(3) एक निगम या नगरपालिका प्राधिकरण या पंचायत द्वारा जारी जन्म प्रमाण पत्र पर भरोसा करता है। फिर भी, यदि ऐसा प्रमाण पत्र उपलब्ध है, तो संबंधित बच्चे की आयु निर्धारित करने के लिए किसी अन्य सामग्री पर विचार नहीं किया जाना चाहिए, क्योंकि उक्त प्रमाण पत्र निर्णायक रूप से बच्चे की आयु निर्धारित करेगा। यह केवल उपरोक्त में से किसी की अनुपस्थिति में है कि नियम 12(3) चिकित्सा राय के आधार पर संबंधित बच्चे की उम्र का निर्धारण करता है।

29. एक आरोपी व्यक्ति जेजे अधिनियम, 2000 के तहत सुरक्षा प्राप्त नहीं कर सकता था, अगर इरादा केवल न्याय को धोखा देना था। **पराग भाटी (किशोर) कानूनी अभिभावक के माध्यम से- मां-रजनी भाटी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** ने चेतावनी दी कि:

"34. इसमें कोई संदेह नहीं है कि यदि किशोर अभियुक्त के पक्ष में एक स्पष्ट और स्पष्ट वाद है कि वह घटना की तारीख को 18 वर्ष से कम उम्र का नाबालिग था और दस्तावेजी सबूत कम से कम प्रथम दृष्टया इसे साबित करते हैं, तो वह किशोर न्याय अधिनियम के तहत इस विशेष संरक्षण का हकदार होगा। **लेकिन जब कोई अभियुक्त गंभीर और जघन्य अपराध करता है और उसके बाद नाबालिग होने की आड़ में वैधानिक आश्रय लेने का प्रयास करता है, तो आरोपी किशोर है या नहीं, यह दर्ज करते समय लापरवाह या लापरवाह दृष्टिकोण की अनुमति नहीं दी जा सकती है क्योंकि अदालतों को न्याय के प्रशासन को सौंपी गई संस्था में आम आदमी के विश्वास की रक्षा करने के उद्देश्य से अपने कर्तव्यों का पालन करने का आदेश दिया गया है।** *(जोर दिया गया)*

35. इस प्रकार किशोर न्याय अधिनियम से जुड़े उदार कानून के सिद्धांत का लाभ केवल ऐसे मामलों पर लागू होगा जिसमें अभियुक्त को उसके अल्पसंख्यक के संबंध में कम से कम प्रथम दृष्टया साक्ष्य के आधार पर किशोर माना जाता है, जो कथित अभियुक्त की उम्र के संबंध में दो विचारों की संभावनाओं का लाभ है, जो गंभीर और गंभीर अपराध में शामिल है और इसे प्रभावी बनाता है। एक सुनियोजित तरीके से निर्दोषता के बजाय उसकी मानसिक परिपक्वता को दर्शाता है, यह दर्शाता है कि कानून के हाथों को चकमा देने या धोखा देने के लिए ढाल की प्रकृति में उसकी नाबालिग होने की दलील को उसके बचाव में आने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

30. **अबूजर हुसैन** (सुप्रा) के अनुपात पर भरोसा करते हुए, **पराग भाटी** (सुप्रा) में यह माना गया था कि विरोधाभासी सबूत आरोपी की उम्र के मुद्दे की जांच करने के लिए पर्याप्त थे:

"36. यह कानून की स्थापित स्थिति है कि यदि मैट्रिक या समकक्ष प्रमाण पत्र उपलब्ध हैं और शुद्धता साबित करने के लिए कोई अन्य सामग्री नहीं है, तो मैट्रिक प्रमाण पत्र में उल्लिखित जन्म तिथि को अभियुक्त की जन्म तिथि के निर्णायक प्रमाण के रूप में माना जाना चाहिए। **हालांकि, अगर आरोपी द्वारा कोई संदेह या विरोधाभासी रुख अपनाया जा रहा है जो जन्म तिथि की शुद्धता पर संदेह पैदा करता है तो जैसा कि इस अदालत ने अबूज़र हुसैन (सुप्रा) में निर्धारित किया है, आरोपी की उम्र के निर्धारण के लिए जांच की अनुमति है जो वर्तमान मामले में किया गया है।** (जोर दिया गया)

31. **अश्विनी कुमार सक्सेना बनाम मध्य प्रदेश राज्य** मामले में सुप्रीम कोर्ट की दो न्यायाधीशों की पीठ द्वारा एक अलग दृष्टिकोण अपनाया गया था, जिसने अदालत के अधिकार क्षेत्र को प्रतिबंधित कर दिया था और जेजे अधिनियम, 2000 के प्रावधानों के मद्देनजर उम्र के निर्धारण में विस्तृत जांच पर रोक लगा दी थी।

32. तथापि**, अश्विनी कुमार सक्सेना** (सुप्रा) के पूर्ववर्ती मूल्य को इन तथ्यों के आलोक में देखा जाना चाहिए। **अबुजर हुसैन उर्फ गुलाम हुसैन बनाम पश्चिम बंगाल राज्य** मामले में उच्चतम न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ की याचिका **अश्विनी कुमार सक्सेना** (सुप्रा) मामले में उच्चतम न्यायालय को नहीं भेजी गई थी। **जबर सिंह** (सुप्रा), एक समन्वय पीठ का फैसला एक अच्छा कानून बना हुआ है। अंत में **संजीव कुमार गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य** और दूसरा मामले में विवाद का एक एकीकृत दृष्टिकोण लिया गया।

33. **संजीव कुमार गुप्ता** (सुप्रा) ने एक उदार दृष्टिकोण अपनाया और **अबूजर हुसैन** (सुप्रा) में होल्डिंग के अनुरूप उम्र निर्धारित करने वाली जांच का दायरा बढ़ाया, लेकिन **अश्विनी कुमार सक्सेना** (सुप्रा) या **जरनैल सिंह** (सुप्रा) में निम्नलिखित स्तर पर विचार की गई अधिक संकुचित जांच का विरोध किया:

15. अबुजर हुसैन उर्फ गुलाम हुसैन (सुप्रा) मामले में उपरोक्त निर्णय 10 अक्टूबर 2012 को सुनाया गया था। यद्यपि अश्विनी कुमार सक्सेना (सुप्रा) मामले में पहले के फैसले का अदालत के समक्ष हवाला नहीं दिया गया था, लेकिन उपरोक्त निष्कर्ष से ऐसा प्रतीत होता है कि तीन न्यायाधीशों की पीठ ने कहा कि स्कूल छोड़ने के प्रमाण पत्र सहित दस्तावेजों की विश्वसनीयता और स्वीकार्यता प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगी और इस तरह का कोई कठोर और तेज़ नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता है। न्यायमूर्ति आरएम लोढ़ा के फैसले से सहमति जताते हुए न्यायमूर्ति टीएस ठाकुर (जैसा कि उस समय विद्वान मुख्य न्यायाधीश थे) ने कहा कि जांच का निर्देश देना आरोपी को किशोर घोषित करने के समान नहीं है। पूर्व में न्यायालय केवल प्रथम दृष्टया निष्कर्ष दर्ज करता है जबकि बाद में साक्ष्य के आधार पर एक घोषणा की जाती है। **इसलिए जांच का निर्देश देने के स्तर पर दृष्टिकोण अधिक उदार होना चाहिए**। (जोर दिया गया)

34. जेजे अधिनियम, 2015 की धारा 94 को निकालने के बाद संजीव कुमार गुप्ता (सुप्रा) ने जेजे अधिनियम, 2015 और जेजे अधिनियम, 2000 के साथ जेजे नियम, 2007 के बीच अंतर पर चर्चा की:

"धारा 94 (2) के खंड (1) में स्कूल से जन्म प्रमाण पत्र और संबंधित परीक्षा बोर्ड से मैट्रिक या समकक्ष प्रमाण पत्र को एक ही श्रेणी में रखा गया है (अर्थात् (i) ऊपर)। उसके अभाव में श्रेणी (ii) में निगम, नगरपालिका प्राधिकरण या पंचायत का जन्म प्रमाण पत्र प्राप्त करने का प्रावधान है। यह केवल (i) और (ii) की अनुपस्थिति में है कि चिकित्सा विश्लेषण के माध्यम से आयु निर्धारण प्रदान किया जाता है। धारा 94 (2) (ए) (आई) उन प्रावधानों पर एक महत्वपूर्ण परिवर्तन को इंगित करती है जो 2000 के अधिनियम के तहत बनाए गए 2007 के नियमों के नियम 12 (3) (ए) में निहित थे। नियम 12 (3) (ए) (आई) के तहत मैट्रिक या समकक्ष प्रमाण पत्र को वरीयता दी गई थी और प्रमाण पत्र उपलब्ध नहीं होने की स्थिति में ही स्कूल से जन्म प्रमाण पत्र प्राप्त किया जा सकता था। धारा 94 (2) (आई) में स्कूल से जन्म तिथि प्रमाण पत्र के साथ-साथ मैट्रिक या समकक्ष प्रमाण पत्र दोनों को एक ही श्रेणी में रखा गया है।

35. इसी तरह जेजे अधिनियम, 2015 की धारा 94 के तहत आयु निर्धारण जांच के बढ़े हुए दायरे को सुप्रीम कोर्ट द्वारा **राम विजय सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य** मामले में दोहराया गया था।

"16. उक्त तथ्य के अलावा, अपीलकर्ता द्वारा घटना की तारीख से पहले शस्त्र लाइसेंस प्राप्त करने के लिए स्वयं एक आवेदन प्रस्तुत किया गया है। इस तरह के आवेदन में, उन्होंने अपनी जन्म तिथि 30.12.1961 दी है, जिससे वह घटना की तारीख यानी 20.7.1982 को 21 वर्ष के हो जाएंगे। **न्यायालय को आयु निर्धारित करने के लिए किसी अन्य प्रासंगिक और भरोसेमंद सामग्री पर विचार करने से नहीं रोका जाता है क्योंकि अधिनियम की धारा 94 की उप-धारा (2) में उल्लिखित सभी तीन घटनाएं या तो उपलब्ध नहीं हैं या विश्वसनीय और भरोसेमंद नहीं पाई जाती हैं।** *चूंकि घटना की तारीख से बहुत पहले अपीलकर्ता द्वारा हस्ताक्षरित एक दस्तावेज है, इसलिए, हमारी राय है कि अपीलकर्ता को घटना की तारीख पर किशोर नहीं माना जा सकता है क्योंकि शस्त्र लाइसेंस प्राप्त करने के लिए प्रस्तुत उसके आवेदन के अनुसार उसकी उम्र 21 वर्ष से अधिक थी। (जोर दिया गया)*

36. हाल ही में जेजे अधिनियम, 2015 के तहत आयु के निर्धारण के लिए जांच के पैरामीटर **ऋषिपाल सिंह सोलंकी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** में सुप्रीम कोर्ट के समक्ष विचार के लिए उठे।

37. ऋषिपाल सिंह सोलंकी (सुप्रा) ने पहली बार जेजे अधिनियम, 2015 और जेजे नियम, 2007 की विपरीत विशेषताओं पर ध्यान दिया:

"29. दो अधिनियमों के तहत प्रक्रिया में अंतर को निम्नानुसार समझा जा सकता है:

"29.1. जेजे अधिनियम, 2015 के अनुसार, धारा 94 (ए) और (बी) की उप-धारा (2) में

उल्लिखित अपेक्षित दस्तावेजों के अभाव में, उक्त अधिनियम की धारा 94 के अनुसार समिति या जेजे बोर्ड के आदेश पर आयोजित किए जाने वाले ओसिफिकेशन टेस्ट या किसी अन्य चिकित्सा आयु संबंधी परीक्षण द्वारा आयु का निर्धारण करने का प्रावधान है; जबकि, जेजे नियम, 2007 के नियम 12 के तहत, प्रासंगिक दस्तावेजों के अभाव में, एक विधिवत गठित मेडिकल बोर्ड से एक चिकित्सा राय मांगी जानी थी जो किशोर या बच्चे की उम्र की घोषणा करेगा।

29.2. साक्ष्य के रूप में प्रदान किए जाने वाले दस्तावेजों के संबंध में, जेजे निय*म, 2007 के नियम 12 के तहत जो प्रदान किया गया था, उसे जेजे अधिनियम, 2015 की धारा 94 की उप-धारा 2 के तहत एक मूल प्रावधान के रूप में प्रदान किया गया है।*

29.3. किशोर न्याय अधिनियम, 2000 की धारा 49 के तहत, जहां एक सक्षम प्राधिकारी को यह प्रतीत होता है कि उसके समक्ष लाया गया व्यक्ति किशोर या बच्चा है, तो ऐसा प्राधिकारी, जांच करने और आवश्यक साक्ष्य लेने के बाद, ऐसे व्यक्ति के नाबालिग होने के बारे में एक निष्कर्ष दर्ज कर सकता है और ऐसे व्यक्ति की आयु लगभग जितना हो सके बता सकता है। उप-खंड

धारा 49 की धारा (2) में कहा गया है कि किसी सक्षम प्राधिकारी का कोई भी आदेश केवल किसी अनुवर्ती प्रमाण के आधार पर अमान्य नहीं माना जाएगा कि जिस व्यक्ति के संबंध में आदेश दिया गया था, वह किशोर नहीं है और सक्षम प्राधिकारी द्वारा दर्ज की गई आयु उसके समक्ष लाए गए व्यक्ति की आयु है, अधिनियम के प्रयोजन के लिए, उस व्यक्ति की वास्तविक आयु मानी जाए। लेकिन, जेजे अधिनियम, 2015 की धारा 94 के तहत, जो उम्र के अनुमान और निर्धारण से भी संबंधित है, समिति या जेजे बोर्ड को बच्चे की उम्र बताते हुए इस तरह के अवलोकन को रिकॉर्ड करना होगा और उम्र की पुष्टि की प्रतीक्षा किए बिना जांच के साथ आगे बढ़ना होगा। यह केवल तभी होता है जब समिति या जेजे बोर्ड के पास इस बारे में संदेह के लिए उचित आधार होता है कि उसके समक्ष लाया गया व्यक्ति बच्चा है या नहीं, यह सबूत मांगकर आयु निर्धारण की प्रक्रिया शुरू कर सकता है।

31. धारा 94 की उपधारा (3) में कहा गया है कि समिति या जेजे बोर्ड द्वारा दर्ज की गई आयु, अधिनियम के प्रयोजन के लिए, उसके समक्ष लाए गए व्यक्तियों की आयु मानी जाएगी। इस प्रकार, दर्ज की गई आयु के निर्धारण के साथ एक अंतिमता जुड़ी हुई है और यह केवल ऐसे मामले में है जहां संदेह के लिए उचित आधार मौजूद हैं कि समिति या बोर्ड के समक्ष लाया गया व्यक्ति बच्चा है या नहीं, सबूत मांगकर आयु निर्धारण की प्रक्रिया शुरू की जानी चाहिए।

38. इसके बाद, ऋषिपाल सिंह (सुप्रा) में मामलों के विश्लेषण पर इस प्रकार कानून का सारांश दिया गया है:

"33.2.3. जब जेजे अधिनियम, 2015 की धारा 94 के तहत जेजे बोर्ड के समक्ष नाबालिग होने का दावा करने वाला आवेदन किया जाता है, जब अपराध के कथित होने से संबंधित वाद अदालत के समक्ष लंबित है, तो जेजे अधिनियम, 2015 की धारा 94

के तहत विचार की गई प्रक्रिया लागू होगी। उक्त प्रावधान के तहत यदि जेजे बोर्ड के पास इस बारे में संदेह के लिए उचित आधार है कि उसके समक्ष लाया गया व्यक्ति बच्चा है या नहीं, तो बोर्ड साक्ष्य मांगकर आयु निर्धारण की प्रक्रिया शुरू करेगा और जेजे बोर्ड द्वारा दर्ज की गई आयु उसके समक्ष लाए गए व्यक्ति की आयु होगी, जेजे अधिनियम, 2015 के उद्देश्य के लिए, उस व्यक्ति की सही उम्र मानी जाए। इसलिए जेजे बोर्ड के समक्ष ऐसी कार्यवाही में आवश्यक सबूत की डिग्री, जब संबंधित आपराधिक अदालत के समक्ष मुकदमे के दौरान नाबालिग होने के दावे के लिए एक आवेदन दायर किया जाता है, उस अदालत द्वारा की गई जांच की तुलना में अधिक होता है जिसके समक्ष अपराध होने के संबंध में वाद लंबित है (जेजे अधिनियम की धारा 9 के तहत, 2015).

33.3. जब नाबालिग होने का दावा किया जाता है, तो बोझ उस व्यक्ति पर होता है जो प्रारंभिक बोझ का निर्वहन करने के लिए न्यायालय को संतुष्ट करने का दावा करता है। हालांकि, जेजे अधिनियम, 2000 के तहत बनाए गए जेजे नियम 2007 के नियम 12 (3) (ए) (आई), (ii), और (iii) या जेजे अधिनियम, 2015 की धारा 94 की उप-धारा (2) में उल्लिखित दस्तावेज प्रथम दृष्टया न्यायालय की संतुष्टि के लिए पर्याप्त होंगे। उपर्युक्त दस्तावेजों के आधार पर नाबालिग होने की धारणा बनाई जा सकती है।

33.4. उक्त अनुमान हालांकि नाबालिग होने की उम्र का निर्णायक प्रमाण नहीं है और इसे विपरीत पक्ष द्वारा दिए गए विरोधाभासी सबूतों द्वारा खारिज किया जा सकता है।

33.5. किसी न्यायालय द्वारा जांच की प्रक्रिया जेजे बोर्ड के समक्ष मांगे गए व्यक्ति की आयु को किशोर घोषित करने के समान नहीं है, जब वाद संबंधित आपराधिक न्यायालय के समक्ष विचारण के लिए लंबित हो। जांच के मामले में, अदालत प्रथम दृष्टया निष्कर्ष दर्ज करती है, लेकिन जब अधिनियम 2015 की धारा 94 की उप-धारा (2) के अनुसार आयु का निर्धारण होता है, तो साक्ष्य के आधार पर एक घोषणा की जाती है। साथ ही जेजे बोर्ड द्वारा दर्ज की गई आयु को उसके समक्ष लाए गए व्यक्ति की सही आयु माना जाएगा। इस प्रकार, एक जांच में सबूत का मानक एक ऐसी आवश्यक कार्यवाही से अलग है जहां किसी व्यक्ति की उम्र का निर्धारण और घोषणा सबूतों की जांच के आधार पर की जानी है और केवल इस तरह की स्वीकृति के योग्य होने पर ही स्वीकार किया जाना है।

33.6. किसी व्यक्ति की आयु निर्धारित करने के लिए एक अमूर्त सूत्र निर्धारित करना न तो संभव है और न ही वांछनीय है। यह रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री के आधार पर और प्रत्येक मामले में पक्षों द्वारा जोड़े गए सबूतों की सराहना पर होना चाहिए।

33.7. इस न्यायालय ने कहा है कि जब अभियुक्त की ओर से इस दलील के समर्थन में साक्ष्य प्रस्तुत किया जाता है कि वह

किशोर था तो अति-तकनीकी दृष्टिकोण नहीं अपनाया जाना चाहिए।

33.8. यदि एक ही साक्ष्य पर दो विचार संभव हैं, तो अदालत को सीमावर्ती मामलों में आरोपी को किशोर ठहराने के पक्ष में झुकना चाहिए। यह सुनिश्चित करने के लिए है कि जेजे अधिनियम, 2015 का लाभ कानून के उल्लंघन में किशोर पर लागू किया जाए। साथ ही, न्यायालय को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि गंभीर अपराध करने के बाद सजा से बचने के लिए व्यक्तियों द्वारा जेजे अधिनियम, 2015 का दुरुपयोग न किया जाए।

33.9. जब आयु का निर्धारण स्कूल रिकॉर्ड जैसे साक्ष्य के आधार पर किया जाता है, तो यह आवश्यक है कि भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 35 के अनुसार उस पर विचार किया जाना चाहिए, क्योंकि आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में बनाए गए किसी भी सार्वजनिक या आधिकारिक दस्तावेज में निजी दस्तावेजों की तुलना में अधिक विश्वसनीयता होगी।

33.10. कोई भी दस्तावेज जो सार्वजनिक दस्तावेजों के अनुरूप है, जैसे कि मैट्रिक प्रमाण पत्र, न्यायालय या जेजे बोर्ड द्वारा स्वीकार किया जा सकता है, बशर्ते कि ऐसा सार्वजनिक दस्तावेज भारतीय साक्ष्य अधिनियम के प्रावधानों अर्थात धारा 35 और अन्य प्रावधानों के अनुसार विश्वसनीय और प्रामाणिक हो।

33.11. ओसिफिकेशन टेस्ट आयु निर्धारण के लिए एकमात्र मानदंड नहीं हो सकता है और किसी व्यक्ति की आयु के बारे में एक यांत्रिक दृष्टिकोण केवल रेडियोलॉजिकल परीक्षा द्वारा चिकित्सा राय के आधार पर नहीं अपनाया जा सकता है। इस तरह के साक्ष्य निर्णायक सबूत नहीं हैं, बल्कि जेजे अधिनियम, 2015 की धारा 94 (2) में उल्लिखित दस्तावेजों के अभाव में विचार करने के लिए केवल एक बहुत ही उपयोगी मार्गदर्शक कारक है।

39. सामाजिक वास्तविकताओं और कई अवसरों पर विश्वसनीय आयु संबंधी दस्तावेजों की अनुपस्थिति को मुकर्रब और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में रेखांकित किया गया था।

10. यह पता लगाने के लिए आयु निर्धारण आवश्यक है कि बच्चा होने का दावा करने वाला व्यक्ति किशोर न्याय अधिनियम के आवेदन के लिए निर्धारित कट-ऑफ आयु से नीचे है या नहीं। आयु निर्धारण का मुद्दा अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि किशोर न्याय अधिनियम के प्रावधानों के अधीन बहुत कम बच्चों के पास जन्म प्रमाण पत्र है। चूंकि कानून के साथ संघर्ष में किशोर के पास आमतौर पर कोई दस्तावेजी सबूत नहीं होता है, इसलिए आयु निर्धारण आसानी से पता नहीं लगाया जा सकता है, खासकर सीमावर्ती मामलों में। चिकित्सा परीक्षा दोनों तरफ लगभग दो साल का अंतर छोड़ देती है, भले ही कई जोड़ों का ओसिफिकेशन परीक्षण किया जाए।

11. बार-बार, सवाल उठते हैं: जन्म प्रमाण पत्र के अभाव में आयु का निर्धारण कैसे करें? क्या दस्तावेजी साक्ष्य को चिकित्सा साक्ष्य पर प्राथमिकता दी जानी चाहिए? चिकित्सा साक्ष्य का उपयोग कैसे करें? क्या सबूत का मानक, उचित संदेह से परे एक

सबूत है या क्या उम्र सबूतों की प्रधानता से निर्धारित की जा सकती है? जिस व्यक्ति की आयु का ठीक-ठीक निर्धारण नहीं किया जा सकता है, क्या उसे संदेह का लाभ दिया जाना चाहिए और उसके साथ एक बच्चे की तरह व्यवहार किया जाना चाहिए? संबंधित प्राधिकारी द्वारा जन्म के तुरंत बाद जारी किए गए जन्म प्रमाण पत्र के अभाव में, आयु का निर्धारण एक बहुत ही कठिन कार्य हो जाता है जो न्यायाधीशों को साक्ष्य चुनने के लिए बहुत अधिक विवेक प्रदान करता है। अलग-अलग मामलों में आरोपी की उम्र निर्धारित करने के लिए अलग-अलग सबूतों का इस्तेमाल किया गया है।

22. दरगा राम उर्फ गुनगा के मामले में उपरोक्त निर्णय को पढ़ने से पता चलता है कि अदालतों को इस तथ्य से अवगत होने की आवश्यकता है कि मूल और वैध दस्तावेजी प्रमाण के अभाव में संबंधित व्यक्तियों की आयु निर्धारण निश्चित रूप से निर्धारित नहीं किया जा सकता है और हमेशा एक संभावना होगी कि संबंधित व्यक्ति की आयु दो साल से अधिक या कम हो सकती है। यहां तक कि मेडिकल राय की उपस्थिति में, अदालत ने आरोपी के नाबालिग होने की ओर झुकाव दिखाया। हालांकि, यह ध्यान रखना उचित है कि दरगा राम उर्फ गुनगा के मामले में इस तरह का दृष्टिकोण उस विशेष मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए लिया गया था और उक्त दृष्टिकोण को सामान्य बनाने के किसी भी प्रयास को उचित रूप से स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

40. स्पष्ट रूप से अदालतें जेजे अधिनियम, 2015 की धारा 94 में उल्लिखित दस्तावेजों से परे साक्ष्य पेश करने का विरोध नहीं करती हैं ताकि सच्चाई तक पहुंचा जा सके और किसी मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को न्याय प्रदान किया जा सके।

VI. दो अनुमान:

एक) जेजे अधिनियम, 2015 की धारा 94 के तहत आयु से संबंधित दस्तावेजों की शुद्धता की धारणा:

दो) POCSO अधिनियम, 2012 की धारा 29 के तहत जन्म का अनुमान:

41. इस विवाद को दूसरे नजरिए से भी देखा जाना चाहिए। जेजे अधिनियम, 2015 की धारा 94 दस्तावेजों का एक पदानुक्रम बनाती है जो विश्वसनीयता की डिग्री से मेल खाती है। पढ़ने के बाद, प्रावधान में यह परिकल्पना की गई है कि जहां उक्त पेकिंग ऑर्डर में उच्च दस्तावेज उपलब्ध है, वैधानिक वरीयता में कम दस्तावेज साक्ष्य के रूप में प्राप्त नहीं किए जाएंगे।

42. साक्ष्य प्राप्त करने पर इस तरह का प्रतिबंध तथ्यों के अनुमान की अवधारणा के आधार पर लगाया गया है। जेजे अधिनियम, 2015 के संदर्भ में, इसका मतलब है कि जब जेजे अधिनियम, 2015 की धारा 94 के अधिमान्य पैमाने पर उच्च दस्तावेज प्रस्तुत किया जाता है, तो इसे पीड़ित की उम्र स्थापित करने के लिए सही और पर्याप्त माना जाता है। इस प्रकार किसी भी अन्य साक्ष्य की आवश्यकता को समाप्त कर दिया जाता है और आगे के सबूतों के स्वागत पर रोक लगा दी जाती है।

43. वर्तमान विवाद से संबंधित दूसरा अनुमान पॉक्सो अधिनियम, 2012 की धारा 29 और 30 में निहित है। प्रावधान निम्नानुसार है:

"29. कुछ अपराधों के बारे में धारणा: जहां किसी व्यक्ति पर इस अधिनियम की धारा 3, 5, 7 और धारा 9 के तहत कोई अपराध करने या उकसाने या प्रयास करने के लिए मुकदमा चलाया जाता है, विशेष न्यायालय यह मान लेगा कि ऐसे व्यक्ति ने अपराध किया है या उकसाया है या करने का प्रयास किया है, जैसा कि वाद हो सकता है जब तक कि विपरीत साबित न हो।

30. दोषी मानसिक स्थिति का अनुमान। (1) इस अधिनियम के अधीन किसी अपराध के लिए अभियोजन में, जिसमें अभियुक्त की ओर से गैर-इरादतन मानसिक स्थिति की आवश्यकता होती है, विशेष न्यायालय ऐसी मानसिक स्थिति के अस्तित्व का अनुमान लगाएगा लेकिन अभियुक्त के लिए यह इस तथ्य को साबित करने का बचाव होगा कि उस अभियोजन में अपराध के रूप में आरोपित कृत्य के संबंध में उसकी ऐसी कोई मानसिक स्थिति नहीं थी।

(2) इस धारा के प्रयोजनों के लिए, एक तथ्य को केवल तभी साबित किया जा सकता है जब विशेष न्यायालय यह मानता है कि यह उचित संदेह से परे मौजूद है, न कि केवल तब जब इसका अस्तित्व संभावना की प्रधानता से स्थापित होता है।

44. साक्ष्य कानून में अनुमानों की अवधारणा विधायिका द्वारा कुछ तथ्यों के प्रमाण को समाप्त करने के लिए लागू की जाती है। चर्चा को न्यायिक उदाहरणों से लाभ होगा जो अनुमानों के कानून के पहले सिद्धांतों और विभिन्न विधियों के संदर्भ में इसकी प्रयोज्यता का विश्लेषण करते हैं।

45. एनडीपीएस अधिनियम में आरोपी की गैर-इरादतन मानसिक स्थिति के संबंध में अनुमानों को ध्यान में रखते हुए, सुप्रीम कोर्ट ने **नूर आगा बनाम पंजाब राज्य** में निष्पक्ष सुनवाई के मानदंडों और एक अभियुक्त के अधिकारों की रक्षा करते हुए कहा:

57. यह भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि सतही तौर पर एक वाद बदसूरत रूप में दिखाई दे सकता है और इस प्रकार, प्रथम दृष्टया, किसी भी अदालत की अंतरात्मा को हिला सकता है, लेकिन यह अच्छी तरह से स्थापित है कि संदेह, चाहे कितना भी ऊंचा क्यों न हो, किसी भी परिस्थिति में कानूनी साक्ष्य का विकल्प नहीं माना जा सकता है।

58. अधिनियम की धारा 35 और 54, निस्संदेह, अभियुक्त की ओर से गैर-इरादतन मानसिक स्थिति के संबंध में अनुमान लगाती हैं और अभियुक्त पर इस संबंध में सबूत का बोझ भी डालती हैं; लेकिन इस प्रावधान का अवलोकन करने से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि अभियुक्त के मुकदमे में अनुमान केवल तभी काम करेगा जब उसमें निहित परिस्थितियां पूरी तरह से संतुष्ट हों। अभियोजन पक्ष पर एक प्रारंभिक बोझ मौजूद है और जब वह संतुष्ट हो जाता है, तभी कानूनी बोझ बदल जाएगा। फिर भी, अभियुक्त को अपनी बेगुनाही साबित करने के लिए आवश्यक सबूत का मानक अभियोजन पक्ष जितना ऊंचा नहीं है। जबकि अभियोजन पक्ष पर आरोपी के अपराध को

साबित करने के लिए आवश्यक सबूत का मानक "सभी उचित संदेह से परे" है, लेकिन यह अभियुक्त पर "संभावना की प्रधानता" है। यदि अभियोजन पक्ष अधिनियम की धारा 35 की कठोरता को आकर्षित करने के लिए मूलभूत तथ्यों को साबित करने में विफल रहता है, तो अभियुक्त द्वारा प्रतिबंधित पदार्थ रखने वाले अधिनियम को स्थापित नहीं कहा जा सकता है। (जोर दिया गया)

59. धारा की अपेक्षाओं को इसके दायरे में लाने की दृष्टि से अधिनियम की धारा 54 के अनुसार, प्रतिबंधित पदार्थ रखने का तत्व आवश्यक था ताकि आरोपी पर बोझ डाला जा सके। प्रावधान सामान्य नियम के अपवाद होने के कारण, इसकी व्यापकता लागू रहेगी, अर्थात्, कब्जे के तत्व को उचित संदेह से परे साबित करना होगा।

60. अभियुक्त पर बोझ कानूनी बोझ है या साक्ष्य का बोझ है, यह विचाराधीन कानून पर निर्भर करेगा। उक्त प्रश्न का निर्धारण करते समय इसके अभिप्राय और उद्देश्य को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए। इसे आनुपातिकता के सिद्धांत की परीक्षा पास करनी चाहिए। कुछ मामलों में अभियोजन पक्ष के सामने आने वाली कठिनाइयों को इस राय पर पहुंचने के लिए पर्याप्त माना जा सकता है कि आरोपी पर बोझ एक साक्ष्य बोझ है और केवल कानूनी बोझ नहीं है। सुनवाई निष्पक्ष होनी चाहिए। आरोपी को प्रभावी ढंग से अपना बचाव करने के अवसर प्रदान किए जाने चाहिए। (जोर दिया गया)

46. तोफान सिंह बनाम तमिलनाडु राज्य मामले में सुप्रीम कोर्ट द्वारा दिए गए तीन न्यायाधीशों के फैसले में नूर आगा (सुप्रा) के फैसले की बहुमत से पुष्टि की गई थी।

47. पॉक्सो अधिनियम, 2012 की धारा 29 के तहत गैर-इरादतन मानसिक स्थिति की धारणा को अब हटा दिया जाएगा। चर्चा बिहार राज्य बनाम राजबल्लभ प्रसाद उर्फ राजबल्लभ प्रसाद यादव में की गई संक्षिप्त टिप्पणियों के साथ शुरू होगी:

"इसके अलावा, कानून का एक सामान्य बयान देते समय कि आरोपी निर्दोष है, दोषी साबित होने तक, पॉक्सो अधिनियम की धारा 29 के प्रावधानों को ध्यान में नहीं रखा गया है, जो निम्नानुसार है:

"29. कतिपय अपराधों के बारे में अनुमान - जहां किसी व्यक्ति पर इस अधिनियम की धारा 3, 5, 7 और धारा 9 के तहत कोई अपराध करने या उकसाने या प्रयास करने के लिए मुकदमा चलाया जाता है, विशेष न्यायालय यह मानेगा कि ऐसे व्यक्ति ने अपराध किया है या उकसाया है या करने का प्रयास किया है, जैसा कि वाद हो जब तक कि विपरीत साबित न हो जाए।

48. किसी अभियुक्त के खिलाफ गैर-इरादतन इरादे की वैधानिक धारणा को लागू करने के लिए शर्तों की गणना जस्टिस जॉयमाल्या बागची द्वारा साहिद हुसैन बिस्वास बनाम जे. पश्चिम बंगाल राज्य में की गई थी,

"23. परिभाषाओं के आलोक में वैधानिक प्रावधान को संयुक्त रूप से पढ़ने से पता चलेगा कि पॉक्सो अधिनियम के तहत अभियोजन में एक अभियुक्त को 'विपरीत' साबित करना है, अर्थात, उसे यह साबित करना होगा कि उसने अपराध नहीं किया है

और वह निर्दोष है। यह कठोर नियम है कि नकारात्मक साबित नहीं किया जा सकता है [देखें सैत ताराजी खिमचंद बनाम येलामार्ती सत्यम, (1972) 4 एससीसी 562, पैरा - 15]। एक विपरीत तथ्य को साबित करने के लिए, जिस तथ्य के विपरीत स्थापित करने की मांग की जाती है, उसे पहले प्रस्तावित किया जाना चाहिए। इसलिए, यह एक आवश्यक शर्त है कि अभियोजन पक्ष के मामले के मूलभूत तथ्यों को उपरोक्त वैधानिक धारणा शुरू करने से पहले प्रमुख साक्ष्य द्वारा स्थापित किया जाना चाहिए ताकि इसके विपरीत साबित करने के लिए आरोपी पर जिम्मेदारी डाल दी जाए। (जोर दिया गया)

24. एक बार कानूनी रूप से स्वीकार्य साक्ष्य प्रस्तुत करके अभियोजन पक्ष के मामले की नींव रख दी जाती है, तो अभियुक्त के लिए यह अनिवार्य हो जाता है कि वह रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों से यह स्थापित करे कि उसने अपराध नहीं किया है या किसी विशेष मामले की परिस्थितियों से यह दिखाना होगा कि एक साधारण विवेक वाला व्यक्ति संभवतः अपने पक्ष में निर्दोषता का निष्कर्ष निकालेगा। आरोपी बचाव पक्ष के सबूतों का नेतृत्व करके या प्रभावी जिरह के माध्यम से अभियोजन पक्ष के गवाहों को बदनाम करके या मामले की विशेष विशेषताओं के विश्लेषण द्वारा उनके बयान में स्पष्ट बेतुकेपन या अंतर्निहित कमजोरियों को उजागर करके इस तरह के लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं। हालांकि, उपरोक्त वैधानिक अनुमान का मतलब यह नहीं माना जा सकता है कि अभियोजन पक्ष के संस्करण को हर मामले में सुसमाचार सत्य के रूप में माना जाना चाहिए। अनुमान किसी विशेष मामले की विशेष विशेषताओं के प्रकाश में रिकॉर्ड पर साक्ष्य का विश्लेषण करने के लिए न्यायालय के आवश्यक कर्तव्य को दूर नहीं करता है, उदाहरण के लिए। अभियोजन पक्ष के बयान में स्पष्ट बेतुकी या अंतर्निहित दुर्बलताएं या अभियुक्त और पीड़ित के बीच गहरी दुश्मनी का अस्तित्व अभियोजन पक्ष के मामले में झूठ के एक अनूठा निष्कर्ष को जन्म देता है, जबकि यह निर्धारित करता है कि क्या आरोपी ने अपनी जिम्मेदारी का निर्वहन किया है और किसी मामले के दिए गए तथ्यों में अपनी बेगुनाही स्थापित की है। अन्यथा यह कहना अदालत को मजबूर करेगा कि वह अभियोजन पक्ष के महज एक कथन को यांत्रिक रूप से स्वीकार करे और हर अभियोजन पक्ष को न्यायिक मंजूरी की मुहर दे, चाहे वह कितना भी बेतुका या स्वाभाविक रूप से असंभव क्यों न हो। (जोर दिया गया)

49. नवीन धनीराम बरईये मामले में मनीष पिटाले, जे. द्वारा दिए गए निर्णय का आधार यह है कि कोई भी अनुमान निरपेक्ष नहीं है, और प्रत्येक अनुमान का खंडन किया जा सकता है। महाराष्ट्र राज्य, पॉक्सो अधिनियम की धारा 29 के तहत गैर-इरादतन इरादे की धारणा के दायरे की व्याख्या करते हुए:

"उपरोक्त उद्धृत प्रावधान के अवलोकन से पता चलता है कि इसके विपरीत साबित करना आरोपी का काम है और यदि वह ऐसा करने में विफल रहता है, तो अनुमान उसके खिलाफ काम करेगा, जिससे उसे पॉक्सो

अधिनियम के प्रावधानों के तहत दोषी ठहराया जा सकता है। यह विवादित नहीं हो सकता है कि कोई भी अनुमान पूर्ण नहीं है और हर अनुमान खंडन योग्य है। यह स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि पॉक्सो अधिनियम की धारा 29 के तहत अनुमान पूर्ण है। यह तभी लागू होगा जब अभियोजन पक्ष पहले ऐसे तथ्यों को स्थापित करने में सक्षम होगा जो पॉक्सो अधिनियम की धारा 29 के तहत धारणा के संचालन के लिए आधार बनाएंगे। अन्यथा, अभियोजन पक्ष को केवल उक्त अधिनियम के प्रावधानों के तहत आरोपी के खिलाफ आरोप पत्र दायर करना होगा और फिर दावा करना होगा कि अभियोजन पक्ष के गवाहों के साक्ष्य को सुसमाचार सत्य के रूप में स्वीकार करना होगा और इसके अलावा इसके विपरीत साबित करने का पूरा बोझ आरोपी पर होगा। पॉक्सो अधिनियम की धारा 29 के तहत कानून की ऐसी स्थिति या धारणा की व्याख्या को स्वीकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह स्पष्ट रूप से संवैधानिक जनादेश का उल्लंघन करेगा कि किसी भी व्यक्ति को कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अलावा स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जाएगा। (जोर दिया गया)

24. जहां तक पॉक्सो अधिनियम की धारा 29 के तहत अनुमान का संबंध है, न्यायालयों के उपर्युक्त उद्धृत विचार कानून की स्थिति को स्पष्ट करते हैं। यह स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि प्रावधान में कहा गया है कि अदालत यह मान लेगी कि आरोपी ने वह अपराध किया है जिसके लिए उस पर पॉक्सो अधिनियम के तहत आरोप लगाया गया है, जब तक कि इसके विपरीत साबित नहीं होता है, अनुमान केवल अभियोजन पक्ष द्वारा आरोपी के खिलाफ मूलभूत तथ्यों को साबित करने पर काम करेगा, उचित संदेह से परे। जब तक अभियोजन पक्ष पॉक्सो अधिनियम के तहत आरोपी के खिलाफ लगाए गए आरोपों के संदर्भ में मूलभूत तथ्यों को साबित करने में सक्षम नहीं होता है, तब तक उक्त अधिनियम की धारा 29 के तहत अनुमान आरोपी के खिलाफ काम नहीं करेगा। यहां तक कि अगर अभियोजन पक्ष ऐसे तथ्यों को स्थापित करता है और आरोपी के खिलाफ अनुमान लगाया जाता है, तो वह या तो क्रॉस-एग्जामिनेशन के माध्यम से अभियोजन पक्ष के गवाहों को बदनाम करके इसका खंडन कर सकता है, यह दर्शाता है कि अभियोजन का वाद असंभव या बेतुका है या आरोपी अपने बचाव को साबित करने के लिए सबूत दे सकता है, ताकि धारणा का खंडन किया जा सके। किसी भी मामले में, आरोपी को संभावना की अधिकता की कसौटी पर धारणा का खंडन करने की आवश्यकता होती है। (जोर दिया गया)

50. केरल उच्च न्यायालय ने जॉय **वी.एस. बनाम केरल राज्य** मामले में **राजबल्लभ प्रसाद** (सुप्रा) की पृष्ठभूमि में पॉक्सो अधिनियम, 2012 की धारा 29 के तहत वैधानिक धारणा की सीमाओं पर प्रकाश डाला:

"10. यह अदालत अधिनियम की धारा 29 से अनजान नहीं है, जिसमें एक विधायी जनादेश है कि अदालत अभियुक्त द्वारा

अपराधों के होने का अनुमान लगाएगी जब तक कि इसके विपरीत साबित न हो। अधिनियम की धारा 29 में कहा गया है कि जहां किसी व्यक्ति पर अधिनियम की धारा 3, 5, 7 और 9 के तहत कोई अपराध करने या उकसाने या प्रयास करने के लिए मुकदमा चलाया जाता है, विशेष न्यायालय यह मान लेगा कि ऐसे व्यक्ति ने अपराध किया है या उकसाया है या करने का प्रयास किया है, जैसा भी वाद हो, जब तक कि इसके विपरीत साबित न हो। न्यायालय अधिनियम के तहत उपरोक्त अपराधों के आरोपी व्यक्ति द्वारा दायर जमानत के आवेदन से निपटते समय अधिनियम की धारा 29 के तहत धारणा को ध्यान में रखेगा (देखें: बिहार राज्य बनाम राजवल्लव प्रसाद, (2017) 2 एससीसी 178: एआईआर 2017 एससी 630)।

*11. **हालांकि, अधिनियम की धारा 29 के तहत वैधानिक धारणा का मतलब यह नहीं है कि अभियोजन पक्ष के संस्करण को हर मामले में सुसमाचार सत्य के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। अनुमान का मतलब यह नहीं है कि अदालत किसी विशेष मामले की विशेष विशेषताओं को ध्यान में नहीं रख सकती है**। अभियोजन पक्ष के संस्करण में पेटेंट बेतुकेपन या अंतर्निहित दुर्बलताओं या असंभावनाओं से अभियोजन पक्ष के मामले में झूठ का एक अनूठा अनुमान लगाया जा सकता है। यह अनुमान तभी लागू होगा जब अभियोजन पक्ष उन तथ्यों को रिकॉर्ड पर लाने में सक्षम होगा जो अनुमान की नींव रखेंगे। अन्यथा, अभियोजन पक्ष को केवल इतना करना होगा कि वह आरोपी के खिलाफ कुछ आरोप लगाए और दावा करे कि उसके द्वारा पेश किया गया वाद सच है। **अदालतों को यह सुनिश्चित करने के लिए सतर्क रहना चाहिए कि आवश्यक तथ्यों को ध्यान में रखे बिना अनुमान को लागू करने से कोई अन्याय नहीं होगा। अधिनियम की धारा 29 के तहत अनुमान पूर्ण नहीं है। वैधानिक अनुमान तभी सक्रिय या ट्रिगर होगा जब अभियोजन पक्ष आवश्यक बुनियादी तथ्यों को साबित करेगा। यदि अभियुक्त अभियोजन पक्ष के मामले की सत्यता पर गंभीर संदेह पैदा करने में सक्षम है या अभियुक्त रिकॉर्ड पर ऐसी सामग्री लाता है जो अभियोजन पक्ष के बयान को अत्यधिक असंभव बना देगा, तो धारणा कमजोर हो जाएगी।** जैसा कि उच्चतम न्यायालय ने सिद्धराम सतलिंगप्पा म्हात्रे बनाम महाराष्ट्र राज्य में कहा था! अभियोजन में शिथिलता पर हमेशा विचार किया जाना चाहिए और यदि अभियोजन पक्ष की वास्तविकता के बारे में कुछ संदेह होता है, तो सामान्य घटनाओं में, अभियुक्त अग्रिम जमानत के आदेश का हकदार होता है। अग्रिम जमानत देने या अस्वीकार करने के लिए कोई लचीला दिशानिर्देश या स्ट्रेटजैकेट फॉर्मूला प्रदान नहीं किया जा सकता है। यह आवश्यक रूप से विधायी इरादे के अनुरूप प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर होना चाहिए। (जोर दिया गया)*

51. दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा पॉक्सो अधिनियम, 2012 की धारा 29 के दायरे और धर्मंदर सिंह बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली सरकार) में इसकी

प्रयोज्यता के चरण का निर्धारण करते समय निम्नलिखित प्रश्न तैयार किए गए थे

"41... iii। धारा 29 में उल्लिखित 'अपराध की धारणा' कब और किस स्तर पर लागू होती है? और iv. क्या यह अनुमान केवल मुकदमे के चरण में लागू होता है या यह तब भी लागू होता है जब जमानत याचिका पर विचार किया जा रहा हो? क्या धारा 29 की प्रयोज्यता या कठोरता इस बात पर निर्भर करती है कि आरोप तय होने से पहले या बाद में जमानत याचिका पर विचार किया जा रहा है या नहीं?

52. भंभानी, जे. में धर्मंदर सिंह (सुप्रा) ने कानून को निम्नलिखित तरीके से अभिव्यक्त किया:

"50. उच्चतम न्यायालय के निर्णय और उपरोक्त मामलों में विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा लिए गए विचारों से, संक्षेप में, स्थिति यह है कि एक धारणा का खंडन करने के लिए, सबसे पहले, अनुमानित प्रस्ताव को प्रासंगिक और विश्वसनीय सामग्री के आधार पर तैयार किया जाना चाहिए; और दूसरा, अभियुक्त को पता होना चाहिए कि उसे किस अनुमान का खंडन करना है। यह कहना पर्याप्त नहीं है कि आरोपी को पुलिस ने पोस्को अधिनियम की धारा 3, 5, 7 और / या 9 के तहत आरोपों में फंसाया है। कम से कम, अदालत द्वारा आरोपी के खिलाफ उन धाराओं में से एक या अधिक के तहत आरोप तय किए जाने चाहिए थे, ताकि अनुमान उत्पन्न हो सके; और पुलिस द्वारा केवल निहितार्थ पर्याप्त नहीं है।

51. जब ट्रायल कोर्ट आरोप तय करता है, तभी प्रथम दृष्टया यह राय बनती है कि आरोपी के लिए जवाब देने और बचाव करने का वाद है। आरोप तय करने के चरण में, ट्रायल कोर्ट धारा 29 में उल्लिखित किसी भी धारा के तहत किसी आरोपी के खिलाफ आरोप तय नहीं करने का फैसला कर सकता है, लेकिन किसी अन्य प्रावधान के तहत; या, यह उन धाराओं के तहत सभी आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ आरोप तय नहीं कर सकता है। इसलिए, आरोप तय किए जाने से पहले धारा 29 के तहत अनुमान नहीं लगाया जा सकता है। (जोर दिया गया)

52. यदि आरोप तय होने से पहले ही अपराध की धारणा उत्पन्न हो जाती है, जैसे कि जब कोई अदालत जमानत याचिका पर विचार कर रही है, तो अदालत को अभियुक्त को यह साबित करने का अवसर देना होगा कि उसने अपराध नहीं किया है; जिसके लिए अदालत को एक मिनी-ट्रायल करने की आवश्यकता होगी, भले ही वह केवल जमानत याचिका पर विचार कर रही हो। तो परीक्षण के दौरान क्या किया जाना बाकी होगा? इस अदालत की राय में धारा 29 का यह अर्थ नहीं है कि जमानत याचिका पर निर्णय लेने के चरण में एक मिनी-ट्रायल आयोजित किया जाना चाहिए। कानून को ऐसी कोई अवधारणा ज्ञात नहीं है। आरोपों के गुण-दोष पर एक राय बनाने के लिए साक्ष्य के उत्पादन और विश्लेषण की आवश्यकता; और इस तरह के सबूतों पर एक विचार व्यक्त करना, निश्चित रूप से जमानत याचिका पर विचार करने वाली

अदालत के दायरे में नहीं है। (जोर दिया गया)

53. आपराधिक न्यायशास्त्र के मौलिक सिद्धांतों और संवैधानिक कानून में प्रक्रियात्मक स्थलों को दोहराते हुए, धर्मंदर सिंह (सुप्रा) ने राजबल्लभ प्रसाद (सुप्रा) के अनुपात को यह कहते हुए समझाया:

"66. पोक्सो अधिनियम में धारा 29 को शामिल किया गया है, इसका मतलब यह नहीं है कि निर्दोषता की धारणा, जो आपराधिक न्यायशास्त्र का एक मूलभूत सिद्धांत है, को हवा में फेंक दिया जाना चाहिए। यदि धारा 29 की इस तरह व्याख्या की जाती है कि आरोप तय होने से पहले ही इसे मंच पर लागू किया जा सके, तो यह संवैधानिक रूप से पारित नहीं होगा क्योंकि हमारे संविधान के अनुच्छेद 21 के अनुसार सभी वास्तविक और साथ ही प्रक्रियात्मक प्रावधान उचित, न्यायसंगत और निष्पक्ष होने चाहिए, जैसा कि अन्य बातों के साथ-साथ मेनका गांधी (सुप्रा) में कहा गया है। धारा 29 की इस तरह की व्याख्या से आरोपी को निष्पक्ष सुनवाई का अधिकार भी मिल जाएगा, जो फिर से अनुच्छेद 21 में निहित संवैधानिक गारंटी के साथ हिंसा करेगा।

67. आरोप तय होने से पहले जमानत की कार्यवाही में धारा 29 लागू करने का मतलब यह होगा कि अभियुक्त को यह साबित करना होगा कि उसने अपराध नहीं किया है, इससे पहले कि उसे बताया जाए कि उस पर कितना सटीक अपराध है, जो सभी कानूनी तर्कसंगतता के लिए हिंसा करेगा।

68. उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए और उच्चतम न्यायालय की राय और अन्य उच्च न्यायालयों द्वारा लिए गए विचारों पर विचार करने के बाद, इस न्यायालय को यह मानने के लिए राजी किया जाता है कि धारा 29 में निहित अपराध की धारणा शुरू हो जाती है और केवल तभी लागू होती है जब मुकदमा शुरू हो जाता है, अर्थात अभियुक्त के खिलाफ आरोप तय होने के बाद लेकिन उससे पहले नहीं। धारा 29 के शुरुआती शब्दों का महत्व "जहां एक व्यक्ति पर मुकदमा चलाया जाता है" यह है कि जब तक आरोप तय नहीं किए जाते हैं, तब तक व्यक्ति पर मुकदमा नहीं चलाया जा रहा है, बल्कि जांच की जा रही है या आरोप लगाए जाने की प्रक्रिया में है। तदनुसार, यदि आरोप तय करने से पहले किसी भी स्तर पर जमानत याचिका पर विचार किया जाता है, तो धारा 29 का कोई आवेदन नहीं होता है क्योंकि उस चरण तक आरोपी पर मुकदमा नहीं चलाया जा रहा है।

69. इसलिए, यदि आरोप तय किए जाने से पहले जमानत याचिका पर विचार किया जा रहा है, तो धारा 29 का कोई आवेदन नहीं है; और जमानत देने या अस्वीकार करने का निर्णय सामान्य स्थापित सिद्धांतों पर किया जाना है।

70. अब एक ऐसे परिदृश्य पर आते हैं जहां राजबल्लभ प्रसाद (सुप्रा) में सुप्रीम कोर्ट की टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए, आरोप तय किए जाने के बाद जमानत याचिका पर विचार किया जा रहा है, धारा 29 में निहित अपराध की धारणा शुरू हो जाएगी और इसे "ध्यान में रखा जाएगा"।

71. हालांकि, दुविधा बनी रहेगी कि धारा 29 में निहित अपराध की धारणा को आरोप

तय किए जाने के बाद भी कैसे लागू किया जाए, जब अभियुक्त को इस तरह की धारणा का खंडन करने का अवसर नहीं दिया गया है। जब धारा 29 आरोपी के खिलाफ अपराध की धारणा को परिभाषित करती है, तो यह अभियुक्त को इसके विपरीत साबित करके धारणा का खंडन करने का अवसर भी प्रदान करती है। यह संभव नहीं हो सकता है कि अदालत धारा 29 के आधे प्रावधान को लागू करे, जबकि अन्य आधे को नजरअंदाज करे, आरोपी को नुकसान पहुंचाने के लिए बहुत कम। लेकिन आरोप तय होने के बाद भी, अभियुक्त को अनुमान का खंडन करने या बचाव पक्ष के साक्ष्य का नेतृत्व करके विपरीत साबित करने का अवसर नहीं मिलता है, जब तक कि अभियोजन साक्ष्य समाप्त नहीं हो जाते। अभियुक्त को अपने बचाव का खुलासा करने के लिए कहना मौलिक आपराधिक न्यायशास्त्र के लिए अभिशाप होगा; या, इससे भी बुरी बात यह है कि अभियोजन पक्ष द्वारा अपने साक्ष्य पेश करने से पहले ही अपने बचाव में सबूत जोड़ना। इसलिए, आरोप तय होने के बाद एक चरण के लिए भी, धारा 29 को हमारे संविधान के अनुच्छेद 21 में पढ़े गए 'उचित प्रक्रिया' और 'निष्पक्ष परीक्षण' सिद्धांतों के खिलाफ हिंसा किए बिना जमानत याचिका पर पूर्ण रूप से लागू नहीं किया जा सकता है।

74. हमेशा की तरह, जब इस तरह की दुविधा का सामना करना पड़ता है, तो अदालत को अधिकारों को संतुलित करने के सुनहरे सिद्धांत को लागू करना चाहिए। इसलिए इस अदालत की राय में, आरोप तय होने के बाद जमानत याचिका पर विचार करने के चरण में, धारा 29 का प्रभाव केवल अदालत द्वारा जमानत देने से पहले आवश्यक संतुष्टि की सीमा को बढ़ाने के लिए होगा। इसका मतलब यह है कि अदालत अभियोजन पक्ष द्वारा चार्जशीट के साथ रखे गए सबूतों पर विचार करेगी, बशर्ते यह कानून में स्वीकार्य हो, अभियोजन पक्ष के लिए अधिक अनुकूल हो और मूल्यांकन करे, हालांकि सबूत की आवश्यकता के बिना, क्या इस तरह से रखे गए सबूत विश्वसनीय हैं या क्या यह प्रथम दृष्टया प्रतीत होता है कि सबूत अपराध के भार को बनाए नहीं रखेंगे।

54. अच्छे लाभ के साथ, इस मुद्दे पर चर्चा अब निम्नलिखित सारांश के साथ समाप्त की जा सकती है:

1. कानून द्वारा विचार किए गए अनुमान उनकी प्रकृति और प्रयोज्यता के तरीके के संबंध में क़ानून से क़ानून में भिन्न हो सकते हैं।

2. विधियों में विचार किए गए अनुमानों का अनुप्रयोग अदालतों को किसी मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने से नहीं रोकता है, न ही वे अदालतों को उचित विचार के बिना अभियोजन पक्ष के संस्करण को सुसमाचार सत्य के रूप में स्वीकार करने के लिए मजबूर करते हैं।

3. जिस चरण और तरीके से अनुमान लागू होगा, वह वैधानिक योजना, तथ्यों और किसी मामले की परिस्थितियों और साक्ष्य की प्रकृति पर निर्भर करेगा।

4. सभी अनुमान खंडन योग्य हैं। एक चुनौती अनुमान को कमजोर या खारिज कर सकती है।

5. अनुमानों को इस तरह से लागू किया जाएगा कि वे आपराधिक न्यायशास्त्र में निष्पक्ष परीक्षण के पहले सिद्धांतों और संवैधानिक प्रक्रियात्मक न्यायशास्त्र में उचित प्रक्रिया के अनुरूप हों।

6. अनुमान को ट्रिगर करने के लिए शर्त मिसाल यह है कि अभियोजन पक्ष द्वारा साक्ष्य के मानक को प्राप्त करके प्राथमिक या मूलभूत तथ्यों को स्थापित किया जाना चाहिए जो उचित संदेह से परे और कानून के अनुसार है।

7. एक क़ानून में बनाए गए अनुमान निम्नलिखित प्रक्रिया द्वारा आकर्षित किए जाएंगे। पहले उदाहरण में प्राथमिक या मूलभूत तथ्यों के बाद साक्ष्य के लागू मानकों द्वारा स्थापित किया जाना है। इस स्तर पर, अभियुक्त को अनुमान को चुनौती देने के उसके अधिकार के बारे में सतर्क किया जाएगा। आरोपी को अनुमान का खंडन करने का अवसर दिया जाना चाहिए। इन पूर्वापेक्षाओं के संतुष्ट होने के बाद, अनुमान एक स्थापित तथ्य में परिपक्व हो सकता है और किसी मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में सबूतों पर विचार करने पर न्यायिक निष्कर्ष का आधार बनाया जा सकता है। किशोर अपराधी के लिए जेजे अधिनियम की धारा 94 के तहत उम्र से संबंधित दस्तावेजों के बारे में धारणा को ट्रिगर करने का तरीका और चरण नाबालिग पीड़ित के मामले और पॉक्सो अधिनियम के तहत एक वयस्क आरोपी के खिलाफ अलग होगा।

8. जेजे अधिनियम, 2015 की धारा 94 और पॉक्सो अधिनियम, 2012 की धारा 29 के तहत समय से पहले अनुमान लगाना या जमानत के चरण में उन्हें अनुचित रूप से लागू करना कानून का उल्लंघन होगा और न्याय की विफलता का कारण बनेगा।

7. आपराधिक न्यायशास्त्र में निष्पक्ष प्रक्रिया के मानदंड और जेजे अधिनियम की धारा 94 और पॉक्सो अधिनियम की धारा 29 के तहत अनुमान:

55. निष्पक्ष सुनवाई एक अभियुक्त का अधिकार है और आपराधिक न्याय प्रणाली की विश्वसनीयता को परिभाषित करता है। निष्पक्ष सुनवाई और जमानत के लिए एक अभियुक्त का अधिकार भी आपराधिक न्यायशास्त्र के स्थापित सिद्धांतों और भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 में निहित निष्पक्ष प्रक्रिया की संवैधानिक अनिवार्यता से आता है (देखें मेनका गांधी बनाम भारत संघ)। धर्मेंद्र सिंह (सुप्रा) को भी देखें, जो एक आरोपी के अधिकारों को बनाए रखने के लिए आपराधिक मुकदमे की प्रक्रियाओं और जमानतों में संवैधानिक प्रक्रियात्मक न्यायशास्त्र पर पकड़ का आयात करता है।

56. आपराधिक और संवैधानिक प्रक्रियात्मक न्यायशास्त्र पर अधिकारियों से प्राप्त निष्पक्ष परीक्षण के कुछ स्थापित मानदंड ये हैं। एक आरोपी तब तक निर्दोष है जब तक कि वह कानून के अनुसार दोषी साबित नहीं हो जाता। वास्तव में "निर्दोषता की धारणा एक मानव अधिकार है"। (देखें नरेंद्र सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य 35 और रंजीतसिंह

ब्रह्मजीतसिंग शर्मा बनाम महाराष्ट्र राज्य 36)। एक आरोपी के खिलाफ आरोप साबित करने का बोझ अभियोजन पक्ष पर होता है। अभियोजन पक्ष को लापरवाह तरीके से इस तरह के बोझ से मुक्त नहीं किया जा सकता है। एक आपराधिक मामले में अपराध साबित करने के मानक उचित संदेह से परे आपत्तिजनक तथ्य को साबित करना है। अभियुक्त को अपने बचाव में स्वीकार्य साक्ष्य प्रस्तुत करने का पूरा अवसर दिया जाना चाहिए। अदालतों का कर्तव्य है कि वे मुकदमे की निष्पक्षता सुनिश्चित करें।

57. साक्ष्य का मूल्यांकन करने पर, यदि कई निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं, तो एक अभियुक्त के पक्ष में एक को अदालत द्वारा प्राथमिकता दी जाएगी। इसी तरह, एक आपराधिक प्रावधान की व्याख्या करते समय यदि एक से अधिक दृष्टिकोण संभव हैं, तो अदालत अभियुक्त के अनुकूल व्याख्या को अपनाएगी।

58. कानून का उल्लंघन करने वाले किशोरों को विधायिका द्वारा एक अलग वर्ग के रूप में माना जाता है। किशोर न्याय अधिनियम, 2015 किशोर अपराधियों की दुर्दशा के प्रति सतर्क है और किशोरों के अभियोजन में उठाए गए मुद्दों को भी संबोधित करता है। अधिनियमन इरादे में सुधारात्मक है और इसकी सामग्री में सुधार है। जेजे अधिनियम, 2015 मुकदमे की अवधि को कम करने और किशोर अपराधी के लिए आपराधिक अभियोजन की कठोरता को कम करने के लिए साक्ष्य को क्लिप और सीमित करता है। इस तरह के उपायों का उद्देश्य समाज में जिम्मेदार नागरिकों के रूप में किशोर अपराधियों के सफल एकीकरण का मार्ग प्रशस्त करना है।

59. पॉक्सो अधिनियम के तहत मुकदमा चलाए जा रहे वयस्क अपराधियों को विधायिका द्वारा किशोर अभियुक्त के रूप में समान नहीं रखा जाता है।

60. जेजे अधिनियम, 2015 की धारा 94 कानून का उल्लंघन करने वाले किशोरों के लिए तैयार की गई थी, लेकिन यह वयस्क अभियुक्तों द्वारा किए गए यौन अपराधों के पीड़ितों की उम्र निर्धारित करने के लिए भी लागू होती है। जेजे अधिनियम, 2015 की धारा 94 के तहत पॉक्सो पीड़ित की उम्र का निर्धारण करते समय, यह स्वीकार करना होगा कि आरोपी द्वारा उठाए गए नाबालिग होने के दावे और अभियोजन पक्ष द्वारा स्थापित पीड़ित के अल्पसंख्यक के दावे में अंतर है।

61. जेजे अधिनियम, 2015 की धारा 94 के प्रावधानों की व्याख्या जेजे नियम, 2016 के नियम 54 (18) (iv) के साथ इस तरह से की जानी चाहिए कि इससे पॉक्सो अधिनियम के तहत आरोपी वयस्क अपराधियों के लिए न्याय का हनन न हो। जेजे अधिनियम, 2015 की धारा 94, किशोर अपराधियों को लाभ पहुंचाने के लिए आयु निर्धारण प्रक्रिया को कम करती है। लेकिन इसका उद्देश्य वयस्क अभियुक्तों के अधिकारों को कमजोर करना नहीं है।

62. किशोर न्याय अधिनियम, 2015 के तहत एक किशोर अपराधी की आयु "साक्ष्य मांगने से ही निर्धारित की जाती है यदि बोर्ड/ समिति उचित संदेह पर विचार करती है कि उसके सामने लाया गया व्यक्ति बच्चा है

या नहीं" (देखें ऋषिपाल सिंह (सुप्रा)]। हालांकि, पॉक्सो अधिनियम के तहत एक वयस्क आरोपी के खिलाफ आरोप लगाए जाने से पहले एक बाल पीड़ित की उम्र को उचित संदेह से परे साक्ष्य द्वारा स्थापित किया जाना चाहिए।

63. किशोर अपराधियों को आयु के चिकित्सा निर्धारण में त्रुटि के दो वर्ष के मार्जिन का लाभ दिया जाता है [देखें पैरा 33.8 ऋषिपाल सिंह (सुप्रा)]। लेकिन इस तरह की छूट एक मेडिकल रिपोर्ट पर विचार करते समय नहीं दी जा सकती है, जो वयस्क अभियुक्त के अधिकार के लिए पूर्वाग्रहपूर्ण तरीके से पीड़ित की उम्र निर्धारित करती है।

64. जेजे अधिनियम, 2015 की धारा 94 अभियोजन पक्ष के उस बोझ को हल्का नहीं करती है जो "उचित संदेह से परे" के मानक तक पहुंचने वाले सबूतों को जोड़कर प्राथमिक तथ्यों को साबित करने के लिए है। पीड़ित की उम्र के संदर्भ में अनुमान को ट्रिगर करने वाले प्राथमिक तथ्य जे जे अधिनियम, 2015 की धारा 94 में उल्लिखित आयु संबंधी दस्तावेज हैं।

65. एक बार जब उक्त दस्तावेज "उचित संदेह से परे" साबित हो जाते हैं, तो अभियोजन पक्ष उनमें दर्ज उम्र की शुद्धता की धारणा को लागू कर सकता है और आगे के साक्ष्य पेश करने का विरोध कर सकता है। हालांकि, उस स्तर पर भी अदालत अपनी इच्छा से या आरोपी के कहने पर ऐसी याचिका को अस्वीकार कर सकती है और सच्चे तथ्यों की तलाश करने और न्याय की सेवा करने के लिए अतिरिक्त सबूत प्राप्त कर सकती है। अदालतों का यह भी दायित्व है कि वे यह सुनिश्चित करें कि मुकदमे में सर्वश्रेष्ठ सबूत पेश किए जाएं।

66. पीड़ित की उम्र से संबंधित अभियोजन साक्ष्य को खारिज करने या अभियोजन पक्ष के मामले का खंडन करने के लिए आगे सबूत जोड़ने के लिए अभियुक्त के अधिकारों का उल्लंघन नहीं किया जा सकता है।

67. पॉक्सो अधिनियम, 2012 की धारा 29 आरोपी व्यक्ति के खिलाफ गैर-इरादतन इरादे की धारणा बनाती है। इस प्रावधान का यह अर्थ नहीं निकाला जा सकता है कि मुकदमे में निर्दोष साबित होने तक आरोपी को प्राथमिकी या आपराधिक शिकायत दर्ज होने पर दोषी माना जाएगा। निर्दोषता की धारणा, जो आपराधिक न्यायशास्त्र का एक मौलिक सिद्धांत है, को प्रावधान की दोषपूर्ण व्याख्या से अपने सिर पर नहीं मोड़ा जा सकता है। अभियोजन पक्ष को साक्ष्य के आवश्यक मानकों को प्राप्त करने के बाद प्राथमिक तथ्यों को स्थापित करना होगा ताकि गैर-इरादतन इरादे की धारणा को ट्रिगर किया जा सके।

VIII. जमानत का अधिकार:

क. संवैधानिक परिप्रेक्ष्य:

68. जमानत का अधिकार क़ानून से लिया गया है लेकिन इसे संवैधानिक निगरानी से अलग नहीं किया जा सकता है।

69. अच्छे प्राधिकारी ने लंबे समय से भारत के संविधान द्वारा सुनिश्चित मौलिक अधिकारों के चार्टर में जमानत मांगने के लिए एक अभियुक्त के अधिकार को स्थापित किया है।

70. जमानत न्यायशास्त्र गुडीकांति नरसिम्हुलु और अन्य बनाम लोक अभियोजक, आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय में मौलिक अधिकारों के संवैधानिक शासन में दृढ़ता से अंतर्निहित था। वाक्पटु भाषण में कानून का एक स्थायी प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुए, वी.आर. कृष्ण अय्यर, जे. ने कहा:

"1. जमानत या जेल?" - पूर्व-परीक्षण या दोषसिद्धि के बाद के चरण में - आपराधिक न्याय प्रणाली के धुंधले क्षेत्र से संबंधित है और काफी हद तक पीठ के अनुमान पर टिका है, जिसे अन्यथा न्यायिक विवेक कहा जाता है। संहिता इस विषय पर गूढ़ है और अदालत मौन रहना पसंद करती है, चाहे हिरासत का आदेश हो या नहीं। और फिर भी, मुद्दा स्वतंत्रता, न्याय, सार्वजनिक सुरक्षा में से एक है, जिनमें से सभी इस बात पर जोर देते हैं कि जमानत का एक विकसित न्यायशास्त्र सामाजिक रूप से संवेदनशील न्यायिक प्रक्रिया का अभिन्न अंग है। इस शीर्ष अदालत में चैंबर जज के रूप में मुझे इस अनियंत्रित केस-फ्लो से निपटना होगा, जो झिलमिलाती मोमबत्ती की रोशनी है। इसलिए यह वांछनीय है कि विषय को बुनियादी सिद्धांत पर निपटाया जाए, न कि विवेक के रूप में लिपटी तात्कालिक संक्षिप्तता। जमानत से इनकार किए जाने पर व्यक्तिगत स्वतंत्रता, जो हमारी संवैधानिक व्यवस्था के लिए बहुत कीमती है, अनुच्छेद 21 के तहत मान्यता प्राप्त है कि इसे नकारने की शक्ति एक महान विश्वास है, न कि आकस्मिक रूप से बल्कि न्यायिक रूप से, व्यक्ति और समुदाय को होने वाली लागत के लिए जीवंत चिंता के साथ। प्रभाववादी आदेशों को विवेकाधीन के रूप में ग्लैमराइज करना, कभी-कभी, मौलिक अधिकार के लिए एक निंदनीय जुआ बना सकता है। आखिरकार, एक अभियुक्त या दोषी की व्यक्तिगत स्वतंत्रता मौलिक है, जो केवल "कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया" के संदर्भ में कानूनी ग्रहण का सामना करती है। अनुच्छेद 21 के अंतिम चार शब्द उस मानव अधिकार का जीवन हैं।

71. जमानत न्यायशास्त्र में मौलिक अधिकारों का उपयोग संवैधानिक कानून में एक निरंतर है।

72. नागरिकों की मौलिक स्वतंत्रता और जमानत के अधिकार का गठजोड़ हुसैन और एक अन्य बनाम भारत संघ 38 में सामने आया, जब सुप्रीम कोर्ट को अदालतों में जमानत आवेदनों पर विचार करने में देरी के मुद्दे पर सतर्क किया गया था। हुसैन (सुप्रा) में, यह शामिल किया गया था:

22. जमानत याचिकाओं के निपटारे के लिए समय सीमा उच्च न्यायालय द्वारा तय की जानी चाहिए।

"29.1.1. जमानत याचिकाओं को एक सप्ताह के भीतर सामान्य रूप से निपटाया जाए;

73. इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने सम्राट बनाम एचएल हचिंसन और अन्य 39 मामले में कहा कि जमानत देना नियम है और इनकार करना निम्नलिखित कारणों के आधार पर अपवाद है:

"11. द० प्र० स० की धारा 496 और 497 से लिया जाने वाला सिद्धांत, इसलिए, यह है कि जमानत देना नियम है और इनकार करना अपवाद है। यह देखना बिल्कुल भी मुश्किल नहीं है कि ऐसा होना चाहिए। एक

आरोपी व्यक्ति को कानून के तहत तब तक निर्दोष माना जाता है जब तक कि उसका दोष साबित नहीं हो जाता। संभवतः एक निर्दोष व्यक्ति के रूप में वह स्वतंत्रता और अपने मामले की देखभाल करने के हर अवसर का हकदार है। यह कहने की जरूरत नहीं है कि एक आरोपी व्यक्ति, यदि वह स्वतंत्रता का आनंद लेता है, तो वह अपने मामले की देखभाल करने और हिरासत में होने की तुलना में खुद का ठीक से बचाव करने के लिए बहुत बेहतर स्थिति में होगा। इस मामले में आवेदकों द्वारा की गई शिकायतों में से एक यह है कि हिरासत से भेजे गए उनके पत्रों को खोला और निरीक्षण और सेंसर किया गया है, और इसलिए, वे जेल के बाहर ऐसे दोस्तों की सहायता से अपना बचाव करने की स्थिति में नहीं थे। जैसा कि मैंने कहा है, यह स्पष्ट है कि संभवतः एक निर्दोष व्यक्ति को अपनी बेगुनाही स्थापित करने में सक्षम बनाने के लिए अपनी स्वतंत्रता होनी चाहिए।

74. सुप्रीम कोर्ट ने रणजीतसिंह ब्रह्मजीतसिंग शर्मा बनाम महाराष्ट्र राज्य मामले में जमानत देने की अदालतों की शक्ति पर प्रतिबंध के खिलाफ अपना मत निम्नलिखित द्वारा दिया है:

"38. हमारी यह भी राय है कि जमानत देने के लिए अदालत की शक्ति पर प्रतिबंधों को बहुत आगे नहीं बढ़ाया जाना चाहिए।

75. निकेश ताराचंद शाह बनाम भारत संघ और अन्य मामले में मनी लॉन्ड्रिंग अधिनियम, 2002 की धारा 45 द्वारा लगाई गई जमानत देने के लिए कठिन शर्तों की संवैधानिकता का मुद्दा था। इस कथा को निर्णय के विस्तृत विचार से लाभ होगा।

76. निकेश ताराचंद (सुप्रा) मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने जमानतों की न्यायिक उत्पत्ति पर प्रकाश डालते हुए अपने निष्कर्ष निकाले:

"इस इतिहास से सीखने के लिए महत्वपूर्ण बात यह है कि मैग्ना कार्टा के खंड 39 को बाद में पूर्व-परीक्षण कारावास तक बढ़ा दिया गया था, ताकि व्यक्तियों को आगामी मुकदमे के लिए अपनी उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए जमानत पर बढ़ाया जा सके। यह केवल जोड़ा जा सकता है कि बिल ऑफ राइट्स के एक सदी बाद, अमेरिकी संविधान ने बिल ऑफ राइट्स की भाषा उधार ली जब बंदी प्रत्यक्षीकरण के सिद्धांत को अमेरिकी संविधान के अनुच्छेद 1 धारा 9 में अपना रास्ता मिला, जिसके बाद संविधान में आठवां संशोधन हुआ, जिसमें स्पष्ट रूप से कहा गया है कि, "अत्यधिक जमानत की आवश्यकता नहीं होगी, न तो अत्यधिक जुर्माना लगाया गया, न ही क्रूर और असामान्य सजा दी गई। हम केवल यह जोड़ सकते हैं कि आठवें संशोधन को इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा राजेश कुमार बनाम राज्य [राजेश कुमार बनाम राज्य, (2011) 13 एससीसी 706: (2012) 2 एससीसी (सीआरआई) 836] पैरा 60 और 61 में अनुच्छेद 21 में पढ़ा गया है।

77. अनुच्छेद 14 के उल्लंघन के लिए "इसके भेदभावपूर्ण पहलू और इसके स्पष्ट रूप से मनमाने पहलू दोनों में" परीक्षणों के साथ रद्द किए गए प्रावधानों की संवैधानिक वैधता की जांच शुरू हुई।

78. इसके बाद जमानत देने के लिए अपमानजनक प्रावधानों पर भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के प्रभाव की जांच करने के लिए चर्चा आगे बढ़ी। यह जांच "हमारे संवैधानिक न्यायशास्त्र में उचित प्रक्रिया की अवधारणा पर विचार करते हुए की गई थी, जब भी अदालत को नागरिकों के जीवन और स्वतंत्रता को प्रभावित करने वाले प्रश्न से निपटना पड़ता है"।

79. अंत में निकेश ताराचंद (सुप्रा) में, धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002 की धारा 45 (1) में जमानत देने की कठिन शर्तों को भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 का उल्लंघन करते हुए असंवैधानिक घोषित किया गया:

"46. हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि धारा 45 एक कठोर प्रावधान है जो बेगुनाही की धारणा को अपने सिर पर ले लेता है जो किसी भी अपराध के आरोपी व्यक्ति के लिए मौलिक है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 द्वारा गारंटीकृत व्यक्तिगत स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार में भारी घुसपैठ करने वाली धारा को लागू करने से पहले, हमें यह सुनिश्चित करना चाहिए कि ऐसा प्रावधान गंभीर अपराध से निपटने के लिए एक बाध्यकारी राज्य हित को आगे बढ़ाता है। इस तरह के किसी भी बाध्यकारी राज्य हित के बिना, धारा 45 के प्रावधानों का अंधाधुंध उपयोग निश्चित रूप से संविधान के अनुच्छेद 21 का उल्लंघन करेगा। धारा 45 जैसे प्रावधानों को केवल इस आधार पर बरकरार रखा गया है कि अत्यंत जघन्य प्रकृति के अपराधों से निपटने में राज्य का हित है। (जोर दिया गया))

80. मेनका गांधी बनाम भारत संघ 42 में प्रतिपादित कानून का निम्नलिखित कथन इस कथा को मजबूत करेगा:

"कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया", अपनी घातक क्षमता के साथ, जीवन और स्वतंत्रता को एक अनिश्चित खेल में बदल देगी यदि हमें उन भारी शब्दों में कानून का एक अलौकिक शासन आयात करने की आवश्यकता नहीं है, जो अपनी आत्मा में सभ्य, अपने दिल में निष्पक्ष है और प्रक्रियात्मक सुरक्षा की उन अनिवार्यताओं को ठीक करता है जो प्रक्रियात्मक पूंछ को मूल सिर पर ले जाएंगे। क्या मानव अधिकार के पवित्र सार, जिसे "करो या मरो" की देशभक्ति के साथ मुक्ति के लिए संघर्ष शुरू किया गया था, को आवश्यक मानकों की परवाह किए बिना, औपचारिक और फरीसी नुस्खों द्वारा दबाया जा सकता है? एक अधिनियमित मूल्यांकन एक संवैधानिक भ्रम है। प्रक्रियात्मक न्याय अनुच्छेद 21 पर स्पष्ट रूप से लिखा गया है। यह इतना गंभीर है कि विधायिका के माध्यम से संसाधित एक काले पत्र अनुष्ठान से दरकिनार नहीं किया जा सकता है।

81. अर्नब मनोरंजन गोस्वामी बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य मामले में हमारी संवैधानिक मूल्य प्रणाली में स्वतंत्रता की स्थिति, आपराधिक न्याय प्रक्रिया की वास्तविकताएं और जमानत के अधिकार की प्रकृति पर विचार किया गया।

82. अर्णब गोस्वामी (सुप्रा) मामले में सुप्रीम कोर्ट आपराधिक कानून के दुरुपयोग की प्रवृत्ति से अवगत था और स्पष्ट रूप से कहा कि अदालतों को यह सुनिश्चित करना होगा

कि आपराधिक कानून "नागरिकों के चयनात्मक उत्पीड़न के लिए हथियार" न बने।

83. भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत जमानत देने पर स्व-लगाए गए प्रतिबंधों को हटा दिया गया। नागरिकों की मौलिक स्वतंत्रता को बनाए रखने के लिए रिट अधिकार क्षेत्र के पहले सिद्धांतों को दोहराया गया:

"हालांकि, उच्च न्यायालय को शक्ति के प्रयोग से खुद को बंद नहीं करना चाहिए जब किसी नागरिक को राज्य की शक्ति के अतिरेक में मनमाने ढंग से उनकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित किया गया है।

64. एक उपयुक्त मामले में अनुच्छेद 226 के तहत जमानत देने के लिए एक आवेदन पर विचार करते समय, उच्च न्यायालय को उन स्थापित कारकों पर विचार करना चाहिए जो इस न्यायालय के उदाहरणों से निकलते हैं।

84. स्वतंत्रता की अवधारणा और आपराधिक कानून की प्रक्रिया के बीच संबंध को मजबूत करते हुए, अर्नब गोस्वामी (सुप्रा) में सुप्रीम कोर्ट ने स्वतंत्रता की विशेषताओं पर चर्चा की और अदालतों के कर्तव्यों को चित्रित किया:

"मानव स्वतंत्रता एक बहुमूल्य संवैधानिक मूल्य है, जो निस्संदेह वैध रूप से अधिनियमित कानून द्वारा विनियमन के अधीन है ... अदालतों को यह सुनिश्चित करने में सार्वजनिक हित की रक्षा करने की आवश्यकता के प्रति जागरूक होना चाहिए कि आपराधिक कानून के उचित प्रवर्तन में बाधा न हो। अपराध की निष्पक्ष जांच इसके लिए एक सहायता है। समान रूप से यह सभी प्रकार की अदालतों का कर्तव्य है कि वे यह सुनिश्चित करें कि आपराधिक कानून नागरिकों के चयनात्मक उत्पीड़न का हथियार न बने। अदालतों को स्पेक्ट्रम के दोनों छोरों तक जीवित होना चाहिए - एक तरफ आपराधिक कानून के उचित प्रवर्तन को सुनिश्चित करने की आवश्यकता और दूसरी ओर, यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता कि कानून लक्षित उत्पीड़न का साधन न बन जाए। मानव युगों में स्वतंत्रता उतनी ही कठिन है जितनी कठिन हो सकती है। स्वतंत्रता अपने नागरिकों की सतर्कता से, मीडिया के शोर गुल पर और अदालतों के धूल भरे गलियारों में कानून के शासन (और न कि) के प्रति जीवित रहती है। फिर भी, अक्सर, स्वतंत्रता एक दुर्घटना होती है जब इनमें से एक घटक वांछित पाया जाता है।

"हमारी अदालतों को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि वे नागरिकों की स्वतंत्रता से वंचित होने के खिलाफ रक्षा की पहली पंक्ति बने रहें। एक दिन के लिए भी स्वतंत्रता से वंचित रहना एक दिन बहुत अधिक है। हमें हमेशा अपने निर्णयों के गहरे प्रणालीगत प्रभावों के प्रति सावधान रहना चाहिए।

85. जमानत के अधिकार के संवैधानिक आधार को ध्यान में रखते हुए, उक्त अधिकार में कटौती की अनुमति व्यक्त वैधानिक जनादेश के अभाव में या संवैधानिक योजना के विपरीत नहीं दी जा सकती है। न ही जमानत के अधिकार पर प्रतिबंध को कानून से आसानी से अनुमान

लगाया जा सकता है यदि अन्य व्याख्याएं संभव हैं।

ख. पोक्सो अधिनियम के तहत जमानत के पैरामीटर:

86. जमानत आवेदन की जांच करते समय न्यायालय को विभिन्न उद्देश्यों को संतुलित करना और सामंजस्य स्थापित करना होता है, अर्थात्, एक अभियुक्त की संवैधानिक स्वतंत्रता की अनिवार्यता, एक अपराधी को निष्पक्ष और त्वरित न्याय के लिए लाने की आवश्यकता, और कानून को बनाए रखने का जनादेश। पॉक्सो मामलों में पीड़ित को सुनवाई का वैधानिक अधिकार है।

87. जमानत के मापदंडों को न्यायिक मिसालों द्वारा अच्छी तरह से तय किया जाता है और प्रथाएं पूर्वोक्त उद्देश्यों को पूर्ण रूप से प्राप्त करती हैं।

88. पॉक्सो अधिनियम के तहत अपराधों पर सीआरपीसी की धारा 439 के तहत और जमानत देने के तय मापदंडों के अनुसार विचार किया जाना चाहिए, जिसमें अपराधों की प्रकृति और गंभीरता शामिल है, और आरोपी द्वारा अपराध करने की संभावना शामिल है। जमानत याचिका पर फैसला करते समय आरोपी द्वारा आरोपियों को अपमानित करने, गवाहों को प्रभावित करने और सबूतों के साथ छेड़छाड़ करने या भागने का खतरा होने की संभावना भी प्रासंगिक कारक हैं।

89. पोक्सो अधिनियम से संबंधित अपराधों में पीड़ित की उम्र एक महत्वपूर्ण कारक है जो जमानत देने के निर्णय को प्रभावित करेगा।

90. जमानत के अधिकार को सीमित करने वाले किसी भी प्रावधान को पॉक्सो अधिनियम की योजना से अलग नहीं किया जा सकता है। जमानत न्यायशास्त्र के मौजूदा मानदंड पॉक्सो अधिनियम को प्रभावी ढंग से लागू करने और न्याय की सेवा करने के लिए पर्याप्त हैं। बेशक, जमानत देते समय न्यायालय की संतुष्टि की सीमा प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में भिन्न हो सकती है।

IX. पॉक्सो अधिनियम के तहत जमानत : निष्कर्ष:

एक) जेजे अधिनियम, 2015 की धारा 94 और पॉक्सो अधिनियम के तहत जमानत:

91. जेजे अधिनियम, 2015 की धारा 94 के प्रावधानों को जमानत के स्तर पर लागू करने से ऐसे परिणाम होंगे जो विधायिका द्वारा अभिप्रेत नहीं होंगे। जेजे अधिनियम, 2015 की धारा 94 में उल्लिखित दस्तावेजों की शुद्धता के आधार पर अभियोजन पक्ष के मामले में बताए गए पीड़ित की उम्र को कम करने के लिए एक आरोपी के जमानत की कार्यवाही में कटौती करना पॉक्सो अधिनियम की योजना के विपरीत होगा और आरोपी के जमानत के अधिकार का उल्लंघन होगा।

92. किसी अभियुक्त के लिए यह भी अनुचित होगा कि वह दस्तावेजों और सबूतों के आधार पर उसे कारावास में डाल दे, जिसे वह जमानत की कार्यवाही में स्वतंत्र रूप से चुनौती नहीं दे सकता है।

93. पूर्ववर्ती कथन के मद्देनजर, पॉक्सो अधिनियम के तहत जमानत याचिका में

पीड़ित की उम्र पर विचार करने का तरीका निम्नानुसार निर्देशित किया जाएगा:

I. जेजे अधिनियम, 2015 की धारा 94 और जेजे नियम, 2016 में प्रदान की गई पीड़ित की आयु के निर्धारण की प्रक्रिया जमानत आवेदनों पर लागू नहीं होगी, हालांकि इसमें दिए गए दस्तावेजों पर विचार किया जा सकता है। जेजे 46 अधिनियम, 2015 की धारा 94 में निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार पीड़ित की आयु केवल मुकदमे में निर्णायक रूप से निर्धारित की जाती है। पॉक्सो अधिनियम के तहत जमानत याचिका में पीड़ित की उम्र का आकलन करने के लिए जांच की लाइन और प्रासंगिक कारक ये हैं। जेजे अधिनियम, 2015 की धारा 94 में उल्लिखित आयु संबंधी दस्तावेजों यानी स्कूल प्रमाण पत्र (मैट्रिक सहित), स्थानीय निकाय द्वारा जारी जन्म प्रमाण पत्र और अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत आयु निर्धारण के लिए मेडिकल रिपोर्ट पर विचार करना प्रक्रिया में एक अच्छा शुरुआती बिंदु है।

III. अभियुक्त को अभियोजन पक्ष के मामले में बताए गए अनुसार पीड़ित की उम्र की सत्यता की जांच करने का अधिकार है।

4. उक्त जमानत आवेदन पर निर्णय लेते समय न्यायालय स्वतंत्र रूप से बाध्य है:

ए. आरोपी आवेदक द्वारा पीड़ित की उम्र को दी गई चुनौती की जांच करें।

बी. पीड़ित की उम्र के बारे में विश्वसनीय संदेह का मूल्यांकन करें।

v. जमानत आदेश में उम्र का आकलन एक अस्थायी प्रकृति का है, और उन दस्तावेजों के प्रामाणिक मूल्य पर आधारित है जिन्हें अभी तक साबित नहीं किया गया है या उन गवाहों के बयान हैं जिनकी अभी अदालत में जांच की जानी है। एक अदालत द्वारा इस तरह का निर्धारण निर्णायक नहीं है और केवल जमानत आवेदन पर निर्णय लेने के लिए सीमित उद्देश्य के लिए किया जाता है।

VI. परीक्षण के विभिन्न चरणों में दायर जमानत आवेदनों पर समान मानदंड लागू होंगे। हालांकि, मुकदमे के प्रत्येक चरण के साथ, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में अदालत की संतुष्टि की सीमा बढ़ाई जा सकती है। संतुष्टि की बढ़ी हुई सीमा का मतलब है कि अदालत का कर्तव्य है कि वह अभियोजन पक्ष के सबूतों को पूरा महत्व दे, और जमानत देने पर विचार करते समय बचाव पक्ष के मामले का उचित सम्मान करे।

7. जमानत देने के लिए एक लचीला या स्ट्रेटजैकेट फॉर्मूला निर्धारित करना उचित नहीं है जो सभी मामलों में फिट होगा। जमानत की कार्यवाही में अपने न्यायिक विवेक का प्रयोग करते हुए और मनमाने फैसलों के खिलाफ एक अच्छा बचाव करते हुए प्रथाएं और मिसालें अदालत के लिए एक विश्वसनीय मार्गदर्शक हैं।

निष्कर्ष: पॉक्सो अधिनियम की धारा 29 और 30 और पॉक्सो अधिनियम के तहत जमानत:

94. पॉक्सो अधिनियम की धारा 29 और 30 के तहत गैर-इरादतन इरादे की धारणा पर विचार और जैसा कि जमानत के चरण में राजबल्लव (सुप्रा) में विचार किया गया है, तोफान सिंह (सुप्रा), जॉय वीएस (सुप्रा), नवीन धनीराम बरईये (सुप्रा), धरमिंदर सिंह

(सुप्रा) और शाहिद हुसैन बिस्वास (सुप्रा) में अनुमानों और होल्डिंग्स के संबंध में साक्ष्य कानून के सिद्धांतों द्वारा शासित किया जाएगा और निम्नलिखित तरीके से किया जाएगा:

1. पॉक्सो अधिनियम, 2012 की धारा 29 के तहत गैर-इरादतन इरादे का अनुमान केवल उसी तरीके और चरण में लागू किया जाएगा जिस तरह से फैसले में पहले चर्चा की गई थी।

2. पॉक्सो अधिनियम, 2012 की धारा 29 के तहत आरोपी के गैर-इरादतन इरादे का अनुमान प्रीट्रायल जमानत के चरण में लागू नहीं होगा।

3. मुकदमे के प्रत्येक गुजरते चरण के साथ, किसी मामले के तथ्यों और परिस्थितियों और परीक्षण में पेश किए गए सबूतों के आधार पर जमानत देने के लिए अदालत की संतुष्टि की सीमा बढ़ाई जाएगी।

4. अभियोजन के सभी चरणों में अभियुक्त के अपने बचाव में देने या गैर-इरादतन इरादे की धारणा को खारिज करने के अधिकार को प्रतिबंधित नहीं किया जा सकता है। अदालत को अपराध करने के लिए गैर-इरादतन इरादे की धारणा के खिलाफ आरोपी के बचाव पर विचार करना होगा।

<u>10. जमानत आवेदन पर आदेश</u>:

95. इस जमानत आवेदन के माध्यम से आवेदक ने धारा 376, 506 आईपीसी और धारा 3/4 पॉक्सो अधिनियम और एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3 (2) (वी), 3 (2) (वी), 3 (2) (वीए), 3 (1) (2) के तहत पुलिस स्टेशन मझोला, जिला मुरादाबाद में 2021 के केस क्राइम नंबर 445 में जमानत पर विस्तार करने की प्रार्थना की है।

96. आवेदक 01.04.2022 को इस न्यायालय द्वारा दी गई अंतरिम जमानत पर है।

97. आवेदक की ओर से अधिवक्ता श्री एस. पी. तिवारी द्वारा दिए गए निम्नलिखित तर्क, जिन्हें रिकॉर्ड से श्री ऋषि चड्ढा, अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता द्वारा संतोषजनक ढंग से खारिज नहीं किया जा सका, आवेदक को जमानत देने का हकदार बनाता है:

(i) एफआईआर में निर्धारित अभियोजन मामले में कहा गया है कि पीड़ित की उम्र 15 वर्ष है।

(ii) पीड़ित ने सीआरपीसी की धारा 161 के तहत अपने बयान में कहा है कि उसकी उम्र 16 साल है। स्कूल द्वारा जारी स्थानांतरण प्रमाण पत्र के अनुसार उसकी उम्र 13 साल और 3 महीने है।

(iii) अभियोजन पक्ष द्वारा आधार बनाए गए आयु संबंधी साक्ष्य में भौतिक विसंगतियां हैं जो अभियोजन पक्ष के मामले को बदनाम करती हैं।

(iv) पीड़ित को केवल अपराध को बढ़ाने और पॉक्सो अधिनियम के कड़े प्रावधानों के तहत आवेदक के कारावास का कारण बनने के लिए नाबालिग के रूप में गलत तरीके से दिखाया गया है।

(v) पीड़ित वास्तव में बालिग है। एक प्रतिष्ठित संस्थान के प्रतिष्ठित डॉक्टरों द्वारा नवीनतम वैज्ञानिक और चिकित्सा प्रोटोकॉल के अनुसार

पीड़ित की सही उम्र निर्धारित करने के लिए चिकित्सा जांच नहीं की गई क्योंकि यह अभियोजन मामले को गलत साबित करेगा।

(vi) आवेदक और पीड़ित अंतरंग थे।

(vii) प्राथमिकी आवेदक के साथ उसके संबंधों के लिए पीड़ित के माता-पिता के विरोध का परिणाम है।

(viii) पीड़ित का बयान केवल उसके माता-पिता के इशारे पर सिखाया और किया जाता है ताकि पीड़ित के आचरण से ध्यान भटकाया जा सके और असफल अभियोजन को बचाया जा सके।

(ix) कोई भी चिकित्सीय साक्ष्य बलपूर्वक हमले की पुष्टि नहीं करता है।

(x) पीड़ित के घर में बलपूर्वक प्रवेश करने का कोई सबूत नहीं है। पीड़ित एक सहमत पक्ष था।

(xi) आवेदक का तत्काल मामले के अलावा कोई आपराधिक इतिहास नहीं है।

(xii) आवेदक के भागने का खतरा नहीं है। आवेदक कानून का पालन करने वाला नागरिक होने के नाते हमेशा जांच में सहयोग करता है और अदालत की कार्यवाही में सहयोग करने का वचन देता है। उनके द्वारा गवाहों को प्रभावित करने, सबूतों के साथ छेड़छाड़ करने या उन्हें अपमानित करने की कोई संभावना नहीं है।

98. पूर्ववर्ती चर्चा के आलोक में और मामले के गुण-दोष पर कोई टिप्पणी किए बिना, जमानत आवेदन को स्वीकार किया जाता है।

99. आवेदक मोनीश को उपरोक्त केस क्राइम नंबर में जमानत पर रिहा किया जाए, जिसमें निचली अदालत की संतुष्टि के लिए एक व्यक्तिगत बांड और दो जमानत राशि जमा की जाए। न्याय के हित में निम्नलिखित शर्तें लगाई जाएं:-

(i) आवेदक मुकदमे के दौरान सबूतों के साथ छेड़छाड़ नहीं करेगा या किसी गवाह को प्रभावित नहीं करेगा।

(ii) आवेदक निर्धारित तारीख पर ट्रायल कोर्ट के समक्ष पेश होगा, जब तक कि व्यक्तिगत उपस्थिति से छूट न दी जाए।

(2023) 3 ILRA 854

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 12.01.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा

सिविल पुनरीक्षण संख्या 185 / 2017

सुशील कुमार कथूरिया .... पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

स्पैन इंफ्राडेवलपर्स प्राइवेट लिमिटेड ...प्रतिवादी

पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता: श्री संतोष कुमार मिश्रा

प्रतिवादी के अधिवक्ता: श्री तरुण अग्रवाल, श्री क्षितिज शैलेंद्र

सिविल कानून - भारतीय संविधान - अनुच्छेद 226, - सिविल प्रक्रिया संहिता - आदेश - 7, नियम - 11, 11(डी) - विशेष राहत अधिनियम, - धारा - 31, 38 - उत्तर प्रदेश ज़मींदारी उन्मूलन और भूमि संशोधन अधिनियम, 1950 - धारा - 229-बी, 331- सिविल पुनरीक्षण - प्रतिवादी पुनरीक्षक एक तीसरा पक्ष है - आपेक्षित आदेश को चुनौती - विचारणीय न्यायालय ने पुनरीक्षक

की आवेदन को आदेश 7 नियम 11 के तहत यह कहते हुए अस्वीकार कर दिया कि वाद यूपीजेडए और एलआर अधिनियम और विशेष राहत अधिनियम द्वारा बाधित है - स्थायी निषेधाज्ञा के लिए वाद - बिक्री समझौते और कब्जे के पत्र के आधार पर दायर किया गया - न्यायालय ने पाया कि, प्रतिवादी संपत्ति पर स्वामित्य के अधिकार का दावा नहीं कर रहा है - और स्थायी निषेधाज्ञा के लिए वाद कब्जे और कब्जे की शीर्षक के आधार पर बनाए रखा जा सकता है - यह निर्धारित किया गया, जब तथ्य और कानून का मिश्रित प्रश्न होता है, तो इसे पक्षों के साक्ष्य लेने के पश्चात ही निर्धारित किया जा सकता है - इसलिए, आपेक्षित आदेश में कोई अवैधता या दोष नहीं है - इस प्रकार, पुनरीक्षण निरस्त होने योग्य है। (पैराग्राफ - 13, 14, 15)

सिविल पुनरीक्षण निरस्त। (E-11)

उद्धृत वाद सूची: -

1. कमला और अन्य बनाम के.टी. ईश्वरा और अन्य, (2008) 12 SCC 661,
2. इकबाल बासित और अन्य बनाम एन. सुभालक्ष्मी और अन्य, (2021) 2 SCC 718,
3. रामे गौड़ा (मृत) द्वारा एल.आर. बनाम एम.वी. नायडू (मृत) द्वारा एल.आर. और अन्य, (2204) 1 SCC 769,
4. अनातुला सुधाकर बनाम पी. बुचि रेड्डी, (2008) 4 SCC 594,
5. नायर सेवा समाज लिमिटेड बनाम के.सी. अलेक्ज़ेंडर और अन्य, (1968) 3 SCR 163 : AIR 1968 SC 1165,
6. पॉपट और केटेचा प्रॉपर्टी बनाम एसबीआई स्टाफ असेसमेंट, (2005) 7 SCC 510

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा

1. यह पुनरीक्षण मूल वाद संख्या 12/2017 (स्पैन इंफ्रा डेवलपर्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम सुशील कुमार कथूरिया) में सिविल जज (एस.डी.) बरेली द्वारा पारित दिनांक 23.1.2017 के आदेश के विरुद्ध पेश किया गया है, जिसके द्वारा अवर विद्वान न्यायालय ने आदेश 7 नियम 11 सीपीसी के तहत विपक्षीगण द्वारा दायर आवेदन 36 ए को खारिज कर दिया था।

2. संक्षेप में, मामले के तथ्य यह हैं कि वादी स्पैन इंफ्रा डेवलपर्स-विरोधी पक्ष संख्या 1 ने विपक्षी-पुनरीक्षणकर्ता के खिलाफ वाद मानचित्र में अक्षरों (अ ब न ग) द्वारा दर्शाई गई संपत्ति के संबंध में स्थायी निषेधाज्ञा की राहत के लिए उपरोक्त वाद दायर किया। वाद के अनुसार, गाटा संख्या 14 के कुल क्षेत्रफल का 1/5 भाग क्षेत्रफल 4 बीघा 7 बिस्वा, गाटा संख्या 15 क्षेत्रफल 9 बिस्वा, गाटा संख्या 16 क्षेत्रफल 17 बिस्वा, गाटा संख्या 17 रकबा 10 बिस्वा, गाटा संख्या 18 क्षेत्रफल 13 बिस्वा, गाटा संख्या 19 क्षेत्रफल 13 बिस्वा, गाटा संख्या 20/1 क्षेत्रफल 13 बिस्वा, गाटा संख्या 21 क्षेत्रफल 9 बिस्वा, गाटा संख्या 22/1 क्षेत्रफल 8 बिस्वा 23/1, क्षेत्रफल 1 बीघा, गाटा संख्या 24/1 क्षेत्रफल 2 बिस्वा 10 बिसवांसी कुल 30100 गज यानि 6020 वर्ग गज भूमि लक्ष्मी सहकारी आवास समिति लि. के स्वामित्व व कब्जे में थी, जिसके सचिव सतीश कुमार अग्रवाल थे। यह भूमि वर्ष 1986 में इसके पूर्व स्वामियों से तीन विक्रय-पत्रों द्वारा क्रय की गई थी तथा समिति के नाम म्यूटेशन भी हो गया था। सहमति व आपसी मौखिक बंटवारे के आधार पर वाद मानचित्र में क ख ग व घ अक्षरों से दर्शाई गई संपत्ति समिति के कब्जे में आ गई। इसके अतिरिक्त समिति को सड़क के पूर्व की

ओर गाटा संख्या 23/1 की कुछ संपत्ति भी मिली थी, जिसे भी समिति ने बेच दिया है।

3. दिनांक 14.6.2005 को जरिए रजिस्टर्ड बयनामा सोसाईटी प्राइवेट लिमिटेड, बरेली को पर्याप्त प्रतिफल प्राप्त करने के पश्चात 1315.87 वर्ग गज का क्षेत्रफल बेचा तथा बेची गई भूमि का कब्जा भी सौंप दिया, जिसे एम, एन, जी और घ अक्षरों से दर्शाया गया है।

4. सारनाथ इंफ्रा प्राइवेट लिमिटेड ने वादी के पक्ष में ए, एन, गा और बा अक्षरों से दर्शाए गए 815.44 वर्ग गज क्षेत्र के लिए 12.9.2012 को एक पंजीकृत बिक्री समझौता निष्पादित किया। बिक्री समझौते की शर्त संख्या 2 के अनुसार सारनाथ इंफ्रा प्राइवेट लिमिटेड को वादी के पक्ष में बिक्री-विलेख निष्पादित करने से पहले मुकदमे में संपत्ति के लिए बाउंड्रीवॉल खड़ी करनी थी । चूंकि ऐसा नहीं किया जा सका, इसलिए सारनाथ प्राइवेट लिमिटेड ने 29.10.2012 को कब्जे के पत्र द्वारा उक्त भूमि का कब्जा दे दिया और वादी के अनुरोध पर, इसे 1.11.2012 को नोटरीकृत भी किया गया। तब से वादी मुकदमे में 815.44 वर्ग गज क्षेत्र की संपत्ति पर काबिज है और संपत्ति की सुरक्षा के लिए उसने उस पर कुछ निर्माण भी किया है।

5. विपक्षी एक ज़मीन हड़पने वाला और माफिया किस्म का व्यक्ति है जिसका मुकदमे में शामिल संपत्ति से कोई लेना-देना नहीं है, फिर भी विपक्षी कुछ असामाजिक तत्वों के साथ 5.1.2017 को मुकदमे में शामिल संपत्ति पर पहुंचा और निर्माण को तोड़ने और मुकदमे में शामिल जमीन पर जबरन कब्ज़ा करने की कोशिश की। सुरक्षा गार्ड से सूचना मिलने के बाद, वादी मौके पर पहुंचा और किसी तरह इस तरह की अवैध गतिविधियों को रोका। विपक्षी वहाँ से चला गया लेकिन धमकी दी कि वह फिर आएगा और मुकदमे में शामिल संपत्ति पर कब्ज़ा कर लेगा। मामले की सूचना पुलिस को दी गई जिसने वादी की मदद नहीं की और कहा कि यह एक सिविल प्रकरण है। इसलिए, कार्रवाई का कारण बना और मुकदमा दर्ज किया गया।

6. पुनरीक्षणवादी विपक्षी मामले में उपस्थित हुए और आदेश 7 नियम 11 सीपीसी के तहत एक आवेदन 36 का दायर किया जिसमें यह सवाल उठाया गया कि मुकदमा यूपीजेडए और एलआर अधिनियम की धारा 229-बी और 331 द्वारा वर्जित है। वादी का नाम न तो राजस्व रिकॉर्ड में दर्ज है, न ही बिक्री के लिए समझौते में, कब्जे के वितरण का दावा है। कब्जे के वितरण का नोटरीकृत पत्र 24 सी एक जाली दस्तावेज है। वादी केवल तभी मुकदमा दायर कर सकता है जब बिक्री-पत्र का निष्पादन उसके नाम पर हो। मुकदमा विशिष्ट राहत अधिनियम की धारा 31 और 38 द्वारा वर्जित है। वादी साफ हाथों से नहीं आया है। न तो सुविधा का संतुलन वादी के पक्ष में है और न ही वादी को कोई अपूरणीय क्षति हुई है, इसलिए, वाद को खारिज कर दिया जाना चाहिए।

7. वादी ने आपत्ति 56सी दाखिल कर आवेदन का विरोध किया तथा तर्क दिया कि वाद यूपीजेडए एवं एलआर अधिनियम के प्रावधानों से वर्जित नहीं है तथा वाद में शामिल संपत्ति काफी समय से आवासीय भूमि है तथा कृषि कार्य नहीं हो रहे हैं। वाद में शामिल संपत्ति पर निर्माण कार्य चल रहे हैं। वाद कब्जे के आधार पर दाखिल किया गया है , इसलिए आवेदन खारिज किया जाए।

8. विद्वान विचारण न्यायालय ने आदेश 7 नियम 11 सीपीसी के प्रावधानों का हवाला दिया और निष्कर्ष निकाला कि बिक्री के लिए समझौते

और कब्जे के पत्र के आधार पर मुकदमा चलाया जा सकता है और इस स्तर पर यह नहीं कहा जा सकता है कि कब्जे का पत्र 24 सी एक जाली दस्तावेज है और पक्षों के साक्ष्य लेने के बाद ही निष्कर्ष निकाला जा सकता है। विद्वान अवर न्यायालय ने यह भी नोट किया है कि इस तथ्य के बारे में कोई विवाद नहीं है कि सारनाथ इंफ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड बरेली ने वादी के पक्ष में बिक्री के लिए एक समझौता किया है। मुकदमा बिक्री के लिए समझौते और कब्जे के आधार पर दायर किया गया है , इसलिए, ऐसा नहीं लगता है कि मुकदमा यूपीजेडए और एलआर अधिनियम और विशिष्ट राहत अधिनियम के प्रावधानों द्वारा वर्जित है।

9. अवर न्यायालय ने कमला और अन्य बनाम के.टी. ईश्वर और अन्य (2008) 12 एससीसी 661 के फैसले पर भरोसा किया, जिसमें यह माना गया है कि आदेश 7 नियम 11 (डी) सीपीसी का दायरा बहुत सीमित है; इस स्तर पर मामले की योग्यता पर विचार नहीं किया जा सकता है। तदनुसार, अवर न्यायालय ने आदेश 7 नियम 11 सीपीसी के तहत आवेदन को खारिज कर दिया।

10. इस पुनरीक्षण पर विचार किया गया और विपक्षी वादी को नोटिस जारी किया गया, जिन्होंने प्रति शपथ पत्र संख्या 60549/2017 दाखिल किया, जिसमें वाद और आपत्ति के कथनों को दोहराया गया और विपक्षी द्वारा आदेश 7 नियम 11 सीपीसी के तहत दायर आवेदन के कथनों का खंडन किया गया और यह भी कहा गया कि वाद में संपत्ति भारतीय स्टाम्प अधिनियम 1899 के तहत आगे बढ़ेगी और 31.3.2006 के आदेश द्वारा, डिप्टी कमिश्नर (स्टाम्प) ने स्पष्ट रूप से माना है कि प्रश्नगत संपत्ति एक आवासीय संपत्ति थी; यह अच्छी तरह से स्थापित कानून है कि आदेश 7 नियम 11 सीपीसी के तहत आवेदन का फैसला करते समय न्यायालय केवल वाद में किए गए कथनों पर भरोसा कर सकता है। यदि तर्क के लिए यह स्वीकार किया जाता है कि वाद में संपत्ति एक कृषि भूमि है, तब भी वादी-विपरीत पक्ष द्वारा दायर वाद मांगी गई राहत के सिद्धांतों के आधार पर सिविल कोर्ट के समक्ष बनाए रखने योग्य था। विक्रय एवं कब्जे की डिलीवरी के लिए समझौते की प्रति तथा उपायुक्त के आदेश को जवाबी हलफनामे के साथ संलग्न किया गया है।

11. अभिलेखों के अवलोकन से यह पता चलता है कि विपक्षी-संशोधक ने स्वामित्व या कब्जे के आधार पर वाद में संपत्ति का दावा नहीं किया है। इस स्तर पर केवल वाद का कथन देखा जाना है । प्रथम दृष्टया यह विवाद में नहीं है कि वाद में संपत्ति लक्ष्मी सहकारी आवास समिति लिमिटेड द्वारा 1986 में खरीदी गई थी और इसका नाम परिवर्तन नहीं किया गया था और वाद में संपत्ति सहमति और आपसी मौखिक विभाजन के माध्यम से विभाजित नहीं की गई थी। यह भी प्रथम दृष्टया स्थापित है कि लक्ष्मी सहकारी आवास समिति ने 1315.87 वर्ग गज का क्षेत्रफल 14.6.2005 को सारनाथ इंफ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड, बरेली को पंजीकृत बिक्री-पत्र के माध्यम से बेचा था। यह भी प्रथम दृष्टया स्थापित है कि सारनाथ इन्फ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड ने 815.44 वर्ग गज के क्षेत्र में संपत्ति के संबंध में 12.9.2012 को बिक्री के लिए एक समझौता किया और वादी के पक्ष में 29.10.2012 को कब्जे की डिलीवरी का एक नोटरीकृत विलेख भी निष्पादित किया। यह भी उल्लेखनीय है कि न तो सारनाथ इन्फ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड और

न ही लक्ष्मी सहारनपुर आवास समिति को वादी के पक्ष में निष्पादित कब्जे, बिक्री के लिए समझौते और कब्जे की डिलीवरी के पत्र के बारे में कोई आपत्ति थी। हालांकि स्थायी निषेधाज्ञा के लिए मुकदमा अधिकार के रिकॉर्ड के आधार पर दायर किया जा सकता है, लेकिन स्थायी निषेधाज्ञा के लिए मुकदमा कम से कम किसी तीसरे व्यक्ति के खिलाफ कब्जे के शीर्षक के आधार पर भी बनाए रखा जा सकता है।

12. **इकबाल बसिथ एवं अन्य बनाम एन.सुब्बालक्ष्मी एवं अन्य, (2021) 2 एससीसी 718** में यह माना गया है कि "स्थायी निषेधाज्ञा के लिए मुकदमा कब्जे और कब्जे के शीर्षक के आधार पर बनाए रखा जा सकता है।"

रामे गौड़ा (मृत) एल.आर. बनाम एम.वी. नायडू (मृत) एल.आर. और अन्य, (2204) 1 एससीसी 769 में, यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि एक व्यक्ति जो भूमि पर मालिकाना हक रखता है और शांतिपूर्वक सामान्य स्वामित्व अधिकार का प्रयोग करता है, उसके पास पूरी दुनिया के खिलाफ एक अच्छा शीर्षक है, लेकिन सही मालिक नहीं है। जब तथ्यों ने किसी भी पक्ष में कोई शीर्षक नहीं दिखाया, तो केवल कब्जे से ही फैसला होता है। लैटिन कहावत " अधिकार कॉन्ट्रा ओमनेस वैलेट प्रेटर ईयूआर क्यूई ius sit possessionis महत्वपूर्ण है।" बेहतर स्वामित्व के सबूत के अभाव में, कब्ज़ा या पहले से शांतिपूर्ण तरीके से तय किया गया कब्ज़ा ही स्वामित्व का सबूत है। कानून यह मानता है कि जब तक खंडन न किया जाए, तब तक कब्ज़ा स्वामित्व के साथ ही रहेगा। सर्वोच्च न्यायालय ने न्यायशास्त्र और निम्नलिखित न्यायिक मिसालों पर सैल्मंड की पुस्तक के निम्नलिखित भाग का हवाला दिया जो इस प्रकार हैं:

5. सैल्मंड ने न्यायशास्त्र (बारहवें संस्करण) में लिखा है, "कुछ रिश्ते मनुष्य के लिए उतने महत्वपूर्ण नहीं हैं, जितना कि संपति का अधिकार, और हम किसी भी कानून व्यवस्था से, चाहे वह कितनी भी आदिम क्यों न हो, इसकी सुरक्षा के लिए नियम प्रदान करने की अपेक्षा कर सकते हैं। . . . . . . कानून को संपति की सुरक्षा के लिए प्रावधान करना चाहिए। मानव स्वभाव के अनुसार, मनुष्य समाज के व्यापक और दीर्घकालिक हितों की तुलना में अपने स्वार्थी और तात्कालिक हितों को प्राथमिकता देने के लिए प्रवृत्त होते हैं। लेकिन चूँकि किसी व्यक्ति के स्वामित्व पर हमला उस चीज़ पर हमला है जो उसके लिए आवश्यक हो सकती है, इसलिए यह लगभग उस व्यक्ति पर हमला करने के बराबर हो जाता है; और संपति रखने वाला व्यक्ति बल का उपयोग करके खुद का बचाव करने के लिए उकसाया जा सकता है। इसका परिणाम हिंसा, अराजकता और अव्यवस्था है।" (पृष्ठ 265, 266 पर)। "अंग्रेजी कानून में कब्ज़ा किसी ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध अधिकार का एक अच्छा शीर्षक है जो बेहतर साबित नहीं कर सकता। गलत तरीके से कब्ज़ा करने वाले व्यक्ति के पास पहले के कब्ज़ेदारों और खुद सच्चे मालिक को छोड़कर सभी व्यक्तियों के संबंध में एक मालिक के अधिकार होते हैं। हालाँकि, कई अन्य कानूनी प्रणालियाँ इससे कहीं आगे जाती हैं, और खुद सच्चे मालिक के विरुद्ध

भी कब्ज़ा को एक अनंतिम या अस्थायी शीर्षक के रूप में मानती हैं। यहाँ तक कि एक गलत काम करने वाला व्यक्ति, जो अपने कब्ज़े से वंचित है, वह किसी भी व्यक्ति से, सिर्फ़ अपने कब्ज़े के आधार पर इसे वापस प्राप्त कर सकता है। यहाँ तक कि असली मालिक, जो अपना कब्ज़ा लेता है, उसे भी इस तरह से गलत काम करने वाले को इसे वापस करने के लिए मजबूर किया जा सकता है, और उसे इस पर अपना खुद का बेहतर शीर्षक स्थापित करने की अनुमति नहीं दी जाएगी। उसे पहले कब्ज़ा छोड़ना होगा, और फिर अपने स्वामित्व के आधार पर चीज़ की वसूली के लिए कानूनी प्रक्रिया के अनुसार आगे बढ़ना होगा। कानून का उद्देश्य यह है कि प्रत्येक कब्ज़ा करने वाले को अपने कब्ज़े को बनाए रखने और पुनः प्राप्त करने का अधिकार होगा, जब तक कि कानून के अनुसार निर्णय द्वारा इसे उससे वंचित न कर दिया जाए।" (सैल्मंड, उक्त, पृ. 294-295) "स्वामित्व के विरुद्ध भी कब्जे की सुरक्षा के लिए इस प्रकार नियुक्त कानूनी उपचारों को अधिकारिक कहा जाता है, जबकि स्वामित्व की सुरक्षा के लिए उपलब्ध उपचारों को स्वामित्व के रूप में पहचाना जा सकता है। आधुनिक और मध्ययुगीन नागरिक कानून में इस अंतर को विपरीत शब्दों पेटिटोरियम (स्वामित्व मुकदमा) और पोज़ेसोरियम (स्वामित्व मुकदमा) द्वारा व्यक्त किया जाता है।" (सैल्मंड, उक्त, पृ. 295)

6. भारत में कानून, जैसा कि विकसित हुआ है, सैल्मंड द्वारा प्रतिपादित न्यायशास्त्रीय विचार के अनुरूप है। मिदनापुर जमींदारी कंपनी लिमिटेड बनाम कुमार नरेश नारायण रॉय और अन्य 1924 पीसी 144 में, सर जॉन एज ने भारतीय कानून का सारांश यह कहते हुए दिया कि भारत में लोगों को जबरन कब्ज़ा करने की अनुमति नहीं है; उन्हें न्यायालय के माध्यम से ऐसा कब्ज़ा प्राप्त करना चाहिए जिसके वे हकदार हैं।

7. यह विचार आज तक लगातार प्रचलित रहा है, निर्णयों की श्रृंखला में अंतिम और नवीनतम निर्णय रमेश चंद अरदावतिया बनाम अनिल पंजवानी (2003) 7 एससीसी 350 है। बीच में, कुछ को उद्धृत करने के लिए, लल्लू यशवंत सिंह (मृत) उनके कानूनी प्रतिनिधि बनाम राव जगदीश सिंह और अन्य (1968) 2 एससीआर 203 में, इस न्यायालय ने माना है कि एक जमींदार ने उस समय अतिचार किया जब उसने एक किरायेदार की जमीन पर जबरन प्रवेश किया, जिसकी किरायेदारी समाप्त हो गई है। न्यायालय ने यह दलील ठुकरा दी कि पट्टाकर्ता और पट्टाधारक पर लागू सामान्य कानून के तहत ऐसा कोई नियम या सिद्धांत नहीं है जो पट्टाकर्ता के लिए यह अनिवार्य बनाता हो कि वह पट्टेदार को बेदखल करने से पहले न्यायालय का सहारा ले और कब्जे के लिए आदेश प्राप्त करे। न्यायालय ने यार मोहम्मद लक्ष्मी दास (एआईआर

1959 ऑल. 1,4), "कानून कब्जे का सम्मान करता है, भले ही उसे समर्थन देने के लिए कोई शीर्षक न हो। यह किसी भी व्यक्ति को कानून को अपने हाथ में लेने और अदालत का सहारा लिए बिना वास्तविक कब्जे वाले व्यक्ति को बेदखल करने की अनुमति नहीं देगा। किसी भी व्यक्ति को अपने मामले में न्यायाधीश बनने की अनुमति नहीं दी जा सकती।" नायर सर्विस सोसाइटी लिमिटेड बनाम केसी अलेक्जेंडर और अन्य (1968) 3 एससीआर 163 के अक्सर उद्धृत मामले में, इस न्यायालय ने माना कि एक व्यक्ति जो मालिक के रूप में भूमि पर कब्जा करता है और शांतिपूर्वक स्वामित्व के सामान्य अधिकारों का प्रयोग करता है, उसके पास पूरी दुनिया के खिलाफ एक अच्छा शीर्षक है, लेकिन सही मालिक के खिलाफ नहीं। जब तथ्य किसी भी पक्ष के पास कोई शीर्षक नहीं दिखाते हैं , तो केवल कब्जे से ही फैसला होता है। न्यायालय ने लॉफ्ट के कहावत ' पॉसेसियो कॉन्ट्रा ओमनेस वैलेट प्रेटेर' को उद्धृत किया 'यूर कुई इयस सिट पोजेजिस ' (जिसके पास कब्जा है, उसके पास सभी के विरुद्ध अधिकार है, सिवाय उसके जिसके पास वास्तविक अधिकार है)' और कहा, "ऐसे मामले में विपक्षी को स्वयं या अपने पूर्ववर्ती के विरुद्ध वैध कानूनी अधिकार दिखाना होगा, या संभवतः वादी के कब्जे से पहले का कब्जा दिखाना होगा और इस प्रकार समय से पहले अनुमान लगाने में सक्षम होना होगा।

कृष्ण राम महाले (मृत) बनाम श्रीमती शोभा वेंकट राव (1989) 4 एससीसी 131 में , यह माना गया कि जहां किसी व्यक्ति का संपति पर स्थायी कब्जा है, इस धारणा पर भी कि उसे संपति पर रहने का कोई अधिकार नहीं है, उसे कानून का सहारा लिए बिना संपति के मालिक द्वारा बेदखल नहीं किया जा सकता है। नगर पालिका, जींद बनाम जगत सिंह, एडवोकेट (1995) 3 एससीसी 426 में, इस न्यायालय ने माना कि शीर्षक के विवादित प्रश्नों को कानून की उचित प्रक्रिया द्वारा तय किया जाना है, लेकिन शांतिपूर्ण कब्जे को कब्जे के मूल के प्रश्न की परवाह किए बिना अतिचारी से संरक्षित किया जाना है। जब विपक्षी मुकदमे की भूमि पर अपना शीर्षक साबित करने में विफल रहता है तो वादी विपक्षी के खिलाफ अपने पूर्व कब्जे के आधार पर कब्जे के लिए डिक्री प्राप्त करने में सफल हो सकता है जिसने उसे बेदखल किया है

नगर पालिका, जींद बनाम जगत सिंह, एडवोकेट (1995) 3 एससीसी 426 में, इस न्यायालय ने माना कि शीर्षक के विवादित प्रश्नों को कानून की उचित प्रक्रिया द्वारा तय किया जाना चाहिए, लेकिन शांतिपूर्ण कब्जे को कब्जे की उत्पत्ति के प्रश्न की परवाह किए बिना अतिचारी से संरक्षित किया जाना चाहिए। जब विपक्षी मुकदमे की भूमि पर अपना शीर्षक साबित करने में विफल रहता है, तो वादी विपक्षी के खिलाफ अपने पिछले कब्जे के आधार पर कब्जे के लिए डिक्री हासिल करने में सफल हो सकता है , जिसने उसे बेदखल कर दिया है। ऐसा मुकदमा वादी के पिछले कब्जे

और विपक्षी द्वारा बेदखली के कथन पर आधारित होगा।

फकीरभाई में भगवानदास एवं अन्य बनाम मगनलाल हरिभाई और अन्य एआईआर 1951 बॉम्बे 380 में एक खंडपीठ ने जस्टिस भगवती (तब उनके लॉर्डशिप थे) के माध्यम से बात की और माना कि निषेधाज्ञा का दावा करने वाले व्यक्ति के लिए मुकदमे की भूमि पर अपना स्वामित्व साबित करना आवश्यक नहीं है। यह पर्याप्त होगा यदि वह साबित कर दे कि वह उस पर वैध कब्जे में था और उसके कब्जे पर किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा आक्रमण किया गया था या आक्रमण करने की धमकी दी गई थी, जिसका उस पर कोई स्वामित्व नहीं है। हम इस दृष्टिकोण से सम्मानपूर्वक सहमत हैं। उच्च न्यायालय ने स्वामित्व के प्रश्न को खुला रखा है। दोनों दावेदार पक्षों में से प्रत्येक को अपने-अपने दावों के अनुसार अपने स्वामित्व को स्थापित करने और विधिवत गठित कानूनी कार्यवाही में इसे साबित करने के लिए निर्देशित सभी प्रासंगिक तथ्यों का तर्क देने की स्वतंत्रता होगी। अत्यधिक सावधानी के साथ, हम स्पष्ट करते हैं कि आरोपित निर्णय को किसी भी दावेदार पक्ष के पक्ष में या उसके विरुद्ध मुकदमे की संपत्ति पर स्वामित्व के प्रश्न का निर्णय करने के रूप में नहीं लिया जाएगा।"

अनाथुला सुधाकर बनाम पी. बुची रेड्डी, (2008) 4 एससीसी 594 में यह माना गया है कि-

"विपक्षी द्वारा वादग्रस्त संपत्ति पर कब्जा साबित करने में सफलता प्राप्त कर लेने के बाद, तथा याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रतिपक्ष को यह इंगित करने के लिए कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया कि विपक्षी द्वारा वादग्रस्त संपत्ति पर कब्जा गलत था, बलपूर्वक बेदखली के विरुद्ध निषेधाज्ञा के लिए एक सरल वाद वादग्रस्त संपत्ति पर कोई नाममात्र अधिकार मांगे बिना ही अनुरक्षणीय था।

नायर सर्विस सोसाइटी लिमिटेड बनाम के.सी. अलेक्जेंडर, एआईआर 1968 एससी 1165 में यह माना गया है कि:-

"इस न्यायालय ने फैसला सुनाया कि जब तथ्य किसी भी पक्ष में कोई शीर्षक नहीं दिखाते हैं, तो केवल कब्ज़ा ही निर्णय लेता है। यह आगे माना गया कि यदि विशिष्ट राहत अधिनियम, 1877 की धारा 9 (वर्तमान धारा 6 के अनुरूप) का उपयोग किया जाता है, तो वादी को शीर्षक साबित करने की आवश्यकता नहीं है और विपक्षी का शीर्षक उसके लिए कोई लाभ नहीं देता है। हालाँकि, जब छह महीने की अवधि बीत जाती है, तो विपक्षी द्वारा शीर्षक के प्रश्न उठाए जा सकते हैं और यदि वह ऐसा करता है तो वादी को बेहतर शीर्षक स्थापित करना होगा या विफल होना होगा। दूसरे शब्दों में, ऐसा अधिकार केवल विशिष्ट राहत अधिनियम की धारा 9 (वर्तमान धारा 6 के अनुरूप) के तहत एक मुकदमे में कब्जे तक ही सीमित है, लेकिन बेदखली की तारीख से 12 साल के भीतर पूर्व कब्जे पर मुकदमा करने पर रोक

नहीं लगाता है, और शीर्षक तब तक साबित करने की आवश्यकता नहीं है जब तक कि विपक्षी एक प्रदान नहीं कर सकता है।"

13. विपक्षी-पुनरीक्षणकर्ता एक तृतीय पक्ष है और वह बिक्री-पत्र और सुपुर्दगी पत्र में पक्षकार नहीं रहा है। अब तक उसने वाद में संपत्ति के बारे में कोई स्वामित्व विलेख प्रस्तुत नहीं किया है, इसलिए, इस न्यायालय की राय है कि ऐसी परिस्थितियों में वादी का वाद विपक्षी के विरुद्ध कायम रह सकता है। चूंकि विपक्षी वाद में संपत्ति पर स्वामित्व का दावा नहीं कर रहा है, इसलिए उसके लिए आदेश 7 नियम 11 सीपीसी के आधार पर वाद को चुनौती देना संभव नहीं है। यह उल्लेख करना भी उचित है कि कभी-कभी जब तथ्य और कानून का मिश्रित प्रश्न होता है, तो उस पर पक्षों के साक्ष्य लेने के बाद ही निर्णय लिया जा सकता है। आदेश 7 नियम 11 सीपीसी के तहत शक्ति का प्रयोग परीक्षण न्यायालय द्वारा किसी भी स्तर पर किया जा सकता है।

14. पोपट और केटेचा प्रॉपर्टी बनाम एसबीआई स्टाफ असेसमेंट, (2005) 7 एससीसी 510 में यह माना गया है कि "विवादित प्रश्न को 7 नियम 11 सीपीसी के तहत आवेदन में चुनौती नहीं दी जा सकती है ।"

15. इस प्रकार, उपरोक्त चर्चाओं के आधार पर यह न्यायालय इस विचार पर है कि विवादित आदेश में कोई अवैधता या त्रुटि नहीं है। पुनरीक्षण में कोई बल नहीं है और इसे खारिज किया जाना चाहिए।

16. तदनुसार, पुनरीक्षण खारिज किया जाता है और आरोपित आदेश की पुष्टि की जाती है। इस पुनरीक्षण में इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 10.2.20217 का स्थगन आदेश निरस्त किया जाता है।

17. इस आदेश की एक प्रति आवश्यक अनुपालन हेतु अवर न्यायालय को प्रेषित की जाए।

(2023) 3 ILRA 860

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 09.01.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा

सिविल पुनरीक्षण संख्या 650 / 2014

वक्फ कब्रिस्तान शेखखान बिरादरी संख्या 616, मेरठ ... पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

उ.प्र. सुन्नी केंद्रीय बोर्ड और अन्य ...प्रतिवादी

पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता:
श्री अयूब खान

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

सिविल कानून - सिविल प्रक्रिया संहिता - धारा - 151 - आदेश - 23, नियम 1 - नगर महापालिका अधिनियम, 1916 - धारा - 213 - वक्फ अधिनियम, 1995 - धाराएँ - 54 और 55 - सिविल पुनरीक्षण - आपेक्षित आदेश के विरुद्ध - जिसके द्वारा आवेदक द्वारा सीपीसी की धारा 151 के तहत दायर की गई आवेदन को मंजूर किया गया - पोषणीयता - संपत्ति की प्रकृति - वाद वापस लिया गया - लगभग 11 वर्षों के बाद विचारणीय न्यायालय ने सीपीसी की धारा 151 के तहत आवेदन को स्वीकार किया और संदर्भ

को उसके मूल संख्या पर पुनर्स्थापित किया - निश्चित रूप से यह न्यायालय की शक्ति का दुरुपयोग और गलत प्रयोग है - और न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति का अवैध प्रयोग है - इसके अतिरिक्त, ऐसा पुनर्स्थापना आदेश पुनः जांच योग्य है लेकिन प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा ऐसा कोई प्रक्रिया नहीं अपनाई गई और सारांश रूप से और अवैध तरीके से आपेक्षित आदेश को प्राप्त किया गया जो तथ्यात्मक और कानूनी रूप से गलत है - इसलिए, पुनरीक्षण स्वीकृत किया जाता है। (पैरा - 13, 14, 15)

पुनरीक्षण स्वीकृत। (E-11)

<u>माननीय न्यायमूर्ति उमेश चंद्र शर्मा</u>

1. यह नागरिक पुनरीक्षण वक्फ ट्रिब्यूनल/सिविल जज (सीनियर डिवीजन), मेरठ द्वारा प्रकीर्ण वाद संख्या 17 वर्ष 2004 (मोहम्मद फारूक बनाम सुन्नी सेंट्रल बोर्ड और अन्य) में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 29.9.2014, जिसके द्वारा आवेदक-मोहम्मद फारूक द्वारा दायर आवेदन 3सी2 अंतर्गत धारा 151 सिविल प्रक्रिया संहिता को 500/-रुपये की लागत पर स्वीकार कर लिया गया था एवं दिनांक 10.12.2003 को संदर्भ/मूल वाद संख्या 1294 वर्ष 1993 में वापसी आवेदन पर पारित आदेश को वापस ले लिया गया था।

2. संक्षेप में, मामले के तथ्य यह हैं कि मोहम्मद फारूक-वादी ने सुन्नी सेंट्रल वक्फ लखनऊ, प्रबंध समिति और वक्फ कब्रिस्तान बिरादरी शाह खान के विरुद्ध संदर्भ संख्या 1294 वर्ष 1993 के रूप में वक्फ ट्रिब्यूनल/सिविल जज (सीनियर डिवीजन), मेरठ के न्यायालय में, इस कथन के साथ एक वाद दायर किया कि वह मोहल्ला गुलज़ार इब्राहिम, लिसाड़ी रोड, हल्का नंबर 13, मेरठ शहर में स्थित मकान नंबर 169 (170) का मालिक है और अपने परिवार के साथ रह रहा है। घर का निर्माण लगभग 60 वर्ष पहले हुआ था और वादी के पिता अपने परिवार के साथ मालिक के रूप में घर के निवासी थे और उनकी मृत्यु के बाद, वादी ने पुत्र के रूप में अपना अधिकार विरासत में पाया और वह मालिक के रूप में घर में रह रहा है, याचिकाकर्ता का नाम निगम मूल्यांकन रजिस्टर में मालिक के रूप में दर्ज है। यह घर उनके पिता या उनके द्वारा समर्पित नहीं किया गया था और यह उनकी निजी संपत्ति है।

3. 2.11.1993 को वादी को नगर महापालिका अधिनियम की धारा 213 के तहत एक नोटिस प्राप्त हुआ, जिससे यह पता चला कि विपक्षी संख्या 3 ने इस आरोप पर अपने नाम परिवर्तन के लिए आवेदन किया है कि संपत्ति एक वक्फ संपत्ति है और उसे विपक्षी संख्या 1 द्वारा आदेश दिनांक 12.9.1991 द्वारा पंजीकृत किया गया है। वक्फ रजिस्टर में सीमा और मकान नंबर नहीं दिया गया है, लेकिन चूंकि विपक्षी नंबर है 3 ने नाम परिवर्तन के लिए आवेदन किया है इसलिए वादी आदेश दिनांक 12.9.1994 को रद्द करवाने के लिए बाध्य है। विवादित घर को वक्फ संपत्ति के रूप में पंजीकृत करने से पहले वादी को विपक्षी द्वारा कोई नोटिस नहीं दिया गया था और वह 2.11.1993 से पूर्व इस तथ्य से अनजान था। आदेश दिनांकित 12.9.1991 बिना क्षेत्राधिकार के अवैध है और रद्द किये जाने योग्य है। वादी ने यूपी सुन्नी सेंट्रल वक्फ बोर्ड, लखनऊ द्वारा संपत्ति के संबंध में मुकदमे में पारित आदेश

दिनांक 12.9.1991 को रद्द करने की प्रार्थना की।

4. प्रतिवादी संख्या 2 और 3 उपस्थित हुए और लिखित बयान/आपत्ति दायर की और वादी के तथ्यों से इनकार किया और अतिरिक्त दलीलों में दलील दी कि याचिका अत्यंत समय बाधित है और वादी को, संपत्ति का शेखान की वक्फ कब्रिस्तान बिरादरी जिसे तकिया शाद शाह लंगोट, मेरठ के नाम से जाना जाता है, का हिस्सा होने की प्रकृति को चुनौती देने से रोक दिया गया है। वक्फ क़ब्रिस्तान के तत्कालीन मुतवल्ली की इजाज़त से बने मकान के मलबे के नीचे की ज़मीन अनादिकाल से दस हज़ार वर्ग गज में फैले बड़े क्षेत्र का हिस्सा है। याचिकाकर्ता के पूर्वजों को क़ब्रिस्तान की सीमाओं के भीतर रहने की अनुमति देने का उद्देश्य वक्फ संपत्ति पर नज़र रखना था, उन्हें स्वामित्व या पट्टेदार के अधिकारों जैसे अन्य विशेषाधिकारों का आनंद नहीं मिलता था। याचिका दुर्भावनापूर्ण आधार और अस्पष्ट आरोपों पर दायर की गई है। वादी ने जानबूझकर अपने पूर्वज जिन्होंने कथित तौर पर भूमि का अधिग्रहण किया था, का नाम और इसके अधिग्रहण का तरीका, खसरा प्लॉट संख्या और अन्य विवरणों का उल्लेख करने से परहेज किया है।

वास्तविक तथ्य यह है कि भूमि खसरा प्लॉट संख्या 774 और अन्य निकटवर्ती संख्याओं, महल लेखराज मज़बता, क़स्बा मेरठ से संबंधित है, और क़ब्रिस्तान के तत्कालीन मुतवल्ली स्वर्गीय चौधरी अब्दुल करीम ने याचिकाकर्ता-वादी के पिता मोहम्मद हाफ़िज़ को एक किरायेदार के रूप में ज़मीन के अधिभोग की अनुमति दी थी जिसके लिए एक पंजीकृत किराया विलेख दिनांक 6.5.1937 को पक्षकारों के बीच निष्पादित किया गया था, ऐसे में याचिकाकर्ता या उसके पिता प्रश्नगत संपत्ति के स्वामित्व अधिकार का दावा नहीं कर सकते हैं। पूरे कब्रिस्तान को वर्ष 1970 में यूपीएससी वक्फ बोर्ड लखनऊ के साथ पंजीकृत किया गया था और वक्फ संपत्ति की देखभाल के लिए एक प्रबंधन समिति नियुक्त की गई थी। याचिकाकर्ता या उसके दिवंगत पिता ने मेरठ निगम के कार्यालय में सुधार कार्यवाही में अपनी आपत्तियों से पहले, संपत्ति पर अपने अधिकार पर चुनौती या दावा नहीं किया था। वाद दोषपूर्ण है और इस आधार पर खारिज करने योग्य है कि वक्फ को प्रबंधन समिति के अध्यक्ष के माध्यम से पक्षकार बनाया गया है, जबकि मात्र समिति के सचिव, वर्तमान में एम. हारून, पुत्र एम. शफी, वक्फ की प्रबंध समिति की ओर से मुकदमा दायर करने या उसका बचाव करने के अधिकारी हैं।

उपरोक्त आधार पर, प्रतिवादी ने मुकदमे और संदर्भ को खारिज करने की प्रार्थना की।

5. सिविल जज (सीनियर डिवीजन)/वक्फ ट्रिब्यूनल, मेरठ की अदालत में सुनवाई के दौरान, वादी मोहम्मद फारूक ने एक वापसी आवेदन दायर किया कि 10.12.2002 को संदर्भ के समय, उसे तथ्यों की पूरी जानकारी नहीं थी और अब कुछ पुराने कागजात मिलने के बाद उन्हें यह तथ्य ज्ञात हुआ कि मकान नंबर 169 मौह गुलजार इब्राहिम मेरठ, वक्फ शेखान/पेज 616 मेरठ की भूमि वक्फ संपत्ति है, जिसे सूफी हाफिज शाह ने वक्फ के मुतवल्ली से किराये पर लिया था और किराएदार के रूप में रहते थे। दिवंगत

सूफी हाफ़िज़ शाह ने वादी को घर और किरायेदारी के अधिकार मौखिक रूप से उपहार में दिए थे और वादी को कब्ज़ा का मालिक बनाया था। इसी आधार पर याचिकाकर्ता ने उपरोक्त वाद दायर किया था। चूंकि वास्तविक एवं सच्चे तथ्य ज्ञात हैं तथा यह सिद्ध हो चुका है कि विवादित संपत्ति वक्फ संपत्ति है, अत: विपक्षी संख्या 1 के नाम वक्फ संपत्ति के रूप में प्रविष्टि होने पर वादी को कोई आपत्ति नहीं है। वादी ने कानूनी स्थिति को समझकर स्वयं को संतुष्ट कर लिया है इसलिए संदर्भ संख्या 1294/1993 को हटाने की प्रार्थना की गई।

6. इस आवेदन को 10.12.2003 को स्वीकार कर लिया गया। आदेश दिनांक 10.12.2003 इस प्रकार है:

> *"वाद उठाया गया है। पुकारा गया। याचिकाकर्ता ने एक आवेदन प्रस्तुत करके अपने संदर्भ को खारिज करने की प्रार्थना की है। विपक्षी को कोई आपत्ति नहीं है। जब याचिकाकर्ता स्वयं अपने संदर्भ को खारिज करना चाहता है और लड़ना नहीं चाहता, तो याचिकाकर्ता के आवेदन के आधार पर संदर्भ रद्द किया जाता है।"*
>
> *आदेश*
>
> *आवेदक के आवेदन के आधार पर, संदर्भ निरस्त किया जाता है।*

फ़ाइल पत्रावली पर भेजी जाए. "

7. लंबे अंतराल के बाद वादी मोहम्मद फारूक ने धारा 151 नागरिक प्रक्रिया संहिता के तहत एक आवेदन 3सी2 यह कहते हुए दायर किया कि मकान नं. 169 गुलजार इब्राहिम लिसाड़ी गेट, मेरठ, उसके पिता के समय से प्रार्थी का मकान है। विपक्षी संख्या 2-वक्फ का मकान से कोई लेना-देना नहीं है, मकान के मलबे या ताहती आराजी का कभी किसी ने वक्फ नहीं किया है। एक हारून नामक व्यक्ति जो वक्फ का सचिव है, ने विवादित मकान की संपत्ति को गलत तरीके से वक्फ के रूप में दर्ज कर दिया और गलत प्रविष्टि के आधार पर, वक्फ का नाम गलत तरीके से नगर निगम के रिकॉर्ड में दर्ज कर दिया गया है। पता चलने पर आवेदक ने संदर्भ संख्या 1294/1993 दाखिल किया, जिसमें आवेदक के साक्ष्य होने बाकी थे। हारून ने मुख्य कार्यकारी अधिकारी से मिलीभगत कर गलत तरीके से आवेदक के विरुद्ध बेदखली का आदेश प्राप्त कर लिया था, जिसके विरुद्ध आवेदक ने वाद संख्या 1095 वर्ष 2003 दायर किया था। आवेदक ने संदर्भ संख्या 1294 वर्ष 1993 में स्थगन आदेश प्राप्त कर लिया था। आवेदक एक बूढ़ा व्यक्ति है और मुकदमेबाजी की परेशानी से बचना चाहता था, इसके अलावा, हारून एक बहुत प्रभावशाली व्यक्ति है, उसने अन्य व्यक्तियों के माध्यम से आवेदक को डराने की कोशिश की, धमकी देना शुरू कर दिया कि वह जबरदस्ती घर पर कब्जा कर लेगा। चूंकि आवेदक मुकदमेबाजी से बचना चाहता था, हाफिज हारून ने आवेदक से कहा कि यदि आवेदक जमीन सौंप रहा है, तो वह उसे मलबे और आराजी का मालिक मानेगा, और उसे किरायेदार मानते हुए बेदखल नहीं किया जाएगा। मुकदमा वापस लेने के बाद हाफिज हारून ने वक्फ अधिनियम, 1995 की धारा 55 के तहत आवेदक के घर पर कब्जा करने का प्रयास किया और आवेदक को किरायेदार के रूप में स्वीकार

करने से इनकार कर दिया। इन हरकतों से प्रार्थी को पता चल गया कि उसकी मंशा कुछ और थी, उसने प्रार्थी को धोखा दिया तथा न्यायालय को भी धोखा दिया। धोखाधड़ी के कारण मामला वापस ले लिया गया था, जिसके कारण आवेदक परेशान हो रहा है, इसलिए आदेश दिनांक 10.12.2003 को रद्द किया जाए और मामले का निर्णय गुण-दोष के आधार पर किया जाए।

8. प्रतिवादी-पुनरीक्षणवादी ने शपथ पत्र के साथ आपत्ति 23सी2 दायर की और कहा कि आवेदक-वादी का बयान झूठा है, आवेदन दुर्भावनापूर्ण है और कुछ भू-माफियाओं के दबाव में प्रस्तुत किया गया है जो आवेदक के भाई-बहन पर प्रभाव डालकर गलत तरीके से अवसर का लाभ उठाना चाहते हैं, इसलिए वे वक्फ ट्रिब्यूनल के आदेश को रद्द कराना चाहते हैं। आवेदन समयबाधित है और यह नहीं दर्शाता है कि यह कैसे पोषणीय है और इसका निर्णय योग्यता के आधार पर कैसे किया जा सकता है। आवेदक ने दिनांक 10.12.2003 को संदर्भ वापस ले लिया था तथा मूल वाद संख्या 1095 वर्ष 2003 भी वापस ले लिया था। आवेदक का बेटा आरिफ भी अदालत में मौजूद था और उन्होंने अदालत को बताया था कि वह अपनी स्वतंत्र इच्छा से संदर्भ और मुकदमा वापस ले रहे हैं, यह आरोप गलत है कि एच.एम. हारून, सचिव, प्रबंध समिति/ वक्फ के मुतवल्ली, किराया प्राप्त करने से बच रहे थे या आवेदक को किरायेदार मानने से इंकार कर दिया। यह विशेष रूप से कहा गया है कि वक्फ क़ब्रिस्तान न्यायालय को आश्वासन देता है कि यदि आवेदक अपने उपक्रम को पूरा करने से बच रहा है और उसके द्वारा निर्धारित किराए का भुगतान किया जाता है, तो आवेदक के विरुद्ध धारा 54/55 वक्फ अधिनियम के अंतर्गत कार्यवाही शुरू नहीं की जाएगी। यह आरोप गलत है कि संपत्ति वक्फ संपत्ति नहीं है। निचली अदालत ने संतुष्ट होने के बाद संदर्भ को वापस लेने की अनुमति दी थी। आवेदक अपनी पसंद और इच्छा के अनुसार कार्य करने के लिए न्यायालय को निर्देश नहीं दे सकता है, यदि आवेदन स्वीकार किया जाता है, तो इसका परिणाम अंतहीन मुकदमेबाजी होगा। आवेदक ने भू-माफियाओं द्वारा जमीन हड़पने के लालच में आवेदन प्रस्तुत किया है। आवेदक ने स्थल की स्थिति छिपाई है कि एक भाग का उपयोग कब्रिस्तान के रूप में किया जाना था तथा दूसरे भाग का किराया देने पर सहमत हुआ था। बल्कि, उसने अपने घर का सारा सामान उस हिस्से से हटा दिया था। इसलिए आवेदन अंतर्गत धारा 151 सिविल प्रक्रिया संहिता खारिज किया जाए।

9. दोनों पक्षों को सुनने के बाद, सिविल जज (सीनियर डिवीजन)/वक्फ ट्रिब्यूनल ने आवेदक-विपक्षी पक्ष संख्या 2 द्वारा दिए गए आवेदन को बिना कोई ठोस कारण बताए स्वीकार कर लिया, इसलिए, उपरोक्त आधार पर पुनरीक्षणवादी-विपक्षी पक्ष ने यह नागरिक पुनरीक्षण दायर किया है।

10. दोनों तरफ से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ। अतः पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य/सामग्री का मूल्यांकन करने के बाद इस पुनरीक्षण का निर्णय लिया जा रहा है।

11. उल्लेखनीय है कि संदर्भ में विपक्षी संख्या 2 ने खुद को और अपने पिता को प्रश्नगत संपत्ति

का स्वामी होने का दावा किया है। उसने यह भी माना है कि यह मलबा जैसा है और वक्फ संपत्ति का हिस्सा है। उसने इस बात से इनकार नहीं किया कि उसने वक्फ ट्रिब्यूनल/सिविल जज (सीनियर डिवीजन), मेरठ के समक्ष आवेदन दिनांकित 10.12.2003 प्रस्तुत नहीं किया था, जिसमें उसने स्वीकार किया था कि वह सूफी हाफिज शाह का पुत्र हैं और यह भी स्वीकार किया था कि मकान नंबर 169 की भूमि वक्फ क़ब्रिस्तान शेखरान बिरादरी नंबर 616, मेरठ के स्वामित्व में है, जिसे उसके पिता द्वारा किराए पर लिया गया था और वह वहां रह रहे थे और उनके जीवनकाल के दौरान, घर का मलबा और किरायेदारी से संबंधित सभी अधिकार,मौखिक उपहार के द्वारा उसे हस्तांतरित कर दिए गए थे, अतः उसने मुकदमा दायर किया। मो. फारूक ने यह भी स्वीकार किया था कि संदर्भ दायर करने के समय, उसे मामले के विस्तृत तथ्यों की जानकारी नहीं थी और कुछ पुराने कागजात प्राप्त करने के बाद उसे पता चला कि विवादित संपत्ति वक्फ संपत्ति है जिसे उसके पिता ने किराए पर लिया था। उसने यह भी स्वीकार किया था कि उसे प्रश्नगत संपत्ति को वक्फ संपत्ति के रूप में दर्ज किए जाने पर कोई आपत्ति नहीं है। उसने आगे स्वीकार किया कि उसने कानूनी राय लेकर खुद को संतुष्ट कर लिया था और आवेदन उसकी स्वतंत्र इच्छा से दायर किया गया था और उसे स्वीकार कर लिया गया और मोहम्मद फारूक का संदर्भ और मुकदमा 10.12.2003 को खारिज कर दिया गया।

12. यह आश्चर्य की बात है कि देरी की माफी के लिए कोई आवेदन दिए बिना और कानून की उचित प्रक्रिया का पालन किए बिना, आवेदन अंतर्गत धारा 151 सिविल प्रक्रिया संहिता दायर किया गया था और सिविल जज (सीनियर डिवीजन)/वक्फ ट्रिब्यूनल, मेरठ द्वारा, बिना किसी ठोस कारण और बिना किसी आधार के इसे स्वीकार कर लिया गया। आदेश 23 नियम 1 सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत मुकदमा वापस लेने का प्रावधान है जो इस प्रकार है:

> *"आदेश 23 नियम 1(1) सिविल प्रक्रिया संहिता के अनुसार, मुकदमा दायर करने के पश्चात, एक वादी किसी भी समय अपना मुकदमा छोड़ सकता है या अपने दावे का एक हिस्सा छोड़ सकता है। जैसे ही इस उप-नियम के तहत एक आवेदन दायर किया जाता है, मुकदमे की वापसी पूर्ण हो जाती है और ऐसी वापसी न्यायालय के आदेश पर निर्भर नहीं होती है।"*

13. इस मामले में, विषय वस्तु के संबंध में इसे फिर से दायर करने की स्वतंत्रता के साथ संदर्भ को वापस लेने की कोई अनुमति नहीं ली गई थी, इसलिए धारा 151 सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत आवेदन दायर करने का कोई अवसर या अधिकार नहीं था। वक्फ ट्रिब्यूनल, मेरठ ने आवेदक के आवेदन के संस्करण पर हथौड़ा चलाया है कि जब पुनरीक्षणवादी ने उसे किरायेदार के रूप में स्वीकार नहीं किया तो मामले को बहाल करने की आवश्यकता उत्पन्न हुई। वापसी आवेदन के अवलोकन से या दिनांक 10.12.2003 के आदेश के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि मोहम्मद फारूक अथवा न्यायालय द्वारा ऐसी कोई शर्त नहीं लगाई गई थी। वापसी का आवेदन बिना किसी दबाव या अनुचित प्रभाव

के प्रस्तुत किया गया था। विपक्षी पक्ष संख्या 2 द्वारा यह कथित नहीं किया गया है कि वह संदर्भ मामले को इस शर्त पर वापस ले रहा था कि उसे प्रश्नगत संपत्ति का किरायेदार माना जाएगा। निचली अदालत ने गलत निष्कर्ष निकाला है कि यदि संदर्भ बहाल किया जाता है, तो मुकदमे की बहुलता कम हो जाएगी और पक्षकार किसी भी परेशानी से बच जाएंगे। चूंकि मामले को वापसी के माध्यम से पहले ही सुलझाया और अंतिम रूप दिया जा चुका था, लगभग 11 वर्षों के अंतराल के बाद धारा 151 सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत आवेदन पर विचार करने और उसके संदर्भ को उसकी मूल संख्या पर बहाल करने का कोई अवसर नहीं था।

14. निश्चित रूप से यह शक्ति का दुरुपयोग है तथा न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति का अवैधानिक प्रयोग है। इतना ही नहीं, इस तरह का वापसी आदेश पुनरीक्षण योग्य है लेकिन विपक्षी पक्ष संख्या 2 द्वारा ऐसी कोई प्रक्रिया नहीं अपनाई गई और शॉर्ट कट विधि अपनाकर और अवैध उपाय अपनाकर आक्षेपित आदेश प्राप्त किया गया है जो तथ्यात्मक और कानूनी रूप से गलत है। इस प्रकार, आक्षेपित आदेश निरस्त किये जाने योग्य है और पुनरीक्षण की अनुमति दी जानी चाहिए।

15. तदनुसार, पुनरीक्षण स्वीकार किया जाता है और वक्फ ट्रिब्यूनल/सिविल जज (सीनियर डिवीजन), मेरठ द्वारा पारित आदेश दिनांक 29.9.2014 को अपास्त किया जाता है।

16. इस निर्णय की एक प्रति आवश्यक अनुपालन हेतु निचले न्यायालय को भेजी जाये।

(2023) 3 ILRA 864

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 02.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेन्द्र ठाकर,जे.

माननीय न्यायमूर्ति मो. अजहर इदरीसी, जे.

2014 की आपराधिक अपील संख्या 630

धनंजय @पप्पू ... अपीलार्थी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ... प्रतिवादी

अपीलकर्ता के लिए वकील:

श्री राम सुफल शुक्ला, श्री ए।के। पांडे, श्री चंदन शर्मा, श्री संदीप शुक्ला, श्री उमेश नारायण शुक्ला, श्री विनोद सिंह (ए।सी।)

प्रतिवादी के लिए वकील: जी.ए.

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता -1860 - धाराएं 299, 300, 302 और 304 (भाग 1) - आरोपी-अपीलकर्ता ने गंभीर चोटें पहुंचाईं जिससे पीड़ितों की मौत हो गई - धारा 302 IPC के तहत सजा - अभियोजन के बयान में कोई बढ़ा-चढ़ा कर प्रस्तुत नहीं किया गया - प्रस्तुत चिकित्सा साक्ष्य पूरी तरह से सिद्ध हुए - खुकरी और अन्य संदिग्ध चीजों पर मानव रक्त पाया गया - परीक्षा, जिरह या मुख्य परीक्षा में कोई भी परिवर्तन या चूक पूरी अभियोजन की कहानी को खत्म नहीं करेगी और दोष से मुक्त नहीं करेगी - हत्या की योजना नहीं बनाई गई थी - आरोपी को पता था और उसकी मंशा थी कि उसका कृत्य शरीर को नुकसान पहुंचाएगा लेकिन वह मृतक को मारना नहीं चाहता था - अपराध धारा 302 IPC के तहत दंडनीय नहीं है, बल्कि

यह हत्या के बिना हत्या का वाद है, जो धारा 304 (भाग 1) के तहत दंडनीय है - हमारे देश में आपराधिक न्याय प्रणाली सुधारात्मक और सुधारात्मक है, प्रतिशोधात्मक नहीं - अपीलकर्ता की सजा को धारा 304 (I) IPC के तहत सजा में परिवर्तित कर दिया गया।

अपील आंशिक रूप से स्वीकृत। (ई-15)

उद्धृत वाद सूची:

1. श्रीकांतिया बनाम महाराष्ट्र राज्य, 1955 SCJ 233

2. यूनिस उर्फ कारीया बनाम मध्य प्रदेश राज्य, AIR 2003 SC 539

3. अनिल यादव बनाम बिहार राज्य, 1992 (1) क्राइम 282

4. थमन कुमार बनाम चंडीगढ़ संघ शासित प्रदेश, AIR 2003 SC 3975

5. पंजाब राज्य बनाम सूचा सिंह, AIR 2003 SC 1471

6. निर्मल सिंह बनाम बिहार राज्य, 2005 (41) ACC 302 (SC)

7. हुकुम सिंह बनाम राजस्थान राज्य, 2000 (6) सुप्रीम कोर्ट 245 (SC)

8. जगदीश बनाम हरियाणा राज्य, AIR 1998 SC 923

9. राजस्थान राज्य बनाम हनुमान, AIR 2001 SC 282

10. आर. प्रकाश बनाम कर्नाटका राज्य, 2004 (49) ACC 777 (SC)

11. संदीप बनाम हरियाणा राज्य, 2001 CRLJ 1456

12. सेवक सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 2002 (44) ACC 1 (SC)

13. अम्बिका बनाम राज्य, 2000 SCC (आपराधिक) 522

14. सुरेंद्र नारायण बनाम राज्य, AIR 1998 SC 198

15. बल्देव सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य, 1996 AIR 372, 1995 SCC (6) 596

16. अमर सिंह बनाम बलविंदर सिंह और अन्य, (2003 (2) SCC 518)

17. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम हरवंश सहाय, 1996(6) SCC 50

18. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम हरी मोहन और अन्य, 2000 SCC 516

19. रामबली बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2004, SCC 2329-C खंड - 02

20. विजय सिंह बनाम बिहार राज्य, 2003 SCC 1093

21. धनंजय सिंह बनाम पंजाब राज्य, 2004 SCC CRI 851

22. राम बिहारी यादव बनाम बिहार राज्य और अन्य, 1998 (4) SCC 517

23. अमर सिंह बनाम बलविंदर सिंह और अन्य, (2003 (2) SCC 518)

24. खेमा उर्फ खेम चंद्र बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, आपराधिक अपील संख्या 1200-1202 / 2022 जो SLP (आपराधिक) नंबर 8624 वर्ष 2019 से संबंधित है

25. अनिल फुकन बनाम असम राज्य, 1993 lawsuit, (229)

26. वीरान और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2011) 5 SCR 300

27. तुकाराम और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2011) 4 SCC 250

28. बी.एन. कावतकर और अन्य बनाम कर्नाटका राज्य, 1994 SUPP (1) SCC 304

29. मोहम्मद गियासुद्दीन बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, [AIR 1977 SC 1926]

30. देव नरेन मंडल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(2004) 7 एससीसी 257]

31. रावड़ा सशिकला बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, एआईआर 2017 एससी 1166

32. जमील बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(2010) 12 एससीसी 532]

33. गुरु बसवराज बनाम कर्नाटक राज्य, [(2012) 8 एससीसी 734]

34. सुमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह, [(2014) 7 एससीसी 323]

35. पंजाब राज्य बनाम बावा सिंह, [(2015) 3 एससीसी 441]

36. राज बाला बनाम हरियाणा राज्य, [(2016) 1 एससीसी 463]

(द्वारा न्यायमूर्ति मोहम्मद अजहर हुसैन इदरीसी)

1. अपीलकर्ताओं की तरफ से अधिवक्ता श्री ए. के. पाण्डेय की सहायता से अधिवक्ता श्री राम सुफल शुक्ला और राज्य की तरफ से विद्वान ए.जी.ए. को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया और पूरी सामग्री और उपलब्ध सबूतों का अवलोकन किया।

2. अभियुक्त पिछले 15 वर्षों अर्थात 01.01.2007 से अधिक समय से जेल में हैं उनके मामले में छूट के लिए विचार नहीं किया गया है।

3. प्रारंभ में, यह उल्लेख किया जा सकता है कि आरोपी धनंजय उर्फ पप्पू और दीपक कुमार ठाकुर के खिलाफ 2007 के अपराध संख्या 06 में भ० द० वि० की धारा 302 के तहत आरोप पत्र दायर किया गया था और आरोपी धनंजय उर्फ पप्पू के खिलाफ 2007 की धारा 4/25 आर्म्स एक्ट और अपराध संख्या 07 के तहत अलग-अलग आरोप पत्र दायर किया गया था। जैसा कि दिनांक 22.03.2013 के आक्षेपित निर्णय में वर्णित है। वर्ष 2007 के अपराध संख्या 06 में सह अभियुक्त दीपक कुमार ठाकुर मुकदमे के दौरान फरार हो गया। इसलिए, विद्वान विचारण न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांक 21.11.2012 के आदेश के तहत, उनकी फाइल को अलग कर दिया गया था। इस प्रकार, विचारण न्यायालय द्वारा केवल एकमात्र आरोपी धनंजय उर्फ पप्पू पर मुकदमा चलाया गया था।

4. द० प्र० स० की धारा 374 (2) के तहत वर्तमान अपील आरोपी/अपीलकर्ता धनंजय उर्फ पप्पू की ओर से अभियुक्त/अपीलकर्ता धनंजय उर्फ पप्पू की ओर से की गई है, जिसमें 22.3.2013 के फैसले और आदेश को चुनौती दी गई है, जिसे अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश (कोर्ट नंबर 1) गाजियाबाद द्वारा (1) - 2007 के सत्र परीक्षण संख्या 445 (राज्य बनाम धनंजय और अन्य) में धारा 302 भ० द० वि० के तहत पारित किया गया था, जिसमें आरोपी धनंजय को दोषी ठहराया गया था और 25000/- रुपये के जुर्माने के साथ कठोर आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई थी। 25000/- रुपये और जुर्माने की चूक में उसे दो वर्ष के अतिरिक्त सश्रम कारावास की सजा काटनी होगी और (2) - 2007 की एस० टी० संख्या 446 (राज्य बनाम धनंजय उर्फ पप्पू) में, जिसमें उसे दोषी ठहराया गया और 1000/- रुपये के जुर्माने के साथ दो साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई और धारा 4/25 शस्त्र अधिनियम के तहत दो साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई। जुर्माना अदा न करने पर दो वर्ष का अतिरिक्त सश्रम कारावास भुगतना होगा। कारावास की दोनों सजाएं साथ-साथ चलनी थीं।

5. संक्षेप में, मामले के तथ्य, जैसा कि रिकॉर्ड से निकाला गया है, यह है कि शिकायतकर्ता सलाउद्दीन द्वारा उसी दिन शाम लगभग 5.30 बजे शाहीबाबाद, जिला गाजियाबाद पुलिस स्टेशन में भ० द० वि० की धारा 307 और 302 के तहत 01.01.2007 को लगभग 19.45 बजे एक प्राथमिकी दर्ज की गई थी। आरोपी धनंजय उर्फ पप्पू और दीपक के खिलाफ खुलासा हुआ कि उसकी बहन का बेटा उम्मेद अली और उसका भतीजा शान मोहम्मद और वसीम राम मनोहर लोहिया पार्क में घूमने गए थे। शाम को लगभग 5.30 बजे, दो अज्ञात लड़के उनके पास आए और उम्मेद अली से पैसे की मांग की, लेकिन उम्मेद अली ने उनकी मांग को मानने से इनकार कर दिया, जिससे इन लड़कों को बहुत गुस्सा और उत्तेजना हुई, जिससे उन्हें गाली-गलौज का आदान-प्रदान करना शुरू कर दिया और पीड़ितों के साथ झगड़ा शुरू हो गया। आरोपी अपने गुस्से को रोक नहीं सके, जिसके परिणामस्वरूप एक आरोपी ने अपने बैग से खुकरी निकाली और उम्मेद अली और शान मोहम्मद पर हमला कर दिया। उन्हें गंभीर चोटें आईं, जिसके परिणामस्वरूप दोनों घायल पार्क में गिर गए। दूसरे लड़के ने अपने दूसरे भतीजे को पकड़ लिया। उन्होंने 'सालों को जान से मार दो' कहकर अपनी जान को खतरा बताया। उसने अपने भतीजे वसीम की मदद से बदमाशों को पकड़ लिया और खुकरी छीन ली। पकड़े जाने पर एक आरोपी ने अपना नाम धनंजय उर्फ पप्पू बताया और दूसरे ने अपना नाम दीपक कुमार ठाकुर बताया। इसी बीच सतीश और आरिफ चौधरी भी घटना स्थल पर पहुंच गए। किसी भी तरह, उन्होंने दोनों घायलों को नियंत्रित किया और 100 नंबर डायल किया! पुलिस मौके पर पहुंची। घायल उम्मेद और शान मोहम्मद को पुलिस जिप्सी के माध्यम से अम्बे अस्पताल ले जाया गया, जहां घायल उम्मेद को मृत घोषित कर दिया गया और दूसरे घायल शान मोहम्मद को इलाज के लिए जीटीबी अस्पताल, दिल्ली रेफर कर दिया गया, जहां उसने भी दम तोड़ दिया। दोनों हमलावरों को खुकरी के साथ पुलिस स्टेशन शाहीबाद गाजियाबाद ले जाया गया, जो खून से सना हुआ था। मुखबिर सलाउद्दीन ने मुन्ना खान की लिखी तहरीर थाने में दी।

6. उपर्युक्त तहरीर (लिखित शिकायत) के आधार पर दिनांक 1.1.2007 को थाना शाहिबाबाद, जिला गाजियाबाद में धनंजय एवं अन्य के विरुद्ध अपराध संख्या 06/2007 तथा आरोपी धनंजय उर्फ पप्पू के विरुद्ध धारा 4/25 शस्त्र अधिनियम के तहत अपराध संख्या 06/2007 के तहत प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई। विवरणों को कायामी जीडी और चिक प्राथमिकी. में दर्ज किया गया था। मामले की जांच एस0एस0आई0 मलखान सिंह को सौंपी गई थी।

7- जांच शुरू होने पर आईओ अन्य पुलिस कर्मियों के साथ मौके पर पहुंचे, गवाहों के बयान दर्ज किए, घटना स्थल की साइट योजना तैयार की, घटना स्थल से खुकरी का बैग और कवर एकत्र किया और रिकवरी मेमो तैयार किए। आरोपी अपीलकर्ता और सह-अभियुक्त को 1.1.2007 को पुलिस हिरासत में ले लिया गया और उनके बयान दर्ज किए गए। खून से सनी खुकरी को भी जांच अधिकारी ने अपने कब्जे में ले लिया। आरोपी धनंजय कुमार सिंह उर्फ पप्पू के खिलाफ उसी दिन धारा 4/27 आर्म्स एक्ट के तहत अपराध संख्या 7/2007 दर्ज किया गया था। उन्होंने घटना स्थल से खून से सनी और

सादे मिट्टी भी एकत्र की और उसी का फर्द तैयार किया गया।

8. मृतक उम्मेद की पंचायतनामा गवाहों की उपस्थिति में तैयार की गई थी और मृत्यु के कारण का पता लगाने के लिए गवाहों की राय के अनुसार, शव का पोस्टमॉर्टम प्रस्तावित किया गया था। आवश्यक औपचारिकताओं को पूरा करने के बाद, पोस्टमार्टम के संबंध में सी.एम.ओ. चालान लाश, फोटो लाश, सील के नमूने जैसे दस्तावेज तैयार किए गए और मृतक उम्मेद के शव को सीलबंद कपड़े के कवर में लपेटा गया और तदनुसार शव परीक्षण के लिए शवगृह ले जाया गया। डॉ. केएन तिवारी ने मृतक उम्मेद का पोस्टमार्टम किया।

9. जांच अधिकारी (इसके बाद आईओ के रूप में संदर्भित) ने आरोपी अपीलकर्ता और सह-आरोपी की मिलीभगत दिखाने वाली विश्वसनीय और ठोस सामग्री और सबूत एकत्र करने के बाद आरोपी धनंजय उर्फ पप्पू के खिलाफ धारा 4/25 शस्त्र अधिनियम के तहत मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, गाजियाबाद के समक्ष आरोप पत्र प्रस्तुत किया जिन्होंने दोनों मामलों का संज्ञान लिया।

10. सत्र न्यायालय द्वारा अनन्य रूप से सुनवाई योग्य होने के कारण, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट गाजियाबाद ने उन्हें 9.4.2007 को सत्र न्यायालय को सौंप दिया। बाद में सत्र न्यायाधीश ने परीक्षण के लिए इसे सत्र न्यायाधीश गाजियाबाद (कोर्ट नंबर 1) की अदालत में स्थानांतरित कर दिया।

11. अपर सत्र न्यायाधीश ने आरोपी अपीलार्थी धनंजय कुमार सिंह उर्फ पप्पू और दीपक कुमार ठाकुर के खिलाफ धारा 302 भ० द० वि० और आरोपी धनंजय उर्फ पप्पू के खिलाफ धारा 4/25 आर्म्स एक्ट के तहत अलग-अलग आरोप तय किए। आरोपों को पढ़ा गया और आरोपी/अपीलकर्ता को समझाया गया। उन्होंने आरोपों को खारिज कर दिया और "दोषी नहीं" होने की दलील दी और "मुकदमा चलाने का दावा किया"।

12. आरोपों को कानून के दायरे में लाने के लिए, अभियोजन पक्ष ने 8 गवाहों से पूछताछ की, जो निम्नानुसार हैं:-

क्रम सं0	गवाहों के नाम	अ.सा.
1	वसीम	अ०सा०- 1
2	सलाहुद्दीन	अ०सा०- 2
3.	डॉ. अरविंद कुमार	अ०सा०- 3
4	डॉ के0 एन तिवारी	अ०सा०- 4
5	कांस्टेबल सोम पाल सिंह	अ०सा०- 5
6	मुन्ना	अ०सा०- 6
7	शमशाद	अ०सा०- 7
8	मलखान सिंह	अ०सा०- 8

13. प्रत्यक्षदर्शी संस्करण के समर्थन में, अभियोजन पक्ष द्वारा निम्नलिखित दस्तावेज भी दायर किए गए और साबित किए गए-

क्रम सं	विवरण	प्रदर्श सं	द्वारा साबित किया गया
1	रिकवरी मेमो खुकारी	प्रदर्श क- 1	अ०सा०- 1
2	लिखित रिपोर्ट (तहरीर)	प्रदर्श क- 2	अ०सा०- 2
3	पी.एम.आर. मृतक शानू	प्रदर्श क- 3	अ०सा०- 3
4	पी.एम.आर. मृतक उम्मेद अली	प्रदर्श क -4	अ०सा० -4
5	पंचायतनामा मृतक उम्मेद	प्रदर्श क- 5	अ०सा०- 7
6	पंचायतनामा मृतक शानू	प्रदर्श क- 5	अ०सा०- 7
7	साइट प्लान	प्रदर्श क- 6	अ०सा०- 8
8	रिकवरी मेमो रक्त से सना हुआ और सादा मिट्टी	प्रदर्श क- 7	
9	रिकवरी मेमो बैग और खुकारी कवर	प्रदर्श क-8	अ०सा०-8
10	चार्जशीट के तहत धारा 302	प्रदर्श क-9	अ०सा०-8
11	सुपुर्दिगीनामा लाश	प्रदर्श क -10	अ०सा०-8
12	फोटो लाश	प्रदर्श क -11	अ०सा० -8
13	पी.एम. के लिए अनुरोध पत्र	प्रदर्श क- 12	अ०सा० -8
14	नमूना सील	प्रदर्श क -13	अ०सा० -8
15	कार्बन कॉपी जी.डी.	प्रदर्श क -14	अ०सा० - 8
16	चिक प्राथमिकी	प्रदर्श क- 15	अ०सा० -8
17	आर्म्स एक्ट की धारा 4/25 के तहत चार्जशीट	प्रदर्श क- 14	अ०सा० - 8
18	बरामद खुकरी	प्रर्दश- 1	अ०सा० -2
19	रैपिंग कपड़ा	प्रदर्श क -1 और क- 2	अ०सा० -2

14. अभियोजन पक्ष के साक्ष्य के समापन के बाद, आरोपी धनंजय उर्फ पप्पू के बयान द० प्र० स० की धारा 313 के तहत दर्ज किए गए। आरोपी द्वारा यह कहा गया था कि उसने उम्मेद (मृतक) से न तो कोई पैसा मांगा था, न ही घायल व्यक्तियों को खुकरी (चाकू) से कोई हमला किया था। उसके कब्जे से झूठी बरामदगी दिखाई गई है। पुलिस ने अभियोजन पक्ष के गवाहों की मिलीभगत और भनक लगाकर उन्हें वर्तमान मामले में झूठा फंसाया है। आरोपियों द्वारा विशेष रूप से यह कहा गया था कि पीड़ित पार्क में घूम रहे थे और किशोर लड़कियों को चिढ़ा रहे थे, जिसका सामना उक्त पार्क में हाथापाई से किया गया था। जनता की परेशानी और आक्रोश भड़क गया और पीड़ितों के परिणामस्वरूप उम्मेद अली और शान मोहम्मद की पिटाई और पिटाई का घिनौना दृश्य सामने आया। उन्हें लगी चोटों के कारण, उन्होंने अपनी चोटों के कारण दम तोड़ दिया।

15. आरोपी द्वारा कोई बचाव साक्ष्य पेश नहीं किया गया!

16. अभियोजन पक्ष ने अपने मामले के समर्थन में अ०सा० 1 वसीम से पूछताछ की, जिन्होंने शपथ लेकर कहा कि तत्काल घटना 1 जनवरी 2007 को हुई थी। वह अपने चाचा सलाउद्दीन, चचेरे भाई शान मोहम्मद और उम्मेद अली के साथ शाम लगभग 4.30 बजे मनोरंजन और पिकनिक के लिए पार्क में गए थे। वह और उसके चाचा सलाउद्दीन 15 से 20 कदम की दूरी पर उम्मेद अली और शान मोहम्मद के पास जा रहे थे, जो उनके आगे थे। शाम करीब 5.30 बजे, धनंजय (अपीलकर्ता) आया और उम्मेद अली (मृतक) से पैसे की मांग की। उम्मेद अली ने पैसे मांगने का कारण पूछा, जिससे आरोपी-अपीलकर्ता को बहुत जुनून और उत्तेजना हुई। जिसके परिणामस्वरूप आरोपी अपीलकर्ता (धनंजय) ने दीपक (सह-आरोपी) द्वारा उम्मेद अली को पकड़ने पर चाकू से झटका से वार किया, जो उम्मेद अली के दिल में घुस गया। उन्होंने और शान मोहम्मद ने उम्मेद अली को बचाने की कोशिश की, लेकिन अपीलकर्ता (धनंजय) ने शान मोहम्मद पर चाकू से हमला कर दिया, जिससे पेट, पैर और जांघ में घातक चोटें आईं। उसने और सलाउद्दीन ने आरोपी (धनंजय) और दीपक को पकड़ लिया, उन्होंने उससे चाकू छीन लिया। चीख और अलार्म बजने पर पार्क में घूम रहे कई लोग और गार्ड मौके पर जमा हो गए। आरोपियों को भीड़ ने पीट दिया, इसलिए वे मौके से भाग नहीं सके। उन्होंने बाहर जाकर पुलिस को पी.सी.ओ. से 100 नंबर डायल करके सूचित किया और उक्त जानकारी परिवार के सदस्यों को भी दी गई। रिश्तेदार इलियास और मुन्ना खान सहित कई लोग आवास से आए थे। इस बीच पुलिस भी मौके पर पहुंच गई। पुलिस उम्मेद और शान मोहम्मद को उनके और अन्य लोगों के साथ अस्पताल ले गई। डॉक्टर ने घायलों का इलाज किया और उम्मेद अली को मृत घोषित कर दिया। इसके बाद रिपोर्ट दर्ज की गई। दोनों आरोपियों को खुकरी (चाकू) के साथ साहिबाबाद पुलिस स्टेशन ले जाया गया। पुलिस स्टेशन में लिखित रूप में फर्द बरामदगी तैयार किया गया और गवाहों के हस्ताक्षर प्राप्त किए गए। गवाह ने फर्द बरामदगी पर अपने हस्ताक्षर साबित किए और इसे प्रदर्श क -1 के रूप में साबित किया। गंभीर और खतरनाक स्थिति को देखते हुए घायल शान मोहम्मद को अम्बे अस्पताल से जीटीबी अस्पताल, दिल्ली रेफर किया गया था, जहां उसने रात में दम तोड़ दिया।

17. अपने रुख के समर्थन में अभियोजन पक्ष ने अ०सा०-2 सलाउद्दीन से पूछताछ की है। उन्होंने कहा कि उक्त घटना 01.01.2007 को ईद-उल-जुहा के त्योहार के दिन हुई थी। शाम लगभग 4.30 बजे वह अपनी बहन के बेटे (भांजा) उम्मेद अली और भतीजे शान मोहम्मद और मो. वसीम (अ०सा० 1), मनोरंजन के लिए राम मनोहर लोहिया पार्क गया था। वहां पहुंचने पर वे उक्त पार्क में भटकने लगे। वह और वसीम, उम्मेद अली और शान मोहम्मद के पीछे 15-20 क़दम की दूरी के साथ घूम रहे थे। शाम करीब 5.30 बजे आरोपी अपीलकर्ता धनंजय और दीपक आए और उम्मेद अली से पैसे की मांग करने लगे। पीड़ित उम्मेद अली ने आरोपी अपीलकर्ता से पूछा कि वह किस उद्देश्य के लिए पैसे की मांग कर रहा था। इस पर आरोपी/अपीलकर्ता और सह-आरोपी दीपक बहुत क्रोधित हुए और उनकी छवि को धूमिल करने वाले अपमानजनक शब्द बोलने लगे। सह-आरोपी दीपक ने उम्मेद अली को पकड़ लिया था और आरोपी/अपीलकर्ता धनंजय ने खुकारी (चाकू) से पीछे से वार किया था, जो उसके दिल में घुस गया था। शान मोहम्मद ने उम्मेद अली को बचाने के लिए सर्वोत्तम प्रयास किए, लेकिन आरोपी अपीलकर्ता/धनंजय ने शान मोहम्मद पर अपनी खुकरी (चाकू) से हमला किया, जिससे वे गंभीर रूप से घायल हो गए। इस घटना को देखते हुए, वह और वसीम हमलावरों की ओर दौड़े और आरोपी धनंजय और सह-आरोपी दीपक को पकड़ लिया और अपीलकर्ता/धनंजय के हाथ से खुकरी छीन ली। घटना और विलाप को देखते हुए, पार्क में घूमने वाले कई व्यक्ति और गार्ड घटना के स्थान पर पहुंचे। उन्होंने आरोपी व्यक्तियों को घेर लिया। उसके भतीजे वसीम ने पीसीओ के माध्यम से पुलिस और पीड़ित परिवार के सदस्यों को घटना की सूचना दी। थोड़ी ही देर में पुलिस और उसके रिश्तेदार मुन्ना भाई, ताज मोहम्मद, अब्बास और इलियास घटना स्थल पर आ गए। वह और पुलिसकर्मी घायलों को गाजियाबाद के अंबे अस्पताल ले गए, जहां उम्मेद अली को मृत घोषित कर दिया गया। इसके बाद, उनके कथन पर, मुन्ना खान द्वारा लिखी गई तहरीर को पीएस में दिया गया था, जबकि तहरीर के आधार पर प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी और आरोपी व्यक्तियों को पुलिस द्वारा हिरासत में ले लिया गया था। खून से संतृप्त खुकारी (चाकू) भी थाना साहिबाबाद में पेश किया गया। गवाह ने तहरीर को प्रदर्श क.2 के रूप में साबित किया। छीनी गई खुकारी (चाकू) का मेमो पुलिस स्टेशन शाहीबाबाद में प्रस्तुत किया गया था, जिस पर उसके हस्ताक्षर प्राप्त किए गए थे। गवाह ने इसे प्रर्दश नंबर 1 के रूप में साबित किया। उक्त खुकरी को एक सीलबंद लिफाफे में अदालत में लाया गया था और गवाह अ०सा० 2 सलाउद्दीन, जिसने उक्त खुकारी की पहचान की थी, ने कहा कि उक्त खुकारी का इस्तेमाल आरोपी अपीलकर्ता धनंजय ने उम्मेद अली और शान मोहम्मद को चोट पहुंचाने के लिए किया था। उक्त खुकरी (चाकू) और इसे कवर करने वाले कपड़े को वस्तु प्रदर्श 1 और 2 के रूप में चिह्नित किया गया था। घायल शान मोहम्मद को अम्बे अस्पताल से जीटीबी अस्पताल रेफर किया गया था, जहां रात में लगभग 4.30 बजे उसने दम तोड़ दिया।

18. नेत्र संबंधी साक्ष्य की पुष्टि करते हुए, अभियोजन पक्ष ने अ०सा०.3 डॉ. अरविंद कुमार से पूछताछ की है, जिन्होंने गवाही दी कि 2 जनवरी, 2007 को उन्हें जीटीबी अस्पताल, दिल्ली में वरिष्ठ प्रदर्शक के रूप में तैनात किया

गया था। उक्त तिथि को लगभग 11.30 बजे, शानू की लाश को पोस्टमार्टम के लिए शवगृह में एएसOआईO हुकम चंद की देखरेख में एक सफेद कपड़े में लपेटकर लाया गया था। उन्होंने मृतक शान मोहम्मद के शव की पहचान की। उन्होंने दिनांक 2-1-2007 को लगभग 1135 बजे मृतका का पोस्टमार्टम किया और निम्नलिखित तथ्य पाए:-

(i) - मृतक शान मोहम्मद के शरीर की सामान्य जांच करने पर यह पाया गया कि पीछे की तरफ लाल रंग था। मुंह और आंखें बंद थीं। दाहिने हाथ में, "एस" के रूप में एक टैटो चिहन था। मृतक की उम्र लगभग 20 वर्ष थी, वह औसत कद-काठी का व्यक्ति था। रिगर मोर्टिस, विकासशील चरण में सभी अंगों पर मौजूद था।

(ii) मृत्यु पूर्व चोटें-

पोस्टमार्टम परीक्षा के दौरान, डॉ द्वारा शान मोहम्मद के शरीर पर निम्न मृत्युपूर्व चोटें पायी गयी-

(1) - पेट के निचले बाएं हिस्से में आकार में 6 सेमी x 0.3 आकार में सिले हुए चाकू घाव। घाव के काटने का ऊपरी पार्श्व कोण आकार में मौजूद होता है, पेट सिला गया था, घाव पेट की गहराई में गुहा था और ऊपर की ओर जा रहा था। पेट खून से भरा हुआ था। आंत के आसपास भी खून था। रक्त युक्त सैमल पेरिटोनियम गुहा पर ट्रैक को उजागर करने पर कई घाव मौजूद थे। सर्जिकल मरम्मत के सबूत मौजूद हैं। घाव की कुल गहराई 18.5 है। सेंटीमीटर।

(2) - 'जे' आकार का सिला हुआ कटा हुआ घाव। टांके खोलने पर, बाएं हाथ पर पीछे के पार्श्व पहलू पर मौजूद 15 सेमी x 0.2 सेमी x 6 सेमी आकार का घाव कोहनी के जोड़ से 15 सेमी ऊपर होता है।

(3) - बाईं छाती पर तिरछे रूप से सिले हुए घाव रखें। टांके खोलने पर, 3 सेमी x 0.2 सेमी आकार का सिला हुआ घाव मौजूद होता है। घाव का ऊपरी पार्श्व कोण तीव्र होता है। घाव बाईं छाती की पीछे की सहायक रेखा पर मौजूद होता है, पीछे की सहायक तह से 7 सेमी नीचे। घाव की दिशा पीछे और नीचे की ओर होती है। उपचारात्मक घाव चमड़े के नीचे और मांसपेशियों में गहरा होता है और बाहर निकलने के घाव का आकार 1.5 सेमी x 0.2 सेमी, आकार में, प्रवेश घाव से 4 सेमी नीचे होता है।

(4) - इंजाइज्ड घाव 2 सेमी x 0.1 सेमी x 0.5 सेमी तिरछा रखा जाता है, जो ठोड़ी के दाईं ओर मौजूद होता है।

(5) - बाएं हाथ की छोटी उंगली के बाएं पोर के समीपस्थ से 3.5 सेमी ऊपर 2 सेमी x 0.1 सेमी x 0.8 सेमी का इंसाइज्ड घाव।

(6) - सिले हुए कटे हुए घाव। टांके खोलने पर, खोपड़ी के बाईं ओर, पार्श्विका क्षेत्र (बाएं) के ठीक पीछे 6 सेमी x 0.2 सेमी x हड्डी गहरी मौजूद होती है, जिसमें 3 सेमी x 0.1 सेमी आकार की बाईं पार्श्विका हड्डी के ऊपरी बल्ब का फ्रैक्चर होता है।

(7) - पेट के मध्य में 18 सेमी x 0.4 सेमी की सर्जरी द्वारा बनाई गई सप्राटॉमी चोट संख्या 1 को शल्य चिकित्सा द्वारा इंजेक्ट किया जाता है। चोट संख्या 7 का खुलासा शल्य चिकित्सा द्वारा किया जाता है।

(iii) आंतरिक परीक्षा

(iv) - डॉक्टर ने चोट संख्या 6 के नीचे सतह के नीचे मौजूद एक्स्ट्रावास्यूटिम रक्त खोपड़ी में पाई।

(v) - खोपड़ी, जैसा कि चोट संख्या 6 में उल्लेख किया गया है, सामान्य है। मस्तिष्क पीला और

एडिमेटस था। खून से भरा खाली। पेट खाली दीवारें भीड़भाड़। चोट संख्या 1 में उल्लिखित छोटी आंत। मृत्यु और पोस्टमार्टम के बीच 8 घंटे का अंतराल होता है।

(iv) मृत्यु का कारण:-

(i) डॉक्टर की राय में मृतक शान मोहम्मद की मृत्यु का कारण आंत की रक्त वाहिकाओं का कटना, अत्यधिक रक्तस्राव था जो एक धार हथियार के कारण संभव है। इस प्रकार रक्तस्राव और सदमा, पेट की वाहिका और अन्य में मृत्यु पूर्व चोटों के कारण पाया गया ।

(ii) चोट संख्या 1 प्रकृति के सामान्य क्रम में मृत्यु का कारण बनने के लिए पर्याप्त है।

19. डॉक्टर अ०सा०.3 ने गवाही दी कि पोस्टमार्टम परीक्षा रिपोर्ट उन्होंने अपने स्वयं के लेखन और हस्ताक्षर में तैयार की थी। उन्होंने पोस्टमार्टम रिपोर्ट को प्रदर्श क-3 के रूप में साबित किया।

20. अभियोजन पक्ष ने अ०सा० 4 डॉ. केएन तिवारी से भी पूछताछ की है। उन्होंने कहा कि वह 2.1.2007 को एम.एम.जी. अस्पताल, गाजियाबाद में तैनात थे। घटना वाले दिन उन्होंने मृतक उम्मेद अली का पोस्टमार्टम किया था, जिसके शव को कांस्टेबल मनोज कुमार और कांस्टेबल सोमपाल सिंह की देखरेख में सील कवर में लाया गया था। उपरोक्त कांस्टेबलों ने लाश की पहचान की थी।

21. डॉक्टर ने मृतक को लगभग 21 वर्ष का होना पाया और उसकी मृत्यु शव परीक्षण से आधे से एक दिन पहले हुई। वह औसत कद-काठी का था और सभी अंगों में रिगर मार्टिस मौजूद था।

(v) मृत्यु पूर्व लगी चोटें- पोस्टमार्टम के दौरान, डॉक्टर ने मृतक व्यक्ति, उम्मेद अली पर निम्नलिखित मृत्युपूर्व चोटें पाईं गयी: -

(1) - छाती के बायें साइड पर 44 सेमी × 2 सेमी साफ कट मार्जिन के साथ चाकू का घाव, बायें निप्पल के स्तर पर 2 सेमी मध्य, बायें निप्पल (अनुप्रस्थ रूप से मौजूद)। घाव छाती की गुहा गहरी थी।

(2)- आंतरिक जांच में डॉक्टर ने यह भी पाया कि हृदय और बाएं फेफड़े का पेरिकार्डियम छाती में गहराई तक कटा हुआ था। लगभग 1/2 लीटर खून बह रहा था।

(v) मृत्यु का कारण:- चिकित्सक की राय में मृतक की मृत्यु रक्तस्राव और सदमे के कारण हुई है, जो उसके द्वारा लगी मृत्यु पूर्व चोटों के परिणामस्वरूप हुई है।

22. डॉक्टर ने कहा कि पोस्टमार्टम परीक्षा रिपोर्ट उन्होंने अपने स्वयं के लेखन और हस्ताक्षर में तैयार की थी। उन्होंने पोस्टमार्टम रिपोर्ट को प्रदर्श क-4 के रूप में साबित किया। डॉक्टर ने इस बात का समर्थन किया कि उम्मेद पर उपरोक्त चोटें 1.1.2007 को शाम लगभग 5.30 बजे चाकू जैसे किसी तेज धार वाले हथियार से आई थीं।

23. अभियोजन पक्ष के कथन को प्रमाणित करने के लिए, कांस्टेबल 1103 सोमपाल से अ०सा० 5 के रूप में पूछताछ की गई। उन्होंने शपथ लेकर कहा कि 1-1-2007 को वह साहिबाबाद पुलिस स्टेशन में तैनात थे। उन्होंने खुलासा किया कि घटना वाले दिन, लगभग 11.00 बजे, गवाहों के सामने मृतक उम्मेद की पंचायतनामा तैयार की गई थी। आवश्यक औपचारिकताओं को पूरा करने और अ०सा० 8 एसOआईO मलखान सिंह द्वारा आवश्यक कागजात सौंपने के बाद उम्मेद की लाश को हमारी निगरानी में दिया गया, ताकि इसे शवगृह में ले जाया जा सके। पुलिस लाइन गाजियाबाद और एमएमजी अस्पताल गाजियाबाद में

आवश्यक प्रविष्टियां करने के बाद उम्मेद का शव परीक्षण 2-1-2007 को किया गया था। उम्मेद (मृतक) की लाश को मोर्चरी के अंदर ले जाने तक उसकी निगरानी में रखा गया था। इस बीच, उक्त कांस्टेबलों ने किसी को भी लाश तक पहुंचने की अनुमति नहीं दी।

24. अ०सा०.- 6 मुन्ना खान ने शपथ लेकर कहा कि तारीख और घटना के समय वह अपने घर पर मौजूद था। उन्हें बताया गया कि उम्मेद अली और शानू को गंभीर चोटें आई हैं। उन्हें अम्बे होसिटल ले जाया गया। सूचना मिलने पर वह अस्पताल पहुंचे। अस्पताल पहुंचने पर, उन्हें पता चला कि उम्मेद को मृत घोषित कर दिया गया था और शानू को जीटीबी अस्पताल, दिल्ली रेफर कर दिया गया था। उन्होंने सलाउद्दीन के कथन पर तहरीर लिखी थी। उन्होंने सलाउद्दीन द्वारा कही गई बातों का वर्णन किया था और वही उन्हें पढ़कर सुनाया गया था। सलाउद्दीन ने उक्त दस्तावेज पर अपने हस्ताक्षर किए थे। उन्होंने उक्त रिपोर्ट को साबित करते हुए पुष्टि की थी कि यह उनके द्वारा लिखा गया था और इसे पहले से ही प्रदर्श क.2 के रूप में चिह्नित किया गया था।

25. आरोप को प्रमाणित करने के लिए, अभियोजन पक्ष ने शमशाद से अ०सा० -7 के रूप में पूछताछ की है, जिसने शपथ पर कहा कि 1.1.2007 को उम्मेद की लाश के संबंध में जांच की गई थी। आवश्यक औपचारिकताएं पूरी करने के बाद उम्मेद की लाश को मोर्चरी भेज दिया गया। उन्होंने जांच पर अपने हस्ताक्षर किए थे, जिसकी उनके द्वारा विधिवत पहचान की गई थी। उन्होंने उक्त जांच रिपोर्ट को प्रदर्श क.-5 के रूप में साबित किया।

26. इसके अलावा, आरोप के समर्थन में, अभियोजन पक्ष ने एसOआईO मलखान सिंह से अ०सा० -8 के रूप में पूछताछ की थी। उन्होंने शपथ लेकर कहा कि वह 1-1-2007 को साहिबाबाद पुलिस स्टेशन में तैनात थे। उसी दिन साहिबाबाद पुलिस स्टेशन में प्राथमिकी दर्ज की गई थी। जांच का जिम्मा उन्हें सौंपा गया था। जांच के दौरान, उन्होंने घटना के स्थान का दौरा किया, साइट प्लान तैयार किया, गवाहों के बयान दर्ज किए। उन्होंने खुकरी (चाकू) की बरामदगी का फर्द तैयार किया था और धनंजय (अपीलकर्ता) और सह-आरोपी दीपक और अन्य गवाहों एचएम देवेंद्र सिंह धमन का बयान भी दर्ज किया था। इसके बाद वह अम्बे अस्पताल गए और 2-1-2007 को दिल्ली के जीटीबी अस्पताल गए, जहां उन्होंने घायल शान मोहम्मद को देखा था। घायल शान मोहम्मद कुछ भी बोलने की स्थिति में नहीं था। उसने सलाउद्दीन, वसीम, सलीम, आरिफ चौधरी, मुन्ना खान आदि के बयान दर्ज किए थे। उन्होंने अपनी लिखावट और हस्ताक्षर में साइट प्लान तैयार किया। उन्होंने नक्शा नज़री को प्रदर्श क.6 के रूप में साबित किया। उसने घटना के स्थान से खून से सनी और सादे सीमेंट की मिट्टी ली थी और इसे प्रर्दश-7 के रूप में प्रदर्शित किया गया था। उन्होंने घटना स्थल से एक बैग कब्जे में लिया जिसमें खुकरी का कवर रखा गया था और उनके द्वारा उनके लेखन और हस्ताक्षर में एक फर्द (मेमो) तैयार किया गया था। उन्होंने इसे प्रदर्श क.-8 के रूप में साबित किया। उन्हें 4-1-2007 को उम्मेद (मृतक) की जांच रिपोर्ट और पोस्टमार्टम रिपोर्ट प्राप्त हुई थी, उन्होंने जी०डी० की कार्बन प्रति की प्रतिलिपि बनाई और उन्हें जांच के गवाहों अर्थात् अब्बास, ताज मोहम्मद, मोहम्मद के बयान के रूप में साबित

किया। अंसार, मो. फारुख और शमशाद अली, फिरोज और जुल्फिकार जिन्होंने शान मोहम्मद की लाश की पहचान की थी। उन्होंने 12.3.2007 को ए.एस.आई. हुकुम सिंह का बयान भी दर्ज किया था, जिन्होंने पंचनामा तैयार किया था और उन्हें प्र्दश क.9 के रूप में चिह्नित किया गया था। उम्मेद अली का पंचनामा एस०आई० मलखान सिंह ने उनसे पहले थाने में तैयार किया था। उन्होंने एसOआईO मलखान सिंह के लेखन और हस्ताक्षर का सत्यापन किया। एसOआईO मलखान सिंह ने जांच रिपोर्ट के.6 और अन्य आवश्यक कागजात पर अपने हस्ताक्षर किए थे। चालान लाश, फोटो लाश, मुख्य चिकित्सा अधिकारी का पत्र, सील का नमूना, एसOआईO मलखान सिंह का लेखन और हस्ताक्षर का विधिवत सत्यापन किया गया। कागजात विधिवत रूप से प्रदर्श क.10, के.11, के.12 और के.13 के रूप में साबित हुए थे। उन्होंने धारा 25/4 आर्म्स के तहत 2007 के सेशन ट्रायल नंबर 446 की जांच भी की थी। खुकरी का फर्द कार्यवाही शुरू होने के समय देवेंद्र सिंह हेड मोहर्रिर (एचएम) द्वारा तैयार किया गया था और इसे प्रदर्श-1 किया गया था। मामले का चिक प्राथमिकी हेड कांस्टेबल देवेंद्र सिंह द्वारा लिखा गया था, जिसे जी०डी० नंबर 42 में दर्ज किया गया था। उक्त चिक प्राथमिकी दिनांक 1-1-2007 को रात 19.45 बजे तैयार की गई थी। चिक प्राथमिकी को विधिवत साबित किया गया और प्रदर्श क 15 के रूप में चिह्नित किया गया। गवाह ने कहा कि उचित जांच के बाद उसने आरोपी धनंजय और दीपक के खिलाफ भ० द० वि० की धारा 302 के तहत और धनंजय उर्फ पप्पू के खिलाफ धारा 4/25 शस्त्र अधिनियम के तहत एक अलग आरोप-पत्र प्रस्तुत किया था। उन्होंने कहा कि दोनों आरोप-पत्र उनके द्वारा और अपने स्वयं के लेखन और हस्ताक्षर में तैयार किए गए थे। उन्होंने दोनों आरोप-पत्र प्रदर्श क-9 और प्रदर्श क-14 को साबित किया।

27. अभियोजन पक्ष के गवाहों से भी बचाव पक्ष द्वारा विधिवत जिरह की गई।

28. अ०सा०-1 वसीम ने जिरह के दौरान बताया कि घटना के समय सलाउद्दीन, उम्मेद और शान मोहम्मद लोहिया पार्क में उसके साथ मौजूद थे। धनंजय ने उम्मेद से पैसे मांगे और उम्मेद ने जोर से कहा "कैसे पैसे? उम्मेद के साथ शानू भी था, उसने सोचा कि वे आम तौर पर कुछ बात कर रहे हैं। उसने दोनों की तेज आवाज के आधार पर आरोपी धनंजय द्वारा उम्मेद से पैसे मांगे जाने की पुष्टि की। उसने दीपक को भी देखा था। पार्क में शोर गुल के कारण वह विवाद को ठीक से समझ नहीं सका। उन्होंने यह भी साबित किया कि धनंजय ने चाकू (खुकरी) निकाला था और दीपक ने उम्मेद को पकड़ा था। उसने अपनी पीठ से उम्मेद को चाकू का एक झटका दिया, जो उसके दिल में घुस गया। चाकू बाहर से दिखाई दे रहा था। दीपक ने उम्मेद अली को दायीं तरफ से पकड़ा था। शान मोहम्मद उन्हें शांत करने की कोशिश कर रहे थे। आरोपियों ने शानू को पकड़ लिया और उसे घायल कर दिया। शानू ने भागने की कोशिश की, लेकिन लगभग 15 से 20 क़दम पर पक्का खरंजा पर गिर गए। जब उम्मेद पर चाकू का वार किया गया तो वसीम वहां मौजूद नहीं था। उसने जब शानू चाकू से घायल हो गया था, अपनी उपस्थिति पर जोर दिया। शानू आरोपी व्यक्तियों के चंगुल से अलग होने के बाद भाग गई थी। उन्होंने सलाउद्दीन (अ०सा०2) के साथ मिलकर आरोपी व्यक्तियों को पकड़ा था। चीख-पुकार पर पार्क के गार्ड सहित बड़ी संख्या में लोग

इकट्ठा हो गए। अपने चाचा सलाउद्दीन के निर्देश पर उसने अपने परिवार के सदस्यों और पुलिसकर्मियों को टेलीफोन पर फोन किया था। यह कॉल उसकी मां को मोबाइल नंबर 9871212230 पर आया था। उम्मेद अपने पिता की बहन का बेटा है। पार्क में गार्ड और अन्य व्यक्तियों द्वारा आरोपी व्यक्तियों को भी पकड़ लिया गया। पीड़ितों को घायल करने में लगने वाला समय, मुश्किल से दो मिनट था। पीड़ितों को अंबे अस्पताल ले जाया गया। सलीम और मुन्ना तथा मोहल्ले के अन्य लोग अस्पताल आए। वह और सलाउद्दीन एक वाहन में अस्पताल में एक साथ गए थे और शेष व्यक्ति दूसरे वाहन में आए थे। उम्मेद अली को केवल एक चाकू मारा गया था और शान मोहम्मद को चाकू से कई वार किए गए थे। पीड़ित शान मोहम्मद के हाथ, पैर और पेट में चोट लगी थी। जब उम्मेद को चोट पहुंचाई गई तो वह सटीक स्थान पर वहां नहीं पहुंच सका। शान मोहम्मद जीवित था और उसे जीटीबी अस्पताल रेफर किया गया था। वह लगभग आधे घंटे तक अंबे अस्पताल में रहे। शान मोहम्मद को एम्बुलेंस द्वारा अम्बे अस्पताल से जीटीबी अस्पताल ले जाया गया। जीटीबी अस्पताल पहुंचने में लगभग आधे घंटे का समय लगा। शान मोहम्मद ने उसी रात करीब 1 से 2 'बजे' जीटीबी अस्पताल में अंतिम सांस ली। धनंजय ने उम्मेद को कभी कोई पैसा नहीं दिया था। उन्होंने इस बारे में अपनी अनभिज्ञता दिखाई कि क्या उन्होंने घटना की तारीख पर किसी और से भी पैसे की मांग की थी। पार्क में कई लोग अलग-अलग जाति के लोग घूम रहे थे। पार्क में महिलाएं और लड़कियां भी घूम रही थीं। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि उम्मेद और शान मोहम्मद ने किसी भी लड़की या महिला को छेड़ा या छेड़छाड़ की, जिसका हमलावरों ने विरोध किया। उन्होंने कहा कि किसी भी बाहरी व्यक्ति ने सभा के पीड़ितों पर हमला नहीं किया था। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया कि उन्होंने हमलावरों को इकट्ठा होने से हिरासत में लिया था। वह हमलावरों को पहले से नहीं जानता था और उनके साथ उसकी कोई दुश्मनी नहीं थी। उसने धनंजय की आवाज सुनी थी जो जोर से बोल रहा था। इसके बाद दीपक ने उम्मेद को पकड़ लिया था और धनंजय ने चाकू से वार किया था। वह यह पता नहीं लगा सके कि क्या हमलावर पीड़ितों की हत्या करने के इरादे से आए थे क्योंकि यह घटना अचानक हुई थी। उन्होंने माना कि अगर पीड़ितों ने हमलावरों को पैसे दिए होते, तो उनकी जान नहीं जाती। आरोपी अपीलकर्ता (धनंजय) ने पैसे की मांग के समय बैग को अपने कंधे पर लटका लिया था। घटना को अंजाम देने के बाद आरोपी अपीलकर्ता (धनंजय) को मौके पर ही पकड़ लिया गया। चाकू से भरा बैग भी घटना वाली जगह पर था। उसने किसी को झाड़ियों में बैग डालते नहीं देखा था। वह यह पता नहीं लगा सके कि बैग बरामद होने के समय वहां मौजूद था या नहीं। उससे जिरह की गई कि पहले उसने खुलासा किया था कि हमलावरों ने उसकी मौजूदगी में बैग झाड़ियों में फेंक दिया था। दोनों आरोपी भागने की कोशिश कर रहे थे। आरोपी अपीलकर्ता के हाथ में वारदात को अंजाम देने के समय खुकरी का बैग था। आरोपी अपीलकर्ता धनंजय ने अपराध को अंजाम देने के बाद बैग झाड़ी में फेंक दिया था। आरोपी अपीलकर्ता धनंजय को पहले उसके चाचा सलाउद्दीन ने पकड़ा था और उसके बाद उसने उसे पकड़ लिया था। आरोपी अपीलकर्ता धनंजय ने सलाउद्दीन पर हमला करने की भी

कोशिश की। उसने उसे पीछे से पकड़ लिया था और खुकरी छीन ली थी।

29- अभियोजन पक्ष के गवाह नंबर 2 सलाउद्दीन से मुकदमे के दौरान जिरह की गई। उन्होंने कहा कि वह वसीम (अ०सा०.1), उम्मेद (मृतक) और शान मोहम्मद मृतक के साथ मिलकर 1.1.2007 को शाम लगभग 4.30 बजे अपने घर से निकले थे। सलाउद्दीन और वसीम एक मोटरसाइकिल में सवार थे। मोहम्मद उम्मेद और शान मोहम्मद हीरो स्प्लेंडर मोटरसाइकिल पर सवार थे। वसीम (अ०सा०.1) द्वारा चलाई जा रही मोटरसाइकिल इरफान की थी। उनके घर से पार्क तक का समय लगभग 15 से 20 मिनट था। हमलावरों और पीड़ितों के बीच तीखी बहस आधे घंटे बाद शुरू हुई। अ०सा०.2 सलाउद्दीन और पीड़ित एक-दूसरे से मामूली दूरी पर पीछा कर रहे थे। उन्होंने खुलासा किया कि पीड़ितों की उनसे दूरी लगभग 20 से 25 क़दम थी। आरोपी अपीलकर्ता ने उम्मेद से पैसे की मांग की लेकिन वह पैसे की सही राशि की पुष्टि नहीं कर सका, जिसकी मांग की गई थी। अभियुक्त को पैसे देने से इनकार करने पर अपीलकर्ता ने आरोपी व्यक्तियों को अपशब्द कह और क्रोध पैदा किया और आखिरकार घूंसा मुक्की शुरू हो गई और आरोपी अपीलकर्ता ने उम्मेद पर खुकरी चाकू मार दिया। पार्क में कोई बड़ी सभा नहीं थी। उसने पैसे मांगने के साथ-साथ पैसे देने से इनकार करने की आवाज भी सुनी थी। जब आरोपी अपीलकर्ता धनंजय ने खुकरी को छेद दिया था, तो वह 15 क़दम की दूरी पर था। खुकारी को जंजीर से ढके एक बैग के अंदर डाल दिया गया। खुकरी पर काला कवर लगाया गया था। उसने पीड़ितों की संगत में हमलावरों को कभी नहीं देखा था। उसने पहली बार हमलावरों को देखा था। उनकी जानकारी के अनुसार, हमलावरों और पीड़ितों के बीच कोई लेन-देन नहीं हुआ था। हमलावरों को पैसे देने से इनकार करने के कारण यह घटना हुई थी। जब उसने आरोपी अपीलकर्ता धनंजय को पकड़ा था, तो आरोपी अपीलकर्ता ने पहले ही उसे 7 से 8 चोटें दी थीं। उम्मेद खुकारी के साथ बाईं ओर से घायल हो गया था, धनंजय खुकारी को चारों ओर छुरा घोंप रहा था, जिससे उसे बहुत घबराहट हो रही थी, इसलिए, वह उसे पकड़ने की हिम्मत नहीं जुटा सका। घटना के समय की पुष्टि शाम करीब 5 से 5.15 बजे हुई। थोड़ा कोहरा था लेकिन नजारा साफ दिख रहा था। घटना की सूचना शाम करीब 5.30 बजे पी.सी.ओ. से वसीम (अ०सा०.1) ने थाने में और परिवार के सदस्यों को भी दी। थाने की दूरी करीब दो किलोमीटर थी। परिजन और पुलिस कर्मी उसी समय पहुंच गए।

30. जांच अधिकारी ने अगले दिन अ०सा० 2 सलाउद्दीन का बयान दर्ज किया था। जांच अधिकारी ने उन्हें उनके बयान से अवगत नहीं कराया था। घायलों के परिवार के सदस्यों के सहयोग से पुलिस कर्मियों द्वारा पीड़ितों को एम्बे अस्पताल ले जाया गया।

31. खुकारी को अ०सा० 2 सलाउद्दीन द्वारा पुलिस स्टेशन में पुलिस अधिकारी को सौंप दिया गया था। जिस बैग में खुकारी को रखा गया था, उसे भी पुलिस कर्मियों ने अपने कब्जे में ले लिया।

32. पुलिस टीम ने अ०सा०2 सलाउद्दीन की उपस्थिति में घटनास्थल का निरीक्षण किया है। बैग क्रीम रंग का था जिसकी ऊंचाई लगभग एक फीट थी। मौके के निरीक्षण के समय, सलाउद्दीन (अ०सा० 2) को छोड़कर कोई भी वहां मौजूद नहीं था। पार्क में तैनात गार्ड भी बंदूकों से लैस होकर

आया था। घटना को अंजाम देने के बाद गार्ड आया था। उन्होंने घटना के महत्वपूर्ण मोड़ पर अपनी उपस्थिति साबित की। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया कि पीड़ितों उम्मेद और शानू द्वारा पार्क में लड़कियों को छेड़ने और प्रताड़ित करने का कोई दृश्य था। पार्क में घूमने वाली लड़कियों के साथ पीड़ितों के दुर्व्यवहार को चित्रित करने वाला कोई सबूत नहीं है। उन्होंने साबित कर दिया कि आरोपी धनंजय और दीपक ने उम्मेद और शानू को मौत के घाट उतार दिया था। अपीलकर्ता धनंजय और सह-आरोपी दीपक अपराध के असली अपराधी हैं, जिसके परिणामस्वरूप उम्मेद और शाहू को घातक चोटें आईं और उनकी मृत्यु हो गई।

33. अपनी जिरह के दौरान अ०सा०-3 डॉ. अरविंद कुमार, जिन्होंने शानू का पोस्टमार्टम किया था, ने कहा कि शानू को 1-1-2007 को लगभग 8.35 बजे अस्पताल में भर्ती कराया गया था और 2.1.2007 को शाम 4.00 बजे उसकी मृत्यु हो गई। शानू की मौत का कारण एक तेज धार वाले हथियार द्वारा उत्पादित पेट की वाहिका और अंग पर पोस्टमार्टम से पहले की चोटों के कारण रक्तस्राव का झटका था। सभी चोटें मृत्युपूर्व प्रकृति की हैं। चोट संख्या 1 प्रकृति के सामान्य क्रम में मृत्यु का कारण बनने के लिए पर्याप्त है।

34. अपनी जिरह में अ०सा०-4 डॉ. केएन तिवारी, जिन्होंने उम्मेद (मृतक) का पोस्टमार्टम किया था, ने कहा कि मृतक उम्मेद की वाहिनी कांस्टेबल मनोज कुमार और कांस्टेबल सोमपाल सिंह द्वारा लाई गई थी। उन्होंने साबित कर दिया था कि मृतक उम्मेद को छाती सहित महत्वपूर्ण अंगों पर एक तेज धार वाले हथियार से चोट लगी थी।

35. बचाव पक्ष के वकील अ०सा०.5 कांस्टेबल सोमपाल सिंह से भी जिरह की। उन्होंने कहा कि उम्मेद अली के शव को सबसे पहले 2.1.2007 को रात लगभग 1.00 बजे गाजियाबाद पुलिस लाइन लाया गया, अगले दिन, उम्मेद की लाश को गाजियाबाद के एमएमजी अस्पताल ले जाया गया, उम्मेद की लाश को एमएमजी अस्पताल में प्रवेश कराने के बाद मुर्दाघर हिंडन गाजियाबाद ले जाया गया। दोनों कांस्टेबल पोस्टमार्टम के समय मौजूद थे। शव परीक्षण के बाद उम्मेद की लाश उसके परिवार के सदस्यों को सौंप दी गई।

36. अ०सा०.-7 शमशाद को भी मुकदमे के दौरान जिरह प्रति परीक्षण किया गया था। उन्होंने खुलासा किया कि शानू और उम्मेद उनके साधु के बेटे हैं। यह ईदु-ज़ुहा का समग्र दिन था। उसने बकरियों की कुर्बानी दी थी और पीड़ितों के आवास पर मांस लाया था। जांच पूरी करने के लिए उसे पुलिस स्टेशन बुलाया गया। उन्होंने पुष्टि की कि उम्मेद की मौके पर ही मौत हो गई और शानू ने अस्पताल में दम तोड़ दिया। उन्होंने कहा था कि उम्मेद के शव को उनके सामने सील कर दिया गया था।

37. अ०सा०.-8, जांच अधिकारी मलखान सिंह से भी जिरह की गई। उन्होंने कहा कि उन्होंने उक्त अपराध की जांच की थी। पूरी सीडी उनके द्वारा तैयार की गई थी। उन्होंने गवाहों के बयान भी दर्ज किए थे। उन्होंने गवाहों के बयान दर्ज किए थे। अरविंद, धर्मवीर का नाम गवाहों की सूची में नहीं डाला गया, क्योंकि वे तथ्य के गवाह नहीं थे। लोहिया पार्क में अरविंद, धर्मवीर के बयान दर्ज किए गए। उन्होंने घटना स्थल पर

एकत्र हुए लोगों से पूछताछ की थी और उनके बयान दर्ज किए थे।

38. अरविंद, धर्मवीर ने अभियोजन पक्ष के समर्थन में अपना बयान दिया था। अरविंद, धर्मवीर, गार्ड की क्षमता में लोहिया पार्क में तैनात हैं। उन्होंने खुलासा किया कि उन व्यक्तियों ने खुलासा किया कि पीड़ितों और हमलावरों के बीच लड़कियों को पीड़ा देने और छेड़ने के कारण झगड़ा हुआ था! इसके अलावा अ०सा० 8 मलखान द्वारा यह कहा गया था कि यह कहना गलत था कि लड़कियों को चिढ़ाने और ताने मारने के मुद्दे पर अपमान हुआ था। अ०सा०.8 द्वारा यह भी खुलासा किया गया था कि उन्होंने खुकरी की बरामदगी नहीं की थी, खुकरी को शिकायतकर्ता और गवाहों द्वारा बरामद किया गया था और पुलिस स्टेशन लाया गया था। प्रधान मोहर्रिर देवेन्द्र ने 1.1.2007 को थाने में खुकरी का फर्द तैयार किया था। उन्होंने खुकरी और अन्य आपत्तिजनक वस्तुओं को फोरेंसिक रिपोर्ट के लिए भेजा था।

39. हमने अपीलकर्ता के वकील और राज्य के लिए अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता को विस्तार से सुना है। रिकॉर्ड पर पूरे साक्ष्य और अन्य सामग्री का अवलोकन और विश्लेषण किया।

40. उपरोक्त साक्ष्यों के आधार पर विचरण न्यायालय ने आरोपी अपीलकर्ता धनंजय उर्फ पप्पू को भ० द० वि० की धारा 302 और धारा 25 आर्म्स एक्ट के तहत दिनांक 22.03.2013 के विवादित फैसले द्वारा दोषी ठहराया और सजा सुनाई। अपीलकर्ता के वकील ने विभिन्न आधारों पर फैसले की आलोचना की है।

41. अपीलकर्ता के वकील ने तर्क दिया कि अभियोजन पक्ष की ओर से ऐसी कोई सामग्री नहीं है जो यह दर्शाती हो कि आरोपी व्यक्तियों ने पैसे की मामूली मांग के मुद्दे पर प्रतिशोध की भावना से काम किया था। तथ्यों के गवाह मृतक के करीबी संबंध हैं और वास्तविक हमलावर को छोड़कर संदेह के आधार पर आरोपी व्यक्तियों को गलत तरीके से फंसाया गया है। घटना के स्थान पर अभियोजन पक्ष के गवाहों की उपस्थिति अत्यधिक संदेह से भरी हुई है और वास्तव में उनकी गवाही के लिए स्वीकृति की सराहना नहीं करती है। अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयान में भौतिक विरोधाभास हैं। चिकित्सा साक्ष्य भी ओकुलर साक्ष्य का समर्थन नहीं करते हैं। जिरह में अभियोजन पक्ष के गवाहों के साक्ष्य से मूर्त सामग्री प्राप्त की गई जिसके द्वारा उनकी गवाही संतोषजनक नहीं पाई गई। सबूतों और परिस्थितियों की श्रृंखला निर्णायक रूप से यह स्थापित करने के लिए पूर्ण नहीं है कि आरोपी व्यक्ति उम्मेद अली और शानू की हत्या के भयानक अपराध के अपराधी हैं। ट्रायल जज ने अपीलकर्ता को भ० द० वि० की धारा 302 के तहत दोषी ठहराने और सजा सुनाने में पूरे सबूतों को खारिज कर दिया। जिस परिस्थिति से अपराध का निष्कर्ष निकाला जाना है, वह पूरी तरह से स्थापित नहीं है। अभियोजन पक्ष यह दिखाने में विफल रहा है कि सभी मानवीय संभावनाओं में, यह कृत्य अपीलकर्ता द्वारा किया गया होगा! यह भी तर्क दिया जाता है कि अपीलकर्ता ने पीड़ित उम्मेद अली से कभी भी पैसे की मांग नहीं की। पार्क में हुई घटना में लड़कियां और महिलाएं भी घूम रही थीं, पीड़ित उन्हें पीट रहे थे और उन्हें कलंकित कर रहे थे, जनता ने उनका विरोध किया और उन्हें पीटा, जिसके परिणामस्वरूप पीड़ितों को घातक चोटें आईं। अपीलकर्ता की इस घटना में कोई भूमिका नहीं है। भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत अपीलकर्ता को दी गई

दोषसिद्धि और सजा टिकाऊ नहीं है और दिनांक 23.03.2013 के आक्षेपित आदेश को रद्द किया जा सकता है और अभिगम किए गए अपीलकर्ता को स्वतंत्रता दी जा सकती है।

42. इसके विपरीत, अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने अपीलकर्ता के वकील द्वारा प्रस्तुत तर्कों का विरोध किया। उन्होंने तर्क दिया कि अभियोजन पक्ष के संस्करण में कोई अलंकरण नहीं है। अभियोजन पक्ष के राज्य के आदेश में कोई ठोस विरोधाभास नहीं है। चिकित्सा साक्ष्य भी ओकुलर साक्ष्य का समर्थन करते हैं। अभियोजन पक्ष द्वारा दिए गए सबूतों ने उचित संदेह से परे अपीलकर्ता के अपराध को स्थापित किया है। पीड़ितों की मौत अपीलकर्ता और सह आरोपी द्वारा अपने व्यक्ति को चोट पहुंचाने के कारण हुई, सबूतों की एक श्रृंखला है कि पीड़ितों को खुखरी के साथ गंभीर चोटें आई थीं, जिसके परिणामस्वरूप पीड़ित उम्मेद अली ने अंतिम सांस ली और शान मोहम्मद गंभीर और घातक रूप से घायल हो गया। आरोपियों को खुखरी और अन्य आपत्तिजनक सामग्री के साथ मौके पर ही पकड़ लिया गया। अपीलकर्ता द्वारा कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया कि कैसे और किस तरीके से पीड़ितों को गंभीर और गंभीर रूप से प्रताड़ित किया गया था, लड़कियों को छेड़ने और प्रताड़ित करने की कहानी भी यह स्थापित नहीं कर सकी कि कोई भी व्यक्ति अवज्ञा के इस संस्करण को साबित करने के लिए आगे नहीं आया। विद्वान सत्र न्यायाधीश ने रिकॉर्ड के पूरे साक्ष्य की सराहना करने के बाद दोषसिद्धि का आदेश पारित किया है और अपीलकर्ता को सजा सुनाई है। इसलिए विद्वान सत्र न्यायाधीश के फैसले को बरकरार रखा जा सकता है

43. अपीलकर्ता के वकील ने अपनी दलीलों को और विस्तार से बताया है। उन्होंने तर्क दिया कि अपीलकर्ता को वर्तमान मामले में गलत तरीके से फंसाया गया है। यह घटना 1-1-2007 को शाम लगभग 5.30 बजे लोहिया पार्क के अंदर शिकायतकर्ता के उम्मेद अली (भतीजे) से पैसे मांगने के मुद्दे पर हुई थी। अपीलकर्ता को पैसे देने से इनकार करने से इतना मजबूत मकसद पैदा नहीं होगा कि आरोपी अपीलकर्ता पीड़ितों पर हमला करेगा और उसका जीवन छीन लेगा। अपीलकर्ता के वकील ने वीरेंद्र बनाम हरियाणा राज्य [2020 (1) यूपी सीआर आर 356] पर भरोसा किया, जिसमें शीर्ष अदालत ने कहा है कि अभियोजन अपीलकर्ता की ओर से किसी भी सामान्य इरादे को साबित करने में विफल रहा है। मकसद का कोई संकेत नहीं है। निचली अदालत का निष्कर्ष धारणा और अनुमानों पर आधारित है, न कि विश्वसनीय सबूतों पर। अभियोजन पक्ष द्वारा अपीलकर्ता के खिलाफ मामले को उचित संदेह से परे साबित करने के लिए अपने बोझ का निर्वहन करने के लिए दायर करने के बावजूद- अपीलकर्ता के खिलाफ सबूत अस्थिर और अपर्याप्त हैं। संदेह का लाभ उसे मिलना चाहिए।

44. अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने अपीलकर्ता के वकील द्वारा दिए गए तर्क का खंडन किया। इस संबंध में यह उल्लेख करना प्रासंगिक हो सकता है कि ऐसे कई मामले हैं जिनमें शीर्ष अदालत ने कहा है कि सभी आपराधिक मामलों में उद्देश्य प्रासंगिक तथ्य है, चाहे वह चश्मदीद गवाहों की गवाही या परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित हो। श्रीकांतिया बनाम बॉम्बे राज्य, 1955 एससीजे 233 में सुप्रीम कोर्ट ने कहा-

"यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि एक व्यक्ति एक गंभीर अवैध कार्य नहीं करता है जो उसे अभियोजन और संभावित अपमान के लिए उजागर कर सकता है, जब तक कि वह किसी मजबूत उद्देश्य से प्रेरित न हो।

क्या आपराधिक कृत्य को बिना किसी उद्देश्य के माना जा सकता है? आम तौर पर, कोई आपराधिक कृत्य नहीं माना जाता है, जब तक कि मकसद साबित न हो। लेकिन ऐसे मामले हो सकते हैं जब मकसद साबित नहीं होने पर भी आपराधिक कृत्य के होने का अनुमान लगाया जा सकता है। यह अनिवार्य नहीं है कि आपराधिक कृत्य को साबित करने के लिए मकसद मौजूद होना चाहिए और न ही यह अनिवार्य है कि आपराधिक कृत्य को मानने से पहले मकसद साबित किया जाना चाहिए। इस संदर्भ में यहां यह उल्लेख करना उचित होगा कि युनिस उर्फ करिया बनाम मध्य प्रदेश राज्य, एआईआर 2003 एससी 539 मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा था कि जब नेत्र संबंधी साक्ष्य (प्रत्यक्षदर्शी) बहुत स्पष्ट और सतत एवं निरंतर हो तब आरोपी व्यक्ति की भूमिका स्थापित हो जाती है। अपराध के मकसद को साबित करने में विफलता का कोई परिणाम नहीं है। इसी प्रकार, अनिल यादव बनाम बिहार राज्य, 1992 (1) अपराध 282 मामले में यह कहा गया था कि अभियोजन मामले की सफलता के लिए उद्देश्य अनिवार्य नहीं है यदि साक्ष्य ठोस हैं और उचित संदेह के लिए खुले नहीं हैं। थमन कुमार बनाम संघ राज्य क्षेत्र चंडीगढ़, एआईआर 2003 एससी 3975 मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा था कि जहां नेत्र संबंधी साक्ष्य विश्वसनीय पाए जाते हैं और विश्वसनीय होते हैं और चिकित्सीय साक्ष्य से पुष्टि पाते हैं, वहां आरोपी को सुरक्षित रूप से दोषी ठहराया जा सकता है, भले ही अपराध करने का उद्देश्य साबित न हुआ हो। पंजाब राज्य के मामले में एआईआर 2003 एससी 1471 ने स्पष्ट रूप से कहा है कि उद्देश्य चाहे कितना भी मजबूत क्यों न हो, सबूत की जगह नहीं ले सकता है- इस प्रकार, हम उपरोक्त चर्चा से सुरक्षित रूप से यह अनुमान लगा सकते हैं कि जहां दोषी कृत्य का स्पष्ट सबूत है, जो संदेह के तिनके से परे स्थापित है, मकसद का सबूत शायद ही मायने रखता है और सिर्फ अनावश्यक है। इसके विपरीत, जहां दोषी कृत्य का कोई सबूत नहीं है, मकसद के सबूत कोई महत्व नहीं है। दूसरे शब्दों में, अकेले मकसद अर्थहीन है जब तक कि दोषी कृत्य के सबूत के साथ न हो।

45. वर्तमान मामले में अ०सा० -1 वसीम और अ०सा० -2 सलाउद्दीन के सभी गवाह, जो घटना के प्रत्यक्षदर्शी हैं, ने कहा है कि जब पीड़ित और वे पार्क में घूम रहे थे, अचानक आरोपी मौके पर दिखाई दिए और मृतक उम्मेद अली से पैसे की मांग की। किस तरह के पैसे के बारे में बताते हुए उनकी मांग को पूरा करने से इनकार करने पर, अपीलकर्ता ने अपीलकर्ता को क्रोध और उत्तेजना पैदा की, जिससे उन्हें पीड़ितों से लड़ने के लिए प्रेरित किया गया। उन्होंने गाली-गलौज और अपमानजनक शब्द कहने शुरू कर दिए। वे अपने गुस्से को रोक नहीं पाए और पीड़ितों को घायल कर दिया। इस प्रकार, पैसे छीनना आरोपी का घटना को अंजाम देने का मकसद था। अ०सा०-1 वसीम और अ०सा०-2 सलाउद्दीन गवाहों की गवाही श्रेय के योग्य है और उनकी गवाही को खारिज नहीं किया जा सकता है। उन्होंने अभियोजन की कहानी को साबित कर दिया है। चिकित्सा साक्ष्य ने उनकी गवाही का बहुत अच्छी तरह से समर्थन किया है। उपरोक्त कानूनी

परिदृश्य में, भले ही मकसद का कोई मजबूत सबूत न हो, अभियोजन पक्ष के मामले को खारिज नहीं किया जा सकता है।

46. अपीलकर्ता के वकील द्वारा यह प्रस्तुत किया जाता है कि अभियोजन पक्ष के संस्करण का समर्थन करने के लिए कोई स्वतंत्र सार्वजनिक गवाह नहीं है। अपीलकर्ता के वकील ने तर्क दिया कि तथ्यों के गवाह मृतक से संबंधित हैं और इस प्रकार इच्छुक गवाह हैं। यह तर्क दिया जाता है कि अन्य गवाह भी उपलब्ध थे लेकिन अभियोजन पक्ष ने उनसे पूछताछ नहीं की। इसलिए, अभियोजन पक्ष के गवाहों की गवाही श्रेय के योग्य नहीं है, अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने तर्क का खंडन किया। इस संबंध में यह उल्लेख किया जा सकता है कि शीर्ष न्यायालय के निर्णय की श्रेणी है। निर्मल सिंह बनाम बिहार राज्य 2005 (41) एसीसी 302 (एससी), हुकुम सिंह बनाम राजस्थान राज्य, 2000 (6) सुप्रीम कोर्ट 245 (एससी) जगदीश बनाम हरियाणा राज्य एआईआर 1998 एससी 923 राजस्थान राज्य बनाम हनुमान एआईआर 2001 एससी 282 आर प्रकाश बनाम कर्नाटक राज्य 2004 (49) एसीसी 777 (एससी) सेवक सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य 2002 (44) एसीसी 1 (एससी) अंबिका बनाम राज्य, 2000 एससीसी (आपराधिक) 522, सुरेंद्र नारायण बनाम राज्य, एआईआर 1998 एससी 1981 सुप्रीम कोर्ट ने बार-बार कहा है कि यदि नेत्र संबंधी साक्ष्य चिकित्सा साक्ष्य द्वारा समर्थित है, तो संबंधित या इच्छुक गवाहों की जांच, अभियोजन पक्ष के मामले पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालेगी। यह सच है कि अ०सा० 1 वसीम, अ०सा० 2 सलाउद्दीन और अ०सा० -2 के भतीजे हैं और पीड़ित उनकी बहन और भाई के बेटे अ०सा० -2 के चाचा हैं और मृतक मृतक सिकंदर की भतीजा पत्नी, बेटी और बेटा हैं, लेकिन, यह उल्लेख किया जा सकता है कि हालांकि वे मृतक से संबंधित हैं। फिर भी अभियुक्त/अपीलकर्ता द्वारा ऐसा कुछ भी नहीं दिखाया जा सका कि वे आरोपी के खिलाफ दुश्मनी और द्वेष पाल रहे थे, इस तरह उनकी गवाही को केवल मृतक के साथ उनके संबंधों के कारण विकृत नहीं किया जा सकता है। उक्त पार्क में तैनात दो गार्डों अरविंद और धर्मवीर की जांच नहीं की गई। जो अभियोजन पक्ष के बयान के बारे में गंभीर संदेह पैदा करता है। इसके अलावा, अगर घायल गवाह या उसके रिश्तेदार असली अपराधी को छोड़कर किसी निर्दोष को फंसाएंगे तो इसका कोई औचित्य नहीं है। हालांकि, एक शत्रुतापूर्ण या रिश्तेदार गवाहों की सावधानीपूर्वक जांच की जानी चाहिए।

47. अभियुक्त/अपीलकर्ता को खुकारी के साथ उम्मेद अली को चोट पहुंचाने की विशिष्ट भूमिका सौंपी गई है। अभियोजन पक्ष के संस्करण में कोई भौतिक असंगति या विसंगति नहीं है।

48. अपीलकर्ता के वकील ने यह भी तर्क दिया कि कथित घटना लोगों की भीड़ के बीच हुई थी और आरोपी व्यक्तियों को केवल शिकायतकर्ता और वसीम (अ०सा० 1) द्वारा रखा गया था और उन्हें पकड़ने के लिए जनता से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ था। इस संबंध में, यह उल्लेख किया जा सकता है कि अभियोजन पक्ष ने अ०सा० -1 वसीम और अ०सा० -2 सलाउद्दीन से चश्मदीद गवाह के रूप में पूछताछ की है जिनके सबूत विश्वसनीय हैं। उन्होंने स्पष्ट रूप से दोनों मृतकों को खुकरी मारने की भूमिका सौंपी। उनके बयान में कोई ठोस विरोधाभास नहीं है। यह एक स्थापित कानून है कि गवाहों की गुणवत्ता मायने रखती है न कि मात्रा और यहां तक कि अगर

एकमात्र विश्वसनीय गवाह है, तो कई गवाहों से पूछताछ करने की आवश्यकता नहीं है। अ०सा०-8 एसOआईO मलखान सिंह ने अपने बयान में स्पष्ट किया है कि वहां कई लोग मौजूद थे, लेकिन वे चश्मदीद गवाह नहीं थे, इसलिए उन्हें गवाह के रूप में लेने की आवश्यकता नहीं है। अभियोजन पक्ष ने अ०सा०-6 मुन्ना खान से भी पूछताछ की है, अ०सा०-7 शमशाद जो प्रथम सूचना रिपोर्ट (तहरीर) प्रदर्श क-2 का लेखक है, जो जांच रिपोर्ट का गवाह है और वे तथ्यों के गवाह नहीं हैं और न ही चश्मदीद गवाह हैं। इसके लिए तथ्य के गवाहों के साक्ष्य श्रेय के योग्य हैं। यह सर्वविदित है कि अक्सर स्वतंत्र गवाह अपने स्वयं के सुरक्षा कारणों से अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन करने के लिए आगे नहीं आते थे।

49. अपीलकर्ता के वकील ने प्रस्तुत किया है कि आरोपी व्यक्तियों और पीड़ितों के बीच पार्क में घूमने वाली लड़कियों को चिढ़ाने और ताने मारने के मुद्दे पर झगड़ा हुआ था, लेकिन कोई भी लड़की उक्त घटना के बारे में बताने के लिए आगे नहीं आई है। इस बात का रत्ती भर भी सबूत नहीं है कि पीड़िता ने किसी महिला को ताना मारा हो या चिढ़ाया हो। अ०सा० 1 वसीम और अ०सा० -2 सलाउद्दीन चश्मदीद गवाह थे, जिन्होंने पूरी घटना देखी थी और आरोपी व्यक्तियों से खुकारी छीन ली थी, उन्होंने भी इस बचाव पक्ष का समर्थन नहीं किया है। अपीलकर्ता को अपने बचाव के लिए सबूत पेश करने का अवसर दिया गया था, लेकिन उन्होंने इस अवसर का लाभ नहीं उठाया। यह हमें रक्षा संस्करण के लिए प्रतिकूल निष्कर्ष की ओर ले जाता है। यह भी उल्लेख किया जा सकता है कि अ०सा० -1 वसीम और अ०सा० 2 सलाउद्दीन ने खुद सुना कि घटना के समय अपीलकर्ता पैसे की मांग कर रहा था और पीड़ित उम्मेद ने उसकी मांग को पूरा नहीं किया, अपीलकर्ता ने पीड़ित के व्यक्ति पर खुखरी के वार करके घटना को अंजाम दिया। इस प्रकार, यह अच्छी तरह से स्थापित है कि यह घटना अपीलकर्ता द्वारा पैसे मांगने के मुद्दे पर हुई थी।

50. अ०सा० 1 वसीम और अ०सा० -2 सलाउद्दीन चश्मदीद गवाह थे जिन्होंने पूरी घटना देखी थी और आरोपी व्यक्तियों से खुकारी छीन ली थी, लेकिन उन्हें मामूली चोटें भी नहीं आई थीं, जो यह भी इंगित करता है कि उन्होंने घटना नहीं देखी थी। आरोपियों ने घायल उम्मेद अली को बचाने की कोशिश करने वाले शान मोहम्मद को छह चोटें पहुंचाई थीं और अ०सा० 1 वसीम और अ०सा० 2 सलाउद्दीन ने आरोपी अपीलकर्ता (धनंजय) को पकड़ लिया और उसके हाथ से खुकरी (चाकू) छीन लिया, लेकिन पिटाई के दौरान उन्हें कोई मामूली चोट नहीं आई। यह आईओ की ओर से लड़ाई हो सकती है जो खून से सने कपड़े इकट्ठा कर सकता था। आईओ की गलती अभियोजन पक्ष के मामले को प्रतिकूल रूप से प्रभावित नहीं कर सकती है। इसलिए, अपीलकर्ता के वकील का तर्क टिकाऊ नहीं है।

51. अभियोजन पक्ष के गवाहों ने अपनी गवाही में सुधार किया था और घटना के तरीके को इस तरह से बताया था जिसे सामान्य परिश्रम और विवेक से नहीं समझा जा सकता है। पोस्टमार्टम रिपोर्ट में कोई भौतिक असंगति नहीं है जो साबित करती है कि जिस तरीके से घटना हुई वह गलत होगी।

52. अपीलकर्ता के वकील ने तर्क दिया है कि आरोपी व्यक्तियों के पास से खुकरी और अन्य आपत्तिजनक वस्तुओं की बरामदगी अत्यधिक

अविश्वसनीय और संदिग्ध है। इसे रासायनिक जांच के लिए एफएसएल नहीं भेजा गया। ए.जी.ए. ने तर्क का खंडन किया। इस संबंध में इस बात पर जोर दिया जाता है कि अ०सा०-1 वसीम और अ०सा०-2 सलाउद्दीन घटना के चश्मदीद गवाह हैं, जिन्होंने बयान दिया है कि अ०सा०-2 सलाउद्दीन ने अपीलकर्ता को पकड़ लिया और खुखरी/चाकू छीन लिया। अ०सा० -1 वसीम ने आगे कहा कि जब उन्होंने चाकू छीना तो वे घायल नहीं थे। उन्होंने यह भी कहा कि बाद में खुखरी को पुलिस को दे दिया गया। अ०सा०-2 सलाउद्दीन ने कहा है कि इसका एक रिकवरी मेमो 'प्रदर्श क-2' तैयार किया गया था और इसे ट्रायल के दौरान फिजिकल एक्सटी 8 के रूप में अदालत के समक्ष पेश किया गया था। अभियोजन पक्ष के इन दोनों गवाहों ने खुखरी की पहचान की जिसका इस्तेमाल घटना में किया गया था। डॉक्टर अ०सा०-3 अरविंद कुमार और अ०सा०-4 डॉ. केएन तिवारी ने स्पष्ट रूप से कहा है कि मृतक को लगी चोटें एक तरफा तेज धार वाले हथियार से लगी थीं, जिसे चाकू कहा जा सकता है। इस प्रकार, अदालत में या बाहर सभी प्रासंगिक स्थानों पर खुखरी, हमले के हथियार की बरामदगी के तथ्य की पहचान की गई है। अ०सा०-8 के आई.ओ.एस.आई.मलखान सिंह ने कहा है कि खून के धब्बों का पता लगाने के लिए खुखरी को एफएसएल भेजा गया था। उनके बयान को एफएसएल, आगरा को भेजे गए एक पत्र द्वारा पुष्ट किया गया है, जिसकी कार्बन कॉपी रिकॉर्ड पर है। हालांकि, एफएसएल आगरा को भेजी गई वस्तुओं के संबंध में कोई एफएसएल रिपोर्ट रिकॉर्ड पर नहीं है, लेकिन आईओ की गलती है जो रिपोर्ट एकत्र नहीं करते हैं। फिर भी, यह अभियोजन पक्ष के मामले को प्रतिकूल रूप से प्रभावित नहीं करता है।

53. बलदेव सिंह और अनर बनाम पंजाब राज्य, 1996 एआईआर 372, 1995 एससीसी (6) 596, अमरीक सिंह बनाम पंजाब राज्य और अन्य, 2000 सीआरआईएलजे 4305, यूपी राज्य बनाम हरवंश सहाय 1996 (6) एससीसी 50, उत्तर प्रदेश राज्य बनाम हरि मोहन और अन्य, 2000 एससीसी 516, राम बली बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2004, एससीसी 2329-सी वॉल्यूम - 02, विजय सिंह बनाम बिहार राज्य, 2003 एससीसी 1093, और धनंजय सिंह बनाम पंजाब राज्य, 2004 एससीसी सीआरआई 851 में सुप्रीम कोर्ट ने पारस यादव और अन्य बनाम बिहार राज्य (1999 (2) एससीसी 126) और राम बिहारी यादव बनाम बिहार राज्य 1998 (4) एससीसी 517 और अमर सिंह बनाम बलविंदर सिंह और अन्य (2003 (2) एससीसी 518) का हवाला देते हुए कहा कि चूक जांच एजेंसी द्वारा की गई है या क्योंकि लापरवाही के कारण दोषपूर्ण जांच हुई थी। यह पता लगाने के लिए कि उक्त साक्ष्य विश्वसनीय है या नहीं और किस हद तक, इस तरह की चूक ने सच्चाई का पता लगाने के उद्देश्य को प्रभावित किया। अकेले अधिकारियों का दूषित आचरण सच्चाई का पता लगाने में अदालतों द्वारा सबूतों का मूल्यांकन करने के रास्ते में खड़ा नहीं होना चाहिए, अगर रिकॉर्ड पर सामग्री अन्यथा विश्वसनीय और सच्ची है; अन्यथा पक्षपाती या इच्छुक जांचकर्ता के इशारे पर डिजाइन की गई शरारत को कायम रखा जाएगा और शिकायतकर्ता पक्ष को न्याय से वंचित कर दिया जाएगा, और इस प्रक्रिया में बड़े पैमाने पर समुदाय को वंचित कर दिया जाएगा।

54. **राम बिहारी यादव बनाम बिहार राज्य और अन्य, 1998 (4) एससीसी 517)** मामले में शीर्ष अदालत ने कहा कि यदि इस तरह की डिजाइन या लापरवाही से की गई जांच को प्राथमिकता दी जाती है, लापरवाही से जांच या चूक होती है, तो लोगों का विश्वास न केवल कानून लागू करने वाली एजेंसी में बल्कि न्याय के प्रशासन में भी डगमगा जाएगा।

55. **<u>अमर सिंह बनाम बलविंदर सिंह और अन्य, (2003 (2) एससीसी 518</u>)** में, यह निश्चित रूप से बेहतर होता अगर आग्नेयास्त्रों को तुलना के लिए फोरेंसिक परीक्षण प्रयोगशाला में भेजा जाता। लेकिन बैलिस्टिक विशेषज्ञ की रिपोर्ट केवल एक विशेषज्ञ राय की प्रकृति में होगी, जिसमें कोई निर्णायकता नहीं होगी। जब चिकित्सा साक्ष्य द्वारा पुष्टि की गई चश्मदीद गवाहों की प्रत्यक्ष गवाही अभियोजन पक्ष के बयान को पूरी तरह से स्थापित करती है, तो आईओ की ओर से विफलता या चूक या लापरवाही अभियोजन पक्ष के संस्करण की विश्वसनीयता को प्रभावित नहीं कर सकती है।

56. मामले के समग्र तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों की उपरोक्त चर्चाओं से भी, उम्मेद और शान मोहम्मद को घातक और गंभीर चोट पहुंचाने में आरोपी अपीलकर्ता (धनंजय) की मिलीभगत के बारे में कोई संदेह नहीं है, जिसके परिणामस्वरूप उम्मेद की मौके पर ही मौत हो गई और कुछ घंटों के बाद शान मोहम्मद की मौत हो गई। हालांकि बचाव पक्ष द्वारा गवाहों से जिरह की गई, लेकिन कोई विरोधाभास नहीं लाया जा सका ताकि उम्मेद और शान मोहम्मद की नृशंस हत्या में आरोपी अपीलकर्ता की भागीदारी के बारे में बयान को खारिज किया जा सके। खुकरी से लगी चोटों के संबंध में अभियोजन पक्ष के गवाह संख्या 3 और 4 द्वारा प्रस्तुत चिकित्सा साक्ष्य पूरी तरह से साबित हुए। खुकरी को फोरेंसिक प्रयोगशाला में भेजा गया। रिपोर्ट प्राप्त हुई थी जिसमें आपत्तिजनक वस्तुओं का प्रदर्शन किया गया था यानी खुकरी का आवरण, खून से सना सीमेंट और सादा सीमेंट। खुकरी और अन्य आपत्तिजनक वस्तुओं पर मानव रक्त पाया गया था। यदि जांच अधिकारी ने खुकरी को विश्लेषण और पुष्टि के लिए फोरेंसिक विज्ञान पुस्तकालय में नहीं भेजा। आरोपी अपीलकर्ता द्वारा पुलिस कर्मियों की उपस्थिति में अभियोजन पक्ष के बयान के अनुरूप तथ्यों के प्रकटीकरण की सीमा तक दिया गया इकबालिया बयान स्वीकार्य है। जांच अधिकारी की गलती के कारण अभियोजन की कहानी ध्वस्त नहीं होगी। विचरण न्यायालय ने आरोपी अपीलकर्ता के पूरे अभियोजन पक्ष और बचाव का उसकी विश्वसनीयता के पैमाने पर मूल्यांकन और विश्लेषण किया था और सही निष्कर्ष पर पहुंचा है कि यह अपीलकर्ता है जो सह-आरोपी के साथ मिलकर उम्मेद और शानू को घातक और हृदय विदारक चोट पहुंचाने के अपराध का असली अपराधी है, जिसने दम तोड़ दिया। खुकरी से लेकर उम्मेद और शानू को गंभीर चोट पहुंचाने के आरोपों को साबित करने के लिए स्पष्ट और अकाट्य सबूत हैं। इस प्रकार, वे अपने द्वारा किए गए अपराध के लिए सजा से बच नहीं सकते हैं। अपीलकर्ता के वकील ने 2022 के खेमा उर्फ खेम चंद्र बनाम उत्तर प्रदेश राज्य आपराधिक अपील संख्या 1200-1202 में माननीय सुप्रीम कोर्ट के आदेश पर भरोसा किया है, जो <u>2019 के एसएलपी (आपराधिक) संख्या 8624, अनिल फुकन बनाम आसम राज्य 1993 लॉ मुकदमा,</u>

(229), वीरेंद्र (सुप्रा) राज्य द्वारा प्रतिनिधित्व किए गए पुलिस निरीक्षक (सुप्रा) द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

57. इस प्रकार, अभियोजन पक्ष के संस्करण में कोई अलंकरण नहीं है। आरोपियों द्वारा अपने व्यक्ति को चोट पहुंचाने के कारण पीड़ितों की मौत हो गई। पूरी घटना को बहुत ही आंतरिक और प्राकृतिक तरीके से वर्णित किया गया है। यह हत्या का मामला है। हत्या सार्वजनिक स्थान पर उन गवाहों की उपस्थिति में दिन के उजाले में हुई, जिन्होंने जिरह और मुख्य रूप से जिरह में अभियोजन पक्ष के बयान का समर्थन किया। हत्या राम मनोहर लोहिया पार्क में आरोपी व्यक्तियों की ओर से पैसे मांगने और पीड़ितों द्वारा इनकार करने के मामूली मुद्दे पर हुई है। यह प्रदर्शित करने के लिए सबूतों की एक श्रृंखला है कि शान मोहम्मद और उम्मेद को खुकरी के साथ गंभीर चोटें आई थीं, जिसके परिणामस्वरूप उम्मेद ने अंतिम सांस ली और शान मोहम्मद गंभीर और घातक रूप से घायल हो गए। आरोपी व्यक्तियों को मौके पर ही पकड़ लिया गया और अपीलकर्ता के पास से खुकरी और आपत्तिजनक सामग्री बरामद की गई। यदि परीक्षा, जिरह या मुख्य परीक्षा में कोई भिन्नता या चूक होती है, तो यह अभियोजन पक्ष के पूरे बयान को खारिज नहीं करेगा और अपराध को दोषमुक्त कर देगा। सलीम और आरिफ चौधरी, जिन्हें आरोप पत्र की सूची में चित्रित किया गया था, से पूछताछ न होने से अभियोजन पक्ष के बयान को पूरी तरह से गलत नहीं ठहराया जा सकेगा। मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से यह पता चलता है कि अपराध बहुत क्रूर और शैतानी तरीके से बड़े पैमाने पर जनता की अंतरात्मा और दिल को हिला देने वाला किया गया है, उसे खत्म करने के इरादे से पीड़ित के महत्वपूर्ण हिस्से में कई चोटें लगाई गई थीं। गवाहों की गवाही विश्वसनीय है। आरोपी अपीलकर्ता द्वारा कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है कि कैसे और किस तरीके से पीड़ितों को उक्त पार्क में गंभीर चोटें पहुंचाई गईं। लड़कियों को छेड़ने और प्रताड़ित करने की कहानी भी स्थापित नहीं की जा सकी थी और इस संस्करण को साबित करने के लिए कोई व्यक्तिगत रूप से सामने नहीं आया था। अभियोजन पक्ष के गवाहों द्वारा साक्ष्य आरोपी व्यक्तियों के गिल्ड की परिकल्पना के अनुरूप हैं। आरोपी व्यक्तियों के अपराध के अलावा कोई अन्य परिकल्पना नहीं है। केवल दोषसिद्धि और सजा के साथ-साथ अभियुक्त अपीलकर्ता को कैद करने से अपराध की गंभीरता और बर्बरता कम नहीं होगी, जिसमें निर्दोष व्यक्तियों को बर्बर और निर्मम तरीके से मार दिया गया था। पीड़ितों के व्यक्ति पर चोटों की प्रकृति हृदय विदारक और असहनीय थी जो उक्त पार्क में मौजूद व्यक्तियों की आत्मा और विवेक को हिला रही थी। विद्वान सत्र न्यायाधीश ने रिकॉर्ड पर सभी सबूतों की सराहना करने के बाद दोषसिद्धि और सजा का आदेश पारित किया है और सही निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि यह अकेले आरोपी व्यक्ति थे जिन्होंने पीड़ितों को घातक और भयावह चोट पहुंचाने का गंभीर अपराध किया था, इसलिए विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय और आदेश को बरकरार रखा जा सकता है।

58. ऊपर की गई प्रोलिक्स और मौखिक चर्चाओं के आलोक में और मामले के पूरे तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, हमारी राय है कि अभियोजन पक्ष ने अपने आरोपों को उचित संदेह से परे साबित कर दिया है, जो आरोपी अपीलकर्ता के अपराध की ओर इशारा करता है।

विचरण न्यायालय ने अपीलकर्ता को दोषी ठहराते हुए अभियोजन पक्ष के सबूतों को सही तरीके से स्वीकार किया है। हालांकि, आरोपों की प्रकृति, रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री और अपराध को अंजाम देने के तरीके को देखते हुए, ऐसा प्रतीत होता है कि आरोपी अपीलकर्ता के पास उम्मेद और शानू (मृतक) को खत्म करने के लिए कोई मध्यस्थता या पूर्व ठोस दिमाग नहीं था। यह घटना जुनून की गर्मी पर अचानक हुई थी, इसलिए आरोपी अपीलकर्ता दोषी ठहराए जाने का हकदार है। इसलिए, हम विचरण न्यायालय के निष्कर्षों से सहमत हैं।

59. यह हमें अगले प्रश्न पर ले जाता है कि क्या यह एक अपराधी हत्या थी या यह भ० द० वि० की धारा 300 के किसी अपवाद के अंतर्गत आएगा?

60. भारतीय दंड संहिता की धारा 299 का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा, जो निम्नानुसार है:

***"299. गैर इरादतन हत्या**: जो कोई भी मौत का कारण बनने के इरादे से या ऐसी शारीरिक चोट पहुंचाने के इरादे से मौत का कारण बनता है जिससे मृत्यु होने की संभावना है, या इस ज्ञान के साथ कि वह इस तरह के कृत्य से मौत का कारण बन सकता है, वह गैर-इरादतन हत्या का अपराध करता है।*

61. 'हत्या' और 'गैर इरादतन हत्या' के बीच अकादमिक अंतर ने हमेशा अदालतों को परेशान किया है। भ्रम तब पैदा होता है, जब अदालतें इन धाराओं में विधायिका द्वारा उपयोग किए जाने वाले शब्दों के सही दायरे और अर्थ को खो देती हैं, और खुद को सूक्ष्म अमूर्तता में खींचने की अनुमति देती हैं। इन प्रावधानों की व्याख्या और आवेदन के दृष्टिकोण का सबसे सुरक्षित तरीका यह प्रतीत होता है कि भ० द० वि० संहिता की धारा 299 और 300 के विभिन्न खंडों में उपयोग किए गए कीवर्ड को ध्यान में रखा जाए। निम्नलिखित तुलनात्मक तालिका दो अपराधों के बीच अंतर के बिंदुओं की सराहना करने में सहायक होगी: -

धारा 299	**धारा 300**
एक व्यक्ति गैर इरादतन हत्या करता है यदि वह कार्य जिसके द्वारा मृत्यु हुई है	कुछ अपवादों के अधीन गैर-इरादतन हत्या है यदि वह कार्य जिसके द्वारा मृत्यु हुई है।

<u>इरादा</u>

(ए) मौत का कारण बनने के इरादे से; नहीं तो	(1) मृत्यु का कारण बनने के इरादे से; नहीं तो
(ख) ऐसी शारीरिक चोट पहुंचाने के इरादे से जिससे मृत्यु होने की संभावना हो; नहीं तो	(2) ऐसी शारीरिक चोट पहुंचाने के इरादे से जैसा कि अपराधी जानता है कि उस व्यक्ति की मृत्यु होने की संभावना है जिसे नुकसान पहुंचाया गया है;
ज्ञान	**ज्ञान**
(ग) इस जानकारी के साथ कि इस कृत्य से मृत्यु होने की संभावना है।	(4) इस ज्ञान के साथ कि कार्य इतना तुरंत खतरनाक है कि यह पूरी संभावना में मृत्यु या ऐसी शारीरिक चोट का कारण बनना चाहिए जो मृत्यु का कारण बन सकता है,

	और मृत्यु या ऐसी चोट के जोखिम के लिए किसी भी बहाने के बिना जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है।

62. उपरोक्त चर्चा के उत्थान से, ऐसा प्रतीत होता है कि अभियुक्त द्वारा की गई मृत्यु पूर्व नियोजित नहीं थी, आरोपी को हालांकि ज्ञान और इरादा था कि उसके कृत्य से मृतक को शारीरिक नुकसान होगा, लेकिन वह मृतक से दूर नहीं जाना चाहता था। इसलिए यह मामला भ० द० वि० की धारा 300 के अपवाद 1 और 4 के तहत आता है। धारा 299 पर विचार करते समय, उपरोक्त के रूप में, किया गया अपराध **वीरन और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2011) 5 एससीआर 300** में सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणियों के अनुसार धारा 304 भाग 1 के तहत आएगा, जिसे भी ध्यान में रखा जाना चाहिए।

63. वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की समग्र जांच के साथ-साथ चिकित्सा अधिकारी की राय और **तुकाराम और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांत पर विचार करते हुए, **(2011) 4 एससीसी 250** और **बीएन कावताकर और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य** के मामले में रिपोर्ट की गई, **1994 एसयूपीपी (1) एससीसी 304** में रिपोर्ट किया गया, हम निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि मृत्यु पूर्व नियोजित नहीं थी। हमारे द्वारा चर्चा की गई मिसालें हमें अपने निष्कर्ष को बनाए रखने की अनुमति देती हैं, जिसमें हम निर्णायक रूप से मानते हैं कि अपराध भ० द० वि० की धारा 302 के तहत दंडनीय नहीं है, लेकिन यह भ० द० वि० की धारा 304 (भाग 1) के तहत गैर-इरादतन हत्या है।

64. अब, यह देखा जाना है कि क्या सजा की मात्रा बहुत कठोर है और इसे संशोधित करने की आवश्यकता है। इस संबंध में, हमें भारत में प्रचलित दंड के सिद्धांत का विश्लेषण करना होगा।

65. **मोहम्मद ग्यासुद्दीन बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, [एआईआर 1977, एससी 1926]** में, सजा में पुनर्वास और सुधारात्मक पहलुओं की व्याख्या करते हुए सुप्रीम कोर्ट द्वारा यह कहा गया है:

"अपराध एक पैथोलॉजिकल विचलन है। अपराधी को आमतौर पर छुड़ाया जा सकता है और राज्य को बदला लेने के बजाय पुनर्वास करना पड़ता है। उप-संस्कृति जो पूर्व-सामाजिक व्यवहार की ओर ले जाती है, का मुकाबला अनुचित क्रूरता से नहीं बल्कि पुनरुत्थान द्वारा किया जाना चाहिए। इसलिए, व्यक्ति और लक्ष्य में पेनोलॉजी में रुचि का ध्यान उसे समाज के लिए प्रेरित कर रहा है। कठोर और बर्बर दंड का प्रहार इस प्रकार अतीत और प्रतिगामी समय का अवशेष है। आज मानव सजा को एक ऐसे व्यक्ति को फिर से आकार देने की प्रक्रिया के रूप में देखता है जो आपराधिकता में बिगड़ गया है और सामाजिक सुरक्षा के साधन के रूप में अपराधी के पुनर्वास में आधुनिक समुदाय की प्राथमिक हिस्सेदारी है। इसलिए हमारी आपराधिक अदालतों में 'आतंक' दृष्टिकोण के बजाय एक चिकित्सीय दृष्टिकोण प्रबल होना चाहिए, क्योंकि व्यक्ति की क्रूर कैद केवल उसके दिमाग को खराब करती है। यदि आप किसी व्यक्ति को प्रतिशोधी रूप से दंडित करना चाहते हैं, तो आपको उसे घायल करना होगा। यदि आप उसे सुधारना चाहते हैं, तो आपको उसे सुधारना

होगा और पुरुषों को चोटों से सुधार नहीं मिलता है।

66. 'उचित वाक्य' शब्द को **<u>देव नारायण मंडल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(2004) 7 एससीसी 257]</u>** में यह कहते हुए समझाया गया था कि सजा अत्यधिक कठोर या हास्यास्पद रूप से कम नहीं होनी चाहिए। सजा की मात्रा निर्धारित करते समय, अदालत को 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखना चाहिए। सजा किसी दिए गए मामले के तथ्यों पर आधारित होनी चाहिए। अपराध की गंभीरता, अपराध करने का तरीका, आरोपी की उम्र और लिंग को ध्यान में रखा जाना चाहिए। सजा देने में न्यायालय के विवेकाधिकार का प्रयोग मनमाने ढंग से या मनमाने ढंग से नहीं किया जा सकता है।

67. **रवादा शशिकला बनाम आंध्र प्रदेश सरकार 2017 एससी 1166** मामले में सुप्रीम कोर्ट ने जमील बनाम यूपी राज्य [(2010) 12 एससीसी 532], गुरु बसवराज बनाम कर्नाटक राज्य, [(2012) 8 एससीसी 734], सुमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह, [(2014) 7 एससीसी 323], पंजाब राज्य बनाम बावा सिंह के मामले में दिए गए फैसलों का हवाला दिया और राज बाला बनाम हरियाणा राज्य, [(2016) 1 एससीसी 463] में दोहराया है कि, सजा प्रणाली के संचालन में, कानून को तथ्यात्मक मैट्रिक्स के आधार पर सुधारात्मक मशीनरी या निवारण को अपनाना चाहिए। प्रत्येक मामले में तथ्य और दी गई परिस्थितियां, अपराध की प्रकृति, जिस तरह से इसकी योजना बनाई गई और इसे अंजाम दिया गया, अपराध करने का मकसद, आरोपी का आचरण, इस्तेमाल किए गए हथियारों की प्रकृति और अन्य सभी उपस्थित परिस्थितियां प्रासंगिक तथ्य हैं जो विचार के क्षेत्र में प्रवेश करेंगे। इसके अलावा, सजा में अनुचित सहानुभूति न्याय व्यवस्था को अधिक नुकसान पहुंचाएगी और कानून की प्रभावकारिता में जनता के विश्वास को कम करेगी। यह प्रत्येक न्यायालय का कर्तव्य है कि वह अपराध की प्रकृति और उसके करने के तरीके को ध्यान में रखते हुए उचित सजा दे। सुप्रीम कोर्ट ने आगे कहा कि अदालतों को न केवल अपराध के शिकार के अधिकार को ध्यान में रखना चाहिए, बल्कि बड़े पैमाने पर समाज को भी ध्यान में रखना चाहिए। उचित दंड देने पर विचार करते समय, पूरे समाज पर अपराध के प्रभाव और कानून के शासन को संतुलित करने की आवश्यकता है। देश में न्यायिक प्रवृत्ति सुधार और सजा के बीच संतुलन बनाने की ओर रही है। समाज की सुरक्षा और आपराधिक प्रक्रिया पर मुहर लगाना कानून का उद्देश्य होना चाहिए जिसे अपराधियों और गलत करने वालों पर उचित सजा देकर हासिल किया जा सकता है। कानून, व्यवस्था और शांति बनाए रखने के लिए एक उपकरण के रूप में, समाज के सामने आने वाली चुनौतियों का प्रभावी ढंग से सामना करना चाहिए, क्योंकि समाज अपराध और असंतोष के गंभीर खतरों के तहत लंबे समय तक सहन और विकसित नहीं कर सकता है। इसलिए, सजा देने में अनुचित उदारता से बचना आवश्यक है। इस प्रकार, देश में अपनाया गया आपराधिक न्याय न्यायशास्त्र प्रतिशोधी नहीं है, बल्कि सुधारात्मक है। साथ ही, हमारी आपराधिक न्याय प्रणाली में अंतर्निहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से भी बचा जाना चाहिए।

68. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और हमारे देश में आपराधिक न्यायशास्त्र को ध्यान में रखते हुए, जो

सुधारात्मक है और प्रतिशोधात्मक नहीं है, यह न्यायालय मानता है कि कोई भी आरोपी व्यक्ति सुधरने में असमर्थ नहीं है और इसलिए, उन्हें सामाजिक धारा में लाने के लिए सुधार का अवसर देने के लिए सभी उपाय लागू किए जाने चाहिए।

69. जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, 'दंड का सुधारात्मक सिद्धांत' अपनाया जाना है और इस कारण से, 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखते हुए सजा देना आवश्यक है। आक्षेपित निर्णय के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की संपूर्णता और अपराध की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए विद्वान विचरण न्यायालय द्वारा आजीवन कारावास के लिए दी गई सजा बहुत कठोर है। जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, माननीय उच्चतम न्यायालय ने कहा है कि दांडिक न्याय प्रणाली में अंतर्निहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से बचा जाना चाहिए।

70. उपरोक्त के मद्देनजर, अभियुक्त-अपीलकर्ता को 10 वर्ष के कठोर कारावास की सजा सुनाई जाती है। जुर्माने की राशि घटाकर 5000 रुपये कर दी गई है। हालांकि, डिफ़ॉल्ट वाक्य बनाए रखा जाता है। यदि 10 साल की सजा पहले ही समाप्त हो चुकी है, तो आरोपी अपीलकर्ता को तुरंत रिहा कर दिया जाए, अगर वह किसी अन्य मामले में वांछित नहीं है। वह अपनी रिहाई की तारीख से चार सप्ताह के भीतर जुर्माना जमा करेगा और यदि जुर्माना जमा नहीं किया जाता है तो उसे चूक की सजा भुगतने के लिए फिर से कैद किया जाएगा।

71. परिणामस्वरूप, अपील को आंशिक रूप से इस हद तक स्वीकार किया जाता है कि अपीलकर्ता को भ० द० वि० की धारा 304 भाग-I के तहत दोषी ठहराया जाता है, जिसमें 2007 के सत्र परीक्षण संख्या 445 में दस साल के कठोर कारावास और 15,000 रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई जाती है। चूंकि अपीलकर्ता 15 साल से जेल में है, इसलिए उसे तुरंत रिहा कर दिया जाए यदि वह अन्य अपराध में वांछित नहीं है। अपर सत्र न्यायाधीश न्यायालय संख्या 1 गाजियाबाद द्वारा 2007 के सत्र विचारण संख्या 446 में दिनांक 22.03.2013 को पारित निर्णय एवं आदेश के तहत शस्त्र अधिनियम की धारा 4/25 के तहत दी गई दोषसिद्धि एवं सजा बरकरार रहेगी जो आरोपी द्वारा पहले ही गुजारा जा चुका है!

72. विचारण न्यायालय रिकॉर्ड को आवश्यक कार्रवाई के लिए तुरंत संबंधित अदालत को प्रेषित किया जाए।

(2023) 3 ILRA 887

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 22.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेन्द्र ठाकर, जे.

माननीय न्यायमूर्ति अजीत सिंह, जे.

2022 की आपराधिक अपील संख्या 755

संहरु गुप्ता ... अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ... प्रतिवादी

अपीलकर्ता के लिए वकील: श्री करूणेश प्रताप सिंह

प्रतिवादी के लिए वकील: जी.ए.

आपराधिक कानून-भारतीय दंड संहिता-1860- धारा 299, 300, 302 और 304(भाग 1) - आरोपी ने गुस्से में अपनी पत्नी को फावड़े के एक ही वार से मार डाला - धारा 302 IPC के तहत दोषसिद्धि - पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट में शरीर पर चोटें मृत्यु का कारण बताई गईं और यह हत्या का वाद था - हत्या पूर्व नियोजित नहीं थी - आरोपी को पता था कि उसका कृत्य मृतक को शारीरिक नुकसान पहुंचाएगा, लेकिन वह मृतक को मारना नहीं चाहता था - अपराध धारा 302 के तहत दंडनीय नहीं है, बल्कि यह हत्या के बिना गैर इरादातन है, जिसे IPC की धारा 304 (भाग 1) के तहत दंड दिया जाएगा - देश में अपनाई गई आपराधिक न्याय प्रणाली प्रतिशोधात्मक नहीं है, बल्कि सुधारात्मक और सुधारात्मक है - आरोपी ने सात साल से अधिक समय तक जेल में बिताया है और उसकी एक बेटी है जिसका उसे ख्याल रखना है - जुर्माना चार महीने की कारावास की सजा से परिवर्तित किया गया - आपेक्षित निर्णय और आदेश में संशोधन किया गया।

अपील आंशिक रूप से स्वीकृत। (ई -15)

उद्धृत वाद सूची:

1. वीरन और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2011) 5 SCR 300.

2. तुकाराम और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य (2011) 4 SCC 250.

3. बी.एन. कावतकर और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य 1994 SUPP (1) SCC 304.

4. मोहम्मद गियासुद्दीन बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, [AIR 1977 SC 1926]

5. देव नारायण मंडल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(2004) 7 SCC 257]

6. रावड़ा ससिकला बनाम आंध्र प्रदेश राज्य AIR 2017 SC 1166

7. जमीले बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(2010) 12 SCC 532]

8. गुरु बसवराज बनाम कर्नाटक राज्य, [(2012) 8 SCC 734]

9. सुमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह, [(2014) 7 SCC 323]

10. पंजाब राज्य बनाम बाव सिंह, [(2015) 3 SCC 441]

11. राज बाला बनाम हरियाणा राज्य, [(2016) 1 SCC 463]

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर
माननीय न्यायमूर्ति अजीत सिंह

1. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता श्री करुणेश प्रताप सिंह और राज्य के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना।

2. जहां तक जमानत का संबंध है, यद्यपि अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने दलीलें दी हैं, हमने पत्रावली, आक्षेपित निर्णय और तथ्यात्मक डेटा का अध्ययन किया है और विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता की सहमति से हम इस अपील पर अंतिम रूप से निर्णय लेने के लिए आगे बढ़ रहे हैं जहां आरोपी-अपीलार्थी सात साल से अधिक समय से जेल में है और उसे एक पुत्री की देखभाल करनी है।

3. यह अपील अपर सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश, पीए अधिनियम/यूपीएसआईबी, गोरखपुर द्वारा सत्र परीक्षण संख्या 129 वर्ष 2016(राज्य बनाम सम्हारू गुप्ता) में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 3.12.2021 को

चुनौती देती है, जिसके द्वारा विद्वान सत्र न्यायाधीश ने आरोपी-अपीलार्थी को धारा 302 भारतीय दंड संहिता, 1860 (इसके बाद 'आईपीसी' के रूप में संदर्भित) के अंतर्गत दोषी ठहराया है और उसे 50,000/- रुपये के जुर्माने के साथ आजीवन कारावास और जुर्माना अदा न करने की दशा में दो वर्षों का अतिरिक्त कारावास भुगतने की सजा सुनाई है।

4. पत्रावली से निकल कर आए संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि मृतका के भाई ने थाना पिपराइच, गोरखपुर के समक्ष यह कहते हुए एक शिकायत की थी कि उसकी बहन जिसकी शादी 21 साल पहले आरोपी-अपीलार्थी के साथ हुई थी, को उसके पति ने फावड़े से मार डाला था। यह भी बताया गया कि मृतका के अवैध संबंध के शक के चलते दोनों के बीच झगड़ा होता था। मृतका की अस्पताल ले जाते समय मौत हो गई। उनकी शिकायत के आधार पर, मुकदमा अपराध संख्या 328 वर्ष 2015 के रूप में प्राथमिकी दर्ज की गई थी।

5. विवेचना शुरू होने पर, विवेचना अधिकारी ने सभी गवाहों के बयान दर्ज किए और विद्वान मजिस्ट्रेट को आरोप पत्र प्रस्तुत किया। विद्वान मजिस्ट्रेट ने आरोपी को बुलाया और उसे सत्र न्यायालय को सौंप दिया क्योंकि प्रथम दृष्टया आरोप धारा 302 भारतीय दंड संहिता के तहत था।

6. सम्मन किए जाने पर, आरोपी- अपीलार्थी ने खुद को निर्दोष बताया और मुकदमा चलाने की इच्छा जताई। मुकदमा शुरू हुआ और अभियोजन पक्ष ने 11 गवाहों की जांच की जो इस प्रकार हैं:

1.	चंद्रभान	अभियोजन साक्षी 1
2.	श्रीमती विमला देवी	अभियोजन साक्षी 2
3.	रितु गुप्ता	अभियोजन साक्षी 3
4.	अरुण गुप्ता	अभियोजन साक्षी 4
5.	माधुरी देवी	अभियोजन साक्षी 5
6.	गंगा प्रसाद	अभियोजन साक्षी 6
7.	गुड्डु गौड़	अभियोजन साक्षी 7
8.	अखिलेश कुमार उपाध्याय	अभियोजन साक्षी 8
9.	प्रभातेश कुमार	अभियोजन साक्षी 9
10.	निर्मल कुमार यादव	अभियोजन साक्षी 10
11.	डॉ. धनंजय कुशवाहा	अभियोजन साक्षी 11

7. आंखो देखे संस्करण के समर्थन में, निम्नलिखित दस्तावेज दाखिल किए गए और साबित किए गए:

1.	प्राथमिकी	प्रदर्श क 13
2.	लिखित रिपोर्ट	प्रदर्श क 1

3.	पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट	प्रदर्श क 3/1 और 3/2
4.	पंचायतनामा	प्रदर्श क 11
5.	आरोप पत्र	प्रदर्श क 7
6.	साइट प्लान	प्रदर्श क 5
7.	फोरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला रिपोर्ट	प्रदर्श क 6

8. मुकदमे के अंत में, धारा 313 दण्ड प्रक्रिया संहिता के तहत आरोपी का बयान दर्ज करने और अभियोजन और बचाव पक्ष की ओर से दलीलें सुनने के बाद, विद्वान सत्र न्यायाधीश ने आरोपी-अपीलार्थी को दोषी ठहराया,जैसा कि ऊपर बताया गया है।

9. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि घटना अचानक घटित हुई जो पति और पत्नी के बीच अचानक झगड़े के कारण हुई। यह कहा गया है कि आरोपी ने मृतका की हत्या करने की पूर्व-योजना नहीं बनाई थी।

10. विकल्प के रूप में, यह कहा गया है कि अधिक से अधिक, यह मृत्यु हिंसक वध हो सकती है जो हत्या की श्रेणी में नहीं आती है और भारतीय दंड संहिता की धारा 304 II या धारा 304 I के तहत दंडनीय है। यदि न्यायालय निर्णय लेता है कि आरोपी धारा 302 भारतीय दंड संहिता के तहत दोषी है, तो अभियुक्त को निश्चित अवधि के कारावास की सज़ा दी जा सकती है क्योंकि मृत्यु अभियुक्त की ओर से कोई भयानक कृत्य नहीं है।

11. इसके विपरीत, राज्य के लिए विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने कहा है कि मृतका की ओर से कोई गंभीर और अचानक उकसावे की कार्रवाई नहीं हुई थी और अपराध की भीषणता और अभियोजन पक्ष के गवाहों के साक्ष्य को देखते हुए, न्यायालय को मामले में कोई नरमी नहीं दिखानी चाहिए। विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा आगे प्रस्तुत किया गया है कि विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा उचित ही, धारा 300 भारतीय दण्ड संहिता के अंतर्गत मामला बनना, माना गया है जिन्होंने मामले में तथ्यों पर कानून का प्रयोग किया है।

12. हमने गवाहों के साक्ष्य और पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट पर विचार किया है, जिसमें कहा गया है कि मृतिका के शरीर पर चोटें मौत का कारण होंगी और यह हिंसक हत्या थी, हम निचली अदालत द्वारा दिए गए निष्कर्ष से सहमत हैं।

13. यह हमें अगले प्रश्न पर ले जाता है कि क्या यह एक की गई हत्या थी या क्या यह धारा 300 भारतीय दण्ड संहिता के किसी अपवाद के अंतर्गत आएगा?

14. भारतीय दंड संहिता की धारा 299 का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा, जो इस प्रकार है:

*"299. **गैर इरादतन हत्या:** जो कोई मृत्यु कारित करने के इरादे से, या ऐसी शारीरिक चोट कारित करने के इरादे से जिससे मृत्यु कारित होने की संभावना हो, या यह जानते हुए कि ऐसे कृत्य से मृत्यु कारित होने की*

संभावना है, कोई कार्य करके मृत्यु कारित करता है, वह गैर इरादतन हत्या का अपराध करता है।"

15. "हत्या" और "हत्या की श्रेणी में ना आने वाली गैर इरादतन हत्या" के बीच अकादमिक अंतर ने हमेशा न्यायालयों को परेशान किया है। भ्रम तब पैदा होता है, यदि न्यायालय इन धाराओं में विधायिका द्वारा उपयोग किए गए शब्दों के वास्तविक दायरे और अर्थ को नजरअंदाज कर देते हैं और खुद को सूक्ष्म परिकल्पनाओं में उलझा लेते हैं। इन प्रावधानों की व्याख्या और अनुप्रयोग के लिए दृष्टिकोण का सबसे सुरक्षित तरीका भारतीय दण्ड संहिता की धारा 299 और 300 के विभिन्न खंडों में उपयोग किए गए मूलशब्दों को ध्यान में रखना है। निम्नलिखित तुलनात्मक तालिका दोनों अपराधों के बीच अंतर के बिंदुओं को समझने में सहायक होगी।

धारा 299	**धारा 300**
कोई व्यक्ति गैर इरादतन हत्या करता है यदि वह कार्य जिसके कारण मृत्यु हुई है वह किया गया है-	कुछ अपवादों के अधीन, गैर इरादतन हत्या हत्या है यदि वह कार्य जिसके कारण मृत्यु हुई है वह किया गया है-
	इरादा
(ए) मृत्यु कारित करने के इरादे से; या	(1) मृत्यु कारित करने के इरादे से; या
(बी) ऐसी शारीरिक चोट पहुंचाने के इरादे से जिससे मृत्यु होने की संभावना हो; या	(2) ऐसी शारीरिक चोट पहुंचाने के इरादे से, जिसके बारे में अपराधी जानता है कि इससे उस व्यक्ति की मृत्यु होने की संभावना है, जिसे नुकसान पहुंचाया गया है;
जानकारी	**जानकारी**
(सी) इस जानकारी के साथ कि इस कार्य से मृत्यु होने की संभावना है।	(4) इस जानकारी के साथ कि यह कृत्य तात्कालिक रूप से इतना खतरनाक है कि इससे मृत्यु या ऐसी शारीरिक चोट लगने की पूरी संभावना है, जिससे मृत्यु होने की संभावना है, और मृत्यु या ऐसी चोट का जोखिम उठाने के लिए किसी बहाने के बिना, जैसा कि ऊपर उल्लेखित है।

16. गुस्से में आकर उसने अपनी पत्नी पर एक ही वार किया था। अभियोजन साक्षी 3 के साक्ष्य से भी यह पता चलता है कि घटना बिना किसी पूर्वचिन्तन के घटित हुई। मृतका ने पिता द्वारा

दिए गए खेत को बेचने की बात का विरोध किया और इसी बात को लेकर काफी बहस हुई और गुस्से में आकर आरोपी ने अपनी पत्नी पर एक वार किया।

17. उपरोक्त चर्चा के निष्कर्ष से यह प्रतीत होता है कि अभियुक्त द्वारा कारित मृत्यु पूर्व नियोजित नहीं थी। यद्यपि आरोपी को यह पता था कि उसके कृत्य से मृतक को शारीरिक नुकसान होगा, लेकिन वह मृतक को खत्म नहीं करना चाहता था। अतः वर्तमान मामला धारा 300 भारतीय दंड संहिता के अपवाद 1 और 4 के अंतर्गत आता है। धारा 299, जो कि ऊपर प्रस्तुत की गई है, पर विचार करते समय, **वीरन और अन्य बनाम मप्र राज्य निर्णित, (2011) 5 एससीआर 300** में सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणियों के अनुसार, जिसे भी ध्यान में रखना होगा, किया गया अपराध धारा 304 भाग- I के अंतर्गत आएगा।

18. चिकित्सा अधिकारी की राय के साथ वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की समग्र जांच और **(2011) 4 एससीसी 250** में प्रकाशित **तुकाराम और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य** के मामले और **1994 एसयूपीपी (1) एससीसी 304** में प्रकाशित **बीएन कवाटकर और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य** के मामले में, शीर्ष न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांत पर विचार करके, हम निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि मृत्यु पूर्व नियोजित नहीं थी। हमारे द्वारा विचार विमर्श किए गए उदाहरण हमें अपने निष्कर्ष को बरकरार रखने की अनुमति देंगे, जिसे हम निर्णायक रूप से मानते हैं कि अपराध धारा 302 भारतीय दण्ड संहिता के तहत दंडनीय नहीं है, बल्कि गैर इरादतन हत्या है, जो धारा 304 (भाग I) भारतीय दण्ड संहिता के तहत दंडनीय है।

19. यह इस न्यायालय को सजा की मात्रा तक ले जाता है। इस संबंध में, हमें भारत में प्रचलित दंड सिद्धांत का विश्लेषण करना होगा।

20. **मोहम्मद गियासुद्दीन बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, [एआईआर 1977 एससी 1926]** में, सजा में पुनर्वास और सुधारात्मक पहलुओं की व्याख्या करते हुए सुप्रीम कोर्ट ने कहा है:

"अपराध एक रोग संबंधी विपथन है। अपराधी को आम तौर पर छुड़ाया जा सकता है और राज्य को बदला लेने के बजाय पुनर्वास करना होगा। उप-संस्कृति जो असामाजिक व्यवहार की ओर ले जाती है, उसका मुकाबला अनुचित क्रूरता से नहीं, बल्कि पुनर्संस्कृतिकरण द्वारा किया जाना चाहिए। इसलिए, व्यक्ति में दंडविद्या में रुचि का केंद्र बिंदु और लक्ष्य है उसे समाज के लिए बचाना। कठोर और बर्बर दंड का प्रहार इस प्रकार अतीत और प्रतिगामी समय का अवशेष है। मानव आज सज़ा को एक ऐसे व्यक्ति को फिर से आकार देने की प्रक्रिया के रूप में देखता है जो अपराधी बन गया है और आधुनिक समुदाय की सामाजिक सुरक्षा के साधन के रूप में अपराधी के पुनर्वास में प्राथमिक हिस्सेदारी है। इसलिए हमारी आपराधिक अदालतों में 'आतंकवादी' के बजाय एक उपचारात्मक दृष्टिकोण लागू होना चाहिए, क्योंकि व्यक्ति को क्रूर तरीके से कैद करने से केवल उसके दिमाग को नुकसान पहुंचता है। यदि आपको किसी व्यक्ति को प्रतिशोधात्मक रूप से दंडित करना है, तो आपको उसे चोटिल करना होगा। यदि आप उसे सुधारना चाहते हैं, तो आपको उसे बेहतर बनाना होगा और, आदमी चोटों से नहीं सुधरता।"

21. 'उचित दंड' को **देव नारायण मंडल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(2004) 7 एससीसी 257]** में

यह कहकर समझाया गया था कि दंड को या तो अत्यधिक कठोर या हास्यास्पद रूप से कम नहीं होना चाहिए। सजा की मात्रा निर्धारित करते समय, अदालत को 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखना चाहिए। सजा किसी दिए गए मामले के तथ्यों पर आधारित होनी चाहिए। अपराध की गंभीरता, अपराध करने का तरीका, अभियुक्त की उम्र और लिंग को ध्यान में रखा जाना चाहिए। सजा देने में न्यायालय के विवेक का प्रयोग मनमाने ढंग से या मनमर्जी से नहीं किया जा सकता है।

22. **रावदा शशिकला बनाम आंध्र प्रदेश राज्य एआईआर 2017 एससी 1166** में, उच्चतम न्यायालय ने **जमील बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(2010) 12 एससीसी 532], गुरु बसवराज बनाम कर्नाटक राज्य, [(2012) 8 एससीसी 734], सुमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह, [(2014) 7 एससीसी 323], पंजाब राज्य बनाम बावा सिंह, [(2015) 3 एससीसी 441], और राज बाला बनाम हरियाणा राज्य, [(2016) 1 एससीसी 463]** में दिए गए निर्णयों का उल्लेख किया और यह दोहराया है कि, सजा प्रणाली के संचालन में, कानून को तथ्यात्मक सांचे के आधार पर सुधारात्मक तंत्र या निवारण को अपनाना चाहिए। प्रत्येक मामले में तथ्य और परिस्थितियाँ, अपराध की प्रकृति, जिस तरह से इसकी योजना बनाई गई और क्रियान्वन किया गया, अपराध करने का मकसद, अभियुक्त का आचरण, इस्तेमाल किए गए हथियारों की प्रकृति और अन्य सभी परिस्थितियाँ, प्रासंगिक तथ्य हैं जो विचारणीय होंगे। इसके अलावा, सजा देने में अनुचित सहानुभूति न्याय व्यवस्था को और अधिक नुकसान पहुंचाएगी और कानून की प्रभावकारिता में जनता के विश्वास को कमजोर करेगी। अपराध की प्रकृति और उसको करने के तरीके को ध्यान में रखते हुए उचित सजा देना प्रत्येक न्यायालय का कर्तव्य है। उच्चतम न्यायालय ने आगे कहा कि अदालतों को न केवल अपराध के पीड़ित के अधिकार को ध्यान में रखना चाहिए, बल्कि बड़े पैमाने पर समाज को भी ध्यान में रखना चाहिए। उचित दंड देने पर विचार करते समय, समग्र रूप से समाज पर अपराध के प्रभाव और कानून के शासन को संतुलित करने की आवश्यकता है। देश में न्यायिक प्रवृत्ति सुधार और सजा के बीच संतुलन बनाने की रही है। समाज की सुरक्षा और आपराधिक प्रवृत्ति पर रोक लगाना कानून का उद्देश्य होना चाहिए जिसे अपराधियों और गलत काम करने वालों पर उचित सजा देकर हासिल किया जा सकता है। व्यवस्था और शांति बनाए रखने के एक उपकरण के रूप में कानून को समाज के सामने आने वाली चुनौतियों का प्रभावी ढंग से सामना करना चाहिए, क्योंकि समाज अपराध और असामंजस्य के गंभीर खतरों के तहत लंबे समय तक टिक नहीं सकता है और विकास नहीं कर सकता है। इसलिए, सज़ा देने में अनुचित उदारता से बचना आवश्यक है। इस प्रकार, देश में अपनाया गया आपराधिक न्याय न्यायशास्त्र प्रतिशोधात्मक नहीं बल्कि सुधारात्मक और दोष निवारक है। साथ ही, हमारी आपराधिक न्याय प्रणाली में अंतर्निहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से भी बचा जाना चाहिए।

23. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और हमारे देश में आपराधिक न्यायशास्त्र को ध्यान में रखते हुए, जो सुधारात्मक और दोष निवारक है और

प्रतिशोधात्मक नहीं है, यह न्यायालय मानता है कि कोई भी आरोपी व्यक्ति सुधार करने में असमर्थ नहीं है और इसलिए, उन्हें सामाजिक धारा में लाने के लिए सुधार का अवसर देने के लिए सभी उपाय किए जाने चाहिए।

24. जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, 'दंड के सुधारात्मक सिद्धांत' को अपनाया जाना है और इस कारण से, 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखते हुए दंड देना आवश्यक है। आक्षेपित निर्णय के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि मामले के संपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों तथा अपराध की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए निचली अदालत द्वारा दी गई आजीवन कारावास की सजा बहुत कठोर है। जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि आपराधिक न्याय प्रणाली में अंतर्निहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से बचा जाना चाहिए।

25. उपरोक्त के दृष्टिगत, आरोपी-अपीलार्थी को सात साल की कैद की सजा सुनाई जाती है क्योंकि वह सात साल से अधिक की कैद से गुजर चुका है और उसके पास देखभाल के लिए एक बेटी है। जुर्माने के स्थान पर चार महीने की कैद की सजा दी जाती है जो सात साल के बाद शुरू होगी। अभियुक्त-अपीलार्थी को तत्काल मुक्त किया जाए, यदि उसने इस न्यायालय द्वारा दी गई सजा काट ली है और यदि वह किसी अन्य मामले में वांछित नहीं है।

26. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय और आदेश उपरोक्त सीमा तक संशोधित माने जायेंगे। पत्रावली तुरंत अवर न्यायालय को वापस भेजी जाए।

(2023) 3 ILRA 893

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 14.02.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अश्विनी कुमार मिश्रा

माननीय न्यायमूर्ति विनोद दिवाकर

आपराधिक अपील संख्या 1170 वर्ष 2017

देशराज @ बाबा ...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता: श्री संजय कुमार श्रीवास्तव, श्री गौरव कक्कड़

प्रतिवादी के अधिवक्ता: जी.ए.

(A) अपराधिक कानून- अपराधिक दंड संहिता, 1973 - धाराएँ- 313 & 437 - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 201, 302 & 364 - अपील - सजा और दोषसिद्धि के विरुद्ध - हत्या का अपराध - प्रथिमिकी - विवेचना के दौरान यह पाया गया कि, आरोपी ने सह-आरोपी के साथ मिलकर दो मृतकों की हत्या की, ताकि उनकी रकम हड़प सकें - साक्ष्य की जांच - न्यायालय ने यह पाया कि, आरोपी अपीलकर्ता के संबंध में फावड़ा और बैल गाड़ी की बरामदगी के बारे में जो पहले ही न्यायालय द्वारा अस्वीकार किया जा चुका है - ऐसे निष्कर्ष के विरुद्ध राज्य द्वारा

कोई अपील दायर नहीं की गई है और न ही हमें विचारणीय न्यायालय के निष्कर्ष में कोई गलती दिखाई देती है, विशेषकर क्योंकि फावड़े की बरामदगी तीन महीने बाद हुई है और ऐसी बरामदगी के लिए कोई स्वतंत्र गवाह नहीं है - न्यायालय यह भी पाती है कि, आरोपी अपीलकर्ता से धारा 313 Cr.P.C के तहत बरामदगी के संबंध में कोई विशेष प्रश्न नहीं पूछा गया - स्वीकृत रूप से, वाद परिस्थितिजन्य साक्ष्यों पर आधारित है और ऐसे परिस्थितिजन्य में अभियोजन को घटनाओं की श्रृंखला को बिना किसी वैकल्पिक परिकल्पना के जोड़ना चाहिए - आयोजित, अभियोजन ने घटनाओं की श्रृंखला को उस परिकल्पना के साथ जोड़ने में बुरी तरह से असफल रहा, जो आरोपी अपीलकर्ता पर आरोपित की गई है - अपराध करने का उद्देश्य स्थापित नहीं किया गया है - कमजोर साक्ष्य के अतिरिक्त, जैसे कि बरामदगी और अंतिम बार देखने का वाद, - विचारणीय न्यायालय ने साक्ष्य को सही परिप्रेक्ष्य में पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया - गवाही में असंगति को भी अनदेखा किया गया है - अंतिम बार देखने और मृत्यु के अपेक्षित समय के बीच 20 घंटों का अंतर पूरी तरह से अविस्तारित है और इस अवधि के दौरान आरोपी की निर्दोषता के साथ एक वैकल्पिक परिकल्पना को अस्वीकार नहीं किया जा सकता - ऐसी परिस्थितियों में आरोपी अपीलकर्ता को संदेह का लाभ मिलना चाहिए - अपील स्वीकृत, निर्देश पारित किए गए। (पैराग्राफ - 26, 27, 38, 40, 41, 43)

अपील स्वीकृत। (E-11)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. जाबिर और अन्य बनाम राज्य उत्तराखंड, 2023 AIR SC 488,

2. रामप्रताप बनाम राज्य हरियाणा, 2023 (2) SCC 345,

3. जय प्रकाश तिवारी बनाम राज्य मध्य प्रदेश, 2022 AIR SC 3601,

<u>माननीय विनोद दिवाकर न्यायमूर्ति</u>

1. यह अपील अभियुक्त अपीलार्थी देशराज @ बाबा द्वारा सत्र परीक्षण संख्या-779 वर्ष 2004 (राज्य बनाम देशराज @ बाबा और अन्य) में अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायधीश, न्यायालय संख्या-3, अलीगढ़ द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 18.02.2017 को चुनौती देते हुए है, जो अपराध संख्या-133 वर्ष 2003 से उद्भूत है, जिसके तहत आरोपी अपीलकर्ता को धारा 302 भ०द०वि० के तहत दोषी ठहराया गया है और 20,000 रुपये के जुर्माने के साथ आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई है आगे जुर्माने में चूक की स्थिति में तीन महीने की अतिरिक्त कैद की सजा काटना; धारा 201 भ०द०वि० के तहत तीन साल की कैद और 10,000 रुपये के जुर्माने की सजा और जुर्माना न देने पर एक महीने का अतिरिक्त कारावास भुगतना होगा, और धारा 364 भ०द०वि० के तहत 10,000 रुपये के जुर्माने के साथ दस साल की कैद, और जुर्माना न देने पर एक महीने का अतिरिक्त कारावास भुगतना होगा। सभी सजाएं साथ-साथ चलेंगी।

2. यह पता चलता है कि गांव चौकीदार (अ०सा०-1) ने प्रताप सिंह (अ०सा०-2) द्वारा लिखित एक रिपोर्ट 16.12.2003 को सुबह 10.00 बजे पुलिस को दी जिसमें कहा गया था कि जब वह गांव के बाहर 08.00 बजे आराम करने जा रहा था, तो उसने जौफरी और सलेमपुर माफी के बीच सूखी नहर में दो अज्ञात बिना सिर वाले शव देखे और

उनके सिर थोड़ी दूरी पर पड़े थे और ऐसा प्रतीत होता है कि शवों को बाहर से लाया गया था और इस जगह पर फेंक दिया। लिखित रिपोर्ट के आधार पर दिनांक 16-12-2003 को प्रथम सूचना रिपोर्ट मामला अपराध सं-133 वर्ष 2003 के रूप में दर्ज की गई।

3. प्राथमिकी दर्ज करने के बाद जांच आगे बढ़ी। पंचनामा 16-12-2003 को पूर्वाहन 10.30 बजे शुरू हुआ और अपराहन 12.00 बजे समाप्त हुआ। यह पाया गया है कि मृत्यु मानव वध है और मृत्यु के कारण का पता लगाने के लिए शवों को शव परीक्षण के लिए भेज दिया गया था। दो अज्ञात शवों का शव परीक्षण अगले दिन 17-12-2003 को किया गया था। शवों पर पाए गए चोट के निशान इस प्रकार हैं: -

पहले मृतक पर चोट

1. दाहिने हाथ पर एक खून रिसता घाव 20 X 14 सेमी (त्वचा की हानि)

2. दाएं इन्फ्राक्लेविकुलर क्षेत्र पर एक खून रिसता घाव 19 X 20 सेमी।

3. थोरैसिक इनलेट पूरी तरह से और सामने से पीछे (त्वचा से त्वचा) के माध्यम से प्रमुख भागों के सभी उद्घाटन दृश्यमान-श्वासनली अन्नप्रणाली, बड़े अंगों के माध्यम से कटौती। स्तर सी-5 (इनलेट का आकार 17 सेमी X 16 सेमी) है।

मृत्यु का कारण: चोटों के परिणामस्वरूप सदमा और रक्तस्राव।

मृत्यु की अवधि: लगभग डेढ़ दिन।

<u>दूसरे मृतक पर चोट</u>

1. थोरैसिक इनलेट 15 सेमी X 13 सेमी गर्दन के सामने से पीछे (त्वचा से त्वचा) प्रमुख भागों के सभी उद्घाटन दिखाई देते हैं, श्वासनली अन्नप्रणाली बड़े अंगों का स्तर सी-4 है।

मृत्यु का कारण: चोटों के परिणामस्वरूप सदमे और रक्तस्राव।

मृत्यु की अवधि: लगभग डेढ़ दिन।

4. जांच के दौरान यह पाया गया कि पुरुषोत्तम (अ०सा०-3) के भाई, अर्थात् राजू और उसके साथी ओम प्रकाश को आरोपी देशराज @ बाबू ने सह-आरोपी ब्रह्म देव के साथ मिलकर मार डाला था।

5. इसी स्तर पर पुरुषोत्तम (अ०सा०-3) द्वारा लिखित रिपोर्ट दी गई और उसके आधार पर जांच आगे बढ़ी। इस लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श क-4) के अनुसार शव अ०सा०-3 के भाई राजू और ओम प्रकाश के थे और दोनों मृतक ब्रह्म देव की दुकान से दूध और पनीर बेचने के व्यवसाय में लगे हुए थे। आरोप है कि दूध और पनीर बेचने का कारोबार दो अलग-अलग स्थानों से किया जा रहा था और ब्रह्म देव पर 80,000 रुपये की राशि बकाया थी और लगातार मांग करने के बावजूद किसी न किसी बहाने से राशि वापस नहीं की गई। दिनांक 14.12.2003 को दोपहर लगभग 2.00 बजे आरोपी देशराज @ बाबा निवासी गांव जफरी उनके घर आया और दोनों मृतकों को सूचित किया कि वह कल ब्रह्म देव से बकाया राशि की वापसी सुनिश्चित करेगा, जो उसके साथ जौफरी में है। आरोपी ने आगे कहा कि वह कल लौटेगा और दो मृतक भुगतान प्राप्त करने के लिए उसके साथ आ सकते हैं। तब यह आरोप लगाया गया है कि 15.12.2003 को आरोपी देशराज @ बाबा सुबह लगभग 9.00 बजे अ०सा०-3 के घर आया और दोनों मृतकों को अपने साथ आने के लिए कहा ताकि ब्रह्म देव से राशि प्राप्त की जा सके। मृतक राजू और ओम प्रकाश आरोपी देशराज के साथ अपनी राजदूत मोटरसाइकिल पर पंजीकरण संख्या-81 ई 2682 पर जौफरी गए। रास्ते में संजीव पुत्र ओम प्रकाश

(अ०सा०-4) उससे मिला और मृतक ओम प्रकाश में से एक ने उसे बताया कि वे उससे राशि प्राप्त करने के लिए ब्रह्म देव जा रहे हैं और शाम तक लौट आएंगे। उन्होंने आगे अ०सा०-4 को अहमदपुर जाने और काम की निगरानी करने का निर्देश दिया। शाम तक जब दो मृतक उन्हें खोजने के प्रयासों के बावजूद वापस नहीं लौटे। अंततः अ०सा०-3 को पता चला कि जौफरी नहर के पास दो शव मिले हैं जिन्हें मोर्चरी भेज दिया गया है। इसके बाद अ०सा०-3 के साथ-साथ अन्य मृतकों के परिवार के सदस्य शवगृह में आए और दोनों मृतकों की पहचान राजू और ओम प्रकाश के रूप में की। इसलिए यह आरोप लगाया जाता है कि आरोपी अपीलकर्ता ने ब्रह्म देव के साथ मिलकर दोनों मृतकों की राशि हड़पने के इरादे से उनकी हत्या कर दी।

6. विभिन्न गवाहों के बयान दर्ज करने के साथ जांच आगे बढ़ी। जांच के दौरान, विवेचनाधिकारी ने अपीलकर्ता के घर में पुआल के ढेर से आरोपी अपीलकर्ता की निशानदेही पर कथित तौर पर एक बुग्गी (बैलगाड़ी) और एक फावड़ा (कुदाल) भी बरामद किया। जांच के दौरान एकत्र किए गए ऐसे सबूतों के आधार पर, विवेचनाधिकारी ने अपीलकर्ता, ब्रह्म देव और पांच अन्य के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत करने के लिए कार्यवाही की। चूंकि मामला सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय था, इसलिए, मजिस्ट्रेट ने मामले को सत्र न्यायालय को सुपुर्द कर दिया, जिसने 12.10.2005 को धारा 302 और 201 भ०द०वि० के तहत आरोपी अपीलकर्ता के साथ-साथ अन्य के खिलाफ आरोप तय किए। आरोपी अपीलकर्ता को आरोप पढ़कर सुनाया गया, जिससे उन्होंने इन्कार किया और विचारण चाहा।

7. अभियोजन पक्ष ने अपने मामले को साबित करने के लिए प्राथमिकी (प्रदर्श क-1), लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श क-3), लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श क-4), 'बुग्गी' और कुदाल का फ़र्द बरामदगी (प्रदर्श क-7), खून से सना और सादी मिट्टी का फ़र्द बरामदगी (प्रदर्श क-8), खून से सना हुआ और सादी मिट्टी का फ़र्द बरामदगी (प्रदर्श क-9), पी.एम. रिपोर्ट (प्रदर्श क-5), शव परीक्षण रिपोर्ट (प्रदर्श क-6A), पंचनामा (प्रदर्श क-12), पंचनामा (प्रदर्श क-16), पंचनामा (प्रदर्श क-19), चार्ज-शीट (प्रदर्श क-22), इंडेक्स के साथ नक़्शा नज़री (प्रदर्श क-10), इंडेक्स के साथ नक़्शा नज़री (प्रदर्श क-21) आदि के रूप में दस्तावेजी साक्ष्य पेश किए।

8. दस्तावेजी सबूतों के अलावा अभियोजन पक्ष ने हेड कांस्टेबल चेतना प्रकाश गोंड की मौखिक गवाही भी अ०सा०-1 के रूप में पेश की है, जिन्होंने चिक प्राथमिकी साबित की है। लिखित रिपोर्ट देने वाले गांव चौकीदार की सुनवाई के दौरान मौत हो गई थी। अ०सा०-2 लिखित रिपोर्ट का मुंशी है। अभियोजन का मामला मुख्य रूप से दो गवाहों अ०सा०-3 पुरुषोत्तम, मृतक राजू में से एक के भाई और अ०सा०-4 संजीव पुत्र ओम प्रकाश (मृतक) की गवाही पर टिका है।

9. अ०सा०-3 ने अपनी गवाही में अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है और अपनी जांच में आरोप लगाया है कि मृतक राजू और ओम प्रकाश द्वारा उसे प्रदान किए गए दूध और पनीर के कारण ब्रह्म देव से 15,000 रुपये की राशि बकाया थी। आरोपी अपीलकर्ता ब्रह्म देव की दुकान में काम करता था। इस गवाह ने आगे कहा है कि 15.12.2003 को लगभग 09.00 बजे आरोपी अपीलकर्ता उसके घर आया और दोनों मृतकों को ब्रह्म देव से देय राशि एकत्र करने के

लिए उसके साथ आने के लिए कहा। उन्होंने यह भी कहा है कि मृतक राजू और ओम प्रकाश आरोपी अपीलकर्ता के साथ अ०सा०-4 से मिले थे और मृतक ने आश्वासन दिया है कि वे शाम तक लौट आएंगे। इस गवाह से जिरह की गई है। जिरह में उन्होंने कहा है कि हालांकि मृतक राजू और ओम प्रकाश आरोपी अपीलकर्ता के साथ गए थे और शाम तक नहीं लौटे थे, फिर भी इस तथ्य को न तो किसी को बताया गया था और न ही जल्द ही कोई रिपोर्ट दर्ज की गई थी। उन्होंने कहा कि उन्होंने मृतक का पता लगाने का प्रयास किया और इस तरह के उद्देश्यों के लिए अपीलकर्ता के घर गए जहां वह आरोपी अपीलकर्ता की भाभी से मिले और उन्होंने अ०सा०-3 को सूचित किया कि दो मृतक उनके घर नहीं आए हैं। इसके बाद अ०सा०-3 वापस लौटा और पुलिस में कोई रिपोर्ट दर्ज नहीं कराई। इस गवाह ने अखबार में दो शवों की खोज के बारे में देखा जहां वह शवगृह में आया और मृतक की पहचान कर सका। गवाह ने आगे कहा कि बकाया राशि 15,000/- रुपये होने के बारे में उसका पिछला खुलासा गलत था और ब्रह्म देव द्वारा 80,000/- रुपये की राशि देय थी और रजिस्टर या खाता पुस्तिका के रूप में कोई दस्तावेज उपलब्ध नहीं था और न ही ऐसी कोई सामग्री पेश की गई थी। उन्होंने कहा है कि गंभीर संदेह के आधार पर उन्होंने आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ रिपोर्ट दर्ज की है।

10. अ०सा०-4 अंतिम बार देखे गए का गवाह है क्योंकि अ०सा०-3 ने अपने बयान में स्पष्ट रूप से आरोप लगाया है कि अपीलकर्ता के साथ दो मृतक अ०सा०-4 द्वारा देखे गए थे। इस गवाह ने कहा कि आरोपी अपीलकर्ता और मृतक राजू मोटरसाइकिल पर जौफरी की ओर जा रहे थे। अ०सा०-4 ने इसे स्वीकार किया। यह कहा जाता है कि उनके पिता (मृतक ओम प्रकाश) ने उन्हें बताया कि वह जौफरी में देशराज @ बाबा जा रहे हैं जहां उन्हें बुलाया गया था और जहां ब्रह्म देव भी मौजूद हैं। अ०सा०-4 का यह कथन प्रासंगिक है और पुन: प्रस्तुत किया गया है:

'मेरे पापा ने मुझसे कहा कि मैं देशराज उर्फ बाबा के पास कोसेपुर जाफरी जा रहा हूँ, वह पर मुझे बुलाया गया था, वह पर ब्रह्मदेव भी है।'

11. इस गवाह ने 16.12.2003 को दो व्यक्तियों के शव पाए जाने के अभियोजन पक्ष के मामले का भी समर्थन किया है। हालांकि इस गवाह ने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है कि दूध और पनीर की आपूर्ति के कारण दोनों मृतकों को 80,000 रुपये की राशि देय थी, लेकिन इस संबंध में कोई खाता या रजिस्टर पेश नहीं किया गया है। उन्होंने यह भी आरोप लगाया है कि उनके पिता एक डायरी ले जाते थे जिसमें सभी लेखा प्रविष्टियां होती थीं लेकिन यह डायरी तैयार नहीं की गई है और डायरी विवेचनाधिकारी को नहीं दिखाई गई है। जिरह में, उसने आगे कहा है कि उसने अपने पिता और अन्य मृतक राजू को मोटरसाइकिल पर देखा था। इस संबंध में विवरण इसके बाद पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है: -

"मेरे पापा जेब में डायरी रखते थे, वह डायरी मेरे पास नहीं है। वह डायरी हमने पुलिस को नहीं दिखाई। जो दो परचों ब्रह्मदेव के हिसाब के थे वह मैं पुलिस दरोगा को नहीं दिखाएं। वह दोनों पर्चा अदालत में जमा नहीं किया। जिस मोटरसाइकिल पर मैंने अपने पिताजी व राजू को देखा था।"

12. इस गवाह ने यह भी कहा है कि उसके पिता की मोटर साइकिल का पता नहीं लगाया गया है और उसे थाना में रखा गया था। उसने स्वीकार किया है कि उसके पिता दो दिन से नहीं लौटे हैं लेकिन उनके लापता होने के संबंध में उन्होंने गुमशुदगी की कोई रिपोर्ट दर्ज नहीं कराई है। उन्होंने इस बात से इनकार किया है कि उन्होंने आरोपी अपीलकर्ता को दो मृतकों के साथ जाते नहीं देखा है।

13. अ०सा०-5 (डॉ. एस. के. उपाध्याय) वह डॉक्टर है जिसने दोनों शवों का शव परीक्षण किया है। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि मृत्यु का अनुमानित समय उस समय से लगभग डेढ़ दिन था जब पोस्टमॉर्टम किया गया था। अ०सा०-5 ने भी शव परीक्षण रिपोर्ट को साबित कर दिया है।

14. अ०सा०-6 (वी.एस. बाजपेयी) सेवानिवृत्त निरीक्षक है, जो कुदाल और बैलगाड़ी की बरामदगी का गवाह है। कुदाल को निचली अदालत के समक्ष मुकदमे के दौरान भी पेश किया गया है।

15. अ०सा०-7 (चौथी प्रसाद) सब इंस्पेक्टर है, जिसने दो शवों का पंचनामा किया है।

16. अ०सा०-8 (वीरेंद्र सिंह तोमर) मामले के विवेचनाधिकारी हैं। उन्होंने स्वीकार किया है कि साढ़े तीन महीने बाद आरोपी अपीलकर्ता के घर से बरामद कुदाल को फोरेंसिक जांच के लिए नहीं भेजा गया है।

17. मुकदमे के दौरान अभियोजन पक्ष के नेतृत्व में सबूतों के आधार पर, धारा 313 द०प्र०स० के तहत अपना बयान दर्ज करने के लिए अभियुक्त को चुनौतीजनक सामग्री का सामना करना पड़ा। आरोपी ने अपने ऊपर लगे आरोपों से इनकार किया है। आरोपी अपीलकर्ता के सामने अलग-अलग सवालों के रूप में चुनौतीजनक सामग्री रखी गई है। हमें अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा सवालों के माध्यम से ले जाया गया है ताकि इस बात पर जोर दिया जा सके कि कुदाल और बैलगाड़ी की बरामदगी के संबंध में आरोपी अपीलकर्ता से कोई विशिष्ट प्रश्न नहीं पूछा गया है।

18. बचाव पक्ष की ओर से चंद्रभान सिंह की गवाही ब०सा०-1 के रूप में पेश की गई है और उसकी गवाही पर ज्यादा मोड़-तोड़ नहीं है।

19. विचारण न्यायालय ने मामले में पेश किए गए सबूतों के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि आरोपी अपीलकर्ता द्वारा दो मृतकों को मौत के घाट उतार दिया गया है, जहां उनके शव एक खुली जगह पर पाए गए थे। अपराध करने का उद्देश्य ब्रह्म देव द्वारा दो मृतकों को देय बकाया राशि है, जिसकी चुकौती वह टालना चाहता था। विचारण न्यायालय ने अ०सा०-3 और अ०सा०-4 के साक्ष्य पर भरोसा किया है कि दोनों मृतकों को आखिरी बार आरोपी अपीलकर्ता की कंपनी में देखा गया था और यह सबूत है जो अपीलकर्ता के खिलाफ है। जहां तक कुदाल और बैलगाड़ी की बरामदगी का सवाल है, विचारण न्यायालय ने इस आधार पर इस पर अविश्वास किया है कि कोई स्वतंत्र गवाह नहीं है और यहां तक कि बरामद वस्तुओं को फोरेंसिक जांच के लिए नहीं भेजा गया है। विचारण न्यायालय ने अंततः अपीलकर्ता को आरोपों का दोषी ठहराया और फैसले के तहत सजा सुनाई। व्यथित होने के कारण, अपीलकर्ता वर्तमान अपील में इस न्यायालय के समक्ष है।

20. अपीलकर्ता के अधिवक्ता श्री गौरव कक्कड़ ने प्रस्तुत किया कि यह आरोपी अपीलकर्ता के खिलाफ वस्तुतः कोई सबूत नहीं है क्योंकि 'अंतिम बार' की गवाही विश्वसनीय नहीं है और

न तो आरोपी अपीलकर्ता से कोई विश्वसनीय बरामदगी हुई है और न ही मकसद स्थापित किया गया है। यह आग्रह किया गया है कि अपीलकर्ता का नाम प्राथमिकी में नहीं था और उसका निहितार्थ चार दिनों के बाद अ०सा०-3 के आवेदन के आधार पर सामने आया है जो कि बाद में सोचा गया है। अधिवक्ता आगे प्रस्तुत करता है कि आरोपी अपीलकर्ता के लिए जिम्मेदार किसी भी मकसद के अभाव में, परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर अभियोजन पक्ष का मामला सफल नहीं हो सकता है। अधिवक्ता आगे प्रस्तुत करता है कि 'अंतिम बार देखे गए' सिद्धांत के संबंध में अ०सा०-4 की गवाही विश्वसनीय नहीं है और अन्यथा भी कथित 'अंतिम बार देखे जाने' के समय और मृत शरीर की बरामदगी के बीच पर्याप्त अंतर था।

21. दूसरी ओर, अपर शासकीय अधिवक्ता ने इस आधार पर अदालत के फैसले का समर्थन किया है कि अपराध करने का निश्चित मकसद है क्योंकि आरोपी अपीलकर्ता ब्रहम देव के लिए काम कर रहा था, जिस पर दो मृतकों का लगभग 80,000 रुपये बकाया था। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि दो मृतकों को अंततः आरोपी अपीलकर्ता के साथ जाते हुए देखा गया था और चूंकि बाद में केवल उनका शव बरामद किया गया है, इसलिए आरोपी अपीलकर्ता का निहितार्थ अच्छी तरह से स्थापित है। अपर शासकीय अधिवक्ता यह भी बताता है कि गवाहों द्वारा शवगृह में शवों की पहचान करने के बाद ही इस मामले में पुलिस के पास रिपोर्ट दर्ज कराई गई थी.

22. हमने पक्षकारों के वकीलों को सुना और मूल अभिलेखों सहित रिकॉर्ड पर सामग्री का अवलोकन किया है।

23. अभिलेख से पता चलता है कि प्रातः लगभग 8.00 बजे अलीगढ़ जिले के थाना-लोढ़ा के ग्राम नादा वाजिदपुर के ग्राम चौकीदार द्वारा दो अज्ञात व्यक्तियों का शव देखा गया। शव नहर के पास पड़े थे। खोपड़ी दोनों शवों से कुछ दूरी पर पड़ी थी। इसके बाद पंचनामा किया गया और दोनों शवों को शव परीक्षण के लिए मोर्चरी भेज दिया गया। अभियोजन पक्ष के गवाहों ने दो शवों की पहचान राजू और ओम प्रकाश के रूप में की है।

24. वर्तमान मामले में आरोपी अपीलकर्ता का निहितार्थ अभियोजन पक्ष की कहानी के कारण है कि ब्रहम देव अलीगढ़ में एक दुकान चलाता था, दूध और पनीर बेचता था, जिसकी आपूर्ति दो मृतक राजू और ओम प्रकाश द्वारा की जा रही थी और 80,000 रुपये की राशि देय थी और दोनों मृतकों को लंबे समय से देय थी। आरोपी अपीलकर्ता मृतक के घर आया और उसे ब्रहम देव से पैसे लेने के लिए अपने साथ आने के लिए कहा, जो आरोपी अपीलकर्ता के साथ जौफरी में था। अभियोजन का मामला यह है कि आरोपी अपीलकर्ता के साथ दो मृतक जौफरी गांव के लिए एक मोटर साइकिल पर निकले थे और उन्हें आखिरी बार 15.12.2003 को सुबह अ०सा०-4 द्वारा एक साथ देखा गया था। वहां मृतक देखे गए। अगली सुबह 16-12-2003 को उनके शव पाए गए।

25. अभियोजन पक्ष के मामले के अनुसार, आरोपी अपीलकर्ता के लिए दो मृतकों की हत्या करने का एक निश्चित मकसद था क्योंकि वह ब्रहम देव की दुकान में कार्यरत था, जिस पर दो मृतकों का 80,000/- रुपये बकाया था। यह आगे आरोप लगाया गया है कि आरोपी अपीलकर्ता मृतक के घर आया था और राशि की वापसी सुनिश्चित करने के बहाने उन्हें ले गया था और

चूंकि बाद में शव पाए गए थे, इसलिए अभियोजन पक्ष का आरोप है कि यह आरोपी अपीलकर्ता था जिसने उन्हें मौत के घाट उतार दिया था।

26. बेशक, यह परिस्थितिजन्य साक्ष्य का मामला है और सफल होने के लिए परिस्थितिजन्य पर आधारित एक मामले के लिए अभियोजन पक्ष को इस तरह से घटनाओं की श्रृंखला को जोड़ना चाहिए कि यह विशेष रूप से आरोपी अपीलकर्ता को जिम्मेदार ठहराए गए अपराध की परिकल्पना को इंगित करे और किसी भी वैकल्पिक परिकल्पना को खारिज कर दे।

27. इसलिए, हमें रिकॉर्ड पर साक्ष्य का विश्लेषण करने की आवश्यकता है ताकि यह निर्धारित किया जा सके कि वर्तमान अपीलकर्ता को फंसाने के लिए इस मामले में अभियोजन पक्ष द्वारा घटनाओं की श्रृंखला को सफलतापूर्वक जोड़ा गया है या नहीं। पहला पहलू जिसकी जांच की आवश्यकता है वह उस उद्देश्य के संबंध में है जो परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले में महत्व रखता है। अभियोजन पक्ष के अनुसार, मकसद यह था कि ब्रहम देव द्वारा दो मृतकों को 80,000 रुपये की राशि वापस नहीं की गई थी। आरोपी अपीलकर्ता ब्रहम देव की दुकान में काम करता बताया जा रहा है। हालांकि, यह स्वीकार किया जाता है कि राशि आरोपी अपीलकर्ता से देय नहीं थी और अभियोजन पक्ष द्वारा यह दिखाने के लिए कोई सबूत नहीं दिया गया है कि आरोपी अपीलकर्ता को कुछ भी हासिल हुआ होगा या दो मृतकों की मृत्यु के कारण कोई लाभ प्राप्त करना था। अभियोजन पक्ष के अनुसार मकसद ब्रहम देव को फंसा सकता है, न कि आरोपी अपीलकर्ता को। अन्यथा भी, हम कमजोर होने के मकसद से संबंधित सबूत पाते हैं और महज आरोप को छोड़कर कि अ०सा०-3 और अ०सा०-4 की गवाही में दो मृतकों को 80,000 रुपये की राशि देय और देय थी, कोई अन्य सामग्री नहीं है जो यह संकेत दे सकती है कि ऐसी राशि वास्तव में दो मृतकों को देय थी। विचारण के दौरान न तो कोई लेखा प्रस्तुत किया गया है और न ही रजिस्टर या डायरी आदि के रूप में कोई अन्य सामग्री प्रस्तुत की गई है, जिससे पता चलता है कि ब्रहम देव द्वारा दो मृतकों को ऐसी राशि देय थी। इसलिए, हमारी राय है कि अभियोजन पक्ष आरोपी अपीलकर्ता के लिए दो मृतकों की हत्या करने का कोई मकसद स्थापित नहीं कर पाया है। आरोपी अपीलकर्ता को फंसाने के लिए एकमात्र सामग्री अ०सा०-3 और अ०सा०-4 का बयान है कि आरोपी अपीलकर्ता ने उनसे मुलाकात की और दो मृतकों को ब्रहम देव से बकाया धन इकट्ठा करने के लिए उसके साथ आने के लिए कहा। यह भी आरोप लगाया गया है कि तीन (आरोपी अपीलकर्ता के साथ दो मृतक) के एक साथ जाने की घटना अ०सा०-4 द्वारा देखी गई है।

28. अ०सा०-3 ने यह भी स्वीकार किया है कि उसका भाई शाम तक नहीं लौटा था। अ०सा०-3 का आचरण इस तथ्य के बावजूद कि वह जानता था कि उसका भाई आरोपी अपीलकर्ता के साथ गया था, अ०सा०-3 के संस्करण पर कुछ संदेह पैदा करता है। यदि अ०सा०-3 को पता था कि उसका भाई आरोपी अपीलकर्ता के साथ चला गया था और पूरी रात में वापस नहीं आया था, तो यह उम्मीद की गई थी कि वह पुलिस को अपने भाई के लापता होने की रिपोर्ट करेगा और लापता व्यक्ति के बारे में तथ्य भी बताएगा जो आरोपी अपीलकर्ता के साथ गया था। यह दिखाने के लिए कोई सबूत नहीं है कि ऐसी रिपोर्ट अ०सा०-3 द्वारा बनाई गई थी।

29. इसी तरह, अ०सा०-4 ने हालांकि आरोप लगाया है कि उसने तीनों को एक साथ जाते हुए देखा था लेकिन अपनी गवाही में इस गवाह ने स्पष्ट रूप से कहा है कि उसके पिता ने उसे बताया कि वह गांव जौफरी में आरोपी अपीलकर्ता के पास जा रहा है जहां उसे बुलाया गया था और ब्रहम देव भी वहीं है। इस बयान से संकेत मिलता है कि आरोपी अपीलकर्ता वास्तव में दोनों मृतकों के साथ मौजूद नहीं था अन्यथा बयान अलग होता।

30. यदि आरोपी अपीलकर्ता दो मृतकों के साथ मौजूद था, तो अ०सा०-4 के पिता के लिए यह कहने का कोई अवसर नहीं था कि वह आरोपी अपीलकर्ता के घर जा रहा है। अपनी गवाही के बाद के हिस्से में भी गवाह ने कहा है कि उसने दोनों मृतकों को मोटरसाइकिल पर जाते हुए देखा था और दोनों मृतकों के साथ आरोपी अपीलकर्ता की उपस्थिति का कोई संदर्भ नहीं है। इसलिए, यह बयान दो मृतकों के साथ आरोपी अपीलकर्ता की उपस्थिति या अ०सा०-4 की गवाही के संबंध में संदेह पैदा करता है कि उसने अंतिम बार मृतक को आरोपी अपीलकर्ता के साथ देखा था।

31. हम अपीलकर्ता के अधिवक्ता के तर्क में आगे सार पाते हैं कि भले ही अ०सा०-3 और अ०सा०-4 की गवाही के आधार पर अभियोजन मामला स्वीकार कर लिया गया हो, फिर भी यह परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले के तय कसौटी पर आरोपी अपीलकर्ता के अपराध को स्थापित नहीं करेगा।

32. अभियोजन के अनुसार, दोनों मृतकों का शव परीक्षण 17.12.2003 को लगभग 3.30-4.00 बजे किया गया है। मृत्यु का अनुमानित समय डेढ़ दिन दर्शाया गया है। यदि शव परीक्षण किए जाने के समय से डेढ़ दिन की गणना की जाती है तो दोनों मृतकों की मृत्यु का संभावित समय 16-12-2003 को लगभग 3.30-4.00 बजे होगा। इस प्रकार 'अंतिम बार देखे जाने' की घटना और मृत्यु के समय के बीच का समय अंतराल लगभग 19-20 घंटे है।

33. इस संबंध में समय अंतराल महत्व का विषय है। कानून अच्छी तरह से तय है कि अभियुक्त की बेगुनाही के अनुरूप एक वैकल्पिक परिकल्पना को अस्तित्व में नहीं साबित किया जाना चाहिए और समय अंतराल उस संबंध में एक प्रासंगिक कारक होगा जो अभियोजन पक्ष के मामले को प्रभावित करेगा।

34. जाबिर और अन्य बनाम उत्तराखंड राज्य, 2023 ए.आई.आर. एस.सी. 488 के मामले में सुप्रीम कोर्ट के हालिया फैसले में न्यायालय ने विशेष रूप से इस मामले के इस पहलू की जांच की है, जबकि निम्नानुसार अवलोकन किया है: -

"25. वर्तमान मामले में, "अंतिम बार देखा गया" सिद्धांत को छोड़कर, कोई अन्य परिस्थिति या सबूत नहीं है। महत्वपूर्ण बात यह है कि 09-10-1999 को मृतक को अभियुक्त के साथ देखे जाने और उसकी मृत्यु के संभावित समय के बीच का समय अंतराल, शव परीक्षण रिपोर्ट के आधार पर, जो दो दिन बाद अवधारित किया गया था, लेकिन मृत्यु के संभावित समय के बारे में चुप था, हालांकि यह कहा गया था कि मृत्यु शव परीक्षण से लगभग दो दिन पहले हुई थी, संकीर्ण नहीं है। इस तथ्य को देखते हुए, और गवाहों के बयानों में गंभीर विसंगतियों के साथ-साथ इस तथ्य को देखते हुए कि घटना के लगभग 6 सप्ताह बाद प्राथमिकी दर्ज की गई थी, आरोपी अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराने के लिए "अंतिम बार देखी गई" परिस्थिति (भले ही यह माना जाए कि यह साबित

हो गया हो) पर एकमात्र निर्भरता उचित नहीं है। 8 2016 (1) एस.सी.सी. 550।

35. कानून अन्यथा अच्छी तरह से तय है कि परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले में अभियोजन पक्ष उचित संदेह से परे प्रत्येक परिस्थिति को साबित करने और आरोपी अपीलकर्ता के खिलाफ सभी परिस्थितियों को जोड़ने के लिए बाध्य है।

36. सिद्धांत को जाबिर (उपरोक्त) में निर्णय के पैरा 21 में अभिव्यक्त किया गया है, जहां लॉर्डशिप ने सरद बर्डीचंद सारदा में अदालत के पिछले फैसले का पालन किया है, जिसने इस मुद्दे पर लोकस क्लासिकस का दर्जा हासिल कर लिया है, जिसे इसके बाद पुन: प्रस्तुत किया गया है: -

"21. आपराधिक न्यायशास्त्र का एक बुनियादी सिद्धांत यह है कि परिस्थितिजन्य साक्ष्य मामलों में, अभियोजन पक्ष प्रत्येक परिस्थिति को साबित करने के लिए बाध्य है, उचित संदेह से परे, साथ ही साथ सभी परिस्थितियों के बीच संबंध; ऐसी परिस्थितियों, संचयी रूप से लिया गया, एक श्रृंखला इतनी पूर्ण होनी चाहिए कि इस निष्कर्ष से कोई बच न सके कि सभी मानवीय संभावनाओं के भीतर, अपराध अभियुक्त द्वारा किया गया था और किसी और ने नहीं; इसके अलावा, इस तरह साबित किए गए तथ्यों को अभियुक्त के अपराध की ओर इशारा करना चाहिए। परिस्थितिजन्य साक्ष्य, दोषसिद्धि को बनाए रखने के लिए, अभियुक्त के अपराध की तुलना में किसी अन्य परिकल्पना की व्याख्या के लिए पूर्ण और असमर्थ होना चाहिए, और इस तरह के साक्ष्य न केवल अभियुक्त के अपराध के अनुरूप होने चाहिए, बल्कि उसकी बेगुनाही के साथ असंगत होना चाहिए। हनुमंत से उद्धृत करने के बाद, देखा कि:

"153. इस निर्णय का एक करीबी विश्लेषण निम्नलिखित शर्तों को पूरा किया जाना चाहिए इससे पहले कि एक अभियुक्त के खिलाफ एक मामले को पूरी तरह से स्थापित किया जा सकता है पता चलता है:

(1) जिन परिस्थितियों से अपराध का निष्कर्ष निकाला जाना है, उन्हें पूरी तरह से स्थापित किया जाना चाहिए। यहां यह ध्यान दिया जा सकता है कि इस न्यायालय ने संकेत दिया कि संबंधित परिस्थितियों को 'स्थापित किया जाना चाहिए या होना चाहिए' और 'हो सकता है' नहीं। न केवल एक व्याकरणिक बल्कि 'साबित किया जा सकता है' और "साबित किया जाना चाहिए या साबित किया जाना चाहिए" के बीच एक कानूनी अंतर है, जैसा कि शिवाजी सहबराव बोबडे बनाम महाराष्ट्र राज्य (1973) 2 एस.सी.सी. 793 में इस न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया था, जहां निम्नलिखित टिप्पणियां की गई थीं: [एस.सी.सी. पैरा 19, पृष्ठ 807: एस.सी.सी. (क्रि.) पृष्ठ 1047] निश्चित रूप से, यह एक प्राथमिक सिद्धांत है कि अभियुक्त होना चाहिए और न केवल अदालत के समक्ष दोषी हो सकता है दोषी और 'हो सकता है' और 'होना चाहिए' के बीच की मानसिक दूरी लंबी है और निश्चित निष्कर्षों से अस्पष्ट अनुमानों को विभाजित करती है।

(2) इस प्रकार स्थापित तथ्य केवल अभियुक्त के अपराध की परिकल्पना के अनुरूप होने चाहिए, यह कहना है, उन्हें किसी अन्य परिकल्पना पर व्याख्या नहीं की जानी चाहिए, सिवाय इसके कि अभियुक्त दोषी है, (3) परिस्थितियां एक निर्णायक प्रकृति और प्रवृत्ति की होनी चाहिए, (4) उन्हें साबित होने वाले को छोड़कर हर संभव परिकल्पना को बाहर करना चाहिए, और (5)

साक्ष्य की एक श्रृंखला इतनी पूर्ण होनी चाहिए कि 5 वही, 3 अभियुक्त की निर्दोषता के अनुरूप निष्कर्ष के लिए कोई उचित आधार न छोड़े और यह दिखाना चाहिए कि सभी मानवीय संभाव्यता में कार्य अभियुक्त द्वारा किया गया होगा।

154. ये पाँच स्वर्णिम सिद्धांत, यदि हम ऐसा कह सकते हैं, तो परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर किसी मामले के प्रमाण का पंचशील बनाते हैं। ये पंचशील उपदेश, कहने के लिए, अब मौलिक नियम हैं, बार-बार दोहराए जाते हैं, और न केवल उनके पूर्ववर्ती वजन के लिए पालन की आवश्यकता होती है, बल्कि एकमात्र सुरक्षित आधार के रूप में जिस पर परिस्थितिजन्य साक्ष्य मामलों में दोषसिद्धि अच्छी तरह से आराम कर सकती है।

37. हम आगे राम प्रताप बनाम हरियाणा राज्य, 2023 (2) एस.सी.सी. 345 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले से समर्थन पाते हैं, जिसमें निम्नलिखित सिद्धांत निर्धारित किए गए हैं: -

"9. शरद बिरधीचंद सारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य (1984) 4 एस.सी.सी. 116 में रिपोर्ट किए गए मामलों की एक श्रृंखला में इस न्यायालय द्वारा यह माना गया है कि संदेह, कितना भी मजबूत हो, उचित संदेह से परे सबूत को प्रतिस्थापित नहीं कर सकता है। इस न्यायालय ने माना है कि न केवल व्याकरणिक बल्कि 'हो सकता है' और 'जरूर होना चाहिए' के बीच एक कानूनी अंतर भी है। परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर एक मामले को साबित करने के लिए, अभियोजन पक्ष के लिए यह आवश्यक है कि वह उचित संदेह से परे प्रत्येक परिस्थिति को स्थापित करे, और इस तरह साबित हुई परिस्थितियों को साक्ष्य की एक पूरी श्रृंखला बनानी चाहिए ताकि निष्कर्ष के लिए कोई उचित आधार न छोड़ा जाए अभियुक्त की निर्दोषता के अनुरूप और सभी मानवीय संभावना में दिखाना चाहिए कि यह कार्य अभियुक्त द्वारा किया गया है। इसके अलावा, यह माना गया है कि इस प्रकार स्थापित तथ्यों को अभियुक्त के अपराध को छोड़कर हर परिकल्पना को बाहर करना चाहिए।

38. आरोपी अपीलकर्ता के खिलाफ दूसरी परिस्थिति कुदाल और बैलगाड़ी की बरामदगी के संबंध में है जिसे पहले ही नीचे के न्यायालय द्वारा अविश्वास किया जा चुका है। राज्य द्वारा इस तरह के निष्कर्ष के खिलाफ न तो कोई अपील दायर की गई है और न ही हमें नीचे दिए गए निष्कर्ष में कोई त्रुटि मिलती है, खासकर जब कुदाल की बरामदगी साढ़े तीन महीने के बाद होती है और इस तरह की बरामदगी के लिए कोई स्वतंत्र गवाह नहीं है। अन्यथा कुदाल को फोरेंसिक जांच के लिए नहीं भेजा गया है। हम अपीलकर्ता के अधिवक्ता के तर्क में भी बल पाते हैं कि वसूली के संबंध में विशिष्ट परिस्थिति द०प्र०स० की धारा 313 के तहत अभियुक्त को नहीं दी गई है, इसलिए, इस पहलू को भी आरोपी अपीलकर्ता के खिलाफ साक्ष्य में नहीं पढ़ा जा सकता है।

39. जय प्रकाश तिवारी बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 2022 ए.आई.आर. एस.सी. 3601 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इस संबंध में सिद्धांत को दोहराया गया है, जिसमें न्यायालय ने निम्नानुसार अवलोकन किया है: -

"20. सतबीर सिंह बनाम हरियाणा राज्य, (2021) 6 एस.सी.सी. 1 के मामले में इस न्यायालय ने द०प्र०स० की धारा 313 के महत्व पर जोर देते हुए, विचारण न्यायालय के कर्तव्य को चित्रित किया है और इस प्रकार अवधारित किया है:

"यह गंभीर चिंता का विषय है कि, अक्सर, विचारण न्यायालय धारा 313 द०प्र०स० के तहत अभियुक्त के बयान को बहुत ही आकस्मिक और सरसरी तरीके से दर्ज करते हैं, विशेष रूप से आरोपी से उसके बचाव के बारे में सवाल किए बिना। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि धारा 313 द०प्र०स० के तहत एक अभियुक्त की परीक्षा को केवल प्रक्रियात्मक औपचारिकता के रूप में नहीं माना जा सकता है, क्योंकि यह निष्पक्षता के मूल सिद्धांत पर आधारित है। इस प्रावधान में प्राकृतिक न्याय के मूल्यवान सिद्धांत - "ऑडी अल्टरम पार्टम" को शामिल किया गया है, क्योंकि यह अभियुक्त को उसके खिलाफ पेश होने वाली चुनौतीजनक सामग्री के लिए स्पष्टीकरण देने में सक्षम बनाता है। इसलिए, यह अदालत की ओर से अभियुक्त से निष्पक्ष, सावधानी और सतर्कता के साथ पूछताछ करने का दायित्व लगाता है। अदालत को आरोपी के सामने चुनौतीजनक परिस्थितियां रखनी चाहिए और उसकी प्रतिक्रिया मांगनी चाहिए। अभियुक्त के अधिवक्ता पर यह भी कर्तव्य डाला जाता है कि वह मुकदमे की शुरुआत से ही सावधानी के साथ अपना बचाव तैयार करे..." (महत्त्व सन्निविष्ट)

40. एक बार जब वर्तमान मामले के तथ्यों का विश्लेषण परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर मामले के संबंध में सुप्रीम कोर्ट द्वारा तय किए गए कानून के आधार पर किया जाता है, तो हमें इस निष्कर्ष पर पहुंचने में कोई संकोच नहीं है कि अभियोजन पक्ष विशेष रूप से आरोपी अपीलकर्ता को जिम्मेदार ठहराए गए अपराध की परिकल्पना की ओर इशारा करते हुए घटनाओं की श्रृंखला को जोड़ने में विफल रहा है। बरामदगी की प्रकृति में कमजोर साक्ष्य और 'अंतिम बार देखे गए' की परिस्थिति को छोड़कर, जिसे हमने ऊपर बताए गए कारणों से खारिज कर दिया है, आरोपी अपीलकर्ता को फंसाने के लिए कोई अन्य परिस्थिति नहीं है। इसलिए परिस्थितियों की श्रृंखला को अधूरा छोड़ दिया गया है।

41. विचारण न्यायालय ने आरोपी अपीलकर्ता के खिलाफ अपराध की खोज दर्ज करते समय, हालांकि, ऊपर अवधारित हमारी चर्चाओं के प्रकाश में सही परिप्रेक्ष्य में साक्ष्य पर विचार करने के लिए पूरी तरह से छोड़ दिया है। अ०सा०-3 और अ०सा०-4 की गवाही में असंगति की अनदेखी की गई है। 'अंतिम बार देखे जाने' के समय में 20 घंटे का अंतराल और मृत्यु का अपेक्षित समय पूरी तरह से अस्पष्ट रहता है और ऐसी अवधि के दौरान अभियुक्त की बेगुनाही के अनुरूप एक वैकल्पिक परिकल्पना से इंकार नहीं किया जा सकता है।

42. ऐसी परिस्थितियों में, हम आरोपी अपीलकर्ता के अपराध की स्थापना के संबंध में निचली अदालत द्वारा निकाले गए निष्कर्षों का समर्थन नहीं कर सकते हैं और इसको उल्टा जाता है।

43. फलस्वरूप अपील सफल होती है और अनुमति दी जाती है। आरोपी अपीलकर्ता को दोषी ठहराने और सजा सुनाने के लिए अदालत द्वारा दिनांक 18.02.2017 को पारित निर्णय और आदेश को अपास्त किया जाता है। आरोपी अपीलकर्ता संदेह के लाभ का हकदार है और चूंकि वह पहले से ही बिना किसी छूट के 8 साल से अधिक समय तक

कैद में रह चुका है, इसलिए वह तुरंत रिहा होने का हकदार है, जब तक कि वह धारा 437 द०प्र०स० के अनुपालन के अधीन किसी अन्य मामले में वांछित न हो।

(2023) 3 ILRA 903

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 28.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेन्द्र ठाकर, जे.

माननीय न्यायमूर्ति अजीत सिंह, जे.

2000 की आपराधिक अपील संख्या 1522

राजू ... अपीलार्थी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ... प्रतिवादी

अपीलकर्ता के लिए वकील: मिश्रा , चेतन चटर्जी (ए.सी.), श्री पवन कुमार त्रिपाठी

प्रतिवादी के लिए वकील: ए.जी.ए.

आपराधिक कानून- भारतीय दंड संहिता-1860- धारा 201, 302, 376 - साक्ष्य अधिनियम, 1872-धारा 3- मृतक नग्न अवस्था में पाई गई और उसके कपड़े उसकी लाश के पास थे- धारा 302, 376 और 201 आईपीसी के तहत दोषसिद्धि- विचारणीय न्यायालय ने अपीलकर्ता को केवल परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर दोषी ठहराया- जहां वाद पूर्ण रूप से परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित होता है, वहां दोष सिद्धि का अनुमान केवल तभी किया जा सकता है जब सभी आरोपित तथ्य और परिस्थितियाँ आरोपी की निर्दोषता के साथ असंगत पाई जाएं। जिन परिस्थितियों से आरोपी की दोषिता का अनुमान लगाया जाता है, उन्हें संदिग्धता से परे सिद्ध करना होगा और उन परिस्थितियों से निष्कर्ष निकालने के लिए मुख्य तथ्य के साथ निकटता से जुड़े होना चाहिए- परिस्थितिजन्य साक्ष्य दोषिता को अंतिम रूप से स्थापित नहीं करता- अंतिम बार देखा गया सिद्धांत, आरोपी की गिरफ्तारी, मृत शरीर की बरामदगी, सबूतों की श्रृंखला को पूरी तरह से नहीं बनाते- आरोपी की सजा निरस्त की जाती है।

अपील स्वीकृत। (E-15)

उद्धृत वाद सूची:

1. हुकम सिंह बनाम राजस्थान राज्य (AIR 1977 SC 1063)
2. एराडु और अन्य बनाम हैदराबाद राज्य (AIR 1956 SC 316)
3. एराभद्रप्पा @ कृष्णप्पा बनाम कर्नाटक राज्य (AIR 1983 SC 446)
4. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सुखबासी और अन्य (AIR 1985 SC 1224)
5. बलविंदर सिंह @ दलबीर सिंह बनाम पंजाब राज्य (AIR 1987 SC 350)
6. अशोक कुमार चटर्जी बनाम मध्य प्रदेश राज्य (AIR 1989 SC 1890)
7. भगत राम बनाम पंजाब राज्य (AIR 1954 SC 621)
8. सी. चैंगा रेड्डी और अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (1996) 10 SCC 193
9. रविंदर सिंह @ काकू बनाम पंजाब राज्य, 2022 (7) SCC 581

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर

माननीय न्यायमूर्ति अजीत सिंह,

यह अपील अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश 5, मुजफ्फरनगर द्वारा पारित दिनांक 6.05.2000 के निर्णय और आदेश को चुनौती देते हुए दायर की गई, जिसमें अपीलकर्ता को 1998 के सत्र परीक्षण संख्या 703 (राज्य बना राजू) में धारा 302, 376 और 201 भा.द.सं. के तहत दोषी ठहराया गया और उसे क्रमशः आजीवन कारावास, आजीवन कारावास और 3 साल की सश्रम कारावास की सजा सुनाई गई। सभी सजाएँ एक साथ चलाने का निर्देश दिया गया है।

1. अभियोजन कहानी संक्षेप में इस प्रकार है कि दिनांक 05.03.1998 को प्रातः शिकायतकर्ता की भतीजी, उम्र लगभग सात वर्ष स्कूल गई थी, लेकिन देर शाम तक घर नहीं लौटी। दिनांक 06.03.1998 को लगभग 3.00 बजे गाँव के निवासी जनेश्वर, राम अवतार और धीर सिंह ने शिकायतकर्ता को बताया कि उन्होंने उसकी भतीजी को कल दोपहर आरोपी /राजू के साथ जंगल की ओर जाते देखा था। इसके बाद मुखबिर ने सह-ग्रामीणों अर्थात् कृष्णपाल पुत्र कालू, कृष्णपाल पुत्र प्रताप सिंह, सिरपाल पुत्र राम पाल, बृजपाल पुत्र जवर सिंह, गोपाल पुत्र बलजीत और किरण पाल पुत्र सुरजा के साथ आरोपी से शिकायतकर्ता की भतीजी के बारे में पूछताछ की तब उसने बताया कि उसने कल दोपहल किरण सिंह के खेत में उसकी हत्या कर दी है। आरोपी उन्हें किरण सिंह के खेत में ले गए जहाँ उन्होंने अपनी भतीजी को मृत पाया। वह नग्न अवस्था में थी और उसके कपड़े उसके शव के बगल में थे।

2. मामले की जाँच उप-निरीक्षक ओम प्रकाश सिंह को सौंपी गई जिन्होंने घटनास्थल का निरीक्षण किया और नजरी नक्शा तैयार किया और गवाहों के बयान दर्ज किये। जाँच पूरी होने के बाद जाँच अधिकारी ने 16.03.1998 को धारा 376,302, और 201 भा.द.सं. के तहत आरोपी / अपीलकर्ता के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया है और मजिस्ट्रेट द्वारा संज्ञान लिया गया और यह देखते हुए कि मामला सत्र न्यायाधीश द्वारा विचारणीय था, यह सत्र न्यायालय को सुपुर्द किया गया और सत्र न्यायालय ने 23.10.1998 को आरोपी पर धारा 376,302, और 201 भा.दं.सं. के तहत आरोप तय किया।

3. अपने मामले को साबित करने के लिए अभियोजन पक्ष ने पाँच गवाहों से पूछताछ की जो इस प्रकार हैं।

1.	मांगे राम	पी.डब्ल्यू-1
2.	धीर सिंह	पी.डब्ल्यू-2
3.	के.के. अग्रवाह	पी.डब्ल्यू-3
4.	डॉ. सी.के. पारेख	पी.डब्ल्यू-4
5.	ओर प्रकाश	पी.डब्ल्यू-5

4. इस संस्करण के समर्थन में निम्नलिखित दस्तावेज दायर किये गएः

1.	एफ.आई.आर.	प्रदर्श क-4
2.	लिखित रिपोर्ट	प्रदर्श क-1
3.	पैथोलॉली रिपोर्ट	प्रदर्श क-2
4.	पी.एम. रिपोर्ट	प्रदर्श क-3
5.	पंचायतनाम	प्रदर्श क-7
6.	आरोप पत्र	प्रदर्श क-13
7.	निर्देशिका के साथ नजरी नक्शा	प्रदर्श क-6

5. अभियोजन पक्ष ने आरोपी के खिलाफ साक्ष्य रखे और अदालत ने अभियोजन साक्ष्य के बाद धार 313 द.प्र.सं. के तहत आरोपी की जाँच की और आरोपी ने कहा कि उसे परेशान करने के गलत इरादे से वर्तमान मामले में झूठा फंसाया गया है। उसने खुद को निर्दोष बताया और मुकदमा चलाए जाने का दावा किया। विद्वान सत्र न्यायाधीश ने भा.द.सं. की धारा 376,302, और 201 के तहत आरोप तय किए।

6. अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों पर विचार करने के बाद विचारण न्यायालय ने आरोपी को उपरोक्त के अनुसार दोषी ठहराया। दोषसिद्धि के निर्णय और आदेश से व्यथित होकर यह अपील दायर की गई है।

7. अपीलकर्ता के लिए नियुक्त न्याय मित्र (एमिकस क्यूरी) श्री चेतन चटर्जी एवं राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए. श्री पतंजलि मिश्रा को सुना गया।

8. आरोपी / अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि अपीलकर्ता को मुखबिर द्वारा झूठा फंसाया गया है, क्योंकि अभिलेख पर कोई साक्ष्य नहीं था जो यह दिखा सके कि आरोपी ने बलात्कार के बाद मृतक की हत्या कर दी । किसी ने भी आरोपी को बलात्कार या हत्या करते नहीं देखा था। गवाहों के बयान में विरोधाभास है और आखिरी बार देखे गये साक्ष्य जो जनेश्वर, राम अवतार और धीर सिंह द्वारा आरोपी के खिलाफ दिए गए वह बहुत विश्वसनीय प्रतीत नहीं होते। उनका यह भी कहना है कि पोस्टमार्टम रिपोर्ट के अनुसार कोई शुक्राणु नहीं मिला। अभियुक्त-अपीलकर्ता के कहने पर मृतक का शव बरामद नहीं किया गया। अंत में उनका कहना है कि अभियुक्त जेल में है और उसने चौबीस साल से अधिक समय जेल में व्यतीत किया है। यह अभियुक्त का पहला अपराध था और दोषसिद्धी के बाद अभियुक्त किसी अन्य आपराधिक गतिविधि में शामिल नहीं हुआ। हालाँकि विचारण न्यायालय ने वर्तमान आरोपी को मात्र घटनाओं के संयोजन के आधार पर दोषी ठहराया है, जबकि अपीलकर्ता बिल्कुल निर्दोष है और उसे परेशान करने के गलत इरादे से इस मामले में झूठा फंसाया गया है।

9. विद्वान ए.जी.ए. ने प्रस्तुत किया है कि आरोपी ने सात साल की बच्ची के साथ बलात्काल करने के बाद हत्या कर दी है और आरोपी के खिलाफ आखिरी बार सबूत देखे गए थे।

10. अपीलकर्ता की दोषसिद्धि केवल परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित है। अतः दोषसिद्धि को कायम रखने के लिए यह अनिवार्य है कि परिस्थितियों की श्रृंखला पूर्ण, ठोस और सुसंगत हो। इस न्यायालय ने निरन्तर वादों को एक लम्बी श्रृंखला आयोजित की है। हुकुम सिंह बनाम राजस्थान राज्य (एआईआर 1977 एससी 1063);

> एराडु और अन्य बनाम हैदराबाद राज्य (एआईआर 1956 एससी 316);इयरभद्रप्पा@ कृष्णप्पा बनाम कर्नाटक राज्य (एआईआर 1983 एससी 446); यू.पी. राज्य बनाम सुखबासी और अन्य (एआईआर 1985 एससी 1224);बलविंदर सिंह @ दलबीर सिंह बनाम पंजाब राज्य (एआईआर 1987 एससी 350); अशोक कुमार चटर्जी बनाम मध्य प्रदेश राज्य (एआईआर 1989 एससी 1890) कि जहाँ कोई मामला पूरी तरह से परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर निर्भर करता है, वहाँ अपराध का अनुमान तभी उचित ठहराया जा

सकता है जब सभी दोषारोपण करने वाले तथ्य और परिस्थितियाँ आरोपी की निर्दोषिता के साथ असंगत पाई जाएं। जिन परिस्थितियों से अभियुक्त के अपराध के बारे में अनुमान लगाया जाता है, उन्हें उचित संदेह परे साबित किया जाना चाहिए और उन परिस्थितियों से निष्कर्षित मुख्य तथ्य के साथ निकटता से जुड़ा हुआ होना चाहिए। **भगत राम बनाम पंजाब राज्य (एआईआर 1954 एससी 621)** में यह निर्धारित किया गया था कि जहाँ मामला परिस्थितियों से निकाले गये निष्कर्ष पर निर्भर करता है, परिस्थितियों का संचयी प्रभाव ऐसा होना चाहिए जो आरोपी की निर्दोषिता को नकार दे और अपराध को किसी भी उचित संदेह से परे ले जाए। हम इस न्यायलय के एक निर्णय का संदर्भ भी **सी. चेंगा रेड्डी और अन्य । बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (1996) 10 एससीसी 193**, जिसमें यह देखा गया है किः

> "परिस्थितिजन्य साक्ष्यों पर आधारित मामले में स्थापित विधि यह है कि जिन परिस्थितियों से अपराध का निष्कर्ष निकाला जाता है, उन्हें पूरी तरह से साबित किया जाना चाहिए और ऐसी परिस्थितियाँ निर्णायक प्रकृति की होना चाहिए। इसके अलावा, सभी परिस्थितियाँ पूर्ण होना चाहिए और साक्ष्यों की श्रृंखला में कोई अंतराल नहीं रहना चाहिए। इसके अलावा सिद्ध परिस्थितियाँ केवल अभियुक्त के अपराध की परिकल्पना के संगत होना चाहिए और उसकी बेगुनाही के साथ पूरी तरह से असंगत होनी चाहिए...."।
>
> (जोर दिया गया)

11. वर्तमान मामले के तथ्यों पर उपरोक्त स्थापित विधि को पूरी तरह से लागू करने पर, हम मानते है कि वर्तमान अपीलकर्ता के खिलाफ परिस्थितिजन्य साक्ष्य मृतक की हत्या करने में अपराध को निर्णायक रूप से स्थापित नहीं करता है। अंतिम बार देखी गयी थ्योरी, आरोपी की गिरफ्तारी, शव की बरामदगी, सबूतों की श्रृंखला को निर्णायक रूप से पूरा नहीं करती है और तथ्य को स्थापित नहीं करती है।

12. ऐसे मामले में जहाँ दोषसिद्धि पूरी तरह से परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित है। आरोपी-अपीलकर्ता की सजा को बरकरार रखने के लिए महत्वपूर्ण गवाहों की गवाही में ऐसी विसंगतियों को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है।

13. इस न्यायालय द्वारा यह देखा जाएगा कि इस मामले के तथ्य शीर्ष न्यायालय द्वारा हाल ही में तय किए गए मामले के समान है जिसका शीर्षक है **रविंदर सिंह @ काकू बनाम पंजाब राज्य, दिनांक 04.05.2022 को निर्णय 2022 में रिपोर्ट किया गया (7) एससीसी 581** जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने समान तथ्यों पर विचार करते हुए निम्नलिखित निर्णय दिया है।

> 17. ऐसे मामले में जहाँ दोषसिद्धि पूरी तरह से परिस्थितिजन्य साक्ष्यों पर आधारित है, ए2 की दोषसिद्धि को बरकरार

रखने के लिए महत्वपूर्ण गवाहों की गवाही में ऐसी विसंगतियों को नजरअंदा नहीं किया जा सकता है, खासकर इस तथ्य के प्रकाश में कि उच्च न्यायलय पहले ही तथ्यों को उजागर करने में गलती कर चुका है किसी हेतु के अस्तित्व के संबंध में एक संदिग्ध निष्कर्ष निकालना जो अनुमानों और संभावनाओं में निहित है।

18. अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारोक्ति के संबंध में, यह कहना पर्याप्त है कि प्रतिवादी का उस पर भरोशा करने का प्रयास अस्थिर है क्योंकि उच्च न्यायलय ने पीडब्लू 13 गोवर्धन लाल के साक्ष्य में विसंगतियों पर ध्यान दिया है और उसके साक्ष्य को सही ढंग से खारिज कर दिया है। "इन टोटो" में (एक रूप में)। हम उच्च न्यायालय के फैसले को इस हदतक बरकरार रखते हे कि वह पीडब्लू 13 की गवाही को खारिज कर देता है और ए2 और ए3 की न्यायेतर स्वीकारोक्ति के सिद्धांत को अप्राकृतिक मानता है।

14. तद्नुसार, अपील स्वीकार की जाती है और आपेक्षित आदेश दिनांकित 26.05.2000 को इस हद तक रद्द किया जाता है कि यह अभियुक्तों को भा.द.सं. की धारा 302 और 376 के तहत दोषी ठहराता है, इसलिए, अभियुक्तों की दोषसिद्धि को रद्द किया जाता है।

15. हम निर्देश देते है कि इस आदेश की एक प्रति संबंधित जेल प्राधिकारियों को संसूचित की जाए और अपीलकर्ता राजू को तुरंत रिहा किया जाए, जब तक कि किसी अन्य मामले में उसकी हिरासत की आवश्यकता न हो।

(2023) 3 ILRA 906

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 03.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति प्रीतिंकर दिवाकर, ए.सी.जे.
माननीय न्यायमूर्ति नलिन कुमार श्रीवास्तव, जे.

2020 की आपराधिक अपील संख्या 1568
के साथ
2020 की आपराधिक अपील संख्या 1971

महेंद्र सिंह और अन्य ... अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ... प्रतिवादी

अपीलकर्ताओं के लिए वकील: श्री दिनेश कुमार, श्री कृष्ण यादव

प्रतिवादी के लिए वकील: जी.ए., श्री अंकित अग्रवाल

आपराधिक कानून - भारतीय दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 313 - भारतीय साक्ष्य अधिनियम - 1872 - धाराएँ 3 और 27 - मृतक का शव आरोपियों के साथ आखिरी बार देखे जाने के दो दिन पश्चात प्राप्त हुआ - धारा 302, 201, 120-B, 34, 404 आईपीसी और 4/25 आर्म्स एक्ट के तहत दोषसिद्धि - आरोपी की निशानदेही पर हत्या के हथियार के रूप में चाकू और नकद बरामद किए गए - आखिरी बार देखे जाने के संबंध में अभियोजन द्वारा दिया गया साक्ष्य विश्वसनीय और भरोसेमंद नहीं है - आरोपियों द्वारा पी.डब्ल्यू.4 को कथित अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारोक्ति विश्वसनीय नहीं है और इसके लिए ठोस समर्थन की आवश्यकता है जो लुप्त है - न्यायालय द्वारा 10,000/- रुपये की बरामदगी के सवाल पर चूक ने अपीलकर्ता को गंभीर नुकसान पहुँचाया - मुद्रा नोटों की बरामदगी साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के दायरे में नहीं आती - हत्या के हथियार की बरामदगी के स्थान पर विरोधाभास - हत्या के हथियार के संबंध में कोई एफएसएल रिपोर्ट नहीं - परिस्थितियों की श्रृंखला कभी पूरी नहीं हुई, जो कि परिकल्पनात्मक साक्ष्य पर आधारित वाद में आरोपी की सजा के लिए आवश्यक थी - महत्वपूर्ण परिस्थितियाँ, जैसे आखिरी बार देखना, आशय, हत्या के हथियार की बरामदगी, अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारोक्ति ठोस और विश्वसनीय साक्ष्य की कमी के कारण सिद्ध नहीं हुईं। दोषसिद्धि आपस्त किया गया।

अपील स्वीकृत। (ई-15)

उद्धृत वाद सूची:

1. शरद बर्धिचंद सारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1984) 4 एससीसी 116
2. जी. पार्श्वनाथ बनाम कर्नाटक राज्य, (2010) 8 एससीसी 593
3. राजू बनाम राजस्थान राज्य, 2022 (121) एसीसी 954
4. धर्म देव यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2014) 5 एससीसी 509
5. गोवा राज्य बनाम पांडुरंग मोहिते, AIR 2009 SC 1066
6. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सतीश, 2005 (3) एससीसी 114
7. मोहिबुर रहमान और अन्य बनाम असम राज्य, 2002 (2) जिक 972 (सुप्रीम कोर्ट)
8. रोहताश कुमार बनाम हरियाणा राज्य, 2013 (82) एसीसी 401 (SC) (पैराग्राफ 25)
9. अशोक बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2015) 4 एससीसी 393
10. निरंजन पांजा बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, 2010 (6) एससीसी 525
11. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम एम.के. एंथनी, (1985) 1 एससीसी 505
12. नारायण सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (1985) 4 एससीसी 26
13. जगता बनाम हरियाणा राज्य, (1974) एससीसी (4) 747
14. भारत संघ बनाम आर. मेत्री, (2022) 6 एससीसी 525
15. नार सिंह बनाम हरियाणा राज्य, (2015) 1 एससीसी 496
16. सतबीर सिंह बनाम हरियाणा राज्य, (2021) 6 एससीसी 1

17. भारत संघ बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2003) 3 एससीसी 106
18. जावेद मसूद और अन्य बनाम राजस्थान राज्य, (2010) 3 सुप्रीम कोर्ट केस 538
19. अंतेर सिंह बनाम राजस्थान राज्य, AIR 2004 SC 2865
20. महेंद्रन बनाम तमिलनाडु राज्य, (2019) 5 एससीसी 67
21. अंतेर सिंह बनाम राजस्थान राज्य, (2004) 10 एससीसी 657
22. शीशपाल बनाम एन.सी.टी. दिल्ली, (2022) 9 एससीसी 782
23. चंद्रपाल बनाम छत्तीसगढ़ राज्य (पहले एम.पी.), AIR 2022 सुप्रीम कोर्ट 2542
24. नंदू सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य (अब छत्तीसगढ़), 2022 एससीसी ऑनलाइन सुप्रीम कोर्ट 1454
25. पन्नयार बनाम तमिलनाडु राज्य, (2009) 9 एससीसी 152
26. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम किशनपाल और अन्य, (2008) 16 एससीसी 73
27. सुरेश चंद्र बहरी बनाम बिहार राज्य, 1995 सप्लीमेंट (1) एससीसी 80
28. बाबू बनाम केरल राज्य, (2010) 9 एससीसी 189
29. अनवर अली बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य, (2020) 10 एससीसी 166
30. अनवर पी.वीएस बनाम पी.के. बशीर, (2014) 10 एससीसी 473
31. रवि शर्मा बनाम राज्य (दिल्ली एनसीटी), (2022) 8 एससीसी 536

माननीय प्रीतिंकर दिवाकर, प्रभारी मुख्य न्यायधीश

माननीय न्यायमूर्ति नलिन कुमार श्रीवास्तव

(प्रति: न्यायमूर्ति नलिन कुमार श्रीवास्तव)

1. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता श्री कृष्ण यादव और श्री कृपा कांत पांडे और राज्य के लिए श्री अमित सिन्हा, अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना।

2. अपराध संख्या-238 वर्ष 2011 से धारा 302, 201, 120-बी, 34, 404 भ०द०वि०, थाना-छत्ता, जिला: मथुरा के तहत उत्पन्न सत्र विचारण संख्या-663 वर्ष 2011 (राज्य बनाम महेंद्र सिंह एवं अन्य) में अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय क्रमांक 4/विशेष न्यायाधीश, मथुरा द्वारा पारित निर्णय एवं आदेश दिनांक 26.02.2020 की वैधता एवं स्थायित्व एवं धारा 4/25 के अंतर्गत अपराध क्रमांक 241 वर्ष 2011 से उत्पन्न सत्र विचारण संख्या-304 वर्ष 2012 (राज्य बनाम महेन्द्र सिंह) शस्त्र अधिनियम, थाना-छट्टा, जिला: मथुरा और धारा 25 शस्त्र अधिनियम के तहत अपराध संख्या-242 वर्ष 2011 से उत्पन्न सत्र परीक्षण संख्या-305 वर्ष 2012 (राज्य बनाम गंगाधर), थाना-चट्टा, जिला: मथुरा को प्रस्तुत आपराधिक अपीलों के माध्यम से चुनौती दी गई है, जिसके तहत अपीलकर्ता महेंद्र सिंह, गंगाधर और बनिया @ बलवीर को दोषी ठहराया गया और भ०द०वि० की धारा 302/34 के तहत आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई और प्रत्येक पर 10,000 रुपये का जुर्माना लगाया गया, जिसमें चूक करने पर, तीन महीने के अतिरिक्त साधारण कारावास की सजा सुनाई गई; भारतीय दंड संहिता की धारा 120-ख के अंतर्गत आजीवन कारावास की सजा और प्रत्येक पर 5000/- रुपये का जुर्माना लगाया जाएगा, ऐसा न करने पर तीन माह का अतिरिक्त साधारण कारावास भुगतना होगा। भारतीय दंड संहिता की धारा 201 के अंतर्गत तीन वर्ष के

कठोर कारावास की सजा काटनी होगी और प्रत्येक पर 500 रुपये का जुर्माना लगाया जाएगा, ऐसा न करने पर पन्द्रह दिन का अतिरिक्त साधारण कारावास भुगतना होगा। भारतीय दंड संहिता की धारा 404 के अंतर्गत दो वर्ष का कारावास और प्रत्येक पर 500/- रुपए का जुर्माना लगाया जाएगा, ऐसा न करने पर आगे पन्द्रह दिन का अतिरिक्त साधारण कारावास भुगतना होगा। इसके अलावा, अपीलकर्ता महेंद्र सिंह और गंगाधर को दोषी ठहराया गया और धारा 4/25 शस्त्र अधिनियम के तहत दो साल के कारावास की सजा सुनाई गई और प्रत्येक पर 500 रुपये का जुर्माना लगाया गया, जिसमें चूक कि स्थिति में आगे पंद्रह दिन का अतिरिक्त साधारण कारावास भुगतना पड़ेगा। सभी सजाएं साथ-साथ चलने का निर्देश दिया गया था।

3. अभियोजन की कहानी, संक्षेप में, प्राथमिकी में ये है कि जो सूचनाकर्ता बच्चू सिंह द्वारा दी गई लिखित रिपोर्ट प्रदर्श क-1 के आधार पर दर्ज की गई थी, जिसमें यह बताया गया था कि सूचनाकर्ता रेलवे विभाग में कर्मचारी है और उसके पड़ोसी आरोपी महेंद्र सिंह के साथ सौहार्दपूर्ण संबंध हैं, जो उसके घर आता था। सूचनाकर्ता और उसके भाइयों ने 08.07.2011 को बिक्री के लिए एक समझौता किया है और सूचनाकर्ता को उसके हिस्से के रूप में 2 लाख रुपये मिले, जो उसके घर में रखे गए थे। 12.07.2011 को, सूचनाकर्ता की बेटी भगवान देई को महेंद्र का फोन आया जो अपनी मां लक्ष्मी, सूचनाकर्ता की पत्नी के साथ चैट करना चाहता था। फोन आने के बाद लक्ष्मी ने एक बैग में कुछ सामान लिया और यह कहकर घर से चली गई कि वह गांव नाहरा में अपने मायके जा रही है और दो घंटे बाद वापस आएगी। लक्ष्मी को कई लोगों ने आरोपी महेंद्र के साथ अकबरपुर रोडवेज पर छत्ता की तरफ जाते हुए देखा था। जब वह नाहरा नहीं पहुंची, सूचना देने वाले ने शाम को लक्ष्मी को फोन किया, लेकिन वह जल्दबाजी में थी और बात करने में असमर्थ थी और बाद में उसका फोन बंद हो गया। सूचनाकर्ता ने पाया कि घर से 2 लाख रुपये, सोने-चांदी के गहने और कपड़े गायब थे। तलाशी के बाद, उन्होंने 15.07.2011 को शव परीक्षण हाउस, मथुरा में लक्ष्मी के शव को पाया और उसकी पहचान की।

4. दिनांक 16.07.2011 को 13:00 बजे अपरान्ह कांस्टेबल क्लर्क कृष्ण पाल सिंह द्वारा, नामजद आरोपी महेंद्र सिंह के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज की गई जिन्होंने पंजीकरण जी.डी. प्रदर्श क-11 लिखा।

5. जांच शुरू हुई और इसे सी.ओ. देवेंद्र सिंह ने संभाला, जिन्होंने जांच की कार्यवाही की और जांच के दौरान, संबंधित गवाहों के बयान उनके द्वारा दर्ज किए गए। आरोपी और मृतका के मोबाइल फोन का कॉल डिटेल रिकॉर्ड भी हासिल कर लिया गया है। मृतका का शव बरामद कर लिया गया है और आरोपियों की निशानदेही पर नकद पैसे और हत्या के हथियार चाकू भी बरामद किए गए हैं। विवेचनाधिकारी ने घटनास्थल और बरामदगी प्रदर्श क-13, प्रदर्श क-15 और प्रदर्श क-17 का नक्शा नज़री भी तैयार किया।

6. मृतका का पंचनामा किया गया और पंचनामा रिपोर्ट प्रदर्श क-5 भी तैयार की गई।

7. मृतका के शव का शव परीक्षण डॉ. आर.एस.मौर्य ने किया, जिन्होंने मृतका का शव परीक्षण करने के बाद शव परीक्षण रिपोर्ट प्रदर्श क-2 तैयार की। मृतका के शरीर पर निम्नलिखित चोट के निशान पाए गए:

(i) बाएं ऊपरी अंगों के भीतरी पहलू पर कई घाव औसत आकार 3 सेमी x 1.5 सेमी x मांसपेशियों तक की गहरी।

(ii) खून रिसता घाव 4 सेमी x 1.5 सेमी छाती गुहा छाती के बाईं ओर गहराई से छाती के सामने बाएं स्तन से 2 सेमी नीचे।

(iii) खून रिसता घाव 5 सेमी x 2 सेमी x पेट की गुहा उदर की मध्य रेखा के निचले हिस्से पर गहरी होती है।

डाक्टर की राय के अनुसार, मृत्यु का कारण मृत्यु पूर्व चोटों के परिणामस्वरूप सदमा और रक्तस्त्राव था।

8. जांच पूरी होने के बाद आरोपी महेंद्र सिंह, गंगाधर और बनिया @ बलवीर के खिलाफ धारा 302, 201, 120-बी, 34, 404 भ०द०वि० के तहत कोर्ट में आरोप पत्र प्रदर्श क-18 दायर की गई।

9. शस्त्र अधिनियम की धारा 25 के तहत मामले की जांच एस.आई. सलीम खान ने की, जिन्होंने मामले की जांच करने के बाद, नक्शा नज़री प्रदर्श क-19 और प्रदर्श क-21 तैयार किया, और आरोपी महेंद्र और गंगाधर के खिलाफ क्रमशः प्रदर्श क-20 और प्रदर्श क-22 को अदालत में पेश किया।

10. यह मामला, विशेष रूप से सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय होने के कारण, विचारण के लिए सत्र न्यायालय को प्रतिबद्ध किया गया।

11. आरोपी महेंद्र सिंह, गंगाधर और बनिया @ बलवीर के खिलाफ 23.01.2012 को धारा 302/34, 201, 120-बी, 404 भ०द०वि० के तहत आरोप तय किए गए थे। दिनांक 28.06.2012 को अभियुक्त महेन्द्र सिंह और गंगाधर के विरुद्ध शस्त्र अधिनियम की धारा 4/25 के अंतर्गत आरोप भी विरचित किए गए थे। आरोपी व्यक्तियों ने दोषी नहीं होने का अनुरोध किया और मुकदमा चलाने का दावा किया।

12. अभियुक्त के खिलाफ आरोपों को साबित करने के लिए, अभियोजन पक्ष ने मौखिक साक्ष्य में सभी नौ गवाहों को पेश किया। वे हैं (अ०सा०-1) बच्चू सिंह, सूचनाकर्ता पूरन सिंह (अ०सा०-2), (अ०सा०-3) भगवान देई, (अ०सा०-4) श्री चंद्रा, (अ०सा०-5) डॉ. आर.एस. मौर्य, (अ०सा०-6) कांस्टेबल कृष्ण पाल सिंह, (अ०सा०-7) एस.आई. देवेंद्र कुमार त्यागी, (अ०सा०-8) देवेंद्र सिंह और (अ०सा०-9) एस.ओ. सलीम खान, जिनकी जांच की गई।

13. दस्तावेजी साक्ष्य में लिखित रिपोर्ट प्रदर्श क-1, शव परीक्षण रिपोर्ट प्रदर्श क-2, शव परीक्षण रिपोर्ट से संबंधित पुलिस कागजात, प्रतिसार निरीक्षक रिपोर्ट, फॉर्म 33, जांच, फोटो लाश, सीएमओ को पत्र, नकल रिपोर्ट थाना-छत्ता, भरत सिंह प्रदर्श क-3 से 9 की रिपोर्ट, चिक प्राथमिकी प्रदर्श क-10, जी.डी. प्रदर्श क-.ए.-11, करेंसी नोटों का फ़र्द बरामदगी प्रदर्श क-12, नक्शा नज़री प्रदर्श क-13, कैश प्रदर्श क-14 का फ़र्द बरामदगी, शस्त्र अधिनियम के तहत मामले से संबंधित क्रमशः प्रदर्श क-23, प्रदर्श क-24, प्रदर्श क-25 और प्रदर्श क-26 के रूप में शस्त्र अधिनियम के तहत मामले से संबंधित नक्शा नज़री प्रदर्श क-15, हथियार प्रदर्श क-16, प्रदर्श क-17, आरोप पत्र प्रदर्श क-18, नक्शा नज़री प्रदर्श क-20, नक्शा नज़री प्रदर्श क-21, आरोप पत्र प्रदर्श क-22, प्राथमिकी और पंजीकरण जी.डी. का फ़र्द बरामदगी साबित हुआ है।

14. (अ०सा०-1) बच्चू सिंह मूल सूचनाकर्ता और मृतका का पति है। उन्होंने अपने मुख्य परीक्षण में प्राथमिकी संस्करण का समर्थन किया है और इस तथ्य की पुष्टि की है कि उनकी पत्नी लक्ष्मी

ने आरोपी महेंद्र के टेलीफोन कॉल के बाद 12.7.2011 को दो लाख रुपये, गहने और कपड़े के साथ अपने घर छोड़ दिया था, जैसा कि उनकी बेटी ने उन्हें सूचित किया था। दिनांक 15-07-2011 को उन्होंने शव परीक्षण हाउस, मथुरा में लक्ष्मी का शव देखा था। उन्होंने थाने को दी गई लिखित रिपोर्ट को प्रदर्श क-1 साबित कर दिया है। हालांकि, उसने अपनी जिरह में स्वीकार किया है कि उसने अपनी पत्नी को आरोपी के साथ जाते नहीं देखा था। उन्होंने कहा है कि आरोपी घटना से करीब एक साल पहले से उसके घर आया करता था। उन्होंने इस तथ्य को भी साबित किया है कि आरोपी गंगाधर से पुलिस द्वारा 90,000/- रुपये बरामद किए गए थे और उसका मेमो पुलिस द्वारा थाने में तैयार किया गया था।

15. (अ०सा०-2) पूरन सिंह सूचनाकर्ता का सगा भाई है और उसने अपने बयान में इस तथ्य की पुष्टि की है कि उसने और उसके दो भाइयों ने तीनों भाइयों को उनके संबंधित हिस्से के अनुसार छह लाख रुपये और दो-दो लाख रुपये के प्रतिफल के लिए बिक्री का समझौता किया था। हालांकि, मामले के अन्य तथ्यों के रूप में उनकी गवाही सुनवाई साक्ष्य की श्रेणी में आती है। इस गवाह के बयान का उल्लेखनीय हिस्सा यह है कि जब उसके सहित तीनों भाइयों के बीच दो लाख रुपये वितरित किए गए थे, तो उसने प्रत्येक मुद्रा नोट पर अपने हस्ताक्षर किए थे। चार लाख रुपये पांच सौ 7 रुपये के नोटों के रूप में थे, जबकि दो लाख रुपये एक सौ रुपये के नोटों के रूप में थे और उन्होंने सभी नोटों पर हस्ताक्षर किए थे।

16. अ०सा०-1 और अ०सा०-2 दोनों का कहना है कि उन्हें मृतका का शव 15.07.2011 को शव परीक्षण हाउस, मथुरा में मिला था।

17. (अ०सा०-3) भगवान देई, मृतका की बेटी है, जिसने अपनी परीक्षा में कहा है कि 12.07.2011 को, उसे आरोपी महेंद्र का फोन आया था, जो उसकी मां से बात करना चाहता था और उस कॉल के बाद, उसकी मां ने पैसे, कपड़े और गहने के साथ घर छोड़ दिया और उसे दो घंटे के भीतर वापस आने के लिए कहा। जब वह नाहरा में अपने माता-पिता के घर जा रही थी। वह खुद उसे टैंपो स्टैंड पर छोड़ने चली गई। इसके बाद, जब उसने अपनी मां से फोन पर संपर्क करने की कोशिश की, तो फोन बंद हो गया और बाद में उसका शव मिला। उसने आगे कहा है कि जब वह अपनी मां को वहां छोड़कर टैंपो स्टैंड से लौट रही थी, तो उसने टैंपो स्टैंड पर आरोपी महेंद्र सिंह, गंगाधर और बनिया @ बलवीर को देखा था।

18. यह उल्लेखनीय है कि उपरोक्त सभी अभियोजन पक्ष के गवाह स्वीकार करते हैं कि मृतका की हत्या उनके सामने नहीं की गई थी।

19. (अ०सा०-4) श्री चंद्रा 'अंतिम बार देखे गए' गवाह हैं और अभियुक्त गंगाधर द्वारा उनके सामने की गई न्यायकेत्तर स्वीकारोक्ति के भी गवाह हैं। अपने बयान में उसने कहा है कि दिनांक 12-07-2011 को अपराह्न लगभग 1.00 बजे उसने बच्चू की पत्नी लक्ष्मी को आरोपी बनिया @ बलवीर और गंगाधर नाई के साथ गांव के टैंपो स्टैंड पर जाते देखा था। लक्ष्मी ने एक बैग लिया था और उसके पूछने पर उसने बताया कि वह अपने माता-पिता के घर जा रही है। दिनांक 15-07-2011 को उसे पता चला कि लक्ष्मी की हत्या कर दी गई है। उन्होंने आगे कहा है कि दिनांक 16-07-2011 को उनके गांव का मूल निवासी गंगा धार नाई उनके पास आया और उनके द्वारा बहकाए जा रहे महेन्द्र और बनिया @ बलवीर के साथ लक्ष्मी की हत्या का अपराध कबूल किया। आरोपी गंगाधर ने उसे आगे बताया कि तीनों आरोपियों ने योजनाबद्ध तरीके से चाकू से लक्ष्मी की हत्या की थी और शव को रेलवे बाउंड्री के किनारे पेड़ के पास घास के नीचे छुपा

दिया था। उन्होंने आगे कहा है कि 'अंतिम बार देखे गए' और न्यायकेत्तर स्वीकारोक्ति के तथ्य का खुलासा उन्होंने विवेचनाधिकारी के समक्ष किया था। उन्होंने आगे कहा है कि आरोपी गंगाधर से उनकी कोई दोस्ती नहीं थी।

20. (अ०सा०-5) डॉ. आर.एस. मौर्य ने मृतका का शव परीक्षण किया है। मृतका के शरीर के ऊपर पाई गई चोटों के बारे में बताते हुए उन्होंने कहा है कि यह मृत्यु संभवत दिनांक 12-07-2011 को अपराह्न लगभग 1.00 बजे हुई होगी। उसने अपनी प्रतिपरीक्षा में आगे कहा है कि मृतका के शरीर के ऊपर पाई गई चोटें धारदार हथियार या चाकू के प्रयोग से नहीं आई हैं, बल्कि चोटें किसी कुंद वस्तु के प्रयोग से हुई हैं।

21. (अ०सा०-6) कांस्टेबल क्लर्क कृष्णपाल सिंह प्राथमिकी के मुंशी हैं, जिन्होंने चिक प्राथमिकी प्रदर्श क-10 और रजिस्ट्रेशन जी.डी. प्रदर्श क-11 साबित किया है और यह भी कहा है कि सूचनाकर्ता बच्चू सिंह की लिखित रिपोर्ट के आधार पर उनके द्वारा प्राथमिकी दर्ज की गई।

22. (अ०सा०-7) एस.आई. देवेंद्र कुमार त्यागी, पंचनामा के गवाह हैं और उन्होंने पंचनामा रिपोर्ट प्रदर्श क-5 को साबित किया है। उन्होंने कहा है कि सूचनाकर्ता द्वारा दी गई सूचना पर उन्होंने आरोपी महेंद्र सिंह और गंगाधर को गिरफ्तार किया था और उनके कब्जे से सौ रुपये के नोटों के रूप में चालीस-चालीस हजार रुपये बरामद किए गए थे और फ़र्द बरामदगी तैयार किया गया था। उन्होंने आगे कहा है कि दोनों आरोपियों ने पुलिस के सामने अपना अपराध कबूल कर लिया और उनकी निशानदेही पर पुलिस द्वारा दो चाकू बरामद किए गए और एक मोबाइल फोन भी आरोपी महेंद्र द्वारा पुलिस को सौंप दिया गया और फ़र्द बरामदगी तैयार किया गया। इसके बाद, दिनांक 27.08.2011 को अभियुक्त बनिया @ बलवीर को भी पुलिस द्वारा गिरफ्तार किया गया और उसकी निशानदेही पर पुलिस द्वारा अभियुक्त के घर में रखे एक बक्से से दस हजार रुपए बरामद किए गए, जो सौ रुपए के नोटों के रूप में थे। इस गवाह द्वारा फ़र्द बरामदगी प्रदर्श क-12 साबित किया गया है और करेंसी नोटों और उनके बंडलों की फोटो प्रतियां भी सामग्री प्रदर्श-1 से सामग्री प्रदर्श-9 के रूप में साबित हुई थीं।

23. (अ०सा०-8) एस.एच.ओ. देवेंद्र सिंह मामले के विवेचनाधिकारी हैं, जिन्होंने अपनी गवाही में पंचनामा की कार्यवाही को साबित किया है। अभियुक्त महेन्द्र सिंह, गंगाधर और बाद में बनिया @ बलवीर की गिरफ्तारी और अभियुक्त महेंद्र सिंह और गंगाधर की निशानदेही पर चाकू और सभी अभियुक्तों के पास से कुल नब्बे हजार रुपये के नोटों की बरामदगी का तथ्य इस गवाह द्वारा साबित हो गया है। वह फ़र्द बरामदगी प्रदर्श क-14, क-15, क-16, क-17, नक्शा नज़री प्रदर्श क-13 और आरोप पत्र प्रदर्श क-18 को भी साबित करता है और कहता है कि केस प्रॉपर्टी विधि विज्ञान प्रयोगशाला को भेजी गई थी। कथित हत्या के हथियार, दो चाकू उसके द्वारा सामग्री प्रदर्श-10 और सामग्री प्रदर्श-11 के रूप में साबित हुए हैं। जिरह में उसने बताया है कि आरोपी महेंद्र और मृतका के प्रेम प्रसंग के बारे में उसकी जानकारी में कुछ भी नहीं आया।

24. (अ०सा०-9) थानाध्यक्ष सलीम खान, शस्त्र अधिनियम की धारा 4/25 के तहत मामले के विवेचनाधिकारी हैं। अपने बयान में, उन्होंने धारा 4/25 शस्त्र अधिनियम और नक्शा नज़री के तहत दोनों मामलों से संबंधित जांच की कार्यवाही के साथ-साथ प्रदर्श क-20, क-21 के रूप में

आरोप-पत्र को साबित किया है। द्वितीयक गवाह के रूप में, उन्होंने शस्त्र अधिनियम के तहत मामलों के लिए क्रमशः महेंद्र और गंगाधर दोनों अभियुक्तों, महेंद्र और गंगाधर से संबंधित प्राथमिकी और पंजीकरण जी.डी. को क्रमशः प्रदर्श क-23, प्रदर्श क-24, प्रदर्श क-25 और प्रदर्श क-26 के रूप में साबित किया है।

25. रिकॉर्ड पर साक्ष्य की जांच करने के बाद विद्वान विचारण न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि अभियोजन का मामला सभी आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ उचित संदेह से परे साबित हुआ और आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ दोषसिद्धि और सजा दर्ज की गई, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है।

26. विभिन्न आधारों पर आक्षेपित निर्णय का विरोध करते हुए, अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि अभियोजन का मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित है, लेकिन परिस्थितियों की श्रृंखला पूरी नहीं है, ताकि अभियुक्त के अपराध को साबित किया जा सके। यहां तक कि 'लास्ट सीन' के साक्ष्य भी सही तरीके से साबित नहीं हुए हैं। अपीलकर्ताओं के लिए मृतका को मारने का कोई मकसद नहीं था। विवेचनाधिकारी को इस आशय के सबूतों का संकेत भी नहीं मिला कि अपीलकर्ता महेंद्र सिंह का मृतका के साथ कोई संबंध था। अपीलकर्ता गंगाधर द्वारा (अ०सा०-4) श्री चंद्रा को तथाकथित अतिरिक्त-न्यायिक स्वीकारोक्ति साक्ष्य का एक विश्वसनीय टुकड़ा नहीं है और अपीलकर्ता गंगाधर के लिए अ०सा०-4 को कोई अतिरिक्त-न्यायिक स्वीकारोक्ति करने का कोई अवसर नहीं था। अभियोजन पक्ष के मामले को चिकित्सा साक्ष्य से भी समर्थन नहीं मिलता है, जो अपीलकर्ता महेंद्र सिंह और गंगाधर के इशारे पर हत्या के हथियार के रूप में चाकू की कथित बरामदगी को भी गलत साबित करता है। अ०सा०-1 और अ०सा०-2 के कथन भी विश्वसनीय नहीं हैं। प्राथमिकी भी देर से दर्ज की गई है और अभियोजन पक्ष द्वारा इसके संबंध में कोई उचित स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है। मामले की जांच भी दोषपूर्ण है, जो अभियोजन पक्ष के मामले को अहम और सुसंगत पहलुओं में प्रभावित करती है। अभियोजन पक्ष द्वारा निकाला गया निष्कर्ष विकृत है और किसी विश्वसनीय साक्ष्य पर आधारित नहीं है।

27. पूर्वोक्त आधारों पर, अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा आक्षेपित निर्णय और आदेश को रद्द करने और अपीलकर्ताओं को बरी करने की प्रार्थना की गई है।

28. प्रति विरोध, अपर शासकीय अधिवक्ता ने मुख्य रूप से इस आधार पर प्रस्तुत अपीलों का विरोध किया है कि 'अंतिम बार देखा गया' साक्ष्य विश्वसनीय है। (अ०सा०-3) मृतका की बेटी भगवान देई के पास अपीलकर्ताओं को झूठा फंसाने के इरादे से अदालत के समक्ष झूठी गवाही देने का कोई कारण नहीं था। घटना का मकसद भी ठोस सबूतों से साबित हुआ है। अपीलकर्ता गरीब मृतका महिला से पैसे हड़पना चाहते थे और इस उद्देश्य की पूर्ति में, आपराधिक साजिश के तहत, उन्होंने मृतका की हत्या कर दी और उससे पैसे हड़प लिए और उसका एक हिस्सा उनके कब्जे से बरामद किया गया, जो अभियोजन पक्ष के आरोपों की पुष्टि करता है। सभी लिंक परिस्थितियों की एक पूरी श्रृंखला बनाते हैं और अपीलकर्ताओं के अपराध को साबित करने के लिए पर्याप्त हैं। जांच में कोई महत्वपूर्ण दोष या विसंगति नहीं है। अभियोजन पक्ष के मामले की पुष्टि चिकित्सा साक्ष्य से भी होती है। सूचनाकर्ता,

चिंतित और अपनी पत्नी की तलाश में व्यस्त होने के कारण, अपनी पत्नी का शव प्राप्त करने के बाद ही प्राथमिकी दर्ज करा सका और प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में देरी का यही कारण था। आरोपियों में से एक, गंगाधर द्वारा किया गया न्यायकेत्तर कबूलनामा, सभी अभियुक्तों के खिलाफ एक और मजबूत सबूत है। उपरोक्त आधारों पर, अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा यह कहा गया है कि अभियोजन की कहानी ठोस और विश्वसनीय मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य से साबित होती है। रिकॉर्ड पर ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे पता चले कि अपीलकर्ताओं को सूचनाकर्ता या पुलिस द्वारा झूठा फंसाया गया है। इसलिए, अपील खारिज की जा सकती है।

परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर मामलों को नियंत्रित करने वाले सिद्धांत -

29. निस्संदेह, वर्तमान परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित मामला है और कथित अपराध में आरोपी व्यक्तियों की भागीदारी को इंगित करने के लिए रिकॉर्ड पर कोई प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं है। परिस्थितिजन्य साक्ष्यों के आधार पर किसी मामले में अभियोजन पक्ष क्या साबित करने के लिए बाध्य है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय और इस न्यायालय द्वारा भी कई मामलों में तय किया गया है।

30. *शरद बिरधीचंद सारदा बनाम महाराष्ट्र राज्य (1984) 4 एस.सी.सी. 116 में रिपोर्ट किए गए मामलों की एक श्रृंखला में इस न्यायालय द्वारा यह माना गया है कि संदेह, कितना भी मजबूत हो, उचित संदेह से परे सबूत को प्रतिस्थापित नहीं कर सकता है। इस न्यायालय ने माना है कि न केवल व्याकरणिक बल्कि 'हो सकता है' और 'जरूर होना चाहिए' के बीच एक कानूनी अंतर भी है। परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर एक मामले को साबित करने के लिए, अभियोजन पक्ष के लिए यह आवश्यक है कि वह उचित संदेह से परे प्रत्येक परिस्थिति को स्थापित करे, और इस तरह साबित हुई परिस्थितियों को साक्ष्य की एक पूरी श्रृंखला बनानी चाहिए ताकि निष्कर्ष के लिए कोई उचित आधार न छोड़ा जाए अभियुक्त की निर्दोषता के अनुरूप और सभी मानवीय संभावना में दिखाना चाहिए कि यह कार्य अभियुक्त द्वारा किया गया है। इसके अलावा, यह माना गया है कि इस प्रकार स्थापित तथ्यों को अभियुक्त के अपराध को छोड़कर हर परिकल्पना को बाहर करना* चाहिए। *अर्थात परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर एक मामले के सबूत का पंचशील:*

(i) जिन परिस्थितियों से अपराध का निष्कर्ष निकाला जाना है, उन्हें पूरी तरह से स्थापित किया जाना चाहिए। न केवल व्याकरणिक बल्कि 'साबित किया जा सकता है' और 'साबित किया जाना चाहिए या जरूर किया जाना चाहिए' के बीच एक कानूनी अंतर है। यह एक प्राथमिक सिद्धांत है कि अभियुक्त को अदालत द्वारा दोषी ठहराए जाने से पहले दोषी होना चाहिए और न केवल दोषी हो सकता है और 'हो सकता है' और 'होना चाहिए' के बीच की मानसिक दूरी लंबी है और निश्चित निष्कर्षों से अस्पष्ट अनुमानों को विभाजित करती है।

(ii) इस प्रकार स्थापित तथ्य केवल अभियुक्त के अपराध की परिकल्पना के अनुरूप होने चाहिए, अर्थात उन्हें किसी अन्य परिकल्पना पर व्याख्या नहीं की जानी चाहिए, सिवाय इसके कि अभियुक्त दोषी है।

(iii) परिस्थितियां निर्णायक प्रकृति और प्रवृत्ति की होनी चाहिए,

(iv) उन्हें साबित होने वाली परिकल्पना को छोड़कर हर संभव परिकल्पना को बाहर करना चाहिए, और

(v) साक्ष्य की एक श्रृंखला इतनी पूर्ण होनी चाहिए कि अभियुक्त की निर्दोषता के अनुरूप निष्कर्ष के लिए कोई उचित आधार न छोड़ा जाए और यह दर्शाया जाना चाहिए कि सभी मानवीय संभाव्यता में कार्य केवल अभियुक्त द्वारा किया गया होगा।

31. जी पार्श्वनाथ बनाम कर्नाटक राज्य, (2010) 8 एस.सी.सी. 593 में, यह माना गया था कि सबूत की एक श्रृंखला इतनी पूरी होनी चाहिए कि अभियुक्त की बेगुनाही के अनुरूप निष्कर्ष के लिए कोई उचित आधार न छोड़े और यह दिखाना चाहिए कि सभी मानवीय संभाव्यता में कार्य केवल अभियुक्त द्वारा किया जाना चाहिए, जहां श्रृंखला में विभिन्न लिंक अपने आप में पूर्ण हैं, तो झूठी दलील या झूठी बचाव को केवल अदालत को आश्वासन देने के लिए सहायता में बुलाया जा सकता है।

32. हाल ही में राजू बनाम राजस्थान राज्य, 2022 (121) ए.सी.सी. 954 में, उपरोक्त कानूनी स्थिति को दोहराया गया है।

33. प्रस्तुत मामले में कानून के पूर्वोक्त प्रस्ताव को लागू करते हुए, हम यह पता लगाने के लिए बाध्य हैं कि क्या संचयी रूप से लिया गया है, परिस्थितियां श्रृंखला बना रही हैं जो इतनी पूर्ण है कि इस निष्कर्ष से कोई बच नहीं सकता है कि सभी सामान्य और मानवीय संभावनाओं के भीतर, अपराध केवल अभियुक्त द्वारा किया गया था और किसी और द्वारा नहीं और पूर्वोक्त निष्कर्ष के अपराध की तुलना में किसी अन्य परिकल्पना से मुक्त होना चाहिए अभियुक्त।

'अंतिम बार देखा गया' सिद्धांत -

34. पहली परिस्थिति, जिस पर अभियोजन पक्ष द्वारा भरोसा किया जाता है, 'अंतिम देखा' सिद्धांत है। यह प्रस्तुत किया गया है कि मृतका को आखिरी बार अपीलकर्ताओं की कंपनी में देखा गया था और उसके बाद उसका मृत शरीर बरामद किया गया था। मृतका की बेटी अ०सा०-3 ने अपनी जिरह में आखिरी बार देखे जाने की कहानी विकसित की जहां वह कहती है कि टेम्पो स्टैंड से लौटते समय, उसने बनिया, महेंद्र और गंगाधर को टेम्पो स्टैंड पर खड़े देखा था। उसने एक विशिष्ट बयान दिया था कि उसने किसी को अपनी मां को ले जाते या उसकी हत्या करते नहीं देखा था। इसलिए, 'अंतिम बार देखा का सिद्धांत अ०सा०-3 के साक्ष्य से पर्याप्त रूप से सिद्ध नहीं होता है।

35. अ०सा०-4, 'अंतिम बार देखे गए एक अन्य गवाह है और कहता है कि 12.07.2011 को लगभग 1:00 बजे, उसने लक्ष्मी को बनिया @ बलवीर और गंगाधर नाई के साथ गांव के टेम्पो स्टैंड पर जाते हुए देखा था, जिसने उसे बताया कि वह अपने माता-पिता के घर जा रही है। 15.07.2011 को उसे पता चला कि उसकी हत्या कर दी गई है। उन्होंने आगे बताया है कि दिनांक 12-07-2011 को ही जब सूचनादाता उनसे मिला तो उन्होंने उनके समक्ष इस तथ्य का खुलासा किया था। उल्लेखनीय है कि (अ०सा०-1) बच्चू सिंह ने मृतका की अ०सा०-4 से मुलाकात या उनके बीच किसी बातचीत के संबंध में एक शब्द भी नहीं कहा है। हैरानी की बात यह है कि इस तथ्य का उल्लेख प्राथमिकी प्रदर्श क-10 में नहीं किया गया था, जो सूचनाकर्ता द्वारा चार दिन बाद दर्ज किया गया था, जो एक महत्वपूर्ण तथ्य था। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि 'अंतिम बार देखे जाने' के बिंदु पर, अ०सा०-4 के बयान

को विवेचनाधिकारी अ०सा०-8 द्वारा दर्ज किए गए उनके बयान में जगह नहीं मिलती है, जैसा कि अ०सा०-4 ने स्वयं स्वीकार किया है।

36. अ०सा०-4 ने अपनी जिरह में आगे कहा है कि यह सच है कि कई व्यक्ति टेम्पो स्टैंड पर खड़े थे और इसलिए वह यह बताने में असमर्थ है कि लक्ष्मी किसके साथ आई थी और क्या उसके साथ कोई था या बिल्कुल अकेली थी। वह यह भी नहीं बता पा रहे हैं कि लक्ष्मी देवी टेंपो से कब गई थी और न ही उन्होंने विवेचनाधिकारी को वह जगह दिखाई है जहां वह खड़ी थी।

37. अ०सा०-4 ने अपनी जिरह में यह भी कहा है कि वह टेम्पो स्टैंड पर बच्चू सिंह के परिवार के किसी भी सदस्य से नहीं मिला और लक्ष्मी, गंगाधर और बनिया @ बलवीर के अलावा, टेम्पो स्टैंड पर उससे कोई अन्य व्यक्ति नहीं मिला। यह बयान मृतका की बेटी अ०सा०-3 के साक्ष्य के आलोक में इस गवाह की विश्वसनीयता को हिलाता है, जिसने कहा है कि वह अपनी मां के साथ टेम्पो स्टैंड पर गई थी और अपनी मां के टेम्पो में उसकी जगह लेने के बाद वहां से वापस आ गई थी। इस विरोधाभास से पता चलता है कि अ०सा०-4, वास्तव में टेम्पो स्टैंड पर मौजूद नहीं था और वह 'लास्ट सीन' का गवाह नहीं है।

38. हमें 'अंतिम बार देखे गए' बिंदु पर अ०सा०-2 के सुनी-सुनाई साक्ष्य मिलते हैं, जिसका कोई मूल्य नहीं है। विशेष रूप से, बदन सिंह और सौदान सिंह, जिन्होंने कथित तौर पर आरोपी व्यक्तियों की कंपनी में मृतका के 'लास्ट सीन' के संबंध में अ०सा०-2 को बताया था, जैसा कि अ०सा०-2 कहता है, अभियोजन पक्ष के गवाह के रूप में पूछताछ नहीं की जाती है, न ही उन्हें गवाह के रूप में आरोप-पत्र में नामित किया जाता है।

39. पूर्वोक्त विश्लेषण के आधार पर, यह स्पष्ट है कि 'अंतिम बार देखे गए' के संबंध में अभियोजन पक्ष द्वारा प्रदान किए गए साक्ष्य विश्वसनीय और भरोसेमंद नहीं हैं, बल्कि यह अस्थिर है और वास्तव में, अभियोजन साक्ष्य दर्शाता है कि 'अंतिम बार देखा गया' का कोई गवाह नहीं था। हम यह भी पाते हैं कि अ०सा०-2 (पूरन सिंह) और अ०सा०-4 (श्री चंद्र) कहीं भी यह नहीं कहते हैं कि अपीलकर्ता महेंद्र को भी उनके द्वारा मृतका के साथ टेम्पो स्टैंड पर देखा गया था। यह सच है कि अ०सा०-3 (भगवान देई) के बयान से पता चलता है कि मृतका अपीलकर्ता महेंद्र द्वारा फोन कॉल प्राप्त करने पर अपना घर छोड़ दिया था, लेकिन इस तथ्य का कोई ठोस सबूत नहीं है कि वह वास्तव में अपीलकर्ता महेंद्र के पास अपना घर छोड़ने के बाद गई थी।

40. धरम देव यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2014) 5 एस.सी.सी. 509 में, यह माना गया है कि आम तौर पर 'अंतिम बार देखा गया' सिद्धांत तब चलन में आता है जब अभियुक्त और मृतका को अंतिम बार जीवित देखा गया था और जब मृतका मृत पाया जाता है, उस समय के बीच का समय अंतराल इतना कम होता है कि अभियुक्त के अलावा किसी अन्य व्यक्ति के अपराध के अपराधी होने की संभावना असंभव हो जाती है। कुछ मामलों में यह सकारात्मक रूप से स्थापित करना मुश्किल होगा कि मृतका को आखिरी बार आरोपी के साथ देखा गया था जब एक लंबा अंतराल होता है और बीच में अन्य व्यक्तियों के आने की संभावना मौजूद होती है। हालांकि, यदि अभियोजन, विश्वसनीय साक्ष्य के आधार पर, यह स्थापित करता है कि लापता व्यक्ति को आरोपी की कंपनी में देखा गया था और उसके बाद उसे कभी नहीं देखा गया था,

जैसा कि प्रस्तुत मामले में है, तो अभियुक्त की ओर से उन परिस्थितियों की व्याख्या करना अनिवार्य है जिसमें लापता व्यक्ति और आरोपी ने साथ छोड़ा। ऐसी स्थिति में, अंतिम बार एक साथ देखे जाने की घटना और मृत शरीर या कंकाल की बरामदगी के बीच समय की निकटता, जैसा भी मामला हो, बहुत अधिक परिणाम नहीं हो सकता है।

41. (अ०सा०-5) डॉ. आर.एस. मौर्य के बयान का उल्लेख करते हुए, राज्य के अधिवक्ता द्वारा यह जोरदार प्रस्तुत किया गया है कि 15.07.2011 को मृतका के शव के शव परीक्षण के समय, डॉक्टर (अ०सा०-5) द्वारा यह पाया गया है कि मृतका की मृत्यु 12.07.2011 को लगभग 1:00 बजे हुई होगी। उन्होंने यह भी कहा है कि मौत शव परीक्षण से तीन दिन पहले हुई होगी। उक्त चिकित्सा साक्ष्य के आधार पर, यह प्रस्तुत किया गया है कि अपीलकर्ताओं की कंपनी में मृतका के 'लास्ट सीन' के तुरंत बाद, उसकी हत्या कर दी गई थी।

42. 'अंतिम बार देखे गए' सिद्धांत के संबंध में कानूनी स्थिति को सर्वोच्च न्यायालय और इस न्यायालय के निर्णयों की एक श्रेणी में भी समझाया गया है जैसे कि गोवा राज्य बनाम पांडुरंग मोहिते, ए.आई.आर. 2009 एस.सी. 1066, उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सतीश, 2005 (3) एस.सी.सी. 114, मोहिबुर रहमान और असम राज्य 2002 (2) जे.आई.सी. 972 (उच्चतम न्यायालय), रोहताश कुमार बनाम हरियाणा राज्य, 2013 (82) ए.सी.सी. 401 (एस.सी.)(पैराग्राफ 25), अशोक बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2015) 4 एस.सी.सी. 393, निरंजन पांजा बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, 2010 (6) एस.सी.सी. 525।

43. यदि हम पूर्वोक्त निर्णयों में की गई टिप्पणियों से उभरने वाले अंतिम दृश्य के बारे में कानूनी सिद्धांत को संक्षेप में प्रस्तुत करते हैं, तो हम एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि वास्तव में, कुछ मामलों में यह सकारात्मक रूप से स्थापित करना मुश्किल होगा कि मृतका को अंतिम बार अभियुक्त के साथ देखा गया था जब एक लंबा अंतराल होता है और बीच में अन्य व्यक्तियों के आने की संभावना मौजूद होती है। यह निष्कर्ष निकालने के लिए किसी अन्य सकारात्मक सबूत के अभाव में कि अभियुक्त और मृतका को आखिरी बार एक साथ देखा गया था, उन मामलों में अपराध के निष्कर्ष पर आना खतरनाक होगा जहां अभियोजन पक्ष अंतिम बार एक साथ देखे जाने के सिद्धांत पर निर्भर करता है। इसके अलावा, यह हमेशा आवश्यक होता है कि अभियोजन पक्ष को मृत्यु का समय निर्धारित करना चाहिए। यहां तक कि अगर यह माना जाता है कि प्रस्तुत मामले में मृतका की मृत्यु 12.07.2011 को हुई थी, जैसा कि चिकित्सा साक्ष्य से अनुमान लगाया जा सकता है, तो सवाल यह है कि अभियोजन पक्ष किस साक्ष्य के आधार पर 'अंतिम बार देखे गए' सिद्धांत को स्थापित करने में सफल होता है और इसका उत्तर यह है कि कोई सबूत नहीं है।

44. यह सच है कि स्थापित 'अंतिम बार एक साथ देखा' का सिद्धांत आरोपी पर सबूत के बोझ को स्थानांतरित करता है, जिससे उसे यह समझाने की आवश्यकता होती है कि घटना कैसे हुई थी। इस संबंध में कोई स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने में अभियुक्त की ओर से विफलता उसके खिलाफ एक बहुत मजबूत धारणा को जन्म देगी।

45. एक स्थापित 'अंतिम बार देखा' मामले में, अभियोजन पक्ष ने घटना के सटीक घटित होने

को साबित करने के लिए छूट दी, क्योंकि अभियुक्त को स्वयं घटना का विशेष ज्ञान होगा और इस प्रकार धारा 106 साक्ष्य अधिनियम के अनुसार सबूत का बोझ होगा, हालांकि सबूत का प्रारंभिक बोझ, अभियुक्त के अपराध की ओर इशारा करते हुए पर्याप्त सबूत कम करने के लिए, अभियोजन पक्ष पर है।

46. इसलिए प्रस्तुत मामले में, साक्ष्य की सावधानीपूर्वक जांच हमें निश्चित निष्कर्ष पर ले जाती है कि 'अंतिम बार देखा गया' सिद्धांत चला गया है और इस मोड़ पर, हम यह भी पाते हैं कि 'अंतिम बार देखे गए' सिद्धांत पर भरोसा करने वाले विद्वान विचारण न्यायालय ने एक गंभीर त्रुटि की है।

अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारोक्ति -

47. एक अन्य परिस्थिति के रूप में, अपीलकर्ताओं के अपराध को साबित करने के लिए, अभियोजन पक्ष ने अपीलकर्ता गंगाधर द्वारा (अ०सा०-4) श्री चंद्रा को की गई अतिरिक्त-न्यायिक स्वीकारोक्ति पर भरोसा किया है। अ०सा०-4 ने अपने मुख्य परीक्षण में कहा है कि 16.07.2011 को अपीलकर्ता गंगाधर नाई गांव में उसके पास आया था और उसे बचाने का अनुरोध किया था। उसने अपना जुर्म स्वीकार करते हुए बताया कि महेंद्र और बलवीर के साथ मिलकर उसने गंभीर गलती की है और उन दोनों के साथ उसने लक्ष्मी की हत्या कर दी है। साथ ही शव को छुपाने की जगह और हत्या के हथियार (चाकू) व मृतका के बैग व हत्या के समय का भी खुलासा किया। तथापि, अपनी जिरह में उन्होंने कहा कि गंगाधर उनके पास 15-07-2011 को आया था और यह विरोधाभास बचाव पक्ष द्वारा उनकी जिरह में उनके समक्ष रखा गया था।

48. जहां तक स्वीकारोक्ति का संबंध है, कानून कभी नहीं कहता है कि स्वीकारोक्ति पर, किसी भी परिस्थिति में, बिल्कुल भी भरोसा नहीं किया जा सकता है। यदि कोई सीधे आपराधिक आरोप में अपने अपराध को स्वीकार करता है, तो उसे अपने अपराध को स्वीकार करने के लिए कहा जाता है, जिसे कानून में स्वीकारोक्ति कहा जाता है। हालांकि, अगर स्वीकारोक्ति किसी भी प्रलोभन, धमकी या वादे के कारण हुई है, तो यह सभी परिस्थितियों में, एक आपराधिक कार्यवाही में अप्रासंगिक है।

49. अतिरिक्त-न्यायिक स्वीकारोक्ति के संबंध में, यह उत्तर प्रदेश राज्य बनाम एम.के एंथोनी, (1985) 1 एस.सी.सी. 505 में अवधारित किया गया था कि असाधारण स्वीकारोक्ति को साक्ष्य का एक कमजोर टुकड़ा माना जाता है, लेकिन कानून का कोई नियम नहीं है, न ही विवेक का नियम है कि जब तक पुष्टि नहीं की जाती तब तक उस पर कार्रवाई नहीं की जा सकती है। नारायण सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (1985) 4 एस.सी.सी. 26 में यह भी कहा गया था कि यह किसी भी अदालत के लिए इस धारणा के साथ शुरू करने के लिए विकल्प खुला नहीं है कि अतिरिक्त-न्यायिक स्वीकारोक्ति एक कमजोर प्रकार का साक्ष्य है। यह परिस्थितियों की प्रकृति, संस्वीकृति के समय और गवाहों की विश्वसनीयता पर निर्भर करेगा, जो इस तरह की स्वीकारोक्ति के बारे में बोलते हैं। इस विषय पर एक अन्य प्राधिकरण जगता बनाम हरियाणा राज्य, (1974) एस.सी.सी. (4) 747 है जिसमें यह स्पष्ट किया गया था कि एक अतिरिक्त-न्यायिक स्वीकारोक्ति के बारे में सबूत, चीजों की प्रकृति में, साक्ष्य का एक कमजोर टुकड़ा है। यदि संभावना में कमी है,

तो इसे अस्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं होगी।

50. यदि हम पूर्वोक्त सिद्धांत को इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में समझते हैं, तो हम पाते हैं कि (अ०सा०-4) श्री चंद्रा ने अपनी परीक्षा में, न केवल अपीलकर्ता गंगाधर नाई द्वारा 16.07.2011 को उनके सामने की गई स्वीकारोक्ति के बारे में कहा है, बल्कि इस तथ्य के प्रकटीकरण के बारे में भी बताया है कि तीनों अपीलकर्ताओं ने चाकू से लक्ष्मी की हत्या करने के बाद रेलवे के अलावा घास के नीचे पेड़ों के पास उसके शव को छुपा दिया था बाउंड्री और उसका बैग भी वहीं छिपा हुआ था। उन्होंने अपनी जिरह में यह भी कहा कि अपीलकर्ता गंगाधर ने 16.07.2011 को उनके सामने न्यायकेत्तर स्वीकारोक्ति की थी। यह बयान हमें विवेचनाधिकारी अ०सा०-8 के बयान पर ले जाता है, जिन्होंने कहा है कि 16.07.2011 को उन्होंने घटनास्थल का दौरा किया था और वापस आते समय, उन्होंने रास्ते में श्री चंद्रा पुत्र चिब्बो का बयान दर्ज किया था और उनके बयान के आधार पर, आरोपी महेंद्र के नाम, गंगा धार और बनिया @ बलवीर प्रकाश में आए। हम यह भी पाते हैं कि न्यायकेत्तर स्वीकारोक्ति के लिए, अ०सा०-4 द्वारा अलग-अलग तारीखें बताई गई हैं कि अपीलकर्ता गंगाधर उसके पास कब आया और जहां तक अतिरिक्त-न्यायिक स्वीकारोक्ति के तथ्य का संबंध है, वह दोनों तारीखों को सही बताता है जो उसकी गवाही को संदिग्ध बनाता है।

51. हम इस पहलू की भी जांच करने के लिए बाध्य हैं कि अपीलकर्ता गंगाधर ने (अ०सा०-4) श्री चंद्रा को उनके समक्ष अपनी न्यायकेत्तर स्वीकारोक्ति करने के लिए क्यों चुना। अ०सा०-4 एक किसान है और उसी गांव में रहता है जहां अपीलकर्ता बलवीर और गंगाधर रहते हैं। जैसा कि वह अपने साक्ष्य में कहता है, वह एक आम आदमी है जिसका कोई प्रभावशाली क्षेत्र नहीं है और न ही कोई उच्च आधिकारिक पद या सूचनाकर्ता के साथ कोई अंतरंग संबंध है ताकि अपीलकर्ता गंगाधर को यह आभास हो कि उसने उसे बचाया होगा। जिरह में अ०सा०-4 कहता है कि वह ठाकुर जाति का है और गंगाधर जाति से नाई है। वे एक-दूसरे के रिश्तेदार नहीं हैं और वह गंगाधर के साथ किसी भी दोस्ती में नहीं रहा। वह विवेचनाधिकारी अ०सा०-8 का भी खंडन करता है जब वह पुलिस को इसके 3-4 दिन बाद अतिरिक्त न्यायिक स्वीकारोक्ति के तथ्य का खुलासा करने के लिए बयान देता है, जबकि अ०सा०-8 इस तारीख को 16.07.2011 बताता है। इस स्थिति को भी ध्यान में रखा जा सकता है कि क्या अभियुक्त द्वारा अचानक, उसकी ओर से किसी ठोस कारण के अभाव में, विशेष रूप से जब जांच एजेंसी के पास अपराध के संबंध में कोई सुराग नहीं था, को वास्तविक और विश्वसनीय माना जा सकता है। इस तथ्य को भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है कि अपीलकर्ता गंगाधर को मुख्य अपराधी नहीं कहा गया है। यह अपीलकर्ता महेंद्र था, जिसका नाम उस व्यक्ति के रूप में बताया गया था जिसके बुलाने पर मृतका ने अपना घर छोड़ा था।

52. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने इन बयानों का जिक्र करते हुए जोरदार तरीके से कहा कि पूर्वोक्त बयान के आलोक में, अपीलकर्ता गंगाधर, जो एक आम आदमी था और कभी भी अपनी रक्षा करने की स्थिति में नहीं था, के पास गवाह श्री चंद्र के पास जाने और हत्या के अपराध की

इतनी गंभीर स्वीकारोक्ति करने का कोई कारण नहीं था।

53. अ०सा०-4 की गवाही और अतिरिक्त-न्यायिक स्वीकारोक्ति के आसपास की परिस्थितियों की बारीकी से जांच करने के बाद, हम पाते हैं कि इस मामले में कथित अतिरिक्त-न्यायिक स्वीकारोक्ति सबूत का एक विश्वसनीय टुकड़ा नहीं है। हाल ही में भारत संघ बनाम आर. मेट्री, (2022) 6 एस.सी.सी. 525 में, सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि अतिरिक्त-न्यायिक स्वीकारोक्ति साक्ष्य का कमजोर टुकड़ा है और जब तक कि इस तरह की स्वीकारोक्ति स्वैच्छिक, भरोसेमंद और विश्वसनीय नहीं पाई जाती है, तब तक केवल पुष्टि के बिना उसी के आधार पर दोषसिद्धि उचित नहीं है।

54. हमें यह मानने में कोई संकोच नहीं है कि पूर्वोक्त न्याय निर्णय विधि में उल्लिखित सिद्धांत इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर पूरी तरह से लागू होते हैं। अपीलकर्ता गंगाधर द्वारा अ०सा०-4 को किया गया कथित अतिरिक्त-न्यायिक कबूलनामा विश्वसनीय नहीं है और इसके लिए ठोस पुष्टि की आवश्यकता है, जो निस्संदेह इस मामले में गायब है और इसलिए, हम कथित अतिरिक्त-न्यायिक स्वीकारोक्ति को अनदेखा और अस्वीकार करते हैं, जैसा कि अभियोजन पक्ष द्वारा भरोसा किया गया है।

करेंसी नोट और चाकू का मकसद और बरामदगी -

55. निर्णयों की एक श्रेणी में, यह तय किया गया है कि मकसद एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है और परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर एक मामले में माना जाता है।

56. अपर शासकीय अधिवक्ता ने अपने तर्क में, जैसा कि इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया था, इस तथ्य पर जोर दिया है कि अपीलकर्ता महेंद्र का मृतका के साथ कुछ संबंध था और यह तथ्य उसे भी पता था कि मृतका के घर में दो लाख रुपये, जो उसके पति अ०सा०-1 द्वारा प्राप्त किए गए थे, उसकी भूमि के बिक्री में उसके हिस्से के रूप में, रखे थे। यह साक्ष्य में लाया गया है कि मृतका दो लाख रुपये, कपड़े और जेवरात के साथ अपना घर छोड़कर गई थी। राज्य के अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि उपरोक्त धन और आभूषण हड़पने के लिए, मृतका को अपीलकर्ताओं द्वारा ले जाया गया था और पैसे और लेख लेने के बाद, उन्होंने मृतका की हत्या कर दी और बाद में, उपरोक्त राशि 90,000/ में से अलग अलग भागों में विभिन्न अपीलकर्ताओं के कब्जे से बरामद किये गए थे। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि अपीलकर्ताओं के कब्जे से बरामद किए गए करेंसी नोट अ०सा०-2 (पूरन सिंह) के हस्ताक्षर वाले थे। अ०सा०-2 ने अपने बयान में कहा है कि उसने प्रत्येक मुद्रा नोट पर अपने हस्ताक्षर किए थे। आगे यह तर्क दिया गया है कि इसमें कोई संदेह नहीं है कि अपीलकर्ताओं से प्राप्त करेंसी नोट वही थे, जिन्हें मृतका अपने घर से निकलते समय अपने साथ ले गई थी।

57. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि अ०सा०-2 का साक्ष्य प्राकृतिक नहीं है और वह एक अविश्वसनीय गवाह है जब वह कहता है कि उसने प्रत्येक मुद्रा नोट पर अपना हस्ताक्षर किया था। अ०सा०-2 ने गवाही दी है कि दो लाख रुपये 100/- रुपये के करेंसी नोटों के रूप में थे और चार लाख रुपये 500/- रुपये के करेंसी नोटों के रूप में थे और उन्होंने सभी मुद्रा नोटों पर

हस्ताक्षर किए थे। मृतका ने अपने घर से निकलते समय एक सौ रुपये के नोट के बंडल ले लिए थे।

58. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि अ०सा०-2 के पूर्वोक्त बयान के आलोक में, यह माना जा सकता है कि मृतका द्वारा 100/- रुपये प्रति करेंसी नोट के रूप में दो हजार करेंसी नोट लिए गए थे और अ०सा०-2 ने पहले ही प्रत्येक नोट पर अपना हस्ताक्षर कर दिया था। यह जोरदार तर्क दिया गया है कि यह न तो स्वाभाविक है और न ही विश्वसनीय है कि अ०सा०-2 ने बिना किसी कारण के दो हजार से अधिक मुद्रा नोटों पर हस्ताक्षर किए और उनका बयान सामान्य ज्ञान को संतुष्ट नहीं करता है। हम अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता के तर्क में बल पाते हैं। दो हजार से अधिक करेंसी नोटों और अन्य मुद्रा नोटों पर भी, जो 500/- रुपये के मुद्रा नोटों के रूप में थे, हस्ताक्षर करने की कोई आवश्यकता या औचित्य नहीं था।

59. राज्य के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि अ०सा०-7 साबित करता है कि अपीलकर्ता महेंद्र और गंगाधर द्वारा क्रमशः 100/- रुपये के नोटों के रूप में 40,000/- रुपये प्राप्त किए गए थे और पूरन सिंह, अ०सा०-2 के हस्ताक्षर बंडल के पहले और अंतिम नोट पर पाए गए थे। तदनुसार, अपीलकर्ता बलवीर द्वारा अपने घर से 100 रुपये के नोटों के बंडल के रूप में 10,000 रुपये प्राप्त किए गए थे और इस बंडल में भी पहले और आखिरी नोट पर पूरन सिंह, अ०सा०-2 के हस्ताक्षर पाए गए थे।

60. हालांकि, उपरोक्त बरामदगी को अपीलकर्ताओं ने धारा 313 द०प्र०स० के तहत अपने बयान में अस्वीकार कर दिया है। यह उल्लेखनीय है कि धारा 313 द०प्र०स० के तहत अपने बयान में अपीलकर्ता बलवीर से 10,000 रुपये की बरामदगी के संबंध में कोई सवाल नहीं पूछा गया है। अपीलकर्ता के अधिवक्ता - बलवीर ने जोरदार तर्क दिया कि विचारण न्यायालय की ओर से यह चूक अपीलकर्ता के बचाव के लिए पूर्वाग्रह पैदा करती है, क्योंकि उसे उसके खिलाफ लगाए गए करेंसी नोटों की बरामदगी के दोषकारी सबूतों के बारे में पता नहीं था।

61. नर सिंह बनाम हरियाणा राज्य, (2015) 1 एस.सी.सी. 496 पर भरोसा किया गया है जिसमें यह माना गया है कि -

(10). धारा 313 द०प्र०स० के तहत दो तरह की परीक्षाएं होती हैं। धारा 313 (1)(ए) द०प्र०स० के तहत पहला मामला जांच या मुकदमे के किसी भी चरण से संबंधित है; जबकि धारा 313 (1)(बी) द०प्र०स० के तहत दूसरा मामला अभियोजन पक्ष के गवाहों से पूछताछ करने और अभियुक्त को अपने बचाव में प्रवेश करने के लिए बुलाए जाने के बाद होता है। पहला विशेष और वैकल्पिक है; लेकिन दूसरा सामान्य और अनिवार्य है।

"(11). धारा 313 द०प्र०स० एक अभियुक्त के लिए एक प्रक्रियात्मक सुरक्षा निर्धारित करती है, जिससे उसे साक्ष्य में उसके खिलाफ दिखाई देने वाले तथ्यों और परिस्थितियों को समझाने का अवसर मिलता है और यह अवसर अभियुक्त के दृष्टिकोण से मूल्यवान है .... धारा 313 द०प्र०स० (1)(बी) का उद्देश्य अभियुक्त के पास आरोप का सार लाना है ताकि अभियुक्त अपने खिलाफ सबूतों में दिखाई देने वाली प्रत्येक परिस्थिति को स्पष्ट कर सके। इस धारा के प्रावधान अनिवार्य हैं और अदालत पर यह कर्तव्य डालता है कि वह अभियुक्त को प्रत्येक परिस्थिति और उसके खिलाफ साक्ष्य को स्पष्ट करने का अवसर प्रदान करे। धारा 313 (1)(बी) द०प्र०स०

के तहत आरोपी से पूछताछ महज औपचारिकता नहीं है।

62. सतबीर सिंह बनाम हरियाणा राज्य, (2021) 6 एस.सी.सी. 1 में, इसे इस तरह दोहराया गया था -

"यह गंभीर चिंता का विषय है कि, अक्सर, विचारण न्यायालय धारा 313 द०प्र०स० के तहत एक अभियुक्त के बयान को बहुत ही आकस्मिक और सरसरी तरीके से दर्ज करते हैं, विशेष रूप से आरोपी से उसके बचाव के बारे में सवाल किए बिना। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि धारा 313 द०प्र०स० के तहत एक अभियुक्त की परीक्षा को केवल प्रक्रियात्मक औपचारिकता के रूप में नहीं माना जा सकता है, क्योंकि यह निष्पक्षता के मूल सिद्धांत पर आधारित है। इस प्रावधान में प्राकृतिक न्याय के मूल्यवान सिद्धांत - "ऑडी अल्टरम पार्टम" को शामिल किया गया है, क्योंकि यह अभियुक्त को उसके खिलाफ पेश होने वाली दोषकारी सामग्री के लिए स्पष्टीकरण देने में सक्षम बनाता है। इसलिए, यह अदालत की ओर से अभियुक्त से निष्पक्ष, सावधानी और सतर्कता के साथ पूछताछ करने का दायित्व लगाता है। अदालत को आरोपी के सामने दोषकारी परिस्थितियां रखनी चाहिए और उसकी प्रतिक्रिया मांगनी चाहिए।

63. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पूर्वोक्त मामले के कानूनों में की गई टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए, हमारा विचार है कि उपरोक्त चूक से अपीलकर्ता बलवीर को गंभीर पूर्वाग्रह हुआ है जो अभियोजन पक्ष के खिलाफ जाता है।

64. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने जोरदार ढंग से प्रस्तुत किया है कि, यदि धारा 313 द०प्र०स० के तहत अभियुक्त द्वारा अपने बयान में किसी भी परिस्थिति को स्पष्ट नहीं किया गया है, तो यह अकेले उन्हें दोषी ठहराए जाने के लिए उत्तरदायी नहीं है। भारत बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2003) 3 एस.सी.सी. 106 पर भरोसा किया गया है, जिसमें यह देखा गया है कि यदि अभियुक्त धारा 313 द०प्र०स० के तहत अपने बयान में कोई स्पष्टीकरण देने में विफल रहता है, तो उसे उसके अपराध का प्रमाण नहीं माना जा सकता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि उपरोक्त कानून अपीलकर्ताओं के पक्ष में झुकता है क्योंकि अभियोजन पक्ष पर पड़े सबूत के बोझ को बदला नहीं जा सकता है।

65. दोनों पक्षों द्वारा दी गई पूर्वोक्त प्रस्तुतियाँ हमें अपराध करने के मकसद और अपीलकर्ताओं के इशारे पर नोटों की कथित बरामदगी के संदर्भ में रिकॉर्ड पर सबूतों की सावधानीपूर्वक जांच करने के लिए ले जाती हैं।

66. इस तथ्य का पता लगाने के लिए कि क्या अपीलकर्ता महेंद्र का मृतका के साथ कुछ संबंध था, हम अ०सा०-1 (बच्चू सिंह) और अ०सा०-2 (पूरन सिंह) के मौखिक साक्ष्य को पढ़ने के लिए बाध्य हैं। अ०सा०-1 ने गवाही दी कि अपीलकर्ता महेंद्र उसका पड़ोसी है, जो उसे अच्छी तरह से जानता था और उसके घर आता था। हमें अ०सा०-1 की पूरी गवाही में एक संकेत भी नहीं मिलता है कि उसकी पत्नी, मृतका और अपीलकर्ता महेंद्र का कोई संबंध था। उसके सगे भाई अ०सा०-2 ने गवाही दी है कि उसने पुलिस के सामने कहा है कि उसे महेंद्र के चरित्र पर कुछ संदेह था। वर्तमान घटना से बहुत पहले महेंद्र अपने भाई बच्चू सिंह के घर जाता था।

67. मृतका की पुत्री अ०सा०-3 का कहना है कि उसकी माँ को छोड़कर घर में सभी लोग महेंद्र की यात्रा को नापसंद करते थे और वह उसे नापसंद

करती थी क्योंकि वह नशे की स्थिति में आता था।

68. इसके अलावा, न्यायालय का ध्यान प्रथम विवेचनाधिकारी अ०सा०-8 (देवेंद्र सिंह) के बयान की ओर आकर्षित किया जाता है, जिन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि *"विवेचना में महेंद्र और मृतका श्रीमती लक्ष्मी देवी का प्रेम प्रसंग मेरी जानकारी में नहीं आया था बल्कि मृतका के पास दो लाख रुपए तफ़तीश में आई थी जिसकी वजह से उसका कत्ल हुआ था।"*

69. मृतका के पति अ०सा०-1 और प्रथम विवेचनाधिकारी अ०सा०-8 के बयान के आलोक में, हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि रिकॉर्ड पर यह दिखाने के लिए कोई सबूत नहीं है कि मृतका और अपीलकर्ता महेंद्र किसी संबंध में थे।

70. जहां तक अपीलकर्ताओं के इशारे पर नोटों की बरामदगी का संबंध है, अ०सा०-7 (एस.आई. देवेंद्र कुमार त्यागी) और अ०सा०-8 (देवेंद्र सिंह) के बयान बरामदगी की कहानी का एक स्केच बनाते हैं जिस तरह से अपीलकर्ता महेंद्र और गंगाधर के कब्जे से, जब उन्हें पुलिस द्वारा गिरफ्तार किया गया था, 40,000/- रुपये वसूले गए थे और फ़र्द बरामदगी प्रदर्श क-14 को अ०सा०-8 द्वारा साबित किया गया था। जबकि अपीलकर्ता बलवीर के इशारे पर 10,000/- रुपये की बरामदगी की गई थी, जो हमें याद दिलाता है कि अपीलकर्ता बलवीर के इशारे पर करेंसी नोटों की बरामदगी साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के दायरे में आती है।

71. अ०सा०-7 (एस.आई. देवेंद्र कुमार त्यागी) के बयान के अनुसार, आरोपी बलवीर ने पुलिस हिरासत में कहा था कि उसने अन्य सह-अभियुक्त महेंद्र और गंगाधर के साथ लक्ष्मी की हत्या कर दी थी और शव को रेलवे ट्रैक के पास छुपाया गया था और उसके बैग से 90,000/- रुपये उनके बीच वितरित किए गए थे और उसे अपने हिस्से के रूप में 10,000/- रुपये मिले थे, जिसे उसने अपने घर में एक बक्से में छुपा रखा था। इस बयान के बाद जब पुलिस उसके घर गई तो उसने अपने घर के अंदर एक बॉक्स खोला और पॉलिथीन में रखे 100 रुपये के नोटों का एक बंडल उसके द्वारा पुलिस को सौंप दिया गया और बंडल पर पहले और आखिरी नोटों पर पूरन सिंह का नाम लिखा हुआ था। नोटों के बंडल को जब्त कर मौके पर ही फ़र्द बरामदगी प्रदर्श क-12 तैयार किया गया। अ०सा०-8 (देवेंद्र सिंह) ने भी फ़र्द बरामदगी को साबित किया। उपर्युक्त लेख सामग्री प्रदर्श के रूप में सिद्ध हुए। अ०सा०-7 द्वारा 1 से 9 अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि उपरोक्त बरामदगी साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के तहत स्वीकार्य है, जो अपीलकर्ताओं के खिलाफ एक मजबूत परिस्थिति है और अ०सा०-7 और अ०सा०-8 इस तरह की बरामदगी को साबित करने के लिए महत्वपूर्ण गवाह हैं।

72. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा पूर्वोक्त बरामदगी को चुनौती दी गई है। यह तर्क दिया गया है कि कथित बरामदगी का कोई सार्वजनिक गवाह नहीं है और बरामदगी झूठी और मनगढ़ंत है। इस संबंध में, मृतका के सूचनाकर्ता/पति अ०सा०-1 की जिरह का उल्लेख किया गया है, जिसने अपनी जिरह में गवाही दी है कि अपीलकर्ता गंगाधर के कब्जे से 90,000/- रुपये केवल सुबह 10:00 बजे बरामद किए गए थे और तारीख 16 तारीख थी। उन्होंने यह भी कहा कि बरामदगी के समय, वह गांव के कई व्यक्तियों के साथ मौके पर मौजूद थे और अपीलकर्ता गंगाधर भी पुलिस की हिरासत में मौजूद थे।

हालांकि, मेमो को लेकर पुलिस ने उसके हस्ताक्षर नहीं लिए और थाने में फ़र्द बरामदगी तैयार किया गया।

73. चूंकि अ०सा०-1 सूचनाकर्ता और मृतका का पति है, इसलिए उसकी गवाही का एक विशिष्ट वजन है। यह ध्यान रखना बहुत महत्वपूर्ण है कि इस बिंदु पर, अभियोजन पक्ष ने अदालत से अनुरोध नहीं किया कि वह उसे अ०सा०-1 से जिरह करने की अनुमति दे और इस स्थिति में, उसका पूर्वोक्त बयान बल पाता है और अभियोजन पक्ष पर बाध्यकारी है और यह हमें जावेद मसूद और अन्य बनाम राजस्थान राज्य (2010)3 उच्चतम न्यायालय 538 मामले में प्रख्यापित प्रासंगिक कानून में ले जाता है जिसमें यह माना गया है कि -

“19.............. मोहम्मद अयूब (अ०सा०-6) की गवाही को अभियोजन पक्ष द्वारा आसानी से नहीं देखा जा सकता है। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में गवाही दी है कि अ०सा०-5, 13 और 14 घटनास्थल पर मौजूद नहीं थे। यह पता नहीं चला है कि निचली अदालत में शासकीय अधिवक्ता ने उन्हें 'पक्षद्रोही' घोषित करने के लिए अदालत की अनुमति क्यों नहीं मांगी। उसका साक्ष्य, जैसा कि यह है, अभियोजन पक्ष के लिए बाध्यकारी है। खण्ड न्यायपीठ द्वारा कोई कारण, बहुत कम वैध कारण नहीं बताया गया है कि अ०सा०-6 के साक्ष्य की किस प्रकार अनदेखी की जा सकती है।

प्रस्तुत मामले में अभियोजन पक्ष ने अ०सा०-6, 18, 29 और 30 को कभी भी "पक्षद्रोही" घोषित नहीं किया। उनके साक्ष्य अभियोजन पक्ष का समर्थन नहीं करते थे। इसके बजाय, इसने बचाव का समर्थन किया। कानून में ऐसा कुछ भी नहीं है जो बचाव पक्ष को अपने सबूतों पर भरोसा करने से रोकता है।

74. उपरोक्त कानूनी स्थिति के आलोक में, यदि हम अ०सा०-1 के पूर्वोक्त कथन की जांच करते हैं, तो हम पाते हैं कि अ०सा०-1 के अनुसार, अपीलकर्ता गंगाधर से अकेले 90,000/- रुपये वसूले गए थे और यदि इस कथन को यथावत लिया जाता है, तो अपीलार्थी बलवीर के इशारे पर 10,000/- रुपये की बरामदगी की कहानी पूरी तरह से झूठी और निराधार हो जाती है। यह बयान यह भी स्पष्ट करता है कि अपीलकर्ता महेंद्र मौके पर मौजूद नहीं था जब 90,000 रुपये बरामद किए जाने की बात कही जाती है और उसके पास से कोई पैसा बरामद नहीं किया गया था। यह उल्लेख करना भी महत्वपूर्ण है कि प्रदर्श क-14, फ़र्द बरामदगी में 17.07.2011 की तारीख है, जबकि सूचनाकर्ता अ०सा०-1 में कहा गया है कि बरामदगी 16 तारीख को की गई थी।

75. साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के तहत बरामदगी साक्ष्य के लिए, आवश्यक शर्तों को इस तरह प्रतिपादित किया गया है जैसे कि अंतर सिंह बनाम राजस्थान राज्य, ए.आई.आर. 2004 एस.सी. 2865 - "इस धारा को संचालन में लाने के लिए आवश्यक पहली शर्त एक तथ्य की खोज है, यद्यपि एक प्रासंगिक तथ्य, एक अपराध के आरोपी व्यक्ति से प्राप्त जानकारी के परिणामस्वरूप है। दूसरा यह है कि इस तरह के तथ्य की खोज को अपदस्थ किया जाना चाहिए। तीसरा यह है कि सूचना प्राप्त होने के समय अभियुक्त को पुलिस हिरासत में होना चाहिए। अंतिम लेकिन सबसे महत्वपूर्ण शर्त यह है कि केवल "इतनी जानकारी" जो इस तथ्य से स्पष्ट रूप से संबंधित है, स्वीकार्य है। बाकी जानकारी को बाहर रखा जाना चाहिए।

76. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि यह घटना 12.07.2011 को हुई थी और

अपीलकर्ता महेंद्र और बलवीर को पुलिस ने 17.07.2011 को गिरफ्तार किया था और अ०सा०-8 के बयान के अनुसार, उनके पास 40,000/- रुपये मूल्य के करेंसी नोट थे, जिनमें से प्रत्येक की जेब में 100/- रुपये के नोट थे। यह प्रस्तुत किया गया है कि यह काफी असंभव है कि घटना के पांच दिनों के बाद भी, वे कथित मुद्रा नोटों के साथ भटक रहे थे, जो उनके द्वारा मृतका से प्राप्त किए गए थे। यह भी तर्क दिया गया कि उक्त बरामदगी का कोई सार्वजनिक या स्वतंत्र गवाह नहीं है और अ०सा०-1 का बयान, जिसमें कहा गया है कि बरामदगी ज्ञापन थाना में तैयार किया गया था, अपने आप में करेंसी नोटों की कथित बरामदगी की पूरी कहानी को गलत साबित करता है। मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, हम खुद को अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता की प्रस्तुतियों से सहमत पाते हैं।

77. यह भी उल्लेखनीय है कि उपरोक्त बरामदगी साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के दायरे में नहीं आती है, क्योंकि यह पुलिस हिरासत में दोनों अपीलकर्ताओं से प्राप्त किसी भी जानकारी के परिणामस्वरूप नहीं की गई थी।

78. हम (अ०सा०-2) पूरन सिंह के कथन को याद कर सकते हैं, जिन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि प्रत्येक मुद्रा नोट पर उन्होंने अपने हस्ताक्षर किए थे। जाहिर है, आरोपी व्यक्तियों से कथित रूप से प्राप्त प्रत्येक मुद्रा नोट पर (अ०सा०-2) पूरन सिंह के हस्ताक्षर नहीं पाए जाते हैं। इस तथ्य को भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है कि उक्त करेंसी नोटों को अदालत के समक्ष उसकी गवाही दर्ज करने के समय अ०सा०-2 के समक्ष नहीं रखा गया था और उसके पास मुद्रा नोटों पर अपने हस्ताक्षर की पहचान करने और यह साबित करने का कोई अवसर नहीं था कि वे वही मुद्रा नोट हैं जिन पर उसके द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे।

79. परिस्थितियों की श्रृंखला को पूरा करने के लिए एक और कड़ी अभियुक्त अपीलकर्ताओं महेंद्र और गंगाधर की ओर इशारा करने पर चाकुओं की बरामदगी है, जिन्हें अभियोजन पक्ष द्वारा हत्या के हथियार होने का दावा किया जाता है। उपरोक्त चाकू अ०सा०-7 द्वारा सामग्री प्रदर्श-10 और 11 के रूप में साबित हुए हैं। उनके द्वारा यह गवाही दी गई है कि 17.7.2011 को उपरोक्त दोनों अपीलकर्ताओं को पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया था। उनके निशाने पर हत्या के हथियार, दो चाकू बरामद किए गए, जो पुलिस को दिए गए उनके बयान के बाद किए गए थे, जिसमें उन्होंने अपना अपराध कबूल किया था।

80. राज्य के अधिवक्ता ने जोरदार रूप से प्रस्तुत किया है कि चाकू की बरामदगी दोनों अपीलकर्ताओं द्वारा किए गए प्रकटीकरण बयान के अनुसार खोजा गया एक तथ्य है जो साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के तहत स्वीकार्य है। फ़र्द बरामदगी (प्रदर्श क-16) और बरामदगी के स्थान की नक्शा नज़री प्रदर्श क-15 को विवेचनाधिकारी अ०सा०-8 द्वारा ठीक से साबित किया गया है। महेंद्रन बनाम तमिलनाडु राज्य, (2019) 5 एस.सी.सी. 67 पर भरोसा करते हुए, उन्होंने प्रस्तुत किया है कि आरोपी व्यक्तियों द्वारा अलग-अलग किए गए खुलासे के आधार पर तैयार किए गए बरामदगी के सामान्य ज्ञापन के आधार पर खोजा गया प्रासंगिक तथ्य स्वीकार्य है और यह तर्क फ़र्द बरामदगी प्रदर्श क-16 के आलोक में आगे बढ़ाया गया है, जो एक संयुक्त फ़र्द बरामदगी है।

81. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने यह तर्क देते हुए कथित बरामदगी पर हमला किया है कि

कथित बरामदगी 17.7.2011 को की गई है, यानी घटना के पांच दिन बाद। उक्त बरामदगी का कोई सार्वजनिक या स्वतंत्र गवाह नहीं है, जैसा कि विवेचनाधिकारी (अ०सा०-8) देवेंद्र सिंह ने स्वयं स्वीकार किया है और केवल पुलिस अधिकारियों के साक्ष्य विश्वसनीय नहीं हैं।

82. दोनों पक्षों की उपरोक्त प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियाँ हमें कथित हत्या के हथियारों की बरामदगी के संबंध में सबूतों तक ले जाती हैं। नक़्शा नज़री (प्रदर्श क-15) और (क-21) से पता चलता है कि बरामदगी बाबू के पुत्र गिरिराज के खेत से की गई है। यह रेलवे की सीमा और सड़क से सटा एक विशाल मैदान है। कुछ दूरी पर रेलवे क्रॉसिंग भी मौजूद है और बरामदगी स्थल मैदान के एक तरफ स्थित है जो रेलवे की सीमा और सड़क से सटा हुआ है। इस प्रकार, बरामदगी का दृश्य एक ऐसी जगह प्रतीत होता है, जो सभी के लिए दृश्यमान और सुलभ है।

83. इसी तरह की स्थिति में, जब पिस्तौल की बरामदगी एक ऐसी जगह से की गई थी जो किसी के लिए सुलभ और दृश्यमान थी और इसके अलावा, यह भी संदिग्ध था कि उक्त पिस्तौल का इस्तेमाल कथित अपराध में किया गया था या नहीं, यह माना गया था कि तथ्य की खोज के लिए अग्रणी जानकारी सबूत की श्रृंखला में एक कड़ी है और अन्य लिंक कानूनी रूप से स्वीकार्य तरीके से साबित होने चाहिए और यह अवधारित किया गया था तथ्यों के आधार पर कि साक्ष्य में विसंगतियां और कमियां अभियोजन पक्ष के संस्करण की विश्वसनीयता को काफी हद तक खराब कर देती हैं और अपरिहार्य निष्कर्ष यह है कि अभियोजन पक्ष ने अभियुक्त के खिलाफ आरोपों को उचित संदेह से परे स्थापित नहीं किया है और परिणामस्वरूप, वह बरी होने का हकदार है और यह अंतर सिंह बनाम राजस्थान राज्य (2004)10 एस.सी.सी. 657 के मामले में ऐसा माना जाता है।

84. (अ०सा०-7) एस.आई. देवेंद्र कुमार त्यागी ने बरामदगी स्थल के बिंदु पर खंडन करते हुए, प्रदर्श क-15 और क-21 के विपरीत बयान दिया था। उनके अनुसार अपीलार्थी महेंद्र सिंह के इशारे पर हत्या के हथियार बरामद करने के स्थान की सभी दिशाओं में खाली खेत हैं, जबकि बरामदगी के दृश्य के पश्चिम में संबंधित नक्शे में रेलवे की सीमा और सड़क को दिखाया गया है और इससे कथित बरामदगी स्थल की सत्यता संदेह के घेरे में आ गई है। उन्होंने आगे कहा कि दोनों आरोपियों को भीड़भाड़ वाली जगह और सार्वजनिक सड़क पर गिरफ्तार किया गया था, जबकि आरोपी बलवीर का घर एक आवासीय क्षेत्र में मौजूद है। इसके बावजूद, उक्त बरामदगी के सार्वजनिक या स्वतंत्र गवाह की अनुपस्थिति भी बरामदगी की कहानी को गलत ठहराती है।

85. हत्या के हथियारों की बरामदगी के संबंध में सबूतों की जांच की निरंतरता में, हमारा ध्यान इस तथ्य की ओर भी आकर्षित किया जाता है कि हत्या के हथियार, चाकू के संबंध में, इस तथ्य के बावजूद कि उन्हें रासायनिक जांच के लिए भेजा गया था, जैसा कि अ०सा०-8 विवेचनाधिकारी द्वारा कहा गया है, कोई विधि विज्ञान प्रयोगशाला रिपोर्ट रिकॉर्ड पर उपलब्ध नहीं है।

86. अभियोजन पक्ष के पास एक विशिष्ट मामला है कि मृतका की हत्या चाकुओं से की गई थी, जिसे अभियुक्त महेंद्र सिंह और गंगाधर के कब्जे से प्राप्त किया गया है। हम उपरोक्त चाकू की बरामदगी के संबंध में चिकित्सा साक्ष्य का अवलोकन करने के लिए बाध्य हैं। जैसा कि ऊपर

उल्लेख किया गया है, अ०सा०-5 (डॉ. आर.एस. मौर्य) जिन्होंने मृतका का शव परीक्षण किया है, ने मृतका के शरीर के विभिन्न हिस्सों पर कई घाव पाए हैं। यहां यह ध्यान रखना उचित होगा कि, उनकी मुख्य परीक्षण में, अ०सा०-5 कहीं भी यह नहीं बताता है कि मृतका के शरीर पर पाए गए घाव चाकू के हो सकते हैं। अपनी जिरह में, उन्होंने एक प्रासंगिक बयान दिया है कि चोटें किसी तेज धार वाले हथियार से नहीं लगी हैं और महत्वपूर्ण रूप से, उन्होंने आगे कहा है कि चोटें चाकू या किसी तेज धार वाले हथियार से नहीं हुई हैं। पुनरावृत्ति की कीमत पर, यह याद दिलाया जाना चाहिए कि वर्तमान प्रत्यक्षदर्शी वर्णन का मामला नहीं है, बल्कि यह परिस्थितिजन्य साक्ष्य का मामला है जहां किसी ने घटना नहीं देखी है। यदि यह चक्षुक साक्ष्य के आधार पर मामला होता, तो चिकित्सा साक्ष्य के महत्व पर सवाल उठाया जा सकता था, लेकिन चूंकि घटना का कोई प्रत्यक्षदर्शी नहीं है, इसलिए चिकित्सा साक्ष्य का अपना महत्व और प्रमाणिक मूल्य है। अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने जोरदार ढंग से प्रस्तुत किया कि चिकित्सा साक्ष्य अभियोजन पक्ष के संस्करण का समर्थन नहीं करते हैं और चाकू की कथित बरामदगी अभियोजन पक्ष के लिए कोई मुफ़ीद नहीं है क्योंकि अपराध के कृत्य में चाकू का उपयोग नहीं किया गया था।

87. जहां तक सार्वजनिक या स्वतंत्र गवाह की अनुपस्थिति का संबंध है, हम देखते हैं कि कानून को हर समय ऐसी प्रक्रिया अपनाने की आवश्यकता नहीं है, लेकिन मजबूत संदेह इस तथ्य के कारण है कि चिकित्सा साक्ष्य के अनुसार, मृतका की मृत्यु किसी भी तेज धार वाले हथियार या चाकू के उपयोग के कारण नहीं हुई थी, जैसा कि अभियोजन पक्ष का दावा है (इस बिंदु पर चिकित्सा साक्ष्य पर इस निर्णय में बाद में चर्चा की जाएगी) और हम इस संबंध में शीश पाल बनाम एनसीटी ऑफ दिल्ली, (2022) 9 एस.सी.सी. 782 में उल्लिखित सिद्धांत पर सफलतापूर्वक ध्यान दे सकते हैं।

88. इस प्रकार, हम पाते हैं कि जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, न केवल अभियोजन पक्ष द्वारा पेश किए गए 'अंतिम देखे गए' साक्ष्य अस्थिर और अविश्वसनीय हैं, जो परिस्थितियों की श्रृंखला के साथ शुरू करने वाली पहली कड़ी हो सकती है, लेकिन अतिरिक्त-न्यायिक स्वीकारोक्ति की एक और दोषकारी परिस्थिति भी इस तरह के सबूतों के आधार पर विश्वसनीय और भरोसेमंद नहीं पाई गई है, जबकि ये विश्वसनीयता की कसौटी पर कठोर परीक्षण के अधीन रहते हुए अस्वीकार्य साबित होता है।

89. हाल ही में, चंद्रपाल बनाम छत्तीसगढ़ राज्य (पूर्व में एम.पी), ए.आई.आर. 2022 उच्चतम न्यायालय 2542 में, परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर एक मामला, सर्वोच्च न्यायालय ने रिकॉर्ड पर उपलब्ध साक्ष्य को ध्यान में रखते हुए कहा कि -

अदालत ने कहा, 'अभियोजन पक्ष के अनुसार, सह-आरोपियों ने गवाहों के सामने खुद को दोषी ठहराने वाला बयान दिया था और अन्य आरोपियों की संलिप्तता का भी खुलासा किया था. न्यायकेत्तर संस्वीकृति एक कमजोर प्रकार का साक्ष्य है और जब तक यह विश्वास को प्रेरित नहीं करता है अथवा दृढ़ प्रकृति के किसी अन्य साक्ष्य द्वारा पूरी तरह से पुष्ट नहीं होता है, तब तक सामान्यत हत्या के अपराध के लिए दोषसिद्धि केवल न्यायकेत्तर संस्वीकृति के साक्ष्य के आधार पर नहीं की जानी चाहिए। आरोपी के खिलाफ कोई ठोस सबूत नहीं होने की स्थिति में

सह-आरोपी द्वारा कथित तौर पर किया गया न्यायकेत्तर कबूलनामा अपना महत्व खो देता है और सह-आरोपी के इस तरह के न्यायकेत्तर कबूलनामे के आधार पर कोई दोषसिद्धि नहीं हो सकती।

आगे यह भी कहा गया कि -

"दो घटनाओं के बीच का समय अंतराल यानी, जिस दिन आरोपी को आखिरी बार मृतका के साथ देखा गया था और शव मिलने का समय काफी बड़ा था। आरोपी को कथित अपराध से जोड़ना मुश्किल था, खासकर जब अभियोजन पक्ष द्वारा कोई अन्य ठोस सबूत पेश नहीं किया गया हो। परिस्थितिजन्य साक्ष्य की श्रृंखला में किसी अन्य लिंक के अभाव में, आरोपी को केवल "आखिरी बार एक साथ देखा गया" के आधार पर दोषी नहीं ठहराया जा सकता है, भले ही इस संबंध में अभियोजन पक्ष के गवाह का संस्करण विश्वसनीय हो।

90. पूर्वोक्त अवलोकन प्रस्तुत मामले की परिस्थितियों में लागू होता है जहां मृतका का मृत शरीर अपीलकर्ताओं के साथ कथित रूप से 'अंतिम बार देखे जाने' के दो दिन बाद पाया गया था।

91. अपीलकर्ताओं के कब्जे से करेंसी नोट और चाकू बरामद होने की कहानी में भी गंभीर खामियां हैं। जांच के दौरान, अपीलकर्ता महेंद्र के साथ मृतका के किसी भी अवैध संबंध या विवाहेतर संबंध को दिखाने के लिए कुछ भी सामने नहीं आया है। इन सभी परिस्थितियों को अगर एक साथ रखा जाए, तो अपराध करने के लिए 'मकसद' का एक और तत्व सामने आता है।

92. चूंकि अपीलकर्ताओं के कब्जे से और उनकी ओर इशारा करते हुए करेंसी नोटों की बरामदगी कानून द्वारा प्रदान किए गए तरीके से साबित नहीं हुई है, इसलिए मकसद की मजबूत कड़ी जो संभवतः अभियोजन पक्ष के लिए अपने मामले को साबित करने में सहायक हो सकती है, इसके लिए भी उपलब्ध नहीं है। वास्तव में, मृतका को मारने के लिए अपीलकर्ताओं का कोई मकसद नहीं था।

इस संबंध में, नंदू सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य (अब छत्तीसगढ़), 2022 एस.सी.सी. ऑनलाइन उच्चतम न्यायालय 1454, पन्नायर बनाम तमिलनाडु राज्य, (2009) 9 एस.सी.सी. 152, उत्तर प्रदेश राज्य बनाम किशनपाल और अन्य, (2008) 16 एस.सी.सी. 73, सुरेश चंद्र बाहरी बनाम बिहार राज्य, जैसे सर्वोच्च न्यायालय के कई फैसलों में कानूनी स्थिति अच्छी तरह से तय है, 1995 पूरक (1) एस.सी.सी. 80, बाबू बनाम केरल राज्य, (2010) 9 एस.सी.सी. 189 और अनवर अली बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य, (2020) 10 एस.सी.सी. 166 और हम पाते हैं कि परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर मामले में मकसद की अनुपस्थिति एक ऐसा कारक है जो अभियुक्त के पक्ष में वजन करता है। मकसद परिस्थितियों की श्रृंखला को पूरा करने के लिए एक महत्वपूर्ण कड़ी निभाता है और प्रस्तुत मामले में घटनाओं की श्रृंखला प्रतिपक्षी के तर्क को साबित करने के लिए एक स्पष्ट मकसद प्रदान नहीं करती है।

कॉल डिटेल रिकॉर्ड -

93. अभियुक्त-अपीलकर्ताओं को कथित अपराध से जोड़ने का एक अन्य पहलू, जैसा कि अभियोजन पक्ष द्वारा आरोप लगाया गया है, कॉल डिटेल रिकॉर्ड (सी.डी.आर.) है, जो कथित तौर पर मृतका और अभियुक्त-अपीलकर्ता महेंद्र सिंह के बीच हुआ था। अ०सा०-7 (देवेंद्र कुमार त्यागी), विवेचनाधिकारी ने गवाही दी कि

अभियुक्त-अपीलकर्ता महेंद्र ने एक मोबाइल फोन स्पाइस एम 4250 पुलिस को सौंप दिया, जिसमें कोई सिम नहीं था। अ०सा०-8 (देवेंद्र सिंह) यह भी बताता है कि मृतका और आरोपी-अपीलकर्ताओं के कॉल डिटेल रिकॉर्ड एकत्र किए गए थे और केस डायरी में उल्लेख किया गया था, जो रिकॉर्ड पर उपलब्ध है। हालांकि, दोनों गवाहों द्वारा आगे कुछ भी नहीं कहा गया है और अभियोजन पक्ष कानून द्वारा प्रदान किए गए तरीके से उपरोक्त सी.डी.आर. को साबित करने से पूरी तरह से चूक गया, जो एक इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य है और अधिनियम 21 वर्ष 2000 द्वारा संशोधित साक्ष्य अधिनियम की धारा 3 के तहत इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड के रूप में स्वीकार्य है। तथापि, इलेक्ट्रॉनिक रिकार्ड की स्वीकार्यता की प्रक्रिया और प्रामाणिकता तथ्यात्मक स्थिति पर निर्भर करती है और यह सदैव यह देखना अपेक्षित होता है कि इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य प्रस्तुत करने वाले व्यक्ति के पास साक्ष्य अधिनियम की धारा 65-ख (4) के अंतर्गत यथा अपेक्षित प्रमाणपत्र प्रस्तुत किया गया है या नहीं। हालांकि ऐसा प्रमाण पत्र हमेशा अनिवार्य नहीं होता है और न्यायालय, न्याय के हित में, अपनी आवश्यकताओं को शिथिल कर सकता है, लेकिन साथ ही, जैसा कि अनवर पीवी बनाम पीके बशीर, (2014) 10 एस.सी.सी. 473 में अवधारित किया गया है, साक्ष्य अधिनियम की धारा 65-बी के तहत प्रदान किए गए सुरक्षा उपाय इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड के स्रोत और प्रामाणिकता को सुनिश्चित करने के लिए हैं, चूंकि इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड बिना किसी सुरक्षा उपाय के छेड़छाड़, परिवर्तन, स्थानांतरण, छांटना आदि के लिए अतिसंवेदनशील होते हैं, इसलिए इलेक्ट्रॉनिक रिकॉर्ड के प्रमाण के आधार पर पूरा मुकदमा न्याय का उपहास बना सकता है।

94. सी.डी.आर. के संबंध में साक्ष्य को उजागर करते हुए, अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने साक्ष्य अधिनियम की धारा 65-बी (4) के प्रावधानों पर जोर दिया है, जिसके लिए इलेक्ट्रॉनिक साक्ष्य पर भरोसा करते हुए पार्टी द्वारा उत्पादित किए जाने वाले कुछ प्रमाणपत्रों की आवश्यकता होती है। रिकॉर्ड पर ऐसा कोई प्रमाण पत्र उपलब्ध नहीं है जो मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में आवश्यक था और जिसकी उपलब्धता में ढील नहीं दी जा सकती थी क्योंकि सी.डी.आर. के उपरोक्त साक्ष्य, यदि साक्ष्य अधिनियम द्वारा निर्धारित तरीके से ठीक से साबित होते हैं, तो मृतका और अपीलकर्ता महेंद्र के बीच संबंधों पर कुछ प्रकाश डाल सकते हैं और इस प्रकार, ताकि न्यायालय मामले के मकसद के बारे में कोई निष्कर्ष निकाल सके।

95. पूर्वोक्त चर्चा के आधार पर, हम इस विचार के हैं कि अभियोजन पक्ष अपने मामले को उचित संदेह से परे साबित करने में बुरी तरह विफल रहा है। विद्वान विचारण न्यायालय ने हालांकि मामले से संबंधित कई कारकों का विश्लेषण किया है, लेकिन रिकॉर्ड पर सबूतों की उचित और कानूनी तरीके से जांच नहीं की है और इस तरह, दोषसिद्धि का एक विकृत निष्कर्ष दिया है। परिस्थितियों की श्रृंखला कभी पूरी नहीं होती है, जो परिस्थितिजन्य साक्ष्य के आधार पर किसी मामले में किसी अभियुक्त की दोषसिद्धि दर्ज करने के लिए आवश्यक थी। सभी महत्वपूर्ण परिस्थितियों, जैसे 'अंतिम बार देखा' गया, मकसद, हत्या के हथियार की बरामदगी, न्यायकेत्तर स्वीकारोक्ति ठोस और विश्वसनीय साक्ष्य के अभाव में साबित नहीं हुई है। अभियोजन पक्ष द्वारा दिए गए सबूत अस्थिर हैं और विश्वसनीय नहीं हैं। चिकित्सा साक्ष्य अभियोजन पक्ष के संस्करण के खिलाफ खड़े हैं। ये सभी कमियां अभियोजन पक्ष के मामले को खारिज करती हैं और उपरोक्त कानूनी और

तथ्यात्मक परिदृश्य में, हमारे पास आक्षेपित निर्णय और आदेश को रद्द करने और सभी अपीलकर्ताओं को बरी करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है।

96. हाल ही में, रवि शर्मा बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली), (2022) 8 एस.सी.सी. 536 में, जहां मामले की परिस्थितियों में, उच्चतम न्यायालय ने 'अंतिम बार देखे गए सिद्धांत को सच नहीं पाया, मकसद साबित नहीं हुआ, आग्नेयास्त्र की बरामदगी संदिग्ध थी, प्रस्तुत किए गए सबूतों में महत्वपूर्ण विरोधाभास पाए गए और केवल अपीलकर्ता को अपराध की ओर इशारा करते हुए अप्रतिरोध्य निष्कर्ष पर आने के लिए पर्याप्त लिंक नहीं था। यह दोहराया गया कि केवल संदेह, चाहे वह कितना भी मजबूत हो, स्वीकार्य साक्ष्य का विकल्प नहीं हो सकता। प्रस्तुत मामले की अजीबोगरीब परिस्थितियों में, पूर्वोक्त सिद्धांत इस मामले पर भी लागू होता है।

97. इसलिए, आक्षेपित निर्णय और दोषसिद्धि और सजा का आदेश, जिसको चुनौती देने की मांग की गई है, हस्तक्षेप की मांग करता है और उसके योग्य है। आपराधिक अपीलों की अनुमति दी जा सकती है और तदनुसार, उन्हें अनुमति दी जाती है।

98. तदनुसार दिनांक 26.02.2020 के आक्षेपित निर्णय और आदेश को रद्द किया जाता है। तदनुसार, दोषी-अपीलकर्ताओं को धारा 302/34, 120-बी, 201, 404 भ०द०वि० और 4/25 शस्त्र अधिनियम के तहत दंडनीय अपराध के लिए दोषी नहीं पाया जाता है। उन्हें सभी आरोपों से बरी किया जाता है। दोषी-अपीलकर्ता जेल में हैं। यदि वे किसी अन्य मामले में वांछित नहीं हैं तो उन्हें तत्काल रिहा किया जाएगा।

99. विचारण न्यायालय के रिकॉर्ड के साथ इस फैसले की एक प्रति आवश्यक अनुपालन के लिए संबंधित न्यायालय को भेजी जाए। इस फैसले की एक प्रति संबंधित अपील में भी रखी जाए।

(2023) 3 ILRA 927

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 03.03.2021

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्र, जे.

2021 की आपराधिक अपील संख्या 2675

अच्छे लाल & एन.आर. ... अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और उत्तर प्रदेश ... उत्तरदाता

अपीलकर्ताओं के लिए वकील: श्री विजय प्रकाश यादव, श्री मोहम्मद। राघीब अली, श्री मोहम्मद। श्री राघीब अली, श्री सगीर अहमद (वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी)

प्रतिवादी के लिए वकील: जी.ए.

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता-1860-धारा 3048, 498-ए- दहेज प्रतिषेध अधिनियम-1961-धारा 3 व 4 - भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872-धारा 106, 113बी- दहेज की मांग पूरी न होने पर आरोपी अपीलकर्ताओं ने पीड़िता पर मिट्टी का तेल डालकर उसे जला दिया- आरोपी अपीलकर्ताओं (पति व सास) को धारा 498-ए, 304बी आईपीसी व दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 4 के तहत दोषी करार दिया गया तथा अन्य सह-आरोपियों को दोषमुक्त किया गया- दहेज की

मांग पति ने की- पीड़िता को यातना व क्रूरता का सामना करना पड़ा- विवाह के सात वर्ष के भीतर वैवाहिक स्थान पर शारीरिक रूप से जलने व अप्राकृतिक परिस्थितियों में मृत्यु हो गई- आरोपी मृत्यु का कोई उचित कारण बताने में विफल रहा, जो कि मृतका के वैवाहिक स्थान पर गंभीर रूप से जलने के कारण हुई -अभियुक्त साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 तथा धारा 113-बी के तहत कानून के तहत लगाए गए विपरीत भार को पूरा करने में विफल रहा है -प्रेमा देवी (सास) के विरुद्ध कोई विशेष आरोप नहीं लगाया गया है -सह-अभियुक्त, जिन्हें अपीलकर्ता प्रेमा देवी के समान भूमिका सौंपी गई थी, उन्हें पहले ही विद्वान विचारणीय न्यायालय द्वारा दोषमुक्त कर दिया गया है - आरोपी प्रेमा देवी को संदेह का लाभ दिया जाना चाहिए- अपीलकर्ता प्रेमा देवी पर आरोपित सजा और दोषसिद्धि को निरस्त किया जाता है - अपीलकर्ता अच्छे लाल (पति) के संबंध में अपील निरस्त की जाती है।

अपील स्वीकृत (E-15)

उद्धृत वाद सूची:

1. संदीप बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2012) 6 SCC 107

2. पृथ्वीराज सिंह बनाम पंजाब राज्य, 2012(76) ACC 680 (SC)

3. त्रिमुख मारोती किरण बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2006) 10 SCC 681

4. लक्ष्मण बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2002) 6 SCC 710

5. कोली चुनिलाल सावजी बनाम गुजरात राज्य, 1999 (9) SCC 562

6. वीएसके. मिश्रा और अन्य बनाम उत्तराखंड राज्य, (2015) 9 SCC 588

7. सुरेंद्र सिंह बनाम हरियाणा राज्य, (2014) 4 SCC 129

<u>माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकेर</u>

<u>माननीय न्यायमूर्ति अजीत सिंह</u>

1. श्री अरविन्द कुमार कुशवाहा, अधिवक्ता सुश्री पूजा द्वारा सहायता प्राप्त को सुना, अपीलकर्ता के अधिवक्ता श्री उपेंद्र कुमार राय, और राज्य के लिए और अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता को सुना।

2. आरोपी अपीलकर्ताओं की कैद की अवधि और मृतका की मृत्यु के बारे में एक संक्षिप्त प्रस्तावना आवश्यक है। अभियुक्त विजय शंकर और श्रीमती मीना देवी 12 साल से अधिक समय से जेल में हैं और अभियुक्त चंद्रावती को इस न्यायालय द्वारा जमानत पर रिहा करने से पहले जेल में रखा गया था। मृतका की 01 माह और 07 दिन की अवधि के बाद मृत्यु हो गई। अपने मृत्यु-पूर्व बयान में मृतका ने कहा कि उसकी सास और ससुर उसे अस्पताल लेकर आए और इसलिए इस न्यायालय ने सास को जमानत दे दी है। यह घटना उसके उत्पीड़न के कारण हुई। निचली अदालत ने आरोपियों को धारा 498 ए के तहत बरी कर दिया लेकिन उन्हें धारा 304 बी के तहत आजीवन कारावास की सजा सुनाई।

3. तीनों अपीलें एक ही घटना से उत्पन्न होती हैं और सत्र परीक्षण संख्या 188 वर्ष 2010 (राज्य बनाम विजय शंकर और अन्य) में अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, नई अदालत संख्या-2, जौनपुर द्वारा पारित दिनांक 14.04.2011 के निर्णय और आदेश को चुनौती देती हैं, जिसके तहत विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश ने भारतीय दंड संहिता, 1860 (इसके बाद 'भ०द०वि०' के रूप में संदर्भित)

की धारा 304 बी के तहत अभियुक्त-अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराया है और उन्हें आजीवन कारावास की सजा सुनाई है।

4. रिकॉर्ड से निकाले गए संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि मृतका के पिता की शिकायत के आधार पर थाना सराय ख्वाजा, जौनपुर में आरोपी के खिलाफ धारा 498ए, 307 भ०द०वि० और दहेज निषेध अधिनियम की धारा 3/4 के तहत प्राथमिकी दर्ज की गई थी, जिसमें आरोप लगाया गया था कि आरोपियों ने सूचनाकर्ता की बेटी पर मिट्टी का तेल डालकर उसे आग लगा दी है। वह झुलस गई और इलाज के दौरान उसकी मौत हो गई। उसकी मौत के बाद जांच एजेंसी ने धारा 304 बी को जोड़ा था। विवेचनाधिकारी ने सभी गवाहों के बयान दर्ज किए और विद्वान मजिस्ट्रेट को आरोप पत्र सौंपा। विद्वान मजिस्ट्रेट ने अभियुक्तों को तलब किया और उन्हें सत्र न्यायालय में भेज दिया क्योंकि प्रथम दृष्टया मामला सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय था।

5. सम्मन किए जाने पर, आरोपियों/अभियुक्तों को आरोप पढ़कर सुनाया गया, जिससे उन्होंने इन्कार किया और विचारण चाहा! मुकदमा शुरू हुआ और अभियोजन पक्ष ने 15 गवाहों की जांच की जो इस प्रकार हैं:

1	सावित्री देवी	अ०सा०-1
2	राजेश	अ०सा०-2
3	नीतू देवी	अ०सा०-3
4	सुनील यादव	अ०सा०-4
5	मीरा	अ०सा०-5
6	राजेश चंद्र श्रीवास्तव	अ०सा०-6
7	प्रकाश कुमार	अ०सा०-7
8	रमेश कुमार	अ०सा०-8
9	शिव प्रताप सिंह	अ०सा०-9
10	डॉ. सतीश सिंह	अ०सा०-10
11	डॉ.प्रभा शंकर चतुर्वेदी	अ०सा०-11
12	डॉ. आर. के जायसवाल	अ०सा०-12
13	विनोद कुमार सिंह	अ०सा०-13
14	संतोष कुमार सिंह	अ०सा०-14
15	ज्योति प्रसाद सोनकर	अ०सा०-15

6. चक्षुक संस्करण के समर्थन में निम्नलिखित दस्तावेज दायर किए गए और साबित हुए:

1	प्राथमिकी	प्रदर्श क-17
2	तहरीर रिपोर्ट	प्रदर्श क-1
3	मृत्यु पूर्व बयान	प्रदर्श क-10/16/11
4	चोट की रिपोर्ट	प्रदर्श क-12
5	शव परीक्षण रिपोर्ट	प्रदर्श क-9
6	आरोप पत्र	प्रदर्श क-8
7	नक्शा नजरी	प्रदर्श क-14

7. मुकदमे के अंत में, धारा 313 द०प्र०स० के तहत अभियुक्तों के बयान दर्ज करने और अभियोजन और बचाव पक्ष की ओर से दलीलें सुनने के बाद, विद्वान सत्र न्यायाधीश ने अभियुक्त-अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराया, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है।

8. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि यह घटना दुर्घटना क्षड़िक आवेग में हुई जो अचानक झगड़े के कारण उत्पन्न हुई थी और अभियुक्त ने मृतका को मारने के लिए कुछ पूर्व नियोजित नहीं बनाया था।

9. वैकल्पिक रूप से, यह प्रस्तुत किया जाता है कि अधिक से अधिक, मृत्यु को हत्या की श्रेणी में नहीं आने वाली हत्या कहा जा सकता है और भ०द०वि० की धारा 304-II या धारा 304-I के तहत दंडनीय है। यदि अदालत यह तय करती है कि आरोपी दोषी है, तो आरोपी को कैद की निश्चित अवधि की सजा दी जा सकती है। अपने तर्कों के समर्थन में अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **मणिबेन बनाम गुजरात राज्य, 2009 (5) सुप्रीम 700 और** 2013 की आपराधिक अपील संख्या 1030 (**सिकंदर और एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में इस न्यायालय के 13.7.2022 को निर्णय लिया गया पर भरोसा किया है।**

10. प्रति विरोध, राज्य के लिए अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता प्रस्तुत करता है कि मृतका की ओर से कोई गंभीर और अचानक उकसावा नहीं था और अपराध की वीभत्सता और अभियोजन पक्ष के गवाहों के साक्ष्य को देखते हुए, इस न्यायालय को मामले में कोई उदारता नहीं दिखानी चाहिए। अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता द्वारा आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि धारा 304 बी भ०द०वि० के अवयवों को विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा सही माना जाता है जिन्होंने मामले में तथ्यों पर कानून लागू किया है।

11. हमने गवाहों के साक्ष्य और शव परीक्षण रिपोर्ट पर विचार किया है जिसमें कहा गया है कि मृतका के शरीर पर चोटें मौत का कारण होंगी और यह हत्या की मौत थी; हम नीचे दिए गए न्यायालय के निष्कर्ष से सहमत हैं।

12. मृत्यु पूर्व घोषणा को स्वीकार करना होगा क्योंकि यह साबित हो गया है और हम इसे स्वीकार करने में निचली अदालत से सहमत हैं जो दर्शाता है कि अभियुक्तों ने उनके खिलाफ कथित अपराध किया है।

13. यहां तक कि अगर हम मृत्यु पूर्व बयान की दृष्टि से देखते हैं तो यह स्पष्ट है कि दुर्घटना बिना पूर्व विचार के हुई। तथ्य यह है कि मृतका को अस्पताल ले जाया गया था और पति ने पश्चाताप किया है। सेप्टिसीमिया के परिणामस्वरूप घटना के कुछ दिनों के बाद मृतका की मृत्यु हो गई और इसलिए अपराध की गंभीरता को देखना होगा। विचारण न्यायालय ने खुद माना है कि दहेज की कोई मांग नहीं थी और आरोपी को धारा 498 ए भ०द०वि० के तहत आरोप से बरी कर दिया है।

14. यहां तक कि अगर हम धारा 304 बी भ०द०वि० के तहत अपराध पर विचार करते हैं और सत्र न्यायाधीश के साथ सहमत होते हैं, तो यह देखा जाना चाहिए कि क्या सजा की मात्रा बहुत कठोर है और इसे संशोधित करने की आवश्यकता है। इस संबंध में, हमें भारत में प्रचलित सजा के सिद्धांत का विश्लेषण करना होगा।

15. हम 11.9.2013 को तय **की गई आपराधिक अपील संख्या 83 (गौतम मनुभाई मकवाना** बनाम **गुजरात राज्य)** में गुजरात उच्च न्यायालय के फैसले पर सुरक्षित रूप से भरोसा कर सकते हैं, जिसमें न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया:

*"12. वास्तव में, **कृष्ण बनाम हरियाणा राज्य (2013) 3 एस.सी.सी. 280 में रिपोर्ट** किए गए मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि यह कानून का पूर्ण सिद्धांत नहीं है कि मृत्यु पूर्व बयान किसी अभियुक्त की दोषसिद्धि का एकमात्र आधार नहीं हो सकता है। जहां मृत्यु पूर्व बयान सही है, परिचर परिस्थितियां इसे*

विश्वसनीय दिखाती हैं और इसे कानून के अनुसार दर्ज किया गया है, मृतका ने अपनी मर्जी से, और मन और शरीर की स्थिति के संबंध में डॉक्टर द्वारा उचित प्रमाणीकरण पर, मृत्यु पूर्व बयान की घोषणा की तो अदालत के लिए पुष्टि की तलाश करना आवश्यक नहीं हो सकता है। ऐसे मामलों में, मृत्यु-पूर्व बयान ही अभियुक्त की दोषसिद्धि का आधार बन सकता है। लेकिन जहां मृत्यु पूर्व बयान में ही संदिग्ध परिस्थितियों का उल्लेख किया गया है, कानून और स्थापित प्रक्रियाओं और प्रथाओं के अनुसार दर्ज नहीं किया गया है, तो अदालत के लिए इसकी पुष्टि करना आवश्यक हो सकता है।

13. हालांकि, मृतका द्वारा दी गई शिकायत और कार्यकारी मजिस्ट्रेट द्वारा दर्ज मृत्यु पूर्व बयान और डॉक्टर के समक्ष इतिहास सुसंगत है और विश्वसनीय प्रतीत होता है। गवाहों के साक्ष्य और मेडिकल रिपोर्ट के साथ-साथ पंचनामा के साथ भी इसकी विधिवत पुष्टि की गई है और यह स्पष्ट है कि मृतका की मृत्यु अपीलकर्ताओं द्वारा केरोसिन डालने और उसे जलाने के कृत्य के कारण हुई थी। हम पाते हैं कि मृत्यु पूर्व घोषणा भरोसे के योग्य है।

14. हालांकि, हमने इस तथ्य को भी नहीं खोया है कि मृतका की मृत्यु एक महीने के इलाज के बाद हुई थी। मेडिकल रिपोर्ट से यह स्पष्ट है कि मृतका सेप्टिसीमिया से पीड़ित था जो व्यापक रूप से जलने के कारण हुआ था।

15. बीएन कावटाकर और एक अन्य (उपरोक्त) के मामले में, सेप्टिसीमिया के एक समान मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने जहां मृतका की घटना के पांच दिनों के बाद अस्पताल में मृत्यु हो गई थी, धारा 302 के तहत सजा को धारा 326 में बदल दिया और तदनुसार सजा को संशोधित किया।

*15.1 इसी तरह, **मणिबेन (उपरोक्त) के मामले में,** सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार देखा है:*

"18. मृतका को लगभग 60% जलने की चोटों के साथ अस्पताल में भर्ती कराया गया था और उपचार के दौरान सेप्टिसीमिया विकसित हुआ, जो मृतका की मृत्यु का मुख्य कारण था। अत यह स्थापित है कि 8 दिनों की उपर्युक्त अवधि के दौरान चोटें बढ़ गईं और इस हद तक बिगड़ गईं कि चोटें पक गईं और चोटों के जहरीले प्रभाव के कारण मृतका की मृत्यु हो गई।

19. मृतका की मृत्यु-पूर्व घोषणा से यह स्थापित होता है कि वह कई वर्षों से अपनी सास, अपीलकर्ता से अलग रह रही थी और जिस दिन प्रश्नगत दिन उसका अपीलकर्ता के साथ उसके घर पर झगड़ा हुआ था। रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों से यह भी स्पष्ट है कि झगड़े के तुरंत बाद वह अपनी बेटी के साथ पानी लाने आई और जब वह लौट रही थी, तो अपीलकर्ता आया और मृतका के कपड़ों पर एक जलता हुआ टॉन्सिल फेंक दिया। चूंकि मृतका ने उस समय टेरीलीन का कपड़ा पहना हुआ था, इससे आग और बढ़ गई जिससे वह झुलस गया।

20. यह साबित करने और स्थापित करने के लिए रिकॉर्ड पर सबूत भी हैं कि जलते हुए टॉन्सिल को फेंकने के लिए अपीलकर्ता की कार्रवाई मृतका और अपीलकर्ता के बीच झगड़े से पहले हुई थी। रिकॉर्ड पर उपरोक्त साक्ष्य से यह नहीं कहा जा सकता है कि अपीलकर्ता का इरादा था कि उसकी ओर से इस तरह की कार्रवाई से मृतका की मृत्यु या ऐसी शारीरिक चोट होगी, जो प्रकृति के सामान्य क्रम में मृतका की मृत्यु का कारण बनने के लिए पर्याप्त थी। इसलिए, हमारी

सुविचारित राय में, मामले को धारा 300 के खंड (4) भ०द०वि० के तहत शामिल नहीं कहा जा सकता है। हालांकि, हमारा मानना है कि अपीलकर्ता का मामला धारा 304 भ०द०वि० भाग दो के तहत आता है।

16. वर्तमान मामले में, हम इस अप्रतिरोध्य निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि अपीलकर्ताओं की भूमिका मृत्यु पूर्व बयान और अन्य अभिलेखों से स्पष्ट है। हालांकि, इस अदालत के साथ जो बात भी तौली गई है, वह यह है कि मृतका अस्पताल में लगभग 30 दिनों तक जीवित रही थी और लगभग 5 दिनों के बाद उसकी हालत खराब हो गई और अंततः सेप्टिसीमिया से उसकी मृत्यु हो गई। वास्तव में वह लगभग 35% जल गया था। इस मामले के मद्देनजर, हमारी राय है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत अपीलकर्ताओं की दोषसिद्धि को भारतीय दंड संहिता की धारा 304 (आई) के तहत परिवर्तित किया जाना आवश्यक है और उसी अपील को देखते हुए आंशिक रूप से अनुमति दी जाती है।

17. अपीलकर्ताओं की दोषसिद्धि - भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत मूल अभियुक्त दिनांक 19.12.2007 के निर्णय और आदेश के तहत सत्र मामला संख्या 149 वर्ष 2007 से उत्पन्न अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक कोर्ट नंबर-6, अहमदाबाद द्वारा पारित भारतीय दंड संहिता की धारा 304 (भाग-I) के तहत दोषसिद्धि में परिवर्तित किया जाता है। हालांकि, अपीलकर्ताओं-भारतीय दंड संहिता की धारा 452 के तहत मूल अभियुक्तों की दोषसिद्धि को बरकरार रखा गया है। अपीलकर्ताओं-मूल अभियुक्तों को भारतीय दंड संहिता की धारा 304 (भाग I) के तहत आजीवन कारावास और जुर्माने की चूक में सजा के बजाय छह महीने के लिए दस साल की कठोर कारावास और 5000 रुपये के जुर्माने का आदेश दिया जाता है, जैसा कि विचारण न्यायालय द्वारा धारा 302 भ०द०वि० के तहत दिया गया था। धारा 452 भ०द०वि० के तहत जुर्माने के अभाव में दी गई सजा को भी घटाकर दो महीने कर दिया गया है। तदनुसार, अपीलकर्ताओं को भारतीय दंड संहिता की धारा 304 (आई) भ०द०वि० के तहत दंडनीय अपराध के लिए दस साल की अवधि के लिए कठोर कारावास और 5000 रुपये का जुर्माना, चूक की अवस्था में भारतीय दंड संहिता की धारा 304 (आई) भ०द०वि० के तहत दंडनीय अपराध के लिए 6 महीने के लिए कठोर कारावास और पांच साल की अवधि के लिए कठोर कारावास और 2,000 रुपये का जुर्माना, चूक की अवस्था में 2 महीने के लिए कठोर कारावास लगाने का आदेश दिया जाता है। दोनों सजाएं साथ-साथ चलेंगी। दिनांक 19-12-2007 के निर्णय और आदेश को तदनुसार संशोधित किया जाता है। पहले से ही दी गई सजा की अवधि पर अपीलकर्ताओं-मूल अभियुक्त की सजा की छूट के लिए विचार किया जाएगा। अभिलेख और सजा आदेश को तत्काल निचली अदालत में भेजा जाए।

16. खोखन @ खोखन विश्वास बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, 2021 मुकदमा (एस.सी.) 80 में नवीनतम निर्णय में, जहां तथ्य इस मामले के समान थे, शीर्ष न्यायालय ने आरोपी अपीलकर्ता की अपील की अनुमति दी है और सजा को बदल दिया है। अनवर सिंह बनाम गुजरात राज्य, (2021) 3 एस.सी.सी. 12 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय जो कानूनी अभिभावक से अपहरण से संबंधित था, जिसमें यह स्थापित किया गया था कि न्यायालय ने समाज और पीड़ित दोनों की चिंताओं का सम्मान करते हुए प्रतिपादित किया

था कि अभियुक्त द्वारा पहले से ही गुज़री गई कैद की अवधि को कम करके निवारण और सुधार के दोहरे सिद्धांत की पूर्ति की जाएगी। हमारे मामले में, यह वह भीषण मामला नहीं है जहां इन सभी निर्णयों के प्रकाश में अभियुक्त से निपटा नहीं जा सकता है। प्रवत चंद्र मोहंती बनाम ओडिशा राज्य, (2021) 3 एस.सी.सी. 529 & परदेशीराम बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2021) 3 एस.सी.सी. 238 में निर्णय भी अभियुक्त के लाभ के लिए (?) के रूप में लागू होंगे।

17. ***मो. गियासुद्दीन बनाम स्टेट ऑफ एपी, [ए.आई.आर. 1977 एस.सी. 1926]***, सजा में पुनर्वास और सुधारात्मक पहलुओं की व्याख्या करते हुए सुप्रीम कोर्ट द्वारा देखा गया है:

"अपराध एक पैथोलॉजिकल विपथन है। अपराधी को आमतौर पर छुड़ाया जा सकता है और राज्य को बदला लेने के बजाय पुनर्वास करना चाहिए। उपसंस्कृति जो पूर्व-सामाजिक व्यवहार की ओर ले जाती है, उसका मुकाबला अनुचित क्रूरता से नहीं बल्कि पुनर्संस्कृतिकरण से किया जाना चाहिए। इसलिए, व्यक्ति और लक्ष्य में पेनोलॉजी में रुचि का ध्यान उसे समाज के लिए उबारना है। कठोर और बर्बर दंड का प्रहार इस प्रकार अतीत और प्रतिगामी समय का अवशेष है। मानव आज एक ऐसे व्यक्ति को फिर से आकार देने की प्रक्रिया के रूप में सजा देता है जो आपराधिकता में बिगड़ गया है और आधुनिक समुदाय की सामाजिक रक्षा के साधन के रूप में अपराधी के पुनर्वास में प्राथमिक हिस्सेदारी है। इसलिए हमारी आपराधिक अदालतों में 'आतंक' दृष्टिकोण के बजाय एक चिकित्सीय होना चाहिए, क्योंकि व्यक्ति की क्रूर कैद केवल उसके दिमाग की पंगुता पैदा करती है। यदि आप किसी व्यक्ति को प्रतिशोध की सजा देना चाहते हैं, तो आपको उसे घायल करना होगा। यदि आप उसे सुधारना चाहते हैं, तो आपको उसे सुधारना होगा और, पुरुषों को चोटों से सुधार नहीं होगा।

18. देव नारायण मंडल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(2004) 7 एस.सी.सी. 257] में 'उचित दंड' की व्याख्या यह देखते हुए की गई थी कि दंड या तो अत्यधिक कठोर या हास्यास्पद रूप से कम नहीं होना चाहिए। दंड की मात्रा का निर्धारण करते समय, अदालत को 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखना चाहिए। सजा किसी दिए गए मामले के तथ्यों पर आधारित होनी चाहिए। अपराध की गंभीरता, अपराध करने का तरीका, आरोपी की उम्र और लिंग को ध्यान में रखा जाना चाहिए। सजा देने में न्यायालय के विवेक का प्रयोग मनमाने ढंग से या सनकी तरीके से नहीं किया जा सकता है।

19. *रवाडा शशिकला बनाम एपी ए.आई.आर. राज्य 2017 एस.सी. 1166 में*, सुप्रीम कोर्ट ने *जमील बनाम यूपी राज्य [(2010) 12 एस.सी.सी. 532], गुरु बसवराज बनाम कर्नाटक राज्य, [(2012) 8 एस.सी.सी. 734], सुमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह, [(2014) 7 एस.सी.सी. 323], पंजाब राज्य बनाम बावा सिंह, [(2015) 3 एस.सी.सी. 441], और राज बाला* बनाम *हरियाणा राज्य, [(2016) 1 एस.सी.सी. 463] में* दोहराया है कि सजा प्रणाली के संचालन में, कानून को तथ्यात्मक मैट्रिक्स के आधार पर सुधारात्मक मशीनरी या निवारक अपनाना चाहिए। प्रत्येक मामले में तथ्य और दी गई परिस्थितियां, अपराध की प्रकृति, जिस तरीके से इसकी योजना बनाई गई और प्रतिबद्ध की गई, अपराध करने का मकसद, अभियुक्त का आचरण, इस्तेमाल किए गए हथियारों की प्रकृति और अन्य

सभी उपस्थित परिस्थितियां प्रासंगिक तथ्य हैं जो विचारणीय क्षेत्र में आएंगे।

इसके अलावा, सजा में अनुचित सहानुभूति न्याय वितरण को अधिक नुकसान पहुंचाएगी और कानून की प्रभावकारिता में जनता के विश्वास को कम करेगी। प्रत्येक न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह अपराध की प्रकृति और उसके किए जाने के तरीके को ध्यान में रखते हुए उचित सजा सुनाए। सुप्रीम कोर्ट ने आगे कहा कि अदालतों को न केवल अपराध के पीड़ित के अधिकार को ध्यान में रखना चाहिए बल्कि बड़े पैमाने पर समाज को भी ध्यान में रखना चाहिए। उचित सजा देने पर विचार करते समय, पूरे समाज पर अपराध के प्रभाव और कानून के शासन को संतुलित करने की आवश्यकता है। देश में न्यायिक प्रवृत्ति सुधार और दंड के बीच संतुलन बनाने की ओर रही है। समाज की सुरक्षा और आपराधिक प्रवृत्ति पर मुहर लगाना कानून का उद्देश्य होना चाहिए जिसे अपराधियों और गलत काम करने वालों पर उचित सजा देकर हासिल किया जा सकता है। कानून, व्यवस्था और शांति बनाए रखने के लिए एक उपकरण के रूप में, समाज के सामने आने वाली चुनौतियों का प्रभावी ढंग से सामना करना चाहिए, क्योंकि समाज लंबे समय तक अपराध और असामंजस्य के गंभीर खतरों के तहत सहन और विकसित नहीं हो सकता है। इसलिए सजा देने में अनुचित उदारता से बचना आवश्यक है। इस प्रकार, देश में अपनाया गया आपराधिक न्याय न्यायशास्त्र प्रतिशोधात्मक नहीं बल्कि सुधारात्मक और संशोधनात्मक है। साथ ही, हमारी दांडिक न्याय प्रणाली में अंतर्निहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से भी बचा जाना चाहिए।

20. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और हमारे देश में आपराधिक न्यायशास्त्र को ध्यान में रखते हुए, जो सुधारात्मक है और प्रतिशोधात्मक नहीं है, यह न्यायालय मानता है कि कोई भी आरोपी व्यक्ति सुधरने में असमर्थ नहीं है और इसलिए, उन्हें सामाजिक धारा में लाने के लिए सुधार का अवसर देने के लिए सभी उपायों को लागू किया जाना चाहिए।

21. जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, 'दंड के सुधारात्मक सिद्धांत' को अपनाया जाना है और इस कारण से, 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखते हुए दंड देना आवश्यक है। आक्षेपित निर्णय के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की संपूर्णता और अपराध की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा आजीवन कारावास की सजा दी गई सजा बहुत कठोर है। जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया है कि दांडिक न्याय प्रणाली में अंतर्निहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से बचा जाना चाहिए।

22. अभियुक्त-अपीलकर्ता, विजय शंकर और मीना देवी ने 12 साल की सजा काट ली है और इसलिए, हम मानते हैं कि उनकी अवधि उनके लिए पर्याप्त सजा होगी। जहां तक अभियुक्त-अपीलकर्ता, चंद्रावती (मृतका की सास) का संबंध है, यह मृत्यु पूर्व घोषणा में ही आया है कि वह अन्य लोगों के साथ मृतका को अस्पताल ले गई है और उसकी उम्र को देखते हुए, उसके द्वारा बिताई गई अवधि उसके लिए पर्याप्त सजा होगी। अभियुक्त-अपीलकर्ताओं को, यदि किसी अन्य

मामले में वांछित नहीं है, तत्काल रिहा किया जाए।

23. उपर्युक्त के मद्देनजर, अपील को आंशिक रूप से अनुमति दी जाती है। विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय और आदेश पूर्वोक्त सीमा तक संशोधित माना जाएगा। रिकॉर्ड को तुरंत विचारण न्यायालय को वापस भेजा जाए।

(2023) 3 ILRA 940

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 21.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेन्द्र ठाकर, जे.

माननीय न्यायमूर्ति अजीत सिंह, जे.

2011 की आपराधिक अपील संख्या 3811

और

2011 की आपराधिक अपील संख्या 3812

और

2011 की आपराधिक अपील संख्या 2350

विजय शंकर .... **प्रार्थी**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ..... **प्रतिवादी**

अपीलकर्ता के लिए वकील: श्री अरविन्द कुमार कुशवाह, एम.एस.पूजा, श्री उपेन्द्र कुमार राय, श्री आर.एस.यादव, श्री अमित सक्सेना, श्री राजकिशोर यादव, श्री एस.डी.द्विवेदी, श्री संजय कुमार यादव

प्रतिवादी के लिए वकील: ए.जी.ए.

अपराधिक कानून- भारतीय दंड संहिता-1860- धारा 304B- आरोपी लोगों ने दहेज की मांग पूरी न होने पर पीड़िता पर केरोसिन तेल डालकर आग लगा दी-धारा 304B IPC के तहत दोषी ठहराया गया- पोस्टमार्टम रिपोर्ट में कहा गया है कि मृतक के शरीर पर लगी चोटें मौत का कारण थीं और यह हत्या का वाद था- मृत्यु पूर्व कथन मान्य है क्योंकि यह सिद्ध हो गया है कि आरोपियों ने आरोपित अपराध किया है- घटना बिना किसी पूर्व योजना के हुई- मृतक को अस्पताल ले जाया गया और पति ने पछताया- सजा की मात्रा बहुत कड़ी है और इसे परिवर्तित करने की जरूरत है- कोई भी आरोपी सुधारने में असमर्थ नहीं है और इसलिए, उन्हें सुधारने का मौका देने के लिए सभी उपाय किए जाने चाहिए ताकि उन्हें समाज में सम्मिलित किया जा सके- विवादित निर्णय और आदेश को संशोधित किया गया।

अपील आंशिक रूप से स्वीकृत। (E-15)

उद्धृत वाद सूची:

1. मणिबेन बनाम गुजरात राज्य, 2009 (5) सुप्रीम 700

2. सिकंदर और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (क्रिमिनल अपील नं.1030 / 2013) निर्णय दिनांक 13.7.2022

3. गौतम मनुभाई मकवाना बनाम गुजरात राज्य (क्रिमिनल अपील नं.83 / 2008) निर्णय दिनांक 11.9.2013

4. खोकन@खोकन विश्वास बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, 2021 लॉसूट (SC) 80

5. अन्वरसिंह बनाम गुजरात राज्य, (2021) 3 SCC 12

6. प्रवात चंद्र मोहंती बनाम राज्य ओडिशा, (2021) 3 SCC 529

7. पर्देशीराम बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2021) 3 SCC 238

8. मोहम्मद गियासुद्दीन बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, [AIR 1977 SC 1926]

9. देव नारायण मंडल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(2004) 7 SCC 257]

10. रावड़ा साशिकला बनाम आंध्र प्रदेश राज्य AIR 2017 SC 1166

11. जामील बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(2010) 12 SCC 532]

12. गुरु बसवराज बनाम कर्नाटक राज्य, [(2012) 8 SCC 734]

13. सुमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह, [(2014) 7 SCC 323]

14. राज्य पंजाब बनाम बावा सिंह, [(2015) 3 SCC 441]

15. राज बाला बनाम राज्य हरियाणा, [(2016) 1 SCC 463]

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकेर

माननीय न्यायमूर्ति अजीत सिंह

1. श्री अरविन्द कुमार कुशवाहा, अधिवक्ता सुश्री पूजा द्वारा सहायता प्राप्त को सुना, अपीलकर्ता के अधिवक्ता श्री उपेंद्र कुमार राय, और राज्य के लिए और अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता को सुना।

2. आरोपी अपीलकर्ताओं की कैद की अवधि और मृतका की मृत्यु के बारे में एक संक्षिप्त प्रस्तावना आवश्यक है। अभियुक्त विजय शंकर और श्रीमती मीना देवी 12 साल से अधिक समय से जेल में हैं और अभियुक्त चंद्रावती को इस न्यायालय द्वारा जमानत पर रिहा करने से पहले जेल में रखा गया था। मृतका की 01 माह और 07 दिन की अवधि के बाद मृत्यु हो गई। अपने मृत्यु-पूर्व बयान में मृतका ने कहा कि उसकी सास और ससुर उसे अस्पताल लेकर आए और इसलिए इस न्यायालय ने सास को जमानत दे दी है। यह घटना उसके उत्पीड़न के कारण हुई। निचली अदालत ने आरोपियों को धारा 498 ए के तहत बरी कर दिया लेकिन उन्हें धारा 304 बी के तहत आजीवन कारावास की सजा सुनाई।

3. तीनों अपीलें एक ही घटना से उत्पन्न होती हैं और सत्र परीक्षण संख्या 188 वर्ष 2010 (राज्य बनाम विजय शंकर और अन्य) में अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, नई अदालत संख्या-2, जौनपुर द्वारा पारित दिनांक 14.04.2011 के निर्णय और आदेश को चुनौती देती हैं, जिसके तहत विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश ने भारतीय दंड संहिता, 1860 (इसके बाद 'भ०द०वि०' के रूप में संदर्भित) की धारा 304 बी के तहत अभियुक्त-अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराया है और उन्हें आजीवन कारावास की सजा सुनाई है।

4. रिकॉर्ड से निकाले गए संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि मृतका के पिता की शिकायत के आधार पर थाना सराय ख्वाजा, जौनपुर में आरोपी के खिलाफ धारा 498ए, 307 भ०द०वि० और दहेज निषेध अधिनियम की धारा 3/4 के तहत प्राथमिकी दर्ज की गई थी, जिसमें आरोप लगाया गया था कि आरोपियों ने सूचनाकर्ता की बेटी पर मिट्टी का तेल डालकर उसे आग लगा दी है। वह झुलस गई और इलाज के दौरान उसकी मौत हो गई। उसकी मौत के बाद जांच एजेंसी ने धारा 304 बी को जोड़ा था। विवेचनाधिकारी ने सभी गवाहों के बयान दर्ज किए और विद्वान मजिस्ट्रेट को आरोप पत्र सौंपा। विद्वान मजिस्ट्रेट ने अभियुक्तों को तलब किया और उन्हें सत्र न्यायालय में भेज दिया क्योंकि प्रथम दृष्टया मामला सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय था।

5. सम्मन किए जाने पर, आरोपियों/अभियुक्तों को आरोप पढ़कर सुनाया गया, जिससे उन्होंने इन्कार किया और विचारण चाहा! मुकदमा शुरू हुआ और अभियोजन पक्ष ने 15 गवाहों की जांच की जो इस प्रकार हैं:

1	सावित्री देवी	अ०सा०-1
2	राजेश	अ०सा०-2
3	नीतू देवी	अ०सा०-3
4	सुनील यादव	अ०सा०-4
5	मीरा	अ०सा०-5
6	राजेश चंद्र श्रीवास्तव	अ०सा०-6
7	प्रकाश कुमार	अ०सा०-7
8	रमेश कुमार	अ०सा०-8
9	शिव प्रताप सिंह	अ०सा०-9
10	डॉ. सतीश सिंह	अ०सा०-10
11	डॉ.प्रभा शंकर चतुर्वेदी	अ०सा०-11
12	डॉ. आर. के जायसवाल	अ०सा०-12
13	विनोद कुमार सिंह	अ०सा०-13
14	संतोष कुमार सिंह	अ०सा०-14
15	ज्योति प्रसाद सोनकर	अ०सा०-15

6. चक्षुक संस्करण के समर्थन में निम्नलिखित दस्तावेज दायर किए गए और साबित हुए:

1	प्राथमिकी	प्रदर्श क-17
2	तहरीर रिपोर्ट	प्रदर्श क-1
3	मृत्यु पूर्व बयान	प्रदर्श क-10/16/11
4	चोट की रिपोर्ट	प्रदर्श क-12
5	शव परीक्षण रिपोर्ट	प्रदर्श क-9
6	आरोप पत्र	प्रदर्श क-8
7	नक्शा नजरी	प्रदर्श क-14

7. मुकदमे के अंत में, धारा 313 द०प्र०स० के तहत अभियुक्तों के बयान दर्ज करने और अभियोजन और बचाव पक्ष की ओर से दलीलें सुनने के बाद, विद्वान सत्र न्यायाधीश ने अभियुक्त-अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराया, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है।

8. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि यह घटना दुर्घटना क्षड़िक आवेग में हुई जो अचानक झगड़े के कारण उत्पन्न हुई थी और अभियुक्त ने मृतका को मारने के लिए कुछ पूर्व नियोजित नहीं बनाया था।

9. वैकल्पिक रूप से, यह प्रस्तुत किया जाता है कि अधिक से अधिक, मृत्यु को हत्या की श्रेणी में नहीं आने वाली हत्या कहा जा सकता है और भ०द०वि० की धारा 304-II या धारा 304-I के तहत दंडनीय है। यदि अदालत यह तय करती है कि आरोपी दोषी है, तो आरोपी को कैद की निश्चित अवधि की सजा दी जा सकती है। अपने तर्कों के समर्थन में अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **मणिबेन बनाम गुजरात राज्य, 2009 (5) सुप्रीम 700 और** 2013 की आपराधिक अपील संख्या 1030 (**सिकंदर और एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में इस न्यायालय के 13.7.2022 को निर्णय लिया गया पर भरोसा किया है।**

10. प्रति विरोध, राज्य के लिए अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता प्रस्तुत करता है कि मृतका की ओर से कोई गंभीर और अचानक उकसावा नहीं था और अपराध की वीभत्सता और अभियोजन पक्ष के गवाहों के साक्ष्य को देखते

हुए, इस न्यायालय को मामले में कोई उदारता नहीं दिखानी चाहिए। अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता द्वारा आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि धारा 304 बी भ०द०वि० के अवयवों को विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा सही माना जाता है जिन्होंने मामले में तथ्यों पर कानून लागू किया है।

11. हमने गवाहों के साक्ष्य और शव परीक्षण रिपोर्ट पर विचार किया है जिसमें कहा गया है कि मृतका के शरीर पर चोटें मौत का कारण होंगी और यह हत्या की मौत थी; हम नीचे दिए गए न्यायालय के निष्कर्ष से सहमत हैं।

12. मृत्यु पूर्व घोषणा को स्वीकार करना होगा क्योंकि यह साबित हो गया है और हम इसे स्वीकार करने में निचली अदालत से सहमत हैं जो दर्शाता है कि अभियुक्तों ने उनके खिलाफ कथित अपराध किया है।

13. यहां तक कि अगर हम मृत्यु पूर्व बयान की दृष्टि से देखते हैं तो यह स्पष्ट है कि दुर्घटना बिना पूर्व विचार के हुई। तथ्य यह है कि मृतका को अस्पताल ले जाया गया था और पति ने पश्चाताप किया है। सेप्टिसीमिया के परिणामस्वरूप घटना के कुछ दिनों के बाद मृतका की मृत्यु हो गई और इसलिए अपराध की गंभीरता को देखना होगा। विचारण न्यायालय ने खुद माना है कि दहेज की कोई मांग नहीं थी और आरोपी को धारा 498 ए भ०द०वि० के तहत आरोप से बरी कर दिया है।

14. यहां तक कि अगर हम धारा 304 बी भ०द०वि० के तहत अपराध पर विचार करते हैं और सत्र न्यायाधीश के साथ सहमत होते हैं, तो यह देखा जाना चाहिए कि क्या सजा की मात्रा बहुत कठोर है और इसे संशोधित करने की आवश्यकता है। इस संबंध में, हमें भारत में प्रचलित सजा के सिद्धांत का विश्लेषण करना होगा।

15. हम 11.9.2013 को तय **की गई आपराधिक अपील संख्या 83 (गौतम मनुभाई मकवाना** बनाम **गुजरात राज्य)** में गुजरात उच्च न्यायालय के फैसले पर सुरक्षित रूप से भरोसा कर सकते हैं, जिसमें न्यायालय ने निम्नानुसार अवधारित किया:

*"12. वास्तव में, **कृष्ण बनाम हरियाणा राज्य (2013) 3 एस.सी.सी. 280 में रिपोर्ट** किए गए मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि यह कानून का पूर्ण सिद्धांत नहीं है कि मृत्यु पूर्व बयान किसी अभियुक्त की दोषसिद्धि का एकमात्र आधार नहीं हो सकता है। जहां मृत्यु पूर्व बयान सही है, परिचर परिस्थितियां इसे विश्वसनीय दिखाती हैं और इसे कानून के अनुसार दर्ज किया गया है, मृतका ने अपनी मर्जी से, और मन और शरीर की स्थिति के संबंध में डॉक्टर द्वारा उचित प्रमाणीकरण पर, मृत्यु पूर्व बयान की घोषणा की तो अदालत के लिए पुष्टि की तलाश करना आवश्यक नहीं हो सकता है। ऐसे मामलों में, मृत्यु-पूर्व बयान ही अभियुक्त की दोषसिद्धि का आधार बन सकता है। लेकिन जहां मृत्यु पूर्व बयान में ही संदिग्ध परिस्थितियों का उल्लेख किया गया है, कानून और स्थापित प्रक्रियाओं और प्रथाओं के अनुसार दर्ज नहीं किया गया है, तो अदालत के लिए इसकी पुष्टि करना आवश्यक हो सकता है।*

13. हालांकि, मृतका द्वारा दी गई शिकायत और कार्यकारी मजिस्ट्रेट द्वारा दर्ज मृत्यु पूर्व बयान और डॉक्टर के समक्ष इतिहास सुसंगत है और विश्वसनीय प्रतीत होता है। गवाहों के साक्ष्य और मेडिकल रिपोर्ट के साथ-साथ पंचनामा के साथ भी इसकी विधिवत पुष्टि की गई है और यह

स्पष्ट है कि मृतका की मृत्यु अपीलकर्ताओं द्वारा केरोसिन डालने और उसे जलाने के कृत्य के कारण हुई थी। हम पाते हैं कि मृत्यु पूर्व घोषणा भरोसे के योग्य है।

14. हालांकि, हमने इस तथ्य को भी नहीं खोया है कि मृतका की मृत्यु एक महीने के इलाज के बाद हुई थी। मेडिकल रिपोर्ट से यह स्पष्ट है कि मृतका सेप्टिसीमिया से पीड़ित था जो व्यापक रूप से जलने के कारण हुआ था।

15. बीएन कावटाकर और एक अन्य (उपरोक्त) के मामले में, सेप्टिसीमिया के एक समान मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने जहां मृतका की घटना के पांच दिनों के बाद अस्पताल में मृत्यु हो गई थी, धारा 302 के तहत सजा को धारा 326 में बदल दिया और तदनुसार सजा को संशोधित किया।

*15.1 इसी तरह, **मणिबेन (उपरोक्त) के मामले में,** सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार देखा है:*

"18. मृतका को लगभग 60% जलने की चोटों के साथ अस्पताल में भर्ती कराया गया था और उपचार के दौरान सेप्टिसीमिया विकसित हुआ, जो मृतका की मृत्यु का मुख्य कारण था। अत यह स्थापित है कि 8 दिनों की उपर्युक्त अवधि के दौरान चोटें बढ़ गईं और इस हद तक बिगड़ गईं कि चोटें पक गईं और चोटों के जहरीले प्रभाव के कारण मृतका की मृत्यु हो गई।

19. मृतका की मृत्यु-पूर्व घोषणा से यह स्थापित होता है कि वह कई वर्षों से अपनी सास, अपीलकर्ता से अलग रह रही थी और जिस दिन प्रश्नगत दिन उसका अपीलकर्ता के साथ उसके घर पर झगड़ा हुआ था। रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों से यह भी स्पष्ट है कि झगड़े के तुरंत बाद वह अपनी बेटी के साथ पानी लाने आई और जब वह लौट रही थी, तो अपीलकर्ता आया और मृतका के कपड़ों पर एक जलता हुआ टॉन्सिल फेंक दिया। चूंकि मृतका ने उस समय टेरीलीन का कपड़ा पहना हुआ था, इससे आग और बढ़ गई जिससे वह झुलस गया।

20. यह साबित करने और स्थापित करने के लिए रिकॉर्ड पर सबूत भी हैं कि जलते हुए टॉन्सिल को फेंकने के लिए अपीलकर्ता की कार्रवाई मृतका और अपीलकर्ता के बीच झगड़े से पहले हुई थी। रिकॉर्ड पर उपरोक्त साक्ष्य से यह नहीं कहा जा सकता है कि अपीलकर्ता का इरादा था कि उसकी ओर से इस तरह की कार्रवाई से मृतका की मृत्यु या ऐसी शारीरिक चोट होगी, जो प्रकृति के सामान्य क्रम में मृतका की मृत्यु का कारण बनने के लिए पर्याप्त थी। इसलिए, हमारी सुविचारित राय में, मामले को धारा 300 के खंड (4) भ०द०वि० के तहत शामिल नहीं कहा जा सकता है। हालांकि, हमारा मानना है कि अपीलकर्ता का मामला धारा 304 भ०द०वि० भाग दो के तहत आता है।

16. वर्तमान मामले में, हम इस अप्रतिरोध्य निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि अपीलकर्ताओं की भूमिका मृत्यु पूर्व बयान और अन्य अभिलेखों से स्पष्ट है। हालांकि, इस अदालत के साथ जो बात भी तौली गई है, वह यह है कि मृतका अस्पताल में लगभग 30 दिनों तक जीवित रही थी और लगभग 5 दिनों के बाद उसकी हालत खराब हो गई और अंततः सेप्टिसीमिया से उसकी मृत्यु हो गई। वास्तव में वह लगभग 35% जल गया था। इस मामले के मद्देनजर, हमारी राय है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत अपीलकर्ताओं की दोषसिद्धि को भारतीय दंड संहिता की धारा 304 (आई) के तहत परिवर्तित किया जाना आवश्यक है और उसी अपील को देखते हुए आंशिक रूप से अनुमति दी जाती है।

17. अपीलकर्ताओं की दोषसिद्धि - भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत मूल अभियुक्त दिनांक 19.12.2007 के निर्णय और आदेश के तहत सत्र मामला संख्या 149 वर्ष 2007 से उत्पन्न अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक कोर्ट नंबर-6, अहमदाबाद द्वारा पारित भारतीय दंड संहिता की धारा 304 (भाग-I) के तहत दोषसिद्धि में परिवर्तित किया जाता है। हालांकि, अपीलकर्ताओं-भारतीय दंड संहिता की धारा 452 के तहत मूल अभियुक्तों की दोषसिद्धि को बरकरार रखा गया है। अपीलकर्ताओं-मूल अभियुक्तों को भारतीय दंड संहिता की धारा 304 (भाग I) के तहत आजीवन कारावास और जुर्माने की चूक में सजा के बजाय छह महीने के लिए दस साल की कठोर कारावास और 5000 रुपये के जुर्माने का आदेश दिया जाता है, जैसा कि विचारण न्यायालय द्वारा धारा 302 भ०द०वि० के तहत दिया गया था। धारा 452 भ०द०वि० के तहत जुर्माने के अभाव में दी गई सजा को भी घटाकर दो महीने कर दिया गया है। तदनुसार, अपीलकर्ताओं को भारतीय दंड संहिता की धारा 304 (आई) भ०द०वि० के तहत दंडनीय अपराध के लिए दस साल की अवधि के लिए कठोर कारावास और 5000 रुपये का जुर्माना, चूक की अवस्था में भारतीय दंड संहिता की धारा 304 (आई) भ०द०वि० के तहत दंडनीय अपराध के लिए 6 महीने के लिए कठोर कारावास और पांच साल की अवधि के लिए कठोर कारावास और 2,000 रुपये का जुर्माना, चूक की अवस्था में 2 महीने के लिए कठोर कारावास लगाने का आदेश दिया जाता है। दोनों सजाएं साथ-साथ चलेंगी। दिनांक 19-12-2007 के निर्णय और आदेश को तदनुसार संशोधित किया जाता है। पहले से ही दी गई सजा की अवधि पर अपीलकर्ताओं-मूल अभियुक्त की सजा की छूट के लिए विचार किया जाएगा। अभिलेख और सजा आदेश को तत्काल निचली अदालत में भेजा जाए।

16. खोखन @ खोखन विश्वास बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, 2021 मुकदमा (एस.सी.) 80 में नवीनतम निर्णय में, जहां तथ्य इस मामले के समान थे, शीर्ष न्यायालय ने आरोपी अपीलकर्ता की अपील की अनुमति दी है और सजा को बदल दिया है। अनवर सिंह बनाम गुजरात राज्य, (2021) 3 एस.सी.सी. 12 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय जो कानूनी अभिभावक से अपहरण से संबंधित था, जिसमें यह स्थापित किया गया था कि न्यायालय ने समाज और पीड़ित दोनों की चिंताओं का सम्मान करते हुए प्रतिपादित किया था कि अभियुक्त द्वारा पहले से ही गुज़री गई कैद की अवधि को कम करके निवारण और सुधार के दोहरे सिद्धांत की पूर्ति की जाएगी। हमारे मामले में, यह वह भीषण मामला नहीं है जहां इन सभी निर्णयों के प्रकाश में अभियुक्त से निपटा नहीं जा सकता है। प्रवत चंद्र मोहंती बनाम ओडिशा राज्य, (2021) 3 एस.सी.सी. 529 & परदेशीराम बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2021) 3 एस.सी.सी. 238 में निर्णय भी अभियुक्त के लाभ के लिए (?) के रूप में लागू होंगे।

17. ***मो. गियासुद्दीन बनाम स्टेट ऑफ एपी, [ए.आई.आर. 1977 एस.सी. 1926]***, सजा में पुनर्वास और सुधारात्मक पहलुओं की व्याख्या करते हुए सुप्रीम कोर्ट द्वारा देखा गया है:

"अपराध एक पैथोलॉजिकल विपथन है। अपराधी को आमतौर पर छुड़ाया जा सकता है और राज्य को बदला लेने के बजाय पुनर्वास करना चाहिए। उपसंस्कृति जो पूर्व-सामाजिक व्यवहार की ओर ले जाती है, उसका मुकाबला अनुचित क्रूरता से नहीं बल्कि पुनर्संस्कृतिकरण से किया जाना

चाहिए। इसलिए, व्यक्ति और लक्ष्य में पेनोलॉजी में रुचि का ध्यान उसे समाज के लिए उबारना है। कठोर और बर्बर दंड का प्रहार इस प्रकार अतीत और प्रतिगामी समय का अवशेष है। मानव आज एक ऐसे व्यक्ति को फिर से आकार देने की प्रक्रिया के रूप में सजा देता है जो आपराधिकता में बिगड़ गया है और आधुनिक समुदाय की सामाजिक रक्षा के साधन के रूप में अपराधी के पुनर्वास में प्राथमिक हिस्सेदारी है। इसलिए हमारी आपराधिक अदालतों में 'आतंक' दृष्टिकोण के बजाय एक चिकित्सीय होना चाहिए, क्योंकि व्यक्ति की क्रूर कैद केवल उसके दिमाग की पंगुता पैदा करती है। यदि आप किसी व्यक्ति को प्रतिशोध की सजा देना चाहते हैं, तो आपको उसे घायल करना होगा। यदि आप उसे सुधारना चाहते हैं, तो आपको उसे सुधारना होगा और, पुरुषों को चोटों से सुधार नहीं होगा।

18. देव नारायण मंडल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(2004) 7 एस.सी.सी. 257] में 'उचित दंड' की व्याख्या यह देखते हुए की गई थी कि दंड या तो अत्यधिक कठोर या हास्यास्पद रूप से कम नहीं होना चाहिए। दंड की मात्रा का निर्धारण करते समय, अदालत को 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखना चाहिए। सजा किसी दिए गए मामले के तथ्यों पर आधारित होनी चाहिए। अपराध की गंभीरता, अपराध करने का तरीका, आरोपी की उम्र और लिंग को ध्यान में रखा जाना चाहिए। सजा देने में न्यायालय के विवेक का प्रयोग मनमाने ढंग से या सनकी तरीके से नहीं किया जा सकता है।

19. *रवाडा शशिकला बनाम एपी ए.आई.आर. राज्य 2017 एस.सी. 1166 में,* सुप्रीम कोर्ट ने *जमील बनाम यूपी राज्य [(2010) 12 एस.सी.सी. 532], गुरु बसवराज बनाम कर्नाटक राज्य, [(2012) 8 एस.सी.सी. 734], सुमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह, [(2014) 7 एस.सी.सी. 323], पंजाब राज्य बनाम बावा सिंह, [(2015) 3 एस.सी.सी. 441], और राज बाला* बनाम *हरियाणा राज्य, [(2016) 1 एस.सी.सी. 463] में* दोहराया है कि सजा प्रणाली के संचालन में, कानून को तथ्यात्मक मैट्रिक्स के आधार पर सुधारात्मक मशीनरी या निवारक अपनाना चाहिए। प्रत्येक मामले में तथ्य और दी गई परिस्थितियां, अपराध की प्रकृति, जिस तरीके से इसकी योजना बनाई गई और प्रतिबद्ध की गई, अपराध करने का मकसद, अभियुक्त का आचरण, इस्तेमाल किए गए हथियारों की प्रकृति और अन्य सभी उपस्थित परिस्थितियां प्रासंगिक तथ्य हैं जो विचारणीय क्षेत्र में आएंगे।

इसके अलावा, सजा में अनुचित सहानुभूति न्याय वितरण को अधिक नुकसान पहुंचाएगी और कानून की प्रभावकारिता में जनता के विश्वास को कम करेगी। प्रत्येक न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह अपराध की प्रकृति और उसके किए जाने के तरीके को ध्यान में रखते हुए उचित सजा सुनाए। सुप्रीम कोर्ट ने आगे कहा कि अदालतों को न केवल अपराध के पीड़ित के अधिकार को ध्यान में रखना चाहिए बल्कि बड़े पैमाने पर समाज को भी ध्यान में रखना चाहिए। उचित सजा देने पर विचार करते समय, पूरे समाज पर अपराध के प्रभाव और कानून के शासन को संतुलित करने की आवश्यकता है। देश में न्यायिक प्रवृत्ति सुधार और दंड के बीच संतुलन बनाने की ओर रही है। समाज की सुरक्षा और आपराधिक प्रवृत्ति पर मुहर लगाना कानून का उद्देश्य होना चाहिए जिसे अपराधियों और गलत काम करने वालों पर उचित सजा देकर हासिल किया जा सकता है। कानून, व्यवस्था और शांति

बनाए रखने के लिए एक उपकरण के रूप में, समाज के सामने आने वाली चुनौतियों का प्रभावी ढंग से सामना करना चाहिए, क्योंकि समाज लंबे समय तक अपराध और असामंजस्य के गंभीर खतरों के तहत सहन और विकसित नहीं हो सकता है। इसलिए सजा देने में अनुचित उदारता से बचना आवश्यक है। इस प्रकार, देश में अपनाया गया आपराधिक न्याय न्यायशास्त्र प्रतिशोधात्मक नहीं बल्कि सुधारात्मक और संशोधनात्मक है। साथ ही, हमारी दांडिक न्याय प्रणाली में अंतर्निहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से भी बचा जाना चाहिए।

20. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और हमारे देश में आपराधिक न्यायशास्त्र को ध्यान में रखते हुए, जो सुधारात्मक है और प्रतिशोधात्मक नहीं है, यह न्यायालय मानता है कि कोई भी आरोपी व्यक्ति सुधरने में असमर्थ नहीं है और इसलिए, उन्हें सामाजिक धारा में लाने के लिए सुधार का अवसर देने के लिए सभी उपायों को लागू किया जाना चाहिए।

21. जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, 'दंड के सुधारात्मक सिद्धांत' को अपनाया जाना है और इस कारण से, 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखते हुए दंड देना आवश्यक है। आक्षेपित निर्णय के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की संपूर्णता और अपराध की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा आजीवन कारावास की सजा दी गई सजा बहुत कठोर है। जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया है कि दांडिक न्याय प्रणाली में अंतर्निहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से बचा जाना चाहिए।

22. अभियुक्त-अपीलकर्ता, विजय शंकर और मीना देवी ने 12 साल की सजा काट ली है और इसलिए, हम मानते हैं कि उनकी अवधि उनके लिए पर्याप्त सजा होगी। जहां तक अभियुक्त-अपीलकर्ता, चंद्रावती (मृतका की सास) का संबंध है, यह मृत्यु पूर्व घोषणा में ही आया है कि वह अन्य लोगों के साथ मृतका को अस्पताल ले गई है और उसकी उम्र को देखते हुए, उसके द्वारा बिताई गई अवधि उसके लिए पर्याप्त सजा होगी। अभियुक्त-अपीलकर्ताओं को, यदि किसी अन्य मामले में वांछित नहीं है, तत्काल रिहा किया जाए।

23. उपर्युक्त के मद्देनजर, अपील को आंशिक रूप से अनुमति दी जाती है। विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय और आदेश पूर्वोक्त सीमा तक संशोधित माना जाएगा। रिकॉर्ड को तुरंत विचारण न्यायालय को वापस भेजा जाए।

(2023) 3 ILRA 946

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक:इलाहाबाद 17.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा,

माननीय न्यायमूर्ति राजीव जोशी,

आपराधिक अपील संख्या 4587/2018

संलग्न

आपराधिक अपील संख्या 4646/2018

सतीश नागर ...अपीलकर्ता

बनाम

यूपी राज्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री दिलीप कुमार, श्री अंशुल कुमार सिंघल, श्री अश्विनी कुमार अवस्थी, श्री जय प्रकाश सिंह, श्री मनीष तिवारी, श्री राजर्षि गुप्ता, श्री वी.पी. श्रीवास्तव (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अधिवक्ता प्रतिवादी: जी.ए., श्री इंद्र कुमार चतुर्वेदी, श्री कपिल त्यागी, श्री समर्थ सिन्हा, श्री संजय सिंह, श्री शिवम सिंह, श्री ब्रिजेश सहाय (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860- धाराएँ 147, 148, 149, 302 और 506 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धाराएँ 157 और 313 - उचित संदेह से परे - मृतक के शरीर पर 11 गोली के घाव थे और कार में पांच निकासी घावों में से एक भी निकासी गोली नहीं मिली - दो गवाह जो दावा करते हैं कि वे मृतक के साथ थे, उन्हें कोई चोट नहीं आई और न ही उन पर कोई खून का धब्बा मिला - यदि PW-1 ने मृतक को उठाया और अस्पताल ले गए, तो उनके कपड़ों पर खून होना चाहिए था - पुलिस नियमों का पालन नहीं किया गया, विवेचक का काम था कि वह शपथपत्र और अन्य साक्ष्य पर ध्यान दे - CW-1 और DW-8 के गवाहियों के कारण यह संदिग्ध हो जाता है - यह तथ्य कि मजिस्ट्रेट को धारा 157 Cr.P.C. के तहत सूचना में विलंब हुई, धारा 27 के तहत सबूत का खुलासा संदिग्ध था, बैलिस्टिक रिपोर्ट ने यह नहीं कहा कि 11 में से 10 खाली कारतूस दो पिस्टलों से फायर किए गए थे जो प्राप्त हुई थीं और यह भी कि निकासी गोलियाँ और कांच की खिड़कियाँ विवेचक द्वारा अभिज्ञान में नहीं लिया गया - (पैराग्राफ 38, 42, 43)

साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 27 - वसूली का साक्ष्य - फर्द बरामदगी - जब आरोपी हिरासत में रहते हुए दो स्वतंत्र गवाहों के सामने बयान देता है, तो आरोपी द्वारा कहा गया सटीक बयान फर्द बरामदगी में विवेचक द्वारा सम्मिलित किया जाना चाहिए - आरोपी का बयान उसकी अपनी इच्छा से था और वह उस स्थान को इंगित करने के लिए तैयार था जहाँ हथियार छिपा था - पुलिस को आरोपी और दो स्वतंत्र गवाहों के साथ उस स्थान पर जाना चाहिए जहाँ आरोपी पुलिस को ले जा सकता था, यह फर्द बरामदगी बनाना चाहिए था - इसलिए, विवेचक का साक्ष्य केवल अविश्वसनीय नहीं था बल्कि यह कहा जा सकता है कि यह किसी कानूनी साक्ष्य का निर्माण नहीं करता। (पैराग्राफ 34, 35)

अपीलें स्वीकार की जाती हैं। (E-13)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. अर्जुन मारिक और अन्य बनाम बिहार राज्य, 1994 सप्लीमेंट (2) SCC 372
2. राजीवन और अन्य बनाम केरल राज्य, (2003) 3 SCC 355
3. मेहराज सिंह (L/Nk) बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (1994) 5 SCC 188
4. रामानंद @ नन्दलाल भारती बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, AIR 2022 SC 5273
5. सुबरमण्या बनाम कर्नाटक राज्य, AIR 2022 SC 5110
6. सी. मुनियप्पन और अन्य बनाम तमिलनाडु राज्य, 2010 (9) SCC 567
7. बादाम सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2003) 12 SCC 792
8. ऋषि केश सिंह और अन्य बनाम राज्य, AIR 1970 इलाहाबाद 51 (FB)

<u>प्रतिः राजीव जोशी, न्यायाधीश</u>

19/5/2012 को 23.05 बजे रात्रि को एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज किए जाने पर भारतीय

दंड संहिता की धारा 147,148,149,302 एवं 506 के अन्तर्गत मामला अपराध संख्या 169 सन् 2012 पंजीकृत किया गया। परीक्षण के लिए जाने के पश्चात मामला सत्र परीक्षण संख्या 483 सन् 2012 के रूप में क्रमांकित किया गया। मामले को परीक्षण के लिए प्रतिबद्ध होने के पूर्व पुलिस ने मामले की जांच कर श्रीपाल सिंह पुत्र खचेडू, जगत सिंह पुत्र रतन लाल एवं सतीश नागर पुत्र शामल नाम के तीन अभियुक्तों के विरूद्ध आरोप पत्र दाखिल कर दिया। चूंकि जांच के दौरान श्री पाल और जगह के आमने सामने हथियार बरामद किए गए, दो और आरोप पत्र शस्त्र अधिनियम की धारा 25 के अर्न्तगत सत्र परीक्षण संख्या 484 सन् 2012 एवं सत्र परीक्षण संख्या 485 सन् 2012 के रूप में क्रमांकित किये गए। तीन प्रमुख मामलो का परीक्षण सत्र परीक्षण संख्या 483 सन् 2012 के रूप में एक साथ चला।

अभियोजन का मामला यह था कि प्रथम सूचना दाता नरेश के बड़े भाई सुरेश ने 3-4 दिन पहले दाताराम से कुछ दुकाने खरीदा था जो सुतियाना बस स्टैंड पर स्थित थी। चूंकि अभियुक्त श्रीपाल भी उन दुकानों को खरीदना चाहता था, अभियुक्त श्रीपाल ने सतीश नागर और जगत सिंह के साथ मृतक को चेतावनी दी थी कि अगर वह उन दुकानों को खरीदेगा, तो वे उसे मार डालेंगे। घटना के दिन सुबह भी जब प्रथम सूचनादाता नरेश अपने भाई सुरेश के साथ बस स्टैण्ड गया था तब श्रीपाल, सतीश नागर और जगत दुकान पर पहुंच गए और कहा कि इस तथ्य के बावजूद भी कि उन्होंने उसे दुकान न खरीदने की चेतावनी दी थी, उसने दुकान खरीदी और इसलिए वे उसे सबक सिखाएंगे।

अभियोजन का मामला आगे यह है कि चेतावनी आदि के बाद किसी प्रकार के विवाद से बचने के लिए प्रथम सूचनादाता और मृतक घर लौट गए। किसी तरह उसी तारीख अर्थात 19/5/2012 को 9.30 रात्रि को जब प्रथम सूचनादाता, मृतक सुरेश और तीसरा भाई पवन अपनी स्कार्पियो कार सं० यूपी16 टी 004 से अपने वाहन में ईंधन भरवाने जा रहे थे, और जब वे हबीबपुर बाजार के गेट पर पहुंचे अभियुक्त श्रीपाल ने अपनी सैन्ट्रोकार संख्या यूपी16 डब्लू 4011 से स्कार्पियों से आगे आया और इसके सामने खड़ी कर दिया और तीन अभियुक्त श्रीपाल, जगत और सतीश नागर दो अन्य व्यक्तियों के साथ जिनके नाम प्रथम सूचनादाता नही जानता था, कार से उतरे और खिड़की का शीशा तोड़ने के पश्चात सुरेश जो चालक की सीट पर बैठा हुआ था, पर अंधाधुंध गोली चलाया। प्रथम सूचना कर्ता और उसका भाई पवन अपनी जान बचाने के लिए स्कार्पियों कार से नीचे उतरे और दूर भाग गए। तत्पश्चात सुरेश को जान से मारने के बाद सेन्ट्रो कार में बैठ गए और सूरजपुर की ओर चले गए। प्रथम सूचनादाता और उसके भाई पवन ने पप्पू होटल के मालिक की कार लिया और अपने बड़े भाई को रात में कैलाश हास्पिटल ले गए जहाँ सुरेश को मृत घोषित कर दिया गया। अभियोजन का मामला यह था कि प्रथम सूचना कर्ता और उसके भाई पवन ने अभियुक्त को गली की लाइट की रोशनी में पहचान लिया। प्रथम सूचना रिपोर्ट प्रथम सूचनाकर्ता नरेश के द्वारा किसी लोकेन्द्र नागर से लिखवाया गया। प्रथम सूचना रिपोर्ट को पेपर संख्या ka-1 के रूप में क्रमांकित किया गया था।

प्रथम सूचना रिपोर्ट के आधार पर मामला अपराध संख्या 169 सन् 2012 भारतीय दंड संहिता की धारा 147,148,149,302 और 506 के अन्तर्गत दर्ज किया गया। चिक एफ आइ आर के ए-15 और उसके अनुसार जनरल डायरी में प्रविष्टि

संख्या 46 रात्रि 23.05 के रूप में प्रविष्ट किया गया। जांच के एक भाग के रूप में जांच रिपोर्ट बी०आर०जैदी (पी डब्लू-6) के द्वारा तैयार की गई जिसे प्रदर्श के ए-2 के रूप में क्रमांकित किया गया। तत्पश्चात शव को शव परीक्षा के लिए मुख्य चिकित्साधिकारी के पास भेज दिया गया। जांच अधिकारी ने भी जांच के दौरान घटनास्थल का एक नक्शा (प्रदर्श ka-7) तैयार किया। जब जांच अधिकारी के संज्ञान में यह बात आयी कि श्रीपाल और जगत ने अपनी गिरफ्तारी के पहले अपनी तमंचे छिपा दी है, तब अभियुक्तों निशानदेही पर तमंचे बरामद की गई और बरामदगी ज्ञापन भी तैयार किया गया एवं प्रदर्श K-13 के रूप में प्रदर्शित किया गया। इस रिकवरी मेमो को जांचकर्ता पीडब्लू-6 द्वारा प्रमाणित करवाया गया।

अभियोजन पक्ष के मामले को साबित करने के लिए 12 अभियोजन गवाहों और एक अदालती गवाह से पूछताछ की गई और जिरह की गई। वे इस प्रकार थे।

पी०डब्लू०-1- नरेश पुत्र बलिराम - पी०डब्लू०1
पी०डब्लू०-2- पवन पुत्र बलिराम - पी०डब्लू०2
पी०डब्लू०-3सी०एस०यादव (सेवानिवृत्त उपनिरीक्षक)
पी०डब्लू०-4- डा०राकेश कुमार
पी०डब्लू०-5- एच सी पी 1 मो०नईम
पी०डब्लू०-6- बी०आर०जैदी, निरीक्षक
पी०डब्लू०-7- एच सी पी 26 विरेन्द्र सिंह
पी०डब्लू०-8- विजेन्द्र सिंह तोमर
पी०डब्लू०-9- महेश कुमार त्यागी, एस०आई०
पी०डब्लू०-10- सेवानिवृत्त निरीक्षक
पी०डब्लू०-11- लोकेन्द्र नागर
पी०डब्लू०-12- शिव प्रकाश सिंह
सी०डब्लू०-1- पप्पू कश्यप

अपने मामले को साबित करने के लिए अभियोजन द्वारा जिन दस्तावेजों का प्रदर्शन एवं उपयोग किया गया वे इस प्रकार थेः-

मूल तहरीर दिनांकित 19/5/2012 (प्रदर्श क-1)
पंचायतनामा (प्रदर्श क-2)
फर्द लेने कब्जा खून आलूदा सीट कवर व सादा सीट कवर का टुकड़ा (प्रदर्श क-3)
शव विच्छेदन आख्या (प्रदर्श क-5)
कार्बन प्रति नकल रपट संख्या 46, समय 23.05 दिनांकित 19/05/2012 प्रदर्श क-6
नक्शा नजरी (प्रदर्श क-7)
चिट्ठी सी०एम०ओ० (प्रदर्श क-8)
चालान लाश (प्रदर्श क-9)
फोटोलाश (प्रदर्श क-10)
नमूना सील (प्रदर्श क-11)
फर्द लेने कब्जे में कार सेन्ट्रो (प्रदर्श क-12)
फर्द बरामदगी आलाकत्ल (प्रदर्श क-13)
फर्द बरामदगी एक अद्द पिस्टल 9 एम एम (प्रदर्श क-14)
चिक एफ आई आर (प्रदर्श क-15)
नक्शा नजरी मु०अ०सं०206/12 प्रदर्श क-16)
जिलाधिकारी अनुमति पत्र (प्रदर्श क-17)
आरोप पत्र मु०अ०सं०206/12 (प्रदर्श क-18)
जिलाधिकारी अनुमति पत्र मु०अ०सं०208/12 (प्रदर्श क-19)
आरोप पत्र मु०अ०सं०208/12 (प्रदर्श क-20)
चिक एफ आई आर मु०अ०सं०206/12 (प्रदर्श क-21)
छायाप्रति नकल रपट सं०52 समय 21.50 (प्रदर्श क-22)
नक्शा नजरी मु०अ०सं०169/12 (प्रदर्श क-23)
नक्शा नजरी मु०अ०सं०(प्रदर्श क-24)
नक्शा नजरी मु०अ०सं० 169/12 (प्रदर्श क-25)
आरोप पत्र मु०अ०सं० 169/12 (प्रदर्श क-26)

नक्शा नजरी (प्रदर्श क-27)

चिक एफ०आई०आर० मु०अ०सं०208/2012 (प्रदर्श -28 पी०डब्लू०6 वादी द्वारा थानाध्यक्ष को लिखा पत्र (प्रदर्श ख-1 विधि विज्ञान प्रयोगशाला उ०प्र० आगरा द्वारा प्रेषित आख्या (प्रदर्श क-29) अभियुक्तों ने सी०आर०पी०सी० की धारा 313 के तहत अपना लगायत क-33" बयान दिया और उन्होने कोई भी अपराध करने से इन्कार कर दिया। उन्होंने यह भी कहा कि आग्नेयास्त्रों की बरामदगी अभियुक्त श्रीपाल और जगत सिंह से गलत ढंग से की गई थी। उन्होने यह भी कहा कि गलत जांच के आधार पर अभियोजन ने अभियुक्तों को फंसाया था। आरोपी की ओर से 9 बचाव पक्ष के गवाहों को पेश किया गया और उनका परीक्षण किया गया।

वे इस प्रकार थेः-

डी०डब्लू०-1- बृजपाल

डी०डब्लू०-2- रूपेश कुमार

डी०डब्लू०-3- जयपाल भगत जी

डी०डब्लू०-4- शामल

डी०डब्लू०-5- रम्मी

डी०डब्लू०-6- अंजू भाटी

डी०डब्लू०-7- सत्यप्रकाश

डी०डब्लू०-8- विनोद

डी०डब्लू०-9- अनुज कश्यप

पी०डब्लू०-1- प्रथम सूचनाकर्ता ने अपनी मुख्य परीक्षा में कहा है कि घटना 19/5/2012 की थी। उसके बड़े भाई जो घटना में मर गए सुरेश चन्द था। घटना 9.30 रात को कच्ची सड़क के चौराहे और सर्विस रोड पर हुई थी। उसने कहा कि वह अपने छोटे भाई पवन और सबसे बड़े भाई सुरेश के साथ अपनी स्कार्पियों कार सं० यूपी 16 टी 0004 में ईंधन लेने गए थे और जब वे फ्यूल स्टेशन की ओर जा रहे थे, एक सेन्ट्रो कार स्कार्पियों कार के आगे आगई और स्कार्पियो कार के सामने खड़ी हो गई जिसका नं० यूपी 16 डब्लू०4011 था। उस कार से श्री पाल, सतीश नागर, जगत और 2 अन्य लोग बाहर आए। बाद में दो अन्य लोगो के नाम उसके भाई पवन द्वारा बताया गया और उसने खुलासा किया कि वे पप्पू और सतपाल पुकारे जाते थे। उसने अपने बयान में बताया कि वह अभियुक्तों को पहले से जानता था। उसने कहा कि जब वे कार से उतरे उनके पास पिस्तौल जैसा छोटा अग्नेयास्त्र था। ड्राइवर की सीट की तरफ आने के पश्चात उन्होंने खिड़की खोलने का प्रयास किया। जब वह नही खुली तब उन्होंने अग्नेयास्त्र के बट से खिड़की के शीशे को तोड खोल दिया। जब नरेश और पवन पी०डब्लू०-1 और-2 ने हमलावरों की इस कार्यवाही पर आपत्ति किया तो हमलावरों ने सुरेश पर अन्धाधुंध गोलियाँ चला दी। गोली चलने की शुरूआत में प्रथम सूचना कर्ता और उसका छोटा भाई अपनी जान बचाने के लिए कार के बाहर आ गए। उन्होंने बहुत शोर शराबा किया किन्तु किसी ने इस पर प्रतिक्रिया नही किया। जब वे अपने कार की इग्निशन की नही पाए तब वे पप्पू होटल पर खड़ी एक मारूति कार पाए और उस कार से वे अपने भाई को कैलाश अस्पताल ले गए। यह कहा गया कि होटल से एक बच्चा भी उनके साथ गया। अस्पताल पहुंचने पर डा० ने प्रथम सूचनाकर्ता के बड़े भाई की जांच किया और उन्हे मरा घोषित कर दिया। सुरेश के मृत घोषित होने पर नरेश पुलिस स्टेशन गया और उसके लिखाने पर उसके भतीजे ने प्रथम सूचना रिपोर्ट लिखी और इस पर नरेश ने अपने हस्ताक्षर किया। इस प्रकार उसने प्रथम सूचना रिपोर्ट साबित किया। तत्पश्चात उसने बयान दिया कि पुलिस अस्पताल गई और जांच प्रारम्भ कर दिया जिसमें जांच रिपोर्ट की तैयारी भी सम्मिलित है। उसने

कहा कि जांच रिपोर्ट पर उसका हस्ताक्षर भी है। उसने यह भी कहा कि घटनास्थल से 11 खाली कारतूस के साथ एक जिन्दा कारतूस भी बरामद किया गया जिसे पुलिस द्वारा अपने कब्जे में ले लिया गया। **पी डब्ल्यू 1** ने अभियुक्तों जिनके नाम श्रीपाल, सतीश नागर और जगत को पहचान लिया जो सेन्ट्रोकार में उपस्थित थे।

पी०डब्लू०-2- पवन ने वही बयान दोहराए जो उसके भाई नरेश द्वारा दिए गए थे।

पी०डब्लू०-3- सी०एस०यादव ने जांच अधिकारी बी०आर जैदी के लिखाने पर पंचनामा लिखा, उनकी भी परीक्षा हुई और उन्होंने पंचनामा साबित किया।

पी०डब्लू०-4- डा०राकेश कुमार जिसने शव परीक्षण किया था, ने शव परीक्षण साबित किया तथा मृतक के शरीर पर जो चोटें पाई गई उसका विवरण दिया।

पी०डब्लू०-5- हेड कांस्टेबल मो०नईम ने यह बात कही थी कि 19/5/2012 को प्रथम सूचना रिपोर्ट प्राप्त होने पर जनरल डायरी में प्रवृष्टि सं०46 पर प्रविष्ट किया था।

पी०डब्लू०-6- जांच के सम्बन्ध में बी०आर० जैदी ने विस्तृत बयान दिया था कि उन्होंने कहा था कि अगली तारीख अर्थात 20/5/2012 को मौके की जांच की थी और मौके का मानचित्र तैयार किया था। उसने कहा था कि मौके से उसने 11 खाली कारतूस और 1 जिन्दा कारतूस बरामद किया। उन्होंने सभी को अपने कब्जे में ले लिया और उन्हें सील भी कर दिया। उन्होंने उस तरीके का भी कथन किया जिस प्रकार उन्होंने सीट कवर इत्यादि पर लगे खून के धब्बो का नमूना तैयार किया था। उन्होंने यह भी बयान दिया खि 20/5/2012 को अभियुक्त श्रीपाल और जगत सिंह गिरफ्तार कर लिए गए थे। 27/5/2012 को सेन्ट्रोकार सं० यू०पी०16 डब्ल्यू 4011 को बरामद कर लिया गया था। आगे उन्होंने यह भी बयान दिया कि दिं० 30/5/2012 को उन्होंने जिला जेल डासना से अभियुक्त श्रीपाल और जगत का बयान लिया और उनकी निशानदेही पर उन्होंने आग्नेयास्त्र बरामद किया। 2/6/2012 को बरामदगी श्रीपाल से और 3/6/2012 को जगत सिंह से की गई। उन्होंने कहा कि जांच के पश्चात उन्होंने आरोप पत्र प्रेषित कर दिया। उन्होंने अपना यह भी बयान दिया कि कैसे उन्होंने आग्नेयास्त्रों को फारेन्सिक प्रयोगशाला में भेज दिया।

पी०डब्लू०-7- हेड कांस्टेबल वीरेन्द्र सिंह ने कहा था कि वह पुलिस स्टेशन में तैनात थे जहां उनकी ड्यूटी कम्प्यूटर पर टाइप करना था। उन्होंने कहा कि प्रदर्श क-1 के आधार पर उन्होंने मामला दर्ज कर लिया।

पी०डब्लू०-8- वीरेन्द्र सिंह तोमर आर्म्स एक्ट के आधीन जगत सिंह के मामले में जांच अधिकारी थे।

पी०डब्लू०-9- उपनिरीक्षक महेश कुमार त्यागी आर्म्स एक्ट के आधीन श्रीपाल मामले के जांच अधिकारी थे।

पी०डब्लू०-10- अवकाश प्राप्त निरीक्षक ओम प्रकाश थे और सी०बी०सी०आइ०डी० के लिए जांच अधिकारी थे।

पी०डब्लू०-11- लोकेन्द्र कुमार की भी जांच की गई जिन्होंने नरेश के लिखाने पर प्रथम सूचना रिपोर्ट लिखा था।

पी०डब्लू०-12- शिव प्रकाश सिंह एक पुलिस गवाह भी था। बचाव पक्ष की ओर से बृजपाल, रूपेश कुमार, जयपाल भगत जी शाहमल, रम्मी, अनुज भाटी, सत्य प्रकाश अनुज कश्यप और विनोद को पेश किया गया और उसी परीक्षा क्रमशः डी०डब्ल्यू 1 से 9 के रूप में की गई और अभियुक्त सतीश

नागर अन्यत्र उपस्थित होने के तर्क को साबित करने का प्रयास किया।

डी०डब्लू-8 अनुज कश्यप ने शपथ पर कहा कि 19/5/2012 की रात 9.30 बजे के करीब वह होटल में था और जब वह होटल बन्द कर चुका था और अपने घर की ओर जा रहा था तब उसने पाया कि उसके होटल के नजदीक स्कार्पियो कार खड़ी की गई थी और सुरेश के बड़ी मात्रा में खून वह रहा था। उसने कहा कि उसने एक लड़के को उसके पिता के पास इस घटना की सूचना देने के लिए भेजा। तत्पश्चात वे सुरेश को अपनी गाड़ी में लेकर उसे बालाजी हास्पिटल ले गए जहाँ डाक्टरो ने और अच्छे इलाज की सलाह दिया। पप्पू कश्यप जो जांच रिपोर्ट का गवाह था और आरोप पत्र में अभियोजन गवाह के रूप में भी प्रवृष्ट किया गया था को अभियोजन द्वारा छोड़ दिया गया लेकिन अदालती गवाह के रूप में परीक्षित किया गया। अपने बयान में उसने कहा कि उसका होटल हबीबपुर बाजार में कच्ची सड़क के टी बिन्दु पर है एवं घटना की तारीख एवं समय पर वह अपने होटल में नही था लेकिन उसके दो बेटे अनुज और अंकुर होटल में थे। उन्ही के द्वारा उसे सूचित किया गया कि सुरेश घायल कर दिया गया था। बच्चों ने उसे सूचित किया कि सुरेश को वे बालाजी अस्पताल ले गए थे जहाँ डाक्टरो ने लेने से इन्कार कर दिया और यह कि उसके बाद पप्पू मृतक को अस्पताल ले गया जहां उसे मृत घोषित कर दिया गया। अपनी जिरह में उसने स्पष्ट रूप से बताया कि मृतक के भाई नरेश और पवन वहाँ उसके साथ नही थे। उसने आगे बयान दिया कि अभियुक्तों में से एक जगत अस्पताल पहुंचा था।

इसके समक्ष लाए गए सभी साक्ष्यों का मूल्यांकन करने पर परीक्षण सत्र न्यायालय द्वितीय अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, गौतम बुद्ध नगर ने 22/6/2018 को अभियुक्तों को दोष सिद्ध किया और इसीलिए वर्तमान तत्काल अपीलें। दो अपीले दायर की गई। एक आपराधिक अपील संख्या 4646 सन् 2018 जो श्रीपाल और जगत के द्वारा दायर की गई और दूसरी आपराधिक अपील सं०4587 सन् 2018 जो सतीश नागर के द्वारा दायर की गई।

आपराधिक अपील संख्या 4646 सन् 2018 तथा आपराधिक अपील संख्या 4587 सन् 2018 में अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ताओं श्री जे०पी० सिंह तथा श्री जयशंकर औदिच्य द्वारा सहायता प्राप्त वरिष्ठ अधिवक्ता श्री वी०पी०श्रीवास्तव ने कहा कि वर्तमान घटना घटी किन्तु यह बहुत सन्देहयुक्त है कि अभियुक्त इसके लिए जिम्मेदार थे। अपने तर्क को मजबूत करने के लिए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने निम्नलिखित दलीले दी।

(i) विद्वान अधिवक्ता ने चश्मदीद गवाह अर्थात पी०डब्लू०1 और पी०डब्लू०2 पर सवाल उठाया। उन्होंने कहा कि यदि **सी डब्लू-1** पप्पू कश्यप और उसके बेटे अनुज कश्यप के बयान का अध्ययन किया जाय तो यह प्रचुर मात्रा में स्पष्ट हो जाएगा कि दो भाई नरेश और पवन घटना स्थल पर नही थे। उन्होंने न्यायालय से पप्पू कश्यप के ब्यान को परखने के लिए विनती किया और दलील दिया कि पप्पू कश्यप ही वह व्यक्ति है जिसे अपने बेटे के द्वारा सुरेश पर की गई गोली बारी की सूचना मिली। अपने परीक्षण में उसने बयान दिया कि प्रारम्भ में बच्चे सुरेश को बालाजी अस्पताल ले गए और जब बालाजी अस्पताल ने सुरेश को भरती करने से मना कर दिया तब वे उसके पास अर्थात पप्पू कश्यप के पास आए और तत्पश्चात पप्पू कश्यप कार चलाकर कैलाश अस्पताल पहुंचे। उसने स्पष्ट रूप से बयान दिया कि वह अकेले हो न

कि कोई अन्य सुरेश को कैलाश अस्पताल ले गया। उसने श्रेणीबद्ध तरीके से बयान दिया कि नरेश और पवन अस्पताल में नही थे।

(ii) विद्वान अधिवक्ता ने आगे अनुज कश्यप के बयान पर न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया जिसने कहा था कि 2018 में बयान देने के समय उसकी आयु 22 वर्ष थी इसका तात्पर्य है कि सन् 2012 में उसकी आयु 16 वर्ष रही होगी। उसने बयान दिया है कि जब घटना घटी उसने सुरेश को खून से लथपथ अपनी स्कार्पियों कार में पाया। आगे उसने यह भी कहा कि जब वह स्वंय और उसका भाई सुरेश को बालाजी अस्पताल ले गए तब उसने उसके पिता को साबू के पुत्र गुड्डन के माध्यम से खबर भेजी। बालाजी अस्पताल के डाक्टरों द्वारा घायल को भर्ती करने से मना करने के पश्चात अनुज कार चलाकर गांव वापस आया जहाँ उसके पिता ने गाड़ी कब्जे में ले लिया। उसने यह भी बयान दिया कि जब उसने सुरेश को उसकी कार से बाहर निकाला, न तो नरेश और न ही पवन घटनास्थल पर उपस्थित थे। उसने यह भी स्वीकार किया कि जब उसके पिता पप्पू कश्यप सुरेश को लिया उस समय भी नरेश और पवन नही मिले। उसने यह भी बयान दिया कि घटनास्थल से उसका गांव केवल 100 से 150 मी० दूर था।

(iii) दूसरा तर्क जो अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने बढ़ाया यह है कि 19/5/2012 को मृतक सुरेश के टेलीफोन नं० से टेलीफोन सं०9910104300 से मोबाइल संख्या 9910669785 पर 21.33 रात्रि, 21.40 रात्रि और 21.55 रात्रि को बात की गई। विद्वान अधिवक्ता ने दलील दिया कि जब पी डब्लू०1 कहता है कि उसने अपने भाई सुरेश का मोबाइल अपने अधिकार में 9.35 रात को ले लिया तो उस फोन से 9910669785 पर बात कैसे सम्भव हुई। आगे वह दलील देते हैं कि मो०सं०9910104300 से **पी डब्लू० 1-** नरेश के मो०सं०8510004300 पर 21.57 बजे और 21.56 रात को 19/5/2012 को बात हुई। अपील कर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि यह कैसे सम्भव हुआ कि जब **पी०डब्लू०1** कह रहा था कि मृतक की हत्या रात 21.30 पर हुई, तब फोन पर बात उसके बाद 21.35 की रात, 21.40 रात, 21.55 रात 21.56 रात और 22.56 रात को मृतक के फोन से बात हुई। विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि अभियोजन द्वारा बात का ब्योरा रिकार्ड पर लाया गया और उसको किसी ने इन्कार नही किया।

(iv) अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने अपने तर्को को बल देने के लिए कि पी डब्लू०1 और पी डब्लू-2 घटना स्थल पर नही थे और यह कि मृतक पप्पू कश्यप के द्वारा लाया गया, न्यायालय को अस्पताल की पत्रावली दिखलाया जो यह दिखलाता है कि मृतक पप्पू कश्यप के द्वारा अस्पताल लाया गया।

(v) अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने इसके बाद इस बात पर अधिक बल दिया कि जब नरेश ने प्रथम सूचना रिपोर्ट लिखवाई जो कि **प्रदर्श क-1** के रूप में प्रदर्शित है। यह रिपोर्ट प्रथम सूचना रिपोर्ट जो लोकेन्द्र की हाथ की लिखावट में है, से पहले की है और इसे थाने पर रखा गया है, प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के लिए यह प्रमाण **प्रदर्श ख-1** के रूप में प्रदर्शित है। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार प्रथम सूचना रिपोर्ट पुलिस स्टेशन के पुलिस अधिकारी राजेश जिन्दल नाम के कान्स्टेबल के द्वारा नोट किया गया है। **पी डब्लू-7** श्री वीरेन्द्र सिंह के ब्यान से इस तथ्य को बल मिलता है जिसने अपनी प्रति परीक्षा में स्पष्ट रूप से कहा है कि प्रथम सूचनाकर्ता नरेश प्रथम

सूचना रिपोर्ट लाया और जिसे कान्सटेबल राजेश जिन्दल को दे दिया गया और राजेश जिन्दल ने उसे कम्प्यूटर में फीड करने के लिए निशान लगाया और इसे टोकरी में रख दिया। पी डब्लू 7 ने आगे बयान दिया कि श्री राजेश जिन्दल ने उसे वह प्रमाण दिखलाया और यह नरेश पी०डब्लू०1 के द्वारा हस्ताक्षरित किया गया। प्रमाण पर राजेश जिन्दल का हस्ताक्षर था जिसे **पी०डब्लू०7** के द्वारा साबित किया गया। उसने बयान दिया कि प्रमाण के द्वारा नरेश ने पुलिस को सूचना दिया कि सुरेश की हत्या अज्ञात हमलावरो द्वारा कर दी गई है। उसने आगे बयान दिया कि **प्रदर्श क-15 चिक रिपोर्ट** उसके सामने कम्प्यूटर के मरम्मत के बाद रखी गई और उसने अपने बयान में कहा कि कम्प्यूटर 19/5/2012 से 21/5/2012 तक खराब था। यह गवाह 20/11/2017 को न्यायालय के आदेश से प्रति परीक्षा के लिए गवाह के कटघरे में लाया गया। 2/1/2018 को अपने मुख्य परीक्षण में पी०डब्लू-7 ने बयान दिया कि प्रदर्श ख-1 उसके सामने नही लाया गया और यह कि राजेश जिन्दल ने कभी उसे तहरीर नही दिया। अपनी प्रति परीक्षा में जब उसका सामना उसके पूर्व के बयान से कराया गया, उसने कहा कि उसने 19/8/2016 को जो बयान दिया था वह सही था। उसने आगे कहा कि जब कम्प्यूटर की मरम्मत हो गई तभी वाद की प्रथम सूचना रिपोर्ट उसके सामने लाई गई। वास्तव में उसने प्रभाव पूर्वक बयान दिया कि **प्रदर्श ख-1** 19/5/2012 को टोकरी में रखा गया। उसने यह भी बयान दिया कि प्रदर्श ख-1 पर पुलिस स्टेशन की मुहर भी लगी थी।

(vi) अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि जब जांच रिपोर्ट तैयार की गई तब बाद में शव को पोस्टमार्टम की प्रार्थना के साथ पोस्ट मार्टम के लिए भेज दिया गया। शव के शरीर के साथ पेपर्स की सूची भी भेजी गयी। यह सूची स्पष्ट दिखलाती है कि पंचायतनामा तीन पृष्ठों का था, फोटोनैश पेज का नमूना नैश 1 पेज का, चालान नैश 1 पेज का रिजर्व इन्स्पेक्टर की रिपोर्ट 1 पेज की, रिपोर्ट सी०एम०ओ०-1 पेज की और प्रथम सूचना रिपोर्ट भी 1 पेज की। इसलिए विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि जब कम्प्यूटर 19/5/2012 से 21/5/2012 तक ठीक नही था तब पोस्टमार्टम की प्रार्थना जो 20/5/2012 को भेजी गई तीन पेज की चिक प्रदर्श का-15 नही रख सकती थी और इसीलिए **प्रदर्श ख-1** जो कि प्रथम सूचना रिपोर्ट जिसे समय के बिन्दु पर दर्ज किया गया, केवल अकेली थी और 1 पेज की थी। इसलिए उन्होंने तर्क दिया कि अगर **प्रदर्श ख-1** का अध्ययन किया जाय तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि घटना स्थल पर कोई चश्मदीद गवाह नही था।

(vii) अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे यह दलील दिया कि पप्पू कश्यप जो कि पंचायतनामा/जांच रिपोर्ट का गवाह था, अभियोजन का गवाह भी था जो पुलिस द्वारा उल्लिखत थी, पुलिस द्वारा दाखिल किए गए आरोप पत्र में। तब यह तर्क पर खड़ा नही उतरता कि क्यों अभियोजन ने उसका नाम अभियोजन के गवाहों की सूची से हटा दिया था। उसने दलील दिया कि न्यायालय ने आश्वस्त होने पर कि अभियोजन गवाह पप्पू कश्यप को अभियोजन की सूची से बदनीयती से हटा दिया गया, पप्पू कश्यम को **सी डब्लू-1** के रूप में बुलावा भेजा। आगे विद्वान अधिवक्ता ने दलील दिया कि पप्पू कश्यप की गवाही इस तथ्य के बारे में आवाज से बोलती है कि **पी डब्लू-1** और **पी डब्लू-2** मौके पर उपस्थित नही थे। आगे अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने दलील दिया कि अगर **पी डब्लू-1** के बयान को देखा जाय तो यह स्पष्ट हो जाता है कि उसने यह कहा है कि

वह पिछली सीट पर बैठा हुआ था जबकि उसका भाई पवन ड्राइवर के साथ आगे वाली सीट पर बैठा हुआ था। इसके विपरीत पवन पी०डब्लू०2 ने कहा कि वह पिछली सीट पर बैठा हुआ था, जब कि आगे की सीट पर चालक के साथ नरेश बैठा हुआ था। इसीलिए प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि **पी डब्लू-1** और **पी डब्लू-2** के बयानों में बड़ा विरोधाभास है। विद्वान अधिवक्ता ने दलील दिया कि इस विरोधाभास को अनदेशा किया जा सकता है, लेकिन इस मामले में जब कि गवाहान यह स्पष्ट बताने में असमर्थ थे कि घटना के समय वे कहाँ बैठे हुये थे तब यह विचार करने के लिए निश्चित रूप से बड़ा बिन्दु बन जाता है। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे दलील दिया कि यह एक भूल मात्र हो सकती है कि पिछली सीट के किस तरफ कौन गवाह बैठा हुआ था, तब भी यह नजर अन्दाज किया जा सकता था लेकिन जब गवाह भ्रमित हैं कि वे कहाँ बैठे हुए थे, पिछली सीट पर था आगे की सीट पर तब निश्चित रूप यह एक बिन्दु बन जाता है, जिस पर विचार करने की जरूरत है। उन्होंने इसलि तर्क दिया कि वास्तव में **पी०डब्लू०1** और **पी०डब्लू०2** मौकाए वारदात पर नही थे और व एक मनगढ़त कहानी लेकर आ रहे थे।

(viii) अपीलार्था के विद्वान, अधिवक्ता का तर्क है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट को दर्ज होने के पश्चात **सी०आर०पी०सी०** की धारा 157 के अन्तर्गत मजिस्ट्रेट के यहां भेजे जाने की आवश्यकता है। भेजी जानी चाहिए थी उस मजिस्ट्रेट के पास जो पुलिस रिपोर्ट पर अपराध पर संज्ञान लेने के लिए प्राधिकृत है। उन्होंने तर्क दिया कि यदि रिपोर्ट धारा 157 सी०आर०पी०सी० के अन्तर्गत तुरंत नही भेजी गयी तब यह अभियोजन की ओर से की गई भारी कमी है। अपने मामले के समर्थन में अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने **अर्जुन मारिक एवं अन्य बनाम बिहार राज्य प्रतिवेदित 1994 एस यू पी पी (2) एस सी सी 372** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया। इस सम्बन्ध में अपील कर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **राजीवन एवं अन्य बनाम केरल राज्य 2003 3 एस सी सी०355** में प्रतिवेदित एवं **महाराज सिंह (एल/एन के) बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (1994) 5 एस सी०सी 188** में प्रतिवेदित मामलो पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिये गये निर्णय पर भरोसा किया।

(ix) अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने दलील दिया कि घटनास्थल एक जिन्दा कारतूस के साथ 11 खाली कारतूस पाए गए पोस्टमार्टम (शव परीक्षण रिपोर्ट) यह यह संकेत देती है कि 11 की संख्या में प्रवेश घाव तथा 5 बाहर की ओर घाव थे। उन्होंने तर्क दिया कि जब 11 खाली कारतूस पाए गए तब निश्चित रूप 11 वहां घाव थे लेकिन 5 गोलियाँ जिससे 5 वाह्य चोटे कारित की गई, वे स्कार्पियो कार में कहीं नही मिली। इसलिये उन्हों तर्क दिया कि निश्चित रूप से मृतक को कार के बाहर खींचा गया और कार के बाहर मार डाला गया तथा उसके उपरांत स्कार्पियों कार में ड्राइवर की सीट पर रख दिया गया।

(x) अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि जब हमलावरों ने खिड़की के शीशे को तोड़ दिया और तब बाहर से गोली चलाई तब जांच अधिकारी को टूटी खिड़की के शीशे को टुकड़ो को इकट्ठा करना चाहिए था। इसलिए उन्होंने सुझाव दिया कि यह प्रतीत होता है कि, समय जब शव को खोजा गया तब खिड़की का शीशा अखंडित था और बाद में शीशे को दुष्टतापूर्वक तोड़ा गया और इसलिए जाँच अधिकारी की रिपोर्ट में कांच के टूटे टुकड़ो का कोई उल्लेख नही है।

(xi) अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे दलील दिया कि जब लगातार ऐसी गोली बारी रही थी यह स्वाभाविक था कि दूसरे दो चश्मदीद गवाह जिन्होंने दवा किया कि वे कार के अन्दर बैठे हुए थे, उन्हें भी गोलियों से आघात पहुंचना चाहिए था और उनके कपड़ो पर कम से कम खून के कुछ धब्बे होने चाहिए थे।

(xii) अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि यदि चश्मदीद गवाहों ने मृतक को स्कार्पियों कार से बाहर निकाला होता और उसे पप्पू कश्यप की मारूति कार में रखा होता तब भी उनके कपड़ो पर खून के कुछ धब्बे होते और चूंकि उनके कपड़ो पर कोई खून नही मिला, यह कहानी कि वे मृतक को अस्पताल ले गए थे, असम्भव थी। विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि **पी डब्लू-1** और **पी डब्लू-2** ने गलत बयान दिया ता कि उन्होंने कपड़े धुल दिए थे। उन्होंने तर्क दिया कि जब ऐसी बड़ी हत्या हुई हो तब उन्हे अपने कपड़े धुलने का समय नही मिला होता।

(xiii) अपील कर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि 2/6/2012 को श्रीपाल की निशानदेही पर जांच अधिकारी ने जलपुरा गांव के नजदीक पानी की टंकी के पास हिन्डन के टी बिन्दु पर बुलगारिया में बनी 9 एम०एम० की पिस्तौल बरामद किया। उन्होंने यह भी कहा कि जांच अधिकारी ने यू०एस०ए० में बनी 9 एम०एम की पिस्तौल भी 3/6/2012 को जगत सिंह की निशान देही पर हिन्डन पुस्ता के पास से बरामद किया। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि- ये दो बरामदगी जो कथित तौर पर साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अन्तर्गत की गई, विधि में पूर्ण रूप से खराब है क्योंकि साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अन्तर्गत अभियुक्त जो अभिरक्षा में है जब यह प्रदर्शित करने का इरादा करता है कि उसी ने शस्त्र छिपाया है और वह इसे प्राप्त कराना चाहता है तब उसका सारा बयान दो स्वतन्त्र गवाहों के समक्ष कराया जाना चाहिए और उसके द्वारा बोले गए बयान को उसी रूप में पंचनामा में समाविष्ट कर दिया जाना चाहिए। और इसलिए जांच अधिकारी को कानून के तहत रिकवरी मेमो बनाना चाहिए था। ह पुलिस स्टेशन में स्वतन्त्र गवाहों की उपस्थित में किया जाना चाहिए था ताकि यह विश्वास दिलाया जा सके कि वास्तव में विशेष बयान अभियुक्त के द्वारा बनाया गया कि उसने अपनी मर्जी से अपनी स्वतन्त्र इच्छा से उस स्थान पर ले जाना चाहता था जहाँ अपराध के हथियार छिपाए गये थे। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि एक बार जब पंचनामा की कार्यवाही पूरी हो गई तो पुलिस दल को अभियुक्त एवं दो स्वतन्त्र गवाहों के साथ उस स्थान विशेष पर जाना चाहिए जहां अभियुक्त पुलिस दल को ले जाता और यदि उस स्थान खास से अपराध के हथियार बरामद होते तो पंचनामा के दूसरे भाग की प्रक्रिया को रूप दे दिया जाता।

वर्तमान मामले में, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की दलील है कि जब्ती उस ढंग से नही की गई जैसी की भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अन्तर्गत किए जाने की आवश्यकता थी। इस सम्बन्ध में अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने **रामानन्द एवं नन्दलाल भारती बनाम उत्तर प्रदेश राज्य ए आई आर 2022 एस सी 5273 में** रिपोर्ट की गई तथा **सुब्रामणया बनाम कर्नाटक राज्य ए आई आर 2022 एस सी 5110** में रिपोर्ट किए गए मामलो में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा किया।

इसीलिए अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि जब भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अन्दर की गई जब्ती

त्रुटिपूर्ण हो जाती है, अभियोजन का पूरा मामला, जहां तक आग्नेयास्त्र की जब्ती का सम्बन्ध है, गलत हो जाता है। अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता की आगे दलील है कि प्राक्षेपिकी विशेषज्ञ के पास आग्नेयास्त्र आरोप पत्र दाखिल होने के बहुत बाद भेजा गया। उन्होंने आगे दलील दिया कि अगर फारेन्सिक प्रयोगशाला की रिपोर्ट को देखा जाये तो यह स्पष्ट हो जाता है कि वही ग्यारह खाली कारतूस भेजे गए थे। ई सी-I के रूप में चिन्हित एक खाली कारतूस 9 एम एम, 8 खाली कारतूस 7.62 एम एम और2 खाली कारतूस 7.65 एम एम के थे। मृतक के शरीर से दूसरी गोलियां भी पाई गई। फारेंसिक प्रयोगशाला से जब बैलिस्टिक रिपोर्ट आई, यह माना गया कि एक 9 एम एम की खाली कारतूस 1111 अंकित और 1/2012 के रूप में चिन्हित पिस्टल से दागा गया होगा। अभियोजन मामले के अनुसार यह वही पिस्टल है जो श्रीपाल के इशारा करने पर प्राप्त की गई। दूसरे कारतूस पिस्तल संख्या 11111 चिन्हित 1/2012 अथवा जगत सिंह के इशारे पर पाए गए पिस्तल सं०7700 चिन्हित 2/2012 पिस्तल से सम्बन्धित नही किए जा सकते थे। अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता की इसीलिए यह दलील है कि जब केवल एक कारतूस का मिलान उस गन से हो गया जो श्रीपाल के निशानदेही पर प्राप्त की गई थी, पूरे मामले को सन्देह युक्त बना देती है। उन्होंने तर्क दिया कि गन जो श्रीपाल की निशानदेही पर प्राप्त की गई, यह गन बुलगारिया में निर्मित थी और इस तथ्य का उल्लेख जब्ती पत्रक में किया गया लेकिन बैलेस्टिक रिपोर्ट यह उल्लेख नही करती है कि पिस्टल किस देश में बनी थी। विद्वान के अधिवक्ता ने आगे दलील दिया कि जगत सिंह के निशानदेही पर जो पिस्तौल बरामद की गई जब्ती पत्रावली में पाया गया कि यह यू एस ए में बनी 7700 न० की 9 एम एम की पिस्तौल थी लेकिन यह तथ्य बैलिस्टिक रिपोर्ट में नही पाया गया कि किस देश में पिस्तौल बनाई गई थी। इसलिए उन्होंने फिर तर्क दिया कि सम्पूर्ण मामला सन्देहयुक्त हो जाता है। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे दलील दी कि जब पिस्तौलें न्यायालय में हाजिर की गई तब **पी डब्लू०6** जांच अधिकारी श्री बी०आर० जैदी ने कहा कि उन्होंने स्वंय पिस्तौलो एवं खाली कारतूसों पर मुहर नही लगाई थी। पिस्तौलो में से एक पिस्तौल में जुड़ी डोरी को देखने पर उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि उन पिस्तौलो में कोई डोरी नही थी जिन्हें उसने भेजा था। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा इसीलिए जो पिस्तौल जांच अधिकारी ने भेजा उसमें डोरी नही थी परन्तु जब एक बार यह न्यायालय में खोली गई तो पिस्तौल में एक डोरी थी। इसीलिए अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क दिया कि पिस्तौल की बरामदगी इस तथ्य की दृष्टि से सन्देहास्पद हो जाती है कि बैलिस्टिक रिपोर्ट उन खाली कारतूसों का उस गन के साथ से मेल नही खाती थी जिसे जगत की निशान देही पर बरामद किया गया था। उन्होंने यह भी दलील दिया कि सभी सम्भावना है कि पिस्तौल जो श्रीपाल की निशानदेही पर आरोपित है, नियोजित पिस्तौल थी। इसीलिए उन्होंने तर्क दिया कि मामला पूर्णरूप से सन्देहयुक्त है।

फौजदारी अपील सं०4587 सन् 2018 (सतीश नागर बनाम उ०प्र०राज्य) के सम्बन्ध में अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि सतीश नागर मौके पर नही था। जांच अधिकारी (पी०डब्लू०-6) श्री बी.आर. जैदी ने कहा कि जांच के दौरान, उसे सूचित किया गया कि किसी धार्मिक उद्देश्य से सतीश नागर राजस्थान में था। **पी**

डब्लू-10 ओम प्रकाश ने कहा कि उसे इस तथ्य के समर्थन में 31 शपथ पत्र प्राप्त हुए है कि सतीश नागर राजस्थान में था। उसने यह भी कहा कि सतीश नागर का फोन एन सी आर तक नही पाया गया। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता डी डब्लू एस के अनेको बयानों के मध्य से न्यालय को ले गए जिन्होंने इस तथ्य की गवाही दिया कि सतीश नागर मौके पर नही था बल्कि राजस्थान में था। सतीश नागर के पास से किसी आग्नेयास्त्र की बरामदगी भी नही की गई। इसीलिए विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि सतीश नागर मौके पर नही था। जवाब में विद्वान ए जी ए श्री एस एन मिश्रा तथा श्री ब्रिजेश सहाय तथा प्रथम सूचना दाता की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री संजय सिंह से सहायता प्राप्त विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री ब्रिजेश सहाय ने दलील दिया कि गवाहों के बयानों में छोटे विरोधाभास एवं विसंगतिया अभियोजन के मामले को प्रभावित नही करती। अपने मामले को शक्ति देने के लिए श्री ब्रिजेश सहाय ने सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **सी मुनियप्पन एवं अन्य बनाम तमिलनाडु राज्य 2010 (9) एस सी सी 567** में रिपोर्ट किए गए मामले में दिए गए निर्णय पर भरोसा किया। विद्वान अधिवक्ता ने निर्णय के 85 वें पैराग्राफ पर विशेष भरोसा किया। ठीक वही यहां नीचे पुनः प्रस्तुत किया जा रहा हैः-

"85 यह विधि का स्थापित कथन है कि अगर कुछ चूक हो गई हो, विरोधाभास हो और विसेगियाँ हो, सम्पूर्ण साक्ष्य की अवहेलना नही की जा सकती है। सावधानी एवं चिन्ता का अभ्यास करने के पश्चात एवं साक्ष्यों के मध्य से गुजरते हुए, असत्य को सत्य से अलग करने के लिए अतिशयोक्ति एवं प्रगति के लिए न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि क्या अभियुक्त को दोषोरोपित करने के लिए अवशिष्ट साक्ष्य पर्याप्त हैं। इसलिए चूक, विरोधाभास और विसंगतियां जो मामले के हृदय? तक नही जाती और अभियोजन के गवाह के आधारभूत संस्करण को हिलाकर रख देती है, को अनुचित महत्व नही देना चाहिए। जैसा कि मानव की मानसिक योग्यता से यह अपेक्षा नही की जा सकती कि वह घटना के सभी विवरण को अवशोषित करने के लिए सक्षम होगा। गवाहों के बयानों में मामूली विसंगतियाँ होने के लिए बाध्य है।"

प्रथम सूचनाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि हमले के तरी के को देखा जाना था कि क्या जांच अधिकारी द्वारा खिड़की के टूटे शीशे के टुकड़ो को ध्यान में रखा गया मामले की जड़ तक नही जाएगा। यह भी कि जांच अधिकारी द्वारा बाहर की ओर की गोली नही पाई गई इस तथ्य को नही बदल देगा कि अपीलकर्ता ने मृतक सुरेश की हत्या की थी। उन्होंने आगे तर्क दिया किया कि इससे थोड़ा फर्क पड़ता था कि **पी डब्लू-1** और **पी०डब्लू०2** इस तथ्य के सम्बन्ध में भ्रमित थे कि वे दोनों किस सीट पर बैठे हुए थे उस समय जब घटना घटित हुई। उन्होंने आगे तर्क दिया कि दो स्वतन्त्र गवाह पी डब्लू-1 और **पी डब्लू-2** थे जिनकी गवाही को हल्के में दूर नही किया जा सकता। उन्होंने तर्क दिया कि घटना के स्थान को पहचान कर ली गई और यह कि घटना घटित हुई इससे इन्कार नहीं किया जा सकता और अभिलेख के साक्ष्य से यह स्थापित हो गया है कि घटना के चक्षुदर्शी गवाह थे। सूचनादाता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि जिन पर बचाव पक्ष ने अभियोजन के मामले को हटाने का प्रयास किया उनकी संख्या 5 हैं अर्थात चक्षुदर्शी साक्षी की अनुपस्थिति, हमले का तरीका, घटना की तारीख और समय, घटना का स्थान और प्रथम सूचना रिपोर्ट का समय, सभी पूर्ण रूप से स्थापित हो

गए और इसीलिए अपीलकर्ताओं के पास कोई मामला नही है। जहाँ तकि कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के सम्बन्ध में अपीलकर्ताओं का तर्क है प्रथम सूचनाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने दलील दिया खोज उस व्यक्ति से थी जो अभिरक्षा में था और उस सूचना को रखे हुए था जो उसने छिपाने के लेखन के बारे में बताया। इसलिए खोज उचित थी और इसे देखा जा सकता था। उन्होंने तर्क दिया कि इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है कि अपीलकर्ताओं के खोज के लिए आगे बढ़ने के पूर्व अभियुक्त की कोई गवाही नही हुई। प्रथम सूचना कर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि फोन पर बात करने के विवरण एवं कागजात जिसके द्वारा मृतक के शरीर को कैलाश अस्पताल लाया गया मामले में प्रदर्शित नही किए गए और इसलिए वे बेकार के कागजात थे और उन पर भरोसा नही किया जा सकता था।

फौजदारी अपील संख्या 4646 सन् 2018 में अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता जे०पी०सिंह द्वारा सहायता प्रदत्त विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री वी०पी०श्रीवास्तव को तथा **अपील संख्या 4587 सन् 2018** में श्री श्याम शंकर शुक्ला द्वारा सहायता प्रदत्त श्री जय शंकर औदिच्य तथा विद्वान अधिवक्ता श्री विजय प्रताप सिंह एवं वरिष्ठ अधिवक्ता श्री बृजेश सहाय, श्री संजय सिंह द्वारा सहायता प्रदत्त सूचनाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता एवं ठीक वैसे ही राज्य की ओर से विद्वान ए जी ए को सुनने के पश्चात हम लोगों का यह मानना है कि दोनों ही फौजदारी अपीलों में सत्र परीक्षण न्यायालय ने अपीलार्थियों को दोषारोपित करने में गलती किया है।

प्रारम्भ करते ही हम पाते हैं कि प्रथम सूचना रिपोर्ट को दर्ज हो जाने के पश्चात दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 157 के अन्तर्गत मजिस्ट्रेट के पास भेजे जाने की आवश्यकता होती है, लगभग दस दिन पश्चात भेजी गई। यह **अर्जुन मलिक एवं अन्य बनाम बिहार राज्य रिपोर्टेड 1994 एस यू पी पी (2), एस सी सी 372 बादाम सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य (सन् 2003) 12 एस सी सी, राजीवन एवं अन्य बनाम केरला राज्य रिर्पोटेड (2003) 3 एस सी सी 355 एवं महाराज सिंह (एल)एन के) बनाम उत्तर प्रदेश राज्य रिपोर्टेड (1994) 5 एस सी सी 188 मामलों** में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय मामले को संदेहास्पद बनाते हैं। इस मामले में जैसा कि अभियोजन का मामला है, सूचनाकर्ता ने मामले को 19/5/2012 को पुलिस को सूचित किया। पुलिस ने कहा कि जी डी में उसी दिन प्रवृष्टि की गई। क्यों खास सूचना ने इतना लम्बा समय लिया यह स्पष्ट नही किया गया है। **पी डब्लू-7** हेड कान्सटेबुल वीरेन्द्र सिंह के बयान से न्यायालय पाती है कि वीरेन्द्र सिंह घटना वाले दिन 19/5/2012 को ड्यूटी पर थे। उसने बयान दिया कि उसने लिखित शिकायत प्राप्त किया था जिसके आधार पर फौजदारी मामला संख्या 169 सन् 2012 आई पी सी की धारा 147,148,149,302 एवं 506 के अन्तर्गत दर्ज किया गया। उसने आगे कहा कि उसने चिक उसी दिन तैयार कर लिया था। जो भी हो प्रति परीक्षा में उसने बयान दिया है कि 19/5/2012 से 21/5/2012 तक कम्प्यूटर खराब था। जो भी हो उसने कहा कि वह नही बता सकता कि किस कारण से खास रिपोर्ट धारा 157 सी०आर पी सी के अन्तर्गत 30/5/2012 को भेजी गई है। इसके साथ संयुक्त होकर जब हम देखते है कि जांच अधिकारी ने जब मृत शरीर को शव परीक्षण के लिए मुख्य चिकित्साधिकारी के पास भेजा तब उसने उन प्रमाण पत्रों की एक सूची बनाली जिन्हें उसने भेजा। प्रमाण पत्रों की सूची में

पंचनामा के तीन पेज थे, एक पेज फोटो नैश, एक पेज चालान नैश, एक पेज नमूना नैश, एक पेज रिजर्व इन्स्पेक्टर, एक पेज सी०एम०ओ० को रिपोर्ट की और पेज प्रथम सूचना रिपोर्ट का था। प्रथम सूचना रिपोर्ट जैसा कि रिकार्ड में था, तीन पेज तक चली। क्यों रिपोर्ट जब तैयार की गई तथा अभिलेख में है 10 दिन के बाद भेजी गई ज्ञात नही है। और इस कारण से अभियोजन की कहानी निश्चित रूप से संन्देहयुक्त हो जाती है।

शव परीक्षण रिपोर्ट तैयार होने तथा अभियुक्तों को हिरासत में रखे जाने के पश्चात श्रीपाल और जगत को न्यायिक हिरासत में रखा गया। उन्हें पुलिस रिमांड पर लिया गया भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अन्तर्गत उनकी निशानदेही पर 2/6/2012 को श्रीपाल से 3/6/2012 को जगत से बन्दूके बरामद की गई। पेपर बुक के पेज संख्या 132 पी डब्लू०6 बी०आर जैदी के ब्यान का अवलोकन स्पष्ट रूप से यह कथन करता है कि दोनो अभियुक्तो के प्रकटीकरण का कोई विवरण नही था। ए०आई आर 2022 एस सी 5273 में रिपोर्ट किए गए **रामानन्द @ नन्दलाल भारती बनाम उत्तर प्रदेश राज्य** तथा **ए आई आर 2022 एस सी 5110 में** रिपोर्ट किए गए **सुब्रामनया बनाम कर्नाटक राज्य** के मामलों में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के अनुसार हम पाते हैं कि प्रकटीकरण अनिवार्य था। अभिरक्षा में रहते हुए जब अभियुक्त दो स्वतन्त्र गवाहों के समक्ष बयान देता है, अभियुक्त द्वारा कहे गए बयान अपेक्षाकृत उसके शब्दो को ठीक उसी रूप में पंचनामा में जांच अधिकारी द्वारा सम्मिलत कर लेना चाहिए और इसीलिए साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के उद्देश्य के लिए अभिसाक्ष्यों के प्रथम भाग को दो स्वतन्त्र गवाहों की उपस्थिति में थाने में लाया जाना चाहिए था। इससे विश्वसनीयता मिलेगी कि एक विशिष्ट बयान जो अभियुक्त के द्वारा दिया गया, उसकी अपनी स्वतंन्त्र इक्षा से ही था तथा वह उस स्थान को इंगित करने को तैयार था जहां अपराध का हथियार छिपाया गया था।

केवल अभिसाक्ष्य के प्रथम भाग के पूर्ण होने के पश्चात ही पुलिस दल को अभियुक्त एवं दो स्वतन्त्र गवाहों के साथ उस स्थान पर जाना चाहिए था जिस स्थान पर अभियुक्त उन्हें ले जा सकता था और इस खोज को जब्ती पत्रक का द्वितीय भाग बनाना चाहिए था। उपरोक्त उद्धृत निर्णय इस प्रकार हैः-

"इस प्रकार कानून जांच अधिकारी से अपेक्षा करता है कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अन्तर्गत परिकल्पित खोज पंचनामा तैयार करे। यदि हम जांच अधिकारी के सम्पूर्ण मौखिक साक्ष्य को पढ़ते हैं तब यह स्पष्ट हो जाता है कि मामले में उपरोक्त कथित समस्त महत्वपूर्ण पक्षों में यही कमी है।"

कानून के उपरोक्त सिद्धान्त को लागू करने पर हम पाते हैं कि जाँच अधिकारी के साक्ष्य न केवल अविश्सनीय थे बल्कि यह कहा जा सकता है कि यह कोई कानूनी साक्ष्य श्रृजित नही कर सका।

इसके अलावा हम पाते हैं कि प्रथम सूचनाकर्ता **पी डब्लू-1** नरेश के द्वारा कथित घटना परीक्षण में तर्क संगत नही है। यह बयान दिया गया है कि घटना 9.30 बजे रात को घटित हुई, लेकिन **पी डब्लू-6** के साक्ष्य से हम पाते हैं कि 9.30 रात के बाद भी मृतक के फोन से बात की गई। इससे भी अधिक यह है कि जब **सी डब्लू-1** पप्पू कश्यप का बयान **डी डब्लू-8** अनुज कश्यप के साथ पढ़ा गया तो यह निश्चित रूप से प्रदर्शित करता है कि अभियोजन का मामला कमजोर था।

सी डब्लू-1 पप्पू कश्यप ने शपथ लेकर कर अपने बयान में कहा कि वही अपने बच्चों के सूचित करने के पश्चात कि सुरेश घायल हो गया है, मृतक को अपनी कार में ले गया। वह अत्यन्त स्पष्ट रूप से बताता है कि घटना के समय कोई उपस्थित नही था। उसने बयान दिया कि उसके बच्चों ने सुरेश को स्कार्पियों कार से बाहर निकाला तथा उसे अपनी कार में बिठाया और सुरेश को बालाजी अस्पताल ले गए। जब बालाजी अस्पताल में अधिकारियों ने (मामले) केस को नही लिया, तब बच्चे शव को वापस ले आए और पप्पू कश्यप सुरेश को कैलाश अस्पताल ले गए। उसने बहुत स्पष्ट रूप से कहा कि जब यह सब चल रहा उस समय वहाँ कोई भी उपस्थित नही था। इसके साथ यदि **डी डब्लू-8** अनुज कश्यप के बयान का अनुसरण किया जाय तो हम पाते हैं कि डी डब्लू-8 से बयान से **सी डब्लू-1** के मामले की पुष्टि होती है। उसने कहा कि जब हमलावरों द्वारा सुरेश पर हमला किया गया, तब वह अनुज कश्यप, सुरेश को अस्पताल ले गया और जब अस्पताल के लोगों ने मामले को लेने से इन्कार कर दिया तब वे अपने गांव चले गए और तब उसके पिता सुरेश को इलाज के लिए ले गए। बयान में यह बहुत स्पष्ट रूप से कहा गया है कि घटनास्थल उस गांव से केवल 100 से 150 मी० दूर था जहाँ पिता पप्पू कश्यप थे। इसलिए हम पाते हैं कि परीक्षण न्यायालय ने भी बिना किसी कारण **डी डब्लू-8** और **सी डब्लू-1** पर अविश्वास किया। यदि दोनो बयान साथ पढ़े जाएं तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि जब घटना घटी तब अनुज कश्यप होटल में उपस्थित था। वह सुरेश के साथ बालाजी नामक अस्पताल को तेजी से गए और जब मामले को इन्कार कर दिया गया, तब उन्होंने वहाँ से अपने पिता की मदद लिया जो इसके बाद सुरेश को कैलाश अस्पताल ले गए। इससे भी अधिक न्यायालय निश्चित रूप से पाता है कि पेपर बुक के पेज 32 पर **पी डब्लू-1** ने कहा कि वह पिछली सीट पर बैठा हुआ था जब कि पेपर बुक के पेज 91 पर **पी डब्लू-2** ने कहा कि वह पिछली सीट पर बैठा हुआ था। यह भी अगर साधारण परिस्थिति में होता मामूली विसंगति होती किन्तु जब ऐै गम्भीर घटना घटी कि उसके सगें भाई की हत्या कर दी गई तब पूर्ण चित्र गवाहों के मस्तिष्क में उकेर दिया गया होता और वे नही भूल सकते थे कि घटना के समय वे किस सीट पर बैठे हुए थे। इस मामले में जब कि उन्हें यह स्पष्ट नही है कि कौन किस सीट पर बैठा हुआ था, यह सन्देहयुक्त हो जाता है कि वे वहाँ थे भी।

इससे बड़ी बड़ी बात यह है कि न्यायालय ने पाया कि मृतक के शरीर पर गोलियों से "चोटे आई और 5 बाहरी चोटों में से एक भी बाहर निकली गोली कार में नही पाई गई। यह भी कि गवाहों में से दो गवाहान जिन्होंने स्वंय मृतक के साथ होने का दावा किया, उनको किसी प्रकार की चोटे नही आई और न ही उनके ऊपर कोई खून का धब्बा ही मिला। इससे भी अधिक यह कि यदि पी डब्लू-। मृतक को उठाया होता और उसे अस्पताल ले गया होता तो उसके कपड़ो पर खून अवश्य होते। वह बहुत सादगी से कहता है कि उसने सभी कपड़े धुल दिए और इसलिए खून की अनुपस्थित का कारण नही बता सकता। निश्चय ही यह न्यायालय के मन में सन्देह उठाता है।

अगर फॉरेन्सिक रिपोर्ट भी देखी जाए, हम पाते है कि ग्यारह खाली कारतूसों में से केवल एक खाली कारतूस को किसी एक विशेष बन्दूक से सम्बन्धित किया जा सकता है और 10 खाली कारतूस दो अभियुक्तों श्री पाल और जगत की मदद से जांच अधिकारी द्वारा खोजी गई दो

बन्दूको में से किसी से मेल नही खाती है। यह पुनः मामले को अत्यधिक संदेहास्पद बनाता है।

जहाँ तक अपीलकर्ता के अधिवक्ता के द्वारा मामले को इस तथ्य के साथ लिया गया कि पी डब्लू-1 नरेश ने पूर्व में ही प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई थी जिसको वे प्रदर्श-ख के रूप में रिकार्ड पर लाए न्यायालय ने यह जाँचने का प्रयास किया कि क्या वह दस्तावेज वहाँ था। यदि **पी डब्लू-7** वीरेन्द्र सिंह के ब्यान को देखा जाए यह स्पष्ट हो जाता है कि इस प्रकार का दस्तावेज पुलिस स्टेशन में लाया गया था और प्रभारी अधिकारी श्री राजेश जिन्दल ने एक दस्तावेज नोट बनाया था कि दस्तावेज को पंजीकृत किया जाना था और इसे एक टोकरी में रख दिया। उसने राजेश जिन्दल के हस्ताक्षर को भी पहचान लिया। हालाँकि न्यायालय इस दस्तावेज को स्वीकार करने में सतर्क है क्योंकि दस्तावेज को बहुत कमजोर तरीके से साबित किया गया। नरेश के हस्ताक्षर को स्वीकृत हस्ताक्षर से सत्यापित नही किया गया जो कि प्रदर्श-का पर था और न्यायालय यह भी अनुभव करती है कि इस दस्तावेज को उस समय खुले में लाया जाना चाहिए था जब जाँच चल रही थी।

ऐसी परिस्थितियों में, यद्यपि कि पी डब्लू-7 वीरेन्द्र सिंह ने दस्तावेज को साबित कर दिया, न्यायालय इसे बहुत विश्वसनीय नही पाती है, और इसलिए किसी भी प्रकार के निष्कर्ष तक पहुंचने के लिए यह किसी भी ढंग से उपयोग में नही लाई जा रही है।

हम लोगो ने ही **डब्लू-1 से डी डब्लू-7** तक के बयानो का अच्छी तरह से अध्ययन किया जिन्होंने अपना बयान दिया कि सतीश नागर राजस्थान गया था। उन्होंने उन अनेको हलफनामों पर भरोसा किया जिसे 31 लोगो ने यह सिद्ध करने के लिए दिया कि उस विशेष तारीख पर सतीश नागर राजस्थान गया था। जो भी हो न तो जाँच अधिकारी ने और न ही सी.बी.सी.ई.डी ने उन दस्तावेजों को देखा, और इसलिए किसी भी निश्चय के साथ यह नही कहा जा सकता कि सतीश नागर राजस्थान गया था। हम अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के तर्क में तथ्य पाते हैं कि पुलिस नियमावली के अनुच्छेद (पैराग्राफ) 107 के प्रावधानों का अनुपालन नही किया गया जैसा कि यह जाँच अधिकारी का कार्य है कि वह हलफनामों को देखे और यह भी उसका यह भी कार्य है कि वह दूसरे अन्य साक्ष्यों को देखे। चूंकि कुछ भी नही देखा गया, यह निश्चय पूर्वक नही कहा जा सकता कि घटना के समय सतीश नागर कहाँ था। हालाँकि **सी डब्लू-1 तथा डी डब्लू-1** की गवाही के कारण मामला निश्चित ही संदिग्ध हो जाता है, तथ्य यह है कि सी आर पी सी की धारा 157 के अन्तर्गत मजिस्ट्रेट को सूचना विलम्ब से दी गई, साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अन्तर्गत की गई खोज संदिग्ध थी, बैलिस्टिक रिपोर्ट यह नही कहती कि ग्यारह में से दस खाली कारतूस उन दो पिस्तौलों से दागे गए जिन्हें खोजा गया था और इस तथ्य के कारण भी की जाँच अधिकारी द्वारा निकास गोलियों और कांच के शीशों पर विचार नही किया गया।

अभियोजन को अपना मामला सभी तर्कयुक्त सन्देह से परे सिद्ध करना चाहिए जैसा कि इस न्यायालय की पूर्ण पीठ का **रिषीकेश सिंह तथा अन्य बनाम राज्य ए आई आर 1970 इलाहाबाद 51 (एफ बी)** में रिपोर्टेड मामले में निर्णय है। फैसले का (प्रवर्तनशील) भाग यहां इस प्रकार पुनरूत्पादित किया गया हैः-

"177 बहुमत के राय के अनुसार इस पूर्ण पीठ को संदर्भित प्रश्न का हमारा उत्तर इस प्रकार है;

1941 ए एल एल एल जे 619 - ए आई आर 1941 ए एल एल 402 (एफ बी) में बहुमत का निर्णय अभी भी अच्छा है। अभियुक्त अवमुक्त किए जाने के लिए अधिकारी हो जाता है यदि न्यायालय के मन में संपूर्ण साक्ष्यों पर जिनमें सामान्य अपवाद की दलील के समर्थन में दिए गए साक्ष्य हैं) विचार करने पर अभियुक्त के अपराध के बारे में सन्देह निर्मित हो जाता है।"

अभियोजन के द्वारा जो मामला लिया गया उसमें वह सभी तर्कयुक्त सन्देह से परे मामरे को साबित करने में निश्चित रूप से असफल हो गया। ऐसी परिस्थितियों में, दोनो अपीलें स्वीकार की जाती हैं। एडीशनल जिला तथा सेशन जज/फास्ट ट्रैक (द्वितीय) गौतमबुद्ध नगर द्वारा 22/6/2018 को पारित निर्णय एवं आदेश रद्द किया जाता है। अपीलकर्ता को यदि किसी दूसरे मामले में वांछित नही है, तत्काल रिहा किया जाए।

(2023) 3 ILRA 961

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 17.03.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर

माननीय न्यायमूर्ति अरुण सिंह देशवाल

आपराधिक अपील संख्या 4926 वर्ष 2012

श्रीमती तस्लीमा ...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिवादी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता: श्री मोहित सिंह, श्री मोहम्मद कलीम, सुश्री मैरी पुंचा

प्रतिवादी के अधिवक्ता: जी.ए.

(A) आपराधिक कानून - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा - 313 - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 304, 323, 326 और 452 - भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा - 3- अपील- दोषसिद्धि और सजा के विरुद्ध- आरोपी के साथ अनैतिक संबंध का आरोप- मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य के बिना दोषसिद्धि- सभी घायल गवाह बने- अपीलकर्ता का नाम मृत्यु पूर्व कथन में नहीं था- आरोपी अपीलकर्ता ने दोष स्वीकार नहीं किया - कठोर कारावास - साक्ष्यों और पोस्ट-मॉर्टम रिपोर्ट की जांच - मृत्यु का कारण हत्या था- क्या दी गई सजा बहुत कठोर है- 'सुधारात्मक दंड' और 'संतुलन का सिद्धांत' का विश्लेषण- निर्णय, समाज की चेतना को ध्यान में रखना होगा और सभी उपाय लागू किए जाने चाहिए ताकि उन्हें सुधार का अवसर मिले और उन्हें सामाजिक धारा में लाया जा सके - आरोपी पहले ही 13 वर्ष कारावास में व्यतीत कर चुकी हैं- उनके एक छोटे बेटे हैं जो उनके लिए वाद लड़ रहा है और सजा नीति के सभी पहलू यह प्रदर्शित करते हैं कि आरोपी को धारा 304 आईपीसी के तहत वर्षों की कैद बितानी होगी- इस वाद में मुख्य साजिशकर्ता द्वारा अपराध कारित किया गया था और उदारता प्रदर्शित करने का कोई प्रश्न नहीं है लेकिन एक निश्चित अवधि का कारावास उचित और सही होगी- न्यायालय का विचार है कि, सुधारात्मक सिद्धांत के आधार पर 9 वर्षों की कैद उचित और सही होगी- इस प्रकार, अपील आंशिक रूप से स्वीकृत की गई- निर्देश पारित किए गए। (पैराग्राफ - 11, 15, 16, 17, 18, 19)

अपील आंशिक रूप से स्वीकृत। (ई-11)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. राज्य बनाम बावा सिंह, 2015 0 सुप्रीम (एससी) 38,

2. देव नारायण मंडल बनाम राज्य उत्तर प्रदेश, 2004 0 सुप्रीम (एससी) 944,

3. काली प्रसाद बनाम राज्य उत्तर प्रदेश, आपराधिक अपील संख्या 1007 / 1996,

4. पिंटू गुप्ता बनाम राज्य उत्तर प्रदेश, क्रिमिनल अपील संख्या 4083 / 2017,

5. मोहम्मद गियासुद्दीन बनाम राज्य आंध्र प्रदेश, AIR 1977 SC 1926,

6. देव नारायण मंडल बनाम राज्य उत्तर प्रदेश, (2004) 7 SCC 257,

7. रावड़ा ससिकला बनाम राज्य आंध्र प्रदेश, AIR 2017 SC 1166,

8. जमील बनाम राज्य उत्तर प्रदेश, (2010) 12 SCC 532,

9. गुरु बसवराज बनाम राज्य कर्नाटका, (2012) 8 SCC 734,

10. सुमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह, (2014) 7 SCC 323,

11. राज्य पंजाब बनाम बाव सिंह, (2015) 3 SCC 441,

12. राज बाला बनाम राज्य हरियाणा, (2016) 1 SCC 463.

<u>माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकेर</u>

<u>माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल</u>

1. अपीलकर्ता - श्रीमती तसलीमा, जो एक वर्ष 12 साल और 9 महीने से जेल में हैं, के अधिवक्ता सुश्री मैरी पंचा को श्री मो. कलीम द्वारा सहायता प्राप्त, और राज्य की ओर से अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना।

2. यह अपील सत्र विचारण संख्या-1256 वर्ष 2010 (राज्य बनाम अतीक अहमद एवं अन्य) में अपर सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या-11, मुरादाबाद द्वारा पारित निर्णय एवं आदेश दिनांक 10.10.2012 को चुनौती देती है, जिसके तहत विद्वान सत्र न्यायाधीश ने भारतीय दंड संहिता, 1860 (इसके बाद 'भ०द०वि०' के रूप में संदर्भित) की धारा 452 के तहत अभियुक्त-अपीलकर्ता को दोषी ठहराया है और उसे 2000/- रुपये के जुर्माने के साथ पांच साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई है। धारा 326 भ०द०वि० के तहत अपराध करने के लिए 5000/- रुपये के जुर्माने के साथ दस साल के कठोर कारावास और धारा 304 भ०द०वि० के तहत अपराध करने के लिए आजीवन कारावास और 10,000 रुपये के जुर्माने के साथ सज़ा सुनाई गई है। सभी सजाएं साथ-साथ चलने का निर्देश दिया गया था।

3. मुख्य अभियुक्त अतीक अहमद मुख्य व्यक्ति था जो प्रस्तुत अपीलकर्ता और दो अज्ञात व्यक्तियों के साथ मौत का कारण बना और अंतिम सांस ली और उसकी अपील, जिसे उसने दायर किया था, पहले ही निरर्थक हो चुकी है।

4. जांच शुरू होने पर, विवेचनाधिकारी ने सभी गवाहों के बयान दर्ज किए और विद्वान मजिस्ट्रेट को आरोप पत्र प्रस्तुत किया। विद्वान मजिस्ट्रेट ने आरोपी को बुलाया और उसे सत्र न्यायालय के सिपुर्द किया क्योंकि प्रथम दृष्टया आरोप धारा 452, 304, 326, 323 भ०द०वि० के तहत था।

5. बुलाए जाने पर, अभियुक्त-अपीलकर्ता ने दोषी नहीं होने का अनुरोध किया और विचारण चाहा। मुकदमा शुरू हुआ और अभियोजन पक्ष ने 8 गवाहों की जांच की जो इस प्रकार हैं:

1	कासिम	अ०सा०-1
2	नदीम अहमद	अ०सा०-2
3	हाजी हाकिम नईम	अ०सा०-3

4	सालिम	अ०सा०-4
5	गेंडा लाल	अ०सा०-5
6	विद्या राम दिवाकर	अ०सा०-6
7	डॉ कुलभूषण	अ०सा०-7
8	डॉ टी के पंथ	अ०सा०-8

6. चक्षुक संस्करण के समर्थन में निम्नलिखित दस्तावेज दायर किए गए और साबित हुए:

1	प्राथमिकी	प्रदर्श क-2
2	तहरीर	प्रदर्श क-1
3	चिथड़े के जले टुकड़े का फ़र्द बरामदगी	प्रदर्श क-7
4	घाव रिपोर्ट	प्रदर्श क-11
5	घाव रिपोर्ट	प्रदर्श क-12
6	घाव रिपोर्ट	प्रदर्श क-13
7	शव परीक्षण रिपोर्ट	प्रदर्श क-10
8	आरोप पत्र	प्रदर्श क-9
9	नक़्शा नज़री सारणी के साथ	प्रदर्श क-6

7. मुकदमे के अंत में, धारा 313 द०प्र०स० के तहत अभियुक्त के बयान दर्ज करने और अभियोजन और बचाव पक्ष की ओर से दलीलें सुनने के बाद, विद्वान सत्र न्यायाधीश ने अभियुक्त-अपीलकर्ता को दोषी ठहराया, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है।

8. सुश्री मैरी पंचा ने प्रस्तुत किया कि अपीलकर्ता के आरोपी अतीक अहमद के साथ अवैध संबंध थे, जिन्होंने जेल में रहते हुए अंतिम सांस ली थी। जब यह घटना हुई थी तब वह 40 साल की थी और अब वह 60 साल की है और जेल में है। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि निचली अदालत के समक्ष पेश किए गए साक्ष्य इतने कम थे कि दोषसिद्धि दर्ज नहीं की जा सकती थी। यह घटना 22.5.2010 को हुई थी और जो चोटें आई थीं, वे ऐसी नहीं थीं, जिन्हें अपीलकर्ता द्वारा किया गया कहा जा सकता है। अपीलकर्ता को भी चोटें आई थीं। मृतक मुश्ताक अली के मृत्यु प्रमाण पत्र को हत्या नहीं बल्कि वध माना गया है। गवाह अ०सा०-1 से अ०सा०-4 ने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं किया है। निचली अदालत ने बिना किसी मौखिक या दस्तावेजी सबूत के आरोपी को दोषी ठहराया है और इस निष्कर्ष पर पहुंची है कि मुश्ताक अली, हाशिम और नाजिम घायल हुए थे। तीनों घायल अपने बयान से पलट गए हैं। घायल ने भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 32 के प्रावधानों के अनुसार गवाही दी थी और उसे मृत्यु पूर्व बयान के रूप में माना जा रहा था और उसने केवल आरोपी अतीक अहमद का नाम लिया है, न कि प्रस्तुत अपीलकर्ता का, इसलिए, उसकी दोषसिद्धि कानून की नजर में खराब है।

9. सुश्री मैरी पंचा ने पंजाब राज्य बनाम बावा सिंह के मामलों में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा किया है, जो 2015 सुप्रीम (एस.सी.) 38 और देव नारायण मंडल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में रिपोर्ट किया गया था, 2004 0 सुप्रीम (एस.सी.) 944 में रिपोर्ट किया गया था और आपराधिक अपील संख्या-1007 वर्ष 1996 (काली प्रसाद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) और आपराधिक अपील संख्या-4083 वर्ष 2017 (पिंटू गुप्ता) में पारित इस न्यायालय के निर्णय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) ताकि यह तर्क दिया जा सके कि दी गई सजा बहुत कठोर है क्योंकि अपीलकर्ता घटना का एकमात्र कर्ता नहीं है।

10. प्रति विरोध, राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता प्रस्तुत करता है कि मृतक की ओर से कोई गंभीर और अचानक उकसावा नहीं था। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि मृत्यु पूर्व घोषणा स्पष्ट रूप से दिखाती है कि अपीलकर्ता भी इस कृत्य में शामिल था। यह वारदात रात में की गई थी। विद्वान विचारण न्यायालय ने मृत्यु पूर्व घोषणा को सही तरीके से स्वीकार किया है और पैराग्राफ 57 से 62 में दिए गए तर्क ऐसे हैं जिनकी पुष्टि इस न्यायालय द्वारा की जानी चाहिए। यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि अपराध की भीषणता और अभियोजन पक्ष के गवाहों के सबूतों को देखते हुए, इस न्यायालय को इस मामले में कोई उदारता नहीं दिखानी चाहिए।

11. हमने गवाहों के साक्ष्य और शव परीक्षण रिपोर्ट पर विचार किया है जिसमें कहा गया है कि मृतक के शरीर पर चोट मृत्यु का कारण होगी और यह हत्या की मौत थी, हम निचली अदालत के निष्कर्ष से सहमत हैं। हालांकि, यह देखा जाना चाहिए कि दी गई सजा बहुत कठोर है या नहीं। इस संबंध में, हमें भारत में प्रचलित दंड के सिद्धांत का विश्लेषण करना होगा।

12. मो. गियासुद्दीन बनाम स्टेट ऑफ ए.पी., [ए.आई.आर. 1977 एस.सी. 1926], सजा में पुनर्वास और सुधारात्मक पहलुओं की व्याख्या करते हुए सुप्रीम कोर्ट द्वारा देखा गया है:

"अपराध एक पैथोलॉजिकल विपथन है। अपराधी को आमतौर पर सुधारा जा सकता है और राज्य को बदला लेने के बजाय पुनर्वास करना होगा। उप-संस्कृति जो असामाजिक व्यवहार की ओर ले जाती है, उसका मुकाबला अनुचित क्रूरता से नहीं बल्कि पुनर्संस्कृतिकरण द्वारा किया जाना चाहिए। इसलिए, व्यक्ति और लक्ष्य में पेनोलॉजी में रुचि का ध्यान उसे समाज के लिए उबारना है। कठोर और बर्बर दंड का प्रहार इस प्रकार अतीत और प्रतिगामी समय का अवशेष है। मानव आज एक ऐसे व्यक्ति को फिर से आकार देने की प्रक्रिया के रूप में सजा देता है जो आपराधिकता में बिगड़ गया है और आधुनिक समुदाय की सामाजिक रक्षा के साधन के रूप में अपराधी के पुनर्वास में प्राथमिक हिस्सेदारी है। इसलिए हमारी आपराधिक अदालतों में 'आतंक' के दृष्टिकोण के बजाय चिकित्सीय होना चाहिए, क्योंकि व्यक्ति की क्रूर कैद केवल उसके दिमाग की पंगुता पैदा करती है। यदि आप किसी व्यक्ति को प्रतिशोध की सजा देना चाहते हैं, तो आपको उसे घायल करना होगा। यदि आप उसे सुधारना चाहते हैं, तो आपको उसे सुधारना होगा और, मानव का चोटों से सुधार नहीं होगा।

13. देव नारायण मंडल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(2004) 7 एस.सी.सी. 257] में 'उचित दंड' की व्याख्या यह देखते हुए की गई थी कि दंड अत्यधिक कठोर या हास्यास्पद रूप से कम नहीं होना चाहिए। सजा की मात्रा का निर्धारण करते समय, अदालत को 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखना चाहिए। सजा किसी दिए गए मामले के तथ्यों पर आधारित होनी चाहिए। अपराध की गंभीरता, अपराध करने का तरीका, आरोपी की उम्र और लिंग को ध्यान में रखा जाना चाहिए। सजा देने में न्यायालय के विवेक का प्रयोग मनमाने ढंग से या सनकी तरीके से नहीं किया जा सकता है।

14. रवदा शशिकला बनाम एपी ए.आई.आर. राज्य 2017 एस.सी. 1166 में, सुप्रीम कोर्ट ने जमील बनाम यूपी राज्य [(2010) 12 एस.सी.सी. 532], गुरु बसवराज बनाम कर्नाटक राज्य, [(2012) 8 एस.सी.सी. 734], सुमेर सिंह बनाम

सूरजभान सिंह, [(2014) 7 एस.सी.सी. 323], पंजाब राज्य बनाम बावा सिंह, [(2015) 3 एस.सी.सी. 441], और राज बाला बनाम हरियाणा राज्य, [(2016) 1 एस.सी.सी. 463] और दोहराया है कि, सजा प्रणाली के संचालन में, कानून को तथ्यात्मक मैट्रिक्स के आधार पर सुधारात्मक मशीनरी या निवारक अपनाना चाहिए। प्रत्येक मामले में तथ्य और दी गई परिस्थितियां, अपराध की प्रकृति, जिस तरीके से इसकी योजना बनाई गई और कारित की गई, अपराध करने का मकसद, अभियुक्त का आचरण, इस्तेमाल किए गए हथियारों की प्रकृति और अन्य सभी उपस्थित परिस्थितियां प्रासंगिक तथ्य हैं जो विचारणीय क्षेत्र में आएंगे। इसके अलावा, सजा में अनुचित सहानुभूति न्याय वितरण को अधिक नुकसान पहुंचाएगी और कानून की प्रभावकारिता में जनता के विश्वास को कम करेगी। प्रत्येक न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह अपराध की प्रकृति और उसके किए जाने के तरीके को ध्यान में रखते हुए उचित सजा सुनाए। सुप्रीम कोर्ट ने आगे कहा कि अदालतों को न केवल अपराध के पीड़ित के अधिकार को ध्यान में रखना चाहिए बल्कि बड़े पैमाने पर समाज को भी ध्यान में रखना चाहिए। उचित सजा देने पर विचार करते समय, पूरे समाज पर अपराध के प्रभाव और कानून के शासन को संतुलित करने की आवश्यकता है। देश में न्यायिक प्रवृत्ति सुधार और दंड के बीच संतुलन बनाने की ओर रही है। समाज की सुरक्षा और आपराधिक प्रवृत्ति पर मुहर लगाना कानून का उद्देश्य होना चाहिए जिसे अपराधियों और गलत काम करने वालों पर उचित सजा देकर हासिल किया जा सकता है। कानून, व्यवस्था और शांति बनाए रखने के लिए एक उपकरण के रूप में, समाज के सामने आने वाली चुनौतियों का प्रभावी ढंग से सामना करना चाहिए, क्योंकि समाज लंबे समय तक अपराध और असामंजस्य के गंभीर खतरों के तहत सहन और विकसित नहीं हो सकता है। इसलिए सजा देने में अनुचित उदारता से बचना आवश्यक है। इस प्रकार, देश में अपनाया गया आपराधिक न्यायशास्त्र प्रतिशोधात्मक नहीं बल्कि सुधारात्मक और उपचरात्मक है। साथ ही, हमारी दांडिक न्याय प्रणाली में अंतर्निहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से भी बचा जाना चाहिए।

15. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और हमारे देश में आपराधिक न्यायशास्त्र को ध्यान में रखते हुए, जो सुधारात्मक और उपचरात्मक है और प्रतिशोधात्मक नहीं है, यह न्यायालय मानता है कि कोई भी आरोपी व्यक्ति सुधरने में असमर्थ नहीं है और इसलिए, उन्हें सामाजिक धारा में लाने के लिए सुधार का अवसर देने के लिए सभी उपायों को लागू किया जाना चाहिए।

16. सर्वोच्च न्यायालय ने राज बाला (उपरोक्त) के फैसले में माना है कि आनुपातिक सजा उचित और उचित होगी। समाज की चेतना को ध्यान में रखना होगा। आरोपी पहले ही 13 साल की सजा काट चुका है। उसका एक छोटा बेटा है जो उसके लिए मुकदमा लड़ रहा है और इसलिए, सजा देने की नीति के सभी पहलुओं से पता चलता है कि अभियुक्त को धारा 304 भ०द०वि० के तहत 13 साल की कैद काटनी होगी। इस पीठ को पिंटू गुप्ता (उपरोक्त) के मामले में फैसले से अपने विचार में और मजबूती मिली है, जहां न्यायालय ने सुधारात्मक सिद्धांत के आधार पर उचित सजा पर सभी तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के बाद, 9 साल की कैद को न्यायसंगत और

उचित बताया। इस मामले में मुख्य साजिशकर्ता अभियुक्त अतीक अहमद द्वारा वासना का कृत्य किया गया था, और इसलिए, उदारता दिखाने का कोई सवाल ही नहीं है, लेकिन एक निश्चित अवधि की कैद उचित और उचित होगी।

17. जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, 'दंड के सुधारात्मक सिद्धांत' को अपनाया जाना है और इस कारण से, 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखते हुए दंड देना आवश्यक है। आक्षेपित निर्णय के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा आजीवन कारावास की सजा दी गई सजा मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की संपूर्णता और अपराध की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए बहुत कठोर है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने जैसा कि ऊपर 7 में से 6 पर चर्चा की है, ने निर्णय दिया है कि दांडिक न्याय प्रणाली में अंतनहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से बचा जाना चाहिए।

18. जहां तक धारा 452 भ०द०वि० का संबंध है, अभियुक्त पहले ही 5 साल की कैद काट चुका है; जहां तक धारा 326 भ०द०वि० का संबंध है, वह पहले ही 10 साल से जेल में है, इसलिए धारा 304 भ०द०वि० के तहत सजा का फैसला किया जाना बाकी है, अर्थात् आजीवन कारावास। हम आजीवन कारावास की सजा को निश्चित अवधि 13 वर्ष से प्रतिस्थापित करते हैं। जुर्माना और डिफ़ॉल्ट सजा बनाए रखी जाती है। आरोपियों को 13 साल की सजा पूरी करने पर छूट के साथ रिहा किया जाए।

19. उपर्युक्त के मद्देनजर, अपील को आंशिक रूप से अनुमति दी जाती है। विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 10.10.2012, पूर्वोक्त सीमा तक संशोधित माना जाएगा। अभिलेख को तत्काल निचली अदालत वापस भेजा जाए।

20. यह न्यायालय श्री मो. कलीम अधिवक्ता और सुश्री मैरी पंचा, अधिवक्ता का आभारी है।

(2023) 3 ILRA 966

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 14.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर,

माननीय न्यायमूर्ति अजीत सिंह,

आपराधिक अपील संख्या 5347/2010

अनीस @ गामा और अन्य। ...अपीलकर्तागण

बनाम

यूपी राज्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्तागण: श्री एन.आई.जाफरी, श्री अजय कुमार मिश्रा, सुश्री आकांक्षा यादव, श्री अनिल राघव, श्री जे.एम. नासिर, श्री मोहम्मद। खलील, श्री नूर मोहम्मद, श्री योगेश श्रीवास्तव

अधिवक्ता प्रतिवादीगण: शासकीय अधिवक्ता, श्री लोकेश कुमार मिश्रा

A. आपराधिक कानून- भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 149 - मृतक को खत्म करने की सामान्य आशय या उद्देश्य था, लेकिन मस्तिष्क में कोई पूर्वनियोजन नहीं था क्योंकि एफ.आई.आर. में कथित है कि मृतक ने आरोपी के घर जाकर अपना पैसा मांगा और यह आरोपी को भड़काने वाला था, और गैर-घातक हथियार का इस्तेमाल किया गया, मृतक को कोई आग्नेयास्त्र की चोट नहीं लगी, न ही कोई

आग्नेयास्त्र इस्तेमाल किया गया, मृतक मौके पर घायल होकर नहीं मरा, इलाज के दौरान उसे मृत घोषित किया गया, अपराध को धारा 149 IPC के तहत दंडनीय नहीं ठहराया जा सकता। (पैराग्राफ 22)

B. आपराधिक कानून- भारतीय दंड संहिता, 1860 - धाराएँ 300, 302 & 304 - आरोपी ने पूर्वनियोजन नहीं किया, हालांकि उसे मृतक को शारीरिक नुकसान पहुंचाने का ज्ञान और आशय था लेकिन वह मृतक को खत्म करना नहीं चाहता था, इसलिए यह वाद IPC की धारा 300 के अपवाद 1 और 4 के तहत आता है - आयोजित - अपराध धारा 302 IPC के तहत दंडनीय नहीं है, लेकिन हत्या के बिना जानबूझकर हत्या है, जो धारा 304 भाग 1 IPC के तहत दंडनीय है। (पैराग्राफ 18, 20)

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। (E-13)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. संतोष बनाम राज्य उत्तर प्रदेश (क्रिमिनल अपील नंबर 5657 वर्ष 2011)

2. हारदेव सिंह और अन्य बनाम राज्य पंजाब, AIR 1975 SC 179

3. जाहूर और अन्य बनाम राज्य उत्तर प्रदेश, 2011 (15) SCC 218

4. कंद्हाई और अन्य बनाम राज्य उत्तर प्रदेश, 2014 (0) सुप्रीम (अल) 2597

5. राम रूप बनाम राज्य उत्तर प्रदेश

6. श्रीमती रमा देवी बनाम राज्य उत्तर प्रदेश, 2017 (0) सुप्रीम (अल) 2554

7. बेंगाई मंडल @ बेगाई मंडल बनाम राज्य बिहार, 2010 (1) सुप्रीम 49

8. संपट बाबसो काले और अन्य बनाम राज्य महाराष्ट्र, 2019 0 सुप्रीम (SC) 415

9. दुखमोचन पांडे बनाम राज्य बिहार, 1997 लॉसूट, (SC) 1219

10. जैनुल हक बनाम राज्य बिहार, AIR 1974 SC 45

11. के. रामचंद्र रेड्डी बनाम सरकारी वकील, 1976 लॉसूट (SC) 214

12. संजय मौर्य बनाम राज्य उत्तर प्रदेश, 2021 (0) सुप्रीम (अल) 132

13. तुक्कराम और अन्य बनाम राज्य महाराष्ट्र. रिपोर्टेड इन (2011) 4 SCC 250

14. बी.एन. कवटकर और अन्य बनाम राज्य कर्नाटक. रिपोर्टेड इन 1994 SUPP (1) SCC 304

15. वीरन और अन्य बनाम राज्य मध्य प्रदेश. निर्णय, (2011) 5 SCR 300

16. अन्वेरसिंह बनाम राज्य गुजरात, (2021) 3 SCC 12

17. प्रवात चंद्र मोहनती बनाम राज्य ओडिशा, (2021) 3 SCC 529

18. प्रदीशिराम बनाम राज्य मध्य प्रदेश, (2021) 3 S

माननीय डॉ. कौशल जयेन्द्र ठाकर, न्यायमूर्ति
माननीय अजीत सिंह, न्यायमूर्ति

1. अपीलार्थी की ओर से विद्वान अधिवक्ता और राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए. श्री अजय कुमार मिश्रा को सुना। मुखबिर की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री लोकेश कुमार मिश्रा स्वयं अनुपस्थित हो गये हैं।

2. यह अपील अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश फास्ट ट्रैक न्यायालय संख्या 1, मेरठ द्वारा 1997 के

सत्र परीक्षण संख्या 735 (राज्य बनाम अनीस और अन्य) में आरोपी-अपीलार्थीगण को भारतीय दंड संहिता, 1860 (इसके बाद 'आईपीसी' के रूप में संदर्भित) की धारा 302/149 के तहत दोष सिद्ध ठहराए जाने के दिनांक 5.8.2010 के निर्णय और आदेश को चुनौती देती है। भारतीय दंड संहिता, अभियुक्त-अपीलार्थीगण प्रत्येक को 2,000/- रुपये के जुर्माने के साथ आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई और जुर्माने के भुगता के व्यतिक्रम में, आगे दो वर्ष की अवधि के लिए और कारावास की सजा भुगतनी होगी।

3. पांचों अभियुक्तों पर 15.4.1997 को एक अपराध करने का आरोप लगाया गया था, जब वे सभी अजीज पुत्र अहमद मजीद को खत्म करने के अपने सामान्य इरादे से चल रहे थे, जिसने अनीस @गामा से 50,000/- रुपये की राशि उधार ली थी। 15.4.1997 को शाम लगभग 6:00 बजे, जब मुखबिर और उसका भाई पैसे वापस लेने के लिए अनीस उर्फ गामा

अस्वीकरण: -"क्षेत्रीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के अपनी भाषा में समझने हेतु निर्बंधित प्रयोग के लिए है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रामाणिक माना जाएगा तथा निष्पादन और क्रियान्वयन के उद्देश्यों के लिए मान्य होगा।"

के आवास पर गए। उस समय, अनीस उर्फ गामा के हाथ में लोहे की छड़, नसरीन के हाथ में भी लोहे की छड़, फिरोज के हाथ में ईंट, नफीस के हाथ में छड़ी थी और हफीज खुर्शीद, उजेर और अनीस उर्फ गामा ने उन लोगों पर हमला करने की कोशिश की और कहा कि चूंकि मृतक और उसका भाई रोजाना पैसे की मांग कर रहे थे, इसलिए उन्हें मौत के घाट उतार दिया जाए। पक्षों के बीच झगड़ा शुरू हो गया। अनीस गामा ने एफ.आई.आर. दर्ज होने के बाद, अजीज को हटा दिया। अभियोजन को गति दी गई और अभियुक्तों पर द०प्र०सं० की धारा 147, 148 सपठित धारा 302 के तहत अपराध करने का आरोप लगाया गया।

4. विवेचना शुरू होने पर, विवेचना अधिकारी ने सभी गवाहों के बयान दर्ज किए और विद्वान मजिस्ट्रेट को आरोप पत्र प्रस्तुत किया। विद्वान मजिस्ट्रेट ने आरोपियों को समन किया और उन्हें सत्र न्यायालय में सौंप दिया क्योंकि प्रथम दृष्टया आरोप द०प्र०सं० की धारा 302 के तहत अपराध के थे।

5. तलब किए जाने पर, अभियुक्तों ने खुद को दोषी नहीं बताया और उन पर मुकदमा चलाने की मांग की। मुकदमा शुरू हुआ और अभियोजन पक्ष ने 6 गवाहों से पूछताछ की जो इस प्रकार हैं:

1	मो. ताहिर	अ.सा.1
2	समर अहमद	अ.सा.2
3	डॉ. एन नथानी	अ.सा.3
4	देव दत्त शर्मा	अ.सा.4
5	सगीर अहमद	अ.सा.5
6	रणवीर सिंह	अ.सा.6

6. चश्मदीद गवाह के समर्थन में निम्नलिखित दस्तावेज़ दर्ज किए गए:

1	प्राथमिकी	प्रदर्श क 3
2	लिखित रिपोर्ट	प्रदर्श क 4
3	फर्द बरामदगी	प्रदर्श क 6,7,8,16
4	पोस्टमार्टम रिपोर्ट	प्रदर्श क 2
5	नक्शा नजरी	प्रदर्श क 9

7. अभियोजन पक्ष की गवाही पूरी होने और दस्तावेज प्रदर्शित होने के बाद, आरोपी-अपीलार्थीगण ने ब.सा.-1 और 2 अर्थात् मोहम्मद यामीन और मो. नौसाद की जांच की।। विचारण के अंत में और द०प्र०सं० की धारा 313 के तहत अभियुक्तों का बयान दर्ज करने और अभियोजन और बचाव पक्ष की दलीलें सुनने के बाद, विद्वान सत्र न्यायाधीश ने उपरोक्त उल्लिखित अपीलार्थीगण को दोष सिद्ध ठहराया।

8. इस अपील के लंबित रहने के दौरान मुख्य हमलावर अनीस उर्फ गामा की मृत्यु हो गई है। अन्य सह-अभियुक्त, जिन्हें भूमिका दी गई और उन्हें नसरीन उर्फ नसीम, फ़िरोज़ और उजैर के रूप में चित्रित किया गया। जिन तीन आरोपियों को मृतक को ठिकाने लगाने की भूमिका सौंपी गई है, उन पर द०प्र०सं० की धारा 302 सपठित धारा 149 के तहत अपराध करने का मुकदमा चलाया गया है और इसके लिए उन्हें दोष सिद्ध ठहराया गया है।

9. अपीलार्थीगण की ओर से विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि मुकदमा समाप्त होने के बाद आरोप में परिवर्तन नहीं किया जा सकता था और यह विधि की नजर में बुरा है। इस दलील के समर्थन में उन्होंने हममें से एक (डॉ. के.जे. ठाकर) द्वारा 2011 की आपराधिक अपील संख्या 5657 (संतोष बनाम उ०प्र० राज्य) में 22.2.2021 को दिए गए इस न्यायालय की खण्डपीठ के निर्णय पर अवलम्ब लिया है। आरोपों को फिर से विरचित नहीं किया जा सकता था ताकि इसे उच्च श्रेणी के आरोप तक ले जाया जा सके।

10. आगे यह भी कहा गया है कि यह घटना अचानक घटी। आरोपियों के मध्य मृतक को ठिकाने लगाने की कोई पूर्व योजना नहीं थी। मृतक द्वारा उससे उधार लिये गये 50,000/- रूपये की मांग करने पर ही यह घटना घटित हुई।

11. यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि धारा 302 के तहत दोषसिद्धि नहीं बनती है। वैकल्पिक रूप से, यह प्रस्तुत किया गया है कि अधिक से अधिक, मृत्यु आत्म हत्या हो सकती है जो हत्या की श्रेणी में नहीं आएगी और द०प्र०सं० की धारा 304 ।। या धारा 304 के तहत दंडनीय होगी। यदि न्यायालय विनिश्चित करता है कि अभियुक्त दोषी है, तो अभियुक्त को कारावास की निश्चित अवधि की सजा दी जा सकती है।

12. अपने तर्कों के समर्थन में, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने हरदेव सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 1975 एससी 179, जहूर और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2011 (15) एससीसी 218 और कंधई और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2014 (0) सुप्रीम (सभी) 2597, 2015 की आपराधिक अपील संख्या 4722 राम रूप बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, श्रीमती. रमा देवी बनाम. उत्तर प्रदेश राज्य, 2017 (0) सुप्रीम (सभी) 2554, बेंगई मंडल @ बेगई मंडल बनाम बिहार राज्य, 2010 (1) सुप्रीम 49, संपत बाबसो काले और अन्य। बनाम महाराष्ट्र राज्य,

2019 0 सुप्रीम (एससी) 415, दुखमोचन पांडे बनाम बिहार राज्य, 1997 मुकदमा, (एससी) 1219 और जैनुल हक बनाम बिहार राज्य, एआईआर 1974 एससी 45, के. रामचंद्र रेड्डी बनाम लोक अभियोजक, 1976 मुकदमा (एससी) 214, संजय मौर्य बनाम स्टेट ऑफ यूपी, 2021 (0) सुप्रीम (सभी) 132 में इस न्यायालय के निर्णय के, निर्णयों पर भरोसा किया है।।

13. राज्य की ओर से विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि यद्यपि जीवित आरोपियों की भूमिका हमलावरों की नहीं है, द०प्र०सं० की धारा 149 की सहायता से दी गई सजा इस न्यायालय को मामले में कोई उदारता दिखाने की अनुमति नहीं देगी। आगे और विद्वान ए.जी.ए. द्वारा प्रस्तुत किया गया है कि अपीलार्थीगण के अधिवक्ता द्वारा संदर्भित निर्णय इस मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होंगे।

14. गवाहों के साक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए और पोस्टमार्टम रिपोर्ट सहित चिकित्सा साक्ष्यों पर भी विचार करते हुए, वर्तमान अपीलार्थीगण के अपराध के बारे में हमारे मन में कोई संदेह नहीं बचा है। द०प्र०सं० की धारा 302 के तहत की गयी दोष सिद्धि विधि की दृष्टि में बुरा है और मामला द०प्र०सं० की धारा 304(1) के अंतर्गत आएगा।

15. हालाँकि, जो प्रश्न हमारे विचाराधीन है वह यह है कि क्या मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों के पुनर्मूल्यांकन पर, द०प्र०सं० की धारा 302 के तहत अपीलार्थी की दोषसिद्धि संभव है? भारतीय दंड संहिता की धारा को बरकरार रखा जाना चाहिए या दोषसिद्धि को भारतीय दंड संहिता की धारा 304 भाग । या भाग - । के तहत परिवर्तित किये जाने के योग्य है। भारतीय दंड संहिता की धारा 299 का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा, जो इस प्रकार है:

"299. आपराधिक मानव वधः जो कोई मौत का कारण बनता है मृत्यु कारित करने के आशय से, या ऐसी शारीरिक क्षति कारित करने के आशय से, जिससे मृत्यु कारित होने की संभावना हो, या यह जानते हुए कि ऐसे कार्य से मृत्यु कारित होने की संभावना है, कोई कार्य करने पर, आपराधिक मानव वध का अपराध करता है।"

16. 'हत्या' और 'आपराधिक मानव वध' के मध्य अकादमिक अंतर ने हमेशा न्यायालयों को परेशान किया है। भ्रम तब पैदा होता है, जब न्यायालय इन धाराओं में विधायिका द्वारा उपयोग किए गए शब्दों के वास्तविक दायरे और अर्थ को भूल जाते हैं, खुद को सूक्ष्म अमूर्तताओं में उलझा लेते हैं। इन प्रावधानों की व्याख्या और अनुप्रयोग के लिए दृष्टिकोण का सबसे सुरक्षित तरीका द०प्र०सं० की धारा 299 और 300 के विभिन्न खंडों में उपयोग किए गए सूचक शब्दों को ध्यान में रखना प्रतीत होता है। निम्नलिखित तुलनात्मक तालिका दोनों अपराधों के बीच अंतर के बिंदुओं को समझने में सहायक होगी।

धारा 299	धारा 300
कोई व्यक्ति सदोष मानव वध करता है यदि वह कार्य जिसके कारण मृत्यु हुई है किया जाता है-	कुछ अपवादों के अधीन सदोष मानव वध हत्या है यदि वह कार्य किया गया है जिसके कारण मृत्यु हुई है।

आशय

(ए) मौत कारित करने के इरादे से; या	(1) मृत्यु कारित करने के इरादे से; या
(बी) ऐसी शारीरिक चोट पहुंचाने के इरादे से जिससे मृत्यु होने की संभावना हो; या	(2) ऐसी शारीरिक चोट पहुंचाने के इरादे से, जिसके बारे में अपराधी को पता हो कि इससे उस व्यक्ति की मृत्यु होने की संभावना है, जिसे नुकसान पहुंचाया गया है;
ज्ञान	ज्ञान
(सी) इस ज्ञान के साथ कि इस कार्य से मृत्यु होने की संभावना है।	(3) इस ज्ञान के साथ कि यह कृत्य तुरंत इतना खतरनाक है कि इससे मृत्यु या ऐसी शारीरिक चोट लगने की पूरी संभावना है, जिससे मृत्यु होने की संभावना है, और मृत्यु या ऐसी चोट का जोखिम उठाने के लिए बिना किसी बहाने के, जैसा कि ऊपर उल्लेखित है।

17. चिकित्सा अधिकारी की राय के साथ वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की समग्र जांच और (2011) 4 एससीसी 250 में प्रकाशित तुकाराम और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य, और 1994 एसयूपीपी (1) एससीसी 304 में प्रकाशित बी. एन. कवताकर और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य, के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांत पर विचार करते हुए, हमारी सुविचारित राय है कि यह हत्या की श्रेणी में नहीं आने वाली आत्महत्या का मामला था।

18. उपरोक्त चर्चाओं के निष्कर्षों से ऐसा प्रतीत होता है कि अभियुक्त द्वारा की गई मृत्यु पूर्व नियोजित नहीं थी, यद्यपि अभियुक्त का मृतक को शारीरिक नुकसान पहुँचाने की जानकारी और इरादा था, लेकिन वह मृतक को खत्म नहीं करना चाहता था। इस प्रकार वर्तमान मामला द०प्र०सं० की धारा 300 के अपवाद 1 और 4 के अंतर्गत आता है। धारा 299 पर विचार करते समय जैसा कि ऊपर प्रस्तुत किया गया है, वीरन और अन्य बनाम म.प्र. राज्य विनिश्चित, (2011) 5 एससीआर 300 में सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणियों के अनुसार किया गया अपराध धारा 304 भाग के अंतर्गत आएगा जिसे भी ध्यान में रखना होगा।

19. खोकन @ खोखन (उपरोक्त) में नवीनतम विनिश्चय में जहां तथ्य इस मामले के समान थे, सर्वोच्च न्यायालय ने आरोपी अपीलार्थी को अपील की अनुमति दी है। अनवरसिंह बनाम गुजरात राज्य, (2021) 3 एससीसी 12 में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय, जो विधिक अभिभावक से अपहरण था, जिसमें यह स्थापना की गई कि समाज और पीड़ित दोनों की चिंताओं का सम्मान करते हुए न्यायालय ने यह प्रतिपादित किया कि निवारण के दोहरे सिद्धांत और सुधार अभियुक्त द्वारा पहले से ही कारावास की अवधि को कम करके किया जाना चाहिए। हमारे मामले में, यह इतना भयानक मामला नहीं है कि आरोपी से इन सभी निर्णयों के आलोक में निपटा नहीं जा सकता है। प्रवत चंद्र मोहंती बनाम ओडिशा राज्य, (एससीसी 529 और परदेशीराम बनाम म.प्र.

राज्य, (2021) 3 एससीसी 238) में अभियुक्त के लाभ के लिए प्रयास करेगा।

20. अपीलार्थी की ओर से विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णय और ऊपर दिए गए तथ्य और साक्ष्य हमें अपने निष्कर्ष को बरकरार रखने की अनुमति देंगे, जिसमें हम निर्णायक रूप से मानते हैं कि अपराध द०प्र०सं० की धारा 302 के अनुसार दंडनीय नहीं है लेकिन यह सदोष मानव वध है और द०प्र०सं० की धारा 304 (भागI) के तहत दंडनीय है।

21. अब हम अभियुक्त अपीलार्थीगण की भूमिका पर आते हैं। सभी चार आरोपियों-अपीलार्थीगण को द०प्र०सं० की धारा 302 सपठित धारा 149 के तहत दंडनीय अपराध के लिए दोष सिद्ध ठहराया गया था।

22. द०प्र०सं० की धारा 149 के आलोक में अभिलेख के अवलोकन पर यह नहीं कहा जा सकता कि मृतक को ख़त्म करने का सामान्य आशय या उद्देश्य था। मन में कोई पूर्व नियोजन नहीं था जैसा कि प्राथमिकी स्वयं बताती है कि मृतक अपना पैसे मांगने के लिए अभियुक्त के घर गया था और इससे अभियुक्त क्रोधित हो गया और गैर घातक हथियार का इस्तेमाल किया गया, हालांकि अभियुक्त अनीस उर्फ गामा के पास से एक कारतूस और एक कट्टा बरामद किया गया है, लेकिन अभिलेख देखने और पोस्टमार्टम रिपोर्ट को देखने के दौरान और मेडिकल रिपोर्ट को देखने के दौरान यह बहुत स्पष्ट है कि आग्नेयास्त्र का उपयोग नहीं किया गया था और मृतक को आग्नेयास्त्र से कोई चोट नहीं लगी थी और न ही आग्नेयास्त्र का इस्तेमाल किया गया, जिससे पता चलता है कि मृतक को खत्म करने का कोई इरादा नहीं था और उद्देश्य केवल मृतक को सबक सिखाना था। मृतक ने मौके पर चोटों के कारण दम नहीं तोड़ा, मुखबिर मृतक का भाई उसे अस्पताल ले गया और इलाज के दौरान उसे मृत घोषित कर दिया गया। इसलिए, अपराध को ऐसा नहीं कहा जा सकता जिसे द०प्र०सं० की धारा 149 की सहायता से दंडित किया जा सकता है।

23. अभियुक्त-अपीलार्थीगण को सदोष मानव वध के लिए दोष सिद्ध ठहराया जाता है, जिसमें प्रत्येक को दस साल का दण्ड और 1,000/- रुपये का जुर्माना लगाया जाता है। यदि जुर्माना नहीं चुकाया गया तो तीन महीने की स्वतः निर्धारित सजा होगी, जो कारावास के दसवें वर्ष के बाद शुरू होगी। यदि अभियुक्तों ने अपनी सजा पूरी कर ली है, तो उन्हें रिहा कर दिया जाएगा।

24. अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। मामले को देखते हुए मामला द०प्र०सं० की धारा 304-1 के अंतर्गत आएगा। प्रत्येक को 1,000/- रुपये जुर्माना अदा करना होगा और यदि जुर्माना अदा नहीं किया जाता है, तो स्वतः निर्धारित सज़ा दस साल की कैद के बाद छूट के साथ शुरू होगी। यदि अभियुक्त ने अपनी अवधि पूरी कर ली है, तो उन्हें रिहा कर दिया जाएगा।

25. अभिलेख और कार्यवाही तुरंत अवर न्यायालय को वापस भेजी जाए।

26. यह न्यायालय योग्यतापूर्वक न्यायालय की सहायता करने के लिए विद्वान अधिवक्ताओं का आभारी है।

(2023) 3 ILRA 971

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 16.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा, जे.

माननीय न्यायमूर्ति राजीव जोशी, जे.

2011 की आपराधिक अपील संख्या 5567

धर्मवीर और ए.एन. ... अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ... प्रतिवादी

अपीलकर्ताओं के लिए वकील: श्री अपुल मिश्रा, श्री पी. एन. मिश्रा, श्री रितेश सिंह, श्री आर.पी.

प्रतिवादी के लिए वकील: जी.ए.

आपराधिक कानून- भारतीय दंड संहिता-1860- धाराएँ 34 और 302- मृतक पर एक आरोपी द्वारा तलवार से हमला किया गया, जिससे उसकी मौत हो गई- धारा 302 सपठित धारा 34 के तहत दोषसिद्धि- जब तलवार का इस्तेमाल हो रहा था, तो चोटें पोस्टमार्टम रिपोर्ट में दिखाए गए आकार की नहीं हो सकती थीं। पहली चोट 7 सेमी X 3 सेमी है, जो बहुत बड़ी चोट है और यह केवल किसी ऐसे वस्तु से हो सकती है जो तेज न हो- निश्चित रूप से 12 सेमी X 4 सेमी की चोट भी तलवार से नहीं हो सकती, जो एक बहुत तेज हथियार है- चोटें जो 7 सेमी और 12 सेमी लंबी हैं, उन्हें स्पष्ट नहीं किया जा सकता- रामदयाल (अभियोजन के चश्मदीद) का बयान, जो मृतक का साले है, उसकी प्रति परीक्षा में पूरी तरह से अभियोजन के वाद को झूठा सिद्ध किया है और उसने अपनी प्रति परीक्षा में सच को उजागर किया- अपीलकर्ताओं द्वारा अपराध करने का कोई कारण नहीं है- अपीलकर्ताओं को दोषमुक्त किया गया।

अपील स्वीकृत। (ई-15)

<u>माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा</u>

<u>माननीय न्यायमूर्ति राजीव जोशी</u>

रामपाल द्वारा दिनांक 24-05-1995 को यह कहते हुए प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई गई थी कि अभियुक्त विद्यासागर के घर गया, उसको तलाशा और उसके बाद उनमें से एक ने उसे तलवार से मारा था जिसके परिणामस्वरूप विद्यासागर को इतनी चोट आई थी कि विद्यासागर खड़ा नहीं हो सकता था। पहला सूचनाकर्ता चिकित्सा सहायता प्राप्त करने के लिए विद्यासागर को ले जाने के लिए वाहन की तलाश में निकला था। प्राथमिकी में कहा गया था कि रामपाल रामदयाल के साथ शेरपुर गया था, जहां पहले सूचनाकर्ता और रामदयाल (विद्यासागर के बहनोई) ने ग्राम प्रधान और रामअवतार कुर्मी से मुलाकात की थी और उन्होंने उन्हें घटना के बारे में बताया था।

प्रथम सूचनादाता का आगे का मामला यह है कि जब प्रथम सूचनाकर्ता और रामदयाल को कोई वाहन नहीं मिला तो वे विद्यासागर के घर वापस गए जहां यह पाया गया कि उनकी मृत्यु हो गई थी और इसलिए, उन्होंने प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के लिए कटरा, सहजहांपुर थाना से संपर्क किया। एक चिक प्राथमिकी तैयार की गई और पहले सूचनाकर्ता को सौंप दी गई। पुलिस ने मौके का दौरा किया और खून से सनी मिट्टी और

सादी मिट्टी बरामद की। पुलिस ने वह चारपाई भी बरामद कर ली जिस पर विद्यासागर बैठा था।

पुलिस ने नक़्शा नज़री भी तैयार कर लिया। इसके बाद पंचायतनामा तैयार कर शव को शव परीक्षण के लिए भेज दिया गया।

प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज किए जाने पर, जिसने केस अपराध संख्या-90 वर्ष 1995 को जन्म दिया, पुलिस ने आगे की जांच की और धारा 161 द०प्र०स० के तहत बयान लिए और उसके बाद, 23.06.1995 को आरोप पत्र प्रस्तुत किया। मजिस्ट्रेट ने मामले का संज्ञान लिया और मामले को सत्र न्यायाधीश के समक्ष विचारण के लिए रखा, जिन्होंने 31.10.1996 को बैकुंठनाथ, धर्मवीर, तोताराम और राम आश्रय @ नन्हिका के खिलाफ आरोप तय किए। मुकदमे के चरण में, अभियोजन पक्ष ने अभियोजन पक्ष के सात गवाह पेश किए। आरोपी व्यक्तियों ने धारा 313 द०प्र०स० के तहत अपने बयान दिए और उसके बाद जब मुकदमा समाप्त हो गया और जीवित आरोपी व्यक्तियों, राम आसरे @ नन्हिका और धर्मवीर के खिलाफ धारा 34 भ०द०वि० सपठित धारा 302 भ०द०वि० के तहत दोषी ठहराया गया, तो प्रस्तुत अपील दायर की गई।

अपील में उच्च न्यायालय के समक्ष, अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता श्री अपुल मिश्रा ने तर्क दिया है कि:

I. विद्यासागर पर हमला होने की तारीख और समय पर यह वर्ष 24.05.1995 को शाम 07:30 बजे था। इसके बाद अ०सा०-1 रामपाल द्वारा रात 11:05 बजे प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई और इसलिए, यह एक बहुत ही देर से दर्ज की गई प्राथमिकी थी।

II. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया है कि, वास्तव में, रामपाल एक अनपढ़ व्यक्ति था और इसलिए, उसने रामदयाल की सहायता प्राप्त करने की कोशिश की थी और इसलिए, उसने रामदयाल के मृतक के गांव में आने का इंतजार किया था जहां से वह रह रहा था और इसमें कुछ समय लगा।

III. रामपाल द्वारा दिया गया प्राथमिकी संस्करण अन्य चश्मदीद गवाहों अर्थात् अ०सा०-2 और अ०सा०-3 के संस्करण से बहुत अलग था, जिन्होंने वास्तव में अपीलकर्ता राम आश्रय को तलवार से मारने की भूमिका सौंपी है।

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता का कहना है कि जब रामपाल रामदयाल के साथ गांव शेरपुर गया था, जहां वे एक वाहन लाने गए थे, तो रामदयाल ने बताया होगा कि मृतक को तलवार से किसने मारा था, फिर भी जबकि वह प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कर रहा था, उसने यह बताने के लिए चुना था कि यह स्पष्ट नहीं था कि मृतक को तलवार से किसने मारा था। अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता का कहना है कि निश्चित रूप से रामदयाल राम आश्रय का नाम जानता था क्योंकि उसने अदालत में अपने बयान में नाम का उल्लेख किया है।

V. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने कहा कि रामवतार, जिनसे अ०सा०-1 और अ०सा०-3 वाहन प्राप्त करने के उद्देश्य से मिले थे, उन्हें गवाह के रूप में अदालत में कभी पेश नहीं किया गया था।

VI. जबकि प्राथमिकी में यह कहा गया था कि मृतक की बहन उर्मिला घटना के समय चश्मदीद गवाह के रूप में मौजूद थी, उसे कभी भी अदालत में चश्मदीद गवाह के रूप में पेश नहीं किया गया।

VII. तलवार एक बड़ी चीज है जिसे या तो हमलावरों के कब्जे से बरामद किया जा सकता था या यह घटनास्थल पर पड़ा पाया जा सकता था लेकिन तलवार कभी नहीं खोजी गई थी।

VIII. अभियोजन पक्ष ने विद्यासागर की हत्या के लिए जो मकसद बताया है कि विद्यासागर, जो एक राजमिस्त्री था, ने तोताराम, बैकुंड नाथ, रामश्री और धर्मवीर के लिए राजमिस्त्री के रूप में काम करने से इनकार कर दिया था, उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता था।

IX. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने तर्क दिया था कि भले ही हत्या का मामला साबित हो गया हो, यह नहीं कहा जा सकता है कि यह हत्या एक गैर इरादतन हत्या थी और इसलिए, अभियुक्त को हत्या के लिए दंडित नहीं किया जा सकता था।

अपने तर्क का समर्थन करने के लिए, अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने कहा है कि ऐसा प्रतीत होता है कि बैकुंड नाथ और विद्यासागर के बीच एक गर्म विवाद हुआ था और इसलिए, तर्क को समाप्त करने के लिए, चार हमलावर चले गए थे और उसी समय तलवार का इस्तेमाल किया गया था।

X. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता का कहना है कि मृतक के शरीर पर चोट के निशान ऐसे नहीं थे जिन्हें तलवार के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सके।

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता का कहना है कि राम दयाल ने अपनी मुख्य परीक्षण में कहा था कि राम आश्रय ने विद्यासागर के शरीर में तलवार डाली थी और, वह कहता है, यह संस्करण चोट की रिपोर्ट से मेल नहीं खाता है।

XII. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता का कहना है कि यदि अ०सा०-3, अर्थात् राम दयाल, जो मृतक का बहनोई था, की जिरह देखी जाती है, तो यह आसानी से कहा जा सकता है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के समय पहले सूचनाकर्ता द्वारा बताई गई कहानी बिल्कुल भ्रामक थी क्योंकि अ०सा०-3 ने कहा था कि वह दोपहर में अपने ससुराल आया था जहां वह विद्यासागर से मिला था। विद्यासागर ने अ०सा०-3 का ध्यान रखा था और पूरे समय विद्यासागर उनके साथ मौजूद थे। वह आगे बताते हैं कि विद्यासागर कभी घर से बाहर नहीं गए। वह आगे कहते हैं कि विद्यासागर अपनी मृत्यु की शाम तक घर पर ही रहे। वह इस कहानी की पुष्टि नहीं करते हैं कि विद्यासागर गए थे और बैकुंडनाथ के साथ उनकी बहस हुई थी। वह इस कहानी का भी समर्थन नहीं करता है कि वह वही था जिसने विद्यासागर को मौखिक विवाद के स्थान से वापस लाया था और इसलिए, अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने पूरी कहानी बताई है कि राम दयाल विद्यासागर को उस स्थान से लाया था जहां बैकुंठनाथ और विद्यासागर के साथ मौखिक विवाद हुआ था।

इसलिए अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता का कहना है कि रामदयाल का यह बयान अभियोजन पक्ष के मामले को पूरी तरह से गलत साबित करता है। उन्होंने कहा कि कोई मौखिक विवाद नहीं था और विद्यासागर को रामदयाल द्वारा नहीं लाया गया था और साथ ही चारों आरोपियों के बीच अपराध के कारित करने के संबंध में कोई पूर्व विचार नहीं था।

मुकदमे के समय अभियोजन पक्ष के सात गवाहों से पूछताछ की गई। अ०सा०-1 पहला सूचनाकर्ता था। उन्होंने कहानी सुनाई थी कि बैकुंठनाथ और विद्यासागर में मौखिक विवाद हुआ था, उसके बाद, विद्यासागर के बहनोई रामदयाल

विद्यासागर को अपने घर वापस लाया था। इसके बाद शाम 07:30 बजे बैकुंठनाथ और तोताराम उस घर के दक्षिणी हिस्से से आए जहां विद्यासागर रह रहे थे और धर्मवीर और राम आश्रय विद्यासागर के घर के पूर्वी हिस्से से घर में आए जहां विद्यासागर खाट में बैठे थे। वह कहता है कि उनमें से चार ने विद्यासागर को घेर लिया था और विद्यासागर ने खड़े होने की कोशिश की लेकिन बैकुंठनाथ, तोताराम और धर्मवीर ने विद्यासागर को पीछे से पकड़ लिया और उसके बाद वह कहीं नहीं कहता कि उसने यह नहीं देखा कि वास्तव में विद्यासागर पर तलवार से हमला किसने किया था और उसके बाद, वह कहता है कि वे चारों पूर्वी तरफ से भाग गए थे।

अ०सा०-1 आगे कहता है कि वह चिकित्सा उपचार के लिए विद्यासागर को ले जाने के लिए वाहन की व्यवस्था करने गया था, लेकिन उसे कोई वाहन नहीं मिला और इसलिए, वह गांव वापस आ गया जहां उसने पाया कि विद्यासागर की मृत्यु हो गई थी। इसलिए ऊसने प्राथमिकी साबित कर दी थी।

अभियोजन पक्ष की गवाह संख्या-2 श्रीमती कलावती मृतक की मां थी। उसने हत्या का मकसद बताने की कोशिश की थी और उसने कहा था कि विद्यासागर राजमिस्त्री था। मरने से पहले वह आरोपी व्यक्तियों के घर में राजमिस्त्री का काम करता था। आरोपी व्यक्ति मृतक को मजदूरी नहीं दे रहे थे और इसलिए विद्यासागर ने काम करने से मना कर दिया था और जब उसने आरोपी के घर पर काम करने से मना कर दिया तो आरोपी ने विद्यासागर की हत्या कर दी थी। वह वही कहानी भी बताती है जो अ०सा०-1 द्वारा इस तथ्य के संबंध में बताई गई थी कि कैसे हमलावर घर में घुसे और विद्यासागर को तलवार से मार डाला।

अ०सा०-3 रामदयाल, जो विद्यासागर के बहनोई हैं, ने अपनी जिरह में मुख्य रूप से कहा कि लगभग 07:00 बजे, वह उस क्रॉसिंग पर गया था जहां विद्यासागर और बैकुंठनाथ में विवाद हो रहा था और विद्यासागर को वापस अपने घर ले आया था और लगभग 07:30 बजे आरोपी व्यक्ति आए थे और विद्यासागर की हत्या कर दी थी। हालांकि, जैसा कि अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा बताया गया है कि जिरह में, अ०सा०-3 ने एक बिल्कुल अलग बयान दिया था जिसे यहां निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है:

"जिस समय लाश सील की गई तो उसे समय रात्रि थी। घटना वाले दिन में दोपहर को अपनी ससुराल में आ गया था। विद्यासागर मिले थे खिलाया पिलाया; बातचीत की। विद्यासागर ने मेरे साथ खाना नहीं खाया; रोटी खाई थी। मैंने जब खाना खाया तो विद्यासागर मौजूद था। मुझे नहीं ध्यान की विद्या राम मेरे पास कितनी देर रहा; घर से कहीं नहीं गया। शाम को उसकी मृत्यु हो गई। मैंने 10 मिनट खाना खाया। विद्यासागर घर में रहा; शाम तक घर में रहा; शाम को घटा हो गई।"

अ०सा०-4 ही वह डॉक्टर था जिसने शव परीक्षण किया था। अ०सा०-5 सब-इंस्पेक्टर, जगबीर सिंह तोमर थे जिन्होंने प्रारंभिक जांच की थी। अ०सा०-6 सब-इंस्पेक्टर था जिसने आगे जांच की थी और अ०सा०-7 भी एक विवेचनाधिकारी था।

डॉक्टर, अ०सा०-4 ने एक मेडिकल रिपोर्ट दी थी जो उसके द्वारा साबित की गई थी और रिपोर्ट को कभी भी अभियोजन पक्ष द्वारा चुनौती नहीं दी गई थी जिसमें उसने निम्नलिखित चोटें दी थीं:

i. पीछे की तरफ बाएं कंधे पर 15 सेमी X 12 सेमी क्षेत्र के भीतर एक तेज हथियार से चोटें आई थीं। उन्होंने कहा था कि बाएं कंधे के पीछे तीन चोटें थीं:

1. 3 सेमी X 7 सेमी।
2. छोटी चोट 1.5 सेमी X 1 सेमी गहरी।
3. हड्डी तक 12 सेमी X 4 सेमी गहरी।

इसके अलावा, यह पाया गया कि शव परीक्षण के समय, हड्डी टूट गई थी और पसलियां भी टूट गई थीं।

धारा 313 द०प्र०स० के तहत बचाव पक्ष ने अपराध करने से इनकार किया था।

अपर शासकीय अधिवक्ता ने अपील का विरोध किया और कहा कि जब चश्मदीद गवाह थे, तो विचारण न्यायालय द्वारा पहुंचे गए किसी अन्य निष्कर्ष पर आने का कोई कारण नहीं था।

अपीलकर्ताओं, श्री अपुल मिश्रा और एक अपर शासकीय अधिवक्ता, श्री एस. एन. मिश्रा के अधिवक्ता को सुनने के बाद, हमारा विचार है कि अपील की अनुमति दी जानी चाहिए।

हमने रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों और गवाहों द्वारा दिए गए बयानों की बारीकी से जांच की है। तलवार की खोज कभी नहीं की गई थी; एक बहुत ही महत्वपूर्ण गवाह यानी मृतक श्रीमती उर्मिला की बहन, जो रामदयाल की पत्नी भी थी, कभी भी गवाह के कठघरे में नहीं आई; प्राथमिकी में निश्चित रूप से काफी देरी हुई थी। ये सभी अपीलकर्ताओं की ओर से ऐसे तर्क थे जिनके बारे में कहा जा सकता था कि उनकी व्याख्या अभियुक्त के पक्ष में भी की जा सकती है और उनके खिलाफ भी। हालांकि, जिन तर्कों का विश्लेषण किया जाएगा, वे किसी भी विवेकपूर्ण व्यक्ति को एकमात्र निष्कर्ष पर पहुंचाएंगे कि अपीलकर्ता निर्दोष थे। सबसे पहले, जब तलवार का इस्तेमाल किया जा रहा था तो चोटें उतनी चौड़ी नहीं हो सकती थीं जितनी शव परीक्षण रिपोर्ट में दिखाई गई हैं। पहली चोट 7 सेमी X 3 सेमी की है। यह एक बहुत चौड़ी चोट है जो केवल उस वस्तु के कारण हो सकती है जो तेज नहीं थी। निश्चित रूप से चोट वर्ष 12 सेमी X 4 सेमी भी तलवार के कारण नहीं हो सकती है जो एक बहुत धारदार हथियार है।

रामदयाल के बयान पर गौर करने पर हम पाते हैं कि वह कहता है कि राम आश्रय सहित हमलावरों ने तलवार फेंकी थी। वह 'घोप' शब्द का उपयोग करता है जिसका अर्थ है छुरा घोंपना। इसका मतलब यह होगा कि तलवार सीधे तलवार के धारदार सिरे से शरीर में डाली जाती है। फिर जो चोटें 7 सेमी और लंबाई में 12 सेमी हैं, कैसे हैं, उन्हें समझाया नहीं जा सकता है।

इसके अलावा, अपनी जिरह में रामदयाल का बयान अभियोजन पक्ष के मामले को पूरी तरह से गलत साबित करता है। अभियोजन के दौरान उसने कहा है कि रामदयाल वह व्यक्ति है जो मृतक विद्यासागर को उस स्थान से लाने गया था, जहां उसने बैकुंठनाथ के साथ मौखिक विवाद किया था, लेकिन अपनी जिरह में रामदयाल ने एक अलग तस्वीर पेश की थी और वह यह थी कि जब रामदयाल दोपहर में अपने ससुराल आया था और उस समय से और विद्यासागर के मारे जाने तक, विद्यासागर कभी घर से बाहर नहीं निकले। राम दयाल अभियोजन पक्ष का चश्मदीद गवाह है। साथ ही इस गवाह पर अविश्वास नहीं किया जा सकता क्योंकि उसका खून से कोई संबंध नहीं है और इसलिए जब वह जिरह में यह बयान दे रहा था तो उसने सच्चाई का खुलासा किया था।

ऐसी परिस्थितियों में, हमारे पास यह मानने का कोई कारण नहीं है कि धर्मवीर और राम आश्रय ने अपराध किया था और इसलिए, हमारा विचार है कि अपील की अनुमति दी जानी चाहिए और राम आश्रय और धर्मवीर बरी होने के पात्र हैं।

चूंकि तोताराम और बैकुंठनाथ की सुनवाई के दौरान मृत्यु हो गई थी और उनके संबंध में विचारण समाप्त हो गया था, इसलिए उनकी भूमिकाओं के संबंध में कोई निर्णय देने की कोई आवश्यकता नहीं है।

अपील की अनुमति दी जाती है। अपीलकर्ताओं को बरी किया जाता है।

अपीलकर्ता, यदि किसी अन्य मामले में वांछित नहीं हैं, तो उन्हें रिहा किया जाए।

(2023) 3 ILRA 976

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांकः इलाहाबाद 21.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर,

माननीय न्यायमूर्ति अजीत सिंह,

आपराधिक अपील संख्या 5955/2018

श्रीमती राजेंद्री देवी ...अपीलार्थी

बनाम

यूपी राज्य ...प्रतिवादी

अधिवक्ता अपीलकर्ता: श्री राजीव लोचन शुक्ला, श्री अशफाक अहमद अंसारी, श्री नीरज कुमार शर्मा, श्री शंदा प्रसाद मिश्रा

अधिवक्ता प्रतिवादी: शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक कानून- भारतीय दंड संहिता, 1860 - आरोपी को धारा 498A, 304B, 302/34 IPC और D.P. एक्ट की धारा 4 के तहत दोषी ठहराया गया - मृतका को दहेज के लिए प्रताड़ित किया जा रहा था - घटना दिनांक 29.04.2017 को कारित हुई, उसे केरोसिन डालकर आग लगा दी गई, जिससे वह गंभीर रूप से घायल हुई - उसकी मृत्यु दिनांक 06.05.2017 को हुई - आरोपी दिनांक 15.07.2017 से कारावास में है - प्रश्न यह है कि क्या आरोपी की धारा 302 IPC के तहत सजा की पुष्टि की जाए या सजा को धारा 304 भाग-I या भाग-II IPC में परिवर्तित कर दिया जाए (पैराग्राफ 3, 4, 9, 16)

निर्णय - मृत्यु घाव सड़न के कारण हुई - अपराध धारा 302 IPC के तहत नहीं है, बल्कि यह हत्या का अपराध है और इसलिए, आरोपी को धारा 304 (II) IPC के तहत दोषी ठहराया गया। **(पैराग्राफ 24, 27)**

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की गई। (E-13)

उद्धृत वाद सूची:

1. सोहन लाल उर्फ सोहन सिंह और अन्य बनाम राज्य पंजाब, AIR 2003 SC 4466
2. पंचदेव सिंह बनाम राज्य बिहार, AIR 2002 SC 526
3. कांति लाल बनाम राज्य राजस्थान, (2009) 12 SCC 498
4. कृष्ण चंद्र बनाम राज्य उत्तर प्रदेश, 1996 Crl. LJ 1507
5. शेर सिंह बनाम राज्य पंजाब, AIR 2008 SC 426
6. तुक्काराम और अन्य बनाम राज्य महाराष्ट्र, (2011) 4 SCC 250

7. बी.एन. कवटकर और अन्य बनाम राज्य कर्नाटक, 1994 SUPP (1) SCC 304
8. वीरान और अन्य बनाम राज्य मध्य प्रदेश, (2011) 5 SCR 300
9. अनवर्सिंह बनाम राज्य गुजरात, (2021) 3 SCC 12
10. प्रवात चंद्र मोहंती बनाम राज्य ओडिशा, (2021) 3 SCC 529
11. प्रदीशीराम बनाम राज्य मध्य प्रदेश, (2021) 3 SCC 238
12. मोहम्मद गियासुद्दीन बनाम राज्य आंध्र प्रदेश, AIR 1977 SC 1926
13. देव नारायण मंडल बनाम राज्य उत्तर प्रदेश, (2004) 7 SCC 257
14. रवादा ससीकला बनाम राज्य आंध्र प्रदेश, AIR 2017 SC 1166
15. जमील बनाम राज्य उत्तर प्रदेश, (2010) 12 SCC 532
16. गुरु बसवराज बनाम राज्य कर्नाटक, (2012) 8 SCC 734
17. सुमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह, (2014) 7 SCC 323
18. राज्य पंजाब बनाम बावा सिंह, (2015) 3 SCC 441
19. राज बाला बनाम राज्य हरियाणा, (2016) 1 SCC 463

{न्यायमूर्ति के. जे. ठाकेर के अनुसार मौखिक निर्णय (श्रुतलेख)}

1. अपीलकर्ता के अधिवक्ता श्री राजीव लोचन शुक्ला, जिनको श्री नीरज कुमार शर्मा, श्री शांडा प्रसाद मिश्रा द्वारा सहायता प्राप्त थी, और राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना।

2. रिकॉर्ड इस न्यायालय के समक्ष है, इसलिए जमानत पर रिहाई के लिए आवेदन पर निर्णय लेने के बजाय हम मुख्य अपील पर फैसला करने की शुरुआत करते हैं क्योंकि अपीलकर्ता वास्तव में 15.07.2017 से है (?) और एक वृद्ध महिला है।

3. यह अपील अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, कोर्ट नंबर 5, गाजियाबाद द्वारा सत्र परीक्षण संख्या-07 वर्ष 2018 में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 12.09.2018 को चुनौती देती है, जिसमें भारतीय दंड संहिता, 1860 (इसके बाद 'भ०द०वि०' के रूप में संदर्भित) की धारा 498 ए और 304 बी और दहेज निषेध अधिनियम, थाना-मसूरी, जिला: गाजियाबाद की धारा 3/4 के तहत धारा 34 भ०द०वि० सपठित धारा 302 भ०द०वि० के तहत वैकल्पिक आरोप लगाया गया था और आरोपी को आजीवन कारावास और धारा 302 भ०द०वि० के तहत 20,000 रुपये का जुर्माना की सजा सुनाई गई, और कुल जुर्माने की आधी राशि मृतक की मां मुन्नी को दी जानी है।

4. रिकॉर्ड से निकाले गए तथ्यात्मक परिदृश्य और नीचे दिए गए न्यायालय के फैसले में यह है कि शिकायतकर्ता ने शिकायत दर्ज कराई कि उसकी बेटी की शादी सुमित उर्फ भोलू के साथ हुई थी। ससुराल जाने के बाद उसे दहेज के लिए प्रताड़ित किया जा रहा था। आरोपी और आरोपी के परिजनों ने मोटरसाइकिल और 50 हजार रुपये की मांग की। यह घटना 29.04.2017 को हुई, उस पर मिट्टी का तेल डालकर आग लगा दी गई, जिसमें उसे गंभीर चोटें आईं और उसे आगे के इलाज के लिए दिल्ली के सफदरगंज अस्पताल भेजा गया जहां 06.05.2017 को उसकी मृत्यु हो गई। शिकायतकर्ता ने 30.04.2017 को शिकायत दर्ज कराई।

5. जांच को गति में लाया गया। विभिन्न व्यक्तियों के बयान दर्ज करने के बाद,

विवेचनाधिकारी ने धारा 498 ए और 304 बी भ०द०वि० और दहेज निषेध अधिनियम, 1961 की धारा 3/4 (संक्षेप में 'डीपी अधिनियम') के तहत अभियुक्तों के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया। विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, जिसके समक्ष आरोप पत्र रखा गया था, ने उसे विद्वान सत्र न्यायाधीश के सुपुर्द किया। विद्वान सत्र न्यायाधीश ने विद्वान शासकीय अधिवक्ता और अभियुक्त के अधिवक्ता की सुनवाई के बाद धारा 498 ए, 304 बी, 302/34 भ०द०वि० और डीपी अधिनियम की धारा 4 के तहत आरोप तय किए।

6. सम्मन किए जाने पर, अभियुक्त को आरोप पढ़कर सुनाया गया, जिससे उन्होंने इन्कार किया और विचारण चाहा इसलिए, मुकदमा शुरू हुआ और अभियोजन पक्ष ने 9 गवाहों की जांच की जो इस प्रकार हैं:

1	रामा	अ०सा०-1
2	केशपाल	अ०सा०-2
3	मुन्नी	अ०सा०-3
4	कुलदीप	अ०सा०-4
5	ईशा	अ०सा०-5
6	डॉ वेदान्त कुलश्रेष्ठ	अ०सा०-6
7	रवींद्र कुमार सिंह	अ०सा०-7
8	अतर सिंह	अ०सा०-8
9	पवन कुमार	अ०सा०-9
10	जोगेन्द्र	अ०सा०-10
11	ईश्वर सिंह	अ०सा०-11
12	आतिश कुमार सिंह	अ०सा०-12
13	दानिश आलम	अ०सा०-13
14	राजकुमार पांडेय	अ०सा०-14
15	रवींद्र यादव	अ०सा०-15

7. चक्षुक संस्करण के समर्थन में निम्नलिखित दस्तावेज दायर किए गए थे:

1	प्राथमिकी	प्रदर्श क-7
2	तहरीरी रिपोर्ट	प्रदर्श क-1
3	गुंजन का बयान	प्रदर्श क-3
4	मेडिको लीगल रिपोर्ट	प्रदर्श ख-1
5	शव परीक्षण एवं मृत्यु रिपोर्ट	प्रदर्श क-2
6	मृत्यु का संक्षिप्त विवरण (सारांश)	प्रदर्श ख-2
7	फाइनल रिपोर्ट	प्रदर्श क-8

8. मुकदमे के अंत में और धारा 313 द०प्र०स० के तहत अभियुक्त का बयान दर्ज करने और अभियोजन और बचाव पक्ष की ओर से दलीलें सुनने के बाद, विद्वान सत्र न्यायाधीश ने अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराया।

9. अभियुक्त-अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि अभियुक्त 15.07.2017 से जेल में है।

10. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने जोरदार ढंग से प्रस्तुत किया है कि मृत्यु पूर्व बयान विश्वास करने योग्य नहीं है। यह प्रस्तुत किया गया है कि यह तथ्य की एक स्वीकृत स्थिति है कि घटना के सात दिनों के बाद मृतक की मृत्यु सेप्टिसीमिया से हुई थी।

11. अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि अधिकांश गवाह मुकर गए हैं (इस प्रकार अभियोजन पक्ष का समर्थन नहीं किया है) इसके बावजूद, विद्वान सत्र न्यायाधीश ने धारा 302 भ०द०वि० के तहत अपराध करने के लिए अभियुक्त/अपीलकर्ता को दोषी ठहराया है।

12. अपनी दलील के समर्थन में, अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने (i) सोहन लाल उर्फ सोहन सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य, ए.आई.आर.

2003 एस.सी. 4466; (ii) पंचदेव सिंह बनाम बिहार राज्य, ए.आई.आर. 2002 एस.सी. 526; (iii) कांतिलाल बनाम राजस्थान राज्य, (2009) 12 एस.सी.सी. 498; (iv) कृष्ण चन्द्र बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 1996 सीआरएल एलजे 1507; (v) ए.आई.आर. 2008 एस.सी. 426, शेर सिंह बनाम पंजाब राज्य के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह तर्क दिया है कि मृत्यु पूर्व बयान पर न्यायालय द्वारा गलत तरीके से भरोसा किया गया है ताकि निर्दोष अभियुक्त को दोषी ठहराया जा सके।

13. वैकल्पिक रूप से, यह प्रस्तुत किया जाता है कि यदि यह अदालत विचारण न्यायालय से संबंधित है कि यह आरोपी ही था जो अपराध का कर्ता था, तो भ०द०वि० की धारा 304 II या धारा 304 I के तहत हो सकता है क्योंकि मृतक की कुछ दिनों के बाद मृत्यु हो गई थी। यदि अदालत को लगता है, क्योंकि अभियुक्त बिना किसी छूट के 5 साल से अधिक समय से जेल में है, तो उसे कैद की निश्चित अवधि की सजा दी जा सकती है। यह प्रस्तुत किया गया है कि आरोपी का मृतक को मारने का कोई इरादा नहीं था।

14. राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता ने जोरदार रूप से प्रस्तुत किया है कि इस मामले के तथ्य न्यायालय को भ०द०वि० की धारा 304 भाग 1 के तहत सजा को बदलने की अनुमति नहीं देंगे क्योंकि अभियुक्त-अपीलकर्ता द्वारा भरोसा किया गया कोई भी निर्णय इस मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होगा क्योंकि अभियुक्त ने अपराध किया है।

15. गवाहों के साक्ष्य को ध्यान में रखते हुए और शव परीक्षण रिपोर्ट सहित चिकित्सा साक्ष्य पर विचार करते हुए, हमारे दिमाग में कोई संदेह नहीं रह गया है कि यह हत्या थी। सवाल यह है कि क्या यह आरोपी था कि अपराधी कौन था। मृतक की मृत्यु पूर्व बयान चिकित्सा साक्ष्य अधिनियम की धारा 32 के साथ पुष्टि करती है कि यह अभियुक्त था जो अपराध करने का दोषी था।

16. हालांकि, जो प्रश्न हमारे विचार के लिए आता है, वह यह है कि क्या मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों के पुनर्मूल्यांकन पर, भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत अपीलकर्ता की दोषसिद्धि को बरकरार रखा जाना चाहिए या दोषसिद्धि को भारतीय दंड संहिता की धारा 304 भाग-I या भाग-II के तहत परिवर्तित किया जाना चाहिए। भारतीय दंड संहिता की धारा 299 का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा, जो निम्नानुसार है:

299. सदोष मानव वध : जो कोई मृत्यु कारित करने के आशय से या ऐसी शारीरिक क्षति कारित करने के आशय से जो मृत्यु कारित करने की सम्भावना से हो या इस ज्ञान के साथ कि वह ऐसे कार्य द्वारा मृत्यु कारित करने की सम्भावना रखता है, मृत्यु कारित करेगा, वह सदोष मानव वध का अपराध करेगा।

15. 'हत्या' और 'गैर इरादतन मानव वध' के बीच शैक्षणिक अंतर ने न्यायालयों को हमेशा परेशान किया है। भ्रम पैदा होता है, अगर अदालतें इन धाराओं में विधायिका द्वारा उपयोग की जाने वाली शर्तों के सही दायरे और अर्थ की दृष्टि खो देती हैं, तो खुद को बारीक अमूर्तताओं में खिंचने की अनुमति देती हैं। इन प्रावधानों की व्याख्या और लागू के दृष्टिकोण का सबसे सुरक्षित तरीका भारतीय दंड संहिता की धारा 299 और 300 के विभिन्न खंडों में उपयोग किए गए की-वर्ड को ध्यान में रखना प्रतीत होता है। निम्नलिखित तुलनात्मक तालिका दो अपराधों के बीच अंतर के बिंदुओं को समझने में सहायक होगी।

धारा 299	धारा 300
कोई व्यक्ति गैर इरादतन मानव वध करता है यदि वह कार्य जिसके द्वारा मृत्यु कारित की जाती है-	कुछ अपवादों के अधीन, गैर इरादतन मानव वध हत्या है यदि वह कार्य जिसके द्वारा मृत्यु हुई है, किया जाता है।

<u>आशय</u>

(a) मौत के इरादे से; नहीं तो	(1) मौत के इरादे से; नहीं तो
(b) ऐसा करने के इरादे से शारीरिक चोट के रूप में मृत्यु का कारण बनने की संभावना है; नहीं तो	2) ऐसा करने के इरादे से शारीरिक चोट के रूप में कि अपराधी जानता है उस व्यक्ति की मृत्यु का कारण बनने की संभावना हो जिसे नुकसान हुआ है
ज्ञान	ज्ञान
(c) इस ज्ञान के साथ कि कार्य से मृत्यु होने की संभावना है	4) इस ज्ञान के साथ कि कार्य इतना तुरंत खतरनाक है कि यह सभी संभावनाओं में मृत्यु या इस तरह का कारण होना चाहिए शारीरिक चोट के रूप में मृत्यु का कारण बनने की संभावना है, और मृत्यु के कारण या होने के जोखिम के लिए किसी भी बहाने के बिना या ऐसी चोट जैसा कि ऊपर बताया गया है.

18. वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की समग्र जांच के साथ-साथ चिकित्सा अधिकारी की राय और तुकाराम और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांत पर विचार करते हुए, (2011) 4 एस.सी.सी. 250 और बीएन कवताकर और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य, 1994 एसयूपीपी (1) एस.सी.सी. 304 में रिपोर्ट किए गए मामले में, हमारा यह सुविचारित मत है कि अपराध भ०द०वि० की धारा 304 भाग-I के तहत दंडनीय होगा।

19. उपरोक्त चर्चाओं के परिणाम से, ऐसा प्रतीत होता है कि अभियुक्त द्वारा की गई मृत्यु पूर्व नियोजित नहीं थी, अभियुक्त का मृतक की मृत्यु कारित करने का कोई इरादा नहीं था, चोटें हालांकि प्रकृति के सामान्य क्रम में मृत्यु का कारण बनने के लिए पर्याप्त थीं, अभियुक्त का मृतक को मारने का कोई इरादा नहीं था, इसलिए प्रस्तुत मामला भ०द०वि० की धारा 300 के अपवाद 1 और 4 के अंतर्गत आता है। उपरोक्त अपराध के रूप में धारा 299 पर विचार करते समय वीरन और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2011) 5 एस.सी.आर 300 में सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणियों के अनुसार धारा 304 भाग-I के तहत आएगा, जिसे भी ध्यान में रखा जाना चाहिए।

20. खोकन @ खोखन (उपरोक्त) में नवीनतम निर्णय में जहां तथ्य इस मामले से मिलते-जुलते थे, सर्वोच्च न्यायालय ने आरोपी अपीलकर्ता की अपील को अनुमति दी है। अनवरसिंह बनाम गुजरात राज्य, (2021) 3 एस.सी.सी. 12 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय, जो कानूनी अभिभावक से अपहरण से संबंधित था, जिसमें यह स्थापित किया गया था कि न्यायालय ने समाज और पीड़ित दोनों की चिंताओं का

सम्मान करते हुए, प्रतिपादित किया कि अभियुक्त द्वारा पहले से गुजारी कैद की अवधि को कम करके निवारण और सुधार के दोहरे सिद्धांत को पूरा किया जाएगा। हमारे मामले में, यह वह वीभत्स मामला नहीं है जहां इन सभी निर्णयों के आलोक में अभियुक्त से निपटा नहीं जा सकता है। प्रवत चंद्र मोहंती बनाम ओडिशा राज्य, (2021) 3 एस.सी.सी. 529 और परदेशीराम बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2021) 3 एस.सी.सी. 238 में निर्णय भी अभियुक्तों के लाभ के लिए लागू होंगे।

21. अन्य सभी निर्णय जो अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा सेवा में दबाए गए थे, उन पर चर्चा नहीं की जाती है क्योंकि यह हमारे द्वारा तय किए गए निर्णयों की पुनरावृत्ति होगी।

22. मो. गियासुद्दीन बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, [ए.आई.आर. 1977 एस.सी. 1926], सजा में पुनर्वास और सुधारात्मक पहलुओं की व्याख्या करते हुए माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा यह देखा गया है:

"अपराध एक पैथोलॉजिकल विपथन है। अपराधी को आमतौर पर सुधारा जा सकता है और राज्य को बदला लेने के बजाय पुनर्वास करना होगा। उप-संस्कृति जो असामाजिक व्यवहार की ओर ले जाती है, उसका मुकाबला अनुचित क्रूरता से नहीं बल्कि पुनर्संस्कृतिकरण द्वारा किया जाना चाहिए। इसलिए, व्यक्ति और लक्ष्य में पेनोलॉजी में रुचि का ध्यान उसे समाज के लिए उबारना है। कठोर और बर्बर दंड का प्रहार इस प्रकार अतीत और प्रतिगामी समय का अवशेष है। मानव आज एक ऐसे व्यक्ति को फिर से आकार देने की प्रक्रिया के रूप में सजा देता है जो आपराधिकता में बिगड़ गया है और आधुनिक समुदाय की सामाजिक रक्षा के साधन के रूप में अपराधी के पुनर्वास में प्राथमिक हिस्सेदारी है। इसलिए हमारी आपराधिक अदालतों में 'आतंक' के दृष्टिकोण के बजाय चिकित्सीय होना चाहिए, क्योंकि व्यक्ति की क्रूर कैद केवल उसके दिमाग की पंगुता पैदा करती है। यदि आप किसी व्यक्ति को प्रतिशोध की सजा देना चाहते हैं, तो आपको उसे घायल करना होगा। यदि आप उसे सुधारना चाहते हैं, तो आपको उसे सुधारना होगा और, मानव का चोटों से सुधार नहीं होगा।

23. देव नारायण मंडल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(2004) 7 एस.सी.सी. 257] में 'उचित वाक्य' की व्याख्या यह कहते हुए की गई थी कि वाक्य या तो अत्यधिक कठोर या हास्यास्पद रूप से कम नहीं होना चाहिए। सजा की मात्रा का निर्धारण करते समय, अदालत को 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखना चाहिए। सजा किसी दिए गए मामले के तथ्यों पर आधारित होनी चाहिए। अपराध की गंभीरता, अपराध करने का तरीका, आरोपी की उम्र और लिंग को ध्यान में रखा जाना चाहिए। सजा देने में न्यायालय के विवेक का प्रयोग मनमाने ढंग से या मनमाने ढंग से नहीं किया जा सकता है।

24. रवदा शशिकला बनाम एपी ए.आई.आर. राज्य 2017 एस.सी. 1166 में, सुप्रीम कोर्ट ने जमील बनाम यूपी राज्य [(2010) 12 एस.सी.सी. 532], गुरु बसवराज बनाम कर्नाटक राज्य, [(2012) 8 एस.सी.सी. 734], सुमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह, [(2014) 7 एस.सी.सी. 323], पंजाब राज्य बनाम बावा सिंह, [(2015) 3 एस.सी.सी. 441], और राज बाला बनाम हरियाणा राज्य, [(2016) 1 एस.सी.सी. 463] और दोहराया है कि, सजा प्रणाली के संचालन में, कानून को तथ्यात्मक मैट्रिक्स के आधार पर सुधारात्मक मशीनरी या निवारक अपनाना

चाहिए। प्रत्येक मामले में तथ्य और दी गई परिस्थितियां, अपराध की प्रकृति, जिस तरीके से इसकी योजना बनाई गई और कारित की गई, अपराध करने का मकसद, अभियुक्त का आचरण, इस्तेमाल किए गए हथियारों की प्रकृति और अन्य सभी उपस्थित परिस्थितियां प्रासंगिक तथ्य हैं जो विचारणीय क्षेत्र में आएंगे। इसके अलावा, सजा में अनुचित सहानुभूति न्याय वितरण को अधिक नुकसान पहुंचाएगी और कानून की प्रभावकारिता में जनता के विश्वास को कम करेगी। प्रत्येक न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह अपराध की प्रकृति और उसके किए जाने के तरीके को ध्यान में रखते हुए उचित सजा सुनाए। सुप्रीम कोर्ट ने आगे कहा कि अदालतों को न केवल अपराध के पीड़ित के अधिकार को ध्यान में रखना चाहिए बल्कि बड़े पैमाने पर समाज को भी ध्यान में रखना चाहिए। उचित सजा देने पर विचार करते समय, पूरे समाज पर अपराध के प्रभाव और कानून के शासन को संतुलित करने की आवश्यकता है। देश में न्यायिक प्रवृत्ति सुधार और दंड के बीच संतुलन बनाने की ओर रही है। समाज की सुरक्षा और आपराधिक प्रवृत्ति पर मुहर लगाना कानून का उद्देश्य होना चाहिए जिसे अपराधियों और गलत काम करने वालों पर उचित सजा देकर हासिल किया जा सकता है। कानून, व्यवस्था और शांति बनाए रखने के लिए एक उपकरण के रूप में, समाज के सामने आने वाली चुनौतियों का प्रभावी ढंग से सामना करना चाहिए, क्योंकि समाज लंबे समय तक अपराध और असामंजस्य के गंभीर खतरों के तहत सहन और विकसित नहीं हो सकता है। इसलिए सजा देने में अनुचित उदारता से बचना आवश्यक है। इस प्रकार, देश में अपनाया गया आपराधिक न्यायशास्त्र प्रतिशोधात्मक नहीं बल्कि सुधारात्मक और उपचरात्मक है। साथ ही, हमारी दांडिक न्याय प्रणाली में अंतर्निहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से भी बचा जाना चाहिए।

25. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और हमारे देश में आपराधिक न्यायशास्त्र को ध्यान में रखते हुए, जो सुधारात्मक और उपचरात्मक है और प्रतिशोधात्मक नहीं है, यह न्यायालय मानता है कि कोई भी आरोपी व्यक्ति सुधरने में असमर्थ नहीं है और इसलिए, उन्हें सामाजिक धारा में लाने के लिए सुधार का अवसर देने के लिए सभी उपायों को लागू किया जाना चाहिए।

26. जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, 'दंड के सुधारात्मक सिद्धांत' को अपनाया जाना है और इस कारण से, 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखते हुए दंड देना आवश्यक है। आक्षेपित निर्णय के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि विद्वान विचारण द्वारा आजीवन कारावास की सजा दी गई सजा मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की संपूर्णता और अपराध की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए बहुत कठोर है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने जैसा कि ऊपर चर्चा की है, ने निर्णय दिया है कि दांडिक न्याय प्रणाली में अंतर्निहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से बचा जाना चाहिए।

27. हम निश्चित निष्कर्ष पर आते हैं कि मृत्यु सेप्टिसीमिया के कारण हुई थी। अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णय हमें अपने निष्कर्ष को बनाए रखने की अनुमति देंगे, जिसे हम निर्णायक रूप से मानते हैं कि अपराध धारा 302 भ०द०वि० के तहत नहीं है, बल्कि गैर इरादतन हत्या है और इसलिए, हम धारा 304

(II) भ०द०वि० के तहत अभियुक्त को दोषी ठहराते हैं और आरोपी अपीलकर्ता की सजा को पहले से ही आज तक की अवधि तक कम कर दिया गया है।

28. अपील आंशिक रूप से अनुमति दी जाती है। रिकॉर्ड और कार्यवाही को तुरंत निचली अदालत में वापस भेजा जाए।

29. यह न्यायालय न्यायालय की सहायता करने के लिए अधिवक्ताओं का आभारी है।

(2023) 3 ILRA 982

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 28.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति प्रीतिंकर दिवाकर, ए.सी.जे.

माननीय न्यायमूर्ति सुरेन्द्र सिंह-I, जे.

2011 की आपराधिक अपील संख्या 6904
के साथ
2011 की आपराधिक अपील संख्या 6903

रज्जन ... प्रार्थी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ... प्रतिवादी

अपीलकर्ता के लिए वकील: मिश्रा, विन्देश्वरी प्रसाद, सुशील कुमार द्विवेदी, धीरेन्द्र कुमार श्रीवास्तव

प्रतिवादी के लिए वकील: श्री एच.एम.बी.सिन्हा, ए.जी.ए.

अपराधिक कानून- भारतीय दंड संहिता-1860- धारा 34, 96-106, 302, 304 (I) - साक्ष्य अधिनियम, 1872-धारा 3 और 134-आरोपी ने मृतक पर बांस के पेड़ों को काटने को लेकर विवाद में हसिया और लाठियों से हमला किया, जिससे मृतक को गंभीर चोटें आईं और उसकी मौत हो गई- धारा 302 सपठित धारा 34 के तहत दोषसिद्धि - P.W.3 के साक्ष्य को केवल इसलिये नकारा नहीं किया जा सकता क्योंकि वह मृतक का बेटा है, क्योंकि गवाही विश्वसनीय है- आरोपी (राजजन) ने निजी रक्षा के अधिकार से अधिक बढ़कर काम किया है और उसे मृतक की हत्या के अपराध से पूरी तरह से दोषमुक्त नहीं किया जा सकता- बिना पूर्व निर्धारित योजना के अचानक झगड़े में हमला- अपराध हत्या नहीं है, बल्कि ऐसी हत्या है जो हत्या के बराबर नहीं है और जो धारा 304 I.P.C के तहत दंडनीय है- अन्य सह-आरोपियों की मौजूदगी और भागीदारी सिद्ध नहीं हुई। परिणामस्वरूप- अपराधिक अपील संख्या 6903/2011 में अपीलकर्ताओं की सजा निरस्त की जाती है और अपराधिक अपील संख्या 6904/2011 में अपीलकर्ता की सजा को धारा 304 (I) I.P.C के तहत परिवर्तित किया जाता है।

उद्धृत वाद सूची:

1. धीरेंद्र कुमार बनाम उत्तराखंड राज्य, 2015 SCC ऑनलाइन SC 163
2. सुरेश और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2001) 3 सुप्रीम कोर्ट केस 673
3. गंगाधर चंद्र बनाम पश्चिम बंगाल राज्य., (2022) 120 ACC 267
4. मक्सूदन और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 1983 SC 1926
5. लक्ष्मीबाई (मृत) द्वारा वारिसान बनाम भागवंतबुरा (मृत) द्वारा वारिसान, AIR (2013) SC 1204

6. ब्रिजबासी लाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 1991 SCC (Crl.) 546
7. चिन्नैया सर्वाई बनाम मद्रास राज्य, AIR 1957 SCC 614
8. दर्शन सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2010) 2 SCC 333

<u>माननीय मुख्य कार्यवाहक न्यायमूर्ति प्रीतिंकर दिवाकर,</u>
<u>माननीय न्यायमूर्ति सुरेंद्र सिंह-I,</u>
(प्रदत्त : <u>न्यायमूर्ति सुरेंद्र सिंह-I,</u>.)

यद्धपि ये अपीलें अपराध संख्या 88/1999 पुलिस स्टेशन- लालापुर जिला- इलाहाबाद से उत्पन्न सत्र परीक्षण संख्या 18/2001 (राज्य बनाम कल्लू और अन्य) में अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश (पूर्व संवर्ग), न्यायालय संख्या 23, इलाहाबाद द्वारा पारित निर्णय और दोषसिद्धि आदेश दिनांक 19.11.2011 के विरुद्ध योजित की गई गई है, जिसमे अभियुक्त-अपीलकर्ता कल्लू, सुशील और रज्जन को दोषी ठहराते हुए और उनमें से प्रत्येक को आईपीसी की धारा 34 सपठित धारा 302 के तहत आजीवन कारावास और 10,000 रुपये अर्थदंड से दंडित किया गया, जिसका निस्तारण इस सामान्य आदेश द्वारा किया जा रहा है।

2. अभियोजन पक्ष के अनुसार वादी ननकाऊ पुत्र छेदी लाल मिश्रा, निवासी ओठगीतराहार, थाना लालापुर, जिला इलाहाबाद ने दिनांक 07.11.1999 को पुलिस थाना- लालापुर में तहरीर (प्रदर्श क 1) प्रस्तुत करते हुए कहा कि दिनांक 07.11.1999 को प्रातः 11.00 बजे अभियुक्त-अपीलार्थी कल्लू, सुशील एवं रज्जन, पुत्र संगम लाल वादी के अश्वनीपुर माजरा गोईसरा स्थित वादी के बांस के वृक्षों (बांसकोट) के झुरमुट को जबरन काटने आए थे। जब उन्हें छेदी लाल ने बांस के पेड़ों (बांसकोट) के झुरमुट को काटने से मना किया, तो उन्होंने उसके पिता को दरांती (हसिया) और लाठियों से पीटना शुरू कर दिया। शोर मचाने पर वादी के भाई शिवकांत और दयाकांत उसे बचाने आए तो अभियुक्त ने लाठी से उन पर भी हमला कर दिया, जिससे उन्हें गंभीर चोट आई। अभियुक्त राजन ने मृत्यु कारित करने के आशय से पिता के सिर और शरीर के पिछले हिस्से पर हमला किया, जिससे उन्हें गंभीर चोट आई। वादी की तहरीर के आधार पर दिनांक 07.11.1999 को 11.30 बजे अभियुक्त-अपीलार्थी कल्लू, सुशील एवं रज्जन के विरूद्ध अपराध संख्या 88/1998 अंतर्गत धारा 307 आईपीसी थाना लालापुर में प्राथमिकी दर्ज की गई। चिकित्सा के दौरान घायल छेदी लाल मिश्र की दिनांक 07.11.1999 को 13.00 बजे मृत्यु हो गई और वाद आईपीसी की धारा 302 के तहत परिवर्तित कर दिया गया। विवेचना पीडब्लू.4 एसआई प्रेम कुमार यादव ने की। वह घटना स्थल का गए और वादी के निशानदेही पर, उसकी नक्शा नजरी (प्रदर्श क2) तैयार की। उन्होंने घटना स्थल से खून आलुदा और सादी मिट्टी एकत्र की और कंटेनर में रखा और संग्रह को सील कर दिया। सादे और खून आलूदा मिट्टी के संग्रह के बारे में फर्द बरामदगी तैयार किया गया था जो (प्रदर्श क 3) है। अभियुक्त-अपीलकर्ता कल्लू, सुशील और रज्जन को हिरासत में लिया गया और उनके निशानदेही पर आरोपी-अपीलकर्ताओं के घर के आंगन से अपराध के हथियार, 2 लाठियां और 1 दरांती (हसिया) बरामद की गई। बरामद इन सामानों को कपड़े में लपेटकर सील कर दिया गया। उसका फर्द बरामदगी (प्रदेश क 4) तैयार किया गया था।

3. छेदी लाल मिश्र के शव का पंचायतनामा दिनांक 07.11.1999 को 15.00 बजे एचसीपी रामहित वर्मा की देखरेख में की गई थी। पंचायतनामा (प्रदर्श क11) है।

4. मृतक छेदी लाल मिश्र के शव का पोस्टमार्टम पीडब्ल्यू-6 डॉ. मो. फारुख, जो मोती लाल नेहरू जिला अस्पताल में चिकित्सा अधिकारी के रूप में तैनात थे, द्वारा दिनांक 08-11-1999 को मध्याहन पश्चात् 200 बजे किया गया। पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट (प्रदर्श क10) के अनुसार, मृतक के शरीर पर निम्नलिखित मृत्युपूर्व चोटें पाई गईं:

(i) सिर के पिछले भाग पर 15 सेमी x 6 सेमी गहरी गुहा आकार का एक त्रिकोणीय कटा हुआ घाव जो दाहिने कान से 14 सेमी दूर स्थित था।

(ii) सिर के दाहिने टेम्पोरल क्षेत्र पर स्थित 6 x 1/2 सेमी मांसपेशियों का एक गहरा कटा हुआ घाव।

(iii) दाएं नितंब पर स्थित 3 सेमी x 1 सेमी गहरी मांसपेशियों का एक कटा हुआ घाव।

(iv) पीठ के निचले दाएं भाग में स्थित 2 सेमी x I सेमी मांसपेशियों का गहरा आकार का एक कटा हुआ घाव।

(v) पीठ के निचले हिस्से में स्थित 5 सेमी x1 1/2 सेमी गहरी मांसपेशियों का एक कटा हुआ घाव।

(vi) दोनों कंधे की हड्डी के बीच पीठ के पीछे स्थित 2 सेमी x 1 सेमी मांसपेशियों का एक गहरा कटा हुआ घाव।

5. <u>बाहरी परीक्षण</u>: - सिर की खोपड़ी के पीछे और दाईं ओर फ्रैक्चर थे। मस्तिष्क की झिल्ली संकुलित थी। मस्तिष्क गुहा कटा हुआ पाया गया। दिल या फेफड़ों में खून नहीं था।

6. चिकित्सा अधिकारी की राय में, मृत्यु आघात और रक्तस्राव के कारण मृत्युपूर्व चोटों के कारण हुई थी।

7. विवेचना अधिकारी (पी.डब्ल्यू.4) एसआई प्रेम कुमार यादव ने केस डायरी में सीआरपीसी की धारा 161 के तहत तथ्य और औपचारिक गवाहों के बयान दर्ज किए और विवेचना के बाद, आरोपी-अपीलकर्ता कल्लू, सुशील और राजन के विरुद्ध धारा 302 आईपीसी के तहत आरोप पत्र प्रस्तुत किया।

8. दिनांक 22.02.2001 को विद्वान विचारण न्यायाधीश ने अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के विरुद्ध धारा 307/34 एवं 302/34 आईपीसी के तहत आरोप तय किए। अभियुक्त ने आरोप से इनकार किया और विचारण की मांग की।

9. अभियोजन पक्ष ने (पी.डब्ल्यू.1) शिवकांत, (पी.डब्ल्यू.2) दयाकांत और (पी.डब्ल्यू.3) ननकाऊ को तथ्य के गवाह के रूप में परीक्षण किया। अभियोजन पक्ष ने जांच अधिकारी, एसआई प्रेम कुमार यादव (पी.डब्ल्यू.4), कांस्टेबल बड़े लाल थाना लालापुर, डॉ. मोह फारुख, जिसने मृतक छेदी लाल मिश्रा का पोस्टमार्टम किया (पी.डब्ल्यू.6) और कांस्टेबल अभिनव तिवारी (पी.डब्ल्यू.7) का भी परीक्षण किया।

10. (पीडब्लू.1) शिवकांत और (पीडब्ल्यू 2) दयाकांत पक्षद्रोही हो गए और अभियोजन पक्ष के वाद का समर्थन नहीं किया। चश्मदीद गवाह (पी.डब्ल्यू.3) ननकौ ने तहरीर (प्रदर्श क1) साबित की। उन्होंने आरोपी-अपीलकर्ताओं के विरुद्ध तय किए गए आरोप के समर्थन में गवाही दी।

11. विवेचक (पी.डब्ल्यू.4) एस.आई. प्रेम कुमार यादव ने अपने साक्ष्य द्वारा घटना स्थल की नक्शा नजरी (प्रदर्श क 2), घटना स्थल से

एकत्रित सादे और खून आलूदे मिट्टी की फर्द बरमादगी (प्रदर्श क 3), अभियुक्त कल्लू , सुशील और रज्जन की निशानदेही पर अपराध के हथियार क्रमशः दो लाठियां और दरांती (हसिया) की बरामदगी से संबंधित फर्द (प्रदर्श क 4) को सिद्ध किया है। उन्होंने अपने साक्ष्य से खूनआलूदा मिट्टी, (वस्तु प्रदर्श 1), सादा मिट्टी (वस्तु प्रदर्श 2), अपराध का हथियार हसिया (वस्तु प्रदर्श 3) और आरोपी कल्लू, सुशील और रज्जन के विरुद्ध प्रस्तुत आरोप-पत्र (प्रदर्श क 5) को भी सिद्ध किया किया। (पी.डब्ल्यू.5) कांस्टेबल क्लर्क बड़े लाल ने अपराध संख्या 88/1999 की धारा 307 आईपीसी (विस्तारक 6) के तहत चिक एफआईआर, जीडी रिपोर्ट नंबर 9 दिनांक 07.11.1999, की प्रति 11.30 बजे उपरोक्त अपराध संख्या के दर्ज के संबंध में (प्रदर्श क 7), मूल जीडी के विनाश के संबंध में एचसीपी इलाहाबाद के कार्यालय से भेजी गई रिपोर्ट (प्रदर्श क 8), जीडी रिपोर्ट नंबर 11 की कार्बन कॉपी, दिनांक 07.11.1999 को 13.00 बजे मृतक छेदी लाल मिश्र की मृत्यु के बाद अपराध क्रमांक 88/1999 को धारा 302 आईपीसी में परिवर्तित करने के संबंध में (प्रदर्श क 8) को सिद्ध किया है। मृतक छेदी लाल मिश्र का पोस्टमार्टम करने वाले चिकित्सा अधिकारी डॉ. मो. फारुख (पी.डब्ल्यू.6) ने उसकी पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट (प्रदर्श क 10) सिद्ध किया।

12. चूंकि एचसीपी रामहित वर्मा, जिन्होंने छेदी लाल मिश्रा का पंचायतनामा किया था, उनकी मृत्यु हो गई थी, पीडब्ल्यू 7 कांस्टेबल अभिनय तिवारी, जो उपरोक्त एचसीपी के साथ काम कर चुके थे और उनकी लिखावट और हस्ताक्षर से परिचित थे, उन्होंने मृतक छेदी लाल मिश्रा के पोस्टमॉर्टम से संबंधित जांच रिपोर्ट (प्रदर्श क 11) और अन्य पुलिस कागजात यानी (प्रदर्श क 12) से (प्रदर्श क 16) के रूप में साबित की, जिसे स्वर्गीय एचसीपी रामहित वर्मा ने तैयार किया था।

13. दिनांक 14.08.2007 को, विचारणीय न्यायाधीश ने आरोपी-अपीलकर्ता कल्लू, सुशील और रज्जन के बयान धारा 313 सीआर.पी.सी. के तहत दर्ज किया। उन्होंने कहा कि झूठा मामला दर्ज किया गया और गवाहों ने झूठे साक्ष्य दिए। आरोपी अपीलकर्ता, सुशील कुमार ने धारा 313 सीआरपीसी के तहत अपने बयान में कहा कि दिनांक 07.11.1999 को 11.00 बजे, वह और उसके दो भाई, अर्थात् कल्लू और रज्जन गांव-अश्वनीपुर मजरा गोईसरा स्थित अपने खेत संख्या 573/574 में बांस के पेड़ों (बांसकोट) के झुरमुट को काट रहे थे। छेदी लाल और उनके बेटे शिवकांत, बाबू यादव और लल्लन वहां पहुंचे और गाली-गलौज करने लगे। उन्होंने लाठी और डंडा से मारपीट कर जानलेवा चोटें पहुंचाईं। निजी बचाव के अधिकार का प्रयोग करते हुए आरोपी-अपीलकर्ताओं ने लाठी-डंडा से भी मारपीट की, जिसमें छेदी लाल घायल हो गया। वादी और उसकी पक्ष के सदस्यों ने आरोपी-अपीलकर्ताओं पर देसी पिस्तौल (कट्टा) से गोली चला दी। पुलिस के माध्यम से चिकित्सा अधिकारी द्वारा उनकी चिकित्सा जांच की गई।

14. दिनांक 18.11.2011 के आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा, विचारणीय न्यायाधीश ने अभियुक्त-अपीलकर्ताओं को धारा 307 आईपीसी के सपठित धारा 34 के तहत दोषमुक्त कर दिया और उन्हें धारा 302 आईपीसी के सपठित धारा 34 के तहत दोषी ठहराया और उन्हें उपरोक्त सजा सुनाई।

15. अभियुक्त-अपीलकर्ताओं की ओर से यह तर्क दिया गया है कि तथ्य के दो गवाह (P.W.1) और (P.W.2) पक्षद्रोही हो गए और अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं किया। (पी.डब्ल्यू.3) नानकौ के साक्ष्य के बयान में कई विरोधाभास हैं और यह विश्वसनीय नहीं है। इस प्रकार, दोषसिद्धि (पी.डब्ल्यू.3) ननकौ की एकमात्र गवाही पर आधारित नहीं हो सकती। आरोपी-अपीलकर्ताओं की ओर से यह भी तर्क दिया गया है कि वे अपने स्वामित्व के बांस के पेड़ों (बांसकोट) के झुरमुट को काट रहे थे। मृतक छेदी लाल मिश्र और उनके पुत्र

शिवकांत, दयाकांत और नानकाऊ ने उन्हें बांस के पेड़ों (बांसकोट) के झुरमुट को काटने से रोकने की कोशिश की और उन पर हमला किया जिसके दौरान आरोपी-अपीलकर्ताओं को चोटें आईं। निजी रक्षा के अपने वैध अधिकार का प्रयोग करते हुए, आरोपी-अपीलकर्ताओं ने मृतक छेदी लाल मिश्रा और उनके बेटों पर उन्हें पीछे हटाने के लिए हमला किया, जिसके दौरान छेदी लाल मिश्रा को कुछ चोटें आईं, जिसके परिणामस्वरूप उनकी मृत्यु हो गई, जिसके लिए आरोपी अपीलकर्ताओं को उत्तरदायी नहीं बनाया जा सका।

16. राज्य की ओर से यह तर्क दिया गया है कि (पी.डब्ल्यू.3) ननकौ का ठोस, विश्वसनीय और ठोस साक्ष्य है, जो आरोपी अपीलकर्ताओं की ओर से की गई लंबी और विस्तृत जिरह के दौरान अपरिवर्तित नहीं हुआ है। पी.डब्ल्यू.1 के साक्ष्य की पुष्टि अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के इकबालिया बयान और उपरोक्त अभियुक्त-अपीलकर्ताओं की निशानदेही पर अपराध के हथियार की बरामदगी से होती है।

17. हमने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता को सुना है और विचारणीय न्यायालय के सम्पूर्ण अभिलेख का अवलोकन किया है।

18. भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत दंडनीय अपराध की परिभाषा आईपीसी की धारा 300 में दिया गया है जो इस प्रकार है:

धारा 300- हत्या- एतस्मिन् पश्चात् अपवादित दशाओं को छोड़कर आपराधिक मानव वध हत्या है, यदि वह कार्य, जिसके द्वारा मृत्यु कारित की गई हो, मृत्यु कारित करने के आशय से किया गया हो, अथवा

दूसरा- यदि वह ऐसी शारीरिक क्षति कारित करने के आशय से किया गया हो जिससे अपराधी जानता हो कि उस व्यक्ति की मृत्यु कारित करना सम्भाव्य है जिसको वह अपहानि कारित की गई है, अथवा

तीसरा- यदि वह किसी व्यक्ति को शारीरिक क्षति कारित करने के आशय से किया गया हो और वह शारीरिक क्षति, जिसके कारित करने का आशय हो, प्रकृति के मामूली अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिये पर्याप्त हो, अथवा

चौथा - यदि कार्य करने वाला व्यक्ति यह जानता हो कि वह कार्य इतना आसन्नसंकट है कि पूरी अधिसंभाव्यता है कि वह मृत्यु कारित कर ही देगा या ऐसी शारीरिक क्षति कारित कर ही देगा जिससे मृत्यु कारित होना सम्भाव्य है और वह मृत्यु कारित करने या पूर्वाक्त रुप से क्षति कारित करने की जोखिम उठाने के लिये किसी प्रतिहेतु के बिना ऐसा कार्य करे ।

19. भारतीय दंड संहिता की धारा 300 में उपरोक्त चार अपवाद दिए गए हैं। यदि कृत कार्य, इन अपवादों में से किसी के अंतर्गत आता है, तो अभियुक्त को आईपीसी की धारा 302 के तहत हत्या के लिए दंडित नहीं किया जाएगा, लेकिन भारतीय दंड संहिता की धारा 304 के अंतर्गत दंडनीय हत्या के लिए गैर इरादतन मानव वध से दंडित किया जाएगा। आरोपी-अपीलकर्ताओं ने यह

दावा किया है कि उन्होंने निजी रक्षा के अपने अधिकार का प्रयोग करते हुए ननकाऊ और उसके साथियों को चोट पहुंचाई। हमलावर की हत्या करने के संदर्भ में व्यक्ति या संपत्ति की निजी रक्षा के अधिकार से संबंधित प्रावधान आईपीसी की धारा 300 के अपवाद 2 में दिया गया है जो इस प्रकार है:

अपवाद 2- आपराधिक मानव वध हत्या नहीं है यदि अपराधी, शरीर या सम्पत्ति की प्रतिरक्षा के अधिकार को सद्भावनापूर्वक प्रयोग में लाते हुये विधि द्वारा उसे दी गई शक्ति का अतिकमण कर दे, और पूर्वचिन्तन बिना ओर ऐसी प्रतिरक्षा के प्रयोजन से जितनी अपहानि आवश्यक हो उससे अधिक अपहानि करने किसी आशय के बिना उस व्यक्ति की मृत्यु कारित कर दे जिसके विरुद्ध वह प्रतिरक्षा का ऐसा अधिकार प्रयोग में ला रहा हो ।

20. "**धीरेंद्र कुमार बनाम उत्तराखंड राज्य, 2015 एससीसी ऑनलाइन एससी 163,** " में उच्चतम न्यायालय ने मापदंडों को निर्धारित किया है, जिन्हें इस प्रश्न का निर्णय करते समय ध्यान में रखा जाना चाहिए कि क्या मामला धारा 302 आईपीसी या धारा 304 आईएलपीसी के तहत आता है, जो इस प्रकार हैं:

(क) यह घटना किन परिस्थितियों में हुई;

(ख) प्रयुक्त हथियारों की प्रकृति;

(ग) क्या हथियार ले जाया गया था अथवा घटनास्थल से ले जाया गया था;

(घ) क्या हमला शरीर के महत्वपूर्ण अंगों पर किया गया था;

(ङ) कितना बल प्रयोग किया गया;

(च) क्या मृतक ने अचानक हुए झगड़े में भाग लिया था;

(छ) क्या पहले कोई शत्रुता थी;

(ज) क्या अचानक कोई उकसावा हुआ था;

(झ) क्या हमला क्रोध में था; और

(अं) क्या व्यक्ति ने चोट पहुंचाई है या अनुचित लाभ उठाया है या क्रूर या अचेतन तरीके से कार्य किया है।

21. अभियोजन पक्ष द्वारा पेश किए गए मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य के विश्लेषण से, यह देखा जाना चाहिए कि क्या धारा 302 आईपीसी सपठित धारा 34 के तहत आरोप अपीलकर्ताओं के विरुद्ध साबित होता है।

22. मृतक छेदी लाल के बेटे शिवकांत (पी.डब्ल्यू.1) ने इस बात से पूरी तरह इनकार किया है कि सभी समान आशय से आरोपी-अपीलकर्ता कल्लू, सुशील और रज्जन ने मृतक छेदी लाल को लाठियों और दरांती से पीटकर घातक चोट पहुंचाई थी, जिससे उसकी मौत हो गई। उन्होंने कहा है कि वह घटना स्थल पर मौजूद नहीं थे और उन्हें नहीं पता कि छेदी लाल को किसने चोट पहुंचाई, जिसके कारण उनकी मृत्यु हो गई। उन्होंने अपने साक्ष्य में आगे कहा कि दिनांक 07.11.1999 को सुबह 5.00 बजे, जब हल्का अंधेरा था, उनके पिता जो लाठी के उपयोग में विशेषज्ञ थे, व्यायाम के साथ-साथ दूसरों को प्रशिक्षित करने के लिए बाग गए थे।

23. (पी.डब्ल्यू.1) शिवकांत ने बताया कि ननकाऊ और दयाकांत उनके सगे भाई हैं। इस घटना में उन्हें कोई चोट नहीं आई है। (पीडब्ल्यू 1) शिवकांत ने कहा कि आरोपी-अपीलकर्ता उसके पिता की बहन (बुआ) के बेटे हैं। आरोपी-अपीलकर्ताओं से उसकी कोई दुश्मनी नहीं थी। उनके साथ बांस के पेड़ों (बांसकोट) के झुरमुट को लेकर कोई विवाद नहीं था। (पीडब्ल्यू 1) शिवकांत ने इस बात से इनकार किया है कि चूंकि आरोपी-

अपीलकर्ता उनके पिता की बहन (बुआ) के बेटे हैं, इसलिए उन्होंने इस मामले से समझौता किया है और उनके डर से, वह उन्हें सजा से बचाने के लिए झूठे साक्ष्य दे रहे हैं।

24. (पीडब्ल्यू 2) दयाकांत ने वही साक्ष्य दिए हैं जो (पी.डब्ल्यू.1) शिवकांत ने अपने बयान में दिए हैं।

25. मृतक के पुत्र (पी.डब्ल्यू.3) नानकाऊ ने अपने साक्ष्य में कहा है कि घटना 07.11.1999 को घटित हुई थी। वह घटना स्थल पर मौजूद था। आरोपी-अपीलकर्ता, कल्लू, सुशील और राजन बांस के पेड़ों (बांसकोट) के झुरमुट को काट रहे थे। उनके पिता, छेदी लाल ने उन्हें इसे काटने से मना किया। फिर, आरोपी-अपीलकर्ताओं ने उसके पिता को लाठी, डंडा और दरांती (हसिया) से पीटना शुरू कर दिया। अपने पिता द्वारा शोर मचाए जाने पर, वह और उसके भाई, शिवकांत और दयाकांत अपने पिता को आरोपी-अपीलकर्ताओं द्वारा हमले से बचाने के लिए गए। उन्हें और उनके भाइयों, शिवकांत और दयाकांत को भी आरोपी-अपीलकर्ताओं द्वारा लाठी और डंडा से पीटा गया था। उन्होंने आगे बयान दिया कि उसके पिता को उसके सिर के पीछे चोट लगी है। आरोपी अपीलकर्ता, रज्जन, ने मृत्यु कृत करने से आशय से, उसके पिता पर दरांती (हसिया) से हमला किया है और अन्य अपीलकर्ताओं ने उस पर लाठी से हमला किया है। घटना के बाद उसने संबंधित थाने में तहरीर (प्रदर्श क 1) प्रस्तुत कर एफआईआर दर्ज कराई।

(पीडब्ल्यू 3) ननकाऊ ने जिरह में बताया है कि बांस के पेड़ों का झुरमुट (बांसकोट) उनके घर से करीब एक किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। मारपीट पश्चिम दिशा में बांस के पेड़ों (बांसकोट) के झुरमुट से लगभग पचास कदम दूर घटित हुआ। उन्होंने स्वीकार किया कि मारपीट के दौरान, उन्होंने आरोपी-अपीलकर्ता, सुशील के शरीर में चोट देखी है, जिसमें से खून बह रहा था और अन्य दो आरोपियों के शरीर पर कोई चोट नहीं थी। उन्होंने कहा कि, घटना के समय, वह अपनी कृषि भूमि में मौजूद थे। मारपीट 10 मिनट तक चला। घटना के बाद उन्होंने तहरीर लिखी। वह संबंधित थाने गया। वह लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श क 1) को सिद्ध करता है।

अपनी जिरह में उन्होंने गवाही दी कि बांस के पेड़ों का झुरमुट (बांसकोट) में उसका और उसके परिवार का स्वामित्व है। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि बांस के पेड़ों का झुरमुट (बांसकोट) आरोपी-अपीलकर्ताओं की कृषि भूमि में स्थित है। उन्होंने इस बात से इनकार किया है कि आरोपी-अपीलकर्ता, कल्लू, सुशील और रज्जन बांस के पेड़ों (बांसकोट) के अपने झुरमुट काट रहे थे। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया कि जब आरोपी-अपीलकर्ता ने बांस के पेड़ों (बांसकोट) के झुरमुट को काटना बंद नहीं किया, तो उसके पिता छेदी लाल और भाइयों, शिवकांत और दयाकांत ने आरोपी-अपीलकर्ताओं को लाठी और डंडा से पीटा था। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया कि उनके पिता छेदी लाल ने बंदूक से गोली चलाई थी। पीडब्लू 3 ने अपनी अनभिज्ञता व्यक्त की है कि जिस प्लॉट पर झगड़ा हुआ है, उसकी संख्या 573/574 है। उन्होंने अपनी अनभिज्ञता भी व्यक्त की है कि उन्हें नहीं पता कि बांस के पेड़ों का झुरमुट (बांसकोट) प्लॉट नंबर 573/574 में स्थित है या नहीं। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि वह घटना के समय मौजूद नहीं थे। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया है कि जब छेदी लाल और उनके भाई, शिवकांत और दयाकांत आरोपी-अपीलकर्ताओं की पिटाई कर रहे

थे, तो उन्होंने निजी रक्षा के अपने अधिकार में हमला किया था, जिसके दौरान उनके पिता छेदी लाल को चोटें आई थीं। (पी.डब्ल्यू.3) नानकौ ने अपने साक्ष्य में गवाही दी है कि जब उसके पिता ने आरोपी को बांस के पेड़ों (बांसकोट) के झुरमुट को काटने से रोका, फिर आरोपी-अपीलकर्ता, दरांती से लैस रज्जन, हसिया, सुशील और कल्लू ने क्रमशः लाठी और डंडा से लैस होकर उसके पिता के साथ मारपीट की और उसे घातक चोटें पहुंचाईं। उन्होंने यह भी गवाही दी है कि जब पीडब्ल्यू 3 ननकौ और उनके भाई, (पीडब्ल्यू 1) शिवकांत और (पीडब्ल्यू 2) दयाकांत वहां पहुंचे, तो आरोपी-अपीलकर्ता, कल्लू और सुशील ने उन पर लाठी, डंडा से हमला किया, जिससे उन्हें चोटें आईं। मृतक छेदी लाल की पोस्टमार्टम रिपोर्ट (प्रदर्श क 10) के अनुसार, सिर के पीछे, दाएं नितंब, पीठ के निचले हिस्से और दोनों कंधो के मध्य पीठ के पीछे के अस्थायी क्षेत्र पर कटे हुए घाव पाए जाते हैं। कटे हुए घाव केवल दरांती (हसिया) के हमले के कारण हो सकते हैं, और यह लाठी, डंडा के कारण नहीं हो सकते। हालांकि (पी.डब्ल्यू.3) नानकाऊ ने गवाही दी है कि आरोपी, सुशील और कल्लू ने शिवकांत और दयाकांत पर लाठी, डंडा से हमला किया, जिससे उन्हें चोटें आईं, लेकिन शिवकांत और दयाकांत ने कहा है कि कथित घटना में आरोपियों द्वारा उनके साथ मारपीट नहीं की गई थी। उन्होंने यह भी कहा है कि उन्हें घटना में आरोपी-अपीलकर्ताओं द्वारा कोई चोट नहीं आई है। मृतक छेदी लाल या पी.डब्ल्यू.1 शिवकांत और पी.डब्ल्यू.2 दयाकांत के व्यक्ति पर लाठी और डंडा से कोई जाहिर चोट नहीं है।

26. सर्वोच्च न्यायालय द्वारा आईपीसी की धारा 34 के तहत प्रतिवर्ती दायित्व से संबंधित कानून द्वारा तय किया गया है। **सुरेश और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2001) 3 उच्चतम न्यायालय वाद 673** के मामले में उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया है:

"धारा 34 की विशेष विशेषता केवल यह है कि कई व्यक्तियों द्वारा इस तरह की भागीदारी "सभी के सामान्य इरादे को आगे बढ़ाने के लिए" होनी चाहिए। इसलिए, धारा 34 के तहत एक आपराधिक कृत्य, जो एक से अधिक कृत्यों से बना है, एक से अधिक व्यक्तियों द्वारा किया जा सकता है और यदि ऐसा कृत्य उन सभी के सामान्य इरादे को आगे बढ़ाने में है, तो प्रत्येक इस प्रकार किए गए आपराधिक कृत्य के लिए उत्तरदायी होगा। धारा 34 का उद्देश्य एक ऐसी स्थिति का सामना करना है जिसमें सभी सह-अभियुक्तों ने आपराधिक कृत्य करने के लिए कुछ न कुछ किया हो। इस प्रकार धारा 34 I.P.C को आकर्षित करने के लिए दो अभिधारणाएँ अपरिहार्य हैं: (1) आपराधिक कार्य (कृत्यों की एक श्रृंखला से मिलकर) एक व्यक्ति द्वारा नहीं, बल्कि एक से अधिक व्यक्तियों द्वारा किया जाना चाहिए था। (2) ऐसे प्रत्येक व्यक्तिगत कार्य को संचयी रूप से करना जिसके परिणामस्वरूप आपराधिक अपराध किया जाता है, ऐसे सभी व्यक्तियों के सामान्य इरादे को आगे बढ़ाने में होना चाहिए था। उपरोक्त प्रथम अभिधारणा को देखते हुए, अभियुक्त जिसे धारा 34 I.P.C के बल पर दायित्व के साथ बांधा जाना है, उसे कुछ ऐसा कार्य करना चाहिए जिसका अपराध के साथ संबंध हो। इस तरह के कृत्य को बहुत महत्वपूर्ण होने की आवश्यकता नहीं है, यह पर्याप्त है कि अधिनियम केवल अपराध को सुविधाजनक बनाने के लिए दृश्य की रक्षा के लिए है। अधिनियम को आवश्यक रूप से

प्रकट होने की आवश्यकता नहीं है, भले ही यह केवल एक गुप्त कार्य हो यह पर्याप्त है, बशर्ते कि ऐसा गुप्त कार्य सह-अभियुक्त द्वारा सामान्य इरादे को आगे बढ़ाने में किया गया साबित हो। यहां तक कि एक निश्चित स्थिति में एक निश्चित कार्य करने के लिए एक अवैध चूक एक अधिनियम के बराबर हो सकती है। लेकिन एक कार्य, चाहे प्रत्यक्ष या गुप्त, एक सह-अभियुक्त द्वारा धारा के तहत दायित्व के साथ बांधा जाना अपरिहार्य है और यदि किसी व्यक्ति द्वारा ऐसा कोई कार्य नहीं किया जाता है, भले ही अपराध की सिद्धि के लिए उसका दूसरों के साथ सामान्य इरादा हो, तो धारा 34 I.P.C. को उस व्यक्ति को दोषी ठहराने के लिए लागू नहीं किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, अभियुक्त जो केवल अपने दिमाग में सामान्य आशय रखता है, लेकिन घटनास्थल पर कोई कार्य नहीं करता है, उसे धारा 34 I.P.C की सहायता से दोषी नहीं ठहराया जा सकता है। आई. पी. सी. में अन्य प्रावधान जैसे धारा 120-बी या धारा 109 हो सकते है जिसे तब ऐसे गैर-भाग लेने वाले अभियुक्त को पकड़ने के लिए लागू किया जा सकता है। इस प्रकार, सामान्य इरादे को आगे बढ़ाने में अपराध में भागीदारी धारा 34 I.P.C के लिए एक अनिवार्य शर्त है। अन्य अभियुक्तों को उपदेश, यहां तक कि घटनास्थल की रखवाली करना आदि भागीदारी के बराबर होगा। बेशक, जब किसी अभियुक्त के खिलाफ आरोप यह है कि उसने मौखिक उपदेश से या दृश्य की रक्षा करके अपराध में भाग लिया, तो अदालत को यह तय करने के लिए सबूतों का बहुत सावधानी से मूल्यांकन करना होगा कि क्या उस व्यक्ति ने वास्तव में ऐसा कोई कार्य किया था।

गंगाधर चंद्र बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, (2022) 120 एससी 267 में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा:

"धारा 34 आई.पी.सी. द्वारा चिंतन किया गया सामान्य इरादा पूर्व सामंजस्य का अनुमान लगाता है। इसके लिए मन के मिलन की आवश्यकता होती है। इससे पहले कि एक आदमी को दूसरे के आपराधिक कृत्य के लिए दोषी ठहराया जा सके, इसके लिए एक पूर्व-व्यवस्थित योजना की आवश्यकता होती है, आपराधिक कृत्य सभी अभियुक्तों के सामान्य इरादे को आगे बढ़ाने में किया जाना चाहिए। किसी दिए गए मामले में, योजना अचानक बनाई जा सकती है।

27. इसलिए, अपीलकर्ताओं, कल्लू और सुशील को छेदी लाल की हत्या के लिए परोक्ष रूप से उत्तरदायी ठहराया जा सकता है, यदि यह साबित हो जाता है कि उन्होंने छेदी लाल पर लाठी और डंडा से हमला किया और रज्जन ने अपने और अन्य आरोपी व्यक्तियों के सामान्य आशय के अनुसरण में छेदी लाल पर दरांती से हमला किया। इस प्रकार, अभियोजन पक्ष को यह साबित करना होगा कि अपीलकर्ता, कल्लू और सुशील ने हत्या करने का एक सामान्य इरादा साझा किया था, जिसके अनुसरण में अपीलकर्ता, रज्जन ने छेदी लाल के व्यक्ति के सिर और अन्य हिस्सों पर दरांती से घातक चोट पहुंचाई, जिसके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो गई।

28. (पीडब्लू.3) मृतक छेदी लाल के पुत्र ननकाऊ ने अपने साक्ष्य में गवाही दी है कि दिनांक 07.11.1999 को प्रातः लगभग 11 बजे अभियुक्त-अपीलार्थी रज्जन, कल्लू और सुशील अपनी भूमि में स्थित बांस के वृक्षों (बांसकोट) के झुरमुट को काट रहे थे और जब उनके पिता छेदी लाल ने अपीलकर्ताओं को बांस के पेड़ों के झुरमुट (बांसकोट) को काटने से मना किया तो अभियुक्त-अपीलकर्ता, रज्जन ने उसके पिता पर दरांती (हसिया) और अपीलकर्ताओं से मारपीट की, कल्लू

और सुशील ने (पी.डब्ल्यू.3) नानकाऊ और उसके भाइयों, शिवकांत और दयाकांत पर लाठी और डंडा से हमला किया जिससे उनके पिता छेदी लाल को घातक चोटें आईं, जिसके कारण बाद में उनकी मृत्यु हो गई। उसने स्वीकार किया है कि झगड़े और कहासुनी में आरोपी सुशील को भी चोट लगी थी और उसके शरीर से खून बह रहा था। पी.डब्ल्यू.3 ने गवाही दी है कि घटना के समय, वह अपनी कृषि भूमि में मौजूद था।

29. बचाव पक्ष द्वारा ननकाऊ (पी.डब्ल्यू.3) से विस्तार से जिरह की गई है, लेकिन ऐसा कुछ भी सामने नहीं आता है जो छेदी पर दरांती से रज्जन द्वारा हमले के संबंध में उनके बयान को भ्रमित या ध्वस्त कर दे, जिससे उनकी मौत हो गई। इस प्रकार, P.W.3 का प्रमाण ठोस, सच्चा और विश्वसनीय प्रतीत होता है। पी.डब्ल्यू.3 ने उल्लेख किया है कि अपीलकर्ताओं के हमले के कारण, उसके पिता, छेदी लाल को सिर और पीठ पर चोट लगी। पी.डब्ल्यू.1 और पी.डब्ल्यू.2 ने सुशील और कल्लू द्वारा लाठी और डंडा द्वारा उन पर या उनके पिता छेदी लाल पर हमला करने के संबंध में (पी.डब्ल्यू.3) ननकौ के साक्ष्य का समर्थन नहीं किया है। P.W.1 और P.W.2 के साक्ष्य छेदी लाल की पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट द्वारा समर्थित हैं, जहां केवल दरांती के कारण लगी चोटों का उल्लेख किया गया है और लाठी और डंडा से हुई किसी चोट का उल्लेख नहीं किया गया है। इसलिए छेदी लाल की हत्या में आरोपी कल्लू और सुशील की भागीदारी साबित नहीं होती है। अपीलकर्ता, रज्जन द्वारा छेदी लाल द्वारा प्राप्त दरांती और चोट के कारण जिसकी बाद में मृत्यु हो गई और प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने की तारीख, समय, घटना के स्थान और हमले के तरीके के बारे में ननकौ (पी.डब्ल्यू.3) के मौखिक साक्ष्य द्वारा दस्तावेजी साक्ष्य, तहरीर (प्रदर्श क 1), चिक एफ. आई. आर. (प्रदर्श क 6), अपराध में प्रयुक्त हथियारों (दरांती और लाठी) का फर्द बरामदगी (प्रदर्श क 4) रक्त-रंजित और सादी मिट्टी (प्रदर्श क 3), जांच रिपोर्ट (प्रदर्श क 11), मृतक की पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट (प्रदर्श क 10) और आरोप-पत्र (प्रदर्श क 5) की पुष्टि हुई।

30. अपीलकर्ताओं की ओर से विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि केवल एक अभियोजन गवाह ननकौ (पी.डब्ल्यू.3), जो मृतक छेदी लाल का बेटा है, ने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है। अन्य दो गवाहों, (पीडब्ल्यू 1) शिवकांत और (पीडब्ल्यू 2) दयाकांत ने अभियोजन पक्ष के वाद का समर्थन नहीं किया है। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया है कि अभियोजन पक्ष के इन दो गवाहों को घटना में कोई चोट नहीं आई है। उन्होंने यह भी तर्क दिया है कि अपीलकर्ताओं को एकल गवाह की गवाही के आधार पर दोषी नहीं ठहराया जा सकता है जो मृतक छेदी लाल का रिश्तेदार/बेटा है। किसी तथ्य को साबित करने के लिए आवश्यक गवाहों की संख्या से संबंधित प्रावधान भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 134 के तहत दी गई है जो इस प्रकार है:

<u>134. साक्षियों की संख्या</u>- किसी भी मामले में किसी तथ्य के प्रमाण के लिए गवाहों की कोई विशेष संख्या अपेक्षित नहीं होगी।

31. यह **मकसूदन और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश सरकार, 1983 एससी 1926** में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा आयोजित किया गया है कि न तो गवाहों की संख्या और न ही साक्ष्य की मात्रा महत्वपूर्ण है, यह गुणवत्ता है जो आवश्यक है। गवाह के रूप में पेश होने में आम जनता की

अनिच्छा है, इसलिए इस बात पर जोर नहीं दिया जाना चाहिए कि एक से अधिक गवाह होने चाहिए।

32. **लक्ष्मीबाई (मृत) द्वारा वारिसन बनाम भगवंतबुरा (मृत) द्वारा वारिसन, एआईआर (2013) एससी 1204** के माध्यम से में सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि यह समय-सम्मानित सिद्धांत है कि साक्ष्य को तौला जाना चाहिए और गिना नहीं जाना चाहिए। यह है कि क्या सत्य की अंगूठी के रूप में सबूत, ठोस, विश्वसनीय और भरोसेमंद या अन्यथा है। कानूनी प्रणाली ने गवाहों की बहुलता या बहुलता के स्थान पर प्रत्येक गवाह द्वारा प्रदान किए गए मूल्य पर जोर दिया है। यह गुणवत्ता है और मात्रा नहीं, जो साक्ष्य की पर्याप्तता को निर्धारित करता है जैसा कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 134 द्वारा प्रदान किया गया है।

33. **बृजवासी लाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 1991 एससीसी (सीआरएल) 546** में, सर्वोच्च न्यायालय ने पीडब्ल्यू 1, जो मृतक विश्वनाथ का पुत्र था, उसकी एकमात्र गवाही पर अभियुक्त को दोषी ठहराया, यह पाते हुए कि उसका साक्ष्य पूर्ण रूप से स्वीकार्य था। **चिन्नैया सर्वई बनाम मद्रास राज्य, एआईआर 1957 एससीसी 614** में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि "आपराधिक आरोप साबित करने के लिए गवाहों की बहुलता आवश्यक नहीं है और दोषसिद्धि एक गवाह की एकमात्र गवाही पर भी आधारित हो सकती है बशर्ते कि उस गवाह की गवाही पूरी तरह से स्वीकार्य हो।

34. उपरोक्त परीक्षण को लागू करते हुए, हम, एक ही समय में, मृतक के साथ P.W.3 के संबंध को ध्यान में रखते हुए, सबूतों की सावधानीपूर्वक जांच करते हैं और संतुष्ट होते हैं कि P.W.3 का प्रमाण विश्वसनीय और किसी भी दुर्बलता से मुक्त है। इसलिए, हमारे पास पीडब्ल्यू 3 की गवाही पर कार्रवाई करने से इनकार करने का कोई कारण नहीं है, केवल इस आधार पर कि वह मृतक का बेटा है जब तक कि P.W.3 का साक्ष्य अन्यथा विश्वसनीय और स्वीकार्य है। हमें विचारणीय न्यायालय के निर्णय से सहमत होने में कोई संदेह नहीं है।

35. संबंधित गवाह की एकल गवाही के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के अनुसार, बचाव पक्ष के वकील की ओर से दिए गए तर्क स्वीकार्य नहीं हैं।

36. ननकाऊ (पी.डब्ल्यू.3) ने अपनी जिरह में स्वीकार किया है कि घटना के दौरान उसने अपीलकर्ता सुशील के शरीर पर खून देखा था। अपीलकर्ताओं ने अपने विचारण के दौरान, पीडब्ल्यू 3 ननकौ की जिरह के साथ-साथ सीआरपीसी की धारा 313 के तहत दर्ज अपने बयान में निजी बचाव के अधिकार के तर्क को प्रस्तुत किया था। अपीलकर्ता सुशील ने धारा 313 सीआरपीसी के तहत अपने बयान में कहा है कि उनके बांस के पेड़ों का झुरमुट प्लॉट नंबर 573/574, गांव- अश्वनीपुर माजरा गोईसरा में स्थित था। दिनांक 07.11.2019 को 11 बजे, वह और उसके दो अन्य भाई बांस के पेड़ों के झुरमुट को काट रहे थे। छेदी, शिवकांत, बाबू यादव और लल्लन ने उनके साथ गाली-गलौज की और लाठी-डंडा से मारपीट कर उन्हें घातक चोट पहुंचाई। अपने बचाव में, उन्होंने लाठी और डंडा का इस्तेमाल किया। घटना में उन्हें चोट आई और सरकारी अस्पताल में पुलिस के माध्यम से उनकी चिकित्सा जांच की गई।

37. विवेचक प्रेम कुमार यादव (पी.डब्ल्यू.4) ने अपनी जिरह में स्वीकार किया

है कि घटना के दिन उन्होंने पुलिस कांस्टेबल को सरकारी अस्पताल भेजकर तीनों अपीलकर्ताओं की मेडिकल जांच भी करवाई थी। उन्होंने कहा है कि उन्होंने उस खेत से संबंधित दस्तावेज नहीं देखे थे जिसमें बांस के पेड़ों का झुरमुट उग रहा था। विचारणीय न्यायालय के अभिलेख में, अपीलकर्ताओं ने सूची 92खा/1 के अनुसार दायर दस्तावेज संख्या 92ख/2 वर्ष 1413 वर्ष का खसरा है जो प्लॉट नंबर 574 क्षेत्र 0.888 हेक्टेयर से संबंधित है, जो अपीलकर्ता के पिता संगम लाल के नाम पर है। इस खसरा में बताया गया है कि इमली और आंवले के पेड़ों के अलावा बांस के पेड़ों का झुरमुट स्थित है। अपीलकर्ताओं ने ग्राम अश्वनीपुर माजरा गोईसरा के प्लॉट नंबर 574 क्षेत्र 0.888 हेक्टेयर के संबंध में वर्ष 1410 से 1415 फासली से संबंधित उपरोक्त प्लॉट 92खा/3 की खतौनी भी दायर की है, उपरोक्त प्लॉट राम प्रकाश के पुत्र संगम लाल के नाम पर है। अपीलकर्ताओं ने विचारणीय न्यायालय के दस्तावेज संख्या 92खा/4 सीएच प्रारूप संख्या 26 में भी दायर किया है जो अश्वनीपुर माजरा गोईसरा गांव से संबंधित है। इस दस्तावेज में, यह उल्लेख किया गया है कि अपीलकर्ता के पिता, राम प्रकाश के पुत्र संगम लाल ने प्लॉट नंबर 524/3 का स्वामित्व प्राप्त किया, जिसमें बांस के पेड़ों का झुरमुट स्थित है, इसके लिए मुआवजे के रूप में 240/- रुपये का भुगतान किया। उपरोक्त सूची संख्या 92खा/1 के तहत अपीलकर्ताओं ने दस्तावेज संख्या 92खा/5 से 92खा/7 दाखिल किया था। घटना से संबंधित क्रॉस केस की एफआईआर जो अपराध संख्या 88 ए /1999 अंतर्गत धारा 147, 148, 307, 323, 504 आईपीसी के तहत छेदी लाल मिश्रा, राम प्रताप के पुत्र शिवकांत और दयाकांत और छेदी लाल मिश्रा के पुत्र दयाकांत और दो अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध दर्ज है। इस प्रकार, आरोपी-अपीलकर्ताओं ने मृतक छेदी और उनके दो बेटों, शिवकांत और दयाकांत और दो अन्य व्यक्तियों के खिलाफ घटना से संबंधित क्रॉस-केस दर्ज किया है।

38. आरोपी-अपीलकर्ताओं ने दस्तावेज संख्या 92ख/9 आरोपी रज्जन की मजरूब रिपोर्ट, 92खा/10 सुशील कुमार की मजरुब रिपोर्ट और 92ख/11 कल्लू की मजरूब रिपोर्ट भी दाखिल की थी, जिन्हें क्रमशः 5, 5 और 6 चोटें आई हैं। वादी की ओर से प्रति सूची 95खा, दस्तावेज 95खा/1 और 95खा/2 दाखिल किए गए जो ग्राम अश्वनीपुर माजरा गोईसरा में स्थित प्लाट नंबर 655 क्षेत्र 0.514 हेक्टेयर के खसरा खतौनी हैं, जिसमें बांस का झुरमुट स्थित है, जो वादी की मां राजकली और उसके पांच भाइयों के नाम पर है। इस प्रकार, ऐसा प्रतीत होता है कि बांस के पेड़ों के विवादित झुरमुट को अपीलकर्ताओं और वादी दोनों द्वारा उनके स्वामित्व के कृषि क्षेत्र में स्थित होने का दावा किया गया था। अपीलकर्ताओं द्वारा बांस के पेड़ों के झुरमुट को काटने के दौरान, विवाद और लड़ाई हुई जिसमें छेदी लाल को घातक चोटें आईं और बाद में उनकी मृत्यु हो गई। अपीलकर्ता रज्जन, कल्लू और सुशील को भी चोटें आईं। दोनों पक्षों द्वारा क्रॉस केस दर्ज किया गया था। वादी और उसके बेटों को आपराधिक मामले में बरी कर दिया गया था और अपीलकर्ताओं को विचारणीय न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश द्वारा संबंधित क्रॉस-केस में दोषी ठहराया गया था।

39. उपरोक्त चर्चा से, अपीलकर्ता, रज्जन के निजी बचाव का अधिकार स्थापित किया गया है कि उन्होंने चोट पहुंचाई है, जबकि वे बांस के

पेड़ों के झुरमुट को काटने में बाधित थे जो कथित रूप से उनके स्वामित्व की भूमि में स्थित थे। उन पर वादी, उसके पिता और भाइयों ने हमला किया, जिसमें वे घायल हो गए। उनकी मेडिकल जांच की गई और उन्होंने वादी और उसके पक्ष के व्यक्तियों के विरुद्ध एफआईआर भी दर्ज की। व्यक्तियों और संपत्ति की निजी रक्षा के अधिकार से संबंधित कानून भारतीय दंड संहिता की धारा 96 से 106 में दिया गया है। **दर्शन सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2010) 2 एससीसी 333** में सर्वोच्च न्यायालय ने निजी रक्षा के अधिकार के बारे में सिद्धांतों का सारांश दिया है जो इस प्रकार है:

(i) आत्म-संरक्षण मूल मानवीय प्रवृत्ति है और इसे सभी सभ्य देशों के आपराधिक न्यायशास्त्र द्वारा विधिवत मान्यता प्राप्त है। सभी स्वतंत्र, लोकतांत्रिक और सभ्य देश कुछ उचित सीमाओं के भीतर निजी रक्षा के अधिकार को मान्यता देते हैं।

(ii) निजी रक्षा का अधिकार केवल उसी को उपलब्ध है जिसे आसन्न खतरे को टालने की आवश्यकता का अचानक सामना करना पड़ता है न कि स्व-सृजन का।

(iii) आत्मरक्षा के अधिकार को लागू करने के लिए केवल एक उचित आशंका पर्याप्त है। दूसरे शब्दों में, यह आवश्यक नहीं है कि निजी रक्षा के अधिकार को जन्म देने के लिए अपराध का वास्तविकता के कारित होना चाहिए। यह पर्याप्त है यदि अभियुक्त को यह आशंका हो कि इस तरह के अपराध पर विचार किया गया है और यदि निजी रक्षा के अधिकार का प्रयोग नहीं किया जाता है तो यह होने की संभावना है।

(iv) निजी रक्षा का अधिकार जैसे ही कोई युक्तियुक्त आशंका उत्पन्न होती है, शुरू हो जाता है और यह ऐसी आशंका की अवधि के साथ सह-अंतक होता है।

(v) यह उम्मीद करना अवास्तविक है कि हमले के तहत एक व्यक्ति किसी भी अंकगणितीय सटीकता के साथ कदम से कदम मिलाकर अपने बचाव को संशोधित करेगा।

(vi) निजी रक्षा में अभियुक्त द्वारा प्रयोग किया जाने वाला बल व्यक्ति या संपत्ति की सुरक्षा के लिए पूर्णत अनुपातहीन अथवा आवश्यकता से अधिक नहीं होना चाहिए।

(vii) यह अच्छी तरह से तय है कि भले ही अभियुक्त आत्मरक्षा का तर्क न करता है, यह इस तरह की तर्क पर विचार करने के लिए खुला है यदि यह अभिलेख पर सामग्री से उत्पन्न होता है।

(viii) अभियुक्त को युक्तियुक्त संदेह से परे निजी रक्षा के अधिकार के अस्तित्व को सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है।

(ix) आईपीसी, 1860 निजी रक्षा का अधिकार केवल तभी प्रदान करता है जब वह गैरकानूनी या गलत कार्य अपराध हो।

(x) एक व्यक्ति जो अपने जीवन या अंग को खोने के आसन्न और उचित खतरे में है, आत्मरक्षा के अभ्यास अपने हमलावर पर मृत्यु तक कोई नुकसान भी पहुंचा सकता है या तो जब हमले का प्रयास किया जाता है या सीधे धमकी दी जा रही हो।

40. नानकाऊ (पी.डब्ल्यू.3) ने अपने साक्ष्य में स्वीकार किया है कि मारपीट की घटना खेत से लगभग 50 फीट दूर घटित हुआ जहां बांस के पेड़ों का झुरमुट स्थित था और अपीलकर्ताओं द्वारा काट दिया गया था। P.W.3 के बयान की पुष्टि नक्शा नजरी (प्रदर्श क 2) द्वारा भी की

जाती है जिसे विवेचक द्वारा वादी की निशानदेही पर तैयार किया गया था।

41. साक्ष्य की पूर्वोक्त सराहना से, यह साबित होता है कि अपीलकर्ता, रज्जन ने छेदी लाल (मृतक) को दरांती (हसिया) से हमला करके चोट पहुंचाई, एक व्यक्ति जो निहत्था था और एक बूढ़ा व्यक्ति था, और निजी रक्षा के अपने अधिकार को पार कर गया। इसलिए, उसे छेदी लाल की मृत्यु कारित करने के अपराध से पूरी तरह से मुक्त नहीं किया जाएगा क्योंकि उसने यह साबित कर दिया है कि उसने छेदी लाल को चोट पहुंचाई थी, जिसके परिणामस्वरूप निजी रक्षा के अपने अधिकार का प्रयोग करते हुए उसकी मृत्यु हुई थी। उसके द्वारा किया गया अपराध हत्या नहीं होगा, बल्कि गैर इरादतन मानव वध होगा जो आईपीसी की धारा 304 के तहत दंडनीय है।

42. अब, यह देखा जाना चाहिए कि अपीलकर्ता राजन द्वारा दरांती और अपीलकर्ताओं सुशील और कल्लू द्वारा लाठी और डंडा की चोट से मृतक की हत्या के समान आशय से मृतक की गैर-इरादतन हत्या कृत की, ताकि उन्हें धारा 304 (I) आईपीसी के तहत सामूहिक रूप से दोषी ठहराया जा सके।

43. शिवकांत(पी.डब्ल्यू.1), दयाकांत (पी.डब्ल्यू.2), ननकाऊ (पी.डब्ल्यू.3) और अन्य अभियोजन साक्ष्य के मौखिक साक्ष्य से, यह साबित नहीं होता है कि हमला पूर्व नियोजित था और अपीलकर्ताओं की पूर्व बैठक थी और उन्होंने एकजुट होकर मृतक छेदी लाल पर दरांती, लाठी और डंडा से हमला करके उसकी मौत का कारण बनने का फैसला किया। एक आरोपी-अपीलकर्ता द्वारा दूसरे को मृतक छेदी लाल पर हमला करने और मारने के लिए उकसाने का कोई आरोप नहीं है। अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य से, यह स्पष्ट है कि केवल अपीलकर्ता, रज्जन, ने अचानक झगड़े में पूर्व-ध्यान के बिना मृतक छेदी लाल पर हमला किया। वह अपराध के हथियार अर्थात् दरांती खरीदने के लिए कहीं और नहीं गया था लेकिन वह पास में पड़ा था, जबकि वह बांस पेड़ के झुरमुट को काट रहा था।

44. उपरोक्त मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य से, घटना स्थल पर अपीलकर्ताओं, कल्लू और सुशील की उपस्थिति और छेदी लाल, शिवकांत और दयाकांत पर हमले में उनकी भागीदारी संदिग्ध हो जाती है। इस प्रकार, अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य से, अपराध में अपीलकर्ताओं, कल्लू और सुशील की उपस्थिति और भागीदारी साबित नहीं होती है।

45. इस प्रकार, अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य से, यह साबित नहीं होता है कि अपीलकर्ताओं, सुशील और कल्लू ने मृतक (छेदी लाल) पर हमला किया, लेकिन केवल अपीलकर्ता, रज्जन ने उस पर दरांती से हमला किया। पी.डब्ल्यू.3 के साक्ष्य और पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट से यह साबित होता है कि छेदी की मौत जिन घातक चोटों के कारण हुई, वे उनके सिर और पीठ पर दरांती के कारण हुई थीं। इस प्रकार, उपरोक्त साक्ष्य से, यह साबित होता है कि अपीलकर्ता, राजन ने छेदी लाल पर निजी रक्षा के अधिकार में मौत का कारण बनने के इरादे से या ऐसी शारीरिक चोट पहुंचाने के इरादे से दरांती से हमला किया जिससे मृत्यु होने की संभावना है। यह स्पष्ट है कि केवल अपीलकर्ता, रज्जन ने अचानक झगड़े में पूर्व-ध्यान के बिना मृतक छेदी लाल पर हमला किया। वह दरांती खरीदने के लिए कहीं और नहीं गया था, लेकिन जब वह बांस के पेड़ों (बांसकोट) के झुरमुट को काट रहा था तो

वह पास में पड़ा था। किसी भी आरोपी-अपीलकर्ता द्वारा मृतक पर हमला करने और उसे मारने के लिए उकसाने का कोई आरोप नहीं है।

46. अभियोजन पक्ष अपीलकर्ताओं, रज्जन, सुशील और कल्लू के विरुद्ध धारा 302 आईपीसी सपठित धारा 34 आईपीसी के तहत आरोप साबित करने में विफल रहा है। अभियोजन पक्ष अपीलकर्ता, रज्जन के विरुद्ध आईपीसी की धारा 304 (I) के तहत आरोप को उचित संदेह से परे साबित करने में सफल रहा है और अपीलकर्ताओं, कल्लू और सुशील के खिलाफ धारा 302 आईपीसी या धारा 304 आईपीसी के तहत आरोप साबित करने में विफल रहा है।

47. उपरोक्त के अनुसार, अपीलकर्ताओं, कल्लू और सुशील के लिए अपील की अनुमति दी जाती है। आईपीसी की धारा 302 सपठित धारा 34 के तहत उनकी सजा को निरस्त किया जाता है। अपीलकर्ता जमानत पर हैं। उन्हें आत्मसमर्पण करने की जरूरत नहीं है। उनके जमानत बंध निरस्त कर दिए जाते हैं और जमानतदारों को मुक्त किया जाता है।

48. जहां तक अपीलकर्ता, रज्जन की अपील का संबंध है, इसे आंशिक रूप से अनुमति दी जाती है। आईपीसी की धारा 302 सपठित धारा 34 के तहत उसकी दोषसिद्धि और सजा को आईपीसी की धारा 304 (आई) के तहत सजा में परिवर्तित कर दिया जाता है। उसे 10 वर्ष के कठोर कारावास और 10,000/- रुपए के जुर्माने की सजा सुनाई जाती है और जुर्माना अदा न करने पर छह माह का साधारण कारावास दिया जाता है। अपीलकर्ता, रज्जन जेल में है। वह आरोपित सजा वहां गुजारेगा।

49. इस निर्णय और विचारणीय न्यायालय के अभिलेख की एक प्रति संबंधित सत्र न्यायाधीश को अनुपालन के लिए प्रेषित की जाए।

(2023) 3 ILRA 994

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 23.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह, जे.

अपराधिक पुनरीक्षण संख्या 52 /2023

असगर अली ... पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और उत्तर प्रदेश ... प्रतिवादी

संशोधनवादी के लिए वकील: रामकर शुक्ला

प्रतिवादी के लिए वकील: जी.ए.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-धारा-319-आईपीसी की धारा 498ए, 304बी और डीपी एक्ट की धारा 3/4 के तहत एफआईआर दर्ज की गई-अन्य कथित सह-अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप पत्र दायर किया गया और वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता के संबंध में अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई-विचारणीय न्यायालय ने पुनरीक्षणकर्ता को सीआरपीसी की धारा 319 के तहत तलब किया- न्यायालय को सीआरपीसी की धारा 319 के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग सुस्त और लापरवाह तरीके से नहीं करना चाहिए, लेकिन अगर न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि किसी आरोपी के विरुद्ध प्रथम दृष्टया साक्ष्य से अधिक साक्ष्य उपलब्ध हैं, तो इस तथ्य के संबंध में विचारणीय न्यायालय द्वारा कोई संतुष्टि दर्ज नहीं की गई

है कि अभियोजन पक्ष पुनरीक्षणकर्ता के विरुद्ध प्रथम दृष्टया अधिक या अधिक मजबूत वाद स्थापित करने में सफल रहा और यदि ऐसा साक्ष्य प्रस्तुत किया जाता है, तो पुनरीक्षणकर्ता को दोषी ठहराए जाने की संभावना है।

पुनरीक्षण की अनुमति दी गई, विवादित समन आदेश को निरस्त कर दिया गया। (ई-15)

उद्धृत वाद सूची:

1. हारदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2014) 3 SCC 92
2. ब्रिजेंद्र सिंह बनाम राजस्थान राज्य, (2017) 7 SCC 706

माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश सिंह,

1. पुनरीक्षणकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री रमाकर शुक्ला तथा राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए.-I श्री अनिरुद्ध कुमार सिंह को सुना गया।

2. विपक्षी पक्षकार संख्या 2 को नोटिस देने से छूट दी जाती है।

3. तत्काल पुनरीक्षण के माध्यम से, विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश, कोर्ट संख्या 8, सुल्तानपुर द्वारा सत्र परीक्षण संख्या 1249/2021 में मामला अपराध संख्या 484/2021, धारा 498ए, 304बी आईपीसी और धारा 3/4 डीपी एक्ट, पुलिस स्टेशन गुसाईगंज, जिला सुल्तानपुर के अंतर्गत पारित दिनांक 09.12.2022 को चुनौती दी गई है।

4. पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क यह है कि विपक्षी संख्या 2 द्वारा पुनरीक्षणकर्ता एवं अन्य पारिवारिक सदस्यों के विरुद्ध दिनांक 07.08.2021 को सायं 7:19 बजे प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई गई, जिसमें दिनांक 05.08.2021 को सायं 4:00 बजे की घटना दर्शाई गई है तथा प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराते समय विपक्षी संख्या 2 ने आरोप लगाया है कि दिनांक 05.08.2021 को सायं लगभग 04:00 बजे उसे बम्बई से जाबिर का फोन आया जिसने बताया कि रशीदा (मृतक) बीमार है तथा जब उसने रशीदा के मोबाइल फोन पर कॉल किया तो ससुर ने फोन उठाया तथा कहा कि वह काम पर हैं, घर से बहुत दूर हैं तथा तुरंत फोन काट दिया। इसके बाद, पाँच मिनट बाद, असगर ने मोबाइल फोन पर कॉल किया और बताया कि रशिदा ने फांसी लगा ली है।उन्होंने कहा कि आरोप है कि मृतक रशिदा की शादी घटना की तारीख से दो साल पहले हुई थी और वह छह साल की बच्ची पैदा कर रही थी, लेकिन शादी के बाद पति और परिवार के अन्य सदस्यों ने उसे ताना मारते हुए परेशान करना शुरू कर दिया और इसी वजह से उसने फांसी लगा ली।

5. उन्होंने दलील दी कि यह एक स्वीकृत तथ्य है कि पुनरीक्षणकर्ता कथित घटना के समय घटनास्थल पर नहीं था और उसके बाद जब वह वापस आया तो उसने विपक्षी पक्ष संख्या 2 को घटना के संबंध में सूचित किया और घटना की सत्यता को जाने बिना ही सूचक ने तत्काल प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करा दी और पुनरीक्षणकर्ता को फंसाया गया।इसके बाद उन्होंने कहा कि प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के बाद, पूरी तरह से जांच की गई और अन्य कथित सह-अभियुक्त व्यक्तियों के खिलाफ आरोप-पत्र दायर किया गया और वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता के संबंध में अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई।

6. अपनी दलीलें जोड़ते हुए, वह प्रस्तुत करता है कि जांच अधिकारी को वर्तमान संशोधनवादी के खिलाफ जांच के दौरान कोई सबूत नहीं मिला, जहां तक दहेज मृत्यु के आरोप का संबंध है और धारा 161 के तहत गवाहों के बयानों और अन्य

सबूतों पर विचार करते हुए, अंतिम रिपोर्ट जांच अधिकारी द्वारा प्रस्तुत की गई थी और इस प्रकार विचारण न्यायालय के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के तहत संशोधनवादी को बुलाने का कोई अवसर नहीं था।

7. अपनी दलीलों के दौरान, उन्होंने उक्त आदेश की ओर भी ध्यान आकर्षित किया, जिसमें निष्कर्ष खंड में, विचारण न्यायालय ने सीआरपीसी की धारा 161 के तहत दर्ज गवाहों के बयान और केस डायरी पर ध्यान दिया है।वे प्रस्तुत करते हैं कि विचारण न्यायालय ने आक्षेपित आदेश पारित करने में गलती की है, क्योंकि यह एक व्यवस्थित कानून रहा है कि केवल धारा 161 के तहत बयान के आधार पर या पीडब्ल्यू द्वारा अपने बयानों में उसी की पुनरावृत्ति के आधार पर, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के प्रावधानों के तहत किसी आरोपी को समन करने का कोई आधार नहीं होगा।

8. अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने अन्य संबंधित याचिकाओं के साथ **(2014) 3 एस. सी. सी. 92, मनदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य** में दर्ज मामले की ओर ध्यान आकर्षित किया है और फैसले के पैराग्राफ 105 और 106 का उल्लेख किया है।

9. फैसले के पैराग्राफ 105 और 106 को नीचे अवधारित किया गया हैः -

"105.धारा 319 Cr.P.C के तहत शक्ति एक विवेकाधीन और एक असाधारण शक्ति है।इसका प्रयोग बहुत कम और केवल उन्हीं मामलों में किया जाना चाहिए जहां परिस्थितियों के अनुसार वारंट आवश्यक हो।इसका प्रयोग इसलिए नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि मजिस्ट्रेट या सत्र न्यायाधीश की राय है कि कोई अन्य व्यक्ति भी उस अपराध को करने का दोषी हो सकता है।केवल वहाँ जहाँ न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत साक्ष्य से किसी व्यक्ति के खिलाफ मजबूत और ठोस साक्ष्य होता है कि ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए न कि आकस्मिक और लापरवाह तरीके से।

106. इस प्रकार, हमारा मानना है कि हालांकि न्यायालय के समक्ष पेश किए गए साक्ष्य से केवल एक प्रथमदृष्टया मामला स्थापित किया जाना है, जो आवश्यक रूप से प्रतिपरीक्षा के आधार पर परीक्षण नहीं किया गया है, लेकिन इसके लिए उसकी संलिप्तता की केवल संभावना की तुलना में बहुत अधिक मजबूत सबूत की आवश्यकता है।परीक्षण जिसे लागू किया जाना है वह आरोप तय करते समय प्रयोग किये जाने प्रथमदृष्टया मामला से कही अधिक है लेकिन संतुष्टी की सीमा से कम है यदि साक्ष्य अपर्याप्त है तो यह दोषसिद्धी की तरफ ले जायेगा। ऐसी संतुष्टि के अभाव में, न्यायालय को धारा 319 सीआरपीसी के तहत शक्ति का प्रयोग करने से बचना चाहिए। धारा 319 सीआरपीसी में प्रावधान करने का उद्देश्य यदि 'साक्ष्य से ऐसा प्रतीत होता है कि अभियुक्त न होते हुए भी किसी व्यक्ति ने कोई अपराध किया है' तो इन शब्दों से स्पष्ट है कि "जिसके लिए ऐसे व्यक्ति पर अभियुक्त के साथ मिलकर मुकदमा चलाया जा सकता है।"उपयोग किए गए शब्द ऐसे नहीं हैं जिनके लिए ऐसे व्यक्ति को दोषी ठहराया जा सकता है।इसलिए, धारा 319 Cr.P.C के तहत कार्य करने वाले न्यायालय के लिए अभियुक्त के अपराध के बारे में कोई राय बनाने की कोई गुंजाइश नहीं है।

10. उपरोक्त का उल्लेख करते हुए, उन्होंने प्रस्तुत किया कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि धारा 319 सी. आर. पी. सी. के तहत शक्ति विवेकाधीन और एक

असाधारण शक्ति है और इस प्रकार इसका उपयोग संयम से किया जाना चाहिए और यह भी अभिनिर्धारित किया गया है कि केवल संलिप्तता की संभावना से कहीं अधिक मजबूत साक्ष्य नियम है, जहां निचली विचारण न्यायालय सी. आर. पी. सी. की धारा 319 के तहत शक्ति का प्रयोग करती है।

11. उन्होंने आगे (2017) 7 एस. सी. सी. 706, बृजेंद्र सिंह बनाम राजस्थान राज्य में रिपोर्ट किए गए मामले की ओर ध्यान आकर्षित किया है और फैसले के पैराग्राफ 14 और 15 को संदर्भित किया है।

12. फैसले के पैराग्राफ 14 और 15 को नीचे उद्धृत किया गया हैः.

"14. जब हम उपरोक्त सिद्धांतों को इस मामले के तथ्यों पर लागू करते हैं, तो हमें यह आभास होता है कि ट्रायल कोर्ट ने अपीलकर्ताओं के खिलाफ समन आदेश पारित करने में लापरवाही और लापरवाही बरती है।प्राथमिकी में अपीलार्थियों का नाम था। पुलिस ने जांच पड़ताल की।जाँच के दौरान एकत्र की गई सामग्री के आधार पर, जिसका हमने ऊपर उल्लेख किया है, आई. ओ. ने पाया कि ये अपीलार्थी जयपुर शहर में थे जब घटना 175 किलोमीटर की दूरी पर कनौर में हुई थी। घटना स्थल पर अपीलार्थियों की कथित उपस्थिति के संबंध में प्राथमिकी में दिए गए बयान का समर्थन करने वाले शिकायतकर्ता और अन्य लोगों ने भी धारा 161 Cr.P.C के तहत बयान दिए थे।इसके बावजूद, पुलिस जांच से पता चला कि घटना स्थल पर अपीलकर्ताओं की उपस्थिति के बारे में इन व्यक्तियों के बयान संदिग्ध थे और जांच के दौरान एकत्र किए गए वृत्तचित्र और अन्य सबूतों को देखते हुए विश्वास को प्रेरित नहीं करते थे, जिसमें एक और कहानी को दर्शाया गया था और स्पष्ट रूप से दिखाया गया था कि अपीलकर्ता की एलिबी याचिका सही थी।

15. यह अभिलेख निचली विचारण न्यायालय के समक्ष था।इसके बावजूद, निचली विचारण न्यायालय ने शिकायतकर्ता और कुछ अन्य व्यक्तियों के बयान को उनके तथाकथित मौखिक/मौखिक संस्करण का समर्थन करने के लिए कोई अन्य सामग्री के साथ नहीं लिया।इस प्रकार, मुकदमे के दौरान दर्ज किया गया 'साक्ष्य' उन बयानों से ज्यादा कुछ नहीं था जो मामले की जांच के समय धारा 161 Cr.P.C के तहत पहले से ही दर्ज थे।इसमें कोई संदेह नहीं है कि निचली विचारण न्यायालय अपने समक्ष मुख्य परीक्षा में दर्ज किए गए ऐसे बयानों के आधार पर भी अपनी शक्ति का प्रयोग करने में सक्षम होगी।हालांकि, वर्तमान जैसे मामले में जहां जांच के दौरान आई. ओ. द्वारा बहुत सारे साक्ष्य एकत्र किए गए थे, जिसमें अन्यथा सुझाव दिया गया था, निचली विचारण न्यायालय कम से कम प्रथमदृष्टया राय बनाते समय इस पर गौर करने के लिए कर्तव्यबद्ध थी और यह देखने के लिए कि क्या उनकी (यानी अपीलकर्ताओं) संलिप्तता की केवल संभावना से कहीं अधिक मजबूत सबूत रिकॉर्ड पर आया है।इस प्रकृति की कोई संतुष्टि नहीं है।यदि हम यह मान भी लें कि आदेश पारित करते समय निचली अदालत को इसकी जानकारी नहीं थी (क्योंकि उस समय अपीलकर्ता घटनास्थल पर नहीं थे), तो इससे भी अधिक परेशान करने वाली बात यह है कि जब अपीलकर्ताओं द्वारा दायर पुनरीक्षण याचिका में रिकॉर्ड पर यह सामग्री विशेष रूप से उच्च न्यायालय के संज्ञान में लाई गई थी, तब भी उच्च न्यायालय ने उक्त सामग्री को अनदेखा कर दिया।ट्रायल कोर्ट के आदेश में

निहित चर्चा को पुनः प्रस्तुत करने तथा उससे सहमति व्यक्त करने के अलावा और कुछ नहीं किया गया। इस तरह के आदेश न्यायिक जांच में टिक नहीं सकते।

13. उपरोक्त निर्णय के अनुपात पर भरोसा करते हुए, वह प्रस्तुत करते हैं कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह तय किया गया है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के तहत सम्मन देना जारी करने के लिए केवल मिलीभगत की संभावना पर्याप्त आधार नहीं है, लेकिन मजबूत सबूत होने की आवश्यकता है।उन्होंने दलील दी कि आदेश-पत्र के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि विद्वान ट्रायल कोर्ट ने दिनांक 09.12.2022 को आदेश पारित करते समय इस तथ्य के संबंध में अपनी संतुष्टि दर्ज नहीं की है कि मामला अधिक मजबूत मामले के दायरे में आता है और केवल धारा 161 के तहत दर्ज बयानों और पी.डब्लू. 1 के बयानों पर विचार किया है और ऐसी कोई सामग्री नहीं थी जो यह प्रमाणित कर सके कि प्रथम दृष्टया मामला से अधिक कुछ है।

14. अपने तर्कों को समाप्त करते हुए, उन्होंने प्रस्तुत किया कि विवादित आदेश कानून की दृष्टि में दोषपूर्ण है क्योंकि यह न केवल सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून के विरुद्ध है, बल्कि यह कानून के प्रावधानों के उद्देश्य के भी विरुद्ध है और इसलिए विवादित आदेश को रद्द किया जाना चाहिए।

15. इसके विपरीत, राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने उपरोक्त तर्क का विरोध किया है और प्रस्तुत किया है कि ट्रायल कोर्ट के समक्ष उपलब्ध सामग्री पर विचार करते हुए 09.12.2022 को विस्तृत आदेश पारित किया गया है।उन्होंने कहा कि आदेश में पाया गया निष्कर्ष स्पष्ट है कि ट्रायल कोर्ट ने धारा 161 सीआरपीसी के तहत दर्ज गवाहों के बयान के साथ-साथ पीडब्लू 1 के बयान का अध्ययन किया है और न्यायिक दिमाग के आवेदन के बाद, उन्होंने आदेश पारित किया है।वह प्रस्तुत करता है कि पी. डब्ल्यू. 1 का बयान मुकदमे के दौरान दर्ज किया गया है, जिसमें विचारण न्यायालय ने पाया कि इससे संशोधनवादी को दोषी ठहराया जाएगा क्योंकि अधिक मजबूत मामला स्थापित किया गया था। पीडब्लू1 के बयान पर विद्वत विचारण न्यायालय द्वारा आक्षेपित आदेश में चर्चा की गई है।इसके अलावा तर्क दिया गया कि आदेश में हर चीज पर अच्छी तरह से चर्चा की गई है और इसलिए आक्षेपित आदेश किसी भी अवैधता या दुर्बलता पर हमला नहीं करता है, इसलिए पुनरीक्षण को खारिज किया जा सकता है।

16. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद और अभिलेख पर रखी गई सामग्री के अवलोकन के बाद, यह सामने आता है कि अंतिम रिपोर्ट वर्तमान संशोधनवादी के मामले में जांच अधिकारी द्वारा प्रस्तुत की गई थी और अन्य सह-अभियुक्त व्यक्तियों के खिलाफ आरोप-पत्र दायर किया गया था।विद्वान ट्रायल कोर्ट ने दिनांक 09.12.2022 को समन आदेश पारित करते समय धारा 161 के तहत गवाहों के बयान और केस डायरी सहित ट्रायल कोर्ट के समक्ष पेश पीडब्लू 1 के बयान पर विचार किया है, जो दर्शाता है कि वे आरोपित आदेश का आधार हैं।

17. इसके अलावा सी. आर. पी. सी. की धारा 319 में न्यायालय को पर्याप्त न्यायाधीश करने के लिए प्रदान की गई एक असाधारण शक्ति की परिकल्पना की गई है और इस प्रकार इसका सावधानीपूर्वक प्रयोग किया जाना चाहिए क्योंकि जांच एजेंसी को जांच के दौरान ऐसे कथित

आरोपी व्यक्ति के खिलाफ कोई सबूत नहीं मिला है।सी. आर. पी. सी. की धारा 319 का उद्देश्य किसी दोषी व्यक्ति के मुकदमे से भागने से बचना है और इसलिए आगे के साक्ष्य की खोज से प्रथमदृष्टया मामले से अधिक खुलासा होना चाहिए।

18. स्थापित कानून यह है कि न्यायालयों को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग लापरवाह और बेपरवाह तरीके से नहीं करना चाहिए, लेकिन यदि न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि किसी अभियुक्त के खिलाफ प्रथमदृष्टया से अधिक साक्ष्य हैं, तो निश्चित रूप से इस शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है।

19. हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य (उपरोक्त) के मामले में यह स्पष्ट रूप से माना गया है कि सीआरपीसी की धारा 319 एक विवेकाधीन और असाधारण शक्ति है जिसका प्रयोग तब किया जाना चाहिए जब किसी आरोपी व्यक्ति के खिलाफ मजबूत और ठोस सबूत मौजूद हों और इसलिए इसका प्रयोग संयम से किया जाना चाहिए।शीर्ष न्यायालय ने उपरोक्त प्रावधान की बहुत सावधानीपूर्वक व्याख्या की है और कहा है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के तहत शक्ति का प्रयोग करने के लिए, केवल मिलीभगत की संभावना की तुलना में बहुत अधिक मजबूत साक्ष्य की आवश्यकता है।

20. सर्वोच्च न्यायालय ने बाद में, बृजेन्द्र सिंह एवं अन्य (उपरोक्त) के मामले में भी हरदीप सिंह के मामले में प्रतिपादित कानून पर चर्चा की है और माना है कि धारा 319 सीआरपीसी के तहत शक्ति का प्रयोग विचारण न्यायालय द्वारा विचारण के दौरान किसी भी स्तर पर किया जा सकता है और किसी भी व्यक्ति को विचारण का सामना करने के लिए अभियुक्त के रूप में बुलाया जा सकता है।सर्वोच्च न्यायालय ने बहुत स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया है कि 'साक्ष्य' शब्द का अर्थ है मुकदमे के दौरान न्यायालय के समक्ष लाई गई सामग्री।जाँच अधिकारी द्वारा जाँच के स्तर पर एकत्र की गई सामग्री/साक्ष्य का उपयोग केवल इसकी पुष्टि के लिए किया जा सकता है।

21. जब यह न्यायालय अपने तथ्यों में और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रस्तावित कानून में तत्काल मामले की जांच करता है, तो यह पता चलता है कि विद्वत विचारण न्यायालय ने आक्षेपित आदेश पारित करते समय सीआरपीसी की धारा 161 के तहत शिकायतकर्ता के बयान पर विचार किया है और केस डायरी का भी अध्ययन किया है।केस डायरी पर बहुत अधिक निर्भरता रखी गई है, हालांकि संशोधनवादी का मामला यह है कि वह मृतक का ससुर है और गवाहों का बयान जो धारा 161 सीआरपीसी और अन्य सामग्रियों के तहत दर्ज किया गया था, संशोधनवादी के खिलाफ आरोप-पत्र दायर करने के लिए अपर्याप्त है और इसलिए जांच अधिकारी ने वर्तमान संशोधनवादी को छोड़कर सभी आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ आरोप-पत्र दायर किया है।

22. यह तय कानून है कि विचारण न्यायालय ऐसे व्यक्तियों को प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर अभियुक्त के रूप में जोड़ने के लिए कदम उठा सकती है, न कि आरोप-पत्र या केस डायरी में उपलब्ध सामग्री के आधार पर, क्योंकि ऐसी सामग्री 'साक्ष्य' का गठन नहीं करती है।इस मामले में, प्रथम दृष्टया यह स्पष्ट है कि विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय ने न केवल केस डायरी का अध्ययन किया है, बल्कि प्रथम सूचना रिपोर्ट, धारा 161 सीआरपीसी के तहत दर्ज गवाहों के

बयान और विचारण न्यायालय के समक्ष पीडब्लू 1 के बयान पर भी भरोसा किया है, इसलिए विवादित समन आदेश पारित करते समय विचारण न्यायालय के समक्ष उपरोक्त के अलावा कोई अन्य महत्वपूर्ण साक्ष्य नहीं था।

23. इसके अलावा न्यायालय द्वारा इस तथ्य के संबंध में कोई संतुष्टि दर्ज नहीं की गई है कि अभियोजन पक्ष यह स्थापित करने में सफल रहा है कि पुनरीक्षणकर्ता के खिलाफ प्रथमदृष्टया या उससे अधिक मजबूत मामला है और यदि ऐसा साक्ष्य प्रस्तुत किया जाता है, तो संशोधनवादी को दोषी ठहराए जाने की संभावना है।इसके अलावा, विद्वत विचारण न्यायालय ने भी सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून को छोड़ दिया है।

24. परिणामस्वरूप, पुनरीक्षण की **अनुमति** दी जाती है और 09.12.2022 दिनांकित आक्षेपित समन आदेश को इसके द्वारा **अपास्त** किया जाता है।

25. मामले को संबंधित ट्रायल कोर्ट को भेजा जा रहा है ताकि वह हरदीप सिंह (उपरोक्त) और बृजेन्द्र सिंह (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णयों के अनुपात और उसके समक्ष उपलब्ध अन्य सामग्रियों पर विचार करने के बाद, आदेश की प्रमाणित प्रति की तारीख से 45 दिनों की अवधि के भीतर एक नया आदेश पारित करे।

26. कार्यालय को यह भी निर्देश दिया जाता है कि वह इस आदेश को विचारण न्यायालय को तुरंत सूचित करे।

(2023) 3 ILRA 999

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 16.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुरेश कुमार गुप्ता

क्रिमिनल रिवीजन सं. 232 वर्ष 2023

मुजतबा अली खान ... पुनरीक्षण याची

बनाम

न्यायिक मजिस्ट्रेट-III, लखनऊ और अन्य ...प्रतिपक्षी

पुनरीक्षण याची की ओर से अधिवक्ता: गौस बेग

प्रतिपक्षी की ओर से अधिवक्ता: जी.ए.

अपराधिक पुनरीक्षण संख्या 232 / 2023

(ए) अपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 397 और धारा 401 - पुनरीक्षण, धार 451 - कुछ वाद में विचरण के दौरान संपत्ति की जब्ती और निस्तारण का आदेश, भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 279, 337, 427 - जब्त की गई गाड़ी को पुलिस स्टेशन में लंबे समय तक रखना निरर्थक है - मजिस्ट्रेट को गाड़ी को तब छोड़ना चाहिए जब वह पर्याप्त गारंटी/सुरक्षा ले ले - विचरण के दौरान गाड़ी की प्रस्तुति आवश्यक नहीं है - गाड़ी की फोटो साक्ष्य के लिए पर्याप्त होगी। (पैरा - 10,16)

पुनरीक्षक गाड़ी का पंजीकृत मालिक है - एक दुर्घटना में सम्मिलित - अनजान व्यक्ति के विरुद्ध FIR दर्ज कराई - गाड़ी जब्त की गई और रखी गई - पुनिरीक्षक की गाड़ी लगभग 3 साल और 6 महीने तक पुलिस की अभिरक्षा में रही - पुनरीक्षक ने गाड़ी को मुक्त कराने के लिए आवेदन किया - मजिस्ट्रेट ने आवेदन निरस्त कर दिया - आधार - आरोपी आत्मसमर्पण करने में

विफल रहा और चालक का लाइसेंस सत्यापित नहीं किया गया। (पैरा - 3 से 10)

निर्णय:- पुनरीक्षक को जब्त की गई गाड़ी के कब्जे का हक है, जो दुर्घटना वाद से संबंधित है। मजिस्ट्रेट के पास ड्राइवर के लाइसेंस और प्रदूषण प्रमाणपत्र की वैधता की जांच करने का अधिकार नहीं है, क्योंकि वह पुलिस अधिकारी या परिवहन विभाग का अधिकारी नहीं है। (पैरा - 15)

अपराधिक पुनिरीक्षक स्वीकृत। (ई-7)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. सुंदरभाई अंबालाल देसाई बनाम गुजरात राज्य, AIR 2003, S.C., पृष्ठ संख्या 638
2. जनरल इंश्योरेंस काउंसिल बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, 2010 (6) SCC

<u>माननीय न्यायमूर्ति सुरेश कुमार गुप्ता</u>

पुनरीक्षण याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री ग़ौस बेग, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना एवं पत्रावली का अवलोकन किया ।

पुनरीक्षण याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि उन्होंने अनजाने में न्यायिक दंडाधिकारी को विरोधी पक्षकार की श्रेणी में शामिल कर लिया और पुनरीक्षण याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि वह विरोधी पक्षकार संख्या 1 न्यायिक दंडाधिकारी-III को हटाना चाहते हैं। पुनरीक्षण याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का यह कथन स्वीकार किया जाता है तथा उक्त को हटाने का निर्देश दिया जाता है।

यह आपराधिक पुनरीक्षण याचिका दंड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 401 के साथ पठित धारा 397 के अंतर्गत न्यायिक दंडाधिकारी-तृतीय, लखनऊ द्वारा पारित दिनांक 21.1.2023 के प्रश्नगत आदेश के विरुद्ध दाखिल की गयी है, जिसमे दिनांक 24.1.2020 के प्रार्थना पत्र को बिना कोई ठोस कारण बताए विद्वान विचारण न्यायालय ने खारिज कर दिया था। दिनांक 24.1.2020 के प्रश्नगत आदेश से व्यथित होकर पुनरीक्षण याचिकाकर्ता द्वारा पंजीकरण संख्या यूपी-32/सीएन5543 (बस) वाहन को मुक्त करने के सम्बन्ध में यह पुनरीक्षण याचिका प्रस्तुत की गयी।

पुनरीक्षण याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि पुनरीक्षण याचिकाकर्ता वाहन क्रमांक यूपी-32/सीएन5543 (बस) का पंजीकृत स्वामी है। दिनांक 18.10.2019 को उपरोक्त वाहन थाना मडियांव, लखनऊ के अंतर्गत पुरनिया चौराहे के पास एक मोटर साइकिल जिसका पंजीकरण संख्या यूपी 32-केआर-1795 था, के साथ दुर्घटनाग्रस्त हो गया। उक्त घटना में किसी को चोट नहीं आयी है। यद्यपि उक्त मोटर साइकिल आंशिक रूप से क्षतिग्रस्त हो गयी। इस संबंध में, श्री कृष्णकांत कुशवाहा ने दिनांक 18.10.2019 को अज्ञात व्यक्ति के विरुद्ध अपराध संख्या 947/2019 में भारतीय दंड संहिता की धाराओं 279, 337, 427 के अंतर्गत थाना मडियांव, लखनऊ में प्र०सू०रि० दर्ज कराई जो अनुलग्नक संख्या 4 में संलग्न है। पुनरीक्षण याचिकाकर्ता के वाहन को जब्त कर लिया गया तथा थाना मडियांव में दिनांक 18.10.2019 को निरुद्ध में ले लिया गया।

पुनरीक्षण याचिकाकर्ता ने वाहन की अवमुक्त हेतु, एसीजेएम, चतुर्थ, लखनऊ के समक्ष दिनांक 27.1.2020 को आवेदन प्रस्तुत किया, किंतु संबंधित दंडाधिकारी ने दिनांक 5.3.2020 के आदेश के अंतर्गत अवैध एवं मनमाने ढंग से सतही आधार पर उक्त अवमुक्ति प्रार्थनापत्र को

यह कहते हुए खारिज कर दिया कि इस अपराध का आरोपी न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण करने में विफल रहा तथा चालक का अनुज्ञापत्र विधिवत सत्यापित नहीं किया गया है।

विद्वान दंडाधिकारी द्वारा पारित आदेश दिनांक 5.3.2020 से व्यथित होकर पुनरीक्षण याचिकाकर्ता ने 17.8.2020 को पुनरीक्षण याचिका संख्या 204/2020 दाखिल की। विद्वान अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश, लखनऊ ने उक्त पुनरीक्षण याचिका को स्वीकार किया और दिनांक 5.3.2020 के आदेश को रद्द कर दिया तथा अवमुक्ति प्रार्थनापत्र पर विचार करने के निर्देश के साथ मामले को विद्वान विचारण न्यायालय के वापस भेज दिया। पक्षों को सुनने के बाद पुनरीक्षण न्यायालय ने सुंदरभाई अंबालाल देसाई बनाम गुजरात राज्य, एआईआर 2003, सर्वोच्च न्यायालय, पृष्ठ संख्या 638 के मामले में माननीय शीर्ष न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के आलोक में दिनांक 15.12.2021 को आदेश पारित किया जो परिशिष्ट संख्या 8 में संलग्न है।

जिसका प्रासंगिक भाग यहां पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है:

"हमारे विचार में, चाहे जो भी स्थिति हो, जब्त किए गए वाहन को लंबे समय तक थानों में रखने का कोई फायदा नहीं है, इसलिए यह दंडाधिकारी पर निर्भर है कि वह उचित अनुबंध तथा प्रत्याभूति के साथ-साथ सुरक्षा वापसी लेकर किसी भी समय बिंदु पर उचित आदेश पारित करे। वाहन की वापसी के आवेदन की सुनवाई के लंबित रहने के दौरान ऐसा किया जा सकता है।

किसी भी स्थिति में, ऐसे वाहनों का कब्ज़ा सौंपने से पूर्व, उक्त वाहन की उचित तस्वीरें ली जा सकती हैं एवं विस्तृत पंचनामा तैयार किया जाना चाहिए।

हालाँकि उन शक्तियों का प्रयोग संबंधित दंडाधिकारी द्वारा किया जाना है। हम आशा और विश्वास करते हैं कि संबंधित दंडाधिकारी यह सुनिश्चित करने के लिए तत्काल कार्रवाई करेगा कि दं०प्र०सं० की धारा 451 के अंतर्गत शक्तियों का उचित एवं तुरंत प्रयोग किया जाए और वस्तुओं को पुलिस स्टेशन में लंबे समय तक नहीं रखा जाए, जो किसी भी स्थिति में 15 दिन से लेकर 1माह से अधिक न हो।"

विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 15.12.2021 के अनुसरण में, पुनरीक्षण याचिकाकर्ता ने न्यायिक दंडाधिकारी-III की न्यायालय का दरवाजा खटखटाया और विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा दिए गए निर्देश के आलोक में फिर से आवेदन प्रस्तुत किया। किंतु विद्वान दंडाधिकारी ने सुंदरभाई अंबालाल देसाई बनाम गुजरात राज्य (उपरोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून के आधार पर पुनरीक्षण याचिकाकर्ता के अवमुक्ति प्रार्थनापत्र पर विचार करने के लिए विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा दिए गए निर्देश पर विचार किए बिना दिनांक 21.1.2003 को अवमुक्ति प्रार्थनापत्र खारिज कर दिया।

विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी, तृतीय, लखनऊ द्वारा पारित आदेश दिनांक 21.1.2023 इस प्रकार है:

"<u>न्यायालय न्यायिक मजिस्ट्रेट तृतीय, लखनऊ।</u>

मुजतबा अली खा

बनाम

सरकार

मु० अ० सं० 947/2019

धारा-279, 337, 427 आई०पी०सी०

थाना-मड़ियांव, जनपद लखनऊ

दिनांक-21.01.23

प्रार्थना पत्र वास्ते रिलीज किये जाने वाहन सं०-यू०पी०-32 -सी0एन0- 5543, प्रार्थी मुजतबा अली खाँ की ओर से प्रस्तुत करते हुए कथन किया गया है कि वह उपरोक्त वाहन की पंजीकृत स्वामी है। उपरोक्त वाहन मु0अ0स0 947/19 में लिखित रूप से दर्ज है। अतः उक्त वाहन को उसके पक्ष में अवमुक्त किये जाने की कृपा की गई है।

उपरोक्त प्रार्थना पत्र पर प्रार्थी के विद्वान अधिवक्ता एवं विद्वान अभियोजन अधिकारी को सुना एवं अभियोजन आख्या एवं थाने से प्राप्त आख्या का अवलोकन किया।

सहायक अभियोजन अधिकारी की आख्या के अनुसार डी०एल० व पल्यूशन का सत्यापन होना शेष है। आवेदक का अवमुक्त प्रार्थना पत्र स्वीकार किये जाने योग्य नही है।

थाने से प्राप्त आख्यानुसार वाहन प्राईवेट बस सं०यू०पी०-32- सी0 एन0 -5543. मु0अ0सं0 947/2019 धारा 279, 337, 427 आई० पी० सी० थाना मड़ियांव के अभियोग से संबंधित है। उक्त वाहन थाने के मालखाने में दाखिल है.

अतः मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुये आवेदक का अवमुक्त प्रार्थना पत्र स्वीकार किये जाने योग्य नहीं है।

आदेश

तदनुसार आवेदक/ प्रार्थी मुजतबा अली खाँ का प्रार्थना पत्र वास्ते अवमुक्त किये जाने वाहन प्राईवेट बस सं०यू०पी०-32- सी0 एन0-5543 निरस्त किया जाता है।"

इस प्रकार, पुनरीक्षण याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कथन किया कि यह देश का स्थापित कानून है कि जब्त किए गए वाहन को लंबे समय तक पुलिस स्टेशन में रखने का कोई फायदा नहीं है तथा दंडाधिकारी को पर्याप्त प्रत्याभूति/ ज़मानत लेने के पश्चात उपरोक्त वाहन को रिहा करने का निर्देश दिया गया था। यहां तक कि, उस विद्वान विचारण न्यायालय ने धारा 451 दं०प्र०सं० में निहित प्रावधानों पर विचार नहीं किया तथा दिनांक 21.1.2023 के प्रश्नगत आदेश के कारण पुनरीक्षण याचिकाकर्ता का वाहन लगभग 3 वर्ष एवं 6 माह तक अनावश्यक रूप से पुलिस हिरासत में रखा गया। इस प्रकार पुनरीक्षण याचिकाकर्ता को अपूर्णनीय क्षति हुई तथा उसने प्रार्थना की कि उसके पुनरीक्षण याचिका को स्वीकार किया जाए। विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने पुरजोर विरोध किया एवं कहा कि यह संपत्ति का मामला है।

मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता को सुना है एवं पत्रावली का अवलोकन किया है।

" दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 451 इस प्रकार है:

15. कुछ मामलों में विचारण लंबित रहने तक संपत्ति की अभिरक्षा एवं व्ययन हेतु आदेश –

जब कोई संपत्ति, किसी दण्ड न्यायालय के समक्ष किसी जांच अथवा विचारण के दौरान प्रस्तुत की जाती है तब वह न्यायालय उस जांच अथवा विचारण के समाप्त होने तक ऐसी संपत्ति की उचित अभिरक्षा हेतु ऐसा आदेश, जैसा वह आवश्यक समझे, कर सकता है एवं यदि वह संपत्ति शीघ्रतया और प्रकृत्या क्षयशील है अथवा यदि ऐसा करना अन्यथा समीचीन है तो वह न्यायालय, ऐसा साक्ष्य अभिलिखित करने के पश्चात् जैसा वह आवश्यक समझे, उसके विक्रय अथवा उसका अन्यथा व्ययन किए जाने हेतु

*आदेश कर सकता है। **स्पष्टीकरण** – इस धारा के प्रयोजन के लिए "**संपत्ति**" के अन्तर्गत -*

(क) किसी भी किस्म की संपत्ति अथवा दस्तावेज जो न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की जाती है या जो उसकी अभिरक्षा में है,

(ख) कोई भी संपत्ति जिसके बारे में कोई अपराध किया गया प्रतीत होता है अथवा जो किसी अपराध के करने में प्रयुक्त की गई प्रतीत होती है।"

विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी के दिनांक 21.1.2023 के आदेश का अवलोकन करने पर, विद्वान दंडाधिकारी ने बिना कोई कारण बताए बहुत ही सरसरी तौर पर अवमुक्ति प्रार्थना पत्र को खारिज कर दिया। दिनांक 15.12.2021 के आदेश के अंतर्गत पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा जारी निर्देश का पालन करना दंडाधिकारी का परम कर्तव्य था, किंतु दंडाधिकारी पुनरीक्षण न्यायालय के आदेश का पालन करने में विफल रहे। विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय ने अपने निष्कर्ष दिनांक 15.12.2021 में विद्वान विचारण न्यायालय को स्पष्ट रूप से निर्देश दिया कि इस मामले में चालक के अनुज्ञापत्र के सत्यापन की आवश्यकता नहीं है तथा पुनरीक्षण याचिकाकर्ता पीड़ित को पर्याप्त मुआवजा देने हेतु सहमत है और स्पष्ट रूप से संकेत दिया कि समय बीतने के कारण जब्त वाहन खराब हो गया था।

यह तथ्य निर्विवाद है कि विचारण न्यायालय के समक्ष आरोप पत्र पहले ही प्रस्तुत किया जा चुका है, इसलिए, इन परिस्थितियों में, विद्वान विचारण न्यायालय ने न्यायिक विवेक का उपयोग किए बिना अवमुक्ति प्रार्थनापत्र को गलत तरीके से खारिज कर दिया। यहां तक कि विद्वान विचारण न्यायालय ने पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा जारी निर्देश का पालन करने की भी जहमत नहीं उठाई तथा विद्वान विचारण न्यायालय ने न तो दं०प्र०सं० की धारा 451 को पढ़ा और न ही सुंदरभाई अंबालाल देसाई (उपरोक्त) मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के आदेश का पालन किया।

यह स्पष्ट है कि पुनरीक्षण याचिकाकर्ता उपरोक्त वाहन के कब्जे का हकदार है। जब्त किया गया यह वाहन दुर्घटना मामले से संबंधित है एवं मात्र प्रदूषण प्रमाण पत्र अथवा चालक के अनुज्ञापत्र के सत्यापन के आधार पर वाहन को अवमुक्त करने से इनकार नहीं किया जा सकता है। विद्वान दंडाधिकारी के पास चालक के अनुज्ञापत्र और प्रदूषण प्रमाण पत्र की वैधता के बारे में पूछताछ करने की कोई शक्ति नहीं है क्योंकि दंडाधिकारी कोई पुलिस अधिकारी अथवा परिवहन विभाग का अधिकारी नहीं है।

इस मामले में यह भी वांछनीय है कि वाहन का प्रस्तुतीकरण अनिवार्य नहीं है। **जनरल इंश्योरेंस काउंसिल बनाम स्टेट ऑफ एपी 2010 (6) एससीसी** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारित किया है कि परीक्षण के दौरान वाहन का प्रस्तुतीकरण आवश्यक नहीं है और वाहन की तस्वीर साक्ष्य साबित करने के लिए पर्याप्त होगी और विद्वान सर्वोच्च न्यायालय ने वाहन को तत्काल उसी क्षण रिहा करने का निर्देश दिया।

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का उद्देश्य आदेश की शुद्धता अथवा औचित्य की जांच करना है। यह इंगित किया गया है कि विद्वान दंडाधिकारी द्वारा पारित आदेश न्यायिक विवेक के उपयोग किए बिना और प्रासंगिक प्रावधानों के साथ-साथ सर्वोच्च न्यायालय के कानून को पढ़े बिना नहीं कहा जा सकता। विद्वान दंडाधिकारी द्वारा पारित आदेश गूढ़ है एवं यह प्रथा अत्यधिक

निंदनीय है। विद्वान दंडाधिकारी का आचरण न्यायिक मर्यादा के विरुद्ध है एवं यह अवमानना भी है।

विद्वान दंडाधिकारी को चेतावनी दी जाती है कि भविष्य में विधि के अनुसार आदेश पारित करें। परिणामस्वरूप, पुनरीक्षण याचिका स्वीकार की जाती है।

अतः उपरोक्त चर्चा में मैं न्यायिक दंडाधिकारी-तृतीय द्वारा पारित प्रश्नगत आदेश दिनांक 21.1.2023 को रद्द करता हूं तथा संबंधित न्यायालय को उचित जमानत लेने के पश्चात उपरोक्त वाहन को पुनरीक्षण याचिकाकर्ता के पक्ष में तुरंत अवमुक्त करने का निर्देश दिया जाता है।

इस न्यायालय के वरिष्ठ निबंधक को निर्देश दिया जाता है कि वे इस न्यायालय के आदेश को जिला न्यायाधीश लखनऊ के माध्यम से विद्वान न्यायिक दंडाधिकारी, तृतीय, लखनऊ को सूचित करें। जिला न्यायाधीश, लखनऊ को संबंधित अधिकारी के विरुद्ध निगरानी रखने का भी निर्देश दिया जाता है।

तदनुसार, इस आपराधिक पुनरीक्षण याचिका का **निस्तारण** किया जाता है।

(2023) 3 ILRA 1003

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 17.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुरेश कुमार गुप्ता

क्रिमिनल रिवीजन सं. 242 वर्ष 2023

दिलशाद अहमद ... पुनरीक्षण याची

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिपक्षी

पुनरीक्षण याची की ओर से अधिवक्ता: हरि शंकर तिवारी

प्रतिपक्षी की ओर से अधिवक्ता: जी.ए.

अपराधिक पुनरीक्षण संख्या 242 / 2023

(ए) आपराधिक कानून - जुवेनाइल जस्टिस (देखभाल और बच्चों की सुरक्षा) अधिनियम, 2015 - धारा 102 - पुनरीक्षण, धारा 9 - मजिस्ट्रेट द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया जिसे इस अधिनियम के तहत अधिकार नहीं दिया गया है, धारा 94 - उम्र का अनुमान और निर्धारण, भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 354(B) - महिला के कपड़े उतारने के आशय से हमला या आपराधिक बल का प्रयोग, बच्चों को यौन अपराधों से संरक्षण अधिनियम, 2012 - धारा 17/18 - किशोरता किसी भी चरण में दावा की जा सकती है, यहां तक कि अपील की प्रक्रिया के दौरान भी। (पैरा - 5)

पुनरीक्षक ने विचारणीय न्यायालय के समक्ष एक आवेदन दिया - अपनी किशोरता घोषित करने के लिए - विचारणीय न्यायालय ने पंचायत द्वारा जारी पुनरीक्षण का जन्म प्रमाणपत्र बिना किसी उचित आदेश के, साक्ष्य पर विचार किए बिना, संक्षिप्त तरीके से निरस्त कर दिया - अधिनियम 2015 द्वारा निर्धारित प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया। (पैरा - 3,5)

निर्णय:- विचारणीय न्यायालय को निर्देश दिया गया कि पुनरीक्षक की किशोरता का दावा करने के लिए आवेदन को एक माह के भीतर अधिनियम 2015 की धाराओं 9 और 94 के अनुसार निस्तारित करे। विचारणीय न्यायालय द्वारा पारित आपेक्षित आदेश को निरस्त किया गया। (पैरा -7)

आपराधिक पुनरीक्षण स्वीकृत। (ई-7)

<u>माननीय न्यायमूर्ति सुरेश कुमार गुप्ता</u>

पुनरीक्षणकर्ता श्री विजय प्रकाश द्विवेदी के विद्वान अधिवक्ता, राज्य हेतु विद्वान शासकीय अधिवक्ता को सुना और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का परिशीलन किया एवं अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का परिशीलन किया। पुनरीक्षणकर्ता श्री विजय प्रकाश द्विवेदी के विद्वान अधिवक्ता एवं राज्य हेतु अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का परिशीलन किया।

वर्तमान आपराधिक पुनरीक्षण किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2015 की धारा 102 के अंतर्गत सत्र परीक्षण संख्या 537/ 2018, जो भारतीय दंड संहिता की धारा 354 (बी) और लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 की धारा 17/18 के अंतर्गत अपराध संख्या 423/ 2017, पुलिस स्टेशन-लंभुआ, जिला-सुल्तानपुर से उत्पन्न हुआ एवं जिसमें विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (POCSO अधिनियम), सुल्तानपुर द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 28.2.2023, जिसके द्वारा पुनरीक्षणकर्ता को किशोर घोषित करने का प्रार्थनापत्र अस्वीकृत कर दिया गया है, के विरुद्ध दायर किया गया है।

पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि पुनरीक्षणकर्ता ने किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2015 (संक्षेप में "अधिनियम, 2015") की धारा 9 के तहत विचारण न्यायालय के समक्ष अपनी किशोरता घोषित करने के लिए एक प्रार्थनापत्र प्रस्तुत किया था। विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष अभिलिखित किया कि पंचायत द्वारा जारी परिवार रजिस्टर को अधिनियम, 2015 की धारा 94 के प्रावधान के अंतर्गत आयु के प्रमाण के रूप में स्वीकार नहीं किया जाता है, जो कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत के प्रतिकूल है, किन्तु दिनांक 28.2.2023 को अधिनियम, 2015 की धारा 9 और 94 के अंतर्गत निर्धारित प्रक्रिया का पालन किए बिना एवं पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्यों पर विचार किये बिना ही विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पुनरीक्षणकर्ता के प्रार्थनापत्र को खारिज कर दिया गया था। अधिनियम, 2015 की उक्त धारा 9 तथा धारा 94 निम्नवत है : -

9. ऐसे मजिस्ट्रेट द्वारा अनुसरित की जाने वाली प्रक्रिया जिसे इस अधिनियम के अधीन सशक्त नहीं किया गया है *- (1) जब किसी मजिस्ट्रेट की जो इस अधिनियम के अधीन बोर्ड की शक्तियों का प्रयोग करने के लिए सशक्त नहीं है, यह राय है कि वह व्यक्ति, जिसके बारे में यह अभिकथन किया गया है कि उसने अपराध किया है, और उसके समक्ष लाया गया है, कोई बालक है तो वह ऐसी राय को अविलंब अभिलेखबद्ध करेगा और उस बालक को तत्काल ऐसी कार्यवाही के अभिलेख के साथ कार्यवाहियों पर अधिकारिता रखने वाले बोर्ड को भेजेगा।*

(2) यदि वह व्यक्ति, जिसके बारे में यह अभिकथन किया गया है कि उसने अपराध किया है, बोर्ड से भिन्न किसी न्यायालय के समक्ष यह दावा करता है कि वह व्यक्ति बालक है या अपराध के किए जाने की तारीख को बालक था, या यदि न्यायालय की स्वयं यह राय है कि वह व्यक्ति अपराध के किए जाने की तारीख को बालक था, तो उक्त न्यायालय उस व्यक्ति की

आयु की अवधरण करने के लिए ऐसी जांच करेगा, ऐसा साक्ष्य लेगा जो आवश्यक हो (किन्तु शपथपत्र नहीं) और उस व्यक्ति की यथासंभव निकटतम आयु का कथन करते हुए मामले के निष्कर्ष अभिलिखित करेगाः परन्तु ऐसा कोई दावा किसी न्यायालय के समक्ष किया जा सकेगा और उसको किसी भी प्रक्रम पर, मामले का अंतिम निपटारा हो जाने के पश्चात् भी, स्वीकार किया जाएगा और उस दावे का अवधरण इस अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों में अन्तर्विष्ट उपबंधों के अनुसार किया जाएगा, भले ही वह व्यक्ति इस अधिनियम के प्रारंभ की तारीख को या उससे पूर्व बालक न रह गया हो।

(3) यदि न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि किसी व्यक्ति ने अपराध किया है और वह ऐसे अपराध के किए जाने की तारीख को बालक था, तो वह उस बालक को बोर्ड के पास, समुचित आदेश पारित करने के लिए भेजेगा और न्यायालय द्वारा पारित दंडादेश के, यदि कोई हो, बारे में यह समझा जाएगा कि उसका कोई प्रभाव नहीं है।

(4) यदि इस धारा के अधीन किसी व्यक्ति को, जब उस व्यक्ति के बालक होने के दावे की जांच की जा रही है, संरक्षात्मक अभिरक्षा में रखा जाना अपेक्षित है, तो उस व्यक्ति को उस अंतःकालीन अवधि में सुरक्षित स्थान में रखा जा सकेगा।

94. आयु के विषय में उपधरणा और उसका अवधरण - *(1) जहां बोर्ड या समिति को, इस अधिनियम के किसी उपबंध के अधीन (साक्ष्य देने के प्रयोजन से भिन्न) उसके समक्ष लाए गए व्यक्ति की प्रतीति के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि उक्त व्यक्ति बालक है तो समिति या बोर्ड बालक की यथासंभव सन्निकट आयु का कथन करते हुए ऐसे संप्रेषण को अभिलिखित करेगा और आयु की और अभिपुष्टि की प्रतीक्षा किए बिना, यथास्थिति, धारा 14 या धारा 36 के अधीन जांच करेगा।*

(2) यदि समिति या बोर्ड के पास इस संबंध में संदेह होने के युक्तियुक्त आधार हैं कि क्या उसके समक्ष लाया गया व्यक्ति बालक है या नहीं, तो, यथास्थिति, समिति या बोर्ड, निम्नलिखित साक्ष्य अभिप्राप्त करके आयु अवधरण की प्रक्रिया का जिम्मा लेगा।

(I) विद्यालय से प्राप्त जन्म तारीख प्रमाणपत्र या संबंधित परीक्षा बोर्ड से मैट्रिकुलेशन या समतुल्य प्रमाणपत्र, यदि उपलब्ध हो; और उसके अभाव में;

(ii) निगम या नगरपालिका प्राधिकारी या पंचायत द्वारा दिया गया जन्म प्रमाणपत्र;

(iii) और केवल उपरोक्त (i) और (ii) के अभाव में, आयु का अवधरण समिति या बोर्ड के आदेश पर की गई अस्थि जांच या कोई अन्य नवीनतम चिकित्सीय आयु अवधरण जांच के आधार पर किया जाएगाः परंतु समिति या बोर्ड के आदेश पर की गई ऐसी आयु अवधरण जांच ऐसे आदेश की तारीख से पन्द्रह दिन के भीतर पूरी की जाएगी।

(3) समिति या बोर्ड द्वारा उसके समक्ष इस प्रकार लाए गए व्यक्ति की अभिलिखित आयु, इस अधिनियम के प्रयोजन के लिए उस व्यक्ति की सही आयु समझी जाएगी।"

पुनरीक्षणकर्ता के अधिवक्ता का यह भी अभिकथन है कि विचारण न्यायालय ने अधिनियम, 2015 के अंतर्गत उचित जांच और न्यायिक विवेक का प्रयोग किये बिना ही, उसी दिन अर्थात 28.2.2023 को सरसरी तौर पर पुनरीक्षणकर्ता के उपरोक्त प्रार्थनापत्र को खारिज कर दिया।

पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया कि अधिनियम, 2015 की धारा 94 में यह स्पष्ट रूप से उपबंधित किया गया है कि विद्यालय से जारी जन्मतिथि प्रमाण पत्र या संबंधित बोर्ड से जारी मैट्रिक या समकक्ष प्रमाण पत्र को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। किन्तु विद्वान अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया कि पुनरीक्षणकर्ता अशिक्षित है एवं उसने कभी भी किसी भी विद्यालय में प्रवेश नहीं लिया और इस प्रकार, बोर्ड द्वारा जारी उसका जन्म प्रमाण पत्र उपलब्ध नहीं है। पुनः यह कथन किया गया है कि अधिनियम, 2015 की धारा 94 (ii) के अनुसार, पंचायत द्वारा जारी जन्म प्रमाण पत्र पर विचार किया जाएगा। किन्तु विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पंचायत से जारी किया गया पुनरीक्षणकर्ता का जन्म प्रमाणपत्र, कोई उचित आदेश पारित किये बिन ही सरसरी तौर पर खारिज कर दिया गया। यह अभिकथन भी प्रस्तुत किया गया है कि विद्वान विचारण न्यायालय ने अपने निर्णय में यह उल्लेख किया है कि पुनरीक्षणकर्ता ने धारा 313 दंड प्रक्रिया संहिता के अपने बयान के अंतर्गत स्वयं यह कथन किया था कि वह लगभग 20-21 वर्ष का था। मामला वर्ष 2017 का है, जो स्वयं ही दर्शाता है कि छह वर्ष पूर्व पुनरीक्षणकर्ता की आयु 18 वर्ष से कम थी। इसके अतिरिक्त, ग्राम पंचायत द्वारा जारी किये गए परिवार रजिस्टर में पुनरीक्षणकर्ता की जन्म तिथि वर्ष 2001 है। विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह भी कहा गया कि यहाँ तक कि अपील लंबित रहने पर भी किसी भी स्तर पर किशोरता का दावा किया जा सकता है।

विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रबल विरोध किया गया और कहा गया कि विचारण न्यायालय ने न्यायिक विवेक का प्रयोग करने के उपरान्त पुनरीक्षणकर्ता के प्रार्थनापत्र को खारिज किया। इस प्रकार, विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश रद्द किये जाने योग्य नहीं है।

वाद के संपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, विचारण न्यायालय को अधिनियम, 2015 की धारा 9 और 94 के अनुसार एक महीने के भीतर पुनरीक्षणकर्ता की किशोरता के दावे के प्रार्थनापत्र पर निर्णय लेने का निर्देश दिया जाता है। किशोरता के दावे का निर्धारण होने तक, कोई अंतिम आदेश पारित नहीं किया जाएगा । विचारण न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 28.2.2023 को रद्द किया जाता है।

तदनुसार, वर्तमान पुनरीक्षण **स्वीकार** किया जाता है।

इस आदेश को आवश्यक अनुपालन हेतु संबंधित न्यायालय को सूचित किया जाए।

(2023) 3 ILRA 1006

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 16.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति रमेश सिन्हा

माननीय न्यायमूर्ति राजीव गुप्ता

क्रिमिनल मिस्लेनियस रिट याचिका सं. 1948 सन् 2023

कुलदीप यादव ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य **...प्रत्यर्थी**

याचिकाकर्ता की ओर से अधिवक्ता: श्री बृज राज, अग्रवाल आर्ची पीयूष

प्रत्यर्थी की ओर से अधिवक्ता: जी.ए., श्री सुशील कुमार सिंह, श्री उग्रसेन कुमार पांडे

अपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 1948 / 2023

(A) आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 323, 376, 504 और 506 - लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 - धारा 3/4, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 73 - किसी व्यक्ति के विरुद्ध वारंट जारी किया जा सकता है - यदि जांच के दौरान, विवेचक उस व्यक्ति को गिरफ्तार करने का आशय रखता है जो अपराध का आरोपी है, तो उसे मजिस्ट्रेट से गिरफ्तारी का वारंट प्राप्त करना होगा - मजिस्ट्रेट गैर-जमानती वारंट जारी करने के लिए पूरी तरह से सक्षम है ताकि वह उस व्यक्ति को पकड़ सके जो गैर-जमानती अपराध का आरोपी है और गिरफ्तारी से बच रहा है। (पैरा - 10)

जांच लंबित - विवेचक ने विशेष न्यायाधीश (POCSO कोर्ट) के समक्ष एक आवेदन दायर किया - याचिकाकर्ता एफ.आई.आर. में वांछित आरोपी है - आरोपी/याचिकाकर्ता गिरफ्तारी से बच रहा है - पुलिस के सामने बयान दर्ज कराने के लिए नहीं आ रहा है - जांच में सहयोग नहीं कर रहा है - विशेष न्यायाधीश (POCSO कोर्ट) ने याचिकाकर्ता के विरुद्ध गैर-जमानती वारंट जारी किया - इसलिए आदेश निरस्त करने के लिए याचिका। (पैरा - 3,8)

निर्णय:- विशेष अदालत (POCSO अधिनियम) ने याचिकाकर्ता के विरुद्ध गैर-जमानती वारंट जारी करने में सही तरीके से अपनी शक्ति का उपयोग किया। याचिकाकर्ता के विरुद्ध गैर-जमानती वारंट जारी करने का आदेश इतना अवैध नहीं है कि न्यायालय को संविधान के धारा 226 के तहत अपनी अंतर्निहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने के लिए प्रेरित करे। (पैरा - 7,12)

याचिका निरस्त। (E-7)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

राज्य द्वारा सीबीआई बनाम दाऊद इब्राहीम कास्कर और अन्य, (2000) 10 SCC 438।

न्यायमूर्ति रमेश सिन्हा (मौखिक)

इस याचिका में विशेष न्यायाधीश (पॉक्सो अदालत), इलाहाबाद द्वारा पारित दिनांक 15.10.2022 के आक्षेपित आदेश को रद्द करते हुए उत्प्रेषण-लेख की प्रकृति में एक रिट जारी करने की मांग की गई है, जिसके तहत याचिकाकर्ता के खिलाफ 2022 की एफ. आई. आर. संख्या 0136 में आई. पी. सी. की धारा 323,376,504,506 और यौन अपराधों से बच्चों के संरक्षण अधिनियम, 2012, पुलिस स्टेशन फाफामऊ, जिला इलाहाबाद की धारा 3/4 के तहत जमानतीय वारंट जारी किया गया है।

याचिकाकर्ता की विद्वान अधिवक्ता सुश्री आर्ची पीयूष, राज्य/प्रतिवादी संख्या 1 से 3 के विद्वान अतिरिक्त सरकारी अधिवक्ता श्री जे.के. उपाध्याय को सुना गया तथा आरोपित एफ.आई.आर. के साथ-साथ रिकॉर्ड पर लाई गई सामग्री का अवलोकन किया गया।

ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ धारा 354 (के), 323,504,506 आई. पी. सी. और यौन अपराधों से बच्चों का संरक्षण अधिनियम, 2012, पुलिस स्टेशन फाफामऊ,

जिला इलाहाबाद की धारा 3/4 के तहत 2022 की प्राथमिकी 18.05.2022 के रूप में दर्ज एक प्राथमिकी के अनुसार कार्यवाही शुरू की गई थी, जिसके बाद मामले की जाँच की गई थी।उपरोक्त एफआईआर को याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय के समक्ष आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 6443/2022 दायर करके चुनौती दी थी, जिसे आदेश दिनांक 38340-डीबी 31.05.2022 के माध्यम से वापस लेते हुए खारिज कर दिया गया था। इसके बाद, याचिकाकर्ता ने अग्रिम जमानत आवेदन संख्या 7475/2022 दायर किया, जिसे विद्वान एकल न्यायाधीश ने 31.08.2022 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया।जाँच विचाराधीनता रहने के दौरान, मामले के जाँच अधिकारी ने विशेष न्यायाधीश (पॉक्सो अदालत), इलाहाबाद के समक्ष एक आवेदन दायर किया है, जिसमें कहा गया है कि याचिकाकर्ता एफ. आई. आर. संख्या 0136/2022 में वांछित अभियुक्त है, लेकिन अपने सर्वोत्तम प्रयासों के बावजूद, वह याचिकाकर्ता की गिरफ्तारी सुनिश्चित नहीं कर सका और याचिकाकर्ता फरार है और इस बात की आशंका है कि याचिकाकर्ता जघन्य अपराध कर सकता है, इसलिए याचिकाकर्ता के खिलाफ गैर-जमानती वारंट जारी किया जाए।विशेष न्यायाधीश (पॉक्सो कोर्ट), इलाहाबाद ने जांच अधिकारी के उपरोक्त आवेदन का संज्ञान लिया और आवेदन के साथ-साथ केस आदेश की जांच करने पर, विशेष न्यायाधीश (पॉक्सो कोर्ट) ने याचिकाकर्ता के खिलाफ गैर-जमानती वारंट जारी किया।यह इस स्तर पर है कि रिट याचिका के अनुच्छेद 226 के तहत वर्तमान रिट याचिका याचिकाकर्ता द्वारा दायर की गई है, जिसमें विशेष न्यायाधीश (पॉक्सो कोर्ट), इलाहाबाद द्वारा पारित उपरोक्त आदेश को रद्द करने की मांग की गई है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि विशेष न्यायाधीश (पोक्सो न्यायालय), इलाहाबाद ने जांच अधिकारी द्वारा प्रस्तुत आवेदन के आधार पर यह आदेश पारित किया है कि याचिकाकर्ता जांच में सहयोग नहीं कर रहा है।उन्होंने तर्क दिया कि जांच अभी भी जारी है और धारा 173 (2) सीआरपीसी के तहत कोई रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं की गई है। उन्होंने यह भी तर्क दिया कि सूचक श्री हरि शंकर तिवारी और याचिकाकर्ता नई बस्ती रंगपुरा, बनारस रोड, फाफामऊ, प्रयागराज के निवासी हैं और उन्होंने 16.01.2023 को समझौता विलेख के माध्यम से विवाद को सौहार्दपूर्ण ढंग से सुलझा लिया है, जिसकी एक प्रति रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 6 के रूप में संलग्न है। इसलिए, अभियोग विचाराधीनता रहने के दौरान याचिकाकर्ता के खिलाफ जमानतीय वारंट जारी करना रद्द किया जा सकता है।अपने कथन के समर्थन में, उन्होंने **राज्य सीबीआई बनाम दाऊद इब्राहिम कासकर और अन्य: (2000) 10 एससीसी 438** में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि गैर-जमानती वारंट जारी करने की शक्ति का प्रयोग विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा जांच में सहायता के लिए पुलिस के समक्ष नहीं बल्कि अदालत के समक्ष अभियुक्त की उपस्थिति के लिए किया जा सकता है।

दूसरी ओर, विद्वान अपर सरकारी अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि विशेष न्यायाधीश (पॉक्सो कोर्ट), इलाहाबाद द्वारा याचिकाकर्ता के खिलाफ गैर-जमानती वारंट जारी करते हुए आक्षेपित आदेश पारित किया गया है, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि हालांकि जांच अधिकारी ने याचिकाकर्ता की गिरफ्तारी के लिए उसके घर, उसके रिश्तेदार और अन्य स्थानों पर छापेमारी

की है, लेकिन वह फरार है, और खुद को गिरफ्तारी से भी बचा रहा है, जैसा कि संबंधित अदालत के समक्ष जांच अधिकारी द्वारा दिए गए आवेदन में दर्शाया गया है, इसलिए, मजबूर करने वाली परिस्थितियों में, जांच अधिकारी ने 13.10.2022 को आवेदन दायर किया है, जिसमें अदालत से गैर-जमानती वारंट जारी करने का अनुरोध किया गया है। इसलिए, विशेष न्यायालय (पॉक्सो कोर्ट), इलाहाबाद ने याचिकाकर्ता के खिलाफ आक्षेपित आदेश पारित किया है।उन्होंने यह भी तर्क दिया कि याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा भरोसा किया गया दाऊद इब्राहिम कासकर उपरोक्त का मामला तत्काल मामले में लागू नहीं होता है क्योंकि दोनों मामलों के तथ्य पूरी तरह से अलग हैं।

हमने पक्षों के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए प्रस्तुतिकरणों की जांच की है और अभिलेख के साथ-साथ अभिलेख पर लाई गई सामग्री का भी अध्ययन किया है।

आक्षेपित आदेश के अवलोकन से संकेत मिलता है कि विशेष न्यायालय (पॉक्सो न्यायालय), इलाहाबाद ने अपने समक्ष दायर आवेदन के दावों की जांच की है कि याचिकाकर्ता के घर के साथ-साथ उसके रिश्तेदार के घर और अन्य स्थानों पर छापेमारी की गई थी, लेकिन वह फरार है और वह खुद को इधर-उधर गिरफ्तार करने से बचने की भी कोशिश कर रहा है और ऐसी आशंका है कि याचिकाकर्ता गंभीर अपराध कर सकता है।विशेष अदालत (पॉक्सो अदालत), इलाहाबाद ने भी कार्यालय की रिपोर्ट की इस आशय से जांच की है कि याचिकाकर्ता/आरोपी की ओर से आत्मसमर्पण करने के लिए कोई आवेदन न्यायालय में लंबित नहीं है।उपरोक्त की जांच करने और केस डायरी का अवलोकन करने के बाद, विशेष न्यायालय (पोक्सो कोर्ट) ने याचिकाकर्ता के खिलाफ गैर-जमानती वारंट जारी किया है, जो कि अपराध संख्या 0136/2022 के तहत धारा 323, 376, 504, 506 आईपीसी और लैंगिक अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 की धारा 3/4 के तहत पुलिस स्टेशन फाफामऊ, जिला इलाहाबाद में आरोपी है।इस प्रकार, हमारा विचार है कि विशेष न्यायालय (पॉक्सो अधिनियम), इलाहाबाद ने याचिकाकर्ता के खिलाफ गैर-जमानती वारंट जारी करने में अपनी शक्ति का सही उपयोग किया है। याचिकाकर्ता द्वारा अवलंब लिये गए मामले **सी. बी. आई. बनाम दाऊद इब्राहिम कासकर और अन्य उपरोक्त** में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से अलग है, क्योंकि **दाऊद इब्राहिम कासकर(उपरोक्त)** में, जांच पूरी हो गई थी और आरोप-पत्र प्रस्तुत किया गया था, जबकि तत्काल मामले में, जांच अभी भी जारी है और आरोपी/याचिकाकर्ता गिरफ्तारी से बच रहा है और अपना बयान दर्ज कराने और जांच में सहयोग नहीं करने के लिए पुलिस के सामने पेश नहीं हो रहा है।

इस मोड़ पर, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 73 को पुनः प्रस्तुत करना उचित होगा, जो निम्नानुसार हैः.

"73.वारंट किसी भी व्यक्ति को निर्देशित किया जा सकता है।(1) मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट या प्रथम श्रेणी का मजिस्ट्रेट अपने स्थानीय अधिकार क्षेत्र के भीतर किसी भी व्यक्ति को किसी फरार दोषी, घोषित अपराधी या किसी ऐसे व्यक्ति की गिरफ्तारी के लिए वारंट का निर्देश दे सकता है जिस पर जमानतीय, अपराध का आरोप है और वह गिरफ्तारी से बच रहा है।

(2) ऐसा व्यक्ति वारंट की प्राप्ति को लिखित रूप में स्वीकार करेगा, और इसे निष्पादित करेगा यदि वह व्यक्ति जिसकी गिरफ्तारी के लिए यह जारी किया गया था, वह अपने प्रभार के तहत किसी भूमि या अन्य संपत्ति में है या प्रवेश कर रहा है।
(3) जब उस व्यक्ति को गिरफ्तार किया जाता है जिसके खिलाफ ऐसा वारंट जारी किया जाता है, तो उसे वारंट के साथ निकटतम पुलिस अधिकारी को सौंप दिया जाएगा, जो उसे मामले में अधिकार क्षेत्र वाले मजिस्ट्रेट के सामने ले जाएगा, जब तक कि धारा 71 के तहत सुरक्षा नहीं ली जाती है।

उपरोक्त प्रावधान को ध्यान में रखते हुए, यह स्पष्ट है कि यदि निरीक्षण के दौरान, जांच अधिकारी अपराध के आरोपी व्यक्ति को गिरफ्तार करने का इरादा रखता है, तो उसे मजिस्ट्रेट से गिरफ्तारी वारंट की मांग करनी होगी और उसे प्राप्त करना होगा।मजिस्ट्रेट गैर-जमानती अपराध के आरोपी और गिरफ्तारी से बचने वाले व्यक्ति को पकड़ने के लिए गैर-जमानती वारंट जारी करने के लिए पूरी तरह से सक्षम है।

तत्काल मामले में, विशेष न्यायाधीश (पॉक्सो अदालत), इलाहाबाद ने अपराध की गंभीरता को देखते हुए अपने न्यायिक विवेक का प्रयोग किया है और साथ ही इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि याचिकाकर्ता जांच में सहयोग नहीं कर रहा है क्योंकि पुलिस ने सफलतापूर्वक उसके परिसर पर छापा मारा था ताकि उससे अपराध के विभिन्न पहलुओं के बारे में विस्तार से पूछताछ की जा सके।अतः जाँच अधिकारी को बिना किसी बाधा के आगे बढ़ने में सक्षम बनाने के लिए उसकी स्वतंत्रता में कटौती करना आवश्यक था। आम तौर पर गिरफ्तारी जाँच प्रक्रिया का एक हिस्सा है।चूँकि पीड़ित का बयान दर्ज किया गया है जो अपराध करने में याचिकाकर्ता की संलिप्तता को दर्शाता है, जांच अधिकारी की राय में, उसकी गिरफ्तारी को प्रभावी बनाना आवश्यक था और ऐसा करने में, उसने गैर-जमानती वारंट प्राप्त करने के लिए न्यायालय के समक्ष जाने में कोई गलती नहीं की है।इसके अलावा, प्राथमिकी के एक सादे अध्ययन से पता चलता है कि पीड़ित की उम्र 18 वर्ष से कम है।

जहाँ तक याचिकाकर्ता की याचिका का संबंध है कि सूचना देने वाले और याचिकाकर्ता के बीच समझौता किया गया है, हम पाते हैं कि धारा 164 Cr.P.C के तहत अभियोजक का बयान दर्ज किया गया है, अभियोजन मामले का समर्थन करते हुए, इस स्तर पर, यह नहीं कहा जा सकता है कि याचिकाकर्ता द्वारा प्रथमदृष्टया कोई अपराध नहीं किया गया है।इसलिए, समझौते के संबंध में याचिकाकर्ता की दलील किसी भी तरह से उसकी मदद नहीं करती है क्योंकि उक्त समझौता याचिकाकर्ता और सूचक के बीच हुआ है, न कि अभियोजन पक्ष के साथ।

उपरोक्त कारणों से, विशेष न्यायाधीश, पॉक्सो न्यायालय, इलाहाबाद द्वारा याचिकाकर्ता के खिलाफ जमानतीय वारंट जारी करने वाले आक्षेपित आदेश, जिसे रद्द करने की मांग की गई है, को किसी भी अवैधता से ग्रस्त नहीं कहा जा सकता है ताकि इस न्यायालय को भारत के संविधान की धारा 226 के तहत अपनी निहित अधिकार क्षेत्रिता का प्रयोग करने के लिए राजी किया जा सके।

तदनुसार, तत्काल रिट याचिका **खारिज** कर दी जाती है।.

(2023) 3 ILRA 1010

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 02.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिड़ला

माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र

क्रिमिनल मिस्लेनियस रिट याचिका सं. 7952 सन् 2022

गौरव त्रिपाठी ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ...प्रत्यर्थी

याचिकाकर्ता की ओर से अधिवक्ता: श्री संदीप शुक्ला, श्री नवीन कुमार शर्मा

प्रत्यर्थी की ओर से अधिवक्ता: जी.ए., श्री भरत सिंह

अपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 7952 / 2022

(A) अपराधिक कानून - भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 - धारा 7 - सार्वजनिक सेवक को रिश्वत देने से संबंधित अपराध - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 167(2) - जांच को दूसरे जांच एजेंसी में हस्तानांतरित करने की शक्ति केवल खास और असाधारण वाद में ही इस्तेमाल की जानी चाहिए - जहां न्यायालय को प्रतीत होता है कि पक्षों के मध्य न्याय करने के लिए ऐसा करना जरूरी है और जनता के मन में विश्वास स्थापित करना है - या जहां राज्य पुलिस द्वारा की गई जांच विश्वसनीयता की कमी रखती है - निष्पक्ष जांच और निष्पक्ष विचरण आरोपी का मौलिक अधिकार है - एक आरोपी व्यक्ति को इस बात का चुनाव नहीं होता कि जांच किस तरह की जानी चाहिए या किस जांच एजेंसी द्वारा की जानी चाहिए। (पैराग्राफ - 11,12,20)

गोरखपुर सेक्टर से लखनऊ सेक्टर में विजिलेंस विभाग की जांच हस्तानांतरित करने से संबंधित वाद - मंत्रियों के पत्रों और आरोपी के प्रतिनिधित्व के आधार पर - जांच हस्तानांतरित करने के लिए कोई ठोस या वैध कारण नहीं बताया गया - आदेश उस प्रतिनिधित्व पर विचार करने के पश्चात दिए गए जो प्रतिवादी संख्या 10 द्वारा प्रस्तुत किया गया था - राजनीतिक हस्तक्षेप और प्रतिवादी संख्या 10 का प्रतिनिधित्व ही हस्तानांतरित के लिए कारण हैं - वाद असाधारण या खास प्रकृति का नहीं है। (पैराग्राफ - 23,24)

निर्णय:- आपेक्षित आदेश दिनांक 17.05.2022 और 02.06.2022 का परिणामस्वरूप आदेश राजनीतिक हस्तक्षेप के कारण कायम नहीं रह सकते। एक एजेंसी से दूसरी एजेंसी में जांच हस्तानांतरित करने के लिए कोई स्पष्ट कारण या आधार नहीं है। जांच हस्तानांतरित करने का आदेश निरस्त किया जाता है। (पैराग्राफ - 24,25,26)

याचिका स्वीकृत। (E-7)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. अर्नब रंजन गोस्वामी बनाम भारत संघ एवं अन्य, (2020) 14 एससीसी 12
2. बिमल गुरुंग एवं अन्य बनाम भारत संघ (UOI) एवं अन्य, (2018) 15 एससीसी 480
3. ओमवीर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2008 (5) एडीजे 698 (DB)

4. कुमारी आयशा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2018(1) एडीजे 85 (DB)
5. श्रीमती वंदना श्रीवास्तव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2014 (7) एडीजे 679 (DB)
6. मोहन लाल बनाम पंजाब राज्य, एयर 2018 एससी 3853
7. ए.वी. बेल्लार्मिन बनाम श्री वी. संथाकुमारन नायर, क्रिमिनल ओ.पी. (MD) नंबर 12212 ऑफ 2013 एवं एम.पी. (MD) नंबर 1 और 2 ऑफ 2013
8. निर्मल सिंह कहलों बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य, (2009) 1 एससीसी 441

(माननीय श्री क्षितिज शैलेन्द्र, न्यायमूर्ति द्वारा निर्गत)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री संदीप शुक्ला, प्रतिवादी संख्या 10 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री भरत सिंह और राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान ए.जी.ए., श्री जी.पी. सिंह को सुना गया।

2. इस न्यायालय के आदेश दिनांक 17.1.2023 और 30.1.2023 के अनुसरण में विद्वान ए.जी.ए. ने इस न्यायालय के समक्ष दिनांक 17.5.2022 के आदेश की सत्यापित प्रति अन्य दस्तावेजों के साथ प्रस्तुत की है, जिन्हें रिकॉर्ड पर लिया गया है।

3. यह याचिका अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित राहतों का दावा करते हुए दायर की गई है:-
"ए. परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें जिसमें प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा पारित आदेश दिनांक 17.05.2022 के रिकॉर्ड की मांग की जाए, जिसका क्रमांक वी.आई.पी.-15/39-4-2022-50 एम (01)/2021 है, और आगे प्रतिवादी संख्या 7 द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 17.05.2022 और परिणामी आदेश दिनांक 02.06.2022 को रद्द करने की लिए एक उत्प्रेषण रिट जारी करें जिससे उत्तर प्रदेश के गोरखपुर सेक्टर (सतर्कता प्रतिष्ठान) से मुकदमा अपराध संख्या 5/2021 की जांच को लखनऊ सेक्टर (सतर्कता प्रतिष्ठान) में स्थानांतरित करने का निर्देश दिया गया।
बी. प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 16.09.2021 में मुकदमा अपराध संख्या 5/2021, धारा 7 भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के अंतर्गत थाना गोरखपुर सेक्टर (सतर्कता अधिष्ठान), जनपद गोरखपुर, के साथ प्रस्तुत पुलिस रिपोर्ट पर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 19 के तहत उचित आदेश पारित करने के लिए प्रतिवादी संख्या 4 को परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें।"

4. वर्तमान रिट याचिका को आधार देने वाले आवश्यक तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता प्राथमिक विद्यालय बरहौवा, विकास खंड सल्टौवा, गोपालपुर में सहायक अध्यापक के पद पर कार्यरत था और 26.08.2021 को याचिकाकर्ता सर्दी, खांसी, बुखार आदि समस्या से पीड़ित था। चिकित्सा और उपचार के लिए वह जिला टी.बी. अस्पताल, बस्ती गए जिसकी ओ.पी.डी. पंजीकरण संख्या 6034 है; उपरोक्त चिकित्सीय समस्या के कारण, याचिकाकर्ता ने 26.08.2021 को छुट्टी ले ली, उक्त जानकारी विधिवत रूप से विद्यालय के प्रधानाचार्य को सूचित की गई और इसे स्कूल रजिस्टर में विधिवत नोट किया गया; पूरे उत्तर

प्रदेश में दिनांक 21.08.2021 से 27.08.2021 तक छुट्टी की मंजूरी के लिए ऑनलाइन पोर्टल गैर-कार्यात्मक (तकनीकी त्रुटि के कारण) था, इसीलिए याचिकाकर्ता ने छुट्टी के लिए ऑफ़लाइन आवेदन किया और सूचना प्रतिवादी संख्या 10 को दी गई; प्रतिवादी संख्या 10 ने 26.08.2021 को स्कूल का दौरा किया और वहां हंगामा कर दिया। उन्होंने उपस्थिति रजिस्टर में भी ओवरराइटिंग की है और याचिकाकर्ता को अनुपस्थित चिह्नित किया है; 28.08.2021 को वापस आने के बाद जैसे ही याचिकाकर्ता को स्कूल स्टाफ से उपरोक्त जानकारी मिली, वह स्कूल के समय के बाद निजी प्रतिवादी से मिलने गया; याचिकाकर्ता को शाम 06:00 बजे जिला बस्ती में बून्स रेस्टोरेंट के सामने मिलने के लिए कहा गया और वहां प्रतिवादी संख्या 10 द्वारा उससे रू.10,000/- (अंततः रु. 7,000/- रुपये में तय किया गया) की अवैध मांग की गई। प्रतिवादी संख्या 10 द्वारा की गई उक्त अवैध मांग पर, याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 06.09.2021 को एक शिकायत पुलिस अधीक्षक, सतर्कता विभाग, गोरखपुर के समक्ष अपनी शिकायतें व्यक्त करते हुए की गई थी; उक्त शिकायत पर दिनांक 06.09.2021 को कार्रवाई करते हुए जांच की गई, शिकायत के कथन वास्तविक पाए गए और यह जानकारी में आया कि प्रतिवादी संख्या 10 एक भ्रष्ट अधिकारी है; बाद में उचित प्रक्रिया का पालन करने के बाद, 15.09.2021 को ट्रैप का आयोजन किया गया और प्रतिवादी संख्या 10 को ट्रैप टीम द्वारा उसे 7,000/- रुपये की रिश्वत लेते हुए रंगे हाथों पकड़ा गया। प्रतिवादी संख्या 10 द्वारा किए गए अपराध के लिए, प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 16.09.2021 को प्रतिवादी क्रमांक 10 के विरुद्ध भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम 1988 की धारा 7 के अंतर्गत थाना गोरखपुर सेक्टर (सतर्कता अधिष्ठान) में पंजीकृत किया गया; एक बार प्रतिवादी संख्या 10 को गिरफ्तार कर लिया गया और न्यायिक हिरासत में भेज दिया गया, दिनांक 24.09.2021 के आदेश के तहत उसे निलंबित कर दिया गया; प्रतिवादी संख्या 10 द्वारा अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश (पी.सी. एक्ट), न्यायालय संख्या 5, गोरखपुर के समक्ष जमानत आवेदन संख्या 4445/2021 दायर किया गया था और इसे आदेश दिनांक 28.09.2021 द्वारा खारिज कर दिया गया था; जमानत अस्वीकृति आदेश दिनांक 28.09.2021 से व्यथित होकर, जमानत आवेदन संख्या 43678/2021 (मनोज कुमार सिंह बनाम यूपी राज्य) इस न्यायालय के समक्ष दायर किया गया था; चूंकि आरोप पत्र निर्धारित अवधि के भीतर प्रस्तुत नहीं किया गया था, इसलिए धारा 167 (2) सीआरपीसी के तहत प्रतिवादी संख्या 10 द्वारा अधीनस्थ अदालत के समक्ष जमानत पर रिहा करने की प्रार्थना की गई थी; जांच अधिकारी और विशेष लोक अभियोजक ने अधीनस्थ अदालत के समक्ष रिपोर्ट प्रस्तुत की कि पूरे दस्तावेज सरकार को भेजे गए थे लेकिन अभियोजन की मंजूरी नहीं दी गई थी; विद्वान अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश (पी.सी. एक्ट), न्यायालय संख्या 5, गोरखपुर ने आदेश दिनांक 16.11.2021 द्वारा प्रतिवादी संख्या 10 को जमानत दे दी; एक बार जब प्रतिवादी संख्या 10 की जमानत अर्जी को निचली अदालत द्वारा अनुमति दे दी गई, तो इस अदालत के समक्ष दायर जमानत अर्जी दिनांक 09.12.2021 के आदेश के तहत निरर्थक बताकर खारिज कर दी गई।

5. इस न्यायालय ने प्रारंभिक चरण में रिट याचिका पर विचार करते हुए दिनांक 08.07.2022 का आदेश पारित किया, जिसका प्रासंगिक भाग यहां नीचे दिया गया है:

"याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का कहना है कि याचिकाकर्ता प्राथमिक विद्यालय, बरहौवा,

विकास खंड सल्टौवा, गोपालगंज, जिला गोरखपुर में सहायक अध्यापक के रूप में कार्यरत थे। 26.8.2021 को वह बुखार और सर्दी/खांसी से पीड़ित थे और बीमारी के कारण उन्होंने 26.8.2021 को छुट्टी ले ली। श्री मनोज कुमार सिंह, खंड शिक्षा अधिकारी/प्रतिवादी संख्या 10 ने उक्त तिथि को स्कूल का दौरा किया और याचिकाकर्ता को 'अनुपस्थित' के रूप में चिह्नित किया। प्रतिवादी संख्या 10 द्वारा की गई कुछ अवैध मांग पर, याचिकाकर्ता ने उनके विरुद्ध दिनांक 06.9.2021 को पुलिस अधीक्षक, सतर्कता विभाग, गोरखपुर के समक्ष शिकायत की गई। इसके बाद, प्रतिवादी संख्या 10 को ट्रैप टीम द्वारा 7000/- रुपये रिश्वत लेते हुए रंगे हाथों पकड़ा गया और परिणामस्वरूप, प्रथम सूचना रिपोर्ट में उनके विरुद्ध भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 7 के तहत 16.9.2021 को थाना गोरखपुर सेक्टर (सतर्कता अधिष्ठान) में मामला दर्ज कराया गया था। उन्हें 24.9.2021 को गिरफ्तार कर न्यायिक हिरासत में भेज दिया गया था। यह भी आरोप है कि प्रतिवादी संख्या 10 एक प्रभावशाली व्यक्ति हैं और उन्हें सेवा में बहाल कर दिया गया है। सक्षम अधिकारी अभियोजन स्वीकृति के मामले में चुप्पी साधे बैठा है। दिनांक 02.6.2022 के आक्षेपित आदेश का अवलोकन करने पर, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि दिनांक 17.5.2022 का आक्षेपित आदेश राजनीतिक व्यक्तियों की सिफारिश पर पारित किया गया है और यहां तक कि उनके नामों का भी उल्लेख किया गया है। व्यावसायिक नियमों के अनुसार, उन्हें कार्यवाही में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है। आक्षेपित आदेश दिनांक 02.06.2022 द्वारा प्रतिवादी सं. 7 ने मुकदमा अपराध संख्या 05/2021 की जांच उत्तर प्रदेश के गोरखपुर सेक्टर (सतर्कता अधिष्ठान) से लखनऊ सेक्टर (सतर्कता अधिष्ठान) में स्थानांतरित करने का निर्देश दिया है, वह भी आरोपी व्यक्ति के बहाने, जो स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि आक्षेपित आदेश केवल प्रतिवादी संख्या 10 को लाभ प्रदान करने के लिए पारित किया गया है। अपने निवेदन के समर्थन में रिट याचिका (सीआरएल) संख्या 130/2020 (अर्नब रंजन गोस्वामी बनाम भारत संघ और अन्य) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के पैराग्राफ संख्या 39 पर निर्भर किया है।

मामले में आगे बढ़ने से पहले विद्वान ए.जी.ए. को मामले में निर्देश लेने और प्रतिवादी क्रमांक 3, अतिरिक्त मुख्य सचिव, गृह एवं सतर्कता अधिष्ठान उ.प्र. सरकार, लखनऊ और प्रतिवादी संख्या 4, अपर निदेशक शिक्षा (बेसिक) प्रयागराज का हलफनामा मामले में निर्धारित अगली तारीख तक या उससे पहले दाखिल करने दिया जाता है।

इस मामले को 13.07.2022 को फिर से नवीन रूप से सूचीबद्ध करें।"

6. इस न्यायालय ने अपने बाद के आदेश दिनांक 30.01.2023 द्वारा, विद्वान एजीए को अतिरिक्त मुख्य सचिव द्वारा पारित दिनांक 17.05.2022 के आदेश को प्रस्तुत करने का निर्देश दिया, जिसे वर्तमान याचिका में चुनौती दी गई है, क्योंकि याचिकाकर्ता का तर्क है इस विशिष्ट आशय से उक्त आदेश, उसे उपलब्ध नहीं कराया गया था।

7. आज, विद्वान एजीए ने दिनांक 17.05.2022 का आदेश प्रस्तुत किया है, जो इस प्रकार है:-

"आर०पी० सिंह,
विशेष सचिव ।

गोपनीय
अर्द्धशा०प०सं० वीआईपी-15/39-4-2022
50 एम (01)/2021
उत्तर प्रदेश शासन
सतर्कता अनुभाग-4
लखनऊ: दिनांक : 17 मई, 2022
प्रिय महोदय,
कृपया श्री मनोज कुमार सिंह, खण्ड शिक्षा अधिकारी, शिक्षा क्षेत्र सल्टौआ, जनपद बस्ती के ट्रैप आख्या विषयक विशेष निदेशक, उ०प्र० सतर्कता अधिष्ठान के अ० शा० प ० सं० स 0 अ0/अनु-2-ट्रैप-225/2021 दिनांक 16.03.2022 एवं अपर मुख्य सचिव, गृह एवं सतर्कता विभाग को सम्बोधित श्री जय प्रताप सिंह, पूर्व मंत्री, उ०प्र० सरकार के पत्र दिनांक 18.04.2022 (मूलप्रति संलग्न), श्री अजय सिंह, मा० सदस्य, विधान सभा, हरैया, बस्ती के पत्र दिनांक 20.04.2022 (मूलप्रति संलग्न) एवं श्री जयवीर सिंह, मंत्री, पर्यटन एवं संस्कृति, उत्तर प्रदेश के पत्र दिनांक 27.04.2022 (मूलप्रति संलग्न) का सन्दर्भ ग्रहण करने का कष्ट करें।
2- इस सम्बन्ध में मुझसे यह कहने की अपेक्षा की गयी है कि शासन द्वारा सम्यक् विचारोपरान्त प्रश्नगत ट्रैप के सम्बन्ध में श्री मनोज कुमार सिंह, खण्ड शिक्षा अधिकारी, शिक्षा क्षेत्र सल्टौआ, जनपद बस्ती द्वारा प्रत्यावेदन में उल्लिखित तथ्यों एवं संलग्न किये गये 20 साक्ष्यों के परिप्रेक्ष्य में प्रकरण की निष्पक्ष जाँच / विवेचना गोरखपुर सेक्टर के स्थान पर उ०प्र० सतर्कता अधिष्ठान के लखनऊ सेक्टर से कराये जाने का निर्णय लिया गया है।
3- अतः अनुरोध है कि कृपया उल्लिखित आरोपों एवं साक्ष्यों को विवेचना में सम्मिलित करते हुए प्रकरण की जाँच उ०प्र० सतर्कता अधिष्ठान के लखनऊ सेक्टर से कराने एवं जॉच आख्या 15 दिन में शासन को उपलब्ध कराने का कष्ट करें।

संलग्नक- यथोक्त। (मूलरूप में वापसी अपेक्षित)

भवदीय
एस/डी
(आर०पी० सिंह) "

8. आदेश दिनांक 08.07.2022 के क्रम में अपर मुख्य सचिव (गृह/सतर्कता), उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ के पद पर तैनात श्री अवनीश कुमार अवस्थी का व्यक्तिगत शपथ पत्र दाखिल किया गया। हलफनामे के पैराग्राफ संख्या 5 से 7 यहां नीचे उद्धृत किए गए हैं:

"5. दिनांक 02.06.2022 का आक्षेपित आदेश, दिनांक 17.05.2022 के आदेश के परिणामस्वरूप, श्री मनोज कुमार सिंह द्वारा दिए गए अभ्यावेदन पर सावधानीपूर्वक विचार करने के बाद पारित किया गया था।

6. अपराधी मनोज कुमार सिंह द्वारा प्रस्तुत अभ्यावेदन में 20 मुद्दे शामिल थे, जिन पर उन्होंने वस्तुनिष्ठ, निष्पक्ष और न्यायपूर्ण जांच के लिए प्रार्थना की।

7. यह उल्लेखनीय है कि अभियुक्तों द्वारा उठाए गए 20 मुद्दों पर निष्पक्ष जांच की प्रार्थना के समर्थन में, मनोज कुमार सिंह द्वारा प्रस्तुत अभ्यावेदन के साथ विभिन्न साक्ष्य संलग्न किए

गए थे। उनकी प्रार्थना के समर्थन में संलग्नक के तथ्य दिनांक 17.05.2022 और 02.06.2022 के दोनों आक्षेपित आदेशों में उल्लिखित हैं।"

9. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि प्रतिवादी क्रमांक 10 जेल से छूटने के बाद से धमकी दे रहा है कि याचिकाकर्ता मामले में समझौता करा दे। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का कहना है कि उसके बाद दिनांक 17.05.2022 का आदेश और परिणामी आदेश दिनांक 02.06.2022 पारित किया गया है और मुकदमा अपराध संख्या 5/2021 के संबंध में जांच को आरोपी व्यक्ति अर्थात्, प्रतिवादी संख्या 10 के आदेश पर गोरखपुर सेक्टर से लखनऊ सेक्टर में स्थानांतरित कर दिया गया है। उन्होंने आगे कहा कि दिनांक 17.05.2022 का आदेश प्रतिवादी संख्या 10 को लाभ पहुंचाने के लिए राजनीतिक व्यक्तियों की सिफारिश पर पारित किया गया है। रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 6 का उल्लेख करते हुए, यह प्रस्तुत किया गया है कि जांच अधिकारी ने दिनांक 12.11.2021 के पत्र द्वारा विशेष न्यायाधीश (भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम), गोरखपुर के संज्ञान में लाया कि जांच की पूरी कार्यवाही को पहले ही पूर्ण कर लिया गया है तथा आवश्यक दस्तावेज राज्य सरकार को भेज दिये गये हैं, परन्तु अभी तक राज्य स्तर पर अपेक्षित स्वीकृति नहीं मिल सकी है, जिसके कारण आरोप पत्र प्रस्तुत करना संभव नहीं हो सका है। पत्र में जांच अधिकारी के रुख की ओर भी इशारा किया गया है कि राज्य सरकार से मंजूरी मिलने के बाद आगे की कार्यवाही की जाएगी।

10. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के तर्क का मुख्य आधार यह है कि जांच को आरोपी व्यक्ति के आदेश पर स्थानांतरित नहीं किया जा सकता था और इस मामले में अधिकारियों के लिए जांच को एक बार स्थानांतरित करने का न तो कोई औचित्य था और न ही कोई अवसर था। यह स्पष्ट राय थी कि जांच की पूरी कार्यवाही पहले ही समाप्त हो चुकी थी।

11. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क कि आरोपी व्यक्तियों के आदेश पर आक्षेपित स्थानांतरण आदेश पारित किया गया है, दिनांक 17.05.2022 (पूर्वोक्त-उद्धृत) के आदेश के पैराग्राफ 2 से प्रमाणित होता है जो बताता है कि संबंधित ट्रैप में <u>मनोज कुमार सिंह (प्रतिवादी संख्या **10)** के पक्ष को ध्यान में रखते हुए</u> जांच को गोरखपुर सेक्टर से लखनऊ सेक्टर में स्थानांतरित करने का निर्णय लिया गया है। इस तर्क के समर्थन में, कि आरोपी व्यक्तियों के आदेश पर जांच को एक जांच एजेंसी से दूसरे में स्थानांतरित नहीं किया जा सकता है, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने अर्नब रंजन गोस्वामी बनाम भारत संघ और अन्य (2020) 14 एससीसी 12 के मामले में शीर्ष न्यायालय के फैसले पर भरोसा जताया है। शीर्ष न्यायालय ने उपरोक्त निर्णय के पैराग्राफ 47 और 48 में निम्नानुसार टिप्पणी की है: -

"47. जैसा कि हमने पहले देखा है, याचिकाकर्ता ने एफआईआर की जांच को पुलिस स्टेशन सदर, जिला नागपुर शहर से मुंबई के एन.एम. जोशी मार्ग पुलिस स्टेशन में स्थानांतरित करने का अनुरोध किया और सहमति दी। उसने ऐसा इसलिए किया क्योंकि वहां उसके द्वारा उस पुलिस स्टेशन में दर्ज कराई गई एक पहले की एफआईआर जिसकी जांच चल रही थी।

याचिकाकर्ता अब मुंबई पुलिस द्वारा जांच को पहले से कराने की मांग कर रहा है। जिस आधार पर याचिकाकर्ता इसे हासिल करना चाहता है वह अस्थिर है। एक आरोपी व्यक्ति के पास इस संबंध में कोई विकल्प नहीं है कि वह जांच एजेंसी के संबंध में कोई तरीका चुन सके जिसमें जांच की जानी चाहिए। याचिकाकर्ता या सीएफओ द्वारा पूछताछ संबंधित दिशा को जांच/पूछताछ किए जा रहे व्यक्तियों द्वारा नियंत्रित या निर्देशित नहीं किया जा सकता है। पी.चिदंबरम बनाम प्रवर्तन निदेशालय(2019) 9 एससीसी 24, में माननीय न्यायमूर्ति आर. भानुमति ने इस न्यायालय की दो न्यायाधीशों की पीठ की ओर से अभिनिर्धारित किया था कि:

"66... जांच और उसके बाद के निर्णय के क्षेत्र में एक अच्छी तरह से परिभाषित और सीमांकित कार्य है। जब तक जांच कानून के किसी भी प्रावधान का उल्लंघन नहीं करती है, तब तक जांच प्रक्रिया की निगरानी करना अदालत का कार्य नहीं है। जांच की दिशा तय करना जांच एजेंसी के विवेक पर छोड़ दिया जाना चाहिए। यदि अदालत को जांच के प्रत्येक चरण और आरोपियों से पूछताछ में हस्तक्षेप करना है, तो यह जांच के सामान्य पाठ्यक्रम को प्रभावित करेगा। उसे अवश्य ही जांच एजेंसी पर छोड़ दिया जाए कि वह आरोपी से पूछताछ, उससे पूछे गए सवालों की प्रकृति और आरोपी से पूछताछ के तरीके को अपने तरीके से आगे बढ़ाए।"

(जोर दिया गया)

इस न्यायालय ने माना कि जब तक जांच कानून के किसी भी प्रावधान का उल्लंघन नहीं करती है, तब तक जांच एजेंसी को जांच के निर्देश देने का विवेकाधिकार प्राप्त है, जिसमें प्रश्नों की प्रकृति और पूछताछ के तरीके का निर्धारण करना शामिल है। इस दृष्टिकोण को अपनाने में, इस न्यायालय ने बिहार राज्य बनाम पीपी शर्मा और दुखीश्याम बेनुपानी बनाम अरुण कुमार बाजोरिया मामले में अपने पहले के फैसलों पर भरोसा किया, जिसमें यह माना गया था कि जांच एजेंसी जांच के दौरान "स्थल, समय, प्रश्न और इस तरह के प्रश्न पूछने का तरीका" तय करने की हकदार है।

48, सीबीआई बनाम नियमवेदी में: (1995) 3 एससी 601, माननीय न्यायमूर्ति सुजाता वी मनोहर ने इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों वाली पीठ की ओर से कहा था कि उच्च न्यायालय को :

"4...सीबीआई द्वारा जिस तरह से जांच की जा रही थी, उस पर कोई भी टिप्पणी करने से परहेज करना चाहिए, इस तथ्य को देखते हुए कि जांच अभी पूरी नहीं हुई है।"

इस न्यायालय ने पाया कि:

"4...कोई भी टिप्पणी जो जांच में हस्तक्षेप के समान हो, नहीं की जानी चाहिए। आमतौर पर अदालत को जांच के समय से पहले हस्तक्षेप करने से बचना चाहिए क्योंकि इससे जांच पटरी से उतर सकती है और जांच हतोत्साहित हो सकती है। हाल ही में, जांच में हस्तक्षेप करने की प्रवृत्ति बढ़ रही है और अदालतों को इसके संभावित परिणामों से सावधान रहना चाहिए।"

इस न्यायालय ने यह स्थिति अपनाई कि अदालतों को जांच एजेंसियों को निष्पक्ष, पारदर्शी और उचित जांच करने में अपेक्षित स्वतंत्रता और सुरक्षा प्रदान करने के लिए चल रही जांच पर टिप्पणी करने से बचना चाहिए।"

12. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने बिमल गुरुंग और अन्य बनाम भारत संघ (यूओआई)

और अन्य: (2018) 15 एससीसी 480 के मामले में शीर्ष अदालत के फैसले पर भरोसा जताया है। उक्त निर्णय के पैराग्राफ 29 और 53 में, शीर्ष न्यायालय ने इस प्रकार अवलोकन किया है: -

29. कानून इस प्रकार अच्छी तरह से तय है कि किसी जांच को अन्य जांच एजेंसी को स्थानांतरित करने की शक्ति का प्रयोग दुर्लभ और असाधारण मामलों में किया जाना चाहिए जहां अदालत जनता में विश्वास पैदा करने के लिए और पक्षों के बीच न्याय करने के लिए ऐसा आवश्यक समझती है, या जहां राज्य पुलिस की जांच में विश्वसनीयता की कमी है। ऐसी शक्ति का प्रयोग दुर्लभ और असाधारण मामलों में किया जाना चाहिए। के.वी. राजेंद्रन बनाम पुलिस अधीक्षक, (2013) 12 एससीसी 480 में, इस न्यायालय ने कुछ परिस्थितियों पर ध्यान दिया है जहां न्यायालय राज्य पुलिस से सीबीआई को जांच स्थानांतरित करने के लिए अपनी संवैधानिक शक्ति का प्रयोग कर सकता है जैसे: (i) जहां राज्य प्राधिकरण के उच्च अधिकारी शामिल है, या (ii) जहां आरोप स्वयं जांच एजेंसी के शीर्ष अधिकारियों के खिलाफ है, जिससे उन्हें जांच को प्रभावित करने की अधिकार मिलता है, या (iii) जहां जांच प्रथम दृष्टया दूषित/पक्षपातपूर्ण पाई जाती है।

53. अधिकांश मामले जो पार्टियों द्वारा हमारे सामने उद्धृत किए गए थे, वे ऐसे मामले हैं जहां इस न्यायालय ने पीड़ितों के अनुरोध पर जांच को स्थानांतरित करने में अनुच्छेद 32 के तहत क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया था। एक पीड़ित के लिए किसी मामले की जांच बहुत मायने रखती है। ऐसी स्थिति में, उचित जांच नहीं की जाती है और प्रासंगिक साक्ष्य जो उचित देखभाल और सावधानी से एकत्र किए जाने चाहिए थे, एकत्र नहीं किए जाते हैं, तो पीड़ित को ऐसी दोषपूर्ण जांच पर न्याय नहीं मिलेगा। दोषपूर्ण जांच के मामले में, जहां एक आरोपी को गलत तरीके से फंसाया गया है, उसे आगे की जांच के लिए कानून की अदालत के समक्ष सभी उपायों की तलाश करने का अधिकार है और कानून की अदालत सभी सबूतों को इकट्ठा करने में सक्षम है और अभिलेखीय सबूतों से सच्चाई को समझने में सक्षम है। यद्यपि एक सिद्धांत के रूप में, किसी आरोपी पर जांच के हस्तांतरण के लिए अदालत में जाने की कोई बाध्यता नहीं है, लेकिन जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, इस मामले के तथ्यों पर, हम इसे एक उपयुक्त मामला नहीं मानते हैं, जहां यह न्यायालय अनुच्छेद 32 के तहत सामूहिक मामलों को एक स्वतंत्र एजेंसी को हस्तांतरित करने का क्षेत्राधिकार का प्रयोग कर सकती है। वर्तमान मामले को राज्य प्राधिकरण द्वारा किसी व्यक्ति के उत्पीड़न का मामला नहीं कहा जा सकता है।"

13. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने भी ओमवीर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य: 2008 (5) एडीजे 698 (डीबी), के मामले में इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है। उक्त निर्णय के पैराग्राफ 13 और 15 इस प्रकार हैं: -

"13. आरोपी चरण सिंह की पत्नी द्वारा दायर आवेदन के अवलोकन से कोई ठोस कारण नहीं पता चलता है जिसके आधार पर आगे जांच की आवश्यकता थी। उनके आवेदन में केवल पूर्व घटना और दुश्मनी का उल्लेख किया गया है। राज्य सरकार कैसे और किन कारणों से इस निष्कर्ष पर पहुंची कि आगे की जांच की

आवश्यकता है, यह आक्षेपित आदेश से उत्पन्न नहीं हुआ है। राज्य सरकार द्वारा हत्या के आरोप में फरार आरोपी की पत्नी को जांच के मामले में अपनी बात कहने की छूट देने के लिए कोई कारण नहीं बताया गया है। हमारी राय में, आक्षेपित आदेश बाहरी विचार-विमर्श और राजनीतिक दबाव के तहत पारित किया गया लगता है। विद्वान एजीए भी कोई कारण बताने में विफल रहे है कि एसआईएस या किसी अन्य एजेंसी द्वारा जांच एक अनिवार्य आवश्यकता क्यों थी। राज्य सरकार को हत्या के आरोप के आरोपी को फरार रहने और उसे न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के अधीन रखने की लंबी छूट देने से परहेज नहीं किया गया। चूँकि आरोप पत्र पहले ही प्रस्तुत किया जा चुका है और अभियुक्तों ने ना तो कभी भी जाँच में भाग लिया और ना सुनो आई.ओ. के समक्ष अपना पक्ष रखा। हम यह समझने में असफल हैं कि राज्य सरकार ने उन्हें इस मामले में अपनी बात कहने की इजाजत क्यों दी है, जबकि उन फरार आरोपियों के मन में कानून के प्रति बहुत कम सम्मान है।

15. ऐसी दृष्टि से, हमारा मानना है कि राज्य सरकार द्वारा अपर्याप्त विचार और एस.एस.पी. के अनुवर्ती आदेश के कारण आक्षेपित आदेश पारित किया गया है। और इसलिए, हम अपराध संख्या 302/2007, धारा 302, 307 आईपीसी के तहत एसएसपी गौतमबुद्ध नगर द्वारा पारित आदेश दिनांक 27.3.2008 और राज्य सरकार द्वारा दिनांक 26.3.2008 के आदेश को भी रद्द करते हैं। हम संबंधित अदालत को आरोपी व्यक्तियों की उपस्थिति सुनिश्चित करने के बाद मामले को तुरंत आगे बढ़ाने का निर्देश देते हैं। आरोपी व्यक्तियों को आरोप तय करने के उचित चरण में मुकदमे में अपनी शिकायत उठाने का पूरा अधिकार होगा।"

14. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कुमारी आयशा बनाम यूपी राज्य और अन्य: 2018(1) एडीजे 85 (डीबी) के मामले में इस न्यायालय के एक निर्णय पर भी भरोसा किया है। उक्त निर्णय का पैराग्राफ 10 इस प्रकार है:-

*"10. ऊपर संदर्भित माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर विचार करने पर हम पाते हैं कि सचिव, गृह विभाग, यूपी सरकार, लखनऊ द्वारा पारित आदेश दिनांक 18.5.2016, आरोपियों में से एक वकील अहमद की पत्नी के आदेश पर पारित किया गया है। मामले को सी.बी.सी.आई.डी. को स्थानांतरित करने के दिनांक 18.5.2016 के आदेश से स्पष्ट होने वाला एकमात्र आधार कुछ आरोपी व्यक्तियों के संबंध में आवेदक श्रीमती सफिया द्वारा उठाई गई एलिबी की दलील प्रतीत होता है। आदेश दिनांक **18.5.2016** में स्थानीय पुलिस से सी.बी.सी.एल.डी. को जांच स्थानांतरित करने के लिए आवश्यक किसी भी शर्त की पूर्ति के संबंध में संतुष्टि दर्ज नहीं की गई है, जैसा कि जी.ओ. दिनांक 05.09.1995 द्वारा प्रदान किया गया है। इसके अलावा, वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, मुजफ्फर नगर द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट दिनांक 30.03.2016 में उपर्युक्त वाद अपराध संख्या को सी.बी.सी.आई.डी. को स्थानांतरित करने की अनुशंसा नहीं करती हैं। इस प्रकार, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता हमारे सामने यह तर्क देने में सही हैं कि प्रतिवादी क्रमांक 1 द्वारा पारित आदेश दिनांक 18.05.2016 रिपोर्ट दिनांक 18.05.2016 के अनुसरण में नहीं है तथा दिनांक*

22.10.2014 के जी.ओ. का उल्लंघन है और वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, मुजफ्फरनगर द्वारा प्रस्तुत दिनांक 30.03.2016 की रिपोर्ट के विपरीत है।"

15. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने श्रीमती वंदना श्रीवास्तव बनाम यूपी राज्य और 4 अन्य: 2014 (7) एडीजे 679 (डीबी) में पारित इस न्यायालय के एक निर्णय पर भी भरोसा जताया है। उपरोक्त निर्णय का प्रासंगिक भाग इस प्रकार है:-

"हम केवल यह दर्ज कर सकते हैं कि विद्वान सरकारी अधिवक्ता और अदालत में मौजूद विद्वान एजीए की बैटरी से विशिष्ट प्रश्न पूछे जाने के बावजूद, कोई भी न्यायालय को सूचित नही कर सका कि स्थानांतरण की शक्ति के प्रयोग के मामले में सरकार के कौन से आदेश लागू होते हैं। इस न्यायालय में जो उल्लेख किया गया है वह केवल अपर पुलिस महानिदेशक (अपराध एवं कानून व्यवस्था, उ.प्र.) का 12 दिसंबर 2012 का एक पत्र है। हम यह समझने में असफल हैं कि अतिरिक्त पुलिस महानिदेशक का एक पत्र कैसे राज्य सरकार के विवेकाधिकार पर नियंत्रण रख सकता है जबकि वह एक अधीनस्थ अधिकारी है ।

लेकिन हमने पाया कि उक्त परिपत्र के तहत, जांच के हस्तांतरण के मामले में दिशानिर्देश निर्धारित किए गए हैं और इसमें विशेष रूप से विभिन्न खंड प्रदान किए गए हैं कि सामान्य परिस्थितियों में किसी आरोपी के आवेदन पर स्थानांतरण का कोई आदेश नहीं दिया जाना चाहिए। जांच को निष्पक्ष एवं परिश्रमपूर्वक गुण-दोष के आधार पर पूरा करने का हरसंभव प्रयास किया जाना चाहिए। <u>यह बात फिर दोहराई गई है कि आम तौर पर आरोपी के कहने पर कोई भी स्थानांतरण प्रभावित नहीं किया जा सकता। परिपत्र के पैराग्राफ 5 में यह उल्लेख किया गया है कि यदि विशेष परिस्थितियों में जांच को स्थानांतरित करना आवश्यक है, तो ऐसे स्थानांतरण के लिए मौजूदा शर्तों का विशेष रूप से आदेश में ही उल्लेख किया जाना चाहिए और उच्च अधिकारियों/राज्य आदि को सूचना दी जानी चाहिए।</u>

हमारी राय है कि उच्च पुलिस अधिकारियों द्वारा जांच के हस्तांतरण के मामले में जो लागू होता है वह राज्य सरकार द्वारा स्थानांतरण के लिए विवेक के प्रयोग के मामले में पूरी ताकत से लागू होता है। इतना ही नहीं, यह स्वयं राज्य का मामला है कि जांच को राज्य सरकार के पक्ष में और साथ ही उच्च पुलिस अधिकारियों के पक्ष में स्थानांतरित करने की शक्ति दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 36 से आती है, जिसे पुलिस अधिनियम, 1961 की धारा 3 के साथ पढ़ा जाता है।

हमें यह बताते हुए बहुत दुख हो रहा है कि राज्य जांच के हस्तांतरण के संबंध में विवेक के प्रयोग के मामले में किसी भी दिशानिर्देश का पालन नहीं करेगा और मनमाने ढंग से कार्य करना जारी रखेगा। इस न्यायालय को हर दिन ऐसी याचिकाओं का सामना करना पड़ रहा है जहां जांच के स्थानांतरण के आदेशों को न केवल गुणदोष के आधार पर बल्कि इस आधार पर भी चुनौती दी जा रही है कि उनमें कोई कारण नहीं है।

<u>इस प्रथा को समाप्त किया जाना चाहिए। जांच के स्थानांतरण के इस प्रकार के आदेशों से इस</u>

<u>राज्य की आपराधिक न्याय प्रणाली में आम जनता का विश्वास कम होता है। अधिकारी जितने उच्च होंगे, उतनी ही ठोस आधार पर और संयमित ढंग से स्थानांतरण की शक्ति का प्रयोग करने की जिम्मेदारी अधिक होगी। जांच के हस्तांतरण की शक्ति को किसी न किसी बहाने से जांच को लम्बा खींचने के लिए आरोपी या मामले में शामिल अन्य लोगों के हाथों में एक उपकरण नहीं बनाया जा सकता है।</u>

हम उच्च पुलिस अधिकारियों या राज्य सरकार द्वारा जांच के हस्तांतरण के मामले में निम्नलिखित निर्देश जारी करना उचित और तर्कसंगत मानते हैं:

(ए) आम तौर पर किसी आरोपी द्वारा किए गए आवेदन पर जांच के हस्तांतरण का कोई आदेश नहीं होना चाहिए।

(बी) जांच के हस्तांतरण के लिए आवेदन प्राप्त होने पर उच्च पुलिस अधिकारियों/राज्य द्वारा हर संभव प्रयास किया जाना चाहिए ताकि पहले यह सुनिश्चित किया जा सके कि जांच संबंधित पुलिस स्टेशन/संबंधित पुलिस प्राधिकरण द्वारा निष्पक्ष और परिश्रमपूर्वक की गई है।

(सी) जांच के हस्तांतरण के लिए किसी आवेदन पर कोई आदेश पारित करने से पहले, राज्य सरकार या उच्च पुलिस अधिकारियों से न्यूनतम अपेक्षा यह है कि जांच अधिकारी से जांच की स्थिति और उच्च न्यायालय के आदेश के बारे में एक रिपोर्ट, यदि प्रकरण अपराध संख्या के संबंध में कोई हो, प्राप्त की जाए ।

(डी) यदि किसी आरोपी के आवेदन पर जांच के हस्तांतरण का आदेश पारित करना नितांत आवश्यक है, तो न्यूनतम आवश्यक यह होगा कि जांच को स्थानांतरित करने वाले प्राधिकारी के पास उपलब्ध सामग्री के संदर्भ में आदेश को ठोस कारणों से समर्थित किया जाना चाहिए।

(ई) यदि आवश्यक और अनुमन्य हो, तो स्थानांतरण के ऐसे किसी भी आदेश को करने से पहले सूचना देने वाले/शिकायतकर्ता को एक अवसर भी दिया जाना चाहिए।"

16. इसके विपरीत, प्रतिवादी संख्या 10 के विद्वान अधिवक्ता का तर्क यह है कि उनका चयन 24.03.2021 को खंड शिक्षा अधिकारी के पद पर किया गया था और 29.06.2021 को ब्लॉक सल्टौवा में तैनात किया गया था और 26.08.2021 को जिस समय स्कूल का निरीक्षण किया गया था उस समय याचिकाकर्ता अनुपस्थित था और जब 01.09.2021 को स्कूल का दोबारा निरीक्षण किया गया, तो याचिकाकर्ता उस तिथि पर भी अनुपस्थित था। आगे यह भी तर्क दिया गया कि दिनांक 08.09.2021 को मामला बी.एस.ए. को भेजा गया था एवं ट्रैप के दिन कोई भी प्रकरण प्रतिवादी संख्या 10 के समक्ष लम्बित नहीं था। प्रतिवादी संख्या 10 के विद्वान अधिवक्ता ने मोहन लाल बनाम पंजाब राज्य एआईआर 2018 एससी 3853 के मामले में शीर्ष न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है, जिसमे पैराग्राफ 11 और 12 को विशिष्ट संदर्भ के साथ लिया गया है। तत्काल संदर्भ के लिए, उक्त निर्णय के पैराग्राफ 11 और 12 को नीचे उद्धृत किया जा रहा है: -

"11. यदि एनडीपीएस मामले में जांच निष्पक्ष नहीं होती है या इसकी निष्पक्षता के बारे में गंभीर

सवाल उठते हैं, तो संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत एक आरोपी के लिए निष्पक्ष सुनवाई की संवैधानिक गारंटी, एक खोखला वादा होगा। सबूत के विपरीत बोझ की प्रकृति में अभियोजन पक्ष पर यह प्रदर्शित करने का दायित्व होगा कि जांच निष्पक्ष, विवेकपूर्ण थी और ऐसी कोई भी परिस्थिति नहीं थी जो इसकी सत्यता के बारे में संदेह पैदा कर सके। उचित संदेह से परे सबूत का दायित्व अपने दायरे में निष्पक्ष जांच को ले लेगा, जिसके अभाव में कोई निष्पक्ष सुनवाई नहीं हो सकती। यदि जांच ही अनुचित है, तो आरोपी से पूर्वाग्रह प्रदर्शित करने की अपेक्षा करना पुलिस में मनमानी शक्तियां निहित करने के खतरे से भरा होगा, जिससे गलत निहितार्थ जैसे परिणाम भुगतने पड़ सकते हैं । ऐसे मामले में जांच तब एक खोखली औपचारिकता और तमाशा बनकर रह जाएगी। इसलिए स्वाभाविक रूप से ऐसी व्याख्या से बचना होगा।

12. किसी आपराधिक आरोप में जांच आपत्तिजनक विशेषताओं या कमजोरियों से मुक्त होनी चाहिए जो वैध रूप से आरोपी की ओर से शिकायत का कारण बन सकती है, बाबूभाई बनाम गुजरात राज्य, (2010) 12 एससीसी 254 में इस प्रकार निर्धारित किया गया था:

"32. किसी आपराधिक आरोप की जांच आपत्तिजनक विशेषताओं या कमजोरियों से मुक्त होनी चाहिए, जिससे आरोपी की ओर से वैध रूप से शिकायत हो सकती है कि जांच अनुचित थी और एक गुप्त उद्देश्य के साथ की गई थी। यह जांच अधिकारी का कर्तव्य भी है कि किसी भी आरोपी को किसी भी प्रकार की शरारत और उत्पीड़न से बचाते हुए जांच करनी चाहिए। जांच अधिकारी को निष्पक्ष और जागरूक होना चाहिए ताकि सबूतों के निर्माण की किसी भी संभावना को खारिज किया जा सके और उसके निष्पक्ष आचरण से इसकी वास्तविकता के बारे में किसी भी संदेह को दूर किया जाना चाहिए। जांच अधिकारी का काम "केवल ऐसे सबूतों के साथ अभियोजन मामले को मजबूत करना नहीं है जो अदालत को दोषसिद्धि दर्ज करने में सक्षम बना सके, बल्कि वास्तविक सच्चाई को सामने लाना है।"

33. बिहार राज्य बनाम पी.पी. शर्मा (एआईआर 1991 एससी 1261) के मामले में इस न्यायालय ने निम्नानुसार व्यवस्था दी है:

"57... जांच एक नाजुक श्रमसाध्य और निपुण प्रक्रिया है। जांच की व्यावसायिकता के लिए नैतिक आचरण बिल्कुल आवश्यक है। इसलिए, दुर्भावना या पूर्वाग्रह के ऐसे आरोपों को स्वीकार करने से पहले यह न केवल आग्रह है बल्कि अदालत का एक कठिन कर्तव्य और जिम्मेदारी है कि जांच की शुरुआत में जांच अधिकारी के खिलाफ व्यक्तिगत दुश्मनी के विशिष्ट और निश्चित आरोप लगाने से पहले, उन्हें अदालत की संतुष्टि के लिए तथ्यों और परिस्थितियों से स्थापित करने और साबित करने पर भी जोर देना चाहिए।

59. बिना किसी उचित कारण या बहाने के या वैधानिक शक्ति के प्रयोग के उद्देश्य से उचित संबंध के बिना जानबूझकर गलत कार्य करने से कानून में द्वेष का अनुमान लगाया जा सकता है....

61. एक जांच अधिकारी जो संवैधानिक आदेशों के प्रति संवेदनशील नहीं है, वह दुर्भावना से प्रेरित

होकर किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता को रौंद सकता है।"

17. प्रतिवादी क्रमांक 10 के विद्वान अधिवक्ता ने ए.वी. बेलार्मिन बनाम. श्री वी. संतकुमारन नायर 2013 के क्रिमिनल ओपी (एमडी) नंबर 12212 और एम.पी. (एमडी) संख्या 1 और 2/2013, 13.08.2015 को निर्णीत, के मामले में मद्रास उच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा जताया है जिसमे पैराग्राफ संख्या 14 इस प्रकार है:-

"14. किसी राज्य और उसके अधिकारियों की कार्यप्रणाली को कानून के शासन के अनुरूप होना चाहिए जिससे कार्रवाई में निष्पक्षता आए। यह अच्छी तरह से स्थापित किया गया है कि निष्पक्षता भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 का एक पहलू है। कार्रवाई में ऐसी निष्पक्षता आपराधिक जांच में भी पालन किए जाना अनिवार्य है। निष्पक्ष जांच का अधिकार न केवल एक संवैधानिक अधिकार है, बल्कि एक प्राकृतिक अधिकार भी है। सत्यवानी पोनरानी बनाम सैमुअल राज, 2010 (4) सीटीसी 833 में, निष्पक्ष जांच से निपटने के दौरान, इस न्यायालय ने माना है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 14, 21 और 39 के तहत यह अनिवार्य है। निम्नलिखित पैराग्राफ उपयुक्त होंगे:

6.स्वतंत्र और निष्पक्ष जांच और परीक्षण भारत के संविधान के अनुच्छेद 14, 21 और 39-ए में निहित है। यह सुनिश्चित करना राज्य का कर्तव्य है कि देश के प्रत्येक नागरिक की स्वतंत्र और निष्पक्ष जांच और सुनवाई हो। प्रस्तावना और संविधान बाध्यकारी हैं और वैकल्पिक नहीं, न्याय के रूप में स्वतंत्र पहुंच समानता के मूल अधिकार का अभिन्न अंग है, जिसे हमारे संविधान की बुनियादी विशेषता माना जाता है। इसलिए ऐसा अधिकार संवैधानिक अधिकार के साथ-साथ मौलिक अधिकार भी है। ऐसा अधिकार केवल आरोपी तक ही सीमित नहीं हो सकता बल्कि मामले के तथ्यों के आधार पर पीड़ित को भी दिया जा सकता है। इसलिए ऐसा अधिकार न केवल संवैधानिक अधिकार है बल्कि मानव अधिकार भी है। कोई भी प्रक्रिया जो निष्पक्ष सुनवाई में किसी पक्ष के रास्ते में आती है वह संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन होगी।

67.जहिरा हबीबुल्ला एच शेख बनाम गुजरात राज्य [(2004) 4 एससीसी 158] में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की है:

"36. कानून के शासन के सिद्धांत और उचित प्रक्रिया मानवाधिकार संरक्षण के साथ निकटता से जुड़े हुए हैं। ऐसे अधिकारों को प्रभावी ढंग से संरक्षित किया जा सकता है जब एक नागरिक को कानून की अदालतों का सहारा लेना पड़ता है। यह स्पष्ट रूप से समझा जाना चाहिए कि एक परीक्षण जिसका मुख्य उद्देश्य सत्य का पता लगाना हो, उसके लिए सभी संबंधित पक्षों के प्रति निष्पक्ष होना होगा। निष्पक्ष सुनवाई की अवधारणा की कोई विश्लेषणात्मक, सर्व-व्यापक या विस्तृत परिभाषा नहीं हो सकती है, और इसे अंतिम उद्देश्य के साथ वास्तविक स्थितियों की अनंत विविधता में निर्धारित करना पड़ सकता है। इस बात को ध्यान में रखते हुए कि क्या कुछ ऐसा किया गया या कहा गया जो पहले या परीक्षण के दौरान निष्पक्षता की गुणवत्ता को इस हद तक वंचित कर देता है कि न्याय विफल हो

गया है। यह कहना सही नहीं होगा कि केवल अभियुक्त से ही निष्पक्ष रूप से निपटना चाहिए। यह बड़े पैमाने पर समाज और पीड़ितों या उनके परिवार के सदस्यों और रिश्तेदारों की जरूरतों पर नेल्सन की नजर डालने जैसा होगा। प्रत्येक व्यक्ति को आपराधिक मुकदमे में उचित तरीके से निपटने का अंतर्निहित अधिकार है। निष्पक्ष सुनवाई से इनकार करना जितना आरोपी के साथ अन्याय है, उतना ही पीड़ित और समाज के साथ भी। निष्पक्ष सुनवाई का मतलब स्पष्ट रूप से एक निष्पक्ष न्यायाधीश के समक्ष, एक न्याय पूर्ण अभियोजक के साथ और न्यायिक शांति के माहौल में सुनवाई होगी। निष्पक्ष सुनवाई का मतलब एक ऐसी सुनवाई है जिसमें अभियुक्तों, गवाहों या जिस कारण पर मुकदमा चलाया जा रहा है उसके लिए या उसके खिलाफ पूर्वाग्रह समाप्त हो जाता है। यदि गवाहों को धमकाया जाता है या झूठे साक्ष्य देने के लिए मजबूर किया जाता है तो इससे भी निष्पक्ष सुनवाई नहीं होगी। महत्वपूर्ण गवाहों को सुनने में विफलता निश्चित रूप से निष्पक्ष सुनवाई से इनकार है।"

18. प्रतिवादी संख्या 10 के विद्वान अधिवक्ता ने निर्मल सिंह काहलों बनाम पंजाब राज्य और अन्य: (2009) 1 एससीसी 441 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है। उपरोक्त निर्णय का पैराग्राफ 28 इस प्रकार है: -

"एक आरोपी निष्पक्ष जांच का हकदार है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत एक आरोपी के मौलिक अधिकार के संरक्षण के लिए निष्पक्ष जांच और निष्पक्ष सुनवाई सहवर्ती है। लेकिन राज्य का एक बड़ा दायित्व है, यानी कानून व्यवस्था, सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखना और समाज में शांति और सद्भाव का संरक्षण करना। इस प्रकार, अपराध का शिकार व्यक्ति भी निष्पक्ष जांच का समान रूप से हकदार है। जब राज्य के एक पूर्व मंत्री के खिलाफ गंभीर आरोप लगाए गए थे, तो राजनीतिक प्रतिशोध के मामलों को छोड़कर, जो द्वेष की श्रेणी में आते हैं, यह राज्य का काम है कि वह मामले की जांच के लिए किसी न किसी एजेंसी को जिम्मेदारी सौंपे।"

19. प्रतिवादी संख्या 10 के विद्वान अधिवक्ता ने आगे उन्हीं प्राधिकारियों पर भरोसा किया है जिन पर याचिकाकर्ता पक्ष ने भरोसा किया है, यानि, वंदना श्रीवास्तव (उपरोक्त), किमी आयशा (उपरोक्त), ओमवीर (उपरोक्त), बिमल गुरुंग (उपरोक्त)।

20. संक्षेप में प्रतिवादी संख्या 10 के विद्वान अधिवक्ता का तर्क यह है कि निष्पक्ष जांच के साथ-साथ निष्पक्ष सुनवाई आरोपी का मौलिक अधिकार है और इसलिए, यह जांच एजेंसी के साथ-साथ अदालतों का भी कर्तव्य है कि यह सुनिश्चित करें कि कानून का पालन करते हुए जांच निष्पक्ष और न्यायपूर्ण तरीके से की जाए।

21. दूसरी ओर, विद्वान एजीए का मानना है कि जब वर्तमान रिट याचिका दायर की गई थी तब जांच पहले ही अपने निष्कर्ष पर थी और इस न्यायालय द्वारा 04.01.2023 को पारित अंतरिम आदेश के कारण, किसी भी तरह से आगे की कार्यवाही नहीं की जा सकी। उन्होंने जांच के रिकॉर्ड का हिस्सा होने के नाते अदालत के अवलोकन के लिए दिनांक 04.01.2023 का परचा नंबर 14 भी रखा है, जिसमें कहा गया है कि जांच के दौरान अधिकांश सबूत और बयान पहले ही एकत्र/रिकॉर्ड किए जा चुके हैं।

22. बहस के दौरान, मंज़ूरी के पहलू के संबंध में एक विवाद उत्पन्न हुआ। यह कि याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क यह है कि क़ानून के तहत अपेक्षित मंज़ूरी प्राप्त करने के लिए कागजात पहले ही राज्य सरकार को भेजे जा चुके हैं, जैसा कि रिट याचिका के अनुबंध संख्या 6 से पता चलता है, वहीं दूसरी ओर, प्रतिवादी संख्या 10 के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि राज्य सरकार के पास ऐसा कोई रिकॉर्ड उपलब्ध नहीं है और इसलिए, मंज़ूरी के संबंध में दिया गया तर्क भ्रामक है।

23. उभयपक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद और रिकॉर्ड का अध्ययन करने और बार में उद्धृत प्राधिकारियों में निर्धारित मत की सावधानीपूर्वक जांच करने पर, हम पाते हैं कि सतर्कता विभाग के गोरखपुर सेक्टर से लखनऊ सेक्टर में जांच स्थानांतरित करने का दिनांक 17.05.2022 का आदेश जहां एक तरफ मंत्रियों के पत्रों पर आधारित है तो दूसरी तरफ वह आरोपी (प्रतिवादी संख्या 10) के प्रस्तुतिकरण पर भी आधारित है। आक्षेपित आदेश जांच को स्थानांतरित करने के लिए किसी अन्य ठोस या वैध कारण का खुलासा नहीं करता है। श्री अवनीश कुमार अवस्थी के हलफनामे के अवलोकन से भी, इस न्यायालय ने पाया कि राज्य-प्राधिकरणों ने यह स्वीकार कर लिया है कि दिनांक 17.05.2022 और 02.06.2022 के आदेश प्रतिवादी संख्या 10 (श्री मनोज कुमार सिंह) द्वारा प्रस्तुत अभ्यावेदन पर विचार करने के बाद पारित किए गए हैं। श्री अवस्थी के हलफनामे में आगे कहा गया कि उक्त दोनों आदेशों में स्थानांतरण के कारणों का उल्लेख किया गया है, जो कि लागू आदेशों से परिलक्षित नहीं होता है क्योंकि राजनीतिक हस्तक्षेप और प्रतिवादी संख्या 10 के प्रस्तुतिकरण के अलावा कोई अन्य कारण उक्त दोनों आदेशों में उल्लेखित नहीं किया गया है।

24. इसलिए, हम याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के तर्कों में तथ्य पाते हैं कि सुप्रीम कोर्ट के साथ-साथ इस न्यायालय द्वारा इस आशय के कानून का उल्लंघन किया गया है कि आम तौर पर जांच को आरोपी व्यक्ति के आदेश पर स्थानांतरित नहीं किया जा सकता है। वर्तमान मामला और, अन्यथा भी, जांच को एक एजेंसी से दूसरी एजेंसी में स्थानांतरित करने के मामले में राजनीतिक हस्तक्षेप दिनांक 17.05.2022 के आदेश को पढ़ने से भी स्पष्ट है। दिनांक 17.05.2022 के आदेश में प्रकट किए गए कारणों को छोड़कर, इस न्यायालय को कोई स्पष्ट कारण या आधार नहीं मिला जो जांच के हस्तांतरण को उचित ठहरा सके। इसके अलावा मामला असाधारण या दुर्लभ प्रकृति का नहीं है जिसमें जांच के स्थानांतरण को उचित कहा जा सके।

25. मामले के उपरोक्त सभी तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, हम पाते हैं कि दिनांक 17.05.2022 का आदेश राजनीतिक हस्तक्षेप पर आधारित है और अभियुक्त (प्रतिवादी संख्या 10) के आदेश पर पारित किया गया है और इसके लिए किसी भी वैध या ठोस तर्क को कायम नहीं रखा जा सकता, इसलिए उसे खारिज किया जाता है। इसी प्रकार दिनांक 02.06.2022 का परिणामी आदेश भी बरकरार नहीं रखा जा सकता है और रद्द किया जाता है।

26. तद्नुसार, रिट याचिका **स्वीकार** की जाती है। आक्षेपित आदेश दिनांक 17.05.2022 के साथ-

साथ परिणामी आदेश दिनांक 02.06.2022 जिससे यूपी के गोरखपुर सेक्टर(सतर्कता अधिष्ठान) से वाद अपराध संख्या 5/2022 की जांच लखनऊ सेक्टर (सतर्कता प्रतिष्ठान) को स्थानांतरित कर दी गई थी, को उत्प्रेषण की रिट जारी करके रद्द कर दिया जाता है।

27. इस स्तर पर, याचिकाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता प्रार्थना संख्या (बी) पर जोर देते हैं, जो भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 19 के तहत उचित आदेश पारित करने के लिए प्रतिवादी संख्या 4 को अभियोजन की मंजूरी निर्देश जारी करने के संबंध में है। हम पाते हैं कि इस स्तर पर प्रार्थना (बी), जैसा कि दावा किया गया है, मंजूर नहीं की जा सकती, क्योंकि एक बार दिनांक 17.05.2022 और 02.06.2022 के आदेशों को रद्द कर दिया जाता है, तो आगे के परिणाम निश्चित रूप से कानून के अनुसार होंगे और इसलिए भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 19 के संबंध में की गई प्रार्थना के संबंध में, सक्षम प्राधिकारी को इस आदेश की प्रमाणित प्रति उक्त प्राधिकारी के समक्ष प्रस्तुत करने की तारीख से **तीन महीने** की अवधि के भीतर इस संबंध में अंतिम निर्णय लेना होगा।

(2023) 3 ILRA 1022

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 18.10.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिड़ला

माननीय न्यायमूर्ति राहुल चतुर्वेदी

क्रिमिनल मिस्लेनियस रिट याचिका सं. 15459 सन् 2022

रवि कुमार ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ...प्रत्यर्थी

याचिकाकर्ता की ओर से अधिवक्ता: व्यक्तिगत रूप से

प्रत्यर्थी की ओर से अधिवक्ता: जी.ए.

अपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 15459/2022

(ए) आपराधिक कानून - भारत का संविधान - अनुच्छेद 19 - स्वतंत्रता का अधिकार - स्वतंत्र अभिव्यक्ति की आज़ादी को किसी भी संस्था, खासकर न्यायपालिका के विरुद्ध बेबुनियाद आरोप लगाने के लाइसेंस के साथ भ्रमित नहीं किया जाना चाहिए - स्वतंत्रता कभी भी पूर्ण नहीं होती क्योंकि संविधान के निर्माताओं ने इसके ऊपर कुछ पाबंदियाँ लगाई हैं - विशेषकर जब इस स्वतंत्रता का दुरुपयोग किया जाता है और इसका प्रभाव संस्था को पूरी तरह से बदनाम करना होता है और उन व्यक्तियों पर, जो उस संस्था का हिस्सा होते हैं और जो सार्वजनिक रूप से अपने आपको बचा नहीं सकते, इसे कानून में अनुमति नहीं दी जा सकती - वकीलों और वादियों को न्यायाधीशों को 'डराना' या 'धमकाना' नहीं दिया जा सकता ताकि वे अपने मनचाहे आदेश हासिल कर सकें। (पैराग्राफ - 18,19,20)

याचिकाकर्ता ने अध्यक्ष अधिकारी के विरुद्ध हर तरह के निराधार आरोप और संदिग्ध बातें कीं - संबंधित न्यायिक अधिकारी के विरुद्ध जांच प्रारंभ करने की मांग की - अस्पष्ट और बेजोड़ - इसे सिद्ध करने के लिए बिल्कुल कोई सामग्री नहीं - याचिकाकर्ता द्वारा बनाई गई आशंकाएँ - इस तरह की अत्यधिक संवेदनशीलता कोई वैध

आधार नहीं बनाती - अभिलेख पर अध्यक्ष अधिकारी और सूचना देने वाले, याचिकाकर्ता के प्रतिद्वंद्वी के मध्य कोई संबंध स्थापित करने के लिए कुछ नहीं है। (पैराग्राफ - 17,25)

निर्णय:- भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत असाधारण अधिकार का प्रयोग करने के लिए यह वाद योग्य नहीं है। याचिका ने अध्यक्ष अधिकारी के विरुद्ध निराधार आशंकाओं के आधार पर निराधार आरोप लगाते हुए दायर की, और याचिकाकर्ता ने गलत वाद योजित करके न्यायालय का कीमती समय बर्बाद किया। (पैराग्राफ - 26)

याचिका लागत के साथ स्वीकार की जाती है। (ई-7)

<u>**उद्धृत वाद सूची:**</u>

1. प्रांत बंबई बनाम खुशालदास, AIR 1950 SC 222
2. टी.सी. बसप्पा बनाम टी. नागप्पा, AIR 1954 SC 440
3. हरि विष्णु कामत बनाम अहमद इशाक, AIR 1955 SC 233
4. एशियन रिसरफेसिंग ऑफ रोड एजेंसी प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम सी.बी.आई., सीआरएल. अपील संख्या 1375-1376 वर्ष 2010
5. सूओ मोटो अवमानना याचिका (सीआरएल.) संख्या 1 OF 2020 IN RE : प्रशांत भूषण और अन्य
6. न्यायालय अपनी ही पहल पर बनाम कोरम (हिमाचल उच्च न्यायालय, 24 अगस्त, 2018)
6. विश्राम सिंह रघुवंशी बनाम राज्य उत्तर प्रदेश, (2011) 7 SCC 776

माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिड़ला,

माननीय न्यायमूर्ति राहुल चतुर्वेदी,

1. याचिकाकर्ता श्री रवि कुमार जो अपने मामले की पैरवी के लिए व्यक्तिगत रूप से हमारे समक्ष उपस्थित हुए हैं; उ.प्र. राज्य की ओर से विद्वान एजीए को सुना और उपरोक्त रिट याचिका के अभिवचनों और याचिकाकर्ता द्वारा मांगी गई प्रार्थना का परिशीलन किया।

2. शुरुआत में हम प्रत्यर्थी पक्षकारों की संख्या को देखकर आश्चर्यचकित और स्तब्ध रह गए, जिसमें, श्रीमती महिमा जैन, एक सेवारत न्यायिक अधिकारी, जो वर्तमान में सिविल जज (जूनियर डिवीजन)/एफ.टी.सी.-2, गौतमबुद्ध नगर के रूप में तैनात हैं, को प्रत्यर्थी संख्या 2 के रूप में रखा गया है और श्रीमती कुसुमलता दक्ष, बेंच सचिव (पेशकार), जो सिविल जज (जूनियर डिवीजन)/एफ.टी.सी.-2, गौतमबुद्ध नगर की अदालत में संलग्न हैं, को प्रत्यर्थी संख्या 3 के रूप में रखा गया है। यह न्यायालय याचिका के इस प्रकार के ढीले और गैर-जिम्मेदाराना प्रारूपण पर अपना सबसे मजबूत अपवाद दर्ज करता है; जिससे सड़क पर चलने वाला प्रत्येक व्यक्ति (याचिकाकर्ता) न्यायिक अधिकारी की ईमानदारी पर किसी भी प्रकार की तीखी टिप्पणियां करने का अधिकार रखता है। हालाँकि, इस मुद्दे को फैसले के बाद के हिस्से में और अधिक उपयुक्त तरीके से निपटाया जाएगा, लेकिन, इस समय हम इस प्रकार की प्रथाओं के प्रति अपनी गंभीर चिंता दर्ज करते हैं।

3. अब अगले मुद्दे पर आते हैं, जिसमें याचिकाकर्ता श्री रवि कुमार ने स्वयं हिंदी में याचिका का मसौदा तैयार किया है और निम्नलिखित प्रार्थनाएँ की हैं। इस स्तर पर हम यह स्पष्ट कर सकते हैं कि हमें हिंदी में तैयार

की गई रिट याचिका को स्वीकार करने और उस पर विचार करने में कोई झिझक नहीं है, लेकिन इसमें कुछ सार होना चाहिए। याचिकाकर्ता द्वारा मांगी गई प्रार्थनाएं हैं:

“अ - उपर्युक्त याचिका में उत्प्रेषणात्मक प्रकृति का आदेश या निर्देश जारी करते विपक्षी सं० 2 व 3 के विरूद्ध मुकदमा चलाने की अनुमति प्रदान करने की कृपा करें।

ब- उपर्युक्त याचिका में उत्प्रेषणात्मक प्रकृति का आदेश या निर्देश जारी करते हुए विपक्षी सं० 2 व 3 के विरूद्ध विभागीय जांच के आदेश पारित करने की कृपा करें।

स- उपर्युक्त याचिका में तथ्यों एवं परिस्थितियों के आधार पर माननीय न्यायालय उपर्युक्त प्रकृति का आदेश या निर्देश जारी करने की कृपा करें।

द- उपर्युक्त याचिका में याची के हक में सव्यय आदेश या निर्देश जारी करने की कृपा करें।"

4. इस प्रकार, उपरोक्त से यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता ने"उत्प्रेषणात्मक प्रकृति का आदेश" मांगा जिसका अंग्रेजी में अनुवाद किया जाए तो इसका अर्थ है "उत्प्रेषण की रिट" जो प्रत्यर्थी संख्या 2 और 3 के खिलाफ अभियोजन शुरू करने के लिए हमसे मांगी गई थी और दूसरा (ii) प्रत्यर्थी संख्या 2 और 3 के खिलाफ विभागीय जांच शुरू करने के लिए उत्प्रेषण की रिट मांगी गई है।

5. उत्प्रेषण की रिट की प्रकृति और दायरे को समझे बिना, उपरोक्त दो प्रार्थनाएँ याचिकाकर्ता श्री रवि कुमार द्वारा व्यक्तिगत रूप से मांगी गई थीं। उत्प्रेषण रिट ऐसे मामलों में जारी की जा सकती है, "जब भी व्यक्तियों के किसी निकाय के पास विषयों के अधिकारों को प्रभावित करने वाले प्रश्नों का निर्धारण करने का कानूनी अधिकार होता है और न्यायिक रूप से कार्य करने का कर्तव्य होता है, लेकिन उन्होंने अपने कानूनी अधिकार की अधिकता में कार्य किया है।" आवश्यक विशेषताएं और शर्तें जिनके तहत 'उत्प्रेषण रिट' जारी की जा सकती है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा <u>बॉम्बे प्रांत बनाम खुशालदास (एआईआर 1950 एससी 222); टीसी बासप्पा बनाम टी. नागप्पा (एआईआर 1954 एससी 440)</u> और <u>हरि विष्णु कामथ बनाम अहमद इशाक (एआईआर 1955 एससी 233)</u> और अन्य अधिकांश मामलों में बताई गई हैं। उपरोक्त निर्णयों में दिए गए दिशानिर्देशों और याचिकाकर्ता श्री रवि कुमार द्वारा मांगी गई प्रार्थना का आकलन करते हुए, हमें डर है कि हम प्रार्थना को स्वीकार नहीं कर सकते यानी प्रत्यर्थी संख्या 2 और 3 के खिलाफ अभियोजन शुरू नहीं कर सकते, न ही हम उनके खिलाफ अनुशासनात्मक/विभागीय कार्यवाही शुरू करने का अनुतोष दे सकते हैं।

<u>वर्तमान मामले के तथ्य और परिस्थितियाँ:-</u>

6. याचिकाकर्ता श्री रवि कुमार वाद संख्या 191/2018 मुकदमा अपराध संख्या 130/2016 अन्तर्गत धारा 498क, 323, 506, 342, 354 आईपीसी और ¾ डीपी अधिनियम थाना महिला थाना जिला गौतमबुद्धनगर के आरोपपत्र में नामजद अभियुक्त है, जो सिविल जज (एस.डी.)/एफ.टी.सी., गौतमबुद्धनगर के न्यायालय में लंबित है। उपरोक्त याचिकाकर्ता ने अपने अधिवक्ता के माध्यम से, सीआरपीसी की धारा 482 के तहत एक आवेदन संख्या 13544/2018 (श्रीमती सतवीरी और 4 अन्य बनाम उ.प्र. राज्य) दायर किया है जिसमें आरोप पत्र की वैधता के साथ-साथ समन आदेश दिनांक 12.3.2018 को चुनौती दी है। इस न्यायालय की एक पीठ ने 20.4.2018 को मामले को इलाहाबाद

उच्च न्यायालय मध्यस्थता और सुलह केंद्र के समक्ष भेजा ताकि पक्षकारों को मध्यस्थ की सहायता से अपने मतभेदों और कलह को सुलझाने में सक्षम बनाया जा सके। आदेश पारित करते समय, पीठ ने मामले के गुणावगुण पर विचार किए बिना, आरोप की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए मामले को मध्यस्थता के लिए संदर्भित करना उचित समझा और मध्यस्थता केंद्र को मध्यस्थता प्रक्रिया को दो महीने के भीतर समाप्त करने और इसकी रिपोर्ट प्रस्तुत करने का निर्देश दिया। न्यायालय ने वाद संख्या 191/2018 की कार्यवाही पर दो महीने की अवधि के लिए या सुनवाई की अगली तारीख तक रोक भी लगा दी थी। दिनांक 20.4.2018 के आदेश के प्रासंगिक अंश आसान संदर्भ के लिए नीचे उद्धृत किए गए हैं:-

"इस स्तर पर आवेदकों के मामले के गुणावगुण में जाये बिना, चूंकि यह मामला आवेदक संख्या 5 और विरोधी पक्ष संख्या 2, जो पति और पत्नी हैं, के बीच एक वैवाहिक विवाद है, इसलिए यह वांछनीय है कि पक्षकारों को इलाहाबाद उच्च न्यायालय मध्यस्थता एवं सुलह केंद्र की सहायता से अपने मतभेदों को फिर से सुलझाने का प्रयास करना होगा।

आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता उपरोक्त कार्यवाही से सहमत हैं।

यह निर्देशित किया जाता है कि याचिकाकर्ताओं को आज से तीन सप्ताह के भीतर मध्यस्थता केंद्र में 15,000/- रुपये की राशि जमा करनी होगी, जिसमें से 12,000/- रुपये मध्यस्थता केंद्र के समक्ष उपस्थित होने के लिए विरोधी पक्ष संख्या 2 को भुगतान किया जाएगा।

उपरोक्त जमा राशि जमा किए जाने पर, मध्यस्थता केंद्र दोनों पक्षों को केंद्र के समक्ष उपस्थित होने और आगे की कार्यवाही के लिए एक नजदीकी तारीख तय करते हुए नोटिस जारी करेगा।

मध्यस्थता केंद्र उस तारीख से दो महीने के भीतर अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा जब पक्षकारों को पहली बार केंद्र के समक्ष उपस्थित होना है। इसके बाद मामले को उचित पीठ के समक्ष सूचीबद्ध किया जाएगा।

सुनवाई की अगली तारीख तक, विद्वान सिविल जज (एस.डी.)/एफ.टी.सी., गौतम बुद्ध नगर की अदालत में लंबित वाद संख्या 191/2018 मुकदमा अपराध संख्या 130/2016 अन्तर्गत धारा 498क, 323, 506, 342, 354 आईपीसी और ¾ डीपी अधिनियम थाना महिला थाना जिला गौतमबुद्धनगर पर रोक लगी रहेगी।"

यह श्री रवि कुमार की स्वयं की स्वीकारोक्ति है कि मध्यस्थता की प्रक्रिया निरस्त हो गई और इसका कोई नतीजा नहीं निकला।

7. न्यायालय के पास उपरोक्त आवेदन के मूल अभिलेख को धारा 482 के अन्तर्गत पूर्वोक्त आवेदन संख्या 13544/2018 के तहत तलब करने का अवसर है। मजे की बात यह है कि मामला 20.4.2018 को मध्यस्थता प्रक्रिया के लिए भेजा गया था और याचिकाकर्ता श्री रवि कुमार द्वारा दी गई जानकारी के अनुसार, मध्यस्थता वर्ष 2018 में ही विफल हो गई थी लेकिन इस आशय की कोई रिपोर्ट अभिलेख पर उपलब्ध नहीं है। यह इस मामले की सबसे खराब विशेषता है। अब यह एक सामान्य प्रथा है कि इस प्रकार की चूकें अक्सर होती रहती हैं, जहां रिपोर्ट, अभिवचनों को उचित समय के भीतर अभिलेख पर कभी नहीं रखा जाता है। महानिबंधक, इलाहाबाद उच्च न्यायालय को निर्देश दिया जाता है कि वे जांच को उसके

तार्किक निष्कर्ष तक ले जाएं तथा दोषी कर्मचारियों की जिम्मेदारी तय करें और उसके बाद मध्यस्थता केंद्र से रिपोर्ट अन्य संबंधित को न भेजने के लिए उनके खिलाफ उचित विभागीय कार्यवाही शुरू की जाए, ताकि रिपोर्ट को पहले अवसर पर मामले के मूल अभिलेख पर रखा जा सके।

8. अब मामले के तथ्यों पर वापस आते हैं, आवेदन अन्तर्गत धारा 482 संख्या 13544/2018 की ऑर्डर-शीट से यह पता चलता है कि पिछले चार वर्षों की अवधि के दौरान, 20.4.2018 से आज तक, केवल दो अवसरों पर वर्ष 2022 में निम्नलिखित आदेश पारित किये गये:

(i) **<u>आदेश दिनांक: 31.5.2022-</u>**

(प्रार्थना-पत्र पर)

4.7.2022 से प्रारंभ होने वाले सप्ताह में सूचीबद्ध किया जाए।

अंतरिम आदेश, यदि कोई हो, सुनवाई की अगली तारीख तक जारी रहेगा।

(ii) **<u>आदेश दिनांक: 4.7.2022-</u>**

एक माह बाद सूचीबद्ध किया जाए।

अंतरिम आदेश, यदि कोई हो, सुनवाई की अगली तारीख तक बढ़ाया जाता है।"

9. 31.5.2022 और 4.7.2022 के उपरोक्त दो आदेशों को छोड़कर पिछले चार वर्षों के दौरान अंतरिम आदेश बढ़ाने के कोई आदेश नहीं थे। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, मामले को ए.एच.सी.एम.सी.सी. को संदर्भित करते समय, दोनों पक्षों की सुविधा के लिए, न्यायालय ने मूल अंतरिम आदेश पारित करते समय अपने विवेक से केवल दो महीने की सीमा तय की है। अक्टूबर, 2018 से 31.5.2022 तक स्थगन आदेश को बढ़ाने के संबंध में कोई आदेश नहीं था।

10. विद्वान एजीए ने <u>एशियन रिसर्फेसिंग ऑफ रोड एजेंसी प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो,</u> आपराधिक अपील संख्या 1375-1376/2010, जिसका निर्णय 28.03.2018 को आया, के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले की ओर न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने राय दी है:-

"स्थगन के कारण कार्यवाही लम्बे समय तक लम्बित रहने की स्थिति का समाधान करने की आवश्यकता है। समाधान न केवल भ्रष्टाचार के मामलों के लिए आवश्यक था, बल्कि उन सभी सिविल और आपराधिक मामलों के लिए भी आवश्यक था, जहां स्थगन के कारण सिविल और आपराधिक कार्यवाही रुकी हुई थी। कई बार रोक के कारण कार्यवाही अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दी गई। रोक हटने के बाद भी सूचना नहीं मिली और कार्यवाही नहीं की गई। यह निर्देश दिया गया था कि सभी लंबित मामलों में जहां सिविल या आपराधिक मुकदमे की कार्यवाही के खिलाफ स्थगन/रोक चल रही थी, वह आज से छह महीने की समाप्ति पर खत्म हो जाएगी, जब तक कि असाधारण मामले में सकारण आदेश से ऐसी रोक नहीं बढ़ा दी जाती। ऐसे मामलों में जहां भविष्य में स्थगन दिया गया था, वह ऐसे आदेश की तारीख से छह महीने की समाप्ति पर समाप्त होगा जब तक कि सकारण आदेश द्वारा उसी तरह का विस्तार नहीं दिया गया हो।"

11. इस प्रकार, विद्वान एजीए द्वारा यह तर्क दिया गया है कि दिनांक 20.4.2018 का अंतरिम आदेश केवल छह महीने तक प्रभावी था। याचिकाकर्ता ने कभी भी इस अवधि के दौरान अंतरिम आदेश को बढ़वाने की जहमत नहीं उठाई और वह कुछ निराधार अनुमान और कानूनी

सलाह लेकर असीमित अवधि के लिए अंतरिम आदेश का आनंद लेना चाहता है।

12. दूसरी ओर, मजिस्ट्रेट के समक्ष 7.11.2020/20.4.2022 को मामले की कंप्यूटर जनित स्थिति रिपोर्ट के साथ एक आवेदन प्रस्तुत किया गया, जिसमें अदालत से हस्तक्षेपकारी घटनाक्रम के मद्देनजर समन जारी करने का अनुरोध किया गया।

13. रिट याचिका के अनुलग्नक-5 की ओर भी ध्यान आकर्षित किया गया, जो 01.12.2021 से 14.7.2022 तक की अधूरी ऑर्डर-शीट है। इस अपूर्ण ऑर्डर-शीट के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि 19.3.2021 को उनकी व्यक्तिगत उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए अदालत द्वारा एन.बी.डब्ल्यू. जारी किया गया था और 20.9.2021 को याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा अभिलेख पर संबंधित दस्तावेज प्रस्तुत करने के लिए समय मांगा गया था। लेकिन ऐसा लगता है कि उन दस्तावेजों का कोई संदर्भ कभी प्रस्तुत नहीं किया गया था, जिन्हें आवेदक/वर्तमान याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत किया जाना चाहिए था। जब अभियुक्त ने न्यायालय में उपस्थित होकर अवगत कराया कि उक्त कार्यवाही अभी भी 482 की कार्यवाही के माध्यम से इस न्यायालय में विचाराधीन है।

14. अब मुद्दे की असली जड़ पर आते हैं, जिस पर भरोसा करते हुए याचिकाकर्ता ने पीठासीन अधिकारी के खिलाफ सभी प्रकार की अफवाहों और निराधार आक्षेपों का इस्तेमाल किया है।

15. दो तारीखों के आदेश प्रासंगिक हैं यानी 11.8.2021 और 20.9.2021 के आदेश। हमने इन दोनों आदेशों का गहनता से परिशीलन किया है। दिनांक 11.8.2021 को उल्लेख किया गया है कि पी.ओ. छुट्टी पर हैं, आरोपी अनुपस्थित थे, 24.9.2021 तारीख निर्धारित करते हुए एन.बी.डब्ल्यू. जारी किया जाए। हालाँकि, बाद में उसी तिथि को अभियुक्त के अधिवक्ता की उपस्थिति में उन्हें माननीय उच्च न्यायालय के आदेश-पत्र की प्रमाणित प्रति 20.9.2021 तक दाखिल करने का निर्देश दिया गया (हालाँकि बाद में यह 24.9.2021 थी), साथ ही यह अतिरिक्त शर्त लगाई गई कि अभियुक्त न्यायालय में उपस्थित रहेगा। यह स्पष्ट किया गया, यदि इस न्यायालय से कोई स्थगन आदेश नहीं है, तो आरोपियों को 20.9.2021 को उपस्थित होना होगा और जमानत के लिए आवेदन करना होगा। अगली निर्धारित तिथि यानि 20.9.2021 को पी.ओ. छुट्टी पर थे, हालाँकि, उन दस्तावेज़ों को अभिलेख पर ले लिया गया था।

16. याचिकाकर्ता रवि कुमार ने 24.9.2021 से 20.9.2021 तक की तारीख को आगे बढ़ाने पर कड़ी आपत्ति जताई है जो उनके अधिवक्ता की उपस्थिति और ज्ञान में था और पीठासीन अधिकारी के खिलाफ कठोर अभिव्यक्ति का उपयोग न करने की हमारी बार-बार की चेतावनी के बावजूद, उन्होनें विद्वान पीठासीन अधिकारी के खिलाफ उन अवांछित अभिव्यक्तियों का उपयोग करना जारी रखा। इतना ही नहीं, रिट याचिका में अपने अभिवचनों में उन्होंने कहा है कि:-

"<u>8- यह की परिवाद संख्या 191/2018 शिवानी बनाम रवि कुमार आदि में दिनांक 11/08/2021 को अग्रिम नियत दिनांक 24/9/2021 नियत की गयी और बिना पक्षकारों को सूचित किये बिना उचित कानूनी प्रक्रिया अपनाए बिना विपक्षी संख्या 02 व 03 की मिलीभगत (षड्यंत्र) के चलते परिवाद संख्या 191/2018 शिवानी बनाम रवि कुमार आदि की ऑर्डरशीट में जालसाजी</u>

करके दी० 24/09/21 की जगह दी० 01/09/2021 नियत कर दिया गया. जो कि कानून का स्पष्ट रूप से उल्लंघन किया गया है जिससे प्रार्थी व अन्य के विरूद्ध धोखे से 82, 83 की कार्यवाही की जा सके और जिससे याचिकाकर्ता पर नाजायज दबाब बनाकर जमानत करने के लिए विवश किया जा सके और याचिकाकर्ता की 482 संख्या 13544/18 महत्वहीन की जा सके."

17. यह और कुछ नहीं बल्कि याचिकाकर्ता रवि कुमार की ओर से एक न्यायिक अधिकारी को धमकाने और उसके खिलाफ झूठी अफवाहें फैलाकर उसे घुटने टेकने के लिए जानबूझकर किया गया प्रयास है। संबंधित पीठासीन अधिकारी और सूचनादाता, याचिकाकर्ता के विरोधी पक्ष के बीच कोई सांठगांठ स्थापित करने के लिए अभिलेख पर कुछ भी नहीं है। यह पीठासीन न्यायाधीश की ईमानदारी पर सवालिया निशान लगाने के लिए याचिकाकर्ता की ओर से एक घृणित प्रयास के अलावा और कुछ नहीं है, जिसे वरिष्ठ अदालतों को सख्ती से निपटना होगा। ऑर्डर शीट से निकाले गए ये सभी घटनाक्रम याचिकाकर्ता के अधिवक्ता के सामने थे। जैसा कि रिट याचिका के पैरा 8 में कहा गया है, अदालत पीठासीन अधिकारी और याचिकाकर्ता के विरोधियों के बीच किसी भी साजिश के तथ्य को प्राप्त करने में असमर्थ है। दोहराव की कीमत पर, हमने याचिकाकर्ता श्री रवि कुमार को ऐसा न करने के लिए मनाने की कोशिश की है, लेकिन जिद्दी याचिकाकर्ता अपनी दलीलें देते रहे और अदालत का समय बर्बाद करते रहे। लगाए गए आरोप निंदनीय हैं और न्यायिक प्रशासन की नींव को हिलाने में सक्षम हैं और न्याय प्रशासन में आम आदमी के विश्वास को भी कम करने में सक्षम हैं।

कानूनी चर्चा :

18. इस संबंध में, इस समय माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **स्वत: संज्ञान अवमानना याचिका (आपराधिक) संख्या 1/2020: प्रशांत भूषण और अन्य** के मामले में अपनाए गए दृष्टिकोण को स्पष्ट करना आवश्यक है, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से अपनी चिंता व्यक्त की और इस प्रकार कहा:

"34. यद्यपि बोलने की स्वतंत्रता है, स्वतंत्रता कभी भी पूर्ण नहीं होती क्योंकि संविधान निर्माताओं ने इस पर कुछ प्रतिबंध लगाए हैं। विशेष रूप से जब इस तरह की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का दुरुपयोग करने की कोशिश की जाती है और इसका प्रभाव पूरी संस्था और उन व्यक्तियों पर लांछन लगाने का होता है जो उक्त संस्था का हिस्सा हैं और सार्वजनिक रूप से अपना बचाव नहीं कर सकते हैं, तो कानून में इसकी अनुमति नहीं दी जा सकती है। हालाँकि कानून में निर्णय की निष्पक्ष आलोचना की अनुमति है, लेकिन कोई व्यक्ति संस्था को बदनाम करने के लिए संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क) के तहत अधिकार का अतिक्रमण नहीं कर सकता है।

35. यह स्पष्ट है कि अवमाननाकर्ता सेवानिवृत्त और मौजूदा न्यायाधीशों के खिलाफ आरोप लगाने में शामिल है। एक ओर, हमारा ध्यान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री दुष्यन्त दवे ने न्यायिक आचरण के मानदंडों की ओर आकर्षित किया, जिसमें यह भी प्रावधान है कि न्यायाधीश जनता के सामने अपनी राय व्यक्त नहीं कर सकते। न्यायाधीशों को अपने निर्णयों द्वारा अपनी राय व्यक्त करनी होती है और वे सार्वजनिक बहस में शामिल नहीं हो सकते या प्रेस में नहीं जा सकते। अखबार और मीडिया में न्यायाधीशों पर कोई भी आरोप लगाना बहुत आसान है न्यायाधीशों को ऐसे आरोपों का

मूक पीड़ित बनना पड़ता है और वे सार्वजनिक मंचों, समाचार पत्रों या मीडिया में जाकर सार्वजनिक रूप से ऐसे आरोपों का प्रतिवाद नहीं कर सकते हैं। न ही वे लगाए गए विभिन्न बेबुनियाद आरोपों की सत्यता के बारे में कुछ भी लिख सकते हैं, सिवाय तब जब वे मामले पर विचार कर रहे हों। सेवानिवृत्त न्यायाधीशों के पास वह प्रतिष्ठा है जो उन्होंने कड़ी मेहनत और इस संस्थान के प्रति समर्पण से अर्जित की है। उनसे यह भी अपेक्षा नहीं की जाती है कि वे लगाए गए हर आरोप का जवाब दें और सार्वजनिक बहस में शामिल हों। इस प्रकार, यह आवश्यक है कि जब वे बोल नहीं सकते, तो उनके अपने सम्मान और प्रतिष्ठा की हानि नहीं की जा सकता है, जो सम्मान के साथ जीने के अधिकार का अनिवार्य हिस्सा है। बार को न्यायिक प्रणाली की सुरक्षा का प्रवक्ता माना जाता है। वे प्रणाली का अभिन्न अंग हैं। बार और बेंच एक ही प्रणाली यानी न्यायिक प्रणाली का हिस्सा हैं और उन्हें समान प्रतिष्ठा प्राप्त है। यदि न्यायाधीशों पर तीखा हमला किया जाता है तो उनके लिए निडर होकर और मुद्दों के प्रति निष्पक्ष दृष्टिकोण के साथ काम करना मुश्किल है। फैसले की आलोचना की जा सकती है। हालाँकि, न्यायाधीशों के उद्देश्यों को जिम्मेदार ठहराने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि यह न्याय प्रशासन को बदनाम करता है। **हैल्सबरी के लॉ ऑफ इंग्लैंड, चौथा संस्करण, खंड 9**, पैरा 27 में, यह देखा गया है कि दण्ड का उद्देश्य सम्पूर्ण न्यायालय या न्यायालय के व्यक्तिगत न्यायाधीशों को आक्रमण की पुनरावृत्ति से बचाना नहीं है, बल्कि जनता को, विशेषकर उन लोगों को, जो स्वेच्छा से या विवशता से न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के अधीन हैं, उस हानि से बचाना है जो न्यायाधिकरण के प्राधिकार को कमजोर या क्षतिग्रस्त करने पर उन्हें होगी। न्यायाधीशों या न्यायपालिका की शत्रुतापूर्ण आलोचना निश्चित रूप से न्यायालय को बदनाम करने का कार्य है। न्यायाधीश या संस्था के बारे में अपमानजनक प्रकाशन न्याय में बाधा डालता है।"

19. इस समय "कोर्ट ऑन इट्स ओन मोशन बनाम कोरम", 24 अगस्त 2018 को निर्णीत, के मामले में हिमाचल उच्च न्यायालय के निर्णय का संदर्भ लेना उपयोगी होगा, जिसमें हिमांचल उच्च न्यायालय ने कई फैसले सुनाते हुए कहा कि:

"17. यह याद रखना होगा कि अधीनस्थ न्यायपालिका न्याय प्रशासन की रीढ़ है और उच्चतर न्यायालय अधीनस्थ न्यायपालिका के न्यायाधीशों पर अपमानजनक और अभद्र हमलों को रोकने के लिए कठोर कदम उठाएगा, जो उन्हें बदनाम करते हैं या बदमान करने की प्रवृत्ति रखते हैं या किसी भी न्यायालय के अधिकार को कम करते हैं या कम करने की प्रवृत्ति रखते हैं और साथ ही ऐसी सभी कार्रवाइयां जो किसी भी न्यायिक कार्यवाही के उचित क्रम में हस्तक्षेप करती हैं या हस्तक्षेप करने की प्रवृत्ति रखती हैं या किसी अन्य तरीके से न्याय प्रशासन को बाधित करती हैं या बाधित करने की प्रवृत्ति रखती हैं।

18. कानून के गौरव का अपमान करने की अनुमति नहीं दी जा सकती। न्याय के स्रोत को असंतुष्ट वादियों या अधिवक्ताओं द्वारा प्रदूषित करने की अनुमति नहीं दी जा सकती। अदालतों को बिना किसी डर के अपने न्यायिक कार्यों का निर्वहन करने में सक्षम बनाने के लिए सुरक्षा आवश्यक है। (अजय कुमार पांडे, अधिवक्ता, (1998) 7 एससीसी 248)।

19. यह अच्छी तरह से स्थापित है कि वादी या उस मामले के लिए एक अधिवक्ता को भी अदालत को धमकाने या न्यायाधीशों को आतंकित करने या डराने की अनुमति नहीं दी जा सकती है जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने चेतक कंस्ट्रक्शन लिमिटेड बनाम ओम प्रकाश (1998) 4 एससीसी 577 में कहा है।

"16. वास्तव में, किसी भी अधिवक्ता या वादी को अनुकूल आदेश प्राप्त करने की दृष्टि से अदालत को धमकाने या पीठासीन अधिकारी को बदनाम करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। यदि ऐसी गतिविधियों की अनुमति दी गई तो न्यायाधीश अपने कर्तव्यों को स्वतंत्र रूप से और निष्पक्ष रूप से पूरा करने में सक्षम नहीं होंगे। परिणामस्वरूप न्याय प्रशासन हताहत हो जाएगा और कानून के शासन को झटका लगेगा। न्यायाधीश निष्पक्ष रूप से और बिना किसी डर या पक्षपात के मामलों का फैसला करने के लिए बाध्य हैं। अधिवक्ताओं और वादियों को अपने अनूकूल आदेश को सुरक्षित करने के लिए न्यायाधीशों को 'आतंकित' या 'धमकाने' की अनुमति नहीं दी जा सकती। यह बुनियादी और मौलिक है और न्याय प्रशासन की कोई भी सभ्य प्रणाली इसकी अनुमति नहीं दे सकती है।"

20. बाद में, राधा मोहन लाल बनाम राजस्थान उच्च न्यायालय (2003) 3 एससीसी 427 में इन टिप्पणियों को दोहराया गया।

21. तथ्यों पर वापस आते हैं, यह देखा गया कि पूरे प्रकरण की उत्पत्ति प्रत्यर्थी/अवमाननाकर्ता द्वारा वाहन की रिहाई के लिए दायर आवेदन से हुई प्रतीत होती है। यदि प्रत्यर्थी/अवमाननाकर्ता को लगता है कि इसका निर्णय शीघ्रता से नहीं किया जा रहा है या मजिस्ट्रेट द्वारा दिया गया निर्णय किसी भी तरह से गलत या त्रुटिपूर्ण है, तो वह कानूनी उपचार का सहारा ले सकता था, लेकिन न्यायाधीश को कोसने और न्यायाधीशों के खिलाफ अपमानजनक और अशोभनीय भाषा का उपयोग करने का सहारा नहीं ले सकता था।

22. कोई भी न्यायाधीश कभी गलती करने वाला/अचूक नहीं होता है और उसके द्वारा पारित आदेश सही हो भी सकता है और नहीं भी, लेकिन इससे किसी अधिवक्ता को न्यायाधीश की आलोचना करने का मौका नहीं मिलेगा। हरिदास दास बनाम उषा रानी बनिक (श्रीमती) और अन्य एपीयू बनिक (2007) 14 एससीसी 1 में माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार सही कहा है:

"1. "<u>न्यायाधीशों को कोसना" और न्यायाधीशों के खिलाफ अपमानजनक और अवमाननापूर्ण भाषा का प्रयोग करना कुछ लोगों का पसंदीदा शौक बन गया है। ये बयान न्यायालयों के अधिकार को बदनाम और कम करने वाले हैं और इसकी अनुमति नहीं दी जा सकती, क्योंकि लोकतंत्र के कामकाज के लिए, बिना किसी भय और पक्षपात के न्याय देने के लिए एक स्वतंत्र न्यायपालिका सर्वोपरि है। इसकी ताकत उस संस्था में लोगों का विश्वास और भरोसा है। इसे कमतर नहीं होने दिया जा सकता क्योंकि यह जनहित के खिलाफ होगा।</u>

2. न्यायपालिका को बदमाश व्यक्तियों के मनोरंजन की स्थिति तक सीमित नहीं किया जाना चाहिए। न्यायाधीश को कोसना रचनात्मक आलोचना नहीं है और न ही उसके विकल्प के रूप में हो सकती है।

xx xxxx xxxx

12. <u>भारत के संविधान में यह गारंटी है कि बोलने और लिखने की स्वतंत्रता होगी, लेकिन उचित प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं। अमेरिका और भारत में प्रचलित विभिन्न सुझावों की तुलना करना</u>

<u>प्रासंगिक होगा। यह ध्यान देने योग्य है कि किसी न्यायाधीश के खिलाफ या किसी लंबित मामले के बारे में सभी बयान अमेरिका में न्यायालय की अवमानना नहीं माने जाते। अनुच्छेद 19 में "उचित प्रतिबंध" शब्द का प्रयोग किया गया है जो अमेरिकी वाक्यांश "अंतर्निहित प्रवृत्ति" या "उचित प्रवृत्ति" के लगभग बराबर है।</u> ब्रिजेस बनाम कैलिफोर्निया (1911) 86 लॉ एड. 192 में अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय ने कहा:

"अंत में स्पष्ट और वर्तमान खतरे के मामलों से जो कार्यशील सिद्धांत निकलकर आता है वह यह है कि वास्तविक बुराई बेहद गंभीर होनी चाहिए और आसन्नता की डिग्री बेहद गंभीर होनी चाहिए और बयानों को दंडित करने से पहले आसन्नता की डिग्री बेहद ऊंची होनी चाहिए।"

20. **<u>विश्राम सिंह रघुवंशी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2011) 7 एससीसी 776</u>** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने न्यायिक अधिकारियों के खिलाफ झूठे आरोप लगाने की खतरनाक प्रवृत्ति पर गौर किया है और निम्नलिखित टिप्पणी की है:

"18. न्यायिक अधिकारियों के खिलाफ झूठे आरोप लगाने और उन्हें अपमानित करने की खतरनाक प्रवृत्ति को कठोरता से रोकने की आवश्यकता है, अन्यथा न्यायिक प्रणाली खुद ही ध्वस्त हो जाएगी। बेंच और बार को छोटे-छोटे मुद्दों पर अनुचित स्थितियों से बचना होगा जो न्याय के कार्य में बाधा डालते हैं और यह किसी के हित में नहीं है।"स्वतंत्र अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को किसी भी संस्था के विरुद्ध निराधार आरोप लगाने की अनुमति के साथ मिश्रित या भ्रमित नहीं किया जाना चाहिए, न्यायपालिका के विरुद्ध तो बिल्कुल भी नहीं।" कोई अधिवक्ता न्यायिक अधिकारियों की प्रतिष्ठा को धूमिल करने के लिए अपने मुवक्किल के साथ नहीं जुड़ सकता, केवल इसलिए कि उसका मुवक्किल उक्त अधिकारी से वांछित आदेश प्राप्त करने में विफल रहा। न्यायालय को बदनाम करने का जानबूझकर किया गया प्रयास, जिससे मुकदमे लड़ने वाले लोगों का प्रणाली में विश्वास डगमगा जाएगा, न्यायपालिका की संस्था को बहुत गंभीर नुकसान पहुंचाएगा। पेशे से जुड़े एक अधिवक्ता को मेहनती होना चाहिए और उसका आचरण भी मेहनती और कानून की आवश्यकताओं के अनुरूप होना चाहिए, जिसके द्वारा एक अधिवक्ता समाज और न्याय प्रणाली के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। एक अधिवक्ता द्वारा पेशेवर नैतिकता के सिद्धांतों का कोई भी उल्लंघन दुर्भाग्यपूर्ण और अस्वीकार्य है। (द्वारा: ओ.पी. शर्मा और अन्य बनाम पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय, (2011) 5 स्केल 518)।"

21. आजकल हम लोकतंत्र के सबसे भद्दे स्वरूप में जी रहे हैं; जहां किसी को किसी संस्था के प्रति कोई सम्मान नहीं रह गया है। यह अपवित्र और खतरनाक संकेत है कि सभी लोग गैर-जिम्मेदाराना तरीके से न्यायपालिका के खिलाफ निराधार और अप्रामाणिक आरोप लगा रहे हैं। न्यायपालिका या उसके अधिकारियों पर गैर-जिम्मेदाराना आक्षेप लगाना अब एक फैशन बन गया है। समाज के हर जिम्मेदार व्यक्ति को इस अपवित्र प्रथा को पूरे दिल से हतोत्साहित और निंदा करनी होगी। न्यायपालिका किसी भी स्वस्थ लोकतंत्र के सबसे मजबूत स्तंभों में से एक है। इस बात का महत्व तब और बढ़ जाता है जब हाल ही में हमने अपना 75वां स्वतंत्रता दिवस मनाया है। लोकतंत्र के सबसे प्रमुख स्तंभों को मजबूत करने के लिए आपसी सम्मान होना चाहिए। उस लोकतंत्र की प्रजा से भी अपेक्षा की जाती है कि वह अपनी अभिव्यक्ति में उदार और

गैर-जिम्मेदार न बने। उच्च न्यायालय अपने अधीनस्थ न्यायालयों की रक्षा करने के लिए बाध्य हैं।

22. यह न्यायालय अपनी गहरी पीड़ा और चिंता को दर्ज करता है कि बड़े पैमाने पर लोग अब न्यायिक अधिकारियों के खिलाफ उनकी इच्छा और मनमौजीपन के आधार पर अनुचित और निराधार अफवाहें फैला रहे हैं और बेईमानी के गैरजिम्मेदाराना आरोप लगा रहे हैं। उच्च न्यायालय सामान्य रूप से प्रणाली और व्यक्तिगत न्यायिक अधिकारी की गरिमा और सम्मान को बचाने के लिए बाध्य हैं, साथ ही किसी भी व्यक्ति को किसी भी न्यायिक अधिकारी की ईमानदारी और चरित्र के बारे में व्यापक और बेबुनियादी आरोप लगाने की अनुमति नहीं है।

23. जैसा कि यहां पहले बताया गया है, याचिकाकर्ता की आशंका पूरी तरह से तारीख को आगे बढ़ाने की अनावश्यकता से उत्पन्न होती है, जो याचिकाकर्ता के अनुसार न्यायाधीश की साजिश और अभियोजन पक्ष के प्रति उनके पूर्वाग्रह के समान है। एक अति-जागरूक वादकारी की निराधार व्याकुलता और उसकी नाजायज आशंकाएं हमें उन पर विश्वास करने के लिए मजबूर नहीं कर सकती हैं और याचिका में मांगी गई प्रार्थना को अनुमति देने के लिए एक वैध आधार भी नहीं बना सकती हैं। न्यायाधीश भी बाकी सभी लोगों की तरह ही समाज के अंग हैं और वे किसी दिखावे में नहीं रहते। विशेष प्रकार के सामाजिक अपराधों में वृद्धि न्यायाधीशों के लिए भी चिंता का कारण बनती है, जिन्हें महत्वपूर्ण रूप से अपनी न्यायिक क्षमता में ऐसे अपराधों से निपटना पड़ता है, इसलिए यदि किसी स्तर पर कोई न्यायाधीश कुछ अपराधों के होने पर अपनी खीझ प्रकट करता है, जो कभी-कभी मानवता की सामूहिक सहमति के विरुद्ध प्रतीत हो सकता है, जिसका न्यायाधीश स्वयं एक अभिन्न अंग है। ऐसी अभिव्यक्तियों को विवेकपूर्ण स्वतंत्र सोच का परित्याग मानने की गलती नहीं की जानी चाहिए। न ही इसकी व्याख्या इस संकेत के रूप में की जानी चाहिए कि ऐसा पीठासीन अधिकारी न्यायाधीश के रूप में अपने कर्तव्यों का पालन नहीं करेगा।

24. यदि विचारण न्यायालय द्वारा कोई ऐसा आदेश पारित किया गया है जिससे याचिकाकर्ता व्यथित महसूस करता है, तो उसे उच्च न्यायालयों में न्यायिक क्षमता में चुनौती देना ही सही रास्ता है। किसी भी न्यायिक अधिकारी द्वारा उठाए गए या अपनाए गए किसी भी कदम या आदेश की औचित्य या शुद्धता उच्चतर न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के अधीन है। जहां तक इस आरोप का सवाल है कि पीठासीन अधिकारी विरोधी पक्ष के साथ मिला हुआ है, हमारी न्यायिक संस्थाएं इतनी मजबूत हैं कि ऐसे किसी भी संकीर्ण विचार से प्रभावित नहीं होतीं। पीठासीन अधिकारी के विरुद्ध इस प्रकार आक्षेप लगाना बहुत आसान है। हमें ऐसा कोई ठोस अभिलेख नहीं मिला जिसके आधार पर यह माना जा सके कि पीठासीन अधिकारी से संपर्क किया गया है या याचिकाकर्ता को बढ़ावा दिया गया है। याचिकाकर्ता द्वारा पीठासीन अधिकारी के खिलाफ लगाया गया आरोप बहुत अस्पष्ट और अनुमानित है और शायद अप्रासंगिक भी है और हमें आश्वस्त नहीं कर सकता है।

25. याचिकाकर्ता द्वारा संबंधित न्यायिक अधिकारी के खिलाफ जांच शुरू करने का निर्देश देने के लिए जो दलील दी गई है वह बहुत अस्पष्ट और बेबुनियादी है। इसे प्रमाणित करने के लिए कोई सामग्री भी नहीं है। किसी भी जांच को शुरू

करने के लिए वैध आधार बनने के लिए इस तरह के अप्रमाणित आक्षेपों को स्वीकार करना बहुत मुश्किल है। याचिकाकर्ता द्वारा की गई आशंकाएं पूरी तरह से निराधार प्रतीत होती हैं और इस तरह की अति संवेदनशीलता याचिका में मांगी गई प्रार्थना को अनुमति देने के लिए कोई वैध आधार नहीं बन सकती है।

26. हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि यह उपयुक्त मामला नहीं है जहां इस अदालत को भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने असाधारण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करना चाहिए और जैसा कि हमने पाया है कि वर्तमान याचिका निराधार आशंकाओं के आधार पर पीठासीन अधिकारी के खिलाफ निराधार आरोप लगाते हुए दायर की गई है और याचिकाकर्ता ने तुच्छ मुकदमा दायर करके अदालत का कीमती समय बर्बाद किया है, इन परिस्थितियों में, वर्तमान रिट याचिका को राज्य के कोष को 50,000 रुपये का जुर्माना अदा करने के साथ खारिज किया जाता है।

27. याचिकाकर्ता को आज से पांच महीने की अवधि के भीतर इस न्यायालय के महानिबंधक के पास 50,000 रुपये की लागत जमा करनी होगी। ऐसी लागत जमा करने पर, इसे इलाहाबाद उच्च न्यायालय मध्यस्थता एवं सुलह केंद्र के खाते में प्रेषित किया जाएगा। यदि याचिकाकर्ता 50,000/- रुपये (पचास हजार रुपये) की लागत जमा करने में विफल रहता है, तो इस न्यायालय के महानिबंधक, भू-राजस्व के बकाया के रूप में उक्त राशि की वसूली के लिए जिला मजिस्ट्रेट/कलेक्टर, गौतमबुद्ध नगर को सूचित करेंगे, जो याचिकाकर्ता से यह राशि वसूलने के बाद, इसे तीन महीने की अतिरिक्त अवधि के भीतर इलाहाबाद उच्च न्यायालय मध्यस्थता और सुलह केंद्र के खाते में जमा करने के लिए इस न्यायालय के महानिबंधक को भेज देगें।

28. इस न्यायालय के निबंधक (अनुपालन) द्वारा इस निर्णय की एक प्रति विद्वान जिला एवं सत्र न्यायाधीश, गौतम बुद्ध नगर के साथ-साथ सुश्री महिमा जैन, न्यायिक अधिकारी/सिविल न्यायाधीश (जूनियर डिवीजन/एफ.टी.सी.-2, गौतम बुद्ध नगर को भी अविलम्ब भेजी जाए।

29. इस आदेश की प्रतिलिपि इस न्यायालय के महानिबंधक द्वारा प्रत्येक सत्र प्रभाग को भेजी जाए।

(2023) 3 ILRA 1032

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 12.01.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्रा

बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका संख्या 328/2022

विराज भाटी एवं अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता: श्री राजीव कुमार सिंह

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: जी.ए., श्री ओम प्रकाश राय, श्री आशीष राय

सिविल कानून - भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226, - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 491 - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 307, 323, 498(A), 504 और 506 - हिंदू

अल्पसंख्यक और अभिभावक अधिनियम, 1956 - धाराएं 6 और 6(A) - दहेज निषेध अधिनियम, 1961 - धाराएं 3 और 4 - बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट - नाबालिग बालक की अवैध अभिरक्षा के विरुद्ध - पिता की मृत्यु के पश्चात, उसे अपनी दादी और चाचा की अभिरक्षा में रखा गया - न्यायालय ने पाया कि, यह बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका प्राकृतिक अभिभावक माँ द्वारा बच्चे की ओर से और अपनी ओर से दायर की गई है - क्या याचिका स्वीकार्य है - निर्णय, एक माँ हमेशा माँ होती है चाहे वह पर्याप्त आय अर्जित कर रही हो या नहीं और यह नहीं माना जा सकता कि फर्न्स पेटल्स में उसकी नौकरी खत्म होने के पश्चात, वह बच्चे की जरूरतों का ख्याल नहीं रख सकेगी - माँ को अपने बेटे की अभिरक्षा का उच्चतर पात्र है - उसे विधिनुसार प्राकृतिक अभिभावक होने के नाते अपने बच्चे की अभिरक्षा से वंचित नहीं किया जा सकता और उसके पिता के अभाव में किसी अन्य व्यक्ति की तुलना में बच्चे की अभिरक्षा पर गोपनीयता का दावा सही है - याचिका स्वीकृत - निर्देश जारी किए गए। (पैराग्राफ - 12, 13, 14)

याचिका स्वीकृत। (ई-11)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. मास्टर अद्वैत शर्मा बनाम राज्य उत्तर प्रदेश और अन्य, 2021 (0) सुप्रीम (अल) 216,
2. पेरी कंसाग्रा बनाम स्मृति मदान कंसाग्रा, (2019) 20 SCC 753,
3. आशीष रंजन बनाम अनुपमा तंडन और अन्य, (2010) 14 SCC 274,
4. गीथा हरिहरन बनाम रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया, AIR 1999 SC 1149,
5. रोसी जैकब बनाम जैकब चक्रामक्कल, AIR 1973 SC 2090, 6. तेजस्विनी गौड़ और अन्य बनाम शेकर जगदीश प्रसाद तिवारी और अन्य, (2019) 7 SCC 42.

<u>माननीय राम मनोहर नारायण मिश्र, जे.</u>

याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री राजीव कुमार सिंह तथा प्रतिवादी क्रमांक 3 के विद्वान अधिवक्ता श्री ओ.पी. राय और श्री आशीष राय, तथा राज्य के ओर से विद्वान ए.जी.ए. को सुना और रिकार्ड पर मौजूद सामग्री का अवलोकन किया।

याचिकाकर्ता संख्या 2 श्रीमती अनु कुमारी ने बंदी विराज भाटी (नाबालिग) तथा स्वयं की ओर से तत्काल बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका दायर की है तथा याचिका में निम्नलिखित राहत की मांग की गई है:-

"(i) प्रतिवादी संख्या 3 को निर्देशित करते हुए बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट जारी कर बंदी/ याचिका संख्या 1/ नाबालिग लड़का / याचिकाकर्ता के पुत्र को माननीय न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करने का आदेश दे जिसे उसकी दादी/ प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा अवैध रूप उसके दिवंगत पिता के पैतृक घर बी-16, सी-2, एवरेस्ट अपार्टमेंट, शालीमार गार्डन एक्सटेंशन II, साहिबाबाद जिला-गाज़ियाबाद में स्थित है, यचिकाकर्ता क्रमांक 1 तथा 2 के विरुद्ध संरक्षण में रखा गया है, जिससे 22.4.2022 को वीडियो कॉल पर बात हुई थी।

(ii) कोई अन्य उपयुक्त आदेश या निर्देश जो माननीय न्यायालय बंदी को प्रस्तुत करने के लिए उचित समझे।

(iii) याचिकाकर्ताओं को बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका की लागत का भुगतान कराएं ।

3. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने रिट याचिका में दी गई अपनी दलीलों को आधार

बनाया और कहा कि याचिकाकर्ता नं. 1 याचिकाकर्ता नं. 2 का नाबालिग पुत्र है, जो याचिकाकर्ता संख्या 2 और उनके पति विवेक भाटी के विवाह से पैदा हुआ। उनका विवाह 7.3.2014 को उनके परिवार के सदस्यों की सहमति से हिंदू रीति-रिवाजों के अनुसार संपन्न हुआ। याचिकाकर्ता नं. 2 अपने पति के साथ कृष्णा नगर ईस्ट, दिल्ली में किराये पर रहती थी। याचिकाकर्ता नं. 2 वर्तमान में अपने पिता के साथ बुलन्दशहर में निवासरत है। याचिकाकर्ता नं. 2 और प्रतिवादी नं. 3 द्वारा बंदी का जन्मदिन एक साथ मनाया गया था, तथापि बच्चे को वर्तमान में प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा पैतृक घर में संरक्षण में रखा गया है। याचिकाकर्ता 2 के ससुर अर्थात सतपाल भाटी जिला गाजियाबाद में एक प्रमुख अधिवक्ता थे, और याचिकाकर्ता संख्या के पति 2 विवेक भट्टी और उनके छोटे भाई श्री वरुण भाटी भी अधिवक्ता थे, हालांकि, याचिकाकर्ता संख्या 2 के ससुर की असामयिक मौत हो गई, जिससे पूरा परिवार सदमे में आ गया. याचिकाकर्ता संख्या 2 के पति ने बार-बार शराब का सेवन करना शुरू कर दिया और याचिकाकर्ता क्रमांक 2 ने इसका विरोध किया। वह उसके साथ मारपीट भी करता था और दहेज की मांग करता था, इसलिए उसने एक एफआईआर 30.3.2021 को उसके पति और उसके परिवार के सदस्यों के खिलाफ धारा 498ए, 323, 504, 506, 307 आईपीसी और 3/4 डी.पी. एक्ट में दर्ज कराई जो मुकदमा अपराध क्रमांक 242 वर्ष 2021 के रूप पी.एस. कोतवाली शहर, जिला बुलन्दशहर में पंजीकृत है। दुर्भाग्य से याचिकाकर्ता नं. 2 के पति की मृत्यु 9.4.2021 को सड़क दुर्घटना में हो गई। याचिकाकर्ता नं. 2 पति की मृत्यु के कारण विधवा हो गयी। वह वाणिज्य में स्नातक हैं और घरेलू खर्चों को पूरा करने और अपने छोटे बच्चे के कल्याण के लिए फर्न्स पेटल्स नामक कंपनी में सेल्स एक्जीक्यूटिव के रूप में काम करना शुरू कर दिया। अपनी मासिक आय बढ़ाने के लिए, याचिकाकर्ता नं. 2 ने अपने सेवानिवृत्त पिता, जो सेना में थे, की सहायता से घरेलू सामानों की ऑनलाइन बिक्री भी शुरू की। याचिकाकर्ता नं. 2 को अपनी सास और उनके बेटे वरुण भाटी, जो एक अधिवक्ता हैं से जान का खतरा लग रहा है, उसे अपने नाबालिग बेटे की जान को खतरा होने की भी आशंका है, जो प्रतिवादी संख्या 3 की जमीन-जायदाद का सह-हिस्सेदार है। प्रतिवादी नं. 3 अशक्त एवं वृद्ध महिला है जिसकी अभिरक्षा में बंदी वर्तमान में पड़ा हुआ है, ससुर और पति की मृत्यु के कारण उसके ससुराल वालों की पारिवारिक परिस्थिति ख़राब हो गयी है। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता नं. 2 अपने नाबालिग बेटे के भविष्य और शिक्षा के बारे में चिंतित है, जिसे प्रतिवादी संख्या 3 और उनके बेटे वरुण भाटी, जो कि गाजियाबाद में अधिवक्ता है, द्वारा अवैध रूप से संरक्षण में रखा गया है।

वह अपने देवर और प्रतिवादी संख्या 3 के बेटे के पक्ष में स्थानीय वकीलों के रवैये के कारण नाबालिग बच्चे की संरक्षण के लिए स्थानीय अदालत का दरवाजा खटखटाने से डर रही है , इसलिए यह प्रार्थना की जाती है कि बच्चे को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करने का निर्देश दिया जाए और याचिकाकर्ता संख्या 2 के पक्ष में बंदी की अभिरक्षा के हस्तांतरण के संबंध में आवश्यक आदेश दिया जाए , जो उसका प्राकृतिक संरक्षक है।

4. प्रति विपरीत, विद्वान ए.जी.ए. साथ ही निजी उत्तरदाताओं के विद्वान अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता संख्या 2 द्वारा रिट याचिका में की गई प्रार्थना पर आपत्ति जताई। . आगे यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता संख्या 1 की वास्तविक जन्मतिथि 15.3.2015 है न कि 15.3.2016 जैसा कि रिट याचिका में कहा गया है। इस तथ्य को नगर निगम गाजियाबाद और अम्बे अस्पताल से जारी जन्म प्रमाण पत्र से सत्यापित किया जा सकता है, जन्म प्रमाण पत्र की एक प्रति प्रति शपथ पत्र के साथ अनुबंध सीए -2 के रूप में दायर की गई है। बच्चे की कस्टडी शुरू में उसके दिवंगत पिता के पास थी और उनकी मृत्यु के बाद, यह प्रतिवादी नंबर 3 (बंदी की दादी) और उसके चाचा वरुण भाटी पर चली गयी । याचिकाकर्ता नं. 2 अपने पति की मृत्यु के समय कॉर्पस की कस्टडी को आगे बढ़ाने के लिए नहीं आई थी और उस समय प्रतिवादी नं. 3 और उसका बेटा एकमात्र व्यक्ति थे जो याचिकाकर्ता संख्या 1की देखभाल करते थे। वास्तव में उसे लगभग दो वर्षों की अवधि तक अपने बच्चे की अभिरक्षा में कोई दिलचस्पी नहीं थी और बच्चा अपनी दादी और चाचा के साथ पड़ा हुआ है। चूंकि बच्चा अपनी दादी और चाचा की संरक्षण में है, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि वह अवैध संरक्षण में है और वर्तमान बंदी प्रत्यक्षीकरण बनाए रखने योग्य नहीं है और याचिकाकर्ता नंबर 2 के पास उचित उपाय उपलब्ध है। बच्चे की कस्टडी की मांग के लिए कानून के तहत उपलब्ध वैधानिक फोरम से संपर्क करें। याचिकाकर्ता नं. 2 वर्तमान में फर्न्स पेटल्स नामक कंपनी में कार्यरत नहीं है क्योंकि उसे 30.8.2021 को बर्खास्त कर दिया गया था और इस संबंध में उक्त फर्म के पार्टनर श्री गौरव जैन द्वारा एक प्रमाण पत्र जारी किया गया है, जो जवाबी हलफनामे के साथ दायर किया गया है। प्रतिवादी संख्या 3 और उनके चाचा वरुण भाटी द्वारा बच्चे को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान की जा रही है, और पढ़ाई में उत्कृष्ट अंक प्राप्त कर रहे हैं। बच्चे के चाचा वरुण भाटी के पास पर्याप्त आय है और वह आयकर दाता हैं और बच्चे की शैक्षणिक और अन्य खर्चों को पूरा करने में सक्षम हैं। याचिकाकर्ता नं. 1 उसकी मां के साथ रहने को तैयार नहीं है, और खुशी-खुशी उसकी दादी और चाचा के साथ रह रहा है। उसकी उम्र लगभग 7 वर्ष है और वह अपनी दादी और चाचा से गहराई से जुड़ा हुआ है।

5. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने **मास्टर अद्वैत शर्मा बनाम यूपी राज्य और पांच अन्य, 2021 उ. न्या. (सभी) 216** में इस न्यायालय द्वारा तय किए गए एक मामले का संज्ञान लिया, जिसमें नाबालिग बच्चे की उसके माता-पिता के बीच कस्टडी का मामला विवाद के केंद्र में था। बच्चे का दुर्भाग्य, जैसी भी परिस्थिति है, उसके माता-पिता के बीच मनमुटाव का परिणाम है, जो वैवाहिक जीवन में साथ नहीं थे। दोनों उच्च शिक्षित थे और एक प्रतिष्ठित कंपनी में कार्यरत थे। दोनों पक्षों ने अपनी दलीलों में एक-दूसरे के खिलाफ कई आरोप लगाए, जिनमें स्वयं के लिए दावा किए गए गुणों और दोनों पक्षों के ससुराल वालों सहित दूसरे पक्ष को दोषी ठहराने का ठहराने का प्रयास किया। इस न्यायालय ने हिंदू अल्पसंख्यक और संरक्षकता अधिनियम, 1956 की धारा 6-ए के प्रावधानों पर विचार किया, जिसमें यह प्रावधान किया गया है कि एक हिंदू नाबालिग का प्राकृतिक संरक्षक, नाबालिग के व्यक्तियों के साथ-साथ नाबालिग की संपत्ति के

संबंध में (उसके या को छोड़कर) संयुक्त पारिवारिक संपत्ति में उसका अविभाजित हित), हैं- (ए) एक लड़के या अविवाहित लड़की के मामले में- पिता, और उसके बाद, माँ: बशर्ते कि एक नाबालिग की संरक्षण जिसने पाँच वर्ष की आयु पूरी नहीं की हो सामान्यतः वर्ष माँ के पास रहेंगे। इस न्यायालय ने पैराग्राफ संख्या 44, 49, 51 में अवलोकन किया, निम्नानुसार है:-

44. प्रावधान यह नियम बताता है कि पिता के प्राकृतिक अभिभावक होने के बावजूद, एक नाबालिग, जिसने पांच वर्ष की आयु पूरी नहीं की है, की संरक्षण आम तौर पर मां के पास होनी चाहिए। यह नियम मानव जाति के अनुभव को प्रतिबिंबित करता है कि माताएं बहुत छोटे बच्चों की देखभाल के लिए सबसे उपयुक्त होती हैं। चूँकि, बच्चे का कल्याण सर्वोपरि है, 1956 के अधिनियम की धारा 6 (ए) का प्रावधान, नियम को अर्हता प्राप्त करने के लिए "आमतौर पर" शब्द का उपयोग करके एक उल्लेखनीय नुस्खा बनाता है। "आम तौर पर" शब्द पूर्ण भूमिका देता है, किसी दिए गए मामले में न्यायालय का मूल्यांकन यह पता लगाने के लिए कि नाबालिग का कल्याण सबसे अच्छा कहाँ सुरक्षित होगा। आगे बढ़ने से पहले यहां यह टिप्पणी की जानी चाहिए कि 1956 के अधिनियम की धारा 6 (ए) के तहत एक नाबालिग की प्राकृतिक संरक्षकता भी अब पिता के पास नहीं रह गई है। गीता हरिहरन (सुश्री) और अन्य बनाम भारतीय रिजर्व बैंक और अन्य, (1999) 2 एससीसी 228 मामले में सुप्रीम कोर्ट की व्यवस्था के मद्देनजर, माता और पिता नाबालिग के प्राकृतिक संरक्षक के समान हैं। विवाद यहां अभिरक्षा के बारे में है न कि संरक्षकता के बारे में, जिस पर माता-पिता दोनों के लिए शायद ही कोई विवाद हो।

49. इस न्यायालय की राय में, एक बच्चे के कल्याण के बारे में माँ के हाथ में बेहतर सुरक्षा की एक मजबूत धारणा है, जिसे केवल माँ की अपने मातृ दायित्वों का निर्वहन करने के लिए उपयुक्तता की कमी के बारे में ठोस और स्पष्ट सबूत से ही दूर किया जा सकता है, जैसा कि पहले ही टिप्पणी की जा चुकी है कि इस न्यायालय के संज्ञान में ऐसी कोई परिस्थिति या सबूत नहीं लाया गया है जो प्रीति को अपने नाबालिग बेटे की देखभाल करने के लिए अयोग्य बना दे। यह न्यायालय इस दृष्टि से दृढ़ है कि हम रौक्सैन शर्मा बनाम अरुण शर्मा, (2015) 8 एससीसी 318 में सुप्रीम कोर्ट के फैसले को मानते हैं, जहां यह कहा गया है:

"13. एचएमजी अधिनियम कहता है कि शिशु या कम उम्र के बच्चे की अभिरक्षा उसकी मां को दी जानी चाहिए, जब तक कि पिता ऐसे ठोस कारणों का खुलासा नहीं करता है जो बच्चे के कल्याण और हित को कम करने की संभावना का संकेत और अनुमान लगाते हैं, या खतरे में पड़ जायेगा यदि अभिरक्षा मां द्वारा बरकरार रखी जाती है। एचएमजी अधिनियम की धारा 6 (ए), इसलिए, नाबालिग बच्चे की संपत्ति के संरक्षक होने के पिता के अधिकार को सुरक्षित रखती है, लेकिन उसके व्यक्ति के अभिभावक के रूप में नहीं, जबकि बच्चा पांच साल से कम का है। यह संरक्षकता के विपरीत, अंतरिम संरक्षण के अपवाद को उजागर करता है, और फिर निर्दिष्ट करता है कि जब तक बच्चा पांच साल से कम उम्र का है तब तक संरक्षण मां को दी जानी चाहिए। हमें तुरंत स्पष्ट करना चाहिए कि यह धारा या उस मामले में जी और डब्ल्यू अधिनियम में शामिल किसी भी अन्य प्रावधान, पांच साल की उम्र पार

करने के बाद भी मां को बच्चे की संरक्षण के लिए अयोग्य नहीं ठहराता है।"

51. मुझे एक माँ के अपने छोटे बच्चे की अभिरक्षा के अधिकार के बारे में प्रश्न पर विचार करने का अवसर मिला, विशेष रूप से, मास्टर अथर्व (माइनर) और अन्य बनाम राज्य में 1956 के अधिनियम की धारा 6 (ए) के संदर्भ में उत्तर प्रदेश और 7 अन्य, 2020 (143) एएलआर 332, जहां यह आयोजित किया गया था:

"9. धारा के परंतुक की शर्तों को पढ़ने से पता चलता है कि प्राकृतिक संरक्षकता के सवाल के अलावा, एक नाबालिग की संरक्षण, जिसने पांच वर्ष की आयु पूरी नहीं की है, आम तौर पर मां के पास होती है। एकमात्र इसलिए, जहां तक प्रतिमा का सवाल है, शब्द "साधारण" है। "साधारण" शब्द यह दर्शाता है कि नियम के रूप में, पांच वर्ष तक की आयु के बच्चों को उनकी मां के साथ छोड़ा जाना चाहिए, लेकिन ऐसा हो सकता है अपवाद भी हो सकते हैं। वे अपवाद हो सकते हैं जहां मां स्पष्ट रूप से अनैतिक जीवन जी रही हो या उसने पुनर्विवाह कर लिया हो, जहां उसके नए घर में, उसके पहले के गठबंधन से हुए बच्चे के लिए कोई जगह नहीं है, या जहां मां को किसी जघन्य अपराध के लिए दोषी ठहराया गया हो आदि। वर्तमान मामले में, ऐसी किसी भी परिस्थिति का संकेत नहीं दिया गया है, न ही ऐसी कोई दलील दी गई है और न ही यह साबित किया गया है कि मां को उस असाधारण श्रेणी में रखा जाए, जहां उसे अपने छोटे बच्चे की अभिरक्षा से वंचित किया जा सकता है, जो अभी भी पांच साल से कम उम्र का है।

10. इस बात पर भी गौर करना होगा कि बच्चे के पांच साल का हो जाने के बाद भी ऐसा नहीं है कि मां अधिकार से वंचित हो जाती है. वह अभी भी एक बच्चे को प्यार करने और उसे एक वयस्क बनाने के लिए सबसे अच्छी व्यक्ति होगी। इस संबंध में, रौक्सैन शर्मा बनाम अरुण शर्मा, (2015) 8 एससीसी 318 में सुप्रीम कोर्ट के फैसले का संदर्भ लिया जा सकता है, जहां यह कहा गया है:

"13. एचएमजी अधिनियम कहता है कि शिशु या कम उम्र के बच्चे की अभिरक्षा उसकी मां को दी जानी चाहिए, जब तक कि पिता ऐसे ठोस कारणों का खुलासा नहीं करता है जो बच्चे के कल्याण और हित को कम करने की संभावना का संकेत और अनुमान लगाते हैं। या यदि अभिरक्षा माँ द्वारा बरकरार रखी जाती है तो ख़तरे में डाल दिया जाता है। इसलिए, एचएमजी अधिनियम की धारा 6(ए), नाबालिग बच्चे की संपति के संरक्षक होने के पिता के अधिकार को सुरक्षित रखती है, लेकिन बच्चे की उम्र 5 साल से कम है रहते हुए उसके संरक्षक होने के अधिकार को सुरक्षित नहीं रखती है। यह संरक्षकता के विपरीत, अंतरिम संरक्षण के अपवाद को उजागर करता है, और फिर निर्दिष्ट करता है कि जब तक बच्चा पांच साल से कम उम्र का है तब तक संरक्षण मां को दी जानी चाहिए। हमें तुरंत यह स्पष्ट करना चाहिए कि यह धारा या उस मामले के लिए जी और डब्ल्यू अधिनियम में शामिल किसी भी अन्य प्रावधान होने के बावजूद भी, पांच साल की उम्र बीत जाने के बाद भी मां को बच्चे की संरक्षण के लिए अयोग्य नहीं ठहराता है।

6. मास्टर अद्वैत (सुप्रा) में, इस न्यायालय ने आदेश दिया कि मास्टर अद्वैत शर्मा को इस फैसले की घोषणा के एक सप्ताह के भीतर उसके पिता द्वारा उसकी मां की संरक्षण में सौंप दिया जाएगा, ऐसा न करने पर सीजेएम, गाजियाबाद पुलिस एजेंसी के माध्यम से नाबालिग की मां श्रीमती प्रीति राय की संरक्षण में सौंप देगा। हालाँकि, पिता के पास बच्चे के प्राकृतिक अभिभावक होने के नाते उससे मिलने का अधिकार होगा और मुलाक़ात की सुविधा के लिए तदनुरूप दायित्व माँ पर होगा।

7. ***पेरी कंसाग्रा बनाम स्मृति मदान कंसागरा, (2019) 20 एससीसी 753 और आशीष रंजन बनाम अनुपमा टंडन और अन्य, (2010) 14 एससीसी 274*** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि बच्चे की संरक्षण के मामले में सर्वोपरि विचार बच्चे का कल्याण और हित है।

8. मौजूदा मुकदमे में, नाबालिग की कस्टडी को लेकर विवाद एक तरफ उसकी मां और दूसरी तरफ उसकी दादी और चाचा के बीच है। बच्चा अपनी दादी की संरक्षण में है और उसके चाचा वरुण भाटी ने याचिका दायर की है, कॉर्पस के पिता की 8.4.2021 को मृत्यु हो गई। यह प्रतिवादी संख्या 3 का मामला है, कि उसके पति विवेक भाटी की मृत्यु के बाद, याचिकाकर्ता संख्या 1 की संरक्षण उसकी दादी और उसके चाचा वरुण भाटी के पास है जो बच्चे की सभी आवश्यक जरूरतों का ख्याल रखने के लिए अच्छी तरह से सुसज्जित हैं, जबकि याचिकाकर्ता नं. 2 बच्चे की कस्टडी उसकी मां होने के के कारण दावा करती है। रिकॉर्ड के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि उसकी निजी नौकरी निर्धारित अवधि के लिए थी और वर्तमान में वह जी.एच. उद्यम (फर्न्स पेटल्स) के रोजगार में नहीं है। । उसने बयान दिया है कि वह खुद को अन्य अंशकालिक नौकरियों में संलग्न करके पर्याप्त कमाई करती है। कॉर्पस (नाबालिग) की उम्र 15.3.2015 दर्ज उसकी जन्मतिथि के अनुसार लगभग छह से सात वर्ष है। हिंदू अल्पसंख्यक और संरक्षकता अधिनियम की धारा 6 में प्रावधान है कि हिंदू नाबालिग के प्राकृतिक संरक्षक, नाबालिग व्यक्ति के साथ-साथ नाबालिग की संपत्ति के संबंध में व्यवस्था है कि -

(क) एक लड़के या अविवाहित लड़की और पिता के मामले में, और उसके बाद, माँ: बशर्ते कि एक नाबालिग की संरक्षण, जिसने पांच वर्ष की आयु पूरी नहीं की है, आमतौर पर मां के पास होगी।

(ख) .....

(ग) ......

स्पष्टीकरण:- इस धारा में अभिव्यक्त "पिता" और "माँ" में सौतेला पिता और सौतेली माँ शामिल नहीं है।

9. ***गीता हरिहरन बनाम भारतीय रिज़र्व बैंक, एआईआर 1999 एससी 1149*** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने देखा कि वाक्यांश "पिता" और उसके बाद, "माँ" में, 'आफ्टर' शब्द का अर्थ जरूरी नहीं कि 'के बाद' हो। पिता का जीवनकाल जिस संदर्भ में यह धारा 6 (ए) में प्रकट होता है, उसका अर्थ है 'अनुपस्थिति में', इसमें

'अनुपस्थिति' शब्द किसी भी कारण से नाबालिग की संपत्ति या व्यक्ति की देखभाल से पिता की अनुपस्थिति को संदर्भित करता है। यदि पिता है नाबालिग के मामलों के प्रति पूरी तरह से उदासीन या यदि माता-पिता के बीच आपसी समझ के आधार पर, माँ को विशेष रूप से नाबालिग की जिम्मेदारी सौंपी जाती है या यदि पिता किसी भी कारण से नाबालिग की देखभाल करने में शारीरिक रूप से असमर्थ है, तो पिता पर विचार किया जा सकता है। अनुपस्थित होना और माँ एक मान्यता प्राप्त प्राकृतिक अभिभावक होने के नाते अभिभावक के रूप में नाबालिग की ओर से वैध रूप से कार्य कर सकती है।

10. ***रोज़ी जैकब बनाम जैकब चक्रमक्कल, एआईआर 1973 एससी 2090*** के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि बच्चों की संरक्षण को नियंत्रित करने वाले विचार को नियंत्रित करना बच्चों का कल्याण है, न कि माता-पिता का अधिकार।

11. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने ***तेजस्विनी गौड़ और अन्य बनाम शेखर, जगदीश प्रसाद तिवारी और अन्य (2019) 7 एससीसी 42*** में रिपोर्ट किए गए मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा जताया, जिसमें, दोनों के बीच नाबालिग बच्चे की संरक्षण का मामला भी था। नाबालिग लड़की का पिता और उसकी भाभी (उसकी मृत पत्नी की बहन) शामिल थी; बंबई उच्च न्यायालय ने माना कि प्रतिवादी सं. 1 पिता, बच्चे के एकमात्र जीवित माता-पिता, बच्चे की संरक्षण के हकदार हैं और बच्चे को प्रतिवादी संख्या 1 को ध्यान में रखते हुए, पिता के प्यार, देखभाल और स्नेह की आवश्यकता है, क्योंकि प्रतिवादी संख्या 1 को गंभीर बीमारी के कारण अस्पताल में भर्ती कराया गया था और उन परिस्थितियों में, अपीलकर्ता, उसके भाई और भाभी ने बच्चे की देखभाल की है और न्याय के हित में यह उचित है कि बच्चे की संरक्षण पहले प्रतिवादी (पिता) को सौंप दी जाए. तथापि उच्च न्यायालय ने पाया कि बच्चे की देखभाल के लिए अपीलकर्ता द्वारा किए गए प्रयासों को मान्यता दी जानी चाहिए और इसलिए उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता नं. 2 और 3 को बच्चे संरक्षण सौफ दिया। उच्च न्यायालय के उपरोक्त आदेश को निजी प्रतिवादी द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी, जिसके संरक्षण में बच्चा पड़ा हुआ था, लेकिन सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इसका निपटारा कर दिया गया और कुछ शर्तों और टिप्पणियों के अधीन उच्च न्यायालय के आक्षेपित फैसले की पुष्टि की गई। हालाँकि, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ संख्या 13, 14, 18, 19, 20, 22, 25, 52 में टिप्पणी की थी, जो इस प्रकार हैं:-

"13. बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट अवैध या अनुचित संरक्षण से तत्काल रिहाई के प्रभावी साधन प्रदान करके विषय की स्वतंत्रता को सुरक्षित करने के लिए एक विशेषाधिकार प्राप्त प्रक्रिया है। रिट किसी नाबालिग की संरक्षण उसके अभिभावक को बहाल करने के लिए भी अपना प्रभाव बढ़ाती है जब गलत तरीके से इससे वंचित किया गया। किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा नाबालिग की संरक्षण, जो उसकी कानूनी संरक्षण का हकदार नहीं है, को नाबालिग बच्चे की संरक्षण का निर्देश देने के लिए रिट देने के उद्देश्य से अवैध संरक्षण के बराबर माना जाता है। नाबालिग की संरक्षण की बहाली के लिए ऐसे व्यक्ति से जो व्यक्तिगत

3 गोहर बेगम बनाम सुग्गी@नजमा बेगम और अन्य एआईआर 1960 एससी 93, 4 श्रीमती मंजू मालिनी शेषाचलम डियो श्री आर. शेषाचलम बनाम विजय थिरुगननम सो थिवुगननम और अन्य 2018 एससीसी ऑनलाइन kar 621 Law, के अनुसार उसके कानूनी या प्राकृतिक अभिभावक नहीं है, इस मुक्कदमे में, रिट अदालत का क्षेत्राधिकार है।

14. गोहर बेगम3 में जहां मां को पर्सनल लॉ के तहत अपने नाजायज नाबालिग बच्चे की कस्टडी का कानूनी अधिकार था, वहां रिट जारी की गई थी। गौहर बेगम3 में, सुप्रीम कोर्ट ने एक नाजायज लड़की की बरामदगी के लिए बंदी प्रत्यक्षीकरण की याचिका पर सुनवाई की। गोहर ने आरोप लगाया कि गोहर की मां की बहन कनीज़ बेगम कथित तौर पर गोहर की नवजात बच्ची को अवैध रूप से संरक्षण में ले रही थी। सुप्रीम कोर्ट ने मोहम्मडन कानून के तहत इस स्थिति पर ध्यान दिया कि एक नाजायज कन्या बच्चे की मां उसकी संरक्षण की हकदार है और बच्चे की संरक्षण मां को बहाल करने से इनकार करने पर बच्चे की संरक्षण अवैध हो जाएगी। सुप्रीम कोर्ट ने माना कि कनिज़ के पास बच्चे की संरक्षण का कोई कानूनी अधिकार नहीं है और बच्चे को मां को सौंपने से इनकार करने के परिणामस्वरूप पुराने कोड की धारा 491 सीआरपीसी के अर्थ के तहत बच्चे की अवैध संरक्षण हुई। सुप्रीम कोर्ट ने माना कि यह तथ्य कि गोहर को संरक्षक और वार्ड अधिनियम के तहत अधिकार था, सीआरपीसी की धारा 491 के तहत उसके अधिकार से इनकार करने का कोई औचित्य नहीं है। सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि गौहर बेगम, प्राकृतिक संरक्षक होने के नाते, रिट याचिका को बनाए रखने की हकदार हैं और इसे निम्नानुसार माना गया है:-

"7. इन निर्विवाद तथ्यों पर कानून की स्थिति बिल्कुल स्पष्ट है। इस मामले पर लागू होने वाले मोहम्मडन कानून के तहत, अपीलकर्ता अंजुम की संरक्षण का हकदार है जो उसकी नाजायज बेटी है, चाहे अंजुम का पिता कोई भी हो। प्रतिवादी के पास बच्चे की अभिरक्षा का कोई भी कानूनी अधिकार नहीं है। अपीलकर्ता को बच्चे को सौंपने से उसके इनकार के परिणामस्वरूप धारा 491 के अर्थ के तहत बच्चे की अवैध संरक्षण हो गई। इस स्थिति में स्पष्ट रूप शिशुओं के प्रस्तुत करने हेतु बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट से संबंधित अंग्रेजी मामले से मान्यता प्राप्त है। क्वीन बनाम क्लार्क (1857) 7 ईएल और बीएल 186: 119, ईआर 1217 में लॉर्ड कैंपबेल, सी.जे., ने पृष्ठ 193 पर कहा:

"लेकिन पालन-पोषण के लिए संरक्षकता के तहत एक बच्चे के संबंध में, अपेक्षा की जाती है कि अभिभावक की संरक्षण से अवैध रूप से संरक्षण में लिए जाने पर गैरकानूनी रूप से कैद किया किय गया था, और जब उसे सौंप दिया जाता है, तो बच्चे को मुक्त कर दिया जाता है। संदर्भित किया जा सकता है। धारा 491 की शर्तें स्पष्ट रूप से मामले पर लागू होंगी और अपीलकर्ता अपने द्वारा मांगे गए आदेश का हकदार होगा।

8. इसलिए हम सोचते हैं कि उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों का यह विचार स्पष्ट रूप से गलत था कि बच्ची अंजुम को कथित तौर पर या अनुचित तरीके से संरक्षण में नहीं लिया गया था। विद्वान न्यायाधीशों ने अपने

दृष्टिकोण के समर्थन में कोई कारण नहीं दिया है और हम अपने मन में स्पष्ट हैं कि यह दृष्टिकोण कानून में टिकाऊ नहीं है......

10. हमें कोई कारण नहीं दिखता कि अपीलकर्ता को बच्चे की कस्टडी वापस पाने के लिए अभिभावक और वार्ड अधिनियम के तहत आगे बढ़ने के लिए क्यों कहा जाना चाहिए। निःसंदेह उसे ऐसा करने का अधिकार था। लेकिन उसे संहिता की धारा 491 के तहत बच्चे की संरक्षण के आदेश का भी स्पष्ट अधिकार था। तथ्य यह है कि संरक्षक और वार्ड अधिनियम के तहत उसका अधिकार था, उसे धारा 491 के तहत अधिकार से वंचित करने का कोई औचित्य नहीं है। यह अच्छी तरह से स्थापित है जैसा कि इसके बाद उद्धृत मामलों से प्रकट होगा।" (रेखांकित किया गया)

18. बंदी प्रत्यक्षीकरण कार्यवाही संरक्षण की वैधता को उचित ठहराने या उसकी जांच करने के लिए नहीं है। बंदी प्रत्यक्षीकरण कार्यवाही एक ऐसा माध्यम है जिसके माध्यम से बच्चे की संरक्षण को अदालत के विवेक पर निर्भर किया जाता है। बंदी प्रत्यक्षीकरण एक विशेषाधिकार रिट है जो एक असाधारण उपाय है और रिट तब जारी की जाती है जहां विशेष मामले की परिस्थितियों में, कानून द्वारा प्रदान किया गया सामान्य उपाय या तो उपलब्ध नहीं है या अप्रभावी है; अन्यथा रिट जारी नहीं की जायेगी। बच्चों की संरक्षण के मामलों में, रिट देने में उच्च न्यायालय की शक्ति केवल उन मामलों में योग्य है जहां किसी नाबालिग को ऐसे व्यक्ति द्वारा संरक्षण में रखा जाता है जो उसकी कानूनी संरक्षण का हकदार नहीं है। सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों द्वारा विचाराधीन मुद्दे पर फैसले के मद्देनजर। हमारे विचार में, बच्चों की संरक्षण के मामलों में, बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट कायम रखने योग्य है, जहां यह साबित हो जाता है कि माता-पिता या अन्य लोगों द्वारा नाबालिग बच्चे की संरक्षण अवैध थी और कानून के किसी भी अधिकार के बिना थी।

19. बच्चों की संरक्षण के मामलों में, सामान्य उपचार केवल हिंदू अल्पसंख्यक और संरक्षकता अधिनियम या संरक्षक और वार्ड अधिनियम, जैसा भी मामला हो, के तहत निहित है। संरक्षक और वार्ड अधिनियम के तहत कार्यवाही से उत्पन्न होने वाले मामलों में, अदालत का क्षेत्राधिकार इस बात से निर्धारित होता है कि क्या नाबालिग आमतौर पर उस क्षेत्र में रहता है जिस पर अदालत ऐसे क्षेत्राधिकार का प्रयोग करती है। संरक्षक और वार्ड अधिनियम के तहत जांच और रिट अदालत द्वारा शक्तियों के प्रयोग के बीच महत्वपूर्ण अंतर हैं जो संक्षेप प्रकृति का है। जो महत्वपूर्ण है वह है बच्चे का कल्याण। रिट कोर्ट में अधिकारों का निर्धारण शपथ पत्र के आधार पर ही किया जाता है। जहां अदालत का मानना है कि विस्तृत जांच की आवश्यकता है, अदालत असाधारण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने से इनकार कर सकती है और पार्टियों को सिविल अदालत से संपर्क करने का निर्देश दे सकती है। यह केवल असाधारण मामलों में है, बंदी प्रत्यक्षीकरण की याचिका पर असाधारण क्षेत्राधिकार के प्रयोग में नाबालिग की संरक्षण के पक्षों के अधिकार निर्धारित किए जाएंगे।

20. वर्तमान मामले में, अपीलकर्ता मां ज़ेलम की बहनें और भाई हैं जिनके पास नाबालिग बच्चे की संरक्षण पाने का कानून का कोई अधिकार नहीं है। जबकि हिंदू अल्पसंख्यक और संरक्षकता अधिनियम की धारा 6 के अनुसार, पहला प्रतिवादी-पिता नाबालिग बच्चे का प्राकृतिक

अभिभावक है और उसके पास बच्चे की संरक्षण का दावा करने का कानूनी अधिकार है। बच्चे की अभिरक्षा में पिता का अधिकार विवादित नहीं है और बच्चा डेढ़ वर्ष का नाबालिग होने के कारण अपनी बुद्धिमान प्राथमिकताओं को व्यक्त नहीं कर सकता है। इसलिए, हमारे विचार में, इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, पिता, प्राकृतिक अभिभावक होने के नाते, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत बच्चे की संरक्षण की मांग करने वाले असाधारण उपाय को लागू करना उचित था।

22. नित्या आनंद7 में विदेशी अदालत के आदेश का उल्लंघन करके भारत लाए गए नाबालिग बच्चे के संबंध में विभिन्न निर्णयों का उल्लेख करने और बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट जारी करने के सिद्धांतों पर विचार करने के बाद, इसे निम्नानुसार माना गया: -

6 रुचि माजू बनाम संजीव माजू (2011) 6 एससीसी 479 7 नित्य आनंद राघवन बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली) (2017) 8 एससीसी 454

46. उच्च न्यायालय एक बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट जारी करने की याचिका पर विचार करते हुए किसी दिए गए मामले में, नाबालिग बच्चा ऊपर उल्लिखित कानूनी स्थिति सहित सभी उपस्थित तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए बच्चे की वापसी का निर्देश दे सकता है या बच्चे की संरक्षण को बदलने से इनकार कर सकता है। एक बार फिर, हम यह जोड़ने में जल्दबाजी कर सकते हैं कि अदालत का निर्णय, प्रत्येक मामले में, बच्चे के कल्याण पर विचार करते समय उसके सामने लाए गए मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की समग्रता पर निर्भर होना चाहिए, जो सर्वोपरि है। विदेशी अदालत का आदेश बच्चे के कल्याण के लिए होना चाहिए। इसके अलावा, बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट के उपाय का उपयोग केवल विदेशी अदालत द्वारा उसके अधिकार क्षेत्र में किसी व्यक्ति के खिलाफ दिए गए निर्देशों को लागू करने और उस क्षेत्राधिकार को निष्पादन अदालत में परिवर्तित करने के लिए नहीं किया जा सकता है। निस्संदेह, रिट याचिकाकर्ता विदेशी अदालत द्वारा पारित आदेश को लागू करने के लिए ऐसे अन्य उपाय का सहारा ले सकता है जो कानून में स्वीकार्य हो या किसी अन्य कार्यवाही का सहारा ले सकता है जो कि संरक्षण के लिए भारतीय न्यायालय के समक्ष कानून में स्वीकार्य हो सकती है। बच्चे, यदि ऐसी सलाह दी जाए।"

25. नाबालिग बच्चे का कल्याण सर्वोपरि है: बच्चे की संरक्षण के मामलों पर निर्णय लेते समय अदालत केवल माता-पिता या अभिभावक के कानूनी अधिकार से बंधी नहीं है। यद्यपि विशेष क़ानून के प्रावधान माता-पिता या अभिभावकों के अधिकारों को नियंत्रित करते हैं, लेकिन नाबालिग बच्चे की संरक्षण से संबंधित मामलों में नाबालिग का कल्याण सर्वोच्च विचार है। न्यायालय के लिए सर्वोपरि विचार बाल हित और बच्चे का कल्याण होना चाहिए।

52. हमारे फैसले में, एक बच्चे की संरक्षण से संबंधित कानून काफी अच्छी तरह से तय है और वह यह है: एक नाबालिग की संरक्षण के रूप में एक कठिन और जटिल प्रश्न का निर्णय करते समय, कानून की अदालत को प्रासंगिक कानूनों को ध्यान में रखना चाहिए और वहां से बहने वाले अधिकार। लेकिन ऐसे मामलों का फैसला केवल कानूनी प्रावधानों की व्याख्या से नहीं किया जा सकता। यह एक मानवीय समस्या है और

इसे मानवीय स्पर्श से हल करने की आवश्यकता है: संरक्षण के मामलों से निपटने के दौरान एक अदालत न तो क़ानूनों से बंधी होती है, न ही साक्ष्य या प्रक्रिया के सख्त नियमों से और न ही मिसालों से। किसी नाबालिग के उचित अभिभावक का चयन करते समय, सर्वोपरि विचार बच्चे का कल्याण और कल्याण होना चाहिए। अभिभावक का चयन करते समय, न्यायालय माता-पिता के अधिकार क्षेत्र का प्रयोग कर रहा है और उससे अपेक्षा की जाती है कि वह बच्चे के सामान्य आराम, संतुष्टि, स्वास्थ्य, शिक्षा, बौद्धिक विकास और अनुकूल परिवेश को उचित महत्व दे। लेकिन भौतिक सुख-सुविधाओं के अलावा नैतिक और नैतिक मूल्यों को भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। वे समान रूप से, या हम कह सकते हैं, और भी अधिक महत्वपूर्ण, आवश्यक और अपरिहार्य विचार हैं। यदि नाबालिग इतनी उम्र का है कि बुद्धिमान प्राथमिकता या निर्णय ले सकता है, तो अदालत को ऐसी प्राथमिकता पर भी विचार करना चाहिए, हालांकि अंतिम निर्णय अदालत पर निर्भर होना चाहिए कि नाबालिग के कल्याण के लिए क्या अनुकूल है।"

12. माननीय सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणियों, जिसमें मामले के तथ्य और परिस्थितियाँ बाध्यकारी हैं, के आधार पर, मेरी सुविचारित राय है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय का उपरोक्त निर्णय इस न्यायालय के लिए एक मार्गदर्शक शक्ति के रूप में कार्य कर सकता है। वर्तमान मामले में और बच्चे की संरक्षण का फैसला करते समय अदालत द्वारा कोई पांडित्यपूर्ण दृष्टिकोण नहीं अपनाया जा सकता है। वर्तमान मामले में याचिकाकर्ता नं. 2, जो कि बच्चे की माँ है, ने उसे न तो त्यागा है और न ही उसे मातृ प्रेम और स्नेह के अधिकार से वंचित किया है। पिता की मृत्यु के कारण वह बच्चे की स्वाभाविक संरक्षक है। प्रतिवादी नं. 3 और उनके जीवित बेटे वरुण भाटी ने निस्संदेह अपने पिता की मृत्यु के बाद से बच्चे की देखभाल की है और उनकी देखभाल और बच्चे की चिंता के तथ्य को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है।

13. हालाँकि, केवल इस तथ्य के कारण कि माँ, जो याचिकाकर्ता नं. 2. कानून के तहत उसके [1]प्राकृतिक अभिभावक होने के नाते उसके बच्चे की संरक्षण से इनकार नहीं किया जा सकता है और बच्चे की संरक्षण पर गोपनीयता का दावा उसके पिता की अनुपस्थिति में किसी अन्य व्यक्ति से ऊपर किया गया है। एक माँ हमेशा माँ ही रहती है, चाहे वह पर्याप्त रूप से कमाती हो या नहीं और यह नहीं माना जा सकता है कि फर्न्स पेटल्स में अपना रोजगार समाप्त करने के बाद, वह बच्चे का पोषण और उसकी जरूरतों की देखभाल करने में सक्षम नहीं होगी। इस तथ्य को छोड़कर कि वह किसी भी नियमित नौकरी में नियोजित नहीं है, माँ की ओर से किसी भी प्रतिकूल बात के अभाव में उसे अपने बेटे की अभिरक्षा का उसकी दादी और चाचा की तुलना में बेहतर अधिकार है। हालाँकि, जब तक बच्चा, जिसकी उम्र इस समय छह से सात साल के बीच बताई जाती है, हर चीज़ से परिचित नहीं हो जाता और अपनी माँ की संगति में नहीं रहेगा। याचिकाकर्ता नं. 2, प्रतिवादी नं. 3 और उनके बेटे वरुण भाटी को इस आदेश के एक वर्ष की अवधि के लिए मुलाक़ात के अधिकार के रूप में उनसे मिलने का अधिकार होगा।

14. इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि याचिकाकर्ता नं. 2 बुलन्दशहर की निवासी है तथा प्रतिवादी क्रमांक. 3 और उसका बेटा गाजियाबाद में बस गए हैं, यह निर्देशित किया जाता है कि प्रतिवादी नं. 3 और उसके जीवित बेटे (बच्चे के चाचा) को याचिकाकर्ता संख्या 3 के स्थान पर एक वर्ष की अवधि के लिए कॉर्पस विराज भाटी (याचिकाकर्ता संख्या 1) से मिलने का अधिकार होगा। महीने में दो बार रविवार को सुबह 11:00 बजे से शाम 5:00 बजे के बीच, याचिकाकर्ता संख्या 2 के साथ पूर्व व्यवस्था के अधीन। टेलीफ़ोनिक रूप से. याचिकाकर्ता नं. 2 तदनुसार बच्चे और उसकी दादी और चाचा के बीच मुलाकात की सुविधा प्रदान करेगा और इसमें कोई बाधा उत्पन्न नहीं करेगा। तदनुसार, इस बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका की **अनुमति** दी जाती है।

15. अत: निर्देशित किया जाता है कि प्रतिवादी सं. 3 याचिकाकर्ता संख्या 1 का संरक्षण याचिकाकर्ता नं. 2 (बंदी की माँ) के निवास पर इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि के 30 दिनों के भीतर सौंप देगा। बच्चे के हित को ध्यान में रखते हुए, दोनों पक्ष इस न्यायालय के निर्देश सुनिश्चित करने के लिए एक-दूसरे का सहयोग करेंगे।

16. आगे निर्देशित किया जाता है कि मामले में प्रतिवादी सं. 3 या उसके परिवार के सदस्य याचिकाकर्ता संख्या 2 को बच्चे की अभिरक्षा सौंपने में कोई भी टाल-मटोल का रवैया अपनाते हैं या बच्चे की संरक्षण हस्तांतरित करने से इनकार करते है तो, मामले की रिपोर्ट याचिकाकर्ता संख्या 2 द्वारा एस.एस.पी., गाजियाबाद और सी.जे.एम., गाजियाबाद को की जाएगी, इस आदेश की एक प्रति उनके समक्ष प्रस्तुत करने पर इस आदेश का अनुपालन सुनिश्चित करेंगे और याचिकाकर्ता संख्या 2 को बच्चे का संरक्षण सुनिश्चित करेंगे।

(2023) 3 ILRA 1041

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 03.03.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी

द्वितीय अपील संख्या 947/1995

बाबू खान एवं अन्य ...अपीलकर्ता

बनाम

राजेंद्र प्रताप ...प्रतिवादी

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता: श्री एस.एन. श्रीवास्तव, श्री नरेश चंद्र तिपाठी

प्रतिवादी के अधिवक्ता: श्री जे.एच. खान, श्री डब्ल्यू.एच. खान, श्री गुलरेज़ खान

सिविल कानून - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - धारा 100, - उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि संशोधन अधिनियम, 1950 - धारा 189(C), 193, 209, 210, 229-B और 341 - अभिभावक और वार्ड अधिनियम, 1890 - धाराएँ 4(2), 4(3) और 30 - सीमा अधिनियम, 1963 - धाराएँ 6 और 7, अनुसूची - 1 का प्रविष्टि - 65 - एक वाद से उत्पन्न द्वितीय अपील - वाद संपत्ति - विवादित संपत्ति के मालिक की मृत्यु हो गई - उसने अपनी पत्नी और पांच बेटों थे - पत्नी की भी मृत्यु हो गई - भाईयों में सबसे बड़े

ने अपने छोटे भाईयों के हितों का ध्यान रखा, जो उस समय सभी नाबालिग थे, और वर्ष 1977 में संपत्ति का बिक्री पत्र बनाकर सभी नाबालिगों की ओर से और वादी/प्रतिवादी के पक्ष में निस्तारित किया - वादी- प्रतिवादी को वर्ष 1982 में राजस्व अभिलेख में सही तरीके से दर्ज किया गया और प्रथम भाग के प्रतिवादी-अपीलकर्ताओं द्वारा इसके विरुद्ध कोई आपत्ति नहीं उठाई गई, यहां तक कि वे वयस्क भी हो गए। जैसे ही वे बड़े हुए, प्रतिवादी-अपीलकर्ता संख्या 1 और 2 ने उत्तर प्रदेश अधिनियम, 1950 की धारा 229-बी के तहत एक वाद दायर किया, जिसमें बिक्री के कागजात को चुनौती दी गई -उक्त वाद की सुनवाई के दौरान, प्रथम भाग के प्रतिवादी-अपीलकर्ताओं ने वर्ष 1988 में एक और बिक्री का कागजात तैयार किया, जिसमें उन्होंने अपनी संपत्ति के हिस्से को दूसरे भाग के प्रतिवादी-अपीलकर्ताओं के पक्ष में बेच दिया - गैर-प्रस्तुति के कारण, धारा 229-बी के तहत वाद निरस्त कर दिया गया - वादी/प्रतिवादी का मुकदमा मंजूर कर लिया गया - प्रथम अपील को निरस्त कर दिया गया - न्यायालय ने पाया कि प्रथम अपीलीय न्यायालय ने स्पष्ट रूप से यह निष्कर्ष निकाला कि वादी-क्रेता-प्रतिवादी विवादित संपत्ति में कब्जे में थे और वादी को प्रारंभ में दिए गए एक पक्षीय निषेधाज्ञा आदेश वाद के दौरान अस्तित्व में रहा - वादी/प्रतिवादी-क्रेता बिक्री के कागजात के बाद से ही विवादित संपत्ति में कब्जे में थे और प्रथम भाग प्रतिवादी-अपीलकर्ताओं ने कभी भी कब्जे के लिए प्रक्रिया प्रारंभ नहीं की - कब्जे की वसूली के लिए प्रक्रिया शुरू करने की समय सीमा 12 साल पूरा होने पर वर्ष 1994 में समाप्त हो गई थी - यूपी अधिनियम, 1950 की धारा 189©, 193, 209 और 210 के संयुक्त अध्ययन के अनुसार, प्रतिवादी-प्रतिवादी प्रथम भाग के अधिकार विवादित संपत्ति से समाप्त हो गए हैं और वादी-प्रतिवादी भूमिधारक बन गए हैं - दोनों भाग के अपीलकर्ताओं ने अपने अधिकार यह अनुमान के साथ खो दिए हैं कि उनके पास मोहम्मदन कानून या 1988 के बिक्री के कागजात के तहत कोई अधिकार था। वर्तमान द्वितीय अपील में कोई राहत नहीं दी जा सकती, इसलिए इसे निरस्त किया जाता है। (पैराग्राफ -16, 17, 19, 20)

द्वितीय अपील निरस्त। (ई-11)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. माधेगौड़ा (डी) द्वारा एल.आर. बनाम अंकगौड़ा (डी) द्वारा एल.आर. और अन्य, 2001 (45) एएलआर 820,

2. मुशामत अंतो बनाम रिओती कौर, एआईआर 1936 इलाहाबाद 837,

3. मीथीयन सिद्धिक बनाम मोहम्मद कुंजु पारीथ कुट्टी और अन्य, एआईआर 1996 एससी 1003,

4. मोहम्मद अमीन और अन्य बनाम वकील अहमद और अन्य, एआईआर 1952 एससी 358,

5. प्रेम सिंह और अन्य बनाम बिरबल और अन्य, (2006) 5 एससीसी 353,

6. उथा मोइडू हाजी बनाम कुनिंगराथ कुन्हाब्दुल्ला और अन्य, (2007) 14 एससीसी 792,

7. मश्कूर आलम बनाम कुमारी अमीर बानो और अन्य, 2014 (125) आरडी 352,

8. मुरुगन और अन्य बनाम केसवा गौंडर (मृत) और अन्य, एआईआर 2019 एससी 2696,

9. बैलोचन करन बनाम बसंत कुमारी नाइक और अन्य, (1999) 2 एससीसी 310,

10. लल्लू और अन्य बनाम राजस्व बोर्ड और अन्य, 2019 (12) एडीजे 33,

11. राम सुंदर बनाम राजस्व बोर्ड, 1984 एडब्ल्यूसी 696,

12. राम चंद्र दुबे और अन्य बनाम उप निदेशक समेकन और अन्य, एआईआर 1978 इलाहाबाद 157,

<u>माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी,</u>

1. वर्तमान दूसरी अपील में, अपीलकर्ताओं ने विद्वान अपर जिला न्यायाधीश, कर्वी द्वारा 1990 की सिविल अपील संख्या 5 (बाबू खान और अन्य बनाम अतुल प्रकाश) में पारित निर्णय तथा आदेश दिनांक 24.04.1995 और विद्वान मुंसिफ-मजिस्ट्रेट, कर्वी, बांदा द्वारा निर्णय तथा आदेश दिनांक 30.4.1990 में पारित, 1988 के मूल वाद संख्या 79(अतुल प्रकाश बनाम बाबू खान और अन्य) को चुनौती दिया है।

2. वादी-प्रत्यर्थी अतुल प्रकाश द्वारा प्रतिवादी-अपीलकर्ता क्रमांक 1 से 3 द्वारा प्रतिवादी-अपीलकर्ता क्रमांक 4 से 8 के पक्ष में निष्पादित दिनांक 28.04.1988 के विक्रय विलेख को रद्द करने और प्रतिवादियों-अपीलकर्ताओं को विवादित संपत्ति पर निर्माण कार्य करने या वादी के कब्जे में हस्तक्षेप करने से रोकने के लिए स्थायी निषेधाज्ञा के लिए मुकदमा दायर किया गया था। विचारण न्यायालय ने शुरुआती चरण में, 16.5.1988 को प्रतिवादियों-अपीलकर्ताओं को कोई भी बाधा उत्पन्न करने से रोकते हुए निषेधाज्ञा आदेश दिया। मुकदमे का फैसला सुनाया गया और उसके खिलाफ अपील खारिज कर दी गई।

3. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि रुस्तम खान विचाराधीन संपत्ति का मालिक था। दुर्भाग्य से, वर्ष 1964 में उनकी मृत्यु हो गई। उनके पीछे उनकी विधवा और पांच बेटों, अर्थात रमजान खान (सबसे बड़े), नजीर खान, बाबू खान, चांद खान और नसीम खान रह गए। रुस्तम खान की विधवा की भी कुछ समय बाद मृत्यु हो गई, जिसके बाद भाई-बहनों में सबसे बड़े रमजान खान ने भाइयों के हितों का ख्याल रखा, जो उस समय नाबालिग थे। रमजान खान और नजीर खान ने विवादित संपत्ति का दिनांक 28.07.1977 को अपनी ओर से अपनी क्षमता से वास्तविक संरक्षक के रूप में और साथ ही शेष तीन नाबालिग भाइयों (प्रतिवादी-अपीलकर्ता का पहला समूह) की ओर से वादी-प्रत्यर्थी के पक्ष में बिक्री विलेख निष्पादित किया। दिनांक 13.10.1982 को प्रविष्टि द्वारा वादी-प्रत्यर्थी का नाम राजस्व अभिलेखों में विधिवत रूप से परिवर्तित कर दिया गया था और वयस्कता प्राप्त करने के बाद भी प्रतिवादी-अपीलकर्ताओं के पहले समूह द्वारा इसके खिलाफ कोई आपत्ति दर्ज नहीं की गई थी। 1987 में, वयस्क होने पर प्रतिवादी-अपीलकर्ता संख्या 1 और 2 ने उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम,1950 की धारा 229-ख के तहत विक्रय पत्र दिनांक 28.07.1977 को चुनौती देते हुए मुकदमा दायर किया। लिखित बयान भी दर्ज कराए गए। हालाँकि उक्त मुकदमे के लंबित रहने के दौरान, प्रतिवादी-अपीलकर्ता के पहले समूह ने प्रतिवादी-अपीलकर्ताओं के दूसरे समूह के पक्ष में, विचाराधीन संपत्ति में अपने हिस्से की बिक्री के लिए 28.4.1988 को एक विक्रय विलेख निष्पादित किया (उनमें से कुछ कार्यवाही में उनके कानूनी प्रतिनिधियों द्वारा प्रतिस्थापित रहे हैं)। उन्होंने गैर अभियोजन के लिए धारा 229-ख के तहत शुरू की गई कार्यवाही खारिज करने की भी अनुमति दी।

इसमें प्रत्यर्थी ने अपीलकर्ताओं के दोनों समूहों के खिलाफ 1988 का वर्तमान मूल मुकदमा संख्या 79 दाखिल किया, जिसमें दिनांक 28.04.1988 के उक्त बिक्री विलेख को रद्द करने और प्रतिवादियों-अपीलकर्ताओं को संपत्ति पर उसके शांतिपूर्ण कब्जे में हस्तक्षेप करने से रोकने के लिए स्थायी निषेधाज्ञा की राहत देने की प्रार्थना की गई। वाद इस आधार पर दाखिल किया गया था कि पट्टांतरित संपत्ति प्रतिवादी-अपीलकर्ता के प्रथम समूह द्वारा पहले ही बिक्री विलेख दिनांक 28.07.1977 को वादी-प्रत्यार्थी के पक्ष में बेच दी गई थी। वाद का फैसला वादी-प्रत्यर्थी के पक्ष में सुनाया गया। दिनांक 30.04.1990 के निर्णय एवं डिक्री से व्यथित होकर प्रतिवादियों-अपीलकर्ताओं ने प्रथम अपील दायर की, जिसे 24.04.1995 को खारिज कर दिया गया। इस प्रकार उन्होंने वर्तमान द्वितीय अपील दायर की।

4. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने इस आधार पर दोनों न्यायालयों के फैसले की आलोचना की, कि, रमजान खान एक भाई होने के नाते मुस्लिम कानून के तहत प्रतिवादी-अपीलकर्ता का कानूनी या वैधानिक अभिभावक नहीं था, इसलिए उसके द्वारा अपने नाबालिग भाइयों के हिस्सों की बिक्री के लिए निष्पादित दिनांक 28.07.1977 का विक्रय विलेख अमान्य है। चूंकि विक्रय विलेख दिनांक 28.07.1977 प्रतिवादी-अपीलकर्ता के पहले समूह के शेयरों की सीमा तक शून्य है, इसलिए इसके परिणामों को नजरअंदाज करते हुए प्रतिवादी-अपीलकर्ताओं का प्रथम समूह कानूनी रूप से दूसरे प्रतिवादी-अपीलकर्ताओं के पक्ष में दिनांक 28.04.1988 को संपत्ति में उनके शेयरों की बिक्री के लिए विक्रय विलेख निष्पादित कर सकते हैं। ऐसी स्थिति में वादी-प्रत्यर्थी के पास 28.07.1977 की बिक्री विलेख के माध्यम से बेची गई संपत्ति के 3/5 वें हिस्से पर कभी कोई कानूनी दावा नहीं था, और इस प्रकार मुकदमा उक्त सीमा तक खारिज होने योग्य था।

5. प्रतिवादियों-अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि दोनों अदालतों ने यूपी जेड.ए और एल.आर अधिनियम के प्रावधानों को भी गलत ढंग से लागू किया है। चूंकि प्रत्यर्थियों और अपीलकर्ताओं का पहला समूह इस्लाम का अनुयायी है, इसलिए, इस मामले में उपरोक्त कानून की कोई प्रयोज्यता नहीं है। अपने तर्कों के समर्थन में, प्रत्यर्थी-अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया है:

(i) मधेगौड़ा (मृतक) विधिक प्रतिनिधि द्वारा बनाम अंकेगौड़ा (मृतक) विधिक प्रतिनिधि द्वारा और अन्य।

(ii) मुशामत एंटो बनाम रेओती कौर।

(iii) मीथियान सिद्धिकी बनाम मोहम्मद कुंजू परीथ कुट्टी और अन्य।

(iv) मो.अमीन और अन्य बनाम वकील अहमद और अन्य।

(v) प्रेम सिंह और अन्य बनाम बीरबल और अन्य।

6. वादी-प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता विचारण न्यायालय और प्रथम अपीलीय न्यायालय दोनों के निर्णय का समर्थन करते हैं। उनका कहना है कि विवादित भूमि कृषि भूमि होने के कारण संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम,1890 और यूपी जेड.ए और एल.आर अधिनियम के प्रावधानों

द्वारा शासित होनी चाहिए और वर्तमान विवाद में मोहम्मडन कानून की कोई प्रयोज्यता नहीं है। उन्होंने आगे कहा कि अपीलकर्ताओं के पहले समूह के लिए 28.07.1977 के बिक्री विलेख को रद्द करना आवश्यक था। वह संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम,1890 की धारा 4(2),4(3) और 30 तथा परिसीमा अधिनियम,1963 की अनुसूची के अनुच्छेद 60 पर भरोसा करते हुए विबंध के संबंध में न्यायालय के निष्कर्ष का समर्थन करते हैं। उनका तर्क है कि तीन भाइयों में से सबसे छोटे ने वर्ष 1982 में वयस्कता प्राप्त की, और इसलिए उन्हें 28.07.1977 के बिक्री विलेख को रद्द करने के लिए वर्ष 1985 के बाद वाद दाखिल नहीं करना चाहिए था। लेकिन वाद 1987 में यूपी जेड.ए और एल.आर अधिनियम की धारा 229-ख के तहत दाखिल किया गया था और उसमें भी विरोध ठीक से नहीं किया गया, जिसके कारण व्यतिक्रम के लिए मामला खारिज कर दिया गया और कभी भी बहाल नहीं किया गया। इस प्रकार अब उन्हें विक्रय पत्र को चुनौती देने से विबंधित कर दिया गया है। अपने तर्कों के समर्थन में वादी-प्रत्यर्थियों के विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा जताया है:

(i) उथा मोइदु हाजी बनाम कुनिंगरथ कुन्हाबदुल्लाह और अन्य
(ii) (ii) मशकूर आलम बनाम कुमारी अमीर बानो और अन्य
(iii) मुरुगन और अन्य बनाम केशव गौंडर (मृतक)और अन्य
(iv) बैलोचन करण बनाम बसंत कुमारी नाइक और अन्य
(v) लल्लू और अन्य बनाम राजस्व बोर्ड और अन्य

7. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता कानून के निम्नलिखित महत्वपूर्ण प्रश्नों पर जोर देते हैं:
(i) क्या मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में बड़ा भाई प्रतिवादी-अपीलकर्ता के प्रथम समूह के हितों को विमुख करने में सक्षम था, जो नाबालिग भाई थे?
(ii) ऐसे मुस्लिम नाबालिग, जिनकी संपत्ति उनकी अवयस्कता के दौरान उनकी ओर से विक्रय विलेख निष्पादित करके वास्तविक संरक्षक द्वारा बेची गई है,न कि विधितः संरक्षक द्वारा, को वयस्क होने पर सिविल वाद दायर करके विक्रय विलेख को रद्द करने की आवश्यकता है या कानून में अमान्य है? कानून में यह विलेख नहीं है, और इसलिए नाबालिग को भी इसे अस्वीकार करने की आवश्यकता नहीं है ?
(iii) क्या प्रथम अपीलीय न्यायालय ने वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में मुस्लिम पर्सनल लॉ की तुलना में प्रतिकूल कब्जे पर यूपी जेड.ए और एल.आर अधिनियम और कानून लागू करने में गलती की है? जहां अपीलकर्ताओं का पहला समूह इस्लाम का अनुयायी है।

8 (2007) 14 एस.सी.सी. 792
9 2014 (125) आर.डी. 352
10 ए.आई.आर. 2019 एस.सी. 2696
11 (1999) 2 एस.सी.सी 310
12 2019 (12) एडीजे 33

8. पक्षकारों के अधिवक्ताओं को सुना और उनकी सहायता से अभिलेखों का अवलोकन किया।

9. चूंकि महत्वपूर्ण कानूनी प्रश्न संख्या एक और दो दोनों समान मुद्दों से संबंधित हैं इसलिए उन पर एक साथ निर्णय लिया जा रहा है। विद्वान विचारण न्यायालय ने विवाद्यक क्रमांक 2 और 3, विक्रय विलेख दिनांक 28.07.1977 के माध्यम से अपने नाबालिग भाइयों के शेयरों को स्थानांतरित करने के लिए रमजान खान की पात्रता के संबंध में तय किया है। विचारण न्यायालय ने माना है कि चूंकि प्रतिवादी-अपीलकर्ता के प्रथम समूह की मां की मृत्यु हो गई थी, इसलिए, उस समय लगभग 21 वर्ष की उम्र के रमजान खान ने सबसे बड़े भाई के रूप में मोहम्मडन कानून के तहत वास्तविक संरक्षक की भूमिका निभाई और अपने नाबालिग भाइयों की संपत्ति बेचने के लिए वे सक्षम भी थे। प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा भी इसकी पुष्टि की गई थी। प्रथम अपीलीय न्यायालय ने **रामसुंदर बनाम राजस्व बोर्ड** में इस न्यायालय द्वारा तय किए गए कानून को लागू किया है और माना है कि अगर कोई नाबालिग वयस्क होने पर बिक्री विलेख को चुनौती देने में विफल रहता है तो बिक्री विलेख नाबालिग पर बाध्यकारी है। इसने आगे माना है कि भले ही 28.07.1977 का विक्रय विलेख प्रत्यर्थी- अपीलकर्ता के पहले समूह के शेयरों की सीमा तक शून्य था, उन्हें न्यायालय से इस आशय की घोषणा की आवश्यकता थी। **रामसुंदर (उपरोक्त)** में तथ्य यह थे कि एक हिंदू मां ने अभिभावक होते हुए भी खुद को अभिभावक बताए बिना अपने नाबालिग बच्चों की संपत्ति बेच दी। वयस्क होने पर बेटा विक्रय विलेख को चुनौती देने में असफल रहा और यह माना गया कि बिक्री अब उस पर बाध्यकारी है। विचारण न्यायालय और प्रथम अपीलीय न्यायालय दोनों ने माना है कि चूंकि नामांतरण की कार्यवाही 13.10.1982 तक समाप्त हो गई थी और बाबू खान, पहले समूह के प्रतिवादी-अपीलकर्ता में से एक हैं, तब तक वयस्क हो गए थे और उन्होंने राजस्व अभिलेखों में वादी-प्रत्यर्थी के नामांतरण पर कोई आपत्ति नहीं जताई थी, इसलिए यह समझा जाना चाहिए कि प्रतिवादी-अपीलकर्ताओं के पहले समूह ने विक्रय विलेख दिनांक 28.07.1977 का अनुसमर्थन किया है।

10. जहां तक विचारण न्यायालय और अपीलीय न्यायालय द्वारा भरोसा किए गए फैसले का सवाल है, **राम सुंदर (उपरोक्त)** हिंदू कानून से उत्पन्न हुआ मामला है और वर्तमान तथ्यों पर इसकी कोई प्रयोज्यता नहीं है जहां पार्टियां मोहम्मडन कानून द्वारा शासित होती हैं। **उथा मोइदु हाजी(ऊपर)** के मामले में वादी-प्रत्यर्थी के अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए अन्य मामलों के संबंध में, पैराग्राफ 14 में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि संरक्षकता की स्थिति और कार्यवाहक अभिभावक की पात्रता के संबंध में कभी भी कोई मुद्दा नहीं बनाया गया था। इसलिए यह वर्तमान मामले के तथ्यों से भी अलग है और वादी-प्रत्यर्थी के लिए मददगार नहीं है। **मुरूगन (उपरोक्त)** के मामले में निर्णय भी वर्तमान मामले के तथ्यों से अलग है क्योंकि उक्त मामले में मुद्दा उस परिसीमा के संबंध में था जब नाबालिग की वयस्कता प्राप्त करने से पहले मृत्यु हो जाती है और उक्त मामले में भी पक्षकार हिंदू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम,1956 द्वारा शासित थे। वादी-प्रत्यर्थी **बैलोचन करण (उपरोक्त)** और **लल्लू (उपरोक्त)** से किसी भी लाभ का दावा नहीं कर सकता है, क्योंकि यह दोनों मामले गैर मुस्लिम आस्था वाले पक्षकारों से संबंधित हैं।

11. मुस्लिम पर्सनल लॉ, के तहत नाबालिग के हितों की अच्छी तरह से रक्षा की जाती है। मुस्लिम कानून वास्तविक अभिभावक और विधित: अभिभावक की स्थिति के बीच अंतर करता है। मुस्लिम नाबालिग की संपत्ति के हस्तांतरण के संबंध में कोई भी निर्णय केवल कानूनी अभिभावक द्वारा ही किया जा सकता है और वह भी केवल सीमित आधार पर। इस संबंध में कानून अच्छी तरह से स्थापित है और **मीथियान सिद्धिकी (उपरोक्त)**, के पैराग्राफ पांच को संदर्भित करना पर्याप्त होगा जहां सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया था:

"5. इस न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति एम. हिदायतुल्ला और अरशद हिदायतुल्ला द्वारा मुल्ला का "मोहम्मडन कानून का सिद्धांत" [उन्नीसवां संस्करण], धारा 359 में एक मुस्लिम नाबालिग के कानूनी संपत्ति अभिभावकों से संबंधित है। आदेश में, केवल पिता, निष्पादक नियुक्त किया गया है पिता की वसीयत द्वारा, पिता के पिता और पिता के पिता की वसीयत द्वारा नियुक्त निष्पादक, संपत्ति के कानूनी संरक्षक हैं। अधिकार के तौर पर किसी अन्य रिश्तेदार को नाबालिग की संपत्ति का संरक्षक बनने का अधिकार नहीं है; यहां तक कि मां, भाई या चाचा भी नहीं, बल्कि पिता या नाबालिग के दादा-दादी, मां, चाचा के भाई या किसी अन्य व्यक्ति को उसकी वसीयत के निष्पादक के रूप में नियुक्त कर सकते हैं, ऐसी स्थिति में वह कानूनी अभिभावक बन जाते हैं और कानूनी अभिभावक की सभी शक्तियां उनके पास होती हैं जैसा कि उपरोक्त सिद्धांतों की धारा 362 और 366 में परिभाषित किया गया है। न्यायालय उनमें से किसी एक को नाबालिग की संपत्ति के संरक्षक के रूप में भी नियुक्त कर सकता है, ऐसी स्थिति में उनके पास न्यायालय द्वारा नियुक्त संरक्षक की सभी शक्तियां होंगी, जैसा कि धारा 363 से 367 में कहा गया है।"

पूर्वनिर्धारित कानून के आलोक में प्रथम अपीलीय न्यायालय और विचारण न्यायालय दोनों का यह मानना गलत है कि मुस्लिम नाबालिगों के वास्तविक संरक्षक होने के नाते उनके भाई रमजान खान उनकी ओर से एक वैध विक्रय विलेख निष्पादित कर सकते हैं। स्वीकृत किया जाता है कि संरक्षकता और प्रतिपाल्य अधिनियम के तहत नाबालिगों के संरक्षक की नियुक्ति की कोई व्यवस्था नहीं है।

12. मुशामत एंटो (ऊपर) मामले में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा बहुत पहले से यह तय किया गया है कि मुस्लिम नाबालिग के वास्तविक संरक्षक द्वारा संपत्ति का कोई भी हस्तांतरण शून्य और अमान्य है, वयस्क होने पर नाबालिग द्वारा इसका अनुसमर्थन नहीं किया जा सकता है। भले ही नाबालिग के वयस्क होने के बाद लेनदेन की पुष्टि कर दी गई हो, बाद में उसके द्वारा या उसके द्वारा स्थानांतरित किए गए व्यक्तियों द्वारा इसे चुनौती दी जा सकती है। **मुशामत एंटो** का प्रासंगिक पैराग्राफ इस प्रकार पढ़ा जाए;

"जिस बेंच के समक्ष मामला निपटान के लिए आया था, उसने दो प्रश्न इस पूर्ण पीठ को भेजे हैं। वह इस प्रकार हैं:

(1) क्या नाबालिग के वास्तविक अभिभावक द्वारा किसी मुसलमान नाबालिग की अचल संपत्ति के हस्तांतरण की राशि के लेनदेन को उसके वयस्क होने के बाद अनुसमर्थित किया जा सकता है?

....

तीसरे प्रस्ताव से निपटते हुए उनके आधिपत्य ने हेदाया और फतवा-ए-आलमगिरी के पाठ की जांच की और और इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि मालिकों की मंजूरी पर निर्भर रहने वाले एक अनधिकृत व्यक्ति द्वारा बिक्री से संबंधित हनफ़ी सिद्धांत उस मामले को संदर्भित करता है जहां ऐसे मालिक के पास लेनदेन को संचालित करने के लिए आवश्यक मंजूरी देने की क्षमता होती है और उन्हें फ़ज़ुली बिक्री से संबंधित इन सिद्धांतों में कोई संदर्भ नहीं मिला, जहां तक उनके हेदाया या फतवा-ए-आलमगिरी में होने का सवाल है,ऐसे व्यक्तियों द्वारा नाबालिगों की संपत्ति से निपटना जिनके पास शिशुओं और उनकी संपत्ति का प्रभार होता है, दूसरे शब्दों में वास्तविक अभिभावक होते हैं। उनकी राय में फजुली बिक्री के बारे में सिद्धांत स्पष्ट रूप से एक ऐसे एजेंट के समान प्रतीत होता है जो किसी विशेष मामले में बिना अधिकार के कार्य करता है, लेकिन जिसके कार्य को बाद में सिद्धांतों द्वारा अपनाया या अनुसमर्थित किया जाता है, जिसका प्रभाव उसकी शुरुआत से ही मान्य होता है। एक शिशु के संबंध में एजेंसी का विचार मोहम्मडन कानून के लिए उतना ही विदेशी है, जितना हर अन्य प्रणाली के लिए।.........

हमें संदर्भित पहले प्रश्न का हमारा उत्तर नकारात्मक है, जैसा कि लेनदेन शून्य होने के कारण अनुसमर्धन का कोई सवाल ही नहीं है। दूसरे प्रश्न का उत्तर यह है कि कोई वैध अनुसमर्थन नहीं हो सकता है और इसीलिए ऐसे किसी भी अनुसमर्थन के कारण कोई विबंध नहीं हो सकता है।"

13. इस न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा तय किए गए कानून के आलोक में दोनों अदालतों ने यह मानने में गलती की कि एक बार जब प्रतिवादी-अपीलकर्ताओं की कोई आपत्ति नहीं होने पर नामांतरण की कार्यवाही समाप्त हो जाती है तो उन्हें 28.07.1977 के बिक्री विलेख की वैधता पर सवाल उठाने से विबंधित कर दिया जाता है। इसके बजाय **मुशामत एंटो (ऊपर)** के अनुसार चूंकि मोहम्मडन कानून के तहत किसी अवैध/शून्य कृत्य के अनुसमर्थन की कोई अवधारणा नहीं है, इसलिए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि एक मुस्लिम नाबालिग वयस्क होने के बाद भी अगर चाहता है तो वह उस कृत्य का समर्थन नहीं कर सकता है जो शुरू से ही शून्य है।

14. कानून संख्या तीन के महत्वपूर्ण प्रश्न के संबंध में, यूपी जेड.ए और एल.आर अधिनियम की तुलना में मुस्लिम कानून का अनुप्रयोग। विद्वान प्रथम अपीलीय न्यायालय ने अपने फैसले में इस मुद्दे को केवल यह कहकर टाल दिया कि "मैं इस विवाद में नहीं पड़ना चाहता कि इसमें मोहम्मडन पर्सनल लॉ शामिल था या यूपी जेड.ए अधिनियम शामिल था।" दूसरी ओर प्रथम अपीलीय न्यायालय ने भी अपने फैसले में **मुशामत एंटो (ऊपर)** के मामले में इस अदालत के पूर्ण पीठ के फैसले की प्रयोज्यता को यह कहते हुए खारिज कर दिया है कि उक्त मामला यूपी जेड.ए और एल.आर अधिनियम के अधिनियमित होने से पहले का है और इसलिए यह लागू नहीं है। प्रथम अपीलीय न्यायालय ने **रामचंदर दूबे और अन्य बनाम उपनिदेशक,चकबंदी, देवरिया और अन्य** के फैसले का भी हवाला दिया है, लेकिन यह नहीं बताया कि यह लागू क्यों नहीं होगा। **रामचंदर दूबे (ऊपर)** में इस अदालत ने पैराग्राफ 15 में कहा है:

"15. ऊपर जो कहा गया है उसके आलोक में निर्णय लेने पर यह पाया जाएगा कि 1951 का यूपी अधिनियम । भूमि कार्यकाल प्रणाली पर मौजूदा कानून को स्पष्ट या घोषित नहीं करता है बल्कि विभिन्न मामलों के संबंध में जानबूझकर पुराने कानून से अलग हो जाता है यह पूर्व कानून का अधिक्रमण करता है और उत्तराधिकार, हस्तांतरण, वसीयत आदि के पूरे कानून को निर्धारित करता है इसलिए अधिनियम द्वारा शासित मामलों में हिंदू कानून या मोहम्मडन कानून के पिछले नियम का संदर्भ नहीं दिया जा सकता है क्योंकि यह स्वीकार्य नहीं है, लेकिन उन मामलों के संबंध में निश्चित रूप से हिंदू कानून का सहारा लिया जा सकता है जिनके लिए 1951 के यूपी अधिनियम संख्या । में कोई प्रावधान नहीं किया गया है। अधिनियम के क्रियान्वयन से बचाए गए मामले, निश्चित रूप से, उस सीमा तक पर्सनल लॉ द्वारा शासित होते रहेंगे, जहां तक वह लागू है। यह अधिनियम संयुक्त परिवार के कानून को छूता या प्रभावित नहीं करता है, इसलिए, इस मामले में हिंदू कानून लागू रहता है।"

15. इस प्रकार पर्सनल लॉ यूपी जेड.ए और एल.आर के प्रावधानों के अंतर्गत आने वाली भूमि पर भी लागू होगा। यह उस हद तक लागू होगा, जहां तक उसे यूपी जेड.ए और एल.आर.अधिनियम द्वारा बेदखल न किया जाए। यूपी जेड.ए और एल.आर अधिनियम में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जो मोहम्मडन पर्सनल लॉ के विपरीत हो जो एक मुस्लिम नाबालिग के वास्तविक अभिभावक द्वारा विक्रय विलेख को मान्य कर दे जो शुरू से ही अमान्य है और मोहम्मडन कानून के तहत नाबालिग द्वारा वयस्कता प्राप्त करने पर भी इसकी पुष्टि नहीं की जा सकती है। इस प्रकार नाबालिगों के वास्तविक संरक्षक द्वारा दिनांक 28.07.1977 को निष्पादित विक्रय विलेख नाबालिगों के हिस्से की सीमा तक शून्य है।

16. यदि मामला केवल मोहम्मडन के व्यक्तिगत कानून के संबंध में होता तो इसे उपरोक्त के साथ समाप्त किया जा सकता था, लेकिन यूपी जेड.ए और एल.आर अधिनियम के प्रावधान भी लागू हैं। वर्तमान मामले में भूमिधर नाबालिग मुस्लिम लड़के थे जिनकी कृषिभूमि वास्तविक संरक्षक द्वारा बेची गई थी। इसमें कोई विवाद नहीं है कि वादी-प्रत्यर्थी के पक्ष में निष्पादित विक्रय विलेख दिनांक 28.07.1977 द्वारा नाबालिगों को विवादित संपत्ति से बेदखल कर दिया गया है। विचारण न्यायालय और प्रथम अपीलीय अदालत दोनों ने इस तथ्य का विशिष्ट निष्कर्ष दिया है कि बिक्री विलेख की तारीख से वादी-प्रत्यर्थी के कब्जे में विवादित संपत्ति है। यूपी जेड.ए और एल.आर अधिनियम की धारा 189 (ग), धारा 193, धारा 209 एवं धारा 210 उस भूमिधर के अधिकार से संबंधित है, जो अपनी भूमि से बेदखल हो गये हैं। उक्त धाराएं पठनीय है:-

*"189. **संक्रमणीय अधिकार वाले भूमिधर के स्वत्व की समाप्ति-** संक्रमणीय अधिकार वाले भूमिधर के खाते या उसके किसी भाग में उसका स्वत्व निम्नलिखित दशाओं में समाप्त हो जाएगा-*

....

(ग) यदि वह कब्जे से रहित कर दिया गया हो और कब्जा वापस लेने का उसका अधिकार अवधि बाधित हो गया हो।"

इस प्रकार, जब हस्तांतरणीय अधिकार वाले भूमिधर को उसके कब्जे से वंचित कर दिया जाता

है और कब्जा वापस पाने के उसके अधिकार को परिसीमन द्वारा बाधित कर दिया जाता है, तो जोत में उसका अधिकार समाप्त हो जाता है। धारा 193 ब्याज के विलुप्त होने के परिणामों का प्रावधान करती है। यह इस प्रकार पढ़ा जाए:-

*"193. **भूमिधर या असामी का स्वत्व समाप्त होने पर उसके अधिकार और दायित्व-** भूमिधर या असामी का स्वत्व समाप्त हो जाने पर उसे अपना खाता छोड़ देना पड़ेगा और उस दशा को छोड़कर जिसमें उसका स्वत्व भूमि हस्तगत करने से संबंध रखने वाली, समय विशेष पर प्रचलित, किसी विधि के निर्देशों के अधीन या अनुसार समाप्त हुआ हो, उसे खाते पर विद्यमान खड़ी फसल और निर्माणों को हटा ले जाने के संबंध में वही अधिकार होगा, जो इस अधिनियम के निर्देशों के अधीन बेदखल हो जाने पर होता।"*

*209. **भूमि पर आगम बिना काबिज की बेदखली- अगर कोई व्यक्ति समय विशेष पर प्रचलित विधि के निर्देशों के अनुकूल और-***

(क) जहां भूमि किसी भूमिधर [***] या असामी के खाते का भाग हो, वहां ऐसे भूमिधर[***] या असामी की सहमति बिना;

(ख) जहां भूमि किसी भूमिधर[***] या असामी के खाते का भाग न हो, वहां [ग्राम सभा] की सहमति बिना,

किसी भूमि पर कब्जा कर ले या अपना कब्जा रख रहे तो वह उक्त खंड (क) में अभिदिष्ट दशाओं में संबद्ध भूमिधर[***] अथवा असामी के, और उक्त खंड (ख) में अभिदिष्ट दशाओं में [गांव सभा][***] के वाद पर बेदखल हो सकेगा और क्षतिपूर्ति का भी देनदारी होगा।

[(2) उपधारा (1) के खंड (क) में अभिदिष्ट प्रत्येक ऐसे वाद में, जो भूमि से संबंद्ध हो राज्य सरकार को आवश्यक पक्ष के रूप में सम्मिलित किया जाएगा।]"

"210. धारा 209 के अधीन वाद प्रस्तुत न करने का परिणाम- यदि उस परिसीमा काल में, जो ऐसे वाद या ऐसी डिक्री के निष्पादन के लिए यथास्थिति उपबंधित है, धारा 209 के अधीन किसी भूमि से बेदखली का वाद किसी भूमिधर या असामी के द्वारा संस्थित नहीं किया जाता है या किसी ऐसे वाद में प्राप्त बेदखली की डिक्री को निष्पादित नहीं किया जाता है, तो कब्जा करने या रखने वाला व्यक्ति-

(क) जहां भूमि संक्रमणीय अधिकार वाले भूमिधर की जोत का भाग हो, ऐसी भूमि का संक्रमणीय अधिकार वाला भूमिधर हो जाएगा और ऐसी भूमि पर, यदि कोई असामी हो तो उसके अधिकार, आगम और स्वत्व समाप्त हो जाएंगे;
(ख) जहां भूमि असंक्रमणीय अधिकार वाले भूमिधर की जोत का भाग हो, असंक्रमणीय अधिकार वाला भूमिधर हो जाएगा और ऐसी भूमि पर, यदि कोई असामी हो तो उसके अधिकार, आगम और स्वत्व समाप्त हो जाएंगे;

(ग) जहां भूमि [ग्राम सभा] की ओर से किसी असामी की जोत का भाग हो, जोत का असामी वर्ष प्रति वर्ष हो जाएगा:]
[प्रतिबंध यह है कि अनुसूचित आदिम जाति के किसी भूमिधर या असामी द्वारा धृत भूमि के

संबंध में खण्ड (क) से (ग) में उल्लिखित परिणाम नहीं होंगे।]"

17. नागरिक कानून के तहत परिणाम यह है कि यदि कोई व्यक्ति परिसीमा की वैधानिक अवधि के भीतर अपनी संपत्ति पर कब्जा करने में विफल रहता है तो दूसरे पक्ष को प्रतिकूल कब्जे के रूप में अधिकार मिलता है। हालांकि यूपी जेड.ए और एल.आर अधिनियम के उपरोक्त प्रावधानों के तहत जब कोई भूमिधर कानून के विरुद्ध और उसकी सहमति के बिना अपनी भूमिधरी भूमि पर कब्जा करने वाले व्यक्ति के खिलाफ निर्धारित परिसीमा अवधि के भीतर कब्जे के लिए वाद दाखिल करने में विफल रहता है तो भूमि से भूमिधर के अधिकार समाप्त हो जाते हैं और कब्जा रखने वाला व्यक्ति भूमिधर बन जाता है। यूपी जेड.ए और एल.आर अधिनियम की धारा 341 के अनुसार परिसीमा अधिनियम के प्रावधानों को यूपी जेड.ए और एल.आर अधिनियम के तहत कार्यवाही पर लागू किया जाता है, जब तक अन्यथा स्पष्ट रूप से प्रदान न किया गया हो। परिसीमा अधिनियम की अनुसूची I की प्रविष्टि 65 के अनुसार कब्जे के लिए वाद दाखिल करने की सीमा 12 वर्ष है। क्योंकि यह माना जाता है कि बेची गई संपत्ति नाबालिगों से संबंधित थी, इस प्रकार परिसीमा अधिनियम की धारा 6 और 7 लागू होगी और परिसीमा की अवधि की आरंभिक तारीख उनके वयस्क होने की तारीख से होगी। वाद में बालिग के तौर पर चांद खान, बाबू खान और निसार खान नामक तीनों नाबालिग भाइयों को प्रतिवादी बनाया गया था। इनमें से किसी को भी किसी अभिभावक के माध्यम से पक्षकार नहीं बनाया गया। उनके लिखित बयान में भी यह दावा नहीं किया गया कि उनमें से कोई नाबालिग था। इस प्रकार माना कि वर्ष 1982 में तीनों भाई बालिग थे। इस प्रकार कब्जा वापस पाने के लिए कार्यवाही शुरू करने की परिसीमा अधिकतम 12 वर्ष की समाप्ति पर वर्ष 1994 में समाप्त हो गई। उक्त भाइयों द्वारा घोषणा या कब्जे के लिए धारा 229-ख के तहत शुरू की गई एकमात्र कार्रवाई को उनके द्वारा अभियोजन के अभाव में खारिज करने की अनुमति दी गई थी। अपने मौखिक बयान में बाबू खान ने स्वीकार किया कि उन्होंने बहाली के लिए कभी कोई आवेदन नहीं दिया। आज तक ऐसा कोई दावा नहीं है कि धारा 229-ख के तहत उक्त कार्यवाही को बहाल किया गया था या आगे कोई चुनौती दी गई थी। इस प्रकार भाइयों द्वारा नाबालिग होने या बालिग होने पर कब्जे के लिए कोई कार्यवाही शुरू नहीं की गई और यूपी जेड.ए और एल.आर अधिनियम की धारा 229-ख के तहत पहले दाखिल की गई कार्यवाही को अभियोजन के अभाव में खारिज करते हुए स्वीकार किया गया। विचारण न्यायालय के साथ-साथ प्रथम अपीलीय न्यायालय ने एक स्पष्ट निष्कर्ष दिया है कि वादी-क्रेता-प्रत्यर्थी ने बिक्री विलेख दिनांक 28.07.1977 के आधार पर विवादित संपत्ति पर कब्जा कर लिया है। दिनांक 16.05.1988 के आदेश द्वारा शुरू में वादी के पक्ष में दी गई एक पक्षीय निषेधाज्ञा पूरे वाद के दौरान जारी रही।

19. उपरोक्त से यह स्पष्ट है कि वादी-प्रत्यर्थी-क्रेता का बिक्री विलेख दिनांक 28.07.1977 से विवादित संपत्ति पर कब्जा था और प्रतिवादी-अपीलकर्ताओं के प्रथम समूह ने वयस्क होने के बाद पहली बार धारा 229-ख के तहत कार्यवाही की अनुमति दी थी जिसे खारिज कर दिया गया

और विवादित संपत्ति पर कब्जे के लिए कभी कोई अन्य कार्रवाई शुरू नहीं की गई। इस प्रकार धारा 189 (ग), धारा 193, धारा 209 और धारा 210 को एक साथ पढ़ने पर यह स्पष्ट होता है कि विवादित संपत्ति से प्रतिवादियों-प्रत्यर्थियों के प्रथम समूह का अधिकार समाप्त हो गया और वादी-प्रत्यर्थी भूमिधर बन गए हैं। प्रतिवादी-अपीलकर्ताओं के दूसरे समूह के संबंध में भी यही स्थिति है जिन्होंने प्रतिवादी-अपीलकर्ताओं के पहले समूह से विवादित संपत्ति खरीदी थी। उन्होंने कभी भी किसी भी स्तर पर कब्जे के लिए कोई कार्यवाही नहीं की। इस प्रकार यूपी जेड.ए और एल.आर अधिनियम की धारा 189 (ग), धारा 193, धारा 209 व धारा 210 की उपयोगिता के कारण अपीलकर्ताओं के दोनों समूहों ने अपने पक्ष में कोई भी अधिकार खो दिया है, भले ही यह मान लिया जाए कि उनके पास मोहम्मडन कानून या बिक्री विलेख दिनांक 28.04.1988 के आधार पर कोई अधिकार था।

20. उपरोक्त परिस्थितियों में चूंकि अपीलकर्ताओं के पास अब विवादित संपत्ति पर कोई अधिकार नहीं है, इसीलिए वर्तमान दूसरी अपील में उन्हें कोई राहत नहीं दी जा सकती है। दूसरी अपील **खारिज** की जाती है।

(2023) 3 ILRA 1050

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल वाद

दिनांक: इलाहाबाद 21.02.2023

माननीय न्यायमूर्ति चंद्र कुमार राय

के समक्ष

रिट-सी संख्या - 31271/2022

मनीष शुक्ला ...याचिकाकर्ता

बनाम

राजस्व बोर्ड और अन्य ...प्रतिपक्षी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: श्री अजय कुमार, श्री चंद्रमा सिंह

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: सी.एस.सी., श्री धीरज कुमार द्विवेदी

सिविल कानून - उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 - धारा 144 - घोषणात्मक वाद - बिना मुद्दा तय किए घोषणात्मक वाद निरस्त - आयोजित - यदि पक्षों की तर्क से उठे प्रश्न पर कोई वाद तय नहीं किया गया है, तो न्यायालय इस बिंदु पर कोई निर्णय नहीं दे सकती - विचारणीय न्यायालय द्वारा दिया गया निर्णय गुण दोष पर कायम नहीं रखा जा सकता। (पैराग्राफ 10)

सिविल कानून - उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 - धारा 144 - समय सीमा - उत्तर प्रदेश जमींदारी अधिनियम 229 B के अंतर्गत घोषणात्मक मुकदमा दायर करने की कोई समय सीमा नहीं है (पैराग्राफ 12)

भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - आदेश को निरस्त करना - जो आदेश अवैध है, उसे रिट न्यायाधिकार में निरस्त नहीं किया जा सकता, यदि उसके निरस्त होने से कोई दूसरा अवैध आदेश सामने आ जाता है - यदि एक आदेश के अपास्त होने के परिणामस्वरूप कोई गलत और अवैध आदेश वापस आ जाता है, तो उच्च न्यायालय अनुच्छेद के तहत उस आदेश में हस्तक्षेप करने से मना कर देगा, जो कि सही, न्यायसंगत और उचित प्रतीत होता है (पैराग्राफ 13)

निरस्त। (E-5)

उद्धृत वाद सूची:

1. बाबू बनाम महावीर 2020 आरडी (140) 186
2. कनीज़ फातिमा और अन्य बनाम शाह नायिम अशरफ AIR 1983 इलाहाबाद 450
3. पान कुमारी बनाम राजस्व बोर्ड, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद और अन्य 2005 (99) आर.डी. 529
4. पारस नाथ सिंह बनाम उप निदेशक समेकन और अन्य 1985 आर.डी. 71

माननीय न्यायमूर्ति चन्द्र कुमार राय

1. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता को आज के दिन पक्षकारों की श्रृंखला में प्रत्यर्थी संख्या 5 के रूप में उप जिलाधिकारी, कानपुर नगर को पक्षकार बनाने की अनुमति दी जाती है।

2. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री अजय कुमार, राज्य प्रत्यर्थीगण के विद्वान स्थायी वकील और प्रत्यर्थी संख्या 4 के लिए श्री धीरज कुमार द्विवेदी को सुना गया।

3. यह याचिका राजस्व बोर्ड के दिनांक 26.4.2022 के आदेश के विरुद्ध दायर की गई है, जिसके द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 4 द्वारा दायर द्वितीय अपील को निचली अदालतों के फैसले को दरकिनार करते हुए अनुमति दी गई है और मुकदमे की कार्यवाही को गांव सभा को शामिल करने के बाद मुकदमे पर नए सिरे से फैसला करने के लिए विचारण न्यायालय के समक्ष वापस भेज दिया गया है।

4. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने दलील दी कि उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 144 के तहत प्रत्यर्थी संख्या 4 द्वारा दायर मुकदमा विचारण न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया है और प्रथम अपील में डिक्री को बरकरार रखा गया है, लेकिन अपीलीय न्यायालय ने मनमाने ढंग से द्वितीय अपील को स्वीकार कर लिया है और मामले को नए सिरे से सुनवाई के लिए विचारण न्यायालय के समक्ष वापस भेज दिया है। उन्होंने आगे दलील दी कि प्रत्यर्थी संख्या 4 द्वारा दायर घोषणा के वाद को विचारण न्यायालय और प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा सही तरीके से खारिज कर दिया गया था क्योंकि चकबंदी कार्रवाई के दौरान कोई दावा नहीं किया गया था। उन्होंने आगे दलील दी कि द्वितीय अपीलीय न्यायालय ने द्वितीय अपील को स्वीकार करने में अपने अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण किया है, इसलिए विचारण न्यायालय के आदेश के खिलाफ विवादित निर्णय को रद्द किया जाना चाहिए।

5. जवाब में, प्रत्यर्थी संख्या 4 के अधिवक्ता ने कहा कि उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 144 के तहत प्रत्यर्थी संख्या 4 द्वारा दायर वाद को बिना किसी मुद्दे को तय किए और पक्षकारों को वाद में तय मुद्दों के अनुसार साक्ष्य पेश करने का मौका दिए बिना खारिज कर दिया गया है, इसलिए यह पूरी तरह से अवैध है। उन्होंने आगे कहा कि उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 144 के तहत वाद दायर करने की कोई सीमा नहीं है, लेकिन वादी के वाद को मनमाने ढंग से खारिज कर दिया गया है, यह मानते हुए कि यह सीमा द्वारा वर्जित है। उन्होंने आगे कहा कि द्वितीय अपीलीय न्यायालय ने द्वितीय अपील को स्वीकार कर लिया है और मामले को उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 144 के तहत नया मुकदमा दायर करने के लिए वापस भेज दिया है।

6. प्रत्यर्थी संख्या 4 के अधिवक्ता ने 2020 आरडी (140) 186 में प्रतिवेदित बाबू बनाम महावीर इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि जब तक उ0प्र0 राजस्व संहिता, 2006 की धारा 144 के तहत घोषणा के लिए वाद में मुद्दे तय नहीं किए जाते, तब तक मेरिट के आधार पर फैसला नहीं सुनाया जा सकता। उन्होंने आगे कहा कि उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 144 के तहत वाद दायर करने की कोई सीमा नहीं है। उन्होंने अंत में कहा कि राजस्व बोर्ड के आदेश के खिलाफ किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है, जिसके द्वारा मामले को मेरिट के आधार पर नए सिरे से मुकदमा तय करने के लिए विचारण न्यायालय को वापस भेज दिया गया है।

7. मैंने उभय पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत तर्कों पर विचार किया है तथा अभिलेख का अवलोकन किया है।

8. इस तथ्य पर कोई विवाद नहीं है कि प्रत्यर्थी संख्या 4 द्वारा उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 144 के तहत दायर वाद को बिना कोई मुद्दा तय किए खारिज कर दिया गया है।

9. इस तथ्य पर भी कोई विवाद नहीं है कि वाद को सीमा के आधार पर भी खारिज कर दिया गया है और प्रथम अपील में विचारण न्यायालय के निर्णय और डिक्री को बरकरार रखा गया है, लेकिन द्वितीय अपील में विचारण न्यायालय और प्रथम अपीलीय न्यायालय के निर्णयों को रद्द कर दिया गया है और मामले को गुण-दोष के आधार पर नए सिरे से निर्णय करने के लिए विचारण न्यायालय को वापस भेज दिया गया है।

10. चूँकि, उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 की धारा 144 के तहत वाद का निपटारा बिना किसी मुद्दे के किया गया है, इसलिए बाबू (पूर्वोक्त) में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि के अनुपात के मद्देनजर, विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय को गुण-दोष के आधार पर बरकरार नहीं रखा जा सकता है। बाबू (पूर्वोक्त) में दिए गए निर्णय के पैराग्राफ संख्या 2, 3, 4, 5 और 6 अवलोकन के लिए प्रासंगिक हैं, जो इस प्रकार हैं :-

"2.उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 229-बी के तहत **प्रत्यर्थी** संख्या 1 द्वारा दायर वाद का जिस तरह से दिनांक 28.01.2019 के विवादित आदेश द्वारा फैसला सुनाया गया है**,** उसकी सराहना नहीं की जा सकती है। विचारण न्यायालय ने न तो मुद्दे तय किए हैं और न ही पक्षों को अपने-अपने मामले को साबित करने के लिए सबूत पेश करने का कोई अवसर दिया है। सिविल प्रक्रिया संहिता में निहित प्रावधानों को दरकिनार कर दिया गया है।

3. जैसा कि न्यायालय ने अपने दिनांक 21.02.2019 के आदेश में पहले ही ऊपर उल्लेख किया है,उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 229-बी के तहत कार्यवाही नियमित कार्यवाही है**,** जहां किसी होल्डिंग में अधिकारों की घोषणा साक्ष्य के आधार पर तय की जाती है।

4. **प्रत्यर्थी** संख्या 1 के विद्वान अधिवक्ता भी आरोपित आदेश का बचाव करने में सक्षम नहीं रहे**;** बल्कि वे इस बात से सहमत प्रतीत होते हैं कि मामला संबंधित उप-विभागीय अधिकारी को वापस भेजा जाना चाहिए था।

5. उपरोक्त कारणों से**,** इस याचिका को अनुमति दी जाती है और उप-मंडल अधिकारी **,** मलिहाबाद **,** लखनऊ द्वारा कंप्यूटरीकृत केस संख्या टी

201810460101621; महावीर बनाम बाबू और अन्य में उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 229-बी के तहत दिनांक 28.01.2019 को पारित निर्णय और आदेश , जैसा कि रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 1 में निहित है, को रद्द किया जाता है।

6. उप-विभागीय अधिकारी को विधि के अनुसार तथा सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के तहत निर्धारित प्रक्रिया का पालन करते हुए वाद का नए सिरे से निपटारा करने का निर्देश दिया जाता है। उप-विभागीय अधिकारी मुकदमे की कार्यवाही में तेजी लाएंगे तथा इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से छह महीने की अवधि के भीतर इसे समाप्त करेंगे।"

11. इस न्यायालय ने एआईआर 1983 इलाहाबाद 450 श्रीमती कनीज फातिमा एवं अन्य बनाम शाह नईम अशरफ मामले में यह माना है कि यदि पक्षकारों की दलीलों से उत्पन्न किसी प्रश्न पर कोई मुद्दा तैयार नहीं किया गया है, तो न्यायालय उस बिंदु पर निष्कर्ष दर्ज करने के लिए आगे नहीं बढ़ सकता है। निर्णय के पैराग्राफ संख्या 19 और 20 प्रासंगिक हैं, जो इस प्रकार हैं :-

"19. उपर्युक्त निर्णय में निर्धारित विधि के प्रस्ताव के साथ कोई विवाद नहीं है, लेकिन उक्त नियम का वास्तविक दायरा यह होगा कि जहां पक्षकारों ने अपने द्वारा उठाए गए सभी तर्कों पर अपना पूरा साक्ष्य प्रस्तुत कर दिया है, उन्हें कार्यवाही के समापन पर या अपील में यह कहने की अनुमति नहीं दी जा सकती कि वे उस विशेष बिंदु पर कोई मुद्दा तैयार न किए जाने से आश्चर्यचकित हैं, जिस पर वे पहले ही अपना साक्ष्य समाप्त कर चुके हैं। ऐसे मामले में यह नहीं कहा जा सकता कि किसी मुद्दे को तैयार न किए जाने से पक्षकारों को किसी भी तरह से पूर्वाग्रह है। लेकिन उक्त नियम को उन मामलों को कवर करने के लिए भी नहीं समझा जा सकता है जहां साक्ष्य उन मुद्दों पर प्रस्तुत किए गए थे जिन पर पक्षकारों ने वास्तव में परीक्षण किया था, क्योंकि यह अच्छी तरह से स्थापित है कि किसी विशेष मुद्दे पर पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य को किसी अन्य और भिन्न तर्क के निर्णय के लिए आधार नहीं बनाया जा सकता है जिस पर कोई मुद्दा तैयार नहीं किया गया है, क्योंकि उस बिंदु पर किसी मुद्दे की अनुपस्थिति में उन्हें इसके समर्थन में या इसके खंडन में साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर नहीं कहा जा सकता है। यह नहीं माना जा सकता कि पक्षकारों ने दलीलों में उठाए गए सभी तर्कों पर पूरी तरह से साक्ष्य पेश किए हैं। एक पक्षकार से अपेक्षा की जाती है कि वह केवल वाद में बनाए गए मुद्दों पर साक्ष्य पेश करें। दूसरा पक्ष आपत्ति कर सकता है और न्यायालय हमेशा ऐसे साक्ष्य को दर्ज करने से इनकार कर सकता है जो मुकदमे में बनाए गए मुद्दों से संबंधित नहीं है। भले ही साक्ष्य पेश किए गए हों और रिकॉर्ड पर लाए गए हों, न्यायालय के लिए मुद्दों द्वारा कवर नहीं किए गए किसी बिंदु पर निर्णय लेने के लिए उस साक्ष्य पर गौर करना उचित नहीं होगा। इस प्रकार, यह नहीं कहा जा सकता है कि यदि पक्षकारों ने मामले में साक्ष्य पेश किए थे तो इसे दलीलों में उठाए गए सभी तर्कों को कवर करने के लिए समझा जाना चाहिए, हालांकि उस बिंदु पर कोई मुद्दा तैयार नहीं किया गया है।

20. मुद्दे को तैयार करने का उद्देश्य पक्षों का ध्यान उस विशिष्ट मुद्दे के ढांचे पर साक्ष्य प्रस्तुत करने की ओर आकर्षित करना है और यदि संबंधित पक्षों के खिलाफ कोई साक्ष्य प्रस्तुत

नहीं किया जाता है (एक पंक्ति मिटा दी गई है। संपादक) तो यह माना जाएगा कि उनके पास प्रश्नगत मुद्दे द्वारा कवर किए गए तर्क का समर्थन करने या खंडन करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं है। लेकिन दलीलों में उठाए गए सभी तर्कों को कवर करने वाले उचित मुद्दों की अनुपस्थिति में यह नहीं कहा जा सकता है कि पक्षों ने अपने सभी साक्ष्य या उनके द्वारा उठाए गए सभी तर्कों को समाप्त कर दिया है, हालांकि वे तैयार किए गए मुद्दों द्वारा कवर नहीं किए गए हैं। मामले के मद्देनजर, हम पाते हैं कि वर्तमान मामले में चूंकि उचित मुद्दे तैयार नहीं किए गए हैं, जो पक्षों की दलीलों के साथ-साथ संहिता के आदेश 10 नियम 2 के तहत दर्ज मामले के बयान से उत्पन्न होते हैं, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि प्रत्यर्थीगण ने अपने सभी साक्ष्य प्रस्तुत किए हैं जो उन्होंने उन तर्कों के समर्थन में पेश किए होते, जो मुकदमे में तैयार किए गए मुद्दे द्वारा कवर नहीं किए गए हैं। इसलिए, निचली अदालत द्वारा दर्ज किए गए निर्णय को वादी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए उक्त आधार पर कायम नहीं रखा जा सकता है। इसलिए, इस मामले को मुकदमे में उचित अतिरिक्त मुद्दे तय करने और पक्षों को उनके साक्ष्य पेश करने का पूरा अवसर देने के बाद नए सिरे से निर्णय के लिए विचारण न्यायालय में वापस भेजा जाना चाहिए, जिसे वे अपने मामले के समर्थन में पेश करना चाहें। विद्वान निचली अदालत दलीलों की सावधानीपूर्वक जांच करेगी और आवश्यक अतिरिक्त मुद्दे तय करेगी।"

12. जहां तक सीमा के सवाल का संबंध है, विधि में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 229 बी के तहत घोषणा के लिए वाद दायर करने की कोई सीमा नहीं है। इस न्यायालय ने 2005 (99) आरडी 529, पान कुमारी बनाम बोर्ड ऑफ रेवेन्यू, उ0प्र0 इलाहाबाद और अन्य में रिपोर्ट किए गए मामले में माना है कि उ0प्र0.जेड.ए और एल.आर अधिनियम की धारा 229 बी के तहत मुकदमा दायर करने की कोई सीमा नहीं है, निर्णय का पैराग्राफ नंबर 6 प्रासंगिक है, जो इस प्रकार है:

"6. श्री आर.सी. सिंह ने प्रस्तुत किया कि धारा 229-बी के तहत वाद सीमा द्वारा वर्जित था। इस तर्क के समर्थन में वे उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 341 पर निर्भर करते हैं, जो यह प्रावधान करती है कि सीमा अधिनियम उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम के तहत कार्यवाही पर लागू होगा और घोषणा के लिए मुकदमे में सीमा सीमा अधिनियम की अनुसूची 1 के अनुच्छेद 137 द्वारा शासित होगी क्योंकि उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम के तहत ऐसे मुकदमे के लिए कोई अवधि निर्धारित नहीं है। धारा 341 में ही प्रावधान है कि सीमा अधिनियम सहित कुछ अधिनियमों के प्रावधान उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम के तहत कार्यवाही पर लागू होंगे जब तक कि उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम में अन्यथा प्रावधान न किया गया हो। उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार नियमों के नियम 338 में प्रावधान है कि परिशिष्ट *III* में निर्दिष्ट मुकदमे, आवेदन और अन्य कार्यवाही क्रमशः उनके लिए निर्दिष्ट समय के भीतर शुरू की जाएगी। सीमा अधिनियम के प्रावधानों का सहारा केवल तभी उपलब्ध होगा जब नियमों के तहत अवधि के संबंध में कोई प्रावधान न हो। इसमें

वर्णित विभिन्न वर्गों के वादों या कार्यवाहियों के लिए सीमा अवधि। परिशिष्ट *III* में विभिन्न वर्गों के वादों के लिए प्रदान की गई सीमा अवधि दी गई है। धारा 229-बी के अंतर्गत वादों के संबंध में स्तंभ 4, जो विभिन्न वर्गों के वादों के लिए सीमा अवधि निर्धारित करता है, में "कोई नहीं" लिखा है। इसलिए यह माना जाएगा कि धारा 229-बी के अंतर्गत वाद दायर करने के लिए कोई सीमा नहीं है। सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 9 में प्रावधान है कि सिविल प्रकृति के सभी वाद सिविल न्यायालय में संस्थित किए जाएंगे, सिवाय उन वादों के, जिन्हें अपवादित किया गया है। धारा 229-बी के अंतर्गत वाद अपवादित श्रेणी में आता है और ऐसे वाद भले ही उनमें घोषणा शामिल हो, विशेष प्रकृति के वाद हैं। श्री सिंह द्वारा किसी भी मामले में जिस सीमा अधिनियम की धारा 137 पर भरोसा किया गया है, वह केवल आवेदनों पर लागू होता है, वादों पर नहीं और इसलिए इसका कोई महत्व नहीं है। जब नियम बनाने वाले प्राधिकारी ने विभिन्न वर्गों के वादों के लिए अलग-अलग सीमा अवधि प्रदान की है, तो यह माना जाएगा कि सीमा अधिनियम में सीमा अवधि निर्धारित करने वाले प्रावधान उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम के अंतर्गत वादों पर लागू नहीं होंगे। उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 189 उन परिस्थितियों को निर्धारित करती है, जिनमें भूमिदार का हित समाप्त हो जाता है। खंड (ए), *(*एए) और (बी) उन मामलों से संबंधित हैं, जहां भूमिदार की मृत्यु हो जाती है और उसका कोई वारिस नहीं रहता है, या जहां उसने अधिनियम के प्रावधानों के उल्लंघन में अपनी जोत किराए पर दे दी है या जहां भूमि अर्जित की गई है। धारा 189 की उपधारा (सी) में प्रावधान है कि जहां भूमिदार ने कब्जा खो दिया है , वहां भूमिदारी अधिकार तब समाप्त हो जाएगा, जब कब्जा वापस पाने का अधिकार खो जाएगा। राम नरेश बनाम राजस्व बोर्ड 1985 रेव दिसंबर 444 में श्री आरसी सिंह ने इस पर भरोसा किया था कि सीमा अधिनियम की धारा 27 के प्रावधान धारा 229-बी के तहत संस्थित मुकदमों पर लागू होंगे। धारा 27 में प्रावधान है कि कब्जे के लिए वाद संस्थित करने के लिए सीमित अवधि के निर्धारण पर ऐसी संपत्ति पर अधिकार समाप्त हो जाएगा। यह नियम सामान्य नियम का अपवाद है कि सीमा उपचार को रोकती है, लेकिन अधिकार को समाप्त नहीं करती है। हालांकि, अगर कोई व्यक्ति कब्जे में है तो उसका अधिकार समाप्त नहीं हो सकता जब तक कि मामला धारा 189 के खंड (ए), *(*एए) और (बी) के अंतर्गत न आ जाए। इसलिए वह किसी भी समय अपने अधिकार की घोषणा की मांग कर सकता है। अगर किसी व्यक्ति को बेदखल किया गया है तो उसे धारा 129 उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम के तहत मुकदमा दायर करना होगा। परिशिष्ट *III* धारा 209 के तहत मुकदमा दायर करने के लिए समय सीमा प्रदान करता है। इसलिए यह माना जाएगा कि धारा 229-बी के तहत मुकदमा दायर करने पर समय सीमा लागू होगी क्योंकि भूमिधर के पास कब्जा नहीं है और धारा 209 के तहत मुकदमा दायर करने का उसका अधिकार समय सीमा लागू होने पर समाप्त हो जाता है। कब्जे के सवाल पर दर्ज तथ्य यह है कि वादी ने विवादित भूमि पर अपना निरंतर कब्जा स्थापित किया है। निष्कर्ष किसी भी त्रुटि से प्रभावित नहीं दिखाया गया है। चूंकि वादी के अधिकार कभी समाप्त नहीं हुए थे,

इसलिए सीमा का कोई सवाल ही नहीं उठता। ऊपर दिए गए कारणों से रिट याचिका में कोई दम नहीं है और इसे खारिज किया जाता है।"

13. जहां तक राजस्व बोर्ड के विवादित आदेश के विरुद्ध भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत इस न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के प्रयोग का सवाल है, इस न्यायालय ने 1985 के आर.डी. 71, पारस नाथ सिंह बनाम उप निदेशक चकबंदी एवं अन्य के मामले में यह माना है कि यदि विवादित आदेश को रद्द करने के परिणामस्वरूप कोई अन्य अवैध आदेश बहाल हो जाता है तो न्यायालय विवादित आदेश में हस्तक्षेप करने से इंकार कर देगा। निर्णय का पैराग्राफ संख्या 21 इस प्रकार है:

"21. यह कहना निःसंदेह सही है कि अधिकार क्षेत्र के बिना पारित कोई भी आदेश अमान्य है और उसे रद्द किया जाना चाहिए। लेकिन यदि उस आदेश को रद्द करने के परिणामस्वरूप कोई अन्य गलत और अवैध आदेश बहाल हो जाता है, तो यह न्यायालय उस विवादित आदेश में हस्तक्षेप करने से इंकार कर देगा जो पूरी तरह से उचित, न्यायसंगत और न्यायसंगत आदेश प्रतीत होता है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत शक्ति न्याय को आगे बढ़ाने के लिए बनाई गई है, न कि उसे विफल करने के लिए। मुझे यह अच्छी तरह से स्थापित प्रतीत होता है कि एक आदेश जो अवैध है उसे रिट अधिकार क्षेत्र में निरस्त या अलग नहीं किया जा सकता है यदि इसे रद्द करने के परिणामस्वरूप कोई अन्य अवैध आदेश रिकॉर्ड में लाया जाता है।"

14. मामले के सम्पूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों तथा इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि के अनुपात पर विचार करते हुए राजस्व बोर्ड के निर्णय में कोई अवैधानिकता या त्रुटि नहीं है, जिसके द्वारा विचारण न्यायालय और प्रथम अपीलीय न्यायालय के निर्णय और डिक्री को अपास्त कर दिया गया है तथा मामले को गुण-दोष के आधार पर नए सिरे से निर्णय करने के लिए विचारण न्यायालय को वापस भेज दिया गया है।

15. आक्षेपित निर्णय के विरुद्ध किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

16. रिट याचिका में गुण-दोष का अभाव है, अतः इसे खारिज किया जाता है।

17. हालांकि, विचारण न्यायालय - उप जिलाधिकारी , कानपुर नगर को निर्देश दिया जाता है कि वह विवाद्यक को निर्णीत करने और अधिकारियों को विधि के अनुसार साक्ष्य प्रस्तुत करने की अनुमति देने के बाद उ0प्र0 राजस्व संहिता, 2006 की धारा 144 के तहत मुकदमे का फैसला करे। मुकदमे का फैसला, शीघ्रता से, अधिमानतः इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से एक वर्ष की अवधि के भीतर किया जाएगा।

(2023) 3 ILRA 1055

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल वाद

दिनांक: इलाहाबाद 07.02.2023

माननीय न्यायमूर्ति मनोज कुमार गुप्ता

माननीय न्यायमूर्ति सैयद कमर हसन रिजवी

के समक्ष

विशेष अपील संख्या - 70 / 2023

चंद्रशेखर तिवारी ...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ...प्रतिपक्षी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता: श्री सिद्धार्थ खरे

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: सी.एस.सी., श्री हृतुध्वज प्रताप साही, श्री जी.के. सिंह (वरिष्ठ अधिवक्ता)

A. विशेष कानून - इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियम, 1952 - अध्याय VII नियम 5- उत्तर प्रदेश इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921- धारा 16-D(4)- राज्य सरकार ने अधिनियम की धारा 16 D(4) के तहत प्रबंधन समिति को निलंबन- राज्य सरकार द्वारा प्रबंधन के निलंबन समय सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया- कानून के तहत राज्य सरकार को 'कारण रिकॉर्ड करने' के आदेश के द्वारा प्रबंधन समिति को हटाने का अधिकार है- इसलिए, राज्य सरकार को जवाब पर विचार करने और जवाब को स्वीकार न करने के कारण बताने की जिम्मेदारी थी, जो नहीं की गई- इससे प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का गंभीर उल्लंघन हुआ- इसलिए, किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। (पैरा 1 से 20)

अपील निरस्त की जाती है। (E-6)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

प्रबंधन समिति, गौतम बुद्ध इंटर कॉलेज और अन्य बनाम राज्य उत्तर प्रदेश और अन्य।

<u>माननीय मनोज कुमार गुप्ता, जे.</u>
<u>माननीय सैयद क़मर हसन रिज़वी, जे.</u>

अपीलार्थी की ओर से श्री सिद्धार्थ खरे, राज्य त्तरदाताओं के लिए विद्वान स्थायी अधिवक्ता और श्री जीके सिंह विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एचपी साही द्वारा सहायता प्राप्त अधिवक्ता को सुना, प्रतिवादी संख्या 5 और 6 के लिए ।

यह अंतरा न्यायालय अपील प्रतिवादी संख्या 5 और 6 (इसके बाद 'याचिकाकर्ता' के रूप में संदर्भित) द्वारा दायर 2022 की रिट-सी संख्या 37460 में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 19.12.2022 से उत्पन्न हुई है।

रिट याचिका में याचिकाकर्ता यूपी इंटरमीडिएट शिक्षा अधिनियम, 1921 (इसके बाद 'अधिनियम' के रूप में संदर्भित) के तहत एक मान्यता प्राप्त संस्थान, गोस्वामी तुलसी दास इंटर कॉलेज की प्रबंधन समिति और उसके प्रबंधक (प्रतिवादी संख्या 5 और 6 प्रस्तुत अपील में)। उन्होंने रिट याचिका में, राज्य सरकार द्वारा अधिनियम की धारा 16-डी(4) के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए प्रबंधन समिति को अधिक्रमित करते हुए पारित आदेश दिनांक 04.11.2022 की आलोचना की थी। रिट याचिका को केवल इस आधार पर स्वीकार किया गया है कि प्रबंधन को अधिक्रमित करते हुए राज्य सरकार द्वारा याचिकाकर्ताओं को सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया था। रिट कोर्ट ने रिट याचिका में दिए गए आक्षेपित आदेश को रद्द कर दिया है और रिट याचिकाकर्ताओं को सुनवाई का अवसर देने के बाद नया आदेश पारित करने के लिए मामले को राज्य सरकार को वापस भेज दिया है।

मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि अपीलकर्ता (रिट याचिका में प्रतिवादी संख्या 5) ने याचिकाकर्ताओं के खिलाफ शिकायत की थी और उसके आधार पर, शिक्षा निदेशक ने 27.05.2021 को राज्य सरकार को प्रबंधन समिति को अधिक्रमित करते हुए उसके स्थान पर एक प्राधिकृत नियंत्रक नियुक्त करने की शिफ़ारिस की थी।

इसके अनुसरण में, ऐसा प्रतीत होता है कि विशेष सचिव (माध्यमिक शिक्षा) ने दिनांक

24.06.2021 और 28.12.2021. को पक्षों को सुना। याचिकाकर्ताओं ने प्रबंधन समिति के खिलाफ लगाए गए आरोपों पर 28.12.2021 को विस्तृत आपत्ति दर्ज की और अपीलकर्ता ने भी उसी तारीख को अपना जवाब दाखिल किया। राज्य सरकार ने अपने पत्र दिनांक 31.12.2021 के माध्यम से प्रबंधन समिति और अपीलकर्ता द्वारा दिनांक 28.12.2021 को प्रस्तुत उत्तर को निदेशक (माध्यमिक) यूपी द्वारा तथ्यात्मक परीक्षण और सिफारिश के लिए अग्रेषित किया। इसके अनुसरण में, निदेशक (माध्यमिक) यूपी ने संयुक्त शिक्षा निदेशक, गोरखपुर और जिला विद्यालय निरीक्षक, कुशीनगर से रिपोर्ट प्राप्त की , जिसमें उन्होंने अधिनियम की धारा 16-डी (4) के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए उसमें उल्लिखित तीन आरोपों पर प्रबंधन समिति को अधिक्रमित करने की सिफारिश की। इसके बाद शिक्षा निदेशक, (माध्यमिक), उत्तर प्रदेश दिनांक 21.03.2022 की सिफारिश पर भरोसा करते हुए दिनांक 4.11.2022 की रिट याचिका में लगाए गए आक्षेपित आदेश को पारित किया गया।

अपीलकर्ता के विद्वान वकील ने दृढ़तापूर्वक तर्क दिया कि विद्वान एकल न्यायाधीश का आक्षेपित आदेश इस तथ्य की गलत धारणा पर आधारित है कि प्रबंधन समिति को भंग करने से पहले याचिकाकर्ताओं को सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया था। अपने तर्क के समर्थन में उन्होंने आक्षेपित आदेश में निहित कथनों पर भरोसा जताया है कि विशेष सचिव (माध्यमिक शिक्षा), उत्तर प्रदेश ने 24.06.2021और 28.12.2021. को पक्षों को सुना ।

उन्होंने न्यायालय का ध्यान उप सचिव, यूपी सरकार द्वारा शिक्षा निदेशक (माध्यमिक) और जिला विद्यालय निरीक्षक, कुशीनगर को संबोधित दिनांक 16.03.2022 को जारी एक नोटिस की ओर भी आकर्षित किया है, जिसकी प्रति प्रबंधक, प्रबंधन समिति को पृष्ठांकित है, संस्थान ने प्राधिकृत नियंत्रक की नियुक्ति से संबंधित कार्यवाही के संबंध में सुनवाई के लिए 21.03.2022 की तारीख तय की है। यह प्रस्तुत किया गया है कि उक्त संचार से यह भी पता चलता है कि 21.03.2022 को पक्षों को सुनवाई का एक और अवसर दिया गया था और इस प्रकार यह प्रस्तुत किया गया है कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने मामले को यचिकाकर्ताओ को सुनवाई का अवसर प्रदान करने के लिए राज्य को वापस भेजने में रिकॉर्ड के सामने स्पष्ट त्रुटि की है।

याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री जीके सिंह ने प्रस्तुत किया कि 24.06.2021 और 28.12.2021 को पक्षों को दी गई सुनवाई पर्याप्त नहीं थी, क्योंकि प्रबंधन समिति को भंग करने की सिफारिश की गई थी। बाद में शिक्षा निदेशक ने अपने पत्र दिनांक 21.03.2022 द्वारा और उसके बाद सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया गया। उन्होंने आगे कहा कि याचिकाकर्ताओं को सुनवाई की तारीख 21.03.2022 तय करते हुए दिनांक 16.03.2022 का कोई नोटिस कभी नहीं दिया गया, न ही उस तारीख पर कोई सुनवाई हुई।

अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सिद्धार्थ खरे ने प्रस्तुत किया कि शिक्षा निदेशक ने शुरू में अपने पत्र दिनांक 27.05.2021. के माध्यम से प्रबंधन समिति को अधिक्रमित करने की सिफारिश की थी और परिणामस्वरूप 24.06.2021 और 28.12.2021 को हुई सुनवाई

पर्याप्त थी और रिट याचिकाकर्ता प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन की शिकायत नहीं कर सकते। उनका कहना है कि हालांकि शिक्षा निदेशक (माध्यमिक) ने प्रबंधन समिति को अधिक्रमित करने के लिए 21.03.2022 को एक और सिफारिश की थी, लेकिन यह उन्हीं आरोपों पर आधारित थी और इसलिए, रिट याचिकाकर्ताओं को सुनवाई का कोई नया अवसर देने की आवश्यकता नहीं थी।

याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री जीके सिंह ने जवाब में कहा कि 28.12.2021 को सुनवाई के बाद राज्य सरकार द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का घोर उल्लंघन थी। यह प्रस्तुत किया गया है कि राज्य सरकार ने याचिकाकर्ताओं और अपीलकर्ता द्वारा प्रस्तुत उत्तर के संदर्भ में शिक्षा निदेशक (माध्यमिक) से एक रिपोर्ट मांगी और उसके बाद दिनांक 21.03.2022 के पत्र में निहित उनकी सिफारिश के आधार पर, विवादित आदेश पारित करने के लिए आगे बढ़ी। याचिकाकर्ताओं को इसकी प्रति उपलब्ध कराये बिना।

दूसरे शब्दों में, निवेदन यह है कि जब शिक्षा निदेशक द्वारा दिनांक 21.03.2022 के पत्र द्वारा एक नई सिफारिश की गई थी, जिसे अकेले ही विवादित आदेश पारित करने का आधार बनाया गया था, तो यह राज्य सरकार पर निर्भर था कि वह नया अवसर प्रदान करती। उन्होंने आगे कहा कि अन्यथा भी,आक्षेपित आदेश कानून की नजर में खराब है, क्योंकि यह याचिकाकर्ता द्वारा 28.12.2021 को प्रस्तुत विस्तृत उत्तर पर विचार नहीं करता है, जिसमें संस्थान की प्रबंधन समिति के खिलाफ लगाए गए प्रत्येक आरोप को खारिज कर दिया गया है।

हमने प्रतिद्वंदी प्रस्तुतियों पर विचार किया है और पत्रावली पर मौजूद सामग्री का अवलोकन किया है।

रिट कोर्ट ने मामले को राज्य सरकार को भेजते हुए **प्रबंधन समिति, गौतम बुद्ध इंटर कॉलेज और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 4 अन्य**[1], में विद्वान एकल न्यायाधीश के फैसले पर भरोसा जताया है। जिसमें यह माना गया है कि यद्यपि क़ानून निदेशक द्वारा जांच के चरण में सुनवाई का अवसर प्रदान करता है, लेकिन यदि निदेशक द्वारा प्रबंधन समिति को अधिक्रमित करने की सिफारिश की जाती है, तो यह प्रावधान में निहित है कि राज्य सरकार प्रबंधन समिति को अधिक्रमित करने से पहले प्रभावित पक्षों की सुनवाई करें। यह इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए आवश्यक है कि निर्णय लेने का प्राधिकारी राज्य सरकार है और प्रबंधन समिति के अधिक्रमण के कारणों को रिकॉर्ड करना उसका कर्तव्य है। प्रासंगिक टिप्पणियाँ नीचे दी गई हैं:-

"10. मेरी राय में, निदेशक की सिफारिश पर आदेश पारित करने से पहले पीड़ित पक्ष को कारण बताने के लिए नोटिस जारी करना राज्य सरकार का कर्तव्य होगा। निर्णय लेने का अधिकार राज्य सरकार है, न कि निदेशक। पीड़ित पक्षकार को राज्य सरकार के समक्ष कारण बताने का पूरा अधिकार होगा, यह तर्क देते हुए कि निदेशक द्वारा की गई सिफारिशें या तो गलत हैं या विकृत हैं। इसलिए, आपत्तियों पर विचार करते हुए उचित

आदेश पारित करना राज्य सरकार पर निर्भर होगा। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि प्रबंधन समिति उपधारा (3) के तहत कारण बताओ नोटिस के अनुसार निदेशक के समक्ष उपस्थित हुई है या नहीं। धारा की वैधता को बनाए रखने के लिए प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत को उपधारा (4) में पढ़ा जाना होगा।

....

....

18. इस तथ्य के बावजूद कि उपधारा (4) में प्रभावित पक्ष को सुनवाई का अवसर दिए जाने का कोई स्पष्ट प्रावधान नहीं है। निस्संदेह, उक्त उपधारा के 1 (2016) 6 ALJ 126
तहत कार्रवाई एक ऐसा कार्य है जिसमें तथ्यों के साथ-साथ कानून की आवश्यकताओं पर भी उचित ध्यान दिया जाता है। इसलिए, यह स्पष्ट है कि निदेशक की सिफारिश पर कार्रवाई करने से पहले, राज्य पीड़ित पक्ष को नोटिस देने के लिए बाध्य है। प्रबंधन समिति को अधिक्रमण करने का नागरिक परिणाम राज्य सरकार के निर्णय का पालन करता है, न कि निदेशक का।"

याचिकाकर्ताओं के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री जीके सिंह ने पीठ के समक्ष इस बात पर विवाद नहीं किया है कि राज्य सरकार ने 24.06.2021 और 28.12.2021 को पक्षों को सुना। उन्होंने इस बात पर भी विवाद नहीं किया कि उपरोक्त तिथियों पर सुनवाई अधिनियम की धारा 16-डी (4) के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए प्रबंधन समिति को अधिक्रमित करने के लिए शिक्षा निदेशक (माध्यमिक), उत्तर प्रदेश द्वारा दिनांक 27.05.2021 की सिफारिश से पहले की गई थी। सुनवाई का उद्देश्य शिक्षा निदेशक द्वारा की गई सिफारिश के संदर्भ में प्रबंधन समिति को अपना बचाव रखने का अवसर प्रदान करना है। इससे राज्य सरकार को यह समझाने का अवसर मिलेगा कि पत्रावली पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर, कानून अधिकृत नियंत्रक की नियुक्ति की गारंटी नहीं देता है।

हालाँकि, मौजूदा मामले में, प्रबंधन समिति को अधिक्रमित करने की पिछली सिफारिश की गई थी, जिसके बाद सुनवाई हुई, लेकिन उसके बाद, जैसा कि लागू आदेश से स्पष्ट है, राज्य सरकार ने याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत आपत्ति पर अपना स्वतंत्र दिमाग लगाने के बजाय और मामले में निर्णय लेते हुए शिक्षा निदेशक (माध्यमिक) से नये सिरे से रिपोर्ट तलब की है. बदले में, उन्होंने संयुक्त शिक्षा निदेशक, गोरखपुर और जिला विद्यालय निरीक्षक, कुशीनगर से टिप्पणियां मांगी और 21.03.2022 को एक नई सिफारिश प्रस्तुत की। उसी के आधार पर, राज्य सरकार प्रबंधन समिति को अधिक्रमित करने के लिए आगे बढ़ी थी। आदेश यह नहीं दर्शाता है कि जो नई सिफारिशें और रिपोर्टें मांगी गई थीं, वे याचिकाकर्ताओं को उपलब्ध करा दी गई थीं, जैसा कि विशेष रूप से रिट याचिका के प्रस्तर 48 और 49 में बताया गया था और अपीलकर्ता के अधिवक्ता और विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने किस तथ्य पर विवाद नहीं किया है।

इसके अतिरिक्त, आक्षेपित आदेश में ऐसा कोई संकेत नहीं है कि याचिकाकर्ताओं द्वारा उनके खिलाफ लगाए गए प्रत्येक आरोप से इनकार करते हुए प्रस्तुत विस्तृत उत्तर पर कोई विचार किया गया था। कानून के तहत राज्य सरकार को

'रिकॉर्ड किए जाने वाले कारणों से' एक आदेश द्वारा प्रबंधन समिति को अधिक्रमित करने का अधिकार है। इस प्रकार राज्य सरकार को उत्तर पर विचार करने और उत्तर स्वीकार न करने का कारण बताने का कर्तव्य सौंपा गया था, जो नहीं किया गया है।

आक्षेपित आदेश के अवलोकन से पता चलता है कि राज्य सरकार ने याचिकाकर्ताओं द्वारा दिनांक 28.12.2021 को प्रस्तुत उत्तर का भी उल्लेख नहीं किया है और केवल शिक्षा निदेशक दिनांक 21.03.2022 द्वारा की गई सिफारिश पर भरोसा करते हुए प्रबंधन समिति को अधिक्रमित कर दिया है।यह , हमारी राय में, इसके परिणामस्वरूप प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का भी घोर उल्लंघन हुआ है।

विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेश में दिए गए कारणों और हमारे द्वारा दर्ज किए गए अतिरिक्त कारणों के लिए, हम इस मामले में हस्तक्षेप करने से इनकार करते हैं।

अपील में योग्यता नहीं है और इसलिए इसे खारिज किया जाता है।

लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा ।

(2023) 3 ILRA 1059

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल वाद

दिनांक: इलाहाबाद 20.02.2023

माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पवार, के समक्ष

रिट-ए संख्या 5369/2022

सूर्येंद्र सिंह ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ..प्रतिपक्षी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: श्री शांतनु खरे, श्री सिद्धार्थ खरे, श्री हिमांशु सिंह, अशोक खरे (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: सी.एस.सी.

ए. सेवा कानून - उत्तर प्रदेश लोक निर्माण विभाग अवर अभियंता (सिविल) (ग्रुप-C), सेवा नियम, 2014- नियम 5(2)- उत्तर प्रदेश लोक निर्माण विभाग अवर अभियंता (मैकेनिकल) (ग्रुप-C) सेवा नियम, 2014- पदोन्नति- याचिकाकर्ता ने ग्रुप C कर्मचारियों के लिए उपलब्ध 5% कोटा के तहत PWD में जूनियर इंजीनियर (मैकेनिकल) के पद पर पदोन्नति की मांग की- याचिकाकर्ता के पास वर्ष 1991 में पास की गई मैकेनिकल इंजीनियरिंग की डिप्लोमा है- याचिकाकर्ता के वाद पर पदोन्नति के लिए विचार नहीं किया गया क्योंकि वह नियम 5 के अंतर्गत नहीं आता, जो सेवा में रहते हुए विभाग द्वारा पदोन्नति के लिए डिप्लोमा प्राप्त करने वाले कर्मचारियों पर विचार की अनुमति देता है, जबकि याचिकाकर्ता का डिप्लोमा उसकी नियुक्ति की तिथि से पूर्व है- याचिका स्वीकार्य नहीं- यह नहीं कहा जा सकता कि याचिकाकर्ता के पास आवश्यक योग्यता नहीं है या वह पदोन्नति के लिए योग्य नहीं है, क्योंकि उसने विभाग की पूर्व अनुमति के बिना डिप्लोमा प्राप्त किया है- प्रतिवादी की 5% कोटे के तहत कोई रिक्ति न होने की याचिका भी खारिज कर दी गई- याचिकाकर्ता की पदोन्नति के लिए दावा फिर से

विचार करने के लिए निर्देश दिए गए। (पैराग्राफ 1 से 29)

यह रिट याचिका स्वीकार की जाती है। (E-6)

उद्धृत वाद सूची:

1. भारत बनाम विजय कुमारी (1994) सप्र.(1) SCC 84 2. भारत संघ बनाम पारुल देवनाथ (2009) 14 SCC 173
3. गोविंद चंद्र तिरिया बनाम सिबाजी चरण पांडा (2020) 3 SCC 803

माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पवार

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सिद्धार्थ खरे के साथ राज्य के विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री विक्रम बहादुर सिंह को सुना।

2. इस याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ता ने निम्नलिखित अनुतोष की प्रार्थना की है:-

इसलिए, यह अत्यंत सम्मानपूर्वक प्रार्थना की जाती है कि माननीय न्यायालय यह जारी करने की कृपा करे: -

प्रत्यर्थी को उपयुक्त प्रकृति का एक रिट, आदेश या निर्देश जिसमें विभाग के समूह ग कर्मचारियों के लिए उपलब्ध पदोन्नति के लिए 5% कोटा के अंतर्गत राज्य के लोक निर्माण विभाग में कनिष्ठ अभियंता (यांत्रिक) के रूप में याचिकाकर्ता को तत्काल पदोन्नति देने का आदेश दिया गया हो उस तारीख से जब याचिकाकर्ता से कनिष्ठ समूह ग के पहले कर्मचारियों को इस माननीय न्यायालय द्वारा निर्दिष्ट अवधि के भीतर पदोन्नति दी गई थी।

(iii) प्रत्यर्थी को उपयुक्त प्रकृति का एक रिट, आदेश या निर्देश जिसमें आदेश दिया गया हो कि वह याचिकाकर्ता को उनके अधीन कनिष्ठ अभियंता (यांत्रिक) के रूप में कार्य करने की अनुमति दे और याचिकाकर्ता को उक्त पद का नियमित रूप से हर महीने नियमित मासिक वेतन सभी बकाया वेतन सहित का भुगतान उस तिथि से करे जब से याचिकाकर्ता से कनिष्ठ समूह 'ग' के पहले कर्मचारियों को इस प्रकार पदोन्नत किया गया है।

(iv) *(iii) एक रिट, आदेश या निर्देश जिसकी प्रकृति यह माननीय न्यायालय मामले की परिस्थितियों के अंतर्गत उचित और उपयुक्त समझे।"*

3. कार्यपालक अभियंता, प्रांतीय खंड, मैनपुरी द्वारा जारी दिनांकित 19.11.2007 के विज्ञापन के अनुसार, याचिकाकर्ता ने आरक्षित श्रेणी पद की रिक्त रिक्तियों को भरने के लिए सीधी भर्ती के माध्यम से भारी मैकेनिक मशीन ऑपरेटर और कार्य एजेंट के पद पर नियुक्ति के लिए आवेदन किया है। भारी मशीन ऑपरेटर के पद के लिए विज्ञापित योग्यता इंटरमीडिएट प्रमाणपत्र या समकक्ष थी। प्रांतीय योग्यता के रूप में अनुभव का होना निर्दिष्ट किया गया था।

4. यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता के पास तकनीकी शिक्षा बोर्ड उ0 प्र0 से वर्ष 1991 में उत्तीर्ण मैकेनिकल इंजीनियरिंग में डिप्लोमा है। विज्ञापन के साथ-साथ डिप्लोमा का प्रमाण पत्र याचिका के उपाबंध सं0 1 और 2 में शामिल है। याचिकाकर्ता अनुसूचित जाति वर्ग से है और उसने उक्त वर्ग के लिए आवेदन किया है। याचिकाकर्ता का चयन किया गया और उसे कार्यालय आदेश दिनांकित 06.12.2007 द्वारा रु0 3050-4590 के वेतनमान पर नियुक्ति दी गई। इसके बाद याचिकाकर्ता द्वारा पद ग्रहण किया गया और लगातार सेवा में बना है और वर्तमान में जिला

मैनपुरी में तैनात है। याचिकाकर्ता का कार्य एवं आचरण संतोषजनक रहा है। याचिकाकर्ता का पद समूह-ग में वर्गीकृत है। याचिकाकर्ता का वेतनमान समय-समय पर कार्यालय आदेश दिनांकित 07.10.2003, 14.05.2012 एवं 03.10.2012 द्वारा संशोधित किया गया है।

5. लोक निर्माण विभाग में कनिष्ठ अभियंता (सिविल) और कनिष्ठ अभियंता (यांत्रिक) का एक पद मौजूद था। दिनांकित 01.01.2015 को उ0 प्र0 राज्य सरकार ने उ0 प्र0 लोक निर्माण विभाग एवं अभियंता (सिविल) (समूह-ग), सेवा नियमावली 2014 तथा उ0 प्र0 लोक निर्माण विभाग अवर अभियंता (यांत्रिक) (समूह-ग) सेवा नियमावली 2014 अधिसूचित किया। दोनों नियमों के अंतर्गत कनिष्ठ अभियंता के पद पर पदोन्नति का 5 प्रतिशत कोटा उपलब्ध था, जिसे मूल रूप से नियुक्त समूह-ग कर्मचारियों में से पदोन्नति द्वारा भरा जाना था जिन्होंने विभाग की अनुमति प्राप्त कर समूह-ग में निर्दिष्ट योग्यता प्राप्त कर ली हो तथा भर्ती के वर्ष के प्रथम दिन 10 वर्ष की मौलिक सेवा पूर्ण कर ली हो।

6. आगे यह भी प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता कनिष्ठ अभियंता के पांच प्रतिशत कोटे के अंतर्गत पदोन्नति के लिए विचार किए जाने के लिए पूरी तरह से योग्य और पात्र है।

7. आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि मुख्य अभियंता (स्थापना), समूह-ग श्रेणी ने दिनांकित 03.10.2016 को संचार द्वारा कनिष्ठ अभियंता के पद के लिए 5 प्रतिशत कोटा के अंतर्गत पदोन्नति के लिए पात्र विभाग के 'समूह-ग' ग्रुप कर्मचारियों से संबंधित जानकारी मांगी थी। उक्त अधिसूचना पर प्रतिक्रिया देते हुए, कार्यपालक अभियंता, प्रांतीय खंड, मैनपुरी ने सूचित किया कि इस मंडल में ऐसा कोई समूह-ग कर्मचारी नहीं है। उपरोक्त प्रतिक्रिया दिनांकित 18.10.2016, हालांकि, निर्दिष्ट करती है कि याचिकाकर्ता के पास डिप्लोमा है और वह मंडल में कार्यरत था, लेकिन, उसके पास उपलब्ध डिप्लोमा विभाग में नियुक्ति की तारीख से पहले प्राप्त किया गया था।

8. पुन: अधीक्षण अभियंता, मैनपुरी क्षेत्र ने अधिसूचना दिनांकित 22.12.2017 द्वारा कनिष्ठ अभियंता के उक्त पद पर पदोन्नति हेतु विचार हेतु पात्र अभ्यर्थियों के संबंध में सूचना मांगी। कार्यपालक अभियंता, प्रांतीय खंड, मैनपुरी ने पत्र दिनांकित 29.01.2018 के माध्यम से उत्तर दिया जिसमें यह निर्दिष्ट किया गया था कि उनके मंडल में ऐसा कोई कर्मचारी उपलब्ध नहीं था, हालांकि, उपरोक्त संचार प्रस्तुत करने में, यह विशेष रूप से कहा गया था कि याचिकाकर्ता मंडल में एक भारी मशीन ऑपरेटर के रूप में काम कर रहा था और उसकी नियुक्ति की तारीख से पहले उसके पास डिप्लोमा था।

9. अधीक्षण अभियंता ने पुनः पत्र दिनांकित 07.01.2020 द्वारा अधिशाषी अभियंता मैनपुरी से जानकारी मांगी। इसका उत्तर देते हुए, कार्यपालक अभियंता ने दिनांकित 20.01.2020 को एक संचार भेजा जिसमें फिर से याचिकाकर्ता का नाम निर्दिष्ट किया गया था, लेकिन यह उल्लेख किया गया था कि उसके पास नियुक्ति की तारीख से पहले का डिप्लोमा है। उपरोक्त अधिसूचनाओं की प्रति रिट याचिका के उपाबंध सं0 8 से 11 के रूप में अभिलेख में है।

10. इसके बाद, याचिकाकर्ता ने विभिन्न प्रत्यावेदनों के माध्यम से पदोन्नति के लिए कोटा के अंतर्गत पदोन्नति पर विचार करने की प्रार्थना की।

11. याचिकाकर्ता के प्रत्यावेदन पर, कार्यपालक अभियंता ने दिनांकित 11.06.2018 को एक पत्र अधीक्षण अभियंता को भेजा, जिन्होंने इसे मुख्य अभियंता को भेज दिया और मुख्य अभियंता ने बदले में पत्र दिनांकित 27.06.2018 के माध्यम से ऐसी जानकारी मुख्य अभियंता (स्थापना) समूह-ग श्रेणी को भेज दिया, हालांकि, आज तक याचिकाकर्ता के मामले पर पदोन्नति के लिए केवल इस कारण से विचार नहीं किया गया है कि याचिकाकर्ता नियमावली 2014 के नियम 5 में प्रयुक्त सख्त भाषा द्वारा आच्छादित नहीं किया गया है जो एक कर्मचारी के विचार की अनुमति देता है जिसने सेवा में रहते हुए विभाग से पदोन्नति के लिए डिप्लोमा प्राप्त किया है, जबकि याचिकाकर्ता के पास नियुक्ति तिथि से पहले डिप्लोमा था।

12. अपने तर्क के समर्थन में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने रिट सी नंबर 62726/2016 (माधवेंद्र सिंह बनाम उ0 प्र0 राज्य एवं अन्य) में पारित इस न्यायालय की खण्ड पीठ द्वारा दिनांकित 04.01.2016 के फैसले पर भरोसा किया है, जिसमें नियम 2014 के 5 नियमों को चुनौती दी गई थी जिसमें ऐसे उम्मीदवार को विचार से बाहर रखा गया है जिसके पास नियुक्ति से पहले डिप्लोमा है।

13. उपरोक्त रिट याचिका के याचिकाकर्ता माधवेन्द्र सिंह ने दिनांकित 04.01.2015 के निर्णय की प्रति के साथ अधिकारियों को प्रत्यावेदन दिया। एक अन्य रिट याचिका संख्या 33558/201 "विनोद गोयल बनाम उ0 प्र0 राज्य एवं अन्य" में दिनांकित 22.11.2018 को पारित निर्णय पर विद्वान अधिवक्ता द्वारा भरोसा किया गया है।

14. यह प्रस्तुत किया गया है कि उपरोक्त निर्णय के परिणामस्वरूप, नियमावली 2014 के नियम 5 के अंतर्गत विचार के लिए विवाद्यक तय हो गया है, ऐसे समूह-ग पद पर एक पदधारी जिसके पास सेवा में प्रवेश के समय पहले से ही डिप्लोमा है, वह भी पात्र है।

15. आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्ता की उम्मीदवारी के खिलाफ आपत्ति नियमावली 2014 के नियमों के विपरीत है, जैसा कि इस न्यायालय की खण्ड पीठ द्वारा व्याख्या की गई है।

16. इसके विपरीत, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता केवल वरिष्ठता सूची के आधार पर पदोन्नति के लिए पात्र नहीं है। राज्य की ओर से प्रस्तुत किया गया है कि कनिष्ठ अभियंता, यांत्रिक के पद पर भर्ती लोक सेवा आयोग (प्रक्रिया) नियमावली,1970 समय-समय पर संशोधित के परामर्श से चयन द्वारा उत्तर प्रदेश पदोन्नति के अनुसार अनुपयुक्त को अस्वीकार करने के अधीन वरिष्ठता के आधार पर की जाती है।

17. उनका यह भी कहना है कि नियमावली 2014, 01.01.2015 से प्रभावी है और नियमावली, 2014 के प्रावधान के अनुसार, एक चयन वर्ष में कनिष्ठ अभियंता की 95 प्रतिशत रिक्तियां सीधी भर्ती से भरी जानी हैं और पांच प्रतिशत पद पदोन्नति के माध्यम से भरे जाने हैं। उनका यह भी कहना है कि अतिरिक्त पद पहले ही पदोन्नति के माध्यम से भरे जा चुके हैं। पिछले वर्षों में कैडर संख्या के आधार पर गलत गणना के कारण अधिक पद भरे गए जो कानून के अनुरूप नहीं थे, तब प्रत्यर्थी अधिकारियों द्वारा कुछ प्रशासनिक आदेश पारित किए गए थे जिन्हें पीड़ित व्यक्तियों ने न्यायालय के समक्ष चुनौती दी थी।

18. आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि वर्तमान में, विभाग में कोई रिक्ति नहीं है जिसे पदोन्नति के माध्यम से भरा जाना है। अत: कोई भी मांग लोक सेवा आयोग, उ0 प्र0 को पदोन्नति के माध्यम से पद भरने को अग्रेषित नहीं की जा सकेगी।

19. यह भी प्रस्तुत किया गया है कि इस न्यायालय के समक्ष कई याचिकाएँ लंबित हैं जहाँ कुछ अंतरिम आदेश चल रहे हैं और पीड़ित व्यक्ति उन अंतरिम आदेशों के आश्रय में काम कर रहे हैं। इन परिस्थितियों में, लोक सेवा आयोग, उ0 प्र0 को अधियाचन भेजकर पदोन्नति पद की पूर्ति की पहल की आगे की कोई प्रक्रिया नहीं हो सकती।

20. यह भी प्रस्तुत किया गया है कि सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 3099/2022 में, याचिकाकर्ता के पदोन्नति आदेशों को प्रत्यर्थी अधिकारियों द्वारा रद्द कर दिए गए हैं और इस न्यायालय द्वारा उस पर रोक लगा दी गई है। इस संबंध में संक्षिप्त प्रति शपथपत्र के पैरा 25 में विशिष्ट कथन किया गया हैं।

21. विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि प्रत्यर्थी अधिकारियों ने किसी भी उपलब्ध नियमों का उल्लंघन नहीं किया है और आगे प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता पदोन्नति के लिए पात्र नहीं है।

22. खंडन में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि नियमावली 2014 के नियम 5 की व्याख्या के संबंध में विवाद के बाद इस न्यायालय की खण्ड पीठ ने रिट-सी सं0 62726/2015 में पारित निर्णय और आदेश दिनांकित 04.01.2016 में इसका निस्तारण कर दिया है। माधवेंद्र सिंह (पूर्वोक्त), राज्य के लिए यह तर्क देना संभव नहीं है कि याचिकाकर्ता पदोन्नति के लिए पात्र नहीं है।

23. आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि यदि विभाग द्वारा अतिरिक्त पद भरे गए हैं, तो याचिकाकर्ता को पदोन्नति के लिए विचार किए जाने से वंचित नहीं किया जा सकता है क्योंकि अतिरिक्त पदों को भरने की गलती प्रत्यर्थी अधिकारियों की है। यदि कोई पद नहीं बचा है, तो राज्य याचिकाकर्ता को प्रभावी अनुतोष प्रदान करने के लिए एक अतिरिक्त पद बनाने का निर्देश दे सकता है। अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने सर्वोच्च न्यायालय के तीन निर्णयों पर भरोसा किया है अर्थात ***1994 स्प्ली (1)एससीसी 84 (पैरा-10)***, **भारत संघ बनाम विजय कुमारी*",* *"2009 (14) एससीसी 173 (पैरा 45) भारत संघ बनाम पारुल देवनाथ," और "2020 (3) एससीसी 803 (पैरा-22), गोविंद चंद्र तिरिया बनाम सिबाजी चरण पांडा"।***

24. रिट सी सं0 62726/2015 दिनांकित 04.01.2016 में पारित निर्णय के परिशीलन से पता चलता है कि खण्ड पीठ ने रिट याचिका पर निर्णय लेते हुए यह अवधारित किया है कि***"हमारे विचार में, विभाग की अनुमति प्राप्त करने के बाद एक उम्मीदवार को नियम 8 के अनुसार निर्धारित आवश्यक शैक्षणिक योग्यता पूरी करनी चाहिए, इसमें उन सेवारत उम्मीदवारों को शामिल किया गया है जिन्होंने राज्य सरकार के साथ अपने रोजगार के दौरान योग्यता हासिल की है। इसका उद्देश्य यह है कि यह सुनिश्चित करने के लिए कि एक उम्मीदवार जो राज्य के साथ विधिवत नियोजित है, निर्धारित प्राधिकारी की अनुमति लेने और प्राप्त करने के बाद ही शैक्षिक योग्यता प्राप्त करता है, उद्देश्य और प्रयोजन उन उम्मीदवारों को सेवा में विचार से बाहर करना नहीं है जो पहले से ही निर्धारित शैक्षिक योग्यता***

प्राप्त कर चुके हैं दूसरे शब्दों में, नियम 5 (2) का उद्देश्य सेवा में उन उम्मीदवारों को बाहर करना नहीं है जो अन्यथा निर्धारित योग्यता रखने की आवश्यकता को पूरा करते हैं, जहां योग्यताएं पहले ही हासिल कर ली गई थीं। यदि नियम की व्याख्या राज्य सरकार द्वारा की गई तरीके से की जाती है, तो यह स्पष्ट रूप से मनमाना हो जाएगा क्योंकि यह केवल निर्धारित योग्यता सहित सभी आवश्यक मानदंडों को पूरा करने वाले उम्मीदवारों को सेवा में बाहर करने के लिए काम करेगा, केवल यह आधार कि योग्यताएं सेवा में प्रवेश की तारीख से पहले प्राप्त की गई थीं। यह स्पष्ट रूप से वह उद्देश्य और प्रयोजन नहीं है जिसे नियम द्वारा प्राप्त किया जाना है।

इसलिए, जैसा कि हमने नियम की व्याख्या की है, यह याचिकाकर्ता को केवल इस आधार पर पदोन्नति के लिए विचार करने से बाहर नहीं करेगा कि उसने विभाग की अनुमति से निर्धारित शैक्षणिक योग्यता प्राप्त नहीं की है। याचिकाकर्ता के लिए विभाग की अनुमति प्राप्त करने का कोई अवसर नहीं था, केवल इस कारण से कि उसने 1999 में पीडब्ल्यूडी के लिपिक संवर्ग में अपनी नियुक्ति से बहुत पहले, 1988 में तीन साल का डिप्लोमा प्राप्त कर लिया था। परिणामस्वरूप, हम मानते हैं कि याचिकाकर्ता को उन कारणों से पात्रता सूची से बाहर नहीं किया जाएगा, जिन पर अधिकारियों ने आपत्ति जताई थी। हम स्पष्ट करते हैं कि अधिकारियों के लिए यह विधिवत सत्यापित कर खुला होगा कि याचिकाकर्ता निर्धारित योग्यताएं पूरी करता है। इस सत्यापन के अधीन और याचिकाकर्ता नियम 5 (2) में निर्धारित आवश्यक मानदंडों को पूरा करता है, याचिकाकर्ता का नाम कानून के अनुसार पात्रता/चयन सूची में शामिल किया जाएगा। यह प्रक्रिया इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तारीख से एक माह की अवधि के भीतर पूरी की जाएगी। नियम 5(2) की व्याख्या करते समय हमने जो दृष्टिकोण अपनाया है, उसमें न्यायालय के लिए नियम में निहित प्रावधानों को रद्द करना आवश्यक नहीं है।"

25. वर्तमान मामले में विवाद्यक यह है कि यदि याचिकाकर्ता ने नियुक्ति की तारीख से पहले डिप्लोमा प्राप्त किया है और विभाग की अनुमति से नहीं, तो क्या फिर भी उसका मामला नियमावली 2014 के नियम 5 (2) के अधीन आच्छादित किया जाएगा। इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा उपरोक्त व्याख्या इस विवाद्यक का स्पष्ट रूप से उत्तर देती है। खण्ड पीठ द्वारा नियमावली 2014 का नियम 5(2) की व्याख्या की गई कि इसका आशय उन सेवा अभ्यर्थियों को बाहर करने का नहीं है जो अन्यथा निर्धारित योग्यता रखने की आवश्यकता को पूरा करते हैं, जहां योग्यता याचिकाकर्ता की तरह सेवा में प्रवेश से पहले ही हासिल कर ली गई थी। तदनुसार, प्रत्यर्थी अधिकारियों द्वारा यह तर्क नहीं दिया जा सकता है कि याचिकाकर्ता के पास अपेक्षित योग्यता नहीं है या वह पदोन्नति के योग्य नहीं है क्योंकि उसने विभाग की पूर्व अनुमति से डिप्लोमा प्राप्त नहीं किया है।

26. जहां तक विद्वान स्थायी अधिवक्ता की इस तर्क का सवाल है कि उनके पास पदोन्नति के लिए 5 प्रतिशत पद कोटा भरने के लिए कोई रिक्ति नहीं है जिसे याचिकाकर्ता को पदोन्नति देने के लिए भरा जा सके, इस न्यायालय ने इस तथ्य पर ध्यान दिया है कि प्रति शपथपत्र में राज्य द्वारा यह स्वीकार किया गया है कि उपरोक्त कोटे के अंतर्गत कई अवैध पदोन्नतियां की गई हैं, जिन्हें बाद में रद्द कर दिया गया है

और जिन व्यक्तियों को वापस भेजे जाने का निर्देश दिया गया है, उन्हें न्यायालय से स्थगन आदेश दिया गया है और वे उक्त स्थगन आदेश के अधीन काम कर रहे हैं। स्वीकृत स्थिति को देखते हुए, प्रत्यर्थी को इस बहाने अवैधता को जारी रखने की अनुमति नहीं दी जा सकती कि उनके पास पांच प्रतिशत कोटा के अंतर्गत कोई रिक्ति नहीं है।

27. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उपरोक्त निर्णय भारत संघ बनाम विजय कुमार (पूर्वोक्त), भारत संघ बनाम पारुल देवनाथ (पूर्वोक्त) और गोविंद चंद्र तिरिया बनाम सिबाजी चरण पांडा (पूर्वोक्त) के मामले में दिया बार-बार संबंधित वादकारियों को प्रभावी अनुतोष देने के लिए अतिरिक्त पद के सृजन के निर्देश जारी किए हैं, क्योंकि न्यायालय ने पाया कि उन्हें गलत तरीके से उनके विधिक अधिकारों से वंचित कर दिया गया था।

28. तदनुसार, साम्या को संतुलित करने के लिए, प्रत्यर्थी अधिकारियों को पांच प्रतिशत कोटा के अंतर्गत एक अतिरिक्त पद बनाने के बाद पदोन्नति के लिए याचिकाकर्ता के दावे पर नए सिरे से विचार करने के लिए परमादेश जारी किया जाता है, जिसे भविष्य में रिक्त पद, उसी कोटे में समायोजित किया जाएगा। यह प्रक्रिया इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तारीख से तीन महीने की अवधि के भीतर संचालित की जाएगी।

29. रिट याचिका स्वीकार की जाती है। खर्चे के के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(2023) 3 ILRA 1064

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल वाद

दिनांक: इलाहाबाद 23.02.2023

माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी

के समक्ष

रिट-ए संख्या 42450/2011

राज पाल सिंह ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ..प्रतिपक्षी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: श्री सत्य प्रकाश पांडे

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: सी.एस.सी.

ए. सेवा कानून - याचिकाकर्ता को सिविल पुलिस में उप-निरीक्षक के रूप में सेवा प्रदान करने के बाद पश्चात से सेवानिवृत्त कर दिया गया - एक अनुशासनात्मक प्रक्रिया प्रारंभ की गई और उसकी अनुपस्थिति के दौरान का वेतन रोकने की बड़ी सजा दी गई - कारण बताओ नोटिस जारी किया गया और अनुशासनात्मक प्राधिकरण ने याचिकाकर्ता के उत्तर पर विचार किए बिना और बिना किसी निष्कर्ष को दर्ज किए, जांच अधिकारी द्वारा प्रस्तावित वही सजा लगा दी - जांच अधिकारी को सजा का प्रस्ताव देने का कोई अधिकार नहीं है - मृत कर्मचारी की मृत्यु के पश्चात कोई नई या नवीन जान प्रारंभ नहीं की जा सकती - यह स्पष्ट है कि एक प्रशासनिक/अर्ध-न्यायिक आदेश में निष्कर्ष के समर्थन में कारण होना चाहिए और कारण के अभाव में, आदेश मनमाना हो जाता है। (पैरा 1 से 21)

याचिका स्वीकृत (E-6)

<u>उद्धृत वाद सूची</u>:

1. उत्तराखंड राज्य बनाम खरक सिंह (2008) 8 SCC 236

2. सुरेंद्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य
3. दुर्गावती दुबे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य
4. राज किशोरी देवी विधवा (मृत) बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य
5. ए.के.एस. राठौर (मृत) द्वारा वारिसान बनाम भारत संघ और अन्य

<u>माननीय न्यायमूर्ति श्री नीरज तिवारी</u>

याचिकाकर्ता के विद्वान वकील और राज्य-उत्तरदाताओं के लिए विद्वान स्थायी वकील को सुना।

वर्तमान याचिका दिनांक 04.11.2009, 05.11.2009, 14.10.2020 और 18.04.2011 के आक्षेपित आदेशों को रद्द करने और परिणामी बकाया राशि के भुगतान के लिए दायर की गई है।

जवाबी और प्रत्युत्तर शपथपत्रों का आदान-प्रदान किया गया है। पक्षकारों के विद्वान वकील की सहमति से, रिट याचिका पर सुनवाई के चरण में ही निर्णय लिया जा रहा है।

याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान, राज पाल सिंह (याचिकाकर्ता के पति) की मृत्यु हो गई और अब प्रतिस्थापन आवेदन दायर करने के बाद उनकी पत्नी द्वारा याचिका को चुनौती दी जा रही है, जिसे अनुमति दी गई है।

उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता (राजपाल सिंह) के पति नागरिक पुलिस में सब इंस्पेक्टर के रूप में कार्यरत थे और सेवानिवृत्ति की आयु यानी 60 वर्ष प्राप्त करने के बाद, वह 31.05.2009 को सेवा से सेवानिवृत्त हुए थे। जब वह रमाबाई नगर में तैनात थे, तब उनके खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई थी ताकि उन्हें बड़ी सजा दी जा सके और ड्यूटी से अनुपस्थित रहने की अवधि के लिए वेतन भी रोक दिया जा सके। इसके अनुसरण में, याचिकाकर्ता के पति को दिनांक 24-10-2008 को एक आरोप पत्र दिया गया था और उसने सभी आरोपों से इनकार करते हुए दिनांक 13-11-2008 को अपना उत्तर प्रस्तुत किया है। अंतत जांच अधिकारी ने याचिकाकर्ता के पति के विरुद्ध दिनांक 06-03-2009 को जांच रिपोर्ट प्रस्तुत की है जिसमें अनुपस्थिति की अवधि के लिए वेतन रोकने और एक वर्ष के लिए पुन न्यूनतम वेतनमान में पदावनति करने के लिए दंड की सिफारिश की गई है।

दिनांक 06-03-2009 की जांच रिपोर्ट के अनुसरण में अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा याचिकाकर्ता के पति को दिनांक 27-05-2009 को दो कारण बताओ नोटिस जारी किए गए हैं जिन पर उन्होंने दिनांक 30-05-2009 को उत्तर प्रस्तुत कर दिया है। अनुशासनिक प्राधिकारी ने याचिकाकर्ता के पति के उत्तर पर विचार किए बिना और उस पर कोई निष्कर्ष दर्ज किए बिना, जांच अधिकारी द्वारा प्रस्तावित दंड को लागू करने के लिए दिनांक 04.11.2066 और 05.11.2009 को आक्षेपित आदेश पारित किए हैं। आक्षेपित आदेशों के खिलाफ, याचिकाकर्ता के पति ने प्रतिवादी संख्या 3 के समक्ष अपील की है, जिसे दिनांक 14.10.2010 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था। अपील खारिज होने के बाद, याचिकाकर्ता के पति ने प्रतिवादी नंबर 2 के समक्ष पुनरीक्षण को प्राथमिकता दी है, जिसे भी दिनांक 18.04.2011 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था।

याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि आक्षेपित आदेश दो आधारों पर खराब हैं।

सबसे पहले, जांच अधिकारी को दंड का प्रस्ताव करने का कोई अधिकार नहीं है और यह अनुशासनिक प्राधिकारी पर है कि वह जांच रिपोर्ट और रिकॉर्ड पर उपलब्ध अन्य सामग्री पर विचार करने के बाद निर्णय ले। अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने **उत्तरांचल राज्य बनाम खड़क सिंह; 2008 (8) एससीसी 236** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है।

दूसरे, आक्षेपित आदेशों का कोई कारण नहीं है और याचिकाकर्ता के पति के दिनांक 30.05.2009 के कारण बताओ नोटिस दिनांक 27.05.2009 के जवाब पर कोई विचार नहीं किया गया है। इसके लिए, उन्होंने याचिका के साथ दायर हलफनामे के पैराग्राफ 11 में विशिष्ट दलील दी है और जवाबी हलफनामे में, किसी भी दस्तावेज के साथ समर्थित नहीं होने का बहुत अस्पष्ट खंडन है। अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने सुरेंद्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2017 की रिट संख्या 23290) के मामले में इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है, जिस पर 24.05.2017 को फैसला किया गया था।

उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि मृत कर्मचारी (वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता के पति) की मृत्यु के बाद, कोई और या नई जांच शुरू नहीं की जा सकती है। अपने तर्क के समर्थन में, उन्होंने दुर्गावती दुबे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 3 अन्य (2013 की रिट संख्या 40057) 08.10.2018 को निर्णीत, राज किशोरी देवी विधवा (मृतक) बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 4 अन्य (2016 की रिट संख्या 47122) 30.07.2019 को निर्णीत, के मामलों में इस न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा किया है, और एलआरएस द्वारा एकेएस राठौर (मृत) बनाम भारत संघ और अन्य के सिवल अपील संख्या 7028 वर्ष 2022 (2016 की एसएलपी © संख्या 22570 से उत्पन्न, जिसका फैसला 28.9.2022 को हुआ था) से सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है।

श्री गोविंद नारायण श्रीवास्तव, विद्वान स्थायी वकील ने याचिकाकर्ता के लिए विद्वान वकील द्वारा उठाए गए प्रस्तुतियों का जोरदार विरोध किया, लेकिन इस तथ्य पर विवाद नहीं कर सके कि इस तरह दी गई सजा जांच अधिकारी द्वारा प्रस्तावित है। वह इस बात पर भी विवाद नहीं कर सकते थे कि याचिकाकर्ता के दिनांक 30.05.2009 के उत्तर पर विचार किए बिना आक्षेपित आदेश पारित किए गए हैं, जिसमें कोई निष्कर्ष नहीं है।

मैंने पक्षकारों के विद्वान वकीलों द्वारा उठाए गए प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर विचार किया है और रिकॉर्ड का अवलोकन किया है। दिनांक 06.03.2009 की जांच रिपोर्ट के अंतिम पैराग्राफ में प्रस्तावित सजा का प्रावधान है अर्थात अनुपस्थिति की अवधि के लिए वेतन रोकना और एक वर्ष के लिए न्यूनतम वेतनमान में आगे बदलाव करना, जो याचिकाकर्ता को दिया जाता है। खड़क सिंह (सुप्रा) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने इस तथ्य पर विचार किया है और कहा है कि जांच अधिकारी के पास सजा के लिए सिफारिश करने का कोई अधिकार नहीं है। उक्त निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत किए गए हैं;

> "18. जांच अधिकारी की रिपोर्ट में एक और कमी यह है कि उसने यह कहते हुए जांच समाप्त की कि सभी आरोप साबित हो चुके हैं और उसने दोषी को सेवा से बर्खास्त करने की सिफारिश की।

दिनांक 16-11-1985 की उनकी रिपोर्ट का अंतिम पैराग्राफ निम्नानुसार है:

उक्त जांच के दौरान ऐसे तथ्य प्रकाश में आए जिनसे यह साबित होता है कि जिस कर्मचारी का चरित्र संदिग्ध है और आदेश का पालन नहीं करता है, उसे सरकारी सेवा में बने रहने का अधिकार नहीं है और उसे तत्काल प्रभाव से सेवा से बर्खास्त करने की सिफारिश की जाती है।

(महत्व सन्निविष्ट)

यद्यपि जांच अधिकारी द्वारा विचार प्रस्तुत करने में कोई विशिष्ट रोक नहीं है, लेकिन मामले में, जांच अधिकारी ने यह कहते हुए अपनी सीमा पार कर दी कि अधिकारी को सरकारी सेवा में बने रहने का कोई अधिकार नहीं है और उसे तत्काल प्रभाव से सेवा से बर्खास्त किया जाना चाहिए।

19. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, उचित दंड देना दंडात्मक/अनुशासनिक प्राधिकारी का अनन्य क्षेत्राधिकार है और यह सिद्ध आरोप/आरोपों की प्रकृति और गंभीरता तथा अन्य उपस्थित परिस्थितियों पर निर्भर करता है। सामग्री से यह स्पष्ट है कि जिस अधिकारी ने पेड़ों की कमी का निरीक्षण और नोट किया, स्वयं जांच की, आरोपों को साबित करते हुए निष्कर्ष पर पहुंचे और सेवा से बर्खास्तगी की कड़ी सजा की भी जोरदार सिफारिश की। जांच अधिकारी द्वारा अपनाई गई पूरी कार्रवाई और पाठ्यक्रम को स्वीकार नहीं किया जा सकता है और यह इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित प्रसिद्ध सिद्धांतों के विपरीत है।

उच्चतम न्यायालय ने इस बात पर कड़ा रुख अपनाया है कि जांच समिति को सजा की सिफारिश करने का कोई अधिकार नहीं है।

दिनांक 27.05.2009 के कारण बताओ नोटिस के अवलोकन और याचिकाकर्ता के पति द्वारा दिनांक 30.05.2009 को प्रस्तुत उत्तर से, यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता द्वारा दिए गए उत्तर पर विचार नहीं किया गया है और सीधे एक पंक्ति की टिप्पणी के साथ आक्षेपित आदेश पारित किए गए हैं कि याचिकाकर्ता का उत्तर संतोषजनक नहीं है। इसके समर्थन में कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया गया है कि उत्तर संतोषजनक क्यों नहीं है। इस मुद्दे को इस न्यायालय ने सुरेंद्र सिंह (सुप्रा) के मामले में भी तय किया है। प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत किए जा रहे हैं;

"आक्षेपित आदेश द्वारा, याचिकाकर्ता को दोषी पाया गया है और उसे उत्तर प्रदेश अधीनस्थ रैंक के पुलिस अधिकारी (सजा और अपील) नियम, 1991 के नियम 4 (1) (बी) (iv) के संदर्भ में निंदा प्रविष्टि से दंडित किया गया है।

याचिकाकर्ता की ओर से यह तर्क दिया गया है कि आक्षेपित आदेश मनमाना और अवैध है और यह किसी भी कारण का खुलासा नहीं करता है, इसलिए, आदेश को अलग रखा जा सकता है। उन्होंने आगे कहा कि कारण बताओ नोटिस के जवाब में, याचिकाकर्ता ने 28.04.2016 को विस्तृत प्रतिनिधित्व प्रस्तुत किया है। संबंधित प्राधिकारी ने उनके उत्तर को विज्ञापित किए बिना

एकल आदेश द्वारा इसे खारिज कर दिया है कि उनका उत्तर "असंतोषजनक" (असंतोषजनक) पाया गया था। वह प्रस्तुत करता है कि इस मामले में कोई कारण नहीं बताया गया है, इसलिए, आदेश मनमाना है। मैंने पक्षकारों के विद्वान वकीलों को सुना है।

यह स्थापित कानून है कि प्रशासनिक/अर्ध न्यायिक आदेश में निष्कर्ष के समर्थन में कारण होना चाहिए और कारण के अभाव में आदेश मनमाना हो जाता है।

सुप्रीम कोर्ट ने फैसलों की लंबी लाइन में यह विचार तय किया है कि कारणों को दर्ज करना प्रशासनिक निर्णय में एक आवश्यक विशेषता है। कारणों को दर्ज करने से राज्य के अधिकारियों को निष्पक्ष रूप से कार्य करने और उन्हें अपनी प्रशासनिक या अर्ध न्यायिक शक्ति के मनमाने प्रयोग से रोकने की भी जांच होती है। निर्णय के समर्थन में कारण ठोस और स्पष्ट होने चाहिए, जो यह प्रदर्शित कर सकते हैं कि संबंधित प्राधिकारी ने अपना दिमाग लगाया है। निम्नलिखित मामलों मे सुप्रीम कोर्ट के फैसलों का संदर्भ लिया जा सकता है:- सहायक आयुक्त, वाणिज्यिक कर विभाग, निर्माण अनुबंध और लीजिंग बनाम शुक्ला एंड ब्रदर्स, (2010) 4 एससीसी 785; क्रांति एसोसिएट्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम मसूद अहमद खान, (2010) 9 एससीसी 496; भारत संघ बनाम मोहन लाल कपूर, एआईआर 1974 एससी 87; एस.एन. मुखर्जी बनाम भारत संघ, एआईआर 1990 एससी 1984; राज किशोर झा बनाम बिहार राज्य, (2003) 11 एससीसी 519; सहायक आयुक्त, वाणिज्यिक कर विभाग, कार्य संविदा और पट्टे, कोटा बनाम शुक्ला एंड ब्रदर्स (2010) 4 एससीसी 785।

उक्त स्थापित कानून के मद्देनजर, मैं पाता हूं कि आक्षेपित आदेश, जो गूढ़ और कंकाल है, को रद्द किए जाने की आवश्यकता है। तदनुसार, इसे अलग रखा जाता है।

यह मामला कानून के अनुसार शीघ्रता से नया आदेश पारित करने के लिए संबंधित प्राधिकारी को भेज दिया जाता है।

इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि आदेश से ही, यह स्पष्ट है कि कोई कारण नहीं बताया गया है, विद्वान स्थायी वकील को जवाबी हलफनामा दायर करने के लिए समय देने के लिए कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा नहीं होगा।

उपरोक्त अवलोकन के साथ, रिट याचिका का निपटारा किया जाता है।

न्यायालय का दृढ़ मत है कि प्रशासनिक निर्णयों में कारण दर्ज करना एक आवश्यक विशेषता है। अब, अंतिम निवेदन पर आते हैं कि क्या नए सिरे से जांच की जा सकती है या नहीं? यह निर्विवाद है कि आज की तारीख में, मूल याचिकाकर्ता, (प्रतिस्थापन से पहले वर्तमान याचिकाकर्ता का पति), अब नहीं है। दुर्गावती दुबे (सुप्रा) के मामले में यह मामला इस न्यायालय के समक्ष था। प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत किए गए हैं;

"मामले के निर्णयों और तथ्यों को देखने के बाद, इस न्यायालय का विचार है कि एक मृत व्यक्ति के खिलाफ, न तो अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की जा सकती है और न ही कोई सजा का आदेश पारित किया जा सकता है। वर्तमान मामले में, तथ्य विवादित नहीं हैं कि याचिकाकर्ता के पति के खिलाफ उसकी मृत्यु के बाद अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई थी, जो दिमाग के गैर-उपयोग से ग्रस्त है और साथ ही इस न्यायालय के साथ-साथ अन्य उच्च न्यायालयों द्वारा निर्धारित कानून के विपरीत है, इसलिए, दिनांक 10.06.2013 का आक्षेपित आदेश टिकाऊ नहीं है और इसके द्वारा रद्द किया जाता है।

रिट याचिका की अनुमति दी जाती है। लागत के रूप में कोई आदेश नहीं।

कोर्ट का दृढ़ मत है कि मृत व्यक्ति के खिलाफ कोई अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू नहीं की जा सकती है। राज किशोरी देवी विधवा (सुप्रा) के मामले में इस न्यायालय ने फिर से इसी तरह का दृष्टिकोण अपनाया है। प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत किए जा रहे हैं;

"राजेश्वरी देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य में इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने इसी तरह के तथ्यों में निम्नानुसार कहा:

"विभागीय जांच करना और सजा देना एक पूर्व-आवश्यक शर्त पर विचार करता है कि संबंधित कर्मचारी, जिसके खिलाफ कार्यवाही की जानी है और जिसे दंडित किया जाना है, एक कर्मचारी रहना जारी रखता है, जिसका अर्थ है कि वह जीवित है। जैसे ही किसी व्यक्ति की मृत्यु होती है, वह सांसारिक मामलों से अपना सारा संबंध तोड़ लेता है। यह नहीं कहा जा सकता है कि रोजगार की श्रृंखला अभी भी नियोक्ता को मृत कर्मचारी के खिलाफ दंडात्मक प्रकृति का आदेश पारित करने में सक्षम बनाएगी...... नियमों के तहत सभी दंड ऐसे हैं जो उस व्यक्ति पर लगाए जा सकते हैं जो अभी भी एक कर्मचारी बना हुआ है।

यह इस प्रकार है कि अनुशासनात्मक नियमों के तहत प्रदान की गई सजा सरकारी कर्मचारी पर लगाई जा सकती है, न कि सरकारी कर्मचारी के परिवार के सदस्य पर। जैसे ही कोई पदाधिकारी मृत्यु के बाद सरकारी कर्मचारी नहीं रह जाता है, नियमों के तहत उस पर कोई जुर्माना नहीं लगाया जा सकता था। ऐसा होने पर, एक आदेश पारित करने का सवाल ही नहीं उठता, जिसका प्रभाव मृत कर्मचारी के कानूनी उत्तराधिकारियों को दंडित करने का हो सकता है। इस मामले के तथ्यों के अनुसार, कर्मचारी के विरुद्ध उसकी सेवानिवृत्ति से ठीक पहले अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई थी और अनुशासनात्मक जांच के निष्कर्ष पर पहुंचने से पहले ही उसकी

मृत्यु हो गई थी। तत्पश्चात्, सिविल सेवा विनियमों की धारा 351ए के अंतर्गत अनुशासनिक जांच को आगे नहीं बढ़ाया जा सकता था, तदनुसार, सक्षम प्राधिकारी ने जांच बंद कर दी। आक्षेपित आदेश द्वारा, अपराधी कर्मचारी के दुष्कर्म और कदाचार के लिए कानूनी उत्तराधिकारी से सेवानिवृत्ति के बाद की बकाया राशि से वसूली करने की मांग की गई थी, जो मौलिक नियमों के नियम 54-बी के मद्देनजर स्वीकार्य नहीं था।

विद्वान स्थायी वकील, खंडन में, इस तथ्य पर विवाद नहीं करते हैं कि जांच को छोड़ दिया गया था क्योंकि कर्मचारी की मृत्यु हो गई थी और कर्मचारी की मृत्यु से पहले जांच समाप्त नहीं की जा सकती थी। इन परिस्थितियों में, मृतक/कर्मचारी के विरुद्ध नियमों के अंतर्गत यह निष्कर्ष दर्ज किए बिना सेवानिवृत्ति के बाद की बकाया राशि से कोई वसूली नहीं की जा सकती थी कि वह सरकार को हानि पहुंचाने के लिए जिम्मेदार था।

दूसरे प्रतिवादी-वित्त नियंत्रक और मुख्य लेखा अधिकारी, खाद्य और नागरिक आपूर्ति, लखनऊ द्वारा पारित दिनांक 17 जून 2016 का आदेश अस्थिर है, तदनुसार, अलग रखा जाता है और रद्द किया जाता है।

सेवानिवृत्ति के बाद की बकाया राशि की वसूली की गई राशि याचिकाकर्ता को दूसरे प्रतिवादी- वित्त नियंत्रक और मुख्य लेखा अधिकारी, खाद्य और नागरिक आपूर्ति, लखनऊ द्वारा इस आदेश की प्रमाणित प्रति दाखिल करने की तारीख से दो महीने के भीतर वसूली की तारीख से राशि पर @ 7% प्रति वर्ष ब्याज के साथ जारी की जाएगी।

रिट याचिका को अनुमति दी जाती है।

लागत के संबंध मे कोई आदेश नहीं।

हाल ही में, एकेएस राठौर (सुप्रा) के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने बहुत स्पष्ट दृष्टिकोण अपनाया है कि किसी मृत व्यक्ति के खिलाफ कोई अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू नहीं की जा सकती है या जारी नहीं रखी जा सकती है। प्रासंगिक पैराग्राफ नीचे उद्धृत किए जा रहे हैं;

> "8. आज यदि हम उपरोक्त अपील को खारिज भी कर देते हैं, तो भी किसी मृत व्यक्ति के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही में कोई अंतिम आदेश पारित नहीं किया जा सकता है। अनुशासनात्मक कार्यवाही वास्तव में समाप्त हो गई है। दूसरे शब्दों में, उपरोक्त अपील को खारिज करने के वही परिणाम होंगे जो अपील की अनुमति दी जा रही है।
>
> 9. उपरोक्त के मद्देनजर, उपरोक्त अपील का निपटारा यह मानते हुए किया जाता है कि मूल अपीलकर्ता के खिलाफ शुरू की गई अनुशासनात्मक कार्यवाही समाप्त हो जाती है। परिणामस्वरूप, मूल अपीलकर्ता के कानूनी प्रतिनिधि उन सभी लाभों के

हकदार होंगे जो मूल अपीलकर्ता नियमों के अनुसार हकदार होंगे। प्रतिवादी मूल अपीलकर्ता को कानूनी रूप से स्वीकार्य लाभों के बारे में नियमों के अनुसार आदेश पारित कर सकते हैं और 12 सप्ताह की अवधि के भीतर इसे वितरित कर सकते हैं। लागत के रूप में कोई आदेश नहीं होगा।

वर्तमान मामले में, अनुशासनिक प्राधिकारी ने वही दंड दिया है जो जांच अधिकारी द्वारा प्रस्तावित किया गया था और आक्षेपित आदेश पारित करते समय कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया गया है, इसलिए, यह कानून में गलत है।

मामले के ऐसे तथ्यों और परिस्थितियों के साथ-साथ ऊपर चर्चा किए गए कानून के तहत, दिनांक 04.11.2009, 05.11.2009, 14.10.2020 और 18.04.2011 के आक्षेपित आदेश खराब हैं और एतद्द्वारा रद्द किए जाते हैं। इसके अलावा, आज की तारीख में, याचिकाकर्ता (कर्मचारी) का पति नहीं है, इसलिए, नए आदेश पारित करने के लिए मामले को उत्तरदाताओं को वापस नहीं भेजा जा सकता है और याचिकाकर्ता नियमों के तहत अनुमत सभी परिणामी लाभों का हकदार होगा।

तदनुसार, याचिका की अनुमति दी जाती है।

लागत के रूप में कोई आदेश नहीं।

उत्तरदाताओं को निर्देश दिया जाता है कि वे इस आदेश की प्रमाणित प्रति के उत्पादन की तारीख से तीन महीने के भीतर याचिकाकर्ता यानी राज पाल सिंह की पत्नी को आक्षेपित आदेशों को रद्द करने से उत्पन्न होने वाले सभी परिणामी लाभों का भुगतान करें।

(2023) 3 ILRA 1070

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 01.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति समीर जैन

आवेदन अन्तर्गत धारा 482 सं. 2229 वर्ष 2022

सह

आवेदन अन्तर्गत धारा 482 सं. 4627 वर्ष 2022

योहेश्वर सूद **...आवेदक**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य **...प्रतिपक्षी**

आवेदक की ओर से अधिवक्ता: श्री विनीत विक्रम, श्री धीरेन्द्र कुमार श्रीवास्तव, श्री हरि कृष्ण सिंह, श्री इमरान उल्लाह

प्रतिपक्षी की ओर से अधिवक्ता: जी.ए., श्री भानु प्रकाश वर्मा, श्री शशि कांत शुक्ला, श्री अमरनाथ शुक्ला

2. आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या-2229/2022- योगेश्वर सूद बनाम प्रधान सचिव गृह उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य,

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धाराएं 409 और 420 - धारा 420 आईपीसी के तहत अपराध - धोखाधड़ी या बेईमान आशय आवश्यक - आवेदक ने भुगतान करने का वादा पूरा नहीं किया - वादा करते समय बेईमान या धोखाधड़ी आशय का कोई साक्ष्य नहीं - केवल वादा तोड़ने से धारा 420 आईपीसी लागू नहीं

होगी - धारा 409 - आवेदक न तो सार्वजनिक सेवक हैं, न बैंककर्मी, व्यापारी, ब्रोकर, वकील या एजेंट - धारा 409 आईपीसी लागू नहीं होती - आवेदक को सोने के छत्र का सौंपने का कोई कानूनी साक्ष्य नहीं है - केवल मौखिक आरोप हैं - कार्यवाही निरस्त।

आवेदन स्वीकृत। (E-9)

उद्धृत वाद सूची:

1. आर.पी. कपूर बनाम पंजाब राज्य, ए.आई.आर. 1960 एस.सी. 866
2. हरियाणा राज्य एवं अन्य बनाम भजन लाल एवं अन्य, 1992 सप्लीमेंट (1) एस.सी.सी. 335
3. मेसर्स निहारिका इन्फ्रास्ट्रक्चर प्रा. लि. बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य, ए.आई.आर. (2021) एस.सी. 1918
4. प्रभातभाई आहीर @ परबतभाई भीमसिंहभाई कर्मूर एवं अन्य बनाम गुजरात राज्य एवं अन्य, (2017) 9 एस.सी.सी. 641
5. कपिल अग्रवाल एवं अन्य बनाम संजय शर्मा एवं अन्य, (2021) 5 एस.सी.सी. 524
6. हृदय रंजन प्रसाद वर्मा बनाम बिहार राज्य, (2000) 4 एस.सी.सी. 168
7. दलिप कौर बनाम जगनर सिंह (2009) 14 SCC 696
8. अनवर चंद सब नंदिकर बनाम कर्नाटक राज्य (2003) 10 SCC 521
9. विजय कुमार घई बनाम पश्चिम बंगाल राज्य (2022) 7 SCC 124
10. इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन बनाम NEPC इंडिया लिमिटेड (2006) 6 SCC 736

माननीय न्यायमूर्ति समीर जैन

1. दोनों आवेदन अन्तर्गत धारा 482 सी.आर.पी.सी. संख्या 2229 सन् 2022 और 4627 सन् 2022 के संबंधित मामले हैं और दोनों आवेदनों में संज्ञान आदेश दिनांक 05.11.2020 के साथ-साथ अपराध संख्या 648 सन् 2019, अन्तर्गत धारा 409, 420 आई.पी.सी., पुलिस स्टेशन कोतवाली, जिला मथुरा से उत्पन्न एसीजेएम, न्यायालय संख्या 1, मथुरा की अदालत में लंबित मुकदमा संख्या 1327 सन् 2020 की संपूर्ण कार्यवाही को चुनौती दी गई है, अत: दोनों प्रार्थना पत्रों का निर्णय सामान्य आदेश से किया जा रहा है।

2. विद्वान एजीए कोई प्रति शपथपत्र दायर करने का प्रस्ताव नहीं करते हैं। हालाँकि, आवेदकों और विपक्षी पक्षकार संख्या- 2 (सूचनादाता) के बीच दलीलों का आदान-प्रदान किया गया है।

3. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता श्री धीरेंद्र कुमार श्रीवास्तव और श्री हरि कृष्ण सिंह, विपक्षी पक्षकार संख्या- 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री अमरनाथ त्रिपाठी, श्री भानु प्रकाश वर्मा और श्री शशिकांत शुक्ला और राज्य के विद्वान एजीए-I डॉ. एस.बी.मौर्य को सुना।

4. आवेदकों द्वारा वर्तमान आवेदनों को सीआरपीसी की धारा 482 के तहत दायर करके संज्ञान आदेश दिनांक 05.11.2022 को रद्द करने की प्रार्थना के साथ साथ मुकदमा अपराध संख्या 648 सन् 2019 अन्तर्गत धारा 409, 420 आई.पी.सी, पुलिस स्टेशन कोतवाली, जिला मथुरा से उत्पन्न, ए.सी.जे.एम., न्यायालय संख्या 1, मथुरा की अदालत में लंबित, मुकदमा संख्या 1327 सन् 2020 की संपूर्ण कार्यवाही को रद्द करने की प्रार्थना की गई है।

तथ्यात्मक पृष्ठभूमि

5. विपक्षी संख्या-2 ने दिनांक 31.08.2019 को थाना कोतवाली, जिला मथुरा में मुकदमा अपराध संख्या 648 सन् 2019 में आईपीसी की धारा

409, 420 के तहत आवेदकों के खिलाफ एफआईआर दर्ज कराई और एफआईआर में लगाए गए आरोप के अनुसार, सूचनादाता/विपक्षी पक्षकार संख्या-2 ने आवेदकों के ऑर्डर पर लगभग 3.352 किलोग्राम और 420 मिलीग्राम वजन का लगभग 1,31,36,289/- रूपये मूल्य का एक सोने का छत्र बनाया और दिनांक 06.04.2018 को आवेदकों को सौंप दिया और आवेदकों ने उन्हें वादा किया कि वह एक सप्ताह के भीतर वे भुगतान कर देंगे और दिनांक 09.05.2018 को आवेदकों ने बद्रीनाथ धाम में स्वर्ण छत्र दान कर दिया और जब एक महीने से अधिक का समय बीत गया तो सूचनादाता ने अपने पैसे की मांग की लेकिन आवेदकों ने कहा कि 2-4 महीनों के भीतर वे भुगतान कर देंगे लेकिन उन्होंने भुगतान नहीं किया और उसके बाद उन्होंने कोई भी भुगतान करने से इनकार कर दिया। एफआईआर के अनुसार, आवेदक शुरू से ही सूचनादाता को धोखा देने का इरादा रखते थे और इस प्रकार उन्होंने धोखाधड़ी की।

6. एफआईआर दर्ज होने के बाद जांच की गई और जांच के दौरान विवेचन ने विपक्षी संख्या-2, सूचनादाता का बयान दर्ज किया और उसने एफआईआर के कथन को दोहराया। जांच के दौरान, विवेचक ने कुछ स्वतंत्र गवाहों के बयान भी दर्ज किए और उन्होंने कहा कि आवेदकों ने सूचनादाता के घर का कुछ आंतरिक कार्य किया था और नवीनीकरण का अनुमान 9.5 करोड़ रुपये था, लेकिन सूचनादाता यानी विपक्षी पक्षकार संख्या-2 ने केवल 1.2 करोड़ रुपये का भुगतान किया और इस कारण से आवेदकों और सूचनादाता के बीच कुछ विवाद उत्पन्न हुआ और आवेदकों ने इस संबंध में सिविल जज (जूनियर डिवीजन), लुधियाना के समक्ष सूचनादाता के खिलाफ मुकदमा संख्या 7461 सन् 2019 के तहत एक सिविल मुकदमा भी दायर किया और केवल इसी कारण से सूचनादाता ने झूठी और मनगढ़ंत कहानी बनाकर आवेदकों के खिलाफ वर्तमान मामले की एफआईआर दर्ज कराई और वास्तव में सूचनादाता आवेदकों को शेष राशि का भुगतान नहीं करना चाहता था। इन स्वतंत्र गवाहों ने यह भी कहा कि आवेदकों को सोने का छत्र सौंपने की कथित तिथि के बाद, सूचनादाता ने आवेदकों की फर्म के खाते में 10 लाख रुपये जमा किए। दिनांक 16.12.2019 को जांच के बाद विवेचक ने वर्तमान मामले में अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की।

7. रिकॉर्ड, यह दर्शाता है कि अदालत के समक्ष अंतिम रिपोर्ट के लंबित होने के दौरान सूचनादाता यानी विपक्षी पक्षकार संख्या-2 ने पुलिस महानिरीक्षक, आगरा के समक्ष आगे की जांच के लिए एक आवेदन दायर किया और दिनांक 06.01.2020 को, पुलिस महानिरीक्षक, आगरा ने जांच को जिला मथुरा से जिला आगरा में स्थानांतरित कर दिया और एसएसपी, आगरा को निर्देश दिया कि मामले की आगे की जांच किसी सक्षम पुलिस अधिकारी को सौंपी जाए और महानिरीक्षक, आगरा द्वारा जारी निर्देश पर आगे मामले की जांच शुरू की गई और आगे की जांच के दौरान सूचनादाता यानी विपक्षी पक्षकार संख्या-2 का बयान दर्ज किया गया और उन्होंने पहले विवेचक द्वारा रिकॉर्ड किए गए अपने पहले कथन को दोहराया, हालांकि अपने बाद के बयान में उन्होंने इस तथ्य को स्वीकार किया कि आवेदकों ने उन्हें सूचित किया कि वे आंतरिक सजावट के व्यवसाय में हैं और उन्होंने उन्हें अपने घर के नवीनीकरण का ठेका दिया था। उन्होंने आगे कहा कि आवेदकों ने उन्हें नवीनीकरण के

लिए 9.5 करोड़ रुपये का इस्टीमेट प्रदान किया। सूचनादाता यानी विपक्षी संख्या-2 ने यह भी कहा कि अलग-अलग तिथियों पर उसने आवेदकों की फर्म के खाते में कई राशियां ट्रांसफर कीं और उनसे अपने घर के नवीनीकरण का काम शुरू करने का अनुरोध किया और उसके बाद आवेदकों ने लगभग 8,48,000/- रुपये की कुछ सामग्री भेजी और इस बीच आवेदकों ने उनसे कहा कि वे बद्रीनाथ धाम में एक स्वर्ण छत्र दान करना चाहते हैं और उन्होंने इस संबंध में उन्हें ऑर्डर दिया और उनके मौखिक ऑर्डर पर उन्होंने लगभग 3.352 किलोग्राम और 420 मिलीग्राम का एक स्वर्ण छत्र तैयार किया और छत्र की कीमत 1,31,36,289/- रुपये थी और इसे दिनांक 06.04.2018 को आवेदकों को सौंप दिया गया लेकिन उन्होंने भुगतान नहीं किया। अपने दूसरे बयान में विपक्षी पक्षकार संख्या-2 ने आगे कहा कि चूंकि आवेदक उनके घर का नवीनीकरण कार्य कर रहे थे, इसलिए उन्होंने दिनांक 12.06.2018 को 10 लाख रूपये आवेदकों की फर्म के खाते में यानि आवेदकों को गोल्डन छत्र सौंपने के बाद जमा किए। विपक्षी पक्षकार संख्या-2 ने आगे कहा कि दिनांक 12.06.2019 को आवेदकों ने उन्हें कानूनी नोटिस भेजा और सिविल जज (जूनियर डिवीजन), लुधियाना की अदालत में उनके खिलाफ सिविल मुकदमा भी दायर किया और उसके बाद दिनांक 31.08.2019 को वर्तमान मामले की एफआईआर दर्ज की।

8. आगे की जांच के दौरान विवेचक ने पुंडरीप गोस्वामी जी महाराज का बयान भी दर्ज किया। उन्होंने कहा कि सूचनादाता द्वारा गोल्डन छत्र बनाया गया था।

9. आगे की जांच के दौरान, सूचनादाता यानी विपक्षी पक्षकार संख्या-2 के आवेदन पर पुलिस महानिरीक्षक, आगरा के आदेश से फिर से जांच जिला आगरा से मथुरा स्थानांतरित कर दी गई और उसके बाद दिनांक 14.10.2020 को सूचनादाता के भाई अशोक कुमार अग्रवाल का बयान दर्ज किया गया और उन्होंने यह भी कहा कि सूचनादाता ने अपने मकान के नवीनीकरण का कार्य आवेदकों को सौंप दिया और उन्होंने लगभग 9.5 करोड़ रुपये का इस्टीमेट प्रदान किया और उसके बाद विपक्षी पक्षकार संख्या-2 ने आवेदकों की फर्म के खाते में 1.10 करोड़ रुपये ट्रांसफर कर दिए और उसके बाद आवेदकों ने लगभग 1,48,000/- रुपये की सामग्री भेज दी, लेकिन उन्होंने नवीनीकरण का कोई काम शुरू नहीं किया और इसके बाद उन्होंने धोखाधड़ी करके सूचनादाता से 1,31,36,289/- रुपये का स्वर्ण छत्र, जिसका वजन लगभग 3.352 किलोग्राम और 420 मिलीग्राम था, बनवा लिया और उसे बद्री नाथ धाम में दान कर दिया और स्वर्ण छत्र का भुगतान नहीं किया। सूचनादाता के भाई अशोक कुमार अग्रवाल ने यह भी कहा कि दिनांक 12.06.2018 को अर्थात सूचनादाता द्वारा आवेदकों को कथित तौर पर स्वर्ण छत्र सौंपने के बाद विपक्षी पक्षकार संख्या-2 द्वारा आवेदकों के फर्म के खाते में 10 लाख रुपये ट्रांसफर किये गये।

10. रिकॉर्ड से, यह पता चलता है कि आगे की जांच के दौरान, विवेचक ने बद्री नाथ केदार नाथ समिति से पूछताछ की और दिनांक 07.02.2020 को समिति ने अपना जवाब दिया और जवाब के अनुसार, दिनांक 09.05.2018 को आवेदकों ने बद्री नाथ धाम में एक स्वर्ण छत्र दान किया जिसका वजन लगभग 3.354 किलोग्राम है और इसकी प्रविष्टि दिनांक 24.10.2018 को मंदिर के रजिस्टर में की गई थी। रिकॉर्ड से ऐसा प्रतीत

होता है कि आगे की जांच के बाद दिनांक 16.10.2020 को वर्तमान मामले में आवेदकों के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था और आरोप पत्र प्रस्तुत करने के बाद संज्ञान लिया गया था और आवेदकों को दिनांक 05.11.2020 को समन जारी किया गया था।

11. अत: वर्तमान आवेदन।

आवेदकों की ओर से प्रस्तुतिकरण

12. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि आवेदकों के खिलाफ लगाए गए सभी आरोप पूरी तरह से झूठे और निराधार हैं और वास्तव में आवेदकों ने स्वर्ण छत्र के संबंध में कभी भी विपक्षी पक्षकार संख्या-2 को कोई ऑर्डर नहीं दिया। उन्होंने कहा, आवेदक इंटीरियर डिजाइनिंग के व्यवसाय में हैं और सूचनादाता ने उन्हें अपने घर के नवीनीकरण के उद्देश्य से नियुक्त किया है और इस संबंध में आवेदकों द्वारा उन्हें 9.5 करोड़ रुपये का इस्टीमेट दिया गया था और उसके बाद सूचनादाता (विपक्षी पक्षकार संख्या-2) के घर के नवीनीकरण का काम शुरू किया गया और विपक्षी पक्षकार संख्या-2 ने आवेदकों की फर्म के खाते में 1.2 करोड़ रुपये ट्रांसफर कर दिए लेकिन इसके बाद शेष भुगतान को लेकर पक्षकारों के बीच कुछ विवाद पैदा हो गया और इस संबंध में आवेदकों की फर्म ने अपने अधिवक्ता के माध्यम से दिनांक 12.6.2019 को विपक्षी पक्षकार संख्या-2 को कानूनी नोटिस भेजा और 8.3 करोड़ रुपये की शेष बकाया राशि की मांग की और विपक्षी पक्षकार संख्या-2 ने अपने अधिवक्ता के माध्यम से दिनांक 26.6.2019 को इसका जवाब दिया और अपने जवाब में कहा कि 1.2 करोड़ रुपये के अग्रिम भुगतान के बावजूद आवेदकों ने उनके घर का नवीनीकरण कार्य भी शुरू नहीं किया और आरोप लगाया कि आवेदकों ने धोखाधड़ी की है।

13. उन्होंने आगे कहा, दिनांक 26.6.2019 के उत्तर में विपक्षी पक्षकार संख्या-2 ने स्वर्ण छत्र के तथ्य के बारे में नहीं बताया और यह तथ्य स्पष्ट रूप से सुझाव देता है कि केवल सूचनादाता के घर के नवीनीकरण के भुगतान को लेकर पक्षकारों के बीच उत्पन्न विवाद के कारण झूठी और मनगढ़ंत कहानी बनाकर आवेदकों के खिलाफ वर्तमान मामले की एफआईआर दर्ज की गई थी।

14. उन्होंने आगे कहा कि आवेदकों की फर्म ने दिनांक 19.9.2019 को जवाब भी दिया लेकिन इस बीच दिनांक 31.8.2019 को विपक्षी पक्षकार संख्या-2 ने आवेदकों के खिलाफ वर्तमान मामले की एफआईआर दर्ज कर दी है। उन्होंने आगे कहा कि रिकॉर्ड पर कोई स्वीकार्य साक्ष्य नहीं है जो यह दिखा सके कि आवेदकों ने स्वर्ण छत्र बनाने के लिए कोई ऑर्डर दिया था। उन्होंने आगे कहा कि वर्तमान विवाद पूरी तरह से सिविल विवाद है और भले ही आवेदक स्वर्ण छत्र का भुगतान करने का वादा निभाने में विफल रहे, जैसा कि आरोप लगाया गया है, तब भी उनके खिलाफ कोई आपराधिक दायित्व तय नहीं किया जा सकता है।

15. उन्होंने आगे कहा कि आगे की जांच के दौरान दर्ज किए गए विपक्षी पक्षकार संख्या-2 और उनके भाई अशोक कुमार अग्रवाल के बयान से यह स्पष्ट है कि आवेदकों को कथित तौर पर स्वर्ण छत्र सौंपने की तारीख से लगभग दो महीने बाद विपक्षी पक्षकार संख्या 2 द्वारा आवेदकों की फर्म के खाते में 10 लाख रुपये की राशि ट्रांसफर की गई थी और यह तथ्य स्पष्ट रूप से सुझाव देता है कि स्वर्ण छत्र के संबंध में पक्षकारों के

बीच कोई विवाद लंबित नहीं था, बल्कि विवाद सूचनादाता के घर के नवीनीकरण के संबंध में लंबित था जो आवेदकों की फर्म द्वारा किया जा रहा था।

16. उन्होंने आगे कहा कि चूंकि सूचनादाता/विपक्षी पक्षकार संख्या-2 आवेदकों को 8.3 करोड़ रुपये की शेष राशि का भुगतान करने में विफल रहा, इसलिए आवेदक की फर्म ने दिनांक 21.9.2019 को विपक्षी पक्षकार संख्या-2 के खिलाफ क्षतिपूर्ति के लिए एक सिविल वाद दायर किया जो अभी भी लंबित है। उन्होंने आगे कहा कि मौखिक आरोप के अलावा रिकॉर्ड पर कोई सबूत नहीं है जो यह दिखा सके कि विपक्षी पक्षकार संख्या-2 ने आवेदकों को स्वर्ण छत्र सौंपा था।

17. उन्होंने आगे कहा कि वास्तव में स्वर्ण छत्र बद्रीनाथ धाम में आवेदकों द्वारा व्यक्तिगत रूप से दान नहीं किया गया था, बल्कि इसे बद्रीनाथ धाम में भक्तों के समूह द्वारा सौंपा गया था और यह तथ्य महर्षि मुक्त सेवा मिशन के पत्र से स्पष्ट है जिसे वर्तमान आवेदन के समर्थन में दायर शपथपत्र में संलग्नक संख्या 19 के रूप में संलग्न किया गया है। उन्होंने आगे कहा कि उत्तराखंड सरकार ने वर्ष 2021 में राज्य में मंदिरों के कामकाज की देखभाल के लिए उत्तराखंड चार धाम प्रबंधन बोर्ड (संक्षेप में बोर्ड) का गठन किया है और बद्रीनाथ केदारनाथ मंदिर समिति को समाप्त कर दिया जो पहले राज्य में मंदिरों का कामकाज देखती थी और महर्षि मुक्त सेवा मिशन ने अपने पत्र दिनांक 15.4.2021 के माध्यम से नवगठित उत्तराखंड चार धाम प्रबंधन बोर्ड को सूचित किया कि दिनांक 09.05.2018 को भक्तों के समूहों द्वारा स्वर्ण छत्र दान किया गया था और बोर्ड को पिछली समिति द्वारा विवेचक को दी गई गलत जानकारी के बारे में भी अवगत कराया और सही जानकारी जारी करने का भी अनुरोध किया। उन्होंने आगे कहा, इसके बाद दिनांक 26.04.2021 को बोर्ड ने महर्षि मुक्त सेवा मिशन को पत्र भेजा और सूचित किया कि दिनांक 09.05.2018 को बड़ी संख्या-में भक्तों द्वारा सामूहिक रूप से स्वर्ण छत्र दान किया गया था और इसकी प्रविष्टि मंदिर के रिकॉर्ड में की गई है। उन्होंने आगे कहा, इसलिए, यह स्पष्ट है कि स्वर्ण छत्र कई भक्तों द्वारा सामूहिक रूप से दान किया गया था, न कि आवेदकों द्वारा व्यक्तिगत रूप से।

18. उन्होंने आगे कहा कि अगर आरोप स्वीकार भी कर लिए जाएं तो भी आवेदकों के खिलाफ आईपीसी की धारा 409, 420 के तहत कोई अपराध नहीं बनता है क्योंकि रिकॉर्ड पर ऐसा कोई सबूत नहीं है जो यह दिखा सके कि आवेदकों का शुरू से ही सूचनादाता/विपक्षी पक्षकार संख्या-2 को धोखा देने का कोई इरादा था।

19. उन्होंने आगे कहा कि यह स्वीकार किया जाता है कि आवेदक न तो लोक सेवक हैं, न बैंकर, न व्यापारी, न दलाल, न अधिवक्ता और न ही एजेंट, इसलिए उनके खिलाफ आईपीसी की धारा 409 के तहत अपराध नहीं बनता है। उन्होंने आगे कहा कि नियमित तरीके से बिना विचार किये आवेदन का संबंधित न्यायालय द्वारा संज्ञान लिया गया था, इसलिए संज्ञान आदेश दिनांक 5.11.2020 और संबंधित न्यायालय के समक्ष आवेदकों के खिलाफ लंबित कार्यवाही रद्द करने योग्य है।

प्रतिवादियों की ओर से प्रस्तुतीकरण

20. सूचनादाता के विद्वान अधिवक्ताओं के साथ-साथ विद्वान एजीए ने यह प्रस्तुत किया कि रिकार्ड के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है

कि आवेदकों ने आईपीसी की धारा 409, 420 के तहत अपराध किया है और वे शुरू से ही सूचनादाता को धोखा देने का इरादा रखते थे और लगभग 1,31,36,289/- रुपये का स्वर्ण छत्र प्राप्त करने के बावजूद उन्होंने राशि का भुगतान नहीं किया और छत्र को बद्रीनाथ धाम में दान कर दिया, इस प्रकार धोखाधड़ी और आपराधिक विश्वासघात का अपराध हुआ और यह नहीं कहा जा सकता कि यह केवल एक वादे का उल्लंघन था।

21. सूचनादाता के अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि विपक्षी पक्षकार संख्या-2 और अन्य गवाहों के बयान के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि आवेदकों द्वारा दिए गए आदेश पर स्वर्ण छत्र सूचनादाता द्वारा बनाया गया था और उसने उसे सौंप दिया था लेकिन वे इसका भुगतान करने में विफल रहे और यह तथ्य दर्शाता है कि आवेदकों का इरादा सूचनादाता को धोखा देने का था। उन्होंने आगे कहा कि बद्रीनाथ केदारनाथ मंदिर समिति के पत्र से जो समिति द्वारा जांच अधिकारी को भेजा गया था, यह दर्शाता है कि आवेदक वे व्यक्ति थे जिन्होंने बद्रीनाथ धाम में स्वर्ण छत्र दान किया था और इस स्तर पर यह नहीं कहा जा सकता है कि स्वर्ण छत्र भक्तों द्वारा सामूहिक रूप से दान किया गया था, बल्कि रिकॉर्ड पर सबूत हैं जो स्पष्ट रूप से दिखा सकते हैं कि आवेदक वे व्यक्ति थे जिन्होंने बद्रीनाथ धाम में इसे दान किया था।

22. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि चूंकि आवेदक इंटीरियर डेकोरेटर होने के नाते विपक्षी पक्षकार संख्या-2 के घर के नवीनीकरण का कुछ काम कर रहे थे, इसलिए, बिना किसी लिखित समझौते के, आवेदकों द्वारा विपक्षी पक्षकार संख्या-2 द्वारा दिए गए मौखिक ऑर्डर पर स्वर्ण छत्र बनाकर उन्हें सौंप दिया और चूंकि विपक्षी पक्षकार संख्या-2 के घर के नवीनीकरण का काम चल रहा था, इसलिए, विपक्षी पक्षकार संख्या-2 ने आवेदकों को स्वर्ण छत्र सौंपने के बाद भी नवीनीकरण कार्य के संबंध में 10 लाख रुपये की राशि आवेदकों की फर्म के खाते में ट्रांसफर कर दी और इस तथ्य से यह नहीं माना जा सकता कि स्वर्ण छत्र के संबंध में पक्षकारों के बीच कोई विवाद लंबित नहीं था।

23. उन्होंने आगे कहा कि चूंकि सूचनादाता के घर के नवीनीकरण के भुगतान और स्वर्ण छत्र के संबंध में विवाद दो अलग-अलग विवाद थे, इसलिए, आवेदकों के कानूनी नोटिस के जवाब में, विपक्षी पक्षकार संख्या-2 ने स्वर्ण छत्र के बारे में तथ्य का खुलासा नहीं किया और इसलिए, विपक्षी पक्षकार संख्या-2 द्वारा दिए गए कानूनी नोटिस के जवाब के आधार पर यह नहीं माना जा सकता है कि स्वर्ण छत्र के भुगतान के संबंध में ऐसा कोई विवाद मौजूद नहीं था।

24. उन्होंने आगे कहा कि आवेदकों ने कपटपूर्ण इरादे से धोखाधड़ी करके सूचनादाता के 1,31,00,000/- रुपये से अधिक की राशि की ठगी की है। उन्होंने आगे कहा कि चूंकि रिकॉर्ड पर आवेदकों के खिलाफ प्रथम दृष्टया पर्याप्त सबूत हैं, इसलिए संबंधित अदालत ने सही तरीके से संज्ञान लिया और समन जारी किया।

25. उन्होंने आगे कहा कि पिछली जांच ठीक से नहीं की जा सकी और आवेदकों की मिलीभगत से, पहले विवेचक ने वर्तमान मामले में अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की और आगे की जांच के दौरान एकत्र किए गए सबूतों के आधार पर आगे की जांच के बाद आवेदकों के खिलाफ आरोप पत्र दायर किया गया था इसलिए, आवेदकों की ओर

से दायर किए गए वर्तमान आवेदन गुण-दोष रहित हैं और खारिज किए जाने योग्य हैं।

विश्लेषण

26. मैंने दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्तागणों द्वारा दी गई विरोधी तर्कों पर विचार किया है और रिकॉर्ड पर रखी गई सामग्री का परिशीलन किया है।

27. अपने अंतर्निहित क्षेत्राधिकार के संबंध में इस न्यायालय की शक्ति पर **आर.पी. कपूर बनाम पंजाब राज्य एआईआर 1960 एससी 866** मामले में उच्चतम न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ द्वारा चर्चा की गई है और उच्चतम न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने उन मामलों की श्रेणियों का सारांश दिया जहां कार्यवाही को रद्द करने के लिए अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है या किया जाना चाहिए: -

(i) जहां यह स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है कि संस्था के खिलाफ कानूनी रोक है या कार्यवाही जारी रखने में उदाहरण के लिए मंजूरी की कमी है,

(ii) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत में आरोप को उसके अंकित मूल्य पर लिया जाए और पूरी तरह से स्वीकार किया जाए तो वह कथित अपराध नहीं बनता है,

(iii) जहां आरोप एक अपराध है, लेकिन कोई कानूनी सबूत पेश नहीं किया गया है या लगाए गए सबूत स्पष्ट रूप से आरोपों को साबित करने में विफल हैं।

28. सर्वोच्च न्यायालय ने **हरियाणा राज्य और अन्य बनाम भजन लाल और अन्य 1992 सप्लिमेंट (1) एससीसी 335** मामले के अपने प्रख्यात निर्णय में सीआरपीसी की धारा 482 और/या भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत इस न्यायालय के दायरे पर विस्तार से विचार किया और निम्नलिखित श्रेणियों की पहचान की गई जिनमें कार्यवाही को रद्द किया जा सकता है और पैराग्राफ 102 में देखा जा सकता है: -

> *"102. अध्याय XIV के तहत संहिता के विभिन्न प्रासंगिक प्रावधानों की व्याख्या और अनुच्छेद 226 के तहत असाधारण शक्ति या धारा 482 के तहत अंतर्निहित शक्तियों के प्रयोग से संबंधित निर्णयों की एक श्रृंखला में इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून के सिद्धांतों की पृष्ठभूमि में जिस संहिता को हमने ऊपर निकाला और पुनः प्रस्तुत किया है, हम उदाहरण के तौर पर मामलों की निम्नलिखित श्रेणियां देते हैं, जिसमें ऐसी शक्ति का प्रयोग या तो किसी अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए किया जा सकता है, हालांकि यह हो सकता है कोई सटीक, स्पष्ट रूप से परिभाषित और पर्याप्त रूप से चैनलाइज़्ड और अनम्य दिशानिर्देश या कठोर सूत्र निर्धारित करना और असंख्य प्रकार के मामलों की एक*

विस्तृत सूची देना संभव नहीं है जिनमें ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए।

(1) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत में लगाए गए आरोप, भले ही उन्हें अंकित मूल्य पर लिया जाए और पूरी तरह से स्वीकार किया जाए, प्रथम दृष्टया कोई अपराध नहीं बनता है या आरोपी के खिलाफ मामला नहीं बनता है।

(2) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट और एफआईआर के साथ संलग्न अन्य सामग्री में आरोप, यदि कोई हो, एक संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं करते हैं, तो संहिता की धारा 155 (2) के दायरे में मजिस्ट्रेट के आदेश को छोड़कर, संहिता की धारा 156 (1) के तहत पुलिस अधिकारियों द्वारा जांच को उचित ठहराया जा सकता है।

(3) जहां एफआईआर या शिकायत में लगाए गए निर्विवाद आरोप और उसके समर्थन में एकत्र किए गए सबूत किसी अपराध के घटित होने का खुलासा नहीं करते हैं और आरोपी के खिलाफ मामला बनाते हैं।

(4) जहां, एफआईआर में लगाए गए आरोप संज्ञेय अपराध नहीं हैं, बल्कि केवल गैर संज्ञेय अपराध हैं, वहां मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना पुलिस अधिकारी द्वारा किसी भी जांच की अनुमति नहीं दी जाती है, जैसा कि संहिता की धारा 155 (2) के तहत माना गया है।

(5) जहां एफआईआर या शिकायत में लगाए गए आरोप इतने बेतुके और स्वाभाविक रूप से असंभव हैं, जिनके आधार पर कोई भी विवेकशील व्यक्ति कभी भी इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता है कि आरोपी के खिलाफ कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है।

(6) जहां संहिता या संबंधित अधिनियम (जिसके तहत आपराधिक कार्यवाही शुरू की जाती है) के किसी भी प्रावधान में संस्था और कार्यवाही जारी रखने पर स्पष्ट कानूनी रोक है और/या जहां संहिता में कोई विशिष्ट प्रावधान है या संबंधित अधिनियम, पीड़ित पक्ष की शिकायत के लिए प्रभावी निवारण प्रदान करता है।

(7) जहां किसी आपराधिक कार्यवाही में स्पष्ट रूप से दुर्भावना के साथ भाग लिया जाता है और/या जहां कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण रूप से आरोपी पर प्रतिशोध लेने के लिए और निजी और व्यक्तिगत द्वेष के

कारण उसे परेशान करने की दृष्टि से शुरू की जाती है।"

29. हाल ही में **मैसर्स निहारिका इंफ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य एआईआर (2021) एससी 1918** मामले में उच्चतम न्यायालय की तीन जजों की बेंच ने सीआरपीसी की धारा 482 और भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के दायरे पर भी चर्चा की और अवधारित किया कि यदि कोई मामला आरपी कपूर मामला (उपरोक्त) और भजन लाल मामला (उपरोक्त) के मापदंडों के अंतर्गत आता है तो इस न्यायालय के पास सीआरपीसी की धारा 482 के तहत अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करके कार्यवाही को रद्द करने का अधिकार है।

30. **प्रभातभाई अहीर उर्फ परबतबाई भीमसिंहभाई करमूर और अन्य बनाम गुजरात राज्य और अन्य (2017) 9 एससीसी 641** मामले में उच्चतम न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने अवधारित किया कि सीआरपीसी की धारा 482 पहले से ही एक सर्वोपरि प्रावधान से जुड़ी है और इस न्यायालय के पास एक उच्चतम न्यायालय होने के नाते आवश्यक होने पर ऐसा आदेश, (i) किसी भी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए; या (ii) अन्यथा न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करने के लिए, देने की अंतर्निहित शक्ति है।

31. **कपिल अग्रवाल और अन्य बनाम संजय शर्मा और अन्य (2021) 5 एससीसी 524** मामले में पुनः उच्चतम न्यायालय ने सीआरपीसी की धारा 482 के तहत इस न्यायालय की शक्ति के संबंध में अवधारित किया:-

"जैसा कि इस न्यायालय द्वारा निर्णयों की श्रृंखला में देखा और अवधारित किया गया है, सीआरपीसी की धारा 482 और/या संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अंतर्निहित क्षेत्राधिकार इस लाभकारी उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए बनाया गया है कि आपराधिक कार्यवाही को उत्पीड़न के हथियार में बदलने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। जब न्यायालय इस बात से संतुष्ट हो जाता है कि आपराधिक कार्यवाही कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग है या यह अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए आरोपी पर दबाव डालने के समान है, तो ऐसी कार्यवाही को रद्द किया जा सकता है।"

32. सीआरपीसी की धारा 482 के तहत इस न्यायालय की शक्ति के संबंध में कानून तय किया गया है कि यह न्यायालय किसी वैध अभियोजन को उसकी शुरुआत में ही बाधित नहीं कर सकता है और अंतर्निहित शक्ति का उपयोग अत्यधिक सावधानी के साथ किया जाना चाहिए, लेकिन साथ ही अगर ऐसा प्रतीत होता है कि भले ही पूरे आरोप स्वीकार कर लिए जाएं और तब भी कोई अपराध नहीं बनता है या केवल आरोपी व्यक्तियों को परेशान करने के लिए दुर्भावनापूर्ण इरादे से कार्यवाही शुरू की गई है तब न्याय के हित में और न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करने के लिए इस न्यायालय को सीआरपीसी की धारा 482 के तहत अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करना चाहिए और कार्यवाही को रद्द कर देना चाहिए।

33. मौजूदा मामले में, आवेदकों के खिलाफ लंबित कार्यवाही आईपीसी की धारा 409, 420 से संबंधित है और इसलिए, इस न्यायालय के समक्ष प्रश्न यह है कि क्या धोखाधड़ी और आपराधिक विश्वासघात के अपराध आरोपों के अंकित मूल्य से बनाए गए हैं। कानून के सुस्थापित सिद्धांत का पालन करते हुए, आरोपों की सामग्री को समग्र रूप से लिया जाना चाहिए ताकि यह पता लगाया जा सके कि अपराध की सामग्री विधिवत स्थापित की गई है या नहीं।

34. वर्तमान मामले में, एफआईआर दिनांक 31.8.2019 को दर्ज की गई थी और एफआईआर के अनुसार आवेदकों ने स्वर्ण छत्र के लिए एक ऑर्डर दिया था और आवेदकों के आदेश पर सूचनादाता द्वारा एक स्वर्ण छत्र बनाया गया था और इसे उन्हें सौंप दिया गया था और आवेदकों ने वादा किया था कि एक सप्ताह के भीतर वे भुगतान कर देंगे लेकिन जब एक महीने से अधिक समय बीत गया तो सूचनादाता ने अपने बकाया की मांग की लेकिन आवेदकों ने भुगतान नहीं किया, इसलिए आवेदकों के खिलाफ लगाए गए आरोप के अनुसार, वे अपना वादा पूरा करने में विफल रहे। ऐसे में सवाल उठता है कि यदि आवेदकों पर लगाए गए आरोप स्वीकार कर लिए जाएं तो धारा 420, 409 के तहत अपराध बनता है या नहीं।

35. धोखाधड़ी और बेईमानी से संपत्ति सौंपने के लिए उत्प्रेरित करने के अपराध की सामग्री आईपीसी की धारा 420 में वर्णित है, यह इस प्रकार है:

> *"420. **छल करना और संपत्ति परिदत्त करने के लिए बेईमानी से उत्प्रेरित करना -** जो कोई छल करेगा, या तद्द्वारा उस व्यक्ति को, जिसे प्रवंचित किया गया है, बेईमानी से उत्प्रेरित करेगा कि वह कोई संपत्ति किसी व्यक्ति को परिदत्त कर दे, या किसी भी मूल्यवान प्रतिभूति को या किसी चीज को, जो हस्ताक्षरित या मुद्रांकित है, और जो मूल्यवान प्रतिभूति में संपरिवर्तित किये जाने योग्य है पूर्णतः या अंशतः रच दे, परिवर्तित कर दे, या नष्ट कर दे, वह दोनों में से किसी भाँति के कारावास से, जिसकी अवधि सात वर्ष तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा और वह जुर्माने से भी दंडनीय होगा।*

36. इसलिए आईपीसी की धारा 420 के तहत अपराध के लिए धोखाधड़ी और बेईमानी से संपत्ति सौंपने के लिए प्रलोभन देना आवश्यक है।

37. **हृदय रंजन प्रसाद वर्मा बनाम बिहार राज्य (2000) 4 एससीसी 168** मामले में, उच्चतम न्यायालय ने आईपीसी की धारा 415 और 420 की व्याख्या की और अवधारित किया कि धोखाधड़ी का अपराध गठित करने के लिए धोखाधड़ी और बेईमानी का इरादा एक पूर्व शर्त है, निर्णय से संबंधित उद्धरण इस प्रकार हैं: -

> *"14. खण्ड को पढ़ने पर यह स्पष्ट होता है कि परिभाषा में कृत्यों के दो अलग-अलग वर्ग बताए गए हैं, जिन्हें धोखा देने वाले व्यक्ति को करने के लिए प्रेरित किया जा सकता है। सबसे पहले, उसे धोखे से या*

बेईमानी से किसी भी व्यक्ति को कोई संपत्ति देने के लिए प्रेरित किया जा सकता है। खण्ड में निर्धारित कृत्यों का दूसरा वर्ग ऐसा कुछ भी करना या करने से चूकना है जिसे धोखा दिया गया व्यक्ति नहीं करेगा या करने से चूक जाएगा यदि उसे इतना धोखा न दिया गया हो। प्रथम श्रेणी के मामलों में उत्प्रेरण कपटपूर्ण या बेईमान होना चाहिए। कृत्यों के दूसरे वर्ग में, उत्प्रेरण जानबूझकर होना चाहिए लेकिन कपटपूर्ण या बेईमान नहीं होना चाहिए।

15. प्रश्न का निर्धारण करते समय यह ध्यान में रखना होगा कि मात्र संविदा के उल्लंघन और धोखाधड़ी के अपराध के बीच अंतर ठीक है। यह उत्प्रेरण के समय अभियुक्त के इरादे पर निर्भर करता है जिसे उसके बाद के आचरण से आंका जा सकता है लेकिन इसके लिए बाद का आचरण ही एकमात्र परीक्षण नहीं है। केवल संविदा का उल्लंघन धोखाधड़ी के लिए आपराधिक अभियोजन को जन्म नहीं दे सकता है जब तक कि लेनदेन की शुरुआत में धोखाधड़ी या बेईमानी का इरादा नहीं दिखाया जाता है, यही वह समय है जब अपराध किया गया माना जाता है। इसलिए यह इरादा ही है जो अपराध का सार है। किसी व्यक्ति को धोखाधड़ी का दोषी ठहराने के लिए यह दिखाना आवश्यक है कि वादा करते समय उसका इरादा धोखाधड़ी या बेईमानी का था। वादा पूरा करने में उनकी असफलता के बाद शुरुआत में ही ऐसा दोषपूर्ण इरादा नहीं माना जा सकता, यानी जब उन्होंने वादा किया था।"

(प्रभाव वर्धित)

38. **दलीप कौर बनाम जगनार सिंह (2009) 14 एससीसी 696** मामले में, उच्चतम न्यायालय ने अवधारित किया कि एक समझौते के उल्लंघन से उत्पन्न विवाद आईपीसी की धारा 415 और 420 के तहत धोखाधड़ी का अपराध नहीं होगा और इस प्रकार देखा गया: -

"9. दंड संहिता की धारा 420 की सामग्री इस प्रकार हैं:

"(i) किसी व्यक्ति को धोखा देना;

(ii) धोखाधड़ी या बेईमानी से किसी व्यक्ति को कोई संपत्ति सौंपने के लिए प्रेरित करना; या

(iii) इस बात पर सहमति देना कि कोई भी व्यक्ति किसी भी संपत्ति को अपने पास रखेगा और अंततः जानबूझकर उस व्यक्ति को ऐसा कुछ भी करने के लिए प्रेरित करना जो वह नहीं करेगा या चूक करेगा।"

10. इसलिए, उच्च न्यायालय को यह प्रश्न उठाना चाहिए था कि क्या अपीलकर्ता की ओर से कोई प्रलोभन का कार्य दूसरे प्रतिवादी द्वारा उठाया गया है और क्या अपीलकर्ता का शुरू से ही उसे धोखा देने का इरादा था। यदि पक्षकारों के बीच विवाद अनिवार्य रूप से एक सिविल विवाद था, जो अग्रिम राशि वापस न करने पर अपीलकर्ताओं की ओर से संविदा के उल्लंघन के परिणामस्वरूप हुआ था, तो यह धोखाधड़ी का अपराध नहीं होगा।

दंड संहिता की धारा 405 में निहित इसकी परिभाषा के संबंध में आपराधिक विश्वासघात के अपराध (2009) 14 एससीसी 696 के संबंध में कानूनी स्थिति भी ऐसी ही है। (देखें अजय मित्रा बनाम मध्य प्रदेश राज्य [(2003) 3 एससीसी 11: 2003 एससीसी (सीआरआई) 703])"

(प्रभाव वर्धित)

39. इसलिए, आईपीसी की धारा 420 के तहत अपराध के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांत से ऐसा प्रतीत होता है कि आईपीसी की धारा 420 के तहत अपराध के लिए यह आवश्यक है कि वादा करते समय किसी व्यक्ति का इरादा धोखाधड़ी या बेईमानी का हो और केवल वादा पूरा करने में उसकी विफलता से लेकर शुरुआत में ही ऐसा दोषी इरादा नहीं माना जा सकता है, जब उसने वादा किया था।

40. उपरोक्त सिद्धांत को मौजूदा मामले में लागू करते हुए, मुझे लगता है कि आवेदकों के खिलाफ आईपीसी की धारा 420 के तहत कोई अपराध नहीं बनता है क्योंकि आरोप से ऐसा प्रतीत होता है कि आवेदक कथित स्वर्ण छत्र का भुगतान करने के अपने वादे को निभाने में विफल रहे हैं और ऐसा कोई मामला नहीं है। रिकॉर्ड पर सबूत जो यह सुझाव दे सकते हैं कि वादा करते समय आवेदकों का इरादा बेईमान और कपटपूर्ण था और आरोप से ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने केवल वादे का उल्लंघन किया है जो आईपीसी की धारा 420 को आकर्षित नहीं करता है।

41. आईपीसी की धारा 409 लोक सेवक या बैंकर, व्यापारी या एजेंट द्वारा विश्वास के आपराधिक उल्लंघन से संबंधित है और इस प्रकार है: -

*409. **लोक-सेवक द्वारा या बैंकर, व्यापारी या अभिकर्ता द्वारा आपराधिक न्यासभंग-** जो कोई लोक- सेवक के नाते अथवा बैंकर, व्यापारी, फैक्टर, दलाल, अटार्नी या अभिकर्ता के रुप में अपने कारबार के अनुक्रम में किसी प्रकार संपत्ति, या संपत्ति पर कोई भी अख्तयार अपने को न्यस्त होते हुए उस संपत्ति के विषय में न्यासभंग करेगा, वह [आजीवन कारावास से], या दोनों में से किसी भाँति के कारावास से, जिसकी अवधि दस वर्ष तक की हो सकेगी, दंडित किया*

जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा।

42. इसलिए आईपीसी की धारा 409 के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि जो कोई भी लोक सेवक होते हुए या बैंकर, व्यापारी, फैक्टर, दलाल, अधिवक्ता या एजेंट के रूप में अपने व्यवसाय के माध्यम से आपराधिक विश्वासघात का अपराध करता है तो वह आईपीसी की धारा 409 के तहत उत्तरदायी होगा।

43. मौजूदा मामले में, आवेदक न तो लोक सेवक हैं, न ही वे बैंकर हैं और न ही उन्होंने एक व्यापारी या दलाल या अधिवक्ता या एजेंट के रूप में अपने व्यवसाय के माध्यम से कथित अपराध किया है, इसलिए, आवेदक के खिलाफ आईपीसी की धारा 409 के तहत अपराध भी नहीं बनता।

44. हालाँकि, आवेदकों के खिलाफ आईपीसी की धारा 406 के तहत आरोप पत्र दायर नहीं किया गया है, लेकिन सवाल यह भी उठता है कि क्या आवेदकों के खिलाफ आईपीसी की धारा 405 के तहत निर्धारित आपराधिक विश्वासघात का अपराध बनता है।

45. आईपीसी की धारा 406 में आपराधिक विश्वासघात के अपराध के लिए सजा का प्रावधान किया गया है और आईपीसी की धारा 405 के तहत आपराधिक विश्वासघात के अपराध को परिभाषित किया गया है जो इस प्रकार है:-

*405. **आपराधिक न्यासभंग-** जो कोई संपति या सम्पति पर कोई अख्तयार किसी प्रकार अपने को न्यस्त किए जाने पर उस संपति का बेईमानी से दुर्विनियोग कर लेता है या उसे अपने उपयोग में संपरिवर्तित कर लेता है या जिस प्रकार ऐसा न्यास निर्वहन किया जाना है, उसको विहित करने वाली विधि के किसी निदेश का, या ऐसे न्यास के निर्वहन के बारे में उसके द्वारा की गई किसी अभिव्यक्त या विवक्षित वैध संविदा का अतिक्रमण करके बेईमानी से उस संपत्ति का उपयोग या व्ययन करता है, या जानबूझकर किसी अन्य व्यक्ति का ऐसा करना सहन करता है, वह "आपराधिक न्यासभंग" करता है।*

[स्पष्टीकरण [1]-- जो व्यक्ति [किसी स्थापन का नियोजक होते हुए, चाहे वह स्थापन कर्मचारी भविष्य निधि और प्रकीर्ण उपबंध अधिनियम, 1962 (1952 का 19) की धारा 17 के अधीन छूट प्राप्त है या नहीं], तत्समय प्रवृत किसी विधि द्वारा स्थापित भविष्य निधि या कुटुंब पेंशन निधि में जमा करने के लिए कर्मचारी-अभिदाय की कटौती कर्मचारी को संदेय मजदूरी में से करता है उसके बारे में यह समझा जाएगा कि उसके द्वारा इस प्रकार कटौती किए गए अभिदाय की रकम उसे न्यस्त कर दी गई है और यदि वह उक्त निधि में ऐसे अभिदाय का संदाय करने में, उक्त विधि

का अतिक्रमण करके व्यतिक्रम करेगा तो उसके बारे में यह समझा जाएगा कि उसने यथापूर्वोक्त विधि के किसी निदेश का अतिक्रमण करके उक्त अभिदाय की रकम का बेईमानी से उपयोग किया है।

[स्पष्टीकरण 2-- जो व्यक्ति, नियोजक होते हुए, कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 (1948 का 34) के अधीन स्थापित कर्मचारी राज्य बीमा निगम द्वारा धारित और शासित कर्मचारी राज्य बीमा निगम निधि में जमा करने के लिए कर्मचारी को संदेय मजदूरी में से कर्मचारी अभिदाय की कटौती करता है, उसके बारे में यह समझा जाएगा कि उसे अभिदाय की वह रकम न्यस्त कर दी गई है, जिसकी उसने इस प्रकार कटौती की है और यदि वह उक्त निधि में ऐसे अभिदाय के संदाय करने में उक्त अधिनियम का अतिक्रमण करके, व्यतिक्रम करता है, तो उसके बारे में यह समझा जाएगा कि उसने यथापूर्वोक्त विधि के किसी निदेश का अतिक्रमण करके उक्त अभिदाय की रकम का बेईमानी से उपयोग किया है।]"

46. आपराधिक विश्वासघात के अपराध में दो घटक शामिल हैं (क) किसी व्यक्ति को संपत्ति सौंपना, या संपत्ति पर कोई प्रभुत्व सौंपना, और (ख) सौंपा गया व्यक्ति बेईमानी से उस संपत्ति का दुरुपयोग करता है या उसे अपने उपयोग के लिए परिवर्तित कर लेता है जिससे उसे सौंपने वाले व्यक्ति को नुकसान होता है।

47. **अनवर चंद सब नानादिकर बनाम कर्नाटक राज्य (2003) 10 एससीसी 521** मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने अवधारित किया:-

> *"7. धारा 405 के तहत आरोपों को सामने लाने के लिए मूल आवश्यकता यह है कि संयुक्त रूप से यह साबित किया जाए (1) सौंपा जाना, और (2) क्या आरोपी ने दुर्भावनापूर्ण इरादे से काम किया था या इसका दुरुपयोग नहीं किया था या इसे सौंपने वाले व्यक्तियों की हानि के लिए इसे अपने स्वयं के उपयोग में परिवर्तित नहीं किया था। चूंकि इरादे का सवाल प्रत्यक्ष प्रमाण का मामला नहीं है, इसलिए कुछ व्यापक परीक्षणों की परिकल्पना की गई है जो आम तौर पर यह तय करने में उपयोगी मार्गदर्शन प्रदान करेंगे कि क्या किसी विशेष मामले में आरोपी के पास अपराध के लिए मन था।*

48. **विजय कुमार घई बनाम पश्चिम बंगाल राज्य (2022) 7 एससीसी 124** मामले में निम्नानुसार अवधारित किया गया:-

"28. दंड संहिता, 1860 की धारा 405 के तहत संपत्ति का "सौंपना" इसके तहत अपराध का गठन करने के लिए महत्वपूर्ण है। प्रयोग किए गए शब्द हैं, "किसी भी तरीके से सौंपी गई संपत्ति"। इसलिए, यह सभी प्रकार के दायित्वों पर लागू होता है, चाहे वे क्लर्कों, नौकरों, व्यापारिक साझेदारों या अन्य व्यक्तियों पर हों, बशर्ते कि वे "भरोसेमंद" पद पर हों। एक व्यक्ति जो लगाए गए दायित्व की शर्तों के विपरीत उन्हें सौंपी गई संपत्ति का बेईमानी से दुरुपयोग करता है, वह आपराधिक विश्वासघात के लिए उत्तरदायी है और दंड संहिता की धारा 406 के तहत दंडित किया जाता है।"

49. इसलिए, उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित उपरोक्त सिद्धांतों से, केवल संविदा का उल्लंघन विश्वास के आपराधिक उल्लंघन के अपराध को आकर्षित नहीं करता है और आईपीसी की धारा 405 के तहत अपराध के लिए सौंपना आवश्यक है।

50. मौजूदा मामले में, सूचनादाता द्वारा लगाए गए मौखिक आरोप को छोड़कर रिकॉर्ड पर आवेदकों को स्वर्ण छत्र सौंपने का कोई कानूनी सबूत नहीं है। इसके अलावा, रिकॉर्ड पर कोई कानूनी सबूत भी नहीं है, जो यह दिखा सके कि आवेदकों ने सूचनादाता द्वारा लगाए गए मौखिक आरोप को छोड़कर स्वर्ण छत्र के लिए सूचनादाता को एक आदेश दिया था। ऐसा प्रतीत होता है कि अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य आवेदकों के खिलाफ आरोपों को साबित करने के लिए पर्याप्त नहीं है।

51. आर.पी. कपूर (उपरोक्त) के मामले में तीन न्यायाधीशों की बेंच ने अवधारित किया कि यदि रिकॉर्ड पर कोई कानूनी सबूत उपलब्ध नहीं है या दिए गए सबूत आरोपों को साबित करने में विफल रहते हैं, तो कार्यवाही रद्द की जा सकती है।

52. इस प्रकार, आर.पी. कपूर (उपरोक्त) के मामले में निर्धारित सिद्धांत के मद्देनजर आवेदकों के खिलाफ आईपीसी की धारा 405 के तहत अपराध भी नहीं बनता है।

53. इसके अलावा, रिकॉर्ड पर रखी गई सामग्री के अवलोकन से, ऐसा प्रतीत होता है कि आवेदक इंटीरियर डेकोरेशन के व्यवसाय में थे और सूचनादाता ने उन्हें अपने घर के नवीनीकरण के लिए नियुक्त किया था और आवेदकों ने उन्हें नवीनीकरण के लिए 9.5 करोड़ रुपये का इस्टीमेट प्रदान किया और पक्षकारों के बीच राशि का कुछ विवाद उत्पन्न हुआ और इस संबंध में आवेदकों की फर्म द्वारा मई, 2019 के महीने में सूचनादाता को एक कानूनी नोटिस भेजा गया था और सूचनादाता ने जून, 2019 के महीने में वही जवाब दिया लेकिन जवाब में कहीं भी स्वर्ण छत्र के संबंध में विवाद के बारे में नहीं बताया गया और उसके बाद दिनांक 31.8.2019 को वर्तमान मामले की एफआईआर दर्ज की गई। इस तथ्य से पता चलता है कि आवेदकों और सूचनादाता के बीच सूचनादाता के घर के नवीनीकरण के भुगतान के संबंध में विवाद लंबित था और इस तथ्य को सूचनादाता और उसके भाई ने आगे की जांच के दौरान दर्ज किए गए अपने बयानों में भी स्वीकार किया है, इसलिए, ऐसा प्रतीत होता है कि सूचनादाता ने निजी और व्यक्तिगत द्वेष के

कारण प्रतिशोध लेने के लिए गलत इरादे और दुर्भावनापूर्ण उद्देश्य से वर्तमान कार्यवाही शुरू की। भजन लाल (उपरोक्त) के मामले में उच्चतम न्यायालय ने अवधारित किया कि यदि कोई कार्यवाही व्यक्तिगत द्वेष के कारण दुर्भावनापूर्ण इरादे से शुरू की गई है तो इसे रद्द कर दिया जाना चाहिए।

54. इसके अलावा, मौजूदा विवाद मुख्य रूप से सिविल विवाद प्रतीत होता है और कानून तय करता है कि यदि यह सिविल दायित्व को आकर्षित करता है तो आपराधिक मुकदमा जारी रखने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। **इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन बनाम एनईपीसी इंडिया लिमिटेड (2006) 6 एससीसी 736** मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने अवधारित किया:

> *13... आपराधिक अभियोजन के माध्यम से दबाव डालकर सिविल विवाद और दावे के निस्तारण के किसी भी प्रयास को, जिसमें कोई आपराधिक अपराध शामिल नहीं है, विरोध और हतोत्साहित किया जाना चाहिए।*

55. इसलिए, इस दृष्टिकोण से भी, आवेदकों के खिलाफ लंबित कार्यवाही शुरू में ही बाधित होने के लिए उत्तरदायी है।

56. इसके अलावा, वर्तमान मामले में एक और महत्वपूर्ण पहलू है कि वर्तमान मामले की एफआईआर दिनांक 31.8.2019 को दर्ज की गई थी और सीआरपीसी की धारा 161 के तहत दर्ज किए गए सूचनादाता और उसके भाई के बयानों से यह पता चलता है कि वर्तमान मामले की एफआईआर दर्ज होने की तारीख से दो महीने के बाद सूचनादाता ने अपने घर के नवीनीकरण के भुगतान के संबंध में उनके बीच उत्पन्न विवाद के संबंध में आवेदकों की फर्म के खाते में 10 लाख रुपये स्थानांतरित कर दिए और यह तथ्य फिर से दर्शाता है कि वर्तमान मामले की एफआईआर दुर्भावनापूर्ण इरादे से दर्ज की गई प्रतीत होती है जैसे कि एफआईआर दर्ज होने के दो महीने बाद सूचनादाता ने आवेदकों को इतनी बड़ी राशि ट्रांसफर की तो यह इंगित करता है कि तब तक स्वर्ण छत्र का भुगतान न करने के संबंध में कोई विवाद मौजूद नहीं था और यह तथ्य फिर से बचाव पक्ष के कथन को मजबूत करता है कि सूचनादाता के घर के नवीनीकरण के भुगतान के संबंध में विवाद के कारण वर्तमान मामले की एफआईआर दर्ज की गई थी।

57. इसके अलावा, आरोप के अनुसार, दिनांक 06.04.2018 को कथित स्वर्ण छत्र को सूचनादाता द्वारा आवेदकों को सौंप दिया गया था, लेकिन वर्तमान मामले की एफआईआर दिनांक 31.08.2019 को यानी लगभग एक वर्ष से अधिक समय के बाद दर्ज की गई थी। इसलिए, ऐसा प्रतीत होता है कि जब मई, 2019 में आवेदकों द्वारा सूचनादाता के घर के नवीनीकरण के भुगतान के संबंध में उनके बकाया का भुगतान न करने के लिए सूचनादाता को कानूनी नोटिस दिया गया था, तब अगस्त, 2019 में प्राथमिकी दर्ज की गई थी।

58. इसके अलावा, यह विश्वास करना कठिन है कि सूचनादाता द्वारा 1.25 करोड़ से अधिक का सामान बिना किसी अग्रिम राशि के केवल मौखिक ऑर्डर पर बनाया गया था और इसे बिना किसी भुगतान के आवेदकों को सौंप भी दिया गया था।

59. इसलिए, ऊपर की गई चर्चा से, मेरे विचार में, उपरोक्त मामले में आवेदकों के खिलाफ लंबित कार्यवाही रद्द होने योग्य है।

60. तद्नुसार, आवेदकों के खिलाफ लंबित उपरोक्त मामले की कार्यवाही को **रद्द** किया जाता है।

61. तदनुसार, दोनों आवेदनों को **अनुमति** दी जाती है।

(2023) 3 ILRA 1083

मूल अधिकार क्षेत्र

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 16.02.2023

माननीय न्यायमूर्ति शिव शंकर प्रसाद

आवेदन अन्तर्गत धारा 482 सं. 4302 वर्ष 2023

अनूप कुमार सिंह ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य ...प्रतिपक्षी

आवेदक की ओर से अधिवक्ता: श्री भीगुराम जी, श्री आशुतोष कुमार निषाद, श्री प्रभात कुमार, श्री संदीप कुमार

प्रतिपक्षी की ओर से अधिवक्ता: जी.ए.

3. आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या - 4302 / 2023 - अनुप कुमार सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य अपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 482 - आवेदक की अग्रिम जमानत को निरस्त करने के आदेश को अपास्त करने के लिए आवेदन - असंगत आधार पर - क्योंकि आवेदक ने अग्रिम जमानत की किसी भी शर्त का उल्लंघन नहीं किया - समन/जमानती वारंट/गैर-जमानती वारंट जारी होने के पश्चात धारा 82 Cr.P.C. के तहत कार्यवाही प्रारंभ की गई - पहले से दो और आवेदन धारा 482 के तहत दायर किए गए - छुपाए गए।

लागत के साथ निरस्त। (E-9)

उद्धृत वाद सूची:

1. विनोद कुमार, IAS बनाम भारत सरकार और अन्य, व्रिट याचिका (अपराध) संख्या 255 वर्ष 2021, निर्णय दिनांक 29 जून, 2021
2. डोलत राम और अन्य बनाम हरियाणा राज्य, (1994) Spp. 6 S.C.R
3. मध्य प्रदेश राज्य बनाम प्रदीप शर्मा, (2014) 2 SCC 171
4. शंकर प्रसाद बनाम बिहार राज्य, AIR OnLine 2021 SC 915
5. अनिल खादीवाला बनाम दिल्ली राज्य (NCT) सरकार, 2019 (17) SC 1002
6. अधीक्षक और रिमेम्ब्रंसर बनाम मोहन सिंह और अन्य, AIR 1975 SC 1002
7. मेसर्स तिलोकचंद मोतीचंद और अन्य बनाम एच.बी. मुंशी और अन्य, AIR 1970 SC 898
8. हरियाणा राज्य बनाम करनाल डिस्टिलरी, AIR 1977 SC 781
9. सबिया खान और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, (1999) 1 SCC 271
10. कृषि और प्रोसेस्ड फूड प्रोडक्ट्स बनाम ओसवाल एग्रो फ्यूरन और अन्य, AIR 1996 SC 1947
11. किंग बनाम जनरल कमिश्नर (1917) 1 KB 486
12. अब्दुल रहमान बनाम प्रासोनी बाई और अन्य, AIR 2003 SC 718
13. S.J.S. बिजनेस एंटरप्राइजेज (P) लिमिटेड बनाम बिहार राज्य और अन्य, (2004) 7 SCC 166
14. के.डी. शर्मा बनाम SAIL, (2008) 12 SCC 481
15. जी. जयश्री बनाम भगवंदास एस. पटेल, (2009) 3 SCC 141

16. धनंजय शर्मा बनाम हरियाणा राज्य और अन्य, AIR 1995 SC 1795

17. धनंजय शर्मा बनाम हरियाणा राज्य और अन्य, AIR 1995 SC 1795

18. सबिया खान और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, (1999) 1 SCC 271

19. लवेश बनाम (NCT) दिल्ली, (2012) 8 SCC 730

माननीय न्यायमूर्ति शिव शंकर प्रसाद,

1. धारा 482 Cr.P.C के तहत इस आवेदन को आवेदक द्वारा निम्नलिखित राहत के लिए वरीयता दी गई हैः

"प्रार्थना"

इसलिए, सबसे सम्मानपूर्वक प्रार्थना की जाती है कि यह माननीय न्यायालय कृपया इस आवेदन को स्वीकार करने और जिला एवं सत्र न्यायाधीश मिर्जापुर द्वारा पारित दिनांक 05/01/2023 के आपत्तिजनक आदेश को रद्द करने की कृपा करे और आवेदक के खिलाफ मुकदमा अपराध संख्या 30/2021 के तहत धारा 419, 420, 467, 471 आईपीसी, पी.एस.- कोतवाली कटरा, जिला मिर्जापुर में अग्रिम जमानत आवेदन संख्या 529/2022 सुरेंद्र कुमार बनाम अनूप कुमार सिंह को रद्द कर दे और यह अग्रिम जमानत को भी बहाल करे, जो मुकदमे के निपटारे तक मुकदमा अपराध संख्या 30/2021 के तहत धारा 419, 420, 467, 471 आईपीसी, थाना - कोतवाली कटरा, जिला- मिर्जापुर में दिनांक 15/09/2022 के तहत पहले ही दी जा चुकी है।

यह भी प्रार्थना की जाती है कि यह माननीय न्यायालय कृपया अपराध संख्या 30/2021 के तहत धारा 419, 420, 467, 471 आईपीसी, थाना- कोतवाली कटरा, जिला- मिर्जापुर के मामले में आगे की कार्यवाही पर रोक लगाने की कृपा करे, अन्यथा आवेदक/याचिकाकर्ता को अपूरणीय क्षति और चोट पहुंचेगी, और/या ऐसा अन्य और अतिरिक्त आदेश पारित करे जिसे यह माननीय न्यायालय मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के तहत उचित और उचित समझे।"

2. यह मामला इस बात का उत्कृष्ट उदाहरण है कि कैसे एक व्यक्ति, जो एक आरोपी है, एक के बाद एक याचिका/आवेदन दायर करके उच्च न्यायालय का बहुमूल्य समय बर्बाद करता है; तथ्य को छुपाता है और साथ ही गैर-जमानती वारंट, धारा 82 सीआरपीसी के तहत शुरू की गई कार्यवाही जैसी अदालती प्रक्रिया से बचता है।

3. आवेदनके के लिये विद्वान अधिवक्ता एवं राज्य के लिये विद्वान श्री मान जितेन्द्र कुमार जायसवाल को सुना।

आवेदन का मामला

4. इससे पूर्व आवेदक ने विपक्षी संख्या 2 के विरुद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 6 मार्च, 2020 को दर्ज कराई थी, जो मुकदमा अपराध संख्या 53/2020 के रूप में धारा 419, 420, 468 व 471 आईपीसी के अंतर्गत थाना कोतवाली कटरा, जिला मिर्जापुर में पंजीकृत हुआ, जिसकी एक प्रति वर्तमान आवेदन के साथ शपथ पत्र के अनुलग्नक संख्या 1 के रूप में संलग्न है।

5. उक्त एफआईआर के जवाब में विपक्षी संख्या 2 ने आवेदक के विरुद्ध 21 फरवरी, 2021 को प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई, जो मुकदमा अपराध संख्या 30/2021 के तहत धारा 419, 420, 468 और 471 आईपीसी के तहत थाना-कोतवाली कटरा, जिला-मिर्जापुर में पंजीकृत किया गया, जिसकी एक प्रति इस हलफनामे के अनुलग्नक संख्या 2 के रूप में संलग्न है।

6. आवेदक के विरुद्ध उपरोक्त एफआईआर दर्ज होने के बाद, उसने अग्रिम जमानत आवेदन संख्या 1225/2021 प्रस्तुत किया, जिसे सत्र न्यायाधीश मिर्जापुर ने दिनांक 19.10.2021 को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि जमानत आवेदन में कोई आशंका स्थापित नहीं हुई है।उपरोक्त आदेश से संतुष्ट नहीं होने के कारण, आवेदक ने इस न्यायालय के समक्ष एक अग्रिम जमानत आवेदन No.4527/2022 दायर किया।उक्त जमानत याचिका को खारिज कर दिया गया है क्योंकि इस न्यायालय द्वारा आदेश दिनांकित 28 जुलाई, 2022 के माध्यम से दबाव नहीं डाला गया है।तैयार संदर्भ के लिए दिनांकित 28 जुलाई, 2022 का आदेश इस प्रकार हैः

"आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री पवन किशोर ने ए. जी. ए. और शिकायतकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री शैलेश पांडे को सुना।

शुरू में ही आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि वह इस आवेदन को दबाना नहीं चाहता है क्योंकि आवेदक नीचे दी गई विद्वत न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने के लिए तैयार है जहां कार्यवाही विचाराधीन है।

तदनुसार, वर्तमान आवेदन को दबाए बिना खारिज कर दिया जाता है।

अभिलेखों में दर्ज किया गया।"

7. कुछ समय लेने के बाद, आवेदक ने 2 सितंबर, 2022 को निचली अदालत के समक्ष दूसरी अग्रिम जमानत याचिका दायर की, जिसे अग्रिम जमानत आवेदन संख्या 1558/2022 के रूप में क्रमांकित किया गया।इस दूसरी जमानत याचिका को न्यायालय ने दिनांकित 15 सितंबर, 2022 के आदेश के तहत मंजूरी दी थी।उक्त आदेश प्राप्त करने के पश्चात, आवेदक द्वारा अग्रिम जमानत प्रदान करने वाले निचली अदालत के आदेश में उल्लिखित प्रत्येक शर्त का पालन किया जा रहा था।

8. यह आश्चर्य की बात है कि सूचक/विपरीत पक्ष संख्या 2 ने 8 नवंबर, 2022 को निचली अदालत के समक्ष जमानत रद्द करने का आवेदन दायर किया, जिस पर सूचक द्वारा दबाव नहीं

डाला गया, जिसके बाद 9 नवंबर, 2022 को उन्होंने फिर से धारा 439 (2) सीआरपीसी के तहत दूसरा जमानत रद्द करने का आवेदन दायर किया, जिसे जमानत रद्द करने के आवेदन संख्या 529/2022 के रूप में पंजीकृत किया गया।निचली अदालत ने मामले के तथ्यों पर गौर किए बिना और विधि द्वारा ज्ञात उचित प्रक्रिया का पालन किए बिना, दिनांक 5 जनवरी, 2023 के आदेश द्वारा आवेदक की अग्रिम जमानत याचिका को खारिज कर दिया है।

9. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि स्थापित कानून के अनुसार, यदि कोई अभियुक्त उसे पूर्व में अग्रिम जमानत प्रदान करने वाले आदेश में उल्लिखित किसी शर्त का उल्लंघन करता है, तो उसे प्रदान करने वाली अदालत धारा 439 सीआरपीसी के तहत जमानत आवेदन को खारिज कर सकती है, जबकि वर्तमान मामले में आवेदक ने 15 सितंबर, 2022 को आवेदक को अग्रिम जमानत प्रदान करने वाले आदेश में उल्लिखित किसी भी शर्त का उल्लंघन नहीं किया है।उनके मामले के समर्थन में, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने दौलत राम और अन्य बनाम हरियाणा राज्य (1995) 1 एस. सी. सी. 349, राज्य (दिल्ली प्रशासन) बनाम संजय गांधी (1978) 2 एस. सी. सी. 411, कश्मीरा सिंह बनाम डुमेन सिंह (1996) 4 एस. सी. सी. 693, सी. बी. आई. बनाम सुब्रमण्यम गोपालकृष्णन (2011) 5 एस. सी. सी. 296, एक्स. बनाम तेलंगाना राज्य के मामलों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसलों अवलंब रखा है।(2020) 16 एस. सी. सी. 511), जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने राय दी है कि जमानत को रद्द करने का निर्देश देने वाले आदेश के लिए बहुत ठोस और भारी परिस्थितियाँ आवश्यक हैं।यह भी राय दी गई है कि दी गई जमानत को इस बात पर विचार किए बिना यांत्रिक तरीके से रद्द नहीं किया जा सकता है कि क्या किसी पर्यवेक्षण परिस्थितियों ने इसे निष्पक्ष सुनवाई की अनुमति देने के लिए अनुकूल बना दिया है।इसलिए, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि कानून के प्रावधानों का पालन किए बिना निचली न्यायालय ने आवेदक की अग्रिम जमानत को रद्द कर दिया है, जिसे रद्द किया जा सकता है।

10. उपरोक्त के संचयी बल पर, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि यह न्यायालय इस आवेदन को अनुमति दे सकता है और जिला और सत्र न्यायाधीश मिर्जापुर द्वारा आवेदक की अग्रिम जमानत याचिका को रद्द करने और आवेदक को अग्रिम जमानत देने वाले दिनांकित15 सितंबर, 2022 के आदेश को बहाल करने के लिए पारित 5 जनवरी, 2023 के आक्षेपित आदेश को रद्द कर सकता है।

<u>भौतिक तथ्य की छिपाना</u>

11. श्री जितेन्द्र कुमार जायसवाल, विद्वान ए.जी.ए. ने वर्तमान आवेदन की स्थिरता पर प्रारंभिक आपत्ति यह प्रस्तुत करते हुए उठाई है कि यह आवेदक द्वारा धारा 482 सीआरपीसी के तहत दायर किया गया तीसरा आवेदन है। इससे पहले उन्होंने धारा 482 सीआरपीसी के तहत दो आवेदन दायर किए हैं, आवेदन संख्या - 16846/2021 (अनूप सिंह बनाम राज्य) और 23322/2021 (अनूप सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) लेकिन उन्होंने वर्तमान आवेदन

में उक्त तथ्य को छिपाया है।अपनी दलील के समर्थन में उन्होंने न्यायालय का ध्यान वर्तमान आवेदन के साथ दिए गए हलफनामे के पैराग्राफ संख्या 2 की ओर आकर्षित किया है।तैयार संदर्भ के लिए इसे नीचे उद्धृत किया जा रहा हैः

> ***"2. यह माननीय न्यायालय के समक्ष प्रथम आपराधिक प्रकीर्ण आवेदन (482) है तथा कोई भी आपराधिक रिट याचिका, आपराधिक विविध आवेदन (482) इस माननीय न्यायालय या किसी अन्य न्यायालय या लखनऊ बेंच के समक्ष लंबित नहीं है।"***

12. इसलिए, विद्वान ए. जी. ए. प्रस्तुत करता है कि चूंकि आवेदक ने धारा 482 Cr.P.C के तहत यह तीसरा आवेदन दायर करके इस न्यायालय का रुख नहीं किया है, इसलिए इसे भौतिक तथ्य को छिपाने के लिए अनुकरणीय लागत के साथ खारिज किया जा सकता है।

13. विद्वत ए. जी. ए. की उपरोक्त प्रस्तुतियों के लिए, हालांकि आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने आवेदक के पहले के दो आवेदनों में पारित आदेशों की प्रतियां इस न्यायालय के समक्ष रखी हैं, लेकिन इस न्यायालय द्वारा किए गए एक स्पष्ट प्रश्न पर कि उसने भौतिक तथ्य को क्यों छिपाया है, वह इसका उत्तर नहीं दे सका।

<u>पोषणीयता</u>

14. श्री जितेन्द्र कुमार जायसवाल, विद्वान ए.जी.ए. ने भी वर्तमान आवेदन की स्वीकार्यता पर प्रारंभिक आपत्ति उठाई है, जिसमें उन्होंने कहा है कि यह आवेदक द्वारा धारा 482 सी.आर.पी.सी. के तहत दायर किया गया तीसरा आवेदन है। इसलिए, उन्होंने कहा है कि धारा 482 सी.आर.पी.सी. के तहत लगातार आवेदनों पर विचार नहीं किया जा सकता है और यह तीसरा आवेदन स्वीकार्य न होने के कारण खारिज किए जाने योग्य है।

15. इसके प्रतिउत्तर में, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यह निस्संदेह सत्य है कि यह आवेदक द्वारा धारा 482 सीआरपीसी के तहत दायर किया गया तीसरा आवेदन है, लेकिन रिट याचिका (आपराधिक) संख्या 255/2021 में विनोद कुमार, आईएएस बनाम भारत संघ और अन्य के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश के मद्देनजर इसे बनाए रखने योग्य नहीं है, जो 29 जून, 2021 को तय किया गया था।उक्त निर्णय के प्रासंगिक भाग को आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा संदर्भित किया गया है, जिसे नीचे उद्धृत किया जा रहा हैः

> *"एस. सी. सी. (1975) 3 706 में रिपोर्ट किए गए "कानूनी मामलों के अधीक्षक और अनुस्मारक, पश्चिम बंगाल बनाम मोहन सिंह और अन्य" में इस न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित कानून स्पष्ट है कि पहले की 482 याचिकाओं को खारिज करने से धारा 482 के तहत बाद की याचिका दायर करने पर रोक नहीं है, यदि तथ्य इस तरह से उचित हैं।"*

चाहे आवेदन को एंटीसिपेटरी जमानत देने के लिए लागू किया गया हो, जब यह तथ्य की एक बात

होती है तो <u>धारा 82 CR.P.C के तहत प्रक्रिया</u> के रूप में गैर-दो-पक्षीय वारंटी अच्छी तरह से लागू होती है। क्या उसे उसके खिलाफ शुरू किया गया है?

16. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया जाता है कि आवेदक निर्दोष है और उसे वर्तमान मामले से कोई लेना-देना नहीं है।यह आगे प्रस्तुत किया जाता है कि हालांकि आवेदक के खिलाफ धारा 82 Cr.P.C के तहत कार्यवाही शुरू की गई है, फिर भी आवेदक के खिलाफ कोई प्रथमदृष्टया मामला नहीं बनता है।यह आगे प्रस्तुत किया जाता है कि केवल गैर-जमानती वारंट जारी करना और धारा 82 Cr.P.C के तहत कार्यवाही शुरू करना आवेदक को पहले दी गई अग्रिम जमानत को रद्द करने का आधार हो सकता है।पहले से दी गई जमानत को रद्द करने का निर्देश देने वाले आदेश के लिए बहुत ठोस और भारी परिस्थितियां आवश्यक हैं।अपने मामले के समर्थन में आवेदक के विद्वान वकील ने दौलत राम एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य (1994) एसपीपी 6 एससीआर में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि उन्होंने जांच एजेंसी के साथ पूरा सहयोग किया है।जाँच के दौरान उन्हें गिरफ्तार नहीं किया गया था।यह आगे प्रस्तुत किया जाता है कि यदि आवेदक को अग्रिम जमानत पर अनुमति दी जाती है, तो वह विचारण न्यायालय के साथ सहयोग करेगा।उसके अदालतों से भागने की कोई संभावना नहीं है।आवेदक का कोई आपराधिक इतिहास नहीं है।आवेदक वचन देता है कि वह स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं करेगा और सहयोग करेगा।आवेदक को किसी भी समय पुलिस द्वारा उसकी गिरफ्तारी की आशंका है।

17. दूसरी ओर, विद्वत ए. जी. ए. ने प्रार्थना का विरोध किया और तर्क दिया कि आवेदक के खिलाफ धारा 82 Cr.P.C के तहत कार्यवाही शुरू की गई है, क्योंकि वह समन/नोटिस/जमानती और गैर-जमानती वारंट की सेवा के बावजूद संबंधित न्यायालय में पेश नहीं हुआ।आवेदक संबंधित न्यायालय में सहयोग नहीं कर रहा है।अपने तर्कों के समर्थन में, विद्वान ए.जी.ए. ने मध्य प्रदेश राज्य बनाम प्रदीप शर्मा (2014) 2 एससीसी 171 और प्रेम शंकर प्रसाद बनाम बिहार राज्य (एआईआर ऑनलाइन 2021 एससी 915) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून का हवाला दिया और आगे तर्क दिया कि आवेदक अग्रिम जमानत पर रिहा होने का हकदार नहीं है।उसके खिलाफ प्रथमदृष्टया मामला बनता है।

<u>आवेदन के विरोधी जमानत आवेदन को रद्द करने के आक्षेपित आदेश का लाभ</u>

18. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि चूंकि निचली न्यायालय द्वारा यांत्रिक तरीके से पारित आदेश को कानूनी रूप से कायम नहीं रखा जा सकता है और इसे इसके द्वारा दरकिनार आदेश दिया जाता है और आवेदक को अग्रिम जमानत देने वाले आदेश को बहाल किया जाता है।

19. इसके विपरीत, विद्वत ए. जी. ए. प्रस्तुत करता है कि आक्षेपित आदेश पारित करते समय नीचे दी गई न्यायालय ने स्पष्ट निष्कर्ष तथ्य दर्ज किया है, जैसे कि इसमें कोई अवैधता या दुर्बलता नहीं है।

20. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई दलीलों पर विचार किया है और विवादित आदेश सहित वर्तमान आवेदन के अभिलेखों को देखा है।

21. अब यह न्यायालय धारा 482 सीआरपीसी के तहत इस आवेदन की स्थिरता के मुद्दे पर आता है। यह कोई संदेह नहीं है कि यह धारा 482 सीआरपीसी के तहत तीसरा आवेदन है जो आवेदक द्वारा दायर किया गया है, लेकिन आवेदक द्वारा धारा 482 सीआरपीसी के तहत दायर पहले और दूसरे आवेदनों में इस न्यायालय के दिनांक 21 सितंबर, 2021 और दिनांक 5 मई, 2022 के आदेशों के अवलोकन से, आवेदन संख्या 16846/2021 के तहत धारा 482 धारा 482 सीआरपीसी (अनूप सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) और आवेदन संख्या 23322/2022 (अनूप सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य), जिनकी प्रतियां आज इस न्यायालय के समक्ष रखी गई हैं।

22. प्रथम आवेदन धारा 482 सीआरपीसी संख्या 16846/2021 (अनूप सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य) में पारित दिनांक 21 सितम्बर, 2021 के आदेश के अवलोकन से पता चलता है कि आवेदक ने उपरोक्त आपराधिक मामले में आवेदक के विरुद्ध गैर जमानती वारंट जारी करने के दिनांक 26 अक्टूबर, 2021 के आदेश को चुनौती दी है, जबकि दिनांक 5 मई, 2022 के आदेश से यह स्पष्ट है कि आवेदक ने दिनांक 15.03.2021 के आरोप पत्र के साथ-साथ मुकदमा संख्या 1085/2021 की संपूर्ण कार्यवाही को चुनौती दी है, जो मुकदमा अपराध संख्या 30/2021 से उत्पन्न धारा 419, 420, 468, 471 आईपीसी, थाना कोतवाली कटरा, जिला मिर्जापुर के अंतर्गत मुख्य न्यायालय में लंबित है। न्यायिक मजिस्ट्रेट, मिर्जापुर को उपरोक्त मामले में आगे की कार्यवाही पर रोक लगाने के लिए एक और प्रार्थना पत्र दिया गया। वर्तमान आवेदक यानी तीसरे आवेदन में, आवेदक ने आवेदक को पहले दी गई अग्रिम जमानत को रद्द करने के 5 जनवरी, 2023 के दिनांकित आदेश को चुनौती दी है।

23. आवेदक द्वारा धारा 482 Cr.P.C के तहत पहले और दूसरे आवेदन में इस न्यायालय द्वारा पारित 21 सितंबर, 2021 और दिनांक 5 मई, 2022 के आदेशों को पुनः प्रस्तुत करना सार्थक होगा, जो इस प्रकार हैः

<u>21 सितंबर, 2021 का आदेशः</u>

> *आवेदक के विद्वान अधिवक्ता एसं राज्य के लिये विद्वान ए.जी.ए. को सुना एवं अभिलेखों का अवलोकन किया।*
>
> *आई. पी. सी., पी. एस. कोटवाली कटरा, जिला मिर्जापुर की धारा 419,420,468,471 के तहत 2021 के केस क्राइम नंबर 30 से उत्पन्न होने वाले 2021 के केस नंबर 1085 की पूरी कार्यवाही को रद्द करने के अनुरोध के साथ धारा 482 Cr.P.C के तहत यह आवेदन दायर किया गया है, जो मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट मिर्जापुर की न्यायालय में लंबित है और उपरोक्त मामले में आगे की*

कार्यवाही पर रोक लगाने के लिए एक और अनुरोध के साथ दायर किया गया है।

आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि प्रथम सूचना रिपोर्ट आवेदक के खिलाफ निजी प्रत्यर्थी के कहने पर दर्ज की गई थी, पूरी तरह से अवैध, मनगढ़ंत और झूठे और आधारहीन कथनों के साथ दर्ज की गई है।विपक्षी संख्या 2 आपराधिक इरादे वाला व्यक्ति है और उसके खिलाफ बड़ी संख्या में आपराधिक मामले लंबित हैं और उसने आवेदक के खिलाफ वर्तमान दुर्भावनापूर्ण कार्यवाही आवेदक द्वारा 06.03.2020 को उसके खिलाफ दर्ज आपराधिक मामले के जवाब में शुरू की थी, जो कि अपराध संख्या 53/2020 में धारा 419, 420, 468, 471 आईपीसी के तहत पी.एस. कोतवाली कटरा, जिला मिर्जापुर में पंजीकृत किया गया है।आवेदक के खिलाफ कोई अपराध नहीं बनता है और निजी प्रतिवादी संख्या 2 के पास एफआईआर दर्ज करने का कोई अधिकार नहीं है। आवेदक का कोई आपराधिक इतिहास नहीं है, इसलिए यह आवेदन।इसके विपरीत, विद्वत ए. जी. ए. ने उपरोक्त प्रस्तुति का जोरदार विरोध किया।

अभिलेख के अवलोकन से पता चलता है कि सुरेंद्र कुमार सिंह द्वारा आई. पी. सी. की धारा 419,420,468,471 के तहत जिला मिर्जापुर के पी. एस. कोटवाली कटड़ा में आई. पी. सी. की धारा 419,420,468,471 के तहत एफ. आई. आर. दर्ज किया गया था। जांच के बाद, पुलिस ने आवेदक के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया और आई. पी. सी. की धारा 419,420,468,471 के तहत अपराध पाए गए।आरोप पत्र में कहा गया है कि आवेदक अनूप कुमार ने अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग जन्म तिथियों का उल्लेख किया है।

एक स्थान पर उनकी वर्ष की तिथि 1969 और दूसरे स्थान पर 1975 के रूप में उल्लिखित है।उन्होंने दो हथियार लाइसेंस प्राप्त किए।यह भी कहा गया है कि शपथ पत्र और आवेदन में जन्म तिथि के संबंध में विरोधाभास है।

मेसर्स नीहारिका इन्फ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य,

2020 एससीसी ऑनलाइन एससी 850 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार माना है:

"iv) रद्द करने की शक्ति का प्रयोग सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए, जैसा कि देखा गया है, दुर्लभतम से दुर्लभतम मामले में (मृत्युदंड के संदर्भ में गठन के साथ भ्रमित नहीं होना चाहिए)।

v) एक प्राथमिकी/शिकायत की जांच करते समय, जिसे रद्द करने की मांग की जाती है, न्यायालय प्राथमिकी/शिकायत में लगाए गए आरोपों की विश्वसनीयता या वास्तविकता या अन्यथा के रूप में जांच शुरू नहीं कर सकती है;

vi) आपराधिक कार्यवाही को प्रारंभिक चरण में बाधित नहीं किया जाना चाहिए।vii) शिकायत/एफ. आई. आर. को रद्द करना एक सामान्य नियम के बजाय एक अपवाद होना चाहिए।

उपरोक्त बिंदु पर निम्नलिखित अन्य अधिकारियों का उल्लेख किया जा सकता है:आर. पी. कपूर बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 1960 एससी 866, हरियाणा राज्य एवं अन्य बनाम चौधरी भजन लाल एवं अन्य, एआईआर 1992 एससी 604, बिहार राज्य एवं अन्य बनाम पी.पी. शर्मा, एआईआर 1991 एससी 1260 तथा अंत में झंडू फार्मास्यूटिकल वर्क्स लिमिटेड एवं अन्य बनाम मोहम्मद शराफुल हक एवं अन्य, एआईआर 2005 एससी 9।

बार में की गई सभी दलीलें तथ्य के विवादित प्रश्नों से संबंधित हैं, जिन पर इस न्यायालय द्वारा धारा 482 Cr.P.C के तहत कार्यवाही में निर्णय नहीं लिया जा सकता है। यह न्यायालय धारा 482 Cr.P.C के तहत कार्यवाही में गवाहों के बयान की सच्चाई के बारे में तथ्यात्मक जांच शुरू नहीं कर सकता है।

आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने मोहम्मद इब्राहिम और अन्य बनाम बिहार राज्य और एक अन्य मामले, (2009) 3 एस. सी. सी. (सी. आर. आई.) 929 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय पर भरोसा किया।

यदि आपने उपरोक्त उद्धरण का अध्ययन किया है, तो इस मामले के तथ्य उपरोक्त

मामले से पूरी तरह से अलग हैं, इसलिए उपरोक्त प्राधिकरण को देखते हुए राहत नहीं दी जा सकती है।

उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, मेरी सुविचारित राय है कि आवेदन धारा 482 Cr.P.C. वर्तमान मामले में बनाए रखने योग्य नहीं है।तदनुसार, कार्यवाही को रद्द करने की प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया जाता है।यह आवेदन धारा 482 Cr.P.C. इसके द्वारा खारिज कर दिया जाता है।"

5 मई, 2022 का आदेशः

"आवेदक की आेर से धारा 482 द०प्र०सं० के अन्तर्गत यह आवेदन पात्र वाद स० 1085 सन 2021, अन्तर्गत धारा 419, 420, 468, 471 भा० दं० वि०, थाना कोतवाली कटरा, जिला मिर्जापुर में सी०जे०एम, मिर्जापुर द्वारा पारित एन०बी०डब्लू आदेश दि० 26-10-2021 के विरूद्घ दायर किया गया है

आवेदक के विद्वान अधिवक्ता, विपक्षी सं० 2 के विद्वान अधिवक्ता एवं विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना तथा पत्रावली का परीशीलन किया।

आवेदक के विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि नियत तिथि पर आवेदक के अवर न्यायालय में अनुपस्थित हो जाने के कारण उनके विरूद्घ एन०बी०डब्लू जारी कर दिया गया है, अब आवेदक अवर न्यायालय में नियत तिथि पर उपस्थित होने को तत्पर है।

आवेदक के विद्वान अधिवक्ता के अनुरोध के दृष्टिगत यह आवेदन पत्र स्वीकार किया जाता है तथा वाद सं० 1085 सन 2021, अन्तर्गत धारा 419, 420, 468, 471 भा०दं०वि० थाना कोतवाली कटरा, जिला मिर्जापुर में सी०जे०एम, मिर्जापुर द्वारा पारित एन०बी०डब्लू आदेश दि० 26-10-2021 का क्रियान्वयन आज से 15 दिन के लिये स्थगित किया जाता है। यदि आवेदक द्वारा 15 दिन के लिये स्थगित किया जाता है। यदि आवेदक 15 दिन के अन्दर आदेश का अनुपालन सुनिश्चित नहीं किया जाता तो संबंधित अवर न्यायालय नियमानुसार आवश्यक कार्यवाही करने को स्वतंत्र है।"

24. धारा 482 Cr.P.C के तहत आवेदक द्वारा दायर तीनों आवेदनों में की गई उपरोक्त तीन प्रार्थनाओं के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि तीनों

आवेदन वाद हेतुक अलग-अलग कारणों और अलग-अलग तथ्यों पर दायर किए गए हैं।

25. भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अनिल खादीवाला बनाम दिल्ली राज्य सरकार के मामले में 2019 (17) एससी 1002 में रिपोर्ट की, अधीक्षक और स्मरणकर्ता बनाम मोहन सिंह और अन्य के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के पहले के फैसले पर भरोसा करते हुए एआईआर 1975 एससी 1002 में बदली हुई परिस्थितियों में धारा 482 सीआरपीसी के तहत क्रमिक आवेदन पोषणीय है।प्रासंगिक भाग जिसे नीचे उद्धृत किया जा रहा हैः

> "8. मोहन सिंह उपरोक्त में, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि धारा 482 के तहत एक क्रमिक आवेदन बदली हुई परिस्थितियों में बनाए रखने योग्य था और पहले के आवेदन को खारिज करना इसके लिए कोई बाधा नहीं थी, यह कहते हुए किः
>
> "2. ...... यहाँ, स्थिति पूरी तरह से अलग है।इससे पहले का आवेदन जिसे उच्च न्यायालय ने खारिज कर दिया था, वह कार्यवाही को रद्द करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 561-ए के तहत एक आवेदन था और उच्च न्यायालय ने इसे इस आधार पर खारिज कर दिया कि सबूत अभी तक पेश नहीं किए गए थे और उस स्तर पर कार्यवाही में हस्तक्षेप करना वांछनीय नहीं था।लेकिन, इसके बाद, आपराधिक मामला लगभग डेढ़ साल की अवधि तक बिना किसी प्रगति के चला गया और इन परिस्थितियों में प्रतिवादी संख्या 1 और 2 को कार्यवाही को रद्द करने के लिए धारा 561-ए के तहत उच्च न्यायालय में एक नया आवेदन करने के लिए विवश किया गया।
>
> यह देखना मुश्किल है कि इन परिस्थितियों में यह कैसे तर्क दिया जा सकता है कि उच्च न्यायालय को बाद में आवेदन करके जो करने के लिए कहा जा रहा था, वह पहले के आवेदन पर उसके द्वारा दिए गए आदेश की समीक्षा या संशोधन करना था।धारा 561-ए उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति को सुरक्षित रखती है, जिसके तहत वह न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने या न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित रखने के लिए ऐसे आदेश जारी कर सकता है, जिन्हें वह उचित समझे। इसलिए उच्च न्यायालय को अपनी

अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग उस विशेष समय पर विद्यमान स्थिति को ध्यान में रखते हुए करना चाहिए, जब उसके अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र का उपयोग करने की मांग की जाती है।

उच्च न्यायालय उन परिस्थितियों में प्रतिवादी संख्या 1 और 2 के बाद के आवेदन पर विचार करने और इस बात पर विचार करने का हकदार था कि क्या तथ्यों और परिस्थितियों पर तब प्रतिवादी के खिलाफ कार्यवाही जारी रखना न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग करना था या न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए इसे रद्द करना आवश्यक था।प्रत्यर्थी संख्या 1 और 2 के बाद के आवेदन के समय प्राप्त तथ्य और परिस्थितियाँ स्पष्ट रूप से पहले प्रत्यर्थी के पहले के आवेदन के समय की तुलना में अलग थीं क्योंकि, पहले प्रत्यर्थी के पहले के आवेदन को अस्वीकार करने के बावजूद, अभियोजन पक्ष आपराधिक मामले में कोई प्रगति करने में विफल रहा था, भले ही यह 1965 तक दायर किया गया था और आपराधिक मामला डेढ़ साल से अधिक की अवधि के लिए था।

26. उपरोक्त कानूनी स्थितियों से, यह न्यायालय आवेदक के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई प्रस्तुति में सार पाता है और यह मानता है कि आवेदक द्वारा विभिन्न राहत के लिए और बदली हुई परिस्थितियों में भी दायर किया गया यह तीसरा आवेदन बनाए रखने योग्य है।

27. जहाँ तक विद्वत ए. जी. ए. द्वारा राज्य के लिए वर्तमान आवेदन दाखिल करने में तथ्य को छिपाने के लिए उठाई गई प्रारंभिक आपत्ति का संबंध है, यह न्यायालय दर्ज कर सकता है कि वर्तमान आवेदन के साथ शपथ पत्र के पैराग्राफ-2 में, यह विशेष रूप से कहा गया है कि "यह पहली आपराधिक गलती है।इस न्यायालय के समक्ष आवेदन (482) ", जब वास्तव में आवेदक ने पहले एक ही आपराधिक मामले को जन्म देते हुए दो आवेदन दायर किए हैं।आवेदक को सबसे अच्छी तरह से ज्ञात कारणों के लिए, उसने धारा 482 Cr.P.C के तहत वर्तमान तीसरा आवेदन दायर करते समय उपरोक्त तथ्य को छिपा दिया है, जिसका अर्थ है कि आवेदक ने इस न्यायालय से स्वच्छ हाथों से संपर्क नहीं किया है, जो न्याय के प्रशासन में हस्तक्षेप के बराबर है।

28. मेसर्स तिलोकचंद मोतीचंद एवं अन्य बनाम एच.बी. मुंशी एवं अन्य, एआईआर 1970 एससी 898 में रिपोर्ट; हरियाणा राज्य बनाम करनाल डिस्टिलरी, एआईआर 1977 एससी 781; और सबिया खान एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (1999) 1 एससीसी 271 में माननीय

सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि पूरी तरह से गलत याचिका दायर करना न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग है और ऐसे मुकदमेबाज के साथ हल्के से पेश आने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि भ्रामक और गलत बयान वाली याचिका 10, यदि गुप्त उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए दायर की जाती है, तो न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग है।

29. कृषि एवं प्रसंस्कृत खाद्य उत्पाद बनाम ओसवाल एग्रो फुराने एवं अन्य, एआईआर 1996 एससी 1947 में सर्वोच्च न्यायालय ने तथ्यों को छिपाकर दायर किए गए मामले में गंभीर आपत्ति जताई थी और माना था कि यदि याचिकाकर्ता बहुत महत्वपूर्ण तथ्य को छिपाने का दोषी है तो उसके मामले पर गुण-दोष के आधार पर विचार नहीं किया जा सकता।इस प्रकार, एक वादकारी "तथ्यों का पूर्ण और सही खुलासा" करने के लिए बाध्य है।उक्त मामले का निर्णय करते समय, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने राजा बनाम सामान्य आयुक्त के निर्णय अवलंब रखा था, जिसकी रिपोर्ट (1917) 1 के. बी. 486 में दी गई थी, जिसमें इसे निम्नानुसार देखा गया हैः.

> *"जहां इस न्यायालय में नियम निसी या अन्य प्रक्रिया के लिए एकपक्षीय आवेदन किया गया है, यदि न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि आवेदन के समर्थन में हलफनामा स्पष्ट नहीं था और तथ्यों को निष्पक्ष रूप से नहीं बताया गया था, बल्कि उन्हें इस तरह से बताया गया था जिससे न्यायालय को सही तथ्यों के बारे में गुमराह किया जा सके, तो न्यायालय को अपनी सुरक्षा के लिए और अपनी प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए, इसके गुण-दोष की जांच के साथ आगे बढ़ने से इनकार कर देना चाहिए......*

30. अब्दुल रहमान बनाम प्रसॉनी बाई और अन्य में, ए. आई. आर. 2003 एस. सी. 718; और एस. जे. एस. व्यावसायिक उद्यम (पी) लिमिटेड बनाम बिहार राज्य और अन्य, (2004) 7 एस. सी. सी. 166 में प्रतिवेदित, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि जब भी न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग किया जा रहा है, तो न्यायालय आगे बढ़ने से इनकार करने और पक्ष को राहत देने से इनकार करने के लिए उचित होगा।यह नियम न्यायालयों की आवश्यकता से विकसित किया गया है ताकि एक वादकारी को धोखा देकर न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग करने से रोका जा सके।हालाँकि, दबाए गए तथ्य को इस अर्थ में भौतिक होना चाहिए कि यदि इसे दबाया नहीं गया होता, तो यह मामले के गुण-दोष के आधार पर किसी भी तथ्य का नेतृत्व करता।

31. के. डी. शर्मा बनाम सेल, (2008) 12 एस. सी. सी. 481 में प्रतिवेदित, सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि अनुच्छेद 32 के तहत उच्चतम न्यायालय और संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय का अधिकार क्षेत्र असाधारण, न्यायसंगत और विवेकाधीन है और यह अनिवार्य है कि याचिकाकर्ता को स्वच्छ हाथों से आना चाहिए और कुछ भी छिपाने या दबाने के बिना सभी

तथ्यों को न्यायालय के समक्ष रखना चाहिए और उचित राहत मांगनी चाहिए।यदि प्रासंगिक और भौतिक तथ्यों का कोई स्पष्ट खुलासा नहीं होता है या याचिकाकर्ता न्यायालय को गुमराह करने का दोषी है, तो उसकी याचिका को दावों के गुण-दोष पर विचार किए बिना खारिज किया जा सकता है। इसी कानून को जी. जयश्री बनाम भगवानदास एस. पटेल ने (2009) 3 एस. सी. सी. 141 में दोहराया था।

32. भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने बार-बार कहा है कि गलत शपथ पत्र दायर करना और भौतिक तथ्यों को छिपाना न्याय के प्रशासन में हस्तक्षेप के बराबर है और इस तरह अदालत की आपराधिक अवमानना है।धनंजय शर्मा बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य, एआईआर 1995 एससी 1795, जिसमें पैराग्राफ 39 और 40 में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित अवधारित किया है:

> "39. इसलिए, अब जिस प्रश्न पर विचार करने की आवश्यकता है, वह यह है कि प्रतिवादीओं के खिलाफ क्या कार्रवाई की आवश्यकता है।
>
> 40. न्यायालय अवमानना अधिनियम, 1971 (संक्षेप में अधिनियम) की धारा 2 (सी) आपराधिक अवमानना को किसी मामले के प्रकाशन (चाहे शब्दों द्वारा, बोले गए या लिखित या संकेतों या दृश्य प्रतिनिधित्व या अन्यथा) या किसी अन्य कार्य को करने के रूप में परिभाषित करती है जो (1) किसी भी न्यायालय के अधिकार को बदनाम करने या कम करने या कम करने की प्रवृत्ति रखता हैः(2) पूर्वाग्रह या हस्तक्षेप या किसी भी आचरण की प्रवृत्ति, जिसमें न्याय के प्रशासन या न्यायिक कार्यवाही के नियत में हस्तक्षेप करने की प्रवृत्ति है, आपराधिक अवमानना के कृत्य के बराबर है।......"

33. सुनकारा लक्ष्मीनारासम्मा और अन्य बनाम प्रतिवेदित अन्य सागी सुब्बा राजू एंड ओ. आर. एस. (2009) 7 एस. सी. सी. 460 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि जानबूझकर गलत शपथ पत्र दाखिल करना एक अवमानना है और अनुकरणीय कीमत लगाई जानी चाहिए।

34. अफजल एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य, जे.टी. 1996 (1) एस.सी. 328 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ-32 में निम्नानुसार निर्णय दिया है:

> "32. फिर सवाल यह हैःक्या उन्होंने इस न्यायालय की कार्यवाही में अवमानना की थी?धारा 2 (बी) "न्यायालय की अवमानना" को किसी भी दीवानी या आपराधिक अवमानना के रूप में परिभाषित करती है।"धारा 2 (सी) में परिभाषित आपराधिक अवमानना का अर्थ है किसी अन्य तरीके से न्याय के

> प्रशासन में हस्तक्षेप करना।एक पक्ष द्वारा अनुकूल आदेश प्राप्त करने के लिए जानबूझकर दिया गया एक झूठा या भ्रामक या गलत बयान न्यायिक कार्यवाही के नियत पाठ्यक्रम में पूर्वाग्रह या हस्तक्षेप करेगा।......"

35. धनंजय शर्मा न्यायालय हरियाणा राज्य और अन्य ने ए. आई. आर. 1995 एस. सी. 1795, पैराग्राफ-40 में सुप्रीम कोर्ट ने निम्नानुसार निर्णय दिया हैः

> "40.......इस प्रकार, कोई भी आचरण जो न्याय के प्रशासन या न्यायाधीश कार्यवाही के नियत पाठ्यक्रम में हस्तक्षेप करने की प्रवृत्ति रखता है, आपराधिक अवमानना के बराबर है।......"

36. सबिया खान एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, (1999) 1 एससीसी 271 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि पूरी तरह से गलत तरीके से याचिका दायर करना न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग है और ऐसे वादी के साथ हल्के ढंग से पेश आने की आवश्यकता नहीं है।

37. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, यह न्यायालय राज्य के लिए विद्वत ए. जी. ए. द्वारा की गई प्रस्तुति में सार पाता है कि उसके न्यायालय को प्रक्रिया का दुरुपयोग करना करने के लिए एक वादकारी द्वारा किए गए किसी भी प्रयास को नापसंद करना चाहिए।यदि इस तरह के प्रयासों से सख्ती से नहीं निपटा गया तो न्यायिक प्रक्रिया की पवित्रता गंभीर रूप से समाप्त हो जाएगी।आवेदक जैसे वादकारी जो सच्चाई के साथ या न्यायालय की प्रक्रियाओं के साथ स्वतंत्रता लेता है, उसे आने वाले परिणामों के बारे में कोई संदेह नहीं छोड़ना चाहिए।दूसरों को आशा में या न्यायिक नरमी की गलत उम्मीद पर उसी रास्ते पर नहीं चलना चाहिए।अनुआदेशणीय लागत अपरिहार्य है, और यहां तक कि आवश्यक भी है, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि मुकदमेबाजी में, जैसा कि हमारे देश में प्रचलित कानून में है, सच्चाई पर कोई प्रीमियम नहीं है।वर्तमान मामले में, आवेदक ने इस तीसरे आवेदन को दायर करके भौतिक तथ्य को छिपा दिया है और उसने इस न्यायालय से साफ हाथों से संपर्क नहीं किया है, उसका आवेदन न केवल इस आधार पर खारिज होने के लिए उत्तरदायी है, बल्कि आवेदक को अनुकरणीय लागत के साथ दंडित किया जाना चाहिए।

38. विद्वत ए. जी. ए. द्वारा यह निवेदन कि चूंकि आवेदक के खिलाफ धारा 82 Cr.P.C के तहत कार्यवाही शुरू की गई है, उसके अग्रिम जमानत आवेदन पर विचार नहीं किया जा सकता है, इस न्यायालय को भी इसमें सार मिलता है।

39. लावेश बनाम दिल्ली राज्य (एनसीटी) मामले में (2012) 8 एससीसी 730 में रिपोर्ट किया गया, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 428 सीआरपीसी के तहत राहत देने के दायरे पर विचार किया है, ऐसे व्यक्ति के संबंध में जिसे 82 सीआरपीसी के संदर्भ में भगोड़ा या घोषित अपराधी घोषित किया गया हो। पैरा 12 में,

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार माना है:

> **"12. इन सामग्रियों और जानकारी से यह स्पष्ट है कि वर्तमान अपीलार्थी पूछताछ और जांच के लिए उपलब्ध नहीं था और उसे "भगोड़ा" घोषित किया गया था।आम तौर पर, जब आरोपी "फरार" होता है और "घोषित अपराधी" के रूप में घोषित किया जाता है**, तो अग्रिम जमानत देने का कोई सवाल ही नहीं है।हम दोहराते हैं कि जब कोई व्यक्ति जिसके खिलाफ वारंट जारी किया गया था और फरार है या वारंट के निष्पादन से बचने के लिए खुद को छिपा रहा है और संहिता की धारा 82 के संदर्भ में एक घोषित अपराधी के रूप में घोषित किया गया है तो वह अग्रिम जमानत की राहत का हकदार नहीं है।" उपरोक्त निर्णय से यह स्पष्ट है कि यदि किसी को संहिता की धारा 82 के संदर्भ में भगोड़ा/घोषित अपराधी घोषित किया जाता है, तो वह अग्रिम जमानत की राहत का हकदार नहीं है।
>
> वर्तमान मामले में, सामग्री अर्थात संजय नामदेव, पवन कुमार उर्फ रवि और विजय उर्फ मोनू ब्रह्मभट्ट के इकबालिया बयानों के अवलोकन से पता चलता है कि प्रतिवादियों ने मृतक को जहरीला पदार्थ दिया था।इसके अलावा, गवाहों के बयान जो दर्ज किए गए थे और फॉरेंसिक मेडिसिन एंड टॉक्सिकोलॉजी विभाग सरकारी मेडिकल कॉलेज और अस्पताल, नागपुर की रिपोर्ट दिनांक 21.03.2012 ने दूध रबड़ी में जहर के अस्तित्व की पुष्टि की है।इसके अलावा, यह हमारे संज्ञान में लाया गया है कि प्रतिवादिओं की गिरफ्तारी के लिए 21.11.2012 पर वारंट जारी किए गए थे।चूंकि वे उपलब्ध/पता लगाने योग्य नहीं थे, इसलिए संहिता की धारा 82 के तहत एक घोषणा 29.11.2012 पर जारी की गई थी।राज्य द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजों (अनुलग्नक-पी13) से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि सीजेएम, छिंदवाड़ा, एम. पी. ने एक घोषणा जारी की जिसमें 29.12.2012 पर शिकायत का जवाब देने के लिए संहिता की धारा 82 के तहत दोनों प्रतिवादियों/अभियुक्तों की उपस्थिति की आवश्यकता है।अग्रिम जमानत देते समय इन सभी सामग्रियों को न तो उच्च न्यायालय द्वारा स्वीकार

किया गया और न ही उन पर विचार किया गया और उच्च न्यायालय ने "मामले के तथ्यों और परिस्थितियों" को बताए बिना कोई कारण बताए बिना दोनों अभियुक्तों को अग्रिम जमानत का आदेश दिया। **यह बताना प्रासंगिक है कि दोनों आरोपी आईपीसी की धारा 302 और 120-बी के साथ धारा 34 के तहत दंडनीय अपराधों के लिए अभियोजन का सामना कर रहे हैं। ऐसे गंभीर अपराधों में, विशेष रूप से, प्रतिवादी/आरोपी घोषित अपराधी होने के कारण, हम अग्रिम जमानत देने के विवादित आदेश को बरकरार रखने में असमर्थ हैं।उच्च न्यायालय यह समझने में विफल रहा कि यह कानून की एक स्थिर स्थिति है कि जहां आरोपी को फरार घोषित किया गया है और उसने जांच में सहयोग नहीं किया है, उसे अग्रिम जमानत नहीं दी जानी चाहिए।"**

40. म**ध्य प्रदेश राज्य बनाम प्रदीप शर्मा** के साथ-साथ **प्रेम शंकर प्रसाद बनाम बिहार राज्य उपरोक्त** के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने लवेश उपरोक्त के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश पर भरोसा करते हुए कहा है कि यदि किसी को संहिता की धारा 82 के संदर्भ में भगोड़ा/घोषित अपराधी घोषित किया जाता है, तो वह अग्रिम जमानत की राहत का हकदार नहीं है।

41 माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा तय की गई उपरोक्त कानूनी स्थिति से, यह न्यायालय यह मानता है कि जिस आवेदक के खिलाफ समन/जमानती वारंट/गैर-जमानती वारंट जारी करने के बाद निचली अदालत द्वारा कार्यवाही शुरू की गई है, वह अग्रिम जमानत देने का हकदार नहीं है।ऐसे व्यक्ति द्वारा दायर अग्रिम जमानत बनाए रखने योग्य नहीं है क्योंकि धारा 482 Cr.P.C के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए इस न्यायालय द्वारा इस पर विचार नहीं किया जा सकता है।

42. अंत में, यह न्यायालय विवादित आदेश की मेरिट पर आता है।निचली अदालत ने आदेश पारित करते हुए दर्ज किया है कि हालांकि अदालत के समक्ष दूसरी अग्रिम जमानत याचिका में इस तथ्य का उल्लेख किया गया है कि पहली अग्रिम जमानत याचिका को "गिरफ्तारी की आशंका" का उल्लेख न आदेशने के कारण खारिज आदेश दिया गया था, लेकिन उसके बाद माननीय उच्च न्यायालय के समक्ष, आवेदक ने अपनी अग्रिम जमानत याचिका को यह कहते हुए वापस ले लिया है कि आवेदक/आरोपी निचली अदालत के समक्ष पेश होने को तैयार है और इस तथ्य का उल्लेख निचली अदालत के समक्ष दायर अग्रिम दूसरी जमानत याचिका में नहीं किया गया है। यह तथ्य कि उन्होंने माननीय उच्च न्यायालय से 15 दिनों की सुरक्षा प्राप्त की है, जब उनके खिलाफ गैर-जमानती वारंट जारी किया गया है, इस आश्वासन पर कि वह नियत तारीख को नीचे

की अदालत में पेश होंगे, दूसरे अग्रिम जमानत आवेदन में भी उल्लेख नहीं किया गया है।निचली न्यायालय ने आगे दर्ज किया है कि उपरोक्त तथ्यों का उल्लेख दूसरी अग्रिम जमानत याचिका में किया जाना चाहिए था जिसे उक्त न्यायालय ने अनुमति दी है।तथ्य यह है कि पहली अग्रिम जमानत याचिका केवल इसलिए खारिज की गई थी क्योंकि गिरफ्तारी की आशंका दर्ज नहीं की गई थी।निचली न्यायालय ने यह भी दर्ज किया है कि गिरफ्तारी की आशंका न होने के आधार पर उस न्यायालय ने 19 अक्टूबर, 2021 को पहली अग्रिम जमानत याचिका खारिज कर दी थी।इसके बाद, दूसरी अग्रिम जमानत अर्जी उस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं की गई, बल्कि आपराधिक विविध अग्रिम जमानत अर्जी धारा 438 सीआरपीसी संख्या 4527/2022 के माध्यम से माननीय उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई।निचली अदालत के समक्ष दायर पहली अग्रिम जमानत याचिका के साथ-साथ इस अदालत के समक्ष दायर अग्रिम जमानत याचिका की संख्या के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि अग्रिम जमानत याचिका वर्ष 2022 में माननीय उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई थी, जबकि पहली अग्रिम जमानत याचिका को उस अदालत द्वारा नीचे 19.10.2021 पर खारिज कर दिया गया था।इसलिए, निचली अदालत ने राय दी है कि या तो आवेदक/आरोपी को इस अदालत के आदेश में दर्ज अपने स्वयं के बयान के अनुसार निचली अदालत में पेश होना चाहिए था या दूसरी अग्रिम जमानत याचिका को माननीय उच्च न्यायालय के समक्ष फिर से पेश विद्वत जाना चाहिए था, जहां उसकी पहली अग्रिम जमानत याचिका उसकी गैर-जबरदस्ती के कारण खारिज आदेश दी गई थी।चूंकि माननीय उच्च न्यायालय के समक्ष अग्रिम जमानत आवेदन जमा करने के संबंध में बयान इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में भौतिक बयान थे, जिनका जमानत आवेदन में उल्लेख नहीं किया गया था, इसलिए नीचे दी गई अदालत इस निष्कर्ष पर पहुंची है कि दूसरे अग्रिम जमानत आवेदन में उल्लेख नहीं करना भौतिक तथ्यों को छोड़ना/छिपाना था।उपरोक्त निष्आदेशों के आधार पर, निचली न्यायालय ने आवेदक को पहले दी गई अग्रिम जमानत को रद्द करने का आदेश पारित किया है।

43. आरोपित आदेश की जांच करने पर, यह न्यायालय पाता है कि निचली अदालत ने तथ्यों का स्पष्ट निष्कर्ष दर्ज किया है और आवेदक को पहले दी गई अग्रिम जमानत को सही रूप से रद्द कर दिया है, जो कि धारा 482 सीआरपीसी के तहत शक्तियों के प्रयोग में इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप का औचित्य नहीं रखता है, क्योंकि इसमें कोई अवैधता या दुर्बलता नहीं है।

44. उपरोक्त विचार-विमर्श और चर्चाओं के मद्देनजर, यह न्यायालय यह मानता है कि एक आरोपी-आवेदक जो तथ्यों को छिपाता है और उच्च न्यायालय में झूठा हलफनामा दायर करता है और जिसने समन, जमानती वारंट, गैर-जमानती वारंट और धारा 82 सीआरपीसी के तहत कार्यवाही से बचकर निचली अदालत के आदेशों का मजाक उड़ाया है, वह किसी भी तरह से उदारता, दया और न्याय पाने का हकदार नहीं है और वह भी उस न्यायालय से जो धारा 482 सीआरपीसी के तहत अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग करता है।

45. तदनुसार, वर्तमान आवेदन को इस शर्त पर खारिज किया जाता है कि आवेदक को आज से एक माह के भीतर उच्च न्यायालय विधिक सेवा

प्राधिकरण, इलाहाबाद को 10,000 रुपये का भुगतान करना होगा।चूक के मामले में, इसे जिला मजिस्ट्रेट, मिर्जापुर द्वारा भूमि राजस्व के अपने बकाया से वसूल किया जाएगा।

46. इस आदेश की एक प्रति विद्वान अपर महालेखाकार को दी जाएगी, जो इस आदेश के आवश्यक अनुपालन हेतु जिला मजिस्ट्रेट, मिर्जापुर को सूचित करेंगे।

(2023) 3 ILRA 1095

अपील क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 13.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति नलिन कुमार श्रीवास्तव

क्रिमिनल मिस्लेनियस एंटीसिपेटरी बेल अप्लीकेशन सं. 1379/2023
(धारा 438 दं.प्र.सं. के तहत)

जावेद अहमद ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ...प्रतिपक्षी

आवेदक की ओर से अधिवक्ता: श्री अनुराग कुमार
प्रतिपक्षी की ओर से अधिवक्ता: जी.ए.

अग्रिम जमानत आवेदन संख्या 1379 / 2023

(ए) अपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 धारा 438 - गिरफ्तारी का डर रखने वाले व्यक्ति को जमानत देने का निर्देश - प्रथम सूचना रिपोर्ट (F.I.R.) दाखिल करना धार 438(1) Cr.P.C. के तहत शक्ति का प्रयोग करने की शर्त नहीं है - धार 438 Cr.P.C. न्यायालय को समय की सीमा या FIR दाखिल करने या पुलिस द्वारा जांच या पूछताछ के दौरान किसी गवाह के बयान को अभिलिखित करने जैसी शर्तें लगाने के लिए मजबूर नहीं करता - "विश्वास करने का कारण" केवल गिरफ्तारी के डर से कहीं अधिक गंभीर होना चाहिए - केवल "डर" "विश्वास" नहीं है - कानून न्यायालय के दरवाजे पर केवल अस्पष्ट दावों के आधार पर अग्रिम जमानत मांगने की अनुमति नहीं देता और निश्चित रूप से ऐसी स्थिति में न्यायालय अग्रिम जमानत नहीं प्रदान करेगा। (पैरा - 6,7,9,10,14)

विपक्षी संख्या 2 ने आवेदक को कुछ पैसे दिए - उसके घर के निर्माण के लिए वित्तीय मदद - दोस्तों ने बकाया राशि की वापसी की मांग की - गालियाँ दीं और पैसे वापस करने की धमकी दी - नहीं तो झूठे और निर्मित मामले में फंसाने की धमकी दी - इस वाद में कोई F.I.R. दर्ज नहीं हुई। (पैरा - 3,4)

आयोजित:- आवेदक का गिरफ्तारी का डर उचित नहीं है, क्योंकि वह यह प्रदर्शित करने में असफल रहा कि उसे गिरफ्तारी का कैसे उचित विश्वास है। आवेदक द्वारा प्रस्तुत वर्तमान अग्रिम जमानत आवेदन को स्वीकार करने के लिए आवश्यक तत्वों की कमी के कारण कोई औचित्य नहीं है जो किसी भी व्यक्ति को धारा 438 Cr.P.C. के तहत अग्रिम जमानत देने के लिए आवश्यक हैं। (पैरा - 13,15)

अग्रिम जमानत आवेदन निरस्त। (E-7)

<u>**उद्धृत वाद सूची:**</u>

1. गुरुबक्श सिंह सिब्बिया बनाम पंजाब राज्य, (1980) 2 SCC 565

2. सुषीला अग्रवाल और अन्य बनाम दिल्ली राज्य और अन्य, (2020) 5 SCC पेज 1 (106)
3. अद्री धरन दास बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, (2005) 4 SCC 303
4. राजशेखर रेड्डी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, (1998) (2) A.P.L.J. 462 (आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय)

<u>माननीय न्यायमूर्ति नलिन कुमार श्रीवास्तव</u>

वर्तमान अग्रिम जमानत प्रार्थना पत्र आवेदक - जावेद अहमद को मुकदमा अपराध संख्या शून्य, धारा शून्य, थाना - मड़ियाहूं , जिला जौनपुर में अग्रिम जमानत प्रदान करने की प्रार्थना के साथ दायर किया गया है ।

आवेदक के विद्वान अधिवक्ता, राज्य के विद्वान ए.जी.ए. को सुना गया तथा अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया गया।

आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि विपक्षी संख्या 2 ने आवेदक को उसके मकान के निर्माण हेतु आर्थिक सहायता के रूप में 17,50,000/- रूपये दिये थे, क्योंकि वे दोनों मित्र थे तथा तत्पश्चात आवेदक द्वारा संबंधित तिथियों पर 1 लाख रूपये का भुगतान किया गया था। किन्तु दिनांक 5.1.2023 को विपक्षी संख्या 2 ने सम्पूर्ण बकाया धनराशि की मांग की तथा उसे गाली-गलौज करते हुए धमकी दी कि दिनांक 20.1.2023 तक धनराशि वापस कर दे अन्यथा उसे झूठे एवं मनगढ़ंत मुकदमे में फंसाया जा सकता है। आवेदक ने दिनांक 7.1.2023 को पुलिस अधीक्षक जौनपुर को पंजीकृत डाक के माध्यम से घटना की सूचना दी तथा अब तक उसने विपक्षी संख्या 2 को संबंधित तिथियों पर उसके बैंक खाते में 3,20,000/- रूपये की धनराशि का भुगतान कर दिया है, किन्तु आवेदक को यह आशंका है कि उसके विरूद्ध एफआईआर दर्ज होने के पश्चात पुलिस द्वारा उसे कभी भी गिरफ्तार किया जा सकता है। इस बात की पूरी सम्भावना है कि आवेदक के विरूद्ध झूठा मुकदमा लादकर उसे फंसाया जा सकता है। यह भी दलील दी गई है कि आवेदक का कोई आपराधिक इतिहास नहीं है। यदि आवेदक को अग्रिम जमानत दी जाती है, तो वह इस स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं करेगा ।

विद्वान ए.जी.ए. ने प्रार्थना का विरोध किया ।

यह स्वीकार किया जाता है कि इस मामले में अभी तक कोई प्राथमिकी दर्ज नहीं की गई है । यह सत्य है कि एफ.आई.आर दायर करना अन्तर्गत धारा 438 (1) दं0प्र0सं0 के तहत शक्ति का प्रयोग करने के लिए एक पूर्व शर्त नहीं है, जैसा कि **गुरबख्श सिंह सिब्बिया बनाम पंजाब राज्य, (1980) 2 एससीसी 565** में अभिनिर्धारित किया गया है, लेकिन साथ ही यह भी ध्यान में रखना चाहिए, जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उपरोक्त मामले में कहा है, कि "जब कोई व्यक्ति गिरफ्तारी की आशंका करता है और अग्रिम जमानत के लिए न्यायालय का दरवाजा खटखटाता है, तो उसकी गिरफ्तारी की आशंका ठोस तथ्यों (न कि अस्पष्ट या सामान्य आरोपों) पर आधारित होनी चाहिए जो किसी विशिष्ट अपराध या विशेष अपराधों से संबंधित हों। अग्रिम जमानत के लिए प्रार्थना पत्र में अपराध से संबंधित स्पष्ट और आवश्यक तथ्य होने चाहिए, और आवेदक को अपनी गिरफ्तारी की उचित आशंका क्यों है, साथ ही तथ्यों के बारे में उसका संस्करण भी होना चाहिए। ये न्यायालय के लिए महत्वपूर्ण हैं जो प्रार्थना पत्र पर विचार कर रही है, धमकी या आशंका की सीमा और तर्कसंगतता, इसकी गंभीरता और किसी भी शर्त की उपयुक्तता जो लगाई जा सकती है। यह कोई आवश्यक शर्त

नहीं है कि एफआईआर दर्ज होने के बाद ही प्रार्थना पत्र पेश किया जाना चाहिए; इसे पहले भी पेश किया जा सकता है, जब तक कि तथ्य स्पष्ट हों और गिरफ्तारी की आशंका के लिए उचित आधार हो।"

सुशीला अग्रवाल एवं अन्य बनाम राज्य (दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र) एवं अन्य, (2020) 5 एससीसी पृष्ठ 1 (106) के ऐतिहासिक मामले में इस बात पर बल दिया गया है कि दं0प्र0सं0 की धारा 438 न्यायालयों को जांच या पूछताछ आदि के दौरान पुलिस द्वारा समय के संदर्भ में या एफआईआर दर्ज करने या किसी गवाह के बयान दर्ज करने पर राहत को सीमित करने वाली शर्तें लगाने के लिए बाध्य या बंधित नहीं करती है।

वर्तमान प्रार्थना पत्र के गुण-दोष पर विचार करने के पहले दण्ड प्रक्रिया संहिता 438 के सुसंगत प्रावधानों का अवलोकन वांछनीय है।

"438. गिरफ्तारी की आशंका वाले व्यक्ति को जमानत देने का निर्देश - (1) जहां किसी व्यक्ति को यह विश्वास करने का कारण है कि उसे अजमानतीय अपराध करने के आरोप में गिरफ्तार किया जा सकता है, वह उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय को इस धारा के अधीन निर्देश के लिए प्रार्थना पत्र कर सकता है कि ऐसी गिरफ्तारी की स्थिति में उसे जमानत पर रिहा कर दिया जाए; और वह न्यायालय, अन्य बातों के साथ-साथ, निम्नलिखित बातों पर विचार करने के पश्चात्, अर्थात्?

(i) आरोप की प्रकृति और गंभीरता ;

(ii) आवेदक का पूर्ववृत्त, जिसमें यह तथ्य भी शामिल है कि क्या उसने पहले किसी संज्ञेय अपराध के संबंध में न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि पर कारावास भुगता है;

(iii) आवेदक के न्याय से भागने की संभावना; और

(iv) जहां आरोप आवेदक को गिरफ्तार करके उसे क्षति पहुंचाने या अपमानित करने के उद्देश्य से लगाया गया हो;

या तो प्रार्थना पत्र को तत्काल खारिज कर दें या अग्रिम जमानत देने के लिए अंतरिम आदेश जारी करें:

बशर्ते जहां उच्च न्यायालय या, यथास्थिति, सत्र न्यायालय ने इस उपधारा के अधीन कोई अन्तरिम आदेश पारित नहीं किया है या अग्रिम जमानत देने के प्रार्थना पत्र को अस्वीकृत कर दिया है, वहां पुलिस थाने का प्रभारी अधिकारी ऐसे प्रार्थना पत्र में लगाए गए आरोप के आधार पर आवेदक को बिना वारंट के गिरफ्तार कर सकता है।"

जिस शर्त पर ध्यान केन्द्रित किया जाना चाहिए वह है "विश्वास करने का कारण" जो कि गिरफ्तारी की आशंका मात्र से कहीं अधिक गंभीर है।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **अद्री धरन दास बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, (2005) 4 एससीसी 303** में इस आवश्यकता पर जोर दिया है और निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है।

"धारा 438 एक प्रक्रियात्मक प्रावधान है जो किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता से संबंधित है जो निर्दोषता की दलील देने का हकदार है, क्योंकि वह धारा 438 दं0प्र0सं0 के तहत शक्ति के प्रयोग के लिए प्रार्थना पत्र की तिथि पर उस अपराध के लिए दोषी नहीं है जिसके लिए वह जमानत चाहता है। आवेदक को यह दिखाना होगा कि उसके पास "विश्वास करने का कारण" है कि उसे गैर-जमानती अपराध में गिरफ्तार किया जा सकता है। "विश्वास करने का कारण" अभिव्यक्ति का

उपयोग यह दर्शाता है कि आवेदक को गिरफ्तार किया जा सकता है, यह विश्वास उचित आधार पर आधारित होना चाहिए। किसी विश्वास को उचित आधार पर तभी स्थापित कहा जा सकता है जब कोई ठोस आधार हो जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि आवेदक की यह आशंका कि उसे गिरफ्तार किया जा सकता है, वास्तविक है। केवल "डर" "विश्वास" नहीं है, जिसके कारण आवेदक के लिए यह दिखाना पर्याप्त नहीं है कि उसे किसी प्रकार की अस्पष्ट आशंका है कि कोई उसके खिलाफ कोई आरोप लगाने जा रहा है जिसके अनुसरण में उसे गिरफ्तार किया जा सकता है। आवेदक पर यह विश्वास किस आधार पर आधारित है कि उसे गिरफ्तार किया जा सकता है गैर-जमानती अपराध की जांच की जानी चाहिए। यदि उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय में प्रार्थना पत्र किया जाता है, तो संबंधित न्यायालय को यह तय करना होता है कि मांगी गई राहत देने के लिए मामला बनाया गया है या नहीं। (पैरा 16)"

उपरोक्त सिद्धांत कानूनी स्थिति को स्पष्ट करता है कि दं.प्र.सं. की धारा 438 (1) न केवल एफआईआर के बाद के चरण पर लागू होती है, बल्कि इसके लिए यह आवश्यक नहीं है कि अपराध पंजीकृत हो चुका हो। इस धारा के अनुसार यदि कोई व्यक्ति अग्रिम जमानत के लिए प्रार्थना पत्र करने जा रहा है, तो उसे यह उचित विश्वास होना चाहिए कि उसे गैर-जमानती अपराध करने के आरोप में गिरफ्तार किया जा सकता है।

यह न्यायालय **के. राजशेखर रेड्डी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, (1998) (2) एपीएलजे 462 (आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय)** में उनके माननीय न्यायमूर्ति द्वारा दिए गए निर्णय पर ध्यान देता है।

"धारा 438 के तहत शक्ति के प्रयोग के लिए प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करना कोई पूर्व शर्त नहीं है। उचित विश्वास के आधार पर संभावित गिरफ्तारी की उपस्थिति तब भी दिखाई जा सकती है, जब एफआईआर अभी तक दर्ज नहीं की गई हो।"

यदि उपरोक्त कानूनी सिद्धांत को मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में अनुवादित किया जाता है, तो न्यायालय पाता है कि आवेदक की ओर से गिरफ्तारी की आशंका अच्छी तरह से स्थापित नहीं है। आवेदक यह स्पष्ट करने में विफल रहा है कि उसे पुलिस द्वारा गिरफ्तार किए जाने का उचित विश्वास कैसे है। उसने अपने प्रार्थना पत्र में उल्लेख किया है कि साहब लाल को देय कुल धनराशि में से, उसके द्वारा संबंधित तारीखों को उसके बैंक खाते में 3,20,000/- रुपये का भुगतान किया गया है। आवेदक द्वारा खाते का विवरण भी दायर किया गया है। रिकॉर्ड के अवलोकन से यह भी प्रतीत होता है कि आवेदक को दिए गए अपने धन की वसूली के संबंध में उक्त साहब लाल द्वारा वर्तमान आवेदक के खिलाफ किसी भी अधिकारी के समक्ष कोई शिकायत नहीं की गई है। इसके अलावा, आवेदक पर मुकदमा चलाने के लिए विपक्षी संख्या 2 द्वारा अब तक किसी भी न्यायालय के समक्ष कोई प्रार्थना पत्र नहीं किया गया है। इस प्रकार, गिरफ्तार किए जाने का कोई उचित विश्वास मौजूद नहीं है।

यह भी उल्लेखनीय है कि आवेदक द्वारा गैर-जमानती अपराध के सिलसिले में गिरफ्तार किए जाने की संभावना के बारे में उचित विश्वास रखने की अपनी दलील के समर्थन में कोई भी सामग्री

अभिलेख पर पेश नहीं की गई है। कानून किसी भी प्रासंगिक सामग्री के अभाव में केवल अस्पष्ट दावों पर अग्रिम जमानत देने के लिए न्यायालय का दरवाजा खटखटाने की अनुमति नहीं देता है और निश्चित रूप से न्यायालय ऐसे मामले में अग्रिम जमानत नहीं देगी ।

इसके मद्देनजर, मैं आवेदक द्वारा प्रस्तुत वर्तमान अग्रिम जमानत प्रार्थना पत्र को स्वीकार करने का कोई औचित्य नहीं पाता, क्योंकि इसमें उन आवश्यक तत्वों का अभाव है जो किसी भी व्यक्ति को धारा 438 दं0प्र0सं0 के तहत अग्रिम जमानत प्रदान करने के लिए आवश्यक हैं।

तदनुसार अग्रिम जमानत प्रार्थना पत्र खारिज किया जाता है।

(2023) 3 ILRA 1099

अपील क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 28.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट

क्रिमिनल मिस्लेनियस एंटीसिपेटरी बेल अप्लीकेशन सं. 18536/2020

मनीष पाठक ...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिपक्षी

आवेदक की ओर से अधिवक्ता: श्री अमरेश यादव, श्री जितेन्द्र सिंह, श्री उमर ज़मीन (ए.सी.)

प्रतिपक्षी की ओर से अधिवक्ता: जी.ए.

अपराधिक विविध प्रथम जमानत आवेदन संख्या 18536 / 2020

(A) आपराधिक कानून - कानूनी सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 - अध्याय IV - कानूनी सेवाओं का अधिकार - धारा 12 - कानूनी सेवाएं देने के लिए मानदंड, धारा 12(e) - "अयोग्य आवश्यकता" - जमानत का अधिकार कानून से आता है लेकिन इसे संवैधानिक निगरानी से अलग नहीं किया जा सकता - कानूनी सहायता सभी नागरिकों के लिए न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने का एक अनिवार्य उपकरण है - एक विवाद और एक आपराधिक वाद में अंतर है जिसमें कैदी की व्यक्तिगत स्वतंत्रता प्रभावित होती है - जमानत की सुनवाई में अधिवक्ता की अनुपस्थिति कैदी-आवेदक को उस प्रक्रिया के परिणाम को प्रभावित करने की सभी क्षमता से वंचित कर देती है जहाँ उसकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता दांव पर है - जमानत प्रदान करते समय न्यायालय को कैदियों के कानूनी सहायता के अधिकार के प्रति संवेदनशील रहना चाहिए, और उनकी सुनवाई के अधिकार के प्रति भी जागरूक रहना चाहिए - यदि किसी कैदी की ओर से अधिवक्ता का उपस्थित न होना हो, तो न्यायालय एक न्यायमित्र को कैदी का प्रतिनिधित्व करने के लिए नियुक्त कर सकती है और जमानत की सुनवाई आगे बढ़ा सकती है। (पैराग्राफ - 5,8,9,14,15,20)

फर्जी मुठभेड़ को सही ठहराने के लिए एफआईआर दर्ज की गई - पुलिस अधिकारियों द्वारा मंचन - पुलिस में से किसी को भी जानलेवा चोट नहीं आई - बरामद वस्तुओं को अपराध से नहीं जोड़ा जा सकता - आवेदक हमेशा जांच में सहयोग करता रहा है और निर्दोष है - विवेचना बहुत धीमी गति से चल रहा है - आवेदक को विलंब के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता - आवेदक भागने का खतरा नहीं है - हमेशा जांच में सहयोग किया - अपनी आपराधिक पृष्ठभूमि को समझाया

- पुलिस अधिकारियों के लिए सुविधाजनक दूसरे के लिये कष्ट उठानेवाला प्राप्त - जमानत आवेदन - गैर-अभियोजन के कारण निरस्त - अधिवक्ता की अनुपस्थिति के कारण। (पैराग्राफ - 28)

निर्णय:- गैर-प्रवर्तन के कारण जमानत आवेदन का निरस्त होना अधिवक्ता की अनुपस्थिति के कारण अस्वीकार्य है, क्योंकि यह कानूनी सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 के तहत कैदियों के कानूनी सहायता के अधिकारों का उल्लंघन करता है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत कैदियों के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करता है। आवेदक को जमानत का अधिकार है। (पैराग्राफ - 19,29)

जमानत आवेदन स्वीकृत। (E-7)

उद्धृत वाद सूची:

1. अजीत चौधरी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2021 (1) ADJ 559
2. जुनैद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2021 (6) ADJ 511
3. अनिल गौर @ सोनू @ सोनू तोमर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2022 SCC ऑनलाइन All 623
4. सरन जे. गोबर्धन सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2013 SCC ऑनलाइन All 13141
5. सैयद महमूद, जे. क्वीन एम्प्रेस बनाम पोहपी एवं अन्य, 1891 SCC ऑनलाइन All 1
6. खैली एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 1981 सप्लीमेंट SCC 75
7. कबीर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 1981 सप्लीमेंट SCC 76

माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट

1. मामले को 'दूसरी पुकार' में उठाया गया है। जमानत अर्जी पर जोर देने के लिए आवेदक की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ। आवेदक के अधिवक्ता का नाम वाद सूची में दर्शाया गया है।

2. आदेश पत्र से पता चलता है कि आवेदक के अधिवक्ता अतीत में सुनवाई की लगातार तारीखों पर इस अदालत के समक्ष पेश नहीं हुए हैं। इससे पहले कोर्ट ने विचारण न्यायालय से स्टेटस रिपोर्ट के साथ-साथ जिला विधिक सेवा प्राधिकरण से रिपोर्ट मांगी थी।

3. सवाल उठता है कि क्या जमानत आवेदन को गैर-अभियोजन के कारण खारिज कर दिया जाना चाहिए या आवेदक का प्रतिनिधित्व करने के लिए एक एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) नियुक्त किया जाना चाहिए और मामले की सुनवाई गुण-दोष के आधार पर की जानी चाहिए।

4. श्री उमर ज़ामिन, अधिवक्ता को आवेदक का प्रतिनिधित्व करने और न्यायालय की सहायता करने के लिए एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) के रूप में नियुक्त किया जाता है।

"जेल और अधिकारी प्रत्येक व्यक्ति की गरिमा को लूटने की साजिश करते हैं।

5. जमानत का अधिकार क़ानून से लिया गया है लेकिन इसे संवैधानिक निरीक्षण से अलग नहीं किया जा सकता है।

6. अच्छे न्याय निर्णयों ने लंबे समय से भारत के संविधान द्वारा सुनिश्चित मौलिक अधिकारों के चार्टर में जमानत मांगने के लिए एक अभियुक्त के अधिकार को मजबूत किया है। जमानत के अधिकार के संवैधानिक कानून एंकरों पर अधिक विस्तृत चर्चा जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 से बहती है, अजीत चौधरी बनाम यूपी राज्य, जुनैद बनाम यूपी राज्य और एक

अन्य और अनिल गौर @ सोनू @ सोनू तोमर बनाम यूपी राज्य में देखी जा सकती है।

7. जमानत के अधिकार के संवैधानिक आधार भी निष्पक्ष सुनवाई के अधिकार को अपने दायरे में लाते हैं।

8. सभी नागरिकों के लिए न्याय के प्रस्तावना उद्देश्य को सुरक्षित करने के लिए कानूनी सहायता एक अनिवार्य साधन है। समान न्याय प्रदान करने की राष्ट्रीय क्षमता कानूनी सहायता प्रदान करने की संस्थागत क्षमता से कम है। कानूनी सेवा प्राधिकरण अधिनियम के तहत विधायिका द्वारा वैधानिक अधिकार के रूप में निहित होने से पहले ही संवैधानिक अदालतों द्वारा कानूनी सहायता को मौलिक अधिकार के रूप में बढ़ा दिया गया था। [कानूनी सहायता के मुद्दे पर और कानूनी सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 की योजना अनिल गौर (उपरोक्त) देखें]।

9. विधिक सेवाओं की हकदारी विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 के अध्याय IV में उपबंधित है। विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 की धारा 12 में विधिक सेवाएं देने के लिए मापदंड अंतर्विष्ट हैं। अधिनियम की धारा 12 (ई) विवाद के लिए प्रासंगिक है और नीचे उद्धृत की गई है: - *"धारा 12 (ई) - एक व्यक्ति जो बड़े पैमाने पर आपदा, जातीय हिंसा, जाति अत्याचार, बाढ़, सूखा, भूकंप या औद्योगिक आपदा का शिकार होने जैसी कम सेवा की परिस्थितियों में है।*

10. मुफ्त कानूनी सहायता प्रदान करने के प्रावधान का दायरा अनिल गौर (उपरोक्त) में इस न्यायालय के समक्ष विचार के लिए उत्पन्न हुआ और इसका विश्लेषण इस प्रकार किया गया:

"40. धारा 12 (ई) के तहत कानूनी सेवाएं देने के लिए व्यापक पात्रता मानदंड आधारित है। प्रावधान की चौड़ाई सामाजिक ढेर के निचले हिस्से में अंतिम व्यक्ति तक पहुंचने के विधायी इरादे को प्रकट करती है। इस धारा में उन व्यक्तियों को विधिक सहायता प्रदान करने की परिकल्पना की गई है जो अभाव की परिस्थितियों के कारण वंचित हैं और बहिष्करण से पीड़ित हैं, जो उनके द्वारा सृजित नहीं की गई हैं। प्रावधान के तहत, "अवांछनीय आवश्यकता" की परिस्थितियों का सामना करने वाले व्यक्ति कानूनी सेवाओं के हकदार हो जाते हैं। वाक्यांश "अवांछनीय इच्छा" प्रकृति में सामान्य है। शब्द "जैसे" अनुभाग में वर्णित "अवांछनीय इच्छा" के उदाहरणों से पहले है। प्रावधान में दर्शाए गए "अवांछनीय आवश्यकता" की मिसालें उदाहरणात्मक हैं और संपूर्ण नहीं हैं, और बाहरी परिस्थितियों की प्रकृति में हैं यानी प्रतिकूल परिस्थितियां जिन पर किसी व्यक्ति का कोई नियंत्रण नहीं है और जो न्याय का सहारा नहीं लेते हैं। क़ानून में वाक्यांश "अवांछनीय इच्छा" एक निश्चित अवधारणा नहीं है, बल्कि एक विकासवादी अभ्यास है। राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण को यह जांच करने का अधिकार है कि क्या कानूनी सहायता के लिए विचार किए जा रहे व्यक्ति की परिस्थितियां "अवांछनीय आवश्यकता" के दायरे में आती हैं।

11. बार नागरिकों के अधिकारों और स्वतंत्रता का अग्रिम पंक्ति का प्रहरी है। अदालतें संवैधानिक कानून और न्याय का अंतिम गढ़ हैं। न्यायाधीशों के पास संविधान में निहित शपथ है। अधिवक्ताओं ने कानूनी पेशे की गौरवशाली परंपराओं में न्याय की सेवा करने की प्रतिज्ञा की है। अपने ग्राहकों के लिए अधिवक्ताओं के कर्तव्यों

के संदर्भ में अनुवादित, अनिवार्य रूप से इसका मतलब है। अधिवक्ताओं को लगन से ब्रीफ तैयार करना होगा और अदालतों के समक्ष वादियों के कारणों पर सतर्कता से मुकदमा चलाना होगा।

12. जमानत आवेदनों में अधिवक्ताओं द्वारा विशेष देखभाल की जानी चाहिए क्योंकि आवेदक जेल में है और अधिवक्ता अदालत के समक्ष उसका एकमात्र प्रतिनिधि है। गौरवशाली पेशे के समय सम्मानित सम्मेलनों ने जमानत की सुनवाई में उपस्थित होने के लिए कैदी के अधिवक्ता पर बिना शर्त कर्तव्य डाला। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि अधिवक्ता के पेशेवर पारिश्रमिक का भुगतान किया गया है या नहीं। जमानत की सुनवाई में एक अधिवक्ता की उपस्थित होने की विफलता भी कदाचार का गठन कर सकती है।

13. अभियोजन न चलाने के लिए किसी मुकदमे को खारिज करना न्यायालयों द्वारा लंबे समय से न्याय के कुशल प्रशासन के लिए विकसित की गई प्रथा है। यह प्रथा सही है और इसने अनावश्यक मामलों को हटाने में अपनी प्रभावकारिता साबित की है जो कानूनी प्रणाली को रोकते हैं। किसी भी वादी को न्यायालय के समय पर असीमित ड्राफ्ट का अधिकार नहीं है। अधिवक्ता के उपस्थित न होने से यह निष्कर्ष भी निकल सकता है कि 'लिस' (रुचि/हित) जीवित नहीं है, या यह कि एक वादी उसी पर मुकदमा नहीं चलाना चाहता है। 'डिफ़ॉल्ट' के लिए ऐसे मामलों को खारिज करने से न्यायिक प्रणाली जीवित मामलों को अदालतों के 'डॉकेट' पर रखने में सक्षम हो जाती है जिनमें वादी रुचि रखते हैं।

14. गैर अभियोजन के कारण एक मामले की बर्खास्तगी के साथ, 'लिस' एक टर्मिनस पर आता है और ये केवल वादी द्वारा दायर की जा रही एक बहाली आवेदन के अधीन है और अदालत द्वारा अनुमति दी गई है। हालांकि यह महत्वपूर्ण है कि एक 'लिस' के बीच अंतर को ध्यान में रखा जाए जहां नागरिक अधिकारों का फैसला किया जाता है, और एक आपराधिक मामला जिसमें कैदी की व्यक्तिगत स्वतंत्रता लगी हुई है। एक वादी उन पर मुकदमा न चलाकर नागरिक दावों को माफ करने का चुनाव कर सकता है। हालाँकि, नागरिक अपनी पसंद से भी अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता को त्याग नहीं सकते हैं। संविधान द्वारा व्यक्तिगत स्वतंत्रता को अपरिवर्तनीय रूप से प्रत्येक नागरिक में निहित किया गया है और अदालतें इसकी स्थायी संरक्षक हैं।

15. जमानत की सुनवाई में अधिवक्ता की अनुपस्थिति कैदी-आवेदक को कार्यवाही के परिणाम को प्रभावित करने की सभी क्षमता से वंचित करती है जहां उसकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता दांव पर है। जब एक जमानत याचिका को गैर-अभियोजन के कारण खारिज कर दिया जाता है, तो कैदी की हिरासत की अवधि डिफ़ॉल्ट रूप से बढ़ जाती है, भले ही वह अदालत के समक्ष अप्रस्तुत और अनसुना हो जाता है।

16. जमानत के लिए आवेदन करने वाले कैदी अक्सर गरीब और निराश्रित परिस्थितियों में रहते हैं। कई मौकों पर उनके पास प्रभावी पैरोकारी नहीं होती है जो जमानत की सुनवाई में अधिवक्ताओं की उपस्थिति सुनिश्चित कर सकें।

17. बड़ी संख्या में भूले हुए कैदियों की दयनीय स्थितियों को न्यायमूर्ति सरन ने गोबर्धन सिंह और उत्तर प्रदेश के एक अन्य बनाम राज्य में अभिव्यक्त किया था:

"यह सिर्फ एक अलग मामला नहीं है। हम महसूस करते हैं कि बड़ी संख्या में ऐसे मामले हैं जो भूल गए "नामहीन" कैदियों के हैं जो "टिकट नंबर"

बन गए हैं और लंबे समय तक जेलों में बंद हैं, जैसे कि विचाराधीन मुकदमे (यू.टी.) या सजायाफ्ता कैदी जिनकी अपील उच्च न्यायालयों के समक्ष लगभग अंतहीन रूप से लंबित हैं, जिन्होंने जमानत आवेदन दायर किए हैं या नहीं भी कर सकते हैं और जो बहुत बूढ़े हो गए हैं, या एक लाइलाज बीमारी से ग्रस्त हैं, या जो स्थिर हो गए हैं या आगे अपराध करने की कोई क्षमता खो चुके हैं। शिकायतकर्ता (यदि कोई हो) ने उन पर मुकदमा चलाने या उन्हें अब जेल में रखने में कोई दिलचस्पी खो दी है। आमतौर पर ऐसे अभियुक्तों के परिवार बर्बाद हो जाते हैं, या ऐसी घोर गरीबी में पड़ जाते हैं, जैसा कि तब होता है जब परिवार का कोई सदस्य गंभीर बीमारी से ग्रस्त होता है, या वे अधिवक्ता की फीस का भुगतान नहीं कर सकते हैं या अदालत के कार्यालयों में आवेदनों और हलफनामों को तैयार करने या सूचीबद्ध मामलों को प्राप्त करने और जमानत या मामले का निपटारा करने के लिए आवर्ती अपरिहार्य व्यय नहीं कर सकते हैं। अपेक्षाकृत भाग्यशाली बच्चों और आश्रितों को शायद एक रिश्तेदार द्वारा उनके सिर पर छत प्रदान की गई हो सकती है, या उन्हें राज्य या निजी संचालित बच्चों के घर में रखा जा सकता है। दूसरों को बस सड़क पर छोड़ दिया गया हो सकता है। हो सकता है कि परिवार में बेटियों की शादी न हुई हो, और परिवार में या बाहर किसी असामाजिक तत्व द्वारा उनका शोषण किया जा रहा हो। पहले से ही भीड़भाड़ वाली जेलों में ऐसे कैदियों को जेल में रखने से कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा नहीं होता है और यह राज्य और करदाता पर एक अनावश्यक बोझ है।

18. कैदियों के पास अनुपस्थित अधिवक्ताओं के खिलाफ कोई उपाय नहीं है और इसके बाद आने वाली प्रतिकूल स्थिति पर थोड़ा नियंत्रण है। इन परिस्थितियों में कैदी कानूनी सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 की धारा 12 (ई) के अर्थ के भीतर "अवांछित आवश्यकता" का शिकार हो जाता है जो कानूनी सहायता का हकदार है। कैदियों के इस वर्ग को कानूनी सहायता से इनकार करना न्याय से इनकार करना होगा।

19. इस मद्देनजर, अधिवक्ता की अनुपस्थिति के कारण गैर-अभियोजन के लिए जमानत आवेदन को खारिज करना अनुमेय है, क्योंकि यह कानूनी सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 के तहत कानूनी सहायता के लिए कैदियों के अधिकारों के विपरीत है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत गारंटीकृत कैदियों के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन है।

20. व्यक्तिगत स्वतंत्रता सभी अधिकारों का स्रोत है। स्वतंत्रता का संरक्षण अदालत की प्रक्रिया का ताज है। जमानत का फैसला करते समय अदालतों को कानूनी सहायता के लिए कैदियों के अधिकार का संज्ञान लेना होगा, और उनकी सुनवाई के अधिकार के प्रति भी सतर्क रहना होगा। कैदी के अधिवक्ता के पेश न होने की स्थिति में, अदालत कैदी का प्रतिनिधित्व करने और जमानत की सुनवाई के लिए आगे बढ़ने के लिए एक एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) नियुक्त कर सकती है।

21. बिंदु में न्याय निर्णयों के संदर्भ में विचार लाभ उठा सकता है।

22. नीचे चर्चा किए गए मामले आपराधिक अपील से उत्पन्न होते हैं। हालांकि, इसमें उल्लिखित कानून के सिद्धांतों को, जहां आवेदक जेल में है और कैदी की व्यक्तिगत स्वतंत्रता अधर में लटकी हुई है, विभिन्न आपराधिक कार्यवाहियों के सादृश्य द्वारा सुरक्षित रूप से लागू किया जा सकता है।

23. इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने क्वीन एम्प्रेस बनाम पोहपी और अन्य में न्यायमूर्ति सैयद महमूद की कथित असहमति में आपराधिक कार्यवाही में अप्रकाशित कैदियों के कारण का बीड़ा उठाया।

24. फीस और खर्चों की प्राप्ति न होने के बावजूद मामलों में उपस्थित होने के लिए एक अधिवक्ता का कर्तव्य और एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) नियुक्त करके कैदी की स्वतंत्रता की रक्षा करने के लिए अदालतों के दायित्व पर खैली और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में जोर दिया गया था:

"1. ... लेकिन भले ही फीस और खर्च का भुगतान नहीं किया गया था, लेकिन अधिवक्ता को, हमारी राय में, मामले पर बहस करने से इनकार नहीं करना चाहिए था। प्रत्येक अधिवक्ता को यह याद रखना चाहिए कि अदालत के प्रति उसका कर्तव्य है, विशेष रूप से नागरिक की स्वतंत्रता से जुड़े आपराधिक मामले में, और भले ही उसे उसकी फीस या खर्च का भुगतान नहीं किया गया हो, उसे मामले पर बहस करनी चाहिए और सही निर्णय तक पहुंचने में अदालत की सहायता करनी चाहिए। हम एक ऐसी स्थिति को समझ सकते हैं जहां एक अधिवक्ता मुवक्किल से निर्देशों के अभाव में मामले पर बहस करने में असमर्थ हो सकता है, लेकिन फीस और खर्चों की गैर-प्राप्ति कभी भी मामले पर बहस करने से इनकार करने का आधार नहीं हो सकती है। हालांकि, वर्तमान मामले में अधिवक्ता ने मामले पर बहस करने से इनकार कर दिया और परिणामस्वरूप विद्वान न्यायाधीश ने मामले के रिकॉर्ड का अध्ययन किया और अपील का फैसला किया। अब एक बात स्पष्ट है कि विद्वान न्यायाधीश चाहे कितने भी मेहनती रहे हों और अपीलकर्ताओं के हितों की रक्षा के लिए कितने भी सावधान और चिंतित हों, उनका प्रयास अपीलकर्ताओं की ओर से पेश होने वाले अधिवक्ता द्वारा तर्क की जगह नहीं ले सकता था। हमें लगता है कि इस तरह के मामले में, विद्वान न्यायाधीश को जो करना चाहिए था, वह एक अधिवक्ता एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) नियुक्त करना था और फिर योग्यता के आधार पर अपील का निपटारा करना था।

25. इसी तरह सुप्रीम कोर्ट ने उपस्थिति की चूक के लिए आपराधिक अपील को खारिज करने की प्रथा के खिलाफ अपना दृष्टिकोण निर्धारित किया और कबीरा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) की नियुक्ति की वकालत की:

"2....इसलिए, हमारा विचार है कि अपीलकर्ता द्वारा दायर की गई अपील का उचित निपटान नहीं किया गया है। उपस्थित न होने के कारण विद्वान न्यायाधीश द्वारा अपील को खारिज नहीं किया जा सका। यदि अपीलकर्ता उपस्थित नहीं था, तो विद्वान न्यायाधीश को किसी अधिवक्ता को एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) के रूप में नियुक्त करना चाहिए था और फिर गुण-दोष के आधार पर अपील का निपटारा करना चाहिए था।

26. जमानत आवेदन के माध्यम से आवेदक ने धारा 307 भ०द०वि० के तहत थाना-बरदह, जिला-आजमगढ़ में केस अपराध संख्या-50 वर्ष 2019 में जमानत पर छोड़े जाने की प्रार्थना की है। आवेदक 20.03.2019 से जेल में है।

27. आवेदक की जमानत अर्जी विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा दिनांक 04.06.2019 को खारिज कर दी गई थी।

28. आवेदक की ओर से अधिवक्ता श्री उमर ज़मिन द्वारा दिए गए निम्नलिखित तर्क, जिन्हें श्री ऋषि चड्ढा, अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा रिकॉर्ड से संतोषजनक रूप से अस्वीकार नहीं

किया जा सका, आवेदक को जमानत देने का हकदार बनाता है:

(i). यह प्राथमिकी पुलिस अधिकारियों द्वारा उनकी साख को नष्ट करने और आवेदक पर बल के अवैध उपयोग का बचाव करने के लिए किए गए फर्जी मुठभेड़ को तर्कसंगत बनाने के लिए दर्ज की गई है।

(ii). पुलिस में से किसी को भी जानलेवा चोट नहीं आई है।

(iii). बरामद वस्तुओं को आवेदक को इस मामले में फंसाने के लिए उस पर लगाया गया था।

(iv). बरामदगी का कोई स्वतंत्र गवाह नहीं है।

(v). बरामद वस्तुओं को अपराध से नहीं जोड़ा जा सकता।

(vi). अभियोजन साक्ष्य आवेदक को अपराध से नहीं जोड़ता है।

(vii). यह तर्क दिया जाता है कि आवेदक ने हमेशा जांच में सहयोग किया है और मुकदमे में शामिल हुआ था। आवेदक निर्दोष है।

(viii). परीक्षण कछुए की गति से आगे बढ़ रहा है और प्रारंभिक निष्कर्ष का कोई संकेत नहीं दिखाता है। मुकदमे में देरी के लिए आवेदक को दोषी नहीं ठहराया जा सकता।

(ix). मुकदमे के समापन में असाधारण देरी के कारण आवेदक को अनिश्चितकालीन कारावास हो गया है।

(x). विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा भेजी गई स्थिति रिपोर्ट में दर्ज किया गया है कि अभियोजन पक्ष आरोप पत्र के अनुसार गवाहों की जांच करने का प्रस्ताव करता है। हालांकि आज तक एक भी गवाह से पूछताछ नहीं की गई है। विचारण न्यायालय देरी कर रहा है। मुकदमे में देरी के लिए आवेदक जिम्मेदार नहीं है। मुकदमे के समापन में अत्यधिक देरी के कारण आवेदक को लगभग अनिश्चितकालीन कारावास हो गया था। आवेदक के त्वरित विचारण के अधिकार का हनन किया गया है ।

(xi). आवेदक के भाग जाने का खतरा नहीं है। कानून का पालन करने वाला नागरिक होने के नाते आवेदक ने हमेशा जांच में सहयोग किया है और अदालत की कार्यवाही में सहयोग करने का वचन दिया है। उसके गवाहों को प्रभावित करने, सबूतों के साथ छेड़छाड़ करने या फिर से अपराध करने की कोई संभावना नहीं है।

(xii). आवेदक ने अपने आपराधिक इतिहास को स्पष्ट किया है। यह भी तर्क दिया गया है कि स्पष्ट रूप से आवेदक एक आसान लक्ष्य है और पुलिस अधिकारियों के लिए एक सुविधाजनक बलि का बकरा है। आवेदक को उक्त मामलों में केवल पुलिस जांचकर्ताओं की दक्षता दिखाने के लिए नामजद किया गया है। उक्त आपराधिक मामलों का प्रस्तुत जमानत याचिका पर कोई असर नहीं पड़ता है।

29. इस मद्देनजर, मामले के गुण-दोष पर कोई राय व्यक्त किए बिना, मेरा विचार है कि आवेदक जमानत पर छोड़े जाने का हकदार है।

30. आवेदक मनीष पाठक को उपरोक्त मामले में अपराध संख्या में? एक व्यक्तिगत बांड और इतनी ही राशि में दो जमानतदार प्रस्तुत करने पर, नीचे की अदालत की संतुष्टि पर, जमानत पर रिहा किया जाए। न्याय के हित में निम्नलिखित शर्तें अधिरोपित की जाएं:-

(i) आवेदक विचारण के दौरान साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ नहीं करेगा अथवा किसी गवाह को प्रभावित नहीं करेगा।

(ii) आवेदक निर्धारित तारीख को विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित होगा, जब तक कि व्यक्तिगत उपस्थिति से छूट न दी गई हो।

31. विद्वान विचारण न्यायालय यह सुनिश्चित करेगा कि आवेदक से मांगी गई ज़मानत उसकी सामाजिक आर्थिक स्थिति के अनुरूप है। भारी जमानतदारियां जो आवेदक अपनी सामाजिक आर्थिक बाधाओं को देखते हुए पूरा नहीं कर सकता है, जमानत के अधिकार को निरर्थक बना देगा।

32. उच्च न्यायालय कानूनी सेवा प्राधिकरण श्री उमर ज़ामिन, एडवोकेट (एडवोकेट रोल ए/ओ0083/2012) को अनुमोदित पारिश्रमिक के भुगतान पर विचार करेगा, जिन्होंने इस न्यायालय के समक्ष एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) के रूप में आवेदक का प्रतिनिधित्व किया था।

33. इस आदेश की एक प्रति फैक्स द्वारा रजिस्ट्रार अनुपालन द्वारा विद्वान विचारण न्यायालय के साथ-साथ जिला कानूनी सेवा प्राधिकरण, आजमगढ़ को सूचित की जाए।

(2023) 3 ILRA 1105

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 23.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति कृष्ण पहल

क्रिमिनल मिस्लेनियस एंटीसिपेटरी बेल अप्लीकेशन सं. 21738 वर्ष 2022

कमलेश पाठक ..आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिपक्षी

आवेदक की ओर से अधिवक्ता: श्री उमेश सिंह, श्रीमती स्वाति अग्रवाल श्रीवास्तव, श्री वी.पी. श्रीवास्तव (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिपक्षी की ओर से अधिवक्ता: जी.ए., श्री अनुराग शुक्ला, श्री धर्मेंद्र शुक्ला, श्री अनिल तिवारी (वरिष्ठ अधिवक्ता)

अपराधी विविध जमानत आवेदन संख्या 21738/2022

(क) आपराधिक कानून - उत्तर प्रदेश गैंगस्टर्स और एंटी-सोशल गतिविधियों (निरोध) अधिनियम, 1986 - धारा 3(1), 16, 17 और 22 - पूर्ववर्ती अपराध - 'अक्टस रियस' - 'मेंस रिया' - एक्टस रियस और मेंस रिया का अनुमान अभियोजन द्वारा की गई शिकायतों के आधार पर लगाया जाता है, जिसमें आवेदक के आपराधिक पूर्ववृत्त का जिक्र है - गैंगस्टर के संदर्भ में, परिस्थितियों से अनुमान लगाया जा सकता है। (पैरा - 22)

आवेदक और उसके गैंग के सदस्यों ने - अधिवक्ता और उसकी बहन का दिनदहाड़े हत्या की - दो अन्य लोग घायल हुए - जमीन पर अवैध कब्जा किया - जनता उन से डर गई - जनता के हित में उन्हें उत्तर प्रदेश गैंगस्टर्स अधिनियम के तहत वाद चलाना जरूरी है - गैंग चार्ट तैयार किया गया - जिला मजिस्ट्रेट की अनुमति के लिए भेजा गया। (पैरा - 6)

निर्णय:- पूर्ववर्ती अपराध में, आवेदक पर आरोप है कि उसने अन्य सह-अभियुक्त को मृतक और घायल व्यक्तियों पर फायर करने के लिए उकसाया। एक्टस रियस और मेंस रिया का पहलू उपलब्ध है। यह विश्वास करने के लिए कोई उचित आधार नहीं है कि आवेदक इस अपराध में दोषी नहीं है और जमानत पर रहते हुए कोई अपराध करने की संभावना नहीं है जैसा कि

अधिनियम की धारा 19(4) की आवश्यकता है। आवेदक के पास बड़े आपराधिक पूर्ववृत्त हैं और वह गैंग का मुखिया है, इसलिए जमानत का पात्र नहीं है। (पैरा - 22, 25, 26)

जमानत याचिका निरस्त। (E-7)

उद्धृत वाद सूची:

1. अकबर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2012 (76) ACC 187
2. अशोक दीक्षित बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, MANU/UP/0543/1987
3. धर्मेंद्र कीर्तल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (2013) 8 SCC 368
4. जेबा रिजवान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या 4691 वर्ष 2022

माननीय न्यायमूर्ति कृष्ण पहल

1. सूची को संशोधित किया गया है।

2. आज दायर पूरक शपथ पत्र रिकॉर्ड पर लिया जाता है।

3. आवेदक के लिए श्री वी. पी. श्रीवास्तव, वरिष्ठ अधिवक्ता जिन्हें सुश्री स्वाति अग्रवाल श्रीवास्तव ने सहायता प्रदान की, और सूचनाकर्ता के अधिवक्ता श्री अनिल तिवारी, वरिष्ठ अधिवक्ता को सुना, जिन्हें श्री अनुराग शुक्ला, के द्वारा सहायता प्रदान की गई थी और राज्य के लिए श्री विभव आनंद सिंह, अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना।

4. वर्तमान जमानत आवेदन के माध्यम से, आवेदक मुकदमा अपराध संख्या-462 वर्ष 2020 में धारा 3(1) के तहत, उत्तर प्रदेश गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधि (रोकथाम) अधिनियम, 1986, थाना-औरैया की मुकदमे की पेंडेंसी के दौरान जमानत चाहता है।

<u>अभियोजन संस्करण:</u>

5. अभियोजन पक्ष की कहानी के अनुसार, राम सहाय, थानाध्यक्ष, थाना-औरैया जिला: औरैया अन्य सहयोगियों के साथ एक आधिकारिक ड्यूटी में वाहनों की जांच कर रहे थे और जिला मजिस्ट्रेट के दिनांक 11.07.2020 के आदेश द्वारा क्षेत्र में शांति और व्यवस्था बनाए रखने और कोविड-19 स्थितियों के बदले लॉकडाउन बनाए रखने में शामिल थे। उन्हें सूचना मिली कि कमलेश पाठक इलाके में एक संगठित और सक्रिय गिरोह का सरगना बतौर नेता चला रहा है। उक्त गिरोह के सदस्य (i) रामू पाठक (ii), संतोष पाठक, (iii) कुलदीप अवस्थी @ पप्पू, (iv) विकल्प @ चेनू अवस्थी, (v) राजेश शुक्ला (भगवदाचार्य), (vi) अवनीश प्रताप सिंह, (vii) सोनू @ लवकुश, (viii) आशीष दुबे, (ix) शिवम अवस्थी और (x) रवींद्र @ लल्ला चौबे हैं। गिरोह का उक्त नेता कमलेश पाठक उपरोक्त सभी सदस्यों के साथ अवैध फिरौती बटोरने, सरकारी जमीन पर अवैध कब्जा, लड़ाई-झगड़े, फायरिंग और अन्य अवैध आपराधिक गतिविधियों आदि में शामिल है। प्रार्थी और उसका गिरोह दिनदहाड़े फायरिंग से नहीं डरता। गिरोह के सदस्यों ने उक्त आतंक के आलोक में अपने खिलाफ दर्ज विभिन्न मामलों का निपटारा करवा लिया था। कोई भी उनके खिलाफ अदालत में शपथ पर गवाही देने की हिम्मत नहीं करता है, जिससे उन सभी मामलों को बरी कर दिया जाता है।

6. 15.03.2020 को, कमलेश पाठक और उनके गिरोह के सदस्यों ने जमीन पर अवैध कब्जा करने के लिए अधिवक्ता मंजू चौबे और उनकी बहन सुधा चौबे की दिनदहाड़े हत्या कर दी थी।

बड़े पैमाने पर जनता गिरोह के सदस्यों से इतनी भयभीत है कि कोई भी आगे आने और उनके खिलाफ बोलने या बयान देने की हिम्मत नहीं करता है। उन्हें मुक्त छोड़ना, बड़े पैमाने पर जनता के हित के खिलाफ होगा। गिरोह के सदस्य यूपी गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधि (रोकथाम) अधिनियम की धारा 16, 17 और 22 में उल्लिखित अपराधों को अंजाम देते रहते हैं। इस प्रकार वे दूसरों की संपत्तियों को हड़प लेते हैं और यहां तक कि उनके खिलाफ झूठे मामले भी दर्ज करते हैं। गिरोह के सदस्यों पर उत्तर प्रदेश गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधि (रोकथाम) अधिनियम, 1986 के तहत मामला दर्ज करना जनता के हित में होगा। इस प्रकार, गिरोह की उक्त असामाजिक गतिविधियों को समाप्त करने के लिए, उनके द्वारा 26.02.2020 को एक गैंग चार्ट तैयार किया गया है, जिसे विद्वान जिलाधिकारी, औरैया के समक्ष स्वीकृति के लिए भेजा गया था। जिलाधिकारी, औरैया के कार्यालय से स्वीकृति प्राप्त करने के बाद, गिरोह के उपरोक्त ग्यारह सदस्यों पर यूपी गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम, 1986 की धारा 3(1) के तहत मामला दर्ज किया गया था।

<u>प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियाँ:</u>

<u>आवेदक के लिए:</u>

7. आवेदक के वरिष्ठ अधिवक्ता ने कहा है कि उसे राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता के कारण बुक किया गया है और उसका उक्त अपराध से कोई लेना-देना नहीं है। वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे कहा है कि आवेदक को धारा 147, 148, 149, 302, 307, 506 भ०द०वि० और आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम की धारा 7, थाना-कोतवाली औरैया, जिला: औरैया के तहत अपराध संख्या-189 वर्ष 2020 में विधेय अपराध में जमानत दी गई है। वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे कहा है कि आवेदक की जमानत को अपराध संख्या-190 वर्ष 2022 में संबंधित अदालत द्वारा आर्म्स एक्ट की धारा 25/27 के तहत भी खारिज कर दिया गया है।

8. वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे कहा है कि उक्त आपराधिक इतिहास को स्पष्ट किया गया है क्योंकि आवेदक गैंग-चार्ट में उल्लिखित केस संख्या-1 में जमानत पर है और गैंग-चार्ट यानी अपराध संख्या-190 वर्ष 2022 में उल्लिखित केस संख्या-2 में जमानत आवेदन पर केवल इस जमानत आवेदन के साथ बल दिया जा रहा है। वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे बताया है कि आपराधिक पूर्ववृत्त के संबंध में सभी प्रमाणित प्रतियां दायर की गई हैं। आवेदक के खिलाफ कुल 37 मामले दर्ज किए गए हैं। वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे कहा है कि, जैसा कि आज दायर पूरक हलफनामे के पैराग्राफ 3 में उल्लेख किया गया है, क्लोजर रिपोर्ट क्रम संख्या-3 से 14 तक बारह मामलों में दायर की गई है और इसे संबंधित अदालतों द्वारा स्वीकार कर लिया गया है।

9. वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे कहा है कि आवेदक को सोलह मामलों में यानी क्रम संख्या-15 से 30 तक में बरी कर दिया गया है। तीन मामले, जिन्हें क्रम संख्या-31 से 33 पर समझाया गया है, राज्य द्वारा वापस ले लिए गए हैं। वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे कहा है कि क्रम संख्या-34 और 35 में उल्लिखित दो मामले आगे नहीं बढ़ रहे हैं क्योंकि उन मामलों के बारे में रिकॉर्ड पर कोई विवरण नहीं है और क्रम संख्या-36 और 37 में उल्लिखित दो अन्य मामलों में, आवेदक को जमानत पर रिहा कर दिया गया है। वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे कहा है कि इस प्रकार आवेदक

के खिलाफ केवल चार मामलों को लंबित बताया जा सकता है। वरिष्ठ अधिवक्ता ने केन्द्रीय जेल, आगरा में वरिष्ठ सलाहकार चिकित्सक द्वारा जेल के वरिष्ठ अधीक्षक को भेजे गए पत्र का भी उल्लेख किया है, जिसमें यह उल्लेख किया गया है कि आवेदक के/सी/ओटी 2 डीएम (टाइप-2 मधुमेह मेलेटस) से पीड़ित था, जिसमें ऐनेकजाइटी न्यूरोसिस के साथ सिसटेमेटिक उच्च रक्तचाप था। वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे कहा है कि आवेदक को एसएन मेडिकल कॉलेज, आगरा भेजा गया था जहां कई परीक्षण किए गए थे और फिर उसे किंग जॉर्ज मेडिकल कॉलेज, लखनऊ भेजा गया था, जहां उसकी जांच की गई थी और उसके ईसीजी, 2 डी इको और टीएमटी परीक्षण किए गए थे और सीटी कोरोनरी एंजियोग्राफी को आवेदक के संबंध में अवधारित करने के लिए संदर्भित किया गया था। वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे कहा है कि आवेदक हृदय संवहनी रोग से पीड़ित रोगी है और वरिष्ठ नागरिक होने के नाते जमानत का हकदार है।

10. वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे कहा है कि उन पर राजनीतिक प्रतिशोध से मामला दर्ज किया गया है क्योंकि वह समाजवादी पार्टी से संबंधित पूर्व विधायक और पूर्व मंत्री हैं और वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था के खिलाफ हैं।

11. वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे कहा है कि कोई एक्टस रीस नहीं है, जिसका अर्थ है कि आवेदक को कोई दोषारोपण नहीं सौंपा गया है। वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे कहा है कि उत्तर प्रदेश गैंगस्टर और असामाजिक गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम में वर्ष 2021 में नियम बनाए गए हैं और वर्तमान प्राथमिकी वर्ष 2020 की है, इसलिए उक्त नियम आवेदक पर लागू नहीं होते हैं। वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे कहा है कि आवेदक पूर्व में दोषी नहीं है। धारा 19 के उप-खंड 4 की सामग्री पूरी हो गई है और आवेदक जमानत का हकदार है। आवेदक की ओर से उसके खिलाफ लगाए गए आरोपों की मिथ्याता को प्रदर्शित करने के लिए कई अन्य प्रस्तुतियाँ की गई हैं। अधिवक्ता के अनुसार, जिन परिस्थितियों के कारण आवेदक को झूठा फंसाया गया, उन पर भी विस्तार से चर्चा की गई है। आवेदक के संबंध में बताया गया आपराधिक इतिहास का स्पष्टीकरण दिया गया है। आवेदक 16.03.2020 से जेल में बंद है। यदि आवेदक को जमानत पर रिहा किया जाता है, तो वह जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं करेगा।

12. वरिष्ठ अधिवक्ता ने अकबर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य के मामले में पारित इस न्यायालय के फैसले पर बहुत भरोसा किया है, जिसके तहत यह कहा गया है कि मुकदमे के समय यदि अपराधी को बरी कर दिया गया है, तो उसे उसके आपराधिक पूर्ववृत्त का हिस्सा नहीं माना जा सकता है। जिसके लिए उन्होंने पुलिस महानिदेशक, उत्तर प्रदेश के दिनांक 20-11-2003 के सरकारी आदेश का उल्लेख किया है।

13. वरिष्ठ अधिवक्ता ने अशोक दीक्षित बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के मामले में पारित इस न्यायालय के फैसले पर बहुत भरोसा किया है, जिसमें कहा गया है कि अधिनियम के प्रावधानों का इस्तेमाल प्रतिशोध लेने या निर्दोष नागरिकों को परेशान करने या डराने या राजनीतिक प्रतिद्वंद्वियों पर हिसाब बराबर करने के लिए हथियार के रूप में नहीं किया जा सकता है। सुसंगत पैरा 75 को निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है:-

"75. लेकिन फिर भी हमें सावधानी बरतनी चाहिए। अधिनियम के प्रावधानों का इस्तेमाल

बदला लेने या निर्दोष नागरिकों को परेशान करने या डराने या राजनीतिक या अन्य मोर्चों पर हिसाब बराबर करने के लिए एक हथियार के रूप में नहीं किया जा सकता है। अभियोजन पक्ष को यह ध्यान में रखना होगा कि उसे अपराध को क़ानून के दायरे में लाना होगा। फिर, अपील के लिए एक और प्रावधान है। इस प्रकार, इस न्यायालय की न्यायिक समीक्षा की शक्ति को संरक्षित किया गया है। अंतत यह पाया गया है कि किसी व्यक्ति के साथ द्वेष के कारण घोर दुर्भावना से कार्यवाही की गई थी और राजनीतिक प्रतिशोध के माध्यम से प्राधिकारियों को अधिनियम की धारा 22 के अंतर्गत कोई उन्मुक्ति प्राप्त नहीं है। यह प्रतिरक्षा केवल अच्छे विश्वास में किए गए कार्यों तक ही सीमित है।

14. वरिष्ठ अधिवक्ता ने धर्मेंद्र कीर्थल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के मामले में पारित सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भी बहुत भरोसा किया है, जिसके तहत यह माना गया है कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता की अपनी महिमा है और अपराधियों पर मुकदमा चलाने के लिए इसे महत्व दिया जाना है, यह "तर्कसंगत स्वतंत्रता" की अवधारणा द्वारा नियंत्रित है। संक्षेप में, किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता को नष्ट करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए, लेकिन प्रत्येक व्यक्ति का यह देखने का दायित्व है कि वह देश के कानूनों का उल्लंघन नहीं करता है या दूसरों की वैध स्वतंत्रता को प्रभावित नहीं करता है।

15. वरिष्ठ अधिवक्ता ने आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या-4691 वर्ष 2022 (ज़ेबा रिजवान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) दिनांक 23.05.2022 में पारित इस न्यायालय के निर्णय पर भी भरोसा किया है, जिसके तहत विधेय अपराध में पीड़ित के अधिवक्ता के नज़रिये पर सवाल उठाया गया था और यह राय दी गई थी कि उसे मामले पर बहस करने की अनुमति देने से भानुमती का पिटारा खुल जाएगा।

<u>राज्य के लिये:</u>

16. प्रतिवाद, विधेय अपराध में सूचनादाता के वरिष्ठ अधिवक्ता और अपर शासकीय अधिवक्ता ने इस आधार पर जमानत आवेदन का जोरदार विरोध किया है कि आवेदक वह व्यक्ति है जो अधिनियम के तहत परिभाषित गैंगस्टर की परिभाषा के लिए बहुत योग्य है और यह शुरू में कहा गया है कि धारा 302 भ०द०वि० के विधेय अपराध में आवेदक को दी गई जमानत अधिकार क्षेत्र के बिना है और इसे अपील के लिए विशेष अनुमति (सीआरएल) सं० 6080 वर्ष 2022 दिनांक 13.04.2022 दायर करके शीर्ष न्यायालय में चुनौती दी गई है।

17. वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे कहा है कि आवेदक क्षेत्र में आतंक का नाम है और उसका बाहुबल इस तथ्य से स्पष्ट है कि किसी भी गवाह ने कभी भी अदालत में उसके खिलाफ गवाही देने की हिम्मत नहीं की और उनमें से लगभग सभी उसके बरी होने के कारण मुकर गए हैं।

18. वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे कहा है कि विधेय अपराध दोपहर 3:00 बजे एक अधिवक्ता और उसकी बहन की दिनदहाड़े हत्या है और इसमें दो अन्य व्यक्ति घायल हो गए थे। दी गई जमानत को चुनौती दी जाती है, इसलिए आवेदक जमानत का हकदार नहीं है। वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे कहा है कि आवेदक का प्रभाव इस तथ्य से स्पष्ट है कि पुलिस द्वारा बारह मामलों में क्लोजर रिपोर्ट दायर की गई है जिसमें हत्या का प्रयास, जालसाजी और डकैती का प्रयास आदि शामिल हैं।

19. वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे कहा है कि आवेदक की ओर से आज दायर पूरक हलफनामा झूठे तथ्यों पर आधारित है और इसमें झूठी गवाही दी गई है क्योंकि क्रम संख्या-25, 26 और 29 में बरी मामलों के रूप में संदर्भित मामलों को वापस ले लिया गया है, क्योंकि इस तरह वापस लिए गए राज्य मामलों के कॉलम में सूचीबद्ध किया गया हो सकता है। इस प्रकार, राज्य द्वारा सभी छह मामले वापस ले लिए गए हैं। प्रतिपादित अपराध में विचारण चल रहा है और इस बात की पूरी संभावना है कि आवेदक गवाहों को प्रभावित करेगा क्योंकि उसका आपराधिक पूर्ववृत्त लंबा है।

20. वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे कहा है कि यहां तक कि दो मामलों के आपराधिक इतिहास को भी स्पष्ट नहीं किया गया है, जिससे यह कहा गया है कि मामलों में आगे कार्यवाही नहीं की जा रही है। इसे उक्त आपराधिक इतिहास की उचित व्याख्या नहीं माना जा सकता है। शस्त्र अधिनियम की धारा 25/27 के तहत अपराध संख्या-190 वर्ष 2020 में आवेदक की जमानत अभी भी लंबित है और आज इस अदालत में बहस चल रही है।

21. वरिष्ठ अधिवक्ता ने आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या-23584 वर्ष 2014 (रोहित @ रोहित यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) दिनांक 06.08.2014 में पारित इस न्यायालय के फैसले पर बहुत भरोसा किया है, जिसके तहत प्रतिपादित अपराध में सूचनाकर्ता के अधिवक्ता को जमानत आवेदन का विरोध करने की अनुमति दी गई थी।

<u>निष्कर्ष</u>:

22. लैटिन शब्द 'एक्टस रीस' का अर्थ है दोषपूर्ण कार्य। इस प्रकार, यह अपराध का भौतिक घटक है। यह सच है कि आपराधिक कृत्य के बिना कोई अपराध नहीं हो सकता है। हमें एक्टस रीस के साथ मेन्स रीआ पर विचार करना होगा। ऐक्टस रीयस दोषपूर्ण कार्य के लिए लैटिन है और मेंस रिया दोषपूर्ण मन के लिए लैटिन है। आपराधिक कृत्य पूरा होने के लिए दोनों तत्वों की आवश्यकता होती है। एक्टस रीस और मेन्स रिया का अनुमान अभियोजन पक्ष द्वारा लगाए गए आरोपों की सामग्री से लगाया जाना है, जिसके तहत आवेदक को आपराधिक पूर्ववृत्त बताया गया है और उक्त विधेय अपराध में, आवेदक को अन्य सह-अभियुक्तों को मृतक और घायल व्यक्तियों पर गोली चलाने के लिए प्रोत्साहित करने के लिए कहा गया है। इस प्रकार, एक्टस रीस और मेन्स रीया के तत्व उक्त मामले में मौजूद हैं और गिरोह के नेता होने के नाते, वर्तमान मामले में भी वही जगह पाते हैं।

23. एक गैंगस्टर के संबंध में, परिस्थितियों से एक निष्कर्ष निकाला जा सकता है। यहाँ अपराधी एक विधायिका उर्फ एक पूर्व मंत्री है, लेकिन वह उसे अवैयक्तिक गतिविधियों से मुक्त नहीं कर सकता है।

24. यह सच है कि सामान्य परिस्थितियों में, यदि अन्यथा जमानत के लिए अपराधी का मामला बनता है, तो आपराधिक पूर्ववृत्त पर विचार नहीं किया जाना चाहिए, लेकिन यहां अपराध की गंभीरता और आपराधिक पूर्ववृत्त भी आवेदक के खिलाफ हत्या, हत्या के प्रयास, डकैती के प्रयास और जालसाजी आदि के मामले हैं।

25. यह सच है कि कानूनों के दुरुपयोग की संभावना है, वह भी इसे निष्पादित करने वाले व्यक्ति पर निर्भर करता है। वर्तमान मामला अधिनियम का दुरुपयोग प्रतीत नहीं होता है और आवेदक का इतना बड़ा आपराधिक रिकॉर्ड है और

गिरोह का मुखिया होने के नाते वह जमानत का हकदार नहीं है।

26. रिकॉर्ड के अवलोकन से, मुझे नहीं लगता कि यह मानने के लिए उचित आधार हैं कि आवेदक इस तरह के अपराध का दोषी नहीं है और जमानत पर रहते हुए उसके द्वारा कोई अपराध करने की संभावना नहीं है, जैसा कि अधिनियम की धारा 19 (4) की आवश्यकता है।

27. पक्षकारों के अधिवक्ताओं द्वारा दी गई प्रस्तुतियों, आरोपों की प्रकृति, अपराध की गंभीरता और मामले के सभी उपस्थित तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, न्यायालय की राय है कि यह जमानत के लिए उपयुक्त मामला नहीं है। इसलिए, आवेदक की जमानत याचिका खारिज की जाती है।

28. हालांकि, यह निर्देश दिया जाता है कि विचारण न्यायालय के समक्ष लंबित पूर्वोक्त मामले को, अगर कोई कानूनी बाधा नहीं है, तेजी से तय किया जाए।

29. यह स्पष्ट किया जाता है कि यहां की गई टिप्पणियां जमानत आवेदन के निपटान से संबंधित पक्षों द्वारा लाए गए तथ्यों तक सीमित हैं और उक्त टिप्पणियों का परीक्षण के दौरान मामले के गुणों पर कोई असर नहीं पड़ेगा।

(2023) 3 ILRA 1111

अपील क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 15.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति कृष्ण पहल

क्रिमिनल मिस्लेनियस एंटीसिपेटरी बेल अप्लीकेशन सं. 23624 सन् 2020

अनीस **...आवेदक**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य **..प्रतिपक्षी**

आवेदक की ओर से अधिवक्ता: श्री सैयद अली इमाम, श्री लक्ष्मी शंकर, श्री मोहम्मद उमर इकबाल खान

प्रतिपक्षी की ओर से अधिवक्ता: जी.ए.

अपराधिक जमानत आवेदन संख्या 23624 /2020

(A) अपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धाराएं 498-A, 323 और 302 - दहेज निषेध अधिनियम, 1961 - धाराएं 3/4 - भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 32 - मृत्यु कालिक बयान - मृत्यु कालिक बयान सुना गया साक्ष्य है - मरते वक्त का बयान बहुत वजन रखता है - आरोपी को प्रति परीक्षा करने का अधिकार नहीं है - बयान ऐसा होना चाहिए कि उसकी सही होने पर विश्वास हो और ये किसी सिखाया हुआ या कल्पना का उत्पाद न हो - जमानत आवेदन के स्तर पर - न्यायालय साक्ष्य की गुणवत्ता या मात्रा में नहीं जाना चाहती, बल्कि देखना चाहती है कि क्या आरोपी ने अपराध किया है और क्या उसे जमानत मिलनी चाहिए या नहीं - न तो कानून का नियम है और न ही विवेक का कि मरते वक्त का बयान बिना सहायक सबूत के लागू नहीं किया जा सकता। (पैराग्राफ - 17,18,19,26)

पीड़िता एक युवा महिला थी - उसने एफ.आई.आर. में बताए गए समय पर आग से लगी चोटों के कारण दम तोड़ दिया - प्रतिकूल गवाहों के बयान और शव परीक्षण रिपोर्ट उनकी

स्थिति के साक्ष्य हैं - विवाद - मृतक का एएसआई और चिकित्सा अधिकारियों के सामने दिया गया बयान मरते वक्त का बयान की परीक्षा पास करता है या नहीं। (पैराग्राफ - 13 से 16)

निर्णय:- आवेदक का वाद जमानत देने के लिए योग्य नहीं है, क्योंकि साक्ष्य, फैसले और यह तथ्य कि एक युवा महिला को उनके रहने की जगह में आग लगाई गई। (पैराग्राफ - 27)

जमानत आवेदन निरस्त। (E-7)

उद्धृत वाद सूची:-

1. उत्तम बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2022) 8 SCC 576
2. भारत सरकार बनाम के.ए. नजीब, AIR (2021) SC 712
3. काका सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य, AIR (1982) SC 1021
4. श्रीमती पैनिबेन बनाम गुजरात राज्य, AIR (1992) SC 1817
5. वरिकुप्पल श्रीनिवास बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, (2009) 2 SCC (Cri) 136
6. मन्नू राजा और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (1976) 2 SCR 764
7. के. रामचंद्र रेड्डी और अन्य बनाम लोक अभियोजक, AIR (1976) SC 1994
8. सूरजदेव ओझा और अन्य बनाम बिहार राज्य, AIR (1979) SC 1505
9. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम मदन मोहन और अन्य, AIR (1989) SC 1519
10. बेताल सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 1996 SCC (Cri) 624
11. पारस यादव और अन्य बनाम बिहार राज्य, (1999) SCC (Cri) 104
12. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम चेत राम और अन्य, (1989) SCC (Cri) 388
13. कर्नाटका राज्य बनाम शारिफ, 2003 Crlj 1254 (SC)
14. विनोद कुमार बनाम पंजाब राज्य, 2015 (2) SCC 220
15. हुसैन और अन्य बनाम भारत सरकार, (2017) 5 SCC 702

माननीय न्यायमूर्ति कृष्ण पहल

1. सूची को संशोधित किया गया है।

2. श्री मोहम्मद उमर इकबाल खान, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता और श्री विभव आनंद सिंह, राज्य के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना और साथ ही अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया

3. वर्तमान जमानत अर्जी आवेदक द्वारा मुकदमा अपराध संख्या 2815/2018, भा.दं.सं. की धारा 498-ए, 323, 302 और दहेज निषेध अधिनियम की धारा 3/4, पुलिस स्टेशन लोनी, जिला गाजियाबाद में दायर की गई है, जिसमें उसे जमानत पर रिहा करने की प्रार्थना की गई है।

अभियोजन की कहानीः

4. अभियोजन की कहानी के अनुसार, सूचक ने दिनांक 12.12.2018 को थाना लोनी, जिला गाजियाबाद में एफआईआर दर्ज कराई कि वह कस्बा कांधला, जिला शामली, यूपी का निवासी है और उसने अपनी बहन की शादी आवेदक अनीस के साथ उसकी मृत्यु से लगभग सात वर्ष पहले मुस्लिम रीति-रिवाज के अनुसार की थी। शादी के बाद, आवेदक अनीस और सह-

अभियुक्तों, अर्थात् नसीम, नफीस और श्रीमती असगरी दहेज की मांग के लिए मृतिका के साथ क्रूरता करते थे और समय-समय पर उसकी पिटाई करते थे। यह पता चला कि आवेदक का किसी अन्य लड़की के साथ संबंध था क्योंकि सूचक की बहन और अनीस के परिवार के अन्य सदस्यों ने उसे उक्त लड़की के साथ आपत्तिजनक स्थिति में देखा था। उक्त तथ्य सूचक के परिवार वालों को घटना दिनांक से लगभग दो माह पूर्व ज्ञात हो गया था। बताया जाता है कि आवेदक ने कबूल कर लिया और वादा किया था कि उक्त कृत्य दोबारा नहीं किया जाएगा, ऐसे में सूचक की बहन आवेदक के साथ गई थी। मृत व्यक्ति को आवेदक लोनी ले गया था और दोनों अक्सा मस्जिद, प्रेम नगर, लोनी में रहते थे। दिनांक 10.12.2018 को रात्रि लगभग 10:40 बजे मुखबिर द्वारा फोन आया कि उसकी बहन को उसके ससुराल वालों ने मिट्टी का तेल छिड़क कर आग लगा दी है। सूचक और उसके परिवार के सदस्य दिनांक 11.12.2018 को लगभग 03:00 बजे पंजाब से जी.टी.बी. अस्पताल, दिल्ली पहुंचे। मृतक ने अपने परिवार के सभी सदस्यों को बताया था कि प्रार्थी एवं उसके परिवार के सदस्य कई दिनों से उसके साथ मारपीट कर रहे थे तथा सभी आरोपियों द्वारा उसके ऊपर मिट्टी का तेल छिड़क कर आग लगा दी गयी थी। एफआईआर में यह भी कहा गया है कि पुलिस चौकी लोनी में उसकी बहन के बयान की वीडियो रिकॉर्डिंग भी है।

प्रतिद्वंद्वी तर्कः

आवेदक के लिएः

5. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि आवेदक को वर्तमान मामले में झूठा फंसाया गया है। मुकदमा चल रहा है और कुल मिलाकर चार गवाहों से पूछताछ की जा चुकी है। विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि पीडब्लू 1 नदीम मुखबिर है और उसने अभियोजन की कहानी का समर्थन नहीं किया है और उसे सरकारी अधिवक्ता द्वारा पक्षद्रोही घोषित किया गया है और उनके द्वारा उससे जिरह की गई है। विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि पीडब्लू-1 के बयान में यह सामने आया है कि जब वह अस्पताल पहुंचा तो उसने अपनी बहन को बेहोश पाया और उसने उनके सामने कोई बयान नहीं दिया था। विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा है कि पीडब्लू-2 इशरार ने भी मुकदमे का पालन किया है और अभियोजन की कहानी का समर्थन नहीं किया है। विद्वान अधिवक्ता ने यह भी कहा है कि पीडब्लू-3 हकीकत मुखबिर का बहनोई है और उसने भी अभियोजन की कहानी का समर्थन नहीं किया है और मृतक के बयान की किसी भी वीडियोग्राफिक रिकॉर्डिंग से भी इनकार किया है। पीडब्लू-4 श्रीमती फहमीदा मृतक की मां हैं और उन्होंने भी अभियोजन की कहानी का समर्थन नहीं किया है। विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि ये सभी गवाह जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए अपने पहले के बयानों से मुकर गए हैं। विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि गवाहों के बयानों पर जांच कार्यवाही करने वाले व्यक्ति द्वारा उनके हस्ताक्षर भी लिए गए हैं। उक्त बयान कानून में स्वीकार्य नहीं हैं क्योंकि वे दं.प्र.सं. की धारा 162 के अंतर्गत आते हैं। विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि मृतक का मृत्युपूर्व बयान है जिसे जीटीबी अस्पताल में एएसआई द्वारा दर्ज किया गया था। विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि उक्त बयान से संकेत मिलता है कि आवेदक ने मृतक पर कुछ तरल पदार्थ छिड़ककर आग लगा दी थी। विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि उक्त मृत्युकालीन बयान

भारतीय साक्ष्य अधिनियम के तहत स्वीकार्य नहीं है क्योंकि इसे कानून के अनुसार दर्ज नहीं किया गया है। विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि उक्त मृत्युकालीन बयान को दर्ज करने की तारीख में ओवरराइटिंग है और यह नहीं कहा जा सकता है कि यह 10.12.2018 को ही दर्ज किया गया था।

6. विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा है कि वर्तमान मामले में भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 113-बी के तहत कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता है क्योंकि मृतक के साथ आवेदक का विवाह वर्ष 2010 में हुआ था ऐसे में अपराध की तारीख तक सात साल से अधिक की अवधि बीत चुकी है। यहां तक कि भा.दं.सं. की धारा 498-ए, 323, 302 और दहेज निषेध अधिनियम की धारा 3/4 के तहत आरोप पत्र भी दायर किया गया है। विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि मुकदमा कछुआ चाल से चल रहा है और मुकदमा जल्द पूरा होने की कोई संभावना नहीं है। जिस सहायक उप-निरीक्षक ने उक्त मृत्यु पूर्व बयान दर्ज किया है, उसकी जांच अधिकारी द्वारा जांच नहीं की गई है और उसे न्यायालय में भी पेश नहीं किया गया है।

7. विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि उत्तम बनाम महाराष्ट्र राज्य मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रकार राय दी है:-

7. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रचारित किया गया था कि एक बार जब उच्च न्यायालय ने मृतक के लिखित मृत्युकालीन बयानों को इस आधार पर खारिज कर दिया था कि उक्त बयानों को दर्ज करने में कई स्पष्ट खामियां थीं, तो उच्च न्यायालय के पास मृतक द्वारा कथित तौर पर पीडब्लू-2 और पीडब्लू-12 को दिए गए मौखिक बयानों पर भरोसा करने का कोई पर्याप्त कारण नहीं था जो समान रूप से अविश्वसनीय थे और इसलिए, मृतक के लिखित मृत्युकालीन बयानों के समान ही उनका भी हश्र होना चाहिए था। अपनी दलील को पुष्ट करने के लिए कि जहां कई मृत्युकालीन बयान हैं और प्रत्येक एक दूसरे के साथ असंगत है, तो उक्त सभी मृत्युकालीन बयानों को बिना किसी हिचकिचाहट के खारिज कर दिया जाना चाहिए, विद्वान अधिवक्ता ने नल्लापति सिवैया बनाम एसडीओ [नल्लापति सिवैया बनाम एसडीओ, (2007) 15 एससीसी 465: (2010) 3 एससीसी (सीआरआई) 560] का हवाला दिया है। डॉक्टर की अनुपस्थिति में परिवार के किसी सदस्य को दिए गए मौखिक मृत्यु पूर्व बयान की अविश्वसनीयता पर अरविंद सिंह बनाम बिहार राज्य [अरविंद सिंह बनाम बिहार राज्य, (2001) 6 एससीसी 407: 2001 एससीसी (सीआरआई) 1148], अरुण भानुदास पवार बनाम महाराष्ट्र राज्य [अरुण भानुदास पवार बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2008) 11 एससीसी 232: (2009) 1 एससीसी (सीआरआई) 112] और पूनम बाई बनाम छत्तीसगढ़ राज्य (पूनम बाई बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, (2019) 6 एससीसी 145: (2019) 2 एससीसी (सीआरआई) 754] का हवाला देकर सवाल उठाया गया था।

8. दूसरी ओर, प्रतिवादी महाराष्ट्र राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री सचिन पाटिल ने अपनी सामान्य दृढ़ता के साथ, दूसरे पक्ष द्वारा दिए गए तर्को का खंडन किया और कहा कि दोनों लिखित मृत्युकालीन बयान, पहला जांच अधिकारी द्वारा अपराह्न 3.20 बजे दर्ज किया गया और दूसरा उसी दिन शाम 4.30 बजे एसईएम (पीडब्लू-9) द्वारा दर्ज किया गया, सुसंगत थे और मृतिका ने स्पष्ट रूप से कहा था

कि अपीलकर्ता ने ही उसे आग लगाई थी। उन्होंने मृतक के बयान दर्ज होने से पहले उपस्थित चिकित्सक (पीडब्लू-10) द्वारा उसके संबंध में जारी किए गए दो फिटनेस प्रमाणपत्रों का भी हवाला दिया और तर्क दिया कि उक्त प्रमाणपत्रों से पता चलता है कि वह मानसिक रूप से स्वस्थ स्थिति में थी और गवाही देने में सक्षम थी। इसी तरह, बाद में मृतिका द्वारा उसके पिता (पीडब्लू-2) और मध्यस्थ (पीडब्लू-12) की उपस्थिति में दिए गए मौखिक मृत्युकालीन बयानों को भी पीड़िता के संस्करण के अनुरूप और विश्वसनीयता के योग्य बताया गया। जिस तरीके से मृतक को आग लगाई गई थी, उसके विवरण को सुसंगत बताया गया था और यह तर्क दिया गया था कि अभियोजन पक्ष के गवाहों की जिरह से उपरोक्त पहलू पर अपीलकर्ता के पक्ष में कुछ भी अनुकूल नहीं निकला। विद्वान राज्य अधिवक्ता ने यह आग्रह करने के लिए मृतक और अपीलकर्ता के कपड़ों के संबंध में रासायनिक विश्लेषक रिपोर्ट का हवाला दिया जो मौके से जब्त किए गए थे कि इससे अभियोजन पक्ष के संस्करण को विश्वसनीयता मिलती है कि अपीलकर्ता ने मृतक पर मिट्टी का तेल डाला था और उसे आग लगा दी थी।

9. अपनी दलील के समर्थन में कि जहां मृत्युकालीन बयान विरोधाभासी हैं, न्यायालय एक को स्वीकार कर सकता है और दूसरे को तब तक खारिज कर सकता है जब तक वह संतुष्ट है कि मृतक का मूल बयान सुसंगत रहा है, विद्वान राज्य अधिवक्ता ने उ.प्र. राज्य बनाम वीरपाल [उत्तर प्रदेश राज्य] बनाम वीरपाल, (2022) 4 एससीसी 741: (2022) 2 एससीसी (सीआरआई) 224], रिज़ान बनाम छत्तीसगढ़ राज्य [रिज़ान बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, (2003) 2 एससीसी 661: 2003 एससीसी (सीआरआई) 664] और भगवान तुकाराम डांगे बनाम महाराष्ट्र राज्य [भगवान तुकाराम डांगे बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2014) 4 एससीसी 270: (2014) 2 एससीसी (सीआरआई) 302] का हवाला दिया। त्रिमुख मारोती किरकन बनाम महाराष्ट्र राज्य [त्रिमुख मारोती किरकन बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2006) 10 एससीसी 681: (2007) 1 एससीसी (सीआरआई) 80] के फैसले का हवाला देते हुए कहा गया कि यह बताने की जिम्मेदारी आरोपी पर बनी हुई है कि मौत सार्वजनिक नजरों से दूर घर की गोपनीयता में कैसे हुई थी।

10. हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई दलीलों पर विचारपूर्वक विचार किया है और अभिलेख का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है। वर्तमान मामले में पूरा मुद्दा मृतक द्वारा मृत्यु पूर्व दिए गए बयानों की स्वीकार्यता और साक्ष्य मूल्य पर निर्भर करता है, जिनमें से दो लिखित रूप में थे और पीडब्लू-9 और पीडब्लू-14 द्वारा दर्ज किए गए थे और अन्य दो मौखिक थे और मृतक द्वारा पीडब्लू-2 और पीडब्लू-12 को संप्रेषित किए गए थे।

11. मृत्युपूर्व घोषणा वह अंतिम बयान है जो किसी व्यक्ति द्वारा उसकी आसन्न मृत्यु के कारण या उस स्थिति के परिणामस्वरूप उत्पन्न परिस्थितियों के बारे में दिया जातां है, जब घोषणाकर्ता इस तथ्य से अवगत होता है कि उसके जीवित रहने की संभावना लगभग शून्य है। इस धारणा पर कि ऐसे महत्वपूर्ण चरण में, एक व्यक्ति से सच बोलने की उम्मीद की जाएगी, अदालतों ने ऐसे बयान की सत्यता को बहुत

महत्व दिया है। साक्ष्य अधिनियम, 1872 (संक्षेप में "साक्ष्य अधिनियम") की धारा 32 में कहा गया है कि जब किसी व्यक्ति द्वारा मृत्यु के कारण के बारे में या किसी ऐसी परिस्थिति के बारे में बयान दिया जाता है जिसके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हुई, तो ऐसे मामलों में जिससे उस व्यक्ति की मृत्यु का कारण प्रश्न में आता है, मृत पीड़ित द्वारा गवाह को दिया गया ऐसा बयान, मौखिक या लिखित रूप से, एक प्रासंगिक तथ्य है और साक्ष्य में स्वीकार्य है। उल्लेखनीय है कि उक्त प्रावधान साक्ष्य अधिनियम की धारा 60 में निहित सामान्य नियम का अपवाद है कि "सुनवाई साक्ष्य अस्वीकार्य है" और केवल जब ऐसा साक्ष्य प्रत्यक्ष हो और जिरह के माध्यम से मान्य हो, तो उसे भरोसेमंद माना जाता है।

12. कुंडुला बाला सुब्रह्मण्यम बनाम आंध्र प्रदेश राज्य [कुंडुला बाला सुब्रह्मण्यम बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, (1993) 2 एससीसी 684: 1993 एससीसी (सीआरआई) 655] में, इस न्यायालय ने निम्नलिखित शब्दों में मृत्युपूर्व घोषणा के महत्व पर प्रकाश डाला थाः (एससीसी पृष्ठ 697, पैरा 18)

"18. साक्ष्य अधिनियम की धारा 32 (1) सामान्य नियम का अपवाद है कि सुनी- सुनाई बातों का साक्ष्य स्वीकार्य साक्ष्य नहीं है और जब तक साक्ष्य को जिरह द्वारा परीक्षण नहीं किया जाता है, तब तक वह श्रेय देने योग्य नहीं होता है। धारा 32 के तहत, जब किसी व्यक्ति द्वारा मृत्यु के कारण या किसी ऐसी परिस्थिति के बारे में बयान दिया जाता है जिसके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हुई है, ऐसे मामलों में जिसमें उस व्यक्ति की मृत्यु का कारण प्रश्न में आता है, मृतक द्वारा गवाह को दिया गया ऐसा मौखिक या लिखित बयान एक प्रासंगिक तथ्य है और साक्ष्य में स्वीकार्य है। मृतक द्वारा दिया गया बयान, जिसे मृत्युपूर्व बयान कहा जाता है, उस श्रेणी में आता है, बशर्ते कि यह मृतक द्वारा स्वस्थ मानसिक स्थिति में दिया गया हो। अपनी मृत्यु के कगार पर खड़े व्यक्ति द्वारा मृत्यु पूर्व दिया गया बयान एक विशेष पवित्रता रखता है क्योंकि उस गंभीर क्षण में, किसी व्यक्ति द्वारा कोई भी असत्य बयान देने की संभावना नहीं होती है। आसन्न मृत्यु की छाया स्वयं ही मृतक द्वारा उसकी मृत्यु के कारणों या परिस्थितियों के संबंध में दिए गए बयान की सत्यता की गारंटी है। इसलिए, मृत्यु पूर्व दिए गए बयान को साक्ष्य के रूप में लगभग पवित्र दर्जा प्राप्त है, क्योंकि यह मृतक पीड़ित के मुंह से आता है। एक बार जब मरने वाले व्यक्ति का बयान और उसकी गवाही देने वाले गवाहों के साक्ष्य अदालतों की सावधानीपूर्वक जांच की कसौटी पर खरे उतर जाते हैं, तो यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण और विश्वसनीय सबूत बन जाता है और यदि न्यायालय इस बात से संतुष्ट है कि मृत्यु पूर्व दिया गया बयान सत्य है और किसी भी प्रकार के लांछन से मुक्त है, तो ऐसा मृत्यु पूर्व बयान अपने आप में, किसी भी पुष्टि की तलाश किए बिना भी दोषसिद्धि दर्ज करने के लिए पर्याप्त हो सकता है..."

8. विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा है कि तथाकथित मृत्युकालीन बयान, जो जमानत आवेदन के साथ दायर हलफनामे में अनुबंध संख्या 4 के रूप में संलग्न है, इलाज करने वाले डॉक्टर के किसी भी चिकित्सा प्रमाण पत्र द्वारा समर्थित नहीं है। विद्वान अधिवक्ता ने बताया कि मृतक लगभग 90 प्रतिशत से अधिक जल

चुका था इसलिए बात करने की स्थिति में नहीं था। मृतक द्वारा किसी भी व्यक्ति को दिया गया उक्त बयान कतई स्वीकार्य नहीं है।

9. विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि आवेदक की कारावास की अवधि पर भी विचार किया जाना चाहिए क्योंकि वह 14.12.2018 से, यानी चार साल से अधिक समय से जेल में बंद है। इस प्रकार विद्वान अधिवक्ता ने भारत संघ बनाम के.ए. नजीब मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर बहुत अधिक भरोसा किया है जिसमें शीर्ष न्यायालय ने यह टिप्पणी की है कि "हम इस तथ्य से अवगत हैं कि प्रतिवादी के खिलाफ लगाए गए आरोप गंभीर हैं और सामाजिक सद्भाव के लिए गंभीर खतरा हैं। यदि यह मामला दहलीज पर होता, तो हम प्रतिवादी की प्रार्थना को सिरे से खारिज कर देते। हालाँकि, उनके द्वारा हिरासत में बिताई गई अवधि की लंबाई और मुकदमे के जल्द पूरा होने की संभावना को ध्यान में रखते हुए, उच्च न्यायालय के पास जमानत देने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं बचा है।'

10. विद्वान अधिवक्ता ने काका सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य 3 मामले में पारित शीर्ष न्यायालय के फैसले पर भी भरोसा जताया है जिसके तहत शीर्ष न्यायालय द्वारा यह माना गया है कि "जहां मृतक बेहोश था और कभी भी मृत्यु पूर्व बयान नहीं दे सका, इसके संबंध में साक्ष्य को खारिज कर दिया जाना चाहिए"।

11. आवेदक की ओर से उसके खिलाफ लगाए गए आरोपों की मिथ्याता को प्रदर्शित करने के लिए कई अन्य दलीलें दी गई हैं। अधिवक्ता के अनुसार, जिन परिस्थितियों के कारण आवेदक को गलत फंसाया गया, उन पर भी विस्तार से चर्चा की गई है। यह भी तर्क दिया गया कि आवेदक का कोई आपराधिक इतिहास नहीं है। यदि आवेदक को जमानत पर रिहा किया जाता है, तो वह जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं करेगा।

राज्य के लिएः

12. इसके विपरीत, अपर शासकीय अधिवक्ता ने इस आधार पर जमानत अर्जी का पुरजोर विरोध किया है कि केस डायरी के साथ एक ज्ञापन संलग्न है और पीडब्लू 2 द्वारा साबित किया गया है जिसमें कहा गया है कि मृत व्यक्ति के बयान की वीडियोग्राफिक रिकॉर्डिंग थी। उक्त ज्ञापन प्रदर्श क-5 के रूप में प्रमाणित है। अपर शासकीय अधिवक्ता ने कहा है कि अभियोजन पक्ष द्वारा यह कहीं नहीं कहा गया है कि एएसआई द्वारा दर्ज किया गया बयान मृत्युपूर्व बयान है, लेकिन कहा गया है कि एएसआई के समक्ष और यहां तक कि इलाज करने वाले डॉक्टरों, अर्थात् डॉ. शाहबाज मंसूरी और डॉ. अल्फाराज मोहम्मद के समक्ष दिया गया उक्त बयान मृत्यु पूर्व दिए गए बयान के समान है, क्योंकि उन्हें उनके आधिकारिक कर्तव्य के दौरान विधिवत दर्ज किया गया है। विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने आगे कहा है कि दोनों मृत्युपूर्व बयान हालांकि अलग-अलग भाषा में हैं, लेकिन आवेदक के खिलाफ कमोबेश एक जैसे आरोप हैं। मृत्यु पूर्व बयान के समान उक्त कथन की सत्यता का अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि केवल आवेदक को ही फंसाया गया है, उसके परिवार के अन्य सदस्यों को नहीं, हालांकि प्राथमिकी चार आरोपियों के खिलाफ दर्ज की गई है। विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने कहा है कि गुरु तेग बहादुर अस्पताल में एएसआई

द्वारा दर्ज किए गए उक्त बयान हिंदी में लिए गए थे और डॉक्टर द्वारा अंग्रेजी में दर्ज किए गए थे। विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने कहा है कि उक्त मृत्युपूर्व बयानों में कोई भौतिक विसंगतियां नहीं हैं। शीर्ष न्यायालय का यह स्थापित कानून है कि दोषसिद्धि केवल मृत्युपूर्व बयान के आधार पर दर्ज की जा सकती है।

विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने श्रीमती पनीबेन बनाम गुजरात राज्य मामले में शीर्ष न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है, जिसमें सभी प्रासंगिक मामले के कानून को ध्यान में रखा गया है और यह राय दी गई है कि न तो कानून का नियम है और न ही विवेक का कि मृत्युपूर्व बयान पर बिना पुष्टि के कार्रवाई नहीं की जा सकती है। विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने कहा है कि केवल इसलिए कि मृत्यु पूर्व बयान एक संक्षिप्त बयान है, इसे खारिज नहीं किया जाना चाहिए। इसके विपरीत, कथन की संक्षिप्तता ही सत्यता की गारंटी देती है।

निष्कर्षः

13. विवाद की एकमात्र जड़ यह है कि एएसआई और इलाज करने वाले डॉक्टरों को दिया गया मृतक का बयान मृत्युपूर्व बयान की कसौटी पर खरा उतरता है या नहीं।

14. पीड़िता एक युवा महिला थी जिसने प्रथम सूचना रिपोर्ट में कथित तौर पर जलने की चोटों के कारण दम तोड़ दिया। यह तथ्य विरोधी गवाहों के बयानों और ऑटोप्सी रिपोर्ट से साबित होता है।

15. कहा जाता है कि मृतक का बयान एएसआई द्वारा दर्ज किया गया था जिसे आवेदक के अधिवक्ता द्वारा दायर किया गया था और इस आधार पर विवादित किया गया है कि इसके लेखक द्वारा लिखी गई तारीख में ओवरराइटिंग है।

16. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने मृतक के एक अन्य बयान पर भरोसा जताया है जिसे इलाज करने वाले दो डॉक्टरों द्वारा दर्ज किया गया है और मृतक के परिवार के दो सदस्यों द्वारा विधिवत हस्ताक्षर किए गए हैं। दोनों कथन सारगर्भित और संक्षिप्त हैं।

17. मृत्यु पूर्व दिया गया बयान अफवाह साक्ष्य है। यह स्थापित कानून है कि यद्यपि मृत्यु पूर्व दिए गए बयान को काफी महत्व दिया जाता है, लेकिन यह ध्यान देने योग्य है कि आरोपी के पास जिरह करने की कोई शक्ति नहीं है। सत्य को उद्घाटित करने के लिए ऐसी शक्ति आवश्यक है जैसा कि शपथ का दायित्व हो सकता है। यही कारण है कि न्यायालय इस बात पर भी जोर देता है कि मृत्युपूर्व बयान इस प्रकार का होना चाहिए कि न्यायालय को उसकी सत्यता पर पूरा भरोसा हो। न्यायालय को इस बात का ध्यान रखना होगा कि मृतक का बयान ट्यूशन या प्रोत्साहन या कल्पना का परिणाम नहीं था।

निर्णय विधिः

18. वरिकुप्पल श्रीनिवास बनाम आ.प्र. राज्य के ऐतिहासिक फैसले में शीर्ष न्यायालय ने स्पष्ट रूप से इस प्रकार राय दी है:

"7. यह एक ऐसा मामला है जहां परीक्षण अदालत द्वारा अभियुक्त की सजा का आधार मौत से पहले दिया गया बयान था। वह स्थिति जिसमें कोई व्यक्ति मृत्यु शय्या पर हो, अत्यधिक गंभीर,

शान्त और गम्भीर होना, कानून में उसके कथन की सत्यता को स्वीकार करने का कारण है। यही कारण है कि शपथ और जिरह की आवश्यकताओं को समाप्त कर दिया गया है। इसके अलावा यदि मृत्यु पूर्व बयान को बाहर रखा जाना चाहिए तो इससे न्याय की विफलता होगी क्योंकि किसी गंभीर अपराध में आम तौर पर पीड़ित ही एकमात्र चश्मदीद गवाह होता है, इसलिए बयान को बाहर करने से न्यायालय के पास सबूतों का कोई अंश नहीं बचेगा।

8. यद्यपि मृत्यु पूर्व दिए गए बयान को काफी महत्व दिया जाता है, लेकिन यह ध्यान देने योग्य है कि आरोपी के पास जिरह करने की कोई शक्ति नहीं है। सत्य को उद्घाटित करने के लिए ऐसी शक्ति आवश्यक है जैसा कि शपथ का दायित्व हो सकता है। यही कारण है कि न्यायालय इस बात पर भी जोर देता है कि मृत्युपूर्व बयान इस प्रकार का होना चाहिए कि न्यायालय को उसकी सत्यता पर पूरा भरोसा हो। न्यायालय को इस बात का ध्यान रखना होगा कि मृतक का बयान ट्यूशन या प्रोत्साहन या कल्पना का परिणाम नहीं था। न्यायालय को इस बात से भी संतुष्ट होना चाहिए कि हमलावर को देखने और पहचानने का स्पष्ट अवसर मिलने के बाद मृतक की मानसिक स्थिति ठीक थी। एक बार जब न्यायालय संतुष्ट हो जाता है कि घोषणा सत्य और स्वैच्छिक थी, तो निस्संदेह, वह बिना किसी अतिरिक्त पुष्टि के अपनी सजा को आधार बना सकता

है। यह कानून के पूर्ण नियम के रूप में निर्धारित नहीं किया जा सकता है कि मरने से पहले दिया गया बयान दोषसिद्धि का एकमात्र आधार नहीं बन सकता जब तक कि इसकी पुष्टि न हो जाए। पुष्टिकरण की आवश्यकता वाला नियम केवल विवेक का नियम है।"

19. मुन्नू राजा एवं अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य में सर्वोच्च न्यायालय ने राय दी है कि "न तो कानून का नियम है और न ही विवेक का कि मृत्यु पूर्व दिए गए बयान पर बिना पुष्टि के कार्रवाई नहीं की जा सकती।"20. के. रामचंद्र रेड्डी और अन्य बनाम लोक अभियोजक में शीर्ष अदालत ने कहा है कि "न्यायालय को मृत्यु पूर्व दिए गए बयान की सावधानीपूर्वक जांच करनी चाहिए और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि बयान ट्यूशन, प्रोत्साहन या कल्पना का परिणाम नहीं है। मृतक को हमलावरों को देखने और पहचानने का अवसर मिला और वह घोषणा करने के लिए उपयुक्त स्थिति में था।'

21. सर्वोच्च न्यायालय ने सूरजदेव ओझा और अन्य बनाम बिहार राज्य मामले में स्पष्ट रूप से कहा है कि "समान रूप से, केवल इसलिए कि यह एक संक्षिप्त बयान है, इसे खारिज नहीं किया जाना चाहिए। इसके विपरीत, बयान की संक्षिप्तता ही सत्य की गारंटी देती है।"

22. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम मदन मोहन और अन्य में सर्वोच्च न्यायालय का एक और महत्वपूर्ण निर्णय स्पष्ट करता है कि "जहां अभियोजन पक्ष का संस्करण मृत्यु पूर्व बयान में दिए गए संस्करण से भिन्न है, वहां उक्त बयान पर कार्रवाई नहीं की जा सकती है।"

23. बेताल सिंह बनाम म.प्र. राज्य' मामले में शीर्ष न्यायालय ने स्पष्ट रूप से माना है कि दुल्हन को जलाने के मामले में, एक पुलिस अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए मृत्यु पूर्व बयान

पर कार्रवाई की जा सकती है, यदि वह सत्य, सुसंगत, संगत और मृतक को ऐसा बयान देने के लिए प्रेरित करने के किसी भी प्रयास से मुक्त पाया जाता है। पारस यादव और अन्य बनाम बिहार राज्य और उत्तर प्रदेश राज्य बनाम चेत राम और अन्य में भी यही विचार व्यक्त किया गया था।

24. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाया गया एक और मुद्दा यह है कि यदि ऐसा माना जाता है तो उक्त मृत्युकालीन बयान प्रश्नोत्तर के रूप में नहीं है। उक्त तर्क को बल नहीं मिलता है क्योंकि शीर्ष न्यायालय ने कर्नाटक राज्य बनाम शरीफ के अपने निर्णय में कहा है कि यदि मृत्युकालीन घोषणा को प्रश्न-उत्तर के रूप में दर्ज नहीं किया गया है तो उसे केवल इसी आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता है। कथात्मक रूप में दर्ज किया गया बयान अधिक स्वाभाविक है और घटना का वैसा ही रूप देता है जैसा पीड़ित द्वारा महसूस किया गया है।

25. दोनों बयानों उर्फ़ "मृत्युपूर्व घोषणा" के अवलोकन से यह पता चलता है कि सामग्री लगभग समान है, हालांकि एएसआई ने इसे स्थानीय हिंदी में दर्ज किया है और इलाज करने वाले डॉक्टरों ने इसे अंग्रेजी में दर्ज किया है। अभिलेख पर ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे पता चले कि पुलिस या इलाज करने वाले डॉक्टरों की आवेदक के साथ कोई दुश्मनी थी। जांच अधिकारी ने उन आरोपियों को काफी हद तक बरी कर दिया है, जिनका नाम हालांकि एफआईआर में था, लेकिन मृत व्यक्ति के बयानों में उनके नाम का उल्लेख नहीं किया गया था, जो मृत्यु से पहले दिए गए बयान के समान है। यहां पुलिस और इलाज करने वाले डॉक्टरों की ओर से निष्पक्ष को हमलावरों को देखने और पहचानने का अवसर मिला और वह घोषणा करने के लिए उपयुक्त स्थिति में था।'

अस्वीकरण:- अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

21. सर्वोच्च न्यायालय ने सूरजदेव ओझा और अन्य बनाम बिहार राज्य मामले में स्पष्ट रूप से कहा है कि "समान रूप से, केवल इसलिए कि यह एक संक्षिप्त बयान है, इसे खारिज नहीं किया जाना चाहिए। इसके विपरीत, बयान की संक्षिप्तता ही सत्य की गारंटी देती है।"

22. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम मदन मोहन और अन्य में सर्वोच्च न्यायालय का एक और महत्वपूर्ण निर्णय स्पष्ट करता है कि "जहां अभियोजन पक्ष का संस्करण मृत्यु पूर्व बयान में दिए गए संस्करण से भिन्न है, वहां उक्त बयान पर कार्रवाई नहीं की जा सकती है।"

23. बेताल सिंह बनाम म.प्र. राज्य' मामले में शीर्ष न्यायालय ने स्पष्ट रूप से माना है कि दुल्हन को जलाने के मामले में, एक पुलिस अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए मृत्यु पूर्व बयान पर कार्रवाई की जा सकती है, यदि वह सत्य, सुसंगत, संगत और मृतक को ऐसा बयान देने के लिए प्रेरित करने के किसी भी प्रयास से मुक्त पाया जाता है। पारस यादव और अन्य बनाम बिहार राज्य और उत्तर प्रदेश राज्य बनाम चेत राम और अन्य में भी यही विचार व्यक्त किया गया था।

24. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाया गया एक और मुद्दा यह है कि यदि ऐसा माना जाता है तो उक्त मृत्युकालीन बयान प्रश्नोत्तर के रूप में नहीं है। उक्त तर्क को बल नहीं मिलता है क्योंकि शीर्ष न्यायालय ने कर्नाटक राज्य बनाम शरीफ के अपने निर्णय में कहा है कि यदि मृत्युकालीन घोषणा को प्रश्न-उत्तर के रूप में दर्ज नहीं किया गया है तो उसे केवल इसी आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता है। कथात्मक रूप में दर्ज किया गया बयान अधिक स्वाभाविक है और घटना का वैसा ही रूप देता है जैसा पीड़ित द्वारा महसूस किया गया है।

25. दोनों बयानों उर्फ़ "मृत्युपूर्व घोषणा" के अवलोकन से यह पता चलता है कि सामग्री लगभग समान है, हालांकि एएसआई ने इसे स्थानीय हिंदी में दर्ज किया है और इलाज करने वाले डॉक्टरों ने इसे अंग्रेजी में दर्ज किया है। अभिलेख पर ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे पता चले कि पुलिस या इलाज करने वाले डॉक्टरों की आवेदक के साथ कोई दुश्मनी थी। जांच अधिकारी ने उन आरोपियों को काफी हद तक बरी कर दिया है, जिनका नाम हालांकि एफआईआर में था, लेकिन मृत व्यक्ति के बयानों में उनके नाम का उल्लेख नहीं किया गया था, जो मृत्यु से पहले दिए गए बयान के समान है। यहां पुलिस और इलाज करने वाले डॉक्टरों की ओर से निष्पक्ष कार्रवाई की उम्मीद जरूर उठनी चाहिए।

26. जमानत आवेदन पर फैसला सुनाने के चरण में यह न्यायालय साक्ष्य की गुणवत्ता या मात्रा पर गौर करने के लिए इच्छुक नहीं है, बल्कि यह देखने के लिए इच्छुक है कि क्या अपराधी ने अपराध किया है और वह जमानत का हकदार है या नहीं।

27. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद, अभिलेख पर मौजूद साक्ष्यों को देखने के बाद और उपरोक्त निर्णयों और इस तथ्य को भी ध्यान में रखते हुए कि जिस स्थान पर वे दोनों रहते थे, उसके परिसर के भीतर आवेदक द्वारा एक युवा महिला को आग लगा दी गई थी, मुझे यह आवेदक को जमानत देने के लिए उपयुक्त मामला नहीं लगता।

28. जमानत आवेदन गुणहीन पाया गया है और तदनुसार, खारिज किया जाता है।

29. हालाँकि, आवेदक की हिरासत की अवधि को देखते हुए, यह निर्देशित किया जाता है कि परीक्षण न्यायालय के समक्ष लंबित उपरोक्त मामले का निर्णय शीघ्रता से किया जाए, अधिमानतः इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तारीख से एक वर्ष की अवधि के भीतर या विनोद कुमार बनाम पंजाब राज्य और हुसैन और अन्य बनाम भारत संघ के मामलों में शीर्ष न्यायालय के हाल के निर्णयों में निर्धारित सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए जितनी जल्दी हो सके, यदि कोई कानूनी बाधा नहीं है।

30. यह स्पष्ट किया जाता है कि यहां की गई टिप्पणियां जमानत आवेदन के निपटान से संबंधित पक्षों द्वारा लाए गए तथ्यों तक ही सीमित हैं और उक्त टिप्पणियों का मुकदमे के दौरान मामले की योग्यता पर कोई असर नहीं होगा।

(2023) 3 ILRA 1119

अपील क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 28.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट

क्रिमिनल मिस्लेनियस एंटीसिपेटरी बेल अप्लीकेशन सं. 25088 वर्ष 2021

विपिन ..आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ...प्रतिपक्षी

आवेदक की ओर से अधिवक्ता: श्री जितेन्द्र कुमार यादव, श्री शम्स उज जमान (ए.सी.)

प्रतिपक्षी की ओर से अधिवक्ता: जी.ए.

अपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या 25088 / 2021

(A) - आपराधिक कानून - विधि सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 - अध्याय IV - विधि सेवाओं का अधिकार - धारा 12 - विधि सेवाएं देने के लिए मानदंड, धारा 12(e) - "अयोग्य आवश्यकता" - जमानत का अधिकार कानून से प्राप्त होता है लेकिन इसे संवैधानिक निगरानी से अलग नहीं किया जा सकता - विधि सहायता सभी नागरिकों को न्याय प्रदान करने के उद्देश्य को सुरक्षित रखने का एक अनिवार्य साधन है - एक विवाद और एक आपराधिक वाद में भिन्नता है, जहां कैदी की व्यक्तिगत स्वतंत्रता जुड़ी होती है - जमानत की सुनवाई में अधिवक्ता की अनुपस्थिति कैदी-आवेदक को उस प्रक्रिया के परिणाम को प्रभावित करने की सभी क्षमता से वंचित कर देती है, जहां उसकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता दांव पर है - जमानत वाद का निर्णय करते समय न्यायालय को कैदियों के विधि सहायता के अधिकार के प्रति सचेत रहना चाहिए, और उनकी सुनवाई के अधिकार के प्रति भी सजग रहना चाहिए - यदि कैदी के अधिवक्ता की अनुपस्थिति होती है, तो न्यायालय कैदी का प्रतिनिधित्व करने के लिए एक मित्र न्यायाधीश (amicus curiae) नियुक्त कर सकती है और जमानत की सुनवाई आगे बढ़ा सकती है। (पैराग्राफ - 5,8,9,14,15,20)

आवेदक के पास 1 किलोग्राम और 100 ग्राम चरस प्राप्त हुआ - पुलिस अधिकारियों की योग्यता को बढ़ावा देना - बरामदगी के लिए कोई स्वतंत्र गवाह नहीं - प्रतिबंधित पदार्थ की मात्रा को बढ़ा चढ़ा कर बताया गया - कोई विश्वसनीय फोरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं की गई - NDPS अधिनियम का उल्लंघन करते हुए खोज और जब्ती की गई - आपराधिक इतिहास समझाया गया - दो अन्य वाद में झूठा आरोप लगाया गया - वाद बहुत धीमी गति से चल रहा है - कानून का पालन करने वाला नागरिक - पुलिस जांच में सहयोग किया - देरी के लिए जिम्मेदार नहीं - भागने का कोई खतरा नहीं - हमेशा अदालत की प्रक्रियाओं में सहयोग किया - जमानत आवेदन - अधिवक्ता की अनुपस्थिति के कारण खारिज किया गया। (पैराग्राफ -28)

निर्णय:- अधिवक्ता की अनुपस्थिति के कारण जमानत आवेदन का खारिज होना अस्वीकार्य है, क्योंकि यह विधि सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 के तहत कैदियों के विधि सहायता के

अधिकार के विरुद्ध है और भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत कैदियों के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन है। आवेदक को जमानत का अधिकार है। (पैराग्राफ - 19,29)

जमानत आवेदन स्वीकृत। (E-7)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. अजीत चौधरी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2021 (1) ADJ 559
2. जुनैद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2021 (6) ADJ 511
3. अनिल गौड़ @ सोनू @ सोनू तोमर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2022 SCC ऑनलाइन All 623
4. गोबरधन सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2013 SCC ऑनलाइन All 13141
5. क्वीन एम्प्रेस बनाम पोहपी एवं अन्य, 1891 SCC ऑनलाइन All 1
6. खैली एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 1981 सप्लीमेंट SCC 75
7. कबीर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 1981 सप्लीमेंट SCC 76

<u>माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट</u>

1. मामले को संशोधित कॉल में लिया गया है। जमानत अर्जी पर जोर देने के लिए आवेदक की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ। आवेदक के अधिवक्ता का नाम वाद सूची में दर्शाया गया है।

2. आदेश पत्र से पता चलता है कि आवेदक के अधिवक्ता अतीत में सुनवाई की लगातार तारीखों पर इस अदालत के समक्ष पेश नहीं हुए हैं। इससे पहले कोर्ट ने विचारण न्यायालय से स्टेटस रिपोर्ट के साथ-साथ जिला विधिक सेवा प्राधिकरण से रिपोर्ट मांगी थी।

3. सवाल उठता है कि क्या जमानत आवेदन को गैर-अभियोजन के लिए खारिज कर दिया जाना चाहिए या आवेदक का प्रतिनिधित्व करने के लिए एक एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) नियुक्त किया जाना चाहिए और मामले की सुनवाई गुण-दोष के आधार पर की जानी चाहिए।

4. श्री शम्स उज़ ज़मान, अधिवक्ता को आवेदक का प्रतिनिधित्व करने और न्यायालय की सहायता करने के लिए एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) के रूप में नियुक्त किया जाता है।

"जेल और अधिकारी प्रत्येक व्यक्ति की गरिमा को लूटने की साजिश रचते हैं" 1 .

5. जमानत का अधिकार क़ानून से लिया गया है लेकिन इसे संवैधानिक निरीक्षण से अलग नहीं किया जा सकता है।

6. अच्छे अधिकार ने लंबे समय से भारत के संविधान द्वारा सुनिश्चित मौलिक अधिकारों के चार्टर में जमानत मांगने के लिए एक अभियुक्त के अधिकार को मजबूत किया है। जमानत के अधिकार के संवैधानिक कानून एंकरों पर अधिक विस्तृत चर्चा जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 से प्रवाहित होती है, अजीत चौधरी बनाम यूपी राज्य, जुनैद बनाम यूपी राज्य और अन्य 3 और अनिल गौड़ @ सोनू @ सोनू तोमर बनाम यूपी 4 राज्य में देखी जा सकती है।

7. जमानत के अधिकार के संवैधानिक आधार भी निष्पक्ष सुनवाई के अधिकार को अपने दायरे में लाते हैं।

8. सभी नागरिकों के लिए न्याय के प्रस्तावना उद्देश्य को सुरक्षित करने के लिए कानूनी सहायता एक अनिवार्य साधन है। समान न्याय प्रदान करने की राष्ट्रीय क्षमता कानूनी सहायता

प्रदान करने की संस्थागत क्षमता से कम है। कानूनी सेवा प्राधिकरण अधिनियम के तहत विधायिका द्वारा वैधानिक अधिकार के रूप में निहित होने से पहले ही संवैधानिक अदालतों द्वारा कानूनी सहायता को मौलिक अधिकार के रूप में बढ़ा दिया गया था। [कानूनी सहायता के मुद्दे पर और कानूनी सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 की योजना अनिल गौर (उपरोक्त) देखें]।

9. विधिक सेवाओं की हकदारी विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 के अध्याय IV में उपबंधित है। विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 की धारा 12 में विधिक सेवाएं प्रदान करने के लिए मानदंड अंतवष्ट हैं। अधिनियम की धारा 12 (ई) विवाद के लिए प्रासंगिक है और नीचे उद्धृत की गई है: -

धारा 12 (ई) - एक व्यक्ति जो वंचित परिस्थितियों में चाहता है जैसे कि बड़े पैमाने पर आपदा, जातीय हिंसा, जाति अत्याचार, बाढ़, सूखा, भूकंप या औद्योगिक आपदा का शिकार होना।

10. मुफ्त कानूनी सहायता प्रदान करने के प्रावधान का दायरा अनिल गौर (उपरोक्त) में इस न्यायालय के समक्ष विचार के लिए उत्पन्न हुआ और इसका विश्लेषण इस प्रकार किया गया:

"40. धारा 12 (ई) के तहत कानूनी सेवाएं देने के लिए पात्रता मानदंड व्यापक आधारित है।

प्रावधान की चौड़ाई सामाजिक ढेर के निचले हिस्से में अंतिम व्यक्ति तक पहुंचने के विधायी इरादे को प्रकट करती है। इस धारा में उन व्यक्तियों को विधिक सहायता प्रदान करने की परिकल्पना की गई है जो अभाव की परिस्थितियों के कारण वंचन और बहिष्करण से पीड़ित हैं, जो उनके द्वारा सृजित नहीं की गई हैं।

प्रावधान के तहत, "अवांछनीय आवश्यकता" की परिस्थितियों का सामना करने वाले व्यक्ति कानूनी सेवाओं के हकदार हो जाते हैं। वाक्यांश "अवांछनीय इच्छा" प्रकृति में सामान्य है। शब्द "जैसे" अनुभाग में वर्णित "अवांछनीय इच्छा" के उदाहरणों से पहले है। प्रावधान में दर्शाए गए "अवांछनीय आवश्यकता" की मिसालें उदाहरणात्मक हैं और संपूर्ण नहीं हैं, और बाहरी परिस्थितियों की प्रकृति में हैं यानी प्रतिकूल परिस्थितियां जिन पर किसी व्यक्ति का कोई नियंत्रण नहीं है और जो न्याय का सहारा नहीं लेते हैं।

क़ानून में वाक्यांश "अवांछनीय इच्छा" एक निश्चित अवधारणा नहीं है, बल्कि एक विकासवादी अभ्यास है। राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण को यह जांच करने का अधिकार है कि क्या कानूनी सहायता के लिए विचार किए जा रहे व्यक्ति की परिस्थितियां "अवांछनीय आवश्यकता" के दायरे में आती हैं।

11. बार नागरिकों के अधिकारों और स्वतंत्रता का अग्रिम पंक्ति का प्रहरी है। अदालतें संवैधानिक कानून और न्याय का अंतिम गढ़ हैं। न्यायाधीशों के पास संविधान में निहित शपथ है। अधिवक्ताओं ने कानूनी पेशे की गरिमामयी परंपराओं में न्याय की सेवा करने की प्रतिज्ञा की है। अपने ग्राहकों के लिए अधिवक्ताओं के कर्तव्यों के संदर्भ में अनुवादित, इसका अनिवार्य रूप से इसका मतलब है। अधिवक्ताओं को लगन से ब्रीफ तैयार करना होगा और अदालतों के समक्ष वादियों के कारणों पर सतर्कता से मुकदमा चलाना होगा।

12. जमानत आवेदनों में अधिवक्ताओं द्वारा विशेष देखभाल की जानी चाहिए क्योंकि आवेदक

जेल में है और अधिवक्ता अदालत के समक्ष उसका एकमात्र प्रतिनिधि है। गरिमामयी पेशे के समय सम्मानित सम्मेलनों ने जमानत की सुनवाई में उपस्थित होने के लिए कैदी के अधिवक्ता पर बिना शर्त कर्तव्य डाला। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि अधिवक्ता के पेशेवर पारिश्रमिक का भुगतान किया गया है या नहीं। जमानत की सुनवाई में एक अधिवक्ता की विफलता भी एक कदाचार का गठन कर सकती है।

13. अभियोजन न चलाने के लिए किसी मुकदमे को खारिज करना न्यायालयों द्वारा लंबे समय से न्याय के कुशल प्रशासन के लिए विकसित की गई प्रथा है। यह प्रथा सही है और इसने अनावश्यक मामलों को हटाने में अपनी प्रभावकारिता साबित की है जो कानूनी प्रणाली को रोकते हैं। किसी भी वादी को न्यायालय के समय पर असीमित ड्राफ्ट का अधिकार नहीं है। अधिवक्ता के उपस्थित न होने से यह निष्कर्ष भी निकल सकता है कि लिस जीवित नहीं है, या यह कि एक वादी उसी पर मुकदमा नहीं चलाना चाहता है। डिफ़ॉल्ट के लिए ऐसे मामलों को खारिज करने से न्यायिक प्रणाली जीवित मामलों को अदालतों के डॉकेट पर रखने में सक्षम हो जाती है जिनमें वादी रुचि रखते हैं।

14. गैर अभियोजन के लिए एक मामले की बर्खास्तगी के साथ, लिस एक टर्मिनस पर आता है और केवल वादी द्वारा दायर की जा रही एक बहाली आवेदन के अधीन है और अदालत द्वारा अनुमति दी गई है। हालांकि यह महत्वपूर्ण है कि एक लिस के बीच अंतर को ध्यान में रखा जाए जहां नागरिक अधिकारों का फैसला किया जाता है, और एक आपराधिक मामला जिसमें कैदी की व्यक्तिगत स्वतंत्रता लगी हुई है। एक वादी उन पर मुकदमा न चलाकर नागरिक दावों को माफ करने का चुनाव कर सकता है। हालाँकि, नागरिक अपनी दायर से भी अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता को त्याग नहीं सकते हैं। संविधान द्वारा व्यक्तिगत स्वतंत्रता को अपरिवर्तनीय रूप से प्रत्येक नागरिक में निहित किया गया है और अदालतें इसकी स्थायी संरक्षक हैं।

15. जमानत की सुनवाई में अधिवक्ता की अनुपस्थिति कैदी-आवेदक को कार्यवाही के परिणाम को प्रभावित करने की सभी क्षमता से वंचित करती है जहां उसकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता दांव पर है। जब एक जमानत याचिका को गैर-अभियोजन के लिए खारिज कर दिया जाता है, तो कैदी की हिरासत की अवधि डिफ़ॉल्ट रूप से बढ़ जाती है, भले ही वह अदालत के समक्ष अप्रस्तुत और अनसुना हो जाता है।

16. जमानत के लिए आवेदन करने वाले कैदी अक्सर गरीब और निराश्रित परिस्थितियों में रहते हैं। कई मौकों पर उनके पास प्रभावी जोड़ी नहीं होती है जो जमानत की सुनवाई में अधिवक्ताओं की उपस्थिति की देखरेख कर सकें।

17. बड़ी संख्या में भूले हुए कैदियों की दयनीय शर्तों को जस्टिस सरन ने गोबर्धन सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में अभिव्यक्त किया था:

"यह सिर्फ एक अलग मामला नहीं है। हम महसूस करते हैं कि बड़ी संख्या में ऐसे मामले हैं जो भूल गए "नामहीन" कैदियों के हैं जो "टिकट नंबर" बन गए हैं और लंबे समय तक जेलों में बंद हैं, जैसे कि विचाराधीन मुकदमे (यू.टी.) या सजायाफ्ता कैदी जिनकी अपील उच्च न्यायालयों के समक्ष लगभग अंतहीन रूप से लंबित हैं, जिन्होंने जमानत आवेदन दायर किए हैं या नहीं भी कर सकते हैं और जो बहुत बूढ़े हो गए हैं, या एक लाइलाज बीमारी से बीमार हैं, या जो भी

स्थिर हो गए हैं या आगे अपराध करने की कोई क्षमता खो चुके हैं। शिकायतकर्ता (यदि कोई हो) ने उन पर मुकदमा चलाने या उन्हें अब जेल में रखने में कोई दिलचस्पी खो दी है। आमतौर पर ऐसे अभियुक्तों के परिवार नष्ट हो जाते हैं, या ऐसी घोर गरीबी में पड़ जाते हैं, जैसा कि तब होता है जब परिवार का कोई सदस्य गंभीर बीमारी का अनुबंध करता है, कि वे अधिवक्ता की फीस का भुगतान नहीं कर सकते हैं या अदालत के कार्यालयों में आवेदनों और हलफनामों को तैयार करने या सूचीबद्ध मामलों को प्राप्त करने और जमानत या मामले का निपटारा करने के लिए आवर्ती अपरिहार्य व्यय नहीं कर सकते हैं। अपेक्षाकृत भाग्यशाली बच्चों और आश्रितों को शायद एक रिश्तेदार द्वारा उनके सिर पर छत प्रदान की गई हो सकती है, या उन्हें राज्य या निजी संचालित बच्चों के घर में रखा जा सकता है। दूसरों को बस सड़क पर छोड़ दिया गया हो सकता है। हो सकता है कि परिवार में बेटियों की शादी न हुई हो, और परिवार में या बाहर किसी सामाजिक विचलन द्वारा उनका शोषण किया जा रहा हो। पहले से ही भीड़भाड़ वाली जेलों में ऐसे कैदियों को जेल में रखने से कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा नहीं होता है और यह राज्य और करदाता पर एक अनावश्यक बोझ है।

18. कैदियों के पास अनुपस्थित अधिवक्ताओं के खिलाफ कोई उपाय नहीं है और इसके बाद आने वाली प्रतिकूल स्थिति पर थोड़ा नियंत्रण है। इन परिस्थितियों में कैदी कानूनी सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 की धारा 12 (ई) के अर्थ के भीतर "अवांछित आवश्यकता" का शिकार हो जाता है जो कानूनी सहायता का हकदार है। कैदियों के इस वर्ग को कानूनी सहायता से इनकार करना न्याय से वंचित करेगा।

19. इस मद्देनजर, अधिवक्ता की अनुपस्थिति के कारण गैर-अभियोजन के लिए जमानत आवेदन को खारिज करना अनुमेय है, क्योंकि यह कानूनी सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 के तहत कानूनी सहायता के लिए कैदियों के अधिकारों के विपरीत है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत गारंटीकृत कैदियों के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन है।

20. व्यक्तिगत स्वतंत्रता सभी अधिकारों का स्रोत है। स्वतंत्रता का संरक्षण अदालत की प्रक्रिया का ताज है। जमानत का फैसला करते समय अदालतों को कानूनी सहायता के लिए कैदियों के अधिकार का संज्ञान लेना होगा, और उनकी सुनवाई के अधिकार के प्रति भी सतर्क रहना होगा। कैदी के अधिवक्ता के पेश न होने की स्थिति में, अदालत कैदी का प्रतिनिधित्व करने और जमानत की सुनवाई के लिए आगे बढ़ने के लिए एक एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) नियुक्त कर सकती है।

21. बिंदु में अधिकारियों के संदर्भ में कथा लाभ उठा सकती है।

22. नीचे चर्चा किए गए मामले आपराधिक अपील से उत्पन्न होते हैं। हालांकि, इसमें उल्लिखित कानून के सिद्धांतों को विभिन्न आपराधिक कार्यवाहियों के सादृश्य द्वारा सुरक्षित रूप से लागू किया जा सकता है जहां आवेदक जेल में है और कैदी की व्यक्तिगत स्वतंत्रता अधर में लटकी हुई है।

23. इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने सैयद महमूद, रानी महारानी बनाम पोहपी और अन्य 6 में न्याय में आपराधिक कार्यवाही में अप्रकाशित कैदियों का बीड़ा उठाया।

24. फीस और खर्चों की प्राप्ति न होने के बावजूद मामलों में उपस्थित होने के लिए एक अधिवक्ता का कर्तव्य और एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र)

नियुक्त करके कैदी की स्वतंत्रता की रक्षा करने के लिए अदालतों के दायित्व पर खैली और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में जोर दिया गया था:

"1. ... लेकिन भले ही फीस और खर्च का भुगतान नहीं किया गया था, लेकिन अधिवक्ता को हमारी राय में, मामले पर बहस करने से इनकार नहीं करना चाहिए था। प्रत्येक अधिवक्ता को यह याद रखना चाहिए कि अदालत के प्रति उसका कर्तव्य है, विशेष रूप से नागरिक की स्वतंत्रता से जुड़े आपराधिक मामले में, और भले ही उसे उसकी फीस या खर्च का भुगतान नहीं किया गया हो, उसे मामले पर बहस करनी चाहिए और सही निर्णय तक पहुंचने में अदालत की सहायता करनी चाहिए। हम एक ऐसी स्थिति को समझ सकते हैं जहां एक अधिवक्ता मुवक्किल से निर्देशों के अभाव में मामले पर बहस करने में असमर्थ हो सकता है, लेकिन फीस और खर्चों की गैर-प्राप्ति कभी भी मामले पर बहस करने से इनकार करने का आधार नहीं हो सकती है। हालांकि, प्रस्तुत मामले में अधिवक्ता ने मामले पर बहस करने से इनकार कर दिया और परिणामस्वरूप विद्वान न्यायाधीश ने मामले के रिकॉर्ड का अध्ययन किया और अपील का फैसला किया। अब एक बात स्पष्ट है कि विद्वान न्यायाधीश चाहे कितने भी मेहनती रहे हों और अपीलकर्ताओं के हितों की रक्षा के लिए कितने भी सावधान और चिंतित हों, उनका प्रयास अपीलकर्ताओं की ओर से पेश होने वाले अधिवक्ता द्वारा तर्क की जगह नहीं ले सकता था। हमें लगता है कि इस तरह के मामले में, विद्वान न्यायाधीश को जो करना चाहिए था, वह एक अधिवक्ता एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) नियुक्त करना था और फिर योग्यता के आधार पर अपील का निपटारा करना था।

25. इसी प्रकार उच्चतम न्यायालय ने उपस्थिति में चूक के लिए आपराधिक अपीलों को खारिज करने की प्रथा के खिलाफ अपना चेहरा रखा और कबीरा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 8 में न्याय मित्र की नियुक्ति की वकालत की:

"2....इसलिए, हमारा विचार है कि अपीलकर्ता द्वारा दायर की गई अपील का उचित निपटान नहीं किया गया है। उपस्थित न होने के कारण विद्वान न्यायाधीश द्वारा अपील को खारिज नहीं किया जा सका। यदि अपीलकर्ता उपस्थित नहीं था, तो विद्वान न्यायाधीश को किसी अधिवक्ता को एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) के रूप में नियुक्त करना चाहिए था और फिर गुण-दोष के आधार पर अपील का निपटारा करना चाहिए था।

26. जमानत आवेदन के माध्यम से आवेदक ने एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 8/20 के तहत थाना-खुदागंज, जिला-शाहजहांपुर में केस अपराध संख्या-61 वर्ष 2021 में जमानत पर छोड़ने की प्रार्थना की है।

27. आवेदक 11.03.2021 से जेल में था और इस न्यायालय द्वारा 01.02.2023 को अंतरिम जमानत दी गई थी।

28. आवेदक की ओर से अधिवक्ता श्री शम्स उज़ ज़मान द्वारा दिए गए निम्नलिखित तर्क, जिन्हें श्री सुनील कुमार श्रीवास्तव, अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा रिकॉर्ड से संतोषजनक रूप से अस्वीकार नहीं किया जा सका, आवेदक को अंतरिम जमानत देने का हकदार बनाता है:

(i). पुलिस अधिकारियों की साख को नष्ट करने की कीमत पर आवेदक को इस मामले में फंसाने के लिए आवेदक पर 1 किलो और 100 ग्राम चरस लगाई गई थी।

(ii). बरामदगी का कोई स्वतंत्र गवाह नहीं है।

(iii). निषिद्ध पदार्थ की मात्रा को बढ़ा-चढ़ाकर पेश किया गया है क्योंकि वजन के लिए गलत उपकरणों का उपयोग किया गया है। बरामद पदार्थ वास्तव में एन.डी.पी.एस. अधिनियम के तहत अधिसूचित वाणिज्यिक मात्रा से कम है।

(iv). विशेषज्ञों द्वारा नवीनतम वैज्ञानिक प्रोटोकॉल के अनुसार तैयार की गई कोई विश्वसनीय फोरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला रिपोर्ट तैयार नहीं की गई है जो पुष्टि करती है कि जब्त पदार्थ एक प्रतिबंधित दवा है।

(v). तलाशी और जब्ती एन.डी.पी.एस. अधिनियम के अनिवार्य प्रावधानों का उल्लंघन करते हुए की गई है।

(vi). आवेदक ने अपने आपराधिक इतिहास को स्पष्ट किया है। अपर शासकीय अधिवक्ता का तर्क है कि आवेदक का कुछ और मामलों का आपराधिक इतिहास रहा है। इस मुद्दे को फिर से जोड़ते हुए, आवेदक के अधिवक्ता का तर्क है कि आवेदक जेल में है। वह आर्थिक रूप से निराश्रित है और उसके पास एक प्रभावी पैरोकार या परामर्शदाता नहीं है। इसलिए मामलों का विवरण प्राप्त नहीं किया जा सका और जमानत आवेदन में इसका उल्लेख नहीं किया जा सका। हालांकि, अपर शासकीय अधिवक्ता के पास उपलब्ध रिकॉर्ड पर भरोसा करते हुए, आवेदक के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि आवेदक समाज के आर्थिक रूप से कमजोर तबके से संबंधित है और पुलिस अधिकारियों के लिए एक सुविधाजनक बलि का बकरा है। उक्त मामलों में आवेदक को झूठा फंसाया गया। उक्त मामलों का प्रस्तुत मामले पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

(vii). विद्वान विचारण न्यायालय ने अपनी स्थिति रिपोर्ट में खुलासा किया है कि अभियोजन पक्ष ने आरोपों को क़ानून के दायरे में लाने के लिए 7 गवाहों की जांच करने का प्रस्ताव किया है। आज तक एक भी गवाह से पूछताछ नहीं की गई है। आवेदक पिछले डेढ़ महीने से जेल में है। मुकदमा कछुए की गति से आगे बढ़ रहा है और निकट भविष्य में कभी भी समाप्त होने की संभावना नहीं है।

(viii). आवेदक कानून का पालन करने वाला नागरिक है जिसने पुलिस जांच में सहयोग किया और मुकदमे में शामिल हुआ। मुकदमे में देरी के लिए आवेदक जिम्मेदार नहीं है।

(ix). मुकदमे के समापन में अत्यधिक देरी के कारण आवेदक को अपराध में फंसाने के लिए कोई विश्वसनीय सबूत नहीं होने के बिना लगभग अनिश्चितकालीन कारावास हो गया है और यह आवेदक के त्वरित सुनवाई के अधिकारों का उल्लंघन करता है।

(x). आवेदक के भागने का खतरा नहीं है। कानून का पालन करने वाला नागरिक होने के नाते आवेदक ने हमेशा जांच में सहयोग किया है और अदालत की कार्यवाही में सहयोग करने का वचन दिया है। उसके गवाहों को प्रभावित करने, सबूतों के साथ छेड़छाड़ करने या फिर से अपराध करने की कोई संभावना नहीं है।

29. पूर्ववर्ती चर्चा के आलोक में और मामले के गुण-दोष पर कोई टिप्पणी किए बिना, जमानत आवेदन की अनुमति दी जाती है।

30. आवेदक-विपिन को उपरोक्त मामले में अपराध संख्या? में निचली अदालत की संतुष्टि पर, एक व्यक्तिगत बांड और दो जमानतदार प्रस्तुत करने पर, जमानत पर रिहा किया जाए। न्याय हित में निम्नलिखित शर्तें अधिरोपित की जाएं:-

(i) आवेदक विचारण के दौरान साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ नहीं करेगा अथवा किसी गवाह को प्रभावित नहीं करेगा।

(ii) आवेदक निर्धारित तारीख को विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित होगा, जब तक कि व्यक्तिगत उपस्थिति से छूट न दी गई हो।

31. विद्वान विचारण न्यायालय यह सुनिश्चित करेगा कि आवेदक से मांगी गई ज़मानत उसकी सामाजिक आर्थिक स्थिति के अनुरूप है। भारी जमानतदारियां जो आवेदक अपनी सामाजिक आर्थिक बाधाओं को देखते हुए पूरा नहीं कर सकता है, जमानत के अधिकार को निरर्थक बना देगा।

32. उच्च न्यायालय कानूनी सेवा प्राधिकरण श्री शम्स उज जमान, एडवोकेट (एडवोकेट रोल ए/एस0815/2012) को अनुमोदित पारिश्रमिक के भुगतान पर विचार करेगा, जिन्होंने इस न्यायालय के समक्ष एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) के रूप में आवेदक का प्रतिनिधित्व किया था।

33. इस आदेश की एक प्रति फैक्स द्वारा रजिस्ट्रार (अनुपालन) द्वारा विद्वान विचारण न्यायालय के साथ-साथ जिला कानूनी सेवा प्राधिकरण, शाहजहांपुर को सूचित की जाए।

(2023) 3 ILRA 1125

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 14.02.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट

एफ.ए.एफ.ओ. संख्या 1145 वर्ष 2016

राघव दास चेला महंत मथुरा दास महंत एवं अन्य ...अपीलकर्ता

बनाम

काली राम दास चेला महंत गंगा राम दास एवं अन्य ...प्रतिवादी

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता: श्री राम किशोर पांडे, श्री आर.के. पांडे, श्री सचिन ओझा

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: श्री गुलरेज़ खान, श्री जी. खान, श्री जावेद हुसैन खान, श्री प्रदीप चंद्र त्रिपाठी, श्री डब्ल्यू.एच. खान (वरिष्ठ अधिवक्ता)

सिविल कानून - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908- आदेश 32, 41, नियम 15, 27, - हिंदू सार्वजनिक धार्मिक संस्थान संपत्ति के विघटन से बचाव अस्थायी शक्तियों का अधिनियम, - धारा 6, - भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा - 114(e), 90, - सीमा अधिनियम, 1963 - धारा - 5 - विलंब क्षमा आवेदन - दस्तावेज की स्वीकार्यता - सत्य होने का अनुमान - विलंब क्षमा आवेदन के साथ आदेश की प्रति विचारणीय न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई - उक्त दस्तावेज को विद्वान अपीलीय न्यायालय द्वारा पत्रवाली में 35C/169C के रूप में पंजीकृत किया गया - विलंब क्षमा आवेदन को विद्वान अपीलीय न्यायालय द्वारा उपरोक्त दस्तावेज के आधार पर स्वीकार किया गया - विद्वान अपीलीय न्यायालय द्वारा विलम्ब क्षमा आवेदन को अनुमति देने का आदेश अंतिमता प्राप्त कर चुका है - न्यायालय ने पाया कि, जब एक विशेष दस्तावेज पर चुनौती को छोड़ दिया गया है, तो पक्ष उस पर अपने जानबूझकर के रुख से पीछे नहीं हट सकता और अपील में इसे विलंब से चुनौती नहीं दे सकता - आयोजित, धारा 5 सीमा

अधिनियम के तहत आवेदन के निर्णय के पश्चात - दस्तावेज विद्वान पूर्वाधिकारी द्वारा वर्तमान अपील में विलंब क्षमा के लिए धारा 5 सीमा अधिनियम के तहत आवेदन के निर्णय के समय पर विचार किया गया - न्यायालय ने यह विचार किया कि विचारणीय न्यायालय ने आदेश 32 नियम 15 के तहत कानूनी प्रावधानों को पूरी तरह से नजरअंदाज करके कार्यवाही प्रारंभ करने और बिना मूल प्रतिवादी के अभिभावक की नियुक्ति किए, जो उस समय स्वस्थ मन का व्यक्ति था, आपेक्षित निर्णय पारित किया गया और डिक्री पारित करने में अवैधता की है - इसलिए, अपील न्यायालय के आपेक्षित आदेश में तर्क या विश्लेषण पर कोई अपवाद नहीं लिया जा सकता - अपील असफल - निरस्त। (पैर - 5, 6, 11, 12)

अपील निरस्त। (ई-11)

उद्धृत वाद सूची:

1. आर.वी.ई. वेंकटाचला गौंडर बनाम अरुलमिगु विश्वेसरासामी और वी.पी. मंदिर, (2003) 8 SCC 752,
2. रोमन कैथोलिक मिशन बनाम द स्टेट ऑफ मद्रास और अन्य, AIR 1966 SC 1457,
3. ई.एस.आई. कॉर्प बनाम जगदीश प्रसाद (FAFO संख्या 103/2001, निर्णय तिथि 23.03.2022),
4. जगन्नाथ जी/जगदीश जी विराजमान मंदिर कटरा और अन्य बनाम महंत विजय राम दास चेले गंगा राम दास और अन्य, रिट सी संख्या 36104 / 2013, निर्णय तिथि 01.05.2013,
5. इकबाल बासित और अन्य बनाम एन. सुभालक्ष्मी और अन्य, (2021) 2 SCC 718,
6. लखी बरुआ बनाम पद्मा कांता कलिता, (1996) 8 SCC 357

<u>माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट</u>

1. विद्वान अधिवक्ता श्री राम किशोर पांडे, जिनकी सहायता के लिए श्री सचिन ओझा, अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता थे, और प्रतिवादियों के लिए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री डब्लू एच खान जिनकी सहायता के लिए श्री गुलरेज खान, विद्वान अधिवक्ता को सुना।

2. इस अपील में विचार के लिए उठने वाले मुद्दे निम्नलिखित हैं:

i) क्या दस्तावेज़ (सहायक आयुक्त का आदेश दिनांक 04.10.1978) साक्ष्य में स्वीकार्य था?

ii) क्या विद्वान निचले न्यायालय के समक्ष प्रस्तुति के समय उक्त दस्तावेज़ की स्वीकार्यता पर आपत्ति करने में अपीलकर्ता की विफलता के कारण अपीलकर्ता को कार्यवाही में बाद के चरण में ऐसी आपत्तियां उठाने से रोका जा सकता है?

3. न्यायालय के समक्ष दिनांक 04.10.1978 के आदेश की छायाप्रति विलंब क्षमा प्रार्थना पत्र के साथ प्रस्तुत की गयी। विद्वान अपीलीय न्यायालय द्वारा दस्तावेज़ को 35C/169C के रूप में पंजीकृत किया गया था। उपरोक्त दस्तावेज़ के आधार पर विलंब क्षमा आवेदन को विद्वान अपीलीय न्यायालय द्वारा स्वीकार किया गया था। विद्वान अपीलीय न्यायालय द्वारा विलम्ब क्षमा आवेदन को स्वीकार करने वाला आदेश दिनांक 01.05.2013 अंतिम रूप ले चुका है। अपीलकर्ताओं ने रिट-सी संख्या 36104 वर्ष 2013(जगन्नाथ जी/जगदीश जी विराजमान मंदिर कटरा और अन्य बनाम महंत विजय राम

दास चेला गंगा राम दास और अन्य) के रूप में पंजीकृत रिट याचिका दायर करके उपरोक्त आदेश दिनांक 01.05.2013 को चुनौती दी। उक्त रिट याचिका में इस न्यायालय द्वारा निम्नलिखित आदेश पारित किया गया था:

"याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री आर.के.पांडेय का कहना है कि रिट याचिका निरर्थक हो गई है।

रिट याचिका को इस प्रकार खारिज किया जाता है।"

4. यह स्पष्ट है कि अपीलकर्ताओं ने विलंब क्षमा आवेदन को स्वीकार करने वाले आदेश को चुनौती देने पर बल नहीं दिया। अपीलकर्ता ने उन सभी दस्तावेजों को चुनौती देने के अपने अधिकारों को त्याग दिया जिनका आधार उक्त आदेश में लिया गया था। विलंब क्षमा आवेदन अपीलीय न्यायालय की कार्यवाहियों का हिस्सा था।

5. एक बार जब किसी विशेष दस्तावेज़ को चुनौती देने का अधिकार त्याग दिया जाता है, तो पक्ष अपने सचेत रुख से पीछे नहीं हट सकती है और अपील में उक्त दस्तावेज़ पर देरी से आपत्ति नहीं कर सकती है। प्रारंभिक चरण में दस्तावेज़ पर आपत्ति जताने के लिए पक्षों पर जोर देने का औचित्य ज्यादा दूर नहीं है। ऐसी आपत्ति निष्पक्ष प्रतिद्वंदिता के नियमों के अनुरूप है, और विरोधी पक्ष को दूर किए जाने योग्य दोषों को सुधारने या दस्तावेज़ का समर्थन करने के लिए साक्ष्य पेश करने में सक्षम बनाती है।

6.संदर्भ को अब अधिकारियों द्वारा बिंदुवार मजबूत किया जाएगा। एक दस्तावेज़ की स्वीकार्यता के लिए देर से दी गई चुनौती पर विचार करते हुए, **2003 8 एससीसी 752** में प्रकाशित **आरवीई वेंकटचला गौंडर बनाम अरुल्मिगु विश्वेसरसामी और वीपी टेम्पल** में सुप्रीम कोर्ट ने इस प्रकार स्थापित किया: "

20. प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने अपनी दलील के समर्थन में , रोमन कैथोलिक मिशन बनाम मद्रास राज्य और अन्य एआईआर 1966 एससी 1457 पर भरोसा करते हुए कहा है , कि एक दस्तावेज जो साक्ष्य में स्वीकार्य नहीं है, हालांकि रिकॉर्ड पर लाया गया है, उसे विचार से बाहर रखा जाना चाहिए। हमारा उपरोक्त मामले में इस प्रकार प्रस्तावित विधि के साथ कोई विवाद नहीं है। हालाँकि, वर्तमान मामला एक ऐसा मामला है जिसमें विधि की सही स्थिति को स्पष्ट करने की आवश्यकता है। साधारणतया साक्ष्य की स्वीकार्यता पर आपत्ति तब ली जानी चाहिए जब इसे प्रस्तुत किया जाए, बाद में नहीं। साक्ष्य में दस्तावेजों की स्वीकार्यता पर आपत्तियों को दो वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है: - (i) एक आपत्ति कि जिस दस्तावेज़ को साबित करने की मांग की गई है वह स्वयं साक्ष्य के रूप में अस्वीकार्य है; और (ii) जहां दस्तावेज की स्वीकार्यता के विवाद पर आपत्ति नहीं है ,बल्कि जो सबूत के तरीके की ओर निर्देशित करता है, इस आरोप के साथ की वह अनियमित या अपर्याप्त है। पहले मामले में, केवल इसलिए कि किसी दस्तावेज़ को 'प्रदर्श' के रूप में चिह्नित किया गया है, इसकी स्वीकार्यता पर आपत्ति को खारिज नहीं किया जाता है और इसे बाद के चरण में या अपील या पुनरीक्षण में भी उठाया जा सकता है। बाद के मामले में, साक्ष्य प्रस्तुत करने

से पहले आपत्ति ली जानी चाहिए और यदि एक बार दस्तावेज़ को साक्ष्य के रूप में स्वीकार कर लिया गया है और एक प्रदर्श के रूप में चिह्नित कर लिया गया है, तो यह आपत्ति कि इसे साक्ष्य में स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए था या दस्तावेज़ को साबित करने के लिए अपनाया गया तरीका अनियमित है, दस्तावेज को एक प्रदर्श के रूप में चिन्हित करने के बाद, किसी भी स्तर पर भी इसकी स्वीकृति नहीं दी जा सकती है।"

7. **ईएसआई कार्पोरेशन बनाम जगदीश प्रसाद** में इस न्यायालय ने प्रथम उपलब्ध अवसर पर तत्काल एक दस्तावेज की स्वीकार्यता के बारे में आपत्ति उठाने के लिए कानून की असाधारण आवश्यकता को दोहराया। **जगदीश प्रसाद (उपरोक्त)** में इस प्रकार कहा गया है:

"9. इस न्यायालय की यह राय है कि द्वितीयक साक्ष्य की स्वीकार्यता के बारे में आपत्ति को प्रथम न्यायालय के समक्ष रखा जाना चाहिए, जहां द्वितीयक साक्ष्य बिना आधार के दायर किया जाता है। यदि उस आपत्ति को उस न्यायालय जहां किसी पक्ष की ओर से साक्ष्य दायर किया जाता है, के समक्ष नहीं लिया जाता है, तो बाद में अपील में इसका आग्रह नहीं किया जा सकता है।

15. कानून की इस स्थिति को देखते हुए, इसमें कोई संदेह नहीं है कि जब तक साक्ष्य की स्वीकार्यता के बारे में पहली बार अदालत जहां साक्ष्य पेश किया जाता है, में आपत्ति नहीं उठाई जाती है, तो इसे पहली बार अपील में नहीं उठाया जा सकता है। "

8. (2021) 2 एससीसी 718 में प्रकाशित **इकबाल बासित और अन्य बनाम एन.सुब्बालक्ष्मी और अन्य** के मामले में, कानून ने किसी दस्तावेज़ की स्वीकार्यता के सम्बन्ध में निर्धारण किया जब पक्ष यथाशीघ्र आपत्ति उठाने में विफल रहा और अदालत को ऐसे दस्तावेज़ के आधार पर आगे बढ़ने की अनुमति दी। **इकबाल बासित (उपरोक्त)** में सुप्रीम कोर्ट ने इस प्रकार कहा:

"13. दोनों अदालतें वैध कब्जे का फैसला करने के लिए अपीलकर्ताओं के विधिपूर्ण स्वामित्व पर विचार करने के लिए आगे बढ़ीं। प्रतिवादियों ने स्वयं प्रदर्श 1 दिनांक 07.09.1946 की प्रमाणित प्रतिलिपि प्रस्तुत की थी। अपीलकर्ताओं ने नगर पालिका द्वारा अपने विक्रेता ओ.ए. माजिद खान के पक्ष में अन्य सभी प्रस्तावों, सरकारी आदेशों और बिक्री विलेख की फोटोकॉपी प्रस्तुत की। अन्य दस्तावेजों की मूल या प्रमाणित प्रतियां प्रस्तुत करने में विफलता, संपत्ति मामलों की देखभाल करने वाले अभियोजन साक्षी 1 के भाई की मृत्यु के बाद अप्राप्य होने के रूप में समझाई गई। नगर पालिका से प्रमाणित प्रतियां प्राप्त करने का प्रयास भी असफल रहा क्योंकि उन्हें सूचित किया गया कि मूल फाइलों का पता नहीं लग पा रहा था। फोटोकॉपी को बिना किसी आपत्ति के प्रदर्श के रूप में चिह्नित किया गया था। प्रतिवादियों ने कभी भी इसकी वास्तविकता पर सवाल नहीं उठाया। उपरोक्त के बावजूद, और इस तथ्य के बावजूद कि ये दस्तावेज़ 30 वर्ष से अधिक पुराने थे, जो अपीलकर्ताओं की उचित अभिरक्षा से मूल प्रतियाँ प्रस्तुत न करने के स्पष्टीकरण के साथ प्रस्तुत किए गए थे, उन्हें बिना किसी वैध कारण के यह कहते हुए अस्वीकार कर दिया गया कि किसी सार्वजनिक प्राधिकरण द्वारा निष्पादित दस्तावेज़ वैधानिक शक्तियों के उचित प्रयोग में जारी किए गए थे यह परिकल्पना नहीं की जा

सकती है। हमारी राय में यह निष्कर्ष भारतीय साक्ष्य अधिनियम 1872 की धारा 114(ई) के मद्देनजर स्पष्ट रूप से विकृत है, जिसमें प्रावधान है कि यह धारणा की जाएगी कि सभी आधिकारिक कार्य नियमित रूप से किए गए हैं। अन्यथा साबित करने का दायित्व उस व्यक्ति पर होगा जो विवाद करता है।"

9. इसी तरह, एक पुराना सार्वजनिक दस्तावेज़ भी सही होने की धारणा को आकर्षित करता है जो साक्ष्य अधिनियम की धारा 90 से संबंधित है। सुप्रीम कोर्ट ने **(1996) 8 एससीसी 357** में प्रकाशित **लक्खी बरुआ बनाम पद्मा कांता कलिता** में एक पुराने सार्वजनिक दस्तावेज़ के विरुद्ध आपत्ति पर विचार करते हुए इस प्रकार कहा:

"14. साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 90 का उल्लेख करना उचित होगा जो यहां दी गई है:

90. तीस साल पुराने दस्तावेज़ों के बारे में अनुमान? जहां कथित तौर पर तीस साल पुराना या साबित किया गया कोई दस्तावेज किसी अभिरक्षक द्वारा पेश किया जाता है, जिसे उस मामले में न्यायालय उचित मानता है, तो न्यायालय यह मान सकता है कि ऐसे दस्तावेज के हस्ताक्षर और हर अन्य अंश , जिसके किसी विशेष व्यक्ति की, लिखावट में होने का अभिप्राय है, उस व्यक्ति की लिखावट में है, और, निष्पादित या सत्यापित दस्तावेज़ के मामले में, यह उन व्यक्तियों द्वारा विधिवत निष्पादित और सत्यापित किया गया है जिनके द्वारा इसे निष्पादित और सत्यापित किया होना चाहिए।

15. साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 90 आवश्यकता और सुविधा पर आधारित है क्योंकि तीस साल बीत जाने के बाद पुराने दस्तावेजों की लिखावट, हस्ताक्षर या निष्पादन को साबित करने के लिए साक्ष्य प्रस्तुत करना बेहद कठिन और कभी-कभी संभव नहीं होता है। किसी पुराने दस्तावेज़ के निष्पादन को साबित करने में ऐसी कठिनाइयों या असंभवताओं को दूर करने के लिए, धारा 90 को साक्ष्य अधिनियम, 1872 में शामिल किया गया है जो निजी दस्तावेजों के प्रमाण के सख्त नियम को हटा देता है। यदि प्रश्नगत दस्तावेज़ उचित अभिरक्षा से प्रस्तुत किए जाते हैं तो उनकी वास्तविकता का अनुमान लगाया जा सकता है। हालाँकि, धारा 90 से उत्पन्न अनुमान को स्वीकार करना न्यायालय का विवेक है। हालाँकि, इसमें कोई संदेह नहीं है कि धारा 90 के तहत न्यायिक विवेक का प्रयोग मनमाने ढंग से नहीं किया जाना चाहिए और बिना कारण जाने नहीं किया जाना चाहिए।"

10. इस मामले में दिनांक 04.10.1978 का आपत्तिजनक दस्तावेज़ एक सार्वजनिक दस्तावेज़ की प्रकृति का था जिसे जांच के बाद एक वैधानिक प्राधिकारी द्वारा जारी किया गया था। दस्तावेज़ पुराना होने और विश्वसनीय व्यक्ति द्वारा निर्मित होने के कारण **लखी बरुआ (उपरोक्त)** में स्थापित किए गए अनुसार सही होने की धारणा को आकर्षित करता है।

11. विद्वान अपीलीय अदालत ने उक्त दस्तावेज़ की स्वीकार्यता पर आपत्ति पर विस्तार से चर्चा की और निम्नानुसार कहा:
"निर्धारण के लिए बिंदु संख्या तीन: -

प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने सहायक आयुक्त झांसी डिवीजन के दिनांक 4 अक्टूबर 1978 के आदेश का हवाला दिया है जो उनके द्वारा हिंदू सार्वजनिक धार्मिक संस्थान "संपत्तियों के अपव्यय से रोकथाम (अस्थायी शक्तियों) अधिनियम", 1962 की धारा 6 के तहत जांच में पारित किया गया था। जिसकी प्रतिलिपि उनकी फ़ाइल में 35C/169C के रूप में है। इस आदेश के अवलोकन से पता चलता है कि मूल वादी और मूल प्रतिवादी के बीच एक ही देवता की संपत्तियों के प्रबंधन को लेकर विवाद था और जांच झाँसी डिवीजन के तत्कालीन सहायक आयुक्त द्वारा की गई थी।मूल वादी ने मूल प्रतिवादी को मंदिर का शेबैत नियुक्त करने पर आपत्ति जताई क्योंकि वह विभिन्न आधारों पर इस नौकरी के लिए उपयुक्त नहीं था। सहायक आयुक्त द्वारा एक जांच की गई और इस जांच के दौरान, उनके द्वारा यह पाया गया कि मूल प्रतिवादी, जो आक्षेपित जांच के समय उपस्थित हुआ था, स्वस्थ दिमाग का व्यक्ति नहीं था और इसलिए वह मंदिर की संपत्तियों का प्रबंधन करने में सक्षम नहीं था। इस प्रकार, उन्होंने मूल प्रतिवादी और मूल वादी के दावे को भी खारिज कर दिया और मंदिर और उसकी संपत्तियों के मामलों और प्रबंधन की देखभाल के लिए एक रिसीवर नियुक्त किया। यह आदेश सभी पक्षों के बीच अंतिम, बाध्यकारी हो गया।

प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने इस आदेश की प्रति की पोषणीयता, बल्कि स्वीकार्यता के संबंध में प्रारंभिक आपत्ति इस आधार पर उठाई कि चूंकि वर्तमान अपील को दायर करने में हुई देरी को क्षमा करने के लिए दायर आवेदन अंतर्गत धारा 5 परिसीमन अधिनियम की सुनवाई के दौरान दायर किया गया था, इसलिए आदेश 41 नियम 27 सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत न्यायालय द्वारा स्वीकार किया गया है। इसलिये इसपर विचार नहीं किया जा सकता, इसलिए नहीं कि यह प्रमाणित प्रतिलिपि की फोटोकॉपी है, मैं इस तर्क को स्वीकार करने में असमर्थ हूं क्योंकि आवेदन अंतर्गत धारा 5 परिसीमन अधिनियम के निर्णय के बाद कागजात और फ़ाइल वर्तमान अपील का एक अभिन्न अंग बन गए और यह भी कि जब धारा 5 परिसीमन अधिनियम के तहत आवेदन के निर्णय के समय इस पत्र पर मेरे विद्वान पूर्ववर्ती द्वारा वर्तमान अपील दायर करने में देरी की क्षमा के लिए विचार किया गया था, तब फोटोकॉपी के संबंध में ऐसी कोई आपत्ति नहीं उठाई गई थी और देरी को क्षमा करने के आदेश से भी यह पता चलता है कि यह बिंदु, और इस आदेश में सहायक आयुक्त का निष्कर्ष देरी के सहसंबंध का मुख्य आधार था।

इसलिए यह स्थापित किया गया है कि चूंकि वर्तमान अपील में एक पक्षीय निर्णय, जिसपर आक्रमण किया जा रहा है, दिनांक 20 अगस्त, 1979 को पारित किया गया था, जबकि उपरोक्त उल्लिखित कार्यवाही में सहायक आयुक्त का आदेश दिनांक 4 अक्टूबर, 1978 को पारित किया गया था जिसमें मूल वादी एक पक्ष था, इसलिए यह निष्कर्ष मूल वादी को मूल वाद संख्या 469 वर्ष 1975 के लंबित रहने के दौरान ज्ञात हुआ कि उस मूल वाद में कार्यवाही करने वाला मूल प्रतिवादी अस्वस्थ दिमाग का व्यक्ति था। निचली न्यायालय की फाइल के रिकॉर्ड से यह भी पता चलता है कि मूल वादी द्वारा पागल मूल प्रतिवादी के संरक्षक की नियुक्ति के लिए कोई कदम नहीं उठाया गया था और ऐसे अभिभावक की नियुक्ति

के बिना निचली न्यायालय द्वारा कार्यवाही की गई थी। जब कार्यवाही के दौरान मूल प्रतिवादी पागल हो गया, तो उसके द्वारा निष्पादित सभी पावर ऑफ अटॉर्नी, यदि कोई हो, ने अपना विधिक महत्व खो दिया।

उपरोक्त चर्चा के आधार पर, मेरा मानना है कि निचली न्यायालय ने, अपने समक्ष लंबित मूल वाद मूल की कार्यवाही के दौरान, मूल प्रतिवादी जो कि एक अस्वस्थ दिमाग का व्यक्ति था, के लिए अभिभावक नियुक्त किये बिना, कार्यवाही शुरू करने और आक्षेपित आदेश और डिक्री पारित करने में सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 32 नियम 15 में निहित कानून के प्रावधानों की पूरी तरह से अनदेखी करके अवैधता की है। निर्धारण संख्या तीन के बिंदु का तदनुसार उत्तर दिया गया है।"

12. आक्षेपित आदेश में विद्वान अपीलीय अदालत की तार्किकता और विश्लेषण पर कोई अपवाद नहीं लिया जा सकता है| आक्षेपित आदेश पुष्टि के योग्य है एवं यह अपील विफल होती है|

13. वर्तमान अपील खारिज की जाती है।

(2023) 3 ILRA 1130

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 22.12.2022

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर

एफ.ए.एफ.ओ. संख्या 2691/2004

न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड

...अपीलकर्ता

बनाम

श्रीमती गुड्डी @ सरोजनी एवं अन्य

...प्रतिवादी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता: श्री अशोक कुमार श्रीवास्तव, श्री सैयद अली मुर्तजा

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: श्री संजय कुमार

सिविल कानून - श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1923 - धारा 30, - मोटर वाहन अधिनियम, 1988, धारा - 167 - अपील - बीमा कंपनी ने अनुतोष को चुनौती दी - दुर्घटना - मृतक एक बीमित वाहन पर क्लीनर के रूप में कार्यरत था और नौकरी के दौरान उसकी मृत्यु हो गई - दावा याचिका की पोषणीयता - क्या दूसरे वाहन के दुर्घटना में सम्मिलित होने से श्रमिक क्षतिपूर्ति आयुक्त के समक्ष दावा याचिका पोषणीय नहीं होगी - बीमा कंपनी द्वारा प्रस्तुत प्रश्न मोटर वाहन अधिनियम की धारा 167 के तहत कानून द्वारा स्वयं ही उत्तरित किया गया है - न्यायालय ने पाया कि आयुक्त ने अपनी अधिकार क्षेत्र से बाहर जाकर कोई निर्णय नहीं लिया - महत्वपूर्ण विधिक प्रश्न - न्यायालय ने कहा, अपील में बनाए गए सभी महत्वपूर्ण कानूनी प्रश्न तथ्यों के प्रश्न हैं और आयुक्त द्वारा उन वाद पर दिया गया निर्णय गलत नहीं है - उच्च न्यायालय तथ्यों के क्षेत्र में तब तक नहीं जा सकता जब तक कि वे गलत सिद्ध न हों - इसलिए, यह अपील असफल होती है और निरस्त की जाती है। (प्रस्तर - 6, 11, 12, 13)

अपील निरस्त। (ई-11)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. सी. मंजीम्मु बनाम डिविजनल मैनेजर, न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड (2022 एसीजे 2661),

2. नॉर्थ ईस्ट कर्नाटका रोड ट्रांसपोर्ट कॉर्पोरेशन बनाम श्रीमती सुजाता (सिविल अपील संख्या 7470/2009, निर्णय दिनांक 02.11.2018),
3. ईएसआईसी बनाम एस. प्रसाद (एफएएफओ संख्या 1070/1993, निर्णय दिनांक 26.10.2017),
4. गोला राजन्ना इत्यादि बनाम डिविजनल मैनेजर और अन्य (2017 1i) TAC 259 SC),
5. शाहजहाँ और अन्य बनाम श्री राम जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य (2021 (4) TAC 687 SC)

<u>माननीय न्यायमूर्ति डॉ कौशल जयेंद्र ठाकर,</u>

1. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता को सुना।

2. इस अपील के माध्यम से, न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड ने कर्मकार प्रतिकर आयुक्त, सहायक श्रम आयुक्त, कानपुर क्षेत्र, कानपुर द्वारा प्रकरण संख्या डब्ल्यूसीए 121/2003 में पारित दिनांक 23.8.2004 के फैसले को चुनौती दी है, जिसमें 6% की दर से ब्याज सहित 211790 रुपये का मुआवजा देने का आदेश दिया गया था।

3. मुकदमे के संक्षिप्त तथ्य, जैसा कि फैसले से पता चलता है, यह है कि दावेदारों द्वारा अपने कमाने वाले व्यक्ति की क्षति के लिए मुआवजे का दावा करते हुए एक दावा दायर किया गया था, जो स्वीकार्य रूप से प्रत्यर्थी-मालिक के स्वामित्व वाले वाहन में एक क्लीनर था और 22.5.2003 को दुर्भाग्यपूर्ण दिन वाहन दुर्घटनाग्रस्त हो गया। कर्मकार मुआवजा आयुक्त, कानपुर के समक्ष एक दावा याचिका दायर की गई थी, जिसमें 12% ब्याज दर के साथ 4,23,580/- रुपये की राशि का दावा किया गया था।

4. प्रत्यर्थी संख्या 1 ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि मृतक उसके यहां कार्यरत था और वाहन का बीमा कंपनी से कराया गया था। विस्तृत साक्ष्य रखे जाने के बाद विद्वान आयुक्त ने दावेदार के पक्ष में फैसला सुनाया। मैंने विवेचना अधिकारी के संलग्नक संख्या2 का भी परिशीलन किया है लेकिन कहीं भी यह उल्लेख नहीं किया गया है कि वाहन का बीमा नहीं किया गया था। किसी निजी जांच का कभी परीक्षण नहीं किया गया। इसलिए, उस पर अवलम्ब नहीं लिया जा सकता था। एफआईआर बहुत विस्तृत है कि बीमाकृत ट्रक दुर्घटना में शामिल था। तथ्यों के इन सभी प्रश्नों पर अधीनस्थ न्यायालय द्वारा विचार किया गया है।

5. अपील के मेमो के परिशीलन पर, इस न्यायालय ने पाया कि अपीलकर्ता द्वारा कानून के निम्नलिखित महत्वपूर्ण प्रश्न तैयार किए गए हैं:

"i) *क्या इस कानून के मद्देनजर कि मृतक मोटरसाइकिल चालक दोषी ट्रक संख्या एचआर-*38 सी-4849 *के संबंध में "तृतीय पक्ष" हैं, दावेदार/प्रत्यर्थी संख्या* 1 के पास संबंधित मोटर *दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण के समक्ष मोटर वाहन अधिनियम की धारा* 166 *के तहत दावा याचिका दायर करने का उपचार था, क्या विद्वान आयुक्त ने केवल इसलिए श्रमिक प्रतिकर अधिनियम के प्रावधानों के तहत वर्तमान याचिका पर विचार करने में गलती की है क्योंकि मृतक को संबंधित समय में बीमित ट्रक पर क्लीनर के रूप में कथित रूप से नियोजित किया गया था?*

ii) क्या इस स्वीकृत तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि न तो बीमाकृत ट्रक संख्या यूपी-70 डी-9927 दुर्घटना में शामिल था और न ही दुर्घटना बीमाकृत ट्रक के उपयोग के कारण हुई थी, क्या विद्वान आयुक्त ने अपीलकर्ता बीमा कंपनी पर निर्धारित मुआवजा देने का दायित्व केवल इसलिए थोपने में गलती की है, क्योंकि मृतक प्रासंगिक समय पर बीमाकृत ट्रक पर कथित रूप से कार्यरत था?

iii) क्या इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि विपक्षी पक्ष/प्रत्यर्थी संख्या 2 अर्थात कथित नियोक्ता विद्वान आयुक्त के समक्ष गवाह के रूप में उपस्थित नहीं हुआ था और न ही दावेदार/प्रत्यर्थी संख्या 1 मृतक के रोजगार और आय के संबंध में अपने तर्कों के समर्थन में कोई दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत कर सका था, क्या विद्वान आयुक्त ने अपीलकर्ता बीमा कंपनी के इस साक्ष्य को नजरअंदाज करने में कोई गलती की है कि मृतक उपरोक्त विपक्षी पक्ष/प्रत्यर्थी संख्या 2 का कर्मचारी नहीं था?

6. संक्षेप में ऊपर वर्णित तथ्यों का, **सी मंजम्मू बनाम डिविजनल मैनेजर, न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड 2022 एसीजे 2661** में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों के परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन करना होगा। तथ्यों के निष्कर्ष को विकृत कहा जाता है जहां उस पक्ष द्वारा कोई सबूत पेश नहीं किया जाता है जिसके पक्ष में निर्णय लिखा गया है। आयुक्त ने दावेदारों के साक्ष्यों के साथ-साथ बीमा कंपनी के साक्ष्यों पर भी विचार किया है। निष्कर्ष ऐसे नहीं हैं जिन्हें विकृत कहा जा सके। सिर्फ इसलिए कि दुर्घटना में कोई अन्य वाहन शामिल है, क्या कर्मकार मुआवजा आयुक्त के समक्ष दावा याचिका सुनवाई योग्य नहीं होगी। बीमा(?) द्वारा उठाए गए उक्त प्रश्न का उत्तर स्वयं कानून द्वारा दिया गया है और मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 167 दावेदारों को किसी भी अधिनियम के तहत मुआवजे का दावा करने का विकल्प देती है। हमारे मामले में यह नहीं कहा जा सकता कि आयुक्त अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर गये हैं। प्रश्न संख्या2 का उत्तर प्रश्न में ही दिया गया है पहला, मृतक को बीमाकृत ट्रक पर नियोजित माना गया और फिर उसे प्रस्तुत किया गया कि अन्य वाहन का दूसरा मालिक पक्षकार नहीं है और दायित्व बीमा कंपनी का होगा। विवाद्यक संख्या 3 तथ्य का निष्कर्ष है और **सी मंजम्मू (सुप्रा)** में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के मद्देनजर, यह न्यायालय इसमें गहराई तक नहीं जा सकता।

7. सबसे पहले, कामगार मुआवजा आयुक्त के निर्णय के खिलाफ अपील पर विचार करने के लिए इस न्यायालय के दायरे पर चर्चा करना प्रासंगिक है।

8. सर्वोच्च न्यायालय ने **सिविल अपील संख्या 7470/2009 उत्तर पूर्व कर्नाटक सड़क परिवहन निगम बनाम श्रीमती सुजाता जो 2.11.2018 को निर्णीत हुआ,** में निम्नानुसार माना है:

"9. शुरुआत में, एक स्थापित सिद्धांत होने के नाते, हम इस तथ्य पर ध्यान दे सकते हैं, कि यह प्रश्न कि क्या कर्मचारी किसी दुर्घटना का शिकार हुआ, क्या दुर्घटना रोजगार के दौरान हुई, क्या यह रोजगार के कारण हुआ, दुर्घटना कैसे और किस प्रकार हुई, दुर्घटना कारित करने में किसकी लापरवाही थी, क्या कर्मचारी और नियोक्ता का कोई संबंध था, कर्मचारी की आयु और मासिक वेतन क्या था, दुर्घटना में घायल

होने के कारण मृत कर्मचारी के कितने आश्रित हैं, क्या नियोक्ता द्वारा घटना को कवर करने के लिए कोई बीमा कवरेज प्राप्त किया गया था आदि कुछ ऐसे महत्वपूर्ण मुद्दे हैं जो दावा याचिका में आयुक्त के न्यायोचित निर्णय के लिए उठते हैं, जब किसी कर्मचारी को उसके रोजगार के दौरान कोई शारीरिक चोट लगती है या उसकी मृत्यु हो जाती है और वह/उसका विधिक उत्तराधिकारी अधिनियम के तहत मुआवजे का दावा करने के लिए उसके नियोक्ता पर मुकदमा करता है।

10. उपरोक्त प्रश्न मूलतः तथ्यात्मक प्रश्न हैं और इसलिए उन्हें साक्ष्य की सहायता से सिद्ध किया जाना आवश्यक है। एक बार जब वे किसी भी तरह से साबित हो जाते हैं, तो उस पर दर्ज निष्कर्ष तथ्य के निष्कर्ष माने जाते हैं।"

9. सर्वोच्च न्यायालय ने आगे निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:

"15. ऐसी अपील को ग्राहयता के प्रश्न पर यह पता लगाने के लिए सुना जाता है कि इसमें कानून का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न शामिल है या नहीं। अपील में कानून का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न शामिल है या नहीं, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करता है और उच्च न्यायालय द्वारा जांच की जाती है। यदि कानून का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है, तो उच्च न्यायालय गुणावगुण के आधार पर अंतिम सुनवाई के लिए अपील स्वीकार करेगा अन्यथा इस कारण से खारिज कर देगा कि इसमें कानून का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न शामिल नहीं है।

16. अब इस मामले के तथ्यों पर आते हुए, हम पाते हैं कि उच्च न्यायालय के समक्ष अपील में ऊपर दिए गए तात्विक प्रश्नों पर कानून का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न शामिल नहीं था। दूसरे शब्दों में, हमारे विचार में, आयुक्त ने पक्षकारों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों के आधार पर मामले में उत्पन्न होने वाले सभी तात्विक प्रश्नों पर उचित निर्णय लिया और प्रतिवादी को देय मुआवजे का सही निर्धारण किया। इसलिए, तथ्यों के आधार पर उच्च न्यायालय द्वारा इसकी सही पुष्टि की गई।

17. मामले के इस दृष्टिकोण में, अधीनस्थ दो न्यायालयों के तथ्य के समवर्ती निष्कर्ष होने के कारण इस न्यायालय पर बाध्यकारी हैं। अन्यथा भी, हमें किसी भी तथ्यात्मक निष्कर्ष पर किसी भी हस्तक्षेप के लिए कोई अच्छा आधार नहीं मिलता है। कोई भी तथ्यात्मक निष्कर्ष या तो विकृत या मनमाना नहीं पाया गया या बिना किसी सबूत के आधारित या कानून के किसी भी प्रावधान के खिलाफ नहीं पाया गया। हम तदनुसार इन निष्कर्षों को कायम रखते हैं।"

10. इस न्यायालय ने हाल ही में **एफ.ए.एफ.ओ. 1070/1993 (ई.एस.आई.सी. बनाम एस. प्रसाद) में 26 अक्टूबर 2017 को निर्णय दिया है**, जिसमें **गोल्ला राजना (सुप्रा)** में दिए गए निर्णय का अनुसरण किया गया है और निम्नानुसार माना है:

"इस न्यायालय के समक्ष दिए गए आधार तथ्यों के निष्कर्ष के दायरे में हैं और कानून का सवाल नहीं है। जहां तक कानून का सवाल है, गोला राजन्ना आदि बनाम डिविजनल मैनेजर और अन्य (सुप्रा) में उपरोक्त निर्णय के पैराग्राफ 8 में इस प्रकार कहा गया है "कामगार मुआवजा आयुक्त तथ्यों पर अंतिम प्राधिकारी है। संसद ने

कल्याणकारी कानून होने के कारण अपील के दायरे को केवल कानून के महत्वपूर्ण प्रश्नों तक ही सीमित रखना उचित समझा है। दुर्भाग्य से, उच्च न्यायालय ने सीमित क्षेत्राधिकार के इस महत्वपूर्ण प्रश्न को नजरअंदाज कर दिया है और सबूतों का फिर से मूल्यांकन करने का साहस किया है और विकलांगता के प्रतिशत पर अपने स्वयं के निष्कर्षों को दर्ज किया है, जिसके लिए कोई आधार नहीं है।"

11. जहां तक वर्तमान अपील का सवाल है, तैयार किए गए कानून के तथाकथित महत्वपूर्ण प्रश्न तथ्यों के प्रश्न हैं और उक्त मुद्दों पर आयुक्त के निष्कर्ष विकृत/गलत नहीं हैं। **उत्तर पूर्व कर्नाटक सड़क परिवहन निगम मामला (सुप्रा)** और **गोल्ला राजन्ना आदि आदि बनाम मंडल प्रबंधक और अन्य, 2017 (1) टीएसी 259 (एससी)** में शीर्ष अदालत के फैसले के मद्देनजर, जहां पर भी यह माना गया है कि ई.सी. अधिनियम, 1923 की धारा 30 के तहत, उच्च न्यायालय तथ्यों के क्षेत्र में तब तक नहीं जा सकता जब तक कि वे विकृत साबित न हो जाएं।

12. मायान बनाम मुस्तफा एवं अन्य 2022 एसीजे 524 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के हालिया निर्णय में भी कहा गया है कि न्यायालय तब तक हस्तक्षेप नहीं कर सकता जब तक कि इसमें कानून का प्रश्न न हो। हमारे मामले में चोट रोजगार/नियोजन के दौरान लगी थी। चोट का प्रतिशत आयुक्त द्वारा तय किया गया था। सलीम बनाम न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य, 2022 एसीजे 526 में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय भी इस न्यायालय को आयुक्त के तर्कपूर्ण निर्णय में हस्तक्षेप करने की अनुमति नहीं देगा।

13. यह न्यायालय शाहजहां और अन्य बनाम मेसर्स श्री राम जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य, 2021(4) टीएसी 687 (एससी) में अपने दृष्टिकोण में भी मजबूत है क्योंकि यह साबित होता है कि दावेदार नियोक्ता का कर्मचारी था और एक क्लीनर के रूप में कार्यरत था, उक्त तथ्यात्मक निष्कर्ष में इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है।

14. मामले को देखते हुए यह अपील विफल हो जाती है और खारिज की जाती है। बीमा कंपनी द्वारा तैयार किए गए कानून के तथाकथित प्रश्नों का उत्तर इसके विरुद्ध दिया जाता है। वास्तव में कानून के जो महत्वपूर्ण प्रश्न उठाए गए हैं वे तथ्य के प्रश्न हैं।

15. अंतरिम राहत तुरंत समाप्त हो जाएगी। रजिस्ट्री इस आदेश को कर्मकार प्रतिकर आयुक्त को भेजेगी, जो तत्काल दावेदारों को बुलाएंगे और आज से 30 दिनों के भीतर सावधि जमा में रखी गई राशि पर आज तक अर्जित ब्याज सहित वितरित करेंगे।

(2023) 3 ILRA 1134

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 23.01.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर

माननीय न्यायमूर्ति अजीत सिंह

गवर्नमेंट अपील सं. 650 वर्ष 1993

उत्तर प्रदेश राज्य **...अपीलकर्ता**

बनाम

बद्री लोधी **...प्रतिपक्षी**

अपीलकर्ता की ओर से अधिवक्ता : ए.जी.ए.

प्रतिपक्षी की ओर से अधिवक्ता : श्री बी.सिंह, श्री अवधेश नारायण तिवारी, श्री सुरेन्द्र सिंह

1. गवर्नमेंट अपील सं. 650 वर्ष 1993,उत्तर प्रदेश राज्य बनाम बद्री लोढ़ी,

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302 - हत्या - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 378(3) - दोषमुक्त के विरुद्ध अपीलें - अपील न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की परिसीमा - सिद्धांतों की पुनरावृत्ति - यदि विचारणीय न्यायालय द्वारा आरोपित को दोषमुक्त करने का विचार संभवतः उचित दृष्टिकोणों में से एक है - तो अपील न्यायालय आमतौर पर दोषमुक्ति आदेश में हस्तक्षेप नहीं करेगी - अभियोजन पक्ष एक संपूर्ण स्थिति की श्रृंखला स्थापित करने में असफल रहा - साक्ष्य कमज़ोर हैं - दोषमुक्ति आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए कोई ठोस और बाध्यकर कारण नहीं हैं-

अपील निरस्त। (E-9)

उद्धृत वाद सूची:

1. एम.एस. नारायण मेनन @ मणि बनाम राज्य केरल एवं अन्य, (2006) 6 एस.सी.सी. 39

2. गोवा राज्य बनाम संजय ठाकुर एवं अन्य, (2007) 3 एस.सी.सी. 75

3. चंद्रप्पा बनाम राज्य कर्नाटका, (2007) 4 एस.सी.सी. 415

4. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम राम वीर सिंह एवं अन्य, 2007 ए.आई.आर. एस.सी.डब्ल्यू. 5553

5. गिरजा प्रसाद (मृतक) द्वारा वारिसान बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 2007 ए.आई.आर. एस.सी.डब्ल्यू. 5589

6. लूना राम बनाम भूपत सिंह एवं अन्य, (2009) एस.सी.सी. 749

7. मूकाकियाह एवं अन्य बनाम राज्य, पुलिस निरीक्षक द्वारा प्रतिनिधित्व, टी.एन., रिपोर्टेड इन ए.आई.आर. 2013 एस.सी. 321

8. कर्नाटक राज्य बनाम हेमारेड्डी, ए.आई.आर. 1981, एस.सी. 1417

9. शिवशरणप्पा एवं अन्य बनाम कर्नाटक राज्य, JT 2013 (7) एस.सी. 66

10. पंजाब राज्य बनाम मदन मोहन लाल वर्मा, (2013) 14 एस.सी.सी. 153

11. जयस्वामी बनाम कर्नाटक राज्य (2018) 7 एस.सी.सी. 219

<u>माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेंद्र ठाकर,</u>
<u>माननीय न्यायमूर्ति अजीत सिंह.</u>

राज्य के आदेश पर आपराधिक प्रक्रिया संहिता (संक्षेप में 'सीआर.पी.सी.') की धारा **378 (3)** के तहत यह अपील, विद्वान द्वितीय अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, जालौन स्थान उरई द्वारा आपराधिक मामले संख्या **145/1992** (*उत्तर प्रदेश राज्य बनाम बद्री लोधी*), भारतीय दंड संहिता की धारा **302** के तहत (इसके बाद 'आईपीसी' के रूप में संदर्भित) और धारा **3 (2) (v)** अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, **1989,** के तहत पुलिस स्टेशन-कोतवाली उरई, जिला जालौन, में पारित निर्णय और आदेश दिनांक **7.1.1993** के खिलाफ दायर की गई है, जिसके द्वारा विद्वान परीक्षण न्यायालय ने आरोपी-प्रतिवादी को बरी कर दिया।

2. इस मामले के संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं कि **7** और **8** मई **1992** की मध्य रात्रि में

ग्राम धमनी, थाना कोतवाली उरई, जिला जालौन में अभियुक्त बद्री लोधी ने सूचनादाता के बेटे की तमंचे से गोली मारकर हत्या कर दी, जब मृतक अपने दुकान के सामने खाट पर सो रहा था।

3. मामला दिनांक **8.5.1992** को प्रातः **3:30** बजे थाना कोतवाली उरई में पंजीकृत किया गया था। लिखित रिपोर्ट ग्राम धमनी के सुख लाल चमार द्वारा लिखाई गई बताई गई है। अभियोजन पक्ष का दावा है कि उस समय प्रथम सूचनादाता टुंडे पुलिस स्टेशन पहुंच कर पुलिस को उक्त लिखित एफआईआर सौंप चुका था, जिसके आधार पर चिक पर प्रदर्श का- **3** लिखाई गयी और मामला प्रदर्श का-**4** देखें, जी.डी. में दर्ज किया गया था। टुंडे द्वारा प्रदर्श का-**4** में यह आरोप लगाया गया कि वह जाति से चमार था और गाँव में महेश्वरी लोधी की पत्नी के व्यभिचार की शिकायतें थीं और गाँव के लोगों द्वारा आम तौर पर यह कहा जाता था कि महेश्वरी लोधी की उक्त पत्नी शिकायतकर्ता के पुत्र के साथ अवैध संबंध बनाए रखती थी और इस वजह से आरोपी टुंडे के मृतक बेटे से दुश्मनी रखता था। एफआईआर में यह कहा गया था कि इसी कारण से आरोपी मृतक बद्री लोधी के प्रति शत्रुता रखता था और इसलिए, घटना की प्रासंगिक रात में लगभग देर रात जब मृतक अपनी दुकान के सामने एक खाट पर सो रहा था। बिजली जल रही थी, आरोपी हाथ में बंदूक लेकर पूर्वी दिशा से आया और मृतक को मारने के उद्देश्य से उस पर गोली चला दी, जिससे उसके पेट के दाहिनी ओर चोट लग गई। एफआईआर में बताया गया है कि मृतक के चिल्लाने पर टुंडे, उसकी पत्नी और उसका छोटा भाई संत राम और गवाह छक्की तुरंत मौके पर पहुंचे और देखा कि आरोपी मृतक पर गोली चलाकर पश्चिम की ओर भाग रहा था। टुंडे और अन्य लोगों के प्रयास के बावजूद उसे पकड़ा नहीं जा सका। घटना के बाद घायल को अस्पताल ले जाया गया लेकिन उरई के रास्ते में उसने दम तोड़ दिया। आरोप था कि अस्पताल में शव रखा था और ग्रामीण मौजूद थे।

4. इस लिखित रिपोर्ट के आधार पर दिनांक **8.5.1992** को प्रातः **3:30** बजे सूचनादाता टुण्डे (पीडब्लू-**2**) द्वारा अभियुक्त के विरूद्ध थाना कोतवाली उरई में मुकदमा पंजीकृत कराया गया। मुकदमा पंजीकृत होने के बाद जांच शुरू की गई। जांच अधिकारी ने शिकायतकर्ता और अन्य गवाहों के बयान दर्ज किए, साइट का दौरा किया और साइट-प्लान तैयार किया। जांच के बाद मामले के जांच अधिकारी ने आरोपी बद्री लोधी के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया।

5. आरोपी बद्री लोधी पर भारतीय दंड संहिता की धारा **302** और अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम की धारा **3(2) (v)** के तहत आरोप लगाया गया था। यह मामला विशेष रूप से सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय होने के कारण सक्षम मजिस्ट्रेट द्वारा सत्र न्यायालय में सुनवाई के लिए समर्पित किया गया। आरोपी व्यक्ति ने आरोपों से इनकार किया और मुकदमा चलाए जाने का दावा किया।

6. आरोपों को सही साबित करने के लिए अभियोजन पक्ष ने निम्नलिखित गवाह पेश किए, नामतः : -

1.	डॉ. ए.के. सक्सेना	पीडब्लू 1
2.	टुंडे	पीडब्लू 2
3.	चक्की	पीडब्लू 3

4.	संतराम	पीडब्लू 4
5.	सुभाष चंद्र शाक्य	पीडब्लू 5

7. गवाहों के नेत्र संबंधी संस्करण के समर्थन में, निम्नलिखित दस्तावेज़ पेश किए गए और उनकी सामग्री को प्रमुख साक्ष्यों द्वारा साबित किया गया:

1.	पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट	प्रदर्श क 1
2.	प्रश्न पर लिखित रिपोर्ट	प्रदर्श क 2
3.	प्रथम सूचना रिपोर्ट	प्रदर्श क 3
4.	सामान्य डायरी	प्रदर्श क 4
5.	जी.डी. रिपोर्ट	प्रदर्श क 5
6.	पंचायतनामा एवं संबंधित कागजात	प्रदर्श क 6 से प्रदर्श क 10
7.	सूचकांक के साथ साइट योजना	प्रदर्श क 11
8.	खून से सना हुआ और सादी मिट्टी का पुनर्प्राप्ति ज्ञापन	प्रदर्श का 12

8. अभियोजन साक्ष्य के बाद, आरोपी व्यक्ति से धारा **313** सीआर.पी.सी. के तहत परीक्षण किया गया। जिसमें उन्होंने बताया कि उनके खिलाफ झूठे सबूत पेश किए गए हैं।

9. हमने राज्य अपीलकर्ता के विद्वान एजीए पतंजलि मिश्रा, अभियुक्त प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता श्री सुरेंद्र सिंह को सुना और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

10. इससे पहले कि हम गवाही और निचली अदालत के फैसले पर आगे बढ़ें, उन आपराधिक अपीलों में हस्तक्षेप करने की रूपरेखा पर चर्चा करने की आवश्यकता होगी जहां आरोपी को निर्दोष ठहराया गया है।

11. सिद्धांत, जो परीक्षण न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति के आदेश के खिलाफ इस न्यायालय द्वारा अपील की सुनवाई को नियंत्रित और विनियमित करेंगे, शीर्ष न्यायालय द्वारा निर्णयों की श्रृंखला में बहुत संक्षेप में समझाए गए हैं। ***एम.एस. नारायण मेनन @ मणि बनाम केरल राज्य और अन्य, (2006) 6 एस.सी.सी. 39 के मामले में***, शीर्ष अदालत ने बरी करने के आदेश के खिलाफ अपील में उच्च न्यायालय की शक्तियों के बारे में बताया है। निर्णय के अनु. **54** में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार कहा है:

"54. किसी भी घटना में उच्च न्यायालय ने दोषमुक्ति के खिलाफ अपील मानकर एक अपील पर विचार किया, यह वास्तव में पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार का प्रयोग था। बरी करने के फैसले के खिलाफ अपीलीय शक्ति का प्रयोग करते समय भी, उच्च न्यायालय को कानून के सुस्थापित सिद्धांतों को ध्यान में रखना चाहिए था कि जहां दो दृष्टिकोण संभव हैं, निचली अदालत द्वारा बरी किए जाने का निष्कर्ष दर्ज किया गया हो, अपीलीय न्यायालय को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।"

12. इसके अलावा, ***चंद्रप्पा बनाम कर्नाटक राज्य के मामले में, (2007) 4 एस.सी.सी. 415***

में रिपोर्ट किया गया, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित सिद्धांत निर्धारित किये;

"42. उपरोक्त निर्णयों से, हमारे विचार में, दोषमुक्ति के आदेश के खिलाफ अपील *से निपटने के दौरान अपीलीय न्यायालय की शक्तियों के संबंध में निम्नलिखित सामान्य सिद्धांत सामने आते हैं:*

__[1]__ एक अपीलीय न्यायालय के पास उन साक्ष्यों की समीक्षा, पुनर्मूल्यांकन और पुनर्विचार करने की पूरी शक्ति है, जिन पर बरी करने का आदेश आधारित है।

__[2]__ आपराधिक प्रक्रिया संहिता, __1973__ इस तरह की शक्ति के प्रयोग पर कोई सीमा, प्रतिबंध या शर्त नहीं लगाती है और अपीलीय अदालत तथ्य और कानून दोनों के सवालों पर अपने निष्कर्ष पर पहुंचने से पहले साक्ष्यों पर विचार कर सकती है।

__[3]__ विभिन्न अभिव्यक्तियाँ, जैसे, "पर्याप्त और बाध्यकारी कारण", "अच्छे और पर्याप्त आधार", "बहुत मजबूत परिस्थितियाँ", "विकृत निष्कर्ष", "स्पष्ट गलतियाँ", आदि का उद्देश्य किसी दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील में अपीलीय न्यायालय की व्यापक शक्तियों पर पर्दा डालना नहीं है। साक्ष्यों की समीक्षा करने और अपने स्वयं के निष्कर्ष पर आने की अदालत की शक्ति को कम करने की तुलना में अपीलीय अदालत की बरी करने में हस्तक्षेप करने की अनिच्छा पर जोर देने के लिए इस तरह के वाक्यांश "भाषा के उत्कर्ष" की प्रकृति की हैं।

__[4]__ हालाँकि, एक अपीलीय न्यायालय को यह ध्यान में रखना चाहिए कि बरी होने की स्थिति में अभियुक्त के पक्ष में दोहरी धारणा होती है। सबसे पहले, निर्दोषता की धारणा उसे आपराधिक न्यायशास्त्र के मूल सिद्धांत के तहत उपलब्ध है कि प्रत्येक व्यक्ति को तब तक निर्दोष माना जाएगा जब तक कि वह सक्षम न्यायालय द्वारा दोषी साबित न हो जाए। दूसरे, आरोपी ने अपनी रिहाई सुनिश्चित कर ली है, और परीक्षण न्यायालय द्वारा उसकी बेगुनाही का अनुमान और भी मजबूत किया गया, इसकी पुष्टि की गई।

__[5]__ यदि रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों के आधार पर दो उचित निष्कर्ष संभव हैं, तो अपीलीय अदालत को परीक्षण न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए दोषमुक्ति के निष्कर्ष को परेशान नहीं करना चाहिए।

13. इस प्रकार, यह एक स्थापित सिद्धांत है कि अपीलीय शक्तियों का प्रयोग करते समय, भले ही रिकॉर्ड पर साक्ष्य के आधार पर दो उचित विचार/निष्कर्ष संभव हों, अपीलीय अदालत को ट्रायल कोर्ट द्वारा दर्ज किए गए दोषमुक्ति के निष्कर्ष को बाधित नहीं करना चाहिए।

14. यहां तक कि ***गोवा राज्य बनाम संजय ठकरान और अन्य के मामले में भी, (2007) 3 एस.सी.सी. 75 में*** रिपोर्ट किया गया, शीर्ष न्यायालय ने ऐसे मामलों में उच्च न्यायालय की शक्तियों को दोहराया है। उक्त निर्णय के अनु. **16** में, न्यायालय ने निम्नानुसार कहा है:

__"16.__ उपरोक्त निर्णयों से, यह स्पष्ट है कि दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध अपील में शक्तियों का प्रयोग करते समय अपील न्यायालय आमतौर पर के आदेश में हस्तक्षेप नहीं करेगा। बरी करना, जब तक कि निचली अदालत का दृष्टिकोण किसी

स्पष्ट अवैधता से दूषित न हो और जो निष्कर्ष निकले, वह किसी भी तार्किक व्यक्ति द्वारा नहीं निकाला जाएगा और इसलिए, निर्णय को विकृत माना जाएगा। केवल इसलिए कि दो दृष्टिकोण संभव हैं, अपीलीय अदालत वह दृष्टिकोण नहीं अपनाएगी जो निचली अदालत द्वारा दिए गए फैसले को उलट देगा। हालाँकि, अपीलीय न्यायालय के पास सबूतों की समीक्षा करने की शक्ति है यदि उसका मानना है कि निचली अदालत द्वारा निकाला गया निष्कर्ष विकृत है और अदालत ने कानून की स्पष्ट त्रुटि की है और रिकॉर्ड पर भौतिक साक्ष्य को नजरअंदाज कर दिया है। ऐसी परिस्थितियों में, अपीलीय न्यायालय पर यह कर्तव्य बनता है कि वह रिकॉर्ड पर रखी गई सामग्री के आधार पर उचित निर्णय पर पहुंचने के लिए सबूतों का फिर से मूल्यांकन करे ताकि यह पता लगाया जा सके कि क्या कोई आरोपी जिसका उस पर आरोप है उस कारित अपराध से जुड़ा है।"

15. इसी तरह का सिद्धांत सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ***उत्तर प्रदेश राज्य बनाम राम वीर सिंह और अन्य, 2007 ए.आई.आर. एस.सी.डब्ल्यू. 5553 तथा गिरजा प्रसाद (मृत) में एल.आर.एस. बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 2007 ए.आई.आर. एस.सी.डब्ल्यू. 5589. के मामलों में*** भी निर्धारित किया गया है। इस प्रकार, शक्तियां, जिनका प्रयोग यह न्यायालय बरी करने के आदेश के विरुद्ध कर सकता है, सुस्थापित हैं।

16. ***एससीसी 749 (2009) में रिपोर्ट किए गए लूना राम बनाम भूपत सिंह और अन्य*** के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने अनु. **10** और **11** में निम्नानुसार व्यवस्था दी है:

*"**10.** उच्च न्यायालय ने कहा है कि अभियोजन पक्ष का बयान स्पष्ट रूप से विश्वसनीय नहीं था। कुछ तथाकथित प्रत्यक्षदर्शियों ने कहा कि मृतक की मृत्यु इसलिए हुई क्योंकि उसका टखना एक आरोपी द्वारा मरोड़ दिया गया था। अन्य लोगों का कहना था कि उसकी गला दबाकर हत्या की गयी है। अभियोजन पक्ष का मामला था कि घायल गवाहों को बस से बाहर फेंक दिया गया था। पोस्टमॉर्टम करने वाले और गवाहों की जांच करने वाले डॉक्टर ने स्पष्ट रूप से कहा था कि यह संभव नहीं है कि कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति को चलती हुई बस से बाहर फेंक देगा।*

***11.** बरी किए जाने के फैसले के खिलाफ अपील के मापदंडों को ध्यान में रखते हुए, हम इस अपील में हस्तक्षेप करने के इच्छुक नहीं हैं। उच्च न्यायालय के दृष्टिकोण को विकृत नहीं कहा जा सकता और यह साक्ष्य पर एक संभावित दृष्टिकोण है।"*

17. यहां तक कि ***एआईआर 2013 एससी 321 में रिपोर्ट किए गए मुक्किया और अन्य बनाम तमिलनाडु के पुलिस निरीक्षक के राज्य प्रतिनिधियों के मामले में*** सर्वोच्च न्यायालय के हालिया निर्णय में, अनु. **4** में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार माना है:

*"**4.** इसमें कोई विवाद नहीं है कि परीक्षण न्यायालय ने अभियोजन और बचाव पक्ष के मौखिक और दस्तावेजी सबूतों का मूल्यांकन करते हुए आरोपी को लगाए गए आरोपों से बरी कर दिया। राज्य की अपील पर, उच्च*

*न्यायालय ने, आक्षेपित आदेश द्वारा, उक्त निर्णय को उलट दिया और आरोपी को आईपीसी की धारा **34** के साथ पढ़ी जाने वाली धारा **302** के तहत दोषी ठहराया और जीवन भर के लिए सश्रम कारावास की सजा सुनाई। चूँकि अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने इस बात पर बहुत जोर दिया कि उच्च न्यायालय ने दोषमुक्ति के आदेश को उलटने में अपने अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण किया है, आइए हम दोषमुक्ति के आदेश के खिलाफ दायर अपील में उच्च न्यायालय के दायरे और शक्ति का विश्लेषण करें। निर्णयों की एक शृंखला में इस न्यायालय ने बार-बार यह निर्धारित किया है कि प्रथम अपीलीय अदालत के रूप में उच्च न्यायालय, यहां तक कि बरी किए जाने के खिलाफ अपील से निपटते समय भी पूरे सबूतों की जांच करने और यदि आवश्यकता हो तो उन्हें दोबारा जांचने का हकदार और बाध्य भी है। हालाँकि, हस्तक्षेप करते समय केवल अदालत को रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्यों के आधार पर अपराध का पूर्ण आश्वासन मिलना चाहिए, न कि केवल इसलिए कि उच्च न्यायालय केवल एक और संभावित या अलग दृष्टिकोण अपना सकता है। उपरोक्त को छोड़कर, जहां अपील पर विचार की सीमा और गहराई का मामला है, केवल इसलिए कि एक दोषसिद्धि के खिलाफ था या दूसरा बरी होने के खिलाफ था, किसी अपील से निपटने में दृष्टिकोण में कोई भेद या अंतर की परिकल्पना नहीं की गई है।"*

*[देखें राजस्थान राज्य बनाम सोहन लाल और अन्य, **(2004) 5** एससीसी **573]"***

18. यह भी एक स्थापित विधिक स्थिति है कि बरी की अपील में, अपीलीय न्यायालय को निर्णय को फिर से लिखने या नए तर्क देने की आवश्यकता नहीं है, जब अधीनस्थ न्यायालय द्वारा बताए गए कारण उचित और उचित पाए जाते हैं। ऐसा सिद्धांत सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ***कर्नाटक राज्य बनाम हेमारेड्डी, एआईआर 1981, एससी 1417 के मामले में*** निर्धारित किया गया है, जिसमें इसे इस प्रकार रखा गया है:

*"...इस न्यायालय ने गिरिजा नंदिनी देवी बनाम बिगेंद्र नंदिनी चौधरी **(1967) 1** एससीआर **93:** (एआईआर **1967** एससी **1124**) मामले में देखा है कि साक्ष्य पर अपीलीय न्यायालय का यह कर्तव्य नहीं है कि वह साक्ष्य के कथन को दोहराए या परीक्षण न्यायालय द्वारा दिए गए कारणों को दोहराने के लिए न्यायालय द्वारा दिए गए कारणों के साथ सामान्य सहमति की अभिव्यक्ति, जिसका निर्णय अपील के अधीन है, आमतौर पर पर्याप्त होगा।"*

19. हाल ही के एक फैसले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ***शिवशरणप्पा और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य, जेटी 2013 (7) एससी 66 में*** इसे निम्नानुसार आयोजित किया गया है:

> *"उस अपीलीय न्यायालय को संपूर्ण साक्ष्यों का फिर से मूल्यांकन करने का अधिकार है, हालांकि, कुछ अन्य सिद्धांतों का भी पालन किया जाना है और यह ध्यान में रखना होगा कि बरी करने से निर्दोषता की दोहरी धारणा बनती है।"*

20. इसके अलावा, ***पंजाब राज्य बनाम मदन मोहन लाल वर्मा, (2013) 14 एससीसी 153 के मामले में***, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार व्यवस्था दी है:

*"इस मुद्दे पर कानून सुस्थापित है कि **1988** के अधिनियम के तहत अपराध के गठन के लिए अवैध परितोषण की मांग अनिवार्य है। जब मामले में ठोस सबूत विश्वसनीय नहीं होते हैं, तो केवल दूषित धन की बरामदगी ही आरोपी को दोषी ठहराने के लिए पर्याप्त नहीं है, जब तक कि रिश्वत के भुगतान को साबित करने या यह दिखाने के लिए सबूत न हो कि पैसा स्वेच्छा से रिश्वत के रूप में लिया गया था। अवैध परितोषण के रूप में राशि की मांग और स्वीकृति के संबंध में किसी भी सबूत के अभाव में, अभियुक्त द्वारा राशि की प्राप्ति मात्र अपराध स्थापित करने के लिए पर्याप्त नहीं है। इसलिए, **1988** के अधिनियम की धारा **20** के तहत उठाए गए वैधानिक अनुमान को विस्थापित करने का दायित्व अभियुक्त पर है, प्रत्यक्ष या परिस्थितिजन्य साक्ष्यों को रिकॉर्ड पर लाकर, उचित संभावना के साथ यह स्थापित करने के लिए कि **1988** अधिनियम की धारा **7** में निर्दिष्ट एक मकसद या इनाम के अतिरिक्त पैसा उसके द्वारा स्वीकार किया गया था। अधिनियम की धारा **20** के प्रावधानों को लागू करते समय, अदालत को अभियुक्त द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण, यदि कोई हो, पर केवल संभाव्यता की प्रबलता की कसौटी पर विचार करना आवश्यक है, न कि सभी उचित संदेह से परे साक्ष्य की कसौटी पर। हालाँकि, इससे पहले कि अभियुक्त को यह बताने के लिए बुलाया जाए कि उसके पास विचाराधीन राशि कैसे पाई गई, अभियोजन पक्ष द्वारा मूलभूत तथ्य स्थापित किए जाने चाहिए। शिकायतकर्ता एक इच्छुक और समर्थित गवाह है जो पाश की सफलता से सम्बद्ध है और उसके साक्ष्य का परीक्षण उसी तरह किया जाना चाहिए जैसे किसी अन्य इच्छुक गवाह का। किसी उचित मामले में, अदालत आरोपी व्यक्ति को समझाने से पहले स्वतंत्र पुष्टि की तलाश कर सकती है।"*

21. सर्वोच्च न्यायालय ने हाल ही में ***जयस्वामी बनाम कर्नाटक राज्य, (2018) 7 एससीसी 219 में,*** ऐसे मामले में साक्ष्यों का फिर से मूल्यांकन करने में अपीलीय अदालत की शक्तियों को निर्धारित करने के लिए सिद्धांत निर्धारित किए हैं जहां राज्य ने दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील को प्राथमिकता दी है, जो इस प्रकार है:

*"**10.** यह अब सुस्थापित हो चुका है कि बरी करने के फैसले और आदेश के खिलाफ दायर अपील की सुनवाई करने वाली अपीलीय अदालत परीक्षण न्यायालय के बरी करने के फैसले को खारिज नहीं करेगी या अन्यथा बाधित नहीं करेगी यदि अपीलीय अदालत को ऐसा करने के लिए पर्याप्त और बाध्यकारी कारण नहीं मिलते हैं। यदि तथ्यों के संबंध में परीक्षण न्यायालय का निष्कर्ष स्पष्ट रूप से गलत है; यदि परीक्षण न्यायालय का निर्णय कानून के गलत दृष्टिकोण पर आधारित था; यदि परीक्षण न्यायालय के फैसले के परिणामस्वरूप घोर अन्याय होने की संभावना है; यदि परीक्षण न्यायालय का संपूर्ण दृष्टिकोण साक्ष्य के साथ व्यवहार स्पष्ट रूप से अवैध था; यदि परीक्षण न्यायालय का निर्णय स्पष्ट रूप से अन्यायपूर्ण और अनुचित था; और यदि परीक्षण न्यायालय ने सबूतों को नजरअंदाज कर दिया है या भौतिक साक्ष्य को गलत तरीके से पढ़ा है या मृत्युपूर्व घोषणा/ बैलिस्टिक विशेषज्ञ की रिपोर्ट आदि जैसे भौतिक दस्तावेजों को नजरअंदाज कर दिया है। इसे पर्याप्त और बाध्यकारी कारणों के रूप में माना जा सकता है और प्रथम अपीलीय अदालत बरी करने के आदेश*

में हस्तक्षेप कर सकती है। हालाँकि, यदि अभियुक्त को बरी करते समय परीक्षण न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के तहत संभावित विचारों में से एक है, तो विशेष रूप से उपरोक्त कारकों की अनुपस्थिति में, अपीलीय अदालत आमतौर पर बरी करने के आदेश में हस्तक्षेप नहीं करेगी।

*...............रामानंद यादव बनाम प्रभु नाथ झा एवं अन्य के मामले में इस न्यायालय की टिप्पणियों पर ध्यान देना प्रासंगिक है। **(2003) 12** एससीसी **606,** जो इस प्रकार पढ़ा गया:*

*"**21.** अपीलीय अदालत पर उन सबूतों की समीक्षा करने पर कोई प्रतिबंध नहीं है, जिन पर बरी करने का आदेश आधारित है। आम तौर पर, बरी करने के आदेश में हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा क्योंकि बरी होने से आरोपी की बेगुनाही की धारणा और भी मजबूत हो जाती है। आपराधिक मामलों में न्याय प्रशासन के तंतुओं में जो स्वर्णिम सूत्र चलता है, वह यह है कि यदि मामले में पेश किए गए सबूतों पर दो दृष्टिकोण संभव हैं, एक अभियुक्त के अपराध की ओर इशारा करता है और दूसरा उसकी बेगुनाही की ओर इशारा करता है, तो जो दृष्टिकोण अभियुक्त के अनुकूल होता है, को अपनाया जाना चाहिए। अदालत का सर्वोपरि विचार यह सुनिश्चित करना है कि घोर अन्याय को रोका जाए। घोर अन्याय जो दोषियों को बरी करने से हो सकता है, वह किसी निर्दोष को दोषी ठहराए जाने से कम नहीं है। ऐसे मामले में जहां स्वीकार्य साक्ष्य अगर इसे नजरअंदाज कर दिया जाता है, तो अपीलीय अदालत पर यह कर्तव्य बनता है कि वह उस मामले में साक्ष्यों का फिर से मूल्यांकन करे, जहां आरोपी को बरी कर दिया गया है, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि किसी आरोपी ने कोई अपराध किया है या नहीं।"*

22. शीर्ष न्यायालय ने हाल ही में ***शैलेन्द्र राजदेव पासवान बनाम गुजरात राज्य, (2020) 14 एससी 750,*** ने माना है कि अपीलीय अदालत परीक्षण न्यायालय के बरी करने के आदेश को उलट रही है, उसे अभियुक्तों के पक्ष में निर्दोषता की धारणा को उचित महत्व और विचार देना चाहिए, और इस सिद्धांत पर कि ऐसा परीक्षण न्यायालय और अन्य द्वारा अनुमान को सुदृढ़, पुन: पुष्ट और मजबूत किया गया है। ***सैमसुल हक बनाम असम राज्य, (2019) 18 एससीसी 161 में*** माना गया कि जहां दो दृष्टिकोण संभव हैं, बरी करने के फैसले को, रद्द नहीं किया जाना चाहिए, भले ही अपीलीय अदालत द्वारा गठित दृष्टिकोण अधिक संभावित हो, बरी करने में हस्तक्षेप केवल तभी उचित ठहराया जा सकता है जब यह विकृत दृष्टिकोण पर आधारित हो।

23. हमने अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयान, प्रत्यक्ष संस्करणों से समर्थित दस्तावेजी साक्ष्य, पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई दलीलों का अध्ययन किया है। हमने रिकॉर्ड का अवलोकन किया है। हम निम्नलिखित कारणों से राज्य अधिवक्ता की दलीलों और निर्णयों को स्वीकार करने में असमर्थ हैं सर्वोच्च न्यायालय जो दोषमुक्ति के विरुद्ध अपीलों पर विचार करने के लिए मानदंड निर्धारित करता है। शृंखला अपूर्ण पाई गई है। फैसले को पढ़ते समय यह बहुत स्पष्ट है कि निचली अदालत ने एक स्पष्ट निष्कर्ष दिया है कि सबूत इतने कम हैं कि आरोपी को उन अपराधों के लिए दंडित/दोषी नहीं ठहराया जा सकता है जिनके लिए उस पर आरोप लगाया गया था। वर्तमान मामले में तथ्यात्मक परिदृश्य हमें अधीनस्थ अदालत द्वारा अपनाए गए

दृष्टिकोण से भिन्न दृष्टिकोण अपनाने की अनुमति नहीं देगा। इस मामले को देखते हुए हम खुद को संतुष्ट नहीं कर पा रहे हैं। इस प्रकार हम अधीनस्थ अदालत के निष्कर्षों से सहमत हैं।

24. वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने और रिकॉर्ड पर उपलब्ध साक्ष्यों के मूल्यांकन और सर्वोच्च न्यायालय के फैसले द्वारा निर्धारित रूपरेखा पर विचार करने के बाद, हमारे पास उपरोक्त कारणों से विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा दर्ज किए गए दोषमुक्ति के तर्क से सहमत होने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं है।

25. अपील योग्यता विहीन है तथा खारिज की जाती है। रिकॉर्ड और कार्यवाही अधीनस्थ न्यायालय को वापस भेजी जाए। जमानत और जमानत बांड रद्द कर दिए गए हैं।

(2023) 3 ILRA 1141

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल वाद

दिनांक: इलाहाबाद 10.02.2023

माननीय न्यायमूर्ति चंद्र कुमार राय

के समक्ष

रिट-बी संख्या 4678/1989

राम नरेश एवं अन्य ..याचिकाकर्ता

बनाम

राजस्व बोर्ड, उत्तर प्रदेश एवं अन्य ...प्रतिपक्षी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता: श्री एस.एन. सिंह, श्री ए.एन. भार्गव। श्री अजय कुमार बनर्जी, श्री अनिल कुमार राय, श्री आर.एन. सिंह, श्री विष्णु सिंह

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: सी.एस.सी., श्री ए.पी. श्रीवास्तव, श्री अजय कुमार बनर्जी, श्री अनिल पाठक, श्री मनोज कुमार सिंह, श्री प्रभाकर सिंह, श्री राकेश पाठक, श्री एस.पी. सिंह

ए. सिविल कानून - यूपी ज़मींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 - धारा 229B - घोषणात्मक वाद - समर्पण - याचिकाकर्ता ने यूपी ज़ेड.ए. और एल.आर. अधिनियम की धारा 229B के तहत सह-स्वामित्व का अधिकार मांगते हुए एक वाद दायर किया, जिसमें यह आरोप लगाया गया कि विवादित भूमि पुश्तैनी है और सामान्य पूर्वज की मृत्यु के पश्चात, याचिकाकर्ता और प्रतिवादी संख्या 1 विवादित भूमि के स्वामी बन गए हैं - प्रतिवादी ने आरोप लगाया कि याचिकाकर्ता ने भूमि का समर्पण कर दिया है और याचिकाकर्ता के अधिकार समाप्त हो गए हैं - आयोजित - याचिकाकर्ता और प्रतिवादी परिवार के सदस्य हैं और एक सह-स्वामी का कब्जा सभी का कब्जा है, इसलिए केवल ससुराल में रहने से याचिकाकर्ता को विवादित भूमि में अपने अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता - प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत समर्पण का दावा सिद्ध नहीं हुआ - याचिकाकर्ता को विवादित भूमि में ½ हिस्से के अधिकार का आदेश दिया गया - (पैराग्राफ 10, 16)

बी. उत्तर प्रदेश ज़मींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 - धारा 229B - वाद दायर करने की समय सीमा - यूपी ज़ेड.ए. और एल.आर. अधिनियम की धारा 229B के तहत वाद दायर करने के लिए कोई समय सीमा नहीं है (पैराग्राफ 16)

सी. उत्तर प्रदेश भूमि समेकन अधिनियम, 1953 - धारा 49 - सह-स्वामी के अधिकारों को संयुक्त

संपत्ति में विभाजन का दावा न करने और समेकन प्रक्रिया के दौरान अलग चक न होने के कारण समाप्त नहीं किया जाएगा और यहां तक कि सह-स्वामी का अधिकार यूपी भूमि समेकन अधिनियम की धारा 49 के तहत समाप्त नहीं होगा (पैराग्राफ 13)

स्वीकृत। (ई-5)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

बेचू बनाम राजस्व बोर्ड एवं अन्य 1966 एएलजे 1063

जग्गू एवं अन्य बनाम उप निदेशक समेकन 1982 आरडी 217

राम ब्रिक्शा एवं अन्य बनाम उप निदेशक समेकन एवं अन्य 2017 (6) एडीजे 356 (डीबी)

करबलाई बेगम बनाम मोहम्मद सईद एवं अन्य एआईआर 1981 एससी 77

शारदा देवी बनाम राजस्व बोर्ड यूपी एवं अन्य 1985 आरडी 93

पान कुमारी बनाम राजस्व बोर्ड यूपी, इलाहाबाद एवं अन्य 2005 (99) आरडी 52

<u>माननीय न्यायमूर्ति चंद्र कुमार राय</u>

1. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री विष्णु सिंह को सुना। प्रत्यर्थी गणों के लिए कोई भी उपस्थित नहीं हुआ।

2. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता ने उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम की धारा 229 बी के अंतर्गत एक वाद संस्थित किया, जिसमें ग्राम भरलाई, परगना शिवपुर, जनपद वाराणसी में स्थित वादग्रस्त भूखंड के संबंध में सह-भूमिधरी अधिकार का दावा किया गया था, जिसमें आरोप लगाया गया था कि विवादित भूखंड पैतृक है और सामान्य पूर्वज की मृत्यु के बाद वादी और प्रतिवादी संख्या 1 विवादित भूखंड के कब्जे में मालिक बन जाते हैं। वादपत्र में यह भी आरोप लगाया गया है कि वादी के पिता ने राशि जमा की और 10.01.1950 को भूमिधरी सनद प्राप्त की, किन्तु वादी के पिता की मृत्यु के बाद मात्र प्रतिवादी संख्या 1 का नाम राजस्व अभिलेख में दर्ज किया गया था, इसलिए वाद संस्थित किया गया। प्रतिवादी-प्रत्यर्थीगण, ने उपरोक्त वाद में लिखित कथन प्रस्तुत किया, जिसमें वादी के आरोपों से इनकार किया गया और अतिरिक्त कथन में यह आरोप लगाया गया है कि वादी ने 1912 में प्रश्नगत भूमि को आत्मसमर्पण कर दिया है और तब से प्रश्नगत भूखंड पर लगातार कब्जा है। आगे आरोप है कि भूमि के समर्पण के आधार पर वादी के अधिकारों को समाप्त कर दिया गया है। विचारण न्यायालय ने दिनांक 16.02.1976 के निर्णय और डिक्री के अंतर्गत वादी के वाद को निरस्त कर दिया। विचारण न्यायालय की दिनांक 16.02.1976 की डिक्री के विरुद्ध याचिकाकर्ता ने आयुक्त के समक्ष अपील योजित की जिसे दिनांक 14.10.1977 के निर्णय के अंतर्गत स्वीकार किया गया। प्रथम अपीलीय न्यायालय के दिनांक 14.10.1977 के निर्णय के विरुद्ध प्रतिवादी द्वारा राजस्व परिषद के समक्ष द्वितीय अपील संख्या 15 / 1977-78 की योजित की गई थी, द्वितीय अपील संख्या 15 / 1977-78 की सुनवाई राजस्व परिषद द्वारा की गई थी और दिनांक 31.07.1978 के आदेश द्वारा प्रथम अपीलीय न्यायालय के निर्णय और

डिक्री को रद्द करते हुए द्वितीय अपील स्वीकार की गई थी और विचारण न्यायालय के निर्णय की पुष्टि की गई थी। द्वितीय अपीलीय न्यायालय के दिनांक 31.07.1978 के निर्णय के विरुद्ध याचिकाकर्ता ने रिट याचिका संख्या 9421 / 1978 योजित की, जिसे इस न्यायालय ने दिनांक 25.09.1985 के निर्णय के माध्यम से अनुमति दी और विधि के अनुसार द्वितीय अपील पर नए सिरे से निर्णय लेने के लिए मामले को राजस्व परिषद के समक्ष भेज दिया। इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 25.09.1985 के रिमांड आदेश के बाद, द्वितीय अपील को राजस्व परिषद द्वारा नए सिरे से सुना गया और दिनांक 28.12.1988 के निर्णय के अंतर्गत द्वितीय अपील को फिर से प्रथम अपीलीय न्यायालय के निर्णय और डिक्री को रद्द करते हुए 14.10.1977 को रद्द कर दिया गया, इसलिए यह रिट याचिका योजित की गई। इस न्यायालय ने 28.03.1989 को रिट याचिका पर विचार करते हुए निम्नलिखित अंतरिम आदेश पारित किया:

> *"नोटिस जारी हो।*
> *इस न्यायालय के अग्रिम आदेशों तक, प्रत्युत्तरदाता संख्या 1 द्वारा पारित दिनांक 28.12.1988 के आदेश के संचालन पर रोक रहेगी।"*

3. दिनांक 28-03-1989 के आदेश के अनुसरण में प्रतिवादी प्रत्युत्तरदातागण ने अधिवक्ता के माध्यम से उपस्थित होकर प्रति-शपथ-पत्र प्रस्तुत किया। याचिकाकर्ता ने प्रत्युत्तरदाता संख्या 4 द्वारा प्रस्तुत प्रति-शपथपत्र पर भी अपना प्रत्युत्तर-शपथपत्र प्रस्तुत किया है।

4. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि भूखंड विवाद पैतृक है और यह प्रदर्शित करने के लिए निम्नलिखित वंशावली रखी कि वादी राम नरेश वादग्रस्त भूखंड के सह-हिस्सेदार/सह-भूमिधर थे: -सहाय कुर्मी गणेश महेश चौती पुदिन सुक्कू कालू रामू (प्रत्यर्थी) राम नरेश (वादी)

5. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि राजस्व परिषद ने आत्मसमर्पण के मामले को स्वीकार करने में स्पष्ट विधिक त्रुटि की है जब सभी न्यायालयों ने माना था कि संपत्ति संयुक्त है और एक सामान्य पूर्वज से आती है और आत्मसमर्पण के मामले को इस माननीय न्यायालय द्वारा अस्वीकार कर दिया गया था। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि द्वितीय अपीलीय न्यायालय के पास साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है और प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा दर्ज तथ्य के निष्कर्ष में हस्तक्षेप किया गया है। उन्होंने आगे कहा कि प्रथम अपीलीय न्यायालय ने पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्यों पर विचार करने के बाद इस तथ्य को दर्ज किया है कि केवल इसलिए कि याचिकाकर्ता के पिता ने अपने ससुराल में रहना शुरू कर दिया था, उसके मूल्यवान अधिकार को समाप्त नहीं किया जाएगा, किन्तु राजस्व परिषद ने अन्यथा अवधारण करने में त्रुटि की है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि एक सह-हिस्सेदार का कब्जा सभी संयुक्त भूमि पर कब्जा है क्योंकि कब्जे के संबंध में निष्कर्ष को द्वितीय अपील में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता के प्रवेश पर इस न्यायालय द्वारा राजस्व परिषद के आदेश के प्रति योजित रिट याचिका का निर्णय करते समय भी विचार

किया गया था और यह माना गया है कि यह निष्कासन का मामला नहीं है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि राजस्व परिषद द्वारा पारित आदेश पूरी तरह से अवैध है, अधिकार क्षेत्र के बिना और स्पष्ट रूप से गलत है क्योंकि इसे रद्द किया जा सकता है। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने ***1966 एएलजे 1063 बेचू बनाम राजस्व परिषद और अन्य 1982 आरडी 217 जग्गू और अन्य बनाम उप निदेशक, चकबंदी 2017 (6) एडीजे 356 (डीबी) राम वृक्षा और अन्य बनाम उप निदेशक चकबंदी और अन्य*** में प्रकाशित निर्णय पर भरोसा किया।

6. मैंने याचिकाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों पर विचार किया है और पत्रावली का अवलोकन किया है।

7. इस तथ्य के विषय में कोई विवाद नहीं है कि याचिकाकर्ता और प्रत्युत्तरदाता संख्या 4 विवादित भूखंड के सह-भूमिधर हैं। इस तथ्य के बारे में भी कोई विवाद नहीं है कि याचिकाकर्ता द्वारा उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम की धारा 229 बी के अंतर्गत संस्थित वाद विचारण न्यायालय द्वारा निरस्त कर दिया गया था, किन्तु प्रथम अपील में विचारण न्यायालय की डिक्री को उलट दिया गया था और वादी के मुकदमे की डिक्री की गई थी। इस तथ्य के विषय में भी कोई विवाद नहीं है कि द्वितीय अपील में राजस्व परिषद ने प्रथम अपीलीय न्यायालय के निर्णय और डिक्री को रद्द कर दिया है और विचारण न्यायालय की डिक्री को बहाल कर दिया है। इस तथ्य के बारे में भी कोई विवाद नहीं है कि द्वितीय अपीलीय न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध याचिकाकर्ता द्वारा योजित रिट याचिका में, द्वितीय अपीलीय न्यायालय के निर्णय और डिक्री को रद्द कर दिया गया था और मामले को द्वितीय अपीलीय न्यायालय के समक्ष नए सिरे से निर्णय लेने के लिए वापस भेज दिया गया था, किन्तु द्वितीय अपीलीय न्यायालय ने फिर से विचारण न्यायालय के फैसले की पुष्टि करते हुए द्वितीय अपील को स्वीकार कर लिया जिसके द्वारा वादी का वाद निरस्त कर दिया गया था।

8. वाद में स्थापित वादी का आरोप यह था कि पक्षकार सह-हिस्सेदार हैं क्योंकि वादी विवादित भूखंड में सह-हिस्सेदारी के अधिकार का पात्र है। जहां तक निष्कासन के तर्क का संबंध है, लिखित कथन में इसके विषय में कोई तर्क नहीं दिया गया था क्योंकि इस तरह के राजस्व परिषद के पास द्वितीय अपीलीय अधिकारिता में याचिका पर विचार करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था और वादी के वाद को निरस्त कर दिया। इस न्यायालय ने द्वितीय अपीलीय न्यायालय के पहले आदेश के विरुद्ध रिट याचिका की अनुमति देते हुए यह पाया है कि लिखित कथन में निष्कासन शब्द का उपयोग नहीं किया गया है और न ही लिखित कथन में ऐसे तर्क विशेष रूप से उठाए गए हैं।

9. जहां तक वादी द्वारा विवादित भूमि के आत्मसमर्पण के तर्क का संबंध है, इस याचिका पर विवाद तय करते समय विचारण न्यायालय द्वारा पहले ही चर्चा की जा चुकी है। प्रतिवादी द्वारा स्थापित आत्मसमर्पण के तर्क से संबंधित वाद बिन्दु संख्या 3 पर विचारण न्यायालय का निर्णय अवलोकन के लिए प्रासंगिक है जो निम्नानुसार है: -

<u>"वाद विन्दु संख्या-3"</u>

प्रतिवादी की ओर से असल दस्तवरदारी दि० 10.1.1912 नविस्ता सुखू बहक युद्धदीन प्रस्तुत की गई है दस्तबरदारी के हासिये के गवाह रामदेव डी0डब्लू0 3 को भी प्रतिवादी की ओर से प्रस्तुत किया गया है। वादी की ओर से केवल इस दस्तबरदारी का तहरीर करना अस्वीकार किया है।

इस सम्बन्ध में मैंने दोनों पक्षों के विद्वान वकीलों के तर्क ध्यान पूर्वक सुने हैं। वादी के विद्वान वकील का तर्क है कि कथित दस्तबरदारी पूर्णतयः फर्जी है तथा में पढ़ने व कत्तई मानने योग्य नहीं है विद्वान वकील का तर्क है कि रामदेव गवाह स्वयं अपनी जन्म तिथि 1901 ई० बताता है यदि कथित दस्तबरदारी 1912 में लिखी गई थी तो उस समय यह गवाह मात्र 11-12 साल का रहा होगा। ऐसी स्थिति में यह दस्तावेज स्वयं फर्जी सिद्ध हो जाता है। विद्वान वकील का दूसरा तर्क है कि दस्तबरदारी 200 रूपया में लिखी गयी थी। न तो उसे रजिस्टर्ड कराया गया था और न वह कभी कागजात माल में एक्ट बयान हुई विद्वान वकील के खतोनी 1356 फ० जो वादी ने प्रस्तुत की है की और ध्यान आकर्षित करते हुये कहा है कि यदि कथित दस्तबरदारी वास्तव में सही होती तो 1356 फ० मैं सुखूँ असल तनाह कास्तकार दर्ज न होगा।

प्रतिवादी के विद्वान वकील का तर्क है कि दस्तबरदारी 30 वर्ष पुराना अभिलेख है इसलिये उसे साक्ष्य में पढ़ा जाना चाहिये। विद्वान वकील ने यह भी तर्क किया है कि भारतीय गवाह प्रायः अनपढ़ होते हैं अतः उन्हें सन् आदि का सही ज्ञान नहीं होता। डी०डब्लू 3 रामदेव ने जहां अपना 1901 ई० में होना बताया है वही अपनी आयु 84 वर्ष होना भी कहा है। उससे स्पष्ट है कि उसे अपनी जन्म की सन् सही नहीं मालूम। विद्वान वकील ने रजिस्ट्री न कराये जाने के सम्बन्ध में कोई संतोषप्रद तर्क नहीं किया है जहां तक इस दस्तबरदारी के एक्ट अपान होने का सम्बन्ध है

> *प्रतिवादी के विद्वान वकील ने कहा है कि कागजात माल में लगातार प्रतिवादी का यह नाम चला आना व तनाह काविज रहना स्वयं दस्तबरदारी की अस्तित्व व उस पर कार्यवाही करने की बात सिद्ध करतेहैं। दोनों पक्षों के विद्वान वकीलों को सुनने तथा सम्बन्धित साक्ष्य को देखने से उपरान्त में यह निष्कर्ष निकालता हूँ कि कथित दस्तबरदारी तकनीकी रूप से सिद्ध नहीं है न स्पष्ट रूप से कार्यवाही की गई है न साक्ष्य में पढ़ने योग्य है। दस्तबरदारी पर आधारित प्रतिवादीगण का वाद तकनीकी रूप से सिद्ध नहीं होता। प्रश्नगत वाद विन्दु इसलिये नकारात्मक निर्णीत किया जाता है।"*

10. चूंकि प्रथम अपीलीय न्यायालय ने वादी की अपील की अनुमति देते हुए और वादी के वाद की डिक्री करते हुए तथ्य की खोज दर्ज की है कि वादी और प्रतिवादी परिवार के सदस्य हैं और एक सह-हिस्सेदार का कब्जा सभी का कब्जा है, जैसे कि केवल ससुराल में रहने/बसने से, वादी विवादित भूखंड में अपने अधिकार से वंचित नहीं होगा, प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष अवलोकन के लिए प्रासंगिक होंगे, जो इस प्रकार है: -

> *"वाद बिन्दु नं० 3 में अवर न्यायालय ने तनकीह बनाई है कि क्या सुक्खू ने आराजी निजाई में अपना कुल हक व हिस्सा बहक पुदीन पिता प्रतिवादी को दस्तवरदारी कर दी थी। इस वाद विन्दु का भी निर्णय अवर न्यायालय ने यह किया है कि कथित दस्तवरदारी प्रमाणित नहीं है। यह वाद विन्दु नकारात्मक में निर्णय किया गया है जब उपरोक्त दो तनकीहों पर फैसला वादी के पक्ष में हुआ है तब फिर वादी के दावा को मन्जूर करने में अवर न्यायालय को जो एतराज हुआ है उसको सावधानी से देखना पड़ेगा। दस्तवरदारी के दस्तावेज को अवर न्यायालय ने फर्जी होल्ड किया है दस्तवरदारी 200/- में लिखी गयी थी ऐसा कहा गया है परन्तु न तो उसे रिजस्टर्ड कराया गया और न तो उसका कभी कागजात में इन्द्राज हुआ। वादी के पिता सुक्खू 1356 फ० तक असल काश्तकार दर्ज हैं। दस्तवरदारी के आधार पर प्रतिवादीगण का केस प्रमाणित नहीं होता। परन्तु अवर न्यायालय पर इस*

बात का प्रभाव जरूर पड़ा है कि प्रतिवादी अर्सादराज से तनहा काविज चला जाता है और वादी के दावे से तमादी खारिज हो गया है क्योंकि वादी के पिता सुक्खू ससुराल चला गया था और इस कारण लम्बे अर्से से उसका आराजी निजाई से कोई संबंध नहीं रहा। इस कारण प्रतिवादी कब्जा मुखालिफाना से तनहा मालिक हो चुका है और दावा टाइमवार्ड है। जो महत्वपूर्ण तनकीह हैं। उन पर अवर न्यायालय का आदेश वादी के माफिक होने पर भी वादी के पिता का दूसरे गाँव में चला जाना, अपने ससुराल में जाकर रहने लगा इसे बड़ा अपराध माना गया कि उसके दावे में तमादी खारिज हो गयी। जबकि ससुराल किसी फारेन कन्ट्री में नहीं है और न वादी के पिता की नागरिकता में कोई अन्तर आया है यह भारत के आंचलिक प्रदेशों की पिछड़ी हुई जन भावना का फल है कि ससुराल को भी परदेश मान बैठे और ससुराल जाने से आदमी अपना हक खो बैठता है।

मैं वादी के पिता का ससुराल में जाकर रहने से कोई ऐसा अनुचित या गैर कानूनी बात नहीं देखता जिससे उसका अधिकार गायब हो जाय और वादी का दावा कामयाब न हो सके। सहकाश्तकारों में जो मोखसी जायदाद होती है उस पर एक का कब्जा सबका कब्जा माना जाता है। अतः रामू का नाम लिऐ जाने से या उसका कब्जा रहने से वादी के कब्जा पर कोई प्रतिकूल असर नहीं पड़ता। तस्तवरदारी की बात गलत सावित हुई है। सच बात तो यह मालूम होता है कि प्रतिवादी वादी के भोलेपन का नाजायज फायदा उठा करके उसका हक मारना चाहता है। अतः मुझे अवर न्यायालय का आदेश गलत मालूम होता है।

उपरोक्त विवेचना के अनुसार में इस अपील को मन्जूर करता हूं, अवर न्यायालय का आदेश रद्द किया जाता है और वादी प्रतिवादीगण के साथ सहसीरदार घोषित किया जाता है। हिस्से का प्रश्न धारा 229 बी जेड०ए०एण्ड

एल०आर० एक्ट के मुकदमें में नहीं उठाया जा सकता। अतः इस पर निर्णय देना आवश्यक नहीं है।

11. द्वितीय अपीलीय न्यायालय ने अपने द्वितीय अपीलीय क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया है और याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 25.09.1985 के आदेश के माध्यम से योजित रिट याचिका संख्या 9421 / 1978 की अनुमति देते समय इस न्यायालय द्वारा उल्लिखित द्वितीय अपील की अनुमति दी है, द्वितीय अपीलीय क्षेत्राधिकार के प्रयोग के संबंध में इस न्यायालय के निर्णय का प्रासंगिक हिस्सा इस प्रकार है: -

"अब प्रश्न उठता है कि किस न्यायालय को नए सिरे से निर्णय देने का निर्देश दिया जाना चाहिए. प्रथम अपीलीय न्यायालय ने वाद की डिक्री कर दी है। मुझे इस बात का कोई कारण नहीं दिखता कि याचिकाकर्ता को प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा उसके पक्ष में दिए गए निष्कर्ष से वंचित क्यों किया जाना चाहिए। इसलिए मैं उनके पक्ष में इसे उचित मानता हूं। इसलिए मैं यह उचित समझता हूं कि राजस्व परिषद को अपील पर सुनवाई करनी चाहिए और नए सिरे से निर्णय देना चाहिए।

12. ***बेचू (उपारोक्त), जग्गू (उपरोक्त) और राम वृक्ष (उपरोक्त)*** में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत वाद विधि विचार के लिए प्रासंगिक हैं।

13. ***राम वृक्ष (उपरोक्त)*** में, इस न्यायालय की खण्डपीठ द्वारा यह माना गया है कि चकबंदी कार्यवाही के दौरान संयुक्त संपत्ति में संयुक्त भाग और अलग चक के विभाजन का दावा न करने के कारण सह-हिस्सेदार का अधिकार पराजित नहीं होगा और यहां तक कि उत्तर प्रदेश जोत एवं चकबंदी अधिनियम की धारा 49 के अंतर्गत सह-हिस्सेदार का अधिकार भी समाप्त नहीं होगा। ***राम वृक्ष (उपरोक्त)*** निर्णय के पैराग्राफ संख्या 36 से 39 प्रासंगिक हैं जो इस प्रकार हैं: -

"36. इन मापदंडों पर, हमारे सामने उठाए गए मुद्दों पर विचार किया जा रहा है और हमारी सुविचारित राय में एक भूमिधरी में पक्षकारों के अधिकारों को केवल इसलिए पराजित करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है क्योंकि उन्होंने चकबंदी कार्यवाही में भाग नहीं लिया है और क्या उत्तर प्रदेश जोत एवं चकबंदी अधिनियम, 1953 की धारा 49 की रोक है, लागू होगा या नहीं, अनिवार्य रूप से तथ्य का

प्रश्न होगा जिसका उत्तर प्रस्तुत किए गए साक्ष्य के आधार पर दिया जा सकता है और उक्त रोक के लिए अपवाद बनाए जाने चाहिए जिसमें प्रश्न में वाद वर्जित नहीं होगा और उत्तर प्रदेश जोत एवं चकबंदी अधिनियम, 1953 की धारा 49 लागू नहीं होगी जहां अभिलेखों और परिस्थितियों की श्रृंखला से यह परिलक्षित होता है कि योजनाबद्ध धोखाधड़ी हुई है राजस्व अभिलेखों से वादी का नाम हटाने के लिए बनाया गया। चकबंदी के अभिलेखों से, यह स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है कि न तो पदधारी, जिसने अपना नाम दर्ज कराने के लिए कार्यवाही की है और न ही चकबंदी अधिकारियों ने उत्तर प्रदेश जोत एवं चकबंदी अधिनियम के प्रावधानों के अनुरूप ईमानदारी से अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने के लिए आगे बढ़े हैं, जिसमें चकबंदी अधिकारियों को प्रत्येक मालिक के हिस्से का पता लगाने का अधिकार है यदि एक से अधिक मालिक हैं और यदि ऐसा अभ्यास नहीं किया गया है, तब यह विधिक दुर्भावना का मामला होगा और यह स्वतः नहीं माना जा सकता है कि विचाराधीन संपत्ति से बेदखल कर दिया गया है और ऐसी स्थिति में एक पदधारी, जो विचाराधीन संपत्ति में अपने अधिकार का दावा करता है, को स्वत्व के आधार पर अपनी संपत्ति को पुनः प्राप्त करने का हर अधिकार मिला है क्योंकि धोखाधड़ी और हेरफेर के आधार पर अधिकार को पराजित करने की मांग की गई है।

ऐसी पृष्ठभूमि में उत्तर प्रदेश जोत एवं चकबंदी अधिनियम, 1953 की धारा 49 के उपबंध बिल्कुल भी लागू नहीं होंगे और विचाराधीन वाद प्रथम दृष्टया वर्जित नहीं होगा जहां प्रश्नगत वाद संपत्ति के हित के आधार पर वाद संपत्ति के कब्जे के लिए संस्थित किया गया है। संदर्भ का उत्तर इस प्रकार है:

बिन्दु संख्या ।

37. क्या अधिनियम की धारा 49 के उत्तरार्ध में "लिया जा सकता था या

लिया जाना चाहिए था" शब्दों का प्रयोग, सह-हिस्सेदारों को अनिवार्य रूप से मजबूर करता है, जो संयुक्त रूप से, शांतिपूर्वक रह रहे हैं और उन्हें अपने पिता/भाई/सह-हिस्सेदार के प्रति कोई शिकायत नहीं है, जिसका नाम प्रतिनिधि क्षमता में दर्ज है, या वे अपने परिवार की स्थिति के कारण संयुक्त रूप से रहने के इच्छुक थे, यानी (पिता और अवयस्क पुत्र), (मां और अवयस्क पुत्र), (भाई और अवयस्क भाई) और (कुछ सह-हिस्सेदार छात्र थे और अध्ययन के लिए विदेश गए थे और पूरी तरह से अन्य सह-हिस्सेदारों पर निर्भर हैं) आदि, अपने हिस्से के विभाजन के लिए अधिनियम की धारा 9 के अंतर्गत आपत्ति दर्ज करने के लिए?

उत्तर- अधिनियम की धारा 49 के उत्तरार्द्ध में "लिया जा सकता था या लिया जाना चाहिए था" शब्दों के कारण, यह सह-हिस्सेदारों को अनिवार्य रूप से मजबूर नहीं करता है, जो संयुक्त, शांतिपूर्वक रह रहे हैं और उन्हें अपने पिता/भाई/सह-हिस्सेदार के खिलाफ कोई शिकायत नहीं है, जिनका नाम प्रतिनिधि क्षमता में दर्ज किया गया है या वे अपने परिवार की स्थिति के कारण संयुक्त रूप से रहने के इच्छुक थे और जिन्होंने अधिनियम की धारा 49 के अंतर्गत आपत्ति दर्ज नहीं की है उनके हिस्से का पृथक्करण जहां तक उत्तर प्रदेश जोत एवं चकबंदी अधिनियम, 1953 के प्रावधानों के अंतर्गत, यह अधिकारियों और पदधारी पर वैधानिक दायित्व है, जो प्रतिनिधि क्षमता में प्रश्नगत संपत्ति को अभिलेखों को सही करने के लिए प्रतिनिधि क्षमता में रखता है और यदि आकार दिए गए तरीके से संपत्ति को बनाए रखने के साथ-साथ प्रतिनिधि क्षमता में संपत्ति रखने वाले पदधारी द्वारा प्रश्नगत दायित्व का निर्वहन नहीं किया गया है, तो ऐसी स्थिति में अधिनियम की धारा 49 बिल्कुल भी आकर्षित नहीं होगी और राजस्व अभिलेख से अन्य सह-अंशधारकों के नाम को हटाने के लिए ऐसी स्थिति को योजनाबद्ध

धोखाधड़ी की आकस्मिकता के अंतर्गत रखा जाएगा।

बिन्दु संख्या II

38. क्या विधि के संचालन से, पक्षकारों को उनकी इच्छा/आवश्यकता के विरुद्ध मुकदमेबाजी में डाला जा सकता है और भूमि या विभाजन और चक के पृथक्करण का दावा न करके संविधान के अनुच्छेद 19 (1) (एफ) और अब अनुच्छेद 300-ए के अंतर्गत उपलब्ध संरक्षण के बावजूद संपति का अधिकार छीना जा सकता है।

उत्तर- इसका उत्तर यह है कि किसी पक्ष को उसकी इच्छा/आवश्यकता के विरुद्ध मुकदमेबाजी में नहीं डाला जा सकता है और विभाजन और चक के पृथक्करण की भूमि पर दावा न करके, संपत्ति के उनके अधिकारों को भारत के संविधान के अनुच्छेद 300-ए के अंतर्गत प्रदान किए गए संरक्षण के अंतर्गत नहीं छीना जा सकता है।

बिन्दु संख्या III

39. क्या, संयुक्त संपति के संबंध में अच्छी तरह से स्थापित विधिक सिद्धांत के बावजूद, धारा 52 के अंतर्गत अधिसूचना पर, अधिनियम की धारा 49 के अंतर्गत सह-हिस्सेदार का अधिकार समाप्त हो जाएगा, उसके नाम पर उसके हिस्से और अलग चक के विभाजन का दावा नहीं करने के कारण, हालांकि, संयुक्त संपति से कोई निष्कासन नहीं हुआ था?

उत्तर- सह-हिस्सेदारों के अधिकार अधिनियम की धारा 49 के अंतर्गत अधिसूचना पर, धारा 52 के अंतर्गत अधिसूचना पर उसके हिस्से के विभाजन का दावा नहीं करने और उसके नाम पर अलग चक का दावा नहीं करने के कारण समाप्त नहीं होंगे और जब तक संयुक्त संपति से कोई निष्कासन नहीं होता है, तब तक संपति में उसका अधिकार अस्तित्व में रहेगा।

संदर्भ तदनुसार उत्तर दिया गया है। संबंधित मामलों के साथ रिट याचिका अब इस निर्णय के आलोक में निस्तारण के लिए रोस्टर के अनुसार उपयुक्त पीठ के समक्ष रखी जाएगी।

14. ***कर्बलाई बेगम बनाम मो. सईद और एन.आर. एआईआर 1981 एससी 77*** में प्रकाशित उत्तर प्रदेश जोत एवं चकबंदी अधिनियम की धारा 49 के साथ-साथ संयुक्त संपत्ति के संबंध में सह-हिस्सेदार के अधिकार, ***कर्बलाई बेगम (उपरोक्त)*** में दिए गए निर्णय के पैराग्राफ संख्या 12 से 15 पर भी चर्चा की गई है, इस प्रकार हैं: -

"12. अंतिम आधार जिस पर उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता को अनुपयुक्त किया था, वह यह था कि चकबंदी को उत्तर प्रदेश जोत एवं चकबंदी अधिनियम के अंतर्गत पूरा करने के बाद, उक्त अधिनियम की धारा 49 द्वारा मुकदमा वर्जित था। यह अच्छी तरह से तय है कि जब तक स्वत्व के आधार पर किसी वाद को रोकने के लिए कोई स्पष्ट प्रावधान नहीं है, तब तक न्यायालय पक्षकारों के स्वामित्व को स्थापित करने के लिए वाद की कार्यवाही पर आसानी से रोक नहीं लगाएंगे। सुभा सिंह बनाम महेंद्र सिंह एवं अन्य में। इस न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणियां कीं: -

"इस प्रकार यह पूरी तरह से स्पष्ट था कि धारा 23 के अंतर्गत योजना को अंतिम रूप देने और प्रकाशित करने के बाद, कार्रवाई का कारण उत्पन्न होने पर विरासत के आधार पर उत्परिवर्तन के लिए एक आवेदन, ऐसा मामला नहीं है जिसके संबंध में धारा 49 के खंड 2 के अर्थ के भीतर "इस अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत" आवेदन प्रस्तुत किया जा सकता है। इस प्रकार, धारा 49 का दूसरा अंग भी आकर्षित नहीं होता है। परिणाम यह है कि भूमि या वादी के पुत्रत्व के स्वत्व की जांच और निर्णय लेने के लिए सिविल न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र के रोक के तर्क में कोई सार नहीं है। ऊपर उल्लिखित इस न्यायालय के स्पष्ट निर्णय के आलोक में, उच्च न्यायालय ने विधिक त्रुटि की कि वर्तमान मुकदमा उत्तर प्रदेश जोत एवं चकबंदी अधिनियम की धारा 49 द्वारा वर्जित था। इस प्रकार, जिन आधारों पर उच्च न्यायालय ने जनपद न्यायाधीश के निर्णय को उलट दिया, वे विधिक दृष्टि से स्थिर रहने योग्य नहीं हैं और उच्च न्यायालय के निर्णय को स्थिर रहने की

की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

इसलिए, हम पूरे खर्च के साथ अपील की अनुमति देते हैं, उच्च न्यायालय के निर्णय को रद्द करते हैं, जहां तक भूखंड संख्या 201 और 274 का संबंध है, संयुक्त कब्जे के लिए वादी के मुकदमे की डिक्री करते हैं और जनपद न्यायाधीश के निर्णय को बहाल करते हैं। इस न्यायालय द्वारा अनुमत लागत को उच्च न्यायालय में प्रत्यायोजित 15,000/- (पंद्रह हजार केवल) की राशि के प्रति निर्धारित किया जाएगा और अपीलकर्ता को भुगतान किया जाएगा और शेष राशि को प्रत्युत्तरदाता को वापस किया जा सकता है।

15. द्वितीय अपीलीय न्यायालय के क्षेत्राधिकार के प्रयोग के बिंदु पर, इस न्यायालय ने ***1985 आरडी 93 शारदा देवी बनाम राजस्व परिषद उत्तर प्रदेश और अन्य*** में प्रकाशित मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया है कि द्वितीय अपीलीय अधिकारिता का प्रयोग साक्ष्य के आधार पर अवर न्यायालयों द्वारा अभिलिखित तथ्यों के निष्कर्ष को रद्द करने के लिए नहीं किया जाएगा, चाहे वे कितने ही त्रुटिपूर्ण प्रतीत हों। निर्णय के पैराग्राफ संख्या 17 और 24 प्रासंगिक हैं जो इस प्रकार हैं: -

"17. निर्णयों की एक श्रृंखला अर्थात अफसर शेख बनाम सुलेमानबीबी [(1976) 2 एससीसी 142: एआईआर 1976 एससी 163.], लाधी प्रसाद बनाम करनाल डिस्टिलरी कंपनी लिमिटेड [एआईआर 1963 एससी 1279.], सुश्री राजरानिव। राजाराम [ए.आई.आर. 1980 सभी। 2020.], और खरबुजा कुएर बनाम जंग बहादुर [ए.आई.आर. 1963 एससी 1203.], और इन मामलों के अनुपात के आधार पर यह स्पष्ट है कि यह पता लगाना कि प्रत्यायुत्तरदातागण संख्या 2 से 6 द्वारा कोई धोखाधड़ी या मिलीभगत साबित नहीं हुई थी, तथ्य के निष्कर्ष हैं और राजस्व परिषद ने तथ्य के इन निष्कर्षों को अलग करने के लिए धारा 100 सीपीसी के अंतर्गत अपने अधिकार क्षेत्र को पार कर लिया है। अधिनियम की धारा 331 (4) के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए द्वितीय अपील केवल विधि के प्रश्न पर होगी न कि तथ्य के प्रश्न पर, इसलिए राजस्व परिषद ने स्पष्ट

रूप से प्रथम अपीलीय न्यायालय और विचारण न्यायालय द्वारा लेनदेन की धोखाधड़ी प्रकृति के बारे में दर्ज तथ्य के निष्कर्षों को रद्द करने में स्पष्ट रूप से त्रुटि की है। इसके अतिरिक्त, केवल संदेह के आधार पर यह नहीं माना जा सकता है और न ही तथ्य के निष्कर्षों को अलग रखा जा सकता है, किन्तु राजस्व परिषद ने माना है कि "कुछ संदेह प्रतीत होता है कि अधिनियम की धारा 176 के अंतर्गत वाद में डिक्री के बाद, सफल पक्ष को समझौता क्यों करना चाहिए, अधिनियम की धारा 229-बी के अंतर्गत वाद में अधिकारों का आत्मसमर्पण क्यों करना चाहिए, किन्तु परीक्षण पक्षकारों के साक्ष्यों का न्याय नहीं कर सका। किन्तु यदि पक्षकारों की सुविधा बाद में समझौता करने में निहित है, तो राजस्व परिषद को रास्ते में नहीं खड़ा होना चाहिए। यह सर्वविदित है कि खराब समझौता एक अच्छे वैधानिक मुकदमे से बेहतर है। यदि क्रेताओं ने याचिकाकर्ता के दावे को स्वीकार करते हुए समझौता किया है, इसलिए उनके पास भूखंड में अधिकार था कि वे 2 से 6 के पक्ष में विक्रय विलेख निष्पादित करें ।

24. यहां चर्चा के आलोक में, मेरा विचार है कि राजस्व परिषद ने अधिनियम की धारा 331 (4) के साथ पठित धारा 100 सीपीसी के अंतर्गत अधिकार क्षेत्र को स्पष्ट रूप से पार कर दिया है। डिक्री की धोखाधड़ी या मिलीभगत प्रकृति के बारे में अतिरिक्त आयुक्त द्वारा दर्ज तथ्य के निष्कर्षों को रद्द करने के लिए द्वितीय अपीलीय न्यायालय का कोई गुंजाइश नहीं थी। तथ्य के निष्कर्ष भी साक्ष्य पर आधारित थे और चाहे वे कितने भी गलत प्रतीत हों, जबकि वास्तव में वे गलत नहीं थे, बहुत कम गलत थे, द्वितीय अपीलीय न्यायालय के पास इसमें हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था। विक्रेताओं, प्रत्युत्तरदातागण संख्या 7 और 8 के पास समझौता डिक्री में याचिकाकर्ता के दावे को

स्वीकार करने के बाद विवादित भूखंडों में कोई अधिकार, स्वत्व या हित नहीं बचा था, ताकि वे 11.7.1966 के विक्रय विलेख द्वारा किसी भी हित को क्रेताओं के पक्ष में स्थानांतरित करने में सक्षम हो सकें। इसलिए विक्रेताओं ने विक्रय विलेख से कोई स्वत्व प्राप्त नहीं किया।"

16. यह सामग्री है कि वादग्रस्त भूखंड पैतृक है और सामान्य पूर्वज सहाय कुर्मी द्वारा अधिग्रहित किया गया है। यह भी सामग्री है कि वादी और प्रतिवादी सह-हिस्सेदार हैं, प्रतिवादी द्वारा स्थापित आत्मसमर्पण का तर्क साबित नहीं हुआ है क्योंकि वादी 14.10.1977 के निर्णय और डिक्री के माध्यम से प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा आयोजित भूखंड में 1/2 हिस्से की डिक्री का हकदार है और साथ ही ***करबलाई बेगम (उपरोक्त)*** में सर्वोच्च न्यायालय और ***राम वृक्ष (उपरोक्त)*** में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि के अनुपात को देखते हुए। जहां तक उत्तर प्रदेश जोत एवं चकबंदी अधिनियम की धारा 229 बी के अंतर्गत वाद के दायरे के साथ-साथ उत्तर प्रदेश जोत एवं चकबंदी अधिनियम की धारा 229 बी के अंतर्गत वाद संस्थित करने की सीमा का संबंध है, इस न्यायालय ने ***2005 (99) आरडी 529 पान कुमारी बनाम राजस्व परिषद, उत्तर प्रदेश इलाहाबाद और अन्य*** में प्रकाशित मामले में माना गया है उत्तर प्रदेश जोत एवं चकबंदी अधिनियम की धारा 229 बी के अंतर्गत वाद संस्थित करने की कोई सीमा नहीं है, निर्णय का पैराग्राफ संख्या 6 प्रासंगिक है जो इस प्रकार है:

"6. श्री. आरसी सिंह का कहना है कि धारा 229-बी के अंतर्गत मुकदमा सीमा द्वारा वर्जित था। इस तर्क के समर्थन में वह उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 341 पर भरोसा करते हैं, जो यह प्रावधान करता है कि परिसीमा अधिनियम उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम के अंतर्गत कार्यवाही पर लागू होगा और घोषणा के लिए एक वाद में सीमा परिसीमा अधिनियम की अनुसूची 1 के अनुच्छेद 137 द्वारा शासित होगी क्योंकि उत्तर प्रदेश जोत एवं चकबंदी अधिनियम के अंतर्गत इस तरह के मुकदमे के लिए कोई अवधि निर्धारित नहीं है। धारा 341 स्वयं प्रदान करती है कि परिसीमा अधिनियम सहित कुछ अधिनियमों के प्रावधान उत्तर प्रदेश जोत एवं चकबंदी अधिनियम के अंतर्गत कार्यवाही पर लागू होंगे जब तक कि उत्तर प्रदेश जोत एवं चकबंदी नियमावली के नियम 338 में प्रावधान नहीं किया गया

है कि परिशिष्ट III में निर्दिष्ट वाद, आवेदन और अन्य कार्यवाही क्रमशः उनके लिए निर्दिष्ट समय के भीतर संस्थित की जाएगी। परिसीमा अधिनियम के उपबंधों का सहारा केवल तभी उपलब्ध होगा जब उसमें उल्लिखित विभिन्न वर्गों के मुकदमों या कार्यवाहियों के लिए परिसीमा की अवधि के संबंध में नियमों के अधीन कोई उपबंध न हो। परिशिष्ट III में विभिन्न वर्गों के वादों के लिए प्रदान की गई सीमा की अवधि दी गई है। धारा 229-बी खण्ड 4 के अंतर्गत मुकदमों के संबंध में, जो वाद के विभिन्न वर्गों के लिए सीमा की अवधि निर्धारित करता है, "कोई नहीं" कहता है। इसलिए यह माना जाएगा कि धारा 229-बी के अंतर्गत वाद संस्थित करने की कोई सीमा नहीं है। सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 9 में प्रावधान है कि सिविल प्रकृति के सभी वाद सिविल न्यायालय में संस्थित किए जाएंगे, सिवाय उन लोगों के, जिन्हें छोड़ दिया गया है। धारा 229-बी के अंतर्गत एक वाद अपवाद श्रेणी के भीतर आता है और इस तरह के वाद, भले ही उनमें घोषणा शामिल हो, एक विशेष चरित्र के वाद हैं। परिसीमा अधिनियम का अनुच्छेद 137, जिस पर श्री सिंह ने किसी भी मामले में भरोसा किया है, केवल आवेदनों पर लागू होता है, वाद पर नहीं और इसलिए इसका कोई खेल नहीं है। जब नियम बनाने वाले प्राधिकारी ने विभिन्न वर्गों के वादों के लिए अलग-अलग अवधि की सीमा प्रदान की है, तो यह माना जाएगा कि परिसीमा अधिनियम में परिसीमा की अवधि निर्धारित करने वाले प्रावधान उत्तर प्रदेश जोत एवं चकबंदी अधिनियम के अंतर्गत वादों पर लागू नहीं होंगे। खंड (ए), (एए) और (बी) उन मामलों से संबंधित हैं जहां भूमिदार की मृत्यु हो जाती है, जिसमें कोई वारिस नहीं होता है, या जहां उसने अधिनियम के प्रावधानों के उल्लंघन में अपने स्वत्व का त्याग कर दिया है या जहां भूमि का अधिग्रहण किया जाता है। धारा 189 की उपधारा (ग)

में प्रावधान है कि जहां भूमिदार ने कब्जा खो दिया है, वहां कब्जा वसूलने का अधिकार खो जाने पर भूमिदारी अधिकार समाप्त हो जाएगा। में राम नरेश बनाम राजस्व परिषद पुनरीक्षण सं. 444 / 1985 पर श्री आरसी सिंह द्वारा भरोसा किया गया था, यह माना गया था कि परिसीमा अधिनियम की धारा 27 के प्रावधान धारा 229-बी के अंतर्गत शुरू किए गए वादों के लिए आकर्षित होंगे। नियम सामान्य नियम का अपवाद है कि सीमा उपाय को रोकती है किन्तु अधिकार को समाप्त नहीं करती है। यदि, हालांकि, कोई व्यक्ति कब्जे में है, तो उसका अधिकार तब तक समाप्त नहीं किया जा सकता जब तक कि मामला धारा 189 के खंड (ए), (एए) और (बी) द्वारा आच्छादित नहीं किया जाता है। इसलिए वह किसी भी समय अपने अधिकार की घोषणा की मांग कर सकता है। यदि किसी व्यक्ति को बेदखल कर दिया गया है, तो उसे धारा 129 उत्तर प्रदेश जोत एवं चकबंदी अधिनियम के अंतर्गत एक वाद संस्थित करना होगा। परिशिष्ट III धारा 209 के अंतर्गत वाद संस्थित करने के लिए सीमा की अवधि प्रदान करता है। इसलिए, यह अनुसरण करेगा कि धारा 229-बी के अंतर्गत एक वाद सीमा द्वारा वर्जित होगा, भूमिदार कब्जे से बाहर है, और धारा 209 के अंतर्गत वाद संस्थित करने का उसका अधिकार सीमा द्वारा वर्जित है। कब्जे के प्रश्न पर दर्ज तथ्य का निष्कर्ष यह है कि वादी ने विवादित भूमि पर अपना निरंतर कब्जा स्थापित किया है। निष्कर्ष को किसी भी त्रुटि से दूषित नहीं दिखाया गया है। चूंकि वादी के अधिकारों को कभी समाप्त नहीं किया गया था, इसलिए सीमा का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है। ऊपर दिए गए कारणों के लिए, रिट याचिका में योग्यता का अभाव है और इसे निरस्त किया जाता है।"

17. संपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों के साथ-साथ इस न्यायालय के साथ-साथ सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि के अनुपात को ध्यान में रखते हुए, राजस्व परिषद द्वारा दिनांक

18. 28.12.1988 को पारित निर्णय, जिसमें प्रतिवादी- प्रत्युत्तरदाता की द्वितीय अपील को स्वीकार किया गया था, और 1/2 हिस्से के लिए सह-हिस्सेदारी के अधिकार के लिए वादी के वाद को निरस्त कर दिया गया था, विधि की दृष्टि में स्थिर नहीं रह सकता है, तदनुसार, राजस्व परिषद, इलाहाबाद द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय दिनांकित 28.12.1988 (रिट याचिका के संलग्नक 5) को रद्द किया जा सकता है और इसे एतद्द्वारा रद्द किया जाता है।

19. रिट याचिका स्वीकृत की जाती है।

20. अतिरिक्त आयुक्त, वाराणसी मंडल, वाराणसी द्वारा पारित प्रथम अपीलीय न्यायालय के दिनांक 14.10.1977 के निर्णय की पुष्टि की जाती है।

(2023) 3 ILRA 1150

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल वाद

दिनांक: इलाहाबाद 23.12.2021

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति प्रकाश पडिया

रिट-सी संख्या 9400 / 2021

श्रीमती नाहिदा फातिमा @ नाहिद फातिमा ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ...प्रतिपक्षी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: श्री तंजील अहमद, श्री सौमित्र द्विवेदी

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: सी.एस.सी.

A. आपराधिक कानून - आर्म्स एक्ट, 1959 - धारा 17(3) - हथियार लाइसेंस का निरस्तीकरण - लाइसेंसिंग प्राधिकरण किसी लाइसेंस को निलंबित या समाप्त कर सकता है, यदि यह जनता की शांति या सुरक्षा के लिए आवश्यक हो - लाइसेंस निरस्त करते समय, जिला मजिस्ट्रेट एक अर्ध-न्यायिक प्राधिकरण के रूप में कार्य करता है, इसलिए जिला मजिस्ट्रेट को यह अभिलिखित करना चाहिए कि कैसे और किन परिस्थितियों में याचिकाकर्ता के पास हथियार लाइसेंस होना जनता की शांति या सुरक्षा के लिए हानिकारक है - केवल एक आपराधिक वाद में सम्मिलित होना या आपराधिक वाद का लंबित होना या लाइसेंस के निलंबन या निरस्तीकरण का आदेश देने के लिए आर्म्स एक्ट के दुरुपयोग के आशंका पर्याप्त कारण नहीं है - इसके लिए कुछ सकारात्मक घटना होनी चाहिए जिसमें याचिकाकर्ता ने भाग लिया हो और अपनी बंदूक का उपयोग किया हो, जिसने जनता की शांति या सुरक्षा का उल्लंघन किया हो (पैराग्राफ 15, 16, 17)

B. आपराधिक कानून - आर्म्स एक्ट, 1959 - हथियार लाइसेंस का निरस्तीकरण - याचिकाकर्ता को हथियार का लाइसेंस दिया गया- उसने कभी भी हथियार का दुरुपयोग नहीं किया और न ही किसी आपराधिक वाद में सम्मिलित थी - एक हत्या की घटना हुई, जिसमें याचिकाकर्ता के कुछ परिवार के सदस्य, जिसमें उसका पति भी सम्मिलित था, को फंसाया गया - उसके हथियार का लाइसेंस उसके पति और देवर द्वारा संभावित दुरुपयोग के डर के कारण निरस्त कर दिया गया - बाद में निरस्तीकरण का कारण समाप्त हो गया क्योंकि याचिकाकर्ता के पति को आपराधिक

वाद में दोषमुक्त कर दिया गया, जबकि देवर अब नहीं रहा - अपीलित आदेश निरस्त किए गए (पैराग्राफ 18, 20)

अनुमति दी गई। (E-5)

उद्धृत वाद सूची:

1. राम मूर्ति माधुकर बनाम डी. एम., सिटीपुर 1998 (16) LCD-905
2. राम कारपाल सिंह बनाम आयुक्त, देवी पाटन मंडल, गोंडा एवं अन्य 2006 (24) LCD 114
3. राम प्रसाद बनाम आयुक्त एवं अन्य, निर्णय दिनांक 07.02.2020

माननीय न्यायमूर्ति प्रकाश पाड़िया

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री तंजील अहमद व राज्य प्रतिवादियों के लिए विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना।

2. याचिकाकर्ता ने अन्य बार्ता के साथ-साथ भारतीय शस्त्र अधिनियम, 1959 की धारा 18 के तहत दायर की अपील संख्या 00614/2018 में आयुक्त बरेली मंडल बरेली द्वारा पारित आदेश दिनांक 01.11.2019 व अधिनियम 1959 की धारा 17- (3) के तहत 2014 के केस संख्या 08 में जिला मजिस्ट्रेट, बदायूँ द्वारा पारित आदेश दिनांक 22.03.2018 को रद्द करने की प्रार्थना के साथ वर्तमान याचिका दायर की है।

3. हालांकि दिनांक 18.03.2021 के आदेश के तहत विद्वान स्थायी वकील को जवाबी हलफनामा दाखिल करने के लिए समय दिया गया था, लेकिन आज तक कोई जवाबी हलफनामा दाखिल नहीं किया गया है।

4. आज जब मामला उठाया गया है, तो विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि चूंकि वर्तमान मामले में कानून के शुद्ध प्रश्न शामिल हैं, इसलिए रिट याचिका पर जवाबी हलफनामे के अभाव में भी गुण दोष के आधार पर निर्णय लिया जा सकता है।

5. रिट याचिका में संक्षेप में तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता को वर्ष 2004 में एक शस्त्र लाइसेंस प्रदान किया गया था और उसने कभी भी उपरोक्त हथियार का दुरुपयोग नहीं किया था और वह किसी भी आपराधिक प्रकृति के अपराध में शामिल नहीं थी। 03.11.2013 को मोहल्ला खांडसारी, थाना कोतवाली, जिला- बदायूं में हत्या की घटना घटी थी। और इस संबंध में हरीश नामक व्यक्ति द्वारा अज्ञात व्यक्तियों के खिलाफ रिपोर्ट दर्ज कराई गई थी, जिसे थाना कोतवाली, जिला- बदायूं में मुकदमा अपराध संख्या 980/2013 धारा 452. 302 आईपीसी के तहत पंजीकृत किया गया था

6. जांच के दौरान याचिकाकर्ता के पति सहित उसके परिवार के कुछ सदस्यों को उक्त अपराध में झूठा फंसाया गया है। उपरोक्त के अनुसरण में, याचिकाकर्ता को अपना फायर आर्म पुलिस स्टेशन में जमा करने का निर्देश दिया गया था, जिसे उसके द्वारा 21.11.2013 को विधिवत जमा किया गया था। आगे कहा गया है सत्र परीक्षण संख्या 86/2014 में अपराध संख्या 980/2013 की धारा 452, 302/34 और 302/120-बी आईपीसी के तहत याचिकाकर्ता के पति को ट्रायल कोर्ट ने बरी कर दिया है।

7. उपरोक्त के मद्देनजर, याचिकाकर्ता के खिलाफ शस्त्र अधिनियम, 1959 की धारा 17 (3) के तहत मामला दर्ज किया गया था, इसके तुरंत बाद आदेश दिनांक 27.12.2013 द्वारा याचिकाकर्ता का शस्त्र लाइसेंस निलंबित कर दिया गया और कारण बताओ नोटिस इस संबंध में याचिकाकर्ता को जारी किया गया कि क्यों न

उसका शस्त्र लाइसेंस रद्द कर दिया जाए। याचिकाकर्ता ने उपरोक्त कारण बताओ नोटिस पर दिनांक 06.03.2014 को विधिवत अपना उत्तर/आपत्तियाँ प्रस्तुत की। इसके बाद याचिकाकर्ता के उपरोक्त जवाब पर एस.एस.पी. की ओर से एक और दस्तावेजी खंडन किया गया। एस.एच.ओ., कोतवाली, जिला- बदायूं के माध्यम से दिनांक 05.08.2014 को जिला मजिस्ट्रेट की अदालत में वाद दायर किया गया था। इसके बाद जिला मजिस्ट्रेट, बदायूँ द्वारा दिनांक 23.02.2018 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता का आग्नेयास्त्र लाइसेंस रद्द कर दिया गया।

8. उपर्युक्त से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता द्वारा आयुक्त, बरेली डिवीजन, बरेली के समक्ष एक वैधानिक अपील दायर की गई थी, जैसा कि शस्त्र अधिनियम, 1959 की धारा 18 के तहत अपील संख्या 00614/2018 के तहत प्रदान किया गया था। यह तर्क दिया गया है कि इसमें विभिन्न आधार लिए गए थे। लेकिन अपील पर विचार किए बिना, आयुक्त द्वारा याचिकाकर्ता द्वारा दायर अपील को खारिज करते हुए दिनांक 01.11.2019 का आदेश पारित कर दिया गया। उपरोक्त से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने वर्तमान याचिका दायर की है।

9 याचिकाकर्ता के विद्वान वकील श्री तंजील अहमद द्वारा यह तर्क दिया गया कि याचिकाकर्ता के शस्त्र लाइसेंस को रद्द करने का कारण अब समाप्त हो गया है क्योंकि याचिकाकर्ता के पति को उक्त आपराधिक मामले में बरी कर दिया गया है जबकि याची का देवर भी अब नहीं रहा। आगे यह तर्क दिया गया है कि दोनों आदेश अर्थात् जिला मजिस्ट्रेट द्वारा याचिकाकर्ता के शस्त्र लाइसेंस को रद्द करने का आदेश और साथ ही डिवीजन के आयुक्त द्वारा याचिकाकर्ता द्वारा दायर अपील को खारिज करने का आदेश पूरी तरह से अवैध है और दोनों ही आदेश रद्द किया जाए. आगे यह तर्क दिया गया कि कानून अच्छी तरह से स्थापित है कि यदि लाइसेंस धारक का कोई रिश्तेदार किसी अपराध में शामिल है, तो यह हथियार लाइसेंस रद्द करने का आधार नहीं हो सकता है।

10. दूसरी ओर, विद्वान स्थायी वकील द्वारा यह तर्क दिया गया कि चूंकि याचिकाकर्ता के परिवार के सदस्य आपराधिक मामलों में शामिल हैं, इसलिए याचिकाकर्ता का लाइसेंस रद्द करना सही था। आगे यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता का लाइसेंस रद्द करते समय अधिकारियों द्वारा ठोस कारण दिए गए थे, इसलिए यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता द्वारा दायर वर्तमान याचिका आधारहीन आधार पर है और इसे खारिज कर दिया जाना चाहिए।

11. पक्षों के वकील सुने और रिकार्ड का अवलोकन किया।

12. रिकार्ड के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता का शस्त्र लाइसेंस जिला मजिस्ट्रेट द्वारा अपने आदेश दिनांक 22.03.2018 द्वारा रद्द कर दिया गया था, उक्त आदेश के खिलाफ दायर अपील भी आदेश दिनांक 01.11.2019 दद्वारा खारिज कर दी गई थी। और दोनों आदेश अधिकारियों द्वारा याचिकाकर्ता के खिलाफ मुख्य रूप से इस आधार पर पारित किए गए थे कि याचिकाकर्ता के परिवार के सदस्यों का आपराधिक इतिहास रहा है।

13. इस संबंध में कानून सुस्थापित है कि शस्त्र लाइसेंस केवल आशंका के आधार पर रद्द नहीं किया जा सकता है। यह भी स्थापित कानून है

कि आपराधिक मामले लंबित होने की स्थिति में शस्त्र लाइसेंस रद्द नहीं किया जा सकता है। इस संबंध में एक पूरी प्रक्रिया शस्त्र अधिनियम, 1959 की धारा 17 के तहत प्रदान की गई है जो इस प्रकार है:- शस्त्र अधिनियम, 1959 की धारा 17, अग्नि शस्त्र लाइसेंस में बदलाव, निलंबन और निरसन से संबंधित है। धारा 17 को निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया गया है:

"17, लाइसेंस में परिवर्तन, निलंबन और निरसन ।

(1) लाइसेंसिंग प्राधिकारी उन शर्तों को अलग- अलग कर सकता है जिनके अधीन लाइसेंस प्रदान किया गया है, सिवाय उन शर्तों के जो निर्धारित की गई हैं और उस उद्देश्य के लिए लाइसेंस धारक को लिखित रूप में नोटिस देकर ऐसे समय के भीतर लाइसेंस सौंपने की आवश्यकता हो सकती है। जैसा कि नोटिस में निर्दिष्ट किया जा सकता है।

(2) लाइसेंसिंग प्राधिकारी, लाइसेंस धारक के आवेदन पर, लाइसेंस की शर्तों में बदलाव भी कर सकता है. सिवाय उन शर्तों के जो निर्धारित की गई हैं।

अस्वीकरणः अनुवादित निर्णय वादी के समझाने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

(3) लाइसेंसिंग प्राधिकारी लिखित आदेश द्वारा लाइसेंस को ऐसी अवधि के लिए रद्द कर सकला है जो वह उचित समझो या लाइसेंस रदद कर सकता है-

(ए) यदि लाइसेंसिंग प्राधिकारी संतुष्ट है कि लाइसेंस धारक को इस अधिनियम या उस समय लागू किसी अन्य कानून द्वारा किसी भी हथियार या गोला बारुद को प्राप्त करने, अपने कब्जे में रखने या ले जाने से प्रतिबंधित किया गया है, या वह अस्वस्थ है मन, या किसी भी कारण से इस अधिनियम के तहत लाइसेंस के लिए अयोग्य है,

(बी) यदि लाइसेंसिंग प्राधिकारी सार्वजनिक शांति की सुरक्षा के लिए या सार्वजनिक सुरक्षा के लिए लाइसेंस को निलंबित या रद्द करना आवश्यक समझता है, या

(सी) यदि लाइसेंस भौतिक जानकारी को छिपाकर या लाइसेंस धारक या उसकी ओर से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा इसके लिए आवेदन करते समय प्रदान की गई गलत जानकारी के आधार पर प्राप्त किया गया था. या

(डी) यदि लाइसेंस की किसी भी शर्त का उल्लंघन किया गया है

(ई) यदि लाइसेंस धारक उप धारा (1) के तहत लाइसेंस सौंपने की मांग वाले नोटिस का पालन करने में विफल रहा है

(4) लाइसेंसिंग प्राधिकारी उसके धारक के आवेदन पर लाइसेंस रद्द भी कर सकता है।

(5) जहां लाइसेंसिंग प्राधिकारी उप धारा (1) के तहत लाइसेंस को संशोधित करने का आदेश देता है या उप धारा (3) के तहत लाइसेंस को निलंबित या रद्द करने का आदेश देता है, तो वह इसके कारों को लिखित रूप में दर्ज करेगा और धारक को प्रस्तुत करेगा। लाइसेंस मांगने पर उसका संक्षिप्त विवरण देना होगा, जब तक कि किसी भी मामले में संबंधित प्राधिकारी की यह राय न हो कि ऐसा विवरण प्रस्तुत करना सार्वजनिक हित में नहीं होगा।

(6) वह प्राधिकारी जिसके अधीन लाइसेंसिंग प्राधिकारी है, लिखित रूप से किसी भी आधार

पर लाइसेंस को निलंबित या रद्द कर सकता है, जिस पर लाइसेंसिंग प्राधिकारी द्वारा इसे निलंबित या रद्द किया जा सकता है, और इस धारा के अग्रगामी प्रावधान, जहां तक ऐसे प्राधिकारी द्वारा लाइसेंस के निलंबन या निरसन के संबंध में लागू किया जा सकता है

(7) इस अधिनियम या उसके तहत बनाए गए नियमों के तहत किसी भी अपराध के लिए लाइसेंस धारक को दोषी ठहराने वाली अदालत लाइसेंस को निलंबित या रद्द भी कर सकती है. बशर्ते कि यदि अपील या अन्यथा दोषसिद्धि को रद्द कर दिया जाता है, तो निलंबन या निरसन शून्य हो जएगा।

(8) उपधारा (7) के तहत निलंबन या निरस्तीकरण का आदेश अपीलीय अदालत या उच्च न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण की अपनी शक्तियों का प्रयोग करते समय भी किया जा सकता है।

(9) केंद्र सरकार, आधिकारिक राजपत्र में आदेश द्वारा, पूरे भारत या उसके किसी भी हिस्से में इस अधिनियम के तहत दिए गए सभी या किसी भी लाइसेंस को निलंबित या रद्द करने के लिए किसी लाइसेंसिंग प्राधिकारी को निलंबित या रद्द कर सकती है या निर्देश दे सकती है।

(10) इस धारा के तहत किसी लाइसेंस के निलंबन या निरस्तीकरण पर, उसके धारक को बिना किसी देरी के लाइसेंस को उस प्राधिकारी को सौंप देना होगा जिसके द्वारा इसे जब्त या निरस्त किया गया है या ऐसे अन्य प्राधिकारी को जो इस संबंध में आदेश में निर्दिष्ट किया जा सकता है। निलंबन या निरसन।"

14. शस्त्र अधिनियम की धारा 17 (3) को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि लाइसेंसिंग प्राधिकारी लिखित आदेश द्वारा किसी लाइसेंस को उस अवधि के लिए निलंबित कर सकता है जो उसके लिए उपयुक्त हो या लाइसेंस रद्द कर सकता है; (बी) यदि लाइसेंसिंग प्राधिकारी सार्वजनिक शांति की सुरक्षा के लिए या सार्वजनिक सुरक्षा के लिए लाइसेंस को निलंबित या रद्द करना आवश्यक समझता है। "सार्वजनिक शांति की सुरक्षा" और "सार्वजनिक सुरक्षा के लिए" ये दो अभिव्यक्तियाँ अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। लाइसेंसिंग प्राधिकारी को इन पूर्व शर्तों के अस्तित्व से संतुष्ट होना चाहिए।"

15. इस संबंध में कानून भी अच्छी तरह से स्थापित है जैसा इस न्यायालय द्वारा समय-समय पर मामलों की श्रृंखला में माना जाता रहा है। राम मूर्ति मधुकर बनाम जिला मजिस्ट्रेट, सीतापुर [1998 (16) एलसीडी-905) के मामले में, इस न्यायालय ने पैरा नं. 8 निम्नानुसार-

"(8) कानून में यह अच्छी तरह से स्थापित है कि केवल आपराधिक मामले का लंबित होना या शस्त्र अधिनियम के दुरुपयोग की आशंका, जासूस के अपराध को पारित करने या लाइसेंस रद्द करने और अधिनियम की धारा 17 के लिए पर्याप्त आधार नहीं है। इस संबंध में एक संदर्भ गणेश चंद्र भाटी बनाम डी एम अल्मोडा एआईआर 1993, 291 में इस न्यायालय की राय बनाई जा सकती है।

16. राम कृपाल सिंह बनाम आयुक्त, देवी पाटन मंडल, गोंडा एवं अन्य [2006 (24) एलसीडी 141], के मामले में इस न्यायालय ने पैराग्राफ संख्या 6 और 7 में निम्नलिखित के रूप में माना है। जिन्हें यहां पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है

6. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने 2002 एसीसी, हबीच उत्तर प्रदेश राज्य में रिपोर्ट किए गए इस न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा किया था।

7. उक्त निर्णय का पैरा 3 निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया गया है-

"पैरा 3 यह प्रश्न कि क्या केवल आपराधिक मामले में शामिल होना या आपराधिक मामले का लंबित होना शस्त्र अधिनियम के तहत लाइसेंस रद्द करने का आधार हो सकता है, शिओ प्रसाद मिश्रा बनाम जिला मजिस्ट्रेट, बस्ती और अन्य के मामले में जिसे डिवीजन बेंच द्वारा निपटाया गया है। जिसमें डिवीजन बेंच ने माई उडीन बनाम कमिश्नर, इलाहाबाद में रिपोर्ट किए गए पहले के फैसले पर भरोसा करते हुए पाया कि केवल आपराधिक मामले में शामिल होना किसी भी तरह से सार्वजनिक सुरक्षा या सार्वजनिक हित को प्रभावित नहीं कर सकता है और न आदेश को और आग्नेयास्त्र के लाइसेंस को रद्द कर सकता है। वर्तमान जांच आदेश उपरोक्त उल्लिखित मामलों में डिवीजन बेंच दद्वारा बताई गई वाद में उसी कमजोरी से ग्रस्त है। मैं डिवीजन बेंच दवारा ली गई बात से पूरी तरह सहमत हूं कि ये आदेश बरकरार रखे जाने योग्य हैं और निरस्त किए जाने योग्य है और इसके द्वारा निरस्त किए जाते हैं।

17. यह न्यायालय राम प्रसाद बनाम कमिश्नर और अन्य के मामले में 07.02.2020 को निम्नानुसार निर्णय लिया गया है। उक्त निर्णयों के प्रासंगिक पैराग्राफ अर्थात्। 16, 19, 22, 23, 24, 25, 28, 32 और 36 यहाँ नीचे उद्धृत किया जा रहा है

16. जिस मामले पर विचार करने की आवश्यकता है. वह यह है कि क्या आपराधिक मामला लंबित होने के आधार पर याचिकाकर्ता का आग्नेयास्त्र लाइसेंस रद्द किया जा सकता है और 17.1.2003 को उसके बरी होने के बावजूद उसकी अपील खारिज की जा सकती है। इस पर भी विचार की आवश्यकता है कि क्या आधार आलेपित आदेशों में कहा गया है कि यदि याचिकाकर्ता का आग्नेयास्त्र लाइसेंस याचिकाकर्ता के पास रहता है, तो यह सार्वजनिक हित और सार्वजनिक सुरक्षा में नहीं होगा, रद्दीकरण उचित हैं और पर्याप्त सामग्री पर आधारित है।"

19. मसीउद्दीन बनाम आयुक्त, इलाहाबाद मंडल, इलाहाबाद और एक अन्य ने 573/1972 में ए.एल.जे. में रिपोर्ट दी। इस न्यायालय ने पैराग्राफ संख्या 4 और 7 में निम्नानुसार निर्णय लियाः "4. लाइसेंस दिए जाने के बाद, लाइसेंस रखने और बंदूक रखने का अधिकार एक स्वतंत्र देश में एक मूल्यवान व्यक्तिगत अधिकार है। सार्वजनिक शांति और सार्वजनिक सुरक्षा की सुरक्षा एक मूल्यवान सामाजिक हित है। धारा 17 से पता चलता है कि संसद ने निर्णय लिया था दोनों मूल्यवान हितों में से किसी को भी दूसरे पर अनुचित रूप से प्रभाव नहीं डालना चाहिए। धारा 17 दो प्रतिस्पर्धी हितों के बीच एक उचित संतुलन स्थापित करने का प्रयास करती है। इसमें कहा गया है. पहले लाइसेंसधारी को सुनें; और फिर सार्वजनिक शांति की सुरक्षा के लिए यदि आवश्यक हो तो लाइसेंस रद्द करें या सार्वजनिक सुरक्षा के लिए"। सच है, सुनवाई के लिए कोई स्पष्ट प्रावधान नहीं है। लेकिन प्रभावित अधिकार की प्रकृति, धारा 17 की भाषा, रद्द करने का आधार, एक तर्कसंगत आदेश की आवश्यकता और अपील का अधिकार स्पष्ट रूप से एक निहितार्थ निष्पक्ष सुनवाई प्रक्रिया है। जय नारायण राय बनाम जिला मजिस्ट्रेट, आज़मगढ़। लाइसेंस रद्द करते समय, जिला मजिस्ट्रेट एक अर्ध- न्यायिक प्राधिकारी के रूप में कार्य करता है।

7. किसी लाइसेंस को अन्य बातों के साथ साथ इस आधार पर रद्द किया जा सकता है कि ऐसा

करना "सार्वजनिक शांति की सुरक्षा के लिए या सार्वजनिक सुरक्षा के लिए आवश्यक है। जिला मजिस्ट्रेट ने यह निष्कर्ष दर्ज नहीं किया है कि सार्वजनिक शांति की सुरक्षा के लिए या सार्वजनिक सुरक्षा के लिए लाइसेंस रद्द करना आवश्यक था। एक लाइसेंसधारी और किसी अन्य व्यक्ति के बीच शत्रुता का अस्तित्व सार्वजनिक शांति या सार्वजनिक सुरक्षा की सुरक्षा के साथ "आवश्यक संबंध स्थापित नहीं करेगा। केवल शत्रुता से अधिक कुछ होना चाहिए। लाइसेंसधारी के उतेजक बयानों के कुछ सबूत या उसकी संदिग्ध हरकर्ता या उसके आपराधिक मंसूबों और साजिश के सबूत होने चाहिए। उन तथ्यों और परिस्थितियों की विस्तृत सूची देना संभव नहीं है जिनसे सार्वजनिक सुरक्षा या सार्वजनिक शांति के लिए खतरे का अनुमान लगाया जा सके। प्रत्येक मामले के तथ्यों पर जिला मजिस्ट्रेट को निर्णय लेना होगा, लेकिन मौजूदा मामले में उनके आदेश में ऐसा काड भी नहीं है जो यह बताए कि सार्वजनिक शांति की सुरक्षा के लिए या सार्वजनिक सुरक्षा के लिए याचिकाकर्ता का लाइसेंस रद्द करना आवश्यक था। केवल शत्रुता पर्याप्त नहीं है।"

22. जंगा प्रसाद साहू बनाम यूपी राज्य और अन्य के मामले में 1984 ऐडब्ल्यूसी 145 (एफबी) में रिपोर्ट दी, शस्त्र अधिनियम की धारा 17 (3) के प्रावधानों पर ध्यान देने के बाद पैराग्राफ 5 में पूर्ण पीठ ने इस प्रकार कहाः

"उपर्युक्त प्रावधानों के अवलोकन से संकेत मिलता है कि लाइसेंसिंग प्राधिकारी को हथियार लाइसेंस को निलंबित या रद्द करने की शक्ति केवल तभी दी गई है जब धारा 17 शस्त्र अधिनियम की उप-धारा (3) के उप- खंड (ए) से (ई) में उल्लिखित शर्तों में से कोई भी हो अधिनियम का 17 मौजूद है।" धारा 17 की उपधारा (5) लाइसेंसिंग प्राधिकारी के लिए यह अनिवार्य बनाती है कि वह हथियार लाइसेंस को रद्ध निलंबित करने का आदेश पारित करते समय, कारणों को लिखित रूप में दर्ज करे और मांगे जाने पर, लाइसेंस धारक को उसका एक संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करे। लाइसेंस तब तक दें जब तक वह यह न समझे कि ऐसा करना सार्वजनिक हित में नहीं होगा।" पैराग्राफ 9 में इस बात पर जोर दिया गया है:-

"यह सच है कि हथियार लाइसेंस को रद्द निलंबित करने के लिए, लाइसेंसिंग प्राधिकारी को आवश्यक रूप से इस निष्कर्ष पर पहुंचना होगा कि धारा 17 के आधार (ए) से (ई) में उल्लिखित लाइसेंस के रद्दीकरण/ निलंबन को उचित ठहराने वाले तथ्य मौजूद हैं"

23. इलम सिंह बनाम कमिश्नर, मेरठ डिवीजन और अन्य में [1987 सभी। एल.जे. 416] इस न्यायालय ने माना कि धारा 17(3) (बी) के तहत लाइसेंसिंग प्राधिकारी लाइसेंस को निलंबित या रद्द कर सकता है यदि यह सार्वजनिक शाति या सार्वजनिक सुरक्षा के लिए आवश्यक हो जाता है। इस मामले में लाइसेंसधारी के खिलाफ कोई रिपोर्ट दर्ज नहीं की गई थी जिससे यह पता चले कि उसने उस घटना में बंदूक का इस्तेमाल किया था जिससे सार्वजनिक शांति या सार्वजनिक सुरक्षा का उल्लंघन हुआ था। यह माना गया कि कुछ सकारात्मक घटना होनी चाहिए जिसमें याचिकाकती ने भाग लिया और अपनी बंदूक का इस्तेमाल किया जिसके कारण सार्वजनिक शांति या सार्वजनिक सुरक्षा का उल्लंघन हुआ। सार्वजनिक शांति या सार्वजनिक सुरक्षा के खिलाफ लाइसेंसधारी द्वारा बंदूक का उपयोग नहीं किया गया। बंदूक का लाइसेंस निलंबित या

निरस्त नहीं किया जा सकता। इलम सिंह (पूर्व) में फैसले के प्रासंगिक पैराग्राफ 4 और 5 को निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है.

*4. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील को सुनने के बाद मेरा विचार है कि याचिकाकर्ता के विद्वान वकील द्वारा उठाए गए तर्क बिना तथ्य के नहीं कहे जा सकते। शस्त्र अधिनियम की धारा 17(3) (बी) यह अधिनियमित करती है कि लाइसेंसिंग यदि सार्वजनिक शांति या सार्वजनिक सुरक्षा के लिए यह आवश्यक हो जाता है तो प्राधिकारी लिखित आदेश द्वारा लाइसेंस को निलंबित कर सकता है या उसे रद्द कर सकता है। जब एक बार किसी व्यक्ति को लाइसेंस दिया जाता है और वह बंदूक खरीद लेता है, तो यह उसकी संपत्तिर्या में से एक बन जाती है। वर्तमान मामले में याचिकाकर्ता के आदेश पर सार्वजनिक शांति या सार्वजनिक सुरक्षा के उल्लंघन की कोई घटना नहीं बताई गई है। यहां तक कि याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई रिपोर्ट भी दर्ज नहीं की गई है जो यह दर्शाती हो कि उसने इस घटना में अपनी बंदूक का इस्तेमाल किया था जिसके कारण उल्लंघन हुआ। सार्वजनिक शांति या सार्वजनिक सुरक्षा की। भले ही कुछ रिपोर्ट दर्ज की गई हों लेकिन इसे लाइसेंस रद्द करने के लिए पर्याप्त कारण नहीं कहा जा सकता।"

5. कोई सकारात्मक घटना होनी चाहिए जिसमें याचिकाकर्ता ने भाग लिया और अपनी बंदूक का इस्तेमाल किया जिससे सार्वजनिक शांति या सार्वजनिक सुरक्षा भंग हुई। सार्वजनिक शांति या सार्वजनिक सुरक्षा की सुरक्षा के खिलाफ याचिकाकर्ता द्वारा बंदूक का उपयोग न करने की स्थिति में याचिकाकर्ता की बंदूक का लाइसेंस न तो निलंबित किया जा सकता था और न ही रद्द किया जा सकता था। लाइसेंसिंग प्राधिकारी के साथ- साथ आयुक्त ने शस्त्र अधिनियम की धारा 17 (3) (बी) के प्रावधार्नो की घोर अवहेलना करते हुए याचिकाकर्ता द्वारा रखी गई बंदूक का लाइसेंस रद्द करने में रिकॉर्ड पर त्रुटियां कीं। इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए विवादित आदेश कायम नहीं रखा जा सकता और यह रद्द किये जाने योग्य है।"

24. हबीब बनाम यूपी राज्य और अन्य (2002 (44) एसीसी 783] में इस न्यायालय ने माना कि केवल आपराधिक मामले में शामिल होने से किसी भी तरह से सार्वजनिक सुरक्षा या सार्वजनिक हित प्रभावित नहीं हो सकता है और आग्नेयास्त्र के लाइसेंस को रद्द करने या रद्द करने का आदेश उचित नहीं था। इस निर्णय का पैराग्राफ 3 निम्नानुसार पढ़ता है:

3. यह सवाल कि क्या किसी आपराधिक मामले में शामिल होना या किसी आपराधिक मामले का लबित रहना शस्त्र अधिनियम के तहत लाइसेंस रद्द करने का आधार हो सकता है, इस अदालत की एक डिवीजन बेच ने शिओ प्रसाद मिश्रा बनाम जिलाधिकारी, बस्ती एवं अन्य के मामले में निपटाया जिसमें डिवीजन बेंच ने मासी उद्दीन बनाम कमिश्नर, इलाहाबाद में दिए गए पहले के फैसले पर भरोसा करते हुए पाया कि केवल आपराधिक मामले में शामिल होने से किसी भी तरह से सार्वजनिक सुरक्षा या सार्वजनिक हित प्रभावित नहीं हो सकता है और आग्नेयास्त्र के लाइसेंस को रद्द करने या निरस्त करने का आदेश दिया गया है। अलग रख दिया गया है।"

25. सतीश सिंह बनाम जिला मजिस्ट्रेट, सुल्तानपुर 2009 (4) एडीजे 33 (एलबी) में, इस न्यायालय ने विस्तार से बताया कि सार्वजनिक शांति या सार्वजनिक सुरक्षा की सुरक्षा के लिए क्या हानिकारक है और माना कि केवल

आपराधिक मामले में शामिल होना सार्वजनिक सुरक्षा या सार्वजनिक हित को प्रभावित करें यह किसी प्रकार से संभव नहीं है। सतीश सिंह (पूर्व) के मामले के पैराग्राफ 6 और 7 को निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है.

6. धारा 17 का एक स्पष्ट पाठ इंगित करता है कि हथियार लाइसेंस को इस आधार पर रदद या निलंबित किया जा सकता है कि लाइसेंसिंग प्राधिकारी सार्वजनिक शांति या सार्वजनिक सुरक्षा की सुरक्षा के लिए इसे आवश्यक समझता है। वर्तमान मामले में, आक्षेपित आदेश पारित करते समय न तो जिला मजिस्ट्रेट और न ही अपीलीय प्राधिकारी ने यह निष्कर्ष दर्ज किया है कि कैसे और किस परिस्थिति में, याचिकाकर्ता द्वारा हथियार लाइसेंस का कब्जा सार्वजनिक शाति या सार्वजनिक सुरक्षा और सुरक्षा के लिए हानिकारक है। केवल इसलिए कि आपराधिक मामला अधिक लंबित है इसलिए, ऐसा प्रतीत होता है कि यह शस्त्र अधिनियम की धारा 17 के प्रावधानों को आकर्षित नहीं करता है। सार्वजनिक शांति, सुरक्षा और सुरक्षा के संबंध में शस्त्र अधिनियम की धारा 17 के प्रावधानों को आकर्षित करने के लिए यह हमेशा अधिकारियों के लिए बाध्य होगा कि वे एक निष्कर्ष दर्ज करें। कैसे, किन परिस्थितियों में और किस तरीके से, हथियार लाइसेंस का कब्जा सार्वजनिक शांति, सुरक्षा और सुरक्षा के लिए हानिकारक होगा। इस तरह के निष्कर्ष के अभाव में केवल इस आधार पर कि जनता के खतरे के संबंध में किसी भी कम करने वाली परिस्थितियों के बिना एक आपराधिक मामला लंबित है शांति, सुरक्षा और सुरक्षा, शस्त्र अधिनियम की धारा 17 के तहत निहित प्रावधान संतुष्ट नहीं होंगे।

7. यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत जीवन और स्वतंत्रता के अधिकार की गारंटी दी गई है और शस्त्र अधिनियम, 1959 में निहित प्रावधानों के अनुसार अधिकारियों द्वारा उचित जांच के बाद व्यक्तिगत सुरक्षा के लिए हथियार लाइसेंस दिए जाते हैं। शस्त्र लाइसेंस के निलंबन या रद्दीकरण के संबंध में शस्त्र अधिनियम की धारा 17 के प्रावधानों को मनमाने तरीके से हल्के ढंग से लागू नहीं किया जा सकता है। शस्त्र अधिनियम की धारा 17 के अंतर्गत निहित प्रावधान सख्ती से समझा जाना चाहिए न कि उदारतापूर्वक। हथियार लाइसेंस को रद्द करने या निलंबित करने के लिए आगे बढ़ने से पहले अधिकारियों को उसमें प्रदान की गई शर्तों को पूरा करना चाहिए। हम इस तथ्य पर ध्यान दे सकते हैं कि चाहे जो भी कारण हो, अपराध दर दिन ब दिन बढ़ता जा रहा है। सरकार प्रत्येक व्यक्ति को व्यक्तिगत रूप से सुरक्षा प्रदान करने की स्थिति में नहीं है। हथियार रखने का अधिकार वैधानिक अधिकार है लेकिन जीवन और स्वतंत्रता का अधिकार भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 द्वारा मौलिक गारंटी है। इसके परिणामस्वरूप, अपने परिवार को उपद्रवियों से बचाने के लिए अपनी व्यक्तिगत सुरक्षा के लिए आग्नेयास्त्र रखना नागरिकों का अधिकार है। अक्सर यह कहा जाता है कि सभ्य समाज में सामान्यतः सभ्य व्यक्तियों को ही अपनी सुरक्षा के लिए शस्त्र लाइसेंस की आवश्यकता होती है, अपराधियों को नहीं। बेशक, अगर सरकार को लगता है कि हथियार लाइसेंस का दुरुपयोग किसी अप्रत्यक्ष उद्देश्य या आपराधिक गतिविधियों के लिए किया जा रहा है, तो ऐसे कंदात्तार को रोकने के लिए उचित उपाय अपनाए जा सकते हैं। लेकिन बिना दिमाग लगाए

और शस्त्र अधिनियम की धारा 17 की भावना को ध्यान में रखते हुए शस्त्र लाइसेंस को यांत्रिक तरीके से नियमित तरीके से निलंबित नहीं किया जाना चाहिए।"

28. ठाकुर प्रसाद बनाम यूपी राज्य और अन्य के मामले ने पहले की घोषणाओं का हवाला देते हुए इस न्यायालय को 2013 (31) एलसीडी 1460 (एलबी) की सूचना दी। राम मुरली मधुकर बनाम जिलाधिकारी, सीतापुर (1998 (16) एलसीडी 905] और हबीब बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2002 एसीसी 783, पैराग्राफ 10 और 11 में निम्नानुसार आयोजित किया गया है:

10. "सार्वजनिक शांति" या "सार्वजनिक सुरक्षा" का मतलब कानून और व्यवस्था की सामान्य गड़बड़ी नहीं है। सार्वजनिक सुरक्षा का मतलब बड़े पैमाने पर जनता की सुरक्षा है, न कि केवल कुछ व्यक्तियों की सुरक्षा और शस्त्र लाइसेंस रद्द करने के आदेश पारित करने से पहले अधिनियम की धारा 17 (3) के तहत लाइसेंसिंग प्राधिकारी इस मामले में इस अदालत द्वारा दिए गए फैसले के मद्देनजर इस सवाल पर अपना दिमाग लगाने के लिए बाध्य है कि क्या मामले में सार्वजनिक शांति और सुरक्षा के लिए कोई बड़ा खतरा था। राम मुरली मधुकर बनाम जिला मजिस्ट्रेट, सीतापुर (1998 916) एलसीडी 905], जिसमें यह माना गया है कि केवल एफ. आई. आर. के पंजीकरण और एक आपराधिक मामले के लंबित होने पर सार्वजनिक हित (जनहित) के आधार पर लाइसेंस को निलंबित या रद्द नहीं किया जा सकता है।

11. इसके अलावा, इस न्यायालय ने हबीब बनाम यूपी राज्य 2002 एसीसी 783 के मामले में निम्न तथ्यों को लिया:-

"यह सवाल कि क्या केवल आपराधिक मामले में शामिल होना या आपराधिक मामले का लंबित होना शस्त्र अधिनियम के तहत लाइसेंस रद्द करने का आधार हो सकता है, इस न्यायालय की एक डिवीजन बेंच ने शिओ प्रसाद मिश्रा बनाम जिला मजिस्ट्रेट बस्ती और अन्य 1978 एडब्ल्यूसी 122, मामले को निपटाया है। जिसमें डिवीजन बैच नै मासी उद्द्दीन बनाम कमिश्नर, इलाहाबाद, 1972 एएलने 573 में पहले के फैसले पर भरोसा करते हुए पाया कि केवल आपराधिक मामले में शामिल होने से, किसी भी तरह से, सार्वजनिक सुरक्षा या जनता को प्रभावित नहीं किया जा सकता है। और आग्नेयास्त्र के लाइसेंस को रदद करने या रद्द करने के आदेश को रदद कर दिया गया है। वर्तमान आक्षेपित आदेश भी उसी कमजोरी से ग्रस्त हैं जैसा कि उपरोक्त उल्लिखित मामलों में डिवीजन बेंच द्वारा बताया गया था। मैं इस दृष्टिकोण से पूरी तरह सहमत हूं डिवीजन बेंच ने कहा कि ये आदेश कायम नहीं रह सकते और रद्द किए जाने योग्य हैं और इन्हें एतद्वारा रद्द किया जाता है।

एक और कारण है कि वर्तमान रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान, याचिकाकर्ता को उपरोक्त आपराधिक मामले से बरी कर दिया गया है और वर्तमान में न तो कोई मामला लंबित है, न ही याचिकाकर्ता को कोई सजा सुनाई गई है, जैसा कि स्पष्ट है। याचिकाकर्ता द्वारा दायर पूरक हलफनामे में एसएन और ॥ मामले को देखते हुए, याचिकाकर्ता आग्नेयास्त्र लाइसेंस पाने का हकदार है।"

32. घनश्याम गुप्ता बनाम यूपी राज्य और अन्य (2016 (34) एलसीडी 3035] इस न्यायालय ने फिर से माना है कि धारा 17 के संदर्भ में लाइसेंसिंग प्राधिकारी के अधिकार क्षेत्र को लागू

करने के लिए आवश्यक सामग्री की स्पष्ट रूप से कमी थी और उस संबंध में उत्पादित सामग्री के आधार पर कोई निष्कर्ष नहीं दिया गया था। लाइसेंसिंग प्राधिकारी, जिसे रद्दीकरण के आदेश को पारित करने का औचित्य सिद्ध करना होगा। उक्त निर्णय के पैराग्राफ 9 को इस प्रकार उद्धृत किया जा रहा है-

"9. 2015 (7) एडीजे 510 में रिपोर्ट किए गए सूर्य नारायण मिश्रा बनाम यूपी राज्य और अन्य में इस अदालत की लखनऊ बेंच के हालिया फैसले में. इस न्यायालय द्वारा बाद के फैसलों पर भरोसा करते हुए इसी तरह का दृष्टिकोण लिया गया है। पैरा-14 निर्णय का पुनरुत्पादन किया गया है:

"14. राज कुमार वर्मा बनाम यूपी राज्य, 2013 (80) एसीसी 231 के मामले में इस अदालत ने पैरा नंबर 3 में निम्नानुसार कहाः-

कारण बताओ नोटिस जारी करने, निलंबन और अंततः लाइसेंस रद्द करने का आधार यह है कि " एक और सटीक रूप से याचिकाकर्ता के खिलाफ दर्ज किया गया एक आपराधिक मामला था।

जिला मजिस्ट्रेट ने यह भी माला कि याचिकाकर्ता को जमानत पर रिहा कर दिया गया है। उन्होंने यह भी कहा है कि यदि लाइसेंस बरकरार रहता है, तो याचिकाकर्ता सार्वजनिक शांति और स्वास्थ्य को भंग कर सकता है। कमिश्नर ने ओ यही निष्कर्ष दिया है. इस तथ्य से बेपरवाह कि यह न्यायालय देश के कानून को दोहरा रहा है, लेकिन प्रशासनिक अधिकारियों के बहरे कान देश के कानून के आगे झुकले को तैयार नहीं हैं। स्थापित कानून यह है कि किसी आपराधिक मामले में शामिल होने मात्र से यह पता नहीं चलता कि ऐसे आपराधिक मामले में शामिल होना सार्वजनिक शांति के लिए हानिकारक होगा और सशस्त्र लाइसेंस रद्द करने का आधार नहीं बनेगा। राम सुचि बनाम आयुक्त, देवीपाटन मंडल की रिपोर्ट 2004 (22) एलसीडी 1643 में, यह माना गया कि इस कानून पर बलराम सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2006 (24) एलसीडी 1359 में भरोसा किया गया था। बिना तथ्य के मात्र आशंका एक ऐसी राय है जिसके खड़े होने के लिए कोई पैर नहीं हैं। लोक सेवक के रूप में कार्य करते समय व्यक्तिगत सनक को प्रतिबिंबित करने की अनुमति नहीं है। 36. वर्तमान मामले में याचिकाकर्ता का लाइसैंस उसके खिलाफ आपराधिक मामला लंबित होने के आधार पर जिला मजिस्ट्रेट द्वारा रद्द कर दिया गया था। याचिकाकर्ता को बाद में दिलाक 17.1.2003 के आदेश द्वारा आपराधिक मामले से बरी कर दिया गया। दोषमुक्ति के आदेश का अवलोकन आग्नेयास्त्र के प्रयोग को नहीं दर्शाता है। बरी होने के बाद रद्दीकरण आदेश का आधार ही खत्म हो गया। आयुक्त द्वारा पुष्टि की गई जिला मजिस्ट्रेट की खोज, कि यह सार्वजनिक शांति और सार्वजनिक सुरक्षा के हित में नहीं था कि लाइसेंस याचिकाकर्ता / लाइसेंसधारक के पास ही रहे, पुलिस रिपोर्टों को छोड़कर किसी भी सबूत/ सामग्री पर आधारित नहीं है। वे याचिकाकर्ता के खिलाफ आपराधिक मामले के लंबित होने के मद्देनजर थे। आक्षेपित आदेशों में केवल इस आशंका के आधार पर कि याचिकाकर्ता आग्नेयास्त्र का दुरुपयोग करेगा और समाज के कमजोर वर्ग के लोगों को खतरा पैदा करेगा, शस्त्र लाइसेंस रदद नहीं किया जा सकता है।"

18. उपरोक्त उल्लिखित निर्णयों के आधार पर, न्यायालय की राय है कि वर्तमान याचिकाकर्ता का मामला काफी बेहतर स्तर पर है, क्योंकि वर्तमान मामले में याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई

भी आपराधिक मामला दर्ज नहीं किया गया है। केवल इस आशंका के आधार पर कि अग्नि शस्त्र का उपयोग उसके परिवार के सदस्यों दवारा किया जा सकता है। याचिकाकर्ता का शस्त्र लाइसेंस रद्द कर दिया गया। रिकॉर्ड से यह भी स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता का लाइसेंस केवल इस आशंका के आधार पर रद्द कर दिया गया था कि उपरोक्त आर्म लाइसेंस का याचिकाकर्ता के पति और बहनोई द्वारा दुरुपयोग किया जा सकता है। जैसा कि ऊपर कहा गया है। और रिकॉर्ड के अनुसार, पति पहले ही आपराधिक मामले में बरी कर दिया गया है, जहां तक देवर का सवाल है, वह अब नहीं है और इसलिए रद्द करने का एकमात्र आधार यानी आशंका स्थिर नहीं रह सकती है।

19.मामले के इस दृष्टिकोण में, न्यायालय की दृढ़ राय है कि याचिकाकर्ता के पास राहत पाने का प्रथम दृष्टया मामला है जैसा कि उसने वर्तमान रिट याचिका में प्रार्थना की है।

20. ऊपर बताए गए तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, भारतीय शस्त्र अधिनियम, 1959 की धारा 18 के तहत दायर अपील संख्या 00614/2018 में आयुक्त बरेली मंडल बरेली द्वारा पारित आदेश दिनांक 01.11.2019 के साथ साथ शस्त्र अधिनियम 1959 की धारा 17-(3) के तहत जिला मजिस्ट्रेट, बदायूँ द्वारा प्रकरण संख्या 08/2014 में पारित आदेश दिनांक 22.03.2018 निरस्त किये जाने योग्य है और एतद्वारा रद्द किया जाता है।

21. रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

22.लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(2023) 3 ILRA 1160

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल वाद

दिनांक: इलाहाबाद 04.08.2022

माननीय मुख्य न्यायाधीश राजेश बिंदल

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर

के समक्ष

रिट-सी संख्या 19960 वर्ष 2022

प्रेम पाल ...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य ...प्रतिपक्षी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: श्री आशीष कुमार सिंह

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: सी.एस.सी., सुश्री मीनाक्षी सिंह (राज्य विधि अधिकारी), श्री अनादि कृष्ण नारायण

A. सिविल कानून - कानूनों की व्याख्या - यह कानूनों के निर्माण का एक मूल सिद्धांत है कि जब कानून की भाषा स्पष्ट और बिना किसी भ्रम की होती है, तो न्यायालय को कानून में इस्तेमाल किए गए शब्दों का अनुसरण करना चाहिए - हालांकि, अगर कानूनों की स्पष्ट भाषा को पढ़ने पर कोई अजीबता, अन्याय या बेवकूफी निकलती है, तो न्यायालय उस उद्देश्य को देख सकती है जिसके लिए कानून लाया गया है और उस अर्थ को देने की कोशिश करेगी, जो कानून के उद्देश्य के अनुरूप हो। (पैरा 5)

B. सिविल कानून - भूमि अधिग्रहण - भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 - धारा 28A - न्यायालय के अनुतोष के आधार पर क्षतिपूर्ति की राशि का पुनः निर्धारण - जहां न्यायालय किसी भी क्षतिपूर्ति की राशि को कलेक्टर द्वारा धारा 11 के तहत निर्धारित राशि से अधिक स्वीकार

करती है, वहां सभी अन्य भूमि के हितधारक, जो उसी अधिसूचना के तहत धारा 4(1) में शामिल हैं, भले ही उन्होंने कलेक्टर के पास धारा 18 के तहत आवेदन नहीं दिया हो, कलेक्टर के पास आवेदन करके यह मांग कर सकते हैं कि उन्हें मिलने वाली मुआवजे की राशि का पुनः निर्धारण अदालत द्वारा निर्धारित मुआवजे की राशि के आधार पर किया जाए - 'कलेक्टर के पास धारा 18 के तहत आवेदन नहीं दिया' का अर्थ - "आवेदन नहीं दिया" का अर्थ है, प्रभावी आवेदन नहीं दिया, जो स्वीकार किया गया हो और जिसका संदर्भ दिया गया हो, और संदर्भ का उत्तर दिया गया हो - एक बार जब कलेक्टर एक आवेदन को अनुतोष के विरुद्ध स्वीकार करता है और धारा 18 के तहत संदर्भ बनाता है, और न्यायालय द्वारा संदर्भ का उत्तर दिए जाने के बाद, धारा 28A का अधिकार एक अन्य भूमि मालिक के आग्रह पर न्यायालय द्वारा पारित अनुतोष के आधार पर पुनः निर्धारण की मांग करने के लिए समाप्त हो जाएगा - किसी भूमि मालिक के लिए यह उचित नहीं है कि वह एक संदर्भ बनाए और उसका उत्तर प्राप्त करे और फिर बाद में एक अन्य आवेदन करे जब कोई अन्य व्यक्ति संदर्भ का उत्तर प्राप्त करता है और अधिक राशि प्राप्त करता है - हालाँकि, उस व्यक्ति के आग्रह पर कोई संदर्भ नहीं बनाया गया जिसका वाद कलेक्टर द्वारा समय सीमा के आधार पर सुना गया या अन्यथा न्यायालय द्वारा गुण दोष पर नहीं सुना गया है। (पैरा 6)

स्वीकृत। (E-5)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. भारत संघ और अन्य बनाम हंसोली देवी और अन्य, (2002) 7 SCC 273
2. अश्विनी कुमार घोष बनाम अरबिंद बोस AIR 1952 SC 369 : 1953 SCR 1
3. क्यूबेक रेलवे, लाइट हीट और पावर कंपनी लिमिटेड बनाम वैंड्री AIR 1920 PC 181

कोरम : माननीय मुख्य न्यायाधीश राजेश बिंदल, माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर।

<u>आदेश</u>

1. यह रिट याचिका विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी (संयुक्त संगठन), अलीगढ़ द्वारा दिनांक 30.04.2022 को पारित आदेश के विरुद्ध है, जिसमें भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 (संक्षेप में, "अधिनियम") की धारा 28ए के तहत याचिकाकर्ता के प्रार्थना पत्र को अस्वीकार्य मानते हुए खारिज कर दिया गया था।

2. याचिका को उत्पन्न करने वाले संक्षिप्त तथ्य ये हैं कि याचिकाकर्ता, प्रेम पाल सिंह ने 04.08.1999 को अधिनियम की धारा 28 ए के तहत एक प्रार्थना पत्र दिया था जिसमें कहा गया था कि खसरा नंबर 404/1 में शामिल उनकी जमीन, जिसका क्षेत्रफल 1.533 हेक्टेयर है, राजस्व गांव देवसैनी , परगना और तहसील कोइल, जिला अलीगढ़ में स्थित है, को राज्य द्वारा उत्तर प्रदेश राज्य औद्योगिक विकास निगम लिमिटेड, कानपुर द्वारा योजनाबद्ध औद्योगिक विकास के लिए अधिग्रहित किया गया था। एलएआर संख्या 42/1996, मोहम्मद सलीम बनाम यूपी राज्य और अन्य, उस मामले में बेदखल भूमिधारक द्वारा अधिनिर्णय पर आपत्तियों के आधार पर कलेक्टर द्वारा किया गया एक संदर्भ था , जिसे अनुमति दी गई थी और मुआवजा दिनांक 22.05.1999 के अधिनिर्णय के अनुसार ₹80/- प्रति वर्ग गज तक

बढ़ा दिया गया था। यह प्रार्थना की गई कि याचिकाकर्ता की भूमि उसी अधिसूचना के अंतर्गत आती है और इसलिए वह न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के अनुसार उसे दिए गए मुआवजे के पुनर्निर्धारण का हकदार है।

3. विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी ने तथ्यों के आधार पर पाया कि याचिकाकर्ता ने अधिनियम की धारा 28ए के तहत अपने प्रार्थना पत्र के पैराग्राफ संख्या 6 में कहा था कि विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी द्वारा पारित अधिनिर्णय के खिलाफ, उसने अधिनियम की धारा 18 के तहत आपत्तियां दर्ज की थीं, उन्हें न्यायालय में भेजे जाने के उद्देश्य से प्रस्तुत किया था, लेकिन उसकी आपत्तियों को जिला न्यायाधीश के पास नहीं भेजा गया, बल्कि समय बीत जाने के कारण खारिज कर दिया गया। विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी ने अधिनियम की धारा 28ए के प्रावधानों की व्याख्या इस प्रकार की कि एक व्यक्ति, जिसकी भूमि अधिनियम के प्रावधानों के तहत अधिग्रहित की गई थी और जो कलेक्टर के अधिनिर्णय से व्यथित है, वह मुआवजे के पुनर्निर्धारण के लिए प्रार्थना पत्र कर सकता है, यदि उसने अधिनिर्णय के खिलाफ न्यायालय में भेजे जाने के लिए धारा 18 के तहत प्रार्थना पत्र नहीं किया है। यह माना गया है कि चूंकि याचिकाकर्ता ने विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी के निर्णय के विरुद्ध न्यायालय में संदर्भ की मांग करते हुए प्रार्थना पत्र किया था, जिसे समय-सीमा के आधार पर रोक दिया गया था, इसलिए अधिनियम की धारा 28ए के तहत उसका प्रार्थना पत्र स्वीकार्य नहीं था।

4. जाहिर है, कलेक्टर द्वारा दिए गए मुआवजे के फैसले से व्यथित व्यक्ति के दायरे के बारे में विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी की समझ सही नहीं है। विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी ने सोचा है कि जैसे ही कलेक्टर/विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी के फैसले से व्यथित व्यक्ति कलेक्टर को अधिनियम की धारा 18 के तहत एक प्रार्थना पत्र देता है, उसी अधिग्रहण से उत्पन्न दूसरे मामले में न्यायालय के फैसले के आधार पर धारा 28ए के तहत मुआवजे के पुनर्निर्धारण का अधिकार समाप्त हो जाता है।

5. विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी की समझ से, इसमें कोई अंतर नहीं है कि कलेक्टर के फैसले से व्यथित व्यक्ति द्वारा अधिनियम की धारा 18 के तहत प्रस्तुत प्रार्थना पत्र कलेक्टर द्वारा रोक लिया जाता है और कभी भी उस पर विचार नहीं किया जाता है, और ऐसा मामला जहां इसे न्यायालय को संदर्भित करके स्वीकार किया जाता है जिसका उत्तर दिया जाता है। किसी भी मामले में, विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी को लगता है कि अधिनियम की धारा 28 ए के तहत पुनर्निर्धारण के लिए उसी अधिसूचना द्वारा कवर किए गए किसी अन्य भूमिधारक के मामले में न्यायालय के फैसले के आधार पर अधिनियम की धारा 28 ए के तहत प्रार्थना पत्र स्वीकार्य नहीं होगा।

6. जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है, अधिनियम की धारा 28ए के तहत अधिकार के दायरे पर विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी द्वारा किया गया निर्माण स्पष्ट रूप से अवैध है, क्योंकि जब तक कलेक्टर कलेक्टर के निर्णय या विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी के निर्णय पर आपत्ति जताने वाला प्रार्थना पत्र स्वीकार नहीं करता और धारा 18 के तहत संदर्भ नहीं देता, तब तक अधिनियम की धारा 18 के तहत कोई संदर्भ नहीं होता। न्यायालय द्वारा संदर्भ दिए जाने और उसका उत्तर दिए जाने के बाद ही धारा

18 के तहत संदर्भ में किसी अन्य भूमिधारक के कहने पर न्यायालय द्वारा पारित अधिनिर्णय के आधार पर पुनर्निर्धारण की मांग करने का धारा 28ए के तहत अधिकार समाप्त हो जाएगा। अधिनियम की धारा 28ए के तहत अधिकार तार्किक रूप से याचिकाकर्ता द्वारा न्यायालय में संदर्भ प्राप्त करने का असफल प्रयास करने से समाप्त नहीं हो सकता। बाद के मामले में, ऐसे व्यक्ति के कहने पर कोई संदर्भ नहीं दिया गया है जिसका मामला कलेक्टर द्वारा सीमा के आधार पर रोक दिया गया है या अन्यथा न्यायालय द्वारा धारा 18 के तहत गुण-दोष के आधार पर निर्णय नहीं लिया गया है। इस प्रश्न पर सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा **भारत संघ एवं अन्य बनाम हंसोली देवी एवं अन्य, (2002) 7 एससीसी 273** मामले में अधिकारपूर्वक विचार किया गया है तथा उत्तर दिया गया है, जहां यह माना गया है:

> **9.** इससे पहले कि हम यह जांच करें कि धारा 28-ए की सही व्याख्या क्या होगी, हम किसी क़ानून की व्याख्या के कुछ बुनियादी सिद्धांतों को ध्यान में रखना उचित समझते हैं। ससेक्स पीरेज मामले में टिंडल, सीजे द्वारा बताए गए नियम [(1844) 11 सीएल एंड फिन 85: 8 ईआर 1034] अभी भी लागू हैं। उपरोक्त नियम इस प्रकार है : (ईआर पृष्ठ 1057)
>
> > "यदि क़ानून के शब्द अपने आप में सटीक और स्पष्ट हैं, तो उन शब्दों को उनके स्वाभाविक और सामान्य अर्थ में व्याख्यायित करने से अधिक कुछ आवश्यक नहीं हो सकता। ऐसे मामले में, केवल शब्द ही कानून निर्माता के इरादे को सबसे अच्छी तरह से व्यक्त करते हैं।"
>
> यह किसी क़ानून के निर्माण का एक प्रमुख सिद्धांत है कि जब क़ानून की भाषा स्पष्ट और सुस्पष्ट हो, तो न्यायालय को क़ानून में इस्तेमाल किए गए शब्दों को लागू करना चाहिए और न्यायालयों के लिए इस आधार पर काल्पनिक निर्माण को अपनाना उचित नहीं होगा कि ऐसा निर्माण अधिनियम के कथित उद्देश्य और नीति के साथ अधिक सुसंगत है। किर्कनेस बनाम जॉन हडसन एंड कंपनी लिमिटेड [(1955) 2 ऑल ईआर 345: 1955 एसी 696: (1955) 2 डब्ल्यूएलआर 1135] में लॉर्ड रीड ने बताया कि "अस्पष्ट" का क्या अर्थ है और कहा कि: (ऑल ईआर पृष्ठ 366 सीडी)
>
> > "कोई प्रावधान केवल इसलिए अस्पष्ट नहीं होता क्योंकि उसमें कोई ऐसा शब्द है जो अलग-अलग संदर्भों में अलग-अलग अर्थ दे सकता है। कहीं भी किसी भी लम्बाई का ऐसा वाक्य खोजना कठिन होगा जिसमें ऐसा कोई शब्द न हो। मेरे विचार से कोई प्रावधान केवल तभी अस्पष्ट होता है जब उसमें कोई ऐसा शब्द या वाक्यांश हो जो उस विशेष संदर्भ में एक से अधिक अर्थ दे सकता हो।"

इसमें कोई संदेह नहीं है कि यदि क़ानून की भाषा के स्पष्ट अर्थ को समझने पर विसंगतियां, अन्याय और बेतुकी बातें सामने आती हैं, तो अदालत उस उद्देश्य पर गौर कर सकती है जिसके लिए क़ानून लाया गया है और ऐसा अर्थ देने की कोशिश करेगी, जो क़ानून के उद्देश्य का पालन करेगा। पतंजलि शास्त्री, मुख्य न्यायाधीश ने अश्विनी कुमार घोष बनाम अरबिंद बोस [एआईआर 1952 एससी 369: 1953 एससीआर 1] के मामले में माना था कि किसी क़ानून में शब्दों को अनुपयुक्त अधिशेष के रूप में खारिज करना निर्माण का एक अच्छा सिद्धांत नहीं है, अगर उनका क़ानून के चिंतन के भीतर परिस्थितियों में उचित अनुप्रयोग हो सकता है। क्यूबेक रेलवे, लाइट हीट एंड पावर कंपनी लिमिटेड बनाम वैंड्री [एआईआर 1920 पीसी 181] में यह देखा गया था कि विधानमंडल को अपने शब्दों को बर्बाद नहीं करना चाहिए या व्यर्थ में कुछ भी नहीं कहना चाहिए और विधानमंडल को अनावश्यक बताने वाले निर्माण को बाध्यकारी कारणों के अलावा स्वीकार नहीं किया जाएगा। इसी तरह, किसी क़ानून में ऐसे शब्द जोड़ना जायज़ नहीं है जो वहाँ नहीं हैं, जब तक कि शाब्दिक निर्माण दिए जाने पर क़ानून का कोई हिस्सा अर्थहीन न हो जाए। लेकिन अधिनियम में किसी चूक को सुधारने के लिए कोई शब्द पढ़े जाने से पहले, यह निश्चित रूप से बताना संभव होना चाहिए कि ये शब्द ड्राफ्ट्समैन द्वारा डाले गए होंगे और विधानमंडल द्वारा अनुमोदित किए गए होंगे यदि विधेयक के कानून बनने से पहले उनका ध्यान चूक की ओर आकर्षित किया गया होता। कई बार, विधानमंडल का इरादा स्पष्ट पाया जाता है लेकिन क़ानून में कुछ शब्दों को शामिल करने में ड्राफ्ट्समैन की अकुशलता के परिणामस्वरूप भाषा की स्पष्ट अप्रभावीता होती है और ऐसी स्थिति में, न्यायालय के लिए अतिरिक्त शब्दों को अस्वीकार करना जायज़ हो सकता है, ताकि क़ानून को प्रभावी बनाया जा सके। उपर्युक्त सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए, आइए अब अधिनियम की धारा 28-ए के प्रावधानों की जांच करें, ताकि दो विद्वान न्यायाधीशों की पीठ द्वारा हमें भेजे गए प्रश्नों का उत्तर दिया जा सके। इसमें कोई संदेह नहीं है कि अधिनियम की धारा 28-ए का उद्देश्य संदर्भ देने का अधिकार प्रदान करना था, (इसी प्रकार किसी को) जिसने धारा 18 के तहत पहले संदर्भ नहीं दिया हो और इसलिए, आमतौर पर जब कोई व्यक्ति धारा 18 के तहत संदर्भ देता है, लेकिन उसे देरी के आधार पर खारिज कर दिया जाता है, तो उसे भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 28-ए का अधिकार नहीं मिलेगा जब कोई अन्य व्यक्ति संदर्भ देता है और संदर्भ का उत्तर दिया जाता है। लेकिन संसद ने धारा 28-ए को एक लाभकारी प्रावधान के रूप में अधिनियमित किया है, अगर अधिनियम की धारा 28-ए में "धारा 18 के तहत

कलेक्टर को प्रार्थना पत्र नहीं किया था" अभिव्यक्ति की शाब्दिक व्याख्या की जाती है , तो यह बहुत अन्याय होगा। उपरोक्त अभिव्यक्ति का अर्थ होगा कि यदि भूमि मालिक ने धारा 18 के तहत संदर्भ के लिए प्रार्थना पत्र किया है और उस संदर्भ पर विचार किया जाता है और उसका उत्तर दिया जाता है। दूसरे शब्दों में, किसी भूस्वामी के लिए यह स्वीकार्य नहीं हो सकता कि वह कोई संदर्भ दे और उसका उत्तर प्राप्त कर ले और फिर बाद में कोई दूसरा प्रार्थना पत्र करे जब कोई अन्य व्यक्ति संदर्भ का उत्तर प्राप्त कर ले और अधिक राशि प्राप्त कर ले। वास्तव में प्रदीप कुमारी मामले [(1995) 2 एससीसी 736] में तीन विद्वान न्यायाधीशों ने, संतुष्ट की जाने वाली शर्तों को गिनाते हुए, जिसके बाद धारा 28-ए के तहत प्रार्थना पत्र पेश किया जा सकता है, स्पष्ट रूप से कहा था (एससीसी पृष्ठ 743, पैरा 10) "प्रार्थना पत्र पेश करने वाले व्यक्ति ने धारा 18 के तहत कलेक्टर को प्रार्थना पत्र नहीं किया"। जैसा कि इस न्यायालय ने कहा है, "प्रार्थना पत्र नहीं किया" का अर्थ होगा, कोई प्रभावी प्रार्थना पत्र नहीं किया गया जिसे संदर्भ देकर स्वीकार किया गया और संदर्भ का उत्तर दिया गया। जब धारा 18 के तहत किसी प्रार्थना पत्र को सीमा के आधार पर स्वीकार नहीं किया जाता है, तो वह किसी संदर्भ में फलीभूत नहीं होता है, तो वह प्रभावी प्रार्थना पत्र के बराबर नहीं होगा और परिणामस्वरूप किसी अन्य संदर्भ से उत्पन्न ऐसे आवेदक के अधिकार को धारा 28-ए के तहत प्रार्थना पत्र करने से वंचित नहीं किया जा सकता है। हम तदनुसार प्रश्न 1(ए) का उत्तर देते हुए कहते हैं कि देरी के आधार पर धारा 18 के तहत संदर्भ मांगने वाले प्रार्थना पत्र को खारिज करना भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 की धारा 28-ए के अर्थ के भीतर प्रार्थना पत्र दाखिल न करने के बराबर होगा।

(न्यायालय द्वारा प्रभाव वर्द्धित)

7. वर्तमान मामले में, चूंकि अधिनियम की धारा 18 के तहत याचिकाकर्ता के प्रार्थना पत्र पर विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी द्वारा कोई संदर्भ नहीं दिया गया था, जिसे सीमा के आधार पर अस्वीकार कर दिया गया था, यह नहीं कहा जा सकता है कि याचिकाकर्ता के कहने पर कोई संदर्भ दिया गया था, जिसे न्यायालय द्वारा इस प्रकार निर्णीत किया गया था कि अधिनियम की धारा 28 ए के तहत उपाय का लाभ लेने के याचिकाकर्ता के अधिकार को कम किया जा सके।

8. इसलिए, इस न्यायालय की राय है कि अधिनियम की धारा 28ए के तहत दायर प्रार्थना पत्र पर याचिकाकर्ता को देय मुआवजे का पुनर्निर्धारण करने से इनकार करने वाला विवादित आदेश स्पष्ट रूप से अवैध है और धारा 28ए के प्रावधानों की गलत समझ पर आधारित है। धारा 28ए के तहत याचिकाकर्ता का प्रार्थना पत्र सक्षम और अनुरक्षणीय है।

9. परिणामस्वरूप, यह रिट याचिका सफल होती है और स्वीकृत की जाती है। विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी (संयुक्त संगठन), अलीगढ़ (रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 1) द्वारा पारित दिनांक 30.04.2022 के आक्षेपित आदेश

को निरस्त किया जाता है। परिणामस्वरूप, अधिनियम की धारा 28ए के तहत याचिकाकर्ता का प्रार्थना पत्र पुनः दाखिल किया जाता है, जिस पर विशेष भूमि अधिग्रहण अधिकारी संबंधित पक्षों की शीघ्र सुनवाई के बाद तर्कपूर्ण और स्पष्ट आदेश द्वारा विचार करेंगे और निर्णय लेंगे।

(2023) 3 ILRA 1164

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल वाद

दिनांक: इलाहाबाद 24.02.2023

माननीय न्यायमूर्ति सुनीत कुमार

माननीय राजेंद्र कुमार-IV

के समक्ष

रिट-सी संख्या - 25126 / 2012

मेसर्स शिवा एंटरप्राइजेज एवं अन्य ...याचिकाकर्ता

बनाम

यू.ओ.आई. एवं अन्य ...प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता: श्री आर.डी. तिवारी, श्री अरुण कुमार सिंह, श्री एम.डी. सिंह शेखर (वरिष्ठ अधिवक्ता), श्री एम.सी. चतुर्वेदी (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: ए.एस.जी.आई., सुश्री एस.सी., सुधा पांडे, श्री नरेंद्र कुमार पांडे

A. भारतीय साझेदारी अधिनियम, 1932 - धारा 45 - साझेदारों के द्वारा विघटन के बाद किए गए कार्यों के लिए जिम्मेदारी - यदि फर्म का विघटन हो गया है लेकिन लेनदारों या सार्वजनिक सूचना नहीं दी गई है, तो एक साझेदार का कार्य अन्य साझेदारों को भी बांधता है, जैसे कि वह कार्य विघटन से पहले किया गया था - इसलिए, जब तक विघटन की सार्वजनिक सूचना नहीं दी जाती, अन्य साझेदार एक साझेदार के कार्य के लिए जिम्मेदार बने रहते हैं, जैसे कि वह कार्य एक चल रही साझेदारी में किया गया हो - सार्वजनिक सूचना में तीसरे पक्ष को ऐसी विघटन की व्यक्तिगत जानकारी या ज्ञान सम्मिलित होगा - तीसरा पक्ष सार्वजनिक सूचना की कमी का बहाना नहीं बना सकता, जब तीसरे पक्ष को विघटन के बारे में जानकारी थी - केवल वे लोग जो एक विशेष साझेदार के सेवानिवृत्त होने के बारे में अनजान थे, धारा 32(3) या धारा 45 का लाभ उठा सकते हैं (पैरा 13, 16, 17)

B. साझेदारी फर्म मेसर्स माँ गायत्री कंस्ट्रक्शन का विघटन हुआ और उसी नाम से एक एकल स्वामित्व वाली फर्म का पुनर्गठन हुआ जिसमें रणवीर सिंह एकमात्र साझेदार बने - दूसरे याचिकाकर्ता का मेसर्स माँ गायत्री कंस्ट्रक्शन के साझेदार के रूप में विघटन के बाद संबंध समाप्त हो गया - दोनों साझेदारों ने प्रतिवादी बैंक को फर्म के विघटन की सूचना दी - रणवीर सिंह ने अपने फर्म के खाते में जाली चेक जमा किया, जिसके कारण बैंक को धोखाधड़ी के कारण नुकसान हुआ - बैंक ने दूसरे याचिकाकर्ता के बैंक खाते को उस नुकसान की भरपाई के लिए जब्त कर लिया जो मेसर्स माँ गायत्री कंस्ट्रक्शन के एकल मालिक द्वारा किया गया था, क्योंकि दूसरे याचिकाकर्ता पहले इस फर्म का साझेदार था - आयोजित - चूंकि बैंक को फर्म के विघटन की सूचना/जानकारी थी, इसलिए बाहर जाने वाले साझेदार/दूसरे याचिकाकर्ता उस धोखाधड़ी के लिए जिम्मेदार नहीं होंगे जो पुनर्गठित एकल स्वामित्व वाली फर्म द्वारा की गई थी, बैंक को सूचना देने की तारीख से धारा 45 के अनुसार - धारा 45 के अनुसार दूसरे याचिकाकर्ता विघटन के बाद एकल

स्वामित्व वाली फर्म के किसी भी कार्य के लिए जिम्मेदार नहीं होंगे (पैरा 24, 30)

स्वीकृत। (E-5)

उद्धृत वाद सूची:

1. मलयांडी बनाम नारायणन 36 IC 225
2. मुथुस्वामी बनाम संकरालिंगा 2 LW 823
3. रतनजी भागवानजी और कंपनी बनाम प्रेम शंकर AIR 1938 All 619

द्वाराः- न्यायमूर्ति सुनीत कुमार

याचीगण के विद्वान अधिवक्तागण श्री आर.डी. तिवारी तथा श्री अरुण कुमार द्वारा सहायता प्राप्त विद्वान वरिष्ठ अधिवक्तागण श्री एम.डी. सिंह शेखर तथा श्री एम.सी. चतुर्वेदी एवं प्रत्यर्थी बैंक के विद्वान अधिवक्ता सुश्री सुधा पाण्डेय को सुना।

प्रथम याची अर्थात् मेसर्स शिवा इण्टरप्राइजेज एक स्वामित्व फर्म है, दूसरा याची फर्म का स्वत्वधारी है। फर्म निर्माण के व्यापार में लगी है। आरम्भ में, याची-फर्म भागीदारी फर्म था जिसे तत्पश्चात् 2008 में विघटित किया गया था, इसके बाद एक मात्र स्वामित्व फर्म बना था। फर्म के पास पंजाब नेशनल बैंक, शाखा किदवई नगर, कानपुर नगर में ओवरड्राफ्ट सुविधा के साथ चालू खाता खाता संख्या-1886009300021932 है।

9 जुलाई, 2009 को, नाम और अभिनाम मेसर्स माँ गायत्री कॉन्स्ट्रक्सन में भागीदारी फर्म का गठन किया गया था, जिसमें एक रणवीर सिंह तथा दूसरा याची भागीदार थे। फर्म के पास प्रत्यर्थी-बैंक के उपर्युक्त शाखा में चालू खाता खाता संख्या-1886002100023313 की सुविधा थी। 11 जुलाई, 2011 को मेसर्स माँ गायत्री कॉन्स्ट्रक्सन के एक भागीदार ने चतुर्थ प्रत्यर्थी के पास यह कहते हुए आवेदन दाखिल किया था कि चूंकि भागीदारी फर्म का विघटन हो गया है तथा दूसरा भागीदार अर्थात् दूसरे प्रत्यर्थी का अब से फर्म के मामलों से कोई सरोकार नहीं है। दूसरे शब्दों में रणवीर सिंह ने बैंक को सूचित किया था कि फर्म (मेसर्स माँ गायत्री कॉन्स्ट्रक्सन) का पुनर्गठन उपर्युक्त नाम के स्वामित्व फर्म के रूप में किया गया है एवं रणवीर सिंह एक मात्र स्वत्वधारी है। तत्पश्चात् 12 जुलाई, 2011 को दूसरा याची विघटित फर्म का पदमुक्त भागीदार होते हुए यह सूचित करते हुए चतुर्थ प्रत्यर्थी के समक्ष आवेदन दाखिल किया था कि वह इस आगे के अनुरोध के साथ मेसर्स माँ गायत्री कॉन्स्ट्रक्सन का भागीदार अब नहीं है कि फर्म का खाता अर्थात् खाता संख्या-1886002100023313 जिसका बकाया शून्य है, को फर्म के विघटन के पश्चात् बन्द किया जाय। लेखा विवरण दिनांक 04 जुलाई, 2011 को यह साबित करने के लिए रिट याचिका के साथ (उपाबंध-5 पर) दाखिल किया गया है कि उस तिथि को जब आवेदन चतुर्थ प्रत्यर्थी को सूचित करते हुए दूसरे याची द्वारा प्रस्तुत किया गया था कि दूसरा याची भागीदार नहीं है, विघटित फर्म के उपरोक्त खाता में बाकी शेष शून्य है।

ऐसा प्रतीत होता है कि 21 जुलाई, 2011 को पुनर्गठित फर्म अर्थात् मेसर्स माँ गायत्री कॉन्स्ट्रक्सन के एक मात्र स्वत्वधारी रणवीर सिंह ने विघटित फर्म के खाते मे ₹55,11,000/- धनराशि का एक चेक संख्या- FAQ 237452 दिनांक 20 जुलाई, 2011 प्रस्तुत किया था (खाता

संख्या-1886002100023313)। धनराशि को बैंक खाता में आकलित किया गया था जिसे बाद में रणवीर सिंह द्वारा प्रशान्त शुक्ला को अंतरित किया गया था जिसका इण्डस बैंक, स्वरूपनगर, कानपुर नगर में खाता था, जमा धनराशि को बाद में प्रशान्त शुक्ला द्वारा निकाला गया था। यह तत्पश्चात् सामने आया है कि ₹55,11,000/- के उपरोक्त धनराशि को मेरठ अभियांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी संस्थान के खाता (खाता संख्या-2159000100049043) से विकलित किया गया था। मुख्य प्रबन्धक, पंजाब नेशनल बैंक, शाखा स्पोर्ट्स काम्पलेक्स, मेरठ से टेलीफोन द्वारा सूचना प्राप्त करने के पश्चात् की मूल चेक संख्या- FAQ 237452 जारी करने वाले पक्षकार के पास है, चतुर्थ प्रत्यर्थी ने कपट का अभिकथन करते हुए पुलिस थाना, नौबस्ता, जिला कानपुर नगर में भा.द.सं. की धारा 419, 420 के अधीन प्रथम सूचना रिपोर्ट मामला अपराध संख्या-676 वर्ष 2011 दर्ज कराया था। दूसरे शब्दों में, रणवीर सिंह द्वारा अपने फर्म (मेसर्स माँ गायत्री कॉन्स्ट्रक्सन) के खाते में जमा चेक कूटरचित तथा गढ़ा गया था। बैंक ने कपट के कारण नुकसान उठाया था।

5. अन्वेषण के दौरान, रणवीर सिंह, अरविन्द वर्मा तथा अध्यान्त तिवारी का नाम सामने आया था, तत्पश्चात् इन्हें गिरफ्तार किया गया था। प्रशान्त शुक्ला फरार था। 11 सितम्बर, 2011 को मेसर्स माँ गायत्री कॉन्स्ट्रक्सन के एकमात्र स्वत्वधारी रणवीर सिंह सहित अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था। रणवीर सिंह सहित अभियुक्तगण को दाण्डिक वाद संख्या-6350 वर्ष 2011, राज्य बनाम रणवीर सिंह तथा अन्य में अपर मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट-I कानपुर नगर के आदेश दिनांक 11 दिसम्बर, 2017 द्वारा भा.द.सं. की धारा 420, 467, 468, 471 सपठित 120-ख पुलिस थाना, नौबस्ता, जिला कानपुर नगर के अधीन दोष सिद्ध किया गया था एवं पांच वर्ष के सादा कारावास तथा ₹ 10,000/- प्रत्येक के जुर्माना के साथ दण्डादिष्ट किया गया था।

6. यह स्वीकृत है कि दूसरा याची न तो प्रथम सूचना रिपोर्ट में नामित था न ही आरोपी बनाया गया था। दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 319 के अधीन आवेदन अभियोजन द्वारा विचारण के दौरान अन्य सह-अभियुक्तगण के साथ विचारण का सामना करने के लिए दूसरे याची को समन करने की मांग करते हुए दाखिल किया गया था, परिणामस्वरूप अंतिमता प्राप्त किया था।

7. मध्यक्षेपी अवधि में चतुर्थ प्रत्यर्थी ने मेसर्स माँ गायत्री कॉन्स्ट्रक्सन के एकमात्र स्वत्वधारी द्वारा बैंक को कारित हानि की क्षतिपूर्ति करने के लिए दूसरे याची के मेसर्स शिवा इण्टरप्राइजेज के बैंक खाता को अभिग्रहीत किया था। सम्भवतः इस कारण से कि पूर्वतर दूसरा याची फर्म मेसर्स माँ गायत्री कॉन्स्ट्रक्सन का भागीदार था। तत्पश्चात् दूसरे याची ने याची को अपने फर्म मेसर्स शिवा इण्टरप्राइजेज के बैंक खाते को क्रियाशील करने की अनुमति देने के लिए बैंक को अनेक अभ्यावेदन किया था, लेकिन व्यर्थ। यह निवेदन किया गया है कि प्रत्यर्थी बैंक ने आवेदनों का जवाब नहीं दिया था, परिणामस्वरूप याची को बैंक खाता (खाता संख्या-1886009300021932) क्रियाशील करने की अनुमति नहीं दी गयी थी, तत्पश्चात् 21 दिसम्बर, 2012 को चतुर्थ प्रत्यर्थी ने दूसरे याची के सावधि जमा रसीद को अभिग्रहीत किया था, जिसका मेसर्स माँ गायत्री कॉन्स्ट्रक्सन के खाता

तथा मामलों से कोई सरोकार नहीं था। यह निवेदन किया गया है कि अभिग्रहण आदेश याची को सुनवाई का अवसर दिए बिना याची के पीठ पीछे पारित किया गया था।

8. याचीगण ने दूसरे याची को बैंक को कारित नुकसान की क्षतिपूर्ति करने के लिए संयुक्तरूप से तथा अलग-अलग दायी होने का निदेश देने वाले आदेश दिनांक 31 अक्टूबर, 2011 तथा संशोधन आवेदन के द्वारा अभिग्रहण आदेश दिनांक 21 दिसम्बर, 2012 को चुनौती दिया है, जिससे बैंक को मेसर्स शिवा इण्टरप्राइजेज के बैंक खाता को क्रियाशील बनाने के लिए दूसरे याची को अनुमति देने हेतु समर्थ बनाया जा सके।

9. उपरोक्त तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में, संक्षिप्त प्रश्न जो अवधारण हेतु पैदा होता है, यह है कि क्या प्रत्यर्थी बैंक याची के भागीदार न रह जाने के पश्चात् तीसरे फर्म (मेसर्स माँ गायत्री कॉन्स्ट्रक्सन) द्वारा बैंक को कारित नुकसान की भरपाई करने के लिए याची फर्म (मेसर्स शिवा इण्टरप्राइजेज) के बैंक खाता तथा एफ.डी.आर. का अभिग्रहण करने में न्यायानुमत था।

10. परस्पर पक्षकारों का तथ्य विवादित नहीं है।

11. भारतीय भागीदारी अधिनियम, 1932 फर्म के विघटन तथा विघटन के पश्चात् किए गए भागीदारी के कार्यों के दायित्व को परिभाषित करता है। धारा 39 तथा 40 को उद्धृत किया जाता है।

"39 फर्म का विघटन- फर्म के सभी भागीदारों के बीच भागीदारी का विघटन 'फर्म का विघटन' कहा जाता है।

"40 समझौता द्वारा विघटन- फर्म को सभी भागीदारों के सहमति से या भागीदारों के बीच संविदा के अनुसार विघटित किया जा सकता है।

12. अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार फर्म का विघटन भागीदारों के सहमति पर या समझौते द्वारा सम्पादित किया जा सकता है। फर्म के विघटन के होते हुए भी भागीदार इस प्रकार विघटन के पहले इनमें किसी द्वारा किए गए किसी कार्य के पर व्यक्तियों के प्रति दायी बने रहेंगे। भागीदार जो फर्म से निवृत्त होता है फर्म के किसी भागीदारों द्वारा किए गए कार्यों हेतु पर व्यक्तियों के प्रति दायी नहीं होता है। फर्म के विघटन के पश्चात् भागीदार आरम्भ लेकिन अधूरे संव्यवहारों को पूरा करने के लिए फर्म के परिसमापन के दौरान बँधे होते हैं।

13. यदि फर्म का विघटन किया गया है लेकिन लेनदारों को कोई नोटिस या इस प्रकार के विघटन की सार्वजनिक सूचना नहीं दी गयी है, भागीदार का कार्य विघटन के बाद भी अन्य भागीदारों को बाँधेगा, मानो कार्य विघटन के पहले किया गया था।

14. विघटन के मामले में लेनदारों को नोटिस के पश्चात् या विघटन की सार्वजनिक सूचना दिए जाने के पश्चात् एक भागीदार द्वारा दी गयी अभिस्वीकृति अन्य भागीदारों को बाँध नहीं सकती है। दूसरे शब्दों में, फर्म के विघटन के पश्चात् बाहर जाने वाला भागीदार परव्यक्ति के प्रति या फर्म/भागीदार के कार्य हेतु फर्म के पुनर्गठन पर दायी नहीं होगा जब तक कि लेनदार को सार्वजनिक सूचना नहीं दी जाती है।

15. अधिनियम की धारा 45 विघटन के पश्चात् भागीदारों के कार्यों के दायित्व का उपबंध करता है। धारा 45 को उद्धृत किया जाता हैः

"45 विघटन के पश्चात् किए गए भागीदारों के कार्यों हेतु दायित्व-

(1) फर्म के विघटन के होते हुए भी, भागीदार इस प्रकार इनमें किसी द्वारा किए गए किसी कार्य के लिए परव्यक्तियों के प्रति दायी बने रहेंगे जो फर्म का कार्य रहा होगा यदि विघटन के पहले किया जाता है, जब तक विघटन की सार्वजनिक सूचना नहीं दी जाती हैः

परन्तु सम्पदा का भागीदार जो मर जाता है या जिसे दिवालिया न्यायनिर्णीत किया जाता है या उस भागीदार की सम्पदा जो फर्म से सम्बन्धित व्यक्ति को भागीदार होना नहीं जानता है, फर्म से निवृत्त हो जाता है, उस तिथि के बाद किए गए कार्यों हेतु इस धारा के अधीन दायी नहीं होता है जिस तिथि को वह भागीदार नहीं रह जाता है।

(2) उप-धारा (1) के अधीन नोटिस किसी भागीदार द्वारा दिया जा सकता है।

16. धारा 45 के अनुसार अतः समझा जाता है कि फर्म के विघटन के बाद भी भागीदार इस प्रकार स्वयं द्वारा किए गए किसी कार्य हेतु परव्यक्तियों के प्रति दायी बने रहते हैं जो फर्म का कार्य रहा होगा यदि विघटन के पहले किया गया जब तक विघटन के बारे में सार्वजनिक सूचना नहीं दी जाती है। इस प्रकार उस समय तक जब विघटन की सार्वजनिक सूचना दी जाती है, अन्य भागीदारगण एक भागीदार के कार्य हेतु दायी बने रहेंगे, मानो इस प्रकार का कार्य चालू रहने वाले भागीदारी में किया गया था। इस प्रकार "पारस्परिक अभिकरण" के उपधारित सातत्य का सिद्धान्त उस नियम को रेखांकित करता है जो धारा 45 के परन्तुक में उपबन्धित अपवाद के अधीन है। तथापि उस दशा में जब लेनदार के पास भागीदारी के विघटन की सूचना थी यह अन्य भागीदार को नहीं बाँधेगा (**निर्दिष्टः मलयान्दी बनाम नारायणन 36 आई.सी. 225 तथा मुथू स्वामी बनाम शंकरालिंगम्**)

17. इसलिए धारा 45 आदेश देता है कि फर्म के विघटन के होते हुए भी भागीदारगण किसी भागीदार द्वारा किए गए किसी कार्य हेतु पर व्यक्ति के प्रति दायी बने रहेंगे जब तक विघटन की नोटिस नहीं दी जाती है। सार्वजनिक सूचना में परव्यक्ति को इस प्रकार के विघटन के बारे में व्यक्तिगत सूचना या जानकारी शामिल होगी। परव्यक्ति सार्वजनिक सूचना के अभाव में सूचना के कमी का अभिवाक् नहीं ले सकता है, जहाँ परव्यक्ति को विघटन की सूचना दी गयी थी या विघटन की जानकारी थी।

18. वर्तमान दिए गए तथ्यों में मेसर्स माँ गायत्री कॉन्स्ट्रक्सन, भागीदारी फर्म को विघटित किया गया था जैसा उपर्युक्त नाम से भागीदारों तथा स्वामित्व फर्म के बीच समझौता हुआ था, को इसके तत्काल बाद रणवीर सिंह के साथ एकमात्र भागीदार के रूप में पुनर्गठित किया गया था। दूसरा भागीदार अर्थात् दूसरा याची विघटन के पश्चात् मेसर्स माँ गायत्री कॉन्स्ट्रक्सन का भागीदार नहीं रह गया था। दोनों भागीदारों ने प्रत्यर्थी-बैंक को फर्म के विघटन तथा उपर्युक्त नाम में इसके पश्चात्वर्ती पुनर्गठन के बारे में सूचित किया था। सुसंगत दस्तावेजों को अभिलेख पर लाया गया है। अधिनियम की धारा 45 के दृष्टिगत् दूसरा याची बैंक को नोटिस/सूचना की तिथि से पूर्वतर भागीदारी फर्म के विघटन के पश्चात् स्वामित्व फर्म के किसी कार्य हेतु दायी नहीं होगा।

19. प्रतिशपथपत्र में प्रत्यर्थी-बैंक का आधार यह है कि बैंक को फर्म के विघटन के बारे में सूचित

नहीं किया गया था, परिणामस्वरूप दूसरा याची प्रथम भागीदार अर्थात् रणवीर सिंह बैंक को कारित हानि तथा कपट हेतु संयुक्त और पृथक रूप से दायी होगा। इसलिए बैंक मेसर्स माँ गायत्री कॉन्स्ट्रक्सन के पहले भागीदार द्वारा कारित हानि के लिए मेसर्स शिवा इण्टरप्राइजेज के बैंक खाता/एफ.डी.आर. का अभिग्रहण तथा अवरोधन न्यायानुमत था।

20. शब्द या वाक्यांश "संयुक्त और पृथक" भागीदार का वर्णन करने के लिए प्रयुक्त एक विधिक शब्द है जिसके द्वारा प्रत्येक पक्षकार या सदस्य दायित्व हेतु समान उत्तरदायित्व रखता है। "संयुक्त और पृथक" हेतु सामान्य शब्द "संयुक्त और पृथक दायित्व" है। वैधानिक रूप से बांधने वाले दस्तावेज में शब्द "संयुक्त और पृथक" उस उत्तरदायित्व को स्पष्ट करता है जिसे समझौते के प्रत्येक पक्षकार द्वारा साझा किया जाता है। तत्वतः, यह कहता है कि ऐसे लोग जो नामित हैं समझौते के अन्तर्गत अपेक्षित सभी कार्यों को करने के लिए बाध्य होते हैं। उदाहरण के लिए यदि बैंक दो लोगों को संयुक्त और पृथक ₹ 1,00,000/- उधार देता है तो ये दोनों लोग यह सुनिश्चित करने के लिए समान रूप से उत्तरदायी हैं कि ऋण के सम्पूर्ण धनराशि को बैंक को संदत्त किया जाय। यदि ऋण व्यतिक्रम में है तो बैंक सम्पूर्ण बकाया शेष के प्रतिसंदाय हेतु आगे बढ़ने का चुनाव कर सकता है। इस प्रकार के मामलों में व्यक्ति जिसे ऋण का प्रतिसंदाय करने के लिए मजबूर किया जाता है, के पास समझौते में नामित अन्य व्यक्ति के विरुद्ध एक ही विधिक अवलम्ब होगा, लेकिन मात्र बैंक को पूर्णतया प्रतिसंदत्त करने के पश्चात्।

21. इस पृष्ठभूमि में, प्रश्न जो अवधारण हेतु पैदा होता है, यह है कि क्या दूसरा याची पुनर्गठित स्वामित्व का एकमात्र भागीदार रणवीर सिंह द्वारा किए गए कपट हेतु "संयुक्त और पृथक" दायी ठहराया जाएगा या अनुकल्पतः कि क्या बैंक के पास फर्म के विघटन की नोटिस/सूचना थी।

22. भागीदारी फर्म अर्थात् मेसर्स माँ गायत्री कॉन्स्ट्रक्सन का पुनर्गठन 10 जुलाई, 2011 को किया गया था। 11 जुलाई, 2011 को यह सूचित करते हुए चतुर्थ प्रत्यर्थी के समक्ष आवेदन दाखिल किया गया था कि दूसरा भागीदार अर्थात् दूसरा याची भागीदार नहीं है एवं रणवीर सिंह उपर्युक्त नाम से पुनर्गठित फर्म का एकमात्र स्वत्वधारी है। तत्पश्चात् 21 जुलाई, 2011 को अर्थात् भागीदारी फर्म के विघटन के 11 दिनों के पश्चात् रणवीर सिंह द्वारा कपट किया गया था। 22 जुलाई, 2011 को प्रशान्त शुक्ला के विरुद्ध बैंक द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराया गया था। दूसरा याची प्रथम सूचना रिपोर्ट में नामित नहीं था।

23. प्रत्यर्थी-बैंक ने प्रतिशपथपत्र के पैरा 25 व 26 में स्पष्ट रूप से अभिवचन किया है कि भागीदारी फर्म मेसर्स माँ गायत्री कॉन्स्ट्रक्सन का विघटन न तो प्रत्यर्थी बैंक को तामील कराया गया था न ही यह बैंक के अभिलेख पर है। यह खण्डन किया गया है कि क्रमशः रणवीर सिंह तथा दूसरे याची द्वारा लिखित अभिकथित संसूचना दिनांक 11 जुलाई, 2011 तथा 12 जुलाई, 2011 बैंक से प्राप्त किया गया था।

24. फर्म का कार्य भागीदार का कार्यलोप है तथा फर्म के अन्य भागीदार (भागीदारों) को बांधता है। दूसरे शब्दों में भागीदार कपट करता है एवं इसके द्वारा बैंक को हानि कारित करता है, भागीदारगण सिद्धान्त 'संयुक्त और पृथक' के अन्तर्गत बैंक को कारित हानि को क्षतिपूर्ति करने के लिए दायी होंगे। बैंक इस दशा में अपने हानि की क्षतिपूर्ति

करने के लिए फर्म के अन्य भागीदारों के बैंक खाता/एफ.डी.आर. का अभिग्रहण करने में न्यायानुमत होगा। लेकिन मामले के दिए गए तथ्यों में यह भिन्न होगा यदि बैंक ने फर्म के पास फर्म के विघटन की नोटिस/जानकारी थी। उस दशा में अधिनियम की धारा 45 के दृष्टिगत् बाहर जाने वाला भागीदार पुनर्गठित स्वामित्व फर्म द्वारा किए गए कपट के लिए दायी नहीं होगा।

25. याची ने यह स्पष्ट आधार लिया है कि बैंक को भागीदारी फर्म के विघटन तथा उपर्युक्त नाम तथा अभिनाम से स्वामित्व फर्म के पुनर्गठन के बारे में अवगत कराया गया था। दूसरा याची भागीदार नहीं रह गया था। इसके कई दिनों के बाद बैंक के साथ कपट किया गया था। बैंक का मामला यह नहीं है कि फर्म के विघटन के पश्चात् दूसरा याची लगातार कार्य करता रहा या स्वयं को विघटित फर्म के भागीदार के रूप में प्रस्तुत करता रहा। आगे, बैंक द्वारा खण्डन नहीं किया गया है कि बैंक के तत्कालीन अधिकारीगण फर्म के विघटन/पुनर्गठन के बारे में नहीं जानते थे। बैंक द्वारा लिया गया कमजोर आधार यह है कि इन्हें फर्म के विघटन या पुनर्गठन की कोई सूचना नहीं है। व्यक्तिगत् जानकारी पर बैंक के वर्तमान अधिकारी द्वारा शपथपत्र पर शपथ लिया गया है। यह उल्लेखनीय है कि यह बैंक के तत्कालीन अधिकारी का शपथपत्र नहीं है। आगे, बैंक के आधार का इस कारण विरोध नहीं किया जा सकता है कि कपट फर्म के विघटन के तत्काल बाद किया गया था। विघटन की तिथि को फर्म के बैंक खाता में बकाया सर्वसम्मति से शून्य था। अपने प्रास्थिति के बारे में सूचना न देने का बाहर जाने वाले भागीदार के लिए कोई कारण नहीं था कि वह भागीदार नहीं रह गया है। कपट करने में बैंक अधिकारियों के उलझाव का वर्जन विचारण न्यायालय निर्णय के दृष्टिगत् नहीं किया जा सकता है। सभी अभियुक्तगण को दाण्डिक विचारण में दोषसिद्ध किया गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि बैंक ने अपने अधिकारी के कार्यों को गुप्त रखने तथा रक्षा करने के लिए प्रतिशोध में दूसरे याची के बैंक खाता तथा एफ.डी.आर. को अभिग्रहीत किया था। बैंक का मामला यह नहीं है कि तत्कालीन अधिकारीगण (फर्म के विघटन की तिथि को) को उपर्युक्त नाम से स्वामित्व फर्म के पुनर्गठन तथा फर्म के विघटन की जानकारी नहीं थी, तथा/या अवगत नहीं थे।

26. प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह स्वीकृत है कि प्रतिशपथपत्र के पैरा 25 व 26 पर शपथ वर्तमान वरिष्ठ प्रबन्धक, पंजाब नेशनल बैंक, कानपुर द्वारा व्यक्तिगत् जानकारी पर न कि अभिलेख के आधार पर प्रतिशपथपत्र पर लिया गया है।

27. ***रतन जी भगवान जी एण्ड कम्पनी बनाम प्रेमशंकर*** ए.आई.आर. 1938 इला. 619 में न्यायालय ने यह स्वीकार किया है कि निवृत्त/बाहर जाने वाला भागीदार अपने निवृत्ति के पश्चात् चालू रहने वाले भागीदार द्वारा किए गए संव्यवहारों के सम्बन्ध में दायित्व से बच सकता है यदि परव्यक्ति यह जानता हो कि पूर्ववर्ती फर्म का भागीदार नहीं रह गया था। न्यायालय के राय में धारा 32(3) का परन्तुक एवं धारा 45 में तत्समान प्रावधान अपने परन्तुक के साथ संदेह से परे संकेत देता है कि मात्र वही लोग जो विशेष भागीदार के निवृत्ति के बारे में नहीं जानते थे, धारा 32(3) या धारा 45 का लाभ ले सकते हैं।

28. सार्वजनिक सूचना जैसा धारा 63 तथा धारा 72 के अधीन अनुध्यात है, मात्र उस उद्देश्य को पूरा करने के लिए अर्थात् सम्बन्धित व्यक्तियों

के निवृत्ति के तथ्य को साबित करने के लिए आशयित है। यह उद्देश्य निःसंदेह व्यक्तिगत् या वास्तविक नोटिस द्वारा बेहतर तरीके से पूरा होगा। यह तर्क देना कि वास्तविक नोटिस सार्वजनिक सूचना का स्थान नहीं ले सकता है, मामले के सार को छोड़ना एवं उस असली सिद्धान्त के विरुद्ध तर्क देना है जिस पर निवृत्ति होने वाला/बाहर जाने वाले भागीदार का दायित्व आधारित है।

29. भागीदारी फर्म से सम्बन्धित संव्यवहार इसके विघटन के साथ समाप्त हो गया था। स्वामित्व फर्म का भागरूप एक ही नाम में था लेकिन भिन्न तथा पृथक सत्ता थी। भागीदारी का न तो विस्तार था न ही नवीनीकरण। स्वामित्व इसके स्वत्वधारी रणवीर सिंह की ओर से एकपक्षीय कार्य था। दूसरे याची का एक ही नाम में स्वामित्व फर्म के गठन में कोई भूमिका नहीं थी।

30. धारा 45 के अधीन आदेशित सार्वजनिक सूचना, जैसा एतस्मिन् उपरोक्त है, में भागीदारी फर्म के विघटन एवं एक ही नाम से स्वामित्व फर्म के पुनर्गठन के सम्बन्ध में बैंक को व्यक्तिगत् सूचना शामिल होगी। प्रत्यर्थी-बैंक ने खण्डन नहीं किया है कि सुसंगत् समय पर इनके अधिकारियों के पास विघटन की कोई जानकारी या सूचना नहीं थी, उल्टे अस्पष्ट आधार लिया गया है कि भागीदारी फर्म के गठन तथा बैंक को तामील नोटिस के सम्बन्ध में दस्तावेज अभिलेख पर उपलब्ध नहीं है। स्वामित्व फर्म के कपटपूर्ण कार्य हेतु बाहर जाने वाले भागीदार को बांधना पर्याप्त नहीं है। याची को इस कारण हानि हेतु आबद्ध नहीं किया जा सकता है कि कपटपूर्ण कार्य फर्म के विघटन के बाद तथा प्रत्यर्थी-बैंक को सम्यक सूचना देने के बाद किया गया था। यह अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है कि दूसरे याची ने बैंक को इस कारण सूचना नहीं दिया था कि वह बाहर जाने वाला भागीदार है तथा स्वयं इस पर कोई दायित्व अपरिहार्य नहीं होगा।

31. आगे, यह वर्जन नहीं किया जा सकता है कि बैंक के अधिकारीगण फर्जी चेक के निकासी से कपट में शामिल नहीं थे। मात्र इसलिए क्योंकि इन्हें आरोपी नहीं बनाया गया था, का मतलब यह नहीं होगा कि बैंक के तत्कालीन अधिकारीगण कपट के करने में रणवीर सिंह के साथ सह-अपराधिता में नहीं थे। विचारण न्यायालय ने सम्प्रेक्षण किया है कि बैंक के अधिकारीगण फर्जी चेक के निकासी में उपेक्षापूर्ण थे। दूसरे याची को न तो नामित किया गया था न ही आरोपी बनाया गया था। किसी भी दशा में, विचारण न्यायालय के निर्णय का बैंक के साथ किए गए संविदा सहित हानि के लिए पक्षकारों के अधिकारों/दायित्व से कोई सम्बन्ध नहीं होगा। यह विवादित नहीं है कि कपट भागीदारी फर्म के विघटन के पश्चात् किया गया था। बैंक द्वारा नोटिस/सूचना का प्रत्याख्यान सुस्पष्ट नहीं है तथा तत्कालीन अधिकारी द्वारा नहीं है। बैंक के वर्तमान अधिकारीगण (तथा न की तत्कालीन अधिकारी) ने व्यक्तिगत् जानकारी पर पैराग्राफों में शपथ लिया है। अधिक से अधिक यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि याची तथा रणवीर सिंह द्वारा संसूचनाएं बैंक के अभिलेख में उपलब्ध नहीं हैं, लेकिन इसका निश्चितरूप से यह मतलब नहीं होगा या विवक्षित नहीं होगा कि तत्कालीन अधिकारीगण के पास फर्म के विघटन की सूचना/जानकारी नहीं थी।

32. रिट अधिकारिता में रिट याचिका को अपने अपने पक्षकारों द्वारा अभिलेख पर प्रस्तुत

अभिवचनों, शपथपत्रों तथा सामग्री पर विनिश्चित किया जाता है। स्वीकृत तथ्यों तथा बैंक द्वारा लिए गए आधार को ध्यान में रखते हुए न्याय का तराजू पर्याप्त याचीगण के पक्ष में झुकता है। इन परिस्थितियों में रिट याचिका को **अनुज्ञात** किया जाता है।

33. आक्षेपित आदेश/संसूचनाओं को तद्नुसार अभिखण्डित किया जाता है।

34. प्रत्यर्थी-बैंक को इस आदेश के तामीला के तिथि से तत्कालीन याचीगण के अभिग्रहीत बैंक खाता, एफ.डी.आर. तथा किसी अन्य प्रतिभूति आस्ति को निर्मुक्त करने का निदेश दिया जाता है।

35. याचीगण समय समय पर बैंक खाता/एफ.डी.आर. इत्यादि के निर्मोचन के तिथि तक देय जमा/एफ.डी.आर. पर ब्याज जैसा अनुज्ञेय हो का हकदार होंगे।

36. यह स्पष्ट किया जाता है कि अपने अपने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा किसी अन्य बिन्दु या आधार पर आग्रह नहीं किया गया है।

37. यह आदेश, तथापि प्रत्यर्थी-बैंक को विधि के अनुसार अपने नुकसान के वसूली हेतु समुचित फोरम/न्यायालय के समक्ष आश्रय लेने से प्रवारित नहीं करेगा, यदि इस प्रकार उचित बताया जाता है।

(2023) 3 ILRA 1172

मूल न्यायाधिकार

सिविल वाद

दिनांक: इलाहाबाद 10.02.2023

माननीय न्यायमूर्ति उमेश चन्द्र शर्मा के समक्ष

वादः- रिट सी संख्या - 46905 / 2000

शिव गोपाल गुप्ता .... याचिकाकर्ता

बनाम

अतिरिक्त कलेक्टर फंद्र और अन्य ...... प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता: श्री ए.के. सचान

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: सी.एस.सी.

सिविल कानून - गांव सभा की संपत्ति पर अवैध कब्जा - उत्तर प्रदेश ज़मींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 - धारा 122-B - गांव सभा की किसी भी जमीन पर प्रतिकूल कब्ज़ा नहीं हो सकता - कोई भी व्यक्ति गांव सभा की जमीन पर अवैध कब्जा नहीं कर सकता और यदि कोई ऐसा प्रयास करता है, तो राज्य को रोकना चाहिए - क्षतिपूर्ति की राशि की वसूली - उत्तर प्रदेश ज़मींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार नियम, 1952, 115F - सभी नुकसान की वसूली और कलेक्टर के आदेशों के कार्यान्वयन में हुए खर्च को भूमि राजस्व के बकाए के रूप में वसूल किया जाएगा और एकीकृत गांव निधि में जमा किया जाएगा - यदि हानि या नुकसान इस प्रकार का है जिसे ठीक नहीं किया जा सकता, तो कलेक्टर को स्थानीय बाजार दर के अनुसार नुकसान की राशि का आकलन करना होगा - भूमि के गलत कब्जे की स्थिति में, गांव सभा को हुए नुकसान का आकलन हर साल के लिए या उसके किसी हिस्से के लिए, संबंधित भूखंडों की स्वीकृत वंशानुगत दरों के अनुसार भाड़े की राशि का 100 गुना किया जाएगा - यदि भूमि का कब्जाधारी ऐसा गलत कब्जा जारी रखता है, तो उसे आदेश की तिथि के पश्चात हर महीने के लिए आकलित नुकसान का एक-आठवां हिस्सा और देना होगा - इस वाद में याचिकाकर्ता ने 0.019 हेक्टेयर चक रोड पर अवैध कब्जा किया और इसे अपने भूखंड संख्या 461 के साथ

समायोजित कर दिया - राजस्व अधिकारियों को उत्तर प्रदेश ज़मींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार नियम, 1952 के नियम 115 (E) और (F) के अनुसार क्षतिपूर्ति राशि लगाने के लिए निर्देशित किया गया और याचिकाकर्ता को इसे तीस दिन के भीतर चुकाने का निर्देश दिया गया।

निरस्त। (E-5)

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम राजाराम 1983 राजस्व निर्णय 351
2. चोब सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (2000) REVDEC 233
3. सूरज बाली बनाम गांव सभा 1982 AWC (R) 149
4. श्रीपति बनाम गांव सभा 1004(24) ALR

द्वारा माननीय न्यायमूर्ति उमेश चन्द्र शर्मा जे.

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री ए. के. सचान एवम् राज्य की तरफ से विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री जितेंद्र नारायण राय को ध्यानपूर्वक सुना गया तथा पत्रावली का परिशीलन किया गया।

2. यह दीवानी रिट याचिका उत्तरदाता सं० 2 अपर तहसीलदार कानपुर नगर के पास दिनांकः 10.1.2000 तथा निगरानी न्यायालय अपर जिलाधिकारी वित्त एवं राजस्व कानपुर नगर उत्तरदाता सं० 1 के द्वारा पारित आदेश दिनांक 31 जुलाई 2000 के विरुद्ध प्रस्तुत की गयी है।

3. संक्षेप में प्रकरण के तथ्य यह है कि याचिकाकर्ता को नोटिस संलग्नक 1 फार्म 49 के दिनांक 6.4.1993 को यह आरोप लगाते हुए प्रेषित किया कि उसने गाटा सं0 461/1390 क्षेत्रफल 0.031 हेक्टेयर गांव सभा सोना की भूमि पर अतिक्रमण कर लिया है। याचिकाकर्ता ने उक्त नोटिस के विरुद्ध आपत्ति संलग्नक 2 प्रस्तुत किया कि अतिक्रमण उसने नहीं किया वरन् श्रीमती मुन्नी देवी पत्नी प्रताप सिंह ने किया है। तदुपरान्त याचिकाकर्ता द्वारा साक्ष्य प्रस्तुत किया गया कि विचारण न्यायालय ने एकपक्षीय सर्वे आख्या दिनांकित 3 जनवरी 1993 पर विश्वास किया जिसमें बिना निर्धारित बिन्दु लिए ही यह अवधारित किया गया कि विवादित भूमि गाटा सं0 461/1390 में पड़ती है। तहसीलदार ने याचिकाकर्ता के विरुद्ध बेदखली एवं 50 रुपये हर्जाने का आदेश पारित किया जो संलग्नक 3 है।

4. उक्त आदेश के विरुद्ध याचिकाकर्ता ने निगरानी सं० 31/1994 प्रस्तुत किया जिसमें उभय पक्षों की उपस्थिति में पुनः सर्वे करने का आदेश दिनांक 31 जनवरी 1995 को पारित किया गया। उक्त आदेश संलग्नक 4 है। याची के अनुसार उप-तहसीलदार ने 4 वर्ष के उपरान्त बिना सर्वे किये हुए दिनांक 9.12.1999 को आख्या प्रस्तुत किया। ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त आख्या कमरे में बैठकर बिना नाप-जोख किये तथा निर्धारित बिन्दुओं को अवधारित किये बगैर तैयार किया गया है जो संलग्नक 5 है। निगरानी पत्र संलग्रक 8 में यह आधार लिये गये है कि संपूर्ण भूमि का क्षेत्रफल लगभग 3 बिस्वा है तथा तहसीलदार की आख्या झूठी है। उत्तरदाता सं० 1 ने अवैध एवं मनमाने तौर पर यह विचार में लिये बगैर कि आख्या दिनांकित 9.12.1999 प्रस्तुत द्वारा उप-तहसीलदार बिना पैमाइश किये तथा निर्धारित बिन्दुओं को अवधारित किये बगैर

दिया है तथा यह अवैध है, निगरानी को निरस्त कर दिया। उत्तरदाता सं० 1 व 2 ने एक तरफ अतिक्रमित भूमि का क्षेत्रफल 0.031 हे० से घटाकर 0.019 हे० कर दिया, दूसरी तरफ क्षतिपूर्ति की धनराशि 10 गुना बढ़ाकर 500 रुपये वार्षिक कर दिया। अतः उनके द्वारा पारित आदेश अवैध मनमाना एवं गलत है। याची ने विवादित संपत्ति पर अपने कब्जे को इनकार किया है तथा याची के अनुसार सर्वे से यह स्थापित नहीं हुआ है कि याची ने विवादित भूमि पर अतिक्रमण किया है। प्रतिकर की धनराशि भी मनमाने तथा बाजार दर के विपरीत है जैसा कि नियम 115 द (II) के अंतर्गत आकलित किया जाना चाहिए। प्रश्नगत आदेश प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्तों के विरुद्ध है। धारा 122-B में उपधारा 4 (ङ) के संयोजन के उपरान्त याची घोषणात्मक वाद प्रस्तुत करने से प्रतिबंधित है जो अधिकारातीत है। अतः प्रश्नगत आदेश निरस्त किया जाये।

5. याची ने याचिका में वर्णित अभिलेखों को संलग्नको के रूप में प्रस्तुत किया है।

6. विपक्षी की तरफ से प्रति शपथ पत्र दिनांकित 10 जुलाई 2001 प्रस्तुत किया गया तथा यह कथन किया गया कि संबंधित लेखपाल ने दिनांक 6.1.1993 को यह आख्या प्रस्तुत किया कि शिव गोपाल गुप्ता पुत्र रामलाल गुप्ता निवासी ग्राम सोना तहसील एवं जिला कानपुर नगर ने गांवसभा की चकरोड की भूमि गाटा सं0 461/1390 क्षेत्रफल 0.031 है० भूमि पर कब्जा कर लिया है तथा उसे अपने गाटा सं0-461 में सन् 1400 फसली में मिला लिया है, अतः 3000 रुपये की क्षति हुई है। लेखपाल ने अपनी आख्या के साथ मानचित्र खतौनी 1396 फसली ता 1401 फसली का खसरा 1400 फसली प्रस्तुत किया। उक्त रिपोर्ट पर धारा 122 बी० उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम के अंतर्गत कार्यवाही प्रारंभ करते हुए याचिकाकर्ता के विरुद्ध 49 क की सूचना जारी की गयी जिसमें उसने आपत्ति में यह कथन किया कि विवादित भूमि नाली एवं रास्ते की भूमि है तथा उसका उक्त भूमि से कोई संबंध सरोकार नहीं है न ही वह उसके कब्जे में है। विवादित भूमि के उत्तर में भूमि सं0 462 श्रीमती मुन्नी देवी हैं जिन्होंने नाली एवं रास्ते को क्षतिग्रस्त करते हुए अतिक्रमण किया है।

7. गांवसभा की तरफ से लेखपाल को परीक्षित किया गया जिसने अपने सशपथ साक्ष्य में अपनी आख्या को साबित किया तथा यह कथन किया कि याचिकाकर्ता ही विवादित भूमि पर अनधिकृत कब्जे में है जिससे गांवसभा को 3000 रुपये की क्षति कारित हुई है। याची ने भी स्वयं तथा 2 साक्षीगण शिवबरन सिंह एवं मोतीलाल को परीक्षित कराया।

8. एक कमीशन जारी किया गया तथा नायब तहसीलदार ने स्थल निरीक्षण किया तथा सर्वे कार्यवाही याची के विद्वान अधिवक्ता की उपस्थिति में करते हुए आख्या प्रस्तुत किया जिसके विरुद्ध याचिकाकर्ता ने आपत्ति प्रस्तुत किया तथा नायब तहसीलदार की आख्या निरस्त करने का निवेदन किया। खतौनी एवं खसरा में विवादित भूमि रास्ता दर्ज है तथा खसरा सं० 1400 फसली में एक टिप्पणी अंकित की गयी है कि शिव गोपाल गुप्ता ने विवादित भूमि पर अनधिकृत कब्जा कर लिया है जो नायब तहसीलदार की आख्या से भी स्पष्ट है।

9. अधीनस्थ न्यायालय ने समस्त मौखिक एवं अभिलेखीय साक्ष्यों का अवलोकन करने के उपरान्त यह अवधारित किया कि याची ने गांवसभा की भूमि सं० 461/1390 क्षेत्रफल

0.0310 हे० पर अवैध अतिक्रमण किया है तथा गांवसभा को क्षति कारित किया है। अतः 100 रुपये हर्जा तथा 3 रुपये बेदखली व्यय का आदेश दिनांक 10.01.2000 को पारित किया गया। याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत निगरानी भी तदनुसार दिनांक 31 जुलाई 2000 को खारिज की गयी तथा विचारण न्यायालय के आदेश को पुष्ट किया गया।

10. नोटिस जारी होने के उपरान्त भी याचिकाकर्ता अनुपस्थित रहा जिस पर दिनांक 27.9.1997 को एकपक्षीय आदेश पारित किया गया, तदुपरान्त उसे उक्त आदेश को निरस्त करने के लिए निगरानीकर्ता ने प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया जो दिनांक 18.10.1997 को निरस्त किया गया। पुनः नायब तहसीलदार से आख्या मंगाई गयी, जो अंततः दिनांक 9.12.1999 को प्रस्तुत की गयी। उक्त कार्यवाही में याची भी उपस्थित था तथा जब पत्रावली 10 जनवरी 2000 को प्रस्तुत हुई तो भी याची उपस्थित नहीं था। अतः पत्रावली के अनुशीलन एवं परिशीलन करने के उपरान्त नायब तहसीलदार ने दिनांक 10 जनवरी 2000 को आदेश पारित किया। विवादित गाटे का संपूर्ण क्षेत्रफल 0.031 हे० है परन्तु संपूर्ण नाप-जोख करने के उपरान्त यह पाया गया कि याची ने गांवसभा के रास्ते की भूमि पर मात्र 0.019 हे० भूमि पर ही कब्जा किया है। अतः उसी के संबंध में बेदखली का आदेश पारित किया गया। दूसरा सर्वे आख्या भी संपूर्ण नाप-जोख को कार्यवाही याची की उपस्थिति में करने के उपरान्त प्रथम आख्या का सत्यापन करते हुए प्रस्तुत किया गया था। यह कहना गलत है कि नायब तहसीलदार ने स्थिर बिन्दुओं के आधार पर सर्वे की कार्यवाही नहीं किया है। क्षतिपूर्ति की धनराशि को अपर तहसीलदार ने सही पाया अतः उक्त क्षति पूर्ति को प्रदान करने का आदेश 7 वर्षों तक अवैध कब्जे में रहने के आधार पर पारित किया गया। क्षतिपूर्ति का निर्धारण बाजार दर के आधार पर किया गया है। अतः उसने संगणना में कोई अवैधता नहीं है। अतः याचिका खारिज किया जाये। ऐसी प्रति शपथ पत्र के साथ छाया प्रति कब्जा प्राप्ति अभिलेख दिनांकित 22.12.2000 भी संलग्न किया गया है जिसे अनुसार चकरोड भूमि सं0 461/1390 क्षेत्रफल 0.019 हे० ग्राम सोना का कब्जा मौके पर ग्राम प्रधान को शिव गोपाल गुप्ता (याची) को बेदखल करके प्रदान किया गया है।

11. उक्त प्रति शपथ पत्र के विरुद्ध याची द्वारा कोई रिज्वाइंडर शपथ पत्र प्रस्तुत नहीं किया गया है।

12. सुना तथा पत्रावली का अवलोकन किया।

13. याची ने मुख्य रूप से प्रथम आधार यह लिया है कि दुबारा जब उप- तहसीलदार ने दिनांक 09-12-1999 को आख्या प्रस्तुत किया तो ऐसा प्रतीत होता है कि कमरे में बैठकर बिना नाप जोख किये तथा स्थिर बिंदुओं को अवधारित किये बगैर तैयार किया।

14. याची ने द्वितीय आधार यह लिया है कि पूर्व में उत्तरदातागण के अनुसार याची द्वारा अतिक्रमित भूमि का क्षेत्रफल 0.031 हेक्टेयर था परन्तु दुबारा उसे घटाकर मात्र 0.016 हेक्टेयर पर अतिक्रमण करना बताया।

15. याची ने तृतीय आधार यह लिया है कि अतिक्रमित भूमि का क्षेत्रफल 0.031 हेक्टेयर से घटकर 0.019 हेक्टेयर हो गया तो क्योंकर क्षतिपूर्ति की धनराशि दस गुना बढ़ाकर पांच सौ रुपए वार्षिक कर दिया गया। प्रतिकर की धनराशि मनमाना तथा बाजार दर के विपरीत है। इसका

आकलन नियम- 115, द(ii) के अंतर्गत किया जाना चाहिए था।

16. याची की तीनों आपत्तियों का निस्तारण करते हुए इस याचिका का निस्तारण किया जाता हैं।

17. प्रथम आपत्ति- याची की प्रथम आपत्ति यह है कि उप-तहसीलदार ने बिना सर्वे किये दिनांक 09-12-1999 को आख्या प्रस्तुत किया। पत्रावली के अवलोकन से ज्ञात होता है कि पूर्व में भी सर्वे दिनांकित 03-01-1993 को एक पक्षीय आख्या कहते हुए याची ने निगरानी संख्या 31/1994 प्रस्तुत किया था उसमें दिनांक 31-01-1995 को पुनः सर्वे करने का आदेश पारित किया गया, परन्तु पुनः उप-तहसीलदार द्वारा चार वर्ष के उपरान्त सर्वे की कार्यवाही की गई तथा याची के अनुसार बिना सर्वे किये हुए दिनांक 09-12-1999 को आख्या प्रस्तुत की गई। इस सर्वे आख्या को याची ने संलग्नक पाँच के रूप में याचिका के साथ संलग्न किया। संलग्नक संख्या-5 के अवलोकन से ज्ञात होता है कि पूर्व में नायब तहसीलदार श्री होरी लाल शाक्य ने विपक्षी के अधिवक्ता के समक्ष पैमाइश कर अपनी आख्या दिनांक 03-08-1993 को प्रस्तुत किया था। आदेश दिनांकित 31-01-1995 के अनुपालन में वर्तमान नायब-तहसीलदार द्वारा पुनः कानूनगो एवं लेखपाल के साथ मौके पर पहुंचकर याची विपक्षी की उपस्थिति में मौके की नाप की गई तथा स्थिर बिंदुओं की पुष्टि की गई। मौके पर स्थिर बिंदु सही मिले तथा पुनः नाप किया तो ज्ञात हुआ कि चक संख्या-661/1390, जो भूमि संख्या-461 के पूरब स्थित है, को विपक्षी ने अपने खेत संख्या-461 में मिला लिया है तथा चक संख्या 461 की मेड़ को ही 462 की मेड़ बना दिया है तथा चक संख्या - 461 की पूर्वी मेड़ मौके पर विद्यमान नहीं है एवं 461 के पूरब की ओर के चकरोड को अपने खेत में मिला लिया है। माप करने पर 0.019 हेक्टेयर भूमि को सन् 1400 फसली से अनधिकृत कब्जा करके विपक्षी याची द्वारा अपने खेत संख्या 461 में मिला लेने का तथ्य सर्वे से साबित पाया गया तथा यह पाया गया कि मौके पर चकरोड पूरी तरह समाप्त हो गया है। जिससे ग्रामसभा को क्षति हुई है।

18. उक्त आख्या के उपरान्त पुनः याची को सुना गया तथा दिनांक 10-01- 2000 को याची को भूमि संख्या-46/1390, क्षेत्रफल 0.019 हेक्टेयर से बेदखल करने का आदेश पारित किया गया।

19. इस न्यायालय के मतानुसार अपर तहसीलदार एवं निगरानी न्यायालय का निर्णय जो नायब तहसीलदार के सर्वे आख्या पर आधारित है, में तथ्यतः एवं विधितः कोई त्रुटि नहीं है। पैमाइश से यह निष्कर्ष नहीं निकला कि मुन्नी देवी ने भी गांवसभा की भूमि पर कोई अतिक्रमण किया है। मात्र इस आधार पर कि याची के पक्ष में निष्कर्ष नहीं निकला, यह नहीं कहा जा सकता कि सर्वे आख्या तथा इस संबंध में पारित प्रश्नगत दोनों आदेश त्रुटिपूर्ण हैं, अतः याची की प्रथम आपत्ति संधार्य नहीं है तथा निरस्त किया जाता है।

20. द्वितीय आपत्ति- याची ने द्वितीय आपत्ति यह की है कि पूर्व में अतिक्रमित भूमि का क्षेत्रफल 0.0131 हेक्टेयर बताया गया था परन्तु बाद में उसे घटाकर 0.019 हेक्टेयर मात्र बताया जा रहा है। इस न्यायालय के मतानुसार यदि सर्वे पैमाइश से यह निष्कर्ष निकलता है कि याची ने विवादित भूमि गाटा संख्या- 46/1390 के मात्र 0.019 हेक्टेयर पर अवैध कब्जा किया

है तो उक्त क्षेत्रफल की भूमि के संबंध में ही आदेश पारित किया गया। यह संभव है कि धारा-122 (बी.), की कार्यवाही को देखते हुए याची ने अपने अतिक्रमण का विस्तार कम कर दिया हो, अतः यह भिन्नता कोई आधार नहीं है कि प्रश्नगत आदेश त्रुटिपूर्ण मान लिया जाये। अतः यह आपत्ति भी याची के विरुद्ध निर्णीत की जाती है।

21. तृतीय आपत्ति- याची की तृतीय आपत्ति यह है कि यदि गाँवसभा की अतिक्रमित भूमि का क्षेत्रफल 0.031 हेक्टेयर के बजाय मात्र 0.019 हेक्टेयर ही पाया गया तथा पूर्व में मात्र पचास रुपए प्रति वर्ष की दर से वर्ष 1994 में जुर्माना आरोपित किया गया तो बाद में पाँच सौ रुपए प्रति माह क्षतिपूर्ति अदायगी का आदेश किस प्रकार कर दिया गया। इस संबंध में यह तर्क दिया जा सकता है कि वर्ष 1994 तथा वर्ष 2000 में छः वर्ष में मुद्रास्फीति की स्थिति को देखते हुए क्षतिपूर्ति की धनराशि को बढ़ाया जाना स्वाभाविक है तथा याची के लिए कोई कारण नहीं था कि अनायास गाँवसभा की चकरोड की भूमि पर कब्जा कर अपने खेत में मिलाकर आवागमन को अवरुद्ध कर दे तथा दोषपूर्ण अभिलाभ प्राप्त करे। यद्यपि यह अवश्य है कि प्रतिकर का आकलन तत्समय प्रचलित उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन अधिनियम/उत्तर प्रदेश जमींदारी एवम् भूमि सुधार उन्मूलन नियम, **1952** के अंतर्गत निर्मित नियमों के अनुसार किया जाना चाहिए। वस्तुतः निष्पादन व्यय तथा क्षतिपूर्ति की वसूली का विधान नियम **115** ङ एवं **115** च में किया गया है न कि नियम **115** द**(1)** में किया गया है।

22. नियम **115** ङ़ **(2)** में यह वर्णित है कि 49 च फार्म में निष्पादन व्यय के रूप में वसूल की जाने वाली धनराशि तथा नियुक्त कर्मियों का वेतन एवं भत्ता पैरा-405 रेवेन्यू कोर्ट मैनुअल में विहित दर से आकलित करके लिखा जाएगा।

23. धारा-**115** च **(1)** के अनुसार समस्त क्षतिपूर्ति एवं निष्पादन व्यय की धनराशि को जिलाधिकारी द्वारा मालगुजारी की वसूली की भांति वसूल कर गाँव फण्ड अथवा स्थानीय प्राधिकारी के फण्ड में जमा किया जाएगा तथा कर्मियों के वेतन एवम् टी. ए. की धनराशि को तहसील, उप-खजाना में शीर्षक "029 भू-राजस्व इ अन्य रसीद (5), कलेक्शन ऑफ पेमेंट फॉर सर्विसेज रेन्डर्ड **99'** में जमा किया जाएगा।

24. **115** च **(2)** के अनुसार यदि दुर्विनियोजन के कारण हुई क्षति या हानि इस प्रकृति की है कि उसको पूर्ववत् करना अथवा प्रतिपूर्ति करना संभव नहीं है तो जिलाधिकारी बाजार दर से धन के रूप में उसका आकलन करेंगे तथा यदि अवैध कब्जे से गाँवसभा अथवा स्थानीय प्राधिकारी को क्षति हुई है तो प्रत्येक वर्ष के लिए इस तरह के कब्जे या उसके किसी स्वीकृत वंशानुगत दरों के सौ गुना पर ह्रास का आकलन किया जाएगा। यदि ऐसा कब्जाधारी इस तरह के गलत कब्जे में बना रहता है तो वह आदेश की तारीख के बाद जारी कब्जे के संबंध में प्रत्येक माह के लिए इस तरह से निर्धारित नुकसान के 1/8 हिस्से का भुगतान करने के लिए और उत्तरदायी होगा। इस संबंध में उत्तर प्रदेश राज्य बनाम राजाराम **1983** आर.डी. **351** में भी सिद्धांत प्रतिपादित किये गये हैं।

25. याची ने सिवाय इस तथ्य के इनकार करने के कि उसने ग्राम पंचायत की भूमि गाटा संख्या-46/1390 में अतिक्रमण नहीं किया है, यह कथन नहीं किया है कि उसने स्वयं के द्वारा

किये गये अतिक्रमण को हटा लिया है। इस संबंध में यह अवधारित किया जाता है कि क्षतिपूर्ति का आकलन उत्तर-प्रदेश जमींदारी उन्मूलन नियम-115 द (ii) के अनुसार किया जाना चाहिए। अतः याची की यह आपत्ति उपरोक्तानुसार निस्तारित की जाती है।

26. धारा-**122** ख., उत्तर-प्रदेश जमींदारी उन्मूलन अधिनियम निम्नवत् है-

27. धारा-**122** ख., **(1)**, के अनुसार यदि ग्राम पंचायत में निहित किसी भूमि को किसी व्यक्ति द्वारा क्षति पहुँचायी जाती है अथवा दुर्विनियोग किया जाता है। तो ग्राम पंचायत उसको ग्रहण करने एवं उसके कब्जे को वापस प्राप्त करने के लिए अधिकारी है। ग्राम पंचायत की भूमि नियमानुसार ही किसी व्यक्ति को आवंटित की जा सकती है तथा चकरोड़ की भूमि किसी भी दशा में किसी भी व्यक्ति को आवंटित नहीं की जा सकती है। यदि ऐसा अवैध अदिक्रमण पाया जाता है तो सहायक कलेक्टर धारा-**122** ख. **(2)** के अंतर्गत ऐसे व्यक्ति को नोटिस जारी करेगा। धारा-**122** ख, **(3)** के अनुसार यदि स्पष्टीकरण अपर्याप्त पाया जाता है तो उसकी बेदखली तथा क्षतिपूर्ति प्रदान करने का आदेश पारित करेगा जो मालगुजारी की तरह वसूल योग्य होगी तथा धारा-**122** ख **(4)**, के अनुसार यदि ऐसे व्यक्ति को दोषी नहीं पाया जाता है तो नोटिस समाप्त कर दिया जाएगा।

28. धारा-**122** ख, **(4)** क के अनुसार सहायक कलेक्टर के आदेश से क्षुब्ध व्यक्ति तीन दिन के अंदर कलेक्टर के समक्ष निगरानी प्रस्तुत कर सकता है, तथा निगरानी सहायक कलेक्टर का आदेश उप-धारा-**4(**क), एवं **(4)** घ, के अंतर्गत अंतिम होगा, अर्थात् निगरानी अथवा उप-धारा-**4**(घ), के अंतर्गत प्रस्तुत वाद सक्षम न्यायालय के निर्णय के अध्यधीन होगा। उप-धारा-**4**(ङ). एक प्रतिबंध आरोपित करता है कि यदि उप-धारा-**4(**क), के अंतर्गत निगरानी प्रस्तुत की गई है तो उप-धारा-**4(**घ), के अंतर्गत वाद प्रस्तुत नहीं किया जा सकेगा।

29. उप-धारा-**4**(च), एक उपचार अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के कृषि श्रमिकों को प्रदान करता है कि यदि वह धारा 132, जमींदारी उन्मूलन अधिनियम् के अंतर्गत ग्राम-पंचायत में निहित किसी भूमि पर 13-05-2007 के पूर्व से कब्जे में है तथा उसके पास 3.125 एकड़ से अधिक भूमि नहीं है, तो ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की जाएगी। निश्चित ही याची गुप्ता बिरादरी का होने के कारण इस लाभ को प्राप्त करने का अधिकारी नहीं है।

30. चोब सिंह विरुद्ध उत्तर प्रदेश राज्य **2000** आर.डी. **233**., सूरज बली विरुद्ध गाँवसभा 1982 ए.डब्ल्यू. सी.(आर.) **149** एवं श्रीपति विरुद्ध गाँवसभा **1994 (23)**, ए.एल.आर (आर.) **18** में यह अवधारित किया गया कि गाँवसभा की भूमि पर अवैध निर्माण, वृक्षारोपण तथा चकरोड़ के किसी भाग को अपनी भूमि में मिला लेना गाँवसभा की सम्पत्ति की क्षति करने एवं उसका दुर्विनियोग करने के उदाहरण हैं। प्रस्तुत वाद में ग्राम-पंचायत के चकरोड को याची द्वारा अपने चक में मिलाकर ग्राम पंचायत को क्षति एवं दुर्विनियोग कारित किया गया।

31. डालसिंह विरुद्ध अतिरिक्त कलेक्टर मेरठ **2006 (101)**, आर.डी.(एच.) **7**, हाईकोर्ट में अवधारित किया गया कि अवैध कब्जा संबंधी निर्णय तथ्य का निष्कर्ष है तथा यह उच्च

न्यायालय द्वारा खण्डित किये जाने योग्य है। यह निर्णयज विधि भी याची के विरुद्ध प्रयुक्त होती है।

32. उपरोक्त आधारों पर यह निष्कर्ष निकलता है कि याची ने ग्राम पंचायत के चकरोड गाटा संख्या-461/1390 के 0.019 हेक्टेयर भूमि पर अवैध कब्जा कर ग्राम पंचायत को क्षति कारित किया है तथा ग्राम पंचायत की सम्पत्ति का दुर्विनियोग किया है, अतः उक्त 0.019 हेक्टेयर भूमि से याची बेदखल किये जाने योग्य है तथा इस संबंध में पारित प्रश्नगत आदेश तथ्यतः एवं विधितः सही एवं वैध है।

33. जहाँ तक क्षतिपूर्ति के आरोपण का प्रश्न है यह क्षतिपूर्ति का आरोपण नियम- **115** द **(ii),** के अनुसार आकलित कर आरोपित किया जाना चाहिए परन्तु इस संबंध में प्रभगत आदेशों में कोई विवरण प्रस्तुत नहीं किया गया है कि उक्त नियम का अनुपालन करते हुए पाँच सौ रुपए प्रति वर्ष की धनराशि की क्षतिपूर्ति की राशि का भुगतान का आरोपण किया गया है, अतएव यह याचिका अंशतः क्षतिपूर्ति की धनराशि के आरोपण के संबंध में स्वीकार किये जाने योग्य है।

<u>आदेश</u>

34. यह याचिका अंशतः अपर तहसीलदार, कानपुर नगर के आदेश दिनांकित 10-01-2000 तथा निगरानी न्यायालय के निर्णय दिनांकित 31-07-2000, बाबल बेदखली याची उपरोक्तानुसार खण्डित की जाती है तथा बाबत आरोपण क्षतिपूर्ति की धनराशि अंशतः इस प्रकार स्वीकार की जाती है कि विपक्षीगण उत्तर-प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवम् भूमि सुधार नियम, **1952** के नियम**115 (ङ)** एवम् (च), के अनुसार जितनी क्षतिपूर्ति की धनराशि बनती है, उतनी क्षतिपूर्ति की धनराशि का आरोपण एक माह में करे तथा उसे याची तदुपरान्त तीस दिवस के अंदर भुगतान करे। यह आदेश अनुपालनार्थ जिलाधिकारी कानपुर नगर को प्रेषित हो।

(2023) 3 ILRA 1176

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 15.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेन्द्र ठाकेर, जे.

माननीय न्यायमूर्ति अरूण कुमार सिंह देशवाल, जे।

2010 की आपराधिक अपील संख्या 1071

हसमुद्दीन **... प्रार्थी**

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य **... प्रतिवादी**

अपीलकर्ता के लिए वकील: श्री अरविन्द अग्रवाल, श्री दिलीप कुमार, श्री एम।ए। सिद्दीकी

प्रतिवादी के लिए वकील: जी.ए., श्री राहुल चौधरी, श्री एस.पी.एस.

क. आपराधिक कानून - अपील - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धाराएँ 304B और 498A - भारतीय दंड संहिता सपठित दहेज निषेध अधिनियम, 1961 की धाराएँ 3 और 4 के अंतर्गत दोषसिद्धि के विरुद्ध - आरोपी ने मृतक से मुस्लिम रीति-रिवाजों के अनुसार शादी की- मृतका को उसके शरीर पर मिट्टी का तेल डालकर

जिंदा जला दिया गया - मृत्युपूर्व बयान - स्पष्ट -हत्या के कारण विचारणीय न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि - पुष्टि। (पैरा 10)

आयोजित: दिनांक 22.02.2006 को दिया गया पहला मृत्यु-पूर्व कथन अभियुक्त को दोषी ठहराता है और हमारे मन में इस बात को लेकर कोई संदेह नहीं है कि उक्त मृत्यु-पूर्व कथन, गोविंदप्पा एवं अन्य बनाम कर्नाटक राज्य, (2010) 6 एससीसी 533 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित सभी आवश्यकताओं को पूर्ण करता है, तथा विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश द्वारा उचित रूप से इस पर कार्यवाही की गई है। हालाँकि, दूसरा मृत्यु-पूर्व कथन भले ही उसे दरकिनार कर दिया जाए, पति का नाम भी फिर से सामने आता है और पोस्टमार्टम रिपोर्ट हमें विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश के साथ इस बात पर सहमत होने की अनुमति देगी कि मृत्यु हत्या थी। (पैरा 10)

बी. सजा की कठोरता- भारत में सजा का सुधारात्मक सिद्धांत- उचित सजा- सजा न तो अत्यधिक कठोर होनी चाहिए और न ही- आनुपातिकता के सिद्धांत का पालन किया जाना चाहिए- सजा सुनाने में न्यायालय के विवेक का मनमाने ढंग से या मनमाने ढंग से प्रयोग नहीं किया जा सकता- आजीवन कारावास की सजा को पहले से व्यतीत किए गए कारावास से प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए- अपील आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। (पैरा 13, 14, 15 और 18)

आयोजित: देव नारायण मंडल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(2004) 7 एससीसी 257] में 'उचित सजा' की व्याख्या इस प्रकार की गई थी कि सजा न तो अत्यधिक कठोर होनी चाहिए और न ही हास्यास्पद रूप से कम। सजा की मात्रा निर्धारित करते समय, न्यायालय को 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखना चाहिए। सजा किसी दिए गए वाद के तथ्यों पर आधारित होनी चाहिए। अपराध की गंभीरता, अपराध करने का तरीका, आरोपी की आयु और लिंग को ध्यान में रखा जाना चाहिए, सजा देने में न्यायालय का विवेक मनमाने ढंग से या मनमाने ढंग से प्रयोग नहीं किया जा सकता। (पैरा 14)

अपील आंशिक रूप से स्वीकृत हुई। (ई-14)

उद्धृत वाद सूची:

1. गोविंदप्पा और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य, (2010) 6 SCC 533

2. मोहम्मद गियासुद्दीन बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, AIR 1977 SC 1926

3. देव नारायण मंडल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2004) 7 SCC 257

4. रवादा ससीकला बनाम राज्य आंध्र प्रदेश, AIR 2017 SC 1166

5. जमील बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, [(2010) 12 SCC 532

6. गुरु बसवराज बनाम कर्नाटक राज्य, (2012) 8 SCC 734

7. सुमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह, (2014) 7 SCC 323

8. राज्य पंजाब बनाम बावा सिंह, (2015) 3 SCC 441

9. राज बाला बनाम हरियाणा राज्य, (2016) 1 SCC

<u>माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल</u>

1. श्री एम.ए. सिद्दीकी, अपीलकर्ता के विद्वान वकील और राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना।

2. वर्तमान आपराधिक अपील ने 2006 के केस क्राइम नंबर 26, पुलिस स्टेशन- रामगढ़, जिला फिरोजाबाद के संबंध में 2006 के सत्र परीक्षण संख्या 424 (राज्य बनाम हसमुद्दीन) में अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक कोर्ट नंबर 4, जिला फिरोजाबाद द्वारा पारित निर्णय दिनांक 05.02.2010 को चुनौती दी, जिसके तहत विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश ने अभियुक्त-अपीलकर्ता, हसमुद्दीन को भारतीय दंड संहिता 1860 (संक्षेप में भारतीय दंड संहिता) की धारा 304 बी के तहत अपराध करने के लिए दोषी ठहराया है और उसे आजीवन कारावास की सजा दी गई एवं धारा 498-क के तहत 500/- रुपए के जुर्माने के साथ दो वर्ष के कठोर कारावास की सजा दी गई और दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3/4 के तहत जुर्माने का भुगतान न करने पर एक वर्ष के कठोर कारावास और जुर्माने का भुगतान न करने पर एक वर्ष के अतिरिक्त कारावास की सजा दी जाएगी। सभी सजाएं साथ-साथ चलेंगी।

3. रिकॉर्ड से निकाले गए संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि आरोपी-अपीलकर्ता की शादी मुस्लिम रीति-रिवाजों के साथ घटना से साढ़े तीन महीने पहले मृतक से हुई थी और उसने अपीलकर्ता को दहेज के रूप में एक मोटरसाइकिल और कुछ घरेलू सामान भी दिया था। ससुराल वाले चूड़ियों के कारोबार के लिए एक लाख रुपये की मांग कर रहे थे। दहेज की मांग की एक लाख रुपए पूरी न होने पर ससुराल वालों ने मिट्टी का तेल डालकर आग लगाकर मृतका को मौत के घाट उतार दिया था। उसे अस्पताल में भर्ती कराया गया था और उसकी मृत्यु की घोषणा दर्ज की गई थी जिसमें उसने विशेष रूप से ससुराल वालों के खिलाफ आरोप लगाए थे। इलाज के दौरान सूचनकर्ता की बेटी ने दम तोड़ दिया।

4. एफआईआर के आधार पर जांच शुरू हुई और चार्जशीट लगाई गई। विद्वान मजिस्ट्रेट ने अभियुक्त को बुलाया और मामले को सत्र न्यायालय में सौंप दिया क्योंकि कथित रूप से किए गए अपराध सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय थे। विद्वान सत्र न्यायाधीश ने भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख, 498क और 3/4 दहेज प्रतिषेध अधिनियम के अंतर्गत आरोप तय किए।

5. तलब किए जाने पर, आरोपी ने दोषी नहीं होने का अनुरोध किया और चाहता था कि उस पर मुकदमा चलाया जाए।

6. मुकदमा शुरू हुआ और अभियोजन पक्ष ने 14 गवाहों की जांच की जो इस प्रकार हैं:

1	मोहम्मद सद्दीक	पीडब्लू1
2	वसीम	पीडब्लू2
3	नसरुद्दीन	पीडब्लू3
4	डॉ. संजय कुमार गुप्ता	पीडब्लू4
5	डॉ. आर. के. गर्ग	पीडब्लू5
6	बृजपाल सिंह	पीडब्लू6
7	सब-इंस्पेक्टर, जयदेव सिंह	पीडब्लू7
8	कांस्टेबल गजराज सिंह	पीडब्लू8
9	डॉ. एन.प.पांडे	पीडब्लू9
10	सिष्य पाल सिंह	पीडब्लू10
11	कृपा शंकर दुबे	पीडब्लू11
12	आर.वी. सिंह	पीडब्लू12
13	सुभाष चंद	पीडब्लू13
14	डॉ. विनय कुमार	पीडब्लू14

7. नेत्र संस्करण के समर्थन में निम्नलिखित दस्तावेज दायर किए गए थे:

1	एफ.आई.आर.	प्रदर्श.क 10
2	लिखित रिपोर्ट	प्रदर्श.क 1
3	मृत्युकालिक कथन	प्रदर्श.क 5
4	शरीर के कपड़ों का रिकवरी मेमो	प्रदर्श.क 13
5	चोट की रिपोर्ट	प्रदर्श.क 4
6	पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट	प्रदर्श.क 3
7	आरोप पत्र	प्रदर्श.क 11
8	साइट का नक्शा	प्रदर्श.क 12
9	दूसरी घोषणा	प्रदर्श.क 15

8. मुकदमे के अंत में और सीआरपीसी की धारा 313 के तहत अभियुक्त का बयान दर्ज करने और अभियोजन और बचाव पक्ष की ओर से दलीलें सुनने के बाद, विद्वान सत्र न्यायाधीश ने अपीलकर्ता को दोषी ठहराया, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है।

9. यह तथ्य की एक स्वीकृत स्थिति है कि मृतक को जलाने के कारण मृत्यु हुई। दो मृत्यु पूर्व बयान हैं, हालांकि रिकॉर्ड के माध्यम से जाने पर, यह स्पष्ट है कि अपीलकर्ता घटना का लेखक है और इसलिए इस मामले पर लंबी बहस करने के बाद, अपीलकर्ता के विद्वान वकील ने इस अदालत से आरोपी की सजा पर विचार करने का अनुरोध किया क्योंकि उसे आईपीसी की धारा 304 बी के तहत आजीवन कारावास के लिए दोषी ठहराया गया है और मृतक के ढाई महीने के चिकित्सा उपचार के बाद सेप्टीसीमियल मृत्यु हो जाती है।

10. दिनांक 22.02.2006 का पहला मृत्युपूर्व बयान अभियुक्त को फंसाता है और हमारे मन में कोई संदेह नहीं है कि उक्त मृत्यु पूर्व घोषणा **गोविंदप्पा और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य, (2010) 6 एससीसी 533** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित सभी आवश्यकताओं को पूरा करती है, और विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश द्वारा सही कार्रवाई की गई है। तथापि, मृत्यु पूर्व द्वितीय बयान को यदि दरकिनार कर भी दिया जाए तो पति का नाम भी पुन प्रकट कर दिया जाता है और पोस्टमार्टम रिपोर्ट हमें विद्वान अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश से सहमत होने की अनुमति देगी कि मृत्यु मानव हत्या थी।

11. इसके विपरीत, राज्य के लिए विद्वान ए.जी.ए. प्रस्तुत करते है कि अपराध की गंभीरता और अभियोजन पक्ष के गवाहों के साक्ष्य को देखते हुए, इस न्यायालय को इस मामले में कोई उदारता नहीं दिखानी चाहिए। विद्वान ए.जी.ए. द्वारा आगे प्रस्तुत किया गया है कि आईपीसी की धारा 304 बी की संघटक को विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा सही तरीके से समझाया गया है, जिन्होंने मामले में तथ्यों पर कानून लागू किया है।

12. हमने गवाहों के साक्ष्य और पोस्टमार्टम रिपोर्ट पर विचार किया है जिसमें कहा गया है कि मृतक के शरीर पर चोट मृत्यु का कारण होगी और यह किसी के द्वारा कि गई हत्या थी, हम नीचे दिए गए न्यायालय के निष्कर्ष से सहमत हैं। हालांकि, यह देखा जाना चाहिए कि दी गई सजा बहुत कठोर है या नहीं। इस संबंध में, हमें भारत में प्रचलित दंड के सिद्धांत का विश्लेषण करना होगा।

13. **मो. गियासुद्दीन बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, [एआईआर 1977 एससी 1926] मे** सजा में पुनर्वास और सुधारात्मक पहलुओं की व्याख्या करते हुए यह सुप्रीम कोर्ट द्वारा देखा गया है:

"अपराध एक पैथोलॉजिकल विपथन है। अपराधी को आमतौर पर छुड़ाया जा सकता है और राज्य को बदला लेने के बजाय पुनर्वास करना होगा। उपसंस्कृति जो सामाजिक-विरोधी व्यवहार की ओर ले जाती है, उसका मुकाबला अनुचित क्रूरता से नहीं बल्कि पुनर्संस्कृतिकरण द्वारा किया जाना चाहिए। इसलिए, पेनोलॉजी में रुचि का फोकस व्यक्ति मे होना चाहिए जिसका लक्ष्य उसे समाज के लिए बचाना है। कठोर और बर्बर दंड का प्रहार इस प्रकार अतीत और प्रतिगामी समय का अवशेष है। मानव आज एक ऐसे व्यक्ति को फिर से आकार देने की प्रक्रिया के रूप में सजा देता है जो आपराधिकता में बिगड़ गया है और आधुनिक समुदाय की सामाजिक रक्षा के साधन के रूप में अपराधी के पुनर्वास में प्राथमिक हिस्सेदारी है। इसलिए हमारी आपराधिक अदालतों में 'आतंक' दृष्टिकोण के बजाय एक चिकित्सीय दृष्टिकोण प्रबल होना चाहिए, क्योंकि व्यक्ति की क्रूर कैद केवल उसके दिमाग को खराब कर देती है। यदि तुम्हें किसी व्यक्ति से बदला लेना है, तो तुम्हें उसे घायल करना होगा। यदि आप उसे दोषनिवृत्ति चाहते हैं, तो आपको उसे सुधारना होगा और, पुरुषों को चोटों से सुधार नहीं किया जाता है।

14. **देव नारायण मंडल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(2004) 7 एससीसी 257]** में 'उचित वाक्य' की व्याख्या यह कहते हुए की गई थी कि सजा या तो अत्यधिक कठोर या हास्यास्पद रूप से कम नहीं होनी चाहिए। सजा की मात्रा का निर्धारण करते समय, अदालत को 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखना चाहिए। सजा किसी दिए गए मामले के तथ्यों पर आधारित होनी चाहिए। अपराध की गंभीरता, अपराध करने का तरीका, आरोपी की उम्र और लिंग को ध्यान में रखा जाना चाहिए। सजा देने में न्यायालय के विवेक का प्रयोग मनमाने ढंग से नहीं किया जा सकता है।

15. **रवाडा शशिकला बनाम आंध्र प्रदेश राज्य 2017 एससी 1166** में सुप्रीम कोर्ट ने **जमील बनाम यूपी राज्य [(2010) 12 एससीसी 532], गुरु बसवराज बनाम कर्नाटक राज्य, [(2012) 8 एससीसी 734], सुमेर सिंह बनाम सूरजभान सिंह, [(2014) 7 एससीसी 323], पंजाब राज्य बनाम बावा सिंह, [(2015) 3 एससीसी 441],** और **राज बाला बनाम हरियाणा राज्य, [(2016) 1 एससीसी 463]** में निर्णयों को संदर्भित किया और और दोहराया है कि, सजा प्रणाली के संचालन में, कानून को तथ्यात्मक मैट्रिक्स के आधार पर सुधारात्मक मशीनरी या निवारक को अपनाना चाहिए। प्रत्येक मामले में तथ्य और दी गई परिस्थितियां, अपराध की प्रकृति, जिस तरीके से इसकी योजना बनाई गई और उसे अंजाम दिया गया, अपराध करने का उद्देश्य, अभियुक्त का आचरण, प्रयुक्त हथियारों की प्रकृति और अन्य सभी परिस्थितियां प्रासंगिक तथ्य हैं जो विचारणीय क्षेत्र में प्रवेश करेंगे। इसके अलावा, सजा देने में अनुचित सहानुभूति न्याय व्यवस्था को अधिक नुकसान पहुंचाएगी और कानून की प्रभावकारिता में जनता के विश्वास को कम करेगी। प्रत्येक न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह अपराध की प्रकृति और उसके कृत्य के तरीके को ध्यान में रखते हुए उचित सजा दे। सुप्रीम

कोर्ट ने आगे कहा कि अदालतों को न केवल अपराध के पीड़ित के अधिकार को बल्कि बड़े पैमाने पर समाज को भी ध्यान में रखना चाहिए। उचित दंड देने पर विचार करते समय, पूरे समाज पर अपराध के प्रभाव और कानून के शासन को संतुलित करने की आवश्यकता है। देश में न्यायिक प्रवृत्ति सुधार और सजा के बीच संतुलन बनाने की ओर रही है। समाज की सुरक्षा और आपराधिक प्रवृत्ति पर मुहर लगाना कानून का उद्देश्य होना चाहिए जिसे अपराधियों और गलत काम करने वालों पर उचित सजा देकर प्राप्त किया जा सकता है। कानून, व्यवस्था और शांति बनाए रखने के लिए एक उपकरण के रूप में, समाज के सामने आने वाली चुनौतियों का प्रभावी ढंग से सामना करना चाहिए, क्योंकि समाज अपराध और असामंजस्य के गंभीर खतरों के तहत लंबे समय तक सहन और विकसित नहीं हो सकता है। इसलिए यह आवश्यक है कि सजा देने में अनुचित उदारता से बचा जाए। इस प्रकार, देश में अपनाया गया दांडिक न्याय विधिशास्त्र प्रतिशोधात्मक नहीं है बल्कि संस्कारक और सुधारात्मक है। साथ ही, हमारी आपराधिक न्याय प्रणाली में अंतर्निहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से भी बचा जाना चाहिए।

16. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और हमारे देश में आपराधिक न्यायशास्त्र को ध्यान में रखते हुए, जो संस्कारक और सुधारात्मक है और प्रतिशोधात्मक नहीं है, यह न्यायालय मानता है कि कोई भी आरोपी व्यक्ति सुधार के लिए असमर्थ नहीं है और इसलिए, उन्हें सामाजिक धारा में लाने के लिए सुधार का अवसर देने के लिए सभी उपायों को लागू किया जाना चाहिए।

17. जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, 'सजा के सुधारात्मक सिद्धांत' को अपनाया जाना है और इस कारण से, 'आनुपातिकता के सिद्धांत' को ध्यान में रखते हुए सजा देना आवश्यक है। आक्षेपित निर्णय के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि विद्वान ट्रायल कोर्ट द्वारा आजीवन कारावास की दी गई सजा मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की संपूर्णता और अपराध की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए बहुत कठोर है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने जैसा कि ऊपर चर्चा की है, ने निर्णय दिया है कि दांडिक न्याय प्रणाली में अंतनहित सुधारात्मक दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए अनुचित कठोरता से बचा जाना चाहिए।

18. आईपीसी की धारा 498 ए और 3/4 डीपी अधिनियम के तहत सजा का संबंध है, आरोपी 12 साल से अधिक समय से जेल में है और इसलिए उक्त सजा और डिफ़ॉल्ट सजा भी पूरी हो गई है, इसलिए, हमें उन पर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है। जहां तक भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख का संबंध है, इस दंड को आजीवन कारावास से प्रतिस्थापित करके पहले ही काट लिए गए कारावास से प्रतिस्थापित किया जाएगा।

19. विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश ने भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख के अंतर्गत कोई जुर्माना या कोई चूक की सजा नहीं दी है। हम भी इसका प्रस्ताव नहीं करते हैं। हम इससे सहमत हैं और पहले से ही पारित वाक्य को प्रतिस्थापित करते हैं। अभियुक्त-अपीलकर्ता को तत्काल रिहा कर दिया जाए, यदि वह किसी अन्य मामले में वांछित नहीं है।

20. उपर्युक्त के मद्देनजर, अपील को आंशिक रूप से अनुमति दी जाती है। विद्वान सत्र

न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय और आदेश पूर्वोक्त सीमा तक संशोधित माना जाएगा। रिकॉर्ड को तुरंत ट्रायल कोर्ट में वापस भेजा जाए।

(2023) 3 ILRA 1181

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

सिविल साइड

दिनांक: इलाहाबाद 16.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर

2022 का एस.सी.सी. पुनरीक्षण संख्या 64

अनूप महर्षि और एन.आर. ... पुनरीक्षणवादी

बनाम

अशोक कुमार मिश्र ...प्रतिवादी

संशोधनवादियों के लिए परामर्श: श्री राहुल मिश्रा, श्री ऋषि उपाध्याय

प्रतिवादी के लिए वकील: सुश्री वैशाली साहू, श्री अतुल दयाल (वरिष्ठ अधिवक्ता)

सिविल कानून - प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम, 1887 - धारा 25 - पुनरीक्षण - मकान मालिक ने एससीसी मुकदमा दायर किया - किराए की दुकान से किरायेदारों को बेदखल किया गया - मकान मालिक द्वारा आदेश XV नियम 5 सीपीसी के तहत आवेदन - किरायेदार द्वारा किए गए विक्रय समझौते के आंशिक निष्पादन में कब्जा रखने का तर्क - आपेक्षित आदेश द्वारा किरायेदार के तर्क को निरस्त कर दिया गया - पक्षों के मध्य विशिष्ट निष्पादन के लिए मुकदमा भी लंबित है - आदेश XV नियम 5(1) के तहत अनिवार्य रूप से कोई मासिक जमा राशि बकाया नहीं है - किरायेदार की हैसियत से नहीं किए गए विक्रय समझौते में प्रतिफल के रूप में किया गया भुगतान - किरायेदार के बचाव को सही ढंग से निरस्त कर दिया गया - विचारणीय न्यायालय के आदेश की पुष्टि की गई - पुनरीक्षण निरस्त (पैरा - 10, 11, और 12)

आयोजित: आदेश XV के नियम 5 के प्रावधानों को पाठन से यह स्पष्ट हो जाता है कि ऐसे वाद में न्यायालय में किराया भुगतान करने के लिए किरायेदार के दायित्व के दो भाग हैं, जहां मकान मालिक किरायेदार पर उसके पट्टे के निर्धारण के बाद बेदखली के साथ ही उपयोग और कब्जे के लिए किराया और नुकसान की वसूली के लिए भी वाद योजित करता है। पहले भाग में किरायेदार को वाद की पहली सुनवाई के समय या उससे पहले, किराए, नुकसान आदि के लिए पूरी राशि जमा करने की आवश्यकता होती है, जिसे उसने 9% प्रति वर्ष की दर से ब्याज सहित देय माना है। दूसरे भाग में किरायेदार को मुकदमे के लंबित रहने के दौरान मासिक राशि जमा करने की आवश्यकता होती है। किराए का भुगतान उसके अर्जित होने के एक सप्ताह के भीतर करना होगा, चाहे वह इसे देय मानता हो या नहीं। नियम में आगे यह भी प्रावधान है कि संहिता के आदेश XV के नियम 5 के उप-नियम (1) के दो भागों में से किसी का भी अनुपालन न करने पर न्यायालय को किरायेदार के बचाव को रद्द करने का अधिकार है। संहिता के आदेश XV के नियम 5 के उप-नियम (1) के पहले भाग में 'उसके द्वारा देय मानी गई संपूर्ण राशि' अभिव्यक्ति और आदेश XV के नियम 5 के उप-नियम (1) के दूसरे भाग में आने वाली 'मासिक देय राशि' अभिव्यक्ति के बीच अंतर है। (पैरा 10)

जहाँ तक सुनवाई की प्रथम तिथि को जमा की जाने वाली राशि का प्रश्न है, तीन तरह के

समायोजन किए जा सकते हैं। पहला समायोजन किराएदार द्वारा भवन के संबंध में स्थानीय प्राधिकरण को पट्टेदार के खाते में कर के रूप में दी गई राशि का समायोजन है। दूसरा समायोजन पट्टेदार को दी गई राशि का समायोजन है।

लिखित रूप में उनके द्वारा स्वीकार किया गया और उनके द्वारा हस्ताक्षरित किया गया। तीसरी श्रेणी की धनराशि जिसे समायोजित किया जा सकता है, वह किराएदार द्वारा न्यायालय में उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 13 वर्ष 1972 (संक्षेप में, '1972 का अधिनियम) की धारा 30 के अंतर्गत जमा की गई धनराशि है। इसके विपरीत, मासिक जमा किए जाने के वाद में, नियम द्वारा अनुमत एकमात्र भत्ता भवन के संबंध में स्थानीय प्राधिकरण को मकान मालिक के खाते में देय करों के संबंध में है। वाद के दौरान उपयोग और कब्जे के लिए मासिक किराया या क्षति जमा करने के किराएदार के दायित्व के विरुद्ध कोई अन्य धनराशि समायोजित नहीं की जा सकती। (पैरा 11)

पुनरीक्षण निरस्त। (ई -14)

उद्धृत वाद सूची:

1. हैदर अब्बास बनाम अतिरिक्त जिला न्यायाधीश एवं अन्य, 2006 (1) एआरसी 341
2. कृष्ण कुमार गुप्ता बनाम मनोज कुमार साहू, (2017) 4 सभी एलजे 127

<u>माननीय न्यायमूर्ति श्री जे.जे. मुनीर.</u>

1. प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम, 1887 की धारा 25 के तहत यह पुनरीक्षण श्री देवाशीष अपर जिला न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 10, वाराणसी, न्यायाधीश, लघु वाद न्यायालय के रूप में कार्यरत हैं के आदेश दिनांक 05.04.2022 के विरूद्ध निर्देशित है, जिसमें सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश XV नियम 5 के तहत किरायेदार की रक्षा को रद्द कर दिया गया है। (संक्षेप में, 'संहिता')

2. वादी-प्रतिवादी, अशोक कुमार मिश्रा, जिन्हें इसके बाद 'मकान मालिक' के रूप में जाना जाएगा, प्रतिवादी पुनरीक्षणवादियों (संक्षेप में, 'किरायेदारों') के विरूद्ध जिला न्यायाधीश, वाराणसी (न्यायाधीश, लघु वाद न्यायालय के रूप में कार्यरत) की अदालत में 2022 का एससीसी सूट नंबर 5 स्थापित किया गया वादपत्र के नीचे वर्णित दुकान से किरायेदारों को बेदखल करने का आदेश जारी करने की मांग की गई है। इसके अलावा, 02.04.2017 से 12.03.2020 की अवधि के लिए 2,69,237/- रुपये के बकाया किराए की वसूली का आदेश मांगा गया था। 13.03.2020 से 08.07.2020 की अवधि के लिए मेस्ने प्रॉफिट के रूप में 32,013/- रुपये की अतिरिक्त राशि का दावा किया गया। इन दावों के अलावा प्रति माह 8545/- रुपये की दर से मामूली लाभ का दावा किया गया था और मकान मालिक को वास्तविक भौतिक कब्ज़ा सौंपने तक भविष्य में दावा किया गया था। उपरोक्त मुकदमा मकान मालिक द्वारा दायर किया गया था, जिसमें परिसर संख्या बी-30/2ए-3, प्रफुल्ल नगर कॉलोनी, लंका, जिला वाराणसी में स्थित 350 वर्ग फुट की दुकान से किरायेदारों को बेदखल करने की मांग की गई थी।

3. किरायेदारों ने अपने लिखित बयान दिनांक 23.03.2021 में वादी के आरोपों से इनकार किया है। संक्षेप में, किरायेदारों द्वारा अपना बचाव यह किया गया है कि यद्यपि उन्होंने प्रति माह 5000/- रुपये के किराए पर किरायेदारों के रूप

में परिसर में प्रवेश किया था और दिनांक 23.12.2008 के किराया समझौते के अनुसार सुरक्षा के रूप में 3,00,000/- रुपये की राशि का भुगतान किया था। लेकिन किरायेदारी की अवधि के दौरान, पार्टियों ने दिनांक 22.06.2011 को बेचने के लिए एक पंजीकृत समझौता किया है, जहां मकान मालिक ने किरायेदारों को कुल 17,50,000/- रुपये की बिक्री पर अपनी स्वामित्व वाली दुकान बेचने का अनुबंध किया है। किरायेदारों का यह भी बचाव है कि 7,50,000/- रुपये की राशि बयाना के रूप में स्वीकार की गई है। यह भी दलील दी गई है कि पंजीकृत बिक्री समझौते के आंशिक निष्पादन में किरायेदारों को कब्ज़ा दे दिया गया है। मकान मालिक ने जनवरी, 2011 के बाद किराया प्राप्त करने का अपना अधिकार स्वयं ही छोड़ दिया है, जब उसे आखिरी बार किराया प्राप्त हुआ था।

4. बेदखली का मुकदमा लंबित होने पर, मकान मालिक ने संहिता के आदेश XV नियम 5 के तहत एक आवेदन दायर किया, जिसमें प्रार्थना की गई कि कानून के उपरोक्त अनिवार्य प्रावधान का पालन न करने के लिए किरायेदारों के बचाव को रद्द कर दिया जाए। आवेदन का उत्तर किरायेदारों द्वारा आपत्तियों के माध्यम से दिया गया था, जिसमें कहा गया था कि 22.02.2011 को एक पूर्व अपंजीकृत समझौता था, जिसके तहत मकान मालिक 17,50,000/- रुपये की अनुबंधित कीमत पर हस्तांतरित दुकान को स्थानांतरित करने के लिए सहमत हुआ था। किरायेदारों द्वारा यह भी कहा गया कि विशिष्ट निष्पादन के लिए ओएस संख्या 1174/2014, सरिता महर्षि बनाम अशोक कुमार के तहत एक मुकदमा स्थापित किया गया है, जो सक्षम क्षेत्राधिकार के न्यायालय के समक्ष लंबित है। इसे किरायेदारों के बचाव को खारिज करने की याचिका के बचाव के रूप में भी उठाया गया था कि बेचने के समझौते के आंशिक प्रदर्शन में किरायेदारों का स्वामित्व वाली दुकान पर कब्जा था, न कि किरायेदारों के रूप में उक्त परिसर के लिए।

5. ट्रायल कोर्ट ने किरायेदारों द्वारा प्रस्तुत किसी भी तर्क को स्वीकार नहीं किया और उनके बचाव को रद्द कर दिया। ट्रायल कोर्ट की राय थी कि भले ही अनुबंधित बिक्री के आंशिक मूल्य के लिए कुछ अग्रिम भुगतान किया गया हो, लेकिन मुकदमे के लंबित रहने के दौरान महीने दर महीने जमा किए जाने वाले किराए के संबंध में किसी भी अग्रिम के संबंध में कोई समायोजन नहीं किया जा सकता है।

6. इस पुनरीक्षण को सुनवाई के लिए स्वीकार करने के प्रस्ताव के समर्थन में किरायेदारों के विद्वान अधिवक्ता श्री राहुल मिश्रा को सुना गया और मकान मालिक की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री अतुल दयाल को, सुश्री वैशाली साहू की सहायता से सुना गया।

7. इसमें कोई विवाद नहीं है कि किरायेदारों ने 3,00,000/- रुपये की सुरक्षा राशि का भुगतान करके ग्यारह महीने की लीज पर ख़त्म हो चुकी दुकान में प्रवेश किया था। इसमें कोई संदेह नहीं है, ऐसा प्रतीत होता है कि पहले 22.02.2011 को बेचने के लिए एक अपंजीकृत समझौता किया गया था और फिर 22.06.2011 को एक पंजीकृत समझौता किया गया था, जो मकान मालिक द्वारा किरायेदारों के पक्ष में, ख़त्म हो चुकी दुकान के संबंध में निष्पादित किया गया था। दिनांक 22.06.2011 के पंजीकृत समझौते में मकान मालिक द्वारा बैंक उपकरणों के माध्यम से और निष्पादित रसीदों के लिए नकद में प्राप्त विभिन्न राशियों का उल्लेख है।

8. बेचने का पंजीकृत समझौता 17,50,000/- रुपये के बिक्री विचार के लिए ख़त्म हो चुकी दुकान की बिक्री के लिए लेनदेन का निपटान करता है। समझौते में इस तथ्य को दर्ज किया गया है कि दस्तावेज़ में उल्लिखित विवरण के अनुसार, मकान मालिक को समय-समय पर किरायेदारों से सहमत बिक्री विचार में से 7,50,000/- रुपये की राशि प्राप्त हुई है। हालाँकि, बेचने के लिए पंजीकृत समझौते में ऐसा कुछ भी नहीं है जो किरायेदारों को आंशिक प्रदर्शन में कब्जे की डिलीवरी दिखा सके, ताकि किरायेदारों के कब्जे के चरित्र को किरायेदारी के कब्जे से बदलकर बेचने के लिए पंजीकृत समझौते के आंशिक प्रदर्शन में रखा जा सके। . बल्कि, पंजीकृत समझौते के पैराग्राफ संख्या 5 में, निम्नलिखित आशय का एक पाठ है:

> "5. यह कि हम प्रथम पक्ष ने कुल मजमून सट्टा इकरार-नामा बिला कब्ज़ा हाजा को खूब अच्छी तरह से पढ़ व पढ़वाकर सुन व समझ कर उसके असरातो से बखूबी वाकिफ होकर यह चंद कलमा बतरीक सट्टा इकरारनामा बिला कब्ज़ा मोआहिदा बय बहक द्वीतीय पक्ष तहरीर कर दिया कि सनद रहे व वक़्त जरुरत पर काम आवे."
>
> (न्यायालय द्वारा जोर)

9. उपरोक्त विवरण से पता चलता है कि बेचने के समझौते ने इसे स्पष्ट रूप से ऐसा बना दिया, जिसने आंशिक प्रदर्शन में किरायेदारों को कब्ज़ा नहीं दिया। अब, वर्तमान मुकदमे में, पंजीकृत समझौते के विशिष्ट निष्पादन की मांग करने के लिए पार्टियों के अधिकारों पर विचार करना इस न्यायालय का काम नहीं है। इस एग्रीमेंट को देखने का मकसद यह पता लगाना है कि खत्म की गई दुकान में किरायेदारों के कब्जे की प्रकृति क्या थी। पंजीकृत समझौते की शर्तें स्पष्ट रूप से इस तथ्य की ओर इशारा करती हैं कि किरायेदार किरायेदारों के रूप में अपने स्वामित्व वाली दुकान पर कब्जा करना जारी रखते हैं और जैसा कि वे दावा करते हैं, मकान मालिक द्वारा उन्हें सौंपे गए पंजीकृत समझौते के आंशिक निष्पादन में कब्जा नहीं रखते हैं। 1976 के यूपी अधिनियम संख्या 57 और 10 फरवरी, 1981 की अधिसूचना के तहत उत्तर प्रदेश राज्य में उनके आवेदन में संशोधित आदेश XV नियम 5 सीपीसी के प्रावधान, पढ़ें:

> "5. स्वीकृत किराया आदि जमा करने में असफल होने पर बचाव पक्ष को खत्म करना-(1) पट्टेदार द्वारा किसी भी मुकदमे में किसी पट्टेदार को उसके पट्टे के निर्धारण के बाद बेदखल करने और उससे किराया या उपयोग और कब्जे के लिए मुआवजे की वसूली के लिए, प्रतिवादी, मुकदमे की पहली सुनवाई पर या उससे पहले, उसके द्वारा स्वीकार की गई पूरी राशि नौ प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से ब्याज सहित जमा करेगा और चाहे वह किसी भी राशि को देय मानता हो या नहीं, वह मुकदमे की निरंतरता के दौरान नियमित रूप से देय मासिक राशि को उसके जमा होने की तारीख से एक सप्ताह के भीतर जमा करेगा, और उसके द्वारा देय पूरी राशि या उपरोक्त देय मासिक राशि जमा करने में किसी भी चूक की स्थिति में, न्यायालय, उपनियम (2) के प्रावधानों के अधीन, उसके बचाव को रद्द कर सकता है।

स्पष्टीकरण 1- अभिव्यक्ति 'पहली सुनवाई' का अर्थ है लिखित बयान दाखिल करने की तारीख या समन में उल्लिखित सुनवाई की तारीख या जहां ऐसी तारीखों में से एक से अधिक का उल्लेख किया गया है, वहां उल्लिखित तारीखों में से अंतिम तारीख।

स्पष्टीकरण 2- अभिव्यक्ति 'उसके द्वारा देय संपूर्ण राशि' का अर्थ संपूर्ण सकल राशि है, चाहे वह किराए के रूप में हो या उपयोग और कब्जे के लिए मुआवजे के रूप में, पट्टेदार के खाते पर भवन के संबंध में स्थानीय प्राधिकारी को भुगतान किए गए करों, यदि कोई हो, को छोड़कर कोई अन्य कटौती नहीं करने के बाद बकाया की स्वीकृत अवधि के लिए किराए की स्वीकृत दर पर गणना की जाती है।*[और राशि, यदि कोई हो, पट्टेदार को भुगतान किया गया है, तो पट्टेदार द्वारा उसके द्वारा हस्ताक्षरित लिखित रूप में स्वीकार किया गया है] और राशि, यदि कोई हो, यूपी शहरी भवनों की धारा 30 के तहत किसी भी न्यायालय में जमा की गई है द्वारा (किराये, किराए और बेदखली का विनियमन) अधिनियम, 1972.

स्पष्टीकरण 3.–(1) अभिव्यक्ति 'मासिक देय राशि' का अर्थ है हर महीने देय राशि, चाहे किराए के रूप में हो या किराए की स्वीकार्य दर पर उपयोग और कब्जे के लिए मुआवजे के रूप में, पट्टेदार के खाते पर भवन के संबंध में स्थानीय प्राधिकारी को भुगतान किए गए करों के अलावा कोई अन्य कटौती नहीं करने के बाद।

(2) बचाव को ख़त्म करने का आदेश देने से पहले, न्यायालय प्रतिवादी द्वारा इस संबंध में किए गए किसी भी अभ्यावेदन पर विचार कर सकता है, बशर्ते ऐसा अभ्यावेदन पहली सुनवाई के 10 दिनों के भीतर या उप-धारा (1) में निर्दिष्ट सप्ताह की समाप्ति के भीतर, जैसा भी मामला हो, दिया गया हो।

(3) इस नियम के तहत जमा की गई राशि वादी द्वारा किसी भी समय वापस ली जा सकती है:

बशर्ते कि ऐसी निकासी से जमा की गई राशि की शुद्धता पर विवाद करने वाले वादी के किसी भी दावे पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा:

आगे बशर्ते कि यदि जमा की गई राशि में जमाकर्ता द्वारा किसी भी खाते पर कटौती योग्य होने का दावा किया गया कोई भी राशि शामिल है, तो न्यायालय वादी को उसे वापस लेने की अनुमति देने से पहले ऐसी राशि के लिए सुरक्षा प्रस्तुत करने की मांग कर सकता है।

10. आदेश XV के नियम 5 के प्रावधानों को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि ऐसे मामले में अदालत में किराया जमा करने के लिए

किरायेदार के दायित्व के दो भाग हैं, जहां मकान मालिक अपने पट्टे के निर्धारण के बाद किरायेदार पर बेदखली का मुकदमा करता है, जैसे उपयोग और व्यवसाय के लिए किराया और क्षति की वसूली के लिए भी। पहले भाग में किरायेदार को मुकदमे की पहली सुनवाई में या उससे पहले, उसके द्वारा देय किराए, क्षति आदि की पूरी राशि, उस पर 9% प्रति वर्ष की दर से ब्याज के साथ जमा करने की आवश्यकता होती है। दूसरे भाग में किरायेदार को मुक़दमे के लंबित रहने के दौरान किराए की मासिक राशि उसके अर्जित होने के एक सप्ताह के भीतर जमा करने की आवश्यकता होती है, चाहे वह इसे देय मानता हो या नहीं। नियम में आगे प्रावधान है कि संहिता के आदेश XV के नियम 5 के उप-नियम (1) के दो हिस्सों में से किसी एक का अनुपालन न करने पर न्यायालय को किरायेदार के बचाव को रद्द करने का अधिकार मिल जाता है। संहिता के आदेश XV के नियम 5 के उप-नियम (1) के पहले भाग में अभिव्यक्ति 'उसके द्वारा देय संपूर्ण राशि' और दूसरे में आने वाली अभिव्यक्ति 'मासिक देय राशि' के बीच अंतर है। आदेश XV के नियम 5 के उप-नियम (1) का भाग।

11. जहां तक सुनवाई की पहली तारीख को जमा करने का सवाल है, तीन प्रकार के समायोजन किए जा सकते हैं। पहला, किरायेदार द्वारा पट्टादाता के खाते में भवन के संबंध में स्थानीय प्राधिकारी को करों के रूप में भुगतान की गई किसी भी राशि का है। दूसरी वह राशि है जो पट्टादाता को भुगतान की जाती है और उसके द्वारा लिखित रूप में स्वीकार की जाती है और उसके द्वारा हस्ताक्षरित होती है। समायोजित किए जा सकने वाले धन की तीसरी श्रेणी वह है जो किरायेदार द्वारा यूपी अधिनियम संख्या 13, 1972 की धारा 30 (संक्षेप में, '1972 का अधिनियम') के तहत अदालत में जमा की गई है। इसके विपरीत, मासिक जमा करने के मामले में, नियम के अनुसार एकमात्र भत्ता मकान मालिक के खाते पर इमारत के संबंध में स्थानीय प्राधिकारी को देय करों के संबंध में है। मुकदमे के दौरान उपयोग और व्यवसाय के लिए मासिक किराया या क्षति जमा करने के किरायेदार के दायित्व के विरुद्ध कोई अन्य धनराशि समायोजित नहीं की जा सकती है।

12. **हैदर अब्बास बनाम अतिरिक्त जिला न्यायाधीश और अन्य, 2006 (1) एआरसी 341** में इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने संहिता के आदेश XV के नियम 5 के उप-नियम (1) के दो हिस्सों के तहत किरायेदार के दायित्व पर विचार किया। और यह मुद्दा कि क्या 1972 के अधिनियम की धारा 30 के तहत जमा किए गए किराए का समायोजन किरायेदार द्वारा मांगा जा सकता है। इसे **हैदर अब्बास (सुप्रा)** में इस प्रकार आयोजित किया गया है:

> "13. आदेश XV, नियम 5, CPC के प्रावधानों का सावधानीपूर्वक विश्लेषण करने पर हम पाते हैं कि यह दो भागों में विभाजित है। पहला भाग मुकदमे की पहली सुनवाई पर या उससे पहले ब्याज सहित "उसके द्वारा देय पूरी राशि" जमा करने से संबंधित है। दूसरा भाग "मासिक देय राशि" को जमा करने से संबंधित है जिसे मुकदमे की निरंतरता के दौरान जमा करना होता है।
>
> 14. आदेश XV के स्पष्टीकरण 2, नियम 5(1), सी.पी.सी में कहा गया है

कि "उसके द्वारा देय संपूर्ण राशि" का अर्थ है संपूर्ण सकल राशि, चाहे किराया हो या उपयोग और व्यवसाय के लिए मुआवजे के रूप में, करों के अलावा कोई अन्य कटौती नहीं करने के बाद यदि कोई हो, तो पट्टादाता के खाते पर भवन के संबंध में स्थानीय प्राधिकारी को भुगतान किया जाएगा और राशि, यदि कोई हो, अधिनियम की धारा 30 के तहत किसी भी न्यायालय में जमा की जाएगी। अभिव्यक्ति "मासिक बकाया राशि" को आदेश XV, नियम 5, सी.पी.सी के नियम 5(1) के स्पष्टीकरण 3 में परिभाषित किया गया है, जिसका अर्थ है हर महीने देय राशि, चाहे वह किराए के रूप में हो या किराए की स्वीकार्य दर पर उपयोग और व्यवसाय के लिए मुआवजे के रूप में हो। करों के अलावा कोई अन्य कटौती नहीं करना, यदि कोई हो, तो पट्टादाता के खाते में भवन के संबंध में स्थानीय प्राधिकारी को भुगतान किया जाएगा।

15. आदेश XV, नियम 5, सीपीसी में ध्यान देने योग्य बात यह है कि विधानमंडल ने "मासिक बकाया राशि" को परिभाषित करते समय, जिसे मुकदमे की निरंतरता के दौरान जमा किया जाना है, जानबूझकर अधिनियम की धारा 30 के तहत जमा की गई किसी भी राशि की कटौती को बाहर रखा है इसलिए, हमें ऐसी स्थिति का सामना करना पड़ रहा है, जहां एक ही नियम "उसके द्वारा देय पूरी राशि" और "नियम के पहले भाग और दूसरे भाग में होने वाली मासिक आय" को परिभाषित करता है और जबकि पहला वाक्यांश अधिनियम की धारा 30 के तहत जमा की गई राशि की कटौती को निर्धारित करता है, दूसरे भाग में ऐसी कटौती का उल्लेख नहीं किया गया है। इसलिए, यह अनुमान लगाया जाना चाहिए कि विधानमंडल ने जानबूझकर अधिनियम की धारा 30 के तहत जमा राशि में कटौती का प्रावधान किया है। केवल सुनवाई की पहली तारीख पर या उससे पहले जमा की जाने वाली राशि के संबंध में, न कि मुकदमे की निरंतरता के दौरान जमा की जाने वाली मासिक राशि के संबंध में। यह, इस तथ्य के साथ जुड़ा हुआ है कि ऊपर उल्लिखित दोनों स्पष्टीकरण 2 और स्पष्टीकरण 3, "... के अलावा कोई अन्य कटौती नहीं करने के बाद" प्रदान करते हैं, यह स्पष्ट रूप से हमें किसी अन्य निष्कर्ष पर नहीं ले जाता है सिवाय इसके कि केवल ऐसी कटौती की जानी है बनाया गया है जो विशेष रूप से प्रदान किया गया है। "मासिक देय राशि" की व्याख्या आदेश XV, सीपीसी के नियम 5(1) के स्पष्टीकरण 3 में दिए गए तरीके से की जानी चाहिए, किसी अन्य तरीके से नहीं।

37. इसलिए, आदेश XV, सीपीसी के नियम 5(1) के प्रावधानों के विश्लेषण पर, हम मानते हैं कि मुकदमे की पहली सुनवाई पर या उससे पहले राशि जमा

करते समय, किरायेदार अधिनियम की धारा 30 के तहत जमा राशि में कटौती कर सकता है लेकिन उसके बाद मुकदमे की निरंतरता के दौरान मासिक राशि उस न्यायालय में जमा की जानी चाहिए जहां बेदखली और किराए की वसूली या उपयोग और कब्जे के लिए मुआवजे और राशि के लिए मुकदमा दायर किया गया है यदि कोई हो, तो अधिनियम की धारा 30 के तहत जमा राशि में कटौती नहीं की जा सकती।

13. इस न्यायालय द्वारा हाल ही में **कृष्ण कुमार गुप्ता बनाम मनोज कुमार साहू, (2017) 4 ऑल एलजे 127** में इस प्रश्न की फिर से जांच की गई, एक निर्णय जिसका उल्लेख पुनरीक्षण न्यायालय ने भी किया है। **कृष्ण कुमार गुप्ता (सुप्रा)** में, यह माना गया है:

"11. यहां ऊपर चर्चा की गई दो श्रेणियों के बीच अंतर, जिस चरण पर वे लागू होते हैं, उसके अलावा, दो गुना है: (ए) पहली श्रेणी में प्रतिवादी को स्वीकृत देय राशि जमा करने की आवश्यकता होती है जबकि दूसरी श्रेणी में, जो मासिक जमा से संबंधित है, चाहे वह इसे देय मानता हो या नहीं, मुक़दमे की निरंतरता के दौरान किराए की स्वीकृत दर पर मासिक आधार पर जमा करना होगा; और (बी) पहली श्रेणी में किरायेदार 1972 के यूपी अधिनियम संख्या 13 की धारा 30 के तहत जमा की गई राशि के समायोजन की मांग कर सकता है और साथ ही 9 पट्टेदार को भुगतान की गई राशि, यदि कोई हो, जिसे पट्टेदार द्वारा लिखित रूप में उसके द्वारा हस्ताक्षरित किया गया है, के समायोजन की मांग कर सकता है। , जबकि दूसरी श्रेणी में, जो मासिक जमा से संबंधित है, ऐसे किसी समायोजन की अनुमति नहीं है जैसा कि स्पष्टीकरण और स्पष्टीकरण 3 के बीच अंतर से स्पष्ट होगा।

12. दो श्रेणियों में सामान्य विशेषताओं में से एक, जो आदेश XV, नियम 5, सीपीसी के स्पष्टीकरण और व्याख्या दोनों में "किराए की स्वीकृत दर" शब्दों के उपयोग से परिलक्षित होती है यह है कि वादी और प्रतिवादी फोर्टियोरी के बीच पट्टेदार और पट्टेदार (मकान मालिक और किरायेदार) का एक स्वीकृत न्यायिक संबंध होना चाहिए, यदि प्रतिवादी द्वारा वादी और उसके बीच मकान मालिक और किरायेदार या पट्टेदार और पट्टेदार के संबंध को स्वीकार नहीं किया जाता है, तो आदेश XV, नियम 5, सीपीसी के प्रावधान लागू नहीं होंगे। चंदन सिंह बनाम श्याम सुंदर अग्रवाल, (2006) 64 एएलआर 673 के मामले में, इस न्यायालय ने आदेश XV, नियम 5, सीपीसी के प्रावधानों को लागू करने के उद्देश्य से निपटते हुए, इस प्रकार देखा:

आदेश XV, नियम 5, सीपीसी को लागू करने का विचार किरायेदार को मुकदमेबाजी के लंबित होने के बावजूद कम से

कम उस दर पर किराया देने के लिए मजबूर करना है जो वह पहले मकान मालिक को भुगतान कर रहा था। आदेश XV, नियम 5, सीपीसी को इस दृष्टि से अधिनियमित किया गया था कि मकान मालिक को अपना किराया वसूलने के लिए मामले के अंतिम निर्णय तक इंतजार न करना पड़े। उसे कम से कम उस दर पर किराया मिलना चाहिए जो मुकदमा शुरू होने से पहले मिल रहा था और किरायेदार किराए का भुगतान किए बिना किराए की संपत्ति का आनंद नहीं ले सकता है। आदेश XV, नियम 5, सीपीसी का उद्देश्य और उद्देश्य यह देखना है कि किरायेदार को किराए के भुगतान को रोककर अनुचित लाभ नहीं मिलता है या किसी बेकार बहाने से वह जिस दर पर पहले भुगतान कर रहा था, उससे कम दर पर भुगतान नहीं करता है। आदेश XV, नियम 5, सीपीसी जिस उद्देश्य को प्राप्त करना चाहता है, उसे देखते हुए, "स्वीकृत" शब्द की शाब्दिक व्याख्या उद्देश्य की पूर्ति नहीं करेगी और इस न्यायालय का विचार है कि व्याख्या के उद्देश्यपूर्ण दृष्टिकोण का सहारा लिया जाना चाहिए।"

14. यहां, इस न्यायालय ने पाया कि किरायेदारों द्वारा मकान मालिक को जो भी धनराशि का भुगतान किया गया था, वह स्वामित्व वाली दुकान की बिक्री से संबंधित एक पूरी तरह से अलग लेनदेन के संबंध में था। इसका किरायेदारी के अनुबंध से कोई लेना-देना नहीं था। भले ही यह मान लिया जाए कि बेचने के समझौते में दर्ज 7.50 लाख रुपये का बयाना किराए के बकाया के विरूद्ध समायोजित किया जाना था, इसे केवल सुनवाई की पहली तारीख पर बकाया जमा करने के किरायेदारों के दायित्व के विरूद्ध समायोजित किया जा सकता है, यदि किरायेदारों ने मकान मालिक से लिखित में एक पावती प्रस्तुत की, जिसमें किरायेदारों द्वारा स्वीकार की गई पूरी राशि के लिए एक अलग लेनदेन के संबंध में प्राप्त धन का विनियोग स्वीकार किया गया था, जिसे किरायेदारों को सुनवाई की पहली तारीख पर जमा करने के लिए बाध्य किया गया था।

15. जहां तक किराया जमा होने के सात दिनों के भीतर मासिक जमा करने का सवाल है, किसी भी अग्रिम का कोई समायोजन नहीं किया जा सकता है। इसके अलावा, आक्षेपित आदेश में यह दर्शाया गया है कि किरायेदार मकान मालिक के विरूद्ध 2014 के सूट नंबर 1174 के तहत विशिष्ट प्रदर्शन के लिए अपना मुकदमा चला रहे हैं, जो शायद ही किसी भी प्रकार के समायोजन के लिए अनुमति देगा यहां तक कि किरायेदारों द्वारा किराए आदि के कारण देय पूरी राशि के विरुद्ध भी, जिसे सुनवाई की पहली तारीख को या उससे पहले जमा किया जाना था। ट्रायल कोर्ट ने राय दी है कि चूंकि मुकदमे के लंबित रहने के दौरान मासिक आधार पर कोई जमा नहीं किया गया है, इसलिए ऑर्डर XV के नियम 5 के उप-

नियम (1) में दिए गए नियमों की कठोरता या परिणामों से कोई बच नहीं सकता है। .

16. जहां तक किरायेदारों के अभ्यावेदन को स्वीकार करने का न्यायालय का विवेकाधिकार है, यदि किराए की मासिक जमा राशि के संबंध में सुनवाई की पहली तारीख के दस दिनों के भीतर या सप्ताह की समाप्ति के भीतर किया जाता है, दायित्व के दोनों शीर्षकों के तहत न्यायालय द्वारा माफ करने के लिए समय की अवधि काफी लंबी हो जाएगी। इसलिए, यदि पहले भाग के तहत नहीं, तो निश्चित रूप से दूसरे भाग के तहत, किरायेदारों के बचाव को रद्द करने के लिए उत्तरदायी ठहराने में न्यायालय की कार्रवाई को गलत नहीं ठहराया जा सकता है।

17. यहां, इस न्यायालय को यह जोड़ना होगा कि पंजीकृत समझौते के आंशिक निष्पादन में किरायेदारों के कब्जे के चरित्र को एक किरायेदार से एक व्यक्ति के स्वामित्व में बदलने पर बहुत जोर दिया गया है, बेचने के लिए पंजीकृत समझौते में किए गए विवरण के संदर्भ में, यहां पहले भी देखा गया है और खारिज कर दिया गया है। इसलिए, किराए का भुगतान करने के लिए किरायेदारों के दायित्व की समाप्ति या संहिता के आदेश XV नियम 5 की शर्तों का अनुपालन करने पर आधारित कोई भी स्पष्टीकरण स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

18. इस न्यायालय की सुविचारित राय में इस पुनरीक्षण में कोई बल नहीं है। यह **विफल** रहता है और, तदनुसार, **खारिज** किया जाता है।

(2023) 3 ILRA 1188

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 01.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुरेन्द्र सिंह-I, जे.

1988 की आपराधिक अपील संख्या 1109

खंडार सिंह एवं अन्य। ... अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ... विरोधी पार्टी

अपीलकर्ताओं के लिए वकील: श्री शशांक शेखर, श्री दीपक राना

विरोधी पक्ष के लिए वकील: जी.ए.

ए. दंड विधि - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 147, 323/149, 324/149 और 325/149 आईपीसी के तहत दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील - अपीलकर्ताओं ने लाठी, बुली, तबल और गरसा से चोट पहुंचाई - धारा 324 आईपीसी - खतरनाक हथियारों या साधनों से स्वेच्छा से चोट पहुंचाना - हड्डी का टूटना - यह आवश्यक नहीं है कि हड्डी पूरी तरह से कटी हुई हो - हड्डी का कटना, छिटकना, टूटना या दरार पड़ना पर्याप्त है - अपीलकर्ताओं द्वारा पीड़ितों को पहुंचाई गई चोट सिद्ध हुई - विचारणीय न्यायालय द्वारा पारित दोषसिद्धि की पुष्टि की गई। (पैरा 19, 20, 21, 22, 32, 40)

आयोजित: होरी लाल एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (1970) 1 एससीसी 8 में सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि धारा 325 के खंड 7 के आवेदन के लिए यह आवश्यक नहीं है कि हड्डी पूरी तरह से कटी हुई हो या दरार बाहरी

सतह से आंतरिक सतह तक फैली हो या हड्डी के किसी टुकड़े का विस्थापन हो। यदि हड्डी के कटने या टूटने से कोई ब्रेक होता है या उसमें कोई दरार या दरार होती है, तो यह धारा 320 आईपीसी के खंड 7 के अर्थ में फ्रैक्चर माना जाएगा (पैरा 22)

ख. अपराधियों की परिवीक्षा का लाभ अधिनियम, 1958 - धारा 4 - दंड प्रक्रिया संहिता - धारा 360 - घटना की तिथि से 40 वर्ष तक अपीलार्थी और वादी एक साथ शांतिपूर्वक रह रहे हैं - कोई आपराधिक इतिहास नहीं - दण्ड का उद्देश्य सुधारात्मक और सुधारात्मक है - उपयुक्त वाद में विचरण और अपीलीय न्यायालय परिवीक्षा का लाभ देंगे - अपीलार्थी को विचारणीय न्यायालय की निगरानी में एक वर्ष के लिए परिवीक्षा पर छोड़ा जाएगा - 5,000 रुपये का क्षतिपूर्ति दिया जाएगा - अपील आंशिक रूप से स्वीकृत की गई। (पैरा 36 से 39, 40 और 41)

आयोजित: ये वैधानिक प्रावधान बहुत ही प्रभावपूर्ण ढंग से सजा के सुधारात्मक और सुधारात्मक उद्देश्य को निर्धारित करते हैं और विचारणीय न्यायालय के साथ-साथ अपीलीय न्यायालय को कानून के तहत उचित वाद में परिवीक्षा का लाभ देने के लिए बाध्य करते हैं। दुर्भाग्य से, कानून की इस शाखा का न्यायालयों द्वारा बहुत अधिक उपयोग नहीं किया गया है। यह हमारे न्याय प्रशासन की प्रणाली में अधिक प्रासंगिक और महत्वपूर्ण हो जाता है, जहां अक्सर लंबे समय के बाद सुनवाई पूरी होती है और जब तक निर्णय अंतिम रूप लेता है, तब तक सजा देने का उद्देश्य ही अपनी प्रभावशीलता खो देता है क्योंकि समय व्यतीत होने के साथ दंडात्मक और सामाजिक प्राथमिकताएं बदल जाती हैं और कारावास की सजा देने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती है, विशेष रूप से तब जब लिप्त अपराध गंभीर न हो और अभियुक्त व्यक्तियों का कोई आपराधिक इतिहास न हो। प्रत्येक वाद में तथ्य और दी गई परिस्थितियाँ, अपराध की प्रकृति, जिस तरह से इसकी योजना बनाई गई और इसे अंजाम दिया गया, अपराध करने का आशय, अभियुक्त का आचरण, इस्तेमाल किए गए हथियारों की प्रकृति और अन्य सभी परिस्थितियाँ प्रासंगिक तथ्य हैं जो विचार के क्षेत्र में प्रवेश करेंगे। इसलिए, प्रत्येक न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह अपराध की प्रकृति और उसके निष्पादन या कारित किए जाने के तरीके को ध्यान में रखते हुए उचित सजा दे। (पैरा 36)

अपील आंशिक रूप से स्वीकृत हुई। (ई-14)

उद्धृत वाद सूची:

1. होरी लाल और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (1970) 1 SCC 8

2. सुभाष चंद और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2015 lawsuit (Alld) 1343

3. महाराष्ट्र राज्य बनाम जगमोहन सिंह कुलदीप सिंह आनंद और अन्य, (2004) 7 SCC 659
4. जगत पाल सिंह और अन्य बनाम हरियाणा राज्य, AIR 2000 SC 3622 ----------

<u>माननीय न्यायमूर्ति सुरेंद्र सिंह-प्रथम</u>

1. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री दीपक राणा और अधिवक्ता राज्य के लिए ए.जी.ए. श्री सुनील कुमार त्रिपाठी को सुना गया।

2 यह आपराधिक अपील 1986 के सत्र परीक्षण संख्या 94, यूपी राज्य बनाम खण्डर सिंह व

अन्य, जोकि मुकदमा अपराध संख्या 19ए सन् 1982 धारा 147, 323, 324, 325, थाना- बाबूगढ़, जिला- गाजियाबाद से उत्पन्न हुई है, में छठे अतिरिक्त जिला और सत्र न्यायाधीश, गाजियाबाद द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 26.04.1988 के खिलाफ दायर की गई है।

3. आक्षेपित आदेश के अनुसार, अपीलकर्ता खंडर सिंह, बीर सिंह, सुखबीर सिंह, ऋषि पाल सिंह, श्री पाल सिंह और श्रीमती फूलवती को आईपीसी की धारा 147, 323/149, 324/149 और 325/149 के तहत दोषी ठहराया गया और धारा 147 आईपीसी के तहत एक साल के कठोर कारावास, धारा 325/149 आईपीसी के तहत दो साल के कठोर कारावास और रुपये की सजा सुनाई गई। 2000/- जुर्माना, जुर्माना न भरने पर छह माह का कठोर कारावास, धारा 324/149 के तहत एक वर्ष का कठोर कारावास और धारा 323/149 के तहत तीन माह का कठोर कारावास, दोनों धाराओं में सजा की अवधि साथ-साथ चलेगी।

4 अपील के लंबित रहने के दौरान आरोपी खंदार सिंह, ऋषि पाल सिंह और श्रीमती फूलवती की मृत्यु हो गई और उनकी अपील निरस्त कर दी गई। यह आपराधिक अपील केवल अभियुक्त-अपीलकर्ता बीर सिंह, सुखवीर सिंह और श्री पाल सिंह के विरुद्ध निस्तारित की जा रही है।

5. अभियोजन प्रकरण संक्षेप में इस प्रकार है कि सूचक करतार सिंह पुत्र देव राज सिंह निवासी ग्राम ददयारा, थाना बाबूगढ़, जिला गाजियाबाद ने इस आशय की लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श का-1) प्रस्तुत की कि दिनांक 19.01.1982 को प्रातः 8 से 9 बजे के बीच, आरोपी-अपीलकर्ता खंडार सिंह पुत्र नाथू सिंह, बीर सिंह, सुखबीर सिंह, ऋषि पाल सिंह, श्री पाल सिंह, खंडार सिंह और श्रीमती फूलवती पत्नी खंडर सिंह के सभी पुत्र *कृषि* भूमि के विवाद को लेकर जनम सिंह पुत्र भुलवा, मनवीर पुत्र जनम सिंह, लखपत पुत्र उमराव, देवी शरण, सरदार सिंह और करतार सिंह सभी पुत्र देव राज पर लाठी, बुल्ली, तबल और गरासा से हमला कर दिया। मौके पर मौजूद गवाह श्याम सिंह पुत्र दीवा, नेत्र पाल पुत्र काले, होशियार सिंह पुत्र सल्लारह, राम विलास पुत्र अर्जुन, हर नारायण पुत्र इंदर ने घायलों को मारपीट से बचाया। करतार सिंह की लिखित रिपोर्ट के आधार पर मुकदमा अपराध क्रमांक 19-ए 1982 धारा 147, 323/149, 324/149 व 325/149 आईपीसी के तहत दिनांक 19.01.1982 को रात्रि 10.50 बजे दर्ज किया गया। आपराधिक मामले की स्थापना से संबंधित चिक एफआईआर (प्रदर्शनी का-11) और जी.डी. रिकॉर्ड पर हैं। घायल करतार सिंह, सरदार सिंह, लल्लू, जन्म सिंह और मनवीर सिंह का मेडिकल परीक्षण पीएचसी हापुड में कराया गया। उनकी चोट रिपोर्ट क्रमशः प्रदर्शन क 5. प्रदर्शन क 6, प्रदर्शन क 7, प्रदर्शन क 8, प्रदर्शन क 9 हैं। उनके शरीर के विभिन्न हिस्सों पर चोटें पाई गईं। घायल करतार सिंह, सरदार सिंह, जनम सिंह और लालू का एक्स-रे एमएमजी हॉस्पिटल गाजियाबाद में रेडियोलॉजिस्ट डॉ. ज्ञानेंद्र कुमार ने किया। उन्होंने घायलों की एक्स-रे रिपोर्ट तैयार की। सरदार सिंह, एक्सटेंशन की एक्स-रे रिपोर्ट के अनुसार प्रदर्शन क 2, स्कैपुला की एक्रोमियन प्रक्रिया में फ्रैक्चर देखा गया। जनम सिंह प्रदर्शन क 3 की एक्स-रे रिपोर्ट के अनुसार उनकी नाक की हड्डी में फ्रैक्चर पाया गया और लल्लू प्रदर्शन क 4 की एक्स-रे रिपोर्ट के अनुसार अल्ना हड्डी के शाफ्ट में फ्रैक्चर देखा गया। घायल सरदार सिंह, जनम सिंह और लल्लू के शरीर में फ्रैक्चर

पाए गए। 1982 के केस क्राइम नंबर 19ए के साथ धारा 325 जोड़ी गई।

6. जांच उपनिरीक्षक हरद्वारी लाल एवं द्वारा की गई । बाद में उपनिरीक्षक गजराज सिंह द्वारा। सब-इंस्पेक्टर हरद्वारी लाल घटनास्थल का दौरा किया और साइट प्लान प्रदर्शन क 10 तैयार किया।

इसके बाद उपनिरीक्षक गजराज सिंह ने बयान दर्ज किया। गवाहों और जांच के बाद आरोपी अपीलकर्ताओं खंडर सिंह, बीर सिंह, सुखबीर सिंह, ऋषि पाल सिंह, श्री पाल सिंह और श्रीमती फूलवती के खिलाफ धारा 147, 323/149, 324/149 और 325/149 आईपीसी के तहत आरोप पत्र दायर किया गया।

7. न्यायिक मजिस्ट्रेट-प्रथम, हापुड द्वारा आपराधिक मामला कायम किये जाने पर सत्र न्यायालय द्वारा अभियुक्त खंडर सिंह, बीर सिंह, सुखबीर सिंह, ऋषि पाल के विरूद्ध धारा 147, 323/149, 324/149 व 325/149 के तहत आरोप तय किया गया। खंडर सिंह, श्री पाल सिंह और श्रीमती फूलवती आरोपी-अपीलकर्ताओं ने आरोप से इनकार किया और मुकदमे का दावा किया।

8. आरोप को साबित करने के लिए अभियोजन पक्ष ने तथ्यों के गवाह के रूप में पीडब्लू-1 जनम सिंह, पीडब्लू-2 करतार सिंह और पीडब्लू-3 श्याम सिंह की जांच की। अभियोजन पक्ष ने औपचारिक गवाहों पीडब्लू-4 डॉ. ज्ञानेंद्र कुमार, रेडियोलॉजिस्ट, पीडब्लू-5 डॉ. के.पी.साराभाई, जांच अधिकारी पीडब्लू-6 उप-निरीक्षक हरिद्वारी लाल और पीडब्लू-7 गजराज सिंह से भी पूछताछ की। ।

9. पीडब्लू-1 जनम सिंह, पीडब्लू-2 करतार सिंह और पीडब्लू-3 श्याम सिंह ने घटना के बारे में साक्ष्य दिए।

10. पीडब्लू-4 डॉ. ज्ञानेंद्र कुमार रेडियोलॉजिस्ट ने घायल सरदार सिंह, जनम सिंह और लल्लू की क्रमशः एक्स-रे रिपोर्ट, प्रदर्शन क-2, प्रदर्शन क-3 और प्रदर्शन क-4 को प्रमाणित किया।

11. डॉ. के.पी. साराभाई ने करतार सिंह, सरदार सिंह, लल्लू, जनम सिंह और मनवीर सिंह की चोट रिपोर्ट को प्रमाणित किया जो प्रदर्शन क 5, प्रदर्शन क-6, प्रदर्शन क-7, प्रदर्शन क-8 और प्रदर्शन क-9, क्रमशः खंडार सिंह, एक्सटेंशन की चोट रिपोर्ट को भी उन्होंने प्रमाणित किया है। प्रदर्शन खा-1, श्रीमती. फूलवती प्रदर्शन खा-2, सुखवीर सिंह प्रदर्शन खा-3, बीर सिंह प्रदर्शन खा-4 और ऋषि पाल, प्रदर्शन खा-5. पीडब्लू-5, डॉ. के.पी. साराभाई ने कहा कि मुखबिर और आरोपी व्यक्तियों के पक्ष के व्यक्तियों को चोटें लाठी, बल्ली, तब्बल और गरासा से 19.1.1982 को लगभग 8-9 बजे लगी हो सकती हैं।

12. पीडब्लू-6 क्रॉस केस, एस.टी संख्या 66 सन 1986 (राज्य बनाम लखपत और अन्य) से संबंधित साइट प्लान को भी साबित करता है।

13. उपनिरीक्षक गजराज सिंह ने अपने द्वारा की गयी जांच के साक्ष्य दिये। उन्होंने आरोपी अपीलकर्ता खंडर सिंह, बीर सिंह, सुखबीर सिंह, ऋषि पाल सिंह, श्री पाल सिंह और श्रीमती फूलवती के खिलाफ दायर आरोप पत्र को साबित कर दिया। उन्होंने क्रॉस केस, एस.टी. की संख्या 66 सन 1986 प्रदर्शन क-7 से संबंधित आरोप पत्र भी साबित किया और कहा गया कि क्रॉस केस भी संज्ञेय अपराध से संबंधित था

14 अदालत ने आरोपी अपीलकर्ता खंडर सिंह, बीर सिंह, सुखबीर सिंह, ऋषि पाल सिंह, श्री पाल

सिंह और श्रीमती फूलवती का सीआरपीसी की धारा 313 के तहत बयान दर्ज किया। उन्होंने अभियोजन पक्ष के मामले से इनकार किया । उन्होंने इस बात से भी इनकार किया कि मुखबिरों ने कोई चोट नहीं पहुंचाई है । उन्होंने यह भी कहा कि मुखबिर द्वारा झूठी एफआईआर और एक्स-रे रिपोर्ट तैयार की गई थी। उन्होंने यह भी कहा कि उनके खिलाफ गलत आरोप पत्र दायर किया गया था।

15. अपीलार्थी अभियुक्तों ने यह भी कहा कि वे पुरानी आबादी स्थित मकान का निर्माण कर रहे थे। सूचक और उसके लोगों ने वहां आकर उनके साथ मारपीट की और उनके खिलाफ झूठा मामला दर्ज कराया।

16 अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि ट्रायल कोर्ट ने रिकॉर्ड पर साक्ष्य के वजन के विपरीत अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराया है। आगे यह भी कहा गया है कि अपीलकर्ताओं की दोषसिद्धि कानून की नजर में खराब है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि अपीलकर्ताओं को दी गई सजाएं बहुत गंभीर हैं। प्रार्थना की गई है कि अपील की अनुमति दी जाए और 26.04.1988 के फैसले और आदेश को रद्द कर दिया जाए और उन्हें अपराधों से बरी कर दिया जाए।

17. इसके विपरीत विद्वान ए.जी.ए. राज्य ने ट्रायल कोर्ट के फैसले और आदेश का समर्थन किया है और प्रस्तुत किया है कि ट्रायल कोर्ट ने रिकॉर्ड पर मौजूद तथ्यों, गवाहों के साथ-साथ लागू कानून की उचित सराहना के बाद आक्षेपित निर्णय और आदेश पारित किया है और इसमें हस्तक्षेप की कोई गुंजाइश नहीं है।

18. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता को सुना, विद्वान ए.जी.ए. और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया।

19. धारा 324 आई.पी.सी. की परिभाषा इस प्रकार है:

324. खतरनाक हथियारों या साधनों से स्वेच्छा से चोट पहुँचाना - जो कोई, धारा 334 द्वारा प्रदान किए गए मामले को छोड़कर, गोली चलाने, छुरा घोंपने या काटने के लिए किसी उपकरण के माध्यम से, या अपराध के हथियार के रूप में उपयोग किए जाने वाले किसी भी उपकरण से, जिससे मृत्यु होने की संभावना हो, या आग या आग के माध्यम से स्वेच्छा से चोट पहुंचाता है। किसी गर्म पदार्थ, या किसी जहर या किसी संक्षारक पदार्थ के माध्यम से, या किसी विस्फोटक पदार्थ के माध्यम से या किसी ऐसे पदार्थ के माध्यम से जिसे निगलना, निगलना या रक्त में मिलना मानव शरीर के लिए हानिकारक है, या किसी जानवर के माध्यम से हमला करने पर तीन साल तक की कैद या जुर्माना या दोनों से दंडित किया जाएगा।

इस धारा के तहत दोषसिद्धि को बरकरार रखने के लिए अभियोजन पक्ष को यह साबित करना होगा कि आरोपी ने स्वेच्छा से चोट पहुंचाई है और ऐसी चोट धारा में निर्दिष्ट किसी उपकरण के माध्यम से पहुंचाई गई है। इससे कम कुछ भी पर्याप्त नहीं होगा ।

20 मुकाती प्रसाद राय @ मिकती राय और अन्य बनाम बिहार राज्य, (2004) 13 एससीसी 144 में शीर्ष अदालत ने धारा 324 आईपीसी के तहत लाठी से लगी चोटों के लिए दोषसिद्धि को बरकरार रखा है।

21. धारा 325 आई.पी.सी. के तहत दंडनीय अपराध धारा 320 आई.पी.सी. आई.पी.सी. के

तहत परिभाषित किया गया है। धारा 320 आई.पी.सी. इस प्रकार पढ़ता है:

320. गंभीर चोट. केवल निम्नलिखित प्रकार की चोट को "गंभीर" के रूप में नामित किया गया है:

पहला -नपुंसकता।

दूसरा -दोनों आंखों की रोशनी का स्थायी अभाव।

तीसरा - दोनों कानों से सुनने की क्षमता का स्थायी अभाव।

चौथा -किसी भी सदस्य या संयुक्त का निजीकरण।

पाँचवें - शक्तियों का विनाश या स्थायी क्षीण होना

छठा - सिर या चेहरे की स्थायी विकृति।

सातवां - किसी हड्डी या दांत का फ्रैक्चर या अव्यवस्था।

आठवीं - कोई भी चोट जो जीवन को खतरे में डालती है या जिसके कारण पीड़ित को बीस दिनों तक गंभीर शारीरिक पीड़ा होती है, या वह अपनी सामान्य गतिविधियों का पालन करने में असमर्थ होता है।

किसी व्यक्ति को तब तक गंभीर चोट पहुँचाने वाला नहीं कहा जा सकता जब तक कि वह चोट आईपीसी की धारा 320 के तहत निर्दिष्ट चोट के प्रकारों में से एक न हो। यह न्यायालय का कर्तव्य है कि वह स्वयं यह निष्कर्ष दे कि चोट साधारण थी या गंभीर। डॉक्टर को चोटों की प्रकृति के संबंध में तथ्यों का वर्णन करना होगा और न्यायालय को यह तय करना होगा कि डॉक्टर द्वारा वर्णित चोट की प्रकृति धारा 320 आईपीसी के किसी भी खंड के अंतर्गत आती है या नहीं।

22. **होरी लाल और अन्य बनाम यूपी राज्य, (1970) 1 एससीसी 8** में सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि धारा 325 के खंड 7 को लागू करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि हड्डी को आर-पार काटा जाए या दरार बाहरी से भीतरी सतह तक फैली होनी चाहिए या हड्डी के किसी टुकड़े का विस्थापन होना चाहिए। यदि हड्डी के कटने या बिखरने से ब्रेक लगता है या उसमें कोई टूटन या दरार होती है, तो यह धारा 320. आई.पी.सी. के खंड 7 के अर्थ में फ्रैक्चर की श्रेणी में आएगा। धारा 324 और 23.325 आई.पी.सी. से संबंधित उपरोक्त प्रावधानों के आलोक में, तथ्यों के गवाहों के साक्ष्य की जांच की जानी है।

24. पीडब्लू-1. घायल जनम सिंह ने अपनी गवाही में दिनांकित बताया 22.04.1987 कि घटना लगभग पांच वर्ष तीन माह पूर्व की है। सुबह के करीब 8 से 9 बजे का समय था। जनम सिंह और उनके साथी अपनी जमीन खसरा नंबर 123 पर थे। वहां जनम सिंह के अलावा करतार सिंह, लखपत, देवी सिंह, सरदार सिंह, मनवीर सिंह और लल्लू भी मौजूद थे। ऋषिपाल, वीर सिंह, सुखवीर और श्रीपाल वहां आ गये। ऋषिपाल के पास तब्बल, वीर सिंह के पास कुदाल (गनासा) और सुखवीर सिंह के पास बूदी थी। बाकी आरोपियों के पास लाठी थी। खद्दर सिंह की पत्नी फूलवती भी हाथ में डंडा लिये वहां मौजूद थी। ये आरोपी सूचक के घर पर कब्जा करना चाहते थे। आरोपियों ने सूचक व उसके साथियों पर गनासा, तब्बल, बुदी व लाठी से हमला कर दिया। घटना में पीडब्लू-1, जनम सिंह, सरदार सिंह, करतार सिंह, लल्लू और मनवीर सिंह को चोटें आईं। घटना को श्यामा, नेत्रपाल, हरनारायण और रामबिलास आदि ने देख लिया, जिन्होंने घायलों को बचाया। घायल और उसके पक्ष के लोगों ने अभियुक्त-अपीलकर्ता का हथियार छीन लिया और अपना बचाव किया जिस जमीन के मामले में आरोपीगण हैं कब्जा करना चाहता था,

मामला जिला जज के न्यायालय में विचाराधीन है। मुखबिर और उसके पक्ष ने हापुड की अदालत में मुकदमा जीत लिया है। गवाह होशियार की मौत हो चुकी है। घटना में लल्लू की ऊपरी बाँह में फ्रैक्चर हो गया, पी.डब्लू.-1 जनम सिंह की नाक की हड्डी में फ्रैक्चर हो गया। मुखबिर के पक्ष के पांच अन्य घायलों को भी चोटें आयीं, जिनका जिला अस्पताल में परीक्षण कराया गया। घटना में आई चोटों के कारण सरदार सिंह के सिर में फ्रैक्चर हो गया। पीडब्लू-1, जनम सिंह ने अपनी जिरह में कहा है कि उसका घर उसके घर से लगभग 10- 15 गज की दूरी पर स्थित है।

25. पीडब्लू-2, सूचक/घायल करतार सिंह ने अपनी गवाही दिनांक 27.04.1987 में कहा है कि लगभग पांच वर्ष तीन माह पूर्व प्रातः 8 बजे से 9 बजे के बीच सूचक एवं उसके साथी लखपत, देवी सिंह, जन्म सिंह, मनवीर, सरदार सिंह और लल्लू खसरा नंबर 123 स्थित अपने घर पर थे। अचानक वीर सिंह, ऋषिपाल, सुखवीर सिंह, श्रीपाल सिंह, श्रीमती फूलवती अपने हाथों में गनासा, बुराड़ी, टब्बल और लाठी लेकर वहां आई। उन्होंने सूचक और उसके साथियों को पीटना शुरू कर दिया. करतार सिंह घटना में जनम सिंह, लल्लू सिंह, सरदार सिंह और देवी सिंह घायल हो गये। वीर सिंह को गनासा से, ऋषिपाल को तब्बल से और सुखवीर को बुराड़ी से जोड़ा गया। अन्य आरोपियों ने लाठियों से हमला कर दिया। घटना को श्याम सिंह, हरनारायण, नेत्रपाल, रामबिलास व अन्य ने देखा। सूचक करतार सिंह एवं उसके पक्ष के लोगों ने अभियुक्तों के मारपीट के हथियार छीन कर अपने निजी बचाव में उपयोग किये. पीडब्लू-2 करतार सिंह ने उस लिखित रिपोर्ट (प्रदर्शन **क**-2) को साबित कर दिया जो उन्होंने संबंधित पुलिस स्टेशन में दी थी और जिसके आधार पर एफआईआर दर्ज की गई थी। आरोपी उनकी जमीन पर जबरन कब्जा करना चाहते थे। पीडब्लू-2 करतार सिंह और उनके साथियों ने हापुड सिविल कोर्ट में जमीन से संबंधित मुकदमा जीत लिया। घायलों का चिकित्सीय परीक्षण जिला अस्पताल गाजियाबाद में कराया गया। घटना में लल्लू की बांह के ऊपरी हिस्से और जन्म सिंह की नाक में फ्रैक्चर हो गया। सरदार सिंह के सिर में चोट लगी थी। पीडब्लू-2 करतार सिंह ने अपनी जिरह में स्वीकार किया कि वह घटना से लगभग आधे घंटे पहले घटना स्थल पर पहुंच गया था

घटना स्थल और करतार सिंह का घर इस स्थान के बीच लगभग तीन सौ गज की दूरी है। गांव में सरदार सिंह, जनम सिंह और करतार सिंह के अलग-अलग मकान हैं। पीडब्लू-2 ने स्वीकार किया है कि उसने और उसके पक्ष के लोगों ने अपनी आत्मरक्षा में अभियुक्तों को चोटें पहुंचाई हैं। पीडब्लू-2 करतार सिंह ने यह भी स्वीकार किया कि आरोपियों ने घटना के संबंध में सूचक और उसके साथियों के खिलाफ क्रॉस केस भी दर्ज किया है। पीडब्लू-2 करतार सिंह ने इस बात से इनकार किया है कि उन्होंने आरोपी द्वारा दर्ज कराए गए क्रॉस केस के जवाबी कार्रवाई के रूप में एफआईआर दर्ज की है।

26 पीडब्लू-3 श्याम सिंह ने अपने साक्ष्य दिनांक 15.05.1987 में बताया है कि घटना लगभग पांच वर्ष चार माह पूर्व की है। सुबह के लगभग 8 बज रहे थे। वह अपने घर पर मौजूद थे। घटनास्थल उसके घर के पास ही है। आरोपी ऋषिपाल ने तब्बल, सुखवीर सिंह ने बूदी, वीर सिंह, गनासा और बाकी आरोपियों ने हाथ में लाठी पकड़ रखी थी। उस समय लखपत, सरदार

सिंह, जन्म सिंह और करतार सिंह अपनी झोपड़ी में बैठे हुक्का पी रहे थे। आरोपियों ने अचानक उनसे झगड़ा और मारपीट शुरू कर दी। शोर मचाने पर पीडब्लू-3 श्याम सिंह, नेत्रपाल, रामबिलास मौके पर पहुंचे और आरोपी अपने हथियार छोड़कर मौके से भाग गए। घटना में सरदार सिंह, जनम सिंह और लल्लू को गंभीर चोटें आईं और अन्य घायलों को साधारण चोटें आईं। पीडब्लू-3 श्याम सिंह ने इस बात का खंडन किया है कि घटनास्थल पर कोई घर या झोपड़ी नहीं है। उन्होंने इस बात से भी इनकार किया है कि आरोपियों ने आत्मरक्षा में सूचक और उसके साथियों पर हमला किया था। पीडब्लू-3 ने इस बात से इनकार किया कि करतार सिंह, सरदार सिंह और लखपत ने भी आरोपियों को पीटना शुरू कर दिया है।

27. घायल जनम सिंह और चश्मदीद गवाह पीडब्लू-3 श्याम सिंह ने घटना की तारीख, स्थान और समय को साबित किया है। उन्होंने मुखबिर करतार सिंह की ओर से घायल हुए लोगों पर हमले में अपीलार्थी वीर सिंह, सुखवीर और श्रीपाल सिंह की भूमिका भी साबित की है। उन्होंने साबित किया है कि अपीलकर्ता-अभियुक्त वीर सिंह ने बुरारा से, सुखवीर ने गनासा से और श्रीपाल ने लाठी से पीडब्लू-1 जनम सिंह पर हमला किया, सरदार सिंह और लल्लू को खतरनाक हथियार से घायल कर दिया, जिससे उन्हें गंभीर चोट लगी। उन्होंने यह भी साबित किया है कि करतार सिंह ने घटना की लिखित रिपोर्ट दी थी। । प्रथम सूचना रिपोर्ट संबंधित पुलिस थाने में अपीलकर्ता वीर सिंह, सुखवीर सिंह और अन्य आरोपियों के खिलाफ दर्ज किया गया, जिनकी मृत्यु हो चुकी है। उन्होंने यह साबित कर दिया है कि घटना के बाद उनकी चोटों का मेडिकल परीक्षण और एक्स-रे कराया गया तो घायल सरदार सिंह, जनम सिंह और लल्लू के शरीर में फ्रैक्चर पाया गया.

पीडब्लू-4 डॉ. ज्ञानेंद्र कुमार, रेडियोलॉजिस्ट ने सरदार सिंह, जनम सिंह और लल्लू की क्रमशः एक्स-रे रिपोर्ट 28. दिनांक 25.01 1982, प्रदर्शन **क**-2, का-3 और प्रदर्शन **क**-4 को प्रमाणित किया है। उन्होंने कहा है कि घायल करतार सिंह की स्कैपुला हड्डी के एक्रोमियन प्रोसेस में भी फ्रैक्चर पाया गया है। घायल जनम सिंह की नाक की हड्डी में फ्रैक्चर साबित हुआ पीडब्लू-4 डॉ. ज्ञानेंद्र कुमार ने यह भी साबित किया है कि लल्लू की एक्स-रे रिपोर्ट में उनके बाएं हाथ की कोहनी की हड्डी टूटी हुई पाई गई है

29. पीडब्लू-1 और पीडब्लू-2 के मौखिक साक्ष्य की पुष्टि सरदार सिंह, जनम सिंह और लल्लू सिंह की एक्स-रे रिपोर्ट और करतार सिंह, सरदार सिंह, लल्लू, जनम सिंह और मनवीर सिंह की चोट रिपोर्ट से होती है जो कि प्रदर्श का -5, केए-6, केए-7, केए-8 और केए-9, क्रमशः। तथ्यों के गवाह पीडब्लू-1 जनम सिंह, पीडब्लू-2 करतार सिंह और पीडब्लू-3 श्याम सिंह के मौखिक साक्ष्य ठोस, भरोसेमंद, विश्वसनीय और सच्चे हैं। उनकी जिरह से ऐसा कुछ भी नहीं निकलता जो उन्हें अविश्वसनीय या झूठा साबित कर सके।

30. तथ्यों के उपरोक्त गवाहों के मौखिक साक्ष्य, अर्थात् पीडब्लू-1, पीडब्लू-2 और पीडब्लू-3 की पुष्टि लिखित रिपोर्ट (प्रदर्शन का-1), चिक एफआईआर (प्रदर्शन का-11), जीडी संस्थान की प्रविष्टि से भी होती है। जी.डी. (प्रदर्शन का-12) में मामले की रिपोर्ट संख्या 12, दिनांक 19.01 है। 1982 समय 10:50 बजे.

31 पीडब्लू-5 डॉ. के.पी. साराभाई ने यह साबित कर दिया है कि घटना वाले दिन 1. 19.01. 1982 में उन्होंने आरोपी फूलवती, खंडर सिंह,

सुखवीर सिंह और वीर सिंह की चोटों की भी जांच की थी। उन्हें इन आरोपियों के शरीर पर चोट के निशान मिले थे. अभियुक्तों को प्राप्त चोटों के बारे में, अभियोजन पक्ष के गवाहों ने कहा है कि यह अभियुक्त व्यक्ति थे जिन्होंने पहले मुखबिर और उसके साथियों पर हमला किया और उन्हें चोटें पहुंचाईं और उसके बाद, सूचक और उसके साथियों ने आरोपियों से हथियार छीन लियेआत्मरक्षा के अधिकार का प्रयोग करते हुए व्यक्तियों को चोटें लगीं। यह स्पष्ट है उक्त सूचक एवं उसके साथियों का विवादित जमीन पर कब्जा था, जहां वे अपनी जमीन पर स्थित झोपड़ी में बैठकर हुक्का पी रहे थे. इस प्रकार, यह साबित होता है कि मुखबिर और उसके साथियों ने निजी बचाव के अधिकार में आरोपी व्यक्तियों और उसके पक्ष के व्यक्तियों को चोटें पहुंचाईं।

32. रिकॉर्ड पर मौजूद मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्यों के विश्लेषण से यह साबित होता है कि अपीलकर्ता वीर सिंह, सुखवीर, श्रीपाल सिंह और अन्य तीन सह-अभियुक्त जिनकी मृत्यु हो चुकी है, ने घटना की तारीख, समय और स्थान पर गैरकानूनी सभा की और घायल सरदार सिंह, जनम सिंह और लल्लू तथा अन्य साथियों पर खतरनाक हथियारों से लाठी, टब्बल और फरसा से हमला कर दिया, जिससे उन्हें साधारण और गंभीर चोटें आईं। इस प्रकार, अभियोजन पक्ष ने अपीलकर्ता-अभियुक्त वीर सिंह, सुखवीर सिंह और श्रीपाल सिंह के खिलाफ धारा 147, 323/149, 324/149, 325/149 के तहत आरोप साबित कर दिया है।

33. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि घटना 19.01.1982 को हुई थी और तब से 40 साल बीत चुके हैं। अपीलकर्ता और सूचक दोनों एक साथ शांति से रह रहे हैं। राज्य द्वारा अभियुक्त-अपीलकर्ताओं के विरुद्ध कोई आपराधिक इतिहास प्रस्तुत नहीं किया गया है। अपीलकर्ताओं को अपराधी परिवीक्षा अधिनियम 1958 का लाभ दिया जाए और परिवीक्षा पर रिहा किया जाए।

अपराधियों की परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 4 इस प्रकार है:

"4. अच्छे आचरण की परिवीक्षा पर कुछ अपराधियों को रिहा करने की अदालत की शक्ति।-(1) जब किसी व्यक्ति को ऐसा अपराध करने का दोषी पाया जाता है जो मौत या आजीवन कारावास से दंडनीय नहीं है और जिस अदालत द्वारा उस व्यक्ति को दोषी पाया जाता है। उनकी राय है कि, अपराध की प्रकृति और अपराधी के चरित्र सहित मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, उसे अच्छे आचरण की परिवीक्षा पर रिहा करना समीचीन है, भले ही फिलहाल किसी अन्य कानून में कुछ भी निहित हो। प्रभावी रूप से, अदालत उसे तुरंत किसी भी सजा की सजा देने के बजाय यह निर्देश दे सकती है कि उसे जमानतदार के साथ या बिना बांड में प्रवेश करने पर रिहा कर दिया जाए, ताकि जब भी उसे तीन साल से अधिक की अवधि के दौरान बुलाया जाए तो वह उपस्थित हो और सजा प्राप्त कर सके। जैसा कि अदालत निर्देश दे सकती है, और इस बीच शांति बनाए रखें और अच्छा व्यवहार करें, बशर्ते कि अदालत किसी की ऐसी रिहाई का निर्देश नहीं देगी।

अपराधी जब तक इस बात से संतुष्ट न हो जाए कि अपराधी या उसके जमानतदार, यदि कोई हो, का निवास का एक निश्चित स्थान है या उस स्थान पर नियमित कब्ज़ा है जिस पर अदालत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करती है या जिसमें

अपराधी के उस अवधि के दौरान रहने की संभावना है जिसमें वह प्रवेश करता है। द बॉन्ड।
(2) उपधारा (1) के तहत कोई भी आदेश देने से पहले, अदालत मामले के संबंध में संबंधित परिवीक्षा अधिकारी की रिपोर्ट, यदि कोई हो, पर विचार करेगी।
(3) जब उप-धारा (1) के तहत कोई आदेश दिया जाता है, तो अदालत, यदि उसकी राय है कि अपराधी और जनता के हित में ऐसा करना समीचीन है, तो इसके अलावा एक पर्यवेक्षण आदेश भी पारित कर सकती है। कि अपराधी बना रहेगा. ऐसी अवधि के दौरान आदेश में नामित परिवीक्षा अधिकारी की देखरेख में, जो एक वर्ष से कम नहीं होगी, जैसा कि उसमें निर्दिष्ट किया जा सकता है, और ऐसे पर्यवेक्षण आदेश में, ऐसी शर्तें लगा सकता है जो अपराधी की उचित निगरानी के लिए आवश्यक समझे।
(4) उप-धारा (3) के तहत पर्यवेक्षण आदेश देने वाली अदालत को अपराधी को रिहा करने से पहले, ज़मानत के साथ या उसके बिना, एक बांड में प्रवेश करने की आवश्यकता होगी, ताकि ऐसे आदेश में निर्दिष्ट शर्तों और ऐसी अतिरिक्त शर्तों का पालन किया जा सके। निवास, नशीले पदार्थों से परहेज़ या किसी अन्य मामले के संबंध में, विशेष परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, अदालत अपराधी द्वारा उसी अपराध की पुनरावृत्ति या अन्य अपराधों के कमीशन को रोकने के लिए लगाना उचित समझ सकती है।
(5) उप-धारा (3) के तहत पर्यवेक्षण आदेश देने वाला न्यायालय अपराधी को आदेश के नियमों और शर्तों को समझाएगा और प्रत्येक अपराधी, जमानतदारों, यदि कोई हो, को पर्यवेक्षण आदेश की एक प्रति तुरंत देगा। और संबंधित परिवीक्षा अधिकारी।

35 इसी तरह का एक प्रावधान आपराधिक प्रक्रिया संहिता में भी शामिल धारा 360 सी.आर.पी.सी. प्रदान करता है:
360. अच्छे आचरण के आधार पर या चेतावनी के बाद परिवीक्षा पर रिहा करने का आदेश(1) जब इक्कीस वर्ष से कम उम्र का कोई व्यक्ति केवल जुर्माने या सात साल या उससे कम अवधि के कारावास से दंडनीय अपराध का दोषी ठहराया जाता है, या जब इक्कीस वर्ष से कम उम्र का कोई व्यक्ति या कोई महिला- ऐसे अपराध का दोषी ठहराया गया है जो मृत्युदंड से दंडनीय नहीं है या
आजीवन कारावास, और अपराधी के विरुद्ध कोई पूर्व दोषसिद्धि साबित नहीं की जाती है, यदि यह उस न्यायालय को प्रतीत होता है जिसके समक्ष उसे दोषी ठहराया गया है, तो अपराधी की उम्र, चरित्र या पूर्ववृत्त और उन परिस्थितियों को ध्यान में रखना होगा जिनमें अपराध किया गया था यह समीचीन है कि अपराधी को अच्छे आचरण की परिवीक्षा पर रिहा किया जाना चाहिए, अदालत उसे तुरंत किसी भी सजा की सजा देने के बजाय, निर्देश दे सकती है कि उसे जमानतदार के साथ या उसके बिना बांड में प्रवेश करने, उपस्थित होने और ऐसी अवधि (तीन वर्ष से अधिक नहीं) के दौरान बुलाए जाने पर सजा प्राप्त करें जैसा कि न्यायालय निर्देश दे और इस बीच शांति बनाए रखें और अच्छा व्यवहार करें।
बशर्ते कि जहां किसी भी पहले अपराधी को दूसरे वर्ग के मजिस्ट्रेट द्वारा दोषी ठहराया जाता है जो विशेष रूप से उच्च न्यायालय द्वारा सशक्त नहीं है, और मजिस्ट्रेट की राय है कि इस धारा द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग किया जाना चाहिए, वह उस प्रभाव पर अपनी राय दर्ज करेगा, और प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट को कार्यवाही सौंपना,

अभियुक्त को अग्रेषित करना, या उसके समक्ष उसकी उपस्थिति के लिए जमानत लेना, ऐसे मजिस्ट्रेट, जो उप-धारा (2) द्वारा प्रदान किए गए तरीके से मामले का निपटान करेगा।

(2) जहां कार्यवाही उप-धारा (1) द्वारा प्रदान किए गए प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट को सौंपी जाती है, तो ऐसा मजिस्ट्रेट ऐसी सजा पारित कर सकता है या ऐसा आदेश दे सकता है जैसा कि वह पारित कर सकता था या दे सकता था यदि मामला मूल रूप से सुना गया होता उसे, और, यदि वह किसी भी मामले में आगे की जांच या अतिरिक्त साक्ष्य को आवश्यक समझता है, तो वह ऐसी जांच कर सकता है या ऐसे साक्ष्य स्वयं ले सकता है या ऐसी जांच या साक्ष्य को करने या लेने का निर्देश दे सकता है।

(3) किसी भी मामले में जिसमें किसी व्यक्ति को चोरी, किसी इमारत में चोरी, बेईमानी से धोखाधड़ी या किसी अपराध का दोषी ठहराया जाता है। भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) के तहत, दो वर्ष से अधिक कारावास या केवल जुर्माने से दंडनीय किसी भी अपराध से दंडनीय है और उसके खिलाफ कोई पिछली सजा साबित नहीं हुई है, जिस न्यायालय के समक्ष उसे दोषी ठहराया गया है, यदि वह उचित समझे तो ऐसा कर सकता है। अपराधी की उम्र, चरित्र, पूर्ववृत्त या शारीरिक या मानसिक स्थिति और अपराध की तुच्छ प्रकृति या किसी भी आकस्मिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, जिसके तहत अपराध किया गया था, उसे किसी भी सजा की सजा देने के बजाय, उचित चेतावनी के बाद उसे रिहा कर दें। .

(4) इस धारा के तहत कोई आदेश किसी भी अपीलीय न्यायालय या उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण की अपनी शक्तियों का प्रयोग करते समय दिया जा सकता है।

(5) जब किसी अपराधी के संबंध में इस धारा के तहत कोई आदेश दिया गया है, तो उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय, अपील पर, जब ऐसे न्यायालय में अपील का अधिकार हो, या पुनरीक्षण की अपनी शक्तियों का प्रयोग करते समय, रद्द कर सकता है ऐसा आदेश, और उसके बदले में ऐसे अपराधी को कानून के अनुसार सजा देना: बशर्ते कि उच्च न्यायालय या सत्र न्यायालय इस उपधारा के तहत उस अदालत द्वारा दी जा सकने वाली सजा से अधिक बड़ी सजा नहीं देगा, जिसके द्वारा अपराधी को दोषी ठहराया गया था।
.

(6) धारा 121, 124 और 373 के प्रावधान, जहां तक संभव हो, इस धारा के प्रावधानों के अनुसरण में पेश की गई ज़मानत के मामले में लागू होंगे।

(7) न्यायालय, उपधारा (1) के तहत किसी अपराधी की रिहाई का निर्देश देने से पहले, इस बात से संतुष्ट होगा कि अपराधी या उसके जमानतदार (यदि कोई हो) के पास उस स्थान पर रहने का एक निश्चित स्थान या नियमित कब्जा है जिसके लिए न्यायालय कार्य या जिसमें शर्तों के पालन के लिए निर्दिष्ट अवधि के दौरान अपराधी के रहने की संभावना है।

(8) यदि वह न्यायालय जिसने अपराधी को दोषी ठहराया, या वह न्यायालय जो अपराधी से उसके मूल अपराध के संबंध में निपट सकता था, संतुष्ट है कि अपराधी अपनी पहचान की किसी भी शर्त का पालन करने में विफल रहा है, तो वह वारंट जारी कर सकता है उसकी आशंका के लिए.

(9) किसी अपराधी को, जब ऐसे किसी वारंट पर पकड़ा जाता है, तो तुरंत वारंट जारी करने वाले न्यायालय के समक्ष लाया जाएगा, और ऐसा

न्यायालय उसे मामले की सुनवाई होने तक या तो हिरासत में भेज सकता है या उसके उपस्थित होने पर पर्याप्त जमानत के साथ उसे जमानत दे सकता है। सजा के लिए और ऐसी अदालत मामले की सुनवाई के बाद सजा सुना सकती है।

(10) इस धारा में कुछ भी अपराधियों की परिवीक्षा अधिनियम, 1958 (1958 का 20), या बाल अधिनियम, 1960 (1960 का 60), या उपचार के लिए लागू किसी अन्य कानून के प्रावधानों को प्रभावित नहीं करेगा। , युवा अपराधियों का प्रशिक्षण या पुनर्वास।

36. ये वैधानिक प्रावधान बहुत सशक्त रूप से सजा के सुधारात्मक और सुधारात्मक उद्देश्य को निर्धारित करते हैं और ट्रायल कोर्ट के साथ-साथ अपीलीय अदालतों को भी कानून के तहत उचित मामलों में परिवीक्षा का लाभ देने के लिए बाध्य करते हैं। दुर्भाग्यवश, कानून की यह शाखा अधिक प्रचलित नहीं रही। न्यायालयों द्वारा उपयोग किया जाता है। यह हमारी न्याय प्रशासन प्रणाली में अधिक प्रासंगिक और महत्वपूर्ण हो जाता है, जहां मुकदमा अक्सर लंबे समय के बाद समाप्त होता है और जब निर्णय अंतिम होता है, तो सजा देने का उद्देश्य ही अपनी प्रभावशीलता खो देता है क्योंकि समय बीतने के साथ दंडात्मक और सामाजिक प्राथमिकताएं बदल जाती हैं। और कारावास की सजा देने की कोई आवश्यकता नहीं है, खासकर जब शामिल अपराध गंभीर नहीं है और आरोपी व्यक्तियों का कोई आपराधिक इतिहास नहीं है। प्रत्येक मामले में तथ्य और परिस्थितियाँ, अपराध की प्रकृति, जिस तरह से इसकी योजना बनाई गई और प्रतिबद्ध किया गया, अपराध करने का मकसद, अभियुक्त का आचरण, इस्तेमाल किए गए हथियारों की प्रकृति और अन्य सभी परिस्थितियाँ शामिल हैं। प्रासंगिक तथ्य जो विचार के क्षेत्र में प्रवेश करेंगे। इसलिए, यह हर अदालत का कर्तव्य है कि वह अपराध की प्रकृति और जिस तरीके से इसे निष्पादित या प्रतिबद्ध किया गया था, उसे ध्यान में रखते हुए उचित सजा दे।

37. **सुभाष चंद और अन्य बनाम यूपी राज्य, 2015 मुकदमा (एल्ड) 1343** के मामले में, इस अदालत ने परिवीक्षा के कानून को लागू करने और उचित मामलों में आरोपी व्यक्तियों को लाभकारी कानून का लाभ देने की आवश्यकता पर जोर दिया है। इस अदालत ने सभी ट्रायल कोर्ट और अपीलीय अदालतों को निम्नलिखित निर्देश जारी किए।

"ऐसा प्रतीत होता है कि उपरोक्त लाभकारी कानून को नजरअंदाज कर दिया गया है और यहां तक कि न्यायाधीश भी कानून के इस प्रावधान को व्यावहारिक रूप से भूल गए हैं। इस प्रकार, मामले को समाप्त करने से पहले, इस न्यायालय को लगता है कि मैं अपने कर्तव्यों के निर्वहन में असफल हो जाऊंगा, यदि एक शब्द भी कहा जाए ट्रायल कोर्ट और अपीलीय अदालतों के लिए चेतावनी नहीं लिखी गई है। इस न्यायालय के रजिस्ट्रार जनरल को इस फैसले की प्रति यूपी के सभी जिला न्यायाधीशों को प्रसारित करने का निर्देश दिया गया है, जो बदले में इस आदेश की प्रति को सभी के बीच प्रसारित करना सुनिश्चित करेंगे। उनके अधीन काम करने वाले न्यायिक अधिकारी इस फैसले का कड़ाई से अनुपालन सुनिश्चित करेंगे। राज्य में जिला न्यायाधीशों को भी निर्देश दिया गया है कि वे ऐसे मामलों से निपटने वाली सभी अदालतों, यानी ट्रायल कोर्ट और अपीलीय अदालतों से हर महीने रिपोर्ट मांगें और बताएं कि क्या कितने मामलों में अभियुक्तों को उपरोक्त प्रावधानों का लाभ दिया गया है।

जिला न्यायाधीशों को प्रत्येक मासिक बैठक में व्यक्तिगत रूप से ऐसे मामलों की निगरानी करने का भी निर्देश दिया गया है। संबंधित जिला न्यायाधीश रजिस्ट्रार को मासिक विवरण भेजेंगे सामान्यतः कितने मामलों में ट्रायल कोर्ट/अपीलीय कोर्ट ने अभियुक्तों को उक्त लाभकारी कानून का लाभ दिया है। इस आदेश की एक प्रति तत्काल अनुपालन के लिए रजिस्ट्रार जनरल के समक्ष रखी जाए।"

38. इस न्यायालय के उपरोक्त निर्णय के अलावा, इस न्यायालय ने पाया कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **महाराष्ट्र राज्य , बनाम जगमोहन सिंह, कुलदीप सिंह आनंद और अन्य (2004) 7 एससीसी 659** के मामले में अभियुक्तों को अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 का लाभ देते हुए निम्नानुसार देखा गया है:

1. "आरोपी की ओर से पेश विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि घटना वर्ष 1990 की है। दोनों पक्ष शिक्षित और पड़ोसी हैं। इसलिए, विद्वान अधिवक्ता ने प्रार्थना की कि अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 का लाभ आरोपी को दिया जाए। अभियुक्त की ओर से की गई प्रार्थना उचित प्रतीत होती है। दुर्घटना दस वर्ष से अधिक पुरानी है। जल निकासी के दावे के मामूली मुद्दे पर पड़ोसियों के बीच विवाद था। दुर्घटना गुस्से में हुई थी। सभी पक्षों को शिक्षित किया गया और दूर से संबंधित भी। घटना ऐसी नहीं है कि आरोपी को कारावास की सजा देने का निर्देश दिया जाए। हमारी राय में, यह एक उपयुक्त मामला है जिसमें आरोपी को एक वर्ष का बांड निष्पादित करने का निर्देश देकर परिवीक्षा पर रिहा किया जाना चाहिए।"

39 इसी प्रकार, **जगत पाल सिंह एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य, एआईआर 2000 एससी 3622**, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 323, 452, 506 आईपीसी के तहत आरोपी व्यक्तियों की सजा को बरकरार रखते हुए परिवीक्षा का लाभ दिया है और आरोपी व्यक्तियों को मजिस्ट्रेट के समक्ष एक बांड निष्पादित करने पर रिहा कर दिया है। छह महीने की अवधि के लिए अच्छा व्यवहार और शांति बनाए रखना।

40. उपरोक्त चर्चा के आलोक में, मुझे नीचे दिए गए न्यायालय के आक्षेपित निर्णय और आदेश में कोई अवैधता, अनियमितता या अनौचित्य या कोई क्षेत्राधिकार संबंधी त्रुटि नहीं मिली। निम्न न्यायालय द्वारा धारा 147, 325/149, 324/149, 323/149 एल.पी.सी. के तहत दोषसिद्धि दर्ज की गई। कायम रखा गया है और परेशान होने की आवश्यकता नहीं है।

41. हालाँकि, अपीलकर्ताओं को जेल भेजने के बजाय, उन्हें अपराधियों की परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 4(1) का लाभ मिलेगा और एक वर्ष के लिए ट्रायल कोर्ट की देखरेख में परिवीक्षा पर रिहा किया जाएगा 25,000/- रुपये की दो जमानतें व्यक्तिगत बांड दाखिल करने के साथ और इस आशय का वचन देना कि वे कोई अपराध नहीं करेंगे और अच्छा व्यवहार रखेंगे और इस अवधि के दौरान शांति बनाए रखेंगे। यदि किसी भी शर्त का उल्लंघन होता है, तो वे निचली अदालत के समक्ष सजा भुगतेंगे। यह भी वांछनीय है कि आरोपी-अपीलकर्ताओं को इस मामले में दो महीने के भीतर मुआवजे के रूप में प्रत्येक को 5,000/- रुपये जमा करने का निर्देश दिया जाए।

रुपये की राशि. प्रत्येक आरोपी-अपीलकर्ता द्वारा जमा किए गए 5000/- रुपये, गंभीर रूप से घायल होने वाले घायलों, अर्थात् जनम सिंह, सरदार सिंह और लल्लू को या उनकी मृत्यु के मामले में उनके कानूनी प्रतिनिधियों को 5,000/- रुपये का भुगतान किया जाएगा। अपीलकर्ता-अभियुक्तों को उपरोक्त बांड और ज़मानत दाखिल करनी होगी और कानून के अनुसार संबंधित अदालत में फैसले की तारीख से दो महीने के भीतर मुआवजा राशि जमा करनी होगी। यदि ज़मानत बांड और मुआवज़ा जमा नहीं किया जाता है, तो अपीलकर्ताओं को ट्रायल कोर्ट द्वारा दी गई सजा भुगतनी होगी

43. तदनुसार, अपीलकर्ताओं की सजा के संबंध में यह अपील **आंशिक रूप से स्वीकार** की जाती है।

44. इस आदेश की प्रमाणित प्रति अभिलेख सहित अनुपालन हेतु संबंधित न्यायालय को भेजी जाये।

(2023) 3 ILRA 1199

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 27.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अश्वनी कुमार मिश्रा, जे।

माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्र, जे.

2009 की आपराधिक अपील संख्या 1387

के साथ

2009 की आपराधिक अपील संख्या 1648

के साथ

2009 की आपराधिक अपील संख्या 1685

तेजवीर ... बुला

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ... विरोधी पार्टी

अपीलकर्ता के लिए वकील: श्री वीरेन्द्र सिंह, श्री अपुल मिश्रा, श्री कुलदीप सिंह चाहर, श्री आरएस सरोजा, श्री शेषाद्री त्रिवेदी, श्री सुरेन्द्र सिंह

विरोधी पक्ष के लिए वकील: जी.ए., श्री मिथिलेश कुमार शुक्ला, श्री आर.पी.द्विवेदी, श्री शेषाद्रि त्रिवेदी, श्री अवनीश कुमार शुक्ल

क. दंड विधि - भारतीय दंड संहिता, 1860 धारा 147, 148 एवं 302/149 आईपीसी - शस्त्र अधिनियम, 1959- धारा 25 -अपीलकर्ताओं को आजीवन कारावास की सजा - वादी मृतक का पुत्र है - पिता को अपीलकर्ता ने गोली मारी - आशय - ग्राम प्रधान चुनाव में हार का बदला लेना - तथ्य के गवाहों के बयान - सीआरपीसी की धारा 161 एवं 162 - परीक्षण के दौरान साक्ष्य की गुणवत्ता - आशय की स्थापना - सीआरपीसी की धारा 164 के तहत बयान - एफआईआर संस्करण में महत्वपूर्ण सुधार और सीआरपीसी की धारा 161 के तहत बयान - ऐसे साक्ष्य का कोई महत्व नहीं है। (पैरा 18, 19, 20, 21, 23 एवं 24)

आयोजित: यद्धपि, आशय एक दोधारी तलवार की तरह काम करता है जो दोनों तरफ से काटता है। आशय एक व्यक्ति को अपराध करने के लिए उकसाता है और साथ ही यह एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति को अपराध में झूठा फंसाने के लिए भी प्रेरित करता है और यह तथ्य और परिस्थितियों के साथ-साथ परीक्षण के दौरान प्रस्तुत किए गए साक्ष्य की गुणवत्ता पर निर्भर करता है कि आपराधिक वाद में आशय की

स्थापना के आधार पर क्या निष्कर्ष निकाला जाए। (पैरा 18)

यह वाद प्रत्यक्ष गवाहों की गवाही पर आधारित है। इसलिए, यह देखा जाना चाहिए कि धारा 161 सीआरपीसी के तहत विवेचक द्वारा दर्ज किए गए उनके पूर्व बयान के आलोक में न्यायालय के समक्ष उनकी शपथ गवाही की विश्वसनीयता की डिग्री क्या है। (पैरा 19)

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धनबल एवं अन्य बनाम तमिलनाडु राज्य, एआईआर 1980 एससी 628 में यह माना है कि धारा 164 सीआरपीसी के तहत बयान को पुष्टिकारक साक्ष्य के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। (पैरा 21)

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने राम बृक्ष @ जालिम बनाम छत्तीसगढ़ राज्य एआईआर 2016 एससी 2381, टॉमसो ब्रूनो एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2015) 7 एससीसी 178 (एससी) में माना कि जहां गवाह ने न्यायालय के समक्ष अपने बयान में सुधार किया था, वहीं धारा 161 सीआरपीसी के तहत विवेचक को जो बताया गया था, उस पर भरोसा नहीं किया जा सकता। विमल सुरेश कांबले बनाम चालुवेरा पिनाके (2003) 3 एससीसी 175 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि अभियोजन पक्ष किसी गवाह के माध्यम से वाद के दौरान कोई तथ्य सिद्ध करने का प्रयास नहीं कर सकता, जिसे उस गवाह ने विवेचना के दौरान पुलिस को नहीं बताया हो। उक्त सुधारे गए तथ्य के बारे में उस गवाह का साक्ष्य कोई महत्व नहीं रखता। (पैरा 24)

B. शस्त्र अधिनियम की धारा 25- देशी पिस्तौल की बरामदगी- प्रत्येक अपीलकर्ता की निशानदेही- भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के तहत कथन- गिरफ्तारी के तुरंत बाद कब्जे से कोई बरामदगी नहीं- एफएसएल रिपोर्ट मेल नहीं खाई - बरामदगी में कोई सार्वजनिक गवाह नहीं - आरोप सिद्ध नहीं हुए - सभी आरोपों से अपीलकर्ताओं को दोषमुक्त किया गया - अपील स्वीकृत। (पैराग्राफ 30 से 33)

आयोजित: वर्तमान अपीलकर्ताओं के संबंध में शस्त्र अधिनियम की धारा 25 के तहत आरोपों के लिए भी यही स्थिति है, जिस पर भी विद्वान विचारणीय न्यायालय द्वारा भारतीय दंड संहिता की धारा 147, 148, 302/149 के तहत आरोपों के साथ विचारण किया गया है, क्योंकि वर्तमान अपीलकर्ताओं में से प्रत्येक की निशानदेही पर एक देशी पिस्तौल बरामद की गई है, जिसके बारे में कहा जाता है कि पुलिस हिरासत में साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के तहत उनकी गिरफ्तारी के बाद उनके स्पष्टीकरण के आधार पर अभियोजन पक्ष के अनुसार अपराध करने में उसका प्रयोग किया गया था। (पैरा 30)

ये आग्नेयास्त्र उनकी गिरफ्तारी के तुरंत पश्चात उनके अधिग्रहण से बरामद नहीं हुए हैं। कथित तौर पर एक आग्नेयास्त्र प्रमोद कुमार उर्फ पप्पू की निशानदेही पर सीजेएम के आदेश से पुलिस हिरासत में लेने के बाद बरामद किया गया है। एफएसएल रिपोर्ट के अनुसार, घटनास्थल के पास से बरामद तीन आग्नेयास्त्रों में से एक खाली कारतूस का खोल, कथित तौर पर आरोपी तेजवीर की निशानदेही पर बरामद आग्नेयास्त्र से चलाया गया पाया गया है। अन्य खाली कारतूस का खोल आरोपी व्यक्तियों की निशानदेही पर बरामद किसी भी आग्नेयास्त्र से चलाया हुआ नहीं पाया गया। आरोपी व्यक्तियों की मौजूदगी के संबंध में

उनकी निशानदेही पर बरामद इन आग्नेयास्त्रों की बरामदगी में किसी भी सरकारी गवाह को सम्मिलित नहीं किया गया है। इसलिए, परीक्षण के दौरान प्रस्तुत किए गए साक्ष्य के विचार, अवधि और प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, अपराध में कथित रूप से इस्तेमाल किए गए आग्नेयास्त्रों की बरामदगी भी वर्तमान मामले में उचित संदेह से परे सिद्ध नहीं होती है। (पैरा 31)

ऊपर की गई चर्चाओं के आलोक में, हमने पाया है कि आरोपी अपीलकर्ताओं के विरुद्ध आरोपों को सिद्ध करने के लिए अभिलेख पर कोई ठोस और विश्वसनीय साक्ष्य नहीं है, जिसके लिए उन्हें विद्वान विचारणीय न्यायालय द्वारा विचरण किया गया, दोषी ठहराया गया और सजा सुनाई गई। आरोपों के संबंध में अभियोजन पक्ष का वाद, जिसके लिए आरोपी अपीलकर्ताओं पर विचरण किया गया और विचारणीय न्यायालय द्वारा दोषी ठहराया गया, उचित संदेह से परे सिद्ध नहीं हुआ है। इसलिए, हमें इन अपीलों को स्वीकार करने में कोई दुविधा नहीं है। (पैरा 32)

अपील स्वीकृत। (ई-14)

उद्धृत वाद सूची:

1. हेमैंराज बनाम राजाराम, 2004 (1) क्राइम 317 (SC)

2. गायसुद्दीन बनाम बिहार राज्य, 2004 (1) क्राइम 90 (SC)

3. धनंजय @ शेरा बनाम पंजाब राज्य, 2004 (2) क्राइम 2 (SC)

4. ए.के. मंसूरी बनाम गुजरात राज्य, 2002 (2) SCJ 38

5. उड़ीसा राज्य बनाम डी. नाइक, 2002 (2) क्राइम 286 (SC)

6. गिरीश चंद्र महतो, 2006 (1) CAR 125 (SC)

7. मोहम्मद खालिद बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, 2002 (7) SCC 334

8. पृथ्वी सिंह बनाम ममराज, 2004 (2) क्राइम 170 (SC)

9. धनाबाल और अन्य बनाम तमिलनाडु राज्य, AIR 1980 SC 628

10. राम बृक्ष @ जालिम बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, AIR 2016 SC 2381

11. टोमसो ब्रुनो और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2015) 7 SCC 178 (SC)

12. विमल सुरेश कांबले बनाम चालुवेरा पिनाके, (2003) 3 SCC 175 ----------

(माननीय न्यायमूर्तिराम मनोहर नारायण मिश्रा द्वारा प्रदत्त)

1. इन आपराधिक अपीलों को अपीलकर्ताओं द्वारा अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, फिरोजाबाद द्वारा पारित दिनांक 6.2.2009 के आक्षेपित निर्णय और आदेश के खिलाफ दायर किया गया है जो धारा 147, 148, 149, 307 और 302 भ०द०वि० के तहत 2005 के केस अपराध नंबर 96 से उत्पन्न सत्र विचारण संख्या-235/2006 और सत्र विचारण संख्या-235ए/2006, 235बी/2006 और 235 सी / 2006 (यूपी राज्य बनाम तेजवीर और 2 अन्य) में है, जो 99 वर्ष 2005 और 9 वर्ष 2006 से उद्भूत है और जिसमें शस्त्र अधिनियम की धारा 25, थाना-पचोखरा, जिला फिरोजाबाद के तहत अभियुक्त-अपीलकर्ता तेजवीर, हरिओम और प्रमोद कुमार @ पप्पू को धारा 147, 148, 302/149 भ०द०वि०और शस्त्र अधिनियम की

धारा 25 के तहत दोषी ठहराया गया है और उन्होंने उन्हें निम्नानुसार सजा सुनाई गई है:

(I) भारतीय दंड संहिता की धारा 302/149 के अंतर्गत उन्हें आजीवन कारावास की सजा काटनी होगी और प्रत्येक पर 5,000 रुपए का जुर्माना डिफ़ॉल्ट प्रावधान के साथ;

(II) धारा 148 भ०द०वि० के तहत, उन्हें एक वर्ष का कारावास भुगतना होगा; धारा 147 भ०द०वि० के तहत कोई सजा नहीं दी गई क्योंकि धारा 148 भ०द०वि० की धारा 147 के अपराध का गंभीर रूप है;

(III) आयुध अधिनियम की धारा 25 के अंतर्गत, उन्हें एक वर्ष का कारावास भुगतना होगा और प्रत्येक पर 1,000 रुपए का जुर्माना लगाया जाएगा और उनके संबंधित मामले में चूक की शर्त के साथ होगी। सभी सजाएं साथ-साथ चलने का निर्देश दिया गया है।

2. धारा 147, 148, 307, 302 के तहत मुख्य मामला अपराध संख्या-96 वर्ष 2005, थाना-पचोखरा, जिला फिरोजाबाद के तहत दर्ज किया गया था, जिसमें अपीलकर्ताओं और सह-अभियुक्तों को आरोपी के रूप में नामित किया गया था। अपराध में कथित रूप से प्रयुक्त आग्नेयास्त्र की बरामदगी के आधार पर प्रत्येक अपीलकर्ता के खिलाफ शस्त्र अधिनियम की धारा 25 के तहत अन्य मामले दर्ज किए गए थे और सभी चार मामलों का परीक्षण विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा किया गया था।

3. अपीलकर्ताओं के लिए अधिवक्ता, राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना और रिकॉर्ड पर रखी गई सामग्री का अवलोकन किया। अपीलकर्ताओं को दोषी के रूप में जेल हिरासत में रखा गया है।

4. अभियोजन मामला अ०सा०-1 सूचनाकर्ता विनोद कुमार दीक्षित और मृतक ब्रह्मदत्त दीक्षित के पुत्र द्वारा प्रस्तुत दिनांक 11.11.2005 (प्रदर्श क-1) की लिखित रिपोर्ट पर आधारित है। सूचनाकर्ता विनोद कुमार ने थाना-पचोखरा (टूंडला) जिला फिरोजाबाद में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई और कांस्टेबल मुहर्रिर हरि नंदन सिंह द्वारा अपराध सं-96 वर्ष 2005 के तहत दिनांक 11-11-2005 को 12.05 बजे धारा 147, 148, 149, 307, 302 भ०द०वि० के तहत प्राथमिकी दर्ज की गई। चिक प्राथमिकी को प्रदर्श क-3 के रूप में चिह्नित किया गया है। प्रथम सूचना रिपोर्ट में यह आरोप लगाया गया है कि दिनांक 11-11-2005 को 930 बजे मृतक ब्रह्मदत्त दीक्षित, जो सूचना देने वाले का पिता है, पंजीकरण सं DL75R7268 वाली अपनी मोटरसाइकिल पर सवार होकर पचोखरा पैठ (स्थानीय ग्राम बाजार) की ओर जा रहा था और सूचना देने वाला भी अपने चचेरे भाई नीरज के साथ पंजीकरण सं UP73J1326 वाली मोटरसाइकिल पर सवार होकर उनके पीछे जा रहा था। अपने पैतृक गांव छिकाऊ से पचोखरा पैठ के रास्ते में, सूचनाकर्ता ने देखा कि गढ़ी ठाकुरान गांव के पास प्रेम सिंह के बाग के मोड़ पर एक मारुति कार खड़ी थी और जैसे ही सूचनाकर्ता के पिता कार के पास पहुंचे, उनके सह-ग्रामीण प्रमोद @ पप्पू और तेजवीर, पुत्र सरदार सिंह, विकास पुत्र प्रमोद और हरिओम सिंह पुत्र तेजवीर सिंह और योगेश के साला (नाम ज्ञात नहीं) मारुति कार से उतरे और प्रमोद ने मृतक को यह कहते हुए गाली दी कि उसने उसे ग्राम प्रधान चुनाव में हराया था और वह उसे नहीं बख्शेगा और उसे मार देगा और उस समय आरोपी प्रमोद, तेजवीर, विकास और योगेश के

साला तमंचा (देशी पिस्तौल) से लैस थे। उन्होंने मृतक को घेर लिया था और इससे पहले कि वह मामला समझ पाता, प्रमोद ने तमंचा, जो उसने हाथ में लिया हुआ था, से गोली चला दी। प्रमोद की गोली उसे लगी और वह कुछ दूर चलने के बाद पास के खेत में गिर गया। इसके बाद, आरोपी व्यक्तियों विकास, तेजवीर और हरिओम ने अपने संबंधित आग्नेयास्त्रों से उस पर गोलियां चलाईं। गोलीबारी की घटना में मृतक गंभीर रूप से घायल हो गया। योगेश के साला ने अचानक सूचनाकर्ता पर गोली चला दी, जिससे वह बाल-बाल बच गया। पास के खेत में काम कर रहे गवाह ओमप्रकाश और राजपाल घटनास्थल पर आ गए थे। गवाहों के पहुंचने पर आरोपी अपनी मारुति कार से फरार हो गए। मृतक ब्रहमदत्त दीक्षित को सूचना देने वाले के सह-ग्रामीण सत्य प्रकाश द्वारा संचालित टेम्पो में लिटाया गया और उसे श्रीनगर ले जाया गया और वहां से उसे एक कार में स्थानांतरित कर दिया गया, जो बाजार (पैठ) से किसी व्यक्ति की थी और वे उसे आगरा के कामायनी अस्पताल ले गए, जहां उसे मृत घोषित कर दिया गया। अस्पताल में उसका कोई इलाज नहीं किया जा सका। सूचनाकर्ता शव को वापस लाया और उसी तारीख को संबंधित थाना में प्राथमिकी दर्ज कराई। प्राथमिकी दर्ज करने के बाद, विवेचनाधिकारी ने घटनास्थल के पास दो स्थानों से दो खाली कारतूस बरामद किए और गवाहों नंद किशोर और वीरेंद्र कुमार की उपस्थिति में इसका फ़र्द बरामदगी (प्रदर्श क-12) तैयार किया। उसी दिन, विवेचनाधिकारी ने खेत से सादे और खून से सने मिट्टी को एकत्र किया, जहां मृतक घायल होने के बाद गिर गया और कुछ गवाहों की उपस्थिति में फ़र्द बरामदगी तैयार किया जिसे प्रदर्श क-11 के रूप में चिहि्नत किया गया है। मृतक के शव की जांच प्रथम विवेचनाधिकारी एस.आई रामेंद्र पाल सिंह (अ०सा०-5) द्वारा घटना की तारीख को 12:50 से 13:50 बजे के बीच की गई थी और उनके द्वारा पंचनामा रिपोर्ट तैयार की गई थी जो प्रदर्श क-5 है। पुलिस कागजातों के साथ विवेचनाधिकारी द्वारा मृतक की मौत के वास्तविक कारण का पता लगाने के लिए शव को शव परीक्षण के लिए भेजा गया था और घटना की तारीख को रात 10.10 बजे मृतक के शव का शव परीक्षण किया गया था। शव परीक्षण रिपोर्ट में डाक्टर द्वारा मृत्यु का कारण कोमा, सदमे और रक्तस्त्रावधि के कारण पाया गया था। शव परीक्षण रिपोर्ट को प्रदर्श क-2 के रूप में चिहि्नत किया गया है। जांच के दौरान, अभियुक्त तेजवीर सिंह को दिनांक 14.11.2005 को एस.ओ. कृष्णा बलदेव और उनके सहयोगियों द्वारा गिरफ्तार किया गया था और मृतक ब्रहमदत्त दीक्षित की हत्या के अपराध में प्रयुक्त 0.315 बोर की देसी पिस्तौल की ओर इशारा करने पर पूर्वाहन 10:00 बजे बरामद किया गया था, जिसे प्रदर्श क-13 के रूप में चिहि्नत किया गया है। एक अन्य अभियुक्त हरिओम को पुलिस ने 21-11-2005 को 10.30 बजे गिरफ्तार किया था और उसके कहने पर 10.05 बजे 0.315 बोर की एक देशी पिस्तौल बरामद की गई थी, जिसका प्रयोग अपराध में किया गया था। फ़र्द बरामदगी को प्रदर्श क-14 के रूप में चिहि्नत किया गया है और 21.1.2006 को, थानाध्यक्ष और उनकी टीम, संबंधित सी.जे.एम. द्वारा आदेशित आरोपी प्रमोद कुमार @ पप्पू की पुलिस हिरासत रिमांड के दौरान, अपराध में इस्तेमाल की गई एक देशी पिस्तौल 17:40 बजे उसके संकेत पर बरामद की गई और उसके फ़र्द बरामदगी को प्रदर्श क-17 के

रूप में चिह्नित किया गया है। विवेचनाधिकारी ने सूचनाकर्ता के कहने पर, घटना के स्थान की नक़्शा नज़री तैयार की, जहां मृतक को आरोपी व्यक्तियों द्वारा गोली मार दी गई थी, जिसे प्रदर्श क-10 के रूप में चिह्नित किया गया है। अभियुक्त व्यक्तियों को शस्त्र अधिनियम के मामलों की अलग से जांच करने वाले विवेचनाधिकारी ने आग्नेयास्त्र की बरामदगी के अपराध का नक़्शा नज़री भी तैयार किया, जिसे अभियुक्त प्रमोद कुमार @ पप्पू के संबंध में प्रदर्श क-20 और आरोपी हरिओम के संबंध में प्रदर्श क-27 के रूप में चिह्नित किया गया है। विवेचनाधिकारी ने आरोपी व्यक्तियों की ओर से बरामद किए गए आग्नेयास्त्रों को जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया और धारा 25 शस्त्र अधिनियम के तहत तीन अभियुक्तों पर मुकदमा चलाने के लिए शस्त्र अधिनियम की धारा 39 के तहत अपना स्वीकृति आदेश प्राप्त किया, जिसे तेजवीर, प्रमोद @ पप्पू और हरिओम के संबंध में क्रमानुसार प्रदर्श क-21, क-23 और क-28 के रूप में रिकॉर्ड पर रखा गया है। जांच के दौरान, एक आरोपी, जिसे प्राथमिकी में योगेश का साला दिखाया गया है, का पता नहीं लगाया गया और एक नामजद आरोपी विकास को किशोर घोषित कर दिया गया और आरोप पत्र दाखिल करने के बाद उसके मामले को अलग कर दिया गया और किशोर न्यायालय में भेज दिया गया। अपराध में उनकी संलिप्तता के बारे में पुलिस द्वारा जांच के बाद आरोपी तेजवीर, प्रमोद और हरिओम के खिलाफ आरोप पत्र दायर किया गया था। विवेचनाधिकारी ने घटना के समय मृतक द्वारा पहने गए परिधान, घटनास्थल से बरामद खून से सने और सादी मिट्टी के साथ देसी पिस्तौल, मौके से बरामद दो खाली कारतूस और मृतक के मस्तिष्क क्षेत्र से बरामद एक विकृत गोली को विशेषज्ञ जांच के लिए विधि विज्ञान प्रयोगशाला, आगरा भेजा। आरोपी तेजवीर के कब्जे से कथित तौर पर बरामद देसी पिस्तौल से एक खाली कारतूस निकाल दिया गया था और खून से सनी मिट्टी की रासायनिक रिपोर्ट में उसमें मानव रक्त पाया गया था। बैलिस्टिक जांच के लिए भेजी गई देसी पिस्तौल की नली से फाउलिंग मैटर लेड, कॉपर और नाइट्रेट पाया गया।

5. विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, फिरोजाबाद ने मामले को सत्र न्यायालय में विचारण के लिए प्रतिबद्ध किया क्योंकि सत्र न्यायालय द्वारा विशेष रूप से विचारणीय था। जांच और विचारण के दौरान अभियुक्त व्यक्तियों को जमानत पर रिहा नहीं किया गया और विचारण के अधीन कैदी के रूप में उन पर विचारण किया गया था।

6. अभियुक्त व्यक्तियों तेजवीर, हरिओम और प्रमोद कुमार @ पप्पू पर सत्र विचारण संख्या-235 2006 में धारा 147, 148, 149, 302/149, 307/149 भ०द०वि० के तहत आरोप लगाए गए थे और संबंधित सत्र विचारण संख्या-235ए/2006, 235बी/2006 और 235सी/2006 में, आरोपी व्यक्तियों क्रमानुसार तेजवीर, प्रमोद कुमार @ पप्पू और हरिओम पर शस्त्र अधिनियम की धारा 25 के तहत आरोप लगाया गया था,

7. मुकदमे के दौरान, अभियोजन पक्ष ने अपने मामले के समर्थन में 14 गवाहों से पूछताछ की। अ०सा०-1- विनोद कुमार दीक्षित मृतक का पुत्र और सूचनाकर्ता है, जिसे चश्मदीद गवाह के रूप में पेश किया गया है, अ०सा०-2 राजपाल सिंह को स्वतंत्र गवाह के रूप में पेश किया गया है, जब हत्या की घटना हुई, जो मोहल्ले में मौजूद था। अ०सा०-3 नीरज से भी चश्मदीद गवाह के रूप में पूछताछ की जाती है, जो सूचनाकर्ता का

चचेरा भाई है, अ०सा०-4 डॉ. आर.के गर्ग शव परीक्षण रिपोर्ट के लेखक हैं, जिसने शव परीक्षण रिपोर्ट को प्रदर्श क-2 साबित कर दिया है। उन्होंने यह भी साबित किया कि घटना के समय मृतक द्वारा पहने गए कपड़े और लेख सामग्री प्रदर्श-1 से 12, अ०सा०-5- हेड कांस्टेबल धर्मपाल ने 11.11.2005 को 12:05 बजे संबंधित थाना में धारा 302, 307, 147, 148, 149 भ०द०वि० के तहत क-3 और प्रदर्श क-4 के तहत मामला दर्ज करने के संबंध में जी.डी. की प्राथमिकी और प्रविष्टियों को साबित किया है और 11.11.2005 को 12:05 बजे संबंधित थाना में रवानगी और जी.डी. प्रविष्टियों को वापस करना विचारण के दौरान उसके साक्ष्य द्वारा घटना की तारीख प्रदर्श ख-1 और ख-4 के रूप में साबित किया है। अ०सा०-6 राजेंद्र पाल सिंह, सेवानिवृत्त उप निरीक्षक को धारा 302 भ०द०वि० के तहत मामले के विवेचनाधिकारी के रूप में पेश किया गया है और पंचनामा रिपोर्ट को प्रदर्श क-5 के रूप में साबित किया है, पुलिस के कागजात शव के साथ शव परीक्षण के लिए प्रदर्श क-6 से क-9 के रूप में भेजे गए हैं, घटनास्थल की नक़्शा नज़री क-10 के रूप में, दो खाली कारतूसों और खून से सना और सादी मिट्टी का फ़र्द बरामदगी प्रदर्श क-11 और क-12 के रूप में साबित किया है। इसके साथ-साथ आरोपी तेजवीर से प्रदर्श क-13 के रूप में एक देसी पिस्तौल का फ़र्द बरामदगी और आरोपी हरिओम से प्रदर्श क-14 के रूप में एक देसी पिस्तौल का फ़र्द बरामदगी। अ०सा०-7 थानाध्यक्ष कृष्ण बलदेव द्वितीय आईओ ने आरोपी व्यक्तियों के बयानों को साबित किया, जिसके परिणामस्वरूप आरोपी प्रमोद कुमार @ पप्पू के इशारे पर बरामद आग्नेयास्त्र की बरमदगी और फ़र्द बरामदगी प्रदर्श क-17 के रूप में बरामद किया गया। अ०सा०-8 एसआई सुरेश चंद अपराध संख्या-97 वर्ष 2005, राज्य बनाम तेजवीर के विवेचनाधिकारी थे, धारा 25 शस्त्र अधिनियम के तहत जांच कार्यवाही, उक्त प्रकरण की नक़्शा नज़री को प्रदर्श क-20 सिद्ध किया। अ०सा०-9 एचसीपी (सेवानिवृत्त) कृपाल सिंह ने मामले में आरोपी तेजवीर सिंह के खिलाफ केस संख्या-97 वर्ष 2005 में शेष जांच कार्यवाही को प्रदर्श क-21 साबित कर दिया है। अ०सा०-10 एच.सी.पी बदन सिंह ने प्रमोद @ पप्पू सिंह के खिलाफ प्रदर्श क-22, 23 और 24 के रूप में अपराध संख्या-9 वर्ष 2006 के तहत जांच कार्यवाही, नक़्शा नज़री, अभियोजन स्वीकृति दायर की। अ०सा०-11 कांस्टेबल क्लर्क हरिनंदन सिंह ने धारा 25 शस्त्र अधिनियम और जी.डी. प्रविष्टियों के तहत मुकदमा अपराध संख्या-97 वर्ष 2005 की प्राथमिकी को प्रदर्श क-25, का 26 के रूप में साबित किया है। अ०सा०-12 एस0आई0 प्रताप सिंह सोलंकी अभियुक्त तेजवीर से आग्नेयास्त्र बरामदगी के गवाह हैं एवं प्रकरण अपराध क्रमांक 99 वर्ष 2005 के विवेचनाधिकारी धारा 25 शस्त्र अधिनियम (राज्य बनाम हरिओम) के तहत उन्होंने जांच के दौरान आरोपी तेजवीर से देसी पिस्तौल की बरामदगी को साक्ष्य प्रदर्श के साथ-साथ नक़्शा नज़री, अभियोजन स्वीकृति एवं प्रकरण अपराध क्रमांक 99 वर्ष 2005 में अभियुक्त हरिओम के विरूद्ध धारा 25 शस्त्र अधिनियम के तहत प्रदर्श क-27, 28, 29 विवेचनाधिकारी होने के नाते दायर आरोप-पत्र के रूप में सिद्ध किया है। उसने अपराध सं 97 वर्ष 2005 में बरामद पिस्तौल को भी सामग्री प्रदर्श के रूप में प्रस्तुत किया है। अ०सा०-13 सिपाही राजवीर सिंह ने अपराध क्रमांक 99 वर्ष 2005 की धारा 25 शस्त्र अधिनियम और जी.डी.

प्रविष्टियों के तहत प्रदर्श क-30 और क-31 को अपना लेख साबित किया है। अ०सा०-14 कांस्टेबल रणवीर सिंह ने अपराध संख्या-9 वर्ष 2006 की चिक प्राथमिकी को धारा 25 शस्त्र अधिनियम और जी.डी. प्रविष्टियों के तहत इसके लेखक के रूप में साबित किया है और उनके साक्ष्य के दौरान इसे प्रदर्श क-32 और क-33 के रूप में प्रदर्शित किया गया था। अ०सा०-7 ने आरोपी प्रमोद कुमार @ पप्पू को प्र.स.-15 और कपड़े और पर्ची को प्र.स.-16 और प्र.स.-17 के रूप में पेश करने पर बरामद आग्नेयास्त्र भी पेश किया। उन्होंने पिस्टल बरामदगी की नक़्शा नज़री को प्रदर्श क-18 और हत्या के मामले में चार्जशीट को प्रदर्श क-19 साबित किया।

8. अभियोजन पक्ष ने अपने मामले के समर्थन में तथ्य के तीन गवाहों की जांच की है। यह मामला कथित चश्मदीद गवाह अ०सा०-1 विनोद कुमार दीक्षित के प्रत्यक्ष साक्ष्य पर आधारित है, जो मृतक का बेटा है और उसने अपने बयान में प्राथमिकी संस्करण का समर्थन किया है, जो लिखित रिपोर्ट प्रदर्श क-1 के लेखक हैं, जिसके आधार पर हत्या के मामले में प्राथमिकी दर्ज की गई है। यह कहा जाता है कि 11.11.2005 को लगभग 9:00 बजे उनके पिता अपनी हीरो होंडा मोटरसाइकिल से अपने पैतृक गांव छिमकाऊ से पचोखरा पैठ की ओर जा रहे थे, जबकि वह और उनके चचेरे भाई नीरज (अ०सा०-2) भी एक अन्य मोटरसाइकिल से पचोखरा पैठ की ओर जा रहे थे। जैसे ही उसके पिता प्रेम सिंह के बाग के पास पहुंचे, जो रास्ते में स्थित था, एक मारुति कार सड़क पर खड़ी मिली, आरोपी प्रमोद @ पप्पू, तेजवीर, हरिओम, विकास और एक अज्ञात व्यक्ति, जो उस समय आरोपी व्यक्तियों के निवास पर रह रहा था, कार से उतर गया और प्रमोद @ पप्पू ने उसके पिता को गाली दी और कहा कि उसने उसे ग्राम प्रधान चुनाव में हराया था और आज वह बख्शा नहीं जाएगा और मारा नहीं जाएगा। सभी आरोपी व्यक्ति तमंचा से लैस थे और सबसे पहले आरोपी प्रमोद @ पप्पू ने अपने पिता को उसके तमंचा से गोली मारी जो उसे लगी और वह सड़क के कोने में पड़े खेत में गिर गया। इसके बाद, चार आरोपियों ने उस पर अपने-अपने हथियारों से अंधाधुंध गोलियां चलाईं। गवाह मदद के लिए चिल्लाया लेकिन इस बीच पांचवें व्यक्ति, जिसका नाम ज्ञात नहीं है, ने उसे और उसके चचेरे भाई को मारने के इरादे से गोली मार दी, जिसमें वे बाल-बाल बच गए। घटना को गढी तखुरन निवासी प्रत्यक्षदर्शियों ओमप्रकाश और राजपाल ने देखा जो अपने खेत में काम कर रहे थे। इन गवाहों के अलावा कई लोग भी मौके पर पेश हुए। आरोपी अपनी कार से पचोखरा की ओर भागे। उसका सह-ग्रामीण सत्यपाल अपना ऑटो रिक्शा लेकर मौके पर पहुंचा, जिसमें उसके पिता घायल अवस्था में लेटे हुए थे और उसे श्रीनगर पैठ (बाजार) की ओर ले जाया गया और वहां से उसे पैठ के लोगों के वाहन में शिफ्ट कर कामायनी अस्पताल आगरा पहुंचाया गया, जहां उन्हें मृत घोषित कर दिया गया। इसके बाद, वे अपने पिता के शव के साथ वापस आए और शव को पचोखरा में पेट्रोल पंप के सामने रखा और अपने चचेरे भाई राम नरेश दीक्षित को लिखित रिपोर्ट डिक्टेट की और इसे थाना-पचोखरा में दायर किया, जिसके आधार पर प्राथमिकी दर्ज की गई। गवाह ने लिखित रिपोर्ट पर अपने हस्ताक्षर का सत्यापन किया, जिसे उसके बयान के दौरान प्रदर्श क-1 के रूप में प्रदर्शित किया गया था। जिरह में, गवाह ने कहा कि आरोपी उसके सह-ग्रामीण हैं और इस कारण से, गवाह

और आरोपी व्यक्ति स्थानीय लोगों के परिचित हैं। उनके पिता सुबह करीब 9:20 बजे घर से पचोखरा पैठ के लिए निकले थे। उसने पैरों में चप्पल पहन रखी थी। घटनास्थल उनके घर से एक किलोमीटर दूर है। उसके घर से घटनास्थल तक पहुंचने में 2 से 3 मिनट का समय लगता है। उसके घर और घटनास्थल के बीच कई मोड़ हैं। जब वह घटनास्थल पर पहुंचा तो उसने देखा कि उसके पिता अपनी मोटरसाइकिल पर बैठे हैं, जो स्टार्ट पोजीशन में थे। गोली लगने के बाद वह मोटरसाइकिल से नीचे गिर गया और उठने के बाद कुछ कदम दौड़कर बगल के खेत में गिर गया। उन्होंने विवेचनाधिकारी को घटनास्थल बताया था। उन्हें इस मामले में अपना बयान दर्ज करने के लिए जेल से पेश किया गया है क्योंकि वह धारा 307 भ०द०वि० के तहत एक आपराधिक मामले में जेल हिरासत में थे और दो मामलों में से एक मामला देवकी नंदन और दूसरा गोदान सिंह के कहने पर दर्ज कराया गया था। गोदान सिंह द्वारा दर्ज कराए गए मामले में सह-आरोपी के साथ उसका चचेरा भाई नीरज भी आरोपी है। घटना के समय आरोपी व्यक्ति नकाबपोश नहीं थे। उनके पिता ने उन्हें उस उद्देश्य के बारे में नहीं बताया था जिसके लिए वह पैठ (स्थानीय बाजार) जा रहे थे, जब उन्होंने घर से शुरुआत की थी। पैठ हर शुक्रवार को आयोजित किया जाता था। उसके पिता घर से 2 से 3 मिनट पहले चले गए। प्रमोद ने जब उस पर गोली चलाई तो उसके पिता मोटरसाइकिल पर बैठे थे और प्रमोद खड़ा था। विवेचनाधिकारी को सड़क पर खून का कोई धब्बा नहीं मिला, लेकिन खेत में पाया गया क्योंकि उसके पिता नीचे गिर गए थे, उसे इस बात की जानकारी नहीं है कि उसके पिता और उसके मोटरसाइकिल को किसने लिया और घटना के बाद वापस घर ले आया। विवेचनाधिकारी द्वारा मौके पर निरीक्षण के समय मोटरसाइकिल नहीं थी। उसे अपने पैरों में अपने पिता की पहनी हुई चप्पलें भी नहीं मिली थीं। नक़्शा नज़री तैयार किए जाने के समय गवाह उपस्थित नहीं थे। घटनास्थल के पास राजपाल का कोई खेत नहीं है। राजपाल ओमप्रकाश के यहां काम करता है। वह योगेश के साला के नाम का खुलासा नहीं कर सका, जो घटना से दो महीने पहले उसके घर पर रह रहा था। वह अपराध में इस्तेमाल की गई मारुति कार की संख्या का खुलासा करने की स्थिति में नहीं है। यह घटना से पहले आरोपी व्यक्तियों के स्थान पर दो महीने तक देखा गया था। यह सफेद रंग की Maruti 800 थी और उस पर कोई प्लेट नंबर नहीं थी। जिस खेत में उनके पिता गिरे थे, उस पर खेती की जाती थी। विवेचनाधिकारी ने खेत से खून से सनी मिट्टी एकत्र की। उसकी मौजूदगी में उसे कोई गोली या पैलेट नहीं मिला। आरोपी व्यक्तियों ने उसके पिता को गोली मार दी, जब उनके पिता खेत में गिर गए। उनकी पिस्तौल के बैरल उससे 2.5 फीट दूर थे। उनके पिता को कामायनी अस्पताल में कोई इलाज नहीं मिला और अंदर आते ही डॉक्टर ने उन्हें मृत घोषित कर दिया। विवेचनाधिकारी ने उसी दिन घटनास्थल पर उसका बयान दर्ज किया।

9. अ०सा०-2 राजपाल सिंह ने भी अपनी गवाही में अ०सा०-1 के प्राथमिकी संस्करण और बयान का समर्थन किया और कहा कि घटना के समय वह और पंडित ओमप्रकाश गढ़ी ठकुरान में आलू के खेत में काम करने गए थे। उन्होंने सफेद रंग की मारुति कार देखी थी जो सुबह लगभग 9:00 बजे छिकाऊ की ओर आई थी और प्रेम सिंह के बाग के किनारे खड़ी थी। मृतक ब्रह्मदत्त दीक्षित

उसी समय मोटरसाइकिल से छिकाऊ की ओर आया और उसका बेटा व भतीजा नीरज भी उसके पीछे मोटरसाइकिल से जा रहे थे। आरोपी व्यक्ति मृतक को देखते ही कार से उतर गए और पप्पू ने मृतक पर अपनी पिस्तौल (तमंच) से पहली गोली चलाई, जो नीचे गिर गया और फिर से भागा लेकिन ठाकुर बच्चू सिंह के खेत में गिर गया, इसके बाद, आरोपी व्यक्तियों ने मारने के इरादे से अपने संबंधित हथियारों से उस पर गोली चला दी। मृतक को तीन गोलियां लगी और अज्ञात व्यक्ति ने गवाह विनोद पर गोली चलाई, जिसमें वह बाल-बाल बच गया था। आरोपी प्रमोद @ पप्पू की मां ग्राम प्रधान चुनाव में उम्मीदवार के रूप में खड़ी हुई थी जिसमें मृतक ब्रह्मदत्त दीक्षित चुने गए थे और हार का बदला लेने के लिए, आरोपी व्यक्तियों ने मृतक को मारने के लिए किया था, जो उस समय ग्राम प्रधान था। प्रतिपरीक्षा में गवाह ने कहा है कि वह गांव-चतुरपुरा का निवासी है जो 1-1/4 किलोमीटर दूर है। घटनास्थल से बहुत दूर। यह कहना सही नहीं है कि घटनास्थल ओमप्रकाश के क्षेत्र से दिखाई नहीं देता है। वास्तव में ओमप्रकाश का खेत सड़क से दक्षिण की ओर स्थित है जबकि प्रेम सिंह और मंदिर का बाग सड़क के पश्चिम की ओर है। पहली गोली प्रमोद @ पप्पू ने चलाई और मृतक नीचे गिर गया और फिर से उठकर भागा लेकिन खेत में गिर गया। आरोपी व्यक्तियों ने उस पर गोली चलाई जब वह बच्चू सिंह के खेत में गिर गया। उसे मृतक द्वारा पहनी गई चप्पल नहीं ली जाती है?

10. अ०सा०-3 नीरज मृतक का भतीजा है जिसने कहा है कि घटना के समय वह अपने चचेरे भाई विनोद द्वारा मोटरसाइकिल पर पीछे चला गया था जो मृतक का बेटा है और उसने इस घटना को देखा था। उन्होंने अपनी शपथ गवाही में प्राथमिकी/अभियोजन पक्ष के संस्करण का भी समर्थन किया है और कहा है कि ग्राम प्रधान का चुनाव वर्ष 2005 में आयोजित किया गया था, जिसमें आरोपी प्रमोद @ पप्पू की मां वैजती देवी भी उम्मीदवार के रूप में खड़ी हुई थीं। प्रमोद @ पप्पू ने भी डमी उम्मीदवार के रूप में अपनी उम्मीदवारी भरी है लेकिन मृतक ने वह चुनाव जीत लिया, जो उसकी हत्या का कारण था। पहली गोली प्रमोद @ पप्पू ने चलाई और जब वह खेत में गिरा तो हरिओम, विकास और तेजवीर ने उस पर गोली चला दी थी। पहला शॉट लगने के बाद वह 4 से 5 कदम दौड़ा और मैदान में गिर गया। उन्हें मारुति कार के नंबर, जिससे आरोपी व्यक्ति मौके पर पहुंचे थे, की जानकारी नहीं है। गवाह मृतक को घायल अवस्था में घटनास्थल से उसके सहपाठी सत्य प्रकाश के ऑटोरिक्शा में बिठाकर पचोखरा पैठ ले आए थे और उसके बाद उसे पैठ के किसी व्यक्ति की कार से आगरा के कामायनी अस्पताल ले गए थे।

11. अभियोजन पक्ष के साक्ष्य से प्रकट होने वाली दोषकारी परिस्थितियों को धारा 313 द०प्र०स० के तहत अपने बयान दर्ज करते समय आरोपी अपीलकर्ताओं के सामने रखा गया था, जिन्होंने दावा किया था कि वे निर्दोष हैं और दोषी नहीं हैं। उन्होंने यह भी कहा कि अभियोजन पक्ष के गवाहों द्वारा उनके खिलाफ झूठे सबूत पेश किए गए हैं। उनके खिलाफ झूठी प्राथमिकी दर्ज कराई गई। जांच निष्पक्ष और स्वतंत्र नहीं थी। उनकी मिलीभगत और मृतक की हत्या के बारे में सबूत झूठे हैं। हालांकि, बचाव पक्ष ने बचाव में कोई सबूत नहीं दिया। उनका बचाव इनकार का है।

12. मृतक ब्रह्मदत्त दीक्षित की शव परीक्षण रिपोर्ट डॉ. आर.के. गर्ग द्वारा लिखी गई है,

जिनकी परीक्षण के दौरान अ०सा०-4 के रूप में जांच की गई थी और उन्होंने कहा था कि उन्होंने प्रभारी जिला मजिस्ट्रेट और सीएमओ, फिरोजाबाद की अनुमति से 11.11.2005 को 10:10 बजे मृतक के शव का शव परीक्षण किया है। मृतक की उम्र करीब 68 साल थी। उन्होंने नमूना मुहर की तुलना कपड़ों पर चिपकी मुहर से की, जिसके द्वारा शव को लपेटा गया था और इसे बरकरार पाया। शव परीक्षण के समय उसके शरीर पर मृत्यु पूर्व के निशान पाए गए:

(1) आकार 2.5 सेमी X 1.5 सेमी कपाल गुहा के प्रवेश का बन्दूक घाव दाईं ओर, सिर के पीछे, बाएं कान के पीछे 3 सेमी, मार्जिन उल्टे और खून रिसता हैं, कलौंच और गोदना मौजूद है;

(2) छाती के बाईं ओर 2 सेमी X 1.5 सेमी x छाती गुहा के आकार के आग्नेयास्त्र का प्रवेश घाव, 14 सेमी नीचे और 5'ओ घड़ी की स्थिति में बाएं निप्पल के पार्श्व, मार्जिन उल्टे और खून रिसता, काले और गोदने मौजूद हैं;

(3) छाती के पीछे 3.5 सेमी X 2.5 सेमी आकार के आग्नेयास्त्र का निकास घाव, जो चोट संख्या-2 को सूचित कर रहा था। यह चोट छाती के पीछे नीचे की ओर पड़ी थी और रीढ़ की हड्डी पर, मार्जिन उलटे थे और खून रिसता था;

(4) 'कोस्टा सीमा पर बाहरी स्थान पर छाती और पेट की गुहा के बाईं ओर आकार 1.5 सेमी X 1.5 सेमी के प्रवेश का बन्दूक घाव, मार्जिन उल्टे और खून रिसता थे, कालापन और गोदना मौजूद था।

(5) छाती के निचले हिस्से के बाहरी पहलू के दाईं ओर और बाएं कोस्टा सीमा के ऊपर उदर गुहा गहरी और छाती गुहा में 2.5 सेमी X 2.0 सेमी से बाहर निकलने का बन्दूक घाव, मार्जिन उल्टा है और खून रिसता हुआ; यह चोट संख्या-4 को बता रही थी।

(6) दाहिने घुटने के निचले हिस्से पर 6 सेमी X 3.5 सेमी का घर्षण।

13. डॉक्टर की राय में, मृतक की मृत्यु उपरोक्त मृत्यु पूर्व चोटों के परिणामस्वरूप कोमा, सदमे और रक्तस्राव के कारण हुई थी, जैसा कि वर्णित है। शव परीक्षण रिपोर्ट (प्रदर्श क-2) में यह भी कहा गया है कि मौत का समय आधे दिन पहले का था और कपाल गुहा से गोली का एक धातु का टुकड़ा बरामद किया गया था। रिगर-मोर्टिस निचले और ऊपरी दोनों छोरों में मौजूद था। आंतरिक जांच में खोपड़ी की लौकिक तथा पश्चकपाल हड्डियां टूटी हुई पाई गईं। गर्दन की टी-8 से टी-10 कशेरुका फ्रैक्चर हो गई थी। रीढ़ की हड्डी टूट गई थी। छोटी आंत खराब हो गई थी और अर्ध पचा हुआ भोजन मौजूद था। बड़ी आंत में घाव हो गया था और मल पदार्थ मौजूद था। डॉक्टर ने शव परीक्षण के समय शव से निकाले गए कपड़े और सामान को प्र.सा.-4 के रूप में अपनी जांच के दौरान सामग्री-1 से 12 के रूप में साबित किया।

14. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अभियोजन पक्ष ने तथ्य के तीन गवाहों की जांच की, जिनमें से अ०सा०-1 विनोद कुमार दीक्षित मृतक का बेटा है, अ०सा०-2 राजपाल सिंह को स्वतंत्र और चश्मदीद गवाह के रूप में जांच की गई है और अ०सा०-3 नीरज को भी चश्मदीद गवाह के रूप में जांच की गई है, जो मृतक का भतीजा है। अभियोजन पक्ष द्वारा खाली कारतूस के खोल और खून से सनी मिट्टी की बरामदगी के सार्वजनिक गवाहों से मुकदमे के दौरान पूछताछ नहीं की गई, जो खाली कारतूस के खोल और खून से सनी मिट्टी की बरामदगी के तथ्य

पर संदेह पैदा करता है। शव परीक्षण रिपोर्ट में मृतक पर पाई गई आग्नेयास्त्रों की चोटों की स्थिति चश्मदीद गवाह के खाते के अनुरूप नहीं है, जो अ०सा०-1, अ०सा०-2 और अ०सा०-3 द्वारा दी गई घटना के चश्मदीद गवाह खाते में बताए गए आग्नेयास्त्र शॉट्स के प्रक्षेपवक्र पर संदेह करता है। गवाहों के बयान के अनुसार मृतक को कथित रूप से दी गई चोटों की प्रकृति पर बारीकी से विचार किया जाना चाहिए, लेकिन प्रस्तुत मामले में ऐसा नहीं पाया गया है। चोटों की प्रकृति का मूल्यांकन करने के लिए, मृतक के शव का शव परीक्षण करने वाले अ०सा०-4 डॉ आर.के गर्ग के बयान का सूक्ष्मता से मूल्यांकन करना आवश्यक है। इसके अलावा, अ०सा०-4 द्वारा साबित की गई शव परीक्षण परीक्षा रिपोर्ट को बयान में की गई चोटों के विवरण के साथ बारीकी से मूल्यांकन किया जाना चाहिए। यह अनुमान लगाना भी आवश्यक है कि मृतक वास्तविक सीरियाटिम, जिसमें मृतक को चोटें आई होंगी, में गोलियां कैसे लगी होंगी। उन्होंने आगे कहा कि मृतक का शव आगरा से सूचनाकर्ता और गवाहों द्वारा संबंधित थाना में नहीं लाया गया था, बल्कि एक स्कूल के सामने स्थित पेट्रोल पंप के पास सड़क पर रखा गया था। गवाहों का यह आचरण घटना के समय मौके पर उनकी उपस्थिति के बारे में भी संदेह पैदा करता है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि तथ्यों के गवाहों का मूल्यांकन करने पर, इसमें बहुत सारे विरोधाभास हैं, जो स्पष्ट रूप से इस तथ्य को स्थापित करते हैं कि उन्होंने वास्तव में घटना को नहीं देखा था और वे घटना के बाद मौके पर दिखाई दिए थे। अभियोजन पक्ष द्वारा प्रतिपादित चश्मदीद गवाह वास्तव में चश्मदीद गवाह नहीं हैं। मृतक की हत्या किसी अन्य अज्ञात बदमाश ने की होगी और ग्राम प्रधान चुनाव के दौरान प्रतिद्वंद्विता और दुश्मनी के कारण, आरोपी व्यक्तियों का झूठा नाम लिया गया था। जिस मारुति कार में आरोपी व्यक्तियों के बारे में कहा जाता है कि वे घटना के समय उपस्थित थे और गवाहों द्वारा घटनास्थल पर देखे गए थे, जांच के दौरान उनका पता नहीं लगाया जा सका। यहां तक कि मृतक द्वारा पहनी गई चप्पलें भी विवेचनाधिकारी या गवाहों को घटनास्थल से नहीं मिलीं या बरामद नहीं की गईं। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि विवेचनाधिकारी ने कहा कि सूचनाकर्ता (अ०सा०-1) की ओर इशारा करने पर घटना की तारीख की शाम को घटनास्थल का स्थानीय निरीक्षण किया गया था, लेकिन मृतक और गवाह की मोटरसाइकिलें वहां नहीं मिलीं और गवाह यह नहीं बता सके कि घटना के बाद उन्हें कौन और कब अपने घर लाया था। अंत में, उन्होंने प्रस्तुत किया कि मृतक के सिर पर गोली लगने के बाद उसके सिर की चोट की भयावहता को ध्यान में रखते हुए, उसके सिर पर गोली लगने के बाद कुछ कदम दौड़ना या चलना शारीरिक रूप से संभव नहीं था। इस प्रकार, इस बिंदु पर गवाहों का बयान भी संभव या विश्वसनीय नहीं है। अ०सा०-2 राजपाल के बारे में कहा जाता है कि वह ओम प्रकाश के साथ पास के खेत में काम करता था और उसे इस मामले में चश्मदीद गवाह बनाया गया है, लेकिन उसके साक्ष्य से ही घटनास्थल के पास ऐसा कोई क्षेत्र नहीं पाया जा सकता है। नक़्शा नज़री में भी, जिस क्षेत्र में गवाह ओम प्रकाश और राजपाल के काम करने की बात कही जाती है, उसे विवेचनाधिकारी द्वारा नक़्शा नज़री में इंगित नहीं किया गया है। इस प्रकार, मौके पर उनकी उपस्थिति भी अत्यधिक संदिग्ध है। अपीलकर्ता 17 साल से अधिक समय से जेल में बंद हैं।

15. प्रति विरोधाभास, अपर शासकीय अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यह गवाहों के प्रत्यक्ष साक्ष्य और चश्मदीद गवाह के आधार पर एक मामला

है। यह घटना दिन के उजाले में हुई और गवाहों की जिरह में बताई गई मामूली विसंगतियों और विरोधाभासों को उनकी गवाही पर अविश्वास करने के आधार के रूप में नहीं लिया जा सकता है। साक्ष्य के मूल्यांकन में विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय में कोई तथ्यात्मक या कानूनी त्रुटि नहीं है और प्रस्तुत अपील में इसकी पुष्टि की जा सकती है।

16. विद्वान विचारण न्यायालय के आक्षेपित निर्णय के अवलोकन से, जिसे प्रस्तुत अपील में चुनौती दी गई है, से पता चलता है कि अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश ने उसमें कहा है कि यह सच है कि जांच कुछ मामलों में दोषपूर्ण थी जैसे कि मोटरसाइकिल, जिसे मृतक द्वारा चलाया जा रहा था और दूसरा अ०सा०-3 द्वारा सवार किया गया था और घटना के समय मृतक द्वारा पहने गए सूचनाकर्ता और चप्पल बरामद नहीं किए गए थे। जांच के दौरान विवेचनाधिकारी द्वारा इन चीजों की तलाशी नहीं ली गई। जिस टेम्पो पर मृतक को घटनास्थल से सबसे पहले रखा गया था, उसका विवेचनाधिकारी द्वारा निरीक्षण नहीं किया गया था। उन्होंने उस कार का भी निरीक्षण नहीं किया जिसके माध्यम से मृतक को आगरा के कामायनी अस्पताल भेजा गया था। उन्होंने उस स्थान का संकेत नहीं दिया जहां से गवाहों ने घटना देखी थी। उसने नामजद गवाह ओमप्रकाश का खेत नहीं दिखाया और न ही गवाहों के खून से सने कपड़े बटोरे। वह अपराध में आरोपी व्यक्तियों द्वारा इस्तेमाल की गई मारुति कार का पता लगाने में भी विफल रहे, लेकिन इन सभी कारकों को देखते हुए, जो दोषपूर्ण जांच के घटक हैं, अभियोजन पक्ष के मामले को संदिग्ध नहीं माना जा सकता है, अगर अभियोजन पक्ष द्वारा अन्यथा साबित कर दिया गया हो। उन्होंने अपने निष्कर्ष के समर्थन में हेमराज बनाम राजाराम, 2004 (1) अपराध 317 (एस.सी.), गयासुद्दीन बनाम बिहार राज्य, 2004 (1) अपराध 90 (एस.सी.), धनंजय @ शेरा बनाम पंजाब राज्य, 2004 (2) अपराध 2 (एस.सी.), एके मंसूरी बनाम गुजरात राज्य, 2002 (2) एस.सी.जे 38, ओरिशा राज्य बनाम डी नाइक, 2002 (2) अपराध 286 (एस.सी.) का हवाला दिया।

17. विद्वान विचारण न्यायाधीश ने यह भी कहा कि अभियोजन पक्ष के मामले पर इस तथ्य के कारण संदेह नहीं किया जा सकता है कि सूचनाकर्ता विनोद कुमार दीक्षित ने अपनी लिखित रिपोर्ट के साथ-साथ अ०सा०-1 के रूप में अदालत के समक्ष अपनी शपथ गवाही में कहा है कि 5 वां आरोपी, जिसका नाम प्राथमिकी में नहीं है, जिसे सह-ग्रामीण योगेश के साला के रूप में जाना जाता था, जांच के दौरान पता नहीं लगाया जा सका और अ०सा०-1 में उक्त पांचवें अभियुक्त विनोद कुमार दीक्षित द्वारा हत्या के इरादे से प्राथमिकी खोलने के आरोप को साबित नहीं किया जा सका और आरोपी व्यक्तियों को तदनुसार धारा 307/149 भ०द०वि० के तहत आरोप से बरी कर दिया गया। चूंकि अभियोजन का मामला तथ्यों के गवाहों द्वारा दिए गए चश्मदीद गवाह के बयान से साबित हुआ है और इसकी पुष्टि डॉ आर.के. गर्ग के साक्ष्य से भी होती है, जिन्होंने मृतक के शव का परीक्षण किया था। इसलिए, यदि बैलिस्टिक विशेषज्ञों की रिपोर्ट और प्रत्यक्षदर्शियों के विवरण में कोई अंतर है तो इससे अभियोजन मामले की विश्वसनीयता प्रभावित नहीं होगी। अभियोजन पक्ष द्वारा सौंपा गया मकसद साक्ष्य में विधिवत साबित हो गया है, हालांकि इसे दोधारी तलवार के रूप में माना

जाता है जो दोनों तरह से काटता है और आरोपी व्यक्तियों को मकसद के साथ-साथ मकसद के आधार? पर झूठा फंसाया जा सकता है, यह अपराध करने के लिए आरोपी व्यक्तियों की ओर से एक प्रेरक कारक के रूप में भी कार्य करता है। इसलिए, अभियोजन पक्ष के गवाहों और चिकित्सा साक्ष्य के चश्मदीद गवाह के आधार पर, यह तथ्य बिना किसी संदेह के साबित होता है कि आरोपी वे व्यक्ति हैं जो अपराध और बचाव के मामले के कर्ता हैं कि आरोपी व्यक्तियों को ग्राम प्रधान चुनाव की दुश्मनी के कारण मामले में झूठा फंसाया गया था, कोई बल नहीं मिला है। अभियोजन पक्ष के मामले पर इस तथ्य के आधार पर भी अविश्वास नहीं किया जा सकता है कि प्रस्तुत मामले में धारा 157 द०प्र०स० के तहत प्रदान किए गए अनुसार न्यायिक मजिस्ट्रेट को तुरंत प्राथमिकी नहीं भेजी गई थी और उन्होंने गिरीश चंद्र महतो, 2006 (1) सी.ए.आर. 125 (एस.सी.) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के एक फैसले का हवाला दिया। उन्होंने बचाव पक्ष की इस दलील को भी खारिज किया कि गवाह नीरज का बयान दर्ज करने में कुछ देरी हुई। इसलिए उनके बयान पर भरोसा नहीं किया जा सकता। उन्होंने मोहम्मद अली खान मामले में सर्वोच्च न्यायालय के एक निर्णय का हवाला दिया। माननीय उच्चतम न्यायालय ने खालिद बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, 2002(7) एस.सी.सी. 334 और पृथ्वी सिंह बनाम मामराज, 2004(2) अपराध 170 (एस.सी.) के मामले में अपने निर्णय में यह निर्णय दिया है कि विवेचनाधिकारी द्वारा गवाह की विलंबित परीक्षा अभियोजन पक्ष के कथन पर अविश्वास करने का आधार नहीं हो सकती है, क्योंकि ऐसे विलंब के कई कारण हो सकते हैं। हालांकि, ऐसे मामलों में अदालत को ऐसे गवाह के बयान की सावधानीपूर्वक और सूक्ष्मता से जांच करनी चाहिए। प्रस्तुत मामले में प्राथमिकी घटना के तीन घंटे के भीतर उसी दिन तुरंत दर्ज की गई है। इसलिए, यदि कोई विलंब होता है तो घटना के बाद अभियोजन साक्ष्य में सामने आई घटनाओं के अनुक्रम को ध्यान में रखते हुए स्वयं स्पष्ट किया जाता है। विचारण न्यायालय ने बचाव पक्ष की इस दलील को भी खारिज कर दिया है कि मृतक के शव को आगरा से वापस लेने के बाद एक स्कूल के सामने पेट्रोल पंप के पास रखना स्वाभाविक नहीं लगता है और अभियोजन पक्ष उस जगह को साबित करने में विफल रहा जहां शव बरामद किया गया था। विचारण न्यायालय ने कहा है कि अभियोजन पक्ष के साक्ष्य के अनुसार आगरा से शव वापस लेने के बाद उस स्थान पर जांच की गई है जहां शव को रखा गया था। सादी और खून से सनी मिट्टी को पुलिस ने अपने कब्जे में ले लिया था और विधि विज्ञान प्रयोगशाला में भी इसकी रासायनिक जांच की गई थी। विद्वान विचारण न्यायालय ने भी बचाव पक्ष की दलील को खारिज कर दिया कि अ०सा०-1 और अ०सा०-3 मृतक के परिवार के सदस्य होने के नाते हितबद्ध गवाह हैं, उनके साक्ष्य पर इलाके के गवाहों की अनुपस्थिति में विश्वास नहीं किया जा सकता है क्योंकि अ०सा०-2 राजपाल एक स्वतंत्र गवाह और इलाके का गवाह है। विचारण न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला है कि तथ्य के गवाहों द्वारा दिए गए चश्मदीद गवाह के बयान की पुष्टि चिकित्सा साक्ष्य और बैलिस्टिक विशेषज्ञों की रिपोर्ट से होती है और यह तथ्य सभी उचित संदेहों से परे साबित होता है कि घातक हथियारों से लैस आरोपी व्यक्तियों ने गैरकानूनी मजमा कायम किया और मृतक

ब्रह्मदत्त दीक्षित की हत्या और दंगा किया। घटना का समय और स्थान जैसा कि प्राथमिकी में उल्लेख किया गया है और अभियोजन साक्ष्य में साबित हुआ है। अभियोजन पक्ष ने धारा 147, 148, 149, 302 भ०द०वि० के तहत आरोप के साथ-साथ आरोपी तेजवीर, हरिओम और प्रमोद कुमार @ पप्पू के खिलाफ धारा 25 शस्त्र अधिनियम के तहत अलग-अलग आरोपों के लिए सभी उचित संदेह से परे अपने मामले को सफलतापूर्वक साबित कर दिया है और साथ ही उन्हें उक्त अपराधों के लिए दोषी ठहराया गया और सजा सुनाई गई।

18. प्रस्तुत अपील में दृढ़ संकल्प की आवश्यकता वाला प्रश्न यह है कि क्या अभियोजन पक्ष अपने मामले के समर्थन में पेश किए गए साक्ष्य के आधार पर उचित संदेह से परे आरोपी अपीलकर्ताओं के अपराध को स्थापित करने में सक्षम रहा है कि आरोपी अपीलकर्ताओं ने अपराध किया है। प्रस्तुत मामले में, मृतक ब्रह्मदत्त दीक्षित की हत्या का तथ्य बचाव पक्ष द्वारा विवादित नहीं है। मृतक व्यक्ति का शव परीक्षण करने वाले अ०सा०-4 डा आर. के. गर्ग ने अपने साक्ष्य में बताया है कि मृतक की शव परीक्षण जांच दिनांक 11-11-2005 को पूर्वाह्न लगभग 10.00 बजे की गई थी और मृत्यु का अनुमानित समय आधे दिन का मध्याह्न था। मृत्यु का कारण रक्तस्राव और शव परीक्षण रिपोर्ट में दिखाई गई मृत्यु पूर्व चोटों के कारण सदमा था। उन्होंने अपने साक्ष्य में यह भी कहा कि मृतक के व्यक्ति पर पाई गई आग्नेयास्त्रों की चोटें मृत्यु का कारण बनने के लिए पर्याप्त थीं और यह तथ्य भी बचाव पक्ष द्वारा विवादित नहीं है। बचाव पक्ष ने इस आरोप पर विवाद किया है कि प्रस्तुत अपीलकर्ता अपराध के कर्ता हैं और बचाव पक्ष यह है कि मृतक की मौत घटना की तारीख को किसी अन्य स्थान और समय पर कुछ अन्य व्यक्तियों द्वारा की गई थी और ग्राम प्रधान चुनाव के कारण उत्पन्न दुश्मनी के कारण गवाहों द्वारा आरोपी अपीलकर्ताओं को फंसाया गया था। प्रस्तुत मामले में, अपीलकर्ताओं के खिलाफ प्राथमिकी संस्करण में अभियोजन पक्ष द्वारा बताए गए मकसद को तथ्य के गवाहों अ०सा०-1 विनोद कुमार दीक्षित, अ०सा०-2 राजपाल सिंह और अ०सा०-3 नीरज कुमार के बयानों के आधार पर साक्ष्य में साबित किया गया है। हालांकि, मकसद एक दोधारी तलवार के रूप में कार्य करता है जो दोनों तरह से काटता है। मकसद एक व्यक्ति को अपराध करने के लिए उकसाता है और साथ ही यह एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति को अपराध में झूठा फंसाने के लिए भी प्रेरित करता है और यह तथ्य और परिस्थितियों के साथ-साथ परीक्षण के दौरान पेश किए गए सबूतों की गुणवत्ता पर निर्भर करता है कि आपराधिक मामले में मकसद की स्थापना के कारण क्या निष्कर्ष निकाला जाना है।

19. यह मामला गवाहों की प्रत्यक्ष गवाही पर आधारित है। इसलिए, यह देखा जाना चाहिए कि धारा 161 द०प्र०स० के तहत विवेचनाधिकारी द्वारा दर्ज किए गए उनके पिछले बयान के आलोक में अदालत के समक्ष उनकी शपथ गवाही की विश्वसनीयता की डिग्री क्या है।

20. धारा 162 द०प्र०स० को निम्नानुसार पुन: प्रस्तुत किया जाता है: -

"162. पुलिस को दिए गए बयानों पर हस्ताक्षर नहीं किया जाना: साक्ष्य में बयानों का उपयोग- (1) इस अध्याय के तहत जांच के दौरान किसी भी व्यक्ति द्वारा पुलिस अधिकारी को दिए गए कोई भी बयान, यदि लिखित रूप में कम हो

जाता है, तो इसे देने वाले व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षरित किया जाएगा; न तो ऐसा कोई बयान या उसका कोई रिकॉर्ड, चाहे वह पुलिस डायरी में हो या अन्यथा, या ऐसे बयान या रिकॉर्ड के किसी भी हिस्से का उपयोग किसी भी उद्देश्य के लिए किया जाएगा, सिवाय इसके कि उस समय जांच के तहत किसी भी अपराध के संबंध में किसी भी जांच या परीक्षण में, जब ऐसा बयान दिया गया था, बशर्ते कि जब किसी गवाह को ऐसी जांच या विचारण में अभियोजन के लिए बुलाया जाता है, जिसका बयान लिखित रूप में किया गया है पूर्वोक्त के रूप में उसके बयान का कोई भी हिस्सा यदि विधिवत साबित होता है, तो अभियुक्त द्वारा और न्यायालय की अनुमति से, अभियोजन पक्ष द्वारा, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1 वर्ष 1872) की धारा 145 द्वारा प्रदान किए गए तरीके से ऐसे गवाह का खंडन करने के लिए उपयोग किया जा सकता है; और जब इस तरह के बयान के किसी भी हिस्से का उपयोग किया जाता है, तो उसके किसी भी हिस्से का उपयोग ऐसे गवाह की पुन: परीक्षा में भी किया जा सकता है, लेकिन केवल उसके प्रतिपरीक्षा में निर्दिष्ट किसी भी मामले को समझाने के उद्देश्य से। (2) इस धारा की कोई बात भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1 वर्ष 1872) की धारा 32 के खंड (1) के उपबंधों के अन्तर्गत आने वाले किसी कथन को लागू करने वाली या उस अधिनियम की धारा 27 के उपबंधों को प्रभावित करने वाली नहीं समझी जाएगी।

21. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धनबल और अन्य बनाम तमिलनाडु राज्य, ए.आई.आर. 1980 एस.सी. 628 के मामले में माना है कि धारा 164 द०प्र०स० के तहत बयान को पुष्टिकारक साक्ष्य के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।

22. प्रस्तुत मामले में, यह घटना 11.11.2005 को सुबह 9:30 बजे ग्राम-गढ़ी ठाकुरान के पास प्रेम सिंह के नाले के मोड़ पर और राम नगर और छिचीकाऊ की ओर जाने वाली पक्की सड़क के पास हुई थी। छिचाऊ मृतकों, गवाहों और आरोपी व्यक्तियों का मूल स्थान है। अभियोजन पक्ष का मामला यह है कि मृतक को पहले आरोपी प्रमोद कुमार @ पप्पू ने अपनी बंदूक से गोली मारी थी, जब वह मोटरसाइकिल पर बैठा था और उसे आरोपी व्यक्तियों द्वारा रोका गया था जब वह स्थानीय बाजार (पैठ) के रास्ते पर था और गवाह विनोद और नीरज अपनी अलग-अलग मोटरसाइकिलों पर उसके पीछे थे। मोटरसाइकिल पर बैठने के दौरान पहली गोली लगने के बाद वह नीचे गिर गया और उसके बाद अन्य आरोपियों ने उसे फिर से गोली मार दी, जब वह बच्चू सिंह के पास के खेत में गिर गया। नक़्शा नज़री को विवेचनाधिकारी (अ०सा०-6) द्वारा प्रदर्श क-10 के रूप में साबित किया जाता है। राजेंद्र पाल सिंह (अ०सा०-6) द्वारा उक्त खेत में खून से सनी मिट्टी पाई गई थी, जो मामले के पहले विवेचनाधिकारी हैं। नक़्शा नज़री में पक्की सड़क से सटी गंदगी वाली सड़क पर कारतूस के दो खाली खोल भी दिखाए गए हैं। अ०सा०-6 विवेचनाधिकारी ने स्वीकार किया है कि कारतूस के खाली खोल खेत या पक्की सड़क पर नहीं मिले थे, जहां मृतक को आग्नेयास्त्रों से घायल होने की बात कही गई थी। तथापि, घटना की तारीख को बच्चू सिंह के खेत से एकत्र की गई रक्त से सनी मिट्टी की विधि विज्ञान प्रयोगशाला रिपोर्ट में मानव रक्त पाया गया था और उस आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि शव बच्चू सिंह के खेत में पड़ा था, जो पक्की सड़क के निकट है।

23. यदि हम उक्त चश्मदीद गवाहों के बयान की सावधानीपूर्वक जांच करते हैं, जो अभियोजन मामले की शीट एंकर है, तो हम पाते हैं कि इसमें अंतर्निहित कमजोरियां हैं और धारा 161 द०प्र०स० के तहत बयानों में बताए गए सुधार किए गए हैं। अ०सा०-1, विनोद कुमार दीक्षित मामले के स्टार गवाह हैं और वह मामले के सूचनाकर्ता भी हैं और अपनी लिखित रिपोर्ट में उन्होंने कहा है कि घटना के समय, वह अपने चचेरे भाई के साथ अपने पिता के पीछे मोटरसाइकिल पर सवार होकर आ रहे थे। हालांकि उसके पिता पैठ जा रहे थे और वह भी उस तारीख को पचोखरा में पैठ जाने वाले थे। उसे इस बात की जानकारी नहीं थी कि उसके पिता किस उद्देश्य से पैठ जा रहे हैं, लेकिन वह सब्जियां खरीदने के उद्देश्य से पैठ जा रहा था। घटना का समय 11.11.2005 को प्रात लगभग 9.30 बजे दर्शाया गया है। उसने अपनी लिखित रिपोर्ट में कहा कि पहले आरोपी व्यक्तियों ने उसके पिता को रोका और प्रमोद ने उसे जान से मारने की धमकी दी। सभी आरोपी व्यक्ति आग्नेयास्त्रों (देसी पिस्तौल) से लैस थे। जैसे ही उसके पिता को स्थिति समझ में आई, प्रमोद ने उसके पिता पर गोली चला दी जो उन्हें लगी और वह पास के खेत में गिर गए और इसके बाद तेजवीर, विकास और हरिओम ने भी उन पर गोलियां चलाईं, जबकि सूचनाकर्ता और गवाहों ने अपनी गवाही में सुधार किया था और कहा था कि पहली गोली लगने के बाद, उसके पिता मोटरसाइकिल से जमीन पर गिर गए और उसके बाद वह कुछ कदम दौड़ते हुए पास के बच्चू सिंह के खेत में गिर गए, जहां आरोपी व्यक्तियों ने उन पर अपने-अपने देसी पिस्तौल से गोलियां चलाईं। प्राथमिकी में, अ०सा०-1 ने कहा है कि प्रमोद द्वारा अपने पिता पर पहली गोली चलाने के बाद, तीनों आरोपी व्यक्तियों तेजवीर, विकास और हरिओम ने उस पर गोलियां चलाईं जब वह खेत में गिर गया, लेकिन अ०सा०-1 के रूप में उसने अपने मुख्य परीक्षा में कहा, जब उसके पिता प्रमोद की बंदूक की गोली लगने के बाद खेत में गिर गए। चारों आरोपियों ने उस पर अंधाधुंध गोलियां चलाईं। जब वह मदद के लिए चिल्लाया तो पांचवें व्यक्ति ने, जिसका नाम उसे ज्ञात नहीं था, उसकी ओर गोली चला दी, जिसमें वह बाल-बाल बच गया। अ०सा०-2 राजपाल सिंह, अ०सा०-3 नीरज ने यह भी बताया कि चार आरोपियों ने मृतक पर गोली चलाई, जब वह पहली गोली लगने के बाद खेत में गिर गया। यह प्राथमिकी संस्करण और धारा 161 द०प्र०स० के तहत गवाहों के बयान से अभियोजन साक्ष्य में एक महत्वपूर्ण सुधार है।

24. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने राम ब्रिक्ष @ जालिम बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, ए.आई.आर. 2016 एस.सी. 2381, टोम्सो ब्रूनो और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2015) 7 एस.सी.सी. 178 (एस.सी.) में कहा कि जहां गवाह द्वारा न्यायालय के समक्ष अपने बयान में सुधार किया गया था, वहां धारा 161 द०प्र०स० के तहत विवेचनाधिकारी को जो किया गया था, उस पर भरोसा नहीं किया जा सकता है। विमल सुरेश कांबले बनाम चालुवेरा पिनाके (2003) 3 एस.सी.सी. 175 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि अभियोजन पक्ष एक गवाह के माध्यम से मुकदमे के दौरान एक तथ्य साबित करने की मांग नहीं कर सकता है, जिसे ऐसे गवाह ने जांच के दौरान पुलिस को नहीं बताया है। उक्त सुधरे हुए तथ्य के संबंध में उस गवाह के साक्ष्य का कोई महत्व नहीं है।

25. अ०सा०-1, अ०सा०-2 और अ०सा०-3 जिरह के दौरान यह नहीं बता सके कि मृतक किस स्थिति में कृषि क्षेत्र में पड़ा था, चाहे वह 'चेहरा उल्टा स्थिति' में था या 'पीठ के बल' स्थिति में। अ०सा०-1 यह नहीं बता सका कि गोली लगने के बाद मृतक छटपटा रहा था या नहीं। इन गवाहों के बयान में यह तथ्य सामने आया है कि आरोपी प्रमोद ने, जब वह अपनी मोटरसाइकिल पर बैठा था, मृतक पर गोली चलाई, और गढ़ी ठाकुरान के पास सड़क पर आरोपी व्यक्तियों द्वारा उसका सामना किया गया था, लेकिन विवेचनाधिकारी द्वारा अ०सा०-1 के कहने पर घटना की शाम को घटनास्थल का दौरा करने पर कोई खून का धब्बा नहीं मिला। यहां तक कि अ०सा०-1 ने भी अपने बयान में कहा कि सड़क पर खून का कोई धब्बा नहीं था। विवेचनाधिकारी के अनुसार, अ०सा०-1 की निशानदेही पर घटना के दिन जब वह मौके पर पहुंचे तो मौके से कारतूस के दो खाली खोल बरामद किए गए। कारतूस के गोले न तो उस सड़क से बरामद किए गए हैं जिस पर मृतक को पहली गोली लगी थी और न ही उस खेत से जहां उसे अन्य दो आग्नेयास्त्र शॉट मिले थे, जैसा कि शव परीक्षण रिपोर्ट और गवाहों के बयान से स्पष्ट है। विवेचनाधिकारी ने बताया कि घटनास्थल के पास पक्की सड़क और गंदगी वाली सड़क से कारतूस के दो खोल बरामद किए गए। अ०सा०-1 ने अपने साक्ष्य में यह भी स्वीकार किया है कि जिस खेत में मृतक घायल अवस्था में पड़ा था, वहां से कारतूस का कोई खाली खोल बरामद नहीं हुआ था। बरामदगी के सरकारी गवाह नवल किशोर पचौरी और वीरेंद्र कुमार पचौरी को मुकदमे के दौरान साक्ष्य के रूप में पेश नहीं किया गया। तथ्य के गवाहों ने भी बयान के बारे में अपने बयान में यह नहीं बताया है कि शव के किस हिस्से को सबसे पहले आरोपी प्रमोद द्वारा कथित रूप से गोली मारी गई थी। अ०सा०-1 ने कहा कि आरोपी ने अपने पिता को उस समय गोली मार दी थी जब वह खेत में पड़ा था। नक़्शा नज़री (प्रदर्श क-10) में पक्की सड़क जिस पर मृतक को कथित तौर पर आरोपी प्रमोद कुमार @ पप्पू द्वारा पहली गोली मारी गई थी, वह सीधी सड़क नहीं है, बल्कि यह घुमावदार है और घटनास्थल को 'बी' के रूप में चिह्नित किया गया है। इसलिए, अ०सा०-1 और अ०सा०-3 का बयान कि वे अपनी मोटरसाइकिल पर मृतक के पीछे आ रहे थे और आरोपी प्रमोद कुमार @ पप्पू द्वारा मृतक को इस्तेमाल किए गए धमकी भरे शब्दों को सुना और जब वह अपनी मोटरसाइकिल पर बैठा था, आरोपी प्रमोद कुमार @ पप्पू को मृतक पर पहली गोली चलाते हुए देखा था, आत्मविश्वास को प्रेरित नहीं करता है। जैसा कि सड़क को घुमावदार दिखाया गया है, जहां घटना शुरू होने की बात कही गई है, पीछे से आने वाला व्यक्ति उक्त घुमावदार सड़क पर जो कुछ भी हुआ उसे देखने और सुनने की स्थिति में नहीं होगा। यह नक़्शा नज़री विवेचनाधिकारी द्वारा अ०सा०-1 के बिंदु पर तैयार किया गया है।

26. शव परीक्षण रिपोर्ट में अंकित मृतक की चोटों और गवाहों के बयान के अवलोकन पर, ऐसा प्रतीत होता है कि पहली गोली मृतक के सिर में लगी थी और वह भी बिंदु रिक्त सीमा से क्योंकि यह बन्दूक की चोट काले होने और गोदने से घिरी हुई थी। गोली का एक टुकड़ा कपाल गुहा में फंसा हुआ पाया गया और आंतरिक जांच में, लौकिक और पश्चकपाल हड्डियां टूटी हुई पाई गईं। गर्दन की टी-8 से टी-10 कशेरुका खंडित पाई गई। खोपड़ी की इन गंभीर चोटों की गंभीर प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, यह समझना बहुत

मुश्किल है कि इन चोटों को प्राप्त करने के बाद मोटरसाइकिल से गिरने के बाद, मृतक उठ गया होगा और कुछ कदम दौड़ने की कोशिश की होगी और अंततः पास के खेत में गिर गया होगा जहां उसे फिर से आरोपी व्यक्तियों द्वारा मारा गया था और उसकी छाती पर दो आग्नेयास्त्र की चोटें आई थीं।

27. गवाहों ने कहा है कि एक आरोपी जिसका नाम बाद में ज्ञात नहीं था, यह पाया गया कि वह योगेश का साला था, उसने अ०सा०-1 को मारने के इरादे से अपनी बन्दूक खोली थी, जिससे वह बाल-बाल बच गया लेकिन जांच के दौरान उस व्यक्ति का पता नहीं लगाया जा सका और साक्ष्य में उसे कोई भूमिका नहीं सौंपी गई है। इस तथ्य ने तथ्य के साक्ष्य के साथ-साथ चिकित्सा साक्ष्य के आधार पर स्थापित किया है कि मृतक को घटना में तीन गोलियां लगी थीं और वह बहुत गंभीर स्थिति में था, लेकिन गवाहों अ०सा०-1 और अ०सा०-2 का आचरण जो उसका बेटा और भतीजा है, उसे घटनास्थल से आगरा के सभी हिस्सों में ले जा रहा है, कामायनी अस्पताल में उनकी जांच कराना स्वाभाविक नहीं लगता। उन्होंने न तो फिरोजाबाद में और न ही टूंडला में उसकी जांच की और सीधे अपने संस्करण के अनुसार आगरा पहुंचे। तथापि, मृतक के शव के साथ कामायनी अस्पताल, आगरा में उनके आवागमन और उस स्थान पर वापस जाने के संबंध, जहां जांच की गई है, में कोई दस्तावेजी साक्ष्य सामने नहीं आया है। गवाहों का आचरण उनके अपने संस्करण के अनुसार है कि कामायनी अस्पताल, आगरा के डॉक्टरों द्वारा घायल को 'मृत' घोषित करने के बाद वे पचोखरा वापस आए और शव को थाना में पेश करने के बजाय पेट्रोल पंप के पास एक स्कूल के सामने रख दिया, जो उक्त स्थान के आसपास था। इस आचरण से पता चलता है कि घटनाओं का क्रम, साथ ही गवाहों के बयान में, उस तरीके से नहीं हुआ था, जैसा कि प्राथमिकी में वर्णित है। अ०सा०-2 राजपाल को चश्मदीद गवाह के तौर पर पेश किया गया है और उसे और ओमप्रकाश को प्राथमिकी में गवाह के तौर पर नामजद किया गया है। प्राथमिकी में यह तथ्य सामने आया है कि घटना के समय राजपाल और ओमप्रकाश पास के खेतों में काम कर रहे थे और उन्होंने मौके पर पहुंचकर घटना को देखा था। अ०सा०-2 ने अपने साक्ष्य में घटना का ग्राफिक विवरण देने की कोशिश की है, लेकिन स्वीकार किया है कि उसका कोई भी क्षेत्र आस-पास नहीं पड़ा था। वह गांव चतुरपुरा का रहने वाला है। वह ओमप्रकाश के खेत में काम कर रहा था और वह ओमप्रकाश के साथ छपाई (मिट्टी से आलू के पौधों को ढंकना) में लगा हुआ था और मौके पर पहुंच गया था। हत्या के घटनास्थल की नक़्शा नज़री में विवेचनाधिकारी द्वारा ओमप्रकाश का कोई क्षेत्र इंगित नहीं किया गया है।

28. हत्या के स्थान के नक़्शा नज़री में अर्थात घटना को ग्राम गढ़ी ठकुरान के पास पक्की सड़क पर घटित दिखाया गया है। जिस स्थान पर मृतक को पहली गोली लगने के बाद गिरने और उसके बाद दो अन्य शॉट लगने की बात कही गई थी, उसे बच्चू सिंह के खेत में दिखाया गया है। यह सड़क मृतक और दो गवाहों के गांव तारागढ़ और छिकाऊ से संपर्क करती है, जो दक्षिण की ओर गढ़ी ठाकुरान के निवासी प्रेम सिंह के खांचे तक है और इसके पूर्व की ओर एक खडंजा सड़क दिखाई गई है जो इस खडंजा सड़क के पश्चिम की ओर पक्की सड़क के साथ संचार करती है, एक मंदिर का संकेत दिया गया है। अ०सा०-2 ने

अपने साक्ष्य में कहा है कि जब यह घटना हुई तो वह मंदिर के पास था और वहां से वह मौके पर पहुंचा। उसने देखा था कि बच्चू सिंह के खेत में सभी आरोपियों ने मृतक पर गोलियां चलाई थीं। वह यह नहीं बता सकता था कि उसे कितनी गोलियां लगीं। आरोपी सफेद रंग की मारुति कार से मौके पर पहुंचे थे। उनका अपना गांव चतुरपुरा घटनास्थल से 1 से 1-1/2 किलोमीटर दूर स्थित है। घटना के समय वह और ओमप्रकाश जिस खेत में काम कर रहे थे, वह ओमप्रकाश के भतीजे का है। यह मैदान घटनास्थल से लगभग 200 कदम दूर है और उस क्षेत्र से घटनास्थल स्पष्ट दिखाई देता है। जिस सड़क पर यह घटना हुई, उसके दक्षिण में ओमप्रकाश का खेत है। यह खेत सड़क के पश्चिम में स्थित नहीं था। प्रेम सिंह और मंदिर का खांचा मुख्य सड़क के पश्चिम में स्थित है। मारुति कार प्रेम सिंह के खांचे के पास खड़ी थी। उन्होंने मृतक द्वारा पहनी गई चप्पलें नहीं हटाई थीं। उन्होंने घटनास्थल पर टेम्पो में मृतक को लिटाने में मदद नहीं की थी। अ०सा०-1 ने अपनी जिरह में यह भी बताया है कि जब उसके पिता खेत में गिर गए तो गवाह राजपाल और ओमप्रकाश घटनास्थल पर पेश हुए। उन्होंने अपने चचेरे भाई राम नरेश दीक्षित से लिखित रिपोर्ट मंगवाई थी। ओमप्रकाश और राजपाल जिस खेत में काम कर रहे थे, वह घटनास्थल से 50 से 60 मीटर की दूरी पर है और उन्होंने विवेचनाधिकारी को उस जगह का संकेत दिया था। अ०सा०-1 ने स्वीकार किया है कि राजपाल उसके साथ धारा 307 भ०द०वि० के तहत एक मामले में सह-आरोपी है। उन्होंने यह भी कहा कि मृतक के शव की जांच पेट्रोल पंप के सामने की गई थी, जहां शव को आगरा से वापस ले जाने से रोक दिया गया था। तथापि, विवेचनाधिकारी ने पंचनामा रिपोर्ट में कहा है कि यह थाने के निकट किया गया था। विवेचनाधिकारी, अ०सा०-1 और 2 के बयान से यह तथ्य स्पष्ट है कि ओमप्रकाश का कोई भी क्षेत्र, जहां अ०सा०-2 और ओमप्रकाश को काम करने के लिए कहा गया था, घटनास्थल के आसपास नहीं है। ओमप्रकाश का मैदान प्रत्यक्षदर्शियों के बयान में उस सड़क से कुछ दूरी पर स्थित है जहां घटना हुई थी और अ०सा०-2 द्वारा बताए गए अनुसार मुख्य सड़क के पश्चिम की ओर नहीं बल्कि पक्की सड़क के दक्षिण की ओर नाली और मंदिर स्थित हैं। इसलिए, घटना के समय अ०सा०-2 की उपस्थिति अत्यधिक संदिग्ध है। दूसरे गवाह ओमप्रकाश को विचारण के दौरान पेश नहीं किया गया है।

29. अ०सा०-1 के बयान में प्राथमिकी संस्करण से अदालत के समक्ष शपथ गवाही में सुधार और धारा 161 द०प्र०स० के तहत अपने बयान से अ०सा०-3 नीरज द्वारा किए गए सुधार को उनके पिछले संस्करण में कमी को भरने के उद्देश्य से किया गया प्रतीत होता है जैसा कि धारा 161 द०प्र०स० के तहत दर्ज किया गया है। मारुति कार की गैर-ट्रैक्टेबिलिटी, जिसके द्वारा आरोपी व्यक्ति मौके पर 'उभरे', अ०सा०-1 और अ०सा०-3 की यह समझाने में विफलता कि गवाहों और मृतक की मोटरसाइकिलों को कब और किसके द्वारा घर लाया गया था, मौके पर घटनाओं के क्रम में सुधार, उस स्थिति का स्पष्टीकरण न देना जिसमें मृतक तीन गोलियों की चपेट में आने के बाद पड़ा था, अ०सा०-1 और अ०सा०-3 द्वारा मृतक को फिरोजाबाद और टूंडला में स्थित नजदीकी अस्पतालों में ले जाने के बजाय सीधे आगरा क्यों ले जाया गया, मृतक के शव को थाना में पेश करने के बजाय थाना के पास पेट्रोल पंप के सामने रखवाया गया, तथ्य के इन गवाहों

की गवाही को न केवल संदिग्ध बनाता है बल्कि घटना के समय मौके पर उनकी उपस्थिति संदिग्ध प्रतीत होती है, इस तथ्य के बावजूद कि उन्होंने घटना का चश्मदीद वर्णन देने की कोशिश की है और घटना के समय मौके पर उनकी उपस्थिति और उनके चश्मदीद गवाह का विवरण भी अत्यधिक संदिग्ध हो जाता है और विश्वास के योग्य नहीं पाया जाता है। इसलिए, धारा 302, 147, 148 भ०द०वि० के तहत आरोप के लिए प्रस्तुत मामले में अभियोजन मामला आरोपी अपीलकर्ताओं के संबंध में उचित संदेह से परे साबित नहीं होता है और वे संदेह का लाभ देकर इन सभी आरोपों से बरी होने के पात्र हैं।

30. प्रस्तुत अपीलकर्ताओं के संबंध में शस्त्र अधिनियम की धारा 25 के तहत आरोपों के लिए भी यही स्थिति है, जिसे धारा 147, 148, 302/149 भ०द०वि० के तहत आरोप के साथ विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा भी विचारित किया गया है क्योंकि कहा जाता है कि एक देशी पिस्तौल को प्रस्तुत अपीलकर्ताओं में से प्रत्येक की निशानदेही पर बरामद किया गया है। पुलिस हिरासत में साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अंतर्गत गिरफ्तारी के बाद उनके प्रकटीकरण बयान के आधार पर अभियोजन पक्ष के कथन के अनुसार अपराध करने में प्रयुक्त किए गए थे।

31. इन आग्नेयास्त्रों को उनकी गिरफ्तारी के बाद उनके तत्काल कब्जे से बरामद नहीं किया जाता है। विद्वान सी.जे.एम. के आदेश से प्रमोद कुमार @ पप्पू की पुलिस हिरासत मिलने के बाद उनके पास से कथित तौर पर एक बंदूक बरामद की गई है। विधि विज्ञान प्रयोगशाला रिपोर्ट के अनुसार तीन आग्नेयास्त्रों में से घटनास्थल के पास बरामद एक खाली कारतूस का खोल आरोपी तेजवीर की निशानदेही पर कथित तौर पर बरामद बंदूक से दागा गया पाया गया है। अभियुक्तों की निशानदेही पर बरामद किसी भी हथियार से कारतूस का दूसरा खाली खोल दागा नहीं गया। अभियुक्तों द्वारा उनकी उपस्थिति के संबंध में इंगित किए जाने पर कथित रूप से बरामद किए गए इन आग्नेयास्त्रों की बरामदगी में किसी भी सरकारी गवाह को शामिल नहीं किया गया है। इसलिए, विचारण के दौरान पेश किए गए साक्ष्य के विचार, कार्यकाल और प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, अपराध में कथित रूप से इस्तेमाल किए गए आग्नेयास्त्रों की बरामदगी भी प्रस्तुत मामले में उचित संदेह से परे साबित नहीं हुई है।

32. ऊपर की गई चर्चाओं के मद्देनजर, हमने पाया है कि आरोपी अपीलकर्ताओं के खिलाफ आरोपों को साबित करने के लिए रिकॉर्ड पर कोई ठोस और विश्वसनीय सबूत नहीं है, जिसके लिए उन पर विचारण न्यायालय द्वारा मुकदमा चलाया गया, दोषी ठहराया गया और उन्हें सजा सुनाई। आरोपों के संबंध में अभियोजन का मामला, जिसके लिए आरोपी अपीलकर्ताओं पर विचारण न्यायालय द्वारा मुकदमा चलाया जाता है और दोषी ठहराया जाता है, उचित संदेह से परे साबित नहीं होता है। इसलिए, हमें इन अपीलों को स्वीकार करने में कोई हिचकिचाहट नहीं है।

33. तदनुसार, प्रस्तुत अपीलों की अनुमति दी जाती है।

34. विचारण न्यायालय के आक्षेपित निर्णय और आदेश, जैसा कि पूर्वोक्त है, को रद्द किया जाता है।

35. अपीलकर्ता तेजवीर, हरिओम और प्रमोद कुमार @ पप्पू उन सभी आरोपों से बरी किये जाते हैं, जिनके लिए उन पर मुकदमा चलाया गया है। उन्हें जेल हिरासत से, जब तक कि किसी अन्य मामले में वांछित न हो, संबंधित विचारण

न्यायालय की संतुष्टि के लिए धारा 437 द०प्र०स० के अनुपालन के अधीन, तुरंत रिहा किया जाएगा। सामग्री प्रदर्श का निपटान अपील की अवधि बीत जाने के बाद और यदि न्यायालय द्वारा उक्त अपील या याचिका के निपटान के बाद निर्णय के विरुद्ध कोई अपील या याचिका दायर की जाती है, तो उसके बाद उसका निपटान किया जाएगा।

36. विचारण न्यायालय इस फैसले के अनुपालन में संबंधित जेल को रिहाई आदेश जारी करेगा।

37. इस आदेश की प्रमाणित प्रति के साथ निचली अदालत के रिकॉर्ड को अनुपालन के लिए संबंधित विचारण न्यायालय को भेजा जाए।

(2023) 3 ILRA 1217

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 01.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सुरेन्द्र सिंह-I, जे.

1994 की आपराधिक अपील संख्या 1441

बबलू ... बुला

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ... विरोधी पार्टी

अपीलकर्ता के लिए वकील: श्री जी.एस.जोशी, श्री मदन मोहन चौरसिया, श्री सर्वेश कुमार दुबे

विरोधी पक्ष के लिए वकील: ए.जी.ए.

अपराधिक अपील - भारतीय दंड संहिता, 1860- धारा 325 के अंतर्गत दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील - पूर्व व्यतीत कारावास की अवधि की सजा - 2,000 रुपये का जुर्माना - आरोप - विवाद के पश्चात अपीलकर्ता ने देशी पिस्तौल से गोली चलाई - छर्रे लगने से ममता और वादी के पिता घायल - धारा 320 आईपीसी - गंभीर चोट - हड्डी या दांत का फ्रैक्चर या अव्यवस्था - जीवन को खतरा, गंभीर शारीरिक दर्द भी सम्मिलित-गैर इरादतन हत्या और गंभीर चोट - एक सूक्ष्म रेखा - एकल प्रत्यक्षदर्शी की गवाही - साक्ष्य की गुणवत्ता, मात्रा नहीं, पर्याप्तता निर्धारित करती है - धारा 325 आईपीसी के अंतर्गत दोषसिद्धि के लिए पर्याप्त माना गया - आरोपित जुर्माना में वृद्धि की गई - इस संशोधन के साथ अपील का निस्तारण किया गया। (पैरा 18, 19 और 33)

आयोजित: धारा 320 आईपीसी के खंड 7 में, हड्डी या दांत का फ्रैक्चर या अव्यवस्था गंभीर चोट की परिभाषा में सम्मिलित है। होरी लाल और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 1970 एससी 1969 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि धारा 320 आई.पी.सी. के खंड 7 की प्रयोज्यता के लिए, यह आवश्यक नहीं है कि हड्डी पूरी तरह से कटी हुई हो या दरार बाहरी सतह से भीतरी सतह तक फैली हो या हड्डी के किसी टुकड़े का विस्थापन हो। यदि हड्डी के कटने या टूटने से कोई ब्रेक लग जाता है या उसमें कोई दरार या दरार आ जाती है, तो यह धारा 320 एल.पी.सी. के खंड 7 के अर्थ में फ्रैक्चर माना जाएगा। (पैरा 18)

आईपीसी की धारा 320 की धारा 8 में, जीवन को खतरे में डालना, गंभीर शारीरिक दर्द को गंभीर चोट की परिभाषा में सम्मिलित किया गया है। कर्नाटक राज्य बनाम पराशराम कल्लप्पा घेवड़े, 2007 सीआरएलजे 479 (कर) में, यह माना गया है कि उपरोक्त खंड दो चीजों की बात करता है:

(1) कोई भी चोट जो जीवन को खतरे में डालती है और (2) कोई भी चोट जो पीड़ित को 20 दिनों के अंतराल के दौरान (ए) गंभीर शारीरिक दर्द में रखती है, या (बी) अपने सामान्य कार्यों को करने में असमर्थ बनाती है। कुछ चोटें जो पहले सात खंडों में उल्लिखित चोटों की तरह नहीं हैं, स्पष्ट रूप से मामूली चोट से अलग हैं, फिर भी अधिक गंभीर हो सकती हैं। इस प्रकार, एक घाव पीड़ित को तीव्र दर्द, लंबी बीमारी या स्थायी चोट का कारण बन सकता है। गंभीर चोट की सजा के लिए दोषसिद्धि पारित होने से पहले, धारा 320 में परिभाषित चोटों में से एक को सख्ती से सिद्ध किया जाना चाहिए, और आठवां खंड कानून के सामान्य नियम का अपवाद नहीं है कि दंडात्मक क़ानून को सख्ती से समझा जाना चाहिए। हत्या के बराबर न होने वाली सज़ा देने वाली गैर इरादतन हत्या और गंभीर चोट के बीच की रेखा बहुत पतली है। एक वाद में चोटें ऐसी होनी चाहिए जिससे मौत होने की संभावना हो; दूसरे में, चोटें ऐसी होनी चाहिए जिससे जीवन को खतरा हो। (पैरा 19)

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने लक्ष्मीबाई (मृत) बनाम भगवंतबूरा (मृत) बनाम लक्ष्मीबाई (मृत) एआईआर 2013 एससी 1204 में एकमात्र प्रत्यक्षदर्शी की गवाही के आधार पर दोषसिद्धि से संबंधित कानून को प्रतिपादित किया कि गवाहों के साक्ष्य की सराहना के वाद में, यह गवाहों की संख्या नहीं है, बल्कि उनके साक्ष्य की गुणवत्ता है जो महत्वपूर्ण है, क्योंकि साक्ष्य के कानून में कोई आवश्यकता नहीं है कि किसी तथ्य को साबित/असत्य सिद्ध करने के लिए किसी विशेष संख्या में गवाहों की जांच की जाए। यह एक समय-सम्मानित सिद्धांत है, कि साक्ष्य को तौला जाना चाहिए और गिना नहीं जाना चाहिए। परीक्षण यह है कि क्या सबूत में विश्वास की अंगूठी है, क्या यह ठोस, विश्वसनीय और भरोसेमंद है या नहीं। कानूनी प्रणाली ने गवाहों की बहुलता के बजाय प्रत्येक गवाह द्वारा प्रदान किए गए मूल्य पर जोर दिया है।

अपील निस्तारित। (ई-14)

उद्धृत वाद सूची:

1. होरी लाल और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, AIR 1970 SC 1969
2. राज्य कर्नाटका बनाम परशराम कल्लप्पा घेवड़े, 2007 CrLJ 479 (कर्नाटका)
3. लक्ष्मीबाई (मृत) द्वारा वारिसन बनाम भागवतबुरा (मृत) द्वारा वारिसन, AIR 2013 SC 1204

<u>माननीय सुरेंद्र सिंह-प्रथम, जे.</u>

श्री सर्वेश कुमार दुबे, अधिवक्ता, श्री मदन मोहन चौरसिया का विवरण रखते हुए, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और साथ ही राज्य के लिए विद्वान ए.जी.ए. को सुना।

2. यह आपराधिक अपील 1992 के सत्र परीक्षण संख्या 698, बब्लू बनाम में नवम् अतिरिक्त जिला और सत्र न्यायाधीश, मेरठ द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 24.08.1994 के खिलाफ शुरू की गई है। उत्तर प्रदेश राज्य, 1992 की धारा 307 आई.पी.सी. के तहत केस अपराध संख्या 46 से उत्पन्न एवं धारा 27(3) शस्त्र अधिनियम, थाना- मवाना, जनपद-मेरठ,आईपीसी की धारा 307 के तहत अपीलकर्ता-अभियुक्तों को बरी करने के खिलाफ राज्य या सूचक/घायल द्वारा कोई आपराधिक अपील दायर नहीं की गई है। इस प्रकार, निचली अदालत ने आरोपी को धारा 307 आई.पी.सी. के तहत बरी करने का आदेश दिया।

3. आक्षेपित आदेश के अनुसार, ट्रायल कोर्ट ने अपीलकर्ता, बब्लू को आईपीसी की धारा 325 के तहत दोषी ठहराया है और उसे 7 महीने 20 दिन की कैद की सजा, वह अवधि जो उसने जांच और विचारण के दौरान न्यायिक हिरासत में बिताई थी, और डिफ़ॉल्ट शर्त के साथ रु. 2,000/- का जुर्माने की सजा सुनाई गई थी।

4. दिनांक 30.01.1992 को थाना-मवाना, जिला-मेरठ में सूचनादाता बब्लू गिरी द्वारा प्रस्तुत लिखित रिपोर्ट (एक्स.का.1) में उल्लिखित अभियोजन पक्ष के अनुसार, वह साकेत की दुकान पर बीड़ी का बंडल खरीदने जा रहा था। तो रघुवीर सिंह अमर सिंह को पीट रहे थे। वादी रघुवीर सिंह द्वारा किए गए हमले को देखने के लिए वहां रुक गया। इसके बाद, रघुवीर ने बब्लू गिरी पर बायाँ मुक्का मारा। शाम 4 बजे जब बब्लू गिरी दुकान से बीड़ी का बंडल खरीद कर लौट रहा था तो शाकिर के घर के पास पहुंचा तो रघुवीर ने उसे डांटते हुए कहा तुम फिर यहाँ आये हो। इसी बीच वादी के पिता जयपाल गिरि वहां पहुंच गये। बबलू ने रघुवीर द्वारा की गई पिटाई की शिकायत अपने पिता से की। जब वादी के पिता जयपाल गिरि ने रघुवीर से अपने बेटे की पिटाई का कारण पूछा, तो रघुवीर ने अपने पिता को गाली देना शुरू कर दिया। इसी बीच रघुवीर के बेटे बब्लू और शिव कुमार हाथ में देशी पिस्तौल (कट्टा) लेकर वहां पहुंच गये । जान से मारने की नियत से उन पर फायरिंग कर दी। देशी पिस्तौल का छर्रा वादी के पिता के सीने में लगा, जिससे वह घायल हो गये। छर्रे अपने घर की छत पर खड़ी सत्यपाल की बेटी कु.ममता को भी लगे, जिससे वह घायल हो गई। इसी बीच गांव के राजपाल, संता व अन्य लोग वहां पहुंच गए। उन्होंने अपीलकर्ता को वादी और उसके पिता पर गोलीबारी करते देखा। वादी बब्लू गिरी ने संबंधित थाने में लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श क.1) पेश की जिसके आधार पर प्रथम सूचना रिपोर्ट धारा 307 आई.पी.सी. एवं रघुवीर, शिव कुमार एवं बब्लू के विरूद्ध धारा 27(3) आर्म्स एक्ट पंजीकृत किया गया। इसकी चिक रिपोर्ट (प्रदर्श क.3) है । जांच एसआई फकीरे लाल वर्मा ने की। उन्होंने खून से सने कपड़े को अपने कब्जे में लेने से संबंधित रिकवरी मेमो (प्रदर्श क.2) तैयार किया । 5. घायल कु. ममता को पी.एच.सी., मवाना ले जाया गया जहां चिकित्सीय परीक्षण के दौरान पता चला कि उसकी छाती के दाहिनी ओर बंदूक की चोट लगी है। चूंकि उसकी हालत तेजी से बिगड़ रही थी, इसलिए कोई विस्तृत चिकित्सा जांच नहीं की गई और उसे जांच और विशेषज्ञ उपचार के लिए मेडिकल कॉलेज, मेरठ रेफर कर दिया गया। उन्हें 30.01.1992 को मेडिकल कॉलेज, मेरठ में भर्ती कराया गया जहां उनका ऑपरेशन किया गया। उसका बेड हेड टिकट (प्रदर्श क.5) है। घायल जयपाल सिंह का चिकित्सीय परीक्षण दिनांक 30.01.1992 को प्रातः 8.00 बजे पी.एच.सी. मवाना (प्रदर्श क 10) में कराया गया। छाती के बाहरी पहलू के बाईं ओर, निपल से 8 सेमी दूर, 1 सेमी गोल गोली का एक घाव पाया गया। बहता हुआ खून देख कर एक्स-रे की सलाह दी गई।

6. जांच अधिकारी एस.आई. फकीरे लाल वर्मा ने वादी व घायल कु.ममता और जयपाल के घटनास्थल से खून से सने कपड़े एकत्र किए। इन कपड़ों को सफेद कपड़े में लपेट कर सिल दिया और सील कर दिया और उसे कब्जे में लेने के संबंध में(प्रदर्श क.2) मेमो तैयार किया।

फिर उन्होंने घटना स्थल का साइट प्लान (प्रदर्श क.8) तैयार किया और गवाहों के बयान दर्ज

किए और जांच के दौरान एकत्र किए गए सबूतों के आधार पर आईपीसी की धारा 307 के तहत रघुवीर सिंह, अपीलकर्ता बब्लू और शिव कुमार के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया।

7. दिनांक 04.01.1993 को न्यायालय ने धारा 307 आर/डब्ल्यू 34 आई.पी.सी. के तहत आरोपी रघुवीर सिंह, बब्लू और शिव कुमार के खिलाफ आरोप तय किया। । अभियुक्त ने आरोप से इनकार किया और मुकदमे का दावा किया।

8. आरोप सिद्ध करने के लिए अभियोजन पक्ष ने घायल पी.डब्ल्यू.1 कु. ममता. का परीक्षण कराया। पी.डब्ल्यू.2 वादी बब्लू गिरी, घायल पी.डब्ल्यू.3 जयपाल गिरी, पी.डब्ल्यू.4 राजपाल, पी.डब्ल्यू.5 सांता गिरी तथ्य के गवाह के रूप में जबकि पी.डब्ल्यू.6 हेड कांस्टेबल अब्दुल सलाम, पी.डब्ल्यू.7 कांस्टेबल विनोद कुमार, पी.डब्ल्यू.8 रिकॉर्ड कीपर, द्वारकेशपुरी, रिकॉर्ड अनुभाग, मेडिकल कॉलेज, मेरठ, पी.डब्लू.9 डॉ. एस.ए.एस. माथुर, पी.डब्ल्यू.10 के जांच अधिकारी, एस.आई. फकीरे लाल वर्मा, पी.डब्ल्यू.11 डॉ. एम.डी.त्रिपाठी और पी.डब्ल्यू.12 डॉ. एन.के. वर्मा, सी.एम.ओ., मेडिकल कॉलेज, मेरठ से औपचारिक गवाह के रूप में पूछताछ की गई।

9. 28.01.1994 को अदालत ने धारा 313 सीआरपीसी के तहत अभियुक्त का बयान दर्ज किया। उन्होंने अभियोजन पक्ष के मामले से इनकार किया । उन्होंने कहा कि गवाह झूठी गवाही दे रहे हैं और पुलिस ने उनके खिलाफ झूठा मामला तैयार किया है । उन्होंने यह भी कहा कि उनके खिलाफ झूठा मामला दर्ज किया गया है । अभियुक्तों ने अपने बचाव में कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया।

10. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि ट्रायल कोर्ट ने रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्यों के बावजूद अपीलकर्ता को दोषी ठहराया है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि कु. ममता को छोड़कर तथ्य के सभी गवाह मुकर गए हैं । उसके साक्ष्यों में विरोधाभास है। इसलिए, केवल पी.डब्ल्यू 1 किमी ममता के साक्ष्य पर दोषसिद्धि कानून की नजर में खराब हैं।

11. विद्वान ए.जी.ए. क्योंकि राज्य ने आक्षेपित निर्णय और आदेश का समर्थन किया है। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि ट्रायल कोर्ट ने विधिवत साबित कानूनी सबूतों के आधार पर आरोपी-अपीलकर्ता को दोषी ठहराया है और इसमें कोई अवैधता नहीं है या आक्षेपित निर्णय और आदेश में दुर्बलता हो सकती है और अपील को अस्वीकार कर दिया।

12. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता को सुना और राज्य के लिए विद्वान ए.जी.ए. और रिकॉर्ड का अवलोकन किया।

13. अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत तथ्य के गवाह, पी.डब्लू.1 कु. ममता, पी.डब्ल्यू.2 के सूचनादाता बब्लू गिरि, पी.डब्ल्यू.3 जयपाल गिरी, पी.डब्ल्यू.4 राजपाल और पी.डब्ल्यू.5 संता गिरी ने घटना के संबंध में साक्ष्य दिए हैं। पी.डब्ल्यू.6 हेड कांस्टेबल अब्दुल सलाम ने चिक एफ.आई.आर. को साबित कर दिया है। (प्रदर्श क.3) और मामले की संस्थापना के संबंध में जी.डी. की प्रति (प्रदर्श क.4)। पी.डब्ल्यू.7 कांस्टेबल विनोद कुमार ने घायल कु. ममता और जयपाल को अस्पताल ले ले जाने और वहां उनकी चिकित्सीय जांच कराने के संबंध में अपनी गवाही दी है। पी.डब्लू.8 रिकार्ड कीपर द्वारकेशपुरी ने घायल कु.ममता को 30.01.1992 को अस्पताल में भर्ती कराया गया और 16.02.1992 को वहां से छुट्टी दे दी गई। उन्होंने यह भी कहा है कि उनका बेड हेड टिकट डॉ. एम.डी.त्रिपाठी द्वारा

तैयार किया गया था। उन्होंने उसकी मेडिकल जांच रिपोर्ट (प्रदर्श क.6) के बारे में औपचारिक साक्ष्य दिया है। पी.डब्ल्यू.10 जांच अधिकारी/एस.आई. फकीरे लाल वर्मा ने न्यायालय में अपने द्वारा प्रस्तुत साइट प्लान (प्रदर्श.क.8) एवं आरोप पत्र (प्रदर्श.क.9) को प्रमाणित कर दिया है। पी.डब्ल्यू 10 ने घायल कु.ममता और जयपाल के खून से सने कपड़ों (सामग्री विस्तार 9 से 13) को कब्जे में लेने से संबंधित रिकवरी मेमो को भी साबित कर दिया है और कहा है कि इन सामग्रियों को एक सफेद कपड़े (प्रदर्श.का11) में सील कर दिया गया था। पी.डब्ल्यू.11 डॉ. एम.डी.त्रिपाठी, जो मेडिकल कॉलेज, मेरठ में ड्यूटी पर सर्जन के रूप में तैनात थे, ने बयान दिया है कि रेफर किए जाने के बाद, घायल कु. ममता को 30.01.1992 को रात्रि 10.30 बजे भर्ती कराया गया। मेरठ के मेडिकल कॉलेज के आपातकालीन वार्ड में। पहले उसका मेडिकल परीक्षण पी.एच.सी., मवाना में कराया गया था। 31.01.1992 को सुबह उनका ऑपरेशन किया गया। पेट और छाती के बाईं ओर और जांघ और बाएं पैर के बाईं ओर और ग्लूटल क्षेत्र में, आग्नेयास्त्र छर्रों के कारण चोटें पाई गईं। पी.डब्ल्यू.11 ने यह भी कहा कि उसने उसके पेट के घायल हिस्से का ऑपरेशन किया था।

14. पेट खोलने पर पेरिटोनियम में 500 मिलीलीटर खून पाया गया। लीवर के बाएं हिस्से में आर-पार छेद हो गया था। पेट की अंदरूनी दीवार में एक छोटा छेद हो गया था । वहाँ अग्र सीमा पर 2 सेमी आकार का पाया गया। वहाँ 1 डायाफ्राम के बाईं ओर 1 सेमी आकार का घाव था। ट्यूब डालकर सीने से 250 मिलीलीटर खून निकाला गया।

15. चिकित्सा अधिकारी की राय में चोटें बंदूक की गोली के कारण लगी हो सकती हैं। उन्होंने यह भी राय दी है कि अगर घायल को समय पर चिकित्सा सहायता नहीं दी जाती और समय पर ऑपरेशन नहीं किया जाता तो लगी चोटों के कारण उसकी मौत हो सकती थी । चोटें 30.01.1992 की हो सकती थीं। पी.डब्लू.11 डॉ. एम.डी.त्रिपाठी ने बेड हेड टिकट (प्रदर्श.सी1) को भी सिद्ध किया है जो डॉ. संदीप मलिक द्वारा तैयार किया गया था। पी.डब्ल्यू.11 ने यह भी कहा है कि चोट नं. 3 और 5 में कालापन पाया गया और बंदूक की गोली के कारण जलन हुई।

16. पी.डब्ल्यू.12 डॉ. अमलेश कुमार वर्मा, जो पी.एच.सी., मवाना में मेडिकल ऑफिसर के पद पर तैनात थे और जिन्होंने कु. ममता का मेडिकल परीक्षण किया था ने साबित कर दिया कि दिनांक 30.01.1992 रात्रि 8.25 बजे कु. ममता की चोटों का मेडिकल परीक्षण उन्होंने ही कराया था। जांच के समय, उसके शरीर पर निम्नलिखित चोट पाई गई:

बंदूक की गोली का घाव, एक राउंड की 1 सेमी प्रविष्टि, जांच नहीं की गई, दाहिनी ओर छाती के सामने 15.5 सेमी ऊपर और नाभि के लिए 11.30 बजे की स्थिति में देखा, खून बह रहा है।

चूंकि मरीज की हालत बिगड़ रही थी, इसलिए विस्तृत जांच नहीं हो सकी । अन्य चोटों की विस्तृत जांच के लिए मरीज को पी.एल. शर्मा अस्पताल रेफर किया गया। आगे का उपचार और एक्स-रे चोट नं. (1) बन्दूक के कारण हुआ। निगरानी में रखा गया।

17. आईपीसी की धारा 320 के अंतर्गत गंभीर चोट को परिभाषित किया गया है जो इस प्रकार है:-

धारा 320 आई.पी.सी. केवल निम्नलिखित प्रकार की चोट को "गंभीर" के रूप में नामित किया गया है:

पहला- नपुंसकता

दूसरा- दोनों आंखों की रोशनी का स्थायी अभाव

तीसरा- किसी भी कान से सुनने की क्षमता का स्थायी तौर पर ख़त्म होना।

चौथा- जोड़ के किसी भी सदस्य का स्थायी तौर पर ख़त्म होना।

पाँचवाँ किसी सदस्य या जोड़ की शक्तियों का विनाश या स्थायी क्षीण होना।

छठा- सिर या चेहरे की स्थायी विकृति।

सातवां- हड्डी या दांत का टूटना या खिसकना।

आठवां- कोई भी चोट जो जीवन को खतरे में डालती है या जिसके कारण पीड़ित को बीस दिनों तक गंभीर शारीरिक पीड़ा होती है, या वह अपनी सामान्य गतिविधियों का पालन करने में असमर्थ होता है।

किसी व्यक्ति को तब तक गंभीर चोट पहुंचाने वाला नहीं कहा जा सकता जब तक कि चोट आईपीसी, 1860 की धारा 320 के तहत निर्दिष्ट चोट के प्रकारों में से एक न हो। इसलिए, यह न्यायालय का कर्तव्य है कि वह स्वयं निष्कर्ष दे कि चोट साधारण थी या नहीं या दुखद. न्यायालय को डॉक्टर द्वारा किए गए वर्गीकरण से कोई सरोकार नहीं है कि चोट साधारण थी या गंभीर। एक डॉक्टर को चोट की प्रकृति के संबंध में तथ्यों का वर्णन करना है और न्यायालय को यह तय करना है कि क्या डॉक्टर द्वारा वर्णित चोट की प्रकृति धारा 320 आईपीसी, 1860 की किसी भी धारा के अंतर्गत आती है।

18. आईपीसी की धारा 320 के खंड 7 में, हड्डी या दांत का फ्रैक्चर या अव्यवस्था गंभीर चोट की परिभाषा में शामिल है। **होरी लाल एवं अन्य बनाम में. यूपी राज्य, एआईआर 1970 एससी 1969,** माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि धारा 320 आईपीसी के खंड 7 के आवेदन के लिए, यह आवश्यक नहीं है कि एक हड्डी को आर-पार काटा जाए या दरार का विस्तार हो। बाहरी से भीतरी सतह तक या कि हड्डी के किसी टुकड़े का विस्थापन हो। यदि हड्डी के कटने या बिखरने से ब्रेक लगता है या उसमें कोई टूटन या दरार होती है, तो यह आईपीसी की धारा 320 के खंड 7 के अर्थ में फ्रैक्चर माना जाएगा।

19. धारा 320 आई.पी.सी. के खंड 8 में, जीवन को खतरे में डालना, गंभीर शारीरिक दर्द को गंभीर चोट की परिभाषा में शामिल किया गया है। **कर्नाटक राज्य बनाम परशराम कल्लप्पा घेवड़े, 2007 सीआरएलजे 479** में यह माना गया है कि उपरोक्त खंड दो चीजों की बात करता है: (1) कोई भी चोट जो जीवन को खतरे में डालती है और (2) कोई भी चोट जो 20 दिनों के अंतराल के दौरान पीड़ित को होती है। (ए) गंभीर शारीरिक दर्द में, या (बी) अपनी सामान्य गतिविधियों का पालन करने में असमर्थ। कुछ चोटें जो उन चोटों की तरह नहीं हैं जिनका उल्लेख पहले सात खंडों में किया गया है, स्पष्ट रूप से मामूली चोट से अलग हैं, हो सकता है फिर भी अधिक गंभीर रहें इस प्रकार, एक घाव तीव्र दर्द का कारण बन सकता है, पीड़ित को लंबी बीमारी या स्थायी चोट, हालांकि यह पहले सात खंडों में से किसी में भी नहीं आता है। गंभीर चोट की सजा के लिए दोषसिद्धि पारित करने से पहले, धारा 320

में परिभाषित चोटों में से एक को सख्ती से साबित किया जाना चाहिए, और आठवां खंड कानून के सामान्य नियम का अपवाद नहीं है कि दंडात्मक क़ानून को सख्ती से समझा जाना चाहिए।

गैर इरादतन हत्या और गंभीर चोट के बीच की रेखा बहुत पतली है। एक मामले में चोटें ऐसी होनी चाहिए जिससे मृत्यु होने की संभावना हो; दूसरे में, चोटें ऐसी होनी चाहिए जिससे जीवन खतरे में पड़ जाए।

20. घायल पी.डब्लू.1 कु. ममता ने 26.03.1993 को अपने साक्ष्य में बताया कि घटना लगभग दो महीने पहले हुई थी। जयपाल और रघुवीर के बीच झगड़ा होने लगा। उनके झगड़ने की आवाज सुनकर वह अपने घर की छत पर गई जहां उसने देखा कि आरोपी शिव कुमार (मृतक) और अपीलकर्ता बब्लू अपने हाथों में देशी पिस्तौल (कट्टा) लिए हुए थे। अभियुक्त-अपीलकर्ता, बब्लू और अभियुक्त, शिव कुमार ने अपने हाथों में देशी पिस्तौल से गोलीबारी की। अभियुक्त-अपीलकर्ता, बब्लू की देशी पिस्तौल (कट्टे) से गोली उसे लगी और अभियुक्त, शिव कुमार की गोली जयपाल को लगी। गवाह ने कहा कि आरोपी-अपीलकर्ता ने अपना हाथ उठाया और देशी पिस्तौल (कट्टा) से गोली चला दी जो उसे तब लगी जब वह छत पर खड़ी थी। आरोपी ने जानबूझकर उस पर और जयपाल पर देशी पिस्तौल (कट्टे) से फायर किया था। उसकी मेडिकल जांच करायी गयी. वह 18 दिनों तक अस्पताल में भर्ती रहीं।

21. पी.डब्लू.1 ने अपनी जिरह में कहा कि घटना के समय, सूचनादाता, बब्लू और उसके पिता, जयपाल, शाकिर की दुकान के सामने खड़े थे। जयपाल और उसके बेटे बब्लू के बीच की दूरी 2 फीट थी, आरोपी उससे करीब 3 फीट की दूरी पर खड़े थे। आरोपी बब्लू ने अपने उठे हुए हाथ में देशी पिस्तौल (कट्टा) पकड़कर गोली चलाई। पी.डब्ल्यू.1 कु.ममता ने अपनी जिरह में आगे कहा है कि उसके शरीर से खून निकल रहा था जो उसके कपड़ों पर फैल गया था। जांच अधिकारी/दारोगा ने उसके खून से सने कपड़ों को अपने कब्जे में ले लिया था. पी.डब्ल्यू.1 ने अपनी जिरह में आगे कहा है कि आरोपी, बब्लू उसके गांव का निवासी है वह उसे पहले से जानती थी। दूसरों की दिशा उन्होंने आरोपियों का नाम बताने से इनकार किया है। उसने कहा कि उसने आरोपी को अपने घर की छत से देखा है। इस प्रकार घायल पी.डब्ल्यू.1 ने अपनी गवाही से घटना की तिथि, समय एवं स्थान को सिद्ध कर दिया है। उसने यह भी बयान दिया है कि जान से मारने की नियत से आरोपी बब्लू ऊपर उठे हाथ में देशी पिस्तौल (कट्टा) लेकर फायरिंग कर रहा था। देशी पिस्तौल (कट्टा) से चली गोली उसे लगी जिससे वह घायल हो गई, जिससे खून बहने लगा और उसके कपड़ों पर फैल गया। पी.डब्ल्यू.1 ने यह भी साबित किया है कि घटना के बाद, उसके चाचा और भाई उसे पुलिस स्टेशन ले गए जहां से उसे मेरठ मेडिकल कॉलेज ले जाया गया जहां उसे भर्ती कराया गया और 18 दिनों तक इलाज किया गया।

22. पी.डब्लू.2 बब्लू गिरी, जो घायल जयपाल गिरी का बेटा है, ने दिनांक 09.07.1993 को अपने साक्ष्य में बताया है कि लगभग डेढ़ साल पहले, घटना दोपहर 4 बजे हुई थी। वह शाकिर की दुकान से बीड़ी का बंडल खरीदने गया था। रास्ते में शोर मच रहा था और झगड़ा हो रहा था। झगड़ा कर रहे लोगों ने उसे वहां से चले जाने को कहा। उन्होंने उसके पेट पर मुक्कों से

वार किया। इसी बीच उसके पिता भी वहां आ गये जहां झगड़ा हो रहा था। उन्होंने झगड़ा कर रहे लोगों से पूछा कि उन्होंने उनके बेटे के साथ मारपीट क्यों की। चल रही धक्का-मुक्की में उनके पिता को गोली लग गयी। घटना की रिपोर्ट उन्होंने संबंधित थाने में दर्ज कराई। पी.डब्ल्यू.2 ने इस बात से इनकार किया कि उसने खुद इस घटना को नहीं देखा है। पी.डब्ल्यू.1 ने लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श.क.1) को साबित किया। उसने आगे कहा कि वह यह नहीं देख सका कि किसने देशी पिस्तौल (कट्टा) से गोली चलाई, जिससे उसके पिता घायल हो गए। पी.डब्ल्यू.2 ने आगे बताया कि जांच अधिकारी/उप-निरीक्षक ने उसके पिता के खून से सने कपड़े ले लिए थे और उसका रिकवरी मेमो तैयार किया था, जिस पर पी.डब्ल्यू.2 द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे, जिसे उन्होंने (प्रदर्श.क.2) के रूप में साबित किया था। इस प्रकार, पी.डब्ल्यू.2 बब्लू गिरि ने अपने बयान से उस घटना की तारीख, समय और स्थान को साबित कर दिया जिसमें उसके पिता को आग्नेयास्त्र से चोट लगी थी, लेकिन उसने गोलीबारी की घटना में अपीलकर्ता की संलिप्तता को साबित नहीं किया है।

23. इसी प्रकार, पी.डब्ल्यू.3 घायल जयपाल गिरि ने अपने साक्ष्य में घटना की तारीख, समय और स्थान के बारे में बताया है जिसमें उसे देशी पिस्तौल (कट्टा) से चोट लगी थी और डॉक्टर द्वारा उसकी चिकित्सा जांच की गई थी लेकिन उन्होंने गोलीबारी की घटना में अपीलकर्ता बब्लू की संलिप्तता से इनकार किया। इसी तरह पी.डब्ल्यू.4 के चश्मदीद गवाह राजपाल और पी.डब्ल्यू.5 संत गिरी ने भी अपने बयान में घटना की तारीख, समय और स्थान बताया है, लेकिन उन्होंने कहा है कि अंधेरे के कारण वे यह नहीं देख सके कि किसने और किस पर गोली चलाई।

24. पी.डब्ल्यू.6 हेड कांस्टेबल अब्दुल सलाम, जो 30.01.1992 को पी.एस.-मवाना में हेड मोहर्रिर के पद पर तैनात थे, ने चिक एफ.आई.आर. साबित की। मुकदमा अपराध क्रमांक 46 सन् 1992 से संबंधित जो दिनांक 19.00 बजे अभियुक्त बब्लू एवं अन्य के विरूद्ध दर्ज किया गया था। उन्होंने केस अपराध क्रमांक से संबंधित चिक रिपोर्ट (प्रदर्श.क.3) एवं जी.डी. प्रविष्टि को (प्रदर्श.क.4) सिद्ध किया।

25. पी.डब्ल्यू.7 कांस्टेबल विनोद कुमार, जो 30.01.1992 को पी.एस.-मवाना में कांस्टेबल के रूप में तैनात थे, ने अपने साक्ष्य से साबित कर दिया है कि वह घायल जयपाल गिरी को मवाना अस्पताल ले गए जहां से उन्हें प्यारे लाल अस्पताल, मेरठ रेफर कर दिया गया जहां उनका एक्स -रे हो गया। पी.डब्लू.7 ने अपने साक्ष्य से यह भी सिद्ध किया कि दिनांक 30.01.1992 को रात्रि में उसने घायल कि.मी. सत्यपाल की बेटी ममता को मवाना अस्पताल ले जाया गया, जहां से डॉक्टर ने उसे मेडिकल कॉलेज मेरठ रेफर कर दिया।

26. पी.डब्लू.8 द्वारकेशपुरी, रिकार्ड अधिकारी, रिकार्ड अनुभाग, मेडिकल कॉलेज, मेरठ ने डॉ. एम.डी.त्रिपाठी द्वारा तैयार किए गए बेड हेड टिकट पर डॉ. एम.डी.त्रिपाठी के हस्ताक्षर की पहचान की है।

27. पी.डब्ल्यू.9 डॉ. एस.ए.एस. रेडियोलॉजी विभाग में प्रोफेसर के पद पर तैनात रहे माथुर की एक्स-रे रिपोर्ट ने यह बात साबित कर दी है। ममता के रूप में (प्रदर्श.क.7)। उन्होंने अपनी गवाही में कहा है कि घायल ममता के सीने या पेट में कोई चोट नहीं थी। उन्होंने गवाही दी है

कि उसके दाहिने पैर के पीछे दो गनशॉट (छर्रे) पाए गए थे। दाहिनी फ़ेबुला हड्डी में फ्रैक्चर था। कैलस का गठन नहीं हुआ था. उन्होंने कहा है कि चोट 10 दिनों के भीतर लगी थी।

28. पी.डब्ल्यू.10 जांच अधिकारी फकीरे लाल वर्मा ने घटना स्थल का साइट प्लान (प्रदर्श.क.8) साबित किया। उन्होंने आरोपी के खिलाफ दायर वर्तमान आपराधिक मामले में आरोप पत्र को (प्रदर्श.क.9) के रूप में भी साबित किया है। पी.डब्ल्यू.10 ने घायल जयपाल और ममता के खून से सने कपड़े को कब्जे में लेने के संबंध में उसके द्वारा तैयार किए गए ज्ञापन (वस्तु प्रदर्श) को साबित किया। उन्होंने घायलों के रक्तरंजित कपड़े को (वस्तु प्रदर्श 9 से 13) के रूप में और सादे कपड़े जिनमें उन्हें सिला और सील किया गया था, को वस्तु प्रदर्श 14 के रूप में साबित किया।

29. पी.डब्ल्यू.11 डॉ. एम.डी.त्रिपाठी, जो दिनांक 30.01.1992 को मेडिकल कॉलेज, मेरठ के इमरजेंसी वार्ड में तैनात थे और उन्होंने घायल किमी की जांच की थी। ममता ने अपने साक्ष्य में कहा है कि ममता को पेट के बाईं ओर, छाती, बाईं जांघ, बाएं पैर और ग्लूटल क्षेत्र के बाईं ओर आग्नेयास्त्र की चोट लगी थी।

30. पी.डब्ल्यू.12 डा. अमलेश कुमार वर्मा, जो दिनांक 30.01.1992 को पी.एच.सी., मवाना में तैनात थे तथा घायल किमी0 का चिकित्सीय परीक्षण किया है। रात 8.25 बजे ममता. तथा मेडिकल जांच रिपोर्ट को (प्रदर्श.क.9) प्रमाणित किया है। पी.डब्ल्यू.12 ने यह भी कहा है कि उसने उसी दिन घायल जयपाल गिरि का चिकित्सीय परीक्षण किया था। उन्होंने घायल जयपाल गिरि की मेडिकल जांच रिपोर्ट को प्रमाणित किया। उन्होंने कहा है कि ममता और जयपाल गिरि को आई चोटें शाम 4 बजे हुई हो सकती है।

31. घायल पी.डब्लू.1 ममता का साक्ष्य ठोस एवं विश्वसनीय है। उसकी जिरह में ऐसा कुछ भी सामने नहीं आया जो उसके सबूतों की विश्वसनीयता को हिला सके और यह साबित कर सके कि उसके सबूत झूठे और अविश्वसनीय हैं। पी.डब्ल्यू.2 के सूचनादाता बब्लू गिरी, पी.डब्ल्यू.3 जयपाल गिरी, पी.डब्ल्यू.4 राजपाल और पी.डब्ल्यू.5 सांता गिरी ने भी अपने बयान से घटना की तारीख, समय और स्थान को साबित किया है और बताया है कि घटना में पी.डब्ल्यू.1 ममता और पी.डब्ल्यू.3 को आग्नेयास्त्र से चोट लगी थी। जयपाल और उस हद तक उन्होंने पी.डब्ल्यू.1 ममता की गवाही की पुष्टि की है लेकिन अपराध में आरोपी बब्लू की संलिप्तता साबित नहीं की है। पी.डब्ल्यू.1 ममता, पी.डब्ल्यू.2 बब्लू, पी.डब्ल्यू.3 जयपाल, पी.डब्ल्यू.4 राजपाल और पी.डब्ल्यू.5 सांता गिरी की मौखिक गवाही में उल्लिखित तथ्यों की पुष्टि दस्तावेजी साक्ष्य, लिखित रिपोर्ट (प्रदर्श.के.1), लेने से संबंधित रिकवरी मेमो से होती है। खून से सने कपड़े जांच अधिकारी फकीरे लाल वर्मा ने कब्जे में ले लिए। पी.डब्ल्यू.1 ममता के साक्ष्य की पुष्टि पी.डब्ल्यू.6 हेड कांस्टेबल अब्दुल सलाम, पी.डब्ल्यू.7 कांस्टेबल विनोद कुमार, पी.डब्ल्यू.8 रिकॉर्ड कीपर, द्वारकेशपुरी, रिकॉर्ड सेक्शन, मेरठ मेडिकल कॉलेज, पी.डब्ल्यू.9 डॉ. एस.ए.एस. माथुर, पी.डब्ल्यू.10 जांच अधिकारी, फकीरे लाल वर्मा एवं पी.डब्लू.11 डा. एम.डी.त्रिपाठी के बयान/साक्ष्य से भी होती है।

32. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा केवल इतना ही तर्क दिया गया है कि केवल एक ही घायल चश्मदीद गवाह पी.डब्लू.1 कु ममता

ने घटना में अपीलकर्ता की संलिप्तता के बारे में गवाही दी है। बाकी चश्मदीद, अर्थात्, पी.डब्ल्यू.2 बब्लू, पी.डब्ल्यू.3 जयपाल, पी.डब्ल्यू.4 राजपाल और पी.डब्ल्यू.5 सांता गिरी ने अपराध में आरोपी की संलिप्तता से इनकार किया है। इसलिए, पी.डब्ल्यू.2 से पी.डब्ल्यू.5 को अभियोजन पक्ष द्वारा शत्रुतापूर्ण घोषित किया गया है और अभियोजन पक्ष द्वारा उनसे जिरह की गई। इस प्रकार, अभियुक्त-अपीलकर्ताओं को केवल एक चश्मदीद गवाह यानी पी.डब्ल्यू.1 कु. ममता की गवाही के आधार पर दोषी नहीं ठहराया जा सकता है। इस संबंध में अपीलकर्ता की ओर से दी गई दलील पर कोई बल नहीं है क्योंकि भारतीय साक्ष्य अधिनियम के तहत किसी तथ्य को साबित करने के लिए किसी विशेष संख्या में गवाहों की आवश्यकता नहीं होती है। एकल चश्मदीद गवाह से संबंधित वैधानिक प्रावधान भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 134 में प्रदान किए गए हैं।

भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 134: किसी भी मामले में किसी भी तथ्य को साबित करने के लिए किसी विशेष संख्या में गवाहों की आवश्यकता नहीं होगी।

33. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **लक्ष्मीबाई (मृत) एलआर बनाम भगवंतबुरा (मृत) एलआर एआईआर 2013 एससी 1204** मामले के माध्यम से एकल चश्मदीद गवाह की गवाही के आधार पर सजा से संबंधित कानून बनाया के माध्यम से कहा कि गवाहों के साक्ष्य की सराहना के मामले में, गवाहों की संख्या नहीं, बल्कि उनके साक्ष्य की गुणवत्ता महत्वपूर्ण है, क्योंकि कानून में साक्ष्य की कोई आवश्यकता नहीं है कि कोई विशेष किसी तथ्य को साबित/असिद्ध करने के लिए कई गवाहों की जांच की जानी है। यह एक चिर-सम्मानित सिद्धांत है कि सबूतों को तौला जाना चाहिए, गिना नहीं जाना चाहिए। परीक्षण यह है कि क्या साक्ष्य में विश्वास की गुंजाइश है, वह ठोस, विश्वसनीय और भरोसेमंद है या अन्यथा। कानूनी प्रणाली ने गवाहों की बहुलता या बहुलता के बजाय प्रत्येक गवाह द्वारा प्रदान किए गए मूल्य पर जोर दिया है। यह गुणवत्ता है न कि मात्रा, जो साक्ष्य की पर्याप्तता निर्धारित करती है जैसा कि अधिनियम की धारा 134 द्वारा प्रदान किया गया है।

34. अपीलार्थी के विरुद्ध अभियोजन द्वारा प्रस्तुत मौखिक एवं दस्तावेजी साक्ष्य की उपरोक्त चर्चा से धारा 325 आई.पी.सी. के तहत आरोप लगाया गया। अपीलकर्ता, बब्लू के खिलाफ, उचित संदेह से परे साबित किया जाता है। ट्रायल कोर्ट ने अपीलकर्ता बब्लू को केवल धारा 325 आई.पी.सी. के तहत दोषी ठहराया है और उसे 7 महीने और 20 दिन की कैद की सजा सुनाई, जो उसने जांच और मुकदमे के दौरान भुगती और 2,000/- रुपये का जुर्माना लगाया। घायल पी.डब्ल्यू.1 कु. ममता को सामने दाहिनी ओर छाती 15.5 सेमी ऊपर और 11.30 बजे की स्थिति नाभि के लिए ओर आग्नेयास्त्र या बंदूक की गोली का घाव लगा है, वह 18 दिन तक मेडिकल कॉलेज, मेरठ में भर्ती रहीं। चूंकि अपीलकर्ता को धारा 307 आई. पी.सी. के तहत बरी करने के खिलाफ कोई राज्य अपील दायर नहीं की गई है और घटना की तारीख से 31 वर्ष बीत चुके हैं और चूँकि राज्य व विद्वान ए.जी.ए. ने अपीलकर्ता का कोई आपराधिक इतिहास प्रस्तुत नहीं किया है, इसलिए धारा 325 आई.पी.सी. के तहत उसकी दोषसिद्धि में हस्तक्षेप करना उचित नहीं है और उसे धारा 307 आई.पी.सी. के तहत दोषी ठहराया।

35. मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों तथा घायल कु. ममता को प्राप्त चोट की प्रकृति एवं गंभीरता को ध्यान में रखते हुए, न्याय का लक्ष्य तभी पूरा होगा जब लगाए गए जुर्माने को बढ़ाकर 20,000/- (बीस हजार रुपये) कर दिया जाए ताकि घायल कु. ममता को इस फैसले की तारीख से तीन महीने के भीतर मुआवजे के रूप में भुगतान किया

जा सके। जुर्माना अदा न करने पर अपीलार्थी को 4 माह का साधारण कारावास भुगतना होगा। उपरोक्त संशोधन के साथ अपील का निपटारा किया जाता है।

36. इस आपराधिक अपील में पारित आदेश द्वारा संशोधित सजा के निष्पादन के लिए मामले के रिकॉर्ड के साथ फैसले की एक प्रति संबंधित अदालत को भेजी जाए।

(2023) 3 ILRA 1225

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 14.02.2023

समक्ष

माननीय ननीयमूर्ति मयंक कुमार जैन.

2019 की आपराधिक अपील संख्या 7159

आजम ... अपीलार्थी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ... विरोधी पक्ष

अपीलकर्ता के लिए वकील: मो. शोएब खान

विरोधी पक्ष के लिए वकील: जी.ए.

अपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 376 - पोक्सो अधिनियम, 2012 - धारा 5(एम)/6 - 10 वर्ष के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई -आरोप - आरोपी अपीलकर्ता ने वादी की 11 वर्षीय पीड़िता के साथ बलात्कार किया - तथ्य के गवाहों के साक्ष्य में विरोधाभास है - आयोजित, कोई भौतिक विरोधाभास नहीं पाया गया - धारा 164 सीआरपीसी के तहत पीड़िता के बयान ने अभियोजन पक्ष के वाद की पुष्टि की - अभियोक्ता के साक्ष्य को पुष्टि की आवश्यकता नहीं है - यदि यह विश्वास दिलाता है कि पीड़िता के मजबूत एकल साक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि की पुष्टि की जाती है। अपील निरस्त की जाती है। (पैराग्राफ 26, 38 से 42)

आयोजित, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई उपरोक्त टिप्पणियों के आलोक में, इस वाद में यह ध्यान रखना प्रासंगिक है कि धारा 164 सीआरपीसी के तहत पीड़िता ने अपने बयान में, जिसे उसने प्रदेश केए3 के रूप में सिद्ध किया, अभियोजन पक्ष के वाद की पुष्टि की। इसके अतिरिक्त, न्यायालय के समक्ष अपने बयान में, पीड़िता अभियोजन पक्ष के कथन के बारे में अपने साक्ष्य में सुसंगत थी। पीड़िता और तथ्य के अन्य गवाहों के बयानों में कोई भौतिक विरोधाभास नहीं है जो अभियोजन पक्ष के वाद को प्रतिकूल रूप से प्रभावित कर सकता है। तथ्य के गवाहों के साक्ष्य विश्वसनीय पाए गए हैं। (पैरा 26)

माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणी के आधार पर, यह ध्यान देने योग्य है कि पीड़िता ने विचारणीय न्यायालय के समक्ष अपने बयान में निरंतरता बनाए रखी है और यहां तक कि जब 164 सीआरपीसी के तहत उसका बयान दर्ज किया गया था, तब भी वह अपने बयान में एकरूप रही है। (पैरा 38)

अपीलकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि प्रत्यक्ष साक्ष्य और मेडिकल साक्ष्य एक दूसरे से मेल नहीं खाते। पी.डब्लू.-4 डॉ. शुभ्रा सिंह ने अभियोक्ता की मेडिकल जांच के दौरान पाया कि कोई शुक्राणु नहीं पाया गया तथा यौन उत्पीड़न के बारे में कोई निश्चित राय भी नहीं दी गई। (पैरा 39)

अपीलकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता के तर्क पर विचार करते हुए यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि पीड़िता ने अपने विश्वसनीय और भरोसेमंद साक्ष्यों के द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि उसके साथ यह घटना घटित हुई है। उसने विशेष रूप से कहा कि अपीलकर्ता ने उसके साथ जबरन बलात्कार किया। पीडब्लू-4 डॉ. शुभ्रा सिंह ने पीड़िता के गुप्तांग पर खरोंच पाया और यह भी कहा कि उपरोक्त खरोंचों को देखते हुए पीड़िता के साथ बलात्कार की संभावना है। इसके अलावा, एफएसएल रिपोर्ट प्रदर्श केए-13 भी घटना की पुष्टि करता है क्योंकि अपीलकर्ता के अंडरवियर पर मानव वीर्य पाया गया था। इसलिए, यह नहीं देखा जा सकता है कि प्रत्यक्षदर्शी और चिकित्सा साक्ष्यों के बीच असंगति है। (पैरा 40)

उपरोक्त चर्चाओं के आधार पर, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा संदर्भित अवलोकन और अभिलेख पर उपलब्ध दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्य की सराहना के आधार पर, यह निष्कर्ष निकाला गया है कि 07.12.2013 को लगभग 8.00 बजे अपीलकर्ता ने पीड़िता के साथ जबरन बलात्कार किया। पीडब्लू-1 वादी, पीडब्लू-2 पीड़िता की बहन और सबसे बढ़कर पीडब्लू-3 पीड़िता के साक्ष्य विश्वसनीय पाए गए और उनके साक्ष्य विश्वास पैदा करते हैं। यह निष्कर्ष निकाला गया है कि तथ्य के गवाहों ने अभियोजन पक्ष के वाद की पूरी तरह से पुष्टि की है। इसलिए, अभियोजन पक्ष अपीलकर्ता के विरुद्ध लगाए गए आरोप को सिद्ध करने में सफल रहा है। (पैरा 41)

अपील निरस्त। (ई-14)

उद्धृत वाद सूची:

1. सचिन कुमार सिंहरहा बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2019) 3 एससीसी (क्रि) 575
2. रोहतास बनाम हरियाणा राज्य (2020) 1 एससीसी (क्रि) 47
3. खुर्शीद अहमद बनाम जम्मू-कश्मीर राज्य, (2018) 3 एससीसी (क्रि) 61
4. राकेश बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2021) 3 एससीसी (क्रि) 149
5. राय संदीप बनाम दिल्ली राज्य, (2012) 8 एससीसी 21
6. हेमराज बनाम हरियाणा राज्य, 2014 (2) एससीसी 395
7. सदाशिव रामराव हडबे बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2006) 10 एससीसी 92
8. पंजाब राज्य बनाम गुरमीत सिंह (1996) 2 एससीसी 384
9. हिमाचल प्रदेश राज्य बनाम रघुबीर सिंह (1993) 2 एससीसी 622

माननीय न्यायमूर्ति मयंक कुमार जैन

1. अपर सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (पोक्सो अधिनियम), न्यायालय संख्या 01, गोरखपुर द्वारा विशेष सत्र विचारण संख्या 19/2014 (उत्तर प्रदेश राज्य बनाम आजम) में पारित दिनांक 05.11.2019 के आक्षेपित निर्णय जिसमें भारतीय दंड संहिता की धारा 376 एवं पोक्सो अधिनियम की धारा 5 (एम)/6 के तहत थाना-खोराबार, जिला-गोरखपुर जिसमें आरोपी-

अपीलार्थी को भ०द०वि० की धारा 376 के तहत दोषी ठहराया गया था और 25,000 रुपये के जुर्माने के साथ 10 साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई थी और जुर्माने की राशि जमा करने में चूक के मामले में छह महीने के लिए अतिरिक्त कठोर कारावास भी दिया गया था, से व्यथित महसूस करते हुए वर्तमान अपील दायर की गयी है।

2. अभियोजन पक्ष के मामले के अनुसार, राज कुमार की पत्नी सावित्री मौर्य ने संबंधित थाना को एक रिपोर्ट प्रस्तुत की कि 07.12.2013 को वह बाजार में थी, उसकी बेटी 'एक्स' उम्र 11 साल, घर पर थी। रात करीब 8:00 बजे उसका पड़ोसी आजम उसके घर आया, उसकी बेटी का मुंह बंद किया और उसे बगल के निर्माणाधीन मकान में ले गया। उसने जबरन उसके साथ दुष्कर्म किया। पीड़िता द्वारा किये गए शोर-गुल को सुनकर, ग्रामीण और उसके परिवार के सदस्य हाथों में टॉर्च लेकर वहां पहुंचे और आजम को अपनी पैंट पहने हुए भागते देखा। बाजार से लौटने पर उसकी बेटी ने पूरी घटना बताई।

3. उपरोक्त लिखित रिपोर्ट के आधार पर अभियुक्त-अपीलार्थी के विरूद्ध धारा 376(2)(1)(1) तथा पॉस्को अधिनियम, 2012 की धारा 5(एम)/6 के अंतर्गत मुकदमा अपराध क्रमांक 652 वर्ष 2013 दर्ज किया गया।

4. जाँच को गति दी गयी। प्रारंभिक औपचारिकताएं पूरी करने के बाद, विवेचनाधिकारी ने पीड़िता के खून से सने अंडरवियर को अपने कब्जे में ले लिया और उसे फोरेंसिक जांच के लिए भेज दिया। आवेदक आजम को पकड़ लिया गया और उसका अंडरवियर, जो उसने घटना के समय पहना था, उसे भी कब्जे में ले लिया गया और फोरेंसिक जांच के लिए भेज दिया गया। फ़र्द बरामदगी तदनुसार तैयार किया गया था।

5. पीड़िता की मेडिकल जांच की गई। धारा 164 द०प्र०स० के तहत उसका बयान दर्ज किया गया। घटनास्थल का नक्शा नज़री तैयार कर ली गई । पीड़िता और अन्य गवाहों के बयान दर्ज किए गए और जांच के समापन के बाद अपीलकर्ता के खिलाफ पॉस्को अधिनियम की धारा 376 (2) (i) IPC और 5 (m)/6 के तहत आरोप पत्र दायर किया गया।

6. अभियुक्त-अपीलार्थी के विरुद्ध धारा 376 भ०द०वि० और धारा 5 (एम)/6 पॉक्सो एक्ट के तहत आरोप तय किए गए। आरोपियों/अभियुक्तों को आरोप पढ़कर सुनाया गया, जिससे उन्होंने इन्कार किया और विचारण चाहा!

7. अपने मामले को साबित करने के लिए, अभियोजन पक्ष ने अ०सा०-1 सावित्री मौर्य (सूचनाकर्ता), अ०सा०-2 प्रिया (पीड़िता की बहन), अ०सा०-3 पीड़िता और अ०सा०-4 डॉ सुभ्रा सिंह, अ०सा०-5 श्री प्रकाश यादव (विवेचनाधिकारी) और अ०सा०-6 हेड कांस्टेबल दीना नाथ पाल के रूप में औपचारिक गवाह पेश किए।

8. अभियोजन साक्ष्य के बंद होने के बाद, अभियुक्त-अपीलकर्ता की धारा 313 द०प्र०स० के तहत बयान दर्ज किया गया था। उन्होंने अभियोजन पक्ष द्वारा लगाए गए आरोप के अनुसार अपराध करने से इनकार किया। उन्होंने कहा कि तथ्य के गवाहों ने उनके खिलाफ झूठे बयान दिए हैं। पीड़िता को 'पढ़ाया' गया था, इसलिए उसने उसके खिलाफ गवाही दी। मेडिकल साक्ष्य के आधार पर बलात्कार के अपराध की पुष्टि नहीं हुई है। अनुचित जांच के आधार पर आरोप पत्र दायर किया गया था। गवाह उसके विरोधी हैं। अपने अतिरिक्त बयान में, उन्होंने

कहा कि पीड़िता उसके छोटे भाई से प्यार करती थी, उनके बीच पत्रों का आदान-प्रदान हुआ और पीड़िता द्वारा उपहार की मांग भी की गई थी। उसका छोटा भाई घरवालों को पैसे नहीं दे रहा था। घटना वाले दिन उसने दोनों को एक साथ देखा था। उसने उन्हें डांटा और उन्हें फिर से न मिलने के लिए कहा और इस कारण से, उसे वर्तमान मामले में झूठा फंसाया गया है।

9. रिकॉर्ड पर उपलब्ध सबूतों को मूल्यांकन करने और प्रतिद्वंद्वी तर्कों पर विचार करने के बाद, विद्वान विचारण न्यायालय ने आरोपी-अपीलकर्ता को दोषी ठहराया और सजा सुनाई, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है।

10. मैंने श्री मो. शोएब खान, अभियुक्त-अपीलकर्ता के अधिवक्ता, श्री ओम प्रकाश, राज्य के लिए अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता को सुना और रिकार्ड का ध्यानपूर्वक अवलोकन किया।

11. वर्तमान अपील में, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर, यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि क्या 07.12.2013 को लगभग 8 बजे, अभियुक्त-अपीलकर्ता ने सूचनाकर्ता की लगभग 11 वर्ष की आयु की बेटी के साथ बलात्कार किया।

12. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि सूचनाकर्ता घटना का चश्मदीद गवाह नहीं है। अपनी पहली सूचना रिपोर्ट में, उसने स्वीकार किया कि जब वह बाजार से लौटी, तो उसे पीड़िता द्वारा घटना के बारे में सूचित किया गया था। अ०सा०-2 प्रिया, जो पीड़िता की बहन है, भी घटना की चश्मदीद गवाह नहीं है। सूचनाकर्ता, अ०सा०-2 प्रिया और पीड़िता की गवाही में महत्वपूर्ण विरोधाभास हैं, जो अभियोजन पक्ष की कहानी के बारे में गंभीर संदेह पैदा करते हैं। पीड़िता की बहन ने अपने बयान में एक विरोधाभासी बयान दिया कि जब वह घटनास्थल पर पहुंची, तो आरोपी मौके से भाग गया, जबकि सूचनाकर्ता अ०सा०-1 ने अपने साक्ष्य में कहा कि आरोपी को मौके पर ही पकड़ लिया गया था और उसने उनके साथ दुर्व्यवहार किया। चिकित्सा साक्ष्य भी अभियोजन पक्ष के संस्करण की पुष्टि नहीं करते हैं। शोर गुल सुनने के बाद जो लोग घटनास्थल की ओर भागे, वह कथित रूप से टॉर्च ले जा रहे थे, लेकिन विवेचनाधिकारी ने उसे कब्जे में नहीं लिया। उन्होंने आगे कहा कि डॉक्टर ने कहा कि सूजन के आधार पर, वह निश्चित रूप से यह नहीं कह सकती कि पीड़िता का यौन उत्पीड़न किया गया था। पीड़िता के प्राइवेट पार्ट या उसके आसपास कोई स्पर्म नहीं मिला। इसके अलावा, विधि विज्ञान प्रयोगशाला रिपोर्ट में, पीड़िता के अंडरवियर पर कोई शुक्राणु नहीं पाया गया था। इसलिए, चिकित्सा साक्ष्य अभियोजन पक्ष के संस्करण की पुष्टि नहीं करते हैं। अभियोजन पक्ष अपीलकर्ता के खिलाफ आरोप साबित करने में विफल रहा और इसलिए अपीलकर्ता बरी होने के लिए उत्तरदायी है। अपील की अनुमति दी जानी चाहिए।

13. अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता के प्रतिवाद में तर्क दिया गया कि रिकॉर्ड पर उपलब्ध मौखिक साक्ष्य और चिकित्सा साक्ष्य अभियुक्त के खिलाफ आरोपों को साबित करते हैं। घटना के समय पीड़िता की उम्र 13 साल थी और आरोपी-अपीलकर्ता ने उसके साथ जबरन बलात्कार किया। मेडिकल जांच के आधार पर रेडियोलॉजिस्ट ने घटना के समय पीड़िता की उम्र 14 साल निर्धारित की, इसलिए घटना के समय पीड़िता नाबालिग थी। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि एक फोरेंसिक जांच के दौरान, आरोपी अपीलकर्ता के अंडरवियर पर शुक्राणु पाया गया था जो घटना

के समय उसके द्वारा पहना गया था। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि अ०सा०-1, सूचनाकर्ता, अ०सा०-2, पीड़िता की बहन और खुद पीड़िता के बयानों में कोई भौतिक विरोधाभास नहीं है। उन्होंने आगे कहा कि मामूली विरोधाभास होना तय है क्योंकि गवाह ग्रामीण पृष्ठभूमि से हैं और इस तरह के विरोधाभास अभियोजन पक्ष के मामले पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालते हैं। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि पीड़िता ने धारा 164 द०प्र०स० के तहत दर्ज अपने बयान में आरोपी-अपीलकर्ता द्वारा किए गए अपराध के तरीके का समर्थन किया है। उसने विचारण न्यायालय के समक्ष गवाही के दौरान भी इस बयान की पुष्टि की। पीड़िता ने अपने साक्ष्य से अभियोजन पक्ष के बयान की पुष्टि की है कि घटना की तारीख और समय पर, आरोपी-अपीलकर्ता ने उसके साथ जबरदस्ती बलात्कार किया और पूरी घटना उसके द्वारा उसकी मां को सुनाई गई थी।

14. अ०सा०-1 सावित्री मौर्य जो इस मामले की सूचनाकर्ता है, ने अपने साक्ष्य में कहा है कि उसकी बेटी की उम्र लगभग 11 वर्ष ½ महीने थी। दिनांक 07.12.2013 को रात्रि लगभग 8:00 बजे जब उसकी पुत्री घर में अकेली थी, अभियुक्त-अपीलकर्ता उसके घर में घुस गया और उसका मुंह बंद करने के बाद उसे पास के निर्माणाधीन मकान में ले गया और उसके साथ दुष्कर्म किया। शोर गुल सुनते ही कई लोग वहां पहुंचे और टॉर्च जलाकर अपीलकर्ता-आरोपी का पीछा किया और उसे पकड़ लिया। बाजार से लौटने पर उसे घटना के बारे में बताया गया। उसने पुलिस को रिपोर्ट सौंपी। घटना के समय उनकी बेटी ने जो अंडरवियर पहना था, उसे उसके सामने कब्जे में ले लिया गया।

15. अ०सा०-2 प्रिया पीड़िता की बहन है जिसने वही संस्करण सुनाया है जो सूचनाकर्ता द्वारा बताया गया है। उसने कहा कि जब उसकी बहन वापस नहीं आई, तो वह उसका पता लगाने गई और देखा कि आरोपी-अपीलकर्ता अपनी पैंट पहने हुए एक निर्माणाधीन घर से बाहर आ रहा था। वह मौके पर पहुंची और देखा कि उसकी बेटी फर्श पर पड़ी थी। पूरी घटना उसकी बहन ने सुनाई कि अपीलकर्ता आरोपी ने उसके साथ बलात्कार किया और धमकी दी कि अगर वह किसी को सूचित करेगी, तो वह बहन के साथ भी यही कृत्य दोहराएगा। उसकी बहन का अंडरवियर खून से लथपथ था।

16. अ०सा०-3 पीड़िता ने कहा है कि घटना 07.12.2013 को लगभग 08:00 बजे हुई जब उसकी मां बाजार गई थी, आरोपी अपीलकर्ता ने उसे बुलाया लेकिन उसने इनकार कर दिया। आरोपी-अपीलकर्ता ने उसे बताया कि उसकी मां फोन कर रही थी इसलिए वह बाहर आई लेकिन वहां अपनी मां को नहीं पाया। आरोपी-अपीलकर्ता ने उसका मुंह बंद कर दिया और उसे एक निर्माणाधीन मकान में ले गया। उसने उसे फर्श पर लिटा दिया और उसके साथ जबरदस्ती दुष्कर्म किया। उसने अपने लिंग को उसके निजी अंगों में घुसा दिया। वह रो रही थी और उसे तेज दर्द हो रहा था। उसके रोने की आवाज सुनकर उसकी बहन वहां आ गई। आरोपी-अपीलकर्ता मौके से भाग गया। उसकी बहन ने टॉर्च की रोशनी में आरोपी-अपीलकर्ता को देखा। उसका अंडरवियर खून से सना हुआ था। पूरी घटना उसने अपनी मां को सुनाई। उसकी मेडिकल जांच की गई। वह आरोपी अपीलकर्ता को बहुत अच्छी तरह से जानती है, वह उसका पड़ोसी है। उसने धारा 164

द०प्र०स० के तहत मजिस्ट्रेट के सामने दिए गए बयान को साबित किया।

17. अ०सा०-4 डॉ. शुभ्रा सिंह ने अपने बयान में बताया कि दिनांक 08.12.2013 को वरिष्ठ परामर्शदाता जिला महिला चिकित्सालय, गोरखपुर की हैसियत से अपराह्न 2.30 बजे उन्होंने पीड़िता की जांच की जिसे सी.पी. भगवती वर्मा थाना खोरबार जिला गोरखपुर द्वारा लाया गया था पीड़िता की ऊंचाई 137 सेमी, वजन 30 किलोग्राम, दांत 13/13, पतले निर्मित, मानसिक रूप से सतर्क, स्तन विकसित नहीं, एक्सिलरी/प्यूबिक हेयर मौजूद नहीं थे। बाहरी शरीर के अंगों पर चोट का कोई संकेत नहीं, योनि उंगली की नोक को 'स्वीकार' नहीं करती है। योनि स्वाब द्वारा बनाई गई स्लाइड और पैथोलॉजिकल परीक्षा के लिए भेजा गया। कोई 'फाड़' नहीं देखा। फोरशेट में स्लाइड घर्षण देखा गया।

पूरक रिपोर्ट में कुछ आर.बी.सी. कोई शुक्राणु-जोज़ा नहीं मिला। पीड़िता के प्राइवेट पार्ट पर लगी चोट के आधार पर संभव है कि उसके साथ रेप हुआ हो।

18. अ०सा०-5 इंस्पेक्टर श्रीप्रकाश यादव ने कहा कि उन्होंने जांच प्राप्त की और प्रारंभिक औपचारिकताओं के बाद, सूचनाकर्ता, पीड़िता और गवाहों का बयान लिया। उन्होंने नक़्शा नज़री तैयार किया। घटना के समय पीड़िता और आरोपी द्वारा पहने गए अंतर्वस्त्र को कब्जे में लेकर केमिकल जांच के लिए भेजा गया। पीड़िता को मेडिकल जांच के लिए भेजा गया है। धारा 164 द०प्र०स० के तहत उसका बयान दर्ज किया गया और जांच के निष्कर्ष के बाद, उसने आरोपी-अपीलकर्ता के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया।

19. अ०सा०-6 हेड कांस्टेबल दीना नाथ पाल है जिसने कहा है कि सूचनाकर्ता सावित्री मौर्य द्वारा प्रस्तुत लिखित रिपोर्ट के आधार पर, उसने 07.12.2013 को 22.45 बजे 2013 का प्राथमिकी नंबर 379 तैयार किया, जिसे 2013 के केस अपराध संख्या-652 के रूप में धारा 376 (2) (1) भ०द०वि० और 5 (एम)/6 पोक्सो एक्ट के तहत आवेदक के खिलाफ थाना-खोराबार, जिला-गोरखपुर में दर्ज किया गया था। इस गवाह ने पहली सूचना रिपोर्ट को पूर्व का 11 के रूप में साबित किया है। संबंधित थाने की प्राथमिकी संख्या 46, सामान्य डायरी में 22.45 बजे में दर्ज किया गया था।

20. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने जोरदार तर्क दिया कि अ०सा०-1 और अ०सा०-2 के साक्ष्य में महत्वपूर्ण विरोधाभास हैं। सूचनाकर्ता अ०सा०-1 ने अपने बयान में कहा कि घटना के समय पीड़िता अपने घर पर अकेली थी और अपीलकर्ता को ग्रामीणों ने मौके पर ही पकड़ लिया था, जबकि उसकी जिरह में उसने कहा कि आरोपी अपीलकर्ता को घटना की तारीख को उसके घर पर पकड़ा गया था और उसने खुद आरोपी-अपीलकर्ता को पकड़ लिया था। अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने अ०सा०-2 प्रिया के बयान का उल्लेख किया, जो पीड़िता की बहन थी कि जब वह घटनास्थल की ओर बढ़ी, तो उसकी बहन वहां अकेली पड़ी थी और आरोपी-अपीलकर्ता वहां मौजूद नहीं था। अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि अ०सा०-1 सावित्री मौर्य और अ०सा०-2 घटना के चश्मदीद गवाह नहीं हैं, इसलिए उनकी गवाही पर भरोसा नहीं किया जा सकता है।

21. जहां तक अपीलकर्ता के अधिवक्ता के तर्क का संबंध तथ्य के गवाहों के साक्ष्य में विरोधाभासों के बारे में है, यह ध्यान देने योग्य है कि रिकॉर्ड के अवलोकन से पता चलता है कि अ०सा०-1 की मुख्य परिक्षण सावित्री मौर्य

04.08.2014 को दर्ज की गई थी और उसकी जिरह 15.10.2014 को दर्ज की गई थी। अ०सा०-2 प्रिया की परीक्षा 06.11.2014 को दर्ज की गई थी, जबकि उसकी जिरह 24.11.2014 को दर्ज की गई थी। इसी तरह पीड़िता की परीक्षा 03.01.2015 को दर्ज की गई थी और चूंकि प्रतिपरीक्षा समाप्त नहीं हुई थी, इसलिए उसकी आगे की जिरह 01.06.2015 को दर्ज की गई।

22. सचिन कुमार सिंघराहा बनाम भारत संघ के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने मध्य प्रदेश राज्य, (2019) 3 एस.सी.सी (सी.आर.आई) 575: निम्नानुसार आयोजित किया गया है: -

"12. न्यायालय को ग्रामीणों के बयानों की ग्रामीण प्ररिदृश्य को ध्यान में रखते हुए साक्ष्य का मूल्यांकन करना होगा, जो गणितीय सटीकता के साथ सटीक भौगोलिक स्थानों के बारे में बयान नहीं दे सकते हैं। इस प्रकृति की विसंगतियां जो मामले की जड़ तक नहीं जाती हैं, स्वीकार्य साक्ष्य को खत्म नहीं करती हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि अब तक यह अच्छी तरह से तय हो गया है कि गवाह की गवाही की विश्वसनीयता और समग्र रूप से अभियोजन पक्ष के संस्करण की स्थिरता का आकलन करते समय मामूली बदलावों पर विचार नहीं किया जाना चाहिए। मामले के इस दृष्टिकोण में, हमारी सुविचारित राय में, अ०सा०-5 के साक्ष्य अ०सा०-4 के साक्ष्य और अभियोजन पक्ष के मामले का पूरी तरह से समर्थन करते हैं।

23. रोहतास बनाम भारत संघ के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने हरियाणा राज्य, (2020)1 एस.सी.सी (सी.आर.आई)47 ने निम्नानुसार आयोजित किया है: -

"26. दिलावर सिंह बनाम हरियाणा राज्य [दिलावर सिंह बनाम हरियाणा राज्य, (2015) 1 एस.सी.सी 737: (2015) 1 एस.सी.सी (सी.आर.आई) 759], मामले में हाल ही में लिया गया न्यायालय ने दोहराया कि चश्मदीद गवाहों के साक्ष्य का विश्लेषण करते समय, यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि गवाहों के व्यवहार या स्थिति से व्यक्ति से व्यक्ति की प्रतिक्रियाओं में भिन्नता और अंतर होना तय है। गवाहों की प्रतिक्रिया में एकरूपता नहीं हो सकती। न्यायालय को अवास्तविक आधार पर सबूतों को नहीं समझना चाहिए। मानव प्रतिक्रिया में एकरूपता के बारे में कोई कठोर और तेज़ नियम नहीं हो सकता है।"

24. खुर्शीद अहमद बनाम जम्मू-कश्मीर राज्य, (2018) 3 एस.सी.सी (सी.आर.आई) 61 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार आयोजित किया है-

"रिकॉर्ड पर उपलब्ध सबूतों का विश्लेषण करते समय, अदालत को हाइपर तकनीकी दृष्टिकोण नहीं अपनाना चाहिए, बल्कि मामले की व्यापक संभावनाओं को देखना चाहिए। मामूली विरोधाभासों के आधार पर, अदालत को सबूतों को पूरी तरह से खारिज नहीं करना चाहिए। कभी-कभी, सच्चे गवाह के साक्ष्य में भी, एक मिनट के विवरण को याद रखने और पुन: पेश करने की उनकी क्षमता के आधार पर कुछ विरोधाभास दिखाई दे सकते हैं। विशेष रूप से आपराधिक मामलों में, घटना की तारीख से लेकर जिस दिन वे न्यायालय में साक्ष्य देते हैं, वर्षों का अंतराल हो सकता है। इसलिए, अदालतों को इन सभी पहलुओं को ध्यान में रखना होगा और सबूतों को तौलना होगा। जो विसंगतियां और विरोधाभास मामले की जड़ तक नहीं जाते हैं, उन पर विश्वास

नहीं किया जाएगा। किसी भी घटना में, अदालत का सर्वोपरि विचार पर्याप्त न्याय करना होना चाहिए।

25. राकेश बनाम भारत संघ के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय उत्तर प्रदेश राज्य, (2021) 3 एस.सी.सी (सी.आर.आई) 149 ने निम्नानुसार आयोजित किया है: -

"14. एक को रिकॉर्ड पर अन्य साक्ष्य के साथ पूरे साक्ष्य पर समग्र रूप से विचार करना आवश्यक है। केवल एक वाक्य यहाँ या वहाँ और वह भी प्रतिपरीक्षा में बचाव पक्ष द्वारा पूछे गए प्रश्न को अकेला नहीं माना जा सकता है।

26. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई उपरोक्त टिप्पणियों के मद्देनजर, इस मामले में यह नोट करना प्रासंगिक है कि पीड़िता ने धारा 164 द०प्र०स० के तहत अपने बयान में, जिसे उसने प्रदर्श क-3 के रूप में साबित किया, अभियोजन पक्ष के मामले की पुष्टि की। इसके अलावा, अदालत के समक्ष अपने बयान में, पीड़िता अभियोजन पक्ष की कहानी के बारे में अपने साक्ष्य में सुसंगत थी। पीड़िता और तथ्य के अन्य गवाहों के बयानों में कोई भौतिक विरोधाभास नहीं है जो अभियोजन पक्ष के मामले पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है। तथ्य के गवाहों के साक्ष्य विश्वसनीय पाए जाते हैं।

27. जहां तक अपीलकर्ता के अधिवक्ता के तर्क का संबंध है कि पीड़िता ने अपने बयान में कहा है कि घटना के समय, अपीलकर्ता ने उसे फर्श पर लिटा दिया था, लेकिन उसकी चिकित्सा परीक्षा के समय उसके शरीर पर कोई चोट नहीं पाई गई थी, यह ध्यान रखना उचित है कि पीड़िता ने अपनी गवाही में अभियोजन पक्ष के तथ्यों की पूरी तरह से पुष्टि की है। इसलिए, केवल यह तथ्य कि उसने कहा कि आरोपी-अपीलकर्ता ने उसे लेटने के लिए मजबूर किया, लेकिन उसे कोई चोट नहीं आई, उसकी गवाही के बारे में कोई संदेह पैदा नहीं करता है।

28. अ०सा०-1 सावित्री मौर्य, अ०सा०-2 प्रिया और अ०सा०-3 पीड़िता के अदालत के समक्ष दिए गए बयान विश्वसनीय हैं और विश्वास को प्रेरित करते हैं; तथ्य के सभी तीन गवाहों ने कहा है कि पीड़िता का अंडरवियर एक घटना के कारण भीग गया था, जिसे विवेचनाधिकारी को सौंप दिया गया था। सूचनाकर्ता ने अपनी गवाही में विवेचनाधिकारी द्वारा तैयार की गई नक्शा नज़री को भी साबित किया और तथ्य के सभी तीन गवाहों ने स्पष्ट रूप से इनकार किया कि पीड़िता का अपीलकर्ता आजाद के भाई के साथ प्रेम संबंध था और पीड़िता को आरोपी-अपीलकर्ता ने पकड़ लिया था और इस कारण अपीलकर्ता को झूठा फंसाया गया था।

29. जहां तक अपीलकर्ता की ओर से अपने बचाव में विचारण न्यायालय के समक्ष दायर किए गए पत्रों का संबंध है, जिसमें दावा किया गया है कि पीड़िता उसके छोटे भाई से प्यार करती थी, यहां यह उल्लेख करने के लिए पर्याप्त है कि ये बचाव पक्ष द्वारा किसी भी ठोस सबूत से साबित नहीं हुए थे। ऐसा प्रतीत होता है कि मुकदमे के दौरान अपीलकर्ता द्वारा एक विशेषज्ञ द्वारा पीड़िता की लिखावट की जांच करने का कोई प्रयास नहीं किया गया था जो अपीलकर्ता द्वारा उठाए गए बचाव का समर्थन कर सके। इसलिए केवल पत्र दाखिल करने से अपीलकर्ता द्वारा लिए गए बचाव की पुष्टि नहीं होती है।

30. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने जोरदार तर्क दिया कि पीड़िता के बयान से अ०सा०-1 और अ०सा०-2 के बयान के साथ कोई पुष्टि नहीं होती। चूंकि ये दोनों गवाह चश्मदीद गवाह नहीं

हैं, इसलिए पीड़िता की एकमात्र गवाही पर भरोसा नहीं किया जा सकता है।

31. इस तर्क को ध्यान में रखते हुए, यहां यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि पीड़िता ने कहा था कि आरोपी उसे निर्माणाधीन घर में ले गया और उसका मुंह बंद करने के बाद उसे निर्वस्त्र कर दिया और उसके साथ बलात्कार किया। आरोपी-अपीलकर्ता ने पीड़िता की योनि में उसके गुप्तांग घुस दिए। पीड़िता ने आरोपी अपीलकर्ता द्वारा उसके साथ किए गए बलात्कार के संबंध में स्पष्ट शब्दों में गवाही दी। पीड़िता की परीक्षा और जिरह में कोई विरोधाभास नहीं है। उसके सबूत आत्मविश्वास को प्रेरित करते हैं और सच्चाई की एक मोहर सी हैं। इसके अलावा, सूचनाकर्ता और पीड़िता की बहन का बयान भी घटना के स्थान पर आरोपी अपीलकर्ता की उपस्थिति की पुष्टि करता है, क्योंकि उन्होंने कहा है कि उन्होंने आरोपी-अपीलकर्ता को अपनी पैंट पहने हुए घटनास्थल से भागते हुए देखा था। अ०सा०-2 प्रिया ने विशेष रूप से कहा कि उसने अपनी बहन को निर्वस्त्र हालत में पाया, इसलिए, पीड़िता और उसकी बहन के सबूत अभियोजन पक्ष के तथ्यों के अनुरूप हैं और उनके सबूत विश्वसनीय हैं।

32. अभियुक्त-अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि चूंकि पीड़िता और तथ्य के अन्य गवाहों के बयानों में विरोधाभास हैं, इसलिए पीड़िता के एक मात्र साक्ष्य पर आरोपी-अपीलकर्ता के खिलाफ दोषसिद्धि दर्ज नहीं की जा सकती है।

33. राय संदीप बनाम राज्य, (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली) (2012) 8 एस.सी.सी 21 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने 'स्टर्लिंग गवाह' के अर्थ को इस प्रकार स्पष्ट किया है: -

"15. हमारी सुविचारित राय में, 'स्टर्लिंग गवाह' एक बहुत ही उच्च गुणवत्ता और क्षमता का होना चाहिए, जिसका संस्करण, अभेद्य होना चाहिए। ऐसे गवाह के संस्करण पर विचार करने वाली अदालत को बिना किसी हिचकिचाहट के इसे इसके अंकित मूल्य पर स्वीकार करने की स्थिति में होना चाहिए। ऐसे गवाह की गुणवत्ता का परीक्षण करने के लिए, गवाह की स्थिति सारहीन होगी और जो प्रासंगिक होगा वह ऐसे गवाह द्वारा दिए गए बयान की सत्यता है। जो अधिक प्रासंगिक होगा वह प्रारंभिक बिंदु से अंत तक बयान की निरंतरता होगी, अर्थात्, उस समय जब गवाह प्रारंभिक बयान देता है और अंततः न्यायालय के समक्ष होता है। यह अभियुक्त के अभियोजन पक्ष के मामले के साथ स्वाभाविक और संगत होना चाहिए। ऐसे गवाह के बयान में कोई टालमटोल नहीं होनी चाहिए। गवाह को कितनी भी देर की प्रतिपरीक्षा का सामना करने की स्थिति में होना चाहिए और चाहे वह कितना भी कठोर क्यों न हो और किसी भी परिस्थिति में घटना के तथ्य, इसमें शामिल व्यक्तियों के साथ-साथ इसके अनुक्रम के बारे में किसी भी संदेह के लिए जगह नहीं देनी चाहिए। इस तरह के संस्करण का अन्य सहायक सामग्री जैसे कि बरामदगी, इस्तेमाल किए गए हथियार, किए गए अपराध का तरीका, वैज्ञानिक साक्ष्य और विशेषज्ञ की राय के प्रत्येक और सभी के साथ सह-संबंध होना चाहिए। उक्त संस्करण को लगातार हर दूसरे गवाह के संस्करण के साथ मेल खाना चाहिए। यह भी कहा जा सकता है कि यह परिस्थितिजन्य साक्ष्य के मामले में लागू परीक्षण के समान होना चाहिए जहां अभियुक्त को उसके खिलाफ कथित अपराध का दोषी ठहराने के लिए परिस्थितियों की श्रृंखला में कोई लापता लिंक

नहीं होना चाहिए। अगर केवल ऐसे गवाह का संस्करण उपरोक्त परीक्षण के साथ-साथ अन्य सभी समान परीक्षणों को लागू करने के योग्य है, तो यह माना जा सकता है कि ऐसे गवाह को 'स्टर्लिंग गवाह' कहा जा सकता है, जिसके संस्करण को न्यायालय द्वारा बिना किसी पुष्टि के स्वीकार किया जा सकता है और जिसके आधार पर दोषी को दंडित किया जा सकता है। अधिक सटीक होने के लिए, अपराध के मुख्य स्पेक्ट्रम, परिदृश्य पर उक्त गवाह का संस्करण बरकरार रहना चाहिए, जबकि अन्य सभी परिचर सामग्री, अर्थात्, मौखिक, दस्तावेजी और भौतिक वस्तुओं को सामग्री विवरणों में उक्त संस्करण से मेल खाना चाहिए ताकि अपराध का मुकदमा कथित आरोप के अपराधी को दोषी ठहराने के लिए अन्य सहायक सामग्री को छानने के लिए मुख्य संस्करण पर भरोसा करने के लिए न्यायालय को सक्षम बनाया जा सके।

34. बलात्कार के मामलों में अभियोक्त्रि की गवाही को दिए गए महत्व पर, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने हेमराज बनाम हरियाणा राज्य, 2014 (2) एस.सी.सी 395 में न्यायालय को निम्नलिखित शब्दों में सावधानीपूर्वक जांच करने में उनके कर्तव्यों की याद दिलाई: -

"6. बलात्कार के आरोप से जुड़े मामले में अभियोक्त्रि का सबूत, यदि यह विश्वसनीय पाया जाता है, सबसे महत्वपूर्ण है। यदि यह पूर्ण आत्मविश्वास को प्रेरित करता है, तो इसे बिना पुष्टि के भी भरोसा किया जा सकता है। हालाँकि, अदालत इस पर निहित निर्भरता रखने में संकोच कर सकती है, तो किसी साथी के मामले में आवश्यक पुष्टि से कम आश्वासन देने के लिए अन्य सबूतों पर गौर कर सकती है। इस तरह का वजन अभियोक्त्रि के साक्ष्य को दिया जाता है क्योंकि उसका साक्ष्य एक घायल गवाह के साक्ष्य के बराबर है जो शायद ही कभी विश्वास को प्रेरित करने में विफल रहता है। अभियोक्त्रि के साक्ष्य को इतने ऊंचे पायदान पर रखने के बाद, यह अदालत का कर्तव्य है कि वह इसकी सावधानीपूर्वक जांच करे, क्योंकि उस अकेले सबूत पर दिए गए मामले में एक व्यक्ति को आजीवन कारावास की सजा सुनाई जा सकती है। इसलिए, अदालत को अपने समृद्ध अनुभव के साथ सावधानी और सतर्कता के साथ ऐसे सबूतों का मूल्यांकन करना चाहिए और जब उसकी अंतरात्मा उसकी साख के बारे में संतुष्ट हो जाती है, तभी उस पर भरोसा करना चाहिए।

35. सदाशिव रामराव हदबे बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2006) 10 एस.सी.सी 92 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि: -

"8. यह सच है कि बलात्कार के मामले में अभियुक्त को अभियोजन पक्ष की एकमात्र गवाही, यदि वह अदालत के मन में विश्वास पैदा करने में सक्षम हो, पर दोषी ठहराया जा सकता है। यदि अभियोक्त्रि द्वारा दिया गया संस्करण किसी भी चिकित्सा साक्ष्य द्वारा समर्थित नहीं है या आसपास की पूरी परिस्थितियां अत्यधिक असंभव हैं और अभियोक्त्रि द्वारा स्थापित मामले को झुठलाती हैं, तो अदालत अभियोक्त्रि के एक मात्र साक्ष्य पर कार्रवाई नहीं करेगी। अदालतें अभियोक्त्रि की एकमात्र गवाही को, जब पूरा मामला असंभव हो और ऐसा होने की संभावना न हो, स्वीकार करने में बेहद सावधानी बरतेंगी।

36. पंजाब राज्य बनाम भारत संघ मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय गुरमीत सिंह, (1996) 2 एस.सी.सी 384 ने माना है कि अभियोक्त्रि के बयान में मामूली विरोधाभास या महत्वहीन विसंगतियों को, यदि अभियोक्त्रि का

बयान अन्यथा विश्वसनीय है, ध्यान में नहीं रखा जाना चाहिए। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रकार टिप्पणी की:-

"सबूतों का मूल्यांकन करते समय अदालतों को इस तथ्य के प्रति सजग रहना चाहिए कि बलात्कार के मामले में, कोई भी स्वाभिमानी महिला अदालत में सिर्फ उसके सम्मान के खिलाफ अपमानजनक बयान देने के लिए आगे नहीं आएगी, जैसा कि उस पर बलात्कार करने में शामिल है। यौन उत्पीड़न से जुड़े मामलों में, कथित विचार जिनका अभियोजन मामले की सत्यता पर कोई भौतिक प्रभाव नहीं पड़ता है या यहां तक कि अभियोक्त्रि के बयान में विसंगतियां भी नहीं होनी चाहिए, जब तक कि विसंगतियां ऐसी न हों जो घातक प्रकृति की हों, अन्यथा विश्वसनीय अभियोजन मामले को रद्द करने की अनुमति दी जानी चाहिए। महिलाओं की अंतर्निहित बेशर्मी और यौन आक्रोश को छिपाने की प्रवृत्ति ऐसे कारक हैं जिन्हें अदालतों को नजरअंदाज नहीं करना चाहिए। ऐसे मामलों में पीड़िता की गवाही महत्वपूर्ण है और जब तक कि उसके बयान की पुष्टि करने के लिए बाध्यकारी कारण न हों, अदालतों को यौन उत्पीड़न की पीड़िता की गवाही, जहां उसकी गवाही आत्मविश्वास को प्रेरित करती है और विश्वसनीय पाई जाती है, पर कार्रवाई करने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। एक नियम के रूप में, ऐसे मामलों में उसी पर भरोसा करने से पहले उसके बयान की पुष्टि की मांग करना अपमान को जोड़ने के बराबर है। बलात्कार या यौन उत्पीड़न की शिकायत करने वाली महिला या लड़की के साक्ष्य को संदेह, अविश्वास या संदेह के साथ क्यों देखा जाना चाहिए? अदालत एक अभियोक्त्रि के साक्ष्य का मूल्यांकन करते हुए अपने न्यायिक विवेक को संतुष्ट करने के लिए उसके बयान में कुछ आश्वासन की तलाश कर सकती है, क्योंकि वह एक गवाह है जो उसके द्वारा लगाए गए आरोप के परिणाम में रुचि रखती है, लेकिन कानून की कोई आवश्यकता नहीं है कि वह किसी अभियुक्त की दोषसिद्धि के आधार पर उसके बयान की पुष्टि पर जोर दे। यौन उत्पीड़न के शिकार व्यक्ति के साक्ष्य लगभग एक घायल गवाह के साक्ष्य के बराबर हैं और एक हद तक और भी अधिक विश्वसनीय हैं। जिस प्रकार एक गवाह जिसने इस घटना में कुछ चोट पहुंचाई है, जिसे स्वयं प्रवृत्त नहीं पाया गया है, उसे इस अर्थ में एक अच्छा गवाह माना जाता है कि वह वास्तविक अपराधी को बचाने की कम से कम संभावना रखता है, यौन अपराध के शिकार व्यक्ति का साक्ष्य बहुत अधिक वजन का हकदार है, इसके बावजूद पुष्टि की अनुपस्थिति, बलात्कार के हर मामले में पुष्टिकारक साक्ष्य न्यायिक विश्वसनीयता का अनिवार्य घटक नहीं है। अभियोक्त्रि की गवाही पर न्यायिक निर्भरता के लिए एक शर्त के रूप में पुष्टि कानून की आवश्यकता नहीं है, बल्कि दी गई परिस्थितियों में विवेक का मार्गदर्शन है।

37. हिमाचल प्रदेश राज्य बनाम रघुबीर सिंह (1993)2 एस.सी.सी 622 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि अभियोक्त्रि के साक्ष्य को, यदि यह आत्मविश्वास को प्रेरित करता है, पुष्टि की आवश्यकता नहीं है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रकार टिप्पणी की:-

"इस अदालत ने कहा कि दोषसिद्धि का आदेश दर्ज करने से पहले अभियोक्त्रि के साक्ष्य की पुष्टि करने के लिए किसी अन्य सबूत की तलाश करने की कोई कानूनी बाध्यता नहीं है। सबूतों को तौला जाना चाहिए और गिना नहीं

जाना चाहिए। अभियोक्त्रि की एकमात्र गवाही पर दोषसिद्धि दर्ज की जा सकती है, यदि उसके साक्ष्य विश्वास को प्रेरित करते हैं और ऐसी परिस्थितियों का अभाव है जो उसकी सत्यता के खिलाफ हैं।

38. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणी के आधार पर, यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि पीड़िता विचारण न्यायालय के समक्ष अपने बयान में, और जब भी धारा 164 द०प्र०स० के तहत उसका बयान दर्ज किया गया था, लगातार बनी रही है।

39. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि चक्षुक साक्ष्य और चिकित्सा साक्ष्य एक दूसरे के अनुरूप नहीं हैं। अ०सा०-4 डॉ. शुभ्रा सिंह ने पीड़िता की मेडिकल जांच के दौरान देखा कि कोई शुक्राणु नहीं पाया गया और यौन उत्पीड़न के बारे में कोई निश्चित राय भी नहीं दी गई।

40. अपीलकर्ता के अधिवक्ता के तर्क को ध्यान में रखते हुए, यहां यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि पीड़िता ने अपने विश्वसनीय और भरोसेमंद सबूतों से साबित कर दिया है कि घटना उसके साथ हुई थी। उसने विशेष रूप से कहा कि अपीलकर्ता ने जबरन उसके साथ बलात्कार किया। अ०सा०-4 डॉ. शुभ्रा सिंह ने पीड़िता के प्राइवेट पार्ट पर खरोंच पाई और यह भी कहा कि उपरोक्त घर्षण को देखते हुए पीड़िता के बलात्कार की संभावना थी। इसके अलावा, विधि विज्ञान प्रयोगशाला रिपोर्ट क-13 भी इस घटना की पुष्टि करता है क्योंकि अपीलकर्ता के अंडरवियर पर मानव वीर्य पाया गया था। इसलिए, यह नहीं देखा जा सकता है कि चश्मदीद और चिकित्सा साक्ष्य के बीच असंगति है।

41. उपरोक्त चर्चाओं के आधार पर, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा संदर्भित अवलोकन और रिकॉर्ड पर उपलब्ध दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्य के मूल्यांकन पर, यह निष्कर्ष निकाला गया है कि 07.12.2013 को लगभग 8.00 बजे अपीलकर्ता ने पीड़िता के साथ जबरन बलात्कार किया। अ०सा०-1 सूचनाकर्ता, अ०सा०-2 पीड़िता की बहन और सबसे बढ़कर अ०सा०-3 पीड़िता के साक्ष्य विश्वसनीय पाए जाते हैं और उनके साक्ष्य विश्वास को प्रेरित करते हैं। एक निष्कर्ष निकाला गया है कि तथ्य के गवाहों ने अभियोजन पक्ष के मामले की पूरी तरह से पुष्टि की है, इसलिए, अभियोजन पक्ष अपीलकर्ता के खिलाफ लगाए गए आरोप को साबित करने में सफल रहा है।

42. विद्वान विचारण न्यायालय ने रिकॉर्ड पर उपलब्ध दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्य को सही तरीके से मूल्यांकन किया और इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि अपीलकर्ता-अभियुक्त ने अपराध किया और अपीलकर्ता-अभियुक्त की सजा दर्ज की।

43. उपरोक्त के मद्देनजर, विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और सजा का आदेश पुष्टि करने योग्य है और आपराधिक अपील खारिज करने योग्य है।

आदेश

44. आपराधिक अपील तदनुसार खारिज की जाती है। अपराध संख्या 652/2013 से उत्पन्न, धारा 376 और पॉक्सो एक्ट की धारा 5 (एम)/6 के तहत (यू.पी बनाम आज़म) विशेष सत्र ट्रायल नंबर 19/2014, पुलिस स्टेशन-खोराबार, जिला गोरखपुर, में विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 05.11.2019 की पुष्टि की जाती है।

45. निर्णय/आदेश की प्रमाणित प्रति, निचली अदालत के रिकॉर्ड के साथ आवश्यक अनुपालन के लिए संबंधित अदालत को भेजी जाए।

(2023) 3 ILRA 1236

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 17.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति दिनेश कुमार सिंह

2015 की आपराधिक अपील संख्या 1343

ओम प्रकाश विमल ... अपीलार्थी

बनाम

राज्य . . . प्रतिवादी

अपीलकर्ता के लिए वकील: नंदित कुमार श्रीवास्तव, प्रांजल कृष्णा, प्रशांत सिंह गौर

प्रतिवादी के लिए वकील: बीरेश्वर नाथ, शिव पी. शुक्ला

A. आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 374(2) - धारा 374(2) Cr.P.C. और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 27 के तहत अपील - आयकर अधिकारी की धारा 7, 13(2) सपठित धारा 13(1)(डी) पी.सी. अधिनियम के तहत दोषसिद्धि - वादी के आयकर आकलन को खत्म करने के लिए रिश्वत की मांग - जाल बिछाया गया - आरोपी अपीलकर्ता को सीबीआई द्वारा रंगे हाथ पकड़ा गया - न्यायालय ने कहा कि आरोपी से रिश्वत की राशि की वसूली नहीं हुई। (पैराग्राफ 37)

आयोजित: इसके अनुसार, इस न्यायालय को अभियुक्त-अपीलकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता की इस तर्क में कोई विश्वसनीयता नहीं प्रतीत होती कि अभियुक्त-अपीलकर्ता से वसूली नहीं की गई थी। एक बार जब अभियुक्त-अपीलकर्ता ने रिश्वत की राशि स्वीकार कर ली और उसने उसे कार्यालय की मेज की दराज में रख दिया, जो अभियुक्त-अपीलकर्ता की थी, तो अभियुक्त-अपीलकर्ता की कार्यालय की मेज की दराज से वसूली, अभियुक्त-अपीलकर्ता से ही वसूली है। (पैरा 37)

बी. पी.सी. अधिनियम की धारा 7 और 13 के तहत दोषसिद्धि- आवश्यकता- आरोपी लोक सेवक द्वारा अवैध परितोषण की मांग करना और उसे स्वीकार करना- मांग के साक्ष्य के बिना कोई अपराध नहीं- शब्द "मांग"- पी.सी. अधिनियम में परिभाषित नहीं- व्याख्यात्मक प्रक्रिया द्वारा डाला गया- पी.सी. अधिनियम की धारा 20- दोष की वैधानिक धारणा- साक्ष्य के बोझ में बदलाव- आरोपी को यह सिद्ध करना होगा कि क्या प्राप्त किया गया है- मूल्यवान विचार और अवैध परितोषण नहीं- आधारभूत तथ्य सिद्ध हुए- अवैध परितोषण की प्राप्ति की धारणा- यदि वादी के साक्ष्य के अभाव में अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर लोक सेवक के दोष/दोष का अनुमान लगाया जा सकता है- दोषसिद्धि की पुष्टि की गई- अपील निरस्त। (पैरा 39 से 46)

आयोजित: यह स्थापित कानून है कि पी.सी. अधिनियम की धारा 7 और 13 के तहत दोषसिद्धि दर्ज करने के लिए, आरोपी लोक सेवक द्वारा अवैध रिश्वत की मांग और स्वीकृति को ठोस और विश्वसनीय साक्ष्य द्वारा सिद्ध किया जाना चाहिए। यह भी स्थापित कानून है कि आरोपी द्वारा मांग के साक्ष्य के बिना केवल धन का कब्जा और वसूली पी.सी. अधिनियम, 1988 की धारा 7 और 13(2) सपठित धारा 13(1)(डी)

के तहत अपराध नहीं बनता है (पी. सत्यनारायण मूर्ति बनाम जिला पुलिस निरीक्षक, आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य, (2015) 10 एससीसी 152)। (पैरा 39)

पीसी अधिनियम, 1988 के अंतर्गत "मांग" शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है, लेकिन इसे वस्तुतः व्याख्यात्मक प्रक्रिया द्वारा कानून में सम्मिलित कर लिया गया है। पीसी अधिनियम की धारा 20 में दोष की कुछ वैधानिक धारणाएँ दी गई हैं। (पैरा 40)

पीसी अधिनियम की धारा 20 के शब्दों को सरलता से पाठन पर इसका अर्थ यह होगा कि यदि यह सिद्ध किया जा सकता है कि किसी लोक सेवक ने रिश्वत प्राप्त की है, तो पीसी अधिनियम की धारा 20 के अनुसार यह वैधानिक अनुमान लगाया जाता है कि उसने अधिनियम की धारा 7 में निर्धारित अवैध उद्देश्य से रिश्वत प्राप्त की है। इससे सिद्ध करने का भार अभियुक्त पर आ जाता है, जिसे यह सिद्ध करना होता है कि जो प्राप्त किया गया है, वह मूल्यवान प्रतिफल है न कि अवैध रिश्वत। (पैरा 41)

उच्चतम न्यायालय की संविधान पीठ ने नीरज दत्ता बनाम सेंट, (2022) एससीसी ऑनलाइन एससी 1724 के वर्तमान निर्णय में माना कि पीसी अधिनियम, 1988 की धारा 7 और 13(2)/13(1)(डी) (i) और (ii) के तहत अपराध गठित करने के लिए, यदि रिश्वत देने वाला लोक सेवक द्वारा किसी पूर्व मांग के बिना भुगतान की पेशकश करता है और लोक सेवक रिश्वत स्वीकार करता है और प्राप्त करता है, तो यह पीसी अधिनियम, 1988 की धारा 7 के तहत स्वीकृति का वाद होगा। यदि कोई लोक सेवक स्वयं मांग करता है और रिश्वत देने वाले द्वारा मांग स्वीकार कर ली जाती है और रिश्वत देने वाले द्वारा रिश्वत का भुगतान किया जाता है, तो यह पीसी अधिनियम की धारा 13(1)(डी) (i) और 13(1)(डी) (ii) के तहत प्राप्ति का वाद है। (पैरा 42)

यह माना गया कि यदि आधारभूत तथ्य सिद्ध हो जाते हैं, तो अवैध परितोषण की प्राप्ति की धारणा बनाई जाएगी। यदि तथ्य की ऐसी धारणा उठाई जाती है, तो यह पी.सी. अधिनियम की धारा 20 के तहत धारणा के रूप में अभियुक्त द्वारा खंडन के अधीन एक अपरिवर्तनीय धारणा नहीं है। हालाँकि, यदि धारणा का खंडन नहीं किया जाता है, तो पीसी अधिनियम की धारा 20 के तहत अपराध सिद्ध हो जाता है। (पैरा 44)

सर्वोच्च न्यायालय ने इस संदर्भ में उत्तर दिया है कि यदि वादी के साक्ष्य (प्रत्यक्ष/प्राथमिक/मौखिक/दस्तावेजी साक्ष्य) के अभाव में, अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत अन्य साक्ष्यों के आधार पर भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 7, 13(2)/13(1)(डी) के तहत किसी लोक सेवक की दोषसिद्धि/दोष का निष्कर्ष निकालने की अनुमति है। (पैरा 46)

अपील निरस्त।

<u>उद्धृत वाद सूची:</u>

1. पी. सत्यनारायण मूर्ति बनाम जिला पुलिस निरीक्षक, आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य। (2015) 10 एससीसी 152
2. नीरज दत्ता बनाम राज्य (2022) एससीसी ऑनलाइन एससी 1724

माननीय न्यायमूर्ति दिनेश कुमार सिंह

1. भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (संक्षेप में 'पी.सी. अधिनियम') की धारा 27 सपठित धारा 374(2) द०प्र०स० के तहत प्रस्तुत अपील विशेष न्यायाधीश, सीबीआई, न्यायालय संख्या-2, लखनऊ द्वारा आरसी संख्या-0062006A0030/2006 से उद्भूत आपराधिक मामला संख्या-9 वर्ष 2007 (सीबीआई बनाम ओम प्रकाश विमल) थाना-सीबीआई/एसीबी, लखनऊ में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 5.11.2015 के खिलाफ दायर की गई है जिसके तहत विद्वान विचारण न्यायालय ने अभियुक्त-अपीलकर्ता को दोषी ठहराया है और पी.सी. अधिनियम की धारा 7 के तहत तीन साल के कठोर कारावास के साथ 40,000 रुपये के जुर्माने और जुर्माना के भुगतान में चूक की आगे छह महीने के कठोर कारावास सजा सुनाई है, और पी.सी. अधिनियम की धारा 13(1)(डी) सपठित धारा 13(2) के तहत 60,000/ रुपये के जुर्माने के साथ चार साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई है और जुर्माना राशि का भुगतान न करने पर एक वर्ष की अतिरिक्त कठोर सजा भुगतनी होगी और यह निदेश दिया जाएगा कि जुर्माने को छोड़कर दोनों सजाएं साथ-साथ चलेंगी।

तथ्य

2. मामले का संक्षिप्त तथ्य यह है कि पुलिस अधीक्षक, सीबीआई के कार्यालय में दिनांक 26.12.2006 को एक लिखित शिकायत प्राप्त हुई थी। मैसर्स कश्यप ट्रेडिंग कंपनी की फर्म के स्वामित्व वाले श्री शैलेन्द्र कुमार द्वारा लखनऊ में यह आरोप लगाते हुए कि शिकायतकर्ता की उक्त चिंता खाद्यान्नों के थोक व्यापार में थी और चार्टर्ड अकाउंटेंट द्वारा प्रत्येक वर्ष नियमित रूप से उसकी लेखा परीक्षा की जाती थी। वर्ष 2002-03 से चूंकि उनकी फर्म घाटे में चल रही थी, आयकर देय नहीं था और इसलिए इसका भुगतान नहीं किया गया। शिकायतकर्ता को वित्तीय वर्ष 2003-04 और 2004-05 के लिए शिकायतकर्ता की प्रोपराइटरशिप फर्म की विवरणियों के संबंध में अप्रेल, जून और नवम्बर, 2006 में आयकर कार्यालय से एक नोटिस प्राप्त हुआ था। इन नोटिसों के संबंध में, उन्होंने अभियुक्त-अपीलकर्ता से कई बार मुलाकात की और दिनांक 7.12.2006 के पत्र के माध्यम से अपनी स्थिति स्पष्ट की। 21.12.2006 को, अभियुक्त-अपीलकर्ता ने अपने आयकर निर्धारण को शून्य करने के लिए रिश्वत राशि के रूप में 60,000/- रुपये की मांग की। आरोपी-अपीलकर्ता ने शिकायतकर्ता को धमकी दी कि अगर वह रिश्वत की राशि का भुगतान नहीं करेगा, तो शिकायतकर्ता पर भारी कर और जुर्माना लगाया जाएगा। इसके बाद, शिकायतकर्ता के अनुरोध पर, अभियुक्त-अपीलकर्ता ने उसे रिश्वत की राशि को घटाकर 50,000/- रुपये करने के लिए कहा और शिकायतकर्ता की कर देयता को शून्य बनाने के लिए शिकायतकर्ता को 27.12.2006 तक अपने निवास पर रिश्वत की राशि लाने का निर्देश दिया।

3. पुलिस अधीक्षक, सीबीआई, लखनऊ ने शिकायत की पुष्टि करने के बाद, प्राथमिकी दर्ज करने का निर्देश दिया और श्री वी. दीक्षित को ट्रैप लेइंग ऑफिसर (टीएलओ) के रूप में नामित किया। एक ट्रैप टीम का गठन किया गया, जिसमें शिकायतकर्ता शैलेंद्र कुमार; राम शब्द वर्मा, स्वतंत्र गवाह; श्री जुनैल इबाद खान, स्वतंत्र गवाह; एन.एन. पांडे, सीबीआई इंस्पेक्टर; जी.के. दुबे; ए.के. पांडे; दिवाकर पांडेय; आर.के. तिवारी, उप-निरीक्षक; एसके पांडेय, अशोक कुमार; आर.एन. शुक्ला, कांस्टेबल और जी.एस. बिष्ट

और टीएलओ, इन व्यक्तियों की उपस्थिति में, पूर्व-ट्रैप कार्यवाही पूरी की गई। शिकायतकर्ता प्रत्येक 500 रुपये के मूल्यवर्ग में 50,000 रुपये लाए। इन करेंसी नोटों की संख्या नोट की गई और उन्हें फिनोल्फथेलिन पाउडर के साथ ट्रीटमेंट (मिश्रित) किया गया, और उक्त रिश्वत की राशि शिकायतकर्ता की पैंट की दाहिनी जेब में रखी गई।

4. राम शब्द वर्मा, स्वतंत्र गवाह, को शिकायतकर्ता द्वारा अभियुक्त-अपीलकर्ता को रिश्वत की राशि देने के समय उपस्थित होने के लिए छाया गवाह के रूप में प्रतिनियुक्त किया गया था। दूसरे स्वतंत्र गवाह जुनैल इबाद खान को सीबीआई टीम के साथ मौजूद रहने का निर्देश दिया गया था। सीबीआई की टीम ट्रैप से पहले की कार्यवाही करने के बाद 27.12.2006 को दोपहर 3 बजे अभियुक्त-अपीलकर्ता के निवास पर रवाना हुई।

5. शिकायतकर्ता और छाया गवाह मोटरसाइकिल पर थे। आरोपी-अपीलकर्ता को अपने आवास से पैदल ही अपने कार्यालय जाते देखा गया। शिकायतकर्ता ने मोटरसाइकिल रोकी और आरोपी-अपीलकर्ता से अपने आवास पर जाने का अनुरोध किया। हालांकि, आरोपी अपीलकर्ता ने शिकायतकर्ता को अपने कार्यालय में पहुंचने के लिए कहा। आरोपी-अपीलकर्ता और शिकायतकर्ता के बीच की इस बातचीत को छाया गवाह राम शब्द वर्मा ने स्पष्ट रूप से सुना। यह बातचीत टी.एल.ओ. श्री वी. दीक्षित को सुनाई गई, जिन्होंने आरोपी-अपीलकर्ता को अपने कार्यालय में रिश्वत की राशि स्वीकार करते हुए रंगे हाथों पकड़ने का फैसला किया।

6. योजना के अनुसार, शिकायतकर्ता और छाया गवाह 16.15 बजे अभियुक्त-अपीलकर्ता के रिटायरिंग रूम में गए। छाया गवाह के संकेत पर, स्वतंत्र गवाह जुनैल इबाद खान के साथ सीबीआई टीम आरोपी अपीलकर्ता के कार्यालय में पहुंची और उसे रिश्वत की राशि स्वीकार करते हुए रंगे हाथों पकड़ लिया। आरोपी-अपीलकर्ता के ऑफिस टेबल की दराज से रिश्वत की रकम बरामद की गई। आरोपी-अपीलकर्ता के हाथ और उंगलियों के धोने का रंग गुलाबी हो गया। रिश्वत की राशि स्वतंत्र गवाह जुनैल इबाद खान ने आरोपी-अपीलकर्ता के कार्यालय की मेज की दराज से बरामद की थी। करेंसी नोटों की संख्या प्री-ट्रैप कार्यवाही में उल्लिखित संख्याओं से मेल खाती है। जांच पूरी करने के बाद, सीबीआई/एसीबी, लखनऊ द्वारा पी.सी. अधिनियम की धारा 13(1)(डी) सपठित धारा 7 और 13(2) के तहत आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था।

7. सीबीआई ने अपनी विवेचना में निष्कर्ष निकाला कि अभियुक्त-अपीलकर्ता को 27.12.2006 को अपने कार्यालय में दो स्वतंत्र गवाहों की उपस्थिति में 50,000/- रुपये की रिश्वत राशि की मांग करते और स्वीकार करते हुए रंगे हाथों पकड़ा गया था और आरोपी-अपीलकर्ता को मौके पर ही गिरफ्तार कर लिया गया था। अभियुक्त अपीलकर्ता पर मुकदमा चलाने के लिए आयकर आयुक्त, फैजाबाद द्वारा 23.3.2007 को मंजूरी आदेश जारी किया गया था। संज्ञान लेने के बाद आरोपी-अपीलकर्ता को मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया गया। दिनांक 24.10.2007 को धारा 207 द०प्र०स० के तहत कार्यवाही पूरी करने के बाद, पी.सी. अधिनियम की धारा 13(1)(डी) सपठित धारा 7 और 13(2) के तहत विद्वान विचारण न्यायालय

द्वारा अभियुक्त-अपीलकर्ता के खिलाफ आरोप तय किए गए थे। आरोपी-अपीलकर्ता ने आरोपों से इनकार किया और मुकदमे का दावा किया।

8. जांच में, यह देखा गया कि अभियुक्त-अपीलकर्ता 30.6.2005 से 27.12.2006 तक आयकर अधिकारी के रूप में तैनात था। आरोपी-अपीलकर्ता शिकायतकर्ता की प्रोपराइटरशिप फर्म के आयकर का आकलन करने की स्थिति में था। शिकायतकर्ता की प्रोपराइटरशिप फर्म के मूल्यांकन के लिए केस फाइल उस तारीख से लंबित थी जब अभियुक्त-अपीलकर्ता ने अपने पूर्ववर्ती श्री निमिष मिश्रा से 30.6.2005 को कार्यभार संभाला था। अभियुक्त-अपीलकर्ता ने शिकायतकर्ता की स्वामित्व फर्म के मूल्यांकन को अंतिम रूप नहीं दिया और इसे लंबित रखा और 27.12.2006 तक मूल्यांकन आदेश को अंतिम रूप नहीं दिया। उन्होंने शिकायतकर्ता से अवैध परितोषण प्राप्त करने के लिए मूल्यांकन की कार्यवाही को लंबित रखा।

9. विवेचना के दौरान, यह भी देखा गया कि जून, 2006 से शिकायतकर्ता की स्वामित्व फर्म की मूल्यांकन कार्यवाही के आदेश-पत्र में कोई आदेश पारित नहीं किया गया था। प्रारंभ में, आरोपी अपीलकर्ता ने 21.12.2006 को शिकायतकर्ता से अवैध परितोषण के रूप में 60,000/- रुपये की मांग की। तथापि, अंतत वह शिकायतकर्ता की स्वामित्व फर्म पर शून्य कर की दर से कर निर्धारण को अंतिम रूप देने के लिए दिनांक 27-12-2006 को 50,000/- रुपए की अवैध परितोषण प्राप्त करने के लिए सहमत हो गया।

<u>गवाही</u>

10. अभियोजन पक्ष ने अपने मामले को साबित करने के लिए निम्नलिखित गवाहों का परीक्षण करवाया:

1. अ०सा०-1, डी.सी.पंत, अभियुक्त-अपीलकर्ता के अभियोजन को मंजूरी देने के लिए उसके द्वारा पारित मंजूरी आदेश के संबंध में;
2. अ०सा०-2, शैलेंद्र कुमार, शिकायतकर्ता;
3. अ०सा०-3, राम शब्द वर्मा, छाया गवाह;
4. अ०सा०-4, वी. दीक्षित, टी.एल.ओ.;
5. अ०सा०-5, जुनैल इबाद खान, स्वतंत्र गवाह;
6. अ०सा०-6, शोभनाथ सरोज, आयकर अधिकारी;
7. अ०सा०-7, देवेंद्र सिंह, अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक, विवेचनाधिकारी;
8. अ०सा०-8, योगेंद्र प्रसाद गुप्ता, सहायक महाप्रबंधक, बीएसएनएल, बस्ती;
9. अ०सा०-9, वीरेंद्र देव सिंह, आयकर निरीक्षक, बस्ती; और
10. अ०सा०-10, अजीत कुमार जैन, सेवानिवृत्त अतिरिक्त आयुक्त,

11. अभियोजन पक्ष के मामले के समर्थन में कई दस्तावेजी साक्ष्य भी पेश किए गए, जिनका उल्लेख विद्वान विचारण न्यायालय के आक्षेपित निर्णय और आदेश में किया गया है।

12. अभियुक्त-अपीलकर्ता ने धारा 313 द०प्र०स० के तहत दर्ज अपने बयान में अभियोजन के मामले, सबूतों और उसके खिलाफ परिस्थितियों से इनकार किया। अभियुक्त-अपीलकर्ता ने कहा कि 30.6.2005 को उसने आयकर अधिकारी, बस्ती का कार्यभार संभाला। शिकायतकर्ता को आयकर का भुगतान करने के लिए उसकी देयता से मुक्त नहीं किया जा सकता था। अपीलकर्ता ने शिकायतकर्ता से किसी भी रिश्वत की राशि की मांग या स्वीकार नहीं किया और न ही उससे कोई रिश्वत राशि वसूल की गई। अपने आवास पर दोपहर का भोजन करने के बाद जैसे ही वह अपने आवास से कार्यालय पहुंचे, सीबीआई कर्मियों ने उन्हें पकड़ लिया। शिकायतकर्ता

आयकर देनदारी से बचना चाहता था, जिसके लिए उसने साजिश रची और आरोपी-अपीलकर्ता को झूठा फंसाया। हालांकि, आरोपी-अपीलकर्ता ने कहा कि शिकायतकर्ता द्वारा उसकी अनुपस्थिति में 50,000 रुपये उसके कार्यालय की मेज की दराज में रखे गए थे। आरोपी-अपीलकर्ता ने कहा कि वह निर्दोष है और उसने शिकायतकर्ता से न तो कोई रिश्वत की राशि मांगी और न ही उसके पास से कोई रिश्वत की राशि बरामद की गई। शिकायतकर्ता ने आरोपी-अपीलकर्ता से, जब वह दोपहर का भोजन करने के बाद अपने आवास से अपने कार्यालय वापस आ रहा था, मुलाकात की। आरोपी-अपीलकर्ता पैदल था और शिकायतकर्ता मोटरसाइकिल पर था। इससे पहले कि आरोपी-अपीलकर्ता पैदल अपने कार्यालय पहुंच पाता, शिकायतकर्ता आरोपी-अपीलकर्ता के कार्यालय में पहुंच गया और उसके कार्यालय की मेज के दराज में 50,000 रुपये रख दिए। इसके अलावा, उन्होंने कहा कि वह शिकायतकर्ता को आयकर का भुगतान करने की अपनी देयता से मुक्त नहीं कर सकते थे। जब शिकायतकर्ता को पता चला कि 31.12.2006 को उसके खिलाफ आयकर देयता तय करने का आदेश पारित किया जाएगा, तो उसने आरोपी-अपीलकर्ता को झूठा फंसा दिया।

13. अपने बचाव में, अभियुक्त-अपीलकर्ता ने दो गवाह, ब०सा०-1 हरि राम, और नंद कुमार, ब०सा०-2 को पेश किया और सूचना के अधिकार अधिनियम के तहत प्राप्त दस्तावेजी साक्ष्य प्रदर्श क-1 और प्रदर्श क-2 भी प्रस्तुत किए।

14. अ०सा०-1, श्री डी.सी. पंत, आयकर आयुक्त, फैजाबाद ने अभियुक्त-अपीलकर्ता के अभियोजन के लिए मंजूरी देने वाले आदेश दिनांक 23.3.2007 (प्रदर्श क-1) को साबित किया।

15. अ०सा०-2, शैलेन्द्र कुमार, शिकायतकर्ता ने गवाही दी कि उसने वर्ष 1996 में मैसर्स कश्यप ट्रेडिंग कंपनी प्रोपराइटरशिप फर्म पंजीकृत की और वर्ष 1999 में खाद्यान्न का थोक व्यापार शुरू किया। शुरुआत में उनका कारोबार इनकम टैक्स की सीमा के अंदर नहीं आता था। तथापि, 2003-04 से जब उन्होंने बैंक से 18,00,000/- रुपये का ऋण लिया, तो उनका व्यवसाय बढ़ गया और उन्होंने वाराणसी और बस्ती में आयकर विभाग के समक्ष अपेक्षित कागजात प्रस्तुत किए। कोई आयकर का भुगतान नहीं किया गया क्योंकि उनका व्यवसाय लाभ में नहीं चल रहा था। शिकायतकर्ता के यहां 30-1-2004 को छापा मारा गया और इससे शिकायतकर्ता का कारोबार प्रभावित हुआ और उसे घाटा हुआ।

16. अभियुक्त-अपीलकर्ता ने शिकायतकर्ता की प्रोपराइटरशिप फर्म के निर्धारण वर्ष 2003-04 और 2004-05 के संबंध में कार्यवाही शुरू की। आरोपी-अपीलकर्ता के समक्ष सारे अपेक्षित कागजात प्रस्तुत किए गए थे। हालांकि, अभियुक्त-अपीलकर्ता ने मूल्यांकन को अंतिम रूप देने और कर देयता को शून्य बनाने के लिए 60,000 रुपये की मांग की। उन्होंने 21-12-2006 को 60,000/- रुपए की रिश्वत की राशि मांगी। जब शिकायतकर्ता ने 60,000/- रुपये का भुगतान करने में असमर्थता व्यक्त की, तो अभियुक्त-अपीलकर्ता अपने निवास पर 27.12.2006 को भुगतान किए जाने वाले 50,000/- रुपये स्वीकार करने के लिए सहमत हो गया और कहा कि वह शिकायतकर्ता की स्वामित्व फर्म के संबंध में कर देयता को शून्य बनाते हुए 31.12.2006 को आदेश पारित करेगा। उन्होंने आगे प्री-ट्रैप और पोस्ट-ट्रैप कार्यवाही के संबंध में गवाही दी। उन्होंने कहा कि वह और छाया गवाह अपीलकर्ता से

मिलने के बाद आरोपी-अपीलकर्ता के कार्यालय में पहुंचे, जब वह 27.12.2006 को दोपहर का भोजन करने के बाद अपने निवास से वापस आ रहा था। आरोपी-अपीलकर्ता ने पूछा कि क्या वह 50,000 रुपये की रिश्वत राशि लाया या नहीं। उन्होंने छाया गवाह को अपने बहनोई के रूप में पेश किया और आरोपी-अपीलकर्ता से रिश्वत की राशि कम करने का अनुरोध किया, जिस पर उन्होंने कहा कि "न तो देवर और न ही ससुर किसी भी मदद के होंगे, जो भी सहमति थी, शिकायतकर्ता को भुगतान करना चाहिए"। इस पर, उसने पैंट की अपनी दाहिने हाथ की जेब से 50,000/- रुपये के फेनोल्फथलीन उपचारित मुद्रा नोट निकाले और आरोपी-अपीलकर्ता को दे दिए, जिसे उसने अपने दाहिने हाथ से लिया और अपने कार्यालय की मेज की दराज में रख दिया। शैडो गवाह के इशारे पर सीबीआई की टीम वहां पहुंची और आरोपी अपीलकर्ता को रंगे हाथों पकड़ लिया गया।

17. अ०सा०-3, राम शब्द वर्मा, छाया गवाह, ने भी प्री-ट्रैप और पोस्ट-ट्रैप कार्यवाही को दोहराया और शिकायतकर्ता, अ०सा०-2 के साक्ष्य की पूरी तरह से पुष्टि की।

18. अ०सा०-4, श्री वी. दीक्षित, डीएसपी, सीबीआई/एसीबी, देहरादून ने अपने साक्ष्य में कहा कि मई, 2002 से मई, 2008 तक वह सीबीआई/एसीबी, लखनऊ के कार्यालय में निरीक्षक के रूप में तैनात थे। दिनांक 26-12-2006 को लगभग 12.30 बजे श्री प्रवीण रंजन, पुलिस अधीक्षक, सीबीआई, लखनऊ ने उन्हें अपने कक्ष में बुलाया और शिकायतकर्ता, मैसर्स कश्यप ट्रेडिंग कंपनी के मालिक से उनका परिचय कराया। उन्होंने शिकायतकर्ता शैलेन्द्र कुमार द्वारा दी गई परिवाद को प्रस्तुत किया, जिस पर दिनांक 26.12.2006 को आरसी क्रमांक 0062006ए0030/2006 दर्ज किया गया था। उन्होंने उक्त शिकायत के साथ-साथ प्राथमिकी पर श्री प्रवीण रंजन के हस्ताक्षर साबित किए, जो प्रदर्शित किए गए थे। उक्त गवाह ने भी प्री-ट्रैप और पोस्ट-ट्रैप कार्यवाही की पूरी तरह से पुष्टि की और कहा कि स्वतंत्र गवाह, जुनैल इबाद खान द्वारा अभियुक्त-अपीलकर्ता के कार्यालय की मेज के दराज से रिश्वत की राशि बरामद की गई थी और मुद्रा नोटों की संख्या का मिलान प्रीट्रैप कार्यवाही में लिखे नंबरों से किया गया था। जब्ती ज्ञापन तैयार किया गया था, जिसे प्रदर्शित किया गया था और रिश्वत राशि वाले लिफाफे को भी प्रदर्श क-2 के रूप में प्रदर्शित किया गया था।

19. अ०सा०-5, जुनैल इबाद खान, स्वतंत्र गवाह, ने अपने बयान में कहा कि 27.12.2006 को, वह महाप्रबंधक, दूरसंचार, बीएसएनएल, बस्ती के कार्यालय में इंजीनियर, उप-डिवीजन, मोबाइल के रूप में काम कर रहा था। उन्होंने भी ट्रैप से पहले और ट्रैप के बाद की कार्यवाही की पुष्टि की। उक्त गवाह ने कहा कि उसने आरोपी-अपीलकर्ता के कार्यालय की मेज के दराज से 50,000/- रुपये रिश्वत की राशि बरामद की।

20. अ०सा०-6, श्री शोभनाथ सरोज, आयकर अधिकारी, गोंडा ने अपने बयान में कहा कि 28.12.2006 को उन्होंने अभियुक्त-अपीलकर्ता के स्थान पर आयकर अधिकारी, बस्ती का कार्यभार संभाला क्योंकि अभियुक्तअपीलकर्ता को सीबीआई ने गिरफ्तार किया था। उन्होंने आयकर अधिनियम की धारा 271-बी के तहत आयकर अधिकारी श्री निमिष मिश्रा द्वारा पारित दिनांक 20.6.2005 के आदेश के माध्यम से निर्धारण वर्ष 2004-05 के लिए मैसर्स कश्यप ट्रेडिंग कंपनी पर लगाए गए दंड के बारे में दस्तावेज को साबित

किया। उन्होंने श्री निमिष मिश्रा के दिनांक 20.6.2005 के आदेश के तहत निर्धारण वर्ष 2003-04 के लिए शिकायतकर्ता पर 80,000/- रुपये का जुर्माना लगाने वाले दस्तावेज को भी गवाही दी और साबित किया। शिकायतकर्ता की आयकर विवरणी के संबंध में निर्धारण वर्ष 2003-04 के लिए तत्कालीन आयकर अधिकारी श्री निमिष मिश्रा द्वारा दिनांक 14.2.2005 से 20.6.2005 तक का आदेश-पत्र लिखा गया था। दिनांक 5-8-2005 के आदेश के तहत आयकर अधिनियम की धारा 226(3) के अंतर्गत शाखा प्रबंधक, भारतीय स्टेट बैंक, बस्ती को शिकायतकर्ता की स्वामित्व फर्म के बैंक खाते से 80,000/- रुपए की वसूली के लिए नोटिस भेजा गया था। हालांकि, आदेश-पत्र में उक्त नोटिस का उल्लेख नहीं किया गया था, और यह अभियुक्त-अपीलकर्ता का कर्तव्य था कि वह उक्त तथ्य और आदेश-पत्र में नोटिस का उल्लेख करे।

21. निर्धारण वर्ष 2004-05 के संबंध में, गवाह ने कहा कि 14.6.2006 के बाद, आयकर अधिकारी द्वारा निर्धारण वर्ष 2004-05 की कार्यवाही के संबंध में आदेश-पत्र पर कोई आदेश नहीं लिखा गया था, जबकि अभियुक्त-अपीलकर्ता ने शिकायतकर्ता, फर्म के मालिक को दिनांक 15.6.2006, 24.11.2006 और 30.11.2006 को नोटिस दिए थे। हालांकि, ये नोटिस ऑर्डर-शीट का हिस्सा नहीं थे और उनका उल्लेख नहीं किया गया है।

22. कर निर्धारण वर्ष 2003-04 के लिए शिकायतकर्ता की फर्म के आयकर निर्धारण की कार्यवाही के संबंध में, 7.6.2006 के बाद आदेश-पत्र में कोई कार्यवाही/आदेश नहीं था। हालांकि, आदेश-पत्र लिखना आयकर अधिकारी, बस्ती का कर्तव्य था। यह सवाल कि आरोपी अपीलकर्ता द्वारा आदेश-पत्र क्यों नहीं लिखा गया था, जो प्रासंगिक समय में आयकर अधिकारी के रूप में तैनात था, गवाह ने कहा कि यह आरोपी अपीलकर्ता द्वारा ही बेहतर तरह से समझाया जा सकता है।

23. अ०सा०-7, देवेंद्र सिंह, अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक, सीबीआई, नई दिल्ली ने कहा कि अभियोजन की मंजूरी प्राप्त होने के बाद, सक्षम न्यायालय में आरोपी-अपीलकर्ता के खिलाफ 26.2.2007 को आरोप पत्र दायर किया गया था।

24. अ०सा०-8, श्री योगेन्द्र प्रताप गुप्ता, सहायक महाप्रबंधक, बीएसएनएल, बस्ती ने कहा कि वरिष्ठ अधिकारी के निर्देश पर वह दिनांक 27.12.2006 को आरोपी-अपीलार्थी के घर की तलाशी के दौरान अपनी मर्जी से गवाह के रूप में उपस्थित रहे।

25. अ०सा०-9, वीरेंद्र देव सिंह, निरीक्षक, आयकर कार्यालय, बस्ती ने गवाही दी कि वह आयकर कार्यालय, बस्ती में 2003 से 2007 तक आशुलिपिक के रूप में तैनात थे। तत्कालीन आयकर कार्यालय के हस्ताक्षर से आयकर अधिनियम की धारा 142 के अंतर्गत जारी दिनांक 5-12-2003 के नोटिस के तहत शिकायतकर्ता श्री निमिष मिश्रा, शैलेन्द्र कुमार को कर निर्धारण वर्ष 2003-04 के लिए खाते का ब्यौरा प्रस्तुत करने का निदेश दिया गया था और कर निर्धारण वर्ष 2002-03 के लिए इसी प्रकार की सूचना जारी की गई थी और खाते का ब्यौरा 24-12-2003 तक प्रस्तुत किया जाना था। उन्होंने कहा कि 27.12.2006 तक, शिकायतकर्ता, मेसर्स कश्यप ट्रेडिंग कंपनी के मालिक के संबंध में आकलन वर्ष 2003-04 और 2004-05 के लिए कोई मूल्यांकन आदेश पारित नहीं किया गया था और यह अभियुक्त-अपीलकर्ता था, जो मूल्यांकन

आदेश पारित करने के लिए सक्षम प्राधिकारी था। इस गवाह ने सीबीआई द्वारा रिकॉर्ड पर दर्ज किए गए कई दस्तावेजों को भी साबित किया।

26. अ०सा०-10, अजीत कुमार जैन, सेवानिवृत्त अतिरिक्त आयकर आयुक्त ने अपने बयान में कहा कि उन्हें जनवरी, 2005 में अतिरिक्त आयकर आयुक्त के पद पर पदोन्नत किया गया था और 31.8.2008 तक उक्त पद पर लखनऊ में तैनात रहे। उन्हें नवम्बर, 2005 में आयकर रेंज, गोंडा का अतिरिक्त प्रभार दिया गया जो 2007 तक उनके अधीन रहा। आयकर कार्यालय, बस्ती गोंडा की सीमा के भीतर आता है। उन्होंने आगे कहा कि अभियुक्त-अपीलकर्ता को श्री निमिष मिश्रा के बाद 30.6.2005 को आयकर अधिकारी, बस्ती का प्रभार मिला। उन्होंने कहा कि आकलन वर्ष 2003-04 और 2004-05 के लिए, यह अभियुक्त-अपीलकर्ता एक आयकर अधिकारी, बस्ती के रूप में था, जो आदेश पारित करने के लिए सक्षम था। जब तक अभियुक्त-अपीलकर्ता को सीबीआई द्वारा ट्रैप कार्यवाही में गिरफ्तार नहीं किया गया, तब तक उसने शिकायतकर्ता की प्रोपराइटरशिप फर्म के संबंध में निर्धारण वर्ष 2003-04 और 2004-05 के लिए कोई आदेश पारित नहीं किया।

27. ब०सा०-1, हरि राम ने कहा कि प्रासंगिक समय में वह आयकर कार्यालय, बस्ती में नोटिस सर्वर के रूप में तैनात थे।

28. ब०सा०-2 उस समय वरिष्ठ निजी सचिव के पद पर तैनात नंद कुमार ने गोरखपुर के आयकर आयुक्त डॉ. ए.के सिंह के हस्ताक्षर साबित किए।

<u>प्रस्तुतियाँ</u>

29. श्री नंदित श्रीवास्तव, वरिष्ठ अधिवक्ता, सर्वश्री प्रांजल कृष्ण पी. अवस्थी, मो. इब्राहीम खान इब्राहिम खान और अंशुमान श्रीवास्तव ने आरोपी-अपीलकर्ता के लिए प्रस्तुत किया है कि अभियोजन पक्ष के मामले के अनुसार, ट्रैप की कार्यवाही के दौरान सात व्यक्ति मौके पर मौजूद थे, जिन्होंने आरोपी-अपीलकर्ता और शिकायतकर्ता के बीच बातचीत सुनी होगी, लेकिन सीबीआई द्वारा परीक्षण के दौरान उनसे पूछताछ नहीं की गई थी। शिकायतकर्ता का स्पष्ट मकसद भारी आयकर और जुर्माना के भुगतान से बचने के लिए आरोपी-अपीलकर्ता को झूठा फंसाना था। विचारण न्यायालय ने यह दिखाने के लिए रिकॉर्ड पर लाए गए सबूतों को नजरअंदाज कर दिया था कि आरोपी-अपीलकर्ता का शिकायतकर्ता से रिश्वत की राशि मांगने और स्वीकार करने का कोई मकसद नहीं था। शिकायतकर्ता आयकर विभाग का डिफॉल्टर था क्योंकि उसने कर चोरी की थी। पूर्ववर्ती आयकर अधिकारी ने जुर्माना लगाया था और शिकायतकर्ता के खिलाफ वसूली कार्यवाही से अवगत कराया था। इसलिए, अभियुक्त-अपीलकर्ता कार्यालय में पूर्ववर्ती द्वारा पारित उक्त आदेश को वापस लेने या समीक्षा करने की स्थिति में नहीं था। आरोपी-अपीलकर्ता आयकर के शून्य भुगतान के लिए मूल्यांकन आदेश पारित करने की स्थिति में नहीं था। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया है कि विद्वान विचारण न्यायालय अ०सा०-6, 9 और 10 के साक्ष्य की मूल्यांकन करने में विफल रहा था, जो आयकर अधिकारी थे और शिकायतकर्ता पर जुर्माना लगाने के आदेशों के संबंध में गवाही दी थी।

30. अभियुक्त-अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि अभियुक्त-अपीलकर्ता का निश्चित मामला है कि जब वह दोपहर का भोजन करने के बाद अपने निवास से पैदल कार्यालय आ रहा था, शिकायतकर्ता, जो मोटरसाइकिल पर था, आरोपी-अपीलकर्ता के कार्यालय में प्रवेश किया

और रिश्वत की राशि को अभियुक्त-अपीलकर्ता के कार्यालय की मेज के दराज में रखा, विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा खारिज नहीं किया जाना चाहिए था। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि अ०सा०-2 के साक्ष्य के अनुसार, जब शिकायतकर्ता अपने निवास से अपने कार्यालय के रास्ते में आरोपी-अपीलकर्ता से मिला, तो शिकायतकर्ता ने उसे निवास पर पहुंचने का अनुरोध किया। हालांकि, आरोपी-अपीलकर्ता ने शिकायतकर्ता को कार्यालय में मिलने के लिए कहा। इसलिए, उन्होंने प्रस्तुत किया है कि अभियोजन पक्ष की कहानी का दावा कि आरोपी-अपीलकर्ता ने शिकायतकर्ता को अपने निवास पर रिश्वत की राशि देने के लिए कहा था, धराशायी हो जाता है।

31. अभियुक्त-अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि आरोपी-अपीलकर्ता के कार्यालय की मेज के दराज से कथित रिश्वत की राशि बरामद की गई थी। अभियुक्त-अपीलकर्ता का रिटायरिंग रूम लंच के दौरान खाली था क्योंकि वह दोपहर के भोजन के लिए अपने निवास पर गया था और इस अवधि के दौरान आरोपी-अपीलकर्ता के कार्यालय की मेज के दराज में शिकायतकर्ता द्वारा रिश्वत की राशि डालने की संभावना केवल संदेह नहीं थी, बल्कि एक वास्तविकता थी।

32. अभियुक्त-अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि ओम्निबस में ऊनो फाल्सस में सिद्धांत फाल्सस को विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा इस तथ्य के बावजूद नजरअंदाज कर दिया गया था कि अभियोजन पक्ष के अधिकांश गवाहों ने सच्चाई से गवाही नहीं दी थी। अभियोजन पक्ष आरोपी-अपीलकर्ता के खिलाफ मामले को उचित संदेह से परे साबित करने में विफल रहा था और सिद्धांत "यह बेहतर है कि दस दोषी व्यक्ति उस एक निर्दोष पीड़ित की तुलना में बच जाएं" को आरोपी-अपीलकर्ता को दोषी ठहराते और सजा सुनाते समय विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा नजरअंदाज कर दिया गया था। जब अभियुक्त-अपीलकर्ता द्वारा रिश्वत की राशि की मांग का कोई मकसद नहीं था, तो मांग के किसी भी सबूत के अभाव में आरोपी-अपीलकर्ता की दोषसिद्धि और सजा अनुचित है। इसलिए, उन्होंने अपील की अनुमति देने और आरोपी-अपीलकर्ता को बरी करने की प्रार्थना की है।

33. दूसरी ओर, सीबीआई के अधिवक्ता श्री शिव पी. शुक्ला ने प्रस्तुत किया है कि अभियुक्त-अपीलकर्ता ने आकलन वर्ष 2003-04 और 2004-5 के लिए शिकायतकर्ता की फाइल को जून, 2006 से बिना किसी आदेश के ऑर्डर-शीट पर बिना किसी आदेश के रखा था, जिसमें शून्य कर के लिए मूल्यांकन करने के लिए शिकायतकर्ता से अवैध परितोषण की मांग की गई थी। कर निर्धारण वर्ष 2003-04 और 2004-05 के लिए आयकर विवरणियां 26.9.2005 को दायर की गई थीं और नोटिस जारी होने के बाद सुसंगत कागजात 7.12.2006 को प्रस्तुत किए गए थे, लेकिन कर निर्धारण को अंतिम रूप नहीं दिया गया था। यह विवाद में नहीं है कि अभियुक्त-अपीलकर्ता निर्धारण वर्ष 2003-04 और 2004-05 के लिए शिकायतकर्ता की स्वामित्व फर्म मैसर्स कश्यप ट्रेडिंग कंपनी के मूल्यांकन को अंतिम रूप देने की क्षमता में था।

34. अ०सा०-2, शैलेंद्र कुमार, शिकायतकर्ता का साक्ष्य; अ०सा०-3, राम शब्द वर्मा, छाया गवाह; अ०सा०-4, वी. दीक्षित, टी.एल.ओ. और अ०सा०-5, जुनैल इबाद खान, स्वतंत्र गवाह, उचित संदेह

से परे साबित करेंगे कि अभियुक्त-अपीलकर्ता ने शिकायतकर्ता से 50,000/- रुपये की रिश्वत राशि की मांग की और स्वीकार की, जिसे अभियुक्त-अपीलकर्ता के कार्यालय की मेज के दराज से बरामद किया गया था। इसलिए, उन्होंने प्रस्तुत किया है कि सबूतों की विस्तृत जांच के बाद विद्वान विचारण न्यायालय ने पी.सी. अधिनियम की धारा 13(1)(डी) सपठित धारा 7 और 13(2) के तहत अपराधों के लिए आरोपी-अपीलकर्ता के खिलाफ मामला पूरी तरह से साबित पाया, जिसके लिए अभियुक्त-अपीलकर्ता को दोषी ठहराया गया और उपरोक्त वर्णित विचारण न्यायालय द्वारा सजा सुनाई गई थी। यह प्रस्तुत किया गया है कि एक बार मांग और स्वीकृति साबित हो जाने के बाद और रिश्वत की रकम बरामद हो जाने के बाद, आरोपी-अपीलकर्ता के खिलाफ आरोप उचित संदेह से परे पूरी तरह से साबित हो गया और इसलिए, अपील खारिज करने योग्य है।

35. मैंने पक्षकारों के अधिवक्ताओं की ओर से दी गई प्रस्तुतियों पर विचार किया और विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश का अवलोकन किया।

<u>समाप्ति</u>

36. प्रस्तुत अपील में विचार के लिए आने वाला प्रश्न यह है कि क्या अभियोजन पक्ष ठोस और विश्वसनीय साक्ष्य द्वारा शिकायतकर्ता से आरोपी अपीलकर्ता द्वारा 50,000/- रुपये की अवैध रिश्वत की मांग और स्वीकृति स्थापित करने में सक्षम था। शिकायतकर्ता ने अपने साक्ष्य में रिश्वत की राशि की मांग और स्वीकृति के संबंध में गवाही दी थी और उसने प्री-ट्रैप और पोस्ट-ट्रैप कार्यवाही के संबंध में भी गवाही दी थी और शिकायतकर्ता की गवाही अ०सा०-2 की पूरी तरह से राम शब्द वर्मा, अ०सा०-3, छाया गवाह द्वारा पुष्टि की गई थी। अ०सा०-5, जुनैल इबाद खान, स्वतंत्र गवाह, ने भी रिश्वत राशि की मांग और स्वीकृति के संबंध में अ०सा०-2 और अ०सा०-3 की गवाही की पुष्टि की। अभियुक्त-अपीलकर्ता के कार्यालय की मेज के दराज से 500 रुपये के सौ करेंसी नोट, कुल 50,000 रुपये बरामद किए गए थे और नोटों की संख्या-प्री-ट्रैप कार्यवाही में लिखे गए नोटों की संख्या से मेल खाती थी।

37. इसके मद्देनजर, इस न्यायालय को अभियुक्त-अपीलकर्ता के अधिवक्ता की प्रस्तुति में कोई विश्वसनीयता नहीं मिलती है कि अभियुक्त-अपीलकर्ता से वसूली नहीं की गई थी। एक बार जब अभियुक्त अपीलकर्ता ने रिश्वत की राशि स्वीकार कर ली और उसे कार्यालय की मेज की दराज में रख दिया, जो अभियुक्त-अपीलकर्ता की थी, तो अभियुक्त-अपीलकर्ता के कार्यालय की मेज के दराज से वसूली, स्वयं अभियुक्त-अपीलकर्ता से वसूली है।

38. रिकॉर्ड पर साक्ष्य पर विचार करते हुए, मेरा विचार है कि अभियोजन पक्ष अभियुक्त-अपीलकर्ता द्वारा शिकायतकर्ता, अ०सा०-2 से 50,000/- रुपये की रिश्वत राशि की मांग और स्वीकृति को साबित करने में सक्षम था, जिसे अभियुक्त-अपीलकर्ता के कार्यालय की मेज के दराज से बरामद किया गया था।

39. यह अच्छी तरह से स्थापित कानून है कि दंड प्रक्रिया संहिता अधिनियम की धारा 7 और 13 के तहत दोषसिद्धि दर्ज करने के लिए, आरोपी लोक सेवक द्वारा अवैध परितोषण की मांग और स्वीकृति को ठोस और विश्वसनीय साक्ष्य द्वारा साबित किया जाना चाहिए। यह भी तय कानून है कि अभियुक्त द्वारा मांग के सबूत के बिना केवल धन रखना और उसकी वसूली पी.सी. अधिनियम, 1988 (पी. सत्यनारायण मूर्ति

बनाम जिला पुलिस निरीक्षक, आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य, (2015) 10 एस.सी.सी. 152) की धारा 7 और 13(2) सपठित अपराध नहीं है।

40. शब्द "मांग" को पी.सी. अधिनियम, 1988 के तहत जगह नहीं मिलती है, लेकिन इसे व्याख्यात्मक प्रक्रिया द्वारा क़ानून में वस्तुतः डाला गया है। दंड प्रक्रिया संहिता अधिनियम की धारा 20 अपराध की कुछ वैधानिक धारणा प्राप्त करती है। दंड प्रक्रिया संहिता अधिनियम की धारा 7 को धारा 20 पी.सी. अधिनियम के साथ पढ़ा जाना चाहिए, जो निम्नानुसार है: -

"20. ऐसी उपधारणा जहाँ लोक सेवक विधिक पारिश्रमिक से भिन्न परितोषण स्वीकार करता है

(1) जहां, धारा 13 की उपधारा (1) की धारा 7 या धारा 11 या खंड (क) या खंड (ख) के तहत दंडनीय अपराध के किसी भी परीक्षण में यह साबित हो जाता है कि एक आरोपी व्यक्ति ने स्वीकार कर लिया है या प्राप्त किया है या स्वीकार करने के लिए सहमत हो गया है या खुद के लिए, या किसी अन्य व्यक्ति के लिए, किसी भी व्यक्ति से कोई संतुष्टि (कानूनी पारिश्रमिक के अलावा) या कोई मूल्यवान चीज प्राप्त करने का प्रयास किया है, यह तब तक माना जाएगा, जब तक कि इसके विपरीत साबित न हो जाए, कि उसने उस परितोषण या उस मूल्यवान चीज को, जैसा भी मामला हो, एक मकसद या इनाम के रूप में स्वीकार किया या प्राप्त करने के लिए सहमत या स्वीकार करने के लिए सहमति व्यक्त की या प्राप्त करने का प्रयास किया, जैसा कि धारा 7 में उल्लेख किया गया है या, जैसा भी मामला हो, बिना विचार के या एक विचार के लिए जिसे वह अपर्याप्त जानता है।

(2) जहां धारा 12 या धारा 14 के खंड (बी) के तहत दंडनीय अपराध के किसी भी परीक्षण में, यह साबित हो जाता है कि किसी भी परितोषण (कानूनी पारिश्रमिक के अलावा) या किसी भी मूल्यवान चीज को दिया गया है या देने की पेशकश की गई है या देने का प्रयास किया गया है, एक आरोपी व्यक्ति, यह माना जाएगा, जब तक कि इसके विपरीत साबित न हो कि उसने उस परितोषण या उस मूल्यवान वस्तु, जैसा भी मामला हो, को एक मकसद या इनाम के रूप में दिया या देने का प्रयास किया, जैसा कि धारा 7 में उल्लेख किया गया है, या जैसा भी मामला हो, बिना विचार के या एक विचार के लिए जिसे वह अपर्याप्त जानता है।

(3) उपधारा (1) और उपधारा (2) में किसी बात के होते हुए भी, न्यायालय उक्त उपधाराओं में से किसी में भी निर्दिष्ट उपधारणा निकालने से मना कर सकेगा, यदि परितोषण या पूर्वोक्त बात, उसकी राय में, इतनी तुच्छ है कि भ्रष्टाचार का कोई हस्तक्षेप उचित रूप से नहीं किया जा सकता है।

41. दंड प्रक्रिया संहिता अधिनियम की धारा 20 के शब्दों के साथ सादा पढ़ने का अर्थ होगा कि यदि यह साबित किया जा सकता है कि किसी लोक सेवक ने परितोषण प्राप्त किया है, तो दंड प्रक्रिया संहिता अधिनियम की धारा 20 वैधानिक धारणा में लाती है कि उसने अधिनियम की धारा 7 में निर्धारित अवैध उद्देश्य से इसे प्राप्त किया है। यह अभियुक्त को सबूत का बोझ स्थानांतरित करता है, जिसे यह साबित करने की आवश्यकता होती है कि जो प्राप्त हुआ है, वह एक मूल्यवान विचार है और अवैध परितोषण नहीं है।

42. नीरज दत्ता बनाम राज्य, (2022) एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 1724 के मामले में हाल के एक फैसले में उच्चतम न्यायालय की संविधान पीठ ने माना है कि पी.सी. अधिनियम, 1988

की धारा 7 और 13(2)/13(1)(डी)(i) और (ii) के तहत अपराध का गठन करने के लिए, यदि कोई रिश्वत देने वाला किसी लोक सेवक और लोक सेवक द्वारा उसी की कोई पूर्व मांग किए बिना भुगतान करने की पेशकश करता है और रिश्वत प्राप्त करता है, यह पी.सी. अधिनियम, 1988 की धारा 7 के तहत स्वीकृति का मामला होगा। यदि कोई लोक सेवक स्वयं मांग करता है और रिश्वत देने वाले द्वारा मांग स्वीकार की जाती है और रिश्वत देने वाले द्वारा रिश्वत का भुगतान किया जाता है, तो यह दंड प्रक्रिया संहिता अधिनियम की धारा 13(1)(डी)(i) और 13(1)(डी)(ii) के तहत प्राप्ति का मामला है।

43. यह माना गया है कि यदि मूलभूत तथ्यों को साबित कर रहे हैं, अवैध परितोषण की प्राप्ति का अनुमान लगाया जाएगा। यदि तथ्य की ऐसी धारणा उठाई जाएगी, तो यह अभियुक्त द्वारा पी.सी. की धारा 20 के तहत अनुमान के रूप में खंडन के अधीन है। अधिनियम एक अनुल्लंघनीय अनुमान नहीं है। हालांकि, अगर अनुमान का खंडन नहीं किया जाता है, तो अपराध पी.सी. अधिनियम की धारा 20 के तहत प्रदान किया गया साबित हो जाता है।

44. पूर्वोक्त निर्णय के पैराग्राफ 4 और 5 में, दंड प्रक्रिया संहिता अधिनियम, 1988 की धारा 7 और 13(1)(डी) के तहत अपराध का गठन करने के लिए सामग्री का उल्लेख किया गया है। पूर्वोक्त निर्णय के पैराग्राफ 4 और 5, जो प्रासंगिक हैं, यहां निकाले गए घाव हैं: -

"4. अधिनियम की धारा 7 के तत्व निम्नलिखित हैं:

(i) अभियुक्त को लोक सेवक होना चाहिए या लोक सेवक होने की अपेक्षा करनी चाहिए;

ii) उसे किसी व्यक्ति से स्वीकार करना चाहिए या प्राप्त करना चाहिए या स्वीकार करने के लिए सहमत होना चाहिए या प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए;

iii) खुद के लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए;

iv) कानूनी पारिश्रमिक के अलावा कोई भी परितोषण

v) किसी भी आधिकारिक कार्य को करने के लिए या कोई पक्ष या पक्षपात दिखाने के लिए एक मकसद या इनाम के रूप में।

5. अधिनियम की धारा 13(1)(डी) में निम्नलिखित तत्व हैं जिन्हें लोक सेवक के अपराध को क़ानून के दायरे में लाने से पहले साबित करना होगा, अर्थात्, -

(i) अभियुक्त को लोक सेवक होना चाहिए;

(ii) भ्रष्ट या अवैध तरीकों से, अपने लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए कोई मूल्यवान वस्तु या आर्थिक लाभ प्राप्त करता है; या लोक सेवक के रूप में अपने पद का दुरुपयोग करके, अपने लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए कोई मूल्यवान वस्तु या आर्थिक लाभ प्राप्त करता है; या लोक सेवक के रूप में पद धारण करते हुए, किसी भी व्यक्ति के लिए बिना किसी सार्वजनिक हित के कोई मूल्यवान वस्तु या आर्थिक लाभ प्राप्त करता है।

(iii) धारा 13(1)(डी) के तहत अपराध बनाने के लिए, यह आवश्यक नहीं है कि मूल्यवान वस्तु या आर्थिक लाभ एक मकसद या इनाम के रूप में प्राप्त किया जाना चाहिए।

(iv) स्वीकार करने के लिए एक समझौता या प्राप्त करने का प्रयास धारा 13(1)(डी) के भीतर नहीं आता है।

(vi) केवल किसी मूल्यवान वस्तु या आथक लाभ को स्वीकार करना इस उपबंध के अधीन अपराध नहीं है।

(vii) इसलिए, इस उपबंध के अधीन अपराध का निर्धारण करने के लिए वास्तविक प्राप्ति होनी चाहिए।

(viii) चूंकि विधायिका ने दो अलग-अलग अभिव्यक्तियों अर्थात् "प्राप्त" या "स्वीकार करता है" का प्रयोग किया है, इन दोनों के बीच अंतर को नोट किया जाना चाहिए।

45. पूर्वोक्त निर्णय के पैराग्राफ 74 में, धारा 7 और 13(1)(डी) के तहत अभियुक्त/लोक सेवक के अपराध को स्थापित करने के लिए कानून को संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है, जो निम्नानुसार होगा: -

> *"74. पूर्वोक्त चर्चा से जो उभरता है वह संक्षेप में निम्नानुसार है:*
>
> *(ए) अभियोजन पक्ष द्वारा जारी किए गए तथ्य के रूप में एक लोक सेवक द्वारा अवैध परितोषण की मांग और स्वीकृति का प्रमाण अधिनियम की धारा 7 और 13(1)(डी)(i) और (ii) के तहत आरोपी लोक सेवक के अपराध को स्थापित करने के लिए एक अनिवार्य शर्त है।*
>
> *(ख) अभियुक्त के अपराध को सिद्ध करने के लिए अभियोजन पक्ष को पहले गैर-कानूनी परितोषण की मांग को सिद्ध करना होता है और तदुपरांत स्वीकृति को तथ्य के रूप में सिद्ध करना होता है। इस तथ्य को या तो प्रत्यक्ष साक्ष्य द्वारा साबित किया जा सकता है जो मौखिक साक्ष्य या दस्तावेजी साक्ष्य की प्रकृति में हो सकता है।*
>
> *(ग) इसके अतिरिक्त, जारी किए गए तथ्य, नामत अवैध परितोषण की मांग का प्रमाण और स्वीकृति को प्रत्यक्ष मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य के अभाव में परिस्थितिजन्य साक्ष्य द्वारा भी सिद्ध किया जा सकता है।*
>
> *(घ) मुद्दे में तथ्य अर्थात् लोक सेवक द्वारा अवैध परितोषण की मांग और स्वीकृति को साबित करने के लिए, निम्नलिखित पहलुओं को ध्यान में रखना होगा।*
>
> *(i) यदि लोक सेवक से बिना किसी मांग के रिश्वत देने वाले द्वारा भुगतान करने का प्रस्ताव है और बाद वाला केवल प्रस्ताव स्वीकार करता है और अवैध परितोषण प्राप्त करता है, तो यह अधिनियम की धारा 7 के अनुसार स्वीकृति का मामला है। ऐसे मामले में, लोक सेवक द्वारा पूर्व मांग की आवश्यकता नहीं है।*
>
> *(ii) दूसरी ओर, यदि लोक सेवक मांग करता है और रिश्वत देने वाला मांग को स्वीकार करता है और मांगे गए परितोषण को देता है जो बदले में लोक सेवक द्वारा प्राप्त किया जाता है, तो यह प्राप्ति का मामला है। प्राप्ति के मामले में, अवैध परितोषण की पूर्व मांग लोक सेवक से निकलती है। यह अधिनियम की धारा 13(1)(डी)(i) और (ii) के तहत अपराध है।*

(iii) उपरोक्त (i) और (ii) के दोनों मामलों में, क्रमशः रिश्वत देने वाले द्वारा पेशकश और लोक सेवक द्वारा मांग को अभियोजन पक्ष द्वारा एक तथ्य के रूप में साबित किया जाना है। दूसरे शब्दों में, बिना किसी और चीज के अवैध परितोषण को स्वीकार करना या प्राप्त करना इसे अधिनियम की धारा 7 या धारा 13(1)(डी), (आई) और (ii) के तहत अपराध नहीं बना देगा। इसलिए, अधिनियम की धारा 7 के अंतर्गत, अपराध को क़ानून के दायरे में लाने के लिए, रिश्वत देने वाले की ओर से एक प्रस्ताव अवश्य दिया जाना चाहिए जिसे लोक सेवक द्वारा स्वीकार कर लिया जाए और यह अपराध बन जाए। इसी प्रकार, लोक सेवक द्वारा रिश्वत देने वाले द्वारा स्वीकार किए जाने पर पूर्व मांग और बदले में लोक सेवक द्वारा प्राप्त भुगतान किया जाता है, तो ये अधिनियम की धारा 13(1)(डी) और (i) और (ii) के तहत प्राप्त अपराध होगा।

(ङ) किसी अवैध परितोषण की मांग और स्वीकृति अथवा प्राप्ति के संबंध में तथ्य की धारणा किसी न्यायालय द्वारा अनुमान के माध्यम से तभी लगाई जा सकती है जब मूलभूत तथ्य संगत मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य द्वारा सिद्ध हो गए हों न कि उसके अभाव में। रिकॉर्ड पर सामग्री के आधार पर, न्यायालय के पास यह विचार करते समय तथ्य की धारणा को उठाने का विवेक है कि अभियोजन पक्ष द्वारा मांग का तथ्य साबित किया गया है या नहीं। बेशक, तथ्य की एक धारणा अभियुक्त द्वारा खंडन के अधीन है और खंडन अनुमान के अभाव में खड़ा है।

(च) यदि शिकायतकर्ता मुकर जाता है या उसकी मृत्यु हो जाती है या विचारण के दौरान वह साक्ष्य देने के लिए अनुपलब्ध होता है तो अवैध परितोषण की मांग किसी अन्य गवाह को साक्ष्य देकर साबित की जा सकती है जो मौखिक रूप से या दस्तावेजी साक्ष्य द्वारा साक्ष्य पुन दे सकता है या अभियोजन परिस्थितिजन्य साक्ष्य द्वारा मामले को साबित कर सकता है। मुकदमा समाप्त नहीं होता है और न ही इसके परिणामस्वरूप आरोपी लोक सेवक को बरी करने का आदेश होता है।

(छ) जहां तक अधिनियम की धारा 7 का संबंध है, जारी किए गए तथ्यों के प्रमाण के आधार पर, धारा 20 में न्यायालय को यह पूर्वधारणा करने का अधिदेश दिया गया है कि अवैध परितोषण उक्त धारा में यथा उल्लिखित प्रयोजन अथवा पुरस्कार के प्रयोजन से किया गया था। उक्त अनुमान को अदालत द्वारा कानूनी आंकलन या कानून में अनुमान के रूप में उठाया जाना है। बेशक, उक्त अनुमान भी खंडन के अधीन है। धारा 20 अधिनियम की धारा 13(1)(d)(i) और (ii) पर लागू नहीं होती है।

(ज) हम स्पष्ट करते हैं कि अधिनियम की धारा 20 के तहत कानून में अनुमान बिंदु (ई) में ऊपर संदर्भित तथ्य की धारणा से अलग है क्योंकि पूर्व एक अनिवार्य अनुमान है जबकि बाद वाला प्रकृति में विवेकाधीन है।

46. उच्चतम न्यायालय ने इस संदर्भ का उत्तर दिया है कि यदि शिकायतकर्ता के साक्ष्य (प्रत्यक्ष/प्राथमिक/मौखिक/दस्तावेजी साक्ष्य) के अभाव में, अभियोजन पक्ष द्वारा पेश किए गए अन्य साक्ष्यों के आधार पर पी.सी. अधिनियम की धारा 7, 13(2)/13(1)(डी) के तहत लोक सेवक के दोषी/अपराध की अनुमानित कटौती करने की अनुमति होगी।

47. नीरज दत्ता (उपरोक्त) के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून की निहाई पर सबूतों को ध्यान में रखते हुए, मेरा विचार है कि अभियोजन पक्ष शिकायतकर्ता से अभियुक्त-अपीलकर्ता द्वारा रिश्वत की मांग और स्वीकृति के मामले को साबित करने में सफल रहा है और विद्वान विचारण न्यायालय ने पूर्वोक्त अपराधों के लिए आरोपी-अपीलकर्ताओं को सही दोषी ठहराया है और सजा सुनाई है।

48. इसके मद्देनजर, मुझे इस अपील में कोई सार नहीं मिलता है, जिसे एतद्द्वारा खारिज किया जाता है। आरोपी-अपीलकर्ता जमानत पर है। उनके जमानत बांड रद्द किए जाते हैं और जमानतदारों को उन्मोचित किया जाता है। उसे विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा दी गई सजा काटने के लिए तुरंत हिरासत में लिया जाए। विचारण न्यायालय के रिकॉर्ड को तुरंत वापस लौटाया जाए।

(2023) 3 ILRA 1249

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 17.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. कौशल जयेन्द्र ठाकर.

माननीय न्यायमूर्ति अरूण कुमार सिंह देशवाल.

2015 की आपराधिक अपील संख्या 5517

धर्मेंद्र कुमार ... अपीलार्थी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ... प्रतिवादी

अपीलकर्ता के लिए वकील: श्री रमेश कुमार पांडे, श्री आशीष कुमार सिंह

प्रतिवादी के लिए वकील: जी.ए.

ए. भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302 - आजीवन कारावास की सजा - आरोप - आरोपी अपीलकर्ता का बेटा मृतक को बुलाने उसके घर आया था - आरोपी अपीलकर्ता को मृतक के शव को उसके घर से बाहर निकालते देखा गया था - चाकू से कई चोटें - भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 106 की उपधारणा - मृतक की मृत्यु के बारे में स्पष्टीकरण देने का अपीलकर्ता का कर्तव्य - मृतक का शव उसके घर से बरामद हुआ - उपधारणा का सही ढंग से प्रयोग किया गया। (पैराग्राफ 12)

आयोजित: अतः भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (जिसे आगे 'साक्ष्य अधिनियम' कहा जाएगा) की धारा 106 की धारणा के अनुसार, मृतक अवधेश की मृत्यु के बारे में स्पष्टीकरण

देना अपीलकर्ता का कर्तव्य है, क्योंकि मृतक का शव अपीलकर्ता के घर से बरामद किया गया था। अभिलेख से यह भी पता चलता है कि हालांकि प्रारंभ में अपीलकर्ता ने धारा 161 सीआरपीसी के तहत स्वीकृत किया था कि उसने मृतक अवधेश की हत्या उस समय की थी, जब उसने उसे अपनी बेटी सपना के साथ आपत्तिजनक स्थिति में देखा था। सत्र न्यायाधीश ने भी अपीलकर्ता को इस आधार पर दोषी ठहराया कि मृतक अवधेश का शव उसके घर से मिला था और परिस्थितिजन्य साक्ष्यों और अपीलकर्ता के बाद के आचरण से यह प्रतीत होता है कि उसने अवधेश को चाकू से घायल करके मार डाला था, जब उसने उसे अपनी बेटी के साथ उसके घर पर आपत्तिजनक स्थिति में देखा था। यहां तक कि अपीलकर्ता ने भी धारा 313 सीआरपीसी के तहत दर्ज अपने बयान में मृतक अवधेश का शव उसके घर से मिलने के लिए पर्याप्त स्पष्टीकरण नहीं दिया। इसलिए, सत्र न्यायाधीश द्वारा अपीलकर्ता के विरुद्ध भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 106 के अंतर्गत उपधारणा का प्रयोग उचित रूप से किया गया। (पैरा 12)

बी. धारा 300 आईपीसी का अपवाद 1- कोई प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं- अपीलकर्ता ने मृतक अवधेश की क्षणिक आवेश में हत्या कर दी- उसे अपनी पुत्री के साथ आपत्तिजनक स्थिति में देखा- विचारण न्यायालय के निर्णय में संशोधन- धारा 304 आईपीसी के तहत दोषसिद्धि- दण्ड को 10 वर्ष कारावास में संशोधित किया गया- अपील आंशिक रूप से स्वीकृत। (पैराग्राफ 14, 15, 16 और 17)

आयोजित: उपरोक्त तथ्य और परिस्थितियों को देखते हुए, हम इस राय पर पहुंचे हैं कि सर्वप्रथम, इस बात का कोई प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं है कि अपीलकर्ता ने मृतक अवधेश की मौत का कारण बना है, लेकिन परिस्थितिजन्य साक्ष्य के साथ-साथ साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 के तहत अनुमान से, उसे अवधेश की मौत का कारण बनने के लिए दोषी ठहराया गया था। दूसरे, यह तथ्य भी विवाद में नहीं है कि अपीलकर्ता द्वारा कृत मृतक की हत्या पूर्वनियोजित नहीं थी, बल्कि इस तथ्य के कारण हुई कि उसने गंभीर और अचानक उकसावे से अपना आपा खो दिया था क्योंकि उसने मृतक अवधेश को अपनी बेटी सपना के साथ आपत्तिजनक स्थिति में देख लिया था और ऐसी परिस्थितियों में, इस तथ्य पर विवाद नहीं किया जा सकता है कि एक पिता अपनी बेटी को किसी व्यक्ति के साथ आपत्तिजनक स्थिति में देखने के पश्चात निश्चित रूप से अपना आपा खो देगा और अगर उसने उस क्षण में मृत्यु का कारण बना, तो यह गैर इरादतन हत्या के अंतर्गत आएगा। उत्तर प्रदेश राज्य बनाम लखमी आपराधिक अपील संख्या 234/1993 निर्णय दिनांक 12.02.1998 एआईआर 1998 एससी 1007 और हंसा सिंह बनाम पंजाब राज्य, आपराधिक अपील संख्या 248/1973 निर्णय दिनांक 20.08.1976 एआईआर 1977 एससी 1801 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि ऐसी स्थिति में वाद धारा 304 आईपीसी के तहत आएगा न कि धारा 302 आईपीसी के तहत। इसके पश्चात, अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों और अपीलकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता तथा विद्वान ए.जी.ए. के तर्कों पर विचार करते हुए, यह स्पष्ट रूप से स्थापित है कि धारा 300 आई.पी.सी. के अपवाद 1 के आलोक में वर्तमान वाद धारा 304 आई.पी.सी. के अंतर्गत आता है, न कि धारा 302 आई.पी.सी. के अंतर्गत। इसलिए,

अपीलकर्ता को धारा 304 आई.पी.सी. के अंतर्गत दोषी ठहराया जाना चाहिए। (पैरा 16)

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की गई। (E-14)

उद्धृत वाद सूची:

1. आपराधिक अपील संख्या 734 / 2014, निर्णित दिनांक 03.04.2014 सरोज @ सूरज पंचाल और अन्य बनाम राज्य (पश्चिम बंगाल)
2. आपराधिक अपील संख्या 219 /2013 निर्णित दिनांक 21.05.2020 थिरुचनूर अमरनाथ बनाम ए.पी. राज्य (पब्लिक प्रॉसिक्यूटर हैदराबाद द्वारा)
3. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम लक्ष्मी AIR 1998 SC 1007
4. हंस सिंह बनाम राज्य पंजाब AIR 1977 SC 1801

(माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल द्वारा प्रदत्त)

1. प्रस्तुत आपराधिक अपील के माध्यम से, अपीलकर्ता ने विशेष न्यायाधीश (आवश्यक वस्तु अधिनियम)/अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, गाजियाबाद द्वारा सत्र परीक्षण संख्या-483 वर्ष 2012 (राज्य बनाम धर्मेंद्र कुमार) में पारित निर्णय और आदेश दिनांक 30.10.2015 को चुनौती दी है, जो धारा-302 भ०द०वि०, थाना-इंद्रपुरम, जिला-गाजियाबाद के तहत मामला अपराध संख्या-1591 वर्ष 2011 से उत्पन्न हुआ है। आक्षेपित निर्णय द्वारा, सत्र न्यायाधीश ने अपीलकर्ता को धारा -302 भ०द०वि० के तहत दोषी ठहराया और अपीलकर्ता पर 40,000 रुपये के जुर्माने के साथ आजीवन कारावास की सजा सुनाई और जुर्माना न देने की स्थिति में, यह निर्देश दिया गया कि वह एक वर्ष के कारावास की सजा भुगतने के लिए उत्तरदायी होगा।

अभियोजन का मामला

2. प्रथम सूचनाकर्ता फूला देवी (अ०सा०-1) ने थाना-इंद्रपुरम में दिनांक 13.09.2011 को तहरीर प्रस्तुत की। उस तहरीर में बताया गया था कि पहली सूचनाकर्ता फूला देवी अपने परिवार के साथ आर.सी./51 एन हयातनगर खोड़ा में रह रही थी। आरोपी धर्मेंद्र उसके बेटे अवधेश चंद्र यादव को बुलाने उसके घर आया था। इसके बाद, 3 से 4 बजे के बीच, धर्मेंद्र का भाई हरेंद्र कुमार उसके घर आया और उसे अपने बेटे को ले जाने के लिए कहा क्योंकि उसे चाकू से कई चोटें आई हैं। इसके बाद, वह अपने छोटे बेटे महेश के साथ अपीलकर्ता के घर गई, फिर उसने देखा कि आरोपी व्यक्ति उसके बेटे को घर से बाहर निकाल रहे थे और उसे जोर से अपने बेटे का शव लेने के लिए कहा। इसके बाद वह और उसका बेटा अवधेश को पुलिस के साथ मेट्रो अस्पताल लेकर आए, जहां डॉक्टरों ने अवधेश को मृत घोषित कर दिया।

3. उक्त तहरीर दिनांक 13.09.2011 के आधार पर अभियुक्त धर्मेन्द्र एवं हरेन्द्र के विरूद्ध दिनांक 18.15 बजे प्रकरण क्रमांक 1591 वर्ष 2011 के अन्तर्गत प्रकरण पंजीबद्ध किया गया। एस.आई. मुंशी लाल को उक्त मामले की जांच सौंपी गई, जिन्होंने प्रथम सूचना देने वाले का बयान दर्ज करने के बाद मौके पर जाकर घटनास्थल पर नक्शा नज़री तैयार किया और गवाहों के बयान दर्ज करने के बाद तकिया और खून से सनी चादर के साथ-साथ खून से सना चाकू के साथ खून से सना फर्श और मिट्टी एकत्र की। अवधेश के शव का पंचायतनामा भी 13.09.2011 को 16:30 बजे मेट्रो अस्पताल, नोएडा में गवाहों की उपस्थिति में तैयार किया गया था। इसके बाद अवधेश के शव का शव परीक्षण भी दिनांक 14.09.2011 को दोपहर 2:15 बजे डॉ. के.एन तिवारी द्वारा जिला

अस्पताल में किया गया। शव परीक्षण रिपोर्ट के अनुसार, मृतक अवधेश चंद्र यादव के शरीर पर निम्नलिखित मृत्यु पूर्व चोटें पाई गईं:

(i) 11 चीरा हुआ (छिद्रित) क्षेत्र वर्ष में पेट में घाव 20 x 20 सेमी आकार 4 x 2 सेमी
से 1.50 x 1 सेमी;

(ii) बाईं ओर तीन घाव पाए गए और;

(iii) दाहिनी ओर 8 घाव पाए गए।

सभी घाव पेट में गहरे थे।

शव की आंतरिक जांच में पेट में भी खून पाया गया। छोटी आंत, लीवर कटे थे, 100 मिलीलीटर अर्ध पचा हुआ भोजन भी बड़ी आंत पाया गया।

4. डॉक्टर की राय के अनुसार, मृत्यु का कारण रक्तस्राव और उपरोक्त चोटों का प्रहार है। दिनांक 13-09-2011 को मेट्रो अस्पताल, गौतम बुद्ध नगर में 16.30 बजे गवाहों की उपस्थिति में सपना कुमारी के लगभग 17 वर्ष के शव का पंचायतनामा भी किया गया। इसके बाद, उसके शव को शव परीक्षण के लिए भी भेजा गया जिसे डॉ. के.एन तिवारी द्वारा 14.09.2011 को दोपहर 2:45 बजे किया गया। शव परीक्षण रिपोर्ट के अनुसार, पेट सहित उसके शरीर के विभिन्न हिस्सों पर कई घाव भी पाए गए। आंतरिक जांच में उसके पेट और छाती में भी खून पाया गया। चिकित्सक की राय के अनुसार कुमारी सपना की भी मृत्यु रक्तस्त्राव, सदमा, पूर्व-मृत्यु चोटों के कारण हुई। लेकिन चूंकि अवधेश कुमार के संबंध में मुकदमा चल रहा है, इसलिए वर्तमान में कुमारी सपना की चोट की विस्तृत चर्चा प्रासंगिक नहीं है, क्योंकि उसकी मौत के लिए कोई मामला दर्ज नहीं किया गया था।

5. पंचायतनामा और शव परीक्षण की तैयारी के बाद, जांच 27.11.2011 को नए विवेचनाधिकारी, राम पवन सिंह को सौंप दी गई और जांच प्राप्त करने पर, उन्होंने कई गवाहों के बयान दर्ज किए और पाया कि सह-अभियुक्त हरेंद्र उपरोक्त घटना में शामिल नहीं था क्योंकि वह घटनास्थल पर मौजूद नहीं था, इसलिए जांच के दौरान उसका नाम हटा दिया गया और वर्तमान अपीलकर्ता, धर्मेंद्र को पुलिस ने 18.03.2012 को गिरफ्तार किया और उसके बाद, उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर, धारा 302 भ०द०वि० के तहत अपीलकर्ता के खिलाफ दिनांक 21.03.2012 को आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया। अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश ने 08.06.2012 को धारा-302 भ०द०वि० के तहत अपीलकर्ता के खिलाफ आरोप तय किए। अपीलकर्ता ने आरोपों से इनकार किया और विचारण के लिए अनुरोध किया।

<u>अभियोजन साक्ष्य</u>

6. अभियोजन के समर्थन में 12 गवाहों से पूछताछ की गई जिसमें फूला देवी को अ०सा०-1, रामू सिंह को अ०सा०-2, महेंद्र सिंह को अ०सा०-3, अवधेश भगत को अ०सा०-4, हरेंद्र कुमार को अ०सा०-5, सब-इंस्पेक्टर चमन प्रकाश शर्मा को अ०सा०-6, डॉ. के.एम तिवारी को अ०सा०-7, कांस्टेबल मूलचंद्र शर्मा को अ०सा०-8, उषा पत्नी प्रभु दयाल को अ०सा०-9 के रूप में भी, राम सेन सिंह अ०सा०-9 (?) के रूप में, मंजू अ०सा०-10 के रूप में, इंस्पेक्टर मुंशी लाल अ०सा०-11 के रूप में परीक्षित किये गए।

7. अभियोजन पक्ष के गवाहों के निष्कर्ष के बाद, अपीलकर्ता की धारा 313 द०प्र०स० के तहत जांच की गई। अपनी जांच में, अपीलकर्ता ने अवधेश की हत्या में अपनी भागीदारी से स्पष्ट रूप से इनकार किया और पहले सूचनाकर्ता द्वारा अपने ऊपर झूठे आरोप लगाए जाने का दावा किया। धारा 313 द०प्र०स० के तहत अतिरिक्त परीक्षा में, अपीलकर्ता ने कोई भी सबूत देने से इनकार

कर दिया और दलील दी कि उसे झूठा फंसाया गया है क्योंकि कथित घटना उसके घर में हुई थी।

<u>अपीलकर्ता का तर्क</u>

8. अपीलकर्ता का एकमात्र तर्क यह है कि प्रस्तुत मामला धारा 302 भ०द०वि० के तहत नहीं आता है, लेकिन धारा 304 भ०द०वि० के तहत आता है, धारा 300 भ०द०वि० के अपवाद-1 के मद्देनजर क्योंकि अवधेश की मृत्यु यदि अपीलकर्ता द्वारा की जाती है तो मृतक अवधेश को अपनी बेटी सपना के साथ आपत्तिजनक स्थिति में देखने के बाद अपना आत्म नियंत्रण खोने के कारण होती है।

<u>अभियोजन का तर्क</u>

9. अपर शासकीय अधिवक्ता ने तर्क दिया कि सबूतों से यह स्पष्ट है कि अपीलकर्ता ने अपनी बेटी सपना और पहले सूचनाकर्ता के बेटे शेरू उर्फ अवधेश की चाकू से हत्या कर दी है और अपीलकर्ता ने विवेचनाधिकारी के समक्ष उपरोक्त अपराध में अपनी संलिप्तता भी कबूल की है और पुलिस ने घटनास्थल से खून से सना चाकू बरामद किया है। फोरेंसिक साइंस लेबोरेटरी की रिपोर्ट ने भी इस तथ्य को स्थापित किया और आगे तर्क दिया कि तथ्यों और परिस्थितियों से, धारा 302 भ०द०वि० के तहत अपीलकर्ता के खिलाफ आरोप स्पष्ट रूप से स्थापित हैं, इसलिए, सत्र न्यायाधीश का निर्णय और आदेश बिल्कुल सही है।

<u>अभियोजन साक्ष्य पर चर्चा</u>

10. बयान में, पहले सूचनाकर्ता अ०सा०-1 ने कहा था कि वह आखिरी बार मृतक अवधेश के धर्मेंद्र के घर जाने की गवाह है और उसने अपने बयान में कहा कि घटना की तारीख यानी 13.9.2011 को, वह बुखार से पीड़ित थी और उसका बेटा अवधेश भी उसके साथ पड़ा था और फिर अपीलकर्ता का बेटा, धर्मेंद्र, रोशन उसके घर मृतक अवधेश को बुलाने आए। उसने अवधेश से पूछा कि वह कहां जा रहा है तो अवधेश ने उसे बताया कि धर्मेंद्र का पुत्र रोशन उसे बुलाने आया है। इसके बाद, वह घर से चला गया और उसने बयान में आगे कहा कि हरेंद्र 3 से 4 के बीच उसके घर आया था और उसे बताया कि उसके बेटे को चाकू से चोटें आई हैं। जब वह घटनास्थल पर गई, तो उसने एक पुलिसकर्मी और एक लड़के को अपीलकर्ता के घर से अपने बेटे को बाहर लाते हुए पाया। घटनास्थल पर उसने देखा था कि उसके बेटे अवधेश की पीठ पर कई चोटें थीं और खून बह रहा था लेकिन भीड़ के कारण वह अन्य चोटों को नहीं देख सकी। उनके बेटे अवधेश को अस्पताल ले जाते समय रास्ते में ही उसकी मौत हो गई। इसके बाद वह शाम 6:00 बजे थाने पहुंची। ऊसने अदालत के समक्ष तहरीर भी साबित की, जिसे प्रदर्श क-1 के रूप में चिह्नित किया गया था। अ०सा०-2 रामू सिंह ने अभियोजन पक्ष की कहानी का समर्थन नहीं किया, इसलिए उसे पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया। इसी तरह, अ०सा०-3 महेंद्र सिंह ने भी अभियोजन की कहानी का समर्थन नहीं किया और उसे भी पक्षद्रोही घोषित कर दिया गया। अभियोजन पक्ष के गवाह अवधेश भगत, अ०सा०-4 पंचायतनामा का गवाह था और उसने अपने बयान में स्वीकार किया कि उसने पंचायतनामा पर हस्ताक्षर किए थे और इसे प्रदर्श क-2 के रूप में साबित किया था। अ०सा०-4 ने भी खून से सनी मिट्टी और सीमेंट के फर्श से सामान्य मिट्टी बरामद करने के बारे में फ़र्द साबित किया और घटनास्थल से खून से सना तकिया, चादर और चाकू भी बरामद किया। अ०सा०-5 हरेंद्र कुमार ने अभियोजन की कहानी का समर्थन नहीं किया और उन्हें पक्षद्रोही घोषित

कर दिया गया। अ०सा०-6 उप-निरीक्षक चमन प्रकाश शर्मा पंचायतनामा तैयार करने के साथ-साथ शव के पास घटनास्थल से बरामद खून से सनी मिट्टी और साधारण मिट्टी, खून से सनी चादर, तकिया, खून से सना चाकू इकट्ठा करने के संबंध में फ़र्द तैयार करने के संबंध में औपचारिक गवाह थे। मृतक अवधेश चंद्र के साथ-साथ कुमारी सपना के शव का शव परीक्षण करने वाले अ०सा०-7 डॉ. के.एन तिवारी ने शव परीक्षण रिपोर्ट में कहा कि अवधेश व कुमारी सपना की मौत मृत्यु पूर्व चोटों के कारण हुई है। एक अन्य औपचारिक गवाह अ०सा०-8 मूल चंद्र शर्मा ने चिक और जी.डी. कार्बन कॉपी साबित की। प्रभु दयाल की पत्नी अ०सा०-9 ऊषा अपीलकर्ता-धर्मेंद्र कुमार की किराएदार थी और उसने कहा कि मृतक पिछले एक साल से अपीलकर्ता के घर आता था और उसने दोपहर 2:30 बजे कुमारी सपना के साथ मृतका को देखा था और उसने धर्मेंद्र के घर से कुमारी सपना और मृतक अवधेश के शव की बरामदगी भी साबित की।

11. राम सेन सिंह, जिन्होंने 20.12.2011 को जांच प्राप्त की, को भी अ०सा०-9 के रूप में जांच की गई, और प्रस्तुत किया कि शेष गवाहों के बयान दर्ज करने और अपनी जांच पूरी करने के बाद, उन्हें अपीलकर्ता के खिलाफ पर्याप्त सबूत मिले, इसलिए, उन्होंने उनके खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया और अदालत के समक्ष इसे साबित किया। अभियोजन पक्ष की गवाह अ०सा०-10 मंजू रानी भी अपीलकर्ता-धर्मेंद्र की किरायेदार थी और उसने यह भी बताया कि मृतक अवधेश की अपीलार्थी के पुत्र से मित्रता थी और वह अपीलार्थी के घर आता था और घटना की तारीख को दिन के समय लगभग 2 से 21/2 बजे मृतक अवधेश अपीलार्थी के घर आया था और उस समय सपना अपने घर में अकेली थी। जब वह अपने कमरे से बाहर आई तो उसने देखा था कि अवधेश और सपना दोनों गेट पर घायल पड़े थे और वह यह भी साबित करती है कि सपना के शव के पास एक चाकू भी मिला था और सपना के शव पर मृतक अवधेश का शव पड़ा था। इससे पहले विवेचनाधिकारी मुंशी लाल से भी अ०सा०-11 के रूप में पूछताछ की गई थी, जिन्होंने इस तथ्य को साबित किया कि उन्होंने इस मामले की जांच शुरू की और घटनास्थल पर नक्शा नज़री भी तैयार किया और गवाहों के बयान भी दर्ज किए। उन्होंने मृतक अवधेश के शव के चालान के साथ-साथ सब इंस्पेक्टर चमन प्रकाश शर्मा के लेखन में तैयार सपना के शव के चालान को भी साबित किया। दिनांक 19.09.2013 की विधि विज्ञान प्रयोगशाला रिपोर्ट, जो पेपर सं-26क/2 के रूप में भी रिकार्ड में है, दर्शाती है कि बरामद चाकू, तकिया, चादर और प्लास्टर खून से सने थे।

साक्ष्य का विश्लेषण

12. अभिलेख के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि मृतक अवधेश अपीलार्थी के घर आया था जहां वह अपीलकर्ता सपना की बेटी के साथ चाकू की चोटों के कारण गंभीर रूप से घायल हो गया था। हालांकि, अ०सा०-2 और अ०सा०-3, अ०सा०-5 ने अभियोजन पक्ष की कहानी का समर्थन नहीं किया और उन्हें पक्षद्रोही घोषित किया गया, लेकिन अ०सा०-9 श्रीमती उषा के साक्ष्य के साथ-साथ अ०सा०-10 श्रीमती मंजू, जो अपीलकर्ता के घर किरायेदार थीं, के साक्ष्य से यह स्पष्टत: स्थापित है कि मृतक अवधेश का शव अपीलकर्ता के घर पर पाया गया था। इसी तरह, अ०सा०-1 के बयान से, यह भी स्थापित होता है कि उसने आखिरी बार मृतक अवधेश को देखा था, जब वह दुर्भाग्यपूर्ण दिन अपीलकर्ता के घर के लिए रवाना

हुआ था। इसलिए, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (इसके बाद 'साक्ष्य अधिनियम' के रूप में संदर्भित) की धारा 106 की धारणा को लागू करते हुए, मृतक अवधेश की मृत्यु के बारे में बताना अपीलकर्ता का कर्तव्य है क्योंकि मृतक का शव अपीलकर्ता के घर से बरामद किया गया था। रिकॉर्ड से यह भी प्रतीत होता है कि हालांकि शुरू में अपीलकर्ता ने धारा 161 द०प्र०स० के तहत कबूल किया था कि उसने मृतक अवधेश को उस क्षण में मार डाला था जब उसने उसे अपनी बेटी सपना के साथ आपत्तिजनक स्थिति में देखा था। सत्र न्यायाधीश ने अपीलकर्ता को इस आधार पर भी दोषी ठहराया कि मृतक अवधेश का शव उसके घर से पाया गया था और यह परिस्थितिजन्य साक्ष्य के साथ-साथ अपीलकर्ता के बाद के आचरण से प्रतीत होता है कि उसने अवधेश को चाकू से घायल करके मार डाला था जब उसने उसे अपने घर पर अपनी बेटी के साथ आपत्तिजनक स्थिति में देखा था। यहां तक कि अपीलकर्ता ने मृतक अवधेश के शव को उसके घर से पाए जाने के लिए धारा 313 द०प्र०स० के तहत दर्ज अपने बयान में पर्याप्त स्पष्टीकरण नहीं दिया। इसलिए, अपीलकर्ता के खिलाफ सत्र न्यायाधीश द्वारा धारा 106 द०प्र०स० के तहत अनुमान लगाया गया था।

13. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया कि अपीलकर्ता ने अवधेश की हत्या अचानक उकसावे के कारण की है, जब उसने मृतक अवधेश को अपनी बेटी सपना के साथ आपत्तिजनक स्थिति में देखा था, इसलिए, प्रस्तुत मामला धारा 302 भ०द०वि० के बजाय धारा 304 भ०द०वि० के तहत आता है। साक्ष्य के साथ-साथ अपीलकर्ता के तर्क पर विचार करने के बाद, यहां विचार करने के लिए एकमात्र मुद्दा यह है कि क्या अवधेश की मौत इरादतन हत्या है या गैर इरादतन हत्या है।

14. साक्ष्य के अवलोकन से, यह स्पष्ट रूप से स्थापित होता है कि अपीलकर्ता ने अवधेश को जब उसने उसे अपनी बेटी के साथ आपत्तिजनक स्थिति में देखा, चाकू से घायल करके उसकी हत्या कर दी। धारा 300 भ०द०वि० के अपवाद-1 के अवलोकन पर, यह स्पष्ट है कि यदि अपराधी गंभीर और अचानक उकसावे से आत्म नियंत्रण की शक्ति से वंचित है जो उकसावे देने वाले व्यक्ति की मृत्यु का कारण बनता है, गैर इरादतन मानव वध हत्या नहीं है। धारा 300 भ०द०वि० के अपवाद-1 को नीचे उद्धृत किया जा रहा है:

"300. हत्या- इसके पश्चात् सिवाय, सदोष मानव वध हत्या है, यदि वह कार्य, जिसके द्वारा मृत्यु कारित की गई है, मृत्यु कारित करने के आशय से किया जाता है, या-

दूसरा- यदि वह ऐसी शारीरिक चोट कारित करने के आशय से किया जाता है जो अपराधी जानता है कि उस व्यक्ति की मृत्यु कारित करने की संभाव्य है जिसे वह क्षति कारित की गई है, या-

तीसरा--यदि वह किसी व्यक्ति को शारीरिक उपहति कारित करने के आशय से किया गया है और शारीरिक उपहति जो प्रवृत्त की जानी आशयित है, मृत्यु कारित करने के लिए प्रकृति के साधारण क्रम में पर्याप्त है, या -

चौथा- यदि कार्य करने वाला व्यक्ति जानता है कि यह इतना आसन्न खतरनाक है कि वह मृत्यु कारित करेगा या ऐसी शारीरिक क्षति कारित करेगा जिससे मृत्यु कारित होने की सम्भावना है और वह ऐसा कार्य बिना किसी बहाने के करता है जिससे मृत्यु कारित होने का जोखिम या पूर्वोक्त क्षति कारित करने का जोखिम होता है।

अपवाद-1 - जब आपराधिक मानव वध हत्या नहीं है - आपराधिक मानव वध हत्या नहीं है यदि अपराधी, गंभीर और अचानक उत्तेजना से आत्म-नियंत्रण की शक्ति से वंचित होते हुए, उस व्यक्ति की मृत्यु कारित करता है जिसने उत्तेजना दी थी या गलती से या दुर्घटना से किसी अन्य व्यक्ति की मृत्यु कारित करता है।

उपर्युक्त अपवाद निम्नलिखित परंतुकों के अध्यधीन है -

पहला - कि किसी व्यक्ति को मारने या नुकसान पहुंचाने के बहाने के रूप में अपराधी द्वारा उकसाया या स्वेच्छा से उकसाया नहीं गया है।

दूसरा--कि प्रकोपन विधि के आज्ञापालन में की गई किसी बात द्वारा या ऐसे लोक सेवक की शक्तियों के विधिपूर्ण प्रयोग में किसी लोक सेवक द्वारा नहीं दिया गया है।

तीसरा--कि निजी रक्षा के अधिकार के विधिपूर्ण प्रयोग में की गई किसी बात से उत्तेजना नहीं दी जाती है।

स्पष्टीकरण--क्या उकसावा गंभीर था और अपराध को हत्या की श्रेणी में आने से रोकने के लिए अचानक पर्याप्त था, यह तथ्य का प्रश्न है।

15. इसलिए, अपीलकर्ता के अधिवक्ता का यह तर्क कि प्रस्तुत मामला धारा 302 भ०द०वि० के तहत नहीं आता है, बल्कि धारा 304 भ०द०वि० के तहत आता है क्योंकि यह मामला धारा 300 भ०द०वि० के अपवाद-1 के तहत आता है, सही प्रतीत होता है क्योंकि अवधेश को अपनी बेटी के साथ आपत्तिजनक स्थिति में देखने पर अपीलकर्ता ने इस घटना से गंभीर और अचानक उकसावे से अपना आत्म नियंत्रण खो दिया जिसमें मृतक अवधेश को अपीलकर्ता की बेटी के साथ एक बुरी स्थिति में पाया गया था। अपने मामले के समर्थन में, अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने आपराधिक अपील संख्या-734 वर्ष 2014 में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर भी भरोसा किया है, जिसका निर्णय सरोज @ सूरज पांचाल और अन्य बनाम पश्चिम बंगाल राज्य के मामले में 03.04.2014 को किया गया था और साथ ही शासकीय अधिवक्ता हैदराबाद द्वारा थिरुचनूर अमरनाथ बनाम आंध्र प्रदेश राज्य के मामले में 21.05.2020 को तय की गई आपराधिक अपील संख्या-219 वर्ष 2013 में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के फैसले पर भी भरोसा किया है। उपर्युक्त मामलों में, माननीय न्यायालय ने टिप्पणी की कि अचानक उकसावे के कारण हुई मृत्यु भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अंतर्गत दण्ड के लिए नहीं आती बल्कि भारतीय दंड संहिता की धारा 304 के अंतर्गत आती है क्योंकि यह हत्या की श्रेणी में गैर-इरादतन मानव वध नहीं है।

16. उपरोक्त तथ्य और परिस्थितियों के मद्देनजर, हमारी राय है कि सबसे पहले, इस बात का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है कि अपीलकर्ता मृतक अवधेश की मृत्यु का कारण बना है, लेकिन परिस्थितिजन्य साक्ष्य के साथ-साथ साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 के तहत अनुमान से, उसे अवधेश की मृत्यु के लिए दोषी ठहराया गया था। दूसरे, यह तथ्य भी विवाद में नहीं है कि अपीलकर्ता द्वारा मृतक की मृत्यु पूर्व नियोजित नहीं थी, बल्कि इस तथ्य के कारण कि उसने गंभीर और अचानक उकसावे से आत्म नियंत्रण खो दिया क्योंकि उसने मृतक अवधेश को अपनी बेटी सपना के साथ आपत्तिजनक स्थिति में देखा और ऐसी परिस्थितियों में, इस तथ्य पर विवाद नहीं किया जा सकता है कि एक पिता अपनी बेटी को एक व्यक्ति के साथ आपत्तिजनक स्थिति में देखने के बाद निश्चित रूप से स्वयं को नियंत्रण खो देगा और यदि वह उस क्षण में मृत्यु

का कारण बना, तो वह गैर-इरादतन मानव वध के अंतर्गत आएगा जो हत्या की राशि नहीं है। यहां तक कि, सर्वोच्च न्यायालय ने आपराधिक अपील संख्या-234 वर्ष 1993 में उत्तर प्रदेश राज्य बनाम लखमी के मामले में ए.आई.आर. 1998 एस.सी. 1007 में रिपोर्ट की गई 12.02.1998 को फैसला किया और हंसा सिंह बनाम पंजाब राज्य के मामले में ए.आई.आर. 1977 एस.सी. 1801 में रिपोर्ट की गई आपराधिक अपील संख्या-248 वर्ष 1976 में 20.08.1976 को फैसला किया गया, जिसमें कहा गया था कि ऐसी स्थिति में, मामले धारा 304 भ०द०वि० के तहत आएंगे न कि धारा 302 भ०द०वि० के तहत। इसके बाद, रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों के साथ-साथ अपीलकर्ता और अपर शासकीय अधिवक्ता के अधिवक्ता की दलीलों पर विचार करने के बाद, यह स्पष्ट रूप से स्थापित होता है कि धारा 300 भ०द०वि० के अपवाद-1 के मद्देनजर प्रस्तुत मामला धारा 302 भ०द०वि० के तहत नहीं बल्कि धारा 304 भ०द०वि० के तहत आता है। इसलिए, अपीलकर्ता धारा 304 भ०द०वि० के तहत दोषी ठहराए जाने का हकदार है।

17. इसलिए, वर्तमान अपील को आंशिक रूप से अनुमति दी जाती है और सत्र के आक्षेपित निर्णय को धारा 302 भ०द०वि० के तहत अपीलकर्ता की सजा को धारा 304 भ०द०वि० के तहत सजा के साथ दस साल की कैद के साथ 40,000 रुपये के जुर्माने के साथ प्रतिस्थापित करने की सीमा तक संशोधित किया जाता है। जुर्माना अदा न करने की स्थिति में अपीलकर्ता को एक वर्ष का और कारावास भुगतना होगा। अपीलकर्ता द्वारा विचारण के लंबित रहने के साथ-साथ वर्तमान अपील के लंबित रहने के दौरान जेल में बिताई गई अवधि को इस आदेश द्वारा लगाए गए कारावास में समायोजित किया जाएगा और यदि अपीलकर्ता पहले ही दस साल की जेल पूरी कर चुका है, तो यदि वह किसी अन्य मामले में वांछित नहीं है, उसे जुर्माना जमा करने पर तुरंत रिहा कर दिया जाना चाहिए।

(2023) 3 ILRA 1256

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल साइड

दिनांक: लखनऊ 03.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर

2020 के अनुच्छेद 227 संख्या 6654 के तहत मामला

के.एम. चंदना मुखर्जी ... प्रार्थी

बनाम

ए.डी.जे., विशेष न्यायाधीश पी.सी. & एएनआर. ... उत्तरदाताओं

याचिकाकर्ता के वकील: अरुण कुमार श्रीवास्तव

उत्तरदाताओं के लिए वकील: घनश्याम यादव

ए. सिविल कानून - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - आदेश XXVI नियम 9 - कमीशन वाद को जारी करने के लिए आवेदन- बिक्री विलेख को निरस्त करने और स्थायी निषेधाज्ञा विचारणीय न्यायालय के आदेश द्वारा निरस्त कर दिया गया - आपेक्षित आदेश - कमीशन वाद को जारी करने का उद्देश्य - वादी के कथित कब्जे को सुनिश्चित करना - वादी अपने स्तर पर सफल होने के लिए उत्तरदायी है - आदेश XXVI नियम 9 वादी के लिए साक्ष्य एकत्र करने के उद्देश्य के लिए लागू

नहीं है - विचारणीय न्यायालय के आदेश की पुष्टि की गई - याचिका निरस्त।

आयोजित: उपर्युक्त प्रावधान के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि स्थानीय जांच करने के लिए आयोग को न्यायालय द्वारा अनुमति दी जा सकती है, जहां वह किसी विवादित मामले को स्पष्ट करने या किसी संपत्ति के बाजार मूल्य या किसी मध्यवर्ती लाभ या क्षति या वार्षिक शुद्ध लाभ की राशि का पता लगाने के उद्देश्य से स्थानीय जांच को आवश्यक या उचित समझता है। इस प्रकार आयोग जारी करने का उद्देश्य उसके अंतर्गत बताई गई शर्तों से ही स्पष्ट है, जो केवल मुख्य रूप से किसी विवादित मामले को स्पष्ट करने के उद्देश्य से है। संहिता के आदेश XXVI नियम 9 के प्रावधान इसे वादी की ओर से साक्ष्य एकत्र करने के उद्देश्य से लागू नहीं करते हैं।

वाद के वर्तमान तथ्यों और परिस्थितियों में उपरोक्त निर्णयों की प्रयोज्यता पर, यह स्पष्ट है कि विवाद में पक्षकारों के कब्जे के संबंध में जांच और परीक्षण करने के लिए आयोग जारी करने का आवेदन संहिता के आदेश XXVI नियम 9 के अनुसार पोषणीय नहीं होगा, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, विशेषकर तब जब वादी द्वारा कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है कि उसे वाद संपत्ति पर अपना कब्जा सिद्ध करने के लिए आवश्यक किसी भी दस्तावेज तक पहुंच नहीं थी। अन्यथा भी, किसी आयोग के लिए केवल सरसरी जांच के आधार पर वाद संपत्ति पर किसी विशेष पक्ष के कब्जे का निर्णय करना असंभव है।

यह पहले ही उपरोक्त वर्णित है कि आदेश XXVI नियम 9 के तहत आवेदन केवल एक या दूसरे पक्ष के वाद को सुविधाजनक बनाने के प्रयोजनों के लिए अनुमति नहीं दी जा सकती है और किसी भी पक्ष के साक्ष्य के बोझ का निर्वहन करना न्यायालय का कार्य नहीं है।

याचिका निरस्त। (ई-14)

उद्धृत वाद सूची:

1. रेमको इंडस्ट्रियल वर्कर्स हाउस बिल्डिंग को-ऑप. सोसाइटी बनाम लक्ष्मीशा एम. (2003) 11 SCC 666

2. राधे श्याम और अन्य बनाम A.D.J. 2011 (2) CRC 469

3. अध्यक्ष, न्यू मीना सहकारी आवास समिति लिमिटेड बनाम ए.डी.जे., लखनऊ, विविध एकल संख्या 2267 / 2012

<u>माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर</u>

याचिकाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता और विरोधी पक्ष संख्या 2 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को सुना।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत याचिका दायर की गई है, जिसमें सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 26 नियम 9 के तहत आयोग आयोग का गठन करने के लिए याचिकाकर्ता के आवेदन को खारिज करने वाले ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित दिनांक 10 जनवरी, 2018 के आदेश के साथ-साथ पुनरीक्षण अदालत द्वारा पुनरीक्षण को खारिज करने वाले दिनांक 31 जनवरी, 2020 के आदेश को भी चुनौती दी गई है।

वर्तमान याचिका में न्यायनिर्णयन की आवश्यकता वाले कानून का सीमित प्रश्न यह है कि क्या नीचे दी गई न्यायालय बिक्री विलेख और स्थायी निषेधाज्ञा को रद्द करने के लिए एक मुकदमे में आयोग आयोग का गठन करने के

लिए याचिकाकर्ता-मुकदमी द्वारा दायर आवेदन को अस्वीकार करने में उचित थी।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि उपरोक्त मुकदमा अचल संपत्ति के संबंध में बिक्री विलेख और स्थायी निषेधाज्ञा को रद्द करने के लिए दायर किया गया था जिसमें वादी और प्रतिवादी दोनों ने विमुकदमा में संपत्ति पर कब्जे का दावा विद्वत था।इस आशंका के तहत कि प्रतिवादियों द्वारा यथास्थिति को बदला जाएगा, याचिकाकर्ता-वादी को 2 अगस्त, 2016 को सी. पी. सी. की धारा 151 के साथ पठित आदेश 26 नियम 9 के तहत आयोग आयोग का गठन करने के लिए आवेदन दायर करने के लिए विवश किया गया था।इसे 25 सितंबर, 2017 के विस्तृत आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया गया था, जो अंतिम हो गया क्योंकि इसके खिलाफ कोई पुनरीक्षण नहीं किया गया था।यह प्रस्तुत किया गया है कि तत्पश्चात वादी की ओर से एक नई आशंका के मद्देनजर धारा 151सी.पी.सी. के साथ आदेश 26 नियम 9 के तहत एक अनुवर्ती आवेदन 14 नवंबर, 2017 को दायर किया गया था, जिसे आरोपित आदेशों के माध्यम से खारिज कर दिया गया है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि निचली न्यायालयों ने इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए आयोग आयोग का गठन करने के लिए आवेदन को अस्वीकार करने में गलती की है कि मुकदमा न केवल बिक्री विलेख को रद्द करने के लिए था, बल्कि स्थायी निषेधाज्ञा के लिए भी था और इसलिए संबंधित न्यायालय पर यह दायित्व था कि वह उस तारीख को पक्षकारों की स्थिति का संकेत दे, जिस दिन आवेदन विद्वत जा रहा था ताकि मौके पर भविष्य में किसी भी बदलाव को रोका जा सके।यह प्रस्तुत किया जाता है कि निचली न्यायालय के साथ-साथ पुनरीक्षण न्यायालय ने मुख्य रूप से इस आधार पर आवेदन को अस्वीकार करने में खुद को गलत तरीके से निर्देशित किया है कि वादी के कहने पर आयोग आयोग का गठन करने के लिए पहले के साथ-साथ आवेदन 25 सितंबर, 2017 को खारिज कर दिया गया था।इस प्रकार यह प्रस्तुत किया जाता है कि 10 जनवरी, 2018 का आक्षेपित आदेश अप्रभावी और गैर-मौखिक आदेश है।विद्वान अधिवक्ता ने न्यू मीना सहकारी आवास समिति लिमिटेड के मामले में इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा अपने अध्यक्ष बनाम अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, लखनऊ द्वारा से दिए गए फैसले पर भरोसा किया है।सिगंल संख्या - 2267 सन् 2012 में उनकी प्रस्तुतियों को इस प्रभाव से पुष्ट करने के लिए कि न्यायालय किसी पक्ष को सर्वोत्तम साक्ष्य प्रस्तुत करने से नहीं रोक सकता है, यदि इस तरह के साक्ष्य आयोग की मदद से एकत्र किए जा सकते हैं।

विरोधी पक्ष सं. 2 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत प्रस्तुत दलीलों का खंडन करते हुए कहा कि आक्षेपित आदेश तय किए गए कानून के अनुरूप हैं और विशेष रूप से इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि मुकदमा मुख्य रूप से बिक्री विलेख को रद्द करने के लिए था, जिसमें आयोग आयोग का गठन करके वास्तविक मौके की स्थिति के निर्धारण का कोई अवसर नहीं है, किसी भी निष्कर्ष की गारंटी नहीं है।यह प्रस्तुत किया जाता है कि 10 जनवरी, 2018 के आदेश

में कोई त्रुटि नहीं है, जिसे मुख्य रूप से इस तथ्य के कारण खारिज कर दिया गया है कि आदेश 26 नियम 9 सी. पी. सी. के तहत आयोग आयोग का गठन करने के लिए दूसरा आवेदन दायर किया गया है, हालांकि पहला 25 सितंबर, 2017 को पहले ही खारिज कर दिया गया था, जो अंतिम हो गया था क्योंकि इसका विरोध नहीं किया गया था।

विद्वान अधिवक्ता ने बदले में राधेश्याम और एक अन्य बनाम अतिरिक्त जिला न्यायाधीश और अन्य के मामले में इस न्यायालय की एक अन्य समन्वय पीठ द्वारा 2011 (2) सी. आर. सी. 469 में दिए गए फैसले पर भरोसा किया है ताकि उनके इस कथन को पुष्ट विद्वत जा सके कि आयोग की नियुक्ति का उद्देश्य अभिवचनों में कमी को भरना या एक या दूसरे पक्ष के पक्ष में कुछ सबूत का पता लगाना नहीं है।

पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत प्रस्तुतियों तथा अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के अवलोकन से यह पता चलता है कि बिक्री विलेख को रद्द करने तथा स्थायी निषेधाज्ञा के लिए वाद दायर किया गया था।मुकदमे की कार्यवाही के दौरान, आदेश 26 नियम 9 के तहत धारा 151 सी. पी. सी. के साथ एक आवेदन आयोग आयोग का गठन करने के लिए दायर किया गया था, जिसे 25 सितंबर, 2017 दिनांकित के आदेश के माध्यम से मुख्य रूप से इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि विमुकदमा में संपत्ति पर धारों के कब्जे के बारे में सवाल आयोग आयोग का गठन करके पता नहीं लगाया जा सकता है।यह भी माना गया कि आयोग आयोग का गठन करना साक्ष्य प्रस्तुत करने का विकल्प नहीं हो सकता है।यह ध्यान देने योग्य है कि 25 सितंबर, 2017 के उपरोक्त आदेश ने अंतिमता प्राप्त की और याचिकाकर्ता-वादी द्वारा इसके खिलाफ कोई पुनरीक्षण दायर नहीं किया गया था, लेकिन बाद में 14 नवंबर 2017 की धारा 151 सी. पी. सी. के साथ पठित आदेश 26 नियम 9 के तहत आयोग आयोग का गठन करने के लिए एक और आवेदन वादी द्वारा फिर से दायर किया गया था।यह इंगित करना प्रासंगिक है कि दोनों आवेदनों में आवेदक श्रीमती सरला हैं, जिन्हें मूल वादी श्रीमती चंदना मुखर्जी के स्थान पर स्थानापन्न पक्ष के रूप में रिकॉर्ड पर लाया गया है, जिनका मुकदमे की कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान निधन हो गया।

दोनों आवेदनों को पढ़ने से यह तथ्य सामने आता है कि दोनों आवेदनों में आयोग आयोग का गठन करने के लिए आवश्यक अभिवचन समान रहते हैं जो वादी की ओर से इस आशंका से संबंधित थे कि वादी से जबरन कब्जा लेने की स्थिति में प्रतिवादी द्वारा वास्तविक जमीनी स्थिति को बदला जा सकता है।दूसरा आवेदन 10 जनवरी, 2018 के आक्षेपित आदेश के माध्यम से मुख्य रूप से इस आधार पर खारिज कर दिया गया है कि वादी के कहने पर पहले भी आवेदन को वादी द्वारा उठाई गई उसी दलील पर 25 सितंबर, 2017 दिनांकित के विस्तृत आदेश के तहत न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया था और इसलिए आयोग आयोग का गठन करने के लिए दूसरे आवेदन में कोई मेरिट नहीं पाई गई थी।

पुनरीक्षण न्यायालय ने भी वादी द्वारा वरीयता दिये गए पुनरीक्षण को अस्वीकार करने के लिए अनिवार्य रूप से वही आधार लिए हैं।

अभिलेख के अवलोकन से यह पता चलता है कि दोनों आवेदनों में वादी के कहने पर आयोग

आयोग का गठन करने का उद्देश्य विवादग्रस्त संपत्ति पर वादी के कथित कब्जे का पता लगाना था।

वर्तमान विवाद के उचित मूल्यांकन के लिए, आयोग आयोग का गठन करने से संबंधित संहिता के आदेश XXVI नियम 9 के प्रावधानों का विज्ञापन करना आवश्यक होगा जो निम्नलिखित शर्तों में हैः.

"आयोग स्थानीय जांच करेगा- किसी ऐसे मुकदमा में जिसमें न्यायालय किसी विमुकदमाग्रस्त मामले को स्पष्ट करने, या किसी संपति के बाजार मूल्य का पता लगाने, या किसी भी महत्वपूर्ण लाभ या क्षति या वार्षिक शुद्ध लाभ की राशि का पता लगाने के उद्देश्य से स्थानीय जांच को आवश्यक या उचित समझता है, न्यायालय ऐसे व्यक्ति को एक आयोग आयोग का गठन कर सकता है जो उसे उचित लगे और उसे ऐसी जांच करने और अदालत को रिपोर्ट करने का निर्देश दे सकता हैः

बशर्ते कि, जहां राज्य सरकार ने उन व्यक्तियों के बारे में नियम बनाए हैं जिन्हें ऐसा आयोग आयोग का गठन किया जाएगा, वहां न्यायालय ऐसे नियमों से बाध्य होगा।

उपर्युक्त प्रावधान के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि स्थानीय जांच करने के लिए आयोग को न्यायालय द्वारा अनुमति दी जा सकती है, जहां वह किसी विवादित मामले को स्पष्ट करने या किसी संपत्ति का बाजार मूल्य या किसी अंतःस्थायी लाभ या क्षति या वार्षिक शुद्ध लाभ की राशि का पता लगाने के प्रयोजन के लिए स्थानीय जांच को अपेक्षित या उचित समझता है। आयोग आयोग का गठन करने का उद्देश्य उसके तहत इंगित शर्तों से ही स्पष्ट है जो केवल मुख्य रूप से किसी भी विवादग्रस्त मामले को स्पष्ट करने के उद्देश्यों के लिए है।संहिता के आदेश XXVI नियम 9 के प्रावधान इसे वादी की ओर से साक्ष्य एकत्र करने के उद्देश्यों के लिए लागू नहीं करते हैं।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने रेम्को इंडस्ट्रियल वर्कर्स हाउस बिल्डिंग को-ऑप सोसाइटी बनाम लक्ष्मीशा एम. एवं अन्य के मामले में (2003)11 एससीसी 666; एआईआर 2003 सुप्रीम कोर्ट 3167 में पहले ही यह माना है कि वादी अपने बलबूते पर सफल होने के लिए उत्तरदायी है, न कि प्रतिवादी की कमजोरी के आधार पर।

इस प्रकार वाद में किए गए अभिवचनों की पुष्टि या पुष्टि साक्ष्य द्वारा की जानी आवश्यक है जिसे स्वयं वादी द्वारा अभिलेख पर रखा जाना भी आवश्यक है।ऐसे मामले में एकमात्र अपवाद यह हो सकता है कि जहां ऐसा साक्ष्य वादी की पहुंच, अभिगम, प्रवेश से बाहर है या ऐसे सुरक्षित स्थान पर है कि सामान्य रूप से उसकी पहुच नहीं होगी, लेकिन ऐसे मामले में इंगित प्रकृति के लिए आयोग आयोग का गठन करने के लिए, वादी को विशेष रूप से यह दलील देना आवश्यक और अनिवार्य होगा कि वादी को ऐसे साक्ष्य तक पहुंच क्यों नहीं हो सकती है, जिसके लिए ऐसे साक्ष्य के संग्रह के उद्देश्यों के लिए आयोग आयोग का गठन करने की आवश्यकता होगी।पदम सेन उपरोक्त के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से कहा है कि पक्ष के लिए साक्ष्य एकत्र करना या यहां तक कि लेखा पुस्तकों में जाली प्रविष्टि करने के बुरे परिणामों से प्रतिद्वंद्वी पक्ष को बचाना भी अदालत का काम नहीं है।यह अभिनिर्धारित किया

गया कि प्रतिवादियों का अनुरोध जो दस्तावेजी साक्ष्य एकत्र करने वाली अदालतों के बराबर है, जिसे प्रतिवादियों ने उस समय अपने पक्ष में माना था, की अनुमति नहीं दी जा सकती थी।निर्णय का प्रासंगिक अनुच्छेद 15 इस प्रकार हैः.

"15. हालाँकि, इस बात को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है कि सर्वेक्षण संख्या 132/2 में विशिष्ट भूमि के स्वामित्व और दावे को साबित करने का बोझ शुरू में वादी पर था।प्रतिवादी 1 ने लिखित बयान में वादी के दावे का विरोध किया और अपने आप में अधिकार का दावा किया।दिनांक 28-5-1965 के आदेश (एक्सटेंशन डी-3) में निहित किरायेदार मुनियप्पा के पक्ष में अधिभोग अधिकारों का अनुदान वादी की आपत्ति के बिना ट्रायल कोर्ट में पेश किया गया और इसे प्रदर्श क-3 के रूप में प्रदर्शित और चिह्नित करने की अनुमति दी गई।जब प्रतिवादी 1 के पक्ष में 1 एकड़ 3 गुंटा तक की भूमि के अनुदान का ऐसा दस्तावेज ट्रायल कोर्ट के समक्ष था, तो उसके लिए यह आवश्यक था कि वह तत्कालीन इनामदार के पक्ष में 9-12-1969 (प्रदर्श पी-1) के बाद के अनुदान पर इसके प्रभाव पर विचार करे।कानूनी स्थिति जिस पर कोई विवाद नहीं है, वह यह है कि यदि सर्वेक्षण संख्या 132/2 - क्षेत्रफल 1 एकड़ 3 गुंटा में वाद भूमि पहले ही 28-5-1965 के आदेश (प्रदर्श डी-3) द्वारा काश्तकार मुनियप्पा को प्रदान कर दी गई थी, तो वही भूमि 9-12-1969 के आदेश (प्रदर्श पी-1) द्वारा तत्कालीन इनामदार को 1/7वें हिस्से की सीमा तक अनुदान का हिस्सा नहीं बन सकती थी।एक स्पष्ट कानूनी मुद्दा, जो पहले के अनुदान दिनांक 28-5-1965 (प्रदर्श डी-3) और बाद का अनुदान दिनांक 9-12-1969 (प्रदर्श पी-1) दो अनुदानों के तहत भूमि की पहचान के साथ अपील न्यायालय के साथ-साथ अपीलीय विचारण न्यायालय के समक्ष भी सामने आई थी।उक्त मुद्दे का जवाब नीचे दी गई दोनों अदालतों में से किसी ने नहीं दिया है।वादी को अपने मामले की मजबूती के आधार पर सफलता प्राप्त करनी होगी, न कि प्रतिवादी के मामले की कमजोरी के आधार पर।रिमांड के लिए प्रार्थना का विरोध करते हुए, वादी-प्रतिवादी की ओर से पेश विद्वान अधिवक्ता ने कांडा बनाम वाघू [ए. आई. आर. 1950 पी. सी. 68: में प्रिवी काउंसिल के फैसले पर मजबूत भरोसा रखा हैःतर्क यह दिया गया है कि चूंकि प्रतिवादी 1 के लिखित बयान में प्रदर्श डी-3 पर आधारित दलीलें नहीं उठाई गईं और प्रदर्श डी-3 के आधार पर कोई मुद्दा विचारण न्यायालय में नहीं उठाया गया, इसलिए इस कोर्ट को उक्त मुद्दे पर मामले को फिर से सुनवाई के लिए नहीं भेजना चाहिए। "

इसी तरह का उदाहरण इस कोर्ट की समन्वय पीठ ने परवेज अख्तर (उपरोक्त) के मामले में भी इस प्रकार दिया है:

"11.दूसरे शब्दों में, स्थानीय जांच का उद्देश्य साक्ष्य एकत्र करना नहीं है, जो शायद न्यायालय में लिया गया हो, बल्कि केवल पक्षकारों के बीच विवाद के साक्ष्य या प्रकृति की मूल्यांकन को सुविधाजनक बनाने के लिए या किसी भी बिंदु की मूल्यांकन को सुविधाजनक बनाने के लिए है, जो न्यायालय के समक्ष पक्षों के साक्ष्य में संदिग्ध रह जाता है।आयोग आयोग का गठन करने का उद्देश्य यह है कि आयुक्त द्वारा मौके पर जांच के बाद वास्तव में पाए गए तथ्यों से कुछ

सहायता प्राप्त की जा सके, लेकिन वह जांच विवादित मामले के संबंध में ही होनी चाहिए, अन्यथा नहीं।विधायिका ने अपेक्षा की कि आयुक्त द्वारा जांच किए गए कुछ तथ्यों को प्राप्त करने की दृष्टि से सभी शर्तों का पालन करते हुए न्यायालय के विवेकाधिकार का प्रयोग किया जा सकता है जो विशिष्ट तथ्यों का वादा करते हैं और जो मौके पर निरीक्षण से ही प्राप्त किए जा सकते हैं, लेकिन यह सीधे किसी भी विवादग्रस्त मामले के संबंध में होना चाहिए।यह न्यायालय को रिकॉर्ड पर साक्ष्य का उचित और सही मूल्यांकन करने में सक्षम बनाने के उद्देश्य से है।आयुक्त की रिपोर्ट किसी भी बिंदु को स्पष्ट और स्पष्ट करती है जो पक्षों द्वारा साक्ष्य के नेतृत्व के बाद संदिग्ध प्रतीत हो सकता है।आदेश XXVI नियम 9 का प्रावधान, अभिलेख पर साक्ष्य और पक्षों के नेतृत्व में स्वतंत्र साक्ष्य का अनुमान लगाता है, जिसके लिए स्पष्टीकरण की आवश्यकता होती है।

देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों ने भी आदेश XXVI नियम 9 के प्रावधानों को उसी तरह स्पष्ट किया है जैसा कि हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा नसीब दीन (उपरोक्त) और कर्नाटक उच्च न्यायालय द्वारा एच.वी. नांगेन्द्रप्पा (उपरोक्त) मामले में दिए गए निर्णयों में दर्शाया गया है।मामले के वर्तमान तथ्यों और परिस्थितियों में उपरोक्त निर्णयों के लागू होने पर, यह स्पष्ट है कि किसी विमुकदमा में पक्षों के कब्जे के संबंध में जांच और जांच करने के लिए आयोग आयोग का गठन करने का आवेदन संहिता के आदेश XXVI नियम 9 के संदर्भ में बनाए रखने योग्य नहीं होगा, जैसा कि यहां ऊपर देखा गया है, विशेष रूप से जब वादी द्वारा कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है कि उसे सूट संपत्ति पर अपना कब्जा साबित करने के लिए आवश्यक किसी भी दस्तावेज तक पहुंच नहीं हो सकती है।अन्यथा भी, किसी आयोग के लिए केवल सरसरी जाँच के आधार पर मुकदमा संपत्ति पर विमुकदमा करने के लिए किसी विशेष पक्ष के कब्जे का निर्णय लेना असंभव है।

ऊपर पहले ही यह देखा जा चुका है कि आदेश XXVI नियम 9 के तहत आवेदनों को केवल एक या दूसरे पक्ष के मामले को सुविधाजनक बनाने के उद्देश्यों के लिए अनुमति नहीं दी जा सकती है और किसी भी पक्ष के साक्ष्य के बोझ का निर्वहन करना अदालतों का काम नहीं है।

जहाँ तक नई मीना सहकारी आवास समिति उपरोक्त के मामले में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णय का संबंध है, उक्त निर्णय में कानून की घोषणा यह है कि न्यायालय किसी पक्ष को सर्वोत्तम साक्ष्य प्रस्तुत करने से नहीं रोक सकती है यदि इस तरह के साक्ष्य आयोग की मदद से एकत्र किए जा सकते हैं।याचिकाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत निर्णय आदेश 26 नियम 9 सी. पी. सी. के प्रावधानों के संदर्भ में स्पष्ट रूप से सही है और इस न्यायालय के पहले के फैसले के विपरीत दृष्टिकोण नहीं लेता है कि विवाद में संपत्ति पर पक्षों का कब्जा आयोग आयोग का गठन करके निर्धारित नहीं किया जा सकता है।इस प्रकार याचिकाकर्ता को उपरोक्त निर्णय से कोई लाभ नहीं मिलता है।

ऊपर चर्चा किए गए बिंदु और कानून पर निर्णय को ध्यान में रखते हुए, विवादित आदेशों में कोई

अपवाद नहीं लिया जा सकता है और इस तरह याचिका गुणदोष से रहित होने के कारण खारिज कर दी जाती है।

(2023) 3 ILRA 1261

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल साइड

दिनांक: इलाहाबाद 09.11.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजीत कुमार

2020 के अनुच्छेद 227 संख्या 2691 के तहत मामले

के साथ जुड़ा हुआ है

2014 का एस.सी.सी. संशोधन दोषपूर्ण संख्या 234

श्रीमती मालती शर्मा ...प्रतिवादी- याचिकाकर्ता

बनाम

राजकुमार यादव ... वादी- प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के वकील: श्री किरण अरोड़ा, श्री राम अकबाल उपाध्याय, श्री जय गोविन्द उपाध्याय

प्रतिवादी के लिए वकील: सी.एस.सी., श्री प्रखर टंडन

ए. सिविल कानून - मकान मालिक-किराएदार विवाद - बकाया किराये और बेदखली के लिए लघु कारण वाद - किराएदार-प्रतिवादी (यहां याचिकाकर्ता) के विरुद्ध निर्णय पारित किया गया - आदेश के विरुद्ध लघु कारण पुनरीक्षण भी निरस्त - आदेश चुनौती के तहत - मकान मालिक प्रतिवादी शीर्षक बिक्री विलेख पूर्व मालिकों द्वारा - याचिकाकर्ता किरायेदार के रूप में अधिभोगी - बिक्री विलेख में उक्त प्रभाव का विवरण - मकान मालिक ने प्रतिवादी याचिकाकर्ता को नोटिस जारी किया - किराया और बकाया की मांग - किरायेदार किराया देने में विफल रहा - इसलिए, वर्तमान वाद।

ख. याचिकाकर्ता किरायेदार ने बिक्री के लिए एक अपंजीकृत समझौते के माध्यम से अधिकार का दावा किया है- एक अपंजीकृत उपकरण का प्रभाव जिसे अन्यथा पंजीकृत किया जाना आवश्यक है, क्या इसे कानून की न्यायालय कार्यवाही में संपार्श्विक उद्देश्यों के लिए अन्यथा भरोसा किया जा सकता था- हां, लेकिन संपार्श्विक उद्देश्य को वादी के दावे की भूमि पर कब्जे की प्रकृति में देखा जाना चाहिए- एक अपंजीकृत उपकरण से कोई शीर्षक नहीं निकलता है, जिसे कानून में पंजीकृत करने की आवश्यकता होती है- याचिकाकर्ता किरायेदार बिक्री के लिए समझौते की ताकत पर किसी भी लाभ का पात्र नहीं है।

आयोजित: निर्णय के उपरोक्त पैराग्राफ के अवलोकन पर, निष्कर्ष यह निकलता है कि एक अपंजीकृत दस्तावेज़ को संपार्श्विक उद्देश्यों के लिए देखा जा सकता है, लेकिन संपार्श्विक उद्देश्य को वाद भूमि पर वादी के कब्जे की प्रकृति में देखा जाना चाहिए। वर्तमान वाद में उपरोक्त सिद्धांतों को लागू करते हुए, याचिकाकर्ता के पूर्ववर्ती हितधारक कथित रूप से किराएदार परिसर के किराएदार थे और बिक्री के एक समझौते के तहत कब्जे के अधिकारों की प्रकृति को किराएदार से प्रस्तावित विक्रेता में बदलने के लिए आए थे, जो कभी पंजीकृत नहीं था।

उद्धृत निर्णय में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि किसी अपंजीकृत दस्तावेज से कोई शीर्षक प्राप्त

नहीं होता है, जिसे कानून में पंजीकृत होना आवश्यक है। यदि ऐसा है तो याचिकाकर्ता के हित में पूर्ववर्ती व्यक्ति ने जो स्थिति प्राप्त की थी और जिससे याचिकाकर्ता ने उस कब्जे के अधिकार को प्राप्त किया था, वह अधिकतम एक किरायेदार की होगी और कब्जा बनाए रखने के लिए किराए का भुगतान करना आवश्यक है अन्यथा किराए का भुगतान न करने वाला किरायेदार कानून के तहत बेदखल होने का पात्र होगा। बिक्री के लिए अपंजीकृत समझौते के तहत व्यक्ति कानून में किसी भी कब्जे के अधिकार को प्राप्त करने के लिए इसके निस्तारण के लिए वाद भी नहीं योजित कर सकता है। इसलिए कब्जे की प्रकृति हमेशा परिसर के किरायेदार के रूप में ही होगी।

सी. साक्ष्य - न्यायिक कार्यवाही में मूल्यांकन के लिए साक्ष्य मूल्य - मूल परीक्षण न्यायालय में दायर किसी भी दस्तावेज में अपंजीकृत लिखत की नोटरीकृत प्रति पर विचार नहीं किया गया।

आयोजित: वर्तमान वाद में कथित समझौते की केवल नोटरीकृत प्रति योजित की गई थी। मूल प्रति के अभाव में प्रस्तुत दस्तावेज सिद्ध नहीं हुआ। यह कानून में किसी वैध अनुमान को उठाने का वाद भी नहीं हो सकता था। नोटरीकृत प्रति को सार्वजनिक नोटरी से जांच करवाकर भी सिद्ध नहीं किया गया था, ताकि यह दावा किया जा सके कि यह मूल प्रति की फोटो कॉपी थी। इसलिए, वाद के इस दृष्टिकोण से, न तो संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1882 की धारा 53-ए के तहत किराए और बेदखली के बकाया की वसूली के लिए मुकदमे में कब्जे की रक्षा के लिए याचिकाकर्ता को लाभ दिया जाना चाहिए था और न ही, वाद को प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम, 1887 की धारा 23 के तहत सुनवाई योग्य नहीं माना जा सकता था और शिकायत वापस करने की आवश्यकता थी।

हमें यह याद रखना चाहिए कि न्यायिक कार्यवाही में न्यायालय द्वारा जिस साक्ष्य की सराहना की जानी आवश्यक है, उसका साक्ष्य मूल्य होना चाहिए। यदि प्रस्तुत किए गए तर्क विधिपूर्वक स्वीकार्य साक्ष्य द्वारा समर्थित नहीं हैं, तो तर्क में तथ्य का कोई भी कथन विचारणीय नहीं माना जाएगा, जब तक कि प्रतिद्वंद्वी पक्ष को स्वीकार किया गया। इसलिए यह तर्क कि न्यायालय ने बिक्री के लिए दायर किए गए समझौते के दस्तावेज़ की सराहना नहीं की, मेरे विचार से पूरी तरह से गलत है क्योंकि ऐसा कोई दस्तावेज़ मूल रूप में दायर नहीं किया गया था। दस्तावेज़ अपंजीकृत होने के कारण इसे मूल रूप में दायर किया जाना आवश्यक था और कानून के अनुसार भी सिद्ध किया जाना था।

डी. किरायेदार का बचाव वाद में निरस्त कर दिया गया - जिस पर पुनरीक्षण में कोई आपत्ति नहीं की गई थी- किरायेदार ने बिक्री के लिए एक समझौते के तहत कब्जे के अधिकार का दावा किया था- विचारणीय न्यायालय ने याचिकाकर्ता की स्थिति को किरायेदार माना- प्रतिवादी मकान मालिक किराया वसूलने का पात्र है- याचिकाकर्ता बेदखली का पात्र था- निस्संदेह, याचिकाकर्ता ने किराया नहीं दिया- सीपीसी के आदेश XV नियम 5 के तहत बचाव को सही ढंग से निरस्त कर दिया गया।

आयोजित: इसलिए मेरे विचार से, चूंकि याचिकाकर्ता ने सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के

नियम 5 के आदेश XV के दूसरे भाग के अनुपालन में भी किराया नहीं दिया है, इसलिए बचाव को सही ढंग से निरस्त कर दिया गया है। उपरोक्त तथ्य और इस वाद पर कानून पर चर्चा करने के बाद, मुझे विचारणीय न्यायालय या पुनिरीक्षण द्वारा दिए गए निष्कर्षों में कोई त्रुटि नहीं प्राप्त हुई, और इसलिए, मैं संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत अपनी पर्यवेक्षी शक्ति के किसी भी प्रयोग में इस मामले में हस्तक्षेप करने से इनकार करता हूं।

ई. मकान मालिक के स्वामित्व पर प्रश्न उठाने वाले सारांश वाद की सुनवाई करने वाले लघु वाद न्यायालय के न्यायाधीश का क्षेत्राधिकार - लघु वाद न्यायालय, मकान मालिक और किरायेदार के मध्य वाद में स्वामित्व के प्रश्न पर संयोगवश विचार कर सकते हैं - यदि सिविल वाद नियमित सिविल न्यायालय के निर्णय के अधीन दायर किया गया हो।

आयोजित: लघु वाद न्यायाधीश के अधिकार क्षेत्र के बाद पर, जिसमें भूमि स्वामी के स्वामित्व पर प्रश्न उठाया गया है, इस न्यायालय ने सुरेश एवं अन्य बनाम राम भरोसे लाल गुप्ता एवं अन्य 2014 0 सुप्रीम (सभी) 1579 (2014 11 एडीजे 327) में अचल संपत्ति की बिक्री के अपंजीकृत साधन के आधार पर वाद की वापसी के मामले पर विचार किया। न्यायालय ने पहले संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 54 के साथ-साथ भारतीय पंजीकरण अधिनियम, 1968 की धारा 17 के पैरा 17 का विचरण किया और फिर प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम, 1887 की धारा 23 की भी पैरा 18 के तहत जांच की और फिर बुधू मल बनाम महाबीर प्रसाद एवं अन्य, एआईआर 1988 एससी 1772 में सुप्रीम कोर्ट के फैसले के प्रासंगिक पैराग्राफ को पुनः प्रस्तुत करके पैरा 21 का हवाला दिया। इसके पश्चात विद्वान एकल न्यायाधीश ने शमीम अख्तर बनाम इकबाल अहमद, एआईआर 2001 एससी 1 में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का उल्लेख किया, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने माना था कि लघु वाद न्यायालय संयोगवश मकान मालिक और किरायेदार के बीच मुकदमे में स्वामित्व के प्रश्न पर विचार कर सकता है, लेकिन निश्चित रूप से, सिविल मुकदमे में नियमित सिविल कोर्ट के निर्णय के अधीन, यदि दायर किया गया हो। न्यायालय ने शील चंद बनाम ए.डी.जे.II, झांसी, 2006 (1) एआरसी 359 में दिए गए निर्णय का भी संदर्भ दिया और फिर अंत में माना कि वाद को निरस्त करने का प्रश्न तब उत्पन्न होगा जब न्यायालय वादी के अधिकार और उसके द्वारा दावा किए गए राहत पर सबूत के अभाव या शीर्षक के खंडन के कारण निर्णय नहीं ले सकता। उस वाद में, भूस्वामी ने पंजीकृत दस्तावेज के आधार पर शीर्षक स्थापित किया था, जबकि प्रतिवादी अपंजीकृत दस्तावेज के आधार पर वाद का प्रस्तुत कर रहे थे, जिसे न्यायालय ने स्पष्ट रूप से अवैध माना।

याचिका खारिज। (ई-14)

उद्धृत वाद सूची:

1. धर्माजी @ बाबन बाजीराव शिंदे बनाम जगन्नाथ शंकर जाधव, 1994 लॉसूट (बॉम) 3
2. ए आर सी ओवरसीज प्राइवेट लिमिटेड बनाम बौगेंविलिया मल्टीप्लेक्स और एंटरटेनमेंट सेंटर प्राइवेट लिमिटेड और अन्य, 2007 लॉसूट (अल) 1562
3. माया देवी और अन्य बनाम विपिन कुमार कुशवाहा और अन्य, 2016 0 सुप्रीम (अल) 3530

4. सुलेश और अन्य बनाम राम भरोज लाल गुप्ता और अन्य, 2014 (11) एडीजे 327
5. बुद्धु मल बनाम महाबीर प्रसाद और अन्य, AIR 1988 SC 1772
6. शमिम अख्तर बनाम इकबाल अहमद, AIR 2001 SC 1
7. शील चंद बनाम द्वितीय ए.डी.जे., झांसी, 2006 (1) ARC 359

माननीय न्यायमूर्ति अजीत कुमार

याचिकाकर्ता के विद्वान वकील श्री के.के.अरोड़ा और प्रतिवादी प्रतिवादियों के विद्वान वकील श्री प्रखर टंडन को सुना।

दोनों मामले एक ही मुकदमे से उपजे हैं इसलिए इन्हें इस एक सामान्य निर्णय द्वारा एक साथ सुना गया और निर्णय लिया गया।

इस न्यायालय के समक्ष याचिकाकर्ता 2012 के लघु वाद वाद संख्या 193 का किरायेदार प्रतिवादी है, जिसे किराए के बकाया और के लिए दिनांक 24.7.2019 को डिक्री किया गया था।

याचिकाकर्ता ने लघु वाद न्यायाधीश के आदेश को अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, कोर्ट नंबर 2 के समक्ष लघु वाद संशोधन संख्या 60/2019 जिसे 31 जनवरी, 2020 के आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया गया जो कि लघु वाद न्यायाधीश के फैसले की पुष्टि करती है, को स्थापित करके चुनौती दी और इसलिए संविधान के अनुच्छेद 227 के अंतर्गत यह विविध याचिका है।

वर्तमान याचिकाकर्ता ने लघु वाद न्यायालय अधिनियम, 1887 की धारा 23 के तहत याचिकाकर्ता के आवेदन को खारिज करने वाले न्यायाधीश, लघु वाद द्वारा पारित आदेश के खिलाफ भी एक पुनरीक्षण दायर किया है।

याचिकाकर्ता के विद्वान वकील द्वारा दिए गए मुख्य तर्कों को निम्नानुसार संक्षेपित किया जा सकता है:

चूंकि याचिकाकर्ता ने सम्बंधित संपत्ति जो एक आवासीय घर है, के लिए मकान मालिक वादी के शीर्षक पर सवाल उठाया है, लघु वादी न्यायाधीश किराए और बेदखली के बकाया के मुकदमे का फैसला नहीं कर सकते थे;

बिंदु संख्या 1 का निर्णय करते समय न्यायाधीश, लघु वाद वादी मकान मालिक के विक्रेताओं और याचिकाकर्ता के पति के बीच बिक्री के लिए एक समझौते के संबंध में लिखित बयान में उठाए गए तर्कों को ध्यान में रखने में पूरी तरह से विफल रहे ताकि कब्जा प्राप्त करने के लिए उसके दावे की सराहना की जा सके। स्थानांतरण के माध्यम से, और इसलिए, एक किरायेदार के रूप में उसकी स्थिति बदल गई थी, जिससे वह संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1882 की धारा 53-ए के संदर्भ में स्वामित्व अधिकार का दावा करने की हकदार हो गई थी; और

चूंकि याचिकाकर्ता ने पहले से ही मकान-मालिक वादी के पक्ष में दिनांक 13.06.2011 को निष्पादित बिक्री विलेख को अशक्त और शून्य घोषित करने के लिए एक मुकदमा दायर किया है, लघु वाद अधिनियम की धारा 23 के तहत लाभ उसे दिया जाना चाहिए था और उसका आवेदन गलत तरीके से खारिज कर दिया गया था।

अपने तर्कों के समर्थन में, याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने धर्मजी **@** बबन बाजीराव शिंदे

बनाम जगन्नाथ शंकर जाधव, 1994 मुकदमा (बीओएम) 3 के मामले में बॉम्बे उच्च न्यायालय के फैसले और ए आर सी ओवरसीज प्राइवेट लिमिटेड बनाम बोगेनविलिया मल्टीप्लेक्स एंड एंटरटेनमेंट सेंटर प्राइवेट लिमिटेड और अन्य, 2007 मुकदमा (सभी) 1562 के मामले में इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया।

इसके विपरीत, प्रतिवादी मकान मालिक के विद्वान वकील द्वारा दिए गए तर्क इस प्रकार हैं:

याचिकाकर्ता ने सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (सीपीसी) के आदेश XV के नियम 5 (इलाहाबाद संशोधन) के दूसरे भाग के अनुसार भी किराया जमा नहीं किया है, उसका बचाव सही तरीके से रद्द कर दिया गया था और इस निष्कर्ष पर लघु वाद संशोधन या इस न्यायालय के समक्ष, मुकदमा डिक्री के योग्य था और पुनरीक्षण याचिका भी उचित रूप से खारिज कर दी गई थी और इसलिए अब ये याचिकाएं भी खारिज किए जाने के योग्य हैं; और

भूमि स्वामी ने दिनांक 13.6.2011 के विक्रय विलेख के आधार पर वैध स्वामित्व प्राप्त किया था, जिसे स्वीकृत मालिकों, दीपक कुमार, गोपाल दास ने अपनी पावर ऑफ अटॉर्नी और इंद्र कुमार, टीकम चंद के हित में उत्तराधिकारी और बिक्री के साधन के माध्यम से निष्पादित किया था। इस आशय का बहुत कुछ कहा गया है कि याचिकाकर्ता केवल एक किरायेदार था और उस पर किराया बकाया था, इसलिए, प्रतिवादी संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1888 की धारा 106 के तहत बकाया किराये की वसूली और बेदखली के लिए नोटिस जारी करने के साथ किरायेदारी का निर्धारण करके बेदखली के लिए मुकदमा चलाने का हकदार होगा;

याचिकाकर्ता ने दिनांक 13.06.2011 को भू-स्वामी वादी के पक्ष में निष्पादित विक्रय विलेख को शून्य घोषित करने के लिए पहले ही वाद प्रस्तुत कर दिया है, लघु वाद अधिनियम की धारा 23 के तहत लाभ उसे दिया जाना चाहिए था और उसके आवेदन को गलत तरीके से खारिज कर दिया गया।

अपने तर्कों के समर्थन में, याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने धर्मजी उर्फ बबन बाजीराव शिंदे बनाम

जगन्नाथ शंकर जाधव, 1994 मुकदमा (बॉम्बे) 3 के मामले में बॉम्बे उच्च न्यायालय के फैसले और ए आर सी

ओवरसीज प्राइवेट लिमिटेड बनाम बोगेनविलिया मल्टीप्लेक्स एंड एंटरटेनमेंट सेंटर प्राइवेट लिमिटेड और अन्य,

2007 मुकदमा (सभी) 1562 के मामले में इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया।

इसके विपरीत, प्रतिवादी भूस्वामी के विद्वान वकील द्वारा प्रस्तुत तर्क इस प्रकार हैं:

(i) याचिकाकर्ता ने सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (सीपीसी) के आदेश XV के नियम 5 (इलाहाबाद संशोधन) के दूसरे भाग के अनुसार भी किराया जमा नहीं किया है, इसलिए उसका बचाव सही ढंग से खारिज कर दिया गया था और इस निष्कर्ष को लघु वाद पुनरीक्षण या इस न्यायालय के समक्ष चुनौती नहीं दी गई थी, इसलिए मुकदमा डिक्री के लायक था और पुनरीक्षण याचिका भी सही ढंग से खारिज कर दी गई थी और इसलिए अब ये याचिकाएं भी खारिज किए जाने लायक हैं; और

(ii) भूमि स्वामी ने 13.6.2011 की बिक्री विलेख के आधार पर वैध स्वामित्व प्राप्त किया था, जिसे दीपक कुमार, गोपाल दास नामक मालिकों ने अपने पावर ऑफ अटॉर्नी और इंद्र कुमार, टीकम चंद के हित में उत्तराधिकारी के माध्यम से निष्पादित किया था और बिक्री के दस्तावेज में इस आशय के कथन शामिल थे कि प्रतिवादी याचिकाकर्ता केवल किरायेदार था और उस पर किराया बकाया था, इसलिए, विक्रेता बकाया किराया और बेदखली की वसूली के लिए संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1888 की धारा 106 के तहत नोटिस जारी करने के साथ किरायेदारी का निर्धारण करके बेदखली के लिए मुकदमा चलाने का हकदार होगा।

(iii) याचिकाकर्ता बिक्री के लिए मूल समझौते को प्रस्तुत करके कोई भी साक्ष्य प्रस्तुत करने में विफल रहा, जिसका दावा किया गया था ताकि कब्जा रखने का कोई भी प्रथम दृष्टया अधिकार स्थापित हो सके और बिक्री के लिए समझौते की फोटोकॉपी द्वितीयक साक्ष्य होने के कारण उस संबंध में वादी की ओर से किसी भी प्रवेश के अभाव में स्वीकार्य नहीं थी।

(iv) न तो 14.7.1998 की पंजीकृत मुख्तारनामा को भू-स्वामी प्रतिवादियों के समक्ष स्वीकार किया गया, न ही संपत्ति के दो मालिकों द्वारा निष्पादित बिक्री विलेख और तीसरे मालिक के मुख्तारनामा धारक द्वारा दिनांक 13.6.2011 को किरायेदार प्रतिवादी को मालिक के रूप में स्वीकार किया गया, न ही इसमें 14.7.1998 को निष्पादित बिक्री के लिए किसी भी नोटरीकृत समझौते के संबंध में कोई विवरण शामिल था।

(v) विक्रय के लिए अपंजीकृत अनुबंध निष्पादित करने का कोई कारण नहीं था तथा इसे केवल नोटरीकृत किया गया था, जबकि उसी तारीख को निष्पादित दिनांक 14.07.1998 का पावर ऑफ अटॉर्नी पंजीकृत था।

(vi) यह न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत अपने पर्यवेक्षी अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए तथ्यों के निष्कर्षों में तब तक प्रवेश नहीं करेगा जब तक कि तथ्य के निष्कर्ष इतने विकृत न हों कि यदि उन्हें गिरफ्तार नहीं किया गया तो इससे न्याय की विफलता हो जाएगी।

तदनुसार, प्रतिवादी के विद्वान वकील ने दलील दी कि वर्तमान मामले में कोई भी निष्कर्ष विपरीत नहीं माना जा सकता है और न ही इस विविध याचिका में ऐसा कोई आधार लिया गया है, सिवाय इस आधार के कि किरायेदार याचिकाकर्ता ने स्वामित्व पर सवाल उठाया है, अदालत याचिकाकर्ता को किरायेदार और प्रतिवादी को भूमि स्वामी मानते हुए इस मुकदमे को लघु वाद के रूप में नहीं सुन सकती थी।

इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत कानूनी तर्कों पर आने से पहले, मामले के तथ्यों को संक्षेप में बताना आवश्यक है ताकि संबंधित पक्षों के लिए उपस्थित विद्वान वकीलों द्वारा प्रस्तुत तर्कों को बेहतर ढंग से समझा जा सके।

प्रतिवादी भूस्वामी ने दावा किया कि उसने संबंधित परिसर का स्वामित्व हासिल कर लिया है, जो कि एक आवासीय घर है, जिसका पंजीकृत विक्रय विलेख उसके पक्ष में 13.06.2011 को दीपक कुमार, इंद्र कुमार, पुत्र टीकम चंद और गोपाल दास के पावर ऑफ अटॉर्नी धारक अनूप मिश्रा द्वारा निष्पादित किया गया था और विक्रय

विलेख ने पूरे परिसर का कब्जा राज कुमार यादव के पक्ष में स्थानांतरित कर दिया था और इस आशय का विवरण दिया था कि पूरे भवन में, श्रीमती मालती शर्मा एक किरायेदार के रूप में रह रही थीं, जिन पर विक्रेताओं को 100/- रुपये प्रति माह किराया देने की देयता थी, साथ ही गृह कर, जल कर और सीवर कर कुल मिलाकर 944/- प्रति माह था, तथापि 1995 से मांग के बावजूद उसने किराया नहीं दिया और इसलिए 1 अप्रैल, 1995 से उस पर किराया बकाया हो गया, जिसे वह चुकाने के लिए उत्तरदायी थी और, इसलिए, बिक्री विलेख के माध्यम से किराया मांगने का अधिकार विक्रेता को हस्तांतरित हो गया और साथ ही, किराया न चुकाने की स्थिति में उसे परिसर से बेदखल करने के लिए बकाया किराया वसूली और बेदखली के लिए मुकदमा दायर करने का भी अधिकार विक्रेता को दिया गया।

प्रतिवादी मकान मालिक ने प्रतिवादी याचिकाकर्ता को किराया और उसके बकाया की मांग करते हुए नोटिस जारी किया और जब याचिकाकर्ता नोटिस के जवाब में किराया देने में विफल रहा, तो उसने किराया वसूली और बेदखली के लिए मुकदमा दायर किया।

ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता किरायेदार ने लिखित बयान दायर कर प्रतिवादी भू-स्वामी के किराया मांगने के अधिकार पर प्रश्न उठाया था, साथ ही उसने दिनांक 13.6.2011 के विक्रय विलेख को अमान्य घोषित करने के लिए मुकदमा भी दायर किया था तथा स्थायी निषेधाज्ञा के स्वरूप में राहत भी मांगी थी और इसी पृष्ठभूमि में प्रांतीय लघु वाद अधिनियम, 1887 की धारा 23 के तहत एक आवेदन न्यायाधीश, लघु वाद के समक्ष दायर किया गया था, जिसे खारिज कर दिया गया था, जिसके विरुद्ध पुनरीक्षण भी खारिज कर दिया गया था तथा उसके विरुद्ध विविध याचिका दायर की गई है।

लिखित बयान में दलील दी गई कि संपत्ति के मालिक टीकमचंद, गोपाल दास, दीपक कुमार ने 14.09.1998 को याचिकाकर्ता और उसके पति के पक्ष में बिक्री के लिए नोटरीकृत अनुबंध निष्पादित किया और याचिकाकर्ता ने उन्हें एक निश्चित राशि का अग्रिम भुगतान किया और फिर 14.9.1998 को तीनों संपत्ति मालिकों द्वारा अनुज मिश्रा के पक्ष में पावर ऑफ अटॉर्नी निष्पादित की गई ताकि संबंधित संपत्ति का प्रबंधन किया जा सके और यदि बिक्री निष्पादित करने का निर्णय लिया जाता है, तो उस स्थिति में बिक्री प्रस्तावित खरीदार के पक्ष में निष्पादित की जानी थी। बिक्री विलेख कभी भी निष्पादित नहीं किया गया था, जबकि टीकम चंद के बेटे, इंद्र कुमार, दीपक कुमार और गोपाल दास के पावर ऑफ अटॉर्नी धारक की हैसियत से अनुज मिश्रा ने 13.6.2011 को राज कुमार, भूमि स्वामी प्रतिवादी के पक्ष में बिक्री विलेख निष्पादित किया।

न्यायाधीश लघु वाद द्वारा निर्धारित निर्धारण बिंदुओं में निर्धारण के लिए एक बिंदु यह भी शामिल था कि क्या किरायेदार याचिकाकर्ता का प्रतिवाद मुकदमा दायर करने के बाद भी किराया न चुकाने के लिए आदेश XV नियम 5 के तहत रद्द किया जा सकता है।

सभी मुद्दों का उत्तर भूमि स्वामी प्रतिवादी के पक्ष में दिया गया और मुकदमा तय किया गया।

याचिकाकर्ता के विद्वान वकील द्वारा उद्धृत ए आर सी ओवरसीज प्राइवेट लिमिटेड (सुप्रा) के मामले में, इस न्यायालय को एक अपंजीकृत लिखत, जिसे वैसे तो भारतीय पंजीकरण अधिनियम के तहत पंजीकृत किया जाना आवश्यक था, के प्रभाव की जांच करने का अवसर मिला, और यह सोचने का अवसर मिला कि क्या न्यायालय की कार्यवाही में अनुप्रासंगिक प्रयोजनों के लिए अन्यथा उस पर भरोसा किया जा सकता था। उक्त मामले में, वादी अपीलकर्ता ने दावा किया कि वह पार्टियों के बीच निष्पादित पट्टे के आधार पर एक दुकान पर वैध कब्जे में है, हालांकि दुकान के बोर्ड पट्टेदार द्वारा हटा दिए गए और पट्टेदार को दुकान में फिर से प्रवेश करने की धमकी दी गई। पट्टेदार द्वारा लाया गया निषेधाज्ञा का मुकदमा खारिज कर दिया गया, जिसके खिलाफ याचिका पेश की गई। वादी को इस आधार पर अयोग्य घोषित कर दिया गया कि पक्षों के बीच हुए पट्टा समझौते में मध्यस्थता का प्रावधान था।

इसलिए, उक्त मामले में पूरा मुद्दा यह था कि दस्तावेज अपंजीकृत होने के कारण किसी भी अनुप्रासंगिक उद्देश्य के लिए इस्तेमाल नहीं किया जा सकता था। इन परिस्थितियों में, न्यायालय ने पंजीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 49 के साथ-साथ संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1882 की धारा 107 की जांच की और पैराग्राफ 12 और 13 के अनुसार, न्यायालय ने इस प्रकार निर्णय दिया:

“12. यदि हम संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 107 के दूसरे पैराग्राफ के बाद के भाग को देखें, जैसा कि ऊपर बताया गया है, तो हम यह पा सकेंगे कि कब्जे की सुपुर्दगी के साथ मौखिक समझौते द्वारा पट्टे को पंजीकृत करने की आवश्यकता नहीं है। इसलिए, यदि दस्तावेज़ का पंजीकरण याचिकाकर्ता के पास उपलब्ध नहीं है, लेकिन यह उसके कब्जे में था, तो यह पक्षों के बीच कानूनी संबंध बनाने के उद्देश्य से पर्याप्त है। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि याचिकाकर्ता ने अपने शुरुआती कब्जे पर भरोसा किया है।एंथनी बनाम के.सी. इट्टूप एंड संस और अन्य के मामले में दिए फैसले के पैराग्राफ 14 में यह माना गया कि जब दोनों पक्षों द्वारा यह स्वीकार किया जाता है कि याचिकाकर्ता को भवन के मालिक द्वारा कब्जा दिलाया गया था और याचिकाकर्ता मासिक किराया दे रहा था या भवन के संबंध में किराया देने के लिए सहमत हो गया था, तो याचिकाकर्ता के कब्जे का कानूनी चरित्र पक्षों के बीच कानूनी संबंध के कारण माना जाएगा। मामले की तथ्यात्मक स्थिति के आधार पर, ऐसे विधिक संबंध को पट्टाकर्ता और पट्टाधारक के संबंध से अलग नहीं माना जा सकता, जो संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 107 के दूसरे पैराग्राफ के दायरे में आता है।

13. दूसरे, पंजीकरण अधिनियम की धारा 49 का अंतिम भाग, जैसा कि ऊपर बताया गया है, विशेष रूप से कहता है कि "किसी भी अनुप्रासंगिक लेनदेन के साक्ष्य के रूप में पंजीकृत साधन द्वारा किए जाने की आवश्यकता नहीं है"। इसलिए, कानून इस सीमा तक बिल्कुल स्पष्ट है। मट्टापल्ली चेलामय्या (मृत) उनके कानूनी प्रतिनिधियों द्वारा और अन्य बनाम मट्टापल्ली वेंकटरत्नम (मृत) उनके कानूनी प्रतिनिधियों द्वारा और अन्य में सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि धारा 49

यह नहीं कहती है कि दस्तावेज़ को साक्ष्य में बिल्कुल भी स्वीकार नहीं किया जा सकता है। यह केवल इतना कहता है कि दस्तावेज़ को ऐसी संपत्ति को प्रभावित करने वाले किसी भी लेनदेन के साक्ष्य के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है। यदि साक्ष्य अधिनियम के तहत दस्तावेज़ अनुप्रासंगिक उद्देश्य के लिए साक्ष्य में प्राप्त करने योग्य है, तो धारा 49 कोई बाधा नहीं है। प्रावधान का यह निर्माण, जिसे उच्च न्यायालयों द्वारा लंबे समय से स्वीकार किया गया था, को 1929 के संशोधन अधिनियम 21 द्वारा विधिवत मान्यता दी गई है, जिसने धारा में एक प्रावधान जोड़ा है। प्रावधान स्पष्ट रूप से न्यायालयों को किसी भी अपंजीकृत दस्तावेज़ को अनुप्रासंगिक लेनदेन के साक्ष्य के रूप में स्वीकार करने का अधिकार देता है, जिसका पंजीकृत होना आवश्यक नहीं है। दस्तावेज़ को साक्ष्य के रूप में बिल्कुल भी स्वीकार नहीं किया जा सकता है। यह केवल इतना कहता है कि दस्तावेज़ को ऐसी संपत्ति को प्रभावित करने वाले किसी भी लेनदेन के साक्ष्य के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है। यदि साक्ष्य अधिनियम के तहत दस्तावेज़ अनुप्रासंगिक उद्देश्य के लिए साक्ष्य में प्राप्य है, तो धारा 49 कोई बाधा नहीं है। प्रावधान का यह निर्माण, जिसे उच्च न्यायालयों द्वारा लंबे समय से स्वीकार किया गया था, को 1929 के संशोधन अधिनियम 21 द्वारा विधिवत मान्यता दी गई है, जिसने खंड में एक प्रावधान जोड़ा है। प्रावधान स्पष्ट रूप से न्यायालयों को किसी भी अपंजीकृत दस्तावेज़ को अनुप्रासंगिक लेनदेन के साक्ष्य के रूप में स्वीकार करने का अधिकार देता है, जिसका पंजीकरण होना आवश्यक नहीं है।

सतीश चंद माखन एवं अन्य बनाम गोवर्धन दास ब्यास एवं अन्य में, यह माना गया कि अपंजीकृत पट्टा विलेख को पंजीकरण अधिनियम की धारा 49 के प्रावधान को लागू करते हुए अनुप्रासंगिक उद्देश्य के लिए साक्ष्य में स्वीकार किया जा सकता है, क्योंकि पट्टे की शर्तें अपने अर्थ के भीतर अनुप्रासंगिक उद्देश्य नहीं हैं। राय चंद जैन बनाम मिस चंद्र कांता खोसला में, यह कहा गया कि यह अच्छी तरह से स्थापित है कि दोनों पक्षों द्वारा निष्पादित अपंजीकृत पट्टे को अनुप्रासंगिक उद्देश्यों के लिए देखा जा सकता है। बोंदर सिंह एवं अन्य बनाम निहाल सिंह एवं अन्य में, यह माना गया कि कानूनी स्थिति स्पष्ट है कि याचिका में बिक्री विलेख जैसे दस्तावेज़ को अनुमति दी गई है, भले ही साक्ष्य में स्वीकार्य न हो, लेकिन अनुप्रासंगिक उद्देश्यों के लिए देखा जा सकता है। न्यायालय ने माना कि अनुप्रासंगिक उद्देश्य को मुकदमे की भूमि पर वादियों के कब्जे की प्रकृति पर देखा जाना चाहिए। विचाराधीन बिक्री विलेख कम से कम यह दर्शाता है कि मुकदमे की भूमि पर वादियों का प्रारंभिक कब्ज़ा अवैध या अनधिकृत नहीं था। इसलिए, निर्विवाद प्रारंभिक कब्ज़ा ही दस्तावेज़ की वैधता के बारे में मार्गदर्शक कारक है।"

फैसले के उपरोक्त पैराग्राफों को पढ़ने पर, निष्कर्ष यह निकलता है कि एक अपंजीकृत दस्तावेज़ को संपार्श्विक उद्देश्यों के लिए देखा जा सकता है, लेकिन संपार्श्विक उद्देश्य को मुकदमे की भूमि पर वादी के कब्जे की प्रकृति में देखा जाना चाहिए।

वर्तमान मामले में उपरोक्त सिद्धांतों को लागू करते हुए, याचिकाकर्ता के पूर्ववर्ती हितधारक

कथित किराएदार परिसर के किराएदार थे और उन्होंने बिक्री के एक समझौते के तहत कब्जे के अधिकार की प्रकृति को किराएदार से प्रस्तावित विक्रेता में बदल दिया, जो कभी पंजीकृत नहीं हुआ।

उद्धृत निर्णय में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि किसी अपंजीकृत दस्तावेज से कोई शीर्षक प्राप्त नहीं होता है, जिसे कानून में पंजीकृत होना आवश्यक है। यदि ऐसा है तो याचिकाकर्ता के हित में पूर्ववर्ती की स्थिति और जिससे याचिकाकर्ता ने उस कब्जे के अधिकार को प्राप्त किया था, वह अधिकतम एक किरायेदार की होगी और कब्जे को बनाए रखने के लिए किराए का भुगतान करना आवश्यक है अन्यथा किराए का भुगतान न करने वाला किरायेदार कानून के तहत बेदखल होने का हकदार होगा। बिक्री के लिए अपंजीकृत समझौते के तहत व्यक्ति कानून में किसी भी कब्जे के अधिकार को प्राप्त करने के लिए इसके प्रदर्शन के लिए मुकदमा भी नहीं चला सकता है। इसलिए कब्जे की प्रकृति हमेशा परिसर के किरायेदार के रूप में ही होगी।

किरायेदार के कब्जे की इस प्रकृति को देखते हुए, एक अपंजीकृत समझौता उसे केवल एक अनधिकृत अधिभोगी नहीं मानेगा और उस सीमा तक साधन का एक साक्ष्य मूल्य होगा ताकि 1972 के अधिनियम संख्या 13 के तहत कथित रिक्तता के प्रावधान को लागू न किया जा सके।

याचिकाकर्ता के विद्वान वकील द्वारा उद्धृत धर्मजी उर्फ बबन बाजीराव शिंदे (सुप्रा) के मामले में बॉम्बे उच्च न्यायालय के निर्णय में भी कब्जे की सुरक्षा केवल इसी सीमा तक मानी गई है। माननीय वी.ए.मोहता, जे ने निर्णय के पैराग्राफ 4 और 5 के अनुसार इस प्रकार कहा:

"4. धारा 53ए की जांच से पता चलता है कि प्रावधानों के लागू होने के लिए आवश्यक शर्तें हैं: (1) अचल संपत्ति को प्रतिफल के लिए हस्तांतरित करने के लिए हस्तांतरक द्वारा या उसकी ओर से हस्ताक्षरित एक लिखित अनुबंध है। (2) हस्तांतरण से संबंधित अनुबंध की शर्तें स्पष्ट रूप से समझी जा सकती हैं। (3) अनुबंध के आंशिक निष्पादन में हस्तांतरी को या तो कब्जा दे दिया जाता है या कब्जा जारी रहता है और उसने अनुबंध को आगे बढ़ाने के लिए कुछ कार्य किया है। (4) हस्तांतरी ने अनुबंध के अपने हिस्से का निष्पादन कर दिया है या करने के लिए तैयार है। जहां कहीं भी उपरोक्त शर्तें पूरी होती हैं, हस्तांतरक या उसके तहत दावा करने वाला कोई भी व्यक्ति प्रश्नगत संपत्ति के संबंध में हस्तांतरी या उसके तहत दावा करने वाले किसी भी व्यक्ति के खिलाफ कोई अधिकार लागू करने से वंचित हो जाता है, भले ही अनुबंध को पंजीकृत होना आवश्यक हो, लेकिन वह पंजीकृत नहीं है या जहां हस्तांतरण का साधन है, हस्तांतरण कानूनी रूप से पूरा नहीं हुआ है।

5. यह धारा आंशिक निष्पादन की समानता के अंग्रेजी सिद्धांत को संशोधित रूप में मान्यता देती है, जिसे कानून की कठोरता से राहत देने के लिए डिज़ाइन किया गया है और जब कोई हस्तांतरण या हस्तांतरण का समझौता कानूनी आवश्यकताओं से कम हो जाता है तो एक उपाय प्रदान करता है। इसका उद्देश्य उन हस्तांतरित व्यक्तियों की रक्षा करना है जो उचित विचार के लिए कब्जा लेते हैं, पैसा खर्च करते हैं और/या

अनुबंध की शर्तों पर भरोसा करते हुए सुधार में श्रम लगाते हैं, जो पंजीकरण या किसी अन्य कानूनी आवश्यकता के अभाव में साबित नहीं हो सकते हैं या उन्हें शीर्षक नहीं दिया जा सकता है।इस प्रकार प्रावधान का सार यह प्रतीत होता है कि पारस्परिक अनुबंध प्रभावी होते हैं, हालांकि परिणामस्वरूप शीर्षक हस्तांतरित नहीं होता है, हालांकि हस्तांतरिती अपने शीर्षक को लागू करने की कोशिश नहीं कर सकता है, लेकिन अनुबंध के तहत अपने अधिकारों पर हमले का विरोध कर सकता है, जिसमें कब्ज़ा बनाए रखने का अधिकार शामिल होगा। अक्सर यह कहा जाता है कि अधिकार का इस्तेमाल तलवार के रूप में नहीं किया जा सकता है और इसका इस्तेमाल केवल ढाल के रूप में किया जा सकता है। यदि यह अधिकार एक ढाल के रूप में प्रतिवादी के रूप में उसके लिए उपलब्ध है, तो मुझे इस दृष्टिकोण के लिए कोई औचित्य नहीं दिखता है कि उसे यह अधिकार नहीं दिया जाएगा, भले ही परिस्थितियों के कारण वह एक कानून का पालन करने वाले नागरिक के रूप में उस ढाल का उपयोग करने के लिए वादी के रूप में न्यायालय का दरवाजा खटखटाने के लिए बाध्य हो। हस्तान्तरित व्यक्ति को बिक्री के अनुबंध के तहत हस्तान्तरित व्यक्ति के वैध कब्जे को बाधित करने के हस्तान्तरितकर्ता की ओर से किसी भी प्रयास का विरोध करने का अधिकार है और उसकी स्थिति - चाहे वह वादी हो या प्रतिवादी - इससे कोई फर्क नहीं पड़ना चाहिए। विपरीत व्याख्या अर्थात, हस्तान्तरित व्यक्ति ढाल का उपयोग केवल प्रतिवादी के रूप में कर सकता है, वादी के रूप में नहीं, धारा 53-ए की मूल भावना को पराजित करेगी क्योंकि एक अधिक शक्तिशाली हस्तान्तरितकर्ता के लिए अनुबंध में वाचाओं के विरुद्ध भी हस्तान्तरित व्यक्ति को जबरन बेदखल करना और उसे वादी के रूप में न्यायालय में जाने के लिए मजबूर करना संभव होगा। जहाँ तक कानून के अक्षर का सवाल है, ऐसा कुछ भी नहीं है जो उपरोक्त वस्तु उन्मुख व्याख्या के विरुद्ध हो।"

लेकिन मैं आगे यह भी कहूंगा कि यह सीमित सुरक्षा भी याचिकाकर्ता को तभी उपलब्ध होगी जब वह इसे प्राथमिक साक्ष्य या द्वितीयक साक्ष्य के रूप में साक्ष्य में कोई दस्तावेज पेश करके साबित करे। वर्तमान मामले में कथित समझौते की केवल नोटरीकृत फोटो कॉपी दाखिल की गई थी। मूल के अभाव में पेश किए गए दस्तावेज को साबित नहीं किया जा सका। यह कानून में कोई वैध अनुमान लगाने का मामला नहीं हो सकता था। नोटरीकृत फोटोकॉपी को भी सार्वजनिक नोटरी से जांच करवाकर साबित नहीं किया गया था ताकि यह दावा किया जा सके कि यह मूल की फोटो कॉपी है। इसलिए, इस मामले को देखते हुए, न तो संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1882 की धारा 53-ए के तहत लाभ दिया जाना चाहिए था ताकि किराए और बेदखली के बकाया की वसूली के लिए मुकदमे में कब्जे की रक्षा की जा सके और न ही, मुकदमे को अनुरक्षणीय नहीं माना जा सकता था और प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम, 1887 की धारा 23 के तहत शिकायत वापस करने की आवश्यकता थी।

यह याद रखना चाहिए कि न्यायिक कार्यवाही में न्यायालय द्वारा जिस साक्ष्य की सराहना की जानी आवश्यक है, उसका साक्ष्य मूल्य होना चाहिए। यदि प्रस्तुत किए गए तर्क विधिपूर्वक

स्वीकार्य साक्ष्य द्वारा समर्थित नहीं हैं, तो तर्क में तथ्य का कोई भी कथन तब तक विचारणीय नहीं माना जाएगा जब तक कि प्रतिद्वंद्वी पक्ष द्वारा स्वीकार न कर लिया जाए। इसलिए यह तर्क कि न्यायालय ने बिक्री के लिए दायर किए गए समझौते के दस्तावेज़ की सराहना नहीं की, मेरे विचार से पूरी तरह से गलत है क्योंकि ऐसा कोई दस्तावेज़ मूल रूप में दायर नहीं किया गया था। दस्तावेज़ अपंजीकृत होने के कारण इसे मूल रूप में दायर किया जाना आवश्यक था और कानून के अनुसार इसे साबित भी किया जाना था।

इस मामले में विचारणीय एक अन्य बिन्दु यह है कि याचिकाकर्ता का बचाव मुकदमे में खारिज कर दिया गया तथा फिर भी याचिकाकर्ता ने निचली अदालत के समक्ष दायर पूरे पुनरीक्षण ज्ञापन में प्रासंगिक विवाद संख्या 4 पर निष्कर्षों को चुनौती देते हुए कोई दलील नहीं दी। चूंकि याचिकाकर्ता की ओर से यह स्वीकारोक्ति है कि वह बिक्री के लिए किए गए समझौते के तहत अर्जित कब्जे के अधिकारों के लिए किराया नहीं दे रहा था और उसकी स्थिति प्रस्तावित क्रेता के किरायेदार से बदल गई थी और इस तरह वह प्रतिवादी भू-स्वामी के स्वामित्व पर सवाल उठा रही थी, संभवतः इसी कारण से उसने इस मुद्दे पर विरोध नहीं किया। निचली अदालतों ने माना है कि याचिकाकर्ता मूल भूमि स्वामी के किरायेदार की हैसियत से काम करता रहा, जिसने प्रतिवादी को स्वामित्व हस्तांतरित कर दिया, और बिक्री विलेख में यह उल्लेख था कि याचिकाकर्ता किरायेदार था और उस पर किराया बकाया था, इसलिए भूमि स्वामी/प्रतिवादी (बाद के खरीदार) किराया वसूलने और भुगतान न करने की स्थिति में बेदखली का दावा करने के हकदार होंगे। इस प्रकार मुकदमा सही तरीके से दायर किया गया था और चूंकि याचिकाकर्ता द्वारा किराए के लिए भुगतान नहीं किया गया था, इसलिए वह बेदखली की हकदार थी।

इस न्यायालय ने माया देवी एवं अन्य बनाम विपिन कुमार कुशवाहा एवं अन्य, 2016 0 सुप्रीम (सभी) 3530 के मामले में बहुत स्पष्ट रूप से माना है कि चाहे प्रतिवादी किराए और बेदखली के बकाया की वसूली के लिए खुद को किरायेदार या मालिक मानता हो, भले ही प्रतिवादी जमीन के स्वामी के शीर्षक और उसके मुकदमे को बनाए रखने के अधिकार पर सवाल उठाते हों, उसे सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के नियम 5 के आदेश XV के दूसरे भाग के अनुपालन में किराए का भुगतान करना आवश्यक है, जो सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के प्रासंगिक प्रावधानों से संबंधित है। पैराग्राफ 5,6, 7,8 और 9 के अनुसार न्यायालय ने इस प्रकार माना है:

"5. उत्तर प्रदेश राज्य में लागू सीपीसी का आदेश XV नियम 5 दो भागों में है। पहला भाग किराएदार द्वारा देय मानी गई राशि जमा करने से संबंधित है और दूसरा भाग मासिक देय राशि से संबंधित है, चाहे वह किराएदार द्वारा स्वीकार की गई हो या नहीं। आदेश XV सीपीसी के नियम 5 के उपरोक्त दो भागों में उल्लिखित दो राशियों में से किसी एक का भुगतान करने में चूक होने पर, न्यायालय को बचाव को रद्द करने का अधिकार होगा।

6. प्रद्युम्न जी बनाम विशेष/अपर जिला न्यायाधीश, बलिया एवं अन्य 2008 (71) एएलआर 892 में यह माना गया है कि ऐसे

मामले में जहां प्रतिवादी मकान मालिक और किरायेदार के रिश्ते के अस्तित्व से इनकार करता है, उसे नियम 5 आदेश XV सीपीसी के पहले भाग में निर्दिष्ट राशि जमा करने की आवश्यकता नहीं हो सकती है, लेकिन फिर भी उसे मुकदमे की निरंतरता के दौरान इसके उपार्जन की तारीख से एक सप्ताह के भीतर "मासिक देय राशि" जमा करने की आवश्यकता होगी, चाहे वह उक्त राशि को देय मानता हो या नहीं।

7. उपरोक्त निर्णय का अनुसरण इस न्यायालय ने मुकेश सिंह एवं अन्य बनाम रमेश चंद सोलंकी 2011 (89) एएलआर 655 के मामले में किया गया था। उसमें माननीय न्यायाधीश ने माना कि चूंकि उसमें किरायेदार ने आदेश XV सीपीसी के नियम 5 के दूसरे भाग का अनुपालन नहीं किया था, इसलिए बचाव को इस तथ्य के बावजूद खारिज कर दिया गया कि उसने मकान मालिक और किरायेदार के रिश्ते से इनकार किया था।

8. इसी प्रकार का विचार इस न्यायालय के एक अन्य न्यायाधीश द्वारा यूसुफ़ुल हक उर्फ यूसुफ़ एवं अन्य बनाम श्रीमती ग़य्यूर फ़ातमा एवं अन्य 2012 (92) ए.एल.आर. 526 के मामले में भी व्यक्त किया गया है।

9. उपर्युक्त मामले में यह माना गया कि जहां प्रतिवादी मकान मालिक और किरायेदार के रिश्ते के अस्तित्व से इनकार करता है, तो उसे मुकदमे की पहली सुनवाई के समय या उससे पहले देय मानी गई राशि जमा करने की आवश्यकता नहीं हो सकती है, लेकिन फिर भी उसे मुकदमे की निरंतरता के दौरान इसके उपार्जन की तारीख से एक सप्ताह के भीतर मासिक देय राशि जमा करने की आवश्यकता होगी क्योंकि इस तरह की जमा राशि इस तथ्य के बावजूद की जानी चाहिए कि वह किसी भी राशि को देय मानता है या नहीं।

अतः मेरे सुविचारित मत में, चूंकि याचिकाकर्ता ने सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के नियम 5 के आदेश XV के दूसरे भाग के अनुपालन में भी किराया नहीं दिया है, इसलिए बचाव को सही रूप से खारिज कर दिया गया है।

उपर्युक्त तथ्य और इस बिंदु पर कानून पर चर्चा करने के बाद, मुझे ट्रायल कोर्ट या पुनरीक्षण द्वारा दिए गए निष्कर्षों में सिर्फ त्रुटि नहीं, बल्कि बहुत बड़ी त्रुटि ही मिलती है और इसलिए, मैं संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत अपनी पर्यवेक्षी शक्ति के किसी भी प्रयोग में इस मामले में हस्तक्षेप करने से इनकार करता हूं।

एक सारांश वाद की सुनवाई करने के लिए न्यायाधीश, लघु वाद के अधिकार क्षेत्र के बिंदु पर, जहां भूमि स्वामी के शीर्षक पर सवाल उठाया गया है, इस अदालत ने सुरेश और अन्य बनाम राम भरोसे लाल गुप्ता और अन्य 2014 0 सुप्रीम (सभी) 1579 (2014 11 एडीजे 327) के मामले में एक अचल संपत्ति की बिक्री के अपंजीकृत साधन के आधार पर वाद की वापसी के मामले पर विचार किया। न्यायालय ने पहले संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 54 के साथ-साथ भारतीय पंजीकरण अधिनियम, 1968 की धारा 17 की पैरा 17 के माध्यम से जांच की और फिर प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम, 1887 की धारा 23 की भी पैरा 18 के माध्यम से जांच की और फिर सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के प्रासंगिक पैरा को पुनः प्रस्तुत करते हुए बुधु मल

बनाम महाबीर प्रसाद एवं अन्य, एआईआर 1988 एससी 1772 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का पैरा 21 के माध्यम से उल्लेख किया। इसके बाद विद्वान एकल न्यायाधीश ने शमीम अख्तर बनाम इकबाल अहमद, एआईआर 2001 एससी 1 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का उल्लेख किया, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने माना था कि लघु वाद न्यायालय, भू-स्वामी और किरायेदार के बीच मुकदमे में स्वामित्व के प्रश्न पर विचार कर सकता है, लेकिन निश्चित रूप से, यदि सिविल मुकदमा दायर किया गया हो तो, वह नियमित सिविल न्यायालय के निर्णय के अधीन होगा। न्यायालय ने शील चंद बनाम द्वितीय एडीजे, झांसी, 2006 (1) एआरसी 359 के मामले में दिए गए फैसले का भी हवाला दिया और फिर अंत में माना कि वाद को खारिज करने का सवाल तब उठेगा जब न्यायालय सबूत के अभाव या स्वामित्व के अप्रमाणन के कारण वादी के अधिकार और उसके द्वारा दावा किए गए राहत पर फैसला नहीं कर सकता।उस मामले में, भूमि स्वामी ने पंजीकृत दस्तावेज के आधार पर स्वामित्व स्थापित किया था, जबकि प्रतिवादी अपंजीकृत दस्तावेज के आधार पर मामले को लड़ रहे थे, जिसे न्यायालय ने स्पष्ट रूप से अवैध माना। अनुच्छेद 17, 25, 26 के अनुसार, न्यायालय ने इस प्रकार निर्णय दिया:

"17. अचल संपत्ति का हस्तांतरण अधिनियम, 1882 द्वारा शासित है और यह बताता है कि अचल संपत्ति को किस तरह से हस्तांतरित किया जा सकता है। धारा 54 में कहा गया है कि अचल संपत्ति का हस्तांतरण या तो पंजीकृत दस्तावेज द्वारा या 100/- रुपये से कम मूल्य की संपत्ति की सुपुर्दगी द्वारा किया जा सकता है। धारा में कोई अन्य तरीका निर्धारित नहीं है।इसमें यह नहीं कहा गया है कि यदि कोई दस्तावेज 100/- रुपये से कम मूल्य की अचल संपत्ति को हस्तांतरित करने के लिए लिखा गया है, तो उसे पंजीकरण की आवश्यकता नहीं होगी। इसके विपरीत, यदि इसका मूल्य 100/- रुपये से कम है और हस्तांतरण लिखित रूप में किए गए किसी उपकरण द्वारा प्रस्तावित नहीं है, तो केवल संपत्ति की सुपुर्दगी द्वारा ऐसा हस्तांतरण अनुमेय है, लेकिन जहां इसे लिखित रूप में किया गया है, वहां इसे पंजीकृत उपकरण होना चाहिए।इसके अलावा, अधिनियम, 1908 की धारा 17 के तहत उपरोक्त दस्तावेज़ के पंजीकरण की आवश्यकता के संबंध में कोई बहिष्करण नहीं है। जिन दस्तावेज़ों को पंजीकरण की आवश्यकता से बाहर रखा गया है, उनमें बिक्री द्वारा अचल संपत्ति का हस्तांतरण शामिल नहीं है, चाहे उसका मूल्य कितना भी हो। वैसे भी, अधिनियम, 1908 की धारा 17 में कहीं भी यह प्रावधान नहीं है कि यदि किसी क़ानून के तहत किसी दस्तावेज़ का पंजीकरण प्रदान किया गया है, तो अधिनियम, 1908 की धारा 17 के आधार पर यह आवश्यक नहीं होगा। पंजीकरण अधिनियम की धारा 17 का धारा 54 पर कहीं भी अधिभावी प्रभाव नहीं है, इसलिए इन दोनों प्रावधानों को एक साथ पढ़ा जाना चाहिए। ऐसा होने के नाते, मैं इस न्यायालय द्वारा बुद्धिराम (सुप्रा) में लिए गए दृष्टिकोण से स्पष्ट रूप से सहमत हूं कि यदि संपत्ति की बिक्री लिखित रूप में एक दस्तावेज के माध्यम से की जाती है, तो इसके परिणामस्वरूप संपत्ति का हस्तांतरण नहीं होगा, भले ही संपत्ति का मूल्य 100 रुपये से कम हो, क्योंकि अधिनियम, 1882 की धारा 54 के आधार पर

दस्तावेज़ का पंजीकरण आवश्यक है।ऐसे मामले में, मुझे ऐसा कोई प्रावधान नहीं दिखता जो किसी ऐसे पक्ष की मदद कर सके जो अपंजीकृत दस्तावेज के आधार पर अपना दावा पेश कर रहा हो। इसलिए, मैं नीचे के न्यायालय द्वारा लिए गए दृष्टिकोण से स्पष्ट रूप से सहमत हूँ कि 22.12.1976 की बिक्री विलेख, एक अपंजीकृत दस्तावेज होने के कारण, अमान्य थी और इसके परिणामस्वरूप प्रतिवादी-किराएदारों यानी याचिकाकर्ताओं को मुकदमे की संपत्ति के संबंध में कोई अधिकार नहीं मिला।

25. उपरोक्त प्राधिकारियों ने स्पष्ट रूप से दर्शाया है कि केवल शीर्षक का विवाद उठाए जाने से, लघु वाद न्यायालय के समक्ष दायर किए गए मुकदमे का निर्णय करने के अधिकार क्षेत्र को समाप्त नहीं किया जा सकता है, तथा वह केवल ऐसे विवाद को उठाए जाने पर वाद वापस करने के लिए बाध्य नहीं है। धारा 23 में स्पष्ट रूप से कहा गया है; केवल तभी जब न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि वह वादी के अधिकार और उसके द्वारा दावा किए गए राहत का निर्णय नहीं कर सकता है, क्योंकि यह अचल संपत्ति के शीर्षक के प्रमाण या अप्रमाण पर निर्भर करेगा, वह वाद वापस कर सकता है, अन्यथा नहीं।

26. वर्तमान मामले में वादी-जमींदार ने पंजीकृत दस्तावेज के आधार पर अपने अधिकारों का दावा किया जबकि याचिकाकर्ता-प्रतिवादियों ने अपंजीकृत दस्तावेज के आधार पर मामले का विरोध किया जो कि स्पष्ट रूप से अवैध था। इसलिए शीर्षक का कोई महत्वपूर्ण विवाद नहीं था। यह नहीं कहा जा सकता कि वाद को ट्रायल कोर्ट द्वारा वापस कर दिया जाना चाहिए था और मुकदमा अक्षम था। यह प्रश्न याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध भी उत्तरित है।

वर्तमान मामले में मैंने यह भी पाया कि प्रतिवादी भूमि स्वामी ने दिनांक 13.6.2011 के पंजीकृत विक्रय विलेख के आधार पर स्वामित्व अर्जित किया है, जबकि याचिकाकर्ता किरायेदार भूमि स्वामी के स्वामित्व को एक अपंजीकृत विक्रय समझौते के आधार पर चुनौती दे रहा था, जिसकी मूल प्रति भी उठाए गए तर्कों के साक्ष्य के रूप में न्यायालय के समक्ष दायर नहीं की गई थी।

इसलिए, उपरोक्त के मद्देनजर, मुझे ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित निर्णयों और आदेश में रिकॉर्ड के आधार पर कोई त्रुटि नहीं दिखती है और इसलिए, इस पुनरीक्षण याचिका में हस्तक्षेप करने से इनकार करता हूं। संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत दायर की गई दोनों याचिकाएं और प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम, 1887 की धारा 25 के तहत दायर की गई पुनरीक्षण याचिकाएं, संख्या 234/2014, तदनुसार योग्यता के अभाव में खारिज कर दी गईं और रिकॉर्ड में भेज दी गईं।

(2023) 3 ILRA 1271

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल साइड

दिनांक: इलाहाबाद 06.12.2022

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी,

2022 के अनुच्छेद 227 संख्या 10252 के तहत मामले (सिविल)

विजय कुमार चौबे ... प्रतिवादी- याचिकाकर्ता

बनाम

राजेंद्र अग्रवाल ... वादी- प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के वकील: श्री अखिलेश कुमार सिंह

प्रतिवादी के लिए वकील:

सिविल कानून -उत्तर प्रदेश नगर पालिका अधिनियम, 1916- धारा 160 -मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष अपील की पोषणीयता -राज्य सरकार-दिनांक 11.07.1974 की अधिसूचना-धारा 160 के अंतर्गत अपील की सुनवाई मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के न्यायालय द्वारा की जा सकती है, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, गोरखपुर द्वारा पारित आक्षेपित आदेश उसके क्षेत्राधिकार में है-याचिका निरस्त।

आयोजित: याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय के अनुच्छेद 227 के अंतर्गत संख्या 9748/2019 (सजल कुमार एवं 2 अन्य बनाम मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, बलिया एवं 6 अन्य) में पारित निर्णय दिनांक 08.05.2020 पर निर्भरता व्यक्त किया, जिसमें नगर पालिका अधिनियम की धारा 160 का संदर्भ देते हुए न्यायालय ने माना है कि केवल जिले के जिला मजिस्ट्रेट को ही अपील सुनने का अधिकार है और मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के पास ऐसी कोई शक्ति नहीं है। उक्त निर्णय के अवलोकन से प्रतीत होता है कि यह इसलिए पारित किया गया क्योंकि दिनांक 07.11.1974 की अधिसूचना न्यायालय के समक्ष नहीं प्रस्तुत की गई। इस प्रकार, दिनांक 07.11.1974 की अधिसूचना पर विचार किए बिना पारित उक्त निर्णय सही कानून नहीं बताता है।

याचिका निरस्त। (ई-14)

उद्धृत वाद सूची:

अनुच्छेद 227 के अंतर्गत वाद संख्या 9748/2019 (सजल कुमार एवं अन्य बनाम मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, बलिया एवं अन्य)

<u>माननीय न्यायमूर्ति विवेक चौधरी</u>

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता को सुना और पत्रावली का परिशीलन किया।

याचिकाकर्ता ने यूपी नगर पालिका अधिनियम की धारा 160 के तहत अपील संख्या 5/2021 (राजेंद्र कुमार अग्रवाल बनाम विजय कुमार चौबे और अन्य) में विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, गाजीपुर द्वारा पारित आदेश दिनांक 15.10.2022 को चुनौती देते हुए वर्तमान याचिका दायर की है, जिसके द्वारा उन्होंने यूपी नगर पालिका अधिनियम, 1916 की धारा 160 के तहत अपील की पोषणीयता के संबंध में प्रारंभिक आपत्ति को खारिज कर दिया है।

याचिकाकर्ता द्वारा अपीलीय न्यायालय के समक्ष आपत्ति उठाई गई थी कि अपील नगर पालिका अधिनियम की धारा 160 के अंतर्गत मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष सुनवाई योग्य नहीं है एवं जिलाधिकारी के समक्ष पोषणीय होगी। उक्त अधिनियम में ही प्रावधान है कि राज्य सरकार किसी अन्य प्राधिकारी/न्यायालय को भी अपील सुनने की शक्ति देते हुए एक उचित अधिसूचना जारी कर सकती है। इलाहाबाद उच्च न्यायालय के परामर्श से जारी अधिसूचना दिनांक 11.07.1974 द्वारा, राज्य सरकार ने प्रावधान किया कि अपील की सुनवाई मुख्य न्यायिक

मजिस्ट्रेट की अदालत द्वारा भी की जा सकती है।दिनांक 11.07.1974 की अधिसूचना नीचे उद्धृत की गई है:-

" संख्या-80/6(1) दो-ग-7(5)/70
श्री चन्द्रभूषणधर द्विवेदी
उप सचिव
उ०प्र० शासन

सेवा में
समस्त जिला मजिस्ट्रेट
उ०प्र०
नियुक्ति (ग) विभाग
दिनांक लखनऊ, नवम्बर 7, 1974

विषय- यू०पी०म्यूनिस्पेल्टीज एक्ट 1916 की धारा 160 तथा 318 तथा अन्य प्रकीर्ण स्थानीय एवं विधिक अधिनियमों के अधीन अपीलों की सुनवाई।

महोदय,

उपरोक्त विषय पर शासन के पृष्ठ संख्या-3551(1)/दो-ग(5)/70 दिनांक 6 जून 1974के अनुक्रम में मुझे यह कहने का आदेश हुआ है कि शासन ने उच्च न्यायालय इलाहाबाद के परामर्श से यह निर्णय लिया है कि यू०पी०म्यूनिस्पेल्टीज एक्ट 1916 की धारा 160 तथा 318 के अधीन अपीले चीफ जुडिशियल मजिस्ट्रेटों के द्वारा ग्रहण की जानी तथा सुनी जानी चाहिए।

2- शासन ने यह भी निर्णय लिया है कि अन्य प्रकीर्ण स्थानीय या विशेष,अधिनियमों के अन्तर्गत अपील तथा पुर्नीक्षण प्रार्थना पत्रों की सुनवाई चीफ जुडिशियल मजिस्ट्रेटो द्वारा की जाएगी सिवाए उस दशा में जब कि उनके अधिकार स्वयं विशेष अधिनियमों द्वारा सीमित कर दिये गए हो।

भवदीय
ह०
चन्द्रभूषणधर द्विवेदी
उपसचिव "

उपरोक्त उद्धृत अधिसूचना का संदर्भ देते हुए विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, ग़ाज़ीपुर ने आपत्ति को खारिज कर दिया है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने अनुच्छेद 227 के तहत मामला संख्या 9748/2019 (सजल कुमार और 2 अन्य बनाम मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, बलिया और 6 अन्य) में पारित इस न्यायालय के आदेश दिनांक 08.05.2020 का आश्रय लिया है, जिसमें न्यायालय ने नगर पालिका अधिनियम की धारा 160 का संदर्भ देते हुए कहा है कि जिले के जिलाधिकारी के पास ही अपील सुनने की एकमात्र शक्ति है और मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के पास ऐसी कोई शक्ति नहीं है। उक्त निर्णय के अवलोकन से पता चलता है कि इसे इसलिए पारित किया गया क्योंकि अधिसूचना दिनांक 07.11.1974 को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया था। इस प्रकार, दिनांक 07.11.1974 की अधिसूचना पर विचार किए बिना पारित किया गया उक्त निर्णय सही कानून निर्धारित नहीं करता है।

इसके दृष्टिगत, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, गाजीपुर द्वारा अपील संख्या 5/2021 में पारित आदेश अपने क्षेत्राधिकार में है।

याचिकाकर्ता द्वारा कोई अन्य प्रस्तुतीकरण नहीं किया गया है।

इस प्रकार, वर्तमान याचिका में कोई बल नहीं पाया जाता है और इसे खारिज किया जाता है।

(2023) 3 ILRA 1273

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल साइड

दिनांक: लखनऊ 07.02.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर.

2023 के अनुच्छेद 227 संख्या 546 के तहत मामले

श्रीमती शहनाज बेगम ... प्रार्थी

बनाम

जिला न्यायाधीश, सुल्तानपुर और अन्य। ... उत्तरदाता

याचिकाकर्ता के वकील: मोहम्मद असलम खान

उत्तरदाताओं के लिए वकील: कलीम उर रहमान, शाइस्ता परवीन

ए. सिविल कानून - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - आदेश XXXIX नियम 4 - आपत्तियां स्वीकृत - अस्थायी निषेधाज्ञा निरस्त - विभाजन के बिना संपत्ति के सह-हिस्सेदारों के विरुद्ध अस्थायी निषेधाज्ञा - छेदी लाल का पूर्ण पीठ का निर्णय - प्रदान अनुतोष सह-हिस्सेदार का अधिकार से भिन्न - उसके हिस्से पर अन्य सह-हिस्सेदारों द्वारा अतिक्रमण - भूमि को विशेष रूप से विनियोग करना या उस पर खेती करना या निर्माण करना - निषेधाज्ञा वाद केवल तभी पोषणीय है जब अन्य सह-हिस्सेदारों द्वारा विशेष विनियोग किया गया हो या जब विभाजन के समय वादी को पर्याप्त रूप से मुआवजा नहीं दिया जा सकता हो - अंत में, राहत देने की तुलना में राहत देने से इनकार करने पर वादी को अधिक क्षति - प्रश्न का वादी के विरुद्ध नकारात्मक उत्तर दिया गया - कोई विभाजन नहीं - वादी के विशेष हिस्से को अतिक्रमण के संबंध में कोई कथन नहीं।

आयोजित: पूर्ण पीठ के निर्णय पर विचार करने पर, यह स्पष्ट है कि पूर्ण पीठ ने इस प्रश्न का उत्तर दिया है कि संयुक्त भूमि के संबंध में सह-हिस्सेदारों के अधिकार को इस प्रश्न से अलग और पृथक रखा जाना चाहिए कि सह-हिस्सेदार को क्या राहत दी जानी चाहिए, खासकर जब उसके हिस्से पर अन्य सह-हिस्सेदारों द्वारा या तो भूमि को विशेष रूप से हड़प कर और खेती करके या उस पर निर्माण करके आक्रमण किया गया हो। पूर्ण पीठ ने स्पष्ट रूप से माना कि यह केवल उस स्थिति में होगा जब सह-हिस्सेदार के अधिकारों को अन्य सह-हिस्सेदारों द्वारा विशेष रूप से हड़प लिया गया हो, जिसमें सह-हिस्सेदारों के विरुद्ध निषेधाज्ञा के लिए वाद चलाया जा सकता है। इस पहलू को इस पहलू के साथ और विस्तृत किया गया है कि यदि साक्ष्य यह स्थापित करते हैं कि वादी को विभाजन के समय पर्याप्त रूप से क्षतिपूर्ति नहीं दिया जा सकता है और राहत देने से इनकार करने से उसे अधिक नुकसान होगा, तो निषेधाज्ञा प्रदान की जा सकती है।

इस प्रकार, पूर्ण पीठ के निर्णय से जो पहलू निकाला जा सकता है, वह यह है कि सह-हिस्सेदारों के विरुद्ध वादी को निषेधाज्ञा की राहत केवल उस स्थिति में बनाए रखी जा सकती है, जब वादी के हिस्से पर अन्य सह-हिस्सेदारों द्वारा

पूर्णतः और विशेष रूप से अतिक्रमण किया गया हो और दूसरी बात यह कि विभाजन के समय वादी को पर्याप्त मुआवजा नहीं दिया जा सकता है और तीसरी बात यह कि राहत देने की अपेक्षा राहत देने से इनकार करने से उसे अधिक क्षति होगी।

उपर्युक्त चर्चा के आलोक में, यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि इस तथ्य से संबंधित आदेश में कोई त्रुटि नहीं है कि वादी के पक्ष में अन्य सह-हिस्सेदारों के विरुद्ध उनके मध्य विभाजन किए बिना और इस बात का कोई दावा किए बिना कि वादी के अनन्य हिस्से को अन्य सह-हिस्सेदारों द्वारा अधिग्रहण जा रहा है, निषेधाज्ञा नहीं दी जा सकती थी।

बी. सिविल कानून सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 -आदेश XXXIX नियम 4- सत्य तथ्यों को छिपाकर प्राप्त किया गया निषेधाज्ञा- झूठा वाद- वादी संपत्ति का एकमात्र स्वामी है- विचारणीय न्यायालय के आदेश की पुष्टि की गई- याचिका निरस्त।

आयोजित: वाद के वर्तमान तथ्यों और परिस्थितियों में उपरोक्त निर्णय की प्रयोज्यता पर, यह स्पष्ट है कि वादी ने यह धारणा देकर एक झूठा वाद बनाया था कि वह पूरे भूखंड संख्या 1297 मिंजुमाला की एकमात्र मालिक थी। यह तथ्य की एक खोज है जिसे दोनों विचारणीय न्यायालय द्वारा एक साथ दर्ज किया गया है और याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता द्वारा भी स्वीकार किया गया है कि वास्तव में वादी के पास विवादित संपत्ति में केवल एक हिस्सा है और वह पूरे प्लॉट पर मालिकाना हक नहीं रखती है, हालांकि वाद में ऐसा कोई कथन नहीं है।

उपर्युक्तनुसार, इस न्यायालय को दर्ज किए गए निष्कर्ष के संबंध में कोई त्रुटि नहीं लगती है कि शिकायत में तथ्यों को छिपाया गया था।

याचिका निरस्त। (ई-14)

उद्धृत वाद सूची:

1. छेदी लाल और अन्य बनाम छोटे लाल AIR 1951 इलाहाबाद 199
2. देवेंद्र कुमार त्रिखा बनाम जिला न्यायाधीश, लखनऊ और अन्य 1983(1) लखनऊ सिविल निर्णय पृष्ठ 1

3. टी. रामालिंगेश्वरा राव (मृत) कानूनी प्रतिनिधियों के माध्यम से और अन्य बनाम एन. माधव राव और अन्य (2019)4 सुप्रीम कोर्ट केस 608
4. मोहम्मद बाकर बनाम नैम-उन-निशा बीबी AIR 1956 SC 548

<u>माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर,</u>

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री मोहम्मद असलम खान द्वारा सहाय्यित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री मोहम्मद आरिफ खान को सुना गया।

आदेश पारित किए जाने के प्रस्ताव को ध्यान में रखते हुए, प्रतिवादी संख्या 1 और 2 तथा प्रतिवादी संख्या 4 से 10 को निर्गत नोटिस, अभिमुक्त किया जाता है।

हालांकि प्रतिवादी संख्या तीन की ओर से कैविएट की सूचना है लेकिन संशोधित सूची में प्रकरण के

आने के बावजूद भी कैविएट कर्ता की ओर से किसी ने भी पक्ष नहीं रखा है।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत याचिका, विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 17.08.2022 के विरुद्ध दायर की गई है, जिसके तहत सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 39 नियम 4 के अंतर्गत आपत्तियों को पूर्व में दिए गए अस्थायी व्यादेश को निरस्त करने की अनुमति दी गई है। अपीलीय आदेश दिनांक 18.01.2023 को भी चुनौती दी गई है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि याचिकाकर्ता ने दिनांक 28.11.2008 को रजिस्ट्रीकृत अंतरण लिखत के माध्यम से गाटा संख्या 1297 जिसका कुल क्षेत्रफल 0.1110 हेक्टेयर है, का 0.01109 हेक्टेयर का क्षेत्र खरीदा था। उन्होंने आगे यह प्रस्तुत किया कि जब प्रतिवादी 1 और 2 ने याचिकाकर्ता के कब्जे में हस्तक्षेप करना शुरू किया और प्रश्नगत भूखंड पर निर्माण करना शुरू कर दिया, तो याचिकाकर्ता को स्थायी व्यादेश के लिए नियमित वाद संख्या 81/2022 दायर करने के लिए विवश होना पड़ा, जिसमें शुरुआत में एकपक्षीय अंतरिम व्यादेश दिया गया था। लेकिन उसके बाद प्रतिवादियों द्वारा आवेदन दायर करने पर आक्षेपित आदेश के माध्यम से उसे निरस्त कर दिया गया था।

यह तर्क प्रस्तुत है कि दिनांक 17.08.2022 के आक्षेपित आदेश में, विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष दर्ज करने में स्पष्ट रूप से त्रुटि की है कि वादपत्र में तथ्य को छुपाया गया था जिसके परिणामस्वरूप एकपक्षीय अस्थायी व्यादेश जारी किया गया। आगे यह कथन प्रस्तुत किया गया है कि विक्रय विलेख दिनांक 28.11.2008 की एक प्रति वादपत्र की प्रति के साथ दायर की गई थी जिसमें स्पष्ट रूप से प्रश्नगत भूखंड में वादी द्वारा खरीदे गए क्षेत्र को उपदर्शित किया गया था और उसका परीक्षण करने के बाद ही एकपक्षीय अस्थायी व्यादेश मंज़ूर किया गया। इस प्रकार, यह कथन किया है कि वादी द्वारा कोई तथ्य नहीं छिपाया गया था और आक्षेपित आदेश के माध्यम से इसके विपरीत दर्ज किया गया निष्कर्ष स्पष्ट रूप से त्रुटिपूर्ण है।

विद्वान अधिवक्ता ने अंतरिम व्यादेश को निष्प्रभावित करने के लिए अन्य आधार पर भी ध्यान आकर्षित किया है कि विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करने में त्रुटि की है कि सह-अंशधारी के विरुद्ध अस्थायी व्यादेश नहीं मंजूर की जा सकती है , जब प्रश्नगत संपत्ति के विभाजन की कार्यवाही न्यायनिर्णयन हेतु लंबित हो। यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि यह सुस्थापित विधि है कि स्थायी व्यादेश का वाद सह-अंशधारियों के विरुद्ध भी संधार्य रहेगा, यदि वादी के कब्जे में इस हद तक हस्तक्षेप किया जा रहा है कि यह उक्त सह-अंशधारी द्वारा खरीदी गई उस संपत्ति के सौहार्दपूर्ण उपभोग में बाधा उत्पन्न होगी।

एआईआर 1951 इलाहाबाद 199 में प्रकाशित किए गए **छेदी लाल एवं अन्य बनाम छोटे लाल** के मामले के साथ-साथ **1983(1)लखनऊ सिविल डिसीजन पेज 01** में प्रकाशित किए गए **देवेन्द्र कुमार त्रिखा बनाम जिला जज, लखनऊ एवं अन्य** के मामले में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के फैसले पर विश्वास व्यक्त किया गया।

इस प्रकार यह कथन किया गया है कि विचारण न्यायालय ने उपरोक्त दो प्रकरणों में पूर्व में

पारित अस्थायी व्यादेश को निरस्त करने में स्पष्ट रूप से त्रुटि की है।

विद्वान अधिवक्ता ने अपीलीय न्यायालय के निर्णय को भी ध्यान में रखते हुए यह तर्क प्रस्तुत किया कि दिनांक 17.08.2022 के आक्षेपित आदेश में विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों को विशेष रूप से अपील के ज्ञापन में उठाए गए आधारों पर बिना किसी स्वतंत्र विचार के मात्र प्रतिलिपित किया गया है। विशेषतः इस तथ्य पर कि वादपत्र में कोई तथ्य छिपाया नहीं गया था और इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के निर्णय के आलोक में सह-अंशधारियों के विरुद्ध व्यादेश का वाद संधार्य रखा जा सकता है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दी गई तर्कों पर विचारोपरांत, अभिलेख पर मौजूद सामग्री से ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता द्वारा स्थायी व्यादेश के लिए दाखिल वाद से ऐसा उपदर्शित होता है कि वह प्रश्नगत गांव में गाटा संख्या 1297 मिनजुमला जिसका क्षेत्रफल 0.1110 हेक्टेयर है, के कब्जाधीन क्षेत्र की स्वामिनी है। प्रार्थना खंड यह भी उपदर्शित करता है कि गाटा संख्या 1297 मिनजुमला जिसका क्षेत्रफल 0.1110 हेक्टेयर है, पर व्यादेश ईप्सित है। यद्यपि वादपत्र, पंजीकृत विक्रय-विलेख दिनांक 28.11.2008 का कोई संदर्भ नहीं दर्शाता है, लेकिन याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की प्रस्तुतिनुसार, उपरोक्त अभिलेखित विक्रय-विलेख वादपत्र के साथ दाखिल किया गया था और यह विक्रय-विलेख के विचारोपरांत, याचिकाकर्ता की संपत्ति में हिस्सेदारी 0.2019 हेक्टेयर तक सीमित रखने का संकेत दिया गया है, जिस पर विचारण न्यायालय ने एकपक्षीय अंतरिम व्यादेश प्रदान किया है।

विचारण न्यायालय के आदेश के अवलोकन से मुख्य रूप से एकपक्षीय अंतरिम व्यादेश को निरस्त करने के लिए दो आधार उपदर्शित होते हैं, पहला यह कि विवादित संपत्ति में गाटा संख्या 1297 मिनजुमला, एक भूखंड का एक अवयवभूत अंश है जिसका किसी भी सक्षम न्यायालय या प्राधिकारी द्वारा विभाजन नहीं किया गया है और इस तरह किसी भी स्थायी व्यादेश देने से पहले, यह आवश्यक होगा कि विवादित संपत्ति पर वादी के हिस्से की पहचान की जाए। आगे यह भी उपदर्शित किया गया है कि वादी ने वाद पत्र में कही भी विक्रय-विलेख या विवादित संपत्ति जो उसके द्वारा खरीदा गया है और जिस पर उसका कब्जा है, के उस हिस्से के संबंध में कोई प्रकथन नहीं किया है।

दूसरे, विचारण न्यायालय प्रथम दृष्टया इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि वाद पत्र तथ्यों को छुपाते हुए दाखिल की गयी थी, विशेष रूप से इस तथ्य को छिपाते हुए कि वादी के पास विवादित संपत्ति में केवल कुछ ही हिस्सा था, हालांकि गाटा संख्या 1297 मिनजुमाला के संपूर्ण भूखंड पर अनुतोष का दावा पेश किया गया है। आदेश में दर्शाया गया है कि वाद पत्र में वादी द्वारा खरीदी गई संपत्ति का न तो कोई क्षेत्रफल दर्शाया गया है और न ही कोई सीमा अंकित की गई है और इसके विपरीत 1297 मिनजुमाला के संपूर्ण भूखंड पर स्थायी व्यादेश से अनुतोष की मांग करते हुए वाद दायर किया गया है। इस प्रकार, विचारण न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि वादपत्र

में दिए गए प्रकथन केवल संबंधित अदालत को गुमराह करने के लिए थे।

अपीलीय न्यायालय के आदेश का अवलोकन भी उसी तर्क के अनुपालन को उपदर्शित करता है।

याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्क के संबंध में, निम्नलिखित दो प्रश्न, जिन पर वर्तमान रिट याचिका में निर्णय लिया जाना आवश्यक है, निम्नवत होंगे:-

क. क्या अस्थायी व्यादेश, बिना किसी विभाजन के संपत्ति के सह-अंशधारिओं के विरुद्ध याचिकाकर्ता-वादी को प्रदान की जा सकती थी?

ख. क्या वादपत्र में कोई तथ्य छिपाया गया था जिसके कारण एकपक्षीय अंतरिम व्यादेश दिया गया ?

<u>प्रश्न संख्या क:-</u> पहले प्रस्ताव के संबंध में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने छेदी लाल (उपरोक्त) के प्रकरण में इस न्यायालय के पूर्ण पीठ के आदेश पर विश्वास व्यक्त किया है। प्रकरण का तथ्य यह था कि टीका राम नामक व्यक्ति विवादित भूखंड का मालिक था और उसके चार बेटे बचे थे, जिनमें से एक की मृत्यु हो गई थी। प्रश्नगत संपत्ति में उनके शेयरों के हिस्से का आदान-प्रदान हुआ और उनके उत्तराधिकारियों ने विवादित भूखंड पर निर्माण शुरू कर दिया, जिसके बाद सह-अंशधारियों ने इस आधार पर प्रतिवादियों द्वारा किए गए निर्माण को ध्वस्त करके भूखंड पर कब्जे के लिए वाद दाखिल किया कि वे स्वर्गीय टीका राम के स्वामित्व वाली संपत्ति के एकमात्र स्वामी थे। सह-अंशधारियों के विरुद्ध व्यादेश प्रदान किये जाने के संबंध में प्रश्न पूर्ण पीठ के समक्ष रखा गया और कई निर्णयों पर गौर करने के बाद, पूर्ण पीठ ने निम्नांकित अभिनिर्धारित किया: -

"25. उपरोक्त चर्चा के परिणामस्वरूप, ऐसा प्रतीत होता है कि संयुक्त भूमि के संबंध में सह-अंशधारियों के अधिकार के प्रश्न को इस प्रश्न से अलग और सुभिन्न रखा जाना चाहिए कि सह-अंशधारियों को क्या अनुतोष प्रदान की जानी चाहिए, जिनकी संयुक्त भूमि के संबंध में अधिकार पर अन्य सह-अंशधारियों द्वारा या तो विशेष रूप से भूमि का विनियोजन और खेती करके या उस पर निर्माण करके आक्रमण किया गया है। कुछ निर्णयों में विरोध स्पष्ट रूप से दो सुभिन्न प्रकरणों के भ्रम से उत्पन्न हुआ है। हालाँकि, एक सह-अंशधारी दूसरे सह-अंशधारी द्वारा विशेष रूप से अन्य सह-अंशधारियों के अहित हेतु खुद को भूमि आवंटित करने पर आपति करने का हकदार है, सवाल यह है कि वादी को उसके अधिकारों के आक्रमण की स्थिति में क्या अनुतोष दिया जाना चाहिए । यह प्रत्येक मामले की परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। विध्वंस और व्यादेश के लिए अनुतोष का अधिकार न्यायालय द्वारा मामले में स्थापित परिस्थितियों के अनुसार उचित ठहराया जाएगा या विधारित किया जाएगा। यदि साक्ष्य द्वारा यह स्थापित होता है कि विभाजन के समय वादी को पर्याप्त मुआवजा नहीं दिया जा सकता है और अनुतोष देने से इनकार करने से उसे अधिक नुकसान होगा, तो न्यायालय दोनों अनुतोष देने के लिए सहमत हो सकती है। इसके विपरीत, यदि अनुतोष देने से प्रतिवादी को वास्तविक और सारवान क्षति होगी, तो न्यायालय निस्संदेह ऐसे अनुतोष को

विधारित करने में उचित विवेक का प्रयोग करेगी। जैसा कि कुछ मामलों में बताया गया है, प्रत्येक मामले का निर्णय उसके अपने विशिष्ट तथ्यों के आधार पर किया जाएगा और यह न्यायालय पर छोड़ दिया जाएगा कि वह परिस्थितियों के प्रमाण के आधार पर अपने विवेक का प्रयोग करे, जिससे पता चले कि सुविधा का संतुलन किस तरफ है। इसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है कि न्यायालय अपने विवेक के प्रयोग में न्याय, समानता और अच्छे विवेक के विचारों द्वारा निर्देशित होगी, और न्यायालय के लिए उन परिस्थितियों के बारे में एक अनन्य नियम बनाना संभव नहीं है जिसमें विध्वंस और व्यादेश के लिए अनुतोष स्वीकृत या अगृहीत की जाएगी ।"

इसके बाद उपरोक्त पूर्ण पीठ के फैसले का **देवेन्द्र कुमार त्रिखा** (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा अनुमोदन के बाद अनुपालन किया गया।

पूर्ण पीठ के निर्णय पर विचारोपरांत, यह स्पष्ट है कि पूर्ण पीठ ने इस प्रश्न का उत्तर दिया है कि संयुक्त भूमि के संबंध में सह-अंशधारिओं के अधिकार के प्रश्न को इस प्रश्न से अलग और सुभिन्न रखा जाना चाहिए कि सह-अंशधारियों को क्या अनुतोष प्रदान किया जाना चाहिए, जिनकी संयुक्त भूमि के संबंध में अधिकार पर अन्य सह-अंशधारियों द्वारा या तो विशेष रूप से भूमि का विनियोजन और खेती करके या उस पर निर्माण करके क्षति पहुँचाया गया है। पूर्ण पीठ ने स्पष्टतः अभिनिर्धारित किया कि यह केवल ऐसे मामले में होगा जहां सह-अंशधारी के अधिकारों को अन्य सह-अंशधारियों द्वारा विशेष रूप से विनियोजित किया गया है, जहां सह-अंशधारियों के विरुद्ध व्यादेश का वाद संधार्य रहेगा। इस पहलू को इस पहलू के साथ और विस्तृत किया गया है कि यदि साक्ष्य यह स्थापित करता है कि विभाजन के समय वादी को पर्याप्त मुआवजा नहीं दिया गया और अनुतोष देने से इनकार करने से उसे अधिक क्षति पहुंचेगी, तो व्यादेश दिया जा सकता है।

इस प्रकार, पूर्ण पीठ के निर्णय से जो निष्कर्ष निकाला जा सकता है वह इस हद तक है कि सह-अंशधारियों के विरुद्ध वादी को व्यादेश की राहत केवल उस स्थिति में संधार्य रहेगी जब वादी का हिस्सा पूरी तरह से और विशेष रूप से दूसरे सह-अंशधारियों द्वारा अतिक्रमण कर लिया गया हो, और दूसरा यह कि विभाजन के समय वादी को पर्याप्त मुआवजा नहीं दिया गया हो, और तीसरा यह कि अनुतोष देने से इनकार करने पर उसे अधिक बड़ी क्षति होगी।

मामले के वर्तमान तथ्यों और परिस्थितियों में पूर्वोक्त पूर्ण पीठ के निर्णय की प्रयोज्यता पर, यह न केवल विक्रय-विलेख से स्पष्ट है, बल्कि याचिकाकर्ता-वादी के अधिवक्ता द्वारा दी गई दलीलों से भी स्पष्ट है कि वादी ने प्रश्नगत संपत्ति का केवल एक हिस्सा खरीदा था जो गाटा संख्या 1297 मिनजुमला में कुल क्षेत्रफल 0.1110 हेक्टेयर में से 0.01293 हेक्टेयर परिमाप का है। वादपत्र को पढ़ने से यह संकेत नहीं मिलता है कि वादी द्वारा खरीदी गई संपूर्ण और विशेष संपत्ति पर प्रतिवादियों द्वारा कोई अतिक्रमण किया जा रहा था। यह भी स्पष्ट है कि उ.प्र. राजस्व संहिता, 2006 की धारा 116 के अनुसार पक्षों के बीच बंटवारे का वाद सक्षम न्यायालय में विचाराधीन है। विचारण न्यायालय

द्वारा या यहाँ तक कि वर्तमान याचिका में भी ऐसा कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया गया है कि विचाराधीन संपत्ति पर किए जा रहे निर्माण के संबंध में विभाजन के समय वादी को पर्याप्त मुआवजा नहीं दिया जा सकता है। वादी का मामला यह भी नहीं है कि दिनांक 28.11.2008 के अंतरण लिखत के माध्यम से उसके द्वारा खरीदी गई संपत्ति पर कोई निर्माण किया जा रहा है।

देवेन्द्र कुमार त्रिखा (उपरोक्त) के मामले में, प्रकरण के तथ्यानुसार सह-स्वामी के विरुद्ध स्थायी व्यादेश के लिए एक वाद इस प्रार्थना के साथ दाखिल किया गया था कि वादी विशेष रूप से विचाराधीन संपत्ति से उत्पन्न होने वाले किराए की वसूली कर रहा था, हालांकि वादी सह-अंशधारी होने के नाते किराए के एक हिस्से को प्राप्त करने का हक़दारी था। उपरोक्त निर्णय के पैरा 3 में, समन्वय पीठ ने स्पष्ट रूप से माना है कि चूंकि सह-अंशधारिओं के किराए में हिस्सेदारी विशेष रूप से और पूरी तरह से प्रतिवादी द्वारा ली जा रही थी, इसलिए स्थायी व्यादेश के लिए वाद संधार्य रहेगा।
यहां यह ध्यान देने योग्य होगा कि दोनों निर्णयों में, इस तथ्य पर बहुत जोर दिया गया है कि सह-अंशधारी के विरुद्ध व्यादेश से राहत केवल तभी दी जा सकती है जब किसी अन्य सह-अंशधारी के हिस्से को विशेष रूप से रौंद दिया गया हो। वर्तमान मामले के तथ्य एवं परिस्थितियाँ कुछ और ही हैं।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय के हालिया निर्णय में उपरोक्त पहलू पर पहले ही ध्यान दिया जा चुका है और **टी. रामलिंगेश्वर राव (मृत) के मामले में कानूनी प्रतिनिधियों और अन्य बनाम एन. माधव राव और अन्य** के मामले में अभिलेखित **(2019) 4 सुप्रीम कोर्ट केस 608** में न्यायनिर्णयन किया गया है। जिसमें सह-अंशधारिओं के विरुद्ध व्यादेश प्रदत्त की जा सकती है या नहीं, के पहलू को निम्नवत निस्तारित किया गया है : -

"16. हमारे विचार में, यह मानते हुए भी कि वादी ने व्यादेश का दावा करने के लिए वादांतर्गत संपत्ति (जिसे नीचे की दो न्यायालयों ने अपने पक्ष में नहीं पाया) के कब्जे में होने का दावा किया, फिर भी वे अन्य सह-अंशधारिओं के विरुद्ध वादांतर्गत संपत्ति के लिए व्यादेश का दावा करने के हकदार नहीं थे। यह सुस्थापित विधि का सिद्धांत है कि एक सह-अंशधारी का कब्जा सभी सह-अंशधारियों का कब्जा है, यह उनके लिए प्रतिकूल नहीं हो सकता है, जब तक कि कब्जे वाले व्यक्ति के विवेकानुसार उनके अधिकार से इनकार न किया जाए और वैधानिक अवधि के लिए बहिष्करण और निष्कासन न हो। (देखें मोहम्मद बकर बनाम नईम-उन-निसा बीबी[मोहम्मद बकर बनाम नईम-उन-निसा बीबी, एआईआर 1956 एससी 548]।)
17. जहां तक वादी के अनन्य कब्जे के अपवर्जन के दावे का संबंध है, इसे नीचे की दो न्यायालयों द्वारा अभिनिर्धारित नहीं किया गया था।"

माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिया गया उपरोक्त निर्णय, **एआईआर 1956 एससी 548** में अभिलेखित **मोहम्मद बकर बनाम नईम-उन-निशा बीबी** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के एक अन्य पिछले निर्णय पर आधारित है और तय किए गए प्रस्ताव में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि एक सह-अंशधारी का कब्ज़ा सभी सह-

अंशधारियों का कब्ज़ा है और यह उनके लिए प्रतिकूल नहीं हो सकता, जब तक कि कब्जे वाले व्यक्ति के विवेकानुसार उनके अधिकार से इनकार न किया जाए, और इसके बाद बहिष्करण और निष्कासन न हो।

इस न्यायालय की सुविचारित राय में, उपरोक्त निर्णय वर्तमान तथ्यों और परिस्थितियों में स्पष्ट रूप से लागू होता है, जहां एक सह-अंशधारी, एक सह-अंशधारी के विरुद्ध अस्थायी व्यादेश देने की मांग करता है, जबकि उनके बीच विभाजन की कार्यवाही लंबित है।

उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, यह न्यायालय सुविचारित निष्कर्ष पर पहुंचा है कि इस तथ्य से संबंधित आक्षेपित आदेशों में कोई त्रुटि नहीं है कि उनके बीच विभाजन के बिना अन्य सह-अंशधारी के विरुद्ध वादी के पक्ष में व्यादेश नहीं दी जा सकती थी और बिना किसी दावे के कि वादी का विशेष हिस्सा अन्य सह-अंशधारियों द्वारा बाधित किया गया।
<u>प्रश्न संख्या क :</u> का उत्तर तदनुसार याचिकाकर्ता के विरूद्ध नकारात्मक दिया गया है।

<u>प्रश्न संख्या ख:</u> जहां तक चुनौती के तहत निर्णयों में दर्ज तथ्य को छिपाने से संबंधित प्रश्न है, अनुबंध संख्या 11 के रूप में अभिलेख पर लाए गए विक्रय-विलेख से यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता-वादी ने 0.01293 परिमाप वाला क्षेत्र अंतरण लिखत दिनांक 28.11.2008 के माध्यम से खरीदा था। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का यह भी कथन है कि उपर्युक्त विक्रय विलेख के माध्यम से याचिकाकर्ता-वादी द्वारा उपरोक्त एकमात्र क्षेत्र खरीदा गया, हालांकि गाटा संख्या 1297 मिनजुमाला में विवादित संपत्ति का पूरा क्षेत्र 0.1110 हेक्टेयर है।

वादपत्र को पढ़ने से यह भी सुस्पष्ट है कि इसमें विवादित संपत्ति के उस हिस्से के बारे में कोई दावा नहीं है जो वादी द्वारा खरीदा गया है और एकमात्र संकेत वादपत्र के पैरा 2 में आता है जिसके तहत यह कहा गया है कि गाटा संख्या 1297 मिनजुमाला में प्रश्नगत संपत्ति का क्षेत्रफल 0.1110 हेक्टेयर है। यह भी स्पष्ट है कि प्रार्थना खंड में संपूर्ण गाटा संख्या 1297 मिनजुमाला का क्षेत्रफल 0.1110 हेक्टेयर दर्शाते हुए उस पर स्थाई व्यादेश मांगा गया है। वाद में प्रश्नगत संपत्ति में प्रतिवादियों के सह-अंशधारी होने के संबंध में कोई दावा नहीं है, हालांकि यह स्वीकार किया गया है कि प्रतिवादी वास्तव में विवादित संपत्ति में वादी के सह-अंशधारी हैं।

उपरोक्त कारकों पर विचार करने पर, यह स्पष्ट है कि वादी प्रश्नाधीन संपत्ति पर अपना अधिकार सिद्ध करने में विफल रहा है और इस तरह का लोप इस तथ्य तक विस्तृत है कि प्रतिवादी विवादित संपत्ति में वादी के सह-अंशधारी थे।

तथ्य को छुपाने के पहलू को **छेदी लाल** (उपरोक्त) के मामले में पूर्ण पीठ के फैसले में निम्नलिखित निबंधन में दर्शाया गया है:
"26. अब प्रत्येक अपील को उसके अपने तथ्यों के आधार पर अलग से निस्तारित किया जाना बाकी है। जहां तक द्वितीय सिविल अपील संख्या 282 / 1943 का सवाल है, वादी ने एक भ्रामक प्रकरण स्थापित किया कि वे एकमात्र स्वामी थे और दोनों विचारण न्यायालय में पाया गया है कि प्रतिवादियों का मुकदमे की जमीन में हित

था और उन्हें निर्माण करने का अधिकार था। वादी के विरुद्ध यह भी पाया गया है कि उन्होंने कोई मौखिक विरोध नहीं किया, जैसा कि उनके द्वारा आरोप लगाया गया है। दोनों विचारण न्यायालय ने इस पर अपने विवेक का प्रयोग किया है मामले की परिस्थितियाँ प्रतिवादियों के पक्ष में हैं और उन्होंने वादी द्वारा मांगे गए अनुतोष से इनकार किया है। इस अपील में प्रश्न केवल इस तथ्य में हल हो जाता है कि क्या विवेक का अनुचित प्रयोग किया गया था। हमारी राय है कि वादी ऐसी परिस्थितियाँ स्थापित करने में विफल रहे हैं जो इस न्यायालय को द्वितीय अपील में दोनों विचारण न्यायालय द्वारा एक साथ विवेक के प्रयोग में हस्तक्षेप करने के लिए उचित ठहराएँगी। हम तदनुसार इस अपील को लागत सहित खारिज करते हैं।"

मामले के वर्तमान तथ्यों और परिस्थितियों में उपरोक्त निर्णय की प्रयोज्यता पर, यह स्पष्ट है कि वादी ने यह धारणा देकर एक भ्रामक प्रकरण स्थापित किया था कि वह पूरे भूखंड संख्या 1297 मिंजुमला की एकमात्र स्वामिनी थी। यह दोनों विचारण न्यायालय द्वारा समवर्ती रूप से दर्ज किए गए तथ्य का निष्कर्ष है और याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा भी स्वीकार किया गया है कि वास्तव में वादी के पास विवादित संपत्ति में केवल एक हिस्सा है और वह पूरे भूखंड का स्वामी नहीं है, हालांकि वादपत्र में ऐसा कोई दावा नहीं है।

उपरोक्त के मद्देनजर, इस न्यायालय को यह दर्ज किए गए निष्कर्ष के संबंध में कोई त्रुटि नहीं मिली कि वादपत्र में तथ्य को छुपाया गया था। **प्रश्न संख्या ख** का उत्तर याचिकाकर्ता के विरुद्ध तदनुसार दिया गया है।

उपरोक्त के मद्देनजर कि इस न्यायालय द्वारा याचिकाकर्ता-वादी के खिलाफ तैयार किए गए दोनों प्रश्नों का उत्तर दिया गया है, योग्यता से रहित होने के कारण **याचिका प्रारंभिक चरण में ही ख़ारिज** की जाती है।

हालाँकि, यह स्पष्ट कर दिया गया है कि दो प्रश्नों का उपरोक्त उत्तर केवल अस्थायी व्यादेश के लिए आवेदन तक ही सीमित है और इसका वाद के अंतिम न्यायनिर्णयन पर कोई असर नहीं पड़ेगा, जो अपनी योग्यता के आधार पर होगा और प्रश्नगत संपत्ति में सह-अंशधारियों के बीच वाद की कार्यवाही पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालेगा, जो साक्ष्य के अधीन होंगे।

(2023) 3 ILRA 1280

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 21.03.2023

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती सुनीता अग्रवाल.

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष चन्द्र शर्मा

1997 की आपराधिक अपील संख्या 532

लालजी और अन्य। ... अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ... प्रतिवादी

अपीलकर्ताओं के लिए वकील: श्री ए।सी। निगम, श्री धीरेन्द्र कुमार श्रीवास्तव, श्री जनमेड कुमार, श्री कामेश्वर सिंह, श्री ओम प्रकाश चौरसिया, श्री सत्य प्रकाश शुक्ला, श्री सुरेन्द्र सिंह

प्रतिवादी के लिए वकील: जी.ए.

A. आपराधिक कानून - अपील- भारतीय दंड संहिता-1860 - धाराएं 302 और 34 - भारतीय दंड संहिता की धारा 34 सपठित भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत दोषसिद्धि के विरुद्ध- आरोपी ने लाठियों से मृतक की पिटाई की - मृतक उस जमीन पर दीवार बना रहा था - आरोपी ने कहा कि वह उनकी है - अपीलकर्ताओं का तर्क- दोषसिद्धि इच्छुक गवाह के बयान पर आधारित है- कोई विशेष भूमिका नहीं दी गई।

B. प्राथमिकी दर्ज करने में कोई विलंब नहीं- प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य- विश्वसनीय और भरोसेमंद- चिकित्सा साक्ष्य से सहमति - अपराध करने का उद्देश्य स्थापित करना - आवश्यक नहीं- प्रत्यक्षदर्शी गवाहों के बीच संबंध- उनके बयान को निरस्त करने का आधार नहीं- जांच अधिकारी का ना होना- बचाव को कोई नुकसान नहीं। (पैराग्राफ 28 से 42)

आयोजित: यह सच है कि प्राथमिकी में अपराध के उद्देश्य का कोई उल्लेख नहीं है। यहां तक कि PW-1, PW-2 और PW-3 ने भी कुछ नहीं बताया जो अपीलकर्ताओं द्वारा हत्या करने का मुख्य कारण बना, सिवाय इस बातचीत के जो अपीलकर्ताओं और लालमणि के मध्य गाय के शेड की दीवार के निर्माण के संबंध में प्रारंभ हुई थी, लेकिन यह स्थापित कानून है कि केवल इसलिए कि अभियोजन पक्ष अपराध करने के उद्देश्य को सिद्ध करने में विफल रहता है, इसका मतलब यह नहीं है कि आरोपी को दोषमुक्त किया जाना चाहिए। यह अच्छी तरह से स्थापित है कि जहां प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य विश्वसनीय और भरोसेमंद पाए जाते हैं और चिकित्सा साक्ष्य से सहमति मिलती है, वहां अपराध के उद्देश्य को सिद्ध करने में असफल होने पर भी दोषसिद्धि का निर्णय सुरक्षित रूप से दर्ज किया जा सकता है। (पैराग्राफ 28)

यह सामान्य ज्ञान है कि गांव (मोहल्ला) की ज़िंदगी गुटों से भरी हुई होती है और घटनाओं में एक या दूसरे का सम्मिलित होना असामान्य नहीं है। यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि पूरी तरह स्वतंत्र गवाह शायद ही कभी उपलब्ध होते हैं या वे सामने आने के लिए अनिच्छुक होते हैं, ताकि भविष्य में उन्हें कोई परेशानी न हो। इसलिए, प्रत्यक्षदर्शी गवाहों के बीच संबंध उनके बयान को निरस्त करने का आधार नहीं हो सकता। अपीलकर्ताओं को प्रत्यक्षदर्शी गवाह के झूठी आरोप लगाने की कोई वजह नहीं है। यह भी तर्कहीन होगा कि गवाह असली अपराधियों को छिपाने और उनके लिए अपीलकर्ताओं को बदलने का प्रयास करेंगे। (पैराग्राफ 36)

यह भी ध्यान देने योग्य है कि अभियोजन के गवाहों अर्थात PW-1 और PW-2 को उनके पूर्व कथन से सामना नहीं किया गया जैसा कि विवेचक द्वारा धारा 161 Cr.P.C. के तहत दर्ज किया गया था, सिवाय PW-3 चिबिल्लि के कुछ छोटे वाद पर जो मामले के लिए महत्वपूर्ण नहीं हैं। घटनास्थल के संबंध में भी कोई विवाद नहीं है। इस प्रकार, यह नहीं कहा जा सकता कि विवेचक के ना होने के कारण बचाव को कोई नुकसान हुआ है। (पैराग्राफ 42)

C. कोई विशेष भूमिका नहीं दी गई- लालजी की भूमिका घातक चोट पहुंचाने में स्थापित- सभी

आरोपियों द्वारा हत्या की पूर्व योजना नहीं- अन्य आरोपियों को संदेह का लाभ उपलब्ध। (पैराग्राफ 43 और 44)

आयोजित: अन्य अपीलकर्ताओं को अपराध करने के लिए इस सामान्य आरोप के अतिरिक्त कोई विशेष भूमिका नहीं दी गई है कि सभी अपीलकर्ताओं ने मृतक पर हमला किया, लेकिन पोस्टमार्टम रिपोर्ट प्रदर्श का-2 इस आरोप का समर्थन नहीं करती कि एक से अधिक व्यक्ति ने हमला किया तो अभिलेख पर साक्ष्य से यह स्पष्ट रूप से स्थापित होता है कि अपीलकर्ता लालजी ने मृतक को चोट पहुंचाई जिसके कारण उसकी मृत्यु हुई। जहां तक अन्य अपीलकर्ताओं का प्रश्न है, मृतक को चोट पहुंचाने में उनकी सहभागिता को केवल लालजी के साथ उस स्थान पर उपस्थित होने के आधार पर सिद्ध नहीं किया जा सकता जब तक कि सभी आरोपियों की हत्या करने की पूर्व योजना न हो, जो कि प्रारंभ से ही लुप्त है और यह केवल विवादित जमीन पर मृतक को और निर्माण से रोकने के लिए था। (पैराग्राफ 43)

हमारे विचार में, अभिलेख पर साक्ष्य स्पष्ट रूप से अपीलकर्ता लालजी के विरुद्ध अभियोजन का मामला स्थापित करता है, लेकिन अन्य आरोपी अपीलकर्ताओं श्यामजी और प्यारे के विरुद्ध नहीं। उन्हें संदेह का लाभ मिलता है। (पैराग्राफ 44)

D. चोटों की प्रकृति- सभी लेकिन एक साधारण हैं- अपीलकर्ताओं का मृतक को हत्या करने का कोई आशय नहीं था- उद्देश्य केवल मृतक को गाय के शेड की दीवार के आगे के निर्माण से रोकना था- चोट पहुंचाने का ज्ञान जो मृत्यु का कारण बन सकता है- धारा 304 भाग-II के तहत अपराध- धारा 302 IPC के तहत कोई जिम्मेदारी नहीं- सजा में कमी- अपील आंशिक रूप से स्वीकार की गई।

आयोजित: इस वाद में, जैसा कि उपरोक्त वर्णित है, आवेदक लालजी के पास लाठी, एक कुंद हथियार था। दोनों पक्षों के बीच कोई पूर्व दुश्मनी नहीं थी। गोधूलि भूमि को लेकर विवाद था, जिसे सभी 23 लोग दावा कर रहे थे। मृतक दीवारें ऊंची कर रहा था, जिसे आरोपी आवेदक ने रोका और इस विवाद पर मौखिक झगड़ा हुआ। मौखिक झगड़े के दौरान, आवेदक ने मृतक के सिर पर लाठी से हमला किया। मृतक ने भागने की कोशिश की, आवेदक ने फिर से उस पर हमला किया, लेकिन लाठी के वार हाथों पर किए गए, सिर या छाती पर नहीं। परिस्थितियों से यह पता चलता है कि आवेदक के मन में मृतक की हत्या करने या ऐसी शारीरिक चोट पहुँचाने का कोई पूर्व विचार नहीं था, जो उसकी मृत्यु का कारण बन सके। मौखिक झगड़े के कारण, आवेश में आकर, उसने मृतक के सिर पर लाठी से हमला किया और फिर उसके हाथों पर अन्य लाठी के वार किए। सिर पर लाठी से वार करने को उस ज्ञान से जोड़ा जा सकता है कि चोट मृत्यु का कारण बन सकती है, लेकिन यह ऐसी शारीरिक चोट पहुँचाने का इरादा नहीं था जो मृत्यु का कारण बने। आवेदक का आशय केवल मृतक को गोधूलि की दीवार पर आगे निर्माण करने से रोकना प्रतीत होता है। इस प्रकार, आवेदक की ओर से आशय की कमी नजर आती है, लेकिन यह केवल उस ज्ञान के साथ था कि चोट मृत्यु का कारण बनने की संभावना थी, जो आईपीसी की धारा 304 भाग-II के अंतर्गत आएगा। (पैराग्राफ 49)

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की गई। (ई-14)

उद्धृत वाद सूची:

1. हिमाचल प्रदेश राज्य बनाम जीत सिंह 1999 (38) एसीसी 550 एससी
2. नथुनी यादव एवं अन्य बनाम बिहार राज्य एवं अन्य 1997 (34) एसीसी 576
3. थमन कुमार बनाम चंडीगढ़ केंद्र शासित प्रदेश 2003 (47) एसीसी 7
4. ब्रह्म स्वरूप एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2011) 6 एससीसी 288
5. दलिप एवं अन्य बनाम पंजाब राज्य ए.आई.आर. (1953) एससी 364
6. मसाल्टी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (ए.आई.आर.) 1965 एससी 202
7. रामेश्वर एवं अन्य बनाम राज्य 2003 (46) एसीसी 581
8. बिहारी प्रसाद बनाम बिहार राज्य 1996 एससीसी (2) 317
9. पुलिचेरला नागराजू @ नागराजा बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (2006) 11 एससीसी 444

(माननीय न्यायमूर्ति सुभाष चंद्र शर्मा द्वारा प्रदत्त)

1. वर्तमान आपराधिक अपील मामला अपराध संख्या 196 / 1991 से उत्पन्न सत्र परीक्षण संख्या - 77/ 1993(राज्य बनाम लालजी और अन्य) में धारा 302/34 आई पी सी के तहत थाना चुनार, जिला मिर्जापुर में विद्वान सत्र न्यायाधीश, मिर्जापुर के द्वारा पारित आदेश एवं निर्णय दिनांकित 26.02.1997 से उत्पन्न हुई है जिसमें अभियुक्त लाल जी, श्यामजी, प्यारे और छोटई को दोषी ठहराया गया और धारा 302 सहपठित धारा 34 आईपीसी के तहत आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई।

2. अभियोजन प्रकरण संक्षेप में इस प्रकार है कि दिनांक 26.10.1991 को सायं लगभग 4 बजे, सूचनादाता के पिता लालमन, सूचनादाता की बहन सविता, राजमिस्त्री चिबिल्ली और मजदूर सीता के साथ पट्टे पर दी गई जमीन पर गौशाला की दीवारों पर सफेदी कर रहे थे। इसी बीच लालजी, श्यामजी, प्यारे और छोटई लाठी-डंडों से लैस होकर वहां आये। उन्होंने गाली-गलौज करते हुए उनकी जमीन को अपनी पट्टे की जमीन बताया। लालमन ने यह कहकर प्रतिक्रिया दी कि यह उनकी पट्टे की भूमि थी जिस पर पुरानी गौशाला का निर्माण किया गया था। इस पर श्यामजी चिल्लाये और सभी आरोपियों ने उन्हें लाठियों से पीटना शुरू कर दिया। वह करीब 30-40 कदम तक भागा लेकिन आरोपियों ने उसे घेर लिया और लाठियों से पीट-पीटकर हत्या कर दी। शोर मचाने पर सत्यवान और धनंजय वहां आए तो आरोपी चले गए। उसी दिन रात्रि लगभग 8.30 बजे सूचनादाता श्याम बहादुर द्वारा एफ.आई.आर थाना चुनार पर मुकदमा अपराध संख्या 370 सन् 1991 धारा 302 आईपीसी के तहत दर्ज किया गया। जिसका विवरण जी.डी.रिपोर्ट क्रमांक 42 में दर्ज किया गया।

3. मामले की जांच एस.आई. वी.पी. सिंह को सौंपी गई. वे घटनास्थल पर गए और घटनास्थल से खून से सनी मिट्टी एकत्र की और फर्द बरामदगी तैयार की।

4. मृतक लालमन का पंचनामा एस.आई. वी.पी. सिंह द्वारा तैयार की गई थी। गवाहों की मौजूदगी में पंचनामा रिपोर्ट तैयार की गई, शव को सील किया गया, अन्य आवश्यक कागजात तैयार किए

गए और शव को पोस्टमार्टम के लिए कांस्टेबल मुर्तजा अली और छांगुर दुबे को सौंप दिया गया।
5. दिनांक 27.10.1991 को अपराह्न 3 बजे डॉ. एस.सी. श्रीवास्तव ने लालमन के शव का पोस्टमार्टम किया। जिला अस्पताल मिर्ज़ापुर में और पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट प्रदर्श क-2 तैयार की। जिसका विवरण इस प्रकार है:

शव को सीलबंद कपड़े में लाया गया। सील की जाँच की गई और बरकरार पाया गया। मृतक की उम्र लगभग 60 वर्ष थी और मृत्यु हुए लगभग एक दिन का समय था।

बाह्य परीक्षा: औसत शरीर। उपरी एक्सट्रीमिटीस एवं अतः एक्सट्रीमिटीस में मृत्यु पश्चात अकडन पायी गई। नाक में खून का थक्का जम गया था। आंखें बंद थीं।

मृत्यु पूर्व चोटें:(1) खोपड़ी के दाहिनी ओर 3 सेमी x 1/2 सेमी x तक हड्डी में गहरा घाव, दाहिने बाहरी कान के ऊपर 8 सेमी।

(2) 8 सेमी x 2 सेमी x कपाल गुहा में कटा हुआ घाव, खोपड़ी के दाहिनी ओर गहरा, पीछे 5 सेमी ऊपर और दाएँ बाहरी कान के पीछे। नीचे की हड्डी टूट गई थी और मस्तिष्क का पदार्थ दिखाई दे रहा था।

(3) दाहिनी ओर खोपड़ी के पीछे की ओर 2 सेमी x 1 सेमी x कपाल गुहा गहरा घाव, चोट संख्या 2 से 2सेमी नीचे फटा हुआ घाव।

(4) दाहिने कंधे की ऊपरी सतह पर 4 सेमी x 1 सेमी का घर्षण।

(5) बाईं कोहनी की पिछली सतह पर 2.5 सेमी x 1 सेमी का घर्षण।

(6) बायीं कलाई से 7 सेमी ऊपर बायीं बांह की पिछली मध्य सतह पर 2 सेमी x 2 सेमी का घर्षण।

(7) बाईं कलाई की पिछली सतह पर1 सेमी x 1 सेमी का घर्षण।

मौत का कारण सिर में चोट लगने से कोमा के द्वारा बताया गया।

6. जांच अधिकारी ने घटना स्थल का निरीक्षण करने के बाद नक्सा नजरी तैयार कर अभिलेख किया मामले के तथ्यों से परिचित गवाहों के बयानों के बाद जांच पूरी हुई और मामला पाया गया।प्रथम दृष्टयाधारा 302/34 आईपीसी के तहत कायम किया गया। उन्होंने आरोप पत्र तैयार कर संबंधित न्यायालय में प्रस्तुत किया।

7. अपराध का संज्ञान संबंधित अदालत द्वारा लिया गया और सीआरपीसी की धारा 207 के अनुपालन में आरोपी व्यक्तियों को अभियोजन कागजात की प्रतियां प्रदान की गईं। और मामला सुनवाई के लिए सत्र न्यायालय को सौंप दिया गया।

8. विद्वान विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर मौजूद सामग्री के आधार पर और अपीलकर्ताओं को सुनवाई का अवसर देने के बाद धारा 302 के साथ पठित धारा 34 आईपीसी के तहत आरोप तय किए। आरोप को पढ़कर सुनाया गया और उन्हें समझाया गया। उन्होंने दोष स्वीकार नहीं किया बल्कि इससे इनकार किया और मुकदमे का दावा किया। नतीजतन, मामला अभियोजन साक्ष्य के लिए तय किया गया था।

9. अभियोजन पक्ष ने पी.डब्ल्यू.1 श्याम बहादुर, सूचनादाता, पी.डब्ल्यू.2 धनन्जय, पी.डब्ल्यू.3 चिबिल्ली (राजमिस्त्री) से चश्मदीद गवाह के रूप में पूछताछ की। पी.डब्लू. 4 पोस्टमॉर्टम करने वाले डॉ. एससी श्रीवास्तव की भी जांच की गई।

10. अभियोजन साक्ष्य के समापन के बाद अपीलकर्ताओं का बयान सीआरपीसी की धारा 313 के तहत दर्ज किया गया। जिसमें उन्होंने

कहा कि उन्होंने हत्या नहीं की है और अभियोजन पक्ष के गवाहों द्वारा दिए गए बयान झूठे थे। अभियुक्त लालजी ने बताया कि आराजी नं. 330 माप 1 बीघे 10 बिस्वा के आधार पर उनका था, पट्टा 25.07.1979 को उनके पक्ष में प्रदान किया गया। तब से उस जमीन पर उनका कब्जा था, तहसीलदार चुनार के यहां मुकदमा चला जिसका फैसला 30.11.1988 को उनके पक्ष में हुआ। उस जमीन पर मृतक जबरदस्ती निर्माण करा रहा था और रात में किसी तरह से वह घायल हो गया और उसकी जमीन हड़पने के लिए उसे अपने सगे भाइयों के साथ मिलकर झूठा फंसाया गया। इसी तरह आरोपी श्यामजी, प्यारे और छोटई ने भी घटना और अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयान झूठे होने की बात कही।

11. अपीलकर्ताओं को बचाव का अवसर दिया गया लेकिन उन्होंने अपने समर्थन में कोई सबूत पेश नहीं किया।

12. विद्वान विचारण न्यायालय ने अभियोजन पक्ष के साथ-साथ अपीलकर्ताओं के तर्क को सुना, दिनांक 26.2.1997 को निर्णय और आदेश पारित किया जिसमें उन्होंने सभी अपीलकर्ताओं को धारा 302 के साथ धारा 34 आईपीसी के तहत दोषी पाया और उन्हें आजीवन कठोर कारावास की सजा सुनाई। इस निर्णय एवं आदेश के विरुद्ध अभियुक्तगणों द्वारा ये दो अपीलें प्रस्तुत की गई हैं। एक आपराधिक अपील संख्या 477/1997 आरोपी छोटाई द्वारा दायर की गई थी, लेकिन अपील के लंबित रहने के दौरान उसकी मृत्यु हो गई, जिसके परिणामस्वरूप उसकी अपील निरस्त कर दी गई।

13. हमने अपीलकर्ता संख्या 1 की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री जन्मेद कुमार एवं अपीलकर्ता 2 और 3 की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री सत्य प्रकाश शुक्ला एवं राज्य के लिये विद्वान ए.जी.ए. श्री अरुण कुमार सिंह को सुना और अभिलेख का अवलोकन किया।

14. 14. अपीलकर्ताओं के लिए विद्वान अधिवक्ता प्रस्तुत करेंगे कि विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के खिलाफ है जो कि इच्छुक गवाहों की गवाही पर आधारित है जो मृतक के रिश्तेदार हैं, जो कानून की नजर में खराब है। एफ.आई.आर बिना किसी स्पष्टीकरण के अत्यधिक देरी से दर्ज किया गया था। मृतक की हत्या करने का कोई मकसद नहीं था। पी.डब्लू. 1 श्याम बहादुर मृतक का पुत्र होने के कारण इच्छुक गवाह था। पी.डब्लू. 2 धनंजय सिंह घटना स्थल पर मौजूद नहीं थे लेकिन वह एक प्रबंधित गवाह थे। पी.डब्लू 3 चिबिल्ली (राजमिस्त्री) भी मृतक का रिश्तेदार था, इसलिए अभियोजन पक्ष के तीन गवाहों की गवाही विश्वसनीय नहीं कही जा सकती। उनकी गवाही में परस्पर विरोधाभास हैं जो आत्मविश्वास को प्रेरित नहीं करते हैं। इसके अलावा यह प्रस्तुत किया गया कि सामान्य भूमिका को छोड़कर किसी भी आरोपी को कोई विशिष्ट भूमिका नहीं सौंपी गई है। ऐसी स्थिति में, मृतक व्यक्ति को चोट पहुँचाने के लिए अपीलकर्ताओं में से किसी पर भी दायित्व तय नहीं किया जा सकता है। आईपीसी की धारा 34 के प्रावधान को लागू करके कोई दायित्व तय नहीं किया जा सकता है। मृतक के शरीर पर पाई गई चोटें साधारण प्रकृति की थीं और यह नहीं कहा जा सकता कि यह मृतक की मृत्यु का कारण बनने के इरादे या ज्ञान से की गई थीं। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि मृतक के शरीर पर पाई गई चोटों की प्रकृति के अनुसार यह नहीं कहा जा सकता है कि तीन

आरोपियों द्वारा लाठी से चोट पहुंचाई गई थी, बल्कि रात के समय किसी पत्थर पर गिरने के कारण चोट लगी थी। मामले की जांच करने वाले जांच अधिकारी से मुकदमे के दौरान पूछताछ नहीं की गई, जिससे आरोपी अपीलकर्ताओं पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। इस प्रकार, पूरा अभियोजन मामला अविश्वसनीय हो जाता है और विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा अपीलकर्ताओं की सजा का परिणाम है अभिलेख पर सबूतों का गलत मूल्यांकन, कानून की नजर में टिकाऊ नहीं है और अपीलकर्ता बरी किए जाने योग्य हैं। अंत में, विकल्प के रूप से यह तर्क दिया गया कि जो अपराध किया गया बताया गया है वह आईपीसी की धारा 302 के दायरे में नहीं आता है, लेकिन अधिक से अधिक यह कहा जा सकता है कि इसे आईपीसी की धारा 304 भाग II की सीमा तक कवर किया गया है।

15. अपीलकर्ताओं के लिए विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई दलीलों का विद्वान ए.जी.ए द्वारा विरोध किया गया और आग्रह किया कि इस मामले में, अपीलकर्ता उस स्थान पर गए जहां मृतक उसे पट्टे पर आवंटित भूमि पर अपने पूर्व-निर्मित गौशाला पर दीवार ऊंची कर रहा था और उसके साथ मारपीट की। उसकी मृत्यु का कारण बनने के सभी के सामान्य इरादे को आगे बढ़ाने के लिए लाठीचार्ज किया गया, जिसके परिणामस्वरूप मृतक को चोटें लगीं और उसकी मृत्यु हो गई। घटना की एफ.आई.आर सूचनादाता द्वारा बिना किसी देरी के तत्काल दर्ज करायी गयी। पी.डब्लू. संख्या. 1, 2 और 3 घटना के चश्मदीद गवाह हैं, जो घटना के वक्त मौके पर काम कर रहे थे। इसके अलावा यह आग्रह किया गया कि पी.डब्लू. 3 चिबिली एक राजमिस्त्री था और उसी गांव का निवासी नहीं था, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि वह मृतक से संबंधित था, वह एक स्वतंत्र गवाह था जिसने अदालत के समक्ष अपनी जांच के दौरान घटना का स्पष्ट विवरण दिया था। अभियोजन पक्ष के गवाहों की गवाही में कोई बड़ा विरोधाभास नहीं है। मृतक के शरीर पर पाई गई चोटें भी आरोपी अपीलकर्ताओं द्वारा पहुंचाई गई चोटों के तरीके के बारे में गवाहों के विवरण से पुष्ट होती हैं। इस प्रकार, अभिलेख पर मौजूद साक्ष्यों से यह स्थापित होता है कि अपीलकर्ताओं द्वारा मृतक को चोटें पहुंचाई गईं जिससे उसकी मौत हो गई थी। जहां तक जांच अधिकारी से पूछताछ न करने का सवाल है, यह तर्क दिया गया कि इससे अपीलकर्ताओं पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा और केवल जांच अधिकारी से पूछताछ न करने पर अभियोजन का मामला विफल नहीं होगा, क्योंकि अभिलेख पर पर्याप्त सबूत थे। अभियोजन मामले का समर्थन करें। अभिलेख पर मौजूद सबूत पर्याप्त हैं जिनके आधार पर विद्वान विचारण न्यायाधीश ने अपीलकर्ताओं की सजा दर्ज की है, जो कानून की नजर में पूरी तरह से उचित है। इसमें कोई अवैधता या अनौचित्य नहीं है. ऐसे में अपील खारिज किये जाने योग्य है।

16. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताआें की दलीलों से, इस न्यायालय के विचार के लिए निम्नलिखित प्रश्न सामने आते हैं: (i) क्या एफ.आई.आर. दर्ज करने में देरी हुई थी, (ii) मकसद अनुपस्थित था, (iii) सामान्य इरादे की अनुपस्थिति मृतक की मृत्यु का कारण बनना, (iv) गवाहों के रिश्तेदार और इच्छुक होने की अविश्वसनीयता, (v) मृतक के शरीर पर पाई गई चोटों की प्रकृति, (vi) जांच अधिकारी की गैर-परीक्षा का प्रभाव और (vii) कि क्या मामला

आईपीसी की धारा 302 के दायरे में आता है या धारा 304 भाग II आईपीसी के तहत आता है।

17. इससे पहले कि हम अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता की दलीलों पर विचार करें, अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों पर ध्यान देना सुविधाजनक होगा।

18. पी,डब्लू1 श्याम बहादुर सूचना दाता है जिसने बताया कि वह अभियुक्त लाल जी,श्याम जी, प्यारे एवं छोटई को जानता है। उनमे से लालजी, श्यामजी और प्यारे सगे भाई थे और छोटाई उनका दोस्त था। मृतक लालमन सूचनादाता का पिता था, जिसकी हत्या चार वर्ष पूर्व लगभग चार बजे उस समय कर दी गयी थी, जब वह अपने गौशाला में था और दीवार को ऊंचा करने के लिए मिस्त्री चिबिली द्वारा मजदूर सीता के साथ काम कराया जा रहा था। गौशाला की भूमि उनके पिता के पक्ष में पट्टे पर दे दी गई। आरोपी वहां आया और उसके पिता को दीवार बनाने से रोका, जिस पर उसने पलटवार करते हुए कहा कि यह उसकी पुरानी गौशाला है और पट्टा पत्र उसके पक्ष में है। इस पर श्यामजी ने चिल्लाया और चारों आरोपियों ने उसके पिता को लाठियों से पीटना शुरू कर दिया, जिन्होंने भागने की कोशिश की, लेकिन जब तक वह लगभग 30 कदम तक भाग सके, चारों आरोपियों ने उन्हें घेर लिया और पीट-पीटकर उनकी मौत कर दी। घटना के समय वह, उसकी बहन संगीता, मजदूर सीता और राजमिस्त्री चिबिली मौजूद थे और उनकी चीख-पुकार सुनकर धनंजय और सत्यवान मौके पर पहुंचे थे। उन सभी ने घटना देखी और आरोपी मारपीट कर चले गए। उन्हे तहरीर (लिखित रिपोर्ट) मस्तराम द्वारा लिखित और उसकी सामग्री को सुनने के बाद, उन्होंने अपना अंगूठा लगाया और एफ.आई.आर. दर्ज कराई। उन्होंने स्वीकार किया कि तहरीर (लिखित रिपोर्ट) दी गई है एवं उसके द्वारा पुलिस स्टेशन में दी गई और उस पर अपने अंगूठे के निशान की पहचान भी की गई, जिसे प्रदर्श का-1 के रूप में साबित किया गया।

विचारण न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा इस गवाह से कड़ी जिरह की गई, लेकिन गवाह ने ऐसे किसी भी तथ्य का खुलासा नहीं किया जो उसकी गवाही को कमजोर करता हो। उन्होंने अपीलकर्ताओं द्वारा पिटाई की बात की पुष्टि की थी.

19. पी.डब्लू.2-धनंजय सिंह ने बताया कि वह आरोपी लालजी, श्यामजी, प्यारे और छोटई को जानता था, जो उसके गांव के निवासी थे। मृतक लालमन भी उसी के गांव का रहने वाला था जिसकी करीब चार साल पहले हत्या कर दी गई थी। घटना के समय लालमन अपने पुराने गौशाला की दीवार को ऊंचा कर रहा था जहां राजमिस्त्री चिबिली दीवार का निर्माण कार्य कर रहा था और मजदूर सीता भी मौके पर मौजूद थी। लालमन के बेटे श्याम बहादुर और उनकी बेटी सविता भी मौजूद थीं। गौशाला की जमीन मृतक लालमन की थी और उस पर उसका कब्जा था। घटना के समय करीब 25-30 कदम की दूरी पर साक्षी अपने चरवाहा में चारा दे रहा था। इसी बीच लालजी, श्यामजी, प्यारे और छोटई लाठी-डंडा से लैस होकर मौके पर आये और लालमन को पीटना शुरू कर दिया, जिससे वह जमीन पर गिर गये और दम तोड़ दिया। पी.डब्लू.2 ने कहा कि उन्होंने मौके पर जाकर घटना देखी है। आरोपित पूरब दिशा की ओर चले गए। रात में ही दारोगा जी मौके पर पहुंचे और घटनास्थल से खून से सनी और सादी मिट्टी इकट्ठा कर ली, फर्द,

तैयारकिया जिस पर उन्होंने अपने हस्ताक्षर भी बनाए।

इस गवाह को अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई कठिन जिरह का भी सामना करना पड़ा, लेकिन उसके बयान से अभियोजन पक्ष के मामले के विपरीत कुछ भी इंगित नहीं किया जा सका।

20. पी.डब्लू.3 चिबिल्ली ने बताया कि वह लालजी, श्यामजी, प्यारे और छोटई को जानता था, जो लगभग 1 किमी दूर स्थित उसके अपने गाँव से सटे गाँव के निवासी थे। वह मृतक लालमन को भी जानता था जिसकी चार साल पहले हत्या कर दी गई थी लगभग 4 बजे यह गवाह कथित घटना के समय लालमन की गौशाला में काम कर रहा था। उस समय लालमन, उनका बेटा श्याम बहादुर, बेटी सविता और मजदूर सीता भी मौजूद थीं। चारों आरोपी लाठी-डंडों से लैस होकर गौशाला में आए और लालमन को पीटना शुरू कर दिया, जिससे वह घायल होकर जमीन पर गिर पड़े। घटना को अंजाम देने के बाद सभी आरोपित पूरब दिशा की ओर चले गये.

इस गवाह को अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई कठिन जिरह का भी सामना करना पड़ा, लेकिन उसके बयान से अभियोजन पक्ष के मामले के विपरीत कुछ भी हमारे सामने नहीं लाया जा सका।

21. अभियोजन पक्ष के सभी गवाह अपनी जिरह के दौरान बरकरार रहे। उनके बयानों में ऐसा कोई विरोधाभास नज़र नहीं आता जो उनकी गवाही को अविश्वसनीय और अप्राकृतिक बना दे। उनके बयान में बताए गए छोटे-मोटे विरोधाभास दिखावटी प्रकृति के हैं और उनकी गवाही की विश्वसनीयता को प्रभावित नहीं कर सकते।

22. पी.डब्ल्यू.4 डॉ. एस.सी. श्रीवास्तव ने बताया कि 27.10.1991 को उनकी तैनाती जिला अस्पताल, मीरजापुर में बाल रोग विशेषज्ञ के पद पर हुई थी। करीब चार बजे उन्होंने मृतक लालमन के शव का पोस्टमार्टम कराया, जिसे सिपाही मुर्तजा अली व छांगुर दुबे थाना चुनार से लेकर आये थे। उन्होंने पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट तैयार की थी और उनकी राय में मौत का कारण मृतक के सिर पर चोट के कारण कोमा में जाना था। उन्होंने अपनी लिखावट और हस्ताक्षर में पोस्टमॉर्टम रिपोर्ट तैयार की, जिसे उन्होंने प्रदर्श क-2 के रूप में साबित किया। उन्होंने यह भी कहा कि चोट नं. 1,2 और 3 महत्वपूर्ण हिस्सों पर थे और चोट संख्या 2 के कारण, घायल कोमा में चला गया होगा, उसके बाद उसकी मृत्यु संभव थी। उन्होंने यह भी कहा कि चोट नं. 1 से 7 तक लाठी द्वारा की गई घटना से हो सकती थी.

अपीलकर्ताओं की ओर से इस गवाह से भी जिरह की गई लेकिन कुछ भी प्रतिकूल नहीं पाया गया।

22. अभिलेख पर रत्ती भर भी सबूत नहीं है जिससे दूर-दूर तक यह पता चले कि पी.डब्ल्यू.सं-1, 2 और 3 को अपीलकर्ताओं के खिलाफ किसी भी कारण से झूठा फंसाने की शिकायत थी।

23. मृतक लालमन के शरीर पर चोटें लाठी से लगी थीं जैसा कि पी.डब्लू. 1, 2 और 3. द्वारा विस्तार से बताया गया है। प्रदर्श क-2 पोस्टमार्टम रिपोर्ट है जिसमें मृतक लालमन के शरीर पर कई कटे और फटे हुए घाव पाए गए थे और पी.डब्ल्यू.4 डॉ. एस.सी. श्रीवास्तव ने चोटों को साबित किया है और बताया है कि सभी चोटें संभावित रूप से लगी हुई थीं। उन्होंने कहा कि मौत का कारण सिर में लाठी की चोट लगने के कारण कोमा मे जाना था।

24. इस प्रकार मृतक लालमन के शरीर पर लाठीसे जो चोटें मिलीं, उनसे कारित होना सिद्ध होता है 26.10.1991 को शाम लगभग 4 बजे और यह पीडब्लू 1, 2 और 3 द्वारा बताए गए अनुसार चोट पहुंचाने के तरीके की पुष्टि करता है जिसके परिणामस्वरूप मृत्यु हुई। इस प्रकार, मौत के कारण के बारे में चश्मदीद गवाहों के बयान की पुष्टि अभिलेख पर मौजूद चिकित्सीय साक्ष्य से होती है।

25. एफ.आई.आर. दर्ज करने में कोई देरी नहीं होती। घटना शाम 4 बजे की है. 26.10.1991 को एवं एफ.आई.आर. रात्रि 8.30 बजे दर्ज किया गया। उसी दिन, चार बजकर तीस मिनट में। इसे अत्यधिक विलंब नहीं कहा जा सकता।

27. विद्वान अधिवक्ता ने हत्या करने के मकसद की अनुपस्थिति की ओर भी इस न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है। उन्होंने आग्रह किया कि अभियोजन पक्ष अपीलकर्ताओं की ओर से अपराध करने के किसी भी मकसद को साबित करने में विफल रहा है।

28. यह सच है कि एफ.आई.आर. में मकसद का कोई जिक्र नहीं है। अपराध करने के बारे में. यहां तक कि पी.डब्लू.-1, पी.डब्लू.-2 और पी.डब्लू. 3 ने ऐसी किसी भी बात का खुलासा नहीं किया है जो अपीलकर्ताओं द्वारा हत्या करने का मूल कारण बनी, सिवाय गौशाला की दीवार के निर्माण के संबंध में अपीलकर्ताओं और लालमन की ओर से शुरू की गई बातचीत के अलावा, लेकिन यह स्थापित कानून है कि केवल इसलिए कि अभियोजन विफल हो जाता है अपराध करने का मकसद साबित करने के लिए जरूरी नहीं कि इसके परिणामस्वरूप आरोपी को बरी कर दिया जाए। यह अच्छी तरह से स्थापित है कि जहां नेत्र संबंधी साक्ष्य भरोसेमंद और विश्वसनीय पाए जाते हैं और चिकित्सा साक्ष्य से इसकी पुष्टि होती है, अपराध का निष्कर्ष सुरक्षित रूप से दर्ज किया जा सकता है, भले ही अपराध करने का मकसद साबित न हुआ हो।

29. हिमाचल प्रदेश राज्य बनाम. जीत सिंह 1999 (38) एसीसी 550 एससी,में यह माना गया कि इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह याद रखने के लिए एक अच्छा सिद्धांत है कि प्रत्येक आपराधिक कृत्य एक मकसद के साथ किया गया था, लेकिन इसका परिणाम यह नहीं है कि कोई अपराध नहीं किया गया था यदि अभियोजन पक्ष आरोपी के सटीक मकसद को साबित करने में विफल रहा जैसा कि वह है अभियोजन पक्ष के लिए किसी अपराधी के उस व्यक्ति के प्रति मानसिक बयान के पूर्ण आयाम को उजागर करना लगभग असंभव है जिसे उसने नाराज किया था।

30. नथुनी यादव और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य 1997 (34) एसीसी 576में यह माना गया कि आपराधिक कृत्य करने का मकसद आम तौर पर अभियोजन के लिए एक कठिन क्षेत्र है क्योंकि कोई भी आम तौर पर दूसरे के दिमाग में नहीं देख सकता है। मकसद वह भावना है जो किसी व्यक्ति को एक विशेष कार्य करने के लिए प्रेरित करती है और ऐसे प्रेरित करने वाले कारण को अनावश्यक रूप से गंभीर अपराधों के अनुपात में गंभीर होने की आवश्यकता नहीं है। आगे यह माना गया कि कई हत्याएं बिना किसी ज्ञात या प्रमुख उद्देश्य के की गई हैं और यह बहुत संभव है कि उपरोक्त प्रेरक कारक अनदेखा रहेगा।

31. हमारी राय में, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, मकसद के बिंदु पर साक्ष्य की अनुपस्थिति का ऐसा कोई प्रभाव नहीं हो सकता है जिससे अभिलेख पर उपलब्ध अन्य विश्वसनीय साक्ष्य को खारिज कर दिया जाए जो निश्चित

रूप से आरोपी के अपराध को स्थापित करता है। थमन कुमार बनाम केंद्र शासित प्रदेश चंडीगढ़ राज्य 2003 (47) एसीसी 7के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उपरोक्त मामलों पर विचार करने के बाद वही दृष्टिकोण दोहराया है।

32. अपीलकर्ताओं के लिए विद्वान अधिवक्ता के तर्क का अगला अंग यह है कि अभियोजन पक्ष ने अत्यधिक रुचि रखने वाले और संबंधित गवाहों की जांच की थी और उन्होंने अपने मामले के समर्थन में कोई स्वतंत्र गवाह पेश नहीं किया है।

33. ब्रह्म स्वरूप एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य। (2011) 6 एससीसी 288के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा संख्या 21 में निम्नानुसार टिप्पणी की है

> "केवल इसलिए कि गवाह मृत व्यक्तियों से संबंधित थे, उनकी गवाही को खारिज नहीं किया जा सकता है। पक्षकारो में एक से उनका रिश्ता ऐसा कारक नहीं है जो गवाह की विश्वसनीयता को प्रभावित करती है, इससे भी अधिक, कोई संबंध वास्तविक अपराधी को नहीं छिपाएगा और किसी निर्दोष व्यक्ति के खिलाफ आरोप नहीं लगाएगा। एक पक्ष को तथ्यात्मक आधार तैयार करना होता है और अपने झूठे निहितार्थ के संबंध में त्रुटिहीन साक्ष्य पेश करके साबित करना होता है। हालाँकि, ऐसे मामलों में न्यायालय को सावधानीपूर्वक दृष्टिकोण अपनाना होगा और यह पता लगाने के लिए साक्ष्य का विश्लेषण करना होगा कि क्या यह ठोस और विश्वसनीय साक्ष्य है।"

34. न्यायालय नेदलीप और अन्य बनाम पंजाब राज्य ए.आई.आर. (1953) एससी 364; मसल्टी बनाम यूपी राज्य (ए.आई.आर.) 1965 एस.सी. 202. मामलों का भी उल्लेख किया ।

35. मसल्टी बनाम यूपी राज्य (ए.आई.आर.) 1965 एस.सी. 202 में,माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा संख्या 14 में अवलोकन किया

> "लेकिन हमारा मानना है कि यह तर्क देना अनुचित होगा कि गवाहों द्वारा दिए गए साक्ष्य को केवल इस आधार पर खारिज कर दिया जाना चाहिए कि यह पक्षपातपूर्ण या इच्छुक गवाहों का साक्ष्य है। ऐसे साक्ष्यों को केवल इस आधार पर यांत्रिक रूप से अस्वीकार करना कि यह पक्षपातपूर्ण है, निश्चित रूप से न्याय की विफलता का कारण बनेगा। इस संबंध में कोई कठोर नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता सबूत की कितनी सराहना की जानी चाहिए.ऐसे साक्ष्यों से निपटने में न्यायिक दृष्टिकोण को सतर्क रहना होगा; लेकिन यह दलील कि इस तरह के साक्ष्य को खारिज कर दिया जाना चाहिए क्योंकि यह पक्षपातपूर्ण है, इसे सही रूप से स्वीकार नहीं किया जा सकता

36. यह सामान्य ज्ञान है कि गाँव (मुहल्ला)जीवन गुटों से भरा हुआ है और घटनाओं में किसी न किसी का शामिल होना असामान्य नहीं है। इस बात को लेकर भी सतर्क रहना होगा पूर्ण स्वतंत्र गवाह शायद ही कभी उपलब्ध होते हैं या अन्यथा सामने आने के लिए इच्छुक नहीं होते हैं, ऐसा न हो कि वे भविष्य में अपने लिए मुसीबत खड़ी कर लें। इसलिए चश्मदीदों का आपस में रिश्ता होने की वजह से उनकी गवाही को खारिज करने का एक आधार नही हो सकता है। चश्मदीदों के कहने पर अपीलकर्ताओं को झूठा फंसाने का अनुमान लगाने का कोई कारण नहीं है। यह सोचना भी अतार्किक होगा कि गवाह असली दोषियों की जांच करेंगे और अपीलकर्ताओं को उनकी जगह ले लेंगे।

37. इस न्यायालय हैंरामेश्वर एवं अन्य बनाम राज्य 2003 (46) एसीसी 581के मामले के पैरा संख्या 14 में भी ऐसी टिप्पणियाँ की

38. निःसंदेह पी.डब्लू. 1, तत्काल मामले में जांचे गए तथ्य का गवाह, मृतक का असली बेटा है, लेकिन रिश्ता ही इस गवाह की गवाही को खारिज करने का आधार नहीं है, बल्कि वह असली अपराधी को छोड़ने और किसी अन्य व्यक्ति को झूठा फंसाने वाला आखिरी व्यक्ति होगा। पी.डब्लू. 2 मृतक और अपीलकर्ता के ही गांव का निवासी है और उसका मृतक के परिवार से कोई संबंध नहीं है। इसी तरह, पी.डब्लू. 3 एक राजमिस्त्री है जो दूसरे गांव का रहने वाला है और मृतक के कहने पर काम कर रहा था। उनकी किसी भी पक्ष में कोई रुचि नहीं थी, इसलिए उन्हें इच्छुक गवाह नहीं कहा जा सकता। सभी गवाह स्वाभाविक गवाह हैं। पी.डब्लू.एस. घटना के समय 1 और 3 उस स्थान पर मौजूद थे जहां वे दीवार का निर्माण कर रहे थे और पी.डब्लू. 2 भी उस स्थान पर पहुंचे जहां घटना घटी थी। इन सभी ने आरोपी व्यक्तियों की पहचान कर ली है। पी.डब्लू.सं. 1 और 2 एक ही गांव के निवासी होने के कारण एक-दूसरे को जानते थे। पी.डब्लू 3 वहां से 1 किमी की दूरी पर स्थित निकटवर्ती गाँव का निवासी था। इसलिए पहचान में गड़बड़ी का सवाल ही नहीं उठता। पी.डब्लू.1 रिश्तेदार होने के नाते, यह नहीं कहा जा सकता कि वह अपीलकर्ताओं को मामले में झूठा फंसाएगा, जबकि असली दोषियों को खुला छोड़ देना। अपीलकर्ताओं और गवाहों के बीच दुश्मनी का कोई सुझाव नहीं है और इसलिए, उन्हें झूठा फंसाने का कोई कारण नहीं है। इस प्रकार, ये गवाह पूर्णतः विश्वसनीय एवं विश्वसनीय हैं। उनकी गवाही को केवल इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता कि वे मृतक के रिश्तेदार हैं। इस संबंध में अपीलार्थियों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिये गये तर्क स्वीकार नहीं किये जा सकते।

39. यह भी तर्क दिया गया है कि जांच अधिकारी से पूछताछ न करने से बचाव पक्ष पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है क्योंकि उसे उससे जिरह करने का अवसर नहीं मिला। यह दोष पूरे मुकदमे को दूषित कर देता है।

40. बहरी प्रसाद बनाम बिहार राज्य 1996 SCC (2) 317 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह माना गया कि-

> "जांच अधिकारी से पूछताछ न करने पर अभियोजन का मामला विफल नहीं होना चाहिए। हम यहां यह भी संकेत दे सकते हैं कि यह तर्क देना सही नहीं होगा कि यदि किसी मामले में जांच कार्यालय से

पूछताछ नहीं की जाती है, तो ऐसा मामला इस आधार पर विफल हो जाना चाहिए कि आरोपी गवाहों से प्रभावी ढंग से जिरह करने के अवसर से वंचित थे। अभियोजन और पुलिस के समक्ष उनके बयानों में विरोधाभास सामने लाना। किसी अभियुक्त द्वारा पूर्वाग्रह का सामना किए जाने की संभावना का मामला मामले के तथ्यों पर निर्भर होना चाहिए और कोई सार्वभौमिक सीधा फॉर्मूला नहीं दिया जाना चाहिए कि जांच अधिकारी की गैर-परीक्षा एक आपराधिक मुकदमे को ख़त्म कर देती है।

41. वर्तमान मामले के तथ्यों से यह पता चलता है कि घटना में अभियुक्त की संलिप्तता प्रत्यक्षदर्शियों के साक्ष्य से स्पष्ट रूप से स्थापित हो गयी है। पी.डब्लू.सं. 1 से 3. ऐसे साक्ष्य है जो मामले के अनुरूप हैं जैसा कि एफ.आई.आर.और पोस्टमार्टम रिपोर्ट में भी बताया गया है।

42. यह नोट करना भी प्रासंगिक है कि अभियोजन पक्ष के गवाह अर्थात पी.डब्ल्यू.1 और पी.डब्ल्यू.2, सीआरपीसी की धारा 161 के तहत जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए उनके पिछले बयान का सामना नहीं किया गया है। कुछ छोटे मुद्दों पर पी.डब्ल्यू.3 चिबिली को छोड़कर जो मामले के लिए महत्वपूर्ण नहीं हैं। घटनास्थल को लेकर भी कोई विवाद नहीं है. ऐसे में यह नहीं कहा जा सकता कि जांच अधिकारी के पूछताछ न करने से बचाव पक्ष पर कोई प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।

43. पी.डब्लू. 1, 2 द्वारा दिए गए बयानों से और विशेष रूप से पी.डब्ल्यू 3 द्वारा यह सामने आया कि अपीलकर्ता लालजी द्वारा लाठी से हमले की विशेष भूमिका थी। पहले उसने मृतक पर लाठी मारी तब वह गारा (मड मोर्टार) बना रहा था और फिर जब मृतक अपनी जान बचाने के लिए भागा तो लालजी ने उसका पीछा किया और उस पर लाठी से चार वार किए जो उसके हाथ और कंधे पर लगे। पोस्टमार्टम रिपोर्ट प्रदर्श क-2 भी पी.डब्ल्यू 3 चिविली के उपरोक्त तर्क का समर्थन करता है। इस प्रकार, यह स्थापित होता है कि अपीलार्थी लालजी ही था जिसके कहने पर विवाद शुरू हुआ और उसने ही मृतक पर लाठी से हमला किया जिसके परिणामस्वरूप मृतक लालमन की मृत्यु हो गई।

हमले के लिए अन्य अपीलकर्ताओं को कोई विशिष्ट भूमिका नहीं सौंपी गई है, सिवाय सामान्य आरोप के कि सभी अपीलकर्ताओं ने मृतक के साथ मारपीट की, लेकिन पोस्टमार्टम रिपोर्ट प्रदर्श क-2 द्वारा मारपीट के आरोप का समर्थन नहीं करता है एक से अधिक व्यक्ति. इस प्रकार अभिलेख पर मौजूद साक्ष्यों से यह बिना किसी संदेह के स्पष्ट रूप से स्थापित होता है कि अपीलकर्ता लालजी ने मृतक को चोट पहुंचाई जिसके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो गई।

इसलिए जहां तक अन्य अपीलकर्ताओं का सवाल है, मृतक को चोट पहुंचाने में उनकी भागीदारी को केवल लालजी के साथ मौके पर उनकी उपस्थिति के आधार पर उचित संदेह से परे साबित नहीं किया जा सकता है, जब तक कि सभी आरोपी व्यक्तियों ने पूर्व-चिंतन का कोई

कार्य न किया हो। मृतक की हत्या करना, जिसमें शुरू से ही कमी थी और यह केवल मृतक को विवादग्रस्त भूमि पर आगे निर्माण करने से रोकने की हद तक था।

44. हमारी राय में, अभिलेख पर मौजूद साक्ष्य किसी भी संदेह से परे अपीलकर्ता लालजी के खिलाफ अभियोजन के मामले को स्पष्ट रूप से स्थापित करता है, लेकिन अन्य आरोपी अपीलकर्ताओं श्यामजी और प्यारे के खिलाफ नहीं। वे संदेह के लाभ के हकदार हैं।

45. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का अगला तर्क यह है कि मृतक को पहुंचाई गई चोटें जानबूझकर नहीं थीं, बल्कि यह घटना विवादित भूमि के संबंध में मौखिक विवाद के दौरान हुई थी, जब मृतक दीवार को ऊंचा कर रहे थे और दोनों पक्ष अपने पक्ष में दिए गए पट्टे के आधार पर जमीन को अपना बता रहे थे। अपीलकर्ता मृतक को निर्माण करने से रोकने के लिए मौके पर गए लेकिन उसने काम नहीं रोका, जिस पर दोनों पक्षों में झगड़ा शुरू हो गया और अपीलकर्ता ने मृतक के साथ मारपीट की। लाठी से उसके शरीर पर चोटें आईं, जिससे उसकी मौत हो गई। चोटों की प्रकृति सामान्य थी और एक को छोड़कर, अन्य सभी चोटें मृतक के जीवन के लिए घातक नहीं थीं। इससे पता चलता है कि अपीलकर्ताओं का मृतक की हत्या करने का कोई इरादा नहीं था, बल्कि केवल साधारण चोटें पहुंचाना था। यहाँ तक कि इस ज्ञान का भी अनुमान नहीं लगाया जा सकता कि वे मृत्यु का कारण बनने वाली चोटों के प्रभाव के बारे में जानते थे। इस प्रकार, कोई पूर्वचिन्तन न होने के कारण, अपराध आईपीसी की धारा 302 के अंतर्गत नहीं आ सकता है, लेकिन अधिकतम यह आईपीसी की धारा 304 भाग II की सीमा तक जा सकता है।

46. पुलिचेरला नागराजू @ नागराजा बनाम ए.पी. राज्य (2006) 11 एससीसी 444के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह तय करते हुए अवधारित किया कि क्या कोई मामला आईपीसी की धारा 302 या 304 भाग I या 304 भाग II के अंतर्गत आता है, इस प्रकार अवधारित किया जाता है:

> "पैरा 29: इसलिए, अदालत को ध्यानपूर्वक और सावधानी के इरादे के साथ महत्वपूर्ण प्रश्न पर निर्णय लेने के लिए आगे बढ़ना चाहिए, क्योंकि यह तय करेगा कि मामला धारा 302 या 304 भाग I या 304 भाग II के अंतर्गत आता है या नहीं। कई छोटी-छोटी या महत्वहीन बातें, फल तोड़ना, मवेशी का भटकना, बच्चों का झगड़ा, अभद्र शब्द बोलना या यहां तक कि आपत्तिजनक नजर डालना भी झगड़े का कारण बन सकता है और समूह में झड़पें हो सकती हैं, जो मौतों में परिणत हो सकती हैं। ऐसे मामलों में बदला, लालच, ईर्ष्या या संदेह जैसे सामान्य उद्देश्य पूरी तरह से अनुपस्थित हो सकते हैं। हो सकता है कोई इरादा न हो. हो सकता है कोई पूर्व ध्यान न हो. वास्तव में, वहाँ आपराधिकता भी नहीं हो सकती है। स्पेक्ट्रम के दूसरे छोर पर, हत्या के ऐसे

मामले भी हो सकते हैं जहां आरोपी यह मामला पेश करके हत्या के लिए दंड से बचने का प्रयास करता है कि उसका मौत का कारण बनने का कोई इरादा नहीं था। यह सुनिश्चित करना अदालतों का काम है कि धारा 302 के तहत दंडनीय हत्या के मामलों को धारा 304 भाग I/II के तहत दंडनीय अपराधों में परिवर्तित नहीं किया जाता है, या गैर इरादतन हत्या के मामलों को धारा 302 के तहत दंडनीय हत्या के रूप में नहीं माना जाता है। मृत्यु का कारण बनने का इरादा आम तौर पर निम्नलिखित में से कुछ या कई के संयोजन से इकट्ठा किया जा सकता है, अन्य बातों के अलावा, परिस्थितियाँ: (i) प्रयुक्त हथियार की प्रकृति; (ii) क्या हथियार आरोपी द्वारा ले जाया गया था या घटनास्थल से उठाया गया था;

(iii) क्या झटका शरीर के किसी महत्वपूर्ण हिस्से को निशाना बनाकर किया गया है; (iv) चोट पहुंचाने में लगाए गए बल की मात्रा; (v) क्या यह कृत्य अचानक झगड़े या अचानक लड़ाई के दौरान था या सभी के लिए मुफ़्त लड़ाई के दौरान था; (vi) क्या घटना संयोगवश घटित हुई है या क्या कोई पूर्व-ध्यान किया गया था; (vii) क्या कोई पूर्व दुश्मनी थी या क्या मृतक कोई अजनबी था; (viii) क्या कोई गंभीर और अचानक उकसावा था, और यदि हां, तो ऐसे उकसावे का कारण; (ix) क्या यह जोश की गर्मी में था; (x) क्या चोट पहुंचाने वाले व्यक्ति ने अनुचित लाभ उठाया है या क्रूर और असामान्य तरीके से कार्य किया है; (xi) क्या आरोपी ने एक ही वार किया या कई वार किए। निस्संदेह, परिस्थितियों की उपरोक्त सूची संपूर्ण नहीं है और व्यक्तिगत मामलों के संदर्भ में कई अन्य विशेष परिस्थितियाँ भी हो सकती हैं जो इरादे के सवाल पर प्रकाश डाल सकती हैं। जैसा हो सकता है वैसा रहने दें।"

47. न्यायालय को इस प्रश्न का निर्धारण करते समय कि यह गैर इरादतन हत्या है या हत्या, आईपीसी की धारा 299 और 300 में प्रयुक्त मुख्य शब्दों को ध्यान में रखना होगा। यह मृत्यु की संभावना की डिग्री है जो यह निर्धारित करती है कि कोई मामला 'हत्या' या 'गैरइरादतन हत्या' के दायरे में आएगा या नहीं। लेकिन जब यह सवाल होता है कि क्या कोई विशेष अपराध 'गैर इरादतन हत्या' के भाग-1 या भाग-II के दायरे में आएगा, तो अदालत आईपीसी की धारा 304 में उल्लिखित दो महत्वपूर्ण तत्वों पहला तत्व है इरादा और दूसरा है ज्ञान पर गौर करेगी। जब कोई ऐसा मामला होता है जिसमें यह जानते हुए

भी कि इस कार्य से मृत्यु होने की संभावना है, मृत्यु कारित करने का इरादा शामिल है तो आरोपी को आईपीसी की धारा 304 के पहले भाग के तहत दोषी ठहराया जाएगा। लेकिन यदि मृत्यु कारित करने के इरादे का तत्व गायब है और कार्य पूरा हो गया है यह जानते हुए कि इससे व्यक्ति की मृत्यु होने की संभावना है, तो ऐसी स्थिति में आरोपी को आईपीसी की धारा 304 के भाग II के तहत दंडित किया जाएगा।.

48. उपरोक्त निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून को लागू करते हुए, यह विचार करना आवश्यक है कि क्या मामला आईपीसी की धारा 302 या किसी अन्य छोटे अपराध के तहत आएगा। पी.डब्ल्यू.1 और पी.डब्ल्यू. 2, जो शुरू से ही घटना के चश्मदीद गवाह हैं, ने बताया कि जब मृतक पक्षों के बीच विवाद में जमीन पर गौशाला की दीवार को ऊंचा कर रहा था, अपीलकर्ता लाठियां लेकर वहां आए और मृतक को जमीन होने का दावा करते हुए काम बंद करने के लिए कहा। उनकी खुद की पट्टे की जमीन थी जिस पर मृतक ने आपत्ति जताई थी, इसी को लेकर गरमा-गरम बातचीत हुई थी। अपीलकर्ताओं ने मृतक पर लाठियों से हमला किया, जिसने भागने की कोशिश की तो अपीलकर्ताओं ने उसे फिर से घेर लिया और पीटा, जिसके परिणामस्वरूप मृतक जमीन पर गिर गया और उसकी मृत्यु हो गई। पी.डब्लू. 3 चिबिली, राजमिस्त्री ने अपनी जिरह में इस संबंध में विस्तृत विवरण दिया और कहा कि अपीलकर्ता लालजी ने मृतक पर हमला किया और जब मृतक ने भागने की कोशिश की, तो लालजी ने उसका पीछा किया और चार बार लाठी से हमला किया। मृतक के शरीर पर चोटें, सिर पर कटे हुए घाव और हाथ पर खरोंच के निशान थे। डॉक्टर की राय में चोट नं. 1, 2 और 3 महत्वपूर्ण भागों पर थे और परिणामस्वरूप चोट नं. 2, के कारण मरीज कोमा में चला जाता और उसकी मृत्यु हो जाती।

49. इस मामले में, जैसा कि ऊपर देखा गया, अपीलकर्ता लालजी लाठी, एक कुंद हथियार से लैस था। दोनों पक्षों के बीच पहले से कोई दुश्मनी नहीं थी। गौशाला की जमीन को लेकर विवाद था, जिस पर दोनों दावा कर रहे थे। मृतक दीवारों को ऊंचा कर रहा था जिसे आरोपी अपीलकर्ता ने रोका था और इस मुद्दे पर मौखिक विवाद हुआ था। मौखिक विवाद के दौरान, अपीलकर्ता ने मृतक के सिर पर लाठी से हमला कर दिया। मृतक ने भागने की कोशिश की, अपीलकर्ता ने फिर से उस पर हमला किया लेकिन लाठियों से वार सिर या छाती पर नहीं, बल्कि हाथों पर किया गया। परिस्थितियों से पता चलता है कि अपीलकर्ता के मन में मृतक की मृत्यु या ऐसी शारीरिक चोट पहुँचाने का कोई पूर्वचिन्तन नहीं था जिससे उसकी मृत्यु होने की संभावना हो। मौखिक विवाद के कारण, क्षण भर में, उसने मृतक के सिर पर लाठियों से हमला किया और फिर उसके हाथों पर अन्य लाठियों से वार किया। सिर पर लाठी मारने का मतलब यह माना जा सकता है कि उसे इस बात की जानकारी थी कि चोट लगने से मृत्यु होने की संभावना है, लेकिन ऐसा करने का इरादा ऐसी शारीरिक चोट पहुंचाने का नहीं था जिससे मृत्यु होने की संभावना हो। अपीलकर्ता का इरादा केवल मृतक को गौशाला की दीवार पर आगे निर्माण करने से रोकना प्रतीत होता है। इस प्रकार, अपीलकर्ता की ओर से इरादे का अभाव प्रतीत होता है, लेकिन यह केवल ज्ञान के साथ था कि चोट लगने से मृत्यु होने की संभावना है

जो आईपीसी की धारा 304 भाग- II के दायरे में आएगा।

50. इस प्रकार, हम मानते हैं कि अपीलकर्ता लालजी आईपीसी की धारा 302 के स्थान पर धारा 304 भाग-2 आईपीसी के तहत दोषी है। अपीलकर्ता की उम्र लगभग 75 वर्ष है, घटना वर्ष 1991 में हुई थी और वह 04.03.2021 से जेल में है, इसलिए, न्याय की पूर्ति के लिए, हम अपीलकर्ता की सजा कम करना चाहेंगे। आजीवन कारावास के स्थान पर तीन वर्ष कठोर कारावास में परिवर्तित किया जाता है।

51. अपीलकर्ताओं श्यामजी और प्यारे को संदेह का लाभ देते हुए उनके खिलाफ लगाए गए आरोपों से बरी कर दिया गया है। उनकी दोषसिद्धि और सजा को रद्द किया जाता है। वे जेल में हैं, इसलिए यदि किसी अन्य मामले में वांछित न हो तो उन्हें तत्काल जेल से रिहा किया जाए।

52. उपरोक्त सीमा तक विद्वान सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 26.02.1997 को इसके द्वारा संशोधित किया गया है।

53. तदनुसार, इस अपील को आंशिक रूप से अनुमति है।

54. इस निर्णय की प्रतिलिपि निचली न्यायालय के मूल अभिलेख के साथ आवश्यक अनुपालन के लिए संबंधित न्यायालय को प्रेषित की जाएगी। एक माह के भीतर इस न्यायालय को अनुपालन रिपोर्ट भेजी जाये। कार्यालय को अनुपालन रिपोर्ट अभिलेख में रखने का निर्देश दिया गया है।

(2023) 3 ILRA 1293

मूल अधिकार क्षेत्र

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 13.03.2023

के समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला

रिट ए संख्या 13156/2020

महेंद्र पाल एवं अन्य . ..याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य . ..प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता: नील कमल मिश्रा, दीपक सिंह, नितेश कुमार, प्रमोद कुमार यादव, राजीव नारायण पांडे

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: सी.एस.सी., अजय कुमार

A. सेवा/शिक्षा कानून - भर्ती - आरक्षण - उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा अधिनियम, 1972: धारा 19(1), 19(2)(a) और (c); उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा (शिक्षक) सेवा नियम, 1981: नियम 9; उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा (शिक्षक) सेवा (20वां संशोधन) नियम, 2017: नियम 2(w), 14, 14(3), 14(3)(b); उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा (शिक्षक) नियम, 1981 के 20वें संशोधन का परिशिष्ट-1; बच्चों के लिए मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009: धारा 23(1); राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद अधिनियम, 1993; उत्तर प्रदेश लोक सेवा (अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण) अधिनियम, 1994: धारा 3(6) - **यदि किसी उम्मीदवार को अपनी योग्यता के आधार पर प्रवेश पाने का पात्र है, तो उस प्रवेश को अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति या किसी अन्य आरक्षित श्रेणी के लिए आरक्षित कोटे में नहीं गिना जाना चाहिए, क्योंकि यह संविधान**

के अनुच्छेद 16(4) में निर्धारित प्रावधान के विरुद्ध होगा। (पैराग्राफ 111)

केवल इतना ही पर्याप्त नहीं है कि टीईटी में पास मार्क्स में कुछ छूट दी गई, इससे आरक्षित श्रेणी के उम्मीदवार को कोई लाभ नहीं मिला, क्योंकि यह केवल उन्हें चयन प्रक्रिया में भाग लेने की अनुमति देती है। (पैराग्राफ 126)

टीईटी में दी गई छूट, ताकि एक उम्मीदवार को ओपन प्रतियोगिता में भाग लेने के लिए योग्य बनाया जा सके, जैसे कि एटीआरई-2019, किसी आरक्षित श्रेणी के उम्मीदवार को ओपन प्रतियोगिता के विचार क्षेत्र से बाहर नहीं करेगी, यदि वह ओपन श्रेणी में अंतिम सामान्य श्रेणी के उम्मीदवार से अधिक अंक प्राप्त कर लेता है क्योंकि उस समय प्रतियोगिता प्रारंभ नहीं हुई थी। हालांकि, यदि कोई उम्मीदवार एटीआरई-2019 में पासिंग मार्क्स में छूट मांगता है, तो स्पष्ट है कि उसे एक मेरिट वाले आरक्षित श्रेणी के उम्मीदवार के रूप में नहीं माना जाएगा क्योंकि न केवल प्रतियोगिता शुरू हो चुकी है, बल्कि यह छूट आरक्षण का अर्थ भी होगा। (पैराग्राफ 151)

कोई भी आरक्षित श्रेणी का उम्मीदवार, जिसने 65% अंक या उससे अधिक प्राप्त किया है, उसे मेरिट वाला आरक्षित श्रेणी का उम्मीदवार माना जा सकता है और उसे सामान्य श्रेणी के उम्मीदवार के साथ प्रतियोगिता करने की अनुमति दी जाएगी और ओपन श्रेणी में आगे बढ़ने दिया जाएगा, जबकि एक आरक्षित श्रेणी के उम्मीदवार, जिसने एटीआरई-2019 में 65% से कम और 60% से अधिक अंक प्राप्त किए हैं, उसे अपनी-अपनी श्रेणी में माना जाएगा और उसे सामान्य श्रेणी के उम्मीदवारों के साथ विचार क्षेत्र में आगे बढ़ने की अनुमति नहीं दी जाएगी। उपरोक्त प्रस्ताव को इस प्रकार समझा जा सकता है:

(i) कोई भी उम्मीदवार जो आरक्षित श्रेणी से संबंधित है, जिसने एटीआरई-2019 में अंक में छूट का लाभ उठाया है, जिसे एक ओपन प्रतियोगिता माना गया है, उसे चयन सूची तैयार करते समय अपनी श्रेणी से अनारक्षित श्रेणी में स्थानांतरित होने का पात्र नहीं होगा।
(ii) इसके अलावा, उन उम्मीदवारों, चाहे वे आरक्षित हों या अनारक्षित, जिन्होंने एटीआरई-2019 में 65% से अधिक अंक प्राप्त किए हैं, उन्हें ओपन श्रेणी के विचार क्षेत्र में सम्मिलित किया जाएगा और इन उम्मीदवारों की एक चयन सूची गुणवत्ता बिंदुओं के आधार पर अलग से तैयार की जाएगी और इसके अनुसार कुल सीटों का 50% इन उम्मीदवारों द्वारा भरा जाएगा, चाहे वे आरक्षित हों या अनारक्षित श्रेणी से हों।
(iii) शेष 50% को उनके संबंधित आरक्षित श्रेणी के उम्मीदवारों द्वारा भरा जाएगा जैसा कि आरक्षण अधिनियम की धारा 3(1) में परिकल्पित है।
(iv) इसके बाद, यदि कोई हो, तो सरकारी आदेश में प्रदान किए गए क्षैतिज आरक्षण को उचित रूप से लागू किया जाएगा। (पैराग्राफ 152)

B. MRC उम्मीदवारों को प्राथमिकता के अनुसार जिलों का आवंटन - MRC उम्मीदवारों को इस उद्देश्य के लिए केवल "कल्पनात्मक" रूप से आरक्षित श्रेणी के उम्मीदवारों के रूप में माना जाता है और वे आरक्षित श्रेणी के लिए निर्धारित सीट का विकल्प चुन सकते हैं, ताकि उन्हें कम

मेरिट वाले आरक्षित श्रेणी के उम्मीदवारों के विरुद्ध नुकसान न हो। ऐसे MRC को केवल सामान्य श्रेणी का हिस्सा माना जाएगा। इसके अतिरिक्त, MRC के विकल्प के कारण, एक आरक्षित श्रेणी की सीट भरी गई है, और सामान्य श्रेणी के उम्मीदवारों के लिए उपलब्ध विकल्पों में से एक सीट खाली रहती है। परिणामस्वरूप, एक कम रैंक वाला आरक्षित श्रेणी का उम्मीदवार, जिसने आरक्षित श्रेणी में विकल्प चुने थे, प्रभावित होता है क्योंकि उसे अब कोई विकल्प नहीं मिलता है और इसलिए स्थिति को सुधारने के लिए, यानी प्रभावित उम्मीदवार को उपाय प्रदान करने के लिए, वह सीट जो MRC को आवंटित की जाती, यदि वह उस आरक्षित श्रेणी की सीट के लिए विकल्प नहीं चुनता, जिस पर वह है, अब उस उम्मीदवार द्वारा भरी जाएगी जो आरक्षित श्रेणी की सूची में है और MRC के विकल्प के कारण नुकसान उठाता है, जिससे आरक्षण का प्रतिशत 50% स्थिर रहेगा। (पैराग्राफ 153)

C. शब्द और वाक्यांश - 'प्रतियोगिता' - 'ओपन प्रतियोगिता' - 'प्रतियोगिता' और 'ओपन प्रतियोगिता' की परिभाषा आरक्षण अधिनियम के तहत नहीं दी गई है। कैम्ब्रिज डिक्शनरी में "प्रतियोगिता" को इस तरह से परिभाषित किया गया है कि "यह एक संगठित कार्यक्रम है जिसमें लोग सबसे अच्छे, सबसे तेज, आदि बनकर पुरस्कार जीतने का प्रयास करते हैं। इसी तरह, एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका ने "प्रतियोगिता" को इस तरह परिभाषित किया है कि यह किसी चीज (जैसे पुरस्कार या उच्च स्तर की सफलता) को प्राप्त करने या जीतने का प्रयास करने की क्रिया या प्रक्रिया है, जिसे कोई और भी प्राप्त करने या जीतने का प्रयास कर रहा है। इसलिए, **सामान्य शब्दावली में, प्रतियोगिता का अर्थ एक ऐसा कार्यक्रम या प्रक्रिया है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति सबसे अच्छा बनकर जीतने की कोशिश कर रहा है। इसलिए, एक ओपन प्रतियोगिता जिसे संदर्भ के अनुसार समझा जा सकता है, वह प्रतियोगिता है जो सभी के लिए खुली है, जिसमें प्रतिभागी सबसे अच्छा बनकर जीतने का प्रयास कर रहे हैं और इस प्रक्रिया में प्रतिभागियों ने कोई छूट या विशेषाधिकार नहीं लिया है।** इसलिए, इस ओपन प्रतियोगिता में, बाकी से सबसे अच्छा चुना जाता है। उन सभी पर लागू होने वाले पैरामीटर समान और समान हैं और उन्हें मेरिट के एक ही पैमाने पर आंका जाता है और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इस ओपन प्रतियोगिता में "स्तरीय खेल का मैदान" प्रदान किया जाता है। (पैराग्राफ 102)

वाद के विशिष्ट तथ्यों में और समता को संतुलित करने के लिए, यह न्यायालय अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए अनुच्छेद 226 के तहत निर्देशित करता है कि जब तक प्रतिवादी संशोधित सूची तैयार नहीं करते, तब तक विभिन्न जिलों में सहायक शिक्षकों के रूप में पहले से नियुक्त उम्मीदवार अपने पद पर काम करते रहेंगे और उन्हें परीक्षा काल और शिक्षा सत्र के अंत को ध्यान में रखते हुए परेशान नहीं किया जाएगा। उन शिक्षकों की नियुक्ति, जो संशोधित सूची में कोई स्थान नहीं पाते हैं जैसा कि ऊपर निर्देशित किया गया है और जिन्हें 01.06.2020 की चयन सूची के अनुसार नियुक्त किया गया था, पूरी तरह से आकस्मिक थी और इससे उन्हें कोई अधिकार नहीं मिलता। यह निर्देश 7 दिसंबर 2020 के अंतरिम आदेश के अनुरूप है, जिसमे न्यायालय ने प्रभावित लोगों को नोटिस जारी करते हुए यह निर्देश दिया कि इस बीच, सहायक

शिक्षक के पद पर की गई नियुक्तियाँ इन याचिकाओं के अंतिम निर्णय के अधीन होंगी। (पैरा 155)

चूंकि यह निर्देश दिया गया है कि 01.06.2020 की चयन सूची को इस फैसले में की गई टिप्पणियों के आलोक में संशोधित किया जाए, दिनांक 05.01.2022 की 6800 की चयन सूची निरस्त की जाती है। किसी भी स्थिति में आरक्षण कुल सीटों का 50% से ज्यादा नहीं होना चाहिए। (पैरा 158, 159)

याचिकाएँ निस्तारित। (E-4)

विधि व्यवस्था अनुसरित:

1. इंद्रा साहनी बनाम भारत संघ, 1992 सप्लीमेंट (3) SCC 217; AIR 1993 SC 477 (पैरा 6, 111)
2. आर.के. सभरवाल बनाम पंजाब राज्य, (1995) 2 SCC 745 (पैरा 112)
3. तेजपाल यादव बनाम भारत सरकार, 174 (2010) DLT 510 (DB) (पैरा 116)
4. अनिल कुमार गुप्ता, (1995) 5 SCC 173 (पैरा 119)
5. जितेंद्र कुमार सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, (2010) 3 SCC 119 (पैरा 122)
6. विकास संखला बनाम विकास कुमार अग्रवाल, (2017) 1 SCC 350 (पैरा 125)
7. गौरव प्रधान बनाम राजस्थान राज्य, (2018) 11 SCC 352 (पैरा 128)
8. दीप ई.वी. बनाम भारत सरकार, (2017) 12 SCC 680 (पैरा 130)
9. सौरव कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2021) 4 SCC 542 (पैरा 135)
10. निरवकुमार दिलीपभाई मकवाना बनाम गुजरात पब्लिक सर्विस कमीशन, (2019) 7 SCC 383 (पैरा 137)
11. भारत सरकार बनाम रमेश राम एवं अन्य, (2010) 7 SCC 234 (पैरा 139)
12. त्रिपुरारी शरण बनाम रंजीत कुमार यादव, (2018) 7 SCC 656 (पैरा 142)
13. भारत सरकार बनाम ईश्वर सिंह खत्री, (1992) सप्लीमेंट 3 SCC 84 (पैरा 146)
14. गुजरात राज्य उप कार्यकारी इंजीनियर्स एसोसिएशन बनाम गुजरात राज्य, (1994) सप्लीमेंट 2 SCC 591 (पैरा 146)
15. बिहार राज्य बनाम सचिवालय सहायक एस.ई. संघ, AIR 1994 SC 736 (पैरा 146)
16. प्रेम सिंह बनाम हरियाणा राज्य विद्युत बोर्ड, (1996) 4 SCC 319 (पैरा 146)
17. अशोक कुमार बनाम बैंकिंग सेवा भर्ती बोर्ड के अध्यक्ष, AIR 1996 SC 976 (पैरा 146)
18. सुरिंदर सिंह एवं अन्य बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य, AIR 1998 SC 18 (पैरा 148)
19. होशियार सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (1993) सप्लीमेंट (4) SCC 377 (पैरा 149)
20. अरूप दास एवं अन्य बनाम असम राज्य, (2012) 5 SCC 559 (पैरा 149)
21. राम शरण मौर्य एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, (2020) SCC ऑनलाइन 939 (पैरा 27)
22. उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम आनंद कुमार यादव एवं अन्य, (2018) 13 SCC 560 (पैरा 27)
23. सूबेदार सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, SLP No. 6687/2020 (पैरा 70)

24. उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम आनंद कुमार यादव एवं अन्य, (2018) 13 SCC 560 (पैरा 91)
25. रितेश आर. शाह बनाम डॉ. वाई.एल. यामुल एवं अन्य, (1996) 3 SCC 253 (पैरा 111)

विधि व्यवस्था प्रतिष्ठित:
दिल्ली (एनसीटी) राज्य बनाम प्रदीप कुमार, (2019) 10 SCC 120 (पैरा 134)

(माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला, द्वारा प्रदत्त।)

अनुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ संख्या
A. परिचय	
B. भर्ती कानून, नियम और संशोधन	
C. आरक्षण कानून, नियम और संशोधन	
D. सहायक शिक्षक भर्ती परीक्षा-2019	
E. रिट याचिकाओं की श्रेणियां	
F. अंतरिम आदेश	
G. पक्षकारों के अभिकथन	
H. विश्लेषण और निष्कर्ष	
I. वरीयता जिलों के आवंटन का मामला	
J. 6800 की चयन सूची दिनांकित 05.01.2022	
K. निष्कर्ष	

A. परिचय

1. आरक्षण सकारात्मक कार्रवाई का एक रूप है जो किसी वंचित समूह को शिक्षा, रोजगार, सरकारी योजनाओं, छात्रवृत्ति और राजनीति में पूर्व निर्धारित प्रतिनिधित्व प्रदान करता है। भारत में आरक्षण की व्यवस्था आजादी से पहले भी विद्यमान थी। आजादी के बाद आरक्षण की व्यवस्था हमारे संविधान में आत्मसात हो गई। प्रारंभ में इसे भारत के संविधान के अनुच्छेद 334 के अनुसार 10 वर्षों की अवधि के लिए आरंभ किया गया था। 10 वर्ष की अवधि के बाद, संसद ने समाज के कतिपय वर्गों के कई वर्षों के सामाजिक और सांस्कृतिक भेदभाव से उबरने के लिए आरक्षण की व्यवस्था को जारी रखने की आवश्यकता महसूस की और इस तरह यह आजादी के 75 वर्ष बाद भी अस्तित्व में है।

2. हमारे संविधान के अन्तर्गत, आरक्षण सभी सामाजिक समूहों द्वारा राज्य की शक्ति का साझा किया जाना इंगित नहीं करता, बल्कि यह उन कमजोर और वंचित समूहों के मुख्य धारा में समावेश को संदर्भित करता है, जो विभिन्न कारणों से सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से पिछड़े थे। इस प्रकार, हमारे संविधान में आरक्षण का अर्थ ऐसे वंचितों के उत्थान के लिए एक समावेशी उपाय है और अनिवार्य रूप से इसकी प्रकृति सहभागिता वाली है, ताकि पिछड़े वर्गों को न केवल मुख्य-धारा के बराबर लाया जा सके, बल्कि वे भी हमारे देश के विकास, प्रशासन, प्रगति और उपलब्धि में सक्रिय भूमिका निभा सकें।

3. जहाँ हमारे संविधान का अनुच्छेद 15 शिक्षा संस्थानों में आरक्षण से संबंधित है, वहीं अनुच्छेद 16 सार्वजनिक रोजगार में आरक्षण से संबंधित है। दिलचस्प बात यह है कि दोनों अनुच्छेदों में प्रयुक्त शब्द"पिछड़ा" अत्यंत महत्वपूर्ण है और यही वह शब्द है, जो तब से विवाद के केंद्र में रहा है जब से यह अनुच्छेद अस्तित्व में आया है। हालाँकि, डॉ. बी.आर. अम्बेडकर की अध्यक्षता वाली प्रारूप समिति ने

ही हमारे संविधान के अनुच्छेद 16 (4) में वर्णित "किसी के पक्ष में" और "नागरिकों के वर्ग" शब्दों के बीच में "पिछड़ा" शब्द अन्तःस्थापित किया था और अंततः यह निर्धारित करना संबंधित राज्यों पर छोड़ दिया गया कि किसे पिछड़ा कहा जा सकता है। हालाँकि, "पिछड़ा" शब्द का अर्थ, जैसा कि वर्तमान प्रगतिशील भारत में समझा जाना चाहिए, श्री केएम मुंशी के स्पष्टीकरण से समझा जा सकता है, जो हमारे संविधान की प्रारूप समिति के सदस्य थे। हमारे संविधान के अनुच्छेद 16 (जो मूल रूप से अनुच्छेद 10 के रूप में पेश किया गया था) से संबंधित संविधान सभा में एक बहस में,"पिछड़ा" शब्द अन्तःस्थापित किए जाने संबंधी चर्चा के दौरान इसका संविधान सभा के सदस्यों द्वारा यह कहकर विरोध किया गया कि उक्त शब्द अस्पष्ट है, उस समय श्री केएम मुंशी ने 'पिछड़ा' शब्द की अन्तर्वस्तु को निम्नलिखित शब्दों में समझाया:

"हम इस प्रावधान से दो लक्ष्य अनुरक्षित करना चाहते हैं। पहले खंड में मौलिक अधिकार में हम राज्य की सेवाओं में उच्चतम दक्षता प्राप्त करना चाहते हैं - उच्चतम दक्षता जो सेवाओं को प्रभावी ढंग से और शीघ्रता से कार्य करने में सक्षम बनाएगी। साथ ही, हमारे देश में कई प्रांतों की प्रचलित स्थिति को देखते हुए, हम यह भी चाहते हैं कि पिछड़ा वर्ग, वह वर्ग जो वास्तव में पिछड़ा हुआ है, को राज्य सेवाओं में जगह दी जानी चाहिए क्योंकि यह महसूस किया जाता है कि राज्य सेवाएं देश की सेवा करने की प्रास्थिति और अवसर प्रदान करती हैं, और यह अवसर हर समुदाय को दिया जाना चाहिए, यहाँ तक कि पिछड़े लोगों के बीच भी। ऐसा होने के कारण, हमें कोई प्रतिनिधिक शब्द खोजना होगा और "पिछड़ा वर्ग" शब्द सबसे अच्छा संभव शब्द था।"

श्री मुंशी ने आगे कहा:

मैं बता सकता हूं कि पिछले कई वर्षों से बंबई प्रांत में पिछड़े वर्गों की एक परिभाषा रही है, जिसमें न केवल अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति बल्कि अन्य पिछड़े वर्ग भी शामिल हैं जो आर्थिक, शैक्षिक और सामाजिक रूप से पिछड़े हैं। इसलिए, हमें "पिछड़े" शब्द के दायरे को किसी विशेष समुदाय तक के लिए परिभाषित या सीमित करने की आवश्यकता नहीं है। जो भी पिछड़ा होगा वह इसमें आ जाएगा और मुझे लगता है कि माननीय सदस्यों की आशंकाएं उचित नहीं हैं।

4. 'आर्थिक कसौटी' के आधार पर दिया गया आरक्षण एक ऐसा कदम है, जिसमें गरीबी को ऐसी अधीनता के रूप में देखा जाता है जो 'सामाजिक पिछड़ेपन' को दर्शाता है। जैसा भी हो, बड़ी बहस हमेशा बनी रहेगी कि क्या यह आरक्षण कहानी का अंत होना चाहिए या सरकार को कल्याणकारी नीतियों से परे अन्य उपचारात्मक कार्रवाई करने की आवश्यकता है। हालाँकि, इस न्यायालय के विचार में, आरक्षण को समस्या के अंत के रूप में नहीं बल्कि हमारी प्रस्तावना में निहित सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय को सुरक्षित करने के साधन के रूप में देखा जाना चाहिए।

5. जैसा कि हाल ही में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग को 10% ईडब्ल्यूएस कोटा प्रदान करने की संवैधानिकता को बरकरार रखते हुए धारित किया गया, जो निम्नानुसार है:

"आरक्षण एक साध्य नहीं है बल्कि सामाजिक और आर्थिक न्याय को सुरक्षित करने का एक साधन है। आरक्षण को निहित स्वार्थ बनने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। जबकि वास्तविक समाधान उन कारणों को खत्म करने में निहित है जिससे समुदाय के कमजोर वर्ग सामाजिक, शैक्षिक और आर्थिक रूप से पिछड़ गए हैं।"

माननीय न्यायमूर्ति पी.बी. पारदीवाला, जो हाल ही में 7 दिसंबर, 2022 को भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा "जनहित अभियान बनाम भारत संघ" मामले में 10% ईडब्ल्यूएस कोटा को बरकरार रखने वाले निर्णय में बहुमत विचार के साथ थे।

6. इंद्रा साहनी, एआईआर 1993 एससी 477 के मामले में संवैधानिक पीठ के निर्णय में दिए गए अभिमत से यह स्पष्ट हो जाता है कि आरक्षण के पीछे का उद्देश्य राज्य शक्ति में सहभागिता थी। उक्त निर्णय में कहा गया है कि राज्य की शक्ति जो विशेष रूप से लगभग ऊंची जातियों यानी कुछ समुदायों के एकाधिकार में थी, को अब व्यापक आधार देने का प्रयास किया गया था, जिसमें पिछड़े समुदायों को, जिन्हें अब तक सत्ता तंत्र से बाहर रखा गया था, उसमें शामिल किए जाने का प्रयास किया गया और चूंकि यह सामान्य प्रक्रिया में व्यावहारिक नहीं था, इसलिए उक्त उद्देश्य को पूरा करने के लिए एक विशेष प्रावधान किया गया। संक्षेप में, अनुच्छेद 16 (4) के पीछे का उद्देश्य वंचित पिछड़े समुदायों को प्रशासनिक तंत्र और समुदाय के शासन में सहभाग देने के लिए उन्हें सशक्त बनाना था।

7. वर्तमान वाद समूह राज्य सरकार द्वारा संचालित प्राथमिक विद्यालयों में सहायक अध्यापकों की भर्ती में आरक्षण नीति के कार्यान्वयन में सूक्ष्म विचलन से संबंधित विवाद से उपजा है, जिसमें मूल मुद्दा मेधावी आरक्षित वर्ग (MRC) के सामान्य श्रेणी में समायोजन और इसका आरक्षित एवं अनारक्षित दोनों श्रेणियों पर पड़ने वाला प्रभाव है। इससे पहले कि यह न्यायालय वर्तमान मामलों में तथ्यों और मुद्दों पर विचार करे,उत्तर प्रदेश राज्य की आरक्षण नीति को दृष्टिगत रखते हुए प्राथमिक विद्यालयों में सहायक शिक्षकों की भर्ती प्रक्रिया से संबंधित कानून का अवलोकन लाभप्रद होगा।

B. <u>भर्ती कानून, नियम एवं संशोधन</u>

8. उ.प्र. बेसिक शिक्षा अधिनियम,1972 (एतस्मिनपश्चात "**अधिनियम**" के रूप में संदर्भित) उत्तर प्रदेश राज्य में बेसिक शिक्षा से संबंधित प्राथमिक कानून है। अधिनियम की धारा 19 (1) राज्य को अधिनियम के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए नियम बनाने का अधिकार देती है और अधिनियम की धारा 19 (2) (क) और (ग) राज्य को शिक्षकों के पद पर नियुक्त व्यक्तियों की भर्ती और सेवा शर्तों से संबंधित नियम बनाने का अधिकार देती है। इस प्रकार, राज्य ने उ.प्र. बेसिक शिक्षा (शिक्षक) सेवा नियमावली, 1981 (एतस्मिनपश्चात "**नियमावली**" के रूप में संदर्भित) के माध्यम से राज्य सरकार द्वारा संचालित प्राथमिक विद्यालय में सहायक शिक्षकों की भर्ती के लिए नियम बनाए, जिसमें उक्त नियमावली के नियम 8 में परिषद के सहायक अध्यापकों की नियुक्ति के लिए अपेक्षित न्यूनतम योग्यता विहित की गयी है।

9. अधिनियम और उसमें बनाए गए नियमों के विभिन्न विवरणों से हटकर, इस न्यायालय ने इस याचिका समूह में रिट याचिकाकर्ताओं द्वारा उठाए गए मुद्दे को ध्यान में रखते हुए पाया कि राज्य सरकार ने उ.प्र. बेसिक (शिक्षक) सेवा (20वां संशोधन) नियमावली, 2017 अधिसूचित किया। जिसके द्वारा 1981 की नियमावली को 09.11.2017 को संशोधित किया गया और निम्नलिखित पदों को नियम 2 में निम्नानुसार परिभाषित किया गया:

"(ज) "शिक्षक पात्रता परीक्षा" का अर्थ है सरकार द्वारा या भारत सरकार द्वारा संचालित शिक्षक पात्रता परीक्षा;

(झ) "शिक्षक पात्रता परीक्षा में अर्हकारी अंक" :- शिक्षक पात्रता परीक्षा में अर्हकारी अंक ऐसे होंगे जो समय-समय पर राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद, नई दिल्ली द्वारा निर्धारित किए जाएं;

(ञ) "प्रशिक्षु शिक्षक" का अर्थ है वह अभ्यर्थी जिसने बी.एड./बी.एड (विशेष शिक्षा)/डी.एड. (विशेष शिक्षा) पास किया हो और शिक्षक पात्रता परीक्षा भी उत्तीर्ण की है और तत्पश्चात् राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद (एनसीटीई) द्वारा मान्यता प्राप्त प्रारंभिक शिक्षा में छह महीने का विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रम सफलतापूर्वक पूरा करने के बाद जूनियर बेसिक स्कूल में सहायक शिक्षक के रूप में नियुक्ति के लिए चयनित किया गया है;

(ट) "शिक्षा मित्र" का तात्पर्य उत्तर प्रदेश में निःशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार नियमावली, 2011 के लागू होने से पूर्व शासनादेशों के अन्तर्गत बेसिक शिक्षा परिषद् द्वारा चलाये जा रहे जूनियर प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत व्यक्ति से है;

या ऐसा व्यक्ति जो शिक्षा मित्र रहा है और बेसिक शिक्षा परिषद द्वारा संचालित जूनियर बेसिक स्कूलों में सहायक शिक्षक के रूप में नियुक्त किया गया हो और एसएलपी संख्या 32599/2015 उ.प्र. राज्य एवं अन्य बनाम आनंद कुमार यादव एवं अन्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के अनुसरण में शिक्षा मित्र के रूप में कार्य करने के लिये प्रत्यावर्तित किया गया है।

(ठ) "सहायक शिक्षक भर्ती परीक्षा" का तात्पर्य बेसिक शिक्षा परिषद द्वारा संचालित जूनियर बेसिक विद्यालयों में किसी व्यक्ति की भर्ती के लिए सरकार द्वारा आयोजित लिखित परीक्षा से है;

(ड) "सहायक शिक्षक भर्ती परीक्षा के अर्हक अंक" का तात्पर्य सरकार द्वारा समय-समय पर निर्धारित न्यूनतम अंकों से है।

(ढ) "सहायक शिक्षक भर्ती परीक्षा के दिशा-निर्देश" का तात्पर्य सरकार द्वारा समय-समय पर प्राविधानित दिशा-निर्देशों से है। "

10. इस प्रकार, एटीआरई (सहायक शिक्षक भर्ती परीक्षा) की अवधारणा 20वें संशोधन की घोषणा से अस्तित्व में आई और नियम 5 (क) (ii) में सहायक शिक्षकों की भर्ती के स्रोत के संबंध में अन्य बातों के साथ-साथ कहा गया कि वह नियम 14 में यथा विहित अनुसार सीधी भर्ती द्वारा होगी। इसके अलावा, नियम 8 (1) सहायक शिक्षकों की वांछित शैक्षणिक योग्यता से संबंधित है, जो निम्नानुसार है:

"8. शैक्षणिक योग्यता- (1) नियम 5 के खंड (क) में निर्दिष्ट पद पर नियुक्ति के लिए

अभ्यर्थियों की अनिवार्य योग्यता प्रत्येक के सामने नीचे दी गई है:

पद	शैक्षणिक योग्यता
(i) नर्सरी स्कूल की अध्यापिका	भारत में विधि द्वारा स्थापित किसी विश्वविद्यालय से स्नातक की डिग्री या सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त समकक्ष डिग्री के साथ-साथ उत्तर प्रदेश के मान्यता प्राप्त प्रशिक्षण संस्थान से शिक्षण का प्रमाण पत्र (नर्सरी) और सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त कोई अन्य समकक्ष प्रशिक्षण पाठ्यक्रम और सरकार या भारत सरकार द्वारा आयोजित शिक्षक पात्रता परीक्षा उत्तीर्ण।
(ii) जूनियर बेसिक स्कूलों के सहायक अध्यापक और सहायक अध्यापिका	ii.(क) भारत में विधि द्वारा स्थापित किसी विश्वविद्यालय से स्नातक की डिग्री या सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त कोई समकक्ष डिग्री, साथ ही साथ सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त किसी भी अन्य प्रशिक्षण पाठ्यक्रम के साथ-साथ बेसिक शिक्षक प्रमाणपत्र (बीटीसी) से युक्त प्रशिक्षण, दो साल का बीटीसी (उर्दू), विशिष्ट बीटीसी, भारत की पुनर्वास परिषद द्वारा अनुमोदित दो साल का डिप्लोमा इन एजुकेशन (स्पेशल एजुकेशन) या प्राथमिक शिक्षा में चार साल की डिग्री (B.El.Ed.), राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद (मान्यता, मानदंड और प्रक्रिया) विनियम के अनुसार दो साल का डिप्लोमा इन एलीमेंट्री एजुकेशन (किसी भी नाम से प्रख्यात) अथवा प्राथमिक शिक्षा में शिक्षकों की भर्ती के लिए राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद द्वारा जोड़ी जाने वाली कोई प्रशिक्षण योग्यता और भारत सरकार द्वारा आयोजित शिक्षक पात्रता परीक्षा उत्तीर्ण और सरकार द्वारा आयोजित सहायक शिक्षक भर्ती परीक्षा उत्तीर्ण। (ख) एक प्रशिक्षु शिक्षक जिसने राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद द्वारा मान्यता प्राप्त प्रारंभिक शिक्षा में छह महीने का विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रम सफलतापूर्वक पूरा किया हो। (ग) एक शिक्षामित्र जिसके पास भारत में कानून द्वारा स्थापित विश्वविद्यालय से स्नातक की डिग्री है या सरकार द्वारा उसके समकक्ष मान्यता प्राप्त डिग्री है और उसने दो साल का दूरस्थ शिक्षा बीटीसी पाठ्यक्रम या

	बेसिक टीचर्स सर्टिफिकेट (बीटीसी), बेसिक टीचर सर्टिफिकेट (बीटीसी) (उर्दू) या राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद द्वारा आयोजित विशिष्ट बीटीसी सफतलतापूर्वक पूरा किया है और भारत सरकार द्वारा आयोजित शिक्षक पात्रता परीक्षा उत्तीर्ण की है और सरकार द्वारा आयोजित सहायक शिक्षक भर्ती परीक्षा उत्तीर्ण की है।
(iii) प्रशिक्षु शिक्षक	(iii) भारत में विधि द्वारा स्थापित विश्वविद्यालय से स्नातक की डिग्री या सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त समकक्ष डिग्री के साथ-साथ बी.एड./बी.एड. (विशेष शिक्षा)/डीएड (विशेष शिक्षा) योग्यता और सरकार या भारत सरकार द्वारा आयोजित शिक्षक पात्रता परीक्षा उत्तीर्ण। हालांकि, बी.एड. (विशेष शिक्षा) / डी.एड. (विशेष शिक्षा) के मामलों में केवल भारतीय पुनर्वास परिषद (आरसीआई) द्वारा मान्यता प्राप्त पाठ्यक्रम पर ही विचार किया जाएगा।

11. इसी प्रकार, उ.प्र. बेसिक (शिक्षक) सेवा (20वां संशोधन) नियमावली, 2017 के नियम 14 का जहाँ तक संबंध है यह रिक्तियों के निर्धारण और सूची तैयार करने से संबंधित है। उक्त नियम में अन्य बातों के साथ-साथ कहा गया है:

"14. रिक्तियों का निर्धारण और सूची तैयार करना

(1) (क) नियम 5 के खण्ड (क) के अधीन नर्सरी विद्यालयों की अध्यापिका एवं जूनियर बेसिक विद्यालयों के सहायक अध्यापक या सहायक अध्यापिका के पद पर सीधी भर्ती द्वारा नियुक्ति के संबंध में नियुक्ति प्राधिकारी रिक्तियों की संख्या निर्धारित करेगा साथ ही नियम 9 के तहत अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़ा वर्ग और अन्य श्रेणियों के अभ्यर्थियों के लिए आरक्षित होने वाली रिक्तियों की संख्या का निर्धारण करेगा और विहित प्रशिक्षण योग्यता एवं सरकार या भारत सरकार द्वारा संपादित शिक्षक पात्रता परीक्षा उत्तीर्ण तथा सरकार द्वारा आयोजित सहायक शिक्षक भर्ती परीक्षा उत्तीर्ण अभ्यर्थियों से आवेदन आमंत्रित करते हुए राज्य व संबंधित जिले में पर्याप्त प्रसार वाले कम से कम दो प्रमुख दैनिक समाचार पत्रों में प्रकाशित करेगा।

(ख) सरकार समय-समय पर ऐसे अभ्यर्थियों को प्रशिक्षु शिक्षक के रूप में नियुक्त करने का निर्णय ले सकती है, जो बी.एड./बी.एड (विशेष शिक्षा)/डी.एड. (विशेष शिक्षा) के साथ स्नातक हैं और जिन्होंने सरकार या भारत सरकार द्वारा आयोजित शिक्षक पात्रता परीक्षा भी उत्तीर्ण की हो। नियुक्ति के बाद इन अभ्यर्थियों को राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद (एनसीटीई) द्वारा मान्यता प्राप्त प्राथमिक शिक्षा में छह महीने के विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रम में भाग लेना होगा। नियुक्ति प्राधिकारी रिक्तियों की संख्या

निर्धारित करेगा और साथ ही साथ नियम 9 के अधीन अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़ा वर्ग और अन्य श्रेणियों के अभ्यर्थियों के लिए आरक्षित की जाने वाली रिक्तियों की संख्या भी निर्धारित करेगा और राज्य व संबंधित जिले में पर्याप्त प्रसार वाले कम से कम दो प्रमुख दैनिक समाचार पत्रों में ऐसे अभ्यर्थियों से आवेदन आमंत्रित करते हुए विज्ञापन जारी करेगा जिन्होंने स्नातक के साथ-साथ बी.एड./बी.एड (विशेष शिक्षा)/डी.एड. (विशेष शिक्षा) किया हो और जिन्होंने सरकार या भारत सरकार द्वारा आयोजित शिक्षक पात्रता परीक्षा भी उत्तीर्ण की हो।

(ग) प्रशिक्षु शिक्षकों को प्रारम्भिक शिक्षा में छः माह के विशेष प्रशिक्षण के सफल समापन का प्रमाण पत्र प्राप्त करने के उपरान्त नियमित वेतनमान में जूनियर बेसिक विद्यालय में सहायक शिक्षक के मौलिक पद पर नियुक्त किया जायेगा। नियुक्ति प्राधिकारी प्रशिक्षु शिक्षकों को उक्त प्रशिक्षण के सफल समापन का प्रमाण पत्र जारी होने के एक माह के भीतर सहायक शिक्षक के रूप में नियुक्त करने के लिए कर्तव्यबद्ध होगा।

(2) नियुक्ति प्राधिकारी नियम 14 के उपनियम (1) के खण्ड (क) या (ख) के अधीन विज्ञापन के अनुसरण में प्राप्त आवेदनों की जांच करेगा और ऐसे व्यक्तियों की सूची तैयार करेगा जो विहित शैक्षणिक योग्यता रखते हों और नियुक्ति के लिए पात्र हों।

(3) (क) नियम 14 के उपनियम (1) के खण्ड (क) के अनुसार उपनियम (2) के अधीन तैयार की गई सूची में अभ्यर्थियों के नाम इस प्रकार व्यवस्थित किये जायेंगे कि अभ्यर्थी परिशिष्ट-I में निर्दिष्ट गुणवत्ता बिंदुओं और भारांक के अनुसार व्यवस्थित हों:

परन्तु यदि दो या दो से अधिक अभ्यर्थी समान अंक प्राप्त करते हैं तो आयु में ज्येष्ठ अभ्यर्थी को ऊपर रखा जायेगा।

(ख) नियम 14 के उपनियम (1) के खण्ड (ख) के अनुसार उपनियम (2) के अधीन तैयार की गई सूची में अभ्यर्थियों के नाम इस प्रकार व्यवस्थित किये जायेंगे कि अभ्यर्थी परिशिष्ट- II में निर्दिष्ट गुणवत्ता बिंदुओं के अनुसार व्यवस्थित हों:

परन्तु यदि दो या दो से अधिक अभ्यर्थी समान अंक प्राप्त करते हैं तो आयु में ज्येष्ठ अभ्यर्थी को ऊपर रखा जायेगा।

(ग) नियम 14 के खण्ड (ग) उपनियम (1) के अनुसार सहायक अध्यापक के पद पर नियुक्ति हेतु तैयार सूची में अभ्यर्थियों के नाम वही होंगे जो नियम 14 के खण्ड (ख) उपनियम (3) के अन्तर्गत तैयार की गयी सूची में होंगे जब तक कि उक्त सूची का अभ्यर्थी अपने पहले प्रयास में प्रारंभिक शिक्षा में छह महीने के विशेष प्रशिक्षण पाठ्यक्रम को सफलतापूर्वक पूरा करने में असमर्थ न हो जाए। यदि अभ्यर्थी अपने द्वितीय एवं अन्तिम प्रयास में छः माह के विशेष प्रशिक्षण को सफलतापूर्वक पूरा कर लेता है तो अभ्यर्थी का नाम उन सभी अभ्यर्थियों के नाम के नीचे रखा जायेगा जिन्होंने अपने प्रथम प्रयास में उक्त छः माह का विशेष प्रशिक्षण पूरा किया हो।

(4) कोई भी व्यक्ति नियुक्ति के लिए तब तक पात्र नहीं होगा जब तक कि उसका नाम उपनियम (2) के अधीन तैयार की गई सूची में सम्मिलित न हो।

(5) उपनियम (2) के अधीन तैयार एवं नियम 14 के उपनियम (3) के खण्ड (क) एवं (ख) के अनुसार व्यवस्थित सूची नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा चयन समिति को अग्रेषित की जायेगी।

12. नियम 14(3)(क) में संदर्भित परिशिष्ट-I और नियम 14(3)(ख) में संदर्भित परिशिष्ट-II 20 वें संशोधन द्वारा यथा संशोधित निम्नवत हैः -

"परिशिष्ट-I"

[नियम 14(3)(क) देखें]

अभ्यर्थियों के चयन के लिए गुणवत्ता अंक और भारांक

परीक्षा / डिग्री का नाम		गुणवत्ता अंक
1	हाई स्कूल	परीक्षा में अंकों का प्रतिशत x10/100
2	उच्चतर माध्यमिक	परीक्षा में अंकों का प्रतिशत x10/100
3	स्नातक डिग्री	परीक्षा में अंकों का प्रतिशत x10/100
4	बीटीसी प्रशिक्षण	परीक्षा में अंकों का प्रतिशत x10/100
5	सहायक शिक्षक भर्ती परीक्षा	परीक्षा में अंकों का प्रतिशत x 60/100
6	बेसिक शिक्षा परिषद द्वारा संचालित जूनियर बेसिक स्कूलों में शिक्षामित्र या शिक्षक के रूप में कार्यरत रहते हुए शिक्षण अनुभव का भारांक।	2.5 अंक प्रति पूर्ण शिक्षण वर्ष, अधिकतम 25 अंक, जो भी कम हो

नोट 1 - यदि दो या दो से अधिक अभ्यर्थियों के समान गुणवत्ता अंक हैं तब आयु में ज्येष्ठ अभ्यर्थी का नाम सूची में ऊपर रखा जायेगा।

2. यदि दो या दो से अधिक अभ्यर्थियों के गुणवत्ता अंक और आयु समान हैं, तो अभ्यर्थी का नाम अंग्रेजी वर्णानुक्रम के अनुसार सूची में रखा जाएगा। "

"परिशिष्ट-II

[नियम 14(3)(बी) देखें]

अभ्यर्थियों के चयन के लिए गुणवत्ता अंक

परीक्षा का नाम/डिग्री		गुणवत्ता अंक
1	हाई स्कूल	अंकों का प्रतिशत/10
2	इण्टरमीडिएट	अंकों का प्रतिशत x 2/10
3	स्नातक डिग्री	अंकों का प्रतिशत x 4/10
4	शिक्षा स्नातक (बी.एड.)/बी.एड. (विशेष शिक्षा)/बी.एड. (विशेष शिक्षा)	अंकों का प्रतिशत x 3/10

नोट -यदि दो या दो से अधिक अभ्यर्थियों के समान गुणवत्ता अंक हैं तो आयु में वरिष्ठ अभ्यर्थी का नाम सूची में ऊपर रखा जायेगा। यदि दो या दो से अधिक अभ्यर्थियों के

समान गुणवत्ता अंक और आयु हैं तबअभ्यर्थी का नाम अंग्रेजी वर्णानुक्रम के अनुसार सूची में रखा जाएगा।"

13. इस प्रकार, नियमों में 20वें संशोधन द्वारा जोड़े गए नियम 2 (झ) के अनुसार, एटीआरई को शुरू किया गया जिसे इस न्यायालय ने एटीआरई-2018 आयोजित करने के आधार के रूप में पाया। आगे, संशोधित नियमों के अनुसार, इसे अर्हक प्रकृति का माना गया और इसके अंकों को चयन के प्रयोजनों के लिए तैयार की गई अंतिम योग्यता सूची में शामिल किया जाना था। इस प्रकार, चयन के लिए एक दो स्तरीय प्रणाली शुरू की गई जिसमें सबसे पहले अभ्यर्थियों को एटीआरई पास करना था और केवल उन्हीं को चयन प्रक्रिया में भाग लेने के लिए अर्ह माना गया जिन्होंने उक्त एटीआरई परीक्षा उत्तीर्ण की थी और उक्त एटीआरई में प्राप्त अंक को अंतिम मेरिट सूची (एटीआरई स्कोर का 60%) तैयार करने के लिए उचित भारांक दिया गया, जिससे अंततः राज्य द्वारा अंतिम चयन किया गया।

14. यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि यद्यपि नियमावली में यह अनिवार्य था कि बेसिक विद्यालयों में सहायक शिक्षक के पद पर नियुक्ति के लिए आवश्यक योग्यता, (i) शिक्षक पात्रता परीक्षा (एतस्मिनपश्चात "टीईटी" के रूप में संदर्भित)उत्तीर्ण होना और (ii) बेसिक एजुकेशन बोर्ड, उ.प्र., इलाहाबाद द्वारा प्रश्नगत चयन के लिए आयोजित एटीआरई परीक्षा उत्तीर्ण करना थीं, फिर भी शिक्षक पात्रता परीक्षा उत्तीर्ण करना केवल अर्हकारी प्रकृति का था क्योंकि उस समय उक्त परीक्षा में प्राप्त अंकों को अंतिम सूची तैयार करने की प्रक्रिया में शामिल नहीं किया गया था। जबकि एटीआरई न केवल अर्हकारी थी बल्कि उक्त परीक्षा में प्राप्त अंकों को भी अंतिम मेरिट सूची तैयार करने में शामिल किया गया था।

15. दिनांक 15.03.2018 को 22वें संशोधन द्वारा, 1981 की नियमावली को संशोधित किया गया जिससे नियम 8 में विहित एटीआरई उत्तीर्ण करने की आवश्यक योग्यता को हटा दिया गया। हालांकि, सहायक शिक्षकों के चयन की प्रक्रिया से संबंधित नियम 14 में आवश्यकता को बरकरार रखा गया था। "जूनियर बेसिक विद्यालय के सहायक अध्यापक और सहायक अध्यापिका" के लिए शैक्षणिक योग्यता से संबंधित नियम 8 (1) का प्रासंगिक भाग 22वें संशोधन के बाद निम्नानुसार था :-

"ii. (क) भारत में विधि द्वारा स्थापित किसी विश्वविद्यालय से स्नातक की डिग्री या सरकार द्वारा समकक्ष मान्यता प्राप्त किसी डिग्री के साथ सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त किसी अन्य समकक्ष प्रशिक्षण पाठ्यक्रम के साथ-साथ बेसिक शिक्षक प्रमाणपत्र(बीटीसी) से युक्त प्रशिक्षण योग्यता ,दो वर्षीय बीटीसी (उर्दू), विशिष्ट बीटीसी, भारतीय पुनर्वास परिषद द्वारा अनुमोदित शिक्षा (विशेष शिक्षा) में दो वर्षीय डिप्लोमा या प्रारंभिक शिक्षा में चार वर्षीय डिग्री (B.El.Ed.), प्राथमिक शिक्षा में शिक्षकों की भर्ती के लिए राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद (मान्यता, मानदंड और प्रक्रिया) विनियम, 2002 के अनुसार प्राथमिक शिक्षा में दो वर्षीय डिप्लोमा (चाहे जिस नाम से प्रख्यात हो) या राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद द्वारा जोड़ी जाने वाली कोई भी प्रशिक्षण योग्यता।

और

"सरकार या भारत सरकार द्वारा आयोजित शिक्षक पात्रता परीक्षा उत्तीर्ण।"

इस प्रकार, जहां तक एटीआरई का संबंध है, 22वें संशोधन के साथ एक आवश्यक योग्यता के रूप में इसे समाप्त कर दिया गया था, हालांकि यह चयन प्रक्रिया से संबंधित नियम 14 का एक हिस्सा बना रहा।

16. 24.01.2019 को 1981 नियमावली में 23वां संशोधन प्रकाशित किया गया। इस संशोधन द्वारा, नियम 8 (ii) में अनिवार्य योग्यताओं को निम्नानुसार प्रतिस्थापित किया गया: -

"(ii) (क) भारत में विधि द्वारा स्थापित किसी विश्वविद्यालय से स्नातक की डिग्री या सरकार द्वारा इसके समकक्ष मान्यता प्राप्त कोई डिग्री के साथ-साथ सरकार द्वारा इसके समकक्ष मान्यता प्राप्त किसी अन्य समकक्ष प्रशिक्षण पाठ्यक्रम के साथ बेसिक टीचर सर्टिफिकेट (बीटीसी), दो वर्षीय बीटीसी (उर्दू) विशिष्ट बीटीसी से युक्त प्रशिक्षण योग्यता के समकक्ष। भारतीय पुनर्वास परिषद द्वारा अनुमोदित शिक्षा(विशेष शिक्षा) में दो वर्षीय डिप्लोमा या प्राथमिक शिक्षा में चार वर्षीय डिग्री (B.El.Ed.), राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद (मान्यता, मानदंड और प्रक्रिया), विनियम 2002 के अनुसार प्राथमिक शिक्षा में दो वर्षीय डिप्लोमा (चाहे किसी भी नाम से जाना जाता हो) कम से कम पचास प्रतिशत अंकों के साथ स्नातक और शिक्षा स्नातक (बी.एड.), बशर्ते कि शिक्षक के रूप में नियुक्त ऐसे व्यक्ति को प्राथमिक शिक्षक के रूप में ऐसी नियुक्ति के दो वर्ष के भीतर अनिवार्य रुप से एनसीटीई द्वारा मान्यता प्राप्त प्राथमिक शिक्षा का छह महीने का ब्रिज कोर्स करना होगा अथवा प्राथमिक शिक्षा में शिक्षकों की भर्ती के लिए राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद द्वारा जोड़ी जाने वाली किसी प्रशिक्षण योग्यता को पूर्ण करना होगा।

और

"सरकार या भारत सरकार द्वारा आयोजित शिक्षक पात्रता परीक्षा उत्तीर्ण।"

इस प्रकार, परिणामस्वरूप, 50 प्रतिशत या अधिक अंक प्राप्त करने वाले और बैचलर ऑफ एजुकेशन (बी.एड.) की डिग्री रखने वाले स्नातक संशोधन में निर्धारित रीति से जूनियर बेसिक स्कूलों में सहायक अध्यापक और सहायक अध्यापिका के पदों के लिए अर्ह हुए। ऐसे अभ्यर्थियों की अर्हता से संबंधित 1981 की नियमावली में संबंधित प्रावधानों को 01.01.2018 से भूतलक्षी प्रभाव दिया गया था।

17. 07.03.2019 को, 1981 की नियमावली में 24वां संशोधन प्रकाशित किया गया जिसके द्वारा उपखंड (क) के बाद उपखंड (कक) जोड़कर नियम 8 (ii) को निम्नलिखित रूप में संशोधित किया गया:-

"(कक) कम से कम पचास प्रतिशत अंकों के साथ स्नातक और शिक्षा स्नातक (बी.एड.), बशर्ते कि शिक्षक के रूप में नियुक्त व्यक्ति को प्राथमिक शिक्षक के रूप में नियुक्ति के दो साल के भीतर अनिवार्य रूप से एनसीटीई द्वारा मान्यता प्राप्त प्राथमिक शिक्षा में छह महीने का ब्रिज कोर्स या राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद द्वारा प्राथमिक शिक्षा में शिक्षक भर्ती के लिए जोड़े जाने वाले किसी अन्य प्रशिक्षण योग्यता कार्यक्रम को पूरा करना होगा और सरकार या भारत सरकार द्वारा आयोजित शिक्षक पात्रता परीक्षा उत्तीर्ण करना होगा। "

इस संशोधन ने नियम 8 (ii) के उप खंड (कक) को 28.06.2018 से भूतलक्षी प्रभाव दिया।

18. 14.06.2019 को 1981 की नियमावली में 25वां संशोधन प्रकाशित किया गया। इस संशोधन द्वारा, परिशिष्ट I जो नियम 14 (3) (क) में संदर्भित था, को निम्नानुसार संशोधित किया गया:

"परिशिष्ट-I

अभ्यर्थियों के चयन के लिए गुणवत्ता अंक और भारांक

परीक्षा का नाम/डिग्री		गुणवत्ता अंक
1	हाई स्कूल	परीक्षा में अंकों का प्रतिशत x10/100
2	इण्टरमीडिएट	परीक्षा में अंकों का प्रतिशत x10/100
3	स्नातक डिग्री	परीक्षा में अंकों का प्रतिशत x10/100
4	नियम की प्रशिक्षण योग्यता	परीक्षा में अंकों का प्रतिशत x10/100
5.	सहायक शिक्षक भर्ती परीक्षा	परीक्षा में अंकों का प्रतिशत x 60/100
6	बेसिक शिक्षा परिषद द्वारा संचालित जूनियर बेसिक स्कूलों में शिक्षामित्र या शिक्षक के रूप में कार्यरत रहते हुए शिक्षण अनुभव का भारांक।	2.5 अंक प्रति पूर्ण शिक्षण वर्ष, अधिकतम 25 अंक, जो भी कम हो

नोट 1- यदि दो या दो से अधिक अभ्यर्थियों के समान गुणवत्ता अंक हैं, तो आयु में वरिष्ठ अभ्यर्थी का नाम सूची में ऊपर रखा जायेगा।

2. यदि दो या दो से अधिक अभ्यर्थियों के गुणवत्ता अंक और आयु समान हैं, तो अभ्यर्थी का नाम अंग्रेजी वर्णानुक्रम के अनुसार सूची में रखा जाएगा। "

19. परिशिष्ट II, जो नियम 14(3)(ख) में संदर्भित है, को उसी संशोधन द्वारा लोप किया गया था। परिणामस्वरूप, परिशिष्ट I जैसा कि उक्त संशोधन के बाद अब है, नियम 14 में निर्दिष्ट दोनों स्रोतों के लिए एकमात्र और एक जैसा/एकल परिशिष्ट है।

C. <u>आरक्षण विधि, नियमावली और संशोधन</u>

20. उत्तर प्रदेश लोक सेवा (अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण) अधिनियम, 1994 जहां तक उत्तर प्रदेश राज्य में अनुसूचित जातियों, जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण का संबंध है, प्राथमिक अधिनियम है। 2002 और 2007 में उक्त अधिनियम में संशोधन किए गए थे और अधिनियम की धारा 3 (1) और 3 (6) वर्तमान में इस प्रकार है:

अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं अन्य पिछड़ा वर्ग के पक्ष में आरक्षण.-(1) लोक सेवाओं एवं पदों में सीधी भर्ती के स्तर पर उप-धारा (5) में निर्दिष्ट रोस्टर के अनुसार भर्ती हेतु रिक्तियों का निम्नलिखित प्रतिशत अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और नागरिकों के अन्य पिछड़े वर्ग के लिए आरक्षित किया जाना है।

(ए)	अनुसूचित जाति के मामले में	इक्कीस प्रतिशत;
(बी)	अनुसूचित जनजाति के मामले में	दो प्रतिशत;
(सी)	अन्य पिछड़ा वर्ग नागरिकों की श्रेणियों के मामले में	सत्ताईस प्रतिशत

बशर्ते कि खंड (सी) के तहत अन्य पिछड़ा वर्ग के नागरिकों के उन प्रवर्ग पर आरक्षण नहीं लागू होगा जो कि अनुसूची II में निर्दिष्ट हैं:

परन्तु यह और कि सभी श्रेणियों के व्यक्तियों के लिए रिक्तियों का आरक्षण उस वर्ष की कुल रिक्तियों के पचास प्रतिशत से अधिक नहीं होगा और साथ ही जिस सेवा में भर्ती की जानी है उसकी संवर्ग संख्या के पचास प्रतिशत से अधिक नहीं होगी;

(2) XXXX

(3) XXXX

(5) XXXX

(6) यदि उपखण्ड (1) में उल्लिखित किसी श्रेणी का कोई व्यक्ति योग्यता के आधार पर सामान्य अभ्यर्थियों के साथ खुली प्रतियोगिता में चयनित हो जाता है तो उसे उपखण्ड (1) के अन्तर्गत ऐसी श्रेणी के लिये आरक्षित रिक्तियों में समायोजित नहीं किया जायेगा।

(7) XXXX

21. सरकार द्वारा समय-समय पर विभिन्न निर्देश और परिपत्र जारी किए गए हैं। हालाँकि, उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा जारी निर्देश दिनांकित 25.3.1994, उत्तर प्रदेश लोक सेवाओं में अनुसूचित जाति / अनुसूचित जनजाति / अन्य पिछड़े समूहों के लिए आरक्षण के संदर्भ में प्रासंगिक है, जिसका एक अंश निम्नवत् उद्धृत किया जा रहा है:

"4. यदि सामान्य वर्ग के अभ्यर्थियों के साथ-साथ आरक्षित वर्ग के किसी व्यक्ति का चयन योग्यता के आधार पर खुली प्रतियोगिता में किया जाता है तो उसे आरक्षित वर्ग में समायोजित नहीं किया जायेगा अर्थात् उसे अनारक्षित वर्ग के सापेक्ष समायोजित समझा जायेगा। यह महत्वहीन होगा कि उसने आरक्षित श्रेणी के लिए उपलब्ध किसी भी सुविधा या छूट (जैसे आयु सीमा में छूट) का लाभ उठाया है। "

22. जहां तक सहायक अध्यापकों के आरक्षण का संबंध है उक्त उ.प्र. बेसिक शिक्षा (शिक्षक) सेवा नियमावली का नियम 9 इस संदर्भ में विशेष महत्व रखता है क्योंकि यह उत्तर प्रदेश अधिनियम एवं भर्ती के समय लागू शासनादेश अर्थात उ.प्र. लोक सेवा (अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए आरक्षण) अधिनियम, 1994 के साथ-साथ राज्य द्वारा जारी विभिन्न निर्देश और आदेश के अनुरूप आरक्षण का प्रावधान करता है।

D. <u>सहायक शिक्षक भर्ती परीक्षा-2019 (एआरटीई 2019)</u>

23. राज्य सरकार ने शासनादेश दिनांकित 01.12.2018 द्वारा सहायक अध्यापकों के 69,000 रिक्त पदों को भरने के लिए द्वितीय एटीआरई (संक्षेप में "एटीआरई-2019",) अधिसूचित किया। शासनादेश के परिशिष्ट के पैराग्राफ 1, 4.1 और 4.2 इस प्रकार थे:

"बेसिक शिक्षा विभाग द्वारा प्रबंधित विद्यालयों में शिक्षा प्रदान करने वाले शिक्षकों की विद्यालयों में पढ़ने वाले बालक-बालिकाओं के विकास में प्रमुख भूमिका होती है। अतः यह निर्णय लिया गया है कि प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षकों की रिक्त सीटों को भरने के लिए एक राज्य स्तरीय सहायक शिक्षक भर्ती परीक्षा आयोजित की जाएगी।

केवल वे अभ्यर्थी जो स्नातक हैं, प्रशिक्षित हैं और जिन्होंने शिक्षक पात्रता परीक्षा उत्तीर्ण की है, उक्त परीक्षा में सम्मिलित होने के पात्र होंगे।

... ...

4. आवेदन के लिए न्यूनतम योग्यता, आयु और निवासस्थान:

(1) उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा (शिक्षक) सेवा (22वां संशोधन) नियमावली, 2018 के नियम 8 में वर्णित शैक्षणिक, प्रशिक्षण उत्तीर्ण, भारत सरकार या राज्य सरकार द्वारा आयोजित शिक्षक पात्रता परीक्षा (प्राथमिक स्तर) उत्तीर्ण अभ्यर्थी सहायक शिक्षक भर्ती परीक्षा, 2019 में आवेदन करने के पात्र होंगे।

(2) राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद, नई दिल्ली द्वारा कक्षा-1 से कक्षा-5 तक के संबंध में दिनांक 23.08.2010, 29.07.2011, 12.11.2014 एवं 28.11.2014 (प्रस्तावना 1.2 के परिशिष्ट 2 में वर्णित) एवं दिनांक 28.06.2018 को अधिसूचित अधिसूचनाओं द्वारा न्यूनतम योग्यताधारक अभ्यर्थी सहायक शिक्षक भर्ती परीक्षा, 2019 में आवेदन करने के पात्र हैं।"

24. इसके अलावा, राज्य द्वारा दिनांक 29.12.2018 को एक विज्ञापन जारी किया गया जिसमें अधिसूचित किया गया कि एटीआरई-2019 का आयोजन 06.01.2019 को किया जाएगा।

25. एटीआरई-2019 का आयोजन 06.01.2019 को किया गया था जिसमें कोई न्यूनतम अर्हक अंक निर्दिष्ट नहीं थे। हालाँकि, इस न्यायालय ने पाया कि अगले ही दिन यानी 07.01.2019 को सरकार ने एटीआरई-2019 के लिए न्यूनतम अर्हक अंक निम्नलिखित प्रभाव से तय किए:

(क) सामान्य श्रेणी के अभ्यर्थियों के लिए, कुल 150 में से 97 अंक अर्थात 65% और उससे अधिक प्राप्त करने वाले अभ्यर्थियों को 'सहायक शिक्षक भर्ती परीक्षा 2019' के लिए उत्तीर्ण माना जाएगा

(ख) अन्य सभी आरक्षित श्रेणियों के अभ्यर्थियों के लिए कुल 150 में से 90 अंक अर्थात् 60 प्रतिशत और उससे अधिक अंक प्राप्त करने वाले अभ्यर्थियों को 'सहायक शिक्षक भर्ती परीक्षा 2019' के लिए उत्तीर्ण माना जायेगा।

26. यह कि राज्य सरकार ने उक्त पत्र दिनांकित 07.01.2019 द्वारा न्यूनतम अर्हक

अंक निर्धारित करते समय यह भी उल्लेख किया है कि उक्त अर्हक अंकों के आधार पर योग्य अभ्यर्थी विज्ञापित 69000 रिक्तियों के लिए आवेदन करने के पात्र होंगे और केवल उपरोक्त न्यूनतम अर्हता अंक के आधार पर अर्हता प्राप्त करने के कारण भर्ती के लिए कोई दावा नहीं किया जाएगा क्योंकि यह परीक्षा भर्ती के लिए योग्यता मानकों में से केवल एक है। इसके अलावा, निर्धारित पदों (69000) से अधिक अभ्यर्थियों के अर्हता प्राप्त करने की स्थिति में, उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा (शिक्षक) नियमावली, 1981 के बीसवें संशोधन के परिशिष्ट- I के अनुसार विज्ञापित पदों के लिए अंतिम मेरिट सूची के आधार पर पात्र का चयन किया जाएगा। इस प्रकार शेष अभ्यर्थी स्वत: ही चयन प्रक्रिया से बाहर हो जायेंगे तथा उनका 'सहायक शिक्षक भर्ती परीक्षा 2019' पर कोई दावा नहीं रहेगा।

27. हालांकि, ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त शासनादेश दिनांकित 07.01.2019 के आधार पर न्यूनतम अर्हक अंकों के उक्त निर्धारण को कुछ शिक्षा मित्रों द्वारा इस उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी जिसमें इस न्यायालय की एकल पीठ ने उक्त शासनादेश के क्रियान्वयन पर रोक लगाने का आदेश पारित किया था लेकिन उक्त आदेश को इस न्यायालय की दो न्यायाधीशों की खंडपीठ ने अपास्त कर दिया। उक्त विवाद को माननीय सर्वोच्च न्यायालय में ले जाया गया और इस विवाद का अंत विशेष अनुमति याचिका/रिट याचिका समूह में दिये गये निर्णय के साथ हो गया जिसकी प्रधान याचिका "राम शरण मौर्य एवं अन्य बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य।" (2020) एससीसी ऑनलाइन 939 थी। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने शिक्षा मित्र के अधिकारों और सर्वोच्च न्यायालय के एक पूर्व निर्णय उ.प्र. राज्य एवं अन्य बनाम आनंद कुमार यादव एवं अन्य (2018) 13 एससीसी 560 द्वारा उन्हें प्रदत्त लाभों को ध्यान में रखते हुए इस न्यायालय की खंडपीठ के अभिमत की अभिपुष्टि की और निष्कर्ष दिया कि राज्य सरकार द्वारा परीक्षा समाप्त होने के बाद भी 65-60% की कट ऑफ निर्धारित करना प्रभावित करने वाला नहीं माना जा सकता। सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि सरकार द्वारा परीक्षा समाप्त होने के बाद भी ऐसे कट ऑफ का निर्धारण करना उसके अधिकार क्षेत्र में था और इस तरह शिक्षा मित्र और अन्य द्वारा दायर अपीलों के समूह को खारिज कर दिया।

28. इस बीच, एटीआरई-2019 का परिणाम परीक्षा निकाय द्वारा दिनांक 12.05.2020 को घोषित किया गया, जिसमें लगभग 4,31,466 अभ्यर्थियों ने अपना पंजीकरण कराया, जिनमें से 4,09,530 अभ्यर्थी परीक्षा में शामिल हुए और लगभग 1,46,060 अभ्यर्थियों को सफल घोषित किया गया।

29. उक्त परिणाम घोषित होने के पश्चात राज्य सरकार ने आदेश दिनांक 13.05.2020 द्वारा संबंधित नियमों एवं शासनादेशों के अनुसार सहायक शिक्षक के 69000 पदों पर नियुक्ति हेतु चयन प्रक्रिया पूर्ण करने की अनुमति प्रदान की।

30. यह कि, शासनादेश दिनांक 13.05.2020 के आलोक में, बेसिक शिक्षा बोर्ड, उ.प्र., इलाहाबाद ने दिनांक 16.05.2020 के विज्ञापन द्वारा एटीआरई- 2019 के परिणाम के आधार पर 69,000 सहायक अध्यापकों के चयन

हेतु जिले की वरीयता दर्ज कराने हेतु विज्ञापन प्रकाशित किया।

31. यहां यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि बेसिक शिक्षा बोर्ड, उ.प्र., इलाहाबाद ने 18.05.2020 को दिशानिर्देश जारी किए थे, जिसके पैरा 1 (iii) में विहित किया गया था कि उ.प्र. राज्य में आरक्षण से संबंधित कानून के साथ इस संबंध में सरकार द्वारा जारी किए गए विभिन्न शासनादेश उक्त चयन सूची पर लागू होंगे।

32. बेसिक शिक्षा परिषद, उ.प्र., इलाहाबाद ने 01.06.2020 को अंतिम चयन सूची प्रकाशित की और इसे नियमावली के परिशिष्ट-I के अनुसार योग्य अभ्यर्थियों के गुणवत्ता अंको के आधार पर प्रतिवादीगण की आधिकारिक वेबसाइट पर अपलोड किया गया था जिसमें अंतिम जिले भी चयनित अभ्यर्थियों को उनके द्वारा दर्ज की गई वरीयता के अनुसार आवंटित किए गए थे।

33. दिनांक 01.06.2020 की उक्त अंतिम चयन सूची विवादों से घिरी हुई थी और उक्त सूची को विवादित करते हुए सामान्य वर्ग के अभ्यर्थियों के साथ-साथ आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थियों द्वारा आरक्षण के दोषपूर्ण क्रियान्वयन एवं उ.प्र. लोक सेवा (अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए आरक्षण) अधिनियम, 1994 की धारा 3 (6) के अननुपालन तथा एमआरसी अभ्यर्थियों के सामान्य श्रेणी में समायोजन से संबंधित सामान्य आधार पर विभिन्न रिट याचिकाएं दायर की गईं।

34. पूर्वोक्त रिट याचिकाओं के लंबित रहने के दौरान कुल 69000 पदों में से चयनित अभ्यर्थियों की दो उप चयन सूची दिनांक 11.10.2020 को 31,277 अभ्यर्थियों की प्रथम एवं दिनांक 30.11.2020 को 36,590 अभ्यर्थियों की द्वितीय सूची जारी की गई। जिसमें अनुसूचित जनजाति के 1133 पद अनुसूचित जनजाति के अभ्यर्थी उपलब्ध नहीं होने के कारण रिक्त रह गये थे। इसके अलावा, कुल चयनित अभ्यर्थियों में से कुछ अभ्यर्थी कार्यभार नहीं ग्रहण कर सके अतएव 6696 अभ्यर्थियों को शामिल करने के लिए उप चयन सूची दिनांकित 26.06.2021 के रूप में तीसरी सूची जारी की गई।

35. उल्लेखनीय रूप से, उ.प्र. बेसिक शिक्षा बोर्ड, प्रयागराज के सचिव ने रिट याचिका संख्या 1389 (एस/एस) वर्ष 2021 (जवाहर लाल व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में एक शपथ पत्र दिनांक 11.07.2021 को दिया है जिसमें कहा गया है कि 69000 सहायक अध्यापकों की भर्ती के लिए चयन की पूरी प्रक्रिया पूरी हो चुकी है और उस समय कोई रिक्ति उपलब्ध नहीं थी।

36. इसके अलावा, दो रिट याचिकाएं संख्या 52/2021 (विनोद कुमार सिंह बनाम उ.प्र. राज्य) और संख्या 760/2021 (शिवम पांडे एवं अन्य बनाम उ.प्र. राज्य) भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत उन अभ्यर्थियों द्वारा माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष दायर की गईं जिन्होंने एटीआरई-2019 में प्रतिभाग किया था, एवं अनुरोध किया गया कि एटीआरई-2018 की शेष रिक्तियों को वर्तमान चयन प्रक्रिया में जोड़ दिया जाए, हालांकि, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उक्त याचिकाकर्ताओं के अनुरोध को स्वीकार करने से इनकार करते हुए क्रमशः दिनांक 01.02.2021 और 29.06.2021 के आदेश द्वारा उनकी रिट याचिकाओं को खारिज कर दिया।

37. यद्यपि, जहां तक एटीआरई-2019 का संबंध था, कोई भी सीट खाली नहीं बची थी और इसके अलावा माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पिछली भर्ती प्रक्रिया (यानी एटीआरई-2018 में रिक्त बचीं सीटें) की शेष रिक्तियों को वर्तमान एटीआरई-2019 में जोड़ने पर विचार करने से इनकार कर दिया है; राज्य सरकार ने एक प्रेस बैठक आयोजित की और एटीआरई- 2019 की भर्ती प्रक्रिया में हुई विसंगतियों को दूर करने के लिए आरक्षित वर्ग के प्रभावित अभ्यर्थियों के लिए एटीआरई-2018 की शेष रिक्तियों पर भर्ती की घोषणा की। इस प्रकार राज्य ने 69000 की सूची में गलती को सुधारे बिना आरक्षित वर्ग के 6800 अभ्यर्थियों की चौथी चयन सूची जारी कर दिया। इस प्रकार, विवाद का दूसरा चरण शुरू हो गया, जिसमें लगभग 6800 आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थियों की नियुक्ति के लिए प्रावधान करते हुए उक्त चौथी चयन सूची दिनांक 05.01.2022 को जारी की गई। जाहिर है, इस चयन सूची को खुली श्रेणी के अभ्यर्थियों के साथ-साथ आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थियों द्वारा भी इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी, जिसमें खुली श्रेणी के अभ्यर्थियों ने तर्क दिया था कि चयन सूची केवल आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थियों के लिए ही जारी नहीं की जा सकती और किसी भी स्थिति में यह एटीआरई-2019 के लिए विज्ञापित सीटों की संख्या से अधिक नहीं हो सकती थी क्योंकि इससे उनके भविष्य की संभावना भी प्रभावित होती थी, जबकि आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थियों ने तर्क दिया कि चयन सूची सही नहीं थी क्योंकि लगभग 18988 आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थी थे, जो समान संख्या में अनारक्षित अभ्यर्थियों को हटाये जाने पर नियुक्त किये जाने के पात्र थे एवं समान संख्या में अनारक्षित अभ्यर्थियों को हटाये बिना आरक्षित श्रेणी के 6800 अभ्यर्थियों की चयन सूची जारी करना ही आरक्षण अधिनियम, 1994 का उल्लंघन था तथा यह सरकार द्वारा आरक्षण नीति को लागू करने में कारित त्रुटि की स्वीकारोक्ति दर्शाता है। इस प्रकार, उन्होंने तर्क दिया कि, 6800 आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थियों को समायोजित करने के बाद भी, कम से कम 13000 आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थियों अभी भी नियुक्ति के लिए विचार किए जाने के पात्र हैं क्योंकि उनके अनुसार पिछली चयन प्रक्रिया अर्थात एटीआरई-2018 की रिक्त बची हुई सीटों की कुल संख्या 27,737 थी। अतएव अभी भी सहायक शिक्षक के पद के लिए रिक्त सीटें उपलब्ध हैं।

38. फिर भी, आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थियों द्वारा कुछ याचिकाएँ दायर की गईं, जिन्हें दिनांक 05.01.2022 की 6800 की चयन सूची में स्थान मिला, जिसमें उक्त सूची के लागू किए जाने की मांग की गई

E. <u>रिट याचिकाओं की श्रेणियां</u>

39. व्यापक रूप से, मामलों के समूह को, जिस पर सुनवाई के दौरान विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा सहमति व्यक्त की गई, पांच श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

(क) पहली वह श्रेणी है जिसमें 69000 शिक्षकों की चयन सूची को "आरक्षित वर्ग" से संबंधित अभ्यर्थियों द्वारा इस आधार पर चुनौती दी गई है कि आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थी जो "मेधावी आरक्षित श्रेणी" (एमआरसी) से संबंधित हैं, उन्हें अनारक्षित श्रेणी में रखा जाना था लेकिन

उन्हें आरक्षण अधिनियम, 1994 की धारा 3 (1) और धारा 3 (6) के उल्लंघन में आरक्षित श्रेणी से संबंधित माना गया है। इस प्रकार, यह प्रार्थना की गई है कि चयन सूची दिनांक 01.06.2020 को इस सीमा तक रद्द करें, क्योंकि यह एमआरसी का चयन आरक्षित श्रेणी में होने से संबंधित है, न कि खुली श्रेणी में। निम्नलिखित रिट याचिकाएं को इस श्रेणी के अंतर्गत रखी जाएंगी:

1	रिट-ए/13156/2020	महेंद्र पाल व अन्य
2	रिट-ए/9050/2020	लोहा सिंह पटेल व अन्य
3	रिट-ए/9767/2020	भास्कर सिंह व अन्य
4	रिट-ए/10122/2020	विजय प्रताप यादव व अन्य
5	रिट-ए/10461/2020	सुशील कुमार व अन्य
6	रिट-ए/11638/2020	भूपेंद्र कुमार व अन्य
7	रिट-ए/11876/2020	रविशंकर व अन्य
8	रिट-ए/12793/2020	अनामिका वर्मा व अन्य
9	रिट-ए/18194/2020	नरेंद्र प्रताप सिंह व अन्य
10	रिट-ए/19535/2020	प्रदीप कुमार मौर्य व अन्य
11	रिट-ए/19554/2020	निशा अहमद अंसारी व अन्य
12	रिट-ए/21706/2020	धर्मेंद्र कुमार विश्वकर्मा व अन्य
13	रिट-ए/3012/2021	अनुराग यादव व अन्य
14	रिट-ए/4568/2021	तस्लीम बानो व अन्य
15	रिट-ए/5323/2021	एवरेस्ट कुमार व अन्य
16	रिट-ए/5863/2021	सुरेंद्र कुमार यादव व अन्य
17	रिट-ए/6527/2021	कुलदीप कुमार वर्मा व अन्य
18	रिट-ए/7678/2021	कृष्ण कुमार व अन्य
19	रिट-ए/8090/2021	आनंद कुमार विश्वकर्मा व अन्य
20	रिट-ए/8414/2021	मुलायम सिंह व अन्य
21	रिट-ए/9501/2021	सावित्री पटेल व अन्य
22	रिट-ए/12510/2021	कुलदीप कुमार व अन्य
23	रिट-ए/12552/2021	आशुतोष वर्मा और अन्य
24	रिट-ए/12819/2021	सुनील कुमार गुप्ता व अन्य
25	रिट-ए/13587/2021	रेखा सिंह
26	रिट-ए/14913/2021	रणजीत यादव व अन्य
27	रिट-ए/15040/2021	जस वीर व अन्य
28	रिट-ए/16083/2021	देवेंद्र प्रताप और अन्य
29	रिट-ए/16538/2021	मो. मुईन व अन्य
30	रिट-ए/17441/2021	ललित कुमार व अन्य
31	रिट-ए/17919/2021	रवींद्र प्रताप यादव व अन्य
32	रिट-ए/18167/2021	अनिल कुशवाहा व अन्य
33	रिट-ए/18496/2021	रीना यादव व अन्य
34	रिट-ए/18529/2021	नूरुलहक व अन्य
35	रिट-ए/18709/2021	इंद्रजीत यादव
36	रिट-ए/19050/2021	नूरुद्दीन अहमद व अन्य
37	रिट-ए/19564/2021	अनिल कुमार व अन्य।
38	रिट-ए/19601/2021	अरविन्द कुमार यादव
39	रिट-ए/20205/2021	प्रवेश कुमार व अन्य

40	रिट-ए/22652/2021	अभिषेक कुमार व अन्य
41	रिट-ए/22711/2021	सतेंद्र कुमार कुशवाहा
42	रिट-ए/22808/2021	मोहम्मद आलम अंसारी
43	रिट-ए/23751/2021	अनिकेत चंद व अन्य
44	रिट-ए/224401/2021	कनिका यादव
45	रिट-ए/26382/2021	आशीष कुमार व अन्य
46	रिट-ए/26805/2021	शिव प्रसाद यादव व अन्य
47	रिट-ए/26944/2021	स्नेह लता व अन्य
48	रिट-ए/27478/2021	राकेश कुमार यादव व अन्य
49	रिट-ए/28828/2021	आंचल वर्मा व अन्य
50	रिट-ए/29292/2021	आलम हुसैन व अन्य
51	रिट-ए/29600/2021	हरीश बाबू व अन्य
52	रिट-ए/29632/2021	कुमारी गायत्री व अन्य
53	रिट-ए/29687/2021	कृष्ण कुमार व अन्य
54	रिट-ए/29834/2021	राज कुमार यादव व अन्य
55	रिट-ए/29976/2021	सतीश कुमार व अन्य
56	रिट-ए/29992/2021	घनश्याम यादव व अन्य
57	रिट-ए/30657/2021	राजेंद्र प्रसाद व अन्य
58	रिट-ए/138/2022	रमेश कुमार और 86 अन्य
59	रिट-ए/258/2022	रण विजय
60	रिट-ए/355/2022	अमित कुमार और अन्य
61	रिट-ए/391/2022	अरुण प्रताप सिंह और 17 अन्य
62	रिट-ए/435/2022	रीता
63	रिट-ए/472/2022	जितेंद्र कुमार और 116 अन्य
64	रिट-ए/688/2022	महेंद्र प्रसाद मरुआ और 6 अन्य
65	रिट-ए/719/2022	कमलेश सिंह व 5 अन्य
66	रिट-ए/919/2022	पूजा वर्मा व अन्य
67	रिट-ए/1549/2022	राकेश पटेल व अन्य
68	रिट-ए/1556/2022	संदीप कुमार और 261 अन्य
69	रिट-ए/3608/2022	रविन्द्र कुमार
70	रिट-ए/3651/2022	अनिल कुमार गौतम व अन्य
71	रिट-ए/4230/2022	सुनील कुमार और 10 अन्य
72	रिट-ए/4653/2022	विवेक कुमार सिंह व अन्य
73	रिट-ए/5816/2022	कामिशनार यादव
74	रिट-ए/5965/2022	अंकित कुमार मौर्य व अन्य
75	रिट-ए/6398/2022	ऋचा यादव
76	रिट-ए/6562/2022	विमलेंद्र कुमार सुमन व 2 अन्य
77	रिट-ए/6969/2022	अर्चना यादव व अन्य
78	रिट-ए/7003/2022	शिप्रा कुमारी
79	रिट-ए/7078/2022	प्रियंका चौधरी और 47 अन्य
80	रिट-ए/7204/2022	दिग्वुय सिंह और 15 अन्य
81	रिट-ए/7234/2022	सुनील कुमार सिंह
82	रिट-ए/7258/2022	राजेश यादव व 2 अन्य
83	रिट-ए/7307/2022	हिमांशु यादव व अन्य
84	रिट-ए/11261/2020	राजेश कुमार व अन्य

85	रिट-ए/7460/2022	आकांक्षा पाल
86	रिट-ए/7652/2022	श्रीमती कंचन पुष्पकर और 3 अन्य
87	रिट-ए/7681/2022	वीरेंद्र सिंह निरंजन और ओआरएस
88	रिट-ए/7908/2022	मनोज कुमार व अन्य
89	रिट-ए/7930/2022	सुनील कुमार जायसवाल
90	रिट-ए/8177/2022	अनिरुद्ध कुमार
91	रिट-ए/8224/2022	रुद्र देव वर्मा

(ख) रिट याचिकाओं की दूसरी श्रेणी में वे याचिकाएँ शामिल हैं जो "सामान्य श्रेणी" के अभ्यर्थियों द्वारा दायर की गई हैं, जिसमें कहा गया है कि आरक्षित श्रेणी के ऐसे अभ्यर्थी जिन्हें एटीआरई-2019 और टीईटी दोनों के चयन में आरक्षण का लाभ प्राप्त हुआ है,उन्हें आरक्षित सूची से अनारक्षित सूची में स्थानांतरित नहीं किया जा सकता है। अतएव चयन सूची दिनांक 01.06.2020 को रद्द करने की प्रार्थना की गई है, जिससे ऐसे आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थियों को उनके अपने आरक्षित वर्ग से अनारक्षित वर्ग में स्थानांतरण की अनुमति मिली है। आगे दिनांक 05.01.2022 के उस शासनादेश को निरस्त करने की प्रार्थना की गई है, जिसके द्वारा राज्य ने 05.12.2018 और 16.05.2020 को विज्ञापित सहायक शिक्षकों की 69000 रिक्तियों के सापेक्ष केवल 6800 "आरक्षित वर्ग अभ्यर्थियों" की नियुक्ति की ही अनुमति प्रदान की है। निम्नलिखित रिट याचिकाओं को इस श्रेणी के अंतर्गत रखा जाएगा:

1	रिट-ए/8142/2020	रोविन सिंह व अन्य
2	रिट-ए/9683/2020	श्वेता चौहान व अन्य
3	रिट-ए/22188/2020	शशांक तिवारी और 19 अन्य
4	रिट-ए/973/2022	मोहिनी तिवारी और 29 अन्य
5	रिट-ए/978/2022	राघवेंद्र प्रसाद मिश्रा और 49 अन्य
6	रिट-ए/1126/2022	करुणा शंकर शुक्ला व अन्य
7	रिट-ए/1144/2022	शिवम पांडे और 34 अन्य
8	रिट-ए/1162/2022	विनय कुमार पाण्डेय और 34 अन्य
9	रिट-ए/1561/2022	आशीष बाजपेयी और 3 अन्य
10	रिट-ए/1566/2022	नितेश कुमार सिंह और 174 अन्य
11	रिट-ए/1592/2022	अर्पित कुमार वाजपेयी व अन्य
12	रिट-ए/1594/2022	आलोक सिंह व अन्य
13	रिट-ए/1596/2022	कुंवर धर्मेंद्र नाथ व अन्य
14	रिट-ए/1598/2022	आदर्श श्रीवास्तव व अन्य
15	रिट-ए/1599/2022	आशुतोष बरुआ व अन्य
16	रिट-ए/1600/2022	अनीता सिंह व अन्य
17	रिट-ए/1602/2022	शिव प्रकाश मिश्रा व अन्य
18	रिट-ए/1604/2022	राम शंकर व अन्य
19	रिट-ए/1694/2022	अंजू त्रिपाठी और 19 अन्य

20	रिट-ए/2324/2022	आशीष बरनवाल और 26 अन्य
21	रिट-ए/3005/2022	ज्योति सिंह और 50 अन्य
22	रिट-ए/3660/2022	विष्णु
23	रिट-ए/7995/2022	अजय कुमार मिश्रा और 49 अन्य

(ग) रिट याचिकाओं की तीसरी श्रेणी में ऐसी याचिकाएं शामिल हैं जिनमें 6800 आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थियों की चयन सूची को विभिन्न आधारों पर चुनौती दी गई है जिसमें यह भी शामिल है कि 69000 की विज्ञापित सीटों के अतिरिक्त अधिसंख्य 6800 पदों को भरकर उनकी एटीआरई परीक्षा में भाग लेने की भविष्य की संभावना को कम किया जा रहा था। ये याचिकाकर्ता या तो एटीआरई-2019 में असफल रहे थे या एटीआरई-2019 परीक्षा के आयोजन के बाद अर्ह हो गए थे। निम्नलिखित रिट याचिकाओं को इस श्रेणी के अंतर्गत रखा जाएगा:

1	रिट-ए-323/2022	भारती पटेल और 5 अन्य
2	रिट-ए-1713/2022	अनिल कुशवाहा और 8 अन्य

(घ) रिट याचिका की चौथी श्रेणी में वे याचिकाएं शामिल हैं, जहां योग्यता सूची तैयार करते समय शारीरिक रूप से विकलांग श्रेणी के अभ्यर्थियों के लिए निर्धारित 4% क्षैतिज आरक्षण प्रदान करने पर विचार नहीं किया गया है। इस श्रेणी के अंतर्गत अधिकांश रिट याचिकाएं निष्फल होने के आधार पर वापस ले ली गई हैं। इस रिट याचिकाओं में उठाए गए मुद्दे पर न तो सुनवाई के दौरान बहस की गई और न ही सुनवाई के दौरान इन रिट याचिकाओं पर बल दिया गया। हालाँकि, इन रिट याचिकाओं का उल्लेख यहाँ श्रृंखला को पूरा करने के लिए किया गया है और इस सामान्य आदेश द्वारा इनका भी निस्तारण किया जा रहा है। इस श्रेणी के अंतर्गत निम्नलिखित रिट याचिकाओं को रखा गया है:

1	रिट-ए-13792	राम किशोर व अन्य
2	रिट-ए-15460/2020	संदीप कुमार पाण्डेय व अन्य
3	रिट-ए-26041/2020	शिव सिंह रघुवंशी
4	रिट-ए-9035/2020	लक्ष्मी नारायण सिंह व अन्य
5	रिट-ए-9616/2020	किमी. अनीता गुप्ता और 2 अन्य
6	रिट-ए/10327/2020	प्रेम कुमार व अन्य
7	रिट-ए-9782/2021	रंजना त्रिपाठी

(ङ) पाँचवीं श्रेणी की रिट याचिकाएँ वे याचिकाएँ हैं, जो दिनांक 05.01.2022 की चयन सूची के अनुसार 6800 अभ्यर्थियों में से एक भाग बनने वाले अभ्यर्थियों द्वारा दायर की गई हैं। उन्होंने प्रार्थना की है कि यद्यपि उनके नाम चयनित सूची में उल्लिखित हैं लेकिन उन्हें लंबित मुकदमेबाजी के क्रम में नहीं नियुक्त किया गया है, जो उनकी सेवा की संभावना और लाभों पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रहा है। निम्नलिखित रिट याचिकाओं को इस श्रेणी के अंतर्गत रखा जाएगा:

1	रिट-ए-7576/2022	कृष चंद्रा व अन्य

F. <u>अन्तरिम आदेश</u>

40. इन रिट याचिकाओं के लंबित रहने के दौरान विभिन्न अंतरिम आदेश पारित किए गए, जिसमें 6800 की चयन सूची दिनांक 05.01.2022 पर स्थगन (Stay) भी शामिल है। इस न्यायालय ने 25.08.2020 को रिट-ए-13156/2020 (महेंद्र पाल व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य), में अर्थात प्रथम श्रेणी के प्रमुख मामले में निम्नलिखित आदेश पारित किया है:

"....इन परिस्थितियों में, यह निर्देश दिया जाता है कि इस मामले में एक मुख्य प्रतिउत्तर शपथपत्र दायर किया जाएगा और इस मामले में प्रतिउत्तर शपथपत्र दाखिल करते समय, इसकी एक प्रति अन्य समान रिट याचिकाओं का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता को प्रस्तुत की जाएगी। अन्य मामलों में प्रतिवादियों की ओर से दायर किए जाने वाले अलग-अलग प्रतिशपथपत्र की कोई आवश्यकता नहीं होगी और इस मामले में दायर किए जाने वाले प्रतिउत्तर शपथपत्र को अन्य समान मामलों में भी प्रतिउत्तर शपथपत्र माना जाएगा।

41. इस प्रकार, यह निर्देश दिया गया था कि उपरोक्त शीर्ष मामले में एक प्रतिउत्तर शपथपत्र दायर किया जाए, जिसे सभी मामलों में प्रतिवादी के प्रतिउत्तर के रूप में माना जाना था।

42. इसके अलावा, इस न्यायालय ने 17.03.2021 के आदेश में उपरि- उल्लिखित रिट याचिका में ही निम्नलिखित कथन किया हैः

"...याचिकाकर्ताओं की ओर से पेश वरिष्ठ अधिवक्ता श्री उपेंद्र नाथ मिश्रा का तर्क है कि 28,000/-आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थी, जिन्होंने 67.11 अंक से अधिक अंक प्राप्त किए थे, जो सामान्य श्रेणी के लिए कट ऑफ था, उन्हें सामान्य श्रेणी की चयन सूची में समायोजित नहीं किया गया था बल्कि आरक्षण अधिनियम, 1994 की धारा 3 (6) और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि के विपरीत आरक्षित सूची में बनाए रखा गया था, जिसके अनुसार आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थी यदि अन्यथा मेधावी हैं और सामान्य चयन सूची में शामिल होने के हकदार हैं, तो उन्हें आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थी के रूप में नहीं माना जाएगा। श्री मिश्रा ने स्वयं द्वारा तैयार किए गए एक चार्ट को उद्धृत किया है जिसकी एक प्रति पूरक शपथ पत्र दिनांक 27.01.2021 के पृष्ठ 63 पर अनुलग्नक संख्या एसए-7 के रूप में संलग्न है।

03.02.2021 को इस कोर्ट ने इस संबंध में राज्य के अधिकारियों से जवाब मांगा था जो अभी तक दाखिल नहीं किया गया है।

संबंधित शासकीय विरोधी पक्ष अपना जवाब एक सप्ताह की अवधि के भीतर से दाखिल करें

43. स्पष्टतया, राज्य के संबंधित प्राधिकारीगण समय-समय पर इस न्यायालय द्वारा अपने आदेश में दर्ज किए गए प्रश्नों के स्पष्ट जवाब दाखिल करने से कतराते रहे और बहस के दौरान भी ये मुद्दे अस्पष्ट रहे। तथ्यतः, इस बयान के अलावा कि आरक्षण नीति को विपरीत दिशा में लागू किया गया है और अमुक संख्या में एमआरसी अभ्यर्थियों को अनारक्षित श्रेणी और आरक्षित श्रेणी में समायोजित किया गया है, इसके अलावा कोई डेटा नहीं था कि किस-किस को और किस तरह से आरक्षित श्रेणी

के एमआरसी अभ्यर्थी माना गया, ताकि उन्हें खुली श्रेणी में स्थानांतरित किया जा सके।

44. आगे, एक अंतरिम आदेश जो याचिकाओं के अन्य समूह की शीर्ष याचिका रिट-ए-नं 323/2022 में पारित किया गया है जो तीसरी श्रेणी की शीर्ष याचिका है, विशेष उल्लेखनीय है। इस न्यायालय ने 27.01.2022 के एक आदेश में कहा कि:

"......आज, श्री राघवेंद्र सिंह, विद्वान महाधिवक्ता ने आधिकारिक प्रत्यर्थियों की ओर से उपस्थिति दर्ज कराई और न्यायालय को सूचित किया कि कुछ आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थियों ने इस न्यायालय के समक्ष याचिका दायर की थी, जिनमें से कुछ रिट याचिकाएं रिट-ए संख्या 13156/2020 और रिट-ए संख्या 8142/2020 हैं, जिसमें इस न्यायालय द्वारा कुछ आदेश पारित किए गए थे, जिसके आधार पर, राज्य ने आरक्षण नीति के कार्यान्वयन के साथ-साथ आरक्षण अधिनियम, 1994 के प्रावधानों और इस विषय पर उपलब्ध विधि पर फिर से विचार किया है जिसके अनुसार, ऐसे आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थी जो अन्यथा मेधावी हैं, अर्थात्, जिन्होंने सामान्य वर्ग के लिए कट ऑफ से अधिक अंक प्राप्त किए हैं, वे अनारक्षित पदों हेतु विचारार्थ लिये जाने और चयन के पात्र हैं। तदनुसार, राज्य सरकार ने इस मामले पर फिर से विचार करने के बाद एक नई चयन सूची जारी करने का निर्णय लिया है जिसमें 6800 अभ्यर्थियों के नाम शामिल हैं जो कि वे आरक्षित श्रेणी के व्यक्ति हैं जिन्होंने अनारक्षित श्रेणी के लिए कट ऑफ से अधिक अंक प्राप्त किए हैं और चूंकि यह कवायद इसी न्यायालय द्वारा पारित आदेशों का परिणाम है इसलिए न्यायालय को इस स्तर पर मामले में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

विद्वान महाधिवक्ता ने भी न्यायालय को यह भी सूचित किया कि, वास्तव में, चयन की पूरी प्रक्रिया राज्य के अधिकारियों द्वारा एनआईसी को सूचित की जाती है और वही चयन सूची तैयार करता है।

विद्वान महाधिवक्ता ने यह भी कहा कि जहां तक इस न्यायालय के दिनांक 25.01.2022 के आदेश में उद्धृत माननीय सर्वोच्च न्यायालय के आदेश का प्रश्न है इस मामले के तथ्यों में यह लागू नहीं होता है, जैसा कि ऊपर पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है।

हालांकि, यह पूछे जाने पर कि यदि 69000 पद पहले ही भरे जा चुके हैं, जैसा कि पूर्व के आदेश में इंगित किया गया है, तो इन 6800 चयनितों को नियुक्त कैसे किया जाएगा, किस पद पर नियुक्त किया जाएगा और क्या एक पद पर दो व्यक्ति काम कर सकते हैं और वेतन प्राप्त कर सकते हैं। विद्वान महाधिवक्ता इस मामले में न्यायालय को संतुष्ट नहीं कर सके लेकिन कहा कि राज्य ने पहले से नियुक्त ऐसे अभ्यर्थियों को हटाने का कोई निर्णय नहीं लिया है, जिन्होंने इन 6800 अभ्यर्थियों की तुलना में कम अंक प्राप्त किए हों।

यह निश्चित रूप से किसी का कहना नहीं है न ही राज्य का है कि 6800 अतिरिक्त चयनित अभ्यर्थियों की सूची जारी करने से पहले, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, समान संख्या में ऐसे अभ्यर्थी जो पहले नियुक्त किए गए थे, विधि अनुसार सेवामुक्त कर दिए जाएं।

श्री उपेंद्र नाथ मिश्रा, विरोधी पक्ष संख्या 7 के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने इस न्यायालय द्वारा पारित आदेशों की ओर

न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है, जो कि रिट याचिका के पृष्ठ संख्या 144-145 पर संलग्न हैं, जिसे विद्वान महाधिवक्ता द्वारा संदर्भित किया गया है। उनका कहना है कि उन रिट याचिकाओं को प्राथमिकता के आधार पर सुना जाना चाहिए और उनका यह भी कहना है कि अतिरिक्त 6800 चयनित व्यक्ति वास्तव में नियुक्त होने के हकदार हैं और वे जो हकदार नहीं हैं लेकिन नियुक्त किए गए हैं, वे बाहर होने के लिए उत्तरदायी हैं। वह भी इस तथ्य पर सहमत हैं कि विज्ञापित 69000 रिक्तियों से अधिक व्यक्तियों को नियुक्त नहीं किया जा सकता है।

विद्वान अधिवक्ता, श्री राकेश कुमार चौधरी, जो विपक्षी संख्या 10 की ओर से उपस्थित हुए, ने श्री उपेंद्र नाथ मिश्रा के तर्कों को स्वीकार किया। इसके अलावा, उनका कहना है कि शारीरिक रूप से विकलांग अभ्यर्थी जिन्होंने इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिकाएं भी दायर की हैं जिसकी प्रमुख रिट याचिका रिट-ए सं. 13792/2020 है जिसमें इस न्यायालय द्वारा ऐसे व्यक्तियों के लिए निर्धारित कोटा का लाभ देने के लिए कुछ आदेश पारित किए गए हैं इसलिए इन शारीरिक रूप से विकलांग व्यक्तियों को 6800 व्यक्तियों की प्रश्नगत चयन सूची में शामिल करना न्यायालय के आदेशों के अनुसार है एवं न्यायालय द्वारा इसमें हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है, निश्चित रूप से अंतरिम स्तर पर बिल्कुल नहीं। हालांकि, यह पूछे जाने पर कि क्या विरोधी पक्ष संख्या 10 जिसकी ओर से वह पेश हुए है वह शारीरिक रूप से विकलांग है, उन्होंने कहा कि नहीं, वह शारीरिक रूप से विकलांग नहीं था लेकिन वह रिट-ए सं. 13792/ 2020 और इससे जुड़े मामले में अधिवक्ता है। इसलिए उन्होंने उक्त बयान दिया है।

इस स्तर पर, याचिकाकर्ताओं की ओर से पेश वरिष्ठ अधिवक्ता श्री सेठ ने आगे कहा कि यदि सहायक अध्यापकों की 69000 रिक्तियों को विज्ञापित किया गया था और उन सभी को भर दिया गया है, जैसा कि इस न्यायालय के समक्ष दायर हलफनामे में विभाग के प्रमुख सचिव द्वारा स्वीकार किया गया है एवं जैसा कि पूर्व आदेश दिनांकित25.01.2022 में पहले ही देखा जा चुका है, फिर, एक क्षण के लिए यह मानते हुए कि राज्य चयन प्रक्रिया पर पुनर्विचार करने का हकदार था और इस तरह की कवायद के आधार पर यह पाया गया कि 6800 अभ्यर्थी ऐसे थे जिनके पास उनके द्वारा प्राप्त अंकों के आधार पर, चयन और नियुक्ति का बेहतर अधिकार था, अधिक से अधिक पहले से प्रकाशित चयन सूची को संशोधित किया जाना चाहिए था और इन 6800 अभ्यर्थियों की तुलना में कम अंक प्राप्त करने वाले उतनी ही संख्या में अभ्यर्थियों को विधि अनुसार इनसे प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए था और यदि उन्हें पहले से ही नियुक्त किया गया है तब यह उन्हें उचित नोटिस देने के बाद ही किया जाना चाहिए था, और इन 6800 अभ्यर्थियों को उनके स्थान पर प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए था। लेकिन इस तरह के कार्य के बिना 6800 अतिरिक्त चयनित व्यक्तियों को शामिल करने की राज्य की प्रश्नगत कार्यवाही एक ऐसी स्थिति की ओर ले जाती है जहां 69000 रिक्तियों के परे अधिसंख्य रिक्तियाँ भरी जाएंगी जो स्पष्ट रूप से अवैध है और याचिकाकर्ताओं के इस अधिकार को विपरीत रुप से प्रभावित करेंगी कि उन्हे उन 6800 रिक्तियों के सापेक्ष विचारार्थ लिया जाता जो अन्यथा फिर से विज्ञापित की जातीं और याचिकाकर्ता संख्या 1 से 5 के पास ऐसी रिक्तियों के सापेक्ष चयन के

लिए विचार किए जाने का अधिकार होता वह भी इस तथ्य के बावजूद कि वे पहले के चयन में सफल नहीं हुए हैं। याचिकाकर्ता संख्या 6 ने वास्तव में एआरटीई 2019 के चयन में प्रतिभाग नहीं किया है और वह इस तरह की रिक्तियों के सापेक्ष विचार किए जाने का हकदार है जब भी वे विज्ञापित हों।

श्री चौधरी के इस तर्क के संबंध में कि याचिकाकर्ताओं के पास प्रश्नगत कार्रवाई को चुनौती देने का आधार नहीं है, याचिकाकर्ता संख्या 1 से 5 जो आरक्षित श्रेणी से संबंधित हैं, चयन में उपस्थित हुए थे और विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री सुदीप सेठ का तर्क जैसा कि पूर्व आदेश में पहले से ही दर्ज है कि 69000 से अधिसंख्य किसी भी रिक्ति को फिर से विज्ञापित करना होगा और इस संबंध में नए सिरे से चयन करना होगा जिसमें याचिकाकर्ता संख्या 1 से 5, भले ही वे पहले चयन में सफल नहीं हुए हों, फिर भी प्रतिभाग करने के अधिकरी होंगे इसलिए 69000 से अधिक के किसी भी पद के सापेक्ष चयन करना, इन अतिरिक्त 6800 पदों को पुनः विज्ञापित न करना माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा घोषित कानून और संवैधानिक प्रावधानों का उल्लंघन करने के अलावा, याचिकाकर्ता संख्या-1 से 6 के ऐसे चयन में प्रतिभाग करने के अधिकारों का अतिक्रमण करना है। याचिकाकर्ता संख्या 6 ने प्रश्नगत चयन में प्रतिभाग नहीं किया है इसलिए उसे किसी भी स्थिति में इन अतिरिक्त रिक्तियों के सापेक्ष भविष्य के चयन में प्रतिभाग करने का अधिकार होगा। इस स्तर पर प्रथम दृष्टया विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री सेठ सही प्रतीत होते हैं।

मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए जैसा कि पहले के आदेश दिनांकित 25.01.2022 में देखा जा चुका है, जिन्हें दोहराने की आवश्यकता नहीं है और जिनका कम से कम इस स्तर पर संतोषजनक रूप से खंडन नहीं किया गया है, विशेष रूप से माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा रिट याचिका को खारिज करने का आदेश जिसमें यह मामला था कि 69000 से अधिक ऐसी रिक्तियां जो 01.12.2018 (एआरटीई-2019) को विज्ञापित नहीं की गई थीं उनको 01.12.2018 को विज्ञापित उक्त चयन के आधार पर भरने की अनुमति दी जानी चाहिए। इसे इस विशिष्ट टिप्पणी के साथ खारिज कर दिया गया है कि विज्ञापित से अधिक पदों को उक्त चयन के आधार पर भरे जाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। राज्य द्वारा प्रश्नगत कार्रवाई करके प्रथम दृष्टया एक अजीब स्थिति पैदा कर दी गयी है... "

45. इस न्यायालय ने महाधिवक्ता द्वारा संदर्भित अन्य अंतरिम आदेशों को दर्ज करने के बाद आदेश दिनांक 27.01.2022 द्वारा निम्नलिखित शब्दों में निर्देशित किया:

"... लेकिन न्यायालय ने राज्य से केवल इस मामले में जवाबी हलफनामा दायर करने को कहा था और राज्य को यह बताना था कि आरक्षण नीति को कैसे लागू किया गया है। इन परिस्थितियों में राज्य के अधिकारियों के लिए उपयुक्त तरीका यह था कि वे उक्त आदेशों का पालन करें, मामले पर फिर से विचार करें, तथ्यों और त्रुटियों का पता लगाएं, यदि कोई हो, और उन्हें ध्यान में रखते हुए, या तो उसका मार्गदर्शन प्राप्त करने के लिए या अनुमति मांगने के लिए न्यायालय के समक्ष रखें याकि पहले से ही लागू की गई चयन सूची को सुधारना या चयन सूची

को संशोधित करना और पहले से नियुक्त व्यक्तियों को कानून के अनुसार हटाना, यदि वे गलत तरीके से नियुक्त किए गए थे, लेकिन ऐसा करने के बजाय राज्य के अधिकारीगण ने अपने कारणों से उनके द्वारा पहले से की गई 69000 नियुक्तियों के अधिसंख्य 6800 व्यक्तियों की चयन सूची जारी करने की जल्दबाजी की वह भी कम अंक प्राप्त किए हुए पहले से नियुक्त 6800 अभ्यर्थियों की नियुक्ति को रद्द किए बिना। इस तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए कि केवल 69000 अभ्यर्थियों के पद विज्ञापित हुए थे यथा 69000 से अधिक अभ्यर्थियों की नियुक्ति नहीं की जा सकती है और वे पहले से ही नियुक्त हो चुके हैं। यह समझ से परे है कि इन 6800 व्यक्तियों की चयन सूची जारी करके, जो अन्यथा चयन के हकदार हो सकते थें, इन तथ्यों के परिदृश्य में राज्य सरकार किस उद्देश्य की पूर्ति करती है जबकि किसी भी परिस्थिति में, 69000 से अधिक व्यक्तियों को नियुक्त नहीं किया जा सकता है जिसके लिए विज्ञापन किया गया था।

अब, यह राज्य को तय करना है कि इस मामले में उसे क्या करना है क्योंकि यह राज्य है जिसने यह स्थिति बनाई है लेकिन एक बात बहुत स्पष्ट है कि ऐसे पदों पर 69000 रिक्तियों से अधिक व्यक्तियों को नियुक्त नहीं किया जा सकता है।

यहां ऊपर की गई चर्चा को ध्यान में रखते हुए, यह उपबंध किया जाता है कि किसी भी परिस्थिति में, 01.12.2018 (एटीआरई-2019) को विज्ञापित 69000 रिक्तियों से अधिक व्यक्तियों को नियुक्त नहीं किया जाएगा और बिना विज्ञापित रिक्तियों को विज्ञापित किए बिना नहीं भरा जाएगा। तद्नुसार आदेश दिया जाता है।

विरोधी पक्ष संख्या 6 और 8 को दस्ती नोटिस जारी किया जाए। इसके अलावा, चयनकर्ताओं की बड़ी संख्या, जो कि 6800 है, और उन्हें व्यक्तिगत रूप से पक्षकार बनाने और उन्हें नोटिस प्राप्त कराये जाने में आने वाली जटिलताओं को दृष्टिगत रखते हुए, विशेष रूप से इस स्तर पर, जब वे केवल चयनित हैं और उन्हें नियुक्त नहीं किया गया है, न्याय हित में होगा कि दो दैनिक समाचार पत्रों एक अंग्रेजी और एक हिन्दी, जिसका राज्य में प्रसार हो, में एक प्रकाशन किया जाए, अंग्रेजी में : 'द टाइम्स ऑफ इंडिया' और हिन्दी में 'दैनिक जागरण', में प्रकाशित कर चयनित व्यक्तियों को इस याचिका के लंबित होने के बारे में सूचित किया जाए ताकि वे, यदि वे ऐसा चाहें, तो इस विधिक प्रक्रिया में शामिल हो सकें, अन्यथा , व्यक्तियों को प्रतिनिधिक क्षमता में शामिल किया गया है। वरिष्ठ निबंधक उपरोक्तानुसार समाचार पत्र में प्रकाशन के लिए उठाए जा रहे पर्याप्त कदमों की सुविधा प्रदान करेंगे।

पक्षकारों के बीच अभिवचनों का आदान-प्रदान किया जाए।

इस मामले को अन्य मामलों के साथ सूचीबद्ध करें यानी रिट ए.नंबर 13156/2020, रिट-ए नंबर 8142/2020 और रिट-ए 13792/2020 सहित इससे जुड़े मामलों के साथ जिसमें अभिकथन पूरा हो गया है."

46. आगे, इस न्यायालय ने पाया कि दिनांक 27.01.2022 का उपरोक्त अंतरिम आदेश विशेष अपील संख्या 86/2022 (राहुल कुमार व अन्य बनाम उ.प्र. राज्य) में चुनौती का विषय था, जिसमें इस न्यायालय की खंडपीठ ने दिनांक 15.03.2022 के आदेश द्वारा वर्तमान मामलों

के शीघ्र निस्तारण का निर्देश देते हुए इस न्यायालय द्वारा पारित उक्त अंतरिम आदेश पर विचार करने से इंकार कर दिया।

47. न्यायालय ने पाया कि प्रतिवादी द्वारा समाचार पत्र में पूर्वोक्त प्रकाशन के क्रम में याचिका की तीसरी श्रेणी में 1158 अभ्यर्थियों ने पक्षकार बनने के लिए आवेदन दायर किया था।

G. पक्षकारों की दलील

48. चूंकि, वर्तमान रिट याचिका समूह में समान विषय उठाया गया है। अतः न्यायालय द्वारा पक्षकारों की ओर से पेश विद्वान अधिवक्ता की सहमति से सभी रिट याचिकाओं को इस एकल आदेश द्वारा निर्णीत किया जा रहा है। हालाँकि, मुख्य मामले महेंद्र पाल एवं 13 अन्य के तथ्यों का यहाँ स्पष्टता के लिए उल्लेख किया जा रहा है। उक्त रिट याचिका के तथ्य जैसा कि विद्वान अधिवक्ता द्वारा तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता संख्या7 और 9 को छोड़कर, अन्य सभी याचिकाकर्ता स्नातक डिग्री धारक हैं, जिनके पास बी.एड की आवश्यक शैक्षणिक योग्यता है, जबकि याचिकाकर्ता संख्या 7 और 9 बेसिक टीचर्स ट्रेनिंग (बीटीसी) वाले शिक्षक हैं। सभी याचिकाकर्ता सरकार द्वारा आयोजित यूपी शिक्षक पात्रता परीक्षा (टीईटी) पास करने का दावा करते हैं। याचिकाकर्ता संख्या 11, जो "अनुसूचित जाति" की आरक्षित श्रेणी से संबंधित है, को छोड़कर सभी याचिकाकर्ता "अन्य पिछड़ा वर्ग" की आरक्षित श्रेणी के हैं। याचिकाकर्ताओं का यह भी दावा है कि उन्होंने सहायक शिक्षक भर्ती परीक्षा-2019 को सफलतापूर्वक उत्तीर्ण कर लिया है और उनके अनुसार उनके पास यूपी बेसिक शिक्षा (शिक्षक) सेवा नियमावली, 1981 के तहत निर्धारित सहायक शिक्षक के पद पर नियुक्ति के लिए न्यूनतम आवश्यक शैक्षणिक योग्यता है।

49. याचिकाकर्ता के अनुसार, राज्य सरकार ने उत्तर प्रदेश के जूनियर बेसिक स्कूलों में सहायक शिक्षक की 69000 रिक्तियों को भरने के लिए 01.12.2018 को निर्णय लिया, जिसके अनुक्रम में एटीआरई-2019 को दिनांक 06.01.2019 को आयोजित करने के लिए 05.12.2018 को एक विज्ञापन जारी किया गया। जिसमें उनके द्वारा प्रतिभाग किया गया था। इसके बाद, 07.01.2019 को, प्रतिवादी प्राधिकारियों ने एटीआरई-2019 के अर्हक अंकों को खुली श्रेणी के लिए 65% और आरक्षित वर्ग के लिए 60% निर्धारित करने के लिए एक शासनादेश जारी किया। अर्हक अंकों के निर्धारण करने वाले इस शासनादेश को इस न्यायालय की एकल पीठ के समक्ष चुनौती दी गई जिसने उक्त शासनादेश को रद्द कर दिया और एआरटीई-2018 के योग्यता अंकों की शर्तो के अनुसार एआरटीई-2019 का संचालन करने का निर्देश दिया, हालांकि एक इंट्रा कोर्ट अपील में, इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने - एकल न्यायाधीश के आदेश को अपास्त करते हुए दिनांक 07.01.2019 के शासनादेश को बरकरार रखा। याचिकाकर्ताओं द्वारा आगे यह तर्क दिया गया है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष डिवीजन बेंच के आदेश को चुनौती देते हुए कई एसएलपी दायर की गईं, जिनमें से एक एसएलपी "राम शरण मौर्य बनाम उ.प्र. राज्य और अन्य" {एसएलपी (सिविल) डायरी संख्या 11198/2020} में सुप्रीम कोर्ट ने 21.05.2020 को एक अंतरिम

आदेश पारित किया, जिसमें निर्देश दिया गया कि "शिक्षा मित्र" जो वर्तमान में सहायक शिक्षक के रूप में अपने पदों पर हैं उनको अव्यवधानित रखा जाएगा। इसके अतिरिक्त, एक अन्य सम्बद्ध मामले "सूबेदार सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य" (एसएलपी (सिविल) संख्या 6687 ऑफ 2020) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दिनांक 09.06.2020 को एक आदेश पारित कर राज्य सरकार को निर्देश दिया कि वह टीईटी उत्तीर्ण शिक्षामित्रों की संख्या के बराबर 37,339 पद रिक्त रखें और शेष रिक्तियों को भरना जारी रखें।

50. यह तर्क दिया गया है कि एटीआर-2019 के परिणाम 12.05.2020 को घोषित किए गए थे, जिसमें कुल 1,46,060 अभ्यर्थियों को उत्तीर्ण घोषित किया गया था। याचिकाकर्ताओं का कथन है कि उन्होंने एटीआर-2019 में न्यूनतम अर्हता अंक प्राप्त किए अतः 16.05.2020 को सचिव, बेसिक शिक्षा द्वारा अधिसूचित जिलावार रिक्तियों एवं सचिव, बेसिक शिक्षा बोर्ड द्वारा दिनांक 18.05.2020 को आवेदन प्रपत्र आमंत्रित करने के संबंध में जारी दिशा-निर्देश के अनुक्रम में सहायक अध्यापक के पद पर नियुक्ति हेतु याचिकाकर्ताओं ने विहित प्रारुप पर आनलाइन आवेदन भरा/आवेदन किया एवं इस भर्ती प्रक्रिया में अभ्यर्थियों ने वैध रूप से चयनित होने की प्रत्याशा रखी। याचिकाकर्ताओं द्वारा एटीआरई-2019 में गलत मूल्यांकन से संबंधित विवाद का संदर्भ दिया गया है जिसमें प्रत्यर्थी-प्राधिकारी द्वारा दिनांक 08.05.2020 को प्रकाशित उत्तर कुंजी को कुछ चुनौती दी गईं थीं। यह निवेदन किया गया है कि मुख्य रिट याचिका संख्या 8056 सन् 2020 (रिषभ मिश्रा और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) के मामले में, एकल न्यायाधीश द्वारा दिनांक 03.06.2020 को एक अंतरिम आदेश पारित किया गया था जिसमें उत्तर कुंजी दिनांक 08.05.2020 पर स्थगन आदेश दिया गया था हालांकि इस न्यायालय की खंडपीठ ने दिनांक 12.06.2020 को विशेष अपील संख्या 154/2020 (परीक्षा नियामक प्राधिकरण, इलाहाबाद और अन्य बनाम रिषभ मिश्रा और अन्य) के मामले में एक आदेश पारित कर एकल न्यायाधीश द्वारा पारित अंतरिम आदेश स्थगित करते हुए प्रत्यर्थियों को सहायक शिक्षकों के पद पर चयन की प्रक्रिया जारी रखने की स्वतंत्रता प्रदान की।

51. संक्षेप में याचिकाकर्ताओं का मामला इस प्रकार है कि प्रत्यर्थी-प्राधिकारी ने बिना वर्गवार कटऑफ अंको की घोषणा किए 1 जून, 2020 को नियुक्ति के लिए 67,867 अभ्यर्थियों की अस्थायी चयन सूची जारी की थी। याचिकाकर्ताओं के अनुसार, चयन सूची में केवल उन अभ्यर्थियों के नाम, अनुक्रमांक और अन्य व्यक्तिगत विवरण शामिल हैं और उन जिलों के नाम है जहां ऐसे अभ्यर्थियों का चयन किया गया है और चयनित अभ्यर्थियों की मेरिट (श्रेष्ठता क्रम) का उल्लेख नहीं किया गया है अर्थात चयनित अभ्यर्थियों द्वारा प्राप्त किए गए अंक एवं इसके सापेक्ष अन्तिम श्रेणीवार कट-ऑफ अंक जिसके आधार पर चयन हुआ था, का उल्लेख नहीं है।

52. याचिकाकर्ताओं का यह तर्क है कि चयन सूची में पर्याप्त जानकारी न होने के कारण, उन्होंने अपनी तरफ से जांच पड़ताल की और पाया कि 50 प्रतिशत से अधिक रिक्तियां

अनारक्षित श्रेणी (एमआरसी अभ्यर्थियों सहित) में आने वाले अभ्यर्थियों को आवंटित की गई हैं और इस प्रकार आरक्षण अधिनियम, 1994 की धारा 3(1) और धारा 3(6) के तहत उपलब्ध आरक्षण की योजना/कोटा का उल्लंघन है।

53. याचिकाकर्ताओं की ओर से विद्वान अधिवक्ता ने संक्षेप में आरक्षण अधिनियम की धारा 3(6) का हवाला देते हुए कहा है उक्त धारा में यह प्रावधान है कि यदि किसी आरक्षित वर्ग से संबंधित कोई व्यक्ति योग्यता के आधार पर सामान्य वर्ग के अभ्यर्थियों के साथ खुली प्रतिस्पर्धा में चयनित होता है तो उक्त आरक्षित वर्ग के अभ्यर्थी को ऐसी श्रेणी के लिए आरक्षित रिक्तियों में समायोजित नहीं किया जाएगा बल्कि उसे सामान्य वर्ग में समायोजित किया जाएगा। इस प्रकार, याचिकाकर्ताओं द्वारा दिया गया यह तर्क कि आरक्षित श्रेणी (एमआरसी) के कुछ प्रतिभाशाली अभ्यर्थियों को उनके मेरिट के आधार पर सामान्य श्रेणी में शामिल करने से चयन प्रक्रिया में अन्तिम रूप से चयनित आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थियों की कुल संख्या 50 प्रतिशत से अधिक हो सकती है, लेकिन किसी भी स्थिति में सामान्य वर्ग के अभ्यर्थियों की कुल संख्या कुल सीटों के 50 प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकती है और यदि सामान्य वर्ग के अभ्यर्थियों का चयन कुल सीटों के 50 प्रतिशत से अधिक हो जाता है, तो इसका मतलब है कि आरक्षित वर्ग अभ्यर्थियों का चयन आरक्षण अधिनियम की धारा 3(1) के तहत निर्धारित कोटा से बहुत कम किया गया है और उक्त प्रक्रिया आरक्षण अधिनियम, 1994 की धारा 3(1) और धारा 3(6) के अतिक्रमण में है।

54. याचिकाकर्ताओं की ओर से विद्वान अधिवक्ता ने शासनादेश दिनांकित 25.03.1994 और दिनांकित 30.01.2015 का भी संदर्भ दिया है जिसमें राज्य सरकार द्वारा आरक्षण अधिनियम 1994 की धारा 3(6) के प्रावधानों को स्पष्ट करते हुए कहा गया था कि जब आरक्षण अधिनियम, 1994 की धारा 3 (6) किसी भी चयन में कड़ाई से लागू नहीं किया जाता है तो इस अधिनियम धारा की 3 (1) के तहत यथा उपबंधित आरक्षण कोटा का स्वतः उल्लंघन हो जाता है और सम्पूर्ण आरक्षण नीति अस्त-व्यस्त हो जाती है और ऐसे आरक्षित वर्ग के अभ्यर्थियों के लिए, जो खुली प्रतिस्पर्धा में भाग लेने में असमर्थ हैं, प्रावधानित लाभकारी प्रावधान निष्फल हो जाते हैं। इस प्रकार, उनके अनुसार जिन आरक्षित वर्ग के अभ्यर्थियों को आरक्षण की आवश्यकता है उन्हें प्रत्यर्थी अधिकारियों द्वारा आरक्षण नीति के दोषपूर्ण और अतार्किक कार्यान्वयन के कारण वंचित कर दिया गया है क्योंकि उन्होंने ऐसे एमआरसी अभ्यर्थियों का चयन, जिनकी मेरिट सामान्य श्रेणी के अभ्यर्थियों द्वारा प्राप्त अंको के बराबर अथवा अधिक है, मनमाने ढंग से आरक्षित कोटा के सापेक्ष समायोजित किया गया है। इस प्रकार प्राधिकारियों की उक्त कार्रवाई के परिणामस्वरूप आरक्षित रिक्तियों की समान संख्या ऐसे एमआरसी अभ्यर्थियों द्वारा अवैध रूप से अतिक्रमित कर ली गई है जिन अभ्यर्थियों को अनारक्षित रिक्तियों के सापेक्ष समायोजित किया जाना चाहिए था जिसका परिणाम यह हुआ कि याचिकाकर्ताओं के समान पात्र आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थियों को सबसे नीचे रखकर सहायक अध्यापक के पद पर चयन के लिए विचार किये जाने की परिधि से बाहर कर दिया गया है।

55. आगे याचिकाकर्ताओं का कथन है कि प्रत्यर्थियों ने धारणा बनाई कि आरक्षित कोटे पर

समायोजित किए जाने के बाद इन एमआरसी अभ्यर्थियों ने वास्तव में सामान्य श्रेणी में अपने संबंधित स्थान खाली कर दिया है जिसको सामान्य श्रेणी के आधिक्य अभ्यर्थियों में से भरा गया था। इस प्रकार, उनके द्वारा यह तर्क दिया गया है कि अनारक्षित/सामान्य वर्ग के कम योग्य अभ्यर्थियों का चयन 50 प्रतिशत की सीमा से अधिक अनारक्षित सीटों पर किया गया है और अधिक योग्य आरक्षित वर्ग अभ्यर्थियों, जैसे कि याचीगण को, आरक्षित सीटों के सापेक्ष नियुक्ति के लिए समुचित विचारण की परिधि से बाहर कर दिया गया है। याचिकाकर्ताओं ने शाहजहांपुर जिले में किए गए चयन का उदाहरण दिया है, जिसमें याचिकाकर्ताओं के अनुसार कुल 1450 सीटों में से अधिकतम 725 सीटें अनारक्षित/सामान्य अभ्यर्थियों द्वारा भरी जानी चाहिए थीं और शेष 725 सीटें आरक्षित वर्ग के अभ्यर्थियों द्वारा भरी जानी चाहिए थीं, जबकि उनके कथनानुसार वास्तव में करीब 880 सीटें एमआरसी अभ्यर्थियों सहित अनारक्षित/सामान्य श्रेणी के अभ्यर्थियों द्वारा भरी गयी थीं और इस प्रकार आरक्षित श्रेणी से संबंधित मौलिक सीटें अनारक्षित/सामान्य श्रेणी के अभ्यर्थियों द्वारा अतिक्रमित कर ली गईं हैं।

56. याचिकाकर्ताओं द्वारा उठाया गया अगला मुद्दा एमआरसी अभ्यर्थियों को वरीयता वाले जिलों के आवंटन में अधिकारियों द्वारा लागू की गई आरक्षण नीति से संबंधित है। याचिकाकर्ताओं के अनुसार, वरीयता वाले जिले आवंटित करते समय प्राधिकारियों ने उन्हें आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थी के रूप में माना है, जबकि इस न्यायालय के साथ-साथ माननीय सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न निर्णयों के अनुसार जिला आवंटन के उक्त उद्देश्यों के लिए इन अभ्यर्थियों को मात्र कल्पित रुप से आरक्षित श्रेणी का अभ्यर्थी माना जाना है। इस प्रकार, यह तर्क दिया गया है कि प्रत्यर्थी अधिकारियों ने मनमाने ढंग से यह मान लिया है कि एमआरसी द्वारा छोड़ी गई अनारक्षित सीटें और अधिक सामान्य श्रेणी के अभ्यर्थी के चयन के लिए उपलब्ध थी, जिसके परिणामस्वरूप ऐसे एमआरसी की अवशेष सीटों पर सामान्य श्रेणी के अभ्यर्थियों का अतिरिक्त चयन हुआ, जिनको अनारक्षित रिक्तियों के बजाय आरक्षित कोटा रिक्तियों के लिए अवैध रूप से समायोजित किया गया था। इस प्रकार, याचिकाकर्ताओं द्वारा यह कथन किया गया है कि सामान्य अभ्यर्थियों के इस अतिरिक्त चयन के कारण, याचिकाकर्ताओं जैसे आरक्षित अभ्यर्थियों को आरक्षित सीटों के सापेक्ष चयन से वंचित कर दिया गया था जबकि आरक्षण अधिनियम, 1994 की धारा 3(1) और धारा 3(6) के तहत आरक्षित सीटों के सापेक्ष चयन के लिए उनका समुचित रूप से विचारित किया जाना उनका कानूनी अधिकार था।

57. इस प्रकार, 01.06.2020 की चयन सूची को उस सीमा तक चुनौती दिये जाने की मांग की गई है जहां तक यह आरक्षण अधिनियम, 1994 की धारा 3 (6) के प्रावधानों का उल्लंघन करती है, क्योंकि याचिकाकर्ताओं के अनुसार, यद्यपि 1994 के आरक्षण अधिनियम की धारा 3 (6) के अनुसार एमआरसी अभ्यर्थी को अनारक्षित रिक्तियों पर समायोजित किया जाना चाहिये लेकिन वास्तव में प्रत्यर्थी अधिकारियों ने आरक्षित रिक्तियों पर एमआरसी अभ्यर्थी को अपनी पसंद का जिला आवंटित करने के बहाने समायोजित कर दिया है और इसी प्रकार

अनारक्षित श्रेणी में एमआरसी अभ्यर्थियों की गणना न करके प्रत्यर्थियों ने, ओबीसी, एससी और एसटी के वास्तविक आरक्षण कोटा को कम कर दिया है, जो आरक्षण अधिनियम 1994 की धारा 3 (1) और भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 (4) का उल्लंघन है।

58. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है इसी तरह की रिट याचिकाएं दायर की गई और इस न्यायालय ने 25.08.2020 को प्रमुख मामले में एक आदेश पारित कर कहा कि उक्त मामले में एक मुख्य प्रति-शपथपत्र दाखिल कर उसकी एक प्रति इस तरह की अन्य रिट याचिकाओं का प्रतिनिधित्व कर रहे विद्वान अधिवक्तागण को प्रदान की जाए जो और अन्य मामलों में प्रत्यर्थियों की ओर से अलग से प्रति-शपथपत्र दाखिल करने की कोई आवश्यकता नहीं है। मुख्य मामले में दाखिल किए गए प्रति-शपथपत्र को अन्य समान मामलों में दाखिल प्रति-शपथपत्र माना जाएगा। इसके अलावा, इस न्यायालय ने प्रभावित व्यक्तियों को नोटिस जारी करते हुए दिनांक 7 दिसंबर, 2020 को आदेश पारित कर कहा कि इस बीच, सहायक अध्यापक के पद पर की गई नियुक्तियां इन याचिकाओं के अंतिम निर्णय के अधीन होंगी।

59. प्रत्यर्थी-प्राधिकारियों द्वारा 19 जनवरी, 2021 को प्रति-शपथ पत्र दाखिल किया गया था, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ उन्होंने रिट याचिका को खारिज करने की मांग की थी, जिसमें यह कहा गया था कि रिट याचिका केवल आशंका के आधार पर दायर की गई है और रिट याचिका के साथ कोई दस्तावेज संलग्न नहीं किया गया है, जिससे उनकी आशंका की पुष्टि होती है। उनके अनुसार आरक्षण की प्रक्रिया का उचित रूप से पालन किया गया है और दिनांक 01.06.2020 की चयन सूची को अभ्यर्थियों द्वारा प्राप्त गुणवत्ता अंकों के आधार पर तैयार किया गया है और एनआईसी द्वारा विकसित एक सॉफ्टवेयर प्रक्रिया द्वारा आवेदन फॉर्म में अभ्यर्थियों द्वारा की गई प्रविष्टि के आधार पर आरक्षण प्रदान किया गया है और यह एक यांत्रिक प्रक्रिया थी, जिसमें किसी प्राधिकारी का कोई हस्तक्षेप संभव नहीं था। प्रत्यर्थी ने एक तकनीकी बिंदु भी उठाया कि जहां तक दिनांक 01.06.2020 की चयन सूची को रद्द करने का प्रश्न है रिट याचिका पोषणीय नहीं है। क्योंकि वह प्रत्येक चयनित अभ्यर्थी को पक्षकार बनाने में विफल रहे हैं। प्रत्यर्थियों के अनुसार, कुल विज्ञापित 69000 पदों के सापेक्ष और विभिन्न कोटा के 67,867 अभ्यर्थियों का चयन किया गया है और अनुसूचित जनजाति के लगभग 1133 पद अपेक्षित अभ्यर्थियों की अनुपलब्धता के कारण अभी भी रिक्त है।

60. प्रत्यर्थियों ने सहायक शिक्षकों की जिला-वार नियुक्ति का ब्यौरा भी दिया और कहा कि 34,598 अनारक्षित पदों के सापेक्ष सामान्य श्रेणी के 19805 अभ्यर्थी, अ.पि.व. (एमआरसी) के 13007 अभ्यर्थी, एससी (एमआरसी) के 1753 अभ्यर्थी और अनुसूचित जनजाति के 24 अभ्यर्थी चुने गए हैं। प्रत्यर्थी-प्राधिकारी द्वारा यह प्रतिवाद किया गया है कि आरक्षण अधिनियम की धारा 3(1) के अनुसार अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए 27 प्रतिशत सीटें आरक्षित थीं और चयन सूची के अनुसार, 18598 अभ्यर्थियों का चयन उक्त अन्य पिछड़ा वर्ग कोटा में किया गया है। इसके अतिरिक्त 13007अ.पि.व. (एमआरसी) का चयन

अनारक्षित श्रेणी में किया गया है। प्रत्यर्थी के अनुसार, इस तरह से लगभग 31605 अभ्यर्थियों का चयन अ.पि.व. श्रेणी से किया गया है और इसलिए चयन सूची में कोई विसंगति नहीं थी।

61. प्रत्यर्थियों ने अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए विभिन्न श्रेणियों के कट-ऑफ अंकों का भी निम्नवत उल्लेख कियाः

अनारक्षित श्रेणी	
अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी)	
अनुसूचित जाति (एससी)	

और तर्क दिया कि 69000 सहायक अध्यापकों की चयन प्रक्रिया में , उ.प्र. लोक सेवा (अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण) अधिनियम, 1994 द्वारा विहित प्रक्रिया का कड़ाई से पालन किया गया है और चयन सूची अभ्यर्थियों द्वारा प्राप्त गुणवत्ता मापक अंको के अनुसार विशिष्टतः तैयार की गई थी और किसी भी अभ्यर्थी के लिए योग्यता सूची का उल्लंघन नहीं किया गया था। इस प्रकार, यह तर्क दिया गया कि रिट याचिकाओं में कोई बल नहीं था और वह खारिज किये जाने योग्य थी।

62. याचिकाकर्ताओं ने जवाब में, अपने तर्क को दोहराते हुए निम्नलिखित सारणी के माध्यम से भी प्रतिवाद किया जैसा कि उनके द्वारा अपनी रिट याचिकाओं में किया गया था और जिसको प्रत्यर्थी-प्राधिकारियों द्वारा अपने प्रति-शपथपत्र में प्रदान की गई सूचना के आधार पर तैयार किया गया था जो इस प्रकार हैः

श्रेणी	कुल सीटें	कट-ऑफ	चयनित अभ्यर्थियों के बीच विभाजन (कुल- 67, 867)
अनारक्षित	34, 589	67.11	19805 (सामान्य) 13007 (अ. विप.व.-एमआरसी) 1753 (एस. सी.-एम.आर.सी.) 24 (एस. टी.-एम.आर.सी.)
अ. विप. व.	18598	66.73	18598
एस. सी.	14459	61.01	14459
एस. टी		56.09	221 (अभ्यर्थियों की

			अनुपलब्धता के कारण 1133 सीटें रिक्त रह गईं)

उपर्युक्त सारणी का उल्लेख करते हुए याचिकाकर्ताओं ने कहा कि प्रत्यर्थी-प्राधिकारी की स्वयं की जानकारी के अनुसार, उन्होंने केवल 14784 अभ्यर्थियों को एमआरसी अभ्यर्थी के रूप में माना है। याचिकाकर्ता के अनुसार, प्रति-शपथपत्र प्राप्त होने के बाद, उन्होंने अभ्यर्थियों की श्रेणी का उल्लेख करने के साथ साथ उनके द्वारा प्राप्त अंको के आधार पर एक अन्य सारणी तैयार करवायी जो शिक्षा परिषद की वेबसाइट में उपलब्ध है और वह यह जानकर आश्चर्यचकित हो गए कि चयन सूची में कम से कम 7149 अतिरिक्त/अधिक सामान्य वर्ग के अभ्यर्थियों को नामित/चयनित किया गया है, क्योंकि उनका नाम क्रम संख्या 34589, अर्थात सामान्य कोटा में सीटों की कुल संख्या, के उपरान्त प्रदर्शित होता है और जिसके बारे में उनका कहना है कि ऐसा नहीं हो सकता था, यदि प्रत्यर्थी ने आरक्षण नीति को उसके वास्तविक भाव में लागू किया होता।

63. याचिकाकर्ता ने आगे कहा कि वेबसाइट से उपलब्ध आंकड़ों से वे उन सभी आरक्षित वर्ग के अभ्यर्थियों के आंकड़ों का भी संकलन करने में सक्षम हुए हैं, जिन्होंने अनारक्षित वर्ग के कट-ऑफ अंक अर्थात 67.11 से अधिक अंक प्राप्त किए हैं और इस प्रकार यह सारणी निम्नवत दर्शाती हैः

श्रेणी	आरक्षित अभ्यर्थी जिन्होंने एम.आर.सी. अंक अर्थात 67.11 के बराबर अथवा अधिक अंक प्राप्त किए हैं (A)	एम.आर.सी. अभ्यर्थी जो सामान्य श्रेणी में एम.आर.सी. के रूप में वास्तविक रूप में चयनित हुए। (B)	एम.आर.सी. अभ्यर्थी जिनको अवैध रूप से आरक्षित श्रेणी अभ्यर्थी माना गया है (A minus B)
अ. विप. व.	28,978	13,007	15,971
एस. सी.	4,742	1,753	2,989
एस. सी.	52	24	28
कु ल	33,772	14,784	18,988

उक्त सारणी का संदर्भ देकर याचिकाकर्ताओं की ओर से यह कहा गया है कि आरक्षित श्रेणी के कुल 18,988 अभ्यर्थियों को अनारक्षित श्रेणी में स्थानान्तरित किया जाना चाहिए था जिन्होंने सामान्य श्रेणी के कट-ऑफ अंक से अधिक अंक प्राप्त किये है, जबकि उनको आरक्षित श्रेणी में समायोजित किया गया है जो आरक्षण अधिनियम, 1994 की धारा 3 (6) का घोर उल्लंघन है। उनके अनुसार, अ.पि.व. के कुल 28,978 अभ्यर्थियों ने सामान्य श्रेणी से अधिक अंक प्राप्त किए हैं, जबकि केवल 13,007 अभ्यर्थियों को एमआरसी के रूप में माना गया है। इस प्रकार, अ.पि.व. कोटा सीटों में 15971

अभ्यर्थियों को समायोजित करने का तथ्य न केवल आरक्षण अधिनियम, 1994 की धारा 3 (6) की परिधि में है बल्कि अ.पि.व. कोटा में 15971 अ.पि.व.-एमआरसी अभ्यर्थियों के अवैध समायोजन के कारण अ.पि.व. कोटा सीटों की उपलब्धता 18598 से घट कर मात्र 2627 रह गई है। इस प्रकार, यह दावा किया गया है कि 27 प्रतिशत अ.पि.व. कोटा सीटों के मुकाबले केवल 3.80 प्रतिशत कोटा सीटें वास्तव में उपलब्ध कराई गई हैं। इसी प्रकार, अनुसूचित जाति कोटा सीटों के लिए 21 प्रतिशत सीटों की वैधानिक उपलब्धता के मुकाबले अनुसूचित जाति के अभ्यर्थियों के लिए वास्तव में केवल 16.62 प्रतिशत सीटें ही उपलब्ध कराई गई हैं। इसी तरह, यह प्रतिवाद किया गया था कि जहाँ तक एसटी कोटा सीटों का संबंध है, यदि 28 एसटी-एमआरसी अभ्यर्थियों को उनका यथोचित अधिकार दिया जाता और सामान्य श्रेणी की सीटों में समायोजित किया गया होता तो कुल रिक्त सीटें 1133 के स्थान पर 1161होती।

64. इस प्रकार, याचिकाककर्ताओं द्वारा अपने प्रतिउत्तर में यह निवेदन किया गया है कि आरक्षण अधिनियम, 1994 की धारा 3(1) के अन्तर्गत आरक्षण का कोटा अत्यधिक कम कर दिया गया है अर्थात अन्य पिछ्ड़ा वर्ग के मामले में 27 प्रतिशत से 3.80 प्रतिशत और अनुसूचित जाति वर्ग के मामले में 21 प्रतिशत से घटाकर लगभग 16.62 प्रतिशत कर दिया गया है और इस तरह चयन सूची आरक्षण अधिनियम, 1994 की धारा 3(1) के प्रावधानों, उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा (शिक्षक) सेवा नियमावली 1981 के नियम 9, और भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16(4) के प्रावधानों का उलंघन करती है । याचिकाकर्ताओं का यह मामला है कि यदि प्रतिवादी - प्राधिकारी नें उपरोक्त सभी 33,772 एमआरसी अभ्यर्थियों को समान्य श्रेणी में रखा होता/माना होता और 18988 अभ्यर्थियों को आरक्षित श्रेणी में स्थानान्तरित नही किया होता तो याचिकाकर्ताओं के समान अतिरिक्त आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थियों को सहायक शिक्षक पद के लिए चुना गया होता ।

65. याचिकार्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने अपने बिन्दु को स्पष्ट करने का प्रयास करते हुए कहा कि आरक्षण नीति को उसके सही परिप्रेक्ष्य में लागू नही किया गया है, एवं यह भी तर्क दिया कि शायद पूरी गलती आरक्षण अधिनियम 1994, की धारा 3(1) और 3(6) के कानूनी प्रावधानो की गलत व्याख्या के कारण प्रत्यर्थी द्वारा की गयी है, जिसमें कुछ एमआरसी अभ्यर्थियों को वरीयता जनपद का आवंटन करते समय, प्रतिवादी अधिकारियों ने उन्हे तात्विक रुप से केवल आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थी के रुप में माना है (बजाय उन्हे ऐसा परिकल्पित रुप में मानने के) जबकि मा० सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न निर्णयों के अनुसार और इस मा० न्यायालय के शिखा सिंह वाद में (उपरोक्त) , एमआरसी अभ्यर्थियों को जिले के आवंटन के उद्देश्य से मात्र परिकल्पित रूप में आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थी के रुप में माना जाना चाहिए और उसके बाद तात्विक रूप से सामान्य श्रेणी के अभ्यर्थी के रुप में माना जाए । याचिकाकर्ता का तर्क है कि उक्त निर्णय में एकल न्याायाधीश नें प्रतिवादियों को निर्देश दिया था कि वे केवल एमआरसी अभ्यर्थियों को जनपद आवंटन की प्रक्रिया को जारी रखें, उन्हे केवल उनके प्राथमिकता के जनपद आवंटन के प्रयोजनो के लिए आरक्षित माना जाए ।

66. याचिकाकर्ताओं का यह तर्क है कि एमआरसी अभ्यर्थियों को जिलों के आवंटन में त्रुटि करने के बाद प्रतिवादी अधिकारियों ने मनमाने ढंग से यह मान लिया है कि एमआरसी अभ्यर्थियों द्वारा छोड़ दी गई अनारक्षित सीटें सामान्य अभ्यर्थियों के और अधिक चयन के लिए उपलब्ध हैं और परिणामस्वरूप अतिरिक्त अनारक्षित चयन एमआरसी अभ्यर्थियों की सीमा तक किया गया था, जो अनारक्षित रिक्तियों के बजाय आरक्षित कोटा रिक्तियों के प्रति अवैध रूप से समायोजित किए गए थे । सामान्य वर्ग के अभ्यर्थियों के इस अतिचयन के कारण याचिकाकर्ताओं के समान आरक्षित अभ्यर्थियों को आरक्षित सीटों के प्रति चयन से वंचित कर दिया गया, हालांकि आरक्षण अधिनियम की धारा 3 (1) और 3 (6) के अन्तर्गत आरक्षित सीटों के प्रति चयन हेतु समुचित विचारण उनका विधिक अधिकार है, जिसका प्रतिवादी अधिकारियों द्वारा स्पष्ट उल्लंघन किया गया है।

67. वादों के वर्तमान समूह की सुनवाई के दौरान, याचिकाकर्ताओं ने एक पूरक शपथ पत्र दिनांकित 27.01.2021 दाखिल किया जिसमें यह तर्क दिया गया कि राज्य सरकार ने चयन सूची दिनांकित01.06.2020 से रिक्तियों को भरने की प्रक्रिया में आदेश दिनांकित 24.09.2020 जारी कर तेजी लाई, जिसमें प्रथम चरण में चयन सूची दिनांकित 01.06.2020 द्वारा चयनित अभ्यर्थियों को नियुक्ति पत्र जारी कर 31,661 रिक्तियां भरने का निर्देश जारी किया गया था। इस प्रकार, राज्य द्वारा दिनांक 11.10.2020 को एक उप-चयन सूची जारी की गई थी, जिसमें 31,277 अभ्यर्थियों की सूची निहित थी और पुनः जागरुक याचिकाकर्ताओं ने यह जाँच करने के लिए पूछताछ की कि क्या 69.25 गुणवत्ता अंक से कम अंक प्राप्त करने वाला सामान्य श्रेणी का कोई अभ्यर्थी ऊर्ध्वाधर आरक्षण के आधार पर चुना गया है या नहीं। 34589वें अभ्यर्थी द्वारा प्राप्त किया गया 69.25 गुणवत्ता अंक तकनीकी रूप से अनारक्षित श्रेणी के लिए अंतिम सीट थी। याचिकाकर्ताओं द्वारा यह पाया गया कि 31,277 की सूची में अंतिम सामान्य अभ्यर्थी, जिसे ऊर्ध्वाधर आरक्षण के आधार पर नियुक्ति दी गई थी, को 71.2. गुणवत्ता अंक प्राप्त हुए थे ।

68. याचिकाकर्ताओं का यह तर्क है कि यद्यपि सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णय दिनांकित 18 नवंबर, 2020 (राम शरण मौर्य वाद) द्वारा राज्य सरकार को 69000 विज्ञापित रिक्तियों के अनुसरण में चयन प्रक्रिया जारी रखने की स्वतंत्रता दी थी, लेकिन उक्त स्वतंत्रता किसी भी प्रकार राज्य सरकार को आरक्षण अधिनियम 1994 की धारा 3 (1) और धारा 3 (6) का उल्लंघन करते हुए चयन करने की छूट नही देती है और इसलिए राज्य सरकार को 18,988 एमआरसी श्रेणी के अभ्यर्थियो को आरक्षित वर्ग में मानते हुए उनको उनकी वरीयता का जनपद देने के बहाने से आरक्षित वर्ग की सीटों पर अतिक्रमण करने के उद्देश्य से आदेश दिनांकित 18.11.2020 का प्रश्रय लेने की अनुमति नही दी जा सकती है।

69. यूपी बेसिक शिक्षा परिषद और इसके सचिव को आदेश दिनांक 23.07.2021 के माध्यम से ओबीसी, एससी और अन्य श्रेणियों में आरक्षित रिक्तियों के प्रति चयनित अभ्यर्थियों हेतु, जो न्यायालय के नियमों के प्रावधानों के अनुसार स्वयं का बचाव करने का इच्छुक हों,

एक परिपत्र जारी करने और दैनिक समाचार पत्र में प्रकाशित करने का निर्देश दिया गया था।

70. याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर पूरक शपथपत्र के उत्तर में उत्तरदाताओं द्वारा 23 जुलाई, 2021 को एक प्रति शपथपत्र/प्रत्युत्तर दाखिल किया गया था। प्रतिवादी के अनुसार, यह चयन सूबेदार सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एसएलपी नम्बर - 6687/2020 के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांकित 09.06.2020 के अनुपालन में किया जा रहा था जिसके अनुसरण में शासनादेश दिनांकित 24.09.2020 तथा शासनादेश दिनांकित 06.10.2020 सहायक शिक्षकों के चयन के लिए काउन्सलिंग आयोजित करने के लिए जारी किये गये थे। पहले चरण में कुल 31277 पदों को भरा गया था, जिसके बाद शासनादेश दिनांकित 24.11.2020 के के माध्यम से शेष 36590 रिक्तियों को भरना प्रारम्भ किया गया था। इस प्रकार, उनके अनुसार उच्चतम न्यायालय के आदेश के अनुपालन में 67867 सफल अभ्यर्थियों की काउन्सलिंग की गयी तथा शासनादेश दिनांकित 17.5.2021 के माध्यम से तीसरे चरण की काउंसलिंग एनआईसी द्वारा विकसित सॉफ्टवेयर के माध्यम से आरक्षण से संबंधित नियमों और शासनादेश का पालन करते हुए संबंधित जिलों द्वारा दी गई जानकारी के अनुसार 69000 भर्तियां में शेष रिक्त पदो हेतु की गयी है।

71. उक्त उत्तर में, प्रतिवादी ने उल्लेख किया कि उत्तर प्रदेश लोक सेवा (अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़ें वर्गों के लिये आरक्षण) अधिनियम 1994 और शासनादेश दिनांकित 28 अगस्त, 2015 के अनुसार, वर्तमान चयन में अनुसूचित जातियों के लिए 21 प्रतिशत, अनुसूचित जनजातियों के लिए 2 प्रतिशत और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए 27 प्रतिशत आरक्षण निर्धारित है। यह भी उल्लेख किया गया कि शासनादेश दिनांकित 25.09.2018 के अनुसार तत्संबंधित श्रेणियों में दिव्यांगजनों के लिए 4 प्रतिशत क्षैतिज आरक्षण, स्वतंत्रता सेनानियों के आश्रितों हेतु 2 प्रतिशत क्षैतिज आरक्षण, भूतपूर्व सैनिकों के लिए 5 प्रतिशत क्षैतिज आरक्षण और संबंधित अधिनियम के अनुसार महिलाओं के लिए 20 प्रतिशत क्षैतिज आरक्षण, सम्बन्धित अधिनियम एवं शासनादेशों दिनांकित25.09.2018 और 21.06.2021 के अनुसार प्रदान किया गया है। प्रतिवादी ने 01.06.2020 को प्रकाशित 67,867 अभ्यर्थियों की जिला आवंटन सूची के अनुसार सीटों के वितरण से संबंधित अपना कथन प्रस्तुत किया, जिसे सारणी के रूप में निम्नवत दर्शाया जा सकता हैः

वर्ग	कुल सीटें	चयनित कुल अभ्यर्थियों का विभाजन (कुल- 67,867)	
अनारक्षित (UR)	34589	19805 (सामान्य)	7159 (विशेष आरक्षित श्रेणी के तहत क्षैतिज आरक्षण)
			12,646 (सामान्य श्रेणी)
		13007 (ओबीसी-एमआरसी)) 1753 (एससी-एमआरसी) 24(एसटी-एमआरसी)	

अन्य पिछड़ा वर्ग	18598	18598	8418 (विशेष आरक्षित श्रेणी के तहत क्षैतिज आरक्षण)
			10,180 (ऊर्ध्वाधर आरक्षण के लिए ओबीसी अभ्यर्थी)
अनुसूचित जाति	14459	14459	960 (विशेष आरक्षित श्रेणी के तहत क्षैतिज आरक्षण)
			13499 (ऊर्ध्वाधर आरक्षण के लिए अनुसूचित जाति के अभ्यर्थी)
अनुसूचित जनजाति	1354	245	10 (विशेष आरक्षित श्रेणी के तहत क्षैतिज आरक्षण)
			211 (उर्ध्वाधर आरक्षण के लिए अनुसूचित जनजाति के अभ्यर्थी)

72. इस प्रकार प्रत्यर्थी प्राधिकारियों द्वारा यह दावा किया गया कि आरक्षण नीति के प्रावधानों का पालन करने और माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के अनुपालन के अन्तर्गत पूरी प्रक्रिया सम्पादित की गई है और उनके अनुसार आरक्षित वर्ग के कुल 48,062 अभ्यर्थियों का चयन एमआरसी, विशेष आरक्षण कोटा अथवा ऊर्ध्वाधर आरक्षण द्वारा 67,867 सीटों के प्रति किया गया है। इस प्रकार उनका कथन है कि पूरी चयन प्रक्रिया पारदर्शी और उत्तर प्रदेश लोक सेवा (अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों के लिये आरक्षण) अधिनियम 1994 के प्रावधानों और उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षक नियमावली, 1981 के अनुरूप थी।

73. एक अन्य प्रत्युत्तर में याचिकाकर्ताओं ने प्रतिवादी के इस तर्क का खण्डन किया है और उनके अनुसार, प्राधिकरण द्वारा दायर प्रतिशपथपत्र भ्रामक था क्योंकि कई सामान्य श्रेणी के अभ्यर्थियों, जो क्षैतिज आरक्षण के रूप में किसी विशिष्ट आरक्षण के अधिकारी नही थें, का चयन क्रम संख्या 34589 से परे किया गया है। याचिकाकर्ताओं ने कम से कम तीन सामान्य श्रेणियों के अभ्यर्थियों का नाम दिया है जो किसी भी क्षैतिज आरक्षण के पात्र नहीं हैं एवं जिनका चयन क्रम संख्या 34591,34594 और 41905 पर किया गया है। उनके अनुसार, कम से कम 7149 सामान्य वर्ग के अभ्यर्थियों का चयन उपलब्ध अनारक्षित रिक्तियों से परे किया गया है। उनके द्वारा यह तर्क दिया गया है कि प्रतिवादी का यह स्पष्टीकरण कि सामान्य श्रेणी के अभ्यर्थियों का क्षैतिज श्रेणी के अन्तर्गत चयन किया गया है, भ्रामक था और इस न्यायालय के समक्ष एक मिथ्या छवि गढ़ने का प्रयास था। याचिकाकर्ताओं ने यह भी तर्क दिया है कि यद्यपि प्रतिवादी/प्राधिकारी अभिलेखों का अभिरक्षक है तथापि इस न्यायालय के विभिन्न आदेशों के अन्तर्गत विशिष्ट निर्देश होने के बावजूद जिसमें कि आदेश दिनांकित 03 फरवरी 2021 और 17 मार्च 2021 भी सम्मिलित है, उसने अपने पूरक शपथपत्र में पैरा 17 (ए), 17 (बी) और 18 का कोई विशिष्ट उत्तर नहीं दिया

। याचिकाकर्ताओं द्वारा यह प्रतिवाद किया गया है कि प्रतिवादी न केवल विशिष्ट उत्तर देने में विफल रहा है, बल्कि उन आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थियों की वास्तविक संख्या बताने में भी विफल रहा है जिन्होंने 67.11% से अधिक अंक प्राप्त किए हैं और इस प्रकार. चयन सूची न तो वैध है, न ही उचित है और न ही विधिक दृष्टि से मान्य है ।

74. मामले की सुनवाई के दौरान, याचिकाकर्ता ने रिट याचिका में संशोधन करने और कुछ पैराग्राफ डालने और मामले में पश्चातवर्ती प्रगति को ध्यान में रखते हुए अतिरिक्त प्रार्थना करने हेतु आवेदन दायर करने की मांग की । याचिकाकर्ताओं ने तर्क दिया है कि 01.06.2020 की चयन सूची दो अलग-अलग चरणों के माध्यम से अर्थात 11 अक्टूबर, 2020 की उप-चयन सूची के माध्यम से और दूसरी. 30 नवंबर, 2020 को दूसरी उप-चयन सूची के माध्यम से नियुक्ति हेतु क्रियान्वित करने की मांग की गयी थी, और उसके बाद सरकार ने 6696 रिक्त सीटों पर नियुक्ति करने के लिए दिनांक 26 जून, 2021 को एक और चयन सूची जारी की जिसके आधार पर किसी अभ्यर्थी ने कार्यभार ग्रहण नही किया है। याचिकाकर्ता का मामला है कि जबकि प्रतिवादी ने आरक्षित श्रेणी के 67.11% अंक प्राप्त करने वाले अभ्यर्थियों की वास्तविक संख्या से संबंधित इस न्यायालय द्वारा उठाए गए प्रश्नों का एवं इस प्रश्न का भी कि क्यों अन्य पिछड़ा वर्ग को 27% और अनुसूचित जाति श्रेणी को 21% सीटें आवंटित करने के स्थान पर उन्हे क्रमशः मात्र 3.80% और 16.62% सीटें आवंटित की गई, समुचित उत्तर नही प्रस्तुत किया गया। राज्य ने एक प्रेस नोट दिनांकित 24.12.2020 जारी कर 69000 सहायक शिक्षक चयन प्रक्रिया में आरक्षण नीति लागू करने में गलती को स्वीकार किया और अाश्वासन दिया कि आरक्षित वर्ग की नियुक्ति कर उसे ठीक कर दिया जाएगा । याचिकाकर्ताओं द्वारा यह तर्क दिया गया है कि उक्त प्रेस नोट के बाद, सचिव/विशेष सचिव. बेसिक शिक्षा विभाग ने उक्त बाध्यकारी परिस्थितियों में 6800 आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थियों की नियुक्ति के लिए दिनांक 05.01.2022 को एक शासनादेश जारी किया।

75. याचिकाकर्ता के अनुसार चयन सूची दिनांकित 05.01.2022 , जो उसी तारीख के उक्त शासनादेश के अनुसरण में जारी की गई है, जिसमें केवल लगभग 6800 आरक्षित वर्ग के अभ्यर्थियों को शामिल किया गया है, यह दिखाती है कि राज्य सरकार ने प्रश्नगत चयन पर आरक्षण अधिनियम की धारा 3 (1) और 3 (6) के प्रावधान को लागू करने में अपनी गलती को आंशिक रूप से सुधारा है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि याचिकाकर्ताओं ने इसी याचिका में 28 जनवरी, 2021 को दाखिल किए गए अनुपूरक शपथपत्र में यह दिखाया था कि आरक्षित वर्ग के लगभग 18,988 अभ्यर्थियों को समायोजित करने और चयनित करने की आवश्यकता है, हालांकि राज्य सरकार ने केवल 6800 आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थियों को ही नियुक्ति देने का निर्णय किया है, जो आरक्षण अधिनियम 1994 की धारा 3 (1) और 3 (6) का स्पष्ट उल्लंघन है। यह स्पष्ट है कि आरक्षण का लाभ अभी तक लगभग 13000 अभ्यर्थियों को नहीं प्रदान किया गया है।

76. इस न्यायालय ने रिट याचिकाओं की उपर्युक्त पहली श्रेणी में पक्षों के तर्क और विरोधी

तर्क का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है, क्योंकि अन्य सभी संबद्ध श्रेणियों के तथ्य और तर्क अतिच्छादित हैं, सिवाय इसके कि ये अन्य श्रेणियां पीड़ित याचिकाकर्ताओं के एक अलग समूह द्वारा कतिपय भिन्न प्रार्थनाओं के साथ दाखिल की गई हैं। इस प्रकार, यह न्यायालय वाद की प्रत्येक श्रेणी के तथ्यों का बोझ इस निर्णय पर नहीं डालना चाहता।

H. <u>विचार-विमर्श और निष्कर्ष</u>

77. अधिवक्ता श्री अमरेंद्र नाथ त्रिपाठी, अधिवक्ता श्री राजकुमार विश्वकर्मा और श्री शैलेंद्र तिवारी; अधिवक्ता श्री माया राम; अधिवक्ता श्री अश्विनी कुमार सिंह; अधिवक्ता श्री शिवम पांडे; अधिवक्ता श्री विनय के. पांडे; अधिवक्ता श्री आई. एम. पांडे, अधिवक्ता श्री श्रीकांत मिश्रा; वरिष्ठ अधिवक्ता श्रीमती बुलबुल गोडियाल, अधिवक्ता श्री राजीव नारायण पांडे; वरिष्ठ अधिवक्ता श्री सुदीप सेठ एवं अधिवक्ता श्री नितेश कुमार; वरिष्ठ अधिवक्ता श्री असित कुमार चतुर्वेदी एवं अधिवक्ता श्री दुर्गा प्रसाद शुक्ला; अधिवक्ता श्री विवेक मिश्रा; अधिवक्ता श्री गिरीश चंद्र वर्मा; अधिवक्ता श्री ओंकार सिंह; वरिष्ठ अधिवक्ता श्री संदीप दीक्षित एवं अधिवक्ता श्री दीपक सिंह; अधिवक्ता श्री अमरेंद्र नाथ त्रिपाठी, अधिवक्ता श्री अनस शेरवानी एवं अधिवक्ता श्री जे. के. मिश्रा; अधिवक्ता सुश्री ज्योति सिक्का; अधिवक्ता श्री अभिषेक सिंह; अधिवक्ता श्री गजेन्द्र प्रताप सिंह; अधिवक्ता श्री धर्मेंद्र कुमार सिंह, अधिवक्ता श्री कमलेश कुमार यादव; अधिवक्ता श्री विकास यादव एवं अधिवक्ता श्री श्याम मोहन उपाध्याय, अपने संबंधित याचिकाकर्ता (ओं) के विद्वान अधिवक्ता के रूप में और वरिष्ठ अधिवक्ता श्री संजय भसीन एवं अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री रण विजय सिंह राज्य के विद्वान अधिवक्ता के रूप में एवं अधिवक्ता श्री राकेश कुमार चौधरी; अधिवक्ता श्री श्रेया चौधरी, अधिवक्ता डॉ. लालता प्रसाद मिश्रा, अधिवक्ता श्री प्रफुल्ल तिवारी को अपने सम्बन्धित प्रतिवादी/हस्तक्षेपकर्ता हेतु विद्वान अधिवक्ता के रूप में सुना।

78. सभी पक्षकारों एवं पक्षकारों के वरिष्ठ अधिवक्ताओं को विस्तार से सुनने के बाद, इस न्यायालय का विचार है कि रिट याचिका के इन समूहों में निर्णयन हेतु मुख्य मुद्दा यह है कि क्या आरक्षण अधिनियम, 1994 की धारा 3 (6) एेसी स्थिति में लागू होगी जहाँ आरक्षित वर्ग के किसी अभ्यर्थी ने टीईटी (शिक्षक पात्रता परीक्षा) में या एटीआरई (सहायक शिक्षक भर्ती परीक्षा) में आरक्षित वर्ग के अभ्यर्थियों के लिए छूट का लाभ उठाया है, क्या फिर भी उसे अंतिम चयनित सामान्य श्रेणी की तुलना में अधिक अंक प्राप्त करने पर खुले चयन में समान्य श्रेणी के अभ्यर्थियों के साथ प्रतिस्पर्धा करने की अनुमति दी जा सकती है। उक्त प्रश्न इस अर्थ में प्रमुखता प्राप्त करता है कि उक्त प्रश्न के परिणाम का प्रभाव दूसरे प्रश्नो पर पड़ेगा क्योकि यह अन्य आनुषंगिक प्रश्नो का उत्तर देगा, जैसे (i) क्या दिनांक 01.06.2020 की चयन सूची मेधावी आरक्षित वर्ग (एमआरसी) के मेधावी अभ्यर्थियों पर विचार नही करने के कारण दूषित हो गई है जिसके परिणामतः इनका चयन आरक्षित श्रेणी हेतु विहित कोटा मे हुआ । (ii) क्या प्रश्नगत चयन एमआरसी अभ्यर्थियों के अस्थानान्तरण के कारण आरक्षण अधिनियम, 1994 की धारा 3 (1) का अनुपालन नहीं करने के कारण दूषित

हुआ और उनके आरक्षित श्रेणी में समाहित होने के कारण आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थियों का वास्तविक प्रतिशत घट गया/कम हो गया । (iii) क्या चयन सूची दिनांकित 01.06.2020 का पुनर्निर्धारण वर्तमान मामले के तथ्यों में उपयुक्त है। दूसरा आनुषंगिक प्रश्न यह है कि क्या राज्य आरक्षण नीति एटीआरई-2019 को लागू करने में कथित रूप से अपनी गलती स्वीकार करते हुए मूल रूप से विज्ञापित 69000 सीटों से परे कोई अतिरिक्त चयनित सूची प्रकाशित कर सकता है, और वह भी केवल आरक्षित वर्ग के अभ्यर्थियों के लिए। कुछ रिट याचिकाएं 6800 की अतिरिक्त चयन सूची दिनांकित 05.01.2022 के क्रियान्वयन के लिए भी दायर की गई हैं। जो इस न्यायालय के समक्ष निर्णय हेतु अन्य मामलों के समूह के साथ एक प्रश्न है।

79. पक्षकारों के लिए विद्वान वकील द्वारा प्रस्तुत कथन अतिच्छादित हैं। न्याय निर्णयनों का संदर्भ भी लगभग समान है। इस न्यायालय की राय में, आरक्षित/अनारक्षित श्रेणी के उन अभ्यर्थियों की संख्या/आंकड़ों पर विस्तार से विचार करने की आवश्यकता नहीं है जो अभ्यर्थी अंततः आरक्षण की प्रकृति और सीमा के अन्तर्गत दिनांक 01.06.2020 की चयन सूची में शामिल हैं।

80. प्रतिकथनों को सुनने और उनके द्वारा अभिलेख पर प्रस्तुत गए अभिवचनों और विभिन्न दस्तावेजों के परीक्षण के उपरान्त इस न्यायालय का यह मत है कि मुख्य मुद्दे को पहले निर्णीत करना आवश्यक है और शेष मुद्दे स्वतः ही निर्धारित हो जाएंगे क्योंकि अन्य सभी मुद्दे एक दूसरे से जुड़े हुए हैं।

81. यह तर्क दिया गया है कि आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थियों द्वारा टीईटी और एटीआरई के स्तर पर प्राप्त आरक्षण उन्हें अनारक्षित श्रेणी में स्थानान्तरण करने के लिए अयोग्य ठहराता है और चूंकि उत्तरदाताओं ने उन्हें खुली श्रेणी में स्थानांतरित होने की अनुमति दी है, अतः खुली श्रेणी में सामान्य श्रेणी के अभ्यर्थियों के लिए निर्धारित सीटों को स्थानान्तरित आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थियों द्वारा ले लिया गया है। जबकि दूसरी ओर आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थियों ने तर्क दिया है कि एम.आर.सी. अभ्यर्थियों को खुली श्रेणी कोटा में स्थानान्तरित करने की अनुमति प्रत्यर्थी द्वारा नहीं दी गई थी, जिसके परिणामस्वरूप इन एम.आर.सी. अभ्यर्थियों ने आरक्षित श्रेणी के लिए निर्धारित सीटें ले लीं और इस प्रकार आरक्षित श्रेणी अभ्यर्थियों की बड़ी वैध संख्या, जो आरक्षित श्रेणी में माने जाने की हकदार थी, आरक्षण प्राप्त न कर सकी और उन्हें प्रत्यर्थी द्वारा छोड़ दिया गया है।

82. हमारे संविधान के अनुच्छेद 16 (1) और (2) अनिवार्य रूप से सार्वजनिक रोजगार के मामलों में अवसर की समानता का उल्लेख करते हैं, इस देश के सभी नागरिकों को राज्य के किसी भी कार्यालय मे रोजगार अथवा नियुक्ति से संबंधित माामलों में अवसर की समानता का आश्वासन देते हैं और यह सुनिश्चित करते है कि इस देश के किसी भी नागरिक से धर्म, नस्ल, जाति, लिंग, वंश, जन्म स्थान, निवास या उनमें से किसी एक के आधार पर किसी लोक नियुक्ति के लिए भेदभाव न किया जाए। मौलिक अधिकार होने के कारण उक्त अनुच्छेद आदेशात्मक एवं निर्देशात्मक प्रकृति का है। हालांकि, हमारे संविधान का अनुच्छेद 16 (4) एक अनावरोधक

खण्ड से प्रारम्भ होता हैः "यह अनुच्छेद राज्य को आरक्षण के लिए कोई भी उपबंध करने से निवारित नहीं करेगा...." जिसे तकनीकी रूप से अनुच्छेद 16 (1) या 16 (2) पर प्रवर्तनीयता के लिए जोड़ा गया है। किन्तु यह एक सक्षम प्रावधान है जो नागरिकों के किसी भी पिछड़े वर्ग के पक्ष में, राज्य की राय में जिसका पर्याप्त प्रतिनिधित्व नही है, राज्य को आरक्षण के प्रावधान निर्मित करने के निमित्त विवेकाधिकार एवं संरक्षण प्रदान करता है।

83. इसके अलावा, जैसा कि संवैधानिक पीठ द्वारा इंद्रा साहनी, ए.आई.आर. 1993 एस.सी. 477 के निर्णय में कहा गया कि आरक्षण विभिन्न रूप ग्रहण कर सकता है। इनमें वरीयताएं, रियायतें, छूटें, अतिरिक्त सुविधाएं आदि शामिल हो सकती हैं या नियुक्तियों में एक विशेष कोटा हो सकता है। जब नियुक्तियों के लिए विशेष कोटा के अतिरिक्त अन्य उपाय अपनाए जाते हैं, तो वे आरक्षण उपायों के आनुषंगिक होते हैं या आरक्षण का लाभ उठाने के लिए सहायक या आवश्यक होते हैं। आरक्षण विशेष प्रावधान का उच्चतम रूप है, जबकि वरीयता, रियायत और छूट लघुतर रूप हैं। संवैधानिक. योजना और अनुच्छेद 16 (4) के संदर्भ में यह स्पष्ट किया गया है कि आरक्षण की व्यापक अवधारणा अपने दायरे में सभी पूरक और सहायक प्रावधानों के साथ-साथ आवश्यकता के अनुरूप छूटें, रियायतें और ढीलें, जो प्रशासन की दक्षता को बनाये रखने के अनुरूप हो, लघुतर प्रकृति के विशेष प्रावधानों को भी शामिल करती है, जैसा कि अनुच्छेद 335 में वर्णित है ।

84. अब यह अनिर्णीत विषय नहीं रह गया है कि राज्य को छूट, रियायत और आरक्षण प्रदान करने के लिए मानदंड तय करने का अधिकार है और जिस तरीके से ऐसे आरक्षण को लागू किया जाना चाहिए वह निर्धारित करने का अधिकार है। आरक्षण, एक सक्षम प्रावधान होने के नाते, जिस तरीके और सीमा तक आरक्षण प्रदान किया जाना है, उसकी व्याख्या सरकार द्वारा जारी आदेशों में की जा सकती है। सामान्य श्रेणी में आरक्षित वर्ग के अभ्यर्थियों का स्थानान्तरण भी आरक्षण की व्यापक अवधारणा का हिस्सा है। आरक्षण प्रदान करते समय सरकार अपने विवेकाधिकार से ऐसे लोगों के सामान्य वर्ग में स्थानान्तरण पर प्रतिबंध लगा सकती है, जिन्हें आरक्षण का लाभ दिया जाता है। यह पिछड़े वर्गों को रियायतों का विस्तार करते समय और छूट प्रदान करते समय, जो ऐसी छूट और रियायतों का लाभ प्राप्त करते हैं, सामान्य वर्ग में स्थानांतरित होने से भी वर्जित कर सकता है।

85. उत्तर प्रदेश राज्य ने उत्तर प्रदेश लोक सेवा (अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण) अधिनियम, 1994 अधिनियमित किया है और उत्तर प्रदेश प्राथमिक शिक्षा (शिक्षक) सेवा नियमावली के नियम 9 के आधार पर, जो शिक्षकों की भर्ती में आरक्षण से संबंधित है, उपरोक्त वर्तमान चयन प्रक्रिया पर भी लागू है।

86. प्राथमिक मुद्दा आरक्षण अधिनियम की धारा 3(6) के क्रियान्वयन की परिधि में है जो इस प्रकार है-

(6) यदि उपधारा (1) में वर्णित किसी श्रेणी से संबंधित कोई व्यक्ति सामान्य अभ्यर्थियों के साथ खुली प्रतिस्पर्धा में योग्यता के आधार

पर चयनित होता है तो वह उपधारा (1) के अन्तर्गत ऐसी श्रेणी के लिए आरक्षित रिक्तियों के प्रति समायोजित नहीं किया जाएगा।

87. जहां तक वर्तमान मामले के तथ्यात्मक कथानक का संबंध है, इस न्यायालय का यह विचार है कि आरक्षण की रियायत, जैसा कि पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है, आरक्षित वर्ग के अभ्यर्थियों को तीन स्तरों में उपलब्ध करायी गयी। पहले स्तर पर, जब आरक्षित वर्ग के इन अभ्यर्थियों को टीईटी में रियायती उत्तीर्ण अंक लाने पर ए.टी.आर.ई.-2019 के फॉर्म भरने और उसमें भाग लेने की अनुमति दी गई थी। दूसरा स्तर उस चरण में प्रारम्भ होता है जब आरक्षित वर्ग के अभ्यर्थी एटीआरई-2019 में उपस्थित होते हैं और अपनी श्रेणी हेतु विहित रियायती न्यूनतम अंकों के साथ एटीआरई-2019 में अर्हता प्राप्त करते हैं और इस प्रकार चयनित सूची के विचारण के अन्तर्गत आ जाते है। इसका अंतिम स्तर नियमावली के अनुलग्नक-1 में यथा उपबंधित गुणवत्ता बिंदुओं के आधार पर चयन सूची तैयार करना है। यह तर्क दिया गया है कि चूंकि अंकों की छूट टीईटी के साथ-साथ ए.टी.आर.ई. के चरण में भी उन अभ्यर्थियों पर लागू की गई थी जिन्होंने चयन सूची में स्थान प्राप्त किया और चूंकि अनारक्षित श्रेणियों हेतु आरक्षित श्रेणी के साथ प्रतियोगिता के समान अवसर उपलब्ध नहीं थे। अतः कोई भी आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थियों का खुली श्रेणी में कोई भी स्थानान्तरण आरक्षण अधिनियम, 1994 की धारा 3(6) के प्रावधानों के विरूद्ध था।

88. यह न्यायालय वर्तमान सहायक शिक्षक चयन विवाद से संबंधित धारा 3 (6) को लागू करने का निर्धारण करे उससे पहले सर्वप्रथम यह समझना समीचीन होगा कि क्या टीईटी या ए.टी.आर.ई. पात्रता मानदंडों का हिस्सा थे या एटीआरई-2019 के लिए चयन प्रक्रिया का हिस्सा थे। इसके अलावा, एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि किस स्थिति में किसी आरक्षित वर्ग के अभ्यर्थी का खुली प्रतियोगिता में भाग लेना कहा जा सकता है ताकि उन्हें खुली श्रेणी में स्थानान्तरित होने हेतु सक्षम किया जा सके और उन्हें अधिनियम की धारा 3 (6) के अन्तर्गत आरक्षित वर्ग की रिक्तियों के प्रति समायोजित न किया जाये।

89. इस न्यायालय ने पाया कि उत्तर प्रदेश बेसिक (शिक्षक) सेवा (20वां संशोधन) नियमावली, 2017 द्वारा टीईटी और एटीआरई दोनों को प्रस्तुत किया गया था जो नियमावली, 1981 को 09.11.2017 को संशोधित करके बने।

90. जहां तक "शिक्षक पात्रता परीक्षा" का संबंध है, जो लोकप्रिय रूप से "टीईटी" के रूप में जानी जाती है उसका इतिहास अलग है। यह उल्लेख करना उचित होगा कि भारत में शिक्षक शिक्षा प्रणाली के सुनियोजित और समन्वित विकास के लिए राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद अधिनियम, 1993 (एनसीटीई अधिनियम) अधिनियमित किया गया था और निःशुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 (आरटीई अधिनियम, 2009) संसद द्वारा 6 से 14 वर्ष की आयु के सभी बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने के लिए अधिनियमित किया गया था। आरटीई अधिनियम की धारा 23 (1) में शिक्षकों की नियुक्ति के लिए योग्यता और इस निमित्त एनसीटीई को प्राधिकरण

के रूप में नामित किया गया था। इसे ध्यान में रखते हुए एनसीटीई ने 23.08.2010 को एक अधिसूचना जारी की जिसमें ऐसी योग्यताएं निर्दिष्ट थी जिसके अनुसार अध्यापक के रूप में नियुक्त होने के लिए आवश्यकताओं में से एक आवश्यकता शिक्षक पात्रता परीक्षा (टीईटी) पारित उत्तीर्ण करनी थी।

91. यह न्यायालय केंद्र सरकार द्वारा अधिनियमित आर.टी.ई. धारा 23 (2) के अन्तर्गत टीईटी उत्तीर्ण करने की कथित आवश्यकता में छूट से संबंधित विवरणों के इतिहास और संबंधित उ. प्र. राज्य द्वारा नियोजित शिक्षा मित्र के विवाद और अधिकार पर गौर नहीं करेगा। यह कहना पर्याप्त होगा कि इसे माननीय सर्वोच्च न्यायालय के प्रख्यात निर्णय **"उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य बनाम आनंद कुमार यादव व अन्य" (2018) 13 एससीसी 560**, द्वारा निर्णीत किया गया है। इसके अनुक्रम में उत्तर प्रदेश सरकार ने 21.8.2017 को एक प्रेस नोट जारी कर विभिन्न व्यवस्थाओं को अधिसूचित किया, जिसमें अन्य बातों के अतिरिक्त निम्नलिखित भी सम्मिलित हैः-

- शिक्षामित्र जो अध्यापक के पद पर समामेलित/समायोजित हो चुके हैं उन्हें दिनांक 01.8.2017 से वापस शिक्षामित्र के पद पर प्रत्यावर्तित माना जाएगा ।

- राज्य सरकार अक्टूबर 2017 में टीईटी की परीक्षा आयोजित करेगी और ऐसे सभी शिक्षामित्र को आवश्यक अर्हता प्राप्त करने के लिए अवसर प्रदान किया जाएगा।

- टीईटी परीक्षा के बाद बोर्ड के अन्तर्गत प्राथमिक विद्यालय में सहायक शिक्षकों के चयन के उद्देश्य से रिक्ति की उचित संख्या का विज्ञापन दिसंबर 2017 में प्रकाशित किया जाएगा और सभी पात्र आवेदकों को आवेदन करने का अवसर प्रदान किया जाएगा।

92. जहां तक टीईटी परीक्षा आयोजित करने का सवाल है एनसीटीई ने शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 की धारा 23(1) के अंतर्गत विभिन्न राज्यों द्वारा शिक्षक पात्रता परीक्षा (टीईटी) आयोजित करने के लिए 11.02.2011 को अपनी अधिसूचना के माध्यम से दिशानिर्देश जारी किए थे जिसमें 60% (90/150) को अर्हता अंक के रूप में विहित किया गया था। यह राज्य सरकारों को उनकी आरक्षण नीति के अनुसार अनुसूचित जाति/ अनुसूचित जनजाति/अन्य पिछड़ा वर्ग और दिव्यांग व्यक्तियों को रियायत देने की शक्ति भी प्रदान करता है। इस संबंध में उत्तरप्रदेश सरकार ने अनुसूचित जाति /अनुसूचित जनजाति/ अन्य पिछड़ा वर्ग ,भूतपूर्व सैनिक और दिव्यांग व्यक्तियों से संबंधित अभ्यर्थियों को टीईटी उत्तीर्ण करने हेतु 5% की रियायत दी है जिसके अनुसार 55% अंक प्राप्त करने वाले आरक्षित वर्ग के अभ्यर्थियों को उत्तीर्ण घोषित करने की अनुमति दी गई थी।

93. दिनांक 17.10.2019 की अधिसूचना के माध्यम से उत्तर प्रदेश सरकार ने उत्तर प्रदेश टीईटी 2019 को अधिसूचित किया और अर्हक अंक हेतु जारी उक्त अधिसूचना के खंड 9 के अनुसार आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थियों हेतु 150 में से 82.5 अंक (अर्थात 55%) जबकि अनारक्षित श्रेणी के अभ्यर्थियों के लिए उत्तीर्ण अंक 150 में से 90 अंक (अर्थात 60%) विहित किए गए।

94. इस प्रकार जैसा कि अनारक्षित वर्ग के अभ्यर्थियों द्वारा तर्क दिया गया है कि आरक्षित

वर्ग के ये अभ्यर्थी टीईटी उत्तीर्ण करने में आरक्षण का लाभ प्राप्त करने के बाद (अर्थात 55% उत्तीर्ण अंक) अधिनियम की धारा 3(6) का लाभ उठाने के लिए खुली श्रेणी के अभ्यर्थियों के साथ प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकते।

95. जैसा कि उल्लेख किया गया है, इस न्यायालय ने पाया है कि "टीईटी" और "एटीआरई" दोनों ही परीक्षाओं को यूपी बेसिक (शिक्षक) सेवा (20 वां संशोधन) नियमावली, 2017दिनांक 09.11.2017 को 1981 के नियमों में संशोधन कर प्रारम्भ किया गया था। सहायक शिक्षकों के रूप में नियुक्ति के लिए अभ्यर्थियों की अनिवार्य योग्यता नियम 8(ii) में पाई जा सकती है, जिसमें अन्य बातों के अलावा निम्नलिखित उल्लिखित हैः-

(क) भारत में कानून द्वारा स्थापित एक विश्वविद्यालय से स्नातक की डिग्री या सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त एक डिग्री के साथ-साथ सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त किसी भी अन्य प्रशिक्षण पाठ्यक्रम के साथ-साथ प्रशिक्षण योग्यता जिसके अन्तर्गत बेसिक शिक्षक प्रमाण पत्र (बीटीसी), 2 वर्षीय बीटीसी (उर्दू), विशिष्ट बीटीसी, भारतीय पुनर्वास परिषद द्वारा अनुमोदित 2 वर्षीय डिप्लोमा इन एजुकेशन (विशेष शिक्षा), अथवा राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद (मान्यता, मानदंड और प्रक्रिया) के अनुसार प्राथमिक शिक्षा में 4 वर्षीय डिग्री (बीएलएड), 2 वर्षीय डिप्लोमा इन एलीमेन्ट्री एजुकेशन (जो भी नाम ज्ञात हो), प्राथमिक शिक्षा में शिक्षकों की भर्ती के लिए राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद द्वारा जोड़े जाने वाले विनियमन या कोई प्रशिक्षण योग्यता।

और

<u>भारत सरकार द्वारा संचालित शिक्षक पात्रता परीक्षा उत्तीर्ण हो</u>

<u>और</u>

<u>सरकार द्वारा संचालित सहायक शिक्षक चयन परीक्षा उत्तीर्ण हो</u>

(ख) एक प्रशिक्षु शिक्षक जिसने सफलतापूर्वक राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद द्वारा मान्यता प्राप्त षट्मासिक प्रारम्भिक शिक्षा में विशेष प्रशिक्षण सफलतापूर्वक पूर्ण किया हो।

(ग) शिक्षामित्र जिसने भारत में कानून द्वारा स्थापित विश्वविद्यालय से स्नातक डिग्री अथवा सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त उसके समकक्ष डिग्री और दो वर्षीय दूरस्थ बीटीसी पाठ्यक्रम या बेसिक शिक्षा सर्टिफिकेट (बीटीसी) पाठ्यक्रम, बेसिक टीचर सर्टिफिकेट (बीटीसी) (उर्दू) या राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद द्वारा संचालित विशिष्ट बीटीसी और भारत सरकार द्वारा संचालित शिक्षक पात्रता परीक्षा उत्तीर्ण और सरकार द्वारा संचालित सहायक शिक्षक भर्ती परीक्षा उत्तीर्ण की हो।

96. इस प्रकार, टीजीटी और एटीआरई दोनों पास करने की परिकल्पना 20 वें संशोधन द्वारा की गई, जो आवश्यक योग्यता का हिस्सा थी। हालांकि, केवल टीईटी या एटीआरई पास करने से यह सुनिश्चित नहीं होता है कि अभ्यर्थी को सहायक शिक्षक के रूप में नियुक्त होने का कोई अधिकार है। क्योंकि सहायक शिक्षक के रूप में नियुक्त होने के लिये उसका नाम चयन सूची में होना चाहिये। इस न्यायालय ने पाया है कि चयन सूची का निर्माण नियम 14 द्वारा निर्देशित था, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ आवेदन आमंत्रित

करने के लिए तीन बिंदुओं को निर्दिष्ट किया गया।

(i) अभ्यर्थियों को विहित प्रशिक्षण योग्यता धारित करनी चाहिए

<u>और</u>

(ii) सरकार द्वारा संचालित शिक्षक पात्रता परीक्षा (टीईटी) में उत्तीर्ण होना चाहिए

<u>और</u>

(iii) सरकार द्वारा संचालित सहायक शिक्षक भर्ती परीक्षा में उत्तीर्ण होना चाहिए।

इसके अलावा, नियम 14 (2) में कहा गया है कि नियुक्ति प्राधिकारी उपर्युक्त के अनुसार प्राप्त आवेदनों की जाँच करेगा और ऐसे सभी व्यक्तियों की सूची तैयार करेगा जिनके सम्बन्ध में उसे ऐसा प्रतीत होगा कि वे विहित शैक्षणिक योग्यता धारित करते होगें और नियुक्ति हेतु पात्र होंगे। नियम 14(3)(क) में कहा गया है कि सूची में अभ्यर्थियों के नाम इस तरह से तैयार किए जाएंगे की अभ्यर्थी गुणवत्ता बिंदु और परिशिष्ट-1 में निर्दिष्ट भारांक के अनुसार व्यवस्थित किए जाएं। यह दिलचस्प है कि परिशिष्ट-1 अभ्यर्थी द्वारा हाई स्कूल, इंटरमीडिएट, स्नातक डिग्री और बीटीसी प्रशिक्षण में प्राप्त अंकों को 10% भारांक देता है। टीईटी पास करने के लिए भारांक स्पष्ट रूप से गायब है और भारांक का एक बड़ा भाग अर्थात 60% भारांक एटीआरई के नाम से आयोजित परीक्षा को दिया जाता है।

97. यह ध्यान देना महत्वपूर्ण है कि यद्यपि नियमावली में यह अनिवार्य था कि बेसिक स्कूलों में सहायक अध्यापक के पद पर नियुक्ति के लिए (i) शिक्षक पात्रता परीक्षा (जिसे एतस्मिनपश्चात "**टीईटी**" के रूप में संदर्भित किया गया है) और (ii) बेसिक शिक्षा परिषद, उ.प्र., इलाहाबाद द्वारा प्रश्नगत चयन के लिए आयोजित एटीआरई परीक्षा उत्तीर्ण करना एक अनिवार्य योग्यता थी, हालांकि शिक्षक पात्रता परीक्षा उत्तीर्ण करना केवल पात्रता के रूप में थी क्योंकि उक्त परीक्षा में प्राप्त अंकों को अंतिम सूची तैयार करते समय जोड़ा नहीं जाना था, जबकि एटीआरई ने दोहरे उद्देश्यों की पूर्ति की क्योंकि यह न केवल पात्रता मानदंड था बल्कि उक्त परीक्षा में प्राप्त अंक को अंतिम सूची/मेरिट तैयार करने में जोड़ा गया था।

98. इस प्रकार, एटीआरई को अर्हकारी प्रकृति और चयन प्रक्रिया का एक अभिन्न हिस्सा दोनों के रूप में परिकल्पित किया गया था क्योंकि एटीआरई में प्राप्त अंक को चयन के उद्देश्यों के लिए तैयार की गई अंतिम श्रेष्ठता सूची में जोड़ा जाना था, जबकि टीईटी मात्र अर्हकारी थी और यह अभ्यर्थी को केवल एटीआरई के लिए आवेदन करने में सक्षम बनाती थी। इसके अलावा यह न्यायालय पाती है कि जहाँ तक एटीआरई का संबंध है, 22 वें संशोधन द्वारा इसे आवश्यक योग्यता के रूप में समाप्त कर दिया गया, हालांकि यह चयन प्रक्रिया से संबंधित नियम 14 का हिस्सा बना रहा।

99. स्पष्ट रूप से, टीईटी में उत्तीर्ण होना केवल एक पात्रता मानदंड था, ताकि कोई अभ्यर्थी एटीआर-2019 के आवेदन की योग्यता प्राप्त कर लें, जैसा कि दिनांक 01.12.2018 के शासनादेश के बिन्दु 7(2) से भी स्पष्ट है, जिसमें विर्निदिष्ट रूप से विहित है कि परीक्षा का आयोजन मात्र उन शार्टलिस्ट अभ्यर्थियों के लिए किया जाएगा,

जो एटीआरई में भाग ले सकते हैं और जिसका परिणाम केवल उक्त वर्तमान भर्ती के लिए मान्य होगा। यह स्पष्ट है कि दिनांक 01.12.2018 के उक्त शासनादेश को कोई चुनौती नहीं दी गयी है, जिसमें एटीआरई-2019 के माध्यम से सहायक शिक्षकों की भर्ती के लिए प्रक्रिया निर्धारित की गई थी।

100. तथ्य और अभिलेख की बात करें, तो लगभग 4 लाख अभ्यर्थियों ने पात्रता मानदंड (अर्थात् अन्य योग्यता के साथ टीईटी उत्तीर्ण) को पूरा किया और एटीआरई के आवश्यक फॉर्म भरे। जिसका आयोजन 06 जनवरी 2019 को किया गया था। बाद में 07.01.2019 को उत्तर प्रदेश सरकार ने एक परिपत्र जारी किया जिसमें सामान्य श्रेणी और आरक्षित श्रेणी के लिए न्यूनतम उत्तीर्ण अंक मानदंड क्रमशः 65 प्रतिशत और 60 प्रतिशत अंक निर्धारित किए गए। उक्त परिपत्र में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि एटीआर-2019 में उत्तीर्ण होना चयन प्रक्रिया के लिए पात्रता मानदंडों में से एक है और न्यूनतम अंक प्राप्त करने मात्र से अभ्यर्थी नियुक्ति के लिए पात्र नहीं होंगे। एटीआरई-2019 को पात्रता मानदंड के रूप में उल्लिखित किया गया था क्योंकि किसी अभ्यर्थी द्वारा न्यूनतम अंक प्राप्त करने से वह चयन के लिए विचार किए जाने के दायरे में आ जाएगा हालांकि अन्तिम रूप से, चयन नियमावली के परिशिष्ट-1 के अनुसार श्रेष्ठता सूची के आधार पर किया जाएगा और वे अभ्यर्थी जो श्रेष्ठता सूची में नहीं आ सके हैं, उन्हें एटीआर-2019 के आधार पर नियुक्ति का कोई अधिकार नहीं होगा।

101. इसमें कोई संदेह नहीं है कि सहायक शिक्षकों के पद के लिए चयन परिशिष्ट-1 के अनुसार तैयार गुणवत्ता बिंदुओं पर किया जाना था. हालांकि, क्या परिशिष्ट-1 को तैयार करना, जिसका परिणाम चयन सूची है, एक खुली प्रतियोगिता थी, या एटीआरई उत्तीर्ण करना एक खुली प्रतियोगिता थी, या रियायती टीईटी अंकों के साथ एटीआरई के लिए फॉर्म भरना एक खुली प्रतियोगिता थी, यह विवादास्पद बिन्दु था क्योंकि यदि परीक्षा के किसी भी चरण में, यह माना जाता है कि यह एक खुली प्रतियोगिता थी, तो आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थी स्वाभाविक रूप से आरक्षण अधिनियम की धारा 3(6) के लागू होने से खुली श्रेणी में विचार किए जाने और स्थानांतरित किए जाने के हकदार होंगे।

102. आरक्षण अधिनियम के तहत 'खुली प्रतियोगिता' तो दूर की बात है, 'प्रतियोगिता' शब्द को ही परिभाषा नहीं किया गया है। कैम्ब्रिज शब्दकोश में, "प्रतियोगिता" को "एक संगठित अवसर के रूप में परिभाषित किया गया है, जिसमें लोग सर्वश्रेष्ठ, सबसे तेज आदि के रूप में पुरस्कार जीतने की कोशिश करते हैं।" इसी तरह, इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका ने 'प्रतियोगिता' को कुछ पाने या जीतने की कोशिश करने का एक कार्य या प्रक्रिया (जैसे पुरस्कार या सफलता का उच्च स्तर) के रूप में परिभाषित किया है, जिसकी किसी अन्य व्यक्ति द्वारा भी पाने या जीतने की कोशिश की जा रही है। इस प्रकार, आम भाषा में, प्रतियोगिता का अर्थ एक अवसर या एक प्रक्रिया होगी, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति सर्वश्रेष्ठ होकर जीतने की कोशिश करता है। इसलिए कोई खुली प्रतियोगिता जैसा कि संदर्भ से सुसंगत समझी जा सकता है, एक प्रतियोगिता होगी, जो सभी के लिए खुली होगी, जिसमें प्रतिभागी सर्वश्रेष्ठ होकर जीतने की कोशिश कर रहे हैं और

इस प्रक्रिया में प्रतिभागियों ने कोई रियायत या विशेषाधिकार प्राप्त नहीं किया है। इस प्रकार, उक्त खुली प्रतियोगिता में, सर्वश्रेष्ठ का चयन बाकी प्रतिभागियों में से किया जाता है। इन सभी के लिए लागू मानदंड समान हैं और वे समान मेरिट के आधार पर निर्धारित किए जाते हैं और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि उक्त खुली प्रतियोगिता में "समान अवसर" प्रदान किया जाता है।

103. आरक्षण अधिनियम, 1994 की धारा 3(6) के सामान्य पठन से, यह स्पष्ट है कि उक्त उपधारा को दोहरे उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अधिनियमित किया गया है। उक्त उपधारा एक ओर आरक्षित श्रेणी के उन अभ्यर्थियों को अनुमति देती है, जो सामान्य श्रेणी के अभ्यर्थियों के साथ प्रतिस्पर्धा की चुनौतियों का सामना करने के लिए पर्याप्त रूप से सक्षम हैं; उन्हें प्रोत्साहित किया जाता है और उन्हें सामान्य श्रेणी के अभ्यर्थियों के बीच रखा जाना आवश्यक है और दूसरी ओर, यह उन सभी आरक्षित श्रेणी के लिए आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थियों का कोटा सुरक्षित रखती है, जो अपनी सर्वश्रेष्ठ क्षमता के बावजूद सामान्य श्रेणी के अभ्यर्थियों के साथ प्रतिस्पर्धा करने में सक्षम नहीं हैं। न्यायालय के अनुसार, उक्त उपधारा आरक्षण के उद्देश्यों और प्रयोजनों को पूरा करती है और अभ्यर्थी की योग्यता और प्रतिभा के संबंध में कोई समझौता किए बिना, आरक्षित अभ्यर्थियों के कोटे की पूर्ति करती है, जो अन्यथा आरक्षित श्रेणी से संबंधित है, लेकिन अधिक मेधावी है और वह सामान्य श्रेणी के अभ्यर्थियों के साथ सफलतापूर्वक अपनी जगह बनाता है। इस प्रकार अधिनियम की धारा 3(6) पिछड़े वर्गों को आरक्षण प्रदान करने के मूल सिद्धांत का अनुकरण करती है, क्योंकि यह उनके उत्थान का साधन होना चाहिए, न कि अंत का। जैसा कि हमारे संविधान निर्माताओं की इच्छा रही है।

104. इस प्रकार, अवधारण का प्रश्न यह है कि एटीआरई-2019 में अभ्यर्थियों के चयन के लिए प्रतियोगिता के किस चरण में, इसे एक खुली प्रतियोगिता कहा जा सकता है या उक्त परीक्षा में खुली प्रतियोगिता के लिए कोई मंच ही नहीं है।

105. वाक्यांश सामान्य अभ्यर्थियों के साथ खुली प्रतियोगिता' महत्वपूर्ण है, क्योंकि जब तक समान स्तर पर सामान्य अभ्यर्थियों और आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थियों के बीच प्रतिस्पर्धा नहीं होती है, तब तक उक्त वाक्यांश का लाभ आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थियों को नहीं मिल सकता है। खुली प्रतियोगिता द्वारा चयन की स्थिति में आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थियों के साथ-साथ सामान्य श्रेणी के अभ्यर्थियों की अभ्यर्थिता का भी समान मेरिट पर परीक्षण किया जाना है और यदि उस स्थिति में कोई आरक्षित श्रेणी का अभ्यर्थी सफल होता है अथवा सामान्य श्रेणी द्वारा प्राप्त न्यूनतम अंकों से अधिक अंक प्राप्त करता है तो उसे सामान्य वर्ग के अभ्यर्थियों में रखा जाएगा। वर्तमान मामले में, सहायक शिक्षक भर्ती परीक्षा-2019 के लिए आवेदन करने के स्तर पर, जिसमें किसी भी अभ्यर्थी ने टीईटी को रियायती अंकों या उच्च अंकों के साथ उत्तीर्ण किया है, कोई अन्तर नहीं पड़ता है या एटीआरई में किसी भी अभ्यर्थी को कोई अतिरिक्त लाभ नहीं देता है क्योंकि इन सभी अभ्यर्थियों को सहायक शिक्षक के रूप में नियुक्ति के लिए

विचार क्षेत्र के भीतर आने के लिए पात्र होने के लिए न केवल अनिवार्य रूप से उपस्थित होना था, बल्कि चयन प्रक्रिया के चरणों में आगे बढ़ने के लिए उक्त एटीआरई में निश्चित मेरिट अंक भी प्राप्त करने होंगे। इस प्रकार टीईटी में रियायती अंकों के साथ प्रतिस्पर्धा करने वाले अभ्यर्थियों को एटीआरई में सामान्य श्रेणी के अभ्यर्थियों की तुलना में कोई लाभ नहीं है। वास्तव में इस न्यायालय का विचार है कि खुले तौर पर प्रतिस्पर्धा करने के लिए प्रतिभाशाली अभ्यर्थियों के व्यापक आधार के लिए उक्त मंच स्थापित किया गया है, ताकि अन्य के मुकाबले सर्वश्रेष्ठ प्रतिभाओं का चयन किया जा सके। इसलिए रियायती अंक प्राप्त कर टीईटी पास करने वाले आरक्षित श्रेणी के छात्रों को उस स्तर पर उनकी ही श्रेणी में बांधा नहीं जा सकता है और किसी भी सूरत में यह सामान्य श्रेणी के अभ्यर्थियों के लिए नुकसानदेह नहीं है। यह समझा जाना चाहिए कि जब टीईटी की रियायत का लाभ उठाया गया था, तब खुली प्रतिस्पर्धा प्रारम्भ नहीं हुई थी। यह तब प्रारम्भ हुई जब पात्रता शर्तों को पूरा करने वाले सभी अभ्यर्थियों को एटीआरई-2019 में बैठने की अनुमति दी गई; और, रियायती टीईटी या आयु में छूट या शुल्क रियायत से आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थियों को मात्र विचारण क्षेत्र की परिधि में लाया गया, ताकि वे मेरिट के आधार पर खुली प्रतिस्पर्धा में भाग ले सकें।

106. इस न्यायालय ने पाया कि आरक्षित और अनारक्षित दोनों ही श्रेणी के अभ्यर्थी समान परीक्षा में उपस्थित हुए हैं और उनका परीक्षण समान प्रश्नों के सेट और कठिनाई स्तर की कसौटी पर किया गया है। इस न्यायालय की राय में, टीईटी के उत्तीर्ण अंक में रियायत किसी भी तरह से "समान अवसर" को विकृत नहीं करती है। हालाँकि, अभ्यर्थियो का यह व्यापक आधार यदि एटीआरई-2019 में सम्मिलित होता है, जिसमें राज्य सरकार ने आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थियों के लिए 60% और सामान्य श्रेणी के अभ्यर्थियों के लिए 65% अंक न्यूनतम अंकों का मानदंड निर्धारित किया है एवं यदि इस स्तर पर एक आरक्षित श्रेणी का अभ्यर्थी निर्धारित न्यूनतम अंक यानी 60% का लाभ लेते हुए चयन सूची के चरण में आगे बढ़ता है, तो उसे मात्र उसकी श्रेणी में ही वर्गीकृत किया जाना चाहिए। इस प्रकार, एटीआर-2019 में रियायती अंकों के साथ अर्हता प्राप्त करना आरक्षण के तुल्य होगा। हालांकि, यदि उक्त आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थी ने उक्त एटीआरई-2019 परीक्षा में 65 प्रतिशत या उससे अधिक प्राप्त किया है, तो उसे अपनी श्रेणी तक सीमित नहीं किया जा सकता है और उसे आरक्षण अधिनियम की धारा 3(6) के दृष्टिगत अनारक्षित श्रेणी में स्थानांतरित करना चाहिए। इस न्यायालय का मत है कि यह सारी कठिनाई "अनारक्षित श्रेणी' और "खुली श्रेणी' शब्दों के आपस में इस्तेमाल करने से उत्पन्न हुई है। अनारक्षित श्रेणी के लिए कोई कोटा नहीं है, जो वास्तव में एक खुली श्रेणी है, जिसमें उसकी श्रेणी के बजाय केवल मेरिट की गणना की जाती है।

107. इसके अलावा, इस न्यायालय ने पाया है कि जब एक बार ये अभ्यर्थी चयन प्रक्रिया में सफल होने के लिए निर्धारित न्यूनतम अंकों के साथ या बिना अर्हता प्राप्त कर लेते हैं,जो इस पर निर्भर करता है कि वे आरक्षित श्रेणी के हैं या अनारक्षित श्रेणी के हैं, जिसमें नियमावली के परिशिष्ट-1 के अनुसार गुणवत्ता अंकों के आधार

पर एक श्रेष्ठता सूची तैयार की जाएगी। चयन सूची के उक्त तरीके से तैयार करने में खुली प्रतिस्पर्धा की अवधारणा खो गई है जैसा कि अभ्यर्थियों (जिन्हें एटीआर परीक्षा में सफल घोषित किया गया था) को मात्र एक ऑनलाइन फॉर्म भरने और अपने शैक्षणिक परिणाम व अंकपत्र जमा करने के लिए कहा गया था जिसे नियमावली और व्याख्यात्मक शासनादेश द्वारा विहित भारांक के आधार पर श्रेष्ठता सूची तैयार करने के लिए प्रयुक्त किया गया था। मेरिट चयन सूची तैयार करने के लिए गुणवत्ता अंकों के अनुसार सूची में किसी अभ्यर्थी को सम्मिलित करना एक खुली प्रतियोगिता नहीं है।

108. उक्त सादृश्यता को वर्तमान वाद में प्रस्तुत संख्या से भलीभांति समझा जा सकता है। यह स्वीकार्य है कि 4,31,466 अभ्यर्थियों ने एटीआरई-2019 में पंजीकरण कराया है, जिसमें सभी ने रियायती अंकों के साथ या उसके बिना, टीईटी पास किया है। इस प्रकार, केवल एक रियायती टीईटी के साथ एटीआर-2019 के लिए आवेदन करना किसी भी आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थी को अनारक्षित श्रेणी के साथ प्रतिस्पर्धा करने की संभावना से विरत नहीं करती है। पक्षकारों द्वारा उपलब्ध कराए गए आंकड़ों के अनुसार, कुल 4,31,466 अभ्यर्थियों में से 1,46,060 अभ्यर्थी सफल घोषित किए गए। यही वह चरण है जब यह एक खुली प्रतिस्पर्धा थी और तदनुसार यदि आरक्षित वर्ग का अभ्यर्थी अनारक्षित वर्ग के लिए निर्धारित न्यूनतम अंकों से मेल खाता है तो इस न्यायालय को इस बात का कोई कारण नहीं मिलता है कि आरक्षित वर्ग के अभ्यर्थियों को आरक्षण अधिनियम की धारा 3(6) की भावना के अनुसार अनारक्षित कोटे में स्थानांतरित करने की अनुमति क्यों न दी जाए। नियमावली के परिशिष्ट-1 के अनुसार, गुणवत्ता बिंदु के आधार पर चयन सूची तैयार करना एक खुली प्रतिस्पर्धा नहीं है क्योंकि यह केवल उन सभी अभ्यर्थियों के लिए एक स्वाभाविक प्रगति है जिन्हें आरक्षित वर्ग हेतु प्रयोज्य रियायती अंकों के साथ या बिना रियायती अंकों के सफल घोषित किया गया है जिससे 69,000 रिक्तियों के सापेक्ष चयन सूची तैयार की गई। इस प्रकार, आरक्षित वर्ग के अभ्यर्थियों का, जिन्होंने अनारक्षित वर्ग के लिए विहित न्यूनतम अंक अर्थात 65% अंक प्राप्त किए हैं या उनके साथ मेल खाते हैं, स्वाभाविक रूप से खुली श्रेणी में स्थानान्तरण होगी और तदनुसार उन्हे उक्त श्रेणी में चयनित किया जाएगा। हालांकि, यदि आरक्षित श्रेणी का कोई अभ्यर्थी 60% या उससे कम अंक प्राप्त करता है अथवा अनारक्षित श्रेणी में 65% या उससे कम अंक प्राप्त करता है, जैसा कि आरक्षित श्रेणी और अनारक्षित श्रेणी के लिए अर्हता अंक के रूप में निर्धारित किया गया है, तो वह केवल आरक्षित श्रेणी में ही माना जाएगा।

109. इसके अलावा, जब कोई आरक्षित वर्ग का अभ्यर्थी एटीआरई-2019 में 65% प्राप्त करने में सक्षम है, तब वह स्पष्ट रूप से किसी भी सामान्य श्रेणी के अभ्यर्थी के बराबर है और इस प्रकार उसे खुली श्रेणी में समायोजित किया जाना चाहिए, क्योंकि उसे एटीआरई- 2019 में भाग लेने वाले किसी अन्य अभ्यर्थी की भाँति ही खुली श्रेणी में प्रवेश मिलता है जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न निर्णयों में अवधारित किया गया है कि एक मेधावी अभ्यर्थी को क्षति नहीं पहुंचायी जा सकती है और अपनी श्रेणी में प्रतिस्पर्धा करने के लिए विवश नहीं किया जा सकता है, जबकि वह सामान्य श्रेणी के

अन्तिम अभ्यर्थी के समान अथवा उससे अधिक मेधावी है। बार-बार इस न्यायालय के साथ-साथ माननीय उच्चतम न्यायालय ने भी इस बात पर जोर दिया है कि अनारक्षित श्रेणी सामान्य अभ्यर्थियों के लिए आरक्षित श्रेणी नहीं है, बल्कि एक खुली श्रेणी है, जो आरक्षित श्रेणी के साथ-साथ सामान्य श्रेणी के लिए भी खुली है, जिसमें चयन के लिए योग्यता ही एकमात्र मानदंड है, बशर्ते कि चयन एक खुली प्रतियोगिता हो जैसा कि अधिनियम की धारा 3 (6) के तहत परिकल्पित है। इसके अलावा, **उत्तर प्रदेश लोक सेवा (अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण) अधिनियम, 1994** [1994 का अधिनियम 4] के तहत जारी दिनांक 25.03.1994 के शासनादेश में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि यद्यपि आरक्षित वर्ग के अभ्यर्थियों को पहले भी कुछ छूटों का लाभ मिला है, लेकिन उन्हें अधिनियम की धारा 3 के आवेदन से वंचित नहीं किया जाएगा यानी कि यदि वह खुली प्रतिस्पर्धा में रहने योग्य हैं तो उन्हें वहां रखा जाएगा भले ही वह किसी भी पिछली छूट के लाभार्थी रहे हों।

110. इसके अलावा, आरक्षण की पद्धति और सीमा शासनादेश में वर्णित होनी चाहिये। यदि शासनादेश में पिछड़े वर्गों के सामान्य वर्ग में स्थानान्तरण हेतु कोई स्पष्ट प्रतिबन्ध अभिव्यक्त है तभी वे सामान्य श्रेणी के पदों के लिए प्रतिस्पर्धा हेतु अयोग्य होगें, क्योंकि अनुच्छेद 16 (4) के अन्तर्गत आरक्षण, सांप्रदायिक आरक्षण के रूप में कार्य नहीं करता है। यदि सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों के सदस्य अपनी योग्यता के आधार पर खुली प्रतिस्पर्धा में चुने जाते हैं तो उनकी गणना पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षित कोटा के सापेक्ष नहीं की जायेगी। उन्हें खुली प्रतिस्पर्धा वाला अभ्यर्थी माना जाएगा। पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता ऐसे किसी शासनादेश को दर्शित नहीं कर सके, जो स्पष्ट रूप से वर्तमान चयन में आरक्षित वर्ग के अभ्यर्थियों के इस तरह के स्थानान्तरण पर रोक लगाए।

111. इस संदर्भ में, यह न्यायालय रितेश आर. साह बनाम डॉ. वाई. एल. यामुल और अन्य, (1996) 3 एस. सी. सी. 253 में निर्णीत फैसले का संदर्भ ले सकती है। उक्त मामले में, जो सवाल माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विचार के लिए सामने आया, वह यह था कि क्या अनुसूचित जाति अथवा किसी अन्य आरक्षित वर्ग के किसी अभ्यर्थी की गणना आरक्षित वर्ग के लिए निर्धारित कोटे के सापेक्ष की जा सकती है भले ही वह खुली प्रतिस्पर्धा में अपनी योग्यता के आधार पर प्रवेश के लिए चयन का हकदार था, अथवा फिर क्या उसे खुली प्रतिस्पर्धा का अभ्यर्थी माना जाएगा। उपर्युक्त निर्णय के प्रस्तर 13 में माननीय न्यायाधीश महोदय ने में निम्नलिखित विचार व्यक्त किए हैंः

"13. इस प्रस्थापना में कोई विवाद नहीं हो सकता कि यदि कोई अभ्यर्थी अपनी योग्यता के आधार पर प्रवेश पाने का हकदार है तो ऐसा प्रवेश अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति अथवा अन्य आरक्षित श्रेणी के लिए आरक्षित कोटा के सापेक्ष नहीं माना जाना चाहिए क्योंकि यह संविधान के अनुच्छेद 16(4) में निहित आदेश के विरुद्ध होगा।"

उपर्युक्त निर्णयन हेतु माननीय न्यायाधीश महोदय ने इंदिरा साहनी बनाम भारत

संघ, 1992 सप्लीमेंट (3) एससीसी 217 को सन्दर्भित किया, जिसमें यह उल्लिखित हैः

"इस संबंध में यह याद रखना ठीक है कि अनुच्छेद 16 (4) के तहत आरक्षण सांप्रदायिक आरक्षण की तरह कार्य नहीं करता है। ऐसा हो सकता है कि अनुसूचित जातियों से संबंधित कुछ सदस्य अपनी योग्यता के आधार पर खुली प्रतिस्पर्धा में चुने जाएं। उन्हें अनुसूचित जाति के लिए आरक्षित कोटे के सापेक्ष नहीं गिना जाएगा, ऐसे अनुसूचित जाति के अभ्यर्थियों को खुली प्रतिस्पर्धा का अभ्यर्थी माना जाएगा।"

112. इसके अलावा, इस न्यायालय ने आर. के. सभरवाल बनाम पंजाब राज्य, (1995) 2 एससीसी 745 के मामले में दिए गए निर्णय को संदर्भित किया है, जिसमें संविधान पीठ ने नियुक्ति व पदोन्नति तथा रोस्टर प्वाइंट के साथ-साथ आरक्षण पर भी विचार किया और निम्नानुसार मत व्यक्त कियाः

"जब किसी विशेष संवर्ग के संबंध में आरक्षण का प्रतिशत तय किया जाता है और रोस्टर आरक्षित बिंदुओं को इंगित करता है तो यह माना जाना चाहिए कि आरक्षित बिंदुओं पर प्रदर्शित पद आरक्षित श्रेणियों के सदस्यों द्वारा भरे जाएंगे और सामान्य श्रेणी के अभ्यर्थी आरक्षित पदों के लिए विचार किए जाने के हकदार नहीं हैं। दूसरी ओर, आरक्षित वर्ग के अभ्यर्थी गैर-आरक्षित पदों के लिए प्रतिस्पर्धा कर सकते हैं और उक्त पदों पर उनकी नियुक्ति की स्थिति में, उक्त पदों की संख्या को आरक्षण का प्रतिशत तय करने के लिए जोड़ा और माना नहीं जा सकता। भारत के संविधान का अनुच्छेद 16 (4) राज्य सरकार को अनुमति देता है कि वह किसी भी पिछड़े वर्ग के नागरिकों के पक्ष में नियुक्तियों या पदों के आरक्षण के लिए कोई प्रावधान कर सकती है, जो राज्य की राय में राज्य के अंतर्गत सेवाओं में पर्याप्त रूप से प्रतिनिधित्व नहीं करते हैं। इसलिए यह राज्य सरकार का दायित्व है कि वह इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि पिछड़ा वर्ग/वर्गों, जिनके लिए आरक्षण किया गया है, राज्य सेवाओं में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं पा रहे हैं। ऐसा करते समय राज्य सरकार किसी विशेष पिछड़ा वर्ग की कुल आबादी और राज्य सेवाओं में उनके प्रतिनिधित्व को विचार हेतु ग्रहण कर सकती है। जब राज्य सरकार आवश्यक कार्रवाई करने के बाद आरक्षण देती है और उक्त पिछड़े वर्ग के लिए आरक्षित पदों के प्रतिशत की सीमा का प्रावधान करती है, तो उस प्रतिशत का कड़ाई से पालन करना होगा। निर्धारित प्रतिशत में केवल इसलिए परिवर्तन नहीं किया जा सकता कि सामान्य सीटों के प्रति पिछड़े वर्ग के कुछ सदस्य पहले ही नियुक्त/पदोन्नत किए जा चुके हैं।"

113. इस चरण में, इंद्रा साहनी (उपरोक्त) के प्रस्तर 811 का उल्लेख करना अत्यंत निर्देशात्मक है एवं इस प्रकार हैं

"811. इस संबंध में यह याद रखना होगा कि अनुच्छेद 16 (4) के तहत आरक्षण सांप्रदायिक आरक्षण की तरह कार्य नहीं करता है। ऐसा हो सकता है कि अनुसूचित जातियों से संबंधित कुछ सदस्य खुली प्रतियोगिता में योग्यता के आधार पर चयनित हो जाएं। उन्हें अनुसूचित जाति के सापेक्ष आरक्षित कोटे से चयनित न मानकर खुली प्रतिस्पर्धा का अभ्यर्थी माना जाएगा।"

114. उक्त मामले में, न्यायमूर्ति सावंत ने आरक्षण के दर्शन और उद्देश्यों की चर्चा करते हुए निम्नलिखित मत व्यक्त किया हैः

"411. किसी भी सभ्य समाज का उद्देश्य प्रत्येक व्यक्ति की गरिमा सुनिश्चित करना होना चाहिए। प्रतिष्ठा और अवसर की समानता के बिना गरिमा नहीं हो सकती। सामाजिक जीवन के किसी भी क्षेत्र में समान अवसरों का अभाव समान प्रास्थिति, सामाजिक मामलों में समान भागीदारी और अन्ततः इसकी समान सदस्यता से भी वंचित करता है। व्यक्ति की गरिमा सामाजिक साधनों तक उसकी समान पहुँच की अनुपलब्धता के प्रत्यक्ष अनुपात में वंचित रहती है। लोकतांत्रिक नींव का अभाव तब होता है जब समाज के एक बड़े वर्ग को विकसित होने, शासन करने और अपना सर्वोत्तम प्रदर्शन करने का समान अवसर नहीं मिलता। अवसरों से वंचित रहना प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हो सकता है, अगर इसका लाभ उठाने से वंचित कर दिया गया हो। फिर भी इसके परिणाम उतने ही शक्तिशाली हैं।"

412. असमानता बन्धुत्व को क्षति पहुंचाती है और एकता भाईचारे के बिना एक स्वप्न समान है। संविधान की प्रस्तावना में निर्दिष्ट बंधुत्व द्वारा व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने वाले लक्ष्य तब तक अप्राप्य रहेंगे जब तक सभी को अवसर की समानता प्राप्त न हो।

xxxx xxxxx xxxxx

416. संविधान के लक्ष्यों अर्थात् समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता और लोकतंत्र की त्रिमूर्ति तब तक साकार नहीं की जा सकती जब तक समाज के सभी वर्ग अपनी जाति, सम्प्रदाय, वंश, धर्म एवं लिंग से निरपेक्ष हो राज्य शक्ति में प्रतिभाग नहीं करते और राज्य शक्ति में भागीदारी से संबंधित सभी भेदभावों को सार्थक प्रयासों द्वारा निर्मूलन नहीं किया जाता।"

115. स्पष्ट रूप से, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए विभिन्न निर्णयों में यह स्पष्ट है कि आरक्षण का पूरा उद्देश्य एक सामान्य अवधारणा है और विभिन्न परिस्थितियों में इसके भिन्न-भिन्न अर्थ हैं। भारत का संविधान, जो समस्त विधियों का स्त्रोत है, उक्त धारणा को समझने के लिये देश की मौलिक विधि की योजनाबद्ध व्याख्या को समझने और उसके आकलन की अपेक्षा करता है।

116. तेजपाल यादव बनाम भारत संघ (174 (2010) डीएलटी 510 (डीबी) के मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने समान तरह के एक मामले में यह माना कि, एक छात्र स्वयं को ओबीसी श्रेणी में घोषित करके प्रारंभिक परीक्षा में सम्मिलित हो सकता है एवं उत्तीर्ण अथवा अनुत्तीर्ण हो सकता है; यदि वह अनुत्तीर्ण होता है, तो यह उसके मार्ग का अवसान है; यदि वह उत्तीर्ण होता है, तो वह मुख्य परीक्षा में शामिल होता है; यदि वह उक्त परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं होता है, तो उसका प्रवेश का अधिकार पूर्णतः खत्म हो जाता है; यदि वह ओबीसी श्रेणी में उत्तीर्ण हो जाता है तो वह उस श्रेणी में अपनी दावेदारी पेश कर सकता है, परन्तु यदि वह सामान्य अभ्यर्थियों से अधिक अंक प्राप्त करता है तो उसका यह कहना उचित होगा कि उसे सामान्य श्रेणी में रखा जा सकता है। यदि आरक्षण की पूरी अवधारणा को समग्र रूप से समझा जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रारंभिक परीक्षा में अन्य पिछड़ा वर्ग के अभ्यर्थी का शामिल होना मूल रूप से प्रवेश स्तर पर है, हालांकि प्रारंभिक और मुख्य दोनों परीक्षाएं आपस में जुड़ी हुई लग सकती हैं। परंतु गहन जांच पर यह स्पष्ट है कि एक सूक्ष्म विशिष्ट अंतर है;

यदि कोई ओबीसी अभ्यर्थी ओबीसी श्रेणी के अभ्यर्थी के रूप में प्रारंभिक परीक्षा में शामिल होता है, और मुख्य परीक्षा में बहुत अच्छा प्रदर्शन करता है, तो उसके दावे को केवल इस आधार पर खारिज नहीं किया जाना चाहिए कि उसने ओबीसी श्रेणी के अभ्यर्थी के रूप में प्रारंभिक परीक्षा दी थी; और यदि ऐसा करने की अनुमति दी जाती है, तो एक सामान्य श्रेणी का अभ्यर्थी, जो वास्तव में मुख्य परीक्षा में अन्य पिछड़ा वर्ग के अभ्यर्थी के साथ प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकता था, उससे आगे निकल जाएगा; और यह जनहित में नहीं होगा।

117. यह सच हो सकता है कि विज्ञापन के मद्देनजर चयन प्रक्रिया को इस तरह से क्रियान्वित किया जाना चाहिए था कि यह सामान्य अभ्यर्थियों के साथ एक खुली प्रतियोगिता हो सकती थी, यानी एटीआरई-2019 आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थियों की मेरिट सामान्य वर्ग के अभ्यर्थियों की मेरिट के साथ तुलनात्मक रुप से रखकर और उसके बाद आरक्षित वर्ग के अभ्यर्थियों को उनकी मेरिट के अनुसार अंतिम रूप से चयनित अभ्यर्थियों की सूची में रखकर अंतिम चयन सूची तैयार की जा सकती थी लेकिन यह प्रक्रिया नहीं अपनाई गई। तथ्य की बात यह है कि रिट याचिका संख्या रिट-ए 13156/2020 व अन्य सम्बद्ध रिट याचिकाओं के समूह में डॉ सर्वेंद्र विक्रम बहादुर सिंह ने 24.05.2022 को, जो कि शिक्षा निदेशक बेसिक के तौर पर लखनऊ उत्तर प्रदेश में कार्यरत थे, अपना पूरक जवाबी हलफनामा दायर किया था जिसके प्रस्तर 7 व 8 में स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया कि इस तथ्य पर ध्यान दिये बिना चयन सूची तैयार की गयी है कि इन आरक्षित वर्ग के अभ्यर्थियों ने टीईटी परीक्षा या सहायक शिक्षक भर्ती परीक्षा में आरक्षण का लाभ लिया है।

118. इसके अलावा, यह न्यायालय प्रत्यर्थियों द्वारा मुख्य मामले (रिट-ए-संख्या 13156/2020) में दायर 24.05.2022 के संक्षिप्त जवाबी हलफनामे से असंज्ञानित नहीं रह सकती है, जिसमें उन्होंने प्रस्तर 5 और 6 में स्वीकार किया है कि वर्तमान भर्ती में लागू अनुसूचित जाति वर्ग और अनुसूचित जनजाति वर्ग और अन्य पिछड़ा वर्ग श्रेणी के लिए आरक्षण नीति को अधिकारियों द्वारा पुनरावलोकन किया गया, जिसमें यह पता चला कि क्षैतिज और ऊर्ध्वाधर आरक्षण को विपरीत क्रम में लागू किया गया था जिस कारण से कुछ अभ्यर्थी जिन्होंने सामान्य अभ्यर्थियों के समान या उच्च कट-ऑफ अंक प्राप्त किए हैं, उनको आरक्षित श्रेणी की सीटों के सापेक्ष नियुक्त किया गया है। इस प्रकार, प्रत्यर्थियों ने गलती स्वीकार करते हुए, मनमाने ढंग से इसे सुधारने का फैसला किया और इस तरह 6800 अभ्यर्थियों की चौथी चयन सूची जारी की, जो 05.01.2022 को प्रकाशित हुई थी। रिट याचिका-ए-8142/2021 में दायर एक संक्षिप्त जवाबी हलफनामे दिनांकित 04.05.2022 में भी प्रत्यर्थियों द्वारा इसी तरह की स्वीकारोक्ति की गई थी।

119. यह न्यायालय पाती है कि यद्यपि चयन सूची में एक स्वीकृत त्रुटि के उपरोक्त कारण तथ्यात्मक रूप से मान्य नहीं हैं फिर भी तर्क के लिए, यह माना गया था कि ऊर्ध्वाधर और क्षैतिज आरक्षण विपरीत क्रम में लागू किया गया है तब अनारक्षित श्रेणी के अभ्यर्थियों को कम संख्या में चयनित हुआ होना चाहिए था और

आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थियों की सूची के स्थान पर अनारक्षित श्रेणी के अभ्यर्थियों की सूची जारी की गई होनी चाहिए थी क्योंकि 'अनिल कुमार गुप्ता' [(1995) 5 एससीसी 173] के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के पैरा 18 में सही क्रम अवधारित हुआ था कि पहले लंबवत आरक्षण और उसके बाद क्षैतिज आरक्षण लागू किया जाना चाहिए। यदि, उत्तरदाताओं ने लंबवत और क्षैतिज आरक्षण विपरीत क्रम में लागू किया होता, जिसका अर्थ है कि क्षैतिज आरक्षण पहले लागू किया गया था और उसके बाद लंबवत आरक्षण लागू किया गया था, तो क्षैतिज आरक्षण के लिए आरक्षित पद कुल रिक्तियों की संख्या से आगणित किये गये होते और इस प्रक्रिया में सभी अभ्यर्थी (अनारक्षित और आरक्षित) को प्रभावित होना चाहिए था, इसलिए अनारक्षित श्रेणी की भी एक चयन सूची जारी करनी चाहिए थी न कि केवल आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थियों की सूची, जैसा कि प्रत्यर्थी द्वारा किया गया है।

120. सुनवाई के दौरान इस न्यायालय ने कई मौकों पर राज्य को एटीआरई-2019 में अभ्यर्थियों की श्रेणी और उनके द्वारा प्राप्त अंकों के साथ विवरण प्रदान करने का निर्देश दिया था, हालांकि राज्य ने केवल आरक्षित श्रेणी व अनारक्षित श्रेणी में चयनित अभ्यर्थियों के आंकड़े और संख्या प्रदान की है। चार्ट में उक्त संख्या इस तथ्य को पुष्ट कर रही है कि आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थियों को खुली श्रेणी में माइग्रेट करने की अनुमति दी गई है और इस प्रकार अधिनियम की धारा 3(6) के कार्यान्वयन में कोई उल्लंघन नहीं हुआ है। हालांकि, एटीआरई-2019 में उत्तीर्ण होने वाले प्रत्येक अभ्यर्थी द्वारा प्राप्त अंक कभी भी राज्य द्वारा उनकी श्रेणी सहित प्रदान नहीं किए गए थे और न ही इसे न्यायालय को उपलब्ध कराया गया था और इस तरह इस न्यायालय का विचार है कि सामान्य वर्ग में एमआरसी अभ्यर्थियों के स्थानांतरण का सही मूल्यांकन वर्तमान मामले के उपलब्ध तथ्यों के आधार पर निर्धारित नहीं किया जा सकता है।

121. इस न्यायालय के किसी निष्कर्ष पर पहुंचने और अपने निष्कर्ष को अभिलिखित करने से पहले, यह सर्वोपरि होगा कि पार्टियों द्वारा उद्धृत विभिन्न न्याय निर्णयों और प्रकरण के प्रति उनकी प्रासंगिकता पर त्वरित चर्चा की जाए।

122. सुनवाई के दौरान पक्षकारों द्वारा विभिन्न निर्णयों का अवलम्ब लिया गया है। प्रथमतः माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित न्याय निर्णय "***जितेंद्र कुमार सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (2010) 3 एससीसी 119***" को उद्धृत किया गया है। उक्त प्रकरण में सीधी भर्ती द्वारा सिविल पुलिस के उपनिरीक्षक एवं पीएसी में प्लाटून कमांडर के पद को भरने हेतु प्रतियोगिता परीक्षा आयोजित की गयी थी। अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग के अभ्यर्थियों के लिए परीक्षा शुल्क में छूट और ऊपरी आयु सीमा में शिथिलीकरण थी जो कि उत्तर प्रदेश लोक सेवा (अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए आरक्षण) अधिनियम, 1994 की धारा 8(1) के अनुसार थीं। उपरोक्त अधिनियम की धारा 3(6) में प्रावधान है कि यदि एक आरक्षित अभ्यर्थी को एक खुली प्रतियोगिता में योग्यता के आधार पर सामान्य अभ्यर्थियों के साथ चुना जाता है तो उसे आरक्षित श्रेणी के लिए आरक्षित रिक्तियों के सापेक्ष समायोजित नहीं किया जाएगा।

123. दिनांक 25 मार्च, 1994 के सरकारी निर्देशों में प्रावधान है कि यदि एक आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थी का चयन सामान्य श्रेणी के अभ्यर्थियों के साथ खुली प्रतियोगिता में योग्यता के आधार पर किया होता है, तो उसे आरक्षित श्रेणी में समायोजित नहीं किया जाएगा अर्थात उसे अनारक्षित रिक्तियों के सापेक्ष समायोजित माना जाएगा। यह इस बात के निरपेक्ष था कि उसने किसी सुविधा या छूट (जैसे आयु सीमा में छूट) का लाभ उठाया हो या नहीं। उक्त मामले में, अपीलकर्ता जो सामान्य वर्ग अभ्यर्थी थे, ने तर्क दिया कि आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थियों को अनारक्षित (यूआर) रिक्तियों के सापेक्ष नहीं बल्कि केवल आरक्षित रिक्तियों के सापेक्ष समायोजित किया जाना चाहिए। यह उच्च न्यायालय द्वारा नहीं स्वीकारा गया। उच्च न्यायालय के निर्णय की पुष्टि उच्चतम न्यायालय ने की थी। इसे निम्नानुसार स्पष्ट किया गया था:

"71. हमारी सुविचारित राय है कि 1994 के अधिनियम की धारा 8 के अंतर्गत आने वाली रियायतों को लिखित परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए निर्धारित मानक में छूट नहीं कहा जा सकता है। धारा 8 में स्पष्ट रूप से प्रावधान है कि राज्य सरकार प्रतियोगी परीक्षा या साक्षात्कार में फीस एवं ऊपरी आयु सीमा में शिथिलीकरण के संबंध में रियायतें प्रदान कर सकती है।

72. 1994 के अधिनियम के लागू होने के तुरंत बाद सरकार ने उत्तर प्रदेश लोक सेवाओं में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़े समूहों के लिए आरक्षण के विषय पर दिनांक 25-3-1994 को निर्देश जारी किए। अन्य बातों के साथ-साथ ये निर्देश निम्नानुसार प्रावधान करते हैं:

"4. यदि सामान्य वर्ग के अभ्यर्थियों के साथ-साथ आरक्षित वर्ग के किसी व्यक्ति का चयन योग्यता के आधार पर खुली प्रतियोगिता में किया जाता है तो उसे आरक्षित वर्ग में समायोजित नहीं किया जायेगा अर्थात् उसे अनारक्षित रिक्तियों में समायोजित किया गया माना जायेगा। यह सारहीन होगा कि उसने आरक्षित श्रेणी के लिए उपलब्ध किसी भी सुविधा या छूट (जैसे आयु-सीमा में छूट) का लाभ उठाया है।"

उपरोक्त से यह स्पष्ट हो जाता है कि आयु सीमा में शिथिलीकरण केवल आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थी को सामान्य श्रेणी के अभ्यर्थी के साथ प्रतिस्पर्धा करने में सक्षम बनाने के लिए है जबकि अन्य सभी चीजें समान हों। चयन परीक्षा यानी मुख्य लिखित परीक्षा और उसके बाद साक्षात्कार में अभ्यर्थी की योग्यता के आधार पर चयन में राज्य ने आयु और शुल्क में शिथिलीकरण को चयन के मानक में शिथिलीकरण के रूप में नहीं माना है। इसलिए, इस तरह की छूट आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थी को प्रतियोगी परीक्षा में योग्यता के आधार पर सामान्य श्रेणी के अभ्यर्थी के रूप में माने जाने के अधिकार से वंचित नहीं कर सकती है। धारा 8 की उप-धारा (2) आगे उपबंध करती है कि ऊपरी आयु सीमा में शिथिलीकरण सहित रियायतों और छूट के संबंध में अधिनियम के प्रारंभ पर लागू होने वाले सरकारी आदेश, जो अधिनियम के साथ असंगत नहीं हैं, वे तब तक लागू रहेंगे जब तक कि उन्हें संशोधित या निरस्त नहीं किया जाता है।

73. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने कथन किया कि वर्तमान अपीलों में, मुद्दा केवल आयु में छूट के संबंध में है और किसी अन्य रियायत के संबंध में नहीं है। धारा

3(6) या धारा 8 की अधिकारिता को हमारे समक्ष चुनौती नहीं दी गई है। याचिकाकर्ताओं/अपीलकर्ताओं के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा केवल यह कथन किया गया कि आयु में छूट आरक्षित वर्ग से संबंधित अभ्यर्थी को अनुचित लाभ देती है। वे अधिक अनुभवी हैं और इसलिए 21 से 25 वर्ष की आयु सीमा वाले सामान्य वर्ग के अभ्यर्थियों से आगे निकल जाते हैं।

74. हमारे सामने यह विवादित नहीं है कि आयु में छूट न केवल अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग के सदस्यों को दी जाती है, बल्कि स्वतंत्रता सेनानियों के आश्रितों को भी दी जाती है। इस तरह की आयु में छूट भूतपूर्व सैनिकों को उनके द्वारा सेना में की गई सेवा की अवधि के साथ-साथ अतिरिक्त तीन साल तक दी जाती है। वास्तव में, भूतपूर्व सैनिकों के मामले में शैक्षिक योग्यता केवल इंटरमीडिएट या समकक्ष है जबकि सामान्य श्रेणी के अभ्यर्थियों के लिए यह स्नातक है। हमारे सामने यह भी स्वीकार किया गया कि भूतपूर्व सैनिक न केवल अपनी श्रेणी में, बल्कि सामान्य श्रेणी के अभ्यर्थियों के साथ भी प्रतिस्पर्धा करते हैं। भूतपूर्व सैनिकों को दी गई आयु में छूट के संबंध में किसी भी अपीलकर्ता/याचिकाकर्ता द्वारा कोई शिकायत नहीं की गई है। इसी तरह, स्वतंत्रता सेनानियों के आश्रित भी सामान्य वर्ग में प्रतिस्पर्धा करने के लिए स्वतंत्र हैं यदि वे सामान्य श्रेणी में अंतिम अभ्यर्थी से अधिक अंक प्राप्त करते हैं। इसलिए, हम अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता के इस तर्क में ज्यादा सार नहीं पाते हैं कि आयु में छूट सामान्य श्रेणी के लिए स्थिति को दुरुह बनाने की कीमत पर आरक्षित श्रेणी के पक्ष में स्थिति को अनुकूल कर देती है।

75. हमारी राय में, उम्र में छूट किसी भी तरह से "समान प्रतिस्पर्धा" को विकृत नहीं करती है। अपीलार्थियों के विद्वान अधिवक्ता के निवेदन को स्वीकार करना संभव नहीं है कि आयु में छूट या शुल्क में रियायत से किसी भी प्रकार से भारत के संविधान के अनुच्छेद 16(1) का उल्लंघन होगा। ये रियायतें प्रतियोगी परीक्षा में प्रतिभाग करने के लिए अभ्यर्थी की पात्रता से संबंधित प्रावधान हैं। जिस समय रियायतें प्राप्त की जाती हैं तब तक खुली प्रतियोगिता शुरू नहीं हुई होती है। यह तब शुरू होती है जब योग्यता, आयु, प्रारंभिक लिखित परीक्षा और शारीरिक परीक्षण जैसी पात्रता शर्तों को पूरा करने वाले सभी अभ्यर्थियों को मुख्य लिखित परीक्षा में बैठने की अनुमति दी जाती है। आयु में छूट एवं शुल्क में रियायत के साथ आरक्षित अभ्यर्थियों को केवल विचार के दायरे में लाया जाता है, ताकि वे योग्यता के आधार पर खुली प्रतियोगिता में भाग ले सकें। एक बार जब अभ्यर्थी लिखित परीक्षा में भाग लेता है, तो यह महत्वहीन हो जाता है कि अभ्यर्थी किस श्रेणी का है। पात्र घोषित किए जाने वाले सभी अभ्यर्थियों ने प्रारंभिक परीक्षा के साथ-साथ शारीरिक परीक्षण में भी भाग लिया था। इसके बाद ही सफल अभ्यर्थियों को खुली प्रतियोगिता में भाग लेने की अनुमति दी गई है।"

124. मौजूदा मामले में भी टीईटी में पासिंग मार्क्स में दी गई रियायत किसी भी तरह से "समान प्रतिस्पर्धा" को प्रभावित नहीं करती है। टीईटी पास करना प्रतियोगी परीक्षा में सम्मिलित होने के लिए अभ्यर्थी की पात्रता से संबंधित एक प्रावधान है। उस समय जब टीईटी पास किया जाता है, भले ही अंक शिथिलीकरण के साथ, तब

तक खुली प्रतियोगिता शुरू नहीं हुई है क्योंकि यह तब शुरू होती है जब योग्यता, टीईटी, आयु आदि पात्रता शर्तों को पूरा करने वाले सभी अभ्यर्थियों को एटीआरई में भाग लेने की अनुमति दी जाती है। जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उपरोक्त निर्णय में अवधारित किया है कि टीईटी के उत्तीर्ण अंकों में छूट देकर आरक्षित अभ्यर्थियों को केवल चयन हेतु विचार के क्षेत्र में लाया जाता है, ताकि वे योग्यता के आधार पर खुली प्रतियोगिता यानी एटीआरई-2019 में भाग ले सकें। एक बार जब अभ्यर्थी एटीआरई-2019 में भाग ले लेता है, तो यह मायने नहीं रखता कि अभ्यर्थी किस श्रेणी से संबंधित है और धारा 3(6) के संदर्भ में, यदि आरक्षित श्रेणी का अभ्यर्थी सामान्य वर्ग के अभ्यर्थी के अंक की बराबरी करने में सक्षम है तो उसे स्थानांतरित करना चाहिए और अनारक्षित श्रेणी में माना जाना चाहिए।

125. पक्षकारों द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के अगले निर्णय, "**विकास सांखला बनाम विकास कुमार अग्रवाल, (2017) 1 एससीसी राजस्थान"** को उद्धृत किया है, जिसमें राजस्थान राज्य द्वारा आयोजित शिक्षक पात्रता परीक्षा (टीईटी) के माध्यम से शिक्षण कर्मचारियों की नियुक्ति के संदर्भ में विवाद उठा था। एससी, एसटी और ओबीसी वर्ग के व्यक्तियों के लिए टीईटी में न्यूनतम पास अंकों में 10 प्रतिशत तक छूट दी गई थी। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विरचित कई विवाद्यकों में से एक निम्न प्रकार से था -

"38.3 (iii) क्या आरक्षित वर्ग के अभ्यर्थी, जिन्होंने भर्ती परीक्षा में सामान्य वर्ग के अभ्यर्थियों की तुलना में बेहतर अंक प्राप्त किए हैं, को सामान्य सीटों पर जाने देने से इन्कार इस आधार पर किया जा सकता है कि उन्हे टीईटी में छूट प्राप्त हुई थी?"

126. इस प्रश्न का नकारात्मक उत्तर देते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने समय-समय पर राज्य सरकार द्वारा जारी किए गए परिपत्रों का उल्लेख किया। यह उल्लेखित किया गया कि मात्र इस तथ्य से कि टीईटी में पास अंकों में कुछ छूट दी गई थी, आरक्षित वर्ग के अभ्यर्थियों को कोई लाभ नहीं मिलता क्योंकि इससे वे केवल चयन प्रक्रिया में भाग लेने के लिए एवं दूसरों के साथ प्रतिस्पर्धा करने में सक्षम हुए। इसलिए उस प्रकरण में 11 मई 2011 को राज्य सरकार द्वारा जारी परिपत्र के संदर्भ में ऐसे आरक्षित वर्ग के अभ्यर्थी, जिन्होंने सामान्य वर्ग में चयनित अंतिम अभ्यर्थी द्वारा प्राप्त अंकों से अधिक अंक प्राप्त किए हैं, वे अनारक्षित वर्ग की रिक्तियों में चयन किये जाने के विचार के हकदार होंगें। माननीय उच्चतम न्यायालय का यह मत निर्णय के पैराग्राफ 80 में व्यक्त किया गया है, जिसे निम्न प्रकार से कहा गया हैं।

"80. ऊपर उल्लिखित संबंधित दलीलों के संबंध में, पहला पहलू जिस पर विचार करने की आवश्यकता है, वह यह है कि क्या टीईटी पास अंकों में छूट भर्ती प्रक्रिया में रियायत के समतुल्य होगी। उच्च न्यायालय ने इस आधार पर ऐसा माना है कि टीईटी अंकों में इस तरह की छूट से संबंधित पैरा 9(ए) दस्तावेज़ का हिस्सा है जो भर्ती प्रक्रिया से संबंधित है। इस तर्क को स्वीकार करना कठिन है। शिक्षक के रूप में नियुक्ति के लिए टीईटी परीक्षा उत्तीर्ण करना अर्हता की शर्त है। यह एक आवश्यक योग्यता है जिसके बिना अभ्यर्थी नियुक्ति के योग्य नहीं है।

11 फरवरी, 2011 के दिशानिर्देशों/अधिसूचना में इसका स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया था। ये दिशानिर्देश टीईटी आयोजित करने से संबंधित हैं। जिसकी मूल विशेषताएं पहले ही ऊपर बताई जा चुकी हैं। यहां तक कि पैरा 9 जो कुछ आरक्षित श्रेणियों को दी जा सकने वाली रियायतों का प्रावधान करता है, वह उन 'योग्यता अंक' से संबंधित है जिसे टीईटी परीक्षा में प्राप्त किया जाना है। इस प्रकार, एक व्यक्ति जैसे ही टीईटी परीक्षा उत्तीर्ण करता है, वह चयन प्रक्रिया में भाग लेने के लिए पात्र हो जाता है, जब राज्य द्वारा प्राथमिक शिक्षकों के पदों को भरने के लिए ऐसी चयन प्रक्रिया शुरू की जाती है। दूसरी ओर, जब शिक्षकों की भर्ती की बात आती है, तो शिक्षकों की नियुक्ति का तरीका बिल्कुल अलग होता है। यहाँ, सफल अभ्यर्थियों की योग्यता सूची उनके विभिन्न शीर्षकों के तहत प्राप्त अंकों के आधार पर तैयार की जाती है। इन शीर्षकों में एक टीईटी में प्राप्त अंक भी है। जहां तक इस शीर्षक का संबंध है, टीईटी में प्राप्त अंकों का 20% प्रत्येक अभ्यर्थी को आवंटित किया जाना है। अत: आरक्षित श्रेणी के तहत वे अभ्यर्थी जिन्होंने टीईटी में कम अंक प्राप्त किए हैं स्वाभाविक रूप से इस शीर्षक में कम अंक प्राप्त करेंगे। हम इसे एक उदाहरण के साथ प्रदर्शित करना पसंद चाहेंगे कि मान लीजिए एक आरक्षित श्रेणी का अभ्यर्थी टीईटी में 53 अंक प्राप्त करता है, तो उसे टीईटी उत्तीर्ण माना जाता है। हालांकि, प्राथमिक शिक्षक के पद पर चयन के लिए विचार किए जाने पर, अंकों के आवंटन के संबंध में वह टीईटी के लिए 20% अंक प्राप्त करेगा। उनके विपरीत, एक सामान्य वर्ग का अभ्यर्थी जो टीईटी में 70 अंक हासिल करता है, उसे भर्ती प्रक्रिया में 14 अंक दिए जाएंगे। इस प्रकार, टीईटी अंकों के आधार पर आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थी को पद के लिए अपनी अभ्यर्थिता पर विचार करते समय कोई लाभ नहीं मिला है। इसके विपरीत, "सबको समान अवसर" को बनाए रखा जाता है, जिसमें टीईटी में उच्च अंक प्राप्त करने वाले व्यक्ति, चाहे वह सामान्य श्रेणी या आरक्षित श्रेणी से संबंधित हो, को टीईटी अंकों के 20% अर्थात उच्च अंक आवंटित किए जाते हैं। इस प्रकार, भर्ती प्रक्रिया में कोई भारांक या रियायत नहीं दी जाती है और सभी को उनके टीईटी अंकों के20% अंकों का आवंटन किया जाता है। इसलिए, उच्च न्यायालय का यह मानना सही नहीं है कि टीईटी में शिथिलीकरण देकर भर्ती प्रक्रिया में रियायत दी गई थी।

127. यह न्यायालय पाता है कि **विकास सांखला** मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उन आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थियों को आरक्षित श्रेणी से सामान्य श्रेणी में स्थानांतरित करने की अनुमति स्वीकार्य है जिन्होंने अंतिम अनारक्षित श्रेणी के अभ्यर्थियों की तुलना में अधिक अंक प्राप्त किए थे, भले ही टीईटी में उत्तीर्ण अंकों में रियायत का लाभ उठाने के बाद प्राप्त किये थे। आगे, उक्त मामले में, शिक्षकों का चयन टीईटी में प्राप्त अंकों सहित विभिन्न शीर्षकों के तहत प्राप्त अंकों के आधार पर किया जाना था। इस प्रकार, टीईटी में अंक प्राप्त करना भी एक मानदंड था जो एक शिक्षक के रूप में एक अभ्यर्थी के समग्र चयन को प्रभावित करता था और उस परिस्थिति में भी, शीर्ष न्यायालय ने आरक्षित श्रेणी से सामान्य श्रेणी में स्थानांतरण के लिए टीईटी पास करने में प्राप्त रियायती अंकों को एक प्रतिबंध के रूप में मानने से इनकार कर दिया था। जबकि वर्तमान मामले में, स्वीकार्य रूप से

टीईटी केवल एक अर्हता मानदंड है और उसका चयन सूची पर कोई प्रभाव नहीं है क्योंकि टीईटी में अंक प्राप्त करना गुणवत्ता अंक का हिस्सा नहीं है जैसा कि नियमावली के परिशिष्ट 1में उल्लिखित किया गया है।

128. तृतीय निर्णय "**गौरव प्रधान बनाम राजस्थान राज्य, (2018)11 एससीसी 352"** जिसे पक्षकारों ने उद्धृत किया है, जिसमें विवाद्यक बिंदु राजस्थान पुलिस अधीनस्थ सेवा नियमावली, 1989 के तहत आरक्षी के पद पर भर्ती से सम्बन्धित है। राज्य सरकार द्वारा समय-समय पर विभिन्न परिपत्र जारी किए गए थे। राजस्थान उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने आरक्षित वर्ग के अभ्यर्थियों की याचिका को उस सीमा तक स्वीकार कर लिया था कि आयु में छूट प्राप्त करने के बावजूद यदि वे श्रेष्ठता सूची में सामान्य श्रेणी से ऊपर थे, तो वे सामान्य श्रेणी के पदों की रिक्तियों पर स्थानांतरित किए जा सकते थे। हालांकि, यदि उन्होंने प्रतिस्पर्धी परीक्षा/चयन प्रक्रिया में भाग लेते समय छूट/रियायत का लाभ उठाया है तो वे इस स्थानातंरण के लिए अर्ह नहीं होंगे।

129. उस मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने समय-समय पर राजस्थान सरकार द्वारा जारी किए गए परिपत्रों को उल्लिखित किया और यह पाया कि 24 जून, 2008 के परिपत्र के बिंदु 6.2 में एक अवरोधक लगाया गया है जो निम्नलिखित है -

6. 2 राज्य में, अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति/अन्य पिछड़ा वर्ग के सदस्य अनारक्षित पदों के लिए प्रतिस्पर्धा कर सकते हैं और उनके लिए उनकी गणना की जायेगी, यदि उन्होंने सीधी भर्ती के मामले में कोई रियायत (जैसे आयु आदि) और परीक्षा शुल्क के संदाय मे प्राप्त नहीं की है।

130. इस प्रकार, उपर्युक्त अवरोधक और **"दीपा ई वी बनाम यूनियन ऑफ इंडिया (2017)12 एससीसी"** के निर्णय को दृष्टिगत रखते हुए उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि उपरोक्त परिस्थितियों में उन अनुसूचित जाति के अभ्यर्थियों को निम्नलिखित शर्तों में अनारक्षित रिक्तियों में जाने की अनुमति नहीं दी जा सकती जैसा कि निर्णय के पैराग्राफ 49 में बताया गया है।

'49. उपर्युक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, हमारा सुविचारित मत है कि अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति/पिछड़ा वर्ग से संबंधित अभ्यर्थी, जिन्होंने आयु में छूट ली थी, अनारक्षित रिक्तियों में स्थानांतरित होने के हकदार नहीं थे। राजस्थान सरकार ने ऐसे अभ्यर्थियों को स्थानांतरित कर दिया है, जिन्होंने अनारक्षित रिक्तियों के लिए आयु में छूट ली है, जिसके परिणामस्वरूप बड़ी संख्या में ऐसे अभ्यर्थी बाहर हो गए हैं, जो अनारक्षित श्रेणी की रिक्तियों पर चयनित होने के हकदार थे। अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति/पिछड़ा वर्ग के अभ्यर्थियों के स्थानान्तरण के कारण अनारक्षित वर्ग से संबंधित अभ्यर्थी नियुक्ति के लिए स्पष्ट रूप से हकदार थे, जिससे उन्हें राज्य द्वारा की गई उपरोक्त अवैध व्याख्या के आधार पर वंचित किया गया था। हालांकि, हम इस तथ्य को भी दृष्टिगत लेते हैं कि आरक्षित वर्ग के अभ्यर्थियों ने आयु में छूट का लाभ उठाया था और

अनारक्षित वर्ग में स्थानांतरित हो गए थे तथा वे अभ्यर्थी पिछले पांच से अधिक वर्षों से कार्यरत हैं। आरक्षित वर्ग के अभ्यर्थियों जिन्हे स्थानांतरण के आधार पर अनारक्षित रिक्तियों पर नियुक्त किया गया था, वे किसी प्रकार से दोषी नहीं है। अतः, हमारा मत है कि अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति/पिछड़ा वर्ग के ऐसे अभ्यर्थी, जिनको आरक्षित रिक्तियों पर स्थानांतरित किया है और नियुक्त किया गया, उन्हें विस्थापित नहीं किया जायेगा और संबंधित पदों पर कार्यरत रहने की अनुमति दी जाती है। दूसरी तरफ अनारक्षित अभ्यर्थी, जिन्हें अवैध स्थानातांरण के कारण नियुक्त नहीं किया जा सका, वे भी अपनी श्रेष्ठता के आधार पर नियुक्ति के लिए हकदार हैं। "साम्या को इस न्यायालय के द्वारा समायोजित किया जाना है।"

माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा साम्या को संतुलित करने के लिए निम्नलिखित निर्देश जारी करते हुए प्रकरण निर्णीत कियाः-

50. रिक्तियों के अस्तित्व के प्रश्न पर, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदित किया है कि रिक्तियां अभी भी वहां मौजूद है, जिसका खंडन राजस्थान सरकार के विद्वान अधिवक्ता ने किया है. हालांकि, रिक्तियों की संख्या के सम्बन्ध में न तो अपीलार्थियों द्वारा कोई विवरण प्रस्तुत किया है और न ही राज्य सरकार ने रिक्तियों की उचित स्थिति के बारे में न्यायालय को सूचित किया है।

51 इसिलिए हम पक्षों के मध्य साम्या को समायोजित करने के लिए निम्नलिखित निर्देश जारी करते हैः

51.1 रिट याचिकाकर्ता/अपीलार्थी, जो अपनी श्रेष्ठता के अनुसार अनारक्षित रिक्तियों पर नियुक्त किए जाने के हकदार थे एवं जो रिक्तियां ऐसे एससी/एसटी/आेबीसी अभ्यर्थियों के स्थानांतरण के द्वारा भर दी गई जिन्होनें आयु में छूट प्राप्त की थी, को इन पदों पर नियुक्ति दी जाये। राज्य सरकार को निर्देशित किया जाता है कि वह ऐसे अभ्यर्थियों की नियुक्ति के लिए उपयुक्त आदेश जारी करे जो अपनी श्रेष्ठता के अनुसार सामान्य श्रेणी से सम्बन्धित थे आैर नियुक्ति के हकदार थे। यह प्रक्रिया इस आदेश की प्रति प्रस्तुत होने की तिथि से तीन माह के अन्दर पूरी कर ली जाये।

51. 2 राज्य सरकार मौजूदा रिक्तियों के सापेक्ष नियुक्तियां करेगी, यदि उपलब्ध है, और उपरोक्त अभ्यर्थियों के लिए रिक्तियां उपलब्ध न होने की स्थिति में अभ्यर्थियों के समायोजन के लिए अधिसंख्य पदों का सृजन किया जाये जो रिक्तियों के उपलब्ध हो जाने पर समाप्त कर दिये जाये।

131. इसके बाद न्यायालय ने "**दीपा ई वी बनाम यूनियन ऑफ इंडिया (2017) 12 एससीसी 680"** के रूप में निर्णीत विधि पर विचार किया। दीपा ई. वी. (उपरोक्त) में तथ्य यह थे कि अपीलार्थी ने भारत सरकार के वाणिज्य आैर उद्योग मंत्रालय में कार्य करने वाली निर्यात निरीक्षण परिषद में प्रयोगशाला सहायक, ग्रेड-II के पद के लिए आवेदन किया था। अपीलार्थी ओबीसी श्रेणी में थी और साक्षात्कार के लिए बुलाये गये उस श्रेणी के 11 अभ्यर्थियों में से एक थी। उसने 82 अंक अर्जित किए थे। एक अन्य ओबीसी अभ्यर्थी जिसने 93 अंक प्राप्त किए थे, चयनित हुआ था। सामान्य श्रेणी में किसी भी अभ्यर्थी ने 70 अंकों की न्यूनतम कटऑफ नहीं प्राप्त किया था।

132. अपीलार्थी ने तदनुसार तर्क दिया कि उसे सामान्य श्रेणी में समायोजित किया जाना

चाहिए। उनकी रिट याचिका एकल न्यायाधीश द्वारा खारिज कर दी गई थी और उस फैसले के खिलाफ उनकी अपील भी खंडपीठ ने खारिज कर दी थी। हालांकि, सर्वोच्च न्यायालय ने कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग द्वारा जारी कार्यवाही दिनांकित 1 जुलाई, 1998 में तीसरी शर्त का उल्लेख किया जिसका विषय था "श्रेष्ठता सूची में नीचे रहे अभ्यर्थियों द्वारा अथवा मानक शिथिलीकरण वाले अभ्यर्थी जो अपनी श्रेष्ठता के आधार पर चयनित हैं उनके द्वाराआरक्षित रिक्तियों को भरा जाएगा न कि आरक्षित श्रेणी के विरुद्ध समायोजित किया जायेगा।" तीसरी शर्त इस प्रकार हैः

'3. इस संबंध में यह स्पष्ट किया जाता है कि केवल ऐसे अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति/अन्य पिछड़ा वर्ग के अभ्यर्थियों जिनका चयन उन्ही मानदडों पर किया गया है जो सामान्य अभ्यर्थी पर लागू होता है, उनका सामायोजन आरक्षित रिक्तियों पर नहीं किया जाएगा। दूसरे शब्दों में, एससी/एसटी/ओबीसी अभ्यर्थियों के चयन में जब शिथिल मानदंड लागू किए जाते हैं जैसे कि उदाहरण के तौर पर आयु सीमा अनुभव, योग्यता, लिखित परीक्षा में अनुमन्य अवसरों की संख्या, जो सामान्य वर्ग के अभ्यर्थियों के विचारण के दायरे से विस्तृत है आदि तब एससी/एसटी/ओबीसी अभ्यर्थियों की गणना आरक्षित रिक्तियों के सापेक्ष की जानी है। ऐसे अभ्यर्थियों को अनारक्षित रिक्तियों के सापेक्ष विचार करने के लिए अनुपलब्ध माना जाएगा।

133. यह इस तथ्य के कारण था कि उपर्युक्त विशिष्ट अवरोधक को इस मामले में अपीलार्थी द्वारा चुनौती नहीं दी गई थी, जिससे उच्चतम न्यायालय उन्हें वह राहत नहीं दे सका जिसके लिए उन्होंने प्रार्थना की थी।

134. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता ने सर्वोच्च न्यायालय के एक निर्णय पर काफी भरोसा व्यक्त किया है, जिसका विशेष उल्लेख करने की आवश्यकता है। यह **"राज्य (एनसीटी दिल्ली बनाम प्रदीप कुमार (2019) 10 एससीसी 120"** के रुप में रिपोर्ट है। उक्त कथित प्रकरण में दिल्ली सरकार के अन्तर्गत विशेष शिक्षा शिक्षकों की भर्ती की जानी थी। प्रत्यर्थियों ने दिल्ली के अलावा अन्य राज्यों में अन्य पिछड़ा वर्ग श्रेणी के तहत प्राप्त छूट मानदंडों के तहत सीटीईटी प्राप्त किया था और इस प्रकार उनका अभ्यर्थन अर्ह नहीं माना गया जिसका समर्थन केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण द्वारा नहीं किया गया था एवं जिसने अभ्यर्थियों को नियुक्त करने का निर्देश दिया। इस फैसले को दिल्ली उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने बरकरार रखा। हालांकि, सर्वोच्च न्यायालय ने दोनों निर्णयों को पलटते हुए अपना विचार व्यक्त किया कि उक्त भर्ती प्रक्रिया में कथित विशिष्ट तथ्यों के दृष्टिगत प्रत्यर्थियों के पास ओबीसी (दिल्ली) प्रमाण पत्र नहीं था और इस प्रकार ओबीसी श्रेणी रिक्तियों के सापेक्ष उनका विचार नहीं किया जा सकता था। उस मामले में विवाद्यक तथ्य/बिंदु आरक्षित वर्ग से सामान्य श्रेणी में स्थानांतरण नहीं था बल्कि उन आेबीसी के लिए आरक्षित वर्ग के पदों पर रोजगार प्राप्त करने से संबंधित था जो दिल्ली सरकार के द्वारा प्रमाणित थे। उच्चतम न्यायालय ने उक्त निर्णय में पैरा 19.5 में विभेदक और विशिष्ट तथ्यों का उल्लेख किया है, जिसमें कहा गया हैः

19.5 विकास सांखला (उपरोक्त) के मामलें में अन्य विभेदक पहलू यह है कि आरक्षित वर्ग के तहत आवेदन करने वाले अभ्यर्थी राजस्थान के थे। उसी राज्य के अर्थात राजस्थान में चयन और आकांक्षी अभ्यर्थियों के लिए, न्यायालय ने ऐसे अभ्यर्थियों को अनारक्षित श्रेणी में स्थानान्तरण करने की अनुमति दी। वर्तमान प्रकरण में, हालांकि, अभ्यर्थी (अर्थात प्रत्यर्थी) दिल्ली के अतिरिक्त अन्य राज्यों से सम्बन्धित है। ओबीसी (बाहरी) होने के नाते, केवल अनारक्षित श्रेणी के तहत उनका विचार किया गया है, यदि उन्होंने सीटीईटी में कम से कम 60% अंक अर्जित किये हों। स्वीकार्य रुप से प्रत्यर्थियों ने 60% अंक नहीं पाए हैं अतः वे अपात्र हैं। इसके अलावा, कोई अन्य पिछड़ा वर्ग अभ्यर्थी जो दिल्ली के बाहर किसी राज्य/केंद्र शासित प्रदेश में प्रमाणित नहीं है वह दिल्ली सरकार के तहत प्रमाणित अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए निर्धारित आरक्षित श्रेणी के पदों पर रोजगार प्राप्त करने के लिए पात्र नहीं हो सकता है।

135. मामले की सुनवाई के दौरान सौरव यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2021) 4. एससीसी 542 के निर्णय को पक्षकारों द्वारा उद्धृत किया गया है जो उत्तर प्रदेश सिविल पुलिस और प्रादेशिक सशस्त्र बल दोनों के तहत पुलिस आरक्षी की भर्ती से संबंधित है। उस मामले में विवाद महिला अभ्यर्थियों के लिए आरक्षित क्षैतिज आरक्षण को उचित प्रकार से भरने से संबंधित था जिसमें बड़ी संख्या में आेबीसी वर्ग महिला अभ्यर्थियों द्वारा शिकायत की गयी थी कि सरकार ने आरक्षण के नियमों को सही ढंग से लागू नहीं किया आैर इस प्रकार उन्हें स्थानान्तरण के लाभ से वंचित कर दिया था। उदाहरण के तौर पर सामान्य श्रेणी के रिक्तियों में समायोजन, से वंचित किया गया। यद्यपि यह विवाद्यक बिंदु ऊर्ध्वाधर (सामाजिक) आरक्षण और क्षैतिज (विशेष) आरक्षण के पारस्परिक क्रियान्वयन से जुड़ा हुआ था। तथापि यह विवाद्यक बिंदु वर्तमान मामलों में इस न्यायालय का ध्यान आकर्षित नहीं कर रहा है। तथापि, न्यायमूर्ति एस. रविन्द्र भट्ट का निष्कर्ष, जो उन्होंने अलग से सकारात्मक और पूरक निर्णय दिया है, विशेष महत्व का है क्योंकि यह विवाद्यक बिंदु को स्पष्ट करता है। न्यायमूर्ति भट ने अवधारित किया है-

'66. मैं यह कहते हुए अपनी बात समाप्त करता हूं कि आरक्षण, ऊर्ध्वाधर और क्षैतिज, दोनों ही, सार्वजनिक सेवाओं में प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने का तरीका है। इन्हें कठोर "पैमाने" के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए, जहां अभ्यर्थी की श्रेष्ठता जिसके आधार पर वह सामान्य श्रेणी में दर्शित किये जाने का हकदार है, को अन्य प्रकार से अवरुद्ध कर दिया जाता है जैसा कि परिणाम होगा यदि सरकार के तर्कों को स्वीकार्य किया जाये। एेसा करना सामुदायिक आरक्षण के रूप में प्रभावी होगा जहाँ हर सामाजिक वर्ग अपने आरक्षण के दायरे में सीमित है और इस प्रकार यह श्रेष्ठता को नकारता है। सामान्य श्रेणी सभी के लिए उपलब्ध है और इसके लिए एकमात्र शर्त यह है कि एक अभ्यर्थी को इसमें दर्शित किये जाने के लिए श्रेष्ठता सूची में होना चाहिए, चाहे किसी भी प्रकार का आरक्षण लाभ उसे उपलब्ध है या नहीं।

136. किसी भी स्थिति में, जहां तक क्षैतिज आरक्षण के कार्यान्वयन का प्रश्न है, प्रत्यर्थी

उपरोक्त निर्णय द्वारा निर्देशित होंगे क्योंकि उपरोक्त निर्णय उक्त विषय पर एक अधिकृत विधि है।

137. "**नीरव कुमार दिलीप भाई मकवाना बनाम गुजरात लोक सेवा आयोग, (2019) 7 एससीसी 383"** अगला मामला है जिस पर पक्षकारों ने भरोसा जताया है, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय गुजरात राज्य में सहायक वन संरक्षक एवं क्षेत्रीय वन अधिकारी के पदों पर भर्ती पर विचार कर रहा था। यह तर्क दिया गया कि प्रारम्भिक चरण में आरक्षित वर्ग के अभ्यर्थियों को, बिना चयन में किसी प्रकार का अधिमानी लाभ दिये, आयु में शिथिलीकरण देकर अर्हता प्रदान करना भारतीय संविधान के अनुच्छेद 16(4) के तहत आरक्षण से सम्बन्धित मामलें के रूप नहीं माना जा सकता है। इसके अलावा, गुजरात सरकार द्वारा जारी 29.01.2000 और 23.07.2004 के परिपत्रों की व्याख्या यह दिखाने के लिए की गई थी कि किसी पद पर चयन के मामले में आयु में शिथिलीकरण को आरक्षण के रूप में नहीं माना जा सकता है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उस मामले में याचिकाकर्ताओं के तर्क को खारिज करते हुए सहर्ष अवधारित किया है कि-

25. वर्तमान मामले में, राज्य सरकार ने 21.01.2000 और 23.07.2004 के परिपत्रों द्वारा अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग के पक्ष में आरक्षण देने के लिए नीति तैयार की है। राज्य सरकार ने स्पष्ट किया है कि जब अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति, आेबीसी वर्ग के लिए आयु सीमा, अनुभव, योग्यता, लिखित परीक्षा में अवसरों की अनुमति आदि में छूट का मानक लागू किया जाता है, तो ऐसी श्रेणी के चयनित अभ्यर्थी को उक्त तरीके से, केवल उसके आरक्षित पद के विरुद्ध ही विचार किया जाएगा। ऐसे अभ्यर्थी को अनारक्षित पद के लिए विचार करने के लिए अनुपलब्ध माना जाएगा।

138 इस प्रकार, उपरोक्त निर्णय से यह देखा गया है कि प्रत्येक मामला भर्ती नोटिस, प्रचलित क़ानून और समय-समय पर जारी किए गए परिपत्रों में निर्दिष्ट विशिष्ट तथ्यों और शर्तों से परिचालित होता है। यह देखा गया है कि नीरव कुमार दिलीपभाई मामले में, दीपा ई.वी. मामलें में और गौरव प्रधान मामलें में, ऐसे विशिष्ट निर्देश थे, जो अनारक्षित श्रेणी की रिक्तियों के सापेक्ष आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थियों पर विचार करने से रोकते थे, जबकि जितेंद्र कुमार सिंह मामले और विकास सांखला मामले में उन्होंने आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थियों को अनारक्षित श्रेणी की रिक्तियों के सापेक्ष समायोजित करने की अनुमति दी थी, यदि उन्होंनें अनारक्षित श्रेणी की कट आफ अंक से बेहतर अंक प्राप्त किये थे। सुनवाई के दौरान विद्वान अधिवक्तागण इस मामले के वर्तमान तथ्यों पर लागू होने वाले किसी विशिष्ट निर्देश को इंगित करने में सफल नहीं हो सके थे, जो आरक्षित श्रेणी का सामान्य वर्ग में स्थानान्तरण रोकते थे। वास्तव में, आरक्षण अधिनियम की धारा 3(6) और सरकार का दिनांकित 25.03.1994 का आदेश विशेष रूप से इस तरह के स्थानान्तरण को अनिवार्य बनाता है। जहां तक प्रदीप कुमार के मामले का संबंध है, यह तथ्यों के आधार पर अलग है क्योंकि उसमें एक पूरी तरह से अलग विवाद्यक बिंदु था, जिसने सर्वोच्च न्यायालय का ध्यान आकर्षित

किया, जिसमें यह अवधारित किया गया था कि दिल्ली के बाहर के राज्य/क्षेत्र में प्रमाणित ओबीसी अभ्यर्थी दिल्ली सरकार द्वारा प्रमाणित ओबीसी के लिए निर्धारित आरक्षित श्रेणी के पदों पर रोजगार पाने के लिए पात्र नहीं हो सकता है।

I. अधिमान्य जिलों का आवंटन

139. एमआरसी (प्रतिभाशाली आरक्षित वर्ग) को सामान्य वर्ग की सीटों में स्थानान्तरण करने से संबंधित फैसले पर चर्चा करने के बाद, यह न्यायालय मामलों के इस वर्तमान समूह में एक और विवाद्यक बिंदु पर आती है। यह तर्क दिया गया है कि एमआरसी अभ्यर्थियों को वरीयता वाले जिले आवंटित करने में अधिकारियों द्वारा लागू की गई आरक्षण नीति का उल्लंघन किया गया है। सामान्य श्रेणी से संबंधित अभ्यर्थियों के अनुसार, यदि एक एमआरसी अभ्यर्थी को सामान्य वर्ग की श्रेष्ठता सूची में रहते हुए पसंदीदा जिला आवंटित नहीं हो पाता है, और ऐसा एमआरसी अभ्यर्थी अपने ही हितकारी कारणों से पसंदीदा जिला आवंटन के लिए आरक्षित श्रेणी में पुनः प्रत्यावर्तित होता है, तब ऐसे एमआरसी अभ्यर्थियों द्वारा खाली किए गए पदों को केवल सामान्य वर्ग के अभ्यर्थियों द्वारा भरा जाना चाहिए। इन अभ्यर्थियों ने "**भारत संघ बनाम रमेश राम और अन्य (2010)7 एससीसी 234**" के मामले में पारित माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का हवाला दिया है। इन अभ्यर्थियों ने उक्त निर्णय के निष्कर्ष का अवलम्बन लिया है, जो पैराग्राफ 50 में यहां नीचे वर्णित है -

हम निष्कर्षों को संक्षिप्ततः निम्नवत प्रस्तुत करते हैंः-

i) एमआरसी अभ्यर्थी जो नियम 16 (2) का लाभ उठाते हैं और आरक्षित श्रेणी में समायोजित होते हैं, उन्हें कुल आरक्षण की गणना के उद्देश्य से आरक्षित पूल के हिस्से के रूप में गिना जाना चाहिए। एमआरसी अभ्यर्थियों द्वारा सामान्य पूल में खाली की गई सीटों को चुनने का अवसर सामान्य श्रेणी के अभ्यर्थियों को दिया जायेगा।

ii) नियम 16(2) के तहत, एमआरसी अभ्यर्थी की आरक्षित स्थिति सुरक्षित है ताकि उसका बेहतर प्रदर्शन उसे अधिक पसंदीदा सेवा के लिए आवंटित होने के अवसर से वंचित न करे।

iii) विभिन्न सिविल सेवाओं के आवंटन के उद्देश्य से उनके द्वारा बताई गई प्राथमिकताओं के संबंध में संशोधित नियम 16(2) केवल अभ्यर्थियों के दो वर्गों के पारस्परिक वरीयता को पहचानने का प्रयास करता है, अर्थात (ए) मेधावी आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थी, (बी) अपेक्षाकृत कम रैंक वाले आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थी।

iv) आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थी "ओबीसी, एससी/एसटी श्रेणियों से संबंधित" जिन्हें योग्यता के आधार पर चुना जाता है और सामान्य/अनारक्षित श्रेणी के अभ्यर्थियों की सूची में रखा जाता है, वे सेवाओं के आवंटन के समय संबंधित आरक्षित श्रेणी में स्थानान्तरित होने का विकल्प चुन सकते हैं। नियम 16(2) द्वारा परिकल्पित इस तरह का स्थानान्तरण नियम 16(1) या संविधान के अनुच्छेद 14, 16(4) और 335 के साथ असंगत नहीं है।

140. हालांकि, आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थियों ने प्रतिवाद किया है कि प्राधिकारियों ने गलत

तरीके से एमआरसी अभ्यर्थियों को वरीयता के जिलों को आवंटित करते हुए "मूल रूप से" उन्हें "आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थी" के रूप में माना है, जबकि इस न्यायालय के साथ-साथ माननीय सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न निर्णयों में जिलों के आवंटन के लिए उक्त उद्देश्य के लिए एमआरसी अभ्यर्थियों को केवल "कल्पित रूप से" आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थियों के रूप में माना जाना चाहिए। इस प्रकार, यह तर्क दिया गया है कि प्रतिवादी अधिकारियों ने मनमाने ढंग से मान लिया है कि एमआरसी अभ्यर्थियों द्वारा छोड़ी गई अनारक्षित सीटें सामान्य अभ्यर्थियों के और अधिक चयन के लिए उपलब्ध थीं, जिसके परिणामस्वरूप सामान्य श्रेणी के अभ्यर्थियों का ऐसे एमआरसी के छोड़े गये पदों पर चयन हुआ, जिन्हें अनारक्षित रिक्तियों के स्थान पर आरक्षित श्रेणी के पदों के सापेक्ष सामायोजित किया गया

141. यह न्यायालय मानता है कि सामान्य वर्ग के अभ्यर्थियों का तर्क दूर की कौड़ी है। सबसे पहले और सबसे महत्वपूर्ण, सामान्य श्रेणी के अभ्यर्थी का तर्क यह मानने से कि सामान्य श्रेणी, सामान्य श्रेणी के अभ्यर्थी के लिए एक यथास्थिति है, स्पष्टतः प्रतिकूल रूप से प्रभावित होता है। यह स्पष्ट किया जाता है कि सामान्य श्रेणी, जैसा कि नाम से पता चलता है, कोई आरक्षण नहीं है क्योंकि कोई भी आरक्षण ओबीसी, एससी और एसटी के लिए उपलब्ध 50% की सीमा तक तय है। यह तर्क इस धारणा पर आधारित है कि 100% आरक्षण मौजूद है, जिसमें 50% ओबीसी, एससी और एसटी के लिए है, जबकि अन्य 50% सामान्य वर्ग के लिए है। एक बार जब यह भ्रम दूर हो जाता है, तो यह तर्क भी अपने आप खत्म हो जाता है।

142. इसके अलावा, रमेश राम के फैसले को सामान्य श्रेणी के अभ्यर्थियों द्वारा सही परिप्रेक्ष्य में नहीं उद्धृत किया गया है, क्योंकि **"भारत संघ बनाम रमेश राम और अन्य (2010)7 एससीसी 234"** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय 2005 से 2007 तक की सिविल सेवा परीक्षाओं के लिए सिविल सेवा परीक्षा नियमावली के नियम 16 के उप-नियम (2) से (5) की संवैधानिक वैधता का परीक्षण कर रही थी और आईएएस/आईपीएस/आईआरएस की प्रतिष्ठित सेवा के लिए एक अभ्यर्थी द्वारा प्रयोग की गई पसंद से संबंधित थी, जबकि वर्तमान मामले में, चुनाव का प्रयोग केवल एक अधिमान्य जिले से संबंधित है और अभ्यर्थी एक सहायक शिक्षक के रूप में बना रहता है, जो रमेश राम मामले से भिन्न है, जिसमें एक अभ्यर्थी को अपनी पसंद का चुनाव करके आईएएस/आईपीएस/ आईआरएस या कुछ अन्य संबद्ध सेवाआें में चुना जा सकता है। हाल ही में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने "**त्रिपुरारी शरण बनाम रंजीत कुमार यादव, (2018)7 एससीसी 656"** के मामले में, जो कि पीजी मेडिकल कॉलेज में प्रवेश से संबंधित था एवं जिसमें एक छात्र को अपनी पसंद के आधार पर एक अलग कॉलेज मिल जाता है, में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने रमेश राम के मामले में पारित निर्णय का उल्लेख करते हुए निम्न निष्कर्ष निकाला:

"14. यहां ऊपर चर्चा किए गए मामलों के आलोक में, दोनों प्रश्नों का निम्न उत्तर दिया जाता है -

i) एक एमआरसी आरक्षित श्रेणी के लिए निर्धारित सीट का विकल्प चुन सकता है, ताकि कम प्रतिभाशाली आरक्षित श्रेणी के

अभ्यर्थियों के प्रति उसे नुकसान न हो। ऐसे एमआरसी को केवल सामान्य श्रेणी का हिस्सा माना जाएगा।

ii) एमआरसी द्वारा किये गये चुनाव के कारण, आरक्षित श्रेणी की एक सीट भर जाती है, और सामान्य श्रेणी के अभ्यर्थियों के लिए उपलब्ध अवसरों में से एक सीट खाली रहती है। परिणामतः, एक कम रैंक वाला आरक्षित श्रेणी का अभ्यर्थी जिसके पास आरक्षित श्रेणी के बीच विकल्प थे, प्रभावित होता है क्योंकि उसे अब कोई विकल्प नहीं मिलता है।

स्थिति को ठीक करने के लिए यानी प्रभावित अभ्यर्थी को उपचार प्रदान करने के लिए, 50वीं सीट जो किसी एमआरसी को आवंटित की गई होती, अगर उसने उस आरक्षित श्रेणी के लिए सीट का विकल्प नहीं चुना होता जिससे वह संबंधित है, वह सीट अब आरक्षित श्रेणी की सूची में उस अभ्यर्थी के द्वारा भरी जायेगी जो एमआरसी के द्वारा विकल्प चुनने की वजह से नुकसान में था। यह आरक्षण के प्रतिशत को, जो कि 50% है, को अक्षुण्ण रखता है।

J. <u>दिनांक 05.01.2022 की 6800 की चयन सूची</u>

143. अगला प्रश्न जो विचार के लिए आता है कि क्या राज्य अपनी गलती मानते हुए 69000 की विज्ञापित सीटों के अलावा केवल आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थियों के लिए 6800 की एक अतिरिक्त सूची दिनांकित 05.01.2022 जारी कर सकता है। इस तरह की रिट याचिकाओं की पोषणीयता के संबंध में प्रारंभिक आपत्ति उठाई गई, क्योंकि याचिकाकर्ताओं ने जिन्होंने इस चयन सूची को चुनौती दी थी, वे या तो एटीआरई-2019 को उत्तीर्ण करने में विफल रहे हैं या वे ऐसे अभ्यर्थी हैं, जो एटीआरई-2019 में भाग लेने के लिए अर्ह नहीं थे, लेकिन जो बाद अर्ह हो गये। इस प्रकार, इन याचिकाकर्ताओं ने एटीआरई में प्रतिभाग करने के अपने भविष्य के दावे को देखते हुए इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है, क्योंकि इस स्तर पर उत्तरदाताओं द्वारा किसी भी अतिरिक्त सीट की अनुमति दी जाने से वास्तव में भविष्य की रिक्तियों में सीटों की संख्या कम हो जाएगी। हालाँकि, याचिकाकर्ताओं के इन समूह द्वारा मांगी जा रही राहत दूर की कौड़ी लगती है, क्योंकि इस न्यायालय में एटीआरई-2019 से संबंधित याचिकाओं की बाढ़ आ गई है और भविष्य के एटीआरई के लिए अभी कोई संभावना नहीं है, हालांकि इस न्यायालय द्वारा की गई सुनवाई और मुद्दों के विस्तार को ध्यान में रखते हुए, इन याचिकाकर्ताओं द्वारा मांगी गई राहत को अलग तरीके से निपटाया जा रहा है।

144. रिट याचिकाओं के समूह में याचिकाकर्ताओं के लिए उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री सुदीप सेठ ने तर्क दिया है कि सचिव, बेसिक एजुकेशन बोर्ड द्वारा रिट याचिका संख्या 1389 (एसएस) 1991, जवाहर लाल बनाम यूपी राज्य में दाखिल हलफनामे दिनांकित12.7.2021 के अनुसार1.12.2018 को विज्ञापित 69000 के सभी पद चयन के बाद भरे जा चुके थे। वह यह भी उल्लेखित करते हैं कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका दायर की गई थी जिसमें इस राहत की मांग की गई थी कि कुछ रिक्तियां जो बाद में उत्पन्न् हुई थीं, उन्हें यहां ऊपर संदर्भित 69000 पदों के संबंध में विज्ञापन दिनांकित 1.12.2018

के अनुसार आयोजित चयन के आधार पर भी भरा जा सकता है; हालांकि, इस राहत को माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने रिट याचिका संख्या (सिविल) 760/2020, शिवम पांडे और अन्य बनाम यूपी राज्य और अन्य में पारित अपने निर्णय दिनांकित 11.2.2021 द्वारा अस्वीकार कर दिया था। उक्त आदेश निम्नानुसार है:

"भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत दायर यह याचिका अन्य बातों के साथ-साथ प्रार्थना करती है कि सहायक शिक्षक भर्ती परीक्षा 2018 के 26944 रिक्त पदों को वर्तमान चयन के माध्यम से भरने का निर्देश दिया जाए।

पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता को सुना।

गौरतलब है कि सहायक शिक्षक भर्ती परीक्षा 2019 के माध्यम से 69000 पदों को भरने के लिए विज्ञापन दिया गया था।

ऐसी स्थिति में 69000 से अधिक पदों को भरने के लिए संबंधित अधिकारियों को कोई निर्देश जारी नहीं किया जा सकता है।

इसलिए हमें याचिका में कोई गुण नजर नहीं आता।

तदनुसार, रिट याचिका खारिज की जाती है।

लंबित प्रार्थनापत्र, यदि कोई हो, का भी निस्तारण किया जाता है।"

145. श्री सेठ ने यह भी निवेदन किया है कि प्रत्यर्थियों ने इस न्यायालय के समक्ष एक रिट कार्यवाही में कहा था कि आरक्षित श्रेणी से भरे जाने वाले सहायक शिक्षक के 6800 पद उन 68500 रिक्तियों का हिस्सा नहीं हैं जिन्हें 9 जनवरी, 2018 को विज्ञापित किया गया था (एटीआरई-2018) एवं न ही उक्त एटीआरई-2019 का हिस्सा हैं क्योंकि स्वीकृत रुप से सभी सीटें भर चुकी हैं। इस प्रकार, उनके द्वारा यह तर्क दिया जा रहा है कि इन रिक्तियों का न तो 01 दिसंबर, 2018 (एटीआरई-2018) को विज्ञापन दिया गया था और न ही उन्होंने 1 दिसंबर, 2018 (एटीआरई-2019) को इन रिक्तियों का विज्ञापन दिया था। इस प्रकार, आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थियों के लिए कथित इन 6800 रिक्तियों को कभी भी विज्ञापित नहीं किया गया था और वे पूर्वोक्त उल्लिखित एटीआरई-2018 और एटीआरई-2019 से संबंधित चयन का हिस्सा नहीं थे इसलिए उन्हें उक्त चयन के आधार पर भरा नहीं जा सकता है, जैसा कि ऊपर देखा गया है। उन्होंने कहा कि इसलिए, जब तक इन रिक्तियों का विज्ञापन नहीं किया जाता और भर्ती के लिए नई भर्ती प्रक्रिया नहीं की जाती, कोई विकल्प नहीं है जिससे कि ये 6800 रिक्तियां भरी जा सकती हैं, लेकिन से ऐसा लगता है कि उपरि उल्लिखित 69000 पदों के चयन के आधार पर रिक्तियां भरी जा रही हैं, जो स्पष्ट रूप से माननीय उच्चतम न्यायालय के दिनांक 11.2.2021 के फैसले और कानून के दायरे में है, साथ ही विधि के अधीन विषय में भी है। वह कहते हैं कि याचिकाकर्ता जो एटीआरई-2019 में सफल नहीं हुए हैं। इसके बावजूद, पश्चातवर्ती नई रिक्तियों में, जिसमें 6800 रिक्तियां शामिल होंगी, जो इस रिट याचिका की विषय वस्तु हैं, नवनियुक्ति हेतु विचारार्थ लिये जा सकते हैं क्योंकि याचिकाकर्ता आरक्षित श्रेणी से संबंधित हैं जिनमें से इन पदों को भरा जाना है। इसके अलावा, वे कहते हैं कि इन आरक्षित रिक्तियों का निर्धारण स्वयं गलत है। इसलिए, सामान्य

श्रेणी के अन्य याचिकाकर्ताओं को भी इस मामले में अपना पक्ष रखने का अधिकार है। उन्होंने आगे कहा कि 6800 चयनित लोगों में से कुछ को प्रतिनिधिक क्षमता में पक्षकार बनाया गया है। उन्होंने कहा कि 5 जनवरी, 2022 को आरक्षित श्रेणी के 6800 अभ्यर्थियों की एक चयन सूची जारी की गई है, जो कानून के अनुसार मान्य नहीं है और यह निरस्त किए जाने योग्य है।

146. यह न्यायालय श्री सेठ, वरिष्ठ अधिवक्ता के तर्क में बल पाता है, जहां तक अधिवक्ता की माननीय सर्वोच्च न्यायालय के आदेश से संबंधित उनकी दलील का संबंध है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने याचिकाकर्ता के अनुरोध में कोई बल मानने से इनकार कर दिया है। संबंधित अधिकारियों को एटीआरई-2018 के 26,944 रिक्त पदों को एटीआरई-2019 के माध्यम से भरने का निर्देश देने का मामला और इस प्रकार की विशेष परिस्थितियों में संबंधित अधिकारियों को 69000 से अधिक पदों को भरने के लिए कोई निर्देश जारी करने से इनकार कर दिया है। तथापि, जहां तक रिट याचिका की पोषणीयता का संबंध है, श्री सेठ का तर्क दूर की कौड़ी है। हालांकि, ए. संजय कुमार पाठक बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, रिट याचिका सं. 65189/2006 में 25 मई 2007 के पूर्ण पीठ के निर्णय में अन्य बातों के साथ-साथ ये दोहराया गया है कि "कोई भी व्यक्ति यह दावा नहीं कर सकता कि किसी भी पद पर हर वर्ष भर्ती की जानी चाहिए" और इसके अलावा, इन याचिकाकर्ताओं के पास कोई अधिकार नहीं है क्योंकि इनके वाद का कारण अपरिपक्व हैं और याचिकाकर्ताओं पर यह साबित करने का घोर दायित्व है कि वे 'व्यथित व्यक्ति' हैं, जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कई अवसरों पर परिकल्पित किया गया है, जोकि इन याचिकाकर्त्ताओं द्वारा कहीं भी नहीं किया गया है और विशेष रूप से जब ये याचिकाएं जनहित याचिका के रुप में दाखिल नहीं की गयी हैं तब इनकी पोषणीयता का विषय विलग हो जाता है जिस पर टिप्पणी करनें से यह न्यायालय इस स्तर पर बच रहा है। इस न्यायालय का विचार है कि कानून इस पहलू पर स्पष्ट है कि यह अनुज्ञेय नहीं है कि सरकार विज्ञापित रिक्तियों के सापेक्ष में अधिक नियुक्तियां करेगी। इस कानून को स्वयं सर्वोच्च न्यायालय के कई फैसलों द्वारा स्थापित किया गया है। स्वयं सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था कि रिक्तियों से अधिक लोगों को नियुक्त करना कानून के खिलाफ है और दूसरों के भी अधिकार के खिलाफ हैं। इस संदर्भ में निम्नलिखित मामलों का उल्लेख किया जा सकता हैः यूनियन ऑफ इंडिया बनाम ईश्वर सिंह खत्री (1992) सप्लीमेंट 3 एससीसी 84 (ii)। गुजरात राज्य उप कार्यकारी अभियंता संघ बनाम गुजरात राज्य (1994) सप्लीमेंट 2 एससीसी 591,(iii) बिहार राज्य बनाम सचिवालय सहायक एस. ई. यूनियन ए. आई. आर. 1994, एस. सी. 736, (iv) प्रेम सिंह बनाम हरियाणा राज्य विद्युत बोर्ड, (1996)4 एससीसी 319 (v) अशोक कुमार बनाम चेयरमैन, बैंकिंग सेवा भर्ती बोर्ड एआईआर 1996 एससी 976. इनमें से प्रत्येक मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि विज्ञापित रिक्तियों से अधिक संख्या में रिक्तियों को नहीं भरा जा सकता क्योंकि अधिसूचित रिक्तियों से अधिक अभ्यर्थियों की नियुक्ति करना अनुच्छेद14 सपठित अनुच्छेद 16(1) के अंतर्गत ऐसे व्यक्तियों को संवैधानिक अधिकार से निर्हित तथा वंचित करना है जिन्होंने रिक्तियों

की अधिसूचना की तारीख के बाद संवैधानिक नियमों के अनुसार प्रश्नगत पद के लिए पात्रता अर्जित की है।

147. अग्रेतर, उपर्युक्त कालक्रम से यह स्पष्ट है कि 5 जनवरी, 2022 को आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थियों के लिए 6800 की चयनित सूची जारी करने की घटना के प्रति प्रत्यर्थी का रुख और कारण विरोधाभासी और अस्पष्ट दोनों हैं। प्रत्यर्थियों की स्वयं की संस्वीकृति के अनुसार, एटीआरई-2019 के आरक्षण में विसंगतियों को दूर करने के लिए उक्त 6800 की चयनित सूची जारी की गई है और वे एटीआरई-2018 की 22,933 रिक्तियों से संबंधित नहीं थी जैसा कि राज्य सरकार द्वारा दिनांक 12.01.2022 को विशेष अपील संख्या 79 वर्ष 2020 (आलोक कुमार और अन्य बनाम यूपी राज्य) में पारित आदेश में कहा गया था । उपरोक्त स्वीकृति के स्वाभाविक निष्कर्ष हैं कि (i) एटीआरई-2019 की आरक्षण नीति को लागू करने में विसंगति है, जो कि इस न्यायालय की राय में 01.06.2020 की चयनित सूची को रद्द करने के लिए पर्याप्त से अधिक कारण है और दूसरी, (ii) यदि, 6800 की चयनित सूची विसंगति को दूर करने का परिणाम है तो प्रत्यर्थी उक्त पहलू पर पूरी तरीके से मौन है, कि कैसे और किस तरह से उक्त विसंगति को दूर की जानी है, तीसरा (iii) यदि प्रत्यर्थी ने विसंगति को दूर करने का फैसला किया है, तो उक्त सूची से समान संख्या में अभ्यर्थियों को विरत किये बगैर प्रत्यर्थी कैसे 69000 संख्या का अतिक्रमण कर सकता है, चौथा (iv) माननीय उच्चतम न्यायालय ने 11 फरवरी, 2021 को याचिका (सिविल) संख्या 760 वर्ष 2020 "शिवम पांडे और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य" के अपने निर्णय में 69000 से अधिसंख्य नियुक्तियों के लिए कोई राहत देने से इनकार कर दिया है। इसके अलावा, प्रत्यर्थी की स्वयं की संस्वीकृति को ध्यान में रखते हुए6800 आरक्षित श्रेणी की चयनित सूची एटीआर-2019 भर्ती प्रक्रिया से सम्बंधित नहीं हो सकती तथा किसी भी रिक्ति को भरा नहीं जा सकता है । प्रत्यर्थी ने इसमें दाखिल किए गए अपने हलफनामे में कहा है कि भर्ती प्रक्रिया के बाद 69000 सहायक शिक्षकों में से कोई रिक्तियां उपलब्ध नहीं हैं ।

148. यह स्थापित कानून है कि कोई प्राधिकारी विज्ञापित पदों की संख्या से परे चयन/नियुक्ति नहीं कर सकता है, क्योंकि यह आवेदन जमा करने की अंतिम तिथि को नियुक्ति के लिए ऐसे अनर्ह अभ्यर्थियों को पश्चातवर्ती विज्ञप्ति द्वारा विज्ञापित नई चयन प्रक्रिया में प्रतिभाग करने से वंचित करता है जो उसके बाद नियुक्ति के लिए पात्र हो जाते हैं। इस प्रकार अधिसूचित रिक्तियों से अधिक रिक्तियों को भरना न तो अनुज्ञेय है और न ही वांछनीय क्योंकि यह शक्ति के अनुचित प्रयोग के समान है। अधिसूचित रिक्तियों से अधिक रिक्तियों को भरना भविष्य की रिक्तियों को भरने के बराबर है और कानून में इसकी अनुमति नहीं है। सुरिंदर सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य व अन्य ए. आई. आर. 1998 एस. सी. 18 और होशियार सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (1993)Supp.(4) एससीसी 377 मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय विशेष संदर्भ का है, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैरा 10 में अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित रूप में अभिनिर्धारित किया हैः

'10. ऐसे चयन के आधार पर अतिरिक्त पदों पर नियुक्ति ऐसे अभ्यर्थियों को

पदों पर नियुक्ति के लिए वंचित कर देगी जो विज्ञापन में उल्लिखित आवेदन जमा करने की अंतिम तिथि को पात्र नहीं थे और जो इसके पश्चात अतिरिक्त पदों पर नियुक्त के लिए पात्र हो गये क्योंकि यदि उक्त अतिरिक्त पदों का विज्ञापन दिया जाता है, तो जो बाद में पात्र हो जाएंगे ऐसे अभ्यर्थी नियुक्ति के लिए आवेदन करने के हकदार होंगे। इसलिए, उच्च न्यायालय ने यह सही अभिनिर्धारित किया था कि 19 व्यक्तियों का चयन बोर्ड द्वारा किया जाना जबकि बोर्ड की निर्धारित मांग केवल 8 पदों के लिए थी, विधिक रुप से मान्य नहीं है।

149 . अग्रेतर, अरूप दास और अन्य बनाम असम राज्य (2012) 5 एससीसी 559, मामले में उक्त निष्कर्ष को दोहराया गया है जिसमें उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया:-

"17. यह अच्छी तरह से स्थापित है कि कोई प्राधिकारी विज्ञापित पदों की संख्या से अधिक कोई चयन/नियुक्ति नहीं कर सकता है, भले ही विज्ञापित पदों की तुलना में बड़ी संख्या में पद उपलब्ध हों। उक्त निर्णय के पीछे सिद्धांत यह है कि यदि ऐसा करने की अनुमति दी जाती है, तो इस तरह की कार्रवाई पूरी तरह से मनमानी और संविधान के अनुच्छेद 14 व 16 का उल्लंघन होगा क्यूंकि जिन अभ्यर्थियों ने ऐसे रिक्त पदों के लिए आवेदन नहीं करने का निर्णय लिया था जिनको भरा जाना वाछंनीय था, वे भी आवेदन कर सकते थे यदि उन्हें पता होता कि अन्य रिक्तियां भी भरे जाने के लिए विचाराधीन होंगी।"

150. उपरोक्त सभी कारणों से, 6800 की चयनित सूची दिनांक 05.01. 2022 को, जिसे आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थियों के चयन के लिए जारी किया गया, कानून की दृष्टि में नहीं ठहरती है।

K. <u>निष्कर्ष</u>

151. इस प्रकार, यह न्यायालय इस मत की है कि टीईटी के स्तर पर दी गई रियायत, जिससे कि एक अभ्यर्थी को खुली प्रतिस्पर्धा में भाग लेने का पात्र बनाया जा सके, जैसे एटीआरई-2019 में, ऐसे आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थी को खुली प्रतिस्पर्धा में विचारार्थ लेने के लिए अयोग्य नहीं करेगा यदि वह सामान्य श्रेणी में अंतिम सामान्य श्रेणी के अभ्यर्थी के बराबर या अधिक अंक प्राप्त करने में सक्षम है क्योंकि प्रतिस्पर्धा अभी तक शुरू नहीं हुई है। हालांकि, यदि कोई अभ्यर्थी उत्तीर्ण होने में अंकों में छूट चाहता है, तो स्पष्ट रूप से एटीआरई-2019 में उसे एमआरसी का नहीं माना जाएगा क्योंकि न केवल प्रतियोगिता शुरू हो चुकी है बल्कि इस छूट का अर्थ होगा आरक्षण।

152. इसको पूर्ण रूप से स्पष्ट करने के लिए यदि किसी भी आरक्षित वर्ग के अभ्यर्थी, जिसने 65 प्रतिशत या उससे अधिक अंक प्राप्त किए हैं तो वह एमआरसी अभ्यर्थी के रूप में विचार किया जा सकता है और तदनुसार सामान्य वर्ग के अभ्यर्थी के साथ प्रतिस्पर्धा करने और सामान्य वर्ग में पहुँचने की अनुमति दी जा सकती है, जबकि आरक्षित वर्ग के अभ्यर्थी ने यदि 65 प्रतिशत से कम और 60 प्रतिशत से अधिक अंक प्राप्त किए हैं तो एटीआरई-2019 में उस पर अपनी-अपनी श्रेणी में विचार किया जाएगा और सामान्य श्रेणी के अभ्यर्थियों के क्षेत्र में, नियमों के परिशिष्ट-1 के अनुसार गुणवत्ता बिंदु में अधिक

अंक प्राप्त करने के आधार पर, विचार की अनुमति नहीं दी जाएगी। उक्त प्रस्ताव का सरल रूप से अर्थ है कि (i) आरक्षित श्रेणी से संबंधित कोई भी अभ्यर्थी, जिसने एटीआरआई-2019 में अंकों में छूट का लाभ उठाया है, जो एक खुली प्रतियोगिता माना गया है, नियमों के परिशिष्ट-1 के संदर्भ में गुणवत्ता के अनुसार चयनित सूची तैयार करते समय अपनी संबंधित श्रेणी से अनारक्षित श्रेणी में स्थानांतरित होने का हकदार नहीं होगा, (ii) इसके अलावा, वे अभ्यर्थी जो चाहे आरक्षित हों या अनारक्षित, एटीआर-2019 में 65 प्रतिशत से अधिक अंक प्राप्त करेंगे, उन्हें खुले श्रेणी के विचार क्षेत्र के भीतर शामिल किया जाएगा और तदनुसार एक चयन सूची गुणवत्ता अंको के अनुसार तैयार की जाएगी और कुल पद का पचास प्रतिशत इन अभ्यर्थियों द्वारा भरा जाएगा चाहे वे आरक्षित श्रेणी से हों अथवा अनारक्षित श्रेणी से ।(iii) शेष 50 प्रतिशत, आरक्षण अधिनियम की धारा 3 (1) के तहत परिकल्पित अपनी संबंधित आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थियों द्वारा भरा जाएगा।(iv) तत्पश्चात, यदि कोई क्षैतिज आरक्षण हो, जैसा सरकारी आदेश में उपबंधित है, तदनुसार लागू किया जाना चाहिए।

153. जहां तक एमआरसी अभ्यर्थियों को प्राथमिकता वाले जिले आवंटित करने का संबंध है, एमआरसी अभ्यर्थियों को जिलों के आवंटन के उद्देश्य के लिए आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थियों के रूप में केवल 'कल्पित रूप' से माना जाना चाहिए और वे आरक्षित श्रेणी के लिए चिन्हित सीट का विकल्प चुन सकते हैं, ताकि कम मेधावी आरक्षित श्रेणी के अभ्यर्थियों के सापेक्ष उन्हें नुकसान न पहुंचे। इस तरह के एमआरसी को केवल सामान्य श्रेणी का हिस्सा माना जाएगा। इसके अलावा, एमआरसी के चुन लेने के कारण, आरक्षित श्रेणी के एक सीट भर जाते हुए सामान्य श्रेणी के अभ्यर्थियों को उपलब्ध विकल्पों में से एक सीट खाली रहती है। परिणामस्वरूप, एक कम रैंकिंग वाला आरक्षित श्रेणी का अभ्यर्थी, जिसके पास आरक्षित श्रेणी के विकल्प थे, प्रभावित होता है क्यूंकि वह और कोई विकल्प नहीं चुन पाता, और इस स्थिति के उपचार के लिए, अर्थात, प्रभावित अभ्यर्थी को उपचार प्रदान करने के लिए वह सीट जो एमआरसी को आवंटित होती यदि उसने आरक्षित श्रेणी की सीट न चुन ली होती, उस आरक्षित श्रेणी अभ्यर्थी द्वारा भरी जायेगी जो एमआरसी द्वारा चुनाव किये जाने के कारण वंचित हो गया है। इससे आरक्षण का प्रतिशत 50% बिना व्यवधान के यथावत रहेगा।

154. प्रकट रूप से, वर्तमान मामले की सुनवाई के दौरान, आरक्षित वर्ग के उन अभ्यर्थियों के अंक और विवरण के बारे में कोई स्पष्टता नहीं थी जो एटीआरई-2019 में प्रतिभाग किये हैं। प्रत्यर्थियों जो एटीआरई-2019 के रिकार्ड के संरक्षक है आैर जिन्हें उक्त रिकार्ड प्रदान करने में इस न्यायालय की सहायता करनी थी, उनकी ओर से ऐसा कोई प्रयास नही किया गया। इस प्रकार, यह निर्देश दिया जाता है कि राज्य 01 जून 2020 की चयनित सूची की समीक्षा करेगा और नियमों के परिशिष्ट-1 के अनुसार अभ्यर्थियों की गुणवत्ता अंक तैयार करेगा और इस न्यायालय के निदेशों के अनुसार अभ्यर्थियों की श्रेष्ठता सूची तैयार करेगा। यह प्रक्रिया आज से तीन महीने की अवधि के भीतर की जाएगी।

155. वर्तमान मामले के विशिष्ट तथ्यों में और विशुद्ध रूप से साम्या एवं संतुलन के लिए,

यह न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए निर्देश देता है कि जब तक प्रत्यर्थियों द्वारा संशोधित सूची तैयार नहीं की जाती है, तब तक पहले से ही नियुक्त किए गए अभ्यर्थी और वर्तमान में विभिन्न जिलों में सहायक शिक्षकों के रूप में कार्य कर रहे अभ्यर्थी इस अवधि तक अपने पद पर कार्य करते रहेंगे और कार्यविलग नहीं किये जायेंगे। ऐसा परीक्षा की अवधि और अंत को ध्यान में रखते हुए शिक्षा सत्र की अवधि समाप्त होने के कारण किया जायेगा। इस न्यायालय का मानना है कि उन शिक्षकों की नियुक्ति, जिन्हें संशोधित सूची में कोई स्थान नहीं मिला है, जैसा कि यहां ऊपर निर्देशित किया गया है और जिन्हें 01.06.2020 की चयन सूची के अनुसार नियुक्त किया गया है उनकी सूची पूरी तरह से आकस्मिक थी और उनकों कोई और अधिकार नहीं देती। यह निर्देश 7 दिसंबर, 2020 के अंतरिम आदेश के अनुरूप है, जिसमें इस न्यायालय ने प्रभावित व्यक्तियों को नोटिस जारी करते समय निर्देश दिया था कि इस बीच, सहायक शिक्षक के पद पर की गई नियुक्तियां इन याचिकाओं के अंतिम निर्णय के अधीन होंगी।

156. जैसा कि तथ्यों में ऊपर वर्णित किया गया है कि जिन शिक्षकों की नियुक्ति की गई है चाहे वे आरक्षित वर्ग से संबंधित हों या अनारक्षित वर्ग से संबंधित हों और वे पिछले 2 वर्षों से अधिक समय से कार्य कर रहे हैं, उनको दोषी नहीं ठहराया जा सकता है क्योंकि वह प्रत्यर्थीगण थे जो आरक्षण की धारा 3(1) और 3(6) के प्रावधानों को लागू करने के संवैधानिक कर्तव्य के अधीन थे जोकि नहीं किया गया है। यह न्यायालय समानता को संतुलित करने के लिए और इसे ध्यान में रखते हुए कि यह युवक युवतियां जो शिक्षक के रूप में इस देश के भविष्य को आकार देने जा रहे हैं, राज्य को स्वतंत्रता प्रदान करता है कि सरकार वर्तमान मामले के विशिष्ट तथ्यों में इस मामले में हस्तक्षेप करेगी और इन शिक्षकों के समायोजन के लिए एक नीति तैयार करेगी, जिन्हें चयनित सूची दिनांकित 01.06.20020 में संशोधन द्वारा हटाया जा सकता है। जैसा कि **"गौरव प्रधान बनाम राजस्थान राज्य, (2018) 11 एससीसी 352"** के अलोक में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए फैसले में निष्कासित अभ्यर्थियों के संबंध में ऊपर पहले ही चर्चा की जा चुकी है।

157. पक्षकार बनाने सम्बन्धी समस्त आवेदन पत्र स्वीकार किए जाते हैं।

158. चूँकि यह निर्देश दिया गया है कि इस निर्णय के निदेशों को ध्यान में रखते हुए कि चयनित सूची दिनांकित 01.06.2020 का पुनरीक्षण किया जाए, 6800 अभ्यर्थियों की 05.01.2022 दिनांकित चयनित सूची रद्द की जाती है।

159. आरक्षण किसी भी परिस्थिति में कुल सीटों का 50 प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए।

160. सभी रिट याचिकाओं का निस्तारण उपरोक्त शर्तों के अधीन किया जाता है, और सभी अंतरिम आदेश निरस्त किए जाते हैं।

161. वर्तमान मामले के तथ्यों में, वादव्यय के बारे में कोई आदेश नहीं होगा।